

# दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण

\*\*\*\*\*



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ९

(सितम्बर)

पृष्ठ १ से १६४१

---

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित  
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

# इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

\*\*\*\*\*

## अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

\*\*\*\*\*

## परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा

\*\*\*\*\*

## संपादक मंडल

### वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

### कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

३. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

४. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

५. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

६. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

\*\*\*\*\*

## माननीय न्यायमूर्तिगण

| मुख्य न्यायमूर्ति                                                        |                                                       |
|--------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------|
| माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिकर दिवाकर                            |                                                       |
| न्यायमूर्ति                                                              |                                                       |
| १. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी                         | ३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर                |
| २. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता                             | ३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया               |
| ३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा                            | ३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया              |
| ४. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर                             | ३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा               |
| ५. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी                           | ३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह           |
| ६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला                             | ३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल             |
| ७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अतुल रहमान मसूदी<br>(वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ) | ३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी         |
| ८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा                           | ३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह              |
| ९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय                                      | ४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह                |
| १०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा                              | ४१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान        |
| ११. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा                            | ४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवार          |
| १२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी                                  | ४३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव |
| १३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह                            | ४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर                |
| १४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी                              | ४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल        |
| १५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय                               | ४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ    |
| १६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी                                  | ४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान           |
| १७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान                             | ४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी      |
| १८. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली                                    | ४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह              |
| १९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव                               | ५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित      |
| २०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर                                 | ५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव           |
| २१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता                                 | ५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा                |
| २२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ                                    | ५३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी                 |
| २३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार                                   | ५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद                 |
| २४. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार                                  | ५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक                |
| २५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन                                  | ५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार                |
| २६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा                                 | ५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल                |
| २७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह                             | ५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री डोनादि रमेश               |
| २८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट                                     | ५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी          |
| २९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी                                  | ६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा        |
| ३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज                                    | ६१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)     |
| ३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया                                | ६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी    |

|                                                        |
|--------------------------------------------------------|
| ६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम |
| ६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय           |
| ६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल                  |
| ६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन                   |
| ६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव          |
| ६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी           |
| ६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह               |
| ७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह           |
| ७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार             |
| ७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान            |
| ७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा          |
| ७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव            |
| ७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला           |
| ७६. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल            |
| ७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इंदरिशी     |
| ७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्रा    |
| ७९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा         |
| ८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन             |
| ८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद            |
| ८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार             |
| ८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम       |
| ८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव      |
| ८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिज़वी        |
| ८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम            |
| ८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता          |
| ८८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला        |
| ८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र          |
| ९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर               |
| ९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार              |
| ९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला               |
| ९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल     |



[अंजुमन सिद्दीकिया जामिया नूरुल ओलूम  
मुंशीपुर, मुबारकपुर आजमगढ़ एवं अन्य बनाम  
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-1334

[अशोक सिंह एवं अन्य बनाम डी.आई.ओ.एस](#)  
पृष्ठ-530

[अजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)  
पृष्ठ-638

[अश्विनी शर्मा एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य](#) पृष्ठ-124

[अजय कुमार सिंह बनाम राज्य लोक सेवा  
न्यायाधिकरण, लखनऊ एवं अन्य](#) पृष्ठ-521

[अहमद अहसन एवं अन्य बनाम श्री सुरेश](#)  
पृष्ठ-418

[अजय बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं  
अन्य](#) पृष्ठ-706

[आशीष कुमार पांडेय एवं अन्य बनाम उत्तर  
प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-1061

[अनिल कुमार \(अभियंता\) बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-174

[आशु जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)  
पृष्ठ-1423

[अनिल कुमार अहिरवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य  
पृष्ठ-880](#)

[इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य  
बनाम वाणिज्यिक न्यायालय, वाराणसी एवं  
अन्य](#) पृष्ठ-1257

[अनिल कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-517

[इतवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#)  
पृष्ठ-843

[अमित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं  
अन्य](#) पृष्ठ-1092

[इशितयाक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#)  
पृष्ठ-97

[अमित गोयल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-182

[उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश  
सीनियर बेसिक शिक्षक संघ](#) पृष्ठ-257

[अमृतांश पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं  
अन्य](#) पृष्ठ-377

[उत्तर प्रदेश राज्य बनाम महिपाल सिंह](#)  
पृष्ठ-1309

[अरुण कुमार जैन एवं अन्य बनाम पीओ, ऋण  
वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद और अन्य](#)  
पृष्ठ-1117

[उत्तर प्रदेश विद्युत निगम संविदा कर्मचारी  
संघ, लखनऊ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं  
अन्य](#) पृष्ठ-1055

|                                                                                                         |                            |                                                                             |                            |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------|-----------------------------------------------------------------------------|----------------------------|
| <a href="#">उदय प्रताप सिंह बनाम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती एवं अन्य</a>                          | <a href="#">पृष्ठ-468</a>  | <a href="#">कृष्णा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>            | <a href="#">पृष्ठ-954</a>  |
| <a href="#">उर्मिला सिंह चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a>                                  | <a href="#">पृष्ठ-45</a>   | <a href="#">कौशल आनंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a>               | <a href="#">पृष्ठ-17</a>   |
| <a href="#">एचकेएस डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                       | <a href="#">पृष्ठ-1106</a> | <a href="#">खालिद अनवर उर्फ अनवर खालिद बनाम सी.बी.आई.</a>                   | <a href="#">पृष्ठ-793</a>  |
| <a href="#">एम/एस रामकली बालिका इंटर कॉलेज, सुल्तानपुर एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-665</a>  | <a href="#">गोलू @ अरुण पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>           | <a href="#">पृष्ठ-1474</a> |
| <a href="#">ओम प्रकाश उर्फ प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                                   | <a href="#">पृष्ठ-799</a>  | <a href="#">गोवर्धन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                             | <a href="#">पृष्ठ-193</a>  |
| <a href="#">करण सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                                      | <a href="#">पृष्ठ-928</a>  | <a href="#">शौरी राग बनाम आई.ओ.सी. एवं अन्य</a>                             | <a href="#">पृष्ठ-672</a>  |
| <a href="#">कल्लू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                                                  | <a href="#">पृष्ठ-871</a>  | <a href="#">छोटाई एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                      | <a href="#">पृष्ठ-825</a>  |
| <a href="#">काशी राम बनाम रामजी लाल</a>                                                                 | <a href="#">पृष्ठ-975</a>  | <a href="#">जमशेद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>             | <a href="#">पृष्ठ-946</a>  |
| <a href="#">कुर्वेद्र पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                                     | <a href="#">पृष्ठ-297</a>  | <a href="#">जीत लाल सरोज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>               | <a href="#">पृष्ठ-1067</a> |
| <a href="#">कुसुम देवी एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a>                              | <a href="#">पृष्ठ-7</a>    | <a href="#">जुगल किशोर श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>               | <a href="#">पृष्ठ-1223</a> |
| <a href="#">कृष्ण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                                            | <a href="#">पृष्ठ-488</a>  | <a href="#">जोस पापाचेन एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-30</a>   |

[डॉ. बी.के. गुप्ता बनाम न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय, आगरा एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-584

[पद्मश्री डॉ. उषा शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-138

[तारकेश्वर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य](#) पृष्ठ-691

[पलटू राम यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-676

[दया राम पासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#) पृष्ठ-864

[यूपी कॉर्प फेड लिमिटेड और अन्य बनाम पीओ, औद्योगिक न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य](#) पृष्ठ-1214

[दिनेश कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-39

[प्रबंध निदेशक उत्तर प्रदेश जल निगम \(ग्रामीण\) लखनऊ एवं एक अन्य बनाम बब्बन सिंह एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-283

[देव नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-939

[प्रबंधन समिति, जय प्रकाश चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-387

[देश राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-135

[प्रबंधन समिति, मेरठ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-1139

[नवनीत नैन उर्फ नवनीत अग्रवाल बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य](#) पृष्ठ-402

[प्रभात भटनागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-1101

[नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जिला गौतमबुद्ध नगर बनाम मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्रा.लिमिटेड, पांडव नगर, दिल्ली एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-210

[प्रवीण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-1037

[नीरू कुमार यादव एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य](#) पृष्ठ-13

[प्रियदर्शिनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-562

[नूर अहमद बनाम मोहम्मद अहमद](#) पृष्ठ-430

[प्रेम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#) पृष्ठ-851

[न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, इलाहाबाद बनाम श्रीमती प्रमिला एवं अन्य](#) पृष्ठ-252

[बसदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#) पृष्ठ-343

|                                                                                       |                            |                                                                                       |                            |
|---------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------|
| <a href="#">भंवर सिंह उर्फ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                         | <a href="#">पृष्ठ-1435</a> | <a href="#">मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-739</a>  |
| <a href="#">भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारत संघ</a>                      | <a href="#">पृष्ठ-1553</a> | <a href="#">मेसर्स आर्यन ग्रुप ऑफ गार्ड सर्विसेज, लखनऊ बनाम भारत संघ और अन्य</a>      | <a href="#">पृष्ठ-1329</a> |
| <a href="#">भारत संघ एवं अन्य बनाम मोहम्मद युनुश और अन्य</a>                          | <a href="#">पृष्ठ-577</a>  | <a href="#">मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड बनाम श्रीमती राज रानी</a>           | <a href="#">पृष्ठ-1586</a> |
| <a href="#">भारत संघ और अन्य बनाम श्री कौशल्या नंदन शरण वर्मा एवं अन्य</a>            | <a href="#">पृष्ठ-1024</a> | <a href="#">मेसर्स माँ वैष्णो ट्रेडर्स, कौशांबी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>  | <a href="#">पृष्ठ-187</a>  |
| <a href="#">मकबूल हसन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                            | <a href="#">पृष्ठ-1411</a> | <a href="#">मोहन लाल राठी बनाम भारत संघ एवं अन्य</a>                                  | <a href="#">पृष्ठ-1290</a> |
| <a href="#">महावीर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                      | <a href="#">पृष्ठ-1165</a> | <a href="#">मोहम्मद अयूब रिजवी और अन्य बनाम श्रीमती सलमा खान एवं अन्य</a>             | <a href="#">पृष्ठ-759</a>  |
| <a href="#">महेश कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                               | <a href="#">पृष्ठ-27</a>   | <a href="#">मोहम्मद आरिफ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                         | <a href="#">पृष्ठ-921</a>  |
| <a href="#">महेश चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                           | <a href="#">पृष्ठ-900</a>  | <a href="#">मोहम्मद इस्माइल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a>           | <a href="#">पृष्ठ-555</a>  |
| <a href="#">मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-713</a>  | <a href="#">मोहित कुमार गोयल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                     | <a href="#">पृष्ठ-904</a>  |
| <a href="#">मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-721</a>  | <a href="#">रजा हुसैन उर्फ राजा मियां बनाम अपर आयुक्त लखनऊ एवं अन्य</a>               | <a href="#">पृष्ठ-655</a>  |
| <a href="#">मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> | <a href="#">पृष्ठ-730</a>  | <a href="#">रजिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                       | <a href="#">पृष्ठ-1208</a> |

[रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#)

पृष्ठ-61

[रामवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1401

[रमेश चंद्र पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-509

[राहुल सक्सेना उर्फ भोला/भोलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-200

[राजीव सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1014

[रैस्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड तमिलनाडु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1510

[राजेंद्र कुमार बनाम कुँवर भारतेन्द्र सिंह](#)

पृष्ठ-1604

[विनोद कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य](#)

पृष्ठ-1282

[राधे श्यामा एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य](#)

पृष्ठ-167

[विपिन कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1158

[राम कली देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1235

[विश्वनाथ विश्वकर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-493

[राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1431

[शारदा सिंह बनाम विजय कुमार रस्तोगी](#)

पृष्ठ-1244

[राम बचानी बनाम ए.डी.जे. लखनऊ](#)

पृष्ठ-748

[शाहरुख सलीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-291

[रामजी सिंह बनाम प्रवर्तन निदेशालय इलाहाबाद उप-क्षेत्रीय कार्यालय](#)

पृष्ठ-766

[शेषमणि चौबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1045

[रामनारायण पांडेय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1615

[श्रीमती प्रतिभा त्रिपाठी बनाम भारत संघ और अन्य](#)

पृष्ठ-1050

[रामवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1386

[श्रीमती प्रेमलता पांडेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1382

|                                                                                          |                                                                            |
|------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------|
| <a href="#">श्रीमती प्रेमा देवी बनाम देवीदीन एवं अन्य</a>                                | <a href="#">सुधीर कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>           |
| पृष्ठ-1249                                                                               | पृष्ठ-1150                                                                 |
| <a href="#">श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>   | <a href="#">सुनील कुमार कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                 |
| पृष्ठ-205                                                                                | पृष्ठ-1486                                                                 |
| <a href="#">श्रीमती मीरा देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>              | <a href="#">सुनील कुमार सिंह तृतीय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य</a> |
| पृष्ठ-1395                                                                               | पृष्ठ-321                                                                  |
| <a href="#">श्रीमती मीरू सेठ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                        | <a href="#">सुनील प्रकाश गौड़ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                  |
| पृष्ठ-1174                                                                               | पृष्ठ-50                                                                   |
| <a href="#">श्रीमती यास्मीन जिया बनाम श्रीमती हनीफा खुर्शीद और अन्य</a>                  | <a href="#">सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                 |
| पृष्ठ-422                                                                                | पृष्ठ-539                                                                  |
| <a href="#">श्रीमती संगीता शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                   | <a href="#">सोनू @ पिकू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                        |
| पृष्ठ-1629                                                                               | पृष्ठ-1500                                                                 |
| <a href="#">संजय कुमार सिंह बनाम डिर. महिला कल्याण यूपी लखनऊ एवं अन्य</a>                | -----                                                                      |
| पृष्ठ-1322                                                                               |                                                                            |
| <a href="#">समीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य</a>                                        |                                                                            |
| पृष्ठ-810                                                                                |                                                                            |
| <a href="#">सरिता यादव बनाम सरोज देवी एवं अन्य</a>                                       |                                                                            |
| पृष्ठ-1185                                                                               |                                                                            |
| <a href="#">सिद्धांत @ आशु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a>                          |                                                                            |
| पृष्ठ-1449                                                                               |                                                                            |
| <a href="#">सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबूसराय, भदोही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</a> |                                                                            |
| पृष्ठ-1368                                                                               |                                                                            |

(2023) 9 ILRA 6

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 1907 वर्ष

2023

कुसुम देवी एवं एक अन्य ...प्रार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण

प्रार्थीगण के लिए अधिवक्ता:

श्री घनश्याम दास मिश्र, श्री अभिषेक कुमार मिश्र, श्री चंद्रकेश मिश्र, श्री उमेश पांडे, श्री देया शंकर मिश्र (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री वेद प्रकाश शुक्ला

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 306-आवेदन-अस्वीकृति- मृतक ने प्रार्थीगण के घर के परिसर में आत्महत्या की है, ऐसे में यह वादविधि भी वर्तमान मामले के लिए सही नहीं है और यहां अपवाद नहीं बनाया जा सकता है। प्रार्थीगण का नाम प्र.सू.रि. में है-वर्तमान मामले में, पहले से ही धारा 82 और 83 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाही पूरी हो चुकी है और आवेदक धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दायर आवेदन में भी विफल रहे हैं- कमलेश के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले

पर लागू नहीं होता है क्योंकि उक्त मामले में प्र.सू.रि. को धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत याचिका में चुनौती दी गई थी जैसा कि राजस्थान उच्च न्यायालय में चलन है, ऐसे में प्र.सू.रि. को चुनौती देने वाली याचिका के संदर्भगत बाद में भी, धारा 438 दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन इस न्यायालय द्वारा लिया गया और तय किया गया है-इसमें, प्रार्थीगण ने अंतिम रिपोर्ट (आरोप-पत्र) को चुनौती दी थी और विफल रहे- दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत आवेदन पोषणीय नहीं है। (पैरा 1 से 23)

बी. प्रख्यात विधिवेत्ता और अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बेंजामिन एन. कार्डोजो ने अपनी पुस्तक 'न्यायिक प्रक्रिया की प्रकृति' में कहा है कि किसी भी दिए गए विवाद में पूर्वनिर्णयों को विवेकाधिकार के बिना लागू नहीं किया जा सकता, जिसके लिए न्यायाधीशों को ज़िम्मेदारी लेनी होगी। वे कहते हैं, 'अधिकांश न्यायाधीश यह कहने के लिए प्रवृत्त होते हैं कि जिसे कभी अपवाद माना जाता था, वह नियम है, और जो नियम था, वह अब अपवाद है'। पूर्वनिर्णयों का सहारा लेने के संदर्भ में तर्क और अनुभव के बीच का संबंध महत्वपूर्ण है। (पैरा 22)

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य

2. कमलेश और एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य. (2019) एससीसी ऑनलाइन एससी 1822

3. विजय पाल प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जमानत आवेदन अन्तर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 57 वर्ष 2023

4. विनोद कुमार शर्मा एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, एसएलपी (क्रिमिनल) संख्या 6057 वर्ष 2021

5. डॉ. रजनी त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जमानत आवेदन अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 8059 वर्ष 2023

6. उदित आर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जमानत आवेदन अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 4560 वर्ष 2023

7. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और एक अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा पारित)

1. सूची को पुनरीक्षित किया गया है।

2. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दया शंकर मिश्रा सहायक श्री अभिषेक कुमार मिश्रा, प्रार्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वेद प्रकाश शुक्ला और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री सुनील कुमार को सुना और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया।

3. वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन प्रार्थीगण की ओर से मुकदमा अपराध संख्या 75 वर्ष 2022 में धारा 306 आईपीसी के तहत पुलिस स्टेशन- नैनी, जिला प्रयागराज में अग्रिम जमानत पर उन्हें बढ़ाने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

### अभियोजन की कहानी:

4. मृतक, जो सूचनाकर्ता का पति है, एक मरीन इंजीनियर बताया गया है और उसने अपनी नौकरी छोड़ दी थी और प्रयागराज में अनुबंध की नौकरी करना शुरू कर दिया था क्योंकि उसके पिता बीमार पड़ गए थे और बिस्तर पर पड़े थे, लेकिन उक्त अर्जित धन उसके बीमार पिता के खाते में स्थानांतरित हो जाता था, इस तरह उनका परिवार उनके पिता बलराम मिश्रा द्वारा उन्हें दिए जा रहे पैसे पर निर्भर था, जिनकी बाद में मृत्यु हो गई। उक्त विवाह में से एक पांच वर्ष की पुत्री है। बताया जाता है कि मृतक ने दिनांक 5/6.01.2022 की रात में आत्महत्या कर ली थी और सूचनाकर्ता दिनांक 07.01.2022 को अहमदाबाद से अपने ससुराल पहुंच सका। उसके ससुराल वालों का व्यवहार ठीक नहीं था, इस तरह उसने अपने पति की तेरहवी के बाद अपने ससुराल से घर छोड़ दिया और उसे ससुर के मोबाइल से एक व्हाट्सएप संदेश मिला जिसका उपयोग उसके पति द्वारा किया जा रहा था, जिससे उसे एक सुसाइड नोट भेजा गया था। एफआईआर दिनांक 19.02.2022 को प्रयागराज के नैनी पुलिस स्टेशन में दर्ज की गई थी।

### प्रतिद्वंद्वी विवाद:



**(प्रार्थीगण की ओर से तर्क)**

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सत्र न्यायाधीश, प्रयागराज द्वारा धारा 173 (2) सीआर.पी.सी. के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक प्रार्थीगण को अग्रिम जमानत दी गई थी और उन्होंने पहले दिए गए अवसर का दुरुपयोग नहीं किया है।

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बार में जोरदार तर्क दिया है कि धारा 306 आईपीसी के कोई भी संघटक पूरे नहीं होते हैं क्योंकि प्रार्थीगण को कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं सौंपा गया है और यहां तक कि धारा 107 आईपीसी भी वर्तमान मामले में लागू नहीं होती है क्योंकि प्रार्थी, जो महिलाएं हैं, ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि सह-अभियुक्त मनोहर मिश्रा को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 29923 वर्ष 2023 में पारित आदेश दिनांकित 17.07.2023 के तहत नियमित जमानत दी गई है और उक्त आदेश स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि धारा 306 आईपीसी के संघटक पूरे नहीं हुए हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि प्रार्थी, महिलाएं होने के नाते, अग्रिम जमानत के भी हकदार हैं क्योंकि उन्हें सलाखों के पीछे भेजने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

7. समाज में उनकी प्रतिष्ठा धूमिल होगी और उनके द्वारा सबूतों से छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है क्योंकि अंतिम रिपोर्ट (आरोप-पत्र) पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है। वे मुकदमे में सहयोग करने के लिए तैयार हैं

क्योंकि वे जांच के दौरान पहले ही सहयोग कर चुके हैं।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उक्त घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। उक्त एफआईआर एक महीने से अधिक की देरी के बाद दर्ज की गई है, इसलिए उक्त अत्यधिक देरी भी प्रार्थीगण को अग्रिम जमानत देने के लिए एक वैध आधार है।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 1 अन्य में पारित इस न्यायालय का निर्णय प्रति-इंक्विरियम है क्योंकि इसने कोई कानून निर्धारित नहीं किया है क्योंकि यह एक अनुपात नहीं है जिस पर भरोसा किया जाना है, बल्कि पैराग्राफ 43 (8) का संदर्भ केवल आज्ञाकारी-आदेश है।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **कमलेश व अन्य बनाम राजस्थान व अन्य<sup>2</sup>** के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें यह विचार व्यक्त किया गया है कि सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत एक याचिका, सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत दायर आवेदन के खारिज होने के बाद भी, काफी हद तक सुनवाई योग्य है।

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 57 वर्ष 2023 (विजय पाल प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ संख्या 10 और 11 पर भरोसा किया है, जिससे **कमलेश**

(उपरोक्त) के फैसले पर बहुत भरोसा किया गया है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

*"10. कमलेश व अन्य बनाम राजस्थान राज्य व अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1822 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय, राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ दायर एक आपराधिक अपील का फैसला कर रहा था, जिसके तहत अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर याचिका पहले ही खारिज कर दी गयी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: -*

*"5. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता। उच्च न्यायालय को योग्यता के आधार पर आवेदन पर विचार करना चाहिए था। यह तथ्य कि सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत याचिका को रद्द करने के लिए खारिज कर दी गयी थी, निर्णायक नहीं था और आवेदन को खारिज करने का कारण नहीं हो सकता है।*

*11. इसलिए, कानून स्पष्ट है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत प्रार्थी के आवेदन को खारिज करना अग्रिम जमानत के लिए उसके आवेदन के गुण-दोष पर विचार करने के खिलाफ एक बाधा नहीं होगी।*

12. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे अपील(आपराधिक) करने के लिए विशेष छूट के लिए याचिका (याचिकाओं) संख्या 6057 वर्ष 2021(विनोद कुमार शर्मा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसके तहत यह कहा गया है कि अभियुक्त को आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के आदेश में अग्रिम जमानत भी शामिल है।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 8059 वर्ष 2023 (डॉ. रजनी त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ संख्या 11 और 12 पर भी भरोसा किया है, जिससे सीआर.पी.सी. धारा 482 के तहत आवेदन का निपटारा होने के बाद भी अपराधी को अग्रिम जमानत दी गई थी और विनोद कुमार शर्मा व एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य<sup>3</sup> के फैसले पर बहुत भरोसा किया गया था।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 4560 वर्ष 2023(उदित आर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत दोषी के खिलाफ कार्यवाही शुरू होने के बाद भी, आरोपी की अग्रिम जमानत की अनुमति दी गई थी।

**(सूचनाकर्ता/राज्य की ओर से तर्क)**

15. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान एजीए ने इस आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन का जोरदार विरोध किया है कि प्रार्थीगण साफ हाथों से नहीं आए हैं क्योंकि उन्होंने पहले ही सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत दिए गए अवसर को त्याग दिया है और वर्तमान मामला, **शिवम (उपरोक्त)** में पारित इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 43 (2), (8) और (10) से पूरी तरह प्रभावित है।

16. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य व अन्य<sup>4</sup>** के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सीआर.पी.सी. की धारा 82 और 83 के तहत अपराधी के विरुद्ध कार्यवाही करने के बाद, सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत आवेदन पोषणीय नहीं है।

17. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि वर्तमान मामले में, सीआर.पी.सी. की धारा 82 और 83 के तहत कार्यवाही दिनांक 18.01.2023 को पहले से ही पूरी हो चुकी है और वे सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत दायर आवेदन संख्या 3934 वर्ष 2023 में भी विफल रहे हैं, इस तरह प्रार्थीगण अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं।

**निष्कर्ष:**

18. जहां तक **कमलेश (उपरोक्त)** के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का

संबंध है, उक्त मामले की विधि वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती है क्योंकि उक्त मामले में, एफआईआर को सीआर.पी.सी. धारा 482 के तहत दायर याचिका में चुनौती दी गई थी, जैसा कि राजस्थान उच्च न्यायालय में प्रथा है, इस प्रकार एफआईआर को चुनौती देने वाली याचिका के बाद भी, सीआर.पी.सी. की धारा 438 के तहत आवेदन पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया और निर्णय लिया गया है। इसमें, प्रार्थीगण ने अंतिम रिपोर्ट (आरोप-पत्र) को चुनौती दी थी और असफल रहे थे।

19. जहां तक **विजय पाल प्रजापति (उपरोक्त)** के फैसले का सवाल है, उक्त निर्णय को भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह **कमलेश (उपरोक्त)** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर आधारित है। जहां तक प्रार्थी के मामले का संबंध है, उक्त निर्णय में भी कोई बल नहीं है और पर-एंक्योरियम है।

20. प्रार्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **विनोद कुमार शर्मा (उपरोक्त)** के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत यह कहा गया है कि 'नियमित जमानत' शब्द में सीआर.पी.सी. की धारा 438 के प्रावधान शामिल हैं। उक्त तर्क सही है और यह बिल्कुल सच है कि भले ही नियमित जमानत का आदेश पारित किया गया हो, अग्रिम जमानत ली जा सकती है, लेकिन उक्त मामले की विधि भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती है क्योंकि हमें मामले को

अपने गुणों के आधार पर देखना है और डॉ. रजनी त्रिपाठी (उपरोक्त) के मामले में पारित इस न्यायालय के उक्त निर्णय को **विनोद कुमार शर्मा (उपरोक्त)** के मामले में पारित शीर्ष न्यायालय के उक्त निर्णय पर रखा गया है। इस प्रकार, वे वर्तमान मामले पर लागू नहीं होते हैं।

21. **उदित आर्य (उपरोक्त)** में पारित इस न्यायालय का निर्णय भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि दहेज मृत्यु के उस मामले में, मृत्यु का कारण पुरानी बीमारी थी और उसकी मृत्यु उसके माता-पिता के घर में हुई थी। केवल सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत आदेश जारी किया गया था, वह भी अग्रिम जमानत याचिका दाखिल करने से कुछ दिन पहले। कार्यवाही पूरी नहीं की गई। आई.पी.सी. की धारा 304-बी के तहत कोई मामला नहीं बनता था, क्योंकि इस तरह का अपवाद तैयार किया गया था। वर्तमान मामले में, सीआरपीसी की धारा 82 और 83 के तहत उद्घोषणा दिनांक 18.01.2023 को ही पूरी हो गई थी और छह महीने से अधिक की अवधि बीत चुकी है और यहां, मृतक ने प्रार्थीगण के घर के परिसर में आत्महत्या कर ली है, इस प्रकार इस मामले के कानून भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होते हैं और अपवाद यहां नहीं बनाया जा सकता है। एफआईआर में प्रार्थीगण का नाम है।

22. अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, प्रख्यात न्यायविद

बेंजामिन एन. कार्डोजो ने अपनी पुस्तक 'द नेचर ऑफ द ज्यूडिशियल प्रोसेस' में कहा है कि किसी भी विवाद में विवेक के कुछ तत्वों के बिना किसी भी विवाद में उदाहरण लागू नहीं किए जा सकते, जिसके लिए न्यायाधीशों को जिम्मेदारी लेनी चाहिए। वह कहते हैं, अधिकांश न्यायाधीश यह कहने के इच्छुक हैं कि जिसे कभी अपवाद माना जाता था वह नियम है, और जो नियम था वह अब अपवाद है। उदाहरणों को लागू करने के संदर्भ में तर्क और अनुभव के बीच संबंध महत्वपूर्ण है।

23. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने और **शिवम (उपरोक्त)** में पारित इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 43 (2), (8) और (10) और मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मुझे यह मामला प्रार्थीगण को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त नहीं लगता।

24. वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन एतद्वारा योग्यता से रहित पाया जाता है और तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

25. हालांकि, यह उपबंधित किया गया है कि यदि प्रार्थी निचली अदालत के समक्ष उपस्थित होते हैं और नियमित जमानत के लिए आवेदन करते हैं, तो जमानत के लिए उनकी प्रार्थना पर कानून के अनुसार यथासंभव शीघ्रता से विचार किया जाएगा और निर्णय लिया जाएगा।

-----

(2023) 9 ILRA 10

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव  
आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन  
अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 8564 वर्ष  
2023

नीरू कुमार यादव एवं एक अन्य ...प्रार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण

प्रार्थीगण के लिए अधिवक्ता:

श्री पद्माकर पांडे

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अनुराग शुक्ला

ए. आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 323 और 308- मामले में आरोप-पत्र दायर किया गया था और संज्ञान लिया गया था - अभियुक्त आवेदक को न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कई प्रक्रियाएं भेजी गईं, लेकिन चूंकि वह भगोड़ा था, उसके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था और बाद में न्यायालय ने पाया कि वह जानबूझकर प्रक्रिया की सेवा और न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा था- आवेदक अपनी फरारी के लिए कोई भी वैध कारण दिखाने में पूरी तरह से विफल रहा है

और किसी भी बाध्यकारी परिस्थिति को सामने रखने में भी विफल रहा है जिसके अधीन वह सम्मान और अनुपालन करने में और स्वयं को न्यायालय की प्रक्रिया के लिए प्रस्तुत करने के लिए असमर्थ रहा हो जिसके परिणामस्वरूप उसके विरुद्ध दंडात्मक प्रक्रिया जारी की गई और उसे उद्घोषित अपराधी की श्रेणी में लाने के लिए उसके विरुद्ध उद्घोषणा की गई- वर्तमान आवेदक, जिसके विरुद्ध धारा 82 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रक्रिया जारी की गई है और जिसे उद्घोषित अपराधी घोषित किया गया है, प्रेम शंकर प्रसाद मामले में निर्धारित कानून के आलोक में अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है। (पैरा 1 से 13)

बी. अपीलार्थी के विरुद्ध उद्घोषणा जारी होने के निहितार्थ के संबंध में, हमें यह स्पष्ट करने में कोई संकोच नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे "भगोड़ा" घोषित किया गया है और जो जाँच एजेंसी की पहुँच से बाहर है और इस प्रकार सीधे कानून के साथ टकराव में है, सामान्यतः किसी रियायत या हस्तक्षेप का हकदार नहीं है। संदर्भ के तौर पर, हम यह संप्रेक्षित कर सकते हैं कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अनुसार गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के प्रावधान के संबंध में, इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि जब कोई अभियुक्त भगोड़ा हो और उसे उद्घोषित अपराधी घोषित किया गया हो, तो उसे धारा 438 दं.प्र.सं. का लाभ देने का प्रश्न ही नहीं उठता। (पैरा 11)

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. अभिषेक बनाम महाराष्ट्र राज्य (2022) 8 एससीसी 282

2. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और 7 अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 955

3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एससीसी 171

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. आज दायर पूरक शपथ पत्र को रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. आपराधिक विविध अनुमति आवेदन संख्या 02 वर्ष 2023 की अनुमति दी जाती है।

3. शुरुआत में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह **आवेदक संख्या 1 नीरू कुमार यादव** के संबंध में अग्रिम जमानत याचिका पर जोर नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वह पहले से ही न्यायिक हिरासत में हैं। वह अपनी प्रार्थना को केवल **आवेदक संख्या 2 ललन @ पुष्पेंद्र सिंह** को अग्रिम जमानत देने के लिए प्रार्थना की सीमा तक ही सीमित रखता है, जब कि वाद संख्या 530 वर्ष 2018 (वाद संख्या 3420 वर्ष 2018, उ.प्र. राज्य बनाम नीरू और अन्य) आईपीसी की धारा 323, 308, पुलिस स्टेशन दिबियापुर, जिला औरैया, के तहत मुकदमा लंबित है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के एजीए के साथ-साथ सूचनाकर्ता/विपक्ष संख्या 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुना, और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

5. आवेदक संख्या 1 और 2 के खिलाफ दो अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ 24.1.2018 को रात 20:10 बजे धारा 323 आईपीसी के तहत एक एनसीआर दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उनके द्वारा 24.1.2018 को शाम 17:00 बजे लात, मुट्ठी, लाठी और डंडा के साथ हमला किया गया था। जांच के दौरान, मामले में आईपीसी की धारा 308 जोड़ी गई। इसके बाद, जांच के बाद, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

6. आवेदक संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक निर्दोष है और वर्तमान मामले से उसका कोई लेना-देना नहीं है। उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप झूठे हैं। आवेदक का मामला सीआरपीसी की धारा 438 के तहत कवर किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामला एक क्रॉस केस है और आवेदक की ओर से धारा 354, 323, 506 आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 73 वर्ष 2018 के रूप में एक क्रॉस एफआईआर दर्ज की गई थी और यह इस मामले में सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा एनसीआर से पहले दर्ज की गई थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि कथित अपराध में वर्तमान आवेदक को हमले की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि नाक की हड्डी के फ्रैक्चर के

रूप में सूचनाकर्ता/घायल को हुई एक चोट को छोड़कर, अन्य सभी चोटें प्रकृति में सरल हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जांच के दौरान आवेदक मामले की जांच में सहयोग कर रहा है। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद उन्हें न्यायालय द्वारा कभी भी कोई सम्मन/प्रक्रिया नहीं मिली और उन्हें न्यायालय द्वारा उनके खिलाफ जारी दंडात्मक प्रक्रिया के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के आपराधिक इतिहास को पूरक हलफनामे के माध्यम से समझाया गया है। उपर्युक्त आधारों पर अग्रिम जमानत देने का अनुरोध किया गया है।

7. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ सूचनादाता/विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया। शुरुआत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 82 सीआरपीसी के तहत प्रक्रिया संबंधित न्यायालय द्वारा आवेदक संख्या 2 के खिलाफ 16.6.2023 को पहले ही जारी की जा चुकी है, इसके समक्ष आवेदक की उपस्थिति प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रक्रिया अपनाने के बाद। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सत्र न्यायालय के समक्ष आवेदक द्वारा दायर अग्रिम जमानत याचिका को 14.7.2023 को खारिज कर दिया गया था और उस तारीख को भी आवेदक को न्यायालय द्वारा पहले ही घोषित अपराधी घोषित कर दिया गया था। उनके तर्क के समर्थन में, **प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन**

**सुप्रीम न्यायालय 955 और मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा, (2014) 2 सुप्रीम न्यायालय वाद 171** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर भरोसा किया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में सूचनाकर्ता/घायलों को गंभीर चोटें आई हैं और धारा 161 सीआरपीसी के तहत जांच अधिकारी को दिए गए घायल के बयान में वर्तमान आवेदक को हमले की विशिष्ट भूमिका सौंपी गई है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक विचारण न्यायालय के साथ बिल्कुल भी सहयोग नहीं कर रहा है और अग्रिम जमानत देने के लिए विचार के लिए स्थापित कानूनी सिद्धांतों के मददेनजर, वह वर्तमान मामले में अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है।

8. रिकॉर्ड का अवलोकन दर्शाता है कि इस मामले में आरोप पत्र 2018 में दायर किया गया था और 24.8.2018 को संज्ञान लिया गया था। आरोपी आवेदक को न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति प्राप्त करने के लिए कई प्रक्रियाएं भेजी गईं, लेकिन चूंकि वह फरार था, इसलिए 28.10.2022 को उसके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था और बाद में न्यायालयने पाया कि वह जानबूझकर प्रक्रिया की सेवा और न्यायालयके समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा था। न्यायालय द्वारा आवेदक के खिलाफ 16.6.2023 को धारा 82 सीआरपीसी के तहत प्रक्रिया जारी करने का आदेश पारित किया गया था। वर्तमान आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका को सत्र न्यायालय ने 14.7.2023 को खारिज कर दिया था। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि जब इस तरह के

आवेदन पर सत्र न्यायालय, औरैया द्वारा सुनवाई की जा रही थी, तो आरोपी आवेदक को पहले ही 'घोषित अपराधी' घोषित किया जा चुका था।

9. वर्तमान आवेदक, जिसके खिलाफ सीआरपीसी की धारा 82 के तहत प्रक्रिया जारी की गई है और जिसे घोषित अपराधी घोषित किया गया है, प्रेम शंकर प्रसाद मामले (उपरोक्त) और मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के आलोक में अग्रिम जमानत के माध्यम से सुरक्षा का हकदार नहीं है।

10. इसके अलावा, आवेदक अपनी अनुपस्थिति के लिए कोई वैध कारण दिखाने में पूरी तरह से विफल रहा है और किसी भी बाध्यकारी परिस्थिति को सामने रखने में भी विफल रहा है जिसके तहत वह सम्मान और अनुपालन करने में असमर्थ रहा था और खुद को न्यायालय की प्रक्रिया के लिए प्रस्तुत करने के लिए जिसके परिणामस्वरूप उसके खिलाफ दंडात्मक प्रक्रिया जारी की गई और उसे एक घोषित अपराधी की श्रेणी में लाने के लिए उसके खिलाफ घोषणा करने के लिए। चूंकि आवेदक के पक्ष में ऐसा कोई असाधारण आधार मौजूद नहीं है, इसलिए वह न्यायालय द्वारा जारी कानूनी प्रक्रिया का पालन किए बिना, अग्रिम जमानत के माध्यम से कानून द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा से वंचित है।

11. हाल ही में, **अभिषेक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2022) 8 एससीसी 282** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक भगोड़े को अग्रिम जमानत देने के संबंध में कानूनी सिद्धांत को दोहराया है और इसके तहत माना है:

*"68. अपीलकर्ता के खिलाफ जारी की गई उद्घोषणा के निहितार्थ के संबंध में, हमें यह स्पष्ट करने में कोई संकोच नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे "भगोड़ा" घोषित किया गया है और जांच एजेंसी की पहुंच से बाहर रहता है और इस तरह सीधे कानून के साथ संघर्ष में खड़ा होता है, आमतौर पर, कोई रियायत या भोग का हकदार नहीं है। संदर्भ के माध्यम से, हम देख सकते हैं कि धारा 438 सीआरपीसी के संदर्भ में गिरफ्तारी पूर्व जमानत के संबंध में, इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि जब कोई अभियुक्त फरार है और उसे घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो उसे धारा 438 सीआरपीसी का लाभ देने का कोई सवाल ही नहीं है। (प्रेम शंकर प्रसाद मामला (उपरोक्त) संदर्भित।*

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित स्थापित कानून के मददेनजर, मैं इसे वर्तमान आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता हूं। ऐसा व्यक्ति, जो जांच/मुकदमे में बिल्कुल भी सहयोग नहीं करता है और एक इरादतन चूककर्ता रहा है, अग्रिम जमानत देने के माध्यम से इस न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है।



13. तदनुसार, और उपरोक्त के मद्देनजर, यह अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 13

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 9261 वर्ष

2023

कौशल आनंद

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीय

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

अंशू सिंह, श्री हेमेन्द्र प्रताप सिंह

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री जीतेन्द्र पाल सिंह जादौन, सीमा सिंह जादौन

ए. आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 323, 328, 376 और 506-शिकायतकर्ता स्वेच्छा से अपीलार्थी के साथ रह रही थी और संबंध जारी रखे थी और चूंकि संबंध काम नहीं कर रहा था, यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 376 (2) (एन) भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए प्र.सू.रि. दर्ज करने का कोई आधार नहीं था,

लेकिन अभियुक्त की ओर से प्रलोभन, परोक्ष अभिप्राय से वैवाहिक स्थिति को छिपाने और धोखाधड़ी के तरीकों को अपनाकर पीड़िता पर बलात्संग करने के तत्त्व हस्तागत मामले में मौजूद हैं- एक विवाहित व्यक्ति के रूप में अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ, आवेदक कभी भी अभियोक्त्री के साथ विवाह करने की स्थिति में नहीं था, लेकिन मामले की पीड़िता से अपनी वैवाहिक स्थिति को छिपाने और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने से यह स्पष्ट तथ्य है कि शुरू से ही उसका अभियोक्त्री के साथ विवाह करने का कभी आशय नहीं था और दुर्भावनापूर्ण आशयों से वह केवल अपनी हवस पूरी करता रहा था - न केवल धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपने अभिकथन में, बल्कि धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिकथन में भी अभियोक्त्री, जिसे मॉडल बताया गया है, ने आवेदक के विरुद्ध कथित अपराध के संबंध में पूरी कहानी और घटनाओं के क्रम को लगातार स्वीकार किया है और बताया है कि कैसे आवेदक ने उसे कोल्ड ड्रिंक में कुछ नशीला पदार्थ पिलाकर और खुद को कुंवारा बताकर उसके साथ बलात्संग किया - यदि यह स्थापित और सिद्ध हो जाता है कि शुरू से ही अभियुक्त, जिसने अभियोक्त्री को विवाह करने का वादा किया था, का विवाह करने का कोई आशय नहीं था और अभियोक्त्री ने अभियुक्त के इस आश्वासन पर संभोग के लिए सहमति दी कि वह उससे विवाह करेगा, ऐसी सहमति को भा.दं.सं. की धारा 90 के अनुसार तथ्य की गलत धारणा पर प्राप्त सहमति कहा जा सकता है और ऐसे मामले में, ऐसी सहमति अपराधी को क्षमा नहीं करेगी और ऐसे अपराधी को भा.दं.सं. की धारा 375

के अंतर्गत परिभाषित बलात्संग करने वाला कहा जा सकता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है (पैरा 1 से 22)

बी. उपरोक्त मामलों से उभरने वाली कानूनी स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए, धारा 375 के संबंध में महिला की "सहमति" में प्रस्तावित कृत्य के प्रति सक्रिय और तर्कसंगत विचार-विमर्श शामिल होना चाहिए। यह स्थापित करने के लिए कि क्या "सहमति" विवाह के वादे से उत्पन्न "तथ्यों की भांति" से दूषित हुई थी, दो प्रतिपादनायें स्थापित किए जाने चाहिए। विवाह का वादा एक झूठा वादा होना चाहिए, जो द्বেषपूर्ण ढंग से दिया गया हो और जिसे दिए जाने के समय पूरा करने का कोई आशय न हो। झूठा वादा स्वयं तत्काल प्रासंगिक होना चाहिए, या यौन क्रिया में शामिल होने के महिला के निर्णय से उसका सीधा संबंध होना चाहिए। (पैरा 11)

सी. अग्रिम ज़मानत का उद्देश्य व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करना है। हालाँकि यह गिरफ्तारी की शक्ति के दुरुपयोग को रोकने और निर्दोष व्यक्तियों को उत्पीड़न से बचाने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है, लेकिन यह व्यक्तिगत अधिकारों और न्याय के हितों के बीच एक सुकोमल संतुलन बनाए रखने में चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है। हमें जिस कठिन रास्ते पर चलना है, वह व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा और जनहित की रक्षा के बीच संतुलन बनाना है। स्वतंत्रता का अधिकार और निर्दोषता की धारणा महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ न्यायालय को अपराध की गंभीरता, समाज पर पड़ने वाले प्रभाव और

निष्पक्ष एवं स्वतंत्र जाँच की आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर इन हितों को तौलने में न्यायालय का विवेकाधिकार एक न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। (पैरा 20)

आवेदन अस्वीकृत किया जाता है। (ई-6)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. प्रतिभा मनचंदा एवं एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 785
2. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं एक अन्य (2020) 5 एससीसी 1
3. श्री एक्स बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य (2023) 124 एससीसी 673
4. नईम अहमद बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2023) लाइव लॉ एससी 66 क्रिमिनल अपील संख्या 257 वर्ष 2023, एसएलपी (क्रिमिनल) संख्या 8586 वर्ष 2017
5. येदला श्रीनिवास राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2006) 11 एससीसी 615: (एआईआर ऑनलाइन 2006 एससी 40, पैरा 13)
6. दीपक गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य (2013) 7 एससीसी 675 : (एआईआर 2013 एससी 2071)

7. प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य (2019) एआईआर एससी 4010

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. सूचनाकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 की ओर से दायर प्रति शपथ पत्र रिकॉर्ड में लिया जाता है।

2. आईपीसी की धाराओं 323, 328, 376, 506 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 568 वर्ष 2023 थाना क्वारसी, जिला अलीगढ़ में उसकी गिरफ्तारी को देखते हुए, प्रार्थी कौशल आनंद की ओर से अग्रिम जमानत की मांग करते हुए वर्तमान अग्रिम जमानत याचिका दायर की गई है।

3. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के ए.जी.ए. के साथ-साथ सूचनाकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

4. एफआईआर में सामने आई अभियोजन की कहानी यह है कि प्रार्थी ने पीड़िता के साथ पारिवारिक संबंध बनाए और कोल्ड ड्रिंक में कुछ नशीला पदार्थ पिलाने के बाद, उसने दिनांक 19/20.4.2022 को उसके साथ बलात्कार किया और बाद में कई मौकों पर प्रार्थी द्वारा अभियोक्ता का शारीरिक शोषण किया गया। अपनी वैवाहिक स्थिति को छिपाते हुए, प्रार्थी अभियोक्ता पर उसके साथ शादी करने के लिए जोर देता था और घटनाओं के अनुक्रम के दौरान, उसने

अभियोक्ता पर हमला भी किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे चोटें आईं और प्रार्थी ने अभियोक्ता से संबंधित कुछ अश्लील तस्वीरें और वीडियो भी प्राप्त किए और उसे ब्लैकमेल करने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। दिनांक 23.6.2023 को एफआईआर दर्ज कर जांच शुरू हुई, जो चल रही है।

5. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रार्थी निर्दोष है और उसे उपर्युक्त मामले में उसकी गिरफ्तारी की आशंका है, जबकि उसके खिलाफ कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। प्रार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोप झूठे हैं। उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले का एफ.आई.आर., देरी के किसी भी स्वीकार्य स्पष्टीकरण के बिना, बहुत देर से दर्ज किया गया है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यह सहमति से संबंध का मामला है जहां मुख्य अभियोक्ता ने अपनी इच्छा और सहमति से प्रार्थी के साथ शारीरिक संबंध बनाए और प्रार्थी द्वारा उसे भारी मौद्रिक मदद की पेशकश भी की गई। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि वे एक-दूसरे के साथ मधुर और घनिष्ठ संबंधों में रहे हैं और केवल प्रार्थी से पैसे हड़पने के लिए, झूठे और मनगढ़ंत तथ्यों के आधार पर एफआईआर दर्ज की गई है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रार्थी द्वारा दिनांक 27.6.2023 को सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दायर की गई थी, जिसे न्यायालय ने दिनांक 18.7.2023 को

खारिज कर दिया था, लेकिन इस बीच, अंतराल अवधि के दौरान, सीआर.पी. सी.की धारा 82 के तहत दिनांक 11.7.2023 को न्यायालय के निर्देशों के तहत एक प्रक्रिया भी प्रार्थी के खिलाफ जारी की गई थी और इस प्रकार, प्रार्थी ने जानबूझकर चूक नहीं की।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोक्ता द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत अपने बयान में एक तोड़-मरोड़ कर पेश की गई कहानी को पलट दिया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि बलात्कार और शारीरिक शोषण की कथित तारीखों पर, प्रार्थी और अभियोजन पक्ष खुशी से एक साथ रह रहे थे और हलफनामे के साथ प्रासंगिक तस्वीरें संलग्न की गई हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता की मेडिकल रिपोर्ट एक संदिग्ध सबूत है और उसने डॉक्टर द्वारा अपनी आंतरिक जांच से इनकार कर दिया है।

यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि वास्तव में, विरोधी पक्ष संख्या 2 ने खुद सरकार के साथ धोखाधड़ी की है और जिला कार्यक्रम समन्वयक, जिला टीबी रोग केंद्र, अलीगढ़ द्वारा आईपीसी की धाराओं 177, 420 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 362 वर्ष 2021 के रूप में उनके खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच के दौरान, एसएसपी, अलीगढ़ को किसी प्रियंका चौहान द्वारा हलफनामे के साथ एक आवेदन दिया गया था, जिसे शिकायतकर्ता का दोस्त कहा जाता है, जिसमें उसने प्रार्थी और खुद अभियोक्ता के बीच एक दोस्ताना लिव-इन-रिलेशनशिप के तथ्य का वर्णन किया है।

यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रार्थी के आपराधिक इतिहास को विधिवत समझाया गया है और इस तरह वह अग्रिम जमानत का हकदार है। उनकी कथनों के समर्थन में, प्रार्थी द्वारा **अंसार मोहम्मद बनाम राजस्थान राज्य व अन्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 599**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

6. प्रतिवाद के अनुसार, विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ सूचनाकर्ता/विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध किया और यह प्रस्तुत किया गया है कि अपनी वैवाहिक स्थिति को छिपाकर, अभियुक्त प्रार्थी ने अभियोक्ता के साथ शारीरिक संबंध बनाना शुरू कर दिया, जो मामले के पीड़ित के प्रति उसके कपटपूर्ण इरादे को दर्शाता है। एक पारिवारिक व्यक्ति होने के नाते, वह कानूनी रूप से अभियोक्ता के साथ शादी नहीं कर सकता था, लेकिन भौतिक तथ्यों को छिपाकर, अभियुक्त प्रार्थी ने उसके साथ शादी करने के लिए अभियोक्ता पर जोर दिया और शारीरिक संबंध स्थापित किए और उसे कुछ नशीला पदार्थ देने के बाद उसके साथ बलात्कार किया।

यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि रिश्ते की शुरुआत के बाद से ही अभियुक्त प्रार्थी का अभियोक्ता के साथ शादी करने का कोई इरादा नहीं था। इसे विपरीत लिंग के दो प्रमुख व्यक्तियों के बीच सहमति से शारीरिक संबंध बनाने का मामला नहीं कहा जा सकता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि कुछ अवसरों पर, प्रार्थी ने उसके साथ अपने रिश्ते

का एक अलग रंग दिखाने के लिए अभियोक्ता के बैंक खाते में कुछ पैसे स्थानांतरित किए, लेकिन जैसे ही यह तथ्य अभियोक्ता के संज्ञान में आया, उसने तुरंत प्रार्थी के बैंक खाते में उसी राशि को स्थानांतरित कर दिया और इस संबंध में खाते का विवरण स्वयं विरोधी पक्ष संख्या- 2 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि प्रार्थी एक इरादतन चूककर्तारहा है और अदालत के निर्देशों के तहत उसके खिलाफ सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत एक प्रक्रिया जारी की गई थी, इसलिए प्रार्थी के खिलाफ आईपीसी की धारा 174-ए के तहत एक एफआईआर भी दर्ज की गई थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सत्र न्यायालय, अलीगढ़ द्वारा अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करने के बाद, अभियोक्ता को प्रार्थी द्वारा धमकी दी गई थी और उसने सोशल मीडिया पर अभियोक्ता से संबंधित कुछ अश्लील तस्वीरें भी वायरल कीं और दिनांक 23.7.2023 को आईपीसी की धारा 507 और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 67 के तहत अपराध संख्या 719 वर्ष 2023 के रूप में एफ.आई.आर. भी दर्ज किया गया था।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जब शिकायतकर्ता को प्रार्थी द्वारा बुरी तरह पीटा गया था, तो उसकी चिकित्सकीय जांच की गई थी और उसके शरीर पर चोट के निशान पाए गए थे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 के खिलाफ दर्ज एफआईआर दिनांकित 3.4.2021 के अनुसरण में कार्यवाही पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय

द्वारा एसएलपी संख्या 7636 वर्ष 2021 में आदेश दिनांकित 8.10.2021 द्वारा रोक लगा दी गई है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपराध प्रकृति में बहुत जघन्य है और अब तक की जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर, प्रार्थी की ओर से अपराध के कृत्य में सक्रिय भूमिका निभाई गई है और वह अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है।

7. यह पूर्वोक्त तथ्यात्मक परिदृश्य और दोनों पक्षों द्वारा किए गए प्रतिद्वंद्वी कथनों के विचार की पृष्ठभूमि में है, मौजूदा मामले पर गौर करना होगा।

8. यौन अपराध पर मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत पीड़िता द्वारा दिया गया बयान निस्संदेह मामले के जांच अधिकारी द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज बयान की तुलना में अलग स्तर पर है। सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत दर्ज बयान की सत्यता पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा **धर्मेंद्र @ पात्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या - 31695 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांकित 1.10.2021)** में निम्नानुसार अभिनिर्धारित करते हुए जोर दिया गया है:

*"11. अभियोक्ता/पीड़िता द्वारा संहिता की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दिया गया बयान जांच अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान की तुलना में जांच के दौरान उच्च स्तर और पवित्रता पर खड़ा है।"*

9. पूर्वोक्त अवलोकन के आलोक में, यह पाया जाता है कि इस मामले में, न केवल सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत अपने बयान में, बल्कि सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत बयान में भी अभियोक्ता, जिसे एक मॉडल कहा जाता है, ने प्रार्थी के खिलाफ कथित अपराध के कृत्य के संबंध में पूरी कहानी और घटनाओं के अनुक्रम को लगातार दोहराया है और बताया है कि प्रार्थी द्वारा उसे कोल्ड ड्रिंक में कुछ नशीला पदार्थ पिलाने और खुद को कुंवारा होने का नाटक करने के बाद, बलात्कार कैसे किया गया था बाद में कई मौकों पर, उसने उसका शारीरिक और मानसिक शोषण किया और उस पर हमला भी किया और बाद में उसकी वैवाहिक स्थिति अभियोक्ता के संज्ञान में आई। एक विवाहित व्यक्ति के रूप में उसकी पत्नी और दो बच्चे हैं, प्रार्थी कभी भी अभियोक्ता के साथ शादी करने की स्थिति में नहीं था, लेकिन मामले के पीड़ित से अपनी वैवाहिक स्थिति को छिपाना और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाना एक स्पष्ट तथ्य है कि शुरुआत से ही, उसने कभी भी अभियोजन पक्ष के साथ शादी करने का इरादा नहीं किया और दुर्भावनापूर्ण उद्देश्यों के साथ वह केवल अपनी वासना को पूरा कर रहा था।

10. डॉ. धुवरम मुरलीधर सोनार बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, 2019 0 एआईआर (एससी) 327 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास विचाराधीन विषय से निपटने का अवसर था और यह अभिनिर्धारित किया गया:

"20. इस प्रकार, बलात्कार और सहमति से यौन संबंध के बीच एक स्पष्ट अंतर है। ऐसे

मामलों में अदालत को बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता वास्तव में पीड़ित से शादी करना चाहता था या उसकी मंशा दुर्भावनापूर्ण थी और उसने केवल अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए इस आशय का झूठा वादा किया था, जोकि बाद में धोखाधड़ी या धोखे के दायरे में आता है। केवल एक वादा तोड़ने और झूठे वादे को पूरा नहीं करने के बीच भी एक अंतर है। यदि अभियुक्त ने यौन कृत्यों में लिप्त होने के लिए अभियोक्ता को बहकाने के एकमात्र इरादे से वादा नहीं किया है, तो इस तरह का कृत्य बलात्कार नहीं होगा। ऐसा मामला हो सकता है जहां अभियोक्ता अभियुक्त के प्रति अपने प्यार और जुनून के कारण संभोग करने के लिए सहमत हो और न कि केवल अभियुक्त द्वारा पैदा की गई गलत धारणा के कारण, या जहां एक अभियुक्त उन परिस्थितियों के कारण जो वह पहले से नहीं देख सकता था या जो उसके नियंत्रण से बाहर थीं, ऐसा करने का हर इरादा होने के बावजूद उससे शादी करने में असमर्थ था। ऐसे मामलों को अलग तरह से देखा जाना चाहिए। यदि शिकायतकर्ता का कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा था और यदि उसके गुप्त इरादे थे, तो यह बलात्कार का एक स्पष्ट मामला है। दोनों पक्षों के बीच सहमति से शारीरिक संबंध बनाना आईपीसी की धारा 376 के तहत अपराध नहीं होगा।"

11. इसी विचार को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, एआईआर 2019 सुप्रीम कोर्ट 4010 में दोहराया गया था, जिसमें

इस विषय पर कानूनी सूक्ति की पुष्टि यह अभिनिर्धारित करते हुए की गई थी कि:

"14. वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता द्वारा कथित "तथ्य की गलत धारणा" अपीलकर्ता का उससे शादी करने का वादा है। विशेष रूप से शादी करने के वादे के संदर्भ में, इस न्यायालय ने देखा है कि कर्ता द्वारा समझ पर दिए गए झूठे वादे के बीच एक अंतर है कि इसे तोड़ दिया जाएगा, और एक वादे का उल्लंघन जो अच्छे विश्वास में किया जाता है लेकिन बाद में पूरा नहीं होता है। अनुराग सोनी बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2019) एससीसी ऑनलाइन एससी 509: (एआईआर 2019 एससी 1857) में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

"37. पूर्वोक्त निर्णयों का सार यह होगा कि यदि यह स्थापित और साबित हो जाता है कि शुरुआत से ही अभियुक्त, जिसने अभियोक्ता से शादी करने का वादा किया था, का शादी करने का कोई इरादा नहीं था और अभियोक्ता ने अभियुक्त द्वारा इस तरह के आश्वासन पर संभोग के लिए सहमति दी कि वह उससे शादी करेगा, इस तरह की सहमति को आईपीसी की धारा 90 के अनुसार तथ्य की गलत धारणा पर प्राप्त सहमति कहा जा सकता है और ऐसे मामले में, इस तरह की सहमति अपराधी को माफ नहीं करेगी और ऐसे अपराधी द्वारा आईपीसी की धारा 375 के तहत परिभाषित बलात्कार करना कहा जा सकता है और आईपीसी की धारा 376 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। इसी तरह की टिप्पणियां इस न्यायालय द्वारा दीपक गुलाटी

बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 7 एससीसी 675: (एआईआर 2013 एससी 2071) में की गई थीं:

"21. ... केवल एक वादा तोड़ने और झूठे वादे को पूरा न करने के बीच एक अंतर है। इस प्रकार, अदालत को यह जांचना चाहिए कि क्या शुरुआती चरण में अभियुक्त द्वारा शादी का झूठा वादा किया गया था ..."

15. येदला श्रीनिवास राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 615: (एआईआर ऑनलाइन 2006 एससी 40, पैरा 13) में, अभियुक्त ने शिकायतकर्ता के साथ जबरन यौन संबंध स्थापित किए। जब उसने अभियुक्त से पूछा कि उसने उसकी जिंदगी क्यों खराब की तो उसने उससे शादी करने का वादा किया। इस आधार पर अभियुक्त ने शिकायतकर्ता के साथ बार-बार यौन संबंध बनाए। जब शिकायतकर्ता गर्भवती हो गई, तो अभियुक्त ने उससे शादी करने से इनकार कर दिया। जब मामला पंचायत में लाया गया, तो अभियुक्त ने शिकायतकर्ता के साथ यौन संबंध बनाने की बात स्वीकार की, लेकिन बाद में फरार हो गया। इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को देखते हुए, अदालत ने कहा:

"10. ऐसा प्रतीत होता है कि पीडब्ल्यू 1 की गवाही के अनुसार अभियुक्त का इरादा शुरू से ही ईमानदार नहीं था और वह वादा करता रहा कि वह उससे शादी करेगा, जब तक कि वह गर्भवती नहीं हो गई। अभियुक्त द्वारा प्राप्त इस तरह की सहमति को कोई सहमति नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वह इस तथ्य की गलत धारणा के तहत थी कि

अभियुक्त उससे शादी करने का इरादा रखता है, इसलिए, उसने उसके साथ संभोग किया था। इस तथ्य को अभियुक्त ने भी स्वीकार किया है कि उसने संभोग किया था जो पीडब्लू 1, 2 और 3 की गवाही और गांव के बुजुर्गों की पंचायत के सामने स्पष्ट है। यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ने उससे शादी करने का झूठा वादा किया था। इसलिए, शुरू से ही अभियुक्त का इरादा प्रामाणिक नहीं था और गरीब लड़की ने अभियुक्त की वासना के आगे समर्पण कर दिया, अभियुक्त द्वारा पूरी तरह से गुमराह किया जा रहा था जिसने शादी का वादा किया था। अभियुक्त द्वारा वादा पूरा नहीं करने के स्पष्ट इरादे से इस तरह की सहमति लेना और लड़की को यह विश्वास दिलाने के लिए कि वह उससे शादी करने जा रहा है और पूरी तरह से गलत धारणा के तहत संभोग के लिए उसकी सहमति प्राप्त की, इसे सहमति नहीं माना जा सकता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि -

"18. उपरोक्त मामलों से उभरने वाली कानूनी स्थिति को सारांशित करने के लिए, धारा 375 के संबंध में एक महिला की "सहमति" में प्रस्तावित अधिनियम के प्रति एक सक्रिय और तर्कसंगत विचार-विमर्श शामिल होना चाहिए। यह स्थापित करने के लिए कि क्या "सहमति" शादी करने के वादे से उत्पन्न "तथ्य की गलत धारणा" से दूषित थी, दो प्रस्तावों को स्थापित किया जाना चाहिए। विवाह का वादा एक झूठा वादा रहा होगा, जो बुरे विश्वास में दिया गया

था और जिस समय इसे दिया गया था, उसका पालन करने का कोई इरादा नहीं था। झूठा वादा स्वयं तत्काल प्रासंगिक होना चाहिए, या यौन क्रिया में संलग्न होने के महिला के निर्णय से सीधा संबंध होना चाहिए।"

12. विधि के इसी सिद्धांत को हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नईम अहमद बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), 2023 लाइव लॉ (एससी) 66 (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 8586 वर्ष 2017 दिनांकित 30.1.2023 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या 257 वर्ष 2023) में दोहराया गया था।

13. लगभग इसी तरह के मामले में जिसमें अभियोक्ता, जो पेशे से एक मॉडल थी, को अभियुक्त की मर्दाना शक्ति द्वारा बलपूर्वक दबा दिया गया था और उसके साथ बलात्कार किया गया था और मॉडलिंग पेशे में सफलता पाने के लिए अभियुक्त के साथ समझौता करने की धमकी के तहत उस पर हमला भी किया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में श्री एक्स बनाम महाराष्ट्र राज्य व एक अन्य 2023 (124) एससी 673, में पारित एक फैसले में, आईपीसी की धाराओं 354, 354-बी, 376, 506 के तहत अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने के आदेशों को रद्द कर दिया।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों में उल्लिखित कानूनी सूक्ति, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से लागू होती है, जो वर्तमान अभियुक्त प्रार्थी



की अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना को नकारती है।

15. प्रार्थी की ओर से अंसार मोहम्मद (उपरोक्त) मामले पर भरोसा किया गया है, लेकिन पूर्वोक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले से अलग हैं, क्योंकि पूर्वोक्त मामला विपरीत लिंग के दो प्रमुख व्यक्तियों के बीच संबंध से संबंधित था और यह माना गया था कि शिकायतकर्ता स्वेच्छा से अपीलकर्ता के साथ रहा था और रिश्ते को बनाए रखा था और चूँकि रिश्ता नहीं चल रहा था, यह माना गया कि आईपीसी की धारा 376 (2) (एन) के तहत अपराध के लिए एफआईआर दर्ज करने का कोई आधार नहीं था, लेकिन अभियुक्त की ओर से गुप्त उद्देश्य के साथ वैवाहिक स्थिति को छिपाना और मामले में मौजूद कपटपूर्ण साधनों को अपनाकर पीड़िता पर बलात्कार करने के तत्व थे, जो उपर्युक्त मामले में लापता थे। इसलिए, अंसार मोहम्मद (उपरोक्त) में उल्लिखित कानून का अनुपात वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू कानून के अनुप्रयोग से निगम्य है।

16. सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत प्रक्रिया जारी करना, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान प्रार्थी के खिलाफ आईपीसी की धारा 174-ए के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी, उसकी अनुपस्थिति के कारण एक और तथ्य है जिसे विद्वान एजीए ने वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन के लिए दोषी ठहराने का आधार बनाया है।

17. इस पर तर्क देते हुए, प्रार्थी के अधिवक्ता ने एक विशिष्ट लेकिन हालांकि,

मौखिक निवेदन किया है कि प्रार्थी द्वारा दिनांक 27.6.2023 को सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत दायर की गई थी, जिसे सत्र न्यायालय ने दिनांक 18.7.2023 को खारिज कर दिया था, लेकिन उक्त अग्रिम जमानत याचिका के लंबित रहने के दौरान, सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत एक प्रक्रिया उसके खिलाफ दिनांक 11.7.2023 को जारी की गई थी, जो निश्चित रूप से कानून के प्रावधानों और संविधान द्वारा उसे दी गई व्यक्तिगत स्वतंत्रता की योजना के खिलाफ था और प्रार्थी के खिलाफ की गई दंडात्मक कार्रवाई को आगे बढ़ाने के लिए आईपीसी की धारा 174-ए के तहत एफआईआर दर्ज करना भी जांच एजेंसी द्वारा शक्ति के दुरुपयोग का एक स्पष्ट उदाहरण था जो विधिक अदालत के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन के लंबित होने के तथ्य से पूरी तरह अवगत था।

18. इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया था कि अग्रिम जमानत देने के लिए लंबित आवेदन के मद्देनजर, संबंधित अदालत के लिए प्रार्थी के खिलाफ सीआर.पी.सी. की धारा 82 के तहत एक प्रक्रिया जारी करने का आदेश पारित करना न्यायसंगत नहीं था, लेकिन मेरे विचार में इस आधार पर भी अगर यह न्यायालय प्रार्थी द्वारा दायर अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करता है, तो इस मामले की योग्यता इस न्यायालय को प्रार्थी के पक्ष में अपने विवेक का सहारा लेने और उसे अग्रिम जमानत देने के लिए प्रतिबंधित करती है।

19. सुशीला अग्रवाल व अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) व अन्य, (2020) 5 एससीसी 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, अदालत को, अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के पाठ्यक्रम को प्रभावित करने की संभावना पर विचार करना होगा, या गवाहों को डराने-धमकाने सहित सबूतों के साथ छेड़छाड़, न्याय से भागने की संभावना, जैसे कि देश छोड़ना, आदि पर विचार करना होगा। आगे यह माना गया है कि न्यायालयों को आम तौर पर यह विचार करते समय कि अग्रिम जमानत दी जाए या इसे अस्वीकार किया जाए, अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, प्रार्थी को जिम्मेदार भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है।

20. इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने पाया कि इस तरह के अपराधों को केवल इस मामले के अभियोक्ता के जीवन और गरिमा को प्रभावित करने तक सीमित नहीं किया जा सकता है, लेकिन इस प्रकार के मामलों में, एक बड़ा सार्वजनिक हित हमेशा शामिल होता है। इस परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के मामलों का विश्लेषण करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, प्रतिभा मनचंदा व अन्य बनाम हरियाणा राज्य व अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी

785 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

*"19. अग्रिम जमानत की राहत का उद्देश्य व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करना है। जबकि यह गिरफ्तारी की शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है और निर्दोष व्यक्तियों को उत्पीड़न से बचाता है, यह व्यक्तिगत अधिकारों और न्याय के हितों के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखने में चुनौतियां भी प्रस्तुत करता है। हमें जिस तंग रस्सी पर चलना चाहिए, वह व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा और सार्वजनिक हितों की रक्षा के बीच संतुलन बनाने में निहित है। जबकि स्वतंत्रता का अधिकार और निर्दोषता की धारणा महत्वपूर्ण है, अदालत को अपराध की गंभीरता, समाज पर प्रभाव और निष्पक्ष और स्वतंत्र जांच की आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इन हितों को आंकने में अदालत का विवेक एक उचित परिणाम सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है।"*

21. इसलिए, अग्रिम जमानत के बारे में विधि के स्थापित सिद्धांतों, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के कथनों, आरोप की प्रकृति, प्रार्थी की भूमिका और मामले के सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मामले के गुणों के बारे में कोई राय

व्यक्त किए बिना, मेरे विचार में, यह प्रार्थी को अग्रिम जमानत देने के लिए उचित मामला नहीं है।

22. अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 21

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

9465 वर्ष 2023

महेश कुमार यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

आशीष कुमार मौर्य, विकास विक्रम सिंह

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498-ए और 304-बी -3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम - मृतका सिजोफ्रेनिया बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित थी और उसने आत्महत्या कर ली- आवेदक ने स्वयं अपनी पत्नी का एक वर्ष तक लगातार उपचार कराया जो मेडिकल

कागजात से स्पष्ट है- दहेज की मांग का सामान्य आरोप लगाया गया है और किसी भी उत्पीड़न और दहेज की मांग की कोई पूर्व सूचना नहीं थी- आवेदक का मामला मोदी के चिकित्सा न्यायशास्त्र द्वारा समर्थित है और मृतका बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित थी, इसीलिए उसने आत्महत्या कर ली- वर्तमान मामले से पहले, आवेदक या ससुराल वालों के विरुद्ध शिकायतकर्ता या मृतका द्वारा कभी कोई प्र.सूरि. दर्ज नहीं की गई थी और 3 वर्ष और 11 महीने बाद जब यह घटना हुई, आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग का आरोप लगाया गया है- आवेदक का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है- इसलिए, आवेदक समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है। (पैरा 1 से 8)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

मारियानो एंटो बर्नो और एक अन्य बनाम पुलिस इंस्पेक्टर (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1387

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा पारित)

1.आवेदक की ओर से योजित पूरक शपथ पत्र को अभिलेख पर लिया गया।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता विकास विक्रम सिंह तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.-1 श्री राजेश कुमार सिंह को सुना गया।

3. आवेदक द्वारा वर्तमान जमानत आवेदन, मुकदमा अपराध संख्या-180/2023, धारा-498-ए, 304-बी आईपीसी तथा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, थाना भदोखर, जिला रायबरेली में जमानत पर छोड़े जाने के अनुरोध के साथ योजित किया गया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि मृतका अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे के साथ दिनांक 18.04.2023 को लापता हो गई थी। बच्चे का शव दिनांक 19.04.2023 को तथा मृतका का शव दिनांक 20.04.2023 को शारदा नहर से बरामद किया गया। मृतका के पिता ने एफआईआर दर्ज कराई थी, जिसमें उल्लेख किया था कि उनकी बेटी (मृतका) की शादी आवेदक के साथ 23.05.2019 को हुई थी। आवेदक और उसके परिवार के सदस्य उसकी बेटी को परेशान करते थे और वे अतिरिक्त दहेज की मांग कर रहे थे। एफआईआर में लगाया गया आरोप इस आशय का है कि शिकायतकर्ता को आवेदक ने कृषि भूमि को अपने पक्ष में पंजीकृत करने के लिए कहा था क्योंकि शिकायतकर्ता के कोई पुत्र नहीं था। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि मृतका सिजोफ्रेनिया और सिजोफेक्टिव डिसऑर्डर-बाइपोलर से पीड़ित थी। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान जमानत अर्जी के समर्थन में दायर हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-6 की ओर आकर्षित किया है, जो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, रायबरेली के कागजात हैं।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मृतका का आगे निजी चिकित्सक श्री जी.एस. वर्मा, न्यूरो साइकियाट्रिक सेंटर, रायबरेली द्वारा इलाज किया गया था। चिकित्सा के कागज अनुलग्नक-7 के रूप में जमानत आवेदन के साथ संलग्न हैं। तत्पश्चात, मृतिका का उपचार लखनऊ में डॉ.आर.के.ठुकराल द्वारा किया गया। डॉक्टर द्वारा पर्चे में उल्लेख किया गया है कि मृतका "सिजोफ्रेनिया (प्रस्तरनॉयड विशेषताओं के साथ साधारण प्रकार) के साथ सह-मौजूद मिश्रित चिंता अवसादग्रस्तता लक्षण, सामाजिक, संज्ञानात्मक और व्यावसायिक प्रदर्शन में गिरावट के साथ... सिजोफेक्टिव डिसऑर्डर-द्विध्रुवी प्रकार, अतीत में कुछ प्रकरणों के साथ" से पीड़ित है। दिनांक 01.04.2023 के मेडिकल पेपर जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के साथ अनुलग्नक संख्या-8 के रूप में संलग्न हैं। आवेदक द्वारा हलफनामे में प्रस्तर-14 से 18 तक मृतका को दिये गए चिकित्सा उपचार के संबंध में आवश्यक दलीलें दी गई हैं। उक्त प्रस्तर संख्या-14-18 के जवाब में राज्य द्वारा प्रति-शपथपत्र में कहा गया है कि शादी के तीन साल बाद तक का आवेदक द्वारा कोई मेडिकल पेपर नहीं दिखाए गए हैं, बल्कि वर्ष 2022-2023 के बीच इलाज कराया गया है, लेकिन राज्य द्वारा मृतका के मेडिकल पेपर और मेडिकल उपचार से इनकार नहीं किया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने मारियानो एंटो बर्नो और अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1387 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के

पारित निर्णय के प्रस्तर संख्या-34, 37 और 38 पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पाया है कि द्विध्रुवी विकार के संबंध में, जिससे मृतक पीड़ित था, यह अवसादग्रस्त निम्न से लेकर उन्मत्त उच्च तक के मूड स्विंग के एपिसोड से जुड़े विकार को संदर्भित करता है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि द्विध्रुवी विकार से पीड़ित व्यक्ति ज्यादातर समय उदास, निराश या चिड़चिड़ा हो जाता है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दहेज की मांग का सामान्य आरोप लगाया गया है और मृतका ने डेढ़ साल के नवजात बच्चे के साथ डूबकर आत्महत्या कर ली उन्होंने मोदी के चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान के अध्याय-33 के अंतर्गत प्रस्तर-3 पर भी भरोसा किया और प्रस्तुत किया है कि आवेदक का मामला मोदी के चिकित्सा न्यायशास्त्र द्वारा समर्थित है और मृतका द्विध्रुवी विकार से पीड़ित थी, इसीलिए उसने आत्महत्या की। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने पूरक हलफनामे के प्रस्तर संख्या-3 और 4 में उल्लेख किया है कि वर्तमान मामले से पहले, आवेदक या ससुराल वालों के खिलाफ शिकायतकर्ता या मृतका द्वारा कभी कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी और 3 साल और 11 महीने बाद जब यह घटना घटी, आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दहेज की मांग का आरोप लगाया गया है। आवेदक का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और न्यायिक प्रक्रिया से भागने या गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है और यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग

नहीं करेगा। आवेदक 15.05.2023 से जेल में है।

6.दूसरी ओर, श्री राजेश कुमार सिंह, विद्वान ए.जी.ए.-I ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया है तथा कहा है कि यह दहेज हत्या का मामला है। मृतका के पिता-शिकायतकर्ता का बयान भी धारा-161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किया गया है, जिसमें उन्होंने उल्लेख किया है कि आवेदक उनसे भूमि को अपने पक्ष में पंजीकृत करने के लिए कहता था, क्योंकि उनके कोई पुत्र नहीं है तथा इस दबाव के कारण उनकी पुत्री बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित थी, जिसके कारण उसने आत्महत्या कर ली। उन्होंने यह भी कहा कि दहेज की मांग का आरोप लगाया गया है तथा विवाह को चार वर्ष हो चुके हैं, इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 304-बी तथा 113 लागू होती है तथा आवेदक जमानत के लिए पात्र नहीं है।

7.मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना तथा पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा मामले के समग्र तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात, साथ ही यह तर्क भी कि मृतका सिजोफ्रेनिया बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित थी तथा उसने आत्महत्या की, यह तर्क कि आवेदक ने स्वयं अपनी पत्नी का एक वर्ष तक लगातार उपचार कराया, जो कि जमानत आवेदन के समर्थन में प्रस्तुत शपथ-पत्र में संलग्न चिकित्सा पत्रों से स्पष्ट है, यह तर्क कि दहेज मांग का सामान्य आरोप लगाया गया है तथा किसी प्रकार की प्रताड़ना एवं दहेज मांग की पूर्व सूचना नहीं थी,

अतः मेरा मत है कि आवेदक समानता के आधार पर ज़मानत पर रिहा किए जाने का हकदार है।

विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा-174-ए के अंतर्गत विधि के अनुसार कार्यवाही आरंभ करेगा।

8. आवेदक **महेश कुमार यादव** को उपरोक्त अपराध संख्या के मामले में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार व्यक्तिगत बंध-पत्र एवं समान राशि के दो जमानती प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ ज़मानत पर रिहा किया जाए:-

(i) आवेदक इस आशय का वचनपत्र योजित करेगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी स्थगन की मांग नहीं करेगा, जब गवाह न्यायालय में उपस्थित होंगे। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय के लिए इसे ज़मानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना तथा कानून के अनुसार आदेश पारित करना स्वतंत्र होगा।

(ii) आवेदक प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेगा। पर्याप्त कारण के बिना उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा-229-ए के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता है।

(iii) यदि आवेदक विचारण के दौरान ज़मानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है तथा उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए धारा-82 सीआरपीसी के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है तथा आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो विचारण न्यायालय उसके

(iv) आवेदक को (i) केस शुरू करने, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान दर्ज करने के लिए तय की गई तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहना होगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना किसी पर्याप्त कारण के है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को ज़मानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही करना खुला होगा।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई दिप्पणियां इस ज़मानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। विचारण न्यायालय इस आदेश में किसी भी बात से अप्रभावित रहते हुए साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र होगा।

-----

**(2023) 9 ILRA 23**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 06.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद**

**आपराधिक अपील संख्या 877 वर्ष 2023**

**जोस पापाचेन एवं एक अन्य ...अपीलार्थीगण**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण**

**अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:**

विश्व नाथ प्रताप सिंह

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

**आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973****- धारा 82, 161, 309, 313 और 437(3) -****भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 174-ए और****229-ए - अनुसूचित जाति और अनुसूचित****जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,****1989 - धारा 3(1)(ध) और 14-ए(2) -उत्तर****प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध****अधिनियम, 2021 - धारा 3, 4 एवं 5(1) -****भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21-****अपील - विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी****अधिनियम द्वारा जमानत आवेदन खारिज****करने के विरुद्ध - प्र.सू.रि. - जमानत आवेदन****- राज्य ने जमानत आवेदन का विरोध किया -****यह तर्क देते हुए कि अपीलार्थी अवैध तरीकों से****बड़े पैमाने पर धार्मिक रूपांतरण में सक्रिय रूप****से शामिल थे - अपील - अपीलार्थियों ने तर्क****दिया कि वे निर्दोष हैं और राजनीतिक****प्रतिद्वंद्विता के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया****है - और शिकायतकर्ता प्र.सू.रि. दर्ज करने के****लिए सक्षम नहीं है क्योंकि वह न तो पीड़ित****व्यक्ति है, न ही उसके माता-पिता, भाई, बहन****या कोई अन्य व्यक्ति, जो रक्त, विवाह या****दत्तक ग्रहण से उससे संबंधित है, अधिनियम,****2021 की धारा 4 के अंतर्गत प्रदान किए गए****अनुसार पीड़ित व्यक्ति है - न्यायालय ने पाया****कि, यह दिखाने के लिए कोई भौतिक साक्ष्य****नहीं था कि अपीलार्थियों ने सामूहिक धर्मांतरण****के लिए अनुचित प्रभाव या प्रलोभन का उपयोग**

किया - न्यायालय ने यह भी संप्रेक्षित किया

कि प्र.सू.रि. एक सक्षम व्यक्ति द्वारा दर्ज नहीं

की गई थी जैसा कि अधिनियम, 2021 की

धारा 4 के अंतर्गत आवश्यक है-

परिणामस्वरूप, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला

कि अपीलार्थीगण कथित गतिविधियों में

संलिप्त नहीं हैं और झूठा फंसाया गया है- इस

तरह, अपील को स्वीकृति दी जाती है और

आक्षेपित आदेश को उलट दिया गया और रद्द

कर दिया गया - अपीलार्थियों को निर्णय में

निर्दिष्ट शर्तों के अंतर्गत जमानत पर रिहा

किया जाए - इसके अलावा, दं.प्र.सं. की धारा

309 के प्रावधानों का पालन करके एक वर्ष की

अवधि के भीतर विचारण में तेजी लाने के लिए

विचारण न्यायालय को निर्देश जारी किया

गया। (पैरा - 16, 17, 18, 19, 21)

**अपील स्वीकृति। (ई-11)****उद्धृत वादों की सूची:**

दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक

अन्य, (2018) 3 एससीसी 22 में प्रतिवेदित

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा पारित)

1. इस न्यायालय ने आदेश दिनांक

24.08.2023 के द्वारा निम्नलिखित आदेश

पारित किया था:

*“1. मामले को पुनरीक्षित कॉल में लिया जा रहा है।**2. विद्वान ए.जी.ए. ने पहले ही प्रति-शपथपत्र दायर कर दिया है।*

इसके जवाब में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिउत्तर शपथपत्र दायर किया है। यह रिकॉर्ड पर उपलब्ध है।

3. दिनांक 31.07.2023 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था:

"विद्वान ए.जी.ए. ने आज न्यायालय में प्रति-शपथपत्र दायर किया है। इसे रिकॉर्ड पर लिया गया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की प्रार्थना पर उन्हें प्रतिउत्तर-शपथपत्र दायर करने के लिए दस दिन का समय दिया गया है। दिनांक 28.07.2023 के कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, विपक्षी संख्या-2 को नोटिस पहले ही दिया जा चुका है, लेकिन आज तक न तो कोई प्रति-शपथपत्र दायर किया गया है और न ही विपक्षी पक्ष संख्या-2 का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई अधिवक्ता उपस्थित है। अंतिम अवसर के रूप में, विपक्षी संख्या-2 को प्रति-शपथपत्र दायर करने के लिए दस दिन का समय दिया जाता है। इसके बाद, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को प्रतिउत्तर-शपथपत्र दायर करने के लिए दो दिन की अनुमति दी जाती है। वाद 24.08.2023 को नियत।"

4. आज, जब वाद पर सुनवाई हुई, तो विपक्षी संख्या-2 की ओर से न तो कोई अधिवक्ता उपस्थित हुआ न कोई प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विपक्षी संख्या-2 इस मामले को लड़ने में रुचि रखता है।

5. उपरोक्त परिस्थितियों में, चूंकि मामला जमानत से संबंधित है, इस न्यायालय के पास वर्तमान अपील पर निर्णय लेने के लिए अंतिम बहस के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

6. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री विश्व नाथ प्रताप सिंह और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. सुश्री शिखा सिन्हा को सुना गया।

7. फैसला सुरक्षित रखा गया।"

2. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14-ए (2) के अंतर्गत वर्तमान आपराधिक अपील, मुकदमा अपराध संख्या-0031/2023, उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (जिसे आगे "अधिनियम 2021" कहा जाएगा) की धारा 3 और 5 (1) और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (ध), थाना जलालपुर, जिला-अंबेडकर नगर से उत्पन्न जमानत आवेदन संख्या-178/2023 (जोस पापाचेन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में विद्वान विशेष न्यायाधीश एस.सी./एस.टी. अधिनियम, अंबेडकर नगर के न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2023 के विरुद्ध योजित की



गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता की जमानत आवेदन निरस्त कर दिया गया है।

3. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 24.01.2023 को एक एफ.आई.आर. संख्या 0031, उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (जिसे आगे अधिनियम, 2021 कहा जाएगा) की धारा 3 और 5 (1) तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (संशोधन 2015) की धारा 3(1) (घ) के अंतर्गत थाना जलालपुर में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भारतीय जनता पार्टी, अंबेडकर नगर के जिला मंत्री द्वारा दर्ज कराई गई है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि अपीलकर्ता पिछले तीन माह से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के समुदायों को विभिन्न प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन कराने में लगे हुए हैं। परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्य अपीलकर्ताओं द्वारा धर्म परिवर्तन कराने की गतिविधियों से नाराज हैं।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अपीलकर्ता निर्दोष हैं तथा उन्हें राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अपीलकर्ता ऐसी किसी भी गतिविधि में शामिल नहीं हैं, जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है तथा एफआईआर केवल अपीलकर्ताओं तथा उनके पूरे परिवार की समाज में छवि खराब करने के लिए दर्ज की गई है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 2021 की धारा 3 पर बल दिया है, जो मिथ्या निरूपण, बल, धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती तथा प्रलोभन द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में धर्मांतरण निषेध करती है, जिसमें स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है कि उपरोक्त आधारों पर एक धर्म से दूसरे धर्म में धर्मांतरण निषिद्ध है। सामूहिक धर्मांतरण के प्रयोजनों के लिए प्रलोभन तथा अनुचित प्रभाव के संबंध में झूठे आरोप लगाए गए हैं। यह भी आरोप लगाया गया है कि अस्पताल में मरीजों को मुफ्त इलाज मुहैया कराया जा रहा था, जिसे सामूहिक धर्मांतरण के लिए प्रलोभन नहीं कहा जा सकता।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 2021 की धारा 4 पर भी बल दिया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

**"4. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सक्षम व्यक्ति-** कोई भी पीड़ित व्यक्ति, उसके माता-पिता, भाई, बहन या कोई अन्य व्यक्ति, जो उसके साथ रक्त, विवाह या दत्तक ग्रहण से संबंधित है, ऐसे धर्मांतरण की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर सकता है, जो धारा 3 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है।"

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि धारा-4 के अंतर्गत प्रतिबंध है कि अधिनियम, 2021 की धारा-3 के अंतर्गत अपराध के संबंध में कौन एफआईआर दर्ज कर सकता है। शिकायतकर्ता न तो पीड़ित व्यक्ति है, न ही उसके माता-पिता, भाई, बहन

या कोई अन्य व्यक्ति, जो रक्त, विवाह या गोद लेने से उससे संबंधित है, जो उत्तर प्रदेश धर्म के गैरकानूनी धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा-4 के अंतर्गत पीड़ित व्यक्ति है। शिकायतकर्ता ने सतारूढ़ दल के जिला मंत्री होने के नाते समाज के सदस्यों के बीच अपनी राजनीतिक पहुँच हासिल करने के लिए वर्तमान प्राथमिकी दर्ज कराई है, हालांकि वह अधिनियम 2021 की धारा-4 के प्रावधानों के अनुसार वर्तमान प्राथमिकी दर्ज करने के लिए सक्षम नहीं है।

8. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता किसी अन्य व्यक्ति को गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी धोखाधड़ी के माध्यम से सीधे या अन्यथा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तित करने के प्रयास की गतिविधि में शामिल नहीं हैं और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और शिकायतकर्ता के पास अधिनियम, 2021 की धारा-4 के अंतर्गत वर्तमान एफआईआर दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है।

9. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने धारा-161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज ग्रामीणों के बयानों का संदर्भ दिया और तर्क दिया कि ग्रामीणों ने अपने बयानों में कहा है कि अपीलकर्ता उन्हें अच्छी शिक्षा देते थे और यहां तक कि उन्हें पवित्र बाइबिल की किताबें भी वितरित करते थे और यहां तक कि उन्हें अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रोत्साहित करते थे और ग्रामीणों द्वारा यह भी कहा गया था कि अपीलकर्ता ग्रामीणों की सभा आयोजित

करते थे और "भंडारा" करते थे और वे बच्चों के बीच शांतिपूर्वक रहने का ज्ञान भी देते थे। उन्होंने ग्रामीणों को झगड़ा न करने और शराब न पीने की भी हिदायत दी।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रलोभन की परिभाषा पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि अच्छी शिक्षा प्रदान करना, पवित्र बाइबिल की पुस्तकें वितरित करना, बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना, ग्रामीणों की सभा आयोजित करना और "भंडारा" करना और ग्रामीणों को झगड़ा न करने और शराब न पीने का निर्देश देना प्रलोभन नहीं है, बल्कि यह राज्य की ओर से जरूरतमंद व्यक्तियों को बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने में विफलता होगी।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियुक्त/अपीलकर्ता 24.01.2023 से जेल में बंद है, जिसका कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और यदि अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और वह मुकदमे में भी पूरा सहयोग करेगा। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता द्वारा गवाहों या वर्तमान मामले के तथ्यों से परिचित किसी अन्य व्यक्ति को धमकाने या दबाव डालने की कोई संभावना नहीं है।

12. उपरोक्त कारणों से, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान आपराधिक अपील स्वीकृत की जानी चाहिए और मुकदमा अपराध संख्या-0031/2023, उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन

प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (जिसे आगे “अधिनियम 2021” कहा जाएगा) की धारा 3 और 5 (1) और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (ध), थाना जलालपुर, जिला-अंबेडकर नगर से उत्पन्न जमानत आवेदन संख्या-178/2023 (जोस पापाचेन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में विद्वान विशेष न्यायाधीश एस.सी./एस.टी. अधिनियम, अंबेडकर नगर के न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2023 निरस्त होने योग्य है तथा अभियुक्त/अपीलकर्ता मुकदमे की अवधि में जमानत पर होने योग्य हैं।

13. अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए न्यायालय के समक्ष कई अन्य दलीलें भी प्रस्तुत की गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण अभियुक्त को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। अपीलकर्ता की ओर से यह आश्वासन दिया गया है कि वह विधिक प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए तैयार है तथा आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय के समक्ष ईमानदारी से उपस्थित होगा तथा न्यायालय द्वारा उस पर लगाई जाने वाली सभी शर्तों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार है। यह भी बताया गया है कि अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है तथा वह 24.01.2023 से जेल में है तथा न्यायालय में लंबित मामलों की अधिकता के दृष्टियत वाद के शीघ्र निस्तारण की कोई संभावना नहीं है।

14. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने प्रार्थना का बलपूर्वक विरोध करते हुए कहा है कि अपराध में अभियुक्त/अपीलकर्ता की सक्रिय भागीदारी है। उन्होंने कहा है कि वर्तमान मामला उत्तर प्रदेश राज्य में अवैध साधनों के माध्यम से हिंदू धर्म से ईसाई धर्म में बड़े पैमाने पर धर्मांतरण से संबंधित है। अपीलकर्ता ईसाई राज्य स्थापित करने की अपनी योजना के अंतर्गत जबरन धर्मांतरण के लिए मनोवैज्ञानिक दबाव का कथित रूप से उपयोग कर रहे हैं। विद्वान ए.जी.ए. ने आगे कहा कि अपीलकर्ता अन्य धर्मों के लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिए अनुचित प्रभाव से लोगों को लुभाने का उपयोग करते हैं, ताकि सामूहिक धर्मांतरण किया जा सके। इसलिए, अभियुक्त/अपीलकर्ता जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं है और वर्तमान आपराधिक अपील निरस्त किए जाने योग्य है। हालांकि, वह अभियुक्त/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अन्य तथ्यात्मक तर्कों पर विवाद करने में असमर्थ रहे हैं कि शिकायतकर्ता सत्तारूढ़ दल का जिला मंत्री है और न ही वह पीड़ित व्यक्ति है, न ही उसके माता-पिता, भाई, बहन या कोई अन्य व्यक्ति, जो उत्तर प्रदेश धर्म के गैरकानूनी धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा-4 के अंतर्गत रक्त, विवाह या दत्तक ग्रहण से उससे संबंधित है, इसलिए वह वर्तमान एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए सक्षम नहीं है।

15. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की विस्तृत चर्चा और मूल्यांकन के बाद, इस न्यायालय द्वारा

यह विचार किया है कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्राथमिक आरोप, 2021 के अधिनियम की धारा-3 के प्रावधानों का उल्लंघन करने का है, जो गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी भी धोखाधड़ी के माध्यम से एक धर्म से दूसरे धर्म में सीधे या अन्यथा धर्मांतरण या धर्मांतरण के प्रयास को प्रतिबंधित करता है। लेकिन ऐसा कोई भी तथ्य नहीं दिखता है, जो यह दर्शाता हो कि अपीलकर्ताओं ने सामूहिक धर्मांतरण के लिए उक्त ग्रामीणों पर कोई अनुचित प्रभाव या प्रलोभन का इस्तेमाल किया था। बल्कि अपीलकर्ता बच्चों को अच्छी शिक्षा देने और ग्रामीणों के बीच भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने में शामिल थे और ऐसा कोई भी तथ्य मौजूद नहीं है, जो बल प्रयोग द्वारा धर्मांतरण को ओर इशारा करे।

16. यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि वर्तमान प्रथम सूचना, अधिनियम 2021 की धारा-4 के अंतर्गत अपेक्षित सक्षम व्यक्ति द्वारा दर्ज नहीं की गई थी। धारा-4 में सूचीबद्ध व्यक्तियों की विभिन्न श्रेणियां, जो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सक्षम हैं, वो 'कोई भी पीड़ित व्यक्ति' हैं। उक्त धारा के आरंभ में "कोई भी पीड़ित व्यक्ति" शब्दों का अर्थ किसी भी व्यक्ति से लगाया जा सकता है, खासकर तब जब आईपीसी या सीआरपीसी के अंतर्गत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो किसी व्यक्ति को संज्ञेय अपराध के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से रोकता या प्रतिबंधित करता हो। हालांकि, "कोई भी पीड़ित व्यक्ति" शब्द को बाद की श्रेणियों द्वारा समझाया गया है और इसमें वो, उसके

माता-पिता, भाई, बहन या विवाह और गोद लेने के रक्त संबंध शामिल हैं। इसलिए, "कोई भी पीड़ित व्यक्ति" शब्द, यदि अपने आप में लिए जाएं तो बहुत व्यापक हैं। उक्त शब्द का दायरा बाद की श्रेणियों द्वारा पूरी तरह से कम कर दिया गया है और इसलिए, यह कहा जाना चाहिए कि कोई भी पीड़ित व्यक्ति एक व्यक्ति होगा, लेकिन वह अपने धोखाधड़ी वाले धर्म परिवर्तन से व्यक्तिगत रूप से पीड़ित है, चाहे वह एक व्यक्ति हो या सामूहिक धर्म परिवर्तन समारोह में। इसके विपरीत कोई भी व्याख्या धारा-4 के शेष भाग को "कोई भी पीड़ित व्यक्ति" शब्दों के बाद पूरी तरह से निरर्थक बना देगी और धारा को भी पूरी तरह से निरर्थक बना देगी। उक्त परिस्थितियों में दिनांक 24-01-2023 की प्रथम सूचना रिपोर्ट किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा दर्ज नहीं की गई थी।

17. न्यायालय में दिये गए तर्कों के आलोक में अभिलेख का अवलोकन करने तथा इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों, साक्ष्य की प्रकृति, पहले से ही हिरासत में व्यतीत की गई अवधि, मुकदमे के शीघ्र निस्तारण की असंभावना तथा साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की संभावना को इंगित करने वाली किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में समग्र दृष्टिकोण अपनाने के पश्चात तथा इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में बल प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता किसी अन्य व्यक्ति को गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी धोखाधड़ी के माध्यम से सीधे या अन्यथा एक धर्म से दूसरे धर्म में

परिवर्तित करने के प्रयास में शामिल नहीं हैं तथा उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है तथा शिकायतकर्ता के पास वर्तमान प्राथमिकी दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है, जैसा कि अधिनियम, 2021 की धारा 4 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है और अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में भी बल दिखाई देता है कि अच्छी शिक्षा प्रदान करना, पवित्र बाइबिल पुस्तकें वितरित करना, बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना, ग्रामीणों की सभा आयोजित करना और “भंडारा” करना और ग्रामीणों को विवाद में शामिल न होने और शराब न पीने का निर्देश देना प्रलोभन के समान नहीं है और आगे यह देखते हुए कि शिकायतकर्ता एक सत्तारूढ़ दल का जिला मंत्री है और न तो पीड़ित व्यक्ति है, न ही उसके माता-पिता, भाई, बहन या कोई अन्य व्यक्ति, जो उससे रक्त, विवाह या गोद लेने से संबंधित है, जैसा कि उत्तर प्रदेश धर्म के गैरकानूनी धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा-4 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है, इस प्रकार शिकायतकर्ता वर्तमान एफआईआर दर्ज करने के लिए सक्षम नहीं है और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अपीलकर्ता 24.01.2023 से जेल में है और अब तक हिरासत में काफी समय बिता चुका है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के व्यापक अधिदेश और **दाताराम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2018) 3 एससीसी 22** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस विचार का है कि विद्वान निचला न्यायालय, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की विवेचना करने में

विफल रही है, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश निरस्त होने योग्य है।

18. तदनुसार, अपील **स्वीकार** की जाती है। फलस्वरूप, मुकदमा अपराध संख्या-0031/2023, उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 3 और 5 (1) और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (ध), थाना जलालपुर, जिला-अंबेडकर नगर से उत्पन्न जमानत आवेदन संख्या-178/2023 (जोस पापाचेन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में विद्वान विशेष न्यायाधीश एस.सी./एस.टी. अधिनियम, अंबेडकर नगर के न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2023 एतद्वारा **निरस्त** किया जाता है।

19. अपीलकर्ता **जोस पापाचेन और शीजा** को मुकदमा अपराध संख्या-0031/2023, उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धारा 3 और 5 (1) और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (ध), थाना जलालपुर, जिला अंबेडकर नगर में निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) अपीलकर्ता संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत बांड प्रस्तुत करेंगे।

(ii) अपीलकर्ता उपस्थित होकर सीआरपीसी के अध्याय-33 की धारा-437 उपधारा-3 के अंतर्गत निष्पादित बांड की निम्नलिखित शर्तों का कड़ाई से पालन करेंगे:-

(ए) अपीलकर्ता इस अध्याय के अंतर्गत निष्पादित बांड की शर्तों के अनुसार उपस्थित होंगे।

(ख) अपीलकर्ता उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेंगे, जिसका उन पर आरोप है या जिस अपराध का उन पर संदेह है, तथा

(ग) अपीलकर्ता मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेंगे, जिससे कि वे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्य बताने से विमुख हो जाएं या साक्ष्यों से छेड़छाड़ करें।

(iii) अपीलकर्ता जांच/विचारण में सहयोग करेंगे।

(iv) अपीलकर्ता इस आशय का वचन देंगे कि वे साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी स्थगन की मांग नहीं करेंगे, जब गवाह न्यायालय में उपस्थित हों। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार आदेश पारित कर सकता है।

(v) अपीलकर्ता प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेंगे। उनकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता है।

(vi) यदि अपीलकर्ता विचारण की अवधि में जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हैं, तो उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, धारा-82 सीआरपीसी के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है और अपीलकर्ता ऐसी उद्घोषणा में तय तारीख को अदालत के सामने पेश होने में विफल रहते हैं, तो विचारण न्यायालय उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के अंतर्गत कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू करेगा।

(vii) अपीलकर्ता (i) मामले के प्रारम्भ में, (ii) आरोप विरचित करने के समय और (iii) धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान दर्ज करने के लिए नियत तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे। यदि विचारण न्यायालय के मत में अपीलकर्ताओं की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना और उनके विरुद्ध कानून के अनुसार कार्यवाही करना खुला होगा।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियां, यदि कोई हों, तो जमानत के लिए प्रार्थना के निस्तारण तक ही सीमित हैं और मामले की अंतिम योग्यता पर कोई प्रभाव डालने के लिए नहीं समझा जाना चाहिए।

21. विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है, तो पक्षों को कोई अनावश्यक स्थगन

दिए बिना, धारा 309 सीआरपीसी के प्रावधानों का सख्ती से पालन करते हुए, आज से एक वर्ष की अवधि के भीतर उपरोक्त मामले की सुनवाई में तेजी लाएं।

-----

**(2023) 9 ILRA 29**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 18.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र**

**आपराधिक अपील संख्या 2263 वर्ष 2023**

**दिनेश कुमार गुप्ता एवं अन्य ...अपीलार्थीगण**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण**

**अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:**

**प्रदीप कुमार शुक्ल, स्कन्द बाजपेयी**

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

**शासकीय अधिवक्ता**

**आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973**

**- धारा 156(3), 161, 228 और 482 -**

**भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 354,**

**354-ख, 427, 452, 504 और 506 -**

**अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति**

**(अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा**

**3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए), 3(1)(डब्ल्यू),**

**3(1)(वी), 3(1)(वीए), 3(2)(वी-ए), 14-ए और**

**14-ए(1) -अपील - आरोप पत्र और समन**

**आदेश को रद्द करने के लिए - आवेदन**

**अंतर्गत धारा 156 (3) दं.प्र.सं. - अभियुक्त**

द्वारा सूचना देने वाली और उसकी सास, जो अनुसूचित जाति से हैं, के विरुद्ध हमले, दुर्व्यवहार और धमकी के आरोप - जांच की गई - आरोप पत्र - समन आदेश - अपीलार्थियों ने तर्क दिया कि आरोप झूठे और प्रेरित थे क्योंकि पक्षों के बीच एक भूमि विवाद लंबित था - साक्ष्य का मूल्यांकन - न्यायालय ने पाया कि, प्र.सू.रि. और अभिकथनों में जाति-संबंधी अपमान का विशिष्ट विवरण नहीं दिया गया था और यह घटना जाति-आधारित भेदभाव के बजाय भूमि विवाद से संबंधित प्रतीत होती है - इसलिए, न्यायालय ने आंशिक रूप से अपील की अनुमति दी, एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत समन आदेश को रद्द कर दिया लेकिन विचारण न्यायालय को दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद अपीलार्थियों के विरुद्ध भा.दं.सं. के अंतर्गत लगाए गए आरोपों के लिए आगे बढ़ने की अनुमति दी, तदनुसार निर्देश दिए गए- अपीलार्थियों को उन आरोपों के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष उन्मोचन आवेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी। (पैरा - 9, 10, 11, 12)

**अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-11)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. रमेश चंद्र वैश्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 668

2. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य एवं एक अन्य, (2020) 10 एससीसी 710,

3. बी. वेंकटेश्वरन और अन्य बनाम पी. बक्तवतचलम, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 14,

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना तथा रिकार्ड में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. वर्तमान आपराधिक अपील, अपीलकर्ताओं द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14-ए (1) के अंतर्गत योजित की गई है, जिसमें पुलिस द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध जांच के बाद मामले में दायर आरोप पत्र को रद्द/निरस्त करने और मुकदमा अपराध संख्या-0125/2023, धारा 323, 354-खा, 427, 452, 504, 506 आईपीसी और धारा 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए), 3(1)(डब्ल्यू) व 3(2)(वी-ए) एससी/एसटी अधिनियम, राज्य बनाम हरिश्चंद्र एवं अन्य से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या-453/2023 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), जिला गोंडा द्वारा पारित सम्मन आदेश दिनांक 17.5.2023 को रद्द करने की मांग की गई है।

3. कार्यालय आख्या दिनांक 15.9.2023 के अनुसार, इस न्यायालय द्वारा जारी नोटिस प्रतिवादी संख्या-2 पर तामील किया जा चुका है, परन्तु उसकी ओर से वर्तमान आपराधिक

अपील में पक्ष प्रस्तुत करने के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनादाता श्रीमती कंचन ने धारा 156(3) सीआरपीसी के अन्तर्गत विद्वान विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट) के समक्ष वाद दर्ज करने तथा पुलिस द्वारा जांच करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने कहा कि आवेदिका अनुसूचित जाति की है तथा एक गरीब महिला है। आरोपीगण प्रभावशाली एवं दबंग व्यक्ति हैं। सूचनादाता एवं आरोपीगण के मध्य भूमि विवाद की रंजिश है। आरोपीगण उसकी भूमि हड़पने का प्रयास कर रहे हैं तथा इस उद्देश्य से दिनांक 28.9.2022 को लगभग 12:00 बजे दिन में वे लाठी, डण्डे एवं फरसा से लैस होकर सूचनादाता के घर पर आये तथा गाली-गलौज करने लगे, उसकी सास के साथ मारपीट की तथा जान से मारने की धमकी दी। सूचनादाता जब अपनी सास को बचाने गयी, तो उन्होंने उसके साथ भी मारपीट की तथा उसका ब्लाउज फाड़ दिया। सूचनादाता अपनी जान बचाने के लिए अपने घर के अंदर आई तो आरोपीगण दरवाजा धक्का देकर घर में घुस आए तथा जाति सूचक शब्दों का प्रयोग कर आवेदक व उसकी सास को अपमानित किया। गाली-गलौज की तथा घर खाली कराने की बात कही। घर में तोड़फोड़ करने लगे तथा सामान भी बाहर फेंक दिया। मोहल्ले के लोगों ने आकर बीच-बचाव किया तो आरोपीगण जमीन खाली करने की धमकी देकर चले गए। विद्वान विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी एक्ट ने उक्त प्रार्थना पत्र पर मामला दर्ज कर जांच का निर्देश दिया। पुलिस ने मामले की जांच कर



आरोपियों के विरुद्ध धारा 504, 506, 323, 354-खा, 452, 427 आईपीसी तथा धारा 3(1)(दा), 3(1)(धा), 3(1)(डब्लू) तथा 3(2)(वी-ए) के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया। विद्वान विशेष न्यायाधीश ने वर्तमान अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोप पत्र के आधार पर अपराध का संज्ञान लिया और दिनांक 17.5.2023 के आदेश के द्वारा उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए उपस्थित होने के लिए सम्मन जारी किया।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले में धारा 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए) के तत्व नहीं बनते हैं। सूचनाकर्ता और उसकी सास की चोटें, जैसा कि उनकी संबंधित चोट रिपोर्टों में दिखाया गया है, प्रकृति में साधारण हैं। अपीलकर्ताओं द्वारा सूचनाकर्ता और उसकी सास को अपमानित करने के लिए कथित तौर पर इस्तेमाल किए गए शब्दों या सामग्री का कोई विवरण नहीं है कि वे अनुसूचित जाति से संबंधित हैं। एफआईआर और धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज गवाहों के बयानों के अवलोकन से यह आरोप पुष्ट नहीं होता है कि आरोपी व्यक्तियों ने केवल इसलिए सूचना देने वाली या उसकी सास के विरुद्ध हमला किया या कोई अपमानजनक कार्य किया क्योंकि वे अनुसूचित जाति से हैं। वास्तव में अपीलकर्ताओं को सूचना देने वाली के परिवार और आरोपी व्यक्तियों के बीच भूमि विवाद के कारण मामले में झूठा फंसाया गया है। वर्तमान एफआईआर से पहले की एक एफआईआर, अपीलकर्ता नंबर 1, 2 और 3 की मां नैना देवी द्वारा 28.9.2022 को अपराध संख्या-

413/2022 में धारा 323, 504, 506 आईपीसी के अंतर्गत सुरेश और ब्रह्मादान के विरुद्ध दर्ज की गई थी, जो वर्तमान सूचनादाता के रिश्तेदार हैं और वर्तमान मामला उक्त एफआईआर दिनांक 28.9.2022 का जवाबी हमला है और उस मामले में भी 7.10.2022 को आरोप पत्र दायर किया गया है। वर्तमान मामले में 18.10.2022 को सूचनादाता द्वारा धारा 156(3) सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें एक ही तारीख की घटना दर्शाई गई है, इस प्रकार दोनों मामलों को क्रॉस-केस माना जा सकता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रमेश चंद्र वैश्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 668 में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन को निरस्त करने के विरुद्ध योजित एसएलपी में अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 323, 504 आईपीसी और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) के अंतर्गत मामलों में संदर्भित न्यायिक नज़ीरों में हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2020) 10 एससीसी 710 में पारित अपने पूर्व निर्णय पर भरोसा किया और पैराग्राफ संख्या 18 में निम्नानुसार पाया है:-

"18. इसके अलावा, यह मानते हुए कि अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता को अपमानित करने या उसे अपमानित करने के उद्देश्य से जाति संबंधित गालियां दी थीं, वही शिकायतकर्ता के मामले को एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) के दायरे में

लाने के लिए काफी नहीं है। हमने पहली एफआईआर के साथ-साथ चार्जशीट से भी नोट किया है कि उसमें मौखिक विवाद के दौरान अपीलकर्ता के कथनों या शिकायतकर्ता की जाति का कोई संदर्भ नहीं है। विधायी मंशा स्पष्ट प्रतीत होती है कि किसी व्यक्ति को अपमानित करने के लिए हर अपमान या धमकी एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अंतर्गत अपराध नहीं होगी, जब तक कि निश्चित रूप से, ऐसा अपमान या धमकी पीड़ित को लक्षित करके न की जाए क्योंकि वह किसी विशेष अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य है। यदि कोई किसी अन्य को सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान पर बेवकूफ (बेवकूफ) या मूर्ख (मूर्ख) या चोर (चोर) कहता है, तो यह स्पष्ट रूप से अपमानजनक या आपत्तिजनक भाषा का उपयोग करके अपमान या अपमानित करने के इरादे से किया गया कार्य माना जाएगा। यहां तक कि अगर यह सामान्य रूप से किसी व्यक्ति के लिए निर्देशित किया जाता है, जो अनुसूचित जाति या जनजाति है, तो यह धारा 3(1)(x) को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है जब तक कि ऐसे शब्द जातिवादी टिप्पणियों से भरे न हों। चूंकि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18, सीआरपीसी की धारा 438 के अंतर्गत न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने पर रोक लगाती है और अन्य कानूनों पर एससी/एसटी अधिनियम के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, यह वांछनीय है कि किसी अभियुक्त पर धारा 3(1)(x) के अंतर्गत कथित अपराध के लिए मुकदमा चलाए जाने से पहले, सार्वजनिक दृश्य के भीतर किसी भी स्थान पर उसके द्वारा किए गए कथनों को रेखांकित किया

जाए, यदि एफआईआर में नहीं (जो सभी तथ्यों और घटनाओं का विश्वकोश होने की आवश्यकता नहीं है), लेकिन कम से कम आरोप-पत्र में हो (जो जांच के दौरान दर्ज किए गए गवाहों के बयानों के आधार पर या अन्यथा तैयार किया जाता है) ताकि न्यायालय को यह पता लगाने में समर्थ बनाया जा सके कि क्या आरोप पत्र एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत अपराध का मामला बनाता है, ताकि अपराध का संज्ञान लेने से पहले उसके सामने स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उचित राय बनाई जा सके। यहां तक कि वर्तमान प्रकृति के मामले में लागू किए जाने वाले सीमित परीक्षण के लिए भी, 21 जनवरी, 2016 की चार्जशीट में धारा 3(1)(x) के अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा किए गए किसी अपराध का कोई मामला नहीं बनता है, जिसके लिए उसे मुकदमे का सामना करना पड़े।"

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2020) 10 एससीसी 710 में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन में उत्तराखंड उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर आपराधिक अपील में पैराग्राफ संख्या 13 व 15 में निम्नानुसार पाया:-

"13. अधिनियम की धारा 3(1)(आर) के अंतर्गत अपराध अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान और धमकी के तत्व को इंगित करेगा। किसी व्यक्ति का

प्रत्येक अपमान या धमकी अधिनियम के अंतर्गत अपराध नहीं माना जाएगा जब तक कि ऐसा अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार करना है क्योंकि उन्हें कई नागरिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इस प्रकार, अधिनियम के अंतर्गत अपराध तब माना जाएगा जब समाज के कमजोर वर्ग के सदस्य को अपमान और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। किसी भी पक्ष द्वारा भूमि पर शीर्षक का दावा अपमान या उत्पीड़न के कारक नहीं है। प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुसार अपने अधिकार का लाभ उठा सकता है। इसलिए, यदि अपीलकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों ने सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, या यदि प्रतिवादी सं. 2 ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, तो पक्षकार विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने उपचार का लाभ उठा रहे हैं। ऐसी कार्रवाई इस कारण नहीं है कि प्रतिवादी सं. 2 अनुसूचित जाति का सदस्य है।

15. एफआईआर के अनुसार, सूचनादाता पर दुर्व्यवहार करने के आरोप उसके भवन की चारदीवारी के भीतर थे। सूचनादाता का यह मामला नहीं है कि घटना के समय घर में कोई आम आदमी (केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं) मौजूद था। इसलिए, यह मूल तत्व कि ये शब्द 'सार्वजनिक दृश्य में किसी स्थान पर' कहे गए थे, नहीं बनता है। आरोप-पत्र में संलग्न गवाहों की सूची में कुछ गवाहों के नाम हैं, लेकिन यह

नहीं कहा जा सकता कि वे लोग भवन की चारदीवारी के भीतर मौजूद थे। अपराध कथित तौर पर भवन की चारदीवारी के भीतर हुआ है। इसलिए, स्वर्ण सिंह में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, इसे सार्वजनिक दृश्य में एक स्थान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि एफआईआर और/या चार्जशीट के अनुसार इमारत की चार दीवारों के भीतर किसी के मौजूद नहीं होने का कहा गया था।"

7. बी वेंकटेश्वरन और अन्य बनाम पी. बख्तावतचलम, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 14 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया था, जिसमें उच्च न्यायालय ने एससी/एसटी (पीए) अधिनियम की धारा 3(1)(वी) और (वीए) के अंतर्गत अपराध के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध निजी प्रतिवादी द्वारा शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने से इनकार कर दिया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि "ऐसा प्रतीत होता है कि अवैध निर्माण के संबंध में पक्षों के बीच एक निजी विवाद चल रहा था। संपूर्ण शिकायत में, ऐसा कोई आरोप नहीं है कि शिकायतकर्ता को उसकी संपत्ति पर उसके अधिकार के आनंद में जानबूझकर और स्वेच्छा से बाधा डाली गई और/या हस्तक्षेप किया गया, यह जानते हुए कि शिकायतकर्ता एससी/एसटी से संबंधित है। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से ऐसा प्रतीत होता है कि एक सिविल विवाद को आपराधिक विवाद में बदल दिया गया है और वह भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,

1989 के प्रावधानों के अंतर्गत अपराध के लिए। ऐसा लगता है कि पक्षों के बीच निजी सिविल विवाद को आपराधिक कार्यवाही में बदल दिया गया है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1)(v) और (va) के अंतर्गत अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही शुरू करना, इसलिए, कानून और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

8. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण में की गई प्रार्थना का विरोध किया तथा तर्क दिया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत याचिका पर संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, आपराधिक अपील में संज्ञेय नहीं है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि वर्तमान अपील में अपीलकर्ता द्वारा की गई दूसरी प्रार्थना आपराधिक अपील में संज्ञेय नहीं है, क्योंकि वह आरोप-पत्र को निरस्त करने से संबंधित है, जिसे केवल धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत कार्यवाही में ही चुनौती दी जा सकती है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वर्तमान अपील में लिए गए सभी आधारों को अपीलकर्ता द्वारा धारा 228 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत आवेदन में लिया जा सकता है, जिसमें ट्रायल कोर्ट के समक्ष उन्मोचन की मांग की गई है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वर्तमान अपील में मांगी गई राहत कानून के अंतर्गत वर्जित नहीं है तथा यह न्यायालय

वर्तमान आपराधिक अपील में उस पर विचार करने तथा उचित आदेश पारित करने के लिए सशक्त है।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध लगाए गए आरोपों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, यह न्यायालय पाता है कि एफआईआर में सूचनादाता द्वारा एक सामान्य आरोप लगाया गया है कि घटना के समय आरोपी व्यक्तियों ने सूचनादाता और उसकी सास को जाति सूचनादाता शब्दों का प्रयोग करके अपमानित किया, लेकिन उन शब्दों की सामग्री एफआईआर में प्रकट नहीं की गई है, यहां तक कि धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान में भी उन जाति सूचक शब्दों का खुलासा नहीं किया गया है। गाली-गलौज, हमला, धमकी देने की घटना कथित तौर पर सूचनादाता के घर के बाहर और अंदर हुई है और एफआईआर या धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत पीड़ितों के बयान में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आरोपियों ने जाति सूचनादाता शब्दों का प्रयोग करके सार्वजनिक रूप से उनका अपमान किया हो।

10. घटना के दिन से पहले पक्षों के बीच भूमि विवाद प्रतीत होता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि सूचनादाता या उसकी सास पर केवल इस तथ्य के कारण आरोपियों द्वारा हमला किया गया या गाली दी गई या धमकी दी गई कि वे अनुसूचित जाति से संबंधित हैं। इस न्यायालय का यह विचार है कि वर्तमान अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मामले में एससी/एसटी

अधिनियम की धारा 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए), 3(1)(डब्ल्यू) तथा 3(2)(वी-ए) के अंतर्गत आरोप नहीं बनते हैं। इसलिए, एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत उक्त प्रावधानों में अपीलकर्ताओं को सम्मन करने का आदेश रद्द किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने आईपीसी के अंतर्गत अन्य आरोपों के संबंध में कोई राय नहीं दी है तथा उन आरोपों के लिए विधि के अनुसार विद्वान निचली अदालत द्वारा सुनवाई आरंभ की जा सकती है। हालांकि, अपीलकर्ता उन आरोपों के लिए निचली अदालत के समक्ष उन्मोचन आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र होंगे, यदि वे इसे उचित चरण पर उचित समझते हैं तथा यह अपेक्षा की जाती है कि इस पर विचार किया जाएगा तथा मामले में लागू जमानत के प्रावधानों के अधीन, निश्चित रूप से, शीघ्रता से निपटारा किया जाएगा।

11. तदनुसार, वर्तमान अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है तथा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट), जिला गोंडा द्वारा एससी/एसटी एक्ट के अंतर्गत आरोप के लिए पारित सम्मन आदेश दिनांक 17.5.2023 को उपरोक्त टिप्पणियों के साथ निरस्त किया जाता है।

12. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट), जिला गोंडा दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आईपीसी के अंतर्गत आरोप तय करने के लिए स्वतंत्र हैं तथा यदि आरोप तय हो जाते हैं तो मामले को सुनवाई के लिए संबंधित विद्वान सीजेएम के पास वापस भेज दिया जाएगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 34

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 2620 वर्ष 2023

उर्मिला सिंह चौहान

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

कीर्ति प्रकाश सिंह, करण वीर सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 504 और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धाराएं - 3(1)(डीए)(डीएचए) और 18-अपील - अग्रिम जमानत को खारिज करते हुए, आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए - प्र.सू.रि. - आरोप हैं कि सूचना देने वाले को उस घर को खाली करने के लिए कहा गया था जिसमें वे किराए पर रह रहे थे - सूचना देने वाले को संबंधित अधिकारी से खाली करने का आदेश मिला - घर का एक तिहाई हिस्सा अपीलार्थी को आवंटित किया गया था, जबकि

दूसरा एक तिहाई हिस्सा कथित तौर पर अपीलार्थी द्वारा अवैध रूप से हड़प लिया गया था - शिकायतकर्ता ने कानूनी नोटिस के माध्यम से अपीलार्थी से 7,02,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए कहा, लेकिन अपीलार्थी ने जाति-विशेष अपमानजनक भाषा के साथ शिकायतकर्ता को गाली दी और घटना के दिनांक पर, जब शिकायतकर्ता पौधों को पानी दे रहा था, अभियुक्त व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता और उनकी पत्नी पर हमला करना शुरू कर दिया, और उन्हें जाति-विशेष भाषा के साथ गाली दी - अपीलार्थी ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी और मनगढ़ंत थी और अपीलार्थी के परिवार को फंसाने के दुर्भावनापूर्ण आशय से दर्ज की गई थी - न्यायालय ने पाया कि, चूंकि कथित घटना शिकायतकर्ता के घर के अंदर हुई थी और सार्वजनिक स्थान पर नहीं थी और न ही वहां कोई सार्वजनिक दृश्य था, इस प्रकार, कोई भी आरोप सही नहीं है। प्रश्न उठा कि, क्या अपीलार्थी के लिए एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(डीए)(डीएचए) के अंतर्गत मामला दर्ज कराने के लिए कोई सार्वजनिक अपमान का कारण है - और यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि मामले में भा.दं.सं. की अन्य धाराएं भी लागू होती हैं - अपीलार्थी की अग्रिम जमानत के आवेदन को विचारण न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया था कि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18 इस तरह के आवेदन पर रोक लगाती है - अभिनिर्धारित हुआ, कि घटना घर के अंदर हुई थी, न कि किसी सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य में, और इसलिए अपीलार्थी को कोई सार्वजनिक अपमान नहीं

हुआ - और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के दृष्टिगत, न्यायालय का मानना है कि अगर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की सराहना करने में विफल रही है, - इसलिए, अपीलार्थी की अग्रिम जमानत को खारिज करने वाले आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया और उलट दिया गया -अतः, अपील स्वीकार की जाती है - अपीलार्थी को कुछ शर्तों के साथ अग्रिम जमानत दी गई थी। (पैरा - 10, 11, 12, 13)

### अपील स्वीकृति (ई-11)

#### उद्धृत बादों की सूची:

1. दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, (2018) 3 एससीसी 22 में प्रतिवेदित,
2. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2020) 10 एससीसी 710,
3. गोपाल मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 16343 वर्ष 2020,
4. पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2020) 4 एससीसी 727।

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा पारित)

सुना।

वर्तमान अपील इस प्रार्थना के साथ योजित की गई है कि अपील स्वीकार की जाए तथा साथ

ही विद्वान विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. एकट, लखनऊ द्वारा एफ.आई.आर. संख्या-69/2021, धारा 323, 504, 506 आई.पी.सी. व एस.सी./एस.टी. एकट की धारा 3(1)(द)(ध), थाना कृष्णा नगर, जिला-लखनऊ में पारित निर्णय व आदेश दिनांक 22.08.2023 को अपास्त किया जाए।

अभियोजन का मामला संक्षेप में यह है कि सूचनादाता को उस मकान को खाली करने के लिए कहा गया जिसमें वह 5,000/- रुपये प्रतिमाह किराए पर रह रहा था। सूचनादाता को संबंधित अधिकारी से मकान खाली करने का आदेश प्राप्त हुआ। आदेश के अनुसार, एक तिहाई हिस्सा अपीलकर्ता को आवंटित किया गया, जिसमें वह अपने परिवार के साथ रह रही थी। एक तिहाई हिस्सा अपीलकर्ता द्वारा अवैध रूप से हड़प लिया गया। शिकायतकर्ता ने अपीलकर्ता को कानूनी नोटिस के माध्यम से 7,02,000/- रुपए की राशि का भुगतान करने के लिए कहा, लेकिन अपीलकर्ता ने जातिसूचक गाली-गलौज करते हुए शिकायतकर्ता को गाली दी। घटना की तिथि को जब शिकायतकर्ता पौधों को पानी दे रहा था, तो आरोपियों ने शिकायतकर्ता और उसकी पत्नी के साथ मारपीट शुरू कर दी और जातिसूचक गाली-गलौज की।

अपील के समर्थन में योजित शपथपत्र के अनुसार अपीलकर्ता का तर्क है कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी और मनगढ़ंत है। अपीलकर्ता के विरुद्ध एस.सी./एस.टी. एकट की धाराओं 3(1)(ध) के अंतर्गत कोई मामला नहीं बनता। शपथपत्र में दिए गए कथन के

अनुसार घटना घर के अंदर यानी घर और बगीचे की चारदीवारी के अंदर हुई बताई गई है, जो न तो सार्वजनिक स्थान है और न ही वहां कोई सार्वजनिक दृश्य था और कथित घटना के समय अपीलकर्ता मौजूद नहीं थी। यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध आईपीसी के प्रावधानों के अंतर्गत भी अपराध नहीं बनता है क्योंकि पीड़िता के शरीर पर कोई चोट नहीं पाई गई है और यहां तक कि मेडिकल रिपोर्ट भी उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी झूठी प्रतीत होती है और अपीलकर्ता, जो एक महिला है, के पूरे परिवार को फंसाने के लिए दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज की गई है।

उनका आगे का कथन यह है कि दिनांक 22.08.2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1989' कहा जाएगा) की धारा 18 के आधार पर अग्रिम जमानत के लिए इस तरह के आवेदन पर विचार करना विशेष रूप से वर्जित और बहिष्कृत है।

वर्तमान विवाद से संबंधित होने के कारण, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"18. संहिता की धारा 438 अधिनियम के अंतर्गत अपराध करने वाले व्यक्तियों पर लागू नहीं होगी। संहिता की धारा 438 में कुछ भी इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े किसी भी मामले के संबंध में लागू नहीं होगा।"

उनका आगे का कथन यह है कि 22.08.2023 का उपरोक्त आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है, क्योंकि इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य; (2020) 4 एससीसी 727 में निर्धारित कानून और गोपाल मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 16343/2020 के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार किए बिना पारित किया गया है।। उनका आगे यह कथन है कि घटना सार्वजनिक दृश्य और सार्वजनिक स्थान पर नहीं हुई है, इसलिए उन्हें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2020) 10 एससीसी 710 के मामले में दिए गए निर्णय का लाभ दिया जा सकता है, जिसमें पैरा 13 और 18 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित कहा है:-

"13. किसी व्यक्ति का अपमान या धमकी देना अधिनियम के अंतर्गत अपराध नहीं माना जाएगा, जब तक कि ऐसा अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों

की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार करना है क्योंकि उन्हें कई नागरिक अधिकारों से वंचित किया जाता है। इस प्रकार, अधिनियम के अंतर्गत अपराध तब माना जाएगा जब समाज के कमजोर वर्ग के किसी सदस्य को अपमान और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। किसी भी पक्ष द्वारा भूमि पर स्वामित्व का दावा अपमान या उत्पीड़न के कारण नहीं है। प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुसार अपने उपचार का लाभ उठाने का अधिकार है। इसलिए, यदि अपीलकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, या प्रतिवादी संख्या 2 ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, तो पक्ष कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने उपचार का लाभ उठा रहे हैं। ऐसे कार्रवाई इस कारण से नहीं की गई है कि प्रतिवादी संख्या 2 अनुसूचित जाति का सदस्य है।

18. इसलिए, अधिनियम के अंतर्गत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं होता है कि सूचना देने वाला अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपमानित करने का इरादा न हो, क्योंकि पीड़ित ऐसी जाति का है। वर्तमान मामले में, पक्ष भूमि पर



*कब्जे को लेकर मुकदमा कर रहे हैं। गाली-गलौज का आरोप उस व्यक्ति के विरुद्ध है जो संपत्ति पर मालिकाना हक का दावा करता है। यदि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति का है, तो अधिनियम की धारा 3(1)(आर) के अंतर्गत अपराध नहीं बनता है।*

उपरोक्त के आधार पर, यह आगे कहा गया है कि अधिनियम, 1989 की धारा 18 में निहित प्रतिबंध के आधार पर अग्रिम जमानत से इनकार करना संधारणीय नहीं है। इसलिए, अपीलकर्ता अग्रिम जमानत का हकदार है।

इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने यह कहते हुए प्रार्थना का बलपूर्वक विरोध किया है कि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18, एससी/एसटी समुदाय के सदस्यों के संबंध में किए जा रहे अत्याचारों को रोकने और उनकी रक्षा करने के लिए विशिष्ट प्रतिबंध प्रदान करती है। इसलिए, ऐसे अधिनियम की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए और मामले के इस दृष्टिकोण से, आक्षेपित आदेश में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है।

अपील के समर्थन में योजित शपथपत्र में किए गए कथनों और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करते हुए और विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 22.08.2023 को पारित किए गए आक्षेपित आदेश और एफ.आई.आर. की विषय-वस्तु पर विचार करते हुए, चूंकि कथित घटना शिकायतकर्ता के घर के अंदर हुई थी, न कि सार्वजनिक स्थान पर और न ही वहां कोई

सार्वजनिक दृश्य था, इसलिए कोई सवाल ही नहीं उठता कि एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(ध) के अंतर्गत मामला दर्ज करने के लिए अपीलकर्ता का कोई सार्वजनिक अपमान हुआ है और यहां तक कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि आई.पी.सी. की अन्य धाराएं भी इस मामले में शामिल हैं। अपीलकर्ता के मामले में भी विचार किया गया है और अधिनियम, 1989 की धारा 18 पर भी विचार किया गया है, जो यह प्रावधान करती है कि अग्रिम जमानत देने पर रोक है, साथ ही **पृथ्वी राज चौहान (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और **गोपाल मिश्रा (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और **दाताराम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2018) 3 एससीसी 22 व और हितेश वर्मा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस विचार की है कि निचला विद्वान न्यायालय रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की विवेचना करने में विफल रहा है। निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

तदनुसार, अपील **स्वीकृत** की जाती है। परिणामस्वरूप, विद्वान विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. एकट, लखनऊ द्वारा एफ.आई.आर. संख्या-69/2021, धारा 323, 504, 506 आई.पी.सी. व एस.सी./एस.टी. एकट की धारा 3(1)(द)(ध), थाना कृष्णा नगर, जिला लखनऊ में अपीलकर्ता को अग्रिम जमानत देने से इंकार करने वाले आक्षेपित निर्णय व आदेश

दिनांक 22.08.2023 को अपास्त किया जाता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी

आपराधिक अपील संख्या 3480 वर्ष 2002

यह निर्देश दिया जाता है कि अपीलार्थी, अर्थात्, **उर्मिला सिंह चौहान** की एफ.आई.आर. संख्या- 69/2021, धारा 323, 504, 506 आई.पी.सी. व एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(द)(ध), पुलिस स्टेशन कृष्णा नगर, जिला लखनऊ में गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे संबंधित पुलिस स्टेशन के स्टेशन हाउस ऑफिसर द्वारा 50,000/- रुपये के निजी बांड प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्त के साथ तुरंत रिहा कर दिया जाएगा:-

**सुनील प्रकाश गौड़**

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

**अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:**

श्री आर.एन. पांडे, श्री ए.के. पांडे, श्री आलोक कुमार मिश्रा, सुश्री सुमन सिरोही, श्री राजेश कुमार सिंह, श्री श्याम सिंह सोमवंशी

**प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:**

अपर शासकीय अधिवक्ता

(i) कि अभियुक्त-अपीलकर्ता पुलिस अधिकारियों द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगी, जब भी आवश्यक हो और जांच में सहयोग करेगी;

(ii) कि अभियुक्त-अपीलकर्ता, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगी जिससे उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके; और

(iii) कि अभियुक्त-अपीलकर्ता अदालत की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगी।

यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां केवल वर्तमान आपराधिक अपील यानी अग्रिम जमानत आवेदन के निस्तारण तक ही सीमित हैं और मामले की अंतिम योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं डालेंगी।

-----

(2023) 9 ILRA 38

**आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 और 437-ए - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307, 353, 504 और 506 - अपील - दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध - प्र.सू.रि. - सूचक एक जूनियर इंजीनियर है, उसने आरोप लगाया कि अपीलार्थी उसके कार्यालय में मिट्टी के तेल का एक खुला डिब्बा लेकर आया और अपना वेतन तैयार करने को कहा - प्रथम सूचक ने उसे बताया कि उसने जितनी अवधि तक काम किया है, उसका वेतन दिया जा चुका है - ये शब्द सुनने के बाद, अपीलार्थी ने प्रथम सूचक पर मिट्टी का तेल डाल दिया और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी - उसने प्रथम सूचक पर एक जलती हुई**

माचिस की तीली भी फेंकी लेकिन प्रथम सूचक मौके से भाग गया और खुद को बचा लिया - अन्वेषण- आरोप पत्र - दोषसिद्धि - दंडादेश - साक्ष्य का मूल्यांकन - न्यायालय ने पाया कि, अपीलार्थी ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष द्वारा मिट्टी के तेल के डिब्बे का कोई बरामदगी ज़ापन सिद्ध नहीं किया गया था - पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने अपीलार्थी को प्रथम सूचक पर मिट्टी का तेल डालते नहीं देखा था - पीडब्लू-1 घटना का एकमात्र साक्षी है - पीडब्लू-1 और अन्य दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिकथन में वास्तविक विरोधाभास है - न्यायालय ने पूरे आँखोंदेखी साक्ष्य की जाँच की और साक्षियों के परिसाक्ष्य में अनेक विरोधाभासों और लोप को नोट किया - अभिनिर्धारित किया गया - अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 307 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोप को संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा - अपीलार्थी संदेह के लाभ का हकदार है और इसलिए, अपील की अनुमति दी जाती है - आक्षेपित दोषसिद्धि के साथ-साथ दंडादेश को भी रद्द किया जाता है - परिणामस्वरूप, अपीलार्थी को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। (पैरा - 31, 32, 33, 34)

### अपील स्वीकृति (ई-11)

#### उद्धृत वादों की सूची:

- योगेश सिंह बनाम महावीर सिंह एवं अन्य, (2017) 11 एससीसी 195,
- बालाका सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1975 एससी 1962,

3. वडिवेलु थैवर बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1957 एससी 614,

4. सी. मुनियप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2010 एससी 3718।

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी द्वारा पारित)

1. वर्तमान आपराधिक अपील में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 10, इलाहाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 259/1996 (राज्य बनाम सुनील प्रकाश गौर) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.08.2002 को रद्द करने को प्राथमिकता दी गई, जिसमें विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को भा.द.सं. की धारा 307 के तहत दोषी ठहराया और उसे भा.द.सं. की धारा 307 के तहत पांच साल के कठोर कारावास के साथ 1,000/- रुपये जुर्माना और जुर्माना ना देने पर तीन माह का सश्रम कारावास की सजा सुनाई थी।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि जल निगम के कनिष्ठ अभियंता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 23.12.1992 को दोपहर 2:45 बजे दर्ज कराई थी जिसमें यह बताया कि उसी दिन दोपहर लगभग 1:45 बजे, अपीलकर्ता मिट्टी के तेल का एक खुला डिब्बा लेकर उनके कार्यालय में आया और अपना वेतन तैयार करने के लिए कहा। प्रथम सूचनादाता ने उन्हें बताया कि जितनी अवधि में उन्होंने कार्य किया है, उस वेतन का भुगतान कर दिया गया है। इन शब्दों को सुनने के बाद, अपीलकर्ता ने प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डाला और

गम्भीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। उसने प्रथम सूचनादाता पर जलती हुई माचिस की तीली भी फेंकी परन्तु प्रथम सूचनादाता ने मौके से भागकर खुद को बचाया। हंगामा होने पर आर.के. गुप्ता, आर.पी. शर्मा, राधेश्याम और इन्द्रमणि तिवारी मौके पर पहुंचे। पुलिस पिकेट भी वहां पहुंची और अपीलकर्ता को थाने ले आई। जांच पूरी होने के बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और अपीलकर्ता ने आरोप से इंकार किया व मुकदमे का दावा किया।

3. अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए, चार गवाहों की जांच की गई है; पीडब्लू-1 प्रमोद कुमार सिंह (प्रथम सूचनादाता), पीडब्लू-2 राधेश्याम मिश्रा, पीडब्लू-3 इंद्र मणि त्रिपाठी और पीडब्लू-4 उ.नि. गोरख नाथ राय। अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद अपीलकर्ता का बयान द.प्र.सं. की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया। जिसमें उन्होंने कहा कि अभियोजन पक्ष के सबूत झूठे हैं और उन्हें दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। अपीलकर्ता ने विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा भा.द.सं. की धारा 353, 504, 506 के तहत अपराध मुकदमा संख्या 4793/1999 (राज्य बनाम सुनील प्रकाश गौर) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2001 की सत्यापित प्रति दायर की है। अपीलकर्ता ने कोई अन्य मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

4. विचारण न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष द्वारा मिट्टी के तेल के डिब्बे का कोई भी रिकवरी

मेमो साबित नहीं किया गया है। पीडब्लू-2 राधेश्याम मिश्रा और पीडब्लू-3 इंद्र मणि त्रिपाठी ने अपीलकर्ता को प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालते नहीं देखा था। पीडब्लू-1 घटना का एकमात्र गवाह है। पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने अपीलकर्ता द्वारा प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालने और उस पर जली हुई माचिस की तीली फेंकने की घटना नहीं देखी है। पीडब्लू-1 प्रमोद कुमार सिंह और अन्य दो चश्मदीद गवाहों के बयान में काफी विरोधाभास है। आगे तर्क दिया गया कि जांच अधिकारी पीडब्लू-4 उ.नि. गोरख नाथ राय को घटना स्थल के निरीक्षण के समय जमीन के ऊपर मिट्टी का तेल नहीं मिला है।

5. विचारण न्यायालय ने माना कि मिट्टी के तेल के खाली डिब्बे के बारे में बयान जनरल डायरी में दर्ज किया गया था, जिसे प्रदर्श-का-5 के रूप में साबित किया गया था, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि अपीलकर्ता को मिट्टी के तेल के खाली डिब्बे के साथ थाने लाया गया। विचारण न्यायालय ने आगे देखा कि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालने के बाद घटना स्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने कभी नहीं कहा था कि उन्होंने मिट्टी का तेल डालने की घटना देखी थी।

6. विचारण न्यायालय ने आगे कहा कि अपीलकर्ता ने पीडब्लू-1 के इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि उसने पहले सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डाला था और उस पर जली हुई माचिस की तीली फेंकी थी, जैसा कि उसके मुख्य परीक्षण में कहा गया।

7. विचारण न्यायालय ने आगे कहा कि जांच अधिकारी पीडब्लू-4, उ.नि. गोरख नाथ राय के बयान की कोई प्रासंगिकता नहीं है। यह भी देखा गया कि घटना के तीन दिन बाद, घटना स्थल पर जमीन के ऊपर मिट्टी का तेल मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

8. विचारण न्यायालय के फैसले और आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने यह अपील दायर की है।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि पीडब्लू-1 (प्रथम सूचनादाता) और अन्य चश्मदीद गवाहों (पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3) के साक्ष्य के बीच भौतिक विरोधाभास है। इसके समर्थन में, यह बताया गया है कि:

(क) पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता प्रथम सूचनादाता के कार्यालय कक्ष में पहुंचा और उस पर मिट्टी का तेल डाला और उस पर जलती हुई माचिस फेंकी; जबकि, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने कहा कि उन्होंने अपीलकर्ता और पहले सूचनादाता को बरामदे में झगड़ते देखा था।

(ख) पीडब्लू-1 ने कहा कि हंगामा होने पर, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 घटना स्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने अपीलकर्ता को उसके ऊपर मिट्टी का तेल डालते और जलती हुई माचिस की तीली फेंकते हुए देखा था; जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने कहा है कि उन्होंने अपीलकर्ता

को प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालते या जलती हुई माचिस की तीली फेंकते नहीं देखा था।

(ग) पीडब्लू-1 के बयान के अनुसार, घटना का स्थान पीडब्लू-1 का कार्यालय है, जो कमरे में है; जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने कहा कि उन्होंने अपीलकर्ता और पीडब्लू-1 के बीच बरामदे में झगड़ा करते देखा था।

(घ) पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता ने उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल डाला था, जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने पीडब्लू-1 के कपड़ों पर कोई मिट्टी का तेल नहीं देखा था।

(ड.) प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) के कपड़ों की कोई बरामदगी नहीं हुई है, जबकि पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता ने उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल डाला था, जबकि प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) और पुलिस पिकेट घटनास्थल पहुंच गए और पीडब्लू-1 ने तुरंत (यानी घटना के एक घंटे के भीतर) एफ.आई.आर. दर्ज की।

(च) खाली मिट्टी के तेल के डिब्बे की कोई बरामदगी नहीं हुई, जिसके द्वारा अपीलकर्ता ने प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) पर मिट्टी का तेल डाला था।

(छ) मिट्टी के तेल वाली मिट्टी या अन्य किसी वस्तु की बरामदगी घटना स्थल से नहीं हुई। पीडब्लू-4 जांच अधिकारी ने कहा है कि उन्हें घटना स्थल पर कोई मिट्टी का तेल नहीं मिला।

10. **प्रतिपक्षी;** राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश का बचाव किया और कहा कि अपीलकर्ता ने एक जघन्य अपराध किया है। अपराध की गंभीरता को देखते हुए वर्तमान आपराधिक अपील खारिज किये जाने योग्य है।

11. मैंने अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार सिंह एवं राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया।

12. इससे पहले कि मैं अपने सामने उठाए गए विवाद की योग्यता पर चर्चा करूं, संपूर्ण नेत्र साक्ष्य की जांच पर चर्चा करना उचित होगा जो इस प्रकार है:

13. पीडब्लू-1 प्रमोद कुमार सिंह ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि 23.12.1992 को, जब वह दोपहर लगभग 01:45 बजे कार्यालय में काम कर रहे थे, उसी समय अपीलार्थी मिट्टी का तेल लेकर वहां आया और अपना वेतन तैयार करने को कहा लेकिन उन्होंने बताया कि जितनी अवधि में उन्होंने काम किया है, उसका वेतन भुगतान कर दिया गया है। इन शब्दों को सुनने के बाद, अपीलकर्ता ने प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डाला और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी और उस पर माचिस की तीली फेंकी लेकिन उन्होंने खुद को बचा लिया। हंगामा होने पर आरके गुप्ता, आरपी शर्मा, राधेश्याम और इंद्र मणि तिवारी (अन्य पदाधिकारी) मौके पर पहुंचे और पुलिस पिकेट भी वहां पहुंची और अपीलकर्ता

को मिट्टी के तेल के डिब्बे के साथ थाने ले आई।

14. पीडब्लू-1 ने अपनी जिरह में कहा कि घटना से पहले प्रथम सूचनादाता और अपीलकर्ता एक साथ काम कर रहे थे। अपीलकर्ता 1983 से प्रथम सूचनादाता के साथ काम कर रहा था। पीडब्लू-1 ने आगे कहा कि जांच अधिकारी ने घटना की अगली तारीख पर घटना स्थल का निरीक्षण किया, लेकिन उन्हें याद नहीं था कि उनका बयान कब दर्ज किया गया था। जांच अधिकारी ने घटना स्थल का केवल एक बार निरीक्षण किया। आगे कहा गया है कि घटना के समय, अपीलकर्ता उनके साथ काम नहीं कर रहा था और कुछ दिन पहले उनका स्थानांतरण हो गया था।

15. निम्नलिखित सुझाव मांगे गए थे; यह कहना गलत है कि 4 से 6 माह का वेतन बकाया था; यह कहना गलत है कि प्रथम सूचनादाता ने अपीलकर्ता का बोनस दो साल के लिए रोक दिया; यह कहना गलत है कि अपीलकर्ता की सेवा प्रथम सूचनादाता की सिफारिश पर समाप्त कर दी गई थी। हालाँकि, यह सच है कि इस अदालत ने समाप्ति आदेश पर रोक लगा दी है। यह कहना गलत है कि अपीलार्थी द्वारा बकाया वेतन के लिए आवेदन देने से प्रथम सूचनादाता नाराज हो गया, जिसके कारण झूठा मामला दर्ज कराया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि पीडब्लू-1 के साक्ष्य के अनुसार, घटना उनके कार्यालय में हुई और अपीलकर्ता मिट्टी के तेल के एक डिब्बे के साथ उनके कार्यालय में दाखिल हुआ

और मिट्टी का तेल उसके शरीर पर डाला और माचिस की तीली उसके ऊपर फेंकी, लेकिन आग नहीं लगी। यह भी महत्वपूर्ण है कि हंगामा होने पर अन्य पदाधिकारी पीडब्लू-2 राधेश्याम मिश्र और पीडब्लू-3 इंद्रमणि त्रिपाठी और पुलिस तुरंत मौके पर पहुंच गई थी और उन्होंने घटना देखी थी और तुरंत एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी लेकिन पीडब्लू-1 के कपड़े और मिट्टी के तेल का डिब्बा कब्जे में नहीं लिया गया।

16. पीडब्लू-2 राधेश्याम मिश्रा ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि अपीलकर्ता प्रथम सूचनादाता के अधीनस्थ था। 8 साल पहले लगभग 02:00 बजे, जब वह एच.सी. गुप्ता के कार्यालय में पहुंचे, तो शोर सुनकर वह मौके पर गए और देखा कि पी.के. सिंह (पीडब्लू -1) और अपीलकर्ता बहस कर रहे थे और झगड़ रहे थे। उन्होंने यह भी देखा कि कार्यालय के फर्श पर, पी.के. सिंह के टेबल के नीचे मिट्टी का तेल फैला हुआ था। जब अपीलकर्ता ने भागने की कोशिश की तो लोगों ने उसे घेर लिया और कर्नलगंज थाने ले आए।

17. पीडब्लू-2 ने अपनी जिरह में कहा है कि उसने अपीलकर्ता और प्रथम सूचनादाता को बरामदे में एक दूसरे से बहस करते देखा था। उसने यह नहीं सुना कि अपीलकर्ता ने अपना वेतन तैयार करने के लिए कहा है और घटना के समय वह कमरे में मौजूद नहीं था। घटना के समय अपीलकर्ता पीडब्लू-1 के अधीनस्थ के रूप में काम कर रहा था।

पीडब्लू-2 के साक्ष्यों को देखने के बाद, गवाह ने अपीलकर्ता और प्रथम सूचनादाता को बरामदे में देखा लेकिन वह घटना स्थल पर नहीं पहुंचा। गवाह ने मेज के नीचे मिट्टी का तेल देखा लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयान में काफी विरोधाभास है। पहले, उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि वह घटना स्थल (एक कमरे में स्थित कार्यालय) पर पहुंचे और अपीलकर्ता और प्रथम सूचनादाता के बीच हाथापाई देखी; जबकि अपनी जिरह में उन्होंने कहा है कि उसने अपीलकर्ता और प्रथम सूचनादाता को बरामदे में देखा था।

यह महत्वपूर्ण है कि गवाह ने प्रथम सूचनादाता के मिट्टी के तेल से भीगे हुए कपड़े नहीं देखे थे और कार्यालय में आग जलती भी नहीं देखी थी। यह महत्वपूर्ण है कि पीडब्लू-2 ने प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालने और जली हुई माचिस फेंकने का कोई कृत्य नहीं देखा और पीडब्लू-2 ने कहा कि घटना के समय, अपीलकर्ता प्रथम सूचनादाता के अधीनस्थ था लेकिन पीडब्लू-1 ने कहा है कि घटना के समय अपीलकर्ता उसके साथ काम नहीं कर रहा था।

18. पीडब्लू-3 इंद्रमणि त्रिपाठी ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि अपीलकर्ता घटना की तारीख पर पी.के. सिंह (पीडब्लू-1) के अधीनस्थ था। आज से 9 वर्ष पूर्व लगभग 02:00 बजे अपराहन शोर सुनकर वह मौके पर गये तो देखा कि पी.के. सिंह और अपीलार्थी वेतन बनाने को लेकर बहस और झगड़ा कर रहे थे और पी.के. सिंह के टेबल के नीचे कार्यालय के

फर्श पर मिट्टी का तेल फैला हुआ था। इसके बाद पुलिस आई और अपीलकर्ता को थाने ले आई।

19. पीडब्लू-3 ने अपनी जिरह में कहा कि वह कमरे में मौजूद नहीं था। वह प्रथम सूचनादाता के साथ थाने गया। उनका बयान द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत घटना के एक माह बाद रिकार्ड किया गया। मौके से कोई सामान बरामद नहीं हुआ। अपीलकर्ता का वेतन प्रथम सूचनादाता की सिफारिश के आधार पर तैयार किया गया था और अपीलकर्ता प्रथम सूचनादाता का अधीनस्थ था।

यह उल्लेखनीय है कि मुख्य परीक्षण में इस गवाह ने कहा है कि वह घटना स्थल (कमरे) पर पहुंचा जहां अपीलकर्ता और प्रथम सूचनाकर्ता झगड़ रहे थे और मिट्टी का तेल मेज के ऊपर और नीचे फैला हुआ था। घटना के समय वह कमरे में मौजूद नहीं था और घटना स्थल से कोई सामान भी बरामद नहीं हुआ। इस गवाह (पीडब्लू-3) के कमरे में पहुंचने को लेकर कोई विवाद नहीं है। पीडब्लू-3 ने किसी भी आग या जलती माचिस की तीली या प्रथम सूचनादाता के मिट्टी के तेल से लथपथ कपड़े नहीं देखे थे।

यह महत्वपूर्ण है कि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 घटना के तुरंत बाद पहुंचे लेकिन उन्होंने प्रथम सूचनादाता के कपड़ों पर कोई मिट्टी का तेल नहीं देखा था।

20. पीडब्लू-4 उ.नि. गोरख नाथ ने मामले की जांच की है और जांच के दौरान, उन्होंने गवाहों

के बयान को नोट किया और साइट मैप तैयार किया जो प्रदर्श-का.-2 है और अदालत में अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र भी प्रस्तुत किया, जो प्रदर्श-का.-3 है।

21. पीडब्लू-4 उ.नि. गोरख नाथ ने अपनी जिरह में कहा कि एफ.आई.आर. उनकी उपस्थिति में दर्ज नहीं की गई थी। प्रथम सूचनादाता का बयान एफ.आई.आर. दर्ज होने के उसी दिन 26.12.1992 को दर्ज किया गया था, वह निरीक्षण के लिए गया था। निरीक्षण के समय वहां पर मिट्टी का तेल नहीं मिला।

यह महत्वपूर्ण है कि पीडब्लू-4 का बयान जांच अधिकारी द्वारा उसी दिन दर्ज किया गया था, लेकिन मिट्टी के तेल से भीगे कपड़े जांच अधिकारी द्वारा कब्जे में नहीं लिए गए थे। गौरतलब है कि जांच अधिकारी ने घटना स्थल से कोई मिट्टी का तेल सोखने वाली मिट्टी या साधारण मिट्टी नहीं ली थी।

22. पीडब्लू-1 प्रथम सूचनादाता/घायल ने कहा है कि घटना के समय अपीलकर्ता उसका अधीनस्थ नहीं था; जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने अपनी जिरह में कहा है कि अपीलकर्ता पीडब्लू-1 के प्रशासनिक नियंत्रण में था। घटना के मकसद के संबंध में पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के बयान में असंगतता है।

23. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर गौर करने और रिकार्ड पर मौजूद साक्ष्यों की एक झलक देखने के बाद, अब मैं अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर गौर करूंगा



कि घटना के मकसद के संबंध में विरोधाभास है।

24. अब मैं गवाहों की गवाही में विरोधाभासों और चूक की जांच करने के लिए आगे बढ़ूंगा जिन्हें बहस के दौरान उजागर किया गया है। गवाहों की गवाही के बीच निम्नलिखित भौतिक विरोधाभास हैं:

(क) पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता प्रथम सूचनादाता के कार्यालय कक्ष में पहुंचा और उस पर मिट्टी का तेल डाला और उस पर जलती हुई माचिस फेंकी; जबकि, पीडब्लू-2 ने कहा कि उन्होंने अपीलकर्ता और पहले सूचनादाता को बरामदे में झगड़ते देखा था और पीडब्लू-2 ने कहा कि घटना के समय वह कमरे में मौजूद नहीं था।

(ख) पीडब्लू-1 ने कहा कि हंगामा होने पर, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 घटना स्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने अपीलकर्ता को उसके ऊपर मिट्टी का तेल डालते और जलती हुई माचिस की तीली फेंकते हुए देखा था; जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने कहा है कि उन्होंने अपीलकर्ता को प्रथम सूचनादाता पर मिट्टी का तेल डालते या जलती हुई माचिस की तीली फेंकते नहीं देखा था।

(ग) पीडब्लू-1 के बयान के अनुसार, घटना का स्थान पीडब्लू-1 का कार्यालय है, जो कमरे में है; जबकि पीडब्लू-2 ने कहा कि उन्होंने अपीलकर्ता और पीडब्लू-1 के बीच बरामदे में झगड़ा देखा था।

(घ) पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता ने उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल डाला था, जबकि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने पीडब्लू-1 के कपड़ों पर कोई मिट्टी का तेल नहीं देखा था।

(ड.) प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) के कपड़ों की कोई बरामदगी नहीं हुई है, जबकि पीडब्लू-1 ने कहा है कि अपीलकर्ता ने उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल डाला था, जबकि प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) और पुलिस पिकेट घटनास्थल पर पहुंच गए और पीडब्लू-1 ने तुरंत (यानी घटना के एक घंटे के भीतर) एफ.आई.आर. दर्ज की।

(च) खाली मिट्टी के तेल के डिब्बे की कोई बरामदगी नहीं हुई है जिसके द्वारा अपीलकर्ता ने प्रथम सूचनादाता (पीडब्लू-1) पर मिट्टी का तेल डाला था।

(छ) मिट्टी के तेल वाली मिट्टी या अन्य किसी वस्तु की बरामदगी घटना स्थल से नहीं हुई। पीडब्लू-4 जांच अधिकारी ने कहा है कि उन्हें घटना स्थल पर कोई मिट्टी का तेल नहीं मिला।

25. चश्मदीद गवाहों की गवाही में इस तरह की विसंगति का परिणाम क्या होगा, इसके लिए शीर्ष अदालत के कुछ फैसलों पर गौर करना उपयोगी होगा। योगेश सिंह बनाम महाबीर सिंह, (2017) 11 एससीसी 195 में, शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार पाया है; ( एससीसी पृष्ठ 212, पैरा 29)

“29. कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि छोटी-मोटी विसंगतियों पर अनावश्यक जोर नहीं दिया जाना चाहिए और सबूतों पर विश्वसनीयता के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या यह न्यायालय के मन में विश्वास जगाता है। यदि साक्ष्य अविश्वसनीय है और विवेक की कसौटी पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है, तो यह अभियोजन कथानक में संध लगा सकता है। यदि कोई चूक या विसंगति मामले की जड़ तक जाती है और विसंगतियों को जन्म देती है, तो बचाव पक्ष ऐसी विसंगतियों का फायदा उठा सकता है। यह बताने के लिए किसी विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक चूक एक भौतिक चूक की जगह नहीं ले सकती है और इसलिए, छोटी बाधाएं, विसंगतियां या महत्वहीन अलंकरण अभियोजन मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं और इसे अभियोजन के प्रमाण को अस्वीकार करने का आधार नहीं माना जाना चाहिए। चूक से किसी गवाह की सत्यता या विश्वसनीयता के बारे में गंभीर संदेह पैदा होना चाहिए। यह केवल गंभीर विरोधाभास और चूक हैं जो अभियोजन के मामले को भौतिक रूप से प्रभावित करते हैं, लेकिन हर विरोधाभास या चूक को नहीं।” (देखो : रम्मी उर्फ रामेश्वर बनाम एमपी राज्य (1999) 8 एससीसी 649; लीला राम (मृत) द्वारा दुली चंद बनाम हरियाणा राज्य (1999) 9 एससीसी 525; बिहारी नाथ गोस्वामी बनाम शिव कुमार सिंह व अन्य (2004) 9 एससीसी 186; विजय उर्फ चीनी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 8 एससीसी 191 ; संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरि (2012) 4 एससीसी 124

; श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2012) 7 एससीसी 646 और मृत्युंजय बिस्वास बनाम प्रणब @ कुटी बिस्वास (2013) 12 एससीसी 796)।

26. बालाका सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1975 एससी 1962 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

“8...यह सच है कि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ज्विंगली अरिवेल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1954 एससी 15, और उस मामले के बाद आए अन्य मामलों में निर्धारित किया गया है, न्यायालय को अनाज को भूसी से अलग करने का प्रयास करना चाहिए जैसे सत्य को झूठ से, फिर भी यह तभी संभव हो सकता है जब सत्य झूठ से अलग हो सके। जहां अनाज भूसी से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि अनाज और भूसी इतने जटिल रूप से मिश्रित होते हैं कि अलग करने की प्रक्रिया में अदालत को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए आवश्यक विवरणों को जिस संदर्भ और जिस पृष्ठभूमि में वे बने हैं, उससे पूरी तरह से अलग करके अभियोजन के लिए एक बिल्कुल नए मामले का पुनर्निर्माण करना होगा, तब यह सिद्धांत लागू नहीं होगा...”

27. वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य में, एआईआर 1957 एससी 614, शीर्ष अदालत ने माना कि यदि एकमात्र गवाह की गवाही अदालत द्वारा पूरी तरह से विश्वसनीय पाई जाती है, तो ऐसे सबूत पर आरोपी की सजा दर्ज करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। आगे

यह निर्धारित किया गया है कि साक्ष्य विधि के लिए किसी दिए गए तथ्य के सबूत के लिए किसी विशेष संख्या में गवाहों की जांच की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, एकल गवाह की गवाही के सामने, अदालत मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकती है, अर्थात्, (i) पूरी तरह से विश्वसनीय, (ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय, और (iii) न तो पूरी तरह से विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। पहली दो श्रेणियों में एकल गवाह की गवाही को स्वीकार करने या अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। तीसरी श्रेणी के मामलों में कठिनाई उत्पन्न होती है। अदालत को सतर्क रहना होगा और किसी एक गवाह की गवाही पर कार्रवाई करने से पहले, विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य, द्वारा भौतिक विवरणों की पुष्टि की तलाश करनी होगी। कुस्ती मल्लैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2013) 12 एससीसी 680, लल्लू मांझी और अन्य बनाम झारखंड राज्य (2003) 2 एससीसी 401, झपसा कबारी बनाम बिहार राज्य (2001) 10 एससीसी 94 में भी कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया है।

28. मामले की जांच में कई खामियां हैं जैसे घटना स्थल से मिट्टी के तेल का डिब्बा, पीडब्लू-1 के मिट्टी के तेल से लथपथ कपड़े और मिट्टी के तेल वाली मिट्टी और साधारण मिट्टी की बरामदगी न होना। हालाँकि, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जांच अधिकारी की ओर से कोई भी चूक अभियोजन मामले के खिलाफ नहीं जा सकती है यदि यह विश्वसनीय और प्रत्ययनीय साक्ष्य द्वारा समर्थित है। सी.

**मुनिअप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2010 एससी 3718** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा;

*“जांच में दोष अपने आप में दोषमुक्ति का आधार नहीं हो सकता। यदि ऐसी डिजाइन की गई या लापरवाही भरी जांच को प्राथमिकता दी जाती है या लापरवाही से की गई जांच में चूक या चूक को प्राथमिकता दी जाती है, तो आपराधिक न्याय प्रशासन में लोगों का विश्वास और भरोसा खत्म हो जाएगा। जहां जांच एजेंसी की ओर से लापरवाही हुई है या चूक आदि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप दोषपूर्ण जांच हुई है, तो अदालत की ओर से यह कानूनी दायित्व है कि वह ऐसी खामियों को दूर करने के लिए अभियोजन साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करे, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या कहा गया साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और यह किस हद तक विश्वसनीय है और क्या ऐसी चूक से सत्य का पता लगाने का उद्देश्य प्रभावित हुआ है। इसलिए, आपराधिक मुकदमे में न्यायिक जांच के लिए जांच एक अकेला क्षेत्र नहीं है।”*

29. इस प्रकार केवल घटना स्थल से मिट्टी के तेल का डिब्बा, मिट्टी के तेल वाली मिट्टी या साधारण मिट्टी तथा प्रथम सूचनादाता/घायल पीडब्लू-1 के मिट्टी के तेल से भीगे कपड़े की बरामदगी न होने के आधार पर अभियोजन पर संदेह नहीं किया जा सकता है, लेकिन वर्तमान मामले में पीडब्लू-1 घटना के तुरंत बाद बिना कपड़े बदले पुलिस स्टेशन पहुंच गया था, उसके द्वारा एफआईआर दर्ज की गई थी और जांच अधिकारी पीडब्लू-4 ने उसी दिन पहले

सूचनादाता का बयान दर्ज किया था और उपर्युक्त सामान बरामद करने का पर्याप्त अवसर था।

30. अभियोजन पक्ष ने मिट्टी के तेल के डिब्बे की बरामदगी साबित नहीं की है। जांच अधिकारी को निरीक्षण के समय घटना स्थल पर मिट्टी का तेल नहीं मिला। पीडब्लू-1 के साक्ष्य और पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के साक्ष्य के बीच भौतिक विरोधाभास है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, पुलिसकर्मी घटना स्थल पर आए थे लेकिन उसी तथ्य के संबंध में किसी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की गई।

31. संपूर्ण साक्ष्यों पर समग्रता से विचार करने और कानून की स्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मैं निःसंकोच यह मानता हूँ कि चश्मदीदों पीडब्लू-1 प्रमोद कुमार सिंह, पीडब्लू-2 राधेश्याम मिश्रा, पीडब्लू-3 इंदु मणि त्रिपाठी और पीडब्लू-4 उ.नि. गोरख नाथ राय, की गवाही अविश्वसनीय हैं। इस निष्कर्ष के समर्थन में निम्नलिखित परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा:

(i) घटना के तुरंत बाद एफ.आई.आर. दर्ज करने के बावजूद, प्रथम सूचनादाता के मिट्टी के तेल से भीगे कपड़े और मिट्टी के तेल के डिब्बे की बरामदगी नहीं की गई।

(ii) अभियोजन पक्ष के अनुसार, घटना में एक भी सामान नहीं जला था और पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 ने मिट्टी का तेल डालने की घटना को देखने के संबंध में कुछ भी नहीं बताया है।

(iii) घटना के स्थान के संबंध में पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के बयान के बीच भौतिक विरोधाभास है।

(iv) पीडब्लू-1 के साक्ष्य में भौतिक विरोधाभास है, जिसने कहा कि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 घटना स्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने घटना देखी; जबकि पीडब्लू-2 ने कहा कि उन्होंने अपीलकर्ता और प्रथम सूचनादाता को बरामदे में देखा था।

(v) घटना स्थल से कोई मिट्टी के तेल वाली मिट्टी तथा साधारण मिट्टी बरामद नहीं हुई। पीडब्लू-4 जांच अधिकारी ने कहा था कि निरीक्षण के समय उन्होंने घटना स्थल पर मिट्टी का तेल नहीं देखा था।

32. विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध है। मैं शायद ही वस्तुपरक मूल्यांकन, विश्लेषण, या साक्ष्य की जांच को उचित परिप्रेक्ष्य में पाता हूँ। बचाव पक्ष द्वारा बताई गई गंभीर निर्बलताएँ जो अभियोजन मामले के सम्बन्ध में संदेह जागृत करती हैं, को विद्वान विचारण न्यायाधीश ने खारिज कर दिया है। मेरे विचार में, विचारण न्यायालय द्वारा अभियोजन साक्ष्यों से उत्पन्न विरोधाभासों और चूकों को हल्के में खारिज करना सही और न्यायहित में नहीं था, वह भी तब, जब पूरा अभियोजन एकमात्र चश्मदीद गवाह, पीडब्लू-1 प्रमोद कुमार सिंह पर निर्भर था।

33. ऊपर दर्ज और चर्चा किए गए सभी कारणों से, मेरा मानना है कि अभियोजन पक्ष

अपीलकर्ता सुनील प्रकाश गौर के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत दंडनीय अपराध के आरोप को संदेह से परे उचित साबित करने में विफल रहा है। चूंकि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य अपीलकर्ता के अपराध को संदेह से परे नहीं लाते, इसलिए अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का हकदार है। नतीजतन, अपीलकर्ता उस आरोप से बरी होने का हकदार है जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया गया था।

34. परिणामस्वरूप, आपराधिक अपील स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 23.08.2022 को दर्ज किए गए निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश के साथ-साथ सजा को रद्द कर दिया गया है। अपीलकर्ता को सभी आरोपों से बरी किया जाता है। अपीलकर्ता जमानत पर है, इसलिए उसके निजी बांड और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। अपीलकर्ता सुनील प्रकाश गौर विचारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए धारा 437-ए द.प्र.सं. की आवश्यकता को जल्द से जल्द पूरा करेंगे।

35. अनुपालन के लिए इस निर्णय की प्रमाणित प्रति के साथ विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड तुरंत वापस किया जाए। कार्यालय को न्यायालय के प्रयोजन के लिए बनाए गए अनुपालन रजिस्टर में निर्णय दर्ज करने का भी निर्देश दिया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 46  
अपीलीय क्षेत्राधिकार  
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा  
माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी

मृत्युदंड प्रकरण संख्या 4050 वर्ष 2016

संदर्भ संख्या 7 वर्ष 2016

रणवीर सिंह

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

सुश्री तनिषा जहागीर मोनीर

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302/34, 302/120बी - आयुध अधिनियम, 1878 की धारा 25 - मृत्युदंड को चुनौती - पीडब्लू 2 और पीडब्लू 3 की प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य, जो अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करती है, विश्वसनीय और भरोसेमंद है - विरोधाभासी अभिकथन उनके सगे भाई को बचाने के परोक्ष अभिप्राय से दिए गए हैं - उनकी मौखिक परिसाक्ष्य का वह हिस्सा, जो अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करता है, उनकी परिसाक्ष्य में दिए गए अविश्वसनीय अभिकथनों से अलग किया जा सकता है और उसे विश्वसनीय साक्ष्य माना जा सकता है - यह स्थापित कानून है कि न्यायालय को मौखिक परिसाक्ष्य का मूल्यांकन करते समय अनाज को भूसे से

अलग करना चाहिए - ये साक्षीगण न केवल पड़ोसी हैं, बल्कि मृतक के सगे भाई भी हैं - रात के विषम समय में गोलियों की आवाज सुनकर उनके लिए यह जानने की उत्सुकता होना पूरी तरह से स्वाभाविक है कि उनके भाई के पास के घर में क्या हो रहा है-परिस्थितियों को देखते हुए, जहां दस से बीस मिनट के अंतराल में कई चक्र गोलीबारी हुई, यह उम्मीद की जाती है कि दोनों साक्षियों ने घटना देखी होगी- इसके अलावा, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से संकेत मिलता है कि महत्वपूर्ण अंतराल के साथ लंबे समय तक प्रति-परीक्षण के कारण, उनकी परिसाक्ष्य बचाव पक्ष से प्रभावित हो सकती है- पीडब्लू-1 की मौखिक परिसाक्ष्य भी विश्वसनीय है, क्योंकि कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास या गंभीर विसंगतियां नहीं हैं जो उसकी परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय बनाती हैं- अभियोजन पक्ष ने हेतु को सफलतापूर्वक स्थापित किया है, और यह घटनाओं के तरीके और अपराध के पीछे के आशय से स्पष्ट है कि केवल अपीलार्थी, और किसी और ने नहीं, अपराध किया है- विचारण न्यायालय ने पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 के अभिकथनों पर भरोसा करना सही ढंग से रखा है- विचारण न्यायालय द्वारा दी गई धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए दोष का पता लगाना सही और उचित है- अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से, धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप अपीलार्थी के विरुद्ध उचित संदेह से परे सिद्ध होता है साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी के साक्ष्य के आधार पर आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत दी गई अपील टिकने योग्य नहीं है - अपीलार्थी-

अभियुक्त की आयु 75 वर्ष से अधिक है। सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस समय मृत्युदंड देना न्यायसंगत नहीं होगा - मृत्युदंड के दंडादेश को आजीवन कारावास और दो लाख रुपये के अर्थदंड में संशोधित किया जाता है। (पैरा 1 से 82)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।  
(ई-6)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. जयंतीलाल वर्मा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2020) एससीसी ऑनलाइन एससी 944
2. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य (2009) 9 एससीसी 719
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शंभू नाथ सिंह (1958) एआईआर एससी 376 (2000) 5 एससीसी 668 (2001) 5 एससीसी 667
4. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, आपराधिक अपील संख्या 554 वर्ष 2012
5. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116
6. जैकम खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 1256
7. गुलाब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 2410 वर्ष 1985

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन  
रिजवी द्वारा पारित)

सुनवाई हुई है और इस समान निर्णय द्वारा  
उनका निस्तारण किया जा रहा है।

1. अपीलकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री तनीषा जहांगीर मोनिर और राज्य की विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह को सुना गया।

2. यह कैपिटल आपराधिक मामला (अपील) अपीलकर्ता रणवीर सिंह द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4 बुलंदशहर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 33/2009 (राज्य बनाम रणवीर सिंह व अन्य) धारा 302/34 और 302/120 बी भा.दं.सं., थाना औरंगाबाद, जिला बुलंदशहर में दिनांक 20/21.07.2016 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता को भा.दं.सं. की धारा 302 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया है और 1 लाख रुपये के जुर्माने के साथ मृत्युदंड की सजा सुनाई गई है और जुर्माना न चुकाने पर 2 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। अपीलकर्ता को सत्र परीक्षण संख्या 35/2009 में आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत भी दोषी ठहराया गया है और 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ तीन वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और जुर्माना न चुकाने पर 1 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. अपर सत्र न्यायाधीश ने भी इस न्यायालय में धारा 366 दं.प्र.सं. के अंतर्गत एक संदर्भ संख्या 7/2016 के रूप में पंजीकृत किया है। अपील और संदर्भ की एक साथ

### तथ्यों का विवरण

4. यह एक ऐसा मामला है जिसमें सुखवीर और उसका पूरा परिवार जिसमें 7 सदस्य हैं, अर्थात् सुखवीर सिंह (डी-1), उनके दो बेटे सूर्य प्रताप (डी-2) और अभिषेक (डी-3), उनकी दो बहुएँ ममता (डी-4) और लता (डी-5 पूर्ण अवधि की गर्भवती), उनकी पत्नी सुरेमवाला (डी-6) और लगभग दो वर्ष का पोता चीकू (डी-7) को 28/29.07.2008 की रात्रि में मार दिया गया था। चार लोगों का आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, अर्थात् रणवीर सिंह, मनवीर सिंह उर्फ संजीव कुमार (सुखवीर सिंह के भाई), ए पुत्र रणवीर सिंह सुनवाई के दौरान ए को किशोर घोषित कर दिया गया तथा उसकी फाइल अलग कर दी गई, जबकि मनवीर सिंह उर्फ संजीव कुमार तथा श्रीमती देवेन्द्री पत्नी रणवीर सिंह को आपराधिक षडयंत्र के आरोप से बरी कर दिया गया।

5. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि दिनांक 28/29.07.2009 की मध्य रात्रि को 3.20 बजे सिटी कंट्रोल रूम में मोबाइल नं. 9410670741 से सूचना प्राप्त हुई, जिसमें यह प्रविष्टि है कि गांव बरारी में सुखवीर सिंह (डी-1) के घर को बदमाशों ने घेर लिया है तथा लगातार फायरिंग हो रही है तथा कुछ हत्याएं भी की गई हैं। यह सूचना मिलने पर थानाध्यक्ष बलवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-9) के नेतृत्व में पुलिस टीम गांव में पहुंची, तब तक सुखवीर सिंह (डी-1) के घर पर काफी लोग एकत्र हो चुके थे। पुलिस टीम ने खौफनाक दृश्य देखा।

पूरे घर में गोलियों से जख्मी 6 शव बिखरे पड़े थे तथा सुखवीर सिंह (डी-1) का शव उसके ट्यूबवेल पर पड़ा था।

6. इस मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट संजीव कुमार पुत्र शिव चरण सिंह की लिखित तहरीर पर दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसका भाई सुखवीर सिंह अपने खेत में स्थित ट्यूबवेल पर सो रहा था। उसके दो बेटे सूर्य प्रताप उर्फ रिकू व अभिषेक तथा उनकी पत्नियां ममता व लता तथा सुखवीर सिंह की पत्नी सुरेमवाला व सूर्य प्रताप का बेटा चीकू अपने घर के अंदर सो रहे थे। रात्रि में लगभग 2 बजे अज्ञात बदमाश चारदीवारी फांदकर घर में घुस आए तथा अंधाधुंध फायरिंग कर सुखवीर की पत्नी, सुखवीर के दोनों बेटों, उनकी पत्नियों व पोते चीकू की हत्या कर दी। गोलियों की आवाज सुनकर ग्रामीणों व परिवार के सदस्यों ने बदमाशों को ललकारा परन्तु बदमाशों ने किसी को आगे नहीं बढ़ने दिया तथा बदमाश सुखवीर सिंह के परिवार के सभी सदस्यों की हत्या कर फरार हो गए। इसके बाद शिकायतकर्ता व अन्य लोग सुखवीर के खेत में गए तो देखा कि उसकी भी गर्दन रेतकर हत्या कर दी गई थी। परिवार के सभी सदस्यों की बदमाशों ने हत्या कर दी थी तथा शव मौके पर पड़े हुए थे। उपरोक्त लिखित सूचना पर अज्ञात के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 199/2008 अंतर्गत धारा 302 भा.दं.सं. पंजीकृत किया गया।

7. उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह (पी.डब्लू.-4) ने ममता (डी-4) के शव का पंचायतनामा किया तथा आवश्यक कागजात तैयार किये, जो प्रदर्श

क-6 से प्रदर्श क-12 हैं, उन्होंने चीकू (डी-7) के शव का पंचायतनामा किया तथा प्रदर्श क-12 से प्रदर्श क-17 अंकित कागजात तैयार किये। उन्होंने सूर्य प्रताप उर्फ टिकू (डी-2) के शव का पंचायतनामा किया तथा प्रदर्श क-18 से प्रदर्श क-23 कागजात तैयार किये। उन्होंने सूर्य प्रताप तथा चीकू के शवों के नीचे खून से सने तथा खाट के सादे बान, बिस्तर की चादर का हिस्सा तथा तकिये के गिलाफ भी एकत्र किये। उन्होंने सूर्य प्रताप, ममता तथा चीकू के शवों के नीचे खून से सनी तथा सादे मिट्टी को भी एकत्र किया। उन्होंने मौके से 315 बोर के छः खाली कारतूस भी एकत्र किये। उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह ने इसका मेमो प्रदर्श क-24 तैयार किया। उप-निरीक्षक राजेंद्र प्रसाद शर्मा (पी.डब्लू.-5) ने श्रीमती लता (डी-5) के शव का पंचायतनामा किया तथा जांच रिपोर्ट और आवश्यक कागजात प्रदर्श क-25 से क-29 तैयार किए। उन्होंने सुरेमवाला (डी-6) के शव का भी पंचायतनामा किया तथा जांच रिपोर्ट और आवश्यक कागजात प्रदर्श क-30 से क-34 तैयार किए। उन्होंने खून से सने और सादे सीढ़ियों के टुकड़े और खून से सनी और सादी मिट्टी भी एकत्र की, जहां श्रीमती लता का शव पड़ा था। सीढ़ियों से तीन खाली कारतूस 315 बोर और दो गोलियां भी एकत्र की गईं और एक मेमो प्रदर्श क-35 तैयार किया गया। उप-निरीक्षक राजीव कुमार (पी.डब्लू.-7) ने अभिषेक (डी-3) के शव का पंचायतनामा किया और जांच रिपोर्ट और आवश्यक कागजात प्रदर्श क-39 से का.-42 तैयार किए। घटनास्थल से एक 12 बोर का खाली कारतूस और एक 315 बोर का खाली कारतूस, खून के धब्बे और सादी मिट्टी भी एकत्रित कर मेमो प्रदर्श क-51 तैयार



किया। सुखवीर (डी-1) के शव की जांच उप-निरीक्षक सुरेश चंद्र ने की और जांच रिपोर्ट और आवश्यक कागजात प्रदर्श क-53 से क-57 तैयार किए गए। उन्होंने मौके से खून के धब्बे और सादी मिट्टी भी एकत्रित की और मेमो प्रदर्श क-52 तैयार किया।

8. विवेचना के दौरान कृष्णवीर सिंह पुत्र जगवीर सिंह (जिसकी परीक्षा नहीं की गई) ने थानाध्यक्ष औरंगाबाद को एक प्रार्थना पत्र दिया, जिसे केस डायरी का हिस्सा बनाया गया है। हालांकि, कृष्णवीर सिंह की मृत्यु के कारण अभियोजन पक्ष द्वारा यह लिखित रिपोर्ट साबित नहीं की जा सकी। विवेचनाधिकारी ने कृष्णवीर सिंह का बयान भी दर्ज किया। विवेचनाधिकारी ने नक्शा नजरी प्रदर्श क-50 भी तैयार किया। विवेचनाधिकारी इंस्पेक्टर बलवीर सिंह ने सुखवीर सिंह (डी-1) के सगे भाई प्यारे सिंह एवं जगवीर सिंह पुत्र शिवचरण सिंह और अमर पाल सिंह पुत्र जयचरण सिंह के बयान भी दर्ज किए। विवेचनाधिकारी ने मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 164 द.प्र.सं. के अंतर्गत उनके बयान भी दर्ज करवाए। साक्षी अमर पाल सिंह, प्यारे सिंह और जगवीर सिंह ने एस.एस.पी. को प्रार्थना पत्र के साथ शपथपत्र भी दिया है, जिसे केस डायरी का भाग बनाया गया है।

9. दिनांक 30.07.2008 को लगभग 1.30 बजे दोपहर में एक अभियुक्त रणवीर सिंह को पुलिस ने गिरफ्तार किया तथा पूछताछ करने पर अभियुक्त ने अपना अपराध स्वीकार किया तथा यह भी बताया कि अपराध में प्रयुक्त तमंचा तथा बलकटी (धारदार हथियार) उसने

छिपा रखी है, जिसे वह बरामद करवा सकता है। पुलिस दल अभियुक्त रणवीर के साथ रणवीर के धान के खेत में आई। खेत के कोने में जामुन के पेड़ के नीचे से अभियुक्त ने पुरानी बीड़ हटाकर 315 बोर के दो तमंचे तथा चार जिंदा कारतूस बरामद करवाए। तत्पश्चात उसकी निशानदेही पर अपराध में प्रयुक्त एक बलकटी तथा सीढ़ी भी अभियुक्त के घर से बरामद की गई। बलकटी तथा बांस की सीढ़ी दोनों ही खून से सनी हुई थी, बरामदगी मेमो प्रदर्श क-58 तैयार किया गया तथा अभियुक्त रणवीर के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 200/2008 अंतर्गत धारा 25 आयुध अधिनियम पंजीकृत किया गया। विवेचना के उपरांत, रणवीर सिंह, मनवीर सिंह उर्फ संजीव कुमार, ए और श्रीमती देवेंद्री पत्नी रणवीर सिंह के विरुद्ध धारा 302/34, 302/120बी भा.दं.सं. प्रदर्श क-61 के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया।

10. आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत अपराध संख्या 200/2008 की विवेचना उप-निरीक्षक सुरेंद्र सिंह (पी.डब्लू.-4) द्वारा की गई। उन्होंने साक्षीगण के बयान दर्ज किए और नक्शा नजरी प्रदर्श क-66 तैयार किया, अभियोजन स्वीकृति प्रदर्श क-68 प्राप्त की और रणवीर सिंह के विरुद्ध आरोप पत्र प्रदर्श क-67 प्रस्तुत किया। दोनों सत्र परीक्षाओं को सत्र परीक्षण संख्या 33 / 2009 और 35 / 2009 के रूप में सत्र न्यायालय के सुपुर्द किया गया।

11. अभियुक्त रणवीर सिंह के विरुद्ध धारा 120 बी, 302 के साथ धारा 34 भा.दं.सं. और धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत आरोप

विरचित किए गए, जबकि अभियुक्त देवेंद्र और मनवीर उर्फ संजीव पर धारा 120 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए आरोप लगाए गए। अभियुक्तगण ने दोषी न होने का तर्क दिया और परीक्षण की मांग की।

12. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित साक्षीगण की मौखिक साक्ष्य का अवलम्ब लिया-

- i. अमर पाल सिंह (पी.डब्लू. -1)
- ii. प्यारे सिंह (पी.डब्लू. -2)
- iii. जगवीर सिंह (पी.डब्लू. -3)
- iv. उप-निरीक्षक सुरेंद्र सिंह (पी.डब्लू. -4)
- v. उप-निरीक्षक राजेंद्र प्रसाद शर्मा (पी.डब्लू. -5)
- vi. डॉ शिवनाथ सिंह (पी.डब्लू. -6)
- vii. उप-निरीक्षक राजीव कुमार यादव (पी.डब्लू. -7)
- viii. डॉ वाईपी सिंघल (पी.डब्लू. -8)
- ix. निरीक्षक बलवीर सिंह (पी.डब्लू.-9)
- x. उप-निरीक्षक जगरोशन (पी.डब्लू.-10)
- xi. आरक्षी निरंजन प्रसाद शर्मा (पी.डब्लू.-11)
- xii. सुबराती (पी.डब्लू.-12)

उपरोक्त साक्षीगण ने 72 अभियोजन प्रपत्रों को प्रदर्श क-1 से प्रदर्श क-72 और वस्तु प्रदर्श 1 से 57 तक को साबित किया है।

13. अभियुक्त रणवीर सिंह, मनवीर सिंह उर्फ संजीव कुमार और श्रीमती देवेंद्री के बयान अंतर्गत धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किए गए। आरोपियों ने अभियोजन पक्ष द्वारा उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया और कहा कि उन्हें झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त रणवीर सिंह ने इस बात से भी

इनकार किया है कि उसने कोई स्वीकारोक्ति बयान दिया है और उसकी निशानदेही पर कोई बरामदगी की गई है। अभियुक्त रणवीर सिंह ने यह भी कहा है कि पुलिस मामले की ठीक से विवेचरा नहीं कर रही थी और भीड़ के दबाव में उसने पुलिस अधिकारी को धक्का दिया, इस वजह से उसे झूठा फंसाया गया है। वह निर्दोष है। अभियुक्त मनवीर सिंह उर्फ संजीव ने अपने अतिरिक्त बयान में कहा है कि वह अपने अन्य भाइयों से अलग रहता है और उसका उनसे कोई संबंध नहीं है। उसने इस मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है और उसने किसी भी आपराधिक षडयंत्र में भाग नहीं लिया है। अभियुक्ता देवेंद्री ने कहा है कि वह निर्दोष है और उसे झूठा फंसाया गया है। हालांकि, अभियुक्त द्वारा बचाव में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है।

14. विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त रणवीर सिंह को दोषी माना और उसे उपरोक्त सजा सुनाई। विद्वान विचारण न्यायालय ने अन्य सह-अभियुक्तगण मनवीर सिंह उर्फ संजीव कुमार और श्रीमती देवेंद्री को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया।

### पोस्टमार्टम रिपोर्ट

15. **सुखवीर सिंह (डी -1)** का पोस्टमार्टम दोपहर 12.45 बजे किया गया था। मृतक की उम्र लगभग 55 वर्ष थी और शरीर की बनावट औसत थी। संपूर्ण शरीर मृत्यु पूर्व की अकड़न मौजूद थी। निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें देखी गई:-

1. सिर के बाईं ओर 6 सेमी x 1.5 सेमी x हड्डी तक गहरा घाव, बाएं कान से 4 सेमी ऊपर 4 बजे की स्थिति में, तिरछा। मस्तिष्क का पदार्थ बाहर आ रहा है।

2. सिर के बाईं ओर 4 सेमी x 1 सेमी x हड्डी तक गहरा घाव, तिरछा। चोट सं0 1 से 4 सेमी उपर।

3. बाएं कान पर 6 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी तक गहरा कटा हुआ घाव, लंबवत।

4. गर्दन के सामने मध्य भाग में 12 सेमी x 6 सेमी x हड्डी तक गहरा चीरा हुआ घाव, सभी वाहिकाएं, श्वासनली, त्वचा कटी हुई।

5. गर्दन के सामने ठोड़ी के नीचे 8 सेमी x 1.5 सेमी x मांसपेशी गहरा चीरा हुआ घाव। आंतरिक जांच में, मस्तिष्क और उसकी झिल्ली, दोनों फेफड़े, यकृत, प्लीहा और गुर्दे पीले थे। पार्श्विका हड्डी टूटी हुई थी। मस्तिष्क और उसकी झिल्ली कटी हुई थी, पेट में 100 मिली तरल पदार्थ मौजूद था। हृदय के दोनों कक्ष खाली थे। मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप शॉक और रक्तसाव के कारण था और मृत्यु की अवधि लगभग आधे दिन थी।

16. **लता (डी-5)** का पोस्टमार्टम दिनांक 29.07.2008 को दोपहर 2.00 बजे किया गया था। मृतक की उम्र लगभग 24 वर्ष थी, शरीर की बनावट औसत थी तथा मृत्यु पूर्व की अकड़न शरीर पर मौजूद थी। मृत्यु पूर्व की निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

1. सिर के ओसीसीपिटल क्षेत्र के दाईं ओर आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, 3 सेमी x 2 सेमी x मस्तिष्क गुहा तक गहरा, घाव के चारों ओर

कालापन और टैटू, 3 बजे की स्थिति में बाएं कान से 3 सेमी दूर।

2. सिर के आंतरिक भाग के दाईं ओर आग्नेयास्त्र का निकास घाव, 3 सेमी x 2.5 सेमी x चोट सं0 1 के लगता हुआ। जांच करने पर ओसीसीपिटल और पार्श्विका दाहिने हिस्से फ्रैक्चर हुए, झिल्ली और मस्तिष्क फटे हुए थे।

3. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव छाती के पीछे 3 सेमी x 2 सेमी x छाती गुहा तक गहरा, गर्दन की जड़ से 7 सेमी नीचे, और शरीर की मध्य रेखा से 2 सेमी दूर।

4. छाती के सामने निकास का आग्नेयास्त्र घाव, 4 सेमी x 2.5 सेमी x छाती गुहा तक गहरा, दायें निप्पल के साथ, चोट सं0 3 से लगता हुआ।

5. घुटने के जोड़ के अंदर की तरफ आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, किनारे अंदर की तरफ मुड़े हुए, 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी तक गहरा, जांच करने पर घुटने के जोड़ से 6 सेमी नीचे नरम ऊतकों से एक धातु की गोली बरामद हुई।

आंतरिक जांच में मस्तिष्क, उसकी झिल्ली, दोनों फेफड़े, यकृत, प्लीहा और गुर्दे पीले थे, 250 मिली, पेट में अधपचा हुआ भोजन मौजूद था। गर्भाशय गर्भवती थी और पूर्ण-कालिक पुरुष भ्रूण था।

डॉक्टर की राय में, मौत का कारण पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप शॉक और रक्तसाव के कारण था और मृत्यु की अवधि लगभग आधे दिन थी।

17. **ममता (डी-4)** का पोस्टमार्टम दिनांक 29.07.2008 को दोपहर 3.00 बजे किया गया था।

1. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, छाती पर बाएं स्कैपुला हड्डी के निचले कोण पर, 3 सेमी x 2 सेमी x छाती गुहा तक गहरा, घाव के चारों ओर कालेपन, टैटू, किनारे अंदर मुड़े, शरीर की मध्य रेखा से 3 सेमी दूर।

2. छाती के सामने बाहर आग्नेयास्त्र का निकास घाव, बाएं निप्पल पर उरोस्थि सीमा के किनारे, 3.5 सेमी x 1.8 सेमी x चोट सं 0 1 के साथ लगता हुआ, जांच करने पर बाएं फेफड़े और प्लूरा क्षतिग्रस्त और छाती गुहा में 1.5 लीटर रक्त।

3. दाहिने निप्पल के स्तर पर प्राथमिक सीमा के बाहर छाती के सामने आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, 3 सेमी x 1.5 सेमी x छाती गुहा तक गहरा, किनारों के चारों ओर कालेपन व टैटू, अन्वेषण करने पर दाहिना फेफड़ा क्षतिग्रस्त और दाहिने फेफड़े से एक धातु की गोली बरामद।

4. छाती के सामने (स्टर्नम बोन) के मध्य भाग में 2 सेमी x 1.5 सेमी का आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, छाती गुहा के गहरे किनारे मुड़े हुए, जांच करने पर वक्षीय क्षेत्र से एक धातु की गोली बरामद हुई।

आंतरिक जांच में मस्तिष्क और उसकी झिल्लियाँ, दोनों फेफड़े, यकृत, तिल्ली और गुर्दे पीले थे, तथा पेट में 200 मिली लीटर अधपचा हुआ भोजन मौजूद था। गर्भाशय गर्भवती नहीं था।

डॉक्टर की राय में मौत का कारण शॉक और रक्तस्राव था। अवधि लगभग आधे दिन थी।

18. डॉ शिवनाथ सिंह (पी.डब्लू.-6) ने उपरोक्त तीनों पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श क-36 से क-

38 के रूप में साबित किया है। साक्षी ने आगे कहा है कि तीनों मृतकों की मौत 28/29.07.2008 की रात लगभग 2.00 बजे हुई होगी।

19. **अभिषेक (डी-3)** का पोस्टमार्टम दोपहर 12.50 बजे किया गया था। मृतक की उम्र लगभग 25 वर्ष थी और शारीरिक बनावट औसत थी, मृत्यु पूर्व की अकड़न शरीर में मौजूद थी। मृत्यु पूर्व निम्नलिखित चोटें पाई गई:-

1. छाती के बाईं ओर 3 सेमी x 2 सेमी x छाती गुहा में आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, 6 बजे बाएं निप्पल से 10 सेमी नीचे, किनारे मुड़े फटे हुए, कालापन और गोदना मौजूद है।

2. चेहरे के बाईं ओर आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव 4 सेमी x 3 सेमी x मस्तिष्क गुहा तक गहरा, बाएं कान के पास। कालापन व टैटू मौजूद है। किनारे मुड़े कटे हुए। मस्तिष्क का पदार्थ बाहर आ रहा है।

3. सिर के दाहिनी ओर दाहिने कान से 3 सेमी ऊपर 3 सेमी x 2 सेमी x कपाल गुहा में आग्नेयास्त्र का घाव, किनारे कटे और उलटे हुए।

आंतरिक परीक्षण में, मस्तिष्क के दोनों टेम्पोरल और आधार टूटे हुए थे, मस्तिष्क और उसकी झिल्लियाँ कटी हुई थीं। बायां फेफड़ा और उसकी झिल्लियाँ कटी हुई थीं, और बाएं फेफड़े से दो गठ्ठे के टुकड़े और 9 छर्बे बरामद हुए। पेट में 100 ग्राम अधपचा हुआ पदार्थ था।

मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप शॉक और रक्तस्राव था। अवधि लगभग आधे दिन की थी।

20. **सुरेम वाला** (डी-6) का पोस्टमार्टम दिनांक 29.07.2008 को दोपहर 1.20 बजे किया गया था। मृतक की आयु लगभग 52 वर्ष थी, शारीरिक बनावट औसत थी तथा मृत्यु पूर्व की अकड़न मौजूद थी। निम्न मृत्यु पूर्व की चोटें पाई गई:-

1. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव 2 सेमी x 2 सेमी x मस्तिष्क गुहा में माथे के मध्य में गहरा, नाक के पुल से 3 सेमी ऊपर, मार्जिन उलटा फटा हुआ।
2. आग्नेयास्त्र का निकास घाव 3 सेमी x 3 सेमी सिर के पीछे, गर्दन के मार्जिन से 4 सेमी ऊपर, उलटा, फटा हुआ।
3. दाहिने घुटने के सामने की ओर 3 सेमी x 2 सेमी का घर्षण घाव।
4. बाएं घुटने के सामने की ओर 2 सेमी x 1 सेमी का घर्षण घाव।
5. बाएं भों के ठीक पार्श्व में सिर के दाईं ओर 3 सेमी x 2 सेमी का घर्षण घाव।
6. दाहिनी कलाई के फ्रैक्चर के साथ दर्दनाक सूजन, 3 सेमी x 2 सेमी x हड्डी तक गहरा घाव।

आंतरिक परीक्षण में, मस्तिष्क के सामने के पश्चकपाल हड्डी का फ्रैक्चर था और इसकी झिल्ली फटी हुई थी, 200 मि.लि. अधपचा भोजन पेट में मौजूद था। मृत्यु का कारण शॉक व रक्तस्राव था तथा अवधि लगभग आधा दिन थी।

21. **चीकू** (डी-7) का पोस्टमार्टम दिनांक 29.07.2008 को दोपहर करीब 2.10 बजे किया गया। मृतक की उम्र करीब दो साल थी, शरीर की बनावट औसत थी। मृत्यु पूर्व की

अकड़न मौजूद थी। मृत्यु से पहले निम्नलिखित चोटें पाई गई:-

1. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव 1 सेमी x 1.5 सेमी x छाती गुहा में गहरा, छाती के पीछे, 3 सेमी मध्य रेखा से और 7 सेमी गर्दन की जड़ से नीचे, किनारे कटे हुए, उल्टे, कालापन और गोदना मौजूद है।
2. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव 2 सेमी x 2 सेमी छाती के पीछे, 3 सेमी मध्य रेखा से और चोट सं0 1 से 4 सेमी नीचे। कालापन और गोदना मौजूद है, छाती गुहा गहरा है।
3. आग्नेयास्त्र का निकास घाव, 3 सेमी x 2 सेमी x छाती गुहा तक गहरा, छाती के सामने दाईं ओर, दाहिने निप्पल के ठीक ऊपर।
4. आग्नेयास्त्र का निकास घाव, 3 सेमी x 3 सेमी छाती गुहा तक गहरा, किनारे कटे हुए। मृत्यु का कारण शॉक और रक्तस्राव था और अवधि लगभग आधे दिन की थी।

आंतरिक जांच में पाया गया कि दाहिनी ओर दूसरी और चौथी तथा बाईं ओर चौथी और पांचवीं पसलियां टूटी हुई थीं। दोनों फेफड़े और उनकी झिल्लियां क्षतिग्रस्त थीं। छाती गुहा में 150 मिली लीटर थक्कायुक्त रक्त मौजूद था। पेट में 50 मिली लीटर तरल पदार्थ मौजूद था। मृत्यु का कारण शॉक और रक्तस्राव था तथा मृत्यु की अवधि लगभग आधे दिन थी।

22. **सूर्य प्रताप** (डी-2) का पोस्टमार्टम दोपहर 2.30 बजे किया गया था। मृतक की उम्र लगभग 26 वर्ष थी, शरीर औसत दर्जे का था, और मृतक के शरीर में मृत्यु पूर्व की अकड़न मौजूद थी। शरीर पर निम्न चोटें पाई गई:-

1. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, चेहरे के बाईं ओर 3 सेमी x 3 सेमी, बाईं आंख पर, किनारे उलटे, फटे, कपाल गुहा गहरी, कालापन और टैटू मौजूद।

2. आग्नेयास्त्र का निकास घाव, 5 सेमी x 4 सेमी, सिर के शीर्ष पर कपाल गुहा गहरी, बाएं कान के पिना से 12 सेमी ऊपर और नाक के पुल से 15 सेमी ऊपर, किनारे फटे हुए बाहर की ओर।

3. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव 2 सेमी x 2 सेमी ग छाती गुहा तक गहरा, छाती के दायाँ ओर, निप्पल से लगा हुआ, किनारे मुड़े हुए, कटे हुए, कालापन, टैटू मौजूद।

4. आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, 2 सेमी x 1 सेमी, छाती के दाहिने हिस्से में, छाती गुहा गहरी, चोट संख्या 4 से 4 सेमी नीचे, मार्जिन उलटे, कालापन और टैटू मौजूद है।

आंतरिक जांच में, ललाटे और पार्श्विका की हड्डियाँ टूटी हुई थीं, दूसरी से पाँचवीं दाहिनी ओर की पसलियाँ टूटी हुई थीं। दोनों फेफड़े, झिल्ली और हृदय क्षतिग्रस्त थे। छाती गुहा में 75 मिली लीटर थक्कायुक्त रक्त पाया गया। पेट में 50 मिली लीटर तरल पदार्थ मौजूद था। मृत्यु का कारण शॉक और रक्तस्राव था और अवधि लगभग आधे दिन थी।

23. डॉ. वाई.पी. सिंघल (पी.डब्लू.-8) ने उपरोक्त पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्शक-45 से क-48 के रूप में साबित किया है।

#### अभियोजन पक्ष के साक्ष्य

24. अमर पाल सिंह पी.डब्लू.-1 ने अपनी मुख्य परीक्षा में कथन किया है कि 28/29.07.2008 की रात को वह शौच के लिए गया था और प्यारे सिंह के खेत में बैठ गया

जो सुखवीर सिंह (डी-1) के घर से सटा हुआ है। उसने अंधाधुंध गोलीबारी की आवाज सुनी और टॉर्च की रोशनी देखी। यह 2-2.15 बजे प्रातः का समय था। कुछ समय बाद गोलीबारी बंद हो गई, उसके बाद उसने रणवीर सिंह और ए को सुखवीर सिंह के घर से बाहर आते देखा, उन दोनों के पास तमंचा और टॉर्च थे। रणवीर सिंह के दाहिने कंधे पर एक बांस की सीढ़ी थी और वे दोनों गाँव के बाहर जाने वाले रास्ते पर चले गए। साक्षी ने आगे कहा है कि उसने रणवीर को ए से यह कहते हुए भी सुना है कि सुखवीर को ट्यूबवेल पर मार दिया गया है और बाकी लोगों को घर पर मार दिया गया है और कोई भी जीवित नहीं है। रणवीर का घर गांव से बाहर जाने वाले मार्ग पर है तथा वे दोनों घर में घुस गए। इसके बाद साक्षी अपने घर आया और अपने गांव वालों के साथ सुखवीर सिंह (डी-1) के घर गया। अंदर जाकर देखा तो सुखवीर के सभी परिजन मृत पड़े थे। वह डर गया और उसने घटना के बारे में किसी को नहीं बताया। अगले दिन अर्थात् दिनांक 30.07.2008 को रणवीर सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। तीसरे दिन वह सीधे थाने गया और थानाध्यक्ष को पूरी घटना बताई।

25. प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) ने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि वे पांच भाई हैं, वह सबसे बड़ा है, उसके बाद जगवीर, फिर रणवीर, फिर सुखवीर और फिर मनवीर हैं। पांचों भाई गांव के पश्चिम की ओर एक दूसरे के बगल में रहते हैं। उसका घर रणवीर सिंह के पूर्व में है। मनवीर का घर दक्षिण-पूर्व में और सुखवीर का घर पूर्व में है। पिंकी के भाग जाने के कारण रणवीर और सुखवीर के बीच

गहरी दुश्मनी थी। साक्षी ने आगे कहा कि घटना 28/29.07.2008 की रात 2-2.30 बजे की है, वह अपनी झोपड़ी के पश्चिम में सो रहा था। गोलियों की आवाज और चीख सुनकर वह जाग गया। उसके घर के पूर्व की ओर 10-12 मिनट तक गोलीबारी जारी रही। गोलियों की आवाज शांत होने के बाद उसने देखा कि ए सुखवीर के घर के दरवाजे पर खड़ा था और रणवीर सीढ़ी लाने के लिए पूर्व की ओर गया था। रणवीर एक मिनट के भीतर सीढ़ी लेकर वापस आ गया। उसने टार्च की रोशनी में रणवीर और ए को पहचाना। वे दोनों टार्च जला रहे थे, दोनों के हाथ में तमंचा था और वे पश्चिम दिशा की ओर चले गए। उसने उन दोनों को पाँच कदम की दूरी से देखा। वे कह रहे थे कि उन्होंने काम पूरा कर दिया है। साक्षी ने आगे कहा कि दिनांक 14.08.2008 को वह बुलंदशहर आया और एस.एस.पी. को संबोधित एक शपथ पत्र तैयार कराया। उसने और उसके भाई जगवीर ने घटना से संबंधित शपथ पत्र के साथ एस.एस.पी. को प्रार्थना पत्र भी दिया है। साक्षी ने शपथ पत्र और प्रार्थना पत्र पर अपने हस्ताक्षरों की पहचान की है, जिन्हें प्रदर्श क-1 से क-2 के रूप में अंकित किया गया है। साक्षी ने आगे कहा है कि दिनांक 25.07.2011 को वह दं.प्र.सं. की धारा 164 के अंतर्गत अपना बयान दर्ज कराने बुलंदशहर आया था। साक्षी ने दं.प्र.सं. की धारा 164 के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान पर अपने हस्ताक्षरों को साबित और पहचाना है, जिसे प्रदर्श क-3 के रूप में अंकित किया गया है। मुख्य परीक्षा दिनांक 26.09.2011 को दर्ज की गई थी।

26. दिनांक 05.12.2011 को उसकी प्रतिपरीक्षा दर्ज की गई जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया तथा कहा कि घटना के समय वह नरेश के साथ अपने खेत में सिंचाई कर रहा था। जब गोलियों की आवाज बंद हो गई तो वह तथा नरेश मौके पर आए। वहां पूर्णतः अंधरा था तथा पुलिस मौजूद थी, उसने किसी भी अभियुक्त को नहीं देखा था तथा उसने पुलिस को बताया कि उसने घटना नहीं देखी। उसने यह भी कहा कि उसका पिछला बयान पुलिस तथा सरकारी अधिवक्ता के दबाव में था। उसका बयान अंतर्गत धारा 164 दं.प्र.सं. भी पुलिस के दबाव में था। अभियोजन पक्ष के प्रार्थना पत्र साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा में साक्षी ने कहा कि घटना के दो माह बाद उसने पूरी संपत्ति बेचकर बरारी गांव छोड़ दिया था तथा उसका घर खंडहर में तब्दील हो गया था। साक्षी को धारा 161 व 164 दं.प्र.सं. के बयानों से रूबरू कराया गया। साक्षी ने कहा है कि उसने ये बयान नहीं दिए हैं, उसने तो सिर्फ पुलिस के डर से धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज बयान पर अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। एस.एस.पी. को दिए गए शपथ पत्र के बारे में भी यही तथ्य बताया गया है। हालांकि साक्षी ने माना है कि सुखवीर सिंह (डी-1) की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति उसकी मां को विरासत में मिली है। उसके बेटे मदनपाल ने अपनी मां से छह बीघा जमीन का विक्रय विलेख करा लिया है।

27. जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने कहा है कि वे पांच भाई हैं। प्यारे सिंह, जगवीर सिंह,

रणवीर सिंह, सुखवीर सिंह और मनवीर उर्फ संजीव कुमार। पांचों भाइयों के घर एक ही स्थान पर हैं। उसका घर उत्तर पश्चिम कोने पर है और रणवीर का घर उसके सामने है। दक्षिण में प्यारे सिंह का घर रणवीर के घर से सटा हुआ है और दक्षिण पूर्व में मनवीर और सुखवीर के घर हैं। उसके मकान और रणवीर के मकान के बीच पूरब-पश्चिम 20 फीट चौड़ा खड़जा है। पहले सभी भाइयों के बीच संबंध मधुर थे। परन्तु कुछ समय से मेढ़ के विवाद और रणवीर की बेटी पिकी के भाग जाने के कारण रणवीर और सुखवीर के बीच संबंध खराब हो गए थे।

28. साक्षी ने आगे कहा है कि घटना दिनांक 28/29.07.2008 की रात्रि लगभग 2.00 बजे घटित हुई। वह अपने घर में सो रहा था। गोलियों की आवाज सुनकर वह जाग गया। उसके संज्ञान में आया कि सुखवीर सिंह (डी-1) के घर में गोलीबारी हो रही है। 20 मिनट तक गोलीबारी होती रही और वह बाहर नहीं आ सका। वह अपने घर में ही रहा क्योंकि उसके पास कोई हथियार नहीं था। साक्षी ने आगे कहा है कि उसने दो व्यक्तियों (रणवीर और ए) को सुखवीर के घर के सामने देखा था। उस समय उसे केवल संदेह हुआ था। उनके हाथ में टार्च थी और उन्होंने उसे जला रखा था। उसे तब यकीन हुआ जब दोनों आरोपियों ने खुद पुलिस स्टेशन में स्वीकार किया कि उन्होंने हत्याएं की हैं। घटना के समय उसे केवल संदेह हुआ था और वह अभियुक्तगण को पहचान नहीं सका था। वे दोनों उसके घर की ओर आए। रणवीर ने सुखवीर सिंह (डी-1) के घर के कोने से सीढ़ी हटा दी। टार्च और सीढ़ियों के अलावा उनके

हाथ में तमंचे भी थे। जब वे दोनों उसके घर के पास आये तो वह वापस गया और उस समय उसने उन दोनों को पहचान लिया। उसने दोनों को यह कहते हुए स्पष्ट रूप से सुना कि सुखवीर सिंह (डी-1) के पूरे परिवार को खत्म कर दिया गया है। इसके बाद वे अपने घर चले गए। साक्षी ने आगे कहा है कि घटना के समय उसका भाई प्यारे ट्यूबवेल से अपने खेत की सिंचाई कर रहा था।

29. साक्षी ने आगे कहा है कि दिनांक 14.08.2008 को वह एस.एस.पी. कार्यालय बुलंदशहर आया और शपथ पत्र और प्रार्थना पत्र तैयार करवाया। साक्षी ने प्रार्थना पत्र और शपथ पत्र पर अपने हस्ताक्षर (प्रदर्श क-4) की पहचान की है। दिनांक 25.08.2008 को वह न्यायालय में आया जहां मजिस्ट्रेट के सामने उसका बयान दर्ज किया गया, जो सत्य और सही है। साक्षी ने उस पर अपने हस्ताक्षर (प्रदर्श क-5) की पहचान की है।

30. दिनांक 28.01.2013 को हुई प्रतिपरीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसे कम सुनाई देता है, उसकी दृष्टि भी कमजोर है और वह चश्मा भी लगाता है। इस मामले के साक्षी अमर पाल का घर सुखवीर सिंह (डी-1) के घर से 800 मीटर की दूरी पर पूर्व में है और उसके घर के पास कई खाली जगहें हैं। उसका कोई भी भाई दवाई नहीं रखता है। साक्षी ने स्थलाकृति और विभिन्न आयामों के बारे में भी बताया है। उसने यह भी कहा है कि सुखवीर सिंह (डी-1) के घर की दूसरी मंजिल तक पहुँचने के लिए कोई सीढ़ियाँ नहीं हैं और इस उद्देश्य के लिए सीढ़ी का उपयोग किया जाता है। साक्षी ने आगे



कहा है कि उसे पता है कि अमर पाल धारा 302 और 307 भा.दं.सं. और लूट के 4-5 मामलों में साक्षी है। अमर पाल ने मनोहर गढ़ी के यशवीर प्रधान और रणवीर के मामले में धारा 302 और 307 भा.दं.सं. के अंतर्गत गवाही दी है। अमर पाल ने उसके पुत्र सुभाष, मनोज तथा अपनी बहन के पुत्र शरद के विरुद्ध भी धारा 307 भा.दं.सं. अपराध संख्या 136/2015 के अन्तर्गत दिनांक 05.05.2012 को झूठी रिपोर्ट दर्ज करा रखी है। पुलिस ने इसमें अन्तिम रिपोर्ट लगा दी है। अमर पाल के ताऊ नानकचन्द पुत्र शीशपाल जो मर चुका है, ने भी 2.5 बीघा जमीन देवेन्दी पत्नी रणवीर को बेची थी। उस समय नानकचन्द का एक पुत्र किरणपाल नाबालिग था। किरणपाल के वयस्क होने पर अमर पाल ने दोनों जमीनों के लिए दीवानी वाद दाखिल कर दिया जो अभी विचाराधीन है। साक्षी ने दिनांक 28/29.07.2008 की रात्रि में अथवा दिनांक 29.07.2008 को अमर पाल के गांव में मौजूद होने से इन्कार किया है।

31. दिनांक 04.06.2013 को साक्षी पुनः प्रतिपरीक्षा हेतु न्यायालय में उपस्थित हुआ तथा उसने कथन किया है कि सुखवीर सिंह (डी-1) का घर जहां हत्याएं की गयी थीं, उसके घर से दिखाई नहीं देता है। सुखवीर के परिजनों की हत्या की जानकारी उसे घटना के 20-30 मिनट बाद मिली। साक्षी ने यह भी कहा कि वह किसी भी पंचायतनामा या मेमो का साक्षी नहीं है। पहली बार उसे घटना में रणवीर और उसके बेटे के शामिल होने की जानकारी अगले दिन थाने में मिली। साक्षी ने कहा कि अगर उसके बयान में कुछ और लिखा

गया है तो वह गलत है। साक्षी ने यह भी कहा कि उसने पुलिस के कहने पर धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत बयान दिया है, परन्तु साक्षी ने यह भी माना है कि शपथपत्र तैयार करते समय उसने बताया था कि बदमाशों द्वारा जान से मारने की धमकी दी जा रही थी और वह इतना डरा हुआ था कि उसने किसी को कुछ नहीं बताया। साक्षी ने इस बात से भी इन्कार किया है कि घटना के समय वह गांव में मौजूद नहीं था।

32. दिनांक 04.06.2013 को आगे की प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी ने बताया कि पुलिस घटना के एक घण्टे बाद मौके पर आई थी। संजीव उर्फ मनवीर ने लगभग 10.00 बजे सुबह बोलने पर रिपोर्ट लिखवाई थी, तत्पश्चात साक्षी ने बताया कि उसे समय की जानकारी नहीं थी तथा रिपोर्ट सुबह दर्ज करवाई गई थी। साक्षी ने यह भी बताया कि सुखवीर सिंह (डी-1) के मकान में सीढ़ियां नहीं हैं तथा बिना सीढ़ी के दूसरी मंजिल व तीसरी मंजिल पर नहीं जाया जा सकता। साक्षी ने बताया कि उसे नहीं मालूम कि पुलिस ने तमंचे, कारतूस व बलकटी को घटना के दिन मौके से उठाया था या नहीं, परन्तु उसने यह वस्तुएं दिनांक 29.07.2008 की शाम को थाने में देखी थी। साक्षी ने यह भी बताया कि उसके भाई रणवीर ने रात्रि में डायल 100 नम्बर पर पुलिस को घटना की सूचना दी थी।

33. साक्षी ने यह भी बताया कि गोली चलने की आवाज सुनकर उसने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया था। 20-25 मिनट तक फायरिंग होती रही। चारों तरफ अंधेरा था। 20

मिनट बाद जब फायरिंग बंद हुई तो वह अपने घर से बाहर आया तो वहां भीड़ जमा थी और वह सुखवीर के घर में घुस गए। सुरेमवाला और लता की लाश सीढ़ियों पर पड़ी थी। अभिषेक की लाश पहली मंजिल पर दो कमरों के उत्तर दिशा में पड़ी थी। साक्षी ने कहा है कि वह शपथपत्र देने आया था। शपथपत्र उसने टाइप करवाया था और पुलिस, रिश्तेदारों और अधिवक्ताओं से सलाह करके तैयार करवाया था। साक्षी ने यह भी कहा है कि उसे जानकारी थी कि पीतम सिंह ने हरचरण, अमित, रिकू, टिकू पुत्र सुखवीर सिंह और सुखवीर सिंह के विरुद्ध थाना औरंगाबाद में धारा 323, 504, 324, 325, 307, 452 भा.दं.सं. के अंतर्गत रिपोर्ट दर्ज कराई थी। सुखवीर की मौत के बाद उसकी संपत्ति उसकी मां राम कली के नाम हो गई। राम कली की मौत दिनांक 26.11.2009 को मदन पाल के घर पर हुई। मदन पाल की पत्नी कुसुमलता ने दिनांक 21.11.2009 को रामकली से छह बीघा जमीन का गुप्त रूप से बैनामा करा लिया था। उन्होंने कुसुमलता के विरुद्ध सिविल जज बुलंदशहर की न्यायालय में मूल वाद संख्या 15/2011 दायर किया है। रणवीर और सुखवीर के बीच कोई मुकदमा नहीं था। रणवीर द्वारा पिकी को भगाने की कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी, केवल गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। साक्षी ने यह भी कहा है कि पुलिस ने घटना के बारे में पूछताछ की है, परन्तु उसने कोई बयान नहीं दिया है।

34. दिनांक 07.12.2015 को साक्षी से पुनः पूछताछ की गयी। पिछले बयानों के सम्बन्ध में पूछे जाने पर साक्षी ने बताया कि उसने बयान दिया था कि उसके घर में दो टीन के

गेट लगे हुए थे। साक्षी ने यह भी माना कि घटना के समय ये गेट नहीं लगे थे। साक्षी ने यह भी कहा कि अमर पाल से उसकी दुश्मनी है। साक्षी ने यह भी माना कि उसने बयान दिया है कि उसने सुखवीर के घर के सामने रणवीर और ए नामक दो व्यक्तियों को देखा था। उस समय केवल संदेह था, वे टॉर्च पकड़े हुए थे और उन्होंने टॉर्च जला दी थी। अगले दिन संदेह की पुष्टि हो गयी जब दोनों ने हत्या करना स्वीकार किया। साक्षी ने यह भी माना कि उसने एस.एस.पी. को शपथ पत्र दिया है और मजिस्ट्रेट के समक्ष उसका बयान धारा 164 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत दर्ज किया गया है। उसने यह बयान पुलिस और रिश्तेदारों के सिखाने पर स्वेच्छा से दिया है।

35. सुबराती (पी.डब्लू.-12) भी एक अन्य सरकारी साक्षी है। साक्षी ने अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि नहीं की है। उन्होंने कहा है कि सात वर्ष पूर्व सुखवीर सिंह व उसके परिवार के छह सदस्यों की रात्रि में हत्या कर दी गई थी। सुखवीर सिंह, प्यारे सिंह, जगवीर सिंह, रणवीर सिंह व मनवीर सिंह सगे भाई हैं। इनके घर गांव के पश्चिम दिशा में एक ही स्थान पर हैं। सुखवीर सिंह का ट्यूबवेल उनके घर के पश्चिम दिशा में उनके कृषि क्षेत्र में है। साक्षी ने इस बात से अनभिज्ञता जताई है कि रणवीर की पुत्री किसी के साथ भाग गई है। साक्षी ने यह भी कहा है कि अभियुक्त संजीव उर्फ मनवीर व रणवीर से उसका कोई मिलना-जुलना नहीं है। उसने अभियोजन पक्ष के इस आरोप से इन्कार किया है कि उसकी मौजूदगी में रणवीर, उसकी पत्नी देवेंद्री, संजीव उर्फ मनवीर व सुभाष पुत्र जगवीर द्वारा सुखवीर व उसके

परिवार को खत्म करने की साजिश रची जा रही थी। उसने इस बात से भी इन्कार किया है कि उसने रणवीर के साथ किसी प्रकार का धन लेन-देन किया है। उसने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज कराए गए अपने बयान से भी इन्कार किया है। साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

36. उप-निरीक्षक जगरोशन सिंह (पी.डब्लू.-10) अभियुक्त रणवीर के खुलासे के आधार पर उसकी निशानदेही पर की गई कथित बरामदगी के साक्षी हैं। साक्षी ने बताया कि दिनांक 30.07.2008 को वह थानाध्यक्ष बलवीर सिंह के साथ थे, जब पुलिस दल अभियुक्त रणवीर की तलाश में बरारी गांव पहुंची तो वह अपने घर के सामने आता दिखाई दिया और उसे दोपहर 1.30 बजे गिरफ्तार कर लिया गया। पूछताछ करने पर उसने अपना अपराध कबूल कर लिया और आगे बताया कि वह अपराध में प्रयुक्त तमंचा, बलकटी और सीढ़ी बरामद करा सकता है। रणवीर के साथ पुलिस पार्टी रणवीर के धान के खेत में आई। अभियुक्त द्वारा खेत में लगे पेड़ के नीचे बीड़ में छिपाकर रखे गए 315 बोर के दो तमंचे और 4 जिंदा कारतूस बरामद किए गए। अभियुक्त रणवीर ने अपने घर से खून से सनी एक बलकटी और एक बांस की सीढ़ी भी बरामद कराई। तमंचे, जिंदा कारतूस और बलकटी को सील कर दिया गया और एक मेमो प्रदर्श क-58 तैयार किया गया।

37. शेष साक्षी औपचारिक प्रकृति के हैं। उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह पी.डब्लू.-4 ने ममता (डी-4), चीकू (डी-7) और सूर्य प्रताप (डी-2) के शव पर पंचायतनामा कार्यवाही की है तथा अन्य

संबंधित कागजात भी तैयार किए हैं। साक्षी ने पंचायतनामा और पोस्टमार्टम से अन्य संबंधित कागजात को प्रदर्श क-7 से क-27 के रूप में साबित किया है। साक्षी ने चारपाई के खून से सने और सादे बान, खून से सने और सादे बिस्तर की चादर के टुकड़े, तकिए और खून से सनी और सादी मिट्टी, मौके पर मिले 315 बोर के छह खाली कारतूस भी एकत्र किए हैं और इसका मेमो प्रदर्श क-24 तैयार किया है।

38. उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह (पी.डब्लू.-4) आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत अपराध संख्या 200/2008 के विवेचनाधिकारी भी हैं, उन्होंने विवेचना के दौरान उठाए गए विभिन्न कदमों के बारे में बताया है और नक्शा नजरी, आरोप पत्र और अभियोजन स्वीकृति को प्रदर्श क-66 और क-68 के रूप में साबित किया है। उन्होंने चिक रिपोर्ट, मूल जी.डी. को नष्ट करने के संबंध में रिकॉर्ड कीपर की रिपोर्ट और कांस्टेबल मंगल सेन के हस्तलेख में जी.डी. की एक प्रति को प्रदर्श क-68 से क-70 के रूप में भी साबित किया है।

39. उप-निरीक्षक राजेंद्र प्रसाद शर्मा (पी.डब्लू.-5) ने श्रीमती लता (डी-5) और श्रीमती सुरेम वाला (डी-6) के शव की पंचायतनामा कार्यवाही की है। साक्षी ने पोस्टमार्टम के लिए जांच रिपोर्ट और अन्य संबंधित कागजात को प्रदर्श क-25 से क-34 के रूप में साबित किया है। उन्होंने घटनास्थल से खून से सना फर्श का टुकड़ा और 315 बोर के तीन खाली कारतूस और दो गोलियां भी एकत्र की हैं और इसका मेमो प्रदर्श क-35 तैयार किया है। साक्षी ने

प्रदर्श क-8 से क-20 तक की सामग्री भी साबित कर दी है।

40. उप-निरीक्षक राजीव कुमार यादव (पी.डब्लू.-7) ने अभिषेक (डी-3) के शव की पंचायतनामा कार्यवाही है और पोस्टमार्टम के लिए जांच रिपोर्ट और अन्य संबंधित कागजात को प्रदर्श क-40 से क-44 के रूप में साबित किया है।

41. आरक्षी निरंजन प्रसाद शर्मा (पी.डब्लू.-11) ने मामले की चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट और जी.डी. प्रविष्टि तैयार की है और दस्तावेजों को प्रदर्श क-61 से क-65 के रूप में साबित किया है।

42. उप-निरीक्षक बलवीर सिंह (पी.डब्लू.-9) विवेचनाधिकारी हैं। इस साक्षी ने बताया कि दिनांक 28.07.2008 को वह थानाध्यक्ष थाना औरंगाबाद के पद पर तैनात थे। दिनांक 28/29.07.2008 की रात्रि को करीब 2.30 बजे सिटी कंट्रोल रूम से संदेश मिला कि कुछ बदमाशों ने गांव बरारी में सुखवीर सिंह के घर को घेर लिया है तथा फायरिंग हो रही है। कुछ लोगों की हत्या कर दी गई है। यह संदेश कांस्टेबल केशव देव ने उन्हें दिया। वह उप-निरीक्षक जगरोशन, उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह, उप-निरीक्षक राजीव कुमार, उप-निरीक्षक सुरेश चन्द्र, कांस्टेबल कुलदीप तथा कांस्टेबल कपिल कुमार के साथ गांव बरारी में आया। सुखवीर के घर पर लोग मौजूद थे। वहां का दृश्य भयावह था। सुखवीर के घर के अन्दर दो महिलाओं के शव दूसरी मंजिल की सीढ़ियों पर पड़े थे, एक शव भूतल पर पड़ा था, एक

महिला तथा एक बच्चे का शव चारपाई पर पड़ा था। उनकी गोली मारकर हत्या की गई थी। इसके बाद वह सुखवीर के ट्यूबवेल पर पहुंचे, जहां पर सुखवीर का शव ट्यूबवेल के पास धान के खेत में जमीन पर पड़ा था। हत्या किसी धारदार हथियार से की गई थी। घटना की सूचना उच्चाधिकारियों को दी गई। अभियुक्तगण की तलाश के लिए कुछ पुलिस अधिकारी लगाए गए, परन्तु उस समय तक कोई अभियुक्त हाथ नहीं लगा। अभियुक्तगण की तलाश करने के बाद वह दोबारा मौके पर पहुंचे, जहां पर उप-निरीक्षक वीर सिंह, कांस्टेबल बेगराज सिंह और कांस्टेबल विजय सिंह पंचायतनामा रजिस्टर लेकर मौजूद थे। उन्होंने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट और केस डायरी की प्रति ली और शिकायतकर्ता संजीव कुमार के बयान दर्ज किए। इसी बीच उच्चाधिकारी अतिरिक्त फोर्स और फील्ड यूनिट की गाड़ियों के साथ मौके पर आ गए। मृतक के परिजन और डॉंग स्कवायड भी वहां आ गया। पुलिस के उच्चाधिकारियों ने सुखवीर के घर और ट्यूबवेल का निरीक्षण किया। उन्होंने ग्रामीणों से भी पूछताछ की, जिन्होंने दबी जुबान में बताया कि अगर रणवीर और उसके बेटे से पूछताछ की जाए तो घटना के बारे में सही तथ्य सामने आ सकते हैं, क्योंकि रणवीर और सुखवीर के परिवार में दुश्मनी है। वह शिकायतकर्ता संजीव कुमार के साथ घटनास्थल के दूसरे स्थान सुखवीर के ट्यूबवेल पर आये और उसका निरीक्षण किया तथा अपने अधीनस्थ को सुखवीर के शव की पंचायतनामा कार्यवाही करने का निर्देश दिया। वह शिकायतकर्ता संजीव कुमार के साथ सुखवीर के घर वापस आये तथा वहां घटनास्थल का

निरीक्षण किया तथा नक्शा नजरी तैयार किया। साक्षी ने दोनों नक्शा नजरी प्रदर्श क-49 तथा क-50 साबित किया है। साक्षी ने आगे कहा है कि उसने उप-निरीक्षक सुरेश चन्द्र, उप-निरीक्षक राजीव कुमार, उप-निरीक्षक राजेन्द्र प्रसाद शर्मा तथा उप-निरीक्षक सुरेन्द्र सिंह को भी शर्वा की पंचायतनामा कार्यवाही करने का निर्देश दिया था। घटनास्थल से खाली कारतूस, खून सनी व सादी मिट्टी भी ली गयी तथा उसके मेमो तैयार किये गये। साक्षी ने उप-निरीक्षक राजीव कुमार तथा उप-निरीक्षक सुरेश चन्द्र द्वारा तैयार किये गये मेमो को प्रदर्श क-51 तथा क-52 के रूप में साबित किया है। उन्होंने सुखवीर की जांच रिपोर्ट और संबंधित कागजात को उप-निरीक्षक सुरेश चंद्र की हस्तलिपि में प्रदर्श क-53 से क-57 के रूप में साबित किया है। साक्षी ने आगे कहा है कि दिनांक 30.07.2008 को उन्होंने जगवीर सिंह, प्यारे सिंह और सुभाष चंद्र के बयान दर्ज किए। उसी दिन कृष्णवीर नामक व्यक्ति ने घटना के बारे में एक लिखित रिपोर्ट दी, जिसकी प्रविष्टि जी.डी. सं0 14 में सुबह 8.45 बजे की गई और उन्होंने इस लिखित रिपोर्ट को अपनी विवेचना में शामिल किया। उन्होंने कृष्णवीर का बयान दर्ज किया।

43. साक्षी ने आगे बताया कि दिनांक 30.07.2008 को उसने अभियुक्त रणवीर को लगभग 1.30 बजे गिरफ्तार किया। उसने अपना बयान दर्ज कराया। अभियुक्त रणवीर ने अपना अपराध स्वीकार किया तथा बताया कि वह अपराध में प्रयुक्त तमंचा, बलकटी (धारदार हथियार) तथा बांस की सीढ़ी बरामद करा सकता है। उसके खुलासे पर वह रणवीर के

साथ उसके द्वारा बताये गये स्थान पर गया। उसने जनता के साक्षीगण बनाने का प्रयास किया, परन्तु कोई तैयार नहीं हुआ। अभियुक्त रणवीर अपने धान के खेत में आया तथा जामुन के पेड़ के नीचे बीड़ हटाकर 315 बोर के दो तमंचे तथा चार खाली कारतूस बरामद कराये। उसने अपने घर से एक बलकटी तथा एक बांस की सीढ़ी भी बरामद करायी। तमंचा, खाली कारतूस तथा बलकटी को अलग-अलग सील कर दिया गया तथा बरामदगी मेमो तैयार किया गया। साक्षी ने इसे प्रदर्श क-58 के रूप में साबित किया है। इसके पश्चात वह थाने आया तथा वाद अंतर्गत धारा 25 आयुध अधिनियम अभियुक्त रणवीर के विरुद्ध पंजीकृत कराया।

44. साक्षी ने आगे कहा कि दिनांक 31.07.2008 को उसने साक्षीगण सुभाष और सुबराती के बयान दर्ज किए जिन्होंने मनवीर और देवेंद्री को दोषी बनाया। उनके बयानों के आधार पर धारा 120बी भा.दं.सं. जोड़ी गई। दिनांक 01.08.2008 को मनवीर और देवेंद्री को गिरफ्तार किया गया, उन्होंने अपना अपराध भी कबूल कर लिया। उसी दिन, ए को भी गिरफ्तार कर लिया गया। उसका बयान दर्ज किया गया। उसने भी अपना अपराध कबूल कर लिया और कहा कि वह तमंचा और खून से सने कपड़े बरामद कर सकता है। स्वीकारोक्ति बयान के आधार पर, वह उसके द्वारा बताए गए स्थान, मनवीर के धान और गन्ने के खेत में आया। उसके और उसके पिता द्वारा पहने गए खून से सने कपड़े एक काले बैग में बरामद किए गए। बैग से दो तमंचे भी बरामद किए गए। यह बरामदगी सुबह 7.20

बजे की गई थी। तमंचा की प्रत्येक बैरल में एक खाली कारतूस पाया गया। तमंचा और खाली कारतूस को अलग से सील कर दिया गया और एक मेमो तैयार किया गया। उन्होंने बरामदगी स्थल का नक्शा नजरी भी तैयार किया और इसे प्रदर्श क-60 के रूप में साबित किया।

45. साक्षी ने आगे बताया कि दिनांक 10.07.2008 को उसने ए और रणवीर के नार्को टेस्ट के लिए न्यायालय में प्रार्थना पत्र दिया था। दिनांक 16.08.2008 को एस.एस.पी. के माध्यम से मृतक के भाई प्यारे सिंह और जगवीर सिंह के शपथपत्र, जो धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत बयान के समर्थन में थे, उसे प्राप्त हुए। उसने इसे केस डायरी का हिस्सा बनाया। उसने दिनांक 17.08.2008 को प्यारे सिंह और जगवीर सिंह के अग्रिम बयान दर्ज किए, जिसमें उन्होंने शपथपत्र में दिए गए अपने पहले के बयानों और कथनों की पुष्टि की। दिनांक 25.08.2008 को उसने साक्षी अमर पाल, प्यारे सिंह और जगवीर के बयान धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज करने के लिए न्यायालय के समक्ष आवेदन किया और उसके आवेदन पर बयान दर्ज किए गए। दिनांक 03.09.2008 को न्यायालय ने रणवीर एवं ए के नार्को टेस्ट की अनुमति प्रदान की। दिनांक 30.09.2008 को उन्होंने मामले की सामग्री फोरेंसिक जांच के लिए फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा भेजी। दिनांक 21.10.2008 को अभियुक्त रणवीर एवं ए को पॉलीग्राफी टेस्ट के लिए दिल्ली ले जाया गया, जहां केंद्रीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला में उनका नार्को टेस्ट कराया गया। दिनांक

22.10.2008 एवं 23.10.2008 को उन्होंने पंचायतनामा के औपचारिक साक्षीगण के बयान दर्ज किए। उन्होंने बरामदगी मेमो के बयान भी दर्ज किए। दिनांक 26.10.2008 को जांच पूर्ण कर आरोप पत्र प्रस्तुत किया। साक्षी ने इसे प्रदर्श क-61 के रूप में साबित किया है। साक्षी ने एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्रदर्श क-62 एवं क-63 को भी साबित किया है। साक्षी ने वस्तु प्रदर्श 21 से 57 को भी साबित किया है। साक्षी ने यह भी कहा कि जांच पूर्ण होने तक पॉलीग्राफी टेस्ट रिपोर्ट उसे प्राप्त नहीं हुई थी। हालांकि अभिलेखों से पता चलता है कि अभियुक्त ने नार्को टेस्ट कराने से इनकार कर दिया है।

#### अपीलकर्ता की ओर से तर्क

46. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता-अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षी प्यारे सिंह (पी.डब्ल्यू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। प्रतिपरीक्षा में प्यारे सिंह (पी.डब्ल्यू.-2) पक्षद्रोही हो गया। उसने कहा कि पुलिस अधिकारियों ने उसे धमकाया और मजबूर किया कि वह अपीलकर्ता-अभियुक्त के विरुद्ध बयान दे, जिसने जांच के दौरान पुलिस अधिकारी के साथ हाथापाई की थी। पुलिस अधिकारियों ने उसे भी धमकी दी कि यदि उसने आरोपी-अपीलकर्ता के विरुद्ध बयान देने से इनकार किया तो वे उसे भी फंसा देंगे। यह भी तर्क दिया गया कि सह-अभियुक्त मनवीर ने भी अपने बयान अंतर्गत धारा 313 दं.प्र.सं. में झूठे फंसाने के संबंध में ऐसा ही बयान दिया है। अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षी जगवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) को हालांकि पक्षद्रोही घोषित नहीं

किया गया है, परन्तु अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। उसने कहा है कि वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। उसके घर से घटनास्थल सीधी रेखा में देखने योग्य नहीं था और उसकी दृष्टि भी बहुत कमजोर थी। उसने यह भी कहा है कि उसने पुलिस द्वारा बताए जाने के बाद अपीलकर्ता के विरुद्ध बयान दिया था। उसने यह भी कहा है कि पुलिस ने पहले ही दिन जब रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए अपीलकर्ता को चुना था, तो उसे दूसरों से अलग कर दिया था। साक्षी ने यह भी कहा है कि पुलिस ने तमंचे, कारतूस और बलकटी (तेज धार वाला हथियार) घटनास्थल से कब्जे में लिया था। उसने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता ने ही पुलिस को फोन किया था, जिसके बाद पुलिस मौके पर पहुंची थी। अभियोजन पक्ष के मामले को तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी प्यारें सिंह (पी.डब्ल्यू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) के बयानों से समर्थन नहीं मिलता। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि एक पक्षद्रोही साक्षी के साक्ष्य को अभिलेख से मिटाया हुआ नहीं माना जा सकता। अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष, पक्षद्रोही साक्षी के साक्ष्य का उपयोग कर सकते हैं, जब तक कि यह उनके पक्ष में हो। विद्वान अधिवक्ता ने सतपाल बनाम दिल्ली प्रशासन (1976) 1 एस.सी.सी. 727 की विधि व्यवस्था का अवलम्ब लिया।

47. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि परीक्षा और प्रतिपरीक्षा प्रासंगिक तथ्यों से संबंधित होनी चाहिए, परन्तु प्रतिपरीक्षा को उन तथ्यों तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए, जिन्हें साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में उचित

ठहराया है, इसलिए इन दो साक्षीगण के प्रतिपरीक्षा के बयान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इस बिंदु पर विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित दो विधि व्यवस्थाओं पर अवलम्ब लिया:-

I. संजय बनाम महाराष्ट्र राज्य आपराधिक रिट याचिका संख्या 1764/2019 दिनांकित 13.01.2020।

II. इंदर सैन बनाम सी.बी.आई., 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 4604।

48. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी अमर पाल सिंह (पी.डब्ल्यू.-1) पुलिस का एक मौकापरस्त साक्षी होने के साथ-साथ एक नजदीकी साक्षी भी है। उसका घर घटनास्थल से काफी दूर है। उसने बताया है कि वह पेचिश से पीड़ित होने के कारण शौच के लिए घटनास्थल के पास आया था। उसका मौखिक बयान विरोधाभासों और विसंगतियों से भरा है। उसने बताया कि वह मृतक के एक भाई से अपनी बीमारी के लिए दवा लेना चाहता था। इस तथ्य का पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 ने खंडन किया है क्योंकि उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वे दवाइयों का कारोबार करते हैं या इलाज करते हैं। उसने स्वीकार किया है कि पुलिस ने घटना के तीन दिन बाद उसका बयान दर्ज किया था। घटना स्थल पर उसकी मौजूदगी का जगवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) और सुबराती (पी.डब्ल्यू.-12) ने भी खंडन किया है क्योंकि उन्होंने कहा है कि वह घटना की तिथि को दूसरे गांव में था। मौके पर उसकी उपस्थिति का स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है। उसके बयान से यह संकेत

मिलता है कि पुलिस के नजदीकी साक्षी के रूप में उसका इतिहास रहा है और वह बेरोजगार है। इसलिए उसकी साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अनुचित रूप से उसकी साक्ष्य के साथ-साथ प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) जगवीर (पी.डब्लू.-3) की साक्ष्य पर अवलम्ब लिया है। एक संयोग साक्षी होने के नाते, उसका मौखिक बयान अविश्वसनीय है। विद्वान अधिवक्ता ने अपनी तर्कों के समर्थन में निम्नलिखित विधि व्यवस्थाओं का हवाला दिया:-

I. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एस.सी.सी. 719,

II. अमर सिंह बनाम राज्य (दिल्ली एन.सी.टी.), 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 826।

49. इसके पश्चात यह तर्क दिया गया कि अभियोजन पक्ष विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और उद्देश्य लाने में विफल रहा है और इस तरह मामले को एक युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या 3067/2013 उमा राम उर्फ ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के निर्णय दिनांकित 10.07.2018 पर अवलम्ब लिया।

50. यह भी तर्क दिया गया है कि सुबराती (पी.डब्लू.-12) अर्थात् अन्य सरकारी साक्षी ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। उसने कहा कि पुलिस ने एक झूठा बयान दर्ज किया है, जिसमें उसे अपीलकर्ता और अन्य सह-अभियुक्तों के बीच किसी षडयंत्र

का साक्षी बताया गया है। उसने बरामदगी पर भी आक्षेप किया है और कहा है कि जब वह मृतक के घर गया, तो उसे घर की पहली मंजिल पर एक सीढ़ी और एक तमंचा और सुखवीर के शव के बगल में एक बलकटी मिली। इस साक्षी ने अभियुक्त के इस कथन का भी समर्थन किया है कि अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया है क्योंकि वह घटना के बाद पुलिस के साथ हाथापाई और क्षेत्राधिकारी विपुल द्विवेदी के कपड़े फाड़ने में शामिल था। इस साक्षी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के मूल संस्करण का समर्थन किया है, जिसके अनुसार पूरे परिवार को अज्ञात हमलावरों ने मार डाला था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि घटना रात के अंधेरे में हुई थी और किसी ने घटना को नहीं देखा था। यहां तक कि तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी अमर पाल (पी.डब्लू. 1), प्यारे सिंह (पी.डब्लू. 2) और जगवीर (पी.डब्लू. 3) ने भी यह नहीं कहा कि उन्होंने मृतक पर किसी को गोली चलाते देखा था। उनकी साक्ष्य घटना के बाद की घटना को देखने तक सीमित है।

51. यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त रणवीर के पास दो तमंचे और चार जिंदा कारतूस, एक बलकटी और एक बांस की सीढ़ी की कथित बरामदगी झूठी और फर्जी है जो स्वयं अभियोजन पक्ष के साक्षीगण के बयान से ही स्थापित हो जाती है। उन्होंने कहा है कि ये सामान घटना स्थल पर पहले से ही पड़े थे। इस बरामदगी का कोई स्वतंत्र जनता का साक्षी नहीं है। तमंचा और जिंदा कारतूस की बरामदगी खुले स्थान से हुई है। इसलिए यह साक्ष्य भी पूर्ण रूप से अविश्वसनीय है।



तर्कों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित विधि व्यवस्थाओं पर अवलम्ब लिया:-

- I. ईश्वर टुडू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2019 क्रि. एल.जे. 3358
- II. बिजेन्द्र उर्फ मंदर बनाम हरियाणा राज्य, सी.आर.एल.ए. 2438/2010 दिनांकित 08.11.2021।

52. यह भी तर्क दिया गया है कि डॉंग स्क्वायड की रिपोर्ट को अभिलेखों पर नहीं रखा गया है, जो दर्शाता है कि कोई सुराग नहीं मिला। यदि अपीलकर्ता घटना में शामिल था, तो डॉंग स्क्वायड की रिपोर्ट में उसे आरोपित किया जाना चाहिए था, इसे अभिलेख पर न लाकर अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित विधि व्यवस्थाओं पर अवलम्ब लिया:-

- I. जैकम खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1256।
- II. गुलाब व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 2410/1985।

53. यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता के खून से सने कपड़ों की कथित बरामदगी भी अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि नहीं करती है क्योंकि कपड़ों पर खून नहीं पाया गया है। बलकटी और ईंटों पर लगे खून के धब्बों की जांच फिंगरप्रिंट के लिए नहीं की गई है। मृतकों के शरीर से बरामद गोलियों की भी जांच नहीं की गई है।

54. अंत में यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्त के अपराध को निर्धारित करने के उद्देश्य से परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मापदंडों को शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एस.सी.सी. 116, के मामले में निर्धारित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:-

“परिस्थितिजन्य साक्ष्य के पंचशील परीक्षण की पुष्टि की गई, जो पाँच मुख्य सिद्धांतों पर आधारित है:-

(1) निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी हो सकता है, इससे पहले कि न्यायालय दोषी ठहराए और “हो सकता है” और “होना चाहिए” के बीच मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करती है। (2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात् उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाया नहीं जा सकता है सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए। (4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर कर देना चाहिए, तथा (5) साक्ष्यों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न बचे और यह दर्शाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में, कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।”

**राज्य की ओर से कथन**

55. इसके विपरीत विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अमर पाल सिंह (पी.डब्लू.-1), प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) एक ही गांव के निवासी हैं। प्यारे सिंह और जगवीर सिंह के घर सुखवीर सिंह के घर के बगल में स्थित हैं, जहां सुखवीर सिंह के छह परिवार के सदस्यों की हत्या की घटना घटी थी। कई राउंड फायरिंग हुई है, जिससे पूरे गांव का ध्यान इस ओर गया है, जो कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज बयानों से स्पष्ट है। तीनों प्रत्यक्षदर्शियों ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के कथन की पूरी तरह पुष्टि की है और इससे अपीलकर्ता-अभियुक्त की घटना में संलिप्तता पूरी तरह से स्थापित होती है। प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) अपीलकर्ता-अभियुक्त के संगे भाई होने के कारण अपनी प्रतिपरीक्षा में उसे फांसी से बचाने के लिए अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया है। हालांकि उन्होंने धारा 161 दं.प्र.सं. और धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किए गए अपने बयानों की पुष्टि की है जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपीलकर्ता-अभियुक्त को दोषी बताया है। उन्होंने कहा है कि उन्होंने अपीलकर्ता-अभियुक्त को सुखवीर के घर से आते देखा था और गोलीबारी बंद होने के तुरंत बाद तमंचा और सीढ़ी पकड़े हुए और उसके घर जाते हुए देखा था। उनके मुख्य परीक्षा के बयानों को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में कुछ और कहा है। उनका मौके पर मौजूद होना स्वाभाविक है। अमरपाल सिंह (पी.डब्लू.-1) भी एक प्रत्यक्षदर्शी है। वह पॉकेट

साक्षी नहीं है जैसा कि बचाव पक्ष ने आरोप लगाया है। वह उन अन्य मामलों का साक्षी है जो उसके साथ संबंधित हैं। घटना इतनी भयानक थी कि किसी ने आगे आने की हिम्मत नहीं की और केवल जब आरोपियों को गिरफ्तार किया गया, तब साक्षी गवाही देने के लिए आगे आया, इस वजह से उसका बयान अंतर्गत धारा 161 दं.प्र.सं. तीन दिनों के बाद दर्ज किया गया है।

56. यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता द्वारा दिए गए खुलासे के आधार पर अपराध में इस्तेमाल किए गए दो तमंचे 315 बोर और चार जिंदा कारतूस तथा एक बलकटी बरामद की गई है। फॉरेंसिक लैब रिपोर्ट इस बात की पुष्टि करती है कि घटनास्थल पर मिले खाली कारतूस अपीलकर्ता-अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद तमंचे से दागे गए हैं। इसलिए यह साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है। विचारण न्यायालय ने सह-अभियुक्त मनवीर और देवेंद्री को पहले ही दोषमुक्त कर दिया है क्योंकि षडयंत्र का एकमात्र साक्षी सुबराती अपने बयान से पलट गया है जबकि अपीलकर्ता-अभियुक्त का मामला अलग है, वो वास्तव में अपराध में शामिल था और उसे प्रत्यक्षदर्शियों ने देखा है।

57. यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से घटना का हेतुक भी सिद्ध हो चुका है। सुखवीर सिंह (मृतक) और रणवीर सिंह (अपीलार्थी अभियुक्त) के परिवार के बीच संबंध खराब थे। यह तथ्य सभी जनता के साक्षीगण द्वारा लगातार कहा गया है। उनके बयानों में कोई गंभीर कमी या विरोधाभास नहीं

है। उन्होंने गुप्त उद्देश्यों के कारण प्रतिपरीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। इसलिए विचारण न्यायालय ने उनके प्रतिपरीक्षा के बयान को खारिज करके उनके मुख्य परीक्षण पर भरोसा करना सही माना है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर उपस्थित साक्ष्य का उचित मूल्यांकन किया है और प्रत्यक्षदर्शियों के बयानों पर भरोसा करना सही माना है। अपराध सुखवीर सिंह के पूरे परिवार को खत्म करने के इरादे से किया गया है। यह मकसद केवल अपीलकर्ता का ही माना जा सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दोषसिद्धि के निर्णय में कोई अवैधता या कमी नहीं है। दी गई सजा भी आनुपातिक है क्योंकि घटना भयावह है जिसमें दो साल के बच्चे सहित सात सदस्यों का पूरा परिवार खत्म हो गया है।

### विश्लेषण

58. अभियोजन पक्ष ने अपना वाद साबित करने के लिए कुल बारह साक्षीगण की परीक्षा की है, जिनमें से चार साक्षी जनता के साक्षी हैं। यह उल्लेख करना उचित है कि इस मामले की प्राथमिकी संजीव कुमार उर्फ मनवीर पुत्र शिव चरण सिंह, सुखवीर सिंह (डी-1) के सगे भाई की लिखित तहरीर पर पंजीकृत की गई थी। विवेचना के दौरान पाया गया कि शिकायतकर्ता संजीव कुमार उर्फ मनवीर सिंह भी हत्या करने के आपराधिक षड्यंत्र में शामिल था, इसलिए उसे भी दोषी बनाया गया और उसके विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। इसलिए दिनांक 29.07.2008 की प्रथम सूचना रिपोर्ट साबित नहीं हुई।

### क. आपराधिक षड्यंत्र का साक्ष्य

59. सुबराती (पी.डब्लू.-12) से अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों रणवीर सिंह, उसके बेटे ए, उसकी पत्नी देवेंद्री और सुखवीर सिंह (डी-1) के दूसरे भाई मनवीर सिंह उर्फ संजीव द्वारा रची गई आपराधिक साजिश को साबित करने के लिए परीक्षा की गई। अभियोजन पक्ष के अनुसार साक्षी सुबराती और सुभाष की मौजूदगी में अभियुक्त सुखवीर सिंह और उसके परिवार को खत्म करने की योजना के बारे में बात कर रहे थे। साक्षी सुबराती (पी.डब्लू.-12) ने इस संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और पक्षद्रोही हो गया। दूसरे साक्षी सुभाष से अभियोजन पक्ष ने परीक्षा नहीं की है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के इस हिस्से पर भरोसा नहीं किया और सह-अभियुक्त मनवीर उर्फ संजीव और देवेंद्री को आपराधिक षड्यंत्र के आरोपों से दोषमुक्त कर दिया।

### बी. चक्षुदर्शित साक्ष्य

60. प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उन्होंने कहा है कि उस दुर्भाग्यपूर्ण रात को लगभग 2.00 बजे, वे गोलीबारी की आवाज़ सुनकर जाग गए, परन्तु डर और सुरक्षा के कारण वे अपने घरों से बाहर नहीं आ सके। जब गोलीबारी बंद हो गई तो वे बाहर आए और फिर उन्होंने अपीलकर्ता-अभियुक्त रणवीर और उसके बेटे को सुखवीर (डी-1) के घर से बाहर आते देखा। उन्होंने टॉच की रोशनी में उनकी पहचान की। दोनों अभियुक्तों के हाथों में तमंचा थी। साक्षी जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3)

ने भी कहा कि दोनों उसके घर के पास आए थे, तब उसने उन्हें ठीक से पहचाना। दोनों साक्षीगण ने यह भी कहा है कि उन्होंने उन्हें यह कहते हुए सुना कि उन्होंने सुखवीर और उसके पूरे परिवार को खत्म कर दिया है। उन्होंने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत दर्ज अपने पिछले बयानों की भी पुष्टि की है। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से यह पूरी तरह स्थापित हो गया है कि प्यारे सिंह और जगवीर सिंह के घर, साथ ही अन्य भाइयों रणवीर (अभियुक्त) और मनवीर (सह-अभियुक्त) के घर, घटनास्थल यानी सुखवीर सिंह (डी-1) के घर के पास हैं।

61. प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) मृतक का सगा भाई है। उसका घर मृतक सुखवीर सिंह के घर के बगल में है। इसलिए वह स्वाभाविक साक्षी है। परन्तु प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) जब करीब ढाई महीने के अंतराल के बाद प्रतिपरीक्षा के लिए उपस्थित हुआ तो वह पक्षद्रोही हो गया। मुख्य परीक्षा में साक्षी ने कहा है कि घटना के समय वह अपने घर में सो रहा था, गोली चलने की आवाज सुनकर उसकी नींद खुल गई। उसने यह भी कहा है कि उसके घर के पूर्व दिशा में 10 से 12 मिनट तक गोलीबारी होती रही। जबकि प्रतिपरीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसने रात करीब 2.00 बजे गोली चलने की आवाज सुनी और उस समय वह नरेश के साथ अपने खेत की सिंचाई कर रहा था जो करीब 2-3 फर्लांग दूर है। जब गोलीबारी बंद हुई तो वह और नरेश घटनास्थल पर आए। वहां बिल्कुल अंधेरा था। पुलिस मौजूद थी और वहां काफी भीड़ भी जमा थी। उसने पुलिस को बताया कि उसने घटना नहीं देखी। प्रतिपरीक्षा

में यह कथन विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि पुलिस एक घंटे से अधिक समय के बाद घटनास्थल पर पहुंची थी। ऐसा संभव नहीं था कि गोलीबारी बंद होने और साक्षी के घटनास्थल पर आने के तुरंत बाद पुलिसकर्मी वहां मौजूद हो। इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी स्वीकार किया है कि वह सुखवीर के ट्यूबवेल पर नहीं गया था, क्योंकि वह दूसरे रास्ते से घटनास्थल पर आया था, जबकि उसने स्वीकार किया है कि सुखवीर (डी-1) का ट्यूबवेल रास्ते में था और जब वह खेत की सिंचाई करने गया तो वह ट्यूबवेल से होकर गुजरा। यह भी बहुत अस्वाभाविक आचरण है। यह पूर्णतः स्थापित है कि साक्षी की प्रतिपरीक्षा काफी अंतराल के बाद दर्ज की गई थी। अपीलकर्ता-अभियुक्त का सगा भाई होने के कारण, ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षी ने अभियुक्त को बचाने के लिए अपना बयान बदल दिया। प्रतिपरीक्षा में उसका बयान पूरी तरह से अविश्वसनीय है और खारिज करने योग्य है। उसके मुख्य परीक्षण से जो सही तथ्य सामने आए हैं, उन्हें प्रतिपरीक्षा में दिए गए असंगत बयानों से अलग किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस साक्षी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत दर्ज किए गए अपने पिछले बयानों की पुष्टि की है। अपनी प्रतिपरीक्षा में इस स्थिति से निपटने के लिए साक्षी ने कहा है कि उसके सभी पूर्व के बयान अर्थात् दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान और मुख्य परीक्षा, पुलिस/सरकारी अभियोजक के दबाव और धमकी के कारण थे। साक्षी ने दबाव या धमकी के संबंध में न्यायालय या किसी अन्य प्राधिकारी से कोई शिकायत नहीं

की है। आदेश पत्रक से यह भी पता चलता है कि साक्षी की मुख्य परीक्षा 26.09.2011 को दर्ज की गई थी, परन्तु अभियुक्त के स्थगन आवेदन पर प्रतिपरीक्षा स्थगित कर दी गई थी और न्यायालय ने प्रतिपरीक्षा के लिए 10.10.2011 की तिथि तय की थी। तय तारीख को बचाव पक्ष की ओर से फिर से स्थगन आवेदन पेश किया गया, जिसे स्वीकार कर लिया गया और प्रतिपरीक्षा स्थगित कर दी गई। तत्पश्चात प्रतिपरीक्षा हेतु दिनांक 24.10.2011, 31.10.2011, 14.11.2011 एवं 28.11.2011 की तिथियां नियत की गईं, जहां कार्यवाही अन्य कारणों से स्थगित कर दी गई। जब दिनांक 05.12.2011 को साक्षी प्रतिपरीक्षा के लिए उपस्थित हुआ तो वह पक्षद्रोही हो गया।

62. साक्षी की मुख्य परीक्षा समाप्त होने के पश्चात, यह उम्मीद की जाती है कि उसी दिन या उसके तुरंत बाद प्रतिपरीक्षा होगी। लगातार, छोटे-मोटे बहाने पर, लंबी अवधि के लिए प्रतिपरीक्षा को स्थगित करना नकारात्मक रूप से देखा गया है क्योंकि यह अभियुक्त को साक्षी को प्रभावित करने का अवसर प्रदान करता है, जैसा कि इस मामले में प्रतीत होता है। स्थगन के लिए लगातार आवेदन दाखिल करना और अंततः साक्षी की पक्षद्रोहिता प्राप्त करने में सफल होना, तब सफल नहीं होने दिया जाना चाहिए जब अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का संचयी भार यह दर्शाता है कि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने में साक्षी का मामला लगातार सुसंगत था, अन्यथा, और प्रतिपरीक्षा में साक्षी का बयान अन्यथा असंभव और अभिलेख पर मौजूद

साक्ष्य के भार के विपरीत प्रतीत होता है। इस प्रकार हम प्रतिपरीक्षा में उसके बयान को नज़रअंदाज़ करते हुए मुख्य परीक्षा में दिए गए पी.डब्ल्यू.-2 के बयान पर अवलम्ब लेने के लिए इच्छुक हैं।

63. यह सुस्थापित विधि है कि पक्षद्रोही साक्षी के साक्ष्य को सीधे खारिज नहीं किया जा सकता है। दोनों पक्षों को साक्ष्य के ऐसे हिस्से पर अवलम्ब लेने का अधिकार है जो उनके मामले में सहायक हो। एक पक्षद्रोही साक्षी का साक्ष्य स्वीकार्य रहता है और न्यायालय के लिए उसके भरोसेमंद हिस्से पर अवलम्ब लेने के लिए उपलब्ध है क्योंकि यह ठोस रूप से स्वीकार्य है और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा विधिवत पुष्टि की गई है। जांच के अधीन एक पक्षद्रोही साक्षी के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है या उसे रद्द किया जा सकता है, यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। उपर्युक्त विधिक स्थिति कई मामलों में निर्धारित की गई है। अपीलकर्ता द्वारा अवलम्ब लिए गए सतपाल बनाम दिल्ली प्रशासन (उपरोक्त) में विधि का यही सिद्धांत निर्धारित किया गया है।

64. जगवीर सिंह (पी.डब्ल्यू.-3) अपीलकर्ता-अभियुक्त रणवीर का सगा भाई भी है। वह भी स्वाभाविक साक्षी है क्योंकि उसका घर भी सुखवीर सिंह (डी-1) के घर के बगल में है। उसकी साक्ष्य से यह पूर्णतः स्थापित है कि घटना के समय वह अपने घर के अंदर सो रहा था। वह गोलीबारी की आवाज सुनकर जाग गया। उसने यह भी कहा है कि गोलीबारी 20

से 30 मिनट तक जारी रही। इसलिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जब उसके भाई के घर में गोलीबारी हो रही थी तो उसने यह जानने की कोशिश की होगी कि क्या हो रहा है। यह सच है कि अपने प्रतिपरीक्षा में साक्षी ने कहा है कि उसे सुखवीर के परिवार के सदस्यों की हत्याओं के बारे में 20 से 30 मिनट बाद पता चला और उसने किसी भी व्यक्ति को घटना के बारे में कोई तथ्य नहीं बताया है। उसे रणवीर और उसके बेटे की संलिप्तता के बारे में पहली बार अगले दिन थाना औरंगाबाद में पता चला। उसने यह भी कहा है कि उन्होंने मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस द्वारा सिखाने पर धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत बयान दिया था, परन्तु साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया है कि अपने शपथपत्र में उसने कहा है कि हमलावर बीच में आने वाले किसी भी व्यक्ति को जान से मारने की धमकी दे रहे थे। उन्होंने बचाव पक्ष के इस आरोप को गलत बताया है कि घटना की रात वह बरासी गांव में मौजूद नहीं थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वह अपने भाई प्यारे सिंह के साथ शपथपत्र देने बुलंदशहर आए थे। हालांकि अभियोजन पक्ष ने साक्षी को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया है, परन्तु उनकी प्रतिपरीक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अभियोजन पक्ष के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने के दावे का समर्थन नहीं किया है। अभियोजन पक्ष ने उसकी दोबारा परीक्षा की है, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसने बयान दिया है कि रणवीर और ए उसे सुखवीर के घर के सामने मिले थे। उनके हाथ में टार्च थीं, उस समय उन्हें उन पर शक हुआ और यह शक तब पुख्ता हुआ जब उन्होंने खुद थाने में स्वीकार

किया कि उन्होंने हत्याएं की हैं। आदेश पत्रक से यह भी स्पष्ट है कि साक्षी की मुख्य परीक्षा दिनांक 21.05.2012 को दर्ज की गई थी और उसकी प्रतिपरीक्षा एक वर्ष से अधिक समय के पश्चात दिनांक 05.06.2013 को समाप्त हुई थी। काफी अंतराल के बाद कई तारीखें तय की गईं और कई तारीखों पर अभियुक्त द्वारा दिए गए स्थगन पर प्रतिपरीक्षा टाल दी गई। साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है परन्तु प्रतिपरीक्षा की लंबी कार्यवाही के कारण साक्षी दृढ़तापूर्वक नहीं टिक पाया। जिस प्रकार से विचारण न्यायालय ने ऐसे जघन्य अपराध में साक्षीगण की प्रतिपरीक्षा दर्ज करने की कार्यवाही की है वह सराहनीय नहीं है। इतने महत्वपूर्ण साक्षी की प्रतिपरीक्षा एक वर्ष से अधिक समय तक खींची गई है और बिना कोई कारण दर्ज किए बार-बार स्थगन दिया गया है। प्रतिपरीक्षा को स्थगित करते समय लंबी तारीखें भी तय की गई हैं। विचारण न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रथा स्थापित विधिक मानदंडों के विरुद्ध है।

65. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, आपराधिक अपील संख्या 554/2012 में सर्वोच्च न्यायालय ने साक्षी से टुकड़ों में परीक्षा की प्रथा की निंदा की है। पैरा 1, 2, 3, 4, 5, 6 नीचे उद्धृत हैं:-

1. यदि किसी से यह प्रश्न पूछा जाए कि इस देश में कानूनी रूप से अपेक्षित आपराधिक मुकदमे को इसकी वैचारिक संभावना में क्या प्रभावित करता है, तो दो कारण जो अभूतपूर्व महत्व प्राप्त कर सकते हैं, वे हैं, पहला, मुकदमे के दौरान साक्षीगण की अनुपलब्धता के

कारण मुकदमे में विलंब और दूसरा, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (दं.प्र.सं.) की धारा 309 के अंतर्गत वैधानिक आदेश और इस न्यायालय द्वारा कई उदघोषणाओं के बावजूद, विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमे का संचालन करने वाले अधिवक्ता द्वारा मांगे गए अनुचित स्थगन। एक समय में जो एक बीमारी थी, समय के साथ वह घातक बीमारी में बदल गई है। जो एक बार एक मात्र गड़बड़ी थी, वह वर्तमान में एक विकार, एक बीमारी बन गई है।

2. यह मामला एक ऐसे परिदृश्य को दर्शाता है कि कैसे विद्वान विचारण न्यायाधीश की निष्क्रियता के कारण, एक साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में पूरी तरह से दृढ़ रहने के बावजूद, दुस्साहसपूर्वक और एक तरह से घृणित तरीके से, सभी मूल्यों को हवा में उड़ा दिया और भटकाव का मार्ग प्रशस्त किया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह मुकदमे के मूल उद्देश्य, यानी अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के आधार पर सच्चाई तक पहुँचने का गला घोटने और उसे सूली पर चढ़ाने का एक कुटिल और चतुराई से तैयार किया गया प्रयास है। सबसे अच्छी बात यह है कि दुर्भावनापूर्ण और हानिकारक हमले के बावजूद, न्याय का हेतुक बच गया है, क्योंकि अंतिम परिणाम, एक दोषसिद्धि है जो विशेष अनुमति द्वारा इस अपील में चुनौती के अधीन है।

3. दुखद घटनाक्रम का वर्णन न्यायिक विवेक को झकझोरता है और मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी भी कर्तव्यनिष्ठ परीक्षण न्यायाधीश के लिए वैधानिक आदेश की

अनदेखी करना, “समय की महसूस की गई आवश्यकताओं” को न पहचानना और न्याय की मांग करने वाली सामूहिक पुकार के प्रति उदासीन बने रहना या परीक्षण की अवधारणा को एक अशोभनीय और अनावश्यक दफना देना उचित है तथा इस अवधारणा को पूरी तरह से बहिष्कृत करना कि एक सभ्य और व्यवस्थित समाज कानून के शासन पर पनपता है जिसमें अभियुक्त के साथ-साथ अभियोजन पक्ष के लिए “निष्पक्ष परीक्षण” भी शामिल है।

4. उपर्युक्त संदर्भ में, हम गुरनैब सिंह बनाम पंजाब राज्य के एक अंश को दोहरा सकते हैं। “... हम कानून कार्यवाही के लिए आगे बढ़ने और जिस तरह से मुकदमा चलाया गया, उससे संबंधित अपनी पीड़ा व्यक्त करने के लिए बाध्य हैं क्योंकि यह बहुत ही परेशान करने वाला परिदृश्य दर्शाता है। जैसा कि अभिलेखों से स्पष्ट है, वाद बहुत ही बेतरतीब और टुकड़ों में चलाया गया था। केवल पूछने पर स्थगन दे दिए गए थे। साक्षीगण की प्रतिपरीक्षा बिना किसी विशेष कारण को दर्ज किए स्थगित कर दी गई थी और लंबे अंतराल के बाद तारीखें दी गई थीं। विधिक आदेश और इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर व्यक्त किए गए विचारों को पूर्ण रूप से दरकिनार कर दिया गया प्रतीत होता है। (2013) 7 एस.सी.सी. 108 के विद्वान विचारण न्यायाधीश ने, जैसा कि प्रत्यक्ष है, अपनी स्मृति से यह बात बहिष्कृत कर दी है कि एक आपराधिक वाद की अपनी गंभीरता व पवित्रता होती है। इस संबंध में, हम तालाब हाजी हुसैन बनाम मधुकर पुरुषोत्तम मोंडकर के निर्णय का लाभ के साथ उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि एक

अभियुक्त व्यक्ति अपने आचरण से निष्पक्ष सुनवाई को खतरे में नहीं डाल सकता है, क्योंकि यह सुनिश्चित करना आपराधिक न्यायालयों का प्राथमिक और सर्वोपरि कर्तव्य है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए जोखिम को हटा दिया जाए और बिना किसी रुकावट या बाधा के परीक्षाओं को सुचारू रूप से चलने दिया जाए।”

5. ध्यान रहे, उक्त मामले में, स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य से निम्नलिखित अंश पुनः प्रस्तुत किया गया था।

“जब तक साक्षी थक कर हार नहीं मान लेता, आपराधिक मामले को बार-बार स्थगित करना कमोबेश एक रिवाज बन गया है। साक्षी को मना लेना या थक जाना एक या दूसरे बहाने से स्थगन प्राप्त करना बेईमान अधिवक्तों का खेल है। न केवल साक्षी को धमकाया जाता है, उसका अपहरण किया जाता है, उसे अपंग बना दिया जाता है, उसे मार दिया जाता है और यहां तक कि रिश्वत दी जाती है। उसके लिए कोई सुरक्षा नहीं है। किसी वैध कारण के बिना मामले को स्थगित करने से न्यायालय अनजाने में न्याय की विफलता में पक्ष बन जाता है।”

6. इस संबंध में, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शंभू नाथ सिंह के मामले में दिए गए प्राधिकार का संदर्भ देना भी उपयोगी होगा, जिसमें इस न्यायालय ने सत्र न्यायालय ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 376 (2000) 5 एस.सी.सी. 668 (2001) 5 एस.सी.सी. 667 की उस प्रथा की निंदा की है जिसमें साक्षीगण की पूर्ण रूप से परीक्षा किए जाने की इच्छा के बावजूद मामले

को स्थगित कर दिया गया था, तथा इस प्रकार राय व्यक्त की गई थी:

“9. हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि यदि कोई साक्षी न्यायालय में उपस्थित है तो उससे उसी दिन परीक्षा की जानी चाहिए। न्यायालय को यह अवश्य पता होना चाहिए कि अधिकांश साक्षी अपने स्वयं के व्यवसाय को छोड़कर भारी खर्च करके ही न्यायालय में उपस्थित हो पाते हैं। निश्चित रूप से, उन्हें कष्ट और आय की हानि उठानी पड़ती है। न्यायालय द्वारा साक्षी को दिया जाने वाला अल्प भत्ता (भत्ता) आम तौर पर उसके द्वारा उठाए गए वित्तीय नुकसान की भरपाई के लिए पर्याप्त नहीं होता। अवर न्यायालयों में यह दुखद स्थिति है कि जिन साक्षीगण को समन या अन्य प्रक्रियाओं के माध्यम से बुलाया जाता है वे सुबह से शाम तक दरवाजे पर खड़े रहते हैं और अंत में उन्हें बताया जाता है कि मामले को दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया है। अवर न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा इस आदिम प्रथा में सुधार किया जाना चाहिए और इसे सभी द्वारा सुधारा जा सकता है बशर्ते कि संबंधित पीठासीन अधिकारी अपने कर्तव्य के प्रति प्रतिबद्ध हो।”

66. जैसा कि ऊपर विश्लेषण किया गया है, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से यह स्पष्ट है कि शुरू में दोनों साक्षीगण ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने अपीलकर्ता-अभियुक्त को हाथों में तमंचा थामे डी-1 के घर से निकलते देखा था। उन्होंने टॉर्च की रोशनी में उसकी पहचान की। इसके बाद उन्होंने उसे



अपने घर के अंदर जाते भी देखा। अभियुक्त द्वारा मांगे गए स्थगन पर प्रतिपरीक्षा स्थगित कर दी गई। प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) की प्रतिपरीक्षा ढाई महीने के अंतराल के बाद दर्ज की गई, जबकि जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) की प्रतिपरीक्षा एक साल से अधिक समय के बाद दर्ज की गई, जिसमें कई स्थगन हुए। प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) पक्षद्रोही हो गया और मुख्य परीक्षा से मुकर गया। जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) अपनी प्रतिपरीक्षा में दृढ़ नहीं रह सका और घटना के प्रत्यक्ष संस्करण के बारे में अभियोजन पक्ष के विपरीत बयान दिए। हालांकि, प्रतिपरीक्षा में उनके बयान से ही पता चलता है कि यह पूरी तरह से झूठ है और साक्षी अन्य कारणों से अपने पिछले बयानों से मुकर रहे हैं। झूठे बयानों को सच्चे बयानों से अलग किया जा सकता है। इसलिए उनके प्रतिपरीक्षा के बयानों से उनके बयान की सत्यता पर कोई असर नहीं पड़ता है जो अभियोजन पक्ष का समर्थन करता है और उस पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है।

67. तीसरे साक्षी अमर पाल सिंह (पी.डब्लू.-1) ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। साक्षी ने कहा कि घटना के समय वह प्यारे सिंह के खेत में, जो घटनास्थल के पास ही स्थित है, शौच के लिए गया हुआ था। इस साक्षी ने यह भी कहा है कि जब वह शौच के लिए गया था, तो उसने गोली चलने की आवाज सुनी तथा टार्च की रोशनी भी देखी। कुछ समय बाद उसने रणवीर सिंह तथा ए को सुखवीर सिंह के घर से निकलते देखा तथा दोनों के हाथों में तमंचा तथा टार्च थी, वे गांव से बाहर जाने वाले रास्ते पर चले गए। वे बात

कर रहे थे कि उन्होंने सुखवीर सिंह को उसके ट्यूबवेल पर मार दिया है तथा परिवार के शेष सदस्यों को उनके घर में, वे अपने घर के अन्दर चले गए। बचाव पक्ष द्वारा साक्षी से उसके घर के आस-पास की स्थलाकृति तथा घटनास्थल के बारे में तथा घटना के बारे में विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई, परन्तु कोई गम्भीर विसंगति या भौतिक विरोधाभास नहीं है, जिससे उसकी गवाही अविश्वसनीय हो।

68. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से यह स्थापित होता है कि कई राउण्ड फायरिंग हुई है, मौके से कई खाली कारतूस व गोलियां बरामद हुई हैं, जबकि शवों से भी गोलियां व छर्रे मिले हैं। अभियोजन पक्ष के साक्षी प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) व सुखवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने भी कहा है कि फायरिंग 10 से 20 मिनट तक हुई। अमर पाल सिंह (पी.डब्लू.-1) की गवाही के अनुसार उसका घर सुखवीर सिंह (डी-1) के घर से लगभग 250 मीटर की दूरी पर स्थित है। यद्यपि जगवीर सिंह पी.डब्लू.-3 ने यह दूरी लगभग 800 मीटर बताई है। तथापि, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अमर पाल सिंह (पी.डब्लू.-1) उसी गांव का निवासी है। उपरोक्त परिस्थितियों, अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्य व सामग्री को ध्यान में रखते हुए अमर पाल सिंह (पी.डब्लू.-1) की प्रत्यक्ष गवाही को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि उसका घर घटनास्थल से दूरी पर स्थित है।

69. ऐसा कोई कानून नहीं है कि किसी संयोगी साक्षी पर विश्वास न किया जा सके। किसी साक्षी की साक्ष्य को सिर्फ इस आधार पर

खारिज नहीं किया जा सकता कि वह संयोगवश साक्षी है। इसके लिए आवश्यक है कि मौके पर मौजूद किसी संयोगवश साक्षी की संभावना और कारण की बारीकी से जांच की जाए और अगर ऐसी बारीकी से जांच के आधार पर संयोगवश साक्षी विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है तो उसकी साक्ष्य को मात्र इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह संयोगवश साक्षी है। जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य (2009) 9 एस.सी.सी. 719 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी विधिक सिद्धांत को प्रतिपादित किया है, जिस पर अपीलकर्ता-अभियुक्त पक्ष ने अवलम्ब लिया है।

70. यह सही है कि उपरोक्त तीनों साक्षी घर के अंदर हुई गोलीबारी की घटना के प्रत्यक्षदर्शी नहीं हैं, परन्तु उन्होंने गोलीबारी की आवाज सुनी है और गोलीबारी बंद होने के तुरंत बाद अपीलकर्ता अभियुक्त को मृतक के घर से तमंचा पकड़े हुए बाहर आते देखा है व उसी दौरान अपीलकर्ता अभियुक्त को रास्ते से जाकर उसके घर में प्रवेश करते हुए। इसलिए साक्षीगण की मौखिक साक्ष्य भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत स्वीकार्य है और उस पर भरोसा किया जा सकता है।

**सी. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी का साक्ष्य।**

71. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त रणवीर द्वारा किए गए स्वीकारोक्ति बयान पर अपराध के कमीशन में प्रयुक्त एक तमंचा, बलकटी और सीढ़ी की बरामदगी के साक्ष्य पर भी भरोसा किया है। इंस्पेक्टर बलवीर सिंह (पी.डब्लू. -9) ने कहा है कि दिनांक

30.07.2018 को लगभग 1.30 बजे अभियुक्त रणवीर को गिरफ्तार किया गया था, उससे पूछताछ की गई और उसका बयान दर्ज किया गया। अभियुक्त रणवीर ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए अपराध में प्रयुक्त तमंचा, बांस की सीढ़ी आदि बरामद कराने की भी पेशकश की। इस पर वह पुलिस बल के साथ अभियुक्त रणवीर द्वारा बताये गये स्थान पर आये। रास्ते में जनता के साक्षी लेने का प्रयास किया गया परन्तु कोई तैयार नहीं हुआ। तत्पश्चात अभियुक्त रणवीर अपने धान के खेत में आया तथा जामुन के पेड़ के नीचे रखी बीड़ से दो तमंचे 315 बोर व चार कारतूस तथा अपने घर की गैलरी से एक बलकटी व एक बांस की सीढ़ी बरामद करायी। तमंचे, कारतूस व बलकटी को अलग-अलग सील कर दिया गया तथा एक मेमो तैयार किया गया। उस पर साक्षी व साथ आये पुलिस कर्मियों के हस्ताक्षर थे। उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर भी लिये गये। साक्षी ने बरामदगी मेमो को प्रदर्श क-58 के रूप में साबित किया है। इसके समर्थन में एक अन्य साक्षी उपनिरीक्षक जगरोशन सिंह (पी.डब्लू.-10) को भी प्रस्तुत किया गया। इस साक्षी ने यह भी कहा है कि दिनांक 30.07.2008 को वह एस.ओ. बलवीर सिंह के साथ ग्राम बरारी पहुंचा, जहां से अभियुक्त रनवीर को उसके घर के पास से गिरफ्तार कर लिया गया। उससे पूछताछ की गई। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उसने बताया कि वह अपराध में प्रयुक्त तमंचा, बलकटी व सीढ़ी बरामद करा सकता है। इस पर उसकी निशानदेही पर सभी रनवीर के धान के खेत में पहुंचे और अभियुक्त रनवीर ने जामुन के पेड़ के नीचे बीड़ से दो तमंचे 315

बोर व चार जिन्दा कारतूस 315 बोर बरामद कराये। साथ ही उसके घर की गैलरी से खून से सनी एक बलकटी व एक बांस की सीढ़ी भी बरामद करायी। बरामद तमंचे, कारतूस व बलकटी को अलग-अलग सील कर मेमो तैयार किया गया। साक्षी ने बरामदगी मेमो पर अपने हस्ताक्षर प्रमाणित किये हैं।

72. इस बरामदगी का कोई स्वतंत्र जनता के साक्षी नहीं है। दोनों साक्षी पुलिस कर्मी तथा अभियुक्त रणवीर को गिरफ्तार करने वाली पुलिस दल के सदस्य हैं। उप-निरीक्षक जगरोशन (पी.डब्लू.-10) की प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट है कि वह महत्वपूर्ण विवरणों का उत्तर देने में विफल रहा है। उसने टाल-मटोल वाला उत्तर दिया है, वह उस स्थान का खुलासा करने में विफल रहा है जहां बरामदगी मेमो तैयार किया गया था तथा वाद संपत्ति को सील किया गया था। उसने स्वीकार किया है कि साक्षी जगवीर तथा प्यारे के घर बरामदगी के स्थान से सटे हुए हैं तथा यह भी कहा है कि पूरी कार्यवाही के दौरान कोई भी आम आदमी वहां नहीं आया जबकि वे लगभग दो घंटे तक वहां रहे। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से यह भी स्थापित होता है कि तमंचा तथा जिन्दा कारतूस बरामदगी का स्थान खुला मैदान है। इंस्पेक्टर बलवीर सिंह (पी.डब्लू.-9) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने अभियुक्त रणवीर का कोई प्रकटीकरण बयान तैयार नहीं किया है तथा न ही कोई हस्ताक्षर लिया है। उसने यह भी स्वीकार किया है कि बरामदगी का स्थान आम रास्ते से सटा हुआ है। इसलिए उपरोक्त तथ्यों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का विश्लेषण करते

हुए, हम अभियोजन पक्ष के इस साक्ष्य को विश्वसनीय नहीं पाते हैं। विचारण न्यायालय ने इस साक्ष्य पर भरोसा करके गलती की है।

### डी. फॉरेंसिक/बैलिस्टिक साक्ष्य

73. घटनास्थल से बरामद 315 बोर व 12 बोर के खाली कारतूस तथा ईंट के टुकड़े और मृतक व्यक्तियों के शवों से मिली अन्य वस्तुएं, अभियुक्त रणवीर की निशानदेही पर बरामद कथित दो तमंचे 315 बोर व 315 बोर के चार जिन्दा कारतूस, बलकटी, दो तमंचे, उसकी नाल में मिले 315 बोर के दो खाली कारतूस तथा सहअभियुक्त ए की निशानदेही पर एक बैग में रखे अभियुक्त व्यक्तियों के कपड़े फॉरेंसिक जांच के लिए भेजे गए हैं। फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट प्रदर्शक-62 व क-63 है। रिपोर्ट प्रदर्शक-62 के अनुसार काले रंग के बैग में रखे कथित ए की निशानदेही पर बरामद किए गए कपड़ों पर खून के धब्बे नहीं पाए गए। घटनास्थल से बरामद ईंट के टुकड़े पर भी खून के धब्बे नहीं पाए गए। हालांकि बलकटी, सीढ़ी के एक डंडे व मृतक के कपड़ों पर मानव रक्त पाया गया है। फॉरेंसिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट प्रदर्शक-63 घटनास्थल से मिले खाली कारतूसों में से एक कारतूस अभियुक्त रणवीर की निशानदेही पर बरामद 315 बोर के तमंचे से चलाया गया पाया गया, परन्तु रिपोर्ट से यह पुष्टि नहीं होती कि पोस्टमार्टम जांच के दौरान शवों से बरामद कारतूस व गोलियां वास्तव में अभियुक्त रणवीर सिंह की निशानदेही पर बरामद तमंचे से चलाई गई थीं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी के विश्लेषण के अनुसार अभियुक्त रणवीर सिंह

(डी-1) की निशानदेही पर तमंचों की बरामदगी पर विश्वास नहीं किया गया है। इसलिए यह साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं करता है। इस साक्ष्य पर भरोसा करके विचारण न्यायालय ने गलती की है।

### ई. हेतुक

74. अभियोजन पक्ष के अनुसार सुखवीर (मृतक) और रणवीर (अपीलार्थी-अभियुक्त) के परिवारों के बीच गहरी दुश्मनी थी। घटना से पहले अपीलार्थी-अभियुक्त रणवीर की बेटी पिकी भाग गई थी और अपीलार्थी-अभियुक्त और उसके परिवार को इसमें सुखवीर (डी-1) का हाथ होने का संदेह था। कृषि क्षेत्र की सीमा (मेड़) को लेकर भी विवाद था। सुखवीर सिंह (डी-1) के सगे भाई प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने इस संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि की है। प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) ने कहा है कि रणवीर की बेटी पिकी भाग गई थी और इस कारण रणवीर और सुखवीर (डी-1) के बीच गहरी दुश्मनी थी। जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने यह भी कहा है कि कुछ समय से सुखवीर और रणवीर के बीच संबंध तनावपूर्ण थे और रणवीर की बेटी पिकी के भाग जाने और मेड़ के विवाद के कारण उनके बीच दुश्मनी थी। अपीलकर्ता का उद्देश्य यह बताया गया है कि उपरोक्त कारणों ने अपीलकर्ता को डी-1 के पूरे परिवार को खत्म करने के लिए प्रेरित किया ताकि उसकी आने वाली पीढ़ी भी खत्म हो जाए।

75. बचाव पक्ष द्वारा इस पहलू पर इन साक्षीगण से प्रतिपरीक्षा की गई है। उन्होंने केवल इतना कहा है कि रणवीर द्वारा अपनी

बेटी के भागने के संबंध में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी, तथापि, उसने गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई थी। यह भी कहा गया है कि भूमि विवाद के संबंध में उनके बीच कोई मामला न्यायालय में लंबित नहीं था। प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी कहा है कि सुखवीर सिंह (डी-1) का गांव के जाटवों के साथ विवाद था, परन्तु इस संबंध में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी। जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) ने यह भी कहा है कि यह उनके संज्ञान में है कि घटना से पहले प्रीतम सिंह नामक व्यक्ति ने रिकू (डी-2), टिकू (डी-3) पुत्र सुखवीर सिंह, सुखवीर सिंह (डी-1) और कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध थाना औरंगाबाद में धारा 323, 504, 324, 325, 307 और 452 भा.दं.सं. के अंतर्गत रिपोर्ट दर्ज कराई थी। इन बयानों से केवल यह पता चलता है कि मृतक और उसके बेटों के बीच ग्रामीणों के साथ कुछ विवाद था। प्रतिपरीक्षा में ये बयान अपीलकर्ता अभियुक्त के विरुद्ध घटना के हेतुक के संबंध में इन साक्षीगण के मौखिक साक्ष्य को रद्द नहीं करते हैं।

76. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि अपराध सुखवीर सिंह (डी-1) और उसके दो बेटों डी-2 और डी-3 को नुकसान पहुंचाने के लिए नहीं बल्कि पूरे परिवार के साथ सुखवीर सिंह (डी-1) को खत्म करने के इरादे से किया गया है। अपराध करने वालों को जगह की स्थलाकृति और सुखवीर सिंह (डी-1) के घर के अंदरूनी हिस्से, घर में मौजूद व्यक्तियों की संख्या तथा इस तथ्य की पूरी जानकारी थी कि सुखवीर सिंह (डी-1) अपने ट्यूबवेल पर सो रहा है।

हमलावरों ने पहले सुखवीर सिंह (डी-1) की उसके ट्यूबवेल पर धारदार हथियार का उपयोग करके हत्या कर दी, ताकि कोई भी सजग न सके। इसके बाद वे सुखवीर सिंह (डी-1) के घर आए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी बच न जाए, आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया, जिससे एक गर्भवती महिला और दो साल के बच्चे सहित परिवार के बाकी छह सदस्यों की मौत हो गई। तथ्यों, परिस्थितियों और अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्यों की पृष्ठभूमि में, हेतुक केवल अपीलकर्ता का ही था और किसी का नहीं और यह अपीलकर्ता अभियुक्त के विरुद्ध एक मजबूत परिस्थिति है। इस संबंध में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पुख्ता और विश्वसनीय हैं। तथ्यों, परिस्थितियों और साक्ष्य की प्रकृति को देखते हुए, हेतुक महत्वपूर्ण है।

### निष्कर्ष

77. प्यारे सिंह (पी.डब्लू.-2) और जगवीर सिंह (पी.डब्लू.-3) की प्रत्यक्ष साक्ष्य का वह हिस्सा, जो अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है, विश्वसनीय और भरोसेमंद है। विरोधाभासी बयान उनके सगे भाई, अपीलकर्ता को फांसी से बचाने के गुप्त उद्देश्य से दिए गए हैं। उनकी मौखिक साक्ष्य का वह हिस्सा जो अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करता है, उनकी साक्ष्य में दिए गए अविश्वसनीय बयानों से अलग किया जा सकता है और उसे विश्वसनीय साक्ष्य माना जा सकता है। यह सुस्थापित विधि है कि मौखिक साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को अनाज को भूसे से अलग करना चाहिए। ये साक्षी न केवल पड़ोसी हैं, बल्कि मृतक के सगे भाई भी हैं। देर रात के समय गोलियों की आवाज

सुनकर उनके लिए यह जानने की उत्सुकता होना पूरी तरह से स्वाभाविक है कि उनके भाई के पास के घर में क्या हो रहा है। परिस्थितियों को देखते हुए, जहां दस से बीस मिनट के अंतराल में कई राउंड गोलीबारी हुई, यह उम्मीद की जाती है कि दोनों साक्षीगण ने घटना देखी होगी। इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से संकेत मिलता है कि महत्वपूर्ण अंतराल के साथ लंबे समय तक की गई प्रतिपरीक्षा के कारण, उनकी गवाही बचाव पक्ष से प्रभावित हो सकती है। अमर पाल सिंह पी.डब्लू.-1 की मौखिक साक्ष्य भी विश्वसनीय है, क्योंकि इसमें कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास या गंभीर विसंगतियां नहीं हैं जो उनकी गवाही को अविश्वसनीय बनाती हों। अभियोजन पक्ष ने हेतुक को सफलतापूर्वक स्थापित किया है, और यह जिस तरह से घटनाएं हुईं और अपराध के पीछे की मंशा से स्पष्ट है कि केवल अपीलकर्ता ने ही अपराध कारित किया है, और किसी और ने नहीं।

78. जयंतीलाल वर्मा बनाम म.प्र. राज्य (2020) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 944 के मामले में जिसमें एक विवाहित महिला अपने वैवाहिक घर में मृत पाई गई थी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उसके पति की सजा को बरकरार रखा, भले ही बड़ी संख्या में साक्षी पक्षद्रोही हो गए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां की:-

“हमारे देश में लंबे समय तक चलने वाले मुकदमों में यह कोई असामान्य घटना नहीं है और किसी भी तरह के साक्षी संरक्षण व्यवस्था के अभाव में, किसी को भी उन सभी

साक्ष्यों की परीक्षा करनी होगी, जिन पर विचार किया जा सकता है, और फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्या यह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा।”

79. उपरोक्त के मददेनजर, विचारण न्यायालय ने अमर पाल सिंह पी.डब्ल्यू.-1, प्यारे सिंह पी.डब्ल्यू.-2 और जगवीर सिंह पी.डब्ल्यू.-3 के साक्ष्यों पर भरोसा करके सही किया है। विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्धि का निष्कर्ष न्यायोचित और सही है। इसमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से, धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप अपीलकर्ता के विरुद्ध उचित संदेह से परे साबित होता है। हालांकि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी के साक्ष्य के आधार पर आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया दोषसिद्धि का निष्कर्ष पोषणीय नहीं है।

80. अब सजा की मात्रा का प्रश्न आता है। विचारण न्यायालय ने धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए मृत्युदंड दिया है, इसे दुर्लभतम मामलों में से एक के रूप में वर्गीकृत किया है। हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपराध पूरे परिवार को खत्म करने और सगे भाई (डी-1) की भावी पीढ़ी को खत्म करने के उद्देश्य से जघन्य तरीके से किया गया है, अपीलकर्ता के विरुद्ध कई गंभीर कारक हैं। एक गर्भवती महिला और एक शिशु सहित छह व्यक्तियों का अपने ही घर में अंधाधुंध गोलीबारी के द्वारा दुखद अंत कर दिया गया,

जबकि परिवार के मुखिया की हत्या उसके ट्यूबवेल पर की गई, जब वे रात में सो रहे थे। ये परिस्थितियाँ निस्संदेह गंभीर हैं।

81. विचार करने योग्य कारक यह हैं कि घटना को लगभग पंद्रह वर्ष बीत चुके हैं। तब से अपीलकर्ता-अभियुक्त कारावास में है। वर्ष 2015 में धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किए गए उनके बयान में उल्लिखित अपीलकर्ता-अभियुक्त की आयु लगभग 69-70 वर्ष थी। अतः वर्तमान में अपीलकर्ता-अभियुक्त की आयु 75 वर्ष से अधिक है। उपरोक्त सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस समय मृत्युदंड देना न्यायसंगत नहीं होगा। सजा को संशोधित कर आजीवन कारावास एवं दो लाख रुपए का जुर्माना करना उचित होगा। जुर्माना अदा न करने की स्थिति में तीन वर्ष का कठोर कारावास दिया जाएगा।

82. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए अपीलकर्ता-अभियुक्त की दोषसिद्धि बरकरार रखी जाती है। तथापि, सजा को मृत्युदंड से आजीवन कारावास में संशोधित किया जाता है एवं दो लाख रुपए का जुर्माना किया जाता है, जुर्माना अदा न करने की स्थिति में तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगना होगा। शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्धि एवं सजा को रद्द किया जाता है। संदर्भ तदनुसार तय किया जाता है।

83. निर्णय पारित करने से पूर्व हम संबंधित पुलिस अधिकारियों एवं विचारण न्यायालय द्वारा इस तरह के जघन्य अपराध के निस्तारण के तरीके के बारे में अपनी पीड़ा एवं व्यथा व्यक्त करने के लिए बाध्य हैं। यह मामला खराब और असफल विवेचना, अपर्याप्त पर्यवेक्षण तथा अव्यवस्थित एवं टुकड़ों में की गई सुनवाई का ज्वलंत उदाहरण है।

84. इस मामले में, पुलिस अधिकारी घटना के लगभग एक घंटे बाद घटनास्थल पर पहुंचे। एक डॉग स्कवायड को भी बुलाया गया। तत्परता के साथ, पंचायतनामा कार्यवाही और पोस्टमार्टम किये गये। हालांकि, प्रारंभिक कार्रवाई और शायद मृतक के दाह संस्कार के बाद, यह सब विवेचनाधिकारी पर छोड़ दिया गया कि वह अपनी इच्छानुसार आगे बढ़े। विवेचनाधिकारी ने एक सामान्य, नियमित और प्रतीत होता है कि आकस्मिक तरीके से सनकी रवैये के साथ जांच की। प्रारंभिक जांच में, उन्होंने इस कहानी के साथ कार्यवाही की कि अपीलकर्ता और उसके बेटे ने अपने दो दोस्तों के साथ मिलकर अपराध को अंजाम दिया है। इन तथ्यों का उल्लेख धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपीलकर्ता-अभियुक्त के बयान में किया गया है। एक स्पष्ट बयान है कि सह-अभियुक्त, अपीलकर्ता का बेटा अपने दो दोस्तों को साथ लाया था, और वे चारों अपराध के लिए जिम्मेदार थे। हालांकि, सह-अभियुक्त, अपीलकर्ता के बेटे का बयान दर्ज करते समय विवेचनाधिकारी ने मनमाने तरीके से इस कहानी को अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदल दिया। इस कथन में, यह उल्लेख

किया गया था कि केवल अपीलकर्ता और उसका बेटा ही शामिल थे तथा अपराध कारित करने में अपीलकर्ता के बेटे के दो सहयोगियों की संलिप्तता से इनकार करते हुए, अपीलकर्ता और उसके बेटे के संबंध में अपराध कारित करने के लिए विवेचना को सीमित किया गया, बिना उनसे इस बिंदु पर सामना किए। हालांकि, विवेचनाधिकारी ने दो अन्य व्यक्तियों, प्रथम सूचनाकर्ता और अपीलकर्ता की पत्नी को दोषी बनाया और असंगत साक्ष्य के आधार पर षडयंत्र का एक सिद्धांत विकसित किया, जो न्यायालय में विफल हो गया। यह भी प्रतीत होता है कि विवेचनाधिकारी ने अन्य संभावित महत्वपूर्ण साक्ष्य इकट्ठा करने के लिए मेहनती प्रयास नहीं किए हैं। अपराध स्थल पर एक खाली 12 बोर कारतूस भी मिला था, फिर भी विवेचनाधिकारी द्वारा की गई बरामदगी में केवल 315 बोर का तमंचा शामिल थी। किसी भी अभियुक्त के लिए कोई पुलिस कस्टडी रिमांड नहीं लिया गया।

85. विवेचना में इन महत्वपूर्ण कमियों पर पर्यवेक्षी प्राधिकरण अर्थात क्षेत्राधिकारी (पुलिस) द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है, जो उनके उदासीन दृष्टिकोण को दर्शाती है।

86. आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन की दुर्बलता इस तथ्य में निहित है कि संबंधित पुलिस अधिकारी ऐसे गंभीर अपराधों को केवल कानून और व्यवस्था के दृष्टिकोण से देखते हैं। जब कोई जघन्य अपराध होता है, तो उच्च पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी कार्रवाई करते हैं और कुछ समय तक कार्रवाई करते रहते हैं, परन्तु जैसे ही मामला शांत होता है, वे फिर से

अपनी नींद में चले जाते हैं, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। वे यह सुनिश्चित नहीं करते कि मामले की उचित विवेचना की गई है या नहीं, सभी संभावित साक्ष्य एकत्र किए गए हैं जो विधिक जांच में टिक सकते हैं, साक्षीगण को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की गई है ताकि वे बिना किसी डर के न्यायालय में गवाही दे सकें और सभी साक्षीगण को जल्द से जल्द पेश किया जाए।

87. सामान्यतः, यह देखा गया है कि ऐसे अपराधों के निस्तारण में पुलिस की चिंता गिरफ्तारी करने और उसके बाद आधे-अधूरे साक्ष्यों के आधार पर आरोप-पत्र दाखिल करने तक ही सीमित रहती है। पर्यवेक्षी अधिकारी भी जांच को लापरवाही से निपटाते हैं, अक्सर उचित परिश्रम करने में विफल रहते हैं और बिना तारीख डाले केवल हस्ताक्षर कर देते हैं। आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद, कोई भी मुख्य साक्षीगण की समय पर और सुरक्षित उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए न्यायालयी कार्यवाही की निगरानी करने की जहमत नहीं उठाता, जिसके परिणामस्वरूप मुकदमे में अत्यधिक देरी होती है और सुनवाई में देरी होती है, जिससे साक्षी असुरक्षित हो जाते हैं।

88. यह भी देखा गया है कि आम तौर पर सरकारी अधिवक्ता न्यायालय में बिना तैयारी के आते हैं और खुद को धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किए गए बयानों तक ही सीमित रखते हैं, केस डायरी में उपलब्ध संपूर्ण केस सामग्री की गहन समीक्षा किए बिना गंभीर चूक करते हैं।

उन्हें साक्षी की सही स्थिति और अभिलेख में कौन से दस्तावेज़ हैं, इसकी भी जानकारी नहीं होती है, जिन्हें किसी विशेष साक्षी को साबित करना होता है। महत्वपूर्ण दस्तावेजों को अप्रमाणित छोड़ दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप साक्षी को पुनः बुलाना पड़ता है और बचाव पक्ष को प्रतिपरीक्षा करने के लिए अतिरिक्त अवसर मिलते हैं, जो अंततः अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित करता है।

89. विचारण न्यायालय भी विधि अनुसार निष्पक्ष और त्वरित सुनवाई के अपने कर्तव्य में विफल रहता है, क्योंकि वह केवल अनुरोध पर बार-बार स्थगन देता है, भले ही साक्षी का बयान शुरू हो चुका हो।

90. इन मुद्दों को संबोधित करना सभी संबंधित लोगों के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि आपराधिक न्याय के प्रशासन में विवेचना का चरण महत्वपूर्ण होता है। हालांकि, यह अयोग्य अधिकारियों के हाथों में चला जाता है, जिनके पास उचित विधिक ज्ञान नहीं होता है, जिसके परिणामस्वरूप विवेचना विफल हो जाती है। विवेचना भी उनकी प्राथमिकताओं की सूची में अंतिम चीज है। निष्पक्ष और उचित विवेचना सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि जांच एजेंसी एक अलग इकाई हो, जिसमें ऐसे अधिकारी हों जो इस क्षेत्र में सक्षम, योग्य और विशेषज्ञ हों।

-----



(2023) 9 ILRA 75

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 4700 वर्ष 2019

साथ में

आपराधिक अपील संख्या 2916 वर्ष 2018

इशतियाक

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

सूफिया बानो, श्री अनिल कुमार, श्री अपुल मिश्रा, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री औशिम लूथरा, श्री मोहम्मद अख्तर

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 148, 302/149 और 307/149-दोषसिद्धि को चुनौती- सभी अभियुक्त व्यक्ति कट्टा, रिवाल्वर और बम से लैस थे- वे जानते थे कि जिस अभियुक्त की गोली से मृतक मारा गया था उसके पास एक घातक हथियार था जिसका उपयोग वह गैरकानूनी जमावड़े के सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए करेगा-इसके अलावा, उन्होंने एक-दूसरे को सूचना देने वाले पक्ष के परिवार के

सदस्यों को मारने के लिए भी उकसाया- पीडब्लू-1 के साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है कि मृतक को मारने के बाद अभियुक्तों ने उस पर गोली चलाई थी लेकिन वह बच निकला- यह भी सिद्ध हो गया है कि अभियुक्तों में से एक ने मौके पर बम विस्फोट किया था और रस्सी के रूप में अवशेष मौके से बरामद किया गया था-कथित अपराध दोषी अपीलार्थियों द्वारा गैरकानूनी जमावड़े के सदस्य होने के नाते सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया था, दोषी अपीलार्थियों और सूचना देने वाले, उसके परिवार के सदस्यों और उसके पड़ोसी के बीच पूर्व शत्रुता थी - पड़ोसी पर पहले भी अभियुक्तों द्वारा हमला किया गया था, जिसमें सूचक साक्षियों में से एक था - चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए हेतुक का ज्यादा महत्व नहीं है - इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को धारा 148, 307 के साथ धारा 149, 302 के साथ धारा 149 भा.दं.सं. के अंतर्गत दोषी ठहराया है, इसलिए अपीलों में कोई हस्तक्षेप का प्राधिकार नहीं है। (पैरा 1 से 104)

बी. धारा 34 की प्रयोज्यता के लिए इस धारा के घटक के शारीरिक और मानसिक दोनों पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। इसके विपरीत, धारा 149 केवल मानसिक तत्व पर ही जोर नहीं देती और इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि किसी विधिविरुद्ध समूह के किसी सदस्य ने वास्तव में अपराध करने में भाग लिया हो। (पैरा 97)

अपीलें खारिज की जाती हैं। (ई-6)

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. इकबाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 11 एससीसी 93

2. विनुभाई रणछोड़भाई पटेल बनाम राजीवभाई दुदाभाई पटेल और अन्य (2018) 7 एससीसी 743 (744)

3. गंगाधर बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (2003) क्रिमिनल लॉ जर्नल 41 एससी

4. अशरफुल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1987) एआईआर एससी 721

5. महाराष्ट्र राज्य बनाम काशीराव (2003) क्रिमिनल लॉ जर्नल 4464 एस.सी.

6. अलाउद्दीन मियां बनाम बिहार राज्य (2007) 9 एससीसी 791

7. भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) एआईआर एससी 1621

8. यूनुस बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2003) क्रिमिनल लॉ जर्नल 817 एससी

9. रामविलास सिंह बनाम बिहार राज्य (1969) एआईआर एससी 1593

10. सुनील बालकृष्ण भोईर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 2 एससीसी (क्रिमिनल) 226

11. बिशु सरकार एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2017) 11 एससीसी 105

12. चितरमल, मोती बनाम राजस्थान राज्य (2003) एआईआर एससी 796

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

1 राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. आपराधिक अपील संख्या 2916/2018 को एसटी संख्या 642/1996 (यूपी राज्य बनाम अल्लाउ और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश के खिलाफ प्राथमिकता दी गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 121/1996 से उत्पन्न हुआ था, श्री संतोष कुमार तिवारी, अपर सत्र न्यायाधीश -द्वितीय, आजमगढ़ द्वारा पारित किया गया था, जिसके द्वारा निचली अदालत ने आरोपी व्यक्तियों अर्थात् अल्लाउ को धारा 148 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया था। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास और 25,000/- रुपये के जुर्माना, धारा धारा 307/149 भारतीय दंड संहिता के तहत पांच साल के कठोर कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने का दोषी ठहराया; आरोपी सददीक को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के तहत 3,000 रुपये का जुर्माना, धारा 302/149 के तहत आजीवन कारावास और 25,000 रुपये का जुर्माना, धारा 307 के तहत पांच साल के सश्रम कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। आरोपी गुफरान को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के तहत 3,000 रुपये का

जुर्माना, भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के तहत आजीवन कारावास और 25,000 रुपये का जुर्माना, धारा 307/149 के तहत पांच साल के सश्रम कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। यह भी निर्देश दिया गया था कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. उपरोक्त तीन दोषियों में से अल्लाउ की मृत्यु हो चुकी है और आरोपी गुफरान और सददीक जीवित हैं और जमानत पर हैं।

4. चूंकि आरोपी अल्लाउ की मृत्यु हो गई है, इसलिए आपराधिक अपील संख्या 2010/2018 को दिनांक 11.01.2019 के आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया था।

5. अभियुक्त इशितयाक ने मुकदमा अपराध संख्या 121/1996 से उत्पन्न एसटी संख्या 642-ए/1996 (यूपी राज्य बनाम इशितयाक) में पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश के खिलाफ आपराधिक अपील संख्या 4700/2019 को तरजीह दी है, जिसमें मुकदमा अपराध संख्या 121/1996 से उत्पन्न श्री गौरव कुमार श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट), आजमगढ़ द्वारा आरोपी इशितयाक को धारा 148 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था। भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के तहत आजीवन कारावास और 25,000/- रुपये का जुर्माना, धारा 307/149 के तहत पांच वर्ष के सश्रम कारावास और 5,000/- रुपये जुर्माने के रूप में मृतक फौजदार की विधवा उर्मिला देवी को मुआवजे की राशि भी दी जानी है।

6. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता जगदीश पुत्र राम सिंगार हरिजन ने दिनांक 21.04.1996 को थाना कोतवाली देवगांव, जिला आजमगढ़ में एक लिखित शिकायत दर्ज कराई कि 21.06.1996 की रात लगभग 12:45 बजे अल्लाउ, इस्मिदार, गुफरान, इशितयाक, जाहिद और सददीक की अपने गांव के कल्पनाथ के साथ दुश्मनी है। देसी पिस्तौल और रिवाल्वर लेकर उसके दरवाजे पर पहुंचा और उसे जान से मारने के लिए उकसाया। इसी दौरान अल्लाउ ने अपने भाई फौजदार पर गोली चला दी जो उसे लग गई। चीख-पुकार सुनकर ग्रामीण नंदलाल, विक्रमा व अन्य ग्रामीण वहां पहुंच गए। तब तक सददीक ने उसे जान से मारने के इरादे से उस पर गोली चला दी, जिससे वह बाल-बाल बच गया। इस घटना को मौके पर मौजूद कई लोगों ने देखा। उन्हें गाली देते हुए आरोपी व्यक्ति वापस लौट गए थे। घायल फौजदार को चारपाई पर रखकर जब वह थाने आ रहा था तो रास्ते में ही बेहोश होकर गिर पड़ा (फौजदार ने बाद में दम तोड़ दिया)। इसलिए प्राथमिकी दर्ज की जाए और आवश्यक कार्रवाई की जाए।

7. उपरोक्त लिखित शिकायत के आधार पर अपराध संख्या 121/1996 में धारा 147, 148, 149, 302, 307, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (1) (एक्स), 3 (2) (वी) के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। जांच अधिकारी (आई.ओ.) ने बयान दर्ज किया, नक्शा नज़री और अन्य कागजात तैयार किए और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद आरोपी

अल्लाऊ, इस्मिदार, गुफरान, इशितयाक, जाहिद और सद्दीक के खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ ने संज्ञान लिया, अभियुक्त व्यक्तियों को अभियोजन के कागजात की प्रतियां प्रदान कीं और मामले को सत्र न्यायालय में ले गए। आरोप तय करने पर सुनवाई के बाद आरोपी अल्लाऊ को छोड़कर बाकी आरोपियों पर उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप लगाए गए। अल्लाऊ पर धारा 147, 307/149, 302 भारतीय दंड संहिता और धारा 3 (1) (एक्स), 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम के तहत आरोप लगाए गए थे।

8. मुकदमे के दौरान आरोपी जाहिद और इस्मिदार की मृत्यु हो गई और आरोपी इशितयाक फरार हो गया था, इसलिए, आरोपी जाहिद और इस्मिदार के संबंध में मामला समाप्त कर दिया गया था और आरोपी इशितयाक के संबंध में मामले को अलग कर दिया गया था, लेकिन बाद में जब उसे गिरफ्तार किया गया, तो उसका मुकदमा एसटी संख्या 642-ए/1996 (यूपी राज्य बनाम इशितयाक) के रूप में आयोजित किया गया था।

9. एसटी संख्या 642/1996 में अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की गई थी:-

|   |                 |                                    |
|---|-----------------|------------------------------------|
| 1 | पी. डब्ल्यू. -1 | जगदीश, शिकायतकर्ता                 |
| 2 | पी. डब्ल्यू. -2 | श्रीमती उर्मिला, पत्नी मृतक फौजदार |
| 3 | पी. डब्ल्यू. -3 | स्वामीनाथ                          |
| 4 | पी. डब्ल्यू. -4 | अनंत देव                           |
| 5 | पी. डब्ल्यू. -5 | अरविंद कुमार                       |
| 6 | पी. डब्ल्यू. -6 | गणेश                               |

10. एसटी संख्या 642/1996 में अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे: -

|    |                 |                                                                                            |
|----|-----------------|--------------------------------------------------------------------------------------------|
| 1  | प्रदर्श का - 1  | लिखित शिकायत                                                                               |
| 2  | प्रदर्श का - 2  | आरोप पत्र                                                                                  |
| 3  | प्रदर्श का - 3  | नक्शा नज़री                                                                                |
| 4  | प्रदर्श का - 4  | शवपरीक्षण रिपोर्ट                                                                          |
| 5  | प्रदर्श का - 5  | चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट                                                                    |
| 6  | प्रदर्श का - 6  | कार्बन कॉपी कायमी केस जीडी                                                                 |
| 7  | प्रदर्श का - 7  | फोटोनाश                                                                                    |
| 8  | प्रदर्श का - 8  | जांच रिपोर्ट                                                                               |
| 9  | प्रदर्श का - 9  | कथारी के खून से सने टुकड़े और विस्फोटक पदार्थ की रस्सी के अवशेषों के संबंध में रिकवरी मेमो |
| 10 | प्रदर्श का - 10 | नन्हे के घर का तलाशी ज़ापन                                                                 |
| 11 | प्रदर्श का - 11 | कमरुद्दीन के घर का तलाशी ज़ापन                                                             |
| 12 | प्रदर्श का - 12 | आरोपी सद्दीक के घर का तलाशी ज़ापन                                                          |
| 13 | प्रदर्श का - 13 | आरोपी अल्लाऊ के घर का तलाशी ज़ापन                                                          |
| 14 | प्रदर्श का - 14 | सगीर अहमद के घर का तलाशी ज़ापन                                                             |

11. सबूतों को बंद करने के बाद, आरोपी अल्लाऊ, सद्दीक और गुफरान के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया और आरोप लगाया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा झूठी गवाही दी गई थी। उन्होंने आगे कहा कि उनका खेत हरिजन बस्ती के पास था, जिसे अक्सर उनके द्वारा क्षतिग्रस्त कर दिया जाता था, जिसके

कारण नियमित रूप से विवाद होता था। वे गांव की पार्टी-बंदी के कारण फंस गए थे। आरोपियों ने बचाव में गवाहों से पूछताछ नहीं की, लेकिन सूची 343-बी से आरोप पत्र संख्या 344-बी/2 पेश किया।

**(i) अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों पर संक्षिप्त चर्चा-**

12. पीडब्ल्यू-1, सूचनादाता जगदीश ने गवाही दी है कि उसके भाई फौजदार की 21.06.1996 को रात लगभग 12:30 बजे हत्या कर दी गई थी। वह और उसका भाई पास में ही अलग-अलग चारपाई पर लेटे हुए थे। वह चारपाई पर लेटा हुआ था और पेशाब करने के बाद वह सोया नहीं था। 200 वाट का एक प्रबुद्ध बिजली का बल्ब था और पास के क्षेत्र में प्रकाश था। उसने देखा कि आरोपी अल्लाउ, इस्मिदार, सददीक, जाहिद, इशितयाक और गुफरान पूर्व की ओर से वहां आए थे। अल्लाउ, जाहिद, सददीक, इशितयाक और गुफरान के हाथों में देसी पिस्तौल थी। इस्मिदार के हाथ में रिवाल्वर थी। गवाहों ने अदालत में आरोपी अल्लाउ, इस्मिदार और सददीक को पहचान लिया और कहा कि ये लोग भी वहां आए थे और कहा था कि "बदमाश को मार डालो"। अल्लाउ ने पहले अपने भाई फौजदार पर तमंचे से गोली चलाई जब उन्होंने शोर मचाया तो उसकी मां और भाभी, उसके गांव के नंदलाल और विक्रम वहां पहुंच गए। सददीक ने उस पर पिस्टल से फायरिंग भी की थी लेकिन गोली उसे नहीं लग सकी। उनके घर की महिलाएं भी इस घटना की गवाह बनीं। आरोपी गाली-गलौज करते हुए और बम फेंककर दहशत फैलाने के लिए भाग गए। वे कुछ लोगों की मदद से

अपने घायल भाई को देवगांव पुलिस स्टेशन ले गए। चोट लगने के कारण उसका भाई रास्ते में बेहोश हो गया था। उनकी लिखित शिकायत प्रदर्श का-1 पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। उनके भाई फौजदार को थाने से सरकारी जीप में पीएचसी लालगंज भेजा गया। अपने भाई को अस्पताल छोड़ने के बाद वह गांव लौट आया। उनके गांव के शिव पूजन ने घर आकर सूचना दी कि उनके भाई की मौत हो गई है। आरोपी की अपने पड़ोसी कल्पनाथ से दुश्मनी है, जिसका घर उसके घर के दक्षिण में था।

13. आरोपियों ने कल्पनाथ को डंडो, लाठी आदि से बुरी तरह पीटा था। उन्होंने कल्पनाथ के समर्थन में बयान दिया था, इसलिए आरोपी उनसे नाराज थे। उनकी चारपाई के दक्षिण में फौजदार की चारपाई थी। उनके परिवार की महिलाएं पश्चिम दिशा में सोई थीं। उसके भाई की चारपाई पर खून लगा हुआ था। जांच अधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया था।

14. पीडब्ल्यू-2, श्रीमती उर्मिला ने गवाही दी है कि पांच साल पहले उनके पति की रात में लगभग 12:30 बजे हत्या कर दी गई थी। घटना के समय उसका पति, देवर, जगदीश और सास दिलराजी उसी स्थान पर बच्चों के साथ अगल-बगल सो रहे थे। तब तक पूर्व की ओर से अल्लाउ, गुफरान, इस्मिदार, सददीक और इशितयाक आ गए। अल्लाउ के हाथ में देसी पिस्तौल थी, इस्मिदार के पास रिवाल्वर थी। बाकी आरोपियों के हाथ में हथियार थे। आरोपी अल्लाउ ने उसके पति फौजदार की देसी पिस्तौल से हत्या कर दी। गोली उसे

लगी। बाकी आरोपी चिल्ला रहे थे और कह रहे थे कि को मार डालो। गवाह नंदलाल, विक्रम आदि वहां पहुंचे थे। आरोपी सददीक ने अपने बहनोई जगदीश को देसी पिस्तौल से गोली मार दी, लेकिन गोली नहीं लग पाने के कारण वह बच गया। उनके पति फौजदार को चारपाई पर देवगांव अस्पताल ले जाया गया। गोली लगने के कारण रास्ते में ही उसके पति ने दम तोड़ दिया। जांच अधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया था। वह अपने गांव के कल्पनाथ को जानती है। इस घटना से पहले उसके गांव के कल्पनाथ, आरोपी अल्लाउ और अन्य के बीच आपराधिक मामला चल रहा था। उस मामले में उसके बहनोई जगदीश ने आरोपियों के खिलाफ गवाही दी थी, इसी वजह से उन्होंने रंजिश पाल रखी थी।

15. पीडब्ल्यू-3, सकिल अधिकारी स्वामीनाथ, जांच अधिकारी सकिल लालगंज ने बयान दिया है कि उनसे पहले इस मामले की जांच उनके पूर्ववर्ती अनंत देव तिवारी ने की थी। उन्होंने पेपर संख्या 3 में आरोपी अल्लाउ का बयान दर्ज किया। पेपर संख्या 4 में उन्होंने पहले के बयान को देखा, जांच की नकल की और गवाहों नंद लाल, विक्रम, कल्पनाथ, मणिलाल, जनार्दन गौतम, श्रीमती उर्मिला और श्रीमती दिलराजी के बयान दर्ज किए। 29.06.1996 और 02.07.1996 को उन्होंने उप निरीक्षक सुरेश राय, कांस्टेबल गोविंद पांडे और हरिशंकर प्रसाद के बयान दर्ज किए थे। 05.07.1996 को उन्होंने डॉ. संजीव कुमार गुप्ता उप निरीक्षक सईद और आरोपी गुफरान, इश्तियाक और जाहिद के बयान दर्ज किए।

उन्होंने हेड कांस्टेबल राम सुध का बयान भी दर्ज किया था और आरोपियों के खिलाफ आरोप साबित होने के बाद, उन्होंने आरोपी अल्लाउ, इस्मिदार, गुफरान, इश्तियाक, जाहिद और सददीक के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 307, 302, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स), 3 (2) (वी) के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया था।

16. पीडब्ल्यू -4, अनंत देव, जांच अधिकारी ने बयान दिया है कि घटना के दिन वह सकिल अधिकारी लालगंज के रूप में तैनात थे जब कोतवाली देवगांव में उपरोक्त मामला दर्ज किया गया था। उन्होंने जांच शुरू की थी। उन्होंने पेपर संख्या 1 तैयार किया और चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट और धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत संशोधन की नकल की और चोट पत्र का समर्थन करने के बाद, वह सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, लालगंज पहुंचे और उप निरीक्षक मो. सईद से पूछताछ करने को कहा। मौके पर पहुंचने के बाद उन्होंने शिकायतकर्ता जगदीश का बयान दर्ज किया और उसकी निशानदेही पर घटना स्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री प्रदर्श का - 3 तैयार किया। उन्होंने पेपर संख्या 1ए में शिव पूजन, रामजीत और हरीश चंद्र के बयान भी दर्ज किए। घटना को लेकर लोगों ने सड़क पर जाम लगा दिया था। उन्हें समझाने के बाद, उन्होंने 22.06.1996 को आरोपी व्यक्तियों पर छापा मारा और आरोपी इस्मिदार और सददीक को गिरफ्तार कर लिया गया और उनके बयान दर्ज किए गए।

17. पीडब्ल्यू-5, अरविंद कुमार ने बयान दिया है कि वह 21.06.1996 के अपने रजिस्टर में दर्ज शव परिक्षण रिपोर्ट के साथ आए थे। पी.एम. संख्या 381/1996 को डॉ. संजीव कुमार के हाथ से लिखने और हस्ताक्षर में नोट किया जा रहा है, इसकी मूल जांच फाइल पर है। रजिस्टर की तुलना की गई और सही पाया गया जिस पर प्रदर्श का - 4 डाला गया था।

18. मृतक फौजदार के मृत शरीर का शव परीक्षण दिनांक 21.06.1996 को अपराह्न 03:15 बजे किया गया जिसमें बाहरी चोट 1 सेमी x 1 सेमी थी जिसमें बाएं ग्लूटियल क्षेत्र डीप एक्स कैविटी में मार्जिन उल्टा था। कोई कालापन या टैटू नहीं पाया गया। डॉक्टर को नीचे से एक गोली मिली थी। डॉक्टर की राय में मौत का कारण शरीर पर पोस्टमार्टम से पहले चोट और सदमे और रक्तस्राव भी था। इस प्रकार, इस गवाह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य दिए हैं।

19. पीडब्ल्यू -6, गणेश यादव ने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट और कायमी केस जीडी के बारे में द्वितीयक साक्ष्य दिए हैं जो कांस्टेबल मोहररि राम सुध द्वारा लिखे गए थे। उन्होंने कहा कि उन्होंने उन्हें पढ़ते-लिखते देखा है और वह उनके लेखन और हस्ताक्षर को अच्छी तरह पहचानते हैं। चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट और कायमी केस क्रमशः जीडी प्रदर्श का - 5 और प्रदर्श का - 6 उनके हाथ से लिखे और हस्ताक्षर में हैं। इस गवाह ने उप निरीक्षक सुरेश राम द्वारा तैयार की गई जांच के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य भी दिए हैं और गवाही दी है कि उसने उसे पढ़ते और लिखते हुए देखा है।

उन्होंने जांच और अन्य कागजात प्रदर्श का - 9 से प्रदर्श का - 14 को पहचाना और साबित किया।

20. जहां तक फरार आरोपी इशतियाक के मुकदमे का सवाल है, पीडब्ल्यू -1 से पीडब्ल्यू -5 के साक्ष्य दर्ज करने के बाद आरोपी इशतियाक फरार हो गया था और उसके आत्मसमर्पण के बाद आरोपी इशतियाक के संबंध में आगे की सुनवाई समाप्त हो गई थी। आरोपी इशतियाक ने अभियोजन पक्ष की कहानी, आरोपों और अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों से भी इनकार किया था और कहा था कि अभियोजन की कहानी झूठी है और गवाहों ने उसके खिलाफ झूठी गवाही दी है। आपराधिक मामला दुश्मनी के कारण शुरू किया गया है और बचाव में कोई भी सबूत जोड़ने से इनकार कर दिया। उन्होंने आगे खुद को निर्दोष बताया और कहा कि दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया।

21. दोनों निचली अदालतों ने निष्कर्ष निकाला कि सभी आरोपी व्यक्ति एक ही गांव के निवासी थे और वास्तव में गवाह उनके साथ अच्छी तरह से जानते थे और उन्हें जलते हुए बल्ब की रोशनी में कथित अपराध करने के लिए भी पहचाना गया था।

22. आपराधिक अपील संख्या 2916/2018 में आरोपी गुफरान और सददीक ने आधार लिया है कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के वजन के खिलाफ और कानून के खिलाफ है। आरोपियों ने न तो मृतक को

और न ही सूचना देने वाले को कोई चोट पहुंचाई है। अपीलकर्ताओं को दी गई सजा बहुत गंभीर है। इसलिए, अपील की अनुमति दी जाए और आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए।

23. आपराधिक अपील संख्या 4700/2019 में, आरोपी इशितयाक ने आधार लिया है कि अपीलकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि और सजा रिकॉर्ड पर सबूतों के प्रभाव के खिलाफ और कानून के खिलाफ है। आरोपी ने न तो मृतक को और न ही सूचना देने वाले को कोई चोट पहुंचाई है। अपीलकर्ता को दी गई सजा बहुत गंभीर है। अपीलकर्ता को बुरे और दुर्भावनापूर्ण मकसद के कारण झूठा फंसाया गया है। वह न तो पूर्व में दोषी है और न ही किसी आपराधिक मामले में वांछित है और न ही उसका कोई आपराधिक इतिहास है, सिवाय इसके कि वह झूठा और मनगढ़ंत मामला प्रतीत होता है। ट्रायल कोर्ट का फैसला और आदेश कानून की नजर में पोषणीय नहीं है। इसलिए, अपील को स्वीकार किया जाए और ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज दोषसिद्धि और सजा के आदेश को रद्द कर दिया जाए।

**(ii) निम्नलिखित मुद्दों पर योग्यता पर चर्चा-**

**(i) एफ.आई.आर.**

24. इस मामले में, नामजद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ घटना के तुरंत बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और इस प्रकार प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में कोई देरी या दोष नहीं है।

**(ii) उद्देश्य**

25. इस मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई मकसद नहीं बताया गया है, लेकिन धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान के दौरान और अदालत के समक्ष बयान में भी सभी गवाहों ने अपराध करने के पीछे मकसद बताया है कि इस घटना से पहले, आरोपी व्यक्तियों और पड़ोसी कल्पनाथ के बीच दुश्मनी थी, जो उनके समुदाय से संबंधित है। इससे पहले, आरोपी व्यक्तियों ने कल्पनाथ को डंडे और हॉकी आदि से बुरी तरह पीटा था, जिसके बारे में पीडब्ल्यू -1 ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गवाही दी थी, इसलिए, वे नाराज थे। आरोपी व्यक्तियों द्वारा धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में पूर्व दुश्मनी को भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार, यह साबित होता है कि पार्टियों के बीच दुश्मनी थी। दुश्मनी दोधारी हथियार है, यह अपराध करने का कारण हो सकता है और आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसाने का भी कारण हो सकता है, यह बाद में देखा जाना चाहिए कि यह घटना पूर्व दुश्मनी के कारण हुई थी या आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसाया गया था। इस संबंध में कानूनी प्रस्ताव नागराज बनाम राज्य, (2015) 4 एससीसी 739 में कहा गया है; वक्कर और अन्य बनाम यूपी राज्य, (2011) 3 एससीसी 306 और नथुनी यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1998) 9 एससीसी 238 में बताया गया है।

**(iii) आपराधिक मनःस्थिति (मंस रिया)**

26. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि पूर्व दुश्मनी के कारण आरोपी व्यक्तियों ने एक गैरकानूनी सभा बनाई थी और शिकायतकर्ता



की हत्या करने के लिए घातक हथियारों के साथ मौके पर पहुंचे थे, लेकिन उन्होंने मृतक को आसानी से निशाना बनाया। अपराध कानून के उल्लंघन से जुड़े समाज के लिए एक गलत है जिसके आपराधिक परिणाम जुड़े हुए हैं, यानी आपराधिक अदालत में राज्य द्वारा मुकदमा चलाना और गलत करने वाले को सजा दिए जाने की संभावना। अपराध की अवधारणा प्रकृति में गतिशील है और यह सामाजिक मानदंडों, मूल्यों और समाज में गलत मानव आचरण के बारे में धारणाओं में बदलाव के साथ बदलती रहती है। जैसे कि लिव-इन-रिलेशनशिप के मामले में।

27. अपराध के निम्नलिखित तत्व हैं:

- (i) कोई अति कृत्य (एक्टस) या चूक होनी चाहिए;
- (ii) यह आपराधिक इरादे से किया जाना चाहिए था (आपराधिक मनःस्थिति);
- (iii) कार्य या चूक, जैसा भी मामला हो, अपराधों के मौजूदा कानून के तहत निषिद्ध आचरण होना चाहिए; और
- (iv) इसमें दंड के रूप में किसी प्रकार की स्वीकृति होनी चाहिए।

28. जहां तक प्रत्यक्ष कृत्य या चूक का संबंध है, केवल इरादा या गलती अपने आप में अपराध नहीं माना जाएगा जब तक कि यह बाहरी कृत्य के साथ न हो। आपराधिक कानून न केवल अपराध करने वाले व्यक्ति को दंडित करने के लिए उत्तरदायी बनाता है, अपराध

करने का प्रयास भी धारा 511 और 307 भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध है।

29. जहां तक दूसरे तत्व का संबंध है, अपराध का एक अनिवार्य घटक है जो प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष या निहित हो सकता है। निहित मनःस्थिति को रचनात्मक मनःस्थिति के रूप में भी बदल दिया जाता है जो अपराधी पर पूर्ण दायित्व थोपता है। इस तथ्य के बावजूद कि क्या वह जानता था कि जो कर रहा था वह अपराध था या नहीं। उदाहरण के लिए, मिलावटी खाद्य या खाद्य पदार्थ बेचने वाले व्यक्ति को दोषी ठहराया जाएगा और यह कहते हुए बच नहीं सकता कि वास्तविक मिलावटखोर उसका मालिक था।

30. आपराधिक मनःस्थिति के संदर्भ में, इरादे और मकसद के बीच एक अंतर खींचा जाना चाहिए। मेन्स रिया का मतलब है दोषी मन। अपराधी के अपराध का फैसला करने में जो प्रासंगिक है वह विशेष कार्य यानी अपराध के साथ करने का इरादा है, न कि उस कार्य को करने के पीछे का मकसद। एक कार्य को अपराध के रूप में माना जाना चाहिए, मौजूदा दंड कानून के तहत निषिद्ध या व्रजित होना चाहिए।

31. एक सामान्य नियम के रूप में, एक आपराधिक मामले में सबूत का बोझ अभियोजन पक्ष पर होता है क्योंकि यह सिद्धांत है कि एक अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह दोषी साबित नहीं हो जाता। अपराध में अभियुक्त

की भागीदारी या संलिप्तता के बारे में किसी भी संदेह के मामले में, वह संदेह के लाभ का हकदार है और उसे आरोपमुक्त या बरी किया जा सकता है। जहां अपराध के दोषी होने की दो समान संभावनाएं उत्पन्न नहीं होती हैं, लाभ अभियुक्त को मिलेगा और उसे बरी कर दिया जाएगा।

32. सामान्य नियम यह है कि एक व्यक्ति को एक कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए और किसी और को दूसरे के कार्य के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है, लेकिन अपवाद हैं कि सामूहिक जिम्मेदारी के आधार पर अपराध में थोड़ा भाग लेने वाले किसी अन्य व्यक्ति को दंडित किया जा सकता है।

33. यहां, अभियोजन पक्ष का मामला है कि पूर्व दुश्मनी के कारण आरोपी व्यक्तियों ने एक गैरकानूनी सभा बनाई थी और शिकायतकर्ता की हत्या करने के लिए मौके पर पहुंचे थे, लेकिन उन्होंने मृतक को आसानी से निशाना बनाया।

#### (iv) जांच

34. इस मामले में घटना के ठीक बाद उचित समय के भीतर जांच की गई है। जांच के गवाहों ने यह भी कहा है कि कथित अपराध आरोपी व्यक्तियों द्वारा आग्नेयास्त्र द्वारा किया गया था। जांच के समय, प्रथम सूचना रिपोर्ट और चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति और मामले को धारा 302 भारतीय दंड संहिता में परिवर्तित करने के बाद जांच रिपोर्ट के साथ जांच अधिकारी द्वारा संशोधित परचा भी संलग्न किया गया था। जांच के बाद, शव को

शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया, जहां डॉ. संजीव कुमार गुप्ता द्वारा शव परीक्षण किया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श का -4 को पीडब्ल्यू-5, अरविंद कुमार, फार्मासिस्ट ने साबित कर दिया है।

35. शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मौत का कारण बंदूक की चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। शव के पास से एक गोली भी बरामद की गई है।

36. घटना स्थल का निरीक्षण करने के बाद, जांच अधिकारी ने नक्शा नज़री प्रदर्श का - 3 तैयार किया था जिसमें सभी प्रासंगिक तथ्यों को दिखाया गया है और उनका उल्लेख किया गया है। नक्शा नज़री के अनुसार, आरोपी व्यक्तियों ने उस खाट से सात कदम दूर, जगह-ए से गोली चलाई थी, जहां मृतक सोया था। आरोपी व्यक्ति उत्तर-पूर्व की ओर से आए थे और अपराध करने के बाद वे घटना स्थल से दक्षिण-पूर्व की ओर चले गए। साइट प्लान में किसी भी विसंगति के बारे में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई तर्क नहीं दिया गया है।

#### (v) साक्षी

37. संबंधी गवाह और इच्छुक गवाह: आपराधिक मुकदमे में गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में, अदालत को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधी गवाह की गवाही अन्यथा

विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को ऐसे संबंधी गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है। (देखें **भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537; धारी और अन्य बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2013 एससी 308**)।

38. **शत्रुतापूर्ण गवाह:** आरोपी के साथ गवाहों की दुश्मनी उनकी गवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं है और यदि उचित जांच पर, ऐसे गवाहों की गवाही विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है। हालांकि, अपराध में कुछ व्यक्तियों को गलत तरीके से शामिल करने या ऐसे गवाहों द्वारा कुछ अभियुक्तों की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की संभावना को ध्यान में रखा जाना चाहिए और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर पता लगाया जाना चाहिए। (देखें **दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 737; रमेश हरिजन बनाम यूपी राज्य, (2012) 5 एससीसी 777**)।

39. **स्वतंत्र गवाह और उनकी गैर-परीक्षा का प्रभाव:** यदि अदालत में परीक्षण किया गया गवाह अन्यथा विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है, तो उस गवाह द्वारा साबित किए जाने वाले तथ्य को और साबित करने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि अन्य गवाह उपलब्ध हो सकते हैं जिनसे पूछताछ की जा सकती थी लेकिन उनसे पूछताछ नहीं की गई थी। भौतिक गवाह की गैर-परीक्षा अभिलेख पर उपलब्ध गवाही के प्रभाव को त्यागने के लिए एक गणितीय सूत्र नहीं है, चाहे वह प्राकृतिक, भरोसेमंद और विश्वसनीय हो। यह स्थापित

कानून है कि चश्मदीद गवाहों से पूछताछ नहीं किए जाने को अभियोजन पक्ष के मामले को कलम से खारिज करने के लिए एक अनुष्ठानिक सूत्र की तरह सेवा में नहीं लगाया जा सकता है। अदालत एकमात्र गवाह के बयान पर एक अभियुक्त को दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह से पूछताछ न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होगा। (देखें: **मुकेश और एक अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ); साधु सरन सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2016) 4 एससीसी 357 और अवतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2012) 9 एससीसी 432**।

40. **जब स्वतंत्र गवाह अभियुक्त द्वारा जीत लिया जाता है:** स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों से पूछताछ न करना महत्वहीन है यदि गवाह को आरोपी द्वारा जीत लिया गया था या आतंकित किया गया था। (देखें **धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2010) 7 एससीसी 759; दलबीर कौर और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (1976) 4 एससीसी 158**)।

41. **लोक अभियोजक सभी गवाहों से पूछताछ करने के लिए बाध्य नहीं है:** दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 231, 311 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 114, 134 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने फैसला सुनाया था कि अभियोजन पक्ष को अपने सभी गवाहों से पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है। विवेकाधिकार अभियोजन पक्ष के पास है कि वह अपने मामले को साबित करने के लिए

गवाह बने या नहीं। अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष केवल तभी निकाला जा सकता है जब गवाह को रोकना परोक्ष उद्देश्य से हो। (देखें **भगवान जगन्नाथ मरकड (उपरोक्त); नंद कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2015) 1 एससीसी 776; रोहतास कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2013 सीआरएलजे 3183 एससी**)। इस प्रकार, अन्य गवाहों का परीक्षण न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है।

42. गवाह जब आंशिक रूप से विश्वसनीय और आंशिक रूप से अविश्वसनीय होते हैं: सिद्धांत "झूठ में झूठ, सर्वव्यापी में झूठ" भारत में लागू नहीं होता है। "एक में झूठा, सभी में झूठा" का सिद्धांत एक गवाह की गवाही के संबंध में लागू नहीं किया जा सकता है जो किसी विशेष तथ्य पर झूठ बोलते हुए पाया गया है और जिसकी गवाही का शेष हिस्सा अन्यथा सच्चा है। यहां तक कि अगर किसी गवाह के साक्ष्य का बड़ा हिस्सा कम पाया जाता है, लेकिन अवशेष अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त है, तो सह-अभियुक्तों की संख्या को बरी करने के बावजूद-दोषसिद्धि दर्ज की जा सकती है। (**मणि बनाम राज्य, 2009 (67) एससीसी 526 (एससी) देखें; कालेगुरा पद्मा राव और एक अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2007 एससी 1299; कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 2868**)।

43. गवाह की विश्वसनीयता का आकलन करने का तरीका: **लल्लू मांझी और एक अन्य बनाम झारखंड राज्य, एआईआर 2003 एससी 854**

में, उच्चतम न्यायालय ने गवाह की गवाही का आकलन करते समय ध्यान में रखने के लिए कुछ कारकों को निर्धारित किया है: "साक्ष्य के कानून में किसी दिए गए तथ्य के प्रमाण में गवाहों की किसी विशेष संख्या की जांच की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, एक ही गवाह की गवाही का सामना करते हुए, अदालत मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकती है, अर्थात् (i) पूरी तरह से विश्वसनीय, (ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय और (iii) न तो पूरी तरह से विश्वसनीय, न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। पहली दो श्रेणियों में एकल गवाह की गवाही को स्वीकार करने या त्यागने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। कठिनाई मामलों की तीसरी श्रेणी में उत्पन्न होती है। अदालत को सतर्क रहना होगा और किसी एक गवाह की गवाही पर कार्रवाई करने से पहले विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य द्वारा सामग्री विवरणों में पुष्टि की तलाश करनी होगी।

44. चश्मदीद गवाह और उनकी विश्वसनीयता का न्याय कैसे करें: यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अन्यथा भरोसेमंद और विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है और केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास दिखाई दिए हैं। यदि गवाही में विसंगतियां, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, अलंकरण और विसंगतियां केवल सामान्य हैं और प्रकृति में भौतिक नहीं हैं, तो एक प्रत्यक्षदर्शी की गवाही को स्वीकार किया जाना चाहिए और उस पर कार्रवाई की जानी चाहिए।

सामान्य विसंगतियों और भौतिक विसंगतियों के बीच अंतर यह है कि जबकि सामान्य विसंगतियां किसी पार्टी के मामले की विश्वसनीयता को कम नहीं करती हैं, भौतिक विसंगतियां ऐसा करती हैं। (देखें **अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) एससी 972 (एससी); डिंपल गुप्ता (नाबालिग) बनाम राजीव गुप्ता, एआईआर 2008 एससी 239**)।

45. यह एक रात की घटना है जो शिकायतकर्ता के घर पर हुई थी, इसलिए, पीडब्ल्यू -1 और 2 वास्तविक, सच्चे और प्राकृतिक गवाह हैं और उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है।

#### **(vi) प्रकाश का स्रोत**

46. आरोपी-अपीलकर्ताओं के अनुसार, लालगंज विद्युत् फीडर घटना के दस दिन पहले से काम नहीं कर रहा था। इस संबंध में बचाव पक्ष की ओर से लालगंज विद्युत् फीडर को सक्रिय नहीं किए जाने के संबंध में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है। हालांकि इस संबंध में एक सुझाव सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू -1 को दिया गया है, लेकिन पीडब्ल्यू -2 से इस संबंध में न तो कोई जिरह की गई है और न ही कोई सुझाव दिया गया है कि लालगंज विद्युत् फीडर उस समय काम नहीं कर रहा था। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह दलील केवल तर्क के लिए ली गई है और इसमें कोई दम नहीं है।

47. गवाहों द्वारा खराब रोशनी में, बिना रोशनी या अंधेरे में अभियुक्तों की पहचान: आपराधिक परीक्षणों में, बचाव पक्ष द्वारा

अक्सर तर्क दिया जाता है कि खराब प्रकाश, कोई प्रकाश या अंधेरे या रात के कारण, पीडब्ल्यू आरोपी की पहचान नहीं कर सकते थे। लेकिन नीचे दिए गए मामलों में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि एक गवाह, जो अंधेरे, खराब रोशनी या बिना रोशनी में रहने का आदी है, ऐसी स्थितियों में भी आरोपी की पहचान कर सकता है।

48. यह भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के तहत एक मुकदमा था। आरोपी पीडब्ल्यू के परिचित थे। यह घटना अमावस्या के दिन से दो दिन पहले लगभग 11:00 बजे हुई थी। पार्टियों को प्रकृति के बीच रहने रहने की आदी थीं और प्रकाश के बिना रहने के आदी थे। इसके अलावा, वे करीबी रिश्तेदार थे और पड़ोस की झोपड़ियों में रहते थे। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बचाव पक्ष की यह दलील कि प्रत्यक्षदर्शी घटना के गवाह नहीं हो सकते थे, को शीर्ष अदालत ने खारिज कर दिया और दोषसिद्धि को बरकरार रखा। (देखें **शिवराज बापूराय जाधव और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2003) 6 एससीसी 392**)।

49. यह एक हत्या का मुकदमा था। पीड़ित ने खुद प्रथम सूचना रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत बयान दिए थे और पुलिस स्टेशन से अस्पताल ले जाते समय रास्ते में उसकी मौत हो गई थी। यह घटना रात में लगभग 08:00 से 09:00 बजे हुई थी। पीड़िता और गवाहों ने रात में भी आरोपी को पहचान लिया था। आरोपी ने मृतक पर गोली चलाने से पहले उसे अपमानजनक शब्दों के साथ चुनौती दी थी।

पीड़िता और चश्मदीद गवाह जो घटना स्थल से लगभग 8 से 10 कदम की दूरी पर मौजूद थे, इसलिए उन्हें आरोपी की पहचान करने का पूरा मौका मिला। दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया। **(गुलाब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2003 (4) एसीसी 161 ऑल (डीबी) देखें।**

50. यह भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149, 201 के तहत एक आपराधिक मुकदमा था। घटना का स्थान मृतक का बरामदा था। कहा जाता है कि लालटेन (दो) घटना स्थल के पास बरामदे पर रखी और रोशनी की जाती थी। मृतक की मां, बहन और पड़ोसी ने चश्मदीद गवाह होने के नाते मुकदमे के दौरान बयान दिया था कि आरोपियों की इतनी खराब पहचान की गई है। निचली अदालत ने आरोपियों को दोषी ठहराया था। उच्चतम न्यायालय के समक्ष आरोपियों/अपीलकर्ताओं का तर्क यह था कि बरामदे (घटना के स्थान) पर रखी गई दो लालटेनों को न तो जलू किया गया था और न ही अदालत के समक्ष पेश किया गया था और यहां तक कि अगर यह माना जाता है कि लालटेन बरामदे के फर्श पर थे, तो लालटेन फर्श के पास अपनी रोशनी डाल सकते थे और, इसलिए, चश्मदीदगवाहों के लिए यह संभव नहीं था कि वे आरोपी व्यक्तियों को इतनी खराब रोशनी में पहचान सकें, भले ही घटना का स्थान बरामदा या आंगन हो। उच्चतम न्यायालय ने तर्क को खारिज कर दिया और कहा कि "चूंकि घटना गांव में हुई थी और ग्रामीणों की दृश्यता ऐसी रोशनी के लिए अनुकूलित है और चश्मदीद गवाहों के लिए इस तरह के प्रकाश में पुरुषों और मामलों की पहचान करना काफी संभव

होगा"। **(देखें राम गुलाम चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2001 (2) जेआईसी 986 एससी)।**

51. इस मामले में मृतक की हत्या आरोपी ने रात में मतदाता सूची और जाति प्रमाण पत्र की प्रतियां जारी करते समय कर दी थी और घटना स्थल के पास जलाए गए तूफान के दीपक को जलू नहीं किया गया था और जांच अधिकारी द्वारा पेश किया गया था। बचाव पक्ष का तर्क था कि प्रत्यक्षदर्शी आरोपी की पहचान नहीं कर सकते थे क्योंकि प्रकाश का एकमात्र स्रोत बताए जाने वाले लालटेन को अभियोजन पक्ष द्वारा अदालत में पेश नहीं किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने तर्क को खारिज करके दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए कहा कि यह वैध रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि मृतक को अपना काम करने में सक्षम बनाने के लिए प्रकाश का कोई स्रोत होगा। **(देखें बी सुब्बा राव बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, 1998 (1) जेआईसी 63 एससी)।**

52. "प्रतिदीप्त रोशनी के अनुकूल होने वाले शहरी लोगों की दृश्य क्षमता उन ग्रामीणों पर लागू होने वाला मानक नहीं है जिनकी प्रकाशीय क्षमता देश निर्मित लैंप के अनुकूल है। ग्रामीणों की दृश्यता ऐसी रोशनी के अनुकूल होती है और इसलिए उनके लिए ऐसी रोशनी में पुरुषों और मामलों की पहचान करना काफी संभव होगा। **(देखें कालिका तिवारी बनाम बिहार राज्य, जेटी 1997 (4) एससी 405)।**

53. जहां हत्या रात में हुई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रकाश के स्रोत का संकेत

नहीं दिया गया था और आरोपी और चश्मदीद गवाह निकटता से संबंधित थे, उच्चतम न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है। **(देखें यूपी राज्य बनाम शिव लाल, एआईआर 2009 एससी 1912)।**

54. जहां गवाह ने कहा था कि उसने स्कूटर हेड लाइट की रोशनी में हमला देखा था, यह माना गया है कि हमलावरों की पहचान करने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रकाश के स्रोत के बारे में संकेत की अनुपस्थिति किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष के बयान को प्रभावित नहीं करती है। **(देखें एस सुदर्शन रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2006 एससी 2716)।**

55. चांद रहित रात और जब जांच अधिकारी द्वारा टॉर्च को कब्जे में नहीं लिया गया: जहां हत्या एक चांदनी रात में हुई थी और प्रत्यक्षदर्शियों ने कहा था कि उन्होंने टॉर्च की रोशनी में आरोपियों की पहचान की थी, लेकिन मशाल को जांच अधिकारी द्वारा कब्जे में नहीं लिया गया था और दोनों पक्ष एक ही गांव के थे और एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते थे, यह माना गया है कि केवल इसलिए कि उप निरीक्षक द्वारा मशाल को कब्जे में नहीं लेने का मतलब यह नहीं होगा कि गवाह विश्वसनीय नहीं थे और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि उचित थी। **(देखें दुर्बल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 सीआरएलजे 1106 एससी)।**

56. उपर्युक्त के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रकाश था और चूंकि आरोपी व्यक्ति गवाहों से अच्छी तरह से परिचित थे, इस प्रकार, उन्हें घटना के स्थान पर सही ढंग से पहचाना गया था और उनकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

57. इस संबंध में, यह सामग्री है कि एक दलील दी गई है कि घटना की तारीख और समय पर आरोपी सददीक और जाहिद अपने घर पर मौजूद नहीं थे और गांव से बाहर थे, लेकिन इस संबंध में इन आरोपी व्यक्तियों द्वारा धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत या बचाव में उनकी जांच में न तो बयान दिया गया है और न ही सबूत दिया गया है। पीडब्ल्यू-2 की ओर से न तो इस तरह की जिरह की गई है और न ही पीडब्ल्यू-2 को इस संबंध में कोई सुझाव दिया गया है। इसलिए, इस अदालत का निष्कर्ष है कि यह तर्क कि तारीख और समय पर आरोपी सददीक और जाहिद उपस्थित नहीं थे, केवल बहस के लिए किया गया है और इसमें कोई सच्चाई नहीं है।

58. अपीलकर्ताओं की ओर से अपीलों में केवल एक तर्क दिया गया है कि अल्लाउ को छोड़कर किसी भी दोषी ने मृतक, शिकायतकर्ता पीडब्ल्यू -1 और 2 या मृतक के किसी अन्य परिवार के सदस्यों पर हमला नहीं किया था। इसलिए, उनकी भूमिका आरोपी अल्लाउ से अलग है।

59. इस मामले में आरोपी अल्लाऊ, जाहिद और इस्मिदार की मौत हो चुकी है। आरोपी गुफरान और सददीक ने एसटी संख्या

642/1996 में मुकदमे का सामना किया था, लेकिन आरोपी इशतियाक फरार हो गया था और वह वर्ष 2018 में लंबे अंतराल के बाद ही पेश हुआ था और उस पर एसटी संख्या 642-ए/1996 में अलग से मुकदमा चलाया गया था।

60. इस मामले में चूंकि आरोपी अल्लाउ की मृत्यु हो गई थी, इसलिए यह तर्क दिया गया है कि मृतक फौजदार पर उसके द्वारा कट्टा से हमला किया गया था, बाकी आरोपी व्यक्ति धारा 147, 148, 302/149 भारतीय दंड संहिता के तहत उत्तरदायी नहीं होंगे।

61. अभियोजन पक्ष के मामले और सबूतों के अनुसार आरोपी अल्लाउ ने कट्टा से फौजदार की हत्या की थी, आरोपी इस्मिदार के हाथ में रिवॉल्वर थी और आरोपी इशतियाक, गुफरान और सद्दीक के हाथों में कट्टा भी था। यह एक रात की घटना थी जो लगभग 12:30 बजे हुई थी जब अधिकांश ग्रामीण गहरी नींद में थे। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य और परिस्थितियों से, ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी व्यक्तियों ने विषम घंटों का चयन किया था ताकि शिकायतकर्ता की ओर से कोई या कम से कम प्रतिरोध का सामना न किया जा सके। उस समय लक्ष्य निष्क्रिय रहता है। अपराध के दौरान बम विस्फोट भी किया गया था और घटना स्थल पर रस्सी के रूप में बम के अवशेष भी पाए गए हैं लेकिन विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 और धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम के तहत कोई आरोप तय नहीं किए गए थे, यह चिंता का विषय है।

62. इस मामले में कथित अपराध करने का मकसद और पुरानी दुश्मनी भी साबित हुई है। मकसद के कारण, सबक देने और अपराध करने का इरादा भी साबित हो गया है। सभी आरोपी व्यक्ति घातक हथियारों से लैस थे और वे गैरकानूनी रूप से एकत्र होने के रूप में एक समूह में मौके पर आए थे और उन्हें पता था कि आपात स्थिति में इन घातक हथियारों का इस्तेमाल किया जाएगा। इस संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 141 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा जो निम्नानुसार है:-

**141. विधिविरुद्ध जमाव-** पांच या अधिक व्यक्तियों का जमाव "विधिविरुद्ध जमाव" कहा जाता है, यदि उन व्यक्तियों का, जिनसे वह जमाव गठित हुआ है, सामान्य उद्देश्य हो-

पहला [केंद्रीय सरकार को, या किसी राज्य सरकार को, या संसद को या, किसी राज्य के विधान-मंडल] को, या किसी लोक सेवक को, जब कि वह ऐसे लोक सेवक की विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग कर रहा हो, आपराधिक बल द्वारा, या आपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा, आतंकित करना, अथवा दूसरा-किसी विधि के, या किसी वैध आदेशिका के, निष्पादन का प्रतिरोध करना, अथवा तीसरा-किसी रिश्ते या आपराधिक अतिचार या अन्य अपराध का करना, अथवा चौथा- किसी व्यक्ति पर आपराधिक बल द्वारा या आपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा, किसी संपत्ति का कब्जा लेना या



अभिप्राप्त करना या किसी व्यक्ति को किसी मार्ग के अधिकार के उपभोग से, या जल का उपभोग करने के अधिकार या अन्य अमूर्त अधिकार से जिसका वह कब्जा रखता हो, या उपभोग करता हो, वंचित करना या किसी अधिकार या अनुमित अधिकार को प्रवर्तित कराना, अथवा पांचवां आपराधिक बल द्वारा या आपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा, किसी व्यक्ति को वह करने के लिए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो या उसका लोप करने के लिए, जिसे करने का वह वैध रूप से हकदार हो, विवश करना।

स्पष्टीकरण- कोई जमाव, जो इकट्ठा होते समय विधिविरुद्ध नहीं था, बाद को विधिविरुद्ध जमाव हो सकेगा।

63. भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के अनुसार एक गैरकानूनी सभा का गठन करने के लिए निम्नलिखित सामग्री आवश्यक हैं जो हैं: (i) पांच या अधिक व्यक्तियों का समूह; (ii) उनके पास एक सामान्य उद्देश्य होना चाहिए; और (iii) सामान्य वस्तु अनुभाग में निर्दिष्ट पांच में से एक होनी चाहिए।

64. गैरकानूनी सभा बनाने वाले व्यक्ति के पास सामान्य उद्देश्य होना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्या उनके पास शुरू से ही ऐसी सामान्य वस्तु थी जब वे एक साथ इकट्ठे हुए थे या उन्होंने इसे बाद के चरण में विकसित किया था जो उस समय भी हो सकता है जब अपराध किया जा रहा हो।

65. **मसाल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202** में यह माना गया है कि किसी सभा में किसी व्यक्ति की उपस्थिति उसे गैरकानूनी सभा का सदस्य नहीं बनाती है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि उसने कुछ ऐसा करने के लिए प्रतिबद्ध या छोड़ दिया था जो उसे गैरकानूनी सभा का सदस्य बना देगा या उसका मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 142 के तहत आता है।

66. **बिशंभर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1971 एससी 2381** में यह माना गया था कि सामान्य वस्तु कुछ ऐसी चीज है जो मन के संकाय से संबंधित है। इसलिए, सामान्य वस्तु को साबित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध नहीं हो सकता है। यह तथ्य का सवाल है कि मामले की परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। यह कहा जाना चाहिए कि गैरकानूनी सभा में किसी व्यक्ति की उपस्थिति उसे उस सभा का सदस्य नहीं बनाती है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि वहां उपस्थित रहते हुए, उसने कुछ कार्य या चूक की है जो उसे उस सभा का सदस्य बनाने के लिए पर्याप्त होगी। उदाहरण के लिए, जहां कोई व्यक्ति जिसे यह जानकारी है कि कुछ व्यक्ति गैरकानूनी कार्य करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, सभा में मौजूद रहता है, तो यह उसे उस गैरकानूनी सभा का सदस्य बना देगा और वह उस गैरकानूनी सभा के किसी भी अन्य सदस्य की तरह आपराधिक रूप से उत्तरदायी होगा।

67. **लालजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1989 एससी 754** में उच्चतम न्यायालय ने

कहा कि हालांकि गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को निर्धारित करने के लिए कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे सभा की प्रकृति, ले जाए गए और उपयोग किए गए हथियारों, घटना से पहले या बाद में विधानसभा के सदस्यों के व्यवहार और कृत्यों से यथोचित रूप से एकत्र किया जा सकता है। हथियारों या शस्त्रों का उपयोग करते समय सदस्यों द्वारा उपयोग किए जाने वाले इशारे और भाषा।

68. भारतीय दंड संहिता की धारा 142 निम्नानुसार है:-

**“142. विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना-** जो कोई उन तथ्यों से परिचित होते हुए, जो किसी जमाव को विधिविरुद्ध जमाव बनाते हैं, उस जमाव में साशय सम्मिलित होता है या उसमें बना रहता है, वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य है, यह कहा जाता है।”

69. बनवारी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1998 एससी 674 मामले में यह कहा गया है कि यही कारण है कि निष्क्रिय दर्शकों या उत्सुक दर्शकों को ऐसी सभा में उनकी उपस्थिति के बावजूद गैरकानूनी सभा का सदस्य नहीं माना जाता है क्योंकि वे उस सभा के सदस्यों के सामान्य उद्देश्य को साझा नहीं करते हैं।

70. इस न्यायालय के अनुसार, यह निर्णय दोषियों के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता

है। इस मामले में वे निष्क्रिय दर्शक या उत्सुक दर्शक नहीं थे क्योंकि वे आरोपी अल्लाउ के साथ अपने हाथों में घातक हथियार लेकर आए थे। अपना काम पूरा करने के बाद और संतुष्ट होने पर, वे शिकायतकर्ता पीडब्ल्यू -1 को मारने का प्रयास करते हुए, बम फेंककर और शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्यों को गाली देते हुए लौट आए।

71. किसी व्यक्ति को गैरकानूनी सभा के सदस्य के रूप में दंडित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी सभा के सदस्य ने कुछ अनुचित कार्य किया होगा, एकमात्र आवश्यकता यह है कि उसे ऐसी सभा के सामान्य उद्देश्य के बारे में जान होना चाहिए। यदि उसने ऐसा किया है, तो वह गैरकानूनी सभा का सदस्य होने के लिए दंडनीय होगा। (देखें युनिस @ करिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 1 एससीसी 425)।

72. भारतीय दंड संहिता की धारा 143, 144 और 146 निम्नानुसार पढ़ें: -

**“143. दंड-** जो कोई विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

**144. घातक आयुध से सज्जित होकर विधिविरुद्ध जमाव में सम्मिलित होना-** जो कोई किसी घातक आयुध से, या किसी ऐसी चीज से, जिससे

आक्रामक आयुध के रूप में उपयोग किए जाने पर मृत्यु कारित होनी संभाव्य है, सज्जित होते हुए किसी विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

X x x x x

**146. बल्वा करना-** जब कभी विधिविरुद्ध जमाव द्वारा या उसके किसी सदस्य द्वारा ऐसे जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में बल या हिंसा का प्रयोग किया जाता है, तब ऐसे जमाव का हर सदस्य बल्वा करने के अपराध का दोषी होगा।"

73. दंगा करने का अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के तहत दंडनीय है।

74. धारा 146 के आवश्यक तत्व हैं: -

"(1) गैरकानूनी सभा बनाने वाले पांच या अधिक व्यक्ति होने चाहिए;

(2) उन्हें एक सामान्य गैरकानूनी वस्तु द्वारा उत्तेजित किया जाना चाहिए था;

(3) गैरकानूनी सभा या ऐसी सभा के किसी भी सदस्य द्वारा बल या हिंसा का उपयोग किया जाना चाहिए; और

(4) जिस बल और हिंसा का उपयोग किया जाना चाहिए, वह उनके

सामान्य गैरकानूनी उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए होना चाहिए।

75. भारतीय दंड संहिता की धारा 147 निम्नानुसार है:-

"147. बल्वा करने के लिए दंड- जो कोई बल्वा करने का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

76. कीर्तन भुइयां बनाम उड़ीसा राज्य, एआईआर 1992 एससी 1579 में यह माना गया था कि आरोपी जो एक गैरकानूनी सभा का सदस्य था, ने मृतक की गर्दन पर चाकू से वार किया, जिससे उसकी एक महत्वपूर्ण रक्त-शिरा कट गई, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और धारा 149 के तहत दोषी ठहराया गया था, जबकि अन्य सदस्यों को धारा 147 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था। अपील पर, उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा और कहा कि हत्या करने वाले आरोपी को अन्य आरोपी व्यक्तियों से अलग किया गया था जो गैरकानूनी सभा के सदस्य थे।

77. भारतीय दंड संहिता की धारा 148 निम्नानुसार है:-

"148. घातक आयुध से सज्जित होकर बल्वा करना- जो कोई घातक

आयुध से, या किसी ऐसी चीज से, जिससे आक्रामक आयुध के रूप में उपयोग किए जाने पर मृत्यु कारित होनी संभाव्य हो, सज्जित होते हुए बल्वा करने का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

78. धारा 148 के तहत अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 146 में उल्लिखित दंगे का एक उग्र रूप है। इसलिए, यह उस व्यक्ति के लिए बड़ी हुई सजा का प्रावधान करता है जो दंगा करते समय घातक हथियार से लैस है। धारा 146 और 148 के बीच अंतर इस तथ्य में निहित है कि धारा 146 के तहत अपराध का गठन करने के लिए, "गैरकानूनी सभा" के सदस्यों को हथियार रखने की आवश्यकता नहीं है, जबकि धारा 148 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपित व्यक्ति को घातक हथियारों से लैस होना चाहिए।

79. धारा 146 दंगा करने के अपराध को परिभाषित करती है, धारा 147 दंगा करने के लिए सजा निर्धारित करती है और धारा 148 घातक हथियारों से लैस दंगा करने के अपराध के लिए सजा निर्धारित करती है।

80. जहां बल प्रयोग करने वाली विधिविरुद्ध सभा में, यदि अन्य लोगों के साथ केवल एक ही सदस्य घातक हथियार से लैस था, तो वह अकेले, न कि सभा के अन्य निहत्थे सदस्य, धारा 1481 के तहत दंड के लिए उत्तरदायी

होंगे और शेष सदस्य धारा 147 के तहत उत्तरदायी होंगे।

81. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम ठक्कियाराम रेड्डी, 1990 सीआरएलजे 2668 (एससी) में यह देखा गया कि दो समूहों के बीच कड़वी दुश्मनी थी। बदमाश घातक हथियारों के साथ पहुंचे और मृतक की हत्या करने के उद्देश्य से दरवाजा तोड़कर उसके घर में घुस गए। उन्होंने मृतक को उसके बेड रूम से घसीटकर घर के कोर्ट-यार्ड में ले गए और पीट-पीटकर उसकी हत्या कर दी। माना गया कि इस मामले में आरोपी धारा 302 के साथ धारा 148 के तहत उत्तरदायी थे क्योंकि उन सभी ने मृतक की मौत का कारण बनने के सामान्य उद्देश्य के साथ एक गैरकानूनी सभा बनाई थी।

82. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 निम्नानुसार है:-

**"149. विधिविरुद्ध जमाव का हर सदस्य, सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए किए गए अपराध का दोषी-** यदि विधिविरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा उस जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में अपराध किया जाता है, या कोई ऐसा अपराध किया जाता है, जिसका किया जाना उस जमाव के सदस्य उस उद्देश्य को अग्रसर करने में सम्भाव्य जानते थे, तो हर व्यक्ति, जो उस अपराध के किए जाने के समय उस जमाव का सदस्य है, उस अपराध का दोषी होगा।"

83. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के तहत अपराध के तत्व हैं: -

*"(1) गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य द्वारा अपराध करना;*

*(2) ऐसा अपराध सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया गया होगा; या ऐसा होना चाहिए जैसा कि सभा के सदस्यों को पता था कि वे प्रतिबद्ध होने की संभावना रखते हैं।"*

84. धारा 149 की प्रकृति, दायरे और उद्देश्य की व्याख्या करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने **वीनूभाई रणछोड़भाई पटेल बनाम राजीवभाई दुदाभाई पटेल और अन्य, (2018) 7 एससीसी 743 (744)** में कहा कि यह धारा समाज की शांति बनाए रखने और अपराधियों को इस आधार पर दंडमुक्ति का दावा करने से रोकने के लिए व्यापक जनहित में विचार करती है कि गैरकानूनी सभा के सदस्य के रूप में उनकी गतिविधि सीमित थी। यह दो आकस्मिकताओं में यह घोषणा करके परोक्ष दायित्व प्रतिपादित करता है कि यदि गैरकानूनी सभा का सदस्य गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में अपराध करता है, तो प्रत्येक सदस्य गैरकानूनी सभा के अन्य सदस्यों द्वारा किए गए अपराध का दोषी होगा और यहां तक कि उन मामलों में भी जहां कुछ सदस्य विशेष अपराध करने के लिए सामान्य उद्देश्य साझा नहीं करते हैं, लेकिन यदि उन्हें इस तथ्य का ज्ञान था कि विधानसभा के कुछ अन्य सदस्यों द्वारा उस विशेष अपराध को करने की संभावना है। सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने

में, वे उत्तरदायी होंगे। यह ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 149 एक अलग अपराध नहीं बनाती है, लेकिन केवल कुछ परिस्थितियों में गैरकानूनी सभा के सदस्यों के परोक्ष दायित्व की घोषणा करती है।

85. **गंगाधर बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, 2003 दंड प्रक्रिया संहिता 41 (एससी)** में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि धारा में प्रयुक्त "सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में" शब्द का अर्थ "सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए" सख्ती से लगाया जाना चाहिए। धारा 149 के दूसरे भाग में प्रयुक्त शब्द "ज्ञात" केवल एक संभावना से अधिक है और यह "ज्ञात हो सकता है" अभिव्यक्ति से भी अलग है।

86. **मसाल्टी** (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह भी माना कि वास्तव में, धारा 149 यह स्पष्ट करती है कि यदि उस सभा के किसी सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में गैरकानूनी सभा के किसी सदस्य द्वारा अपराध किया जाता है, या जैसे कि उस सभा के सदस्यों को उस उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए किए जाने की संभावना थी, प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अपराध को करने के समय, उसी सभा का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है; और यह इस सिद्धांत को जोरदार ढंग से सामने लाता है कि धारा 149 के तहत निर्धारित सजा एक अर्थ में परोक्ष है और हमेशा इस आधार पर आगे नहीं बढ़ती है कि अपराध वास्तव में गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य द्वारा किया गया है।

87. **अशर्फीलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1987 एससी 721** मामले में यह माना गया था कि दो निर्दोष छोटी लड़कियों को आरोपी व्यक्तियों द्वारा वीभत्स तरीके से मार दिया गया था ताकि उनकी मां को सबक सिखाया जा सके, जिनके साथ आरोपी का कुछ संपत्ति विवाद था। हत्या करने वाले दल के हर सदस्य को समान रूप से दोषी ठहराया गया और मौत की सजा सुनाई गई, यह दुर्लभतम मामला है।

88. **महाराष्ट्र राज्य बनाम काशीराव, 2003 दंड प्रक्रिया संहिता 4464 एससी** मामले में उच्चतम न्यायालय ने दोहराया कि धारा 149 के तहत गैरकानूनी सभा के सदस्य को दोषी ठहराने के लिए सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में एक कठोर कार्य करना बिल्कुल भी आवश्यक शर्त नहीं है। एकमात्र आवश्यकता यह है कि उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि सभा गैरकानूनी थी और एक ऐसा कार्य करने की संभावना थी जो एक सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में धारा 141 के दायरे में आता था।

89. **अलाउद्दीन मियां बनाम बिहार राज्य, (2007) 9 एससीसी 791** में उच्चतम न्यायालय ने धारा 149 के तहत परोक्ष दायित्व बनाए जाने पर सिद्धांत निर्धारित किया है। गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य पर परोक्ष दायित्व को बांधने के लिए, अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि अपराध का गठन करने वाला कार्य उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया गया था या किया गया कार्य ऐसा है कि उस सभा के सदस्य को उस

सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना थी। फिर, गैरकानूनी सभा का प्रत्येक सदस्य उस सभा के किसी अन्य सदस्य के आपराधिक कृत्य/कृत्यों के लिए धारा 149 के तहत खुद को उत्तरदायी ठहराएगा, बशर्ते कि ऐसा सामान्य उद्देश्य या इस तरह के अभियोजन में किया गया हो कि प्रत्येक सदस्य संभवतः प्रतिबद्ध था।

90. **भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2002 एससी 1621** मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि धारा 149 के तहत 'सामान्य उद्देश्य' के लिए हमला करने के लिए पूर्व संगीत कार्यक्रम या समझौता / सहमति बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। आमतौर पर यह महसूस किया जाता है कि जब सशस्त्र व्यक्तियों के एक समूह द्वारा घातक हमला किया जाता है, तो व्यक्तिगत सदस्य की भूमिका का आकलन करना मुश्किल होता है। इसलिए, उन्हें धारा 149 के तहत दोषी ठहराने के लिए यह साबित करना पर्याप्त है कि इस तरह की गैरकानूनी सभा के सभी सदस्यों का एक सामान्य उद्देश्य था और उनमें से प्रत्येक को इस तरह के हमले की जानकारी थी, हालांकि वे सभी आवश्यक रूप से हथियारों से लैस नहीं हो सकते हैं।

91. **यूनस बनाम एमपी राज्य, 2003 दंड प्रक्रिया संहिता 817 (एससी)** में उच्चतम न्यायालय ने फैसला सुनाया कि जहां यह साबित हो गया है कि आरोपी गैरकानूनी सभा का सदस्य था और घटना स्थल पर मौजूद था, उसे धारा 149 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है, हालांकि उसने सामान्य उद्देश्य के

अभियोजन में कोई कृत्य नहीं किया होगा। इसी तरह का विचार उच्चतम न्यायालय ने **रामविलास सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1969 एससी 1593** में व्यक्त किया था, जिसमें यह कहा गया था कि गैरकानूनी सभा के एक या अधिक सदस्यों द्वारा किए गए अपराध को सभी सदस्यों द्वारा किया गया माना जाएगा, बशर्ते अभियोजन पक्ष द्वारा सामान्य उद्देश्य के बारे में उनका ज्ञान साबित हो।

92. इसके विपरीत अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने **सुनील बालकृष्ण भोईर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 226** पर भरोसा किया, जिसमें सभी आरोपी व्यक्ति कथित तौर पर शाम लगभग 07:30 बजे मौके पर आए। आरोपी संख्या 1 ने मृतक रामदास से सोने का पेंडेंट मांगा, जो पक्षों के बीच विवाद का विषय था और इस संबंध में झगड़ा हुआ था। बताया जाता है कि मृतक ने इसके जवाब में कहा कि उसने उक्त सोने का टुकड़ा पंचपखाड़ी क्षेत्र के कुछ लोगों को लौटा दिया था। उस समय आरोपी संख्या 2 ने कथित तौर पर मृतक की शर्ट पकड़ ली, आरोपी संख्या 2 और मृतक के बीच हाथापाई हुई। आरोपी संख्या 1 की पत्नी के साथ पीडब्ल्यू-1 ने हस्तक्षेप किया और उन्हें अलग किया। घटना की कोई रिपोर्ट पुलिस ने स्वीकार नहीं की और पुलिस ने दोनों पक्षों को शांत करने का निर्देश दिया और उन्हें वापस भेज दिया। इसके बाद पीडब्ल्यू-1 मृतक के घर आया और रात करीब 09:00 बजे दोनों वापस मृतक के घर आ गए। रामदास ने रात का खाना खाने की इच्छा व्यक्त की और पीडब्ल्यू -1 से अपने स्थान पर

इंतजार करने का अनुरोध किया, जिसके बाद उसने शिकायतकर्ता के घर जाने का वादा किया। उस समय पीडब्ल्यू-1 ने 6-7 लोगों को अपने घर की ओर आते देखा। आरोपी संख्या 2 के हाथ में चाकू था और आरोपी संख्या 3 से 6 के हाथों में तलवारें थीं। पीडब्ल्यू -1 को मृतक को फोन करने के लिए कहा गया था, जिस पर उसने जवाब दिया कि वह अपना रात का खाना ले रहा है, और वे अपना भोजन समाप्त करने के बाद उससे बात कर सकते हैं। इसके बाद आरोपी संख्या 3 ने कथित तौर पर उसके कंधे पर तलवार से हमला किया, जिसके बाद आरोपी मृतक के घर में घुस गया। मृतक के पीडब्ल्यू -5 पिता बाबूराव ने उनका विरोध करने की कोशिश की और इस प्रक्रिया में, तलवार को पकड़ लिया जो आरोपी संख्या 6 के हाथ में थी, जिसके परिणामस्वरूप रक्तस्राव की चोट आई। आरोपी कथित तौर पर कमरे में घुस गया। मृतक पर लात-धूसों से हमला किया गया था। आरोपी संख्या 2 अनिल म्हात्रे ने मृतक रामदास पर चाकू से वार कर दिया।

93. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के पैरा -24 का उल्लेख किया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा था: -

*"24. उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षाओं को लागू करते हुए, हमारी राय है कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था कि वे धारा 302/149 के तहत अपराध करने के दोषी हैं। हम मान लेंगे कि वे भारतीय दंड*

संहिता की धारा 452 के तहत दोषी थे, लेकिन वे पर्याप्त लंबे समय तक हिरासत में रहे हैं। इसलिए हमारी राय है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इन अपीलों को स्वीकार किया जाना चाहिए। यहां अपीलकर्ता हिरासत में हैं। उन्हें कुछ अन्य अपराधों के संबंध में स्वतंत्रता पर सेट करने का निर्देश दिया जाता है। अपीलों को स्वीकार किया जाता है और लगाए गए फैसले को रद्द किया जाता है।

अपीलकर्ताओं में से किसी ने भी किसी भी हथियार से कोई झटका नहीं दिया है और उन्होंने केवल हाथापाई में भाग लिया था। पीडब्ल्यू -2 और 5 के अनुसार, वर्तमान अपीलकर्ताओं ने राजू बोस को पकड़ लिया था। लेकिन रिकॉर्ड से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या इस तरह के कृत्य का उद्देश्य आरोपी संख्या 1 को घातक प्रहार से निपटने में सक्षम बनाना था। पीडब्ल्यू-3 इस पहलू पर पूरी तरह से चुप था। इसलिए, संदेह का लाभ देते हुए अपील की अनुमति दी गई और अपीलकर्ताओं को बरी कर दिया गया।

94. इस मामले में आरोपी को सिर्फ धारा 452 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था।

95. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने बिशु सरकार और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2017) 11 एससीसी 105 में फैसले पर भी भरोसा किया है, जो धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता के तहत एक मामला था जिसमें अपीलकर्ताओं को धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था और सजा सुनाई गई थी। इस मामले में यह स्थापित किया गया है कि किसी भी अपीलकर्ता ने हथियार से कोई झटका नहीं दिया। हालांकि उन्होंने हाथापाई में भाग लिया, इसलिए, संदेह का लाभ देते हुए उन्हें धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप से बरी कर दिया गया। यह माना गया कि सबूतों के आधार पर आरोपी संख्या 1 घातक चोट का लेखक था और उसके कहने पर अपील खारिज कर दी गई है। शीर्ष अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि

96. इस न्यायालय के अनुसार, यह धारा 149 भारतीय दंड संहिता के तहत गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य द्वारा ऐसी सभा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया मामला नहीं था। चित्तमाल, मोती बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 2003 एससी 796 में उच्चतम न्यायालय द्वारा परिभाषित सामान्य आशय और सामान्य उद्देश्य के बीच अंतर है जो निम्नानुसार है: -

"यह निर्णयों की एक श्रेणी द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है कि धारा 34 के साथ-साथ धारा 149 रचनात्मक आपराधिकता के लिए दायित्व से संबंधित है यानी दूसरों के कृत्यों के लिए किसी व्यक्ति की परीक्षा देता। ये धाराएं उन व्यक्तियों के संयोजन से संबंधित हैं जो किसी अपराध में हिस्सेदार के रूप में दंडनीय हो जाते हैं। इस प्रकार उनकी एक निश्चित समानता है और कुछ हद



तक ओवरलैप हो सकती है, लेकिन दोनों के बीच स्पष्ट अंतर है।

अंतर संक्षेप में निम्नानुसार कहा जा सकता है:-

सामान्य इरादा सहवादन में कार्रवाई को दर्शाता है और आवश्यक रूप से एक पूर्व-व्यवस्थित योजना के अस्तित्व को दर्शाता है जो मन की पूर्व बैठक को दर्शाता है, जबकि सामान्य वस्तु को मन की पूर्व सम्मिलन या पूर्व-सहवादन के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। दोनों धाराओं के बीच पर्याप्त अंतर होने के बावजूद, वे कुछ हद तक आदिव्यापन भी होते हैं और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्धारित किया जाने वाला सवाल है कि क्या धारा 149 के तहत आरोप धारा 34 द्वारा कवर किए गए आधार को ओवरलैप करता है। इस प्रकार, यदि पांच या उससे अधिक की संख्या वाले कई व्यक्ति कोई कार्य करते हैं और ऐसा करने का इरादा रखते हैं, तो धारा 34 और धारा 149 दोनों लागू हो सकती हैं... हालांकि, धारा 149 की गैर-प्रयोज्यता भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के साथ धारा 34 के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में कोई बाधा नहीं है, अगर सबूत उनके सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए अपराध करने का खुलासा करते हैं।

97. उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई इन टिप्पणियों के आधार पर सामान्य आशय (धारा 34) और सामान्य उद्देश्य (धारा 149) के बीच

1. यद्यपि दोनों धाराएं संयुक्त रचनात्मक दायित्व से संबंधित हैं, धारा 34 के प्रावधान धारा 149 की तुलना में अधिक व्यापक हैं।

2. धारा 149 लागू होने के लिए, कम से कम पांच व्यक्तियों की सभा की आवश्यकता होती है, जबकि धारा 34 के मामले में यह संख्या न्यूनतम दो है।

3. धारा 34 किसी विशेष इरादे को निर्दिष्ट नहीं करती है, यानी यह कोई इरादा हो सकता है, लेकिन धारा 149 केवल उन मामलों पर लागू होती है जहां 'सामान्य वस्तु' धारा 141 भारतीय दंड संहिता में निर्दिष्ट लोगों में से एक है।

4. धारा 34 सामान्य इरादे से वास्तविक रूप से आपराधिक कृत्य (यानी, अपराध) करने पर जोर नहीं देती है, लेकिन धारा 149 की प्रयोज्यता के लिए अपराध वह होना चाहिए जिसे गैरकानूनी सभा के सदस्य को पता था कि सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में होने की संभावना है।

5. धारा 34 केवल साक्ष्य का एक नियम है, लेकिन कोई विशिष्ट अपराध नहीं बनाता है, जबकि धारा 149 एक विशिष्ट अपराध बनाती है। इस बिंदु पर टिप्पणी करते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति बेग (जो बाद में भारत के

मुख्य न्यायाधीश बने) ने कहा कि धारा संयुक्त आपराधिक दायित्व से संबंधित केवल एक घोषणाकर्ता प्रावधान का प्रतीक है, जबकि धारा 149 एक विशिष्ट विशिष्ट अपराध की परिकल्पना करती है।

6. अंत में, धारा 34 की प्रयोज्यता के लिए इस खंड के घटक के भौतिक और मानसिक दोनों पहलुओं पर विचार करने की आवश्यकता है। इसके विपरीत, धारा 149 केवल मानसिक तत्व पर जोर नहीं देती है और इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि गैरकानूनी सभा के सदस्य ने वास्तव में अपराध में भाग लिया होगा।

7. धारा 149 के तहत आरोपित व्यक्ति की दोषसिद्धि को ऐसे मामले में धारा 34 भारतीय दंड संहिता में से एक में बदला जा सकता है जहां गैरकानूनी सभा (धारा 141 के तहत निर्दिष्ट) का अस्तित्व साबित नहीं होता है, लेकिन इसके विपरीत नहीं।

98. इसके विपरीत एजीए ने **इकबाल और एक अन्य बनाम यूपी राज्य, (2017) 11 एससीसी 93** में फैसले पर भरोसा किया, जिसमें **लालजी** (उपरोक्त) में फैसले का उल्लेख करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा:-

"11. इस मामले में यह मानने के बाद कि अपीलकर्ताओं ने हिंसा का सहारा लेने के सामान्य उद्देश्य के साथ खतरनाक हथियारों के साथ एक गैरकानूनी सभा का गठन किया (जैसा

कि आरोप में वर्णित है) उच्च न्यायालय के लिए कुछ सदस्यों को इस आधार पर बरी करने का विकल्प नहीं था कि उन्होंने स्वयं कोई हिंसक कार्य नहीं किया, या कि उनकी भागीदारी की कोई पुष्टि नहीं हुई थी। दूसरे शब्दों में, यह मानते हुए कि उन्होंने एक गैरकानूनी सभा का गठन किया और धारा 149 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध किया, उच्च न्यायालय ने यह जांचने में गलती की कि किन सदस्यों ने केवल सक्रिय रूप से भाग लिया और उन लोगों को बरी कर दिया, जिन्होंने अदालत के अनुसार भाग नहीं लिया। ऐसा करना भारतीय दंड संहिता की धारा 149 द्वारा बनाए गए अपराध की प्रकृति और सार को भूलने के समान होगा। अयोग्य मामलों में अदालत आपराधिक न्याय के प्रशासन में धर्मार्थ होने का जोखिम नहीं उठा सकती है जो समाज में शांति और व्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

99. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत न्यायिक निर्णय लागू होंगे या विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए उपरोक्त न्यायिक उदाहरण मामले पर लागू होंगे, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में देखा जाना चाहिए।

100. इस मामले में यह साबित हो गया है कि दोषी अपीलकर्ताओं और शिकायतकर्ता, उसके परिवार के सदस्यों और उसके पड़ोसी कल्पनाथ

के बीच पूर्व दुश्मनी थी। कल्पनाथ पर पहले आरोपी व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया था, जिसमें शिकायतकर्ता गवाहों में से एक था। चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए, मकसद का कोई महत्व नहीं है।

101. इस मामले में, यह साबित हो गया है कि दोषी अपीलकर्ताओं ने विषम घंटे (रात का समय) चुना था जब शिकायतकर्ता और उसका परिवार निश्चित रूप से सो रहा होगा और गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को आसानी से प्राप्त किया जा सकता था। इस मामले में सभी आरोपी व्यक्ति कट्टा, रिवाल्वर और बम से लैस थे। वे जानते थे कि आरोपी अल्लाउ, जिसकी गोली मारकर मृतक की हत्या कर दी गई थी, के पास एक घातक हथियार था जिसका उपयोग वह गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए करेगा। इसके अलावा, उन्होंने एक-दूसरे को शिकायतकर्ता पक्ष के परिवार के सदस्य/सदस्यों को मारने के लिए भी उकसाया। पीडब्ल्यू-1 के साक्ष्यों से यह साबित हो चुका है कि मृतक को मारने के बाद आरोपी सददीक ने उस पर गोली चलाई थी लेकिन वह फरार हो गया था। यह भी साबित हो गया है कि सभी आरोपी व्यक्ति मृतक के पूरे परिवार के सदस्यों को "चमरिया" कहकर गाली दे रहे थे। यह भी साबित हो चुका है कि एक आरोपी जाहिद ने मौके पर बम विस्फोट किया था और मौके से रस्सी के आकार के अवशेष बरामद किए गए थे, तब भी विस्फोटक पदार्थ अधिनियम का कोई आवेदन नहीं किया गया था। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से, यह साबित हो गया है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, शिकायतकर्ता और उसके

परिवार के सदस्य खुद का बचाव करने की स्थिति में नहीं थे।

102. उपर्युक्त के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि कथित अपराध दोषी अपीलकर्ताओं द्वारा सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए गैरकानूनी सभा के सदस्य होने के नाते किया गया था और वे घटना स्थल से तभी निकले जब आसपास के अन्य व्यक्ति पहुंचे और हस्तक्षेप किया और उन्होंने सोचा कि उनके खिलाफ कोई काउंटर भी किया जा सकता है। घटना के बाद भी वे मौके से नहीं भागे बल्कि वे शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को गाली देते हुए मौके से चले गए।

103. उपरोक्त के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि निचली अदालत ने सभी अभियुक्त व्यक्तियों को धारा 148, 307 के साथ धारा 149, 302 के साथ धारा 149 भारतीय दंड संहिता के तहत सही तरीके से दोषी ठहराया है, इसलिए, अपीलों में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपीलों में कोई दम नहीं है और इन्हें खारिज किया जा सकता है।

104. तदनुसार, इन आपराधिक अपीलों को खारिज किया जाता है।

105. आरोपी अपीलकर्ताओं, गुफ़रान और सददीक को हिरासत में लिया जाए। उन्हें सजा काटने के लिए जेल भेजा जाएगा और उस पर लगाए गए जुर्माने को भी जमा करना होगा।

106. अधीनस्थ अदालत के रिकॉर्ड को इस फैसले की एक प्रति के साथ अनुपालन और प्रेषण के लिए अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, आजमगढ़ की अदालत में वापस भेजा जाए।

-----

**(2023) 9 ILRA 95**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर**

**माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा**

**आपराधिक अपील संख्या 5776 वर्ष 2017**

**अश्विनी शर्मा एवं एक अन्य ....अपीलार्थीगण  
बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य ....प्रतिवादी**

**अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:**

श्री विकास शर्मा, श्री अनिल कुमार दुबे, श्री अनुराग पाठक, श्री बेद प्रकाश राय, श्री चंद्रभान दुबे, श्री गरुण पाल सिंह, श्री हर्षित पाठक

**प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता, श्री प्रदीप कुमार राय, श्री सौरभ त्रिवेदी

**(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973**

**- धारा 313 - भारतीय दंड संहिता, 1860**

**- धारा 34, 299, 300, 302, 304, 304-**

**I एवं 304-II :- अपील - दोषसिद्धि और**

**दंडादेश के विरुद्ध - प्र.सू.रि.- आरोप**

**लगाया गया कि, घटना तब हुई, जब**

सूचक के भाई को तीन लड़कों और उनके पिता (अपीलार्थी संख्या 1) ने पीटा, जिससे उसकी मौत हो गई - हत्या का अपराध - अन्वेषण- भा.दं.सं. की धारा 302/34 के अंतर्गत आरोप पत्र - अपीलार्थी के दो अभियुक्त बेटे नाबालिग थे, इसलिए उनका मामला सुपुर्द नहीं किया गया - दोषसिद्धि और दंडादेश - साक्ष्य का मूल्यांकन और दंडादेश की मात्रा - न्यायालय ने पाया कि - प्र.सू.रि. दर्ज करने में कोई अनुचित या अयुक्तियुक्त विलंब नहीं हुई थी, -साक्षियों में सूचना देने वाला, मृतक की पत्नी और एक स्वतंत्र साक्षी शामिल थे और मेडिकल जांच में मृतक के शरीर पर कई चोटें पाई गईं, - किसी भी साक्ष्य से मौत का हेतुक स्पष्ट नहीं हुआ - हालांकि, मौत पूर्व नियोजित नहीं थी और यह निष्कर्ष निकाला गया कि अपराध गैर इरादतन हत्या था, जो भा.दं.सं. की धारा 304 भाग-I के अंतर्गत दंडनीय है - इसलिए, न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी के दंडादेश को भा.दं.सं. की धारा 302 से भा.दं.सं. की धारा 304-भाग-I में बदल दिया - दंडादेश को पहले से बिताई गई अवधि तक कम कर दिया गया है और जुर्माना कारावास से रिहाई के चार सप्ताह के भीतर जमा किया जाना है - तदनुसार, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (पैरा - 12, 13, 15, 28, 29)

**अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।  
(ई-11)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. निर्मला देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2023 आईएनएससी 662,
  2. खोकन उर्फ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 लॉ सूट (एससी) 80,
  3. प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529,
  4. परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी 238,
  5. तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250 में प्रतिवेदित,
  6. बी.एन. कवाटकर और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्लिमेंट (1) एससीसी 304 में प्रतिवेदित,
  7. वीरन एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णीत, (2011) 5 एससीआर 300,
  8. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926],
  9. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257],
  10. रावदा शशिकला बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य एआईआर 2017 एससी 1166,
  11. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 एससीसी 532],
  12. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734],
  13. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323],
  14. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441],
  15. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]।
- (माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)
1. अपीलार्थियों की ओर से श्री बेद प्रकाश राय, विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए को सुना गया।
  2. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 11, मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 979 (राज्य बनाम मोनू और अन्य) में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 28.8.2017 जिसमें आरोपियों-अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत दोषी ठहराते हुए ₹0 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास और जुर्माने के भुगतान में चूक करने एक वर्ष के लिए अतिरिक्त कारावास एवं आईपीसी की धारा 504 के अंतर्गत प्रत्येक को एक वर्ष की अवधि की सजा दी गई थी को चुनौती देती है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य हैं कि 14.4.2014 को 23:46 बजे सूचनाकर्ता जितेन्द्र कुमार ने तहरीर, प्रदर्शक - 1, दी जिसमें आरोप लगाया कि उसके भाई इन्द्रेश कुमार, मृतक, अपने परिवार के साथ गंगा नगर में रहा करते थे। 14.04.2014 को सुबह उसकी भतीजी शिवांगी से नीशू, राहुल एवं मोनू उर्फ मयंक नाम के तीन लड़कों द्वारा छेड़छाड़ की गई। लड़कों की माता को उपरोक्त दयटना की जानकारी दी गई। लगभग शाम 8:00-8:30 बजे जब उनके भाई अपनी पत्नि के साथ परिचित गढ़ क्लीनिक से आ रहे थे एवं<sup>1</sup> जब वे ओ ब्लाक गंगा नगर के जगदम्बा हेल्थ क्लब के सामने पहुंचे तो उपरोक्तकथित तीनों लड़कों ने अपने पिता के साथ मिलकर उनके भाई को घेर लिया एवं पीटना शुरू कर दिया। चीखने एवं चिल्लाने पर, नीतू शर्मा उर्फ जितेन्द्र पुत्र रमेश चन्द्र शर्मा भी वहाँ पहुंच गए, उन्होंने एवं उसके भाई की पत्नि ने बताया कि मोनू उर्फ मयंक व राहुल ने इन्द्रेश को पकड़ा हुआ था एवं निशू शर्मा एवं उनके पिता अश्वनी शर्मा ने उनकी हत्या करने की मंशा से, बेसबाल से कई वार किए।

4. उपरोक्त तहरीर पर आरोपी मोनू उर्फ मयंक, अश्वनी शर्मा, निशू एवं राहुल के विरुद्ध थाना इंचैली, जिला मेरठ में धारा 302 आई.पी.सी के अंतर्गत अपराध वाद संख्या 221 सन् 2014 में एफ.आई.आर, प्रदर्शक - 4 दर्ज की गई।

5. जांच शुरू होने पर, जांच अधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने यह पाते हुए कि अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया। हालाँकि, आरोपी निशू शर्मा और राहुल शर्मा नाबालिग थे इसलिए उनका मामला दर्ज नहीं हो पाया।

6. आरोपियों के विरुद्ध धारा 302/34 एवं 504 आई.पी.सी के अंतर्गत 9.3.2016 को आरोप तय किए गए। आरोपी व्यक्तियों ने अपराध को नहीं स्वीकारा एवं परीक्षण को चाहा। परीक्षण शुरू हुआ एवं अभियोजन ने 8 गवाहों से पूछताछ की, जो की निम्न थे:-

|    |                            |           |
|----|----------------------------|-----------|
| 1. | जितेन्द्र कुमार            | पीडब्लू 1 |
| 2. | नीलम शर्मा                 | पीडब्लू 2 |
| 3. | नीतू शर्मा                 | पीडब्लू 3 |
| 4. | आरक्षी प्रमोद कुमार        | पीडब्लू 4 |
| 5. | डा0 विनय भार्गव            | पीडब्लू 5 |
| 6. | उ0नि0 हंस रास भदौरिया      | पीडब्लू 6 |
| 7. | उ0नि0 मुकेश कुमार          | पीडब्लू 7 |
| 8. | निरीक्षक प्रमोद कुमार सिंह | पीडब्लू 8 |

7. प्रत्यक्ष संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किए गए:-

|    |                 |              |
|----|-----------------|--------------|
| 1. | एफ0आई0आर        | प्रदर्शक - 1 |
| 2. | जांच            | प्रदर्शक - 2 |
| 3. | चिक एफ0आई0आर    | प्रदर्शक - 3 |
| 4. | आख्या संख्या 45 | प्रदर्शक - 4 |

|     |                                                     |                 |
|-----|-----------------------------------------------------|-----------------|
|     | दिनांक 14.4.2014 की कार्बन काँपी                    |                 |
| 5.  | पोस्टमार्टम रिपोर्ट                                 | प्रदर्श क - 5-6 |
| 6.  | नक्षा नजरी                                          | प्रदर्श क - 7   |
| 7.  | आरोपी की गिरफ्तारी फर्द एवं बेसबाॅल की बरामदगी फर्द | प्रदर्श क - 8   |
| 8.  | बरामदगी की नक्षा नजरी                               | प्रदर्श क - 9   |
| 9.  | उ0नि0 का पत्र                                       | प्रदर्श क - 10  |
| 10. | मु0चि0अधि को पत्र                                   | प्रदर्श क - 11  |
| 11. | पुलिस फार्म संख्या 13                               | प्रदर्श क - 12  |
| 12. | पुलिस फार्म संख्या 379                              | प्रदर्श क - 13  |
| 13. | मुहरबंद                                             | प्रदर्श क - 14  |
| 14. | आरोप - पत्र                                         | प्रदर्श क - 15  |
| 15. | एफ0एस0एल रिपोर्ट                                    | प्रदर्श क - 16  |

8. विचारण के अंत एवं आरोपी के धारा 313 सी.आर.पी.सी के अंतर्गत बयान दर्ज करके एवं अभियोजन व बचाव पक्ष की दलीले सुनने के पश्चात्, विद्वान सत्र न्यायधीश ने अपीलार्थियों के उपर्युक्तानुसार दोषी माना।

9. अभियोजन के गवाहों का उपयुक्त साक्ष्य संक्षेप मे निम्न है:-

क. पी.डब्ल्यू.-1, सूचनाकर्ता जीतेन्द्र कुमार ने बयान दिया कि मृतक उसका छोटा भाई

था जो अपने परिवार सहित गंगानगर में रहता था। 14.4.2014 को सुबह उसकी भतीजी शिवांगी को तीन लड़के निशु, राहुल और मोनू उर्फ मयंक पुत्र अश्वनी शर्मा ने छेड़ा। लड़कों की मां को घटना से अवगत कराया गया। मृतक ने उक्त घटना की जानकारी सूचनाकर्ता को भी दी थी। शाम को लगभग 8:00-8:30 बजे जब उसका भाई अपनी पत्नी के साथ अपने परीचितगढ़ क्लीनिक से आ रहा था और जब वे ओ ब्लॉक गंगा नगर मेरठ में जगदम्बा हेल्थ क्लब के सामने पहुंचे, तो उपरोक्त तीन लड़कों ने अपने पिता के साथ मिलकर उसके भाई को घर लिया और उसे पीटना शुरू कर दिया। चिखने चिल्लाने पर रमेश चंद्र शर्मा का पुत्र नीटू शर्मा उर्फ जीतेंद्र भी वहां पहुंच गया, उसने और उसके भाई की पत्नी ने बताया कि मोनू उर्फ मयंक और राहुल ने इंद्रेश को पकड़ रखा था और निशु शर्मा और उनके पिता अश्वनी शर्मा ने जान से मारने की नियत से बेसबाल से कई वार किए जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ा। शोर मचाने पर नीटू शर्मा उर्फ जीतेंद्र व अन्य लोग वहां पहुंचे तो हमलावर भाग गए। इन लोगों ने इंद्रेश को सूर्या नर्सिंग होम पहुंचाया जहां इलाज के दौरान इंद्रेश की मौत हो गई। इसके बाद इस गवाह द्वारा अपने छोटे भाई संजीव द्वारा लिखित शिकायत रात 11:45 बजे थाना इंचैली में पेश की गई, जिस पर पुलिस वहां पहुंची और पूछताछ कर जांच रिपोर्ट, प्रदर्श क - 2 तैयार की जो इस साक्षी द्वारा सिद्ध किया गया है। इस गवाह ने स्वीकार किया कि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है।

ख. पी.डब्ल्यू.-2, श्रीमती नीलम शर्मा, जो मौके पर मौजूद थी, ने अभियोजन पक्ष के समर्थन में गवाही दी और कहा कि आरोपी पहले से ही मौके पर मौजूद थे और जब वे वहां पहुंचे, तो आरोपियों ने उन्हें घेर लिया, राहुल और मोनू उर्फ मयंक ने उनके पति को पकड़ लिया और आरोपी अश्वनी शर्मा और नीशू शर्मा ने उस पर बेसबॉल से हमला किया, जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़े। शोर-शराबा होने पर नीटू शर्मा उर्फ जितेंद्र व अन्य लोग वहां पहुंच गए। गवाही के दौरान इस गवाह ने आरोपी व्यक्तियों की पहचान की। उन्होंने यह भी बताया कि घटना के समय आसपास के घरों में स्ट्रीट लाइट और बल्ब जल रहे थे। इस गवाह ने जिरह में भी वैसे ही गवाही दी।

ग. पी.डब्ल्यू.-3, एक स्वतंत्र गवाह, नीटू शर्मा ने अभियोजन पक्ष के कहन के समर्थन में गवाही दी है कि 14.4.2014 को रात लगभग 8:30 बजे वह गंगा मार्केट में सामान खरीद रहा था, उसने जगदम्बा हेल्थ क्लब की ओर से शोर की आवाज सुनी और वहां पहुंचा और देखा कि 3-4 लोग इंट्रेश के साथ मारपीट कर रहे थे, दो लोगों ने उसे पकड़ रखा था और दो अन्य उसे बेसबॉल से मार रहे थे और एक महिला जो खुद को पीड़ित की पत्नी होने का दावा कर रही थी, पास में रो रही थी। गवाही के समय इस गवाह ने अदालत में दो आरोपियों को पहचान लिया। उन्होंने आगे बताया कि जब वह और अन्य लोग मौके पर पहुंचे तो आरोपी भाग गए। मृतक बेहोशी की हालत में पड़ा हुआ था। उसने और अन्य लोगों ने मृतक को सूर्या नर्सिंग होम पहुंचाया और वहां भर्ती कराया। मृतक ने घटना के पीछे का

कारण बताया था कि जब उसकी बेटी स्कूल जाती थी तो अश्वनी शर्मा के बेटों द्वारा उसके साथ छेड़छाड़ की जाती थी।

घ. पी.डब्ल्यू.-4, आरक्षी प्रमोद कुमार ने चिक एफ.आई.आर, प्रदर्श क - 3 एवं कयामी जी.डी, प्रदर्श क - 4 की पुष्टि की।

ड. पी.डब्ल्यू.-5, डॉ. विनय भार्गव ने 15.4.2014 को दोपहर 1:40 बजे मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया है और मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

#### बाहरी चोट:

- (1) सिर के बाईं ओर 10 सेमी x 8 सेमी के हिस्से में सूजन थी।
- (2) खोपड़ी पर माथे पर 6 सेमी x 2 सेमी हिस्से में चोट लगी थी।
- (3) दाहिने टेम्पोरल क्षेत्र में 12 सेमी x 8 सेमी के हिस्से में सूजन, दाहिने कान से खून बह रहा था। गर्दन के निचले हिस्से में 10 सेमी x 8 सेमी क्षेत्र में सूजन भी थी।

आंतरिक परीक्षण में, इस गवाह ने पाया कि मस्तिष्कावरण लाल थे और रक्तस्राव हो रहा था। मस्तिष्क के आंतरिक और खाली हिस्से भी लाल रंग के थे। मृत्यु का कारण 14.4.2014 को रात्रि 9-10 बजे सिर में चोट लगना था। गवाह ने बताया कि मृतक के कपड़े सीलबंद थे। इस गवाह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क - 5 व प्रदर्श क - 6 की पुष्टि की।

जिरह के दौरान बचाव पक्ष के वकील द्वारा पूछे जाने पर इस गवाह ने बताया कि



यह कहना मुश्किल है कि मृतक का सिर पर चोट लगने का कारण किसी मजबूत वस्तु से टकराकर सड़क पर गिरना है। उन्होंने आगे कहा कि यह कहना भी मुश्किल है कि चोटें दुर्घटनावश हैं या किसी के द्वारा पहुंचाई गई हैं।

च. पी.डब्ल्यू.-6, एस.आई. हंसराज सिंह भदौरिया, आई.ओ. थानेदार के प्रभारी होने के नाते पुलिस स्टेशन-इंचौली ने गवाही दी है कि उन्होंने चिक एफ.आई.आर., लिखित शिकायत, मुखबिर के बयान की नकल की थी और सूचनाकर्ता की निशानदेही पर घटना स्थल का निरीक्षण करने के बाद, नक्शा नजरी, प्रदर्शक - 7, तैयार किया था, उन्होंने अभियुक्त नीटू व अश्वनी को कसेरू बक्सर चैराहा से गिरफ्तार किया था तथा अभियुक्त नीशू की निशानदेही पर अपराध घटित करने में प्रयुक्त बेसबॉल बरामद कर बरामदगी फर्द, प्रदर्शक - 8 एवं बरामदगी की नक्शा नजरी, प्रदर्शक - 9 तैयार किया है। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट की भी नकल कर ली थी और फरार आरोपी राहुल और मोनू के खिलाफ एन.बी.डब्ल्यू. प्राप्त कर लिया था एवं धारा 82 व 83 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही शुरू की थी। आखिरकार उन्होंने 24.4.2014 को आत्मसमर्पण कर दिया, उसके बाद उन्होंने उनके बयान दर्ज किए।

छ. पी.डब्ल्यू. - 7, 30नि0 मुकेश कुमार, ने पूछताछ, प्रदर्शक - 2 व सम्बन्धित कागजात जैसे आर.आई. आख्या, चालान लैश, फोटो लैश, प्रदर्शक - 10 से प्रदर्शक - 13 की तैयार किए एवं उनकी पुष्टि की। उन्होने

बताया कि उनके द्वारा मृतक के शरीर को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया था।

ज. पी.डब्ल्यू.-8, इंस्पेक्टर प्रमोद कुमार सिंह ने गवाही दी है कि प्रथम जांच.अधि के स्थानांतरण के बाद, उन्हें जांच प्राप्त हुई थी और उन्होंने सी.डी. में जांच और पोस्टमार्टम रिपोर्ट की प्रतिलिपि बनाई थी और जांच के गवाह जितेंद्र कुमार के बयान के साथ श्रीमती नीलम का बयान व एस.आई. मुकेश कुमार, कांस्टेबल राजेंद्र कुमार और कांस्टेबल मनोज कुमार के बयान दर्ज किये थे। पर्याप्त सबूत मिलने के बाद, उन्होंने आरोप पत्र, प्रदर्शक - 15 दाखिल किया था।

10. सभी औपचारिक गवाहों ने अपनी गवाही के दौरान उनके द्वारा तैयार किए गए दस्तावेजी साक्ष्यों की पुष्टि कर दी।

11. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **निर्मला देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2023 आईएनएससी 662**, के फैसले पर निर्भरता जताई, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 13 और 14 में निम्नानुसार कहा हैः.

*“13. गौरतलब है कि वारदात में इस्तेमाल किया गया हथियार एक डंडा है जो घर में पड़ा हुआ था और जिसे किसी भी तरह से घातक हथियार नहीं कहा जा सकता। इसलिए, मृतक द्वारा पीडब्ल्यू-1 को*

500/- रुपये का भुगतान करने के लिए सहमत नहीं होने पर उकसावे के कारण, अपीलकर्ता द्वारा आत्म-नियंत्रण शक्ति को खोना मृतक की मृत्यु का कारण बनने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

14. हम आगे पाते हैं कि उस पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना आवश्यक होगा जिसमें अपराध हुआ था। मृतक और अपीलकर्ता के बीच लगातार झगड़े हुआ करते थे। ऐसी एक घटना में, अपीलकर्ता का पैर मृतक द्वारा फ्रैक्चर कर दिया गया था, और उक्त अपराध के लिए उसके खिलाफ पहले से ही एक मामला लंबित था।...

12. उपरोक्त निर्णय के आधार पर अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि इस मामले में, अपराध को बेसबॉल स्टिक के कारण होना बताया गया है जिसे घातक हथियार नहीं कहा जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि आईपीसी की धारा 302 के तहत परिभाषित हत्या का अपराध, करने के लिए यह पर्याप्त है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि मृतक की

हत्या की मन में कोई धारणा होती, तो आरोपी अखनि हथियार, धारदार, गड़ासा आदि जैसे किसी अन्य घातक हथियार को लेकर गए होते एवं उसका इस्तेमाल किया होता।

13. गवाहों के बयानों के अवलोकन से यह सिद्ध हो गया है कि एफ.आई.आर. दर्ज करने में कोई अत्यधिक या अनुचित देरी नहीं हुई थी। आरोपियों की पहचान मौके पर मौजूद मृतक की पत्नी, पी.डब्ल्यू.-2 ने की थी। पी.डब्ल्यू.-3 नीटू शर्मा भी अभियोजन के समर्थन में बरकरार हैं और उन्होंने भी दो आरोपियों को पहचाना है जो उनके बयान के समय अदालत में मौजूद थे। अपराध करने के पीछे का तुच्छ व्यक्तिगत उद्देश्य भी स्थापित किया गया है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी व्यक्ति का माथा महत्वपूर्ण अंग नहीं है और यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को मारने के इरादे से अपनी पूरी ताकत से केवल एक बार किया जाए, तो व्यक्ति मर सकता है।

14. इस मामले में मृतक की इलाज के दौरान मौत हो गई है। पक्षों के बीच एक मामूली विवाद ने प्रतिकूल रूप ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप परिवार के संरक्षक की मृत्यु हो गई।

15. अब सवाल यह उठता है कि क्या यह आईपीसी की धारा 300 के तहत परिभाषित हत्या का मामला है और धारा 302 आईपीसी के तहत दंडनीय है या यह आईपीसी की धारा 299 के तहत परिभाषित एक गैर इरादतन

हत्या है और धारा 304 आईपीसी के तहत दंडनीय है।

अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी:-

16. हम मानते हैं कि यह गैर इरादतन हत्या थी, लेकिन, यह देखा जाएगा कि क्या यह गैर इरादतन हत्या आईपीसी की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय है या फिर धारा 304 भाग I या भाग II के तहत?

| धारा 299                                                                                                               | धारा 300                                                                          |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------|
| एक व्यक्ति गैर इरादतन हत्या का दोषी होगा, उसके द्वारा किए गए कार्य के कारण मृत्यु हुई हो और वह कार्य यदि किया गया हो - | ऐसा कार्य जिससे मृत्यु हो जाए कुछ अपवादों को छोड़कर, हत्या माना जाएगा, कार्य यदि- |

17. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

**“299. गैर इरादतन हत्या:** जो कोई मृत्यु कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के इरादे से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह गैर इरादतन हत्या का अपराध करेगा।”

18. ‘हत्या’ और ‘गैर इरादतन हत्या’ के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को तंग किया है। संशय तब पैदा होता है, जब न्यायालयों का इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे से ध्यान हट जाता है, एवं स्वयं को छोटी चीजों पर ध्यान हटाने देते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका आईपीसी की धारा 299 और 300 के विभिन्न कंडिकाओं में उपयोग किए गए शब्दों को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों

#### इरादा

|                                                                |                                                                                                                                                                                                                |
|----------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| क. मृत्यु होने का इरादा रखते हुए<br>अथवा                       | 1. मृत्यु होने का इरादा रखते हुए<br>अथवा                                                                                                                                                                       |
| ख. ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का इरादा जिससे मृत्यु हो जाए<br>और | 2. आरोपकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति को इस इरादे से शारीरिक चोट पहुंचाना, जिसकी उसको जानकारी हो कि ऐसी चोट से मृत्यु हो सकती है                                                                                    |
| <b>जानकारी</b>                                                 |                                                                                                                                                                                                                |
| ग. यह जानकारी रखते हुए की ऐसी कार्य से मृत्यु हो सकती है।      | 3. इस ज्ञान के साथ कि कृत्य काफी खतरनाक है एवं इससे पूरी संभावना है कि यह किसी की मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति का कारण बनना जिससे मृत्यु हो जाए, और बिना किसी कारण के उपरोक्त कथित चोट या मृत्यु का जोखिम होना। |

19. **खोकन उर्फ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 कानूनी मुकदमा (उच्चतम.न्या) 80** में नवीनतम निर्णय में, जहां तथ्य इस मामले के समान थे, शीर्ष अदालत ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील को स्वीकार किया है और सजा में बदलाव किया

है। अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12 का मामला जो कि कानूनी अभिभावक से अपहरण से संबंधित था मे सर्वोच्च न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए निर्णय मे यह माना कि अभियुक्त द्वारा पहले ही जेल में बिताई गई सजा की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत को पूरा किया जा सकेगा। हमारे मामले में, यह उतना वीभत्स मामला नहीं है जहां इन सभी निर्णयों के आलोक में आरोपियों के मामले मे निपटा नहीं जा सकता। **पर्वत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529 और परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी 238** में निर्णय भी अभियुक्तों के प्रति हित को सुनिश्चित करेंगे।

20. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच और शीर्ष न्यायालय द्वारा **तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250 के मामले में और बी.एन. कवताकर और अन्य बनाम. कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304** के मामले में निर्धारित सिद्धांतों पर विचार करने पर, हमारी सुविचारित राय है कि यह एक गैर इरादतन हत्या का मामला है जो हत्या की श्रेणी मे नही आएगा।

21. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त को यह ज्ञान और इरादा था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक

को खत्म नहीं करना चाहते थे। इसलिए उक्त मामला आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। यह भी ध्यान मे रखना है सर्वोच्च न्यायालय के **वीरन और अन्य बनाम मप्र राज्य निर्णित, (2011) 5 एससीआर 300** मे की टिप्पणियों के अनुसार धारा 299 पर विचार करते समय जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है कि अपराध धारा 304 भाग-1 मे आएंगे।

22. हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा चर्चित उदाहरण हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगी, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है, पर यह गैर इरादतन हत्या है और आईपीसी की धारा 304 (भाग 1) के तहत दंडनीय है।

23. यह हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के वैकल्पिक अनुरोध पर ले जाता है कि सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

24. उच्चतम न्यायालय ने **मो. गियासुद्दीन बनाम. एपी राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926**, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह पाया है:

*“अपराध एक विकृत विपथन है। अपराधी को आम तौर पर मुक्त किया जा सकता*

हैं और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंड विद्या का केन्द्र व्यक्ति को समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति जो आपराधिकता की तरफ बिगड़ गया है को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'भय में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग पर चोट पैदा करती है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना

होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते हैं।”

25. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257 में 'उचित सजा' की यह देखते हुए व्याख्या की गई थी कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम होनी चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

26. रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 में, सर्वोच्च न्यायालय ने जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532,, गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एससीसी 734 सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 एससीसी 323, पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एससीसी 441, और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 एससीसी 463 में निर्णयों का उल्लेख किया और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक सांचे के आधार पर सुधारात्मक यंत्र या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक

मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ ऐसे प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में आएंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस

प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि उचित और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

27. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो उचित और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधारने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार करने का अवसर देते हुए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

28. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए। हम यह भी दर्ज कर सकते हैं कि तथ्यात्मक परिदृश्य से गुजरते समय अपीलकर्ता के पास उस मृतक, जो उसका रिश्तेदार था, को खत्म करने का कोई

मकसद या इरादा नहीं था। किसी भी सबूत से मकसद का पता नहीं चल पाया।

देश राज सिंह

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

29. इसलिए, तथ्यों और परिस्थितियों की समरता और चिकित्सा साक्ष्य के साथ चश्मदीद गवाहों की मौखिक गवाही हमें आरोपी-अपीलकर्ता की सजा को धारा 302 आईपीसी से धारा 304 भाग-1 आई.पी.सी. में परिवर्तित करने की अनुमति देती है। तथ्य यह है कि आरोपी-अपीलकर्ता क्रमशः

11 साल और छह साल से अधिक समय तक जेल में बंद थे, सजा को पहले ही पूरी की जा चुकी अवधि तक कम कर दिया गया है। रुपये का जुर्माना 10000/- कैद से छूटने के चार सप्ताह के भीतर जमा करना होगा। यदि चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा नहीं किया गया तो उन्हें तीन महीने की सजा भुगतने के लिए जेल में डाल दिया जाएगा।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

-----

**(2023) 9 ILRA 103**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 04.07.2012**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति धरणीधर झा**

**माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा**

आपराधिक अपील अंतर्गत धारा 372 दं.प्र.सं.

संख्या 7726 वर्ष 2010

**अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:**

श्री विकास शर्मा, ममता सिंह

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

**आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,**

**1973 - धारा 161 और 372 - भारतीय**

**दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 201 और**

**302 - भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 -**

**धारा 4 और 25-आपराधिक अपील- सूचक**

**द्वारा दायर - अभियुक्त को दोषमुक्त करने**

**के विरुद्ध - प्र.सू.रि. - हत्या का अपराध -**

**साक्ष्य और हेतु - हथियार की बरामदगी -**

**न्यायालय ने पाया कि, अभियोजन पक्ष के**

**साक्षियों द्वारा प्रदान किए गए साक्ष्य**

**अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के**

**लिए अपर्याप्त थे - न्यायालय ने यह भी**

**नोट किया कि प्रस्तुत किए गए हेतु, जिसमें**

**भूमि विवाद और कथित अवैध संबंध**

**शामिल हैं, को ठोस रूप से स्थापित नहीं**

**किया गया था - इसके अतिरिक्त, एक**

**चाकू की बरामदगी पर संदेह किया गया था**

**क्योंकि मनगढ़ंत होने की संभावना से**

**साक्ष्य नष्ट हो सकते हैं - परिणामस्वरूप,**

**अपील खारिज कर दी गई, और दोषमुक्त**

**करने के निर्णय को बरकरार रखा गया।(पैरा**

**- 12, 13)**

**अपील खारिज। (ई-11)**

(माननीय न्यायमूर्ति धरणीधर झा

और

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा द्वारा पारित)

हमने सूचनादाता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने सत्र परीक्षण संख्या 91/2009 और 90/2009 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 28.10.2010 के बरी किए जाने के निर्णय पर प्रश्न उठाया है। विद्वान ट्रायल न्यायाधीश ने अपने निर्णय में दोनों प्रतिवादियों को भा.दं.सं. की धारा 302/34, 201 तथा भारतीय शस्त्र अधिनियम की धारा 25/4 के तहत आरोपों से बरी कर दिया।

अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि मृतक, सूचनादाता का बेटा, जिसका नाम दिनेश था, ट्यूशन पढ़ने गया था लेकिन वह वापस नहीं आया और बाद में उसका शव एक चारे की दुकान के पास पड़ा हुआ पाया गया जहां उसका चप्पल और अन्य सामान भी पाए गए। उसकी गला रेतकर हत्या कर दी गई थी। यह सूचना अज्ञात आरोपियों के विरुद्ध दिनांक 27.11.2008 को दर्ज कराई गई थी।

दूसरी सूचना सूचनादाता द्वारा अपने भाई से लिखवाकर दिनांक 28.11.2008 को दर्ज कराई गई थी, जिसमें विशेष रूप से आरोप लगाया गया था कि आरोपीगण अर्थात् अरविन्द, नरेश तथा ललित कुमार ने उसके पुत्र की हत्या की थी तथा दो व्यक्तियों अर्थात् गजेन्द्र (जिसकी जांच नहीं की गई) तथा थान सिंह (पी.डब्लू.-2) ने उन्हें घटनास्थल से आते हुए देखा था।

डॉक्टर ने मृतक के गले पर भी इसी प्रकार के घाव पाए और इसमें कोई संदेह नहीं था कि मृतक के गले पर चोट तथा मृतक के अंडकोष के पास कहीं अन्य घाव चाकू जैसे किसी हथियार से किया गया था। इस प्रकार, मृतक की हत्या के तरीके में कोई संदेह नहीं रह जाता कि उसे मारने के लिए किसी धारदार हथियार से हमला किया गया था।

मुकदमे के दौरान, पी.डब्लू.-1, सूचनादाता, स्वयं रिपोर्ट का समर्थन करने आया, लेकिन जैसा कि एफआईआर से पता चलता है, अदालत में भी वह स्वयं को प्रत्यक्षदर्शी के रूप में पेश नहीं कर रहा था। उसने दो आरोपियों नरेश और अरविंद कुमार की घटनास्थल से 27 नवम्बर 2008 को घटना के समय के आसपास की गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के आधार पर यही तथ्य प्रस्तुत किए।

दो व्यक्तियों, अर्थात् थान सिंह और गजेन्द्र सिंह में से गजेन्द्र सिंह अपनी गवाही के लिए उपस्थित नहीं हुआ। लेकिन, थान सिंह ने कहा कि उसने आरोपियों को उस दिशा से आते देखा था और जब उसने उनका उद्देश्य जानना चाहा तो उन्हें केवल अपना काम करने को कहा गया और वे अपने घर के अंदर चले गए।

विद्वान ट्रायल न्यायाधीश ने माना है कि यह तथ्य कि घटनास्थल से आते हुए देखे गए अभियुक्तों ने हत्या की थी, जो तथ्य पी.डब्लू. 2 ने अपने साक्ष्य में कहा था, यह तथ्य उसने जांच के दौरान नहीं कहा था और उसने केवल यह कहा था कि उन्हें घटनास्थल के आसपास घूमते हुए देखा गया था।



हमारा विचार है कि घटनास्थल के आसपास कहीं देखा जाना या उस ओर से आना मात्र दोषी ठहराए जाने का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता, जब तक कि इससे संबंधित कुछ अन्य आपत्तिजनक परिस्थितियां और तथ्य इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किए जाएं। इस प्रकार, हम पाते हैं कि पी.डब्लू. 1 और 2 अभियोजन पक्ष के लिए कोई लाभ नहीं पहुंचा। हम पहले ही देख चुके हैं कि गजेंद्र सिंह को पेश नहीं किया गया।

अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान पी.डब्लू.-1 के साक्ष्य के कुछ भाग की ओर आकर्षित किया है, जिसमें उसने अपराध के पीछे के उद्देश्य के बारे में बताया है। एक मकसद यह था कि प्रतिवादी संख्या 2 नरेश ने सूचक को चार बीघा जमीन बेची थी और वह जमीन उसे वापस चाहता था और सूचक इसके लिए तैयार नहीं था, इसलिए प्रतिवादी नरेश उसके खिलाफ रंजिश रखता था।

विद्वान ट्रायल न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि पी.डब्लू.-1 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि भूमि का क्रय घटना से चार वर्ष पूर्व हो चुकी थी तथा सरकारी अभिलेख में सूचनादाता के नाम का परिवर्तन पहले ही हो चुका था, ऐसे में यह कोई इतना मजबूत उद्देश्य नहीं हो सकता कि आरोपी व्यक्तियों को अपराध करने के लिए प्रेरित किया जा सके। सूचनादाता द्वारा बताया गया दूसरा उद्देश्य यह था कि उसके बेटे का प्रतिवादी अरविंद की बहन के साथ अवैध संबंध था, लेकिन विद्वान ट्रायल न्यायाधीश ने नोट किया है कि यह तथ्य न तो पहली एफआईआर

में और न ही दूसरी में कहा गया था और यह पहली बार था कि वह अदालत में बयान दे रहा था, बल्कि उसने दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत अपने बयान में भी इस तथ्य को बताया था।

हमारा विचार है कि विद्वान ट्रायल न्यायाधीश द्वारा उद्देश्य को अस्वीकार करना एक क्रूर न्यायिक निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता है जो हमें बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कहता है। हमारे निष्कर्ष का कारण यह है कि यदि उद्देश्य स्थापित भी हो जाता, तो भी आरोपों के साबित होने में समय नहीं लगता और, दूसरे, उद्देश्य पूरी तरह से स्थापित नहीं होता, जिससे यह संकेत मिलता है कि इन दो कारणों से आरोपी व्यक्ति अपराध करने के लिए प्रेरित हुए होंगे। यह सही माना गया कि भूमि के संबंध में चार वर्ष पूर्व किया गया लेनदेन, जो वस्तुतः अंतिम रूप से तथा अपरिवर्तनीय रूप से संपन्न हो चुका था, अवैध संबंध के उद्देश्य के संबंध में अपराध करने का उद्देश्य नहीं हो सकता। हम पाते हैं कि केवल बयान के अलावा, मृतक के जिस महिला के साथ संबंध थे, या गांव के किसी अन्य व्यक्ति के बारे में कोई सहायक साक्ष्य रिकार्ड पर नहीं लाया गया।

हम यह भी पाते हैं कि अपीलकर्ता अरविंद के पास से चाकू बरामद होने का सबूत है। हालांकि, हम यह नोट करना चाहते हैं कि यह बरामदगी दूसरे प्रतिवादी के खिलाफ स्वीकार्य नहीं थी। जहां तक बरामदगी का सवाल है, ट्रायल कोर्ट ने बरामद चाकू पर खून के निशान पर सही ही संदेह जताया है, क्योंकि वह जमीन

में दबा हुआ था और कथित तौर पर उसे जमीन हटाने के बाद ही बाहर निकाला गया था। मनगढ़ंत कहानी की संभावना तथ्य की खोज के साक्ष्य को नष्ट कर देती है और वह भी तब जब प्रतिवादी द्वारा यह कहकर चुनौती दी जा रही हो कि उसने पुलिस को तथ्य की खोज तक नहीं पहुंचाया।

जिन कारणों का हमने अभी उल्लेख किया है, उनके आधार पर हमारा मत है कि दोषमुक्ति का निर्णय ही मुकदमे का एकमात्र संभावित परिणाम हो सकता था, अतः इस अपील में कोई मेरिट नहीं है, अतः हम इस अपील को खारिज करते हैं।

-----  
(2023) 9 ILRA 106

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 408 वर्ष 2020

पद्मश्री डॉ. उषा शर्मा ...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:

श्री अश्विनी कुमार अवस्थी, श्री अनुराग वाजपेई, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री भव्य सहाय, श्री मयंक यादव, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री विवेक

कुमार सिंह, श्री विनय सरन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 34 - न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग केवल तभी कर सकता है जब विचारण आगे बढ़ता है और साक्ष्य की लेखबद्धता शुरू होती है और असाधारण परिस्थितियों में भी - दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग दंडादेश के आदेश की घोषणा से पहले किया जाना चाहिए जहां अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय हो - किसी व्यक्ति को साक्षियों द्वारा उत्पन्न कुछ संदेह के आधार पर अभियुक्त के रूप में जोड़ना न्याय का उपहास होगा - जब कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, तो अनुश्रुत साक्ष्य पर आधारित साक्ष्य समन जारी करने का आधार नहीं हो सकता। (पैरा - 40,43,50)

रद्द करना/अपास्त करना - दोषसिद्धि का अंतिम निर्णय पारित - सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षणवादी को बुलाने का आदेश पारित किया - धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत विचारण का सामना करना - विलम्बित चरण में - सह-अभियुक्त के दंडादेश के आदेश के बाद पुनरीक्षणवादी को बुलाया गया - अभियुक्त-पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं - अपराध का दोषी होना - केवल साक्षी यानी पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 ही राय दे रहे हैं - पुनरीक्षणवादी ने अपराध किया हो सकता है - पुनरीक्षणवादी को अपनी बात रखने के लिए न तो सुनवाई का कोई अवसर दिया गया और न

ही कोई नोटिस जारी किया गया - पुनरीक्षणवादी द्वारा प्रस्तुत यह आपराधिक पुनरीक्षण। (पैरा - 7,44,50,51)

(बी) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति - "दोषी को दोषमुक्त किये जाने पर न्यायाधीश को दोषी ठहराया जाता है" - निर्दोष को दण्डित नहीं किया जाना चाहिए, साथ ही वास्तविक अपराधी को बचने नहीं दिया जाना चाहिए। (पैरा-24)

अभिनिर्धारित हुआ:-निर्णय और आदेश को कानूनी रूप से कायम नहीं रखा जा सकता और रद्द किया गया।कोई भी मजिस्ट्रेट या कोई भी न्यायालय, सह-अभियुक्त के रूप में दंडादेश का आदेश पारित होने के बाद, किसी भी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में विचारण का सामना करने के लिए बुलाने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग या आह्वान नहीं कर सकता है। (पैरा - 55)

आपराधिक पुनरीक्षण को अनुमति दी गई। (ई-7)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एससीसी 92
2. एस. जयराज बनाम तमिलनाडु राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन मद्रास 14197/ (2015) 2 एलडब्ल्यू (क्रिमिनल) 574

3. सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य, 2023 (1) एससीसी 289

4. बृंदावन दास और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2009) 3 एससीसी 329/ एआईआर 2009 1248 (एससी)/(2009) एसएआर क्रिमिनल 117

5. पेरियासामी एवं अन्य बनाम नल्लासामी, (2019) 4 एससीसी 342/एआईआर 2019 एससी 1426

6. जी. पलानीसामी बनाम राज्य, 2003 (2) एमडब्ल्यूएन (क्रिमिनल)

7. लाभुजी अमृतजी ठाकोर बनाम गुजरात राज्य, (2019) 12 एससीसी 644/2018(4) एमएलजे(क्रिमिनल) 739 (एससी)

8. आशा बनाम कर्नाटक राज्य, 2016 एससीसी ऑनलाइन कर्नाटक 9030

9. जोगेंद्र यादव बनाम बिहार राज्य, (2015) 9 एससीसी 244

(माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अश्विनी कुमार अवस्थी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी को सुना, विपक्षी सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार मिश्रा की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विनय सरन को सुना

तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आर.एन. सिंह को सुना तथा अभिलेखों पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अवलोकन किया।

### **वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण को चुनौती**

2. यह पुनरीक्षण, धारा 397/401 दं.प्र.सं. के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता अर्थात्, पदमश्री डॉ. उषा शर्मा की ओर से अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं0 1, मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1057/2008 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सचिन मलिक व अन्य) में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांकित 12.12.2019 को अपास्त करने/रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, जो मुकदमा अपराध सं0 269/2004 अंतर्गत धारा 302 व 34 भा.दं.सं. थाना मेडिकल, जिला मेरठ से उत्पन्न हुआ है, जिसके अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए विचारण न्यायाधीश द्वारा समन किया गया है।

### **3. मामले की उत्पत्ति**

सिद्धार्थ चौधरी (संक्षेप में “मृतक”) मेरठ मेडिकल कॉलेज का द्वितीय वर्ष का छात्र था तथा एल.जे.बी. हॉस्टल के कमरा सं0 38 में मृत पाया गया था, जो कि सचिन मलिक को दिनांक 06.07.2004 को आवंटित किया गया था। वार्डन ने पुलिस के साथ-साथ उसके माता-पिता को भी सूचित किया, जो मुजफ्फरनगर से मेरठ पहुंचे। मृतक के माता-पिता, जो दोनों डॉक्टर हैं, के आने से पहले ही शव को सील करके कमरे से बाहर निकाल लिया गया था। वार्डन और प्रधानाचार्या से पूछताछ करने पर

माता-पिता को बताया गया कि पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कर दी गई है, जो वास्तव में उनके (माता-पिता) द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार दर्ज नहीं की गई थी।

4. दिनांक 06 जुलाई, 2004 को डॉ. सुरेन्द्र सिंह ग्रेवाल (सूचनादाता/विपक्षी सं0 2) अर्थात् मृतक के पिता, द्वारा दर्ज कराई गई रिपोर्ट के अनुसार, शवगृह में पहुंचने पर उन्होंने (मृतक के माता-पिता ने) पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टरों से शव दिखाने को कहा और शव को देखने पर उन्हें मृतक के चेहरे पर सूजन और नीलापन दिखाई दिया। मृतक के होंठ पर चोट थी और एक दांत भी टूटा हुआ था, जिससे पता चलता है कि मृतक की सांस का मार्ग अवरुद्ध होने से दम घुट गया था और यह हत्या का मामला था, इसलिए उन्होंने पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टरों से इन बातों का उल्लेख रिपोर्ट में करने का अनुरोध किया, परन्तु पोस्टमार्टम रिपोर्ट की प्रति प्राप्त होने पर उन्हें इसका उल्लेख नहीं मिला। गला घोटने से मौत के बजाय, पोस्टमार्टम रिपोर्ट में प्रधानाचार्या डॉ. उषा शर्मा (यहां पुनरीक्षणकर्ता) के दबाव में “मृत्यु का कारण पता नहीं चल सका” लिखा गया। यह मृतक सिद्धार्थ की हत्या का स्पष्ट मामला था, जिसमें प्रधानाचार्या डॉ. उषा शर्मा, सचिन मलिक, अमनदीप सिंह और यशपाल रंग शामिल थे और उपरोक्त व्यक्ति अन्य लोगों के साथ मिलकर इसे आत्महत्या का रूप देने की कोशिश कर रहे थे। डॉ. उषा शर्मा अर्थात् प्रधानाचार्या अभियुक्तगण को बचा रही थीं क्योंकि उन्होंने उस मामले को गलत तरीके से, दर्ज होना बताया किया था, जबकि ऐसा नहीं था और इसलिए सूचनादाता ने मामला दर्ज

करने और जांच करने के लिए एस.एस.पी. से संपर्क किया, जिन्होंने अपने अनुमोदन एस.टी.सी.-256-ए/04 के द्वारा इसे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए भेजा और जिसके आधार पर मुकदमा अपराध संख्या 269/2004 अंतर्गत धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 199/2004 दिनांक 9 अगस्त, 2004 को पंजीकृत किया गया।

5. विवेचना के पश्चात, पुलिस ने 15 फरवरी, 2006 को अंतिम रिपोर्ट दाखिल की, जिसके विरुद्ध सूचनादाता ने आपत्तियां दर्ज कीं। धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज साक्षीगण के बयान, मानवाधिकार आयोग द्वारा की गई टिप्पणियों आदि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचारोपरांत, विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मेरठ ने 6 दिसंबर, 2006 को विस्तृत आदेश के द्वारा जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को खारिज करते हुए, अभियुक्तगण अर्थात् सचिन मलिक, अमनदीप सिंह और यशपाल राणा को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया, परन्तु पुनरीक्षणकर्ता डॉ उषा शर्मा के विरुद्ध प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार, केवल तीन अभियुक्तगण सचिन मलिक, अमनदीप सिंह और यशपाल राणा के विरुद्ध मामला 8 अगस्त, 2008 को विचारण के लिए सौंपा गया। अभियुक्तगण सचिन मलिक, अमनदीप सिंह और यशपाल राणा के विरुद्ध 29 अगस्त, 2014 को धारा 302/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप तय किए गए थे, जिस पर तीनों अभियुक्तगण ने निर्दोष होने का तर्क दिया और परीक्षण की मांग की। अभियोजन

द्वारा कुल 20 साक्षीगण को परीक्षित किया गया जबकि एक साक्षी को अभियुक्तगण द्वारा अपने बचाव में परीक्षित किया गया। अभियुक्तगण के समक्ष आपत्तिजनक परिस्थितियां रखी गईं। धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपने बयानों में तीनों अभियुक्तगण ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया और कहा कि विवेचनाधिकारी द्वारा अंतिम रिपोर्ट उचित रूप से दाखिल की गई है और उनकी मृतक के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी।

6. 12 दिसंबर, 2019 के निर्णय और आदेश के अनुसार, विचारण न्यायालय, अर्थात् अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं0 1, मेरठ ने अपर जिला शासकीय अधिवक्ता (फौजदारी) और बचाव पक्ष के अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करने और दिनांक 22.05.2019 को अभियुक्तगण की ओर से दायर लिखित बहस के परिशीलन के पश्चात, उनमें उद्धृत निर्णयों सहित और विचारण के दौरान अभिलेखों पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का भी अवलोकन किया गया तथा तीनों अभियुक्तगण, अर्थात् सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह को धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और उन्हें प्रत्येक को 1,00,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई।

7. यहां यह उल्लेखनीय है कि दोषसिद्धि का अंतिम निर्णय पारित करने के पश्चात, संबंधित सत्र न्यायाधीश ने इतने विलंब से, धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता को समन करने का आदेश

पारित किया। 12 दिसंबर, 2019 के निर्णय और आदेश के इसी भाग के विरुद्ध पुनरीक्षणकर्ता द्वारा वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

### **पुनरीक्षणकर्ता का मामला**

8. पुनरीक्षणकर्ता पूर्णतः निर्दोष है और किसी भी प्रकार से वह उपरोक्त आपराधिक मामले से जुड़ी नहीं थी, जो कि विपक्षी संख्या 2/प्रथम सूचनादाता, अर्थात् डॉ. सुरेंद्र सिंह द्वारा अपने बेटे सिद्धार्थ चौधरी, जो मेडिकल कॉलेज मेरठ का छात्र था, की थाना मेडिकल, जिला मेरठ में दिनांक 09.08.2004 को 20.15 बजे हुई मृत्यु के लिए बहुत विलंब से प्राथमिकी दर्ज करने के पश्चात शुरू किया गया था, जो दिनांक 06.07.2004 को हुई एक घटना के संबंध में थी। सिद्धार्थ चौधरी की मृत्यु के बाद पुनरीक्षणकर्ता द्वारा की गई कथित कार्रवाइयों के बारे में पूरी तरह से निराधार और तुच्छ आरोपों के आधार पर, उसी को छिपाने के लिए पुनरीक्षणकर्ता, जो उस समय मेडिकल कॉलेज मेरठ की प्रधानाचार्या थी, को भी अन्य सह-अभियुक्तगण अर्थात् सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह के साथ आरोपी बनाया गया है, जो उस समय मेडिकल कॉलेज मेरठ के छात्र थे।

9. पुनरीक्षणकर्ता एक उच्च योग्यता प्राप्त और प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं, जिनका करियर काफी प्रसिद्ध है। वह पद्मश्री पुरस्कार से भी सम्मानित हैं। उनकी योग्यता और उपलब्धियाँ वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के साथ हलफनामे के पैराग्राफ-7 में दी गई हैं।

10. प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों के अनुसार प्रथम सूचनादाता द्वारा दावा किया गया है कि दिनांक 06.07.2004 को मेडिकल कॉलेज मेरठ के वार्डन द्वारा उसे उसके बेटे सिद्धार्थ चौधरी की मृत्यु के बारे में सूचित किया गया था, जिसके पश्चात प्रथम सूचनादाता और उसकी पत्नी मुजफ्फरनगर से मेडिकल कॉलेज मेरठ आए। हालाँकि कॉलेज द्वारा डॉ. विनय अग्रवाल के माध्यम से पुलिस को वर्तमान घटना की सूचना दिए जाने के बाद ही पंचायतनामा कार्यवाही की गई थी और यह पूरी तरह से अस्पष्ट/निराधार संदेह के आधार पर है कि पुनरीक्षणकर्ता और सह-अभियुक्तगण के विरुद्ध वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है। सह-अभियुक्त सचिन मलिक और मृतक सिद्धार्थ चौधरी दोनों मेडिकल कॉलेज मेरठ के द्वितीय वर्ष के छात्र थे और सह-अभियुक्त यशपाल राणा और अमनदीप सिंह वर्तमान घटना के समय मेडिकल कॉलेज मेरठ में उनके सीनियर थे और पुनरीक्षणकर्ता कॉलेज की प्रधानाचार्या थी। प्रथम सूचनादाता के पुत्र की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु की सूचना अस्पताल के अधिकारियों द्वारा पुलिस को दिए जाने के पश्चात दिनांक 06.07.2004 को अपराह्न 3.30 बजे पंचायतनामा कार्यवाही हुई। डॉ. हरपाल सिंह और डॉ. एम.के. गुलाटी द्वारा तैयार की गई पोस्टमार्टम जांच रिपोर्ट दिनांकित 06.07.2004 के अवलोकन से पता चलता है कि मृतक के शरीर पर कोई मृत्यु पूर्व की चोट नहीं देखी गई थी और मृत्यु का कारण पता नहीं चल सका था, इसलिए विसरा सुरक्षित रखा गया था। यही राय पंचायतनामा रिपोर्ट से भी निकलती है, जिसमें मृतक के शव पर कोई स्पष्ट चोट नहीं पाई गई थी और

मृत्यु के कारण के बारे में राय किसी प्रकार के जहर का सेवन बताई गई थी। इसके पश्चात दिनांक 06.10.2004 को फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला आगरा द्वारा विसरा रिपोर्ट भी प्रस्तुत की गई, जिसमें पाया गया कि मृतक के आंतरिक अंगों में इथाइल अल्कोहल जहर पाया गया था। तथापि, प्रथम सूचनादाता डा. सुरेन्द्र सिंह ग्रेवाल ने घटना की तिथि से एक माह बीत जाने के पश्चात एक अत्यंत दुर्भावनापूर्ण प्रार्थन पत्र दाखिल किया, जिसके आधार पर वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 09.08.2004 को दर्ज की गई। मुकदमे के दौरान, पोस्टमार्टम रिपोर्ट और विसरा रिपोर्ट के साथ पंचायतनामा रिपोर्ट को पी.डब्लू.-5 राजीव कुमार कौशिक (जिन्होंने पंचायतनामा रिपोर्ट तैयार की) और पी.डब्लू.-6 एम.के. गुलाटी (पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार करने वाले चिकित्सक) द्वारा विधिवत साबित किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप पोस्टमार्टम रिपोर्ट और विसरा रिपोर्ट के पूर्णतः विपरीत हैं।

पी.डब्लू.1 प्रथम सूचनादाता डा. सुरेन्द्र सिंह ग्रेवाल और पी.डब्लू.2 श्रीमती सुरेन्द्रजीत कौर (प्रथम सूचनादाता की पत्नी) की साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सलाह मशविरा के पश्चात दर्ज की गई थी, इसलिए इसकी विषय-वस्तु की सत्यता पूर्णतः संदिग्ध है

12. वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद वर्तमान मामले की जांच शुरू हुई और प्रारंभिक जांच अधिकारी पी.डब्लू. 19 महेश चंद्र यादव को प्रथम सूचनादाता द्वारा लगाए गए आरोपों को पुष्ट करने के लिए कोई ठोस साक्ष्य

नहीं मिला। इसके पश्चात प्रथम सूचनादाता द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर, वर्तमान मामले की जांच सी.बी.सी.आई.डी और डिप्टी एस.पी. सी.आई.डी. बी.एस. चौहान (पी.डब्लू.18) को जोनल अधिकारी के आदेश दिनांकित 17.02.2005 द्वारा स्थानांतरित कर दी गई और दोनों जांच अधिकारी महत्वपूर्ण साक्षीगण के बयान दर्ज करने के बाद एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे कि मृतक सिद्धार्थ चौधरी आदतन शराब और नशीली दवाओं का सेवन करता था और अक्सर नशे की हालत में खुद को चोट पहुंचाता था और साथ ही उसकी किसी भी अभियुक्त से कोई दुश्मनी नहीं थी, इस तरह वर्तमान मामले में दिनांक 15.02.2006 को अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई। उपरोक्त अंतिम रिपोर्ट के विरुद्ध प्रथम सूचनादाता ने विरोध याचिका दायर की और तत्पश्चात दिनांक 06.12.2006 के आदेश द्वारा विद्वान विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मेरठ के न्यायालय ने जहां तक सह-अभियुक्त सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह का संबंध है, अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया, हालांकि, डॉ. उषा शर्मा अर्थात् पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट को इस टिप्पणी के साथ स्वीकार कर लिया गया कि उनके विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई अपराध भी नहीं बनता है। इसके बाद मामला दिनांक 08.08.2008 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया और सह-अभियुक्त सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह के विरुद्ध दिनांक 29.08.2014 को धारा 302 एवं 34 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप तय होने के पश्चात, वर्तमान मामले का मुकदमा शुरू हुआ। मुकदमे के दौरान पी.डब्लू. 1 डॉ. सुरेंद्र सिंह

और पी.डब्लू. 2 श्रीमती सुरेन्द्रजीत कौर के बयान दर्ज किए गए और प्रथम सूचनादाता और उनकी पत्नी, जो कि निपुण चिकित्सक हैं, जिन्हें चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में गहन ज्ञान है, ने अपने बयानों में एक बहुत ही प्रशिक्षित और मनगढ़ंत संस्करण प्रस्तुत किया है, हालांकि उनकी साक्ष्य अभिलेख पर मौजूद चिकित्सीय साक्ष्य के बिल्कुल विपरीत है और इसलिए इन दोनों अत्यधिक पक्षपातपूर्ण और इच्छुक साक्षीगण की साक्ष्य पर कोई भरोसा नहीं किया जाना चाहिए था। किसी भी तरह से, पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 दोनों वर्तमान मामले में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य देने में विफल रहे हैं और उनके बेटे की मौत के कारण से संबंधित उनकी साक्ष्य पूरी तरह से प्रकृति में अनुमानात्मक है और वर्तमान अपराध के पीछे एक हेतुक थोपने का एक बहुत ही कमजोर प्रयास किया गया है, जिस पर सामान्य विवेक वाला कोई भी व्यक्ति थोड़ा सा भी विश्वास करने या भरोसा करने के लिए प्रलोभित नहीं होगा।

13. जहां तक सह-अभियुक्तगण अर्थात् सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह का संबंध है, यह स्पष्ट है कि सह-अभियुक्त सचिन मलिक मेडिकल कॉलेज, मेरठ में मृतक सिद्धार्थ चौधरी के सहपाठी थे और सह-अभियुक्त अर्थात् यशपाल राणा और अमनदीप सिंह उनके वरिष्ठ थे और उनके और मृतक के बीच कुछ वित्तीय विवाद थे, जैसा कि पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 ने अपनी साक्ष्य में दावा किया है। हालांकि, इसका संशोधनकर्ता से कोई संबंध नहीं है और पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 द्वारा एक बहुत ही दूरगामी षडयंत्र का आरोप

लगाया गया है, जिसका एकमात्र उद्देश्य संशोधनकर्ता को वर्तमान मामले में बिना किसी व्यवहार्य आधार के फंसाना है, इसके अलावा पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 द्वारा केवल मौखिक आरोप लगाए गए हैं, बिना किसी सहायक या पुष्टि करने वाली सामग्री या साक्ष्य के।

14. विचारण न्यायालय ने गलत प्रकार से पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 की साक्ष्य पर जरूरत से ज्यादा भरोसा किया और अपना निष्कर्ष निकाला, जो पूर्ण रूप से वर्तमान मामले के अभिलेख के विरुद्ध है, इसलिए वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता को समन करना विधिक दृष्टि से पूर्णरूपेण गलत है और इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय ने विभिन्न अभियोजन साक्षीगण की साक्ष्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है जो मेडिकल कॉलेज, मेरठ में सह-अभियुक्तों और मृतक सिद्धार्थ चौधरी के साथ पढ़ रहे थे, उन सभी ने कहा है कि मृतक आदतन ड्रग्स और शराब का सेवन करता था, अक्सर नशे की हालत में खुद को चोट पहुँचाता था, मेडिकल कॉलेज में उसकी उपस्थिति कम हो रही थी, दुर्भाग्यपूर्ण घटना की रात उसे छात्रावास के गलियारे में लड़खड़ाते हुए देखा गया और फिर उसे सह-अभियुक्त सचिन मलिक के कमरे में ले जाया गया जहाँ संभवतः शराब/ड्रग्स के अत्यधिक सेवन के कारण वह सुबह मृत पाया गया और पूरी तरह से हैरान सचिन मलिक ने कॉलेज के अधिकारियों को मृतक की मृत्यु के बारे में सूचित किया। उक्त साक्षीगण में से किसी ने भी मृतक के साथ अभियुक्तों में से किसी के बीच किसी तनाव या विवाद का कोई



कथन नहीं किया और किसी भी साक्षी द्वारा पुनरीक्षणकर्ता की मिलीभगत या संलिप्तता के बारे में कानाफूसी तक नहीं की गई। पी.डब्लू. 10 डॉ. भरत सिंह जो सह-अभियुक्त अमनदीप और यशपाल का सहपाठी था, ने घटना से एक दिन पहले प्रथम सूचनादाता के बेटे को नशे की हालत में खुले में पड़ा हुआ पाया था, जब उक्त साक्षी उसे छात्रावास ले गया और अन्य छात्रों ने उसे बताया कि यह रोजाना की घटना है।

15. पोस्टमार्टम रिपोर्ट और विसरा रिपोर्ट के निष्कर्षों के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष के सभी साक्षीगण की उपरोक्त साक्ष्य का सामूहिक परिशीलन स्पष्ट रूप से और निःसंदेह पुनरीक्षणकर्ता और अन्य अभियुक्तगण को वर्तमान मामले में किसी भी आपराधिक दायित्व से मुक्त करता है, हालांकि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्षीगण की साक्ष्य को अपने सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा है और बहुत ही मनमाने तरीके से पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट और विसरा रिपोर्ट पर विश्वास नहीं किया है और इसे असंगत करार दिया है और मृतक की मृत्यु के कारण के बारे में अपनी राय बनाई है कि संभवतः श्वासावरोध के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है। विद्वान न्यायालय ने पी.डब्लू. 17 डा. अमर सिंह, जो सहायक चिकित्सा विधि विशेषज्ञ लखनऊ के पद पर कार्यरत हैं, को अभियोजन पक्ष का मुख्य साक्षी माना है और यद्यपि इस साक्षी ने मात्र चिकित्सा रिपोर्ट और जांच रिपोर्ट के अवलोकन के आधार पर रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि प्रथम दृष्टया वर्तमान मामला हत्या का प्रतीत होता है, क्योंकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट और विसरा रिपोर्ट में दिए गए लक्षण दम घुटने के

प्रतीत होते हैं, तथापि उक्त साक्ष्य पर भरोसा करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रहा है कि उक्त औपचारिक राय सभी आवश्यक दस्तावेजों का अवलोकन किए बिना ही दी गई थी और किसी भी मामले में उनकी राय मान्यताओं और पूर्वधारणाओं पर आधारित है, इसलिए इसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अधिक सावधानी से पढ़ा जाना चाहिए था।

16. विद्वान विचारण न्यायालय ने भी बहुत ही अनिश्चित निष्कर्ष निकाला है कि इस तथ्य के बारे में कोई अभिलेखीय साक्ष्य नहीं है कि मृतक एक आदतन शराबी था, इस तथ्य को स्वीकार करने के बावजूद कि विभिन्न साक्षीगण ने दावा किया है कि मृतक एक नियमित शराबी था और घटना की रात को उसे लड़खड़ाते हुए भी देखा गया था और गलत प्रकार से माना कि मृतक ने शराब नहीं पी थी। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश, विशेष रूप से वर्तमान मामले में धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को समन करने की सीमा तक, पूरी तरह से विकृत है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपने न्यायिक मस्तिष्क के किसी भी प्रयोग के बिना पारित किया गया है और यह विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए बेबुनियाद और निराधार अनुमानों का एक उत्पाद मात्र है।

17. वर्तमान मामले के संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन करने से यह स्थापित होता है कि जहां तक पुनरीक्षणकर्ता का संबंध है, कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और न ही पुनरीक्षणकर्ता

के पास सिद्धार्थ चौधरी की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु में सहभागिता या हाथ होने का कोई ठोस कारण है। वास्तव में, जहां तक विचाराधीन अभियुक्तों का संबंध है, अभियोजन पक्ष का मामला भी, सर्वोत्तम रूप से, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर है, जो कि अस्तित्वहीन प्रकृति का है, जो मृतक सिद्धार्थ चौधरी की मृत्यु तक ले जाने वाली परिस्थितियों की शृंखला को जोड़ने में भी विफल रहता है, ऐसी शृंखला को पूरा करना तो दूर की बात है। हालांकि, ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों के बावजूद, विचारण न्यायालय ने अभूतपूर्व, अनियमित और अवैध तरीके से, वर्तमान मामले में सह-अभियुक्तों को दोषसिद्ध करते हुए, उसी आक्षेपित आदेश के माध्यम से, मेडिकल कॉलेज मेरठ की प्रधानाचार्या डॉ. उषा शर्मा को वर्तमान मामले में मुकदमे का सामना करने के समन किया है। वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता को, इस मामले के पदाधिकार समाप्ति के पश्चात, धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्तियों का गलत तरीके से प्रयोग करते हुए, समन किया जाना विधिक दृष्टि से पूर्ण रूप से गलत है और इसलिए ये रद्द किये जाने योग्य है। किसी भी मामले में, वर्तमान मामले के अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण सामग्री और साक्ष्य के परिशीलन पर, वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता को समन करने को उचित ठहराने के लिए कोई ठोस या विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता 76 वर्षीय महिला हैं, जिनका चिकित्सा क्षेत्र में बहुत ही शानदार करियर रहा है और समाज में उनका बहुत सम्मान है। उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और ऐसे में अगर उन्हें मुकदमे की कठोरता से गुजरना पड़े, तो यह न्याय का

उपहास होगा, जब अभिलेख पर ऐसा करने के लिए कोई साक्ष्य या सामग्री नहीं है।

### **18. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्क**

(i) पुनरीक्षणकर्ता को निर्णय सुनाए जाने के समय धारा 319 दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए समन किया गया है। धारा 319 दं.प्र.सं. में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जहां किसी अपराध की जांच या सुनवाई के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो आरोपी नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकता है जो उसने किया हुआ प्रतीत होता है, जिसका अर्थ यह है कि न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय सुनाए जाने के समय धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए समन जारी करके कार्यवाही नहीं कर सकता है। इसलिए, ऐसे आदेश स्पष्ट रूप से वैधानिक प्रावधान पर प्रहार करते हैं। इस तरह के तर्क के समर्थन में, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का अवलम्ब लिया है, जो कि (2014) 3 एस.सी.सी. 92 में सूचित है।

(ii) धारा 319 दं.प्र.सं. से यह स्पष्ट है कि धारा 319 दं.प्र.सं. के प्रावधानों का उपयोग करके किसी व्यक्ति को मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने के लिए प्रयोग किया

जा सकने वाला साक्ष्य मुकदमे के दौरान एकत्र किया गया “साक्ष्य” है।

(iii) मामले के संपूर्ण अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनता है और पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई सीधा आरोप या साक्ष्य भी नहीं मिला है। पी.डब्लू.1 डा. सुरेन्द्र सिंह गेवाल, पी.डब्लू.2 श्रीमती सुरेन्द्र जीत कौर गेवाल, पी.डब्लू.3 मृणाल राठी, पी.डब्लू.4 डा. अजीत सिंह, पी.डब्लू.9 मो. गयास, पी.डब्लू.10 डा. भरत सिंह, पी.डब्लू.11 कुंवर पाल सिंह और पी.डब्लू.12 अनिल कुमार की साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि पी.डब्लू.1 और पी.डब्लू.2 को छोड़कर शेष साक्षीगण ने पुनरीक्षणकर्ता का संदर्भ तक नहीं दिया है, जहां तक पी.डब्लू.1 और पी.डब्लू.2 का संबंध है उन्होंने केवल अपनी आशंका व्यक्त की है जिसका किसी साक्ष्य या तर्क से समर्थन नहीं हुआ है, ऐसी स्थिति के आलोक में पुनरीक्षणकर्ता को समन करने का कोई ठोस कारण नहीं है। पी.डब्लू.-1 अर्थात् सूचनादाता/विपक्षी सं0 2 की साक्ष्य से भी यह स्पष्ट है कि यह बिना किसी आधार के आशंका/संदेह के अलावा और कुछ नहीं है। किसी भी प्रकार की दोषिता का संकेत देने वाली कोई अन्य परिस्थिति नहीं है। पी.डब्लू.-1 द्वारा दिया गया उक्त बयान प्रथम सूचनादाता द्वारा दिया गया एक भ्रमपूर्ण उद्धरण के अलावा और कुछ नहीं है। उपरोक्त के अलावा किसी भी प्रकृति का कोई अन्य साक्ष्य नहीं है। इस प्रकार, किसी भी सामग्री के अभाव में समन अनुचित और विकृत है। इस तरह के तर्क के समर्थन में, **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय

की संविधान पीठ के निर्णय, (2014) 3 एस.सी.सी. 92 में सूचित किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित निम्नलिखित टिप्पणियों को भी संदर्भित किया गया है:-

“हालांकि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों से केवल प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि प्रतिपरीक्षा के तौर पर इसका परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है। “जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह आरोप तय करते समय इस्तेमाल किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, परन्तु इस हद तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि बिना खंडन के रह जाते हैं, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएंगे।”

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून के मददेनजर, यह कथन किया गया है कि ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए और इस प्रकार वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता को समन करना रद्द किये जाने योग्य है।

(iv) आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष केवल अनुमानों पर आधारित हैं और वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता की किसी भी प्रत्यक्ष भूमिका का कोई उल्लेख नहीं है। साक्ष्यों और पोस्टमार्टम के निष्कर्षों के साथ-साथ विसरा रिपोर्ट का अवलोकन पुनरीक्षणकर्ता को किसी भी आपराधिक दायित्व से मुक्त कर देगा।

(v) पंचायतनामा या पोस्टमार्टम रिपोर्ट में किसी चोट का उल्लेख नहीं है। यह नहीं भूलना चाहिए कि पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 पेशे से डॉक्टर हैं और इस तरह उन्होंने किसी भी प्रकार से मामले को बढ़ावा देने के प्रयास में पोस्टमार्टम के संकेतों के संबंध में परोक्ष रूप से साक्ष्य दी है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृतक के शरीर पर कोई चोट नहीं देखी गई थी और यहां तक कि पंचायतनामा में भी किसी स्पष्ट चोट का उल्लेख नहीं है। विसरा रिपोर्ट में मौत का कारण इथाइल अल्कोहल जहर की मौजूदगी बताया गया है।

(vi) शराब की गंध के बारे में अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए तर्क पूरी तरह से मौत और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के बीच बीत चुके समय की अवधि पर निर्भर हैं, इसलिए इस पर कोई विचार नहीं किया जा सकता है।

(vii) भले ही ऐसा कोई विरोधाभास मौजूद हो, परन्तु संशोधनकर्ता की दोषीता मानने का कोई कारण नहीं है। पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 2 का साक्ष्य पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध आक्षेप और आरोप लगाने के संदर्भ में है, जो किसी भी तर्क या साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, इस प्रकार, पुनरीक्षणकर्ता की दोषीता के बारे में संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

(viii) किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में जो किसी भी साक्ष्य का गठन कर सके, पुनरीक्षणकर्ता को समन करना पूर्ण रूप से अनुचित है। विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय, सामग्री के अस्तित्व के बारे में कोई निष्कर्ष भी दर्ज नहीं किया है, अपितु निर्णय के आंतरिक पेज

सं0 32 में केवल आशंका / अनुमान के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को समन किया है। इस तरह के समन के लिए बताए गए कारण पूरी तरह से अनुचित और विकृत हैं।

(ix) आरोप अनुचित रूप से विलंबित प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए थे। कथित अपराध के संबंध में अध्याय 12 दं.प्र.सं. के अनुसार विवेचना की गई, जिसके परिणामस्वरूप अंततः धारा 173(2) दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता सहित सभी अभियुक्तगण के पक्ष में एक अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई। तत्पश्चात, विरोध याचिका दाखिल करने के पश्चात दिनांक 06.12.2006 के आदेश के अनुसार विशेष सी.जे.एम. मेरठ के न्यायालय ने अन्य अभियुक्तगण के संबंध में अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया, परन्तु पुनरीक्षणकर्ता के संबंध में अंतिम रिपोर्ट को उसी आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया। इसके बाद प्रथम सूचनादाता ने दिनांक 06.12.2006 के आदेश को किसी भी फोरम/न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी, इस प्रकार पुनरीक्षणकर्ता के संबंध में अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने का आदेश निरपेक्ष हो गया। इस प्रकार, तथ्यों और परिस्थितियों का संचयी दृष्टिकोण लेने पर, धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधानों का उपयोग करके पुनरीक्षणकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने का कोई कारण नहीं है और पुनरीक्षणकर्ता को समन करने का दिनांक 07.12.2019 और 12.12.2019 का आदेश विकृत, अनुचित और स्पष्ट रूप से अवैध है।

(x) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरदीप सिंह (2014) 3 एस.सी.सी. 1992 के मामले में सर्वोत्कृष्ट रूप से स्थापित कानून के प्रचलित प्रस्तावक, पुनरीक्षणकर्ता की ओर से पूर्वोक्त कथन का समर्थन करेंगे और धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत वर्तमान मामले में उसे समन करने पर रोक लगाएंगे।

पूर्वोक्त के संचयी बल पर, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने का विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश विपरीत, मनमाना और अवैध होने के कारण रद्द करने योग्य है।

#### विपक्षीय के विद्वान अधिवक्ताओं के कथन

19. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता ने पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के कथनों का यह कहते हुए खंडन किया है कि विचारण न्यायाधीश द्वारा धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पुनरीक्षणकर्ता को विचारण का सामना करने के लिए समन करने के आदेश में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं है।

19. उपरोक्त के अतिरिक्त विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विनय सरन ने निम्न प्रकार तर्क दिए हैं:-

(I) मृतक सिद्धार्थ चौधरी मेरठ मेडिकल कालेज में द्वितीय वर्ष का छात्र था, उसने विभिन्न पाठ्यक्रमों में छात्रों के प्रवेश में प्राचार्या उषा शर्मा (पुनरीक्षणकर्ता) सहित

मेडिकल कालेज में व्याप्त भ्रष्ट आचरण के विरुद्ध आवाज उठाई थी तथा उच्च प्राधिकारियों के विरुद्ध कई शिकायतें की थी। इसके समर्थन में शिकायत की दिनांक 03.04.2004 की प्रति अनुपूरक प्रति-शपथपत्र के साथ एस.सी.ए.-13 के रूप में संलग्न की गई है।

(II) पी.डब्ल्यू.-1 सुरेन्द्र सिंह ग्रेवाल और पी.डब्ल्यू.-2 श्रीमती सुरेन्द्र जीत ग्रेवाल ने हत्या के उद्देश्य के बारे में विचारण न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से बयान दिया है कि मेडिकल कॉलेज की प्रधानाचार्या, पुनरीक्षणकर्ता उषा शर्मा, अक्सर सिद्धार्थ (मृतक) को धमकाती थी कि वह उसे डॉ. महिपाल चौधरी (जिन्होंने पहले उसके भ्रष्ट आचरण को उजागर किया था) की तरह नेता नहीं बनने देगी और इस तरह, उसने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर उसे पूर्व नियोजित तरीके से मार डालने की साजिश रची।

(III) निःसंदेह, मृतक सिद्धार्थ चौधरी, जो मेरठ मेडिकल कॉलेज के द्वितीय वर्ष का छात्र था, को एल.जे.बी. छात्रावास में कमरा नंबर 42 आवंटित किया गया था, परन्तु आश्चर्यजनक रूप से वह एल.जे.बी. छात्रावास के कमरा नंबर 38 में, अप्राकृतिक परिस्थितियों में व शरीर पर स्पष्ट चोटों के साथ, मृत पाया गया, जो कि सह-अभियुक्त सचिन मलिक को 6 जुलाई, 2004 को आवंटित किया गया था।

(IV) पुनरीक्षणकर्ता ने शुरू से ही पुलिस और मृतक के माता-पिता सहित प्रथम सूचनादाता को गुमराह किया और अप्राकृतिक मृत्यु की कोई तत्काल सूचना मृतक के माता-पिता को

नहीं दी गई और उन्हें घटना के बारे में काफी देर से लगभग 10.30 बजे सुबह सूचित किया गया और माता-पिता के कॉलेज पहुंचने से पहले, घटनास्थल में हेरफेर करके मृतक के शरीर को शवगृह में स्थानांतरित कर दिया गया ताकि माता-पिता वास्तविक स्थिति और उनके इकलौते बेटे को न देख सकें।

(V) पुनरीक्षणकर्ता डॉ उषा शर्मा ने विवेचना को गुमराह करके सह-अभियुक्तों को बचाया और अप्राकृतिक मृत्यु की सूचना 6 जुलाई, 2004 को सुबह 11.00 बजे थाना -मेडिकल को दी, जो जी.डी. संख्या 24 में दर्ज की गई, जो कि पी.डब्लू. -7, उप-निरीक्षक सोहनवीर सिंह के बयान से स्पष्ट है।

(VI) पी.डब्लू.-5, उपनिरीक्षक राजीव कुमार कौशिक, जिन्होंने मृतक का पंचायतनामा तैयार किया, ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने एल.जे.बी. छात्रावास के कमरा नंबर 38 में जांच की थी और मृतक के चेहरे और छाती पर नीलापन भी देखा था और उन्होंने आगे कहा है कि यह सामान्य मौत नहीं थी।

(VII) पी.डब्लू.-1 डॉ. सुरेन्द्र सिंह ने विचारण न्यायाधीश के समक्ष कहा है कि अपने बेटे के शरीर का दृश्य निरीक्षण करने पर उन्होंने देखा कि चेहरा, आंख, छाती, हाथ और हाथों के नाखूनों पर गहरा नीलापन था। उन्होंने यह भी पाया कि उसके मुंह और नाक से झाग निकल रहा था। उन्होंने आगे देखा कि मृतक के निचले होंठ के दाहिनी ओर एक कटे का निशान था और ऊपरी जबड़े का एक दांत टूटा हुआ था। (मृत्यु से तुरंत पहले कुछ देने के लिए बल का प्रयोग दर्शाता है)। इसके

अतिरिक्त जब उन्होंने उसकी आंखें खोली तो उसकी दोनों आंखों में छोटे खून के धब्बे थे (गला घोटने का सामान्य लक्षण)। मृतक के शव को शवगृह की मेज पर पलटने पर पीठ, छाती और गर्दन का रंग नीला था। उसे मूत्र या मल आदि की गंध भी नहीं मिली, जिससे पता चलता है कि मृत्यु के बाद उसके कपड़े बदले गए थे। मृतक की मां पी.डब्लू.-2 श्रीमती सुरेन्द्र जीत सिंह गेवाल ने भी मृतक के शरीर पर उपरोक्त चोटों को देखा, जो विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज उनके बयान से स्पष्ट है।

(VIII) पी.डब्लू.-6 डॉ एम.के. गुलाटी, जिन्होंने मृतक सिद्धार्थ चौधरी के शव का पोस्टमॉर्टम किया, ने कहा है कि हालांकि कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई थी, परन्तु नाखून और होंठ नीले थे और आगे उन्होंने कहा है कि छाती या चेहरे पर चोट का कोई निशान नहीं था। कपड़ों पर कोई मूत्र या मल नहीं था और चूंकि मृत्यु का कारण पता नहीं चला था, इसलिए विसरा सुरक्षित रखा गया था। डॉ. अमर सिंह, पी.डब्लू.-17, जिनसे मेडिको लीगल एक्सपर्ट के रूप में पूछताछ की गई थी, ने कहा है कि उनकी रिपोर्ट एस.एस.पी. द्वारा भेजे गए दस्तावेजों अर्थात पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट, पंचायतनामा पर आधारित थी, जिसके आधार पर उन्होंने रिपोर्ट दी थी कि प्रथम दृष्टया यह हत्या का मामला था।

(IX) मृतक के माता-पिता, जो पेशे से चिकित्सक भी थे तथा मुजफ्फरनगर में नर्सिंग

होम चला रहे थे, ने शिकायत की कि पुलिस पुनरीक्षणकर्ता प्रधानाचार्या ऊषा शर्मा के दबाव में मामले की उचित विवेचना नहीं कर रही है तथा वह इसे आत्महत्या का रंग देने का प्रयास कर रही है तथा साक्षी भी उसके दबाव में थे, क्योंकि वह मेडिकल कॉलेज की प्रधानाचार्या थी तथा साक्षी मेडिकल कॉलेज के छात्र व कर्मचारी थे, इसलिए वह उसके विरुद्ध बोलने का साहस नहीं कर सकते थे।

(X) दिनांक 07.12.2019 का निर्णय एवं आदेश तथा दिनांक 12.12.2019 का आदेश भी पूर्णतः विधिक है तथा गुण-दोष के आधार पर सुनवाई एवं बहस का पूरा अवसर देने के पश्चात पारित किया गया है। आरोपी सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह को दोषी करार देते हुए, विचारण न्यायाधीश ने उसी दिन सही ढंग से पुनरीक्षणकर्ता उषा शर्मा को विचारण का सामना करने के लिए समन किया, क्योंकि उन्होंने सही ढंग से माना कि उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री थी, धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए और उसके बाद दोषी अभियुक्तगण के लिए सजा के बिंदु पर मामले की सुनवाई के लिए दिनांक 12.12.2019 तय की।

(XI) सजा सुनाने से पूर्व दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के प्रस्ताव को माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य 2023 (1) एस.सी.सी. 289 में सूचित, में न्यायोचित करार दिया है तथा इसे बरकरार रखा है।

(XII) पुनरीक्षणकर्ता उषा शर्मा, जो एक “पद्मश्री पुरस्कार विजेता” होने के नाते बेहद प्रभावशाली थीं और उन्होंने अभियुक्तगण (अब दोषसिद्ध) और खुद को बचाने के लिए और मेडिकल कॉलेज की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए विवेचना को गुमराह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। पुनरीक्षणकर्ता उषा शर्मा के प्रभाव के कारण, मृतक के परिवार को इस बहाने से गुमराह किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पहले ही कॉलेज/विश्वविद्यालय/प्रशासन द्वारा दर्ज की गई थी, हालांकि उनके द्वारा ऐसी कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी, इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी पूरी तरह से समझाई गई थी।

(XIII) मामले के अभिलेख अर्थात् धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज साक्षीगण के बयान, पंचायतनामा रिपोर्ट, पोस्टमार्टम रिपोर्ट तथा साथ ही अभियोजन साक्षीगण विशेषतः पी.डब्लू.-1 सुरेन्द्र सिंह ग्रेवाल और पी.डब्लू.-2 सुरेन्द्र जीत सिंह ग्रेवाल, पी.डब्लू.-5 उपनिरीक्षक राजीव सिंह कौशिक और पी.डब्लू.-17 डॉ. अमर सिंह के साक्ष्य, ने स्पष्ट रूप से यह दर्शाया है कि पर्याप्त मजबूत और ठोस साक्ष्य मौजूद हैं जो पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रथम दृष्टया से कहीं अधिक हैं जो धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करके उसे समन करने के लिए पर्याप्त थे।

(XIV) पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध अभिलेख पर मौजूद सामग्री/साक्ष्य प्रथम दृष्टया यह दिखाने के लिए पर्याप्त पाए गए कि पुनरीक्षणकर्ता ने अभियोजन पक्ष को गुमराह करने और जांच को प्रभावित करने में सक्रिय

रूप से भाग लिया, ताकि अपराध के साक्ष्यों को गायब करने के लिए अभियुक्तगण को बचाया जा सके और “पद्मश्री” पुरस्कार विजेता और उच्च योग्यता प्राप्त डॉक्टर और मेडिकल कॉलेज के प्रधानाचार्या होने के प्रभाव और उच्च पद का इस्तेमाल करके अपराधी को कानूनी सजा से बचाया जा सके।

(XV) विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय सभी सावधानियां बरतीं और विचारण के अंत तक प्रतीक्षा की और धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षणकर्ता को जल्दबाजी में नहीं समन किया। पुनरीक्षणकर्ता को समन करने के दौरान विचारण न्यायाधीश ने (2014) 3 एस.सी.सी. 92 में सूचित **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्मित सभी सावधानियों और दिशानिर्देशों का पालन किया।

(XVI) पुनरीक्षणकर्ता ने शुरू से ही अपने प्रभाव और प्रभाव का दुरुपयोग करके विवेचना के दौरान पुलिस को गुमराह किया और इसी कारण से मेडिकल कॉलेज प्रशासन द्वारा कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज नहीं की गई और साथ ही प्रथम सूचनादाता के परिवार के सदस्यों को भी गुमराह किया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम सूचनादाता द्वारा वास्तविक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी हुई, जबकि वह ईमानदारी से मानता था कि घटना की सही रिपोर्ट कॉलेज द्वारा पहले ही दर्ज कर दी गई थी।

(XVII) विवेचना के दौरान और पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध मुकदमे के दौरान

एकत्र किए गए अभिलेख में पर्याप्त सामग्री है जो यह दर्शाती है कि उसके हस्तक्षेप के कारण, मृतक सिद्धार्थ चौधरी की हत्या को आत्महत्या या मृतक द्वारा अत्यधिक शराब पीने के कारण हुई मौत का रंग देने की कोशिश की गई थी।

(XVIII) विचारण न्यायाधीश ने जांच के दौरान एकत्र की गई पूरी सामग्री के साथ-साथ विचारण के दौरान अभिलेख पर लाई गई सामग्री पर भी सही ढंग से विचार किया है और उसके बाद पाया है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध मामला प्रथम दृष्टया से अधिक स्तर का बनता था तथा धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करके उसे समन किया गया, विरोध याचिका पर आदेश ने 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रयोग की गई शक्तियों पर कोई रोक नहीं लगाई क्योंकि वर्तमान मामले में विचारण के दौरान अभिलेख पर लाई गई सामग्री को भी अभिलेख पर लिया गया था। उक्त कथन के समर्थन में, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन मैड 14197/(2015) 2 एल.डब्ल्यू. (सी.आर.आई.) 574 में सूचित **एस. जयराम बनाम तमिलनाडु राज्य** के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है।

उपरोक्त के संचयी बल पर, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि विचारण न्यायाधीश ने दिनांक 07.12.2019 को पुनरीक्षणकर्ता को बुलाया है, अर्थात् अभियुक्तगण को सजा सुनाने से पहले और वह धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपने क्षेत्राधिकार में थे,



जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने 2023 (1) एस.सी.सी. 289 में सूचित **मुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य** के मामले में अवधारित किया है।

20. इस न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए कथनों पर विचार किया है और वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के अभिलेखों का गहनता से अध्ययन किया है तथा आक्षेपित आदेश के साथ-साथ सह-अभियुक्तों के विरुद्ध पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश का भी अध्ययन किया है।

### **विधिक बिन्दु**

21. दो विधिक बिन्दु, जो इस न्यायालय के विचाराधीन हैं, वे हैं:

(क) क्या विचारण न्यायाधीश ने धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत आक्षेपित आदेश पारित करते समय पुनरीक्षणकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने पर अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज की है?

(ख) क्या विचारण न्यायाधीश ने सह-अभियुक्तों के विरुद्ध निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश पारित करने के बाद और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध सजा का आदेश पारित करते समय आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षणकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने के लिए धारा 319 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का सही/कानूनी प्रयोग किया है?

22. प्रथम बिन्दु पर विचार करने से पूर्व, इस न्यायालय के लिए धारा 319 दं.प्र.सं. को पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक है,

**‘319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति-** (1) जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे व्यक्ति ने जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, वहां न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकता है जो उसने किया प्रतीत होता है।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है, उसे पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए, मामले की परिस्थितियों के अनुसार गिरफ्तार किया जा सकता है या समन किया जा सकता है।

(3) न्यायालय में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को, यद्यपि गिरफ्तार नहीं किया गया है या समन पर नहीं है, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध की जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए हिरासत में लिया जा सकता है जो उसने किया प्रतीत होता है।

(4) जहां न्यायालय उप-धारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, वहां-

(क) ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से शुरू की जाएगी, और साक्षीगण की फिर से सुनवाई की जाएगी;

(ख) खंड (क) के प्रावधानों के अधीन, मामला इस प्रकार आगे बढ़ सकता है मानो ऐसा व्यक्ति उस समय अभियुक्त था जब न्यायालय

ने उस अपराध का संज्ञान लिया था जिस पर जांच या परीक्षण शुरू किया गया था।”

### **धारा 319 दं.प्र.सं. की व्याख्या**

23. धारा 319 दं.प्र.सं. को पढ़ने मात्र से यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि धारा 319 दं.प्र.सं. में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट, सरल और सुस्पष्ट है। हालांकि, कुछ ऐसे अस्पष्ट क्षेत्र हैं जो कभी-कभी न्यायालय को विधि के स्थापित सिद्धांतों से विचलित कर देते हैं।

24. धारा 319 दं.प्र.सं. का विश्लेषण करने से पूर्व, धारा पर रोशनी डालने वाले सिद्धांतों और सत्र न्यायालय सहित न्यायालय में निहित शक्ति की प्रकृति को समझना आवश्यक होगा। धारा 319 दं.प्र.सं. इस सिद्धांत से निकलती है कि “दोषी को दोषमुक्त किए जाने पर न्यायाधीश को दोषी ठहराया जाता है”। धारा 319 दं.प्र.सं. के अधिनियमन के दायरे और भावना को स्पष्ट करते समय इस सिद्धांत का उपयोग प्रकाश स्तंभ के रूप में किया जाना चाहिए। यह इस सिद्धांत पर भी आधारित है कि निर्दोष को दंडित नहीं किया जाना चाहिए, साथ ही, वास्तविक अपराधी को भागने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

25. धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति वास्तव में एक असाधारण शक्ति है जो न्यायालय को प्रदान की जाती है और इसका उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध संज्ञान लेने के लिए बाध्यकारी कारण/परिस्थितियां मौजूद हों, जिसके विरुद्ध कार्रवाई नहीं की गई है। धारा 319 दं.प्र.सं. एक विशेष प्रावधान है और यह

एक असाधारण स्थिति से निपटने का प्रयास करता है। यद्यपि यह व्यापकता प्रदान करता है, परन्तु इसका संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए।

26. धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है जिसका संयम से और केवल उन मामलों में प्रयोग किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस साक्ष्य मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और लापरवाही से नहीं।

27. धारा 319 दं.प्र.सं. की जांच से पता चलता है कि धारा में उप-धारा (1) से (4) तक चार भाग हैं। पहला भाग इस बारे में है कि धारा के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग कब और कैसे किया जा सकता है। दूसरा भाग इस बारे में बात करता है कि अगर नया जोड़ा गया आरोपी न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है, तो उसकी उपस्थिति कैसे सुनिश्चित की जाए। तीसरा भाग दर्शाता है कि अगर नया जोड़ा गया आरोपी न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है, तो उसकी उपस्थिति कैसे सुनिश्चित की जा सकती है। चौथा भाग इस बारे में बात करता है कि न्यायालय को किस तरह आगे बढ़ना चाहिए और आरोपी के विरुद्ध मुकदमा कैसे चलाना चाहिए।

28. कब और कैसे शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, धारा 319 (1) दं.प्र.सं. कहती है कि तीन तत्वों को संतुष्ट किया जाना चाहिए:-

- (i) सबसे पहले, किसी अपराध की कोई जांच या परीक्षण है।
- (ii) दूसरे, यह साक्ष्यों से प्रकट होता है कि किसी भी व्यक्ति ने जो आरोपी नहीं है, उसने कोई अपराध किया है।
- (iii) तीसरा, जिसके लिए, आरोपी के साथ-साथ उस व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाना है।

यदि उपरोक्त तत्व संतुष्ट हैं, तो किसी भी नए आरोपी को जोड़ा जा सकता है। इसके अलावा, धारा 319(1) दं.प्र.सं. में प्रयुक्त शब्द, अर्थात् “जांच” या “परीक्षण”, “उपस्थित होना”, “साक्ष्य”, “कोई भी व्यक्ति” अधिक महत्व रखते हैं।

29. धारा 319 दं.प्र.सं. केवल “न्यायालय” को ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार देती है। न्यायालय शब्द में सत्र न्यायालय (धारा 9 दं.प्र.सं.), न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय (11 दं.प्र.सं.) और महानगर मजिस्ट्रेट न्यायालय (16 दं.प्र.सं.) शामिल हैं। संदर्भ: हरदीप सिंह (उपरोक्त)।

30. संहिता की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान से या उसके समक्ष पहले से ही आरोपी सहित किसी व्यक्ति द्वारा आवेदन पर किया जा सकता है, यदि वह संतुष्ट है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति ने अपराध किया है और उस पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जाना है।

31. धारा 319 दं.प्र.सं. न्यायालय को किसी भी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में अभियुक्त नहीं है। इस प्रकार, जिस व्यक्ति के विरुद्ध ऐसी शक्तियों के प्रयोग में समन जारी किया जाता है, उसका पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहे अभियुक्त होना जरूरी नहीं है। धारा 319(1) दं.प्र.सं. को लागू करने का उद्देश्य ही स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जिन व्यक्तियों को विवेचना के दौरान पुलिस ने छोड़ दिया है, परन्तु जिनके विरुद्ध अपराध में उनकी संलिप्तता दिखाने वाले साक्ष्य न्यायालय के सामने आते हैं, उन्हें “कोई भी व्यक्ति जो अभियुक्त नहीं है” अभिव्यक्ति में शामिल किया जाता है।

32. यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है तो वह न्यायालय की धारा 319 दं.प्र.सं. में ऐसे व्यक्ति के विवरण के दायरे में आ सकता है। हालांकि, उसका नाम आरोप पत्र में नहीं है या उसे मामले से मुक्त कर दिया गया है, जो उसके पश्चात अभियोजन में उसकी दोषसिद्धि का अच्छा अवसर प्रदान करेगा। हालांकि, किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में जिसे मुक्त कर दिया गया है, उसके विरुद्ध धारा 300(5) के प्रावधान के साथ धारा 398 दं.प्र.सं. के प्रावधान का सहारा लिए बिना सीधे धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है। जिस व्यक्ति का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है और आरोप पत्र में भी नहीं है, उसे धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत समन किया जा सकता है। यहां तक कि जिस व्यक्ति को प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रारंभ में अभियुक्त के रूप में नामित किया

गया हो किन्तु आरोप पत्र में न हो, ऐसे व्यक्ति को भी मुकदमे का सामना करने के लिए जोड़ा जा सकता है। जहां किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 204 दं.प्र.सं. के अंतर्गत नहीं बुलाया गया था, परन्तु उसका नाम धारा 244 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज बयान में सामने आया, तो उस व्यक्ति को धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभियुक्त के रूप में बुलाया जा सकता है। धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग उस व्यक्ति के विरुद्ध किया जा सकता है जो विवेचना के अधीन नहीं है या आरोप पत्र के कॉलम 2 में रखा गया व्यक्ति जिसके विरुद्ध संज्ञान नहीं लिया गया है या जिस व्यक्ति को मुक्त कर दिया गया हो। जिस आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही रद्द कर दी गई है, उसे भी धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत जोड़ा जा सकता है।

### विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष

33. यह न्यायालय अब आक्षेपित आदेश की वैधता या अन्यथा पर आता है। आक्षेपित आदेश के माध्यम से अवर न्यायालय ने धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता को समन करने के लिए निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए हैं:-

“मामले के समाप्त होने से पहले, यह देखा गया है कि तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश करने और मृतक की हत्या को आत्महत्या या प्राकृतिक मौत का रंग देने का हर संभव प्रयास किया गया और यहां तक कि सी.आई.डी. और राज्य के मेडिको लीगल विशेषज्ञ के साथ भी सहयोग नहीं किया गया। उनके द्वारा मांगे

गए दस्तावेजों को भी रोक दिया गया और यहां तक कि दूसरी जांच से बचने के लिए विसरा भी नष्ट कर दिया गया क्योंकि फोरेंसिक साइंस लैबोरेटरी की रिपोर्ट में इथाइल अल्कोहल विषाक्तता से मौत का उल्लेख है, जो अन्य साक्ष्यों से अभिलेख पर दूर-दूर तक साबित नहीं होता है और यह अभिलेख पर साबित तथ्यों से काफी अलग है। मेडिकल कॉलेज की प्रधानाचार्या उषा शर्मा का नाम, जहां तीनों अभियुक्त और मृतक पढ़ रहे थे और पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी घटना के हिंसा वाले हिस्से के बारे में भी, शान्त है, जो उषा शर्मा के विरुद्ध बहुत कुछ कहता है, ऐसा लगता है कि उन्होंने मामले की कमान अपने हाथ में रखी और यहां तक कि माता-पिता से मौत के तथ्य को भी छिपाया, हत्या की रिपोर्ट नहीं की और मृतक के माता-पिता पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 ने उनकी संलिप्तता को बहुत मुखरता से इंगित किया, परन्तु उनके विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया। वास्तव में, किसी भी आरोपी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया और मामला अंतिम रिपोर्ट दाखिल किए जाने पर आपत्तियों के आधार पर प्रकाश में आया। हालांकि विवेचना के दौरान और विचारण के दौरान धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का उपयोग करने से उषा शर्मा का नाम एक सहयोगी के रूप में सामने आया, जिससे मामले में कुछ और साल की देरी हो सकती थी, जो पहले ही एक दशक से विलंबित है, और इसलिए, इस शक्ति का प्रयोग देरी से किया गया है और उषा शर्मा को विचारण का सामना करने के लिए समन किया जाता है। साक्षीगण के बयानों की प्रति, और संबंधित दस्तावेजों के साथ-साथ कमिटल फाइल को

अलग किया जाए ताकि नए तलब किए गए अभियुक्तगण के मुकदमे में देरी न हो।

डॉ. उषा शर्मा, तत्कालीन प्रधानाचार्या, मेडिकल कॉलेज, मेरठ को दिनांक 16.01.2020 को मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया जाए।”

**विधि व्यवस्थाओं द्वारा समर्थित बिन्दु संख्या 1 पर इस न्यायालय के उत्तर के साथ निष्कर्ष।**

34. अभिलेखों से यह एक स्वीकृत स्थिति है कि विचारण न्यायाधीश ने 7 दिसंबर, 2019 को सह-अभियुक्तगण, अर्थात् सचिन मलिक, यशपाल राणा और अमनदीप सिंह को दोषसिद्ध करते हुए निर्णय और आदेश पारित किया है, जबकि उन्हें धारा 302 भा.दं.सं. सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अंतर्गत आजीवन कारावास की सजा के साथ-साथ प्रत्येक को 1,00,000/- रूपए के जुर्माने का दंडादेश दिनांक 12.12.2019 को पारित किया गया है और दंडादेश पारित करने के पश्चात, पुनरीक्षणकर्ता को विचारण अंतर्गत धारा 319 दं.प्र.सं. का सामना करने हेतु आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

35. इस न्यायालय के लिए इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है कि कब या किस चरण में, मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश जैसी कोई न्यायालय किसी भी व्यक्ति को धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने का आदेश पारित कर सकती है ताकि आदेश की वैधता या अन्यथा की जांच की जा सके।

36. इस तरह के प्रश्न का उत्तर दं.प्र.सं. की धारा 319 के पहले भाग को पढ़ने से ही सामने आ जाता है जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विवेचना या विचारण के दौरान कोई भी न्यायालय किसी भी व्यक्ति को विचारण का सामना करने के लिए अभियुक्त के रूप में समन करने के लिए ऐसा आदेश पारित कर सकता है, जिसका अर्थ यह है कि कोई भी न्यायालय विचारण समाप्त होने के बाद ऐसा आदेश पारित नहीं कर सकता है।

37. **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य** (2014) 3 एस.सी.सी. 92 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के पांच जजों ने दं.प्र.सं. की धारा 319 के प्रावधानों पर विचार करते हुए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए हैं:-

“6.1. (i) वह कौन सा चरण है जिस पर दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है?

(ii) क्या धारा 319 (1) दं.प्र.सं. में प्रयुक्त शब्द “साक्ष्य” का अर्थ केवल प्रतिपरीक्षा द्वारा परीक्षित साक्ष्य हो सकता है या न्यायालय संबंधित साक्षी के मुख्य परीक्षण में दिए गए बयान के आधार पर भी उक्त प्रावधान के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग कर सकता है?

(iii) क्या धारा 319 (1) दं.प्र.सं. में प्रयुक्त शब्द “साक्ष्य” का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है और इसमें विवेचना के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या “साक्ष्य” शब्द परीक्षण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य तक सीमित है?

(iv) किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का आह्वान करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की प्रकृति क्या है? क्या धारा 319(1) दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब न्यायालय संतुष्ट हो कि समन किया गया अभियुक्त के दोषसिद्ध किए जाने की पूरी संभावना है?

(v) क्या धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति उन व्यक्तियों तक विस्तारित होती है जिनका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है या जिनका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है परन्तु उन पर आरोप नहीं लगाया गया है या जिन्हें आरोपमुक्त कर दिया गया है?

38. उपर्युक्त प्रश्नों के आधार पर, सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले पर तीन चरणों में विचार किया है अर्थात् वह चरण जिस पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है और दूसरा, वह सामग्री जिसके आधार पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग उचित ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, तीसरा, जिस तरीके से ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जाना है, उस पर भी विचार किया जाना है।

39. पहले प्रश्न अर्थात् वह कौन सा चरण है जिस पर धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है? माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 25 से लेकर उसके बाद के कुछ पूर्व निर्णयों पर प्रकाश डालने और विचार करने के बाद पैराग्राफ संख्या 40, 47, 53 और 54 में अपनी राय दी है जो इस प्रकार है:-

“40. धारा 319 दं.प्र.सं. में आने वाला शब्द “कोर्स” भी स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि शक्ति का प्रयोग केवल उस अवधि के दौरान किया जा सकता है जब विवेचना शुरू हो गई है और चल रही है या विचारण शुरू हो गया है और चल रहा है। यह विचारण से पूर्व और विचारण के चरण की प्रक्रिया की पूरी विस्तृत श्रृंखला को कवर करता है। इसलिए, शब्द “कोर्स” न्यायालय को विवेचना के शुरुआती चरण से लेकर विचारण के समापन के चरण तक किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए इस शक्ति का इस्तेमाल करने की अनुमति देता है। न्यायालय के अधिकार तब तक समाप्त नहीं हो जाते हैं, जब तक कि वह किसी अन्य व्यक्ति के मामले में सामग्री की जांच नहीं कर रही हो, जो आरोपी नहीं है। शब्द “कोर्स” आम तौर पर समय में एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक निरंतर प्रगति का अर्थ बताता है और समय की अवधि का विचार व्यक्त करता है; अवधि और समय का एक निश्चित बिंदु नहीं। (देखें आयकर आयुक्त, नई दिल्ली (अब राजस्थान) बनाम मेसर्स ईस्ट वेस्ट इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट (पी.) लिमिटेड (अब एशियन डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड के रूप में जाना जाता है) जयपुर, ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 836)।

47. चूंकि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद, न्यायालय जांच के चरण में पहुंचती है और जैसे ही न्यायालय आरोप तय करती है, विचारण शुरू हो जाता है, और इसलिए, धारा 319 (1) दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग आरोप पत्र दाखिल होने के पश्चात और निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किया जा

सकता है, सिवाय धारा 207/208 दं.प्र.सं., सुपुर्दगी आदि के चरण के दौरान, जो केवल एक पूर्व-परीक्षण चरण है, जिसका उद्देश्य प्रक्रिया को गति में लाना है। इस चरण को सही मायने में न्यायिक कदम नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसके लिए न्यायिक मस्तिष्क के प्रयोग के बजाय केवल मस्तिष्क के प्रयोग की आवश्यकता होती है। इस विचारण से पूर्व के चरण में, मजिस्ट्रेट को न्यायिक कार्य के बजाय प्रशासनिक कार्य करने की आवश्यकता होती है, जैसे कि धारा 207 और 208 दं.प्र.सं. का अनुपालन सुनिश्चित करना और यदि मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो उसे सुपुर्द करना। इसलिए, हमारे लिए यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि धारा 207 और 209 दं.प्र.सं. के चरण में मजिस्ट्रेट को धारा 319 दं.प्र.सं. के स्पष्ट प्रावधान द्वारा मामले के गुण-दोष पर विचार करने और यह निर्धारित करने से निषिद्ध किया जाता है कि सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे का सामना करने के लिए किसी अभियुक्त को जोड़ने या घटाने की आवश्यकता है या नहीं।

....

53. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब तक मामला न्यायालय द्वारा जांच या सुनवाई के चरण तक नहीं पहुंचता, तब तक धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। वास्तव में, धर्मपाल (सी.बी.) में संविधान पीठ द्वारा इस प्रस्ताव को विचलित नहीं किया गया प्रतीत होता है। इसमें विवाद को एक ऐसी स्थिति की कल्पना करते हुए हल किया गया था जिसमें न्यायालय प्रक्रियात्मक देरी से चिंतित था और उसकी राय थी कि सत्र

न्यायालय को धारा 319 दं.प्र.सं. के चरण तक पहुंचने तक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए ताकि किसी व्यक्ति को, जो मुकदमे का सामना नहीं कर रहा है, अभियुक्त के रूप में पेश होने और मुकदमे का सामना करने का निर्देश दिया जा सके। हम संविधान पीठ द्वारा दी गई व्याख्या से पूरी तरह सहमत हैं कि धारा 193 दं.प्र.सं. सत्र न्यायालय को मामला सुपुर्द किए जाने के पश्चात अभियुक्त को जोड़ने के लिए मूल क्षेत्राधिकार की शक्ति प्रदान करती है।

54. हमारी राय में, जांच का चरण अपने सख्त कानूनी अर्थों में किसी भी साक्ष्य पर विचार नहीं करता है, न ही विधायिका इस पर विचार कर सकती है क्योंकि साक्ष्य के लिए चरण अभी तक नहीं आया है। न्यायालय के पास एकमात्र सामग्री अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित सामग्री है और इस स्तर पर न्यायालय प्रथम दृष्टया यह पता लगाने के लिए अपना मस्तिष्क प्रयोग कर सकता है कि क्या किसी व्यक्ति, जो अभियुक्त हो सकता है, को गलत तरीके से अभियोग चलाने से छोड़ दिया गया है या अभियोजन एजेंसियों द्वारा जानबूझकर बाहर रखा गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए यह और भी अधिक आवश्यक है कि जांच और अभियोजन एजेंसियों ने उन व्यक्तियों को न्यायालय के समक्ष लाने में निष्पक्ष रूप से काम किया है जो मुकदमा चलाने के हकदार हैं और किसी भी व्यक्ति को जानबूझकर बचाने से रोकने के लिए जब उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए था। न्यायिक प्रणाली में विश्वास कायम करने के लिए यह आवश्यक है कि जिसके द्वारा न्यायालय को जांच के स्तर पर भी ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार

होना चाहिए और यह इस कारण से है कि विधायिका ने जानबूझकर धारा 319 दं.प्र.सं. में जांच या परीक्षण जैसे अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल किया है।”

(बल दिया गया)

40. इस तरह के निष्कर्ष के आधार पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 55 में उक्त प्रश्न का उत्तर दिया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

“55. तदनुसार, हम मानते हैं कि न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग तभी कर सकता है जब मुकदमा चलता है और साक्ष्य दर्ज होना शुरू होता है और असाधारण परिस्थितियों में भी जैसा कि ऊपर बताया गया है।”

(बल दिया गया)

41. हाल ही में इसी मुद्दे पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के पांच न्यायाधीशों ने (2023) 1 एस.सी.सी. 289 में सूचित **सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य** के मामले में, सबसे पहले निम्नलिखित मुद्दों में से एक को तैयार किया है:

“1. क्या विचारण न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने का अधिकार है, जब अन्य सह-अभियुक्तगण के संबंध में विचारण समाप्त हो गया है और समन आदेश सुनाने से पहले उसी तारीख को दोषसिद्धि का फैसला सुनाया गया है?”

42. उक्त मुद्दे का उत्तर देने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने पैराग्राफ संख्या 32 से 38 में अपने निष्कर्ष दर्ज किए हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

“32. इसलिए, इस न्यायालय के प्रावधानों और निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आपराधिक अभियोजन में मुकदमे का समापन यदि दोषसिद्धि में होता है, तो निर्णय सभी मामलों में तभी पूर्ण माना जाता है जब दोषी को सजा सुनाई जाती है, यदि दोषी को धारा 360 दं.प्र.सं. का लाभ नहीं दिया जाता है। इसी तरह, ऐसे मामले में जहां एक से अधिक अभियुक्त हैं और यदि उनमें से एक या अधिक को दोषमुक्त कर दिया जाता है और अन्य को दोषसिद्ध किया जाता है, तो दोषमुक्त किए गए अभियुक्तगण के विरुद्ध मुकदमा समाप्त हो जाएगा और दंड देने के साथ ही दोषी अभियुक्तगण के विरुद्ध मुकदमा समाप्त हो जाएगा। जब दं.प्र.सं. की धारा 319 के संदर्भ में विचार किया जाता है, तो तर्क के अनुसार कोई द्वंद्व नहीं होगा, क्योंकि यहां जो प्रासंगिक हो जाता है वह केवल अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर एक नए अभियुक्त को समन करने का निर्णय है जो मौजूदा अभियुक्तगण के लिए प्रतिकूल नहीं होगा क्योंकि किसी भी स्थिति में वे दोषी हैं।

33. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, यदि न्यायालय को मुकदमे की प्रक्रिया में दर्ज साक्ष्य से पता चलता है कि कोई अन्य व्यक्ति भी इसमें शामिल है, तो दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत अभियुक्त को समन करने की ऐसी



शक्ति का प्रयोग सजा सुनाए जाने से पहले और सभी मामलों में निर्णय पूरा होने से पहले इस आशय का आदेश पारित करके किया जा सकता है, जिससे मुकदमे का समापन हो सके। ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचते समय दं.प्र.सं. की धारा 319 की उपधारा (4) की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। उक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि यदि विद्वान सत्र न्यायाधीश अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने की शक्ति का प्रयोग करता है, तो ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से शुरू की जाएगी और अतिरिक्त अभियुक्त की उपस्थिति में साक्षीगण को पुनः परीक्षित किया जाएगा। ऐसे मामले में जहां विद्वान सत्र न्यायाधीश साक्षीगण के साक्ष्य रिकॉर्ड करने के बाद या दोषसिद्धि का निर्णय सुनाने के बाद परन्तु सजा सुनाए जाने से पहले दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करता है, वही साक्ष्य जो अभिलेख पर उपलब्ध है, दं.प्र.सं. की धारा 273 के मददेनजर नए जोड़े गए आरोपी के विरुद्ध इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। बाद में समन किए गए आरोपी के विरुद्ध नए सिरे से सुनवाई की जानी है। हालांकि दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत आवेदन पर विचार करते समय, यदि विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दोषसिद्धि का निर्णय पारित करने या दंडादेश पारित करने से पहले अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने का निर्णय है, तो निर्णय सुनाकर मुकदमे का समापन रोक दिया जाना चाहिए और दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत आवेदन का निपटारा किया जाना चाहिए और उसके बाद ही निर्णय के निष्कर्ष पर आगे बढ़ा जा सकता है, या तो न्यायालय के समक्ष मौजूद अन्य आरोपियों को दोषी

ठहराया जा सकता है और उन्हें सजा सुनाई जा सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग केवल दोषसिद्धि और सजा का निर्णय पारित करके मुकदमे के समापन से पहले किया जा सकता है।

34. हालांकि दं.प्र.सं. की धारा 319 में यह प्रावधान है कि उपधारा (1) के अनुसार समन किए गए ऐसे व्यक्ति पर अन्य अभियुक्तों के साथ संयुक्त रूप से मुकदमा चलाया जा सकता है, दं.प्र.सं. की धारा 223 के तहत न्यायालय को संयुक्त मुकदमा चलाने की उपलब्ध शक्ति को ध्यान में रखते हुए, दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत आवेदन पर विचार करने और अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने का निर्णय लेने के समय विद्वान सत्र न्यायाधीश के लिए यह भी स्वतंत्र होगा कि वह इस बारे में भी निर्णय ले कि क्या ऐसे अभियुक्तों को समन करने के बाद विचाराधीन अभियुक्त के विरुद्ध पारित किए जा रहे निर्णय को स्थगित करके संयुक्त मुकदमा चलाया जाना चाहिए। यदि यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि नए जोड़े गए अभियुक्तों के विरुद्ध चलाए जाने वाले नए मुकदमे पर अलग से मुकदमा चलाया जा सकता है, तो ऐसी स्थिति में विद्वान सत्र न्यायाधीश के लिए ऐसा आदेश देना और निर्णय पारित करना और उस अभियुक्त के विरुद्ध मुकदमा समाप्त करना खुला होगा जिसके विरुद्ध मूल रूप से मुकदमा चलाया गया था और उसके बाद नए जोड़े गए अभियुक्तों के मामले में आगे बढ़ना होगा। हालांकि, महत्वपूर्ण बात यह है कि न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान लेकर या दं.प्र.सं. की धारा

319 के तहत आवेदन पर अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने के निर्णय पर सभी परिस्थितियों में विचार किया जाना चाहिए और सजा सुनाए जाने से पहले ही निस्तारण कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि अन्यथा, मुकदमा समाप्त हो जाएगा और न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत शक्ति से वंचित हो जाएगा। चूंकि न्यायालय के पास यह निर्णय लेने की शक्ति उपलब्ध है कि संयुक्त परीक्षण की आवश्यकता है या नहीं, इसलिए इस न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 319(1) में निहित वाक्यांश, “अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है” को शशिकांत सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्देशिका के रूप में मानना उचित था, जो हमारे विचार में सही दृष्टिकोण है।

35. एक अन्य पहलू जिसे स्पष्ट किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि यदि फरार अभियुक्त के विरुद्ध मुकदमा विभाजित है और लंबित है, तो यह अपने आप में दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत दायर आवेदन या पहले के मुख्य मुकदमे में अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने के न्यायालय के आदेश को वैधता प्रदान नहीं करेगा, यदि ऐसा समन आदेश अन्य अभियुक्त के विरुद्ध पहले समाप्त हुए मुकदमे में दिया गया है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग उस मामले में दर्ज साक्ष्य के आधार पर किया जाना है, जो उस अभियुक्त की संलिप्तता की ओर इशारा करता है, जिसे बुलाया जाना है। यदि विभाजित मामले में, फरार अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने पर मुकदमा शुरू किया जाता है और यदि उसमें दर्ज साक्ष्य में दं.प्र.सं. की धारा 319 में परिकल्पित किसी

अन्य व्यक्ति की संलिप्तता की ओर संकेत किया जाता है, तो अभियुक्त को बुलाने की ऐसी शक्ति निश्चित रूप से विभाजित मामले में मुकदमे के समापन से पहले लागू की जा सकती है।

36. इस मुद्दे का विश्लेषण करने और सभी पहलुओं पर उपरोक्त निष्कर्ष निकालने में, हम इस न्यायालय द्वारा, अन्य बातों के अलावा, राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2007) 7 एस.सी.सी. 378 के मामले में लिए गए दृष्टिकोण से भी सहमत हैं, जिसमें दं.प्र.सं. की धारा 319 के उद्देश्य के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला गया है:-

“20. संहिता की धारा 319 के तहत न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह यह सुनिश्चित करे कि किसी अपराध के सभी दोषियों को सजा दिलाकर समाज को न्याय मिले। आपराधिक न्याय प्रणाली का एक उद्देश्य और उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना है। इस संदर्भ में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति जो दोषी प्रतीत होता है, उस अपराध के संबंध में उचित सुनवाई से बच न पाए। अपराध के पीड़ित को न्याय दिलाना भी एक कर्तव्य है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संहिता ने न्यायालय को विशेष रूप से यह शक्ति प्रदान की है कि वह इस धारा द्वारा निर्धारित परिस्थितियों में अभियुक्त के रूप में नहीं बनाए गए अन्य लोगों के विरुद्ध कार्यवाही कर सके। यह एक लाभकारी शक्ति है जो न्यायालय को समाज के प्रति अपने दायित्व

का निर्वहन करने में सक्षम बनाती है ताकि अपराध के सभी दोषियों को सजा मिल सके।

21. मेरे विचार में, धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग न्यायालय पर छोड़ दिया गया है, जो अपने सामने आए साक्ष्य के आधार पर अपराध की सुनवाई करता है। न्यायालय को धारा 319 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्व शर्त से संतुष्ट होना चाहिए। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि कानून में प्रशिक्षित न्यायालय प्रावधान के दायरे में शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा और यह तय नहीं करेगा कि वह ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है या नहीं। उस शक्ति और विवेक को या तो असाधारण कहकर या यह कहकर कि इसका प्रयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में ही किया जाएगा, बाधित करने का कोई औचित्य नहीं है। इसका उपयोग तब किया जाना है जब धारा द्वारा परिकल्पित अवसर उत्पन्न हो।”

37. हमने दं.प्र.सं. की धारा 319 के तहत प्रयोग की जाने वाली वस्तु और शक्ति के बिंदुवार विश्लेषण को भी ध्यान में रखा है, जैसा कि मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य व अन्य (2021) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 632 के पैरा 34 में इंगित किया गया है।”

43. इस तरह के निष्कर्ष के आधार पर, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 39(1) में उक्त मुद्दे का उत्तर दिया है, जो इस प्रकार है:-

“दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग दंडादेश की घोषणा से पहले किया जाना चाहिए, जहां अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय हो। दोषमुक्त किए जाने

के मामले में, दोषमुक्त किए जाने के आदेश की घोषणा से पहले शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसलिए, सजा के मामले में सजा देकर मुकदमे के समापन से पहले समन आदेश दिया जाना चाहिए। यदि आदेश उसी दिन पारित किया जाता है, तो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसकी जांच करनी होगी और यदि ऐसा समन आदेश दोषसिद्धि के मामले में दोषसिद्ध किए जाने या सजा लगाने के आदेश के बाद पारित किया जाता है, तो यह पोषणीय नहीं होगा।”

(बल दिया गया)

44. हरदीप सिंह और सुखपाल सिंह खैरा (उपरोक्त) के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की दो संविधान पीठों द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 319 के प्रावधानों की गहन जांच से, यह न्यायालय इस बात पर दृढ़ राय रखता है कि दं.प्र.सं. की धारा 319 के पहले भाग के अनुसार, कोई भी मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय जांच या परीक्षण के दौरान दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग या आह्वान कर सकता है, जबकि **हरदीप सिंह (उपरोक्त)** के मामले में व्यक्त राय के अनुसार, कोई भी मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत कोई भी आदेश परीक्षण के आगे बढ़ने और शुरू होने के बाद ही पारित कर सकता है, अर्थात् दोषसिद्धि या बरी होने का निर्णय सुनाए जाने से पहले, जबकि **सुखपाल सिंह खैरा (उपरोक्त)** के मामले में स्थापित कानून के अनुसार, जहां अभियुक्त की दोषसिद्धि का फैसला हो, वहां दं.प्र.सं. की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग और आह्वान दंडादेश की घोषणा से पहले किया

जाना है। हालांकि, वर्तमान मामले में सह-अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय 7 दिसंबर 2020 को पारित किया गया है और दंडादेश 12 दिसंबर को पारित किया गया है, जबकि पुनरीक्षणकर्ता को अभियुक्त के रूप में मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने का आदेश सह-अभियुक्त की दंडादेश पारित करने के बाद पारित किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, यह न्यायालय पाता है कि आरोपित आदेश स्पष्ट रूप से धारा 319 दं.प्र.सं. के प्रावधानों के साथ-साथ **हरदीप सिंह और सुखपाल सिंह खैरा (उपरोक्त)** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा तय कानूनों के स्थापित प्रस्ताव को प्रभावित करता है।

**विधि व्यवस्थाओं द्वारा समर्थित बिन्दु संख्या 2 पर इस न्यायालय के उत्तर के साथ निष्कर्ष।**

45. अब यह न्यायालय साक्ष्य या प्रथम संतुष्टि से निपटता है जिसके आधार पर विचारण न्यायाधीश ने धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता को अभियुक्त के रूप में मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने का आक्षेपित आदेश पारित किया है।

46. दं.प्र.सं. की धारा 319 के प्रावधानों के साथ-साथ **हरदीप सिंह (उपरोक्त)** और **सुखपाल सिंह खैरा** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त संविधान पीठ के निर्णय सहित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निणयों से, यह न्यायालय संक्षेप में धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए पाता है कि सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और केवल इस आधार पर आदेश देने की आवश्यकता नहीं है कि किसी व्यक्ति

को शामिल करने वाला कुछ साक्ष्य अभिलेख पर आ गया है।

47. चूंकि धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत समन जारी करने से नए विचारण का अधिकार मिलता है और बड़ी संख्या में साक्षीगण का परीक्षण किया गया है और उनकी पुनः परीक्षण अभियोजन पक्ष को पूर्वाग्रहित कर सकती है और विचारण में देरी कर सकती है, इसलिए विचारण न्यायालय को बहुत सावधानी और दूरदर्शिता के साथ इस तरह के विवेक का प्रयोग करना होगा (संदर्भ: **वृंदावन दास व अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य**, (2009) 3 एस.सी.सी. 329/ए.आई.आर. 2009 1248 (एस.सी.)/(2009) एस.ए.आर. क्रि. 117 में सूचित)।

48. **पेरियासामी व अन्य बनाम नल्लासामी** के मामले में (2019) 4 एस.सी.सी. 342/ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 1426 में सूचित, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि बिना साक्ष्य के धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अतिरिक्त अभियुक्त को समन करना अनुचित है। धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह एक ऐसा परीक्षण है जो आरोप लेने के समय किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, परन्तु इस सीमा तक कम संतुष्टि देता है कि अगर साक्ष्यों का खंडन नहीं किया जाता है तो दोषसिद्धि हो जाएगी (संदर्भ: **हरदीप सिंह (उपरोक्त)**)।

49. वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश पारित करते समय, विचारण न्यायाधीश ने केवल पी.डब्ल्यू. 1 और पी.डब्ल्यू.-2 के साक्ष्य का

अवलम्ब लिया है, जिन्होंने केवल संशोधनकर्ता पर सह-अभियुक्त की मदद करने और जांच को इस तरह से मोड़ने और प्रभावित करने का संदेह किया है, ताकि मेडिकल कॉलेज की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए हत्या की मौत को आत्महत्या की मौत में बदल दिया जा सके और उन्होंने यह भी दर्ज किया है कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट, मेडिको लीगल रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों को रोक दिया गया है, यहां तक कि दूसरी जांच से बचने के लिए विसरा को भी नष्ट कर दिया गया है, क्योंकि फॉरेंसिक साइंस लैबोरेटरी की रिपोर्ट में इथाइल अल्कोहल विषाक्तता से मृत्यु का उल्लेख है, जो अन्य साक्ष्यों द्वारा अभिलेख पर दूर-दूर तक साबित नहीं होता है, और यह अभिलेख पर साबित तथ्यों से बिल्कुल अलग है। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर भी संदेह किया है जो मृतक की चोट के बारे में चुप है। यह ऐसे संदेह के आधार पर है कि आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। उपरोक्त के अतिरिक्त, विचारण न्यायाधीश ने पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय की तिथि को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज नहीं की है, जैसा कि **हरदीप सिंह (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा और साथ ही ऊपर संदर्भित उसी मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों में देखा गया है। यह न्यायालय यह भी पाता है कि पुनरीक्षणकर्ता को समन करने के लिए आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचारण न्यायाधीश ने उन्हीं साक्ष्यों पर भरोसा किया है, जिनके आधार पर जांच एजेंसी ने पुनरीक्षणकर्ता और सह-अभियुक्त व्यक्तियों के

विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जबकि अंतिम रिपोर्ट को केवल पुनरीक्षणकर्ता के लिए स्वीकार किया गया है और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध इसे खारिज कर दिया गया है। आरोप तय करने के समय और साथ ही विचारण के दौरान, पुनरीक्षणकर्ता को पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 की साक्ष्य को छोड़कर अभियुक्त के रूप में नामित नहीं किया गया है, जिन्होंने विवेचना के दौरान कोई विरोध याचिका या धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कोई आवेदन दायर नहीं किया है।

50. चूंकि आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध अपराध का दोषी होने का कोई साक्ष्य नहीं था, परन्तु केवल साक्षी अर्थात् पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 ने राय दी कि पुनरीक्षणकर्ता ने संभवतः अपराध किया है, इसलिए ऐसे साक्ष्यों के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को अभियुक्त के रूप में जोड़ने के लिए विचारण न्यायाधीश का आदेश अनुचित होगा, क्योंकि साक्षीगण द्वारा बनाए गए कुछ संदेह के आधार पर किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में जोड़ना न्याय का उपहास होगा (संदर्भ: **जी. पलानीसामी बनाम राज्य**, 2003 (2) एम.डब्ल्यू.एन. (सी.आर.एल.) में सूचित। जब कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, तो सुनी-सुनाई बातें समन जारी करने का आधार नहीं हो सकती हैं। (संदर्भ: **बृन्दाबन दास (उपरोक्त) और लाभुजी अमृतजी ठाकोर बनाम गुजरात राज्य** (2019) 12 एस.सी.सी. 644/ 2018(4) एम.एल.जे. (सी.आर.एल.) 739 (एस.सी.)।

51. वर्तमान मामले में भी, पुनरीक्षणकर्ता को अभियुक्त के रूप में मुकदमे का सामना करने

के लिए समन करने के बावजूद, न तो सुनवाई का कोई अवसर दिया गया है और न ही पुनरीक्षणकर्ता को अपनी बात रखने के लिए कोई नोटिस जारी किया गया है।

52. **आशा बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में उठाया गया मुद्दा, जो 2016 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 9030 में सूचित है, यह है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर दिए बिना धारा 319 दं.प्र.सं. के अनुसार अभियुक्त के रूप में बुलाना न्यायोचित है? जब भी किसी व्यक्ति को धारा 319 दं.प्र.सं. के अनुसार अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में बुलाने के लिए समय दिया जाता है, तो न केवल उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना चाहिए, अपितु मामले का निस्तारण करने वाले न्यायाधीश को भी खुद को संतुष्ट करने के लिए अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए कि ऐसी कार्रवाई करने के लिए आधार के रूप में मजबूत साक्ष्य मौजूद हैं।

53. आपराधिक न्यायालयों के लिए हमेशा यह आवश्यक है कि वे किसी व्यक्ति को पूर्व नोटिस जारी करें कि वह कारण बताए कि उसे अतिरिक्त अभियुक्त क्यों न बनाया जाए। सुनवाई का अवसर देने के बाद ही उपयुक्त आदेश पारित किया जाना चाहिए। यदि धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत किसी व्यक्ति को बिना पूर्व सूचना दिए समन जारी किया जाता है, तो ऐसा आदेश कानूनी जांच के दायरे में नहीं आएगा। इसलिए सभी आपराधिक न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे मामले के इस पहलू को ध्यान में रखें, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जोगेंद्र यादव**

**बनाम बिहार राज्य** के मामले में (2015) 9 एस.सी.सी. 244 में बताया है।

### निष्कर्ष

54. अवर न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय दर्ज किए गए निष्कर्ष, उसके निर्णय सहित, साथी धारा 319 दं.प्र.सं. के प्रावधानों एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि अवर न्यायालय ने ठोस संदेह पर पहुंचने के लिए साक्ष्यों के संबंध में धारा 319 दं.प्र.सं. में प्रदान की गई सामग्री के संबंध में और धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता को समन करने के लिए उनकी प्रथम दृष्टया संतुष्टि के संबंध में, कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है और साथ ही उन्होंने **हरदीप सिंह और सुखपाल सिंह खेड़ा (उपरोक्त)** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मुद्दे पर निर्धारित कानून की जांच नहीं की है कि कब धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत ऐसी शक्ति का आह्वान किया जा सकता है और किसी भी मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह के निष्कर्ष और परीक्षा के अभाव में, आक्षेपित आदेश जैसा आदेश एक बेतुका आदेश है, जो इस न्यायालय द्वारा धारा 397/401 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपनी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने को उचित ठहरा सकता है।

55. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए उपरोक्त टिप्पणियों और प्रस्तुतियों के समग्र जांच और कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित आदेश में दर्ज निष्कर्ष के आधार पर,

यह न्यायालय यह मानता है कि अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं० 1, मेरठ द्वारा 7/12 दिसंबर, 2019 को सत्र परीक्षण संख्या 1057/2008 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सचिन मलिक व अन्य) में पारित निर्णय और आदेश, जो मुकदमा अपराध संख्या 269/2004 अंतर्गत धारा 302 और 34 भा.दं.सं. थाना मेडिकल, जिला मेरठ से उत्पन्न हुआ था, को विधिक रूप से पोषणीय नहीं है और इसके द्वारा एतद्वारा अपास्त किया जाता है। चूंकि कोई भी मजिस्ट्रेट या कोई भी न्यायालय सह-अभियुक्त के रूप में दंडादेश पारित करने के पश्चात किसी भी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में मुकदमे का सामना करने के लिए समन करने के लिए धारा 319 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग या आह्वान नहीं कर सकता है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा इस तरह के विलंबित चरण में इस संबंध में कोई और आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है।

56. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण सफल होता है और स्वीकार किया जाता है।

57. हर्जे के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 128

**पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 20.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र**

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 436 वर्ष 2014

**राधे श्यामा एवं एक अन्य ...पुनरीक्षणवादीगण**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण**

**पुनरीक्षणवादियों के लिए अधिवक्ता:**

अजीत कुमार

**प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - पुनरीक्षण -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 323 और 504 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 313 एवं 155 (2) - अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 - धारा 4 - कुछ अपराधियों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने की न्यायालय की शक्ति, धारा 12 - दोषसिद्धि से जुड़ी निरर्हता का हटाया जाना - प्रत्येक मामले में, धारा 323 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप सिद्ध करने के लिए चोट की रिपोर्ट या संबंधित चिकित्सा अधिकारी द्वारा इसका साक्ष्य होना आवश्यक नहीं है। (पैरा - 15)

असंज्ञेय रिपोर्ट - अभियुक्त ने पीडब्लू 1 और उसके बेटे पर हमला किया - चार व्यक्तियों और दो साक्षियों के साथ दुर्यवहार किया - एनसीआर या साक्षियों में कोई विशिष्ट आरोप नहीं - सामान्य आरोप कि अभियुक्त ने घायल व्यक्तियों के साथ दुर्यवहार किया - कोई साक्ष्य नहीं कि अभियुक्त ने साक्षियों का अपमान किया - भड़काने का आशय- शांति भंग करने या कोई अपराध करने का - अपीलार्थियों को दोषी ठहराया गया - परिवीक्षा पर रिहा किया गया - सत्र न्यायाधीश न्यायालय के

पुष्ट निर्णय के विरुद्ध आपराधिक अपील दायर की - विचारण और अपीलीय न्यायालय दोनों के आदेशों को चुनौती दी - परीक्षा अवधि समाप्त - पुनरीक्षणवादिओं ने परीक्षा बंधपत्र दाखिल किए - विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित - पुष्ट अपीलीय न्यायालय के आदेश द्वारा। (पैरा -2,14,17)

**अभिनिर्धारित हुआ:-** धारा 323 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपीलार्थी की दोषसिद्धि बरकरार रखी गई, जबकि धारा 504 भा.दं.सं. के अंतर्गत उनकी दोषसिद्धि को खारिज कर दिया गया, जिससे यह संकेत मिलता है कि धारा 323 भा.दं.सं. नैतिक पतन का अपराध नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रकाश में, अच्छे आचरण के आधार पर परीक्षा पर रिहा किए गए व्यक्ति को, अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की यथा उपबंधित धारा 12 के अंतर्गत, विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दंडादेश के कारण कोई निरर्हता नहीं होगी। अवर न्यायालयों ने कोई अवैधता नहीं की है और दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कथित आरोप उचित संदेह से परे सिद्ध हुआ है। (पैरा - 16,19,20)

**पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-7)**

### उद्धृत वादों की सूची:

1. फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2014 एससी 957
2. त्रिखा राम बनाम वी.के. सेठ, एआईआर 1988 एससी 285: 1987 (सप्लीमेंट) एससीसी 39

3. हरिचंद बनाम निदेशक स्कूल शिक्षा, (1998) 2 एससीसी 383

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।
2. वर्तमान आपराधिक अपील, विद्वान सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 8, बाराबंकी द्वारा पारित आपराधिक अपील संख्या-88/20213 में पारित निर्णय व आदेश दिनांक 03.06.2014 के विरुद्ध योजित की गई है, जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांक 23.08.2013 को पुष्ट किया गया है, जिसमें अपीलकर्ताओं को धारा 323, 504 आई.पी.सी. के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया था तथा उन्हें अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा किया गया था। पुनरीक्षणकर्ता ने वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण में दोनों निचले न्यायालयों, यथा विचारण न्यायालय व अपीलीय न्यायालय के निर्णय एवं आदेशों का विरोध किया है।

3. मामले का तथ्यात्मक सार संक्षेप में यह है कि सूचनादाता अब्दुल मजीद ने मौखिक सूचना द्वारा थाना कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी में असंज्ञेय रिपोर्ट दर्ज कराई कि अभियुक्तगण प्रताप नारायण, तेज नारायण, राधेश्याम एवं पवन कुमार ने सूचनादाता का चबूतरा खोदने को कहा, जब उसने विरोध किया तो अभियुक्तगण उस पर लाठी-डंडों से



हमला कर दिया, पिता के चिल्लाने पर उसका पुत्र मो. सिराज उसे बचाने दौड़ा तो अभियुक्तगण ने उस पर भी हमला कर दिया। शोरगुल होने पर सहग्रामीण मौके पर पहुंचे और सूचनादाता व उसके पुत्र को बचाया तथा उन्होंने भी घटना देखी। पुलिस ने मामले की जांच, न्यायालय के धारा-155 उपधारा-2 सीआरपीसी के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 14.06.2002 के अनुपालन में की और नामजद अभियुक्तगणों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया। अभियुक्त प्रताप नारायण की मुकदमे के लंबन अवधि में मृत्यु हो गई और उसके विरुद्ध विचारण उपशमित हो गया। अभियोजन ने पी.डब्लू.-1, अब्दुल मजीद (घायल), पी.डब्लू.-2 राजेंद्र और पी.डब्लू.-3 मोहम्मद सिराज (घायल) का परीक्षण एनसीआर संस्करण का समर्थन करने के लिए किया, और आरोपियों के बयान धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए; उन्होंने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया और कहा कि मुकदमे की दुश्मनी के कारण उन्हें मामले में झूठा फंसाया गया था; आरोपी तेज नारायण और राधेश्याम ने कहा कि वे सीमेंट की दुकान चलाते हैं, सूचनादाता अब्दुल मजीद ने अपने घर के निर्माण के लिए सीमेंट उधार लिया था और जब आरोपियों ने अपने पैसे मांगे तो सूचनादाता पक्ष ने झूठी चोटें बनाकर आरोपियों के खिलाफ झूठा और मनगढ़ंत मामला दर्ज कराया। आरोपी पवन कुमार ने कहा कि उसे केवल आरोपी राधेश्याम का भाई होने के कारण इस मामले में फंसाया गया है।

4. एनसीआर में लगाए गए आरोपों के दृष्टिगत रिकॉर्ड पर सबूतों के अवलोकन के

बाद विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि घायल अब्दुल मजीद, मोहम्मद सिराज के शरीर पर कटे घाव थे। गवाहों के बयानों में यह आरोप कि अभियुक्तों ने घायलों पर धारदार हथियार से हमला किया था, विश्वसनीय नहीं पाया गया, इन घायलों की चोटें फटी व सूजन के रूप में थीं, जो आमतौर पर लाठी जैसी किसी कठोर और कुंद वस्तु से आती हैं। गवाह अब्दुल मजीद और मोहम्मद सिराज ने कहा है कि अभियुक्त प्रताप नारायण और राधेश्याम और पवन ने लाठी से हमला किया है। यह भी प्रतीत होता है कि प्रताप नारायण और उनके दो बेटों ने घटना को अंजाम दिया और तेज नारायण का नाम अभियोजन पक्ष के बयान में गलत तरीके से जोड़ा गया है।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने घायल अब्दुल मजीद, मोहम्मद सिराज की चोटों को चोट रिपोर्ट के अनुसार साधारण प्रकृति का पाया, लेकिन पाया कि संबंधित चिकित्सा अधिकारी का चोट रिपोर्ट को सिद्ध करने के लिए परीक्षण नहीं किया गया है, इस प्रकार ये चोट रिपोर्ट अपेक्षित सबूत के अभाव में साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। हालांकि, भले ही चोट की रिपोर्ट स्वीकार्य न हो, धारा 323 आईपीसी के अंतर्गत आरोप पीडब्लू-1 और पीडब्लू-3 के साक्ष्य से साबित होता है। ऐसा हमेशा नहीं होता है कि धारा 323 आईपीसी, जो साधारण चोट को परिभाषित करता है, के अंतर्गत एक मामले में घायलों की चोटों को चिकित्सकीय गवाह के साक्ष्य से साबित किया जाए, और यह अपराध चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य से भी साबित हो सकता है। विद्वान विचारण

न्यायालय ने यह भी पाया कि उक्त आरोपियों के खिलाफ धारा 504 आईपीसी का भी अपराध बनता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी तेज नारायण को धारा 323, 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप से बरी कर दिया, लेकिन आरोपी राधेश्याम और पवन कुमार को धारा 323, 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप में दोषी ठहराया। हालांकि, विचारण न्यायालय ने अपराध की प्रकृति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरोपियों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है आरोपी राधेश्याम और पवन कुमार को व्यक्तिगत बांड और 15,000/- रुपये की दो जमानतों पर एक वर्ष के लिए अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर दिया और उन्हें एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि के दौरान तीन महीने में एक बार डी.पी.ओ. के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया।

6. अभियुक्तगणों ने विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय व आदेश को सत्र न्यायालय में चुनौती दी तथा अपील का निर्णय विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-12, बाराबंकी द्वारा दिनांक 03.06.2014 को निर्णय व आदेश द्वारा किया गया। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने पाया कि घायलों का कोई चिकित्सीय परीक्षण नहीं कराया गया था, परन्तु यह तथ्य अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, यहां तक कि कोई प्रतिकूल निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता है, क्योंकि पी.डब्ल्यू.-2 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है।

7. अपीलीय न्यायालय ने पाया कि बचाव पक्ष द्वारा पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2 व पी.डब्ल्यू.-

3 के कथनों में इंगित विरोधाभास मामूली प्रकृति का है तथा उनके साक्ष्य में कोई गंभीर विरोधाभास नहीं दिखाई देता है। यद्यपि पी.डब्ल्यू.-1 व पी.डब्ल्यू.-3 की चोटें चिकित्सीय रिपोर्ट के साक्ष्य से साबित नहीं होती हैं, परन्तु घायल व्यक्तियों ने चोटें लगने के तरीके व ढंग की गवाही दी है, अतः धारा 323 आई.पी.सी. के अन्तर्गत अपराध के प्रमाण के लिए चोट रिपोर्ट आवश्यक नहीं है; धारा 313 आईपीसी के अंतर्गत आरोपियों के बयान सबूत की प्रकृति के नहीं हैं, क्योंकि बयान शपथ पर नहीं दिया गया है। वे अपने बचाव में कोई मौखिक या दस्तावेजी सबूत नहीं दे सके। विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों राधेश्याम और पवन कुमार को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर दोषी ठहराते और रिहा करते समय कोई अवैधानिकता नहीं की है।

8. पुनरीक्षणकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 323, 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप के लिए चार व्यक्तियों ने मुकदमे का सामना किया और उनमें से दो व्यक्तियों राधेश्याम और पवन कुमार को धारा 323, 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप में दोषी ठहराया गया था। हालांकि, विद्वान विचारण न्यायालय तथा विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 की सहायता नहीं ली है, और धारा-34 के अंतर्गत आरोप के अभाव में, अभियुक्तों को दोषी ठहराने तथा दोषसिद्धि की पुष्टि करते समय साक्ष्य नहीं लिया गया है, और प्रत्येक अभियुक्त को सोंपी गई भूमिका पर व्यक्तिगत रूप से विचार किया जाएगा,

क्योंकि अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के आधार पर दोषी नहीं ठहराया गया है। पुनरीक्षणकर्ता पवन कुमार को पी.डब्लू.-3 मोहम्मद सिराज की मां को पेट पर मारकर चोट पहुंचाने की भूमिका सौंपी गई है, परंतु न तो उसकी मेडिकल जांच कराई गई और न ही वह न्यायालय के समक्ष गवाह के रूप में उपस्थित हुई।

9. पी.डब्लू. 2 राजेंद्र के पास न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष का कोई समर्थित संस्करण नहीं है तथा उसने कहा था कि उसने अभियुक्तों को गवाह अब्दुल मजीद तथा मोहम्मद सिराज पर हमला करते नहीं देखा था। पी.डब्लू.-1 तथा पी.डब्लू.-3 की चोट की रिपोर्ट, रिपोर्ट तैयार करने वाले चिकित्सक के मेडिकल साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने के कारण, परीक्षण के दौरान सिद्ध नहीं हो पाई। गवाहों के बयानों में भौतिक विरोधाभास हैं, जिन पर निचले विद्वान न्यायालयों द्वारा विचार किया गया है। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अंतर्गत अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि, कानून के अंतर्गत बने रहने योग्य नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता ने बहुत पहले दी गई परीक्षा अवधि, निचली अदालत के निर्देशानुसार पूरी कर ली है, लेकिन तब भी वे दीवानी परिणाम भुगत रहे हैं और यहां तक कि पुलिस अधिकारियों ने भी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा पासपोर्ट के आवेदन को मंजूरी नहीं दी है।

10. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि छह लोगों ने गवाहों को चोटें पहुंचाई हैं, हालांकि, अब्दुल मजीद की चोट रिपोर्ट में सिर के ऊपर

केवल एक घाव और स्टेपुला के दाहिने तरफ एक चोट का उल्लेख किया गया है और मोहम्मद सिराज की चोट रिपोर्ट में एक घाव और एक चोट दिखाई गई है, हालांकि, इन चोटों की रिपोर्ट को तैयार करने वाले उनके (चिकित्सा अधिकारी) का परीक्षण न होने के कारण, उसे साक्ष्य में पढ़ा नहीं जा सकता है।

11. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ए.जी.ए. ने दलील दी कि अच्छे आचरण के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता की दोषसिद्धि और परीक्षा पर रिहाई के संबंध में निचली अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों में इस अदालत के हस्तक्षेप को आकर्षित करने का कोई अच्छा आधार नहीं है। निचली अदालतों ने सही टिप्पणी की थी कि धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत मामले में मेडिकल गवाह का प्रस्तुतीकरण व परीक्षण अनिवार्य नहीं है और चोट रिपोर्ट के अभाव में भी धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत दोषसिद्धि बरकरार रखी जा सकती है।

12. पी.डब्लू.-1 मोहम्मद सिराज, घायल ने अपने साक्ष्य में कहा था कि तेज नारायण ने उसे और उसके पिता के सिर पर हमला किया है। अभियुक्तों ने उसकी मां और बहन पर हमला किया और पवन कुमार ने उसकी मां के पेट पर डंडे से मारा। उसने पड़ोस के किसी व्यक्ति को गवाह के रूप में नामित नहीं किया है, रिपोर्ट उसके पिता ने दर्ज कराई थी; सबसे पहले राम नारायण ने गवाहों को मारा; बांका से उसके सिर पर आई चोटों के कारण वह बेहोश हो गया।

13. जहां तक धारा 504 के अंतर्गत आरोप संबंधित है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2014 एससी 957 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

*"हालांकि, धारा 504 में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं, अर्थात् (ए) जानबूझकर अपमान, (बी) अपमान ऐसा होना चाहिए, जिससे अपमानित व्यक्ति को उकसावा मिले, और (सी) अभियुक्त का इरादा या उसे पता होना चाहिए कि इस तरह के उकसावे से कोई अन्य व्यक्ति सार्वजनिक शांति भंग करेगा या कोई अन्य अपराध करेगा। जानबूझकर अपमान इस हद तक होना चाहिए कि किसी व्यक्ति को सार्वजनिक शांति भंग करने या कोई अन्य अपराध करने के लिए उकसाया जाए। जो व्यक्ति जानबूझकर अपमान करता है या यह जानते हुए भी कि इससे किसी अन्य व्यक्ति को उकसावा मिलेगा और इस तरह के उकसावे से सार्वजनिक शांति भंग होगी या कोई अन्य अपराध होगा, ऐसी स्थिति में धारा 504 के तत्व संतुष्ट होते हैं। अपराध का गठन करने वाले आवश्यक तत्वों में से एक यह है कि जानबूझकर अपमान करने वाला कोई कार्य या आचरण होना चाहिए और केवल यह तथ्य कि अभियुक्त ने शिकायतकर्ता को गाली दी, अपने आप में पर्याप्त नहीं है, धारा 504 के अंतर्गत दोषसिद्धि की गारंटी देने के लिए।"*

14. वर्तमान मामले में पी.डब्ल्यू.-1 अब्दुल मजीद के कहने पर मौखिक बयान के आधार पर दर्ज की गई एक गैर-संज्ञेय रिपोर्ट में कहा गया है कि आरोपियों ने उन्हें और उनके बेटे

मोहम्मद सिराज को गाली देते हुए हमला किया, एनसीआर में चार लोगों के नाम और दो गवाह प्रेम और राजेंद्र का उल्लेख किया गया है। एनसीआर में और साथ ही गवाहों के बयानों में कोई विशेष आरोप नहीं है, जिससे यह पता चले कि आरोपियों में से किस गवाह ने घटना के समय किसको चोट पहुंचाई, आरोपियों के खिलाफ सामान्य आरोप है कि उन्होंने घायल व्यक्तियों को मारपीट करते हुए गाली दी थी। एनसीआर के साथ-साथ गवाहों के साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं है कि आरोपियों ने गवाहों को शांति भंग करने या कोई अपराध करने के लिए उकसाने के इरादे से उनका अपमान किया था, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (उपरोक्त) में कहा है। इसलिए, विशिष्ट आरोप और साक्ष्य के अभाव में धारा 504 आईपीसी के अंतर्गत उनका आरोप अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षण के दौरान रखे गए साक्ष्य के आधार पर साबित नहीं पाया जाता है। इसलिए, वर्तमान मामले में धारा 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप उचित संदेह से परे साबित नहीं होता है; आरोपी व्यक्ति को धारा 504 आईपीसी के अंतर्गत आरोप से बरी किया गया है। जहां तक धारा 323 आईपीसी का संबंध है, हालांकि आरोपी को धारा 34 आईपीसी की सहायता से दोषी नहीं ठहराया गया है, लेकिन एनसीआर में आरोप के आधार पर और गवाहों पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-3 द्वारा परीक्षण के दौरान दिये गए साक्ष्य से यह तथ्य सामने आया है कि दोषी अभियुक्तों ने पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-3 पर क्रमशः सूचनादाता और उसके बेटे को स्वेच्छा से मारा है।

15. निचले न्यायालयों ने आक्षेपित निर्णयों में सही रूप से टिप्पणी की है कि प्रत्येक मामले में, धारा 323 आईपीसी के अंतर्गत आरोप साबित करने के लिए चोट रिपोर्ट या संबंधित चिकित्सा अधिकारी द्वारा उसका सिद्ध होना आवश्यक नहीं है।

16. चिकित्सीय साक्ष्य अनिवार्यतः एक राय साक्ष्य है और चिकित्सीय साक्ष्य के अभाव में भी धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत आरोप, साक्षियों की मौखिक गवाही के आधार पर साबित किया जा सकता है, जैसा कि वर्तमान मामले में पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-3 की चोट रिपोर्ट रिकॉर्ड पर रखी गई है, लेकिन किसी भी चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा परीक्षण के दौरान इसे साबित नहीं किया गया था। इस प्रकार, पूर्वोक्त चर्चा के प्रकाश में, निचले विद्वान न्यायालयों ने कोई अवैधानिकता नहीं की है और उक्त आरोप दोषी व्यक्तियों के खिलाफ उचित संदेह से परे साबित होता है।

17. पुनरीक्षणकर्ताओं को विचारण न्यायालय द्वारा धारा-4 का अच्छे आचरण की परिवीक्षा का लाभ दिया गया है और तुरंत सजा सुनाई गई है। उन्हें सिद्ध अपराधों के लिए अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था और उन्हें जिला परिवीक्षा अधिकारी की निगरानी में रखने का निर्देश दिया गया था। यह स्वीकृत है कि परिवीक्षा की अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी है और पुनरीक्षणकर्ताओं ने विचारण न्यायालय के निर्देश के अनुसार परिवीक्षा बांड दाखिल किए थे, जिसे अपीलीय न्यायालय के आदेशों द्वारा पुष्टि की गई है।

18. धारा 4, अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम 1958 में ऐसे कुछ अपराधियों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रखने की शक्ति प्रदान की गई है, जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, और अपराध दंडनीय नहीं है और जिस अदालत द्वारा दोषी पाया जाता है, वह इस राय का है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना समीचीन है, जब किसी अन्य कानून में फिलहाल निहित किसी भी चीज के बावजूद अदालत उसे तुरंत सजा देने के बजाय, सजा निर्देश दे सकती है कि जमानत के साथ या बिना अंतरिम जमानत पर रिहा किया जाए और जब भी अदालत निर्देश दे, तीन साल अनधिक अवधि में जब उसे बुलाया जाए, तो सजा का सामना करे, और इस बीच निर्दिष्ट अवधि में पूरी तरह से शांति और अच्छा आचरण बनाए रखे।

19. वर्तमान मामले में धारा 323 आईपीसी के अंतर्गत आरोप के लिए अपीलकर्ता की सजा बरकरार रखी गई है और धारा-504 आईपीसी के अंतर्गत उनकी दोषसिद्धि को निरस्त कर दिया गया है, और धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत नैतिक अपराध नहीं है।

**अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम 1958 की धारा 12 बहुत प्रासंगिक है, जो निम्नानुसार प्रावधान करती है:-**

*“12. दोषसिद्धि से जुड़ी अयोग्यता को हटाना: किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात*

के बावजूद, कोई व्यक्ति जो किसी अपराध का दोषी पाया जाता है और धारा 3 या धारा 4 के प्रावधानों के अंतर्गत निस्तारित किया जाता है, उसे ऐसे कानून के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्धि से जुड़ी अयोग्यता, यदि कोई हो, नहीं होगी: बशर्ते कि इस धारा में कुछ भी उस व्यक्ति पर लागू नहीं होगा, जिसे धारा 4 के अंतर्गत अपनी रिहाई के बाद मूल अपराध के लिए सजा सुनाई जाती है।"

**"अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 के दृष्टिगत, किसी अपराधी को जिसे परिवीक्षा पर रिहा किया गया है, उस अपराध के लिए दोषसिद्धि से जुड़ी अयोग्यता नहीं झेलनी पड़ेगी जिसके लिए उसे किसी अन्य कानून में निहित किसी बात के बावजूद दोषी ठहराया गया है, उसे सेवा से बर्खास्त करने के बजाय उसे सेवा से हटा दिया जाना चाहिए था ताकि सजा का आदेश सरकार के साथ भविष्य की नौकरी के लिए एक बाधा और अयोग्यता के रूप में कार्य न करे। परिस्थितियों में, बर्खास्तगी का आरोपित आदेश सेवा से हटाने के आदेश में परिवर्तित हो जाता है। इस संशोधन के अधीन अपील विफल हो जाती है और निरस्त की जाती है: त्रिखा राम बनाम वी.के. सेठ एआईआर 1988 एससी 285: 1987 (सप) एससीसी 39।"**

इसी तरह, जहां किसी व्यक्ति को धारा 408, आईपी के अंतर्गत दोषी ठहराया जाता है और संहिता के अंतर्गत दोषी करार दिए जाने के बावजूद उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 (1) के अंतर्गत परिवीक्षा पर रिहा किया गया है, धारा 12 उक्त सरकारी कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त करने के लिए उक्त दोषसिद्धि

को ध्यान में रखने के प्राधिकार को बाधित नहीं करती है: हरिचंद बनाम स्कूल शिक्षा निदेशक (1998) 2 एस.सी.सी. 383।"

20. धारा 323 आईपीसी के अंतर्गत अपराध नैतिक अधमता का अपराध नहीं है, इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया गया व्यक्ति अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 12 के अंतर्गत दिए गए अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज दोषसिद्धि के कारण किसी भी अयोग्यता को वहन नहीं करेगा।

21. पूर्वगामी चर्चा और टिप्पणियों के आलोक में, पुनरीक्षण को आंशिक रूप से उपरोक्तनुसार स्वीकृत किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 133

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र  
आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1077 वर्ष 2022

अनिल कुमार (अभियंता) ... पुनरीक्षणवादी  
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:

श्री धनराज सिंह यादव, श्री अभिषेक मयंक, श्री अखिलेश कुमार ओझा, श्री धनंजय कुमार, श्री

गिराज सिंह, व्यक्तिगत रूप से, श्री नवीन कुमार यादव, श्री सत्य धीर सिंह जादौन

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - पुनरीक्षण -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 342, 376, 511 और 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 164 - यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 -धारा 5/6 - अभियुक्त को तब भी उन्मोचित किया जा सकता है, जब अभियुक्त और अपराध के बीच कोई संबंध न पाया जाए - अभियुक्त द्वारा उन्मोचित करने का अधिकार मूल्यवान वैधानिक अधिकार है और इसे विचारण न्यायालय द्वारा हल्के में नहीं लिया जा सकता - प्रस्तुत सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता और स्वीकार्यता का निर्धारण केवल विचारण के चरण में ही किया जा सकता है - आरोप तय करना, संहिता की धारा 228 के अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार का प्रयोग है, जब तक कि अभियुक्त को संहिता की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचित न कर दिया जाए। (पैरा - 8)

(बी) आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227 - न्यायाधीश को धारा 227 दं.प्र.सं. के अंतर्गत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय, यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्य को छांटने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं - एक बार आरोप तय हो

जाने के बाद, अभियुक्त पर विचारण चलाया जाता है और उसके बाद अभियुक्त को या तो दोषमुक्त किया जा सकता है या सिद्धदोष किया जा सकता है, लेकिन उसे उन्मोचित नहीं किया जा सकता - अभियुक्त के बचाव पर उस स्तर पर विचार नहीं किया जाता है जब अभियुक्त धारा 227 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उन्मोचित होने की मांग करता है (पैरा - 10,11)

मामला एक लापता 10 वर्षीय लड़की से जुड़ा है जिसे एक पुनरीक्षणवादी ने बंधक बना लिया था - बलात्संग करने का आशय - अन्वेषण के बाद अभियुक्त पर आरोप लगाया गया - उन्मोचन आवेदन - खारिज - विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध आरोप तय किए -साक्ष्य दर्ज किया गया - तथ्य के तीन साक्षियों की जांच की गई - इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा - 6,11)

अभिनिर्धारित हुआ:- विचारण न्यायालय ने धारा 161 और 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज प्र.सू.रि. के आधार पर पीड़िता द्वारा दिए गए अभिकथन का सन्दर्भ देते हुए पुनरीक्षणवादी की रिहाई का आवेदन खारिज कर दिया। पीड़िता, जो 2017 में घटना के समय लगभग 10 वर्ष की नाबालिग थी, को महत्वपूर्ण साक्षी नहीं माना जा सकता। चूंकि विचारण चल रहा है, इसलिए बचाव पक्ष के साक्ष्य के चरण के दौरान पुनरीक्षणवादी के आधार और दस्तावेज विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। (पैरा - 12)

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977)  
4 एससीसी 551

2. रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1979 एससी 94

3. स्त्री अत्याचार विरोधी परिषद बनाम दिलीप नाथूमल चोरडिया, 1989 एससीसी (1715)

4. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी, एआईआर 2005 एससी 359

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. कार्यालय आख्या दिनांक 27.05.2022 के अनुसार, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद की आख्या के अनुसार, नोटिस विपक्षी संख्या 2 पर तामील किया गया था, लेकिन उनकी ओर से वर्तमान पुनरीक्षण का प्रतिवाद करने के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. पुनरीक्षणकर्ता न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए।

3. पुनरीक्षणकर्ता राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता की दलीलें सुनीं और अभिलेख का अवलोकन किया।

4. तात्कालिक आपराधिक पुनरीक्षण 2017 के अपराध संख्या 483, धारा 342, 376, 511, 506 आईपीसी और धारा 5/6 पॉक्सो

अधिनियम, पुलिस थाना मोदी नगर, जिला-गाजियाबाद से उत्पन्न आपराधिक मामला संख्या 162/2017 में विद्वान विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम) न्यायालय संख्या 2/अपर सत्र न्यायाधीश, जिला-गाजियाबाद द्वारा पारित किये गए आदेश दिनांक 02.03.2022 के विरुद्ध की गई है, जिसे विद्वान न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन 14ख को खारिज कर दिया था जिसमें पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त ने दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत उसे आरोपमुक्त करने की प्रार्थना की थी। मामले में एफआईआर पीड़िता के माता-पिता ने नहीं बल्कि पीड़िता के फूफा बृजेंद्र कुमार तोमर ने दर्ज कराई है। पीड़िता के फूफा द्वारा पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ मामला गढ़ा गया है, घटना के समय पीड़िता की उम्र लगभग 8 वर्ष थी और वर्तमान में, वह लगभग 15 वर्ष की है, वास्तव में, उसका इस्तेमाल उसके फूफा द्वारा जांच के दौरान पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ गवाही देने के लिए किया गया है। लेकिन आक्षेपित आदेश द्वारा उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज होने के बाद, मामला साक्ष्य हेतु नियत किया गया था और पीड़िता ने पी.डब्ल्यू. 3 के रूप में विचारण अदालत द्वारा 03.03.2023 को दर्ज अपने बयान में घटना के समय की बात बताई है कि घटना के समय वह 9 वर्ष की थी, घटना 17.07.2017 को दोपहर 12:00 बजे घटित हुई। उसने अदालत में आरोपी व्यक्ति की पहचान नहीं की, उसने यह भी कहा कि उसने उसके खिलाफ कुछ नहीं किया, उसने कभी भी उसे जान से मारने की धमकी नहीं दी, पुलिस के कहने पर उसकी मेडिको-लीगल जांच की गई थी। दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत उसका



बयान दर्ज कराया गया, जिसमें उसने अपने हस्ताक्षर और फोटो स्वीकार किया है। अभियोजन पक्ष के कहने पर गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि विद्वान निचली अदालत ने प्रथमतः 19.01.2021 को उसके खिलाफ भा.द.सं. की धारा 342, 376, 511, 506 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 5/6 के तहत आरोप तय किए। इस न्यायालय ने धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 12347/ 2021 में आदेश दिनांक 07.12.2021 के द्वारा आरोप तय करने के आदेश दिनांक 19.01.2021 को रद्द कर दिया और विद्वान विचारण अदालत को आरोपी व्यक्तियों की ओर से 12.01.2021 को दायर आवेदन पर एक स्पष्ट आदेश पारित करने का निर्देश दिया। लेकिन विद्वान विचारण अदालत ने उक्त आवेदन में लिए गए आधारों पर विचार किए बिना आक्षेपित आदेश दिनांक 02.03.2022 के द्वारा उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया। सूचक पक्ष ने पुनरीक्षणकर्ता के साथ मारपीट की और पुनरीक्षणकर्ता की कार को क्षतिग्रस्त कर दिया और केवल खुद को बचाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के तथ्य का दुरुपयोग करके झूठी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। जांच के दौरान दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज पीड़िता के बयान और दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत दर्ज बयान में काफी विरोधाभास है। उसकी मेडिको-लीगल जांच आख्या अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं करती है। पुनरीक्षणकर्ता के भूखंड पर दो द्वार स्थित हैं और यदि एक द्वार बंद है तो बच्चे/व्यक्ति दूसरे द्वार से उसके भूखंड में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। शिकायतकर्ता ने पीड़िता को धमकी देकर जांच

के दौरान आवेदक के खिलाफ गवाही देने के लिए फंसाया है, वर्तमान मामला शिकायतकर्ता के कहने पर केवल पुनरीक्षणकर्ता से पैसे ऐंठने के लिए दर्ज किया गया है। विद्वान विचारण अदालत ने उन्मोचन प्रार्थना पत्र खारिज करते समय अपना न्यायिक दिमाग नहीं लगाया है, पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है जिसके लिए उसे निचली अदालत द्वारा आरोपित किया गया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 02.03.2022 रद्द किये जाने योग्य है और पुनरीक्षणकर्ता को उन आरोपों से आरोपमुक्त किया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, श्री दीपक कपूर ने प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ जांच के दौरान पर्याप्त सबूत एकत्र किए गए हैं, जिसके आधार पर पुनरीक्षणवादी के खिलाफ आरोप तय किया गया है और विद्वान निचली अदालत द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया है, पीड़िता ने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत अपने बयान में उक्त आरोपों के लिए आरोपी पुनरीक्षणवादी की मिलीभगत बताई है और आरोप तय करने के लिए जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य और सामग्री पर ही भरोसा किया जा सकता है। आरोप तय होने के बाद मुकदमे के दौरान पेश किए गए कुछ सबूतों के आधार पर मामले की योग्यता के बारे में एक राय वर्तमान पुनरीक्षण में उचित नहीं है, क्योंकि पी.डब्ल्यू. 3 का बयान आक्षेपित आदेश पारित होने के बाद और परीक्षण के दौरान दर्ज किया गया है। विद्वान

निचली अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है और पुनरीक्षण खारिज किया जाना चाहिए।

6. वर्तमान मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट बृजेंद्र कुमार नाम के एक व्यक्ति ने 17.07.2017 को पुनरीक्षणवादी के खिलाफ धारा 342, 376, 511, 506 और पाँक्सो अधिनियम की धारा 5/4 के तहत थाना-मोदीनगर, जिला-गाजियाबाद में मामला दर्ज कराया था, जिसमें कहा गया है कि उसकी लगभग 10 साल की बेटी अपराहन 02 बजे से लापता है और तलाश के दौरान उसे यह पता चला कि उसकी बेटी को आरोपी द्वारा बंधक बना कर रखा गया है, जिसने बलात्कार करने के इरादे से उसका मुँह कपड़ों से बंद कर और हाथ-पैर बांधकर उसे अपने घर में 5 घंटे तक बंधक बनाकर रखा था। जब सूचक को घटना के बारे में पता चला, तो उसने आरोपी के घर का दरवाजा खटखटाया और अपनी बेटी को डरी हुई हालत में पाया। पीड़िता का बयान 18.07.2017 को दर्ज किया गया, जिसमें उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्करण का समर्थन किया और उसने कहा कि उसके पड़ोसी चाचा अनिल ने उसका मुँह बंद करके उसे अपने घर में ले गया था और उसके हाथ और पैर बांधकर कुर्सी पर बैठा दिया था, हालांकि, उसने उसे बंधन से मुक्त कर दिया था और बिस्तर पर लिटा दिया था। उसका इरादा उसके साथ कोई गलत हरकत करने का था। एक चंचल मैडम ने यह देख लिया था, लेकिन उन्हें बाहर नहीं आने दिया गया। पीड़िता ने दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत 24.07.2017 को मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान में घटना को और विस्तार से

बताया है, जिसमें उसने आरोपी के खिलाफ उसके साथ बलात्कार करने के प्रयास के संबंध में विशिष्ट आरोप लगाए हैं, हालांकि दोनों में कुछ तथ्यात्मक भिन्नताएं हैं। तथ्य की गवाह कुमारी चंचल ने दिनांक 18.07.2017 को पीड़िता की मेडिको-लीगल जांच आख्या में सामने आए मामले के कुछ तथ्यात्मक पहलुओं की पुष्टि भी की। बताया गया है कि अनिल ने पीड़िता को गलत तरीके से बंधक बनाकर रखा और उसके साथ छेड़छाड़ की। हालांकि, मेडिको-लीगल जांच आख्या में उसके शरीर पर कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई। जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों के आधार पर आरोपी को भा.दं.सं. की धारा 342, 376, 511, 506 और पाँक्सो अधिनियम की धारा 5/4 के तहत जांच के बाद आरोप पत्र दाखिल किया गया। अभियुक्त का मामला यह है कि सूचक, जो पीड़िता का रिश्तेदार है, और अभियुक्त के बीच संपत्ति का विवाद है और अभियुक्त पर दबाव बनाने और विवादित संपत्ति हड़पने के उद्देश्य से अभियुक्त के खिलाफ झूठी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है। विद्वान निचली अदालत ने आक्षेपित आदेश द्वारा रिहाई आवेदन को अस्वीकार करने के बाद अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय किया। सूचक पीड़िता के पिता की बहन का पति है। वर्तमान मामले में, मुकदमा पहले ही शुरू हो चुका था और पीड़िता से पूछताछ की गई थी, जिसमें उसने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया था और अपने बयान से मुकर गई थी। पुनरीक्षणकर्ता ने यह भी आरोप लगाया है कि पीड़िता और शिकायतकर्ता निचली अदालत के समक्ष मामले को निपटाने के लिए पुनरीक्षणवादी के खिलाफ ब्लैकमेलिंग रणनीति अपनाकर अवैध धन की

मांग करते थे और उसे धमकी भी देते थे, पुनरीक्षणकर्ता के पास इस संस्करण के समर्थन में कुछ ऑडियो रिकॉर्डिंग हैं जैसा कि पूरक शपथ पत्र दिनांक 24.03.2022 में कहा गया है। पीड़िता और अपीलकर्ता की बातचीत की ऑडियो रिकॉर्डिंग उसे दोषमुक्त कर देती है। पुनरीक्षणकर्ता ने अपने संस्करण के समर्थन में विभिन्न पत्र, दस्तावेज और तस्वीरें दायर की हैं कि आरोपी के खिलाफ व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण सूचक के कहने पर पीड़िता द्वारा उसे झूठा फंसाया गया है। सूचक ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उसने पीड़िता को गोद लिया था क्योंकि उसकी कोई बेटी नहीं थी। पीड़िता की जन्म तिथि 24.11.2009 है, पीड़िता के माता-पिता जीवित हैं। पीड़िता की जांच विचारण न्यायालय द्वारा पी.डब्लू. 3 के रूप में की गई है।

7. तत्काल मामले में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत निचली अदालत के समक्ष उन्मोचन प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, जो इस प्रकार है:

*मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, और अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की इस संबंध में दलीलें सुनने के बाद, यदि न्यायाधीश यह मानता है कि अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त करेगा और ऐसा करने के अपने कारणों को अभिलिखित करेगा।*

8. उन्मोचन प्रार्थना पत्र की अनुमति आमतौर पर उन मामलों में दी जाती है जहां जांच के

दौरान कोई सबूत एकत्र नहीं किया जाता है, जो किसी भी तरह से आरोपी को कथित अपराध के कृत्य से जोड़ता है। अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप-पत्र में पेश की गई प्रथम दृष्टया सामग्री (मौखिक/वृत्तचित्र) के अभाव में भी कोई आरोप तय नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जहां आरोपी और अपराध के कृत्य के बीच कोई संबंध नहीं पाया जाता है वहां आरोपी को बरी किया जा सकता है। निस्संदेह, किसी अभियुक्त द्वारा आरोपमुक्ति की मांग करने का अधिकार मूल्यवान वैधानिक अधिकार है और इसे विचारण न्यायालय द्वारा हल्के में नहीं लिया जा सकता है। ऐसे मामलों में आरोपी को परीक्षण से पहले उसकी मुश्किलें कम करने के उद्देश्य से उसे तुच्छ मामलों में बरी किया जा सकता है, क्योंकि एक तुच्छ मामले में पकड़ा गया एक वादी, खुद को और खुद की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए कानूनी लड़ाई में खुद के अस्तित्व को खो देता है। इससे न केवल न्यायिक समय की बचत होगी, बल्कि सार्वजनिक धन की लागत भी बचेगी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा भी होगी। हालाँकि, यह स्थापित कानून है कि उत्पादित सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता और स्वीकार्यता केवल परीक्षण के स्तर पर ही निर्धारित की जा सकती है। आरोप तय करना संहिता की धारा 228 के संदर्भ में विचारण अदालत द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग है, जब तक कि आरोपी को संहिता की धारा 227 के तहत आरोपमुक्त नहीं कर दिया जाता।

9. माननीय शीर्ष न्यायालय ने **मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 4 एससीसी**

551 के प्रमुख मामले में माना है कि आरोप तय करने या आरोप अस्वीकार करने का आदेश अंतरिम या अंतिम नहीं हैं और इस प्रकार दं.प्र.सं. की धारा 397(2) से प्रभावित नहीं होते हैं। आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रभावी प्रशासन के लिए उच्च न्यायालय को इसे सावधानीपूर्वक और विवेकपूर्ण तरीके से लागू करना चाहिए। उच्च न्यायालय को कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना चाहिए, खासकर जब सामग्री और अभिलेख का साक्ष्य किसी निर्दोष को सताने का बेशर्म प्रयास दिखाते हों। विचारण अदालत को उन्मोचन प्रार्थना पत्र को संबोधित करते समय सबूतों की जांच करनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि क्या संदेह करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। आपराधिक पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह विचारण अदालत द्वारा उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज करने के आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण याचिका पर निर्णय लेते समय मामले पर दोबारा गौर करे।

10. न्यायिक प्राधिकरण के श्रेणियों द्वारा यह स्थापित कानून है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास निस्संदेह यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को छांटने और तौलने की शक्ति है कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण करने के लिए परीक्षण प्रत्येक मामलों के तथ्यों पर निर्भर करेगा, जहां अदालत के समक्ष रखी गई सामग्री आरोपी के खिलाफ गंभीर संदेह का खुलासा करती है जिसे

ठीक से समझाया नहीं गया है, अदालत आरोप तय करने और मुकदमे के साथ आगे बढ़ने में पूरी तरह से न्यायोचित होगी। अदालत केवल एक डाकघर या अभियोजन के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकती है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों और दस्तावेजों के कुल प्रभाव, किसी भी बुनियादी कमजोरियों आदि पर विचार करना होगा, हालांकि, इस स्तर पर मामले के पक्ष और विपक्ष की गहन जांच नहीं की जा सकती है और सबूतों को ऐसे तौला नहीं जा सकता है जैसे कि वह कोई मुकदमा चला रहा हो। अभिलेख पर मौजूद सामग्री के आधार पर यदि अदालत यह राय बना सकती है कि आरोपी ने अपराध किया होगा, तो वह आरोप तय कर सकती है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए राय को उचित संदेह से परे साबित करना आवश्यक है कि आरोपी ने अपराध किया है। आरोप तय करते समय, अभिलेख पर मौजूद सामग्री के संभावित मूल्य पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है, लेकिन आरोप तय करने से पहले, अदालत को अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक दिमाग अवश्य लगाना चाहिए और इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा अपराध कारित करना संभव था। यहां तक कि आरोप तय करने के चरण में भी, दोषसिद्धि के उद्देश्य के लिए सामग्री की पर्याप्तता पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है और आरोपमुक्त करने के प्रार्थना को केवल स्वीकार किया जा सकता है, जब अदालत को पता चले कि परीक्षण के उद्देश्य से सामग्री पूरी तरह अपर्याप्त है। यह भी कानून का एक स्थापित प्रस्ताव है कि जब किसी आरोपी के खिलाफ मजबूत संदेह पैदा

करने वाली सामग्री होती है, तब भी अदालत को आरोपमुक्त करने के प्रार्थना को खारिज करने और अभियोजन पक्ष को कानून के अनुसार पूरे साक्ष्य को अभिलेख पर लाने का अवसर देना उचित होगा, ताकि मुकदमे के समापन पर दोनों पक्षों के मामले पर उचित रूप से विचार किया जा सके।

11. वर्तमान मामले में, विद्वान विचारण अदालत द्वारा अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता के आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज करते हुए पारित आदेश को वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दाखिल कर चुनौती दी गई है, जबकि तथ्यात्मक स्थिति यह है कि दिनांक 07.12.2021 को आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज करने के बाद विचारण न्यायालय ने आरोपी पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए हैं और साक्ष्य दर्ज किए गए हैं। यद्यपि इस मामले में तीन गवाहों से पहले ही पूछताछ की जा चुकी है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य 1979 एससी 94** में कहा है कि आरोप तय होने के बाद आरोपमुक्त करने का सवाल ही नहीं उठता। **स्त्री अत्याचार विरोधी परिषद बनाम दिलीप नाथूमल चोरडिया 1989 एससीसी (1715)** के मामले में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया था। एक बार आरोप तय हो जाने के बाद, आरोपी पर मुकदमा चलाया जाता है और उसके बाद आरोपी को या तो बरी किया जा सकता है या दोषी ठहराया जा सकता है, लेकिन उसको उन्मोचित नहीं किया जा सकता है। आपराधिक प्रक्रिया संहिता में आरोप तय होने के बाद उन्मोचन करने को मान्यता नहीं दी गई है। जहां तक

पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अपनी बेगुनाही के दावे और मुखबिर द्वारा झूठे आरोप के समर्थन में पेश किए गए इलेक्ट्रॉनिक और दस्तावेजी साक्ष्य का सवाल है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाथी एआईआर 2005 एससी 359** में कहा है कि अभियुक्त के बचाव पर उस समय पर ध्यान नहीं दिया जाता है जब अभियुक्त दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत आरोपमुक्त करने की मांग करता है। दं.प्र.सं. की धारा 227 में प्रयुक्त "मामले का अभिलेख" अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों और लेखों, यदि कोई हो, के रूप में समझा जाना चाहिए। संहिता आरोपी को आरोप तय करने के चरण में कोई दस्तावेज पेश करने का अधिकार नहीं देती है। आरोप तय करने के चरण में, आरोपी की दलील पुलिस द्वारा पेश की गई सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए।

12. पूर्वगामी चर्चाओं और न्यायिक अधिकारियों के आधार पर, आक्षेपित आदेश दिनांक 02.03.2022 के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन के आवेदन को खारिज करते समय मुझे विद्वान विचारण अदालत के निष्कर्ष और तर्क में कोई गलती नहीं मिली। पीड़िता ने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्करण का समर्थन किया है, जो निस्सन्देह नाबालिग है और घटना के समय उसकी उम्र लगभग 10 वर्ष थी, जो वर्ष 2017 की है। पी.डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षण के दौरान अदालत के समक्ष पीड़िता की शपथपूर्ण गवाही, जिसमें उसने आरोपी को दोषमुक्त कर दिया है, को एक सामग्री के रूप में नहीं माना जा सकता है, जो कि संहिता की

धारा 227 के तहत प्रदान किए गए आरोपमुक्त करने के आवेदन पर विचार करते समय अदालत के समक्ष उपलब्ध थी। इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उठाए गए आधार और दस्तावेज़ जिन पर भरोसा किया गया है, बचाव साक्ष्य के चरण में अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता द्वारा विचारण अदालत के समक्ष लाया जा सकता है क्योंकि मुकदमा चल रहा है। विद्वान निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अनियमितता, अवैधता और विकृति नहीं है। पुनरीक्षण गुणहीन है और खारिज किये जाने योग्य है।

13. तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 139

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 5098

वर्ष 2023

अमित गोयल एवं अन्य

...याचीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

सुश्री श्रेया गुप्ता, श्री रवि आनंद अग्रवाल

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 425 - रिश्वट, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 - धारा 3 - सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने वाली रिश्वट, धारा 4 - आग या विस्फोटक पदार्थ द्वारा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने वाली रिश्वट, राजस्व संहिता, 2006 - धारा 67 - ग्राम पंचायत संपत्ति की क्षति, दुर्विनियोजन और गलत कब्जे को रोकने की शक्ति - किसी कार्य के संबंध में सिविल और आपराधिक कार्यवाही शुरू करने और अभियोजन के लिए कोई रोक नहीं है, यदि दोनों को कानून का अधिदेश प्राप्त है - किसी भी मामले में, एक कार्य आपराधिक और सिविल दोनों दायित्व को जन्म दे सकता है और इसलिए, सिविल और आपराधिक दोनों कार्यवाहियों का एक साथ सहारा लिया जा सकता है। (पैरा -10)

प्र.सू.रि. रद्द करना - तर्क - प्र.सू.रि. दुर्भावनापूर्ण है - भूमि पर निर्माण किया गया - निष्क्रांत संपत्ति नहीं - शत्रु संपत्ति नहीं - संरक्षक के नियंत्रण में - सहायक संरक्षक शत्रु संपत्ति उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड घोषित - भूखंड संख्या 835 और भूखंड संख्या 843 गैर शत्रु संपत्ति - प्र.सू.रि. में भूखंड संख्या 842 सहित दो भूखंडों की भी पहचान की गई है, जो आदेश से आच्छादित नहीं है। (पैरा - 2,3,4,8)

अभिनिर्धारित हुआ:- याचिकाकर्तागण उद्धृत निर्णयों के अंतर्गत किसी भी लाभ के हकदार नहीं हैं। कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता।

यह सिद्ध नहीं होता कि भूखंड संख्या 842, जिस पर प्र.सू.रि. में लगाए गए आरोपों के अनुसार निर्माण किया जा रहा है, शत्रु संपत्ति नहीं है। (पैरा 9,11)

**रिट याचिका खारिज। (ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. अशोक कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अंतर्गत धारा 482 संख्या 20181 वर्ष 2021

2. मुंसी लाल एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, अंतर्गत धारा 482 संख्या 9964 वर्ष 2020

3. देवनाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131 वर्ष 2021

(माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा पारित)

1.याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, प्रथम सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना ।

2.वर्तमान रिट याचिका में सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 की धारा 3 और 4, पुलिस स्टेशन- सिविल लाइन्स, जिला - मुजफ्फरनगर के तहत मुकदमा अपराध संख्या 56 सन 2023 से

जनित दिनांक 16.02.2023 की एफआईआर को रद्द करने की मांग की गई है।

3.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दुर्भावनापूर्ण है क्योंकि जिस संपत्ति पर निर्माण की प्रक्रिया चल रही है, वह निष्क्रांत संपत्ति नहीं है क्योंकि यह माना गया कि 214.84 वर्ग मीटर प्लॉट नंबर 835 रकबा 0.061 और प्लॉट नंबर 843 रकबा 0.082 हेक्टेयर शत्रु संपत्ति नहीं है। यह आदेश सहायक अभिरक्षक शत्रु सम्पत्ति 30प्र0 एवं उत्तराखंड 08.02.2019 द्वारा पारित किया गया है। । इस रिट याचिका के अनुलग्नक 11 के रूप में दायर दिनांक 02.08.2019 का आदेश केवल प्लॉट संख्या 835 क्षेत्रफल 0.061 के 214.84 वर्ग मीटर और प्लॉट संख्या 843 क्षेत्रफल 0.082 हेक्टेयर को शत्रु संपत्ति न होना घोषित करता है।

4.प्रथम सूचना रिपोर्ट में इन दो भूखंडों का उल्लेख है, लेकिन इसमें प्लॉट संख्या 842 का भी उल्लेख है, जो कि उक्त आदेश से आच्छादित नहीं है, अतः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रथम निवेदन स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है।

5.इसी कारण से, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह कहना कि एफआईआर दर्ज हो चुकी है,समीक्षा आवेदन विचार हेतु लंबित रहने मात्र से याचिकाकर्ता के मुकदमे की स्थिति में सुधार नहीं होता है।

6.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की अगली दलील यह है कि निर्माण कार्य

सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 या 4 के दायरे में नहीं आएगा। इस निवेदन/ प्रस्तुति के समर्थन में, **अशोक कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य** के मामले में धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 20181 सन 2021 दिनांक 06.04.2022 को पारित आदेश और धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 9964 सन 2020, **मुंशी लाल और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य** में पारित आदेश दिनांक 06.08.2020 पर विश्वास जताया है। अशोक कुमार (सुप्रा) के मामले में फैसला मुंशी लाल (सुप्रा) के फैसले पर निर्भर करता है।

7. ये दोनों उद्धृत मामले गांव सभा की भूमि से संबंधित हैं और सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए दिए गए कारणों में से एक यह था कि राजस्व संहिता, 2006, जो अपने आप में एक पूर्ण संहिता है की धारा 67 अतिक्रमण/ गाँव सभा की जमीन पर अनाधिकृत कब्जे से निपटने के लिए एक पूरी प्रक्रिया प्रदान करती है, मुंशी लाल मामले में फैसले का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"जो क्षेत्र पी.डी.पी.पी. अधिनियम, 1984 के अंतर्गत आता है, वह दंगों या सार्वजनिक प्रदर्शनों (हंगामा) के दौरान अधिनियम की धारा 2 (बी) के अर्थ के अंतर्गत 'सार्वजनिक संपत्ति' को नष्ट करने या क्षति पहुंचाने तक ही सीमित है। न्यायालय की सुविचारित राय में, उक्त

प्रावधानों को स्थायी रूप से रहने वाले किसी व्यक्ति, गांव या संबंधित गांव में किसी भी भूमि का किरायेदार धारक के खिलाफ अवैध अतिक्रमण के कारण ग्राम सभा की भूमि को हुए नुकसान या क्षति के आरोपों पर आपराधिक शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। "

8. माना जाता है कि, आक्षेपित एफआईआर में जमीन पर निर्माण किए जाने का आरोप लगाया गया है, जिसका कम से कम कुछ हिस्सा शत्रु संपत्ति है और अभिरक्षक के नियंत्रण में है।

9. इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता उद्धृत निर्णयों के तहत किसी भी लाभ के हकदार नहीं हैं।

10. इसके अलावा, मुंशी लाल (सुप्रा) के मामले में फैसले पर आपराधिक विविध न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विचार किया गया है। रिट याचिका संख्या 1131 सन 2021, **देवनाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 3 अन्य**, इस अवलोकन के साथ कि:

"सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर, हम पाते हैं कि अधिनियम की धारा 2 (ए) में प्रावधान है कि अधिनियम में आने



वाले शब्द "शरारत" का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता धारा 425 में है, जो नीचे उद्धृत है -

**"धारा 425: शरारत:** जो कोई भी जनता या किसी व्यक्ति को गलत तरीके से हानि या क्षति पहुंचाने के इरादे से, या यह जानते हुए कि वह कारित करने की संभावना रखता है, किसी संपत्ति का विनाश, या किसी संपत्ति में या ऐसे किसी भी बदलाव का कारण बनता है। उसकी स्थिति उसके मूल्य या उपयोगिता को नष्ट या कम कर देती है, या उस पर हानिकारक प्रभाव डालती है, "शरारत" करती है।

माना जाता है कि, विचाराधीन भूमि सार्वजनिक उपयोगिता की भूमि है जिसे चकबंदी कार्यों के दौरान मवेशियों के चरने के लिए चारागाह भूमि के रूप में उपयोग करने के लिए आरक्षित किया गया था। जैसा कि याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है, उस पर किसी भी अतिक्रमण का मतलब है कि उसका उपयोग चारागाह भूमि के रूप में नहीं किया जा सकता है। ऐसे में याचिकाकर्ता द्वारा चारदीवारी का निर्माण कर संपत्ति की स्थिति बदल दी गई है। इस तरह के निर्माण से अतिक्रमित भूमि का चारागाह के रूप में उपयोग रुक जाता है और इसका मूल्य या उपयोगिता कम हो जाती है। इसलिए, याचिकाकर्ता का

कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 425 के अंतर्गत आता है। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि सार्वजनिक उपयोगिता भूमि, जो चारागाह भूमि के रूप में आरक्षित है, पर याचिकाकर्ता द्वारा किया गया अतिक्रमण आईपीसी की धारा 425 के तहत शब्द के अर्थ में एक शरारत के समान है।

सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3(1) में प्रावधान है कि जो कोई भी सार्वजनिक संपत्ति के संबंध में शरारत करेगा, उसे पांच साल तक की कैद और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

चारागाह भूमि के रूप में उपयोग के लिए आरक्षित भूमि सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आरक्षित भूमि है। अतः यह सार्वजनिक उपयोगिता भूमि है। यह राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत आने वाली भूमि भी है, जिसमें किसी भी व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित नहीं हो सकता है। यह भी निर्विवाद है कि विचाराधीन भूमि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए आरक्षित की गई है, अर्थात् चारागाह भूमि के रूप में उपयोग के लिए।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 गांव सभा भूमि के अनधिकृत कब्जेदारों

को बेदखल करने के लिए एक पूरी प्रक्रिया प्रदान करती है, जो सार्वजनिक उपयोगिता भूमि हो भी सकती है और नहीं भी। उक्त प्रावधान केवल गांव सभा के प्रबंधन के तहत राज्य से संबंधित भूमि के ऐसे अनधिकृत कब्जे और उपयोगकर्ता के कारण बेदखली और क्षति की वसूली के लिए है। यह पूरी तरह से एक नागरिक उपचार है, जिसमें कोई आपराधिकता नहीं है। सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के तहत सार्वजनिक उपयोगिता भूमि का अतिक्रमण एक अपराध है, जिसके लिए दंडात्मक परिणाम अर्थात् कारावास और जुर्माना हो सकता है। इसके अलावा, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के तहत किसी अनधिकृत कब्जेदार को बेदखल करने का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, दो प्रावधान, अर्थात् राजस्व संहिता के 67 और सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 2,3 और 5 अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं। यदि विधायिका अपने विवेक से किसी कार्रवाई को आपराधिक कृत्य घोषित करना उचित समझती है, तो उसे पढ़ने या उसके दायरे को कम करने की आवश्यकता नहीं है। चूंकि, दोनों प्रावधान अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं, इसलिए यह

स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कोई अधिव्यापन है। किसी अधिनियम के संबंध में सिविल और आपराधिक कार्यवाही शुरू करने और मुकदमा चलाने पर कोई रोक नहीं है, यदि दोनों के पास कानून का जनादेश है। किसी भी मामले में, एक अधिनियम आपराधिक और नागरिक दायित्व दोनों को जन्म दे सकता है और इसलिए, नागरिक और आपराधिक दोनों कार्यवाही का एक साथ सहारा लिया जा सकता है।

**मुंशी लाल (मुप्रा)** के मामले में फैसले पर आते हुए, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश, इस आधार पर आगे बढ़े कि सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 को सार्वजनिक संपत्ति को बर्बरता और क्षति को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया था। इसके उद्देश्यों और कारणों के कथन का पहला वाक्य इस प्रकार है

"दंगों और सार्वजनिक हंगामे के दौरान होने वाले विनाश और क्षति सहित सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने और बर्बरता के कृत्यों पर अंकुश लगाने की दृष्टि से, अधिकारियों को सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान के मामलों से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाने के लिए कानून को मजबूत करने की आवश्यकता महसूस की गई।"

उद्धृत निर्णय में "सहित" शब्द के प्रयोग की प्रतिबंधात्मक व्याख्या की गई है। हमारी राय है कि उक्त शब्द अपने दायरे में "दंगों और सार्वजनिक हंगामे के दौरान हुए विनाश और क्षति" को भी लाता है, जैसा कि उद्देश्यों और कारणों के विवरण में कहा गया है। इसलिए, "सहित" शब्द के उपयोग का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम केवल तभी लागू किया जा सकता है जहां सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान बर्बरता, दंगों या सार्वजनिक हंगामे के कारण हुआ हो।

हमारी सुविचारित राय में, उद्धृत निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 3(1) के बारे में एक संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है और अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मुख्य रूप से अधिनियम की धारा 3(2) के साथ-साथ अधिनियम की धारा 4 पर भी विश्वास किया है।

हालाँकि, हमने पाया कि आईपीसी की धारा 425 और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 की धारा 3(1) के मददेनजर, याचिकाकर्ता की कार्रवाई स्पष्ट रूप से इन दो धाराओं के दायरे में आती है, खासकर जब निर्माण सार्वजनिक संपत्ति पर चारदीवारी की बात याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार की है।"

11.उपरोक्त उद्धृत निर्णय याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का पूर्ण उत्तर है और इसलिए, इस रिट याचिका में कोई राहत नहीं दी जा सकती है। यह भी स्थापित नहीं है कि प्लॉट नंबर 842 जिस पर एफआईआर में आरोपों के अनुसार निर्माण किया जा रहा है, शत्रु संपत्ति नहीं है।

12.तदनुसार, रिट याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 142

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 10716

वर्ष 2023

मेसर्स माँ वैष्णो ट्रेडर्स, कौशांबी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री संतोष त्रिपाठी, मांडवी त्रिपाठी

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 379 - उ.प्र. लघु खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 - धारा 3(1), 58, 72(1)

एवं 76 - खान एवं खनिज (विकास विनियमन) अधिनियम 1957 - धारा 4, 21 एवं 22 - सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 - धारा 3 एवं 4, - उ.प्र. लघु खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए विधिवत प्राधिकृत अधिकारी द्वारा लिखित में शिकायत को छोड़कर, जहां संज्ञान वर्जित है, वहां भी प्र.सू.रि. दर्ज करने पर कोई रोक नहीं है। (पैरा-7)

एस.डी.एम. द्वारा किया गया औचक निरीक्षण - प्र.सू.रि. में आरोप - याचिकाकर्ता को दिए गए पट्टे से परे क्षेत्र में खनन किया गया - इसमें संज्ञेय अपराध के तत्व शामिल हैं - तर्क - प्र.सू.रि. में आरोपों से कोई अपराध प्रकट नहीं हुआ - याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपित अपराध चार अधिनियमों के अंतर्गत हैं। (पैरा - 3,9,10,11)

**अभिनिर्धारित हुआ:-** याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 22 से कोई लाभ नहीं मिल सकता है और अधिनियम की धारा 4(1) या 4(1-ए) के अंतर्गत अपराध के संबंध में प्र.सू.रि. दर्ज की जा सकती है, क्योंकि धारा 21(6) के अनुसार ये संज्ञेय अपराध हैं। प्र.सू.रि. को इसलिए रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपित अपराध ऐसे हैं जिनके संबंध में प्र.सू.रि. दर्ज की जा सकती थी और साथ ही, क्योंकि उसमें लगाए गए आरोप अपराध की श्रेणी में आते हैं। (पैरा-20,23)

**रिट याचिका खारिज। (ई-7)**

### उद्धृत वादों की सूची:

जयंत आदि बनाम मध्य प्रदेश राज्य

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

और

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए. जी. ए. को सुना गया।

2. यह रिट याचिका 21.05.2023 की एफआईआर को रद्द करने की मांग करती है, जिससे थाना सराय अकिल, जिला कौशांबी में आईपीसी की धारा 379, उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 की धारा 3(1), 58, 72(1), खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम 1957 की धारा 4, 21 और लोक सम्पत्ति नुकसान निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3, 4 के तहत अपराधिक मामला संख्या 177/2023 उत्पन्न हुई।

3. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों में से किसी अपराध का खुलासा नहीं हुआ है।

4. आगे तर्क दिया गया है कि एस.डी.एम, चायल, सर्कल ऑफिसर, चायल और माइनिंग ऑफिसर, चायल द्वारा किए गए औचक निरीक्षण के समय मौके पर कोई खनन नहीं किया जा रहा था। वैसे भी ये अपराध शमनीय

है। इसके अलावा, खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (इसके बाद "अधिनियम, 1957" के रूप में संदर्भित) की धारा 22 स्पष्ट रूप से कहती है कि "कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के तहत या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय किसी व्यक्ति द्वारा लिखित शिकायत के जो केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इसके लिए प्राधिकृत हो।" इसलिए, प्राथमिक सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती थी।

5. आगे तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 (इसके बाद "नियमावली, 2021" के रूप में संदर्भित) का नियम 72(1) केवल यह प्रावधान करता है कि "एक खनन पट्टे या परमिट धारक या उसका एजेंट किसी भी व्यक्ति को फॉर्म एमएम-11 या फॉर्म ई-एमएम-11 में एक पास जारी कर सकता है, जो उप खनिज की खेप एक वाहन, जानवर या परिवहन के किसी अन्य साधन के द्वारा ले जा रहा हो।"

6. उन्होंने इस दलील का समर्थन करने के लिए निम्नलिखित नियमों का भी हवाला दिया है, जो कि- :

(i) **नियमावली की धारा 3(1)** "उस क्षेत्र में केवल खनन कार्यों की अनुमति देती है, जिस पर केवल एक खनन पट्टे या खनन परमिट के नियमों और शर्तों के अनुसार नियम लागू होते हैं, "

(ii) **नियमावली की धारा 58** के अनुसार नियम 3 के प्रावधानों के उल्लंघन या उल्लंघन के लिए दंड। यह निर्धारित करता है कि नियम 3 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दोषी सिद्ध होने पर, पांच साल तक के कारावास की सजा या 2 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर जुर्माना जो पांच लाख रुपये प्रति हेक्टेयर तक बढ़ सकता है, या दोनों।"

और

(iii) **नियमावली का नियम 76** जो यह प्रावधान करता है कि "कोई भी न्यायालय इन नियमों के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय जिला अधिकारी या उसके द्वारा इस ओर से प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत पर।"

7. विद्वान एजीए ने रिट याचिका का विरोध किया है और कहा है कि एफआईआर में भारतीय दंड संहिता अर्थात धारा 379 आईपीसी के तहत भी अपराध का आरोप है, जो कि संज्ञेय अपराध है। इसलिए, प्राथमिकी रद्द नहीं की जा सकती। उन्होंने जयंत आदि बनाम मध्य प्रदेश राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी जोर देकर, यह तर्क दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 (इसके बाद "नियमावली, 2021" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए प्राथमिकी दर्ज करने में कोई रोक नहीं है, भले ही विधिवत प्राधिकृत अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत के अलावा संज्ञान लेने पर रोक हो।

8. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए प्रस्तुत विचारों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. एफआईआर में आरोप है कि 20/21.05.2023 की रात को किए गए औचक निरीक्षण के दौरान, यह पता चला कि मेसर्स मां वैष्णो ट्रेडर्स के पक्ष में लीज के अधीन क्षेत्र से परे 40 मीटर x 58 मीटर x .7 मीटर के क्षेत्र में खनन किया गया था, जिसका मालिक जगदीश प्रसाद, याचिकाकर्ता, था। और यह एक लघु खनिज की चोरी के समान था। खनन किया गया माल भी विधि विरुद्ध तरीके से ले जाया गया था।

10. याचिकाकर्ता के विरुद्ध अपराध चार अधिनियमों के अंतर्गत आते हैं, भारतीय दंड संहिता, लोक सम्पत्ति नुकसान निवारण अधिनियम, 1984, खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957, उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021।

11. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता और लोक संपत्ति हानि निवारण अधिनियम, 1984 के प्रावधानों के तहत अपराधों का संबंध है, ये अपराध संज्ञेय अपराध हैं और इसके अंतर्गत प्राथमिकी दर्ज की जा सकती है और इसमें एक संज्ञेय अपराध के तत्व शामिल हैं।

12. यह निस्संदेह सत्य है कि जहाँ तक उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 के तहत अपराधों का संबंध है, नियम 76 के मददेनजर गैर-संज्ञेय हैं और उनका संज्ञान, केवल ऐसे शिकायत दर्ज करने के लिए

प्राधिकृत अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत के आधार पर लिया जा सकता है।

13. खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (इसके बाद "अधिनियम, 1957" के रूप में संदर्भित) के संबंध में स्थिति थोड़ी भिन्न है

14. प्राथमिकी में आरोप है कि याचिकाकर्ता को दी गई लीज से परे एक क्षेत्र में खनन किया गया है। इसलिए, यह खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (इसके बाद "अधिनियम, 1957" के रूप में संदर्भित) की धारा 4(1) के तहत एक अपराध है, जो इस प्रकार है:-

**"धारा 4. लाइसेंस या पट्टे के तहत पूर्वक्षण या खनन कार्य।**

(1) [कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र में कोई भूमिक्षण, पूर्वक्षण या खनन संक्रियाएँ इस अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के अधीन अनुदत्त, यथास्थिति, भूमिक्षण अनुज्ञापत्र या पूर्वक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के अधीन तथा उसके निबंधन और शर्तों के अनुसार ही करेगा, अन्यथा नहीं] :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात उन पूर्वक्षण या खनन संक्रियाओं पर प्रभाव नहीं डालेगी जिनका कसी क्षेत्र में उपक्रम इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुदत्त ऐसे प्रारम्भ के समय प्रवृत्त पूर्वक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के निबंधनों और शर्तों के अनुसार किया गया हो :

परन्तु यह और कि इस उपधारा की कोई भी बात किन्हीं ऐसी पूर्वक्षण संक्रियाओं को लागू नहीं होगी जो भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण, भारतीय खान ब्यूरो, केंद्रीय सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग के खोज और अनुसंधान के लिए परमाणु खनिज निदेशालय, किसी भी राज्य सरकार के खनन और भूविज्ञान निदेशालयों (चाहे वे किसी भी नाम से ज्ञात हों) तथा मिनेरल एक्सप्लोरेशन कारपोरेशन लिमिटेड द्वारा, जो कि कंपनी अधिनियम, 2013 (2013 का 18) की धारा 2 के खंड (45) के अर्थ में सरकारी कम्पनी और ऐसे किसी अस्तित्व द्वारा, जिसे इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए :

(1) क) कोई व्यक्ति इस अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के अधीन ही किसी खनिज का परिवहन या भंडार करेगा या परिवहन या भंडार करवाएगा, अन्यथा नहीं।

(2) [ "कोई भूमिक्षण अनुज्ञापत्र, पूर्वक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टा"] इस अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार ही अनुदात किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

(3) कोई भी राज्य सरकार केंद्रीय सरकार से पूर्व परामर्श करने के पश्चात और धारा 18 के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार, ["उस राज्य सरकार के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में जो किसी भूमिक्षण अनुज्ञापत्र, पूर्वक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के अधीन पहले ही धृत नहीं है, किन्हीं ऐसे खनिजों की बाबत, जो प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट

हैं, भूमिक्षण, पूर्वक्षण या खनन संक्रियाएँ कर सकेगी।"

15. धारा 4(1) या 4(1-ए) के उल्लंघन के लिए दंड अधिनियम, 1957 की धारा 21 में दिए गए हैं। धारा 21 की उप-धारा 1 प्रासंगिक है और इस प्रकार है:-

जो कोई भी धारा 4 की उप-धारा (1) या उप-धारा (1-ए) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, उसे कारावास के साथ दंडित किया जाएगा जो पांच वर्ष तक का हो सकता है और जुर्माना जो कि पांच लाख रुपये प्रति हेक्टेयर क्षेत्र तक बढ़ाया जा सकता है।

16. इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि धारा 21 की उप-धारा 6 यह प्रावधान करती है कि "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी बात के होते हुए भी, उप-धारा 1 के तहत अपराध संज्ञेय होगा।"

17. यह उपधारा 6 को अधिनियम संख्या 37, 1986 द्वारा 10.02.1987 से प्रभावी रूप से शामिल किया गया है।

18. इस अधिनियम, 1957 की धारा 22 में प्रावधान है कि कोई भी न्यायालय इस अधिनियम या उसके किसी नियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित शिकायत के अलावा नहीं लेगा।

19. यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि धारा 22 एक ऐसा प्रावधान है, जो वर्ष 1957 में अधिनियम के लागू होने के साथ से ही अस्तित्व में है। धारा 21 की उप-धारा 6, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, 10.02.1987 से प्रभावी है।

20. अतः, उक्त परिस्थितियों में, धारा 22(6) खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 के अंतर्गत अपराधों से संबंधित, उक्त अधिनियम की धारा 22 में उल्लिखित सामान्य प्रावधान का अपवाद है। विचाराधीन प्राथमिकी में आरोपित अपराध अधिनियम 1957 की धारा 4(1) और 4(1-A) के अंतर्गत हैं। अतः, धारा 21 की उप-धारा 6 के मददेनजर ये संज्ञेय अपराध हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 22 का कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है और अधिनियम की धारा 4(1) या 4(1-ए) के तहत अपराध के संबंध में एक प्राथमिकी दर्ज की जा सकती है, क्योंकि ये धारा 21(6) के मददेनजर संज्ञेय अपराध हैं।

21. जहां तक उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 के तहत अपराधों का सवाल है, यह क्षेत्र जयंत आदि के मामले (उपर्युक्त) में निर्धारित सिद्धांत द्वारा शासित होगा। निष्कर्ष भाग में उच्चतम न्यायालय ने अपने निष्कर्षों को 5 बिंदुओं में सारांशित किया है। वर्तमान मामले के उद्देश्यों के लिए, बिंदु (iv) प्रासंगिक है और इस प्रकार है:

“(iv) यह तर्क दिया जाता है कि जब मैजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत

आदेश पारित करता है और संबंधित थाना प्रभारी/एसएचओ को खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम (एमएमडीआर अधिनियम) और उसके तहत बनाए गए नियमों के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में अपराध दर्ज करने का निर्देश देता है, तो जांच के बाद संबंधित थाना प्रभारी/जांच अधिकारी अपनी रिपोर्ट संबंधित मैजिस्ट्रेट के साथ-साथ एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 में उल्लिखित संबंधित प्राधिकृत अधिकारी को भी भेज सकता है। इसके बाद, संबंधित प्राधिकृत अधिकारी जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के साथ विद्वान मैजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कर सकता है। इसके बाद, विद्वान मैजिस्ट्रेट उचित प्रक्रिया का पालन करने, एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में सम्मन जारी करने के बाद संज्ञान ले सकता है और उसी समय यह कहा जा सकता है कि विद्वान मैजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान ले लिया गया है।”

22. अतः, विचाराधीन प्राथमिकी को उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 के अंतर्गत अपराधों के संबंध में भी दर्ज किया जा सकता है, जो अधिनियम की धारा 22 के अधीन आते हैं।

23. इन परिस्थितियों में, हम यह निष्कर्ष निकालने के लिए विवश हैं कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों में तथ्य का अभाव है। उपरोक्त कारणों से प्राथमिकी को रद्द नहीं किया जा सकता है क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपित



अपराध ऐसे हैं जिनके संबंध में एक प्राथमिकी दर्ज की जा सकती थी और चूंकि वहां के आरोप अपराधों का गठन करते हैं।

**'आदतन अपराधी' नहीं माना जा सकता जब तक कि अपराध की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति न हो। (पैरा-12,13)**

24. अतः, रिट याचिका निष्फल होती है और **खारिज** की जाती है।

-----

**(2023) 9 ILRA 147**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी**

**माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी**

**आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 12619**

**वर्ष 2023**

डी.एम. द्वारा जारी किया गया कारण बताओ नोटिस - याचिकाकर्ता के विरुद्ध - गुंडा अधिनियम के अंतर्गत एक अतिरिक्त अपराध लाने के उद्देश्य से - केवल एक आपराधिक मामले को रद्द करना - एक बीट रिपोर्ट - एकल मामला - "निर्धारित मुद्रित प्रारूप" - अधिशासी प्राधिकारियों द्वारा बिना सोचे-समझे - याचिकाकर्ता के विरुद्ध भौतिक आरोपों की सामान्य प्रकृति - विचारण की समाप्ति तक अग्रिम जमानत प्रदान करना - गुंडा अधिनियम के प्रावधानों का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग देखना। (पैरा - 2,4,13,15)

**गोवर्धन**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:**

**श्री अखिलेश श्रीवास्तव, श्री सक्षम श्रीवास्तव**

**प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:**

**शासकीय अधिवक्ता**

(ए) आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 323, 504, 506, 354, 354बी एवं 452 - उत्तर प्रदेश गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, 1970 - धारा 2(बी), 3 - "गुण्डा" - *आदतन* अपराध करता है - केवल एक घटना के आधार पर याचिकाकर्ता को आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता - "व्यक्ति" को तब तक

**अभिनिर्धारित हुआ:-** नोटिस कुछ और नहीं, बल्कि ज़िले के अधिशासी प्राधिकारियों को दी गई शक्तियों का सरासर दुरुपयोग है। उत्तर प्रदेश के ज़िलों के अधिशासी प्राधिकारियों में इस निवारक अधिनियम की प्रयोज्यता के संबंध में एकरूपता नहीं है, जिसके कारण मामलों का अनावश्यक ढेर लग रहा है, इस अधिनियम के अंतर्गत नोटिसों को चुनौती दी जा रही है, आदि। राज्य सरकार को निर्णय के आलोक में एक समान दिशानिर्देश बनाने का निर्देश दिया गया। कारण बताओ नोटिस रद्द किया जाता है। (पैरा - 20,21)

**रिट याचिका स्वीकृत। (ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. कैलाश जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 10241 वर्ष 2019

2. सुरेश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018 (5) एएलजे 1

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी  
और

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी  
द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री अखिलेश श्रीवास्तव और राज्य के विद्वान एजीए को सुना और रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता गोवर्धन की ओर से निम्नलिखित मुख्य प्रार्थना की मांग करते हुए वर्तमान याचिका दायर की गई है:

"उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 3 के तहत, पुलिस स्टेशन छर्ना, जिला अलीगढ़ के तहत मुकदमा संख्या 3400/2023 (राज्य बनाम गोवर्धन) में अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), अलीगढ़ द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस दिनांक 15.6.2023 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक संख्या 1)"

3. आम तौर पर, हम इस प्रकार की याचिकाओं पर विचार नहीं करते हैं, जहां केवल अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), अलीगढ़ (जिले के कार्यकारी प्राधिकारी) द्वारा

उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970, थाना छर्ना, जिला अलीगढ़ की धारा 3 के तहत मुकदमा संख्या 3400/2023 (राज्य बनाम गोवर्धन) में कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है।

4. वर्तमान मामले में, उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 3 के तहत दिनांक 15.6.2023 को दो मामलों के आधार पर नोटिस जारी किया गया है, (i) मुकदमा अपराध संख्या 69/2023, धारा 323, 504, 506, 354, 354बी, 452 आईपीसी, पुलिस स्टेशन छर्ना, जिला अलीगढ़ और (ii) रपट संख्या - 20, दिनांक 3.5.2023। इन "तथाकथित दो मामलों" के आधार पर अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), अलीगढ़ ने उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम 1970 के अंतर्गत अतिरिक्त अपराध लाने के उद्देश्य से याचिकाकर्ता के खिलाफ अधिनियम 1970 की उपरोक्त धारा के तहत एक नोटिस जारी किया है। इस उद्देश्य के लिए व्यक्ति को "गुंडा" होना चाहिए और "गुंडा" की इस अभिव्यक्ति को उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 2 (बी) में परिभाषित किया गया है।

5. इस अधिनियम की विशिष्ट विशेषता यह है कि जिस व्यक्ति को "गुंडा" करार दिया जाता है, उसे निवारक उपाय के रूप में जिले के कार्यकारी अधिकारियों द्वारा निष्कासन आदेश पारित करके शहर की नगरपालिका सीमा से बाहर कर दिया जाना चाहिए। वह व्यक्ति या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में, जो आदतन अधिनियम की धारा 2

(बी) में वर्णित अपराध करता है या उसे बार-बार अपराध करने की प्रवृत्ति मिली है। यदि किसी व्यक्ति के पास एक ही मामला चल रहा है, तो उस पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वह आदतन गुंडा है, याचिकाकर्ता के वकील ने दलील दी है।

6. उत्तर प्रदेश गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, 1970 के प्रावधान सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में लागू हैं। अधिनियम को पढ़ने से यह अत्यंत निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि यह अधिनियम नागरिकों को आदतन "गुंडा" से बचाने के लिए लागू किया गया है। उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 2(बी) में गुंडा शब्द को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

2(बी) "गुंडा" का अर्थ है वह व्यक्ति जो-

(i) या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में, आदतन अपराध करता है या करने का प्रयास करता है, या भारतीय दंड संहिता की धारा 153 या धारा 153-बी या धारा 294 या अध्याय XV, या अध्याय XVI, अध्याय XVII या उक्त संहिता के अध्याय XXII के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए उकसाता है; या

(ii) महिलाओं और लड़कियों के अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है; या

(iii) किसी दंडनीय अपराध के लिए कम से कम तीन बार दोषी ठहराया गया हो

(iii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 या सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 या आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25, धारा 27 या धारा 29 के तहत दंडनीय अपराध के लिए कम से कम तीन बार दोषी ठहराया गया हो; या

(iv) आम तौर पर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जाना जाता है जो समुदाय के लिए हताश और खतरनाक है, या

(v) आदतन घटना संबंधी टिप्पणियाँ करता रहा हो या महिलाओं या लड़कियों को छेड़ता रहा हो; या

(vi) एक दलाल है.

7. उपरोक्त अधिनियम की धारा 3 में इसकी सजा का प्रावधान है कि जब जिला मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि कोई व्यक्ति "गुंडा" है या जिले या उसके किसी भाग में उसकी गतिविधियों या कृत्यों से जिले के व्यक्तियों या संपत्ति को खतरा, खतरा या नुकसान हो सकता है या खतरे का कारण बन सकते हैं। जिला मजिस्ट्रेट को लगता है और उसके पास इस बात पर विश्वास करने की पर्याप्त सामग्री है कि, वह धारा 2 का खंड (बी) के उप-खंड (i) से (iii) में निर्दिष्ट अपराध के कमीशन में जिले या उसके किसी भी हिस्से में शामिल है या

शामिल होने वाला है या इस तरह के अपराध के लिए उकसाना और कोई भी गवाह उसके खिलाफ सबूत देने के लिए आगे नहीं आएगा, इसका मतलब यह है कि उस व्यक्ति ने बहुत बदनामी अर्जित की है और जिले में उसे पर्याप्त 'उपद्रव मूल्य' मिला है। उनके व्यक्ति या संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में आशंका के कारण, जिला मजिस्ट्रेट नागरिकों को उस व्यक्ति "गुंडा" के प्रकोप से बचाने के एकमात्र उद्देश्य से कानून में निर्दिष्ट छह महीने की अवधि के लिए निर्वासन आदेश पारित कर सकता है। इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि इस अधिनियम के तहत, जिला मजिस्ट्रेट को इस प्रकार के उपद्रवियों को संभालने और निवारक उपायों के माध्यम से अधिकतम छह महीने की अवधि के लिए जिले की नगरपालिका सीमा से बाहर करने का अधिकार है। यह एक निवारक कानून है जिसके तहत "गुंडा" कहे जाने वाले व्यक्ति को जिले का परिसर छोड़ने के लिए कहा जाता है। इसे शेष जीवन के लिए "गुंडा" करार दिया जाएगा।

8. जिला मजिस्ट्रेट को इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त असाधारण और असामान्य शक्तियों का प्रयोग करने से पहले पूरी सावधानी और देखभाल बरतनी चाहिए, लेकिन हम देख रहे हैं कि इस अधिनियम के प्रावधानों का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग हो रहा है। असंगत विचार के लिए कार्यकारी अधिकारी अपनी सनक और मनमर्जी से इस असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर रहे हैं और एक अकेले मामले या कुछ बीट रिपोर्ट पर नोटिस जारी कर रहे हैं। यह निवारक अधिनियम को कुंद बनाने जैसा है। गुंडा अधिनियम के प्रावधानों का अविवेकपूर्ण

प्रयोग और व्यक्तियों को नोटिस भेजना कार्यकारी अधिकारियों की इच्छा या पसंद पर आधारित नहीं है। एक ही मामले में नोटिस जारी करना काफी परेशान करने वाला है और अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी का अंबार लग जाता है। मौजूदा मामले में यह एक अकेला मामला है और केवल इस आधार पर कोई भी कार्यकारी प्राधिकारी यह उचित नहीं ठहरा सकता कि याचिकाकर्ता एक 'आदतन अपराधी' है या उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 2 (बी) में उल्लिखित मामलों में शामिल है।

9. शांतिपूर्वक निवास करना और अपना व्यवसाय करना प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है, लेकिन यदि कार्यकारी अधिकारी इस निवारक कानून के तहत नोटिस जारी कर रहे हैं, तो उन्हें व्यक्ति की पिछली छवि, उसकी पिछली साख, उसके परिवार, सामाजिक शैक्षिक पृष्ठभूमि के बारे में दोगुना आश्वस्त होना चाहिए और इन सभी कारकों का आकलन करने के बाद यदि कार्यकारी अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यक्ति "गुंडा" है या बड़े पैमाने पर समाज के लिए संभावित खतरा है और उसे नगरपालिका सीमा से बाहर निकाल दिया जाना चाहिए, तब केवल सुविचारित आदेश द्वारा, अपने स्वतंत्र न्यायिक दिमाग का उपयोग करने के बाद उस व्यक्ति को निर्वासित करने के लिए एक सुविचारित आदेश पारित किया जा सकता है या यहां तक कि उस व्यक्ति को अपने पिछले आचरण को सही ठहराने के लिए नोटिस जारी किया जा सकता है।

10. व्यक्तियों की छवि के संबंध में जनता की धारणा महत्व रखती है। यदि व्यक्ति क्षेत्र में खराब प्रतिष्ठा और नाम का आनंद ले रहा है और इस तथ्य के साथ कि उसका अतीत उतार-चढ़ाव वाला रहा है तो कार्यकारी अधिकारियों को उस व्यक्ति को नोटिस जारी करने या उस व्यक्ति के लिए निर्वासन आदेश पारित करने का अधिकार है। एक या दो की संख्या वाले छोटे और महत्वहीन अपराधों से व्यक्ति को "गुंडा" करार नहीं दिया जा सकता। यह "गुंडा" विशेषण अपने आप में बदनामी का बोझ लेकर आता है, और कार्यकारी अधिकारी लापरवाही से और गैर-जिम्मेदाराना तरीके से एक व्यक्ति को गुंडा करार देते हैं, यह कहने की जरूरत नहीं है कि उसका पूरा भविष्य और प्रतिष्ठा कुत्तों के हाथ में चली जाएगी और उसके नाम और उसके परिवार की प्रतिष्ठा को अपूरणीय क्षति होगी।

11. याचिकाकर्ता के वकील श्री श्रीवास्तव ने कैलाश जयसवाल बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य (आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 10241/2019) के मामले में 14.11.2022 को दिए गए इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने सुरेश तिवारी बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2018 (5) एएलजे 1 के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 2 के खंड (1) की प्रयोज्यता की आवश्यकता यह है कि ऐसा व्यक्ति जो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में आदतन अपराध करता है या करने का प्रयास करता है या

अपराध करने के लिए प्रेरित करता है, दंडनीय है जैसा कि खंड (1) में ही बताया गया है।

12. कैलाश जयसवाल (ऊपर) के पैराग्राफ संख्या 11, 12, 14 और 16 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"11. इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि यूपी गुंडा अधिनियम के तहत नोटिस न केवल दुर्भावनापूर्ण है बल्कि जिला मजिस्ट्रेट पर निहित शक्ति का दुरुपयोग है। याचिकाकर्ता को उस परिसर को खाली करने के लिए मजबूर करने की शक्ति के रंग-बिरंगे प्रयोग में कार्यवाही शुरू की गई है, जो निश्चित रूप से राज्य में निहित नहीं है। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक भी मामले में, यूपी गुंडा अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती क्योंकि याचिकाकर्ता आदतन अपराधी नहीं है।

12. सुरेश तिवारी बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2018 (5) एएलजे 1 में दिए गए इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि आक्षेपित नोटिस यूपी गुंडा नियंत्रण नियम, 1970 के नियम 4 के अनुरूप नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि यूपी गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 (बाद में इसे "अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया

जाएगा) की धारा 3 संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को किसी भी व्यक्ति, जो गुंडा है, को जिले से बाहर करने की या उसकी आवाजाही पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति प्रदान करती है। यदि जिला मजिस्ट्रेट इस बात से संतुष्ट है कि गुंडा अधिनियम की उपधारा (1) के खंड (ए), (बी) और (सी) में दिए गए मामले सही हैं, वह गुंडा को अधिनियम के खंड (डी) में उसके खिलाफ लगाए गए भौतिक आरोपों की सामान्य प्रकृति के बारे में सूचित करने के लिए नोटिस जारी कर सकता है। उन्होंने आगे कहा कि मौजूदा मामले में खंड (डी) में याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज एकमात्र मामले केस अपराध संख्या 212/2019 का उल्लेख है। इस प्रकार दूसरे प्रतिवादी ने अपना दिमाग लगाए बिना, साथ ही अधिनियम के खंड (ए), (बी) और (सी) में निर्धारित मामले के बारे में संतुष्टि दर्ज किए बिना, याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित मामले को निर्धारित प्रोफार्मा में यांत्रिक रूप से नोट कर लिया है।

**16. सुरेश तिवारी (2018(5) ALJ1)** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि केवल एक घटना के आधार पर याचिकाकर्ता को आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता है। पैरा नं. 19 इस प्रकार पढ़ते हैं:-

13. आक्षेपित नोटिस में, याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल एक आपराधिक मामले और एक बीट रिपोर्ट का विवरण है जबकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित परिभाषा और कानून के अनुसार "किसी" को तब तक 'आदतन अपराधी' नहीं माना जा सकता जब तक कि अपराध की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति न हो। मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता के खाते में एक अकेला मामला है, जिसमें उसे मुकदमे की समाप्ति तक अग्रिम जमानत दी गई है। हमने पाया कि यह नोटिस और कुछ नहीं, बल्कि जिले के कार्यकारी अधिकारियों में निहित शक्ति का सरासर दुरुपयोग है।

14. उपरोक्त के अतिरिक्त, कानून की अनिवार्य आवश्यकता है, कि यदि कार्यकारी प्राधिकारी संतुष्ट है कि गुंडा अधिनियम के तहत कार्यवाही अधिनियम की उप-धारा 1 के खंड (ए), (बी) और (सी) के तहत अपराध बताती है, वह विशेष "गुंडा" को नोटिस जारी कर अधिनियम के खंड (डी) में उसके खिलाफ लगाए गए भौतिक आरोपों की सामान्य प्रकृति, जनता के बीच उनकी छवि, उनका उपद्रव मूल्य जिसके कारण वे बड़े पैमाने पर समाज की शांति और सार्वजनिक व्यवस्था के लिए एक संभावित खतरा हैं, की जानकारी देनी होती है।

15. लेकिन मौजूदा मामले में, चुनौती के तहत नोटिस में याचिकाकर्ता के खिलाफ आवश्यक मामलों का विवरण दिया गया है, जो कथित तौर पर कार्यकारी अधिकारियों द्वारा बिना सोचे-समझे "निर्धारित मुद्रित प्रोफार्मा" पर जारी

किया गया है। इतना ही नहीं, लंबित एकान्त मामले और एक बीट रिपोर्ट की गणना को छोड़कर, याचिकाकर्ता के खिलाफ भौतिक आरोपों की सामान्य प्रकृति को बताने वाले किसी भी न्यायिक दिमाग का पूर्ण अभाव है, जिससे संपूर्ण आक्षेपित नोटिस दोषपूर्ण हो जाता है और उस पर आगे कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

16. हम उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 और उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के ऐसे प्रावधानों को बेहद मनमाने और आकस्मिक तरीके से नियमित रूप से चिपकाने पर अपनी कड़ी नाराजगी दर्ज करते हैं।

17. इस समय, विद्वान ए.जी.ए. खड़े हुए और अदालत को सूचित किया कि कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित मामलों के अलावा, याचिकाकर्ता दो-तीन और मामलों में भी शामिल है, जिन्हें कारण बताओ नोटिस में जगह नहीं मिली है। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्तुतिकरण अपने आप में मनोरंजक है। इससे साफ पता चलता है कि एक हाथ को नहीं पता कि दूसरा हाथ क्या कर रहा है। अचानक विद्वान ए.जी.ए. जाग गये और खुलासा किया कि याचिकाकर्ता को नोटिस में उल्लिखित दो मामलों के अलावा दो और मामले मिले हैं। न्यायालय उन अतिरिक्त मामलों का न्यायिक नोटिस नहीं ले सकता; हम प्रस्तावित "गुंडा" यानी याचिकाकर्ता के साथ इस लुका-छिपी की प्रथा की अनुमति नहीं दे सकते।

18. वर्तमान मामला पूरी तरह से उपरोक्त निर्णय के दायरे में आता है और रद्द किया जा सकता है। तदनुसार, हम उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम 1970, थाना छर्ना, जिला अलीगढ़ की धारा 3 के तहत केस नंबर 3400/2023 (राज्य बनाम गोवर्धन) में अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), अलीगढ़ द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस दिनांक 15.6.2023 को रद्द कर रहे हैं।

19. महा निबंधक, उच्च न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस फैसले की प्रति यूपी राज्य के सभी कार्यकारी अधिकारियों को सूचित करते हुए प्रसारित करें कि वे ऊपर उल्लिखित अनुपात का सख्ती से पालन करें। अब से अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे आवश्यक रूप से 'प्रस्तावित गुंडा के खिलाफ विशेष आरोपों की सामान्य प्रकृति', जनता के बीच उनकी व्यक्तिगत छवि, उनकी सामाजिक पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बताएं और उसके बाद कारण बताओ नोटिस जारी करते समय निर्धारित प्रोफार्मा के बजाय केवल एक सुविचारित आदेश पारित करें और उसके बाद संबंधित कार्यकारी अधिकारियों द्वारा निष्कासन का एक सुविचारित आदेश पारित करें, (यदि आवश्यक और जरूरत हो)। सभी जिला मजिस्ट्रेटों और उनके अधीन काम करने वाले कार्यकारी अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे आगे से उचित कार्रवाई करें और उस व्यक्ति के खिलाफ आगे बढ़ें, जहां उनके पास यह मानने का मजबूत कारण हो कि वह व्यक्ति समाज के लिए दुष्ट है और उसका निष्कासन वांछनीय है।

20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हम उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 के प्रावधानों का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग देख रहे हैं। इस निवारक अधिनियम की प्रयोज्यता के संबंध में यूपी के जिलों के कार्यकारी अधिकारियों में कोई एकरूपता नहीं है, जिससे मामलों का अनावश्यक ढेर लग रहा है, इस अधिनियम के तहत नोटिस को चुनौती दी जा रही है आदि।

(ए) अतः इस संबंध में यह निर्देश दिया जाता है कि राज्य सरकार भी उपरोक्त निर्णय के आलोक में इस अधिनियम की प्रयोज्यता के संबंध में एक समान गाइड लाइन बनाएगी।

(बी) यह दिशानिर्देश 31 अक्टूबर 2023 तक तैयार किए जाने चाहिए और सभी जिलों के जिला मजिस्ट्रेटों के बीच प्रसारित किए जाएंगे ताकि वे उन दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन कर सकें और उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 के प्रावधानों को लागू करने में एकरूपता हो।

21. इस निर्देश के साथ, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), अलीगढ़ द्वारा जारी किया गया कारण बताओ नोटिस दिनांक 15.6.2023 रद्द किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 152

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 12808

वर्ष 2023

राहुल सक्सेना उर्फ भोला/भोलू ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री नागेश कुमार द्विवेदी, श्री अश्विनी कुमार,  
श्री सुशील कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - उ.प्र. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - धारा 2/3 - उ.प्र. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली, 2021 - नियम 5 और 10, सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 - धारा 3/2, प्रमाणित प्रतिलिपि - परिभाषित नहीं - *लॉ लेक्सिकन और ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार वाक्यांश की परिभाषा* - उस अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित और सत्य प्रतिलिपि के रूप में प्रमाणित दस्तावेज़ की प्रतिलिपि, जिसकी अभिरक्षा में मूल दस्तावेज़ सौंपा गया है - प्रतिलिपि, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 76 के संदर्भ में सत्य प्रमाणित है, एक प्रमाणित प्रतिलिपि भी है - मूल दस्तावेज़ की एक दूसरी प्रति के रूप में 'प्रमाणित प्रतिलिपि', आमतौर पर एक आधिकारिक दस्तावेज़, एक सटीक प्रतिकृति के



**रूप में प्रमाणित, आमतौर पर मूल जारी करने या रखने के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा।(पैरा - 9)**

प्र.सू.रि. निरस्त करना - तर्क - दो आधार मामलों में गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान लागू - जांच अधूरी - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली के नियम 5 व 10 का अनुपालन नहीं - प्र.सू.रि. को अवैध बनाना - अनुमोदन के लिए आवश्यक कागजात - आधार मामले के आरोप-पत्र व बरामदगी ज्ञाप की प्रमाणित प्रति का अभाव - दस्तावेजों के साथ नहीं भेजा जाना - प्रमाणित प्रति का अर्थ न्यायालय से जारी प्रति है - गैंग चार्ट को अनुमोदित होने से रोकना। (पैरा - 3,4)

**अभिनिर्धारित हुआ:-** निर्णय में यह तर्क खारिज कर दिया गया है कि प्रमाणित प्रति न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रति है, तथा यह संकेत दिया गया है कि प्रथम तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता। डी.एम. द्वारा गैंग चार्ट को अनुमोदन देने से पहले कोई संयुक्त बैठक नहीं हुई। रिट याचिका या पूरक शपथपत्र में इस तरह के दावे का कोई आधार नहीं है। (पैरा - 10,13)

**रिट याचिका खारिज। (ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. मास्टर उर्फ रमजान बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा प्रधान सचिव गृह एवं अन्य, 2020 0 सुप्रीम (इलाहाबाद) 855

2. अंकित शर्मा उर्फ अंकित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 लॉ सूट(इलाहाबाद) 1595

3. बिन्नी लाला उर्फ विनोद कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक विविध. रिट याचिका संख्या 19638 वर्ष 2022

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा और

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आज न्यायालय में पूरक हलफनामा दायर किया है जिसे अभिलेख पर लिया गया है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

3. तत्काल रिट याचिका में उ.प्र. गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 2/3 के तहत एफआईआर दिनांक 26.07.2023 पुलिस स्टेशन-किला, जिला-बरेली से जन्म लेने वाली वाद अपराध संख्या 0303/2023 को रद्द करने की मांग की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दो मामलों के आधार पर गुंडा अधिनियम के प्रावधान लागू किए गए हैं। हालाँकि, मूल मामलों की जाँच पूरी नहीं हुई थी। उन्होंने यह भी जोरदार तर्क दिया है कि उ.प्र. गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली के

नियम 5 और 10 का अनुपालन नहीं किया गया है। इसलिए प्रथम सूचना आख्या अवैध है और रद्द किये जाने योग्य है।

5. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि जिन कागजातों को अनुमोदन प्राधिकारी को अग्रेषित किया जाना आवश्यक था, उनमें मूल मामलों के आरोप-पत्रों और रिकवरी जापनों की प्रमाणित प्रति का अभाव है। इन्हें अनुमोदन के लिए दस्तावेजों के साथ नहीं भेजा गया था। उनका कहना है कि प्रमाणित प्रति का मतलब न्यायालय से जारी की गई प्रति है। चूँकि, आरोप-पत्र न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया था, अतः अनुमोदन प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किए जाने के समय कोई प्रमाणित प्रति जारी नहीं किया जा सकता था या गिराह सारणी के साथ संलग्न नहीं किया जा सकता था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में मास्टर @ रमज़ान बनाम प्रमुख सचिव गृह के माध्यम से यूपी राज्य और अन्य 2020 0 सुप्रीम (सभी) 855 और अंकित शर्मा @ अंकित कुमार बनाम यूपी राज्य 2022 मुकदमा (सभी) 1595 के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

7. विद्वान एजीए ने रिट याचिका का विरोध किया है और कहा है कि गिराह सारणी, जिसकी प्रतिलिपि पूरक हलफनामे के साथ संलग्न है, विशेष रूप से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दो मूलवादों का उल्लेख करता है जो धारा 420 आईपीसी के तहत वाद अपराध संख्या 88/ 2022, पुलिस स्टेशन-किला, जिला-बरेली है जिसमें आरोप पत्र संख्या 151ए/2022

का दिनांक 12.06.2023 है और दूसरा मूल वाद मुकदमा अपराध संख्या 89 सन् 2022, जुआ अधिनियम की धारा 3/4, थाना किला, जिला बरेली है जिसमें भी आरोप पत्र संख्या 152ए/2022 का दिनांक 12.06.2023 ही है। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील में दम नहीं है।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है। मुख्य रूप से, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील यह है कि नियम 10(1) में प्रयुक्त शब्द "प्रमाणित प्रति" का अर्थ न्यायालय द्वारा जारी प्रमाणित प्रति है। इसलिए, तर्क यह है कि जब तक मूल मामलों में आरोप पत्र न्यायालय के समक्ष दाखिल नहीं किया जाता है, तब तक उसके आधार पर गुंडा अधिनियम के प्रावधानों के तहत कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। यह उन दो निर्णयों का भी आशय है जिनका याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हवाला दिया है।

9. प्रमाणित प्रति शब्दों के आशय को इस न्यायालय द्वारा निर्णीत आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 19638/2022 बिन्नी लाला @ विनोद कुमार जैन बनाम यूपी राज्य और अन्य दिनांक 02.05.2023 में विचार किया गया है। इसे इस प्रकार आयोजित किया गया है:

*"शब्द प्रमाणित प्रति को भारतीय दंड संहिता, आपराधिक प्रक्रिया संहिता या उ.प्र. गिराहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण)*

अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों में परिभाषित नहीं किया गया है।

"वाक्यांश की परिभाषा लॉ लेक्सिकन, तृतीय संस्करण, 2012 के अनुसार इस प्रकार है:-

**प्रमाणित प्रति:** दस्तावेज़ की एक प्रति उस अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित और सच्ची प्रति के रूप में प्रमाणित की गई जिस अधिकारी की अभिरक्षा में मूल को सौंपा गया है। किसी विलेख की प्रमाणित प्रति का आशय यह है कि यह अभिलेख के विलेखों से ली गई और उचित अधिकारी द्वारा प्रमाणित एक कार्यालय प्रति है।"

लॉ लेक्सिकन यह भी कहता है कि एक प्रति, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 76 के संदर्भ में सत्य होने के लिए प्रमाणित है, एक प्रमाणित प्रति भी है। इसका यह भी मतलब है कि एक प्रमाणित प्रति और एक अधिकारी द्वारा जारी प्रमाण पत्र केवल तथ्य की एक लिखित घोषणा है कि प्रति मूल की सच्ची प्रति है।

ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी आठ संस्करण (दक्षिण एशियाई संस्करण), एक 'प्रमाणित प्रति' को मूल की प्रतिरूप के रूप में परिभाषित करता है, आमतौर पर एक आधिकारिक दस्तावेज़, सटीक पुनरुत्पादन के रूप में प्रमाणित, आमतौर पर मूल को जारी करने या रखने के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा।

.....

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना

मुश्किल है कि प्रमाणित प्रति का अर्थ शुल्क के भुगतान पर न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रति है, जैसा कि आम बोलचाल में समझा जाता है। याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं है कि गिरोह सारणी के साथ संलग्न आरोप-पत्र को एस.एच.ओ. द्वारा मूल की सच्ची प्रतिलिपि के रूप में प्रमाणित नहीं किया गया था। इसके साथ संलग्न आरोप-पत्र के आधार पर जो गिरोह सारणी तैयार किया गया है, वह एक वैध दस्तावेज़ है और यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती कि नियमों के नियम 10(1) का अनुपालन नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का दूसरा पहलू यह है कि एक आरोप-पत्र जिस के आधार पर गिरोह सारणी तैयार किया गया है उसे न्यायालय में अवश्य ही दाखिल किया जाना चाहिए और गुंडा अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए उस पर भरोसा करने से पहले उसका संज्ञान लिया जाना चाहिए, जो कि प्रासंगिक नियम अर्थात् नियम 10 में नहीं पाया जाता है। इस तर्क को इसलिए भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि नियम 5(सी) में प्रावधान है कि आधार मामले की जांच पूरी हुए बिना गिरोह सारणी को मंजूरी नहीं दी जाएगी। एक जांच को जांच अधिकारी द्वारा आरोप-पत्र तैयार करने और अनुमोदन के लिए अपने वरिष्ठ को भेजने के बाद पूर्ण माना जाता है।"

10. इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि प्रमाणित प्रति का अर्थ न्यायालय द्वारा जारी प्रमाणित प्रति है, उपरोक्त निर्णय में स्वीकार नहीं की गई है।

इस तर्क को स्वीकार करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की पहली दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दूसरी दलील यह है कि नियमों के नियम 10 में निर्दिष्ट अपेक्षित दस्तावेज उस दस्तावेज का हिस्सा नहीं थे जो अनुमोदन प्रदान करने के लिए अनुमोदन प्राधिकारी को भेजे गए थे। इस संबंध में कथन पूरक हलफनामे के पैराग्राफ 52 और 54 में पाए जाते हैं जो इस प्रकार हैं

"52. वर्तमान मामले में पुलिस ने गिराह सारणी के साथ आरोप पत्र और रिकवरी जापन की प्रमाणित प्रति संलग्न नहीं की है। गिराह सारणी के अनुमोदन की संपूर्ण कार्यवाही पूर्णतः अवैध एवं मनमाने ढंग से की गई है।

54. प्रकरण के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट है कि नियमावली, 2021 के नियम-5, 8 एवं 10 के किसी भी प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया है। जांच अधिकारी गलत धारणा दे रहे हैं कि आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया है, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में नियम-8(5) के तहत आवश्यक कार्रवाई की जाएगी, जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि प्रतिकूल स्थिति पाए जाने पर लोक थाना प्रभारी विभाग की लापरवाही एवं आपराधिक कार्यवाही के लिए उत्तरदायी होंगे।"

12. दिलचस्प बात यह है कि इन दोनों पैराग्राफों और उनमें दिए गए कथनों को कानूनी सलाह के आधार पर तैयार किया गया

है। इसलिए, प्रस्तुतियाँ तथ्यात्मक दावे नहीं कही जा सकती हैं। केवल इसी कारण से, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

13. यद्यपि यह तर्क दिया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गिराह सारणी के अनुमोदन से पहले कोई संयुक्त बैठक आयोजित नहीं की गई थी, यह भी तथ्यहीन है। रिट याचिका या पूरक हलफनामे में इस तरह के दावे का कोई आधार नहीं है।

14. इस तर्क को स्वीकार करना इसलिए भी मुश्किल है क्योंकि याचिकाकर्ता को तथ्यात्मक परिस्थितियों की जानकारी नहीं होगी। ऐसी संयुक्त बैठक के लिए किसी सूचना की न ही आवश्यकता है और न ही आरोपी इसमें भाग लेने का हकदार है। ऐसी स्थिति को ज्यादा से ज्यादा मामले की परिस्थितियों से अलग किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसी कोई भी परिस्थिति न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाई गई है जिससे दूर-दूर तक यह निष्कर्ष निकले कि कोई संयुक्त बैठक आयोजित नहीं की गई थी जैसा कि नियम 5 के तहत प्रदान किया गया है।

15. उपरोक्त के मददेनजर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों के अनुसार, हमें इस न्यायालय का पक्ष नहीं मिलता।

16. इन परिस्थितियों में रिट याचिका में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 156

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 16327

वर्ष 2022

से जुड़ा हुआ

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15652

वर्ष 2022

श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री लोकेश कुमार द्विवेदी, श्री आर.के. ओझा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, अग्रवाल आर्ची पीयूष, श्री प्रतीक चंद्रा

(ए) आपराधिक कानून - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - धारा 3/2 एवं 14 (1) - संपत्ति की कुर्की - धारा 14(3) - प्रशासक की नियुक्ति, धारा 15 - संपत्ति की अवमुक्ति।

प्र.सूरि. दर्ज की गई - एक व्यक्ति और उसके गिराव के सदस्यों के विरुद्ध - जिला मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त की संपत्ति कुर्क की - अधिनियम

की धारा 14 (1) के अंतर्गत - संस्था को बाहर से बंद कर दिया गया - कुर्की आदेश दीवार पर चिपका दिया गया -प्रशासक नियुक्त - संस्था के छात्र - अन्य संस्थाओं में स्थानांतरित किए जाएं - निर्देश - याचिकाकर्ता (प्रबंधक) छात्रों के अन्य संस्था में स्थानांतरण से व्यथित - आदेश एक परिणामी आदेश है - चुनौती के अधीन नहीं।  
(पैरा - 5, 8,9,11)

अभिनिर्धारित हुआ:- दिनांक 14.10.2022 का आदेश, जो एक परिणामी आदेश है, दिनांक 13.10.2022 के आदेश के अनुपालन में है, जिसे इस रिट याचिका के साथ-साथ संबद्ध रिट याचिका में दाखिल या चुनौती नहीं दी गई है, और इसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे चुनौती न दी जाए और इसे रद्द न कर दिया जाए। (पैरा - 21)

रिट याचिकाएं खारिज। (ई-7)

(माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा पारित)

1. श्री आर.के.ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, साथ में श्री लोकेश कुमार द्विवेदी, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता, श्री मनीष गोयल, उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता और श्री प्रतीक चंद्रा, प्रतिवादी संख्या 4. के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. रिट याचिका संख्या 16327 सन् 2022, जो श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति प्रबंधक द्वारा दायर गई, प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह रज्जू भैया विश्वविद्यालय प्रयागराज के

रजिस्ट्रार, द्वारा पारित आदेश दिनांकित 14.10.2022 को रद्द करने की मांग की गई है।

3. दूसरी राहत के तौर पर एक परमादेश की प्रार्थना की गई है जिसमें यह मांग की गई है कि प्रतिवादियों द्वारा संस्थान में लगे ताले को खोलने के बाद उसके छात्रों के अध्ययन के लिए आवश्यक व्यवस्था करनी होगी ताकि वे अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें।

4. रिट याचिका संख्या 15652 सन् 2022 दो व्यक्तियों द्वारा संस्तुत की गई है जो श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति के छात्र होने का दावा करते हैं तथा रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को निर्देशित करने के लिए एक परमादेश की मांग की गई है कि संस्थान में लगे ताले को खोलने के बाद उसके विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाए।

5. संक्षिप्त में, दिनांक 16.08.2020 को उत्तर प्रदेश की धारा 3/2 गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत गिरोह नेता दिलीप मिश्रा और उसके गिरोह के सदस्य, अर्थात्, शुभम मिश्रा, नीरज सिंह @ अखंड प्रताप सिंह @ करम सिंह @ अनु पांडे के विरुद्ध थाना औद्योगिक क्षेत्र, जनपद-प्रयागराज द्वारा एफआईआर दर्ज करायी गयी जिससे मुकदमा अपराध संख्या 028/2020 संस्तुत हुआ। जिलाधिकारी, प्रयागराज ने कुर्की कर अभियुक्त अर्थात् संस्था यथा श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति/माया देवी स्मारक शिक्षा समिति एवं

प्रशिक्षण संस्थान, माया देवी स्मारक विधि महाविद्यालय पुरा पांडे, पोस्ट टीएसएल नैनी के स्वामित्व वाली संपत्ति को अधिनियम की धारा 14(1) के तहत आदेश दिनांकित 30.08.2020 द्वारा जब्त कर लिया। उक्त आदेश के अनुपालन में 11.09.2020 को संस्था पर बाहर से ताला लगा दिया गया था और कुर्की का आदेश संस्था की दीवार पर चस्पा कर दिया गया।

6. श्री आर.के. ओझा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रश्नगत संस्था का प्रबंधन एक पंजीकृत सोसायटी द्वारा किया जाता है। यदि पंजीकृत सोसायटी के किसी एक सदस्य के विरुद्ध गैंगस्टर एक्ट के प्रावधानों के तहत मामला दर्ज किया जाता है तो ऐसी स्थिति में पूरी संस्था को कुर्क नहीं किया जा सकता। गैंगस्टर एक्ट की धारा 14(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश दिनांक 30.08.2020 संस्था को व्यक्ति विशेष की निजी संपत्ति मानते हुए संलग्न कर दिया गया है।

27.10.2020 को अधिनियम की धारा 15 के तहत इस संपत्ति की रिहाई के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया था परंतु उस पर पर आज तक निर्णय नहीं लिया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता को मजबूरन रिट याचिका संख्या 8937 सन् 2022 दायर करना पड़ा इस याचिका का निपटारा इस टिप्पणी के साथ किया गया कि अधिनियम की धारा 14(3) के अनुसार, यह अनिवार्य था कि जिलाधिकारी संलग्न संस्था के प्रशासक की नियुक्ति सुनिश्चित करें।

7. उच्च न्यायालय के उक्त आदेश के परिणामस्वरूप, दिनांक 11.08.2022 के आदेश द्वारा एक प्रशासक को नियुक्त किया गया है।

का मतलब यह नहीं है कि प्रशासक ऐसे कदम उठाने का हकदार है जो संस्था को विनाश की ओर ले जाएं

8. प्रशासक द्वारा नामांकन तथा अगले सत्र की परीक्षाएं के संबंध में दिशा-निर्देश मांगे गए जिसके जवाब में कुलसचिव, प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह रज्जू भैर्या विश्वविद्यालय, प्रयागराज द्वारा पत्र दिनांक 01.10.2022 यह जवाब दिया गया कि गैंगस्टर अधिनियम, की धारा 14(1) के तहत जिला मजिस्ट्रेट के आदेश पर कुर्क और सील संस्थान के छात्रों को अन्य संस्थाओं में हस्तांतरित किया जाए।

11. श्री मनीष गोयल, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के द्वारा कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया अभ्यावेदन 27.10.2020 को रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया है। रिट याचिका में आदेश दिनांक 14.10.2022 (अनुलग्नक-8) पर प्रश्न किया गया है। यह आदेश एक परिणामी आदेश है जिसे कुलपति द्वारा दिनांक 13.10.2022 को जारी निर्देशों के अनुसार पारित किया गया है, जिसको इस याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

9. आपराधिक विविध. की रिट याचिका संख्या 16327 सन् 2022 में याचिकाकर्ता श्रीमती माया देवी स्मारक शिक्षा समिति के प्रबंधक हैं जो मुख्य रूप से छात्रों के दूसरे संस्थान पर स्थानांतरण से व्यथित हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान मौजूद नहीं है। इसके अलावा, एक बार यदि कोई संस्था अस्तित्व में है तो उसके छात्रों को दूसरे संस्थान में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संस्था एक निजी स्ववित्तपोषित संस्था है और अगर छात्रों का स्थानांतरण हुआ तो संस्थान स्वतः ही नष्ट हो जाएगा।

12. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि भौतिक निरीक्षण के दौरान कोई संस्था, कोई प्रयोगशाला आदि अस्तित्व में नहीं पाई गई इसलिए छात्रों के हित में उनका अन्य संस्थानों में स्थानांतरण का निर्देश जारी किया गया है।

13. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संस्थान के छात्र अपने स्थानांतरण को चुनौती देने के लिए आगे नहीं आए हैं। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर, यह भी दावा किया गया है कि संस्था सिर्फ कागजों पर चल रही थी।

14. श्री प्रतीक चंद्रा, जो चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हुए, ने कहा कि आदेश दिनांक 14.10.2022 छात्रों के हित में पारित किया गया है क्योंकि निरीक्षण के समय संस्थान पर ताला लटका पाया गया।

10. अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 14(3) जिला मजिस्ट्रेट को अधिनियम की धारा 14(1) के तहत कुर्क की गई संपत्ति के प्रशासन के लिए प्रशासक की नियुक्ति की शक्ति देती है। परंतु, इस शक्ति

15. प्रत्युत्तर में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा ने कहा कि रिट याचिका के

पैराग्राफ-8 में इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि उसमें उ.प्र. गैंगस्टर एवं असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम की धारा 15(1) के तहत अभ्यावेदन, जो कि 27.10.2020 को संस्था की रिहाई के लिए दर्ज किया गया था, पर अभी तक निर्णय नहीं सुनाया गया है तथा राज्य द्वारा दायर प्रतिशपथ पत्र में इस दावे का खंडन नहीं किया गया है। प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ 9 में, यह कहा गया है कि रिट याचिका के पैराग्राफ 8 पर किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं है।

16. उन्होंने दोहराया है कि दिनांक 11.08.2020 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जो अभ्यावेदन हुआ है वह प्रशासक की नियुक्ति हेतु किया गया। संपत्ति की रिहाई के लिए जो अभ्यावेदन किया गया था उस पर आज तक निर्णय नहीं लिया गया है और अभी भी है उस पर निर्णय लंबित है। उन्होंने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 6 का भी हवाला दिया है और यह कहा है कि संस्था के हित को ध्यान में न रखते हुए आक्षेपित आदेश का आधार सिर्फ छात्रों के हित के आधार पर नहीं हो सकता।

17. विद्वान एजीए द्वारा कहा गया कि याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत सिर्फ एक ही अभ्यावेदन 27.10.2020 को प्रस्तुत किया गया था। दूसरा अभ्यावेदन 03.08.2022 को प्रस्तुत किया गया जब याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 8937 सन् 2022 होने का फैसला किया गया था। दोनों अभ्यावेदनों

पर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 11.08.2022 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया जैसा कि आदेश के अंतिम वाक्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है।

18. जहाँ तक अन्य रिट याचिका संख्या 15652 सन् 2022 का सवाल है तो इससे संबंधित कोई अलग प्रस्तुतीकरण नहीं किया गया है हालांकि कोर्ट को यह सूचित किया गया है कि जो वरिष्ठ अधिवक्ता उपस्थित हो रहे हैं वह दोनों याचिकाएं में एक ही हैं।

19. राज्य की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह याचिका एलएलबी के दो छात्रों की तरफ से है जो संस्थान का ताला खुलवाने का निर्देश मांग रहे हैं। यह याचिका प्रायोजित मुकदमेबाजी के अलावा और कुछ नहीं है। किसी भी मामले में, यह याचिका विवादित आदेश के पारित होने से पहले दायर की गई है जिसके तहत छात्रों को अन्य संस्थानों में स्थानांतरित किया गया था जिसे इस याचिका में चुनौती नहीं दी गई है। उक्त तथ्यों को देखते हुए, इस याचिका का उद्देश्य व्यावहारिक दृष्टि से निष्फल हो गया है।

20. ऊपर उल्लिखित दलीलों से, निम्नलिखित दो मुद्दे विचाराधीन हैं। सबसे पहले, रजिस्ट्रार, प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह रज्जू भैया विश्वविद्यालय प्रयागराज द्वारा दिनांक 14.10.2022 को पारित आदेश की अवैधता। दूसरा विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या गैंगस्टर एक्ट की धारा 15(1) के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल अभ्यावेदन पर निर्णय लिया गया या नहीं।



21. दिनांक 14.10.2022 के आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है कि यह आदेश कुलपति द्वारा दिनांक 13.10.2022 को पारित आदेश के परिपालन में पारित एक परिणामी आदेश है। यह तथ्य आदेश दिनांक 14.10.2022 में उल्लेखित है। दिनांक 13.10.2022 के आदेश को न तो रिकॉर्ड पर दर्ज किया गया है और न ही इसे रिट याचिका में चुनौती दी गई है। चूंकि दिनांक 14.10.2022 का आदेश एक परिणामी आदेश इसलिए उसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा दिनांक 13.10.2022 को पारित आदेश को चुनौती देकर निरस्त नहीं कर दिया जाता।

22. उक्त परिस्थितियों में आदेश दिनांक 14.10.2022, जो कि एक परिणामी आदेश है, को गलत नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए इस आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की रिट नहीं जारी की जा सकती।

23. जहाँ तक दूसरे मुद्दे की बात है कि याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 15(1) के तहत दायर अभ्यावेदन पर निर्णय किया गया है या नहीं, यह नोट करना प्रासंगिक होगा कि यह प्रतिनिधित्व, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया है, दिनांक 27.10.2020 का है। रिट याचिका संख्या 8937 सन् 2022 के निर्णय के बाद भी याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 03.08.2022 को एक और अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया।

24. रिट याचिका के परिशिष्ट 5, जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 11.08.2022

को आदेश है, के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दोनों अभ्यावेदनों का इस आदेश द्वारा निर्णय कर दिया गया है। चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 27.10.2020 को दायर अभ्यावेदन रिट याचिका के साथ संलग्न नहीं किया गया था इसलिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि दिनांक 11.08.2022 के आदेश द्वारा इसका निर्णय नहीं किया गया है।

25. याचिकाकर्ता की ओर से बार में की गई अन्य सभी प्रस्तुतियां अप्रासंगिक हैं क्योंकि मुख्य आदेश, यानी कुलपति का 13.10.2022 को पारित आदेश, जिसको चुनौती देने की आवश्यकता थी वह न तो रिकॉर्ड पर है और न ही उसे चुनौती दी गई है।

26. इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य सभी तर्कों को संबोधित करना विशुद्ध रूप से अकादमिक अभ्यास होगा।

27. उक्त तथ्यों को देखते हुए, रिट याचिका में जो दो मुद्दे उठते हैं उनका निर्णय याचिकाकर्ता के विरुद्ध लिया गया है इसलिए रिट याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

28. संबंधित रिट याचिका संख्या 15652 सन् 2022 भी खारिज की जाती है क्योंकि कुलपति द्वारा 13.10.2022 को पारित आदेश एवं 14.10.2022 को रजिस्ट्रार द्वारा पारित परिणामी आदेश को इस रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

29. तदनुसार, दोनों रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

-----

(2023) 9 ILRA 159

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार

प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 218 वर्ष 2022

से जुड़ा हुआ

प्रथम अपील संख्या 467 वर्ष 2022

नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण,  
जिला गौतमबुद्ध नगर ...अपीलार्थी

बनाम

मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्रा.लिमिटेड,  
पांडव नगर, दिल्ली एवं एक अन्य..प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

सुश्री श्रेया गुप्ता, श्री शिव ओम विक्रम सिंह  
चौहान, श्री विष्णु गुप्ता (वरिष्ठ अधिवक्ता),  
श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सिविल कानून- वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015-धारा 16 और 2(1)(सी)-कानून का सारवान प्रश्न-क्या वर्तमान मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद को वाणिज्यिक विवाद माना जा सकता है-इस मामले में हालांकि पक्षों ने प्रश्नगत भूमि का पट्टा विलेख निष्पादित

किया है जिसे बाद में नोटिस द्वारा रद्द कर दिया गया था-वादी कंपनी ने व्यापार और वाणिज्य के उद्देश्य से एक अचल संपत्ति के संबंध में पट्टा प्रदान करने के लिए अपीलार्थी प्राधिकारी से संपर्क किया- प्रश्नगत भूखंड का पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था और पट्टा विलेख के अनुसार वादी कंपनी ने राशि का 30% जमा किया-भूमि का कब्जा वादी कंपनी को सौंप दिया गया- पट्टा विलेख के खंड 13(ए) के शर्तानुसार वादी कंपनी को कब्जे के वास्तविक दिनांक से पांच वर्ष के भीतर निर्माण पूरा करना था, जिसे दो वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता था-न तो उसने समझौते के अनुसार आवश्यक धनराशि जमा की और न ही निर्माण के लिए समय बढ़ाने के लिए कोई आवेदन दिया-परिणामस्वरूप, पट्टा विलेख रद्द कर दिया गया और संपत्ति प्रतिवादी कंपनी के पक्ष में पुनः आवंटित कर दी गई- यह वाद अचल संपत्ति से संबंधित पट्टा विलेख से उत्पन्न विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए दायर किया गया है- अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि जिस समय पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था उस समय संपत्ति का उपयोग विशेष रूप से व्यापार और वाणिज्य में किया जा रहा था ताकि विवाद को वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2(1)(सी) के उप-खंड (vii) के दायरे में लाया जा सके- केवल इसलिए कि संपत्ति का उपयोग व्यापार और वाणिज्य के संबंध में होने की संभावना है, यह वाणिज्यिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार को आकर्षित करने का आधार नहीं हो सकता- अचल संपत्ति से संबंधित विवाद अपने आप में एक वाणिज्यिक विवाद नहीं हो सकता है लेकिन यदि यह अधिनियम की धारा

2(1)(सी) के उप-खंड (vii) के अंतर्गत आता है तो यह एक वाणिज्यिक विवाद बन जाता है- इस प्रकार, विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय ने वाणिज्यिक विवाद की परिभाषा की पूरी तरह से गलत व्याख्या की और यह समझने में विफल रहा कि "वाणिज्यिक विवाद और वाणिज्यिक संबंध" के बीच अंतर है- इसलिए, विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय का यह निष्कर्ष कि पक्षकारों के बीच वाणिज्यिक विवाद है, अस्थिरता से ग्रस्त है - वाणिज्यिक न्यायालय को पक्षकारों के बीच वर्तमान विवाद का निर्णय करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। (पैरा 1 से 73)

B. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) स्पष्ट करती है कि "प्रयुक्त" का अर्थ "वास्तव में प्रयुक्त" या "प्रयुक्त किया जा रहा" होना चाहिए। यदि विधायिका का उद्देश्य दायरे का विस्तार करना होता, तो उस स्थिति में "प्रयुक्त होने की संभावना" या "प्रयुक्त किया जाना" वाक्यांश का उपयोग किया जाता। एक मामला वाणिज्यिक न्यायालय या उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक प्रभाग के क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित कारकों पर आएगा, जैसे (i) यह वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2(1)(सी) के अर्थ के भीतर एक वाणिज्यिक विवाद होगा; और (ii) ऐसे वाणिज्यिक विवाद वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (i) के अनुसार निर्दिष्ट मूल्य के हैं। अचल संपत्ति से संबंधित विवाद अपने आप में एक वाणिज्यिक विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन यह एक वाणिज्यिक विवाद बन जाता है, यदि यह अधिनियम की

धारा 2 (1) (सी) के उप-खंड (vii) के अंतर्गत आता है, "केवल व्यापार या वाणिज्य में प्रयुक्त" शब्दों की व्याख्या उद्देश्यपूर्ण ढंग से की जानी चाहिए। "प्रयुक्त" शब्द का अर्थ "वास्तव में प्रयुक्त" है और यह "प्रयोग के लिए तैयार" या "प्रयोग किए जाने की संभावना" या "प्रयोग किया जाना" नहीं हो सकता। इसे "वास्तव में प्रयुक्त" होना चाहिए। (पैरा 69, 70)

अपीलें स्वीकार की जाती हैं। (ई-6)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. कैलाश देवी खन्ना बनाम डीडी ग्लोबल कैपिटल लिमिटेड
2. आर. कुमार बनाम टी.ए.एस. जवाहर अय्या
3. मेसर्स ग्लासवुड रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड बनाम चंद्रविलास कैलाशकुमार
4. उज्वला राजे गायकवार बनाम हेमाबेन अच्युत शाह (2017) एससीसी गुजरात 583
5. श्री सौरव जैन एवं एक अन्य बनाम मैसर्स ए.बी.पी. डिजाइन एवं एक अन्य
6. फेडरेशन ऑफ ए.पी. चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज एंड अदर्स बनाम स्टेट ऑफ ए.पी. एंड अदर्स
7. चंद्रिका मिसिर बनाम भैया लाल

8. एलसी इन नोक्स बनाम डोनकास्टर  
अमलगमेटेड कोलियरीज लिमिटेड

9. हरभजन सिंह बनाम भारतीय प्रेस परिषद

10. विक्टोरिया सिटी कॉर्पोरेशन बनाम बिशप  
वैक्वर द्वीप

11. अटॉर्नी जनरल बनाम मिलने

12. क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर

13. वासु हेल्थकेयर प्रा. लिमिटेड बनाम  
गुजरात आकृति टीसीजी बायोटेक लिमिटेड

14. मेसर्स ट्रोजन एंड कंपनी लिमिटेड बनाम  
आरएम. एन.एन. नागप्पा चेट्टियार

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी

और

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा पारित)

1. हमने न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण के अधिवक्ता श्री कौशलेंद्र नाथ सिंह और श्री ए.बी. सिंघल को सुना। श्री विष्णु गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता, डब्ल्यू.एच.ओ को मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड के अधिवक्ता श्री एस.ओ.वी.एस चौहान और श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें मेसर्स इनोवा एएम टेक एल.एल.पी, गौतमबुद्ध नगर के अधिवक्ता सुश्री श्रेया गुप्ता, द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना।  
2. दोनों अपीलें सूट (कॉम) नंबर 167 वर्ष 2021 (मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन

प्राइवेट लिमिटेड बनाम सी.ई.ओ न्यू ओखला इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट अथॉरिटी और दो अन्य) में पीठासीन अधिकारी, वाणिज्यिक न्यायालय, गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित सामान्य निर्णय और डिग्री दिनांक 28.3.2022 से उत्पन्न होती हैं।

3. पक्षकारों के अधिवक्ता इस बात पर सहमत हुए कि दोनों अपीलों को इस स्तर पर मूल रिकॉर्ड के बिना निपटाया जा सकता है क्योंकि अभिवादों के साथ संबंधित रिकॉर्ड पहले से ही अपील के साथ संलग्न हैं और यदि इन अपीलों को रिकॉर्ड को बुलाए बिना तय किया जाता है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

4. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से, इन दोनों अपीलों का निर्णय एक सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

5. संक्षिप्त तथ्य, जो वर्तमान स्थिति का कारण बने, यह हैं कि मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पांडव नगर, जो इस वाद में वादी है, जिसे अब वादी कंपनी के रूप में संदर्भित किया गया है, एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है जिसका पंजीकृत कार्यालय ई-52, पांडव नगर, दिल्ली-110092 में है और यह शिक्षा आदि के व्यवसाय में लगी हुई है। वादी कंपनी को भूमि संख्या-30 क्षेत्रफल 2100 वर्ग मीटर की भूमि आवंटित की गई थी। सेक्टर-142 नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश में स्थित न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जो वाद में प्रतिपक्षी नंबर-1 है, द्वारा दिनांक 17.02.2006 को प्रतिपक्षी प्राधिकारी के रूप में संदर्भित किया गया था

9.इला नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जिला गौतमबुद्ध नगर बनाम मेसर्स  
पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्रा.लिमिटेड, पांडव नगर, दिल्ली एवं एक अन्य 213

और प्रश्नगत भूखंड का पट्टा विलेख  
19.01.2007 को निष्पादित किया गया था।

6. पट्टा विलेख के प्रासंगिक खंड इस प्रकार हैं:

-

"पट्टा विलेख

यह पट्टा विलेख वर्ष में जनवरी के इस 19 वें दिन, उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 (1976 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 6) की धारा 3 के तहत गठित एक निगमित निगम, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, एक निगमित निगम, जिसे इसके बाद पट्टाकर्ता कहा जाता है, जो अभिव्यक्ति तब तक होगी जब तक कि संदर्भ ऐसा स्वीकार नहीं करता है, इसमें पहले भाग के अपने उत्तराधिकारी और मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड शामिल हैं। कंपनी अधिनियम, 1956 के अर्थ के भीतर एक कंपनी जिसका पंजीकृत कार्यालय ई-52, पांडव नगर, दिल्ली-92 है, अपने निदेशक श्रीमती बृजेश सिंह पत्नी श्री जोगिंदर सिंह निवासी ई-292-ए, सेक्टर-22, नोएडा, जिला के माध्यम से; जी.बी. नगर, उत्तर प्रदेश, जिसे इसके बाद पट्टेदार कहा जाता है, जो जब तक अभिव्यक्ति स्वीकार नहीं करेगी जब तक कि संदर्भ अपने उत्तराधिकारियों, प्रशासकों, प्रतिनिधियों और दूसरे भाग के अनुमत समनुदेशिती को शामिल नहीं करता है।

**अब पट्टा विलेख गवाह इस प्रकार हैं:**

1. कि भूमि प्रीमियम की गणना @ रु.3774/-  
प्रति वर्ग मीटर के लिए रु.79,25,400.00

(रुपये उनहतर लाख पच्चीस हजार चार सौ केवल) के कुल प्रीमियम को ध्यान में रखते हुए, जिसमें से 30% अर्थात 23,77,620.00 (तेईस लाख सत्तरतर हजार छह सौ बीस रुपये केवल) पट्टेदार द्वारा पट्टेदार को उस रसीद का भुगतान किया गया है जहां पट्टेदार एतद्वारा स्वीकार करता है और शेष 55,47,780.00 (रुपये पचपन लाख सैंतालीस हजार सात सौ अस्सी केवल) पट्टाकर्ता को सोलह छमाही समान किश्त में भुगतान किया जाएगा, जिसमें ब्याज @ 11% प्रति वर्ष निम्नलिखित के अनुसार अर्धवार्षिक रूप से संयोजित होगा:

|                             |                                                              |
|-----------------------------|--------------------------------------------------------------|
| 1 <sup>st</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2006 |
| 2 <sup>nd</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.02.2007 |
| 3 <sup>rd</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2007 |
| 4 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.02.2008 |
| 5 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2008 |
| 6 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.02.2009 |
| 7 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2009 |
| 8 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.02.2010 |
| 9 <sup>th</sup><br>क्रिस्त  | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2010 |
| 10 <sup>th</sup><br>क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.02.2011 |
| 11 <sup>th</sup><br>क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर<br>या इससे पहले 16.08.2011 |
| 12 <sup>th</sup>            | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर                            |

|              |                                                           |
|--------------|-----------------------------------------------------------|
| क्रिस्त      | या इससे पहले 16.02.2012                                   |
| 13th क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर या इससे पहले 16.08.2012 |
| 14th क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर या इससे पहले 16.02.2013 |
| 15th क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर या इससे पहले 16.08.2013 |
| 16th क्रिस्त | Rs.3,46,737.00 + ब्याज इस तिथि पर या इससे पहले 16.02.2014 |

9. पट्टेदार निर्माण पूरा करेगा और अनुमोदित भवन योजनाओं की वैधता अवधि के भीतर भवन प्रकोष्ठ विभाग से कब्जा प्रमाण पत्र प्राप्त करेगा और पट्टेदार द्वारा अनुमोदित योजनाओं के अनुसार और आवंटन और भूखंड के आवंटन और रद्द करने के लिए इस पट्टा विलेख के खंड संख्या-13 के प्रावधान के अनुसार इसे चालू करेगा। यदि ऐसे आबंटि/पट्टेदार जो स्टाम्प शुल्क से छूट का लाभ उठाने के इच्छुक हैं, उन्हें पट्टेदार के सक्षम प्राधिकारी से पट्टा विलेख के पंजीकरण की तारीख से 18 महीने के भीतर विकास योजना का अनुमोदन प्राप्त करना होगा और कब्जा सौंपने की तारीख से 3 वर्षों के भीतर आवंटित भूखंड पर कुल अनुमेय कवर क्षेत्र का 40% पूरा करना होगा और कब्जा सौंपने की तारीख से पांच साल के भीतर पूरे निर्माण को भी पूरा करना होगा।

पट्टेदार द्वारा उपर्युक्त खंड का अनुपालन न करने की स्थिति में, पट्टेदार द्वारा प्रस्तुत बैंक गारंटी को लागू किया जायेगा और भुनाया जाएगा।

बशर्ते कि पट्टेदार के पास स्टाम्प शुल्क से छूट प्राप्त करने का विकल्प है, जो सरकारी

आदेश संख्या केएनओ-5-305/11-2005-500 (136) 2003 दिनांक 19.01.2005, 3014/76-6-05/500 (40)/2000 दिनांक 19.12.2005, और 2168/78-2-2005/46 आईटी/2005 दिनांक 30.12.2005 के प्रावधान के अनुसार एक करार निष्पादित करेगा और बैंक गारंटी प्रस्तुत करेगा।

पट्टेदार दिनांक 19.1.2007 के वचनबद्धता के तहत स्टाम्प शुल्क से छूट का लाभ उठाने का इच्छुक नहीं है।

13. (क) आबंटि/पट्टेदार निर्माण पूरा करेगा और अनुमोदित भवन योजना की वैध अवधि के भीतर पट्टाकर्ता के सक्षम प्राधिकारी से कब्जा प्रमाण पत्र प्राप्त करेगा। पट्टेदार/आबंटि नीचे दिए गए कार्यक्रम के अनुसार आवंटित भूखंड पर कार्य सुनिश्चित करेगा।

1000 वर्ग मीटर तक का प्लॉट कब्जे की वास्तविक तारीख से दो साल के भीतर।

1000 वर्ग मीटर से ऊपर के भूखंड, लेकिन 2000 वर्ग मीटर तक।

कब्जे की वास्तविक तारीख से तीन साल के भीतर।

2000 वर्ग मीटर से ऊपर के भूखंड, लेकिन 4000 वर्ग मीटर तक।

4000 वर्ग मीटर से ऊपर का प्लॉट।

कब्जे की वास्तविक तारीख से पांच साल के भीतर।

B. यदि कार्य करने के लिए उपर्युक्त अनुसूची का अनुपालन नहीं किया जाता है तो धनराशि जब्त करने के साथ पट्टा विलेख के आबंटन

और/अथवा निर्धारण को रद्द करना नियमानुसार प्रभावी होगा और भूखंड का कब्जा पट्टाकर्ता द्वारा उसकी संरचना, यदि कोई हो, के साथ पुन शुरू किया जाएगा और आबंटिती/पट्टेदार को उसके मुआवजे का दावा करने का कोई अधिकार नहीं होगा। हालांकि, असाधारण परिस्थितियों में, पट्टेदार द्वारा ऐसे प्रभारों के भुगतान पर और पट्टेदार द्वारा उचित समझे जाने वाले नियमों और शर्तों के अधीन विस्तार की अनुमति दी जा सकती है।

C. विस्तार की स्थिति में, प्रो डेटा मासिक आधार पर प्रत्येक वर्ष के लिए विस्तार प्रदान करने के लिए प्रीमियम का @ 4% विस्तार शुल्क प्रभार्य होगा। पट्टाकर्ता द्वारा ऊपर उल्लिखित विस्तार प्रभारों की दर की समीक्षा की जा सकती है। विस्तार प्रदान नहीं किए जाने की स्थिति में, पट्टेदार की तत्कालीन प्रचलित नीति के अनुसार जब्ती राशि के साथ पट्टा विलेख के निरसन के बाद रद्दीकरण का प्रयोग किया जा सकता है, ऐसी स्थिति में पट्टेदार ऐसी स्थिति में निर्माण, यदि कोई हो, को हटाने के लिए स्वतंत्र होगा। पट्टाकर्ता/मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा बिना किसी सूचना के विस्तार प्रभारों की दर में संशोधन किया जा सकता है।

यह आगे वर्गीकृत किया गया है कि इस पट्टा विलेख के खंड संख्या-9 का प्रावधान भूखंड के आवंटन और रद्द करने के संबंध में लागू नहीं होगा क्योंकि यह खंड संख्या-9 उन पट्टेदारों के मामलों में लागू होता है जो केवल स्टांप शुल्क से छूट प्राप्त करने में रुचि रखते हैं।

26. और यह एतद्वारा सहमत है और पक्षों द्वारा और इन के बीच निम्नानुसार घोषित किया जाता है:

i) ऊपर निहित किसी बात के बावजूद, यदि पट्टाकर्ता की राय में (जिसका निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होगा) पंजीकरण/आवंटन/पट्टा विलेख के नियमों और शर्तों का कोई उल्लंघन या देय राशि जमा न करना और इसमें निहित किसी भी प्रसंविदा/शर्तों में से कोई भी इसमें निहित है और विशेष रूप से और उप खंड की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यदि पट्टेदार हस्तांतरण (ओं) को सौंपता है, को त्याग देता है या बंधक ऊपर उल्लिखित अवधि के भीतर प्रदान किए गए पहले के रूप में इसके हिस्से पर एक इमारत के निर्माण से पहले पूरे हस्तांतरित परिसर या यदि पट्टेदार या जिन व्यक्तियों में अधिकार बनाया गया है, उन्हें दिवालिया घोषित किया जाता है:

ii) पट्टाकर्ता के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह किसी अन्य कार्रवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, हस्तांतरित भूखंड या उसके किसी भाग में पुनः प्रवेश करे और इस पट्टे का निर्धारण करे और नियमानुसार और उसके बाद राशि को जब्त कर ले।

iii) यदि हस्तांतरित भूखंड में पुनः प्रवेश करने के किसी भी समय पट्टेदार द्वारा न तो किसी भवन का कब्जा किया गया है और न ही पट्टेदार द्वारा निमत किसी भवन का कब्जा नहीं किया गया है, तो पट्टेदार/ब्याज/विस्तार/प्रभारों और अन्य प्रभारों की बकाया

राशि की कटौती किए बिना यथा अपेक्षित समायोजन करने के बाद भुगतान, यदि कोई हो, वापस कर सकता है।

iv) यदि किसी भी समय-हस्तांतरित भूखंड में प्रवेश करने पर पट्टेदार द्वारा निर्मित किसी भी भवन का कब्जा नहीं किया गया है, तो पट्टेदार पुनः प्रवेश की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर सभी निर्माण या भवन जुड़नार और चीजों को हटा देगा जो किसी भी समय और उक्त शर्तों के दौरान चिपका दिया जाएगा या हस्तांतरित भूखंड पर प्राप्त होगा और इसे अच्छी स्थिति में छोड़ देगा कि यह पट्टान्तरित तारीख को था, और उसी का चूक पट्टेदार को भूमि और भवन संरचना के लिए पट्टेदार को किसी भी मुआवजे के भुगतान के बिना पट्टेदार की संपत्ति बन जाएगा और पट्टेदार के भीतर की चीजों को ऐसी राशि का भुगतान किया जा सकता है जो ऊपर उपखंड (ii) में दिए गए सिद्धांत के अनुसार काम कर सकता है, बशर्ते कि पट्टेदार अपने विकल्प पर पट्टेदार से हस्तांतरित भूखंड में अपनी रुचि खरीदने के लिए सहमत हो सकता है।

v) पट्टेदार के लिए या उसके माध्यम से या उसके तहत दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए पट्टेदार की ओर से पूर्वोक्त के रूप में शर्तों के हस्तांतरित भूखंड उल्लंघनों के एक नए अनुदान पर पट्टेदार द्वारा किसी भी नुकसान की वसूली की जाएगी।

(vi) पट्टे की शर्तों के तहत या उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1976 के नंबर 6 या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम या विनियमन के

तहत आवश्यक सभी नोटिस आदेश या अन्य दस्तावेजों को उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 की धारा 43 के तहत प्रदान किए गए विधिवत रूप से यूपी निवासी अधिनियम 1974 (1974 का अधिनियम सं.30) संशोधन के साथ पुनः अधिनियमित अधिनियम द्वारा अधिनियमित और अधिसूचित माना जाएगा।

vii) उ0प्र0 औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 के प्रावधान और अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी नियम और विनियम या जारी किए गए निर्देश पट्टेदार और उसके उत्तराधिकारी पर बाध्यकारी होंगे।

(viii) इस पट्टे के अधीन पट्टाकर्ता द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी शक्तियों का प्रयोग अध्यक्ष/मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा किया जा सकता है। पट्टेदार अपने किसी भी अधिकारी को इस नियम के तहत अपने द्वारा सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिकृत कर सकता है।

(ix) पट्टेदार द्वारा पट्टेदार को दी गई कोई छूट या रियायत पट्टाकर्ता के कानूनी अधिकारों पर किसी भी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी।

(x) इस विलेख के संबंध में उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद को गौतम बुद्ध नगर में सिविल न्यायालयों या इलाहाबाद में न्यायिक उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन किया जाएगा।



9.इला नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जिला गौतमबुद्ध नगर बनाम मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्रा.लिमिटेड, पांडव नगर, दिल्ली एवं एक अन्य 217

(xi) भूमि पट्टेदार के शांतिपूर्ण कब्जे में है 2006 के निबंधन और शर्त के अनुसार, पट्टा, और किसी भी अतिक्रमण और बाधा से मुक्त पट्टेदार के लिए बाध्यकारी होंगे। पट्टेदार को सौंपी जा रही है।

(xii) पट्टेदार के अध्यक्ष/मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पास समय-समय पर पट्टे के निबंधन और शर्तों में ऐसे संशोधन, परिवर्धन, परिवर्तन या संशोधन करने का अधिकार सुरक्षित है, जिन्हें वह न्यायोचित और युक्तिसंगत समझे।

xiii) उपखंड (ix) के अधीन रहते हुए, पट्टा विलेख के इन नियमों और शर्तों के संबंध में किसी स्पष्टीकरण या व्याख्या के मामले में, अध्यक्ष का निर्णय। पट्टेदार का मुख्य कार्यकारी अधिकारी पट्टेदार के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा।

xiv) पट्टेदार पट्टा विलेख के खंड 9 और 13 में उल्लिखित निर्धारित अवधि के भीतर परियोजना को पूरा करेगा। यदि पट्टेदार आवंटन पत्र, पट्टा विलेख विवरणिका के नियमों और शर्तों का पालन करने में विफल रहता है या पट्टा विलेख के खंड 9 और 13 में उल्लिखित निर्धारित अवधि के भीतर परियोजना को कार्यात्मक नहीं बनाता है तो यह कार्रवाई निरस्तीकरण के संबंध में प्राधिकरण के नियमों और विनियमों के अनुसार की जाएगी।

xv) विवरणिका, भवन उप-नियम, समय-समय पर यथासंशोधित आवंटन पत्र दिनांक 17-02-

7. बेशक, भूमि का कब्जा वादी कंपनी को 01.02.2007 को सौंप दिया गया था और पट्टा विलेख के संदर्भ में वादी कंपनी को कब्जे की वास्तविक तारीख यानी 01.02.2007 से पांच साल के भीतर निर्माण पूरा करना होगा और पट्टा विलेख में निर्धारित किशतों के संदर्भ में प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भुगतान करना होगा। एक बार जब वादी कंपनी उपरोक्त शर्तों का पालन करने में विफल रही, तो प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने वादी कंपनी को 19.12.2013, 26.02.2014, 17.06.2020 और 14.07.2020 को नोटिस जारी किए, लेकिन उक्त नोटिस का वादी कंपनी द्वारा जवाब नहीं दिया गया। अंत में, प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने दिनांक 07.01.2021 के आदेश के तहत वादी कंपनी के पक्ष में निष्पादित पट्टा विलेख को रद्द कर दिया था।

8. इसके बाद, वादी-कंपनी ने दिनांक 07.01.2021 के आदेश की वैधता पर हमला करते हुए इस न्यायालय के समक्ष 2021 का रिट सी नंबर 13225 (मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य) दायर किया था। हालांकि, रिट याचिका को 27.7.2021 को खारिज कर दिया गया था क्योंकि बेहतर विवरण के साथ एक नया दायर करने की स्वतंत्रता के साथ इसे वापस ले लिया गया था। इस बीच, प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने मेसर्स इनोवा एएम टेक एल.एल.पी के पक्ष में विचाराधीन भूखंड का आवंटन करने के लिए आगे बढ़ाया, जो मुकदमे

में प्रतिपक्षी नंबर-2 है, जिसे प्रतिपक्षी कंपनी-3 कहा जाता है।

9. वादी कंपनी ने वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2021 के सीएस (कॉम) नंबर 167 (मेसर्स पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम सी.ई.ओ न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण और अन्य) के रूप में पंजीकृत वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम के तहत वाणिज्यिक न्यायालय, गौतम बुद्ध नगर में एक मुकदमा दायर किया, जिसमें निम्नलिखित राहत मांगी गई:

**“यह कि वादी निम्नलिखित अनुतोष की याचना करता है:**

**अ: यह की घोषणात्मक डिग्री प्रतिवादी संख्या एक द्वारा भूखंड संख्या 30, क्षेत्रफल 2100 वर्ग मीटर, सेक्टर 142, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर के आवंटन को निरस्त करने के लिए जारी पत्र दिनांक 07.01.2021 को शून्य व आकृत घोषित किया जावे तथा प्रतिवादी संख्या 1 के द्वारा उपरोक्त भूखंड के निरस्तीकरण के संबंध में की गई समस्त कार्यवाहियों को शून्य व आकृत घोषित फरमाया जावे।**

**ब: यह कि द्वारा सर्वकालिक अस्थाई निषेधाज्ञा प्रतिवादी संख्या 1 व 3 को निषेधित किया जावे कि वह भूखंड संख्या 30, क्षेत्रफल 2100 वर्ग मीटर, सेक्टर 142, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर की रजिस्ट्री प्रतिवादी संख्या 2 के हक में ना करें तथा प्रतिवादी संख्या 1 वह 2 को निषेधित किया जावे कि वह वादी के उपरोक्त भूखंड संख्या 30, क्षेत्रफल 2100 वर्ग मीटर, सेक्टर 142, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध**

**नगर के वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में किसी प्रकार से हस्तक्षेप करने या किसी भी प्रकार से तृतीय पक्ष का हित उत्पन्न करने से बज रहे। स: यह कि वाद व्यय वादी को प्रतिवादी गण से दिलाया जावे।**

**द: यह कि अन्य कोई अनुतोष जो राय अदालत हितकर वादी हो प्रतिवादीगण से दिलाया जावे।”**

10. प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने सी.पी.सी के आदेश XXXIX नियम 1 और 2 के तहत 25.08.2021 को आपत्तियां दर्ज की थीं और विशिष्ट रुख अपनाया था कि वाणिज्यिक न्यायालय के पास मुकदमे की कोशिश करने और फैसला करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि सी.पी.सी के आदेश VII नियम 11 के प्रावधान लागू होते हैं। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (बी) "वाणिज्यिक न्यायालय" के अर्थ को परिभाषित करती है और धारा 2 की उप-धारा (1) (सी) "वाणिज्यिक विवाद" के अर्थ को परिभाषित करती है, जिसमें वाणिज्यिक विवादों की प्रत्येक श्रेणी को परिभाषित किया गया है, लेकिन कहीं भी इस प्रकार की सामग्री उपलब्ध नहीं है, जो सूट के तहत वर्तमान विवाद से सह-संबंधित है। इसलिए, वादी कंपनी का वर्तमान मुकदमा सी.पी.सी की धारा 9 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है। प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने यह भी आपत्ति ली है कि सिविल सूट विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34, 38 और 41 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है। वादी कंपनी का मुकदमा वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 12 ए के प्रावधानों द्वारा भी वर्जित है।

11. प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 04.09.2021 को विस्तृत लिखित बयान (डब्ल्यू.एस) भी दायर किया था और वाद का विरोध करते हुए कहा था कि विचाराधीन प्लॉट को रद्द करने से पहले प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने वादी कंपनी को 19.12.2013, 26.02.2014, 17.06.2020 और 14.07.2020 को पत्र/नोटिस उपलब्ध पते और वादी कंपनी द्वारा पट्टा विलेख में दिए गए पते पर भेजे थे, लेकिन दिनांक 17.06.2020 के नोटिस को "बिना पता बताये छोड़ गए" टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था। इसलिए, यह गलत था कि वादी कंपनी को पत्र प्राप्त नहीं हुए थे। आपति यह भी ली गई कि दोनों पतों यानी कंपनी के पते पर और निदेशक के पते पर भी, दिनांक 07.01.2021 का पत्र वादी कंपनी और कंपनी के निदेशक को भी दिया गया था।

12. प्लॉट को वादी कंपनी के पक्ष में 17.02.2006 @ 3700/- रुपये प्रति वर्ग मीटर आवंटित किया गया था और लोकेशन शुल्क @ 2% भी जोड़ा गया था। तदनुसार, प्रीमियम दर @ रु.3774/- प्रति वर्ग मीटर केवल ली गई थी और आवंटन पत्र की तारीख से 30 दिनों के भीतर, वादी कंपनी को कुल प्रीमियम की 30% राशि जमा करनी थी, जो 1,98,135/- रुपये के एक वर्ष के पट्टा रेंट सहित 18,35,755/- रुपये थी और ब्याज @ 11% के साथ कुल प्रीमियम का 70% शेष राशि वादी कंपनी द्वारा किश्तों में भुगतान किया जाना था। आवंटन के बाद, पट्टा विलेख 19.01.2007 को निष्पादित किया गया था और विचाराधीन भूखंड का कब्जा भी

01.02.2007 को वादी कंपनी को सौंप दिया गया था। लिखित बयान दाखिल करते समय, इस आशय की विशिष्ट आपति भी ली गई थी कि वादी कंपनी ने गलत तरीके से कहा था कि उसने कुल प्रीमियम जमा किया था, लेकिन वास्तव में, वादी कंपनी ने कभी भी विचाराधीन भूखंड के खिलाफ पट्टे के किराए की शेष राशि जमा नहीं की थी। एक बार वादी कंपनी द्वारा पट्टा विलेख के नियमों और शर्तों का उल्लंघन किया गया और यह बकाया राशि का भुगतान करने में विफल रही, तो प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 15.03.2014 तक 1.12 करोड़ रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए 26.02.2014 को डिमांड नोटिस दिया। इसके बाद, पत्र की प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर 1,69,00,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए 17.06.2020 को एक और पत्र दिया गया था, लेकिन उक्त पत्र उपरोक्त टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था। जब वादी कंपनी ने बकाया राशि का भुगतान नहीं किया, तो प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 14.07.2020 को सात दिनों के भीतर 1,69,00,000/- रुपये का भुगतान करने के लिए डिमांड नोटिस जारी किया। यह भी दावा किया गया है कि प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 13.12.2019 को 2,69,78,938/- रुपये के लिए एक डिमांड नोटिस जारी किया था, लेकिन बाद में, 03.02.2020 को एक अन्य डिमांड नोटिस के माध्यम से 50,00,000/- रुपये की राशि को समायोजित किया गया था, जिसे वादी कंपनी द्वारा पहले ही 16.05.2015 को जमा किया गया था और तदनुसार, संशोधित डिमांड नोटिस दिया गया था। विचाराधीन भूखंड के पट्टा विलेख को

रद्द करने से पहले प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने विभिन्न कारण बताओ नोटिस भेजे थे, लेकिन बार-बार नोटिस के बावजूद वादी कंपनी ने नोटिस का जवाब नहीं दिया, और न तो विचाराधीन राशि जमा की और न ही विचाराधीन भूखंड पर कोई निर्माण किया और कब्जे की वास्तविक तारीख से पांच साल के भीतर निर्माण बढ़ाने के बाद पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया, जो सभी पट्टा विलेख के अनुसार अनिवार्य थे। इसलिए, उक्त अधिनियम पट्टा विलेख के खंड-13 (ए) का उल्लंघन था और तदनुसार, प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने 07.01.2021 को आवंटन रद्द कर दिया था और 18.02.2021 को विचाराधीन भूखंड का कब्जा वापस ले लिया था। इसके बाद, इसे प्रतिपक्षी कंपनी को 17.06.2021 को "संस्थागत भूखंड योजना ओ.ई.एस 2020-2021" के तहत आवंटित किया गया था और प्रतिपक्षी कंपनी ने बिक्री का विचार जमा किया था।

13. वाद की कार्यवाही में प्रतिपक्षी कंपनी ने लिखित बयान भी दायर किया था जिसमें कहा गया था कि प्रतिपक्षी कंपनी आईटी सॉफ्टवेयर उत्पादों और सेवाओं के कारोबार में लगी हुई है। इसने एक संस्थागत भूखंड के आवंटन के लिए आवेदन किया और 22.02.2021 की सार्वजनिक सूचना में आवश्यक 31,14,300/- रुपये पूर्व में ही जमा किया। इसके बाद, प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने आवंटन पत्र दिनांक 17.06.2021 के माध्यम से विचाराधीन भूखंड को आवंटित करने का निर्णय लिया और आवंटन की शर्तों के अनुसार, प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भूखंड के कुल मूल्य का 30%

अतिरिक्त भुगतान करना आवश्यक था, जिसकी राशि 1,11,49,194/- रुपये थी, जिसे प्रतिपक्षी कंपनी द्वारा 22.06.2021 को जमा किया गया था। इस प्रकार, प्रतिपक्षी कंपनी ने 1,42,63,494/- रुपये का भुगतान किया है। प्रतिपक्षी कंपनी ने न केवल प्रतिपक्षी प्राधिकारी को बड़ी राशि का भुगतान किया है, बल्कि यह 2,13,95,241/- रुपये का शेष भुगतान भी कर रही है, जो भूखंड के संबंध में प्रतिपक्षी प्राधिकारी को देय है। परियोजना की कुल लागत 37 करोड़ रुपये से अधिक है और प्रतिपक्षी कंपनी ने पहले ही उक्त राशि की व्यवस्था कर ली, लेकिन आज तक उक्त कार्यवाही के लंबित होने के कारण, यह किसी अन्य उद्देश्य के लिए उक्त राशि का उपयोग नहीं कर सकती है।

14. प्रतिपक्षी कंपनी ने लिखित बयान में आपत्ति जताई कि वादी कंपनी ने 19.01.2007 के पट्टा विलेख की शर्तों का उल्लंघन किया है और उसने न तो शेष राशि का भुगतान किया है और न ही पांच साल की निर्धारित अवधि के भीतर भूखंड पर निर्माण शुरू किया है। इसके अलावा वादी कंपनी ने निर्माण पूरा करने के लिए समय का कोई विस्तार नहीं मांगा था। दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख के अनुसार दो साल के विस्तार सहित निर्माण पूरा करने की अधिकतम अवधि सात साल थी, जो पहले ही वर्ष 2014 में समाप्त हो गई थी और इसके परिणामस्वरूप, प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा दिनांक 29.01.2007 के पट्टा विलेख को रद्द कर दिया गया था। वादी कंपनी ने दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख के तहत किस्तों के भुगतान में चूक की और इस तरह, यह

वाणिज्यिक न्यायालय से किसी भी राहत की हकदार नहीं थी। प्रतिपक्षी कंपनी ने 'कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय' से वर्ष 2015-2019 के लिए वादी कंपनी की बैलेंस शीट भी प्राप्त की थी, जिसमें संकेत दिया गया था कि वादी कंपनी एक निष्क्रिय, शेल कंपनी थी और इसका कोई व्यावसायिक संचालन नहीं है, कोई टर्नओवर नहीं है और शून्य आय है। प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भुगतान की गई 1,00,78,716/- रुपये की राशि वादी कंपनी द्वारा लिए गए दीर्घकालिक असुरक्षित ऋणों के रूप में इसकी बैलेंस शीट में परिलक्षित हुई थी। वादी कंपनी के पास कोई पैसा नहीं था, या जो भी हो, तो या तो प्रतिपक्षी प्राधिकारी को बकाया भुगतान करने के लिए या पट्टा विलेख के संदर्भ में भूखंड पर निर्माण करने के लिए था। लिखित बयान में यह भी कहा गया था कि व्यापार और रोजगार को बढ़ावा देने के लिए रियायती दर पर प्रतिपक्षी प्राधिकरण द्वारा व्यापारिक संस्थाओं को एक संस्थागत भूखंड का आवंटन किया गया था। वादी कंपनी जिसका कोई संचालन नहीं है, शून्य टर्नओवर और कोई व्यावसायिक रिकॉर्ड नहीं है, न तो कानूनी रूप से और न ही नैतिक रूप से उक्त भूखंड के आवंटन के लाभ की हकदार थी। वादी कंपनी को केवल उक्त भूखंड के पट्टा अधिकार प्राप्त करने के लिए 19.12.2005 को निगमित किया गया था।

15. वाणिज्यिक न्यायालय ने हलफनामों और दलीलों के आदान-प्रदान के बाद, तीन मुद्दों को तैयार किया था, अर्थात् (i) प्रस्तुत मामले पर विचार करने के लिए इस न्यायालय का

अधिकार क्षेत्र; (ii) आदेश 13A सी.पी.सी के तहत आवेदन और (iii) आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सी.पी.सी के तहत आवेदन। सबसे पहले, वाणिज्यिक न्यायालय ने मुकदमे (मुद्दा संख्या-1) पर विचार करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से निपटने के लिए आगे बढ़ा था और पाया कि वादी कंपनी के "मेमोरेंडम ऑफ आर्टिकल ऑफ एसोसिएशन" में कहा गया था कि यह लाभ कमाने के लिए बनाई गई कंपनी थी और आगे पट्टा विलेख को संस्थागत क्षेत्र में वादी कंपनी के पक्ष में प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा निष्पादित किया गया था। पुनः वादी कंपनी को कंप्यूटर/सॉफ्टवेयर प्रशिक्षण संस्थान के व्यवसाय का संचालन करके लाभ कमाने के इरादे से निगमित किया गया था। वाणिज्यिक न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया था कि वादी कंपनी 'कंपनी अधिनियम, 1956' के तहत एक पंजीकृत कंपनी थी और लाभ और मुनाफा के लिए काम करती है। पट्टा विलेख की शर्तें, जो पक्षों के बीच निष्पादित की गई थीं, अपने लाभ/मुनाफा के लिए कंप्यूटर/सॉफ्टवेयर संस्थान आदि के रूप में सूट संपत्ति के विकास की बात करती हैं। पट्टा विलेख भी पक्षों के बीच निष्पादित की गई थी, जो स्वयं पक्षों के बीच एक अनुबंध था और प्रतिपक्षी प्राधिकरण के खिलाफ वादी कंपनी का आरोप उक्त पट्टा विलेख यानी अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन था। इसलिए, चूंकि अनुबंध का उल्लंघन हुआ था, वाणिज्यिक न्यायालय के पास मामले पर विचार करने का हर अधिकार क्षेत्र था क्योंकि एक वाणिज्यिक विवाद था। इसलिए, विवाद वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1)

(सी) (vii) के दायरे में आता है। वाणिज्यिक न्यायालय ने माना कि पक्षों के बीच वर्तमान विवाद निस्संदेह वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 के संदर्भ में एक वाणिज्यिक विवाद है और इस प्रकार, वाणिज्यिक न्यायालय के पास विवाद का फैसला करने का अधिकार क्षेत्र है।

16. जहां तक सी.पी.सी के आदेश XIII A के तहत प्रतिपक्षी कंपनी के आवेदन के संबंध में दूसरे मुद्दे का संबंध था, वाणिज्यिक न्यायालय ने पाया कि प्रस्तुत मामले में, वादी कंपनी द्वारा उठाया गया एकमात्र विवाद यह था कि वादी कंपनी को पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार डिमांड नोटिस और बाद में रद्दीकरण नोटिस नहीं दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप विचाराधीन भूमि रद्द हो गई थी और वादी कंपनी ने पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भुगतान करने में चूक की थी। वाणिज्यिक न्यायालय ने पाया कि चूंकि भुगतान के संबंध में विवाद था, भुगतान न करना, वादी कंपनी के विभिन्न पतों पर नोटिस भेजना/नोटिस नहीं भेजना और वर्तमान विवाद में अन्य सभी प्रासंगिक मुद्दे पहले से ही रिकॉर्ड पर थे, इसलिए, कोई सबूत पेश करने की आवश्यकता नहीं थी। वाणिज्यिक न्यायालय ने पक्षों की दलीलों और न्यायालय के समक्ष प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा दायर आधिकारिक रिकॉर्ड के आधार पर वास्तविक विवाद का फैसला करने के लिए आगे बढ़ा था। यह भी कहा गया कि पक्षों के बीच विवाद केवल यह था कि वादी ने पट्टा विलेख के अनुसार अपने पंजीकृत कार्यालय पर भुगतान नोटिस प्राप्त न होने का दावा किया था और

प्रतिपक्षी की याचिका बकाया राशि का भुगतान न करने और पट्टे के परिसर में पट्टा विलेख के अनुसार भवन का निर्माण न करने के बारे में थी। वाणिज्यिक न्यायालय ने आगे पाया कि प्रतिपक्षी कंपनी का वादी कंपनी के खिलाफ कोई पर्याप्त अधिकार नहीं था। वादी कंपनी और प्रतिपक्षी कंपनी के बीच कोई अनुबंध नहीं है और केवल प्रतिपक्षी कंपनी के अधिकार प्रतिपक्षी प्राधिकरण के खिलाफ थे। चूंकि पक्षों के बीच प्रासंगिक तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं था और इस प्रकार, वाणिज्यिक न्यायालय की राय थी कि सी.पी.सी के आदेश XIII के तहत मुकदमे का फैसला सरसरी तौर पर किया जाना चाहिए।

17. इसके बाद, वाणिज्यिक न्यायालय ने नोटिस की तामील के गुण-दोष, पट्टे पर दी गई भूमि संपत्ति पर बकाया/गैर-निर्माण का भुगतान न करने और संबंधित कानून के आधार पर मामले पर चर्चा करने के लिए आगे बढ़ा और पाया कि उपरोक्त पट्टा विलेख वादी कंपनी और प्रतिपक्षी प्राधिकारी के बीच 19.01.2007 को निष्पादित किया गया था, जिसमें पक्षों के अधिकारों और दायित्वों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। पट्टा विलेख वादी कंपनी और प्रतिपक्षी प्राधिकरण के बीच एक पूर्ण अनुबंध है। पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार वादी कंपनी को प्रतिपक्षी प्राधिकारी को प्रतिफल राशि का पूरा भुगतान निर्धारित अवधि के भीतर करना था और चूक के मामले में वादी कंपनी प्रतिपक्षी प्राधिकारी को @ 14% ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थी और आवंटन पत्र दिनांक 17.02.2006 के क्लॉज-2 के अनुसार आवंटन

भी रद्द किया जाना था। दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख के अनुसार संपूर्ण प्रतिफल राशि का भुगतान 16.02.2014 तक किया जाना था, जिसमें से 23,77,620/- रुपये का भुगतान पट्टा विलेख के निष्पादन के समय किया गया था और 55,47,780/- रुपये जमा ब्याज की शेष राशि का भुगतान 3,46,737/- रुपये जमा ब्याज की 16 समान छमाही किस्तों में किया जाना था। चूक की स्थिति में वादी कंपनी को समय अवधि के भीतर यानी 16.02.2014 तक 11% के बजाय 14% अर्धवार्षिक रूप से संयोजित ब्याज का भुगतान करना आवश्यक था। वादी कंपनी को वास्तविक कब्जे की तारीख से पांच साल के भीतर साइट पर निर्माण पूरा करना था और निर्माण के गैर-अनुपालन के मामले में, आवंटन रद्द करने के लिए उत्तरदायी था।

18. वाणिज्यिक न्यायालय ने पाया कि वादी कंपनी को दिनांक 30.06.2020 और 14.07.2020 के कथित नोटिस भेजे गए थे, जिसमें वादी कंपनी के खिलाफ 1,69,00,000/- रुपये की मांग की गई थी और इन बकाया राशि में राशि का भुगतान न करने के लिए ब्याज और वर्ष 2013 से सूट संपत्ति पर निर्माण न करने के लिए जुर्माना शामिल था। प्रतिपक्षी प्राधिकारी के रिकॉर्ड के अनुसार, 31.12.2020 तक देय राशि 1,96,10,802/- रुपये थी, जिसमें गैर-निर्माण के लिए 25,09,710/- रुपये की राशि शामिल थी और प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने विस्तार शुल्क के भुगतान पर निर्माण का समय बढ़ा दिया था। वाणिज्यिक न्यायालय ने आगे पाया कि

17.06.2020 और 14.07.2020 के डिमांड नोटिस वादी कंपनी को प्राप्त नहीं हुए थे और उन्हें "पता दिए बिना छोड़ गए" पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिया गया था। कोर्ट ने पाया कि दोनों नोटिस दिनांक 17.06.2020 और 14.07.2020 केवल वादी कंपनी के निदेशकों में से एक के आवासीय पते पर भेजे गए थे और वादी कंपनी के पंजीकृत कार्यालय ई-52, पांडव नगर, दिल्ली-110092 पर कोई नोटिस नहीं भेजा गया था। वादी कंपनी और प्रतिपक्षी प्राधिकारी के बीच पट्टा विलेख में, वादी कंपनी के पंजीकृत कार्यालय को ई-52, पांडव नगर, दिल्ली-110092 के रूप में दिखाया गया था और निदेशक श्रीमती बृजेश सिंह में से एक का आवासीय पता ई-292-ए, सेक्टर 22, नोएडा, उत्तर प्रदेश दिखाया गया था। यह भी आरोप लगाया गया था कि प्लॉट का रद्दीकरण नोटिस दोनों पतों यानी पंजीकृत पते ई-52, पांडव नगर, दिल्ली, 110092 और ई-292 ए, सेक्टर-22, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश पर भेजा गया था। उपरोक्त तथ्यों से, वाणिज्यिक न्यायालय ने कहा कि दिनांक 17.06.2020 और 14.07.2020 के डिमांड नोटिस वादी कंपनी के पंजीकृत कार्यालय में नहीं भेजे गए थे, बल्कि इसके एक निदेशक के आवासीय पते पर भेजे गए थे, जो उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 की धारा 43 का उल्लंघन था।

19. वाणिज्यिक न्यायालय ने आगे पाया कि रद्द करने का नोटिस दिनांक 07.01.2021 वादी कंपनी के दोनों पतों यानी पंजीकृत कार्यालय और वादी कंपनी

के निदेशक में से एक के आवासीय पते पर भेजा गया था और इस प्रकार, प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा यह नहीं कहा जा सकता है कि मांग नोटिस को पंजीकृत कार्यालय में भेजने की आवश्यकता नहीं थी या मांग नोटिस अधिनियम 1973 की धारा 43 के अनुसार विधिवत तामील किया गया था। न्यायालय ने आगे कहा कि रद्दीकरण नोटिस वादी कंपनी को दोनों पतों पर भेजा गया था, लेकिन मांग नोटिस कंपनी के निदेशक में से एक के आवासीय पते पर भेजा गया था और इसे वादी कंपनी के पंजीकृत पते पर नहीं भेजा गया था। पट्टा विलेख की शर्तों का पालन करने में वादी कंपनी की ओर से उल्लंघन किया गया था। हालांकि, उपरोक्त उल्लंघन क्षम्य था और प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने स्वयं 1,69,00,000/- रुपये की मांग करके इस उल्लंघन को माफ कर दिया, जिसमें भूखंड पर गैर-निर्माण के लिए जुर्माना और देर से भुगतान पर ब्याज शामिल था। वाणिज्यिक न्यायालय ने माना कि प्रतिपक्षी प्राधिकरण के पास पट्टा विलेख को रद्द करने की शक्ति थी, लेकिन पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार इसका प्रयोग नहीं किया गया था और इस प्रकार, दिनांक 07.01.2021 को रद्द करने का नोटिस पक्षों के बीच अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन पाया गया और परिणामस्वरूप, बाद की सभी कार्रवाइयां अपोषणीय थीं। सबूतों पर विचार करने के बाद, वाणिज्यिक न्यायालय ने दिनांक 28.3.2022 के निर्णय और डिक्री द्वारा निम्नलिखित निर्देशों के साथ 2021 के उपरोक्त वाद (कॉम) संख्या 167 का फैसला सुनाया:-

i) 2100 वर्ग मीटर के भू-स्वामी प्लॉट नंबर-30 के दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख को रद्द करते हुए दिनांक 07.01.2021 को रद्द करने का नोटिस। सेक्टर 142 नोएडा गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश में न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा स्थित, शून्य घोषित किया गया है और इसलिए इसे अलग रखा गया है;

ii) दिनांक 07.01.2021 के उपरोक्त रद्दीकरण नोटिस के बाद की सभी परिणामी कार्रवाइयों को भी शून्य घोषित किया जाता है;

iii) प्रतिपक्षी नंबर-1 को निर्देश दिया जाता है कि वह फैसले की तारीख से 15 दिनों के भीतर 31.03.2022 तक वादी के खिलाफ लेबित बकाया/दंड की वसूली के लिए नए सिरे से डिमांड नोटिस जारी करे। यह स्पष्ट किया जाता है कि सभी लाभ (जुर्माना, ब्याज आदि पर छूट) जो वादी के समान अन्य आवंटियों को उपलब्ध हैं, वे भी प्राधिकरण के नियमों के अनुसार वादी को दिए जाएंगे;

iv) वादी उपरोक्त पैरा (iii) में उल्लिखित डिमांड नोटिस की प्राप्ति से 30 दिनों के भीतर उपरोक्त राशि का भुगतान करने के लिए स्वतंत्र है। यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि वादी 30 दिनों के भीतर प्रतिपक्षी नंबर-1 के पूरे बकाया का भुगतान करने में विफल रहता है, तो प्रतिपक्षी नंबर-1 पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र होगा;

v) प्रतिपक्षी नंबर-2 प्रतिपक्षी नंबर-1 (ब्याज आदि के साथ पुनः आवंटन/धनवापसी सहित)



के खिलाफ अपने सभी संविदात्मक अधिकारों का लाभ उठाने के लिए स्वतंत्र है और यह निर्णय प्रतिपक्षी नंबर-1 के खिलाफ प्रतिपक्षी नंबर-2 के किसी भी कानूनी अधिकार को प्रभावित नहीं कर रहा है;

vi) आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सी.पी.सी आदि के तहत आवेदन सहित सभी लंबित आवेदनों को उपरोक्त आदेश के आलोक में निपटाया जाता है।

vii) लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

20. प्रतिपक्षी प्राधिकारी के अधिवक्ता श्री कौशलेंद्र नाथ सिंह ने प्रथम अपील (दोषपूर्ण) संख्या 218 वर्ष 2022 के समर्थन में प्रस्तुत किया कि वाणिज्यिक विवादों की श्रेणी, जो वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में हैं, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 में उल्लिखित हैं। बेशक, वादी कंपनी ने पांच साल की निर्धारित अवधि के भीतर विचाराधीन भूखंड पर कोई निर्माण शुरू नहीं किया था और आगे वादी कंपनी ने पट्टा विलेख के खंड 13 बी और 13 सी के संदर्भ में निर्माण के लिए समय का विस्तार नहीं मांगा था। वादी कंपनी दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख के खंड-1 में निहित भुगतान अनुसूची का पालन करने में विफल रही और प्रतिपक्षी प्राधिकारी से दिनांक 19.12.2013 और 26.02.2014 के कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने के बावजूद पट्टा विलेख के अनुसार भुगतान में चूक की। वादी कंपनी ने दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख की शर्तों का पालन करने के लिए कोई गंभीर

प्रयास नहीं किया था। भले ही भूमि किसी भी अतिक्रमण से मुक्त थी और कब्जा भी वादी कंपनी को सौंप दिया गया था, लेकिन वादी कंपनी भविष्य की किश्तों का भुगतान न करके अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रही, और निर्धारित समय के भीतर व्यवसाय शुरू नहीं किया, जिसके लिए भूखंड को एक सत्रगत दर पर आवंटित किया गया था। वादी कंपनी ने समय की सीमा की मांग नहीं की, उन्होंने परियोजना को लगभग छोड़ दिया था। अंततः, प्रतिपक्षी प्राधिकरण के पास पट्टा विलेख के खंड 13 के संदर्भ में वादी कंपनी के पक्ष में किए गए आवंटन को रद्द करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था और भूखंड को 17.06.2021 को प्रतिपक्षी कंपनी को फिर से आवंटित किया गया था। वादी कंपनी ने प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा भेजे गए दिनांक 19.12.2013 के कारण बताओ नोटिस की प्राप्ति पर विवाद नहीं किया, जिसमें पट्टा विलेख में निर्धारित समय के भीतर हस्तांतरित भूखंड पर निर्माण करने में विफलता के लिए स्पष्टीकरण मांगा गया था।

21. अधिवक्ता ने वाद में मांगी गई राहत की ओर ध्यान आकर्षित किया और प्रस्तुत किया कि वादी कंपनी के मुकदमे का मूल्यांकन 80 लाख रुपये था, जबकि भूखंड का मूल्यांकन बहुत अधिक था। इस प्रकार, वादी कंपनी द्वारा दायर मुकदमे का मूल्यांकन कम किया गया था और अदालत की फीस का भुगतान अपर्याप्त था। किसी वाद का मूल्यांकन न्यायालय शुल्क अधिनियम के अनुसार होना चाहिए, भले ही राहत अचल संपत्ति के अधिकार

से संबंधित हो। पट्टा विलेख में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो पट्टा विलेख को रद्द करने/समाप्त करने से पूर्व पट्टेदार (वादी कंपनी) को पूर्व सूचना देना अनिवार्य करता हो। वाणिज्यिक न्यायालय ने अवैध रूप से निष्कर्ष निकाला कि मांग नोटिस वादी कंपनी के पंजीकृत पते पर नहीं भेजे गए थे और इस तरह, पट्टा विलेख को रद्द करना आवश्यक नोटिस के बिना था जैसा कि पट्टा विलेख के खंड 26 के उपखंड (vi) में उल्लिखित है। पट्टा विलेख के क्लॉज 26 का उपखंड (vi) इस मामले में बिल्कुल भी लागू नहीं हुआ था क्योंकि वादी कंपनी के पक्ष में किए गए आवंटन को पट्टा विलेख के क्लॉज 13 बी और 13 सी के संदर्भ में रद्द कर दिया गया था। पट्टा विलेख के तहत प्रतिपक्षी प्राधिकारी को आवंटन रद्द करने से पहले नोटिस भेजने की आवश्यकता नहीं थी। वादी कंपनी के निदेशक को ई-292-ए, सेक्टर-22, नोएडा में नोटिस भेजा गया था, जो वादी कंपनी द्वारा सभी पत्राचार का पता था। अधिनियम, 1973 की धारा 43 के प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन किया गया था। वादी कंपनी उपरोक्त पते का उपयोग प्रश्नगत भूमि के आवंटन के लिए आवेदन की तारीख से वादी कंपनी द्वारा अंतिम भुगतान की तारीख तक अपने व्यवसाय के स्थान के रूप में कर रही थी। वाद में वादी कंपनी द्वारा पट्टा विलेख रद्द करने को चुनौती देने के लिए एकमात्र मामला यह था कि दिनांक 13.12.2019, 03.02.2020, 17.06.2020 और 14.07.2020 के नोटिस वादी कंपनी के पंजीकृत पते पर नहीं भेजे गए थे और उन्हें ई-292-ए, सेक्टर-22, नोएडा को भेजा गया था। वाणिज्यिक न्यायालय ने यह

निष्कर्ष निकालने में कानून में गलती की थी कि पट्टा विलेख को अपेक्षित नोटिस दिए बिना रद्द कर दिया गया था।

22. प्रतिपक्षी प्राधिकरण के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी कंपनी ने रिट सी संख्या 13115 वर्ष 2021 में दिनांक 07.01.2021 के नोटिस को चुनौती दी थी और इसे वापस ले लिया गया था। मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं था और वाणिज्यिक न्यायालय के पास सी.पी.सी के आदेश VII नियम 11 के अनुसार निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (बी) धारा 3 की उप-धारा (1) के तहत गठित "वाणिज्यिक न्यायालय" के अर्थ को परिभाषित करती है। इसके अलावा धारा 2 (1) (सी) के तहत वाणिज्यिक विवाद का अर्थ परिभाषित किया गया है। वाणिज्यिक विवादों की प्रत्येक श्रेणी को परिभाषित किया गया है, लेकिन कहीं भी, इस प्रकार का दावा उपलब्ध नहीं है, जो वाद के तहत वर्तमान विवाद से सह-संबंधित है। इसलिए, वादी का वर्तमान मुकदमा सी.पी.सी की धारा 9 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है। वाणिज्यिक न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि वादी कंपनी अपनी गलतियों का शिकार हो गई है और वादी के अवैध हितों को बचाने के लिए कोई कानून या आधार नहीं है। वाणिज्यिक न्यायालय यह महसूस करने में भी विफल रहा कि सूट विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 34, 38 और 41 (ई) के प्रावधानों द्वारा वर्जित था और आगे वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 12 ए के प्रावधानों द्वारा मुकदमा वर्जित था।

23. श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह ने आगे प्रस्तुत किया कि पट्टा विलेख में वादी कंपनी द्वारा पट्टा विलेख के उल्लंघन के मामले में रद्द करने से पहले नोटिस जारी करने का कोई प्रावधान नहीं था, यह एक स्वीकृत तथ्य था कि वादी कंपनी को वर्ष 2013 और 2014 में कारण बताओ नोटिस भेजे गए थे, जो वादी कंपनी द्वारा विधिवत प्राप्त किए गए थे, हालाँकि पता कथित तौर पर वर्ष 2015 में ही बदल दिया गया था। इन नोटिसों के प्राप्त होने के बावजूद, वादी-कंपनी ने उल्लंघनों को सुधारने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया और यहां तक कि निर्माण करने के लिए और समय की मांग की। वाणिज्यिक न्यायालय ने मामले के इस पहलू का मूल्यांकन नहीं करके कानून में गलती की और आदेश 13A सी.पी.सी के तहत आवेदन (42-जीए) और आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सी.पी.सी के तहत अंतरिम निषेधाज्ञा आवेदन (6GA) पर निर्णय लेने में प्रक्रियात्मक अवैधता की। वाणिज्यिक न्यायालय ने प्रतिपक्षी प्राधिकरण को वादी कंपनी को "सभी लाभ (जुर्माना, ब्याज आदि की छूट) प्रदान करने का निर्देश देने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर दिया, जो अन्य आवंटियों के लिए उपलब्ध हैं", जबकि लंबित बकाया/दंड की वसूली के लिए नई मांग उठाई। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) (vii) केवल तभी लागू होगी जब पट्टा विलेख विशेष रूप से व्यापार या वाणिज्य में 'उपयोग' की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित हो। पट्टा विलेख की शर्तों और वाद में किए गए कथनों का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया था कि भूमि

व्यवसाय के संचालन के लिए पट्टे पर दी गई थी, जो अभी तक शुरू नहीं हुई थी और इसलिए, पट्टा विलेख व्यापार या वाणिज्य के लिए 'इस्तेमाल की जा रही संपत्ति' से संबंधित नहीं थी, बल्कि इस तरह के उद्देश्य के लिए 'इस्तेमाल की जाने वाली' संपत्ति से संबंधित थी। अपने सबमिशन के समर्थन में, उन्होंने अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम केएस इंफ्रास्पेस एल.एल.पी और अन्य 5 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया था।

24. श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री श्रेया गुप्ता, प्रतिपक्षी कंपनी के अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, ने विस्तृत प्रस्तुतियाँ की हैं कि वादी कंपनी ने पट्टा विलेख के खंड 1 में निहित भुगतान अनुसूची का पालन नहीं किया है और प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा भेजे गए कारण बताओ नोटिस दिनांक 19.12.2013 और 26.02.2014 प्राप्त होने के बावजूद पट्टा विलेख के तहत देय बकाया राशि के भुगतान में चूक की है। माना जाता है कि वादी ने कब्जे की वास्तविक तारीख से पांच साल के भीतर निर्माण पूरा करने के बाद निर्माण पूरा नहीं किया था या पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया था। न तो वादी कंपनी ने निर्माण के लिए समय का कोई विस्तार मांगा और न ही पट्टा विलेख के क्लॉज 13-बी और सी के संदर्भ में 4% विस्तार शुल्क का भुगतान किया। प्रतिपक्षी प्राधिकारी पट्टा विलेख के खंड 13-बी और सी के संदर्भ में पट्टा विलेख को रद्द करने के अच्छी तरह से अपने अधिकारों के भीतर था। यह प्रतिपक्षी प्राधिकारी के लिए

खुला था कि यदि उस पर कब्जा नहीं किया गया था तो वह पट्टा परिसर में फिर से प्रवेश कर सकता है, और पट्टेदार (वादी कंपनी) द्वारा उस पर कोई भवन नहीं बनाया गया था और भूखंड को प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा पट्टा विलेख के खंड 26-III के तहत फिर से आवंटित किया जा सकता था। वादी कंपनी ने प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा भेजे गए दिनांक 19.12.2013 के कारण बताओ नोटिस की प्राप्ति पर विवाद नहीं किया है, जिसमें निर्धारित समय के भीतर आवंटित भूखंड पर गैर-निर्माण के लिए स्पष्टीकरण मांगा गया है और इसके अलावा इसने वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष दायर वाद में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि वादी कंपनी ने निर्माण के लिए समय बढ़ाने के लिए क्या कदम उठाए। वादी कंपनी को प्रतिपक्षी प्राधिकारी से दिनांक 26.02.2014 को कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ, जिसमें 15.03.2014 तक 1,12,00,000/- रुपये की राशि की मांग की गई, लेकिन वादी ने 16.05.2015 को केवल 50,00,000/- रुपये जमा किए। वादी यह बताने में विफल रहा कि उसने उक्त नोटिस के माध्यम से की गई मांग का अनुपालन क्यों नहीं किया और प्रतिपक्षी प्राधिकारी से दिनांक 26.02.2014 के नोटिस की प्राप्ति के बाद वादी ने उल्लंघन और चूक को दूर करने के लिए क्या कदम उठाए। किसी भी समय वादी कंपनी ने प्रतिपक्षी प्राधिकारी को अपने पते के परिवर्तन के बारे में सूचित नहीं किया था, अर्थात् ई-292-ए, सेक्टर 22, नोएडा। वास्तव में, आवंटन के लिए आवेदन की तारीख से लेकर अंतिम भुगतान की तारीख तक, वादी कंपनी सभी संचार उद्देश्यों के लिए उक्त पते

का उपयोग कर रही थी, यहां तक कि पट्टा विलेख में भी उसी पते का उल्लेख किया गया है। वादी कंपनी ने वर्ष 2021 में भी उसी पते का उल्लेख किया था, जब उसने इस न्यायालय के समक्ष रिट सी संख्या 13225 वर्ष 2021 दायर की थी, जिसे वापस लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया था।

25. प्रतिपक्षी कंपनी के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता आगे प्रतिपक्षी कंपनी ने एक विस्तृत लिखित बयान दायर किया था और उसमें प्रस्तुत किया था, प्रतिपक्षी कंपनी कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय से वर्ष 2015-19 के लिए वादी कंपनी की बैलेंस शीट प्राप्त की थी, जिसमें वादी कंपनी को वास्तव में एक निष्क्रिय कंपनी के रूप में दिखाया गया था, जिसका कोई व्यवसाय संचालन नहीं है, कोई टर्नओवर नहीं है और कोई आय नहीं है। उक्त भूखंड के संबंध में वादी कंपनी द्वारा प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भुगतान की गई 1,00,78,716/- रुपये की राशि इसकी बैलेंस शीट में इसके द्वारा लिए गए दीर्घकालिक असुरक्षित ऋणों के रूप में परिलक्षित हुई थी। प्रासंगिक समय पर वादी कंपनी के पास प्रतिपक्षी प्राधिकारी के कारण शेष भुगतान करने या पट्टा विलेख की शर्तों के तहत आवश्यक भूखंड पर निर्माण करने के लिए कोई पैसा नहीं था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि नोएडा में व्यापार और रोजगार को बढ़ावा देने के लिए प्रतिपक्षी प्राधिकरण द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं को विशेष दरों पर संस्थागत भूखंड का आवंटन किया गया था। हालांकि, वादी कंपनी जिसके पास कोई परिचालन नहीं है, शून्य टर्नओवर है और कोई व्यवसाय नहीं है, न तो कानूनी रूप से और न

ही नैतिक रूप से इस तरह के आवंटन से लाभ की हकदार थी। वादी कंपनी को विचाराधीन भूखंड की बोली लगाने की प्रक्रिया से पहले 19.12.2005 को शामिल किया गया था और इसका गठन केवल उक्त भूखंड के पट्टा अधिकारों को रियायती आवंटन दरों पर प्राप्त करने के लिए किया गया था ताकि बाद में इसे बाजार में प्रीमियम पर बेचा जा सके। प्रतिपक्षी कंपनी ने पहले ही वाद में प्लॉट के लिए 1,42,63,494/- रुपये (1,11,49,194/- रुपये + 31,14,300/- रुपये) की राशि का निवेश कर दिया और शेष भुगतान, जो पट्टा विलेख के निष्पादन पर किया जाना है, प्राधिकरण द्वारा रोक दिया गया है। प्रतिपक्षी कंपनी द्वारा उक्त भूखंड पर कार्यान्वित की जाने वाली प्रस्तावित परियोजना 37 करोड़ रुपये से अधिक की थी और इसमें सैकड़ों व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने की क्षमता है। प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत परियोजना रिपोर्ट के अवलोकन पर प्रतिपक्षी कंपनी के पक्ष में आवंटन किया गया था। प्रतिपक्षी कंपनी द्वारा दायर लिखित बयान में कथन वादी कंपनी द्वारा अखंडित रहे और वाणिज्यिक न्यायालय ने इसे ध्यान में नहीं रखा और टिप्पणी की कि प्रतिपक्षी कंपनी का वादी के खिलाफ कोई पर्याप्त अधिकार नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिपक्षी कंपनी के बीच अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं है।

26. श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वाणिज्यिक न्यायालय के सामने, यह वादी कंपनी का मामला नहीं था कि उसके द्वारा पट्टा विलेख की शर्तों का कोई उल्लंघन नहीं किया गया था। वादी कंपनी

ने केवल इस आधार पर पट्टा रद्द करने को चुनौती दी थी कि कथित नोटिस वादी कंपनी के कार्यालय के पंजीकृत पते पर नहीं भेजे गए थे, बल्कि उस स्थान पर भेजे गए थे, जिन्हें वादी कंपनी द्वारा पहले ही छोड़ दिया गया था और आगे कोई नोटिस प्रकाशित या चिपकाया नहीं गयी थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पट्टा विलेख में पट्टेदार द्वारा उल्लंघन के मामले में रद्द करने से पहले नोटिस जारी करने के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि वादी को प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा 2013 और 2014 में कारण बताओ नोटिस भेजे गए थे, जो उसे विधिवत प्राप्त हुए थे, जबकि वादी ने अपने वाद के पैरा 11 में दावा किया था कि उसका पता 2015 में ही बदला गया था। उक्त नोटिस प्राप्त होने के बावजूद, वादी कंपनी ने उल्लंघनों को सुधारने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। वादी ने अधिनियम, 1973 की धारा 43 के प्रावधान पर भरोसा किया, जो केवल यह निर्धारित करता है कि अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के तहत किसी कंपनी को भेजे जाने वाले किसी भी नोटिस को उसके पंजीकृत कार्यालय या उसके प्रमुख कार्यालय या उसके व्यवसाय के स्थान पर भेजा जा सकता है। वादी द्वारा पट्टा विलेख सहित अपने सभी दस्तावेजों में उक्त पते का लगातार उपयोग यह दर्शाता है कि वादी ने उक्त पते को अपने व्यवसाय के स्थान के रूप में पेश किया था और अधिनियम, 1973 के प्रावधान रद्द करने से पहले आवंटन/पट्टेदार को भेजे जाने वाले किसी भी पूर्व नोटिस के लिए प्रदान नहीं करते हैं और पट्टा विलेख की शर्तों के उल्लंघन के मामले में, प्रतिपक्षी प्राधिकारी

द्वारा विधिवत नोटिस वादी कंपनी को उसके व्यवसाय के स्थान पर भेजे गए थे।

27. सुश्री श्रेया गुप्ता, प्रतिपक्षी कंपनी के लिए अधिवक्ता ने भी विस्तृत प्रस्तुतियाँ की थी और संदर्भित दस्तावेजों (लिखित बयान) प्रतिपक्षी-प्राधिकारी द्वारा दायर तर्क है कि सूट में उठाया विवाद एक 'वाणिज्यिक विवाद' नहीं है के रूप में वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के तहत परिभाषित किया गया है; वादी कंपनी उस संपत्ति/भूमि का उपयोग नहीं कर रही थी, जिसे इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया था और माना जाता है कि पट्टा समझौते की शर्तों के अनुसार निर्माण भी निर्धारित समय के भीतर नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि वादी कंपनी का कथित दावा भी रिकॉर्ड के विपरीत है। बेशक, इसमें शामिल भूमि का उपयोग व्यापार या वाणिज्य के लिए नहीं किया जा रहा था और यहां तक कि वादी कंपनी ने इकाई स्थापित करने या वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए उपयोग करने के लिए निर्माण जुटाने के लिए समय के किसी भी विस्तार की मांग नहीं की थी। यह तर्क दिया गया था कि मुकदमा एक घोषणा की मांग करते हुए दायर किया गया था कि प्रतिपक्षी प्राधिकरण द्वारा प्रतिपक्षी कंपनी के पक्ष में भूखंड के आवंटन को शून्य घोषित किया जा सकता है। इसके अलावा, वादी कंपनी ने प्रतिपक्षी कंपनी और प्रतिपक्षी प्राधिकरण को वादी कंपनी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की राहत मांगी थी। इसके अलावा, प्रतिपक्षी प्राधिकारी को प्रतिपक्षी कंपनी के पक्ष में भूखंड के संबंध में पट्टा विलेख निष्पादित करने से रोका जा

सकता है। भूमि का उपयोग व्यापार या वाणिज्य के लिए नहीं किया गया था और इसलिए, उक्त रूप में एक मुकदमा वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष बनाए नहीं रखा जा सकता था। वाणिज्यिक न्यायालय ने प्रतिपक्षी प्राधिकरण को निर्देश देने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर दिया था कि वह 'वादी कंपनी को सभी लाभ (दंड आदि पर छूट) प्रदान करके, जो अन्य आवंटियों के लिए उपलब्ध थे' प्रदान करके लंबित बकाया/दंड की वसूली के लिए एक नई मांग उठाए। इस तरह के निर्देश जारी करने में वाणिज्यिक न्यायालय ने राहत संख्या (iii), (iv) और (v) प्रदान की, जिनके लिए वादी कंपनी द्वारा प्रार्थना भी नहीं की गई थी, इसलिए, आक्षेपित निर्णय शून्य है। उसने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपोषणीय है क्योंकि वाणिज्यिक न्यायालय ने वादी कंपनी को नए मांग नोटिस की प्राप्ति से 30 दिनों के भीतर प्रतिपक्षी प्राधिकारी को राशि का भुगतान करने की स्वतंत्रता देने में आगे बढ़ गया। ऐसा करने में वाणिज्यिक न्यायालय ने पक्षों के बीच दर्ज अनुबंध की शर्तों को फिर से लिखा था। वादी कंपनी को दी गई उपरोक्त भोग पूरी तरह से अवैध और अनुचित था और आक्षेपित निर्णय को शून्यता के रूप में प्रस्तुत करता है। उसने अंत में प्रस्तुत किया कि वादी कंपनी जिसे न केवल भुगतान में चूक किया गया था, बल्कि निर्माण के लिए अनुसूची का पालन करने और पट्टा विलेख के संदर्भ में इकाई को चालू करने में भी चूक की गई थी, प्रतिपक्षी प्राधिकरण द्वारा पट्टे को रद्द करना पूरी तरह से वैध और कानूनी था। वादी कंपनी वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा ऐसी विवेकाधीन राहत प्राप्त करने की हकदार नहीं थी, जिसने

स्पष्ट रूप से सिविल कोर्ट के रूप में नहीं बल्कि असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने वाली रिट अदालत की तरह काम किया था। वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा वादी कंपनी के पक्ष में विवेकाधिकार का अवैध रूप से प्रयोग किया गया था और इस तरह, आक्षेपित निर्णय को इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने बछज नाहर बनाम नीलिमा मंडल और अन्य 6 और श्रीमती अकेला ललिता बनाम श्री कौंडा हनुमंत राव और अन्य 7 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया था।

28. दूसरी ओर, वादी कंपनी के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विष्णु गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी-कंपनी को डिमांड नोटिस/कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था। वादी कंपनी ने 16.05.2015 के बाद अपना आवासीय पता बदल लिया था लेकिन वादी कंपनी का पंजीकृत कार्यालय ई-52, पांडव नगर, दिल्ली में बना रहा। प्रतिपक्षी प्राधिकारी ने जानबूझकर वादी कंपनी के पंजीकृत कार्यालय में मांग नोटिस नहीं भेजा, जिसके परिणामस्वरूप भुगतान न किया गया और बाद में वादी कंपनी के पट्टा विलेख को रद्द कर दिया गया। वादी कंपनी ने प्रतिपक्षी प्राधिकरण के दिनांक 30.07.2019 के प्रस्ताव को संदर्भित किया था, जिसमें यह संकल्प लिया गया था कि सभी आवंटियों, जिन्होंने पट्टे की राशि का भुगतान नहीं किया है, को नोटिस के साथ दिया जाना चाहिए और यदि नोटिस नहीं दिए जाते हैं या प्राप्त नहीं होते हैं, तो नोटिस पत्राचार पते पर चिपकाए जाने या सार्वजनिक सूचना के माध्यम से

समाचार पत्र में प्रकाशन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक थे। प्रस्तुत मामले में डिमांड नोटिस वादी कंपनी के पंजीकृत कार्यालय में नहीं भेजा गया था, जिसका उल्लेख पट्टा विलेख में किया गया था और आगे समाचार पत्र में कोई नोटिस प्रकाशित नहीं किया गया था। इसके बाद वादी कंपनी ने उपरोक्त वाद दायर किया जिसमें दिनांक 07.01.2021 के रद्दीकरण नोटिस को शून्य घोषित करने की मांग की गई तो वाद संपत्ति का कब्जा वादी कंपनी से नहीं लिया जा सकता है, जिसमें न्यायालय द्वारा 12.08.2021 को प्रतिपक्षी प्राधिकारी को अगली तारीख तक संपत्ति को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित करने से रोकने के लिए एक अंतरिम निषेधाज्ञा पारित की गई थी। वाद की कार्यवाही में दोनों प्रतिवादियों ने अपना लिखित बयान दायर किया और अपने लिखित बयानों में इसी तरह की दलीलें लेते हुए कहा कि वादी कंपनी ने पक्षों के बीच पट्टा विलेख/अनुबंध की शर्तों का अनुपालन नहीं किया था और प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा पट्टा विलेख की समाप्ति और प्रतिपक्षी कंपनी के पक्ष में वाद संपत्ति का बाद में पुनः आवंटन कानूनी था। परस्पर दलीलों को पूरा करने और पक्षों की लंबी सुनवाई के बाद, वाणिज्यिक न्यायालय ने 28.03.2022 को उपरोक्त वाद की डिफ्री की थी और दिनांक 07.01.2021 के रद्दीकरण नोटिस को शून्य घोषित किया था और उपरोक्त रद्दीकरण नोटिस दिनांक 07.01.2021 के बाद की सभी परिणामी कार्यवाइयों को भी शून्य घोषित किया गया है और प्रतिपक्षी प्राधिकारी को 31.03.2022, फैसले की तारीख से 15 दिनों

के भीतर वादी कंपनी के खिलाफ लंबित बकाया/जुर्माने की वसूली के लिए नए सिरे से डिमांड नोटिस जारी करने का निर्देश दिया गया है। अपने सबमिशन के समर्थन में, उन्होंने श्री सौरव जैन और अन्य बनाम है। बनाम मेसर्स ए.बीपी डिजाइन और अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि निर्णय और डिफ्री में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है और इस तरह दोनों पहली अपील खारिज होने योग्य हैं।

29. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ सुनी और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

30. शुरुआत में, यह देखा गया है कि प्रस्तुत मामले में आवश्यक विचार यह है कि क्या पक्षों के बीच समझौता/लेनदेन, जो वाद का विषय है, को "वाणिज्यिक विवाद" के रूप में माना जा सकता है ताकि वाणिज्यिक न्यायालय को मुकदमे पर विचार करने में सक्षम बनाया जा सके।

31. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की प्रस्तावना निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

"निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवादों और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के न्यायनिर्णयन के लिए उच्च न्यायालयों में वाणिज्यिक न्यायालयों, वाणिज्यिक अपीलीय न्यायालयों, वाणिज्यिक प्रभाग और वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग के गठन का उपबंध करने के लिए एक अधिनियम।

32. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के उद्देश्यों और कारणों का कथन निम्नानुसार पढ़ा जाए: -

उद्देश्यों और कारणों का कथन उच्च मूल्य वाले वाणिज्यिक विवादों के शीघ्र निपटान का प्रस्ताव काफी समय से सरकार के विचाराधीन है। उच्च मूल्य वाले वाणिज्यिक विवादों में जटिल तथ्य और कानून का प्रश्न शामिल होता है। इसलिए, इनके शीघ्र समाधान के लिए एक स्वतंत्र तंत्र की व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता है। वाणिज्यिक विवादों के शीघ्र समाधान से निवेशक जगत में स्वतंत्र और उत्तरदायी भारतीय कानूनी प्रणाली के बारे में सकारात्मक छवि बनेगी।

33. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) पर ध्यान देना आवश्यक है, जो "वाणिज्यिक विवाद" को निम्नानुसार परिभाषित करता है: -

"धारा 2 (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(अ) "वाणिज्यिक अपीलीय न्यायालय" का अर्थ है धारा 3-ए के तहत नामित वाणिज्यिक अपीलीय न्यायालय;

(एए) "वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग" का अर्थ है धारा 5 की उप-धारा (1) के तहत गठित उच्च न्यायालय में वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग;



(ख) "वाणिज्यिक न्यायालय" का अर्थ है  
धारा 3 की उपधारा (1) के तहत गठित  
वाणिज्यिक न्यायालय;

(ग) "वाणिज्यिक विवाद" का अर्थ है -

(i) व्यापारियों, बैंकरों, फाइनेंसरों और  
व्यापारियों के साधारण लेनदेन जैसे कि  
व्यापारिक दस्तावेजों से संबंधित, जिनके  
अंतर्गत ऐसे दस्तावेजों का प्रवर्तन और  
व्याख्या भी है;

(ii) माल या सेवाओं का निर्यात या  
आयात;

(iii) एडमिरल्टी और समुद्री कानून से  
संबंधित मुद्दे;

(iv) विमान, विमान के इंजनों, विमान  
उपस्कर तथा हेलिकॉप्टरों की बिक्री, पट्टे  
तथा उनके वित्तपोषण सहित लेन-देन  
करना;

(v) माल की ढुलाई;

(vi) निविदाओं सहित निर्माण और  
अवसंरचना संविदाएं;

(vii) अनन्य रूप से व्यापार या वाणिज्य  
में प्रयुक्त अचल संपत्ति से संबंधित करार;

(viii) फ्रेंचाइजिंग समझौते;

(ix) वितरण और लाइसेंसिंग समझौते;

(x) प्रबंधन और परामर्श करार;

(xi) संयुक्त उद्यम करार;

(xii) शेयरधारकों के समझौते;

(xiii) आउटसोर्सिंग सेवाओं और वित्तीय  
सेवाओं सहित सेवा उद्योग से संबंधित  
अंशदान और निवेश करार;

(xiv) व्यापारिक एजेंसी और वाणिज्यिक  
उपयोग;

(xv) साझेदारी समझौते;

(xvi) प्रौद्योगिकी विकास करार;

(xvii) पंजीकृत और अपंजीकृत ट्रेडमार्क,  
कॉपीराइट, पेटेंट, डिजाइन, डोमेन नाम,  
भौगोलिक संकेत और सेमीकंडक्टर एकीकृत  
सर्किट से संबंधित बौद्धिक संपदा  
अधिकार;

(xviii) माल की बिक्री या सेवाओं के  
प्रावधान के लिए समझौते;

(xix) तेल और गैस भंडारों या विद्युत  
चुम्बकीय स्पेक्ट्रम सहित अन्य प्राकृतिक  
संसाधनों का दोहन;

(xx) बीमा और पुनः बीमा;

(xxi) उपर्युक्त में से किसी से संबंधित  
एजेंसी का अनुबंध; और

(xxii) ऐसे अन्य वाणिज्यिक विवाद जो  
कैद सरकार द्वारा अधिसूचित किए जा  
सकते हैं।

स्पष्टीकरण - कोई वाणिज्यिक विवाद  
केवल इसलिए वाणिज्यिक विवाद नहीं  
रहेगा क्योंकि-

(क) इसमें अचल संपत्ति की वसूली के लिए  
या अचल संपत्ति से धन की वसूली के लिए  
कार्रवाई भी शामिल है जिसे सुरक्षा के रूप  
में दिया गया है या इसमें अचल संपत्ति से  
संबंधित कोई अन्य राहत शामिल है;

(ख) अनुबंध पक्षों में से एक राज्य या  
उसकी एजेंसियों या उपकरणों में से कोई  
है, या सार्वजनिक कार्यों को पूरा करने  
वाला एक निजी निकाय है;

(घ) "वाणिज्यिक प्रभाग" से धारा 4 की  
उपधारा (1) के अधीन गठित उच्च

न्यायालय में वाणिज्यिक प्रभाग अभिप्रेत है;

(ड) "जिला न्यायाधीश" का वही अर्थ होगा जो उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 236 के खंड (क) में सौंपा गया है;

(च) "दस्तावेज़" का अर्थ है अक्षरों, आंकड़ों या चिह्नों, या इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से या उन साधनों में से एक से अधिक द्वारा किसी पदार्थ पर व्यक्त या वर्णित कोई भी मेटर, जिसका उपयोग किया जा सकता है, या रिकॉर्डिंग के प्रयोजन के लिए जो मायने रखता है;

(छ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और अभिव्यक्ति "अधिसूचना" अपने संज्ञानात्मक अर्थों और व्याकरणिक विविधताओं के साथ तदनुसार अर्थ लगाई जाएगी;

(ज) "अनुसूची" से अधिनियम में संलग्न अनुसूची अभिप्रेत है; और

(i) वाणिज्यिक विवाद के संबंध में "निर्दिष्ट मूल्य" का अर्थ धारा 12 के अनुसार अवधारित वाद के संबंध में विषय वस्तु का मूल्य होगा [जो तीन लाख रुपए से कम नहीं होगा] या ऐसे उच्चतर मूल्य, जैसा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए। [2018 के अधिनियम 28 द्वारा धारा 4(II) के प्रतिस्थापित, "जो एक करोड़ रुपए से कम नहीं होगी" (3-5-2018 से) के लिए।

34. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 के खंड (i) में वाणिज्यिक विवाद के

संबंध में "निर्दिष्ट मूल्य" को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ धारा 12 [जो तीन लाख रुपए से कम नहीं होगा] या ऐसे उच्च मूल्य के अनुसार निर्धारित वाद के संबंध में विषय वस्तु का मूल्य होगा, जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है। धारा-12 में अधिनियम के प्रयोजन के लिए वाद, आवेदन या अपील के मूल्यांकन के लिए मानदंड प्रदान किए गए हैं।

35. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा-3 वाणिज्यिक न्यायालयों के गठन से संबंधित है। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 3 (1) के अनुसार, राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद, जिला स्तर पर उतनी संख्या में वाणिज्यिक न्यायालयों का गठन कर सकती है, जितनी वह इस अधिनियम के तहत उन न्यायालयों को प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के उद्देश्य से आवश्यक समझे। धारा 3 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि राज्य सरकार, संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद, अधिसूचना द्वारा, उस क्षेत्र की स्थानीय सीमाएं निर्दिष्ट करें, जिस पर वाणिज्यिक न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार होगा और समय-समय पर ऐसी सीमाओं को बढ़ा, कम या बदल सकता है। उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, वाणिज्यिक न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए या तो जिला न्यायाधीश के स्तर पर या जिला न्यायाधीश के स्तर से नीचे के न्यायालय में वाणिज्यिक न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त कर सकेगी।

9.इला नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जिला गौतमबुद्ध नगर बनाम मेसर्स  
पथिक सॉफ्टवेयर एजुकेशन प्रा.लिमिटेड, पांडव नगर, दिल्ली एवं एक अन्य 235

36. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 5 वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग के गठन से संबंधित है। धारा 5 (1) निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

"5. वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग का गठन - (1) धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना या धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन आदेश जारी करने के पश्चात्, संबंधित उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, आदेश द्वारा, वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग का गठन करेगा जिसमें अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए एक या अधिक खण्ड न्यायपीठें होंगी।

(2) उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों को, जिनके पास वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग के न्यायाधीश होने के लिए नामनिर्देशित करेगा जिन्हें वाणिज्यिक विवादों का निपटारा करने का अनुभव है।

37. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 6 वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है। अधिनियम की धारा 6 निम्नानुसार है: -

"6. वाणिज्यिक न्यायालय की अधिकारिता - वाणिज्यिक न्यायालय के पास राज्य के पूरे क्षेत्र से उत्पन्न एक निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित सभी मुकदमों और आवेदनों की सुनवाई करने का अधिकार

क्षेत्र होगा, जिस पर इसे क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र निहित किया गया है।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, एक वाणिज्यिक विवाद को राज्य के पूरे क्षेत्र से उत्पन्न होने पर विचार किया जाएगा, जिस पर एक वाणिज्यिक न्यायालय को अधिकार क्षेत्र निहित किया गया है, यदि इस तरह के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित मुकदमा या आवेदन धारा 16 से 20 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)" के प्रावधानों के अनुसार स्थापित किया गया है।

38. धारा 7 उच्च न्यायालयों के वाणिज्यिक प्रभागों की अधिकारिता से संबंधित है। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 7 निम्नानुसार पढ़ी जाती है:-

"7. उच्च न्यायालयों के वाणिज्यिक प्रभागों की अधिकारिता - साधारण मूल सिविल क्षेत्राधिकार वाले उच्च न्यायालय में दायर एक निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवादों से संबंधित सभी सूट और आवेदन उस उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा सुने और निपटाए जाएंगे:

परन्तु वाणिज्यिक विवादों से संबंधित सभी वाद और आवेदन, जो किसी अधिनियम द्वारा किसी ऐसे न्यायालय में रखे गए हैं जो जिला न्यायालय से अवर नहीं हैं, और उच्च न्यायालय के मूल पक्ष में दायर या लंबित हैं, उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा सुने और निपटाए जाएंगे: परंतु यह और कि डिजाइन अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के आधार पर उच्च न्यायालय को अंतरित

सभी वाद और आवेदन, (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन सभी क्षेत्रों में, जिन पर उच्च न्यायालय साधारण मूल सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है, उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा (2000 का 16) या पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) की धारा 104 के तहत सुनवाई और निपटान किया जाएगा।

39. अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, अधिनियम में निहित किसी बात के बावजूद, एक वाणिज्यिक न्यायालय या एक वाणिज्यिक प्रभाग किसी भी वाणिज्यिक विवाद से संबंधित किसी भी मुकदमे पर विचार या निर्णय नहीं करेगा, जिसके संबंध में सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र या तो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से किसी अन्य कानून के तहत निषिद्ध है।

40. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 वाणिज्यिक न्यायालयों और वाणिज्यिक प्रभागों की डिक्ली से अपील से संबंधित है। अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, वाणिज्यिक अपीलीय न्यायालय और वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग ऐसी अपील दायर करने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर इसके समक्ष दायर अपीलों का निपटान करने का प्रयास करेंगे। वाणिज्यिक विवादों को तय करने के लिए फास्ट ट्रैक प्रक्रिया?

41. अधिनियम की धारा 15 लंबित मामलों के हस्तांतरण से संबंधित है। अधिनियम की धारा 15 निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

"15. लंबित मामलों का स्थानांतरण। - (1) सभी वाद और आवेदन, जिनके अंतर्गत मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के अधीन आवेदन भी हैं, जो किसी उच्च न्यायालय में लंबित विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित हैं, जहां एक वाणिज्यिक प्रभाग का गठन किया गया है, वाणिज्यिक प्रभाग को अंतरित किया जाएगा।

(2) सभी वाद और आवेदन, जिनके अंतर्गत मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के अधीन आवेदन भी हैं, जो किसी जिले या क्षेत्र में, जिसके संबंध में वाणिज्यिक न्यायालय का गठन किया गया है, किसी सिविल न्यायालय में लंबित विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित है, ऐसे वाणिज्यिक न्यायालय को अंतरित किया जाएगा: परन्तु कोई वाद या आवेदन जहां न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय को संविधान के गठन से पहले सुरक्षित रखा गया हो, वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय को उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत स्थानांतरित किया जाएगा।

(3) जहां विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के अधीन आवेदन सहित कोई वाद या आवेदन, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय को अंतरित हो जाएगा वहां इस अधिनियम के उपबंध उन प्रक्रियाओं को लागू होंगे जो अंतरण के समय पूर्ण नहीं थीं।

(4) वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय, जैसा भी मामला हो, इस तरह के हस्तांतरित सूट या आवेदन के संबंध में मामला प्रबंधन सुनवाई आयोजित कर सकता है ताकि नई समय-सीमा निर्धारित की जा सके या ऐसे आगे के निर्देश जारी किए जा सकें जो सिविल प्रक्रिया संहिता के 3 [आदेश XV-A के साथ] 1908 (1908 का 5) के अनुसार इस तरह के सूट या आवेदन के त्वरित और प्रभावोत्पादक निपटान के लिए आवश्यक हो सकते हैं। परन्तु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के आदेश V के नियम 1 के उप-नियम (1) का परंतुक ऐसे अंतरित वाद या आवेदन को लागू नहीं होगा और न्यायालय अपने विवेक से एक नई समयावधि विहित कर सकेगा जिसके भीतर लिखित कथन फाइल किया जाएगा।

(5) इस घटना में कि ऐसा वाद या आवेदन उपधारा (1), उपधारा (2) या उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट रीति से अन्तरित नहीं किया जाता है, उच्च न्यायालय का वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग, वाद के किसी पक्षकार के आवेदन पर, न्यायालय से ऐसा वाद या आवेदन वापस ले सकेगा जिसके समक्ष वह लंबित है और उसे विचारण या निपटान के लिए वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय, जैसा भी मामला हो, को अन्तरित कर सकेगा; इस तरह के मुकदमे पर क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र होना, और हस्तांतरण का ऐसा आदेश अंतिम और बाध्यकारी होगा।

42. जहां तक अधिनियम की धारा 15 (4) के अनुसार स्थानांतरित मामलों का संबंध है,

वाणिज्यिक प्रभाग या वाणिज्यिक न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XVA के अनुसार इस तरह के वाद या आवेदन के त्वरित और प्रभावोत्पादक निपटान के लिए नई समय-सीमा निर्धारित करेगा या आगे के निर्देश जारी करेगा। लिखित बयान दाखिल करने के लिए नई समय अवधि निर्धारित की जाएगी और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश V के नियम 1 के उप-नियम (1) का परंतुक हस्तांतरित मामलों पर लागू नहीं होगा और न्यायालय अपने विवेक से, एक नई समय अवधि निर्धारित कर सकता है जिसके भीतर लिखित बयान दायर किया जाएगा।

43. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 16 के अनुसार अधिनियम के तहत संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान, एक निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद के संबंध में वाद के परीक्षण में लागू होंगे। अधिनियम की धारा 16 निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

"16. वाणिज्यिक विवादों के लिए अपने आवेदन में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में संशोधन। - (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के प्रावधान, एक निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद के संबंध में किसी भी मुकदमे के लिए उनके आवेदन में, अनुसूची में निर्दिष्ट तरीके से संशोधित होंगे।

(2) वाणिज्यिक प्रभाग और वाणिज्यिक न्यायालय, जैसा कि इस अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है, एक निर्दिष्ट मूल्य के

वाणिज्यिक विवाद के संबंध में एक मुकदमे के परीक्षण में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के प्रावधानों का पालन करेगा।

(3) जहां राज्य सरकार द्वारा क्षेत्राधिकार वाले उच्च न्यायालय के किसी नियम का कोई उपबंध या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में कोई संशोधन इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों के विरुद्ध है वहां इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध अभिभावी होंगे।

44. ऊपर के रूप में निकाले गए प्रावधानों के अवलोकन से, यह देखा गया है कि व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति के पट्टा विलेख से उत्पन्न होने वाले विवाद वाणिज्यिक न्यायालयों द्वारा विचारित किए जाने वाले वाणिज्यिक विवाद होने के योग्य होंगे। इसलिए, प्रश्न यह होगा कि प्रस्तुत मामले में हालांकि पक्षों ने 19.01.2007 को विचाराधीन भूमि का पट्टा विलेख निष्पादित किया है, जिसे बाद में दिनांक 07.01.2021 के आदेश/नोटिस द्वारा रद्द कर दिया गया था और वर्तमान में उपरोक्त वाद में विचाराधीन भूमि से संबंधित दिनांक 07.01.2021 के नोटिस की घोषणा/रद्दीकरण की मांग की गई है, क्या इसमें शामिल अचल संपत्ति को विशेष रूप से व्यापार या वाणिज्य में उपयोग किया जा रहा माना जा सकता है।

45. बछाज नाहर बनाम नीलिमा मंडल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या न्यायालय अधिनिर्णय के लिए अभिवेदन में दी गई दलील से परे जा सकता है और अपील का निर्णय करते समय इस बात पर भी अंतर किया कि सुखभोग अधिकारों पर निर्णय लेते समय क्या निर्धारित किया जाना है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अदालतें राहत देने के लिए अपनी न्यायिक स्थिति का प्रयोग नहीं कर सकती हैं, जो कि दलीलों में पक्षों द्वारा भी नहीं मांगी गई है। उपर्युक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा इसके बाद पुनः प्रस्तुत किए जाते हैं:-

"22. उच्च न्यायालय का अवलोकन कि जब कोई वादी तथ्यों को निर्धारित करता है और वाद में किसी विशेष राहत के लिए प्रार्थना करता है, तो वह केवल यह सुझाव दे रहा है कि राहत क्या होनी चाहिए, और यह अदालत के लिए कानून के मामले के रूप में है कि उस राहत पर निर्णय लेने के लिए जिसे दिया जाना उचित है कि नहीं है। ऐसा अवलोकन एक रिट कार्यवाही के संदर्भ में उपयुक्त हो सकता है। यह एक सिविल सूट में भी, जबकि राहत के रूप में अनुदान देने का प्रस्ताव किया जाता है, जो दावा किया जाता है उसका एक कम या छोटा संस्करण, उचित हो सकता है। लेकिन उक्त अवलोकन गलत है यदि यह मानने का मतलब है कि एक सिविल कोर्ट प्रार्थना की अनदेखी करते हुए कोई भी राहत, जो वह उचित समझता है, दे सकता है।

23. यह मौलिक है कि एक सिविल सूट में दी जाने वाली राहत केवल दलीलों में की गई प्रार्थनाओं के संदर्भ में हो सकती है। इसके अलावा, सिविल वादों में, राहत प्रदान करने के लिए न्यायालय शुल्क, सीमा, वाद के पक्षकारों जैसे विभिन्न कारकों के साथ-साथ राहत को छोड़कर आधारों जैसे न्यायनिर्णय, निबंधन, स्वीकृति, कार्रवाई के कारणों या पक्षकारों आदि में शामिल न होना होता है, जिनके लिए दलील और प्रमाण की आवश्यकता होती है। इसलिए, यह निर्णय देना खतरनाक होगा कि किसी सिविल वाद में जो भी राहत मांगी जाती है, न्यायालय तथ्यों की जांच करने पर कोई भी राहत दे सकता है जैसा वह उचित समझता है। एक लाख रुपये की वसूली के लिए एक वाद में, अदालत दस लाख रुपये की डिक्री नहीं दे सकती। संपत्ति 'क' के कब्जे की वसूली के लिए एक वाद में, अदालत संपत्ति 'बी' का कब्जा नहीं दे सकती है। स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना करने वाले मुकदमे में, अदालत घोषणा या कब्जे की राहत प्रदान करती है। एक सिविल सूट में राहत देने का अधिकार क्षेत्र आवश्यक रूप से दलीलों, प्रार्थना, अदालत शुल्क का भुगतान, साक्ष्य को अनुमति देने आदि पर निर्भर करता है।

24. एक सुख सुविधा अधिकार के आधार पर वादी द्वारा एक दावे के अभाव में, पहले प्रतिपक्षी को यह प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिला कि वादी के पास कोई सहजता का अधिकार नहीं था। दलीलों की अनुपस्थिति में और पहले प्रतिपक्षी को इस तरह के दावे से इनकार करने का अवसर मिलने पर, उच्च

न्यायालय हकदारी के लिए एक सूट को एक आसान अधिकार के प्रवर्तन के लिए एक सूट में परिवर्तित नहीं कर सकता था। प्रथम अपीलीय अदालत ने इस तथ्य की खोज दर्ज की थी कि वादी ने हकदारी नहीं बनाया था। उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में उक्त निष्कर्ष को बाधित नहीं किया। चूंकि कानून का कोई सवाल विचार के लिए नहीं उठता था, इसलिए उच्च न्यायालय को दूसरी अपील को खारिज कर देना चाहिए था। यहां तक कि अगर उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि सहजता के लिए एक मामला बनाया गया था, तो अधिक से अधिक स्वतंत्रता वादी को सहजता के लिए एक अलग मुकदमा दायर करने के लिए आरक्षित की जा सकती थी। लेकिन उच्च न्यायालय दूसरी अपील में, वादी की इस दलील को खारिज करते हुए कि वे वाद संपत्ति के मालिक थे, यह मानकर एक सुगमता अधिकार के संबंध में निषेधाज्ञा की राहत नहीं दे सकता था कि उनके पास अनुसूची संपत्ति को एक मार्ग के रूप में उपयोग करने का आसान अधिकार था।

25. तदनुसार, हम इन अपीलों को अनुमति देते हैं और उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को रद्द करते हैं और प्रथम अपीलीय अदालत के फैसले को बहाल करते हैं। पक्षों को अपनी-अपनी लागत वहन करनी होगी।

46. मेसर्स ट्रोजन एंड कंपनी लिमिटेड बनाम आ.रएम एन एन नागप्पा चेट्टियार 9 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या किसी पक्ष द्वारा मांगी

गई राहत नहीं दी जा सकती है और वह भी उचित दलील के बिना। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"यह अच्छी तरह से तय है कि किसी मामले का निर्णय पक्षों की दलीलों के बाहर के आधार पर नहीं हो सकता है और यह मामला है जिसे पाया जाना है। वाद के संशोधन के बिना, न्यायालय उस राहत को देने का हकदार नहीं था जो मांगी नहीं गई थी और वाद में संशोधन करने के लिए कभी कोई प्रार्थना नहीं की गई थी कि इसमें एक वैकल्पिक मामले को शामिल किया जा सके।

47. वासु हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड बनाम गुजरात अक्रुति टीसीजी बायोटेक लिमिटेड के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने कहा कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के खंड 2 (1) (सी) को एक सादे पढ़ने पर अभिव्यक्ति "प्रयुक्त" का अर्थ "वास्तव में उपयोग किया जा रहा है" या "उपयोग किया जा रहा है"। यह आगे समझाया गया है कि यदि विधायिका का इरादा दायरे का विस्तार करना था, तो उस स्थिति में वाक्यांश-विज्ञान "उपयोग किए जाने की संभावना" या "उपयोग किए जाने की संभावना" को नियोजित किया गया होगा। निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"इसलिए, यदि विवाद किसी भी खंड 2 (सी) के भीतर आता है, तो विवाद को "वाणिज्यिक विवाद" कहा जा सकता है, जिसके लिए वाणिज्यिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र होगा। यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि विद्वान

वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष मूल वादी ने केवल वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 2(c)(i), 2(c)(ii) और 2(c)(xx) पर भरोसा किया था। मूल वादी की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है और/या स्वीकार किया है कि मामला वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 2(c)(ii) या 2(c)(xx) खंड 2 (सी) (i) के भीतर नहीं आएगा; यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष मूल वादी की ओर से यह मामला कभी नहीं था कि मामला विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय की धारा 2 (सी) (vii) के अंतर्गत आएगा। उपरोक्त के बावजूद हमने गुण-दोष के आधार पर विचार किया है कि क्या वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (सी) (vii) पर विचार करते हुए भी, पक्षों के बीच विवाद को वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (सी) की परिभाषा के भीतर "वाणिज्यिक विवाद" कहा जा सकता है या नहीं? धारा 2 (सी) (vii) पर विचार करते हुए, "वाणिज्यिक विवाद" का अर्थ है व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित समझौतों से उत्पन्न विवाद। जैसा कि ऊपर देखा गया है, वाद दायर करने के समय और यहां तक कि वाद में दलील दी गई है, अचल संपत्ति/भूखंडों को पक्षों के बीच समझौतों को व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित समझौते नहीं कहा जा सकता है। जी.आई.डी.सी से पट्टे पर भूखंड प्राप्त करने के बाद पार्टी के बीच समझौते के अनुसार, इसके बाद मूल प्रतिपक्षी नंबर-1 द्वारा विकसित किया जाना आवश्यक था और सभी



अवसंरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करने और इसे उप-प्लॉट करने के बाद, मूल वादी जैसे अन्य व्यक्तियों को दिया जाना आवश्यक है। मूल वादी की ओर से यह मामला है कि मूल प्रतिपक्षी नंबर-1 किसी भी अवसंरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करने और भूखंडों को विकसित करने में विफल रहा है और इसलिए, समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक सिविल मुकदमा दायर किया गया है। अन्य वैकल्पिक प्रार्थनाएं भी हैं। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि समझौता इस तरह से व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित है। मूल वादी की ओर से यह मामला है कि धारा 2 (सी) के खंड (vii) के रूप में, इस्तेमाल किया गया फेसिलॉजी "वास्तव में उपयोग" या "इस्तेमाल किया जा रहा है" नहीं है और इसलिए, भले ही वर्तमान में भूखंड का उपयोग नहीं किया गया है और भले ही भविष्य में भी इसका उपयोग किए जाने की संभावना हो, उस मामले में भी, धारा 2 (सी) (vii) लागू होगी और इसलिए, वाणिज्यिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र होगा। पूर्वोक्त में कोई सार नहीं है। किसी विशेष कानून या प्रावधान की व्याख्या करते समय कानून के कार्डिनल सिद्धांत के अनुसार, शाब्दिक और सख्त व्याख्या लागू की जानी चाहिए। यह ध्यान दिया जा सकता है कि प्रासंगिक प्रावधानों में प्रयुक्त महत्वपूर्ण शब्द "व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति" हैं। यदि उस मामले में मूल वादी की ओर से सबमिशन स्वीकार किया जाता है तो यह कानून में कुछ जोड़ना होगा जो कानून में नहीं है, और

जिसकी अनुमति नहीं है। प्रासंगिक खंड के सादे पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति "प्रयुक्त" का अर्थ "वास्तव में उपयोग किया जाना" या "उपयोग किया जा रहा है" होना चाहिए। यदि विधायिका का इरादा दायरे का विस्तार करना था, तो उस स्थिति में इस्तेमाल की जाने वाली वाक्यांश-विज्ञान अलग होती, उदाहरण के लिए, "उपयोग किए जाने की संभावना"। शब्द "प्रयुक्त" "वास्तव में प्रयुक्त" को दर्शाता है और इसे "उपयोग के लिए तैयार" या "उपयोग किए जाने की संभावना" नहीं कहा जा सकता है; या "इस्तेमाल किया जाना है"। इसी तरह का दृष्टिकोण बॉम्बे हाईकोर्ट (नागपुर बेंच) द्वारा दिनेश कुमार गुलाबचंद अग्रवाल (उपरोक्त) के मामले में लिया गया है और यह देखा गया है और यह माना गया है कि "प्रयुक्त" शब्द "वास्तव में उपयोग किए गए" को दर्शाता है न कि केवल "उपयोग के लिए तैयार"। खबर है कि इस फैसले के खिलाफ एसएलपी को माननीय उच्चतम न्यायालय ने खारिज कर दिया है। (महत्व सन्निविष्ट)

48. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (i) (c) (vii) के प्रावधानों को वैसे ही पढ़ा जाना चाहिए। कानून कहता है कि केवल अचल संपत्ति से संबंधित वे समझौते जिन्हें विशेष रूप से व्यापार या वाणिज्य में उपयोग करने के लिए रखा गया है, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) के दायरे में शामिल किया जाएगा। कानून बिल्कुल स्पष्ट, सादा और असंदिग्ध है, इसलिए, न्यायालय उस अर्थ को प्रभावी करने के लिए बाध्य हैं। चूंकि

कानून सटीक और असंदिग्ध है, इसलिए उन शब्दों को उनके प्राकृतिक और सामान्य अर्थों में व्याख्या करना अनिवार्य है। खंड में प्रयुक्त शब्द स्पष्ट रूप से कानून निर्माताओं के इरादे को निर्धारित करते हैं। इसलिए, सी.सी अधिनियम 2015 की धारा 2 (1) (सी) के खंड VII को उसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए और इसे विस्तृत इरादा देने के लिए व्याख्या नहीं की जा सकती है।

49. एक समान स्थिति में, क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"शब्दों को लेने के लिए जैसा कि विधायिका ने उन्हें दिया है, और उस अर्थ को लेने के लिए जो स्वाभाविक रूप से दिए गए शब्दों का अर्थ है, जब तक कि उन शब्दों का निर्माण, या तो प्रस्तावना द्वारा या प्रश्न में शब्दों के संदर्भ द्वारा, नियंत्रित या परिवर्तित न हो।

50. विस्काउंट हल्डेन, अटॉर्नी जनरल बनाम एल.सी मिलने में निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"यदि उपयोग की जाने वाली भाषा का 'एक प्राकृतिक अर्थ है, तो हम उस अर्थ से तब तक नहीं हट सकते जब तक कि कानून को समग्र रूप से न पढ़ें, संदर्भ हमें ऐसा करने के लिए निर्देशित करता है'।

51. विक्टोरिया शहर के कॉर्प में लॉर्ड एटकिंसन बनाम वैकूवर द्वीप के बिशप ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"विधियों के निर्माण में, उनके शब्दों की व्याख्या उनके सामान्य व्याकरणिक अर्थों में की जानी चाहिए, जब तक कि संदर्भ में कुछ न हो, या कानून की वस्तु में जिसमें वे होते हैं या जिन परिस्थितियों में उनका उपयोग किया जाता है, यह दिखाने के लिए कि उनका उपयोग किया गया था उनके सामान्य व्याकरणिक अर्थ से अलग एक विशेष अर्थ में।

52. विस्काउंट साइमन, एल.सी इन नोक्स बनाम डोनकास्टर अमलगमेटेड कोलियरीज लिमिटेड ने माना है कि:

"सुनहरा नियम यह है कि एक कानून के शब्दों को प्रथम दृष्टया उनका सामान्य अर्थ दिया जाना चाहिए।

53. हरभजन सिंह बनाम भारतीय प्रेस परिषद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"... विधायिका अपने शब्दों को बर्बाद नहीं करती है। नियम का सम्मान करने के लिए एक प्रावधान की व्याख्या करते समय प्रयुक्त शब्दों को साधारण, व्याकरणिक और पूर्ण अर्थ सौंपा जाना है- विधायिका अपने इरादे को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन करती है, और इसलिए, इस तरह के इरादे से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए जैसा कि नियोजित शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है जब तक कि इसका परिणाम बेतुकापन या विसंगति नहीं होता है या जब तक कि सामग्री - आंतरिक या बाहरी - नियम से प्रस्थान की अनुमति देने के लिए उपलब्ध नहीं है।

54. चंद्रिका मिसिर बनाम भैया लाल में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय वाद संपत्ति पर पक्षकारों के कब्जे के संबंध में एक विशेष अनुमति याचिका पर सुनवाई कर रहा था जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम (1951 का अधिनियम 1) का विषय था। इस बात पर निर्णय लेते हुए कि क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है, न्यायमूर्ति डी.जी पालेकर ने दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि सिविल कोर्ट के पास मुकदमे पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। हालांकि अधिकार क्षेत्र पर रोक की दलील नीचे की अदालतों में नहीं उठाई गई थी, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:

"6. यह इस आदेश से है कि वर्तमान अपील विशेष अनुमति द्वारा दायर की गई है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मुकदमा कब्जे के लिए एक सिविल अदालत में दायर किया गया था और परिसीमा अधिनियम वह अधिनियम होगा जो इस तरह के मुकदमे को नियंत्रित करेगा। ऐसा नहीं है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 1951 सिविल कोर्ट में मुकदमा दायर करने को अधिकृत करता है और सीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित एक को अधिक्रमित करते हुए कब्जे की राहत देने के लिए सीमा की अवधि निर्धारित करता है। इसलिए, यह पूरी तरह से तर्कपूर्ण था कि यदि मुकदमा सिविल कोर्ट द्वारा उचित रूप से पोषणीय है, तो सीमा की अवधि को सीमा अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित किया जाना चाहिए और किसी अन्य को नहीं। उस स्थिति में वादी के पक्ष में कब्जे के लिए डिक्री पारित करने के अलावा कोई

विकल्प नहीं होता। लेकिन पूरे मामले का दुर्भाग्यपूर्ण हिस्सा यह है कि सिविल कोर्ट के पास मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। यह सच है कि क्षेत्राधिकार के संबंध में इस तरह का विवाद प्रतिपक्षी द्वारा विचारण न्यायालय में नहीं उठाया गया था, लेकिन जहां अदालत में स्वाभाविक रूप से अधिकार क्षेत्र की कमी है, वहां याचिका किसी भी स्तर पर उठाई जा सकती है, और, इसे श्री योगेश्वर प्रसाद द्वारा स्वीकार किया गया है, यहां तक कि निष्पादन कार्यवाही में भी इस आधार पर कि डिक्री अमान्य थी, स्वीकार किया गया है। यदि कोई उत्तर प्रदेश अधिनियम 1951 1 की धारा 209 और 331 को एक साथ पढ़ता है, तो वह पाता है कि हमारे सामने एक मुकदमा अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के तहत विशेष रूप से निर्धारित सीमा की अवधि के भीतर अधिनियम के तहत बनाई गई एक विशेष अदालत के समक्ष दायर किया जाना है और सामान्य सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र बिल्कुल वर्जित है।

55. फेडरेशन ऑफ ए.पी चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"6. उक्त अधिनियम की धारा 3 "भूमि का उपयोग किसी भी औद्योगिक उद्देश्य के लिए किया जाता है", "भूमि का उपयोग किसी भी व्यावसायिक उद्देश्य के लिए किया जाता है" और "भूमि का उपयोग किसी अन्य गैर-कृषि

उद्देश्य के लिए किया जाता है" की बात करता है। "प्रयोग किया जाता है" शब्द पर जोर दिया गया है। औद्योगिक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि के लिए अनुसूची में विनिर्दिष्ट दर पर गैर-कृषि भूमियों पर कर निर्धारण के उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिए, इस तथ्य के रूप में निष्कर्ष होना चाहिए कि वास्तव में भूमि का उपयोग औद्योगिक प्रयोजन के लिए किया जा रहा है। यह वाणिज्यिक उद्देश्य या किसी अन्य गैर-कृषि उद्देश्य पर लागू होगा।

"9. हमें इसमें कोई संदेह नहीं है, इसलिए, यह केवल भूमि है जो वास्तव में उक्त अधिनियम में परिभाषित औद्योगिक उद्देश्य के लिए उपयोग में है, जिसका मूल्यांकन औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के लिए निर्दिष्ट दर पर गैर-कृषि मूल्यांकन के लिए किया जा सकता है। चुनौती के तहत निर्णय में "प्रयुक्त" शब्द को दिया गया व्यापक अर्थ अस्थिर है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उक्त अधिनियम एक कर कानून है, किसी भी न्यायालय को विधायिका पर ऐसा इरादा आरोपित करने में न्यायसंगत नहीं है जिसे उसने उस भाषा में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया है जिसे उसने नियोजित किया है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

56. श्री सौरव जैन और अन्य बनाम मैसर्स ए.बी.पी. डिजाइन और अन्य (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि हालांकि अपीलकर्ता ने आदेश XLI नियम 22 सी.पी.सी के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष क्षेत्राधिकार के मुद्दे पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष पर या तो क्रॉस-

ऑब्जेक्शन का ज्ञापन दायर करके या अन्यथा उन्हें चुनौती नहीं दी है; उन्हें सुप्रीम कोर्ट के समक्ष तर्क उठाने से नहीं रोका गया था। उच्चतम न्यायालय, अनुच्छेद 142 के अधीन पूर्ण न्याय करने की अपनी शक्ति के सपठित संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने पूर्ण क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए, पहली बार उठाए गए नए आधारों पर विचार कर सकता है, यदि इसमें कानून का प्रश्न शामिल हो जिसमें अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता न हो, विशेष रूप से न्यायालय के क्षेत्राधिकार से संबंधित जो मामले की जड़ तक जाता है। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ-39 इस प्रकार है: -

"39. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पहले प्रतिपक्षी द्वारा दायर वाद को खारिज कर दिया जाना था। मुकदमे को खारिज करने वाले विचारण न्यायाधीश का निर्णय सही था, लेकिन निम्नलिखित कारणों से: (i) जाहिद हुसैन द्वारा वाद भूमि का कथित हस्तांतरण पहले प्रतिपक्षी को निरसन अधिनियम के अधिनियमित होने से पहले हुआ था। यू.एल.सी.आर.ए की धारा 5 (3) के तहत निर्धारित दोहरी शर्तों को हस्तांतरण से पहले पूरा नहीं किया गया था क्योंकि धारा 6 के तहत बयान प्रस्तुत नहीं किया गया था और सक्षम प्राधिकारी ने यू.एल.सी.आर.ए (जो उस समय परिचालन में था) की धारा 10 (1) के तहत अधिसूचना जारी नहीं की थी। इसलिए, भले ही जाहिद हुसैन के पास वाद भूमि का शीर्षक था, पहले प्रतिपक्षी को हस्तांतरण यू.एल.सी.आर.ए की धारा 5 (3) के तहत शून्य था; (ii) जब जाहिद हुसैन ने वाद भूमि के

हस्तांतरण की अनुमति मांगने के लिए एक घोषणा दायर की थी, तो यू.एल.सी.आर.ए की धारा 27 के तहत अनुमति प्रदान नहीं की गई थी क्योंकि उक्त भूमि से संबंधित एक मुकदमा लंबित था। इसके बाद उन्होंने एक और आवेदन दायर कर अपनी 2000 वर्ग मीटर जमीन में से 1295 वर्ग मीटर जमीन के हस्तांतरण की अनुमति मांगी। 5 मई 1993 को सक्षम प्राधिकारी के कार्यालय द्वारा यू.एल.सी.आर.ए की धारा 27 के तहत जो अनुमति दी गई थी, वह उनकी 'रिटेनबल' संपत्ति से भूमि के हस्तांतरण के लिए थी, न कि सूट भूमि के लिए; (iii) वादी-प्रथम प्रतिपक्षी ने नीलामी की वैधता को चुनौती देने के लिए वाद का मसौदा तैयार किया है और जब वाद की कार्यवाही का मूल कारण भूमि हदबंदी की कार्यवाही से उत्पन्न होता है, तो निषेधाज्ञा और घोषणा की मांग की है; (iv) यू.एल.सी.आर.ए में सीलिंग कार्यवाहियों से उत्पन्न मामलों पर सिविल न्यायालय की अधिकारिता निहित रूप से शामिल नहीं है; और (v) हालांकि अपीलकर्ता ने आदेश XLI नियम 22 सी.पी.सी के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष क्षेत्राधिकार के मुद्दे पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष पर या तो क्रॉस-ऑब्जेक्शन का ज़ापन दायर करके या अन्यथा नहीं किया, उसे इस न्यायालय के समक्ष तर्क उठाने से रोका नहीं गया है। यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने पूर्ण अधिकार क्षेत्र के मद्देनजर, अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण न्याय करने की अपनी शक्ति के साथ पढ़ा जाता है, पहली बार उठाए गए नए आधारों पर विचार कर सकता है यदि इसमें कानून का प्रश्न शामिल है जिसमें अतिरिक्त

साक्ष्य जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से अदालत के अधिकार क्षेत्र से संबंधित जो मामले की जड़ तक जाता है।

57. अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लिमिटेड (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अचल संपत्ति से संबंधित विवाद अपने आप में वाणिज्यिक विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन यदि यह वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) की उप-धारा (vii) के अंतर्गत आता है, यह वाणिज्यिक विवाद बन जाता है। आगे यह माना गया कि "व्यापार और वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग किए जाने वाले" शब्दों की व्याख्या उद्देश्यपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए। शब्द "प्रयुक्त" "वास्तव में प्रयुक्त" को दर्शाता है और यह "उपयोग के लिए तैयार" या "उपयोग किए जाने की संभावना" या "उपयोग किए जाने के लिए" नहीं हो सकता है। इसे "वास्तव में उपयोग किया जाना चाहिए। निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"24. ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने इस आधार के तहत कार्यवाही की है कि वाद के पक्षकार विशेष रूप से, अपीलकर्ता-वादी एस्टेट एजेंट के रूप में व्यवसाय कर रहे हैं और भूमि, भवन आदि का प्रबंधन कर रहे हैं और अपीलकर्ता-वादी कंपनी के मेमोरेंडम एंड आर्टिकल्स ऑफ एसोसिएशन में उल्लिखित उद्देश्य ने स्थापित किया है कि विचाराधीन संपत्ति का उपयोग विशेष रूप से वादी के व्यवसाय के बजाय व्यापार या

वाणिज्य में किया जा रहा है। जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही कहा गया है, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि जिस समय 2012 में बेचने का समझौता हुआ था, उस समय संपत्ति का उपयोग विशेष रूप से व्यापार और वाणिज्य में किया जा रहा था ताकि विवाद को अधिनियम की धारा 2 (1) (सी) के उप-खंड (vii) के दायरे में लाया जा सके। संपत्ति का उपयोग व्यापार और वाणिज्य के संबंध में किए जाने की संभावना है, वही वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को आकर्षित करने का आधार नहीं हो सकता है।

25. उज्ज्वला राजे गायकवाड़ बनाम हेमाबेन अच्युत शाह 2017 एस.सी.सी. गुजरात 583 के मामले में, प्रतिपक्षी संख्या-4 के पक्ष में अपीलकर्ता-मूल प्रतिपक्षी नंबर-1 द्वारा निष्पादित 17.76 करोड़ रुपये मूल्य के बिक्री विलेख को अवैध घोषित करने के लिए एक विशेष सिविल सूट संख्या 533/2011 स्थापित किया गया था और साथ ही, विचाराधीन भूमि के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए। अपीलकर्ताओं-प्रतिवादियों ने एक आवेदन दायर किया कि बिक्री विलेख में, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित समझौता वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (1) (सी) (vii) के अर्थ के भीतर आता है और उपरोक्त मामलों, एक करोड़ रुपये के मूल्य को वाणिज्यिक न्यायालय में स्थानांतरित किया जाना है। विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया जिसे गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी।

गुजरात उच्च न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक न्यायालयों, वाणिज्यिक प्रभागों और वाणिज्यिक अपीलीय प्रभागों की स्थापना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वाणिज्यिक विवादों में शामिल मामलों का निपटान वादी को शीघ्रता से, निष्पक्ष रूप से और उचित लागत पर किया जाता है, और यदि ऐसा कोई मुकदमा जो प्रोबेट कार्यवाही से उत्पन्न होता है और/या संपत्ति के संबंध में विवाद है, स्थानांतरित कर दिया जाता है वाणिज्यिक प्रभाग/वाणिज्यिक न्यायालय के मामले में, नियमित सिविल न्यायालयों और वाणिज्यिक प्रभाग/वाणिज्यिक न्यायालयों के बीच कोई अंतर नहीं होगा और वाणिज्यिक प्रभाग/वाणिज्यिक न्यायालयों की स्थापना के उद्देश्य को विफल कर देगा।

26. वासु हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड बनाम गुजरात अक्रुति टीसीजी बायोच लिमिटेड और अन्य 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 724 में, मेरे विद्वान भाई द्वारा विस्तार से संदर्भित, यह माना गया था कि "प्रासंगिक खंड के सादे पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति "प्रयुक्त" का अर्थ "वास्तव में उपयोग किया गया" या "उपयोग किया जा रहा है" होना चाहिए। यदि विधायिका का इरादा दायरे का विस्तार करना था, तो उस स्थिति में इस्तेमाल की जाने वाली वाक्यांश-विज्ञान अलग होती, उदाहरण के लिए, "उपयोग किए जाने की संभावना" या "उपयोग किए जाने के लिए"। शब्द "प्रयुक्त" "वास्तव में प्रयुक्त" को दर्शाता है और इसे "उपयोग के लिए तैयार" या "उपयोग किए जाने की संभावना" नहीं कहा जा सकता है; या "इस्तेमाल किया जाना है"। हम

गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई  
उपरोक्त उद्देश्यपूर्ण व्याख्या से पूरी तरह  
सहमत हैं।

27. उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक न्यायालयों,  
वाणिज्यिक प्रभागों और वाणिज्यिक अपीलीय  
प्रभागों की स्थापना का उद्देश्य और प्रयोजन  
यह सुनिश्चित करना है कि वाणिज्यिक विवादों  
में अंतर्वलित मामलों का मुकदमेबाजों को  
शीघ्रता से, उचित रूप से और उचित लागत पर  
निपटान किया जाए। वाणिज्यिक न्यायालयों  
की स्थापना के उद्देश्य और प्रयोजन तथा  
अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित फास्ट ट्रैकिंग  
प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए, वाणिज्यिक  
मुकदमों के शीघ्र निपटान के लिए अधिनियम  
के सांविधिक उपबंधों और उनमें समाविष्ट  
शब्दों की सार्थक व्याख्या की जानी है ताकि  
वादकारियों, विशेषकर जो व्यापार और वाणिज्य  
में लगे हुए हैं, जो देश के अर्थक विकास को  
आगे बढ़ाएं, लाभान्वित हो सकें। उपरोक्त  
तर्कों के आधार पर मैं अपने आदरणीय भाई  
जस्टिस ए.एस बोपन्ना के निष्कर्ष से सहमत  
हूँ।

58. मेसर्स ग्लासवुड रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड  
बनाम चंद्रविलास कैलाशकुमार में बॉम्बे  
हाईकोर्ट ने माना है कि धारा 2 (सी) के खंड 1  
में वर्गीकृत व्यक्तियों के बीच लेनदेन से  
उत्पन्न विवाद केवल 'वाणिज्यिक विवाद' की  
परिभाषा के दायरे में आने के योग्य हैं।  
न्यायालय ने आगे कहा कि यह जांच करने में  
सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है  
कि क्या विवाद 'वाणिज्यिक विवाद' के दायरे में

आएगा, और यदि नहीं, तो यह सामान्य  
सिविल विवाद की श्रेणी में आएगा और इस  
तरह के विवाद को वाणिज्यिक न्यायालय  
द्वारा विचारण की अनुमति नहीं दी जा सकती  
है, लेकिन सी.पी.सी के निर्धारित प्रावधानों के  
तहत एक सामान्य मुकदमे के रूप में विचारण  
किया जाना चाहिए।

59. कैलाश देवी खन्ना बनाम डी.डी ग्लोबल  
कैपिटल लिमिटेड में दिल्ली उच्च न्यायालय ने  
माना कि धन की वसूली के लिए सभी मुकदमे  
अधिनियम की धारा 2 (1) (सी) (आई) के  
तहत नहीं लाए जा सकते हैं जहां मुकदमा  
व्यापारिक दस्तावेजों से संबंधित किसी भी  
लेनदेन पर आधारित नहीं है।

60. आर कुमार बनाम टीएस जवाहर अय्या  
में मद्रास उच्च न्यायालय का विचार था कि  
चूंकि वादी ने फाइनेंसर्स की क्षमता में लेनदेन  
नहीं किया था, इसलिए विवाद "वाणिज्यिक  
विवाद" नहीं था और यह कि 2 (1) (सी) (i)  
में उल्लिखित व्यक्तियों के चार वर्गों का एक  
साधारण लेनदेन अकेले व्यापारिक दस्तावेजों से  
उत्पन्न होता है, एक वाणिज्यिक विवाद की  
परिभाषा के भीतर आएगा।

61. उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक न्यायालयों,  
वाणिज्यिक प्रभागों और वाणिज्यिक अपीलीय  
प्रभागों की स्थापना का उद्देश्य और लक्ष्य यह  
सुनिश्चित करना है कि वाणिज्यिक विवादों में  
शामिल मामलों का निपटारा वादियों को शीघ्रता  
से, निष्पक्ष रूप से और उचित लागत पर किया  
जाता है। वाणिज्यिक न्यायालयों की स्थापना

के उद्देश्य और प्रयोजन तथा अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित त्वरित निपटान प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए, वाणिज्यिक मुकदमों के शीघ्र निपटान के लिए अधिनियम के सांविधिक उपबंधों और उनमें समाविष्ट शब्दों की सार्थक व्याख्या की जानी है ताकि वादकारियों, विशेषकर जो व्यापार और वाणिज्य में लगे हुए हैं, लाभान्वित हो सकें जो बदले में देश के अर्थविकास को और बढ़ावा देंगे।

62. हालांकि इस तरह के प्रतिद्वंद्वी तर्कों को दोनों पक्षों के अधिवक्ता द्वारा आगे रखा गया था, उक्त प्रस्तुतियों को सार में निपटाया नहीं जा सकता है। इसके बजाय विवाद की प्रकृति और उसी पर मुकदमा चलाने का अधिकार क्षेत्र वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष वाद में ही स्थापित दलीलों में परिलक्षित होना चाहिए। वाद में कथनों में की गई दलीलें प्रारंभ में सक्षम वाणिज्यिक न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करने के लिए प्रासंगिक होंगी। इसलिए, गुणों और अन्य पहलुओं की व्याख्या करने से पहले, वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष पक्षों द्वारा स्थापित वाद, लिखित सबमिशन और अन्य दलीलों की सावधानीपूर्वक जांच करना आवश्यक होगा। प्रतिपक्षी कंपनी ने अपीलकर्ता प्राधिकरण और वादी कंपनी के बीच लेनदेन की प्रकृति का उल्लेख किया है। चूंकि दलीलों और वाद के बारे में विवरण पहले ही ऊपर के रूप में विस्तार से दिया गया था, यह स्वीकार की गई स्थिति है कि पट्टा समझौते के संदर्भ में न तो वादी कंपनी ने निर्धारित समय के अनुसार राशि जमा की और न ही निर्धारित समय के भीतर कोई निर्माण किया। यहां तक कि इसने मुकदमा दायर करने से पहले भी

निर्माण को बढ़ाने के लिए समय बढ़ाने के लिए कोई आवेदन नहीं किया है।

63. वाणिज्यिक न्यायालय विशेष रूप से वाणिज्यिक विवादों की कोशिश करने के लिए गठित किया गया है, जिसके पास उसी की कोशिश करने का अधिकार क्षेत्र है। उस पृष्ठभूमि में, वाद में की गई प्रार्थना का अवलोकन अनिवार्य रूप से इंगित करेगा कि वाद प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा जारी दिनांक 07.01.2021 के नोटिस की घोषणा/रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया था, जिसके द्वारा वादी कंपनी के पक्ष में निष्पादित दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख को प्रतिपक्षी-प्राधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया था। यहां तक कि अगर पट्टा विलेख के तहत अचल संपत्ति विषय वस्तु थी, तो यह दलील देना और साबित करना आवश्यक है कि उसी का उपयोग व्यापार या वाणिज्य में किया जा रहा था जिसके कारण वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया गया था। वाद में ऐसी बुनियादी दलीलों के बिना, बाद में दिए जाने वाले किसी भी स्पष्टीकरण से केवल ऐसी स्थिति पैदा होगी कि यदि कोई आपत्ति उठाई जाती है, तो प्रत्येक वाद में बाहरी सामग्री के आधार पर विचार करने की आवश्यकता होगी, यहां तक कि यह पता लगाने के लिए कि क्या पक्षों के बीच इच्छित लेनदेन ऐसी प्रकृति का था कि इसे वाणिज्यिक विवाद के रूप में माना जाना चाहिए।

64. प्रतिपक्षी कंपनी ने उपरोक्त मुकदमे में लिखित बयान दायर किया था, जिसे पेपर बुक के साथ संलग्न किया गया था, जिसमें अन्य



बातों के साथ-साथ कुछ तथ्य बताए गए थे और यह भी कि घोषणा और बेदखल या विस्तार की डिक्री विवेकाधीन राहत है जिसके लिए वादी कंपनी इस कारण से हकदार नहीं थी कि प्रतिपक्षी कंपनी ने 'कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय' से वर्ष 2015-19 के लिए वादी कंपनी की बैलेंस शीट भी दायर की थी और अवलोकन किया था इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वादी कंपनी ने इस तथ्य को छिपाया कि यह निष्क्रिय शेल कंपनी थी, जिसका कोई व्यावसायिक संचालन नहीं था, कोई टर्नओवर नहीं था और शून्य आय थी। प्लॉट के संबंध में वादी कंपनी द्वारा प्रतिपक्षी प्राधिकारी को भुगतान की गई 1,00,78,716/- रुपये की राशि को वादी कंपनी द्वारा लिए गए दीर्घकालिक असुरक्षित ऋणों के रूप में इसकी बैलेंस शीट में दर्शाया गया था, जो रिकॉर्ड में था और इसलिए, रिकॉर्ड के आधार पर हमारे सामने यह भी दबाव डाला गया था कि प्रासंगिक समय पर, या तो प्रतिपक्षी प्राधिकारी को शेष भुगतान करने के लिए या पट्टा विलेख की शर्तों के तहत आवश्यक उक्त भूखंड पर निर्माण करने के लिए वादी कंपनी के पास कोई पैसा नहीं था। इसलिए, प्रतिपक्षी कंपनी द्वारा लिखित बयान में यह भी दलील दी गई थी कि नोएडा क्षेत्र में व्यापार और रोजगार को बढ़ावा देने के लिए प्रतिपक्षी प्राधिकरण द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं को विशेष दरों पर एक संस्थागत भूखंड का आवंटन किया गया था। लेकिन वास्तव में वादी कंपनी एक ऐसी कंपनी है जिसका कोई संचालन नहीं है, शून्य टर्नओवर है और कोई व्यावसायिक रिकॉर्ड नहीं है और न तो यह कानूनी रूप से और न ही नैतिक रूप

से इस तरह के आवंटन से लाभ का हकदार था। प्रतिपक्षी कंपनी द्वारा दायर लिखित बयान में यह भी दलील दी गई थी कि वादी कंपनी को केवल 19.12.2005 को उक्त भूखंड की बोली लगाने की प्रक्रिया से कुछ समय पहले ही शामिल किया गया था, ताकि उक्त भूखंड के पट्टे के अधिकार रियायती आवंटन दरों पर प्राप्त किए जा सकें ताकि बाद में इसे बाजार में एक अचल संपत्ति सौदे के रूप में एक त्वरित मुनाफा बनाने के लिए प्रीमियम पर बेचा जा सके।

65. यह भी दबाया गया था कि भले ही अपीलकर्ता कंपनी विस्तृत लिखित बयान दायर किया, जो वादी कंपनी द्वारा खंडन नहीं किया गया, लेकिन वाणिज्यिक न्यायालय ने ध्यान में नहीं रखा और सारांश टिप्पणियों के साथ उक्त आपत्ति को खारिज कर दिया कि प्रतिपक्षी कंपनी का वादी कंपनी के खिलाफ कोई पर्याप्त अधिकार नहीं था क्योंकि वादी कंपनी और प्रतिपक्षी कंपनी के बीच अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं है। वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष वादी कंपनी द्वारा इसे आसानी से दबाया गया था क्योंकि पट्टा विलेख का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। वादी कंपनी द्वारा इस आधार पर पट्टा रद्द करने को चुनौती देने के लिए स्थापित एकमात्र मामला कि रद्द करने से पहले प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा भेजे गए दिनांक 13.12.2009, 03.02.2020, 17.06.2020 और 14.07.2020 के नोटिस वादी कंपनी के पंजीकृत पते पर नहीं भेजे गए थे, लेकिन वास्तव में इसे E-292-A सेक्टर 22, नोएडा, जो कंपनी के निदेशक का पता था,

को भेजा गया था, जिस पर वादी कंपनी अब उपलब्ध नहीं थी और पत्राचार के पते पर या सार्वजनिक सूचना सुनिश्चित करने के लिए कोई नोटिस नहीं लगाया गया था।

66. इस पृष्ठभूमि में, हमने पट्टा विलेख की भी जांच की है, जिसमें पट्टेदार द्वारा उल्लंघन के मामले में रद्द करने से पहले नोटिस जारी करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसके विपरीत रिकॉर्ड के अनुसार यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि कारण बताओ नोटिस वादी कंपनी को प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा 2013 और 2014 की शुरुआत में भेजे गए थे, जिसे वाद के पैरा-11 में विधिवत स्वीकार किया गया है/दावा किया गया है कि इसका पता केवल वर्ष 2015 में बदल गया है। वादी कंपनी ने उपरोक्त नोटिसों के जवाब में किसी भी कदम या उपाय के बारे में वाद में कोई मामला नहीं रखा था। वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1973 की धारा 43 के प्रावधानों पर भी भारी भरोसा किया गया है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि अधिनियम के प्रावधान के तहत किसी कंपनी को भेजे जाने वाले अपेक्षित नोटिस को उसके पंजीकृत कार्यालय या उसके प्रमुख कार्यालय या उसके व्यवसाय के स्थान पर भेजा जा सकता है। रिकॉर्ड से यह भी परिलक्षित होता है कि वादी कंपनी ने पट्टा विलेख सहित अपने सभी दस्तावेजों में उक्त पते का लगातार उपयोग किया है, जिससे पता चलता है कि वादी कंपनी ने उक्त पते को अपने व्यवसाय के स्थान के रूप में पेश किया था। वास्तव में, 2021 में इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई पिछली रिट याचिका (रिट सी नंबर 13225/2021) में

कंपनी के पते के रूप में उसी पते का उपयोग किया गया है। इसलिए, यह तर्क भी स्वीकार नहीं किया जाता है कि पता 2015 में बदल दिया गया था।

67. वाद में दिए गए बयानों से यह स्पष्ट है कि वादी कंपनी ने व्यापार और वाणिज्य के उद्देश्य से अचल संपत्ति के संबंध में पट्टे के अनुदान के लिए अपीलकर्ता प्राधिकारी से संपर्क किया। विचाराधीन भूखंड का पट्टा विलेख 19.01.2007 को निष्पादित किया गया था और पट्टा विलेख के अनुसरण में वादी कंपनी ने राशि का 30% जमा किया था। यह स्वीकार किया गया कि भूमि का कब्जा 01.02.2007 को वादी कंपनी को सौंप दिया गया था। पट्टा विलेख के क्लॉज 13 (ए) के संदर्भ में वादी कंपनी को कब्जे की वास्तविक तारीख से पांच साल के भीतर निर्माण पूरा करना था, जिसे दो साल और बढ़ाया जा सकता था। न तो इसने समझौते के संदर्भ में आवश्यक धन जमा किया और न ही निर्माण के लिए समय बढ़ाने के लिए कोई आवेदन दिया। नतीजतन, पट्टा विलेख को रद्द कर दिया गया और संपत्ति को प्रतिपक्षी कंपनी के पक्ष में फिर से आवंटित किया गया। उपरोक्त मुकदमा दिनांक 07.01.2021 के नोटिस की घोषणा/रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया था, जिसके तहत वादी कंपनी के पक्ष में निष्पादित दिनांक 19.01.2007 के पट्टा विलेख को प्रतिपक्षी प्राधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया था। अचल संपत्ति से संबंधित पट्टा विलेख से उत्पन्न विवाद के निर्णय के लिए तत्काल मुकदमा दायर किया गया है।

68. यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उस समय जब 2007 में पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था, संपत्ति का उपयोग विशेष रूप से व्यापार और वाणिज्य में किया जा रहा था ताकि विवाद को वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) के उपखंड (vii) के दायरे में लाया जा सके। केवल इसलिए कि संपत्ति का उपयोग व्यापार और वाणिज्य के संबंध में किए जाने की संभावना है, वही वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को आकर्षित करने का आधार नहीं हो सकता है।

69. उपरोक्त तथ्यों में प्रश्न उठता है कि क्या प्रस्तुत मामले में शामिल विवाद को वाणिज्यिक विवाद माना जा सकता है, जो वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के दायरे में होगा। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) के सादे पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि "प्रयुक्त" अभिव्यक्ति का अर्थ "वास्तव में उपयोग किया जाना" या "उपयोग किया जा रहा है" होना चाहिए। यदि विधायिका का इरादा दायरे का विस्तार करना था, तो उस स्थिति में वाक्यांश-विज्ञान "उपयोग किए जाने की संभावना" या "उपयोग किए जाने के लिए" का उपयोग किया गया होगा। कोई मामला वाणिज्यिक न्यायालय या उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक प्रभाग के अधिकार क्षेत्र में निम्नलिखित कारकों पर आएगा, अर्थात् (i) यह वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (1) (सी) के अर्थ के भीतर एक वाणिज्यिक विवाद होगा; और (ii) इस तरह के वाणिज्यिक विवाद

विद्युत अधिनियम, 1956 की धारा 2 (i) वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा के तहत एक निर्दिष्ट मूल्य के होते हैं।

70. उपरोक्त से यह स्थापित किया गया है कि अचल संपत्ति से संबंधित विवाद अपने आप में एक वाणिज्यिक विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन अगर यह अधिनियम की धारा 2 (1) (सी) के उप-खंड (vii) के तहत आता है, यह एक वाणिज्यिक विवाद बन जाता है, अर्थात् "व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग की जाने वाली अचल संपत्ति से संबंधित समझौते"। शब्द "व्यापार या वाणिज्य में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है" की व्याख्या उद्देश्यपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए। शब्द "प्रयुक्त" "वास्तव में प्रयुक्त" को दर्शाता है और यह "उपयोग के लिए तैयार" या "उपयोग किए जाने की संभावना" या "उपयोग किए जाने के लिए" नहीं हो सकता है। इसे "वास्तव में इस्तेमाल किया जाना चाहिए"।

71. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के उद्देश्यों और कारणों के कथन और सिविल प्रक्रिया संहिता में विभिन्न संशोधनों और वाणिज्यिक विवादों के वादों पर लागू संहिता में नए नियमों के सम्मिलन के अवलोकन पर यह स्पष्ट है कि इसे उच्च मूल्य वाले वाणिज्यिक विवादों के शीघ्र निपटान प्रदान करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है। उद्देश्यों और कारणों की एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या और सिविल प्रक्रिया संहिता में विभिन्न संशोधन संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते हैं कि अधिनियम के प्रावधानों को

सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है। यदि प्रावधानों को एक उदार व्याख्या दी जाती है, तो न्यायालयों के वाणिज्यिक प्रभाग के गठन के पीछे का उद्देश्य, अर्थात् मामले को फास्ट ट्रैक पर लाना और वाणिज्यिक विवादों का त्वरित समाधान विफल हो जाएगा। यदि हम उद्देश्यों और कारणों के कथन पर करीब से नज़र डालें, तो 'प्रारंभिक' और 'शीघ्र' जैसे शब्दों को शामिल किया गया है और दोहराया गया है। उद्देश्य केवल तभी पूरा किया जाएगा जब वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के प्रावधानों की संकीर्ण अर्थ में व्याख्या की जाती है और हमारी पारंपरिक कानूनी प्रणाली को परेशान करने वाली सामान्य प्रक्रियात्मक देरी से बाधित नहीं होती है।

72. वाणिज्यिक न्यायालय ने वाणिज्यिक विवाद की परिभाषा पूरी तरह से गलत व्याख्या की है कि वहाँ "वाणिज्यिक विवाद और वाणिज्यिक संबंध" के बीच एक अंतर है। इस प्रकार, विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय का यह निष्कर्ष कि पक्षों के बीच एक वाणिज्यिक विवाद है, दुर्बलता से ग्रस्त है।

73. उपरोक्त के मद्देनजर, हम सुविचारित राय के हैं कि कोई वाणिज्यिक विवाद नहीं है। वाणिज्यिक न्यायालय के पास पक्षों के बीच वर्तमान विवाद का फैसला करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। एक बार ये स्थापित हो गया कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के मद्देनजर वाणिज्यिक न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो अन्य मुद्दे केवल प्रकृति में अकादमिक हैं, जिन पर विचार

करने या न्यायालय द्वारा उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

74. उपरोक्त कारणों से हम दोनों अपीलों की अनुमति देते हैं और 2021 के सूट (कॉम) संख्या 167 में पीठासीन अधिकारी, वाणिज्यिक न्यायालय, गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 28.3.2022 को अपास्त किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 192

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1202 वर्ष

1999 साथ

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1979 वर्ष

2021

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, इलाहाबाद  
...अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती प्रमिला एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

नहीं, श्री पी.के. सिन्हा, श्री आर.के. मिश्रा,  
पूनम श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री शर्वे सिंह, श्री अरविन्द कुमार, सुश्री आरुषि  
खरे, श्री ए.एल. जयसवाल

**सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 -**

**धारा 167 - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा**

**194-ए (3) (ix) :-**अपील - बीमा कंपनी द्वारा

अधिनिर्णय को चुनौती देना -दुर्घटना विवादित नहीं है - मृतक एक ट्रॉली चालक था, उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई, वह अपने पिता, विधवा, चार पुत्रों और एक पुत्री को पीछे छोड़ गया - दावा - न्यायाधिकरण ने मृतक की आयु 30-35 वर्ष के बीच मानी, उसकी आय 2700/- रुपये प्रति माह थी, व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/3 कटौती की, 17 का गुणक लगाया, गैर-आर्थिक क्षति के लिए 7000/- रुपये जोड़े, और 12% की दर से ब्याज दिया -मुआवजे की मात्रा- अपीलार्थी ने तर्क दिया कि न्यायाधिकरण द्वारा विचारित आय उच्चतर थी और 12% की ब्याज दर वर्ष 1999 के लिए उचित नहीं थी - न्यायालय ने पाया कि, 1997 में ब्याज की दर 12% नहीं बल्कि 9% थी - मृतक की आयु विवादित थी और यह तर्क दिया गया कि व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार 1/5 वीं होनी चाहिए -अभिनिर्धारित हुआ, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थियों को देय कुल मुआवजे की पुनर्गणना दावे के दाखिल करने के दिनांक से लेकर अधिनिर्णय के निर्णय तक 9% ब्याज दर के साथ की जानी चाहिए - इसलिए, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है - न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और अधिनिर्णय को निर्दिष्ट सीमा तक संशोधित किया जाता है - प्रतिवादी-बीमा कंपनी निर्देशानुसार ब्याज के साथ 12 सप्ताह के भीतर अतिरिक्त राशि जमा करेगी - तदनुसार निर्देश जारी किए गए।(पैरा - 8, 10, 13, 15)

**अपील स्वीकृति (ई-11)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, एआईआर 2017 (एससी) 5157,
2. सरला वर्मा बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन, (2009) 6 एससीसी 121,
3. लक्कम्मा बनाम यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एआईआर 2021 एससी 3301,
4. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442, में प्रतिवेदित,
5. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291 में प्रतिवेदित,
6. आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 23 वर्ष 2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) में पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 1 वर्ष 2020,
7. बजाज आलियांज जनरल इश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य - रिट याचिका(याचिकाएं)(सिविल) संख्या 534 वर्ष 2020 - सर्वोच्च न्यायालय का आदेश दिनांक 27.01.2022.

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिन्हा और आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1202/1999 में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री शर्वे सिंह, आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1979/2021 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री शर्वे सिंह और प्रतिवादियों की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आरुषि खरे को सुना गया।

2. ये अपीलें, एम.ए.सी.टी./चतुर्थ-अपर जिला जज, इलाहाबाद (जिसे इसके बाद "न्यायाधिकरण" कहा गया है) द्वारा एम.ए.सी.पी. वाद संख्या 234/1997 में पारित निर्णय और पंचाट दिनांक 29.05.1999 को चुनौती देती हैं। दुर्घटना विवादित नहीं है। इन अपीलों में विचार के लिए शेष एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या कानून की स्थापित स्थिति को देखते हुए प्रदान किया गया मुआवजा 'उचित मुआवजा' है।

3. रिकॉर्ड से संकलित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 23.01.1997 को मृतक छग्गू लाल दोपहर लगभग 3:00 बजे अपनी ट्रॉली महोबा की ओर ले जा रहा था, उसी समय ट्रक संख्या यू.पी. 15बी 2657 के चालक ने उसे तेजी और लापरवाही से चलाते हुए मृतक की ट्रॉली में टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप छग्गू लाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई।

4. मृतक छग्गू लाल एक दुकान में ट्रॉली खींचने का काम करता था, जो अपने पीछे पिता, विधवा, चार बेटों और एक बेटी को छोड़ गया है। न्यायाधिकरण ने उसकी आयु 30-35 वर्ष के आयु वर्ग के बीच मानी है और उसकी

आय 2,700 रुपये प्रति माह निर्धारित की है, व्यक्तिगत खर्चों के मद में 1/3 हिस्सा काटा है, 17 का गुणक लागू किया है, गैर-वित्तीय क्षति के लिए 7,000 रुपये जोड़े हैं और 12% की दर से ब्याज प्रदान किया है।

5. आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1202/1999 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिन्हा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा मानी गई आय अधिक है और वर्ष 1999 में 12% की ब्याज दर रेपो दर नहीं थी। इसके विपरीत, आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1979/2021 में दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री शर्वे सिंह ने तर्क दिया कि न्यायाधिकरण द्वारा भविष्य की आय की हानि के मद में किसी राशि की गणना नहीं की गई है। आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1979/2021 में बीमा कंपनी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आरुषि खरे ने पुरजोर तरीके से यह तर्क दिया है कि प्रदान की गई राशि उचित और सही है, बल्कि बीमा कंपनी की अपील, जिसमें प्रदान किए गए मुआवजे को चुनौती दी गई है, के स्वीकार होने की संभावना है, और इसलिए वह आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 1202/1999 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिन्हा के तर्कों को अपनाती हैं।

6. जहाँ तक ब्याज का संबंध है, बीमा कंपनी की अपील को स्वीकार करना होगा। दुर्घटना के वर्ष अर्थात् 1997 में भी ब्याज की दर 12% नहीं बल्कि 9% थी, और इसलिए प्रदान की गई राशि की गणना रिट याचिका दायर करने

की तिथि से लेकर पंचाट के निर्णय तक 9% की दर से दोबारा की जाएगी।

7. मृतक 36 से 40 वर्ष की आयु वर्ग में था, जिसे विद्वान अधिवक्ता श्री शर्वे सिंह द्वारा गंभीरता से चुनौती दी गई है कि मृतक अपने पीछे विधवा, चार बेटे और एक बेटी छोड़ गया था, और इसलिए विद्वान अधिवक्ता सर्वे सिंह द्वारा कहा गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय 'नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, एआईआर 2017 (एससी) 5157' के अनुसार, व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 की कटौती के बजाय 1/5 की कटौती की जानी चाहिए। आगे यह भी तर्क दिया गया कि गैर-वित्तीय क्षति के मद में केवल 7,000/- रुपये दिए गए हैं, जो कि दी जाने वाली उचित राशि की तुलना में कम है। न्यायाधिकरण उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली के अनुसार नहीं चल सका है और गैर-वित्तीय क्षति के रूप में केवल 7,000/- रुपये दिए हैं।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मृतक एक दुकान में ट्रॉली खींचने वाला था, उस स्थान पर उसकी आय 2,700/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है जैसा कि न्यायाधिकरण द्वारा तय किया गया है, इस मासिक आय का 40% (भविष्य की संभावनाओं के रूप में) जोड़ा जाना होगा। दुर्घटना के समय मृतक 36-40 वर्ष की आयु वर्ग में था, इसलिए 'सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एससीसी 121' के निर्णय के अनुसार 15 का गुणक स्वीकार्य होगा। जहाँ तक विद्वान अधिवक्ता श्री शर्वे

सिंह के इस तर्क का प्रश्न है कि 1/5 की कटौती की जानी चाहिए, यह न्यायालय इसे स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि सभी बच्चे आपस में एक ही हिस्से का बँटवारा करेंगे, इसलिए व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 की कटौती उचित और सही है, तथा गैर-वित्तीय क्षति के लिए 70,000/- रुपये निर्धारित किए जाते हैं।

9. अतः, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे दी गई है:

- i. आय: 2,700/- रुपये
- ii. भविष्य की संभावनाओं हेतु प्रतिशत: 40% अर्थात् 1,080/- रुपये
- iii. कुल आय: 2,700 रुपये + 1,080 रुपये = 3,780/- रुपये
- iv. 1/3 की कटौती के बाद आय: 2,520/- रुपये
- v. वार्षिक हानि: 2,520 रुपये x 12 = 30,240/- रुपये
- vi. लागू गुणक : 17
- vii. कुल हानि: 30,240 रुपये x 17 = 5,14,080/- रुपये
- xii. गैर-वित्तीय मद के तहत राशि: 70,000/- रुपये
- xiii. कुल मुआवजा: 5,84,080/- रुपये

10. बढ़ी हुई राशि पर ब्याज, दावा याचिका दायर करने की तिथि से लेकर राशि जमा होने तक 9% होगा, लेकिन इसके बाद, उस अवधि के लिए जब यह मामला बिना अपील की देरी माफ हुए लंबित सूची में रहा, बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिन्हा और सुश्री

आरुषि खरे ने सही इंगित किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय '**लक्कम्मा बनाम यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एआईआर 2021 एससी 3301**' के अनुसार ब्याज कम कर दी जाएगी, अतः, दावा याचिका दायर करने की तिथि से राशि जमा होने तक बढ़ी हुई राशि पर 4% ब्याज देय होगा।

11. कोई भी राशि फिक्स्ड डिपॉजिट में नहीं रखी जाएगी। नाबालिग बच्चे अब तक बालिग हो चुके होंगे, और बेटी की शादी हो चुकी होगी, उन्हें समन (बुलावा) भेजा जाएगा और '**ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442**' में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए, उनके हिस्से की आनुपातिक राशि का भुगतान न्यायाधिकरण द्वारा 'अकाउंट पेयी चेक' के माध्यम से किया जाएगा।

12. सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं प्रस्तुत किया गया।

13. उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट को उपरोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। प्रतिवादी-बीमा कंपनी, ऊपर दिए गए निर्देशानुसार ब्याज सहित अतिरिक्त राशि आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर जमा करेगी।

14. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा होने पर, रजिस्ट्री को सबसे पहले कोर्ट फीस की कमी (यदि कोई हो) को काटने का निर्देश दिया जाता है। माननीय सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा '**ए.वी. पद्मा**' (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित अनुपात पर विचार करते हुए, निवेश का आदेश नहीं दिया जा रहा है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही ग्रामीण परिवेश के सीधे-सादे लोग हैं।

15. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा '**श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007 (2) जीएलएच 291**' के मामले में निर्धारित अनुपात को देखते हुए, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाएगा तथा यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक होता है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194A (3) (ix) के प्रावधानों के अनुसार 'स्रोत पर कर कटौती' के तहत उचित राशि काटने के हकदार हैं तथा यदि ब्याज की राशि किसी भी वित्तीय वर्ष में 50,000/- रुपये से अधिक नहीं होती है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकारी से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। इस उच्च न्यायालय द्वारा 'आदेश से प्रथम अपील संख्या संख्या 23/2001 (**श्रीमती सुदेष्णा एवं अन्य बनाम हरी सिंह एवं अन्य**) के पुनरवलोकन आवेदन संख्या 1/2020' में राशि वितरित करते समय उपरोक्त विचार को दोहराया गया है।

16. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में यहाँ किए गए संशोधनों के अनुसार नया पंचाट



तैयार किया जाए। राज्य के सभी न्यायाधिकरण धनराशि के वितरण के संबंध में इस न्यायालय के उपरोक्त निर्देशों का पालन करेंगे; उन्हें मुकदमेबाज की स्थिति, मामले के लंबित रहने की अवधि और 'ए.वी. पद्म' (उपरोक्त) के निर्णय पर ध्यान देना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना है।

विशेष अपील संख्या 29 वर्ष 2022  
अन्य संबंधित मामलों के साथ

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...अपीलार्थीगण  
बनाम  
उत्तर प्रदेश सीनियर बेसिक शिक्षक संघ  
...प्रतिवादी

17. न्यायाधिकरण, 'बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य' में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.01.2022 के आदेश के माध्यम से जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजे को रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि 10 वर्ष बीत चुके हैं, इसलिए राशि को बिना एफ.डी.आर. के दावेदारों के किसी राष्ट्रीयकृत बैंक के बचत खाते में जमा किया जाए।

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:  
मोहित जौहरी

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:  
गिरीश चंद्र वर्मा

18. अभिलेख न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया जाए।

19. यह न्यायालय इस पुरानी अपील के निस्तारण में सहयोग के लिए सभी चारों विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है।

ए. सेवा कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 14 और 16 - समानता का अधिकार - तर्कसंगत वर्गीकरण - नई पेंशन योजना - दिनांक 08.04.2009 का शासनादेश, जिसमें नई पेंशन योजना (एनपीएस) के अंतर्गत 01.04.2005 के बाद अनुदान सहायता के अंतर्गत आने वाले सभी शैक्षणिक संस्थानों को आच्छादित करने के लिए स्पष्ट किया गया है - संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई - सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त संस्थान के बीच वर्गीकरण - अनुमेयता- उ.प्र. राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियमावली, 1964 केवल सहायता प्राप्त संस्थान पर लागू किया जाता है - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ कि अनुदान प्राप्त करने वाले और गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों के बीच अंतर पेंशन नियमों में ही अंतर्निहित है - जब एक नई योजना शुरू की जाती है, तो कर्मचारियों के बीच एक सीमांकन रेखा खींची

-----  
(2023) 9 ILRA 195

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

जानी चाहिए, जो मौजूदा योजना के अंतर्गत पूरी तरह से आच्छादित किए गए हैं और जो आच्छादित नहीं हैं। ऐसा करते समय, राज्य सरकार ने न तो निर्दिष्ट दिनांक तय करने के मामले में और न ही शैक्षणिक संस्थानों के वर्गीकरण के मामले में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की भावना का उल्लंघन किया है। राज्य सरकार ने दिनांक 08.04.2009 को स्पष्टीकरण आदेश जारी करते समय इस व्यापक वर्गीकरण को ध्यान में रखा था जो किसी भी तरह से समानता के नियम का उल्लंघन नहीं करता - किया गया वर्गीकरण तर्कसंगत है और इसमें कोई संवैधानिक या कानूनी त्रुटि नहीं है। (पैरा 14, 31, 32, 35, 42 और 47)

विशेष अपील स्वीकृत। (ई-1)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. विशेष अपील संख्या 123 वर्ष 2013; उ.प्र. सीनियर बेसिक शिक्षक संघ सिंधी विद्यालय बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य
2. शैलेन्द्र दैना एवं अन्य बनाम एस.पी. दुबे एवं अन्य; 2007 (5) एससीसी 535
3. एन. सुरेश नाथन एवं एक अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 584
4. राजिंदर सिंह (डॉ.) बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य; 2001 (2) यूपीएलबीईसी 1502

5. श्याम सदन सिंह (डॉ.) बनाम चांसलर, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य; 2002 (1) यूपीएलबीईसी 152

6. गिरधारी लाल शंखवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2014 (1) यूपीएलबीईसी 657

7. नरिंदर एस. चड्ढा एवं अन्य बनाम ग्रेटर मुंबई नगर निगम एवं अन्य; 2015 (33) एलसीडी 1743

8. बुद्धिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2013 (1) एडीजे 254

9. सुधीर कुमार कंसल बनाम इलाहाबाद बैंक; (2011) 3 एससीसी 486

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा पारित)

(1) अपीलकर्ताओं-राज्य प्राधिकारियों की ओर से उपस्थित स्थायी अधिवक्ता श्री संजीव सिंह और श्री जी. सी. वर्मा, श्री जे.बी.एस. राठौर, श्री विनय मिश्रा, श्री पी. के. सिंह बिसेन, श्री प्रशांत अरोड़ा, श्री समरेन्द्र नाथ पाण्डेय, श्री हरि प्रकाश यादव, श्री नीरव चौरसिया, श्री कृष्ण माधव शुक्ल, श्री अजय कुमार, श्री मो. अतीक खान, श्री शोभित मोहन शुक्ला, श्री प्रसिद्धा नारायण सिंह, श्री राम कुमार मौर्य, श्री विंध्य वाशिनी कुमार, श्री गौस बेग, श्री उमेश कुमार श्रीवास्तव और श्री प्रदीप कुमार शुक्ला, अधिवक्तृगण प्रतिवादियों के लिए लंबे समय तक पेश हुए।

(2) विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-98 वर्ष 2022 में, कार्यालय ने 38 दिनों की देरी की सूचना दी है।

(3) अपीलकर्ताओं की ओर से स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादियों की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता को सुनने और देरी के लिए माफी मांगने वाले आवेदन में किए गए कथनों को पढ़ने के बाद, हम पाते हैं कि देरी को पर्याप्त रूप से समझाया गया है। तदनुसार, विलंब के लिए क्षमा करने के अनुरोध को स्वीकार किया जाता है और विशेष अपील दायर करने में हुई देरी को माफ किया जाता है।

(4) उपरोक्त विशेष अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के तहत दायर की गई हैं, जिसमें दिनांक 16.06.2021 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जैसा कि रिट याचिकाओं के एक समूह में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.07.2021 द्वारा संशोधित किया गया है, प्रमुख रिट याचिका संख्या-3458 (एस.एस) वर्ष 2009, उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में एक मामला दर्ज किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं/प्रतिवादियों द्वारा दायर रिट याचिकाओं को कुछ निर्देशों के साथ अनुमति दी गई है। आक्षेपित निर्णय और आदेश का ऑपरेटिव भाग निम्नानुसार है: -

"उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं और प्रमुख

रिट याचिका के एसोसिएशन के सदस्यों को पुरानी पेंशन योजना के तहत आच्छादित करें और सेवानिवृत्त शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों को तदनुसार पेंशन का भुगतान करें। यह भी निर्देश दिया जाता है कि प्रबंधन को इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर प्रत्येक याचिकाकर्ता से काटी गई राशि को छोड़कर साधारण ब्याज के साथ प्रबंधक के योगदान को जमा करने की अनुमति दी जाए और याचिकाकर्ताओं द्वारा संस्थानों में उनकी स्वीकृति की तारीख से उनके संबंधित पदों पर की गई नियुक्ति तक की सेवा की गणना की जाए और ओ.पी.एस. के तहत, इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से दो महीने की अवधि में पेंशन का भुगतान किया जाए। यदि पेंशन के भुगतान के लिए अर्हक सेवा की गणना के लिए अपेक्षित सेवा अपर्याप्त है, तो सहायता सूची में अनुदान पर विचार करने से पहले प्रदान की गई सेवा को प्रबंधकों के

*योगदान को जमा करने के बाद इस उद्देश्य के लिए गिना जाएगा और तदनुसार पेंशन उनके पक्ष में जारी की जाएगी।*

अंशदान जमा करने के मुद्दे को विराम दे दिया गया था और इसका अनुपालन कर लिया गया है और आगे किसी न्यायनिर्णयन की कोई गुंजाइश नहीं रह गई है; और विशेष अपीलों के वर्तमान समूह में न्यायनिर्णयन की विषय-वस्तु नहीं है।

### **संक्षिप्त इतिहास**

(5) इन अंतर-न्यायालय अपीलों के समूह में शामिल वास्तविक प्रश्न में प्रवेश करने से पहले, विवाद के चेकर्ड इतिहास को निम्नानुसार बताना उपयुक्त होगा: -

(क) मुकदमेबाजी का एक सेट अपने उद्गम का पता लगाता है जिसका उद्गम उच्च न्यायालय, लखनऊ में हुआ है, जबकि दूसरा इसी मुद्दे पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में संस्थित किया गया है, जिसका कुछ प्रभाव विशेष अपीलों के वर्तमान समूह पर निर्णय लेने के प्रयोजन से भी है और इस संबंध में संक्षिप्त चर्चा अपरिहार्य होगी।

(ख) लखनऊ में दायर रिट याचिकाएं वर्ष 2009 से 2021 तक दायर की गई थीं। इसी प्रकार, इलाहाबाद में इस न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिकाएं भी वर्ष 2009 से दायर की गई थीं।

(ग) सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना प्रासंगिक है कि 01.04.2005 से पूर्व सहायता अनुदान के अंतर्गत लाई गई संस्थाएं, जिनकी प्रबंधकीय अंशदान जमा करने के संबंध में सीमित शिकायतें थीं, इस कारण से प्रतिष्ठित थीं कि उनके मामले को नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के अंतर्गत सुपरिभाषित शर्तों में संरक्षित किया गया था, इसलिए प्रबंधकीय

(घ) विशेष अपीलों का वर्तमान समूह, वास्तव में, उनमें नियुक्त शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों वाली संस्थाओं से संबंधित है, जिन्हें 01.04.2005 से नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के लागू होने के बाद सहायता अनुदान पर लिया गया था। यदि इन 1,000 शिक्षण संस्थाओं को 01.12.2006 की स्थिति के अनुसार अनुदान सहायता के अंतर्गत नहीं लाया गया होता, जिसमें उक्त संस्थाओं में कार्यरत इन शिक्षकों ने उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ के माध्यम से प्रतिनिधि हैसियत से और व्यक्तिगत रूप से भी विभिन्न आधारों पर पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) के तहत लाभों के संरक्षण के लिए अपनी शिकायत दर्ज कराई होती, तो शायद विवाद उत्पन्न नहीं होता।

(ङ) दिनांक 08-04-2009 के सरकारी आदेश में उल्लिखित वर्गीकरण वह कारण बन गया जिसे पीड़ित व्यक्तियों ने इलाहाबाद और लखनऊ दोनों स्थानों पर रिट कार्यवाहियों के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष संयुक्त रूप से और अलग-अलग उठाया। लखनऊ में उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ द्वारा प्रतिनिधि क्षमता में एक रिट याचिका भी दायर की गई थी।

(च) मुकदमेबाजी की स्पष्ट तस्वीर खींचने के लिए उन छह रिट याचिकाओं का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो इलाहाबाद में शुरू की गई थीं और जिन पर 26.09.2012 को दिए गए सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लिया गया था। उपरोक्त छह रिट याचिकाओं के संबंध में प्रासंगिक विवरण नीचे दिए गए चार्ट में वर्णित हैं: -

इलाहाबाद

| क्रम स. | रिट का विवरण याचिका                                                             | या किस्म का संस्था पर के रूप में 01.04.2005 | की तिथि निर्णय | परिणाम         |
|---------|---------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------|----------------|----------------|
| 1       | 2012 की रिट-ए संख्या-45217, बुद्धिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य           | बिना सहायता प्राप्त                         | 26.09.12       | खारिज किया गया |
| 2       | 2012 की रिट-ए संख्या-45229, योगेंद्र नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य | बिना सहायता प्राप्त                         | 26.09.12       | खारिज किया गया |

|   |                                                                            |                     |          |                |
|---|----------------------------------------------------------------------------|---------------------|----------|----------------|
| 3 | 2010 की रिट-ए संख्या-47000, राम निरंजन मिश्रा और अन्य                      | बिना सहायता प्राप्त | 26.09.12 | खारिज किया गया |
| 4 | 2010 की रिट-ए संख्या-55778, राम यज्ञ शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य | बिना सहायता प्राप्त | 26.09.12 | खारिज किया गया |
| 5 | रिट-2012 की संख्या-47649, खयाली राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य        | बिना सहायता प्राप्त | 26.09.12 | अनुमति         |
| 6 | 2012 की रिट-ए संख्या-44742, भगवान दास मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश              | बिना सहायता प्राप्त | 26.09.12 | अनुमति         |

|  |                     |  |  |  |
|--|---------------------|--|--|--|
|  | राज्य<br>और<br>अन्य |  |  |  |
|--|---------------------|--|--|--|

(छ) उपर्युक्त छह रिट याचिकाओं पर बुद्धिराम के मामले को अग्रणी रिट याचिका मानते हुए निर्णय लिया गया था। उपरोक्त चार्ट से यह भी स्पष्ट है कि इन रिट याचिकाओं में से, दो रिट याचिकाएं जिन्हें अनुमति दी गई थी, उन संस्थानों से संबंधित थीं जो पहले से ही 01.04.2005 से पहले सहायता अनुदान के अधीन थीं और उसी के संबंध में, विवाद पहले ही सुलझा लिया गया है। जहां तक खारिज की गई चार रिट याचिकाओं का संबंध है, याचिकाकर्ताओं में से एक, नामत राम यज्ञ शुक्ला ने वर्ष 2012 में एक विशेष अपील संख्या-1843 सं 1843 सं 1843 संस्थापित की जिसके द्वारा दिनांक 26.09.2012 के सामान्य निर्णय और आदेश पर हमला किया गया और इसे 29.10.2012 को इलाहाबाद में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा खारिज किया गया।

(ज) दिनांक 29.10.2012 को दिया गया पूर्वोक्त निर्णय हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक होने के कारण इसे यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

पक्षकारों के अधिवक्ता को सुना और अपील के तहत आदेश का अवलोकन किया जिसके तहत रिट याचिकाओं के समूह को एक सामान्य आदेश द्वारा खारिज किया गया है।

रिट न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं की संस्था को

01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में शामिल किया गया है, जब नई पेंशन योजना शुरू की गई थी, याचिकाकर्ताओं का दावा नई पेंशन योजना के तहत शासित होगा।

अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पुरानी पेंशन योजना के लाभ के अनुदान के मामले में माध्यमिक शिक्षण संस्थानों के कर्मचारियों के लिए अधिक अनुकूल व्यवहार किया गया है। हमारा ध्यान रिट याचिका के पैरा-19 और 20 में किए गए कथनों की ओर आकर्षित किया गया जो इस प्रकार हैं: -

"19. याचिकाकर्ता माध्यमिक शिक्षा से संबंधित विभागीय आदेश दिनांक 13.04.2007 और 30.03.2007 को संलग्न कर रहा है जो गैर-सहायता प्राप्त संस्थान में प्रदान की गई सेवाओं की गिनती और पेंशन लाभ प्राप्त करने के लिए ब्याज के साथ सी.पी.एफ./जी.पी.एफ. जमा करने के लिए इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-11 के रूप में प्रदान करता है।

20. दिनांक 08.04.2009 के आदेश की अंतिम दो पंक्तियां, यह संस्थान के सभी कर्मचारियों को पेंशन लाभ से वंचित करती हैं, जो 01.04.2005 के बाद अनुदान सहायता सूची में आई थीं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का अवैध, मनमाना और उल्लंघन है, इसलिए रद्द किया जा सकता है।

उपरोक्त सबमिशन और ऊपर निकाले गए कथनों पर विचार करने पर, हम इस सबमिशन से सहमत होने में असमर्थ हैं कि उत्तरदाताओं ने अपीलकर्ता के खिलाफ कोई शत्रुतापूर्ण

भेदभाव किया है। अभिलिखित अभिवेदनों और सामग्रियों से यह स्पष्ट है कि 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में आने वाली संस्थाओं के सभी कर्मचारियों को पुरानी पेंशन योजना का लाभ नहीं दिया गया है।

हमें रिट न्यायालय की तुलना में अलग दृष्टिकोण लेने का कोई अच्छा कारण नहीं मिलता है।

अपील में दम नहीं है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(i) 26.09.2012 को दिए गए सामान्य निर्णय को विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-388 वर्ष 2013, बुधिराम बनाम में भी चुनौती दी गई थी। इलाहाबाद में उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य जिन्हें 19.08.2017 को पारित आदेश के संदर्भ में अनुमति दी गई थी, जिसे तैयार संदर्भ के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

*“सिविल प्रकीर्ण देरी माफी आवेदन संख्या-111552 वर्ष 2013 विशेष अपील दायर करने में देरी के लिए दिखाया गया कारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए है। देरी माफ की जाती है। इस आवेदन की अनुमति है।*

#### अपील के ज्ञापन पर आदेश

प्रस्तुत विशेष अपील के माध्यम से उठाए गए मुद्दे का निर्णय इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के निर्णय दिनांक 22 सितंबर 2016 के तहत किया गया है, जो उत्तर प्रदेश राज्य

द्वारा दायर विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-561 वर्ष 2016 से संबंधित विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-560 वर्ष 2016 में पारित किया गया है।

उक्त निर्णय के मद्देनजर, इस अपील का भी उसी कारण से और समान निर्देशों के साथ निपटान किया जाता है। दिनांक 26.02.2012 के आक्षेपित आदेश को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

रिट याचिका को 22 सितंबर 2016 के निर्णय में की गई टिप्पणियों के आलोक में निर्णय के लिए एकल न्यायाधीश के समक्ष नए सिरे से सूचीबद्ध किया जाए।

इस विशेष अपील की अनुमति दी जाती है।

(ज) पूर्वोक्त आदेश इलाहाबाद उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के निर्णय को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया था, जो 22.09.2016 को राज्य द्वारा दायर दो इंट्रा-कोर्ट अपीलों में पारित किया गया था, अर्थात् विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-560 वर्ष 2016 के साथ विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-561 वर्ष 2016 का निर्णय लिया गया था। दिनांक 22.09.2016 के निर्णय के अनुसार, जिसका संदर्भ उपरोक्त आदेश में दिया गया था, बुधराम द्वारा दायर विशेष अपील संख्या-388 वर्ष 2013, जिसे खारिज किया गया जाना चाहिए था, का एक आकस्मिक परिणाम निकला।

(ट) यह नोट करना प्रासंगिक है कि राज्य द्वारा दायर दो इंट्रा-कोर्ट अपीलों में 22.09.2016 को इलाहाबाद में पारित डिवीजन बेंच के फैसले में दो अन्य निर्णयों अर्थात् यूपी

सीनियर बेसिक शिक्षा संघ सिंधी विद्यालय के साथ-साथ बुधिराम (एकल न्यायाधीश) में डिवीजन बेंच के फैसले पर ध्यान दिया गया था, दोनों ने विवाद को शांत कर दिया था।

(ठ) डिवीजन बेंच के दिनांक 22.09.2016 के निर्णय में किसी भी तरह से डिवीजन बेंच के 29.10.2012 के फैसले का उल्लेख नहीं किया जा सकता था, जिसके तहत बुधिराम के प्रमुख मामले में एकल न्यायाधीश के फैसले को बुधिराम अर्थात् राम यज्ञ शुक्ला की तुलना में समान रूप से स्थित व्यक्ति द्वारा दायर विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2012 की बर्खास्तगी के साथ बरकरार रखा गया था।

(6) अब लखनऊ में लंबित मुकदमे पर आते हैं, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ द्वारा प्रतिनिधि क्षमता में दायर रिट याचिका संख्या-3458 (एस.एस) वर्ष 2009 को इस बीच लखनऊ में उच्च न्यायालय द्वारा 04.01.2013 को भी खारिज किया गया था। लखनऊ में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को इलाहाबाद में चार समान रिट याचिकाओं को दिनांक 26.09.2012 के निर्णय के माध्यम से खारिज करने या 29.10.2012 को विशेष अपील की बर्खास्तगी से अपनी ताकत प्राप्त नहीं हुई, जो कि एक समान व्यक्ति (राम यज्ञ शुक्ला), यानी विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2012 द्वारा दायर की गई थी। लखनऊ में रिट न्यायालय द्वारा लागू सिद्धांत, हालांकि, इलाहाबाद में दिए गए पूर्वोक्त निर्णयों के अनुरूप था।

(7) उ०प्र० वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ ने रिट न्यायालय के दिनांक 04.01.2013 के निर्णय से व्यथित होकर लखनऊ स्थित इस न्यायालय के समक्ष विशेष अपील संख्या-123 वर्ष 2013 संस्थित करने का निर्णय लिया जिसे गुण-दोष के आधार पर दिनांक 04.12.2015 को पारित विस्तृत निर्णय द्वारा खारिज किया गया। 04.12.2015 को उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ के मामले में दिया गया यह निर्णय वह था जिस पर इलाहाबाद में डिवीजन बेंच ने 22.09.2016 के निर्णय के तहत दो राज्य इंद्रा-कोर्ट अपीलों की अनुमति देते समय भरोसा किया था।

(8) यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि 22.09.2016 को जिन दो राज्य अंतर-न्यायालय अपीलों की अनुमति दी गई थी, वे 18.04.2014 को रिट न्यायालय द्वारा पारित दो विसंगतिपूर्ण आदेशों से उत्पन्न हुई थीं, जो 26.09.2012 को तय किए गए बुधिराम के फैसले के विरोध में थीं, जिसके तहत समान रूप से स्थित व्यक्तियों की चार रिट याचिकाएं खारिज कर दी गई थीं। डिवीजन बेंच ने 22.09.2016 को राज्य अपील की अनुमति देते हुए बुधिराम के फैसले को एक अच्छा कानून माना और यह सही भी था। इसका कारण यह है कि विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2012 को खारिज होने के परिणामस्वरूप 29.10.2012 को डिवीजन बेंच द्वारा बुधिराम के फैसले को पहले ही बरकरार रखा गया था और दूसरा, इसी मुद्दे से संबंधित यूपी सीनियर बेसिक शिक्षा संघ द्वारा दायर विशेष अपील संख्या-123 वर्ष 2013 को भी 04.12.2015 को खारिज किया गया था।



(9) यह न्याय का उपहास है कि विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-388 वर्ष 2013, जिसे खारिज किया जाना था, ने ऊपर उद्धृत आदेश दिनांक 19.08.2017 द्वारा एक बंद विवाद को फिर से खोल दिया। यह विसंगति तब और स्पष्ट हो जाती है जब 19.08.2017 को पारित आदेश को 22.09.2016 के फैसले के आलोक में संचालित किया गया माना जाता है, जिसके अनुसार अपील जिसे खारिज किया गया जाना चाहिए था, उसे किसी भ्रम में अनुमति दे दी गई। लखनऊ और इलाहाबाद दोनों में एक ही मुद्दे पर विशेष अपीलों के परिणाम को नीचे दिए गए चार्ट में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: -

| क्रम संख्या- | विशेष अपील का विवरण                                                                          | संस्थान का स्थान | आक्षेपित निर्णय की तिथि     | परिणाम/ की तिथि निर्णय  |
|--------------|----------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|-----------------------------|-------------------------|
| 1            | 2012 की विशेष अपील संख्या 1843, राम यज्ञ शुक्ल वी। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य                | इलाहाबाद         | 26.09.12 (बुद्धिराम निर्णय) | खारिज कर दिया/ 29.10.12 |
| 2            | 2013 की विशेष अपील संख्या 123, उ.प्र. वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ वि. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य | लखनऊ             | 04.01.13                    | बर्खास्त / 04.12.15     |

|   | अन्य                                                                                                                                                                                    |          |                             |                                                         |
|---|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------|-----------------------------|---------------------------------------------------------|
| 3 | विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 560 2016, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वी। महावीर सिंह यादव के साथ विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 561 2016, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महेश प्रसाद श्रीवास्तव | इलाहाबाद | 18.04.14                    | अनुमति/ 22.09.16                                        |
| 4 | विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 388 2013, बुद्धिराम वी. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य                                                                                                           | इलाहाबाद | 26.09.12 (बुद्धिराम निर्णय) | अनुमति/ 19.08.17 (सौभाग्य से)                           |
| 5 | 2013 की विशेष अपील संख्या 123 में 2016 का पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1502, उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य                                                     | लखनऊ     | 04.12.15                    | अनुमति/ 07.11.19 (आदेश दिनांकित 19.08.17 के परिणाम में) |

|  |         |  |  |  |
|--|---------|--|--|--|
|  | और अन्य |  |  |  |
|--|---------|--|--|--|

लखनऊ और इलाहाबाद दोनों में पूर्वोक्त तरीके से एक बंद मुद्दे को फिर से खोलना गलत था, खासकर जब उपर्युक्त दोनों निर्णय अंतिम हो गए थे और समान रूप से स्थित प्रभावित शिक्षकों द्वारा बिल्कुल भी चुनौती नहीं दी गई थी।

(10) यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ द्वारा दिनांक 04.12.2015 को दायर विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2012 (राम यज्ञ शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और विशेष अपील संख्या-123 वर्ष 2013 को दिनांक 04.12.2015 को दायर विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2013 को खारिज करते हुए दो डिवीजन बेंच के निर्णयों द्वारा जो भी तय किया गया था, जिसमें दो राज्य इंद्रा-कोर्ट अपीलों की अनुमति देने का मार्गदर्शन किया गया था। विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-560 वर्ष 2016 के साथ विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-561 वर्ष 2016 को उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, फिर भी कानून के वास्तविक प्रभाव को डिवीजन बेंच द्वारा 19.08.2017 को विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-388 वर्ष 2013 को प्रेषित करते समय बुरी तरह से गलत समझा गया और उसके आधार पर, समीक्षा आवेदन संख्या-1502 वर्ष 2016 को 07.11.2019 को अनुमति दी गई। न्यायिक प्रक्रिया में कभी-कभी आकस्मिक स्थिति से इंकार नहीं किया जा सकता है और गलती को स्वीकार किया जाता है।

(11) संबंधित विशेष अपीलों में 29.10.2012 और 22.09.2016 को दिए गए कम से कम दो डिवीजन बेंच के निर्णयों के पूर्ण विस्मरण में

(12) लखनऊ में समीक्षा आवेदन संख्या-1502 वर्ष 2016 में दिए गए निर्णय या इलाहाबाद में विशेष अपील संख्या-388 वर्ष 2013 में दिए गए आदेश दिनांक 19.08.2017 के आदेश के अनुभवजन्य विश्लेषण पर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2005 के सरकारी आदेश के माध्यम से लागू नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) की प्रयोज्यता, हालांकि अंततः कट-ऑफ के बाद अनुदान सहायता के तहत लागू किए गए गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों के संबंध में आकस्मिक रूप से फिर से खोला गया था दिनांक अर्थात् 01.04.2005 की तारीख है। नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) जिसे राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया था और दिनांक 28.03.2005 के सरकारी आदेश के माध्यम से 01.04.2005 से लागू किया गया था, तैयार संदर्भ के लिए, निम्नानुसार है: -

*"राज्य सरकार ने अपने दीर्घकालिक राजकोषीय हित को ध्यान में रखते हुए और केंद्र सरकार द्वारा अपनाए गए पैटर्न का व्यापक रूप से पालन करते हुए, राज्य सरकार और सभी राज्य नियंत्रित स्वायत्त संस्थानों और राज्य सहायता प्राप्त निजी*

शैक्षणिक संस्थानों की सेवा में नए प्रवेशकों के लिए मौजूदा परिभाषित लाभ पेंशन योजना के स्थान पर एक नई परिभाषित योगदान पेंशन प्रणाली शुरू करने के निम्नलिखित प्रस्ताव को मंजूरी दे दी है, जहां मौजूदा पेंशन योजना का पैटर्न है सरकारी कर्मचारियों के लिए योजना है और राज्य सरकार की समेकित निधि द्वारा वित्त पोषित है: -

(i) 1 अप्रैल, 2005 से नई परिभाषित अंशदान पेंशन प्रणाली राज्य सरकार की सेवा में भर्ती किए गए सभी नए कर्मचारियों और ऊपर उल्लिखित सभी राज्य नियंत्रित स्वायत्त/राज्य सहायता प्राप्त निजी शैक्षिक संस्थाओं पर अनिवार्य रूप से लागू होगी। तथापि, मौजूदा पेंशन योजना में शामिल कर्मचारी, जिनकी सेवा 1 अप्रैल, 2005 को 10 वर्ष से कम की होगी, वे भी स्वैच्छिक रूप से मौजूदा पेंशन योजना के स्थान पर नई पेंशन प्रणाली का विकल्प चुन सकते हैं।

(ii) नई परिभाषित अंशदान पेंशन प्रणाली के तहत, कर्मचारी वेतन और महंगाई भत्ते के 10 प्रतिशत के बराबर मासिक योगदान देगा। नियोक्ता का अंशदान राज्य सरकार अथवा

संबंधित स्वायत्त संस्था/निजी शैक्षिक संस्थान द्वारा किया जाएगा। तथापि, राज्य सरकार नियोक्ता का अंशदान करने के लिए संबंधित स्वायत्त संस्था निजी शैक्षिक संस्था को तब तक अनुदान प्रदान करेगी जब तक कि संस्थाएं स्वयं अंशदान करने की स्थिति में न हों। योगदान और निवेश रिटर्न एक खाते में जमा किया जाएगा जिसे पेंशन टियर-I खाते के रूप में जाना जाता है। सेवा अवधि के दौरान इस खाते से कोई निकासी की अनुमति नहीं दी जाएगी। परिभाषित लाभ पेंशन और जी.पी.एफ. के मौजूदा प्रावधान नई परिभाषित अंशदान पेंशन प्रणाली द्वारा आच्छादित किए गए नए भर्ती के लिए उपलब्ध नहीं होंगे।

(iii) चूंकि नए भर्ती किए गए कर्मचारी सामान्य भविष्य निधि की सदस्यता नहीं ले पाएंगे, इसलिए उनके पास पेंशन टियर-I खाते के अलावा स्वैच्छिक टियर-II खाता भी हो सकता है। हालांकि, नियोक्ता टियर-II खाते में योगदान नहीं करेगा। टियर-II खाते में परिसंपत्तियों का निवेश/प्रबंधन ठीक उसी प्रक्रिया के माध्यम से किया जाएगा जिस प्रक्रिया के तहत पेंशन टियर-I खाते के लिए किया जाता है।

हालांकि, कर्मचारी किसी भी समय अपने पैसे के सभी 'दूसरे स्तर' का हिस्सा निकालने के लिए स्वतंत्र होगा।

(iv) कर्मचारी आमतौर पर सेवानिवृत्ति के समय पेंशन प्रणाली के टियर-1 से बाहर निकल सकता है। बाहर निकलने पर कर्मचारी को अनिवार्य रूप से किसी मान्यता प्राप्त बीमा कंपनी से वार्षिकी खरीदने के लिए पेंशन धन का 40 प्रतिशत निवेश करना होगा ताकि सेवानिवृत्ति के समय कर्मचारी और उसके आश्रित माता-पिता और उसके पति या पत्नी के जीवनकाल के लिए पेंशन प्रदान की जा सके। हालांकि, शेष पेंशन धन कर्मचारी द्वारा एकमुश्त राशि के रूप में प्राप्त किया जाएगा, जिसे वह किसी भी तरह से उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होगा। सेवानिवृत्ति से पहले पेंशन टियर-1 से बाहर निकलने वाले कर्मचारी के मामले में, अनिवार्य वार्षिकीकरण पेंशन धन का 80 प्रतिशत होगा।

(v) ऐसे अनेक पेंशन निधि प्रबंधक होंगे जो मुख्यतः निवेश विकल्पों की तीन श्रेणियों की पेशकश करेंगे। पेंशन फंड मैनेजर और रिकॉर्ड कीपर संयुक्त रूप से पिछले प्रदर्शन के बारे में आसानी

से समझी जाने वाली जानकारी देंगे ताकि कर्मचारी निवेश विकल्पों के बारे में सूचित विकल्प बनाने में सक्षम हो।

2. नई पेंशन प्रणाली के संचालन की प्रभावी तिथि 1 अप्रैल, 2005 होगी।

(13) यह नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) आवेदन है जिसमें विवाद का विषय बन गया है। इसकी प्रयोज्यता का दायरा लगभग 1, 000 शैक्षणिक संस्थानों में काम करने वाले शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों द्वारा विवाद की जड़ है, जिन्हें 01.12.2006 या उसके बाद सहायता अनुदान के पंखों के भीतर लाया गया था।

(14) वास्तविक विवाद राज्य सरकार द्वारा दिनांक 08.04.2009 के सरकारी आदेश के तहत की गई व्याख्या के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसके द्वारा ऐसी सभी शैक्षिक संस्थाएं जो 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत आती हैं, को नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के तहत शामिल किए जाने का स्पष्टीकरण दिया गया था।

#### कानूनी प्रावधान

(15) संक्षेप में कहा गया है, अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों का मामला यह है कि 1958 में, शिक्षा संहिता जारी की गई थी और 17.12.1965 को, राज्य सरकार ने एक सरकारी आदेश जारी किया था जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक

संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि-बीमा-पेंशन नियम, 1964 [इसके बाद '1964 नियम' के रूप में संदर्भित] बनाए गए थे। इसके बाद, 19.08.1972 को, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 [संक्षेप में, इसे '1972 अधिनियम' के रूप में कहा गया है] लागू हुआ। बाद में, वर्ष 1975 में, राज्य सरकार ने 1972 अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बुनियादी स्कूल (शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें और अन्य शर्तें) नियम, 1975 [संक्षेप में, इसे '1975 नियम' कहा जाता है] प्रख्यापित किया।

(16) दिनांक 10.03.1978 को राज्य सरकार ने एक शासनादेश जारी किया जिसमें यह उपबंध किया गया था कि सहायता प्राप्त कनिष्ठ उच्च विद्यालयों के शिक्षक जो ट्रिपल बेनिफिट योजना वर्ष 1964 द्वारा शासित होते हैं और जो या तो 01.03.1977 के बाद सेवानिवृत्त हुए थे अथवा 01.03.1977 के बाद सेवानिवृत्त होने वाले थे, उन्हें दो प्राथमिक शर्तों को पूरा करने पर राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू दर पर पेंशन दी जा सकती है - एक यह कि ये शिक्षक प्रभावी हैं 01.03.1977 से शुरू की गई राशि अंशदायी भविष्य निधि के स्थान पर सामान्य भविष्य निधि द्वारा शासित होगी और तदनुसार, जी.पी.एफ. राशि 01.03.1977 से कटौती की जाएगी और 28.02.1977 तक उपार्जित प्रबंधकीय अंशदान ब्याज सहित सरकार के पास जमा किया जाएगा और अगली शर्त यह है कि किसी शिक्षक की मृत्यु के मामले में, ऐसे शिक्षक का परिवार न तो मृत्यु-सह-उपदान और न ही परिवार पेंशन का

हकदार होगा। सरकारी आदेश में आगे यह परिकल्पना की गई है कि दिनांक 17-12-1965 की ट्रिपल बेनिफिट स्कीम और शिक्षा संहिता, 1958 के परिशिष्ट VIII को उपर्युक्त सीमा तक संशोधित किया जाएगा।

(17) दिनांक 13.03.1978 को उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बुनियादी विद्यालय (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1978 [शीघ्र ही इन्हें '1978 नियम' कहा गया है] प्रख्यापित किए गए हैं। इसके साथ ही, उसी वर्ष 1978 में, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश जूनियर हाई स्कूल (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1978 [संक्षिप्तता में, इसे '1978 अधिनियम' के रूप में वर्णित किया गया है] को अधिसूचित किया।

(18) दिनांक 13.06.1984 को राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अनुसचिवीय स्टाफ और समूह 'घ' कर्मचारियों की भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1984 [संक्षेप में इसे '1984 नियमावली' कहा जाता है] जारी किया।

(19) 1989-1998 की अवधि के दौरान, उत्तर प्रदेश राज्य में कई बुनियादी स्कूल स्थापित किए गए थे। 23.05.1998 को, राज्य सरकार ने एक सरकारी आदेश जारी किया जिसके तहत यह प्रावधान किया गया है कि उस अवधि से पहले जो अवधि जूनियर हाई स्कूल में एक जूनियर हाई स्कूल में शिक्षण स्टाफ और गैर-शिक्षण स्टाफ द्वारा खर्च की गई है, उस तारीख से पहले जिस पर उक्त जूनियर

हाई स्कूल को अनुदान सहायता प्रदान की गई थी, प्रदान की गई पेंशन के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने के उद्देश्य से गणना की जाएगी प्रबंधकीय अंशदान अंशदायी भविष्य निधि की अद्यतन राशि जी.पी.एफ. खाते में उक्त कर्मचारी के संबंध में ब्याज सहित 31.03.1998 तक जमा की जाती है। तत्पश्चात्, दिनांक 17-02-1999 और 26-07-2001 के शासनादेशों द्वारा ट्रिपल बेनिफिट के अंतर्गत उपाद्भूत प्रबंधकीय अंशदान को ब्याज सहित जमा करने की समा-सीमा को क्रमशः 30-06-1999 और 31-03-2002 तक बढ़ा दी गई है।

(20) इसके बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 05.02.2017 को एक शासनादेश जारी किया, जिसमें दिनांक 01.04.2005 से पूर्व सहायता अनुदान पर ली गई संस्थाओं को अनुमति दी गई कि वे अपने संबंधित स्कूलों के विधिवत चयनित शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के संबंध में 30.06.2017 तक ब्याज सहित प्रबंधकीय अंशदान जमा करें, जब स्कूल सहायता अनुदान पर नहीं थे।

(21) वर्तमान अंतर-न्यायालय अपीलों में मुद्दा 01.04.2005 के पश्चात् सहायता अनुदान के अंतर्गत लाई गई शैक्षिक संस्थाओं से संबंधित है।

किए गए प्रस्तुतियों के संदर्भ में चर्चा

(22) यह न्यायालय यह नोट करे कि जिन शिक्षण संस्थाओं में उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ के सदस्य कार्यरत हैं, उन्हें पक्षकार के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 01.04.2005 को नई पेंशन

योजना (एन.पी.एस.) के लागू होने की तारीख के बाद से ऐसी सभी संस्थाओं को सहायता अनुदान के अंतर्गत लाया गया है। निर्धारित तारीख के बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत लाई गई संस्थाओं को अब दिनांक 08-04-2009 के सरकारी आदेश द्वारा दिनांक 28-03-2005 को जारी राज्य के आदेश द्वारा नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के अंतर्गत विनियमित किया जाता है।

(23) यह केवल स्पष्टीकरण आदेश था जिसे उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ और अन्य याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती दी गई थी, जिनकी रिट याचिकाओं को 16.06.2021 को एकल न्यायाधीश द्वारा पारित एक सामान्य निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी, ने उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर अंतर-न्यायालय अपीलों के वर्तमान समूह को जन्म दिया है।

(24) श्री संजीव सिंह, राज्य के स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि इस तथ्य के बावजूद कि विशेष अपील संख्या-388 वर्ष 2013 और समीक्षा आवेदन संख्या-1502 वर्ष 2016 की अनुमति दी गई थी, फिर भी, राज्य के पक्ष में संबंधित विशेष अपीलों का निर्णय करने वाले दिनांक 29.10.2012 और 22.09.2016 के दो निर्णयों के बाध्यकारी प्रभाव को एकल न्यायाधीश द्वारा दरकिनार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह इस मुद्दे पर बाध्यकारी मिसाल है और एक विपरीत दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है एकल न्यायाधीश द्वारा दायर की गई याचिका त्रुटिपूर्ण है और कानून के तहत इसकी अनुमति नहीं है।

(25) राज्य के अधिवक्ता द्वारा किया गया अगला निवेदन इस आशय का है कि किसी भी रिट याचिका में, पीड़ित पक्षों ने 01.04.2005 से लागू नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) की वैधता पर सवाल नहीं उठाया है, इसलिए, नियम 19 वर्ष 1978 के आधार पर दिनांक 08.04.2009 के सरकारी आदेश के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा किए गए स्पष्टीकरण के विपरीत नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) को पढ़ना एकल न्यायाधीश के लिए खुला नहीं था नियम जो उक्त नियम में पूर्वव्यापी संशोधन द्वारा 01.04.2005 से संचालित होना बंद हो गए हैं, उन्हें चुनौती नहीं दी गई है।

(26) राज्य के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि नियम 3 और 4 वर्ष 1964 के नियमों की भाषा स्पष्ट शब्दों में कहती है कि पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) केवल उन संस्थानों पर लागू होगी जो पहले से ही सहायता अनुदान के तहत हैं, इसलिए, एक बार 01.04.2005 को पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) समाप्त हो जाने के बाद, परिणामी संरक्षण उन संस्थानों को नहीं दिया जा सकता है जिन्हें कट-ऑफ तारीख के बाद अनुदान सहायता के तहत लाया गया था। राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि शैक्षणिक संस्थानों के संबंध में नए प्रवेशकों को एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या दी जानी चाहिए, न कि एकल न्यायाधीश के रूप में आक्षेपित निर्णय में।

(27) राज्य के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि कट-ऑफ तारीख के आलोक में पीड़ित व्यक्तियों द्वारा दिए गए भेदभाव के तर्क का

कोई आधार नहीं है, जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि संस्थाएं नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के प्रवर्तन की तारीख के बाद सहायता अनुदान के तहत आई थीं, इसलिए, 08.04.2009 को जारी स्पष्टीकरण आदेश को कोई भी चुनौती योजना को एक अलग व्याख्या के लिए खुला नहीं छोड़ेगी, खासकर जब भेदभाव का तर्क पहले से ही प्रस्तुत दो बाध्यकारी उदाहरणों के तहत निरस्त कर दिया गया था।

(28) इसके विपरीत, निजी उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ने अपने तर्क को सूक्ष्म रूप से प्रतिबंधित कर दिया है कि सीमित विवाद जो रिट न्यायालय द्वारा तल्लीन किया गया था, आक्षेपित निर्णय के पैरा-24 से 30 से स्पष्ट है और तैयार संदर्भ के लिए इसे यहां निकाला गया है:

"24) इस न्यायालय द्वारा राज्य सरकार को तारीख बढ़ाने के लिए प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा की गई सिफारिश के संबंध में जानकारी देने के लिए निर्देश जारी किया गया था। तत्पश्चात्, दिनांक 08-04-2009 का विवादित आदेश पारित किया गया है।

25) आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण यह है कि आक्षेपित आदेश न तो नीतिगत निर्णय है और न ही सरकारी आदेश है, इसलिए, याचिकाकर्ताओं पर एन.पी.एस. की प्रयोज्यता के संबंध में लगाया गया राइडर मनमाना और लागू नियमों के विपरीत है।

उनका अगला निवेदन यह है कि आक्षेपित आदेश के तहत राज्य सरकार के विशेष सचिव ने 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश करने वाले कर्मचारियों पर लागू एन.पी.एस. को संशोधित करने का प्रयास किया है। याचिकाकर्ताओं के मामले में, कई मामलों में, किसी भी याचिकाकर्ता ने 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश नहीं किया है। इस प्रकार, उनका सबमिशन यह है कि आक्षेपित आदेश एन.पी.एस. के विपरीत है और उत्तरदाताओं द्वारा पारित एक कार्यकारी आदेश द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता है।

27) उनका आगे प्रस्तुत करना यह है कि आक्षेपित आदेश ने नियम वर्ष 1978 के नियम 19 की अनदेखी की। नियम 19 सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों के बीच अंतर नहीं करता है। विशेष सचिव इस तथ्य की मूल्यांकन करने में भी विफल रहे हैं कि शिक्षकों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों द्वारा प्रदान की गई सेवा, जबकि संस्थान सहायता सूची में अनुदान सूची में नहीं था, संस्थान को सहायता अनुदान की सूची में लेने के लिए आधार बनाया गया है।

28) राज्य शासन द्वारा योजना वर्ष 1965 के अनुसार वर्ष 1978 में जारी शासनादेश के अनुसार शासनादेश जारी कर पेंशन लाभों के भुगतान हेतु सहायता अनुदान प्रदान करने से पूर्व शिक्षकों एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों की सेवा को जोड़ने के संबंध में प्रबंधकीय निधि जमा करने का निर्णय लिया गया।

29) उनका आगे निवेदन यह है कि विशेष सचिव के पास दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना में आक्षेपित आदेश पारित करके अपना विचार जोड़ने का कोई अधिकार नहीं था, जिसके तहत एन.पी.एस. लागू किया गया था।

30) अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने कुछ निर्णयों पर भरोसा किया, जो इस प्रकार हैं:

i) उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षक संघ सिंधी विद्यालय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; विशेष अपील संख्या-123 वर्ष 2013।

शैलेंद्र दैना और अन्य बनाम एसपी दुबे और अन्य; 2007 (5) एस.सी.सी. 535

(iii) एन सुरेश नाथन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य; (1) एस.सी.सी. 584

(iv) राजेंद्र सिंह (डॉ.) बनाम पंजाब राज्य और अन्य; 2001 (2) यूपीएलबीईसी 1502

(v) श्याम सदन सिंह (डॉ.) बनाम चांसलर, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय और अन्य; 2002 (1) यूपीएलबीईसी 152

(vi) गिरधारी लाल शंखवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2014 (1) यूपीएलबीईसी 657

(vii) नरेन्द्र एस चड्ढा और अन्य बनाम ग्रेटर मुंबई नगर निगम और अन्य; 2015

(33) एलसीडी 1743।

(29) यह रिट न्यायालय द्वारा संदर्भित पूर्वोक्त प्रस्तुतियों और निर्णयों के प्रकाश में है कि उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का बचाव किया है।



**विश्लेषण**

(30) पक्षकारों के लिए अधिवक्ता को विस्तार से सुनना; पहला प्रश्न जो सामने आता है वह यह है कि जहां तक पेंशन योजना की प्रयोज्यता का संबंध है, क्या सहायता अनुदान के अंतर्गत कार्य कर रही संस्थाओं और गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं के बीच कोई अंतर है। इस प्रयोजन के लिए, न्यायालय उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि-बीमा-पेंशन नियम, 1964 के नियम 3 और 4 का उल्लेख करेगा जो नीचे उद्धृत हैं:

"3. ये नियम निम्नलिखित श्रेणियों के राज्य सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होंगे जो या तो स्थानीय निकाय या निजी प्रबंधन द्वारा चलाए जाते हैं और सहायता अनुदान के भुगतान के प्रयोजनों के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त हैं:

- (1) प्राथमिक विद्यालय;
- (2) जूनियर हाई स्कूल;
- (3) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय;

- (4) डिग्री कॉलेज;
- (5) प्रशिक्षण कॉलेज।

"4. (क) ये नियम राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए तीन प्रकार के सेवा लाभ अर्थात् अंशदायी भविष्य निधि, बीमा और पेंशन (ट्रिपल बेनिफिट स्कीम) के लिए हैं। लाभों

की मात्रा और जिन शर्तों द्वारा वे शासित होते हैं, उनका वर्णन अगले अध्यायों में किया गया है।

(बी) इन नियमों के प्रवर्तन की तारीख को पहले से ही स्थायी सेवा में एक कर्मचारी को इन नए नियमों का चुनाव करने या उसके लिए लागू मौजूदा नियमों द्वारा शासित होने के लिए जारी रखने का विकल्प दिया जाएगा।

(ग) किसी भी कर्मचारी को योजना के केवल एक भाग को चुनने का विकल्प नहीं दिया जाएगा, सिवाय इसके कि इन नियमों में अन्यथा विशेष रूप से प्रावधान किया गया है।

(घ) एक बार चुना गया विकल्प अंतिम होगा।

(31) पूर्वोक्त नियमों के सादे पठन से, यह स्पष्ट है कि पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) के प्रयोजनों के लिए नियमों के तहत एक स्पष्ट अंतर तैयार किया गया है कि यह अनुदान सहायता के तहत संचालित शैक्षिक संस्थानों पर लागू होगा।

(32) रिट न्यायालय ने दिए गए तर्कों की मूल्यांकन करते हुए अनिवार्य रूप से दो बुनियादी आधारों पर याचिकाकर्ताओं (यहां प्रतिपक्षी) के पक्ष में फैसला सुनाया है। पहला यह कि दिनांक 08.04.2009 के सरकारी आदेश द्वारा नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) का स्पष्टीकरण भेदभावपूर्ण है और दूसरा यह कि पेंशन की स्थिति को विनियमित करने के

प्रयोजनों के लिए सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों के बीच कोई अंतर नहीं है।

(33) संस्थानों की दो श्रेणियों के बीच अंतर के प्रश्न को पहले लेते हुए, यह ध्यान दिया जाता है कि दिनांक 17.12.1965 के सरकारी आदेश के तहत, ट्रिपल बेनिफिट स्कीम, अर्थात्, (i) अंशदायी भविष्य निधि, (ii) अनिवार्य जीवन बीमा और (iii) पेंशन सहित परिवार पेंशन शुरू की गई थी, लेकिन इसे 01.10.1964 से केवल सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों पर लागू किया गया था। नियमों के अध्याय 1 के नियम 3 और 4 में प्रावधान है कि उक्त नियम राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होंगे अर्थात् (1) प्राथमिक विद्यालय; (2) जूनियर हाई स्कूल; (3) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय; (4) डिग्री कॉलेज और (5) प्रशिक्षण कॉलेज या तो स्थानीय निकाय या निजी प्रबंधन द्वारा चलाए जाते हैं और सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त नियमावली के नियम-4 में विशेष रूप से प्रावधान है कि इन नियमों का उद्देश्य राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं के कर्मचारियों को तीन प्रकार के सेवा लाभ अर्थात् अंशदायी भविष्य निधि, बीमा और पेंशन (ट्रिपल बेनिफिट स्कीम) सुनिश्चित करना है।

(34) उपर्युक्त के मददेनजर, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964 लागू नहीं

होते हैं या लागू नहीं होते हैं जहां शैक्षिक संस्थान सहायता अनुदान के अधीन नहीं हैं।

(35) इसे और स्पष्ट करने के लिए, यह बताना आवश्यक है कि जब कोई नई योजना शुरू की जाती है, तो उन कर्मचारियों के बीच एक सीमांकन रेखा खींची जानी चाहिए, जो मौजूदा योजना के तहत पूरी तरह से आच्छादित किए गए हैं और जो नहीं हैं। ऐसा करते समय, राज्य सरकार ने कट-ऑफ तारीख निर्धारित करने या शैक्षिक संस्थाओं का वर्गीकरण करने के मामले में न तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की भावना का उल्लंघन किया है। राज्य सरकार ने दिनांक 08-04-2009 को स्पष्टीकरण आदेश जारी करते समय इस व्यापक वर्गीकरण को ध्यान में रखा था जो किसी भी प्रकार से समानता के नियम का उल्लंघन नहीं करता है। वर्गीकरण के रूप में व्यापक सिद्धांतों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्व सैनिक संघों के परिसंघ और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में निर्णय के पैरा-30 में [(2006)8 एस.सी.सी. 399] में रिपोर्ट किया गया था और इसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"30. हमारे फैसले में, इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्गीकरण कानूनी, वैध और अनुमेय होने के लिए, जुड़वां परीक्षण को पूरा करना चाहिए, अर्थात्,

(i) वर्गीकरण को एक समझदार अंतर पर स्थापित किया जाना चाहिए जो व्यक्तियों या चीजों को अलग करना चाहिए जो दूसरों को

छोड़ने या छोड़ने से एक साथ समूहीकृत हैं; और

(ii) ऐसे विभेद का संविधि अथवा प्रश्नगत विधान द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से युक्तिसंगत संबंध होना चाहिए।

(36) राज्य की ओर से उपस्थित स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रासंगिक समय पर राज्य सरकार के पास व्यक्तियों की तीन श्रेणियां विचाराधीन थीं, अर्थात् (क) सरकारी कर्मचारी (ख) स्वायत्त निकायों में पेंशन योग्य सेवा पर कार्यरत कर्मचारी और (ग) पेंशन नियम, 1964 के तहत सहायता अनुदान प्राप्त करने वाले और शासित शैक्षिक संस्थान। इसलिए, प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण का कड़ा विरोध किया गया जब प्रतिपक्षी-याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) को संस्थानों की दो श्रेणियों के बीच अंतर के बावजूद लागू किया गया था।

(37) राज्य के अधिवक्ता का तर्क होगा कि किए गए वर्गीकरण की स्थापना पूर्वोक्त निर्णय के आलोक में एक समझदार अंतर पर की गई थी, जिसे उत्तरदाताओं के अधिवक्ता यह इंगित करके खंडन करेंगे कि भर्ती के लिए अन्य सभी आवश्यकताओं के समान होने के मद्देनजर, ऐसा वर्गीकरण भेदभावपूर्ण है।

(38) यह स्पष्ट किया जाता है कि पेंशन नियमों के अंतर्गत विनियमित सेवा शर्तों में से एक है। भर्ती की शर्तें संस्थाओं की दो श्रेणियों को तब तक समान नहीं लाएंगी जब तक कि

सहायता अनुदान का तत्व कट-ऑफ तारीख को विद्यमान न पाया जाए जो वर्गीकरण के लिए निर्णायक रूप से प्रासंगिक हो। समान सेवा नियमावली के तहत गैर-सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं में 01.04.2005 से पूर्व की जा रही नियुक्ति के आधार पर तर्क दिए गए शत्रुतापूर्ण भेदभाव का वेतन निर्धारण के प्रयोजन के लिए प्रासंगिकता हो सकती है जिसका लाभ प्रदान किया गया था लेकिन 01.04.2005 के बाद पुरानी पेंशन की शर्तें समाप्त हो गई हैं, बाद में सहायता अनुदान के अंतर्गत आने वाली संस्थाओं के आधार पर अधिकार के मामले के रूप में यह कट-ऑफ तिथि तक स्वतः ही पुनर्जीवित नहीं होगी। पेंशन की स्थिति स्वतंत्र रूप से विनियमित होने के लिए खुली है और वर्गीकरण के प्रयोजनों के लिए, मौजूदा योजना को निदिष्ट कट-ऑफ तिथि पर लागू होना चाहिए।

(39) इस न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के बाद यह नहीं पाया कि यह मामला शत्रुतापूर्ण भेदभाव का मामला है। रिट न्यायालय, हमारे विनम्र विचार में, कानून के जनादेश के विपरीत उत्तरदाताओं द्वारा दिए गए तर्कों से दूर हो गया।

(40) यह सच है कि जिन विद्यालयों में याचिकाकर्ता (उत्तरदाता) पढ़ा रहे हैं या कार्य कर रहे हैं, वे नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के लागू होने के समय सहायता अनुदान के अंतर्गत नहीं थे, इसलिए, वे पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) के लाभ के हकदार नहीं थे क्योंकि वे नई योजना के लागू होने के बहुत बाद 1-12-2006 को सहायता अनुदान के

अंतर्गत आए थे, अर्थात्, नई योजना 1.4.2005 को या उसके बाद अनुदान सहायता के तहत आने वाले स्कूलों के कर्मचारियों के लिए लागू की गई थी। याचिकाकर्ता (यहां उत्तरदाता) उस कट ऑफ डेट के भीतर आच्छादित किए गए हैं।

(41) चूंकि योजना के कार्यान्वयन के समय संस्थाएं सहायता अनुदान सूची में नहीं थीं, इसलिए उनके मामले में दिनांक 10-3-1978, 23-5-1998, 17-2-1999, 26-7-2001 और 8-3-2002 के शासनादेश लागू नहीं थे। जिस तारीख को प्रतिपक्षी-संघ के सदस्य सेवारत संस्थान 1.12.2006 को ही सहायता अनुदान के तहत आए, इसलिए, यह नई योजना है जो उन पर लागू होगी। दिनांक 08-04-2009 के सरकारी आदेश द्वारा केवल यह स्पष्ट किया गया था कि दिनांक 01-04-2005 के बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत आने वाले स्कूलों के कर्मचारियों पर केवल नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) लागू होगी। एसोसिएशन कोई कारण नहीं दिखा पाई है या इंगित नहीं कर पाई है कि बाद में दिनांक 8.4.2009 का सरकारी आदेश भेदभावपूर्ण, मनमाना या अधिकार क्षेत्र के बिना कैसे है। किसी भी मामले में, एक स्पष्टीकरण आदेश मूल प्रावधानों के दायरे का विस्तार या परिवर्तन नहीं करता है।

(42) सहायता अनुदान प्राप्त करने वाली संस्थाओं और गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं के बीच अंतर पेंशन नियमावली में ही सन्निहित है, अतः स्थायी अधिवक्ता का यह निवेदन कि नई अंशदायी पेंशन योजना में शामिल संस्थाओं

के वर्गीकरण के संबंध में कुछ सीमांकन रखा होनी चाहिए और जिन व्यक्तियों को अपनी सेवा शर्तों को शासित करने वाले पूर्ववर्ती नियमों का लाभ मिल रहा था, सुविचारित है। जिस वर्गीकरण का उल्लेख किया गया है, उसे भेदभावपूर्ण नहीं कहा जा सकता। जहां तक शिक्षक संघ के मामले का संबंध है, वे केवल नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के लाभ के हकदार हैं क्योंकि इसके कार्यान्वयन की तारीख को हालांकि वे सेवा में नए प्रवेशकर्ता या भर्ती नहीं थे, लेकिन उक्त तारीख को, जब नई योजना लागू की गई थी, स्कूल स्वयं अनुदान सहायता के अधीन नहीं थे जिसमें वे सेवा कर रहे थे। इस प्रकार किए गए भेद को नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के कार्यान्वयन के लिए गलत नहीं ठहराया जा सकता है। दिनांक 8-4-2009 का सरकारी आदेश इस बात पर बहुत स्पष्ट है कि नई अंशदायी पेंशन योजना के लागू होने पर या उसके बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत आने वाले स्कूलों के कर्मचारियों पर केवल नई योजना ही लागू होगी। इसलिए, उन कर्मचारियों को शामिल करने के लिए राहत, जिन्होंने भेदभाव या मनमानेपन के आधार पर एसोसिएशन द्वारा प्रार्थना की गई कट-ऑफ तारीख से पहले दस साल की सेवा में रखा था, का किसी भी आधार पर खड़े होने का कोई कानूनी आधार नहीं है। इस न्यायालय की सुविचारित राय में किए गए वर्गीकरण को भेदभावपूर्ण या मनमाना नहीं कहा जा सकता है।

(43) दिनांक 28.3.2005 के सरकारी आदेश में यह स्पष्ट किया गया है कि पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) को नई पेंशन योजना

द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और बाद के सरकारी आदेश द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि अनुदान सहायता के तहत आने वाले स्कूलों के कर्मचारी केवल नई योजना द्वारा शासित होंगे। इस स्पष्टीकरण को भेदभावपूर्ण या मनमाना नहीं कहा जा सकता है।

(44) बुद्धिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, [2013(1) एडीजे254] मामले में इस मुद्दे पर सीधे पैरा-28 से 36 में चर्चा की गई है, जिसे यहां दोहराया जाना चाहिए:-

"28. अब मामलों की दूसरी श्रेणी पर आते हैं, जिसमें संस्थान के कर्मचारी, जिन्हें 01.04.2005 से पहले संस्थान में नियुक्त किया गया है, जब यह गैर-सहायता प्राप्त था, लेकिन संस्थान को 01.04.2005 से अनुदान सहायता में शामिल किए जाने के बाद, राज्य सरकार ने नीतिगत निर्णय लिया है कि जिन संस्थानों को 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में शामिल किया गया है, वे नए पेंशन नियमों द्वारा शासित होंगे। एक बार जब राज्य सरकार नीतिगत निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ जाती है कि प्रश्नगत संस्था में शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ राज्य सरकार की अनुदान सहायता सूची में शामिल होने के बाद नई पेंशन नीति द्वारा शासित होंगे, तो याचिकाकर्ताओं द्वारा उक्त आधार पर शिकायत की जा सकती है कि यह मनमाना या अनुचित है। उत्तर

प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964 लागू नहीं होते हैं या लागू नहीं होते हैं जब प्रश्नगत संस्था सहायता अनुदान में नहीं है और उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964 का प्रावधान उस तारीख से लागू होगा जब इसे राज्य सरकार की अनुदान सहायता सूची में लिया गया है, इस प्रकार, उक्त नियम संबंधित संस्था में तभी लागू होते हैं जब इसे सहायता अनुदान सूची में शामिल किया जाता है। 01.04.2005 के बाद, एक बार संस्था के उक्त समूह को 01.12.2006 से राज्य सरकार की अनुदान सहायता सूची में शामिल कर लिया गया है और एक नई पेंशन योजना है, तो याचिकाकर्ता अधिकार के रूप में दावा नहीं कर सकते हैं कि उन्हें पुरानी पेंशन नियमों द्वारा आच्छादित किया जाना चाहिए।

29. इतना स्वीकार किया गया है कि जिस समय प्रश्नगत संस्था को सहायता अनुदान सूची में शामिल किया गया है, उस समय गैर-सहायता प्राप्त चरण की पूर्व सेवा के संपूर्ण लाभ को मिला दिया गया है और पूर्व में दी गई सेवा का लाभ वेतनमान, वेतन वृद्धि और अन्य लाभों आदि के अनुदान के रूप में दिया गया है।

30. गैर-सहायता प्राप्त स्तर पर प्रदान की गई सेवाएं बिल्कुल भी बेकार नहीं रही हैं, और इसके बदले स्वीकार्य लाभों को विस्तारित करने के लिए उचित देखभाल की गई है। प्रश्न यह है कि सेवा को अर्हक सेवा के भाग के रूप में भी शामिल किया जा सकता है, विशेष रूप से जब प्रश्नगत नियुक्ति 01.04.2005 से पहले की गई हो और प्रश्नगत संस्था को 01.12.2006 से राज्य सरकार की सहायता अनुदान सूची में लाया गया हो।

31. इस न्यायालय ने चंद्र भूषण बाजपेयी बनाम संयुक्त शिक्षा निदेशक, कानपुर मंडल, कानपुर और अन्य (सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-32132 वर्ष 2001 का फैसला 21.08.2008 को किया गया) 2008(3) यूपीएलबीईसी 2333 के मामले में न्यायालय ने यह विचार किया है कि पेंशन के लिए अर्हक सेवा अवधि को नियम वर्ष 1964 के तहत आवश्यक पैरामीटर पर माना जाना चाहिए। उक्त मामले में याचिकाकर्ता गैर-सरकारी जूनियर हाई स्कूल में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवा की अवधि की गिनती का दावा कर रहा था और कहा कि याचिकाकर्ता का दावा स्वीकार नहीं किया गया है और बिना सहायता प्राप्त चरण में प्रदान की गई सेवा की गणना नहीं की गई है। उक्त निर्णय के पैरा-6, 7, 8 और 9 प्रासंगिक होने के कारण नीचे दिए गए हैं:

अर्हक सेवा के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश अंशदायी भविष्य निधि बीमा पेंशन नियम लागू होते हैं जिसमें नियम 19(ए) और (बी) निम्नानुसार हैं:

"19(ए) सेवा को पेंशन के लिए नहीं गिना जाएगा जब तक कि कर्मचारी स्थायी प्रतिष्ठान पर एक महत्वपूर्ण पद नहीं रखता है।

(बी) उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को भी योग्यता सेवा के रूप में गिना जाएगा। (सी.एस.आर. पैरा-422 भी देखें)।

7. पूर्वोक्त नियम का लाभ मामले में आकर्षित किया गया होगा बशर्ते याचिकाकर्ता ने एक संस्थान में काम किया होगा जिसे सहायता अनुदान प्रदान किया गया था। उपर्युक्त नियमावली के नियम 3 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि यह राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू है। नियम 3 निम्नानुसार पढ़ता है:

"3. ये नियम निम्नलिखित श्रेणियों के राज्य सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में सेवारत स्थायी कर्मचारियों पर लागू होंगे जो या तो स्थानीय निकाय या निजी प्रबंधन द्वारा संचालित हैं और सहायता अनुदान के भुगतान के प्रयोजनों के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

- (1) प्राथमिक विद्यालय;
- (2) जूनियर हाई स्कूल;
- (3) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय;
- (4) डिग्री कॉलेज;
- (5) प्रशिक्षण कॉलेज।

8. उत्तरदाताओं का यह स्पष्ट मामला है कि विचाराधीन संस्था को मार्च 1961 में अनुदान सहायता सूची में लाया गया था, हालांकि याचिकाकर्ता ने इससे पहले उसमें सेवा की थी। अतः उ०प्र०0 अंशदायी भविष्य-बीमा-पेंशन नियमावली जो 1.10.1964 को लागू हुई, कदापि लागू नहीं है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपने दावे को साबित करने के लिए कोई अन्य प्रावधान नहीं रखा कि उक्त सेवा को गिना जा सकता है। पेंशन एक उपहार नहीं है, लेकिन तथ्य की बात के रूप में, एक अधिकार है, फिर भी इसके भुगतान का तरीका और तरीका संबंधित नियमों द्वारा सख्ती से शासित होता है। जब तक नियमों में प्रावधान नहीं किया जाता है, कोई भी व्यक्ति अर्हक सेवा के रूप में गणना के लिए किसी विशेष रोजगार में किसी विशेष सेवा का दावा नहीं कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने डीएस नकारा बनाम भारत संघ 1983(1) एस.सी.सी. 305 में पेंशन को अधिकार के रूप में रखते हुए निम्नानुसार कहा:

*पेंशन एक अधिकार है और इसका भुगतान सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर नहीं करता बल्कि नियमों द्वारा शासित होता है और उन नियमों के भीतर आने वाला सरकारी कर्मचारी पेंशन का दावा करने का हकदार है। यह आगे कहा गया कि पेंशन का अनुदान किसी के विवेक पर निर्भर नहीं करता है। (पैरा-20)*

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता अदालत के समक्ष कोई प्रावधान नहीं रख सकते थे जिसके

तहत एक मान्यता प्राप्त लेकिन गैर-सहायता प्राप्त गैर-सरकारी जूनियर हाई स्कूल में प्रदान की गई सेवाओं की गणना की जा सकती थी।

32. कुंवर बहादुर सिन्हा बनाम शिक्षा निदेशक के मामले में यह न्यायालय। उत्तर प्रदेश लखनऊ और अन्य (सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-13741 वर्ष 1990 05.05.1995 को फैसला किया गया) 1995 (2) यूपीएलबीईसी 1264 में रिपोर्ट किया गया में उल्लेख किया है कि नियम 1964 के नियम 19(बी) पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है, जबकि नियम 19 के उप-नियम (बी) में यह प्रावधान है कि उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को भी अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा। उक्त मामले में यह उल्लेख किया गया है कि ऐसा लगता है कि क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक ने नियमों के नियम 19 के खंड (बी) पर ध्यान नहीं दिया है और नियम के खंड (ए) पर पूरी तरह से आक्षेपित आदेश को आधार बनाया है जो यह प्रदान करता है कि सेवा पेंशन के लिए नहीं गिना जाएगा जब तक कि कर्मचारी स्थायी प्रतिष्ठान पर एक मूल पद नहीं रखता है। उक्त मामले में किसी भी समय संस्था के सहायता अनुदान सूची होने के संबंध में मुद्दा नहीं उठाया गया था।

33. नई पेंशन योजना 01.04.2005 से प्रभावी की गई है और उसमें यह उल्लेख किया गया है कि यह उन स्थापित पदधारी पर लागू होगी जिन्हें 01.04.2005 के बाद नियुक्त किया गया था और यह सच है कि याचिकाकर्ताओं

की नियुक्ति 01.04.2005 से पहले की गई थी, लेकिन प्रश्नगत संस्था को 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में लाया गया है और पिछली सेवा का लाभ जब प्रश्नगत संस्था को सहायता नहीं दी गई थी, तब बढ़ा दिया गया है और राज्य सरकार ने नीतिगत निर्णय लिया है कि नई पेंशन योजना 01.04.2005 से सहायता अनुदान सूची में शामिल संस्थानों के लिए लागू होगी। पेंशन एक अधिकार है और इसका भुगतान सरकार के विवेक पर निर्भर नहीं करता है, बल्कि नियमों द्वारा शासित होता है, और एक बार 01.04.2005 से नई पेंशन योजना लागू हो जाने के बाद, और नई पेंशन योजना के तहत शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों को शामिल करने के लिए सचेत निर्णय लिया गया है, जिसमें संस्थान को 01.04.2005 के बाद अनुदान सूची में लाया गया है, नई पेंशन योजना के तहत, गलत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सरकार के वित्तीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए लाभ की अनुमति दी जानी है, और इसके साथ-साथ, 01.04.2005 के बाद अनुदान सहायता में शामिल संस्था के शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारी एक अलग वर्ग बनाते हैं, क्योंकि उक्त तिथि से पहले उत्तर प्रदेश अंशदान भविष्य बीमा पेंशन नियम 1964 के प्रावधान बिल्कुल लागू या आकर्षित नहीं थे, और उस तारीख से अर्थात् जब उक्त नियम के प्रावधान उपलब्ध हो गए हैं अर्थात् 01.04.2005 के बाद, नई पेंशन योजना शुरू की गई है, इस नीतिगत निर्णय को गलत नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि यह न तो मनमाना है और न ही तर्कहीन है और ऐसी नीति तैयार करने के लिए तर्कसंगत आधार है।

34. जेटी 1997 एस.सी. 371 में रिपोर्ट किए गए कमांडर मुख्यालय बनाम कैप्टन बिप्लवेंद्र चंद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार किया है कि पेंशन उन लोगों को देय है जो नियमों के दायरे में आते हैं। 1999(2) ईएस.सी. (एस.सी.)1036 (एस.सी.) में रिपोर्ट किए गए टीएन विद्युत बोर्ड बनाम वीरास्वामी के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

35. सुधीर कुमार कंसल बनाम इलाहाबाद बैंक 2011(2) ईएस.सी. 243 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पेंशन के अनुदान के मामले में, या तो पुराने नियम या नए नियम के तहत, यह उल्लेख करने के लिए कार्यवाही की है कि कानून के शासन द्वारा शासित समाज में सहानुभूति नियमों और विनियमों को ओवरराइड नहीं कर सकती है, और उक्त मामले में तदनुसार विचार किया गया है कि अपीलकर्ता पुरानी पेंशन योजना के तहत किसी भी लाभ का दावा करने के लिए पात्र नहीं था।

36. अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि एक बार जब प्रश्नगत संस्था को 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में शामिल कर लिया गया है और उसके बाद नई पेंशन योजना शुरू की गई है और यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं का दावा नई योजना के तहत शासित होगा, तो अधिकार के मामले के रूप में पदधारियों की उक्त श्रेणी पुरानी योजना के तहत शासित होने का दावा नहीं कर सकती है, और पेंशन का उनका दावा नियमों के दायरे में आएगा जैसा कि 01.04.2005 से पेश किया गया है।



(45) बुधिराम (उपरोक्त) के मामले में पूर्वोक्त निर्णय, जिस पर एक अन्य मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा भरोसा किया गया था और रिट याचिका का निपटारा उन्हीं शर्तों पर किया गया था, को विशेष अपील संख्या-734 वर्ष 2014 में चुनौती दी गई थी, जिसमें बुधिराम (उपरोक्त) के मामले में अनुपात को बरकरार रखते हुए 10.8.2015 को अपील भी खारिज कर दी गई थी। आक्षेपित निर्णय की निर्णय लेने की प्रक्रिया में एकल न्यायाधीश द्वारा तीन डिवीजन बेंच निर्णयों अर्थात् 29.10.2012, 10.08.2015 और 22.09.2016 की ताकत को बिल्कुल भी नहीं तौला गया था। ऐसा प्रतीत होता है, एकल न्यायाधीश डिवीजन बेंच के उक्त निर्णयों की अनदेखी करने में कुछ गलत धारणा से प्रेरित हो सकते हैं और निष्कर्ष निकाला कि उत्तरदाता पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) के हकदार थे, हालांकि प्रासंगिक समय में, जब पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) को नई पेंशन योजना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, ये संस्थान अनुदान सहायता सूची में नहीं थे। यह न्यायालय सुधीर कुमार बनाम इलाहाबाद बैंक [(2011)3 एस.सी.सी.486] में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से एक अंश को उद्धृत करना प्रासंगिक पाता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

*"हमारे पास अपीलकर्ता के लिए सहानुभूति है, लेकिन कानून के शासन द्वारा शासित समाज में, सहानुभूति नियमों और विनियमों को ओवरराइड नहीं कर सकती है। हम सार्वजनिक सेवा में अनुकंपा*

*नियुक्ति के मुद्दे पर विचार करते समय इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को याद कर सकते हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम आशा रामचंद्र आंबेकर और अन्य (1994)2 एस.सी.सी.718 में, जिसमें न्यायालय ने कहा:*

*"उच्च न्यायालय और प्रशासनिक न्यायाधिकरण सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए आशीर्वाद प्रदान नहीं कर सकते हैं ... वृत्ति के आगे झुकना कानून के ठंडे तर्क की अनदेखी करेगा। यह याद रखना चाहिए कि "कानून सभी ज्ञान का अवतार है"। कानून के अनुसार न्याय एक सिद्धांत है जो पहाड़ियों जितना पुराना है। न्यायालयों को कानून का प्रशासन करना है क्योंकि वे इसे पाते हैं, हालांकि, यह असुविधाजनक हो सकता है।*

(46) हम यह भी बता सकते हैं कि नियम, 1964 नियम 3 और 4 में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करता है कि उक्त नियम राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों पर लागू होंगे। वे गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों में आवेदन नहीं करते थे।

यही कारण है कि दिनांक 28.3.2005 की नीति के तहत 1.4.2005 से शुरू की गई नई योजना में यह भी कहा गया है कि यह राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों पर लागू होगी जिसका स्पष्ट अर्थ है कि वे संस्थान, जिन्हें इसके बाद

सहायता अनुदान सूची के तहत लाया गया था, केवल नई योजना के तहत लाभ के हकदार होंगे, न कि पहले की योजना के लाभों के। इस प्रकार, यदि नियम, 1964 में केवल राज्य सहायता प्राप्त संस्थाओं को ही लाभ प्रदान करने का प्रावधान है तो अंतर को कम करके गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं पर लागू करने के लिए इसे संशोधित करने के लिए परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है।

(47) इस न्यायालय को इसमें कोई संदेह नहीं है कि किया गया वर्गीकरण तर्कसंगत है और यह ऊपर वर्णित तथ्यों पर किसी भी संवैधानिक या कानूनी दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। इस बात को लेकर कोई चुनौती या राहत नहीं दी गई है कि 1964 के नियम तर्कहीन हैं, इन्हें केवल सहायता प्राप्त संस्थाओं पर लागू किया जा रहा है और संगत सेवा नियमावली, 1978 के नियम-19 में भूतलक्षी प्रभाव से किए गए संशोधन को भी समान रूप से कोई चुनौती नहीं दी गई है।

(48) बुधिराम (उपरोक्त) में पारित निर्णय को विशेष अपील संख्या-1843 वर्ष 2013 (राम यज्ञ शुक्ल) में बरकरार रखा गया था, जिसमें कहा गया था कि न्यायालय इस दलील से सहमत होने में असमर्थ है कि उत्तरदाताओं ने अपीलकर्ता के खिलाफ कोई शत्रुतापूर्ण भेदभाव किया है। अभिलिखित अभिवेदनों और सामग्रियों से यह स्पष्ट है कि 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान सूची में आने वाले शैक्षिक संस्थानों के सभी कर्मचारियों पर पुरानी पेंशन योजना के लाभ लागू नहीं हो गए। इस प्रकार दिनांक 01.04.2005 से प्रभावी नई

पेंशन योजना (एन.पी.एस.) आरंभ करने के संबंध में दिनांक 28.03.2005 को जारी अधिसूचना निर्धारित तिथि के बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत लाई गई सभी शैक्षिक संस्थाओं पर लागू होती है।

(49) ऊपर जो दर्ज किया गया है, उसके मद्देनजर, इस न्यायालय का विचार है कि दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना जारी होने के बाद, ऐसे सभी संस्थान जो 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान के तहत आए थे, उन्हें नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के तहत विनियमित किया जाएगा।

(50) इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में दिया गया तर्क कि चूंकि उत्तरदाताओं को 01.04.2005 से पहले नियुक्त किया गया था, हालांकि नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) के प्रख्यापन के बाद उनकी संस्थाओं को सहायता अनुदान प्रदान किया गया था, वे पुरानी पेंशन योजना (ओ.पी.एस.) के हकदार हैं, कानून की नजर में मान्य नहीं है और नई पेंशन योजना (एन.पी.एस.) की भावना के विपरीत है।

(51) ऊपर बताए गए कारणों से, विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-74 वर्ष 2022 को छोड़कर सभी विशेष अपीलों की अनुमति दी जाती है और दिनांक 16.06.2021 के आक्षेपित निर्णय और आदेश, जैसा कि रिट याचिकाओं के समूह में दिनांक 07.07.2021 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया है, प्रमुख रिट याचिका संख्या-3458 (एस.एस) वर्ष 2009, उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षा संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में एकल न्यायाधीश द्वारा

पारित मामले को, जहां तक यह 01.04.2005 के बाद सहायता अनुदान के अंतर्गत आने वाली शैक्षिक संस्थाओं से संबंधित है, रद्द किया जाता है।

3. इस आवेदन में रिट याचिका की संशोधित प्रति के मेमो और साथ ही विशेष अपील में, जहाँ तक प्रत्यर्थी 'संघ' के विवरण का संबंध है, सुधार की मांग की गई है।

(52) चूंकि विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-74 वर्ष 2022 डाइंग-इन-हार्नेस (ड्यूटी-काल में मृत्यु) मामले से संबंधित है, इसलिए इसे अगली वाद-सूची में उपयुक्त न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध करें।

**सी.एम. प्रार्थना पत्र संख्या आईए/6/2023**

संदर्भ:

वाद :- विशेष अपील संख्या - 29 वर्ष 2022 अपीलकर्ता:- प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य

प्रतिपक्षी :- उत्तर प्रदेश वरिष्ठ बेसिक शिक्षक संघ द्वारा इसके सचिव श्री अवधेश कुमार सिंह अपीलकर्ता के अधिवक्ता :- मोहित जौहरी प्रतिपक्षी के अधिवक्ता :- गिरीश चंद्र वर्मा

(माननीय न्यायमूर्ति श्री अताउ रहमान मसूदी तथा

माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा)

1. यह विशेष अपील आज इस न्यायालय के समक्ष निर्णय सुनाए जाने के लिए सूचीबद्ध थी।

2. इससे पहले कि निर्णय सुनाया जाता, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उल्लेख (mention) किए जाने पर हमारे समक्ष संशोधन आवेदन प्रस्तुत किया गया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि विशेष अपील संख्या 29 वर्ष 2022 में प्रत्यर्थी के सचिव (रिट याचिका संख्या 3458 वर्ष 2009 में याचिकाकर्ता) का नाम गलती से 'अवधेश कुमार मिश्रा' के स्थान पर 'अवधेश कुमार सिंह' उल्लेखित हो गया है।

5. किसी भी आपत्ति के अभाव में आवेदन स्वीकार किया जाता है। रिट याचिका के मेमो और साथ ही विशेष अपील में आवश्यक सुधार किए जाएं।

-----

**(2023) 9 ILRA 214**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 30.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी**

**माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला**

**विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 620 वर्ष 2023**

**प्रबंध निदेशक उत्तर प्रदेश जल निगम (ग्रामीण)**

**लखनऊ एवं एक अन्य**

**...अपीलार्थीगण**

**बनाम**

**बबबन सिंह एवं एक अन्य**

**...प्रतिवादीगण**

**अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:**

**विजय विक्रम सिंह**

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

सविता जैन, ऋषभ कपूर

न्यायाधीश, जालना एवं एक अन्य, निर्णीत

दिनांक 24.09.2008

ए. सेवा कानून - उ.प्र. सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 - सिविल सेवा विनियमन - विनियम 351-ए - उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 - नियम 9(1) - पेंशन से वसूली - सेवानैवृत्तिक लाभ का भुगतान न करना - सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना - अनुमेयता - निदेशक मंडल की कोई स्वीकृति नहीं ली गई थी - कोई आरोप पत्र तैयार नहीं किया गया था - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ, पेंशन से पूरी तरह या आंशिक रूप से, या सेवानैवृत्तिक बकाया राशि से किसी भी राशि की वसूली की कार्यवाही निदेशक मंडल की स्वीकृति के बिना शुरू नहीं की जा सकती है - निदेशक मंडल की किसी भी स्वीकृति के बिना प्रतिवादी-कर्मचारी को देय सेवानैवृत्तिक बकाया से आर्थिक क्षति की वसूली की मांग करने वाला आक्षेपित आदेश पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बाहर है। (पैरा 13, 17 और 20)

अपील खारिज। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. उ.प्र. राज्य चीनी निगम लिमिटेड बनाम कमल स्वरूप टंडन; (2008) एआईआर एससीडब्ल्यू 1241

2. याचिका संख्या 2555 वर्ष 2008; रत्नाकर भगवानराव महाजन बनाम जिला एवं सत्र

(माननीय न्यायमूर्ति अताउल रहमान मसूदी

और

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा पारित)

(1) यह विशेष अपील रिट न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 5341/2012 में 01.03.2023 को दिए गए निर्णय/आदेश से उत्पन्न हुई है। आक्षेपित निर्णय के माध्यम से, रिट न्यायालय ने रिट याचिका को वास्तविक भुगतान तक 7% प्रति वर्ष ब्याज के साथ सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान करने के निर्देश के साथ अनुमति दी है। पारित निर्णय का अनुपालन करने के लिए चार महीने की अवधि दी गई थी। अपीलकर्ता, अर्थात्, उ०प्र० जल निगम ने उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत दायर वर्तमान अंतर-न्यायालय अपील में उपरोक्त निर्णय के खिलाफ अपील की है।

(2) अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता 30.04.2010 को जूनियर इंजीनियर के पद से सेवानिवृत्त हो गया था। इस तथ्य को अपीलकर्तागण ने रिट न्यायालय के समक्ष भी विवादित नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी-कर्मचारी के खिलाफ 16.03.2011 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें 2009 से 2010 के बीच सेवा में रहने के दौरान किए गए कुछ संचारों के आधार पर कुछ अनियमितताओं का आरोप लगाया गया था।

(3) इन परिस्थितियों में, वर्तमान प्रकरण में कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने का प्रकरण है, जो पहले ही सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है। अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 03.02.2003 के कार्यालय जापन के आधार पर निदेशक मंडल, तत्कालीन उ०प्र० जल निगम ने एक प्रस्ताव पारित किया था, जिसके तहत सिविल सेवा विनियमों के साथ-साथ उ०प्र० सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 (जिसे आगे 'नियम, 1999' कहा जाएगा) की प्रयोज्यता को विनियमन 351-ए में संशोधन के साथ तत्कालीन उ०प्र० जल निगम के कर्मचारी के संदर्भ में बढ़ाया गया था। विनियमन 351-ए में संशोधन इस सीमा तक था कि "राज्यपाल" शब्द को निदेशक मंडल के रूप में पढ़ा जाएगा। इसलिए, उपरोक्त नियम सभी उद्देश्यों के लिए उ०प्र० जल निगम के सेवानिवृत्त कर्मचारियों पर लागू हो गए।

(4) अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूंकि पूर्वोक्त नियम पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश जल निगम के सेवानिवृत्त कर्मचारियों पर लागू हैं, अतः एकल न्यायाधीश ने यह टिप्पणी करते समय गलती की है कि कोई विभागीय कार्यवाही आरंभ नहीं की गई थी या विनियमन 351-ए के तत्व उपलब्ध नहीं थे; तथा इस प्रकार दर्ज की गई टिप्पणियां प्रतिकूल होने के कारण यहां दिए गए निर्णय को अमान्य कर देंगी।

(5) विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वसूली के प्रयोजनों के लिए कारण बताओ नोटिस जारी

करना कानून के अनुसार विभागीय कार्यवाही की शुरुआत थी और सेवानिवृत्ति बकाया और पेंशन से वसूली के लिए की गई कार्रवाई कारण बताओ नोटिस की प्रक्रिया का पालन करने के बाद की गई थी, जिसमें वसूली आदेश पारित करने से पहले विधिवत अनुपालन किए गए उत्तर की मांग की गई थी, इस प्रकार, रिट न्यायालय के लिए इस तरह के आधार पर वसूली आदेश को रद्द करना खुला नहीं था। अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि यह ऐसा प्रकरण नहीं है जहां प्रतिवादी-याचिकाकर्ता को कानून के तहत उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना सेवानिवृत्ति बकाया से वंचित किया गया था और प्रकरण को गलत तरीके से भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत प्रदान किए गए कानून के जनादेश के विपरीत संपत्ति से वंचित करने के रूप में समझा गया था। अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद पारित वसूली के आदेश के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी, सिवाय इसके कि उसका पालन किया गया था। प्रतिवादी-कर्मचारी ने कारण बताओ नोटिस के प्रत्युत्तर में अपना उत्तर प्रस्तुत किया और सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 18.08.2012 के आदेश के साथ-साथ रिट याचिका को जन्म देने वाले दिनांक 17.10.2011 के आदेश को पारित करते समय उस पर विचार किया गया।

(6) अपीलकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का सार यह है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई कार्रवाई कानून

के अनुरूप है और पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद भी इसमें कोई अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि या प्रक्रियागत त्रुटि नहीं हुई। इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में रिट याचिका को देय भुगतान पर 7% ब्याज के साथ स्वीकार करना निश्चित रूप से कानून के विपरीत आदेश है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

(7) प्रतिवादी-याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री सविता जैन ने इस तथ्य पर विवाद न करते हुए कि निदेशक मंडल द्वारा 03.02.2003 को एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसके द्वारा सिविल सेवा विनियम और साथ ही नियम, 1999 को तत्कालीन उ०प्र० जल निगम के कर्मचारियों पर लागू किया गया था, प्रस्तुत किया है कि यह सेवानिवृत्त कर्मचारी का प्रकरण है, जिसे विनियमन 351-ए की सख्त भाषा और उसके दायरे का पालन करने के अलावा वसूली की सजा नहीं दी जा सकती है। प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निदेशक मंडल द्वारा 09.06.2011 को पारित प्रस्ताव की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए बताया कि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मंडल का प्रस्ताव भी 16.03.2011 को कारण बताओ नोटिस जारी करने के बहुत बाद में पारित किया गया प्रस्ताव है, जिस पर प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने असहाय होकर 13.04.2011 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया और उसके बाद 18.08.2012 को वसूली आदेश पारित किया गया। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही मंडल के पास सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 351-ए के अनुसार सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ

प्रस्ताव द्वारा कार्यवाही शुरू करने की शक्ति मौजूद थी, फिर भी, कारण बताओ नोटिस जारी करने की तिथि तक यह उपलब्ध नहीं थी और इसमें कानून की पवित्रता का अभाव था। कारण बताओ नोटिस के खिलाफ प्रस्तुत मात्र उत्तर जो कि अधिकार क्षेत्र के बाहर था, उसे वैध नहीं बनाता और बचाव खुला रहता है।

(8) प्रतिवादी-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351-ए का संदर्भ लेना आवश्यक होगा और विनियमों का प्रासंगिक उद्धरण यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

**नोट:** गवर्नर को "निदेशक मंडल" पढ़ा जाएगा।

*"351-ए. राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह पेंशन या उसके किसी भाग को, चाहे स्थायी रूप से या निर्दिष्ट अवधि के लिए रोक ले या वापस ले ले तथा सरकार को हुई किसी भी आर्थिक हानि की पूरी या आंशिक राशि को पेंशन से वसूलने का आदेश दे, यदि पेंशनभोगी विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है या उसने अपनी सेवा के दौरान, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुनः नियोजन पर की गई सेवा भी शामिल है, कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि पहुंचाई है:*

बशर्त-

(ए) ऐसी विभागीय कार्यवाहियां, यदि अधिकारी के सेवानिवृत्ति से पूर्व या पुनर्नियुक्ति के दौरान इयूटी पर रहते समय संस्थित नहीं की गई हों,-

(i) राज्यपाल की मंजूरी के बिना स्थापित नहीं किया जाएगा।

(ii) ऐसी घटना के संबंध में होगा जो ऐसी कार्यवाही के संस्थित होने से चार वर्ष से अधिक पूर्व घटित नहीं हुई हो; तथा

(iii) ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान या स्थानों पर संचालित किया जाएगा जैसा राज्यपाल निर्दिष्ट करे और ऐसी कार्यवाहियों के लिए लागू प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है।

(बी) न्यायिक कार्यवाही, यदि अधिकारी के सेवानिवृत्ति से पूर्व या पुनर्नियुक्ति के दौरान इयूटी पर रहते समय शुरू नहीं की गई थी, तो उसे खंड (क) के उपखंड (ii) के अनुसार शुरू किया जाएगा; तथा

(सी) अन्तिम आदेश पारित करने से पूर्व लोक सेवा आयोग, उ.प्र. से परामर्श किया जाएगा।

[यह और भी बात है कि यदि राज्यपाल द्वारा पारित आदेश उत्तर प्रदेश अनुशासनिक कार्यवाही (प्रशासनिक अधिकरण) नियमावली, 1947 के अधीन निपटाए गए नकदी से संबंधित है तो लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।]

स्पष्टीकरण- इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए-

(ए) विभागीय कार्यवाही उस समय संस्थित मानी जाएगी जब पेंशनभोगी के विरुद्ध लगाए गए आरोप उसे जारी कर दिए जाएं या यदि अधिकारी को किसी पूर्व तारीख से निलम्बित किया गया हो तो ऐसी तारीख को; और

(बी) न्यायिक कार्यवाही शुरू की गई मानी जाएगी:

(i) आपराधिक कार्यवाही के प्रकरण में, उस तारीख को जिस दिन शिकायत की जाती है, या आपराधिक न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाता है; और

(ii) सिविल कार्यवाही के प्रकरण में, उस तारीख को जिस दिन वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है या, जैसा भी प्रकरण हो, सिविल न्यायालय में आवेदन किया जाता है।

**टिप्पणी- जैसे ही इस अनुच्छेद में निर्दिष्ट प्रकृति की कार्यवाही शुरू की जाती है, ऐसी कार्यवाही शुरू करने वाला प्राधिकारी बिना देरी किए संबंधित लेखा परीक्षा अधिकारी को तथ्य की सूचना देगा।"**

(9) विनियमन 351-ए का संरचनात्मक विश्लेषण हमारे उद्देश्य के लिए एक विवेकपूर्ण तरीका है जो हमें निम्नलिखित सिद्धांतों को निकालने की ओर ले जाता है जो संपूर्ण नहीं हैं:

(I.) विनियमन 351-ए अपने प्रारंभिक वाक्य के आधार पर पेंशन या उसके किसी भाग पर लागू होता है, इससे अधिक कुछ नहीं।

(II.) विनियमन 351-ए के तहत राज्यपाल की मंजूरी की आवश्यकता होती है, यदि सेवानिवृत्ति से पहले या पुनर्नियुक्ति के दौरान अधिकारी के ड्यूटी पर रहते हुए विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की जाती है।

(10) कार्यवाही की निरंतरता या आरंभ के प्रयोजनों के लिए विनियमन 351-ए के आवश्यक सहवर्ती हैं सेवा में रहते हुए नियोक्ता को हुई आर्थिक हानि या यदि कार्यवाही सेवानिवृत्ति के बाद आरंभ की जाती है, तो ऐसी हानि कार्यवाही आरंभ होने की तारीख से चार वर्ष पूर्व की किसी घटना से हुई दर्शाई जानी आवश्यक है और जिसके लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया वही होगी जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है,

जिसका अर्थ है कि पेंशन या उसके किसी भाग को रोकना एक बड़ा दंड है।

(11) वर्तमान प्रकरण में, अपीलकर्तागण का यह प्रकरण नहीं है कि सेवानिवृत्ति से पहले अनुशासनात्मक कार्रवाई के अर्थ में प्रतिवादी-कर्मचारी के खिलाफ कोई भी कार्यवाही शुरू की गई थी। भले ही, यह मान लिया जाए कि वित्तीय नुकसान की वसूली के प्रकरण में अनुशासनात्मक कार्यवाही कारण बताओ नोटिस जारी करने के साथ शुरू की जाती है, फिर भी वर्तमान प्रकरण में यह सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद जारी किया गया था, इसलिए, यह प्रकरण सेवानिवृत्ति के बाद कार्यवाही शुरू करने का प्रकरण है।

(12) आरोपित नोटिस सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 351-ए के साथ पठित उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 9(1) के अन्तर्गत जारी किया गया है। उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 का नियम 9(1) भी नीचे उद्धृत है:

**"9. विविध.- (1) सरकार को भाग II और III के तहत स्वीकृत ग्रेजुटी या पारिवारिक पेंशन से उन्हीं परिस्थितियों में वसूली करने का अधिकार होगा, जैसे कि सिविल सेवा विनियमनों के अनुच्छेद 351-ए के तहत साधारण पेंशन से वसूली की जा सकती है।"**

(13) ऊपर उद्धृत विनियमन 351-ए और नियम 9(1) को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह



सरल निष्कर्ष निकलता है कि पेंशन से पूर्णतः या आंशिक रूप से या सेवानिवृत्ति बकाया से किसी राशि की वसूली की कार्यवाही निदेशक मंडल की मंजूरी के बिना आरंभ नहीं की जा सकती।

(14) वर्तमान प्रकरण में, 16.3.2011 को नोटिस निदेशक मंडल की मंजूरी के बाद ही जारी किया जाना चाहिए था, लेकिन ऐसे किसी भी नोटिस के लिए निदेशक मंडल की कोई मंजूरी नहीं है, इसलिए, यह अधिकार क्षेत्र से बाहर था। निदेशक मंडल द्वारा 9.6.2011 को पारित किया गया प्रस्ताव स्पष्ट रूप से अस्तित्व में नहीं था, जिसके आधार पर 16.3.2011 का नोटिस जारी किया जा सकता था। एजेंडा मद संख्या 155.12 ( बीए ) के तहत 9.6.2011 के संकल्प ने निम्नानुसार हल किया था:

| मद संख्या  | एजेण्डे का विवरण                                                                                                                                                  | निदेशक मंडल द्वारा लिया गया निर्णय          |
|------------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------|
| 155.12 (ब) | श्री बबबन सिंह, जू0ई0 (सेवानिवृत्त) के विरुद्ध सी0एस0आर0 के नियम-351-ए के अन्तर्गत प्रारम्भ की गयी विभागीय जाँच कार्यवाही का अनुमोदन प्राप्त करने के सम्बन्ध में। | निदेशक मंडल द्वारा अनुमोदन प्रदान किया गया। |

(15) उपर्युक्त संकल्प के कार्यवृत्त को ध्यान से पढ़ने से स्पष्ट है कि केवल विनियम 351-ए के अन्तर्गत कार्यवाही की स्वीकृति दी गई थी

तथा ग्रेच्युटी या पारिवारिक पेंशन से किसी वसूली के लिए उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 9(1) का कोई संदर्भ नहीं है।

(16) यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि विनियमन 351-ए केवल कर्मचारी द्वारा नियोक्ता को पहुँचाए गए नुकसान की वसूली उसे देय पेंशन से पूरी तरह या आंशिक रूप से करने का प्रावधान करता है, जबकि नियम 9(1) कर्मचारी को स्वीकार्य ग्रेच्युटी या पारिवारिक पेंशन की राशि से वसूली का प्रावधान करता है। दोनों ही स्थितियों में कार्यवाही के लिए लागू प्रक्रिया वही है जिस पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया जा सकता है, जिसका अर्थ है कि निदेशक मंडल से मंजूरी प्राप्त करने के बाद सक्षम प्राधिकारी आरोपित पेंशनभोगी के खिलाफ नियमित जांच करने और उसके अनुसार कार्यवाही करने के लिए बाध्य है।

(17) जब कानून की आवश्यकता को विचाराधीन प्रकरण पर लागू किया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सक्षम प्राधिकारी ने उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली 1999 के नियम 7 के अन्तर्गत निश्चित आरोपों के रूप में तथ्यों को कम करते हुए, कोई आरोप पत्र तैयार किए बिना, प्रतिवादी-कर्मचारी को केवल कारण बताओ नोटिस जारी किया था।

(18) रिट न्यायालय के समक्ष या रिट न्यायालय के आदेश से उत्पन्न अपील में इस

बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि विवादित आदेश पारित करने से पहले ऐसी प्रक्रिया का पालन क्यों नहीं किया गया।

(19) संक्षेप में, आरोपित आदेश विनियमन 351-ए की आवश्यकताओं के पूर्ण उल्लंघन में पारित किया गया था, इसलिए, निदेशक मंडल द्वारा 09.06.2021 को पारित प्रस्ताव के आधार पर प्रस्तुत औचित्य यदि वैध माना जाता है, फिर भी अपनाई गई प्रक्रिया कानून के अधिदेश को संतुष्ट नहीं करती है।

(20) यह न्यायालय इस बात पर ध्यान देगा कि उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1991 के नियम 9(1) के तहत पेंशनभोगी से की जाने वाली सेवानिवृत्ति बकाया राशि की वसूली सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 351-ए के तहत प्रदान की गई शर्तों के अलावा किसी अन्य तरीके से नहीं की जा सकती है, इसलिए, ऐसी किसी भी कार्रवाई के लिए निदेशक मंडल द्वारा उस उद्देश्य के लिए एक विशिष्ट प्रस्ताव पारित करने की भी आवश्यकता होगी, जो इस प्रकरण में बिल्कुल भी नहीं किया गया प्रतीत होता है। निदेशक मंडल की किसी भी मंजूरी के बिना प्रतिवादी-कर्मचारी को देय सेवानिवृत्ति बकाया राशि से आर्थिक नुकसान की वसूली करने की मांग करने वाला विवादित आदेश, प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह दृष्टिकोण 30प्र0 स्टेट शुगर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम कमल स्वरूप टंडन के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले द्वारा समर्थित है, (2008) एआईआर एससीडब्ल्यू 1241 में रिपोर्ट किया

गया और रत्नाकर भगवानराव महाजन बनाम जिला और सत्र न्यायाधीश, जालना और अन्य, (डब्ल्यूपी संख्या 2555 / 2008) के प्रकरण में बॉम्बे उच्च न्यायालय औरंगाबाद के एक डिवीजन बेंच के फैसले द्वारा समर्थित है, जो 24.09.2008 को तय हुआ।

(21) इस प्रकरण में की गई विवादित कार्रवाई अनुभवजन्य रूप से विश्लेषण करने पर एक से अधिक कारणों से कानून की नजर में गलत है, लेकिन वर्तमान में, यदि कार्यवाही निदेशक मंडल द्वारा कानून के अनुसार पवित्रता की कमी की कसौटी पर खरी उतरती है और आवश्यक प्रक्रिया जिसका सक्षम प्राधिकारी को पालन करना चाहिए था, लेकिन वह विफल रहा है, इसलिए, हम विद्वान रिट न्यायालय की इस टिप्पणी से असहमत नहीं हो सकते हैं कि विनियमन 351-ए के तत्वों का पालन नहीं किया गया था।

(22) आक्षेपित निर्णय में बताए गए कारणों और ऊपर दर्ज किए गए कारणों के कारण, इस अपील में हमारे सामने दिए गए आधारों पर आक्षेपित निर्णय हमें हस्तक्षेप की मांग करने वाले किसी अलग दृष्टिकोण की ओर नहीं ले जाता है और आक्षेपित निर्णय से उत्पन्न विशेष अपील को खारिज किया जाता है। हालांकि, प्रकरण के विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए 7% ब्याज के साथ बकाया राशि के भुगतान के निर्देश को खारिज किया जाता है।

(23) अन्ततः हम यह कहना चाहेंगे कि प्रस्तुत प्रकरण से स्पष्ट है कि सक्षम प्राधिकारी तथा निदेशक मण्डल ने प्रासंगिक समय पर नियमों

के विपरीत कार्य किया, जिसके कारण निगम को हानि हुई, क्योंकि उन्होंने सुविदित नियमों का पालन नहीं किया।

(24) यह सक्षम प्राधिकारी और बोर्ड द्वारा कानून के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने में जानबूझकर की गई विफलता है, जिसके कारण कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आर्थिक नुकसान के आरोपों को कार्रवाई योग्य दावे में परिवर्तित करने में असमर्थ बना दिया गया। नोटिस जारी करने के समय मौजूद सक्षम प्राधिकारी और साथ ही संबंधित समय पर जिम्मेदार बोर्ड के खिलाफ वसूली के लिए दीवानी कार्रवाई के साथ-साथ कानून के तहत स्वीकार्य आपराधिक कार्रवाई दोनों के लिए कार्यवाही की जानी चाहिए।

-----  
(2023) 9 ILRA 220

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

रिट ए संख्या 10418 वर्ष 2023

शाहरुख सलीम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री वीरेंद्र जायसवाल

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 51(5) - पंजीकरण प्रमाणपत्र - ऋण पुनर्भुगतान में चूक के कारण वित्तपोषक ने वाहन को अपने कब्जे में ले लिया - याचिकाकर्ता का यह दावा कि आर.सी. सौंपने को अस्वीकार नहीं किया गया, अप्रासंगिक है - 'आर.सी. देने का अस्वीकरण' या 'फरार' होने की आवश्यकता अनिवार्य नहीं है - जहां ऋण चूक और पुनः कब्जा सिद्ध हो जाता है, पंजीकरण प्राधिकारी के पास वित्तपोषक के पक्ष में नई आर.सी. जारी करने की शक्ति है - याचिकाकर्ता को उचित नोटिस जारी किया गया - आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

अभिनिर्धारित हुआ- एक बार जब यह स्थापित हो जाता है कि वाहन वित्त पर खरीदा गया था और पुनर्भुगतान में चूक के कारण कब्जा ले लिया गया था, तो पंजीकरण प्राधिकारी को धारा 51(5) के अंतर्गत वित्तपोषक को एक नया आर.सी. जारी करने की शक्ति है - पंजीकृत मालिक द्वारा अस्वीकरण या फरार होना अनिवार्य नहीं है, बल्कि केवल उदाहरण के तौर पर है - ऐसी परिस्थितियों में नया आर.सी. जारी करने से कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है।

याचिका खारिज।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

और

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा पारित)

1. तत्काल याचिका प्रतिवादी संख्या 2 यानी सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (प्रशासन), बरेली द्वारा पारित दिनांक 14.06.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए और प्रतिवादी संख्या 2 को प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने से रोकने के लिए एक परमादेश के लिए दायर की गई है।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने पंजीकरण संख्या उ.प्र.25 सीटी-6625 संख्या वाले ट्रक को खरीदने के लिए प्रतिवादी संख्या 3 से वित्त लिया था। रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने उक्त प्रतिवादी से उसके द्वारा ली गई वित्त/सहायता की राशि का खुलासा नहीं किया है, हालाँकि, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 5 में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 42,00,000/- रुपये, कुल कीमत जिस पर ट्रक खरीदा गया था, में से 8,00,000/- रुपये का योगदान दिया था। इसका मतलब यह है कि शेष राशि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा वित्तपोषित की गई थी। इसे याचिकाकर्ता द्वारा मासिक किस्तों में वापस किया जाना था।

3. रिट याचिका में यह भी स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता मासिक किस्तें जमा नहीं कर सका। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता की ओर से किस्तों का भुगतान करने में चूक के कारण प्रतिवादी संख्या 3 ने वाहन को कब्जे में लेने के अपने अधिकार का प्रयोग किया। तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 23.05.2021 को इसका कब्जा ले लिया गया। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 3 ने अपने नाम पर नया पंजीकरण प्रमाणपत्र (संक्षिप्त 'आरसी') जारी करने के लिए फॉर्म-36 दाखिल करके

क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, बरेली से अनुरोध किया। जब काफी समय बीत जाने के बाद भी आर.टी.ओ. ने प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में वाहन हस्तांतरित नहीं किया, तो उसने उपरोक्त शिकायत के साथ इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 7366/2023 दायर की। रिट याचिका का निपटारा दिनांक 28.04.2023 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें आरटीओ को छह सप्ताह के भीतर मामले में अंतिम निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, आर.टी.ओ. ने दिनांक 14.06.2023 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसमें मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 51 (5) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपेक्षित शुल्क वसूलने के बाद प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में वैधता की शेष अवधि के लिए नया पंजीकरण प्रमाणपत्र प्रदान करने का निर्देश दिया गया।

4. आक्षेपित आदेश में दर्ज है कि प्रतिवादी संख्या से फॉर्म 36 प्राप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता को फॉर्म-37 में नोटिस दिनांकित 10.11.2022 जारी किया गया था। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता ने अपनी आपत्ति दर्ज की और कहा कि वाहन को प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता की आपत्ति को आर.टी.ओ. ने प्रतिवादी संख्या 3 को अग्रेषित किया और उस पर उसकी टिप्पणी मांगी। प्रतिवादी संख्या 3 ने 05.12.2022 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया। उक्त उत्तर में, प्रतिवादी संख्या 3 ने दोहराया कि याचिकाकर्ता ने नोटिस के बावजूद बकाया राशि के भुगतान में चूक की है। आर.टी.ओ. ने आक्षेपित आदेश में कहा है कि याचिकाकर्ता ने

अपनी आपत्ति में बकाया राशि के भुगतान के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। इसके बाद आर.टी.ओ ने इस बात से संतुष्ट होकर कि याचिकाकर्ता ने वाहन खरीदने के लिए प्रतिवादी संख्या 3 से वित्तीय सहायता ली थी; प्रतिवादी संख्या 3 ने वित्त से संबंधित समझौते के संदर्भ में ऋण चुकाने में पंजीकृत स्वामी की ओर से चूक के कारण वाहन पर कब्जा कर लिया है, प्रतिवादी संख्या 3 के नाम पर नई आरसी जारी करने का निर्देश दिया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 51(5) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल उस स्थिति में किया जा सकता है जब पंजीकृत स्वामी पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार कर देता है या फरार हो जाता है। उनका कहना है कि मूल पंजीकरण प्रमाणपत्र उस समय वाहन में पड़ा हुआ था जब प्रतिवादी संख्या 3 ने इसे अपने कब्जे में ले लिया था और इसलिए, यह पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार करने का मामला नहीं है।

6. अधिनियम की धारा 51 (5) इस प्रकार है:-

"(5) जहां वह व्यक्ति, जिसका नाम रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में ऐसे व्यक्ति के रूप में विनिर्दिष्ट है जिसके साथ रजिस्ट्रीकृत स्वामी ने उक्त करार किया है, रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी का समाधान कर देता है कि उसने उक्त करार के उपबंधों के अधीन [रजिस्ट्रीकृत स्वामी से उस यान का कब्जा रजिस्ट्रीकृत स्वामी के व्यतिक्रम के कारण ले लिया है। और

रजिस्ट्रीकृत स्वामी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र देने से इंकार करता है या फरार हो गया है वहां ऐसा प्राधिकारी रजिस्ट्रीकृत स्वामी को (उसके उस पते से जो रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में दिया हुआ है, रसीदी रजिस्ट्री डाक से सूचना भेजकर) ऐसा अभ्यावेदन करने का, जैसा वह करना चाहे, अवसर देने के पश्चात् तथा इस बात के होते हुए भी कि रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र उसके समक्ष पेश नहीं किया गया है उस रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र को रद्द कर सकेगा और उस व्यक्ति के नाम में, जिसके साथ रजिस्ट्रीकृत स्वामी ने उक्त करार किया है, नया रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी कर सकेगा:

परन्तु मोटर यान की बाबत रजिस्ट्रीकरण का नया प्रमाणपत्र तभी जारी किया जाएगा जब उस व्यक्ति ने विहित फीस दे दी हो, अन्यथा नहीं:

परन्तु यह और कि ऐसे मोटर यान की बाबत, जो परिवहन यान से भिन्न हैं, जारी किया गया रजिस्ट्रीकरण का नया प्रमाणपत्र केवल उस शेष अवधि के लिए विधिमान्य होगा जिसके लिए इस उपधारा के अधीन रद्द किया गया प्रमाणपत्र प्रवृत्त रहता।"

7. धारा 51 की उपधारा (5) के तहत शक्ति के प्रयोग का मुख्य घटक इस तथ्य की स्थापना है कि पंजीकृत स्वामी ने वित्त लेकर वाहन खरीदा था और उक्त समझौते के

अनुसार राशि के पुनर्भुगतान में चूक की थी। अन्य आवश्यक घटक यह है कि वित्तदाता ने पंजीकृत स्वामी से वाहन का कब्जा ले लिया है। ये सभी घटक मौजूदा मामले में पूरी तरह से स्थापित हैं। पंजीकृत स्वामी की ओर से पंजीकरण प्रमाणपत्र सौंपने से इनकार करने या उसके फरार होने के संबंध में शर्त शक्ति के प्रयोग के लिए अपरिहार्य नहीं है। यह केवल यही इंगित करता है कि उपरोक्त दो आकस्मिकताओं के बावजूद, पंजीकरण प्राधिकारी के पास अभी भी प्रमाणपत्र को रद्द करने और उस व्यक्ति के नाम पर पंजीकरण का एक नया प्रमाणपत्र जारी करने की शक्ति है जिसके साथ पंजीकृत स्वामी ने वित्त के समझौते में प्रवेश किया था।

8. उपरोक्त निष्कर्ष केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 के नियम 61 (2) और (3) और फॉर्म 36, जिसमें वित्तदाता द्वारा अपने नाम पर पंजीकरण का एक नया प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आवेदन किया जाता है और फॉर्म 37, जिसमें पंजीकृत स्वामी को स्पष्टीकरण के लिए नोटिस जारी किया जाता है, के अवलोकन से भी पता चलता है। नियम 61 (2) और (3) नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

"नियम 61 (2) धारा 51 की उप-धारा (5) के तहत पंजीकरण का नया प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आवेदन फॉर्म 36 में किया जाएगा और नियम 81 में निर्दिष्ट शुल्क के साथ संलग्न किया जाएगा।

(3) जहां पंजीकृत स्वामी ने वित्तदाता को पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार कर दिया है

या फरार हो गया है, तो पंजीकरण प्राधिकारी वाहन के पंजीकृत स्वामी को फॉर्म 37 में एक नोटिस जारी करेगा।"

9. फॉर्म 36 और फॉर्म 37 जो प्रासंगिक भी हैं, उन्हें तत्काल संदर्भ के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

#### फॉर्म 36

[(नियम 61(2) देखें)]

वित्तदाता के नाम पर नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने के लिए आवेदन

सेवा में,  
पंजीकरण प्राधिकारी,

.....  
.....

मैंने/हमने किराया-क्रेता/पट्टा/दृष्टिबंधन के समझौते के प्रावधानों के तहत पंजीकृत स्वामी के डिफॉल्ट के कारण मोटर वाहन संख्या का कब्जा ले लिया है:

मैं /हम.....(वित्तदाता) ने  
मोटर वाहन

क्रमांक.....विनिर्माता.....

मॉडल.....को किराया-

क्रेता/पट्टा/दृष्टिबंधन के समझौते के प्रावधानों के तहत पंजीकृत स्वामी

.....

(नाम) (पूरा पता)

की चूक के कारण अपने कब्जे में ले लिया है.

(1) उक्त वाहन का पंजीकरण प्रमाणपत्र इसके साथ समर्पित किया जाता है।

(2) पंजीकृत स्वामी ने मुझे हमें पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार कर दिया है।

संदर्भ संख्या.....  
दिनांकित.....

(3) पंजीकृत स्वामी फरार है।

मैं/हम आपसे प्रमाणपत्र रद्द करने और मेरे हमारे नाम पर पंजीकरण का नया प्रमाणपत्र जारी करने का अनुरोध करते हैं।

मैं/हम ..... रुपये का शुल्क संलग्न करते हैं।

दिनांक.....

वित्तदाता के हस्ताक्षर वित्तदाता के हस्ताक्षर का नमूना

1.....

2.....

[मेरा/हमारा मोबाइल अंक है..... ]

मुख्य पंजीकरण प्राधिकारी को प्रतिलिपि।

\* जो लागू न हो उसे काट दें।

श्री/श्रीमती/कुमारी..... ..(पंजीकृत स्वामी)  
हैं/हैं को सूचित किया जाता है कि  
.....(वित्तपोषक) ने प्रतिवेदित किया है कि  
उसने उन्होंने पंजीकरण संख्या  
.....उक्त समझौते के प्रावधानों के  
तहत आपकी चूक के कारण मोटर वाहन का  
कब्जा ले लिया है और वह-  
यूएसडीएफ को पट्टे के समझौते द्वारा कवर  
किया गया है,

उसने किराया-खरीद/पट्टा दृष्टिबंधन के  
समझौते द्वारा आच्छादित मोटर वाहन  
पंजीकरण संख्या .....को उक्त  
समझौते के प्रावधानों के तहत आपकी चूक के  
कारण अपने कब्जे में ले लिया है।

\* (1) आपने उसे पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से  
इनकार कर दिया है।

फॉर्म 37

[नियम 61(3) देखें]

मोटर वाहन के पंजीकृत स्वामी को पंजीकरण रद्द करने के लिए प्रमाण पत्र जमा करने हेतु और वित्तदाता के नाम पर नया पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी करने हेतु नोटिस (प्रतिलिपि बनाया जाना है और नोटिस जारी होने पर प्रतिलिपि वित्तदाता को एक साथ भेजी जाएगी)

पंजीकरण प्राधिकारी का कार्यालय.....

\* (2) आप फरार हो गये हैं।  
उन्होंने पंजीकरण प्रमाणपत्र रद्द करने और उनके नाम पर नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने का अनुरोध किया है।

इसलिए, आपको उक्त मोटर वाहन के पंजीकरण प्रमाणपत्र को समर्पण करने का निर्देश दिया जाता है, जिसे आपने कब्जा खोने के बावजूद अपने पास रखा है और इस प्रकार धारा 2(30) के तहत मोटर वाहन का स्वामित्व और इस संबंध में अपना अभ्यावेदन, यदि कोई हो, इस नोटिस की प्राप्ति की तारीख से सात

दिनों के भीतर इस कार्यालय को भेजें, ऐसा न करने पर धारा 51(5) के अनुसार, आपके द्वारा धारित पंजीकरण प्रमाणपत्र को रद्द करते हुए, वित्तदाता के नाम पर एक नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी किया जाएगा।

दिनांक.....

\* जो लागू न हो उसे काट दें। (पंजीकरण प्राधिकारी के हस्ताक्षर)

सेवा में,

वित्तदाता.....

.....

(पावती देय पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाना है)]।

10. फॉर्म 36 जिसमें वित्तदाता द्वारा पंजीकरण का नया प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आवेदन किया जाता है, वित्तदाता को यह उल्लेख करने की आवश्यकता होती है कि क्या उक्त वाहन को पंजीकरण प्रमाणपत्र के साथ समर्पित कर दिया गया है या पंजीकृत स्वामी ने पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार कर दिया है या वह फरार है। फॉर्म 37 में पंजीकृत स्वामी को नोटिस केवल उस स्थिति में जारी किया जाता है जब वह पंजीकरण प्रमाणपत्र देने से इनकार कर देता है या फरार हो जाता है। ऐसी स्थिति में, उसे पंजीकरण प्रमाणपत्र समर्पित करने के लिए कहा जाता है, ऐसा न करने पर, पंजीकृत स्वामी के पास मौजूद पंजीकरण प्रमाणपत्र को रद्द करते हुए, वित्तदाता के नाम पर एक नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी किया जाएगा।

11. उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से अधिनियम की योजना और इस आशय के नियमों को प्रकट करते हैं कि जब पंजीकृत मालिक की ओर से समझौते के अनुसार वित्तदाता को ऋण चुकाने में चूक होती है और जिसके कारण वित्तदाता वाहन पर कब्जा कर लेता है, तो वित्त उसके नाम पर पंजीकरण के नए प्रमाण पत्र का हकदार हो जाता है। इसलिए, पंजीकृत स्वामी को पंजीकरण प्रमाण पत्र समर्पित करना आवश्यक है ताकि इसे रद्द कर दिया जाए और वित्तदाता के नाम पर पंजीकरण का एक नया प्रमाण पत्र जारी किया जाए। जहां पंजीकृत स्वामी पंजीकरण प्रमाणपत्र को समर्पित नहीं करता है या फरार हो जाता है, तो उसे नोटिस दिया जाता है और जब उसके बाद भी पंजीकरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो पंजीकरण प्राधिकारी को इस तथ्य के बावजूद कि मूल पंजीकरण प्रमाणपत्र पंजीकृत स्वामी द्वारा रोक लिया गया था या फरार हो गया था, वित्तदाता को नया पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। इसलिए, हमें याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील में कोई बल नहीं मिला कि अधिनियम की धारा 51 (5) के तहत शक्ति का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि पंजीकृत स्वामी पंजीकरण प्रमाणपत्र समर्पण करने से इनकार नहीं करता या फरार नहीं हो जाता।

12. इसके अलावा, यदि प्रमाणपत्र वाहन को वापस लिए जाने के समय उसमें पड़ा हुआ था, तो वाहन को वित्तदाता के नाम पर पंजीकृत करने का निर्देश देने वाला आक्षेपित आदेश किसी भी पूर्वाग्रह का कारण नहीं बनेगा और न



ही इसे कानून के किसी भी प्रावधान के विपरीत कहा जा सकता है।

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार  
रिट ए संख्या 50745 वर्ष 2017

13. अभिलेख से यह भी प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने उपभोक्ता फोरम के समक्ष कुछ शिकायत दर्ज की थी और जो लंबित बताई गई है। उक्त कार्यवाही में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दायर लिखित बयान में, यह रुख अपनाया गया था कि याचिकाकर्ता ने 39,00,000/- रुपये का ऋण लिया था और इसके अलावा उसने 49,000/- रुपये का व्यक्तिगत ऋण भी लिया था। 1,01074/- रुपये की एक और राशि है जो याचिकाकर्ता को वाहन का बीमा लेने के लिए दी गई थी और उक्त राशि भी याचिकाकर्ता द्वारा मासिक किस्तों में चुकाई जानी थी जिसमें भी उसने चूक की।

14. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता ने ऋण के रूप में ली गई राशि और उसके द्वारा चुकाई गई राशि से संबंधित कोई भी तथ्य स्पष्ट नहीं किया है।

15. परिणामस्वरूप, हमें वर्तमान याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती। आक्षेपित आदेश रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है।

16. याचिका खारिज की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 225

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.08.2023

समक्ष

कुर्वेद्र पाल सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री बिधान चंद्र राय, श्री अशोक खरे, श्री भैया लाल यादव, श्री वी.के. उपाध्याय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री दिनेश कुमार मिश्रा, श्री जी.सी. सक्सेना एस.सी., श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सेवा कानून - उ.प्र. प्राविधिक शिक्षा अधिनियम, 1962 - धारा 22-ए - प्रवक्ता (अर्थशास्त्र) का पद - चयन - अंक प्रदान करना - हस्तक्षेप का दायरा - तकनीकी शिक्षा निदेशक ने चयन प्रक्रिया में अनियमितता पाई और इसलिए नियुक्ति को अस्वीकृत कर दिया - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित किया गया कि चयन समिति के कार्यवृत्त दिनांक 22.01.1994 को निदेशक के पत्र दिनांक 17.05.1989 के साथ पठित को ध्यान से देखने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अंक इस तरह से प्रदान किए गए हैं ताकि योग्य उम्मीदवारों को बाहर किया जा सके - कानून के न्यायालय मूकदर्शक नहीं हो सकते हैं और यदि अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों के परिशीलन से यह पाया जाता है कि अंक प्रदान करने में अवैधता की गई है, तो स्पष्ट है,

न्यायालय संबंधित कानून के अंतर्गत उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा लिए गए निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेंगी, जिन्हें चयन रद्द करते समय निर्णय लेने के लिए नियुक्त किया गया है। (पैरा 40)

बी. सेवा कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - विशेषज्ञ का दृष्टिकोण - हस्तक्षेप का दायरा - निदेशक को मामले के विशेषज्ञ होने के नाते अंक देने में चयन समिति के निर्णय में अनियमितता प्राप्त हुई - निदेशक के निर्णय की वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित हुआ, कानून के न्यायालय चयन समिति द्वारा अंक देने से संबंधित शैक्षणिक मामलों में विशेषज्ञ नहीं हैं और वे विभिन्न मापदंडों के अंतर्गत अंक देने वाले शिक्षाविदों के मस्तिष्क में नहीं जा सकते हैं - तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में नियुक्तियों को अस्वीकृत करने के वैध कारण दर्ज हैं, जिन्हें यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अवैध नहीं अवधारित कर सकता है, विशेषकर जब तकनीकी शिक्षा निदेशक उक्त विषय का विशेषज्ञ है। (पैरा 40 और 42)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. आशा सक्सेना बनाम एस.के. चौधरी और अन्य; 1991 (17) एएलआर 267 (एफबी)

2. रिट सी संख्या 5497 वर्ष 2020; डॉ. प्रसन्नांशु बनाम चयन समिति कुलपति, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली एवं अन्य, दिनांक 14.09.2020 को निर्णीत

3. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 53334/1999; राजेंद्र भारती बनाम तकनीकी शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश कानपुर एवं एक अन्य, दिनांक 20.05.2004 को निर्णीत

4. डॉ. सालिक तिवारी बनाम कुलाधिपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य; 1999 (1) एडब्ल्यूसी 407

5. रेखा चतुर्वेदी बनाम राजस्थान विश्वविद्यालय; 1993 सप्पलिमेंट (3) एससीसी 168

6. बी.सी. माइलरप्पा उर्फ डॉ. चिक्कामिलरप्पा बनाम डॉ. आर. वेंकटसुब्बैया एवं अन्य; जेटी 2008 (11) एससी 73

7. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 21318 वर्ष 2004; रमेश पति त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 02.04.2007 को निर्णीत

8. रिट ए संख्या 19620 वर्ष 2014; अमर पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 08.01.2014 को निर्णीत

9. श्रीकांत एस.एम. बनाम भारत अर्थ मूवर्स लिमिटेड, दिनांक 07.10.2005 को निर्णीत

10. जे.एन. श्रीवास्तव बनाम भारत संघ;  
एआईआर 1999 एससी 1571

11. डॉ. केशव राम पाल बनाम उत्तर प्रदेश  
उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग; एआईआर 1986  
एससी 597

12. एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं  
अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; 1986 (1)  
एससीसी 133

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा  
पारित)

1. श्री वीके उपाध्याय, श्री भैया लाल यादव  
द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री  
बिधान चंद्र राय के साथ, रिट याचिकाकर्ता के  
विद्वान अधिवक्ता, श्री शशि नंदन, श्री जीसी  
सक्सेना, राज्य के उत्तरदाताओं के लिए विद्वान  
स्थायी अधिवक्ता और श्री दिनेश कुमार मिश्रा  
के साथ, तीसरे और चौथे उत्तरदाताओं के लिए  
उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को  
सुना।

2. रिट याचिका में दिए गए अनावश्यक  
विवरणों से जुड़े मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं  
कि तीसरा प्रतिवादी, एम.जी. पॉलिटेक्निक,  
हाथरस (संक्षेप में 'संस्थान') उत्तर प्रदेश  
प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1962, 1962 के  
उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या XVII (संक्षेप में  
'1962 अधिनियम') के प्रावधानों के तहत  
शासित तकनीकी शिक्षा बोर्ड से संबद्ध है,  
जिसके पास 1962 अधिनियम की धारा 22-ए  
के तहत प्रशासन की अनुमोदित योजना है।

3. अभिलेखों से पता चलता है कि दिनांक  
08.04.1991 को दूसरे प्रतिवादी, निदेशक,  
तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय,  
जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश को संबोधित एक  
सरकारी आदेश जारी किया गया था, जिसमें  
अन्य पदों के साथ-साथ तीसरे प्रतिवादी  
संस्थान में इलेक्ट्रॉनिक्स अनुशासन में  
व्याख्याताओं के चार पदों के सृजन का  
प्रावधान किया गया था।

4. यह रिट याचिकाकर्ता का मामला है कि  
तीसरे प्रतिवादी-संस्थान के प्रशासन की  
अनुमोदित योजना के तहत निहित प्रावधानों  
के अनुसार, एक चयन समिति को चयन करने  
के लिए विचार किया गया था जिसमें (i)  
अध्यक्ष, प्रबंध समिति या उसके द्वारा नामित  
व्यक्ति, (ii) तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा  
तैयार विशेषज्ञों के पैनल में से प्रबंध समिति के  
अध्यक्ष द्वारा चयनित विशेषज्ञ, (iii)  
तकनीकी शिक्षा निदेशक का एक प्रतिनिधि,  
(iv) अखिल भारतीय अध्यापक शिक्षा  
परिषद्/भारत सरकार के उत्तरी क्षेत्र कार्यालय,  
शिक्षा मंत्रालय (तकनीकी) का एक प्रतिनिधि  
और; (v) प्रधानाचार्य।

5. रिट याचिका के पैरा 6 में आगे कहा गया  
है कि प्रशासन की योजना के अनुसार विभिन्न  
विषयों में व्याख्याताओं के पद पर नियुक्ति के  
लिए चयन कराने के लिए द्वितीय प्रतिवादी  
निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा  
निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश ने  
व्याख्याता (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद के लिए  
विशेष रूप से एक चयन समिति नामित की,  
एचबीटीआई, कानपुर के इलेक्ट्रॉनिक्स

इंजीनियरिंग विभाग के प्रमुख श्री केके त्रिपाठी को विशेषज्ञ सदस्य बनाया गया। तीसरे प्रतिवादी संस्था द्वारा 8-10-1993 को रोजगार समाचार पत्र में एक विज्ञापन भी प्रकाशित किया गया था जिसमें इलेक्ट्रॉनिक्स में लेक्चरर के दो पदों सहित तीसरे प्रतिवादी संस्था में लेक्चररों की अनेक रिक्तियों के लिए नियुक्ति हेतु विचार किए जाने हेतु पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे।

6. रिट याचिकाकर्ता ने 27.12.1993 से भारतीय वायु सेना में कॉर्पोरल के पद पर काम करते हुए खुद को सभी मामलों में पूरी तरह से पात्र और योग्य होने का दावा करते हुए 13.10.1993 को इलेक्ट्रॉनिक्स में लेक्चरर के पद के लिए आवेदन किया। याचिकाकर्ता को साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए एक साक्षात्कार पत्र जारी किया गया था। रिट याचिकाकर्ता साक्षात्कार में उपस्थित होने का दावा करता है।

7. रिट याचिका के पैरा 10 में, यह आगे कहा गया है कि श्री के. के. त्रिपाठी, विभागाध्यक्ष, इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग एचबीटीआई, कानपुर की चयन समिति और विशेषज्ञ सदस्यों के साथ, जिसमें श्री वाईपी सिंह, प्रबंध समिति के अध्यक्ष और जी.पी. इस संबंध में दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत किए गए हैं।

8. 1962 अधिनियम की धारा 22-एफ की उप-धारा (3) के तहत प्रदत्त शक्तियों के कथित प्रयोग में रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, तीसरे

प्रतिवादी की प्रबंध समिति ने 12.03.1994 को रिट याचिकाकर्ता के पक्ष में एक नियुक्ति आदेश जारी करने के लिए उसे व्याख्याता (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद पर नियुक्त किया।

9. दिनांक 22.01.1994 की चयन समिति की कार्यवाही को प्रबंध समिति की बैठक में रखा गया जिसे प्रबंध समिति द्वारा दिनांक 14.05.1994 के कार्यवृत्त द्वारा अनुमोदित भी किया गया।

10. रिट याचिका के पैरा 13 और 14 में रिट याचिकाकर्ता ने आगे कहा है कि उसके पास अपने क्रेडिट का व्यापक अनुभव है और उसका चयन योग्यता के आधार पर था।

11. याचिकाकर्ता ने आगे दावा किया कि उसे 23.04.1994 को शामिल किया गया था और उसे विभिन्न कार्य सौंपे गए थे जो उसने तीसरे प्रतिवादी की संतुष्टि के लिए किए थे। रिट याचिकाकर्ता संदर्भ द्वारा प्रशंसा पत्र भी नियुक्त किए गए हैं जिनमें से रिट याचिका के पैरा 17, 18 और 19 में दिए गए हैं।

12. चूंकि याचिकाकर्ता और एक श्री अमित मिश्रा, जो उसी नाव पर नौकायन कर रहे थे, को नियमित वेतनमान/वेतन नहीं दिया जा रहा था, इसलिए उन्होंने रिट याचिका संख्या 106/1996 (एसबी) को प्राथमिकता दी, जिसमें उत्तरदाताओं को बकाया सहित सभी परिणामी लाभों के साथ नियुक्ति की तारीख से याचिकाकर्ताओं को नियमित वेतन का भुगतान करने का आदेश दिया गया था।

13. हालांकि, इस बीच, 18.03.1994 को दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित एक आदेश जिसके तहत रिट याचिकाकर्ता की नियुक्ति को व्याख्याता (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद पर अस्वीकार कर दिया गया था। नतीजतन, उक्त रिट याचिका में एक संशोधन आवेदन दायर किया गया था जिसे अनुमति दी गई थी। इसके बाद, उक्त रिट याचिका को लखनऊ बेंच से इस अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया और इसे सिविल विविध रिट नंबर 25791/1997 के रूप में फिर से क्रमांकित किया गया।

14. रिकॉर्ड आगे बताते हैं कि तीसरे प्रतिवादी-संस्थान के कार्यवाहक प्रिंसिपल ने रिट याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश दिनांक 14.03.2001 पारित किया। रिट याचिकाकर्ता ने रिट ए संख्या 11976/2001 (कुर्वेन्द्र पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की।

15. उक्त रिट याचिका में, 30.03.2001 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसे निम्नानुसार निकाला गया है:

"अगले आदेश तक, 14.03.2001 के आक्षेपित आदेश का संचालन और आधिकारिक आवास से याचिकाकर्ता की बेदखली पर रोक रहेगी।

16. द्वितीय प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक

18.03.1994 को चुनौती देने वाली रिट ए संख्या 25791 (अमित मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) 23.08.2016 को अंतिम विचार के लिए आया, जिसमें दूसरे प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.03.1994 को यह देखते हुए रद्द कर दिया गया था कि जिस आधार पर अस्वीकृति की गई है वह अस्तित्वहीन था क्योंकि अनुमोदन नहीं था चयन के संचालन के चरण में दूसरे प्रतिवादी की आवश्यकता थी, लेकिन 1962 अधिनियम की धारा 22 (एफ) के तहत नियोजित भाषा को देखते हुए, नियुक्ति आदेश जारी करने से पहले अनुमोदन की आवश्यकता थी। हालांकि, आदेश के ऑपरेटिव हिस्से में दिनांक 18.03.1994 के आदेश को रद्द करते हुए, दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश को मामले की नए सिरे से जांच करने और कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। रिट-ए संख्या 25791/1997 (अमित मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2016 के ऑपरेटिव हिस्से को नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

"17. निदेशक अब मामले की नए सिरे से जांच करेंगे और कानून के अनुसार एक उचित आदेश पारित करेंगे और यदि उन्हें अस्वीकृति के लिए कोई अन्यथा वैध कारण मिलता है, तो अनुमोदन दिया जाएगा और याचिकाकर्ता अपनी नियुक्ति की तारीख से सभी परिणामी लाभों का हकदार होगा। 18. परिणाम में और

उपरोक्त निर्देश के अधीन, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। 18.03.1994 के आक्षेपित आदेश को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

17. उसी दिन, रिट याचिकाकर्ता, रिट ए संख्या 11976/2001 द्वारा पसंद की गई रिट याचिका, तीसरे प्रतिवादी-संस्थान द्वारा पारित दिनांक 14.03.2001 के समाप्ति आदेश को चुनौती देते हुए सभी परिणामी लाभों के लिए रिट याचिकाकर्ता को हकदार बनाने की अनुमति दी गई।

18. दलीलों से यह भी पता चलता है कि दोनों रिट याचिकाओं में पारित आदेश दिनांक 23.08.2016 एसएलपी (सी) में चुनौती का विषय था..... 2017 की सीसी संख्या 6810 और एसएलपी (सी) ..... सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सीसी संख्या 8260/2017 जिसे 01.05.2017 को वापस ले लिया गया के रूप में खारिज कर दिया गया, समीक्षा याचिका दायर करने के माध्यम से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्वतंत्रता के साथ।

19. यह भी सूचित किया गया है कि उत्तरदाताओं द्वारा पसंद किए गए समीक्षा आवेदनों को 04.12.2019 को खारिज कर दिया गया है।

20. रिमांड के बाद, अब दूसरा प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश ने दिनांक 13.09.2017 को एक आदेश पारित किया है, जिसमें पूरी चयन प्रक्रिया को रद्द

करते हुए कहा गया है कि चयन प्रक्रिया कानून के अनुसार नहीं थी।

21. द्वितीय प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के आदेश दिनांक 13.09.2017 पर सवाल उठाते हुए और तीसरे प्रतिवादी-संस्थान में रिट याचिकाकर्ता के चयन और नियुक्ति के लिए दिनांक 22.01.1994 की चयन समिति की सिफारिश को बहाल करने के लिए प्रतिवादियों को निर्देश देने की मांग करते हुए, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

22. 01.11.2017 को वर्तमान रिट याचिका पर विचार करते हुए, दिनांक 13.09.2017 के आदेश को स्थगित रखा गया और तीसरे और चौथे प्रतिवादी को नोटिस जारी किए गए।

23. विभागाध्यक्ष, कम्प्यूटर गवर्नमेंट गर्ल्स पॉलिटेक्निक, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 15.12.2017 को शपथ ग्रहण प्रथम एवं द्वितीय प्रतिवादी की ओर से एक प्रतिशपथ पत्र दायर किया गया है, जिसका प्रत्युत्तर शपथ पत्र दिनांक 11.03.2018 को दायर किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की ओर से, जो विचाराधीन समिति की प्रबंध समिति और प्रिंसिपल हैं, 03.04.2018 को एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसके लिए 14.04.2018 को एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 18-09-2001 को एक अनुपूरक शपथ पत्र दायर किया गया है जो रिकार्ड में उपलब्ध है।

24. निर्णयों का एक संकलन भी दायर किया गया है जो रिकॉर्ड पर भी है।

25. श्री वी. के. उपाध्याय, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भैया लाल यादव द्वारा सहायता प्राप्त श्री बिधान चंद्र राय, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देने की मांग की है कि दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.09.2017 पेटेंट अवैधता से ग्रस्त है और विभिन्न आधारों पर कानून की नजर में इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है, सबसे पहले चयन वर्ष 1994 के हैं और उन्हें लगभग 13 वर्षों की अवधि के बाद रद्द नहीं किया जा सकता था, विशेष रूप से, जब रिट याचिकाकर्ता को दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर द्वारा विधिवत अनुमोदित प्रशासन की योजना के अनुसार गठित चयन समिति के माध्यम से नियुक्त किया गया था। दिनांक 12.03.1994 को नियुक्ति आदेश जारी करते समय और दिनांक 23.04.1994 को कार्यभार ग्रहण करते समय विज्ञापन देने और लाभ प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश के विरुद्ध कार्रवाई की गई है। दूसरे, दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.03.1994 में चयन में की गई किसी भी अवैधता के आधार पर रिट याचिकाकर्ता के चयन और नियुक्ति पर सवाल नहीं उठाया गया था, हालांकि, अस्वीकृति के लिए एकमात्र आधार यह था कि चयन करने से पहले निदेशक की पूर्व स्वीकृति

नहीं ली गई थी और एक बार उक्त आधार को न्यायिक जांच में अस्वीकार कर दिया गया था, न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय में पुष्टि की और समीक्षा याचिकाओं में फिर चयन पर सवाल उठाने के लिए एक नया आधार लेना पूरी तरह से अस्वीकार्य है क्योंकि यह रिट याचिकाकर्ता को उसके वैध अधिकारों से वंचित करने के लिए एक बाद में सोचा गया है। तीसरा, प्रिंसिपल और शिक्षकों की नियुक्ति की योग्यता और चयन के तरीके को निर्धारित करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश प्रारंभिक शिक्षा अधिनियम, 1962 होने के नाते कानून के तहत एक प्रक्रिया पर विचार किया गया है, फिर दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के प्रिंसिपल को संबोधित दिशानिर्देश/पत्र दिनांक 17.05.1989 लागू नहीं होंगे और इस प्रकार उक्त को अपनाते समय चयन को अवैध मानने के संबंध में मानदंड स्वीकार्य नहीं है। चौथा, चयन समिति ने समग्र मूल्यांकन के आधार पर एक उम्मीदवार का चयन किया है, तो दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के पास उक्त चयन को अवैध मानते हुए उक्त निर्णय को रद्द करने का कानून के तहत कोई अधिकार नहीं है। पांचवां, चयन/नियुक्ति को अनुमोदित या अस्वीकृत करने का निर्णय लेते समय, दूसरे प्रतिवादी, निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश को अंक देते समय चयन समिति के व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के संबंध में इस मुद्दे पर जाने की आवश्यकता नहीं थी और आगे प्रश्नगत कानून में निहित किसी भी प्रावधान के अभाव में

बाहर से कुछ भी उधार नहीं लिया जा सकता था। छठा, रिट याचिका में तकनीकी शिक्षा निदेशक का आदेश समीक्षा के समान है जो पूरी तरह से अस्वीकार्य है क्योंकि रिट याचिका के दावे को खारिज करने के लिए नए आधार दिए गए हैं।

26. संक्षेप में, रिट याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि व्याख्याता (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद पर रिट याचिकाकर्ता का चयन निदेशक तकनीकी शिक्षा द्वारा अनुमोदित प्रशासन की योजना के अनुसार कानून के अनुसार सख्ती से किया गया था, इस प्रकार, किसी भी कोने की कोई शिकायत नहीं है, चयन को अवैध नहीं कहा जा सकता है, विशेष रूप से, जब रिमांड के बाद लिए गए आधार कभी भी वह आधार नहीं थे जिन्हें पहले सेवा में दबाया गया था।

27. श्री वी. के. उपाध्याय, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश राज्य में सहायता प्राप्त संस्थानों के प्रधानाचार्यों को संबोधित निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के हस्ताक्षर के तहत जारी किए गए चयनों में प्रतिवादी जो दिशानिर्देश लागू करने का प्रस्ताव कर रहे हैं, वे एक पत्र के रूप में हैं, इस प्रकार यह किसी नियम, विनियम या सरकारी आदेश के स्वरूप को नहीं दर्शाता है और इस प्रकार यह कुछ ऐसे पहलुओं को शामिल करने के समान है जो स्वयं अधिनियम के तहत प्रदान नहीं किए गए हैं, परिणामस्वरूप, उक्त पत्र वैधानिक अधिनियमन के साथ भी हिंसा करता है और

यह अधिकारातीत है। इस प्रकार, यह तर्क दिया जा रहा है कि दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा जारी कोई भी निर्देश, जो नियमों के तहत अपेक्षित नहीं है, को सेवा में नहीं डाला जा सकता है ताकि चयन में किसी भी कमी को इंगित किया जा सके। निवेदन केवल 1962 के अधिनियम के सांविधिक उपबंधों के अंतर्गत ही 1962 के अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत नियम बनाने की शक्ति और धारा 24 के अंतर्गत उपनियम बनाने की शक्ति निहित है। चूंकि द्वितीय प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश दिनांक 17.05.1989 का पत्र न तो नियम है और न ही विनियम है, अतः प्रतिवादी इस आधार पर चयन रद्द नहीं कर सकते थे कि चयन करते समय उक्त पत्र में निर्धारित दिशा-निर्देशों का पालन नहीं किया गया था। रिट याचिकाकर्ता की ओर से आगे प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिकाकर्ता ने खुद को भारतीय वायु सेना से छुट्टी दे दी थी और प्रश्न में पद के लिए आवेदन किया था, इसलिए वर्ष 2017 में चयन को रद्द करना काफी कठिन होगा जो वर्ष 1994 में आयोजित किए गए थे क्योंकि पूरे सेवा और शैक्षणिक करियर को खतरे में डाल दिया जाएगा। तदनुसार, वह प्रार्थना करता है कि दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित रिट याचिका दिनांक 13.09.2017 में आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाए और रिट याचिकाकर्ता को सभी लाभ दिए जाएं जैसा कि मांगा गया है।



28. उक्त सबमिशन का विरोध करते हुए श्री गोपाल चंद्र सक्सेना द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने तर्क दिया है कि दूसरे प्रतिवादी निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश का निर्णय कानून के अनुसार पूरी तरह से वैध है और इस संबंध में कोई दोष नहीं दिया जा सकता है। वह प्रस्तुत करता है कि हालांकि, विज्ञापन वर्ष 1993 में जारी किया गया था और चयन वर्ष 1994 में आयोजित किए गए थे, हालांकि, दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश ने गलत आधार पर रिट याचिकाकर्ता की नियुक्ति के अनुमोदन को अस्वीकार कर दिया कि चयन करने से पहले 1962 अधिनियम की धारा 22-एफ के तहत पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता थी, हालांकि 23.08.2016 को तय किए गए रिट ए-नंबर 25791/1997 में रिट याचिकाकर्ता के इशारे पर रिट कार्यवाही में इसे सही तरीके से खारिज कर दिया गया था, जबकि मामले को दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश को वापस भेज दिया गया था ताकि मामले की नए सिरे से जांच की जा सके और उचित आदेश पारित किए जा सकें। रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद पूरे मामले की जांच के परिणामस्वरूप, दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश ने पाया कि चयन समिति द्वारा चयन में स्पष्ट अनियमितताएं की गई थीं, जिसके कारण आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

29. निवेदन यह है कि रिट कोर्ट द्वारा 23.08.2016 को पारित आदेश के परिणामस्वरूप चयन को रद्द करने में कोई देरी नहीं हुई है, जब इस मुद्दे की जांच की गई थी, तब वर्ष 2017 में, आक्षेपित आदेश 13.09.2017 को पारित किया गया है। वह प्रस्तुत करता है कि इस तथ्य के मद्देनजर कि दिनांक 13.08.1994 का आदेश एक ऐसा आदेश था जो वास्तव में चयन समिति द्वारा अपनाए गए मानदंडों और प्रक्रिया की जांच करने के बाद भी पारित नहीं किया गया था, लेकिन इसे इस आधार पर पारित किया गया था कि चयन से पहले पूर्व अनुमोदन दूसरे प्रतिवादी से नहीं लिया गया था, इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि उत्तरदाताओं की कार्यवाही को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। राज्य के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने रिट याचिका में लगाए गए आदेश की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए प्रस्तुत किया है कि व्याख्याता (इलेक्ट्रॉनिक्स) के चयन के संबंध में, दो पदों का विज्ञापन किया गया था और 110 आवेदकों ने आवेदन किया था। उन्होंने कहा कि चयन समिति के कार्यवृत्त के अनुसार, इसके पहले पृष्ठ पर डॉ. जीबी सिंह, प्रिंसिपल, श्री केके त्रिपाठी, विशेष सचिव और श्री वाईपी सिंह, अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, हालांकि दूसरे पृष्ठ पर एक चार्ट सारणीबद्ध किया गया है जिसमें शैक्षणिक योग्यता, तकनीकी योग्यता, न्यूनतम योग्यता और साक्षात्कार से अधिक अंकों की प्राप्ति के शीर्षक शामिल हैं। केवल प्रधानाचार्य, सदस्य-सचिव के हस्ताक्षर हैं, हालांकि विशेष सचिव और अध्यक्ष के हस्ताक्षर गायब पाए गए हैं और तीसरे पृष्ठ में तीन सदस्यों के हस्ताक्षर पहले

से ही हैं। आगे यह प्रदर्शित किया जा रहा है कि एक बार जब एक चयन समिति में तीन सदस्य शामिल होते हैं तो स्पष्ट रूप से तीनों सदस्यों द्वारा पूर्वोक्त शीर्षक के तहत अलग-अलग अंक दिए जाने हैं, हालांकि तीनों सदस्यों द्वारा अलग-अलग अंक नहीं दिए गए हैं जो वास्तव में भी एक स्पष्ट अनियमितता है। निदेशक के दिनांक 17.05.1989 के पत्र की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, जिसमें दिशा-निर्देशों और मानदंडों का प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार चयन समिति के सदस्यों द्वारा विभिन्न प्रमुखों के तहत अंक दिए जाने हैं, यह प्रस्तुत करने की मांग की गई है कि संपूर्ण चयन इस तरह से तैयार किया गया है ताकि याचिकाकर्ता और एक श्री अमित मिश्रा को लाभ प्रदान किया जा सके जैसा कि रिट याचिकाकर्ता (कुर्वेद्र पाल सिंह), उन्होंने शैक्षणिक योग्यता के पैरामीटर के तहत केवल 5 अंक प्राप्त किए, अधिकतम अंक 10 और तकनीकी योग्यता के पैरामीटर के तहत अधिकतम 40 अंक प्राप्त किए। हालांकि, उन्हें वाइवा वॉयस के मापदंडों के तहत 29 अंक, अधिकतम 30 अंक दिए गए थे। जहां तक अमित मिश्रा का संबंध है, उन्होंने भी शैक्षणिक योग्यता के पैरामीटर के तहत 10 अंकों में से 5 अंक प्राप्त किए और तकनीकी योग्यता के मापदंडों के तहत 30 अंक प्राप्त किए, जिसमें अधिकतम 40 अंक और वाइवा वॉयस में 28 अंक पूरी तरह से 30 अंक हैं, ताकि उन्हें अन्य उम्मीदवारों के रूप में चयन सुरक्षित किया जा सके, जैसे कि अतुल श्रीवास्तव और कुमारी ज्योति रावत, अशोक कुमार को शैक्षणिक योग्यता के पैरामीटर के तहत 10 अंक, तकनीकी योग्यता के पैरामीटर के तहत 40

अंक दिए गए और साक्षात्कार में उन्हें केवल 8 अंक दिए गए। अतुल गोयल, पीयूष चंद्र गुप्ता, अरविंद श्रीवास्तव आदि के मामले में उक्त आशय का उदाहरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया गया है कि दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के दिनांक 17.05.1989 के पत्र के अनुसार यदि कोई उम्मीदवार उच्च योग्यता रखता है तो न्यूनतम योग्यता आवश्यक है तो अधिकतम अंक 20 होंगे और योग्यता और अनुभव को देखते हुए, अंक दिए जाएंगे और जहां तक अनुभव के संबंध में अंक का संबंध है, प्रत्येक वर्ष अधिकतम 10 अंक दिए जाने हैं।

30. निवेदन यह है कि चूंकि साक्षात्कार में चयनित होने के लिए 1/3 अंक 30 अंकों में से 10 अंक होने के कारण आवश्यक थे, इसलिए योग्य उम्मीदवारों के अवसरों को समाप्त करने के लिए चयन समिति ने मानदंड साक्षात्कार के तहत 30 अंकों में से 10 से कम अंक दिए थे, इस तथ्य के बावजूद कि उन उम्मीदवारों ने शैक्षणिक योग्यता और तकनीकी योग्यता के मापदंडों के तहत उच्च अंक प्राप्त किए थे। उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, तकनीकी शिक्षा निदेशक का 17.05.1989 का पत्र जोरदार और स्पष्ट था और इसे 1962 अधिनियम के तहत निहित किसी भी प्रावधान का अधिकारातीत नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह भी तर्क दिया जाता है कि व्यवसाय के सामान्य आचरण में यह व्यापक रूप से ज्ञात है कि चयन निकाय, मामला या तो उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग या संघ लोक सेवा आयोग और उत्तर प्रदेश

अधीनस्थ सेवा चयन आयोग हो सकता है, वे विभिन्न श्रेणी के तहत अंक देने के लिए अपनी प्रक्रिया का उपयोग कर सकते हैं, जब वे कानूनों में मौजूद नहीं होते हैं।

31. इसके अलावा, यह आगे तर्क दिया गया है कि 1962 के अधिनियम की धारा 22-एफ के तहत, जानबूझकर "अनुमोदित" शब्द को नियोजित किया गया है जो दर्शाता है कि निदेशक को चयन या नियुक्तियों को अनुमोदित या अस्वीकार करने का निर्णय लेने से पहले रिकॉर्ड के माध्यम से जाने के बाद अपने स्वतंत्र दिमाग का इस्तेमाल करना होगा ताकि संतुष्ट हो सके कि चयन कानूनी तरीके से आयोजित किए गए थे या नहीं। इस प्रकार, यह तर्क दिया जा रहा है कि निदेशक उस संबंध में बिना पढ़े और संतुष्ट हुए बिना अपना रबर स्टैम्प लगाते समय पोस्ट-ऑफिस के रूप में कार्य नहीं कर सकता है।

32. रिट याचिका में लगाए गए आदेशों की वैधता और वैधता के संबंध में प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों पर जांच शुरू करने से पहले। यह न केवल प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देने के लिए उपयुक्त होगा, बल्कि उन दस्तावेजों को भी नोटिस करना होगा जो प्रश्न में विवाद का निर्णय लेने के लिए उपयुक्त होंगे।

#### चयन समिति के कार्यवृत्त दिनांक 22.01.1994

चयन समिति की बैठक दिनांक 22.01.1994

की कार्यवाही की संलग्नक अंक तालिका।

प्रवक्ता इलेक्ट्रानिक्स पवद (सामान्य)

| क्र० सं० | अभ्यर्थी का नाम               | एकेडेमिक योग्यता के आधार पर प्राप्तांक | टेक्नीकल योग्यता के आधार पर प्राप्तांक | न्यूनतम से अधिक योग्यता के आधार पर प्राप्तांक | साक्षात्कार के आधार पर प्राप्तांक |
|----------|-------------------------------|----------------------------------------|----------------------------------------|-----------------------------------------------|-----------------------------------|
| 1        | श्री अनिल कुमार सोनी          | 10                                     | 30                                     | -                                             | 10                                |
| 2        | श्री राम कमाल शर्मा           | 10                                     | 30                                     | -                                             | 8                                 |
| 3        | श्री अतुल श्रीवास्तव          | 10                                     | 40                                     | -                                             | 8                                 |
| 4        | श्री आघास कुमार शर्मा         | 10                                     | 20                                     | -                                             | 10                                |
| 5        | श्री राहुल वर्मा              | 10                                     | 30                                     | -                                             | 5                                 |
| 6        | श्री विक्रम सिंह पवार         | 10                                     | 20                                     | -                                             | 12                                |
| 7        | श्री मो० सुल्तान अहमद अन्सारी | 0                                      | 20                                     | -                                             | 10                                |
| 8        | श्री सत्यप्रकाश तिवारी        | 5                                      | 30                                     | -                                             | 10                                |
| 9        | श्री अनुज कुमार सक्सेना       | 5                                      | 40                                     | -                                             | 9                                 |
| 10       | श्री बसन्त कुमार              | 10                                     | 30                                     | -                                             | 10                                |
| 11       | श्री अवधेश कुमार गौतम         | 5                                      | 20                                     | -                                             | 8                                 |
| 12       | श्री नरेन्द्र सिंह            | 10                                     | 30                                     | -                                             | 11                                |
| 13       | श्री उपेन्द्र                 | 10                                     | 30                                     | -                                             | 12                                |

|    |                                   |    |    |   |    |
|----|-----------------------------------|----|----|---|----|
|    | कुमार<br>शुक्ला                   |    |    |   |    |
| 14 | कु<br>ज्योति<br>रावत              | 10 | 40 | - | 8  |
| 15 | श्री अतुल<br>गोयल                 | 10 | 40 | - | 4  |
| 16 | श्री निवास<br>अगनोरा              | 10 | 20 | - | 10 |
| 17 | श्री<br>अरविन्द<br>श्रीवास्त<br>व | 10 | 40 | - | 3  |
| 18 | श्री राजेश<br>कुमार<br>तमैया      | 10 | 30 | - | 10 |
| 19 | श्री पीयूष चंद्र<br>गुप्ता        | 10 | 40 | - | 9  |
| 20 | श्री संजय<br>कुमार                | 10 | 20 | - | 8  |
| 21 | ज्योति<br>स्वरूप<br>गुप्ता        | 10 | 30 | - | 11 |
| 22 | श्री विवेक<br>श्रीवास्तव          | 10 | 30 | - | 10 |
| 23 | श्री<br>मनोज<br>कुमार<br>मित्तल   | 10 | 30 | - | 10 |
| 24 | श्री अशोक<br>कुमार                | 10 | 40 | - | 8  |
| 25 | श्री मोहम्मद<br>सलीम वेग          | 10 | 40 | - | 9  |
| 26 | श्री गोविंद<br>कुमार शर्मा        | 10 | 30 | - | 11 |
| 27 | श्री देवेश कुमार<br>द्विवेदी      | 10 | 30 | - | 12 |
| 28 | श्री सुशील<br>कुमार सिंह          | 5  | 30 | - | 10 |
| 29 | श्री काली<br>प्रकाश<br>श्रीवास्तव | 10 | 30 | - | 13 |

|    |                                |    |    |   |    |
|----|--------------------------------|----|----|---|----|
| 30 | श्री राजेश<br>तिवारी           | 5  | 20 | - | 9  |
| 31 | श्री<br>रामफल<br>सत्यार्थी     | 5  | 20 | - | 9  |
| 32 | श्री विजय<br>कुमार<br>शुक्ला   | 10 | 20 | - | 10 |
| 33 | श्री कुवेन्द्रपाल<br>सिंह      | 5  | 20 | - | 29 |
| 34 | श्री राजीव<br>कुमार सिंह       | 5  | 30 | - | 10 |
| 35 | श्री राजीव<br>कुमार गुप्ता     | 10 | 30 | - | 8  |
| 36 | श्री<br>रजनेश<br>कुमार<br>यादव | 5  | 30 | - | 12 |
| 37 | श्री शरद संजीव<br>शर्मा        | 10 | 30 | - | 10 |
| 38 | श्री मोन अहमद<br>इदशी          | 10 | 30 | - | 11 |
| 39 | श्री वीरेंद्र<br>कुमार सिंह    | 10 | 30 | - | 10 |
| 40 | श्री प्राणेश<br>कुमार          | 10 | 30 | - | 10 |
| 41 | श्री विजय<br>कुमार<br>अग्रवाल  | 10 | 30 | - | 12 |
| 42 | श्री सुशील<br>कुमार शर्मा      | 5  | 20 | - | 5  |
| 43 | श्री योगेन्द्र<br>सिंह         | 5  | 30 | - | 5  |
| 44 | श्री महेशपाल<br>सिंह चौहान     | 10 | 20 | - | 12 |
| 45 | श्री हेमंत<br>पुरोहित          | 10 | 30 | - | 10 |
| 46 | श्री संदीप<br>अग्रवाल          | 10 | 30 | - | 10 |
| 47 | श्रीमती<br>अनंजुल<br>गंगवार    | 10 | 40 | - | 8  |

|    |                            |    |    |   |    |
|----|----------------------------|----|----|---|----|
| 48 | श्रीमती जिज्ञासा अग्नेय    | 5  | 30 | - | 10 |
| 49 | श्री योगेन्द्र सिंह        | 5  | 20 | - | 5  |
| 50 | श्री मनीयल                 | 10 | 30 | - | 12 |
| 51 | श्री सुदीप कुमार पंडा      | 5  | 30 | - | 11 |
| 52 | श्री राजेन्द्र प्रसाद यादव | 10 | 20 | - | 8  |
| 53 | श्री हरीपाल यादव           | 10 | 30 | - | 10 |
| 54 | श्री अनुरोध कुमार रांगा    | 5  | 30 | - | 10 |
| 55 | श्री अमित मिश्रा           | 5  | 30 | - | 28 |
| 56 | श्री आत्माराम              | 10 | 30 | - | 10 |
| 57 | श्री सदारसू माहेश्वरी      | 10 | 30 | - | 10 |
| 58 | श्री उमेश सिंह             | 5  | 30 | - | 11 |
| 59 | श्री कपिल कुमार श्रीवास्तव | 10 | 30 | - | 12 |
| 60 | श्री दिनेश चन्द्र          | 10 | 30 | - | 12 |
| 61 | श्री प्रमोद कुमार अग्रवाल  | 5  | 30 | - | 12 |
| 62 | श्री हेमचंद्र विष्ट        | 10 | 30 | - | 12 |
| 63 | श्री सत्य कामत             | 10 | 30 | - | 10 |
| 64 | श्री राजीव रन्जन पाण्डेय   | 10 | 30 | - | 11 |

(डा० जी०पी० सिंह) (के०के० त्रिपाठी)  
 (वाई०पी० सिंह) प्रधानाचार्य विशेषज्ञ  
 सचिव, हेड आफ अध्यक्ष, प्रबंध  
 समिति, सदस्य सचिव  
 डिपार्टमन्ट, इलेक्ट्रानिक्स, एम0 जी0  
 प्रबन्ध समिति, एम0जी0 इंजी 0,  
 पालीटेक्निक, हाथरस। पालीटेक्निक, हाथरस।  
 एच०बी०टी०आई, कानपुर।

### तकनीकी शिक्षा निदेशक का आदेश दिनांक

13.09.2017

मा० उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश के अनुपालन में याचीगणों के चयन के अनुमोदन पर निर्णय लिए जाने हेतु संस्था एम०जी० पालीटेक्निक, हाथरस में चयन समिति द्वारा प्रवक्ता इलेक्ट्रानिक्स के 02 पद एवं प्रवक्ता विद्युत के 02 पर की गई चयन की कार्यवाही से सम्बन्धित संस्था प्रधानाचार्य के पत्र सं० 16 ई०एस०(ए)/481 दिनांक 15.02.1994 द्वारा प्रेषित प्रस्ताव एवं संलग्न अभिलेखों का पुनः परीक्षण किया गया, जिससे निम्न कमियां/त्रुटियां पाई गई:-

1. संस्था के प्रेषित पत्र दिनांक 15.02.1994 द्वारा प्रवक्ता इलेक्ट्रानिक्स के 02 पद हेतु 110 अभ्यर्थियों के प्राप्त आवेदन पत्रों के आधार पर उनका विवरण उल्लिखित करते हुए 7 पृष्ठों पत्र संलग्न है तथा प्रवक्ता विद्युत (सामान्य) के 01 पद कोई विवरण पत्र संलग्न नहीं से मिलान (स्क्रीनिंग) करते हुए प्राप्त वैध आवेदन पत्र एवं निरस्त किये गये आवेदन पत्रों का निर्माण कर वैध आवेदनकर्ताओं को साक्षात्कार हेतु बुलाने का निर्णय किया जाना

चाहिए था, परंतु उक्त पत्रों पर न तो चयन समिति के सदस्यों के हस्ताक्षर हैं और न ही जन्म अनुभव प्रमाण पत्रों का मान्य/अमान्य माने जाने के संबंध में कोई टिप्पणी अंकित की गई है जो नियमों के परिप्रेक्ष्य में सही नहीं है।

2. प्रवक्त इलेक्ट्रानिक्स के पदों पर गठित चयन की बैठक की दिनांक 22.1.1994 से सम्बन्धित अंकों का चार्ट प्रेषित किया गया है, जिसमें 64 अभ्यर्थियों का चयन समिति द्वारा साक्षात्कार स पश्चात प्रदत्त अंकों का विवरण 02 प्रष्ठों में प्रेषित किया गया है, जिसमें प्रथम प्रष्ठ पर मात्र तत्कालीन प्रधानाचार्य, एम0जी0 पालीटेक्निक, हाथरस के ही हस्ताक्षर हैं तथा समिति के अन्य 02 सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं है। प्रष्ठ-2 पर चयन समिति के तीनों सदस्यों क्रमशः 1- डा0 जी0 पी0 सिंह, प्रधानाचार्य/सदस्य-सचिव, 2- श्री के0 के0 त्रिपाठी विशेषज्ञ/सदस्य, (इलेक्ट्रानिक्स) 3- श्री वाई0पी0 सिंह, अध्यक्ष, प्रबन्ध समिति द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। प्रथम प्रष्ठ पर मात्र प्रधानाचार्य के हस्ताक्षर होने से चयन समिति के सभी सदस्यों द्वारा साक्षात्कार के अंक प्रधान किए गये हैं, सिद्ध नहीं होता है तथा एकल हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं, क्योंकि चयन समिति के सभी सदस्यों द्वारा साक्षात्कार के अंक प्रदान किए जाते हैं।

3. चयन समिति द्वारा अभ्यर्थियों का साक्षात्कार निम्न आधार पर किए जाने का उल्लेख किया गया है:-

| एकेडेमिक योग्यता | टेक्निकल योग्यता | न्यूनतम से अधिक | साक्षात्कार के |
|------------------|------------------|-----------------|----------------|
|------------------|------------------|-----------------|----------------|

|    |    | योग्यता | अधिकतम अंक |
|----|----|---------|------------|
| 10 | 40 | 20      | 30         |

उक्त संदर्भ में निदेशक प्राविधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश के पत्र सं 0 17-35 ए0डी0 कैम्प/ई-35-एक्स विविध दिनांक 17.05.1989 द्वारा समस्त प्रधानाचार्य, सहायता प्राप्त बहुधंधी संस्थान, उत्तर प्रदेश को नियुक्ति हेतु शैक्षिक योग्यता, अनुभव तथा साक्षात्कार के लिए अंकों के मापदंड का निर्धारण किया गया है, जिसमें व्याख्याता पद हेतु इंटरमीडिएट प्रथम श्रेणी-10 अंक, द्वितीय श्रेणी-05 अंक, (अधिकतम-10 अंक) डिग्री 75 प्रतिशत से अधिक-40 अंक, प्रथम श्रेणी-30 अंक, द्वितीय श्रेणी-20 अंक, (अधिकतम-40 अंक) निर्धारित आहर्ता से उच्च प्राविधिक आहर्ता-10 अंक, अनुभव के लिए 02 अंक प्रतिवर्ष अधिकतम 10 अंक (कुल 20 अंक) (अर्हता तथा अनुभव की प्रकृति को देखते हुए चयन समिति द्वारा अंक दिए जायेंगे) तथा साक्षात्कार हेतु 30 अंक (साक्षात्कार में एक तिहाई से कम अंक प्राप्त होने पर चयन नहीं किया जायेगा) कुल 100 अंक का निर्धारण करते हुए चयन किये जाने का प्राविधान किया गया है।

उपर्युक्त आदेश के परिप्रेक्ष्य में चयन समिति द्वारा न्यूनतम से अधिक योग्यता के २० अंक प्रदर्शित किये गए हैं तथा अनुभव से सम्बंधित किसी भी अभ्यर्थी को कोई भी अंक आवंटित नहीं किया गया है, जो नियमानुसार सही नहीं है।

चयन समिति की बैठक दिनांक 22.01.1994 की कार्यवाही के साथ संलग्न अंक चार्ट क्रमांक-19, क्रमांक-24, क्रमांक-25 पर दर्शये गए अभ्यर्थियों को एकेडमिक एवं टेक्निकल योग्यता के अंक 10+40 तथा क्रमांक-9 के अभ्यर्थी को 05+40 अंक दिया जाना प्रदर्शित है, जो की अधिकतम अंक है। परन्तु इन अभ्यर्थियों को चयन समिति द्वारा सुनियोजित तरीके से साक्षात्कार में 03 के 09 अंक प्रदान किये गए हैं, ताकि उनको चयन से वंचित रखा जा सके, चूँकि निदेशक, प्रबिधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश के पत्र दिनांक 17.05.1989 में साक्षात्कार में एक तिहाई से काम अंक प्राप्त होने पर चयन नहीं किया जायेगा, का उल्लेख है। संलग्न अंक चार्ट के प्रथम पृष्ठ पर मात्र प्रधानाचार्य के ही हस्ताक्षर होने के कारण (चयन समिति के समस्त सदस्यों के हस्ताक्षर न होने के कारण) उक्त पृष्ठ को बदले जाने अथवा (Manipulation) किये जाने की संभावना है। अतः उक्त कार्यवाही नियमों के परिपेक्ष्य में त्रुटिपूर्ण एवं नियम विरुद्ध है।

4. चयन समिति द्वारा प्रेषित अंक तालिका में 64 अभ्यर्थियों में 62 अभ्यर्थियों का साक्षात्कार में न्यूनतम 03 एवं अधिकतम 13 अंक ही प्रधान ही प्रधान किए गये हैं तथा मात्र 02 अभ्यर्थी अमित मिश्र को 28 अंक दिए गये हैं, जिसमें प्रथम स्थान पर चयनित श्री अमित मिश्र के (05+20+29) कुल 63 अंक तथा द्वितीय स्थान पर चयनित श्री कुवेन्द्र पल सिंह को (05+20+29) कुल 54 अंक तथा प्रतीक्षा सूची में काली प्रसाद श्रीवास्तव के (10+30+13) कुल 53 अंक होते हैं। जबकि पूर्ण चयन सूची में 09 अभ्यर्थी जिनके एकेडमिक

योग्यता के 10 अंक और टेक्निकल योग्यता (डिग्री) के 75 प्रतिशत अंक से अधिक होने के कारण 40 अंक अर्थात् कुल 50 अंक पूर्व से ही निर्धारित होने के कारण, सुनियोजित तरीके से साक्षात्कार में तिहाई से काम अंक प्रदान करते हुए उनका चयन नहीं किया गया क्योंकि साक्षात्कार में एक तिहाई के कम अंक प्राप्त होने पर चयन नहीं किया जाएगा का उल्लेख समिति के तीनों सदस्यों द्वारा साक्षात्कार के समय अभ्यर्थियों को दिए गये अंकों का अलग अलग विवरण पत्र संलग्न नहीं है, नियमानुसार तीनों सदस्यों द्वारा दिए गये अंकों का औसद निकाल कर्साक्षात्कार के अंक प्रदान किए जाने चाहिए थे तथा उक्त कार्यवाही किए जाने की स्थिति में सभी 64 अभ्यर्थियों के साक्षात्कार के अंक पूर्णक में नहीं की गई, अतः चयन की कार्यवाही त्रुटिपूर्ण है। उक्त से स्पष्ट होता है की उक्त चयन प्रक्रिया निष्पक्ष/पारदर्शी रूप से सम्पन्न नहीं की गई है।

5. निदेशक, प्राविधिक शिक्षा के पत्र दिनांक 17.05.1989 द्वारा सहायता प्राप्त संस्थाओं में सीधी भर्ती से नियुक्ति हेतु गठित चयन समितियों के लिए शैक्षित योग्यता, अनुभव तथा साक्षात्कार के लिए अंकों के मापदंड का निर्धारण किया गया, जिसमें व्याख्याता पद हेतु अनुभव के अभ्यर्थियों की योग्यता अनुभव के विवरण पत्र में अभ्यर्थियों के दर्शाये गये अनुभव के आधार पर अनुभव के कोई अंक प्रदान नहीं किए गये हैं, जबकि उक्त पत्र में साक्षात्कार के लिए निर्धारित 30 अंक (साक्षात्कार में एक तिहाई अंक प्राप्त होने पर चयन नहीं किया जाएगा) को आधार मानते हुए प्रवक्ता इलेक्ट्रानिक्स में 09 अभ्यर्थियों को

साक्षात्कार में एक तिहाई से कम अंक देकर उनका चयन नहीं किया गया, तथा अभ्यर्थियों को अनुभव का कोई अंक प्रदान न कर चयन में अनियमितता बरती गई है, उक्त कार्यवाही त्रुटिपूर्ण है।

6. प्रवक्ता विद्युत के पद हेतु निदेशक प्राविधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश के पत्र सं 0 29258/ ई-35-एक्स- 56(एस) दिनांक 24.07. 1993 द्वारा प्रवक्ता विद्युत हेतु प्रबिधिक शिक्षा अधिनियम 1962 के नियम 22 एफ के क्रम में प्रेषित सूची में तीन नामों का निमनकित पैनल संस्था को प्रेषित किया गया:-

1. डा० विश्वनाथ सिन्हा, प्रो० इलेक्ट्रॉनिक्स इंजी०, आई० ई० टी० लखनऊ।
2. विभागाध्यक्ष, विद्युत् इंजी०, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की।
3. डा० एल० पी० सिंह, प्रो० रिटायर्ड विद्युत् इंजी० विभाग, आई० ई० टी० विभाग, टाइप- पांच आई० ई० टी० लखनऊ।

प्रबंध समिति द्वारा विशेषज्ञ सदस्य हेतु किसी ०1 नाम का चयन प्राविधिक शिक्षा अधिनियम- 1962 (यथा सशोधित-1974) के प्रस्तर-22 एप (3) के अनुसार किया जाना चाहिए था, परन्तु प्रधानाचार्य द्वारा दिनांक 21.०1.1994 को चयन समिति की बैठक में उपर्युक्त तीनों विशेषज्ञों के स्थान पर श्री के० के० त्रिपाठी हेड आफ डिपार्टमेंट इलेक्ट्रॉनिक्स इंजी०, एच० बी० टी० आई०, कानपूर को विशेषज्ञ/सदस्य नियुक्त किये जाने के कारण उक्त चयन विधिक रूप से अमान्य है। क्यों कि प्रवक्ता विद्युत पद हेतु गठित विशेषज्ञ

पैनल से विषय विशेषज्ञ न लेकर इलेक्ट्रॉनिक्स विषय हेतु गठित पैनल से विशेषज्ञ श्री के०के० त्रिपाठी से साक्षात्कार सराय जाना नियम विरुद्ध है।

अतएव उपरोक्त कमियों/त्रुटियों के कारण प्रधानाचार्य, एम०जी० पॉलिटेक्निक हाथरस के पत्रांक 16 ई०एस०(ए)/481 दिनांक 15.02.1994 द्वारा प्रेषित चयन समिति कि कुर्वेद्र पल सिंह तथा प्रवक्ता विद्युत पद हेतु चयनित श्री अनुराग सिंह एवं श्री रामनयन निषाद(अनुसूचित जाति) के चयन का अनुमोदन प्रदान किया जाना संभव नहीं है।

अतः मा० उच्च न्यायलय द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.28.2016 के अनुपालन में परीक्षणों परीक्षणोंप्रांत चयन का अनुमोदन प्रदान न करते हुए, चयन कि कार्यवाही को निरस्त किया जाता है।

(कफील अहमद)

निदेशक

प्राविधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश।

**निदेशक तकनीकी शिक्षा का पत्र आदेश दिनांक**  
**17.05.1989**

प्रेषक,

निदेशक,

प्राविधिक शिक्षा,

कानपुर।

सेवा में,

समस्त प्रधानाचार्य

सहायता प्राप्त बहुधंधी संसथान,

उत्तर प्रदेश।

संख्या :- 17-35 एडी कैप/ई-एक्स-विविध

कानपूर : दिनांक 17 मई 1989



विषय:- सहायता प्राप्त पॉलिटेक्निकों में चयन समितियों के अंतर्गत पदों पर सीधी भर्ती से निपुणता हेतु गठित चयन समितियों के लिए शैक्षिक योग्यता अनुभव तथा साक्षात्कार के लिए अंकों के मापदंड का निर्धारण।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक सहायता प्राप्त संस्थाओं में नियुक्तियों के सम्बन्ध में निर्देश दिए जाते हैं कि तत्काल प्रभाव से विभिन्न पदों पर नियुक्तियों के चयन हेतु शैक्षिक योग्यता, अनुभव तथा साक्षात्कार के लिए निम्न प्रकार अंकों का मापदंड निर्धारित किया जाये। चयन के लिए गठित समितियाँ इसके अनुसार ही अभ्यर्थियों का चयन करेंगी-

|  | अनुदेशक का पद<br>अर्हता-<br>हाईस्कूल +<br>डिप्लोमा | अनुदेशक का पद<br>अर्हता-<br>इंटर +<br>डिप्लोमा | व्याख्याता का पद<br>अर्हता-<br>इंटर +<br>डिप्लोमा |
|--|----------------------------------------------------|------------------------------------------------|---------------------------------------------------|
|  | 1                                                  | 2                                              | 3                                                 |

हाईस्कूल

प्रथम श्रेणी 10 10 10

द्वितीय श्रेणी 5

इंटरमीडिएट

प्रथम श्रेणी 10 10 10

द्वितीय श्रेणी 5

डिप्लोमा

65% से 70% 10 30 30

70% से अधिक 20

75% तक

75% से ऊपर 30 डिग्री

75% से अधिक 40 40

प्रथम श्रेणी 30

द्वितीय श्रेणी 20

निर्धारित अर्हता 10 20 20 20 अर्हता

तथा

से उच्च प्राविधिक अनुभव की प्रकृति  
आहर्ता को देखते हये

चयन समिति द्वारा अंक दिये जायेंगे।

अनुभव के लिए

(2 अंक प्रतिवर्ष अधिकतम 10)

साक्षात्कार 20 30 30 (साक्षात्कार में एक तिहाई से कम अंक प्राप्त होने पर चयन नहीं किया जाएगा)

|                     |  |    |     |     |
|---------------------|--|----|-----|-----|
| अधिकतम अंकों का योग |  | 80 | 100 | 100 |
|---------------------|--|----|-----|-----|

यह भी निर्देश दिए जाते हैं की कृपया उपर्युक्त निर्णय से चयन समितियों के सदस्यों को ययासमय अवगत कराया जाना सुनिश्चित करने का कष्ट करे।

(जे0वी0 गुप्ता)

निदेशक

प्राविधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश

33. मैंने प्रतिद्वंद्वी दलों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

34. निर्विवाद रूप से, वर्तमान विवाद तीसरे प्रतिवादी-संस्थान, एम.जी. यह विवाद में नहीं है कि 1962 अधिनियम की धारा 22-ए के अनुसार, तीसरे प्रतिवादी-संस्थान के प्रशासन की अनुमोदित योजना है। इसके अलावा

पक्षकार इस बात पर भी सहमत हैं कि प्रशासन की उक्त योजना को द्वितीय प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा 28.12.1990 को अनुमोदित किया गया था। दिनांक 08.04.1991 को प्रतिद्वंदी दलों के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक्स में लेक्चररों के चार पद संस्वीकृत किए गए थे और दिनांक 24.07.1993 को प्रशासन की योजना के अनुसार, लेक्चरर इलेक्ट्रॉनिक्स के पद पर चयन के लिए एक चयन समिति गठित की गई थी जिसमें श्री के.के.त्रिपाठी, विभागाध्यक्ष, इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरी, एचबीटीआई, कानपुर विशेषज्ञ सदस्य के रूप में शामिल थे। विज्ञापन के अनुसरण में, रिट याचिकाकर्ता ने अन्य लोगों के साथ आवेदन किया और उनका चयन किया गया। तर्क यह है कि वर्ष 1994 में आयोजित चयन, रिट याचिकाकर्ता का चयन लगभग 13 वर्षों की अवधि के बाद रद्द नहीं किया जा सकता था क्योंकि चयनों को रद्द करने में बहुत देर हो चुकी थी। रिट याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का उक्त तर्क हालांकि पहली बार में आकर्षक प्रतीत होता है, लेकिन इसे बहुत ही सीमा पर खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा की गई पूरी कवायद 1997 के रिट-ए संख्या 25791 (अमित मिश्रा और अन्य बनाम राज्य) में पारित रिट कोर्ट के आदेश दिनांक 23.08.2016 के अनुसरण में थी जिसके तहत इस न्यायालय द्वारा दिनांक 18.03.2014 के अस्वीकृति आदेश को रद्द कर दिया गया था, लेकिन मामले को दूसरे प्रतिवादी-निदेशक,

तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश को कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेज दिया गया था। एक बार जब रिट कोर्ट का आदेश अंतिम रूप ले लेता है तो देरी की आपत्ति, यदि कोई हो, रिट याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध नहीं होती है।

35. जहां तक रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क के दूसरे अंग का संबंध है कि आक्षेपित आदेश में जो आधार लिए गए हैं, वे 18.03.1994 के आदेश को पारित करने के लिए आगे बढ़ने से पहले निदेशक के पास उपलब्ध थे, वही भी कोई पानी नहीं रखता है, खासकर जब 18.03.1994 के आदेश के पारित होने के समय निदेशक ने गुणों का विज्ञापन नहीं किया था लेकिन इस आधार पर एक आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा था कि चयन से पहले पूर्व अनुमोदन नहीं लिया गया था।

36. जहां तक रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि 13.09.2017 का आक्षेपित आदेश कानून और तथ्य में दुर्भावना से ग्रस्त है, चूंकि अस्वीकृति के लिए उक्त आधार कभी भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर करने के चरण में नहीं लिए गए थे और समीक्षा का संबंध है, इस न्यायालय की राय है कि दूसरे प्रतिवादी निदेशक के लिए कोई अवसर नहीं था, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश ने रिट ए संख्या 25791/1997 में दिनांक 23.08.2016 के आदेश के आधार पर रिमांड

के बाद उक्त आधार उपलब्ध होने के कारण विशेष अनुमति याचिका या समीक्षा में उक्त आधार लिया है।

37. रिट याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बहुत जोर दिया गया है, कि धारा 22-ए, 22-ई धारा 22-एफ के साथ पढ़ा 21 चयन समिति के सदस्यों की नियुक्ति, प्रधानाचार्यों और शिक्षकों की नियुक्ति के लिए योग्यता प्रदान करता है और चयन समिति द्वारा अपनाई जाने वाली चयन प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त व्यापक है और इस प्रकार तकनीकी शिक्षा निदेशक का पत्र, दूसरा प्रतिवादी गैर-सांविधिक होना अधिकारातीत है और इसमें निहित प्राधिकार से अधिक है और तदनुसार चयन को अवैध ठहराने के लिए निदेशक के दिनांक 17.05.1989 के पत्र पर इस प्रकार की निर्भरता पूरी तरह से अनावश्यक थी, न्यायालय की राय में, गलत और संदर्भ से बाहर है, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि 1962 का अधिनियम मामले के विभिन्न पहलुओं से निपटने वाला एक वैधानिक अधिनियम है, हालांकि, 1962 के अधिनियम के आकार में वैधानिक अधिनियमन के सादे पढ़ने से, इस न्यायालय ने पाया कि इस बात की कोई प्रक्रिया परिकल्पित नहीं है कि चयन समिति को अंक कैसे दिए जाएंगे और अंक देने में मानदंड क्या होंगे। उक्त घटना से निपटने के लिए, तकनीकी शिक्षा निदेशक ने एक दिशानिर्देश को संशोधित किया है जो दिनांक 17.05.1989 के पत्र के रूप में है। यहां तक कि वास्तव में दिनांक 17.05.1989 के पत्र के आकार में दिशानिर्देश वैधानिक अधिनियमन के

प्राधान्यों के साथ हिंसा नहीं करते हैं बल्कि यह चयन करने के लिए कानून के उद्देश्य के उद्देश्यों को प्रभावी बनाने के लिए सहायता प्रदान करते हैं। इसके अलावा, कानून शून्य पर विचार नहीं करता है क्योंकि एक बार जब मामले के कुछ पहलू एक कानून में गायब हो जाते हैं तो उन्हें स्पष्ट रूप से उस संबंध में सरकारी आदेश या विभागीय पत्र जारी करते समय अंतराल को भरकर निपटाया जा सकता है। जाहिर है, चयन समिति को अपनी सनक और कल्पना के अनुसार चयन करने के लिए स्वतंत्र हाथ नहीं दिया जा सकता है क्योंकि विभिन्न मापदंडों के तहत अंक देने के लिए एक संहिताबद्ध दिशानिर्देश होने चाहिए। इस प्रकार, न्यायालय के अनुसार, दूसरे प्रतिवादी-निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश के अंतर-विभागीय पत्र दिनांक 17.05.1989 को अवैध या अधिकारातीत नहीं कहा जा सकता है, जब रिट याचिकाकर्ता ने उक्त पत्र को वर्तमान याचिका में चुनौती नहीं दी थी।

38. अब मामले के एक अन्य पहलू पर आते हैं, क्या निदेशक तकनीकी शिक्षा, दूसरे प्रतिवादी दिनांक 17.05.1989 के पत्र के मद्देनजर संबंधित उम्मीदवारों को अंक देने में चयन समिति के पास कोई विवेक उपलब्ध था। लेक्चरर इलेक्ट्रॉनिक्स के पद के संबंध में दिनांक 22.01.1994 की चयन समिति की सिफारिशों/कार्यवृत्तों को बारीकी से पढ़ने से पता चलता है कि हालांकि वे लेक्चरर इलेक्ट्रॉनिक्स के लिए दो पद निर्धारित किए गए थे, लेकिन 110 आवेदकों ने इसके लिए आवेदन किया था। चयन समिति के समक्ष 64 अभ्यर्थी

उपस्थित हुए। लेक्चरर इलेक्ट्रॉनिक्स के पद पर चयन के लिए कुल अंकों की संख्या 100 थी। उसी का द्विभाजन शैक्षणिक योग्यता के लिए अधिकतम 10 अंक, तकनीकी योग्यता के लिए 40 अंक, उच्च योग्यता रखने वाले उम्मीदवार के लिए 20 अंक और साक्षात्कार के लिए 30 अंक है। निदेशक तकनीकी शिक्षा, कानपुर के दिनांक 17.05.1989 के पत्र में हाई स्कूल प्लस डिप्लोमा, अनुदेशक इंटरमीडिएट प्लस डिप्लोमा और व्याख्याता, इंटरमीडिएट प्लस डिग्री वाले अनुदेशकों के संबंध में विभिन्न मापदंडों के तहत अंकों को द्विभाजित किया गया है। यहां, जैसा कि दिनांक 22.01.1994 की चयन समिति के कार्यवृत्त से स्पष्ट है, उम्मीदवारों को शैक्षणिक योग्यता, तकनीकी योग्यता और साक्षात्कार के तहत अंक प्रदान किए गए हैं, हालांकि, किसी भी उम्मीदवार को उच्च अंकों के कब्जे के मापदंडों के तहत अंक नहीं दिए गए थे, फिर न्यूनतम अंक जो अधिकतम 20 हैं। निदेशक तकनीकी शिक्षा, कानपुर के दिनांक 17.05.1989 के पत्र में उन उम्मीदवारों के लिए अधिकतम 20 अंक प्रदान किए गए हैं जिनके पास अनुभव के साथ न्यूनतम योग्यता से अधिक शैक्षिक योग्यता है और अनुभव के संबंध में, प्रत्येक वर्ष अधिकतम 10 अंक दिए जाने हैं। यद्यपि रिट याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की ओर से यह तर्क देने की मांग की जा रही है कि उक्त पैरामीटर के तहत अंक देना चयन समिति के सदस्यों का विवेक था या नहीं और उनके मूल्यांकन को दूसरे प्रतिवादी- , निदेशक, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जिला कानपुर, उत्तर प्रदेश और यहां तक कि इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के प्रयोग में, इस प्रकार विशेषज्ञों द्वारा अंक प्रदान करने पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। श्री शशि नंदन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जो राज्य-उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित होते हैं, प्रस्तुत करते हैं कि चयन समिति के पास किसी भी स्वनिर्णय होने का कोई सवाल नहीं है क्योंकि इन अंकों को संहिताबद्ध किया जाता है और एक बार किसी भी उम्मीदवार के पास न्यूनतम और अनुभव से अधिक शैक्षिक योग्यता होती है तो उसे अंक दिए जाने चाहिए थे और यह अत्यधिक अकल्पनीय है कि किसी भी उम्मीदवार को उक्त मापदंडों के तहत अंक नहीं दिए जाने थे।

39. न्यायालय की राय में, अंक जो उच्च योग्यता के कब्जे के मापदंडों के तहत 20 होने के लिए निर्धारित किए गए थे, तो न्यूनतम योग्यता और अनुभव को संहिताबद्ध किया गया है, इस प्रकार अंकों का गैर-वितरण स्वयं एक ऐसी स्थिति के बराबर है जिसके तहत चयन समिति ने एक त्रुटि की थी, विशेष रूप से, जब बड़ी संख्या में उम्मीदवार पहले से ही मौजूद थे और चयन में भाग लिया था। जहां तक आदेश में दर्ज अन्य निष्कर्ष में कहा गया है कि योग्य उम्मीदवारों के चयन की संभावना को खत्म करने के लिए सिर्फ एक आदेश, उन्हें पैरामीटर के तहत कम अंक दिए गए हैं, साक्षात्कार का संबंध है, चयन समिति दिनांक 22.01.1994 के कार्यवृत्त के अवलोकन से पता चलता है कि क्रम संख्या 3 पर उम्मीदवार अतुल श्रीवास्तव, सीरियल नंबर 14 कुमारी ज्योति रावत, सीरियल नंबर 15 अतुल गोयल, सीरियल नंबर 17 अरविंद श्रीवास्तव, सीरियल

नंबर 24 अशोक कुमार, सीरियल नंबर 25 मोहम्मद सलीम बेग, सीरियल नंबर 47 श्रीमती अंजुल गंगमैन ने शैक्षणिक योग्यता के मापदंडों के तहत 10 अंक और तकनीकी योग्यता के तहत 40 अंक प्राप्त किए थे, हालांकि उन्हें साक्षात्कार में 08, 08, 04, 03, 08, 09 और 08 अंक दिए गए थे। जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की गई है, साक्षात्कार के लिए कुल अंक 30 थे और यदि किसी उम्मीदवार ने 1/3 से कम अंक प्राप्त किए हैं तो उसे चयन से हटा दिया जाएगा, इस प्रकार उक्त 24 योग्य उम्मीदवारों को वंचित करने के लिए आक्षेपित आदेश के अनुसार, उन्हें कम अंक दिए गए, जबकि रिट याचिकाकर्ता जिसका नाम क्रम संख्या 33 में पाया जाता है, उसने शैक्षणिक योग्यता के तहत 5 अंक प्राप्त किए, तकनीकी योग्यता के तहत 20 अंक दिए गए थे और साक्षात्कार के पैरामीटर के तहत 29 अंक दिए गए थे ताकि उन्हें कुल 55 अंक दिए जा सकें। एक श्री अमित मिश्रा के मामले में, जिसका नाम क्रम संख्या 55 पर पाया जाता है, उसने शैक्षणिक योग्यता के पैरामीटर के तहत 5 अंक और तकनीकी योग्यता के तहत 30 अंक प्राप्त किए और उसे चयनित करते हुए 28 अंक दिए गए। हालांकि रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वीके उपाध्याय ने प्रस्तुत किया कि साक्षात्कार में अंक प्रदान करना विभिन्न कारकों पर आधारित है, साक्षात्कार के समय उम्मीदवारों के प्रदर्शन और इसकी सतर्कता और चयन समिति के उक्त मूल्यांकन पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। दूसरी ओर, श्री शशि नंदन, जो राज्य के उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित होते हैं, प्रस्तुत करते हैं कि उक्त

प्रस्ताव पर कोई झगड़ा नहीं है, लेकिन मामले के तथ्य स्वयं स्पष्ट हैं कि योग्य उम्मीदवारों को खत्म करने के लिए, पूरी कवायद की गई है और इसे सरासर संयोग नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह एक या दो उम्मीदवारों के संबंध में हो सकता है लेकिन कई उम्मीदवारों के संबंध में नहीं चयन समिति के कार्यवृत्त में और विशेष रूप से इस तथ्य को दर्शाया गया है कि न्यूनतम योग्यता और अनुभव से अधिक उच्च योग्यता रखने के मापदंडों के तहत कोई अंक नहीं दिए गए थे।

40. यद्यपि न्यायालय चयन समिति द्वारा अंक प्रदान करने से संबंधित शैक्षिक मामलों में विशेषज्ञ नहीं हैं और वे उन शिक्षाविदों के दिमाग में यात्रा नहीं कर सकते हैं जिन्होंने विभिन्न मापदंडों के तहत अंक प्रदान किए हैं। तथापि, यह देखा जाना चाहिए कि क्या अंक देने के लिए कोई संहिताबद्ध प्रक्रिया या मानदंड मौजूद है या नहीं, जो किसी दिशा-निर्देश के रूप में है। वर्तमान मामले में, तकनीकी शिक्षा निदेशक, द्वितीय प्रतिवादी का दिनांक 17.05.1989 का एक पत्र मौजूद है जो उक्त विषय से संबंधित है, जिसमें इस आधार पर मानदंड प्रदान किया गया है कि विभिन्न मापदंडों के तहत 25 उम्मीदवार को अंक कहाँ दिए जाने हैं। निदेशक के दिनांक 17.05.1989 के पत्र के साथ पठित चयन समिति के दिनांक 22.01.1994 के कार्यवृत्त को ध्यान से देखने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अंक इस तरह से दिए गए हैं ताकि योग्य उम्मीदवारों को बाहर किया जा सके। न्यायालय मूकदर्शक नहीं बने रह सकते हैं और यदि रिकार्ड में उपलब्ध दस्तावेजों के अवलोकन से यह पाया

जाता है कि अंक देने में अशिक्षा की गई है तो स्पष्टतया, न्यायालय संगत संविधि के अंतर्गत समुचित प्राधिकारियों द्वारा लिए गए निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेंगे जिन्हें चयन रद्द करते समय निर्णय लेने का आदेश दिया गया है। तकनीकी शिक्षा निदेशक, दूसरे प्रतिवादी दिनांक 13.09.2017 के आदेश में देखी गई अनियमितताओं के मददेनजर, यह न्यायालय एक ऐसे दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण लेने में असमर्थता पाता है जो निर्णय लेने के लिए कानून के तहत पहले से ही एक प्राधिकरण द्वारा लिया गया है।

41. उल्लेखनीय रूप से, 1962 अधिनियम की धारा 22-एफ के तहत तकनीकी शिक्षा निदेशक नियुक्तियों को अनुमोदन प्रदान करना है। उक्त शक्ति इतनी व्यापक है कि रिकॉर्ड की जांच की जा सके ताकि यह पता लगाया जा सके कि चयन कानून के अनुसार किए गए थे या नहीं। चयन समिति की सिफारिश प्राप्त होने पर निदेशक को अपने दिमाग का इस्तेमाल करना होता है जो दर्शाता है कि उसे चयन समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और प्रक्रिया से गंभीरता से गुजरना होगा और निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से कार्य करना होगा। निदेशक एक डाकिया नहीं हो सकता है ताकि चयन को मंजूरी देते समय अपनी रबर स्टैंप लगाई जा सके। धारा 22-एफ को लागू करते समय विधायिका काफी सचेत थी और यही कारण है कि नियुक्ति के चरण में अनुमोदन की आवश्यकता थी न कि चयन के चरण में क्योंकि उक्त दो चरण अलग-अलग हैं। नियुक्ति के चरण में अनुमोदन का अर्थ है कि 1962 अधिनियम की धारा 22-एफ के तहत

शक्तियों के प्रयोग में निदेशक चयन की योग्यता और चयन समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न पहलुओं की जांच करना है।

42. दिलचस्प बात यह है कि तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आक्षेपित आदेश नियुक्तियों को अस्वीकार करने के वैध कारणों को दर्ज करता है, जिसे यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध नहीं ठहरा सकता है, खासकर जब तकनीकी शिक्षा निदेशक रिकॉर्ड की जांच करने और नियुक्तियों को मंजूरी देने या अस्वीकृत करने के लिए वैधानिक प्रावधान के तहत उक्त विषय का विशेषज्ञ है।

43. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने हालांकि 1991 (17) एएलआर 267 में रिपोर्ट की गई एक पूर्ण पीठ के फैसले आशा सक्सेना बनाम उसके चौधरी और अन्य के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है कि यह तर्क दिया जा सके कि लंबे समय के बाद चयन रद्द करने में उत्तरदाताओं की ओर से यह उचित नहीं था, हालांकि, उक्त निर्णय रिट याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं है, खासकर जब उक्त निर्णय एक वरिष्ठता विवाद से संबंधित है जिसमें वरिष्ठता सूची को पीड़ित व्यक्ति द्वारा भारी और अस्पष्टीकृत देरी के बाद चुनौती दी गई थी जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्ष के पक्ष में निहित अधिकारों का सृजन। हालांकि, वर्तमान मामले में, मुद्दा चयन के संबंध में है और रिट याचिकाकर्ता द्वारा पसंद की गई रिट याचिका में रिट कोर्ट

के आदेश के आधार पर मामले को उचित आदेश पारित करने के लिए तकनीकी शिक्षा निदेशक को वापस भेज दिया गया था। रिट-सी संख्या 5497/2020 (डॉ. प्रसन्नांशु बनाम चयन समिति कुलपति, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली और अन्य 14.09.2020 को निर्णीत, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 53334/1999 (राजेंद्र भारती बनाम तकनीकी शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश कानपुर और अन्य) में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया गया है, जिसका फैसला 20.05.2004 को किया गया था। (1) एडब्ल्यूसी 407, रेखा चतुर्वेदी बनाम राजस्थान विश्वविद्यालय 1993 में सप्प (3) उच्चतम न्यायालय मामले 168, बीसी मायलारप्पा @ डा चिक्कमलरप्पा बनाम डा आर वेंकटसुब्बैया और अन्य। जेटी 2008 (11) एससी 73, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 21318/2004 (रमेश पति त्रिपाठी बनाम यूपी राज्य और अन्य) में 02.04.2007 को फैसला किया गया, रिट ए नंबर 19620/2014 (अमर पाल बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य) 08.01.2014 को निर्णीत, श्रीकांत एसएम बनाम भारत अर्थ मूवर्स लिमिटेड का निर्णय 07.10.2005 को, जेएन श्रीवास्तव बनाम भारत संघ ने एआईआर 1999 एससी 1571 में रिपोर्ट किया, डॉ केशव राम पाल बनाम उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, एआईआर 1986 एससी 597 और एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स प्राइवेट लिमिटेड में रिपोर्ट किया गया। (ख) भारत संघ और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में 1986 (1) एससीसी 133 में रिपोर्ट किया गया था, ताकि इस प्रस्तुत किए जा सकें कि चयन समिति के पास अंक

देने की व्यापक शक्तियां हैं और उक्त मूल्यांकन को न्यायिक संवीक्षा के अधीन नहीं रखा जा सकता है और चयन को रद्द करने में और विलंब न तो न्यायसंगत है और न ही कानून के तहत अनुमेय है। कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव पर कोई झगड़ा नहीं है, हालांकि निर्णयों की प्रयोज्यता व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है। यहां वर्तमान मामले में, चयन समिति के निर्णय को तकनीकी शिक्षा निदेशक के समक्ष कानून के अनुसार जांच के लिए रखा गया था, तकनीकी शिक्षा निदेशक ने एक विशेषज्ञ होने के नाते चयन प्रक्रिया में स्पष्ट अनियमितताएं पाईं। यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार में निदेशक के निर्णय पर बैठे एक सुपर विशेषज्ञ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है जो प्रासंगिक विषय का विशेषज्ञ भी है।

44. इसके अलावा, जब वर्तमान मामले में, कुछ रिडीमिंग विशेषताएं हैं जो वास्तव में लाभ के अनुदान के लिए रिट याचिकाकर्ताओं को भी नकार देती हैं, अर्थात् (i) पत्र दिनांक 17.05.1989 न केवल उन मापदंडों के लिए प्रदान करता है जिनके तहत अंक दिए जाने हैं बल्कि अंकों को संहिताबद्ध भी करता है (ii) चयन समिति द्वारा किसी भी उम्मीदवार को अंक न देना न्यूनतम और कुल अनुभव से अधिक योग्यता के कब्जे के पैरामीटर के तहत 20 अंक प्राप्त करें। (iii) शैक्षिक और तकनीकी अर्हताओं के पैरामीटरों के अंतर्गत उच्चतर अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों के लिए साक्षात्कार के पैरामीटर के अंतर्गत कई मामलों में 1/3 से कम अंक प्रदान करना। (iv) उन

अभ्यर्थियों को साक्षात्कार के पैरामीटरों के तहत उच्चतर अंक प्रदान करना, जिन्होंने शैक्षणिक अर्हता और तकनीकी अर्हता के पैरामीटरों के अंतर्गत कम अंक प्राप्त किए थे; (v) निदेशक तकनीकी शिक्षा के दिनांक 17-05-1989 के पत्र को चुनौती न देना, जिसमें विभिन्न पैरामीटरों के तहत अंक प्रदान करने के लिए दिशा-निर्देशों का प्रावधान है; (vi) तकनीकी शिक्षा निदेशक मामले पर विचार करते समय चयन समिति के रिकार्डों की जांच करने का आदेश दिया जाता है; और कारणों को दर्ज करने और एक सूचित निर्णय पारित करने के बाद निर्णय लेना। (vii) चयन को रद्द करने में कोई विलंब नहीं हुआ है।

45. अंत में, रिट याचिकाकर्ता की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि चयन में उपस्थित होने वाले और साक्षात्कार में कम अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों में से किसी ने भी कोई शिकायत दर्ज नहीं की थी या किसी भी रिट याचिका को प्राथमिकता नहीं दी थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उन्हें अवैध रूप से चयन से बाहर रखा गया था, इस प्रकार, निदेशक तकनीकी शिक्षा द्वारा शक्ति का प्रयोग, दूसरे प्रतिवादी, को उचित नहीं कहा जा सकता है। न्यायालय की राय में, किसी भी उम्मीदवार की ओर से केवल गैर-चुनौती से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, खासकर जब चयन तकनीकी शिक्षा निदेशक के दिनांक 17.05.1989 के पत्र की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए आयोजित किए गए हैं और निदेशक, तकनीकी शिक्षा द्वारा विभिन्न कमियां देखी गई थीं।

46. हालांकि तकनीकी शिक्षा निदेशक के आदेश में, दूसरे प्रतिवादी अन्य कमियों पर ध्यान दिया गया है कि चयन समिति दिनांक 22.01.1994 के कार्यवृत्त के प्रत्येक पृष्ठ पर चयन समिति के तीन सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं थे, लेकिन अन्य मुख्य और मौलिक मुद्दों को देखते हुए, ऊपर देखा और चर्चा की गई, यह न्यायालय उसी को संबोधित नहीं कर रहा है।

47. इक्विटी पर, श्री वीके उपाध्याय, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिकाकर्ता को एक अजीब स्थिति का सामना करना पड़ा है क्योंकि एक तरफ, उसने खुद को भारतीय वायु सेना से छुट्टी मिलने के बाद लेक्चरर (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद पर चयन और नियुक्ति होने के लिए आवेदन किया था, लेकिन उसकी नियुक्ति को तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था और दूसरी ओर कार्यवाहक प्रिंसिपल द्वारा समाप्त किए जाने पर 14.03.2001 को संस्थान ने रिट याचिकाकर्ता ने **2001 की रिट ए नंबर 11976** को प्राथमिकता दी जिसमें एक अंतरिम संरक्षण दिया गया था और अंत में 23.08.2016 को उनके पक्ष में रिट याचिका का फैसला किया गया था, लेकिन उन्हें कभी भी प्रश्न में पद में शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई थी। इस प्रकार वह प्रस्तुत करता है कि रिट याचिकाकर्ता की संपूर्ण शैक्षणिक योग्यता और सेवा कैरियर खतरे में पड़ जाएगा। यह न्यायालय तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा अपने 17.09.2017 के आदेश में दर्ज किए गए स्पष्ट निष्कर्ष के मद्देनजर रिट याचिकाकर्ता के बचाव में आने



में असमर्थ है। हालांकि, प्रतिवादी-संस्थान के प्रबंधन के अंत में लेक्चरर (इलेक्ट्रॉनिक्स) के पद पर शामिल न होने के मामले में, रिट याचिकाकर्ता के लिए इससे नुकसान का दावा करना हमेशा खुला रहता है।

48. परिणामस्वरूप, पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि तकनीकी शिक्षा निदेशक, दूसरे प्रतिवादी का आदेश दिनांक 13.09.2017 किसी भी प्रकट अवैधता से ग्रस्त नहीं है ताकि वर्तमान कार्यवाही में किसी भी हस्तक्षेप का वारंट किया जा सके।

49. तदनुसार, रिट याचिका खारिज कर दी जाती है।

50. अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है।

51. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 244

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023

सक्षम

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति राजीव मिश्रा

रिट ए संख्या 53425 वर्ष 2015

सुनील कुमार सिंह तृतीय ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री पंकज कुमार सिंह, श्री अशोक खरे, श्री अशोक कुमार निगम, श्री विकास बुधवार

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री मनीष गोयल, श्री आशीष मिश्रा

ए. सेवा कानून - सिविल जज (जूनियर डिवीजन) - प्रतिकूल प्रविष्टि - परिपत्र दिनांक 15.05.2007 में प्रावधान है कि प्रतिकूल प्रविष्टि देने के लिए जिस सामग्री पर भरोसा किया जाना है, उसे संबंधित अधिकारी को बताया जाना चाहिए - इसके गैर-अनुपालन ने पुनर्विलोकन आवेदन को अनुमति देने के लिए उत्तरदायी बनाया - जांच में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कुछ भी प्रतिकूल नहीं पाया गया - प्रभाव - दिनांक 19.05.2007 के परिपत्र ने रिपोर्टिंग प्राधिकारी को न्यायिक अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय टिप्पणियां लिखने का निर्देश दिया - गैर-अनुपालन - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ, एक बार याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई शिकायतें झूठी पाई गईं, याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देने का आधार ही लुप्त हो गया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि को बरकरार रखना न्याय का उपहास होगा, जबकि उसके विरुद्ध की गई शिकायतें झूठी पाई गई थीं - उच्च न्यायालय ने प्रतिकूल प्रविष्टि को रद्द करने के बाद, पूर्वव्यापी प्रभाव से एचजेएस कैडर को पदोन्नति देने का निर्देश दिया अर्थात् उ.प्र. उच्चतर न्यायिक सेवा 2015। (पैरा 11, 29, 32, 34, 37 और 38)

बी. क़ानून की व्याख्या - अर्थान्वयन का नियम - जहाँ क़ानून किसी चीज़ को किसी विशेष तरीके से करने का निर्देश देता है, वह केवल उसी तरीके से किया जा सकता है, अन्यथा नहीं - *नज़ीर अहमद के मामले* पर भरोसा किया गया (पैरा 29)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. राजेंद्र सिंह वर्मा (मृत) द्वारा और अन्य बनाम उपराज्यपाल (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली); (2011) 10 एससीसी 1

2. नजीर अहमद बनाम किंग एम्परर, एआईआर 1936 प्रिवी काउंसिल 253

3. रिट ए संख्या 60546 वर्ष 2015; खलीकुज्जमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 22.05.2017 को निर्णीत

4. सेवा पीठ संख्या 6108 वर्ष 2017; राजवीर सिंह बनाम माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय, इलाहाबाद संयुक्त महा निबंधक एवं अन्य के माध्यम से, दिनांक 01.10.2018 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव मिश्रा द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत, वर्ष 2013-14 के लिए जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा

याचिकाकर्ता को दी गई वार्षिक गोपनीय टिप्पणी (रिट याचिका का संलग्नक-2), उक्त प्रतिकूल प्रविष्टि के खिलाफ याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को इस कारण से, कि प्रशासनिक समिति की राय में, वर्ष 2013-14 के लिए याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान करने में तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई थी, खारिज करने वाले इलाहाबाद उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति के निर्णय, जो कि याचिकाकर्ता को पत्र दिनांकित 1.6.2015 (रिट याचिका का संलग्नक-2) द्वारा सूचित किया गया, साथ ही पत्र दिनांकित 4.7.2015 (रिट याचिका का संलग्नक -6), जिसके द्वारा वर्ष 2013-14 के लिए दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए द्वितीय प्रत्यावेदन को भी, पोषणीय न होने के आधार पर खारिज कर दिया गया; को रद्द करने की मांग करते हुए उत्प्रेषण रिट हेतु दायर की गई है।

3. पत्रावली से पता चलता है कि याचिकाकर्ता सुनील कुमार सिंह-III वर्ष 2000 में उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा में चयनित हुए थे। चयन के बाद, याचिकाकर्ता को सिविल जज, जूनियर डिवीजन के रूप में विधिवत नियुक्त किया गया था और 23.12.2003 को लखनऊ में पदस्थ किया गया था। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसकी प्रारंभिक नियुक्ति के बाद से, उसके कार्य और आचरण की हमेशा उसके वरिष्ठों द्वारा सराहना की गई है। उपरोक्त के आधार पर, याचिकाकर्ता को 2012-13 तक के सेवा काल में उसकी वार्षिक गोपनीय टिप्पणी में

अच्छा/बहुत अच्छा प्रविष्टियाँ प्रदान की गई हैं। त्वरित संदर्भ हेतु, इसका विवरण नीचे सारणीबद्ध है:

| क्रमांक | वर्ष    | तैना ती का स्थान | सत्य निष्ठा  | रेटिंग     | प्राधिकारी                                                                                                                                                                                                   |
|---------|---------|------------------|--------------|------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| 1.      | 2003-04 | लखनऊ             | प्रमाणित     | अच्छा      | प्रशासनिक न्यायाधीश                                                                                                                                                                                          |
| 2.      | 2004-05 | सहारनपुर         | प्रमाणित     | अच्छा      | रजिस्ट्रार गोपनीय डी.ओ. नंबर सी. 130/डीएफ(ए)/2006 दिनांक 23.2.2006 के माध्यम से जिला न्यायाधीश, सहारनपुर को सूचित की गई जानकारी के अनुसार, प्रतिकूल टिप्पणी 'ठीक' को माननीय न्यायालय द्वारा हटा दिया गया था। |
| 3.      | 2005-06 | सहारनपुर         | संदेह से परे | अच्छा      | जिला जज                                                                                                                                                                                                      |
| 4.      | 2006-07 | सहारनपुर         | संदेह से परे | अच्छा      | जिला जज                                                                                                                                                                                                      |
| 5.      | 2007-08 | सहारनपुर         | प्रमाणित     | अच्छा      | प्रशासनिक जज                                                                                                                                                                                                 |
| 6.      | 2008-09 | कांशी राम नगर    | प्रमाणित     | बहुत अच्छा | प्रशासनिक न्यायाधीश                                                                                                                                                                                          |

|     |         |               |              |            |                                  |
|-----|---------|---------------|--------------|------------|----------------------------------|
| 7.  | 2009-10 | कांशी राम नगर | संदेह से परे | बहुत अच्छा | जिला जज                          |
| 8.  | 2010-11 | कांशी राम नगर | संदेह से परे | बहुत अच्छा | जिला न्यायाधीश                   |
| 9.  | 2011-12 | कांशी राम नगर | प्रमाणित     | अच्छा      | प्रशासनिक न्यायाधीश              |
| 10. | 2012-13 | गाजियाबाद     | प्रमाणित     | अच्छा      | प्रशासनिक न्यायाधीश              |
| 11. | 2013-14 | गाजियाबाद     | संदिग्ध      | औसत        | वर्तमान रिट याचिका की विषय वस्तु |
| 12. | 2014-15 | पीलीभीत       | प्रतीक्षित   | प्रतीक्षित | -                                |

4. वर्ष 2013-2014 में, याचिकाकर्ता गाजियाबाद में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में पदस्थ थे। याचिकाकर्ता के अनुसार, उन्होंने अपनी पूरी क्षमता से अपना कर्तव्य निभाया, फिर भी वर्ष 2013-14 में, तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद ने याचिकाकर्ता को उक्त अवधि अर्थात् 2013-14 के लिए प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की जो इस प्रकार है - "सत्यनिष्ठा संदिग्ध" , क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ कई शिकायतें हैं।

5. याचिकाकर्ता को दी गई उपरोक्त प्रतिकूल प्रविष्टि से व्यथित होकर, उसने उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के समक्ष दिनांक 10.10.2014 को प्रत्यावेदन दिया। प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चूंकि तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद, जिन्होंने याचिकाकर्ता को उपरोक्त प्रतिकूल प्रविष्टि दी थी, को इस न्यायालय की

खंडपीठ में पदोन्नत किया गया था एवं इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा पारित संकल्प दिनांकित 01.10.1997 के भी दृष्टिगत, साथ ही उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय 3 नियम 4 के प्रावधानों के अनुसार, याचिकाकर्ता का उक्त प्रत्यावेदन उच्च न्यायालय की एक समिति के समक्ष रखा गया था। उक्त समिति ने याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर विचार करने के बाद निम्नलिखित सिफारिश की:-

"अधिकारी ने वर्ष 2013-14 के लिए तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा (इस न्यायालय के माननीय न्यायाधीश के रूप में) दर्ज की गई प्रतिकूल प्रविष्टि, जिसे नीचे दिखाया गया है, के खिलाफ उपरोक्त उल्लिखित प्रत्यावेदन दिनांक 10.10.2014 प्रस्तुत किया है:

|                                                                                                                                                                                                          |                         |
|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------|
| "1(ए)अधिकारी की सत्यनिष्ठा क्या संदेह से परे, संदिग्ध या बेईमान है। नोट: यदि अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध है या बेईमान है, तो इसे सभी प्रासंगिक तथ्यों, कारणों, समर्थक सामग्री के साथ बताया जा सकता है। | संदिग्ध कई शिकायतें थीं |
| 2. अधिकारी की योग्यता का समय मूल्यांकन (उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, अच्छा, औसत, खराब)                                                                                                                          | औसत                     |

6. उपरोक्त के पश्चात्, इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने दिनांक 1.6.2015 की बैठक के अदिनांकित आइटम एजेंडा संख्या -20 के द्वारा याचिकाकर्ता का उपरोक्त प्रत्यावेदन खारिज कर दिया। उक्त निर्णय की सूचना उच्च न्यायालय के उप निबंधक के पत्र दिनांक 1.6.2015 द्वारा, याचिकाकर्ता को दी गई। त्वरित संदर्भ के लिए, ऊपर संदर्भित प्रशासनिक समिति का निर्णय यहां दिया गया है:

"एजेंडा आइटम नंबर 20:

श्री सुनील कुमार सिंह - III, तत्कालीन अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद, वर्तमान में सिविल जज (सीनियर डिवीजन), पीलीभीत, का प्रत्यावेदन दिनांक 10.10.2014।

"अधिकारी ने वर्ष 2013-14 के लिए तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा (इस न्यायालय के माननीय न्यायाधीश के रूप में) दर्ज की गई प्रतिकूल प्रविष्टि, जिसे नीचे प्रस्तुत किया गया है, के खिलाफ उपरोक्त प्रत्यावेदन दिनांक 10.10.2014 प्रस्तुत किया है:

"1(ए)अधिकारी की सत्यनिष्ठा क्या संदेह से परे, संदिग्ध या बेईमान है। संदिग्ध कई शिकायतें थीं। नोट: यदि अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध है या बेईमान है, तो इसे सभी प्रासंगिक तथ्यों, कारणों, समर्थक सामग्री के साथ बताया जा सकता है।

2. अधिकारी की योग्यता का समय मूल्यांकन (उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, अच्छा, औसत, खराब) औसत हमने अधिकारी के प्रत्यावेदन, तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा (इस न्यायालय के माननीय न्यायाधीश के रूप में) प्रासंगिक वर्ष के लिए दर्ज की गई वार्षिक गोपनीय टिप्पणी का अवलोकन किया है।

अधिकारी ने अपने प्रत्यावेदन में कहा है कि जिला न्यायाधीश ने समय पर टिप्पणी उच्च न्यायालय को नहीं भेजी और देरी का कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है। उनकी सत्यनिष्ठा को संदिग्ध बताने के लिए कोई सामग्री नहीं है। टिप्पणी निर्धारित प्रारूप में नहीं दी गई हैं। रिपोर्टिंग अधिकारी ने शिकायतों की प्रकृति और विवरण का खुलासा नहीं किया है। उन्होंने पूरे समर्पण, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से काम किया है और उनके संज्ञान में कभी कोई शिकायत नहीं लाई गई। उन्होंने वर्ष 2013-14 के लिए जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद (अब माननीय न्यायालय के न्यायाधीश) द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल प्रविष्टि को हटाने का अनुरोध किया है।

हमें सूचित किया गया है कि अधिकारी के विरुद्ध एक सतर्कता जांच संख्या 13/2014 भी लंबित है।

समिति का मानना है कि तत्कालीन जिला न्यायाधीश, बाद में उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत, को सम्पूर्ण वर्ष में अधिकारी के कार्य और आचरण को देखने के बाद अधिकारी की ईमानदारी पर संदेह है, जिसे निराधार नहीं कहा जा सकता। इसलिए, अधिकारी का प्रत्यावेदन बल से रहित है और इसे अस्वीकार करने की अनुशंसा की जाती है।”

7. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.10.2014 को दूसरा प्रत्यावेदन इस अनुरोध के साथ किया कि प्रत्यावेदन में बताए गए तथ्यों के आलोक में याचिकाकर्ता को वर्ष 2013-2014 के लिए दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि पर विचार करने के लिए मामले को प्रशासनिक समिति के समक्ष रखा जाए। यद्यपि, उक्त प्रत्यावेदन को इस आधार पर विचारित नहीं किया गया कि उक्त प्रत्यावेदन द्वितीय प्रत्यावेदन है, अतः वह पोषणीय नहीं है। उपरोक्त के संबंध में याचिकाकर्ता को दिनांक 4.7.2015 को एक संचार भेजा गया। त्वरित संदर्भ के लिए, इसे यहां नीचे प्रस्तुत किया जाता है:

“श्री सुनील कुमार सिंह-III, तत्कालीन एसीजेएम, गाजियाबाद, वर्तमान में सिविल जज (सीनियर डिवीजन), पीलीभीत द्वारा, वर्ष 2013-14 के लिए तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा दी गई वार्षिक गोपनीय टिप्पणी में दर्ज

प्रतिकूल प्रविष्टि के विरुद्ध और साथ ही योग्यता के समग्र मूल्यांकन के उन्नयन के लिए, किए गए प्रत्यावेदन दिनांक 16.5.2015 के संदर्भ में, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस पर विचारोपरांत, माननीय न्यायालय ने यह आदेश दिया है कि उक्त प्रत्यावेदन, फुल कोर्ट के प्रस्ताव दिनांक 6.1.1990 के दृष्टिगत, प्रकृति में द्वितीय होने के कारण विचारणीय नहीं है।

कृपया श्री सुनील कुमार सिंह-तृतीय, उपरोक्त को तदनुसार सूचित किया जाए।”

8. अतः उपरोक्त से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अब वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है।

9. वर्तमान रिट याचिका दाखिल करने हेतु 17.9.2015 को पेश हुई और इस अदालत ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

“एक माह की अवधि के भीतर सी.ए. तत्पश्चात, दो सप्ताह के भीतर आर.ए.इस याचिका को 26 अक्टूबर 2015 से शुरू होने वाले सप्ताह में दाखिल/सुनवाई हेतु सूचीबद्ध करें”

10. उपरोक्त आदेश दिनांक 17.9.2015 के अनुपालन में, उच्च न्यायालय द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता के दावे पर प्रतिवाद किया गया

है। अंततः वर्तमान रिट याचिका को इस न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति श्री सुधीर अग्रवाल और हम में से एक माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.1.2020 के द्वारा खारिज कर दिया गया। आदेश दिनांक 22.1.2020 इस प्रकार है:

“1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विकास बुधवार और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा को सुना ।

2. याचिकाकर्ता को 01.04.2013 से 31.03.2014 की अवधि के लिए वार्षिक गोपनीय टिप्पणी (इसके बाद "एसीआर" के रूप में संदर्भित) में जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की गई है और याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा को रोक दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि कोई विशेष कारण नहीं दिए गए हैं, लेकिन वह इस पर प्रतिवाद नहीं कर सके कि सत्यनिष्ठा को रोकने की पुष्टि प्रशासनिक न्यायाधीश और इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा भी की गई है।

4. उपरोक्त आदेशों के अंतिम हो जाने की वजह से, हमें नहीं लगता कि जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई

टिप्पणी में हस्तक्षेप करने का कोई कारण है, क्योंकि, उसे पहले ही प्रशासनिक न्यायाधीश के साथ-साथ इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा अनुमोदित कर दिया गया है। इसके अलावा, उपरोक्त आदेशों को इस याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

5. तदनुसार खारिज किया जाता है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है। "

11. उपरोक्त आदेश दिनांक 22.1.2020 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 22.1.2020 की समीक्षा की मांग करते हुए एक समीक्षा याचिका दायर की जिसे समीक्षा आवेदन संख्या 8/2020 के रूप में पंजीकृत किया गया। उपरोक्त समीक्षा आवेदन माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस पीठ को नामित किया गया, क्योंकि माननीय न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल, उपलब्ध नहीं थे। इस न्यायालय द्वारा, आदेश दिनांक 10.5.2023 के माध्यम से समीक्षा आवेदन की अनुमति दी गई। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

“(समीक्षा आवेदन पर आदेश)

1. समीक्षा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार निगम, प्रतिवादी 1 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता, एवं प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश मिश्रा को सुना।

2. यह समीक्षा याचिका माननीय श्री न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और माननीय श्री न्यायमूर्ति राजीव मिश्रा की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.01.2020 की समीक्षा के लिए दायर की गई है। त्वरित संदर्भ के लिए, उपरोक्त आदेश दिनांक 22.01.2020 यहां नीचे दिया गया है:

“1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विकास बुधवार और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा को सुना।

2. याचिकाकर्ता को 01.04.2013 से 31.03.2014 की अवधि के लिए वार्षिक गोपनीय टिप्पणी (इसके बाद "एसीआर" के रूप में संदर्भित) में जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की गई है और याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा को रोक दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि कोई विशेष कारण नहीं दिए गए हैं, लेकिन वह इस पर प्रतिवाद नहीं कर सके कि सत्यनिष्ठा को रोकने की पुष्टि प्रशासनिक न्यायाधीश और इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा भी की गई है।

4. उपरोक्त आदेशों के अंतिम हो जाने की वजह से, हमें नहीं लगता कि जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई टिप्पणी में हस्तक्षेप करने का कोई कारण है, क्योंकि, उसे पहले ही प्रशासनिक न्यायाधीश के साथ-साथ इस न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा अनुमोदित कर दिया गया है। इसके अलावा, उपरोक्त आदेशों को इस याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

5. तदनुसार खारिज किया जाता है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है। ”

आदेश दिनांक:- 22.1.2020”

3. क्योंकि माननीय न्यायमूर्ति श्री सुधीर अग्रवाल अब उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए वर्तमान समीक्षा याचिका को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा दिनांक 18.01.2021 के आदेश द्वारा इस खंडपीठ को नामित किया गया है। तदनुसार, उपरोक्त समीक्षा याचिका इस पीठ के समक्ष आई है।

4. समीक्षा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार निगम का कथन है कि आदेश दिनांक 22.01.2020 इस आधार पर समीक्षा के योग्य है कि अभिलेख में देखते ही प्रकट होने वाली त्रुटियां हैं। अपनी

दलील को विस्तार से बताते हुए उन्होंने कहा कि समीक्षाधीन आदेश एक गलत आधार पर आधारित है कि जिला न्यायाधीश द्वारा समीक्षा याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि की पुष्टि प्रशासनिक न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा भी की गई थी। इस बात का खंडन यह कहते हुए किया गया है कि चूंकि जिला न्यायाधीश, जिन्होंने 01.04.2013 से 31.03.2014 की अवधि के लिए समीक्षा याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि दी थी, वह बाद में इस न्यायालय की पीठ में प्रोन्नत कर दिए गए थे और इसलिए, मामले को प्रशासनिक समिति के समक्ष नहीं रखा गया।

5. उन्होंने आगे कहा कि एक न्यायिक अधिकारी को प्रतिकूल प्रविष्टि दी जा सकती है, लेकिन वह उच्च न्यायालय द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 15.05.2007 के अनुरूप होनी चाहिए जो प्रावधान करता है कि प्रतिकूल प्रविष्टि देने के लिए जिस सामग्री का आश्रय लिया गया है, वह संबंधित अधिकारी को अवश्य बताया जाना चाहिए। तथापि, उपरोक्त की अवमानना में रिट याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि दी गई।

6. समीक्षा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार,



उपरोक्त के कारण ही पीठ ने 11.07.2022 को समीक्षा याचिका पर सुनवाई करते हुए निर्देश दिया कि मूल पत्रावली रखी जाए। उपरोक्त के आधार पर, उनका कहना है कि समीक्षाधीन आदेश इस न्यायालय द्वारा समीक्षा के योग्य है।

7. उच्च न्यायालय का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा ने मूल पत्रावली खंडपीठ के समक्ष रखी है। हमने इसकी जांच की है। हमारे द्वारा विशेष रूप से यह प्रश्न उठाने पर कि याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देने के लिए जिला न्यायाधीश ने जिस सामग्री का आश्रय लिया गया था, वह समीक्षा याचिकाकर्ता को बताई गई थी अथवा नहीं, उन्होंने उचित रूप से कहा है कि समीक्षा याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा की गई गोपनीय जांच के आधार पर दी गयी।

8. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 01.04.2013 से 31.03.2014 की अवधि के लिए समीक्षा याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देते समय जिला न्यायाधीश द्वारा परिपत्र दिनांक 15.05.2007 का अनुपालन नहीं किया गया है।

9. ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि

समीक्षाधीन आदेश देखते ही प्रकट होने वाली त्रुटियों से ग्रस्त है। हम तदनुसार दिनांक 22.01.2020 के आदेश की समीक्षा करते हैं।

10. समीक्षा याचिका स्वीकार की जाती है।

11. मामले को गुण-दोष के आधार पर 22.05.2023 को सुनवाई के लिए पेश किया जाए।”

12. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार निगम और प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा को सुना।

13. वर्तमान रिट याचिका के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार निगम का कहना है कि वर्ष 2003 से 2013 तक, याचिकाकर्ता को कभी भी प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं दी गई है। याचिकाकर्ता को उसके कैरियर में पहली बार वर्ष 2013-14 में प्रतिकूल प्रविष्टि दी गई थी। उपरोक्त के समर्थन में, उन्होंने याचिकाकर्ता को दी गई वार्षिक गोपनीय टिप्पणियों का विवरण देने वाले चार्ट का उल्लेख किया है, जिसका उद्धरण इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में पहले ही दिया जा चुका है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, रिपोर्टिंग अधिकारी यानी तत्कालीन जिला न्यायाधीश ने 2.2.2014 को अपने कार्यालय का प्रभार सौंपा, लेकिन उनके द्वारा

याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि 10.9.2014 को अर्थात प्रभार छोड़ने के सात महीने बाद दी गई।

15. अखिल भारतीय सेवा (गोपनीय नामावली) नियम, 1970 के नियम 5(2) के संदर्भ में, उनका कहना है कि सामान्य तौर पर, वार्षिक प्रविष्टि उस अवधि के भीतर प्रदान की जानी चाहिए थी जब जिला न्यायाधीश अभी भी कार्यालय में थे या उसके एक माह की अवधि के भीतर। फिर उपरोक्त नियमावली के नियम 5(2) और 5(5) का संदर्भ दिया गया और उसके आधार पर यह तर्क दिया गया कि क्योंकि तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद, जिन्होंने याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि दी थी, ने 02.02.2014 को प्रभार सौंप दिया था, अतः उन्हें याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट लिखने का कोई अधिकार नहीं था। इसी प्रकार, उक्त नियमावली के नियम 8.11 के अध्याय-8 का संदर्भ भी इस दलील के समर्थन में दिया गया कि उक्त नियमों के तहत भी, यह प्रावधान है कि रिपोर्टिंग अधिकारी अपनी सेवानिवृत्ति या कार्यालय से हटने के एक महीने के भीतर प्रविष्टि प्रदान करेगा। तथापि, वर्तमान मामले में, रिपोर्टिंग अधिकारी यानी तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद ने 02.02.2014 को ही अपना कार्यालय छोड़ दिया था और इसलिए, वह अपना कार्यालय छोड़ने की तारीख अर्थात 10.09.2014 से सात माह की अवधि की समाप्ति के बाद याचिकाकर्ता को वार्षिक प्रविष्टि नहीं दे सकते थे।

16. फिर न्यायालय का ध्यान परिपत्र संख्या 23 6F (C/ 2007) दिनांक 19.5.2007 की ओर आकर्षित किया गया। उक्त परिपत्र 1.4.2007 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया गया है। यह पत्रावली में पेपर बुक के पृष्ठ 120 पर है। मुख्य नोट 1 के कॉलम ए के साथ संलग्न नोट मौजूदा विवाद के लिए प्रासंगिक है। तदनुसार, इसे यहां प्रस्तुत किया गया है:-

**"ए. अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदेह से परे, संदिग्ध अथवा बेईमान है।**

**नोट: यदि अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध अथवा बेईमान है, तो इसे सभी प्रासंगिक तथ्यों, कारणों एवं सहायक सामग्री के साथ बताया जा सकता है।"**

17. परिपत्र के मुख्य नोट 1 के कॉलम ए के साथ संलग्न उपरोक्त नोट के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 2013-14 के लिए वार्षिक गोपनीय टिपण्णी केवल उपरोक्त परिपत्र में प्रदान किये गए मानदंड के अनुसार ही दी जा सकती थी।

18. उपरोक्त के संदर्भ में, उनका कहना है कि याचिकाकर्ता को तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई प्रविष्टि के साथ सभी प्रासंगिक तथ्यों, कारणों और सहायक सामग्री का उल्लेख किया जाना चाहिए था। तथापि, वर्तमान मामले में, तत्कालीन जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता को मात्र प्रतिकूल प्रविष्टि दे दी है, जो इस प्रकार है **"संदिग्ध, कई शिकायतें थीं"**। क्योंकि

याचिकाकर्ता को वर्ष 2013-14 के लिए दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि दिनांक 19.5.2007 के परिपत्र के कॉलम 1ए के साथ संलग्न नोट के अनुरूप नहीं है, क्योंकि सामग्री का विवरण उनकी अनुपस्थिति से स्पष्ट हैं, इसलिए, याचिकाकर्ता को प्रदान की गई उक्त प्रतिकूल प्रविष्टि इस न्यायालय द्वारा निरस्त किये जाने योग्य है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी -2 के रुख के अनुसार, जैसा कि प्रतिवादी -2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित तर्कों और रिकॉर्ड से भी स्पष्ट है, यह जाहिर है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गयी शिकायतों के संबंध में एक सतर्कता जांच संख्या 13/2014 शुरू की गई थी। इसके बाद, इसे विभागीय जांच संख्या 06/2017 में परिवर्तित कर दिया गया था। जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 1.2.2019 प्रस्तुत की। अंततः, आदेश दिनांक 21.3.2019 द्वारा जांच कार्यवाही समाप्त कर दी गई थी, क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई कोई भी शिकायत सही नहीं पाई गई।

20. उपरोक्त परिदृश्य में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देने के लिए तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा दर्ज किया गया कारण (कई शिकायतों की गई थीं) अब समाप्त हो गया है क्योंकि कथित शिकायतों के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई जांच का परिणाम याचिकाकर्ता के पक्ष में आया है। ऐसे में याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई

शिकायतों में कोई सच्चाई नहीं थी। इस प्रकार उन्होंने यह कहते हुए तर्क दिया कि जब प्रतिकूल प्रविष्टि का आधार ही गायब हो गया है, तो याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि बरकरार नहीं रखी जा सकती।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्ष 2013-14 के लिए याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि के कारण, जो अन्यथा स्पष्टतः अवैध है, याचिकाकर्ता को वर्ष यूपीएचजेएस 2015, यूपीएचजेएस 2016, यूपीएसजेएस 2017, यूपीएचजेएस 2018 और यूपीएचजेएस 2018(II) के लिए एचजेएस केंडर में पदोन्नति से वंचित कर दिया गया था। अंततः याचिकाकर्ता को यूपीएचजेएस 2018 में पदोन्नत किया गया। उपरोक्त आधार पर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्ष 2013-14 के लिए याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि दिनांक 19.5.2007 के परिपत्र के बाद की है, लेकिन न ही प्रासंगिक तथ्यों और न ही सहायक सामग्री का उल्लेख किया गया है और न ही उक्त सामग्री के आधार पर याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा को रोकने का कोई कारण रिपोर्टिंग अधिकारी यानी तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा वार्षिक गोपनीय पंजिका में बताया गया है, इस प्रकार से, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 19.05.2007 के परिपत्र में प्रतिकूल प्रविष्टि देने के लिए प्रदान की गई प्रक्रिया का पूरी तरह उल्लंघन करते हुए याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि प्रदान की गई। नतीजतन, यह अवैध है और इसलिए निरस्त किये जाने योग्य है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रशासनिक समिति द्वारा 1.10.1997 को हुई बैठक में पारित प्रस्ताव दिनांक 1.10.1997 की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। चूंकि उक्त प्रस्ताव का वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण प्रभाव है, तदनुसार, इसे यहां नीचे दिया गया है:

| एजेंडा                                                                  | संकल्प                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                               |
|-------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| 1. 21.9.1997 को आयोजित प्रशासनिक समिति की बैठक के कार्यवृत्त की पुष्टि] | 1. 21.9.1997 को आयोजित प्रशासनिक समिति की बैठक के कार्यवृत्त पर विचार किया गया। प्रस्तावित किया जाता है कि कार्यवृत्त की पुष्टि, निम्नलिखित संशोधन के अधीन, की जाए:<br>(I) आइटम संख्या 12 में प्रस्ताव पढ़ा जाएगा.<br>"प्रस्ताव किया गया कि ऐसे मामले में चरित्र पंजिका में प्रविष्टि माननीय न्यायाधीश जो संबंधित अवधि के दौरान संबंधित जिले के जिला न्यायाधीश थे, द्वारा दर्ज की जाएगी और उक्त प्रविष्टि न्यायालय की प्रविष्टि भी होगी, यदि कोई हो। ऐसी प्रविष्टि के विरुद्ध प्रत्यावेदन प्राप्त होता है तो मामले को विचारार्थ प्रशासनिक समिति के समक्ष रखा जाएगा।" |

23. पत्रावली के संदर्भ में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि रिपोर्टिंग अधिकारी यानी तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद को बाद में इस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता को वर्ष 2013-14 के लिए दी गयी प्रतिकूल प्रविष्टि को अनुमोदन हेतु प्रशासनिक न्यायाधीश के पास नहीं भेजा गया था। प्रशासनिक समिति ने

परिपत्र दिनांक 19.05.2007 के आलोक में अपने प्रस्ताव में बिना कोई निष्कर्ष दर्ज किए, सिर्फ समिति की रिपोर्ट से सहमति व्यक्त की है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष, प्रतिवादी -2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उपलब्ध कराये गए लिखित तर्कों के साथ संलग्न चार्ट के साथ-साथ इस तथ्य के संबंध में अपना लिखित बयान भी रखा है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई अधिकांश शिकायतें मिथ्या पायी गयी थीं और अंततः, उन्हें पत्रावली पर रख दिया गया था। त्वरित संदर्भ के लिए, उपरोक्त चार्ट यहां नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

#### "वरिष्ठ रजिस्ट्रार (न्यायिक) (गोपनीय)

कृपया, संयुक्त निबंधक (लिटिगेशन) के अनुरोध दिनांक 11.05.2023, जो नीचे रखा गया है, के संदर्भ में, 2013-2014 की अवधि में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-III, गाजियाबाद के रूप में तैनात श्री सुनील कुमार सिंह-तृतीय के खिलाफ प्राप्त शिकायतों की स्थिति देखें :-

| क्रमांक | फाइल संख्या       | विवरण                                                                                                                                  | स्थिति                                                                                                  |
|---------|-------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| 1.      | एस-394/1, 1ए/2013 | श्री भगवान गौड़, निवासी शाहबाद, मोहम्मदपुर, नई दिल्ली; श्री जीतेन्द्र कुमार शाह, निवासी सी-403, आदित्य गार्डन सिटी, सेक्टर-6, वसुंधरा, | माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश, गाजियाबाद के आदेश दिनांक 19.12.2013 द्वारा पत्रावली के सुपुर्द /बंद कर दिया |

|    |                        |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |                                                                                                                                                                                                       |    |                   |                                                                                                                                                                                                                                                                         |  |
|----|------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----|-------------------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--|
|    |                        | गाजियाबाद एवं सुश्री सरोज देवी, निवासी-मकान नंबर 281, ग्राम शाहबाद, मोहम्मदपुर, नई दिल्ली द्वारा की गयी शिकायत दिनांक 13.11.2013 मय संलग्नक , विरुद्ध श्री सुनील कुमार एसीजेएम-III, गाजियाबाद ।                                                                                                                                | गया। (माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 10.04.2014 के आलोक में शिकायत की फाइल को हटा दिया गया है, उक्त आदेश की प्रति संलग्न है)                                                                   |    |                   | डीसीपी सरिता बिहार के विरुद्ध दर्ज किया गया, पृष्ठांकन संख्या 1526 XV दिनांक 19.04.२०१४ के माध्यम से जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा अनुमोदित पत्र दिनांक 19.04.२०१४                                                                                                   |  |
| 2. | X-23/43, 43A, 43B/2014 | जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा भेजा गया पत्र क्रमांक .1/ईए/डीजे/2014 दिनांक 16.04.2014 और पत्र संख्या 1655/1 दिनांक 26.04.2015 एवं दिनांक 13.04.2014 को घटित सड़क पर तोड़फोड़ की घटना के संबंध में श्री सुनील कुमार सिंह-III, एसीजेएम कोर्ट नंबर-III, गाजियाबाद द्वारा दिल्ली पुलिस के एसआई श्री सुरेंद्र कुमार और दिल्ली की | माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 30.04.2014 द्वारा विशेष अधिकारी (सतर्कता) को सतर्कता जांच सौंपी गई। सभी मूल फाइलें 12.05.2014 , 17.05.2014 और 31.07.2014 को विशेष अधिकारी (सतर्कता) को भेजी गई। | 3. | एस-394/1, 1ए/2014 | श्रीमती दीप माला बखशी, पत्नी श्री सुरेंद्र बखशी, निवासी 2/250, अपर जटवाड़ा, महरौली, नई दिल्ली द्वारा, न्यायिक शक्तियों के आपराधिक दुरुपयोग के संबंध में श्री सुनील कुमार सिंह-III, एसीजेएम-III, गाजियाबाद के विरुद्ध प्रति शिकायत दिनांक 18.04.2014 (संलग्नकों के साथ)। |  |
|    |                        |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |                                                                                                                                                                                                       | 4. | एक्स-23/71/2014   | महानिबंधक को सम्बोधित, पृष्ठांकन संख्या                                                                                                                                                                                                                                 |  |

|    |                        |                                                                                                                                                                                                                                                                                      |                                                                                                                    |    |               |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                        |                                                                                              |
|----|------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----|---------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------|
|    |                        | 1146/1 दिनांक 12.06.2014 के माध्यम से जिला जज, पीलीभीत द्वारा विधिवत पृष्ठांकित, श्री सुनील कुमार सिंह-III, सिविल जज (सीनियर डिवीज़न), पीलीभीत द्वारा एफ आई आर को निरस्त करने विषय सम्बन्धी प्रत्यावेदन दिनांक 11.6.2014 (मय संलग्नक)।                                               |                                                                                                                    |    |               | शिकायत दिनांक 13.09.2014                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                               | उक्त आदेश की प्रति इसके साथ संलग्न है)                                                       |
| 5. | एस-394/2, 2ए, 2बी/2014 | केस संख्या 2547/२०१२ अंतर्गत धारा 156 (3) सीआरपीसी के सम्बन्ध में उनकी पत्नी श्रीमती सुनीता सिंह के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने हेतु, श्री रवींद्र सिंह वर्मा, निवासी 195 चिपियाना, गौतमबुद्ध नगर द्वारा श्री सुनील कुमार सिंह-तृतीय, तत्कालीन एसीजेएम-तृतीय, गाजियाबाद के विरुद्ध की गयी | माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश, गाजियाबाद के आदेश दिनांक 10.4.2014 के आलोक में शिकायत की पत्रावली को छांट दिया गया है- | 6. | एस-394/3/2014 | श्री सुनील कुमार सिंह-तृतीय, तत्कालीन एसीजेएम-तृतीय, गाजियाबाद के विरुद्ध, दिनांक 21.01.2014 को उनके द्वारा निस्तारित केस संख्या 511/2010 (अपराध 1906/2009) - राज्य बनाम राजीव गुप्ता व अन्य, अंतर्गत धारा 420, 409, 506 दंड प्रक्रिया संहिता, थाना सिहानी गेट की न्यायिक कार्यवाही में उनके खिलाफ प्रतिबिंबित आचरण के संबंध में, जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद का पत्र क्रमांक 3788/XV दिनांक 11.08.2014। | माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश, गाजियाबाद के आदेश दिनांक 25.03.2021 द्वारा पत्रावली को सुपुर्द । |
|    |                        |                                                                                                                                                                                                                                                                                      |                                                                                                                    | 7. | एस-394/4/2014 | मुकदमा अपराध संख्या 898/13, केस संख्या.                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश, गाजियाबाद                                                        |

|    |                |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |                                                                                                                                                                                                |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |                                                                                                    |                                                                                                                                          |
|----|----------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
|    |                | 3818/13- राज्य बनाम मेहताब, अंतर्गत धारा 25 आर्म्स एक्ट, थाना सिहानी गेट, गाजियाबाद में शिकायतकर्ता को जेल से रिहा करने के लिए उसके परिवार से कथित तौर पर 7,20,000 रुपये की उगाही करने के संबंध में इस्लामपुर, थाना भवन, मुजफ्फरनगर के श्री महताब पुत्र श्री हाजी शिपदार द्वारा श्री सुनील कुमार सिंह-III, तत्कालीन एसीजेएम-III, गाजियाबाद और श्री अरुण कुमार त्यागी, चैम्बर नं. 28, मेरठ के खिलाफ शिकायत दिनांक 02.07.२०१४ | के आदेश दिनांक 19.9.2016 के तहत पत्रावली को सुपुर्दा। (माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 10.04.2014 के आलोक में शिकायत की फाइल को हटा दिया गया है - उक्त आदेश की प्रति इसके साथ संलग्न है) |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              | श्री किशन पाल आर्य द्वारा संयुक्त रूप से, बिना हस्ताक्षरित शिकायत दिनांक 20.09.2014 और 04.10.2014। | (माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 10.04.2014 के आलोक में शिकायत की फाइल को हटा दिया गया है - उक्त आदेश की प्रति इसके साथ संलग्न है) |
| 8. | एस-394/ 6/2014 | भ्रष्टाचार के संबंध में श्री सुनील कुमार सिंह-तृतीय, तत्कालीन एसीजेएम-तृतीय, गाजियाबाद के खिलाफ श्री रमेश कुमार, श्री नरेंद्र यादव और                                                                                                                                                                                                                                                                                       | माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश, गाजियाबाद के आदेश दिनांक 10.03.2015 के तहत पत्रावली को सुपुर्दा।                                                                                                   | <p>तदनुसार रिपोर्ट प्रस्तुत है।<br/>इसलिए, यदि आप द्वारा अनुमोदित किया जाए, तो प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ उपरोक्त स्थिति को आगे की आवश्यक कार्रवाई हेतु संयुक्त निबंधक (लिटिगेशन) को भेजा जा सकता है।"</p> <p>24. अतः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर विचार करते समय मामले के उपरोक्त पहलू पर ध्यान नहीं दिया है, जिससे प्रशासनिक समिति द्वारा लिया गया निर्णय रद्द हो गया है क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गयी अधिकांश शिकायतें पहले ही पत्रावलित की जा चुकी हैं। नतीजतन, प्रशासनिक समिति द्वारा लिया गया निर्णय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संदर्भ में विवेक के</p> |                                                                                                    |                                                                                                                                          |

परिश्रमी प्रयोग का परिणाम नहीं है। प्रशासनिक समिति ने असावधानी और लापरवाही पूर्ण तरीके से याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया है। इस प्रकार, यह पूरी तरह से मनमाना है, इसलिए, इसे कायम नहीं रखा जा सकता है, अतः यह इस न्यायालय द्वारा निरस्त किये जाने योग्य है।

25. यद्यपि, याचिकाकर्ता के दावे का प्रतिवादी-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा द्वारा पुरजोर विरोध किया गया है। उनका कहना है कि यह सच है कि यद्यपि दिनांक 19.5.200 के परिपत्र के आदेश का तत्कालीन जिला न्यायाधीश द्वारा अनुपालन नहीं किया गया था, क्योंकि प्रासंगिक तथ्यों और सहायक सामग्री का न तो याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय सूची में उल्लेख किया गया है और न ही उनके बारे में याचिकाकर्ता को बताया गया और न ही उसके आलोक में कोई कारण दर्ज किया गया है। हालाँकि, यह तथ्य है कि निर्णय याचिकाकर्ता के निकटतम वरिष्ठ यानी रिपोर्टिंग अधिकारी/तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा लिया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह की गई दलीलों के आलोक में रिपोर्टिंग अधिकारी द्वारा बनाई गई राय का खंडन अथवा उसकी आलोचना नहीं की जा सकती है। वह याचिकाकर्ता और अन्य लोगों का निकटतम वरिष्ठ होने के नाते अपने अधीनस्थों के खिलाफ अन्य सामग्री जो उसकी जानकारी में आती है, के आधार पर भी राय बना सकता है। इसलिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि को याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा

आग्रह की दलीलों पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है। अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने राजेंद्र सिंह वर्मा (मृत) और अन्य बनाम उपराज्यपाल (एनसीटी ऑफ दिल्ली), (2011) 10 एससीसी 1 मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का आधार लिया है। रिपोर्ट के पैराग्राफ 190 से 193 पर बहुत जोर दिया गया है, जो तदनुसार, यहां नीचे दिया गया है:

190. जैसा कि इस न्यायालय ने आरएल बुटेल बनाम भारत संघ [(1970) 2 एससीसी 876] में देखा है कि यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिकूल प्रविष्टि दर्ज करने से पहले सुनवाई का अवसर संबंधित अधिकारी को दिया जाए। उक्त मामले में, यह तर्क कि प्रतिकूल प्रविष्टि दर्ज करने से पहले एक जांच आवश्यक होगी, इस मिथ्याबोध से ग्रस्त होने के कारण खारिज कर दिया गया कि ऐसी प्रविष्टि संसर के दंड के बराबर है। इस न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय में यह स्पष्ट किया गया है कि: (एससीसी पृष्ठ 876)

"(ii)... प्रतिकूल प्रविष्टि देना ऐसे दंड के समान नहीं है जिसके लिए जांच की आवश्यकता हो अथवा संबंधित सरकारी सेवक को सुने जाने का उचित अवसर देने की आवश्यकता हो।"

191. इसके अतिरिक्त, ऐसे मामले में जहां उच्च न्यायालय की फुल कोर्ट



किसी अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करती है, उच्च न्यायालय को न्यायिक तरफ से उस आदेश को रद्द करने में बहुत सावधानी और एहतियात बरतनी होगी क्योंकि यह उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों का समपूरक है जो इस प्रश्न पर विचार करते हैं और यह संभव है कि सभी मामलों में न्यायिक अधिकारी की सत्यनिष्ठा पर संदेह के सम्बन्ध में साक्ष्य सामने नहीं आएंगे। जैसा कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम ईश्वर चंद जैन [(1999) 4 एससीसी 579: 1999 एससीसी (एल एंड एस) 881] में इस न्यायालय ने देखा, कभी-कभी, फुल कोर्ट को सभी न्यायाधीशों की सामूहिक बुद्धिमत्ता पर कार्य करना पड़ता है। और यदि किसी कर्मचारी की सामान्य प्रतिष्ठा अच्छी नहीं है, भले ही उसके खिलाफ कोई ठोस सामग्री न हो, तो उसे जनहित में अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जा सकती है और ऐसे आदेश की न्यायिक समीक्षा केवल सीमित आधार पर ही स्वीकार्य है। भ्रष्ट होने की ख्याति एक अधिकारी के आचरण के चारों ओर घने और अपरिवर्तनीय बादल इकट्ठा करेगी और धुएं से भी तेज़ गति से कुख्याति प्राप्त करेगी। कभी-कभी इसे पत्रावली का हिस्सा बनाने के ठोस या महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं हो सकते हैं। इसलिए, रिपोर्टिंग अधिकारी या गोपनीय रिपोर्ट लिखने वाले सक्षम

नियंत्रण अधिकारी के लिए, साक्ष्य द्वारा समर्थित, कमियों के विशिष्ट उदाहरण देना, अव्यावहारिक होगा।

192. आम तौर पर, सत्यनिष्ठा पर परिलक्षित प्रतिकूल प्रविष्टि, दिमाग में एक साथ चलने वाले कई कारकों के परिणामस्वरूप निर्मित धारणाओं पर आधारित होगी। यद्यपि धारणाएँ भिन्न हो सकती हैं, चीजों की प्रकृति में, गोपनीय पंजिका की प्रविष्टियों को न्यायिक समीक्षा के अधीन लाने में लगभग असंभवता के समान कठिनाई है। कभी-कभी, यदि किसी कर्मचारी की सामान्य प्रतिष्ठा अच्छी नहीं है, यद्यपि उसके खिलाफ कोई ठोस सामग्री नहीं है, उसे सार्वजनिक हित में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जा सकता है। किसी न्यायिक अधिकारी को एक विशेष आयु के बाद भी बने रहने के प्रश्न पर विचार करने का, उचित प्राधिकारी को दिया गया कर्तव्य, निरपेक्ष है। यदि वह प्राधिकारी प्रामाणिक रूप से यह राय बनाता है कि किसी विशेष अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध है, तो उस राय की सत्यता को अदालतों के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती। जब उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष में इस प्रकार के संवैधानिक अधिकार का प्रयोग किया जाता है, तो उस पर कोई भी न्यायिक समीक्षा केवल बहुत सावधानी और एहतियात के साथ की जानी चाहिए और इसे, कई रिपोर्ट

किए गए निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों तक, सख्ती से सीमित किया जाना चाहिए। जब उपयुक्त प्राधिकारी प्रामाणिक राय बनाता है कि न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति सार्वजनिक हित में है, तो अनुच्छेद 226 के तहत रिट अदालत या अनुच्छेद 32 के तहत यह अदालत आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

193. इसके अलावा, इस न्यायालय ने एमएस बिंद्रा [(1998) 7 एससीसी 310: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 1812] मामले में न्यायिक अधिकारी की सत्यनिष्ठा के संबंध में प्रतिकूल प्रविष्टि दर्ज करने से पहले "संभावना की प्रबलता" वाक्यांश का उपयोग किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस प्राधिकारी को एसीआर लिखने का कर्तव्य सौंपा गया है, उसे बिना किसी आधार के और रिकॉर्ड पर किसी भी "सामग्री" के बिना, किसी न्यायिक अधिकारी की प्रतिष्ठा को धूमिल करने का अधिकार नहीं है। किन्तु साथ ही, अन्य समान रूप से महत्वपूर्ण हितों की रक्षा भी की जानी चाहिए यानी यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्यायिक सेवाओं में भ्रष्टाचार न फैले और ऐसे वायरस को हटाने के लिए हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए ताकि यह फैलकर संक्रामक न हो जाए। जब किसी न्यायिक अधिकारी के खिलाफ मौखिक रूप से बार-बार

शिकायतें प्राप्त होती हैं अथवा गोपनीय या अन्य प्रकार की किसी जांच पर, जांच करने वालों या फुल कोर्ट के मन में यह सामान्य धारणा बन जाती है कि संबंधित न्यायिक अधिकारी की प्रतिष्ठा अच्छी नहीं है, तो ऐसी गोपनीय जांच और/या बार-बार की गई मौखिक शिकायतें उस सामग्री का गठन करेंगी जिसके आधार पर, अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध इंगित करने वाला एसीआर दर्ज किया जा सकता है। न्यायिक समीक्षा करते समय, न्यायालय, किसी उपयुक्त मामले में तब भी प्रशासनिक पक्ष पर फुल कोर्ट के फैसले को रद्द कर सकता है यदि यह पाया जाता है कि ऐसा कोई आधार या सामग्री नहीं है जिस पर न्यायिक अधिकारी का एसीआर दर्ज किया गया था, लेकिन न्यायिक समीक्षा का यह अभ्यास करते समय और यह पता लगाने की कोशिश करते हुए कि रिकॉर्ड पर कोई सामग्री है या नहीं, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह न्यायिक अधिकारी द्वारा निर्वहन किए जा रहे कार्य की प्रकृति, एसीआर दर्ज करते समय उच्च न्यायालय द्वारा प्रशासनिक पक्ष पर किये जाने वाले अभ्यास की सूक्ष्म प्रकृति एवं ऐसा एसीआर दर्ज करने में अपनायी गयी प्रक्रिया/ प्रणाली, को ध्यान में रखे।

27. उपरोक्त आधार पर, प्रतिवादी-2 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि

याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देने में तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा लिए गए निर्णय में कोई अवैधता नहीं सम्बद्ध की जा सकती है। इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप, वर्तमान रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

28. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने के अपरान्त, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के साथ-साथ प्रस्तुत किये गए तर्कों पर विचार करने के उपरांत, इस रिट याचिका में निर्धारण के लिए एकमात्र मुद्दा जो उठता है वह यह है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, दिनांक 19.5.2007 के परिपत्र के कॉलम 1ए के साथ संलग्न नोट के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि बरकरार नहीं रखी जा सकती है अथवा इसे राजेंद्र सिंह वर्मा (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा व्यक्त आदेश के अनुसार बरकरार रखा जा सकता है।

29. पक्षों के बीच इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि न्यायिक अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय टिप्पणियाँ लिखने की प्रक्रिया को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 19.05.2007 के परिपत्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया था। उक्त परिपत्र निर्देशिका नहीं है किन्तु अनिवार्य है क्योंकि यह रिपोर्टिंग प्राधिकारी को परिपत्र के अनुसार ही न्यायिक अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय टिप्पणियाँ लिखने का निर्देश देता है। यह अब सुनिश्चित हो चुका है कि

जहां कानून, किसी चीज को किसी विशेष तरीके से करना निर्धारित करता है, उसे मात्र उसी तरीके से किया जा सकता है, किसी अन्य तरीके से नहीं। यह बहुत पहले 1936 में नज़ीर अहमद बनाम किंग एम्परर, एआईआर 1936 प्रिवी काउंसिल 253 के मामले में निर्धारित किया जा चुका है। इसी दृष्टिकोण को बार-बार दोहराया गया है और हमें इसी मुद्दे पर कई निर्णयों के साथ अपने निर्णय पर बोझ डालने की आवश्यकता नहीं है।

30. उपरोक्त के अलावा, मामले का एक और पहलू है जिसे प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट रूप से छोड़ दिया गया है। तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा वर्ष 2013-14 के लिए याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि, निम्नलिखित टिप्पणी "सत्यनिष्ठा संदिग्ध" क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ कई शिकायतें हैं, लिखते हुए प्रदान की गयी थी। याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि को प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा कायम रखने की मांग की गई है कि भले ही याचिकाकर्ता को दी गई उपरिलिखित प्रतिकूल प्रविष्टि, परिपत्र दिनांक 19.05.2007 के कॉलम 1 ए के साथ संलग्न नोट के आदेश के अनुरूप नहीं है लेकिन चूंकि तत्कालीन जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद याचिकाकर्ता के तत्काल वरिष्ठ थे और इसलिए, वह रिपोर्टिंग प्राधिकारी भी होने के नाते, प्रतिकूल प्रविष्टि दे सकते थे क्योंकि उसके पास ऐसी जानकारी हो सकती थी जिसके लिए कोई सामग्री उपलब्ध न हो। यह उपरोक्त के सिंहावलोकन में है कि राजेंद्र सिंह वर्मा (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च

न्यायालय के निर्णय पर बहुत जोर दिया गया था और उपरोक्त के आधार पर, ऊपर उल्लिखित तथ्यों की परवाह किये बिना, यह प्रस्तुत करने का जोरदार प्रयास किया गया कि आक्षेपित प्रतिकूल प्रविष्टि को अभी भी बरकरार रखा जा सकता है।

31. पहली बार में, प्रतिवादी 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया निवेदन आकर्षक लग सकता है, किन्तु गहराई से जांच करने पर उसमें कोई सार नहीं है और अतः, खारिज करने योग्य है।

32. यह प्रतिवादी 2 द्वारा स्वीकृत है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई शिकायतों के संबंध में, याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई शिकायतों की सत्यता का पता लगाने के लिए कदम उठाए गए थे। प्रतिवादी 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा आश्रय लिए गए सारणीकरण के अनुसार, जिसे हम पहले ही निर्णय के पैराग्राफ 24 में संदर्भित कर चुके हैं, यह स्पष्ट है कि अधिकांश शिकायतें पत्रवलिप्त कर दी गई थीं क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ भी प्रतिकूल नहीं पाया गया था। प्रतिवादी 2 द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई शिकायतों के संबंध में एक सतर्कता जांच जो कि सतर्कता जांच संख्या 6/2017 थी, का निर्देश दिया गया था। इसे विभागीय जांच संख्या 06/2017 में परिवर्तित कर दिया गया था। जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 01.02.2019 प्रस्तुत की। अंत में, दिनांक 21.03.2019 के आदेश के द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई जांच

कार्यवाही समाप्त कर दी गई। इस प्रकार उपरोक्त के आधार पर अपरिहार्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई कोई भी शिकायत सत्य नहीं पाई गई। एक बार जब याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई शिकायतें झूठी पाई गईं, तो याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि देने का आधार ही गायब हो गया। इस प्रकार याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि को बरकरार रखना न्याय का मखौल होगा, जबकि उसके खिलाफ की गई शिकायतें झूठी पाई गईं। उपरोक्त के आलोक में, प्रतिवादी 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस निर्णय का आश्रय लिया गया है, वह स्पष्ट रूप से अलग है और याचिकाकर्ता को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि को बरकरार रखने के लिए उसका आधार नहीं लिया जा सकता है।

33. हम इस स्तर पर, रिट-ए संख्या 60546/2015 (खलीकुज्जमा बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य) में 22.05.2017 को दिए गए इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसका याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आश्रय लिया था। उपर्युक्त मामले में न्यायालय ने मामले के तथ्यों पर गौर किया और गहन जांच के बाद इस प्रकार दर्ज किया:-

"जो रिकॉर्ड पेश किए गए हैं उनमें किसी भी स्रोत से एकत्र की गई कोई जानकारी या यहां तक कि याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा और न्यायिक प्रेषण के संबंध में शिकायत करने वाले किसी व्यक्ति का नाम भी नहीं बताया गया है। यहां तक कि बार के सदस्यों द्वारा भी कोई शिकायत नहीं की गई है, जिनके

समक्ष याचिकाकर्ता ने विचाराधीन मूल्यांकन वर्ष के दौरान न्यायिक कार्य किया। यह श्री नरेश गंभीर की एकमात्र शिकायत है जिसमें याचिकाकर्ता के अशिष्ट व्यवहार का आरोप लगाया गया है, जो बाहर के एक वकील है और एक अनुपालन मामले में उपस्थित हो रहे हैं जिसके बारे में तथ्य ऊपर बताए गए हैं। इस प्रकार, अवैध परितोषण, पक्षपात या अवैयक्तिक होने जैसे गंभीर आरोपों के बारे में कुछ भी कहने के लिए पूरे रिकॉर्ड में कोई सामग्री नहीं है। इतना ही नहीं, 01.04.2013 से 31.03.2014 यानी 2013-14 की अवधि के लिए एसीआर की प्रविष्टि जो कि अगले वर्ष की है, 'उत्कृष्ट' है और सत्यनिष्ठा को पर्याप्त निपटान के साथ 'संदेह से परे' प्रमाणित किया गया है और विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा 'अच्छे अधिकारी' के रूप में रैंकिंग दी गई है। ध्यान देने योग्य एकमात्र सामग्री जिला न्यायाधीश का दिनांक 29.07.2013 का पत्र है। इसके अलावा, यह मात्र दिनांक 11.03.2013 का गोपनीय नोट है जिसकी विषयवस्तु का न तो खुलासा किया गया है और न ही इस न्यायालय के समक्ष आगे लाया गया है और न ही याचिकाकर्ता के पास, पिछले अवसर पर पारित आदेश दिनांकित 28.04.2017, जो यहां ऊपर दिया गया है, के बावजूद, इसका जवाब देने का कोई अवसर था।

यदि अधिकारी को ऐसे गंभीर आरोप के लिए दोषी ठहराया जाना है, तो वास्तव में ऐसे आरोपों की गंभीरता की जांच के लिए उच्च न्यायालय द्वारा सतर्कता जांच या नियमित जांच कराई जा सकती थी। उच्च न्यायालय द्वारा यह विकल्प कभी नहीं सोचा गया और

जैसा कि राजेंद्र सिंह वर्मा (सुप्रा) के निर्णय में इंगित किया गया है, यह अनुमानित करने हेतु कि अधिकारी की सत्यनिष्ठा संदिग्ध हो गई थी, यह जानकारी एकत्र करने का तरीका हो सकता था। यह धारणा हमारे द्वारा हस्तक्षेप का मामला नहीं हो सकती है, लेकिन हम श्री नरेश गंभीर की लिखित शिकायत में याचिकाकर्ता के कथित अपमानजनक व्यवहार के आरोप को छोड़कर, विवादित प्रतिकूल टिप्पणी में लगाए गए आरोपों का समर्थन करने के लिए बताने लायक कोई भी जानकारी इकट्ठा करने में विफल रहे हैं।

जहां तक माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश के निर्देश पर फाइलों को याचिकाकर्ता की अदालत से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित करने का सवाल है, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 71, 72 और 73 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश से अपने न्यायालय से फाइलों के स्थानांतरण के संबंध में जानकारी मांगी थी और जिला न्यायाधीश द्वारा उन्हें सूचित किया गया था कि याचिकाकर्ता के न्यायालय से ऐसी कोई फाइल स्थानांतरित नहीं की गई थी। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 26 में, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 71, 72 और 73 में दिए गए उपरोक्त कथनों को अस्वीकार किया गया है। हमें पत्रावली से पता चला है कि याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई जानकारी के जवाब में, याचिकाकर्ता को जिला न्यायाधीश, गौतम बुद्ध नगर द्वारा दिनांक 08.09.2015 के पत्र (रिट याचिका का संलग्नक संख्या 25) के माध्यम से सूचित किया गया है, जिसमें रीडर की आख्या संलग्न करते हुए कहा गया है कि वर्ष 2012-13 के

दौरान याचिकाकर्ता के न्यायालय से कोई भी फाइल किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित नहीं की गई थी। अतः, शिकायत किए जाने और किसी फाइल या फाइल संख्या K-115/1/2012 को याचिकाकर्ता की अदालत से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किए जाने का निष्कर्ष, जैसा कि आक्षेपित प्रतिकूल टिप्पणी में दर्शाया गया है, पत्रावली से उत्पन्न हुआ प्रतीत नहीं होता है।"

उपरोक्त आधार पर, खंड पीठ ने रिट याचिका की अनुमति दी।

34. वर्तमान मामले के तथ्यों और खलीकुज्जमा के मामले के तथ्यों के बीच समानता स्थापित करने के बाद, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त याचिकाकर्ता के मामले में, उपरोक्त याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की गंभीरता परखने के लिए कोई जांच नहीं की गई थी जबकि वर्तमान मामले में जांच की गई थी किंतु याचिकाकर्ता के विरुद्ध कुछ भी प्रतिकूल नहीं पाया गया।

35. हम सर्विस बेंच संख्या 6108/ 2017 (राजवीर सिंह बनाम माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा महानिबंधक और अन्य) में 01.10.2018 को दिए गए इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के फैसले का भी संदर्भ ले सकते हैं। न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करने और अनुरोधित प्रस्तुतियों के मूल्यांकन के बाद अंततः अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए:-

"किसी भी प्रतिकूल प्रविष्टि की रिपोर्टिंग किसी ठोस सामग्री पर आधारित होनी चाहिए न कि किसी अनुमान पर। ऊपर की गई चर्चा, हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं दी जा सकती थी। ऐसा कहते हुए, हम जानते हैं कि इस न्यायालय के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता की चरित्र पंजिका की प्रविष्टियों के संबंध में अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित करना अस्वीकार्य है। यद्यपि, हमने पूर्ववर्ती पैराग्राफों में जो देखा है, वह हमें यह गौर करने की तरफ ले जाता है कि जिला न्यायाधीश द्वारा आश्रय ली गई सामग्री के आधार पर याचिकाकर्ता को प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं दी जा सकती थी। सामग्री को वास्तविक नहीं कहा जा सकता है। दो शिकायतें, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रतिकूल प्रविष्टि का आधार बनाती थीं, उन्हें माननीय प्रशासनिक समिति द्वारा खारिज कर दिया गया था और याचिकाकर्ता के आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण याचिका निर्धारित करते समय जिला न्यायाधीश द्वारा की गई कथित आलोचनात्मक टिप्पणियाँ, प्रासंगिक सामग्री नहीं है जिसे ऐसी प्रतिकूल प्रविष्टि का आधार बनाया जा सके।

किसी अधिकारी की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में वार्षिक चरित्र पंजिका में की गई प्रविष्टियाँ उसके कार्य और आचरण के समग्र मूल्यांकन पर आधारित होनी चाहिए। इस संदर्भ में, यह ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता का सेवा रिकॉर्ड, वर्ष 2011-12 के लिए वार्षिक गोपनीय

रिपोर्ट में दर्ज प्रतिकूल प्रविष्टि को छोड़कर, जो इस याचिका में चुनौती के अधीन है, न्यायिक अधिकारी के रूप में सेवा में शामिल होने के बाद से बेदाग है।

ऊपर दिए गए कारणों और चर्चा के आधार पर, हम पाते हैं कि रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।"

36. हम पाते हैं कि वर्तमान मामले के तथ्य और उपरोक्त याचिकाकर्ता के मामले के तथ्य एक समान हैं, क्योंकि ऐसी कोई विशिष्ट विशेषता नहीं है जिसके आधार पर, उपरोक्त निर्णय में निर्धारित अनुपात को वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ में लागू न माना जा सके।

37. ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 2013-14 के लिए दी गई प्रतिकूल प्रविष्टि पूरी तरह से अवैध है। अतः, इसे कायम नहीं रखा जा सकता और यह निरस्त होने योग्य है। तदनुसार, इसे निरस्त किया जाता है। इसी प्रकार, प्रशासनिक समिति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद का निर्णय, जैसा कि याचिकाकर्ता को दिनांक 04.07.2015 के पत्र द्वारा सूचित किया गया था, भी ऊपर दर्ज किए गए कारणों के फलस्वरूप बरकरार नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार, जैसा कि ऊपर बताया गया है, हम प्रशासनिक समिति द्वारा लिए गए विवादित निर्णय को निरस्त करते हैं।

38. उपरोक्त के दृष्टिगत, वर्तमान याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। चूंकि

जांच कार्यवाही लंबित होने के कारण याचिकाकर्ता को यूपीएचजेएस 2015 में एचजेएस कैडर में पदोन्नत नहीं किया गया था। उपरोक्त पर ध्यान दिए बिना, याचिकाकर्ता को यूपीएचजेएस 2018 में पदोन्नत किया गया, जबकि याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच कार्यवाही 21.03.2019 को समाप्त की गई थी। इसलिए, हम याचिकाकर्ता को पूर्वव्यापी प्रभाव यानी यूपीएचजेएस 2015 से पदोन्नति देने का निर्देश देते हैं। इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई उच्च न्यायालय के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 2 महीने की अवधि के भीतर शुरू और पूरी की जाएगी।

39. लागत आसान की गई।

-----  
(2023) 9 ILRA 260

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट बी संख्या 947 वर्ष 2023

अन्य संबंधित मामलों के साथ

बसदेव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री जितेंद्र यादव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री एम.सी.चतुर्वेदी (अपर महाधिवक्ता) श्री तेजस्वी मिश्रा (वाद धारक) द्वारा सहायता प्राप्त, श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला, श्री ओम प्रकाश पांडे

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 19-ए(2) - उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 117, 117-ए एवं 132 - उत्तर प्रदेश चकबंदी नियमावली, 1954 - नियम 24-ए - आवंटन - सार्वजनिक उपयोग - प्रश्नगत भूमि द्वितीय चकबंदी कार्यवाही के दौरान 'चारागाह भूमि' के रूप में चिन्हित की गई थी - अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए(2) के अंतर्गत सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए चिन्हित ऐसी भूमि का आवंटन सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा इस बात की संतुष्टि दर्ज किए जाने पर ही किया जा सकता है कि ऐसा आवंटन परिस्थितियों में आवश्यक या समीचीन है - वर्तमान मामले में न तो आवंटन का कोई आदेश और न ही ऐसी संतुष्टि को प्रमाणित करने वाला कोई दस्तावेज अभिलेख पर लाया गया है - आवंटन की प्रक्रिया को महज औपचारिकता नहीं माना जा सकता, विशेषकर तब जब सार्वजनिक उपयोग के लिए आरक्षित बड़ा क्षेत्र कई याचिकाकर्ताओं में वितरित कर दिया गया हो - वैधानिक अधिदेश के अनुपालन के अभाव में किए गए आवंटन प्रक्रियागत अनियमितता और कानूनी अस्थिरता के कारण दूषित हो गई है। अतः आवंटन आदेश रद्द - प्राधिकारी मामले पर पुनर्विचार कर सकता है, विवादित भूमि पर यथास्थिति तीन

महीने तक नए निर्णय के लिए जारी रहेगी, यदि आवश्यक हो तो।(पैरा 28, 31)

रिट याचिकाओं का निपटारा किया गया। (ई-13)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018:एचसी:148669
2. सीता राम बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 1982 एलजे 76, (पैरा 18, 21)
3. हरि राम बनाम डी.डी.सी., आजमगढ़, 1989 आरडी 281
4. गफूरा बनाम उप निदेशक चकबंदी, मेरठ, (1975) 2 एससीसी 568, (पैरा 3)
5. राम बहादुर बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य, एआईआर 1973 एलएल 414, (पैरा 2, 3)
6. इकबाल अहमद एवं अन्य बनाम डीडीसी एवं अन्य, 2005 (3) एडब्ल्यूसी 2423 इलाहाबाद, (पैरा 5, 7, 8 से 10)
7. पलकधारी बनाम गांव सभा देवारा, 2011 (3) एडीजे 251, (पैरा 8 से 11)
8. राम निहोर बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) विंध्यांचल मंडल, 2014:एचसी:183012



9. शिव नंद एवं अन्य बनाम डी.डी.सी., इलाहाबाद एवं अन्य, (2000) 3 एससीसी 103, (पैरा 5, 20, 21)

10. बाबू लाल बनाम डी.डी.सी., इलाहाबाद एवं अन्य, 1985 आरडी 236

11. हिंछलाल तिवारी बनाम कमला देवी एवं अन्य, (2001) 6 एससीसी 496

12. जगपाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2011) 11 एससीसी 396

13. स्मृति मदन कंसागरा बनाम पेरी कंसागरा, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 909, (पैरा 23)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशरी द्वारा पारित)

1. जो तथ्य विवाद में नहीं है वह यह है कि वर्तमान मामले में विवादित भूमि की प्रकृति, पहली चकबंदी कार्यवाही के दौरान रिकॉर्ड पर नहीं थी। हालाँकि, दूसरी चकबंदी कार्यवाही के दौरान, विवादित भूमि को चारागाह/चारागाह भूमि (इसके बाद 'चारागाह भूमि' के रूप में संदर्भित) के लिए चिह्नित किया गया। दूसरी चकबंदी कार्यवाही समाप्त हो गई और उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (इसके बाद "अधिनियम, 1953" के रूप में संदर्भित) की धारा 52(1) के तहत एक अधिसूचना 04.12.1993 को जारी की गई। बाद में, विवादित भूमि का मूल्यांकन किया गया और मूल्यांकन के आधार पर याचिकाकर्ताओं को

आवंटित किया गया और याचिकाकर्ताओं को आवंटित भूमि की वर्तमान स्थिति रिकॉर्ड पर है यानी भूमि के कुछ हिस्से अभी भी खाली हैं और भूमि के कुछ हिस्सों पर विभिन्न प्रकृति के निर्माण किए गए हैं। याचिकाकर्ताओं को विवादित भूमि के आवंटन का विवरण जैसे संबंधित आवंटित क्षेत्रों को विशेष रूप से दर्शाते हुए संबंधित आवंटन आदेश, ऐसे आवंटन की तारीखें रिकॉर्ड पर नहीं हैं।

2. इसके अलावा, इस पर भी विवाद नहीं है कि अधिनियम, 1953 की धारा 52 के तहत अधिसूचना जारी होने के 24 साल बाद, निजी प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी (राज नारायण) ने जिला मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ के समक्ष एक आवेदन दिनांक 17.07.2017 प्रस्तुत किया है जिसमें विशेष रूप से आरोप लगाते हुए कहा है कि लगभग 4.42 एकड़ भूमि यानी विवादित भूमि राजस्व रिकॉर्ड में 'चारागाह भूमि' की श्रेणी में दर्ज थी, तथापि, इसे याचिकाकर्ताओं को अवैध रूप से आवंटित किया गया और वर्तमान में केवल 3.48 एकड़ भूमि ही 'चारागाह भूमि' के रूप में उपलब्ध है। यह भी आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता शक्तिशाली व्यक्ति हैं और अधिकारी उनके साथ मिले हुए हैं। आवंटन किसी भी उचित प्रक्रिया से रहित था और इस प्रकार अवैध होने के कारण धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था, इसलिए आदेश को रद्द किया जाए और उचित कार्रवाई की जाए।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त शिकायत उप निदेशक चकबंदी, आजमगढ़ को संदर्भित की गई थी, जिन्होंने दिनांक 05.09.2017 के आदेश द्वारा चकबंदी अधिकारी से रिपोर्ट मांगी

और यह भी निर्देशित किया गया कि सभी संबंधित पक्षों को नोटिस दी जाए। बाद में, प्राप्त रिपोर्ट के आधार पर, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, आजमगढ़ ने दिनांक 07.01.2023 को जिलाधिकारी को संबोधित एक पत्र द्वारा एक चार्ट तैयार किया है, जिसमें सभी विवरण जैसे, नए गाटा संख्या और पुराने गाटा संख्या और उनके संबंधित क्षेत्र, साथ ही फॉर्म 45 में उल्लिखित किरायेदार धारकों के नाम और प्रासंगिक नक्शा-नज़री (स्पॉट मैप) के साथ विवादित भूमि की वर्तमान स्थिति का उल्लेख किया गया है। इसके विवरण पर किसी भी याचिकाकर्ता द्वारा गंभीर मतभेद नहीं किया गया है। एक स्पॉट मैप भी तैयार किया गया था जो स्पष्टतः इंगित करता है कि सभी याचिकाकर्ताओं को मुख्य सड़क से सटी हुई भूमि आवंटित की गई थी, जो यह भी दर्शाता है कि भूमि का संभावित मूल्य है।

4. उप निदेशक, चकबंदी ने पक्षों (विभिन्न रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं) को सुना और दिनांक 28.02.2023 को आक्षेपित आदेश पारित किया। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन के मुद्दे पर गंभीरता से बहस नहीं की गई है।

5. जिलाधिकारी /उप चकबंदी निदेशक, आजमगढ़ ने रिपोर्ट, राजस्व अभिलेख का आश्रय लिया और साथ-साथ प्रतिद्वंद्वी पक्षों की दलीलों पर विचार किया और निर्धारण किया कि चूंकि विवादित भूमि 'चारागाह भूमि' के लिए चिन्हित की गई थी, जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 के प्रावधानों के विपरीत

होने के कारण, याचिकाकर्ताओं को आवंटित नहीं की जा सकती थी और इसलिए, इस प्रकार किए गए आवंटन रद्द कर दिए गए और यह निर्देश दिया गया कि विवादित भूमि को राजस्व अभिलेख में 'चारागाह भूमि' के रूप में बहाल/दर्ज किया जाए। आक्षेपित आदेश में, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने प्रक्रिया, भूमि जिसका मूल्य निर्धारण और आवंटन किया जा सकता है, की प्रकृति और यदि आवंटन क्षेत्राधिकार से परे था, तो यह शून्य होगा और ऐसे मामले में, सीमा विचारण योग्य नहीं होगी, पर ध्यान दिया है। इसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों का भी हवाला दिया गया। आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक भाग नीचे उल्लिखित है:-

*“जिला शासकीय अधिवक्ता राजस्व द्वारा लिखित बहस प्रस्तुत कर तर्क प्रस्तुत किया गया कि पत्रावली में संलग्न आख्या व संदर्भ दिनांक 26.08.2017 व 07.01.2023 से स्पष्ट है कि चारागाह के खाते में अंकित भूमि को दौरान चकबंदी मालियत लगाकर विभिन्न चकों व मदों में प्रस्तावित व आरक्षित किया गया है, जो विधिविरुद्ध व शून्य है, क्योंकि चकबंदी अधिकारियों को केवल कास्तकारों की भूमि का ही मूल्यांकन लगाकर चकों में प्रविष्ट किये जाने व अन्य मद में आरक्षित किये जाने*

का अधिकार प्राप्त है।  
गाँवसभा भूमि तथा  
सार्वजनिक उपयोग में  
अंकित भूमि का मूल्यांकन  
लगाकर चकों में प्रस्तावित  
करने का कोई प्राविधान  
नहीं है। यदि ऐसा किया  
गया हो तो भी ऐसे आदेश  
को संज्ञान में आने के  
उपरान्त कभी भी निरस्त  
किया जा सकता है। इसमें  
कालबाधिता तथा पोषणीयता  
का बिन्दु बाधक नहीं है।  
 मा० सुप्रीम कोर्ट द्वारा  
 जगपाल सिंह व अन्य  
 बनाम पंजाब राज्य व अन्य  
 में दिनांक 28.01.2011 को  
 आदेश पारित करते हुये  
 तालाब, चारागाह, खलिहान  
 आदि की भूमि को जो  
 1359 फ0 के अभिलेख में  
 अंकित हैं, को पूर्ववत् कायम  
 किये जाने का निर्देश दिया  
 गया है। इस क्रम में  
 आयुक्त एवं सचिव राजस्व  
 परिषद, लखनऊ उ0प्र0  
 द्वारा दिनांक 10.07.2020  
 को समस्त जिलाधिकारी,  
 उ0प्र0 को निर्देश जारी  
 किया गया है। उक्त निर्देश  
 के क्रम में भी पशुचर भूमि  
 को पूर्ववत् पशुचर खाते में  
 अंकित किया जाना  
 आवश्यक है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट  
है की जमींदारी विनाश  
अधिनियम की धारा 132  
सार्वजनिक प्रयोग की वादीय  
भूमि के रकबे में मालियत  
लगाकर चक निर्माण एवं  
विभिन्न मदों में आरक्षण की  
कार्यवाही क्षेत्राधिकार से परे  
जाकर की गयी है। इस  
स्थिति में संदर्भ दिनांक  
26.08.2017 स्वीकार योग्य  
है।

#### आदेश

संदर्भ दिनांक 26.08.2017  
 स्वीकार किया जाता है।  
 तदनुसार अभिलेखों में  
 संशोधन किया जाय। आदेश  
 की प्रति संदर्भ पत्रावली के  
 साथ उप संचालक चकबन्दी  
 आजमगढ को अनुपालनार्थ  
 प्रेषित की जाय। इस  
 न्यायालय की पत्रावली  
 आवश्यक कार्यवाही के  
 उपरान्त अभिलेखागार में  
 संचित की जाए।"

(बल दिया गया)

6. सर्वश्री जितेंद्र यादव, अवधेश कुमार सिंह,  
 राजेंद्र राय और प्रहलाद कुमार भारद्वाज, अपने  
 संबंधित रिट याचिकाकर्ताओं के विद्वान  
 अधिवक्तागणों ने विस्तार से बहस की है और  
 उनके तर्कों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत  
 किया जा रहा है :-

(क) अधिनियम, 1953 की धारा 52(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद निजी प्रतिवादी की शिकायत के आधार पर जिलाधिकारी /उप निदेशक चकबंदी, आजमगढ़ द्वारा की गई पूरी कार्यवाही क्षेत्राधिकार से परे थी क्योंकि यह उक्त धारा के प्रावधानों द्वारा वर्जित थी। त्वरित संदर्भ के लिए, धारा 52 इस प्रकार है :-

**“52. चकबंदी कार्यों का**

**समापन - (1) यथाशीघ्र, नए नक्शे और अभिलेख तैयार होने के बाद [धारा 27 की उप-धारा (1) के तहत], राज्य सरकार आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना जारी करेगी कि चकबंदी संचालन [इकाई और इकाई का हिस्सा बनने वाले गांव या गांवों] में बंद कर दिया गया है और अब वे चकबंदी कार्यों के अंतर्गत नहीं रहेंगे:**

**[बशर्ते कि इस धारा के तहत अधिसूचना जारी होने से इस अधिनियम के तहत परिचालन की लागत तय करने, वितरित करने और रिकॉर्ड करने की राज्य सरकार की शक्तियां प्रभावित नहीं होंगी।]**

**[(1 ए) उप-धारा (1) के तहत जारी अधिसूचना को क्षेत्र में प्रसारित होने वाले दैनिक समाचार पत्र में भी प्रकाशित**

**किया जाएगा और ऐसे अन्य तरीके से भी, जो उचित समझा जाए।]**

**[(2) उपधारा (1) में लिखित किसी भी चीज के बावजूद, “भारत के संविधान” के प्रावधानों के तहत दायर रिट के मामलों में या उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना जारी होने की तारीख पर इस अधिनियम के तहत लंबित कार्यवाही के मामलों में, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश, ऐसे अधिकारियों, जिन्हें नियत किया जाए, द्वारा प्रभावी किया जाएगा, और इस प्रयोजन हेतु, चकबंदी कार्रवाई को बंद नहीं किया गया माना जाएगा।]**

**[(3) जहाँ चकबंदी योजना के धारा 23 के अंतर्गत अन्तिम हो जाने के पूर्व किया गया किसी भूमि का प्रदेशन या पट्टा का निरसन उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 198 की उपधारा (4) के अधीन आदेश द्वारा किया जाता है और वह आदेश अन्तिम हो जाता है, तब भले ही इस अधिनियम के प्रावधान कुछ भी कहते हो, ऐसे आदेश को**

निम्नलिखित रीति से ऐसे प्राधिकारियों द्वारा, जो नियत किये जायें, प्रभावी किया जायेगा और इस प्रयोजन के लिए चकबन्दी क्रिया को समाप्त नहीं समझा जायेगा, अर्थात्--

(क) पहले उस भूमि जो ऐसे प्रदेशन या पट्टे का विषयवस्तु थी, का मूल्य नियत रीति से सुनिश्चित किया जाएगा।

(ख) चकबन्दी कार्यवाही के दौरान, संबंधित खातेदार को आवंटित भूमि के कुल मूल्य में से खण्ड (क) के निर्दिष्ट मूल्य की कटौती की जाएगी।

(ग) चकबन्दी कार्यवाही के दौरान खातेदार उक्त भूमि के मूल्यांकन के बराबर भूमि का हकदार होगा।]"

(ख) अधिनियम, 1953 की धारा 8-ए(2)(सी) में प्रावधान है कि चकबन्दी कार्यवाही के दौरान ग्राम सभा में निहित भूमि में से सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित की गई भूमि का विवरण तैयार किया जाना है और अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए (2) में प्रावधान है कि ऐसी भूमि जो सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित की गई है, उसे केवल इसके पश्चात ही आवंटित किया जाएगा जब सहायक चकबन्दी अधिकारी ने लिखित रूप से घोषणा की हो कि चकबन्दी कार्यवाही में 'सार्वजनिक प्रयोजन' के लिए निर्धारित की गई

भूमि, जिसमें 'चारागाह भूमि' भी शामिल होगी, के आवंटन पर कोई रोक नहीं है।

(ग) उस स्तर पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी जब भूमि को 'चारागाह भूमि' के रूप में चिह्नित किया गया था या इसे, कई वर्ष पहले, रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं को टुकड़ों में आवंटित किया गया था। यहां तक कि अधिनियम, 1953 की धारा 9(ए)(2) के स्तर पर भी कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी, अतः देरी से, जब बहुत पानी बह चुका है, क्योंकि विवादित भूमि पर निर्माण या अन्य गतिविधियां पहले ही शुरू/पूरी की जा चुकी हैं अतः, बिना क्षेत्राधिकार के पारित आदेश द्वारा इसे छेड़ा नहीं जा सकता है। पीड़ित पक्ष होने के नाते ग्राम सभा आगे नहीं आई है, इसलिए शिकायतकर्ता को विवादित भूमि की तरफ से कोई कार्यवाही शुरू करने का कोई अधिकार नहीं है। आक्षेपित आदेश, बिना क्षेत्राधिकार के पारित किए जाने के कारण, रिट क्षेत्राधिकार के तहत न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 1953 की धारा 11-ए का भी उल्लेख किया और कहा कि यह ऐसे विवाद को उठाने पर रोक लगाता है जिसे अधिनियम, 1953 की धारा 9(ए)(2) के तहत आपत्तियां दर्ज करने के समय उठाया जा सकता था।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा श्री राम बनाम उ.प्र. राज्य और 4 अन्य, 2018:एचसी:148669; सीता राम बनाम उप निदेशक चकबन्दी एवं अन्य, 1982 सभी एलजे 76; हरि राम बनाम डीडीसी, आजमगढ़, 1989

आरडी 281; गफूरा बनाम उप निदेशक चकबंदी, मेरठ, (1975) 2 एससीसी 568 के मामलों में दिए गए निर्णयों का आश्रय लिया है। इनके प्रासंगिक पैराग्राफ यहां उद्धृत किए गए हैं -:

**हरि राम (उपरोक्त):**

“.....कानून की स्थिति सुस्थापित है। यदि अधिनियम की धारा 52 के तहत डी-नोटिफिकेशन पहले ही हो चुका है तो उप निदेशक चकबंदी को अधिनियम की धारा 48(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इसलिए, उप निदेशक चकबंदी सबसे पहले यह पता लगाएंगे कि क्या अधिनियम की धारा 52 के तहत एक अधिसूचना वास्तव में 13 फरवरी 1982 को जारी की गई थी। अगर वह पाते हैं कि ऐसी अधिसूचना है और यदि वह यह भी पाते हैं कि वह भूमि जो विवाद का विषय है, उक्त अधिसूचना के अंतर्गत आती है, तो वह अधिनियम की धारा 48 (3) के तहत किसी भी शक्ति का प्रयोग करने से विरत रहेंगे। इस निर्देश के साथ याचिका अंतिम रूप से निस्तारित की जाती है।”

**सीता राम (उपरोक्त):**

“18. कोई व्यक्ति किसी दूसरे द्वारा प्रदत्त अधिकार के बिना, उसकी ओर से या उसके लाभ के लिए कानूनी कार्यवाही शुरू नहीं कर सकता है। गाँव सभा मैनुअल के पैरा 128 में वह प्रक्रिया और तरीका प्रदान किया गया है जिससे गाँव सभा की ओर से मुकदमा या कार्यवाही दायर एवं संचालित की जा सकती है और इसे उसी तरीके से किया जाना है।

XXXX

XXXX

21. गाँव सभा एक कॉर्पोरेट निकाय है और भूमि प्रबंधन समिति गाँव सभा का एक कार्यकारी निकाय है, जिसे गाँव सभा में निहित संपत्ति की देखरेख और सुरक्षा करने का कार्य सौंपा गया है और इसे कानून के तहत स्वीकृत तरीके से कार्य करना है। गाँव सभा मैनुअल के पैरा 128 और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमों के नियम 110 ए में निहित प्रावधान, वह तरीका निर्धारित करते हैं जिसमें गाँव सभा द्वारा और उसकी ओर से मुकदमे को संचालित किया जाना है। ये प्रावधान, जो अनिवार्य हैं, यू.पी. जोत

चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के तहत, सभी कार्यवाहियों में गांव सभा की ओर से संचालित मुकदमेबाजी को नियंत्रित करेंगे।

**गफूरा (उपरोक्त):**

“3. छोटा सा प्रश्न जो विचारणीय है, वह ये है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उप निदेशक (चकबंदी) के आदेश में हस्तक्षेप न करना सही है। अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार सुनिर्धारित है। उच्च न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप करेगा जब किसी प्राधिकारी द्वारा अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कोई आदेश पारित किया गया हो या अभिलेख को देखने से ही प्रकट होने वाली कानून की कोई स्पष्ट त्रुटि हो। मुख्य प्रश्न जो उप निदेशक (चकबंदी) के समक्ष रखा गया था, वह यह था कि क्या अधिनियम की धारा 9(2) के तहत निर्धारित समय सीमा के भीतर आपति दर्ज करने में विफलता, किसी पीड़ित पक्ष को आपति प्रस्तुत करने में देरी का कोई कारण स्पष्ट किये बिना और उचित प्राधिकारी से देरी की माफी का उचित आदेश प्राप्त किये बिना, निर्धारित

अवधि से परे मामले पर विवाद करने का अधिकार देगी। अभिलेख से स्पष्ट है कि निर्धारित समय के अन्दर कोई आपति प्रस्तुत नहीं की गयी थी। उप निदेशक (चकबंदी) ने, यदि हम कह सकते हैं, तो उचित ही यह स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि अपीलकर्ताओं ने पूर्व में 21 नवंबर, 1966 को कोई आपति दर्ज की थी। यह स्थिति होते हुए, बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के पास, अधिनियम की धारा 9(2) के तहत आपति दर्ज करने में देरी को माफ करने के अपने क्षेत्राधिकार को प्रयोग करने हेतु, कोई सामग्री नहीं थी। धारा 11ए चकबंदी क्षेत्र से संबंधित भूमि के दावे, संयुक्त जोत के विभाजन और भूखंडों के मूल्यांकन आदि के संबंध में सभी आपतियों को, जो धारा 9 के तहत उठायी गयी हैं या जो उस धारा के तहत उठायी जा सकती थी या उठायी जानी चाहिए थी किन्तु नहीं उठायी गयी, को रोकती है। धारा 11ए के तहत ये प्रश्न चकबंदी कार्यवाही के किसी भी आगामी चरण में उठाए या सुने नहीं जा सकते। इस स्थिति में, उप निदेशक (चकबंदी) के आदेश में कोई

कानूनी त्रुटि नहीं है और न ही मामले को निपटाने में उनके द्वारा क्षेत्राधिकार का कोई अतिरेक किया गया है जैसा कि उन्होंने धारा 48 के तहत अपनी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करने में किया था।

(बल दिया गया)

8. उपर्यक्त संदर्भित निर्णयों के आधार पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि कुछ परिस्थितियों में, भूमि प्रबंधन समिति 'चारागाह भूमि' सहित सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए संरक्षित भूमि के संबंध में सिरदारी अधिकारों के साथ पट्टा दे सकती है और उप निदेशक, चकबंदी के पास अधिनियम, 1953 की धारा 48(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, यदि अधिनियम, 1953 की धारा 52 के तहत पहले ही डी-नोटिफिकेशन हो चुका है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि विवादित आदेश को, अवैध होने के कारण, निरस्त कर दिया जाए।

9. इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश राज्य के लिए ब्रीफ होल्डर श्री तेजस्वी मिश्रा, गांव सभा के विद्वान वकील श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ल, और प्रतिवादी संख्या 6/ (रिट बी संख्या 947/2023 में) शिकायतकर्ता के विद्वान वकील श्री ओम प्रकाश पांडे द्वारा सहायता प्राप्त अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री एम.सी.चतुर्वेदी ने बलदार आग्रह किया है कि पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा अपनायी गई प्रक्रिया उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर थी और चूंकि उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन

और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 के तहत एक विशेष रोक है कि भूमिधारी अधिकार कुछ भूमि पर अर्जित नहीं होता है जिसमें 'चारागाह भूमि' भी शामिल है।

10. राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने धारा 3(2)(iii) के तहत निर्धारित चकबंदी की योजना का भी उल्लेख किया है, यानी चकबंदी के उद्देश्य से पुनर्व्यवस्था के लिए, किसी होल्डिंग में उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि-व्यवस्था अधिनियम की धारा 132 में उल्लिखित भूमि शामिल नहीं होगी जिसमें 'चारागाह भूमि' के लिए आरक्षित भूमि शामिल है।

11. राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने अधिनियम, 1953 की धारा 8(ए)(सी) का उल्लेख भी किया है और प्रस्तुत किया है कि जब सिद्धांतों के विवरण की तैयारी की जाती है, तो उसमें, उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि-व्यवस्था अधिनियम की धारा 117 या धारा 117-ए के तहत, किसी गांव सभा या स्थानीय प्राधिकरण में निहित भूमि में से सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए चिन्हित की जाने वाली भूमि, यदि कोई हो, का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।

12. राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि संबंधित प्राधिकरण ने 'चारागाह भूमि' के लिए निर्धारित भूमि से निजी व्यक्तियों को आवंटन किया, जो 'कानून पर धोखाधड़ी' और 'वैधानिक दायित्व' के अलावा और कुछ नहीं था।



13. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने, अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, इस न्यायालय के साथ-साथ राम बहादुर बनाम डीडीसी और अन्य, एआईआर 1973 सभी 414; इकबाल अहमद और अन्य बनाम डीडीसी और अन्य, 2005 (3) एडब्ल्यूसी 2423 सभी; पलकधारी बनाम गांव सभा देवारा, 2011 (3) एडीजे 251; राम निहोर बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) विंध्यांचल डिवीजन, 2014:एचसी:183012 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का आधार लिया है; और उपरोक्त संदर्भित निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उल्लिखित हैं -:

**राम बहादुर (उपरोक्त):**

"2. हालाँकि, अधिसूचना जारी होने से, भारत के संविधान के प्रावधानों के तहत उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों या उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना जारी होने की तिथि पर इस अधिनियम के तहत लंबित मामलों या कार्यवाही, पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और अधिसूचना में किसी भी बात के बावजूद, पारित आदेशों को प्रभावी करना होगा। दिलावर सिंह के मामले में, 1972 ऑल डब्ल्यूआर (एचसी) 557: (एआईआर 1973 ऑल 411), खंडपीठ ने पाया कि धारा 52(2) में "कार्यवाही" शब्द का इस्तेमाल उन कार्यवाहियों के

व्यापक अर्थ में किया गया है जो उस कार्यवाही से प्रारम्भ होती है जो कि चकबंदी अधिकारी के समक्ष शुरू होती है और जिसमें अपील न्यायालय में ली गई कार्यवाही भी शामिल है। यह माना गया कि अपील नई कार्यवाही शुरू नहीं करती है। अपील दायर करने पर कार्यवाही, जो ट्रायल कोर्ट के फैसले पर निष्क्रिय हो गई थी, पुनर्जीवित हो जाती है और लंबित रहती है, एकमात्र अंतर यह है कि वे अब एक अलग अदालत, अर्थात् अपील की अदालत में लंबित हैं। यह भी माना गया कि धारा 52 (1) के तहत अधिसूचना का परिणाम वादियों के निहित अधिकारों को नष्ट करना नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि किसी वादी के पास किसी विशेष आदेश के खिलाफ अपील का अधिकार है तो वह धारा 52 (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बावजूद इसका प्रयोग कर सकता है और जिस क्षण अपील दायर की जाती है, कानून में इसका प्रभाव यह होता है कि मूल कार्यवाही पुनर्जीवित हो जाती है।

3. हमारी राय में, इस मामले में निर्धारित सिद्धांत किसी

एक पक्षीय आदेश को रद्द करने के आवेदन पर लागू होता है। जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 41 उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम के अध्याय IX और X के प्रावधानों को जोत चकबंदी अधिनियम के तहत सभी कार्यवाहियों पर लागू करती है। उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 200 और 201 अध्याय IX में हैं। धारा 200 में यह प्रावधान है कि जब भी ऐसी कार्यवाही का कोई भी पक्ष समन में निर्दिष्ट दिन पर, या किसी भी दिन जिस दिन मामला स्थगित हो सकता है, उपस्थित होने की उपेक्षा करता है, तो न्यायालय अनुपस्थिति की वजह से मामले को खारिज कर सकता है या एक पक्षीय सुनवाई और निर्धारण कर सकता है। धारा 201 कहती है कि धारा 200 के तहत एक पक्षीय या पैरवी के अभाव में पारित आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की जाएगी। वह धारा अनुपस्थिति के लिए उचित कारण का सबूत देने पर पुनः सुनवाई का प्रावधान करती है। याचिकाकर्ता ने इस प्रावधान के तहत अनुपस्थिति का उचित कारण बताते हुए मामले की पुनः सुनवाई हेतु आवेदन किया था। दरअसल उनका मामला

यह था कि वह पूरे समय मौजूद थे लेकिन उन्हें बताया गया कि मामले की सुनवाई किसी और तारीख पर होगी। इस प्रकार कार्यवाही मामले की पुनः सुनवाई के लिए है। याचिकाकर्ता को ऐसा आवेदन करने का वैधानिक अधिकार था। यह अधिकार उन्हें 23-12-1968 को प्राप्त हुआ, जिस दिन चकबंदी अधिकारी ने आपत्ति का निस्तारण किया। धारा 52(1) के तहत अधिसूचना जारी करके वह अधिकार खत्म नहीं किया जा सकता। उस अधिकार के प्रयोग का प्रयोजन चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाही को पुनर्जीवित करना था। हमारी राय में, ऐसी कार्यवाही अपील के समान स्तर पर है क्योंकि उनके परिणामस्वरूप, मूल कार्यवाही पुनर्जीवित हो जाती है।"

**इकबाल अहमद और अन्य (उपरोक्त):**

"5. मैंने याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की दलीलों पर विधिवत विचार किया और मेरा मत है कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा दिए गए किसी भी तर्क को कानून में कायम नहीं रखा जा सका। उत्तर

प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के तहत 'चकबंदी' को धारा 3 (2) के तहत परिभाषित किया गया है। उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 3(2) की व्याख्या (iii) यह स्पष्ट करती है कि उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम (संक्षेप में इसके बाद यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 132 के तहत उल्लिखित भूमि को चकबंदी योजना में शामिल नहीं किया जाएगा।

xxx

xxx

7. उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यदि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 132 के तहत किसी भूमि का उल्लेख किया गया है तो उसे चकबंदी के उद्देश्यों के लिए चकबंदी योजना में शामिल नहीं किया जाएगा।

8. यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 132 यह स्पष्ट करती है कि इस धारा में किसी भी बात के बावजूद, लेकिन यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 19 पर प्रतिकूल प्रभाव डाले

बिना, जल से आच्छादित किसी भी भूमि पर भूमिधारी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। चूंकि विचाराधीन भूखंड गढी है, यह इकाई में आवंटन कार्यवाही के लिए चकबंदी योजना का हिस्सा नहीं हो सकता है और इसलिए, इसे उप निदेशक, चकबंदी द्वारा, न्यायानुसार, चकबंदी योजना से बाहर रखा गया था।

9. रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से यह पता चलता है कि विवादित भूमि को गाँव सभा संपत्ति के रूप में, जैसा कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 132 के तहत उल्लेख किया गया है; एवं फील्ड बुक के पुनरीक्षण, मूल्यांकन के निर्धारण आदि और इकाई में यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा-9 के तहत रिकॉर्ड के प्रकाशन की तिथि पर यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा-8 और 8-ए के तहत आवश्यक सिद्धांतों के विवरण की तैयारी के समय एसयूसी(SUC) के रूप में, दर्ज किया गया था, इस भूमि को चकबंदी योजना में शामिल नहीं किया गया था, और इसीलिए इस भूमि का मूल्यांकन निर्धारित नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप भूखंड के

मूल्यांकन से संबंधित मामला उ.प्र.सीएच अधिनियम की धारा-11-ए के तहत अंतिम हो गया, जो इस प्रकार है: -

"11-ए. आपत्ति पर रोक - इनसे सम्बंधित कोई प्रश्न नहीं किया जाएगा -

- (i) भूमि का दावा,
- (ii) संयुक्त जोत का विभाजन, और
- (iii) भूखंडों, वृक्षों, कुओं और अन्य सुधारों का मूल्यांकन, जहां प्रश्न धारा 10 के तहत वार्षिक रजिस्टर में दर्ज भूखंड के किसी खातेदार अथवा वृक्ष, कुएं या अन्य सुधारों के स्वामी द्वारा उठाया जाना चाहिए, चकबंदी क्षेत्र से संबंधित, (जो धारा 9 के तहत उठाया गया है या जो उस धारा के तहत उठाया जा सकता है या उठाया जाना चाहिए), किन्तु इस तरह से नहीं उठाया गया है, चकबंदी कार्यवाही के किसी भी बाद के चरण में उठाया या सुना जाएगा।"

10. अभिलेखों के अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि सुधार कार्यवाही में, विवादित भूखण्ड का मूल्य निर्धारित किया गया और अवैध रूप से चकबन्दी योजना में शामिल कर

याचिकाकर्ताओं के चक में आवंटित कर दिया गया। उपनिदेशक, चकबन्दी ने विधि सम्मत उचित ढंग से आक्षेपित आदेश पारित किया। उपनिदेशक, चकबन्दी के आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

#### पलकधारी (उपरोक्त):

"8. उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 और 117-ए का संदर्भ विशेष रूप से उ.प्र. जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 की धारा 8-ए में किया गया है। उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 स्पष्ट रूप से, भूमि को राज्य सरकार में निहित करने एवं तत्पश्चात, राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना प्रकाशित कर की जाने वाली घोषणा द्वारा, उसको गाँव सभा में निहित करने के संबंध में प्रावधान करता है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117(6) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि राज्य सरकार, किसी भी समय, गाँव सभा में निहित ऐसी भूमि को राज्य

सरकार को वापस करने का आदेश दे सकती है। उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि जब निहित करने की तिथि पर भूमि राज्य सरकार में निहित है और राज्य सरकार द्वारा उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 (1) के तहत एक अधिसूचना जारी की गई है, तो भूमि गाँव सभा में निहित होगी। गाँव सभा में भूमि के इस तरह निहित होने से केवल गाँव सभा को भूमि के उपयोग की शक्ति मिलती थी। धारा 117(1) के तहत अधिसूचना के आधार पर जो भूमि गाँव सभा में निहित की गई थी, वह स्पष्ट रूप से अधिकार, स्वामित्व और हित का पूर्ण निहित अधिकार नहीं थी। निहितीकरण एक निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए था जैसा कि उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117(1) में दिया गया है, विशेषकर तब जब अधिनियम की धारा 117(6) के तहत राज्य गाँव सभा से भूमि फिर से वापस ले सकती है। अतः यह अधिकार, स्वामित्व और हित का निहितीकरण नहीं था, लेकिन राज्य के पास इसे

वापस लेने की शक्ति बनी हुई है। इसलिए, यह कहना कि गाँव सभा में निहित भूमि चकबंदी अधिकारी द्वारा एक निजी संस्थान को आवंटन का विषय थी, राज्य सरकार द्वारा ऐसी भूमि को गाँव सभा में निहित करने के प्रावधान के खिलाफ होगा। स्पष्टतः चकबंदी अधिकारी केवल सार्वजनिक प्रयोजन के लिए भूमि चिन्हित कर सकता था, लेकिन वह ऐसी भूमि के विशिष्ट उपयोग के संबंध में आदेश पारित नहीं कर सकता था। यह केवल गाँव सभा है जो, उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 (1) के तहत राज्य सरकार द्वारा, उसमें निहित भूमि आवंटित कर सकती है। चकबंदी प्राधिकारी गाँव सभा की ऐसी भूमि को चकबंदी कार्यवाही में केवल सार्वजनिक उद्देश्य के लिए चिन्हित कर सकते हैं।

9. इसलिए, प्रथम अपीलीय अदालत ने सही माना है कि चकबंदी अधिकारी ने उस संस्था के नाम पर, जिसका प्रबंधक होने का अपीलकर्ता दावा करता है, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निर्धारित भूमि को राजस्व अभिलेख में दर्ज करने का

निर्देश देकर अपने अधिकार क्षेत्र से परे काम किया है। गाँव सभा में निहित सार्वजनिक भूमि के उपयोग का ऐसा कार्य केवल गाँव सभा द्वारा ही किया जा सकता था। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाये गए मत में कोई त्रुटि नहीं है। गाँव सभा का मुकदमा उचित ही स्वीकार किया गया है। विद्वान वकील द्वारा बहस किए गए कानून के पहले महत्वपूर्ण प्रश्न का फैसला अपीलकर्ता के खिलाफ और वादी-गांव सभा के पक्ष में किया गया है।

10. जहां तक उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 की रोक का सवाल है, विद्वान वकील की दलील यह है कि भले ही चकबंदी अधिकारी ने कोई आदेश पारित किया हो जो अवैध या अधिकार क्षेत्र से परे है, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 के तहत रोक के दृष्टिगत, इसमें एक सिविल मुकदमे के द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

11. अपीलकर्ता के लिए विद्वान वकील की ऐसी दलील काफी गलत धारणा वाली प्रतीत

होती है। धारा 49 किसी खातेदार के अधिकारों की घोषणा और निर्णयादेश से संबंधित है। निश्चित रूप से ये अदालतें ऐसी अदालतें हैं जो भूमिधारक के अधिकारों का निर्णय और घोषणा कर सकती हैं। यहां तक कि अपीलकर्ता जो चकबंदी अधिकारी के आदेश से भूमि पर कब्ज़ा होने का दावा करता है, वह प्रश्नगत भूमि के खातेदार या भूमिधर के अधिकारों का दावा नहीं कर रहा है। वह सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि पर चकबंदी अधिकारी के आदेश के आधार पर खेल के मैदान के रूप में भूमि पर अधिकार का दावा कर रहा है। वह इस बात पर आपत्ति नहीं कर रहा कि भूमि चकबंदी अधिकारी द्वारा सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित की गई थी। जब अपीलकर्ता भूमिधारक नहीं है और उसके पास प्रश्नगत भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं है, तो उसका कब्ज़ा, अधिक से अधिक, सार्वजनिक भूमि के आवंटन के आधार पर हो सकता है। चूंकि गाँव सभा की और उसके लिए निर्धारित सार्वजनिक भूमि को आवंटित करने में चकबंदी अधिकारी का आदेश, उसके अधिकार में नहीं

था, इसलिए स्पष्ट रूप से चकबंदी अधिकारी के पास सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि को किसी निजी संस्था या व्यक्ति को आवंटित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। नतीजतन, उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 के तहत रोक लागू नहीं होती है। प्रस्तुतीकरण गलत है और तदनुसार अस्वीकार किया जाता है।"

**राम निहोर (उपरोक्त):**

"उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 में प्रावधान है कि जब किसी गांव में चकबंदी की योजना को अंतिम रूप दिया जाता है, तो भूमि को सार्वजनिक उद्देश्य के लिए चिह्नित किया जाएगा। उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 8-ए के तहत, सिद्धांतों के विवरण में, इकाई में हरिजनों और भूमिहीन व्यक्तियों के लिए आबादी स्थल के विस्तार के लिए निर्धारित और ऐसे अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए निर्धारित क्षेत्रों का, विवरण शामिल होना आवश्यक है। अधिनियम की धारा 54 के तहत बनाए गए उ.प्र. जोत

चकबंदी नियमावली के नियम 24-ए के तहत, सार्वजनिक उद्देश्य जिनके लिए क्षेत्र को चिह्नित किया जाना चाहिए, निर्धारित किये गए हैं। इस नियम के अनुसार, हरिजनों और भूमिहीन व्यक्तियों के लिए आबादी स्थलों सहित आबादी के विस्तार के लिए भूमि के आरक्षण के अलावा, सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार भूमि निर्धारित की जा सकती है, जैसे: खाद के गड्ढे, सड़कें, चारागाह भूमि, खलियान, खेल के मैदान, प्राथमिक और अन्य स्कूल, अस्पताल, पंचायत घर, श्मशान और कब्रिस्तान, जल चैनल आदि। अधिनियम की धारा 19 के तहत, खातेदारों को, सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि जैसा कि अधिनियम और नियमों के तहत अपेक्षित है, के प्रति अपनी हिस्सेदारी की भूमि का योगदान करना आवश्यक है। अधिनियम और नियमों में उल्लिखित सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित भूमि, अधिनियम की धारा 29-सी के तहत गाँव सभा में निहित है और ऐसी भूमि का उपयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है।

XXXX

XXXX

इस प्रकार उपर्युक्त प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि जोत चकबंदी अधिनियम और नियमों में उल्लिखित सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि, अधिनियम की धारा 29-सी के तहत गोवा सभा में निहित है और ऐसे भूमि का उपयोग उ.प्र. जोत चकबंदी नियमावली के नियम 24-ए में निर्धारित किसी अन्य उद्देश्य के लिए किया जा सकता है।

XXXX

XXXX

वर्तमान मामले में, आवंटन इस आधार पर रद्द नहीं किया गया था कि प्रक्रिया में कोई अनियमितता थी। यह पाया गया कि जो भूमि याचिकाकर्ता को आवंटित की गई थी वह एक सार्वजनिक उपयोगिता भूमि थी, अतः आवंटन आरम्भ से शून्य था। गाँव सभा द्वारा उस उद्देश्य जिसके लिए भूमि को चकबंदी में निर्धारित किया गया है, को बदलने का प्रस्ताव पारित करना, एक छलपूर्ण कार्य था। गाँव सभा के पास ऐसा करने की कोई शक्ति नहीं थी।”

(बल दिया गया)

14. प्रतिवादी/शिकायतकर्ता के विद्वान वकील श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला ने विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के तर्क को अपनाया है और राम बहादुर (उपरोक्त); शिओ नंद और अन्य बनाम डीडीसी, इलाहाबाद और अन्य, (2000) 3 एससीसी 103, और बाबू लाल बनाम डीडीसी, इलाहाबाद और अन्य, 1985 आरडी 236 का आश्रय लिया है, उपरोक्त निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ इसके बाद उद्धृत किए गए हैं - :

**बाबू लाल(उपरोक्त):**

“.....अधिनियम की धारा 11-सी के वैधानिक प्रावधान सुविधा के लिए नीचे प्रस्तुत किए गए हैं:-

11-सी. धारा 9-ए के तहत आपत्ति या धारा 11 के तहत अपील या धारा 48 के तहत सुनवाई के दौरान, चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) या चकबंदी निदेशक, जो भी हो, निर्देश दे सकते हैं कि कोई भूमि जो राज्य सरकार या गाँव सभा या किसी अन्य स्थानीय निकाय या प्राधिकरण में निहित है, उसे उसके नाम पर दर्ज किया जा सकता है, भले ही ऐसी सरकार, गाँव सभा, निकाय या प्राधिकरण द्वारा कोई आपत्ति,



अपील या संशोधन दायर  
नहीं किया गया हो।”

उपर्युक्त धारा के अनुसार यह है कि भले ही गाँव सभा की स्पष्ट भूमि के संबंध में कोई आपति, अपील या पुनरीक्षण दायर नहीं किया जा सकता है, तो भी न्यायालय गाँव सभा के हितों की रक्षा कर सकती है यदि यह पाया जाता है कि भूमि वास्तव में गाँव सभा में निहित है। इस प्रकार यह अच्छे से स्पष्ट है कि भले ही गाँव सभा की ओर से कोई अपील दायर नहीं की जा सकती थी न ही पुनरीक्षण दायर किया जा सकता था, लेकिन गाँव सभा के हितों की रक्षा की जा सकती थी। मामले के इस दृष्टिकोण में, सीता राम बनाम उप निदेशक, चकबंदी (उपरोक्त) के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण के प्रति शहरा सम्मान रखते हुए, मामला पृथक विचारण योग्य नहीं है।”

**शिओ नंद और अन्य  
(उपरोक्त):**

“5. अभिलेख पर मौजूद मौखिक और दस्तावेजी सबूतों पर विचार करने पर उप निदेशक चकबंदी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि जेठू, जिसके बारे में 7 साल से अधिक समय तक नहीं सुना गया था और

परिणामस्वरूप नागरिक मृत्यु हो गई थी, ने कोई वारिस नहीं छोड़ा था जो उसके स्थान पर उन भूखंडों के खातेदारों के रूप में दर्ज किये जा सकें। इसलिए, संपत्ति राजगामित्व (Escheat) द्वारा गाँव सभा में निहित होगी। उप निदेशक के निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, मूल अधिनियम में धारा 11-सी के प्रावधान समाविष्ट किए गए। परिणामस्वरूप, रिट याचिका के अंतिम निर्णय के समय, उन प्रावधानों को प्रभावी बनाने का कर्तव्य उच्च न्यायालय का था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, अधिनियम के तहत कार्यरत सभी प्राधिकारियों का यह वैधानिक कर्तव्य है कि वे अधिनियम की धारा 11-सी के प्रावधानों को प्रभावी बनाएं और संपत्ति को गाँव सभा में निहित होना दर्ज करें, भले ही गाँव सभा द्वारा कोई दावा न किया गया हो न ही अधिनियम के तहत गाँव सभा द्वारा कोई याचिका दायर की गई हो। भले ही अपीलकर्ताओं द्वारा उनके समक्ष दायर पुनरीक्षण के निर्णय के समय धारा 11-सी के प्रावधान उप निदेशक के

पास उपलब्ध नहीं थे, फिर भी उनका आदेश कि संपत्ति को गाँव सभा के नाम पर दर्ज किया जाना चाहिए, रिट याचिका की सुनवाई के समय धारा 11-सी के प्रावधानों के आधार पर, बरकरार रखा जा सकता है और इसलिए, उच्च न्यायालय का उसके आदेश को बरकरार रखना उचित था। अतः, उच्च न्यायालय के फैसले में कोई त्रुटि नहीं है।

20. यह धारा उप निदेशक को बहुत व्यापक शक्तियाँ देती है। यह उसे या तो अपने स्वयं के स्वतः संज्ञान पर या किसी व्यक्ति के आवेदन पर अधिनियम के तहत की गयी सभी कार्यवाहियों के औचित्य, वैधता, नियमितता और शुद्धता पर विचार करने और उचित आदेश पारित करने में सक्षम बनाती है। ये शक्तियाँ उप निदेशक को व्यापक रूप में प्रदान की गई हैं ताकि अधिनियम के तहत पक्षकारों के दावों को प्रभावी ढंग से निर्णीत और निर्धारित किया जा सके ताकि पक्षकारों के अधिकारों को अंतिम रूप दिया जा सके और राजस्व रिकॉर्ड तदनुसार तैयार किया जा सके।

21. आम तौर पर, उप निदेशक से, अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा समवर्ती रूप से दर्ज किए गए तथ्यान्वेषण में छेड़छाड़ की उम्मीद नहीं की जाती है, लेकिन जहां निष्कर्ष, इस अर्थ में अनुचित हैं कि वे पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं हैं या वे साक्ष्य के महत्व के खिलाफ हैं, यह उप निदेशक का कर्तव्य होगा कि वह पूरे मामले की फिर से जांच करें जिससे कि उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की शुद्धता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके। किसी मामले में, जैसा कि वर्तमान मामला है, जहां राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियाँ काल्पनिक या जाली हैं या उन्हें उ.प्र. भूमि रिकॉर्ड मैनुअल में निहित वैधानिक प्रावधानों या अन्य संबद्ध वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में दर्ज किया गया था, उप निदेशक के पास धारा 48 के तहत रिकॉर्ड पर साक्ष्य के मूल्य का पुनः निर्धारण या पुनर्मूल्यांकन करने की पूरी शक्ति होगी ताकि जाली और फर्जी राजस्व प्रविष्टियाँ या विधि अनुसार नहीं की गई

*प्रविष्टियों को हटाकर पक्षकारों  
के अधिकारों को अंतिम रूप से  
निर्धारित किया जा सके।  
(बल दिया गया)*

15. ऊपर संदर्भित तथ्यात्मक और कानूनी पहलुओं और प्रतिद्वंद्वी दलीलों की पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के समक्ष जिस मुद्दे पर विचार की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या वह भूमि जिसे या तो राजस्व रिकॉर्ड में 'चारागाह भूमि' के रूप में संदर्भित किया गया है या चकबंदी प्रक्रिया के दौरान 'चारागाह भूमि' अर्थात् सार्वजनिक उद्देश्य के लिए चिन्हित किया गया है, याचिकाकर्ताओं को मूल्यांकन के आधार पर आवंटित की जा सकती है, और यदि उत्तर सकारात्मक है, तो क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, भूमि उचित प्रक्रिया के बाद आवंटित की गई थी या नहीं?, और क्या अधिनियम, 1953 की धारा 52 के तहत जारी अधिसूचना के प्रकाशन के 24 साल बाद ऐसे आवंटन की जांच की जा सकती है?

16. याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि पहली चकबंदी कार्यवाही के दौरान भूमि की प्रकृति उल्लिखित नहीं की गई थी, हालांकि, स्वीकार किया गया है कि दूसरी चकबंदी कार्यवाही के दौरान, पूरी विवादित भूमि को "चारागाह भूमि" के रूप में चिह्नित किया गया था और यह भी विवाद में नहीं है कि यह याचिकाकर्ताओं को मूल्यांकन पर हिस्सों में आवंटित की गयी थी और भूमि के कुछ हिस्से पर कुछ निर्माण किए गए हैं, जबकि भूमि के कुछ हिस्से अभी भी खाली हैं और भूमि की

वर्तमान स्थिति, जैसा कि निरीक्षण रिपोर्ट दिनांक 07.01.2023 में दी गयी है, के संबंध में कोई विवाद नहीं है।

17. इसके अलावा, प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के लिए, उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 और उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रासंगिक प्रावधान, जिन्हें पक्षकारों के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित किया गया है, का उल्लेख यहां किया गया है -:

#### "उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953

धारा 3(2) "चकबंदी" का अर्थ है कई खातेदारों के बीच एक इकाई में जोत की इस तरह से पुनर्व्यवस्था करना कि उनके संबंधित जोत को और अधिक सुगठित बनाया जा सके;

xxxx

xxxx

(iii) उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 1/1951) की धारा 132 में उल्लिखित भूमि;

#### **8-ए.सिद्धांतों का विवरण तैयार करना-** (1)

सहायक चकबंदी अधिकारी, चकबंदी समिति के परामर्श से, चकबंदी क्रियाओं के तहत प्रत्येक इकाई के संबंध में, निर्धारित प्रारूप में एक विवरण तैयार करेगा (जिसे इसके बाद सिद्धांतों का विवरण कहा जाएगा) जिसमें इकाई में चकबंदी क्रियाओं को कार्यान्वित करने में पालन किये जाने वाले सिद्धांतों को बताया जाएगा।

2) सिद्धांतों के विवरण में यह भी समाविष्ट होना चाहिए -

(ए) आबादी के विस्तार के लिए निर्धारित किए जाने वाले क्षेत्रों का विवरण, जहां तक वे इस स्तर पर निर्धारित किए जा सकते हैं, जिसमें इकाई में हरिजनों और भूमिहीन व्यक्तियों के लिए आबादी स्थल का क्षेत्र भी शामिल होगा, और ऐसे अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए जो निर्धारित किये जा सकते हैं;

(बी) वह आधार जिस पर खातेदार आबादी के विस्तार और अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि का योगदान देंगे; और

(सी) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 1/1951) की धारा 117 या धारा 117-ए के तहत गांव सभा या स्थानीय प्राधिकरण में निहित भूमि में से सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए निर्धारित की जाने वाली भूमि का विवरण।

(डी) प्रत्येक इकाई के लिए मानक भूखंड।

(3) उपधारा (2) के खंड (डी) में संदर्भित मानक भूखंडों का निर्धारण सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा चकबंदी समिति के सदस्यों और इकाइयों के भूमिधारकों से, भूखंड या भूखंडों की उत्पादकता, स्थान और मौजूदा मिट्टी के वर्ग को ध्यान में रखकर, इकाई का सबसे अच्छा/अच्छे भूखंड या भूखंडों को सुनिश्चित करने के बाद किया जाएगा।

**19. शर्तें, जो किसी चकबंदी योजना द्वारा पूरी की जानी चाहिए** - (1) एक चकबंदी योजना निम्नलिखित शर्तों को पूरा करेगी, अर्थात्, -

(क) धारा 10 के तहत तैयार वार्षिक रजिस्टर में दर्ज किए गए भूमिधारक के अधिकार और देनदारियां, इस अधिनियम के तहत, उसे आवंटित भूमि में से सार्वजनिक उद्देश्यों हेतु योगदान के कारण, कटौती, यदि कोई हो, के अधीन है;

(ख) इस अधिनियम के तहत सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए योगदान के कारण की गई कटौती, यदि कोई हो, के अधीन किसी भूमिधारक को आवंटित भूखंडों का मूल्यांकन, मूल रूप से उसके द्वारा रखे गए भूखंडों के मूल्यांकन के बराबर है:

बशर्ते कि, चकबंदी निदेशक की अनुमति से होने वाले मामले को छोड़कर, किसी भूमिधारक को आवंटित जोत का क्षेत्र उसकी मूल जोत के क्षेत्र से, मूल जोत के क्षेत्र के पच्चीस प्रतिशत से अधिक, भिन्न नहीं होना चाहिए;

(ग) इस अधिनियम के प्रावधानों, या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत निर्धारित मुआवजा दिया जाता है -

(1) भूमिधारक को -

(i) पेड़ों, कुओं और अन्य सुधारों के लिए, जो मूल रूप से उसके पास थे और दूसरे भूमिधारक को आवंटित किए गए थे; और (ii) सार्वजनिक

प्रयोजनों के लिए उसके द्वारा योगदान की गई भूमि के लिए;

(2) ग्राम सभा या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण, जो भी हो, को उसमें निहित और किसी भूमिधारक को आवंटित, भूमि में या पर, किए गए विकास, यदि कोई हो, के लिए;

(घ) सिद्धांतों के विवरण में निर्धारित सिद्धांतों का पालन किया जाता है;

(इ) प्रत्येक भूमिधारक को, जहां तक संभव हो, उस स्थान पर, जहां वह अपनी जोत का सबसे बड़ा हिस्सा धारण करता है, एक सुगठित क्षेत्र आवंटित किया जाता है :

बशर्ते कि, सिवाय उपनिदेशक चकबंदी के लिखित अनुमोदन के, किसी भी भूमिधारक को तीन से अधिक चक आवंटित नहीं किए जा सकते हैं : बशर्ते कि कोई भी चकबंदी केवल इस कारण से अमान्य नहीं होगी कि किसी भूमिधारक को आवंटित चकों की संख्या तीन से अधिक है;

(च) प्रत्येक भूमिधारक को, जहां तक संभव हो, वह भूखंड जिस पर सिंचाई या किसी अन्य सुधार का उसका निजी स्रोत मौजूद है, साथ ही उसके द्वारा मूल रूप से धारण किए गए भूखंडों के मूल्यांकन के बराबर का आसपास का क्षेत्र आवंटित किया जाता है। ; और

(छ) प्रत्येक भूमिधारक को, जहां तक संभव हो, आयतीकरण इकाइयों में आयतीकरण की प्रक्रिया के अनुरूप चक आवंटित किए जाते हैं।

(2) धारा 23 के तहत अंतिम रूप देने से पहले एक चकबंदी योजना, धारा 19-ए के प्रावधानों के अनुसार अनंतिम रूप से तैयार की जाएगी।

**19-ए. सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा अनंतिम चकबंदी योजना की तैयारी -** (1) सहायक चकबंदी कार्यालय, चकबंदी समिति के परामर्श से, इकाई के लिए एक अनंतिम चकबंदी योजना निर्धारित प्रारूप में तैयार करेगा।

(2) इस अधिनियम में, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/1951) में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून में किसी भी बात के होते हुए भी, यह सहायक चकबंदी अधिकारी के लिए, जहां उसकी राय में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, राज्य सरकार की किसी भी भूमि, या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 1/1951) की धारा 117 या 117-ए के तहत जारी अधिसूचना के परिणामस्वरूप, गांव सभा या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण में निहित किसी भी भूमि को, उसका मूल्यांकन निर्धारित करने के बाद, एक भूमिधारक को आवंटित करना विधिसम्मत होगा:

बशर्ते कि जहां ऐसी किसी भूमि का उपयोग सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किया जाता है, उसे केवल तभी आवंटित किया जा सकता है जब सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा लिखित रूप में घोषित किया जाए कि उस भूमि में या उस पर ,जनता के साथ-साथ सभी व्यक्तियों

के अधिकारों को, घोषणा में उल्लिखित और अनंतिम चकबंदी योजना में उस उद्देश्य के लिए चिन्हित, किसी अन्य भूमि को हस्तांतरित करने का प्रस्ताव है।

### 29-सी. सार्वजनिक प्रयोजन के लिए दान की गई भूमि का स्वामित्व:-

(1) इस अधिनियम के तहत सार्वजनिक प्रयोजन के लिए योगदान की गई भूमि, उस तारीख से, जिस दिन से भूमिधारक इस अधिनियम के प्रावधानों, जैसा समय समय पर संशोधित हुआ है, के तहत उन्हें आवंटित चकों पर कब्जे के हकदार बन गए, गांव सभा में निहित और हमेशा से निहित मानी जाएगी [उस क्षेत्र में जहां उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 लागू होती है और किसी अन्य क्षेत्र में, राज्य सरकार में निहित मानी जाएगी, और इसका उपयोग उस उद्देश्य के लिए किया जाएगा जिसके लिए उसे अंतिम चकबंदी योजना में चिन्हित किया गया था, या उस उद्देश्य की विफलता की दशा में, प्रत्येक अन्य उद्देश्य के लिए, जैसा निर्धारित किया जा सकता है।]

(2) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/1951) की धारा 117 के प्रावधान यथोचित परिवर्तनों के साथ ऐसी भूमि [जो गांव सभा में निहित हैं] पर इस प्रकार लागू होंगे जैसे कि उस धारा की उप-धारा (1) के तहत राज्य सरकार द्वारा की गई घोषणा के आधार पर भूमि गांव सभा में

निहित थी, और इस प्रकार जैसे कि घोषणाएं इस धारा की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट उपयोग संबंधी शर्तों के अधीन की गई थीं।

### 52. चकबंदी क्रियाओं का समापन - (1)

यथाशीघ्र, धारा 27 की उपधारा (1) के तहत नए नक्शे और अभिलेख तैयार होने के बाद, राज्य सरकार आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना जारी करेगी कि इकाई में चकबंदी संचालन बंद कर दिया गया है। और इकाई का हिस्सा बनने वाले गांव तब चकबंदी संचालन के अंतर्गत आना बंद हो जाएंगे:

बशर्ते कि इस धारा के तहत अधिसूचना जारी होने से, इस अधिनियम के अंतर्गत राज्य सरकार की संचालन की लागत को तय करने, वितरित करने और रिकॉर्ड करने की शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(1-ए) उपधारा (1) के तहत जारी की गई अधिसूचना क्षेत्र में प्रसारित होने वाले दैनिक समाचार पत्र में भी प्रकाशित की जाएगी और ऐसे अन्य तरीके से जो उचित समझा जाए।

(2) उपधारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, भारत के संविधान के प्रावधानों के तहत दायर रिट के मामलों में, या उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना जारी होने की तिथि पर, इस अधिनियम के अंतर्गत लंबित कार्यवाही के मामलों में, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश, ऐसे अधिकारियों, जैसा निर्धारित किया गया हो, द्वारा प्रभावी किया जाएगा, और उस उद्देश्य के लिए चकबंदी संचालन को बंद नहीं किया गया माना जाएगा।

(3) जहां धारा 23 के तहत चकबंदी योजना के अंतिम होने से पहले किया गया किसी भी भूमि का आवंटन या पट्टा, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 1951) की धारा 198 की उपधारा (4) के तहत एक आदेश द्वारा रद्द कर दिया जाता है और ऐसा आदेश अंतिम हो जाता है, तो भले ही इस अधिनियम के प्रावधान कुछ भी कहते हों, ऐसे आदेश को ऐसे अधिकारियों, जैसा कि निर्धारित किया गया हो, द्वारा निम्नलिखित तरीके से प्रभावी किया जाएगा और चकबंदी संचालन उस उद्देश्य के लिए, बंद नहीं माना जाएगा, अर्थात्-

(ए) भूमि का मूल्य जो ऐसे आवंटन या पट्टे का विषय-वस्तु थी, पहले निर्धारित तरीके से सुनिश्चित किया जाएगा;

(बी) चकबंदी कार्यवाही के दौरान संबंधित खातेदार को आवंटित भूमि के कुल मूल्य से खंड (ए) में निर्दिष्ट मूल्य की कटौती की जाएगी;

(सी) चकबंदी कार्यवाही के दौरान, भूमिधारक उक्त भूमि के समान मूल्यांकन की भूमि का हकदार होगा।

#### उत्तर प्रदेश जोक चकबंदी नियमावली, 1954

**"नियम 24-ए. धारा 8-ए और 54 - (1)**  
"सिद्धांतों का विवरण" सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा चकबंदी समिति के परामर्श से और कई भूमिधारकों, जितने अधिक वह एकत्र कर सके, उनसे पूछताछ करने के बाद, सीएच फॉर्म 21 में अपने हाथ से तैयार किया जाएगा।

विवरण में इसमें शामिल सिद्धांतों के कारण शामिल होंगे और इकाई के मानचित्र की एक प्रति संलग्न होगी, जो दिखाएगी:

(i) नियम 20-ए के तहत निर्धारित इकाई के "मानक भूखंड";

(ii) मौजूदा स्थायी विशेषताएं, जैसे कि आबादी स्थल, नहरें और उनकी सहायक नदियाँ, साथ ही फील्ड चैनल (गूल), सड़कें, उपवन, कुएं, नाले, नदियाँ, कब्रिस्तान, शमशान घाट और अन्य क्षेत्र, जिनका उपयोग सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है;

(iii) खंड (ii) में उल्लिखित किसी भी चीज के स्थल, संरक्षण या परिमाण में प्रस्तावित परिवर्धन और परिवर्तन; और

(iv) किसी अन्य सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निर्धारित किए जाने वाले क्षेत्र।

(2) आबादी के विस्तार के लिए भूमि के आरक्षण, वर्तमान और भविष्य की जरूरतों के लिए इकाई में हरिजनों और भूमिहीन व्यक्तियों के लिए आबादी स्थलों को शामिल करने के अलावा, निम्नलिखित सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भी प्रत्येक इकाई की जरूरतों के अनुसार भूमि आरक्षित की जा सकती है:

(i) खाद के गड्ढे;

(ii) सड़कें, गाँव और अंतरग्राम रास्ते;

(iii) चारागाह भूमि;

(iv) खलिहान;

(v) खेल का मैदान;

- (vi) प्राथमिक और अन्य विद्यालय;
  - (vii) अस्पताल;
  - (viii) पंचायत घर;
  - (ix) वृक्षारोपण;
  - (x) श्मशान घाट और कब्रिस्तान;
  - [(xi) सिंचाई के उद्देश्य हेतु जल मार्ग (गूल या नाली) और नहरें];
  - (xii) खाल छीलने का स्थान, और
  - (xiii) समान प्रकृति की अन्य चीजें जिसके लिए इकाई के खातेदारों के हित में भूमि का आरक्षण आवश्यक माना जाए।
- टिप्पणी - आबादी स्थलों सहित ऊपर निर्दिष्ट सभी उद्देश्यों के लिए आरक्षण वर्तमान जरूरतों और भविष्य की जरूरतों के लिए अलग अलग किया जाएगा।

(3) सिद्धांतों का विवरण बनने के दौरान, चर्कों के न्यायसंगत आवंटन पर प्रभाव डालने वाली इकाई की प्रत्येक विशिष्ट समस्या को सहायक चकबंदी अधिकारी और चकबंदी समिति का ध्यान मिलना चाहिए। जिन सिद्धांतों पर ऐसी समस्याओं का समाधान प्रस्तावित है, वे अधिनियम और इन नियमों के प्रावधानों के अनुरूप होने चाहिए, और उन्हें विवरण में शामिल किया जाना चाहिए। विवरण में नियम 20-ए के तहत निर्धारित "मानक भूखंडों" का विवरण भी दिखाया जाना चाहिए।

(4) यदि सिद्धांत विवरण की किसी भी शर्त पर सहायक चकबंदी अधिकारी और चकबंदी समिति के बीच मतभेद है, तो सहायक चकबंदी अधिकारी मतभेद के बिंदुओं को शामिल करते हुए एक नोट तैयार करेगा और उसे चकबंदी अधिकारी को अग्रेषित करेगा।

(5) यदि चकबंदी अधिकारी, सहायक चकबंदी अधिकारी और चकबंदी समिति के बीच मतभेद को हल करने में असमर्थ है, तो वह मतभेद के प्रत्येक बिंदु पर अपनी राय के साथ अभिलेख को बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी को अग्रेषित करेगा।

(6) बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी, चकबन्दी समिति को सुनने के बाद, उप-नियम (5) के तहत उसे संदर्भित बिंदुओं पर अपना निर्णय देगा।

#### **"उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950"**

**117. कतिपय भूमि आदि का गांव सभा एवं अन्य स्थानीय प्राधिकरणों में निहित होना] -**

(1) धारा 4 में संदर्भित अधिसूचना के प्रकाशन के बाद किसी भी समय राज्य सरकार [निर्धारित तरीके से प्रकाशित होने वाले सामान्य या विशेष आदेश द्वारा], घोषित कर सकता है कि इस संबंध में निर्दिष्ट की जाने वाली तारीख से, निम्नलिखित चीजों में सभी या कतिपय चीजें, अर्थात्-

(i) भूमि, चाहे खेती योग्य हो या अन्य प्रकार की, कुछ समय के लिए किसी भी जोत या उपवन में शामिल भूमि को छोड़कर;

(ii) वन;

(iii) किसी जोत में या किसी जोत की सीमा पर या किसी उपवन या आबादी में वृक्षों के अलावा, अन्य वृक्ष;



(iv) मत्स्य पालन;

(v) भूमि जिन पर धारा 18 की उप-धारा (1) के खंड (ए) से (सी) के प्रावधान लागू होते हैं, या धारा 9 में संदर्भित स्थलों और क्षेत्रों पर, आयोजित होने वाले हाट, बाजार और मेले को छोड़कर, अन्य हाट, बाजार और मेले; और

(vi) टैंक, तालाब, निजी घाट, जल चैनल, रास्ते और आबादी स्थल,

जो इस अधिनियम के तहत राज्य में निहित थे, ग्राम सभा, अथवा पूरे गांव या उसके कुछ भाग के लिए स्थापित किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण जिसमें उक्त चीजें स्थित हैं, अथवा आंशिक रूप से ऐसे किसी स्थानीय प्राधिकरण (ग्राम सभा सहित) में और आंशिक रूप से दूसरे, में निहित होंगे:

बशर्ते कि राज्य सरकार के लिए उपरोक्त विषय पर घोषणा ऐसे अपवादों और शर्तों के अधीन करना वैधानिक होगा जैसा कि [ऐसे आदेश में निर्दिष्ट] किया गया हो।

(2) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, [निर्धारित तरीके से प्रकाशित होने वाले सामान्य या विशेष आदेश द्वारा], यह घोषणा कर सकती है कि इस संबंध में उल्लिखित तिथि से, उप-धारा (1) के खंड (i) से (vi) में उल्लिखित सभी या कुछ चीजें जो इस अधिनियम के तहत राज्य में निहित होने के बाद, ग्राम सभा या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण में निहित हो गई थीं, या तो इस

अधिनियम के तहत या उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 की धारा 126 के तहत, उस पूरे गांव या उसके भाग, जिसमें उक्त चीजें स्थित हैं, के लिए स्थापित किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण (ग्राम सभा सहित) में निहित होंगी।

(3) जहां उपधारा (1) या उपधारा (2) के तहत उपधारा (1) के खंड (i) से (vi) में निर्दिष्ट किसी भी चीज को किसी गांव सभा में निहित करने की कोई घोषणा की गई है और गांव या गाँव का वह भाग जिसमें वह चीज़ स्थित है, गाँव सभा के दायरे से बाहर है, ऐसी गाँव सभा या उसकी भूमि प्रबंधन समिति उस चीज़ के संबंध में, इस अधिनियम या उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1947 द्वारा या इसके तहत, गांव सभा या भूमि प्रबंधन समिति को, जैसा भी हो, निर्दिष्ट, अधिरोपित अथवा प्रदत्त कार्यों, कर्तव्यों और शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन और प्रयोग ऐसे करेगी, जैसे कि वह गांव या गाँव का भाग भी उसी दायरे में आता है।

(4) जहां उपधारा (1) या उपधारा (2) के तहत उपधारा (1) के खंड (i) से (vi) में निर्दिष्ट किसी भी चीज को गांव सभा से इतर किसी स्थानीय प्राधिकारी में निहित करने की कोई घोषणा की गई है और गांव या गाँव का वह भाग जिसमें वह चीज़ स्थित है, ऐसे स्थानीय प्राधिकारी की सीमा से बाहर है या जहाँ उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत कोई घोषणा किए जाने के बाद, उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 की धारा 126 के तहत वह चीज़ नगर महापालिका में निहित हो जाती है अथवा यथाप्रकरण, निहित थी, तब ऐसा स्थानीय प्राधिकारी उस चीज़ के संबंध में

इस अधिनियम या उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1947 द्वारा या इसके तहत, गांव सभा या भूमि प्रबंधन समिति को, जैसा भी हो, निर्दिष्ट, अधिरोपित अथवा प्रदत्त कार्यों, कर्तव्यों और शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन और प्रयोग करेगा:

बशर्ते कि स्थानीय प्राधिकरण इस उपधारा के तहत अपने कार्यों, कर्तव्यों और शक्तियों के निष्पादन, निर्वहन और प्रयोग में ऐसी प्रक्रिया का पालन करेगा जो निर्धारित हो।

(5) जहां उप-धारा (1) के खंड (i) से (vi) में निर्दिष्ट कोई भी चीज गांव सभा के अलावा किसी स्थानीय प्राधिकारी में निहित है, धारा 126 और 127 के प्रावधान, ऐसे अपवाद और संशोधन, यदि कोई हो, जैसा कि राज्य सरकार इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकती है [निर्धारित तरीके से प्रकाशित होने वाले सामान्य या विशेष आदेश द्वारा] के अधीन, ऐसे स्थानीय प्राधिकरण पर यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होंगे।

(6) राज्य सरकार किसी भी समय, [निर्धारित तरीके से प्रकाशित होने वाले सामान्य या विशेष आदेश द्वारा], पूर्वोक्त किसी भी चीज के संबंध में की गई किसी [घोषणा, अधिसूचना या आदेश] को संशोधित या रद्द कर सकती है, चाहे वह आम तौर पर हो या किसी भी गांव सभा या अन्य स्थानीय प्राधिकरण के मामले में और ऐसी चीज को फिर से शुरू कर सकती है और जब भी राज्य सरकार ऐसी किसी चीज को फिर से शुरू करती है, तो गांव सभा या अन्य स्थानीय प्राधिकरण, जैसा भी हो, केवल

उस चीज में या उस पर उसके द्वारा किए गए विकास, यदि कोई हो, के कारण मुआवजे की प्राप्ति और भुगतान के अधिकारी होंगे:

बशर्ते कि राज्य सरकार ऐसी बहाली के बाद उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत, बहाल की गई चीज को उसी या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण (गांव सभा सहित) में निहित करने की एक नई घोषणा कर सकती है और उप-धारा (3), (4) और (5) के प्रावधान, यथाप्रकरण, यथोचित परिवर्तनों सहित, ऐसी घोषणा पर लागू होंगे।

**117ए. गांव सभा या अन्य स्थानीय प्राधिकारी द्वारा अतिरिक्त क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए अतिरिक्त प्रावधान:-** (1) जहां-

(ए) गांव सभा के दायरे में स्थित किसी गांव या गांव के हिस्से को 7 जुलाई 1949 के बाद किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण (जो गांव सभा नहीं है) की सीमा के भीतर समाविष्ट किया गया है ; या

(बी) किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी (जो गांव सभा नहीं है) की सीमा के भीतर स्थित कोई गांव या गांव का हिस्सा, 7 जुलाई 1949 के बाद, गांव सभा के दायरे में समाविष्ट किया गया है; या

(सी) धारा 117 की उप-धारा (1) के खंड (i) से (vi) में निर्दिष्ट कोई भी चीज उस धारा के तहत किसी गांव सभा या अन्य स्थानीय प्राधिकरण, जिसकी स्थानीय सीमा के अंदर वह नहीं आता, में निहित है-

तब राज्य सरकार निर्धारित तरीके से प्रकाशित होने वाले सामान्य या विशेष आदेश द्वारा यह निर्देश दे सकती है कि ऐसे किसी गांव या उसके भाग के भीतर जोत क्षेत्र के संबंध में, या खंड (सी) के मामले में, गांव या उसके भाग के शेष हिस्से, जिससे उस खंड में निर्दिष्ट चीज संबंधित है, के भीतर, ऐसी गांव सभा या उसकी भूमि प्रबंधन समिति या अन्य स्थानीय प्राधिकरण, जो कि ऐसे आदेश में उल्लिखित हो, ऐसे अपवादों, शर्तों और संशोधनों, यदि कोई हो, जो इस संबंध में उल्लिखित हों, के अधीन रहते हुए इस अधिनियम या उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1947 द्वारा या इसके तहत, गांव सभा या भूमि प्रबंधन समिति को निर्दिष्ट, अधिरोपित अथवा प्रदत्त कार्यों, कर्तव्यों और शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन और प्रयोग करेगी,

(2) उत्तर प्रदेश भूमि कानून संशोधन अधिनियम, 1965 के प्रारंभ से ठीक एक दिन पहले, उसमें उल्लिखित किसी भी क्षेत्र या चीज के संबंध में उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रकृति के किन्हीं भी कार्यों, कर्तव्यों या शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन या प्रयोग कर रहा कोई भी गांव सभा या अन्य स्थानीय प्राधिकारी, ऐसे कार्यों, कर्तव्यों या शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन या प्रयोग जारी रखेगा जब तक कि उक्त उपधारा के तहत अधिसूचना या आदेश द्वारा उसके संबंध में कोई संशोधन या विलोपन नहीं किया जाता है।

(3) इस धारा के प्रावधान धारा 117 की उपधारा (3) से (6) में निहित किसी भी चीज

के अतिरिक्त होंगे, न कि उनकी अवमानना में।

**132.भूमि जिसमें भूमिधारी अधिकार अर्जित नहीं होंगे** - धारा 131 में निहित किसी भी बात के बावजूद, लेकिन धारा 19 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भूमिधारी अधिकार निम्नलिखित में अर्जित नहीं होंगे-

(क) 'चारागाह' भूमि या पानी से ढकी हुई और सिंचाई या अन्य उपज या भूमि उगाने के उद्देश्य से उपयोग की जाने वाली भूमि या नदी के तल में और थोड़ी बहुत या कभी-कभार खेती के लिए उपयोग किए जाने वाली भूमि;

(ख) स्थानांतरण या अस्थिर खेती के ऐसे क्षेत्र जिन्हें राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट कर सकती है; और

[(ग) राज्य सरकार द्वारा आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित टॉग्या बागान के लिए वांछित और अलग की गई भूमि या [गांव सभा] या स्थानीय प्राधिकरण की उपवन भूमि या सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अर्जित या धारित भूमि एवं विशेष रूप से इस खंड की व्यापकता के लिए और उसपर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना-

(i) सैन्य पड़ाव स्थलों के लिए अलग रखी गई भूमि;

(ii) रेलवे या नहर की सीमाओं के भीतर स्थित भूमि;

(iii) किसी छावनी की सीमा के भीतर स्थित भूमि;

(iv) स्थानीय प्राधिकरण से संबंधित मलबा फार्मों या ट्रेडिंग ग्राउंड में सम्मिलित भूमि;

(v) उ.प्र. नगर सुधार अधिनियम, 1919 (1919 का उ.प्र. अधिनियम VII) की धारा 42 के तहत स्वीकृत योजना के अनुसार नगर सुधार ट्रस्ट द्वारा या उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 (1916 का उ.प्र. अधिनियम VII) की धारा 8 के खंड (क) या खंड (ग) में उल्लिखित उद्देश्य के लिए नगर पालिका द्वारा, अर्जित भूमि; और

(vi) उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (1954 का उ.प्र. अधिनियम V) के तहत सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अलग रखी गई भूमि।]"

18. उपरोक्त उल्लिखित प्रावधानों से, यह निर्णायक रूप से माना जा सकता है कि उ.प्र.जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 132 के अनुसार, 'चरागाह भूमि', सार्वजनिक उपयोगिता और उद्देश्य के लिए भूमि, पर कोई भूमिधारी अधिकार अर्जित नहीं होगा एवं चकबंदी कार्यवाही के दौरान, ऐसी भूमि को चकबंदी की योजना में शामिल नहीं किया जाएगा। 1953 के अधिनियम की धारा 29-सी यह प्रावधान करती है कि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए योगदान की गई भूमि का उपयोग ऐसी उद्देश्य के लिए किया जाएगा जैसा कि निश्चित चकबंदी योजना में निर्धारित किया गया है और इसके अलावा 1953 के अधिनियम की धारा 19-ए जो एक सक्षम धारा है, सहायक चकबंदी अधिकारी को, अनंतिम चकबंदी योजना तैयार करते समय, गाँव सभा की भूमि के मूल्यांकन के निर्धारण के बाद, उसका आवंटन करने हेतु सक्षम बनाती है,

किंतु केवल उचित प्रक्रिया के अनुपालन में और उसमें गिनाए गए कारकों पर उचित विचार के बाद, असाधारण परिस्थितियों में और न कि नियमित तरीके में।

19. ऐसे मामले में जहां कोई भूमि, यदि राजस्व रिकॉर्ड में 'चारागाह भूमि' के रूप में दर्ज है यानी उ.प्र.जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 132 में परिभाषित भूमि है, उस भूमि को चकबंदी कार्यवाही के तहत शामिल नहीं किया जाएगा क्योंकि विशेष रूप से 1953 के अधिनियम की धारा 3(2) के प्रावधानों द्वारा बाहर रखा गया है, यद्यपि, चूंकि वर्तमान मामले में, किसी भी प्रतिद्वंद्वी पक्ष ने रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेज नहीं रखा है कि विवादित भूमि प्रारंभ में 'चारागाह भूमि' के रूप में दर्ज की गई थी, अतः, विवादित भूमि को चकबंदी कार्यवाही में शामिल करके कोई अवैधता या अनियमितता नहीं की गई थी।

20. इस बात पर भी गंभीर विवाद नहीं किया गया है कि पहली चकबंदी कार्यवाही के दौरान, विवादित भूमि को 'चारागाह भूमि' यानी सार्वजनिक प्रयोजन की भूमि के रूप में न तो चिह्नित किया गया था और न ही राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था। जैसा कि वर्तमान मामले के तथ्यों से पता चलता है, दूसरी चकबंदी कार्यवाही के दौरान, सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा चकबंदी योजना तैयार करने के दौरान, विवादित भूमि को 'चारागाह भूमि' के सार्वजनिक उद्देश्य के लिए चिह्नित किया गया था।

21. **राम निहोर (उपरोक्त)** में, एक समन्वय पीठ ने सही माना है कि यदि चकबंदी योजना

को अंतिम रूप देने के दौरान सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि निर्धारित की जाती है, तो ग्राम सभा को उसे किसी अन्य उद्देश्य के लिए आवंटित करने का अधिकार नहीं है, हालांकि, अधिनियम, 1953 की धारा 19 ए का विचारण छूट गया था या शायद, समन्वय पीठ के समक्ष यह मामला नहीं था, जो यह प्रावधान करता है कि जहां सहायक चकबंदी अधिकारी की राय में, उ.प्र.जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 117-ए के तहत जारी अधिसूचना के परिणामस्वरूप ग्राम सभा में निहित किसी भूमि को, उसका मूल्यांकन निर्धारित करने के बाद, किसी खातेदार को आवंटित करना 'आवश्यक' या 'समीचीन' है, तो उसे आवंटित किया जा सकता है और यह ये भी प्रावधान करता है कि जहां ऐसी भूमि का उपयोग सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किया जाता है, उसे तभी आवंटित किया जाना चाहिए जब सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा लिखित रूप से यह घोषित किया जाए कि जनता के साथ-साथ भूमि में या उस पर सभी व्यक्तियों के अधिकारों को, अनंतिम चकबंदी योजना में उस उद्देश्य के लिए निर्धारित और घोषणा में निर्दिष्ट, किसी अन्य भूमि पर, स्थानांतरित करने का प्रस्ताव है।

22. अब सवाल यह है कि क्या ऐसी भूमि यानी वर्तमान मामले में 'चारागाह भूमि' के रूप में सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि को अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए के तहत मूल्यांकन पर आवंटित किया जा सकता है और इस संबंध में, **हिंचलाल तिवारी बनाम कमला देवी और अन्य, (2001) 6 एससीसी 496 और जगपाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य**

**और अन्य, (2011) 11 एससीसी 396** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय प्रासंगिक होंगे जिनके द्वारा गांव सभा की जमीन पर अनाधिकृत और अवैध कब्जेदारों को बेदखल करने के लिए एक सामान्य परमादेश जारी किया गया था। जगपाल (उपरोक्त) में यह भी विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि 1953 के अधिनियम का व्यापक रूप से दुरुपयोग ग्राम सभा की भूमि को हड़पने के लिए किया गया था, या तो चकबंदी प्राधिकारियों की मिलीभगत से या बहुत समय पहले, कथित रूप से चकबंदी अधिकारियों द्वारा पारित किए गए आदेशों, की जाली बनाकर, ताकि, भूमि को गाँव सभा की भूमि के रूप में दर्शाने वाले मूल राजस्व अभिलेख से उसको मिलाया नहीं की जा सके, क्योंकि यह भूमि अभिलेख छांटे जा चुके हैं।

23. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता उन आदेशों की प्रति रिकॉर्ड पर नहीं लाए हैं, जिसके तहत सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि ('चारागाह भूमि') उन्हें आवंटित की गई थी, जिससे यह जांच की जा सके कि क्या सहायक चकबंदी अधिकारी इस से संतुष्ट थे कि ऐसी भूमि का आवंटन 'आवश्यक' या 'समीचीन' था और साथ ही यह सार्वजनिक उद्देश्य के विरुद्ध नहीं होगा और आवंटन के बाद, 'चारागाह भूमि' के प्रयोजन के लिए गाँव सभा के पास भूमि का कितना क्षेत्र शेष रहने की संभावना थी। रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है कि विवादित भूमि के बदले में, किसी अन्य बराबर के क्षेत्र (मूल्यांकन या अन्य किसी चीज के अनुसार) को 'चारागाह भूमि' के रूप में चिह्नित किया गया था और यह और अधिक

प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि प्रतिवादी/ शिकायतकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह बात उठाई गई है कि विवादित जमीन मुख्य सड़क से सटी हुई है, इसलिए उसकी अच्छी खासी कीमत संभावित है।

24. 'आवश्यक' या 'समीचीन' होने की प्रक्रिया और संतुष्टि कोरी औपचारिकता नहीं है, बल्कि इसकी बहुत प्रासंगिकता है क्योंकि प्राधिकारी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित की गई भूमि को आवंटित करने जा रहा है, जो वह सामान्य परिस्थितियों में नहीं कर सकता था, और उ.प्र.जेडए और एलआर अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम, 1953 और 1954 की नियमावली के प्रावधानों के उद्देश्य के दृष्टिगत, आवंटन के आदेश में विशिष्ट और सुविचारित तरीके से आवश्यक रूप से 'आवश्यकता और समीचीनता' शामिल होनी चाहिए और कोई वैकल्पिक भूमि होनी चाहिए जिसे उक्त सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित किया जा सके।

25. मैंने जिलाधिकारी, आजमगढ़ को संबोधित बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी की रिपोर्ट दिनांक 07.01.2023 का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि गाटा संख्या 240, 299, 301 जो विवादित नहीं हैं, उन्हें 1369 एफ के राजस्व रिकॉर्ड में 'चारागाह भूमि' के रूप में दर्ज किया गया था। और उसके बाद अब इसे कृषि और अन्य उद्देश्यों के लिए दर्ज किया जा रहा है और चूंकि आवंटन अधिकार क्षेत्र से परे था, इसलिए, राजस्व रिकॉर्ड में की गई प्रविष्टियां हटा दी गईं और विवादित भूमि को राजस्व रिकॉर्ड में

'चारागाह भूमि' के रूप में बहाल कर दिया गया। .

26. मैंने आक्षेपित आदेश 28.02.2023 का भी ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है जिसमें प्रतिवादी/शिकायतकर्ता के एक आवेदन दिनांक 17.07.2017 के आधार पर एक जांच की गई और यह पाया गया कि चकबंदी कार्यवाही में 'चारागाह भूमि' के लिए चिन्हित भूमि को याचिकाकर्ताओं को आवंटित किया गया था और द्वितीय अपील संख्या 81/ 2011 और जनहित याचिका संख्या 1474/2019, जो कि क्रमशः 2011 (12) आरडी 595 और 1997 (58) आरडी 52 में रिपोर्ट की गई हैं, में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और साथ ही यह विचार करते हुए कि जन हित के मामले में, सक्षम प्राधिकारी को विधि अनुरूप स्वतः संज्ञान लेकर कार्य करने का अधिकार है। प्राधिकारी ने वैधानिक सिद्धांतों पर भी गौर किया है कि धोखाधड़ी, यदि की गई हो, तो सभी विधिपूर्ण कार्यवाहियां निष्प्रभावी हो जाती हैं। प्राधिकारी ने उ.प्र. सरकार द्वारा जारी परिपत्रों और हिंचलाल तिवारी (उपरोक्त) और जगपाल सिंह (उपरोक्त) के मामलों में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित निर्णय पर भी गौर किया है और निर्धारित किया है कि मूल्यांकन पर 'चारागाह भूमि' का आवंटन धोखाधड़ी का परिणाम था और आवंटन आदेशों को रद्द कर दिया था और विवादित भूमि की राजस्व प्रविष्टि को 'चारागाह भूमि' के रूप में बहाल कर दिया था।

28. जैसा कि ऊपर संदर्भित है, विवादित भूमि को दूसरी चकबंदी के दौरान 'चारागाह भूमि' के

रूप में चिह्नित किया गया था और इसे मूल्यांकन पर आवंटित करने के लिए अपनाई जाने वाली आवश्यक प्रक्रिया अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए के तहत प्रदान की गई है। और विशेषतः इसकी उप-धारा (2) के नियमतः और जैसा कि ऊपर संदर्भित है, चूंकि आवंटन का कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं रखा गया है और साथ ही याचिकाकर्ताओं को भूमि आवंटित करते समय, अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए के शासनादेश के अनुसार, सार्वजनिक प्रयोजन के लिए चिह्नित किसी भूमि को आवंटित करने के लिए 'आवश्यकता और समीचीनता' के संबंध में सहायक चकबंदी अधिकारी की संतुष्टि को दर्शाने वाला कोई दस्तावेज या आदेश भी अभिलेख पर नहीं है। आवंटन की प्रक्रिया एक कोरी औपचारिकता नहीं हो सकती क्योंकि भूमि का एक बड़ा हिस्सा, जिसके सार्वजनिक प्रयोजन के लिए चिह्नित होने की स्वीकारोक्ति है, याचिकाकर्ताओं को, जो बड़ी संख्या में हैं, आवंटित किया गया, और क्योंकि किए जा रहे आवंटन उचित प्रक्रिया के पालन से रहित हैं और उनकी 'आवश्यकता' या 'समीचीनता' के संबंध में संतुष्टि को लिखित रूप में दर्ज किए बिना किए गए हैं, अनियमित और अवैध हैं, इसलिए आवंटन आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता।

29. यह तर्क कि उप निदेशक, चकबंदी ने बहुत देर से यानी 2 दशकों से अधिक समय के बाद आवेदन का संज्ञान लिया है, प्रासंगिक हो सकता है, लेकिन चूंकि 'कानून पर धोखाधड़ी' के तत्व की उपस्थिति है और सहायक चकबंदी अधिकारी ने बिना किसी 'आवश्यकता' या 'समीचीनता' के एवं उक्त सार्वजनिक उद्देश्य

('चारागाह भूमि') के लिए किसी वैकल्पिक भूमि को चिह्नित किए बिना, एक सार्वजनिक भूमि को याचिकाकर्ताओं को आवंटित कर दिया, अतः, जैसा कि सुस्थापित है कि एक 'छल' जिसमें 'वैधानिक छल' भी शामिल है, यदि पता चलता है, तो बाद के किसी भी चरण पर भी विचार किया जा सकता है। वैधानिक सिद्धांत कि 'छल हर विधिपूर्ण कार्य को निष्प्रभावी कर देता है' जो कि प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है, और न्यायालय या संबंधित प्राधिकारी के पास स्वयं पर किए गए छल द्वारा प्राप्त किसी आदेश या किसी कानून को भी, निरस्त करने की अंतर्निहित शक्ति है और इसके लिए, स्मृति मदन कंसागा बनाम पेरी कंसागा, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 909 में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के कुछ पैराग्राफ प्रासंगिक होंगे और नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं -:

"49. xxxx

23. चूंकि धोखाधड़ी अदालत की कार्यवाही की गंभीरता, नियमितता और सुव्यवस्था को प्रभावित करती है और यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है, इसलिए यह माना गया है कि अदालतों के पास उनसे धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त आदेश को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति होती है। इसी प्रकार, जहां किसी पक्ष द्वारा न्यायालय को गुमराह किया जाता है या न्यायालय स्वयं ऐसी गलती करता है जिससे किसी पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो न्यायालय के पास अपना आदेश वापस लेने की अंतर्निहित शक्ति होती है।

xxxx

50. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह, (2000) 3 एससीसी 581 में, इस न्यायालय ने गौर किया: -

" 16. इसलिए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च स्तर की धोखाधड़ी की श्रेणी में आने वाले नए मिले तथ्यों के आधार पर, आदेश को वापस लेने के लिए कार्यवाई करने का उपाय, ऐसी स्थिति में मना नहीं किया जा सकता है। किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण को अपने आदेश को वापस लेने हेतु अक्षम नहीं माना जा सकता है यदि उसे विश्वास है कि आदेश को इस स्तर की धोखाधड़ी या गलत बयानी के माध्यम से विकृत किया गया था जिससे दावे का मूल आधार ही प्रभावित होता हो।"  
(बल दिया गया)

30. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मुझे याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की दलीलों में कोई योग्यता नहीं मिली और आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है, इसलिए, सभी रिट याचिकाओं में की गई प्रार्थनाएं निरस्त की जाती हैं।

31. यद्यपि, यह स्पष्ट किया जाता है कि चूंकि न्यायालय की राय है कि सार्वजनिक प्रयोजन के लिए निर्धारित भूमि के मामले में भी इसे आवंटित किया जा सकता है, यद्यपि, ऐसा आवंटन अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए

के तहत निर्धारित उचित प्रक्रिया के अनुसार और विशिष्ट तर्क यानी आवंटन के लिए आवश्यकता और समीचीनता, के साथ किया जाना चाहिए एवं यह उचित प्राधिकारी पर निर्भर है कि वह ऐसी प्रक्रिया को नए सिरे से क्रियान्वित करे, यदि स्थिति ऐसी हो, और इसके लिए विवादित भूमि पर, आज से मात्र तीन माह की अवधि के लिए, यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है। इस बीच, उत्तर प्रदेश राज्य या संबंधित उपयुक्त प्राधिकरण, यदि आवश्यक हो तो, अधिनियम, 1953 की धारा 19-ए के अनुसार उचित निर्णय ले सकता है।

32. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि कोई भी आदेश पारित करते समय राज्य या संबंधित प्राधिकारी हिंचलाल तिवारी (उपरोक्त) और जगपाल सिंह (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित निर्णयों और वर्तमान निर्णय में संदर्भित अन्य निर्णयों और प्रावधानों पर ध्यान देंगे। टिप्पणियों और तीन महीने के लिए यथास्थिति बनाए रखने के आदेश का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि इस न्यायालय ने आवंटन की कोई नई प्रक्रिया शुरू करने का निर्देश दिया है और यदि संबंधित राज्य या प्राधिकरण उपरोक्त अवधि के भीतर आवंटन के लिए नई कार्यवाही शुरू नहीं करता है, तो आक्षेपित आदेश के कानूनी परिणाम का पालन किया जाएगा और प्राधिकरण इसके कार्यान्वयन के लिए कम से कम समय के भीतर शीघ्रता से आवश्यक कदम उठाएगा।

33. सभी रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।



34. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----  
(2023) 9 ILRA 281

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

रिट बी संख्या 2620 वर्ष 2023

अमृतांश पांडे

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री सुधांशु पांडे

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अरविंद कुमार शुक्ला, श्री सुधीर भारती, श्री आर.सी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अभिनिर्धारित हुआ:

उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35 के अंतर्गत दाखिल खारिज की कार्यवाही में राजस्व परिषद, उप-विभागीय अधिकारी और नायब तहसीलदार द्वारा पारित क्रमशः 30.06.2023, 12.04.2021 और 07.02.2020 के आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका पोषणीय नहीं है। दाखिल खारिज की कार्यवाही प्रकृति में संक्षिप्त होती है और स्वत्वाधिकार प्रदान या समाप्त नहीं करती है। राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां केवल राजकोषीय उद्देश्यों के लिए होती हैं और स्वत्वाधिकार पर

कोई अनुमानित मूल्य नहीं होता है। याचिकाकर्ता का दावा 24.06.2010 की पंजीकृत वसीयत पर आधारित है, जिसके लिए स्वत्वाधिकार स्थापित करने के लिए सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन की आवश्यकता है। रिट याचिका का निपटारा याचिकाकर्ता को इस स्वतंत्रता के साथ किया जाता है कि वह अधिकारों/स्वत्वाधिकार के न्यायनिर्णयन के लिए सक्षम सिविल न्यायालय को अनुरोध करे।

चर्चा की गई वादविधि:

1. माधव पांडे बनाम राजस्व परिषद, 2002(2) एडब्ल्यूसी 1311

2. श्रीमती कलावती बनाम राजस्व परिषद, 2022(4) एडीजे 578

3. हदीसुल निशा बनाम अपर आयुक्त (न्यायिक) फैजाबाद, 2021(6) एडीजे 176

4. जितेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2021(6) सुप्रीम 185

5. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन, (2008) 8 एससीसी 12

6. सूरज भान बनाम वित्तीय आयुक्त, (2007) 6 एससीसी 186

7. भीमाबाई महादेव काम्बेकर (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी, मनु/एससी/0112/2019

8. मेसर्स गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी एवं कराधान अधिकारी, एआईआर 2023 एससी 781

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिज़वी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु पांडे, प्रत्यर्थी क्रमांक 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधीर भारती, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 से 4 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज कुमार तथा प्रत्यर्थी संख्या 6 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह एवं उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार शुक्ला को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:

“अ-पुनरीक्षण संख्या 1063/2021 में राजस्व बोर्ड उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.06.2023, उप-विभागीय अधिकारी, तहसील कसया जिला कुशीनगर द्वारा वाद संख्या 00006/2021 में पारित आदेश दिनांक 12.04.2021 तथा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता 2006 की धारा 35 के तहत वाद संख्या 3772/2017 (अमृतांश पांडे बनाम उपेन्द्र मणि) में नायब तहसीलदार पडरौना जिला कुशीनगर द्वारा दिनांक 07.02.2020 को पारित आक्षेपित आदेशों को रद्द करने के

लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ब- परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4, नायब तहसीलदार पडरौना जिला कुशीनगर को श्री उपेन्द्र मणि के स्थान पर दिनांक 24.06.2010 की पंजीकृत वसीयत के आधार पर याचिकाकर्ता का नाम उत्परिवर्तित/ दर्ज करने का आदेश दिया जाए।

स. कोई भी रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय वाद की वर्तमान परिस्थितियों में उपयुक्त एवं उचित समझे,

द- याचिका की लागत का फैसला करें।”

3. संक्षेप में मामले की तथ्यात्मक समग्रता यह है कि श्री उपेन्द्र मणि ने 24.06.2010 को एक वसीयतनामा निष्पादित किया था जो याचिकाकर्ता के पक्ष में 23.07.2010 को पंजीकृत किया गया था।

4. दिनांक 11.07.2017 को उपरोक्त वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 13/18.07.2017 को एक उत्परिवर्तन आवेदन दायर किया, जिसे उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35 के तहत वाद संख्या 3772/2017 के रूप में पंजीकृत किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा तर्क दिया गया कि जब उपरोक्त उत्परिवर्तन कार्यवाही लंबित थी, तो उत्तराधिकार के आधार पर प्रत्यर्थी

संख्या 6 का नाम दिनांक 17.08.2017 के आदेश के तहत संपत्ति के राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज/ उत्परिवर्तित किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने नायब तहसीलदार के समक्ष एक प्रत्याह्वान आवेदन दायर किया, जिसने दिनांक 30.12.2019 के आदेश के माध्यम से उपरोक्त आदेश दिनांक 17.08.2017 पर रोक लगा दी।

5. उत्परिवर्तन के उपरोक्त मामले में, वाद संख्या 3772/2017 होने के कारण, प्रत्यर्थी नंबर 6 ने आपत्तियां दर्ज कीं और उपरोक्त पंजीकृत वसीयत की प्रामाणिकता के विरुद्ध गंभीर आपत्तियां उठाईं। नायब तहसीलदार, पडरौना, जिला कुशीनगर ने दिनांक 07.02.2020 के आदेश के तहत उपरोक्त वसीयतनामा अस्वीकार्य पाया और प्रत्यर्थी संख्या 6 के पक्ष में दिनांक 17.08.2017 के पूर्व आदेश की पुष्टि की।

6. प्रत्यर्थी संख्या 4- नायब तहसीलदार द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 07.02.2020 से व्यथित, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 3- उप-विभागीय अधिकारी, कसया जिला, कुशीनगर के समक्ष अपील दायर की, जिन्होंने एक विस्तृत आदेश 12.04.2021 द्वारा उक्त अपील को खारिज कर दिया। इसके उपरान्त, याचिकाकर्ता ने राजस्व बोर्ड, उ.प्र. के समक्ष उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत आरईवी/1063/2021/ कुशीनगर वाले पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी, राजस्व बोर्ड ने 30.06.2023 को एक विस्तृत आदेश पारित करके उक्त पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

7. दिनांक 30.06.2023, 12.04.2021 और 07.02.2020 के आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट कोर्ट के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए वर्तमान रिट याचिका को प्राथमिकता दी है।

8. वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया मुख्य आधार यह है कि राजस्व अधिकारियों ने पंजीकृत वसीयत विलेख की वास्तविकता पर अविश्वास करके अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि जब सक्षम अदालत ने वसीयत रद्द नहीं की है, तो राजस्व अधिकारियों को वसीयतनामा की वास्तविकता पर विश्वास करना चाहिए था।

9. उपरोक्त वसीयत विलेख की वास्तविकता स्थापित करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में निहित केस संख्या 435/2011 की शिकायत की प्रति की ओर आकर्षित किया। जिसे प्रत्यर्थी नंबर 6 के बेटे और कुछ अन्य रिश्तेदारों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा अनुतोष की मांग करते हुए उपेन्द्र नाथ और श्रीमती गीता देवी द्वारा संयुक्त रूप से दायर किया गया है। उक्त वाद पत्र के कंडिका संख्या 7 एवं 8 में उक्त वसीयत दिनांक 24.10.2010 का उल्लेख है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि स्थायी निषेधाज्ञा अनुतोष के लिए उक्त मुकदमा अभी भी लंबित है, जिसमें वसीयतकर्ता, अर्थात् श्री उपेन्द्र मणि, ने स्वयं कहा है कि उन्होंने उक्त वसीयत को

क्रियान्वित किया है, और इस प्रकार, वसीयत की वास्तविकता, वसीयत पर संदेह नहीं किया जा सकता. उन्होंने आगे कहा कि वसीयतकर्ता की इच्छाओं को अन्य मापदंडों पर महत्व दिया जाना चाहिए।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 6 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. सी. सिंह ने तर्क दिया कि केवल मुकदमा दायर करना, वह भी अपने रिश्तेदारों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा अनुतोष के लिए, प्रश्नगत वसीयत की वास्तविकता स्थापित नहीं करता है। उन्होंने आगे कहा कि प्रथम दृष्टया, उक्त मुकदमा याचिकाकर्ता की मां, श्रीमती गीता देवी के कहने पर दायर किया गया एक षडयंत्रकारी मुकदमा प्रतीत होता है। गीता देवी, जो उक्त मुकदमे में वादी संख्या 2 हैं और उन्होंने वाद पत्र की सामग्री को सत्यापित किया है जैसा कि वाद पत्र के नीचे उल्लिखित सत्यापन खंड से स्पष्ट है।

11. राज्य-प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी वकील श्री पंकज कुमार ने रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में आपत्ति उठाई है। उनका कहना है कि उत्परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली कार्यवाही प्रकृति में संक्षिप्त है और इसके खिलाफ रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सुनवाई योग्य नहीं है, क्योंकि वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेश उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35 के अन्तर्गत कार्यवाही से उत्पन्न हुए हैं, जो स्वीकार्य रूप से संक्षिप्त प्रक्रिया है।

12. माधव पांडे और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य के मामले में, 2002 (2) एडब्ल्यूसी 1311 में रिपोर्ट किया गया; इस न्यायालय ने माना है कि उत्परिवर्तन कार्यवाही प्रकृति में संक्षिप्त है और संक्षिप्त कार्यवाही के खिलाफ रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सुनवाई योग्य नहीं है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 26 में, इसे स्पष्ट रूप से इसप्रकार रखा गया है: -

"26. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की अंतिम दलील यह है कि राजस्व अदालत तथ्य की खोज में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है और पुनरीक्षण अदालत यानी, राजस्व बोर्ड ने गलत तरीके से क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है, इसलिए यह अदालत राजस्व बोर्ड के आदेश को रद्द कर सकती है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, किसी मामले में क्षेत्राधिकार की कमी और क्षेत्राधिकार के गलत प्रयोग के बीच अन्तर है। वर्तमान कार्यवाही इससे उत्पन्न होती है उत्परिवर्तन कार्यवाही जो कि संक्षिप्त कार्यवाही है और संक्षिप्त कार्यवाही के खिलाफ रिट याचिकाओं पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विचार नहीं किया जाता है। इस सवाल पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि क्या पुनरीक्षण अदालत ने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई त्रुटि की है। यह मानते हुए तर्क यह है कि राजस्व बोर्ड द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कुछ त्रुटि हुई है, उक्त त्रुटि

क्षेत्राधिकार विहीन आदेश नहीं होगी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, संक्षिप्त कार्यवाही से उत्पन्न होने वाली रिटयाचिका पर तभी विचार किया जा सकता है जब क्षेत्राधिकार का अभाव हो। यह अधिकार क्षेत्र के अभाव का मामला नहीं है, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की उपरोक्त दलील के आधार पर आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

13. इस न्यायालय ने 2022 में प्रतिवेदित (4) एडीजे 578 श्रीमती कलावती बनाम राजस्व बोर्ड और 6 अन्य वाद में कुछ अपवाद उत्कीर्ण किए हैं जिसके अन्तर्गत यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उत्परिवर्तन कार्यवाही में पारित आदेशों के खिलाफ एक रिट याचिका पर विचार कर सकता है। वर्तमान संदर्भ के लिए उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 40 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"40. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपवाद जिसके तहत उत्परिवर्तन कार्यवाही में पारित आदेशों के खिलाफ एक रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है, वहां उत्पन्न होगा जब:

- (i) आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार विहीन हैं;
- (ii) पक्षकारों के अधिकारों और शीर्षक का निर्णय पहले ही एक सक्षम न्यायालय द्वारा किया जा

चुका है, और यह उत्परिवर्तन कार्यवाही में भिन्न है;

(iii) उत्परिवर्तन को प्रतिद्वंदी दावों के गुणों को स्पर्श करते हुए; सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के अधिकार से संबंधित प्रश्नों में प्रवेश करने उपरान्त निर्देशित किया गया है न कि कब्जे के आधार पर अथवा उसके किसी शीर्षक विलेख आधार पर।

(iv) उत्पन्न अधिकार किसी विधि के प्रावधानों के विरुद्ध हैं, अथवा कुछ वैधानिक प्रावधान के आधार पर प्रविष्टि स्वयं एक शीर्षक प्रदान करती है;

(v) आदेश धोखाधड़ी या तथ्यों की गलत प्रस्तुति के आधार पर, या फर्जी दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त किए गए हैं;

(vi) आदेश कुछ पेटेंट क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि से ग्रस्त है, यानी ऐसे मामले जहां क्षेत्राधिकार का अभाव, क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण या क्षेत्राधिकार का दुरुपयोग हो

(vii) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है।"

14. यह न्यायालय ने 2021 में प्रतिवेदित (6) एडीजे 176 हदीसुल निशा बनाम अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) फैजाबाद और अन्य के वाद में लगभग समान स्थिति से निपट चुका है, जिसमें न्यायालय ने अपवाद निर्धारित किए हैं, जिसके अनुसार एक रिट याचिका संक्षिप्त कार्यवाही में पारित आदेशों के खिलाफ भी सुनवाई योग्य होगी, भले ही उक्त आदेश को

अपीलीय या पुनरीक्षण अदालत द्वारा पुष्टि/अलग कर दिया गया हो। सुविधा के लिए, उसी का अनुच्छेद क्रमांक 19 नीचे दर्शाया गया है:-

"19.उपरोक्त निर्णयों में न्यायालयों ने उत्परिवर्तन कार्यवाही से उत्पन्न रिट पर विचार करने के लिए कुछ मानदण्ड निर्धारित किए हैं। जो अपवाद सामने आए हैं, वे बहुत कम हैं, उदाहरण के लिए:-

i) यदि आदेश क्षेत्राधिकार विहीन है ;

ii) यदि पक्षकारों के अधिकारों और स्वामित्व का निर्णय पहले ही सक्षम न्यायालय द्वारा किया जा चुका है, और उत्परिवर्तन न्यायालयों द्वारा इसमें बदलाव किया गया है;

iii) यदि उत्परिवर्तन को कब्जे के आधार पर या केवल कुछ शीर्षक विलेख के आधार पर निर्देशित नहीं किया गया है, बल्कि प्रतिद्वंद्वी दावों के गुणों को छूते हुए, संपत्ति के उत्तराधिकार के अधिकार की बहस में प्रवेश करने के बाद किया गया है;

iv) यदि उत्पन्न अधिकार किसी कानून के वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध हैं, और प्रविष्टि स्वयं याचिकाकर्ता को उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमिसुधार अधिनियम के प्रावधानों के

आधार पर एक शीर्षक प्रदान करती है;

v) जहां रिट याचिका में दिए गए आदेश धोखाधड़ी या तथ्यों की गलत बयानी के आधार पर या किसी वादी द्वारा फर्जी दस्तावेजों के आधार पर पारित किए गए हैं।

vi) जहां अदालतों ने मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया है, उदाहरण के लिए अदालतों ने बहाली आवेदन आदि पर आदेश पारित किए हैं (विजय शंकर बनाम अतिरिक्त आयुक्त; 2015 (33) एलसीडी 1073)"

15.जितेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में 2021 में प्रतिवेदित (6) सुप्रीम 185, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए प्रसन्नता व्यक्त की है,

"5...जैसा भी हो, विधि के अवधार्य प्रस्तावों के अनुसार, उत्परिवर्तन प्रविष्टि व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार, शीर्षक या हित प्रदान नहीं करती है और राजस्व अभिलेखों में उत्परिवर्तन प्रविष्टि केवल वित्तीय उद्देश्य के लिए है। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, यदि स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद है और विशेष रूप से जब वसीयत के आधार पर उत्परिवर्तन प्रविष्टि

की मांग की जाती है, तो जो पक्ष वसीयत के आधार पर स्वामित्व/ अधिकार का दावा कर रहा है उसे उपयुक्त सिविल कोर्ट/ अदालत से संपर्क करना होगा और अपने अधिकारों को सुनिश्चित करना होगा और उसके बाद ही सिविल कोर्ट के समक्ष निर्णय के आधार पर आवश्यक उत्परिवर्तन प्रविष्टि की जा सकती है।"

18. भीमाबाई महादेव काम्बेकर (डी) द्वारा एल.आर. बनाम आर्थर आयात और निर्यात कंपनी और अन्य मनु/एससी/0112/2019, 31.01.2019 को निर्णीत वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मानते हुए प्रसन्नता व्यक्त की है कि राजस्व रिकॉर्ड में उत्परिवर्तन भूमि पर स्वामित्व को बनाता या समाप्त नहीं करता है और नही शीर्षक हेतु इसका कोई अनुमानित मूल्य है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 8 और 9 यहां निम्नानुसार निकाले गए हैं:-

16. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एससीसी 12 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने में बताया है कि राज्य के राजस्व अधिकारी राजस्व से संबन्धित हैं। उत्परिवर्तन केवल कुछ उद्देश्यों के लिए होता है। यह सुस्थापित है कि राजस्व रिकॉर्ड में एक प्रविष्टि शीर्षक का दस्तावेज नहीं है। राजस्व प्राधिकारी स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकते।

17. (2007) 6 एससीसी 186 में प्रतिवेदित सूरजभान बनाम वितीय आयुक्त के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रसन्नतापूर्वक माना कि राजस्व रिकॉर्ड में एक प्रविष्टि उस व्यक्ति को जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में परिलक्षित हो, शीर्षक प्रदान नहीं करती है। यह स्थापित कानून है कि राजस्व रिकॉर्ड या जमाबंदी में प्रविष्टियों का केवल 'राजकोषीय उद्देश्य' यानी भूमि-राजस्व का भुगतान होता है और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है। जहां तक संपत्ति के स्वामित्व का सवाल है, इसका निर्णय केवल सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है।

"8. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि राजस्व रिकॉर्ड में किसी भूमि का उत्परिवर्तन ऐसी भूमि पर स्वामित्व को बनाता या समाप्त नहीं करता है और नही शीर्षक हेतु कोई अनुमानित मूल्य है। यह केवल उस व्यक्ति को प्रश्नगत भूमि राजस्व भुगतान हेतु सक्षम बनाता है जिसके पक्ष में उत्परिवर्तन का आदेश दिया गया है। (देखें सावरनी (श्रीमती) बनाम इंदर कौर, (1996) 6 एससीसी 223, बलवंत सिंह और अन्य बनाम दौलत सिंह (मृत) एल.आर. और अन्य द्वारा, (1997) 7 एससीसी 137 और नरसम्मा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, (2009) 5 एससीसी 591)।

9. उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज करते हुए इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून पर भरोसा किया उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क और निष्कर्ष से भिन्न होने का हम कोई उचित आधार नहीं

पाते हैं। इस पर हस्तक्षेप न किया जाना ही उपयुक्त और उचित आह्वान है।"

उपरोक्त के आलोक में, चूंकि उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 41 के तहत कार्यवाही, जो कि यू पी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 24 के लिए समविषयक है, संक्षिप्त प्रकृति की है और एकबार पक्षकारों ने राजस्व अधिकारियों के समक्ष अपील/पुनरीक्षण के वैधानिक उपाय का लाभ उठा लिया है, इस न्यायालय के समक्ष कोई भी रिट याचिका नहीं है क्योंकि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियाँ कोई शीर्षक प्रदान नहीं करती हैं। यह केवल सक्षम न्यायालय ही है जो घोषणा के लिए दायर नियमित वाद में पीड़ित पक्ष के अधिकारों की घोषणा करता है।

इसप्रकार, इस न्यायालय द्वारा संक्षिप्त कार्यवाही में राजस्व अधिकारियों द्वारा पारित आदेश में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और रिट याचिका तदनुसार खारिज कर दी जाती है। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं के लिए यह खुला है कि वे विवादित भूमि पर अपने अधिकार का दावा करते हुए घोषणात्मक मुकदमा दायर कर सकते हैं।"

19 यह स्थापित कानून है कि राजस्व अभिलेख स्वामित्व प्रदान नहीं करते हैं और भले ही अधिकारों के राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियाँ मूल्य

रखती हों। इसके आधार पर दावा करने वाले व्यक्ति को स्वयं कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाएगा। कब्जे के आधार पर सारांशित प्रकृति की होने वाली उत्परिवर्तन कार्यवाही स्वामित्व के किसी भी प्रश्न का निर्णय नहीं करती है और एक नियमित मुकदमे में अपने अधिकारों को प्राप्त करने के एक व्यक्ति रास्ते में ऐसी कार्यवाहियों में पारित आदेश लागू नहीं होते हैं। राजस्व अभिलेख में उत्परिवर्तन न तो व्यक्ति के स्वामित्व को बनाता है और नहीं समाप्त करता है और न ही शीर्षक हेतु इसका कोई अनुमानित मूल्य है। ऐसी प्रविष्टियाँ केवल भू-राजस्व एकत्र करने के उद्देश्य से प्रासंगिक हैं। इसे देखते हुए, इस न्यायालय ने लगातार यह माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी रिट याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

20 यहां यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि अनुच्छेद 226 के तहत विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्तिपूर्ण प्रकृति की है। यह, शर्तों के अनुसार, रिट जारी करने की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा या प्रतिबंध नहीं लगाता है। यह रिट न्यायालय का विवेक है कि प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर रिट याचिका पर विचार किया जाए अथवा नहीं। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग पर स्वयं लगाए गए प्रतिबंधों में से एक जो न्यायिक पूर्व-निर्णयों के माध्यम से विकसित हुआ है, वह यह है कि उच्च न्यायालय को आमतौर पर रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए, जहां एक प्रभावी और प्रभावशाली वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है।



साथ ही, यह याद रखना चाहिए कि केवल अपील या पुनरीक्षण के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता, जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाले पक्ष ने नहीं अपनाया है, उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार एवं प्रस्तुत रिट याचिकाको 'पोषणीय नहीं' न मानने को वंचित नहीं करेगी।

**21 मैसर्स गोदरेज साराली लिमिटेड बनाम उत्पाद शुल्क और कराधान अधिकारी-सह-आकलन प्राधिकरण और अन्य; एआईआर 2023 सुप्रीम कोर्ट 781** में प्रतिवेदित, के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को एक रिट याचिका की 'मनोरंजकता' और 'धारणीयता' के बीच अंतर को स्पष्ट करने में प्रसन्नता हुई है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 4 का उद्धरण नीचे उद्धृत किया गया है:

*"...हालांकि प्रारंभिक, इसे फिर से कहने की आवश्यकता है कि रिट याचिका की "विचारणीयता" और "धारणीयता" अलग-अलग अवधारणाएं हैं। इनके बीच का अच्छा लेकिन वास्तविक अंतर नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। "धारणीयता" के बारे में आपत्ति मामले की जड़ तक जाती है और यदि ऐसी आपत्ति तथ्यपूर्ण पाई गई, तो अदालतें निर्णय के लिए वाद प्राप्त करने में भी असमर्थ हो जाएंगी। दूसरी ओर, "विचारणीयता" का प्रश्न पूरी तरह से उच्च न्यायालयों के विवेक के*

*दायरे में है, रिट उपाय विवेकाधीन है। विचारणीय होने के बावजूद एक रिट याचिका पर कई कारणों से उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है या राहत भी दी जा सकती है। एक ठोस कानूनी बिंदु स्थापित करने के बावजूद, याचिकाकर्ता को इनकार कर दिया गया, यदि दावा की गई राहत देने से सार्वजनिकहित को बढ़ावा न मिले ....."*

22 वर्तमान याचिका में चुनौती के तहत आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए इस न्यायालय की अनिच्छा, मुख्य रूप से यह है कि उत्परिवर्तन कार्यवाही के परिणाम भी यही हैं और यह एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टि किसी व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में परिलक्षित होता है, जो राजस्व उद्देश्य के लिए बनाए रखा जाता है और उसकी प्रविष्टि केवल कब्जे को संदर्भित होती है। इसके अलावा, उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 39 के प्रावधान यह और अधिक स्पष्ट करते हैं कि राजस्व अभिलेखों के उत्परिवर्तन से संबंधित प्रावधानों के तहत पारित आदेश किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमे में घोषणा-वाद के माध्यम से संपत्ति में अपना अधिकार स्थापित करने में बाधा के रूप में कार्य नहीं करेंगे। त्वरित संदर्भ के लिए यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 39 के प्रावधान को नीचे उद्धृत किया गया है:-

*“39-राजस्व अधिकारियों के कुछ आदेश जो किसी वाद को खारिज न करें - धारा 33 के तहत राजस्व निरीक्षक द्वारा, या धारा 35 की उप-धारा (1) के तहत एक तहसीलदार द्वारा या धारा 38 की उप-धारा (3) के तहत एक उप-विभागीय अधिकारी द्वारा या धारा 38 की धारा (4) के तहत एक आयुक्त द्वारा पारित कोई आदेश, किसी भी व्यक्ति को धारा 144 के तहत मुकदमे के माध्यम से भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने से नहीं रोक सकते।”*

23. आमतौर पर, इस न्यायालय द्वारा पूर्व उल्लिखित वादों में सूत्रित शर्तों को छोड़कर उच्च न्यायालय अपनी पूर्णशक्ति का प्रयोग करते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्परिवर्तन कार्यवाही में राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ रिट याचिका पर विचार नहीं करता है।

24. वर्तमान मामले का तथ्य इस न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त अपवादों को आकर्षित नहीं करता है जिसके तहत यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वीकार्य रूप से संक्षिप्त प्रकृति की उत्परिवर्तन कार्यवाही में पारित आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका पर विचार कर सकता है।

25. यह सुस्थापित है कि उत्परिवर्तन के आदेश पक्षकारों के कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और चूंकि उत्परिवर्तन कार्यवाही में पक्षकारों के कोई मूल अधिकार तय नहीं किए जाते हैं, आमतौर पर रिट अदालतें उत्परिवर्तन कार्यवाही में पारित आदेशों के सन्दर्भ में, रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर देती हैं क्योंकि यह पोषणीय नहीं है जबतक कि इसे पूरी तरह से क्षेत्राधिकार विहीन अथवा सक्षम न्यायालय द्वारा पूर्व निर्णीत शीर्षक के विपरीत न पाया जाए।

26. उक्त के आलोक में, चूंकि उत्परिवर्तन कार्यवाही में पक्षकारों के कोई मूल अधिकार तय नहीं किए गए हैं या तय किए जाने की संभावना नहीं है, इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग का कोई मामला नहीं बनता है। कहने की आवश्यकता नहीं है, याचिकाकर्ता के लिए यह हमेशा उपलब्ध है कि वह प्रश्नगत भूमि के संबंध में अपने अधिकार/स्वामित्व को सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा स्पष्ट करा ले।

27. तदनुसार, राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित किए गए आक्षेपित आदेशों के गुणों में हस्तक्षेप किए बिना, इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है, यदि आवश्यक हो, क्षेत्राधिकार के सक्षम न्यायालय द्वारा न्याय निर्णय नया घोषित किया जाए ताकि संबंधित पक्षों को विचाराधीन भूमि के संबंध में अपने अधिकार/स्वामित्व प्राप्त करने की स्वतंत्रता मिल सके। उत्परिवर्तन कार्यवाही में पारित आदेश सक्षम न्यायालय के निर्णय का पालन

करेगा, यदि कोई हो, और उक्त न्यायालय किसी भी तरह से, उत्परिवर्तन आदेशों में या उत्परिवर्तन कार्यवाही के दौरान किए गए किसी भी अवलोकन या निष्कर्ष से प्रभावित नहीं होगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 288

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट सी संख्या 4953 वर्ष 2023

अन्य संबंधित मामलों के साथ

प्रबंधन समिति, जय प्रकाश चैरिटेबल ट्रस्ट

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

रजत राजन सिंह, विधु भूषण कालिया

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, रवि सिंह

अभिनिर्धारित हुआ-

(i) फार्मसी अधिनियम, 1948 - विशेष केन्द्रीय विधायन- फार्मसी शिक्षा का विनियमन - संस्थानों और पाठ्यक्रमों के अनुमोदन के लिए पीसीआई एकमात्र प्राधिकरण है - राज्य सरकार या तकनीकी बोर्ड के पास एक बार अनापत्ति प्रमाण पत्र दिए जाने के बाद उसे रद्द करने

का कोई अधिकार नहीं है - यदि कोई कमी पाई जाती है, तो उसे पीसीआई को भेजा जाना चाहिए।

(ii) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - कारण बताओ नोटिस या सुनवाई का अवसर दिए बिना अनापत्ति प्रमाण पत्र रद्द करना - राज्य सरकार के निर्देश के अंतर्गत बोर्ड द्वारा पारित आदेश - प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन माना गया - आक्षेपित रद्दीकरण पत्र रद्द किए जाने योग्य है।

(iii) भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - डी. फार्मा पाठ्यक्रम के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र रद्द करने के विरुद्ध रिट याचिका - केन्द्रीय विधायन के अंतर्गत पीसीआई विशेषज्ञ वैधानिक निकाय है - बोर्ड और राज्य को कानून और पीसीआई विनियमों के अनुसार आगे बढ़ने के निर्देश जारी किए गए।

याचिकाएं स्वीकृत।

चर्चा की गई वादविधि:

1. तमिलनाडु राज्य बनाम अधियामन एजुकेशनल एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, (1995) 4 एससीसी 104

2. महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ज्ञानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय, (2006) 9 एससीसी 1

3. भारतीय एजुकेशन सोसाइटी बनाम हिमांचल प्रदेश राज्य, (2011) 4 एससीसी 527

4. सेंट जॉन्स टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट बनाम एनसीटीई, (2003) 3 एससीसी 321

5. महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ज्ञानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय, (2013) 2 एससीसी 617

6. उमानाथ पांडे बनाम उ.प्र. राज्य, (2009) 12 एससीसी 40

7. न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण बनाम रवींद्र कुमार सिंघवी, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 186

शैक्षणिक सत्र 2022-23 के लिए डिप्लोमा इन फार्मेसी (संक्षेप में 'डी.फार्मा') नामक नया पाठ्यक्रम खोलने के लिए बोर्ड द्वारा संबंधित याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को दिए गए 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' (जिसे आगे 'एनओसी' कहा जाएगा) को तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिया गया है।

(2) चूंकि उपर्युक्त रिट याचिकाएं एक समान तथ्यात्मक आधार और आक्षेपित पत्र दिनांक 18.05.2023 से उत्पन्न हुई हैं, इसलिए यह न्यायालय उन्हें इस सामान्य निर्णय द्वारा निस्तारित कर रहा है।

### मुख्य शब्द-

**फार्मेसी अधिनियम, 1948-** विशेष विधायन-अनापत्ति प्रमाणपत्र - पीसीआई - राज्य क्षेत्राधिकार - प्राकृतिक न्याय - औचक निरीक्षण - तकनीकी शिक्षा बोर्ड - अनुमोदन रद्द करना - स्वायत्त वैधानिक निकाय - प्रशासनिक कार्रवाई को रद्द करना।

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा पारित)

### क. परिचय

(1) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपर्युक्त रिट याचिकाएं, याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं द्वारा दायर की गई हैं, जिसमें सचिव, प्राविधिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ (जिसे आगे 'बोर्ड' कहा जाएगा) द्वारा जारी दिनांक 18.05.2023 के पत्र की वैधता को चुनौती दी गई है, जिसके अंतर्गत

### ख. तथ्यात्मक आधार

(3) उपर्युक्त रिट याचिकाओं में सन्निहित बिन्दुओं को समझने के लिए, यह न्यायालय रिट सी संख्या-4953/2023 (*प्रबंधन समिति, जय प्रकाश चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*) को विचारार्थ प्रमुख रिट याचिका के रूप में ले रही है।

(4) रिट-सी संख्या-4953/2023 के अभिलेख से पता चलता है कि विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या-4862/2022 में पारित अन्तरिम आदेश दिनांक 31.05.2022 के अनुसरण में, फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया (जिसे आगे 'पीसीआई' कहा जाएगा) ने दिनांक 21.06.2022 को संदर्भ संख्या 14-56/22 (2022-2023 के लिए अनुमोदन प्रक्रिया)/11621 के साथ एक पत्र जारी किया था, जिसके अंतर्गत बैचलर ऑफ फार्मेसी (संक्षेप में, 'बी. फार्मा') और डी. फार्मा के पाठ्यक्रमों के लिए नए संस्थानों की स्थापना हेतु आवेदन आमंत्रित करते हुए एक पोर्टल

03.07.2022 से 15.07.2022 तक खोला गया था।

विरुद्ध कानून के अनुसार उचित कार्रवाई की जाएगी।

(5) उक्त पत्र दिनांक 21.06.2022 के अनुसरण में बोर्ड ने दिनांक 27.06.2022 को पत्र जारी किया (प्रति शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 1), जिसमें संस्थानों के निदेशकों/ प्रधानाचार्यों से नए डी. फार्मा पाठ्यक्रम खोलने के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए। तत्पश्चात निदेशक, प्राविधिक शिक्षा द्वारा किए गए अनुरोध पर सचिव, प्राविधिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश ने दिनांक 14.07.2022 को आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि समय की कमी के कारण, पीसीआई द्वारा नए संस्थान शुरू करने के लिए परिकल्पित “अनापति प्रमाण पत्र” (एनओसी) स्व-घोषित शपथ पत्र के आधार पर जारी किया जाएगा।

(6) इसके अनुपालन में पीसीआई ने दूसरे एवं तीसरे चरण के आवेदन आमंत्रित करने के लिए क्रमशः 04.08.2022 से 10.08.2022 तथा 01.09.2022 से 04.08.2022 एवं 30.08.2022 तक पोर्टल खोला। तत्पश्चात, राज्य सरकार ने एनओसी जारी करने के लिए आवेदन के साथ दिए गए प्रोफार्मा में स्वघोषणा शपथ पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात संबंधित संस्थाओं को एनओसी जारी करने के लिए दिनांक 08.08.2022 एवं 05.09.2022 को आदेश जारी किए। उक्त प्रोफार्मा शपथ पत्र के साथ-साथ पीसीआई की अधिसूचना में यह भी उल्लेख किया गया है कि यदि कोई विसंगतियां पाई जाती हैं, तो एनओसी तत्काल प्रभाव से रद्द कर दी जाएगी तथा दोषी संस्थाओं के

(7) याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं एवं राज्य की अन्य संस्थाओं ने पूर्वोक्त के अनुसरण में अपने संस्थानों में डी. फार्मा कोर्स खोलने के लिए एनओसी प्रदान करने के लिए संबंधित दस्तावेजों के साथ-साथ विधिवत भरे हुए स्व-घोषणा पत्र शपथ पत्र के साथ आवेदन किया था। तत्पश्चात, बोर्ड ने याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं एवं अन्य संस्थाओं को शैक्षणिक सत्र 2022-23 के लिए डी. फार्मा कोर्स संचालित करने के लिए एनओसी प्रदान की थी।

(8) तत्पश्चात, मुख्यमंत्री कार्यालय द्वारा जारी दिनांक 24.03.2023 एवं 03.04.2023 के पत्रों के आधार पर, उत्तर प्रदेश राज्य के प्रत्येक जिले के जिला मजिस्ट्रेट ने स्व-घोषणा पत्र के आधार पर एनओसी प्रदान करते समय संलग्न दस्तावेजों के अनुसार संबंधित संस्थानों की जांच और पुनः सत्यापन के लिए तहसीलदार, राजकीय इंटर कॉलेज के प्रधानाचार्य और एक सहायक अभियंता की तीन सदस्यीय समिति का गठन किया था। समिति ने जांच और पुनः सत्यापन के बाद कुछ विसंगतियां और कमियां पाई और इसकी रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट को दी, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को सौंप दी। जिला मजिस्ट्रेट की उक्त अनुशंसा और राज्य सरकार द्वारा 17.05.2023 के आदेश के अनुसार जारी निर्देश के आधार पर बोर्ड ने 18.05.2023 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को सूचित किया कि उन्हें दी गई एनओसी तत्काल प्रभाव से रद्द कर दी गई है। यह 18.05.2023 का

पत्र है, जिसे वर्तमान रिट याचिकाओं में चुनौती दी गई है।

#### ग. तर्क

(9) याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथा पीसीआई का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री रवि सिंह को सुना गया।

(10) बोर्ड के सचिव द्वारा जारी दिनांक 18.05.2023 के आक्षेपित पत्र पर आपत्ति जताते हुए याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता/संस्थाएं डी.फार्मा पाठ्यक्रम संचालित करके फार्मसी में शिक्षा प्रदान कर रही हैं, जो एक व्यावसायिक, पेशेवर और प्राविधिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम है तथा भारत के संविधान की अनुसूची-7 की सूची-1 की प्रविष्टि संख्या-66 द्वारा पूर्णतः कवर किया गया है, इसलिए राज्य सरकार/बोर्ड के पास याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं द्वारा डी.फार्मा पाठ्यक्रम संचालित करने का निरीक्षण करने का कोई अधिकार या प्राधिकार नहीं है, जो फार्मसी अधिनियम, 1948 के अंतर्गत 'अनुमोदित अध्ययन पाठ्यक्रम' है। इसलिए राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं की एनओसी रद्द करने की आक्षेपित कार्रवाई पूरी तरह से असंवैधानिक है।

(11) याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि फार्मसी अधिनियम, 1948, एक विशेष अधिनियम है,

जिसे अध्ययन के एक विशेष क्षेत्र को कवर करने के लिए अधिनियमित किया गया है और इस प्रकार, उस क्षेत्र से संबंधित अन्य कानूनों पर इसका प्रभुत्व है। उनके अनुसार, कोई भी संस्था या निकाय फार्मसी अधिनियम, 1948 या वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत किसी भी संस्था को अनुमोदन देने के लिए अधिकृत नहीं है, सिवाय पीसीआई के और पीसीआई द्वारा अनुमोदन प्रदान करना किसी संस्थान को जांच निकाय द्वारा संबद्धता प्रदान करने के लिए एक शर्त है। इसके अलावा, जिन आवश्यकताओं की जांच की गई है और जो शर्तें पीसीआई द्वारा लगाई गई हैं, वे प्रभावी होंगी और राज्य कार्रवाई की आड़ में उन्हें बदला, पुनः जांचा या उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। फार्मसी काउंसिल ऑफ इंडिया की कार्यकारी समिति द्वारा फार्मसी अधिनियम, 1948 की धारा 16 (1) (सी) के अंतर्गत नियुक्त निरीक्षक द्वारा प्रयोग की जाने वाली निरीक्षण शक्ति एक वैधानिक शक्ति है, जिसका प्रयोग राज्य सरकार या बोर्ड द्वारा बिल्कुल भी नहीं किया जा सकता है। उनका कहना है कि पीसीआई द्वारा अनुमोदन प्रदान करने, उसके बाद बोर्ड द्वारा सम्बद्धता प्रदान करने, संस्थान द्वारा डी. फार्मा पाठ्यक्रम में शिक्षा प्रदान करने की शुरुआत करने तथा एक वर्ष तक इसे जारी रखने के बाद, राज्य सरकार/बोर्ड को डी. फार्मा पाठ्यक्रम चलाने के लिए किसी भी पैरामीटर की संतुष्टि की कमी के प्रश्न पर विचार करने का कोई अधिकार या अधिकार नहीं है तथा अधिक से अधिक राज्य सरकार या बोर्ड ऐसी कमियों/विसंगति के बारे में पीसीआई को सूचित कर सकते हैं तथा केवल पीसीआई ही फार्मसी

अधिनियम, 1948 के प्रावधानों के अनुसार ऐसी कमियाँ/विसंगति की जांच कर सकता है तथा कानून के अनुसार निर्णय ले सकता है।

(12) याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने दिनांक 18.05.2023 के आक्षेपित पत्र की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए तर्क दिया है कि दिनांक 18.05.2023 का आक्षेपित पत्र बोर्ड के सचिव द्वारा राज्य सरकार के दिनांक 17.05.2023 के निर्णय के अनुसरण में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना जारी किया गया है, क्योंकि डी. फार्मा कोर्स चलाने के लिए दी गई एनओसी को रद्द करने से पहले न तो याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और न ही सुनवाई का कोई अवसर दिया गया। इसके अलावा, आक्षेपित पत्र में इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया है कि समिति द्वारा पाई गई कमी की प्रकृति क्या है, जिसके कारण एनओसी को रद्द कर दिया गया। इस प्रकार, दिनांक 18.05.2023 का आक्षेपित पत्र इस आधार पर भी रद्द किए जाने योग्य है।

(13) इसके विपरीत, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को दी गई एनओसी को रद्द करने की राज्य सरकार की कार्रवाई का समर्थन किया है और तर्क दिया है कि एनओसी, जो याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं सहित संस्थानों को जारी की गई थी, ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से इंगित किया था कि यदि कोई विसंगतियां पाई जाती हैं, तो एनओसी तत्काल प्रभाव से

रद्द हो जाएगी और कानून के अनुसार दोषी संस्थानों के खिलाफ उचित कार्रवाई की जाएगी। उनके अनुसार, राज्य सरकार के निर्देशानुसार जिलाधिकारियों के अधीन गठित समिति द्वारा किए गए औचक निरीक्षण के दौरान याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में कमियां पाई गईं तथा घोषणाएं झूठी पाई गईं, जिसके फलस्वरूप समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने पर राज्य सरकार ने याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं सहित संस्थाओं की एनओसी रद्द करने का निर्णय लिया, जिसके अनुसरण में बोर्ड के सचिव द्वारा याचिकाकर्ताओं की संस्थाओं की एनओसी रद्द करने संबंधी दिनांक 18.05.2023 का पत्र जारी किया गया है।

(14) विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह कानून स्थापित किया जा चुका है कि धोखाधड़ी प्रत्येक गंभीर अधिकार का हनन करती है और स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं ने झूठे हलफनामे प्रस्तुत किए हैं, इसलिए राज्य की आक्षेपित कार्रवाई पूरी तरह से उचित है।

(15) न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण बनाम रवींद्र कुमार सिंघवी: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 186 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देते हुए, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि केवल यह आरोप लगाने से कि सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया है, याचिकाकर्ता/संस्थाएं अपने स्वयं के गलत कार्य का लाभ नहीं ले सकती हैं।

(16) जहां तक इस तर्क का संबंध है कि राज्य सरकार के पास याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को दी गई एनओसी को रद्द करने का कोई अधिकार नहीं है, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने यू.पी. प्राविधिक शिक्षा अधिनियम, 1962 की धारा 14 के अवलोकन से यह पता चलता है कि ऐसे मामलों में राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली व्यापक शक्ति और नियंत्रण के संबंध में कोई अस्पष्टता नहीं है। इस प्रकार, उनके अनुसार, याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में कोई बल नहीं है और राज्य सरकार द्वारा की गई कार्रवाई पूरी तरह से न्यायोचित है।

#### घ. विश्लेषण

(17) पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखते हुए और उपर्युक्त रिट याचिकाओं में इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का अध्ययन करने पर, इस न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त रिट याचिकाओं में निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उभरते हैं:-

“(क) क्या राज्य सरकार या बोर्ड के पास संस्थान को डी. फार्मा पाठ्यक्रम चलाने के लिए उनके द्वारा पहले दी गई एनओसी को रद्द करने की शक्ति है?

(ख) क्या राज्य सरकार के दिनांक 17.05.2023 के निर्णय पर बोर्ड के सचिव द्वारा जारी दिनांक 18.05.2023 का आक्षेपित पत्र, जिसमें याचिकाकर्ताओं/संस्था को दी

गई एनओसी को रद्द किया गया है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है।”

(18) यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपर्युक्त रिट याचिकाओं में सन्निहित प्रश्न संख्या (क) का उत्तर देते समय, सबसे पहले, इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या फार्मेसी अधिनियम को फार्मेसी के क्षेत्र में विशेष प्रावधानों वाला एक विशेष अधिनियम कहा जा सकता है या नहीं? इस संबंध में, यह न्यायालय फार्मेसी अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन को प्रस्तुत करना उपयुक्त समझता है, जो इस प्रकार है:

“यह वांछनीय है कि, अधिकांश अन्य देशों की तरह, केवल उन व्यक्तियों को फार्मेसी के पेशे का अभ्यास करने की अनुमति दी जानी चाहिए जिन्होंने पेशेवर शिक्षा का न्यूनतम मानक प्राप्त किया हो। तदनुसार, एक केंद्रीय फार्मेसी परिषद की स्थापना का प्रस्ताव है, जो शिक्षा के न्यूनतम मानकों को निर्धारित करेगी और फार्मासिस्टों के लिए अध्ययन और परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों को स्वीकृति देगी, और प्रांतीय फार्मेसी परिषदें, योग्य फार्मासिस्टों के प्रांतीय रजिस्ट्रारों के रखरखाव के लिए जिम्मेदार होंगी। इसके अलावा, प्रांतीय सरकारों को किसी पंजीकृत फार्मासिस्ट द्वारा या उसके प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण के अलावा किसी अन्य चिकित्सक के पर्चे पर दवा के वितरण



पर रोक लगाने का अधिकार देने का प्रस्ताव है।”

(19) फार्मसी अधिनियम, 1948 की प्रस्तावना के अनुसार, फार्मसी अधिनियम, फार्मसी के पेशे और अभ्यास के विनियमन के लिए बेहतर प्रावधान करने और उस उद्देश्य के लिए फार्मसी परिषदों का गठन करने के लिए अधिनियमित किया गया है। फार्मसी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के अवलोकन पर यह न्यायालय पाता है कि इसमें फार्मसी शिक्षा के सभी पहलुओं को शामिल किया गया है, जिसमें पाठ्यक्रमों की स्वीकृति, पाठ्यक्रम सामग्री निर्धारित करना, छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए पात्रता की शर्तें, परीक्षा के मानकों का मूल्यांकन, पंजीकरण प्रदान करना, उच्च योग्यता का प्रवेश, किसी भी कुख्यात आचरण के लिए कार्रवाई करना आदि शामिल हैं। फार्मसी अधिनियम, 1948 में प्रासंगिक प्रावधान धारा 10, 12, 13, 16, 29, 32, 35, 36 और 42 हैं।

(20) फार्मसी अधिनियम की धारा 10 पीसीआई को फार्मासिस्ट के रूप में योग्यता के लिए आवश्यक शिक्षा के न्यूनतम मानक को निर्धारित करने वाले शिक्षा विनियम तैयार करने का अधिकार देती है। धारा 10 की उपधारा (2) के अनुसार, ऐसे शिक्षा विनियम निम्नलिखित निर्धारित कर सकते हैं: -

"क) अध्ययन की प्रकृति और अवधि तथा परीक्षा में प्रवेश से पहले किए जाने वाले व्यावहारिक प्रशिक्षण;

ख) अनुमोदित अध्ययन पाठ्यक्रमों में भाग लेने वाले छात्रों के लिए उपलब्ध कराए जाने वाले उपकरण और सुविधाएं;

ग) परीक्षा के विषय और उनमें प्राप्त किए जाने वाले मानक;

घ) परीक्षाओं में प्रवेश की अन्य शर्तें।”

(21) फार्मसी अधिनियम की धारा 12 के अनुसार, किसी राज्य में कोई भी "प्राधिकरण" जिसे फार्मसी में अध्ययन का पाठ्यक्रम संचालित करने का अधिकार है, शिक्षा विनियमों के अनुसार पाठ्यक्रम के अनुमोदन के लिए केंद्रीय परिषद को आवेदन कर सकता है। इसी तरह, कोई भी प्राधिकरण, जो किसी राज्य में फार्मसी के लिए परीक्षा आयोजित करता है, ऐसी परीक्षा के अनुमोदन के लिए पीसीआई को आवेदन कर सकता है। एक छात्र, जिसने एक अनुमोदित पाठ्यक्रम उत्तीर्ण/पूरा कर लिया है और एक अनुमोदित परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, उसे केवल अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के अधीन फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है। फार्मसी अधिनियम की धारा 13, केंद्रीय परिषद को निर्धारित मानदंडों का पालन करने में विफलता के लिए 'अध्ययन के पाठ्यक्रम' और 'परीक्षा' को दी गई मंजूरी वापस लेने का अधिकार देती है। फार्मसी अधिनियम की धारा 16 कार्यकारी समिति को किसी भी संस्थान जो अध्ययन का एक अनुमोदित पाठ्यक्रम प्रदान करती है या जो संस्थान अध्ययन या परीक्षा के पाठ्यक्रम की मंजूरी के लिए आवेदन करते हैं, का निरीक्षण करने के लिए निरीक्षकों को नियुक्त करने का

अधिकार देती है। धारा 29 फार्मासिस्टों के रजिस्टर की तैयारी और रखरखाव से संबंधित है। धारा 35 किसी भी पंजीकृत फार्मासिस्ट के संबंध में रजिस्टर में अतिरिक्त योग्यताओं की प्रविष्टि के लिए प्रदान करती है। धारा 36 किसी भी व्यक्ति को रजिस्टर से स्थायी रूप से या अस्थायी अवधि के लिए हटाने का प्रावधान करती है। फार्मेसी अधिनियम की धारा 42 के अनुसार, कोई व्यक्ति फार्मेसी के पेशे का अभ्यास नहीं कर सकता है जब तक कि वह फार्मेसी अधिनियम के अनुसार फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकृत न हो। धारा 42 की उपधारा (2) एक दंडात्मक प्रावधान है, जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति जो पंजीकृत फार्मासिस्ट नहीं है और धारा 42 की उपधारा (1) का उल्लंघन करता है, उसे छह महीने तक की कैद या एक हजार रुपये से अधिक का जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

(22) इस समय, यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि पीसीआई ने फार्मेसी अधिनियम में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, शिक्षा के न्यूनतम मानकों को निर्धारित करने के साथ-साथ भारत में फार्मेसी के विषय को विनियमित करने के लिए कई विनियम तैयार किए हैं, जिनमें हैं:-

- “ क. शिक्षा विनियम, 1991;
- ख. फार्म.डी. विनियम, 2008;
- ग. फार्मेसी संस्थानों में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता विनियम, 2014;

- घ. फार्मेसी स्नातक (बी.फार्मा) पाठ्यक्रम विनियम, 2014;
- ड. फार्मेसी स्नातकोत्तर (एम.फार्मा) पाठ्यक्रम विनियम, 2014;
- च. फार्मेसी स्नातक (अभ्यास) विनियम, 2014;
- छ. फार्मेसी अभ्यास विनियम, 2015

(23) इस प्रकार, फार्मेसी अधिनियम, 1948 के विभिन्न प्रावधानों और उसमें बनाए गए विनियमों पर विचार करते हुए, यह कहा जा सकता है कि फार्मेसी अधिनियम फार्मेसी के विषय में अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। पीसीआई का गठन भारत में फार्मेसी की शिक्षा और पेशे को विनियमित करने के लिए सशक्त निकाय के रूप में किया गया है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि फार्मेसी का विषय एक विशेष विषय है, न कि सामान्य विषय।

(24) फार्मेसी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों से, विशेष रूप से, ऊपर उल्लिखित प्रावधानों से, फार्मेसी अधिनियम विशेष रूप से पाठ्यक्रमों की स्वीकृति, पाठ्यक्रम सामग्री निर्धारित करना, छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए पात्रता की शर्तें, परीक्षा के मूल्यांकन मानक, पंजीकरण प्रदान करना, उसी विषय में उच्च योग्यता का प्रवेश, कुख्यात आचरण के लिए कार्रवाई करना आदि सभी क्षेत्रों को कवर करता है। इसमें दंडात्मक प्रावधान भी है। इस प्रकार, फार्मेसी अधिनियम को लागू करने में विधायी मंशा यह सुनिश्चित करना प्रतीत होती है कि पेशे का निर्बाध विनियमन हो।

(25) फार्मैसी अधिनियम को लागू करने के उद्देश्य और प्रयोजन को पूरा करने के लिए, विधानमंडल ने संविधि के अंतर्गत स्वायत्त वैधानिक प्राधिकरण यानी फार्मैसी काउंसिल ऑफ इंडिया की स्थापना की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि फार्मैसी के क्षेत्र में, फार्मैसी अधिनियम एक विशेष कानून है।

(26) इसमें यह जोड़ना भी प्रासंगिक होगा कि फार्मैसी काउंसिल ऑफ इंडिया के अंतर्गत केंद्रीय परिषद का गठन और संरचना निम्नानुसार है:

**“3. केन्द्रीय परिषद का गठन और संरचना.**-केन्द्र सरकार यथाशीघ्र एक केन्द्रीय परिषद का गठन करेगी, जिसमें निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात्:-

(क) छः सदस्य, जिनमें से प्रत्येक विषय, औषधि रसायन, फार्मैसी, औषध विज्ञान और औषध विज्ञान का कम से कम एक शिक्षक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किसी भारतीय विश्वविद्यालय या उससे सम्बद्ध महाविद्यालय के शिक्षण स्टाफ में से चुना जाएगा, जो फार्मैसी में डिग्री या डिप्लोमा प्रदान करता है;

(ख) छः सदस्य, जिनमें से कम से कम चार केन्द्र सरकार द्वारा नामित फार्मैसी या औषधि रसायन में डिग्री

या डिप्लोमा रखने वाले और अभ्यास करने वाले व्यक्ति होंगे;

(ग) भारतीय चिकित्सा परिषद के सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया एक सदस्य।

(घ) महानिदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं, पदेन या यदि वह किसी बैठक में उपस्थित होने में असमर्थ है, तो ऐसा करने के लिए उसके द्वारा लिखित रूप से अधिकृत व्यक्ति; औषधि नियंत्रक, भारत, पदेन या यदि वह किसी बैठक में उपस्थित होने में असमर्थ है, तो ऐसा करने के लिए उसके द्वारा लिखित रूप से अधिकृत व्यक्ति;

(ई) केन्द्रीय औषधि प्रयोगशाला का निदेशक, पदेन;

(एफ) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का एक प्रतिनिधि और अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद का एक प्रतिनिधि;

(छ) प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रत्येक राज्य परिषद के सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित एक सदस्य, जो पंजीकृत फार्मासिस्ट होगा;

(ज) प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए राज्य सरकार द्वारा

नामित एक सदस्य, जो पंजीकृत फार्मासिस्ट होगा।”

(27) इसलिए, पी.सी.आई. में फार्मसी के क्षेत्र और फार्मसी की शिक्षा से जुड़े संबंधित विषयों के विशेषज्ञ शामिल हैं। इसलिए, कानून के अंतर्गत, फार्मास्यूटिकल, फार्मसी आदि के क्षेत्र में विशेषज्ञ व्यक्ति पी.सी.आई. के सदस्य होंगे।

(28) दूसरी ओर, जहाँ तक यू.पी. प्रविधिक शिक्षा अधिनियम, 1962 का संबंध है, यह स्पष्ट करता है कि राज्य सरकार को बोर्ड द्वारा किए गए या संचालित किसी भी कार्य या बोर्ड से संबंधित किसी भी मामले के संबंध में बोर्ड को अपने विचार संप्रेषित करने की शक्ति है और बोर्ड इसके बाद राज्य सरकार को उसके संबंध में की गई या की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई की रिपोर्ट करेगा। इसका यह अर्थ नहीं लगता है कि बोर्ड, राज्य सरकार के विचार/राय पर, फार्मसी अधिनियम, 1948 के अंतर्गत परिकल्पित शक्ति का प्रयोग कर सकता है क्योंकि पीसीआई फार्मसी और संबंधित विषयों से जुड़े विशेषज्ञों का निकाय है और इसलिए यह व्यापक हित में होगा और विशेष रूप से फार्मसी की शिक्षा के हित में कि राज्य सरकार या बोर्ड के बजाय पीसीआई को ही फार्मसी के क्षेत्र में अधिकार क्षेत्र प्राप्त होगा। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि फार्मसी अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत गठित पीसीआई, जिसमें फार्मसी और/या संबंधित विषयों के विशेषज्ञ शामिल हैं, प्राधान्य होगी। परिणामस्वरूप, फार्मसी अधिनियम के अंतर्गत पीसीआई और अन्य निर्दिष्ट प्राधिकरणों द्वारा निर्धारित मानदंडों और

नियमों का डी. फार्मा के लिए शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थान को पालन करना होगा। यह न्यायालय **तमिलनाडु राज्य बनाम अधियामन शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान एवं अन्य:** (1995) 4 एससीसी 104 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से प्राप्त उपरोक्त सादृश्य में समर्थन पाता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय एक इंजीनियरिंग कॉलेज के मामले पर विचार कर रहा था और यह निर्धारित कर रहा था कि अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1987 (एक “केंद्रीय अधिनियम”) के लागू होने के बाद क्या राज्य सरकार के पास केंद्रीय अधिनियम में परिभाषित प्राविधिक संस्थान शुरू करने की अनुमति देने और वापस लेने का अधिकार है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिन्दु पर विस्तृत चर्चा के बाद और प्रचलित केंद्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम के साथ-साथ भारत के संविधान के प्रावधानों की तुलना करने के बाद यह पाया कि इंजीनियरिंग कॉलेज का निरीक्षण करने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति निरर्थक थी।

(29) इसी प्रकार, **महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ज्ञानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय और अन्य:** (2006) 9 एससीसी 1 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यही सिद्धांत दोहराया गया है जिसमें यह माना गया है कि राज्य सरकार के लिए उक्त क्षेत्र में अतिक्रमण करना उपलब्ध नहीं है। हालांकि, **संत ज्ञानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय:** (2006) 9 एससीसी 1 में, सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि राज्य सरकार की कोई भी भूमिका नहीं है। हालांकि, **भरतिया एजुकेशन**

**सोसाइटी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य:** (2011)

4 एससीसी 527 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि राज्य सरकार की भूमिका एनसीटीई द्वारा निर्धारित मान्यता की शर्तों में हस्तक्षेप किए बिना प्रवेश के तरीके, पात्रता मानदंड आदि तक सीमित थी। राज्य सरकार और संबद्ध निकाय द्वारा विवेक का प्रयोग अधिनियम, विनियमों और मान्यता की शर्तों के ढांचे के भीतर होना चाहिए। **सेंट जॉन्स टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट बनाम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद** : (2003) 3 एससीसी 321 में भी सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि राज्य सरकार या केंद्र शासित प्रदेश को “अनापत्ति प्रमाण पत्र” देने के लिए आवेदन पर विचार करते समय एनसीटीई द्वारा जारी दिशा-निर्देशों तक ही सीमित रहना होगा।

(30) इसके अलावा, **महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ज्ञानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय और अन्य**: (2013) 2 एससीसी 617 में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 के अंतर्गत राज्य सरकार के संबंध में एनसीटीई की शक्ति की जांच की और पैराग्राफ संख्या 78 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:

“78. अब, हम मामले के इसी बिन्दु के दूसरे पहलू पर विचार कर सकते हैं। यह एक बहुत ही प्रासंगिक मुद्दा है कि संबद्धता प्रदान करने वाली संस्था द्वारा संबद्धता प्रदान किए जाने के बाद राज्य की भूमिका क्या होनी चाहिए। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि विश्वविद्यालय अधिनियम

की धारा 37 के अंतर्गत परिकल्पित राज्य की राय, जहाँ तक यह अतिक्रमण को स्वीकार करती है, सुलह योग्य है और इसके परिणाम एनसीटीई के निर्देशों के प्रति इसके उन्मुखीकरण में नहीं हैं, वे उस सीमा तक शून्य और निष्क्रिय हैं, जहाँ तक उन्हें हल किया जा सकता है, ऐसे मामले में ऐसे समाधान के दौरान एनसीटीई के निर्देशों को स्पष्ट प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसलिए, राज्य की राय को इस अर्थ में पढ़ा और समझा जाना चाहिए कि वह एनसीटीई द्वारा निर्धारित कारकों को बरकरार रखेगी और फिर संबद्धता प्रदान करने के मामले की जाँच करेगी। इस चरण में राज्य सरकार की भूमिका न्यूनतम हो जाती है, जो वास्तव में दूसरा चरण है। संबद्धता देने या न देने का निर्णय मुख्य रूप से विश्वविद्यालय को करना चाहिए तथा राज्य की भूमिका न्यूनतम, हस्तक्षेप न करने वाली तथा उल्लंघन न करने वाली होनी चाहिए।

(31) इस प्रकार, राज्य सरकार या बोर्ड, अधिक से अधिक, पीसीआई को विचार/राय/रिपोर्ट दे सकता है तथा ऐसी स्थिति में, पीसीआई केवल वैधानिक प्राधिकरण है, जो राज्य सरकार या बोर्ड की रिपोर्ट पर निर्णय ले सकता है। इस प्रकार, उपर्युक्त प्रश्न संख्या (क) का उत्तर याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के पक्ष में दिया जाता है कि राज्य सरकार या बोर्ड को पूर्व में दी गई एनओसी को रद्द करने का कोई अधिकार नहीं

है, क्योंकि एनओसी को रद्द करने का अधिकार पीसीआई के पास है।

(32) अब, जहां तक प्रश्न संख्या (ख) का संबंध है, स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा संबोधित तर्क का आधार यह है कि दिनांक 18.05.2023 का आक्षेपित पत्र प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना पारित किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं को न तो कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और न ही बोर्ड द्वारा उन्हें दी गई एनओसी को रद्द करने से पहले उन्हें कोई अवसर दिया गया। आक्षेपित पत्र को चुनौती देते हुए विद्वान अधिवक्ताओं ने आगे तर्क दिया है कि उक्त आदेश बिल्कुल बेबुनियाद है क्योंकि बोर्ड द्वारा एनओसी को रद्द करने के लिए आक्षेपित आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया है।

(33) यह स्थापित कानून है कि सामान्य कानून के अंतर्गत विकसित प्राकृतिक न्याय का अंतर्निहित सिद्धांत राज्य या उसके पदाधिकारियों द्वारा सत्ता के मनमाने प्रयोग को रोकना है। इसलिए, सिद्धांत निष्पक्ष रूप से कार्य करने के कर्तव्य को दर्शाता है यानी कार्रवाई में निष्पक्षता। इसके अलावा, किसी व्यक्ति के व्यावहारिक अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने से पहले, राज्य को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक है।

(34) फार्मसी के लिए नए संस्थान खोलने की योजना के अनुसार, राज्य सरकार से एनओसी

लेना अनिवार्य है। जाहिर है, रिट याचिकाओं के मौजूदा समूह में, समय की कमी के कारण, राज्य सरकार ने संबंधित संस्थान द्वारा दिए गए स्व-घोषणा हलफनामे के आधार पर एनओसी जारी करने का अनुरोध किया है, जो इसके सत्यापन के अधीन था। बेशक, राज्य सरकार ने पहले चरण में मौजूदा बुनियादी ढांचे का फिर से सत्यापन किया और कोई विसंगति नहीं पाई। यह केवल राज्य सरकार द्वारा गठित एक समिति के औचक निरीक्षण पर था, कि कुछ विसंगति पाई गई और याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को पहले दी गई एनओसी को 18.05.2023 के आक्षेपित पत्र के माध्यम से तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

“प्रेषक,  
सचिव,  
प्राविधिक शिक्षा परिषद,  
उत्तर प्रदेश लखनऊ।  
सेवा में,  
अध्यक्षसचिव/  
अमरनाथ महाविद्यालय समिति  
सीमऊ औरास उन्नाव,  
संस्था का नाम -अमरनाथ कालेज  
ऑफ फार्मसी ग्राम सीमऊ, औरास  
उन्नाव उ०प्र०  
पत्रांक:/परिषद/प्राशिप -2023/50/412  
लखनऊ:-दिनांक -18-5-23  
विषय: सत्र -2022-23 हेतु संस्थान  
को निर्गत अनापत्ति प्रमाण पत्र निरस्त  
किये जाने के संबंध में। पी.सी.आई.  
महोदय,  
उपरोक्त विषयक फार्मसी काउन्सिल

ऑफ इण्डिया (पी.सी.आई) के पत्रांक 14-56/2022 (Approval Process for 2022-2023 as)/11942- 46, Online Application for 2021-2022 (DS) Online Application for 2021-2022 (AS) दिनांक -03-07-2022, 14-56/2022 (Approval Process for 2022-2023as/(1261-63 Online Application for 2022-2023 (DS) Online Application for 2022-2023 (AS) दिनांक 04-08- 2022 एवं 14-56/2022-PCI(B)(Moratorium)/ 13220-22,14-56/2022 (Approval Process for 2022-23 as) (New Insit) Online Application for 2021-2022 (DS), Online Application for 2022-2023 (AS) दिनांक 30 अगस्त 2022 को संदर्भित करने का कष्ट करें, जिसके अनुक्रम में सत्र 2022-23 हेतु डिप्लोमा इन फार्मैसी पाठ्यक्रम संचालित किये जाने हेतु आप द्वारा सहमतिअनापति / निर्गत किये जाने के संबंध में अनुरोध किया गया।

शासनादेश संख्या 261/सोलह-3-2022-16-3099/9/2022 टीसी-1 दिनांक 14-07-2022, 288/ सोलह-3-2022-16-3099/9/2022 टीसी-1 दिनांक 08 अगस्त 2022 एवं 317/ सोलह-3-2022-16-3099/9/2022 टीसी -1 दिनांक 05 सितम्बर 2022 द्वारा दिए गए निर्देशों एवं राज्य स्तरीय

समिति द्वारा दी गयी संस्तुति के आधार पर संस्थान को सहमति/अनापति पत्र रु० 100/- का इस आशय का शपथपत्र प्राप्त करते हुए निर्गत की गयी थी की आवेदक " संस्थान द्वारा यदि दी गयी जानकारी दस्तावेज फर्जी/एवं अभिलेख, कूटरचित अथवा त्रुटिपूर्ण पाए जाते हैं तो उनके विरुद्ध परिषद द्वारा नियमानुसार कानून संगत कार्यवाही की जाएगी। ऐसी की गयी विधिक कार्यवाही हेतु संस्तान स्वयं उत्तरदायी होंगे।"

मा० मुख्यमंत्री कार्यालय के पत्र संख्या 647/ACS/CM/23 दिनांक 18-04-2023 द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुक्रम में डी०फार्मा० पाठ्यक्रम प्रारंभ करने हेतु निर्गत की गई एन०ओ०सी० की जाँच संबंधित जनपद के जिलाधिकारी द्वारा करायी गयी। जिलाधिकारी द्वारा उपलब्ध कराई गयी जाँच आख्या के परीक्षणोंपरांत जिलाधिकारी स्तर से आपके संस्थान को असंस्तुति (Not Recommended) प्रदान की गयी है। जिलाधिकारी द्वारा उपलब्ध कराई गई जांच आख्या एवं तत्क्रम में शासन के पत्र संख्या 313/16-3099/9/2022- Part-(2) दिनांक 17-05-2023 द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुक्रम में आपके संस्थान को सत्र 2022-23 हेतु निर्गत प्रमाण पत्र तत्काल प्रभाव से निरस्त की जाती है।

भवदीय

(एफ०आर०खान)

सचिव"

(35) उक्त आक्षेपित पत्र को पढ़ने मात्र से पता चलता है कि जिस प्रकार राज्य सरकार/बोर्ड द्वारा आक्षेपित कार्रवाई की गई है, वह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है, क्योंकि आक्षेपित पत्र सिविल परिणामों को जन्म देता है, क्योंकि राज्य सरकार के निर्देश पर जिला अधिकारियों ने इन फार्मसी संस्थानों का औचक निरीक्षण किया है तथा इन संस्थानों में पाई गई विसंगतियों/कमियों की निरीक्षण रिपोर्ट भी राज्य सरकार को प्रस्तुत की है तथा उक्त रिपोर्ट के आधार पर राज्य सरकार ने इन संस्थानों को पूर्व में दी गई एनओसी को रद्द करने का निर्णय लिया है तथा तत्पश्चात् राज्य सरकार के निर्णय पर बोर्ड ने याचिकाकर्ताओं/संस्था की एनओसी को रद्द करते हुए आक्षेपित पत्र जारी किया है, तथापि याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं को इन संस्थानों की एनओसी को रद्द करने की आक्षेपित कार्रवाई करने से पूर्व उक्त विसंगतियों/कमियों के संबंध में अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं दिया गया है।

(36) इस प्रकार, इस न्यायालय का यह मत है कि चूंकि राज्य/बोर्ड द्वारा इन संस्थाओं को न तो कोई कारण बताओ नोटिस दिया गया है और न ही स्पष्टीकरण का कोई अवसर दिया गया है और उनके द्वारा बिना कोई कारण बताए अनापत्ति प्रमाण पत्र रद्द करने के लिए यांत्रिक रूप से आक्षेपित पत्र जारी किया गया है, इसलिए आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में

बनेरहने योग्य नहीं है। **उमानाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य:** (2009) 12 एससीसी 40 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कारण बताओ नोटिस के महत्व को दोहराते हुए निम्नानुसार कहा गया है:

*“नोटिस इस सिद्धांत का पहला अंग है। यह सटीक और स्पष्ट होना चाहिए। यह पक्षकार को उस मामले के बारे में निर्णायक रूप से अवगत कराना चाहिए जिसका उसे सामना करना है। इस उद्देश्य के लिए दिया गया समय पर्याप्त होना चाहिए ताकि वह अपना प्रतिनिधित्व कर सके। इस तरह के नोटिस और ऐसे उचित अवसर के अभाव में, पारित आदेश पूरी तरह से निष्प्रभावी हो जाता है। इस प्रकार, यह आवश्यक है कि किसी पक्षकार को उसके खिलाफ कोई भी प्रतिकूल आदेश पारित करने से पहले मामले के बारे में सूचित किया जाना चाहिए।”*

(37) यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि यदि राज्य/बोर्ड द्वारा इन संस्थानों को कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया होता, तो मामला वहीं समाप्त हो जाता, क्योंकि अधिकांश मामलों में, इन याचिकाकर्ताओं के पास राज्य/बोर्ड द्वारा बताई गई कमी के लिए एक उचित उत्तर/तर्क है। किसी भी मामले में, कानून में यह सुस्थापित है कि जिस पक्ष के विरुद्ध कोई आदेश पारित होने वाला है, वह सुनवाई का हकदार है, यह बात उन अधिकारियों पर भी लागू होती है, जो सिविल परिणामों से जुड़े मामलों पर निर्णय लेते हैं।



(38) समाप्त करने से पहले, यह न्यायालय यह कहना चाहता है कि फार्मसी कॉलेजों की बढ़ती संख्या को रोकने के लिए वास्तव में कुछ प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता हो सकती है। ऐसे प्रतिबंध व्यापक सामान्य सार्वजनिक हित में हो सकते हैं। हालाँकि, यदि ऐसा करना है, तो इसे कानून के अनुसार सख्ती से किया जाना चाहिए, न कि उस तरीके से जिसे राज्य सरकार द्वारा अपनाने की अपेक्षा की गई है। किसी भी मामले में, यदि और जब, ऐसे प्रतिबंध सक्षम अधिकारी द्वारा लगाए जाते हैं, तो उनकी वैधता की हमेशा कानून की कसौटी पर जांच की जा सकती है।

(39) यह भी ध्यान देने योग्य है कि डी. फार्मा या बी. फार्मा पाठ्यक्रमों के लिए अनुमोदन चाहने वाले आवेदनों के साथ राज्य सरकार से “अनापत्ति प्रमाण पत्र” (“एनओसी”) और संबद्ध निकायों यानी पीसीआई से संबद्धता की सहमति की आवश्यकता होती है। ऐसे आवेदनों की जांच करते समय, परिषद ऐसे आवेदनों को अनुमति देने या अस्वीकार करने का निर्णय लेने से पहले राज्य सरकार की आपत्ति/टिप्पणी, यदि कोई हो, सहित विभिन्न कारकों को ध्यान में रख सकती है।

### ड. निष्कर्ष

(40) उपर्युक्त सभी कारणों से, उक्त रिट याचिकाओं का निस्तारण निम्नलिखित निर्देशों के साथ किया जाता है:-

i. बोर्ड के सचिव द्वारा जारी आक्षेपित पत्र दिनांक 18.05.2023

तथा आक्षेपित पत्र दिनांक 18.05.2023 के संदर्भ में परिणामी आदेश, यदि कोई हो, को एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

ii. राज्य सरकार/बोर्ड को इस बिन्दु पर, यदि वह चाहे तो, कानून के अनुसार कार्रवाई करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

iii. यदि राज्य सरकार/बोर्ड याचिकाकर्ताओं/संस्थाओं के संबंध में कोई बिन्दु पीसीआई को संदर्भित करता है, तो यह न्यायालय आशा और विश्वास करता है कि पीसीआई पीड़ित व्यक्ति(यों) को शीघ्रता से अवसर प्रदान करने के पश्चात, कानून के अनुसार उस पर विचार करने और निर्णय लेने का गंभीर प्रयास करेगा।

(41) उपरोक्त अंतिम आदेश के अनुसार सभी लंबित आवेदनों का भी निस्तारण किया जाता है।

(42) कहने की जरूरत नहीं है कि इस न्यायालय ने किसी भी व्यक्तिगत मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है, जो उनके अपने व्यक्तिगत तथ्यों और परिस्थितियों द्वारा निर्देशित होगी।

(43) व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 299

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति न्यायाधीश मुनीर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 22 वर्ष  
2001

नवनीत नैन उर्फ नवनीत अग्रवाल ...अपीलार्थी

बनाम

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक

अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री आर.के. पोरवाल

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री अरविंद कुमार

सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम,

1988 - धारा 161(3)(ए) - दावेदार की

अपील - मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण

के एक निर्णय और अधिनिर्णय से उत्पन्न -

जिसके द्वारा न्यायाधिकरण ने दावा

याचिका को खारिज कर दिया - दुर्घटना

कार के चालक की लापरवाही से ड्राइविंग के

कारण हुई थी - दावेदार को कई बार

अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उसे

70% की स्थायी विकलांगता का सामना

करना पड़ा, जिसमें आर्गनिक मस्तिष्क क्षति

और स्मृति की हानि शामिल है और इससे

उसे महत्वपूर्ण वित्तीय और व्यक्तिगत क्षति

हुआ - दावा याचिका - आर्थिक और

सामान्य क्षति के लिए 27,89,100/- रुपये का दावा - दोषी कार के मालिक ने दुर्घटना को अस्वीकार नहीं किया लेकिन दावा किया कि यह दावेदार की लापरवाही के कारण हुआ था - बीमा कंपनी ने भी इस आधार पर दावेदार के मामले को अस्वीकार किया कि दावेदार और मालिक ने बीमा लाभों का दावा करने के लिए दुर्घटना को गढ़ने के लिए मिलीभगत की थी - न्यायाधिकरण ने दुर्घटना के कारण और ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता सहित कई विचारबिंदु तैयार किए - दावा याचिका को खारिज कर दिया - साक्ष्य का मूल्यांकन - न्यायालय ने न्यायाधिकरण के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की, यह नोट करते हुए कि घटनाक्रम के दावेदार के अभिकथन साक्ष्य से समर्थित नहीं थे - अभिनिर्धारित हुआ, अभिलेख पर कुछ भी नहीं है यह प्रदर्शित करने के लिए कि यह 'हिट एंड रन' का मामला भी है- इसलिए, इस अपील में कोई बल नहीं है - तदनुसार, विफल हो जाता है और खारिज कर दिया जाता है - और अभिलेख जिला न्यायाधीश को वापस भेज दिए गए। (पैरा - 33, 34, 35)

अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. रवि बनाम बद्रीनारायण एवं अन्य, (2011) 4 एससीसी 693
2. सरोज एवं अन्य बनाम हेत लाल एवं अन्य, (2011) 1 एससीसी 388

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. यह दावेदार की अपील है, जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/9वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इटावा के दिनांक 31.08.2000 के निर्णय और अधिनिर्णय से उत्पन्न हुई है, जिसमें दावा याचिका को खारिज कर दिया गया था।

2. 6 जुलाई, 1994 को रात लगभग 8:15 बजे, कानपुर के निवासी नवनीत नैन उर्फ नवनीत अग्रवाल, उस शहर के एक ठेकेदार ओबेरॉय से मिलने गए। नवनीत नैन अपनी मोटरसाइकिल, पंजीकरण संख्या यूपी-75/1227 से गंतव्य तक गए। वह 111/155, हर्ष नगर, वीआईपी रोड, कानपुर स्थित घर लौट रहे थे। नैन अपनी मोटरसाइकिल पर सवार होकर वीआईपी रोड पर एक जी.सी. के गेट पर पहुंचा था। कॉलोनी, पुलिस स्टेशन कैट से दो किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित है। एक कार, जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर डीडीक्यू-8855 है, मौके पर आई और उसने मोटरसाइकिल को जोरदार टक्कर मार दी। चार पहिया वाहन की टक्कर से सवार नीचे गिर गया। उन्हें फ्रैक्चर और सिर की चोट सहित गंभीर चोटें आईं। नैन की मोटरसाइकिल भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। नवनीत नैन का मामला यह है कि जब दुर्घटना हुई तो वह अपनी मोटरसाइकिल सड़क के बाईं ओर रखकर मध्यम गति से चला रहे थे। हमलावर कार को उसके चालक द्वारा लापरवाही से और उचित देखभाल और सावधानी के बिना तेज गति से चलाया गया था। दरअसल, इसे लापरवाही से चलाया गया था। हमलावर कार के चालक ने सड़क के गलत

दिशा में जाकर खराब मोटरसाइकिल को टक्कर मार दी। जिस स्थान पर दुर्घटना हुई, वहां सड़क इतनी चौड़ी थी कि दोनों वाहन सुरक्षित निकल सकें और दुर्घटना के समय वहां कोई यातायात नहीं था। हमलावर कार के चालक के पास अपनी दाहिनी ओर जाने और नैन की मोटरसाइकिल को टक्कर मारने का कोई अवसर नहीं था। नैन के मुताबिक, यह दुर्घटना पूरी तरह से दोषी कार चालक की लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई। अगर कार चालक सावधान और सतर्क रहता तो हादसा कभी नहीं होता। ऐसा कहा जाता है कि ड्राइवर ने आगे सड़क पर ध्यान नहीं दिया। हमलावर कार का चालक देखभाल, सावधानी और नियंत्रण की डिग्री का पालन करने में विफल रहा, जो उसकी ओर से परिस्थितियों में अनिवार्य था। हादसे के बाद नैन को के.पी.एम. पहुंचाया गया। हेड कांस्टेबल गणेश प्रसाद द्वारा अस्पताल, जहां उनकी जांच की गई और भर्ती कराया गया।

3. नैन 07.07.1994 तक के.पी.एम. अस्पताल में भर्ती रहे। चूंकि वह बेहोश था, इसलिए उसकी पहचान स्थापित नहीं की जा सकी। उनकी पहचान 07.07.1994 को स्थापित की गई थी, जिसके बाद उन्हें एल.एल.आर. अस्पताल, कानपुर रेफर कर दिया गया था। बेहतर उपचार सुनिश्चित करने के लिए, उन्हें 07.07.1994 को मधुराज नर्सिंग होम (पी) लिमिटेड, 113/121-ए, स्वरूप नगर, कानपुर में स्थानांतरित कर दिया गया और वहां भर्ती कराया गया। वह 07.07.1994 से 08.08.1994 तक मधुराज नर्सिंग होम में एक इनडोर रोगी रहे। नैन को 08.08.1994 को

रीजेंसी अस्पताल में स्थानांतरित कर दिया गया और 02.09.1994 को उस अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। जब तक दावा याचिका दायर नहीं की गई थी, तब तक वह बिस्तर पर थे और उनकी हालत गंभीर थी। उनके मामले के अनुसार, नैन तीव्र मानसिक सदमे, दर्द और पीड़ा से गुजर रहा था। उन्हें 70% की सीमा तक स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है, जो कार्बनिक मस्तिष्क क्षति का मामला है। दुर्घटना ने नैन को अपने मस्तिष्क में एक स्थायी दुर्बलता के साथ छोड़ दिया है जिसके परिणामस्वरूप स्मृति का नुकसान भी हुआ है। दुर्घटना के कारण नैन ने पूरी तरह से एक ठेकेदार के रूप में काम करने की अपनी क्षमता खो दी। इसके परिणामस्वरूप सिरदर्द और ध्यान की हानि के अलावा स्मृति की हानि हुई है। वह लगभग अपंग है। नैन के अनुसार, वह हमेशा के लिए बर्बाद हो जाता है और उसका भविष्य खो जाता है। यह कमाई के कुल नुकसान का मामला होने का आग्रह किया जाता है क्योंकि नैन को ठेकेदार के रूप में काम करने के लिए अयोग्य बना दिया गया है। यह भी उसका मामला है कि उसके शारीरिक कार्यों से वंचित होने के कारण, उसे बहुत असुविधा और नुकसान हुआ है, जिसका सामना वह जीवन भर अपनी दिनचर्या में करेगा। चोटों के कारण नैन को शरीर, मन और वित्त में बहुत नुकसान उठाना पड़ा है।

4. नैन द्वारा विशेष रूप से यह अनुरोध किया जाता है कि बिस्तर पर होने के कारण, वह किसी ठेकेदार का दौरा, पर्यवेक्षण या काम नहीं कर सकता है। उसे जीवन के सुखों से वंचित कर दिया गया है। वह पूरे समय एक दुखी

जीवन जी रहा होगा। उन्होंने पर्याप्त राशि खर्च की है और भविष्य के उपचार को सुरक्षित करने के लिए इसमें से बहुत कुछ की आवश्यकता होगी। दुर्घटनाग्रस्त मोटरसाइकिल भी क्षतिग्रस्त हो गई। नैन के मामले के अनुसार, दुर्घटना से पहले, वह एक ठेकेदार के रूप में काम कर रहा था, गोपी इंजीनियरिंग एंड कॉन्ट्रैक्टर्स के नाम और शैली के तहत अपने व्यवसाय को आगे बढ़ा रहा था। आकलन वर्ष 1992-93 के दौरान, उनकी वार्षिक आय 96,380/- रुपये थी, जिस पर आयकर का भुगतान किया गया था। जब यह हादसा हुआ तब नैन कानपुर में ठेकेदारी का काम कर रहे थे। उनके सामने एक उज्ज्वल भविष्य और अच्छे भविष्य की संभावनाएं थीं। दुर्घटना के परिणामस्वरूप उन्हें आर्थिक नुकसान हुआ और एक ठेकेदार के रूप में उनकी कमाई से पूरी तरह से वंचित होना पड़ा।

5. इसलिए, नैन ने दावा याचिका में आर्थिक और सामान्य क्षति के प्रमुख शीर्षों के तहत अलग-अलग 27,89,100/- रुपये की कुल राशि में क्षतिपूर्ति का दावा किया।

6. दावा याचिका की स्थापना के समय, नैन मकान नंबर 14/4, मोहल्ला शाह कमर, शहर और जिला इटावा में रह रहा था। वह 37 साल के थे। एक ठेकेदार के रूप में नैन के व्यवसाय से उन्हें प्रति माह 9000 रुपये की आय होगी। उनकी पत्नी की उम्र 31 साल थी। उनके दो बेटे हैं, एक की उम्र 10 साल और दूसरे की उम्र लगभग 9 साल है। उनकी एक अन्य आश्रित श्रीमती पुष्पा देवी थीं, जिनकी आयु 55 वर्ष की मां थीं।

7. आपतिजनक कार के मालिक अनिल कुमार द्वारा एक लिखित बयान दर्ज किया गया था। उन्हें दावा याचिका में प्रतिवादी नंबर 1 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर 2 के विपरीत पक्ष के रूप में पेश किया गया था। इसके बाद उसे 'मालिक' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। अपने लिखित बयान में, मालिक ने दुर्घटना के तथ्य से इनकार नहीं किया है, लेकिन अपराध स्वीकार करने और बचने की दलील दी है। उन्होंने कहा है कि यह दुर्घटना मोटरसाइकिल सवार की गलती के कारण हुई क्योंकि वह अपने वाहन पर ट्रिपिंग करते हुए संतुलन खो बैठा था। नतीजतन, दुर्घटना को रोकने के लिए हमलावर कार के चालक ने अपनी पूरी कोशिश की, लेकिन नैन को चोट लगने से नहीं बचा सका। यह मालिक का मामला है कि दावा किया गया मुआवजा अत्यधिक है। नवनीत नैन, जिन्हें बाद में दावेदार कहा जाएगा, एक ठेकेदार के रूप में स्व-नियोजित नहीं हैं और उन्होंने कभी भी प्रति माह 9000 रुपये नहीं कमाए जैसा कि दावा किया गया है। उल्लंघन करने वाली कार के चालक को एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया है, जिससे दावा याचिका गैर-शामिल होने के लिए खराब हो गई है। उन्होंने यह भी दलील दी है कि जब दुर्घटना हुई, तो दुर्घटना करने वाली कार का चालक यातायात नियमों का पालन करते हुए सड़क के नियमों के अनुसार कार चला रहा था। वह अन्य वाहनों और यातायात को साइड देते हुए सड़क पर आगे बढ़ रहा था, और जहां आवश्यक हो वहां हॉर्न बजा रहा था। विकल्प के तौर पर यह मालिक का मामला है कि यदि हमलावर कार को चोट के लिए जवाबदेह पाया जाता है, तो दायित्व न्यू इंडिया एश्योरेंस

कंपनी लिमिटेड के कंधों पर पड़ेगा, जिसके साथ दुर्घटना की तारीख पर हमलावर कार का बीमा किया गया था।

8. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, शाखा कार्यालय, रेलवे स्टेशन रोड, इटावा को अपने शाखा प्रबंधक के माध्यम से, जो कि उल्लंघन करने वाली कार का बीमाकर्ता है, को दावा याचिका के विपरीत पक्ष नंबर 2 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर 1 के रूप में रखा गया है। उपर्युक्त बीमा कंपनी को इसके बाद 'बीमाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। बीमाकर्ता ने 09.05.1995 को एक अलग लिखित विवरण दायर किया, जिसे दो बार संशोधित किया गया। बीमाकर्ता ने आम तौर पर दावेदार के मामले से इनकार किया है और कहा है कि दुर्घटना दावेदार द्वारा बताए गए तरीके से नहीं हुई थी। यह बीमाकर्ता का मामला है कि मालिक और दावेदार करीबी रिश्तेदार हैं और उन्होंने बीमाकर्ता के खिलाफ आधारहीन दावे को लागू करने के लिए फर्जी दुर्घटना का मामला स्थापित करने के लिए मिलीभगत की है। विकल्प में यह भी दलील दी गई है कि दावेदार द्वारा लापरवाही से मोटरसाइकिल पर सवारी की जा रही थी, जिसके कारण यह दुर्घटना हुई। इसलिए, दुर्घटना दावेदार को किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं बनाती है। दावेदार की मासिक आय से भी इनकार कर दिया गया है।

9. पक्षकारों की दलीलों पर अधिकरण ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

“1. क्या 06.07.1994 को शाम लगभग 8:15 बजे जी.सी. कॉलोनी गेट के सामने वीआईपी रोड पर, पुलिस स्टेशन कैट, सिटी और जिला कानपुर नगर की स्थानीय सीमा के भीतर, पंजीकरण संख्या वाली कार का चालक। डीडीक्यू 8855 तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाने से नवनीत अग्रवाल को गंभीर चोटें आईं?

2. क्या दुर्घटना के समय, कार का चालक नंबर 1 पर था। डीडीक्यू 8855 और मोटरसाइकिल सवार के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था? यदि नहीं, तो इसका प्रभाव?

3. क्या दुर्घटना के कारण नवनीत अग्रवाल को चोटे आई, जिससे उन्हें स्थायी विकलांगता हो गई है?

4. क्या दुर्घटना के समय, कार नंबर 2 डीडीक्यू-8855 का बीमा विपरीत पक्ष संख्या 2 के साथ किया गया था?

5. दावेदार मुआवजे के रूप में कितना हकदार है और किस विपरीत पक्ष से?

10. अपने मुकदमे के समर्थन में दावेदार ने खुद को पीडब्ल्यू-1, हिमांशु अवस्थी को पीडब्ल्यू-2, विनीत अग्रवाल को पीडब्ल्यू-3, डॉ एससी गुप्ता, वरिष्ठ आर्थोपेडिक सर्जन, जिला

अस्पताल, इटावा को पीडब्ल्यू-4 और श्रीमती सुसमा अग्रवाल को पीडब्ल्यू-5 बताया। इसके अलावा, दावेदार की ओर से दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए गए थे, दोनों दुर्घटना के साथ-साथ लगी चोट के प्रमाणीकरण, आगामी बाधा, दावेदार की आय का प्रमाण और उपचार में किए गए खर्च से संबंधित थे।

11. मालिक की ओर से, कोई गवाह पेश नहीं किया गया। बीमाकर्ता ने गवाहों के बक्से में निजी जांचकर्ता रवींद्र पांडे, डीडब्ल्यू-1 और कानपुर नगर के एसएसपी के कार्यालय में रिकॉर्ड कीपर दिनेश चंद्र तिवारी को डीडब्ल्यू 2 के रूप में पेश किया। बीमाकर्ता की ओर से दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किए गए थे, जिसमें पुलिस स्टेशन में दिनांक 06.07.1994 को हुई दुर्घटना के बारे में जीडी प्रविष्टि शामिल है। इसमें पेपर नंबर 82-ख लिखा है।

12. अपील के समर्थन में दावेदार के अधिवक्ता श्री आरके पोरवाल और बीमाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार को सुना। मालिक की ओर से कोई पेश नहीं होता है।

13. श्री पोरवाल ने मुद्दे संख्या 1 और 2 पर निष्कर्षों के संबंध में पुरस्कार की आलोचना की है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ट्रिब्यूनल के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है जो इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दुर्घटना हमलावर कार से जुड़ी नहीं थी। इसके बजाय, पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू -2 जैसे दो चश्मदीदगवाहों के सबूतों से यह स्थापित होता है कि दुर्घटना लापरवाही से ड्राइविंग के कारण हुई थी।

विशेष रूप से, इस बात पर जोर दिया जाता है कि हमलावर कार के मालिक ने लिखित बयान में दुर्घटना के तथ्य को स्वीकार किया है, जो श्री पोरवाल के अनुसार, इस मुद्दे पर सबसे अच्छा सबूत है। ट्रिब्यूनल मालिक की स्वीकारोक्ति के खिलाफ यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था कि उसका वाहन शामिल नहीं था। यह प्रस्तुत किया गया है कि मालिक ने दुर्घटना के तथ्य को स्वीकार किया है, लेकिन अपनी देयता से बचने का प्रयास करते हुए कहा कि यह दावेदार था, जिसने अपने वाहन की सवारी करने में लापरवाही बरती, जिसके कारण अपमानजनक कार ने दुर्घटनाग्रस्त मोटरसाइकिल को टक्कर मार दी, बावजूद इसके कि चालक ने दुर्घटना को रोकने के लिए अपनी पूरी कोशिश की। यह भी तर्क दिया जाता है कि उल्लंघन करने वाली कार के मालिक को बीमाकर्ता द्वारा अपने बचाव को साबित करने के लिए पेश नहीं किया गया है।

14. डीडब्ल्यू -2 की गवाही की दावेदार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर आलोचना की गई है कि वह एस.एस.पी. कार्यालय में एक रिकॉर्ड कीपर है और पुलिस स्टेशन में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखे गए जीडी के निष्कर्ष को साबित किया है। डीडब्ल्यू 2 दुर्घटना का चश्मदीद गवाह या वह व्यक्ति नहीं है, जो दावेदार को दुर्घटना स्थल से अस्पताल ले गया है। यह आग्रह किया जाता है कि ट्रिब्यूनल का यह निष्कर्ष कि घायल नशे की हालत में शीसम के पेड़ से टकरा गए, अकेले जीडी एंट्री के आधार पर, केवल अनुमान है।

15. दूसरी ओर, श्री अरविंद कुमार ने मुद्दा संख्या 1 पर ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल ने रिकॉर्ड पर साक्ष्य की समग्रता पर एक प्राकृतिक और ठोस निष्कर्ष निकाला है। वह विशेष रूप से यह निवेदन करते हैं कि यदि 06-07-1994 को पुलिस स्टेशन में जीडी एंट्री कराने वाले कांस्टेबल ने स्वयं दुर्घटना देखी थी या इसके बारे में सूचित किया था, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसने जीडी में दर्ज प्रविष्टि प्राप्त करते समय इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया होगा। कांस्टेबल एक सार्वजनिक पदाधिकारी है और किसी भी पक्ष के प्रति शत्रुतापूर्ण या अनुकूल व्यवहार नहीं करता है। जीडी प्रविष्टि, घटना के समय के सबसे करीब होने के नाते, इसके हर शब्द के लिए विश्वास किया जाना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि दुर्घटना के तथ्य को स्वीकार करने में मालिक का रुख दर्शाता है कि मालिक और दावेदार के बीच मिलीभगत है। श्री अरविंद कुमार के अनुसार, तथ्य यह है कि दावेदार ने 1 सितंबर, 1994 को देर से प्राथमिकी दर्ज कराई, यह दर्शाता है कि इसमें स्थापित पूरा मामला, एक सोच-समझकर की गई रणनीति का परिणाम है मालिक के साथ मिलीभगत करके बीमाकर्ता को धोखा देने की एक योजनाबद्ध रणनीति।

16. इस न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। यहां, इस न्यायालय ने मुद्दा संख्या 1 के संबंध में ट्रिब्यूनल के निष्कर्षों पर विचार किया है। विचारणीय प्रश्न

यह है कि क्या दुर्घटना, जिसके कारण दावेदार को गंभीर और दुर्बल चोटें आईं, हमलावर कार के कारण हुई थी, या यह मोटरसाइकिल के शीसम के पेड़ से टकराने का परिणाम था। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि दुर्घटना के दो प्रत्यक्षदर्शी हैं, जो हमलावर कार को कारण एजेंट के रूप में नामित करते हैं। वे पीडब्ल्यू-1, दावेदार स्वयं, और दूसरे, हिमांशु अवस्थी, पीडब्ल्यू 2 हैं। दोनों गवाहों ने लगातार दुर्घटना के समय, स्थान और तरीके के बारे में बात की है और इस तथ्य के बारे में बात की है कि दुर्घटना हमलावर कार के कारण हुई थी जिसके परिणामस्वरूप दावेदार को चोट लगी थी। दो चश्मदीद गवाहों की गवाही, इसकी निरंतरता के बावजूद, परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में इसके मूल्य के लिए आंकी जानी चाहिए, जो इसे समर्थन दे सकती है या इसकी विश्वसनीयता को कम कर सकती है। यह सच है कि दोनों चश्मदीद गवाहों ने लगातार उनमें से एक हिमांशु अवस्थी, पीडब्ल्यू -2 की उपस्थिति का उल्लेख किया है। दुर्घटना के एक महीने और तीन तिमाही बाद दर्ज प्राथमिकी में गवाह पीडब्ल्यू 2 का भी उल्लेख किया गया है।

17. गवाहों से जिरह के दौरान भी दावेदार के साथ-साथ पीडब्ल्यू 2 को भी इन सवालों का सामना नहीं करना पड़ा कि क्या वास्तव में दुर्घटना शीसम के पेड़ से टकराने वाली मोटरसाइकिल के कारण हुई थी, या पीडब्ल्यू - 2, हिमांशु अवस्थी का उल्लेख दुर्घटना के शुरुआती रिकॉर्ड में क्यों नहीं किया गया है। लेकिन, तथ्य यह है कि जीडी एंट्री, जो दुर्घटना का सबसे पुराना विवरण है, जो दुर्घटना के

तुरंत बाद पुलिस स्टेशन में दर्ज किया गया है, स्पष्ट रूप से दुर्घटना का कारण शीसम पेड़ से टकराने वाली मोटरसाइकिल का उल्लेख करता है। जीडी प्रविष्टि, पेपर नंबर 82-खा, दिनांक 06.07.1994 में लिखा है:

"इस समय सी/- 11982 सीपी अमर नाथ यादव मुतैना थाना चकरी ओपी जाजमऊ ने थाना आकर एक व्यक्ति व हालत मजरूब बेहोश दोहरा वक्ष श्याम का रंग पेन्ट शर्ट पहने दाखिल किया तथा तहरीर कराया कि मैं अपने आवास जा रहा था तो वापस आने पर वीआईपी रोड, जी. सी. कॉलोनी गेट के पास आपदा था तथा एक मोटर साइकिल शीशम के पेड़ से टकराई पड़ी है। इस आदमी का एकसीडेंट लगता है कि अचानक मोटर साइकिल के शीशम से टकराने के कारण हुआ है। इसके पास शराब सी बू भी आ रही है। मैं वास्ते उपचार व आ.का. फ़ोन पर सूचना दे रहा हूँ। एवं शीघ्र ही चिट्ठी मजरूबी बनाकर वास्ते इलाज द्वारा एच जी 3278 गणेश प्रसाद के. पी. एम. अस्पताल रवाना किया गया। "

18. इस प्रविष्टि को न तो एस. एस.पी. के कार्यालय के रिकॉर्ड कीपर द्वारा साबित किया गया है और न ही इसके लेखक द्वारा, जिसने



संबंधित पुलिस स्टेशन में जी.डी. में इसे दर्ज किया था, या कांस्टेबल अमरनाथ यादव द्वारा, जिनके कहने पर इसे बनाया गया था। जीडी एंट्री का अर्क, जिस पर पेपर नंबर 82-ख लिखा है, सामान्य व्यवसाय में पुलिस स्टेशन में रखे गए आधिकारिक रिकॉर्ड का हिस्सा है। इसे राज्य के कामकाज के दौरान बनाए रखा जाता है। स्टेशन पर होने वाली घटनाओं और वहां के व्यवसाय के बारे में 24 घंटे के दौरान तथ्यों के घड़ी-वर्क रिकॉर्ड की तरह इसे बनाए रखा जाता है। इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, कम से कम उसमें जो स्पष्ट रूप से दर्ज है, दस्तावेज एक सार्वजनिक दस्तावेज है, जिसे ऊपर बताए गए तरीके से बनाए रखा गया है, यहां तक कि कांस्टेबल अमरनाथ यादव की अनुपस्थिति में भी, जिन्होंने प्रविष्टि कराई थी और जिसे बीमाकर्ता द्वारा आदर्श रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। जिस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है वह यह है कि इसमें कांस्टेबल के अलावा कार या किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति से जुड़ी दुर्घटना के बारे में एक शब्द भी उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन तथ्यों को रिकॉर्ड करता है जो गवाह ने घटना के बाद देखा था, यानी दुर्घटना के बाद। इसके बाद कितना, जीडी प्रविष्टि से कहा या अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। पीडब्ल्यू-1, दावेदार ने बीमाकर्ता द्वारा अपनी जिरह में कहा है:

"टक्कर के बाद मैं बेहोश हो गया था व बीच-बीच में होश आ जाता था। मौके पर सोनू और हिमांशु अवस्थी आ गए थे जिन्होंने घटना देखी थी मुझे मौके से दोनों गवाह

व कांस्टेबल मुझे अस्पताल ले गए थे।"

19. मालिक ने जिरह में ऐसी कोई सामग्री नहीं मांगी है, जो दुर्घटना के समय दूसरे गवाह की उपस्थिति के तथ्य पर असर डाल सकती है या दावेदार द्वारा पुलिस को सूचित करने की संभावना के बारे में बता सकती है कि दुर्घटना कैसे हुई। पीडब्ल्यू-2 ने अपने मुख्य परीक्षा में आपत्तिजनक कार से जुड़ी दुर्घटना के तथ्य का समर्थन किया है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, और इस तथ्य पर जोर दिया है कि वह घायलों को भर्ती कराने के लिए पुलिस के साथ केपीएम अस्पताल गए थे। उन्होंने अपने परीक्षा-इन-चीफ में निम्नलिखित प्रभाव की गवाही दी है:

"दि 6.7.94 की बात है मैं कानपूर कैंट एरिया में जी. सी. कॉलोनी के सामने गेट के पास शाम करीब 8 बजे खड़ा था। मैंने देखा कि एक कार जिसका नंबर डी डी क्यू /8855 बड़ी तेज़ी व लापरवाही से दक्षिण से उत्तर तरफ मेरी तरफ आ रही थी उसी समय एक मोटर साइकिल चालक उत्तर से दक्षिण तरफ जा रहा था। इतने में करीब 8:15 बजे शाम कार चालक ने मोटर साइकिल में टक्कर मारी जिससे मोटर साइकिल चालक कार की टक्कर से गिर पड़ा। कार की टक्कर से गंभीर चोटों के कारण, पैर में फ्रैक्चर व सिर व शरीर में भी चोट आई। इस घटना को मेरे अलावा मेरे साथ खड़े सोनू पुत्र एस. एच. तिवारी नि. कानपुर एवं अन्य लोगों ने देखा है। दुर्घटना के समय पुलिस कर्मी आ गए जिनकी मदद से मैंने एवं अन्य लोगों ने घायल को के.पी.एम. हॉस्पिटल

कानपूर में भर्ती कराया। यह घटना कार चालक डीडीक्यू / 8855 की गलती तेज़ी व लापरवाही के कारण हुई है।"

20. इस बिंदु पर प्रासंगिक अपनी जिरह में, पीडब्ल्यू -2 ने गवाही दी है:

"कार व मोटर साइकिल में आमने-सामने से टक्कर हुई थी कार मोटर साइकिल के पास आने पर लापरवाही से पूर्वी पटरी की ओर चली आई एवं उसने मोटर साइकिल में टक्कर मार दी। कार 8-10 सेकंड के लिए रुकी होगी हम लोगों ने घायल को उठाने का प्रयास किया जब तक घायल को उठाया तब तक कार उत्तर की ओर भाग गई।

मैंने व सोनू का नाम घायल को बता दिया तहत लिखकर पर्ची नाम पता दे दी थी। मैंने घायल का नाम पता नोट कर लिया था। दुर्घटना के करीब 2 माह बाद थाना कैंट के सबइंस्पेक्टर ने मेरे व सोनू के बयान लिए थे मैंने यही बयान दरोगा को दिए थे। पुलिस केस में कानपूर न्याया, मैं अभी तक मेरा कोई बयान नहीं हुआ है। मेरी घायल से कोई रिश्ता व व्यवहार नहीं है। आज की तारीख की सूचना मुझे सम्मन द्वारा प्राप्त हुयी है इसलिए गवाही देने आया हूँ।"

21. दुर्घटना के बारे में दो गवाहों के रुख में निरंतरता के बावजूद, यदि इसमें कोई सच्चाई थी, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि कांस्टेबल अमरनाथ यादव, जिन्होंने तुरंत पुलिस स्टेशन में प्रवेश किया था, ने सबसे महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख नहीं किया होगा

कि दुर्घटना आपत्तिजनक कार के साथ टक्कर के कारण हुई थी। दावेदार खुद कहता है कि वह बेहोश नहीं था, बल्कि एक सचेत और अचेतन अवस्था के बीच आंतरायिक था। अगर ऐसा होता तो वह पुलिसकर्मियों को हादसे की वजह के बारे में बता देते। यह मानते हुए कि दावेदार, दुर्घटना का शिकार होने और बुरी तरह से घायल होने के कारण, संवाद करने के लिए बहुत कमजोर या उलझन में था, इस तथ्य को निश्चित रूप से पीडब्ल्यू 2 द्वारा कांस्टेबल को सूचित किया गया होगा और दूसरे व्यक्ति सोनू, जो पीडब्ल्यू 2 के अनुसार, दावेदार को भर्ती कराने के लिए पुलिस के साथ केपीएम अस्पताल गए थे। जीडी एंटी, पेपर नंबर 82-खा, कांस्टेबल अमरनाथ यादव के कहने पर बनाई गई थी, जैसा कि श्री अरविंद कुमार ने ठीक ही बताया है, पार्टियों के प्रति न तो अनुकूल और न ही शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया गया है। यदि उन्हें दुर्घटना में आपत्तिजनक कार की भागीदारी के बारे में सूचित किया गया था, तो कोई सांसारिक कारण नहीं है कि उन्होंने जीडी एंटी में यह नोट किया होगा कि उन्होंने दावेदार को सीसम के पेड़ के पास बेहोश पड़ा पाया, और कहा कि उनके आकलन में दावेदार पेड़ से टकरा गया था। जीडी प्रविष्टि, जिस तरह से यह वर्णन करती है, कांस्टेबल ने जो देखा, वह दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी की उपस्थिति का दूर-दूर तक उल्लेख नहीं करता है, उसे सूचित करता है कि यह सब कैसे हुआ। कांस्टेबल कुछ अनुमान लगाने में शामिल था, क्योंकि जाहिर तौर पर उसे सूचित करने वाला कोई नहीं था कि दुर्घटना कैसे हुई।

22. इससे भी अधिक, अस्पताल में सबसे पहला रिकॉर्ड 06.07.1994 को के. पी. एम. अस्पताल का है, जिसमें पेपर नंबर 13-जीए/4 है। इस पर चिकित्सा अधिकारी, केपीएम अस्पताल, बिरहाना रोड, कानपुर द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। इसमें निम्नलिखित शब्दों में घायलों के विवरण का उल्लेख किया गया है:

"पीएस कैंट जिला कानपुर नगर के बी/बी एचजी 3278 गणेश प्रसाद ने 6/7/1994 को रात 9.15 बजे लगभग 40 वर्षीय अज्ञात पुरुष व्यक्ति की जांच की।

23. फिर पहचान के निशान का विवरण है, चार चोटों का एक मेडिकोलीगल विवरण है, इसके बाद डॉक्टर की राय है।

24. इस रिपोर्ट में कहीं भी पीडब्ल्यू -2, अवस्थी की उपस्थिति या इस तथ्य का उल्लेख नहीं है कि चोटें मोटर दुर्घटना का कारण थीं। यदि वास्तव में पीडब्ल्यू 2 घायलों के साथ केपीएम अस्पताल गया होता, तो उन्होंने निश्चित रूप से डॉक्टर को इस तथ्य का उल्लेख किया होता, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट में इसका रिकॉर्ड बनाया होगा कि यह एक मोटर दुर्घटना से संबंधित एक मेडिकोलीगल मामला है। दिनांक 06.07.1994 को केपीएम अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी द्वारा दावेदार की जांच से पहले पुलिस स्टेशन कैंट के संदर्भ पत्र (चिट्ठी मजरुबी) में घायल के दुर्घटना का शिकार होने के बारे में एक शब्द भी नहीं है। दिनांक 06.07.1994 के चिट्ठी मजरुबी ने अपने भौतिक भाग में लिखा है:

"विनय है कि एक व्यक्ति मोटर साइकिल सवार नाम पता अज्ञात व हालत मजसब वास्ते इलाज भेजा जा रहा है। रिपोर्ट सेवा में प्रेषित है। "

25. के.पी.एम. अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी, जैसा कि उनकी राय से प्रतीत होता है, ने दावेदार को एल.एल.आर. अस्पताल, कानपुर में रेफर करने का फैसला किया। उन्होंने दिनांक 07.07.1994 को एक अलग संदर्भ पत्र तैयार किया, जिसमें आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, एल.एल.आर. अस्पताल, कानपुर को संबोधित किया गया था। इस पत्र में मरीज का नाम नवनीत नैन अग्रवाल पुत्र गोपी चंद अग्रवाल निवासी 111/155, हर्ष नगर, कानपुर लिखा है। इसमें उल्लेख किया गया है कि उनकी चोटों को दर्ज किया गया है और कहा गया है कि उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है। पत्र इस टिप्पणी के साथ समाप्त होता है कि एल. एल.आर. अस्पताल में आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी रोगी को देख सकते हैं और आवश्यक कार्य कर सकते हैं। जाहिर है, जब तक यह पत्र लिखा गया था, तब तक रोगी को होश आ गया था या उसकी पहचान अन्यथा स्थापित हो गई थी, लेकिन मोटर दुर्घटना की भागीदारी के बारे में एक शब्द भी नहीं है। तदुपरांत, जब दावेदार को 07.07.1994 को मधुराज नर्सिंग होम (पी) लिमिटेड की देखरेख में भर्ती कराया गया, तो मुद्रित प्रोफार्मा के अलावा, आकाश जैन द्वारा हस्ताक्षरित सर्जरी के लिए सहमति पत्र, जो अंग्रेजी भाषा में है, में हिंदी-देवनागरी में एक नोट है, जिसमें कहा गया है:

"मेरे मरीज को गलती से चोट लगी है। इसके लिए कानूनी कार्यवाही हो चुकी है। मुझे यहाँ अभी कोई कानूनी कार्यवाही नहीं करनी है। मुझे नवनीत के पूर्णरूप से होश में आ जाने के बाद कार्यवाही करनी है। मुझे सारे खतरे समझा दिए गए हैं। मैं इलाज की अनुमति देता हूँ।"

26. दिनांक 02.09.1994 के रीजेंसी अस्पताल से डिस्चार्ज टिकट में, जहां दावेदार का अंतिम बार इलाज किया गया था, चोटों के नैदानिक विवरण और अंतिम निदान का विवरण है। इसमें यूटीआई के साथ कार्बनिक मस्तिष्क रोग के रूप में अंतिम निदान का उल्लेख किया गया है। नैदानिक विवरण पढ़ें:

"रोगी को दवा प्रेरित ईपीएस के साथ यूटीआई के साथ # फीमर लेफ्टिनेट के साथ जैविक मस्तिष्क क्षति के मामले के रूप में भर्ती कराया गया था। उन्हें रुढ़िवादी रूप से प्रबंधित किया गया था, जिसके द्वारा उन्होंने उचित सलाह के साथ सुधार किया और छुट्टी दे दी।"

27. डिस्चार्ज टिकट में भी, रोगी के मोटर दुर्घटना का शिकार होने या किसी भी तरह से मेडिकोलीगल मामले के बारे में कोई संकेत नहीं है। वास्तव में, यह दिखाने के लिए कोई मेडिकल रिकॉर्ड नहीं है कि दावेदार को किसी भी समय, एक मेडिकोलीगल मामले के रूप में माना जाता था, एक मोटर दुर्घटना का शिकार,

या तो उन दस्तावेजों में जो रिकॉर्ड पर हैं या अन्य जो तार्किक रूप से पेश किए गए होंगे, अगर यह एक मोटर दुर्घटना का मामला था। जीडी एंट्री और शुरुआती मेडिकल रिकॉर्ड में इस तथ्य का लगातार उल्लेख नहीं होना कि दावेदार एक मोटर दुर्घटना का शिकार था, विटनेसबॉक्स में पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू -2 की गवाही को झुठलाता है और परिस्थितियों के अनुसार, इसे विश्वास करने के लिए अविश्वसनीय बनाता है। ट्रिब्यूनल ने पीडब्ल्यू-2 की उपस्थिति पर अविश्वास किया है, और इस न्यायालय की राय में, यह सही है। यदि दुर्घटना के समय पीडब्ल्यू-2 मौजूद होता, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि वह इस तथ्य को कांस्टेबल या होमगार्ड के साथ साझा नहीं करता, और बदले में, यह तथ्य कांस्टेबल अमरनाथ यादव के कहने पर या केपीएम अस्पताल के डॉक्टरों द्वारा की गई जीडी एंट्री में क्यों नहीं आया होता। जहां होमगार्ड ने दावेदार को आपातकालीन चिकित्सा के लिए भर्ती कराया।

28. तथ्य यह है कि पीडब्ल्यू-2 ने रोगी को अपना नाम बताया और पीड़ित की जेब में उसकी पहचान के विवरण के साथ कागज की एक चिट फिसल गई, जो पीड़ित के साथ एक महीने और तीन-चौथाई बाद एफआईआर दर्ज होने के तीन महीने बाद उल्लेख करने के लिए पर्याप्त समय तक चली, यह कहानी भी पूरी तरह से अविश्वसनीय बनाती है। गवाह को विभिन्न अस्पतालों में ले जाया गया और जीवन रक्षक उपचार के अधीन किया गया। इस प्रक्रिया में, गवाह या तो कागज की पर्ची खो देता, जिसमें पीडब्ल्यू का नाम होता या किसी

ने उसे ढूँढ लिया होता और उक्त गवाह को बुलाया होता, जिसके बाद एफआईआर दर्ज होने से बहुत पहले मेडिकल रिकॉर्ड में दावेदार की चोट के कारण के रूप में मोटर दुर्घटना के बारे में उल्लेख किया जाएगा। एक महीने और तीन-चौथाई के बाद एफआईआर दर्ज करना, इसे बदनाम करने की परिस्थिति नहीं हो सकती है, लेकिन इस न्यायालय ने पहले जिन परिस्थितियों पर ध्यान दिया है, उनकी समग्रता में, हम ट्रिब्यूनल के साथ सहमत हैं कि एफआईआर जानबूझकर डिजाइन का उत्पाद प्रतीत होता है, जिसे बीमाकर्ता के खिलाफ एक स्थायी दावा करने के लिए पूर्व-विचार के बाद दर्ज किया गया था। कम से कम, ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रयास था। ट्रिब्यूनल ने निर्दिष्ट किए गए वैध कारों के लिए उल्लंघन करने वाली कार से जुड़ी दुर्घटना के मामले पर पूरी तरह से अविश्वास किया है और यह न्यायालय उन कारणों और यहां जोड़े गए कारणों के लिए, ट्रिब्यूनल के साथ सहमत होने के लिए इच्छुक है।

29. इस न्यायालय को यहां ध्यान देना चाहिए कि जिन परिस्थितियों में एफआईआर दर्ज करने में देरी के प्रभाव के बारे में ऊपर दर्ज किए गए हमारे निष्कर्ष के बावजूद, श्री पोरवाल ने अपने तर्क के समर्थन में सुप्रीम कोर्ट के अधिकार पर भरोसा किया कि एफआईआर दर्ज करने में देरी दावेदार के मामले को संदिग्ध नहीं बनाती है। दावेदार की ओर से **रवि बनाम बद्रीनारायण और अन्य, (2011) 4 एससीसी 693 निर्णय पर भरोसा किया गया है।** रवि (उपरोक्त) भी एक चोट का मामला था, जहां दुर्घटना 06- 10-2001 को सुबह 8:30 बजे हुई

थी। यह एक ऐसा मामला था जहां दुर्घटना का शिकार, 8 साल का बच्चा रवि, जो अपने घर के सामने खुले में शौच के लिए निकला था, एक ट्रक से घायल हो गया, जो पीछे हट रहा था। इस मामले में एफ आई आर घटना के साढ़े तीन महीने से भी अधिक समय बाद 26-01-2002 को दर्ज की गई थी। रवि के मामले में, एफआईआर दर्ज करने में देरी को दावेदार के मामले को बदनाम करने वाले तथ्य के रूप में खारिज करते हुए, इसे सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप द्वारा माना गया था:

"16. उपरोक्त घटनाओं के संचयी प्रभाव ने स्पष्ट रूप से स्थापित किया कि दुर्घटना 7-10-2001 को सुबह लगभग 8.30 बजे प्रतिवादी 2 प्रहलाद सिंह के स्वामित्व वाले चालक बद्रीनारायण द्वारा ट्रक को तेज और लापरवाही से पीछे करने के कारण हुई थी। इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि एफआईआर दर्ज करने में देरी रवि द्वारा दायर दावे के मामले के लिए घातक साबित हो सकती थी। उपरोक्त घटनाओं का वर्णन सुरेश की सदाशयता को दर्शाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, शुरुआत से लेकर एफआईआर दर्ज होने तक एक सुसंगत रुख अपनाया गया है। ऊपर वर्णित कालानुक्रमिक घटनाएं आत्मविश्वास को प्रेरित

करती हैं और इसमें एक मनगढ़ंत मामले की बू नहीं आती है जो चालक और वाहन के मालिक के खिलाफ केवल मुआवजा पाने के इरादे से दायर किया गया है।

17. यह अच्छी तरह से तय है कि एफआईआर दर्ज करने में देरी दावेदार के मामले पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकती है। भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए, हम यह उम्मीद नहीं कर सकते कि एक आम आदमी दुर्घटना के तुरंत बाद पुलिस स्टेशन पहुंचे। मानवीय स्वभाव और पारिवारिक जिम्मेदारियां किथ और परिजनों के दिमाग पर इस हद तक कब्जा कर लेती हैं कि वे पुलिस स्टेशन जाने के बजाय पीड़ित का इलाज कराने को अधिक महत्व देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, उनसे पुलिस के साथ एफआईआर दर्ज करने में तत्परता के साथ यांत्रिक रूप से कार्य करने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस प्रकार, एफआईआर दर्ज करने में देरी, पीड़ित को न्याय से वंचित करने का आधार नहीं हो सकती है।

18. देरी के मामलों में, अदालतों को बारीकी से जांच के साथ सबूतों की जांच करने की आवश्यकता होती है और ऐसा करने में एफआईआर की सामग्री की भी अधिक सावधानी से जांच की जानी चाहिए। यदि अदालत को लगता है कि मनगढ़ंत होने का कोई संकेत नहीं है या निर्दोष व्यक्तियों को फंसाने के लिए इसे गढ़ा या रचा नहीं गया है, तो भले ही एफआईआर दर्ज करने में देरी हुई हो, दावे के मामले को केवल उस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के मामलों में एफआईआर दर्ज करने का उद्देश्य मुख्य रूप से पुलिस को आपराधिक अपराधों की जांच शुरू करने के लिए सूचित करना है।

19. एफआईआर दर्ज करना निश्चित रूप से दुर्घटना के तथ्य को साबित करता है ताकि पीड़ित मुआवजे के लिए मामला दर्ज करने में सक्षम हो लेकिन ऐसा करने में देरी दावा याचिका को खारिज करने का मुख्य आधार नहीं हो सकती है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि मोटर दुर्घटना दावा मामलों पर निर्णय लेने में एफआईआर दर्ज करना

महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे दर्ज करने में देरी को ऐसी कार्यवाही के लिए घातक नहीं माना जाना चाहिए, अगर दावेदार इसके लिए संतोषजनक और ठोस कारण प्रदर्शित करने में सक्षम है। एफआईआर दर्ज करने में देरी के लिए वास्तविक मामलों में कई कारण हो सकते हैं। जब तक पीड़ित के परिजन मन की शांति के एक निश्चित स्तर को पुनः प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते हैं और इसे दर्ज करने के लिए तैयार नहीं होते हैं, भले ही देरी हो, इसे माफ किया जाना चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में, ठोस कारणों से एफआईआर दर्ज करने में देरी की तुलना में एफआईआर की प्रामाणिकता बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

पुलिस के संज्ञान में और मेडिकल रिकॉर्ड के श्रेय पर, यह निश्चित रूप से मोटर दुर्घटना का मामला था। वर्तमान मामले में, इसके विपरीत परिस्थितियों पर ध्यान दिया गया है, जहां दुर्घटना का कोई पुलिस रिकॉर्ड नहीं है, जैसा कि देरी से एफआईआर दर्ज करने से पहले वर्णित किया गया है या मेडिकल रिकॉर्ड में इसका उल्लेख नहीं है। इसलिए, एफआईआर दर्ज करने में देरी, मोटर दुर्घटना के दावे के लिए घातक नहीं होने के बारे में रवि में सिद्धांत आकर्षित नहीं करता है।

31. श्री पोरवाल का यह आग्रह, कि दुर्घटना के तथ्य के बारे में मालिक की स्वीकारोक्ति निर्णायक है, **सरोज और अन्य बनाम हेत लाल और अन्य, (2011) 1 एससीसी 388** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर इसकी मजबूती के लिए बहुत कुछ है। दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान सरोज (उपरोक्त) में आयोजित की गई व्यवस्था की ओर दिलाया है, जहां यह देखा गया है:

30. अब, **रवि** के मामले में तथ्य दर्शाते हैं कि दिनांक 07-10-2001 को रात 800 बजे हुई दुर्घटना के तुरंत बाद, पुलिस अस्पताल पहुंची थी, जहां चोट की रिपोर्ट तैयार की गई थी, जिसमें इस तथ्य का उल्लेख किया गया था कि चोटें मोटर दुर्घटना के कारण हुई थीं। इसलिए, रवि का मामला स्पष्ट रूप से एक ऐसा मामला है जहां औपचारिक एफआईआर दर्ज करने में देरी महत्वहीन है। **रवि** में रिपोर्ट के पैराग्राफ नंबर 17, 18 और 19 के सिद्धांत को एक बहुत ही आश्वस्त परिस्थिति की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए कि

"18. प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने पर, यह कहा जाना चाहिए कि याचिका को समग्रता में खारिज नहीं किया जा सकता था। इसे हिट एंड रन मामला मानते हुए, अपीलकर्ता मोटर वाहन अधिनियम की धारा 161 (3) (ए) के प्रावधानों के अनुसार कम से कम 25,000 रुपये के हकदार थे। इसलिए, नीचे दी गई दोनों अदालतें स्पष्ट रूप से इस प्रावधान को नोट करने में

विफल रही हैं। लेकिन यह मामला खत्म नहीं हुआ है। हमारी राय में, नीचे दी गई दोनों अदालतों ने यह निष्कर्ष देने में पूरी तरह से गलती की है कि यह एक हिट एंड रन मामला था और प्रतिवादी 2 से संबंधित वाहन दुर्घटना में शामिल नहीं था। जहां तक उस निष्कर्ष का संबंध है, प्रतिवादी 2 की दलीलों में यह स्वीकार की गई स्थिति थी कि सबसे पहले, टाटा 207 वाहन जिसका पंजीकरण संख्या 100 है।

एचआर 38 एल 6592 पंजीकरण संख्या वाली मोटरसाइकिल के साथ दुर्घटना का शिकार हो गया था। एचआर 26 पी 9413 जो 16-9-2005 को दोपहर 3.30 बजे हुआ था और दूसरी बात, उक्त वाहन प्रतिवादी 1 द्वारा चलाया जा रहा था। हमने आदेश में जिन दलीलों का हवाला दिया है, उनमें यह स्वीकारोक्ति अपने आप में यह मानने के लिए पर्याप्त थी कि प्रतिवादी 2 से संबंधित वाहन दुर्घटना में शामिल था। यह स्वीकारोक्ति प्रतिवादी 2 द्वारा कभी नहीं की गई थी और इस प्रकार, यह मानने का कोई अवसर नहीं था कि उक्त वाहन शामिल नहीं था और यह एक हिट-एंड-रन मामला था। यह आश्चर्य की बात है कि न केवल ट्रिब्यूनल बल्कि उच्च न्यायालय ने भी प्रतिवादी 2 की ओर से महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति

को नजरअंदाज कर दिया था। यह किसी का मामला नहीं था कि प्रतिवादी 2 की यह स्वीकारोक्ति प्रतिवादी 2 और अपीलकर्ताओं के बीच मिलीभगत थी। एक बार जब यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है, तो यह मानने का कोई कारण नहीं है कि वाहन दुर्घटना में शामिल नहीं था और इस आधार पर तीन प्रतिवादियों को बरी कर दिया जाता है।

32. सरोज में सिद्धांत पर दावेदार द्वारा भरोसा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वहां के तथ्य बताते हैं कि आपतिजनक कार के मालिक और दावेदार के बीच मिलीभगत का कोई मामला नहीं था। बल्कि, वहां टिप्पणी यह है कि पार्टियों के बीच मिलीभगत का कोई मामला नहीं था। यहां, मालिक और दावेदार के बीच मिलीभगत का एक जोरदार मामला है, जिसे बीमाकर्ता द्वारा दलील दी गई है, जिसे ट्रिब्यूनल के साथ-साथ इस न्यायालय के समक्ष भी बल दिया गया है। बीमाकर्ता द्वारा उस मामले का समर्थन करने के लिए हमने मिलीभगत और परिस्थितियों के मामले को देखा है, मालिक की स्वीकारोक्ति दावेदार के कारण की सेवा के बजाय मिलीभगत को मजबूत करने के लिए एक कड़ी के रूप में अधिक कार्य करती है।

33. श्री पोरवाल ने बहुत जोर देकर प्रस्तुत किया है कि यह तथ्य, कि वाहन के मालिक ने कार से जुड़ी दुर्घटना पर विवाद नहीं किया है, इस मुद्दे को मजबूत करता है। ट्रिब्यूनल के



समक्ष, बीमाकर्ता की ओर से यह दावा किया गया था कि दावेदार और मालिक संबंधित हैं, एक तथ्य जिसे मालिक के गवाह, पीडब्ल्यू -5 के साथ-साथ अन्य गवाहों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। ट्रिब्यूनल ने मालिक और दावेदार के बीच मिलीभगत के मामले के बारे में सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है, लेकिन सबूतों की समग्रता पर, दुर्घटना में अपमानजनक कार की भागीदारी के बारे में दावेदार के मामले पर अविश्वास किया है। दुर्घटना के एक महीने और तीन तिमाही बाद दर्ज की गई एफआईआर से पहले किसी ने भी पुलिस को कार की सूचना नहीं दी थी, या अपनी कार की भागीदारी के बारे में बात नहीं की थी, इस परिस्थिति में मालिक द्वारा अपनाया गया रुख दृढ़ता से मालिक और दावेदार के बीच मिलीभगत का मामला बताता है। यदि मालिक इतना ईमानदार और ईमानदार व्यक्ति था कि दुर्घटना में अपनी कार की भागीदारी के बारे में तथ्य को जानते हुए, पुलिस को एक रिपोर्ट के माध्यम से होने के एक महीने बाद, ट्रिब्यूनल के समक्ष स्वीकार किया, तो कोई कारण नहीं है कि वह पुलिस को दुर्घटना का खुलासा करने के लिए जल्द से जल्द आगे नहीं आया। या हो सकता है, दावेदार और उसके रिश्तेदारों के लिए। यह दावेदार का मामला नहीं है कि मालिक खुद आगे आया और उस पर विश्वास किया।

34. इसके अलावा, तथ्य यह है कि हालांकि मालिक ने लिखित बयान दर्ज करके दावे का विरोध किया, लेकिन उसने गवाह-बॉक्स से दूर रहने का फैसला किया, जो उसकी मिलीभगत का संकेत देता है। यदि कोई यह मान ले कि

वाहन का बीमा किया जा रहा है, तो मालिक ने अपने लिखित बयान को दर्ज करने के अलावा मामले में भाग लेने की जहमत नहीं उठाई, तो कोई कारण नहीं है कि मालिक जिसने दुर्घटना में अपनी कार की भागीदारी को स्वीकार किया था, दावेदार द्वारा सबूत के रूप में पेश नहीं किया जाएगा। गवाह बॉक्स से मालिक की स्वीकार्यता, उसके स्वयं के उदाहरण पर और दावेदार के कहने पर, इस तथ्य का संकेत है कि मालिक और दावेदार दोनों नहीं चाहते थे कि वह (मालिक) अदालत में जिरह का सामना करने का जोखिम उठाए, या अदालत द्वारा असहज प्रश्न हो सकते हैं।

35. इन परिस्थितियों से पता चलता है कि दावेदार द्वारा, जो निस्संदेह दुर्घटना का सामना कर चुका है, एक पेड़ से टकराने, मालिक के साथ मिलीभगत करने और खुद के लिए मुआवजे का दावा करने के मामले में एक पकी हुई कहानी का सुझाव देता है। इसलिए, इस न्यायालय को दुर्घटना के बारे में मालिक की स्वीकारोक्ति के आधार पर दावेदार की ओर से दी गई प्रस्तुतियों में कोई बल नहीं मिलता है। रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दिखाए कि यह 'हिट एंड रन' का मामला है।

36. इस अपील में कोई बल नहीं है। तदनुसार, यह विफल हो जाता है और **खारिज किया जाता है।** लागत आसान है।

37. ट्रिब्यूनल के रिकॉर्ड को जिला न्यायाधीश, इटावा के माध्यम से कार्यालय द्वारा तुरंत भेजा जाए।

-----

(2023) 9 ILRA 310

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 1099

वर्ष 2001

अहमद अहसन एवं अन्य ...अपीलार्थीगण

बनाम

श्री सुरेश

...प्रतिवादी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्री सैयद फरमान अहमद नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री लाल मणि सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री बिजय प्रकाश तिवारी

सिविल कानून - कर्मचारी राज्य बीमा

अधिनियम, 1948 - धारा 51, 53 और 61 -

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 - धारा

30- अपील - कर्मकार क्षतिपूर्ति आयुक्त द्वारा

पारित -अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए -

दुर्घटना - दावेदार, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, को

इयूटी के दौरान गंभीर चोट लगी, जिसके

परिणामस्वरूप आंशिक विकलांगता हुई -

दुर्घटना के बाद प्रतिवादियों ने दावेदार को सेवा

में रखने को अस्वीकार कर दिया, जिसके

कारण कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के

अंतर्गत दावा याचिका दायर की गई -

अपीलार्थियों ने घटना और दावेदार के

सेवायोजन को अस्वीकार किया - न्यायालय ने

पाया कि, तथाकथित कानून के सारवान प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और उक्त मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं - न्यायालय ने कर्मकार क्षतिपूर्ति आयुक्त के निर्णय के विरुद्ध अपील स्वीकार करने के दायरे पर चर्चा की -अभिनिर्धारित किया, उठाए गए कानून के सारवान प्रश्न वास्तव में तथ्यों के प्रश्न हैं - अपील खारिज की जाती है - शेष राशि यदि अभी तक जमा नहीं की गई है, तो उसे जमा किया जाए और तदनुसार दावेदार को वितरित किया जाए।(पैरा -8, 12, 13)

अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. वेस्टर्न इंडिया प्लाईवुड लिमिटेड बनाम श्री पी. अशोकन दिनांक 19.9.1997 - एआईआर 1997 एससी 3883,

2. सिविल अपील संख्या 7470 वर्ष 2009 उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता, निर्णीत दिनांक 2.11.2018,

3. गोला राजन्ना आदि आदि बनाम मंडल प्रबंधक एवं एक अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी),

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री लाल मणि सिंह और प्रत्यर्थी के

विद्वान अधिवक्ता श्री बिजय प्रकाश तिवारी को सुना।

क्षतिपूर्ति प्राप्त करने या वसूल करने का हकदार बनाती है?

2. इस अपील के माध्यम से, अपीलकर्ताओं ने कर्मकार प्रतिकर आयुक्त/अपर जिलाधिकारी (नगर) कानपुर नगर द्वारा वाद संख्या 4/1996 में पारित दिनांक 21.06.2001 के निर्णय एवं अधिनिर्णय को चुनौती दी है।

3. इस न्यायालय ने अपील को स्वीकार करते हुए कोई सारवान विधिक प्रश्न नहीं विरचित किया, इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा विरचित विधिक प्रश्नों को नीचे विरचित उक्त विधिक प्रश्नों के अनुसार निर्णीत किया जाना अपेक्षित है:-

(i) क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 53 एवं 61 के अंतर्गत प्रतिबंध आक्षेपित कार्यवाही पर लागू होता है, क्योंकि विपक्षी पेंशन प्राप्त कर रहा है तथा नियमों के अनुसार प्रतिकर प्राप्त कर चुका है?

(ii) क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 53 एवं 51 के दृष्टिगत आक्षेपित कार्यवाही पोषणीय थी अथवा अधिनियम की धारा 53 एवं 61 के अंतर्गत बाधित है?

(iii) क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 53 स्वयं उस कर्मचारी को, जिसे कथित नियोजन क्षति का सामना करना पड़ा है, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम या किसी अन्य कानून के अंतर्गत मुआवजा और

4. अभिलेख से लिए गए मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दावेदारों ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम 1923 (एतदपश्चात अधिनियम, 1923 के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के अंतर्गत अपीलकर्ताओं के विरुद्ध दावा याचिका प्रस्तुत की थी। दावेदार एक चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी था। अपीलकर्ता टेनारी न्यू लाइट टेनर्स के स्वामी हैं। दिनांक 19.6.1995 को जब दावेदार इयूटी पर था, उस समय लगभग 1.25 बजे दोपहर उसका बायां हाथ (ऊपरी अंग) मशीन में आ गया और उसकी तर्जनी, अंगूठे और अन्य हिस्सों के साथ कुचल गई और उन्हें काटना पड़ा, परिणामस्वरूप दावेदार पूर्णतः आंशिक रूप से विकलांग हो गया। दावेदार को अस्पताल ले जाया गया और दिनांक 19.06.1995 से 16.08.1995 तक उसका इलाज चला (अर्थात् लगभग दो माह)।

5. प्रत्यर्थीगण ने दुर्घटना के बाद दावेदार को नौकरी पर रखने से मना कर दिया, इसलिए अपीलकर्ताओं को मुआवजा देने के लिए नोटिस दिया गया, नोटिस के बावजूद कोई राशि नहीं दी गई, अपितु दावेदार को बुलाया गया और अपीलकर्ताओं द्वारा अपमानित किया गया। यहाँ अपीलकर्ताओं को नोटिस दिया गया, जिन्होंने दिनांक 30.01.1999 को अपना उत्तर दाखिल किया और पूरी घटना से इनकार किया और कहा कि दावेदार को उनके द्वारा मशीन मैन के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था और अगर दुर्घटना हुई थी तो दावेदार की लापरवाही के कारण हुई थी। यह कहा गया है

कि दावेदार ने ड्यूटी पर रिपोर्ट नहीं किया था, तो उसका नाम सूची से हटा दिया गया था। उक्त उत्तर से पूर्व ही, मोहम्मद अज़मल को एक पक्ष बनाया गया था, जिन्होंने भी अपना खंडन का उत्तर दाखिल किया और रोजगार से इनकार किया। कर्मकार आयुक्त ने कई बिन्दु तय किए। अपीलकर्ताओं का रुख यह था कि प्रक्रिया का पालन करने के बाद दावेदार को हटाया गया था।

6. बिन्दु सं0 1 को आयुक्त द्वारा उचित रूप से तय किया गया है और यह तथ्य का प्रश्न है। जहां तक बिन्दु क्रमांक 2 का संबंध है, क्या अपीलकर्ताओं ने दावेदार को कोई राशि का भुगतान किया था या नहीं, मात्र इसलिए कि ई.एस.आई. ने कुछ भुगतान किए हैं तो क्या यह अपीलकर्ताओं को कोई राशि का भुगतान नहीं करने की अनुमति देगा। मुआवजे के मुद्दे पर फैसला करते समय, जो तथ्य का प्रश्न है। प्रश्न है कि क्या यह न्यायालय तथ्यों के प्रश्नों के आधार पर अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत इस अपील पर विचार कर सकता है।

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 ने उन्हें पेंशन प्रदान की है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार निर्णय मौन है और इस पहलू पर चर्चा नहीं की गई है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने वेस्टर्न इंडिया प्लाइवुड लिमिटेड बनाम श्री पी. अशोकन के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 19.09.1997 का अवलम्ब लिया है तथा तर्क दिया है कि

उक्त निर्णय का अवलम्ब लिया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि एक बार कर्मचारी ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अंतर्गत विकलांगता लाभ प्राप्त कर लिया है तो वह कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 के अंतर्गत किसी भी राशि का हकदार नहीं होगा, जो कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की धारा 53 द्वारा वर्जित है। यह तर्क दिया गया है कि कानून के प्रावधान बहुत स्पष्ट हैं कि दावेदार दावा नहीं कर सकता था।

8. हालांकि, चोटों और उस लंबी अवधि को देखते हुए, जो दावेदार द्वारा व्यतीत की गई है और यह कि दावेदार ने अपनी उंगलियां (ऊपरी अंग) खो दी हैं। अधिनिर्णीत धनराशि अल्प राशि होने के कारण हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और इसे चिकित्सा व्यय माना जा सकता है। जमा की गई राशि उस घायल व्यक्ति के लाभ के लिए होगी जिसने अपनी उंगलियां, हाथ और नौकरी खो दी है और साथ ही उसकी अन्य तीन उंगलियां कुचल गई हैं।

9. लिखित बयान में कहीं भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है कि दावेदार ने कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1948 के अंतर्गत कोई राशि प्राप्त की थी।

10. सबसे पहले, कर्मकार क्षतिपूर्ति आयुक्त के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील स्वीकार करने के इस न्यायालय के क्षेत्र पर चर्चा करना प्रासंगिक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 02.11.2018 को निर्णीत सिविल अपील संख्या 7470/2009 उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता में माना कि:-

“9. सबसे पहले, हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते, यह प्रश्न कि क्या कर्मचारी दुर्घटना का शिकार हुआ, क्या दुर्घटना रोजगार के दौरान हुई, क्या यह किसी रोजगार से उत्पन्न हुई, दुर्घटना कैसे और किस प्रकार से हुई, दुर्घटना करने में कौन लापरवाह था, क्या कर्मचारी और नियोक्ता के बीच कोई संबंध था, कर्मचारी की आयु और मासिक वेतन क्या था, दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मरे कर्मचारी के कितने आश्रित हैं, क्या नियोक्ता द्वारा घटना को कवर करने के लिए कोई बीमा कवरेज लिया गया था आदि, कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जो दावा याचिका में आयुक्त के न्यायोचित निर्णय के लिए उठते हैं जब कोई कर्मचारी अपने रोजगार के दौरान किसी शारीरिक चोट से ग्रस्त होता है या मर जाता है और वह/उसका विधिक प्रतिनिधि, अधिनियम के अंतर्गत मुआवजे का दावा करने के लिए अपने नियोक्ता पर मुकदमा करता है।

10. उपर्युक्त प्रश्न अनिवार्य रूप से तथ्य के प्रश्न हैं तथा इसलिए, उन्हें साक्ष्य की सहायता से सिद्ध करने की आवश्यकता है। एक बार, वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो उस पर दर्ज किए गए निष्कर्षों को तथ्य के निष्कर्ष के रूप में माना जाता है।”

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा:

“15. ऐसी अपील को तब अंगीकरण के प्रश्न पर सुना जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि इसमें विधि का कोई सारवान प्रश्न शामिल है या नहीं। अपील में विधि का कोई सारवान प्रश्न शामिल है या नहीं, यह प्रत्येक

मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा इसके परीक्षण की आवश्यकता होती है। यदि विधि का सारवान प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय अपील को गुण-दोष के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए स्वीकार करेगा अन्यथा इस आधार पर खारिज कर देगा कि इसमें विधिक का कोई सारवान प्रश्न शामिल नहीं है।

16. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हैं, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर बताए गए भौतिक प्रश्नों पर कोई सारवान विधिक प्रश्न शामिल नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने मामले में उठने वाले सभी सारवान प्रश्नों को पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उचित रूप से निर्णीत किया और प्रत्यर्थी को देय मुआवजे का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि सही ढंग से की गई।

17. इस मामले के इस दृष्टिकोण में, दो अवर न्यायालयों के तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष इस न्यायालय के लिए बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर किसी भी हस्तक्षेप के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष न तो विकृत या मनमाना पाया गया है और न ही साक्ष्यहीन है तथा न ही किसी विधिक प्रावधान के विरुद्ध है। तदनुसार हम इन निष्कर्षों को बरकरार रखते हैं।”

12. जहां तक वर्तमान अपील का संबंध है, बनाए गए तथाकथित विधि के सारवान प्रश्न,

तथ्यों के प्रश्न हैं तथा उक्त बिन्दुओं पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं। जहां तक ब्याज का संबंध है, उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत बीमा कंपनी के विरुद्ध इसका उत्तर दिया जाता है। गोल्ला राजन्ना आदि बनाम मंडल प्रबंधक व अन्य, 2017 (1) टी.ए.सी. 259 (एस.सी.) में भी यह माना गया है कि धारा 30 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक कि वे विकृत साबित न हों।

13. विशेष तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, यह अपील खारिज की जाती है। यदि शेष राशि अभी तक जमा नहीं की गई है, तो उसे जमा किया जाए और दावेदारों को वितरित किया जाए। अपीलकर्ताओं द्वारा विरचित तथाकथित विधिक प्रश्नों का उत्तर इसके विरुद्ध दिया जाता है। वास्तव में उठाए गए विधि के सारवान प्रश्न, तथ्य के प्रश्न हैं।

14. अंतरिम राहत, यदि कोई हो, तत्काल निरस्त मानी जाएगी। यह राशि दावेदार को तत्काल दी जाए।

15. अभिलेख अवर न्यायालय को वापस भेजे जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 314

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार

श्रीवास्तव

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 1285

वर्ष 2023

श्रीमती यास्मीन जिया

...अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती हनीफा खुर्शीद और अन्य

....प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री देवांश मिश्रा, श्री सुधीर राणा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री पंकज अग्रवाल

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 97, 104, 104(1) और 105(2) - आदेश 43 - नियम 1(यू) - आदेश 41 - नियम 23:- अपील - आक्षेपित आदेश के विरुद्ध - जो मूल वाद में निर्णय और डिक्री से उत्पन्न हुई - विचारण न्यायालय ने प्रारंभिक बिंदु पर वाद का निपटारा किया, और अपील में डिक्री को उलट दिया गया, मामले को विचारण न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया गया - प्रतिद्वंद्वी ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई, जिसमें कहा गया कि प्रतिप्रेषण का आदेश लागू किया गया था, और विचारण न्यायालय ने 'मुद्दा संख्या 9' का निपटारा करने का आदेश पारित किया था - उन्होंने तर्क दिया कि अपीलार्थी को विचारण न्यायालय द्वारा पारित बाद के आदेश के विरुद्ध अपील दायर करनी चाहिए, जिससे प्रतिप्रेषण के आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील

प्रयोजनरहित हो जाती है - अपीलार्थी के अधिवक्ता ने इस आपत्ति का विरोध किया, और कहा कि प्रतिप्रेषण के आदेश के विरुद्ध अपील विचारण न्यायालय द्वारा परिणामी आदेश पारित करने के साथ निरर्थक नहीं हो सकती है - प्रतिप्रेषण के आदेश के विरुद्ध आदेश 43, नियम 1(यू) द्वारा दी गई अपील का अधिकार प्रतिप्रेषण के अनुसरण में परिणामी आदेश पारित करने से रद्द नहीं किया जा सकता है - इसलिए, अपील की पोषणीयता पर उठाई गई आपत्तियां कानूनी रूप से अस्थिर मानी जाती हैं - नए सिरे से स्वीकरण के लिए अपील को सूचीबद्ध करें।(पैरा -8, 12, 13)

**प्रारंभिक आपत्ति खारिज कर दी गई, लेकिन अपील लंबित है। (ई-11)**

#### **उद्धृत वादों की सूची:**

1. कनकया बनाम लक्ष्मय्या - एआईआर 1951 मद्रास 218,
2. कन्हैयालाल बनाम त्रिबेनी सहाय - एआईआर 1914 इलाहाबाद 380
3. रेमियन बनाम वीरप्पुडियन - एआईआर 1914 मद्रास 473(2)
4. गोकुल कलवार बनाम चन्द्रशेखर - एआईआर 1926 इलाहाबाद 665
5. मधु सूदन बनाम छलीमद्दीन अहमद - एआईआर 1928 कलकटा 167

6. गुरुमुख सिंह बनाम शिव राम - एआईआर 1935 लाहौर 482

7. बसवंत मल्लप्पा बनाम कल्लप्पा वीरभद्रप्पा - एआईआर 1938 बाम्बे 222

8. माधोराव पाइकाजी बनाम एकनाथराव बलप्पा - एआईआर 1948 नागपुर 56

9. उप्पला सुब्बैया बनाम चित्रला नरसिमलू - एआईआर 1956 हैदराबाद 161.

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री देवांश मिश्रा और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल को सुना गया।

2. वर्तमान अपील सिविल अपील संख्या 22/2022 में पारित दिनांक 08.05.2023 के आदेश के विरुद्ध है, जो मूल वाद संख्या 649/2016 में पारित दिनांक 31.03.2022 के निर्णय और डिक्री से उत्पन्न हुई है।

3. दिनांक 31.03.2023 के आदेश द्वारा, ट्रायल कोर्ट ने प्रारंभिक बिंदु पर मुकदमे का निस्तारण कर दिया था, और दिनांक 08.05.2023 के आदेश के अनुसार अपील में डिक्री को उलट दिया गया था, और मामले को ट्रायल जज के पास वापस भेज दिया गया था।

4. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने वर्तमान अपील की सुनवाई पर प्रारंभिक

आपति उठाते हुए कहा कि रिमांड के आदेश का पालन किया जा चुका है और ट्रायल कोर्ट ने सिविल अपील में पारित दिनांक 08.05.2023 के आदेश के अनुसार 'मुद्दा संख्या 9' को निस्तारण करते हुए दिनांक 18.08.2023 को एक आदेश पारित किया है। तदनुसार यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता के लिए उपलब्ध उपाय यह है कि वह ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद के आदेश के विरुद्ध अपील दायर करे, तथा रिमांड के आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील अब निरर्थक है।

5. आगे यह तर्क देने की मांग की गई है कि जिस मुद्दे पर रिमांड बनाया गया था, उस पर निर्णय लेने वाले ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद के आदेश के खिलाफ अपील दायर किए जाने की अनुपस्थिति में, उक्त आदेश लागू रहेगा, भले ही पहले का आदेश हो रद्द कर दिया गया है, और इसलिए, वर्तमान अपील पर विचार करके पिछले आदेश को उलटने की निरर्थकता की कवायद होगी।

6. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने उपरोक्त आपति को यह कहकर खारिज कर दिया है कि रिमांड के आदेश के खिलाफ अपील को रिमांड के आदेश के अनुसरण में ट्रायल कोर्ट द्वारा परिणामी आदेश पारित करने के साथ निरर्थक नहीं माना जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि रिमांड के आदेश के खिलाफ आदेश XLIII, नियम 1(u) द्वारा दी गई अपील का अधिकार रिमांड के आदेश के अनुसरण में परिणामी आदेश पारित करने से नहीं छीना जा सकता या निरस्त नहीं किया जा सकता। विद्वान

वकील ने **कनकया बनाम लक्ष्मय्या** के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

7. प्रारंभिक मुद्दा, जिस पर पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुतियां दी गई हैं, एक कानूनी प्रश्न उठाता है कि क्या रिमांड के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित करने से रिमांड आदेश के खिलाफ आदेश XLIII नियम 1(u) के तहत अपील की संस्था या सुनवाई पर रोक लग जाएगी।

8. सिविल प्रक्रिया संहिता, 19082 किसी मामले में रिमांड के आदेश के विरुद्ध व्यथित पक्ष को अपील का अधिकार देता है, जहां अपीलीय न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील की जा सकती है और धारा 105(2) के संदर्भ में गंभीर निर्योग्यता भी प्रदान करता है, जो अपीलकर्ता को अंतिम फैसले के विरुद्ध अपील करने से रोकता है, कोई भी आपति जो रिमांड के आदेश के विरुद्ध अपील के माध्यम से उठाई गई हो।

9. संहिता में ऐसा कोई उपबंध नहीं है, चाहे वह अभिव्यक्त हो या अन्यथा, जो किसी पक्षकार के रिमांड आदेश के विरुद्ध अपील करने के अधिकार को छीनने वाला माना जा सके, यदि वह प्रारंभिक बिन्दु, जिस पर रिमांड बनाया गया था, रिमांड आदेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत किए जाने या उस पर सुनवाई किए जाने तथा उसका निपटारा किए जाने से पहले निस्तारित कर दिया गया हो।

10. आदेश XLIII नियम 1(u) के तहत, किसी मामले को वापस भेजने के आदेश के विरुद्ध



अपील की जा सकती है, जबकि अपील अपीलीय न्यायालय के आदेश के विरुद्ध की जा सकती है। इसका अर्थ यह होगा कि रिमांड के आदेश के विरुद्ध अपील केवल उस मामले में की जा सकेगी जिसमें अपील उस डिक्री के विरुद्ध होगी जो अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित की गई होती यदि उस न्यायालय ने रिमांड के बिना मामले का निर्णय किया होता।

11. ऐसे मामले में जहां रिमांड के आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाती है, आदेश से व्यथित पक्ष धारा 105(2) के तहत निहित प्रावधान के मद्देनजर अंतिम डिक्री से अपील में इसकी सत्यता पर विवाद नहीं कर सकता है।

12. आदेश XLIII, नियम 1 सपठित धारा 104, आदेश XLIII, नियम 1 के विभिन्न खंडों के अंतर्गत आने वाले आदेशों के विरुद्ध अपील के लिए स्पष्ट रूप से प्राधिकृत करती है और एक मंच का निर्माण करती है। इस प्रकार, कानून द्वारा प्रदत्त अपील का अधिकार एक सारवान अधिकार है, और इसके विपरीत किसी भी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, अपील का अधिकार प्रदान करने वाले वैधानिक प्रावधान में कोई सीमा या निर्योग्यता जोड़ना वैध नहीं होगा, जिसे विधानमंडल ने सम्मिलित करना उचित नहीं समझा। अपील के वैधानिक अधिकार का हनन आसानी से नहीं माना जा सकता, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां ऐसी अपील दायर न करने से संबंधित पक्ष के बाद के चरण में आदेश की सत्यता पर विवाद करने के अधिकार पर गंभीर रूप से प्रतिबंध लग सकता है।

13. आदेश XLIII, नियम 1(यू) में कोई स्पष्ट प्रतिबंध नहीं है, जिसमें कोई शर्त हो कि रिमांड के आदेश पर अपील तभी की जा सकेगी जब अपील दायर करने से पहले या उसके लंबित रहने के दौरान मामले का अंतिम रूप से परीक्षण न्यायालय द्वारा निर्धारण नहीं किया गया हो। ऐसा कोई प्रावधान भी नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि रिमांड के आदेश के विरुद्ध दायर अपील निष्फल हो जाएगी, यदि वह प्रारंभिक बिंदु, जिस पर रिमांड बनाया गया था, अपील के लंबित रहने के दौरान निस्तारित कर दिया गया हो।

14. अपील का अधिकार और इस प्रयोजन के लिए क्षेत्राधिकार, कानून द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है, तथा इसे स्पष्ट शब्दों या आवश्यक निहितार्थ के अलावा नहीं छीना जा सकता। संहिता में स्पष्ट शब्दों में या अन्यथा यह नहीं कहा गया है कि रिमांड के आदेश के विरुद्ध अपील केवल तभी की जा सकेगी, जब वह बिन्दु, जिस पर रिमांड किया गया था, अपील प्रस्तुत किए जाने या सुनवाई किए जाने से पूर्व प्रथम न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से अवधारित नहीं किया गया हो।

15. विधानमंडल ने अपने विवेक से, स्पष्ट शब्दों में ऐसा कोई बहिष्करण खंड प्रदान नहीं किया, इसका कारण यह है कि यदि कोई पक्ष, किसी भी कारण से, रिमांड के परिणामस्वरूप आदेश पारित होने से पहले रिमांड के आदेश के खिलाफ अपील करने में असमर्थ है, तो वह धारा 105(2) के मद्देनजर उस आदेश पर आपत्ति करने का सारा अवसर खो देगा, और साथ ही, वह आदेश XLIII नियम 1(यू)

सपठित धारा 104(1) द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदत्त अपील के अधिकार से भी वंचित हो जाएगा।

16. इसके विपरीत स्थिति अपनाने में भ्रांति उस स्थिति का उदाहरण लेने से स्पष्ट होगी जहां प्रथम अपीलीय न्यायालय रिमांड का आदेश पारित करता है, और आदेश XLIII नियम 1(यू) के अंतर्गत अपील के अधीन होने से पहले, ट्रायल कोर्ट रिमांड आदेश के अनुसरण में गुण-दोष के आधार पर आदेश पारित करता है, और इस प्रकार पारित आदेश अपरिभाष्य होता है। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाता है कि ऐसी स्थिति में, संबंधित पक्ष के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय रिमांड आदेश के अनुसरण में ट्रायल जज द्वारा पारित परिणामी आदेश को चुनौती देना होगा, तो संबंधित पक्ष ट्रायल कोर्ट के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने के लिए मजबूर होगा, भले ही उक्त आदेश निर्विवाद हो, और धारा 105 (2) के तहत प्रतिबंध के आधार पर, वह उस अपील में रिमांड आदेश पर हमला करने का हकदार नहीं होगा। इससे स्पष्टतः पार्टी के अधिकारों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा विधानमंडल द्वारा उक्त आशय का कोई स्पष्ट प्रावधान न होने की स्थिति में इस प्रकार का कोई बहिष्कार आसानी से नहीं समझा जा सकता।

17. यह देखा जा सकता है कि संहिता की योजना के तहत रिमांड के आदेश का एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है, तथा ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील का स्वतंत्र अधिकार प्रदान किया गया है। धारा 105(2) के अनुसार, ऐसे मामले

में जहां संबंधित पक्ष रिमांड के आदेश के खिलाफ अपील के अपने अधिकार का प्रयोग करने में विफल रहता है, तो आदेश XLIII, नियम 1 खंड (यू) के तहत प्रदान किए गए अपील के अधिकार को और भी अधिक मूल्यवान बना देता है।

18. इसलिए, वैधानिक योजना के तहत रिमांड के आदेश को स्वतंत्र अस्तित्व में माना जाएगा और इसे केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि रिमांड आदेश को बाद में प्रभावी कर दिया गया है और जिस बिंदु पर रिमांड किया गया था, उस पर निर्णय हो गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आदेश XLIII, नियम 1(यू) के तहत ऐसे आदेश के खिलाफ अपील करने का एक अलग अधिकार प्रदान किया गया है, और धारा 105(2) के तहत, रिमांड के आदेश से व्यथित व्यक्ति पर इसके खिलाफ अपील करने का दायित्व डाला गया है, और ऐसा न करने पर, मुकदमे के बाद के चरण में आदेश की औचित्य या सत्यता के संबंध में कोई भी आपत्ति उठाने से उसे रोक दिया जाएगा। इसलिए, संहिता में ऐसा कोई प्रावधान करना संभव नहीं होगा कि रिमांड के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित करने से रिमांड आदेश के विरुद्ध किसी अपील के पेश होने या उसकी सुनवाई पर रोक लग जाएगी।

19. संहिता की धारा 97 के साथ एक सादृश्य खींचा जा सकता है, जो यह प्रावधान करता है कि जहां प्रारंभिक डिफ्री से व्यथित कोई पक्षकार ऐसी डिफ्री के विरुद्ध अपील नहीं करता है, तो उसे अंतिम डिफ्री के विरुद्ध की जाने वाली किसी भी अपील में उसकी सत्यता

पर विवाद करने से रोक दिया जाएगा। यद्यपि, धारा 97 के प्रावधान वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे, फिर भी यह सादृश्य उपयुक्त होगा क्योंकि रिमांड के आदेश से अपील और प्रारंभिक डिक्री से अपील की स्थिति बहुत समान होगी क्योंकि दोनों स्थितियों में, यदि कानून द्वारा प्रदान की गई अपील को पेश नहीं किया जाता है, तो आदेश या डिक्री, जैसा भी मामला हो, को बाद के चरण में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

20. यह प्रश्न कि क्या अंतिम डिक्री पारित करने से, प्रारंभिक डिक्री से पहले से दायर अपील की स्वीकार्यता प्रभावित होगी, विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष विचारणीय विषय रहा है, और यह माना गया है कि अपील की संस्थिती के बाद अंतिम डिक्री पारित करने से अपील की स्वीकार्यता प्रभावित नहीं होगी। इस संबंध में **कन्हैयालाल बनाम त्रिबेनी सहाय, रामियन बनाम वीरप्पुडियन, गोकुल कलवार बनाम चंदर शेखर, मधु सूदन बनाम छलीमद्दीन अहमद, गुरुमुख सिंह बनाम शिव राम, बसवंत मल्लप्पा बनाम कल्लप्पा वीरभद्रप्पा, माधोराव पाइकाजी बनाम एकनाथराव बलप्पा और उप्पला सुब्बैया बनाम चित्रला नरसिमलू** मामले में दिए गए निर्णयों का संदर्भ लिया जा सकता है।

21. उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सामान्य तर्क दोहरा है: पहला, प्रारंभिक डिक्री का एक स्वतंत्र अस्तित्व है और अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील में इसका विरोध नहीं किया जा सकता है; और दूसरा, यदि प्रारंभिक डिक्री को रद्द कर दिया गया तो अंतिम डिक्री अपने

आप ही समाप्त हो जाएगी। यह भी माना गया कि प्रारंभिक डिक्री का एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है और व्यथित व्यक्ति उसके विरुद्ध अपील करने के लिए बाध्य होता है, इसलिए प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील प्रस्तुत किए जाने से पहले या बाद में पारित अंतिम आदेश द्वारा उस अधिकार को नहीं छीना जा सकता।

22. आदेश XLI नियम 23 के तहत किए गए रिमांड के आदेश की भी एक सदृश्य स्थिति है, जो आदेश XLIII, नियम 1(यू) के तहत अपील योग्य है, इस शर्त के साथ कि यदि इसके खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की जाती है, तो इसे धारा 105(2) के तहत प्रतिबंध के मद्देनजर चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार, रिमांड के आदेश का एक स्वतंत्र अस्तित्व होगा और यदि कोई व्यक्ति इससे व्यथित है, तो उसके पास इसके विरुद्ध अपील करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं होगा, अन्यथा, बाद में उसे इसकी सत्यता पर विवाद करने से रोक दिया जाएगा।

23. कानून रिमांड के आदेश से व्यथित व्यक्ति को अपील करने का अधिकार देता है, और यह अधिकार केवल इस कारण से नहीं छीना जा सकता कि रिमांड के परिणामस्वरूप अंतिम आदेश पारित किया गया है, या तो व्यक्ति द्वारा रिमांड आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने से पहले या बाद में। जब तक उसकी अपील अन्यथा उचित है, तब तक उसे सुनवाई का अधिकार होगा, और ऐसी अपील को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि रिमांड के परिणामस्वरूप ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध कोई अन्य

अपील दायर नहीं की गई है। ऐसा इस कारण से भी होगा कि रिमांड के आदेश के बाद ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित अंतिम आदेश, अपनी प्रकृति में रिमांड के आदेश पर निर्भर और अधीनस्थ होगा, क्योंकि यह उसी का परिणामिक होगा और रिमांड आदेश की शर्तों द्वारा नियंत्रित होगा। इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि रिमांड आदेश को रद्द कर दिया जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश भी निरस्त हो जाएगा।

24. जहां तक प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए इस तर्क का संबंध है कि रिमांड आदेश के परिणामस्वरूप ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद का आदेश, जिसके विरुद्ध अपील नहीं की गई है, तब भी लागू रहेगा, भले ही पहले के आदेश को उलट दिया जाए, और इसलिए, वर्तमान अपील का कोई महत्व नहीं होगा, यह देखा जा सकता है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद का आदेश केवल प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए रिमांड के निर्देशों का पालन करता है, और इसे किसी भी तरह से उक्त आदेश को अधिक्रमित करने वाला नहीं माना जा सकता है। इसलिए, ट्रायल जज द्वारा पारित बाद के आदेश की वैधता, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित पहले के आदेश की वैधता पर निर्भर करेगी। मामले की सुनवाई करने के लिए ट्रायल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र रिमांड आदेश पर निर्भर है, अगर रिमांड आदेश को अवैध माना जाता है, तो रिमांड आदेश के परिणामस्वरूप कार्यवाही को अमान्य घोषित कर दिया जाएगा।

25. आदेश XLI, नियम 23 के तहत रिमांड के आदेश को उलटने का प्रभाव यह होगा कि ऐसे

आदेश के अनुसरण में की गई किसी भी कार्रवाई का स्वतः ही कोई प्रभाव नहीं रह जाएगा और ट्रायल कोर्ट को मामले में आगे कोई आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। प्रतिवादी द्वारा उठाया गया तर्क कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित अंतिम आदेश, जो कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए रिमांड का परिणाम है, रिमांड आदेश के उलट होने के बाद भी बरकरार रहेगा, इसलिए, एक स्पष्ट तार्किक असंगति को जन्म देगा, और तर्क असमर्थनीय होगा।

26. इसे दूसरे नज़रिए से भी देखा जा सकता है। यह बहुत संभव है कि किसी व्यक्ति को ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित अंतिम आदेश पर कोई आपत्ति न हो, बशर्त कि रिमांड का आदेश सही हो, और उसकी एकमात्र आपत्ति रिमांड के आदेश पर ही हो सकती है। अंतिम आदेश, रिमांड के आदेश में निहित निर्देशों को पूरा करने के परिणामस्वरूप या उसके प्रभाव के कारण है, कोई कारण नहीं है कि संबंधित पक्ष को उक्त अंतिम आदेश के खिलाफ अपील दायर करने के लिए मजबूर किया जाए, जब उसके पास रिमांड के आदेश के खिलाफ आदेश XLIII, नियम 1 (यू) के तहत अपील का वैधानिक अधिकार है, विशेष रूप से, जब अंतिम आदेश के खिलाफ अपील में धारा 105 (2) द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के आधार पर रिमांड के आदेश की शुद्धता पर सवाल उठाना उसके लिए विकल्प नहीं होगा।

27. यदि रिमांड के आदेश के विरुद्ध दायर अपील को स्वीकार कर लिया जाता है तो उसी आधार पर अंतिम आदेश के विरुद्ध दायर की

जाने वाली अपील अनावश्यक एवं उद्देश्यहीन हो जाएगी। रिमांड के बाद कार्यवाही जारी रखने का ट्रायल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र रिमांड के आदेश की वैधता पर निर्भर करता है, यदि उस आदेश को अपील के कारण रद्द कर दिया जाता है, तो उसके परिणामस्वरूप पारित अंतिम आदेश और रिमांड आदेश के तहत की गई सभी कार्यवाहियां इसके साथ समाप्त हो जाएंगी।

28. उसी वाद में रिमांड के आदेश के अनुसरण में पारित अंतिम आदेश रिमांड के आदेश पर आश्रित और अधीनस्थ होगा। अपीलीय न्यायालय को, जब तक वह रिमांड आदेश के विरुद्ध अपील के अधीन है, रिमांड आदेश को उलटने या संशोधित करने की शक्ति होगी, तथा इस सीमा तक, रिमांड आदेश के अनुसरण में पारित अंतिम आदेश के क्रियान्वयन को परिणामतः प्रभावित करने की भी शक्ति होगी। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि वादी को रिमांड के आदेश के खिलाफ अपील करने का वैधानिक अधिकार है, और उसे रिमांड के आदेश के अनुसार ट्रायल कोर्ट के समक्ष कार्यवाही को चुनौती देने का भी अधिकार है। दोनों अधिकार स्वतंत्र होने के कारण, ऐसे किसी एक अधिकार का प्रयोग दूसरे के प्रयोग पर रोक नहीं लगाएगा। यह दो वैकल्पिक अधिकारों के बीच चयन का प्रश्न नहीं होगा; बल्कि यह वही अधिकार होगा जिसका प्रयोग संबंधित पक्ष रिमांड आदेश के विरुद्ध अपील में तथा रिमांड के परिणामस्वरूप मुकदमे के आगे के चरणों में कर सकता है।

30. रिमांड के आदेश के खिलाफ अपील करने का अधिकार केवल इसलिए समाप्त नहीं हो जाएगा क्योंकि संबंधित पक्ष ने रिमांड के बाद ट्रायल कोर्ट में कार्यवाही का विरोध किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि रिमांड का आदेश अंततः उसके विरुद्ध अपील पर उलट दिया जाता है, तो ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद का आदेश, जो अपनी वैधता के लिए पहले के रिमांड आदेश पर निर्भर करता है, स्वतः ही प्रभावी नहीं रहेगा। रिमांड के आदेश के अनुसरण में की गई अनुवर्ती कार्यवाही अधीनस्थ और आश्रित होगी, तथा रिमांड के आदेश को उलटने से उसका स्थानान्तरण हो जाएगा, जो उच्चतर फोरम के समक्ष अपील का विषय है।

31. अंतिम आदेश, अपनी प्रकृति में, आश्रित और अधीनस्थ है, क्योंकि यह रिमांड आदेश द्वारा निर्देशित और नियंत्रित कार्यवाही के परिणामस्वरूप पारित किया गया है, जब उक्त आदेश को अपास्त किया जाता है, तो अंतिम आदेश स्वचालित रूप से समाप्त हो जाता है। इसलिए, रिमांड के आदेश के परिणामस्वरूप ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश लागू नहीं रह सकता है, यदि रिमांड आदेश, जिस पर वह निर्भर है, अपील में उलट दिया जाता है।

32. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकलता है कि रिमांड के आदेश के विरुद्ध अपील, यदि उचित रूप से प्रस्तुत की गई हो, तथा अन्यथा क्रम में हो, तो रिमांड आदेश की शर्तों को प्रभावी करने वाले अंतिम

आदेश के पारित होने से वह समाप्त या अप्रासंगिक नहीं हो जाएगी।

33. आदेश XLI, नियम 23 के अंतर्गत पारित रिमांड आदेश की अपीलीयता, रिमांड के परिणामस्वरूप अंतिम आदेश पारित होने से किसी भी तरह प्रभावित नहीं होगी।

34. इसलिए, अपील की स्वीकार्यता पर उठाई गई आपत्तियां कानूनी रूप से अस्थाई मानी जाती हैं।

35. जैसा कि पक्षों के विद्वान वकील द्वारा प्रार्थना की गई है, दिनांक 27.09.2023 को दाखिल करने के लिए नए सिरे से सूचीबद्ध करें।

-----

(2023) 9 ILRA 320

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

प्रथम अपील संख्या 30 वर्ष 1977

नूर अहमद

...अपीलार्थी

बनाम

मोहम्मद अहमद

...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्रीमती एस. रहमान, ए.ए. सिद्दीकी, मोहम्मद असलम खान, मो. असलम खान. ज़ेड. जिलानी

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

के.बी. सिन्हा, आलोक सिन्हा, दुर्गेश कुमार पाठक, पी.के. खरे, शाश्वत श्रीवास्तव, उमेश कुमार श्रीवास्तव, वी. मिश्रा

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 96 - आदेश 41 नियम 27-उपयोग और कब्जे के लिए बेदखली और क्षति के लिए वाद वादी/प्रतिवादियों के पक्ष में डिक्री किया गया है - वादी का मामला यह था कि उनके पिता कादिर मियां ने दिनांक 20.04.1967 को पंजीकृत दान विलेख के माध्यम से वादी को प्रश्नगत संपत्ति दान में दी थी। उक्त दान विलेख के शर्तानुसार वादी के पास इसका अधिकार है और चूंकि प्रतिवादी उनके सौतेले भाई (कादिर मियां की पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र) हैं, जिन्होंने वादी से अनुरोध किया था कि वे उन्हें कुछ समय के लिए विवादित संपत्ति पर अपना कब्जा जारी रखने की अनुमति दें और उन्होंने इसे खाली करने का वादा किया था और बाद में उन्होंने ऐसा करने को अस्वीकार कर दिया, इसलिए वादी ने प्रतिवादियों को लाइसेंसधारी मानते हुए उनके लाइसेंस को समाप्त कर दिया और परिसर को खाली करने के लिए नोटिस जारी किया, जिसका पालन नहीं किया गया और इस प्रकार बेदखली के आदेश के साथ-साथ गलत उपयोग और कब्जे के लिए क्षतिपूर्ति की मांग करते हुए वाद दायर किया। प्रतिवादियों ने अपना लिखित अभिकथन दायर किया और इस आधार पर वाद लड़ा कि विचाराधीन संपत्ति प्रतिवादियों के दादा (कादिर मियां के पिता) बराती मियां की थी। चूंकि बराती मियां इस तथ्य से अवगत थे कि कादिर मियां के पुनर्विवाह के बाद, पहले विवाह से हुए बच्चों के

साथ उनके संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, इसलिए कादिर मियां की पहले विवाह से हुए बच्चों के अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा के लिए, बराती मियां ने संपत्ति प्रतिवादियों को दान में दे दी थी और इस तरह उन्होंने उस पर अपना स्वत्व जताया और उक्त कारण से वादी उनकी बेदखली की मांग नहीं कर सकते थे और न ही गलत उपयोग और कब्जे के लिए क्षतिपूर्ति मांग सकते थे। वर्ष 1950 में बराती मियां की मृत्यु के बाद भी, उक्त दस्तावेज कभी नहीं सौंपा गया और न ही प्रतिवादियों के अभिवचनों में इसका कोई संदर्भ है। सफी-उल-लाहा, बराती मियां के पुत्र और कादिर मियां के सगे भाई तथा प्रतिवादियों के ससुर होने के नाते उपरोक्त पहलू पर भी प्रकाश डाल सकते हैं, अर्थात् यह कि क्या बराती मियां ने अपने जीवनकाल में कोई बंटवारा किया था और क्या सफी-उल-लाहा के प्रत्येक भाई-बहन को उनके कब्जे वाली संपत्ति मिली थी, जिसे बराती मियां ने विभाजित किया था और बराती मियां की संपत्तियों में से प्रतिवादियों को कितना हिस्सा दान में दिया गया था। वह यह सशपथ बताने के लिए भी एक महत्वपूर्ण साक्षी थे कि क्या काजीपुर स्थित घर कादिर मियां ने अपनी पहली पत्नी से हुए बेटे को बसाने के लिए खरीदा था या वास्तव में इसे प्रतिवादियों के चाचा (मामा) ने खरीदा था। प्रतिवादियों ने इस संबंध में कोई साक्ष्य भी पेश नहीं किया और न ही काजीपुरा की संपत्ति का विलेख अभिलेख में दाखिल किया। सिराजुद्दीन के अभिसाक्ष्य सहित, जो भी साक्ष्य अभिलेख में उपलब्ध थे, उनके आलोक में, इस न्यायालय को

विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तर्कों से सहमत होने में कोई संकोच नहीं है और न्यायालय यह पाता है कि प्रतिवादियों द्वारा स्थापित कथित दान को ठोस रूप से सिद्ध नहीं किया जा सका, जबकि कादिर मियां द्वारा वादी के पक्ष में दिया गया दान, जिसे लिखित रूप में कर दिया गया था और 20.04.1967 को उप-पंजीयक के कार्यालय में विधिवत पंजीकृत किया गया था, सिद्ध हो चुका है और यह अविभाजित 'मुशा' के दान के रूप में बुरा नहीं है। अतः, यह न्यायालय यह पाता है कि नियमित वाद संख्या 14/1973 में विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 06.04.1977 को पारित निर्णय और डिक्री में कोई त्रुटि नहीं है और इसकी पुष्टि की जाती है। (पैरा 1 से 78)

बी. 'मोहम्मडन कानून के अंतर्गत एक दान को वैध बनाने के लिए तीन आवश्यकताएं हैं: (1) दाता द्वारा दान की घोषणा, (2) आदाता द्वारा दान को स्पष्ट रूप से या निहित रूप से स्वीकार करना, और (3) आदाता द्वारा वास्तव में या रचनात्मक रूप से कब्जे का वितरण और कब्जा लेना। ऐसे मामले में कोई लिखित दस्तावेज आवश्यक नहीं है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 129, धारा 123 के दायरे से मोहम्मडन कानून के नियम को बाहर करती है जो यह अनिवार्य करती है कि अचल संपत्ति का दान पंजीकृत विलेख द्वारा किया जाना चाहिए जैसा कि उसमें कहा गया है। लेकिन इसे सभी मामलों में एक अनिवार्य शर्त के रूप में नहीं लिया जा सकता है कि जब भी किसी मुसलमान द्वारा अचल संपत्ति के दान के बारे में लिखा

जाता है तो उसका पंजीकरण होना चाहिए। लेखन के लिए पंजीकरण की आवश्यकता है या नहीं, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मोहम्मडन कानून के अंतर्गत एक दान मौखिक दान हो सकता है और उसे पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं मुस्लिम कानून के अंतर्गत एक वैध दान होने के लिए तीन आवश्यक विशेषताएं पूरी होनी चाहिए, अर्थात्, (i) दाता द्वारा दान की घोषणा, (ii) दानकर्ता द्वारा दान की स्पष्ट या निहित स्वीकृति, और (iii) दानकर्ता को वास्तविक या रचनात्मक रूप से कब्जे की प्रदायगी; केवल इसलिए कि लिखित रूप से दान विलेख बनाने के समकालीन है, यह पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत पंजीकरण की गारंटी नहीं देता है। (पैरा 48)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. नफीस अहमद बनाम गुलाम मोहम्मद. द्वितीय अपील संख्या 77 वर्ष 2016

2. हफीजा बीबी बनाम एसके. फरीद (2011) 5 एससीसी 654 : (2011) 3 एससीसी (सिविल) 103

3. महबूब साहब बनाम सैयद इस्माइल (1995) 3 एससीसी 693

4. नसीब अली बनाम वाजिद अली (1927) एआईआर कलकटा 197

5. कमर-उन-निसा बीबी बनाम हुसैनी बीबी (1881) आईएलआर 3 इलाहाबाद 266

6. करम इलाही बनाम शर्फुद्दीन (1916) एआईआर इलाहाबाद 351

7. रशीद खातून बनाम आशिक अली (2014) 32 एलसीडी 2188

8. कैरम बी.आई. एवं अन्य बनाम मरियम बी.आई. एवं अन्य (1959) एस.सी.सी. ऑनलाइन मद्रास 281

9. एसके. मो. मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जनेबरी (1889) 16 इंड ऐप 205 (पीसी)

10. एसके. आफताब हुसैन एवं अन्य बनाम श्रीमती तैयब्बा बेगम एवं अन्य (1972) एससीसी ऑनलाइन सभी 373

11. शेख मोहम्मद मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जान (1888-1889) 16 इंड एपीपी 205 पीसी

12. हामिद उल्लाह बनाम अहमद उल्लाह (1936) एआईआर इलाहाबाद 473

13. हयातुद्दीन बनाम अब्दुल गनी एवं अन्य (1974) एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 35

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा पारित)



1. वर्तमान प्रथम अपील, प्रतिवादी/अपीलकर्ता द्वारा धारा 96 सीपीसी के अंतर्गत प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बहराइच द्वारा नियमित वाद संख्या 14/1973 में पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 06.04.1977 के विरुद्ध योजित की गई है, जिसके द्वारा वादी/प्रतिवादियों के पक्ष में बेदखली और उपयोग और कब्जे के लिए हर्जाने का वाद डिक्री किया गया था। सुविधा के लिए यह न्यायालय, उन पक्षों को वैसे ही संदर्भित करेगा, जैसे वे ट्रायल कोर्ट में पक्षकार थे।

2. इस अपील को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं:-

3. वादी [यहाँ प्रतिवादी] ने प्रतिवादी नूर अहमद और शमशुद्दीन [इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता] के खिलाफ विवादित घर की एक दुकान, गोदाम और ऊपरी हिस्से से बेदखल करने और गलत उपयोग और कब्जे के लिए हर्जाने की डिक्री के लिए वाद योजित किया।

4. वादीगण का मामला यह था कि उनके पिता कादिर मियां ने दिनांक 20.04.1967 को पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से वादीगण को विचाराधीन संपत्ति उपहार में दी थी। उक्त उपहार विलेख के अनुसार वादीगण का उस पर स्वामित्व है और चूंकि प्रतिवादीगण उनके सौतेले भाई (कादिर मियां की पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र) हैं, जिन्होंने वादीगण से विवादित संपत्ति पर कुछ समय के लिए अपना कब्जा जारी रखने की अनुमति मांगी थी और उन्होंने इसे खाली करने का वादा किया था, लेकिन

बाद में जब उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया, तो वादीगण ने प्रतिवादियों को लाइसेंसधारी मानते हुए उनका लाइसेंस समाप्त कर दिया और परिसर खाली करने के लिए नोटिस दिया, जिसका अनुपालन नहीं किया गया और इस प्रकार बेदखली के आदेश के साथ-साथ गलत उपयोग और कब्जे के लिए क्षतिपूर्ति की मांग करते हुए मुकदमा योजित किया। उल्लेखनीय रूप से, वादपत्र में एक नक्शा भी था, जो उस हिस्से को दर्शाता था, जो क्रमशः वादीगण और प्रतिवादियों के कब्जे में था।

5. प्रतिवादियों ने अपना लिखित बयान दाखिल किया और इस आधार पर मुकदमा लड़ा कि विचाराधीन संपत्ति प्रतिवादियों के दादा (कादिर मियां के पिता) बराती मियां की थी। चूंकि बराती मियां इस तथ्य से अवगत थे कि कादिर मियां के दोबारा विवाह करने के बाद, उनके पहले विवाह से हुए बच्चों के साथ उनके संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, इसलिए कादिर मियां के पहले विवाह से हुए बच्चों के अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा के लिए, बराती मियां ने संपत्ति प्रतिवादियों को उपहार में दे दी थी और इस तरह उन्होंने उस पर अपना हक जताया और इस कारण से वादी अपनी बेदखली की मांग नहीं कर सकते थे और न ही गलत उपयोग और कब्जे के लिए हर्जाना मांग सकते थे।

6. दलीलों के आदान-प्रदान पर ट्रायल कोर्ट ने पाँच वाद बिन्दु विरचित किए, जो इस प्रकार हैं:-

(1) क्या मुकदमे की संपत्ति मोहम्मद कादिर मियां की थी, जैसा कि वादीगण ने आरोप लगाया है, यदि ऐसा है तो क्या उन्होंने वादीगण को संपत्ति उपहार में दी थी?

(2) क्या मुकदमे की संपत्ति कादिर मियां के पिता की थी और उन्होंने प्रतिवादियों और उनके भाई बदरुद्दीन के पक्ष में उपहार दिया था, जैसा कि लिखित बयान के पैरा-17 में दलील दी गई है?

(3) क्या बदरुद्दीन को पक्षकार न बनाने के कारण मुकदमा दूषित है?

(4) क्या मुकदमा समय के भीतर नहीं है?

(5) क्या प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे से मालिक बन गए हैं?

7. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करते हुए, ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 06.04.1977 के अपने फैसले और डिक्री के माध्यम से प्रतिवादियों के खिलाफ मुकदमा डिक्री किया और वाद के साथ संलग्न नक्शे में नीले रंग से दिखाए गए विवादित हिस्से पर वादी को कब्जा प्रदान किया और वादी को प्रतिवादियों से परिसर के गलत उपयोग और कब्जे के लिए 75 रुपये प्रति माह की दर से 2700 रुपये की राशि हर्जाने के रूप में वसूलने की अनुमति दी। यही दर मुकदमा अवधि और भविष्य के नुकसान के लिए भी दी गई। उपरोक्त

पृष्ठभूमि में ही प्रतिवादी/अपीलकर्ता ने यह प्रथम अपील योजित की है।

8. प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं की ओर से श्री मोहम्मद सादाब खान व श्री मोहम्मद असलम खान की सहायता से श्री मोहम्मद आरिफ खान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, द्वारा निम्नलिखित तर्क दिये गए हैं:-

(i) यह आग्रह किया जाता है कि ट्रायल कोर्ट ने लाइसेंस के बिंदु पर वाद बिन्दु विरचित करने में विफल रहने की गलती की है; चूंकि वादी पक्ष का मामला यह था कि प्रतिवादी लाइसेंसधारी थे और उनका लाइसेंस समाप्त कर दिया गया था। हालांकि, न तो ऐसा कोई साक्ष्य पेश किया गया और वैसे भी उक्त बिंदु पर किसी उचित दलील और मुद्दे के अभाव में, इस संबंध में साक्ष्य की सराहना नहीं की जा सकती, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की सरासर विफलता हुई।

(ii) यह भी कहा गया है कि विवाद कथित उपहार के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह विवादित संपत्ति के संबंध में कादिर मियां द्वारा दिया गया था। यह कहा गया है कि कादिर मियां इस कारण से उपहार नहीं दे सकते थे क्योंकि उनके पास उस पर कोई विशेष अधिकार नहीं था। विचाराधीन संपत्ति बराती मियां और कादिर मियां द्वारा खरीदी गई थी और जब तक बंटवारा या

सीमांकित विभाजन नहीं किया जाता, तब तक अविभाजित हिस्से के संबंध में उपहार नहीं दिया जा सकता था क्योंकि मुशा (अविभाजित) का उपहार, कानून में गलत है। यह भी कहा गया है कि उपहार के आवश्यक तत्वों में से एक दानकर्ता द्वारा स्वीकृति के साथ-साथ कब्जा सौंपना भी है। यह आग्रह किया गया है कि साक्ष्य से पता चलता है और जैसा कि वादीगण ने स्वीकार किया है कि कब्जा प्रतिवादियों के पास था और चूंकि कब्जा वादीगण को नहीं सौंपा गया था, इसलिए उपहार शून्य था और वैध उपहार से संबंधित मुस्लिम कानून में बताए गए सिद्धांत के विरुद्ध था।

9. वादीगण/प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री दुर्गेश पाठक और श्री सरश्वत श्रीवास्तव ने उपरोक्त दलीलों का पुरजोर विरोध किया है और इस प्रकार तर्क दिया है:-

(i) लाइसेंस का मुद्दा इस अर्थ में महत्वपूर्ण नहीं है कि वादीगण ने कादिर मियां द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित और पंजीकृत उपहार विलेख के आधार पर संपत्ति पर स्वामित्व का दावा किया था। एक बार जब कादिर मियां ने संपत्ति से अपने सभी अधिकारों को त्याग दिया और उसे वादीगण-प्रतिवादियों को सौंप दिया, जिन्होंने उसे अपना स्वामी मान लिया, तो प्रतिवादीगण-अपीलकर्ता जो परिसर में रह रहे थे, वादीगण के

सौतेले भाई थे, इस प्रकार परिसर में उनका कब्जा केवल अनुमेय था और इसी संदर्भ में उनके रहने का अधिकार समाप्त कर दिया गया और बेदखली तथा क्षतिपूर्ति का आदेश मांगा गया। पक्षकार एक-दूसरे के मामले को पूरी जानकारी के साथ जानते हुए मुकदमे में गए थे और अपने-अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किए थे और यह मुख्य रूप से पक्षों के बीच स्वामित्व की लड़ाई थी।

(ii) वाद बिन्दु संख्या 1 और 2, जो कि ट्रायल कोर्ट द्वारा तैयार किए गए थे, पूरे विवाद के लिए मौलिक थे और लाइसेंस का विचार पहले से विरचित बिन्दु में अंतर्निहित था। वैसे भी, प्रतिवादी द्वारा सुनवाई के दौरान कार्यवाही के किसी भी चरण में कोई अतिरिक्त वाद बिन्दु विरचित करवाने का कोई प्रयास नहीं किया गया और केवल कार्यवाही और डिफ्री के निष्पादन में देरी करने के लिए उपरोक्त मुद्दों को बहस के दौरान उठाया गया है क्योंकि आदेश 14 नियम 5 सीपीसी के अंतर्गत कोई आवेदन अदालत के समक्ष नहीं किया गया था, जबकि अपील 1977 से लंबित है।

(iii) यह भी आग्रह किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति कादिर मियां की थी, जो संपत्ति उन्हें कादिर मियां, उनके भाई सफी-उल्लाह और बहन

सुश्री मोमकोमा के बीच हुए पारिवारिक बंटवारे में मिली थी। विवादित संपत्ति का एक अन्य भाग कादिर मियां द्वारा पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा विशेष रूप से खरीदा गया था और उसके बाद विभाजन के रूप में प्राप्त पूरी संपत्ति तथा खरीदा गया एक भाग पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से वादीगण को उपहार में दिया गया था और वादीगण इसके अनन्य स्वामी होने के नाते तथा बड़े भाग के कब्जे में होने के कारण प्रतिवादियों को बेदखल करने का अधिकार रखते हैं तथा मानचित्र में नीले रंग की रेखाओं द्वारा दर्शाए गए सीमित भाग के गलत उपयोग और कब्जे के लिए क्षतिपूर्ति का दावा करने का अधिकार रखते हैं।

(iv) यह आग्रह किया जाता है कि वादीगण के उपहार पर आपत्ति करने के लिए उठाया गया आधार पूरी तरह से वैध नहीं है; चूंकि कब्जा वादीगण के पास था तथा केवल इसलिए कि कुछ भाग पर प्रतिवादियों का अनुमेय कब्जा था, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि प्रतिवादियों के अनुमेय कब्जे के कारण उपहार शून्य हो जाता है तथा अविभाजित भाग के मुशा की प्रकृति का उपहार शून्य होगा।

(v) यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी विचाराधीन परिसर में अनुमेय अधिभोगी के रूप में थे, न कि उनके

अपने संपत्ति अधिकार में, इसलिए कादिर मियां के समय में भी उनका कब्जा कादिर मियां की अनुमति से था, जिन्होंने संपत्ति वादी को उपहार में दी थी और इस प्रकार उपहार के आधार पर वादी का स्वामित्व किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होता है।

(vi) यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी कथित उपहार को साबित करने में सक्षम नहीं हुए थे, जिसे बराती मियां द्वारा दिया गया था, क्योंकि गवाहों की गवाही में भिन्न विसंगतियां थीं, जिन्होंने उक्त उपहार को समझाने और स्थापित करने की मांग की थी। प्रतिवादी वह तारीख भी नहीं दे सके, जिस दिन उपहार दिया गया था और न ही कोई ऐसा प्रत्यक्ष कार्य था, जो यह संकेत दे सके कि प्रतिवादियों ने उपहार स्वीकार कर लिया था और उन्हें विशेष रूप से कब्जा दिया गया था। अन्यथा भी, यदि जिस कारण से प्रतिवादीगण वादीगण के उपहार की वैधता पर आक्षेप कर रहे हैं, उसी कारण से प्रतिवादियों का उपहार भी दोषपूर्ण हो जाता है और उपरोक्त के अतिरिक्त प्रतिवादीगण किसी भी ठोस साक्ष्य द्वारा अपने उपहार को सिद्ध नहीं कर पाए हैं, अतः अपील खारिज किये जाने योग्य है।

10. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, मौलिक विवाद और वर्तमान प्रथम अपील पर निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण मुद्दा, दो प्रतिद्वंद्वी उपहारों के

परिणाम पर निर्भर है, जो अपीलकर्ताओं और प्रतिवादियों द्वारा स्थापित किए गए हैं। मुख्य मुद्दा यह है कि यदि बराती मियां द्वारा दिया गया उपहार स्थापित पाया जाता है, तो जाहिर तौर पर यह पूरी संपत्ति के संबंध में पंजीकृत उपहार विलेख निष्पादित करने के कादिर मियां के अधिकार को प्रभावित करेगा।

पिछले आदेशों को नोटिस करने के बाद आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के अंतर्गत आवेदनों के संबंध में पारित उक्त आदेशों के प्रभाव का सारांश दिया और 22.05.2023 को एक विस्तृत आदेश पारित किया। दिनांक 22.05.2023 के आदेश का प्रासंगिक भाग यहां संदर्भ के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है:

11. गौरतलब है कि अपीलकर्ता और प्रतिवादी, जो सौतेले भाई हैं, दोनों ने उपहार के आधार पर प्रतिद्वंद्वी दावे स्थापित किए हैं और एक दूसरे के उपहार से इनकार किया है और उपरोक्त संदर्भ में, मूल जापन जिसे बराती मियां द्वारा निष्पादित किया गया बताया जाता है, जिसमें प्रतिवादियों के पक्ष में उनके द्वारा दिए गए उपहार का उल्लेख और स्वीकार किया गया है, महत्व रखता है।

12. वर्तमान अपील इस न्यायालय को नामित की गई थी और अपील पर सुनवाई 27.04.2023 को शुरू हुई थी। मामले की सुनवाई विभिन्न तारीखों पर हुई और 11.05.2023 को निर्णय सुरक्षित रखा गया था। हालांकि, निर्णय देते समय न्यायालय ने पाया कि आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के संदर्भ में कई आवेदन लंबित थे। न्यायालय ने आगे पाया कि कुछ आवेदनों को न्यायालय ने पहले ही अनुमति दे दी थी और आवेदनों को अनुमति देने का प्रभाव यह था कि आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के संदर्भ में योजित किए गए दस्तावेजों की भी जांच की जानी थी और इसलिए इस न्यायालय ने न्यायालय द्वारा 04.03.2005, 08.02.2007, 18.04.2007, 02.11.2007 और 11.12.2017 को पारित

"20. यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है जहां अपीलकर्ता और प्रतिवादी, जो सौतेले भाई हैं, दोनों ने उपहार के आधार पर प्रतिद्वंद्वी दावे स्थापित किए हैं और एक ने दूसरे के उपहार को अस्वीकार कर दिया है और उपरोक्त संदर्भ में, मूल जापन जिसे बराती मियां द्वारा निष्पादित किया गया बताया जाता है, जिसमें प्रतिवादियों के पक्ष में उनके द्वारा दिए गए उपहार का उल्लेख और स्वीकार किया गया है, एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाता है जो पक्षों के बीच विवाद को पूरी तरह से तय करने के लिए अत्यधिक महत्व का है। बराती मियां द्वारा निष्पादित उपहार के आधार पर संपत्ति को बनाए रखने के अपने अधिकारों के बारे में अपनी दलीलों को पुष्ट करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा 21 दस्तावेजों का एक सेट भी योजित किया गया है।

21. उपरोक्त पृष्ठभूमि में और साथ ही यह देखते हुए कि यह न्यायालय धारा 96 सीपीसी के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है जहां

इस न्यायालय को लगभग एक ट्रायल कोर्ट की तरह समान शक्तियों के साथ अपील का फैसला करना है, जहां पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले तथ्य और कानून के सभी मुद्दे खुले तौर पर उठाए जा सकते हैं और उन पर निर्णय लिया जा सकता है। यह न्यायालय इस तथ्य के साथ-साथ अपनी व्यापक शक्ति के प्रति भी सचेत है और यह न्यायालय यह देखकर अत्यंत दुखी है कि वर्तमान प्रथम अपील 1977 से इस न्यायालय में लंबित है और यद्यपि समय-समय पर आदेश पारित किए गए थे, जिन्हें यहां ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है, जो दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लेने से संबंधित हैं, लेकिन दुर्भाग्य से उन्हें उचित समय पर तार्किक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचाया गया।

22. यह उपर्युक्त कारणों से है कि न्यायालय ने विभिन्न तिथियों पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उक्त दस्तावेज प्रासंगिक होंगे और विचार करने के बाद यह न्यायालय इस मत पर पहुंचा है कि दो प्रतिद्वंद्वी उपहारों के आधार पर पक्षों के संबंधित दावों के बारे में निर्णय लेने और स्पष्ट रूप से राय देने के लिए, न्यायालय के लिए पक्षों को साक्ष्य पेश करने और उनके दस्तावेजों को साबित करने की अनुमति देना आवश्यक

होगा, जिन्हें रिकॉर्ड पर रखा गया है और लिया गया है।

23. यह न्यायालय आदेश 41 नियम 23-ए के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए मामले को प्रतिप्रेषित कर सकता है, तथा पक्षकारों को अभिलेख पर लिए गए दस्तावेजों पर साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है, लेकिन इतना समय बीत जाने तथा बिना किसी प्रभावी निर्णय के 40 वर्ष बीत जाने को देखते हुए, यह न्यायालय इस अपील को लंबित रख रहा है। हालांकि, यह न्यायालय **आदेश 41 नियम 25** के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, **धारा 151 सीपीसी** के साथ, इस मामले को जिला न्यायाधीश, बहराइच को सीमित उद्देश्य के लिए प्रतिप्रेषित करता है, ताकि पक्षकारों को केवल उन दस्तावेजों के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सके, जो **सी.एम. आवेदन संख्या 256/1984** के साथ योजित किए गए थे तथा जिन्हें न्यायालय द्वारा **04.03.2005** को पारित आदेश तथा जापन के अनुसार अभिलेख पर लेने की अनुमति दी गई थी, जिसे न्यायालय द्वारा दिनांक **11.12.2017** के आदेश के अनुसार अभिलेख पर लिया गया था। अपीलकर्ताओं को इस आदेश में दिए गए प्रावधानों के अलावा कोई अन्य नया साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

24. चूंकि मामले को ऊपर वर्णित सीमित उद्देश्य के लिए प्रतिप्रेषित किया जा रहा है, तदनुसार प्रतिवादियों को एक सीमित अवसर प्रदान किया जाता है कि यदि वे ऐसा करना चाहते हैं, तो वे 3 जुलाई, 2023 तक अपने दस्तावेज प्रस्तुत कर सकते हैं और यदि वे ऐसा करते हैं, तो उन्हें केवल उस सीमित सीमा तक साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाएगी और उससे आगे कुछ भी नहीं और ऐसे किसी भी दस्तावेज की स्वीकार्यता, आपतियों के अधीन होगी।"

13. यह उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में है कि जिला न्यायाधीश बहराइच, जिनके समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे, ने रिकॉर्ड वापस भेज दिया है और साक्ष्य दर्ज होने के बाद इसे न्यायालय के समक्ष रखा गया था। इसके बाद इस न्यायालय ने एक बार फिर 16.08.2023 और 17.08.2023 को मामले की सुनवाई की, जिसके बाद निर्णय सुरक्षित रखा गया।

14. तथ्यों के साथ-साथ पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रस्तुतीकरण के प्रकाश में, न्यायालय निर्धारण के लिए निम्नलिखित बिंदुओं को तैयार करता है:-

(i) क्या प्रतिवादी/अपीलकर्ता केवल परीक्षण न्यायालय के समक्ष मामला लड़ते समय लाइसेंस पर कोई वाद बिन्दु विरचित न किए जाने व उस पर साक्ष्य प्रस्तुत न कर पाने के

कारण, पूर्वाग्रह से ग्रस्त हुए, जिसके कारण आक्षेपित निर्णय दूषित हुआ?

(ii) क्या कथित उपहार, जिसे बाराती मियां द्वारा दिया गया कहा गया है, वैध है तथा कानून के अनुसार सिद्ध किया गया है?

(iii) क्या कादिर मियां द्वारा दिनांक 20.04.1967 को निष्पादित उपहार विलेख तथा दिनांक 17.08.1967 को अनुपूरक विलेख वैध है तथा कानून के अनुसार सिद्ध किया गया है तथा इसका प्रभाव क्या है?

15. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का भी अवलोकन किया है।

### **बिंदु संख्या 1**

16. निर्धारण का यह बिंदु अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस तर्क के मद्देनजर है कि वादीगण ने अपनी दलील के पैरा-6 में कहा था कि वादीगण ने दिनांक 12.01.1968 के नोटिस के माध्यम से प्रतिवादियों के दुकान, गोदाम तथा प्रथम तल पर एक हिस्से के संबंध में लाइसेंस रद्द कर दिया था। यह भी कहा गया है कि प्रतिवादियों ने लिखित बयान दाखिल करके लाइसेंस के सिद्धांत को विशेष रूप से नकार दिया है। यह भी कहा गया है कि चूंकि लाइसेंस का मामला वादी द्वारा बनाया गया था, जिसे प्रतिवादियों ने नकार दिया, इसलिए ट्रायल कोर्ट को लाइसेंस पर एक वाद बिन्दु

विरचित करना चाहिए था। चूंकि ऐसा कोई वाद बिन्दु विरचित नहीं किया गया था, इसलिए प्रतिवादी उचित साक्ष्य पेश करने में असमर्थ रहे और इसके अलावा प्रतिवादियों को यह साबित करने में पूर्वाग्रह था कि प्रतिवादी संबंधित परिसर के मालिक थे, न कि लाइसेंसधारी।

17. उपर्युक्त दलीलों का विरोध करते हुए, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने यह कहा है कि वादी अपने पिता, अर्थात् कादिर मियां द्वारा निष्पादित उपहार विलेख के आधार पर संबंधित संपत्ति के मालिक बन गए और चूंकि वे कब्जे में थे और प्रतिवादियों का उस पर कोई अधिकार नहीं था, लेकिन वे कब्जे और अनुमेय कब्जे में बने रहे, इसलिए अपीलकर्ता केवल लाइसेंसधारी थे और इस प्रकार उक्त कारण से प्रतिवादियों के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं हो सकता है और इस प्रकार उपरोक्त दलील का कोई आधार नहीं है और इसे विफल होना चाहिए।

18. जहां तक अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए वर्तमान तर्क का सवाल है, न्यायालय ने तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि वादी का मामला बहुत स्पष्ट है कि विचाराधीन संपत्ति कादिर मियां की है, जिन्होंने अपने पिता, अर्थात् बराती मियां से कुछ हिस्सा प्राप्त किया था और विचाराधीन संपत्ति का एक अन्य हिस्सा कादिर मियां ने लक्ष्मी नारायण और सालिगराम से पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा था। इस प्रकार यह कहा गया कि कादिर मियां ने वादी/प्रतिवादियों के

पक्ष में 20.04.1967 को पंजीकृत उपहार विलेख निष्पादित किया था और तब से वे वाद संपत्ति के मालिक हैं। वादी ने आगे कहा कि चूंकि प्रतिवादी वादी के सौतेले भाई थे और वादी के पक्ष में उपहार दिए जाने के बाद, प्रतिवादियों की स्थिति लाइसेंसधारी की थी, इसलिए वे वादी की इच्छा पर लाइसेंस पर कब्जा कर रहे थे और चूंकि वादी नहीं चाहता था कि प्रतिवादी कब्जा जारी रखें, इसलिए लाइसेंस रद्द कर दिया गया और उनसे वादी को कब्जा सौंपने की अपेक्षा की गई।

19. दूसरी ओर प्रतिवादियों ने उपर्युक्त तर्क का खंडन करते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि वे विचाराधीन संपत्ति के स्वामी हैं, क्योंकि बराती मियां जो पक्षकारों के दादा थे, ने प्रतिवादियों के पक्ष में मौखिक उपहार दिया था और इस प्रकार उक्त मौखिक उपहार के आधार पर, जो कादिर मियां द्वारा किए गए उपहार विलेख से पहले का था, प्रतिवादी मालिक के रूप में कब्जे में थे न कि लाइसेंसधारी के रूप में।

20. यदि अपीलकर्ताओं द्वारा लाइसेंस के संबंध में कोई वाद बिन्दु विरचित न किए जाने के संबंध में उठाए गए प्रश्न को ऊपर उल्लेखित पक्षकारों की दलीलों के संदर्भ में देखा जाए, तो यह संकेत मिलेगा कि वादी के अनुसार विचाराधीन संपत्ति कादिर मियां की थी, जबकि प्रतिवादियों के अनुसार यह बराती मियां और कादिर मियां दोनों की थी।

21. वादीगण कादिर मियां द्वारा दिनांक 20.04.1967 को निष्पादित उपहार विलेख के



आधार पर स्वामित्व का दावा करते हैं और दूसरी ओर, प्रतिवादीगण बराती मियां द्वारा दिए गए मौखिक उपहार के आधार पर स्वामित्व का दावा करते हैं। इस प्रकार, दोनों पक्षकार ऊपर वर्णित उपहार विलेख के आधार पर संपत्ति पर स्वामित्व का दावा कर रहे हैं। यदि वादी के उपहार विलेख को बरकरार रखा जाता है और प्रतिवादियों के पक्ष में किया गया उपहार साबित नहीं होता है, तो अंतिम प्रभाव यह होगा कि चूंकि प्रतिवादियों का स्वामित्व अस्वीकार कर दिया जाएगा और चूंकि वे अपने पिता कादिर मियां के समय से उस पर कब्जा कर रहे थे, इसलिए उनका कब्जा प्रकृति में अनुमेय होगा जो लाइसेंस के समान है और यह इस संदर्भ में है कि संबंधित पक्षों की दलीलों ने संकेत दिया कि लाइसेंस की दलील को उनके द्वारा कैसे समझा गया।

22. पक्षकार मुख्य रूप से दो उपहार विलेखों के आधार पर अपने संबंधित स्वामित्व का दावा करने वाले मुकदमे में लगे हुए थे। उन्होंने अपने साक्ष्य उन वाद बिन्दु के आधार पर पेश किए थे, जो ट्रायल कोर्ट द्वारा विरचित किए गए थे और यह देखा गया है कि वाद बिन्दु संख्या 1 और 2 पूरे विवाद को समाहित करता है, इसलिए लाइसेंस के संबंध में वाद बिन्दु विरचित न करने का कोई अर्थ नहीं है; क्योंकि यह पूरी तरह से इस बिन्दु पर निर्भर करता है कि वादी अपने उपहार को साबित करने में सफल रहे या प्रतिवादी अपने उपहार को साबित करने में सफल रहा क्योंकि यह पक्षों के बीच स्वामित्व का विवाद था। एक बार जब पक्षों ने पूरी तरह से जानते हुए साक्ष्य पेश कर दिए कि उन्हें किस मामले का सामना करना है और

विशेष रूप से पक्षों के बीच शामिल विवाद के प्रकाश में, लाइसेंस का मुद्दा, वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि स्वामित्व पर दिए गए निर्णय के बाद, प्रतिवादियों की स्थिति को सह-स्वामी या अनुमेय अधिभोगी/लाइसेंसधारी के रूप में माना जाएगा।

23. जैसा भी हो, अगर प्रतिवादी वाद बिन्दु विरचित न करने से व्यथित है, तो वह एक अतिरिक्त वाद बिन्दु विरचित करने के लिए ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक आवेदन पेश कर सकता था। हालांकि, अप्रैल, 2023 के महीने में सुनवाई शुरू होने के बाद भी इस अदालत के समक्ष ऐसा नहीं किया गया था और आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के अंतर्गत आवेदनों पर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन किसी भी समय, 1977 से वर्तमान प्रथम अपील के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने अतिरिक्त वाद बिन्दु विरचित करने और यह समझाने का कोई प्रयास नहीं किया कि उक्त वाद बिन्दु को विरचित न करने से प्रतिवादी किस तरह पूर्वाग्रहित थे और यहां तक कि इस अदालत के समक्ष भी, अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अदालत को यह विश्वास नहीं दिला सके कि लाइसेंस का मुद्दा इतना प्रासंगिक कैसे था कि इसे तैयार न करने से मुकदमे और पक्षों के अधिकारों पर असर पड़ेगा खासकर तब जब दोनों पक्ष अपने-अपने स्वामित्व का दावा कर रहे थे।

24. स्पष्ट रूप से, इस अदालत को यह पता चलता है कि दोनों पक्ष यानी वादी और प्रतिवादी दोनों ही कादिर मियां के बेटे हैं। वादी कादिर मियां की दूसरी पत्नी से बेटा है और

प्रतिवादी कादिर मियां की पहली पत्नी से। वादी और प्रतिवादियों के बीच सौतेले भाइयों का रिश्ता है और दोनों ही कादिर मियां के समय से ही विवादित परिसर पर कब्जा में हैं और अपना व्यवसाय कर रहे हैं। इस प्रकार, कादिर मियां के जीवनकाल में वादी और प्रतिवादियों दोनों का कब्जा अनुमेय था और स्थिति केवल तभी बदली जब वादी ने 20.04.1967 को कादिर मियां द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित उपहार विलेख के आधार पर संपत्ति पर स्वामित्व का दावा किया और दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने बराती मियां द्वारा उनके पक्ष में किए गए उपहार विलेख के आधार पर स्वामित्व का दावा किया। इस प्रकार, लाइसेंस का वाद बिन्दु बिल्कुल भी महत्वपूर्ण नहीं था और इसके न बनने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और इस प्रकार उपरोक्त कारणों से यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों में कोई सार नहीं पाता है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

### **बिंदु संख्या 2 और 3**

25. मुख्य बिन्दु संपत्ति का स्वामित्व है, जिसका दावा दोनों प्रतिद्वंद्वी पक्षों ने अपने-अपने उपहार के आधार पर किया है। वास्तविक विवाद उपर्युक्त दो प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमता है, यानी यह कि यदि वादी के पक्ष में कादिर मियां द्वारा निष्पादित उपहार विलेख मान्य होगा, तब वादी परिसर के मालिक काबिज होंगे और स्वामित्व के आधार पर, वे प्रतिवादियों द्वारा कब्जा किए गए हिस्से का कब्जा लेने के हकदार होंगे। दूसरी ओर, यदि वादी के पक्ष में कादिर मियां द्वारा निष्पादित उपहार विलेख विफल हो जाता है और इसमें

कुछ भी कम या ज्यादा नहीं होता है, तो संपत्ति को अनिवार्य रूप से उत्तराधिकार के आधार पर पार्टियों को उनके व्यक्तिगत कानून के अनुसार हस्तांतरित करना होगा। दूसरा पहलू यह है कि यदि प्रतिवादी अपने उपहार को साबित करने में सफल होते हैं, तो इसका प्रभाव यह होगा कि वे केवल उस हिस्से के संबंध में परिसर के स्वामित्व धारक होंगे जो बराती मियां ने उन्हें उपहार में दिया था और शेष भाग के लिए पक्ष उत्तराधिकार द्वारा शासित होंगे। इस संदर्भ में, वादी और प्रतिवादियों द्वारा स्थापित उपहार का बिन्दु महत्वपूर्ण हो जाता है।

26. इस न्यायालय को यह पता लगाना है कि क्या कादिर मियां द्वारा निष्पादित उपहार वैध था या क्या बराती मियां द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में किया गया उपहार वैध और विधिवत सिद्ध है। उपर्युक्त बिन्दु का उत्तर देने के लिए, संबंधित पक्षों द्वारा प्रस्तुत मूल दलीलों और साक्ष्यों का अनिवार्य रूप से अध्ययन करना होगा।

27. अभिलेख से पता चलता है कि पैराग्राफ-3 में वादी ने अपने पक्ष में उपहार विलेख की नोंद रखी और पैराग्राफ-5 में, यह कहा गया कि वादी की सहमति से, प्रतिवादियों ने परिसर में काम करना जारी रखा और पहली मंजिल पर एक हिस्से का उपयोग उनके द्वारा आवासीय उद्देश्यों के लिए किया गया। यह भी दलील दी गई कि वादी ने 12.01.1968 के नोटिस के जरिए लाइसेंस रद्द कर दिया और चूंकि प्रतिवादी ने इसका पालन नहीं किया, इसलिए उन्होंने साइट-प्लान के साथ मुकदमा

योजित किया, जिसमें उन क्षेत्रों को दर्शाया गया था, जो प्रतिवादियों के कब्जे में थे और जहां से उन्हें बेदखल किया जाना था।

28. लिखित बयान में प्रतिवादियों ने आरोप से इनकार किया और कहा कि वादी के पिता यानी कादिर मियां को उपहार विलेख निष्पादित करने का अधिकार नहीं था। यह भी कहा गया कि पक्षों के दादा बराती मियां ने भी प्रतिवादियों के पक्ष में एक उपहार दिया था और इस तरह वे मालिक थे। यह लिखित बयान के पैराग्राफ-17 में विशेष रूप से कहा गया था। प्रतिवादी ने कमजोर रूप से प्रतिकूल कब्जे की दलील भी उठाई।

29. वादी ने अपना प्रतिवाद योजित किया जिसमें कहा गया कि कादिर मियां संपत्ति के एकमात्र मालिक थे। वादी के पिता को उपहार विलेख निष्पादित करने का पूरा अधिकार था। यह भी कहा गया कि कादिर मियां ने नगर निगम बोर्ड से आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के बाद जीर्णोद्धार कराया था और यह कादिर मियां का धन था, जिसका उपयोग प्रश्नगत संपत्ति में किया गया था।

30. अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए वादी ने पांच गवाहों जंग मोहम्मद, उमा शंकर (ये दोनों उपहार विलेख के गवाह थे) पी.डब्लू.3 का परीक्षण किया, वादी नंबर 2 ने खुद से पूछताछ की। पी.डब्लू.4 मकसूद अली था, जिसका वादी के कब्जे को सिद्ध करने के लिए परीक्षण किया गया था और पी.डब्लू.5 अजीज अहमद को मुन्सी नियामत अली के हस्ताक्षर

की पहचान करने के लिए प्रस्तुत किया गया था।

31. दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए नूर अहमद को डी.डब्लू.1, सज्जाद को डी.डब्लू.2 के रूप में परीक्षित किया, जो बराती मियां द्वारा दिए गए उपहार का गवाह था। रमजान अली का परीक्षण डी.डब्लू.3 के रूप में किया गया, जिससे प्रतिवादियों के पक्ष में बराती मियां द्वारा दिए गए उपहार के तथ्य की पुष्टि की जा सके और मोहम्मद अली का परीक्षण डी.डब्लू.4 के रूप में किया गया।

32. पक्षों ने अपने-अपने मामले को साबित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य भी दाखिल किए।

33. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कादिर मियां द्वारा वादी के पक्ष में किए गए उपहार पर निम्नलिखित आधारों पर हमला किया:-

(i) कादिर मियां संपत्ति का एकमात्र मालिक नहीं था, इसलिए वह अविभाजित संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में उपहार विलेख निष्पादित नहीं कर सकता था। यह भी तर्क दिया गया कि वादी द्वारा यह गलत कथन किया गया था कि कादिर मियां संपत्ति का एकमात्र मालिक था; चूंकि लक्ष्मी नारायण और सालिगराम द्वारा कादिर मियां के पक्ष में दिनांक 16.07.1954 को निष्पादित बिक्री विलेख के अवलोकन से यह संकेत मिलता है

कि यह बराती मियां और कादिर मियां के नाम से संयुक्त रूप से निष्पादित किया गया था।

(ii) यह भी कहा गया है कि मुस्लिम कानून के अनुसार उपहार के मूल तत्वों की पूर्ति नहीं हुई है; क्योंकि सबसे पहले दाता द्वारा उपहार की घोषणा होनी चाहिए, जिसके बाद दानकर्ता द्वारा स्वीकृति दी जानी चाहिए और तीसरा महत्वपूर्ण तत्व कब्जे का स्थानांतरण था।

(iii) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि न तो कब्जे का स्थानांतरण हुआ था और न ही रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से इसकी पुष्टि हो सकती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अविभाजित संपत्ति का उपहार नहीं दिया जा सकता है क्योंकि अविभाजित/अविभाज्य संपत्ति के उपहार के संबंध में कुछ प्रतिबंध हैं और 'मुशा' का ऐसा उपहार मुस्लिम कानून में वैध नहीं माना जाता है और उपरोक्त सभी कारणों से, वादी द्वारा निर्धारित उपहार विलेख साबित नहीं हुआ और ट्रायल कोर्ट द्वारा दिये गए निष्कर्षों में मुशा की अवधारणा पर ध्यान नहीं दिया गया, जिसने उपहार को शून्य कर दिया और इस प्रकार इसके मद्देनजर वादी द्वारा भरोसा किए गए उपहार विलेख को साबित नहीं किया गया और न ही वादियों को कोई अधिकार प्रदान किया जा सका, इसलिए इसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए और चूंकि वादी का मुकदमा उपहार विलेख से प्राप्त स्वामित्व पर आधारित था, जो शून्य था, इसलिए मुकदमा विफल होने योग्य था और इस पहलू पर ट्रायल कोर्ट द्वारा विचार नहीं किया गया है।

34. अपने तर्कों को आगे बढ़ाते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बताया कि इसके विपरीत यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि कादिर मियां ने अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी कर ली थी और उसके बाद वादी कादिर मियां की दूसरी पत्नी से संतान थे और प्रतिवादी, जो पहली पत्नी से संतान हैं, उनके बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे और चूंकि बराती मियां दादा होने के नाते अपने पोतों का भविष्य सुरक्षित करना चाहते थे, जिन्हें कादिर मियां और उनकी दूसरी पत्नी द्वारा उपेक्षित किया जा रहा था, इसलिए उन्होंने प्रतिवादियों के पक्ष में संपत्ति में अपना हिस्सा उपहार में दे दिया और इस तरह इस पहलू पर ट्रायल कोर्ट द्वारा उचित रूप से विचार नहीं किया गया, इस तथ्य के बावजूद कि प्रतिवादियों द्वारा यह दर्शाने के लिए विभिन्न दस्तावेज भी योजित किए गए थे कि संबंधित संपत्ति कादिर मियां और बराती मियां के बीच संयुक्त थी। प्रतिवादियों ने नूर अहमद का परीक्षण डी.डब्ल्यू.1 के रूप में किया था, जो स्वयं प्रतिवादी नंबर 1 था। उपहार के तथ्य की पुष्टि करने के लिए डी.डब्ल्यू.2 सज्जाद, जो उपहार का गवाह था और डी.डब्ल्यू.3 के रूप में रमजान अली का भी परीक्षण किया गया और यह स्थापित करने के लिए कि उपहार के अनुसरण में प्रतिवादियों का कब्जा था, मोहम्मद अली का डी.डब्ल्यू.4 के रूप में परीक्षण किया गया।

35. यह भी बताया गया है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23.05.2023 को पारित आदेश के अनुसरण में प्रतिवादियों ने उपहार विलेख के ज्ञापन को साबित करने के लिए सबूत भी पेश किए, जिसे बराती मियां ने लिखित में दिया

गया था और यह सिराजुद्दीन के साक्ष्य के माध्यम से साबित हुआ। उपरोक्त साक्ष्य के प्रकाश में, प्रतिवादी का उपहार साबित हुआ, जबकि वादी का उपहार अविभाजित संपत्ति के संबंध में शून्य था, जहां कब्जा वादी को विशेष रूप से हस्तांतरित नहीं किया गया था, इसलिए मुकदमा तय नहीं किया जा सकता था और खारिज होने योग्य था।

36. उपर्युक्त दलीलों के आलोक में तथा प्रतिद्वंद्वी पक्षों की दलीलों की सत्यता की जांच करने के लिए, सबसे पहले मुस्लिम कानून के अंतर्गत उपहार की अवधारणा पर ध्यान देना आवश्यक होगा। मुस्लिम कानून के अंतर्गत उपहार को हिबा के रूप में जाना जाता है। सभी मुस्लिम पुरुष और महिलाएं, चाहे वे किसी भी स्कूल से हों, वे अपनी पूरी संपत्ति जिसे चाहें उसे उपहार में दे सकते हैं। वैध उपहार के लिए आवश्यक शर्त यह है कि दानकर्ता द्वारा यह घोषणा की जानी चाहिए कि वह उपहार दे रहा है, इसके बाद उपहार प्राप्तकर्ता द्वारा औपचारिक स्वीकृति दी जाती है तथा सबसे महत्वपूर्ण पहलू उपहार प्राप्तकर्ता को कब्जा सौंपना है।

37. यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत, उपहार मौखिक रूप से भी दिया जा सकता है और ऐसे मामले में इसे लिखित में करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, ऐसे उपहार को साबित करने के लिए, कब्जे की डिलीवरी बहुत महत्वपूर्ण है। मौखिक उपहार के संबंध में कुछ प्रत्यक्ष कृत्यों को साबित किया जाना चाहिए, जो उचित रूप से इस निष्कर्ष पर

पहुंचा सकते हैं कि दाता ने उपहार में दी गई संपत्ति से खुद को अलग कर लिया था और दानकर्ता ने इसे स्वीकार करके संपत्ति को अपना मान लिया था। नियम के अनुसार, उपहार में दी गई संपत्ति के मामले में कब्जे की डिलीवरी आवश्यक है। हालांकि, ऐसी कुछ स्थिति हो सकती है जहां कब्जे की डिलीवरी प्रतीकात्मक या रचनात्मक हो सकती है। उदाहरण के लिए, ऐसे मामले में जहां प्रश्नगत संपत्ति किराएदार की है, हालांकि वास्तविक कब्जा दानकर्ता को नहीं सौंपा जा सकता है, लेकिन किरायेदारी के विवरण के साथ शीर्षक विलेख सौंपकर, किरायेदार को यह सूचना दी जाती है कि अब से किराया दानकर्ता द्वारा वसूला जाएगा, जो पर्याप्त होगा और ऐसी स्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता है कि कब्जे की डिलीवरी के अभाव में उपहार दूषित है। कुछ अन्य परिस्थितियाँ भी हैं, जहाँ कब्जे की वास्तविक डिलीवरी का प्रभाव कम किया जा सकता है, खासकर तब जब उपहार पति-पत्नी के बीच होता है, माता-पिता द्वारा बच्चों को दिया गया उपहार आदि। जहाँ तक नाबालिग को दिए गए उपहार का सवाल है, यह पर्याप्त होगा यदि नाबालिग का अभिभावक नाबालिग की ओर से उपहार स्वीकार करता है।

38. चूँकि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अविभाजित संपत्ति के संबंध में उपहार शून्य है और प्रस्तुत किया है कि मुशा का ऐसा उपहार वैध नहीं है। इसलिए, उपर्युक्त अवधारणा को समझने के लिए, यह जांचना और पता लगाना प्रासंगिक होगा कि 'मुशा' का उपहार क्या है।

39. "मुशा" शब्द अरबी शब्द से लिया गया है जो शूया को संदर्भित करता है जिसका वास्तव में अर्थ है 'भ्रम'। इसका अर्थ है, मुशा 'अविभाजित भाग' या हिस्सा, जो एक आम इमारत या भूमि भी हो सकती है। चूंकि किसी वस्तु के उस हिस्से का उपहार, जो विभाजित होने में सक्षम है, तब तक वैध नहीं है जब तक कि उस विशेष हिस्से को विभाजित करके दाता की संपत्ति से अलग न कर दिया जाए, हालांकि, एक अविभाज्य वस्तु का उपहार पूरी तरह से वैध है।

40. मुस्लिम कानून में, मुशा का अर्थ है संयुक्त संपत्ति में अविभाजित हिस्सा। इस प्रकार, मुशा सह-स्वामित्व वाली संपत्ति है जो संयुक्त संपत्ति भी है। इसके अलावा, यदि उस विशेष संपत्ति के कई मालिकों में से कोई एक अपने हिस्से का उपहार देता है, तो इस बात को लेकर भ्रम हो सकता है कि संपत्ति का कौन सा हिस्सा उपहार पाने वाले को दिया जाना है। दूसरे शब्दों में, यदि यह संयुक्त संपत्ति है जो दानकर्ता द्वारा उस उपहारित हिस्से के विभाजन के बिना दी जाती है, तो उपहार का कब्जा देने में वास्तविक कठिनाई हो सकती है।

41. वितरण के चरण में इस तरह के भ्रम और कठिनाइयों से बचने के लिए कब्जे के मामले में, हनफी कानून से संबंधित न्यायविदों ने मुशा के सिद्धांत को विकसित किया है। जहाँ उपहार का मामला सह-स्वामित्व या संयुक्त संपत्ति है, मुशा का सिद्धांत उस विशेष उपहार की वैधता की जाँच करने के लिए लागू होता है। यह सिद्धांत न्यायिक उदाहरणों के माध्यम से की गई व्याख्या द्वारा नियमों तक

ही सीमित है और इसे काफी हद तक कम कर दिया गया है।

### मूषा जो अविभाज्य है:

42. मूषा का अविभाज्य दान वैध है। कुछ संपत्तियाँ ऐसी होती हैं जो स्वभाव से ही अविभाज्य होती हैं। उन संपत्तियों का भौतिक विभाजन या बंटवारा व्यावहारिक नहीं है। इसके अलावा, यदि यह ऐसी संपत्तियों की प्रकृति के विरुद्ध है, तो उनका विभाजन या बंटवारा बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता है और इसलिए उनकी पहचान पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, वे वही संपत्तियाँ नहीं रहती जो विभाजन से पहले थीं। उदाहरण के लिए; एक सीढ़ी को मूषा संपत्ति के रूप में विभाजित नहीं किया जा सकता है। जहाँ एक सीढ़ी पर, उदाहरण के लिए, दो व्यक्ति संयुक्त रूप से स्वामित्व रखते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति सीढ़ी के आधे हिस्से का मालिक होने के नाते अपने हिस्से का दान करने का पूरा हकदार है, लेकिन, यदि सीढ़ी को दो भागों में विभाजित किया जाता है, तो या तो यह किसी के उपयोग के लिए बहुत संकीर्ण होगी, या ऊपरी आधा हिस्सा एक के हिस्से में आ सकता है और दूसरा निचला आधा हिस्सा दूसरे के हिस्से में आ सकता है, इसलिए, दोनों ही मामलों में सीढ़ी उन दोनों के लिए और साथ ही दान लेने वाले के लिए भी बेकार हो जाएगी।

### मुशा जो विभाज्य है:

43. हनफी कानून में, विभाज्य संपत्ति का मुशा का दान अनियमित यानी फासिद कहलाता है अगर विभाजन के बिना किया जाता है, हालांकि, सह-स्वामित्व वाली भूमि, घर या

बगीचे का टुकड़ा, मुशा है जो विभाज्य है। भूमि को विभाजित किया जा सकता है और विशिष्ट हिस्से को पहचान के दृश्यमान चिह्न द्वारा अलग किया जा सकता है। इसी तरह, एक घर जो संयुक्त रूप से स्वामित्व में है, उसकी पूरी पहचान बदले बिना विभाजन की दीवार से विभाजित किया जा सकता है। हालांकि, मुशा के हनफ़ी सिद्धांत के अंतर्गत, विभाजन के बिना उपहार और कब्जे की वास्तविक डिलीवरी शुरू से ही शून्य नहीं है; यह केवल अनियमित है जिसका अर्थ है फासिद। परिणाम यह है कि जहां ऐसा उपहार दिया गया है, इसे क्रमिक विभाजन और दानकर्ता को संपत्ति के निर्दिष्ट हिस्से का वास्तविक कब्जा देकर नियमित किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि मुशा का सिद्धांत अपने आवेदन के साथ-साथ इसके प्रभावों दोनों में सीमित है।

44. इस समय मुशा के उपहार की उपरोक्त अवधारणा पर विचार करने के बाद, कुछ निर्णयों पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा जो उपरोक्त मुद्दे पर प्रकाश डालते हैं। **हयातुद्दीन बनाम अब्दुल गनी और अन्य 1974 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 35** में विचारणीय मुद्दा यह था कि क्या हयातुद्दीन के पक्ष में उपहार विलेख वैध था, क्योंकि विचाराधीन संपत्ति का आनंद आम किरायेदारों द्वारा लिया जा रहा था और जो संपत्ति हयातुद्दीन को उपहार में दी गई थी, उसका कब्जा नहीं दिया गया था, क्या ऐसा उपहार वैध होगा। बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त प्रश्न पर विचार किया और पैराग्राफ 97 में, इसने मुस्लिम कानून के अंतर्गत एक अविभाजित संपत्ति के उपहार से संबंधित कानून पर विचार

किया और उसके बाद निम्नानुसार निर्धारित किया:-

3..... निचली अपीलीय अदालत द्वारा विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या हयातुद्दीन के पक्ष में उपहार विलेख वैध था हालांकि, इसने यह विचार किया कि चूंकि कब्जे की डिलीवरी, वैध उपहार की दो पूर्व शर्तों में से एक थी और जिन संपत्तियों का आम किरायेदारों द्वारा आनंद लिया जाता था, उन्हें कब्जे में नहीं दिया जा सकता था और इसने माना कि हयातुद्दीन को जो संपत्ति उपहार में दी गई थी, वह उपहार दिए जाने के समय विभाजित नहीं हुई थी, इसलिए यह वैध नहीं हो सकती थी। इस सवाल का कि क्या वर्तमान उपहार को अविभाजित हिस्से के रूप में माना जा सकता है, विद्वान न्यायाधीश ने यह कहते हुए निपटारा किया:

*"अविभाजित संपत्ति का एक हिस्सा कुछ परिस्थितियों में सह-स्वामी को भी उपहार में दिया जा सकता है, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है।"*

4. इसलिए, निर्णय से यह स्पष्ट है कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा विचार किए गए उपहार की वैधता केवल इस तथ्य के संदर्भ में थी कि 1955 के मुकदमे से पहले संपत्ति का विभाजन नहीं हुआ था, इसलिए रशीदबी और अम्नबी द्वारा हयातुद्दीन के पक्ष में कब्जा नहीं

दिया जा सकता था। वर्तमान अपील निचली अपीलीय अदालत के निर्णय को चुनौती देने वाले वादी द्वारा योजित की गई है। अब, प्रतिवादियों की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद करने की स्थिति में नहीं थे कि उपहार की वैधता के संबंध में पहले के मुकदमे का फैसला करने वाले न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था। जब अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि वर्तमान वादी के पक्ष में दो दानकर्ताओं द्वारा किया गया उपहार अविभाजित हिस्से के संबंध में था, अर्थात् रशीदबी और अम्नबी के स्वामित्व वाला  $\frac{1}{2}$ वां हिस्सा, तो प्रतिवादियों की ओर से यह तर्क दिया गया कि ट्रायल कोर्ट ने पहले के मुकदमे में पाया था कि ऐसा कोई विभाजन नहीं था, जिसके आधार पर संपत्ति को दो हिस्सों में विभाजित किया गया था, जिसमें से एक हिस्सा रशीदबी और अम्नबी का संयुक्त रूप से और दूसरा मकबूलबी का था, और ट्रायल कोर्ट ने यह भी पाया था कि कब्जा नहीं दिया गया था और इसलिए, इन दो निष्कर्षों से तार्किक निष्कर्ष यह होगा कि उपहार अवैध था और भले ही ट्रायल कोर्ट के विद्वान न्यायाधीश द्वारा पहले के मुकदमे में स्पष्ट रूप से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था, ऐसे निष्कर्ष को निर्णय में पढ़ा जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उपहार विलेख की

वैधता पर वर्तमान मुकदमे में फिर से निर्णय नहीं दिया जा सकता है। इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि यद्यपि पहले के मुकदमे में ट्रायल कोर्ट द्वारा यह निष्कर्ष नहीं निकाला गया है कि उपहार अवैध था, उस मुकदमे में दिए गए निर्णय को उस निष्कर्ष की ओर ले जाने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और यह मान लिया जाना चाहिए कि वह निष्कर्ष दिया गया था और परिणामस्वरूप उपहार की वैधता को वर्तमान मुकदमे में मुद्दा नहीं बनाया जा सकता। ऐसा कोई तरीका सीपीसी की धारा 11 के अंतर्गत स्थापित सिद्धांतों के विपरीत होगा जो मुख्य रूप से एक ऐसे बिन्दु को दर्शाता है जो पहले के मुकदमे में तय किया गया है और एक ऐसा बिन्दु जिस पर पक्षकारों ने कुछ मामलों को सीधे और काफी हद तक मुद्दे में रखते हुए परीक्षण किया है। धारा 11 के स्पष्टीकरण IV का संदर्भ भी प्रतिवादियों के लिए किसी भी तरह से सहायक नहीं होगा क्योंकि स्पष्टीकरण IV एक दलील को संदर्भित करता है जिसे पूर्व के मुकदमे में बचाव या हमले के आधार के रूप में लिया जा सकता था या लिया जाना चाहिए था और जिसे उठाया नहीं गया है। हालांकि, विद्वान अधिवक्ता जो करना चाहते हैं वह यह है कि निष्कर्ष को उसी स्वरूप में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि यह स्वाभाविक निष्कर्ष है जो उनके अनुसार विभाजन



और कब्जे के संबंध में दर्ज किए गए दो निष्कर्षों से निकलता है।

\*\*

\*\*\*\*\*

"7.....मोहम्मदन कानून के अंतर्गत अविभाजित संपत्ति के दान से संबंधित कानून को मुल्ला 17वें संस्करण द्वारा मोहम्मदन कानून के सिद्धांतों के पैराग्राफ 159 और 160 में दो भागों में रखा गया है। यह कहा गया है:

"159. मुशा का दान जहां संपत्ति अविभाज्य है। एक वैध उपहार संपत्ति में अविभाजित हिस्से (मुशा) का किया जा सकता है जो विभाजन योग्य नहीं है।

160. मुशा का दान जहां संपत्ति विभाज्य है। संपत्ति में अविभाजित हिस्से (मुशा) का दान जो विभाजन योग्य है, अनियमित (फासीद) है, लेकिन शून्य (बतिल) नहीं है। दान अनियमित है, और शून्य नहीं है, इसे बाद के विभाजन द्वारा पूर्ण और वैध बनाया जा सकता है और उसे दिए गए हिस्से को दानकर्ता को सौंप दिया जा सकता है। यदि एक बार कब्जा ले लिया जाता है तो उपहार वैध हो जाता है।"

8. अचल संपत्ति का कब्जा कैसे दिया जा सकता है, यह अनुच्छेद 152 में स्पष्ट किया गया है। इसमें तीन

प्रकार के मामलों पर विचार किया गया है (1) जहाँ दानकर्ता के पास कब्जा है (2) जहाँ संपत्ति किरायेदारों के कब्जे में है; और (3) जहाँ दानकर्ता और दान प्राप्तकर्ता दोनों संपत्ति में रहते हैं। इस मामले में यह दिखाने के लिए सबूत हैं कि संपत्ति का कुछ हिस्सा किरायेदारों के कब्जे में था और वादी हयात-उद-दीन पहले से ही संपत्ति के एक हिस्से में रह रहा था। किरायेदारों के कब्जे में अचल संपत्ति का दान, दानकर्ता द्वारा किरायेदारों से दान प्राप्तकर्ता के अटार्नी को देने के अनुरोध द्वारा पूरा किया जा सकता है; और जहाँ दानकर्ता और दान प्राप्तकर्ता दोनों संपत्ति में रहते हैं, वहाँ अचल संपत्ति के उपहार के मामले में कोई भौतिक प्रस्थान या औपचारिक प्रवेश आवश्यक नहीं है जिसमें दानकर्ता और दान प्राप्तकर्ता दोनों उपहार के समय रह रहे हैं और ऐसे मामले में मुल्ला के अनुसार, दानदाता द्वारा किसी स्पष्ट कार्य द्वारा पूरा किया जा सकता है जो कब्जे को स्थानांतरित करने और उपहार संपत्ति पर सभी नियंत्रण से खुद को मुक्त करने के अपने स्पष्ट इरादे को दर्शाता है।"

45. बॉम्बे उच्च न्यायालय ने भी **हमीदुल्ला बनाम अमत उल्ला, एआईआर 1936 इलाहाबाद 473** में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ पर भरोसा किया और **शेख मुहम्मद मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जान,**

**16 भारतीय एपीपी 205 प्रिवी काउंसिल** में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार किया, यह निम्नानुसार देखा:-

8. ....हामिद उल्लाह बनाम अहमद उल्लाह (एआईआर 1936 एएल 473) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ। उस मामले में संपत्ति में छह घर और जमीन के तीन टुकड़े शामिल थे और दानकर्ता जो संपत्ति पर भौतिक रूप से नहीं बल्कि निर्माणात्मक कब्जे में था, ने उपहार का एक विलेख निष्पादित किया और इसे पंजीकृत किया। दस्तावेज़ में कहा गया था कि दानकर्ता संपत्ति के मालिकाना कब्जे में था और वह दानकर्ता को उसी तरह का कब्जा दे रहा था जो उसके पास था, उसने उपहार के विषय-वस्तु में सभी मालिकाना अधिकार त्याग दिए थे और दानकर्ता को अपनी पसंद के अनुसार संपत्ति का हस्तांतरण करने की स्वतंत्रता थी। खंडपीठ ने माना कि उपहार वैध था क्योंकि दानकर्ता ने व्यावहारिक रूप से वह सब कुछ किया था जो वह खुद को कब्जे से मुक्त करने और दानप्राप्तकर्ताओं को वही कब्जा देने के लिए कर सकती थी जो उसके पास था। दाताओं के स्पष्ट आचरण को देखते हुए इस मामले में यह मानना कठिन है कि दाताओं के अविभाजित हिस्से का कब्जा उनके द्वारा वर्तमान वादी को हस्तांतरित नहीं किया गया था।

9. में प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई टिप्पणियों का लाभ उठा सकता हूँ, जो दर्शाती हैं कि मुशा के विभाजन की अमान्यता से संबंधित सिद्धांत समाज की प्रगतिशील स्थिति के लिए अनुपयुक्त था। शेख मुहम्मद मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जान, ((1888-1889) 16 आईएनडी एपीपी २०५) (पीसी) में सर बार्न्स पीकाक ने बोर्ड के लिए बोलते हुए कहा है:

“मुशा के उपहारों से संबंधित नज़ीरों को सैयद अमीर अली ने 1884 के अपने टैगोर व्याख्यान में बड़ी योग्यता के साथ एकत्रित और टिप्पणी की है। न्यायमूर्तिगण उन व्याख्यानों को एक नज़ीर के रूप में संदर्भित नहीं करते हैं, लेकिन यह दिखाने के लिए उनका उल्लेख करते हैं कि मुशा के अमान्य उपहार के अंतर्गत लिया गया कब्जा शिया और सूनी दोनों स्कूलों के सिद्धांत के अनुसार संपत्ति को स्थानांतरित करता है, पृष्ठ 79 और 85 देखें। मुशा के उपहारों की अमान्यता से संबंधित सिद्धांत समाज की प्रगतिशील स्थिति के लिए पूरी तरह से अनुपयुक्त है और इसे सबसे सख्त नियमों के भीतर सीमित रखा जाना चाहिए।”

46. **तैयब्बा बेगम और एक अन्य 1972 एससीसी ऑनलाइन एएल 373** को भी रचनात्मक कब्जे के साथ दिए गए उपहार के मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला। उक्त

मामले में मुल्ला द्वारा मुस्लिम कानून के सिद्धांतों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने निम्नानुसार माना:-

6. .... अब मुल्ला ने अपने मुस्लिम कानून के सिद्धांतों में, 16वें संस्करण के पृष्ठ 142 में धारा 150 में इस विषय पर कानून को इस प्रकार कहा है:

“उपहार की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे कब्जे की डिलीवरी होनी चाहिए, जिसके लिए उपहार का विषय अतिसंवेदनशील हो।”

7. वर्तमान मामले में चूंकि दाता श्रीमती. नजफी बेगम वास्तविक रूप से नहीं बल्कि उपहार में दी गई संपत्ति पर रचनात्मक कब्जे में थीं, इससे स्पष्ट है कि उपहार की विषय वस्तु संपत्ति केवल रचनात्मक कब्जे की डिलीवरी के लिए उत्तरदायी थी और यह उच्चतम नज़ीर द्वारा अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि संपत्ति में अविभाजित हिस्से का उपहार दिया गया है और दाता ने उपहार देते समय खुद को कब्जे से अलग कर लिया है और प्राप्तकर्ता को रचनात्मक कब्जा दे दिया है, तो उपहार मुशा के सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आता है और इसे कानून में वैध पाया जाना चाहिए। इस विषय पर अग्रणी मामला एस.के. मोहम्मद मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जान, (1889) 16 आईएनडी एपीपी 205 (पीसी) है। उस मामले में एक मुस्लिम महिला ने अपनी

अविभाजित हिस्सा अपनी बेटी को उपहार में दिया था। इस उपहार की वैधता पर इस आधार पर सवाल उठाया गया था कि संपत्ति का वास्तविक कब्जा नहीं दिया गया था, इस तर्क को खारिज करते हुए माननीय न्यायमूर्तिगणों ने कहा कि महिला के पास संपत्ति के बड़े हिस्से पर केवल मालिकाना हक था, वास्तविक नहीं, क्योंकि वह केवल किराए और मुनाफे की प्राप्ति करती थी और उसने दानकर्ता को विलेख द्वारा दी गई सभी संपत्तियों का मालिक बना दिया था, और उनसे सभी संबंध समाप्त कर दिए थे और आगे यह भी प्रावधान किया था कि दानकर्ता को उस संपत्ति के संबंध में हर तरह का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। इन तथ्यों के आधार पर माननीय न्यायमूर्तिगणों ने निष्कर्ष निकाला:

“माननीय न्यायमूर्तिगणों को इस बात में कोई संदेह नहीं है कि उपहार को प्रभावी बनाने के लिए बेटी की ओर से पर्याप्त कब्जा लिया गया था। यदि एक बार कब्जा ले लिया गया था और उपहार विलेख प्रभावी हो गया था, तो बाद में कब्जे में कोई भी बदलाव इसे अमान्य नहीं करेगा।”

8. उस मामले में भी, जैसा कि यहाँ है, तथ्यों के आधार पर दाता वास्तविक कब्जे में नहीं था, बल्कि रचनात्मक कब्जे में था और जैसा कि

उपहार विलेख की शर्तों से पता चला था कि उसने उपहार में दी गई संपत्ति से सभी संबंध छोड़ दिए थे और उसके संबंध में हर तरह का पूरा नियंत्रण दानप्राप्तकर्ता को सौंप दिया था, यह माना गया कि संपत्ति का रचनात्मक कब्जा दानप्राप्तकर्ता को सौंप दिया गया था और इसे उपहार को प्रभावी और वैध बनाने के लिए माना गया था। इस न्यायालय द्वारा इस मामले की नज़ीर पर भरोसा किया गया था: *हामिद उल्लाह बनाम अहमद उल्लाह*, 1936 एएल एलजे 292: (एआईआर 1936 एएल 473) जो वर्तमान प्रकार के प्रश्न पर इस न्यायालय का लगभग प्रत्यक्ष नज़ीर है। उस मामले में उपहार का विषय छह घरों और तीन ज़मीन के टुकड़ों में 7/32वाँ हिस्सा था। उपहार विलेख को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि चूँकि डिलीवरी नहीं हुई थी, इसलिए यह मुशा के सिद्धांत के अंतर्गत आता है। इस दलील को खारिज करते हुए और उपहार विलेख की वैधता को बरकरार रखते हुए पृष्ठ 295 पर यह कहा गया कि दानप्राप्तकर्ता के पास बेशक कोई भौतिक कब्जा नहीं था, लेकिन वह वादी के माध्यम से रचनात्मक कब्जे में था और "हमें ऐसा लगता है कि उपहार में दी गई संपत्ति का पूर्ण हस्तांतरण परिस्थितियों के अनुसार हुआ था..." उपहार विलेख की शर्तों के अवलोकन से पता चलता है कि इसमें यह कथन है कि दानकर्ता

अन्य सह-हिस्सेदारों के साथ उपहार में दी गई संपत्ति के कब्जे में था और दानप्राप्तकर्ता को उसी तरह से उस पर कब्जा दिया जा रहा था जिस तरह से दानकर्ता के पास कब्जा था और न तो उसका और न ही उसके उत्तराधिकारियों और वारिसों का उस संपत्ति से कोई लेना-देना होगा। इस मामले में इसलिए उपहार विलेख की शर्तों से यह स्पष्ट है कि दानकर्ता ने न केवल मालिकाना अधिकार बल्कि उपहार में दी गई संपत्ति पर कब्जे या नियंत्रण से भी खुद को पूरी तरह से अलग कर लिया था। ऐसा होने पर, उपरोक्त नज़ीरों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यह कानून का एक स्वाभाविक निष्कर्ष है कि संपत्ति में दानकर्ता के पास जो रचनात्मक कब्जा था, वह उपहार प्राप्तकर्ता श्रीमती सज्जाद बानो को दिया गया था।

47. मद्रास उच्च न्यायालय ने *कैरम बी और अन्य बनाम मरियम बी और अन्य*, 1959 एससीसी ऑनलाइन मद्रास 281 में भी इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया था और मद्रास उच्च न्यायालय ने उक्त मुद्दे पर इस प्रकार विचार किया था:-

".....इन तर्कों से निपटने में मुहम्मद मुमताज अहमद बनाम जुबैदा जान(2) में प्रिवी काउंसिल की निम्नलिखित टिप्पणियों को ध्यान में रखना ठेक होगा,

"मुशा के उपहारों की अमान्यता से संबंधित सिद्धांत समाज की प्रगतिशील स्थिति के लिए पूरी तरह से अस्वीकार्य है, और इसे सख्त नियमों के भीतर सीमित किया जाना चाहिए।"

इब्राहिम बनाम बाई असी(3) में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या दो दानप्राप्तकर्ताओं को संयुक्त रूप से उपहार देना गलत है। हम प्रासंगिक अंश उद्धृत करते हैं:

"मेरे सामने एक दूसरा तर्क रखा गया था, जिसके अनुसार 'संपत्ति का ऐसा उपहार, जो विभाजित किए बिना दो या अधिक व्यक्तियों को विभाजित किया जा सकता है, अमान्य है; लेकिन इसे वैध माना जा सकता है यदि प्रत्येक दानप्राप्तकर्ता द्वारा उसे दी गई संपत्ति के हिस्से पर अलग से कब्जा कर लिया जाता है... मैं इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता। फतवा आलमगिरी और हिदाया का अधिकार सीधे इसके खिलाफ है।"

यह दृष्टिकोण कनीज़ फातिमा बनाम जय नारायण(4), में अपनाया गया था। पृष्ठ 221 और 222 पर न्यायमूर्ति मनोहर लाल ने कहा,

"इब्राहिम ऐकभाई अकुजी बनाम बाई आशी(5) के मामले में, न्यायमूर्ति तैयबजी ने इस विषय की बहुत विस्तार से जांच की है और मैं उनकी

टिप्पणियों से सम्मानपूर्वक सहमत हूं। मैं समझता हूं कि मुशा का दानप्राप्तकर्ता जिसने उपहार के विषय का संयुक्त कब्जा ले लिया है, और जो विभाजन के बिना उस संपत्ति को जारी रखना सुविधाजनक और व्यावहारिक पाता है, उसे ऐसा करने की अनुमति क्यों नहीं दी जानी चाहिए। कानून केवल यह पता लगाने के लिए चिंतित है कि इस तरह के उपहार की वैधता घोषित होने से पहले, दाता को दानप्राप्तकर्ता के पक्ष में पूर्ण कब्जे से अलग होना चाहिए, और फिर यह दानप्राप्तकर्ता का दृष्टिकोण है कि वह विभाजन चाहता है या नहीं। यदि दाता ने संपत्ति का विभाजन किया था और इसे एक निश्चित हिस्से में दानप्राप्तकर्ता को दिया था, तो दानप्राप्तकर्ता अभी भी अपने सह-हिस्सेदारों के साथ एक किरायेदार के रूप में संपत्ति रख सकता था मेरी राय में, यही परिणाम आना चाहिए, बशर्ते कि दानप्राप्तकर्ता के पास कब्जा पाया गया हो।

कालू बेग बनाम गुलसेर बेग (6) में यह निर्धारित किया गया,

"जब किसी व्यक्ति और दानप्राप्तकर्ता को संयुक्त रूप से दिए गए उपहार के अंतर्गत कब्जे की डिलीवरी होती है, तो बाद की किसी तारीख को या तो वे आपस में संपत्ति को विभाजित कर लेते हैं या व्यवस्था करते हैं कि किसी एक को पूरी उपहार में दी गई संपत्ति

मिलनी चाहिए, मुशा का सिद्धांत काम करना बंद कर देता है और जो शुरू में अनियमित था, वह वैध हो जाता है,"

जहाँ तक हमें पता है, इस न्यायालय का कोई भी निर्णय सीधे तौर पर इस मुद्दे पर नहीं है। हम खुद को इब्राहिम बनाम बाई असी (5) में न्यायमूर्ति तैयबजी और कनीज फातिमा बनाम जय नारायण (4) में न्यायमूर्ति मनोहर लाल के विचारों से सम्मानजनक सहमति में पाते हैं।

हम अधिकतम यह कहेंगे कि मुस्लिम कानून के नियमों के अनुसार उपहार को वैध बनाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दानकर्ता के पास संपत्ति का भौतिक कब्जा हो और वह उस भौतिक कब्जे को उपहार पाने वाले को सौंप दे। यह पर्याप्त है कि उसे संपत्ति का कानूनी कब्जा मिल गया है और वह उपहार पाने वाले को ऐसा कब्जा हस्तांतरित कर देता है, जिसकी संभावना है। वर्तमान मामले में जब अब्दुल रजाक की मृत्यु हुई तो कथीजे बी, अब्दुल रजाक की विधवा और बच्चों के साथ सह-वारिस बन गई। इसी तरह जब अब्दुल सुभान की मृत्यु हुई तो कथीजा बी, अब्दुल सुभान की विधवा और बच्चों के साथ सह-वारिस बन गई। एक सह-वारिस का कब्जा आम तौर पर सभी की ओर से कब्जा होता है। इस बात पर भी जोर दिया जाना चाहिए कि जून 1948 में जब

कथीजा बी ने प्रदर्श ए.1 निष्पादित किया था, तब उनके अपने उत्तराधिकारियों अब्दुल रजाक और अब्दुल सुभान के वारिस होने के दावे को किसी ने चुनौती नहीं दी थी या सवाल नहीं उठाया था। अन्य उत्तराधिकारियों का कब्जा भी उनकी ओर से कब्जा था। और, हम सही मायने में कह सकते हैं कि वह वास्तव में संपत्ति की कब्जादार थीं। कनीज फातिमा बनाम जय नारायण (1) में इसकी व्याख्या की गई थी।

"सह-स्वामी या सह-किराएदार का कब्जा एक ऐसा कब्जा है, जिसे कानून द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए।"

.....हामिदुल्लाह बनाम अमादुल्लाह (5) का मामला भी इसी बिंदु पर है। उपहार का विषय-वस्तु छह घरों और तीन भूखंडों में अविभाजित 7/32 हिस्सा था। दाता के पास संपत्ति का भौतिक कब्जा नहीं था, बल्कि केवल रचनात्मक कब्जा था। उसने उपहार का एक विलेख निष्पादित किया और इसे पंजीकृत कराया। दस्तावेज में कहा गया है कि दाता उपहार प्राप्तकर्ता को उसी तरह का कब्जा दे रहा था जो उसके पास था। उपहार को बरकरार रखा गया था। न्यायालय ने कहा:

"बेशक उसके पास कोई भौतिक कब्जा नहीं था, लेकिन वादी के माध्यम से

रचनात्मक कब्जा था.....हालांकि उसने उपहार प्राप्तकर्ता को कब्जा प्राप्त करने की स्थिति में रखा और यह तथ्य है जैसा कि शिकायत में कहा गया है। सुश्री हलीमन ने व्यावहारिक रूप से वह सब कुछ किया, जो वह कर सकती थी, ताकि वह खुद को कब्जे से मुक्त कर सके और दान प्राप्तकर्ता को दे दे...प्रतिवादी को वही कब्जा दे सके जो उसके पास था।”

48. **रशीद खातून बनाम आशिक अली, 2014 (32) एलसीडी 2188** में सर्वोच्च न्यायालय को एक वैध मौखिक उपहार के अवयवों से निपटने का अवसर मिला और उसने निम्नानुसार निर्णय दिया:-

“8. ... इस संदर्भ में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 123 और 129 को ध्यान में रखना होगा। अधिनियम की धारा 123 में प्रावधान है कि अचल संपत्ति का उपहार देने के उद्देश्य से, हस्तांतरण दानकर्ता द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित एक पंजीकृत दस्तावेज द्वारा किया जाना चाहिए, और कम से कम दो गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। धारा 129 में दान की मृत्यु और मुस्लिम कानून के अंतर्गत किए गए उपहारों की बचत का प्रावधान है। उक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि पंजीकरण सहित उपहारों से संबंधित अध्याय मुहम्मदी कानून के किसी भी नियम को प्रभावित नहीं करेगा।

9. करम इलाही [करम इलाही बनाम शर्फुद्दीन, एआईआर 1916 एएल 351] में इसे निम्नानुसार निर्धारित किया गया है:

“यह स्वीकार किया जाता है कि मुसलमान मौखिक उपहार दे सकता है बशर्ते कि उसके पास कब्जा हो। हमें यह बिल्कुल स्पष्ट लगता है कि धारा 123 के प्रावधान मुसलमानों द्वारा दिए गए उपहारों पर लागू नहीं होते और उनके कानून के अनुसार वैध हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि धारा 129 को अधिनियमित करते समय विधानमंडल ने धारा 123 के प्रावधानों को ध्यान में रखा था। धारा 129 में धारा 123 का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। उपहार का विलेख यह साबित करने के लिए स्वीकार्य है कि उपहार दिया गया था।”

10. नसीब अली [नसीब अली बनाम वाजिद अली, एआईआर 1927 सीएल 197] में, न्यायमूर्ति सुहरावर्दी ने कमर-उन-निसा बीबी बनाम हुसैनी बीबी [आईएलआर (1881) 3 एएल 266] और करम इलाही [करम इलाहीव. शर्फुद्दीन, एआईआर 1916 एएल 351] का हवाला दिया और यह माना कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत उपहार की अनिवार्यताएं दाता द्वारा “हिबा” की घोषणा, उपहार की स्वीकृति, व्यक्त या निहित, और उपहार की विषय-वस्तु, इसकी प्रकृति

के अनुसार, संपत्ति के कब्जे की डिलीवरी है। एक साधारण उपहार केवल उपरोक्त औपचारिकताओं को पूरा करके ही दिया जा सकता है और इसके लिए किसी लिखित दस्तावेज की आवश्यकता नहीं होती है। वास्तव में उपहार को मान्य करने के लिए किसी लिखित दस्तावेज की आवश्यकता नहीं होती है और यदि कोई उपहार बिना कब्जे की डिलीवरी के लिखित दस्तावेज द्वारा दिया जाता है, तो यह कानून के अनुसार अमान्य है। इसके बाद, विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार कहा:

"मुस्लिम कानून के अंतर्गत स्थिति यह है: कि वैध होने के लिए किसी उपहार को ऊपर बताए गए रूपों के अनुसार बनाया जाना चाहिए, और भले ही इसे लिखित रूप में प्रमाणित किया गया हो, जब तक कि सभी आवश्यक अवयवों का पालन नहीं किया जाता है, यह कानून के अनुसार वैध नहीं है। ऐसा होने पर, किसी मुसलमान द्वारा निष्पादित उपहार का कार्य, उपहार को प्रभावित करने, बनाने या बनाने का साधन नहीं है, बल्कि केवल साक्ष्य का एक टुकड़ा है। ऐसा हो सकता है कि समय बीतने के बाद उपरोक्त अवयवों के पालन का साक्ष्य सामने न आए, इसलिए कभी-कभी यह सोचा जाता है कि उपहार दिए जाने के तथ्य को लिखित रूप में कम कर दिया जाए। ऐसा लेखन

स्वामित्व का दस्तावेज नहीं है, बल्कि साक्ष्य का एक टुकड़ा है।"

11. महबूब साहब बनाम सैयद इस्माइल [(1995) 3 एससीसी 693] में दो न्यायाधीशों की पीठ ने मुल्ला द्वारा मुस्लिम कानून के सिद्धांतों की धारा 147 का उल्लेख किया जिसमें मुस्लिम कानून के अंतर्गत वैध उपहार के आवश्यक तत्वों को स्पष्ट किया गया है और सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए आगे बढ़ा गया है। हमें लगता है कि संबंधित अंश का पुनरुत्पादन उचित होगा: (एससीसी पृष्ठ 696-97, पैरा 5)

"5. मुल्ला द्वारा मुस्लिम कानून के सिद्धांतों की धारा 147 के अंतर्गत, 19वां संस्करण, मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्लाह द्वारा संपादित, यह परिकल्पना करता है कि चल या अचल संपत्ति के उपहार की वैधता के लिए लेखन आवश्यक नहीं है। धारा 148 के अनुसार उपहार की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि दाता को उपहार के विषय पर सभी स्वामित्व और प्रभुत्व से खुद को पूरी तरह से अलग कर लेना चाहिए। धारा 149 के अंतर्गत, उपहार की वैधता के लिए तीन आवश्यक बातें होनी चाहिए, (i) दाता द्वारा उपहार की घोषणा, (ii) उपहार की स्वीकृति, व्यक्ति या निहित, उपहार द्वारा या उपहार प्राप्तकर्ता की ओर से, और (iii) दाता



द्वारा उपहार के विषय का कब्जा उपहार प्राप्तकर्ता को सौंपना जैसा कि धारा 150 में उल्लेख किया गया है। यदि इन शर्तों का अनुपालन किया जाता है, तो उपहार पूरा हो जाता है। धारा 150 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि वैध उपहार के लिए उपहार के विषय का कब्जा दिया जाना चाहिए और उपहार प्राप्तकर्ता द्वारा उपहार का वास्तविक या रचनात्मक रूप से कब्जा लिया जाना चाहिए। तभी उपहार पूरा होता है। धारा 152 में यह परिकल्पना की गई है कि जहां दानकर्ता के पास कब्जा है, वहां अचल संपत्ति का उपहार, जिस पर दानकर्ता का वास्तविक कब्जा है, तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि दानकर्ता अपने सभी माल और संपत्ति के साथ परिसर से शारीरिक रूप से विदा नहीं हो जाता और दान प्राप्तकर्ता औपचारिक रूप से कब्जा नहीं ले लेता। इस प्रकार, यह स्पष्ट होगा कि हालांकि मुसलमान द्वारा दिया गया उपहार लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है और इसलिए पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होने की आवश्यकता नहीं है: उपहार को पूर्ण होने के लिए, दानकर्ता द्वारा उपहार की घोषणा होनी चाहिए: उपहार को दान प्राप्तकर्ता द्वारा या उसकी ओर से व्यक्ति या निहित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए और दानकर्ता द्वारा उपहार की विषय-वस्तु, दान प्राप्तकर्ता को संपत्ति का

कब्जा दिया जाना चाहिए। दान प्राप्तकर्ता को उस संपत्ति का वास्तविक या रचनात्मक रूप से कब्जा लेना चाहिए। इन आवश्यक शर्तों के साबित होने पर, उपहार पूर्ण और वैध हो जाता है। दानकर्ता के कब्जे में अचल संपत्ति के मामले में, उसे उपहार के विषय से खुद को पूरी तरह से अलग कर लेना चाहिए।"

(बल प्रदत्त)

13. हाल ही में हफीजा बीबी बनाम एस.के. फरीद [हफीजा बीबी बनाम एस.के. फरीद, (2011) 5 एससीसी 654: (2011) 3 एससीसी (सिविल) 103] में दो न्यायाधीशों की पीठ ने मोहम्मद अब्दुल घनीव फखर जहान बेगम [(1921-22) 49 आईए 195: एआईआर 1922 पीसी 281] की नज़ीरों को संदर्भित किया, जिसमें प्रिवी काउंसिल ने सैयद अमीर अली द्वारा मुस्लिम कानून का संदर्भ दिया था और एक वैध उपहार के लिए आवश्यक तीन शर्तों के संबंध में बयान को मंजूरी दी थी। इसके बाद, विद्वान न्यायाधीशों ने नसीब अली [नसिब अली बनाम वाजिद अली, एआईआर 1927 सीएल 197], असन रावथर बनाम मंहपरा चराईल [एआईआर 1972केईआर 27] और जबेदा खातून बनाम मोकसद अली [एआईआर 1973 जीएयू 105] का संदर्भ लिया और इस प्रकार कानून की

स्थिति बताई: (हफीज़ा बीबी वाद  
[हफीज़ा बीबी बनाम एसके फरीद,  
(2011) 5एससीसी 654 : (2011)  
3एससीसी (सीआईवी) 103]  
,एससीसी. 665, पैरा 24)

"24. स्थिति अच्छी तरह से स्थापित है, जिसे बार-बार बताया और दोहराया गया है, कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत एक उपहार के तीन आवश्यक तत्व हैं: (1) दाता द्वारा उपहार की घोषणा; (2) दानप्राप्तकर्ता द्वारा उपहार की स्वीकृति; और (3) कब्जे का हस्तांतरण। हालांकि, मुस्लिम कानून के नियम उपहार की वैधता के लिए लिखित रूप से होने को आवश्यक नहीं बनाते हैं; तीनों आवश्यक तत्वों को पूरा करने वाला एक मौखिक उपहार, उपहार को पूर्ण और अपरिवर्तनीय बनाता है। हालांकि, दाता लिखित रूप में उपहार के लेन-देन को रिकॉर्ड कर सकता है।"

13. ऐसा कहने के बाद न्यायालय ने आउटलाइन्स ऑफ मोहम्मडन लॉ [ताहिर महमूद (सं. और संशोधित) (5वां संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 182.] में आसफ ए.ए. फ़ैज़ी और मुल्ला, प्रिंसिपल्स ऑफ मोहम्मडन लॉ [(19वां संस्करण 120.) का संदर्भ लिया और अंततः इस प्रकार फैसला सुनाया: (हाफ़िज़ा बीबी केस [हाफ़िज़ा बीबी बनाम एस.के. फ़रीद, (2011) 5 एससीसी 654: (2011) 3 एससीसी

(सिविल) 103], एससीसी पृष्ठ 666, पैरा 27)

"27. हमारी राय में, सिर्फ इसलिए कि उपहार मौखिक रूप से दिए जाने के बजाय मुसलमान द्वारा लिखित रूप में दिया गया है, ऐसा लेखन औपचारिक दस्तावेज़ या उपहार का साधन नहीं बन जाता है। जब कोई उपहार मुसलमान द्वारा मौखिक रूप से दिया जा सकता है, तो लिखित दस्तावेज़ द्वारा दिए जाने के कारण इसकी प्रकृति और चरित्र में कोई बदलाव नहीं होता है। मुस्लिम कानून के अंतर्गत एक वैध उपहार के लिए जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि तीन आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। प्रकार महत्वहीन है। यदि तीनों आवश्यक आवश्यकताएँ एक वैध उपहार का गठन करती हैं, तो उपहार का लेन-देन इस लिए अमान्य नहीं होगा क्योंकि यह एक सादे कागज़ पर लिखा गया है। अंतर यह है कि यदि उपहार का लिखित विलेख पूर्व उपहार के तथ्य को बताता है, तो ऐसे मामले में विलेख को पंजीकृत कराने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जब लेखन उपहार देने के समय का हो, तो उसे पंजीकृत कराना होगा, यह अनुचित है और हमें ऐसा नहीं लगता कि यह मुस्लिम कानून में उपहारों के नियम के अनुरूप है।"

(बल प्रदत्त)

14. मुस्लिम कानून के अंतर्गत वैध उपहार की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम मुल्ला प्रिंसिपल्स ऑफ मुस्लिम लॉ [(19वां संस्करण), पृ. 120.] के उस अंश को पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं: जिसे हफीजा बीबी [हफीजा बीबी बनाम एसके फरीद, (2011) 5 एससीसी 654: (2011) 3 एससीसी (सिविल) 103]: (एससीसी पी. 666 पैरा 26) में उद्धृत एवं स्वीकृत किया गया है:

"26. ... 'मुस्लिम कानून के अंतर्गत उपहार को वैध बनाने के लिए तीन आवश्यक आवश्यकताएं हैं: (1) दानकर्ता द्वारा उपहार की घोषणा, (2) उपहार प्राप्तकर्ता द्वारा उपहार को स्पष्ट रूप से या निहित रूप से स्वीकार करना, और (3) वास्तव में या रचनात्मक रूप से उपहार प्राप्तकर्ता द्वारा उसका कब्जा लेना और उस पर कब्जा करना। ऐसे मामले में किसी लिखित दस्तावेज की आवश्यकता नहीं है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 129 मुस्लिम कानून के नियम को धारा 123 के दायरे से बाहर करती है, जो यह अनिवार्य करती है कि अचल संपत्ति का उपहार पंजीकृत साधन द्वारा किया जाना चाहिए जैसा कि उसमें कहा गया है। लेकिन इसे सभी मामलों में अनिवार्य नहीं माना जा सकता है कि जब भी मुस्लिम द्वारा

अचल संपत्ति के उपहार के बारे में लिखा जाता है तो उसका पंजीकरण होना चाहिए। लेखन का पंजीकरण होगा या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।'

16. कानून के नजीरों की उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि मुसलमान कानून के अंतर्गत एक उपहार मौखिक उपहार हो सकता है और उसे पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है: कि एक लिखित दस्तावेज को सभी परिस्थितियों में पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होती है: मुसलमान कानून के अंतर्गत एक वैध उपहार होने के लिए तीन आवश्यक विशेषताएं, अर्थात्, (i) दाता द्वारा उपहार की घोषणा, (ii) उपहार प्राप्तकर्ता द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से स्वीकार करना, और (iii) वास्तव में या रचनात्मक रूप से उपहार प्राप्तकर्ता को कब्जे की डिलीवरी, संतुष्ट होनी चाहिए: केवल इसलिए कि लिखित उपहार विलेख के निर्माण के समकालीन है, यह पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत पंजीकरण की गारंटी नहीं देता है।"

49. इस सिद्धान्त का इस न्यायालय ने 16.04.2022 को निर्णीत द्वितीय अपील संख्या 77/2016 में भी पालन किया था, **नफीस अहमद बनाम गुलाम मोहम्मद**

50. उपहार के अवयवों से संबंधित सिद्धांतों पर विचार करने और मुशा के उपहार की अवधारणा को देखने तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आलोक में, उक्त सिद्धांतों को इस मामले में लागू करने के पश्चात, यह न्यायालय पाता है कि केवल इसलिए कि अविभाजित संपत्ति का उपहार दिया गया है, इसे शून्य नहीं कहा जा सकता है।

51. यह भी ध्यान देने योग्य है कि कादिर मियां द्वारा किया गया उपहार विलेख भी मुशा के सिद्धांत से प्रभावित नहीं होगा, क्योंकि कादिर मियां एकमात्र स्वामी थे तथा उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी से उत्पन्न अपने बेटों को पूरी संपत्ति उपहार में दी थी। यह बिन्दु तभी प्रभावी होगा, जब यह पहले पाया जाए कि संपत्ति कादिर मियां और बराती मियां की थी तथा बराती मियां की मृत्यु के पश्चात अन्य सह-हिस्सेदार थे तथा प्रत्येक का अलग-अलग हिस्सा होगा, यदि यह साबित हो जाता है, तो कुछ हद तक यह कहा जा सकता है कि कादिर मियां द्वारा किया गया उपहार किसी विशिष्ट हिस्से का नहीं था, लेकिन यहां ऐसा प्रतीत नहीं होता है।

52. जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, मुशा का उपहार अनियमित हो सकता है लेकिन शून्य नहीं हो सकता। वर्तमान मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, यह माना जाएगा कि उपहार का जो लेन-देन पिता और पुत्र के बीच किया गया है, यह वादी के पक्ष में कादिर मियां द्वारा किए गए उपहार से संबंधित है और यहां तक कि बराती मियां द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में किए गए उपहार

के मामले में भी, यह संकेत देगा कि यह उपहार दादा द्वारा अपने पोतों के पक्ष में दिया गया है।

53. यह भी ध्यान देने योग्य है कि बराती मियां और कादिर मियां दोनों एक ही परिसर में रहते थे और रिकॉर्ड से पता चलता है कि बराती मियां की मृत्यु वर्ष 1950 में हुई थी और कादिर मियां उस संपत्ति में रह रहे थे और अपने जीवनकाल में उन्होंने अपने दोनों बच्चों यानी वादी की दूसरी पत्नी और प्रतिवादी की पहली पत्नी के बच्चों के लिए पहले से ही एक व्यवसाय खोल रखा था। यह देखा जा सकता है कि उपहार पिता द्वारा अपने बेटों को दिया गया था, जो वहां रह रहे थे और व्यवसाय कर रहे थे और यहां तक कि अगर रचनात्मक कब्जा सौंप दिया गया था, तो यह उपहार विलेख को वैध बनाने के लिए पर्याप्त होगा।

54. जहां तक कादिर मियां के उपहार का संबंध है, इसे विधिवत रूप से विलेख के रूप में लिपिबद्ध किया गया था, जिसे उप रजिस्ट्रार के कार्यालय में विधिवत रूप से सत्यापित और पंजीकृत किया गया था। जहां तक उक्त विलेख का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से एक घोषणा के बराबर है और वादी के बेटे होने के नाते उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। गवाहों का परीक्षण करके विलेख को साबित किया गया और वादी द्वारा रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री लाई गई, जो यह इंगित करती है कि वे भारतीय लाइम स्टोर के नाम और शैली के अंतर्गत व्यवसाय कर रहे थे जबकि प्रतिवादी उसी परिसर से बहराइच लाइम स्टोर के नाम और शैली के अंतर्गत व्यवसाय कर रहे थे। वादी के गवाहों के बयान

से संकेत मिलता है कि उक्त उपहार विलेख को निष्पादित करने के बाद कादिर मियां संबंधित दुकान पर जाते थे और कभी वादी के साथ तो कभी प्रतिवादियों के साथ बैठते थे। उनका आचरण ऐसा था कि उन्होंने संपत्ति से खुद को अलग कर लिया था और पिता होने के नाते संपत्ति का दौरा करते समय भी उन्होंने मामलों में कोई सक्रिय भागीदारी नहीं की। हालांकि वह बड़े थे, लेकिन पक्षों ने अपने नाम नामांतरित नहीं कराया, और वादीगण कादिर मियां के नाम से नगर प्राधिकरण के पास संपत्ति का कर अदा करते रहे। इस प्रकार, उपरोक्त से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि विचाराधीन संपत्ति का उपहार वैध नहीं था क्योंकि वह मुशा का उपहार था, इस न्यायालय को प्रभावित नहीं करता क्योंकि साक्ष्य से यह पर्याप्त रूप से साबित हो गया था कि वादी दाता कादिर मियां के किसी भी नियंत्रण के बिना अपने स्वयं के अधिकारों में संपत्ति का लेन-देन कर रहे थे।

55. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा एक और आपति यह सुझाव देने के लिए उठाई गई थी कि विचाराधीन संपत्ति कादिर मियां की नहीं थी बल्कि बराती मियां और कादिर मियां की संयुक्त संपत्ति थी। इस संबंध में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान लक्ष्मी नारायण और सालिगराम द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख की ओर आकर्षित किया है, जिस पर कागज संख्या गा.55 अंकित है तथा प्रदर्श 20 अंकित है। कहा गया है कि उक्त विक्रय विलेख में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि लक्ष्मी नारायण और सालिगराम ने कादिर मियां और बराती मियां के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था,

इस प्रकार संपत्ति संयुक्त थी। तदनुसार, इससे यह पता चलता है कि विचाराधीन संपत्ति कादिर मियां और बराती मियां के बीच संयुक्त थी और उसका कोई बंटवारा नहीं हुआ है, फलस्वरूप बिना किसी बंटवारे के संयुक्त संपत्ति के संबंध में उपहार वैध नहीं था और इसके अलावा कादिर मियां अपने हिस्से से अधिक पूरी संपत्ति उपहार में नहीं दे सकते थे।

56. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस तर्क का प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने खंडन किया है, जिन्होंने कहा है कि अपीलकर्ता द्वारा की गई यह व्याख्या गलत है। यह बताया गया है कि पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह स्वीकार किया गया कि बराती मियां की मृत्यु वर्ष 1950 में हो गई थी। साक्ष्य से यह भी पता चला है कि लक्ष्मी नारायण और सालिगराम ने 16.07.1954 को बिक्री-पत्र निष्पादित किया था।

57. इस मामले के इस दृष्टिकोण में, यह तर्क दिया गया है कि बिक्री-पत्र में बराती मियां का नाम शामिल नहीं किया जा सकता था क्योंकि उनकी मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। इसलिए, अपीलकर्ताओं का तर्क गलत है और विचाराधीन संपत्ति विशेष रूप से कादिर मियां द्वारा खरीदी गई थी और उन्होंने 20.04.1967 की उपहार-पत्र के माध्यम से संपत्ति वादी को उपहार में दी थी।

58. इस न्यायालय ने भी उपरोक्त तर्कों पर ध्यान दिया है और प्रदर्श-20 का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि उक्त संपत्ति, उस संपत्ति से सटी हुई

हैं जो पहले बराती मियां और कादिर मियां के नाम पर थी, हालांकि, 16.07.1954 की बिक्री-पत्र से पता चलता है कि इसे लक्ष्मी नारायण और सालिगराम ने निष्पादित किया था। यह ध्यान देने योग्य है कि शायद अपीलकर्ताओं ने उक्त विलेख की विषय-वस्तु को गलत पढ़ा है क्योंकि इसमें निम्नलिखित लिखा है:-

"बदस्त कादीरमीया व बरातीमीया"

59. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हिन्दी में इस अक्षर 'व' की व्याख्या यह कहने के लिए की गई है कि कादिर मियां और बराती मियां संपत्ति के विक्रेता/खरीददार थे, जबकि वादी-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि अक्षर 'व' को 'वल्दियत' (पुत्र) के संक्षिप्त रूप के रूप में लिया गया है।

60. यह न्यायालय पाता है कि प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क अधिक उचित और सारवान प्रतीत होता है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि बराती मियां का निधन 1950 में हो गया था। यदि ऐसा था तो 1954 में विक्रय-पत्र में बराती मियां का नाम शामिल करने का कोई अवसर नहीं था। इस स्तर पर, संक्षिप्त रूप 'व' का अर्थ 'वल्दियत' (पुत्र) होगा और यदि इसे इस संदर्भ में पढ़ा जाए तो यह समझ में आएगा कि लक्ष्मी नारायण और सालिगराम ने बराती मियां के पुत्र कादिर मियां के पक्ष में विक्रय-पत्र निष्पादित किया था।

61. उपर्युक्त के प्रकाश में, कम से कम, इस संपत्ति के संबंध में, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह बराती मियां और कादिर मियां की संयुक्त संपत्ति थी। इस न्यायालय को यह

मानने में कोई संकोच नहीं है कि दिनांक 16.07.1954 का उक्त विक्रय-पत्र केवल कादिर मियां के पक्ष में था और यह इस कारण से भी है कि निस्संदेह बराती मियां का निधन वर्ष 1950 में हो गया था और कादिर मियां को इसे विशेष रूप से उपहार में देने का अधिकार था।

62. बराती मियां की संपत्तियों से संबंधित अन्य मुद्दे का संबंध है, इस आशय की दलीलें थीं कि बराती मियां ने अपने जीवनकाल में ही अपनी संपत्ति अपने दो बेटों और एक बेटी कादिर मियां, सफीउल्लाह और सुश्री ममकोमा के बीच बांट दी थी।

63. एक और दिलचस्प तथ्य, जो प्रासंगिक है, वह यह है कि सफीउल्लाह की दो बेटियों की शादी नूर अहमद और समशुद्दीन से हुई थी, जो अदालत के समक्ष अपीलकर्ता हैं। इसके अलावा नूर अहमद और शमशुद्दीन की बहन की शादी सफीउल्लाह के बेटे से हुई थी। इस प्रकार, यह इंगित करेगा कि सफीउल्लाह और प्रतिवादियों के बीच एक नाजुक रिश्ता है क्योंकि वह उनके ससुर थे और साथ ही सफीउल्लाह प्रतिवादियों की बहन के ससुर भी थे। यह पी.डब्ल्यू. 5 के बयान से पता चलता है और इस रिश्ते पर पक्षकारों द्वारा विवाद नहीं किया गया है।

64. यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि प्रतिवेदन में वर्णित तथ्य यह है कि बराती मियां ने अपनी सम्पत्ति को अपने उत्तराधिकारियों में विभाजित कर दिया था और उसके अनुसरण में विवादित सम्पत्ति कादिर

मियां के हिस्से में आई, जिन्होंने लक्ष्मी नारायण और सालिगराम से 16.07.1954 को खरीदी गई सम्पत्ति के साथ उसे वादीगण (अपनी दूसरी पत्नी के पुत्र) के पक्ष में उपहार स्वरूप दे दिया, जबकि उपरोक्त दलीलें पी.डब्ल्यू.-3 मोहम्मद आबाद के बयान में भी दोहराई गई थीं, तथापि प्रतिवादियों की ओर से ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे पता चले कि ऐसा कोई विभाजन नहीं हुआ था या विवादित सम्पत्ति बराती मियां के अन्य उत्तराधिकारियों के साथ संयुक्त थी।

65. प्रतिवादियों के लिए यह खुला था कि वे अपने ससुर सफीउल्लाह से पूछताछ कर सकते थे, जो कादिर मियां के सगे भाई थे, ताकि इस तथ्य का खंडन किया जा सके या वे सुश्री ममकोमा (बुआ) से भी पूछताछ कर सकते थे, फिर भी परिवार के किसी भी सदस्य को इस तथ्य का खंडन करने के लिए गवाही-कक्ष में प्रवेश नहीं किया कि बराती मियां ने अपने जीवनकाल में अपने उत्तराधिकारियों के बीच संपत्ति का बंटवारा कर दिया था और न ही वे यह कहने के लिए आगे आए कि संपत्ति संयुक्त थी क्योंकि बराती मियां और कादिर मियां की मृत्यु के बाद संपत्ति वादी के नाम पर ही रही। इससे इस तथ्य को भी बल मिलता है कि सफीउल्लाह और सुश्री ममकोमा पहले से ही अपने-अपने हिस्से के कब्जे में थे, जो उन्हें बराती मियां द्वारा उनके जीवनकाल में किए गए बंटवारे में मिले थे। इसलिए, प्रतिवादियों का यह दावा कि संपत्ति संयुक्त थी, रिकॉर्ड पर किसी भी ठोस सबूत से साबित नहीं होता है।

66. प्रस्तुत तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, इस न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष, विचारण न्यायालय के कारणों और निष्कर्ष से मेल खाता है कि विचाराधीन संपत्ति बराती मियां और कादिर मियां की थी। संपत्ति का एक हिस्सा कादिर मियां ने 16.07.1954 के विक्रय-पत्र के माध्यम से खरीदा था, जिसे प्रदर्श-20 के रूप में अंकित किया गया है और उसे उपहार-पत्र निष्पादित करने का भी अधिकार था, जिसे उसने घोषणा करके किया। उपहार को वादीगण द्वारा स्वीकार किया गया और चूंकि पिता और पुत्रों के बीच संबंध था, जो पहले से ही संपत्ति के कब्जे में थे, इसलिए, रचनात्मक कब्जे द्वारा, इसे भी सौंप दिया गया और यह वादीगण द्वारा परीक्षित गवाहों के बयानों के स्वर और स्वरूप से भी पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार, वादी का उपहार पर्याप्त रूप से सिद्ध हो गया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अविभाजित 'मुशा' का उपहार होने के कारण, ऊपर पहले से दर्ज कारणों से शून्य है।

67. अंत में, प्रतिवादियों के पक्ष में उपहार की वैधता के बिन्दु की जांच करने पर पता चलता है कि प्रतिवादियों ने 28.05.1973 को अपना लिखित बयान दाखिल किया था। लिखित बयान के पैरा-17 में कहा गया था कि बराती मियां ने प्रतिवादियों के पक्ष में करीब 30 साल पहले उपहार दिया था। यह देखते हुए कि लिखित बयान वर्ष 1973 का है, उससे 30 साल पहले की अवधि वर्ष 1943 के आसपास की होगी। आश्चर्य की बात है कि प्रतिवादी, जिन्होंने वर्ष 1943 में बराती मियां द्वारा दिए

गए उपहार के मामले में मालिक होने का दावा किया था, उस पर कब्जा बनाए रखा और बराती मियां के 1950 में निधन के बाद भी और यह अच्छी तरह से जानते हुए भी कि वादी और उनके पिता कादिर मियां के साथ उनके संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, किसी भी रिकॉर्ड में अपने नाम को म्यूटेशन करवाने या अपने स्वतंत्र अधिकारों को स्वीकार करने के लिए कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं किया।

68. अभिलेख यह भी दर्शाता है कि प्रथम अपील के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादियों ने आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें एक जापन को अभिलेख पर लाने की मांग की गई थी, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसे 21.08.1948 को बराती मियां द्वारा निष्पादित किया गया था, जिसे प्रदर्श-ए-12 के रूप में चिह्नित किया गया है और इसे न्यायालय द्वारा दिनांक 22.05.2023 को पारित आदेश के अनुसरण में श्री शिराजुद्दीन पुत्र शमशुद्दीन का परीक्षण करके साबित किया गया था।

69. इससे भी अधिक चिंताजनक तथ्य यह है कि प्रतिवादियों ने दलील दी थी कि दिनांक 21.08.1948 के उक्त जापन की मूल प्रति सफीउल्लाह के पास थी, जिन्होंने पहले उन्हें एक फोटोकॉपी दी थी और फिर बाद में मूल प्रति सौंप दी गई थी, जिसे आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के अंतर्गत एक आवेदन के साथ रिकॉर्ड पर लाया गया था।

70. जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, सफीउल्लाह की दो बेटियों की शादी

नूर अहमद और समशुद्दीन यानी प्रतिवादी नंबर 1 और 2 से हुई थी और प्रतिवादियों की बहन की शादी सफीउल्लाह के बेटे से हुई थी। इस दृष्टिकोण से, सफीउल्लाह (कादिर मियां का सगा भाई) प्रतिवादियों के साथ-साथ प्रतिवादियों की बहन का भी ससुर था और ऐसी स्थिति में हालांकि यह कहा गया है कि उपहार का जापन सफीउल्लाह के पास था, फिर भी उसने उसे प्रतिवादियों को नहीं सौंपा और केवल बाद के चरण में इसे आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के अनुसार रिकॉर्ड पर लाया गया था। यह जापन सिराजुद्दीन की गवाही से जुड़ा और साबित हुआ, जो इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23.05.23 को पारित आदेश के अनुसरण में 18.07.2023 को दर्ज किया गया था फिर भी इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि सफीउल्लाह, जो कि बराती मियां का बेटा, कादिर मियां का भाई और प्रतिवादियों का ससुर था, ने उक्त दस्तावेज क्यों नहीं सौंपा जो कि अत्यंत महत्वपूर्ण था और प्रतिवादियों के वाद का मुख्य आधार था। यदि उक्त जापन उनके पास 1948 से उपलब्ध था, तो इसे निष्पादन की तारीख से लगभग 49 वर्ष बाद रिकॉर्ड पर क्यों लाया गया, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। इससे उक्त दस्तावेज के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न होता है। तथ्यों और पक्षों के बीच संबंधों की पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में।

71. आगे रिकॉर्ड से प्रतीत होता है और जिसे प्रतिवादियों के गवाहों की गवाही से समझा भी जा सकता है, कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष मुकदमे की अवधि के दौरान, प्रतिवादियों ने पहले ही परिसर में रहना बंद कर दिया था और वे



काजीपुरा में एक अन्य घर में रह रहे थे। वादी और अन्य गवाहों ने कहा कि कादिर मियां द्वारा वादी के पक्ष में उपहार-विलेख के निष्पादन के बाद, प्रतिवादियों को छोड़ने के लिए कहा गया था और हालांकि उन्होंने अपना निवास स्थान बदल लिया था। उन्होंने प्रश्नगत दुकान खाली करने के लिए समय मांगा था। दूसरी ओर प्रतिवादियों ने दावा किया कि काजीपुर में स्थित घर उनके चाचा (मामा) का वादी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह मकान कादिर मियां ने प्रतिवादियों को निपटाने के लिए खरीदा था। प्रतिवादियों ने यह भी स्वीकार किया कि उक्त मकान का विक्रय-पत्र उनके मामा के पास था, लेकिन प्रतिवादियों ने इसे कभी भी अभिलेख पर नहीं लाये। यदि मकान प्रतिवादियों के मामा के नाम पर था, तो इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए विक्रय-पत्र अभिलेख पर रखा जा सकता था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। इसके अलावा, प्रतिवादियों की ओर से मामा और बुआ सहित परिवार के किसी भी सदस्य को गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया, जिससे यह पता चल सके कि प्रतिवादियों ने बराती मियां द्वारा दिए गए मौखिक उपहार के आधार पर पहले ही अपने अधिकार में संपत्ति पर कब्जा कर लिया था और न ही इस दलील को प्रमाणित करने के लिए कोई सबूत था कि बराती मियां द्वारा छोड़े गए मकान और संपत्तियों का बराती मियां के जीवनकाल में बंटवारा नहीं हुआ था। सफीउल्लाह सहित कोई भी इस बात से इनकार करने के लिए आगे नहीं आया कि बराती मियां ने अपनी संपत्तियों का बंटवारा नहीं किया था और वारिस अभी भी सह-स्वामी हैं। न ही यह बताया गया और न ही साबित किया गया कि

संपत्ति का कौन सा खास हिस्सा बराती मियां ने प्रतिवादियों के पक्ष में उपहार में दिया था।

72. एक और दिलचस्प बात यह है कि वादी हमेशा से नगर निगम अधिकारियों को कर चुकाते रहे हैं और उक्त रसीदें भी कागज़ संख्या जी-43 और जी-48 के रूप में रिकॉर्ड में लाई गई हैं। प्रतिवादियों की ओर से इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि क्या उन्हें बराती मियां से मौखिक उपहार मिला था और उन्होंने अपने नाम नामांतरित क्यों नहीं करवाए या उन्होंने नगर निगम कर क्यों नहीं चुकाए। न ही यह बताया गया कि विवादित संपत्ति का कौन सा खास हिस्सा उन्हें उपहार में दिया गया था।

73. यदि प्रतिवादियों के गवाहों नूर अहमद, रमजान अली, मोहम्मद अली और सज्जाद के साक्ष्य को देखा जाए तो यह स्पष्ट संकेत देगा कि प्रत्येक गवाह ने बराती मियां द्वारा मौखिक उपहार देने से संबंधित अलग-अलग तारीख दी है। इसे इस तथ्य के संदर्भ में भी देखा जा सकता है कि प्रतिवादियों ने अपना लिखित बयान दाखिल करते समय उपहार की कोई तारीख नहीं बताई, बल्कि यह कहा गया कि उपहार लगभग 30 साल पहले दिया गया था। इसे कुछ समयसीमाओं के संदर्भ में देखा जाना चाहिए क्योंकि माना जाता है कि बराती मियां की मृत्यु वर्ष 1950 में हुई थी। इस प्रकार, यदि उपहार दिया जाना था तो यह उस अवधि से पहले का होगा। रिकॉर्ड यह भी दर्शाता है कि बराती मियां वर्ष 1948 में हज के लिए भी गए थे। अपनी जिरह में कहा कि बराती मियां ने अप्रैल 1945 के महीने में

मौखिक उपहार दिया था। उन्होंने यह भी कहा कि मौखिक उपहार देते समय तत्कालीन मैनेजर फजल हक सिद्दीकी, मोहम्मद शाह, इमाम अली, सज्जाद अली, श्री राम और मोती लाल के साथ 22-25 अन्य व्यक्ति मौजूद थे। यह भी कहा गया कि मोहम्मद शाह और फजल हक सिद्दीकी को बराती मियां ने बुलाया था जबकि अन्य अपने आप वहाँ आए थे। उन्होंने आगे गवाही में कहा कि उन्होंने कभी भी अपने नाम का नामांतरण कराने या घर या पानी का कर चुकाने का प्रयास नहीं किया। दूसरे गवाह सज्जाद, जिससे डीडब्ल्यू-2 के रूप में परीक्षण किया गया, ने कहा कि उपहार बराती मियां ने अगस्त या सितंबर 1945 के महीने में दोपहर में दिया था और सज्जाद के अलावा लगभग 10-15 लोग मौजूद थे। उन्होंने कुछ व्यक्तियों के नाम भी लिए, जिनके बारे में कहा गया था कि वे उपहार दिए जाने के समय मौजूद थे, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उपस्थित लोगों में से किसी से भी गवाह के रूप में परीक्षण क्यों नहीं किया गया। डीडब्ल्यू-2 की गवाही से भी, उपहार के आवश्यक तत्व, जो पहले ही पिछले पैराग्राफ में देखे जा चुके हैं, नहीं बन पाए। डीडब्ल्यू-3 रमजान एक गवाह मात्र है, जिसने यह इंगित करने का प्रयास किया कि प्रतिवादियों के पास कब्जा था, जबकि डीडब्ल्यू-4 मोहम्मद अली ने अपने बयान में कहा कि आज से लगभग 30 साल पहले (जिस तारीख को वह गवाही दे रहा था यानी 31.01.1977), हज पर जाने से पहले बराती मियां ने अपने तीन पोतों नूर मोहम्मद, शम्सुद्दीन और बदरुद्दीन के पक्ष में उपहार दिया था। यदि इसे ध्यान में रखा जाए तो यह

संकेत देगा कि उपहार-पत्र वर्ष 1947 में बनाया गया होगा। इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि प्रतिवादियों के सभी गवाहों ने बराती मियां द्वारा मौखिक उपहार देने की तारीख के बारे में अलग-अलग समयसीमाएँ बताई हैं।

74. यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक बार जब प्रतिवादियों को इस तथ्य की जानकारी हो गई थी कि वादी कादिर मियां द्वारा निष्पादित उपहार-पत्र के आधार पर स्वामित्व का दावा कर रहे थे और प्रतिवादियों ने अपना मामला एक मौखिक उपहार के आधार पर स्थापित किया था, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह बराती मियां द्वारा दिया गया था, फिर भी प्रतिवादियों ने अपने अधिकारों या विभाजन की घोषणा की मांग करते हुए कोई प्रतिवाद प्रस्तुत नहीं किया, क्योंकि यदि प्रतिवादी सफल हो भी जाते तो वे पूरी संपत्ति के एकमात्र मालिक नहीं हो सकते थे, बल्कि केवल बराती मियां के हिस्से की सीमा तक ही उनके मालिक हो सकते थे और फिर जैसा कि तथ्यों से पता चलता है कि उन्हें अपना हिस्सा विभाजित या अलग कर लेना चाहिए था, क्योंकि संपत्ति का एक हिस्सा कादिर मियां ने बराती मियां की मृत्यु के बाद बिक्री-पत्र द्वारा खरीदा था।

75. अब केवल वह दस्तावेज, जिस से प्रतिवादियों को राहत मिली है, वह है 21.08.1948 का ज्ञापन, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसे बराती मियां ने निष्पादित किया था, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया था कि उन्होंने पहले ही मौखिक उपहार दिया था, लेकिन इसे साबित करने के लिए कि ज्ञापन निष्पादित किया गया था और इस पर बराती

मियां के हस्ताक्षर थे और इसे मिर्जा हुसन महेंदी और रज्जाब अली ने देखा था (?)। जैसा कि पहले ही ऊपर देखा जा चुका है कि उक्त दस्तावेज इस कारण से बहुत अधिक विश्वास पैदा नहीं करता है कि यद्यपि यह कादिर मियां के सगे भाई और प्रतिवादियों के ससुर सफीउल्लाह के पास है, फिर भी इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि 1948 से 2007 तक उक्त जापन क्यों सामने नहीं आया। उक्त दस्तावेज को सिराजुद्दीन द्वारा सिद्ध किया गया है, जो प्रतिवादी संख्या 2 श्री शम्सुद्दीन का पुत्र है। प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 21.08.1948 के जापन पर बराती मियां के हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान को सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

76. प्रासंगिक समय में जबकि सफीउल्लाह की दो बेटियों की शादी प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के साथ हुई थी और दोनों 1973 से मुकदमा लड़ रहे थे, फिर भी यह कभी नहीं सोचा गया कि उक्त जापन प्रतिवादियों को सौंप दिया जाए, जो सफीउल्लाह के दामाद थे।

77. उल्लेखनीय रूप से, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, सफीउल्लाह को न तो बुलाया गया और न ही वह गवाह के कठघरे में आए क्योंकि वह इस बात को प्रमाणित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण गवाह होते कि बराती मियां ने उक्त जापन को निष्पादित किया था और उसे उचित समय पर प्रतिवादियों को सौंपने के लिए सुरक्षित अभिरक्षा के लिए सफीउल्लाह को सौंप दिया था। वर्ष 1950 में बराती मियां की मृत्यु के बाद भी उक्त दस्तावेज कभी नहीं सौंपा गया और न ही

प्रतिवादियों की दलीलों में इसका कोई संदर्भ है। सफीउल्लाह, बराती मियां के बेटे और कादिर मियां के सगे भाई तथा प्रतिवादियों के ससुर होने के नाते उपरोक्त पहलू पर भी प्रकाश डाल सकते थे, अर्थात् यह कि क्या बराती मियां ने अपने जीवनकाल में कोई बंटवारा किया था और क्या सफीउल्लाह के प्रत्येक भाई-बहन को वह संपत्ति मिली, जो उनके कब्जे में है, जिसे बराती मियां ने विभाजित किया था और बराती मियां की संपत्तियों में से प्रतिवादियों को कितना हिस्सा उपहार में दिया गया था। वह यह बताने के लिए भी एक महत्वपूर्ण गवाह थे कि क्या काजीपुर में मकान कादिर मियां ने अपनी पहली पत्नी से अपने बेटे को बसाने के लिए खरीदा था या वास्तव में इसे प्रतिवादियों के मामा ने खरीदा था। प्रतिवादियों ने भी इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं पेश किया और न ही काजीपुरा की संपत्ति का विलेख रिकॉर्ड में दर्ज किया।

78. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में तथा सिराजुद्दीन के बयान सहित जो भी साक्ष्य रिकार्ड में थे, उनके आलोक में इस न्यायालय को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए कारणों से सहमत होने में कोई हिचकिचाहट नहीं है तथा न्यायालय का मानना है कि प्रतिवादियों द्वारा स्थापित कथित उपहार को पुख्ता तौर पर साबित नहीं किया जा सका, जबकि कादिर मियां द्वारा वादी के पक्ष में दिया गया उपहार, जिसे लिखित रूप में लिपिबद्ध किया गया था तथा 20.04.1967 को उप-पंजीयक के कार्यालय में विधिवत पंजीकृत किया गया था, साबित हो चुका है तथा यह अविभाजित 'मुशा' के उपहार के रूप में दूषित नहीं है।

इसलिए, यह न्यायालय पाता है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा नियमित वाद संख्या 14/1973 में पारित निर्णय तथा डिक्ली दिनांक 06.04.1977 में कोई त्रुटि नहीं है तथा इसकी पुष्टि की जाती है।

79. उपर्युक्त चर्चाओं से, यह न्यायालय पाता है कि अपील में कोई बल नहीं है तथा तदनुसार इसे निरस्त किया जाता है। तथ्यों तथा परिस्थितियों में, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा। ट्रायल कोर्ट का रिकॉर्ड तुरंत वापस किया जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 346

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

रिट-ए संख्या 2134 वर्ष 2023

उदय प्रताप सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री इंद्र राज सिंह, श्री आदर्श सिंह, श्री बब्बन सिंह, सत्य प्रकाश सिंह, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री अवधेश कुमार

ए. सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति - 19 वर्ष बाद वैधता के मुद्दे को फिर से खोलना - अनुमेयता - मृतक का जीवित पति या पत्नी सरकारी सेवा में था - नियुक्ति प्राप्त करने में तथ्य को नहीं छिपाया गया - जीवित पति या पत्नी ने अपने सेवा में होने के तथ्यों का खुलासा करते हुए अपना शपथपत्र दायर किया - प्रभाव - 19 वर्ष बाद सेवा समाप्ति आदेश पारित किया गया - वैधता को चुनौती दी गई - अभিনিर्धारित किया गया कि, प्रारंभिक नियुक्ति के समय याचिकाकर्ता की ओर से तथ्यों को नहीं छिपाया गया था, अब लगभग 19 वर्ष बीत जाने के बाद, प्रतिवादी इस आधार पर इस मुद्दे को फिर से नहीं खोल सकते कि याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करते समय, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने 04.09.2000 के शासनादेश के प्रावधानों का पालन नहीं किया। (पैरा 8, 9, 10, 31, और 46)

बी. सेवा कानून - उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7 और 8 - समाप्ति - सहायक अध्यापक के पद पर अनुकंपा नियुक्ति की गई थी, हालांकि मृतक का जीवित पति या पत्नी सरकारी सेवा में था। - आई.जी.आर.एस. के माध्यम से दूसरी बार की गई शिकायत पर विभागीय जांच शुरू की गई थी - आरोप पत्र जारी किया गया था - याचिकाकर्ता द्वारा जवाब प्रस्तुत करने के बाद, कोई मौखिक जांच नहीं की गई थी यानी जांच के लिए कोई दिनांक, समय और स्थान तय नहीं किया गया था - कोई जांच रिपोर्ट प्रस्तुत

नहीं की गई थी - प्रभाव - 19 वर्ष बाद समाप्ति का आदेश पारित किया गया था - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित हुआ, एक बार आरोप पत्र जारी करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू कर दी गई है, तो नियमावली 1999 के नियम 7 और 9 के अंतर्गत अनुशासनात्मक जांच करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए - उच्च न्यायालय ने आक्षेपित समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया। (पैरा 13, 49 और 50)

6. रिट ए संख्या 7768 वर्ष 2022; राघव पालीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 20.09.2022 को निर्णीत

7. विशेष अपील संख्या 1601 वर्ष 2012; नरेंद्र कुमार उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 22.10.2021 को निर्णीत

8. विशेष अपील संख्या 356 वर्ष 2012; शिव कुमार दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 06.02.2014 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा पारित)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. मो. ज़मील अहमद बनाम बिहार राज्य और अन्य; 2016 (2) ईएससी 242 (एससी)

2. जैनेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2012 (8) एससीसी 748

3. भारत संघ एवं अन्य बनाम शशांक गोस्वामी एवं एक अन्य; 2012 (11) एससीसी 307

4. रिट याचिका संख्या 19919 वर्ष 1993; रामू बनाम अधिशासी अधिकारी, नगर पालिका, मिर्जापुर दिनांक 31.8.2000 को निर्णीत

5. रिट ए संख्या 5721 वर्ष 2020; लक्ष्मीकांत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 01.10.2021 को निर्णीत

1. याचिकाकर्ता की ओर से अपने सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री आदर्श सिंह के साथ उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे , प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार का विवरण रखने वाले विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित स्थायी अधिवक्ता को सुना गया

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.2022 को चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं।

3. मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि याचिकाकर्ता की मां श्रीमती तिलकराजी देवी का देहांत दिनांक 18.10.2000 को जूनियर बेसिक स्कूल जगदीशपुर, ब्लॉक हरैया, जिला

बस्ती में प्रधानाध्यापिका के पद पर कार्यकाल के दौरान हुआ। याचिकाकर्ता ने अपनी मां की मृत्यु के बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया और आवेदन के साथ अपने पिता और भाई द्वारा दिए गए शपथ पत्र भी प्रस्तुत किए। याची के पिता द्वारा दिए गए शपथ पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि वह प्राथमिक विद्यालय खमरिया सुजात, ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में हेड मास्टर के पद पर कार्यरत थे।

4. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती की अध्यक्षता वाली चयन समिति ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर अनुकंपा नियुक्ति के आवेदन पर विचार किया और आवेदन के साथ दाखिल दस्तावेजों की जांच के बाद, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने 21.7.2003 को एक आदेश जारी किया। जिसके तहत याचिकाकर्ता को प्राथमिक विद्यालय हाही, ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में सहायक अध्यापक (अप्रशिक्षित ग्रेड) के रूप में नियुक्त किया गया था।

5. याचिकाकर्ता ने अपने नियुक्ति आदेश दिनांक 21.7.2003 के अनुसार 22.7.2003 को प्राथमिक विद्यालय में कार्यभार ग्रहण किया और अपने पद से जुड़े कर्तव्यों का निर्वहन करना शुरू कर दिया। याचिकाकर्ता को 22.7.2003 से सरकारी खजाने से वेतन भी मिलना शुरू हो गया। बाद में, याचिकाकर्ता ने वर्ष 2005 में अपना सेवाकालीन बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूरा किया और उसके बाद, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने 27.9.2005 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को प्रशिक्षित

सहायक अध्यापक के पद का वेतनमान दिया गया।

6. याचिकाकर्ता अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से यानी 22.7.2003 से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करता रहा और चूंकि उसका कार्य और आचरण उत्कृष्ट था, इसलिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने आदेश दिनांक 30.12.2010 द्वारा याचिकाकर्ता को जूनियर बेसिक स्कूल, रेवरादास द्वितीय, ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में हेड मास्टर के पद पर पदोन्नत कर दिया।

8. इसके बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त आख्या से संतुष्ट थे, इस प्रकार, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई और कार्रवाई नहीं की गई और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, श्री सुदेश भास्कर द्वारा दर्ज की गई शिकायत निराधार पाई गई।

9. चूंकि श्री सुदेश भास्कर द्वारा दायर शिकायत पर याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति को जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती द्वारा खारिज नहीं किया गया था, इसलिए श्री सुदेश भास्कर ने 2014 की एक जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 26470 दायर की जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ ने 13.5.2014 के आदेश के तहत दो आधारों पर खारिज कर दिया था, पहला यह कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति लगभग 10 साल पहले की गई थी और दूसरा यह कि जनहित याचिका एक सेवा मामले के संबंध में सुनवाई योग्य नहीं है और याचिकाकर्ता ने अपने

अधिस्थिति का संतोषजनक खुलासा नहीं किया।

10. उपरोक्त श्री सुदेश भास्कर ने जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 26470/2014 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.5.2014 को चुनौती नहीं दी और वर्ष 2021 में आईजीआरएस पोर्टल पर शिकायत दर्ज कराई। राज्य सरकार की और उक्त शिकायत के आधार पर, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने दिनांक 7.9.2021 को सचिव, यूपी बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने उल्लेख किया कि पिता के रोजगार के संबंध में तथ्य का याची की अनुकंपा नियुक्ति के समय खुलासा किया गया था और अनुकंपा नियुक्ति तत्कालीन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा की गई थी, इसलिए यह उचित नहीं है कि उसी पद का अधिकारी इस मामले में निर्णय ले। ऐसे में मामले में मार्गदर्शन दिया जाए। इसके बाद जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने 28.9.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान अगले आदेश तक रोक दिया गया। सचिव, उप्र बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज ने अपने पत्र दिनांक 8.10.2022 द्वारा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती को निर्देशित किया कि चूंकि याची की नियुक्ति शासनादेश दिनांक 4.9.2000 में किये गये प्रावधानों के विपरीत है, इसलिए जिला बेसिक शिक्षा कार्यालय, बस्ती द्वारा विधि अनुसार कार्यवाही की जाये।

11. याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.9.2022 और 8.10.2022 के उपरोक्त आदेशों को रिट-ए संख्या 17099/2022 दायर करके चुनौती दी और इस न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद, दिनांक 28.9.2022 के आदेश को रद्द कर दिया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान रोक दिया गया था और याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही में सहयोग करने का निर्देश दिया।

12. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी अनुकंपा नियुक्ति के संबंध में पांच आरोपों के साथ एक आरोप पत्र जारी किया और याचिकाकर्ता को 15 दिनों की अवधि के भीतर आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों पर अपना जवाब प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। आरोप पत्र दिनांकित 28.10.2022 में, यह उल्लेख किया गया था कि उक्त आरोप पत्र यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जारी किया गया है और याचिकाकर्ता के खिलाफ मुख्य आरोप यह था कि उनकी अनुकंपा नियुक्ति शासनादेश दिनांक 4.9.2000 के प्रावधानों के विपरीत थी क्योंकि उनकी अनुकंपा नियुक्ति की तिथि पर उनके पिता जिला बस्ती के एक प्राथमिक विद्यालय में हेड मास्टर के पद पर कार्यरत थे। याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र प्राप्त करने के तुरंत बाद 14.11.2022 को अपना विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया कि याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति के समय, संबंधित प्राधिकारी के समक्ष यह उचित रूप से खुलासा किया गया था कि

याचिकाकर्ता के पिता जिला बस्ती के एक प्राथमिक विद्यालय में हेड मास्टर के रूप में कार्यरत थे। याचिकाकर्ता के पिता के रूप में अनुकंपा नियुक्ति के समय याचिकाकर्ता ने विभाग के अधिकारियों के समक्ष एक हलफनामा दायर किया जिसमें स्पष्ट रूप से उक्त तथ्य का खुलासा किया गया था। याचिकाकर्ता ने अपने जवाब में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया कि श्री सुदेश भास्कर द्वारा दर्ज की गई शिकायत की पहले जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा जांच की गई थी और उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती को एक आख्या सौंपी थी जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया था कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई तथ्य नहीं छिपाया गया था बल्कि संबंधित अधिकारियों को यह बताया गया था कि याचिकाकर्ता के पिता एक प्राथमिक विद्यालय में हेड मास्टर के रूप में कार्यरत थे और इसलिए, लगभग 10 साल बीत जाने के बाद याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

13. यद्यपि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र उप्र सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जारी किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रस्तुत करने के बाद, कोई मौखिक जांच नहीं की गई यानी कोई तारीख ,जांच करने का समय और स्थान तय नहीं किया गया और बल्कि कोई जांच आख्या भी तैयार नहीं की गई।

14. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा दिनांक 22.11.2022 को कारण बताओ

नोटिस जारी किया गया, जिसमें आरोप पत्र दिनांक 28.10.2022 तथा याची के उत्तर दिनांक 15.11.2022 की चर्चा की गयी है परन्तु याची के उत्तर दिनांक 15.11.2022 के संबंध में सिर्फ इतना कहा गया है कि जवाब विभागीय नियमों के आलोक में ग्राह्य नहीं पाया गया है, इसलिए कारण बताओ नोटिस जारी किया जा रहा है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने उपरोक्त कारण बताओ नोटिस दिनांक 22.11.2022 में दिनांक 28.10.2022 को आरोप पत्र जारी करने से पहले दो सदस्यीय समिति द्वारा प्रस्तुत तथ्यान्वेषी आख्या पर विचार किया है और उस आधार पर याचिकाकर्ता से पूछा गया कि याचिकाकर्ता की सेवाएं क्यों न समाप्त कर दी जाए और याचिकाकर्ता के खिलाफ कानूनी कार्रवाई क्यों नहीं शुरू की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने उपरोक्त कारण बताओ नोटिस दिनांक 22.11.2022 का विस्तृत उत्तर 12.12.2022 को प्रस्तुत किया।

15. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने 30.12.2022 को अंतिम आदेश पारित किया है जिसमें मामले का पिछला इतिहास दर्ज किया गया है और कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र दिनांक 28.10.2022 का उत्तर 14.11.2022 को प्रस्तुत किया है। लेकिन चूंकि उनका जवाब स्वीकार्य नहीं पाया गया, इसलिए यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के प्रावधानों के तहत, याचिकाकर्ता को 22.11.2022 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए जवाब को संतोषजनक नहीं पाया गया है, इसलिए यह



आरोप सिद्ध पाया गया है कि याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति सरकारी आदेश दिनांक 4.9.2000 के प्रावधानों के विपरीत है और इस प्रकार उसकी अनुकंपा नियुक्ति को रद्द करके याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गई।

16. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति के समय, याचिकाकर्ता के पिता का शपथ पत्र दायर किया गया था जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह प्राथमिक विद्यालय खमरिया सुजात ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में हेड मास्टर के पद पर कार्यरत थे। और इसलिए, यह स्पष्ट है कि अनुकंपा नियुक्ति के समय याचिकाकर्ता की ओर से कोई तथ्य नहीं छिपाया गया था, भले ही शासनादेश दिनांक 4.9.2000 के कुछ प्रावधानों का पालन नहीं किया गया हो और सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश की जिसे लगभग 20 साल बीत जाने के बाद रद्द नहीं किया जा सकता है।

17. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि श्री सुदेश भास्कर द्वारा दर्ज की गई शिकायत पर विचार किया गया था और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा अपने पत्र दिनांक 18.5.2013 द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती को एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया गया था, जिसमें एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि याचिकाकर्ता ने अपनी अनुकंपा नियुक्ति के समय कोई भी तथ्य नहीं छिपाया था, बल्कि उसके पिता ने हलफनामे में स्पष्ट रूप से

खुलासा किया था कि वह एक प्राथमिक विद्यालय में हेड मास्टर के रूप में कार्यरत थे और इस तरह जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने अपने पत्र दिनांक 18.5.2023 में कहा कि चूंकि अनुकंपा नियुक्ति में याचिकाकर्ता की कोई गलती नहीं थी, इसलिए लगभग 10 वर्ष बीत जाने के बाद याचिकाकर्ता की नियुक्ति में खलल डालने का कोई अवसर नहीं है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा अपने पत्र दिनांक 18.5.2013 द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त आख्या के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती ने कोई कार्रवाई नहीं की और इससे यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि विभागीय अधिकारियों को कोई भी अवैधता नहीं मिली। और इसलिए याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति को नहीं छेड़ा किया गया था, लेकिन अब जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने पूर्ण यू-टर्न ले लिया है और दिनांक 30.12.2022 को आदेश पारित किया है, जिसके तहत उसकी अनुकंपा नियुक्ति को रद्द करके याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं। इस प्रकार दिनांक 30.12.2022 का आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में टिक नहीं सकता।

18. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि शिकायतकर्ता श्री सुदेश भास्कर जब याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति को परेशान करने में विफल रहे, तो उन्होंने 2014 की एक जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 26470 और इस न्यायालय की डिवीजन बेंच में दायर की जिसे इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 10 साल पहले हुई थी और सेवा मामले के संबंध में जनहित

याचिका सुनवाई योग्य नहीं है, 13.5.2014 के आदेश के तहत याचिका को खारिज कर दिया, फिर अब 20 साल बीतने के बाद जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती, दिनांक 30.12.2022 को पारित आदेश पारित करते समय वास्तव में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित दिनांक 13.5.2014 के उक्त आदेश को नजरअंदाज कर दिया है और इसलिए, दिनांक 30.12.2022 का आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

19. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने याचिकाकर्ता के खिलाफ यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की। 28.10.2022 को एक आरोप पत्र जारी किया गया और याचिकाकर्ता ने उक्त आरोप पत्र पर अपना जवाब भी प्रस्तुत किया, लेकिन उसके बाद, जांच करने और दंड आदेश पारित करने के लिए 1999 के नियमों के तहत निर्धारित किसी भी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने सीधे ही आक्षेपित आदेश दिनांक 30.12.2022 पारित कर दिया जिसमें केवल इतना ही कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा कारण बताओ नोटिस का प्रस्तुत उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया है और इस प्रकार याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति रद्द कर उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गई हैं। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने

आगे कहा कि इस अदालत के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के माध्यम से कानून का यह अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव है कि एक बार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू हो जाने के बाद, इसके तहत निर्धारित प्रक्रिया अनुशासनात्मक जांच और दंड आदेश के संबंध में नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए, जबकि वर्तमान मामले में, जांच करने के लिए तारीख, समय और स्थान तय करके कोई पूछताछ नहीं की गई है, जांच के दौरान कोई सबूत दर्ज नहीं किया गया है और आगे की पूछताछ भी नहीं की गई है। आख्या प्रस्तुत नहीं की गई है, ऐसे में यह स्पष्ट है कि यूपी सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 और नियम 9 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया है, इसलिए आक्षेपित आदेश दिनांक 30.12.2022 कानून की नजर में कायम नहीं रह सकते।

20. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **मोहम्मद ज़मील अहमद बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2016 (2) ईएससी 242 (एससी)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। और तर्क दिया गया है कि उपरोक्त फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक बार यह स्थापित हो जाए की प्रारंभिक नियुक्ति के समय सरकारी कर्मचारी द्वारा तथ्यों को छुपाया नहीं गया था, फिर उसकी नियुक्ति के 20 साल बाद, उसे केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि

राज्य की नीति के अनुसार, उक्त नियुक्ति नहीं की जानी चाहिए थी।

21. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि समय का सार उन मामलों में महत्वपूर्ण है जहां यह स्वीकार किया जाता है कि उम्मीदवार ने अपनी नियुक्ति हासिल करने के लिए कोई धोखाधड़ी नहीं की या तथ्यों को छुपाया नहीं, इसलिए लंबे समय के बाद, उक्त नियुक्ति को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि नियुक्ति करते समय विभाग के अधिकारी यह देखने के लिए सतर्क नहीं थे कि संबंधित सरकारी आदेश के प्रावधानों के तहत उक्त नियुक्ति नहीं की जा सकती थी और वर्तमान मामले में, यह विभाग द्वारा माना गया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी अनुकंपा नियुक्ति को सुरक्षित करने के लिए न तो कोई तथ्य छिपाया है और न ही कोई धोखाधड़ी की है, बल्कि सभी प्रासंगिक तथ्यों का खुलासा किया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से 20 वर्ष बीत जाने के बाद, उसकी नियुक्ति इस आधार पर रद्द नहीं की जा सकती कि वह अनुकंपा नियुक्ति का हकदार नहीं था क्योंकि उस समय उसके पिता एक प्राथमिक विद्यालय में हेड मास्टर के रूप में कार्यरत थे, इसलिए दिनांक 30.12.2022 का विवादित आदेश कानून की नजर में बिल्कुल अस्थिर है। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि इस अदालत को यह भी देखना होगा कि बेसिक शिक्षा विभाग ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं की थी और यह केवल एक निजी व्यक्ति था जिसने

शिकायत दर्ज की थी। और जब उक्त शिकायत को विभागीय अधिकारियों का समर्थन नहीं मिला तो उन्होंने एक जनहित याचिका (पीआईएल) दायर की, जिसे इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 10 साल पहले हुई थी इसलिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती के लिए निजी शिकायतकर्ता की शिकायत पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने के लिए कोई अवसर नहीं है

22. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस प्रकार अपनी दलीलें समाप्त कीं और कहा कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.2022, जिसके तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करके उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गई हैं, कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है। और इसलिए यह आदेश इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है।

23. इसके विपरीत, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि राज्य सरकार ने 4.9.2000 को एक सरकारी आदेश जारी किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि यदि मृत शिक्षक का जीवित पति या पत्नी सरकारी सेवा में है, तो मृत शिक्षक का आश्रित अनुकंपा नियुक्ति का हकदार नहीं है। चूंकि याची की मां की मृत्यु की तिथि पर उसके पिता प्राथमिक विद्यालय खमरिया सुजात, ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत थे, अतः उपरोक्त शासनादेश दिनांक 4.9.2000 के प्रावधानों के दृष्टिगत याची

अनुकंपा नियुक्ति का हकदार नहीं है। और, इस प्रकार, वर्ष 2003 में की गई याचिकाकर्ता की नियुक्ति शुरू से ही शून्य है और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा उसकी नियुक्ति को रद्द करके उसकी सेवाएँ समाप्त करना उचित हैं।

24. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति शासनादेश दिनांक 4.9.2000 के प्रावधानों के विपरीत थी, इसलिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया और उसकी नियुक्ति के बाद जवाब में, उन्होंने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिस पर उन्होंने जवाब प्रस्तुत किया और उसके बाद, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने दिनांक 30.12.2022 को आदेश पारित किया, जिसके तहत उनकी नियुक्ति को रद्द करके याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दी गई, इसलिए दिनांक 30.12.2022 के आक्षेपित आदेश में न तो कोई अवैधता है और न ही दुर्बलता।

25. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने जोरदार तर्क दिया कि इस रिट याचिका में शामिल मुद्दे को पहले ही इस अदालत के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई मामलों में निपटाया जा चुका है और यह माना गया है कि यदि प्रारंभिक नियुक्ति नियमों में किए गए प्रावधानों के विपरीत किया गया है, तो उक्त नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य है और काफी समय बीत जाने के बाद भी रद्द की जा सकती है।

26. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

*(i) 2012 (8) एससीसी 748 में रिपोर्ट किए गए जैनंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय।*

*(ii) 2012 (11) एससीसी 307 में रिपोर्ट किए गए भारत संघ और अन्य बनाम शशांक गोस्वामी और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय।*

*(iii) उच्च न्यायालय द्वारा 1993 की रिट याचिका संख्या 19919 (रामू बनाम कार्यकारी अधिकारी, नगर पालिका, मिर्ज़ापुर) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.8.2000।*

*(iv) 2020 की रिट-ए संख्या 5721 (लक्ष्मीकांत बनाम यूपी राज्य और अन्य) में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 1.10.2021।*

*(v) 2022 की रिट-ए संख्या 7768 (राघव पालीवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य) में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20.9.2022।*

(vi) 2012 की विशेष अपील संख्या 1601 (नरेंद्र कुमार उपाध्याय बनाम यूपी राज्य और अन्य) में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.10.2021।

(vii) 2012 की विशेष अपील संख्या 356 (शिव कुमार दुबे और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 6.2.2014।

27. उपरोक्त मामलों में निर्धारित कानून के आधार पर प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने यह कहते हुए अपनी दलीलें समाप्त की हैं कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.2022 में न तो कोई अवैधता है और न ही कोई दुर्बलता है। और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

28. मैंने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

29. मैंने पाया कि याचिकाकर्ता की मां की मृत्यु के बाद, उसने अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता ने अपने आवेदन के साथ अपने पिता और भाई द्वारा दिए गए शपथ पत्र भी दाखिल किए। याची के पिता ने अपने शपथ पत्र में स्पष्ट रूप से कहा

कि वह प्राथमिक विद्यालय, खमरिया शुजात, ब्लॉक, हरैया, जिला बस्ती में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत थे। मैंने यह भी पाया कि तत्कालीन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती ने अपने समक्ष उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद दिनांक 21.07.2003 को नियुक्ति आदेश जारी किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर अप्रशिक्षित सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया। राज्य सरकार ने 04.09.2000 को एक सरकारी आदेश जारी किया है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि यदि मृत शिक्षक का जीवित पति या पत्नी सरकारी सेवा में है तो मृत शिक्षक का आश्रित अनुकंपा नियुक्ति का हकदार नहीं है।

30. उपरोक्त शासनादेश अनुकंपा नियुक्ति के समय भली-भांति उपलब्ध था तथा तत्कालीन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा रिकार्ड में उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद उक्त याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर अप्रशिक्षित सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया ।

31. अब 19 वर्ष बीत जाने के बाद याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियुक्ति रद्द कर उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं।

32. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जैनंद सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य 2012 (8) एससीसी 748 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है। और प्रस्तुत किया

है कि उक्त निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि यदि प्रारंभिक नियुक्ति के समय भौतिक तथ्यों को छुपाया गया है, तो इसका खुलासा करने पर उक्त तथ्यों के आधार पर नियुक्ति रद्द की जा सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:

“29. जैसा कि हमने नोट किया है, उपरोक्त सभी निर्णय इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों वाली एक खंडपीठ द्वारा दिए गए थे और इस मुद्दे पर गंभीरता से विचार करने के बाद, हम मानते हैं कि ऐसे मुद्दे से निपटते समय न्यायालय को पीड़ित पक्ष को कोई भी राहत देने से पहले विभिन्न मुख्य सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा, जैसे कि:

29.1. धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति आदेशों को नियोक्ता के विकल्प पर वैध रूप से अमान्य माना जा सकता है या नियोक्ता द्वारा वापस लिया जा सकता है और ऐसे मामलों में केवल इसलिए कि प्रतिवादी कर्मचारी धोखाधड़ी से प्राप्त ऐसे आदेशों के आधार पर कई वर्षों तक सेवा में बना रहा है अपने पक्ष में कोई न्यायसम्यता नहीं पा सकता या नियोक्ता के खिलाफ कोई रोक नहीं लगा सकता।

29.2. चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन यह जांचने के लिए महत्वपूर्ण मानदंडों

में से एक है कि क्या चयनित उम्मीदवार राज्य के तहत पद के लिए उपयुक्त है और उसके पूर्ववृत्त के कारण नियुक्ति प्राधिकारी को यदि किसी व्यक्ति को अनुशासित बल में नियुक्त करना वांछनीय नहीं लगता है तो वह ऐसा कर सकता है।

29.3. जब किसी व्यक्ति द्वारा जाली दस्तावेजों के आधार पर नियुक्ति प्राप्त की गई थी, तो यह नियोक्ता पर गलत बयानी और धोखाधड़ी होगी और इसलिए, बिना किसी जांच के बर्खास्तगी का सहारा लेते समय नियोक्ता के पक्ष में कोई न्यायसम्यता या नियोक्ता के खिलाफ कोई रोक नहीं होगी। .

29.4. कोई उम्मीदवार जिसने महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई है और/या गलत जानकारी दी है, वह सेवा में बने रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है और नियोक्ता, रोजगार की प्रकृति के साथ-साथ अन्य पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, उसकी सेवाओं को समाप्त करने का विवेक रखता है।

29.5. किसी भी आपराधिक मामले में संलिप्तता या हिरासत या दोषसिद्धि के संबंध में जानकारी मांगने का उद्देश्य भर्ती के समय चरित्र/पूर्ववृत्त का सत्यापन करना है और ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी को दबाने से अभ्यर्थी के चरित्र और पूर्ववृत्त पर

उसकी सेवा में निरंतरता के संबंध में स्पष्ट प्रभाव पड़ेगा।।

29.6. जिस व्यक्ति ने महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई और/या गलत जानकारी दी, वह नियुक्ति या सेवा में निरंतरता के किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता।

29.7. वर्दीधारी सेवा में सेवा करने का इरादा रखने वाले व्यक्ति से अपेक्षित मानक अन्य सेवाओं से काफी अलग है और इसलिए, महत्वपूर्ण जानकारी के संबंध में किसी भी जानबूझकर दिए गए बयान या चूक को गंभीरता से देखा जा सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी के अंतिम निर्णय को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

29.8. परिवीक्षा पर एक कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त किया जा सकता है या महत्वपूर्ण जानकारी को छिपाने या आपराधिक मामले में उसकी संलिप्तता, दोषसिद्धि या हिरासत से संबंधित गलत बयान देने के आधार पर रोजगार से इनकार किया जा सकता है, भले ही अंततः उसे उक्त मामले से बरी कर दिया गया हो। क्योंकि ऐसी स्थिति किसी व्यक्ति को पद के लिए अवांछनीय या अनुपयुक्त बना देगी।

29.9. वर्दीधारी सेवा में एक कर्मचारी उच्च स्तर की सत्यनिष्ठा की अपेक्षा

रखता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति से कानून का पालन करने की अपेक्षा की जाती है और इसके विपरीत धोखे और छल से जन्मी ऐसी सेवा को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है।

29.10. जिन अधिकारियों को कांस्टेबलों की नियुक्ति की जिम्मेदारी सौंपी गई है, उनका कर्तव्य है कि वे किसी उम्मीदवार के पूर्ववृत्त का सत्यापन करें ताकि यह पता लगाया जा सके कि वह कांस्टेबल के पद के लिए उपयुक्त है या नहीं और जब तक उम्मीदवार को आपराधिक मामले में बरी नहीं किया गया है तब तक व्यक्ति को कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं माना जाएगा।"

33. मुझे लगता है कि उत्तरदाताओं की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता ने जिस पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा किया, उससे उत्तरदाताओं को कोई मदद नहीं मिली, क्योंकि याचिकाकर्ता के मामले में, उत्तरदाताओं की ओर से यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि याचिकाकर्ता द्वारा उसकी अनुकंपा नियुक्ति के समय प्रासंगिक तथ्यों को छिपाया नहीं गया था।

34. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने **भारत संघ और अन्य बनाम शशांक गोस्वामी और अन्य 2012 (11) एससीसी 307** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने यह कानून बनाया गया है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रचलित अनुकंपा योजना के अनुसार सख्ती से की जानी चाहिए और चूंकि याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2000 के प्रावधानों के विपरीत है, इसलिए, उक्त नियुक्ति को उचित रूप से रद्द कर दिया गया है।

35. मैंने पाया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले में, उम्मीदवार को अनुकंपा नियुक्ति से वंचित कर दिया गया था और उम्मीदवार ने उस आदेश को चुनौती दी थी जिसके तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसकी उम्मीदवारी खारिज कर दी गई थी और फिर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह निष्कर्ष दर्ज किया कि अनुकंपा नियुक्ति केवल नियमों, विनियमों और प्रशासनिक निर्देशों के अनुसार ही दी जा सकती है, जबकि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को वर्ष 2003 में अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और उसे लगभग 19 वर्षों तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई है और उसके बाद उसकी अनुकंपा नियुक्ति रद्द कर दी गई है, अतः वर्तमान मामले के तथ्यों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उपरोक्त निर्णय लागू नहीं होता है।

36. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं ने *रिट याचिका संख्या 19919/1993 (रामू बनाम कार्यकारी अधिकारी, नगर पालिका, मिर्ज़ापुर)* में इस न्यायालय द्वारा दिए गए दिनांक 31.08.2000 के निर्णय और आदेश पर भरोसा किया है और तर्क किया

है, इस न्यायालय ने एक उक्त निर्णय में निष्कर्ष दर्ज किया है कि भले ही किसी व्यक्ति को अनुकंपा नियुक्ति के नियमों के तहत प्रतिवादियों द्वारा अवैध रूप से नियुक्त किया गया हो, ऐसी नियुक्ति उम्मीदवार को नियुक्ति का दावा करने या सेवा में बने रहने का कोई अधिकार नहीं प्रदान कर सकती है। मैंने पाया कि उपरोक्त मामले के याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर 10.10.1991 को नियुक्त किया गया था और उसकी सेवाएं 12.05.1993 को यानी दो साल से कम समय में समाप्त कर दी गईं, जबकि वर्तमान रिट याचिका में, याचिकाकर्ता की ओर से कोई महत्वपूर्ण तथ्य नहीं छिपाया गया था और उसे लगभग 19 वर्षों तक अपनी सेवा जारी रखने की अनुमति दी गई, इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं। अतः दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय और आदेश दिनांक 31.08.2000 लागू नहीं होता है।

37. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा 2020 की *रिट-ए संख्या 5721 (लक्ष्मीकांत बनाम यूपी राज्य और अन्य)* में दिए गए निर्णय और आदेश दिनांक 1.10.2021 पर भरोसा किया है। मैंने पाया कि उपरोक्त रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने उस आदेश को चुनौती दी थी जिसके द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका दावा खारिज कर दिया गया था, जबकि वर्तमान रिट याचिका के याचिकाकर्ता को वर्ष 2003 में अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और वह लगभग 19 वर्षों तक सेवा में रहा है, इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर



उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 1.10.2021 लागू नहीं होता है।

38. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तों ने **2022 की रिट-ए संख्या 7768 (राघव पालीवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और आदेश दिनांक 20.09.2022 पर भरोसा किया है। मैंने पाया कि उपरोक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने उस आदेश को चुनौती दी थी जिसके तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उसका मामला खारिज कर दिया गया था, जबकि याचिकाकर्ता के मामले में, उसकी नियुक्ति के लगभग 19 साल बाद उसकी अनुकंपा नियुक्ति रद्द कर दी गई है, जैसा कि तथ्यों पर है, उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 20.09.2022 लागू नहीं होता है।

39. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तों ने **विशेष अपील संख्या 1601/2012 (नरेंद्र कुमार उपाध्याय बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में 22.10.2021 को इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है। मैंने पाया कि इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष मामले में, शिक्षक की मृत्यु 07.07.1991 को हुई थी और भौतिक तथ्य छिपाकर, 31.03.2010 को अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त की गई थी और उसके बाद 14.04.2012 को उक्त नियुक्ति रद्द कर दी गई थी। उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने कानून बनाया है कि जहां भौतिक तथ्य छिपाकर मृत्यु की तारीख से 19 साल बाद अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त की गई है, उसे रद्द

किया जा सकता है, जबकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य नहीं छिपाया है और उसे वर्ष 2003 में अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और वह 19 वर्षों तक कार्यरत रहा, इस प्रकार वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित उपरोक्त दिनांक 22.10.2021 निर्णय और आदेश लागू नहीं होगा

40. अंततः उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तों ने **2012 की विशेष अपील संख्या 356 (शिव कुमार दुबे और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में दिए गए इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा किया है। मुझे लगता है कि उपरोक्त मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ इस बात पर विचार कर रही थी कि उत्तर प्रदेश भर्ती नियमावली, 1974 में मरने वाले सरकारी सेवकों के आश्रितों की नियुक्ति किस प्रकार की जानी चाहिए। इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है:

29. अब हम उन सिद्धांतों को तैयार करने के लिए आगे बढ़ते हैं जिन्हें डाई-इन-हार्नेस नियमों में अनुकंपा नियुक्ति को नियंत्रित करना चाहिए:

(i) अनुकंपा नियुक्ति का प्रावधान इस सिद्धांत का अपवाद है कि सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता होनी चाहिए। संवैधानिक रूप से वैध होने के लिए अपवाद को सावधानीपूर्वक संरचित और कार्यान्वित किया

जाना चाहिए ताकि अनुकंपा नियुक्ति को केवल उन स्थितियों तक सीमित रखा जा सके जो मूल उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं;

(ii) अनुकंपा नियुक्ति का कोई सामान्य या निहित अधिकार नहीं है। अनुकंपा नियुक्ति का दावा केवल वहीं किया जा सकता है जहां किसी योजना या नियम में ऐसी नियुक्ति का प्रावधान हो। जहां ऐसा प्रावधान किसी प्रशासनिक योजना या वैधानिक नियमों में किया गया है, अनुकंपा नियुक्ति सख्ती से योजना या, जैसा भी मामला हो, नियमों के अंतर्गत होनी चाहिए;

(iii) अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का उद्देश्य मृत कर्मचारी के परिवार के आश्रित सदस्यों को रोटी कमाने वाले की मृत्यु के कारण होने वाले तत्काल वित्तीय संकट से निपटने में सक्षम बनाना है;

(iv) यह निर्धारित करने में कि परिवार वित्तीय संकट में है या नहीं, परिवार की आय सहित सभी प्रासंगिक पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए जैसे कि इसकी देनदारियां, परिवार को प्राप्त अंतिम लाभ; इसके सदस्यों की आय, निर्भरता और वैवाहिक स्थिति, साथ में रोजगार के किसी अन्य स्रोत से आय;

(v) जहां मृत कर्मचारी की मृत्यु की तारीख के बाद से एक लंबा अंतराल हो गया है, अनुकंपा नियुक्ति की मांग के लिए तत्कालता की भावना समाप्त हो जाएगी और यह एक प्रासंगिक परिस्थिति होगी जिसे अनुकंपा

नियुक्ति निर्धारित करने में अधिकारियों को विचार करना चाहिए;

(vi) नियम 5 में कहा गया है कि आमतौर पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन मृत कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से पांच साल के भीतर किया जाना चाहिए। पहले प्रावधान द्वारा प्रदत्त शक्ति अनुचित कठिनाई के मामले में अवधि में छूट देने और मामले को उचित और न्यायसंगत तरीके से निपटाने का विवेकाधिकार देता है;

(vii) जहां पांच साल की अवधि के भीतर आवेदन करने में देरी होती है, वहां कारणों और दस्तावेजी एवं अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थित औचित्य के आधार पर मामला स्थापित करने का दायित्व आवेदक पर होगा। सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद उचित निर्णय लेना राज्य सरकार का काम है। ढील देने की शक्ति एक अपवाद की प्रकृति में है और सरकार की संतुष्टि उद्देश्यों की पूर्ति के अस्तित्व पर निर्भर है;

(viii) अनुकंपा नियुक्ति देने के प्रावधानों में मृत कर्मचारी के परिवार के किसी सदस्य के पक्ष में पद का आरक्षण शामिल नहीं है। इसलिए, ऐसा कोई सामान्य अधिकार नहीं है जिस पर दावा किया जा सके कि परिवार का कोई सदस्य जो मृत्यु के समय नाबालिग था, वयस्क होने पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का हकदार होगा। जहां नियम उस अवधि का निर्धारण करते हैं जिसके भीतर आवेदन करना होता है, परिवार के किसी सदस्य के

अवयस्क होने के दौरान नियम का संचालन निलंबित नहीं किया जाता है।

मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है: -

41. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उत्तरदाताओं के लिए कोई मददगार नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को वर्ष 2003 में अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और 19 साल बाद, उसकी नियुक्ति रद्द कर दी गई है।

42. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **मोहम्मद जमील अहमद बनाम बिहार राज्य, (2016) 12 एससीसी 342** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले के तथ्य और इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामले के तथ्यों के समानता हैं।

43. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता मोहम्मद जमील अहमद को 02.05.1991 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और 15 वर्ष बीत जाने के बाद, उनकी नियुक्ति इस आधार पर रद्द कर दी गई थी कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए लागू नियमों के मद्देनजर, वह अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति नहीं हो सकती थी।

44. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद स्पष्ट रूप से माना है कि 15 वर्ष बीत जाने के बाद ऐसी नियुक्तियाँ रद्द नहीं की जा सकती। **मोहम्मद जमील अहमद (सुप्रा)** के

“10. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।

11. मामले के विशिष्ट निर्विवाद तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, हमारा मानना है कि राज्य द्वारा अपीलकर्ता की सेवाओं को समाप्त करना उचित नहीं था। दूसरे शब्दों में, जिस आधार पर अपीलकर्ता की नियुक्ति के 15 साल की अवधि के बाद राज्य द्वारा अपीलकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं, वह उचित प्रतीत नहीं होता है। ऐसा हम निम्नलिखित कारणों से कहते हैं:

11.1. सबसे पहले, अपीलकर्ता और मृतक की पत्नी ने अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते समय कोई तथ्य नहीं छिपाया और न ही कोई गलत दस्तावेज/घोषणा दाखिल की। दूसरी ओर, दोनों ने शपथ पत्र पर अपने सच्चे पारिवारिक संबंधों और मृतक के परिवार में व्याप्त स्थितियों का खुलासा किया।

11.2. दूसरे, अपीलकर्ता, जो मृतक का भाई है, ने अनुकंपा नियुक्ति हासिल करने की स्थिति में मृतक के परिवार का भरण-पोषण करने का वचन दिया

और तदनुसार उसने राज्य को ऐसा वचन भी दिया।

11.3. तीसरा, मृतक के परिवार में अपीलकर्ता को छोड़कर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने वाला कोई नहीं था, जैसा कि ऊपर बताया गया है, मृतक का करीबी रिश्तेदार यानी सगा छोटा भाई था और मृतक के साथ रहता था। अन्यथा वह वयस्क, शिक्षित और परिवार में एकमात्र पुरुष सदस्य होने के नाते ऐसी नियुक्ति का दावा करने के पात्र थे।

11.4. चौथा, अपीलकर्ता ने रोजगार हासिल करने के बाद पिछले 15 वर्षों से अधिक समय से मृतक के परिवार का हर तरह से भरण-पोषण किया और वह ऐसा करना जारी रख रहा है।

12. उपरोक्त कारणों के आलोक में, जिसने राज्य को अपीलकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति देने के लिए उचित रूप से राजी किया, हमें राज्य की ओर से अपीलकर्ता के मामले को उसकी नियुक्ति के 15 साल बाद खंगालने और उसकी सेवाएं समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं मिलता है। इस आधार पर कि राज्य की नीति के अनुसार, अपीलकर्ता अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने के लिए "मृतक के आश्रित" की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है।

13. यह तथ्य कि अपीलकर्ता मृतक का छोटा भाई था, राज्य की जानकारी में था। इसी तरह, राज्य को पता था कि भाई प्रासंगिक समय पर "आश्रित" की परिभाषा में नहीं आता है और फिर भी राज्य के अधिकारियों ने अपीलकर्ता से यह वचन लिया कि नियुक्ति मिलने के बाद वह मृतक के परिवार का भरण-पोषण करेगा।

14. हमारे विचार में, उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाएंगे कि यह मृतक के परिवार के सदस्यों के लाभ के लिए अपीलकर्ता को नियुक्ति देने के लिए राज्य द्वारा लिया गया एक सचेत निर्णय था, जो रोटी कमाने वाले का अचानक निधन के कारण वित्तीय कठिनाई का सामना कर रहे थे। अपीलकर्ता को मृतक का एकमात्र करीबी रिश्तेदार होने के नाते परिवार में मौजूदा परिस्थितियों में नियुक्ति दी जा सकती है। हमारे विचार में, एक कल्याणकारी राज्य के रूप में राज्य द्वारा मृतक के परिवार को जरूरत के समय मदद करना एक सही निर्णय था।

15. इन परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि 15 वर्ष बीत जाने के बाद जागने और ऐसे आधार पर अपीलकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का राज्य की ओर से कोई औचित्य नहीं था। किसी भी मामले में, हमारा विचार है कि क्या

अपीलकर्ता को नियुक्ति देना राज्य का एक सचेत निर्णय था जैसा कि हमने ऊपर कहा है या अपीलकर्ता को नियुक्ति देने में राज्य की ओर से गलती का मामला है जो अब है जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा था, राज्य की नीति के विपरीत था, राज्य ने अपने आचरण से 15 साल का समय बीतने के कारण अपनी चूक को माफ कर दिया, याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने और उसकी सेवाएं समाप्त करने के संबंध में राज्य की ओर से इस तरह का कदम उठाने में बहुत देर हो चुकी थी । ऐसा इसलिए अधिक था क्योंकि याचिकाकर्ता कोई झूठी घोषणा करने के लिए जिम्मेदार नहीं था और न ही उसने नियुक्ति हासिल करने के लिए कोई महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया था। इसलिए, यदि राज्य को अपनी गलती का फायदा उठाने का अधिकार नहीं है। यदि याचिकाकर्ता ने नियुक्ति हासिल करने के लिए किसी प्रकार की धोखाधड़ी या हेरफेर किया होता या भौतिक तथ्य को दबाया होता तो स्थिति अलग होती। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राज्य का मामला ऐसा नहीं था।

16. इसी कारण से, हमारा विचार है कि ऐसे आधार पर याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त करने में कल्याणकारी राज्य की ओर से कार्रवाई को उचित

नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, हम राज्य द्वारा की गई कार्रवाई को अस्वीकार करते हैं।

17. पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, हम याचिका की अनुमति देते हैं, आक्षेपित आदेशों को रद्द करते हैं और परिणामस्वरूप अपीलकर्ता (रिट याचिकाकर्ता) द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति देते हैं और अपीलकर्ता के सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 23-6-2005 को रद्द करते हैं (एसएलपी के अनुलग्नक पी-4 )।

18. इसके परिणामस्वरूप, प्रतिवादी राज्य को अपीलकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है, जैसे कि निलंबन की तारीख (23-6-2005) से सेवा में बहाली की तारीख तक देय पूर्ण वेतन का भुगतान। अपीलकर्ता नियमों के अनुसार अपनी वरिष्ठता और काल्पनिक पदोन्नति का दावा करने का भी हकदार है। इसे तदनुसार तय किया जाए।

19. अपीलकर्ता को बाहरी सीमा के रूप में एक महीने के भीतर सेवा में बहाल किया जाए और निर्देशानुसार बकाया वेतन का भुगतान प्रतिवादी राज्य द्वारा तीन महीने के भीतर अपीलकर्ता को किया जाए।

20. इस अपील की लागत रुपये 5000/- निर्धारित की गई है और प्रतिवादी राज्य द्वारा अपीलकर्ता को बकाया वेतन के साथ इसका भुगतान किया जाएगा।"

45. मैंने मोहम्मद ज़मील अहमद (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून के आलोक में पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

46. मैंने पाया है कि याची ने अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन प्रस्तुत करते समय अपने पिता द्वारा दिया गया शपथ पत्र भी दाखिल किया था जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि वह प्राथमिक विद्यालय खमरिया सुजात, ब्लॉक हरैया, जिला बस्ती में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत है। . जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने अपने समक्ष उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति का आदेश जारी कर दिया गया। याचिकाकर्ता की ओर से कोई तथ्य नहीं छिपाया गया। एक बार प्रारंभिक नियुक्ति के समय याचिकाकर्ता की ओर से कोई तथ्य नहीं छिपाया गया था, अब लगभग 19 साल बीत जाने के बाद, प्रतिवादी इस आधार पर मामले को दोबारा नहीं खोल सकते हैं कि याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करते समय, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने शासनादेश दिनांक 04.09.2000 के प्रावधानों का पालन नहीं किया। इस तथ्य पर ध्यान देना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि

याचिकाकर्ता की नियुक्ति एक निजी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत पर रद्द कर दी गई है, जिसमें आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2000 के प्रावधानों के विपरीत थी। यह भी उल्लेखनीय है कि शिकायतकर्ता द्वारा की गई शिकायत पर सबसे पहले जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया गया था, जिन्होंने जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को अपनी आख्या प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने अपनी आख्या में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया था कि काफी समय बीत चुका है और अनुकंपा नियुक्ति के समय याचिकाकर्ता की ओर से कोई तथ्य नहीं छिपाया गया, इसलिए, इस स्तर पर, यह नहीं देखा जा सकता है कि प्रारंभिक अनुकंपा नियुक्ति सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2000 के प्रावधानों का उल्लंघन थी। शिकायतकर्ता ने 2014 की एक जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 26470 भी दायर की थी, जिसे इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने दिनांक 13.05.2014 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। इस न्यायालय की खंडपीठ ने जनहित याचिका को खारिज करते हुए इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि याचिकाकर्ता की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति बहुत पहले हो चुकी थी।

47. एक बार जब श्री सुदेश भास्कर द्वारा की गई शिकायत पर विभागीय अधिकारियों द्वारा विचार किया गया और मामले में कोई कार्रवाई नहीं की गई और शिकायतकर्ता द्वारा दायर जनहित याचिका को इस अदालत की डिवीजन बेंच द्वारा खारिज कर दिया गया, तो जिला

बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने की कार्यवाही फिर से शुरू करने और 19 साल बीतने के बाद याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति रद्द करने का कोई अवसर नहीं था।

48. प्रारंभिक नियुक्ति नियमों या सरकारी आदेशों के प्रावधानों के विपरीत होने के आधार पर नियुक्ति रद्द करने के मामलों में सेवा के समय और लंबाई का सार सबसे महत्वपूर्ण है। यदि नियुक्ति के तुरंत बाद, अधिकारियों ने कार्यवाही की होती और याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई होती, तो निश्चित रूप से इस न्यायालय के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं थी, लेकिन जहां प्रारंभिक अनुकंपा नियुक्ति 19 साल पहले की गई थी और उस समय कोई तथ्य नहीं छुपाया गया था। उक्त नियुक्ति को 19 वर्ष बीत जाने के बाद इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि प्रारंभिक नियुक्ति सरकारी आदेश के कुछ प्रावधानों का उल्लंघन करके की गई थी। इसके अलावा, वर्तमान मामले में विभागीय अधिकारियों ने कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि याचिकाकर्ता की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दिनांक 04.09.2000 के सरकारी आदेश के प्रावधानों के विपरीत की गई थी, बल्कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति निजी शिकायतकर्ता की शिकायत पर 19 साल बीत जाने के बाद रद्द कर दी गई। तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, दिनांक 30.12.2022 का आदेश जिसके तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई है, कानून की नजर में टिक नहीं सकता है।

49. आदेश दिनांक 30.12.2022 जिसके तहत याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से उसकी नियुक्ति रद्द करके उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं, वह भी किसी अन्य आधार पर टिकाऊ नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र जारी करके नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। जिस पर उन्होंने जवाब प्रस्तुत किया लेकिन उसके बाद न तो अनुशासनात्मक जांच करने की प्रक्रिया अपनाई गई और न ही जांच आख्या प्रस्तुत की गई। कानून का यह सुस्थापित प्रस्ताव है कि एक बार आरोप-पत्र जारी करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू कर दी गई है तो अनुशासनात्मक जांच करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए और जांच आख्या के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी कारण बताओ नोटिस जारी करना चाहिए और जवाब लेने के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित किया जाना चाहिए जबकि वर्तमान मामले में हालांकि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया गया था और उसका जवाब लिया गया था लेकिन उसके बाद उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 और नियम 9 के तहत प्रक्रिया के अनुसार का पालन नहीं किया गया, अतः जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा 30.12.2022 को पारित अंतिम आदेश कानून की दृष्टि में कायम नहीं रह सकता।

50. उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.2022 को निरस्त किया

जाता है। प्रतिवादी नंबर 1 यानी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को तुरंत सेवा में बहाल करें और बकाया वेतन के साथ उसका वेतन भुगतान करें।

-----  
(2023) 9 ILRA 362

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 3032 वर्ष 2006

कृष्ण कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

राजेश कुमार कटियार, अजय प्रताप सिंह, अमिताभ कुमार राय, अवधेश शुक्ला, बी.के. कटियार, दिनेश कुमार, प्रमोद कुमार वर्मा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, ए.एम. त्रिपाठी, प्रशांत अरोड़ा, राहुल शुक्ला, सर्वेश कुमार दुबे, वी.के. बाजपेयी

सेवा कानून - जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम - संविदा आधार पर नियुक्ति - परिपत्र दिनांक 29.09.2006 - सर्व शिक्षा अभियान में चपरासी के पद पर आमेलन का दावा किया गया - स्वीकृत पद के अभाव में न्यायालय किस सीमा तक पद सृजन का निर्देश दे सकता

है - निर्णय दिया गया कि स्वीकृत पद के अभाव में सरकार के किसी कर्मचारी के आमेलन के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता - *इल्मो देवी के मामले* पर भरोसा किया गया। (पैरा 17)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. तमिलनाडु सरकार एवं एक अन्य बनाम तमिलनाडु मक्कल नाला पनियालार्गल और अन्य; 2023 लाइव लॉ (एससी) 294

2. भारत संघ एवं अन्य बनाम इल्मो देवी और एक अन्य; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 899

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अवधेश शुक्ला, राज्य प्रतिवादी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज पटेल, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वेश कुमार दुबे और प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री उदय वीर सिंह को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक-5 और 6 में निहित दिनांक 31.3.2006 के प्रश्नगत आदेश को चुनौती दी है। इसमें परमादेश की प्रकृति में, रिट, आदेश या निर्देश



जारी करने की प्रार्थना की गई है प्रतिवादियों को आदेश दिया गया कि वे याचिकाकर्ताओं को चपरासी के पद पर कार्य करने की अनुमति दें और जब भी वेतन देय हो, उन्हें उक्त पद पर वेतन का भुगतान करें।

3. मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि याचिकाकर्ता संख्या - 1 की नियुक्ति 16.2.2000 को तथा याचिकाकर्ता संख्या - 2 की नियुक्ति 15.2.2000 को जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में संविदा के आधार पर हुई थी। नियुक्ति पत्र की प्रति दिनांक 17.12.2001 प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा जारी किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 4 के अधीन ईमानदारी से कार्य करना जारी रखा। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 29.9.2006 को एक परिपत्र जारी किया गया था, जिसमें संकेत दिया गया था कि जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम योजना 31.3.2006 को समाप्त हो जाएगी तथा कर्मचारियों को सर्व शिक्षा अभियान में शामिल कर लिया गया।

4. दोनों याचिकाकर्ताओं की सेवा 31.3.2006 के प्रश्नगत आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इसी प्रकार की रिट याचिका संख्या 5018 (एस/एस) में पारित कुछ आदेशों पर विश्वास व्यक्त किया। 2003 और 5334 (एस/एस) 2003, जिसके द्वारा प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया था कि वे उपरोक्त रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं को सर्व शिक्षा अभियान योजना में जारी रखने की अनुमति दें।

6. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता उपरोक्त रिट याचिकाओं में पारित आदेशों की समानता का भी दावा कर रहे हैं।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि एक बार जब योजना को सर्व शिक्षा अभियान में परिवर्तित कर दिया गया था, जिसमें जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों को सर्व शिक्षा अभियान योजना में जारी रखने की अनुमति दी गई थी, तो प्रतिवादियों की ओर से याचिकाकर्ताओं को सर्व शिक्षा अभियान योजना में जारी रखने की अनुमति न देने का कोई औचित्य नहीं है। अगला तर्क यह है कि सर्व शिक्षा अभियान में एक पद स्वीकृत किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता उक्त पद पर बने रहने के हकदार हैं। अगला निवेदन यह है कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश विधि सम्मत नहीं है तथा अपास्त किये जाने योग्य है।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का अंतिम निवेदन यह है कि प्रश्नगत आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है, तथा याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया गया है।

9. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ 21 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया, जिसमें दर्शाया गया है कि जिला स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान द्वारा चपरासी का एक पद स्वीकृत किया गया था तथा प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 7 तथा 8 में तथ्यात्मक कथन किया गया है कि

कमलेश कुमार को अन्य पर वरीयता देकर वरिष्ठता के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई थी।

अभिलेख पर मौजूद सामग्री के साथ-साथ जिन निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया गया है, उनका भी अवलोकन किया।

10. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथ पत्र के प्रस्तर 3 में कहा गया है कि स्वीकृत पद की अनुपलब्धता के कारण कर्मचारियों की सेवा समाप्त हो जाएगी तथा प्रस्तर 4 में कहा गया है कि स्वीकृत पद की अनुपलब्धता के कारण जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम योजना में नियुक्ति प्राप्त कर्मचारियों का कोई वैध दावा उपलब्ध नहीं होगा। इस तथ्य को प्रस्तर 12 में दोहराया गया है।

11. इस दलील के समर्थन में कि स्वीकृत पद के अभाव में राज्य को पद सृजित करने और राज्य की सेवा में बने रहने वाले व्यक्तियों को समाहित करने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता, पदों के सृजन के बाद कर्मचारियों को बहाल करने और उनकी योग्यता के आधार पर उन्हें समाहित करने हेतु उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश कानून में टिकने योग्य नहीं है, श्री सर्वेश दुबे, अधिवक्ता ने तमिलनाडु सरकार और अन्य बनाम तमिलनाडु मक्कल नाला पनियालार्गल और अन्य [2023 लाइवलों (एससी) 294] के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया।

12. यह प्रस्तुत किया गया है कि भारत संघ और अन्य बनाम इल्मो देवी और अन्य [2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 899] के मामले में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण लिया गया है।

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने के बाद, मैंने

14. अभिलेख पर मौजूद सामग्री के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जिला स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान में चपरासी का एक स्वीकृत पद है। श्री दुबे, अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि सरकारी विभाग में कार्यरत व्यक्ति को समाहित करने हेतु पद सृजन हेतु कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। पक्षकारों का यह स्वीकार किया गया मामला है कि चपरासी का एक स्वीकृत पद है।

15. तमिलनाडु सरकार (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 54 से 57 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

"54. साथ ही, इस न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि स्वीकृत पद के अभाव में, राज्य को पद सृजित करने और राज्य की सेवा में जारी रहने वाले व्यक्तियों को समाहित करने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता है।

55. निहाल सिंह और अन्य (उपरोक्त) में, जिस पर बहुत अधिक विश्वास व्यक्त किया गया है, यह एक ऐसा मामला था जहाँ राज्य सरकार द्वारा पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 17 के तहत नियुक्तियाँ की गई थीं। चूँकि उनकी नियुक्तियाँ अधिनियम, 1861 के तहत थीं और उन्हें पर्याप्त लंबे समय तक जारी रहने की अनुमति दी गई थी, जिसे अवैध या अनियमित नियुक्ति नहीं माना गया था, इस न्यायालय ने यह टिप्पणी करना उचित समझा कि चूँकि उन्हें इतने लंबे समय तक

जारी रहने की अनुमति दी गई है, इसलिए वे सेवा के नियमितीकरण के हकदार हैं। वर्तमान मामले में, प्रतिवादियों को सरकार की स्थापना में नियमित स्वीकृत पद के विरुद्ध कभी नियुक्त नहीं किया गया था। पद के अभाव में, निर्णय कोई सहायता नहीं कर सकता है।

56. **मालती दास (सेवानिवृत्त) अब पी.बी. महिषी** (उपरोक्त) में बाद में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है, यह एक ऐसा मामला था जहाँ कर्मचारी विभिन्न विभागों में दैनिक वेतन के आधार पर कार्य कर रहे थे जो वास्तव में सरकारी प्रतिष्ठान हैं। एक चरण में, कर्मचारियों ने सेवा के नियमितीकरण का दावा करते हुए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और कर्नाटक उच्च न्यायालय उनके बचाव में आया और राज्य सरकार को ऐसे कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने का निर्देश दिया जो सरकारी विभागों में दैनिक वेतन के आधार पर सेवा कर रहे हैं और अंत में इस न्यायालय द्वारा एसएलपी को खारिज कर दिया गया। इसके बाद उच्च न्यायालय के समक्ष अवमानना याचिकाएं दायर की गईं और दो चरणों में कर्मचारियों को नियमित किया गया, पहले और दूसरे चरण में संबंधित पदाधिकारियों द्वारा अवमानना याचिका दायर की गई। परन्तु कुछ पदाधिकारियों ने अवमानना याचिका दायर की, जो तीसरा चरण प्रतीत होता है, उन्हें नियमितीकरण हेतु विचार नहीं किया गया, जबकि उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी (3) और अन्य

(उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने हेतु की गई थी। **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमादेवी (3) एवं अन्य** (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने के उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि होने के बावजूद उन्हें नियमितीकरण हेतु विचार नहीं किया गया। इस न्यायालय का विचार था कि एक बार उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि हो जाने के बाद और अवमानना याचिका दायर करने के दो चरणों में कर्मचारियों को नियमित कर दिया गया है, तो उच्च न्यायालय के निर्णय के अंतर्गत आने वाले शेष कर्मचारियों के दावे को हटाने का कोई कारण नहीं दिखता है, हो सकता है कि इसका कारण यह हो कि **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमादेवी (3) एवं अन्य** (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के पारित होने के बाद इस विषय पर विधि में परिवर्तन हुआ हो और यह वर्तमान मामले में तथ्यात्मक सार नहीं है।

57. हमारा यह विचार है कि पदों का सृजन करने के बाद पुनः बहाली करने तथा प्रतिवादियों को उनके गुण-दोष के आधार पर समाहित करने का उच्च न्यायालय का निर्देश विधिक दृष्टि से पोषणीय नहीं है तथा इसे पूर्ण रूप से खारिज किया जाना चाहिए।"

16. **यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम इल्मो देवी एवं अन्य** (उपरोक्त) के मामले में

दिए गए निर्णय के सुसंगत प्रस्तर 27 एवं 28 अधोउद्धृत हैं:-

"27. दया लाल एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर 12 में निम्नानुसार अवलोकन किया गया है:-

"12. हम सबसे पहले नियमितीकरण और वेतन में समानता से संबंधित निम्नलिखित सुस्थापित सिद्धांतों का उल्लेख कर सकते हैं, जो इन अपीलों के संदर्भ में प्रासंगिक हैं:

(i) संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय नियमितीकरण, आमेलन या स्थायी निरंतरता हेतु निर्देश जारी नहीं करेंगे, जब तक कि नियमितीकरण का दावा करने वाले कर्मचारियों को स्वीकृत रिक्त पदों के विरुद्ध खुली प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया में प्रासंगिक नियमों के अनुसार नियमित भर्ती के अनुसरण में नियुक्त नहीं किया गया हो। अनुच्छेद 14 और 16 में निहित समानता खंड का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए और न्यायालयों को किसी कर्मचारी की सेवाओं के नियमितीकरण हेतु ऐसा निर्देश जारी नहीं करना चाहिए जो संवैधानिक योजना का उल्लंघन हो। जबकि चयन प्रक्रिया में किसी एक तत्व के अनुपालन की कमी के कारण अनियमित होने वाली किसी भी चीज को नियमित किया जा सकता है, जो प्रक्रिया की जड़ तक नहीं जाती है, परन्तु पिछले दरवाजे से की गई प्रविष्टियाँ, संवैधानिक योजना के विपरीत नियुक्तियाँ और/या अयोग्य उम्मीदवारों की नियुक्ति को नियमित नहीं किया जा सकता है।

(ii) न्यायालय के कुछ अंतरिम आदेशों की आड़ में किसी अस्थायी या तदर्थ या दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी द्वारा सेवा जारी रखने मात्र से उसे सेवा में शामिल होने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा, क्योंकि ऐसी सेवा "विवादास्पद रोजगार" होगी। यहाँ तक कि लंबे समय तक अस्थायी, तदर्थ या दैनिक वेतन भोगी सेवा, एक या दो साल की सेवा की बात तो दूर, ऐसे कर्मचारी को नियमितीकरण का दावा करने का अधिकार नहीं होगा, यदि वह स्वीकृत पद के विरुद्ध कार्य नहीं कर रहा है। विधिक अधिकार के अभाव में सहानुभूति और भावना किसी भी नियमितीकरण के आदेश को पारित करने का आधार नहीं हो सकती।

(iii) यहाँ तक कि जहाँ एक कट-ऑफ तिथि के साथ नियमितीकरण हेतु एक योजना तैयार की जाती है (यानी एक योजना जो यह प्रावधान करती है कि जिन व्यक्तियों ने निर्दिष्ट तिथि तक नियमितीकरण हेतु आवेदन किया है)

(iv) अंशकालिक कर्मचारी नियमितीकरण की माँग करने के हकदार नहीं हैं क्योंकि वे किसी स्वीकृत पद पर कार्य नहीं कर रहे हैं। अंशकालिक अस्थायी कर्मचारियों के समामेलन, नियमितीकरण या स्थायी रूप से जारी रखने हेतु कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

(v) सरकारी संस्थानों में अंशकालिक अस्थायी कर्मचारी समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत पर सरकार के नियमित कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता का दावा नहीं कर सकते हैं। न ही निजी रोजगार में कर्मचारी, भले ही वे पूर्णकालिक सेवा कर रहे हों, सरकारी

कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता की माँग कर सकते हैं। राज्य के खिलाफ किसी विशेष वेतन का दावा करने का अधिकार किसी अनुबंध या कानून के तहत उत्पन्न होना चाहिए।

[देखें कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [(2006) 4 एससीसी 1], एम. राजा बनाम सीरी एजुकेशनल सोसाइटी [(2006) 12 एससीसी 636], एस.सी. चंद्रा बनाम झारखंड राज्य [(2007) 8 एससीसी 279], कुरुक्षेत्र सेंट्रल को-ऑप. बैंक लिमिटेड बनाम मेहर चंद [(2007) 15 एससीसी 680] और आधिकारिक परिसमापक बनाम दयानंद [(2008) 10 एससीसी 1.]

28. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार अंशकालिक कर्मचारी नियमितीकरण की माँग करने के हकदार नहीं हैं क्योंकि वे किसी स्वीकृत पद के विरुद्ध कार्य नहीं कर रहे हैं और अंशकालिक अस्थायी कर्मचारियों की कोई स्थायी निरंतरता नहीं हो सकती है। सरकारी संस्था में अंशकालिक अस्थायी कर्मचारी समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत पर सरकार के नियमित कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता का दावा नहीं कर सकते हैं।”

17. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों में प्रतिवादियों के मामले को पूर्ण रूप से सम्मिलित किया गया है कि किसी स्वीकृत पद की अनुपस्थिति में, सरकार के किसी कर्मचारी को समाहित करने हेतु कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

18. दर्ज किए गए कारणों के दृष्टिगत, यह रिट याचिका विफल हो जाती है और इसे खारिज किया जाता है।

19. यद्यपि यह स्पष्ट किया जाता है कि जब भी रिक्ति बनाई जाएगी, याचिकाकर्ताओं के दावे को प्रतिवादियों द्वारा विचार में लिया जाएगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 366

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट-ए संख्या 4422 वर्ष 2015

विश्वनाथ विश्वकर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

अरविन्द कुमार विश्वकर्मा, रमेश कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, सवित्रा वर्धन सिंह

ए. सेवा कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 311 (4) - सेवा से पदच्युति - भा.दं.सं. की धारा 302 और 149 के अंतर्गत आजीवन कारावास का दंडादेश - कर्मचारी का आचरण - प्रासंगिकता - अभिनिर्धारित किया गया कि, आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता के

आचरण पर कोई चर्चा या विचार किए बिना केवल दोषसिद्धि के आधार पर पारित किया गया है, जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के आलोक में व्याख्या में अनिवार्य आवश्यकता है - तुलसीराम पटेल के मामले पर भरोसा किया गया - उच्च न्यायालय ने सेवा समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया। (पैरा 24 और 25)

बी. सेवा कानून - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 300-ए - संपत्ति का अधिकार - सेवानैवृत्तिक बाद के लाभ - सेवानिवृत्ति से एक दिन पहले कर्मचारी को पदच्युत कर दिया गया - दोषसिद्धि आदेश के आधार पर उसे सेवानैवृत्तिक बाद के लाभ देने को भी अस्वीकार कर दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 300 (ए) के अंतर्गत, पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ उपहार नहीं हैं, बल्कि एक संपत्ति हैं और कानून के प्रावधान के बिना उन्हें वापस नहीं लिया जा सकता है - उच्च न्यायालय ने तीन महीने के भीतर पेंशन सहित सेवानैवृत्तिक बाद के लाभ का भुगतान करने का निर्देश दिया। (पैरा 26 और 31)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. भारत संघ एवं अन्य बनाम तुलसीराम पटेल; एआईआर 1985 एससीसी 1416
2. श्याम नारायण शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 1988 6 एलसीडी 530

3. रतन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (2013) 11 एडीजे 352

4. उदय प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2014 (32) एलसीडी 779

5. शंभू नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2016(4) एडीजे 276

6. राजेश द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2018(36) एलसीडी 1047

7. राम किशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2020) 1 एडीजे 862

8. मुरारी लाल राठौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2021(6) एलजे 622

9. झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं एक अन्य; एआईआर 2013 एससी 3383

10. सिविल अपील संख्या 1804 वर्ष 2020; भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम मुकेश पूनमचंद शाह

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सावित्र वर्धन सिंह को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित अनुतोष की मांग करते हुए योजित की गई है:

I. भविष्य निधि की राशि के संबंध में निर्णय को छोड़कर, दिनांक 30.08.2014 के आक्षेपित अस्वीकृति आदेश तथा दिनांक 13.05.2015 के अपीलीय आदेश को निरस्त करने के लिए विपक्षी पक्षों को आदेश देने के लिए उत्प्रेषण प्रकृति की रिट या निर्देश जारी करें।

II. याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्त मानकर सेवानिवृत्ति बकाया जैसे पेंशन, ग्रेच्युटी की राशि, अवकाश नकदीकरण की राशि, समूह बीमा की राशि, पेंशन का बकाया तथा अन्य बकाया का भुगतान करने के लिए विपक्षी पक्षों को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति की रिट या निर्देश जारी करें।

III. विपक्षीगण को भविष्य निधि की धनराशि जारी करने के लिए ब्याज का भुगतान करने तथा निलम्बन अवधि के लिए बकाया वेतन का भुगतान करने हेतु आदेशित करने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट या निर्देश जारी करें।

3. चूंकि, पक्षकारों के मध्य दलीलों का आदान-प्रदान हो चुका है, अतः पक्षकारों की सहमति से याचिका को प्रवेश स्तर पर ही निर्णीत किया जा रहा है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि, याचिकाकर्ता को 08.03.1975 से जिला-सुल्तानपुर में लेखपाल के पद पर नियुक्त किया गया था। उन्हें वर्ष 1994 में प्रथम पदोन्नति वेतनमान तथा वर्ष 2000 में द्वितीय पदोन्नति वेतनमान दिया गया था। याचिकाकर्ता तहसील सदर, जिला-सुल्तानपुर में लेखपाल के पद पर कार्यरत था। दुर्भाग्यवश दिनांक 11.07.1992 को दुर्घटना घटित हुई, जिस पर दिनांक 11.07.1992 को पुलिस स्टेशन कुड़वार, जिला-सुल्तानपुर में याचिकाकर्ता सहित 16 व्यक्तियों के विरुद्ध एफआईआर दर्ज की गई, जो मुकदमा अपराध संख्या-198/1992 के रूप में धारा-148, 302, 149 एवं 324 के अन्तर्गत पंजीकृत की गई। अन्ततः आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया तथा मुकदमा, सत्र विचरण संख्या-124/1994 में परिवर्तित किया गया। सुनवाई पूर्ण होने के पश्चात याचिकाकर्ता को दिनांक 24.08.2009 के निर्णय एवं आदेश के अन्तर्गत धारा-302 एवं 149 के अधीन आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। याचिकाकर्ता को दिनांक 22.08.2009 को हिरासत में लिया गया। दिनांक 24.08.2009 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने आपराधिक अपील योजित की, जो आपराधिक अपील संख्या-1987/2009 के रूप में पंजीकृत की गई। याची को उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.01.2017 को जमानत पर रिहा किया गया। याची ने दिनांक 31.08.2014 को अधिवर्षता की आयु पूर्ण कर ली। दोषसिद्धि के आधार पर, सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिनांक 30.08.2014 को पारित किया गया तथा इसकी तामील याची पर दिनांक 02.09.2014 को कराई गई। सेवा से

बर्खास्तगी के अतिरिक्त याची को सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों से भी वंचित कर दिया गया।

5. दिनांक 30.8.2014 के आदेश के विरुद्ध याची ने जिला मजिस्ट्रेट, अमेठी के समक्ष दिनांक 17.10.2014 को विभागीय अपील प्रस्तुत की। अपील के लंबित रहने के दौरान, उन्होंने एस.एस. संख्या-42/2015 दाखिल करके इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 30.08.2014 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसका दिनांक 20.02.2015 के आदेश द्वारा निस्तारण इस निर्देश के साथ किया गया कि अपीलीय प्राधिकारी तीन माह के भीतर याचिकाकर्ता की अपील पर निर्णय ले। याचिकाकर्ता की उक्त अपील का दिनांक 13.05.2015 के अपीलीय आदेश द्वारा निस्तारण किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को केवल जीपीएफ राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया तथा शेष सेवानिवृत्ति के लाभों के भुगतान का संबंध में अपीलीय आदेश में यह कहा गया कि उनपर निर्णय, याचिकाकर्ता द्वारा योजित आपराधिक अपील संख्या-1987/2009 के अंतिम निस्तारण के बाद लिया जाएगा।

6. याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका में दोनों आदेशों अर्थात् दिनांक 30.08.2014 तथा 13.05.2015 के आदेश को चुनौती दी है। जहां तक प्रथम आदेश का संबंध है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बलपूर्वक कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के आलोक में केवल दोषसिद्धि किसी कर्मचारी को सेवा से हटाने का आधार नहीं हो सकती, बल्कि बर्खास्तगी का आदेश पारित करते समय

कर्मचारी के आचरण को भी देखा जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि दोषसिद्धि के बाद याचिकाकर्ता को 17.04.2014 को आरोप पत्र जारी किया गया, जिसमें केवल एक आरोप था कि उसने दोषसिद्धि और कारावास के बारे में कभी सूचना नहीं दी, जिसका उसने 20.06.2014 को उत्तर में इस कथन के साथ उत्तर दिया कि उसने समुचित सूचना दे दी है। उन्होंने आगे कहा कि 30.08.2014 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न तो उत्तर में प्रस्तुत किसी तथ्य पर विचार किया गया है और न ही याचिकाकर्ता के आचरण के बारे में भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के अंतर्गत अपेक्षित कोई विचार किया गया है। हालांकि आदेश में कुछ तथ्यों के बारे में दो प्रस्तर हैं, लेकिन 24.08.2009 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश के आलोक में याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी के बारे में केवल एक पंक्ति है। उन्होंने बलपूर्वक कहा कि दोषसिद्धि के मामले में भी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता के आचरण पर विचार करना चाहिए, जो वर्तमान मामले में बिल्कुल गायब है। इसलिए, 30.08.2014 का आदेश गलत है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

7. अपनी तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम तुलसीराम पटेल: एआईआर 1985 एससीसी 1416** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ **श्याम नारायण शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1988 6 एलसीडी 530, रतन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: (2013) 11 एडीजे 352,**



**उदय प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2014 (32) एलसीडी 779, शंभू नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2016(4) एडीजे 276, राजेश द्रविंदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2018(36) एलसीडी 1047, राम किशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2020) 1 एडीजे 862, मुरारी लाल राठौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2021(6) एएलजे 622** का भी संदर्भ दिया।

8. उन्होंने 13.05.2015 के अपीलीय आदेश को भी इस आधार पर चुनौती दी है कि पेंशन और सेवानिवृत्ति के लाभ कोई इनाम नहीं हैं, बल्कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 300(ए) के अंतर्गत एक संपत्ति हैं, इसलिए, बिना किसी कानूनी प्रावधान के उन्हें नहीं छीना जा सकता। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **झारखंड राज्य और अन्य बनाम जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य: एआईआर 2013 सुप्रीम कोर्ट 3383** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

9. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का बलपूर्वक विरोध किया है और कहा है कि एक बार याचिकाकर्ता को दोषी ठहराए जाने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के आलोक में याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करना हमेशा उपलब्ध रहता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **सिविल अपील संख्या 1804/2020, भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम मुकेश पूनमचंद शाह** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के साथ-साथ जिन निर्णयों का संदर्भ दिया गया है, उनका भी अवलोकन किया है।

11. न्यायालय के समक्ष विचारणीय बिन्दु यह है कि क्या दोषसिद्धि की स्थिति में याचिकाकर्ता की सेवा को भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) (ए) के आलोक में उसे कोई अवसर दिए बिना सीधे समाप्त किया जा सकता है या नहीं?

12. चूंकि भारत के संविधान का अनुच्छेद 311 वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक है, इसलिए इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

**“अनुच्छेद 311. संघ या राज्य के अधीन सिविल क्षमता में नियोजित व्यक्तियों की बर्खास्तगी, हटाना या पद में अवनत करना** -(1) किसी व्यक्ति को, जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है या संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा।

(2) यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जांच के पश्चात ही, जिसमें उसे अपने विरुद्ध आरोपों की सूचना दी

गई है और उन आरोपों के संबंध सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया है, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पद में अवनत किया जाएगा,

परंतु जहां ऐसी जांच के पश्चात उस पर ऐसी कोई शास्ति अधिरोपित करने की प्रस्थापना है वहाँ ऐसी शास्ति ऐसी जांच के दौरान दिये गए साक्ष्य के आधार पर अधिरोपित की जा सकेगी और ऐसे व्यक्ति को प्रस्थापित शास्ति के विषय में अभ्यावेदन करने का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा:

परंतु यह और की यह खंड वहाँ लागू नहीं होगा:-

(क) जहां किसी व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदच्युत किया जाता है या पद से हटाया जाता है या पद में अवनत किया जाता है, जिसके लिए आपराधिक आरोप पर उसे दोषसिद्ध ठहराया गया है; या

(ख) जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पद में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जाएगा, यह युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है कि ऐसी जांच की जाए; या”

(ग) जहां, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान हो जाता है कि

राज्य की सुरक्षा के हित में यह समीचीन नहीं है कि ऐसी जांच की जाए।

(3) यदि यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति के संबंध में यह प्रश्न उठता है कि खंड

(2) में निर्दिष्ट जांच करना युक्तियुक्त रूप से साध्य है या नहीं, तो ऐसे व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या उसे पद में अवनत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी का उस पर विनिश्चय अंतिम होगा।”

13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि किसी व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर सेवा से बर्खास्त किया जाता है, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषसिद्धि हुई है, तो विस्तृत जांच की आवश्यकता नहीं है।

14. यह बिंदु **तुलसीराम पटेल (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ था, उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत है:

“दूसरा परंतुक केवल तभी लागू होगा जब सरकारी कर्मचारी का आचरण ऐसा हो कि वह पदच्युत करने या पद से हटाने या पद में अवनत करने की सजा का हकदार हो। यदि आचरण ऐसा हो कि वह ऊपर वर्णित दंड से भिन्न दंड का हकदार हो, तो दूसरा

परंतु बिल्कुल भी लागू नहीं हो सकता, क्योंकि अनुच्छेद 311 (2) स्वयं इन तीन दंडों तक ही सीमित है। इसलिए, किसी सरकारी कर्मचारी को जांच के उसके संवैधानिक अधिकार से वंचित करने से पहले, सबसे पहले यह विचार किया जाएगा कि क्या संबंधित सरकारी कर्मचारी का आचरण ऐसा है कि उसे पदच्युत करने या पद से हटाने या पद में अवनत करने का औचित्य सिद्ध होता है। एक बार जब वह निष्कर्ष निकाल लिया जाता है और दूसरे परंतुक के प्रासंगिक खंड में निर्दिष्ट शर्त पूरी हो जाती है, तो वह परंतुक लागू हो जाता है और सरकारी कर्मचारी जांच का हकदार नहीं होता।"

15. **श्याम नारायण शुक्ला (उपरोक्त)** के मामले में यह बिंदु फिर से इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया। इस न्यायालय ने मामले पर विचार करने के बाद निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

"सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के दृष्टिगत, यह माना जाना चाहिए कि जब भी किसी सरकारी कर्मचारी को किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है, तो उसे केवल दोषसिद्धि के आधार पर सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता है, बल्कि उपयुक्त प्राधिकारी को ऐसे कर्मचारी के आचरण पर विचार करना चाहिए, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है और फिर यह

तय करना चाहिए कि उसे क्या सजा दी जानी है। आचरण और सजा की मात्रा पर विचार करने के मामले में कर्मचारी को शामिल नहीं किया जाना चाहिए और कर्मचारी से स्वतंत्र रूप से उचित प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए, जिसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उस स्तर पर सुनवाई का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।"

16. इस न्यायालय ने **रतन सिंह (उपरोक्त)** के मामले में भी इसी बिंदु पर विचार किया है। इस न्यायालय ने विचार करने के बाद यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय का सुसंगत प्रस्तर नीचे उद्धृत है:

"दूसरे बिंदु पर याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष के दृष्टिगत, जैसा कि ऊपर बताया गया है, बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा "दोषसिद्धि के लिए प्रेरित आचरण" पर विचार करने के बाद पारित नहीं किया गया है, बल्कि केवल दोषसिद्धि के आधार पर यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है। तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है। दिनांक 28.4.2011, 28.1.2012 और 11.9.2012 के आक्षेपित आदेशों को निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता सभी परिणामी लाभों का हकदार होगा। हालांकि, यह आदेश प्रतिवादियों को कानून के

अनुसार नया आदेश पारित करने से नहीं रोकेगा।"

17. **उदय प्रताप सिंह (उपरोक्त)** के मामले में यह बिंदु फिर से इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ था। **तुलसीराम पटेल (उपरोक्त)** और **श्याम नारायण शुक्ला (उपरोक्त)** के निर्णयों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

"13. सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून के दृष्टिगत बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले सक्षम प्राधिकारी को "आचरण के कारण दोषसिद्धि" पर विचार करना चाहिए था और केवल दोषसिद्धि के आधार पर यांत्रिक रूप से आदेश पारित नहीं करना चाहिए था।

14. वर्तमान मामले में, ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता के आचरण, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया था, की जांच नहीं की गई है और याचिकाकर्ता को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से बर्खास्त कर दिया गया है कि उसे आपराधिक न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है। आपराधिक अपील संख्या-1017/1981 में पारित इस न्यायालय के आदेश का अवलोकन, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को बरी किया गया है, से पता चलता है कि

याचिकाकर्ता को रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद योग्यता के आधार पर बरी किया गया है। बेशक, कोई विभागीय जांच नहीं की गई है और अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं करने का कोई कारण नहीं बताया गया है। इस मामले के इस दृष्टिकोण से, बर्खास्तगी आदेश संधारणीय नहीं है।

15. आक्षेपित आदेश भी संधारणीय नहीं है क्योंकि इसे याचिकाकर्ता को कोई अवसर दिए बिना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है। याचिकाकर्ता अब सेवानिवृत्त हो चुका है। उसे केवल प्राकल्पिक रूप से बहाल किया जा सकता है और वह सेवानिवृत्ति के बाद अन्य लाभों का हकदार हो सकता है।"

18. इस न्यायालय की खंडपीठ ने भी **सदानंद मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 1993 एलसीडी 70** मामले में इस बिंदु पर विचार किया है और यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"किसी कर्मचारी को आपराधिक आरोप में दोषी ठहराए जाने पर, सजा का आदेश तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक कि उस आचरण पर भी विचार न किया जाए जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है। यह भी निर्धारित किया गया कि किसी कर्मचारी के आचरण की जांच या

उसके आचरण का विश्लेषण, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है, एकपक्षीय रूप से किया जाना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए संबंधित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया जाना चाहिए”

19. यह बिंदु पुनः इस न्यायालय के समक्ष **शंभू नाथ यादव (उपरोक्त)** के मामले में आया, जिसमें याचिकाकर्ता को धारा 498ए और 304बी आईपीसी के अंतर्गत दोषी ठहराया गया था और इस विषय के कई निर्णयों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्धारित किया है:

“वर्तमान मामले में, प्रतिवादी, आक्षेपित आदेश के द्वारा बर्खास्तगी की सजा अधिरोपित करने से पूर्व, याचिकाकर्ता के उस आचरण पर विचार करने में विफल रहे हैं, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है। आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दोषसिद्धि और दंड की मात्रा के लिए आचरण पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया है, बल्कि दोषसिद्धि के स्वतः और स्वाभाविक परिणाम के रूप में दंड लगाने के लिए आगे बढ़ा है, और इसे 1991 के नियम 8(2)(ए) के अंतर्गत शक्ति का वैध प्रयोग नहीं कहा जा सकता है और इसलिए रिट याचिका में आक्षेपित आदेश बने रहने योग्य नहीं हैं।”

20. **राजेश द्विवेदी (उपरोक्त)** के मामले में न्यायालय के समक्ष बिंदु, वर्तमान विवाद के समान ही था और उक्त मामले में याचिकाकर्ता को धारा 147, 148 और 302 आईपीसी के अंतर्गत दोषी ठहराया गया था। न्यायालय ने कई निर्णयों पर विचार करने के बाद बिल्कुल यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

“10. कानून के स्थापित सिद्धान्त के दृष्टिगत, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, किसी सरकारी कर्मचारी को केवल इस आधार पर पदच्युत या पद से हटाना या पद में अवनत नहीं किया जा सकता है कि उसे न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है। इस प्रकार, किसी सरकारी कर्मचारी को दंडित करने के लिए केवल दोषसिद्धि ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संबंधित कर्मचारी का वह आचरण है, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है, जिसके आधार पर सरकारी कर्मचारी को दंडित किया जा सकता है। इसलिए, अनुशासनात्मक अधिकारियों के लिए दोषी सरकारी कर्मचारी के आचरण पर विचार करना आवश्यक है, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है। इसके अभाव में, दंड का आदेश गलत होगा। इसके अलावा, अनुशासनात्मक अधिकारी द्वारा विचार को लिखित रूप में दर्ज किया जाना आवश्यक है।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधान-2 में यह प्रावधान है कि जहां किसी व्यक्ति को उसके आचरण के आधार पर बर्खास्त किया जाता है, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है या जहां नियुक्ति प्राधिकारी को यह विश्वास हो कि ऐसी जांच करना उचित रूप से व्यावहारिक नहीं है, वहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि यह प्रावधान उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियम 1999 के नियम-7 के समान है, जिसमें यह भी प्रावधान है कि जहां किसी व्यक्ति पर उसके आचरण के आधार पर कोई बड़ा दंड लगाया जाता है, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह विश्वास हो कि लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारण से नियमों के अनुसार जांच करना उचित रूप से व्यावहारिक नहीं है, तो आदेश अंतिम हो जाता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि जो कर्मचारी 48 घंटे से अधिक समय तक जेल में रहा है, उसकी सेवाएं नियमों के अनुसार समाप्त कर दी जाती हैं।

12. विद्वान अधिवक्ता का तर्क स्पष्टतः अवैध है, क्योंकि भारत के

संविधान के अनुच्छेद 311 तथा उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम-7 में स्पष्ट प्रावधान है कि किसी कर्मचारी को आपराधिक आरोप में दोषसिद्धि के आधार पर बड़ी सजा देने का आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी को लिखित रूप में अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि वह कर्मचारी के आचरण पर विचार करने के पश्चात, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप के आधार पर दोषसिद्धि हुई है, वह संतुष्ट है कि वह बड़ी सजा का हकदार है। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क भी बेतुका है कि मात्र 48 घंटे से अधिक कारावास होने पर कोई कर्मचारी नियमानुसार सेवा समाप्त होने योग्य हो जाता है। उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) 1999 के नियम-4(3) के अनुसार ऐसा कर्मचारी निरूद्ध किये जाने की तिथि से निलम्बित माना जायेगा।

13. इसलिए, उपरोक्त निर्णयों और कानून के प्रासंगिक प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि किसी भी दंड को अधिरोपित करने से पहले अधिकारियों को कर्मचारी के आचरण पर विचार करना चाहिए जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित किए गए आक्षेपित आदेश में केवल यह कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता को

आपराधिक मामले में दोषी ठहराया गया है, इसलिए उसे सजा के आदेश की तारीख से सेवा से बर्खास्त किया जाना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 2 को बड़ी सजा देने से पहले, याचिकाकर्ता के उस आचरण की जांच करने की आवश्यकता थी, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया था। आदेश में विवेक का उपयोग नहीं किया गया है और कानून द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 में निहित विवेक का मनमाना प्रयोग दिखाया गया है।“

21. **राम किशन (उपरोक्त)** के मामले में फिर से इसी तरह का बिंदु इस न्यायालय के समक्ष आया, जिसमें एक कर्मचारी को धारा 302 और 134 आईपीसी के अंतर्गत दोषी ठहराया गया था। और इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों पर विचार करने के पश्चात यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय के सुसंगत प्रस्तर नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

“12. **शंकर दास बनाम भारत संघ**, एमएनयू/एससी/0369/1985 :1985 (2) एससीआर 358 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के दूसरे परंतुक के खंड (ए) के अंतर्गत शक्ति का उल्लेख करते हुए, निम्न प्रकार से टिप्पणी की है:-

“उस शक्ति का प्रयोग अन्य सभी शक्तियों की तरह निष्पक्ष, न्यायपूर्ण

और तर्कसंगत रूप से किया जाना चाहिए।”

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311 का प्रावधान (ए), अनुच्छेद 311 के खंड (2) का अपवाद है, जो तब लागू होता है जब किसी व्यक्ति को उसके आचरण के आधार पर पदच्युत या पद से हटाना या पद में अवनत किया जाता है, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है। डिवीजनल कार्मिक अधिकारी, दक्षिण रेलवे बनाम टी.आर. चेल्लप्पन, एमएनयू/एससी/0488/1975 : 1976 (3)एससीसी 190 (प्रस्तर-21), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 311(2), प्रावधान (ए) पर विचार किया और माना कि यह प्रावधान अनुशासनात्मक प्राधिकरण को यह निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करता है कि किसी विशेष मामले के तथ्यों में, दोषी कर्मचारी पर क्या दंड लगाया जाना चाहिए, यदि लगाया जाना चाहिए तो, दोषी कर्मचारी के संपूर्ण आचरण, उसके द्वारा किए गए कदाचार की गंभीरता, उसके कदाचार से प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव और मामले में मौजूद अन्य परिस्थितियों या क्षतिपूर्ति करने वाली विशेषताओं, यदि कोई हो, आदि को ध्यान में रखने के बाद करना चाहिए। दोषी कर्मचारी की दोषसिद्धि को कदाचार का पर्याप्त सबूत माना जाएगा और फिर प्राधिकारी को दोषी कर्मचारी पर

लगाए जाने वाले दंड की प्रकृति और सीमा के बारे में संक्षिप्त जांच करनी होगी और जांच के दौरान, यदि प्राधिकारी की राय है कि अपराध बहुत मामूली या तकनीकी प्रकृति का है तो वह दोषसिद्धि के बावजूद कोई दंड लगाने से इनकार कर सकता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास दोषी कर्मचारी की सुनवाई करने और मामले की परिस्थितियों पर विचार करने के बाद बिना किसी विभागीय जांच के दोषी कर्मचारी पर कोई बड़ा दंड लगाने का निस्संदेह अधिकार है, यदि प्राधिकारी की राय है कि कर्मचारी नैतिक पतन से जुड़े किसी गंभीर अपराध का दोषी है और इसलिए ऐसे व्यक्ति को सेवा में बनाए रखना प्रशासन के हित में वांछनीय या अनुकूल नहीं है। सुशील कुमार सिंघल बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक, एमएनएनयू/एससी/0578/2010 : 2010 (8)एससीसी 573 (प्रस्तर-24 और 25) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'नैतिक अधमता' शब्द का अर्थ ईमानदारी, विनम्रता या अच्छे नैतिक मूल्यों के विपरीत कुछ भी करने के रूप में समझाया।

14. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तुलसीराम पटेल (उपरोक्त), टी.आर. चेल्लापन (उपरोक्त) और शंकर दास (उपरोक्त) के मामलों में निर्धारित कानून और श्याम नारायण शुक्ला (उपरोक्त) और

सदानंद मिश्रा (उपरोक्त) में इस न्यायालय की दो खंडपीठ के निर्णयों के दृष्टिगत, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटाते समय, प्रतिवादी याचिकाकर्ता के उस आचरण पर विचार करने के लिए बाध्य थे, जिसके कारण सत्र परीक्षण में उसे दोषी ठहराया गया है। सेवा से हटाने की सजा लगाने के लिए अधिकारिता प्राप्त करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के लिए यह पूर्व शर्त थी। हालांकि, दुर्भाग्य से आक्षेपित आदेश मौन है और याचिकाकर्ता के आचरण पर विचार नहीं करता है, जिसके कारण उसे एस.टी. संख्या 178/2005 में दोषी ठहराया गया है। आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रतिवादियों के लिए यह आवश्यक था कि वे याचिकाकर्ता के उस आचरण पर विचार करें, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया और फिर यह तय करें कि उसे क्या सजा दी जानी है। याचिकाकर्ता को सेवा से हटाते समय प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा ऐसा नहीं किया गया है। इसलिए आक्षेपित आदेश को बनाए नहीं रखा जा सकता है और इसे निरस्त किया जाता है।“

22. इसी तरह का एक और बिंदु **मुरारी लाल राठौर (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय के समक्ष था जिसमें दोषसिद्धि धारा 302, 120 बी और 149 आईपीसी के अंतर्गत हुई थी और याचिकाकर्ता को उसी आधार पर सेवा से



बर्खास्त कर दिया गया था। इस न्यायालय ने विस्तार से विचार करने के बाद यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

“10. बर्खास्तगी के आदेश में केवल यह दर्ज है कि याचिकाकर्ता को एस.टी. संख्या 455/208 में आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और वह जेल में निरुद्ध है, इसलिए शासनादेश दिनांक 12.10.1979 के दृष्टिगत याचिकाकर्ता को जेल में निरुद्ध होने की तिथि अर्थात् 31.10.2015 से सेवा से बर्खास्त किया जा रहा है।

14. तुलसी राम पटेल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की आधिकारिक घोषणा का लगातार पालन किया जाता है और अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि किसी आपराधिक मामले में केवल दोषसिद्धि से सरकारी कर्मचारी की सेवा से स्वतः बर्खास्तगी नहीं हो जाती। चूंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311(2) के दूसरे परंतुक का खंड (क) तथा 1991 के नियम 7(xii) का पहला परंतुक सरकारी सेवक के विरुद्ध जांच करने के सामान्य नियम के अपवाद हैं तथा उसे सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया जाना आवश्यक है, इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से पहले सरकारी सेवक के आचरण

की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया। स्थापित दोष की प्रकृति तथा सरकारी सेवक के लिए उपलब्ध संभावित बचाव ऐसे पहलू हैं जिन पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी के स्तर पर विचार किए जाने की आवश्यकता है। यदि इन पहलुओं पर विचार नहीं किया जाता है तो बर्खास्तगी का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना होगा।

18. चूंकि याचिकाकर्ता का आचरण, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया है, उसकी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित मानदंड के भीतर जांच नहीं की गई है, इसलिए अपील तथा पुनरीक्षण में पुष्ट किए गए बर्खास्तगी के आदेश को बनाए नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार दिनांक 1.12.2016, 21.12.2016 और 18.3.2016 के आदेश निरस्त किये जाने योग्य हैं।”

23. अब मैं वर्तमान मामले से संबंधित बिंदु पर आता हूँ।

24. दिनांक 30.08.2014 के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यह केवल दोषसिद्धि के आधार पर पारित किया गया है, याचिकाकर्ता के आचरण पर कोई चर्चा या विचार किये बिना, जो सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(ए) की व्याख्या के अनुसार अनिवार्य आवश्यकता है। अब यह बिंदु कोई

रैस इंटेंया नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने **तुलसीराम पटेल (उपरोक्त)** के निर्णय से लेकर अनेक अन्य निर्णयों में इस बिंदु पर बार-बार विचार किया है और माना है कि किसी कर्मचारी को दोषी ठहराए जाने के बाद भी, उसे हटाने या बर्खास्त करने का आदेश पारित करते समय, कर्मचारी के आचरण पर विचार किया जाना चाहिए और उसके बिना, बर्खास्तगी का कोई भी आदेश गलत है।

25. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के आचरण पर कोई विचार नहीं किया गया है, इसलिए, दिनांक 30.08.2014 का आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश गलत है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

26. उन्होंने दिनांक 13.05.2015 के अपीलीय आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके अंतर्गत उन्हें जीपीएफ को छोड़कर अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों से वंचित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने **झारखंड राज्य (उपरोक्त)** के मामले में दृढ़ दृष्टिकोण अपनाया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 300 (ए) के अंतर्गत पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ, इनाम नहीं हैं, बल्कि एक संपत्ति हैं और कानून के प्रावधान के बिना उन्हें वापस नहीं लिया जा सकता है। चूंकि, दिनांक 30.08.2014 का पहला आक्षेपित आदेश बने रहने योग्य नहीं है, इसलिए दिनांक 13.05.2015 का अपीलीय प्राधिकारी का आदेश भी पूर्व में की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत मान्य नहीं है, अतः उसे निरस्त किया जाना चाहिए।

27. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने **भारतीय जीवन बीमा निगम (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया है। उक्त निर्णय में विवाद यह था कि क्या एक ही दुर्घटना से उत्पन्न होने वाले मामले में, जहां किसी कर्मचारी को आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है और दोषसिद्धि की स्थिति में, सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया जा सकता है या नहीं। निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि ऐसी सजा दोहरे दंड के समान है और सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों पर विचार करने के बाद कहा कि इसे दोहरा दंड नहीं कहा जा सकता है और ऐसी परिस्थितियों में, सजा के बाद भी, दोषसिद्धि या बर्खास्तगी पर आदेश पारित किया जा सकता है, इसलिए, यह मामला वर्तमान विवाद को निर्णीत करने के लिए प्रासंगिक नहीं है।

28. मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत, सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर निर्धारित कानून के अंतर्गत, 30.08.2014 और 13.05.2015 के आदेशों को निरस्त किया जाता है।

29. अब, न्यायालय के समक्ष अगला बिंदु उस अनुतोष के बारे में है, जो सेवानिवृत्ति के बाद देय राशि के भुगतान के आदेशों को निरस्त करने के बाद याचिकाकर्ता को दी जा सकती है। सामान्य तौर पर, नए आदेश पारित करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित करना आवश्यक है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, आज की तिथि में, याचिकाकर्ता की आयु लगभग 70 वर्ष होगी, इस तथ्य के दृष्टिगत

कि वह 30.08.2014 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था, जबकि बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश 30.08.2014 को पारित किया गया था और उसे 02.09.2014 को तामील किया गया था।

30. **मुरारी लाल राठौर (उपरोक्त)** के मामले में न्यायालय ने इस बिंदु पर विचार करने के बाद यह भी निर्धारित किया है:

"19. आमतौर पर, जब ऐसे आदेशों को निरस्त कर दिया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रासंगिक कारकों जैसे कर्मचारी के आचरण, आरोपों की गंभीरता और उसके विरुद्ध उपलब्ध सामग्री आदि पर विचार करते हुए एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। हालांकि, यह तरीका वर्तमान मामले के तथ्यों में वांछनीय या अनुमेय नहीं होगा, क्योंकि याचिकाकर्ता ने 31.12.2018 को अधिवर्षता की आयु प्राप्त कर ली है और रोजगार का अनुबंध समाप्त हो गया है।

24. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों का एक संक्षिप्त विवरण स्पष्ट रूप से प्रकट करेगा कि जब तक लागू सेवा नियमों या कानून के किसी अन्य प्रावधान में कोई सक्षम प्रावधान मौजूद नहीं है, तब अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए कर्मचारी के सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद सेवा के अनुबंध के

संबंध में आदेश पारित करना उपलब्ध नहीं होगा।

25. इस न्यायालय ने भागीरथी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, एमएनयू/यूपी/3076/2018 : 2018 (8)एडीजे 538 के प्रस्तर-18 में निम्नांकित टिप्पणी की है:-

"18. यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध केवल रोजगार अनुबंध पर निर्भर करता है। जैसे ही व्यक्ति नियमों के अंतर्गत एक निश्चित आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त होता है, अनुबंध समाप्त हो जाता है, संबंध समाप्त हो जाता है। नियोक्ता या कर्मचारी के संबंध समाप्त होने की स्थिति में, प्रथमतः नियमों को विशेष रूप से कार्यवाही जारी रखने का प्रावधान करना चाहिए और वह भी उच्च अधिकारियों की मंजूरी के साथ, क्योंकि इसे असाधारण परिस्थिति के रूप में देखा जाएगा जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह दर्ज करेगा कि वास्तविक और ठोस कारणों से अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त नहीं की जा सकी

और इसलिए यह आवश्यक है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी कार्यवाही जारी रखी जाए, लेकिन अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले नियमों के अंतर्गत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। इस संदर्भ में, प्रतिवादी कोई नियम, परिपत्र या कार्यकारी निर्देश भी नहीं बता सका, जो याचिकाकर्ता या निगम के किसी अन्य कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद भी अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का प्रावधान कर सके। फिर, सवाल यह होगा कि दंड कैसे लगाया जाए क्योंकि दंड केवल कर्मचारी के विरुद्ध ही दिया जाता है। जब तक कि नियोक्ता और कर्मचारी संबंध मौजूद न हों, सेवानिवृत्त कर्मचारी पर दंड का आदेश नियमों के अंतर्गत अन्यथा प्रदान किए जाने के अलावा नहीं लगाया जा सकता है। वसूली के मामलों में भी, विभाग के लिए किसी भी नियम के अभाव में सेवानिवृत्ति बकाया से कोई राशि काटने का अधिकार नहीं है।

26. उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति

की आयु प्राप्त कर ली है और कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को किसी कर्मचारी के आचरण की जांच करने की अनुमति देता हो, अतः अब दंड का आदेश पारित करने के लिए याचिकाकर्ता के आचरण पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करने का कोई उद्देश्य नहीं होगा, जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया। ऐसा करना कानूनी रूप से अनुचित होगा।

27. ऐसी परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को दी जाने वाली राहत इस न्यायालय द्वारा तुलसीराम पटेल (उपरोक्त) में संविधान पीठ के फैसले के प्रस्तर-127 में कही गई बातों के दृष्टिगत निर्धारित की जानी चाहिए। न्यायालय के पास दंड के संबंध में आवश्यक आदेश पारित करने का अधिकार होगा, जो उसकी राय में मामले की परिस्थितियों में उचित और सही होगा।

28. वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता को 18.3.2016 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है और 31.12.2018 को उसकी सेवानिवृत्ति आयु हो गई है। उसने इस अवधि के दौरान काम नहीं किया है। धारा 307 आईपीसी के अंतर्गत अपराध में दोषी ठहराए जाने के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही तथ्यों के

आधार पर अधिकार क्षेत्र से बाहर या मनमानी नहीं कही जा सकती। बर्खास्तगी का आदेश याचिकाकर्ता के आचरण पर विचार न करने के कारण अपर्याप्त पाया गया है जिसके कारण उसे दोषी ठहराया गया और ऐसे कारणों से इसे रद्द कर दिया गया है। याचिकाकर्ता 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांतों को लागू करके 18.3.2016 से 31.12.2018 के बीच वेतन को छोड़कर निरंतरता सहित सभी सेवा और सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार होगा। तथापि यह दोहराया जाता है कि 18.3.2016 से 31.12.2018 के बीच की अवधि को सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान के लिए गिना जाएगा।"

31. इसलिए, इस मामले के तथ्यों और न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानूनी प्रस्ताव के आलोक में, प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने के भीतर याचिकाकर्ता को पेंशन और कानून के अंतर्गत अनुमेय अन्य देय राशि सहित सेवानिवृत्ति के बाद का भुगतान करें।

32. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

33. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 376

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-ए संख्या 6176 वर्ष 2023

रमेश चंद्र पाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

गिरीश चंद्र वर्मा, पवन कुमार पांडे

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, घनश्याम वर्मा

ए. सेवा कानून - उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 - धारा 18 (1) और 18 (2) - विनियमन - अध्याय दो, विनियम 3 - कार्यवाहक प्रधानाचार्य - वरिष्ठता - डीआईओएस की शक्ति, कब प्रयोग की जा सकती है - वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करने में प्रबंधन समिति की ओर से कोई विफलता नहीं - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ, आक्षेपित आदेश गलत है क्योंकि धारा 18 की उप-धारा (2) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब प्रबंधन वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करने में विफल रहता है - आगे अभिनिर्धारित किया गया, आदेश कानून में बुरा है, क्योंकि वरिष्ठता तय करते समय, विनियमन 3 (जी) के साथ विनियमन 3 (बीबी) में निर्धारित सिद्धांत को डीआईओएस द्वारा पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया गया है। (पैरा 19)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा  
पारित)

1. प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से श्री आर.डी. शाही द्वारा दायर वकालतनामा रिकॉर्ड पर लिया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से दायर संक्षिप्त जवाबी हलफनामा भी रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा और श्री पवन कुमार पांडे तथा प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आर.डी. शाही और श्री घनश्याम वर्मा को सुना गया।

3. प्रत्यर्थी संख्या 6 को बिना किसी आधार के जोड़ा गया है, इसलिए उसे पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है और प्रस्तुत दस्तावेजों के मद्देनजर प्रत्यर्थी संख्या 5 को सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है।

4. वर्तमान याचिका दिनांक 25/28.07.2023 (याचिका के अनुलग्नक संख्या 1) के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत प्रत्यर्थी संख्या 7 को याची के दावे को दरकिनार करते हुए कार्यवाहक प्रधानाचार्य का प्रभार दिया गया है, जैसा कि उसने दावा किया है।

5. संक्षेप में तथ्य यह है कि याची को दिनांक 03.02.2004 को एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 7 को दिनांक 07.12.2004

को एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। इसके बाद, याची और प्रत्यर्थी संख्या 7 दोनों को दिनांक 13.03.2012 को प्रवक्ता के पद पर पदोन्नत किया गया, हालांकि, प्रत्यर्थी संख्या 7 ने दिनांक 13.03.2012 को प्रवक्ता के रूप में कार्यभार संभाला जबकि याची ने दिनांक 14.03.2012 को कार्यभार संभाला। याची की जन्म तिथि 09.09.1970 है और प्रत्यर्थी संख्या 7 की जन्म तिथि 05.08.1971 है।

6. याची के अधिवक्ता का तर्क है कि विचाराधीन संस्थान में, राजेंद्र प्रसाद शर्मा नामक एक प्रवक्ता, कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत थे और बाद में, आगे पद पर बने रहने में असमर्थता व्यक्त करने पर, याची और प्रत्यर्थी संख्या 7 के बीच संबंधित संस्थान में कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद के लिए दावे के संबंध में विवाद उत्पन्न हो गया। याची के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याची प्रत्यर्थी संख्या 7 से वरिष्ठ होने के कारण, कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए प्रबंधन समिति द्वारा सिफारिश किए जाने के योग्य थे, जो प्रबंधन समिति द्वारा किया गया था और इस प्रकार की गई सिफारिश पर, दिनांक 30.09.2011 को याची को कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त करने का आदेश पारित किया गया। प्रबंधन समिति द्वारा पारित उक्त आदेश रिकॉर्ड पर है (रिट याचिका के अनुलग्नक-18)। यह तर्क दिया गया है कि याची के पक्ष में की गई उक्त सिफारिशों के अनुसरण में, याची के हस्ताक्षर सत्यापित किए गए थे जैसा कि

दिनांक 18.10.2019 के पत्र (रिट याचिका के अनुलग्नक-20) से स्पष्ट है।

7. यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दिनांक 25.09.2019 को जारी आदेश जिसमें प्रबंधन को वरिष्ठतम प्रवक्ता को तदर्थ प्राचार्य के रूप में नियुक्त करने का निर्देश दिया गया था और इसके अनुसरण में प्रत्यर्थी संख्या 5, प्रबंधन समिति द्वारा पारित परिणामी आदेश कि वरिष्ठता के अनुसार, याची को कार्यवाहक प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था, रिट याचिका संख्या 28823 (एसएस) 2019 में चुनौती के लिए आया था। उक्त रिट याचिका में शुरू में जवाबी हलफनामा दाखिल करने के निर्देश जारी किए गए थे और बाद में दिनांक 06.11.2019 को उक्त रिट याचिका में कुछ निर्देश जारी किए गए थे। दिनांक 06.11.2019 का आदेश रिट याचिका के अनुलग्नक-22 के रूप में संलग्न है।

8. यह तर्क दिया गया है कि इस बीच, श्री राजेंद्र प्रसाद शर्मा, जिन्होंने पहले कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करने में असमर्थता व्यक्त की थी, को आयोग द्वारा नियमित प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था और संभवतः उक्त कारण से, रिट याचिका को वापस ले लिया गया था। पक्षों के बीच यह स्वीकार किया गया है कि बाद में, श्री राजेंद्र प्रसाद शर्मा केवल दो महीने की अवधि के लिए ही पद पर बने रहे और उसके बाद, एक बार फिर से संबंधित संस्थान के प्रधानाचार्य के कार्यालय में एक रिक्ति उत्पन्न हुई और एक बार फिर से याची का दावा प्रबंधन समिति द्वारा जारी वरिष्ठता सूची के मद्देनजर उठा,

जिसमें एक बार फिर संकेत दिया गया कि याची प्रत्यर्थी संख्या 7 से सबसे वरिष्ठ था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रबंधन समिति द्वारा याची के हस्ताक्षरों को सत्यापित करने का अनुरोध भी किया गया था। उक्त अनुरोध पर विचार किए बिना, यह आदेश पारित कर दिया गया कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 7 ने दिनांक 13.03.2012 को प्रवक्ता के रूप में कार्यभार संभाला था, वह याची से वरिष्ठ था और तदनुसार प्रत्यर्थी संख्या 7 को संबंधित संस्थान का अस्थायी प्राचार्य नियुक्त करने का आदेश जारी किया गया, उक्त आदेश को यहां चुनौती दी गई है।

9. आदेश को चुनौती देने के संबंध में याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982 (संक्षेप में "1982 अधिनियम") की धारा 18 के अधिदेश के अनुसार, प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद को भरने के लिए बोर्ड को रिक्ति अधिसूचित करना प्रबंधन का दायित्व है और यदि उक्त रिक्ति दो महीने की अवधि के भीतर नहीं भरी जाती है, तो प्रबंधन को वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करके ऐसी रिक्ति को तदर्थ आधार पर भरने का अधिकार है।

10. 1982 अधिनियम की धारा 18(2) में यह प्रावधान है कि यदि प्रबंधन उपधारा (1) के अंतर्गत वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करने में विफल रहता है तो निरीक्षक ऐसे शिक्षक की पदोन्नति का आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत है और संबंधित शिक्षक प्रधानाचार्य या

प्रधानाध्यापक के समान वेतन पाने का हकदार होगा।

11. उपाय के हेतु, 1982 अधिनियम की धारा 18(1) और (2) नीचे उद्धृत हैं:

**"18. तदर्थ प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक।** (1) जहां

प्रबंध ने धारा 10 की उपधारा (1) के अनुसार बोर्ड को कोई रिक्ति अधिसूचित की है और प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक का पद वास्तव में दो मास से अधिक समय तक रिक्त रहा है, वहां प्रबंध ऐसी रिक्ति को वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करके पूर्णतया तदर्थ आधार पर भरेगा।

(क) प्रधानाचार्य के पद की रिक्ति के संबंध में प्रवक्ता ग्रेड में।

(ख) प्रधानाध्यापक के पद की रिक्ति के संबंध में प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड में।

(2) जहां प्रबन्धन उपधारा (1) के अधीन वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करने में असफल रहता है, वहां निरीक्षक स्वयं ऐसे शिक्षक की पदोन्नति का आदेश जारी करेगा और संबंधित शिक्षक, पदोन्नति के ऐसे आदेश के

अनुसरण में ऐसे पद पर कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से, यथास्थिति, प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के रूप में अपना वेतन पाने का हकदार होगा।"

12. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा ने आगे तर्क दिया कि वरिष्ठता के निर्धारण के उद्देश्य से, 1982 अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमन के अध्याय-II में प्रावधान निहित हैं। उन्होंने अध्याय-II के विनियमन 3 पर भरोसा किया, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"3 (1) प्रत्येक संस्था की प्रबन्ध समिति निम्नलिखित उपबन्धों के अनुसार अध्यापकों की वरिष्ठता सूची तैयार कराएगी-

(क) वरिष्ठता सूची प्रत्येक श्रेणी के अध्यापकों के लिए अलग से तैयार की जाएगी, चाहे वे स्थायी हों या अस्थायी, किसी भी मौलिक पद पर हों;

(ख) किसी ग्रेड में अध्यापकों की वरिष्ठता उस ग्रेड में उनकी मौलिक नियुक्ति के आधार पर निर्धारित की जाएगी। यदि एक ही तिथि को दो या अधिक अध्यापकों की नियुक्ति हुई हो तो



वरिष्ठता आयु के आधार पर निर्धारित की जाएगी;

(खख) जहां एक ग्रेड में कार्यरत दो या अधिक अध्यापकों को एक ही तारीख को अगले उच्च ग्रेड में पदोन्नत किया जाता है, वहां उनकी पारस्परिक वरिष्ठता उनकी सेवा अवधि के आधार पर निर्धारित की जाएगी, जिसकी गणना उस ग्रेड में उनकी मौलिक नियुक्ति की तारीख से की जाएगी, जहां से उन्हें पदोन्नत किया गया है:

बशर्ते कि यदि सेवा की अवधि समान हो तो वरिष्ठता आयु के आधार पर निर्धारित की जाएगी।

(ग) उच्चतर ग्रेड का शिक्षक, सेवा की अवधि पर ध्यान दिए बिना, निम्नतर ग्रेड के शिक्षक से वरिष्ठ माना जाएगा;

(घ) यदि किसी निलंबित शिक्षक को उसके मूल पद पर पुनः बहाल कर दिया जाता है तो ग्रेड में उसकी मूल वरिष्ठता प्रभावित नहीं होगी;

(ई) शिक्षक की वरिष्ठता के बारे में प्रत्येक विवाद को प्रबन्ध समिति को भेजा

जाएगा जो कारण बताते हुए उस पर निर्णय करेगी।

(f) उपखण्ड (ड) के अधीन प्रबन्ध समिति के विनिश्चय से व्यथित कोई अध्यापक ऐसा विनिश्चय ऐसे अध्यापक को सूचित किये जाने के दिनांक से 15 दिन के भीतर सम्बन्धित क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक को अपील कर सकता है, और अपील पर सम्बन्धित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के उपरान्त उप शिक्षा निदेशक अपना निर्णय कारण सहित देगा, जो अन्तिम होगा और प्रबन्ध समिति द्वारा कार्यान्वित किया जायेगा।

(g) यदि एक ग्रेड में कार्यरत दो या अधिक अध्यापक किसी एक ही तिथि पर पदोन्नति किए जाएँ तो उनकी ज्येष्ठता का आधार उस ग्रेड का सेवाकाल होगा, जिसमें वे कार्यरत थे, परन्तु यदि सेवाकाल बराबर है, तो पदोन्नति को दशा में आयु के आधार पर ज्येष्ठता निर्धारित की जायेगी।

(2) वरिष्ठता सूची प्रत्येक वर्ष संशोधित की जाएगी और खंड (1) के उपबंध यथावश्यक परिवर्तनों सहित ऐसे संशोधन पर लागू होंगे।"

13. उक्त दो प्रावधानों के प्रकाश में, संक्षेप में, याची के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्रत्यर्थियों के लिए आदेश पारित करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि धारा 18(2) के तहत परिकल्पित स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी। उनका तर्क है कि प्रबंधन समिति ने 1982 अधिनियम की धारा 18(1) के तहत प्रबंधन को प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में याची के नाम की सिफारिश की थी और धारा 18(2) के तहत शक्तियों का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है, जब प्रबंधन धारा 18(1) के तहत शक्ति का प्रयोग करने में विफल हो और इसलिए, केवल इसी आधार पर आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

14. उक्त तर्कों के अतिरिक्त, याची श्री जी.सी. वर्मा के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विनियमन 3 (बीबी) और विनियमन 3 (जी) विशेष रूप से वरिष्ठता निर्धारित करने के तरीके के बारे में बताते हैं, जहां एक ही ग्रेड में काम करने वाले दो या अधिक शिक्षक हैं और एक ही तारीख को पदोन्नत किए जाते हैं। यह दो या अधिक शिक्षकों के बीच वरिष्ठता निर्धारित करने के तरीके के बारे में भी बताता है। उक्त के प्रकाश में, उन्होंने तर्क दिया कि बेशक याची और प्रत्यर्थी संख्या 7 दोनों को दिनांक 13.03.2012 को पदोन्नत किया गया था और बेशक, मूल नियुक्ति की तारीख से याची की सेवा की अवधि प्रत्यर्थी संख्या 7 की तुलना में अधिक थी और उस मामले में, याची के दावे को प्रबंधन द्वारा सही रूप से स्वीकार किया गया था और विधिवत सिफारिश की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आरोपित आदेश में, वरिष्ठता निर्धारित करने के उद्देश्य से

कार्यभार संभालने की तारीख का उल्लेख किया गया है, जो अध्याय-II के विनियमन 3 (बीबी) और विनियमन 3 (जी) के आदेश के विपरीत है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि यद्यपि कार्यभार ग्रहण करने के संबंध में विवाद है, तथापि, तर्क के लिए भी इसे सही माना जाता है, तथापि, अध्याय-II के विनियमन 3(बीबी) और विनियमन 3(जी) में निहित स्पष्ट प्रावधानों के मद्देनजर इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं होगी।

15. संक्षेप में, ऊपर दर्ज किए गए प्रस्तुतीकरण के आधार पर, उनका तर्क है कि याची सबसे वरिष्ठ शिक्षक है और उसे तदर्थ प्रधानाचार्य के रूप में काम जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए और आक्षेपित आदेश अनिवार्य योजना के विपरीत है और इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए। उनका यह भी तर्क है कि याची प्रत्यर्थी संख्या 7 से उम्र में वरिष्ठ था, जो अध्याय-II के विनियमन 3(बीबी) के प्रावधान के मद्देनजर भी प्रासंगिक है।

16. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर डी शाही ने एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामा दायर किया है और प्रबंधन समिति द्वारा दिनांक 10.05.2016 को कथित रूप से भेजी गई वरिष्ठता सूची की एक प्रति रिकॉर्ड में रखी है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 7 को पदोन्नति की तारीख के आधार पर याची से वरिष्ठ दिखाया गया है, जो प्रत्यर्थी संख्या 7 के मामले में दिनांक 13.03.2012 दर्ज है जबकि याची के मामले में यह दिनांक 14.03.2012 दर्ज है।

यह भी तर्क दिया गया है कि उक्त वरिष्ठता सूची के आधार पर, तदर्थ प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी संख्या 7 का दावा पूरी तरह से उचित था और आरोपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मूल न्याय किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश में ही यह दर्ज है कि प्रबंधन समिति द्वारा कोई वरिष्ठता सूची प्रस्तुत नहीं की गई थी, इस प्रकार, प्रत्यर्थी को 1982 अधिनियम की धारा 18(2) के आधार पर निहित शक्ति का प्रयोग करने का पूरा अधिकार था। इस प्रकार उन्होंने तर्क दिया कि रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

17. जिला विद्यालय निरीक्षक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह ने बार को सौंपे गए निर्देशों के आधार पर तर्क दिया कि प्रबंधन समिति ने बार-बार अनुरोध के बावजूद कोई वरिष्ठता सूची प्रस्तुत नहीं की। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उसी आक्षेपित आदेश के खिलाफ याची ने पहले ही दिनांक 05.08.2023 को अपने अभ्यावेदन के माध्यम से संयुक्त शिक्षा निदेशक से संपर्क किया है, ऐसे में याची को दो अलग-अलग मंचों के समक्ष एक साथ उपचार का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और तदनुसार, इस आधार पर भी रिट याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए। संक्षेप में, वह यह तर्क देकर आदेश को सही ठहराने की कोशिश करते हैं कि प्रबंधन समिति धारा 18(1) में निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रही और इस प्रकार, धारा 18(2) के तहत शक्तियों का प्रयोग उचित है।

18. श्री जी.सी. वर्मा ने प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के जवाब में तर्क दिया कि 1982 अधिनियम की धारा 18 के प्रावधानों के साथ-साथ अध्याय-II में निहित प्रावधानों के अनुसार, हालांकि वरिष्ठता के निर्धारण के संबंध में अपील का प्रावधान है, लेकिन यह प्रबंधन समिति द्वारा पारित वरिष्ठता के निर्धारण के किसी भी आदेश तक ही सीमित है और वर्तमान मामले में किए गए आक्षेपित प्रकृति के आदेश के पारित होने के संबंध में अधिनियम या विनियमों में कोई अपील या प्रतिनिधित्व या कोई अन्य उपाय प्रदान नहीं किया गया है। उनका तर्क है कि दिनांक 05.08.2023 के संचार को सबसे अच्छे रूप में जिला विद्यालय निरीक्षक की कार्यवाही के खिलाफ शिकायत के रूप में माना जा सकता है और इसे वैधानिक प्रावधानों के तहत पारित आदेश के संबंध में कानून के तहत उपलब्ध उपाय के बराबर नहीं माना जा सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपील का उपाय कानूनों का निर्माण है और जब तक विशेष रूप से प्रावधान नहीं किया जाता है, तब तक इसे किसी आदेश के खिलाफ उपाय नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार, रिट याचिका मान्य होगी और याची द्वारा सही तरीके से दायर की गई है।

19. बार में की गई दलीलों और ऊपर दर्ज की गई दलीलों पर विचार करने और रिट याचिका, संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के साथ-साथ श्री रण विजय सिंह द्वारा दिए गए निर्देशों पर गौर करने के बाद, जो बात सामने आती है वह यह है कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने 1982 के अधिनियम की धारा 18(2) के तहत अपने में

निहित शक्ति का प्रयोग बिना यह दर्ज किए किया है कि प्रबंधन समिति द्वारा कोई अनुरोध या नियुक्ति की गई थी जो कि धारा 18(1) के तहत आवश्यक है। आक्षेपित आदेश में केवल यह दर्ज किया गया है कि बार-बार अनुरोध के बावजूद प्रबंधन समिति द्वारा वरिष्ठता सूची प्रस्तुत नहीं की गई है। यह गलत है क्योंकि धारा 18 की उप-धारा (2) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब प्रबंधन वरिष्ठतम शिक्षक को पदोन्नत करने में विफल रहता है, जो कि वर्तमान परिदृश्य में ऐसा नहीं है जहां प्रबंधन ने याची के हस्ताक्षरों के सत्यापन के लिए अनुरोध भेजा था। यह आदेश कानून की दृष्टि से भी खराब है, क्योंकि वरिष्ठता तय करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा विनियम 3(बीबी) के साथ विनियम 3(जी) में दिए गए सिद्धांत की पूरी तरह से अनदेखी की गई है क्योंकि उन्होंने कार्यभार ग्रहण करने की तिथि के आधार पर वरिष्ठता निर्धारित की है, जो न तो विनियम 3 (बीबी) या विनियम 3(जी) के तहत परिकल्पित है और न ही इसके लिए प्रावधान किया गया है। बेशक याची आयु की दृष्टि से प्रत्यर्थी संख्या 7 से वरिष्ठ है, एलटी ग्रेड में याची की नियुक्ति समय की दृष्टि से प्रत्यर्थी संख्या 7 से पहले हुई थी और याची तथा प्रत्यर्थी संख्या 7 दोनों को एक ही तिथि अर्थात् दिनांक 13.03.2012 को प्रवक्ता के पद पर पदोन्नत किया गया था, इस प्रकार इन पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए था, भले ही तर्क के लिए यह मान लिया जाए कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने धारा 18(2) के तहत आदेश पारित किया है यह आदेश धारा 18(1), 18(2) के अधिदेश के विपरीत है तथा

अध्याय-II के विनियमन 3 (बीबी) और विनियमन 3 (जी) के प्रावधानों के अधिदेश का पूर्ण उल्लंघन है, जिसे बरकरार नहीं रखा जा सकता तथा इसे रद्द किया जाता है।

20. हस्ताक्षरों के सत्यापन के संबंध में प्रबन्ध समिति द्वारा किए गए अनुरोध पर आदेश पारित करने के लिए मामला जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रेषित किया जाता है।

21. प्रत्यर्थी संख्या 7 को अध्याय-II के विनियमन 3(एफ) के तहत प्रदत्त अपील की शक्तियों के संदर्भ में प्रबंधन द्वारा भेजी गई किसी भी वरिष्ठता सूची को चुनौती देने की स्वतंत्रता होगी, यदि उसे ऐसा सलाह दी जाती है।

22. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि कोई अपील चुनौती है, तो उस पर पारित अंतिम आदेश, भविष्य में तदर्थ प्रधानाचार्य की नियुक्ति के संबंध में मुद्दे को नियंत्रित करेगा। जिला विद्यालय निरीक्षक दो सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशों के अनुसार नए आदेश पारित करेंगे।

23. इस बीच, याची, जो प्रथम दृष्टया प्रत्यर्थी संख्या 7 से वरिष्ठ है, उपरोक्त निर्देशानुसार नया आदेश पारित होने तक कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में काम करना जारी रखेगा।

24. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 382

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

रिट-सी संख्या 6637 वर्ष 2019

अनिल कुमार शर्मा एवं अन्य...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

श्री अतुल श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अभिनिर्धारित हुआ-

जहाँ अवैध मिट्टी उत्खनन की रिपोर्ट याचिकाकर्ता या स्वतंत्र साक्षियों की उपस्थिति के बिना एकपक्षीय रूप से प्रस्तुत की गई थी और जहाँ उत्खनन की गहराई दो मीटर से कम थी, वहाँ दिनांक 24.12.2012 के शासनादेश के आलोक में अवैध खनन का कोई अपराध नहीं बनता। उक्त शासनादेश में स्पष्ट किया गया है कि दो मीटर से अधिक गहराई तक हाथ से की गई खुदाई खनन कार्य नहीं मानी जाएगी। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने एक किसान होने के नाते केवल सिंचाई के उद्देश्य से खेत को समतल किया था। प्राधिकारियों ने मनमाने ढंग से और प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध कार्य

किया। जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त के साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी के आदेश निरस्त।

चर्चा की गई वादविधि:

रामवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य,  
2016 (132) आरडी 121

मुख्य शब्द-

अवैध उत्खनन - किसान द्वारा मिट्टी समतलीकरण - शासनादेश दिनांक 24.12.2012 - दो मीटर से अधिक उत्खनन निषेध - प्राकृतिक न्याय - बिना नोटिस या साक्षी के निरीक्षण - शास्ति- मनमानी कार्रवाई - कार्यवाही को रद्द करना।

विधि बिंदु-

दिनांक 24.12.2012 के शासनादेश के अनुसार, कृषि भूमि समतलीकरण हेतु दो मीटर से अधिक गहराई तक मिट्टी की हाथ से खुदाई, उत्तर प्रदेश लघु खनिज नियमावली के अंतर्गत खनन नहीं है। प्रभावित पक्ष या स्वतंत्र साक्षियों की उपस्थिति में उचित निरीक्षण के बिना की गई कार्रवाई, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. लेखपाल द्वारा 27.03.2017 को किए गए निरीक्षण पर उनके द्वारा उप-विभागीय मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट सौंपी गई, जिन्होंने बाद में 06.04.2017 को एक संचार द्वारा इसे खनन प्राधिकारियों को भेज दिया। इसके बाद, जिला मजिस्ट्रेट, शामली की ओर से विहित प्राधिकारी (माईस) ने याचिकाकर्ताओं को कारण बताओ नोटिस जारी किया कि क्यों न उनसे 2050 घन मीटर मिट्टी अवैध रूप से उत्खनन के लिए रॉयल्टी और जुर्माना कुल मिलाकर 3,94,000/- का शुल्क लिया जाए।

3. याचिकाकर्ताओं ने 22.04.2017 को कारण बताओ नोटिस का जवाब दिया, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता, जो कि प्लॉट नंबर 520, ग्राम कैदी, तहसील और जिला शामली के प्लॉट के मालिक थे, ने कभी भी प्रश्नगत प्लॉट से कोई मिट्टी नहीं खोदी थी और उन्होंने केवल सिंचाई प्रयोजनों के लिए अपनी भूमि के भूखंड को समतल करने का प्रयास किया था और उन्होंने उक्त उत्तर के माध्यम से आगे कहा कि किसी ने दुर्भावनापूर्ण रूप से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ शिकायत की थी और अतः, प्रार्थना की कि नोटिस वापस ले लिया जाए।

4. हालाँकि, 20.05.2017 को, जिला मजिस्ट्रेट-शामली ने निष्कर्ष निकाला कि मिट्टी की खुदाई की गई थी और याचिकाकर्ताओं पर 3,94,000/- रुपये का दायित्व तय किया।

5. जिला मजिस्ट्रेट (प्रतिवादी संख्या 3) के दिनांक 20.05.2017 के आदेश से व्यथित

होकर, याचिकाकर्ताओं ने 30.05.2017 तक खनन (रियायत) नियम, 1963 की धारा 77 के तहत आयुक्त (प्रतिवादी संख्या 2) के समक्ष अपील दायर की, जिसे दिनांक 5.10.2017 के आदेश द्वारा आंशिक रूप से इस हद तक स्वीकार करते हुए रुपये 25,000/- के जुर्माना को घटाकर 10,000/- कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त आदेश दिनांक 5.10.2017 को वापस लेने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा आदेश दिनांक 10.12.2017 के माध्यम से खारिज कर दिया। । उपरोक्त आदेशों से संतुष्ट नहीं होने पर, याचिकाकर्ताओं ने राज्य सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण दाखिल की, जिसे अंततः 18.12.2018 के आदेश द्वारा तय किया गया।

6. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलीय चरण में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पहले लगाया गया जुर्माना रुपये 25,000/- से कम कर रु. 10,000/- कर दिया गया था। इसके अलावा जब याचिकाकर्ताओं ने पुनरीक्षण दायर किया था, तो जुर्माना भाग हटा दिया गया था।

7. हालाँकि, चूँकि याचिकाकर्ता उस आदेश से व्यथित थे जिसके द्वारा यह पाया गया कि याचिकाकर्ताओं ने अवैध रूप से उत्खनन किया था, उन्होंने यह रिट याचिका दायर की।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि लेखपाल की रिपोर्ट, जो मामले का आधार थी और जिसके आधार पर नोटिस जारी किया गया था, बिल्कुल एक पक्षीय रिपोर्ट थी। रिपोर्ट तैयार करने के समय न तो

याचिकाकर्ता मौजूद थे और न ही कोई स्वतंत्र गवाह मौजूद था।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 24.12.2012 के एक सरकारी आदेश का हवाला करते हुए आगे कहा है कि यदि मिट्टी की खुदाई दो मीटर से अधिक गहराई में नहीं हुई है तो यह नहीं कहा जाएगा कि कोई खनन कार्य किया गया था।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जब सरकारी आदेश में यह प्रावधान किया गया था कि ईंट बनाने के प्रयोजनों के लिए खुदाई दो मीटर से अधिक गहरी होनी चाहिए, तो निश्चित रूप से यह आम किसानों के लिए अच्छा होगा और इसलिए, याचिकाकर्ताओं जिन्हे केवल सिंचाई के उद्देश्य से खेत को समतल करने के लिए मिट्टी खोदते हुए पाया गया था पर सरकारी आदेश लागू होगा।

11. चूँकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 24.12.2012 के सरकारी आदेश का आश्रय लिया है, उसे यहाँ नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

“प्रेषक,

संख्या 3514/86-2012.235/2010

विवेक वाष्णोय

विशेष सचिव

उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा मे,

1. निदेशक भूतत्व एवं खनिकर्म, 30 प्र०

लखनऊ

2. समस्त जिलाधिकारी

3. समस्त मण्डलायुक्त

भूतत्व एवं खनिकर्म अनुभाग: लखनऊ दिनांक  
24 दिसम्बर, 2023

विषय: उत्तर प्रदेश खनिज परिहार पेंतीसवा  
संशोधन नियमावली, 2023 के सम्बन्ध में।

महोदय,

अवगत कराना है कि उपर्युक्त संशोधन के अन्तर्गत ईंट भट्ठों के संचालन में पर्यावरण स्वच्छता प्रमाण पत्र की बाध्यता को समाप्त किए जाने के दृष्टिगत संशोधन नियमावली के नियम-3 में स्पष्टीकरण तथा नियम -21-1 के बाद उप नियम -1-क निम्नवत् जोड़ दिया गया है।

1. स्पष्टीकरण:- ईंट बनाने हेतु हस्तचालन से सुदायी द्वारा अथवा हस्तचालन से सामान्य मिट्टी को निकालने की क्रिया खनन संक्रियाओं के अंतर्गत नहीं आएगी जब तक की खनन की गहराई 02 मीटर से अधिक न हो।

2. 1-क नियम-3 में किसी बात के प्रतिकूल होते हुए भी ईंट भट्ठा मालिकों को नियमावली की प्रथम अनुसूची में तत्समय विनिर्दिष्ट दरों पर स्वामित्व का भुगतान होगा।

इस संबंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि ईंट भट्ठों के संचालन के संबंध में उपर्युक्तानुसार आवश्यक कार्यवाही करने का कष्ट करें।

भवदीय,

विवेक वाष्णेय  
विषेष सचिव

12. अपने मामले के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित **2016 (132) आरडी 121** में रिपोर्ट किए गए **रामवीर सिंह बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य**, के मामले में एक फेसलें पर भी भरोसा किया है।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि नोटिस के अपने जवाब में याचिकाकर्ता ने कहा था कि याचिकाकर्ताओं ने कभी भी किसी खनिज की खुदाई नहीं की थी और वास्तव में उन्होंने गांव कैदी, जिला शामली में स्थित खसरा संख्या 520 माप क्षेत्र 0.738 हेक्टेयर भूमि के अपने भूखंडों को उचित प्रकार से सिंचाई के उद्देश्य से केवल समतल किया था। ।

14. हालांकि जवाब में विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि अधिकारियों ने पाया था कि खनिजों की खुदाई हो रही थी, उनके पास खनिजों की कीमत: रॉयल्टी और जुर्माना लेने का एकमात्र विकल्प था।

15. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कहा है कि सरकारी आदेश दिनांक 24.12.2012 ईट बनाने के उद्देश्य से खुदाई के संबंध में था और याचिकाकर्ताओं को इससे कोई लाभ नहीं मिलेगा।

16. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने 18.12.2020 के एक सरकारी आदेश पर भी आश्रय लिया और कहा कि खनिज 'कीचड़' को हटाने से पहले याचिकाकर्ता को ऑनलाइन आवेदन करना चाहिए था।

17. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंकुर टंडन को सुनने के बाद, न्यायालय का मानना है कि जिस समय निरीक्षण किया गया था, उस समय याचिकाकर्ताओं को सूचित किया जाना चाहिए था और यदि याचिकाकर्ता उपलब्ध नहीं थे तो निरीक्षण दो स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में किया जाना चाहिए था। इसके अलावा, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि याचिकाकर्ताओं को भी दिनांक 24.12.2012 के सरकारी आदेश से लाभ होगा। हालांकि यह ईट-पत्थर मालिकों पर लागू होता है, लेकिन हमारा विचार है कि जब सरकार की मंशा यह थी कि यदि खुदाई दो मीटर से अधिक गहरी है तो मिट्टी की खुदाई के लिए शुल्क लगाया जाना चाहिए, तो निश्चित रूप से याचिकाकर्ताओं को शासनादेश दिनांक 24.12.2012 का लाभ दिया जाना चाहिए। अगर वे किसान हैं तो भी कोई बात नहीं।

18. हमने पाया कि याचिकाकर्ताओं को इस सरकारी आदेश से समर्थन मिलता है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने निश्चित रूप से दो मीटर से नीचे खुदाई नहीं की थी।

19. हमने यह भी पाया कि याचिकाकर्ताओं का मामला कानून के दायरे में आता है जैसा कि **रामवीर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में निर्धारित



किया गया है। निरीक्षण के समय याचिकाकर्ताओं को इसके बारे में सूचित नहीं किया गया था और याचिकाकर्ताओं ने दो मीटर से नीचे कुछ भी नहीं खोदा था। अतः रिट याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है।

20. दलीलों से सामने आए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को एक गरीब किसान होने के नाते अनावश्यक रूप से परेशान किया गया है और याचिकाकर्ताओं को गैरकानूनी उत्खनन करने का दोषी ठहराने की कार्रवाई मनमानी और अनुचित है।

21. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिला मजिस्ट्रेट, शामली (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.5.2017, आयुक्त, सहारनपुर मंडल, सहारनपुर (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.10.2017, 18.12.2017 और विशेष सचिव, खान एवं खनिज, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 1) द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.12.2018 को रद्द कर दिया गया है।

22. उपरोक्त कारणों से रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

-----

**(2023) 9 ILRA 385**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 24.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति राजन राँय**

**माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया**

रिट-ए संख्या 8329 वर्ष 2019

**अजय कुमार सिंह**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ एवं**

**अन्य**

**...प्रतिवादीगण**

**याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:**

रमाकांत दीक्षित, आनंद मणि त्रिपाठी, रेखा श्रीवास्तव

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

ए. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 11 - परिनिंदा प्रविष्टि - नियम 11 के अंतर्गत निर्धारित 90 दिनों की अवधि के बाद वैधानिक अपील दायर की गई थी - अपील दायर करने में विलंब के लिए क्षमा का कोई प्रावधान नहीं है - प्रभाव - अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित हुआ कि अपीलीय प्राधिकारी ने परिसीमा के कारण अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया क्योंकि नियम 11 के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी को विलंब को क्षमा करने की कोई शक्ति नहीं है। (पैरा 21)

बी. सेवा कानून - उ.प्र. लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976 - धारा 4, 5 और 6 - उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 - नियम 11 - परिनिंदा

प्रविष्टि - दंडादेश के विरुद्ध दावा याचिका न्यायाधिकरण के समक्ष दायर की गई थी - एक वर्ष की परिसीमा निर्धारित है - इससे पहले, वैधानिक अपील को नियम 11 के अंतर्गत परिसीमा से वर्जित होने के कारण सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था - परिसीमा की गणना - अभिनिर्धारित हुआ, यह एक ऐसा मामला था जहां अपील नियम 11 के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा के भीतर दायर नहीं की गई थी, इस प्रकार यह नियमों के अनुसार नहीं थी, परिणामस्वरूप, अपील की विलंबिता की अवधि न तो परिसीमा को रोकेंगी और न ही बढ़ाएगी और इसे ऐसी गणना से अपवर्जित नहीं रखा जाएगा और परिसीमा की गणना दंडादेश के दिनांक से यानी 20.03.2015 से की जानी चाहिए - आगे अभिनिर्धारित हुआ, दावा याचिका वर्ष 2017 में दायर की गई जो स्पष्ट तौर पर परिसीमा से वर्जित थी जो कि 20.03.2015 से एक वर्ष थी। [पैरा 22 (iv) और 23]

रिट याचिका खारिज कर दी गई। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति राजन राय एवं माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा पारित)

(सी.एम.प्रार्थना पत्र संख्या 54552/2019 )

सुना।

वर्तमान पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 सपठित सीपीसी की धारा 114/151 के अध्याय V के नियम 12 के तहत, दिनांक

28.03.2019 के निर्णय और आदेश के संबंध में पुनरीक्षण आवेदक द्वारा दायर किया गया है, जिसके तहत इस न्यायालय ने उ0प्र0 राज्य लोक सेवा अधिकरण, उ0प्र0, लखनऊ, (इसके बाद "अधिकरण" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 27.02.2019 के आदेश को चुनौती देने वाली याचिका को खारिज कर दिया, जिसका गठन उ0प्र0 लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976 (इसके बाद "1976 के अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के तहत किया गया था।

पुनरीक्षण आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (जिसे आगे "नियमावली, 1999" कहा जाएगा) के नियम 11 के अंतर्गत याची-आवेदक द्वारा दायर अपील पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2017 की तिथि से, जिसमें दण्ड के दिनांक 20.03.2015 के आदेश को चुनौती दी गई थी, दावा याचिका समय के भीतर थी, इस प्रकार, इसे गुण-दोष के आधार पर निर्णय दिया जाना चाहिए था और न्यायाधिकरण का दिनांक 27.02.2019 का आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने योग्य था, लेकिन इस न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया, इस प्रकार, वर्तमान पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र स्वीकार करने योग्य है।

अपने तर्कों के समर्थन में श्री त्रिपाठी ने इस न्यायालय के समक्ष 1999 के नियम और 1976 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों को प्रस्तुत किया है, जिसमें 1999 के

नियम 11 और 1976 के अधिनियम की धाराएं 4, 5 और 6 शामिल हैं। इसके अलावा, कोई तर्क नहीं दिया गया है।

दिनांक 27.02.2019 के आदेश द्वारा न्यायाधिकरण ने याचिका को यह पाते हुए खारिज कर दिया कि यह 1976 के अधिनियम की धारा 5 के तहत सीमा द्वारा वर्जित है।

पुनरीक्षण आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

संक्षिप्त तथ्य, जो वर्तमान पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र के अंतिम निस्तारण के लिए आवश्यक हैं, यह है कि निस्संदेह, पुनरीक्षण आवेदक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही 1999 के नियमों के अनुसार शुरू की गई थी और अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपनाई गई प्रक्रिया, जैसा कि रिकॉर्ड से पता चलता है, 1999 के नियमों के नियम 7 के तहत प्रदान की गई थी।

दण्ड आदेश दिनांक 20.03.2015 द्वारा पुनरीक्षण-आवेदक को निन्दा प्रविष्टि प्रदान की गई तथा उसकी सत्यनिष्ठा पर संदेह किया गया। व्यथित होकर उसने दिनांक 11.04.2016 को अपील प्रस्तुत की, जिसे दिनांक 25.01.2017 के आदेश द्वारा सीमा अवधि से वर्जित करते हुए खारिज कर दिया गया।

वर्तमान प्रकरण 1999 के नियमों, विशेषकर नियम 11 और 1976 के अधिनियम

की धारा 4, 5 और 6 के इर्द-गिर्द घूमता है, क्योंकि पुनरीक्षण-आवेदक के अधिवक्ता ने अपने प्रकरण के समर्थन में इस न्यायालय के समक्ष कोई अन्य अधिनियम या नियम प्रस्तुत नहीं किया।

यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि 1999 के नियम 11 में अपील का उपाय प्रदान किया गया है, जो पुनरुत्पादन पर प्रासंगिक होने के कारण निम्नानुसार है :-

**"11. अपील.-** (1) राज्यपाल द्वारा इन नियमों के अधीन पारित आदेशों के सिवाय, सरकारी सेवक अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अगले उच्चतर प्राधिकारी को अपील करने का हकदार होगा।

(2) अपील को अपीलीय प्राधिकारी को संबोधित किया जाएगा तथा उसे प्रस्तुत किया जाएगा। कोई भी सरकारी कर्मचारी अपील अपने नाम से करेगा। अपील में अपीलकर्ता द्वारा दिए गए सभी कथन तथा तर्क शामिल होंगे।

(3) अपील में कोई असंयमित भाषा नहीं होगी। कोई भी अपील, जिसमें ऐसी भाषा हो, सरसरी तौर पर खारिज की जा सकेगी।

(4) अपील, आक्षेपित आदेश की सूचना की तारीख से 90 दिनों के

*भीतर प्रस्तुत की जाएगी। उक्त अवधि के बाद प्रस्तुत की गई अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाएगा।"*

1999 के नियम 11 के उप-नियम 4 के अवलोकन से पता चलता है कि अपील आदेश की सूचना की तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर पेश की जानी चाहिए और यह आगे दर्शाता है कि उक्त अवधि के बाद की गई अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाएगा। अपील प्राधिकारी को अपील दायर करने में देरी को माफ करने की शक्ति ऊपर उद्धृत नियम में इंगित नहीं की गई है। दूसरी ओर, यह प्रावधान करता है कि निर्धारित समय सीमा के बाद की गई अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाएगा। इसके अलावा, इस न्यायालय के संज्ञान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं लाया गया है जिसके तहत अपील प्राधिकारी को अपील दायर करने में देरी को माफ करने की शक्ति हो।

इस न्यायालय द्वारा दिनांक 28.03.2019 को पुनरीक्षणधीन निर्णय पारित करते समय अधिनियम 1976 की धारा 5 का संज्ञान लिया गया। पुनरीक्षणधीन निर्णय का उक्त भाग इस प्रकार है :-

“उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976 की धारा 5 (1) (बी) में अधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर करने की सीमा अवधि का प्रावधान है, जो इस प्रकार है:

"(1) (बी). परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का अधिनियम 36) के उपबंध यथावश्यक परिवर्तनों सहित धारा 4 के अधीन निर्देश पर उसी प्रकार लागू होंगे मानो संदर्भ सिविल न्यायालय में दायर किया गया वाद हो, तथापि, वह-

(i) उक्त अधिनियम की अनुसूची में निर्धारित सीमा अवधि के होते हुए भी, ऐसे संदर्भ के लिए सीमा अवधि एक वर्ष होगी;

(ii) परिसीमा अवधि की गणना करने में, वह अवधि जो उस तारीख से प्रारंभ होगी जिसको लोक सेवक अपनी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार कोई अभ्यावेदन करता है या कोई अपील, पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका (जो राज्यपाल के समक्ष ज्ञापन न हो) प्रस्तुत करता है, तथा वह तारीख समाप्त होगी जिसको ऐसे लोक सेवक को, यथास्थिति, ऐसे अभ्यावेदन, अपील, पुनरीक्षण या याचिका पर पारित अंतिम आदेश का ज्ञान होता है, अपवर्जित कर दी जाएगी।"

**2008 (2) एडब्ल्यूसी 1987 इलाहाबाद** में प्रतिवेदित **करण कुमार यादव बनाम उ०प्र० राज्य लोक सेवा अधिकरण और अन्य** के प्रकरण में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने

अभिनिर्धारित किया है कि दावा याचिका दायर करने में देरी के लिए माफ़ी का आवेदन न तो स्वीकार्य होगा और न ही विचारणीय होगा। इसका प्रासंगिक हिस्सा नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"उपर्युक्त धारा 5(1)(बी) सीमा अधिनियम की प्रयोज्यता निर्धारित करती है और इसे अधिनियम, 1976 की धारा 4 के तहत संदर्भ तक सीमित करती है जैसे कि संदर्भ सिविल न्यायालय में दायर किया गया वाद था। इससे कोई संदेह नहीं है कि दावा याचिका सिविल न्यायालय में दायर किए गए वाद की तरह ही है और वाद में सीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधानों को लागू करके सीमा की अवधि को बढ़ाया नहीं जा सकता है। न्यायाधिकरण के अधिनियम की धारा 5 के उप खंड (i) में दावा याचिका दायर करने के लिए विशेष रूप से सीमा अर्थात् एक वर्ष प्रदान की गई है और उप खंड (ii) में सीमा की अवधि की गणना करने का तरीका भी प्रदान किया गया है।

सीमा अधिनियम की धारा 5 इस प्रकार है:-

कतिपय मामलों में विहित अवधि का विस्तार.-- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के आदेश XXI के किसी उपबंध के अधीन आवेदन

को छोड़कर कोई अपील या कोई प्रार्थना पत्र विहित अवधि के पश्चात् स्वीकार किया जा सकेगा, यदि अपीलार्थी या आवेदक न्यायालय को यह समाधान कर दे कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने के लिए पर्याप्त आधार है।

स्पष्टीकरण:- यह तथ्य कि अपीलार्थी या आवेदक को निर्धारित अवधि का पता लगाने या उसकी गणना करने में उच्च न्यायालय के किसी आदेश, प्रथा या निर्णय द्वारा गुमराह किया गया था, इस धारा के अर्थ में पर्याप्त कारण हो सकता है।

इसकी प्रयोज्यता केवल आवेदन/अपील और पुनरीक्षण तक ही सीमित है। इस बात पर किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है कि धारा 5 मूल मुकदमे पर लागू नहीं होती, परिणामस्वरूप यह दावा याचिका में लागू नहीं होगी। यदि विधानमंडल का इरादा दावा याचिका दायर करने में कोई विस्तारित सीमा अवधि प्रदान करने का था, तो उसने दावा याचिका को धारा 5(1)(बी) के तहत सिविल न्यायालय में दायर मुकदमे के रूप में वर्णित नहीं किया होता और/या उसने अधिनियम में एक प्रावधान किया होता, जिससे ट्रिब्यूनल को दावा याचिका के संबंध में भी देरी को माफ करने की शक्ति मिलती।

अधिनियम के उपरोक्त प्रावधान और अधिनियम की धारा 5 की प्रयोज्यता के संबंध में कानूनी प्रावधान को देखते हुए, यह सुरक्षित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि दावा याचिका दायर करने में देरी के लिए माफी का प्रार्थना पत्र न तो स्वीकार्य होगा और न ही विचारणीय होगा।"

धारा 5(1)(बी)(ii), जो दिनांक 28.03.2019 के निर्णय के ऊपर उद्धृत हिस्से का हिस्सा है, कहती है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में पारित दंड के आदेश को चुनौती देने के लिए 1976 के अधिनियम के तहत प्रदान की गई सीमा अवधि की गणना करने के लिए, जो 'एक वर्ष' है, वह अवधि उस तारीख से शुरू होगी, जिस दिन लोक सेवक अपनी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार कोई अभ्यावेदन करता है या अपील, पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका (राज्यपाल के लिए स्मारक नहीं) प्रस्तुत करता है, और उस तारीख के साथ समाप्त होती है, जिस दिन ऐसे लोक सेवक को ऐसे अभ्यावेदन, अपील, पुनरीक्षण या याचिका पर पारित अंतिम आदेश का ज्ञान होता है, जैसा भी प्रकरण हो, को बाहर रखा जाएगा।

वर्तमान प्रकरण के संदर्भ में "सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार" अभिव्यक्ति प्रासंगिक है। इस अभिव्यक्ति के मददेनजर, धारा 5(1)(बी)(ii) का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से एक प्रतिनिधित्व/अपील/पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका, जैसा भी प्रकरण हो, लागू नियमों या

आदेशों के अनुसार ही दायर की जानी चाहिए, जो इस प्रकरण में 1999 के नियम हैं।

इस न्यायालय के विचार में, 1976 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा 5 और 6 भी प्रासंगिक हैं और इसलिए उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

(5) न्यायाधिकरण सामान्यतः तब तक कोई संदर्भ स्वीकार नहीं करेगा जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि लोक सेवक ने शिकायतों के निवारण के लिए सुसंगत सेवा नियमों, विनियमों या अनुबंध के अंतर्गत उपलब्ध सभी उपचारों का लाभ उठा लिया है।

(6) उपधारा (5) के प्रयोजन के लिए, किसी लोक सेवक ने अपने लिए उपलब्ध सभी उपचारों का लाभ उठा लिया अभिनिर्धारित किया जाएगा, यदि राज्य सरकार, उसके किसी प्राधिकारी या अधिकारी या ऐसे नियमों या विनियमों या संविदा के अधीन ऐसा आदेश पारित करने के लिए सक्षम अन्य व्यक्ति द्वारा, शिकायत के संबंध में ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई किसी अपील या किए गए अभ्यावेदन को अस्वीकार करते हुए अंतिम आदेश दिया गया है: परन्तु जहां राज्य सरकार, प्राधिकारी, अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई अपील या किए गए अभ्यावेदन के संबंध में ऐसा

आदेश पारित करने में सक्षम है, द्वारा ऐसी अपील या अभ्यावेदन किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर कोई अंतिम आदेश नहीं दिया जाता है, वहां लोक सेवक, पंजीकृत डाक द्वारा लिखित सूचना द्वारा ऐसे सक्षम प्राधिकारी को आदेश पारित करने की अपेक्षा कर सकेगा और यदि ऐसी सूचना की तामील के एक मास के भीतर आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो यह समझा जाएगा कि लोक सेवक ने अपने लिए उपलब्ध सभी उपचारों का लाभ उठा लिया है।"

1976 के अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा 6 में यह प्रावधान है कि जहां राज्य सरकार, प्राधिकारी, अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई अपील या किए गए अभ्यावेदन के संबंध में ऐसा आदेश पारित करने में सक्षम है, द्वारा ऐसी अपील या अभ्यावेदन किए जाने की तारीख से छह माह के भीतर कोई अंतिम आदेश नहीं दिया जाता है, वहां लोक सेवक पंजीकृत डाक द्वारा लिखित सूचना द्वारा ऐसे सक्षम प्राधिकारी को आदेश पारित करने की मांग कर सकेगा और यदि ऐसी सूचना की तामील के एक माह के भीतर आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो यह अभिनिर्धारित किया जाएगा कि लोक सेवक ने अपने लिए उपलब्ध सभी उपचारों का लाभ उठा लिया है।

इसलिये, यदि दंड के आदेश को चुनौती देने वाली अपील पर अधिनियम 1976

की धारा 4 की उपधारा 6 के अनुसार निर्णय नहीं लिया जाता है, तो संबंधित लोक सेवक अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दंड 'आदेश' को चुनौती देने के लिए न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटा सकता है, जिसके संबंध में अपील दायर की गई थी, जो कि वर्तमान प्रकरण में नियम 11 के अनुसार सख्ती से दायर नहीं की गई थी।

धारा 4 और 5 तथा धारा 4 की उपधारा 5 और 6 को संयुक्त रूप से पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दंड के आदेश को सीधे न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी जा सकती है, यदि समय के भीतर दायर वैधानिक अपील या अभ्यावेदन पर छह महीने की अवधि के भीतर निर्णय नहीं लिया जाता है। हालांकि, ऐसी स्थिति में न्यायाधिकरण के समक्ष जाने के लिए एक शर्त है जिसके अनुसार आदेश पारित करने के लिए सक्षम/अपीलीय प्राधिकारी को लिखित नोटिस देना आवश्यक है और यदि नोटिस की सेवा के एक महीने के भीतर आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो केवल पीड़ित व्यक्ति ही न्यायाधिकरण के समक्ष जा सकता है। इस प्रकरण में, अपील स्वयं 1999 के नियम 11 के तहत निर्धारित 90 दिनों की अवधि के बाद दायर की गई थी।

अब, पहला प्रश्न यह है कि क्या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 25.01.2017 के आदेश द्वारा अपील को सही ढंग से खारिज किया गया था।

इस प्रकरण में, पुनरीक्षण-आवेदक द्वारा अधिनियम 1999 के नियम 11 के अनुसार अपील दायर नहीं की गई थी। दूसरे शब्दों में, पुनरीक्षण-आवेदक द्वारा निर्धारित सीमा अवधि यानी 90 दिन की समाप्ति के बाद अपील दायर की गई थी और नियम 11 के अनुसार इसे सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत अपीलीय प्राधिकारी अपील दायर करने में देरी को माफ कर सके।

इस न्यायालय का मानना है कि अपीलीय प्राधिकारी ने समय-सीमा के कारण अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया, क्योंकि 1999 के नियम 11 के तहत अपीलीय प्राधिकारी को, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपील दायर करने में देरी को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है, जिसे निर्धारित समय-सीमा अर्थात् 90 दिनों के भीतर दायर किया जाना चाहिए।

इस न्यायालय द्वारा निस्तारण किया जाने वाला अगला प्रश्न यह है कि क्या न्यायाधिकरण ने अपीलीय प्राधिकरण के दिनांक 25.01.2017 के आदेश की तिथि से सीमा अवधि के भीतर दावा याचिका दायर किए जाने के बावजूद, सीमा अवधि द्वारा वर्जित होने के कारण दावा याचिका को सही तरीके से खारिज कर दिया है। इस संबंध में, इस न्यायालय का मानना है कि न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित कारणों से सीमा अवधि द्वारा

वर्जित होने के कारण दावा याचिका को सही तरीके से खारिज कर दिया है:-

(i) इस प्रकरण में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दिनांक 20.03.2015 के आदेश की तिथि से लगभग एक वर्ष से अधिक समय बाद अर्थात् 11.04.2016 को अपील दायर की गई, जो कि 1999 के नियम 11 का उल्लंघन था। अपीलीय प्राधिकारी के पास इस तरह के विलंब को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है।

(ii) दिनांक 25.01.2017 के आदेश के अनुसार, अपील को समय-सीमा के कारण खारिज कर दिया गया, जो सही है।

(iii) 1976 के अधिनियम की धारा 5(1)(बी)(ii) के अनुसार, यदि कोई वैधानिक अभ्यावेदन या अपील या पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका लागू नियमों/सरकारी आदेशों के अनुसार पूरी तरह से प्रस्तुत की जाती है, तो केवल उस स्थिति में, वह अवधि जिसके दौरान उक्त अभ्यावेदन/अपील/पुनरीक्षण लंबित था, न्यायाधिकरण से संपर्क करने की सीमा की गणना के प्रयोजनों के लिए बाहर रखा जा सकता है, जो कि धारा 5(1)(बी)(i) के अनुसार एक वर्ष है और इस न्यायालय की खंडपीठ ने पहले ही यह देखा है कि नियमों के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दंड के आदेश को चुनौती देने के लिए न्यायाधिकरण से संपर्क करने में देरी को माफ करने के लिए देरी के लिए माफी का कोई आवेदन अनुरक्षणीय नहीं होगा और इस तरह, धारा 5(1)(बी)(i) के तहत



प्रदान की गई सीमा अर्थात् एक वर्ष के मद्देनजर, 20.03.2015 के मुख्य आदेश को चुनौती देने वाली दावा याचिका, जिसकी अपीलीय आदेश दिनांक 19.03.2015 द्वारा योग्यता के आधार पर पुष्टि नहीं की गई थी। 25.01.2017 को दायर किया गया प्रकरण वर्ष 2017 में न्यायाधिकरण के समक्ष न तो विचारणीय था और न ही पोषणीय था।

(iv) यह सामान्य बात है कि एक बार सीमा अवधि शुरू हो जाने पर इसे कानून के बल के अलावा किसी अन्य बल से नहीं रोका जा सकता है। वर्तमान प्रकरण में, संबंधित अपीलीय प्राधिकारी के पास जाने की सीमा 20.03.2015 (अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की तिथि) से शुरू हुई और कानून (नियम 11) के तहत अपील लगभग एक वर्ष से अधिक समय के बाद दायर की गई, जो निर्धारित अवधि से परे है अर्थात् आदेश की तिथि से 90 दिन जो 25.01.2017 को खारिज कर दिया गया था, सीमा द्वारा वर्जित होने के कारण, इस प्रकार, जहां तक 23.03.2015 के दंड आदेश को चुनौती देने का संबंध है, 20.03.2015 और 25.01.2017 के बीच की अवधि को न्यायाधिकरण के पास जाने के लिए धारा 5(1)(बी)(ii) के अनुसार बहिष्कृत नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। इस प्रकार दावा याचिका जहां तक इसमें 20.03.2015 के दंड आदेश को चुनौती दी गई थी, स्पष्ट रूप से सीमा द्वारा वर्जित थी। यह ऐसा प्रकरण नहीं है, जहां नियम 11 के तहत अपील में चुनौती दिए जाने पर दंड आदेश को आंशिक या पूर्ण रूप से पुष्ट किया गया था, जिस स्थिति में अपील के लंबित रहने की

अवधि को नए दावे याचिका के लिए सीमा की गणना करने के लिए बाहर रखा जाना होगा, लेकिन, यह ऐसा प्रकरण था जहां अपील नियम 11 के तहत निर्धारित सीमा के भीतर दायर नहीं की गई थी, इस प्रकार यह नियमों के अनुसार नहीं था, परिणामस्वरूप, अपील के लंबित रहने की अवधि न तो सीमा को रोकेगी और न ही बढ़ाएगी और इसे ऐसी गणना से बाहर नहीं रखा जाएगा और सीमा की गणना दंड आदेश की तारीख यानी 20.03.2015 से की जाएगी।

जहां तक उक्त आदेश को चुनौती देने का सवाल है। ऐसा होने के कारण वर्ष 2017 में दायर दावा याचिका स्पष्ट रूप से सीमा अवधि से वर्जित थी जो 20.03.2015 से एक वर्ष थी, जहां तक 25.01.2017 के अपीलीय आदेश को चुनौती देने का सवाल है, दावा याचिका सीमा अवधि के भीतर थी लेकिन इसका दायरा केवल अपीलीय आदेश की वैधता तक ही सीमित था जो गुण-दोष पर नहीं बल्कि केवल सीमा अवधि के बिंदु पर था। इस प्रकार, न्यायाधिकरण सबसे अच्छा इस सवाल पर विचार कर सकता था कि क्या अपील को सीमा अवधि द्वारा वर्जित होने के कारण सही तरीके से खारिज किया गया था या नहीं, इससे अधिक कुछ नहीं।

हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि अपीलीय आदेश में कोई त्रुटि नहीं थी और न्यायाधिकरण ने अपील को समय-सीमा के अंतर्गत वर्जित मानते हुए सही किया है। इस प्रकार, उसने अपीलीय आदेश में हस्तक्षेप न करके सही किया।

इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, न्यायाधिकरण ने उचित विचार-विमर्श के बाद पुनरीक्षण-आवेदक द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका पर विचार करने से सही तरीके से इनकार कर दिया, जहां तक 20.03.2015 के आदेश को चुनौती देने का सवाल है और उसके बाद, इस न्यायालय ने न्यायाधिकरण के दृष्टिकोण को बरकरार रखते हुए याचिका को खारिज कर दिया। अब, यह पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र दायर किया गया है, जो इस न्यायालय के विचार में, उपरोक्त कारणों से, पूरी तरह से गलत है क्योंकि रिकॉर्ड के आधार पर कोई त्रुटि स्पष्ट नहीं है और न ही 28.03.2019 के निर्णय की पुनरीक्षण के लिए कोई वैध आधार है और इसे तदनुसार खारिज कर दिया जाता है। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 391

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 8466 वर्ष 1989

अशोक सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्तागण  
बनाम

डी.आई.ओ.एस. ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

एच.एस. सहाय, गिरीश चंद्र वर्मा, एच.जी.एस.  
परिहार, एम.एस. राठौड़, प्रीति सक्सेना, यू.एस.  
सहाय

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, आई.पी. शुक्ला,  
ओ.पी.एम. त्रिपाठी

सेवा कानून - उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा  
आयोग (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 1991  
- धारा 2 - उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन  
बोर्ड अधिनियम, 1982 - धारा 18, 33-ए(1-  
सी) - तदर्थ नियुक्ति की समाप्ति - संस्था में  
सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के दो पद  
रिक्त हो गए थे और कालेज के प्रबंधक ने  
डीआईओएस को रिक्तियों को भरने या निर्देश  
जारी करने के अनुरोध के साथ सूचित किया,  
हालांकि, डीआईओएस ने न तो किसी आरक्षित  
पूल शिक्षक की नियुक्ति की और न ही कोई  
कदम उठाया, प्रबंध समिति ने तदर्थ  
नियुक्तियां कीं, अधिसूचना जारी की और  
प्रार्थीगण की योग्यता पर विचार करने के बाद  
याचिकाकर्ता संख्या 1 को उपयुक्त पाया, एक  
पद अनुसूचित जाति वर्ग के उम्मीदवार द्वारा  
भरा गया, याचिकाकर्ता संख्या 2 को उक्त पद  
के लिए चयनित किया गया, प्रस्ताव पारित  
किया गया, डीआईओएस ने अनुमोदन प्रदान  
किया - शिकायतें प्राप्त होने के बाद,  
डीआईओएस ने लेखाधिकारी और प्रबंध समिति  
के प्रबंधक को वेतन भुगतान रोकने के निर्देश  
जारी किए, डीआईओएस द्वारा प्रबंध समिति  
को कोई सूचना नहीं दी गई - जिस व्यक्ति के  
पक्ष में पहले आदेश पारित किया गया था, उसे  
सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया -  
अभिनिर्धारित हुआ, याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध  
कोई कपट या दुर्व्यपदेशन सिद्ध नहीं हुआ,  
वेतन रोकने का आदेश मनमाना, क्षेत्राधिकार

रहित प्रतीत होता है, तथा निरस्त किये जाने योग्य है। (पैरा 19, 20, 21)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-13)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. तरलोचन देव शर्मा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य.; (2001) 6 एससीसी 260

2. गौरी शंकर राय एवं अन्य बनाम डॉ. राम लखन पांडे, डीआईओएस, बलिया एवं अन्य; 1984 यूपीएलबीईसी 166

3. प्रभु दयाल एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, फिरोजाबाद एवं अन्य; विशेष अपील संख्या 461 वर्ष 1993, दिनांक 11.08.1994 को निर्णीत

4. मनोहर लाल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि, बनाम उग्रसेन (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य; सिविल अपील संख्या 973 वर्ष 2007 (सिविल अपील संख्या 794 वर्ष 2007 के साथ) दिनांक 03.06.2010 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा और प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री दिवाकर सिंह कौशिक को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसमें 22.07.1988 (अनुलग्नक-9) के आक्षेपित आदेशों के साथ-साथ 19.09.1989 (अनुलग्नक-11) के आदेश को निरस्त करने के लिए प्रमाणिकता की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की मांग की गई है, साथ ही प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्तागण को उनकी नियुक्ति की तिथि से वेतन का भुगतान करने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की भी मांग की गई है। याचिकाकर्तागण को सभी परिणामी लाभों के साथ सहायक शिक्षक (एल.टी. ग्रेड) के पद पर मौलिक रूप से नियुक्त करने के लिए आगे की प्रार्थना की गई है।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार हैं:

|     |                                                                                                                                                                                                                                                                            |
|-----|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| ए.  | राष्ट्रीय इंटरमीडिएट कॉलेज, तिन्दुवाई कला, जिला फैजाबाद (संक्षेप में, 'कॉलेज') एक मान्यता प्राप्त और अतिरिक्त संस्था है और उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 और संबद्ध अधिनियमों के प्रावधान कॉलेज के शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों की सेवाओं पर लागू होते हैं। |
| बी. | महाविद्यालय में व्याख्याता श्री राम दत्त सिंह, अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर 30.06.1987 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गए, जिसके परिणामस्वरूप महाविद्यालय में व्याख्याता का पद रिक्त हो गया।                                                                                |
| सी. | एक अन्य अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) श्री शंकर त्रिपाठी भी 30.06.1986 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो गए, जिसके परिणामस्वरूप महाविद्यालय में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) का पद रिक्त हो गया।                                                                     |
| डी. | सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) श्री राम दत्त सिंह के सेवानिवृत्त होने पर, श्री अर्जुन प्रसाद पांडे को                                                                                                                                                                        |

|     |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                         |
|-----|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
|     | प्रवक्ता ग्रेड में पदोन्नत कर दिया गया, जिससे महाविद्यालय में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) का एक और पद रिक्त हो गया।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                    |
| ई.  | तदनुसार, महाविद्यालय में एल.टी. ग्रेड में दो रिक्तियां थीं और रिक्तियों को भरने के लिए तदर्थ नियुक्तियों की जानी थीं।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   |
| एफ. | कॉलेज के प्रबंधक ने दिनांक 24.07.1987 को जिला विद्यालय निरीक्षक (डीआईओएस) को पत्र लिखकर प्रकरण से अवगत कराया तथा अनुरोध किया कि रिक्त पदों को भरा जाए अथवा उक्त पदों को भरने के लिए निर्देश जारी किए जाएं।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |
| जी. | डीआईओएस ने न तो कोई रिजर्व पूल शिक्षक नियुक्त किया और न ही एल.टी. ग्रेड में उन दो रिक्तियों को भरने के लिए कोई कदम उठाया और इस प्रकार, छात्रों के हित को देखते हुए, प्रबंध समिति ने उन रिक्तियों को भरने के लिए तदर्थ नियुक्तियां करने की कार्यवाही की।                                                                                                                                                                                                                                                                                                 |
| एच. | प्रबन्ध समिति ने दिनांक 20.05.1988 की अधिसूचना के माध्यम से सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के दो रिक्त पदों को भरने के लिए दो पदों को अधिसूचित किया तथा आवेदकों की योग्यता पर विचार करने के पश्चात् प्रबन्ध समिति ने याचिकाकर्ता संख्या 1 अर्थात् अशोक सिंह को प्रथम स्थान पर पाया तथा चूंकि एक पद अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थी द्वारा भरा जाना था, अतः याचिकाकर्ता संख्या 2 अर्थात् सुभाष चंद, जो अनुसूचित जाति वर्ग से संबंधित एकमात्र अभ्यर्थी थे, को उक्त पद के लिए चयनित किया गया। इस सम्बन्ध में दिनांक 12.06.1988 को एक प्रस्ताव पारित किया गया। |
| आई. | दिनांक 04.07.1988 के आदेश द्वारा डीआईओएस ने याचिकाकर्तागण की तदर्थ नियुक्ति को मंजूरी प्रदान की।                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                        |
| जे. | डीआईओएस से अनुमोदन प्राप्त होने के पश्चात् प्रबन्ध समिति ने याचिकाकर्तागण को दिनांक 07.08.1988 को नियुक्ति पत्र जारी किये तथा उसके अनुपालन में याचिकाकर्तागण ने दिनांक 08.07.1988 को महाविद्यालय में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के पद पर कार्यभार ग्रहण कर लिया तथा अपनी जॉइनिंग प्रस्तुत कर दी। तब से वे नियमित रूप से सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के पद पर कार्यरत हैं।                                                                                                                                                                            |

|     |                                                                                                                                                                                                                                                          |
|-----|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| के. | दिनांक 22.07.1988 के पत्र द्वारा डीआईओएस ने लेखा अधिकारी और प्रबन्ध समिति के प्रबन्धक को निर्देश जारी किया कि चूंकि याचिकाकर्तागण के विरुद्ध कुछ शिकायतें प्राप्त हुई हैं, इसलिए उन्हें वेतन का भुगतान नहीं किया जा सकता है और इसकी जांच की आवश्यकता है। |
| एल. | उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद से एक वर्ष और दो महीने बीत चुके हैं लेकिन प्रकरण में कोई जांच नहीं की गई है।                                                                                                                                              |
| एम. | वेतन भुगतान के संबंध में अपनी शिकायतों के निवारण के लिए याचिकाकर्तागण ने 23.09.1989 को एक अभ्यावेदन दिया, जो विचाराधीन है और आज तक कोई भी आदेश पारित नहीं किया गया है।                                                                                   |
| एन. | इसलिए, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है।                                                                                                                                                                                        |

4. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय याचिकाकर्तागण को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि एक बार जब याचिकाकर्तागण की नियुक्ति को मंजूरी दे दी गई और वे अपने-अपने पदों पर बने हुए हैं, तो प्रत्यर्थी संख्या 1 जांच पूरी होने तक उन्हें वेतन का भुगतान नहीं रोक सकता।

5. उन्होंने आगे दलील दी कि 30प्र0 अधिनियम संख्या 25, 1991 द्वारा दिनांक 06.04.1991 से धारा 33-ए(1-सी) डाली गई थी, जो यह प्रावधान करती है कि 31.07.1988 से पहले पदोन्नति या सीधी भर्ती द्वारा तदर्थ आधार पर धारा 18 के अनुसार मौलिक रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किए गए शिक्षक, जिनके पास अपेक्षित योग्यता है या जिन्हें ऐसी योग्यता से छूट प्राप्त है, 30प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग चयन बोर्ड (संशोधन) अधिनियम, 1991 के लागू होने की तारीख से मौलिक क्षमता में नियुक्त माने जाएंगे, बशर्त

कि ऐसे शिक्षक अधिनियम के लागू होने की तारीख से संस्था में लगातार सेवारत हों। याचिकाकर्तागण की नियुक्ति 31.07.1988 से पहले हुई थी और वे उ0प्र0 अधिनियम संख्या 26, 1991 के लागू होने की तारीख दिनांक 06.04.1991 को लगातार काम कर रहे थे, इसलिए उन्हें सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के पद पर मौलिक रूप से नियुक्त अभिनिर्धारित किया जाता है।

6. उन्होंने आगे कहा कि डीआईओएस को अपने आदेश को रद्द करने/पुनरीक्षण करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया है, इसलिए, 19.09.1989 का आक्षेपित आदेश अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर है। उन्होंने कहा कि उक्त आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया, इसलिए यह आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

7. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने 15.12.2022 को याचिकाकर्ता संख्या 1 की नियुक्ति के प्रकरण पर विचार किया है और 1982 के अधिनियम की धारा 33-ए (1-सी) के तहत उनकी सेवा को नियमित किया है और इसके अनुसरण में, संयुक्त शिक्षा निदेशक ने 17.12.2022 को इस संबंध में एक आदेश जारी किया है। हालाँकि, याचिकाकर्ता संख्या 2 की सेवा के नियमितीकरण का प्रकरण क्षेत्रीय स्तरीय समिति के समक्ष विचाराधीन है और आज तक कोई निर्णय नहीं लिया गया है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

ए) तरलोचन देव शर्मा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य; (2001) 6 एससीसी 260।

बी) गौरी शंकर राय एवं अन्य बनाम डॉ. राम लखन पाण्डेय, डीआईओएस, बलिया एवं अन्य; 1984 उ0प्र0एलबीईसी 166।

सी) प्रभु दयाल एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, फिरोजाबाद एवं अन्य; विशेष अपील संख्या 461/1993 दिनांक 11.08.1994 को निर्णीत।

डी) मनोहर लाल (मृत) एल.आर. द्वारा, बनाम उग्रसेन (मृत) एल.आर. द्वारा व अन्य; सिविल अपील संख्या 973/2007 (सिविल अपील संख्या 794/2007 के साथ) का निर्णय 03.06.2010 को हुआ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी कि चूंकि याचिकाकर्तागण की तदर्थ नियुक्ति नियमों और विनियमों के विरुद्ध थी, इसलिए प्रत्यर्थी को याचिकाकर्ता का वेतन रोकना चाहिए। उन्होंने दलील दी कि एल.टी. ग्रेड में तथाकथित रिक्तियों के लिए उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग को कोई अध्यायन प्रस्तुत नहीं किया गया था, इसलिए डीआईओएस के लिए पदों को भरने के संबंध में कोई कार्रवाई करने का कोई अवसर नहीं था और प्रत्यर्थी संख्या 2 - प्रबंधन समिति द्वारा की गई कार्रवाई अवैध थी।

9. उन्होंने आगे दलील दी कि तथाकथित जांच पूरी हो चुकी है और परिणामस्वरूप,

याचिकाकर्तागण की उक्त तदर्थ नियुक्तियों को मंजूरी देने से इनकार करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 2 को सूचित कर दिया गया है।

10. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्तागण की नियुक्ति कानून के अनुसार नहीं की गई थी, इसलिए, आपत्तिजनक आदेश पारित करने से पहले उन्हें सुनवाई का कोई अवसर देने का कोई कारण नहीं था।

11. उन्होंने दलील दी कि चूंकि याचिकाकर्तागण की तदर्थ नियुक्तियां करने से पहले आयोग को रिक्तियों की जानकारी नहीं दी गई थी, इसलिए उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 1991 की धारा 2 और अधिनियम 1982 की धारा 18 के प्रावधान प्रकरण के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं।

12. उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा केवल याचिकाकर्तागण की तदर्थ नियुक्ति के लिए चयन को मंजूरी दी गई थी और एक बार तदर्थ नियुक्ति अवैध पाई गई, तो वेतन के भुगतान का कोई सवाल ही नहीं है और अनुरोध किया कि रिट याचिका गलत होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है।

13. हालाँकि, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि संस्थान की प्रबंधन समिति के पिछले प्रबंधक, अर्थात्, श्री तेज प्रताप सिंह की मृत्यु 20.12.1988 को हो गई थी और वर्तमान प्रबंधक, अर्थात्, श्री राम लखन मिश्रा को उनके स्थान पर 29.12.1988 के प्रस्ताव द्वारा नियुक्त किया गया था।

संस्था के पूर्व प्रधानाचार्य श्री जीत बहादुर सिंह 30.06.1988 को सेवानिवृत्त हुए और वर्तमान प्रधानाचार्य, अर्थात्, श्री शिव कुमार मिश्रा ने 30.06.1988 को कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में कार्यभार संभाला। हालाँकि, कार्यभार सौंपने के समय, तत्कालीन प्रधानाचार्य ने संस्था की प्रबंधन समिति का एजेंडा रजिस्टर और कार्यवाही रजिस्टर नहीं सौंपा है, इसलिए, संस्थान के पास प्रबंधन समिति की कार्यवाही का कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है।

14. हालाँकि, पैराग्राफ 15, 16, 21, 23, 25, 28 और 34 में दिए गए तथ्य के आधार पर, उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता 04.07.1988 को डीआईओएस द्वारा दिए गए अनुमोदन के आधार पर 08.07.1988 से तदर्थ व्याख्याता के पद पर पढ़ा रहे हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्तागण का वेतन डीआईओएस द्वारा पारित दिनांक 22.07.1988 के आदेश द्वारा रोक दिया गया है और इस संबंध में प्रत्यर्थी नंबर 2 को कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी नंबर 2 ने दिनांक 19.10.1989 के पत्र के माध्यम से प्रत्यर्थी नंबर 1 को इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.10.1989 के आदेश के संबंध में सूचित किया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्तागण को उस पद पर वेतन का भुगतान करने के लिए निर्देश जारी किया गया था, जिस पर वे काम कर रहे हैं।

15. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ताओं

द्वारा दिए गए निर्णयों का भी अवलोकन किया है।

16. प्रकरण में शामिल विवाद को हल करने के लिए, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

ए) तरलोचन देव शर्मा (पूर्वोक्त):

"16. संविधान द्वारा परिकल्पित भारतीय लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में सचिव जैसे प्रमुख पदों पर आसीन वरिष्ठ अधिकारियों को अपने विवेक, इच्छाशक्ति और निर्णय लेने के अधिकार को गिरवी नहीं रखना चाहिए और राजनेताओं के इशारे पर पीछे धकेले जाने या आगे बढ़ाए जाने के लिए तैयार नहीं रहना चाहिए, क्योंकि वे कानून में पवित्र नहीं हैं। केंद्रीय सरकारी सेवाओं के आचरण नियम सिविल सेवकों को हर समय पूर्ण निष्ठा और कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने और ऐसा कुछ भी नहीं करने का आदेश देते हैं जो एक सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित हो। कोई भी सरकारी कर्मचारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों के पालन में या उसे दी गई शक्ति का प्रयोग करते समय अपने सर्वोत्तम निर्णय के अलावा कोई अन्य कार्य नहीं करेगा, सिवाय इसके कि वह अपने आधिकारिक वरिष्ठ के निर्देश के तहत कार्य कर रहा हो। अनिरुद्धसिंहजी जडेजा (1995) 5 एससीसी 302 में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिकार क्षेत्र से संपन्न एक वैधानिक प्राधिकरण को अपने विवेक के अनुसार इसका प्रयोग करना चाहिए; किसी उच्च अधिकारी के निर्देश या निर्देश के

तहत प्रयोग किया गया विवेक पूरी तरह से विवेक का प्रयोग करने में विफलता है। पुर्तबपुर कंपनी लिमिटेड, एआईआर 1970 एससी 1896 में इस न्यायालय की टिप्पणियां शिक्षाप्रद और उपयुक्त हैं। कार्यकारी अधिकारी अपने वैधानिक विवेक का प्रयोग करते हुए सार्वजनिक नीति और कुछ संदर्भों में मंत्री या सरकार की नीति को ध्यान में रख सकते हैं, जब यह नीति को तौलने में एक प्रासंगिक कारक हो, लेकिन वे व्यक्तिगत मामलों में अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करने के अपने कर्तव्य से मुक्त नहीं हैं, जब तक कि उन्हें बाध्य करने के लिए किसी वरिष्ठ द्वारा निर्देशों के लिए स्पष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं किया गया हो। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हम पर्याप्त सामग्री के अभाव में, कोई सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज नहीं कर रहे हैं कि आक्षेपित आदेश इसके लेखक के अलावा किसी और के इशारे पर या उसके द्वारा निर्देशित किया गया था। फिर भी हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आक्षेपित आदेश प्रकरण के तथ्यों और प्रासंगिक कानून के प्रति पूरी तरह से गैर-विचारणीय दृष्टिकोण को दर्शाता है। जिस तरह से सक्षम अधिकारी ने धारा 22 के तहत शक्ति का प्रयोग किया है, उससे राज्य सरकार द्वारा प्रधान सचिव पर जताया गया भरोसा टूटा है, क्योंकि उसने अधिनियम की धारा 22 के तहत नगरपालिका के अध्यक्ष को हटाने जैसी कठोर शक्ति का प्रयोग किया था। कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि जो किया गया है, वह राज्य सरकार के एक विंग के प्रधान सचिव जैसे वरिष्ठ अधिकारी से अपेक्षित नहीं है। हम यहीं पर अपनी बात समाप्त करते हैं और इस मुद्दे पर और कुछ नहीं कहते।"

बी) गौरी शंकर राय एवं अन्य (पूर्वोक्त):

"10. इन दोनों बिंदुओं पर एक साथ विचार किया जा रहा है। कानूनी स्थिति निर्विवाद प्रतीत होती है अर्थात् जिला विद्यालय निरीक्षक को उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम या उसके अंतर्गत बनाए गए विनियमों के अंतर्गत प्रबंध समिति को एक निकाय के रूप में मान्यता देने वाले गुण-दोष के आधार पर पारित आदेश की पुनरीक्षण करने का अधिकार नहीं दिया गया था, जो कि वर्तमान में संस्थान के प्रबंधन के प्रभावी नियंत्रण में है। एक प्रशासनिक प्राधिकारी के रूप में, जिला विद्यालय निरीक्षक केवल ऐसी शक्तियाँ और कार्यों का प्रयोग कर सकता था, जो उसे लागू विधियाँ द्वारा विशेष रूप से प्रदान किए गए थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिला विद्यालय निरीक्षक को दिनांक 13-6-1980 के आदेश की पुनरीक्षण करने का कोई अधिकार नहीं था। जसवंत सिंह बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक की रिपोर्ट 1980 के उत्तर प्रदेश स्थानीय निकाय और शिक्षा प्रकरण 43 में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने संबंधित विधियों के अंतर्गत उसे सौंपे गए कर्तव्यों और कार्यों को करने के सीमित उद्देश्य के लिए गुण-दोष के आधार पर एक बार आदेश पारित करने के बाद, किसी भी व्यक्ति समूह को प्रबंधन के प्रभावी नियंत्रण में मानते हुए, उसे बाद में अपने आदेश की पुनरीक्षण करने का कोई अधिकार नहीं है, जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि उक्त आदेश धोखाधड़ी या गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया था।

डिवीजन बेंच ने आगे कहा कि धोखाधड़ी या गलत बयानी के मामलों में भी, स्कूलों के जिला निरीक्षक को उन व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना अपने पिछले आदेश को वापस नहीं लेना चाहिए जिनके पक्ष में पहले आदेश पारित किया गया था।

सी) प्रभु दयाल एवं अन्य (पूर्वोक्त):

"3. धारा 18(1)(ख) के अन्तर्गत नियुक्ति की जा सकती है, यदि आयोग को अधिसूचित शिक्षक का पद दो माह से अधिक समय तक रिक्त रहता है। दो माह के पश्चात जो किया जाना अपेक्षित है, वह है नियुक्ति के लिए दो माह की अवधि के भीतर विज्ञापन जारी कर आवेदन आमंत्रित करना, निषिद्ध नहीं है। चूँकि चयन की प्रक्रिया, जिसके आधार पर नियुक्ति की जानी है, में समय लगने की संभावना है, इसलिए दो माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व भी ऐसी नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करने पर कानून में कोई प्रतिबंध नहीं है।"

डी) मनोहर लाल (मृत) जरिए एलआरएस (पूर्वोक्त):

21. तरलोचन देव शर्मा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (2001) 6 एससीसी 260 में, इस न्यायालय ने अपने पहले के अनेक निर्णयों पर भरोसा करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"भारतीय लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में, जैसा कि संविधान में बताया गया है, सचिव जैसे



महत्वपूर्ण पदों पर बैठे वरिष्ठ अधिकारियों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे अपने विवेक, इच्छाशक्ति और निर्णय लेने के अधिकार को गिरवी रखें और राजनेताओं के इशारे पर पीछे हटने या आगे बढ़ने के लिए तैयार रहें, क्योंकि वे ऐसे आदेशों का पालन करते हैं जिनकी कानून में कोई मान्यता नहीं है। केंद्रीय सरकारी सेवाओं के आचरण नियम सिविल सेवकों को हर समय पूर्ण निष्ठा और कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने और ऐसा कुछ भी न करने का आदेश देते हैं जो एक सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित हो। कोई भी सरकारी कर्मचारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों के पालन में या उसे दी गई शक्ति के प्रयोग में अपने सर्वोत्तम निर्णय के अलावा कोई अन्य कार्य नहीं करेगा, सिवाय इसके कि वह अपने आधिकारिक वरिष्ठ के निर्देश के तहत कार्य कर रहा हो।" (प्रभाव वर्द्धित)

22. इसलिए, इस प्रश्न पर कानून को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है कि पदानुक्रम में कोई भी उच्च अधिकारी या अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकरण वैधानिक प्राधिकरण की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है और न ही उच्च अधिकारी अपनी बुद्धि को गिरवी रख सकता है और वैधानिक प्राधिकरण को किसी विशेष तरीके से कार्य करने का निर्देश दे सकता है। यदि अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकरण वैधानिक प्राधिकरण का कार्य अपने ऊपर ले लेता है और कोई आदेश पारित करता है, तो यह इस कारण से लागू नहीं हो पाता है कि इसे अधिनियम के तहत पारित आदेश नहीं कहा जा सकता है।"

17. गौरी शंकर राय एवं अन्य (पूर्वोक्त) के प्रकरण में उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि डीआईओएस को उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम या उसके तहत बनाए गए विनियमों के तहत योग्यता के आधार पर पारित आदेश की पुनरीक्षण करने का अधिकार नहीं था और जसवंत सिंह बनाम डीआईओएस के प्रकरण का संज्ञान लिया गया है, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि डीआईओएस ने प्रासंगिक कानूनों के तहत उसे सौंपे गए कर्तव्यों और कार्यों को करने के सीमित उद्देश्य के लिए एक बार योग्यता के आधार पर आदेश पारित करने के बाद, किसी भी व्यक्ति के समूह को प्रबंधन के प्रभावी नियंत्रण में मान्यता देते हुए, बाद में अपने आदेश की पुनरीक्षण करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि उक्त आदेश धोखाधड़ी या गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि धोखाधड़ी या गलत बयानी के प्रकरण में, डीआईओएस को उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना अपने पिछले आदेश को वापस नहीं लेना चाहिए जिसके पक्ष में पहले आदेश पारित किया गया था।

18. प्रभु दयाल एवं अन्य (पूर्वोक्त) के प्रकरण में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 18(1)(बी) के तहत नियुक्ति की जा सकती है यदि आयोग को अधिसूचित शिक्षक का पद दो महीने से अधिक समय तक रिक्त रहता है, तो दो महीने के बाद जो किया जाना आवश्यक है वह है नियुक्ति के लिए दो महीने की अवधि के भीतर आवेदन आमंत्रित करने

वाला विज्ञापन जारी करना, निषिद्ध नहीं है। चूंकि चयन की प्रक्रिया जिसके आधार पर नियुक्ति की जानी है, उसमें समय लगने की संभावना है, इसलिए कानून में दो महीने की अवधि समाप्त होने से पहले भी ऐसी नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

19. वर्तमान प्रकरण में, संस्था में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के दो पद रिक्त थे और कॉलेज के प्रबंधक ने डीआईओएस को दिनांक 24.07.1987 के पत्र द्वारा रिक्तियों को भरने या उक्त पदों को भरने के लिए निर्देश जारी करने के अनुरोध के साथ सूचित किया, हालांकि, डीआईओएस ने न तो कोई रिजर्व पूल शिक्षक नियुक्त किया और न ही एल.टी. ग्रेड में उन दो रिक्तियों को भरने के लिए कोई कदम उठाया और इस प्रकार, छात्रों के हित को देखते हुए, प्रबंधन समिति ने उन रिक्तियों को भरने के लिए तदर्थ नियुक्तियां करने के लिए आगे बढ़ गई।

20. प्रबन्ध समिति ने दिनांक 20.05.1988 की अधिसूचना द्वारा सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के पद हेतु दो रिक्तियां अधिसूचित की तथा आवेदकों की योग्यता पर विचार करने के पश्चात् याचिकाकर्ता संख्या 1 अर्थात् अशोक सिंह को प्रथम स्थान पर पाया तथा चूंकि एक पद अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थी द्वारा भरा जाना था, अतः याचिकाकर्ता संख्या 2 अर्थात् सुभाष चन्द, जो अनुसूचित जाति वर्ग का एकमात्र अभ्यर्थी था, को उक्त पद हेतु चयनित किया गया तथा इस सम्बन्ध में दिनांक 12.06.1988 को एक

प्रस्ताव पारित किया गया तथा दिनांक 04.07.1988 के आदेश द्वारा जिला अधिकारी कार्यालय ने तदर्थ नियुक्तियों को स्वीकृति प्रदान की।

21. डीआईओएस द्वारा अनुमोदन प्रदान करने के पश्चात्, प्रबन्ध समिति ने याचिकाकर्तागण को 07.08.1988 को नियुक्ति पत्र जारी किए तथा उसके अनुपालन में, उन्होंने 08.07.1988 को कॉलेज में सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तथा तब से वे नियमित रूप से सहायक अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) के रूप में कार्य कर रहे हैं। हालांकि, 22.07.1988 के पत्र के माध्यम से, डीआईओएस ने प्रबन्ध समिति के लेखा अधिकारी तथा प्रबंधक को निर्देश जारी किया कि चूंकि याचिकाकर्तागण के विरुद्ध कुछ शिकायतें प्राप्त हुई हैं, इसलिए उन्हें वेतन का भुगतान नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसके लिए जांच की आवश्यकता है।

22. तथापि, क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने 15.12.2022 को याचिकाकर्ता संख्या 1 की नियुक्ति के प्रकरण पर विचार किया है तथा अधिनियम 1982 की धारा 33-ए(1-सी) के अंतर्गत उसकी सेवा को नियमित किया है तथा इसके अनुसरण में संयुक्त शिक्षा निदेशक ने 17.12.2022 को आदेश जारी किया है, लेकिन याचिकाकर्ता संख्या 2 की सेवा के नियमितीकरण का प्रकरण क्षेत्रीय स्तरीय समिति के समक्ष विचाराधीन है तथा आज तक कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

23. प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस दलील के मददेनजर कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 को याचिकाकर्तागण के वेतन रोकने के लिए कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी और गौरी शंकर राय एवं अन्य (पूर्वोक्त) और प्रभु दयाल एवं अन्य (पूर्वोक्त) के प्रकरण में याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों के मददेनजर, कि डीआईओएस को अपने आदेश की बाद में पुनरीक्षण करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि उक्त आदेश धोखाधड़ी या गलत बयानी से प्राप्त किया गया था और धोखाधड़ी या गलत बयानी के प्रकरण में, डीआईओएस को उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना अपने पहले के आदेश को वापस नहीं लेना चाहिए जिसके पक्ष में पहले आदेश पारित किया गया था।

24. वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्तागण के विरुद्ध ऐसी कोई धोखाधड़ी या गलत बयानी साबित नहीं हुई है, इसलिए याचिकाकर्तागण का वेतन रोकने का आदेश मनमाना और अधिकार क्षेत्र से बाहर प्रतीत होता है तथा इसे रद्द किया जाना चाहिए।

25. उपरोक्त कारणों से रिट याचिका सफल होती है तथा उसे स्वीकार किया जाता है।

26. दिनांक 22.08.1988 एवं 19.08.1989 के आक्षेपित आदेश रद्द किये जाते हैं।

27. तथापि, याचिकाकर्ता अपनी कार्यभार ग्रहण करने की तिथि अर्थात् 08.07.1988 से

वेतन पाने के हकदार हैं, इसलिए याचिकाकर्तागण को 08.07.1988 से वेतन का भुगतान सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए जाते हैं।

28. यह भी निर्देश दिया जाता है कि क्षेत्रीय स्तरीय समिति के अध्यक्ष, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर उनके समक्ष लंबित याचिकाकर्ता संख्या 2 के नियमितीकरण के प्रकरण पर आदेश पारित करेंगे।

-----  
(2023) 9 ILRA 399

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

रिट-ए संख्या 8741 वर्ष 2023

सुभाष चंद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री कमल कुमार केशरवानी

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री आशुतोष मिश्रा,  
श्री राजेश यादव

ए. सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति - श्रेणी तृतीय/ श्रेणी चतुर्थ का पद - शासनादेश दिनांक 04.09.2000 - आवेदन जमा करने की समय

सीमा पांच वर्ष नियत की गई है - इससे पहले, याचिकाकर्ता की सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति समाप्त कर दी गई थी क्योंकि उन्होंने शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) उत्तीर्ण नहीं की थी - हरि शंकर के मामले के दृष्टिगत इसके विरुद्ध रिट खारिज कर दी गई थी, जिससे याचिकाकर्ता को मौजूदा श्रेणी तृतीय / श्रेणी चतुर्थ के पद के लिए दावा करने का विकल्प खुला रह गया - हालांकि, श्रेणी तृतीय / श्रेणी चतुर्थ के पद के लिए याचिकाकर्ता का दावा 11 वर्ष के विलंब के आधार पर खारिज कर दिया गया था - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित हुआ, एक बार जब याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, तो उसे वैधानिक नियुक्ति का प्रस्ताव करना प्राधिकारी की ओर से अनिवार्य था - यहां तक कि उन्हें नियुक्ति आदेश जारी किया गया था, लेकिन बाद में, यह पाया गया कि याचिकाकर्ता की उक्त नियुक्ति नियमों के विरुद्ध थी, इसलिए यह प्राधिकारी को आवश्यक था कि याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति हेतु श्रेणी तृतीय / श्रेणी चतुर्थ के पद के लिए प्रस्ताव करना था। (पैरा 29, 33 और 34)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012; हरि शंकर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 25.07.2012 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के लिए पेश अधिवक्ता श्री आशीष कुमार नागवंशी को सुना, राज्य के लिए पेश होने वाले अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 के लिए पेश अधिवक्ता श्री आशुतोष मिश्रा को सुना।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी नंबर-3 यानी सचिव, यू.पी. बेसिक एजुकेशन बोर्ड, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 20.02.2023 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसके मामले को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि हेडमास्टर के रूप में काम करते हुए याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 02.08.2008 को हुई थी और इसलिए लगभग 11 साल बीत जाने के बाद, याचिकाकर्ता को तृतीय/चतुर्थ श्रेणी के पद और आगे याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं है, और याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना आवेदन भी प्रस्तुत नहीं किया है।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता के पिता ने जिला बागपत में उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड के तहत संचालित प्राथमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर काम करते हुए 02.08.2008 को मृत्यु हो गई।

4. राज्य सरकार ने 04.09.2000 को एक शासनादेश जारी किया है, जिसके द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि यदि किसी शिक्षक, जिसकी सेवाकाल में मृत्यु हो गई है, का कोई आश्रित, सहायक अध्यापक के पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करता है और यदि उसके पास ऐसी नियुक्ति के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण योग्यता नहीं है तो उसे अप्रशिक्षित शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाएगा और ऐसी नियुक्ति के बाद, नियुक्त व्यक्ति को अपेक्षित प्रशिक्षण के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में भेजा जाएगा और प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उसे सहायक अध्यापक के नियमित पद पर नियुक्ति दी जाएगी। दिनांक 04.09.2000 के उपर्युक्त शासनादेश में यह भी प्रावधान है कि यदि शासकीय सेवक के आश्रित के पास इंटरमीडिएट की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता है तो उसे बेसिक शिक्षा मण्डल द्वारा संचालित कार्यालयों में लिपिक संवर्ग के पदों पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी जा सकती है। दिनांक 04.09.2000 के शासनादेश का संगत भाग निम्नानुसार निकाला गया है-

“४- ऐसे मृतक आश्रित जो सेवायोजन हेतु आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने की तिथि को सहायक अध्यापक के पद हेतु सेवा नियमों में विहित शैक्षिक अर्हता रखते हों, परन्तु प्रशिक्षण अर्हता नहीं रखते/पूरी नहीं करते, को अप्रशिक्षित अध्यापक के रूप में सेवायोजन हेतु आवेदन करने पर यथा

सम्भव तीन माह के अन्दर सेवायोजन की सुविधा प्रदान की जाएगी. ऐसे मृतक आश्रित को सेवायोजन के बाद सम्बन्धित जनपद के जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में प्रारम्भ होने वाले बेसिक अध्यापक प्रमाण पत्र (बी०टी०सी०) प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के आगामी पहले बैच में प्रशिक्षण हेतु प्रवेश दिया जायेगा। मृतक आश्रित के रूप में प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक/अध्यापिका के पद पर नियमित नियुक्ति प्रदान करने के लिए उनको (बी०टी०सी०) प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूर्ण करना अनिवार्य होगा। प्रशिक्षण अवधि में उन्हें अप्रशिक्षित अध्यापक के रूप में नियत वेतन, जैसा कि शाशा द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया गया हो, देय होगा। बेसिक अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में उत्तीर्ण होने के बाद ही प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर नियमित नियुक्ति प्रदान की जाएगी।

नियुक्ति प्राधिकारी एवं जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान का यह दायित्व होगा कि वह अप्रशिक्षित अध्यापक के रूप में सेवायोजित मृतक आश्रित अभ्यर्थियों के सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था उनके सेवायोजन के बाद प्रारम्भ होने वाले पहले प्रशिक्षण सत्र में सुनिश्चित करेंगे।

ऐसे मृतक आश्रित को जो उपर्युक्त सेवारत प्रशिक्षण को निर्धारित अवधि में सफलतापूर्वक पूर्ण करने में असफल रहते हैं, के लिए यह विकल्प उपलब्ध रहेगा कि वह चतुर्थ श्रेणी के पद के सापेक्ष नियुक्ति हेतु आवेदन करे अथवा प्रशिक्षण उत्तीर्ण करने तक अप्रशिक्षित अध्यापक के रूप में नियत वेतन पर बने रहें, किन्तु प्रतिबन्ध है कि ऐसे सेवारत बी०टी०सी० प्रशिक्षणार्थियों को सामान्य बीटीसी पाठ्यक्रम के प्रशिक्षणार्थी की भाँति ही बीटीसी पाठ्यक्रम की अनुपूरक परीक्षा हेतु विहित नियमों के अनुसार अवसर अनुमन्य होंगे, किन्तु यदि अभ्यर्थी तब भी बीटीसी के

अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफल रहते हैं, तो ऐसे अभ्यर्थी के लिए चतुर्थ श्रेणी के पद के सापेक्ष नियमित नियुक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रहेगा. अतः ऐसे अभ्यर्थी जो बीटीसी परीक्षा में अंतिम रूप से विफल रहते हैं, को सहायक अध्यापक पद के लिए अभ्यर्थन स्वतः निरस्त समझा जायेगा और बीटीसी परीक्षा में अंतिम रूप से असफल होने के माह के अंतिम कार्य दिवस से अप्रशिक्षित अध्यापक के रूप में भी उनकी नियुक्ति स्वतः समाप्त समझी जाएगी, किन्तु ऐसे अभ्यर्थी यदि चतुर्थ श्रेणी के रिक्त/ अधिसंख्य पद के सापेक्ष सेवायोजन की प्रार्थना करते हैं, तो उस पर विचार किया जा सकेगा।

५- ऐसे मृतक आश्रित जो सम्बन्धित कर्मचारी की मृत्यु के दिनांक को मृतक आश्रित के रूप में सेवायोजन के लिए न्यूनतम शैक्षिक अर्हता इण्टरमीडिएट अथवा उससे अधिक रखते हों और बेसिक शिक्षा परिषद् के अधीन अधीनस्थ

स्तरों पर लिपिक के सम्बर्ग के सबसे नीचे के पद पर सेवायोजन के लिए अन्यथा अर्ह हों, को सम्बन्धित जनपद में लिपिक के रिक्त पद के सापेक्ष्य सम्बर्ग में सबसे नीचे के पद पर सेवायोजन प्रदान किया जायेगा।”

5. याचिकाकर्ता ने, अपने पिता की मृत्यु के बाद, उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2000 के अनुसार सहायक शिक्षक के पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने 30.07.2011 को नियुक्ति पत्र जारी किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को प्राथमिक विद्यालय, सुरूरपुर-प्रथम, ब्लॉक-बागपत, जिला बागपत में अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता ने उक्त नियुक्ति पत्र के अनुसरण में जिला बागपत के प्राथमिक विद्यालय में ज्वाइन किया और अपने पद से जुड़े कर्तव्यों का निर्वहन शुरू किया।

6. बाद में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने 28.08.2012 को एक आदेश पारित किया जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं को उसकी प्रारंभिक अनुकंपा नियुक्ति की तारीख से समाप्त कर दिया गया। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने दिनांक 28.08.2012 को समाप्ति आदेश पारित करते हुए कहा है कि 27.07.2011 से उत्तर प्रदेश में बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियम,

2011 लागू किया गया है और इसलिए 27.07.2011 से, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय में किसी को भी शिक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसने शिक्षक पात्रता परीक्षा (टी.ई.टी) उत्तीर्ण नहीं की है और चूंकि याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी और उसने शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, इसलिए, उनकी सेवाओं को प्रारंभिक अनुकंपा नियुक्ति की तारीख से समाप्त किया जा सकता है।

7. इस समय, यह उल्लेखनीय है कि पूर्वोक्त सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2000 में यह प्रावधान है कि अनुकंपा नियुक्ति चाहने वाले व्यक्ति को कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से पांच साल की अवधि के भीतर अपना आवेदन प्रस्तुत करना होगा और यदि उक्त आवेदन पांच साल की उपरोक्त अवधि के बाद प्रस्तुत किया जाता है तो उसे सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज को भेजा जाएगा को भेजा जाएगा और बदले में, उक्त आवेदन को राज्य सरकार को भेजा जाएगा और यदि राज्य सरकार अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन जमा करने में देरी के लिए उचित कारण पाती है तो यह देरी को माफ कर देगी और संबंधित जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को अनुकंपा के आधार पर उक्त उम्मीदवार को नियुक्त करने की अनुमति देगी।

8. याचिकाकर्ता के मामले में, उसके पिता की मृत्यु 02.08.2008 को हुई और उसके तुरंत बाद याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया और उस आवेदन पर

कार्रवाई की गई और याचिकाकर्ता को अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति के समय, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी इस तथ्य से अनभिज्ञ था कि 27.07.2011 के बाद, किसी को भी शिक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था जब तक कि वह शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं करता है और उक्त गलती का एहसास जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत द्वारा किया गया था और उसने 28.08.2012 को एक आदेश पारित किया था। इस प्रकार याचिकाकर्ता की सेवाओं को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से समाप्त कर दिया गया था।

9. पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु की तारीख से पांच साल के भीतर अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत किया था और उक्त आवेदन पर कार्रवाई की गई थी, लेकिन कुछ कानूनी मुद्दे के कारण, अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति कायम नहीं रह सकी।

10. याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.08.2012 के आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 (नेहा शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य) दायर करके उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। इस अदालत ने दिनांक 9.11.2012 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012

(हरिशंकर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के संदर्भ में दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया।

11. इस न्यायालय ने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित दिनांक 25.07.2012 के पूर्वोक्त निर्णय में इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया कि क्या उत्तर प्रदेश निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 दिनांक 27-07-2011 के प्रवर्तन के बाद किसी भी व्यक्ति को अप्रशिक्षित सहायक अध्यापक के रूप में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी जा सकती है। इस न्यायालय ने दिनांक 25.07.2012 के निर्णय के तहत इस मुद्दे पर निर्णय दिया और माना कि 27.07.2011 के बाद, शिक्षक के पद पर किसी को भी तब तक नियुक्त नहीं किया जा सकता था जब तक कि उसने शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की हो, इसलिए, जिस आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से समाप्त कर दिया गया है, वह पूरी तरह से कानून के अनुसार है।

12. इस न्यायालय ने दिनांक 25.07.2012 के निर्णय और आदेश के तहत आगे प्रावधान किया कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे पर मौजूदा श्रेणी-III/श्रेणी-IV रिक्तियों के खिलाफ विचार किया जाए, सिवाय वर्ग III रिक्तियों को छोड़कर जिन्हें अधिमानतः अगले दो महीनों के भीतर पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है। दिनांक



25.07.2012 के निर्णय और आदेश का संगत भाग निम्नानुसार निकाला गया है:

"वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं में से प्रत्येक को एन.सी.टी.ई द्वारा उक्त अधिसूचना प्रकाशित किए जाने के बाद नियुक्ति की पेशकश की गई थी, उसके बाद उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित किया गया था। निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 27.07.2011 से लागू किया गया। उ०प्र० बेसिक शिक्षा (अध्यापक सेवा नियम, १९८१) के नियम १० को अलग करके नहीं पढ़ा जा सकता बल्कि इसे उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, जिसका प्रावधान किया गया है। यह भूतपूर्व सैनिकों और कतिपय अन्य श्रेणियों को छूट का अधिकार देता है, जिसमें अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति भी शामिल है, लेकिन यह भर्ती के समय इस संबंध में सरकार के सामान्य नियमों और आदेशों के अनुसार होना चाहिए। प्रासंगिक समय पर, एन.सी.टी.ई ने पहले ही धारा 2 के खंड (एन) के तहत परिभाषित स्कूल में नियुक्त किए जाने वाले शिक्षक के लिए शैक्षणिक योग्यता घोषित कर दी थी, जो टी.ई.टी के साथ आवश्यक थी और यह अनिवार्य आवश्यकता थी। किसी भी व्यक्ति को उपर्युक्त अपेक्षित अर्हता, जैसा कि एन.सी.टी.ई द्वारा निर्धारित किया गया था, उत्तीर्ण किए बिना शिक्षक के रूप में नियुक्त होने का पात्र नहीं माना जा सकता था। 2009 का अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियम बोधगम्य और सुस्पष्ट थे। नियुक्तियां, जो अधिनियम के प्रवर्तन से पहले की गई थीं, बच गई थीं, क्योंकि नियुक्त किए गए पदधारियों को अधिनियम के प्रवर्तन

से पांच वर्षों के भीतर पात्रता मानदंडों को पूरा करना था और अन्य मामलों में, राज्य सरकार के अनुरोध पर केंद्र सरकार द्वारा विशिष्ट आदेश होना चाहिए, और वर्तमान मामले में स्वीकृत स्थिति यह है कि अधिनियम के प्रवर्तन के बाद, एन.सी.टी.ई. मानदंड और यू.पी. बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को नियुक्त किया गया था और इस छूट को देखते हुए, जैसा कि अब प्रदान किया गया है, प्रदान नहीं किया जा सकता था। अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के संबंध में सरकारी आदेश को सांविधिक उपबंधों का घोर उल्लंघन करते हुए दबाया गया है और इस बात को ध्यान में रखते हुए बोर्ड के सचिव को इस तथ्यात्मक स्थिति से अवगत कराया गया है और ऐसी नियुक्तियों को रद्द करके स्थिति को सुधारने की कार्यवाही की गई है जो सांविधिक प्रावधानों से असंगत थीं। एक बार जब याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति कानून के पूरी तरह से विपरीत थी, जो कानून के तालमेल में बिल्कुल भी नहीं है, तो याचिकाकर्ताओं में से कोई भी कानूनी रूप से पात्र नहीं था और अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक की अवधारणा के रूप में नियुक्त होने का हकदार नहीं था, यह संविधान के अनुच्छेद 21 ए का उल्लंघन है क्योंकि अप्रशिक्षित शिक्षक की भर्ती नहीं की जा सकती है, क्योंकि शिक्षक का उचित प्रशिक्षण शिक्षा के अधिकार में अभिन्न पहलू है। इसके मददेनजर, बोर्ड के सचिव ने ऐसी नियुक्तियों को रद्द करने का निर्देश देने के अपने अधिकार के भीतर अच्छी तरह से काम किया है, जो उस तारीख को लागू कानून के विपरीत थे जब उन्हें भर्ती किया गया था। ऐसे

मामलों में, जब की गई नियुक्तियां वैधानिक प्रावधानों को स्वीकार किए गए पद पर हैं, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की कोई भूमिका नहीं है; और यह निरर्थक प्रयोग करने के अलावा और कुछ नहीं होगा, क्योंकि परिणाम एक ही होगा, और इस आधार पर आदेश को रद्द करना अवैधता को बनाए रखने के अलावा और कुछ नहीं होगा, यानी अप्रशिक्षित शिक्षकों को जारी रखने की अनुमति देना।

याचिकाकर्ताओं ने यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि अप्रशिक्षित सहायक शिक्षकों के बीच, दो कक्षाएं बनाई गई हैं, क्योंकि केवल उन अप्रशिक्षित सहायक शिक्षकों की सेवा समाप्त कर दी गई है, जिन्हें 27.07.2011 के बाद नियुक्त किया गया है, अर्थात्, उत्तर प्रदेश निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 के प्रवर्तन के बाद; और इससे पूर्व नियुक्त अप्रशिक्षित शिक्षकों की सेवाएं समाप्त नहीं की गई हैं। नकारात्मक समानता का दावा नहीं किया जा सकता है, और शिक्षकों का वर्ग इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से नहीं है, इसलिए यह न्यायालय इस प्रश्न को नहीं छू रहा है और उक्त प्रश्न का निर्णय नहीं ले रहा है, और इस मुद्दे को उचित कार्यवाही के अनुसार निर्णय लेने के लिए खुला छोड़ दिया गया है।

ऊपर जो चर्चा की गई है, उसे देखते हुए, सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। याचिकाकर्ताओं के दावे पर मौजूदा तृतीय/चतुर्थ श्रेणी की रिक्तियों के खिलाफ विचार किया जाए, सिवाय वर्ग तीन की रिक्तियों के, जिन्हें पदोन्नति के माध्यम से अधिमानतः अगले दो महीनों के भीतर भरा जाना है।

13. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि इस अदालत ने पाया कि याचिकाकर्ता को अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में दी गई अनुकंपा नियुक्ति कानून के अनुसार नहीं थी, इसलिए, याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया था, लेकिन साथ ही इस अदालत ने मौजूदा याचिकाकर्ता के मामले में, उत्तरदाताओं को श्रेणी-III/श्रेणी-IV रिक्तियों के खिलाफ अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावे पर विचार करने का निर्देश जारी किया। इस प्रकार, उत्तरदाताओं के लिए मौजूदा श्रेणी-III/श्रेणी-IV रिक्तियों के खिलाफ याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करना अनिवार्य था, लेकिन उत्तरदाताओं ने इस न्यायालय द्वारा निर्देशित अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार नहीं किया।

14. इसके बाद याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 में पारित पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 09.11.2012 को विशेष अपील संख्या 2074 वर्ष 2012 (नेहा शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर करके चुनौती दी। याचिकाकर्ता की विशेष अपील संख्या 2074 वर्ष 2012 सहित सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के खिलाफ दायर विशेष अपीलों का समूह इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 9.09.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसके द्वारा

सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 को बरकरार रखा गया है।

15. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 और विशेष अपील संख्या 1467 वर्ष 2012 और अन्य संबंधित विशेष अपीलों में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 9.09.2021 को चुनौती देते हुए विशेष अनुमति याचिकाएं दायर की गईं, लेकिन बाद में, उक्त विशेष अनुमति याचिकाओं को उच्च न्यायालय के समक्ष समीक्षा (याचिका) दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया।

16. याचिकाकर्ता ने 23.09.2019 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत को एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने उल्लेख किया कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए उनके आवेदन के अनुसरण में, उन्हें अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था, लेकिन बाद में कुछ कानूनी मुद्दों के कारण, याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। बर्खास्तगी आदेश के खिलाफ दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया गया है, लेकिन उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज करते हुए निर्देश दिया कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर श्रेणी-III और श्रेणी-IV पदों के खिलाफ नियुक्ति के लिए विचार किया जाए, लेकिन आज तक, याचिकाकर्ता को श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर नियुक्ति की पेशकश नहीं की गई है, इसलिए, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष

2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के अनुपालन में, याचिकाकर्ता को तृतीय/चतुर्थ श्रेणी के पद पर अनुकंपा नियुक्ति दी जा सकती है।

17. याचिकाकर्ता ने 20.10.2021 को फिर से एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसके तहत उसने फिर से अनुरोध किया कि रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 में पारित आदेश दिनांक 9.11.2012 का अनुपालन किया जाए और याचिकाकर्ता को श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर नियुक्ति दी जाए। दिनांक 20.10.2021 के अभ्यावेदन का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:

“महोदय,

सूचनार्थ निवेदन है कि प्रार्थी के पिता स्व० श्री रामपाल सिंह प्राथमिक विद्यालय शिकोहाबाद-२ विकास खंड-बागपत जिला बागपत में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत थे. जिनकी सेवा में रहते हुए दिनांक 08.06.2008 में मृत्यु हो गई थी. प्रार्थी द्वारा मृतक आश्रित कोटे में योग्यतानुसार नियुक्ति हेतु आवेदन दिया गया जिसके उपरान्त प्रार्थी को दिनांक 30.07.2011 में अप्रशिक्षित सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति दी गई जिसकी

छायाप्रति पत्र के साथ संलग्न है (संलग्नक-1)।

महोदय इसके उपरान्त सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद् के १२ जून २०१२ के आदेश का हवाला देते हुए तत्कालीन बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा प्रार्थी को २८.०८.२०१२ को बर्खास्त कर दिया गया, जिसकी छायाप्रति पत्र के साथ संलग्न है (संलग्नक-२)। जिस कारन प्रार्थी को माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद की शरण लेनी पड़ी। प्रार्थी की रिट याचिका संख्या-५९६४८/२०१२ में सुनवाई करते हुए माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा खारिज कर दिया गया लेकिन योग्यतानुसार उपलब्ध तृतीया/चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति देने के आदेश दिए गए जिसकी छायाप्रति पत्र के साथ संलग्न है (संलग्नक-३)।

महोदय माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के अनुक्रम में आपकी सेवा में मृतक आश्रित कोटे के अंतर्गत उपलब्ध तृतीया श्रेणी/चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति हेतु दिनांक

२३.०९.२०१९ में सर्टिफाइड प्रति के साथ पत्रावली प्रेषित की गई थी। किन्तु महोदय दो वर्ष से अधिक का समय बीत जाने के बाद भी प्रार्थी को न तो नियुक्ति नहीं दी गई और न ही कोई जवाब दिया गया, जबकि अन्य जनपदों में सामान प्रकरण में नियुक्ति दी जा चुकी है जिनकी छायाप्रति भी पत्र के साथ संलग्नक है।

अतः आपसे अनुरोध कि प्रार्थी को माननीय उच्च न्यायालय के आदेश का पालन करते हुए उपलब्ध तृतीय श्रेणी /चतुर्थ श्रेणी में यथाशीघ्र नियुक्ति देने की कृपा करें। प्रार्थी आपका आभारी रहेगा।

सादर धन्यवाद।“

18. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अभ्यावेदन पर अपने पत्र दिनांक 06.01.2022 द्वारा सचिव, यू.पी. बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज से चतुर्थ श्रेणी के पद पर याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति के संबंध में मार्गदर्शन मांगा।

19. जब प्रतिवादियों ने, याचिकाकर्ता के सर्वोत्तम प्रयासों और उसके द्वारा बार-बार किए गए अभ्यावेदनों के बावजूद, उसे अनुकंपा के आधार पर श्रेणी-III/वर्ग-IV पद पर नियुक्त नहीं किया, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा रिट-ए

संख्या 59648 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 09.11.2012 के तहत निर्देशित किया गया था, तो याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 11879 वर्ष 2022 दायर किया और इस अदालत ने दिनांक 1.09.2022 के आदेश के तहत सचिव उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज को याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर स्पष्ट और तार्किक आदेश देने का निर्देश दिया। दिनांक 1.09.2022 के आदेश का ऑपरेटिव भाग निम्नानुसार निकाला गया है:

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की जा रही अहानिकर प्रार्थना पर विचार करते हुए और मामले की योग्यता में प्रवेश किए बिना, प्रतिपक्षी नंबर-2 यानी सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक एजुकेशन बोर्ड, प्रयागराज को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु की तारीख के तथ्य की अनदेखी करते हुए उनके समक्ष इस आदेश की एक प्रति पेश किए जाने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश द्वारा अभ्यावेदन का फैसला करें क्योंकि याचिकाकर्ता के लिए कार्रवाई का कारण है; याचिकाकर्ता की विशेष अनुमति याचिका को देखते हुए बहुत कुछ जनवरी, 2022 में ही खारिज कर दिया गया है और विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा पहले दायर रिट ए संख्या 50727 वर्ष 2012 में पारित दिनांक 01.10.2012 के आदेश के मद्देनजर, जिसके तहत उसके दावे को मौजूदा तृतीय या चतुर्थ श्रेणी की रिक्तियों के खिलाफ विचार किया जाना आवश्यक था, सिवाय उन रिक्तियों के जिन्हें पदोन्नति द्वारा भरा जाना आवश्यक था। उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

20. इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 11879 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 1.09.2022 के अनुपालन में, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज ने 20.02.2023 को एक आदेश पारित किया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति के मामले को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता को उसके पिता की मृत्यु की तारीख से लगभग 11 साल बाद अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा सकती है। दिनांक 20.02.2023 के आदेश में दिया गया एक और कारण यह है कि याचिकाकर्ता ने निर्धारित प्रारूप पर आवेदन जमा नहीं किया है।

21. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था और उस आवेदन पर कार्रवाई की गई थी और याचिकाकर्ता को अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी, लेकिन बाद में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत को अपनी गलती का एहसास हुआ कि याचिकाकर्ता, टी.ई.टी योग्यता के अभाव में, अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था, इसलिए, उन्होंने एक आदेश पारित किया जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से समाप्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि एक बार जब याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु की तारीख के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए

एक आवेदन प्रस्तुत किया और याचिकाकर्ता को दी गई अनुकंपा नियुक्ति कानून के अनुसार नहीं पाई गई और रद्द कर दी गई, तो जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत के लिए यह अनिवार्य था कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक आवेदन पर श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर कार्रवाई की जाए।

22. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि जब याचिकाकर्ता ने उस आदेश को चुनौती दी जिसके तहत उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था, तो इस अदालत ने हालांकि रिट याचिका को खारिज कर दिया, लेकिन उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें। प्रतिवादियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 9.11.2012 के तहत जारी निर्देश का पालन करें, लेकिन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने उक्त निर्देश का पालन नहीं किया और मामले को लंबित रखा। याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 ने गलत धारणा के तहत दिनांक 20.02.2023 के आक्षेपित आदेश को पारित करते हुए, याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के दावे को नए दावे के रूप में माना है और इस प्रकार इसे यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि याचिकाकर्ता को उसके पिता की मृत्यु की तारीख से 11 साल बीत जाने के बाद अनुकंपा

नियुक्ति नहीं दी जा सकती है, जबकि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना दावा किया था, और वास्तव में उक्त दावे पर कार्रवाई की गई थी, लेकिन कानूनी मुद्दे के कारण, याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई थी, इसलिए, याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द होने के बाद, उत्तरदाताओं के लिए यह अनिवार्य था कि वे याचिकाकर्ता को श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर नियुक्ति की पेशकश करें।

23. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने आखिरी में जोरदार तर्क दिया है कि एक तरफ कानूनी प्रावधानों के बारे में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी की अज्ञानता के कारण, अप्रशिक्षित शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता को दी गई अनुकंपा नियुक्ति रद्द कर दी गई है और दूसरी तरफ प्रतिपक्षी नंबर-4 ने याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन सरकारी आदेश के तहत निर्धारित समय सीमा के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु की तारीख के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि एक बार जब इस न्यायालय ने दिनांक 25.07.2012 के निर्णय और आदेश के तहत उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे दो महीने के भीतर श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद के खिलाफ अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें, तो जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत के लिए यह खुला नहीं है कि वह याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के दावे को इस आधार पर खारिज कर दे कि

अनुकंपा नियुक्ति उनके पिता की मृत्यु की तारीख 11 साल बीत जाने के बाद नहीं दी जा सकती है।

24. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने यह कहते हुए अपनी दलीलें समाप्त की हैं कि सचिव, यू.पी. बेसिक एजुकेशन बोर्ड, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.02.2023 कानून की नजर में कायम नहीं रह सकता है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है।

25. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 2.08.2008 को हुई थी, इसलिए, श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को 15 वर्ष बीत जाने के बाद अनुमति नहीं दी जा सकती है, इसलिए, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज ने दिनांक 20.02.2023 के आदेश के तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले को खारिज करते हुए कोई अवैधता नहीं की है।

26. प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु के बाद, उन्हें 30.07.2011 को अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी, लेकिन बाद में, यह पाया गया कि उक्त नियुक्ति कानून के अनुसार नहीं थी, इसलिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने अपने आदेश दिनांक 28.08.2012 द्वारा

उक्त नियुक्ति को रद्द कर दिया। याचिकाकर्ता ने रद्दीकरण आदेश दिनांक 28.08.2012 को चुनौती दी और इस न्यायालय ने रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 में पारित आदेश दिनांक 9.11.2012 के तहत सिविल विविध रिट याचिका 33828 वर्ष 2012, हरिशंकर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित आदेश दिनांक 25.07.2012 के संदर्भ में रिट याचिका को खारिज कर दिया और इस तरह दिनांक 28.08.2012 के आदेश की वैधता को बरकरार रखा और उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावे पर विचार करें, लेकिन चूंकि याचिकाकर्ता ने श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए निर्धारित फॉर्मेट में अपना आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसके मामले पर विचार नहीं किया गया था और अब 15 वर्ष बीत जाने के बाद, अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है, इसलिए, सचिव, उ0प्र0 बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.02.2023 किसी भी दुर्बलता या अवैधता से ग्रस्त है(?)

27. प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने यह कहते हुए तर्क समाप्त किया है कि सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.02.2023 किसी भी दुर्बलता या अवैधता से ग्रस्त नहीं है, इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट

याचिका, पूरी तरह से गलत होने के कारण, इस न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने योग्य है।

28. मैंने पक्षों के लिए उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

29. मुझे पता चला है कि याचिकाकर्ता के पिता, हेडमास्टर के पद पर काम करते हुए, 02.08.2008 को हार्नेस (सेवाकाल में) में मृत्यु हो गई और उसके तुरंत बाद, याचिकाकर्ता ने अपनी अनुकंपा नियुक्ति के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर कार्रवाई की गई और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने दिनांक 30.07.2011 को नियुक्ति आदेश जारी किया जिसके तहत याचिकाकर्ता को अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। मुझे यह भी पता चला है कि अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता की उपरोक्त अनुकंपा नियुक्ति को बाद में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत द्वारा दिनांक 28.08.2012 के आदेश द्वारा इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उत्तर प्रदेश में अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति को बाद में रद्द कर दिया गया था। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 दिनांक 27.07.2011 से लागू किया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि शिक्षक के पद पर किसी को भी तब तक नियुक्त नहीं किया जा सकता जब तक कि उसने शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की हो और याचिकाकर्ता के पास टी.ई.टी प्रमाण पत्र नहीं था।

30. याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 59648 वर्ष 2012 दायर करके आदेश दिनांक 28.08.2012 को चुनौती दी, जिसे इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 33828 वर्ष 2012 (हरिशंकर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के संदर्भ में खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय ने दिनांक 25.07.2012 के निर्णय और आदेश के तहत दिनांक 28.08.2012 के आदेश की वैधता को बरकरार रखा, जिसके तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई थी, लेकिन उत्तरदाताओं को निर्देश भी जारी किया कि वे मौजूदा श्रेणी-III/श्रेणी-IV रिक्ति के खिलाफ याचिकाकर्ता के दावे पर अधिमानतः अगले दो महीनों के भीतर विचार करें। दिनांक 25.07.2012 के निर्णय और आदेश का संगत भाग निम्नानुसार है:

*पीठ ने कहा, "ऊपर जो चर्चा हुई है, उसके मद्देनजर सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। याचिकाकर्ताओं के दावे पर मौजूदा तृतीय/चतुर्थ श्रेणी की रिक्तियों के खिलाफ, अधिमानतः अगले दो महीनों के भीतर, विचार किया जाए, सिवाय वर्ग तीन की रिक्तियों के, जिन्हें पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है।"*

31. एक बार जब इस न्यायालय ने दिनांक 28.08.2012 के आदेश की वैधता को बरकरार रखा, जिसके तहत अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति रद्द कर दी गई थी और उत्तरदाताओं को निर्देश जारी किया गया था कि वे कक्षा-III/श्रेणी-IV रिक्तियों के खिलाफ याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें, तो उत्तरदाताओं के लिए



यह अनिवार्य था कि वे दो महीने की अवधि के भीतर श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें, लेकिन प्रतिपक्षी पूरी तरह से, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के तहत इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों को पूरा करने में विफल रहे।

32. सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज ने दिनांक 20.02.2023 को आदेश पारित करते हुए याचिकाकर्ता के कक्षा-III/कक्षा-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के दावे को इस आधार पर खारिज करके कि अनुकंपा नियुक्ति लगभग 11 वर्ष बीत जाने के बाद नहीं दी जा सकती है, न केवल अवैध रूप से कार्य किया है, बल्कि वास्तव में इस न्यायालय द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 द्वारा जारी निर्देश का भी उल्लंघन किया है।

33. इस न्यायालय का विचार है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत एक साथ दोहरा रवैय्या नहीं इछ्तेयार कर सकते हैं अर्थात् एक तरफ, उसने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के तहत इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन नहीं किया है और दूसरी ओर, उन्होंने याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि याचिकाकर्ता को 11 साल बीत जाने के बाद अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा

सकती है। एक बार जब याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, तो जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत की ओर से उसे कानूनी नियुक्ति की पेशकश करना अनिवार्य था, लेकिन याचिकाकर्ता के मामले में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने उसे अप्रशिक्षित सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्त किया, हालांकि कानून के अनुसार, उक्त नियुक्ति रद्द होने के बाद जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह तृतीय/चतुर्थ श्रेणी के पद पर याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करे, लेकिन वह ऐसा करने में पूरी तरह विफल रहा, इसलिए, अब उसके लिए यह बहाना नहीं है कि 11 साल बीत चुके हैं और, इसलिए, याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा सकती है।

34. जहां तक इस मुद्दे का संबंध है कि क्या सरकारी कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से 11 वर्ष बीत जाने के बाद अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश की जा सकती है, मुझे लगता है कि सामान्य परिस्थितियों में जब अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन काफी देरी से दायर किया जाता है, तो उस संबंध में कानून बहुत स्पष्ट है कि अनुकंपा नियुक्ति मृतक के परिवार द्वारा सामना किए जाने वाले तत्काल वित्तीय संकट को पूरा करने के लिए की जाती है इसलिए, जहां सरकारी कर्मचारी द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन काफी देरी के साथ प्रस्तुत किया गया है, अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा सकती है, लेकिन

याचिकाकर्ता का मामला पूरी तरह से अलग है क्योंकि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया था और यहां तक कि उसे नियुक्ति आदेश जारी किया गया था, लेकिन बाद में, यह पाया गया कि याचिकाकर्ता की उक्त नियुक्ति नियमों से वंचित थी, इसलिए, यह जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी पर निर्भर था कि वह याचिकाकर्ता को तृतीय/चतुर्थ श्रेणी के पद पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करे।

35. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बागपत ने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के तहत इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन नहीं किया है, इसलिए, यह दलील उनके लिए उपलब्ध नहीं है कि याचिकाकर्ता के मामले में श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के मामले पर 11 वर्ष बीत जाने के बाद विचार नहीं किया जा सकता है।

36. मेरा यह भी विचार है कि वास्तव में सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 के पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति के लिए नए सिरे से आवेदन दायर करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए पहले ही आवेदन दायर कर दिया है, इसलिए,

जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को मौजूदा श्रेणी-III/श्रेणी-IV रिक्ति के खिलाफ याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के लिए न्यायालय का आदेश था, लेकिन उक्त आदेश का पालन करने के बजाय, सचिव, यू.पी. बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज ने जानबूझकर मामले को लंबित रखा और इसलिए, आदेश दिनांकित 20.02.2023 कि याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के दावे को इस आधार पर खारिज किया जा रहा है कि 11 साल बीत चुके हैं, कानून की नजर में पोषणीय और टिकाऊ नहीं है और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है।

37. उपरोक्त कारणों को देखते हुए, इस रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.02.2023 को रद्द किया जाता है।

38. इस आदेश में की गई टिप्पणियों और सिविल विविध रिट याचिका संख्या 33828 वर्ष 2012 में दिए गए निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2012 द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति की सर्विंग की तारीख से दो महीने के भीतर इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों के अनुसार श्रेणी-III/श्रेणी-IV पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने के लिए मामला सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज को भेजा जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 409

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 13210 वर्ष 2023

अभाव के कारण - एक व्यक्ति को इस शर्त पर संवर्ग में स्थान मिल सकता है कि स्थान उपलब्ध है। (पैरा 6)

रिट याचिका खारिज कर दी गई। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

मोहम्मद इस्माइल और अन्य...याचिकाकर्तागण  
बनाम  
उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

श्री सैयद वाजिद अली

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

1. उदय प्रताप ठाकुर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य; एआईआर 2023 एससी 2971

2. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2019) 10 एससीसी 516

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

ए. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974 - नियम 4 और 5 - संग्रह अमीन - पेंशन - प्रारंभिक नियुक्ति सामयिक अमीन के रूप में की गई थी, लेकिन बाद में उपलब्ध रिक्ति के विरुद्ध नियमित कर दिया गया - पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत पेंशन दी जा रही है - नियमितीकरण से पहले बिताई गई सेवा की अवधि की गणना नहीं की गई - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित किया गया कि, एक बार याचिकाकर्ता ने नियमावली के प्रासंगिक प्रावधानों का लाभ उठा लिया है जो केवल उपलब्ध मूल रिक्ति के विरुद्ध नियमित नियुक्ति / नियमितीकरण पर विचार करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को अस्थायी आधार पर सेवा में प्रवेश करने के दिनांक से नियमित नहीं माना जा सकता है, इसलिए, रिक्ति के

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री सैयद वाजिद अली और राज्य उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी वकील श्री आर.एस. उमराव को सुना गया।

2. जिन याचिकाकर्ताओं को शुरू में अस्थायी आधार पर राजस्व विभाग में मौसमी संग्रह अमीन के रूप में नियुक्त किया गया था, उनकी सेवाएं यू.पी संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974 के तहत वर्ष 1992 से 1995 के बीच नियमित कर दी गई हैं और इन सभी ने 2013 से 2022 के बीच सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर लिया है। सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उन्हें पुरानी पेंशन योजना के तहत स्वीकार्य पेंशन का लाभ प्रदान किया गया है और याचिकाकर्ता हैं व्यक्तिगत रूप से पेंशन प्राप्त कर रहे हैं।

अब उन्होंने याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके नियमितीकरण से पहले सेवा में बिताई गई अवधि को पेंशन की अर्हता अवधि में गिनने के लिए प्राधिकरण को निर्देश देने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

उपरोक्त लाभ प्रदान करने का कारण यह है कि उन्हें तदर्थ आधार/अस्थायी आधार/कार्य प्रभार के आधार पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा के लिए नियमित आधार पर नियुक्ति की पेशकश की गई थी।

3. . इसके विपरीत, विद्वान स्थायी वकील का कहना है कि यू.पी. संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974, के नियम मूल रिक्तियों के विरुद्ध नियमित नियुक्ति प्रदान करते हैं और इस उद्देश्य के लिए विभाग में मौसमी संग्रह अमीन के रूप में अस्थायी आधार पर काम करने वालों के लिए एक कोटा निर्धारित किया गया है। उनकी दलील है कि नियम उस तारीख से नियमितीकरण की पेशकश पर विचार नहीं करता है जब रिक्तियां अस्तित्व में नहीं थीं। मौसमी संग्रह अमीन को उपलब्ध मूल रिक्तियों के विरुद्ध ही पक्की/नियमित नियुक्ति की पेशकश की जाती है। उनका कहना है कि नियम के प्रासंगिक प्रावधानों को कभी चुनौती नहीं दी गई बल्कि याचिकाकर्ताओं ने इसका लाभ उठाया है। उन्होंने **उदय प्रताप ठाकुर और अन्य बनाम बिहार राज्य: एआईआर 2023 एससी 2971** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा जताया है, जिसमें **प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य : (2019) 10 एससीसी 516** के फैसले में दिए गए सिद्धांत को विस्तार से समझाया और स्पष्ट किया गया है जिससे इस आशय पर बल मिलता है कि प्रेम सिंह का निर्णय (उपरोक्त) के तहत पुरानी पेंशन योजना के तहत पेंशन का लाभ उन कर्मचारियों को प्रदान करता है जिन्होंने केवल दैनिक वेतन आधार/अस्थायी आधार/कार्य प्रभार के आधार पर अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं।

4. संबंधित पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने तथा संबंधित सेवा नियमों का अध्ययन करने के बाद, मैंने पाया कि नियम केवल रिक्ति की उपलब्धता के 35 प्रतिशत कोटा लागू करते हुए मौसमी संग्रह अमीनों की पक्की नियुक्ति पर विचार करते हैं। नियमों के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि उन्हें नियमों के अनुसार रिक्त पदों की उपलब्धता पर संग्रह अमीन के नियमित संवर्ग में स्थायी नियुक्ति की पेशकश की गई थी क्योंकि वे सेवा नियमों के तहत तय किए गए 35 प्रतिशत कोटा के भीतर आते थे। उन्होंने कभी भी उस तारीख से नियमित नियुक्ति पर सवाल नहीं उठाया, जब उन्हें वास्तविक रिक्तियों की उपलब्धता की पेशकश की गई थी। इसके बाद वे सेवा में बने रहे और उन्होंने पुरानी पेंशन योजना के तहत लाभ भी उठाया, अब, उन्होंने इस न्यायालय का दरवाजा इस अनुरोध के साथ खटखटाया है कि पेंशन के लिए अर्हता अवधि की गणना सीजनल संग्रह अमीन के रूप में उनके द्वारा पहले प्रदान की गई अवधि को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

5. संक्षेप में तर्क यह है कि यदि विचाराधीन अवधि को पेंशन के लिए अर्हता अवधि में शामिल किया जाता है, तो उनकी पेंशन बढ़ जाएगी।

6. मेरे सुविचारित द्रष्टिकोण में, याचिकाकर्ता का यह तर्क इस साधारण कारण से गलत है कि कोई भी संग्रह अमीन प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित नियुक्ति का लाभ नहीं उठा सकता है क्योंकि नियमित नियुक्ति उपलब्ध रिक्तियों के विरुद्ध नियमों के तहत की जाती है और इन नियमों को कभी चुनौती नहीं दी गई। एक बार जब याचिकाकर्ता ने नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों का लाभ उठाया है जो केवल उपलब्ध मूल रिक्ति के खिलाफ नियमित नियुक्ति/नियमितीकरण पर विचार करता है, तो ऐसे व्यक्तियों को अस्थायी आधार पर सेवा में प्रवेश करने की तारीख से नियमित नहीं माना जा सकता है। एक व्यक्ति को कैडर में नियुक्ति इस शर्त पर मिल सकती है कि नियुक्ति के लिए रिक्त स्थान उपलब्ध हो।

7. मैंने प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी विचार किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि जिन व्यक्तियों ने तदर्थ/कार्य प्रभार के आधार पर अपनी सेवा प्रदान की है, उन्हें पेंशन के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है। यह निर्णय उन प्रावधानों पर चर्चा करता है जो तब सिविल सेवा विनियमों के तहत मौजूद थे, उन लोगों को पुरानी पेंशन योजना का लाभ देने से इनकार करने के लिए जिन्होंने पहले वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में सेवा प्रदान की थी, हालांकि ऐसे कर्मचारियों को बाद में नियमित कैडर के तहत नियुक्ति मिली थी। उदय प्रताप ठाकुर (सुप्रा) के मामले में पेंशन लाभ देने के सिद्धांत और अनुपात पर चर्चा की गई है, जिसमें पैराग्राफ 6 के तहत यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि पुरानी पेंशन योजना का लाभ

देने के लिए निर्णय के अनुपात पर विचार किया जाना चाहिए। तदर्थ/वर्कचार्ज सेवा की ऐसी अवधि को ध्यान में रखा जाये जिससे पेंशन स्वीकार्य बनाने के लिए अर्हक अवधि में होने वाली कमी की पूर्ति हो जाए। यदि यह तर्क दिया गया है कि कार्य प्रभार अस्थायी आधार के रूप में प्रदान की गई पिछली अवधि को पूरी तरह से योग्य सेवा के प्रयोजन के लिए माना जाता है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि सेवा में ऐसे व्यक्ति/कर्मचारी को उनकी प्रारंभिक अस्थायी/तदर्थ/कार्यप्रभार नियुक्ति की तारीख से नियमित नियुक्ति की पेशकश की जाएगी। यह न तो नियमों का उद्देश्य है और न ही इसमें प्रेम सिंह के मामले में फैसले की भावना निहित है।

8. सराहना हेतु उपरोक्त उ.प्र. के संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974 के नियम 4 एवं 5 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

*“सेवा के लिए आवश्यक संख्या -*

(1) सेवा के लिए संख्या का निर्धारण राज्यपाल द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जायेगा।

(2) सेवा की स्थायी संख्या, जब तक कि उप-नियम (1) के तहत अलग-अलग आदेश पारित नहीं हो जाते, नीचे दी गई है :

(क) संग्रह अमीन (साधारण श्रेणी): 5341

(ख) संग्रह अमीन (चयन ग्रेड): 593

*बशर्ते कि -*

(ए) कलेक्टर किसी रिक्त पद को अधूरा छोड़ सकता है या राज्यपाल किसी भी रिक्त

को स्थगित कर सकता है, वह भी किसी व्यक्ति को बगैर मुआवजे दिये; और

(बी) राज्यपाल आवश्यकता होने पर ऐसे अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद बनाते हैं।

### (भाग III- भर्ती)

#### 5. भर्ती का स्रोत-

(i) सेवा के सामान्य ग्रेड में पदों पर भर्ती इन नियमों के भाग V में दिए गए प्रावधानों के आधार पर प्रतिस्पर्धी परीक्षा के परिणाम पर की जाएगी।

बशर्ते कि, पंद्रह प्रतिशत तक रिक्तियां ऐसे मूल रूप से नियुक्त संग्रह चपरासियों में उपयुक्त उम्मीदवारों की उपलब्धता के आधार पर पदोन्नति द्वारा भरी जाएंगी जो निम्नलिखित अहर्ता को पूरा करते हैं : -

(ए) जिन्होंने हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश की कम से कम हाई

स्कूल परीक्षा या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त परीक्षा उत्तीर्ण की हो, और

(बी) जिन्होंने राजस्व विभाग के संग्रह संगठन में कम से कम छह फ़सल की अवधि के लिए काम किया है:

बशर्ते कि पैंतीस प्रतिशत रिक्तियां ऐसे सीजनल संग्रह अमीनों में से चयन द्वारा भरी जाएंगी जो निम्नलिखित अहर्ता को पूरा करते हैं -

(ए) जिन्होंने कम से कम चार फ़सलों के लिए संतोषजनक ढंग से काम किया है:

(बी) जिसकी आयु उस वर्ष, जिसमें चयन किया गया है, जुलाई के प्रथम दिन को 45 वर्ष से अधिक न हो:

बशर्ते कि यदि उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध न हों तो शेष रिक्तियां सीधी भर्ती के

माध्यम से सामान्य अभ्यर्थियों से भरी जाएंगी।

**स्पष्टीकरण- संतोषजनक कार्य का मतलब पिछले चार फ़सलों के दौरान निर्धारित**

**मानक के अनुसार कम से कम सतर प्रतिशत प्राप्ति हो, जिसमें संपूर्ण अच्छा आचरण भी शामिल है।**

9. उपरोक्त नियमों को पढ़ने पर मुझे पता चला कि नियम रिक्त पदों पर नियमित नियुक्ति की बात करते हैं। कैडर में पद सहकर्मि नियम 4 के अनुसार बनाए जाते हैं और यह केवल विधिवत स्वीकृत पद को संदर्भित करता है। नियम 4 के तहत विधिवत सृजित मूल रिक्तियों पर तदर्थ या अस्थायी नियुक्ति पर विचार नहीं करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मूल नियुक्तियाँ केवल मूल रिक्तियों के विरुद्ध या तो पदोन्नति या चयन द्वारा दी जाती हैं/की जाती हैं। पंद्रह प्रतिशत पद मौसमी संग्रह चपरासी से और पैंतीस प्रतिशत पद अस्थायी/आकस्मिक/तदर्थ आधार पर कार्यरत मौसमी संग्रह अमीनों से पदोन्नति के माध्यम से भरे जाने हैं, जो धारा 5 के प्रावधान के तहत दी गई शर्तों के अधीन हैं। नियुक्ति भर्ती वर्ष में मौजूदा मूल रिक्ति के संदर्भ में है। चयन और नियुक्ति का मतलब है, ऐसी नियुक्ति वास्तविक समय में कार्यवाही शुरू करके की जाती है, लेकिन चयन के वर्ष की 1 जुलाई की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। अतः बैंक डेट से नियमितीकरण की कोई अवधारणा नहीं है। वास्तव में ऐसा कोई नियमितीकरण नहीं है। बल्कि यह कार्य प्रदर्शन और कार्य अवधि के आधार पर तैयार की जाने वाली मेरिट सूची के लिए निर्धारित प्रक्रिया अपनाकर भर्ती के वर्ष में उपलब्ध रिक्तियों के

विरुद्ध चयन है। मौसमी संग्रह अमीनों/चपरासियों को मौलिक नियुक्ति देने के लिए मौसमी संग्रह अमीनों की वरिष्ठता सूची को योग्यता सूची के रूप में नहीं अपनाया जा सकता है क्योंकि योग्यता सूची में केवल वही व्यक्ति शामिल होंगे जो निर्धारित/निर्धारित मानदंडों को पूरा करते हैं। इस प्रकार कोई स्वचालित नियमितीकरण नहीं है।

10. प्रेम सिंह के मामले में (सुप्रा) जो नियम मौजूदा थे, उनमें पेंशन के लिए अर्हक सेवा के लिए सेवा की कार्य प्रभार अवधि शामिल नहीं थी, इसलिए इसे अलग रखा गया था। अनुपात यह है कि किसी को कम अवधि के लिए पेंशन से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, भले ही ऐसा कर्मचारी लंबी अवधि के लिए सेवा में हो, अस्थायी रूप से या कार्य प्रभार के आधार पर हो। उदय प्रताप ठाकुर (सुप्रा) के मामले में पैराग्राफ 6 के तहत, यह इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:

*"6.यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि संबंधित अपीलकर्ता राज्य में कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान के तहत कार्य प्रभारी के रूप में काम कर रहे थे। उनकी सेवाओं को नियमावली, 2013 और वित्त विभाग की अनुवर्ती अधिसूचना परिपत्र संख्या 10710 दिनांक 17.10.2013 के तहत नियमित किया गया है।*

*परिपत्र का नियम 5(v) इस प्रकार है:*

*5(v): इन कर्मचारियों पर पुराने पेंशन नियम लागू होंगे। लाभ पेंशन और*

ग्रेच्युटी की गणना कार्य प्रभारित कर्मचारी के रूप में पांच साल की सेवाओं के विरुद्ध एक वर्ष का लाभ देकर की जाएगी फिर भी यदि पुराने नियमों के तहत पेंशन के लिए आवश्यक 10 साल की सेवा की अनिवार्य शर्त पूर्ण न होने पर उस व्यक्ति को पेंशन का लाभ देने के लिए न्यूनतम सेवा जोड़ी जाएगी।

6.1. नियमावली, 2013 के नियम 5(v) को ऐसे कार्य प्रभारित कर्मचारियों के लिए लाभकारी कहा जा सकता है, जिनकी सेवाएं बाद में नियमित कर दी गई हैं। नियम 5(v) के अनुसार, भले ही पेंशन के लिए 10 साल की सेवा (अर्हक सेवा) की न्यूनतम आवश्यकता पूरी न हो, उस स्थिति में भी, कार्य के रूप में प्रदान की गई सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा में जोड़ा जाएगा। इसलिए, राज्य सरकार द्वारा यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि कई वर्षों तक कार्यभारित सेवाएँ प्रदान करने और उसके बाद उनकी सेवाओं को नियमित करने के बाद, उन्हें इस आधार पर पेंशन से वंचित न किया जाए कि उन्होंने पेंशन के लिए अवधि 10 वर्ष की आवश्यक अर्हक अवधि को पूरा नहीं किया है। इसमें यह भी प्रावधान है कि पेंशन और ग्रेच्युटी जैसे लाभों को कार्य-प्रभारित कर्मचारी को देने के लिए उनके द्वारा दी गयी पांच साल की सेवाओं के मुकाबले एक साल का लाभ देकर गिना जाएगा। इसलिए, जैसा कि ऊपर देखा गया है, नियम 5(v) ऐसे कार्य प्रभारित

कर्मचारियों के पक्ष में भी फायदेमंद है, जिनकी सेवाओं को बाद में नियमित कर दिया गया है और उन्हें इस आधार पर पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है कि उन्होंने पेंशन की अर्हक सेवा पूरी नहीं की है। कई वर्षों तक कार्यभारित कार्य के रूप में सेवा प्रदान करने के बाद इस आधार पर पेंशन से इनकार करना कि उन्होंने अर्हक सेवा पूरी नहीं की है, अनुचित और अवैध कहा जा सकता है और इसे शोषण कहा जा सकता है। इसलिए, ऐसे कार्य प्रभारित कर्मचारियों को पेंशन के लिए पात्र बनाने के लिए, नियम 5 (v) में प्रावधान है कि यदि कोई कार्य प्रभारित कर्मचारी, जिसकी सेवाएं नियम, 2013 के तहत नियमित की गई हैं, अर्हक सेवा से कम है, तो अर्हता की ऐसी कमी को पूर्ण करने के लिए कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के लिए अर्हक सेवा के उद्देश्य से गिना जाएगा। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय की बड़ी पीठ ने ठीक ही कहा है और माना है कि पेंशन के प्रयोजन के लिए, किसी कर्मचारी की सेवा के लिए कार्य प्रभारित कार्यकाल से केवल वही अवधि जोड़ी जाएगी, जिसे उसके लिए पेंशन की अर्हता प्राप्त करने के लिए नियमित किया गया है।

6.2 जहां तक अपीलकर्ताओं की ओर से यह निवेदन है कि कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई उनकी संपूर्ण सेवाओं को पेंशन/पेंशन की मात्रा के प्रयोजन के लिए



माना और/या गिना जाना चाहिए, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो उस स्थिति में, यह कार्य प्रभार के रूप में प्रारंभिक नियुक्ति से उनकी सेवाओं को नियमित करने के समान होगा। इस न्यायालय के निर्णयों के अनुसार, मूल पद पर नियुक्त नियमित कर्मचारी और कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान के अंतर्गत कार्यरत कार्य प्रभारित कर्मचारी के बीच हमेशा अंतर और भिन्नता होती है। कार्य प्रभारित कर्मचारियों को मूल पद पर नियुक्त नहीं किया जाता है। चयन की उचित प्रक्रिया के बाद और भर्ती नियमों के अनुसार उनकी नियुक्ति नहीं की जाती है। इसलिए, कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन/पेंशन की मात्रा के प्रयोजन के लिए नहीं गिना जा सकता है। हालाँकि, साथ ही, कई वर्षों तक कार्यभारित कार्य के रूप में सेवा प्रदान करने के बाद और उसके बाद जब उनकी सेवाएँ नियमित हो जाती हैं, तो उन्हें इस आधार पर पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है कि उन्होंने पेंशन के लिए अर्हक सेवा पूरी नहीं की है। इसीलिए, कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा के उद्देश्य से गिना और/या माना जाता है, जो नई नियमावली, 2013 के नियम 5 (v) के तहत प्रदान किया जाता है।

6.3. अब, जहां तक अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा

प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता का संबंध है, उक्त निर्णय पर निर्भरता बिल्कुल गलत है। उक्त मामले में, यह न्यायालय यूपी के सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 नियम 3(8) की वैधता पर विचार कर रहा था जिसके तहत कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई संपूर्ण सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा में नहीं गिना जाना था। इस पर, इस न्यायालय ने देखा और माना कि सरकारी प्रतिष्ठान/विभाग में कई वर्षों तक कार्यभारित कार्य के रूप में सेवा प्रदान करने के बाद, उन्हें इस आधार पर पेंशन से वंचित करना कि उन्होंने पेंशन के लिए अर्हक सेवा पूरी नहीं की है, अन्यायपूर्ण, मनमाना और गैरकानूनी। इसलिए, इस न्यायालय ने देखा और माना कि कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई उनकी सेवाओं को अर्हक सेवा के लिए माना/गिना जाएगा। इस न्यायालय ने यह नहीं देखा और माना कि कार्य प्रभार के रूप में प्रदान की गई संपूर्ण सेवा को पेंशन/पेंशन की मात्रा के लिए माना/गिना जाएगा। इसलिए, प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय का निर्णय, प्रभारित कार्य के रूप में प्रदान की गई सेवा पेंशन के लिए अर्हक सेवा की सीमा तक ही गिनती के लिए मान्य होगी।"

(बल दिया गया)

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मुझे याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क में कोई दम नहीं दिखता। याचिका में

योग्यता नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 414

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 18972 वर्ष 2022

प्राधिकारी को भेजी जाने वाली चयन सूची में रिक्तियों की संख्या से अधिक नाम शामिल होंगे, लेकिन 25% से अधिक नहीं, जो दर्शाता है कि चयन सूची में विज्ञापित रिक्तियों की संख्या से अधिक उम्मीदवारों की संख्या होनी चाहिए - आगे अभिनिर्धारित हुआ, नियम 15(3) के अनुपालन में प्रतीक्षा सूची तैयार न करने की प्रतिवादियों की कार्यवाई मनमानी और उक्त नियम की भावना के विरुद्ध है। (पैरा 26 और 44)

प्रियदर्शिनी सिंह

...याचिकाकर्ता

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

उद्धृत बादों की सूची:

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री दुर्गा प्रसाद सिंह, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

1. एस.के. नौसाद रहमान एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2022) 12 एससीसी 1

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री एम.एन. सिंह

2. जटा शंकर बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य; 2013 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3526

ए. सेवा कानून - उ.प्र. अधीनस्थ शिक्षा (सहयुक्त जिला विद्यालय निरीक्षक) सेवा नियमावली, 1992 - नियम 15(3) - खंड शिक्षा अधिकारी का पद - नियुक्ति - रिक्तियों की संख्या - चयन सूची - अधिक चयनित उम्मीदवारों वाली प्रतीक्षा सूची तैयार नहीं की गई - वैधता को चुनौती दी गई - प्रतीक्षा सूची तैयार करने के लिए नियमावली, 1992 में कोई प्रावधान नहीं है - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ, नियमावली, 1992 के नियम 15(3) को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आयोग द्वारा नियुक्ति

3. नदीम अनवर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सचिव, उत्तर प्रदेश शासन का विभाग लखनऊ एवं एक अन्य; 2016 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 3001

4. रिट ए संख्या 22128 वर्ष 2018; संजय कुमार एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य

5. शिव श्याम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2005 (10) एससीसी 314

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार व अन्य; 2023 (1) एडीजे 389 एससी

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा  
पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे व उनके सहयोगी विद्वान अधिवक्ता श्री दुर्गा प्रसाद सिंह एवं राज्य प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार दुबे और प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री एम.एन. सिंह को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 1-अपर मुख्य सचिव (बेसिक शिक्षा), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को खंड शिक्षा अधिकारी (खंड शिक्षा अधिकारी) के पद के लिए प्रतीक्षा सूची प्रकाशित करने का निर्देश देने तथा चयनित अभ्यर्थियों के कार्यभार ग्रहण न करने के कारण रिक्त रह गए पद पर याचिकाकर्ता का चयन करने का निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति की रिट जारी करने के लिए प्रार्थना की है।

3. मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग, प्रयागराज (एतश्मिनपश्चात 'आयोग' के रूप में संदर्भित) ने खंड शिक्षा अधिकारी के 309 पदों के लिए अधिसूचना संख्या ए-4/ई-1/2019 दिनांक 13.12.2019 को प्रकाशित किया। याचिकाकर्ता ने अपेक्षित योग्यता रखते हुए उक्त पद के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता को रोल नंबर 012946 वाला एडमिट कार्ड जारी किया गया था। वह आयोग द्वारा आयोजित प्रारंभिक परीक्षा में शामिल हुई, जिसमें वह उत्तीर्ण हुई।

इसके बाद याचिकाकर्ता दिनांक 06.11.2020 को आयोजित मुख्य परीक्षा में शामिल हुई। आयोग ने दिनांक 30.01.2021 को उक्त पदों के लिए योग्य 309 अभ्यर्थियों की सूची घोषित की। हालांकि, याचिकाकर्ता योग्य नहीं थी क्योंकि याचिकाकर्ता के अनुसार, वह एक सामान्य श्रेणी की अभ्यर्थी के रूप में उपस्थित हुई और उसे 207 अंक मिले जबकि सामान्य श्रेणी में अंतिम चयनित अभ्यर्थी को 208 अंक मिले।

4. आगे याचिकाकर्ता का कहना यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-अपर शिक्षा निदेशक (बेसिक), प्रयागराज ने 309 सफल अभ्यर्थियों के सापेक्ष खंड शिक्षा अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए 271 अभ्यर्थियों को पत्र जारी किए, इसलिए, नियुक्ति सूची दिनांक 12.03.2021 के अनुसार खंड शिक्षा अधिकारी के 38 पद रिक्त हैं।

5. याचिकाकर्ता ने आगे दावा किया है कि इसी तरह के एक विवाद में उत्तर प्रदेश राज्य ने राधा कुलश्रेष्ठ को नियुक्ति दी है, जो आयोग द्वारा आयोजित सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद के लिए परीक्षा में शामिल हुई थी और उसने दो रिक्तियों पर नियुक्ति का दावा किया था, जो सफल अभ्यर्थियों के शामिल होने के बाद भी खाली रहीं। जब आयोग ने उसके अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया, तो उसने रिट-ए संख्या 2008/2022 प्रस्तुत की और उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान आयोग के अधिवक्ता द्वारा यह बयान दिया गया कि उसके नाम की सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में नियुक्ति के

लिए सिफारिश की गई है, और इसलिए याचिकाकर्ता भी रिट-ए संख्या 2008/2022 में याचिकाकर्ता राधा कुलश्रेष्ठ के साथ समानता की हकदार है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से दिनांक 11.04.2023 को एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामा दायर किया गया, जिसमें कहा गया कि अधिसूचना संख्या ए-4/ई-1/2019 दिनांक 13.12.2019 के तहत चयन में, आयोग द्वारा खंड शिक्षा अधिकारी के 309 पदों के सापेक्ष नियुक्ति के लिए 309 अभ्यर्थियों को अनंतिम रूप से सफल/चयनित घोषित किया गया, जिनमें से सामान्य श्रेणी के 159 पदों के सापेक्ष चयन किया गया।

7. राज्य सरकार ने लघु प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 6 से 11 में आयोग द्वारा अनुशंसा तथा अभ्यर्थियों को जारी नियुक्ति पत्रों की तिथि का ब्यौरा दिया है, जो इस प्रकार है:

| क्रम सं. | आयोग द्वारा अनुशंसा की तिथि | आयोग द्वारा अनुशंसित उम्मीदवारों की संख्या | नियुक्ति पत्र की तिथि | उम्मीदवारों की संख्या जिनके लिए नियुक्ति पत्र जारी किए गए। |
|----------|-----------------------------|--------------------------------------------|-----------------------|------------------------------------------------------------|
| 1.       | 03.03.2021                  | 271                                        | 12.03.2021            | 271                                                        |
| 2.       | 19.04.2021                  | 24                                         | 25.05.2021            | 23                                                         |
| 3.       | 24.06.2021                  | 3                                          | 24.08.2021            | 4                                                          |
| 4.       | 09.11.2021                  | 6                                          | 10.12.2021            | 5                                                          |
| 5.       | 21.01.2021                  | 1                                          | 10.02.2021            | 5                                                          |

|    |            |   |            |   |
|----|------------|---|------------|---|
| 6. | 24.11.2022 | 3 | 23.03.2023 | 3 |
|----|------------|---|------------|---|

8. आगे यह भी बताया गया कि आयोग द्वारा प्राप्त संस्तुति के अनुसरण में निदेशालय द्वारा सामान्य श्रेणी के पदों हेतु 159 अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र जारी किये गये, जिनमें से 156 अभ्यर्थियों ने कार्यभार ग्रहण कर लिया है, किन्तु 03 अभ्यर्थियों ने अभी तक कार्यभार ग्रहण नहीं किया है।

9. प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा एक विस्तृत जवाबी हलफनामा भी दाखिल किया गया है, जिसमें दिनांक 11.04.2023 को दिए गए संक्षिप्त जवाबी हलफनामे में बताए गए तथ्यों को दोहराया गया है। दिनांक 03.05.2023 को एक और संक्षिप्त जवाबी हलफनामा भी दाखिल किया गया है, जिसमें कहा गया है कि खंड शिक्षा अधिकारी के पद पर चयन उत्तर प्रदेश अधीनस्थ शिक्षा (संबद्ध जिला विद्यालय निरीक्षक) सेवा नियमावली, 1992 (एतश्मिनपश्चात 'नियमावली, 1992' के रूप में संदर्भित) द्वारा शासित है। आगे कहा गया है कि शासनादेश संख्या 28/5/80-क-4-1999 दिनांकित 15.11.1999 के अन्तर्गत सम्मिलित सेवाओं एवं अन्य चयनों में एकल संवर्गीय पद के चयन को छोड़कर कोई प्रतीक्षा सूची तैयार नहीं की जाएगी। आगे कहा गया है कि निदेशालय द्वारा पत्र दिनांकित 25.02.2022 द्वारा खंड शिक्षा अधिकारी के 34 रिक्त पदों का अधियाचन आयोग को भेजा गया। तदनुसार, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के पद पर चयनित नहीं किया जा सकता है, तथा रिट याचिका में

मेरिट का अभाव है, तथा इसे खारिज किया जाना उचित है।

नियम 15 (3) के अनुपालन में मेरिट सूची तैयार करनी चाहिए थी।

10. आयोग ने एक जवाबी हलफनामा भी दाखिल किया है जिसमें कहा गया है कि चयन प्रक्रिया पूरी करने के बाद, संबंधित चयन का अंतिम परिणाम दिनांक 30.01.2021 को घोषित किया गया था। आगे यह भी कहा गया है कि जहां तक अनारक्षित/सामान्य श्रेणी की रिक्तियों का सवाल है, आयोग के स्तर पर कोई रिक्ति लंबित नहीं है। यह भी कहा गया है कि प्रतीक्षा सूची केवल एक वर्ष के लिए वैध मानी जाती है, और यदि विभाग निर्दिष्ट अवधि के भीतर आयोग को नाम भेजने के लिए कोई प्रस्ताव नहीं भेजता है, तो शेष रिक्तियों को, यदि कोई हो, दिनांक 31.01.1994 के सरकारी आदेश के पैरा संख्या 5 और 6 में निहित प्रावधानों के अनुसार अगले वर्ष के लिए आगे बढ़ाया जाएगा।

11. याचिकाकर्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि नियमावली, 1992 के नियम 15(3) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि लिखित परीक्षा का परिणाम प्राप्त होने के बाद आयोग अधिसूचित रिक्ति के सापेक्ष लिखित परीक्षा में चयनित अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर मेरिट सूची तैयार करेगा। आयोग द्वारा अनुशंसित चयन सूची में विज्ञापित रिक्तियों से अधिक अभ्यर्थी होने चाहिए, लेकिन विज्ञापित रिक्तियों से 25% अधिक नहीं होने चाहिए। यह भी कहा गया है कि नियमावली, 1992, दिनांक 15.11.1999 के सरकारी आदेश पर अभिभावी होगा, और इसलिए, आयोग को नियमावली, 1992 के

12. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने तर्क दिया है कि यह रिकॉर्ड पर स्वीकार किया गया है कि ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के पद के लिए चयन नियमावली, 1992 द्वारा शासित और विनियमित है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि नियम, 1992 के नियम 15 (3) में यह प्रावधान है कि लिखित परीक्षा के परिणाम की घोषणा के बाद, आयोग अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर मेरिट सूची तैयार करेगा और अभ्यर्थियों की संख्या की सिफारिश करेगा, जैसा कि आयोग उचित समझे। इसमें आगे यह भी प्रावधान है कि यदि दो या अधिक अभ्यर्थी समान अंक प्राप्त करते हैं, तो आयोग उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार मेरिट सूची में स्थान देगा। चयनित अभ्यर्थियों की सूची में विज्ञापित रिक्तियों की तुलना में अधिक अभ्यर्थी होने चाहिए, लेकिन विज्ञापित रिक्तियों के 25% से अधिक नहीं होने चाहिए। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि नियमावली, 1992 में यह निर्धारित किया गया है कि चयन सूची में विज्ञापित कुल रिक्तियों की तुलना में अधिक अभ्यर्थी होने चाहिए, लेकिन अधिकतम 25% से अधिक नहीं। इसलिए, प्रतीक्षा सूची प्रकाशित न करने की आयोग की कार्यवाही मनमानी है और नियमावली, 1992 के विरुद्ध है।

13. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिकॉर्ड में यह स्वीकार किया गया है कि तीन रिक्तियां अभी भी रिक्त हैं, और यदि आयोग ने चयनित अभ्यर्थियों की प्रतीक्षा सूची तैयार की

होती, तो याचिकाकर्ता, जिसने सामान्य श्रेणी में अंतिम चयनित उम्मीदवार से एक अंक कम प्राप्त किया था, को उक्त पद पर चयनित किया गया होता। उन्होंने दलील दी कि प्रत्यर्थी का यह कहना कि नियमावली, 1992 में प्रतीक्षा सूची तैयार करने का प्रावधान नहीं है, गलत है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 15.11.1999 के सरकारी आदेश में केवल उन मामलों में प्रतीक्षा सूची तैयार करने पर रोक लगाई गई है, जहां विभिन्न पदों पर संयुक्त चयन किया जाता है, लेकिन उक्त राइडर उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां चयन एकल संवर्ग में पद के संबंध में है, और जैसा कि वर्तमान मामले में, चयन खंड शिक्षा अधिकारी के पद के संबंध में है जो एकल संवर्ग पद है, इसलिए उक्त सरकारी आदेश लागू नहीं होता है।

14. उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थीगण का यह कहना कि सरकारी आदेश दिनांकित 15.11.1999 के तहत प्रतीक्षा सूची केवल उन मामलों में तैयार की जा सकती है जहां एक ही संवर्ग में एक ही पद के लिए चयन किया गया हो, गलत है क्योंकि सरकारी आदेश दिनांकित 15.11.1999 को पढ़ने से पता चलता है कि सरकारी आदेश दिनांकित 15.11.1999 में उल्लिखित शब्द "एकल संवर्गों के पदों को छोड़कर" एकल संवर्ग में पद के लिए चयन को संदर्भित करता है। वैकल्पिक रूप से, उन्होंने कहा कि चूंकि नियमावली, 1992 के नियम 15(3) में प्रतीक्षा सूची तैयार करने का स्पष्ट प्रावधान है, इसलिए सरकारी आदेश दिनांकित 15.11.1999 नियमावली, 1992 पर अभिभावी नहीं हो सकता, और इसलिए आयोग

को प्रतीक्षा सूची तैयार करनी चाहिए थी। तदनुसार, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता वर्तमान रिट याचिका में मांगी गई राहत पाने का हकदार है।

15. उपरोक्त तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है:-

- i. एस.के. नौसाद रहमान एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2022) 12 एससीसी 1;
- ii. जटा शंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2013 एससीसी ऑनलाइन इला. 3526;
- iii. नदीम अनवर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सचिव, विभाग .. उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ एवं अन्य 2016 एससीसी ऑनलाइन इला. 3001;
- iv. संजय कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-ए संख्या 22128/2018 में पारित;
- v. शिव श्याम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2005 (10) एससीसी 314।

16. इसके विपरीत, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि सभी विज्ञापित पदों पर चयन किया गया है, और चूंकि याचिकाकर्ता ने न्यूनतम कट-ऑफ अंक प्राप्त नहीं किए, इसलिए उसका चयन नहीं किया गया। उन्होंने कहा कि नियमावली, 1992 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो आयोग द्वारा प्रतीक्षा सूची तैयार करने को अनिवार्य बनाता हो। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 15.11.1999 का सरकारी आदेश विशिष्ट और स्पष्ट है और इसमें प्रावधान है कि सभी चयनों

के संबंध में प्रतीक्षा सूची तैयार नहीं की जाएगी, सिवाय इसके कि जहां एक ही कैडर में एक पद पर चयन किया गया हो। अपनी उक्त दलील के समर्थन में उन्होंने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार एवं अन्य 2023 (1) एडीजे 389 एससी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया है।

17. आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.एन. सिंह ने दलील पेश किया कि प्रतीक्षा सूची की वैधता अवधि एक वर्ष है और चूंकि चयन परिणाम 30.01.2021 को घोषित किया गया था और एक वर्ष की अवधि समाप्त हो गई है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा मांगा गया कोई निर्देश इस न्यायालय द्वारा जारी नहीं किया जा सकता है।

18. उपरोक्त दलील पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने तर्क दिया है कि प्रतीक्षा सूची की वैधता की गणना अंतिम अधियाचन की तिथि से की जानी चाहिए न कि प्रथम अधियाचन की तिथि से।

19. मैंने पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का परिशीलन किया।

20. रिकॉर्ड से उभरे तथ्य यह हैं कि विज्ञापन संख्या ए-4/ई-1/2019 दिनांकित 13.12.2019 के तहत याचिकाकर्ता ने ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण की और वह मुख्य

परीक्षा में शामिल हुई जिसमें उसे 207 अंक मिले, जबकि सामान्य श्रेणी में अंतिम चयनित उम्मीदवार को 208 अंक मिले। याचिकाकर्ता के अनुसार, 309 रिक्तियों के मुकाबले केवल 271 उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी किए गए हैं और 38 पद अभी भी रिक्त हैं, इसलिए याचिकाकर्ता को रिक्त पदों पर समायोजित किया जाना चाहिए।

21. प्रत्यर्थी संख्या 1 एवं 2 की ओर से प्रस्तुत लघु प्रति शपथ पत्र दिनांकित 11.04.2023 में पैरा संख्या 13 में कहा गया है कि तीन सामान्य अभ्यर्थियों ने अभी तक अपनी ज्वाइनिंग नहीं की है, अर्थात् प्रत्यर्थीगण के मामले के अनुसार भी विज्ञापन संख्या ए-4/ई-1/2019 के अंतर्गत सामान्य श्रेणी के तीन पदों को नहीं भरा गया है।

22. अब मामले को आगे बढ़ाने से पूर्व नियमाली, 1992 के नियम 15 को पुनः उद्धृत करना समीचीन होगा:-

#### **“15 आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती की प्रक्रिया**

15. (1) प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति के लिए आवेदन के लिए आवेदन पत्र आयोग द्वारा जारी विज्ञापन में प्रकाशित प्रपत्र में आमन्त्रित किये जायेंगे।

(2) किसी भी अभ्यर्थी को परीक्षा में सम्मिलित नहीं किया जायेगा जब तक कि उसके पास आयोग द्वारा जारी किया गया प्रवेश पत्र न हो।

(3) लिखित परीक्षा के परिणाम प्राप्त हो जाने और सारणीबद्ध कर लिए जाने के पश्चात आयोग अभ्यर्थियों की उनकी प्रवीणता क्रम में जैसा कि लिखित परीक्षा में प्रत्येक अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त कुल अंकों से प्रकट हो, एक सूची तैयार करेगा और उतनी संख्या में अभ्यर्थियों को जितनी वह नियुक्ति के लिए उचित समझे, संस्तुत करेगा। यदि दो या अधिक अभ्यर्थी बराबर-बराबर अंक प्राप्त करे तो आयोग उनके नाम, सेवा के लिए उनकी सामान्य उपयुक्तता के आधार पर, योग्यता क्रम में रखेगा। सूची में नामों की संख्या रिक्तियों की संख्या से अधिक ( किन्तु पच्चीस प्रतिशत से अनाधिक) होगी। आयोग सूची नियुक्ति प्राधिकारी को अग्रसारित करेगा।"

23. नियमावली, 1992 के नियम 15(1) में प्रावधान है कि आयोग द्वारा अभ्यर्थियों को परीक्षा में बैठने की अनुमति देते हुए प्रवेश पत्र जारी किया जाएगा।

24. नियमावली, 1992 के नियम 15(2) में प्रावधान है कि किसी अभ्यर्थी को तब तक परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक उसके पास आयोग द्वारा जारी प्रवेश पत्र न हो।

25. नियमावली, 1992 का नियम 15 (3), जो वर्तमान मामले में प्रासंगिक है, यह प्रावधान करता है कि परिणाम की घोषणा के बाद, आयोग उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर एक प्रतीक्षा सूची तैयार करेगा और उतने उम्मीदवारों की सिफारिश करेगा, जितने आयोग उचित समझे। यदि दो या अधिक

अभ्यर्थी समान अंक प्राप्त करते हैं, तो उन्हें उनकी योग्यता और उपयुक्तता के अनुसार मेरिट सूची में रखा जाएगा। इसमें आगे यह भी प्रावधान है कि चयन सूची में विज्ञापित रिक्तियों की संख्या से अधिक अभ्यर्थी शामिल होंगे, लेकिन उन रिक्तियों की संख्या के 25% से अधिक नहीं होंगे जिनके लिए चयन किया गया है।

26. यद्यपि प्रत्यर्थीगण के दृष्टिकोण के अनुसार नियमावली, 1992 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो खंड शिक्षा अधिकारी के पद के लिए चयन में प्रतीक्षा सूची तैयार करने का प्रावधान करता हो, क्योंकि नियमावली, 1992 के नियम 15(3) में 'प्रतीक्षा सूची तैयार करने' जैसा विशिष्ट शब्द शामिल नहीं है। तथापि, नियमावली, 1992 के नियम 15(3) को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आयोग द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी को भेजी जाने वाली चयन सूची में रिक्तियों की संख्या से अधिक नाम शामिल होने चाहिए, परंतु 25% से अधिक नहीं होने चाहिए, जिसका अर्थ है कि चयन सूची में विज्ञापित रिक्तियों की संख्या से अधिक संख्या में उम्मीदवार होने चाहिए।

27. इस न्यायालय ने **जटा शंकर (उपरोक्त)** के मामले में यू.पी. समूह-घ कर्मचारी सेवा नियमावली, 1985 में समान प्रावधान की व्याख्या की, तथा यह माना कि जब नियमावली में प्रतीक्षा सूची तैयार करने का प्रावधान है, तो चयन निकाय नियम के अनुसार प्रतीक्षा सूची तैयार करने के लिए बाध्य है। उपर्युक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-



“उस समय जब उत्तर प्रदेश समूह घ कर्मचारी सेवा नियमावली, 1985 के अनुसार चयन प्रक्रिया शुरू की गई थी, इसमें विशिष्ट प्रावधान थे, जो निम्नानुसार थे;

“(4) चयनित किए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या उन रिक्तियों की संख्या से अधिक होगी (किन्तु 25 प्रतिशत से अधिक नहीं)। चयन सूची में नाम साक्षात्कार में दिए गए अंकों के अनुसार व्यवस्थित किए जाएंगे।”

ऊपर उल्लिखित प्रावधान का एक मात्र अवलोकन यह दर्शाता है कि चयनित किए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या रिक्तियों की संख्या से 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, जिसके लिए चयन किया गया है। यह प्रावधान स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि प्रतीक्षा सूची होनी चाहिए, लेकिन यह कुल रिक्तियों के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। उक्त प्रावधान को तब समाप्त कर दिया गया है जब समूह 'घ' कर्मचारी सेवा (पांचवां संशोधन) नियमावली, 1985 के अन्तर्गत संशोधन किया गया है, किन्तु इसके लागू होने से पूर्व ही चयन प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है और इसके दृष्टिगत, प्रश्नगत चयन असंशोधित उत्तर प्रदेश समूह 'घ' कर्मचारी सेवा नियमावली, 1985 के अन्तर्गत होगा तथा उसके द्वारा शासित होगा और उसी के अनुसार एक सूची तैयार करने का प्रावधान है, जो एक बड़ी सूची होगी किन्तु रिक्तियों की संख्या, जिसके लिए चयन किया जाना है, से 25 प्रतिशत से अधिक बड़ी नहीं होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने पी. महेंद्रन एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य 1990 (1) एससीसी 411 के मामले में स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया है कि एक बार चयन प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद, चयन उन नियमों द्वारा

शासित होगा जो नियमों के शुरू होने की तिथि पर विद्यमान थे, और संशोधित नियम तब तक भावी रूप से लागू होंगे जब तक कि यह स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव न डालें। यहां प्रस्तुत संशोधन में स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से पूर्वव्यापी प्रभाव को प्रतिबिंबित नहीं किया गया है। इसे देखते हुए, यह कहना कि प्रतीक्षा सूची का कोई प्रावधान नहीं है, इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रतीक्षा सूची का उद्देश्य यह देखना और सुनिश्चित करना है कि चयनित उम्मीदवारों द्वारा किसी भी कारण से कार्यभार ग्रहण न करने के पश्चात, प्रतीक्षा सूची के उम्मीदवारों को उनकी योग्यता के अनुसार नियुक्ति प्रदान की जा सकती है। हालाँकि, प्रतीक्षा सूची का उम्मीदवार, चयनित उम्मीदवारों के कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात रिक्त हुई रिक्तियों के लिए नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार स्पष्ट किया है कि प्रतीक्षा सूची तैयार करने का उद्देश्य क्या है। सुरेन्द्र सिंह बनाम पंजाब राज्य 1997 (8) एससीसी 478 के मामले में, यह निर्णय दिया गया है कि किसी परीक्षा में तैयार की गई प्रतीक्षा सूची भर्ती का स्रोत नहीं बताती है। यह केवल इस स्थिति में लागू होता है कि यदि कोई चयनित उम्मीदवार शामिल नहीं होता है, तो प्रतीक्षा सूची से उम्मीदवार को आगे बढ़ाया जा सकता है। श्री कांत त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2001 (10) एससीसी 237 के मामले में भी इसी प्रकार के दृष्टिकोण को दोहराया गया है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि प्रतीक्षा सूची के अभ्यर्थी को नियुक्त

होने का कोई निहित अधिकार नहीं है, सिवाय इसके कि जब चयनित अभ्यर्थी प्रतीक्षा सूची के प्रभावी रहने के दौरान कार्यभार ग्रहण नहीं करता है।

28. इसी प्रकार, **नदीम अनवर (उपरोक्त)** के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि एक बार जब उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2012 प्रतीक्षा सूची तैयार करने का आदेश देता है, तो आयोग प्रतीक्षा सूची तैयार करने के लिए बाध्य है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 12 से 14 नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

"12. संबंधित नियमावली के मापदंडों और सरकारी आदेशों के आलोक में याचिकाकर्ता के दावे पर ध्यान दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2012 के तहत, आयोग लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में प्रत्येक उम्मीदवार को अंतिम रूप से दिए गए अंकों के योग द्वारा प्रकट की गई उनकी दक्षता के क्रम में मौजूदा रिक्तियों के 10% की प्रतीक्षा सूची के साथ चयनित उम्मीदवारों की अंतिम सूची तैयार करने के लिए बाध्य है। वर्तमान मामले में आयोग ने प्रश्नगत नियमों के अनुरूप प्रतीक्षा सूची तैयार करने की कार्यवाही नहीं की है, जबकि उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा के अन्तर्गत सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में नियुक्ति हेतु उत्तर प्रदेश सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के 125 पदों का अध्याचन भेजा गया है, इस पृष्ठभूमि में, अन्तिम चयन हो जाने के पश्चात् आयोग को लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में प्रत्येक अभ्यर्थी को अन्तिम रूप से दिये गये

अंकों के योग द्वारा प्रकट उनकी प्रवीणता के क्रम में, विद्यमान रिक्तियों के 10% की प्रतीक्षा सूची के साथ 125 चयनित अभ्यर्थियों की अन्तिम सूची तैयार करनी चाहिए थी। इस विषय पर कानून स्पष्ट है कि प्रतीक्षा सूची वाले उम्मीदवारों को नियुक्ति का कोई निहित अधिकार नहीं है, सिवाय इसके कि जब कोई चयनित उम्मीदवार चयन सूची के चालू रहने के दौरान कार्यभार ग्रहण न करे। देखें-श्री कांत त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2001 (10) एससीसी 337। आयोग द्वारा तैयार की गई प्रतीक्षा सूची केवल इस आकस्मिकता के लिए प्रभावी होगी कि यदि कोई चयनित उम्मीदवार कार्यभार ग्रहण न करे तो प्रतीक्षा सूची के लोगों को आगे बढ़ाया जा सकता है और उन्हें उन रिक्तियों के सापेक्ष नियुक्त किया जा सकता है जिनके सापेक्ष आयोग द्वारा पहले ही सिफारिश की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा नियमावली, 2001 की एक विशिष्ट विशेषता है, क्योंकि नियम 21 का उपनियम (2) स्पष्ट रूप से यह अधिदेश देता है कि नियम 20 के उपनियम (3) के अधीन तैयार की गई चयन सूची, सम्यक अधिसूचना के पश्चात् विज्ञापित या परिवर्तित सभी रिक्तियों के भर जाने के पश्चात् समाप्त हो जाएगी, इसे देखते हुए नियम 21 के उपनियम (2) के अधीन नियमों द्वारा चयन सूची की अवधि का प्रावधान किया गया है और नियम 20 के उपनियम (3) के अधीन तैयार की गई उक्त चयन सूची, सम्यक अधिसूचना के पश्चात् विज्ञापित या परिवर्तित सभी रिक्तियों के भर जाने के पश्चात् समाप्त हो जाएगी, उसके पश्चात् कदापि नहीं। चयन सूची का जीवन काल नियमावली द्वारा

निर्धारित होता है और इसे देखते हुए, जब चयन सूची का जीवन काल नियमावली द्वारा निर्धारित हो जाता है, तब आयोग द्वारा दिनांक 31.1.1994 और 15.11.1999 के सरकारी आदेशों के रूप में लिए गए किसी भी कार्यकारी निर्देश या नीतिगत निर्णय का कोई लाभ नहीं होगा।

13. विचाराधीन सरकारी आदेश, विचाराधीन चयन सूची की अवधि के संदर्भ में बिल्कुल भी लागू नहीं होंगे। एक बार जब विचाराधीन नियम विशिष्ट हो जाते हैं और इस विषय पर कानून स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई कार्यकारी निर्देश वैधानिक नियमों के विरुद्ध है, तो कार्यकारी निर्देशों को विचाराधीन वैधानिक नियमों के अनुसार होना चाहिए। राम गणेश त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एआईआर 1997 एससी 1446 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार किया है कि नियमावली के विपरीत किसी भी सरकारी आदेश को लागू नहीं किया जा सकता है, बल्कि उसे अनदेखा किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में जो तथ्यात्मक स्थिति उभर कर आ रही है, वह यह है कि चयन सूची की अवधि तब तक जारी रहेगी, जब तक कि विज्ञापित या अधिसूचना के बाद संशोधित सभी रिक्तियां भर नहीं जातीं और यहां स्वीकार्य स्थिति यह है कि तीन रिक्तियां अभी भी भरी नहीं गई हैं, क्योंकि क्रम सं. 17, 26 और 52 पर रखे गए अभ्यर्थियों ने विचाराधीन पदों पर कार्यभार ग्रहण नहीं किया है और जहां तक क्रम सं. 17 और 52 के अभ्यर्थियों का संबंध है, उनकी उम्मीदवारी राज्य सरकार द्वारा पहले ही रद्द कर दी गई है और यहां तक कि

क्रम सं. 26 पर रखे गए अभ्यर्थियों के संदर्भ में भी निर्णय प्रतीक्षित है। हमारे समक्ष यह तथ्य भी स्वीकार किया गया है कि राज्य सरकार द्वारा नई अध्यायचना भेजी गई है तथा उसी के अनुरूप नया विज्ञापन जारी किया गया है, किन्तु निर्णय में उल्लिखित रिक्तियों को छोड़ दिया गया है तथा उन्हें शामिल नहीं किया गया है। जब तथ्यात्मक स्थिति ऐसी है और प्रश्नगत नियमावली की भाषा ऐसी है, तो अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा नियमावली, 2001, यथा संशोधित, के अन्तर्गत किए जाने वाले चयन एवं नियुक्ति के संदर्भ में, की गई संस्तुतियों के सापेक्ष, आयोग का यह वैधानिक दायित्व है कि वह न केवल अध्यायचित कुल रिक्तियों की संस्तुतियां करे, बल्कि 10% अतिरिक्त प्रतीक्षा सूची भी तैयार करे, जिसका उपयोग उस स्थिति में किया जाएगा, जब संस्तुत अभ्यर्थी अपने-अपने पदों पर कार्यभार ग्रहण करने में असफल हो जाएं।

14. परिणामस्वरूप, मामले के तथ्यों के आधार पर, प्रश्नगत नियमावली की भावना को ध्यान में रखते हुए, स्वीकार्य स्थिति यह है कि क्रमांक 17, 26 और 52 पर रखे गए अभ्यर्थियों ने अपने-अपने पदों पर कार्यभार ग्रहण नहीं किया है तथा पद अभी भी रिक्त पड़े हैं तथा दो अभ्यर्थियों के संदर्भ में राज्य सरकार द्वारा उनकी उम्मीदवारी रद्द करने का निर्णय पहले ही लिया जा चुका है। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि चयन सूची के अभ्यर्थियों के मामले में भी, प्रतीक्षा सूची वाले अभ्यर्थियों की तो बात ही क्या करें, कानून में यह अच्छी तरह स्थापित है कि ऐसे अभ्यर्थी

को केवल इस आधार पर नियुक्ति का दावा करने का कोई अपरिवर्तनीय अधिकार नहीं है कि उसका नाम चयन सूची में सम्मिलित है, क्योंकि राज्य पर सभी या किसी भी रिक्ति को भरने का कोई कानूनी दायित्व नहीं है तथा वैध कारणों से इसे कभी भी रिक्त या बिना भरा छोड़ा जा सकता है। वर्तमान मामले में राज्य सरकार ने हमारे समक्ष दायर हलफनामे में यह बात नहीं कही है कि राज्य सरकार अधिग्रहीत/विज्ञापित रिक्तियों को खाली छोड़ने का इरादा रखती है। आयोग ने इस न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे में यह भी कहा है कि राज्य सरकार से अध्याचन प्राप्त होते ही आवश्यक कार्रवाई की जाएगी। तदनुसार, मामले की विशिष्ट विशेषता और नियमावली के अनुसार, हम राज्य सरकार को निर्देश देते हुए एक आदेश पारित करते हैं कि वह आयोग को अपेक्षित अध्याचन तुरंत भेजे और उसके बाद आयोग, अपनी ओर से, अन्य नियमों और शर्तों को पूरा करने के अधीन, योग्यता के आधार पर उम्मीदवारों के पक्ष में आवश्यक सिफारिशें करेगा। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से अगले तीन महीनों के भीतर पूरी प्रक्रिया पूरी की जानी चाहिए।”

29. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **संजय कुमार (उपरोक्त)** के मामले में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली, 1998 के नियम 12(8) में निहित प्रावधानों की व्याख्या करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया:-  
"उठाया गया मुद्दा संकीर्ण दायरे में आता है। बोर्ड द्वारा भर्ती का संचालन उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के प्रावधानों के साथ नियमावली, 1998 के

प्रावधानों द्वारा विनियमित होता है। नियम 11 रिक्ति के निर्धारण को विनियमित करता है जबकि नियम 12 सीधी भर्ती के लिए प्रक्रिया का उपबंध करता है। नियम 12 के उप-नियम 8 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि व्याख्याता या शिक्षक एल.टी. ग्रेड के पद पर रिक्ति के मामले में, चयन पैनल रिक्तियों की संख्या से बड़ा होगा (परन्तु 25% से अधिक नहीं)। नियमावली, 1998 का नियम 12(8) इसके पश्चात पुनः उद्धृत है:-

"इसके बाद बोर्ड प्रत्येक श्रेणी के पद के लिए, साक्षात्कार में प्राप्त अंकों के साथ उप-खंड (4) या उप-खंड (5) के तहत प्राप्त अंकों को जोड़ने के बाद, प्राप्त अंकों के अनुसार योग्यता के क्रम में नियुक्ति के लिए सबसे उपयुक्त पाए गए लोगों का पैनल तैयार करेगा। प्रिंसिपल या हेडमास्टर के पद के लिए पैनल किसी उम्मीदवार द्वारा किसी विशेष संस्थान में नियुक्ति के लिए दी गई वरीयता, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए संस्था-वार तैयार किया जाएगा, जबकि व्याख्याता और प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड के पदों के लिए, इसे क्रमशः विषयवार और समूहवार तैयार किया जाएगा। यदि दो या अधिक अभ्यर्थी समान अंक प्राप्त करते हैं, तो उच्च गुणवत्ता अंक वाले अभ्यर्थी का नाम पैनल में ऊपर रखा जाएगा तथा यदि गुणवत्ता अंक में प्राप्त अंक भी समान हैं, तो अधिक आयु वाले अभ्यर्थी का नाम ऊपर रखा जाएगा। प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद के लिए पैनल में नामों की संख्या रिक्तियों की संख्या से तीन गुना होगी तथा व्याख्याता और प्रशिक्षित स्नातक ग्रेड में अध्यापकों के पद के लिए यह रिक्तियों की संख्या से अधिक (किन्तु पच्चीस प्रतिशत से अधिक नहीं) होगी।

व्यावहारिक अनिवार्यताएं जैसे कि अधिसूचित रिक्तियों की अनुपलब्धता बोर्ड द्वारा ऐसी प्रक्रिया अपनाना उचित नहीं ठहराएगी जो वैधानिक योजना द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत है।

आयोग को व्याख्याता और एल.टी. ग्रेड में शिक्षकों के पद पर पैनल बनाने का कोई विवेकाधिकार नहीं है, जो रिक्तियों की संख्या से कम हो सकता है। रिक्तियों को नियमावली, 1998 के नियम 2(ई) के तहत निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है :-

"रिक्त" से तात्पर्य किसी शिक्षक की मृत्यु, सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र, सेवा समाप्ति, बर्खास्तगी या हटाए जाने अथवा नए पद के सृजन या किसी उच्च पद पर किसी पदधारी की नियुक्ति या पदोन्नति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले रिक्त स्थान से है।"

एक बार जब रिक्ति बोर्ड को अधिसूचित हो जाती है तो बोर्ड के लिए यह संभव हो जाता है कि वह अधिसूचित पदों की संख्या से कम उम्मीदवारों का पैनल न बनाए। बोर्ड के पास उपलब्ध विवेकाधिकार की सीमा केवल अधिसूचित रिक्तियों की संख्या को 25% की अधिकतम सीमा तक बढ़ाने तक ही सीमित है। बोर्ड केवल इसी सीमा तक अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। हालांकि, पहले से विज्ञापित रिक्तियों की संख्या को बोर्ड द्वारा कम नहीं किया जा सकता है, ताकि पैनल तैयार किया जा सके, जो अधिसूचित रिक्तियों की संख्या से कम हो।"

30. समान नियमों के संबंध में ऊपर उल्लिखित विभिन्न उदाहरणों में इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के मद्देनजर, यह

न्यायालय इस बात पर विचार करता है कि नियमावली, 1992 के नियम 15(3) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि आयोग को भेजे गए अधियाचन से अधिक नामों वाले चयन पैनल बनाने की बाध्यता है, लेकिन कुल पदों के 25% से अधिक नहीं, जिनके लिए अधियाचन भेजा गया था। ऐसी परिस्थितियों में, आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वह 309 से अधिक नामों वाले पैनल बनाए, जो 25% तक अधिक हो।

31. अब, जहां तक करुणेश कुमार (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संबंध है, यह न्यायालय नोट कर सकता है कि उक्त निर्णय प्रत्यर्थीगण की कोई मदद नहीं करता है क्योंकि उक्त मामले में विवाद ग्राम पंचायत अधिकारी के ग्रुप-सी पदों पर दिनांक 22.06.2015 को हुए चयन के बारे में था। उक्त मामले में, उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत अधिकारी सेवा नियमावली, 1978 (एतश्मिनपश्चात नियमावली, 1978 के रूप में संदर्भित) विशेष रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत ग्राम पंचायत अधिकारी के पद पर नियुक्ति से संबंधित है। नियमावली, 1978 का नियम 15(4) नियमावली, 1992 के नियम 15(3) के लगभग समतुल्य है। उक्त मामले में, करुणेश कुमार (मूल याचिकाकर्ता) ने ग्राम पंचायत अधिकारी एकल संवर्ग समूह-सी के पद पर चयनित उम्मीदवारों के शामिल न होने के कारण उत्पन्न रिक्तियों पर विचार करने के लिए निर्देश देने की प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। उक्त रिट याचिका को विद्वान एकल न्यायाधीश ने

खारिज कर दिया था। हालाँकि, रिट याचिका को खारिज करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को डिवीजन बेंच ने नियमावली, 1978 के नियम 15(4) का अवलंब लेकर खारिज कर दिया था।

32. सर्वोच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हुए माना कि उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2014 (एतश्मिनपश्चात 'अधिनियम, 2014' के रूप में संदर्भित) और उत्तर प्रदेश समूह 'ग' पदों पर सीधी भर्ती (प्रणाली और प्रक्रिया) नियमावली, 2015 (एतश्मिनपश्चात 'नियम, 2015' के रूप में संदर्भित) के प्रख्यापन के पश्चात्, नियमावली, 1978 उक्त चयन में लागू नहीं होंगे, क्योंकि चयन उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा किया गया था। इसने नियमावली, 2015 के नियम 8(2) के प्रभाव पर विचार किया, जिसमें यह प्रावधान है कि सरकार द्वारा अधिसूचना के माध्यम से विशेष रूप से बाहर रखे गए पदों को छोड़कर सभी ग्रुप-सी पद इसके दायरे में आएंगे। नियमावली, 2015 लिखित परीक्षा और उसके बाद साक्षात्कार के माध्यम से सीधी भर्ती की प्रक्रिया निर्धारित करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि चूंकि चयन नियमावली, 2015 के तहत किया गया था और याचिकाकर्ता ने उसमें भाग लिया था, इसलिए याचिकाकर्ता को इस पर सवाल उठाने से कानूनी तौर पर रोका गया है। इसने आगे कहा कि नियमावली, 2015 के तहत प्रतीक्षा सूची तैयार करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए खंडपीठ ने रिट याचिका को स्वीकार करके गलती की है।

33. वर्तमान मामले में, विचाराधीन पद अधिनियम, 2014 और नियमावली, 2015 के दायरे में नहीं आता है क्योंकि चयन उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया है, और इसके अलावा प्रत्यर्थीगण द्वारा यह विवादित नहीं है कि नियमावली, 1992 वर्तमान मामले में चयन को नियंत्रित करता है और नियम 15 (3) प्रतीक्षा सूची तैयार करने का प्रावधान करता है, इसलिए, **करुणेश कुमार (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला तथ्यों के आधार पर अलग है और वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है।

34. अब जहां तक प्रत्यर्थीगण का यह कहना है कि सरकारी आदेश दिनांक 15.11.1999 सभी चयनों में प्रतीक्षा सूची के प्रकाशन पर रोक लगाता है, सिवाय उन मामलों के जहां एक ही संवर्ग में एक पद पर चयन किया जाता है, हालांकि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे द्वारा आग्रह किया गया है कि 'एकल संवर्गों के पदों को छोड़कर' शब्द एक संवर्ग के पद पर चयन को संदर्भित करता है, जिसका अर्थ है कि निषेध उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां एक ही संवर्ग में पदों की संख्या के आधार पर चयन किया जाता है, लेकिन श्री अशोक खरे का उक्त तर्क कमलेश कुमार (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 28 में सरकारी आदेश दिनांक 15.11.1999 की व्याख्या करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया :-

"28. दिनांक 15.11.1999 को पारित सरकारी आदेश पर बहुत अधिक भरोसा किया

गया है। उक्त आदेश दो मामलों में बहुत स्पष्ट है। यह लोक सेवा आयोग द्वारा निर्भाई जा रही भूमिका की बात करता है, तथा एक पद पर चयन के मामले को छोड़कर प्रतीक्षा सूची से छुटकारा दिलाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि चयन और वह भी एक पद के लिए। इसका मतलब सिर्फ यह होगा कि किसी व्यक्ति का किसी पद पर चयन किया जाएगा, जिसका मतलब किसी खास श्रेणी के पद या किसी एक कैडर पद से नहीं निकाला जा सकता, जैसा कि प्रत्यर्थीगण के वकील ने तर्क दिया है। उद्देश्य बहुत स्पष्ट है कि उपयुक्त उम्मीदवार के चयन में की गई कवायद बेकार नहीं जाएगी, अगर किसी कारण से उस व्यक्ति का चयन नहीं हो पाता है, तो अगली पंक्ति में मौजूद व्यक्ति को जगह मिल जाएगी। अन्यथा, पूरी प्रक्रिया बेकार हो जाएगी, जिससे भर्ती एजेंसी को एक ही पद के लिए पूरी प्रक्रिया फिर से करनी पड़ेगी।”

35. इसलिए, श्री अशोक खरे द्वारा प्रस्तुत दलील में कोई मेरिट नहीं है। हालाँकि, इस न्यायालय को श्री अशोक खरे की इस दलील में मेरिट नज़र आता है कि सरकारी आदेश नियमावली, 1992 को दरकिनार नहीं कर सकता है, और जैसा कि नियम 15(3) में प्रतीक्षा सूची के प्रकाशन का प्रावधान है, आयोग को चयनित उम्मीदवारों का पैल बनाते समय नियम 15(3) का पालन करना चाहिए था।

36. इस संबंध में, एस.के. नौसाद रहमान के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के

पैराग्राफ 29 को पुनः उद्धृत करना समीचीन होगा :-

29. पांचवां, जहां कार्यकारी निर्देशों और अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमावली के बीच टकराव होता है, वहां नियमावली को ही लागू होना चाहिए। अनुच्छेद 309 के तहत बनाई गई नियमावली और उपयुक्त विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के बीच टकराव की स्थिति में, कानून ही लागू होता है। जहां नियमावली अस्थाई हों या ऐसी स्थिति में जब नियमावली में कोई अंतराल हो, कार्यकारी निर्देश नियमावली में बताई गई बातों का पूरक हो सकते हैं।”

37. नदीम अनवर (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के पैरा 12 का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि नियमावली के विपरीत सरकारी आदेश को लागू नहीं किया जा सकता है और उसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए।

38. अब, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के अंतिम तर्क पर आते हैं क्योंकि चयन सूची की अवधि एक वर्ष है और एक वर्ष की अवधि समाप्त हो चुकी है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए ऐसे कोई निर्देश जारी नहीं किए जा सकते। इस संबंध में, श्री अशोक खरे ने बताया है कि एक वर्ष की अवधि अंतिम अध्याचन की तारीख से मानी जाएगी। उन्होंने आगे कहा कि प्रतीक्षा सूची से नियुक्ति की आकस्मिकता तभी उत्पन्न होगी जब जिन उम्मीदवारों को नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था, वे कार्यभार ग्रहण नहीं करेंगे। वर्तमान मामले में, अंतिम

नियुक्ति आदेश दिनांक 21.04.2022 है और रिट याचिका अंतिम नियुक्ति आदेश दिनांक 21.04.2022 से एक वर्ष की समाप्ति से पहले दायर की गई है।

39. शिव श्याम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि प्रतीक्षा सूची की अवधि की वैधता की गणना अंतिम अध्याचन की तारीख से की जानी चाहिए, न कि पहले अध्याचन की तारीख से। वर्तमान मामले में, नियुक्ति पत्र 21.04.2022 को जारी किए गए थे, और अंतिम नियुक्ति पत्र दिनांक 23.03.2023 का था, जो दिनांक 11.04.2023 के संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के पृष्ठ 57 पर है, इसलिए, शिव श्याम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मददेनजर चयन सूची की समाप्ति के संबंध में प्रत्यर्थीगण का तर्क भी गलत है।

40. यह भी ध्यान देने योग्य है कि दिनांक 03.05.2023 के संक्षिप्त प्रति शपथ पत्र के पैरा 8 में दिए गए कथन के अनुसार निदेशक के पत्र दिनांकित 25.02.2022 द्वारा आयोग को खंड शिक्षा अधिकारी के 34 रिक्त पदों के लिए अध्याचन भेजा गया है। अभिलेखों से पता चलता है कि विज्ञापन संख्या ए-4/ई-1/2019 के अंतर्गत चयन के संदर्भ में अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिनांक 21.04.2022 और 23.03.2023 को जारी किए गए हैं, जबकि निदेशक द्वारा 34 पदों के लिए अध्याचन पत्र दिनांक 25.02.2022 भेजा गया है। अतः प्रत्यर्थी का यह कहना कि याचिकाकर्ता को किसी रिक्त पद पर समायोजित नहीं किया जा सकता है क्योंकि

रिक्त पदों के लिए अध्याचन भेजा जा चुका है, इस तथ्य के मददेनजर झूठा है कि नियुक्ति पत्र निदेशक द्वारा आयोग को दिनांक 25.02.2022 का अध्याचन पत्र भेजे जाने के बाद जारी किए गए हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यर्थीगण का यह कहना कि सभी पदों पर चयन हो चुका है, रिकार्ड के विपरीत है, जबकि दिनांक 11.04.2023 के लघु जवाबी हलफनामे के पैरा 13 में यह स्वीकार किया गया है कि तीन सामान्य उम्मीदवारों ने कार्यभार ग्रहण नहीं किया है, जिसका अर्थ है कि तीन पद रिक्त पड़े हैं।

41. यह न्यायालय इस तथ्य से भी अवगत है कि कानून में यह सुस्थापित है कि किसी चयनित अभ्यर्थी को केवल इस आधार पर नियुक्ति का दावा करने का कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं है कि उसका नाम चयन सूची में सम्मिलित है, क्योंकि राज्य का सभी रिक्तियों को भरने का कोई कानूनी दायित्व नहीं है तथा राज्य वैध कारणों से उक्त रिक्तियों को न भरने का निर्णय ले सकता है।

42. वर्तमान मामले में, ऊपर वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि आयोग ने टुकड़ों में सिफारिशें की थीं और सिफारिशों के संबंध में अंतिम नियुक्ति पत्र दिनांक 23.03.2023 को दिया गया था। वर्तमान मामले में, चयन का परिणाम दिनांक 30.01.2021 को घोषित किया गया था। प्रत्यर्थी परिणाम घोषित होने की तिथि से दो वर्ष से अधिक समय बाद भी उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी कर रहे हैं।



43. राज्य प्रत्यर्थी से निष्पक्ष और प्रासंगिक नियमावली की भावना के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। जवाबी हलफनामे में, प्रत्यर्थीगण ने चयनित उम्मीदवारों के शामिल न होने के कारण खाली रह गए तीन पदों को न भरने के लिए कोई वैध कारण या अपनी मंशा का खुलासा नहीं किया है।

44. अतः उपरोक्त कारणों से यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा नियमावली, 1992 के नियम 15(3) के अनुपालन में प्रतीक्षा सूची तैयार न करने की कार्रवाई मनमानी है तथा उक्त नियमावली की भावना के विरुद्ध है। परिणामस्वरूप, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और आयोग को नियमावली, 1992 के नियम 15(3) के अनुपालन में प्रतीक्षा सूची तैयार करने के लिए परमादेश जारी किया जाता है, और यदि याचिकाकर्ता पात्र पाया जाता है और मेरिट सूची में आता है, तो उसे नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है, यदि वह नियुक्ति के लिए अन्य सभी शर्तों को पूरा करती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

-----

(2023) 9 ILRA 427

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ

रिट-ए संख्या 33686 वर्ष 2017

भारत संघ एवं अन्य ...याचिकाकर्तागण  
बनाम  
मोहम्मद युनुश और अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

श्री सौरभ श्रीवास्तव, श्री कृष्ण अग्रवाल, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री विजय कुमार सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री संतोष कुमार मिश्रा

ए. व्यवहार और प्रक्रिया - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - पहली बार न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही दायर करने में विलंब के संबंध में आपति उच्च न्यायालय में उठाई गई - अनुमेयता - मौखिक सुनवाई के दौरान न्यायाधिकरण के समक्ष विलंब के संबंध में कोई आपति नहीं उठाई गई - रिट याचिका में विलंब के संबंध में कोई दलील नहीं उठाई गई - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ कि, विलंब और शिथिलता का मुद्दा जो भारत संघ के लिए उपलब्ध हो सकता था, हालांकि विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष उठाया गया था, मौखिक सुनवाई के चरण में जोर नहीं दिया गया था। परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण ने इससे निपटा नहीं है - एक बार जब भारत संघ ने न्यायाधिकरण के समक्ष परिसीमा के रूप में आपति को दबाने के अपने अधिकार को छोड़ दिया, तो उसे न्यायाधिकरण के आदेश की न्यायिक समीक्षा के माध्यम से उत्पन्न वर्तमान कार्यवाही में विलंब के आधार को पुनर्जीवित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (पैरा 7 और 8)

बी. सेवा कानून - वेतन का अतिरिक्त भुगतान किए जाने का आरोप लगाया गया था - सेवानिवृत्ति बकाया से कटौती - अनुमेयता - सेवा के दौरान कभी कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था - इस वचनबद्धता के विरुद्ध अतिरिक्त भुगतान का कोई मामला नहीं था कि इसे भविष्य में उलट दिया जा सकता है - प्रभाव - कथित अतिरिक्त भुगतान की छोटी राशि, रिट क्षेत्राधिकार में किस हद तक हस्तक्षेप प्राधिकृत करता है - अभিনিर्धारित हुआ, 2,16,947/- रुपये की अतिरिक्त राशि एकमुश्त भुगतान नहीं की गई थी। बल्कि यह वेतन के अतिरिक्त भुगतान के माध्यम से आवेदक-प्रतिवादी को गलत तरीके से भुगतान किया गया था, जिसका भुगतान महीने-दर-महीने किया गया था - आगे अभিনিर्धारित हुआ, भुगतान की गई कुल राशि बहुत छोटी है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप को प्राधिकृत करने के योग्य नहीं है। (पैरा 6, 17, 18 और 20)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. पंजाब राज्य बनाम मदन सिंह; (1974) 3 एससीसी 90
2. दयाल सिंह बनाम भारत संघ; (2003) 2 एससीसी 593
3. आयकर निरीक्षण निदेशक (जांच) बनाम पूरनमल एंड संस; (1975) 4एससीसी 568

4. पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य बनाम जगदेव सिंह; (2016) 14 एससीसी 267

5. पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) एवं एक अन्य; (2015) 4 एससीसी 334)

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह एवं माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ द्वारा पारित)

1. श्री कृष्णा अग्रवाल, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री एस.के. मिश्रा, आवेदक-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. रिट याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित, मूल आवेदन संख्या 330 के 00079 सन 2015 के इलाहाबाद खंडपीठ, इलाहाबाद, मो. यूनुश बनाम भारत संघ और एक अन्य में पारित अंतिम आदेश, दिनांक 31.03.2017 के विरुद्ध निर्देशित है। उस आदेश के द्वारा, न्यायाधिकरण ने मूल आवेदन को स्वीकृति प्रदान कर दी है और प्रतिवादियों-याचिकाकर्ताओं को आवेदक-प्रतिवादी को 2,16,947/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया जो 31.07.2010 को सेवानिवृत्ति की आयु को प्राप्त करने पर उनकी सेवानिवृत्ति देय के समय काटा गया था।

3. मामले के निर्विवादित तथ्य इस प्रकार हैं - आवेदक-प्रतिवादी पूर्व मध्य रेलवे, मुगलसराय

से जेई-द्वितीय पद पर सेवा से सेवानिवृत्त हुए। उनकी सेवा के दौरान, आवेदक-प्रतिवादी को एक चिकित्सा स्थिति का सामना करना पड़ा, जिसके लिए उन्होंने रेलवे हॉस्पिटल, मुगलसराय में भर्ती होना पड़ा और फिर उच्च चिकित्सा केंद्र के लिए रेफर किया गया। उनके पूर्ण स्वस्थ होने के बाद, उन्हें 29.07.2010 को निचले चिकित्सा श्रेणी सी-1 ग्रेड में श्रेणीबद्ध किया गया, पेंशन की आयु प्राप्त करने से केवल तीन दिन पहले जब उनके पेंशन के दस्तावेज तैयार किये जा रहे थे, तो केंद्रीय रेलवे प्राधिकरण ने पाया कि मासिक रूप से आवेदक-प्रतिवादी को अधिशेष भुगतान किया गया था, जिसका कुल रुपये 2,16,947/- हुआ, और वह काट लिया गया।

4. परेशान होकर, आवेदक-प्रतिवादी पहले विभागीय प्राधिकरण के पास गए, जिसने उनके दावे को खारिज कर दिया। परेशान होकर, निजी-प्रतिवादी ने मूल आवेदन दाखिल किया, जिसके कारण वर्तमान पीटीशन उत्पन्न हुआ। यह सत्य है कि भारत संघ द्वारा काउंटर एफिडेविट दाखिल किया गया था और वहां पर देरी का दावा उठाया गया था। हालांकि, न्यायालय के आदेश के अवलोकन में ऐसा प्रतीत होता है कि सुनवाई के चरण में इसका कोई जिक्र नहीं किया गया। न्यायाधिकरण के आदेश के पैराग्राफ 3 में भारत संघ द्वारा उठायी गयी दलीलें शामिल हैं, जो इस प्रकार हैं:-

*"इसके विपरीत, प्रतिवादी के पक्षकार ने कहा कि दिनांक 07.07.2014 का पत्र एक*

*आपत्तिकृत आदेश नहीं हो सकता क्योंकि यह सूचना है, जिसे आवेदक ने सूचना के अधिकार कानून के माध्यम से प्राप्त किया है, इसी कारण से केवल इस खाते में ही ओ.ए. खारिज करने का हक है। प्रतिवादी के पक्षकार ने कहा कि प्रतिवादी ने चिकित्सा बोर्ड का गठन किया है, जिसने आवेदक को बी-1 और बी-2 श्रेणी में अयोग्य और सी-1 श्रेणी में योग्य और डी.वी/एन वी के साथ योग्य पाया। प्रतिवादी के पक्षकार ने कहा कि आवेदक के खाते में अवकाश शेष नहीं है, इसलिए अवकाश वेतन का सवाल नहीं उठता।"*

5. नतीजतन, न्यायाधिकरण ने देरी के मुद्दे पर विचार नहीं किया है।

6. गुण दोष के आधार पर, न्यायालय ने यह पाया है कि आवेदक-प्रतिवादी को सेवा के दौरान कभी भी कोई कारण बताओ पत्र जारी नहीं किया गया था, जिसका उद्देश्य आवेदक-प्रतिवादी को अधिशेष भुगतान के वापस के लिए रहा हो। हुए हानि को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने मूल आवेदन को स्वीकृति दी और गलत तरीके से काट लिए गए राशि रुपये 2,16,947/- की वापसी का प्रावधान किया है।

7. पक्षों के वकीलों की सुनवाई करने के बाद और रिकॉर्ड को पढ़ने के बाद, हमें इस मामले के तथ्यों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई अच्छा कारण नहीं मिलता है। पहले स्थान पर, जो देरी और लापरवाही का मुद्दा संघ के पास हो सकता है, न्यायाधिकरण के समक्ष उठाया गया, हालांकि बहस के समय पर इसका जिक्र नहीं गया था। जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण ने इस पर विचार नहीं किया है।

8. एक बार जब भारत संघ ने इस तरह से न्यायाधिकरण के समक्ष सीमा के संबंध में आपत्ति को दबाने का अधिकार त्याग दिया था, तो इसे वर्तमान प्रक्रिया में देरी के मुद्दे को पुनः जीवंत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जो न्यायाधिकरण के आदेश की न्यायिक समीक्षा के रूप में उत्पन्न हुई है।

9. पंजाब राज्य बनाम मदन सिंह, (1974) 3 Sसीसी 90 में, जहां, देरी और लापरवाही का मुद्दा उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था, वह मुद्दा सुप्रीम कोर्ट के समक्ष उठाने की अनुमति नहीं दी गई। यह दर्शाया गया :-

"5. राज्य के पक्ष से यह दावा किया गया कि उच्च न्यायालय को राहत नहीं प्रदान करना चाहिए था, क्योंकि याचिकाकर्ता लापरवाह थे और एक लम्बे समय के बाद कोर्ट में आए थे। इस दावे से यह ज्ञात नहीं होता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष यह दावा उठाया गया था। जब

उच्च न्यायालय ने मांगे गए राहत को प्रदान करने में अपने विवेक का प्रयोग किया है, तो हम उसके विवेक में हस्तक्षेप करने के कोई कारण नहीं देखते हैं।"

10. उच्च न्यायालय के रिट अधिकार के संदर्भ में (जहां विलंबित रिट कार्यवाही पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया गया), सुप्रीम कोर्ट ने दयाल सिंह बनाम भारत संघ, (2003) 2 Sसीसी 593, में निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की :-

41. यह प्रस्तावित किया गया कि प्रतिवादी ने एक रिट पिटीशन आठ वर्षों के बाद दाखिल किया, जोकि स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था। मुख्य रूप से देरी का प्रश्न एक ऐसा मामला है जिसे रिट न्यायालय को विचारित करने की आवश्यकता है। एक बार जब रिट न्यायालय ने प्रतिवादियों की ओर से देरी के बावजूद अपना अधिकार प्रयुक्त किया है, तो हम इस स्थिति में केवल इस आधार पर ही उच्च न्यायालय के आदेश को निरस्त नहीं कर सकते

है, खासकर जब हम पाते हैं कि विवादित निर्णय कानूनी दृढ़ता से उचित है।

11. इसके अलावा, हम देखते हैं कि भारत सरकार द्वारा कोई तथ्य प्रस्तावित नहीं किया गया है, इसलिए हम यहां पहुँचते हैं कि न्यायाधिकरण ने देरी के मुद्दे को न देखकर कोई गलती नहीं की है। देरी का कारण किसी भी कानूनी न्यायालय या न्यायाधिकरण के सामने एक न्यायिक प्रक्रिया के खिलाफ उपलब्ध हो सकता है। हालांकि, यहाँ इस उपाय का विरोध करने के लिए एक आपत्ति रहती है। इसे उस पक्ष द्वारा माफ किया जा सकता है जिसके पक्ष में यह स्पष्ट या परोक्ष रूप से काम कर सकता है।

12. यहां तक कि, आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 132(5) के तहत निर्धारित सीमा की कठोर अवधि के संदर्भ में, निदेशक आयकर निरीक्षण (जांच) बनाम पूरन मूल एंड संस, (1975) 4Sसीसी 568, इसे पार्टी/निर्धारिती द्वारा माफ किया हुआ पाया गया यह किसके लाभ के लिए, अन्यथा लागू किया गया। ऐसा देखा गया :-

“10. लेकिन उन सभी सिद्धांतों में से सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि इनकम-टैक्स ऑफिसर के आदेश को स्थापित किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका

पालन करते हुए, जो समझौता पक्षों के बीच हुआ है, वह न्यायालय के स्वीकृति प्राप्त कर चुका है। समय सीमा किसी व्यक्ति के लाभ के लिए है जिसकी संपत्ति जब्त की गई है। उसके लिए इसे छोड़ देने का विकल्प है। हम मानते हैं कि 132(5) में उल्लिखित 90 दिन की समय सीमा एक अपरिवर्तनीय समय सीमा होना, राजस्व से अधिक नागरिक को क्षति पहुँचाने का कारण होगा। इसलिए, यह है, इसलिए, जैसा कि इस मामले में हुआ, पीड़ित व्यक्ति के लिए खुला है, आयकर अधिकारी द्वारा मामले को नए सिरे से निपटाने के लिए सहमत हैं और इस प्रकार परिसीमा की अवधि को माफ कर दिया जाए।”

13. क्योंकि वर्तमान मामले में, सीमा के संदर्भ में आपत्ति का मुद्दा तो न्यायाधिकरण के समक्ष दाखिल जवाबी हलफनामा में उठाया गया था, लेकिन मौखिक सुनवाई के स्थिति में इसका कोई जिक्र नहीं किया गया था, इसलिए इसे आवश्यक अंगीकार के रूप में माना जाता

है। वर्तमान रिट पिटीशन में भी, देरी के कारण का मुद्दा उठाने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई है, हालांकि मौखिक सुनवाई में इस मुद्दे को उठाया गया था, जिसको विचारित नहीं किया गया।

14. इसलिये, हम प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि आवेदक-प्रतिवादी ने न्यायाधिकरण से संपर्क करने में काफी देरी की है।

15. गुणधर्म के बारे में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और अन्य बनाम जगदेव सिंह, (2016) 14 एससीसी 267 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर किसी भी प्रकार का भरोसा नहीं किया जा सकता, जोकि (पूर्व मौजूद स्थिति में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और अन्य बनाम जगदेव सिंह, (2016) 14 Sसीसी 267 से) उस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई भिन्नता, वर्तमान तथ्यों में पूरी तरह से अनुपयोगी है। वह भिन्नता कर्मचारी द्वारा दिये गए अतिरिक्त भुगतान के विवादित चरण पर हुआ था, जो कि पहली बार उसे दिया गया था, यानी जब यह वितरित किया गया था।

16. उस परिपेक्ष्य में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और अन्य बनाम जगदेव सिंह, (2016) 14 Sसीसी 267 में इस तरह कहा गया था:"

*"10. पंजाब और अन्य बनाम रफीक मसीह (हाइट वॉशर)*

*आदि में इस न्यायालय ने यह तय किया कि जबकि नियोक्ता द्वारा गलती से किए गए भुगतानों के कठिनाइयों की स्थिति को पूर्वानुमानित करना संभव नहीं होता है, तो निम्नलिखित स्थितियों में, नियोक्ता द्वारा एक मांग के रूप में पुनर्प्राप्ति करना कानून के अनुसार अनूचित होगा:*

*"(i) श्रेणी-III और श्रेणी-IV सेवा (या गुप 'सी' और गुप 'डी' सेवा) के कर्मचारियों से पुनर्प्राप्ति।*

*(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों से पुनर्प्राप्ति, या उन कर्मचारियों से जो एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं, जिनके खिलाफ पुनर्प्राप्ति के आदेश।*

*(iii) कर्मचारियों से पुनर्प्राप्ति, जब अतिरिक्त भुगतान का आदेश जारी होने से पहले पांच वर्ष से अधिक के लिए किया गया हो।*

*(iv) उन मामलों में पुनर्प्राप्ति, जब किसी कर्मचारी से गलती से उच्च पद के कर्तव्य निर्वहन करने की मांग*

की गई है, और उसे इसी तरह से भुगतान किया गया है, भले ही उसे सही मायने में एक छोटे पद पर कार्य करना चाहिए था।

(वी) किसी अन्य मामले में, जहां न्यायालय निर्णय पर पहुंचती है, कि यदि कर्मचारी से पुनर्प्राप्ति की जाती है, अन्यायपूर्ण या कठोर होगा या इस हद तक मनमानी, जो न्यायसंगत से कहीं अधिक होगा नियोक्ता के पुनर्प्राप्त करने के अधिकार का।"

(बल दिया गया)।

#### 11. उपरोक्त प्रस्ताव (iii)

ऐसी स्थिति जैसे वर्तमान मामले में प्रतिपादित सिद्धांत लागू नहीं हो सकता । वर्तमान मामले में, जिस अधिकारी को पहली बार में भुगतान किया गया, नोटिस में यह स्पष्ट रूप कहा गया था कि कोई भी अधिक मात्रा में किया गया भुगतान वापस किया जाना आवश्यक होगा। इस दौरान अधिकारी ने संशोधित वेतनमान का विकल्प चुनते समय एक शपथपत्र प्रस्तुत किया था। वह शपथपत्र से बंधा हुआ है।"

(बल दिया गया)

17. ऐसी कोई भी राशि जो किसी ऐसे शपथपत्र के खिलाफ अधिशेष रूप में भुगतान किया गया हो - यह भविष्य में वापस लिया जा सकता है, यह प्रायोगिक और /या एक परिस्थिति भविष्य के घटना के आधार पर रूका रह सकता है। इस तरह की स्थिति यहाँ नहीं है।

18. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-याचिककर्ता के अनुसार अतिरिक्त राशि रुपये 2,16,947/- का एक ही बार में नहीं भुगतान किया गया था। बल्कि यह गलती से वेतन के अतिरिक्त भुगतान के रूप में 17.06.2009 से 31.07.2010 तक आवेदक-प्रतिवादी को मासिक रूप से भुगतान किया गया था।

19. उस प्रकार देखा जाता है, इसमें कोई भी याचना या आरोप बिल्कुल नहीं है कि याचिककर्ता, जो अपने चिकित्सा स्थिति से उबर रहा था, ने इस प्रकार की अतिरिक्त भुगतान प्राप्त करने में कोई भी भूमिका निभाई थी। इसलिए, वर्तमान तथ्यों में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अतिरिक्त भुगतान नियोक्ता द्वारा की गई गलती के कारण आवेदक-प्रतिवादी को प्राप्त हुआ था।

20. तब यह भी ध्यान में रखना चाहिए, कर्मचारी इस न्यायालय से किसी भी भुगतान की मांग नहीं कर रहा है। वह राहत न्यायाधिकरण के समक्ष मांगी गयी थी। और यह मंजूर की गयी थी। आवेदक-प्रतिवादी को दिया गया कुल राशि रुपये 2,16,947/- से

अधिक नहीं है। यह बहुत ही छोटी है और इस न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असामान्य प्राधिकृति का प्रयोग करने के लिए किसी प्रवर्तन के पात्र नहीं है। ऐसी कोई कानूनी त्रुटि नहीं दिखाई गई है जिससे न्यायाधिकरण द्वारा की गई हो जिसमें दखल करने की आवश्यकता हो।

21. ऊपर दिए गए कारणों के आधार पर और न्यायाधिकरण के आदेश, कारण तथा कानून के आधार पर होने के कारण, हम अपने प्राधिकृति का प्रयोग करने से इनकार करते हैं।

22. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचना को खारिज किया जाता है। कोई लागत का आदेश नहीं।

-----  
(2023) 9 ILRA 431

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 36773 वर्ष 2011

डॉ. बी.के. गुप्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय, आगरा एवं एक अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री स्वप्निल कुमार

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री मनोज गोस्वामी

ए. किरायेदारी कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - परमादेश - दायरा - क्या डिक्री निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट जारी की जा सकती है - व्याख्या की गई - बेदखली - सरकारी किरायेदार को उ.प्र. शहरी भवन (किरायेदारी, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 20 के अंतर्गत बेदखल करने के लिए मकान मालिक के वाद को एकतरफा डिक्री किया गया - कब्जे की प्रदायगी मांगी गई - आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के अंतर्गत आवेदन खारिज कर दिया गया, जिसकी पुनरीक्षण न्यायालय ने पुष्टि की - राज्य की धारा 47 सीपीसी की आपत्ति भी खारिज कर दी गई, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय तक हुई - प्रभाव - निष्पादन मामले में, कब्जे की रिट जारी की गई थी, जिसके विरुद्ध राज्य की एससीसी पुनरीक्षण भी खारिज कर दी गई थी - विद्वान न्यायाधीश ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि पुलिस कर्मियों ने कब्जे की रिट का पालन करने को अस्वीकार कर दिया है, कब्जा न दिए जाने के कारण याचिकाकर्ता को रिट याचिका दायर करने के लिए बाध्य होना पड़ा - अभिनिर्धारित हुआ कि प्रतिवादी डिक्री को बाधित करने पर तुले हुए हैं और वे इसे तोड़ने के लिए अपने आदेश पर राज्य की क्रूर शक्ति का उपयोग कर रहे हैं - निष्पादन एक डिक्री को लागू करने के लिए एक आत्मनिर्भर और प्रभावी प्रक्रिया है और इसे निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट जारी नहीं की जानी चाहिए - अन्याय को कम करने के लिए एक दुर्लभ स्थिति में, सिविल न्यायालय के



डिक्री को निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट जारी की जा सकती है - जहां अधिकार तो है, लेकिन निवारण का कोई तरीका नहीं है या जो प्रभावी है, वहां परमादेश को सभी गलतियों को सुधारने के लिए रामबाण के रूप में देखा जा सकता है। (पैरा 5, 16, 70, 71, 72, 73, 77, 87, 90 और 96)

बी. भारतीय संविधान - अनुच्छेद 300-ए - संपत्ति का अधिकार - विधि के प्राधिकार के बिना संपत्ति के अधिकार से वंचित करना - राज्य मशीनरी का दुरुपयोग - यह अभिनिर्धारित किया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य या पुलिस अधिकारी, जो राज्य की ओर से वादग्रस्त संपत्ति पर कब्जा कर रहे हैं, प्रथम दृष्टया मालिक नहीं हैं, जैसा कि वे खुद को बताते हैं, और जिसे वे अब तक किसी भी कार्यवाही में सिद्ध या स्थापित नहीं कर पाए हैं। वादग्रस्त संपत्ति पर जबरन कब्जा करके वे जो कर रहे हैं, वह याचिकाकर्ता को संविधान के अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत उसके अधिकार से वंचित करने के समान है। (पैरा 95)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. सचिव, कन्नानोर जिला मुस्लिम एजुकेशनल एसोसिएशन, करिबम बनाम केरल राज्य और अन्य; (2010) 6 एससीसी 373
2. के.सीताराम दास बनाम सिकिले मूसेस और अन्य; 1999 (1) ए.पी.एल.जे. 406

3. कासनी सुब्बम्मा बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार; 1994 (1) ए.पी.एल.जे. 117

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री स्वप्निल कुमार और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ए.के. त्रिवेदी की सहायता से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री नीरज त्रिपाठी को सुना।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत यह रिट याचिका पिछले बारह वर्षों से नियमित रूप से इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करती रही है। जिस लेन-देन के कारण यह रिट याचिका उत्पन्न हुई है, इसमें शामिल कार्रवाई का कारण और याचित अनुतोष, सभी बहुत ही असामान्य और अपरंपरागत हैं; परन्तु बिना किसी अच्छे कारण के नहीं।

3. याचिकाकर्ता, जिसने लघु वाद न्यायालय के न्यायाधीश को निर्देश देते हुए परमादेश जारी करने की प्रार्थना की है कि वह वाद की संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा सौंपना सुनिश्चित करें, जो कि एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में उक्त न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांकित 14.11.1991 की विषय वस्तु है, उन्होंने इस असामान्य तरीके को बिना किसी बहुत ही आश्चर्यजनक स्थिति के नहीं चुना है जिसका वह सामना कर रहे हैं। उसने आगे प्रार्थना की है कि प्रत्यर्थीगण, जिसका स्पष्ट रूप से अर्थ प्रत्यर्थी संख्या 2 उत्तर प्रदेश राज्य है, कलेक्टर, आगरा के माध्यम से, को परमादेश जारी किया जाए, उन्हें याचिकाकर्ता

को 10,000/- रुपये प्रति माह की दर से हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए, जो कि दिनांक 14.11.1991 के आदेश की तिथि से वास्तविक कब्ज़ा दिए जाने की तिथि तक प्रभावी होगा। यह एक रिट याचिका में डिफ़्थी धारक द्वारा मांगी गई एक गलत परामर्शित अनुतोष की तरह लग सकता है, परन्तु इसमें भी कुछ पृष्ठभूमि है, जैसा कि यहां मामले के तथ्यों से पता चलता है।

4. याचिकाकर्ता एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 का वादी है, जो 14 मार्च, 1989 को आगरा के लघु वाद न्यायाधीश के न्यायालय में संस्थित किया गया था। उपरोक्त मुकदमा वर्तमान याचिकाकर्ता के पिता श्री आर.बी.एल. गुप्ता, अधिवक्ता द्वारा संस्थित किया गया था। निष्पादन के चरण में कार्यवाही लंबित रहने के दौरान, वादी-डिफ़्थी धारक, आर.बी.एल. गुप्ता की मृत्यु हो गई और उनके बेटे, याचिकाकर्ता, डॉ. बी.के. गुप्ता को प्रतिस्थापित किया गया। इस प्रकार, सभी उद्देश्यों के लिए, अब मूल वादी, स्वर्गीय आर.बी.एल. गुप्ता के बेटे डॉ. बी.के. गुप्ता को “याचिकाकर्ता” कहा जाएगा।

5. वापस लौटते हुए, जब वाद संस्थित किया गया था, याचिकाकर्ता का मामला यह था कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, खंदारी रोड, हरी पर्वत वाई, आगरा में स्थित नगरपालिका संख्या 6/336 वाली संपत्ति में याचिकाकर्ता की किरायेदार थी, जिसका विवरण वादपत्र में नीचे दिया गया है और वादपत्र के साथ संलग्न मानचित्र में लाल रंग से दिखाया गया है। राज्य सरकार 15 रुपये प्रति माह के मासिक

किराए पर उसकी किरायेदार थी, जो यहां प्रत्यर्थी संख्या 2 है, किरायेदारी प्रत्येक अंग्रेजी कैलेंडर माह की पहली तारीख से शुरू होती है। याचिकाकर्ता द्वारा राज्य सरकार को किराए पर दिया गया उपरोक्त परिसर, एतदपश्चात “वाद संपत्ति” कहा जाएगा। इसमें दो पक्के कमरे थे जिनके बीच में एक दरवाजा था, जो उत्तर में खंदारी रोड की ओर था तथा कथित कमरे के पीछे एक गेट व टिन शेड था, जो कि दक्षिण की ओर से लगा हुआ था। जैसा कि पहले ही कहा गया है, वाद संपत्ति का विस्तृत विवरण वादपत्र के नक्शे में दिया गया है। वाद संपत्ति चारों तरफ से चारदीवारी से घिरी हुई बताई गई है, जो पूर्व में लगभग 10 फीट ऊंची और दक्षिण में 12 फीट ऊंची है।

6. वाद को संस्थित करने वाला याचिकाकर्ता का मामला यह है कि राज्य ने बार-बार अनुरोध के बावजूद 1 मार्च, 1988 से किराया नहीं दिया है। याचिकाकर्ता ने वादपत्र में आगे यह भी कहा कि तत्कालीन थानाध्यक्ष, हरी पर्वत अलबेल सिंह, चौकी इंचार्ज चौकी खंदारी ओमवीर सिंह पुंडीर और आरक्षी वंशराज सिंह और नवाब सिंह ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा की जानकारी में और आपस में साजिश करके, याचिकाकर्ता की सहमति या अनुमति के बिना, वाद संपत्ति की जमीन पर बने कमरों, गेट, टिन शेड और चारदीवारी को पूरी तरह से क्षतिग्रस्त कर दिया और सामग्री का दुरुपयोग किया।

7. यह दावा किया गया है कि राज्य सरकार को उपरोक्त कृत्य की पूर्ण जानकारी थी। याचिकाकर्ता को सूचना मिली कि विवादित

संपत्ति को ध्वस्त किया जा रहा है, तो वह श्री सुरेन्द्र कुमार गुप्ता, एडवोकेट के साथ दिनांक 17.03.1988 को रात लगभग 8.00 बजे मौके पर पहुंचा और पाया कि थानाध्यक्ष, हरी पर्वत, चौकी प्रभारी, खंदारी, कुछ आरक्षीगण के अलावा विवादित संपत्ति पर 15-20 मजदूरों के साथ मौजूद थे, जो मौजूदा इमारत को ध्वस्त कर रहे थे। याचिकाकर्ता ने मौजूद पुलिसकर्मियों से संपत्ति को और क्षति नहीं पहुंचाने के लिए कहा। वहां उपस्थित लोगों ने याचिकाकर्ता को जान से मारने और पुलिस हिरासत में लेने की कथित रूप से धमकी दी। याचिकाकर्ता सुरेन्द्र कुमार गुप्ता, एडवोकेट के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाना हरी पर्वत गए, जहां उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें वहां से चले जाने के लिए कहा गया। इसके पश्चात श्री सुरेन्द्र कुमार गुप्ता ने प्रत्यर्थी को घटना की एक टेलीग्राफी रिपोर्ट भेजी।

8. इसके पश्चात यह तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता की सहमति के बिना अवैध रूप से, अनधिकृत रूप से और बलपूर्वक, मूल परिसर के दक्षिण की ओर खुली भूमि पर एक कमरा और उसके सामने एक बरामदा बनाया, जिसे राज्य सरकार को किराए पर दिया गया था। जिस स्थान पर यह निर्माण किया गया है, वहां कोई निर्माण नहीं था। याचिकाकर्ता के अनुसार, उक्त कृत्य संरचनात्मक परिवर्तन का गठन करता है, जिसके कारण वाद संपत्ति की उपयोगिता और मूल्य में कमी आई है और इसे और भी अधिक विकृत कर दिया है।

9. इन तथ्यों के दृष्टिगत, वादी ने प्रत्यर्थी को एक नोटिस दिया, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य की किरायेदारी निर्धारित की गई और नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर अनधिकृत निर्माण को हटाने के बाद संपत्ति को खाली करने और खाली कब्जे को सौंपने को कहा गया। प्रत्यर्थी को किराए का बकाया भुगतान करने के लिए भी कहा गया। याचिकाकर्ता ने वादपत्र के पैरा संख्या 10 में दिए गए विवरण के अनुसार ध्वस्त किए गए निर्माण की लागत के लिए नोटिस प्राप्त होने की तिथि से 50,000/- रुपये की राशि का हर्जाना भी मांगा। नोटिस में उल्लेख किया गया था कि इसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में "संहिता") की धारा 80 के अंतर्गत भी माना जाए।

10. यह भी कहा गया था कि वादी हर्जाने के लिए अलग से मुकदमा दायर करेगा क्योंकि विद्वान न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय के पास वह अनुतोष प्रदान करने का क्षेत्राधिकार नहीं हो सकता। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 और संहिता की धारा 80 के अंतर्गत संयुक्त नोटिस विधिवत रूप से दिया गया था।

11. इसलिए, याचिकाकर्ता ने वाद में अनुतोष खंड ए, बी और सी में उल्लिखित विवरणों के अनुसार कब्जा सौंपने तक भविष्य के मध्य लाभ सहित बेदखली, किराए के बकाया और मध्य लाभ के लिए वाद संस्थित किया। मुकदमा स्पष्ट रूप से कार्रवाई योग्य चूक और संरचनात्मक परिवर्तन के आधार पर संस्थित किया गया था, जिससे काफी नुकसान हुआ,

जिसके परिणामस्वरूप वाद संपत्ति के मूल्य में हास हुआ तथा वह विरूपित हो गई। इन आधारों पर उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13, 1972) (संक्षेप में, “1972 का अधिनियम”) की धारा 20 के अंतर्गत बेदखली का मामला बनाने के लिए तर्क दिए गए थे।

12. वादपत्र में मूल रूप से मैं प्रत्यर्थीगण की निम्नलिखित श्रृंखला थी-

- (1) कलेक्टर, आगरा को तामील किए जाने वाले उत्तर प्रदेश राज्य के समन।
  - (2) वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा।
  - (3) श्री आर.के. सिंह राठौर, क्षेत्राधिकारी, हरी पर्वत, आगरा के रूप में सेवारत।
  - (4) श्री अलबेल सिंह, थानाध्यक्ष, थाना हरी पर्वत, आगरा के रूप में सेवारत।
  - (5) श्री ओमवीर सिंह पुंडीर, प्रभारी पुलिस चौकी खंदारी, आगरा।
  - (6) श्री वंशराज सिंह
  - (7) श्री नवाब सिंह
- दोनों आरक्षी के रूप में पुलिस चौकी खंदारी, थाना हरी पर्वत आगरा में सेवारत।

13. बाद में, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 को सारणी से हटाने के लिए एक प्रार्थना पत्र दिया, अर्थात् पुलिस अधिकारी, जो मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा कर रहे थे। न्यायालय ने आदेश दिनांकित 08.08.1991 द्वारा प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया। इसलिए, पुलिस अधिकारी, जो मुकदमे में सम्मिलित थे को, याचिकाकर्ता द्वारा किरायेदार के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य

द्वारा कलेक्टर, मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा करने का दावा किया गया था।

14. मुकदमे का समन प्रत्यर्थी अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य को कलेक्टर, आगरा के माध्यम से जारी किया गया था, जो रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 2 के रूप में थे। प्रतिवादी-प्रत्यर्थी संख्या 2 को विधिवत तामील की गई और विचारण न्यायालय ने तामील को पर्याप्त माना। वाद एक पक्षीय रूप से चला, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा वादपत्र कागज सं० 15ग को साबित करने हेतु शपथपत्र दाखिल किया गया। दस्तावेजों की सूची के साथ, नोटिस की एक कार्बन कॉपी, पंजीकृत डाक रसीद और ए.डी. कार्ड की मूल प्रति दाखिल की गई।

15. विचारण न्यायालय ने माना कि एक किरायेदार के विरुद्ध भवन से बेदखली का वाद, चाहे वह सरकारी अधिकारी हो या कोई निजी व्यक्ति, न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय के समक्ष पोषणीय है। उन्होंने शपथपत्र, नोटिस की प्रति, पंजीकृत डाक रसीद और ए.डी. कार्ड का अवलोकन किया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने बेदखली के वाद डिक्री किया, इसके अतिरिक्त 96/- रुपये किराए के बकाया, 75/- रुपये अन्तःकालीन लाभ और 200/- रुपये नोटिस की लागत के रूप में निर्णीत किया। वाद को उपरोक्त शर्तों के अंतर्गत एकपक्षीय रूप से डिक्री किया गया। यह भी निर्णीत किया गया कि वादी निष्पादन विभाग में आवश्यक न्यायालय शुल्क जमा करने पर 15/- रुपये प्रति माह की दर से वाद के लंबित रहने तथा भविष्य के अन्तःकालीन लाभ को वसूलने का

हकदार होगा। यह डिक्री दिनांक 14.11.1991 को पारित की गई थी।

16. उपरोक्त डिक्री के आधार पर, दिनांक 06.12.1999 को न्यायाधीश, लघु वाद के न्यायालय में निष्पादन वाद संख्या 20/1999 संस्थित किया गया था। निष्पादन न्यायालय द्वारा अमीन को कब्जे की रिट जारी की गई थी, जिसमें उसे याचिकाकर्ता को विवादित संपत्ति का कब्जा दिलाने हेतु आदेशित किया गया था। रिट के निष्पादन हेतु अमीन विवादित संपत्ति पर गया, जहाँ उसे, याचिकाकर्ता के अनुसार, एक पुलिस अधिकारी मिला, जिसे न्यायालय के डिक्री के बारे में बताया गया तथा विवादित संपत्ति को खाली करने के लिए कहा गया। उपस्थित पुलिस अधिकारी ने “पुलिस के डी.आई.जी. से निर्देश आने तक” खाली करने और कब्जा सौंपने से इनकार कर दिया। कोर्ट अमीन ने दिनांक 20.12.2010 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें न्यायालय को सूचित किया गया कि वह विवादित संपत्ति पर कब्जा सौंपने के लिए गया था तथा वहां पुलिस अधिकारी को इसे खाली करने के लिए सूचित किया था, परन्तु पुलिसकर्मी ने कहा कि जब तक डी.आई.जी. उसे ऐसा करने का निर्देश नहीं देते, वह कब्जा नहीं देगा।

17. याचिकाकर्ता के अनुसार, निष्पादन न्यायालय ने अमीन की रिपोर्ट दिनांकित 20.12.2010 पर विचार किया तथा दिनांक 09.03.2011 को पुनः कब्जे की रिट जारी की। न्यायालय ने अमीन को सक्षम अधिकारियों से संपर्क करके विवादित संपत्ति को खाली करवाने

का निर्देश दिया। निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 इस प्रकार है:-

“दिनांक- 09-03-2011

वाद पुकारा गया। डिक्रीदार मय विद्वान अधिवक्ता हाजिर है। विपक्षी की तरफ से कोई हाजिर नहीं है। पूर्व में दखल परवाना जारी किया गया था। अमीन की आख्या दिनांकित 20.12.2010 पत्रावली पर उपलब्ध है। जिसके अनुसार अमीन ने न्यायालय द्वारा प्रश्नगत भवन में मौजूद पुलिस कर्मचारियों को न्यायालय के आदेश से अवगत कराते हुए पुलिस चौकी भवन को खाली करके कब्जा व दखल डिक्रीदार को देने के लिए कहा तो उन्होंने कब्जा - दखल देने से इंकार कर दिया। अतः पुनः परवाना दखल जारी हो। अमीन इस सम्मन्ध में सक्षम अधिकारियों से सम्पर्क कर दखल की कार्यवाही सम्पन्न करें। आख्या दिनांक 22.03.2011 को पेश हो।”

ह0/ अ0

लघुवाद न्यायाधीश,  
आगरा।”

18. डी.आई.जी. पुलिस और कलेक्टर, आगरा को सूचित करने के पश्चात अमीन दिनांक 15.03.2011 को कब्जे की रिट निष्पादित करने हेतु पुनः वाद संपत्ति पर गया। हालांकि, वहां मौजूद पुलिसकर्मी ने परिसर खाली करने से इनकार कर दिया क्योंकि उन्हें डी.आई.जी. या कलेक्टर, आगरा से कोई आदेश नहीं प्राप्त हुआ था। इन तथ्यों से विद्वान न्यायाधीश को अवगत कराते हुए अमीन द्वारा निष्पादन

न्यायालय के समक्ष पुनः रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। उक्त रिपोर्ट की एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में अभिलेखों पर है। अमीन द्वारा उपरोक्त रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात, निष्पादन न्यायालय ने दिनांक 26.03.2011 को निर्देश दिया कि कलेक्टर, आगरा को वाद संपत्ति खाली करने के लिए एक पत्र जारी किया जाए। न्यायालय के आदेश के अनुपालन में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक एवं डी.आई.जी. आगरा रेंज, आगरा को संबंधित एक पत्र दिनांकित 02.04.2011 न्यायालय द्वारा भेजा गया जिसमें दोनों अधिकारियों से अनुरोध किया गया कि एस.सी.सी. वाद में पारित डिक्री दिनांकित 14.11.1991 के निष्पादन में, वाद संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा, इसके विवरण का उल्लेख करते हुए, एक सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ता को सौंप दिया जाए और न्यायालय में एक अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए। न्यायालय द्वारा जारी किए गए उपरोक्त अर्ध-सरकारी पत्र के बावजूद, राज्य या कब्जाधारी पुलिस अधिकारियों द्वारा डिक्री का निष्पादन नहीं किया गया और न ही याचिकाकर्ता को कब्जा सौंपा गया।

19. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि डिक्री दिनांकित 14.11.1991 अंतिम है और इसके निष्पादन में कोई विधिक बाधा नहीं है, परन्तु पुलिस अवैध रूप से वाद संपत्ति पर कब्जा कर रही है। याचिकाकर्ता की ओर से यह भी अनुरोध किया गया है कि न्यायालय के डिक्री को दरकिनार करने के लिए, राज्य और पुलिस अधिकारियों ने अवैध तरीके से डिक्री के निष्पादन का विरोध किया है। यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस

कृत्य की यह कहते हुए निंदा की है कि डिक्रीधारक को डिक्री का फल मिलना चाहिए।

20. रिट याचिका के पैरा 18 में दावा किया गया है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री निष्पादित करने में असमर्थ है क्योंकि वाद संपत्ति पुलिस के कब्जे में है। याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उसे वाद संपत्ति पर कब्जा नहीं दिया गया है और 1 मार्च, 1988 से उसे कोई किराया नहीं दिया जा रहा है, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 2 और पुलिस अधिकारी, जो उक्त प्रत्यर्थी की ओर से वाद संपत्ति पर कब्जाधारी हैं, ने कानून को अपने हाथ में ले लिया है और डिक्री के निष्पादन में बाधा उत्पन्न की है। यह अनुरोध किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के छल के कारण याचिकाकर्ता अपने पक्ष में डिक्री होने के बावजूद वाद संपत्ति पर कब्जा हासिल नहीं कर पाया है। याचिकाकर्ता का कहना है कि संविधान के अनुच्छेद 21 और 300-ए के अंतर्गत यह उसके अधिकार का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया है कि प्रत्यर्थी के अवैध कब्जे को जारी रखने के कारण, वह अपनी संपत्ति के लाभ से वंचित होकर नुकसान उठा रहा है। विवादित संपत्ति का क्षेत्रफल कथित रूप से काफी बड़ा है और अगर इसे किराए पर दिया जाए तो इससे 10,000 रुपये प्रति माह किराया मिलेगा। इसलिए, निष्पादन न्यायालय द्वारा अपनी स्वयं की डिक्री को निष्पादित करने में असहाय हो जाने के कारण याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का सहारा लिया है। मूलतः याचिकाकर्ता, राज्य सरकार द्वारा कलेक्टर

तथा प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से विवादित संपत्ति पर कब्जा करने वाले पुलिस प्राधिकारियों को निर्देश जारी कराना चाहता है कि वे न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय, आगरा द्वारा पारित डिक्री दिनांकित 14.11.1991 के अनुपालन में संपत्ति खाली कर दें, जिसे वह न्यायालय निष्पादित करने में असमर्थ है, क्योंकि राज्य की ओर से वाद संपत्ति पर कब्जा कर पुलिस प्राधिकारियों ने सार्वजनिक पद का खुलेआम दुरुपयोग किया है।

21. जैसा कि इस न्यायालय ने पूर्व में कहा है कि इस याचिका में याचित अनुतोष बहुत ही असामान्य है तथा उतने ही असामान्य इसके लिए आवश्यक परिस्थितियां भी हैं। जब यह याचिका प्रथम बार दिनांक 08.07.2011 को न्यायालय के समक्ष आई, तो प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया। जब मामला अगली बार न्यायालय के समक्ष आया, तो दिनांक 01.08.2011 थी और मेरे आदरणीय भ्राता शशि कांत गुप्ता द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

“यह रिट याचिका प्रत्यर्थी संख्या 1 न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा को परमादेश की प्रकृति में निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है, जो एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा पारित बेदखली डिक्री दिनांकित 14.11.1991 के अनुसरण में संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा सौंपना सुनिश्चित करने के लिए है। आगे प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थीगण को आदेश की तिथि अर्थात् दिनांक

14.11.1991 से विवादित परिसर को खाली करने की वास्तविक तिथि तक 10,000/- रुपये प्रति माह की दर से हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि याचिकाकर्ता के पिता ने जे.एस.सी.सी. आगरा के न्यायालय में किराए और बेदखली के लिए एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया था क्योंकि दिनांक 01.03.1988 से किराया नहीं दिया गया था और साथ ही प्रत्यर्थीगण द्वारा बिना अनुमति के कुछ अवैध निर्माण किया गया था। विवादित परिसर में पुलिस चौकी चलाई जा रही है। उक्त मुकदमे को अतिरिक्त जे.एस.सी.सी. आगरा ने आदेश दिनांकित 14.11.1991 द्वारा डिक्री किया था। उक्त आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, इस प्रकार, आदेश दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गया। इसके पश्चात्, डिक्री के निष्पादन के लिए निष्पादन वाद संख्या 20/1999 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा सौंपने के लिए निष्पादन न्यायालय द्वारा अमीन को कब्जे की रिट जारी की गई थी। कब्जे की रिट के अनुसरण में अमीन कब्जा सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया, जहां उसने पुलिस अधिकारियों से मुलाकात की और उन्हें निष्पादन न्यायालय के आदेश के बारे में बताया और उनसे परिसर खाली करने का

अनुरोध किया परन्तु उन्होंने डी.आई.जी. पुलिस से निर्देश आने तक खाली करने और कब्जा देने से इनकार कर दिया।

न्यायालय अमीन ने निष्पादन न्यायालय के समक्ष दिनांक 20.12.2010 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें सूचित किया कि जब वह विवादित परिसर का कब्जा याचिकाकर्ता को सौंपने गया और पुलिस अधिकारियों को विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने के लिए सूचित किया तो उन्होंने विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने से इनकार कर दिया।

अमीन की रिपोर्ट पर विचार करते हुए निष्पादन न्यायालय ने 09.03.2011 को पुनः कब्जे का रिट जारी किया तथा अमीन को निर्देश दिया कि वह उचित प्राधिकारियों से संपर्क कर परिसर को खाली करवाए। सुलभ संदर्भ हेतु, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 नीचे उद्धृत किया गया है:-

“दिनांक- 09-03-2011

वाद पुकारा गया। डिक्रीदार मय विद्वान अधिवक्ता हाजिर है। विपक्षी की तरफ से कोई हाजिर नहीं है। पूर्व में दखल परवाना जारी किया गया था। अमीन की आख्या दिनांकित 20.12.2010 पत्रावली पर उपलब्ध है। जिसके अनुसार अमीन ने न्यायालय द्वारा प्रश्नगत भवन में मौजूद पुलिस कर्मचारियों को न्यायालय के आदेश से अवगत कराते हुए पुलिस चौकी भवन को खाली करके कब्जा व दखल डिक्रीदार को देने के लिए कहा तो

उन्होंने कब्जा - दखल देने से इंकार कर दिया। अतः पुनः परवाना दखल जारी हो। अमीन इस सम्मन्ध में सक्षम अधिकारियों से सम्पर्क कर दखल की कार्यवाही सम्पन्न करें। आख्या दिनांक 22.03.2011 को पेश हो।”

ह0/ अ0

लघुवाद न्यायाधीश,  
आगरा।”

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि डी.आई.जी. पुलिस एवं कलेक्टर, आगरा को सूचित करने के पश्चात दिनांक 25.03.2011 को याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया। हालांकि, पुनः पुलिस अधिकारियों ने इस बहाने से परिसर खाली करने से इनकार कर दिया कि उन्हें डी.आई.जी. या कलेक्टर, आगरा से कोई आदेश नहीं मिला है। उपरोक्त तथ्य के बारे में जानकारी देते हुए अमीन द्वारा दिनांक 25.03.2011 को पुनः निष्पादन न्यायालय के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

यह आगे कहा गया है कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता को विवादित संपत्ति का कब्जा नहीं सौंपा गया है तथा उसे अनावश्यक रूप से परेशान किया जा रहा है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा संबंधित अधिकारियों को एक उचित निर्देश जारी किया जाना आवश्यक है।

अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि बेदखली की डिक्री दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गई है, ऐसे में डिक्री



के वास्तविक अर्थ में क्रियान्वयन में कोई विधिक बाधा नहीं है, परन्तु चूंकि विवादित परिसर पुलिस चौकी के प्रयोजनार्थ पुलिस के कब्जे में है, इसलिए याचिकाकर्ता परिसर का कब्जा प्राप्त करने में असमर्थ है।

इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 08.07.2011 द्वारा प्रत्यर्थीगण को प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया था, परन्तु आज तक न तो प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है और न ही विवादित परिसर खाली कराया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत मामले को दिनांक 23 अगस्त, 2011 के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

उक्त दिनांक अर्थात् 23.08.2011 को जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. (आगरा) इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर यह स्पष्ट करेंगे कि अवर न्यायालय द्वारा डिक्री पारित होने के बावजूद खदरी रोड, हरी पर्वत वार्ड, आगरा में स्थित उक्त परिसर संख्या 6/336 को खाली क्यों नहीं कराया गया है।

इस आदेश की प्रमाणित प्रति विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आर.के. सिंह को निःशुल्क दी जाए।

कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की सूचना जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा को तत्काल दी जाए।”

22. दिनांक 06.09.2011 को जब मामला पुनः माननीय न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत हुआ, तो निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

“इस न्यायालय ने दिनांक 01.08.2011 और 23.08.2011 के आदेशों द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किए थे:-

#### **01.08.2011**

“यह रिट याचिका प्रत्यर्थी संख्या 1 न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा को परमादेश की प्रकृति में निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है, जो एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा पारित बेदखली डिक्री दिनांकित 14.11.1991 के अनुसरण में संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा सौंपना सुनिश्चित करने के लिए है। आगे प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थीगण को आदेश की तिथि अर्थात् दिनांक 14.11.1991 से विवादित परिसर को खाली करने की वास्तविक तिथि तक 10,000/- रुपये प्रति माह की दर से हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि याचिकाकर्ता के पिता ने जे.एस.सी.सी. आगरा के न्यायालय में किराए और बेदखली के लिए एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया था क्योंकि दिनांक 01.03.1988 से किराया नहीं दिया गया था और साथ ही प्रत्यर्थीगण द्वारा बिना अनुमति के कुछ अवैध निर्माण किया गया था। विवादित परिसर में पुलिस चौकी चलाई जा रही है। उक्त मुकदमे को अतिरिक्त जे.एस.सी.सी. आगरा ने

आदेश दिनांकित 14.11.1991 द्वारा डिक्री किया था। उक्त आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, इस प्रकार, आदेश दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गया। इसके पश्चात, डिक्री के निष्पादन के लिए निष्पादन वाद संख्या 20/1999 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा सौंपने के लिए निष्पादन न्यायालय द्वारा अमीन को कब्जे की रिट जारी की गई थी। कब्जे की रिट के अनुसरण में अमीन कब्जा सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया, जहां उसने पुलिस अधिकारियों से मुलाकात की और उन्हें निष्पादन न्यायालय के आदेश के बारे में बताया और उनसे परिसर खाली करने का अनुरोध किया परन्तु उन्होंने डी.आई.जी. पुलिस से निर्देश आने तक खाली करने और कब्जा देने से इनकार कर दिया।

न्यायालय अमीन ने निष्पादन न्यायालय के समक्ष दिनांक 20.12.2010 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें सूचित किया कि जब वह विवादित परिसर का कब्जा याचिकाकर्ता को सौंपने गया और पुलिस अधिकारियों को विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने के लिए सूचित किया तो उन्होंने विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने से इनकार कर दिया।

अमीन की रिपोर्ट पर विचार करते हुए निष्पादन न्यायालय ने 09.03.2011 को पुनः कब्जे का रिट जारी किया तथा अमीन को निर्देश दिया कि वह उचित प्राधिकारियों से संपर्क कर परिसर को खाली करवाए। सुलभ संदर्भ हेतु, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 नीचे उद्धृत किया गया है:-

“दिनांक- 09-03-2011

वाद पुकारा गया। डिक्रीदार मय विद्वान अधिवक्ता हाजिर है। विपक्षी की तरफ से कोई हाजिर नहीं है। पूर्व में दखल परवाना जारी किया गया था। अमीन की आख्या दिनांकित 20.12.2010 पत्रावली पर उपलब्ध है। जिसके अनुसार अमीन ने न्यायालय द्वारा प्रश्नगत भवन में मौजूद पुलिस कर्मचारियों को न्यायालय के आदेश से अवगत कराते हुए पुलिस चौकी भवन को खाली करके कब्जा व दखल डिक्रीदार को देने के लिए कहा तो उन्होंने कब्जा - दखल देने से इंकार कर दिया। अतः पुनः परवाना दखल जारी हो। अमीन इस सम्मन्ध में सक्षम अधिकारियों से सम्पर्क कर दखल की कार्यवाही सम्पन्न करें। आख्या दिनांक 22.03.2011 को पेश हो।”

ह0/ अ0

लघुवाद न्यायाधीश,  
आगरा।”

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि डी.आई.जी. पुलिस एवं कलेक्टर, आगरा को सूचित करने के पश्चात दिनांक 25.03.2011 को याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा

सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया। हालांकि, पुनः पुलिस अधिकारियों ने इस बहाने से परिसर खाली करने से इनकार कर दिया कि उन्हें डी.आई.जी. या कलेक्टर, आगरा से कोई आदेश नहीं मिला है। उपरोक्त तथ्य के बारे में जानकारी देते हुए अमीन द्वारा दिनांक 25.03.2011 को पुनः निष्पादन न्यायालय के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

यह आगे कहा गया है कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता को विवादित संपत्ति का कब्जा नहीं सौंपा गया है तथा उसे अनावश्यक रूप से परेशान किया जा रहा है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा संबंधित अधिकारियों को एक उचित निर्देश जारी किया जाना आवश्यक है।

अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि बेदखली की डिक्री दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गई है, ऐसे में डिक्री के वास्तविक अर्थ में क्रियान्वयन में कोई विधिक बाधा नहीं है, परन्तु चूंकि विवादित परिसर पुलिस चौकी के प्रयोजनार्थ पुलिस के कब्जे में है, इसलिए याचिकाकर्ता परिसर का कब्जा प्राप्त करने में असमर्थ है।

इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 08.07.2011 द्वारा प्रत्यर्थीगण को प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया था, परन्तु आज तक न तो प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है और न ही विवादित परिसर खाली कराया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत मामले को दिनांक 23 अगस्त, 2011 के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

उक्त दिनांक अर्थात् 23.08.2011 को जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. (आगरा) इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर यह स्पष्ट करेंगे कि अवर न्यायालय द्वारा डिक्री पारित होने के बावजूद खदरी रोड, हरी पर्वत वार्ड, आगरा में स्थित उक्त परिसर संख्या 6/336 को खाली क्यों नहीं कराया गया है।

इस आदेश की प्रमाणित प्रति विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आर.के. सिंह को निःशुल्क दी जाए।

कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की सूचना जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा को तत्काल दी जाए।”

### **23.08.2011**

जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा की ओर से आज छूट हेतु प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया है, जिसमें कथन किया गया है कि 22 अगस्त, 2011 को जन्माष्टमी के त्यौहार के कारण, 22/23 की रात को तनावपूर्ण शांति व्यवस्था की स्थिति के कारण मुख्यालय छोड़ना संभव नहीं है क्योंकि भगवान कृष्ण के जन्म स्थान आगरा और मथुरा के बीच विभिन्न मंदिरों और मेलों में तीर्थयात्रियों की भारी आवाजाही है। यह अनुरोध किया गया कि उपरोक्त अधिकारियों की व्यक्तिगत

उपस्थिति को इस न्यायालय द्वारा आज के लिए छूट प्रदान की जाए।

दर्शित कारण पर्याप्त है। उपरोक्त अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति को आज के लिए छूट दी जाती है। छूट प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।

मामले को दिनांक 6 सितंबर, 2011 को अनिवार्य रूप से सूचीबद्ध किया जाए।

उक्त तिथि अर्थात् 6 सितंबर, 2011 को जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर यह स्पष्ट करेंगे कि खदरी रोड, हरी पर्वत वार्ड, आगरा में स्थित विवादित परिसर संख्या 6/336 (जिसमें पुलिस चौकी स्थापित है) को नवंबर, 1991 में अवर न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के बावजूद खाली क्यों नहीं किया गया है और तब से लगभग 20 वर्ष बीत चुके हैं।

यह आदेश इस न्यायालय द्वारा विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जाफर नैयर की उपस्थिति में पारित किया गया है।

कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की सूचना जिलाधिकारी, आगरा तथा डी.आई.जी. आगरा को तत्काल दी जाए।”

उपरोक्त आदेश के अनुपालन में श्री असीम अरुण, पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा तथा श्री अजय चौहान, जिलाधिकारी, आगरा न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं तथा तीन

पूरक शपथपत्र दाखिल किए गए हैं, जिनमें से दो उनकी ओर से तथा एक श्री असीम चौधरी, क्षेत्राधिकारी हरी पर्वत, आगरा की ओर से दाखिल किया गया है, जिन्हें अभिलेख पर लिया गया है। उक्त पूरक शपथपत्र के अतिरिक्त जिलाधिकारी, आगरा की ओर से एक शपथपत्र तथा एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र भी दाखिल किया गया है, जो अभिलेख पर है।

जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की है, उक्त शपथपत्रों तथा पूरक प्रति-शपथपत्र में किए गए कथनों का जवाब दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय प्रदान किया जाता है।

मामले को अगली सुनवाई हेतु दिनांक 13.10.2011 को सूचीबद्ध किया जाए।

जिलाधिकारी, आगरा, जो आज उपस्थित हैं, उस तिथि को व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे। तथापि, इस न्यायालय के अगले आदेश तक, डी.आई.जी., आगरा, जो आज उपस्थित हैं, को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट प्राप्त रहेगी।”

23. दिनांक 13.10.2011 को मामला पुनः माननीय न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत हुआ, जब निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

“इस न्यायालय ने दिनांक 01.08.2011 और 23.08.2011 के आदेशों द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किए थे:-

**01.08.2011**

“यह रिट याचिका प्रत्यर्थी संख्या 1 न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा को परमादेश की प्रकृति में निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है, जो एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा पारित बेदखली डिक्री दिनांकित 14.11.1991 के अनुसरण में संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा सौंपना सुनिश्चित करने के लिए है। आगे प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थीगण को आदेश की तिथि अर्थात् दिनांक 14.11.1991 से विवादित परिसर को खाली करने की वास्तविक तिथि तक 10,000/- रुपये प्रति माह की दर से हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि याचिकाकर्ता के पिता ने जे.एस.सी.सी. आगरा के न्यायालय में किराए और बेदखली के लिए एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया था क्योंकि दिनांक 01.03.1988 से किराया नहीं दिया गया था और साथ ही प्रत्यर्थीगण द्वारा बिना अनुमति के कुछ अवैध निर्माण किया गया था। विवादित परिसर में पुलिस चौकी चलाई जा रही है। उक्त मुकदमे को अतिरिक्त जे.एस.सी.सी. आगरा ने आदेश दिनांकित 14.11.1991 द्वारा डिक्री किया था। उक्त आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, इस प्रकार, आदेश दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गया। इसके पश्चात्, डिक्री के निष्पादन के लिए निष्पादन वाद संख्या 20/1999 (आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा सौंपने के लिए निष्पादन न्यायालय द्वारा अमीन को कब्जे की रिट जारी की गई थी। कब्जे की रिट के अनुसरण में अमीन कब्जा सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया, जहां उसने पुलिस अधिकारियों से मुलाकात की और उन्हें निष्पादन न्यायालय के आदेश के बारे में बताया और उनसे परिसर खाली करने का अनुरोध किया परन्तु उन्होंने डी.आई.जी. पुलिस से निर्देश आने तक खाली करने और कब्जा देने से इनकार कर दिया।

न्यायालय अमीन ने निष्पादन न्यायालय के समक्ष दिनांक 20.12.2010 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें सूचित किया कि जब वह विवादित परिसर का कब्जा याचिकाकर्ता को सौंपने गया और पुलिस अधिकारियों को विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने के लिए सूचित किया तो उन्होंने विवादित परिसर (पुलिस चौकी) खाली करने से इनकार कर दिया।

अमीन की रिपोर्ट पर विचार करते हुए निष्पादन न्यायालय ने 09.03.2011 को पुनः कब्जे का रिट जारी किया तथा अमीन को निर्देश दिया कि वह उचित प्राधिकारियों से संपर्क कर परिसर को खाली करवाए। सुलभ संदर्भ हेतु, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 नीचे उद्धृत किया गया है:-

“दिनांक- 09-03-2011

वाद पुकारा गया। डिक्रीदार मय विद्वान अधिवक्ता हाजिर हैं। विपक्षी की तरफ से कोई हाजिर नहीं है। पूर्व में दखल परवाना जारी किया गया था। अमीन की आख्या दिनांकित 20.12.2010 पत्रावली पर उपलब्ध है। जिसके अनुसार अमीन ने न्यायालय द्वारा प्रश्नगत भवन में मौजूद पुलिस कर्मचारियों को न्यायालय के आदेश से अवगत कराते हुए पुलिस चौकी भवन को खाली करके कब्जा व दखल डिक्रीदार को देने के लिए कहा तो उन्होंने कब्जा - दखल देने से इंकार कर दिया। अतः पुनः परवाना दखल जारी हो। अमीन इस सम्बन्ध में सक्षम अधिकारियों से सम्पर्क कर दखल की कार्यवाही सम्पन्न करें। आख्या दिनांक 22.03.2011 को पेश हो।”

ह0/ अ0

लघुवाद न्यायाधीश,  
आगरा।”

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया कि डी.आई.जी. पुलिस एवं कलेक्टर, आगरा को सूचित करने के पश्चात दिनांक 25.03.2011 को याचिकाकर्ता डिक्री धारक को परिसर का कब्जा सौंपने के लिए विवादित परिसर में गया। हालांकि, पुनः पुलिस अधिकारियों ने इस बहाने से परिसर खाली करने से इनकार कर दिया कि उन्हें डी.आई.जी. या कलेक्टर, आगरा से कोई आदेश नहीं मिला है। उपरोक्त तथ्य के बारे में जानकारी देते हुए अमीन द्वारा दिनांक 25.03.2011 को पुनः निष्पादन न्यायालय के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

यह आगे कहा गया है कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता को विवादित संपत्ति का कब्जा नहीं सौंपा गया है तथा उसे अनावश्यक रूप से परेशान किया जा रहा है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा संबंधित अधिकारियों को एक उचित निर्देश जारी किया जाना आवश्यक है।

अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि बेदखली की डिक्री दिनांकित 14.11.1991 अंतिम हो गई है, ऐसे में डिक्री के वास्तविक अर्थ में क्रियान्वयन में कोई विधिक बाधा नहीं है, परन्तु चूंकि विवादित परिसर पुलिस चौकी के प्रयोजनार्थ पुलिस के कब्जे में है, इसलिए याचिकाकर्ता परिसर का कब्जा प्राप्त करने में असमर्थ है।

इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 08.07.2011 द्वारा प्रत्यर्थीगण को प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया था, परन्तु आज तक न तो प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है और न ही विवादित परिसर खाली कराया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत मामले को दिनांक 23 अगस्त, 2011 के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

उक्त दिनांक अर्थात् 23.08.2011 को जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. (आगरा) इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर यह स्पष्ट करेंगे कि अवर न्यायालय द्वारा डिक्री पारित होने के बावजूद खदरी रोड, हरी पर्वत वार्ड, आगरा में स्थित

उक्त परिसर संख्या 6/336 को खाली क्यों नहीं कराया गया है।

इस आदेश की प्रमाणित प्रति विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आर.के. सिंह को निःशुल्क दी जाए।

कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की सूचना जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा को तत्काल दी जाए।”

### **23.08.2011**

जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा की ओर से आज छूट हेतु प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया है, जिसमें कथन किया गया है कि 22 अगस्त, 2011 को जन्माष्टमी के त्यौहार के कारण, 22/23 की रात को तनावपूर्ण शांति व्यवस्था की स्थिति के कारण मुख्यालय छोड़ना संभव नहीं है क्योंकि भगवान कृष्ण के जन्म स्थान आगरा और मथुरा के बीच विभिन्न मंदिरों और मेलों में तीर्थयात्रियों की भारी आवाजाही है। यह अनुरोध किया गया कि उपरोक्त अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति को इस न्यायालय द्वारा आज के लिए छूट प्रदान की जाए।

दर्शित कारण पर्याप्त है। उपरोक्त अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति को आज के लिए छूट दी जाती है। छूट प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।

मामले को दिनांक 6 सितंबर, 2011 को अनिवार्य रूप से सूचीबद्ध किया जाए।

उक्त तिथि अर्थात् 6 सितंबर, 2011 को जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी. आगरा इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर यह स्पष्ट करेंगे कि खदरी रोड, हरी पर्वत वार्ड, आगरा में स्थित विवादित परिसर संख्या 6/336 (जिसमें पुलिस चौकी स्थापित है) को नवंबर, 1991 में अवर न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के बावजूद खाली क्यों नहीं किया गया है और तब से लगभग 20 वर्ष बीत चुके हैं।

यह आदेश इस न्यायालय द्वारा विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जाफर नैयर की उपस्थिति में पारित किया गया है।

कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की सूचना जिलाधिकारी, आगरा तथा डी.आई.जी. आगरा को तत्काल दी जाए।”

उपरोक्त आदेश के अनुपालन में श्री असीम अरुण, पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा तथा श्री अजय चौहान, जिलाधिकारी, आगरा न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं तथा तीन पूरक शपथपत्र दाखिल किए गए हैं, जिनमें से दो उनकी ओर से तथा एक श्री असीम चौधरी, क्षेत्राधिकारी हरी पर्वत, आगरा की ओर से दाखिल किया गया है, जिन्हें अभिलेख पर लिया गया है। उक्त पूरक शपथपत्र के अतिरिक्त जिलाधिकारी, आगरा की ओर से एक शपथपत्र तथा एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र भी दाखिल किया गया है, जो अभिलेख पर है।

जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की है, उक्त शपथपत्रों

तथा पूरक प्रति-शपथपत्र में किए गए कथनों का जवाब दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय प्रदान किया जाता है।

मामले को अगली सुनवाई हेतु दिनांक 13.10.2011 को सूचीबद्ध किया जाए।

जिलाधिकारी, आगरा, जो आज उपस्थित हैं, उस तिथि को व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे। तथापि, इस न्यायालय के अगले आदेश तक, डी.आई.जी., आगरा, जो आज उपस्थित हैं, को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट प्राप्त रहेगी।”

आज श्री अजय चौहान, जिलाधिकारी, आगरा द्वारा शपथ पत्र से समर्थित एक छूट प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि दिनांक 12.10.2010 को गवर्नर हाउस, लखनऊ से माननीय राज्यपाल की आगरा यात्रा के संबंध में एक फैक्स संदेश प्राप्त हुआ था और चूंकि दिनांक 13.10.2011 एवं 14.10.2011 को माननीय राज्यपाल की यात्रा के दौरान शपथकर्ता की उपस्थिति अत्यंत आवश्यक है, इसलिए वह आज इस न्यायालय में उपस्थित होने में असमर्थ हैं।

दर्शित कारण पर्याप्त है। छूट प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है। उक्त अधिकारी की व्यक्तिगत उपस्थिति को आज छूट प्रदान की जाती है।

आज प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से एक दूसरा पूरक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि

निष्पादन कार्यवाही में आदेश 11 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत डिक्री को अपास्त करने हेतु एक बहाली प्रार्थना पत्र और साथ ही धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आपति दाखिल की गई है तथा वाद में दिनांक 18.10.2011 की तिथि अवर न्यायालय के समक्ष निश्चित की गई है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अवर न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा निष्पादन कार्यवाही में धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दाखिल उपरोक्त आपतियों का निपटारा, यदि संभव हो तो, निर्धारित तिथि अर्थात् 18.10.2011 को करे। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण ने कथन किया कि वे उस तिथि को अवर न्यायालय के समक्ष कोई स्थगन नहीं मांगेंगे। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और विधिनुसार उचित आदेश पारित करना संबंधित न्यायालय के लिए स्वतंत्र होगा।

मामले को दिनांक 03.11.2011 को सूचीबद्ध करें। उक्त तिथि को जिलाधिकारी, आगरा इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेंगे।”

24. दिनांक 03.11.2011 को, मामले को दिनांक 22.11.2011 तक के लिए स्थगित कर, न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-



“आज, प्रत्यर्थी सं० 2 ने तीसरा पूरक प्रति शपथपत्र दाखिल किया है, जो अभिलेख पर लिया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि मामले की सुनवाई के लिए कल विचारण न्यायालय में निष्पादन मामले की सुनवाई तय की गई है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अवर न्यायालय को आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से निश्चित रूप से 10 दिनों के भीतर डिक्री के निष्पादन के विरुद्ध दायर प्रत्यर्थी संख्या 2 की आपति का निस्तारण करने का निर्देश दिया जाता है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता मामले में कोई स्थगन नहीं मांगने का वचन देते हैं।

इस बीच याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आज दायर तीसरे पूरक प्रति-शपथपत्र पर पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र भी दाखिल कर सकते हैं।

मामले को दिनांक 22.11.2011 को सूचीबद्ध करें। उक्त तिथि पर, प्रत्यर्थी संख्या 2, जिलाधिकारी, आगरा इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे।”

25. ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 22.11.2011 को जिलाधिकारी पुनः उपस्थित नहीं हुए और उन्होंने छूट हेतु प्रार्थना पत्र दिया, जिसे स्वीकार कर लिया गया और

मामले को दिनांक 30.11.2011 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। दिनांक 01.12.2011 को विद्वान अपर महाधिवक्ता न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और कथन किया कि निष्पादन वाद में राज्य सरकार द्वारा दायर की गई संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपतियों को खारिज कर दिया गया है, जबकि इसके विरुद्ध एक पुनरीक्षण दायर किया गया है, जो लंबित है। तदनुसार, याचिका को दिनांक 23.01.2012 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। दिनांक 01.12.2011 का आदेश निम्न प्रकार है:-

“विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि निष्पादन वाद में राज्य सरकार द्वारा दायर की गई आपतियों के खारिज होने के पश्चात, एक पुनरीक्षण दायर किया गया है जो लंबित है।

इस याचिका को 23 जनवरी, 2012 को सूचीबद्ध करें।”

26. अगली बार न्यायालय ने दिनांक 28.07.2014 को मामले की सुनवाई की, जब निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

“दायर किया गया पूरक प्रति शपथपत्र अभिलेख पर लिया जाता है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता के अनुरोध पर, मंगलवार 5 अगस्त, 2014 को अनिवार्य रूप से सूचीबद्ध करें, जिस समय तक वह पक्षों से निर्देश मांग सकते हैं कि धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आपति को

खारिज होने के बावजूद विवादित परिसर खाली क्यों नहीं किया गया है”

27. दिनांक 05.08.2014 को पुनः निम्नलिखित आदेश दिया गया-

“याचिकाकर्ता विवादित परिसर का स्वामी और मकान मालिक है, जो कि पुलिस अधिकारियों के कब्जे में है। किरायेदार के विरुद्ध बेदखली की डिक्री के बावजूद, जो कि अंतिम रूप ले चुकी है, याचिकाकर्ता इसका कब्जा प्राप्त करने में असमर्थ है, संभवतः इस कारण से कि पुलिस अधिकारियों का उस पर कब्जा है।

निष्पादन में, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आपत्ति की गई है तथा उसे आदेश दिनांकित 25.11.2011 द्वारा खारिज कर दिया गया है। यह कहा गया है कि उक्त आदेश के विरुद्ध एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 103/11 दायर की गई है तथा यह जनपद न्यायाधीश/अपर जनपद न्यायाधीश, आगरा के समक्ष लंबित है।

जनपद न्यायाधीश को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि उक्त पुनरीक्षण का निस्तारण उनके समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने के छह सप्ताह के भीतर किया जाए तथा जब तक अपरिहार्य न हो जाए, तब तक किसी भी पक्ष को स्थगन न दिया जाए, वह भी प्रति स्थगन कम से कम 1000/- रुपए के हर्जे पर।

पुनरीक्षण का निर्णय जनपद न्यायाधीश द्वारा तत्काल इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

इस दौरान विद्वान स्थायी अधिवक्ता एक शपथपत्र दाखिल कर स्पष्ट रूप से बता सकते हैं कि उक्त पुनरीक्षण में अभी भी कोई स्थगन आदेश लागू है या नहीं तथा यदि कोई स्थगन आदेश नहीं है तो कलेक्टर का शपथपत्र दाखिल करें कि कब्जा क्यों किया गया तथा याचिकाकर्ता को अब तक क्यों नहीं दिया गया।

इस याचिका को दिनांक 15 सितंबर, 2014 को सूचीबद्ध करें।”

28. दिनांक 15.09.2014 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“श्री मनोज गोस्वामी, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस आधार पर पुनः समय मांगा है कि इस न्यायालय के निर्देशानुसार पुनरीक्षण दिनांक 09.09.2014 को निर्णीत किया गया है, जिसे रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी जानी है।

बेदखली की डिक्री दिनांक 14.11.1991 को पारित की गई थी। यह अंतिम रूप में है। धारा 47 के अंतर्गत किरायेदारों की आपत्तियों को खारिज कर दिया गया है और संशोधन भी खारिज कर दिया गया है। इस प्रकार किरायेदार के कब्जे को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं प्रतीत होता है।

कलेक्टर को शपथपत्र दायर करना था कि 1991 से कब्जा क्यों नहीं दिया जा सका, जबकि किसी भी उच्च न्यायालय से बेदखली की डिक्री के विरुद्ध कोई रोक नहीं थी। कलेक्टर ने अपना शपथपत्र दाखिल किया है जिसमें कहा गया है कि धारा 47 के अंतर्गत आपत्तियों को खारिज करने के विरुद्ध जब पुनरीक्षण दायर किया गया था, तो एक वचन पत्र दिया गया था कि स्थगन आवेदन के निपटारे तक बेदखली प्रक्रिया नहीं होगी। उन्होंने चतुराई से यह बताने से परहेज किया है कि क्या उक्त वचन पत्र सीमित अवधि के लिए था या बढ़ाया गया था और पुनरीक्षण में स्थगन आवेदन का क्या हुआ।

कलेक्टर द्वारा दायर शपथपत्र केवल दिखावा है। इससे पूर्व भी इस न्यायालय को आदेश दिनांकित 01.01.2011 द्वारा कलेक्टर और संबंधित डी.आई.जी. को बुलाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इसके बावजूद, अधिकारी चुप बैठे हैं और यह बताने में असमर्थ हैं कि 1991 में पारित बेदखली की डिक्री को लागू क्यों नहीं होने दिया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मात्र इस कारण से कि पुलिस अधिकारियों का विवादित परिसर पर कब्जा है, मकान मालिक को कब्जा दिलाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है, जो बेदखली की डिक्री का मखौल उड़ा रहा है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, न्यायालय अनिच्छा से न्याय के हित में मामले को स्थगित करता है ताकि प्रत्यर्थीगण को अपने सभी उपायों का उपयोग करने दिया जा सके, बशर्ते कि दूसरे पक्ष को

5000/- (पांच हजार) रुपये हर्जे का भुगतान किया जाए।

तदनुसार, इस रिट याचिका को दिनांक 23.09.2014 को सूचीबद्ध करें।”

29. मामले की सुनवाई दिनांक 24.09.2014 को फिर से हुई और न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा आज एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिस पर एक प्रत्युत्तर शपथपत्र भी दाखिल किया गया है।

दाखिल किया गया प्रति शपथपत्र पूरी तरह से भ्रामक है और कई स्थानों पर पूर्व में दायर किए गए पूरक प्रति शपथपत्रों का संदर्भ देता है। पूर्व के पूरक प्रति शपथपत्रों का संदर्भ दिए बिना प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा स्थापित बचाव को समझना मुश्किल है।

वाद के किसी पक्ष को याचिका के जवाब में शपथपत्रों पर शपथपत्र दाखिल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। सभी सहायक दस्तावेजों के साथ पूरा बचाव एक साथ दायर किया जाना चाहिए।

**ईश्वर सिंह व अन्य बनाम सुरिंदर बजाज व अन्य 2014(7) ए.डी.जे. 544** में एक ही पक्ष द्वारा याचिका के विरोध में लगातार प्रति शपथपत्र दाखिल करने की प्रथा की निंदा की गई है।

उपरोक्त के दृष्टिगत, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दायर सभी प्रति शपथपत्र और पूरक प्रति शपथपत्र तथा उनके प्रत्युत्तर शपथपत्र में दाखिल शपथपत्र खारिज किए जाते हैं। प्रत्यर्थी संख्या 2 को दो सप्ताह की अवधि के भीतर सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ कालानुक्रमिक क्रम में सभी तथ्य देते हुए एक व्यापक प्रति शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है, इससे अधिक नहीं।

दिनांक 10.10.2014 को सूचीबद्ध करें।”

30. दिनांक 10.10.2014 को न्यायालय के आदेश दिनांकित 24.09.2014 का पालन करने के लिए मामले को स्थगित कर दिया गया था, जिसमें टुकड़ों में दाखिल प्रति शपथपत्रों को खारिज करते हुए इसके बजाय एक व्यापक शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 17.10.2014 को कार्यालय की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि एक समेकित प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया था और अभिलेख संख्या 335916-2014 दिनांकित 10.10.2014 के अंतर्गत अभिलेखों पर रखा गया था।

31. दिनांक 13.11.2019 को याचिकाकर्ता के अनुरोध पर याचिका स्थगित कर दी गई। दिनांक 04.12.2019 को न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दिया:-

“श्री स्वप्निल कुमार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से जब पूछा गया कि निष्पादन न्यायालय द्वारा अपने स्वयं के निर्णय और डिक्री को निष्पादित करने में

कथित विफलता के लिए यह रिट याचिका किस प्रकार पोषणीय है, तो वह उन दस्तावेजों को अभिलेख पर लाने के लिए समय मांगते हैं जो दिखाता है कि राज्य के साधनों द्वारा ऐसे एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को रद्द करने की मांग करने वाले सभी प्रार्थना पत्र खारिज कर दिए गए हैं और फिर भी निष्पादन न्यायालय आदेश को निष्पादित करने की स्थिति में नहीं है।

यह मामला वर्ष 2011 से लंबित है और याचिकाकर्ता के इस रिट याचिका को दायर करने के मूल मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया गया है और इसका उत्तर नहीं दिया जा रहा है।

न्यायहित में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को 5000/- रुपये हर्जे के भुगतान के अधीन 7 दिन का समय दिया जाता है, जो कि उच्च न्यायालय विधिक सेवा प्राधिकरण में जमा किए जाने हैं, जो राशि जरूरतमंद वादकारियों के लिए उपयोग की जानी है।

इस मामले को दिनांक 18.12.2019 को सूचीबद्ध करें।

यह स्पष्ट किया जाता है कि हर्जा जमा करना दिनांक 18.12.2019 को मामले की सुनवाई के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त होगी, अन्यथा याचिका बिना किसी और रियायत के खारिज कर दी जाएगी।”

32. आदेश दिनांकित 04.12.2019 के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 17.12.2019 को उच्च न्यायालय विधिक सेवा

समिति, इलाहाबाद के कार्यालय में 5000/- रुपये हर्जा जमा किया।

33. दिनांक 29.07.2021 को यह रिट याचिका प्रथम बार मेरे सामने आई, जब मैंने निम्नलिखित आदेश दिए:-

“पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा रेंज आगरा और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा, जिन्हें पहले इस न्यायालय द्वारा व्यक्तिगत रूप से इस सामान्य कारण से बुलाया गया था कि उन्होंने न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा पारित बेदखली की डिक्री का पालन करने से इनकार कर दिया था, जो अंतिम रूप ले चुका है तथा अब रूप से अपनी अवज्ञा जारी रखे हुए हैं। निष्पादन न्यायालय द्वारा जारी कब्जे की रिट का निर्णीत-ऋणी प्रत्यर्थीगण द्वारा उनके आदेश पर उपलब्ध सशस्त्र पुलिस के कठोर बल का दुरुपयोग करके भौतिक रूप से विरोध किया गया है। इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का एक विस्तृत रिकॉर्ड है, जिसमें न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित बेदखली की डिक्री को प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध निष्पादित करने का प्रयास किया गया है, जो अपने पुलिस चौकी के लिए पट्टे पर दिए गए परिसर पर अवैध रूप से कब्जा किए हैं।

पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा रेंज आगरा और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा कल दोपहर 2 बजे तक अपने व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करेंगे, जिसमें कारण बताएंगे कि निष्पादन न्यायालय द्वारा जारी कब्जे की रिट का विरोध क्यों किया गया और पट्टे पर

दिए गए परिसर को खाली क्यों नहीं किया गया। यदि पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा रेंज आगरा और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा द्वारा व्यक्तिगत शपथपत्रों पर कारण नहीं दर्शाया जाता है, तो दोनों अधिकारी कल दोपहर 2 बजे व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होंगे।

इस मामले को कल दोपहर 2 बजे अतिरिक्त वाद सूची में सूचीबद्ध करें।

इस आदेश को निबंधक (अनुपालन) द्वारा पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा रेंज आगरा और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा को तत्काल सूचित किया जाए।

इस आदेश की एक प्रति श्री विनोद कांत, अपर महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश को भी तत्काल उपलब्ध कराई जाए।

34. दिनांक 30.07.2021 को, निम्नलिखित आदेश पारित किए गए:-

“मुनिराज जी., वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा व्यक्तिगत रूप से पेश हुए हैं क्योंकि उन्होंने हमारे आदेश दिनांकित 29.07.2021 के अनुसार अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल नहीं किया है। हमारे पिछले आदेश में पुलिस उप-महानिरीक्षक, आगरा रेंज आगरा को भी व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने और ऐसा न करने पर, व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए कहा गया था, जिसे वापस लेने की आवश्यकता है क्योंकि इस न्यायालय को श्री मनीष गोयल, विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा प्राप्त निर्देशों पर सूचित

किया गया है कि आगरा में पुलिस उप-महानिरीक्षक का कोई पद नहीं है और वहां कोई रैंज मुख्यालय भी नहीं है।

श्री गोयल प्रत्यर्थी की स्थिति के साथ प्रस्तुत होने के लिए बुधवार तक का समय चाहते हैं, विशेष रूप से इस बिंदु पर कि क्या निर्णीत-ऋणी प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध पारित बेदखली की डिक्री को स्थगित करने या रद्द करने का कोई आदेश है।

इस मामले को दिनांक 04.08.2021 को दोपहर 2 बजे अतिरिक्त वाद सूची में सूचीबद्ध करें।

उस समय तक प्रत्यर्थीगण की स्थिति आगरा के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मुनिराज जी. द्वारा व्यक्तिगत शपथपत्र द्वारा प्रकट किया जाएगा, ऐसा न करने पर वह फिर से व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होंगे। हालांकि, यदि आवश्यक व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल कर दिया जाता है, तो अधिकारी को उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है।”

35. दिनांक 04.08.2021 को, मैंने निम्नलिखित आदेशों के संदर्भ में याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार किया:-

“दिनांक 30.07.2021 के आदेश के अनुपालन में, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा ने मकान मालिक के स्वामित्व के संबंध में आरोप लगाते हुए दिनांक 04.08.2021 को अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दायर किया है। शपथपत्र एक प्रति शपथपत्र

की प्रकृति का है। इसे अभिलेख पर लिया गया है।

याचिकाकर्ता की ओर से एक पूरक शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिसे भी अभिलेख पर लिया गया है।

स्वीकार।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री स्वप्निल कुमार और प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री एल.के. त्रिपाठी के साथ विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जे.एन. मोर्य को विस्तार से सुना।

कल दोपहर 2 बजे आगे की सुनवाई के लिए अतिरिक्त वाद सूची में रखा गया।”

36. सुनवाई दिनांक 05.08.2021, 09.08.2021 एवं फिर 10.08.2021 को जारी रही, जब आदेश सुरक्षित कर लिया गया।

37. प्रति शपथपत्र में लिए गए बचाव के दृष्टिगत, जहां याचिकाकर्ता के स्वामित्व के साथ-साथ मकान मालिक और किरायेदार के संबंध को भी नकार दिया गया था, इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी संख्या 2 उत्तर प्रदेश राज्य ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध धोखाधड़ी करने का कथन किया, यह न्यायालय जानना चाहती थी कि क्या सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने वाला कोई आदेश पारित किया गया था। इसलिए, मामले को दिनांक 26.04.2022, 28.04.2022, 05.05.2022 और 12.05.2022 को आगे की

सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया। मामला दिनांक 19.05.2022 को पुनः प्रस्तुत हुआ, जब मैंने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“इस मामले में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा एस.सी.सी. वाद संख्या 108 / 1989 में पारित एकपक्षीय डिक्री की अवज्ञा का इतिहास है। यद्यपि डिक्री दिनांक 14.11.1999 को एकपक्षीय रूप से पारित की गई थी। दिनांक 13.10.2011 को एक अति विस्तृत आदेश पारित किया गया था। विवाद का सार और मुद्दा जिसने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने वाले याचिकाकर्ताओं के असामान्य कदम को जन्म दिया है, वह यह है कि न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा एस.सी.सी. सूट संख्या 108 / 1989 में पारित एकपक्षीय डिक्री पिछले तीस वर्षों या उससे अधिक समय से अनिष्पादित रही है। निष्पादन न्यायालय की उचित प्रक्रिया के विफल होने का कारण यह है कि निर्णीत-ऋणी कोई और नहीं अपितु आगरा स्थित पुलिस प्रतिष्ठान है, और उन्होंने अपने आदेश पर पुलिस बल नियुक्त करके न्यायालय अमीन और कब्जे की रिट को निष्पादित होने से रोका है।

जब निष्पादन की सामान्य प्रक्रियाएं इस सीमा तक बाधित हो गई हैं कि एक डिक्री जो अभी भी लागू है और किसी सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा रद्द या स्थगित नहीं की गई है, कागज के एक टुकड़े से अधिक नहीं रह गई, तब याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। इस

न्यायालय ने तत्कालीन डी.आई.जी. आगरा, रेंज आगरा और जिलाधिकारी आगरा के अलावा क्षेत्राधिकारी को मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने और अपने व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने के लिए बुलाने के बाद एक अति विस्तृत आदेश दिनांक 13.10.2011 को पारित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पश्चात आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र दिया गया था। संहिता की धारा 47 के अंतर्गत एक आपति भी दायर की गई थी। आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रस्ताव और धारा 47 के अंतर्गत आपति दोनों इस न्यायालय में खारिज हो गए हैं और उन आदेशों ने अंतिमता प्राप्त कर ली है। उक्त तथ्य पर कोई विवाद नहीं प्रतीत होता है। इस न्यायालय ने दिनांक 29.01.2021 को डी.आई.जी. आगरा रेंज आगरा को भी बुलाया था। इसके बजाय, मुनिराज जी, तत्कालीन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा व्यक्तिगत रूप से पेश हुए और न्यायालय को सूचित किया कि आगरा में कोई डी.आई.जी. तैनात नहीं है। उन्हें व्यक्तिगत शपथपत्र पर इस तथ्य का खुलासा करने के लिए कहा गया था कि क्या निर्णीत-ऋणी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध पारित बेदखली की डिक्री पर रोक लगाने या उसे खारिज करने का कोई आदेश है। उन्होंने बताया कि इस पर न तो कोई रोक है और न ही यह अपास्त किया गया है। इस याचिका की कार्यवाही के लंबे समय के दौरान, प्रत्यर्थीगण को बार-बार न्यायालय को यह सूचित करने के लिए कहा गया है कि क्या बेदखली की डिक्री को किसी सक्षम क्षेत्राधिकार

वाले न्यायालय द्वारा रोका गया है या खारिज किया गया है तो दी गई जानकारी नकारात्मक प्रकार की है। फिर भी, डिक्री की अवहेलना जारी है।

श्री नीरज त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता आज श्री एल.के. त्रिपाठी, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता के साथ न्यायालय में पेश हुए। उन्होंने न्यायालय को सूचित किया कि निष्पादन स्थगित कर दिया गया है और दिनांक 22.07.2022 को सूचीबद्ध किया गया है। श्री त्रिपाठी ने न्यायालय को यह भी सूचित किया है कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा की ओर से आदेश 21 नियम 97 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत तीसरे पक्ष की आपति उक्त निष्पादन कार्यवाही का भाग है और परिणामस्वरूप, इन्हें भी उस दिन के लिए स्थगित कर दिया गया है। इन परिस्थितियों में, जनपद न्यायाधीश, आगरा दिनांक 24.05.2022 को या उससे पहले इस न्यायालय को एक रिपोर्ट देंगे कि क्या एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में पारित डिक्री दिनांकित 14.11.1999 को किसी भी कार्यवाही में सक्षम क्षेत्राधिकार वाले किसी न्यायालय द्वारा स्थगित किया गया है या अपास्त किया गया है; उनकी रिपोर्ट की तिथि तक, वह वाद तथा तृतीय पक्ष की आपति सहित सभी कार्यवाहियों के साथ-साथ निष्पादन को उचित रूप से पुनर्निर्धारित, अग्रिम और संबंधित न्यायालय के समक्ष गर्मियों की छुट्टियों के पूर्व भाग में आदेश हेतु न्यायालय को पर्याप्त समय के साथ सूचीबद्ध करेंगे।

इस याचिका को विद्वान जनपद न्यायाधीश, आगरा की रिपोर्ट के साथ दिनांक 24.05.2022 को अतिरिक्त वाद सूची में सूचीबद्ध करें।

इस आदेश को निबंधक (अनुपालन) द्वारा 24 घंटे के भीतर विद्वान जनपद न्यायाधीश, आगरा को सूचित किया जाए।”

38. कुछ स्थगन के पश्चात, मामले की फिर से सुनवाई हुई और दिनांक 08.07.2022 को निर्णय सुरक्षित किया गया। संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत कार्यवाही की स्थिति और प्रत्यर्थी संख्या 2, राज्य द्वारा दायर स्वतंत्र वाद के बारे में अभी भी कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी, जिसमें वाद की संपत्ति पर उनका दावा किया गया था। इसलिए, वाद की आगे की सुनवाई दिनांक 04.01.2023, 09.01.2023, 04.02.2023, 21.02.2023, 01.03.2023 और 16.03.2023 को हुई, जब निर्णय पुनः सुरक्षित रखा गया।

39. इस पूरी अवधि के दौरान, इस न्यायालय का प्रयास यह पता लगाना था कि क्या प्रत्यर्थी संख्या 2, जो कहते हैं कि याचिकाकर्ता कोई नहीं है और न ही उनका मकान मालिक है, अपितु वह व्यक्ति है जिसने न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करके उनके विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री प्राप्त की है, अपने अधिकार को स्थापित करने और डिक्री को रद्द करने के लिए लाई गई कार्यवाही में सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष सफल हुए हैं। दिनांक 16.03.2023 को निर्णय सुरक्षित रखे जाने तक, कई सुनवाईयों में और एक से अधिक अवसरों पर



निर्णय सुरक्षित रखे जाने तक, प्रत्यर्थी संख्या 2 दिनांक 14.11.1991 की एकपक्षीय डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने वाले किसी भी सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा दिया गया अंतरिम आदेश भी नहीं दिखा सका। इसके विपरीत, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 19.05.2022 और पूर्व के आदेशों में भी, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने की मांग करने वाला प्रार्थना पत्र और संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्ति को खारिज कर दिया गया है। इन आदेशों को चुनौती देने वाली याचिकाएं इस न्यायालय में विफल हो गई हैं, तथा उक्त आदेश अंतिम हो गए हैं।

40. जब दिनांक 19.05.2022 को मामले की सुनवाई हुई, तो आगरा के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मुनिराज जी., जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे, से व्यक्तिगत शपथपत्र पर यह बताने के लिए कहा गया कि क्या प्रत्यर्थी संख्या 2 के पक्ष में बेदखली पर रोक लगाने का कोई आदेश पारित किया गया है या बेदखली की डिक्री को रद्द करने का कोई आदेश पारित किया गया है। उन्होंने बताया कि एकपक्षीय आदेश को न तो स्थगित किया गया है और न ही अपास्त किया गया है। जब मामले की मार्च, 2023 में पुनः सुनवाई हुई, तो स्थिति अपरिवर्तित रही। संहिता के आदेश 9 नियम 13 और संहिता की धारा 47 के अंतर्गत दी गई दोनों चुनौतियां विफल हो गई हैं। अभी भी जो मामला लंबित है, वह है संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत

एक आपत्ति, और दूसरा, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा के माध्यम से याचिकाकर्ता के विरुद्ध दायर एक स्वतंत्र वाद, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में खड़ा किया गया है, इसके अलावा नगर निगम, आगरा सहित छह अन्य प्रत्यर्थी हैं, जिनका प्रतिनिधित्व नगर आयुक्त द्वारा किया जाता है।

41. उक्त मुकदमा एक स्वामित्व संबंधी मुकदमा है और इसमें उदघोषणा, निरस्तीकरण, निषेधात्मक और अनिवार्य निषेधाज्ञा के अनुतोष याचित है। याचित अनुतोष और उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर मुकदमे में मामले को इस निर्णय में थोड़ी देर बाद और विस्तार से स्पष्ट किया जाएगा।

42. संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत आपत्ति वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा दायर की गई है, अपितु अजीब तरीके से अजय कौशल, थानाध्यक्ष, हरी पर्वत के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। उपरोक्त आपत्तियों को लंबित निष्पादन वाद संख्या 20/1999 में विविध वाद संख्या 16/2021 के रूप में क्रमांकित किया गया है। संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत आपत्तियों पर अभी तक स्पष्ट रूप से निर्णय नहीं लिया गया है और न ही कोई अंतरिम आदेश दिया गया है।

43. इस न्यायालय ने यह भी अवलोकित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 2, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा के माध्यम से संहिता के आदेश 21 नियम 29 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र के रूप में एक और विविध मामला

पंजीकृत है। उपर्युक्त प्रावधान एक निर्णीत-ऋणी को एक डिक्री-धारक के विरुद्ध अधिकार से संबंधित है, जहां डिक्री-धारक और निर्णीत-ऋणी के मध्य डिक्री के निष्पादन पर स्थगन की मांग करने के लिए एक वाद लंबित है, जिसे न्यायालय सुरक्षा या अन्यथा ऐसी शर्तों के अधीन दे सकता है, जैसा वह वाद के निर्णय तक उचित समझे। यद्यपि विविध वाद संख्या 213/2022 को जन्म देने वाले प्रार्थना पत्र की एक प्रति इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाई गई है, संहिता के आदेश 21 नियम 29 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र के प्रभाव की प्रकृति के दृष्टिगत, यह न्यायालय केवल यह मान सकता है कि उक्त प्रार्थना पत्र याचिकाकर्ता और वहां के छह अन्य प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा संस्थित लंबित वाद संख्या 1040/2011 में दिया गया है। उक्त कार्यवाही में भी, यह इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया है कि डिक्री के निष्पादन को रोकने वाला कोई स्थगन आदेश अब तक पारित किया गया है।

44. यहाँ, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 10.10.2014 को दायर किए गए प्रति शपथ पत्र संख्या 335916-2014 में प्रस्तुत मामले पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिसे दिनांक 24.09.2014 के आदेश के अनुपालन में दाखिल किया गया था। उक्त प्रति शपथ पत्र में, राज्य, प्रत्यर्थी संख्या 2, ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वास्तव में याचिकाकर्ता न तो मुकदमे की संपत्ति का मालिक है और न ही राज्य, याचिकाकर्ता का किरायेदार है। संयुक्त प्रांत सरकार द्वारा रज्जक अली के विरुद्ध बेदखली और किराए के बकाया के लिए दायर

किए गए एक पुराने वाद संख्या 289/1941 के निर्णय का संदर्भ दिया गया है, जिस पर निर्णय सुनाया गया था। कहा गया है कि विवादित भूमि नजूल है और फ्रीहोल्ड नहीं है।

45. राज्य का मामला यह है कि याचिकाकर्ता के पिता, श्री आर.बी.एल. गुप्ता, एडवोकेट ने भी मुंसिफ, आगरा की न्यायालय में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मूल वाद सं0 279/1988 दायर किया था, ताकि राज्य और कुछ पुलिस अधिकारियों को मुकदमे की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने और ध्वस्त करने से रोका जा सके और उन्हें नया निर्माण करने से भी रोका जा सके। मुंसिफ, आगरा के न्यायालय ने दिनांक 07.08.1991 को मुकदमे का एकपक्षीय निर्णय सुनाया था। आरोप यह है कि मुकदमे के समन कभी भी राज्य या किसी भी पुलिस अधिकारी को नहीं दिए गए।

46. राज्य का मामला यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपना स्वामित्व स्थापित करने के लिए प्रस्तुत किया गया एकमात्र दस्तावेज विक्रय विलेख और कुछ किराया रसीदें हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि भूमि नजूल है। विक्रेता, छोटे लाल, जिसने वादी के पिता श्री आर.बी.एल. गुप्ता को भूमि बेची थी, को इसे हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं था। उत्तर प्रदेश राज्य पुलिस विभाग के नाम पर किराए की रसीदें, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से संलग्न की गई हैं, जाली बताई गई हैं। प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 11 में एक कथन है, जिसमें कहा गया है, “किराए की रसीदों के सत्यापन से संबंधित जांच डी.आई.जी. पुलिस आगरा द्वारा स्थापित की गई थी और जांच

रिपोर्ट के अनुसार किराए की रसीदें जाली हैं। माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ, जांच रिपोर्ट की फोटोकॉपी इस शपथपत्र के साथ संलग्न की जा रही है और इसे इस शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या सी.ए.6 के रूप में चिह्नित किया गया है।”

47. इसके पश्चात पैरा संख्या 12 में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश पुलिस कार्यालय नियमावली के पैरा संख्या 139 के अनुसार किराए से संबंधित मामले को स्पष्ट किया गया है और पैरा में किराया जमा करने के उचित मानदंड बताए गए हैं। प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 13 में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य ने संपत्ति किराए पर नहीं ली है और भवन को नुकसान पहुंचाने का कोई सवाल ही नहीं है। यह भी कहा गया है कि एस.सी.सी. वाद बिना किसी सामग्री के अस्पष्ट आरोपों पर दायर किया गया है। याचिकाकर्ता के पिता द्वारा प्रारंभ में डिफेक्टिव वाद संख्या 42/1989 के रूप में दायर किए गए एक अन्य मुकदमे का संदर्भ है, और बाद में इसे क्षतिपूर्ति के लिए मूल वाद संख्या 821/1992 के रूप में क्रमांकित किया गया। उक्त मुकदमे में भी दिनांक 26.02.1996 को अतिरिक्त सिविल जज (वरिष्ठ डिवीजन), आगरा की न्यायालय ने डिक्री किया था।

48. इस प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 23 में इस तथ्य पर अत्यधिक बल दिया गया है कि याचिकाकर्ता के भाई, श्री सुरेन्द्र कुमार गुप्ता वर्ष 1998 से 2011 तक जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल) थे, जिन पर न्यायालय की प्रक्रिया में हेराफेरी करने तथा एकपक्षीय डिक्री

पारित होने के आठ वर्ष पश्चात निष्पादन लाने का आरोप है। यह भी उल्लेख किया गया है कि राज्य द्वारा दायर किया गया स्वामित्व वाद, संख्या 1040/2011, राज्य उत्तर प्रदेश बनाम तेजपाल व अन्य, उदघोषणा आदि के लिए अभी भी लंबित है तथा उक्त वाद के निर्णय होने तक निष्पादन आगे नहीं बढ़ सकता है।

49. यहां तत्कालीन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मुनिराज जी. द्वारा दाखिल व्यक्तिगत शपथपत्र की विषय-वस्तु पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिसमें उन्होंने मामले का ब्यौरा दिया है कि राज्य ने याचिकाकर्ता के स्वामित्व को क्यों अस्वीकार किया और किरायेदार के रूप में याचिकाकर्ता के साथ राज्य का क्या संबंध है। ऐसा मुख्यतः मूल वाद संख्या 1040/2011 में लगाए गए आरोपों के संदर्भ में किया गया है कि राज्य ने सिविल जज (सीनियर डिवीजन), आगरा के समक्ष एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में पारित दिनांक 14.11.1991 की एकपक्षीय डिक्री को शून्य और अमान्य घोषित करने के लिए संस्थित किया है, साथ ही मूल वाद संख्या 279/1988 में पारित दिनांक 07.08.1991 की एकपक्षीय डिक्री और मूल वाद संख्या 821/1992 में पारित दिनांक 26.10.1996 की एकपक्षीय डिक्री को भी। दिए गए तर्क का आधार यह है कि राज्य कलेक्टर के प्रबंधन के अधीन नजूल भूमि का स्वामी है, जिसका खसरा संख्या 1165 है, जिसका क्षेत्रफल 22 बीघा 2 बिस्वा है, जो खंदारी, तहसील और जिला आगरा में स्थित है। राज्य, प्रत्यर्थी संख्या 2 के अनुसार, उक्त संपत्ति वर्ष 1331 फसली के अंतिम बंदोबस्त

अभिलेख अर्थात् खेवट में कलेक्टर के प्रबंधन में “मिल्कियत हकूमत सूबे जात (1) नजूल” के रूप में दर्ज है।

50. समय के साथ, संपत्ति के मध्य से खंदारी रोड का निर्माण किया गया, जिसमें से कुछ क्षेत्र पर अतिक्रमण किया गया और अतिक्रमणकारियों द्वारा आवासीय मकान बना लिए गए थे। यही कारण है कि वाद संपत्ति राजस्व अभिलेखों में आबादी, सड़क, मकान आदि के रूप में दर्ज हुई। यह तर्क दिया गया है कि 165.44 वर्ग मीटर क्षेत्र में, पुलिस चौकी “पुलिस चौकी, खंदारी, आगरा” अर्थात् वाद संपत्ति वर्ष 1940 से पहले से अस्तित्व में है और आज तक जारी है। इस पुलिस चौकी या चौकी का निर्माण ब्रिटिश शासन के दौरान किया गया था, जो पुलिस विभाग के कब्जे में है।

51. इस आशय के कथन हैं कि मूल वाद संख्या 1040/2011 के प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 के पिता अर्थात् स्वर्गीय छोटे लाल, नजूल विभाग के कर्मचारी थे। वह एक चपरासी थे। उन्होंने लीज़ धारक होने का दावा करते हुए, वाद संपत्ति के एक बड़े हिस्से पर अतिक्रमण किया, हालाँकि उनके पक्ष में कभी कोई लीज़ निष्पादित नहीं की गई थी। उन्होंने नगर निगम अधिकारियों, आगरा से मिलीभगत करके एक बिल्डिंग प्लान स्वीकृत करवाया। यह प्लान छोटे लाल, चपरासी नजूल विभाग, आगरा के हस्ताक्षर के साथ प्रस्तुत किया गया था। छोटे लाल और उनकी पत्नी राज देवी ने श्री आर.बी.एल. गुप्ता की पत्नी इंद्रकांता से 500/- रुपये का ऋण लिया था और इंद्रकांता

के पक्ष में दिनांक 04.10.1948 को एक पंजीकृत बंधक विलेख निष्पादित किया था।

52. यह उपरोक्त फर्जी बिल्डिंग प्लान और निष्पादित बंधक विलेख के आधार पर है कि प्रत्यर्थी नंबर 1 तेज पाल, उनके भाई पन्ना लाल (चौथे प्रत्यर्थी हीरा लाल के पिता) (मूल वाद सं0 1040/2011 के प्रत्यर्थी) और राज देवी पत्नी छोटे लाल ने श्रीमती इंद्रकांता, याचिकाकर्ता की मां के पक्ष में दिनांक 31.07.1958 को एक विक्रय विलेख निष्पादित किया, जिसमें मुकदमे की संपत्ति का वर्णन किया गया, जिसका क्रमांक 3346/2910 है। यह कहा गया है कि मूल्यांकन वर्ष 1954-59 और 1959-64 तक, नंबर 6/336 वाली कोई संपत्ति दर्ज नहीं है, अर्थात् वाद संपत्ति। यह दावा किया जाता है कि याचिकाकर्ता की माता और पिता, श्रीमती इंद्रकांता और श्री आर.बी.एल. गुप्ता वाद संपत्ति के वैध मालिक नहीं थे क्योंकि उन्होंने कभी वैध स्वामी से भूमि क्रय नहीं की थी। यह भी दावा किया गया है कि दिनांक 31.07.1958 के विक्रय विलेख के निष्पादनकर्ताओं के पक्ष में कभी भी कोई पट्टा विलेख निष्पादित नहीं किया गया है और न ही श्रीमती इन्द्रकांता या श्री आर.बी.एल. गुप्ता के पक्ष में वाद संपत्ति से संबंधित कोई पट्टा विलेख निष्पादित किया गया है।

53. व्यक्तिगत शपथपत्र के पैरा संख्या 7 में यह कहा गया है कि पुलिस चौकी, खंदारी कभी भी याचिकाकर्ता या उसके हितबद्ध पूर्ववर्तियों के स्वामित्व में नहीं थी। पैरा संख्या 8 में यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता के पिता

स्वर्गीय आर.बी.एल. गुप्ता, जिन्होंने एस.सी.सी. वाद संस्थित किया, जिससे एकपक्षीय बेदखली की डिक्री को जन्म मिला, जो इस रिट याचिका का विषय है, “सिविल कोर्ट आगरा में अधिवक्ता थे और उसके बाद उनके बेटे श्री सुरेंद्र कुमार गुप्ता, जो मूल वाद संख्या 1040/2011 में प्रत्यर्थी संख्या 6 थे, जो निष्पादन वाद संख्या 20/1999 में डी.एच. सं0 1/2 भी हैं, को दिनांक 02.12.1998 से 28.04.2011 तक जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल) के रूप में नियुक्त किया गया था और इस तरह याचिकाकर्ता के पिता, जो सिविल कोर्ट आगरा में अधिवक्ता थे और भाई, श्री सुरेंद्र कुमार गुप्ता, जो अधिवक्ता और जिला शासकीय अधिवक्ता थे, ने राज्य के विरुद्ध वाद में अपने पक्ष में एकपक्षीय डिक्री पारित करवाई, जैसा कि पूर्व में बताया गया है तथा सुरेन्द्र कुमार गुप्ता ने जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल) के रूप में कार्यरत रहने के दौरान व डी.एच. सं0 1/2 होने के कारण, दिनांक 02.12.1998 से 28.04.2011 तक, राज्य के लिए और राज्य के विरुद्ध दायर कई सिविल कार्यवाहियों में राज्य को हार का सामना करना पड़ा है।”

54. इसके पश्चात राज्य की ओर से कहा गया है कि निष्पादन वाद संख्या 20/1999 में, पुलिस विभाग ने संहिता के आदेश 21 नियम 97 सपठित नियम 101 के अंतर्गत आपत्तियां दर्ज की हैं, जिसमें उन्होंने निष्पादन पर अंतरिम रोक लगाने हेतु प्रार्थना पत्र दिया है। उक्त मामले में तय तिथियों का उल्लेख है, परन्तु अंतरिम रोक दिए जाने के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। फिर भी यह कहा गया है

कि याचिकाकर्ता द्वारा स्थगन मामले के निस्तारण में विलंबकारी रणनीति के कारण मामले को स्थगित किया जा रहा है।

55. फिर संदर्भित व्यक्तिगत शपथपत्र के पैरा संख्या 12 में एक बहुत ही स्पष्ट कथन है, जहां यह कहा गया है:-

“12. हालाँकि, यह आदरपूर्वक कथन किया जाता है कि आज तक न तो एकपक्षीय डिक्री दिनांकित 14.11.1991 को अपास्त किया गया है और न ही इसे उच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश द्वारा स्थगित किया गया है, सिवाय दिनांक 14.11.1991 की एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध स्थगन आदेश देने के लिए एक प्रार्थना पत्र, जैसा कि ऊपर कहा गया है, दिनांक 05.08.2021 को इसके निस्तारण के लिए न्यायालय के समक्ष लंबित है।”

56. दूसरे प्रत्यर्थी की ओर से एक पूरक प्रति शपथपत्र भी दायर किया गया है, जो आगरा में तैनात एक सहायक पुलिस आयुक्त राजीव सिरोही द्वारा दिया गया है। यह पूरक प्रति शपथपत्र इस न्यायालय के 9 जनवरी, 2023 के आदेश के अनुपालन में दाखिल किया गया है। इस पूरक प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 8 और 9 में कहा गया है:-

“8. पैरा संख्या 4 की सामग्री के उत्तर में शपथपत्र के पैरा 4 में यह कथन किया गया है कि दिनांक 13.07.2022 को वादी ने आदेश 22 नियम 4(4) दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रथम ए.सी.जे. (एस.डी.), आगरा के न्यायालय

में मूल वाद सं० 1040/2011 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम तेजपाल व अन्य) में एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया है। दिनांक 13.07.2022 के प्रार्थना पत्र की एक सत्य प्रतिलिपि साथ में दाखिल की जा रही है और इसे इस पूरक प्रति शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या एस.सी.ए.-1 के रूप में चिह्नित किया गया है।

9. शपथपत्र के पैरा 5 की सामग्री के उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि विविध वाद सं० 16/2021 में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता बी.के. गुप्ता ने बार-बार समय देने का अनुरोध किया है। विविध वाद सं० 16/2021 (एस.एस.पी. बनाम आर.बी.एल. गुप्ता) में ऑर्डर-शीट की एक सत्य प्रतिलिपि साथ में दाखिल की जा रही है और इसे इस शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या एस.सी.ए.-2 के रूप में चिह्नित किया गया है।”

57. आदेश-पत्र के अवलोकन से ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता ने विविध वाद संख्या 16/2021 की कार्यवाही में स्थगन की मांग की है, अर्थात् एस.एस.पी. आगरा की ओर से संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र पर। पिछले आदेश से, निश्चित रूप से पता चलता है कि दोनों पक्षों ने स्थगन की मांग की है। यह देखा जाना चाहिए कि ये सभी स्थगन इसलिए मांगे गए थे क्योंकि वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रही थी।

58. इस न्यायालय ने मुकदमेबाजी की बहुत ही जटिल स्थिति पर गहन विचार किया है जिसे इस रिट याचिका में बहुत ही असाधारण

प्रकार के अनुतोष के लिए हमारे सामने लाया गया है। इस न्यायालय ने भी समय-समय पर याचिका पर विचार करने या याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए गलत आरोप को दूर करने के लिए आदेश पारित करने से परहेज नहीं किया है।

59. कुछ बातें हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए और ये हमारी स्वीकृति के योग्य नहीं हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि राज्य, जिसका प्रतिनिधित्व कलेक्टर या वाद संपत्ति के वास्तविक अधिभोगी, अर्थात् आगरा की पुलिस द्वारा किया जाता है, इस मामले में एस.सी.सी. वाद को एकपक्षीय रूप से डिक्री किए जाने के लिए न्यायालय की प्रक्रिया के बारे में सबसे अधिक उदासीन रहा है। सबसे अपवादजनक तथ्य यह है कि जब संबंधित पुलिस चौकी पर कब्जे की रिट तामील की गई, तो मौजूद पुलिसकर्मियों ने उसे खाली करने या तुरंत उच्च अधिकारियों के माध्यम से अपने अधिवक्ता से संपर्क करने व एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए कदम उठाने के बजाय, अमीन से कहा कि वे परिसर को तब तक खाली नहीं करेंगे जब तक कि उन्हें डी.आई.जी. से आदेश नहीं मिल जाता। यह तथ्य निष्पादन मामले में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 में दर्ज है, जिसका इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 01.08.2011 में उचित उल्लेख किया गया है।

60. यदि पहले नहीं, तो जैसे ही अमीन पुलिस चौकी पर पहुंचा, तो कलेक्टर द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य और, किसी भी

मामले में, पुलिस, जो वास्तव में वाद संपत्ति पर भौतिक रूप से कब्जाधारी है, के लिए न्यायालय में जाने और आदेश को अपास्त करवाने के लिए कदम उठाने का समय आ गया था। इसके बजाय, पुलिस कर्मियों ने अमीन से यह कहने का दुस्साहस किया कि वे वाद संपत्ति तभी खाली करेंगे जब डी.आई.जी. उन्हें ऐसा करने का आदेश देंगे। यह न्यायालय यह कहने का साहस करता है कि डी.आई.जी. एक न्यायाधीश नहीं है और लंबित मुकदमे में पूरा राज्य एक वादी से अधिक कुछ नहीं है। यह न्यायालय प्रत्यर्थागण के बाद के आचरण को देखते हुए यह सोचने के लिए इच्छुक है कि चौकी में मौजूद निचले पुलिस कर्मियों ने अमीन को विद्वान न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.03.2011 में दर्ज शब्दों में कहा, बिना प्रतिष्ठान के उच्च अधिकारियों के निर्देश के नहीं।

61. ये शब्द बिना प्रेरणा के नहीं कहे गए थे, यदि डी.आई.जी. या थाने में जो भी वरिष्ठ अधिकारी था, उसकी स्पष्ट अनुमति के बिना नहीं। यह विद्वान न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय की दयालुता थी कि उन्होंने उस समय थाने में तैनात डी.आई.जी. सहित संबंधित पुलिस कर्मियों को कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया, जिसमें यह कहा जाता कि आपराधिक अवमानना का संदर्भ क्यों नहीं दिया जाना चाहिए। विद्वान न्यायाधीश ने ऐसा नहीं किया, हालांकि चौकी पर तैनात पुलिस कर्मियों द्वारा न्यायालय की प्रक्रिया में बाधा डालने के बाद वे बहुत आसानी से अवमानना का संदर्भ दे सकते थे, जिसे किसी भी स्थिति

में बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उक्त आदेश पारित होने के बाद भी निष्पादन की ये कार्यवाही जारी रही और न तो पुलिस और न ही उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा ने आदेश को अपास्त करवाने के लिए कोई कदम उठाया। इस न्यायालय का यह अप्रिय कर्तव्य है कि वह सच को सच कहे।

62. आगरा में राज्य और पुलिस अधिकारियों ने न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का बचाव करने के मामले में अत्यधिक अहंकार, उदासीनता और लापरवाही का रवैया दिखाया है। संभवतः, उन्होंने खुद को इतना शक्तिशाली समझ लिया है कि वे न्यायालय की प्रक्रिया की परवाह नहीं करते। जब निष्पादन उस परिसर में पहुंचा, जहां इसे निष्पादित किया जाना था, तो वहां मौजूद पुलिस अधिकारियों ने अमीन से कहा कि वे तभी कार्रवाई करेंगे, जब डी.आई.जी. उन्हें डिक्री का पालन करने का निर्देश देंगे। न्यायालय की डिक्री का निष्पादन कभी भी किसी पक्ष की मर्जी पर निर्भर नहीं होने दिया जा सकता, चाहे वह निजी हो या आधिकारिक। न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्था या निर्णीत-ऋणी के रूप में पुलिस के डी.आई.जी. या कलेक्टर या राज्य, वादी से अधिक कुछ नहीं हैं। अमीन द्वारा दिनांक 20.12.2010, 25.03.2011 और 27.11.2019 को लगातार तीन रिपोर्ट दी गई हैं, जिनमें से दो की प्रतियां, अर्थात् दिनांक 20.12.2010 और 25.03.2011 की रिपोर्ट, जो देवकी नंदन, अमीन, सिविल कोर्ट, आगरा द्वारा प्रस्तुत की गई थीं, पेपर-बुक (रिट याचिका की पी.बी.) के पेज संख्या 33 और 35 पर अभिलेख में हैं। इन रिपोर्टों को विद्वान

न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय द्वारा देखा गया है।

63. इसके पश्चात विद्वान न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय ने जो किया, वह भी सराहनीय नहीं है। उन्होंने एस.एस.पी./डी.आई.जी. पुलिस, आगरा रेंज, आगरा को एक अर्ध-सरकारी पत्र लिखा है, जिसमें अनुरोध किया गया है कि वाद संपत्ति के संबंध में दिनांक 14.11.1991 की डिक्री का पालन किया जाए। न्यायालय का यह तरीका नहीं है कि वह अपने समक्ष उपस्थित वादीगण को, चाहे उनका स्थान या पद कुछ भी हो, आधिकारिक या अर्ध-आधिकारिक पत्र लिखे; न ही न्यायालय का यह तरीका है कि वह वादी से अनुपालन करने का अनुरोध करे। न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि यदि वादी उल्लंघन करते हैं तो वह डिक्री, आदेश पारित करे और उनके निष्पादन के लिए प्रक्रिया जारी करे। न्यायालय का यह कार्य नहीं है कि वह वादीगण से केवल इसलिए अनुरोध करे क्योंकि वे राज्य के अधिकारी हैं।

64. यह कि कब्जे की रिट के निष्पादन के लिए नियुक्त अमीन द्वारा दी गई सभी रिपोर्टें सत्य हैं और पुलिस चौकी पर पुलिसकर्मी का व्यवहार उनके वरिष्ठ अधिकारियों के निर्देशों के अनुरूप था, यह राज्य की ओर से दाखिल प्रति शपथपत्र दिनांकित 10.10.2014 की सामग्री से उचित रूप से साबित होता है, जिसका पहले ही बहुत विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है। इस संबंध में विशेष रूप से प्रासंगिक उक्त शपथपत्र के पैरा संख्या 23 के अंत में कही गई बातें हैं, जहां कहा गया है,

“याचिकाकर्ता द्वारा छेड़छाड़ की गई अमीन रिपोर्ट विधिक दृष्टि में पोषणीय नहीं है क्योंकि संपत्ति पुलिस अधिकारियों की है, अमीन को पहले संबंधित एस.एस.पी. से संपर्क करना चाहिए और एस.एस.पी. के निर्देश के बाद संबंधित थाने के क्षेत्राधिकारी कार्रवाई करते हैं और पूर्व में इस पहले मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक भौतिक तथ्यों को छिपाने के बाद, इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया था।”

65. यह न्यायालय इस तथ्य पर अपनी अत्यधिक नाराजगी दर्ज करता है कि दूसरे प्रत्यर्थी, राज्य या पुलिस अधिकारी, जिनका वाद संपत्ति पर कब्जा है, ने यह कहने का दुस्साहस किया है कि न्यायालय की प्रक्रिया को पूरा करने वाले अमीन का यह कर्तव्य था कि वह पहले एस.एस.पी. से संपर्क करे और एस.एस.पी. और संबंधित पुलिस स्टेशन के क्षेत्राधिकारी के निर्देश के पश्चात निष्पादन कार्रवाई करे। अमीन एस.एस.पी. से कोई आदेश लेने के लिए बिल्कुल भी बाध्य नहीं है। वास्तव में, यदि अमीन के पास किसी भी तरह का पर्याप्त बल उपलब्ध होता, तो वह बलपूर्वक निर्णीत-ऋणी को बेदखल करने का अधिकारी होता। आखिरकार, यदि बेदखली की डिक्री का पालन नहीं किया जाता है, तो उसे बलपूर्वक लागू किया जाना चाहिए। निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध आदेश अमीन द्वारा लागू किया जाना चाहिए, न कि पुलिस द्वारा। यदि निर्णीत-ऋणी विरोध करता है, तो अमीन का कर्तव्य है कि वह आदेश को बलपूर्वक लागू करे और ऐसे मामलों में पुलिस सहायता केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए दी जाती है,



डिक्री को बलपूर्वक लागू करने के लिए नहीं। भौतिक बल द्वारा प्रवर्तन अमीन द्वारा किया जाना है। यहां, चूंकि निर्णीत-ऋणी, जो स्वयं पुलिस या राज्य हैं, जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, ने न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के वैध निष्पादन में बाधा डालने के लिए अपने आदेश में उपलब्ध भौतिक बल का अवैध रूप से उपयोग किया, इसलिए डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकती।

66. सामान्य तौर पर, यह न्यायालय इन तथ्यों का प्रथम दृष्टया संज्ञान लेकर आपराधिक अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करता या दंड संहिता के अंतर्गत डिक्री के निष्पादन या किसी लोक सेवक को उसके कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा डालने के लिए अपराध दर्ज करने का निर्देश देता, परन्तु अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए, जिनका संज्ञान बाद में लिया जाएगा, यह न्यायालय ऐसा करने से विरत करता है। फिर भी, आई.जी./डी.आई.जी., आगरा रेंज, आगरा और एस.एस.पी., आगरा (अब पुलिस आयुक्त, आगरा) को इस मामले में व्यक्तिगत रूप से नहीं, अपितु उनके पद के आधार पर चेतावनी दी जाती है कि वे स्वयं या उनके अधीनस्थों द्वारा इस तरह के कृत्य की पुनरावृत्ति से सख्ती से बचें।

67. इस न्यायालय को यह भी टिप्पणी करनी चाहिए कि राज्य और पुलिस अधिकारियों, जिनका प्रतिनिधित्व वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा कर रहे हैं, ने याचिकाकर्ता के भाई सुरेंद्र कुमार गुप्ता को जिला सरकारी अधिवक्ता (सिविल), आगरा के रूप में अपने पद का

दुरुपयोग करने के लिए और उनके पिता को जिला न्यायालय, आगरा में बार के वरिष्ठ सदस्य के रूप में पद का दुरुपयोग करने के लिए पूरी तरह से दोषी ठहराया है। इस मामले में शामिल मुद्दों पर निर्णय लिए बिना, इस न्यायालय को यह कहना चाहिए कि अधिवक्ता से जुड़े मुकदमेबाजी की बात आने पर समाज के सदस्यों द्वारा बार के सदस्यों को दोषी ठहराना एक फैशन बन गया है, जिसमें राज्य के अधिकारी भी अपवाद नहीं हैं। आखिरकार, एक अधिवक्ता भी एक नागरिक है और उसे कानून की न्यायालय में कानूनी राहत पाने का पूरा अधिकार है। उसे न्यायालय में हर शजीतश के लिए कलंकित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह बार के सदस्य के रूप में अनुचित प्रभाव डाल सकता है या डाल सकता था। इस तरह के आरोप में एक निष्पक्ष मध्यस्थ के रूप में न्यायालय के अधिकार को कमजोर करने की प्रवृत्ति भी होती है।

68. यहाँ, ऐसे स्वस्थ तर्क हैं जो कहते हैं कि राज्य और पुलिस को अंधरे में रखा गया और उनके विरुद्ध एकपक्षीय डिक्रीयां पारित की गईं। न केवल वर्तमान मामले में, अपितु यह न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य है कि दो अन्य मुकदमों में भी एकपक्षीय डिक्री पारित की गई हैं। यह विश्वास करना कठिन है कि राज्य, अपनी समस्त मशीनरी के साथ, उसके विरुद्ध न्यायालयों में कार्यवाही संस्थित होने और वार्दों की प्रगति के बारे में कभी नहीं जान पाया होगा। कोई सोच सकता था कि हेरफेर की गई सेवा की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ सच्चाई हो सकती है, परन्तु प्रत्यर्थी संख्या 2, विशेष रूप से पुलिस का आचरण यह नहीं दर्शाता है

कि वे याचिकाकर्ता द्वारा उनके विरुद्ध संस्थित किए गए मुकदमे के बारे में बिल्कुल भी चिंतित थे।

69. निष्पादन की प्रक्रिया अमीन के हाथों में, पुलिस चौकी तक पहुँचने के बाद, मामले में कोई कार्रवाई नहीं की गई। न्यायालय द्वारा दिनांक 02.04.2011 को कलेक्टर, आगरा को संबोधित डिक्री का अनुपालन करने के लिए अनुरोध पत्र के माध्यम से निश्चित रूप से पुलिस सहित प्रत्यर्थीगण को मामले में आगे बढ़ना चाहिए था, परन्तु उन्होंने एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करवाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। इस न्यायालय द्वारा जिलाधिकारी, आगरा और डी.आई.जी., आगरा रेंज, आगरा को दिनांक 01.08.2011 के आदेश के माध्यम से बुलाने के बाद ही प्रत्यर्थीगण ने कुछ हलचल दिखाई। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 01.08.2011 को पूर्वोक्त आदेश पारित करने और उसके पश्चात दिनांक 23.08.2011 को इन अधिकारियों को न्यायालय में बुलाने के आदेश के बाद ही राज्य ने दिनांक 15.09.2011 को पहली बार संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपतियां दर्ज कीं। दिनांक 15.09.2011 से पूर्व, राज्य द्वारा कलेक्टर और पुलिस, जो विवादित संपत्ति पर काबिज हैं, उनके विरुद्ध पारित दिनांक 14.11.1991 के बेदखली की एकपक्षीय डिक्री के बारे में बिल्कुल भी चिंतित नहीं थे।

70. संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपतियों को निष्पादन न्यायालय ने दिनांक 25.11.2011 को खारिज कर दिया था। इसके पश्चात राज्य ने प्रांतीय लघु वाद न्यायालय

अधिनियम, 1887 की धारा 25 के अंतर्गत विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। राज्य द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण संख्या 103/2011 को पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 09.09.2014 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

71. उक्त आदेश से व्यथित होकर, उत्तर प्रदेश राज्य ने अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या 3222/2016 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्री आर.बी.एल. गुप्ता व दो अन्य, इस न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसे दिनांक 12.07.2016 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय की ओर से कथन करते हुए, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रस्तुत याचिका को खारिज करते हुए, माननीय न्यायमूर्ति पंकज मिथल, (तत्समय उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति) ने उन सभी विवादों को खारिज कर दिया, जो प्रत्यर्थीगण ने अब इस न्यायालय के समक्ष उठाए हैं, जो याचिकाकर्ता के स्वामित्व और वाद संपत्ति में किरायेदार के रूप में उनकी स्थिति से संबंधित हैं, और कथन किया:-

“प्रत्यर्थीगण ने उपरोक्त डिक्री के निष्पादन के लिए एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया। तदनुसार, निष्पादन वाद संख्या 20/1999 पंजीकृत किया गया। उक्त निष्पादन मामले में याचिकाकर्ता ने धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आपतियां दाखिल की और उन्हें आदेश दिनांकित 25.11.2011 द्वारा खारिज कर दिया गया। इसके विरुद्ध प्रस्तुत किया गया पुनरीक्षण दिनांक 09.09.2014 को खारिज कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता की आपत्तियों को खारिज करने वाले निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त दो आदेशों को इस याचिका के द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपास्त कर दिया गया है।

उपरोक्त आदेश पूर्व में दिनांक 25.11.2011 और 09.09.2014 को पारित किए गए थे। यह याचिका लगभग दो साल बाद दिनांक 05.05.2016 को दायर की गई है। इसलिए, याचिका में देरी और विलंब है। याचिकाकर्ता ने याचिका दायर करने में देरी को यह कहते हुए स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उसने मूल वाद संख्या 103/2011 और 1040/2011 दायर किए थे और उपरोक्त वादों के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था।

उपरोक्त में से एक वाद संख्या 1040/2011 अभी भी लंबित है और उसका निर्णय नहीं हुआ है। दूसरे वाद का निर्णय दिनांक 19.01.2016 को हुआ है।

मामले के इस दृष्टिकोण से, यह स्पष्टीकरण कि याचिकाकर्ता उपरोक्त वादों के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था, स्वीकार्य नहीं है।

गुण-दोष के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क यह है कि निष्पादन में दी गई डिक्री क्षेत्राधिकार से बाहर है और इस कारण से अमान्य है कि संपत्ति नजूल संपत्ति है और लघु वाद न्यायालय को मुकदमे की सुनवाई और निर्णय करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। निष्पादन न्यायालय ने उपरोक्त आपत्ति पर विचार नहीं किया है।

निष्पादन न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय दोनों ने अवलोकित किया है कि आदेश 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत याचिकाकर्ता की आपत्तियों में से एक यह थी कि दिनांक 14.11.1991 को लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित डिक्री क्षेत्राधिकार के बाहर है, परन्तु यह देखते हुए उक्त तर्क को खारिज कर दिया है कि वाद किरायेदारी के निर्धारण के बाद मकान मालिक द्वारा किरायेदार को बेदखल करने के लिए था और इस तरह यह लघु वाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय था और इसलिए डिक्री क्षेत्राधिकार के बाहर नहीं है।

अवर न्यायालयों ने आगे दर्ज किया है कि प्रत्यर्थागण ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो अन्य वाद अर्थात् सिविल वाद संख्या 279/1988 और 831/1992 दायर किए हैं, पहला याचिकाकर्ता को विवादित भूमि पर स्थित निर्माण को ध्वस्त करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए और दूसरा क्षतिपूर्ति के लिए।

उपरोक्त दोनों वादों पर डिक्री हो चुकी है तथा उनमें से एक में प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 9 नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल किया गया था, जो कि खारिज हो गया था। दोनों मुकदमों में प्रत्यर्थागण ने खुद को संपत्ति का स्वामी और मकान मालिक होने का दावा किया है जैसा कि उन्होंने मुकदमे में दावा किया था जिससे वर्तमान निष्पादन कार्यवाही शुरू हुई।

इस प्रकार प्रत्यर्थागण का सुसंगत मामला यह रहा है कि वे विवादित संपत्ति के

स्वामी और मकान मालिक हैं और याचिकाकर्ता उसका किरायेदार है। वाद अनिवार्य रूप से पक्षों के मध्य मकान मालिक और किरायेदार के संबंध पर आधारित था और उसमें पारित डिक्री क्षेत्राधिकार से बाहर नहीं है।

याचिकाकर्ता ने याचिका के पैरा 27 में कहा है कि उसने मूल वाद संख्या 1040/2011 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम तेज पाल व अन्य को सिविल जज, (सीनियर डिवीजन) आगरा के समक्ष विक्रय विलेख दिनांकित 31.07.1958 (जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण/उनके पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा संपत्ति खरीदी गई थी) को रद्द करने के लिए दायर किया था; मूल वाद संख्या 279/1988, आर.बी.एल. गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में पारित एकपक्षीय डिक्री दिनांकित 07.08.1991 को, एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 आर.बी.एल.गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित एकपक्षीय डिक्री दिनांकित 14.11.1991 को, मूल वाद संख्या 881/1992 में पारित एकपक्षीय डिक्री दिनांकित 26.02.1996 को अवैध, शून्य व अमान्य घोषित करने हेतु दायर किये गये; प्रत्यर्थीगण को वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे, उपयोग और लाभ में हस्तक्षेप करने से रोकने हेतु; प्रत्यर्थीगण को एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में पारित एकपक्षीय डिक्री दिनांकित 14.11.1991 को निष्पादित करने से रोकने हेतु; और याचिकाकर्ता को उपरोक्त संपत्ति का कब्जाधारी मालिक घोषित करने हेतु दायर किया गया।

उपरोक्त वाद में याचिकाकर्ता द्वारा याचित अनुतोष स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि

निष्पादन कार्यवाही में आपत्तियां दर्ज करके याचिकाकर्ता द्वारा याचित अनुतोष को उसके द्वारा पहले ही उपरोक्त वाद के माध्यम से दावा किया जा चुका है।

उपरोक्त वाद के संस्थित होने तथा इसके लंबित रहने के दृष्टिगत, निष्पादन कार्यवाही में उक्त प्रभाव पर की गई आपत्ति के बावजूद याचिकाकर्ता को वांछित अनुतोष प्राप्त हो सकता है।

उपरोक्त डिक्री जिसे निष्पादन में रखा गया है, आज की तिथि तक अंतिम है क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत दायर प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क कि डिक्री क्षेत्राधिकार के बिना है, इस कारण से कोई बल नहीं रखता है कि मुकदमा पट्टे के निर्धारण पर पट्टेदार को बेदखल करने के लिए था और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 के अनुसार लघु वाद न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर था।

उक्त मुकदमा पक्षकारों के मध्य मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते पर निर्भर था और स्वामित्व या भूमि की प्रकृति का प्रश्न उसमें दिए गए मामले से पूरी तरह से भिन्न था।

यह तर्क कि पक्षों के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई रिश्ता नहीं था

और इसलिए डिक्री क्षेत्राधिकार के बिना थी, आधारहीन है।

लघु वाद न्यायालय ने पक्षकारों के मध्य मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते को देखते हुए मुकदमे को डिक्री किया है। लघु वाद न्यायालय द्वारा लिया गया उक्त दृष्टिकोण हो सकता है कि सही न हो परन्तु इससे डिक्री क्षेत्राधिकार के बिना नहीं हो जाती है।”

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

72. अत्यधिक सावधानी के तौर पर, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जिस एकपक्षीय डिक्री के संबंध में वर्तमान निष्पादन लाया गया है, उसे भी दिनांक 01.09.2011 को विविध वाद संख्या 103/2011 के अंतर्गत संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत विचारण न्यायालय में स्थानांतरित करके अपास्त करने की मांग की गई थी। संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत यह प्रार्थना पत्र आदेश दिनांकित 19.01.2016 द्वारा खारिज कर दिया गया था। उल्लेखनीय बात यह है कि यह प्रार्थना पत्र, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 01.08.2011 और 23.08.2011 को पारित आदेशों के पश्चात, दिनांक 01.09.2011 को प्रस्तुत किया गया था, जिसमें जिलाधिकारी और डी.आई.जी. को व्यक्तिगत रूप से बुलाया गया था। स्पष्ट है कि दिए गए अच्छे कारणों से, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य ने विद्वान जनपद न्यायाधीश, आगरा के समक्ष पुनरीक्षण संख्या

6/2016 के रूप में एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया था। उक्त पुनरीक्षण, दिनांक 17.05.2017 को विद्वान अपर जिला/विशेष न्यायाधीश (ई.सी. अधिनियम) के समक्ष सुनवाई के लिए आया और खारिज कर दिया गया।

73. निष्पादन न्यायालय, अर्थात् अतिरिक्त न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा ने दिनांक 26.04.2013 के आदेश के द्वारा निष्पादन प्रार्थना पत्र स्वीकार किया और शहर अमीन को कब्जे की रिट जारी की। विचारण न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध, निष्पादन प्रार्थना पत्र स्वीकार करते हुए, कब्जे की रिट जारी की गई, उत्तर प्रदेश राज्य ने कलेक्टर, आगरा के माध्यम से विद्वान जनपद न्यायाधीश, आगरा के समक्ष एक एस.सी.सी. पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जहां इसे एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 101/2013 के रूप में क्रमांकित किया गया था। यह पुनरीक्षण, दिनांक 26.10.2018 को 10वें अपर जनपद न्यायाधीश, आगरा के समक्ष सुनवाई के लिए आया, जिन्होंने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की, जिसमें कब्जे की रिट जारी करने का निर्देश दिया गया था।

74. एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 101/2013 के खारिज होने के पश्चात, निष्पादन वाद संख्या 20/1999 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा द्वारा अमीन को पुनः कब्जे की रिट जारी की गई। अमीन ने दिनांक 27.11.2019 को अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें उन्होंने डिक्री निष्पादित करने में अपनी असमर्थता बताई, क्योंकि वाद संपत्ति में मौजूद

पुलिसकर्मियों ने कहा कि जब तक उनके उच्च अधिकारियों द्वारा आदेश नहीं दिया जाता, वे खाली नहीं करेंगे। उपरोक्त रिपोर्ट याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल 17 दिसंबर, 2019 के पूरक शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न है। दिनांक 27.11.2019 की अमीन की रिपोर्ट में लिखा है:-

“अमीन आख्या

श्रीमान जी,

मा0 न्यायालय के आदेशानुसार डिक्रीदार अधिवक्ता महोदय को नियम तारीख 27.11.2019 को पूर्व सूचना देने के बाद बगर्ज दखल दिलाने जायदाद नम्बरी 6/636 बाँके स्थित खंदारी थाना हरीपर्वत तहसील व जिला आगरा मौके पर पहुंचा। मौके पर डिक्रीदार उपस्थित मिले। मैंने उनको अपने परिचय दिया तथा न्यायालय के आदेश से अवगत कराते हुए अपने आने का आशय बताया तथा दखल तलब जायदाद को निशानदेही करने को कहा, तो उन्होंने पुलिस चौकी खंदारी के रूप में दखल तलब जायदाद की हदउद परवाना हाजा से मिलायी जो सही पायी गयी। तत्पश्चात मैंने चौकी प्रभारी खन्दारी को माननीय न्यायालय के आदेश से अवगत कराया तथा दखल तलब जायदाद को खाली करने को कहा साथ ही साथ संलग्न पत्र की मूल प्रति मय दखल आदेश की छाया प्रति उसको दी जो उन्होंने प्राप्त की, परन्तु अपने हस्ताक्षर करने से मना कर दिया साथ ही यह भी कहा कि यह जायदाद हम जब तक खाली नहीं करेंगे जब तक कि हमारे उच्च अधिकारी हमें आदेशित नहीं करेंगे। इस कारण दखल की कार्यवाही सम्पन्न नहीं हो सके।

अतः परवाना बिना तामील वास्ते अग्रिम आदेश श्रीमान जी की सेवा में सादर प्रेषित है।

दिनांक:- 27.11.2019

ह0 अपठित  
जितेन्द्र कुमार सक्सेना  
अमीन  
सिविल कोर्ट, आगरा।”

75. इस न्यायालय को यह टिप्पणी करनी है कि यह उसी दुष्कृत्य की पुनरावृत्ति थी, जो पुलिस ने दिनांक 20.12.2010 को किया था, जब निष्पादन न्यायालय द्वारा कब्जे की रिट जारी की गई थी, जिसके कारण देवकी नंदन, अमीन (सिविल कोर्ट), आगरा द्वारा एक ऐसी ही रिपोर्ट दी गई, जिसका उल्लेख विद्वान न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा के आदेश दिनांकित 09.03.2011 में मिलता है, जिसका उल्लेख इस निर्णय में पहले किया गया है। उस अवसर पर, पुलिस ने न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में बाधा उत्पन्न की थी, यह कहते हुए कि वे मुकदमे की संपत्ति खाली नहीं करेंगे क्योंकि उनके पास डी.आई.जी. से कोई आदेश नहीं है

76. यह लाभदायक पुनरावृत्ति है जो दर्शाती है कि मामले एक पूर्ण चक्र में आ गए, जब नौ वर्ष से अधिक समय पश्चात, दिनांक 27.11.2019 को, अमीन ने कब्जे की एक समान रिट रखते हुए एक समान रिपोर्ट दी, जिसमें कहा गया कि पुलिस ने इस बहाने से न्यायालय की डिक्री का पालन करने से इनकार कर दिया है कि वे अपने उच्च अधिकारियों द्वारा आदेश दिए जाने पर ही इसका पालन

करेंगे। इन बाधित रिटों के मध्य इस रिट याचिका की संपूर्ण कार्यवाही निहित है, जिसे दिनांक 05.07.2011 को संस्थित किया गया था, जिसमें न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा डिक्री को निष्पादित करने में असहायता का सामना करना पड़ा, जो इस निर्णय के प्रथम भाग में उद्धृत उनके आदेश दिनांकित 09.03.2011 में स्पष्ट है।

77. प्रत्यर्थागण के आचरण से यह स्पष्ट है कि वे डिक्री को बाधित करने पर तुले हुए हैं तथा इसके उल्लंघन के लिए राज्य के कठोर बल का उपयोग कर रहे हैं। उनके आचरण से यह भी पता चलता है कि उन्होंने सभी प्रासंगिक समय पर निष्पादन को स्थगित करने के लिए ही न्यायालय का रुख किया है। एस.एस.पी., आगरा द्वारा दिनांक 04.03.2021 को संहिता के आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया था। यह प्रार्थना पत्र तृतीय पक्ष की आपत्ति के रूप में, कलेक्टर, आगरा के माध्यम से उत्तर राज्य द्वारा काफी देर से दिया गया था, जो संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्तियों के माध्यम से निष्पादन का बचाव कर रहे थे तथा संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र व पुनरीक्षण साथ ही इस न्यायालय के समक्ष उपाय, संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत विलुप्त हो गए।

78. जैसा कि हमने देखा है, उत्तर प्रदेश राज्य के अनुरोध पर एक वाद, याचिकाकर्ता के वाद संपत्ति पर स्वामित्व को रद्द करने और दूसरे प्रत्यर्था को किरायेदार के रूप में नकारने की मांग करते हुए, मूल वाद सं0 1040/2011,

उस वर्ष से लंबित है। उक्त मुकदमे में याचित अनुतोष में से एक याचिकाकर्ता के पक्ष में वाद संपत्ति से संबंधित दिनांक 31.07.1958 के विक्रय विलेख को रद्द करना है। यह उदघोषणा भी याचित है कि उत्तर प्रदेश राज्य वाद संपत्ति का मालिक है और याचिकाकर्ता, उसके हस्तांतरकों सहित, का उसमें कोई अधिकार, स्वामित्व या हित नहीं था और न ही वे राज्य के मकान मालिक थे। एकपक्षीय डिक्री, जिसका विषय वस्तु वर्तमान निष्पादन है, को भी कपटपूर्ण घोषित करने और बिना क्षेत्राधिकार के पारित, घोषित करने की मांग की गई थी।

79. याचिकाकर्ता के वाद संपत्ति के स्वामित्व पर प्रश्न उठाते हुए, इस न्यायालय के संज्ञान में बहुत चौंकाने वाले तथ्य लाए गए थे, जिस पर हमने इस निर्णय में पूर्व में भी उचित ध्यान दिया है। यह भी हमारे संज्ञान में लाया गया कि राज्य के कथनानुसार, याचिकाकर्ता के पिता के विक्रेता को उनके नाम पर वाद संपत्ति हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं था, क्योंकि यह पूरी नजूल भूमि है। डी.आई.जी. द्वारा दिनांक 10.10.2014 के प्रति शपथपत्र के पैरा संख्या 11 में किराये की रसीदों को जाली होने का दावा किया गया है क्योंकि डी.आई.जी. के कथनानुसार उन्होंने इनके संबंध में एक जांच कराई थी।

80. यह न्यायालय कम से कम इतना तो कह ही सकता है कि कार्यवाही के इस चरण में, जहां बेदखली की डिक्री के निष्पादन में, प्रत्यर्थागण सभी मंचों पर हार चुके हैं, उनके सफल होने की एकमात्र उम्मीद संहिता के

आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत मुकदमा या आपतियों से है। ये दोनों कार्यवाही स्वामित्व कार्यवाही हैं। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, इनमें से किसी भी कार्यवाही में, जहां ये लंबित हैं, न्यायालयों ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को बेदखली से कोई अंतरिम राहत प्रदान नहीं की है। यह न्यायालय, कम से कम, दिनांक 31.07.1958 के विक्रय विलेख की वैधता या किराया रसीदों की वैधता से संबंधित इन सभी विवादित प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता।

81. यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि डी.आई.जी. का दावा कि उन्होंने जांच कराई थी और किराया रसीदें जाली पाई थीं, किसी तर्क या वादी के वाद से अधिक महत्व नहीं रखती हैं। यहां डी.आई.जी. किसी मामले की जांच करने वाले पुलिस अधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर रहे हैं, अपितु वे निर्णीत-ऋणी के गुट के सदस्य की स्थिति में हैं। इसलिए, उनकी जांच को स्वार्थपूर्ण और निरर्थक माना जाना चाहिए। दुर्भाग्य से, प्रत्यर्थीगण के लिए, किसी भी न्यायालय ने अभी तक याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य या पुलिस पर धोखाधड़ी के उनके मामले को स्वीकार नहीं किया है।

82. वास्तव में, हमारा विचार है कि हम इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत मामले संख्या 3222/2016 पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 12.07.2016 में की गई टिप्पणियों पर नहीं जा सकते हैं, जहां बेदखली की डिक्री को निष्पादित करने के प्रयोजन से, प्रत्यर्थीगण द्वारा संस्थित संपूर्ण वाद, जिसमें याचिकाकर्ता के स्वामित्व पर प्रश्न उठाया गया था, इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया

गया था। इस स्तर पर राज्य के हितों की रक्षा के लिए यह न्यायालय केवल इतना ही प्रदान कर सकता है कि उत्तर प्रदेश राज्य के वाद के निर्णय और आदेश 21 नियम 97 के अंतर्गत एस.एस.पी. की आपति के लंबित रहने तक, मुकदमे की संपत्ति को संरक्षित किया जाए, अच्छी स्थिति में रखा जाए, उसको अलगाव व अपव्यय से बचाया जाए। यह स्पष्ट समझ के साथ किया जाना चाहिए कि यदि उत्तर प्रदेश राज्य या राज्य के पदाधिकारी के रूप में एस.एस.पी. किसी भी स्तर पर वादग्रस्त संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हो जाए, तो याचिकाकर्ता संपत्ति को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित किए बिना, अच्छी तरह से संरक्षित रखेगा, ताकि इसे प्रत्यर्थी संख्या 2 को वापस सौंपा जा सके।

83. याचिकाकर्ता, जो एस.सी.सी. वाद संख्या 108/1989 में डिक्रीधारक है, द्वारा इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए प्रार्थना की गई है कि डिक्री के निष्पादन में वाद संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा सौंपना सुनिश्चित करने के लिए न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय को परमादेश जारी किया जाए, जो कि रिट का अपनिर्देशन हो सकता है। डिक्री के निष्पादन के लिए इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार का सहारा लेना, निष्पादन न्यायालय द्वारा दिए गए अनुतोष को प्रभावी बनाने के लिए कहीं अधिक स्थिर और विश्वसनीय प्रक्रिया है, याचिकाकर्ता के लिए ऐसा करना बहुत ही असामान्य बात है, परन्तु बारह वर्षों की अवधि में, इस याचिका पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उत्तर



प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा और वरिष्ठ एस.पी. के नेतृत्व में आगरा पुलिस ने निष्पादन न्यायालय की सभी प्रक्रियाओं की दंड मुक्ति से निराश है।

84. सैद्धांतिक रूप में, यह न्यायालय याचिकाकर्ता को उसके वैकल्पिक उपायों के बारे में सलाह देकर वापस भेज सकता था, परन्तु इन बारह वर्षों में ऐसा नहीं किया गया है कि इस रिट याचिका ने इस न्यायालय की विभिन्न पीठों का ध्यान आकर्षित किया हो। इसका कारण यह है कि राज्य प्राधिकारियों, विशेष रूप से पुलिस, जो उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से मुकदमे की संपत्ति के कब्जाधारी हैं, की कार्रवाई, कम से कम कहे तो, सबसे अनुचित है। एक राज्य प्राधिकरण को अपनी लापरवाही या दूसरे पक्ष की कुशलता के कारण वाद हारने के पश्चात, विनम्रतापूर्वक इस मामले में नतमस्तक होना चाहिए और विधिसम्मत उपायों की तलाश करनी चाहिए। परन्तु, जब तक वह एक या दूसरे उपाय में सफल नहीं हो जाता, तब तक वह अपने आधिकारिक तंत्र का सहारा लेकर, न्यायिक प्रक्रिया का अतिक्रमण करते हुए किसी डिक्री या आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता।

85. यहां याचिकाकर्ता ने स्वयं को एक से अधिक बार ऐसी स्थिति में पाया है, जहां उसने राज्य और पुलिस के विरुद्ध कब्जा वापस लेने के लिए अपने पक्ष में अधिकार स्थापित किया है और निष्पादन न्यायालय के समक्ष अपने उपाय में भी सफल रहा है, परन्तु पुलिस द्वारा कोर्ट अमीन को यह कहकर उपाय को बार-बार निष्प्रभावी कर दिया गया है कि यहां न्यायालय

की रिट नहीं अपितु डी.आई.जी. की अनुमति महत्व रखती है। यहां डी.आई.जी. एक वादी हैं और यह सोचना बेतुका है कि एक वादी, जो इस तरह से व्यवहार कर रहा है, अपने अधीनस्थों को वाद संपत्ति खाली करने की अनुमति देगा। अमीन द्वारा रिपोर्ट दिनांकित 20.12.2020 दाखिल करने के पश्चात पारित निष्पादन न्यायालय के आदेश दिनांकित 09.03.2011 का यदि कोई अवलोकन करे तो निष्पादन न्यायालय की प्रक्रिया को पुलिस द्वारा निर्णीत-ऋणी या निर्णीत-ऋणी के अंतर्गत दावा करने वाले पक्ष, उत्तर प्रदेश राज्य के रूप में एक मजाक बना दिया गया है। यह स्थिति नौ वर्ष से भी अधिक समय पश्चात तब आई, जब उत्तर राज्य ने इस न्यायालय समेत सभी न्यायालयों में अपने सभी उपायों में विफल होने के बाद वही रुख अपनाया, जिसमें दिनांक 27.11.2019 को कोर्ट अमीन को विवादित संपत्ति पर तैनात पुलिसकर्मियों ने बताया कि जब तक उनके उच्च अधिकारी उन्हें अनुमति नहीं देंगे, तब तक वे खाली नहीं करेंगे। कब्जे की रिट को निष्पादन न्यायालय को बिना निष्पादित किए वापस करना पड़ा।

86. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, याचिकाकर्ता द्वारा याचित अनुतोष को थोड़ा सा संशोधित किया जाना चाहिए। यह उन दुर्लभ मामलों में से एक है, जहाँ निष्पादन की प्रक्रिया को प्रत्यर्थी संख्या 2, विशेष रूप से आगरा के पुलिस अधिकारियों द्वारा, अपनी आधिकारिक शक्ति का दुरुपयोग करके पूर्ण रूप से निष्क्रिय और अप्रभावी बना दिया गया है, जिसके कारण इस न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ा और उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा

कलेक्टर हेत यह परमादेश जारी करना पड़ा है कि जो कोई भी उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा की ओर से वाद संपत्ति पर कब्जाधारी पाया जाता है, जिसमें पुलिस भी शामिल है, उसे बिना किसी बाधा के, डिक्री के अनुसार और इस न्यायालय द्वारा आदेशित तरीके और समयसीमा के भीतर याचिकाकर्ता को वाद संपत्ति पर कब्जा सौंप देना चाहिए। बेशक, राज्य और पुलिस, जो उनकी ओर से कब्जाधारी है, के अधिकार पूर्व वर्णित ढंग से सुरक्षित रहेंगे।

87. अब, प्रश्न यह है कि क्या यह न्यायालय सिविल न्यायालय या लघु वाद न्यायालय के नियमित पक्ष द्वारा पारित डिक्री को निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट जारी कर सकता है। सामान्यतः और सदा ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। निष्पादन, डिक्री को लागू करने के लिए एक आत्मनिर्भर और प्रभावी प्रक्रिया है और इसे निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट हमेशा जारी नहीं की जानी चाहिए। यदि वर्तमान जैसी स्थिति में, निर्णीत-ऋणी राज्य नहीं होता और वास्तविक अधिभोगी पुलिस जैसा राज्य का सशस्त्र बल नहीं होता, तो निष्पादन न्यायालय आसानी से पुलिस सहायता प्रदान करने का निर्देश दे सकता था। हम भी सोच सकते हैं कि निष्पादन न्यायालय द्वारा कार्रवाई का वह तरीका क्यों नहीं अपनाया गया। परन्तु, कटु वास्तविकता यह है कि निष्पादन न्यायालय ने, वाद संपत्ति पर पुलिसकर्मियों द्वारा कब्जे की अपनी रिट को दरकिनार करने के दूसरे अवसर के पश्चात, जिसे अमीन ने अपनी रिपोर्ट दिनांकित 27.11.2019 के माध्यम से बिना निष्पादित

किए वापस कर दिया है, पुनः दिनांक 09.12.2019 को वरिष्ठ एस.पी., आगरा को एक जापन संबोधित किया है, जिसकी एक प्रति कलेक्टर, आगरा, निर्णीत-ऋणी को भेजी गई है, जिसमें वास्तविक कब्जाधारी, एस.एस.पी., आगरा से डिक्री के निष्पादन में वाद संपत्ति खाली करने के लिए कहा गया है, जिसे निष्पादन न्यायालय में विद्वान न्यायाधीश ने प्राचीन बताया है। विद्वान न्यायाधीश ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि पुलिसकर्मियों ने कब्जे की रिट का पालन करने से इनकार कर दिया है, यह कहते हुए कि वे तभी खाली करेंगे जब पुलिस के उच्च अधिकारी उन्हें ऐसा करने का आदेश देंगे, जिसके परिणामस्वरूप डिक्री अनिष्पादित रह गई। दिनांक 09.12.2019 के पश्चात से तथा न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय के एस.एस.पी. आगरा को भेजे गए पत्र से अभी तक कुछ नहीं हुआ।

88. इस न्यायालय ने पहले भी इस निर्णय में कहा है कि न्यायालय को वादी को पत्र नहीं लिखना चाहिए, चाहे वे कोई भी हों। इससे न तो कोई उद्देश्य पूरा होता है और न ही यह न्याय प्रणाली के लिए शुभ संकेत है। कब्जे की रिट वापस होने के पश्चात इस तरह का पत्र लिखना निष्पादन में सहायता के लिए जारी की गई न्यायालय की कोई प्रक्रिया नहीं है। यह निष्पादन न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपने आदेश को प्रभावी करने में पूर्ण रूप से असहाय होने की अभिव्यक्ति है।

89. इस असंभवता और असहायता का सामना करते हुए याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का

रुख किया है, और परमादेश रिट जारी करने की प्रार्थना की है। परन्तु, वह जिस परमादेश की मांग कर रहा है, वह गलत व्यक्ति से है, अर्थात् न्यायाधीश। हमारा विचार है कि यह परमादेश कलेक्टर, आगरा तथा उनकी ओर से वाद संपत्ति पर कब्जा रखने वाले किसी भी व्यक्ति के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य को जारी किया जाना चाहिए, जिसमें एस.एस.पी., आगरा या आई.जी. पुलिस/डी.आई.जी., आगरा रेंज, आगरा द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाले पुलिस अधिकारी या वर्तमान में पुलिस आयुक्त, आगरा, जो भी हो, शामिल हैं।

90. निर्णय में थोड़ा पहले, इस न्यायालय ने अपने समक्ष एक प्रश्न रखा था कि क्या सिविल न्यायालय की डिक्ली को निष्पादित करने के लिए परमादेश रिट जारी की जा सकती है। हमें लगता है कि इस प्रकार की दुर्लभ स्थिति में अन्याय को कम करने के लिए ऐसा किया जाना चाहिए। परमादेश रिट के दायरे पर विस्तार से विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **सचिव, कन्नूर जिला मुस्लिम शैक्षिक संघ, करीमबम बनाम केरल राज्य व अन्य, (2010) 6 एस.सी.सी. 373** में कहा था:-

“29. रिट याचिका को खारिज करते हुए माननीय उच्च न्यायालय ने सम्मानपूर्वक परमादेश रिट के बारे में काफी सीमित दृष्टिकोण अपनाया था। परमादेश रिट मूल रूप से शाही प्राधिकरण पर आधारित एक सामान्य विधिक उपाय था। इंग्लैंड में, विभिन्न प्रकार के मामलों में न्याय की विफलता को रोकने के लिए रिट का सार्वजनिक कानून में व्यापक रूप

से उपयोग किया जाता है। इंग्लैंड में यह एक विशेषाधिकार रिट थी और आज भी है। अमेरिका में ये एक अधिकार की रिट है। (एस.एस. मेरिल द्वारा परमादेश का कानून, शिकागो, टी.एच. फ्लड एंड कंपनी, 1892, पैरा 62, पृ. 71)

30. एस.ए. डे स्मिथ ने प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा, द्वितीय संस्करण, पृ. 378 और 379 में इस रिट के बारे में कहा कि यह रिट न्याय की विफलता और पुलिस के दोष से उत्पन्न अव्यवस्था को रोकने के लिए तैयार की गई थी और इसका इस्तेमाल एक विशिष्ट कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए बाध्य करने के लिए किया गया था। इस रिट के बारे में 1762 में लॉर्ड मैन्सफील्ड ने पाया कि “पिछली शताब्दी में प्रजा के लाभ और न्याय के विकास के लिए इसे उदारतापूर्वक प्रयोग किया गया था”।

31. इस रिट के बारे में लॉर्ड मैन्सफील्ड की सटीक टिप्पणियों को वेड के प्रशासनिक कानून, 10वें संस्करण में उद्धृत किया गया है और वे टिप्पणियां परमादेश के दायरे को समझने में आज भी प्रासंगिक हैं। उक्त टिप्पणियां निम्न प्रकार से हैं:-

“इसे न्याय की विफलता तथा पुलिस की दोषपूर्णता से उत्पन्न अव्यवस्था को रोकने के लिए लागू किया गया था। इसलिए इसका प्रयोग उन सभी मौकों पर किया जाना चाहिए जहां कानून ने कोई विशिष्ट उपाय स्थापित नहीं किया है, और जहां न्याय और अच्छी सरकार एक हो...। जहां मामले का महत्व, या

सार्वजनिक पुलिस के लिए इसके महत्व की मात्रा, को ईमानदारी से नहीं आंका जाता है। यदि कोई अधिकार है, और कोई अन्य विशिष्ट उपाय नहीं है, तो इसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। व्याख्याताओं, लिपिकों, सेक्सटन और सफाईकर्मियों आदि को भर्ती करने, एक एल्डरमैन को वरीयता देने, एक अधिवक्ता को एक अवर न्यायालय में व्यवसाय करने आदि के लिए परमादेश की रिट दी गई है।” (एच.डब्ल्यू.आर. वेड और सी.एफ. फोर्सिथ: प्रशासनिक कानून, 10वां संस्करण, पृ. 522-23.)

32. डे स्मिथ ने न्यायिक समीक्षा, 6वें संस्करण में भी लॉर्ड मैन्सफील्ड के योगदान को स्वीकार किया है जिसके कारण परमादेश के रिट पर कानून का विकास हुआ। आर. वी. ब्लूअर (1760) 2 बूर 1043: 97 ई.आर. 697, में लॉर्ड मैन्सफील्ड का भाषण इस प्रकार है:-

“एक विशेषाधिकार रिट जो राजा से स्वयं प्रवाहित होती है, जो अपने दरबार में बैठकर पुलिस का पर्यवेक्षण करता है और इस देश की शांति को बनाए रखता है”। (देखें डी स्मिथ की न्यायिक समीक्षा, 6वां संस्करण, स्वीट और मैक्सवेल पृष्ठ 795, अनुच्छेद 15-36)

33. लगभग एक शताब्दी पूर्व, जे. डार्लिंग ने आर.वी. डेनबिशायर (जस्टिस ऑफ) (1803) 4 ईस्ट 142: १०२ ई.आर. 784, आर. वी. रिवाइजिंग बैरिस्टर फॉर द बरो ऑफ हैनले (1912) 3 के.बी. 518, में की गई टिप्पणियों

को उद्धृत किया, जो परमादेश के व्यापक दायरे की व्याख्या करता है। प्रासंगिक टिप्पणियां हैं:- (रिवाइजिंग बैरिस्टर केस (1912) 3 के.बी. 518, के.बी. पृ. 529)

“... त्रुटि और कुशासन के लिए इस महान संवैधानिक उपाय को लागू नहीं करने के कारणों की खोज करने के लिए चतुरता के बजाय, हम इसे हर उस मामले में लागू करने के लिए सतर्क रहना अपना कर्तव्य समझते हैं, जिसमें किसी भी उचित निर्माण से, इसे लागू किया जा सकता है।”

34. रिपोर्ट के के.बी. पृष्ठ 531 में, जे. चैनल ने परमादेश के बारे में कहा: (रिवाइजिंग बैरिस्टर केस (1912) 3 के.बी. 518)

“... यह एक सबसे उपयोगी क्षेत्राधिकार है जो इस न्यायालय को गलतियों को सही करने में सक्षम बनाता है।”

35. द्वारका नाथ बनाम आई.टी.ओ. (ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 81), में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इस अनुच्छेद को जानबूझकर व्यापक भाषा में तैयार किया गया है ताकि यह उच्च न्यायालय को “जहां कहीं भी अन्याय पाया जाता है, वहां पहुंचने की” व्यापक शक्ति प्रदान करे। निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति सुब्बा राव (तत्कालीन न्यायमूर्ति) ने माना कि संविधान ने शक्ति की प्रकृति का वर्णन करने में जानबूझकर ऐसी व्यापक भाषा का इस्तेमाल किया है। विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा कि उच्च न्यायालय

विशेषाधिकार रिट की प्रकृति में रिट जारी कर सकता है जैसा कि इंग्लैंड में समझा जाता है; परन्तु विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि भारत में इन रिटों का दायरा “प्रकृति” शब्द के उपयोग से व्यापक हो गया है।

36. द्वारका नाथ (ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 81), में विद्वान न्यायाधीश ने यह स्पष्ट कर दिया कि उक्त अभिव्यक्ति भारत में जारी की जा सकने वाली रिटों को इंग्लैंड में जारी की जा सकने वाली रिटों के बराबर नहीं मानती, अपितु उनसे मात्र समानता दर्शाती है। फिर विद्वान न्यायाधीश ने पूरी स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया: (ए.आई.आर. पृष्ठ 85, पैरा 4)

“4. .... यह उच्च न्यायालयों को इस देश की विशिष्ट और जटिल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुतोष को ढालने में सक्षम बनाता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्ति के दायरे को विशेषाधिकार रिट जारी करने के लिए अंग्रेजी न्यायालयों के दायरे के बराबर करने का कोई भी प्रयास, इंग्लैंड जैसे तुलनात्मक रूप से छोटे देश में वर्षों से बढ़ी अनावश्यक प्रक्रियात्मक बाधाओं को भारत जैसे विशाल देश में संघीय ढांचे के अंतर्गत काम करने के लिए प्रस्तुत करना है। इस तरह की व्याख्या अनुच्छेद के उद्देश्य को ही पराजित करती है।”

39. इस न्यायालय ने कई निर्णयों में परमादेश रिट के बारे में बहुत व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक बनाम के.एस. जगन्नाथन (1986) 2 एस.सी.सी. 679: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस)

एस) 345: (1986) 1 ए.टी.सी. 1- ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 537, में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस उपाय की सीमा को स्पष्ट करने के लिए हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, चौथा संस्करण, खंड 1, अनुच्छेद 89 का संदर्भ दिया तथा परमादेश की प्रभावकारिता के बारे में हेल्सबरी से निम्नलिखित अंश को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया:

“89. परमादेश की प्रकृति- ... न्याय के दोषों का उपचार करना है; और तदनुसार यह जारी करेगा ताकि न्याय हो सके, उन सभी मामलों में जहां एक विशिष्ट विधिक अधिकार है और उस अधिकार को लागू करने के लिए कोई विशिष्ट विधिक उपाय नहीं है; और यह उन मामलों में जारी कर सकता है जहां, हालांकि एक वैकल्पिक विधिक उपाय मौजूद है, फिर भी निवारण का वह तरीका कम सुविधाजनक, लाभकारी और प्रभावी है।” (रिपोर्ट के एस.सी.सी. पृष्ठ 692, पैरा 19 देखें)

एस.सी.सी. पैरा 20 में, रिपोर्ट के उसी पृष्ठ पर, इस न्यायालय ने आगे कहा- (के.एस. जगन्नाथन वाद (1986) 2 एस.सी.सी. 679: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 345: (1986) 1 ए.टी.सी. 1: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 537, पृष्ठ 693)

“20. .... और एक उचित मामले में, संबंधित पक्षों को होने वाले अन्याय को रोकने के लिए, न्यायालय स्वयं एक आदेश पारित कर सकता है या निर्देश दे सकता है, जो सरकार या सार्वजनिक प्राधिकरण को पारित करना चाहिए था या देना चाहिए था, यदि

उसने उचित और वैधानिक रूप से अपने विवेक का प्रयोग किया होता।”

40. अंडी मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्तजी वंदस स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट बनाम वी.आर. रुदानी (1989) 2 एस.सी.सी. 691: ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 1607, में निर्णय में भी इस न्यायालय ने परमादेश के कानून के विकास की जांच की और निम्नानुसार माना: (एस.सी.सी. पृष्ठ 701, पैरा 22)

“22. ... परमादेश को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि लागू किया जाने वाला कर्तव्य कानून द्वारा नहीं लागू किया गया है। इस कानून के विकास पर टिप्पणी करते हुए, प्रोफेसर डी स्मिथ कहते हैं: ‘परमादेश द्वारा लागू होने के लिए किसी सार्वजनिक कर्तव्य को अनिवार्य रूप से कानून द्वारा लागू किया जाना जरूरी नहीं है। यह पर्याप्त हो सकता है कि कर्तव्य चार्टर, सामान्य कानून, प्रथा या अनुबंध द्वारा लागू किया गया हो। (प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा, चौथा संस्करण, पृष्ठ 540)। हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं। लोगों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले निकायों के तेजी से बढ़ते चक्रव्यूह पर न्यायिक नियंत्रण को एक सीमित दायरे में नहीं रखा जाना चाहिए। परिवर्तनशील परिस्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसे लचीला रहना चाहिए। परमादेश एक बहुत व्यापक उपाय है जो “जहां कहीं भी अन्याय हो, उसे दूर करने के लिए” आसानी से उपलब्ध होना चाहिए। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उस राहत को प्रदान करने में तकनीकी

पहलुओं को आड़े नहीं आना चाहिए। इसलिए, हम रिट याचिका की पोषणीयता पर अपीलकर्ताओं द्वारा दिए गए तर्क को अस्वीकार करते हैं।” (बल दिया गया) (ए.आई.आर. पृष्ठ 1613, पैरा 21 देखें।)”

91. इस प्रश्न ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का ध्यान के. सीताराम दास बनाम सिकिले मोसेस व अन्य, 1999 (1) ए.पी.एल.जे. 406 (एच.सी.) में आकर्षित किया। के. सीताराम दास (उपरोक्त) में न्यायालय एक असाधारण रूप से, पकड़ में न आने वाले निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध धन डिक्री निष्पादित करने में निष्पादन न्यायालय की असहायता से चिंतित था, जिसे किसी भी तरह से डिक्री निष्पादित करने के लिए गिरफ्तार नहीं किया जा सका था और न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता था। निराश डिक्री-धारक ने अंतिम उपाय के रूप में संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की ओर रुख किया और निर्णीत-ऋणी को गिरफ्तार करने और विद्वान सिविल न्यायाधीश, नरसापुर, पश्चिम गोदावरी, जो निष्पादन न्यायालय था, के समक्ष पेश करने के लिए परमादेश रिट या किसी अन्य उपयुक्त रिट के लिए आवेदन किया। न्यायालय द्वारा निष्पादन में सहायता के लिए अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर उठाई गई आपत्ति को के. सीताराम दास की रिपोर्ट के पैरा संख्या 8 में वर्णित तरीके से सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है:

“8. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.आर.के. चौधरी भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर विवाद नहीं करते हैं कि जब भी न्याय हित में ऐसा करने की आवश्यकता हो, तो वह उचित रिट या निर्देश जारी कर सकता है। परन्तु विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि सिविल कानून में उपलब्ध उपचार भी सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायाधिकरणों के समक्ष उपलब्ध उपचारों की तुलना में बेहतर प्रकृति के हैं और सिविल न्यायालय अपने आदेशों को लागू करने में सक्षम हैं। यह न्यायालय समानांतर कार्यवाही के माध्यम से रिट याचिका पर विचार नहीं कर सकता है। इस न्यायालय को ऐसे मामलों में अपने विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए जहां सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पर्याप्त उपचार उपलब्ध हैं।”

92. निर्णीत-ऋणी द्वारा प्रस्तुत प्रतिरोध की व्यापकता तथा जिस प्रकार इसने निष्पादन की प्रक्रिया को भ्रामक तथा निरर्थक बना दिया था, उसका वर्णन के. सीताराम दास की रिपोर्ट के पैरा संख्या 12 में इस प्रकार किया गया है:-

“12. विद्वान वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश ने मामले के पूरे इतिहास और डिक्री के निष्पादन से बचने के लिए प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अपनाई गई रणनीति और तरीकों का उल्लेख किया। विद्वान न्यायाधीश ने पाया कि प्रथम प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के आदेशों के साथ-साथ इस न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन किया है और इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 19-04-1993 का पालन करने में विफल रहा है, जिसमें डिक्री की आधी राशि इस

तिथि तक जमा करने का आदेश था। विद्वान न्यायाधीश ने देखा कि प्रथम प्रत्यर्थी ने कार्यवाही को लंबा खींचकर सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का दुरुपयोग किया है। न्यायालय द्वारा पारित आदेश विफल रहा हैं। विद्वान विचारण न्यायाधीश याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रार्थना पत्र का निस्तारण इस न्यायालय के सी.एम.पी. सं0 19151/1997 में इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में कर रहे थे, जो इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा जारी किए गए थे, जिसमें याचिकाकर्ता के अनुरोध पर विचार करने के लिए डिक्री के निष्पादन के संबंध में प्रथम प्रत्यर्थी को पकड़ने के लिए पुलिस को आवश्यक निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने पाया कि न्यायालय द्वारा कई बार गिरफ्तारी का वारंट जारी किया गया। न तो जमानती और न ही एडवोकेट-कमिशनर यह जानने के लिए परिसर में प्रवेश कर सके कि प्रथम प्रत्यर्थी उपलब्ध है या नहीं। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने न्यायिक प्रक्रिया में बाधा डालने में प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अपनाई गई विलम्बकारी रणनीति पर अपनी पीड़ा और चिंता व्यक्त की। परन्तु, विचारण न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश जिसमें नरसापुर के उप-प्रभागीय पुलिस अधिकारी को पर्याप्त और उचित पुलिस सुरक्षा प्रदान करने और गिरफ्तारी वारंट के उचित निष्पादन के लिए एडवोकेट-कमिशनर की सहायता करने का निर्देश दिया गया था, वह भी कागजों पर ही रह गया। यह एक दुखद टिप्पणी है कि अब तक विचारण न्यायालय ने पिछले छह वर्षों के दौरान तीस से अधिक बार वारंट जारी किए हैं ताकि प्रथम प्रत्यर्थी-निर्णीत ऋणी को पकड़ा जा

सके और मामले में आगे की कार्यवाही के लिए उसे न्यायालय में पेश किया जा सके।”

93. के. सीताराम दास में इस मुद्दे का उत्तर देते हुए, बी. सुदर्शन रेड्डी, जे. (तत्कालीन माननीय उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति) ने कहा:

“13. क्या यह ऐसा मामला है, जिसमें इस न्यायालय को चुपचाप यह तमाशा देखना चाहिए और इस आधार पर हस्तक्षेप करने से इंकार कर देना चाहिए कि याचिकाकर्ता के पास पर्याप्त वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हैं?

14. यह सत्य है कि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आमतौर पर किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में रिट जारी नहीं करेगा, जिसके पास पर्याप्त वैकल्पिक उपाय हो। वैकल्पिक उपाय को कभी भी पर्याप्त वैकल्पिक उपाय नहीं कहा जा सकता, जब तक कि वह समान रूप से सुविधाजनक, लाभकारी और प्रभावी न हो। वह नियम, जो वैकल्पिक उपाय के समाप्त होने की आवश्यकता बताता है, कानून के नियम से अधिक सुविधा और विवेक का नियम है। दूसरे शब्दों में, यह न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक नहीं लगाता है। देखें: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह (1) ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 86। हो सकता है कि पर्याप्त वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व हमेशा एक ऐसा कारक हो, जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

15. बी. गोविंदा रेड्डी बनाम राजस्व विभागीय अधिकारी-सह-एल.ए.ओ., कुरनूल (2) 1997 (5) ए.एल.डी. 748 में, इस न्यायालय को इसी प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला कि क्या यह न्यायालय सक्षम सिविल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश और डिक्री को लागू करने और निष्पादित करने के लिए रिट याचिका पर विचार करेगा और तदनुसार यह माना गया कि डिक्री धारकों को अनिवार्य रूप से निष्पादन कार्यवाही का सहारा लेना होगा और विधि अनुसार डिक्री को निष्पादित करवाना होगा और न्यायालय सामान्य रूप से डिक्री धारकों से सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उपलब्ध वैकल्पिक प्रभावी उपाय अपनाने पर जोर देगा। हालाँकि, उक्त निर्णय में यह स्पष्ट किया गया है कि वैकल्पिक और प्रभावी उपाय का अस्तित्व किसी भी तरह से बाधा के रूप में कार्य नहीं करता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने के मामले में इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार को प्रभावित नहीं करता है। न्यायालय हमेशा उचित निर्देश जारी कर सकता है, जब भी और जहाँ भी न्याय हित में ऐसे निर्देश जारी करने की आवश्यकता होगी। यह तथ्य कि याचिकाकर्ताओं ने निष्पादन की कार्यवाही शुरू करके कानून में उनके लिए उपलब्ध उपाय का पहले ही लाभ उठाया था, इस न्यायालय के भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आवश्यक निर्देश जारी करने के क्षेत्राधिकार को प्रभावित नहीं कर सकता है।

22. इस विषय पर विधि सुस्थापित है। मामला विवेक का होगा। पूछे जाने वाला प्रश्न



यह है कि प्रदान किया गया उपाय पर्याप्त उपाय था या नहीं। जब भी न्याय हित की आवश्यकता हो, उचित रिट जारी करने का इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार संवैधानिक योजना और क्षेत्राधिकार के प्रयोग में स्वयं बनाई गई सीमाओं को छोड़कर किसी भी तरह से सीमित नहीं है।

23. सत्यनारायण तिवारी बनाम एस.एच.ओ., थाना संतोषनगर (11) 1982 (2) ए.एल.टी. 161: 1983 (1) ए.एन. डब्ल्यू.आर. 114: ए.आई.आर. 1982 ए.पी. 394 में इस न्यायालय की खंडपीठ ने इस प्रश्न का निस्तारण करते हुए कि क्या उच्च न्यायालय संबंधित अधिकारियों को एक सिविल कोर्ट के आदेशों को लागू करने के लिए रिट या निर्देश जारी कर सकता है, अवलोकित किया कि:

“सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को सुरक्षित रखती है। संविधान का अनुच्छेद 226 एक कदम आगे जाता है और किसी राज्य के उच्च न्यायालय को न केवल परमादेश रिट जारी करने, अपितु भाग 3 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए उचित रिट, निर्देश या आदेश जारी करने का असाधारण क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। जैसा कि कलकत्ता गैस कंपनी (प्रॉप.) लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1044 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है, “किसी अन्य उद्देश्य” का अर्थ है “किसी कानूनी अधिकार का प्रवर्तन और किसी कानूनी कर्तव्य का पालन”। कानूनी अधिकार का अर्थ निश्चित रूप

से कोई कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार है। सिविल कोर्ट और उच्च न्यायालय के आदेशों के प्रवर्तन से बड़ा उद्देश्य कुछ भी नहीं हो सकता है जो किसी पक्ष के अधिकारों की पुष्टि करता है या उन्हें मान्यता देता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की किसी भी व्याख्या से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की अपने स्वयं के आदेशों या सिविल न्यायालय के आदेशों को लागू करने की शक्ति को कम नहीं किया जा सकता है।

(बल दिया गया)

24. याचिकाकर्ता ने प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपने द्वारा प्राप्त डिक्री को निष्पादित करवाने के लिए सभी संभव प्रयास किए। डिक्री के निष्पादन के लिए उपलब्ध वैकल्पिक तरीकों को समाप्त करने के पश्चात, विचारण न्यायालय ने अंततः प्रथम प्रत्यर्थी की गिरफ्तारी का आदेश देना उचित समझा। निष्पादन कार्यवाही को अंतिम रूप देने के लिए प्रथम प्रत्यर्थी की गिरफ्तारी और न्यायालय में पेशी के लिए असंख्य वारंट जारी किए गए। ऐसे सभी प्रयास निरर्थक साबित हुए। प्रथम प्रत्यर्थी ने डिक्री के निष्पादन की प्रक्रिया में विचारण न्यायालय द्वारा पारित कम्प्लेक्स हर आदेश को चुनौती दी। विचारण न्यायालय द्वारा पाया गया कि वारंट के निष्पादन से बचने के लिए प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा विचारण न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार से अस्थायी रूप से स्थानांतरित होने या करने के प्रयास, प्रथम प्रत्यर्थी के आचरण को उजागर करते हैं। हम कानून की गरिमा और महिमा के संबंध में चिंतित हैं। कोई भी न्यायिक प्रणाली तब तक

जीवित नहीं रह सकती जब तक कि वह लोगों का विश्वास और सम्मान प्राप्त न करे। प्रथम प्रत्यर्थी ने अपने विरुद्ध जारी गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन को साढ़े चार साल से अधिक समय तक सफलतापूर्वक टालकर पूरी न्यायिक प्रक्रिया को हास्यास्पद स्तर पर ला दिया है। यह न्यायिक प्रक्रिया को तहस-नहस करने के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति में यह न्यायालय मूकदर्शक बनकर कभी नहीं रह सकता।

25. अधीनस्थ न्यायालयों का क्या विश्वास किया जाएगा, यदि उनके द्वारा पारित आदेशों को शक्तिशाली, ताकतवर या बेईमान वादीगणों द्वारा ठंडे बस्ते में डाल दिया जाए?

26. अधीनस्थ न्यायालयों की न्यायिक प्रक्रिया और वैधता की रक्षा करना इस न्यायालय का कर्तव्य है। अन्यथा घोर अराजकता और भ्रम की स्थिति पैदा हो जाएगी। कानून के शासन को बनाए रखना और लागू करना इस न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है। उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण रखता है और अपने क्षेत्राधिकार वाले सभी क्षेत्रों में सभी न्यायालयों पर अधीक्षण करता है। न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति के साथ-साथ जमीनी स्तर पर न्यायिक प्रक्रिया की वैधता की रक्षा करने का कर्तव्य भी जुड़ा हुआ है। अधीनस्थ न्यायपालिका न केवल उच्च न्यायालय के नियंत्रण में है; अपितु उच्च न्यायालय की देखरेख और अभिरक्षा में भी है। उच्च न्यायालय के पास न केवल अधीनस्थ न्यायपालिका में अनुशासन लागू करने की शक्ति है, अपितु अधीनस्थ न्यायपालिका की

गरिमा और सम्मान की रक्षा करने की भी शक्ति है। यदि सामान्य तंत्र अनुतोष प्रदान करने और चुनौती का सामना करने में विफल रहता है तो इस न्यायालय के पास न्यायिक प्रक्रिया की अखंडता की रक्षा के लिए उचित निर्देश जारी करने और यहां तक कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित आदेश को लागू करने की आवश्यक शक्ति है।

27. जैसा कि अभिलेखों से स्पष्ट है, याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त डिफ्री शायद हमेशा के लिए अनिष्पादित रहेगी। ऐसी परिस्थितियों में ही याचिकाकर्ता न्याय की मांग करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ता सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दिए गए उपायों का लाभ उठाने में विफल रहा हो। याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त उपायों की अपर्याप्तता स्पष्ट है। यह एक स्पष्ट मामला है जहां याचिकाकर्ता के पास कोई अन्य प्रभावी और पर्याप्त उपाय नहीं बचा है। वास्तव में, याचिकाकर्ता ने सभी उपायों को समाप्त करने के बाद ही इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान किया। यह स्पष्ट रूप से एक उपयुक्त मामला है जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है और न्याय के हित को हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यह उन दुर्लभतम मामलों में से एक है जिसमें न्यायिक प्रक्रिया की गरिमा, महिमा और पवित्रता की रक्षा के लिए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।”

94. कासनी सुब्बन्मा बनाम आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य, 1994 (1) ए.पी.एल.जे. 117 (एच.सी.) में, यह मुद्दा आंध्र प्रदेश उच्च

न्यायालय के समक्ष उठा, जहां अधीनस्थ न्यायाधीश कोवूर की एक डिक्री को निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादित करना कठिन पाया गया। यह डिक्री राज्य द्वारा अधिग्रहित भूमि से संबंधित मुआवजे के भुगतान के लिए थी और अंतिम हो गयी थी। मुआवजा वसूलने के लिए लाई गई निष्पादन प्रक्रिया राज्य की शक्ति के सामने विफल हो गई, जो अधिग्रहण करने वाला प्राधिकारी था और भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था। जब उच्च न्यायालय में अंतिम हो चुकी डिक्री को निष्पादित करने के लिए परमादेश के लिए याचिका दायर की गई, तो आदेश की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में अंतिम रूप से निर्धारित मुआवजे को जमा करने के लिए परमादेश जारी किया गया। इस निष्कर्ष पर पहुंचने में, कासनी सुब्बन्मा (उपरोक्त) में यह देखा गया:

“3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय पर कोई संवैधानिक बंधन नहीं है कि केवल इसलिए कि कोई वैकल्पिक उपाय मौजूद है, रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग, संविधान के अंतर्गत उच्च न्यायालय जैसे संवैधानिक न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट या निर्देश जारी करने के लिए प्रदत्त एक संवैधानिक शक्ति है। ऐसा कोई कठोर नियम नहीं हो सकता है कि प्रत्येक मामले में जहां कोई वैकल्पिक उपाय है, रिट याचिका पर विचार नहीं कि या जाना चाहिए। उचित मामलों में, संवैधानिक न्यायालय होने के नाते, उच्च न्यायालय को

प्रभावी और त्वरित उपाय प्रदान करने के अवसर पर आगे आना चाहिए, विशेषकर किसी व्यक्ति को संपत्ति से वंचित करने के मामलों में ..... चाहे वह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 31 के अंतर्गत हो या 300-ए के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है, सिवाय विधिक अधिकार के और विधिक अधिकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम होने के कारण, भूमि अधिग्रहण अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे शीघ्रता से मुआवजे का भुगतान करें, ताकि पीड़ित पक्ष अपनी संपत्ति की हानि की भरपाई उचित तरीके से कर सके, परन्तु यदि मुआवजा लंबे समय के बाद दिया जाता है, तो वो इससे वंचित हो जाएगा, जिससे निश्चित रूप से संपत्ति का अनुचित रूप से हनन होगा, इस प्रकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम के मूल उद्देश्य और आशय का उल्लंघन होगा जिसका उद्देश्य न केवल सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किसी व्यक्ति की संपत्ति का अधिग्रहण करना है, अपितु वंचित व्यक्ति को बहुत ही उचित समय में मुआवजा प्रदान करना भी है। ऐसा न करके, वर्तमान मामले में अधिकारियों ने निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 31 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है जो उसे वर्तमान मामले में उपलब्ध है क्योंकि उसकी भूमि का अधिग्रहण उस समय किया गया था जब प्रासंगिक समय पर मौलिक अधिकार संविधान की पुस्तक में था। यदि संविधान का अनुच्छेद 300-ए भी हो, तो भी यही उपाय लागू होता है। इस प्रकार, यह न्यायालय उस मुआवजे के भुगतान के लिए उचित रिट या निर्देश जारी करने से बाधित नहीं है, जिसके लिए याचिकाकर्ता ने लड़ाई लड़ी

और जिसे निर्धारित किया गया तथा जिसे अंतिम रूप दिया गया। निष्पादन कार्यवाही की बात करें तो वे भी 3 वर्ष से अधिक समय से लंबित हैं और निष्पादित नहीं हो सके। कारण स्पष्ट हैं। निष्पादन न्यायालय सरकार के विरुद्ध डिक्री निष्पादित करने में बहुत उदार हैं। यह अक्सर अनुभव होता है और वास्तव में यह सामान्य प्रवृत्ति है, जबकि बहुत कम अपवाद हो सकते हैं। जब निष्पादन किया जाता है, तो भूमि अधिग्रहण अधिकारी के कार्यालय में कुर्सियां, मेजें, अलमारियां जैसे जर्जर फर्नीचर उपलब्ध होते हैं, जिन्हें पहले ही कई निष्पादनों में कई कुर्कियों के अधीन किया जा चुका होता है। यदि निष्पादन कार्यवाही इसी तरह चलती रहे और निष्पादन न्यायालय डिक्रीधारक को डिक्री राशि वसूलने और उसका भुगतान करने में सक्षम न हो, जिससे डिक्री का प्रभाव ही समाप्त हो जाए, तो कौन सा उपयोगी उद्देश्य पूरा होगा। अधिकांशतः, भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही से संबंधित डिक्री लेबी प्रक्रिया और न्यायालय द्वारा लिए गए लचीले दृष्टिकोण के कारण प्रभावहीन पाई गई है, जो राशि जमा करने के लिए निर्णीत-ऋणी की दया पर निर्भर है, जिसके लिए फिर से, डिक्रीटल राशि जमा करने में सरकार से प्राथमिकता प्राप्त करने के लिए पैरोकारों द्वारा होड़ होगी। मुझे नहीं लगता कि संविधान निर्माताओं ने इस स्थिति की कल्पना की है। इस प्रकार, मेरा मानना है कि जब भी यह इस न्यायालय के ध्यान में लाया जाता है कि सरकार या सरकारी अधिकारियों या किसी प्राधिकरण जो संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत एक राज्य है, के विरुद्ध पारित किसी भी डिक्री का सम्मान नहीं किया जाता है और यदि यह पाया जाता

है कि इसमें शामिल देरी के कारण सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत निष्पादन अप्रभावी है, तो इस न्यायालय को मौलिक अधिकार या संवैधानिक गारंटी के अनुरूप, जैसा भी मामला हो, डिक्री के प्रवर्तन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से कोई रोक नहीं है।”

95. इस मामले में स्थिति बहुत अलग नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य या पुलिस अधिकारी, जो राज्य की ओर से मुकदमे की संपत्ति के कब्जाधारी हैं, प्रथम दृष्टया स्वामी नहीं हैं, जैसा कि वे कहते हैं, और जिसे वे अब तक किसी भी कार्यवाही में साबित या स्थापित नहीं कर पाए हैं। मुकदमे की संपत्ति पर जबरन कब्जा करके वे जो कर रहे हैं, वह संविधान के अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत याचिकाकर्ता को उसके अधिकार से वंचित करने से कम नहीं है। वे ऐसा इसलिए कर पा रहे हैं क्योंकि वे राज्य की एक शाखा हैं, और वह भी एक ऐसी शाखा जो सशस्त्र है।

96. इस प्रकार देखा जाए, तो परमादेश को सभी गलत कृत्यों को ठीक करने के लिए रामबाण के रूप में देखा जा सकता है, जहां अधिकार तो है, परन्तु निवारण का कोई तरीका या प्रभावी तरीका नहीं है। सामान्यतः, कानून द्वारा प्रदान किए गए उपाय, विशेष रूप से, स्थापित क्षेत्राधिकार के न्यायालयों के समक्ष, प्रभावी होते हैं। फिर भी, किसी दिए गए मामले में, निष्पादन का बहुत ही स्थिर उपाय भी, राज्य के अड़ियल प्राधिकरण के सामने एक दंतहीन शेर बन सकता है, जो अपनी वैधानिक शक्ति और शारीरिक शक्ति का उपयोग करके

निष्पादन की प्रक्रिया को बाधित करने के लिए बेताब है। इस न्यायालय ने कहा है कि यह बहुत ही दुर्लभ मामले में होता है कि किसी डिक्री को प्रभावी करने के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है। उन दुर्लभ मामलों में से एक जहां निष्पादन की सहायता के लिए परमादेश जारी किया जाना चाहिए, वह यह मामला है।

97. यह न्यायालय इस तथ्य का न्यायिक संज्ञान लेता है कि इस याचिका की सुनवाई लंबित रहने तक, वर्ष 2022 के अंत में, राज्य सरकार ने आगरा जिले में मौजूदा पुलिस व्यवस्था को कार्यकारी मजिस्ट्रेट और पुलिस की विभाजित स्थापना से बदलकर कमिश्नरी प्रणाली में बदल दिया है। इसलिए, आगरा जिले में, यह पुलिस आयुक्त ही है, जो एस.एस.पी., आगरा के पूर्व कार्यालय के स्थान पर जगह लेगा। रैंज या जोन स्तर के अधिकारी, जैसे पुलिस उप-महानिरीक्षक या महानिरीक्षक, का आगरा शहर की सीमा के भीतर कोई स्थानीय क्षेत्राधिकार नहीं होगा। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा को जारी की गई रिट के अलावा, जो निर्णीत-ऋणी है और जिसके पीछे पुलिस अधिकारी हैं, जो मुकदमे की संपत्ति पर कब्जाधारी हैं, यह पुलिस आयुक्त, आगरा, थानाध्यक्ष, थाना हरी पर्वत और चौकी इंचार्ज, पुलिस चौकी खंदारी, थाना हरी पर्वत, जिला आगरा हैं, जिन्हें भी आदेश दिया जाना चाहिए, हालांकि वे औपचारिक रूप से इस याचिका के पक्षकार नहीं हैं। किसी भी स्थिति में, पुलिस अधिकारियों को पर्याप्त रूप से सुना गया है, यहां तक कि व्यक्तिगत रूप से भी। उन्होंने

शपथपत्र भी दायर किए हैं और इस न्यायालय के समक्ष अपनी स्थिति का बचाव किया है।

98. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और **स्वीकार** की जाती है। उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, आगरा तथा कलेक्टर की ओर से या अन्यथा वाद संपत्ति पर काबिज किसी भी व्यक्ति को, जिसमें पुलिस आयुक्त, आगरा, थानाध्यक्ष, थाना हरी पर्वत, आगरा, चौकी प्रभारी, पुलिस चौकी खंदारी, थाना हरी पर्वत, आगरा और वाद संपत्ति पर कब्जाधारी उनके अधीनस्थ अधिकारी शामिल हैं, को **10 अक्टूबर, 2023** को सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच न्यायालय अमीन, जो मौके पर मौजूद रहेंगे और दिन की कार्यवाही दर्ज करेंगे, की उपस्थिति में याचिकाकर्ता को खाली कब्जा सौंपने के लिए परमादेश जारी किया जाता है। याचिकाकर्ता को कब्जा लेने के लिए वाद संपत्ति पर उपस्थित रहना होगा। कब्जा दिए जाने के पश्चात, कलेक्टर, आगरा **12 अक्टूबर, 2023** को या उससे पूर्व इस न्यायालय के महानिबंधक को अनुपालन आख्या प्रस्तुत करेंगे, जिसे अभिलेख पर रखा जाएगा। अमीन अपनी आख्या निष्पादन न्यायालय को देगा, जो अमीन आख्या के दृष्टिगत विधि अनुसार निष्पादन वाद संख्या 20/1999 का निस्तारण करेगा। यह भी आदेश दिया जाता है कि जब तक उत्तर प्रदेश राज्य या एस.एस.पी. आगरा (अब उनके उत्तराधिकारी, पुलिस आयुक्त, आगरा) द्वारा संस्थित मूल वाद संख्या 1040/2011, विविध वाद संख्या 16/2021 एवं 213/2022 में निर्णय पारित नहीं हो जाते, तब तक याचिकाकर्ता द्वारा वाद की संपत्ति किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में हस्तांतरित नहीं की

जाएगी, न ही इसकी प्रकृति या प्रकार में किसी भी तरह से कोई बदलाव किया जाएगा तथा इसके अलावा याचिकाकर्ता द्वारा इसे अच्छी स्थिति में बनाए रखा जाएगा। यदि द्वितीय प्रत्यर्थी अथवा एस.एस.पी., आगरा (अब उनके उत्तराधिकारी, पुलिस आयुक्त, आगरा) याचिकाकर्ता के विरुद्ध वाद संपत्ति पर अपना अधिकार, स्वामित्व और हित सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं, तो याचिकाकर्ता उपरोक्त मामलों में न्यायालय द्वारा पारित आदेशों से आबद्ध होगा और आदेश पारित होने पर पश्चात संपत्ति का कब्जा प्रत्यर्थी संख्या 2 को वापस कर देगा।

99. इस आदेश की एक प्रति कलेक्टर, आगरा, पुलिस आयुक्त, आगरा, थानाध्यक्ष, थाना हरी पर्वत, आगरा, चौकी प्रभारी, पुलिस चौकी खंदारी, आगरा और न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, आगरा या जहां भी निष्पादन वाद संख्या 20/1999 लंबित हो, सभी को निबंधक (अनुपालन) द्वारा विद्वान जिला न्यायाधीश, आगरा के माध्यम से भेजी जाए।

-----

(2023) 9 ILRA 470

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-ए संख्या 40695 वर्ष 2005

अजय कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री अनिल तिवारी, श्री धर्मेन्द्र शुक्ला, श्री रमेश

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अशोक खरे, श्री हितेश पचौरी, श्री एम.ए. कादिर, श्री निशीथ यादव, श्री आर.बी. सक्सेना, श्री रोहित उपाध्याय

ए. सेवा कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - कार्यक्षेत्र - सहायक रजिस्ट्रार का पद - प्रतिवादी संख्या 4 और 5 का चयन कथित रूप से गलत किया गया था - प्रतिवादी संख्या 4 और 5 को उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेश के संशोधन के अनुसार नियुक्त किया गया था और अपनी पूरी सेवा अवधि पूर्ण करने के बाद, वे सेवानिवृत्त हो गए हैं - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ कि, जहां तक प्रतिवादी संख्या 4 और 5 की नियुक्ति का संबंध है, उसे रद्द नहीं किया जा सकता है और न ही इस रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के हितों को क्षति पहुंचाने वाला कोई आदेश पारित किया जा सकता है। (पैरा 12 और 13)

बी. संवैधानिक कानून - भावी अधिप्रभाव का सिद्धांत - प्रयोज्यता - पूर्व निर्णय का अधिक्रमण - सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून का पूर्वव्यापी प्रवर्तन- दायरा - निर्णय दिया गया कि 'भावी अधिप्रभाव' शब्द उसी मुद्दे पर पूर्व में दिए गए न्यायिक निर्णय को दर्शाता है जो अन्यथा अंतिम था। गोलक नाथ मामले में इसे इसी प्रकार समझा गया था। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने किसी मुद्दे पर

पहली बार निर्णय देते समय भी इस शक्ति का प्रयोग किया है - यह सुस्थापित है कि कानून की घोषणा भावी अर्थात् निर्णय के दिनांक से प्रभावी हो सकती है - सोमैया ऑर्गेनिक्स मामले में इसी पर भरोसा किया गया। (पैरा 23, 24 और 26)

सी. समता का सिद्धांत - *लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पासिबिलिया* - अर्थ - कानून किसी व्यक्ति को ऐसा कुछ करने के लिए बाध्य नहीं करता जो वह संभवतः नहीं कर सकता। (पैरा 25)

डी. समता का सिद्धांत - *एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट* - अर्थ - न्यायालय की गलती के कारण किसी को भी कष्ट नहीं सहना चाहिए। (पैरा 32)

ई. सेवा कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - दायरा - रिट के निपटारे में विलंब, राहत देने में कितनी घातक है - चयन 2014 में किया गया था, जिसकी वैधता को 2015 में दायर रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसमें अभिवचनों का आदान-प्रदान हुआ था - वृहद् पीठ को भेजा गया संदर्भ 2019 में तय किया गया था, जिसे 2021 में सर्वोच्च न्यायालय ने भी पुष्टि की और उसके बाद 2023 में रिट याचिका पर सुनवाई हुई - प्रभाव - अभिनिर्धारित हुआ, यदि, केवल रिट याचिका के निपटारे में विलंब को याचिकाकर्ता को राहत देने को अस्वीकार करने के आधार के रूप में लिया जाता है, तो यह कानूनी प्रणाली और न्याय की

संस्था का मजाक होगा जिसके लिए इसे स्थापित किया गया है। (पैरा 30 और 33)

एफ. सेवा कानून- चयन - आरक्षण - महिला अभ्यर्थियों को क्षैतिज आरक्षण - स्वीकार्यता - केवल 01 पद महिला अभ्यर्थी द्वारा भरा जा सकता था, तथापि दूसरा पद गलती से किसी अन्य महिला अभ्यर्थी को आरक्षण देकर भर दिया गया, जो इसके लिए पात्र नहीं थी - याचिकाकर्ता, जो श्रेष्ठता क्रम में अगली अभ्यर्थी थी, को आरक्षण के गलत आवेदन के कारण अस्वीकार कर दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया कि, आयोग द्वारा महिला अभ्यर्थियों को क्षैतिज आरक्षण देकर दो पदों को भरना न्यायोचित नहीं था, बल्कि वह केवल एक ही पद भर सकता था और इसलिए, याचिकाकर्ता, जो श्रेष्ठता क्रम में अगली थी, को रिक्त पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था - सौरव यादव के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 2, 15, 33 और 36)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. सौरव यादव एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य (2021) 4 एससीसी 542.

2. तमन्नाबेन अशोकभाई देसाई बनाम शीतल अमृतलाल निशार; (2020) एससीसी ऑनलाइन गुजरात 2592

3. उ.प्र. राज्य एवं एक अन्य बनाम पवन कुमार तिवारी एवं अन्य; (2005) 2 एससीसी 10

4. आशिका प्रसाद शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद एवं अन्य; (1998) 3 एडब्ल्यूसी 2150

5. सोमैया ऑर्गेनिक्स (इंडिया) लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य (2001) 5 एससीसी 519.

6. कैलाश चंद शर्मा बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2002) 6 एससीसी 562।

7. कर्मचारी राज्य बीमा निगम एवं अन्य बनाम जार्डइन हैंडरसन स्टाफ एसोसिएशन एवं अन्य; (2006) 6 एससीसी 581.

8. भारत संघ एवं अन्य बनाम चमन राणा तथा भारत संघ एवं अन्य बनाम गुलशन कुमार शर्मा; (2018) 5 एससीसी 798

9. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य; (1973) 4 एससीसी 225: एआईआर 1973 एससी 1461

10. प्रबंध निदेशक ई.सी.आई.एल., हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर; जेटी 1993 (6) एससी 1 पृष्ठ 46 पैरा 73: ((1993) 4 एससीसी 727: एआईआर 1994 एससी 1074

11. हर्ष दींगरा बनाम हरियाणा राज्य; (2001) 9 एससीसी 550

12. इंदरचंद जैन (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम मोतीलाल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि (2009) 14 एससीसी 663

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी, के सहायक श्री रमेश और श्री धर्मेन्द्र शुक्ला, प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री भरत प्रताप सिंह के साथ अपर महाधिवक्ता श्री नीरज त्रिपाठी और प्रत्यर्थी - उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैंने पाया कि महिला उम्मीदवारों के लिए स्वीकार्य क्षैतिज आरक्षण के संबंध में **सौरव यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2021) 4 एससीसी 542** में इस मामले में शामिल विवाद उच्चतम न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में संदर्भित किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अंशों को इस निर्णय में उचित स्थान पर संदर्भित किया जाएगा।

3. वर्तमान रिट याचिका अजय कुमार नाम के व्यक्ति द्वारा दायर की गई है, जिसमें दिनांक 22.07.2004 को प्रकाशित विवादित चयन सूची को चुनौती दी गई है, क्योंकि इसमें रिट याचिका की प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 क्रमशः श्रीमती अर्चना जौहरी एवं कु. अंशू लता सरकार के पक्ष में चयन की सिफारिश की गई थी।



आगे प्रत्यर्थीगणों को पात्रता मानदंड के अनुसार चयन सूची को नए सिरे से व्यवस्थित करने का आदेश देने के लिए प्रार्थना की गई है और महिलाओं को एक वर्ग के रूप में कोई आरक्षण दिए बिना और अतिरिक्त परमादेश के साथ प्रत्यर्थीगणों को आदेश दिया गया कि वे प्रश्नगत विज्ञापन के अनुसार सहायक निबंधक के पद पर प्रत्यर्थी - आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार कोई नियुक्ति न करें।

4. श्री अनिल तिवारी का निवेदन इस आशय का है कि उ.प्र. लोक सेवा आयोग ने वर्ष 2000 में सहायक रजिस्ट्रार की 14 रिक्तियों का विज्ञापन दिया और जहां तक क्षैतिज आरक्षण का प्रश्न है, यह प्रावधान किया गया था कि लागू सरकारी आदेशों के अनुसार महिला श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए दो पद आरक्षित रहेंगे, जिसमें उस संबंध में 20% आरक्षण प्रदान किया गया था। उन्होंने कहा कि 14 पदों में से 7 पद सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के थे और इसलिए, यदि महिलाओं के लिए 20% आरक्षण लागू किया जाता है, तो उक्त गणना 1.4 हो जाएगी, जिसे पूर्णांकित करने पर 1 (एक) हो जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि 7 में से केवल एक पद को एक महिला को चयन/नियुक्ति की पेशकश करके भरा जा सकता था, जबकि प्रत्यर्थीगणों ने 14 रिक्तियों में से 20% अर्थात् 2.8 की गलत गणना करके प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5, अर्थात् 2 महिलाओं के पक्ष में चयन को अंतिम रूप दिया है जो 2 (दो) पर आ जाएगा और इसलिए वर्गीकरण के आधार पर आरक्षण लागू करने के बजाय दो पद गलत तरीके से भर दिए गए हैं।

5. अपने तर्क के समर्थन में, श्री अनिल तिवारी द्वारा विभिन्न प्राधिकारियों का संदर्भ दिया गया है और यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा इसी याचिका में दिनांक 16.07.2019 को दिए गए अपने निर्णय द्वारा आरक्षण के मुद्दे पर निर्णय लेने के बाद, मामला सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंच गया, जहां न केवल इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार किया गया, बल्कि इसी मुद्दे पर राजस्थान, बॉम्बे, उत्तराखंड और गुजरात के उच्च न्यायालयों द्वारा सुनाए गए निर्णयों पर विस्तार से चर्चा की गई और सौरव यादव (उपरोक्त) के मामले में अंतिम निर्णय पारित किया गया।

6. श्री अनिल तिवारी ने उक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 24, 27, 28, 40 और 43 पर अवलम्ब लिया जो यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

"24. इस प्रकार राजस्थान, बॉम्बे, उत्तराखंड और गुजरात के उच्च न्यायालयों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के विपरीत है। यहां ऊपर प्रस्तर 11 से 13 में संदर्भित आदेशों के अतिरिक्त इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने अजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में अवधारित किया कि:-

"94. हमारे विचार से उपरोक्त के लिए क्षैतिज

आरक्षण के कार्यान्वयन में महिलाओं की परस्पर योग्यता की कोई भूमिका नहीं है क्योंकि विशेष श्रेणी (महिला) के आरक्षण का लाभ चाहने वाले सामाजिक रूप से आरक्षित अभ्यर्थी (एससी, एसटी और ओबीसी) सामान्य श्रेणी में समायोजन का दावा नहीं कर सकते हैं।"

27. राजस्थान, बॉम्बे, उत्तराखंड और गुजरात के उच्च न्यायालयों ने क्षैतिज आरक्षण पर विचार करने के दौरान समान सिद्धांत अपनाया है, जबकि इलाहाबाद और मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालयों ने इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाया है। सुविधा के लिए, इन दो दृष्टियों को क्रमशः "पहला दृष्टिकोण" और "दूसरा दृष्टिकोण" कहा जाता है। दूसरा दृष्टिकोण जो इलाहाबाद और मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालयों से संबंधित है, मूलतः इस आधार पर आधारित है कि निर्णय के प्रस्तर 18 में वर्णित अनिल कुमार गुप्ता मामले में पहले दो चरणों के बाद और ऊर्ध्वाधर आरक्षण प्रदान किए जाने के बाद, क्षैतिज आरक्षण को प्रभावी

करने के लिए अभ्यर्थियों को समायोजित करने के चरण में, आरक्षित श्रेणियों के अभ्यर्थियों को केवल संबंधित ऊर्ध्वाधर आरक्षण के तहत उनकी अपनी श्रेणियों के विरुद्ध समायोजित किया जा सकता है, न कि "खुली या सामान्य श्रेणी" के विरुद्ध।

28. इस प्रकार, दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार, दो चरणों में अलग-अलग सिद्धांतों को अपनाया जाना चाहिए; क्योंकि:

(I) प्रारंभिक चरण में जब "खुली या सामान्य श्रेणी" की रिक्तियाँ भरी जानी हैं, तो योग्यता के आधार पर सभी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के दावे पर विचार किया जाना चाहिए और यदि ऐसी आरक्षित श्रेणियों से कोई भी अभ्यर्थी, अपनी योग्यता के आधार पर, खुली या सामान्य श्रेणी की रिक्तियों के विरुद्ध चयन का हकदार है तो आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी की ऐसी नियुक्ति से ऊर्ध्वाधर आरक्षण में ऐसी श्रेणियों के लिए आरक्षित कोटा किसी भी तरह से

प्रभावित नहीं होगा।

जा सकता है।

(II) हालाँकि, जब क्षैतिज आरक्षण के चरण में समायोजन की बात आती है, तो भले ही ऐसे आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी योग्यता के आधार पर खुली या सामान्य रिक्तियों पर विचार करने और समायोजित करने के हकदार हों, उस स्तर पर किसी भी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को केवल और केवल तभी समायोजित किया जा सकता है जब आरक्षण के अपने स्वयं के ऊर्ध्वाधर कॉलम में उनके समायोजन की गुंजाइश हो।

ऐसा प्रयोग निम्नलिखित अभिधारणाओं पर आधारित होगा:-

(क) सामान्य श्रेणी की रिक्तियों का प्रारंभिक आवंटन पूरा होने के बाद, आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों का अपनी योग्यता के आधार पर सामान्य श्रेणी की सीटों में प्रवेश पाने का दावा या अधिकार समाप्त हो जाता है और उन्हें केवल ऊर्ध्वाधर आरक्षण के उनके संबंधित कॉलम के विरुद्ध ही माना

(ख) यदि सामान्य श्रेणी में क्षैतिज आरक्षण के कारण कोई परिणामी समायोजन होता है, तो केवल उन अभ्यर्थियों पर ही विचार किया जाएगा जो किसी भी श्रेणी में नहीं हैं जिनके लिए ऊर्ध्वाधर आरक्षण प्रदान किया गया है।

(ग) अन्य शब्दों में, क्षैतिज आरक्षण के चरण में, सामान्य श्रेणी को किसी भी श्रेणी से आने वाले उन अभ्यर्थियों के अलावा अन्य अभ्यर्थियों के लिए बनाई गई श्रेणी के रूप में समझा जाना चाहिए जिनके लिए ऊर्ध्वाधर आरक्षण प्रदान किया गया है।

40. इसलिए, हम दूसरे दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते हैं और इसे खारिज करते हैं। पहला दृष्टिकोण जो राजस्थान, बॉम्बे, उत्तराखंड और गुजरात के उच्च न्यायालयों से संबंधित है, सही और तर्कसंगत है।

43. अंत में, हमें यह कहना होगा कि गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा तमन्नाबेन

अशोकभाई देसाई मामले में अपने निर्णय के प्रस्तर 69 में दर्शाये गए कदम ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दोनों आरक्षणों पर विचार करने और उन्हें प्रभावी करने के लिए सही और उचित प्रक्रिया पर विचार करते हैं। हमारे द्वारा दिया गया दृष्टांत केवल एक संभावित आयाम से संबंधित है। ऐसी अनेक संभावनाएँ हो सकती हैं। यहां तक कि वर्तमान दृष्टांत के अनुसार, अनुसूचित जनजाति के लिए ऊर्ध्वाधर कॉलम में आवंटित पहली महिला अभ्यर्थी ने क्रम संख्या 64 की अभ्यर्थी की तुलना में उच्च स्थान प्राप्त किया हो सकता है। उस स्थिति में उक्त अभ्यर्थी को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी से खुली/सामान्य में स्थानांतरित किया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप सामान्य श्रेणी के कारण अनुसूचित जनजाति के ऊर्ध्वाधर कॉलम में रिक्ति हो रही है। ऐसी रिक्ति को अनुसूचित जनजाति - महिला के लिए प्रतीक्षा सूची में शामिल अभ्यर्थी के लाभ के लिए सुनिश्चित किया जाना चाहिए। गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा दर्शाये गए

कदम ऐसी हर संभावना को ध्यान में रखेंगे। एक प्रक्रिया निर्धारित करने का कार्य आवश्यक रूप से संबंधित अधिकारियों पर छोड़ दिया जाना चाहिए लेकिन हम यह देख सकते हैं कि उक्त निर्णय में निर्धारित एक निर्णय निश्चित रूप से सभी दावों को संतुष्ट करेगा और किसी भी विसंगति को जन्म नहीं देगा, जैसा कि हमने पिछले प्रस्तर में दर्शाया है।"

7. उपरोक्त प्रस्तरों को बताते हुए, यह तर्क दिया गया है कि उच्चतम न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को मंजूरी दे दी है और जहां तक गणना वाले भाग का संबंध है, गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर संख्या 69 में वर्णित गणना की विधि को **तमन्नाबेन अशोकभाई देसाई बनाम शीतल अमृतलाल निशार (2020) एससीसी ऑनलाइन गुज 2592** के मामले में मंजूर किया गया है। उक्त पैराग्राफ संख्या 69 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सौरव यादव (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के प्रस्तर संख्या 23.11 में पुनः प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है: -

"69. राज्य सरकार के भविष्य के मार्गदर्शन के लिए हम महिलाओं के लिए क्षैतिज आरक्षण को लागू करने की उचित और सही विधि को और अधिक स्पष्ट तरीके से समझाना चाहेंगे।

**'महिलाओं के लिए क्षैतिज  
आरक्षण लागू करने की  
उचित एवं सही विधि।**

भर्ती के लिए उपलब्ध पदों  
की संख्या ..... 100

सामाजिक आरक्षण कोटा  
(49%)

खुली प्रतियोगिता (ओसी)  
..... 51

अनुसूचित जाति (एससी)  
..... 12

अनुसूचित जनजाति (एसटी)  
..... 17

सामाजिक और शैक्षिक रूप  
से पिछड़े वर्ग (एसईबीसी)  
..... 20

महिलाओं के लिए क्षैतिज  
आरक्षण (उपरोक्त प्रत्येक  
श्रेणी में 33%)

ओसी ..... 17

एससी ..... 04

एसटी ..... 06

एसईबीसी..... 07

चरण 1: कम से कम 100  
अभ्यर्थियों की एक सूची  
तैयार करें (आमतौर पर 100  
से अधिक अभ्यर्थियों की  
सूची तैयार की जाती है ताकि  
जब कुछ अभ्यर्थी प्रस्ताव के  
बाद शामिल न हों तो  
नियुक्ति पाने वालों की कमी  
न हो।) जो योग्यता के क्रम  
में चयनित होने के लिए  
योग्य हों। इस सूची में  
उपरोक्त सभी श्रेणियों के  
अभ्यर्थी शामिल होंगे।

चरण 2: उपरोक्त चरण 1  
सूची से, योग्यता के आधार  
पर ओसी कोटा (51) भरने  
वाले पहले 51 अभ्यर्थियों की  
सूची बनाएं। 51 अभ्यर्थियों  
की इस सूची में एससी, एसटी  
और एसईबीसी वर्ग के  
अभ्यर्थी शामिल हो सकते हैं।

चरण 3: ओसी कोटा में  
क्षैतिज आरक्षण की जांच  
करें। ओसी श्रेणी की चरण 2  
सूची में, यदि 17 महिलाएं हैं  
(श्रेणी मायने नहीं रखती है),  
तो महिलाओं का 33% कोटा  
पूरा हो जाता है। इससे  
अधिक और कुछ नहीं करना  
है। यदि महिलाओं की कमी है  
(मान लीजिए, ओसी श्रेणी की  
चरण 2 सूची में केवल 10  
महिलाएं उपलब्ध हैं), तो 7

और महिलाओं को जोड़ना होगा। ऐसा करने का तरीका यह है कि सबसे पहले चरण 2 सूची के अंतिम 7 पुरुष अभ्यर्थियों को हटा दें। इसके बाद, मद 51 के बाद चरण 1 सूची में नीचे जाएं, और पहली 7 महिलाओं को चुनें (श्रेणी कोई मायने नहीं रखती)। जैसे ही चरण 1 सूची से 7 ऐसी महिलाएं मिलती हैं, उन्हें लाया जाएगा और 7 महिलाओं की कमी को पूरा करने के लिए चरण 2 सूची में जोड़ा जाएगा। अब, OC महिलाओं के लिए 33% कोटा पूरा हो गया है। अब ओसी श्रेणी की सूची लॉक की जानी है। इससे चरण 2 सूची अंतिम हो जाती है।

चरण 4: एससी श्रेणी के लिए, चरण 1 सूची से मद 51 के बाद, 12 एससी अभ्यर्थियों (पुरुष या महिला) की एक सूची बनाएं। इन 12 में सभी पुरुष एससी अभ्यर्थी भी शामिल होंगे जिन्हें महिलाओं की कमी को पूरा करने के लिए चरण 2 सूची से हटा दिया गया था।

चरण 5: चरण 4 में

अनुसूचित जाति की सूची में क्षैतिज आरक्षण की जांच करें। यदि 4 एससी महिलाएं हैं, तो 33% का कोटा पूरा हो गया है। इससे अधिक और कुछ नहीं करना है। यदि अनुसूचित जाति की महिलाओं की कमी है (मान लीजिए, केवल 2 महिलाएं उपलब्ध हैं), तो 2 और महिलाओं को जोड़ना होगा। ऐसा करने का तरीका यह है कि, सबसे पहले, चरण 4 सूची के अंतिम 2 पुरुष एससी अभ्यर्थियों को हटा दें और फिर मद 51 के बाद चरण 1 सूची में नीचे जाएं, और पहली 2 एससी महिलाओं को चुनें। जैसे ही चरण 1 सूची में 2 ऐसी अनुसूचित जाति महिलाएं पाई जाती हैं, उन्हें लाया जाएगा और अनुसूचित जाति महिलाओं की कमी को पूरा करने के लिए अनुसूचित जाति की चरण 4 सूची में जोड़ा जाएगा। अब, एससी महिलाओं के लिए 33% कोटा पूरा हो गया है। अनुसूचित जाति की सूची लॉक की जानी है। चरण 4 सूची अंतिम हो जाती है। यदि चरण 1 सूची में अंतिम नंबर तक 2 एससी महिलाएं नहीं

मिल पाती हैं, तो इन 2 रिक्तियों को एससी पुरुषों द्वारा भरा जाना है। यदि एससी पुरुष भी चाहते हैं, तो एससी के सामाजिक आरक्षण कोटा को अगली भर्ती में आगे बढ़ाया जाना चाहिए, जब तक कि कोई नियम न हो जो एससी कोटा को ओसी में बदलने की अनुमति देता हो।

चरण 6: एसटी की सूची तैयार करने के लिए चरण 4 और 5 को दोहराएं।

चरण 7: एसईबीसी की सूची तैयार करने के लिए चरण 4 और 5 को दोहराएं।"

8. गणना की व्याख्या करते समय, यह तर्क दिया गया है कि गुजरात उच्च न्यायालय से पहले, महिला अभ्यर्थियों के लिए 33% क्षैतिज आरक्षण लागू था और इसकी गणना वर्गीकरण के आधार पर की गई थी, यानी गणना करने पर उपलब्ध 100 पदों में से, खुली प्रतियोगिता श्रेणी के पदों को 51 बताया गया और तदनुसार, महिला श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए 17 पदों (51 में से 33%) की गणना की गई। शेष श्रेणियों, यानी, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति और सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए समान गणना भी की गई थी।

9. इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले में, खुली श्रेणी में 07 पदों के

संबंध में 20% क्षैतिज आरक्षण की गणना की जाएगी, और यह केवल 01 पद होगा और इसलिए, 02 पदों को महिला वर्ग के अभ्यर्थियों से भरना शीर्ष न्यायालय के निर्णय के विपरीत है।

10. प्रत्यर्थी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव और श्री नीरज त्रिपाठी ने तर्क दिया कि संबंधित विज्ञापन वर्ष 2000 में जारी किया गया था और क्षैतिज आरक्षण उस समय लागू कानून के अनुसार लागू किया जाना था और वर्तमान मामले में भी आयोग ने इसे सही ढंग से लागू किया था। यह प्रस्तुत किया गया कि क्षैतिज आरक्षण की गणना शीर्ष न्यायालय द्वारा सौरव यादव (उपरोक्त) मामले के निर्णय के प्रस्तर संख्या 23.11 में कानून की सही स्थिति के अनुसार प्रतिपादित किया गया है।

11. इस न्यायालय ने, प्रारम्भ में दिनांक 24.05.2005 के अंतरिम आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 द्वारा पदों में शामिल होने पर रोक लगा दी थी। हालाँकि, बाद में, दिनांक 27.05.2009 के आदेश के माध्यम से, अंतरिम आदेश दिनांक 24.05.2005 को संशोधित किया गया और इसे निम्नानुसार निर्देशित किया गया:-

"याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा के लिए और रिट याचिका लंबित होने की अवधि के दौरान निष्पक्षता को संतुलित करने के लिए, हम दिनांक 24.05.2005 के अंतरिम आदेश को संशोधित करते हैं और निर्देश देते हैं कि यदि प्रत्यर्थी सं. 4 एवं 5 नियुक्त हैं तो उनकी नियुक्ति रिट याचिका के परिणाम के अधीन

होगी।"

12. यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 को अंतरिम आदेश के संशोधन के अनुसार नियुक्त किया गया था और सेवा का पूरा कार्यकाल पूर्ण करने के बाद, वे सेवानिवृत्त हो गए हैं।

13. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 का संबंध है, की नियुक्ति का संबंध है, इसे रद्द नहीं किया जा सकता है और न ही इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 के हितों की हानि के लिए कोई आदेश पारित किया जा सकता है।

14. वर्तमान मामले में जो विवादक तथ्य किया जाना शेष है वह यह है कि याचिकाकर्ता को वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में किस तरह की राहत मिलेगी, विशेषकर जब यह न्यायालय **सौरव यादव (उपरोक्त)** मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुरूप विचार कर रही है।

15. निस्सन्देह याचिकाकर्ता भारत के महालेखाकार कार्यालय में कार्यरत है। जबकि श्री अनिल तिवारी का कहना है कि एक बार यह माना जाता है कि केवल 01 पद महिला अभ्यर्थी द्वारा भरा जा सकता था, तो याचिकाकर्ता श्रेष्ठता क्रम में अगला अभ्यर्थी होने के नाते, दूसरे पद को भरने का हकदार था, जिसे गलती से किसी अन्य महिला अभ्यर्थी को आरक्षण देकर भर दिया गया था, इसकी हकदार नहीं थी। इसलिए, उनका कहना है कि याचिकाकर्ता को उक्त कैडर में किसी भी

रिक्ति पर नियुक्ति की जानी चाहिए क्योंकि उसे हटाया नहीं जा सकता था और इसलिए, वह उसी समय नियुक्ति पाने का हकदार था।

16. इस संबंध में अपने तर्क के समर्थन में श्री अनिल तिवारी ने **सौरव यादव (उपरोक्त)** मामले के प्रस्तर संख्या 44 को संदर्भित किया जो इस प्रकार है:-

**"44.** इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि अपीलार्थी 1 और इसी तरह के अभ्यर्थियों ने "खुली/सामान्य श्रेणी" में चयनित अंतिम अभ्यर्थियों की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए हैं, तार्किक परिणाम यह होना चाहिए कि उक्त चयन को रद्द कर दिया जाए और अधिकारियों को हमारे द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के आलोक में नए सिरे से कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाए। हालाँकि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उन चयनित अभ्यर्थियों ने वास्तव में प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है और वर्तमान में रोजगार में हैं और पर्याप्त संख्या में रिक्तियां उपलब्ध हैं, इसलिए **हम राहत और निर्देश को निम्नलिखित**



आकार प्रदान करते हैं:-

**44.1. "ओबीसी महिला श्रेणी"**  
से आने वाले सभी अभ्यर्थी जिन्होंने 274.8928 यानी "सामान्य श्रेणी महिला" में नियुक्त अंतिम अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंक से अधिक अंक प्राप्त किए थे, उत्तर प्रदेश पुलिस में कांस्टेबल के रूप में रोजगार की पेशकश की जानी चाहिए।

**44.2. इस संबंध में संबंधित पत्र चार सप्ताह के भीतर संबंधित अभ्यर्थियों को भेजा जाएगा।**

**44.3. यदि संबंधित अभ्यर्थी अपने विकल्प का प्रयोग करते हैं और रोजगार के प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं, तो इस संबंध में संबंधित अभ्यर्थियों द्वारा संचार दो सप्ताह के भीतर भेजा जाएगा।**

**44.4. ऐसी स्वीकृति प्राप्त होने पर, कोडल और अन्य औपचारिकताएं तीन सप्ताह के भीतर पूरी की जाएंगी।**

**44.5. इसके बाद एक सप्ताह के भीतर नियुक्ति पत्र जारी**

किए जाएंगे और संबंधित अभ्यर्थियों को उचित तैनाती दी जाएगी।

**44.6. वरिष्ठता, वेतन निर्धारण और अन्य मुद्दों सहित सभी उद्देश्यों के लिए, ऐसे अभ्यर्थियों के रोजगार की गणना नियुक्ति आदेश जारी होने की तारीख से की जाएगी।**

17. श्री अनिल तिवारी ने पवन कुमार तिवारी बनाम माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद 2003 (4) ईएससी 2097 मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर अवलम्ब लिया और तर्क दिया कि राउंडिंग ऑफ के सिद्धांत (पूर्णांकन का सिद्धांत) को स्पष्ट रूप से लागू करके, खण्ड पीठ ने लगभग समान परिस्थितियों में उक्त मामले का निर्णय किया था और अवधारित किया था कि याचिकाकर्ता पिछला वेतन आदि पाने का हकदार नहीं होगा। तथापि, जिस तारीख को उसके बैच साथियों को नियुक्ति दी गई थी, उसी तारीख से उसे सांकेतिक रूप से नियुक्त माना जाएगा और सांकेतिक अवधि की गणना वेतन, वार्षिक वेतन वृद्धि आदि तय करने और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों को पक्ष में करने के लिए की जाएगी। उन्होंने आगे कहा कि खण्ड पीठ के उक्त फैसले को शीर्ष न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पवन कुमार तिवारी और अन्य, (2005) 2 एससीसी 10 के मामले को बरकरार रखा है। उन्होंने आगे कहा कि उक्त पवन कुमार तिवारी द्वारा शुरू की गई

मुकदमेबाजी के बाद के दौर में भी, इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा रिट ए संख्या 6981 सन् 2020 (पवन कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य) में पारित अपने आदेश दिनांक 22.01.2021 में उन्हें राहत दी गई थी, जिसमें राज्य को चयनकर्ताओं की सूची में उक्त याचिकाकर्ता के सही स्थान के लिए उचित कदम उठाने का निर्देश जारी किया गया था।

18. दूसरी ओर, श्री नीरज त्रिपाठी और श्री निशीथ यादव का तर्क यह है कि एक बार शीर्ष न्यायालय ने **सौरव यादव (उपरोक्त)** मामले में संबंधित याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई भी परमादेश जारी करने से इनकार कर दिया, जिन्होंने अधूरी रिक्तियों के खिलाफ अवशोषण का दावा किया था, याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती है, भले ही यह अवधारित किया जाए कि महिला वर्ग के अभ्यर्थियों को दिए गए क्षैतिज आरक्षण से एक पद के स्थान पर दो पद भरे गए।

19. श्री निशीथ यादव और श्री नीरज तिवारी ने भी निर्णय के प्रस्तर संख्या 49 पर अवलम्ब लिया जो इस प्रकार है:-

**"49. यदि रिक्त पद रिक्त हैं, तो यह अधिकारियों पर निर्भर है कि वे पूरी तरह से संबंधित वैधानिक प्रावधानों के अनुसार कार्य करें। जैसा कि प्रार्थना की गई थी, न तो परमादेश जारी करने का कोई मामला बनाया गया है और**

**न ही हम संबंधित अधिकारियों को अधूरी रिक्तियों के खिलाफ याचिकाकर्ताओं को समाहित करने का निर्देश देने वाला कोई आदेश पारित करना उचित समझते हैं।**

20. श्री निशीथ यादव ने पुरजोर दंग से तर्क दिया कि आज की स्थिति के अनुसार, **सौरव यादव (उपरोक्त)** के मामले में शीर्ष अदालत द्वारा तय की गई उपरोक्त कानूनी स्थिति के बावजूद, याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं मिल सकती। उन्होंने तर्क दिया है कि यह एक ऐसा मामला है जहां जिस समय रिट याचिका दायर की गई थी उस समय कानूनी स्थिति स्पष्ट नहीं थी और मामला अंततः वर्ष 2015 में वृहद पीठ को भेजा गया और वृहद पीठ (पूर्ण पीठ) ने दिनांक 16.07.2019 को इस रिट याचिका का फैसला किया, लेकिन उसके बाद भी, मामला सर्वोच्च न्यायालय में गया और अंततः **सौरव यादव (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय के संदर्भ में तय किया गया है। "संभावित अधिनिर्णय" की अवधारणा के आधार पर अपने तर्कों को विस्तार देते हुए श्री निशीथ यादव ने निम्नलिखित प्राधिकारियों का अवलम्ब लिया -

i. आशिका प्रसाद शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद एवं अन्य (1998) 3 एडब्ल्यूसी 2150

ii. सोमैया ऑर्गेनिकस (इंडिया) लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(2001) 5 एससीसी 519

iii. कैलाश चंद शर्मा बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2002) 6 एससीसी 562

iv. कर्मचारी राज्य बीमा निगम एवं अन्य बनाम जार्जिन हेंडरसन स्टाफ एसोसिएशन और अन्य (2006) 6 एससीसी 581

v. भारत संघ एवं अन्य बनाम चमन राणा सह भारत संघ और अन्य बनाम गुलशन कुमार शर्मा (2018) 5 एससीसी 798

21. श्री निशीथ यादव द्वारा उद्धृत प्राधिकारियों की सावधानीपूर्वक जांच करने के बाद, यह देखना प्रासंगिक होगा कि गोलक नाथ को केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, (1973) 4 एससीसी 225: एआईआर 1973 एससी 1461 में खारिज कर दिया गया था, लेकिन गोलक नाथ में संभावित अधिनिर्णय के संबंध में निर्धारित सिद्धांत को केशवानंद भारती में इसके बाद के निर्णयों में नहीं छुआ गया है, बल्कि इसके बाद के निर्णयों में, उच्चतम न्यायालय ने गोलक नाथ में प्रतिपादित संभावित ओवररूलिंग सिद्धांत को दोहराया है। प्रबंध निदेशक ई.सी.आई.एल., हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर, जेटी 1993 (6) एससी 1 को पृष्ठ 46 के प्रस्तर 73: ((1993) 4 एससीसी 727: एआईआर 1994 एससी 1074) में इसे इस प्रकार अवधारित किया गया था:-

"संवैधानिक कानून के मामले के रूप में, फैसले को खारिज

करने के पूर्वव्यापी संचालन की संविधान द्वारा न तो आवश्यकता है और न ही निषिद्ध है, बल्कि यह प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायिक दृष्टिकोण में से एक है, विशेष अधिनिर्णय निर्णय की प्रकृति और उद्देश्य पूरा करना चाहता है। प्रशासन द्वारा खारिज किए गए मामले पर न्यायालय न्यायोचित अवलम्ब लेने पर गौर करेगा; अन्याय किए बिना खारिज किए गए मामले में अपनाए गए नए नियम को लागू करने की क्षमता; इसके संचालन की संभावना चाहे न्याय प्रशासन पर भारी बोझ डालती हो या उद्देश्य को बाधित करती हो... यह न्यायालय किसी निर्णय के गुण और दोषों का मूल्यांकन करने के बाद प्रत्येक मामले में निर्धारित नीति के मामले के रूप में पूर्वव्यापी या गैर-पूर्वव्यापी प्रभाव को अपनाएगा। प्रश्नगत नियम के पूर्व इतिहास, इसके उद्देश्य और प्रभाव को देखकर विशेष मामला और क्या पूर्वव्यापी संचालन इसके संचालन में तेजी लाएगा या धीमा कर

देगा। पुराने नियम पर  
अवलम्ब लेना और प्रशासन  
के बोझ की लागत भावी या  
पूर्वव्यापी संचालन को प्रभावी  
बनाने के लिए समान रूप से  
महत्वपूर्ण हैं।“

22. जब सर्वोच्च न्यायालय ने गोलक नाथ मामले में निर्णय लिया कि संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन की शक्ति संसद को संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों को कम करने की अनुमति नहीं देती है, तो उसने निर्णय को संभावित प्रभाव से लागू कर दिया। यह इस तथ्य की मान्यता में किया गया था कि दिनांक 26-1-1950 को संविधान के लागू होने के बीच और फैसले की तारीख, संसद ने वास्तव में संशोधन की शक्ति का प्रयोग इस तरह से किया था, जो गोलक नाथ के फैसले के अनुसार शून्य था। यदि निर्णय को पूर्वव्यापीयता दी गई, तो "यह हमारे देश में अराजकता और अस्थिर स्थिति लाएगा"। दूसरी ओर, इसने यह भी माना कि अराजकता की ऐसी संभावना एक अधिनायकवादी शासन के विकल्प के लिए बेहतर हो सकती है। इसलिए, न्यायालय ने इस "असाधारण स्थिति पर विचार करने के लिए कुछ उचित सिद्धांत" विकसित करने की मांग की। जो उचित सिद्धांत विकसित किया गया वह संभावित ओवररूलिंग का सिद्धांत था।

23. यद्यपि "संभावित अधिनिर्णय" का सिद्धांत अमेरिकी न्यायशास्त्र से लिया गया था, लेकिन इसकी आवश्यकता स्वदेशी विशेषताओं को विकसित करने के लिए थी,

जहां तक इस देश का संबंध है, शक्ति के मापदंडों को स्वयं गोलक नाथ मामले में प्रतिपादित करने की मांग की गई थी जब यह कहा गया था: (एससीआर पृष्ठ 814 बी-डी)

"चूंकि इस न्यायालय को पहली बार विभिन्न परिस्थितियों में एक अलग देश में विकसित सिद्धांत को लागू करने के लिए बुलाया गया है, हम शुरुआत में सावधानी से आगे बढ़ना चाहेंगे। हम निम्नलिखित प्रस्ताव रखेंगे: (1) संभावित का सिद्धांत ओवररूलिंग केवल हमारे संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में ही लागू किया जा सकता है; (2) इसे केवल देश की सर्वोच्च न्यायालय, यानी सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही लागू किया जा सकता है क्योंकि इसके पास भारत की सभी अदालतों पर कानून को बाध्यकारी घोषित करने का संवैधानिक क्षेत्राधिकार है; (3) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने पहले के निर्णयों को अधिक्रमित करते हुए घोषित कानून के पूर्वव्यापी संचालन का दायरा उसके विवेक पर छोड़ दिया गया है ताकि उसे उसके समक्ष कारण या मामले के न्याय के अनुसार

*ढाला जा सके।"*

व्यवहार में मापदंडों का पालन नहीं किया गया है।

24. शब्द "संभावित ओवररूलिंग" का तात्पर्य उसी मुद्दे पर पहले के न्यायिक निर्णय से है जो अन्यथा अंतिम था। गोलकनाथ में इसी प्रकार समझा गया था। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार किसी मुद्दे पर निर्णय लेते समय भी शक्ति का उपयोग किया है। इस प्रकार इंडिया सीमेंट लिमिटेड बनाम तमिलनाडु राज्य मामले में जब सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया कि मद्रास अधिनियम 18 सन् 1964 द्वारा संशोधित मद्रास पंचायत अधिनियम, 1958 की धारा 115 के तहत लगाया जाने वाला उपकर असंवैधानिक था, इसने न केवल तमिलनाडु राज्य को इसे आगे लागू करने से रोका, बल्कि यह भी निर्देश दिया कि राज्य पहले से भुगतान या एकत्र किए गए उपकर की किसी भी वापसी के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

25. समता का सिद्धांत, जो न्याय और अच्छी समझ पर आधारित है, को अन्य सिद्धांत लेक्स नॉन कॉगिट एड इम्पॉसिबिलिया (*कानून नहीं मानता कि यह असंभव है*) के साथ-साथ लागू किया गया था - कानून किसी व्यक्ति को वह करने के लिए मजबूर नहीं करता है जो वह संभवतः नहीं कर सकता है। उपरोक्त सिद्धांत की प्रयोज्यता को इस न्यायालय द्वारा राज कुमार डे बनाम तारापद डे और गुरशरण सिंह बनाम नई दिल्ली नगरपालिका समिति में अनुमोदित किया गया है।

26. यह सुस्थापित है कि कानून की घोषणा को निर्णय की तारीख से भावी यानी प्रभावी बनाया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में कानून निर्धारित किया है और इसे केवल भावी रूप से लागू घोषित किया है। सोमैया ऑर्गेनिक्स (इंडिया) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने संभावित निर्णय के सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की है।

27. अंततः, यह न्यायालय के विवेक का प्रश्न है और इस कारण से राहत देने वाले न्यायालय के शब्दों से सीधे संबंधित है।"

28. **हर्ष ढींगरा बनाम हरियाणा राज्य (2001)**

**9 एससीसी 550** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि कानून की संभावित घोषणा इस न्यायालय द्वारा सुलझाए गए मुद्दों को फिर से खोलने से बचने और कार्यवाही की बहुलता को रोकने के लिए नवीनीकृत एक उपकरण है। यह अनिश्चितता और टालने योग्य मुकदमेबाजी से बचने के लिए अपनाया गया एक उपकरण भी है। कानून की संभावित घोषणा के उद्देश्य से यह माना जाता है कि घोषणा की तारीख से पहले, कानून की घोषणा के विपरीत की गई सभी कार्यवाहियां मान्य हैं। यह व्यापक रूप से जनहित में किया गया है।

29. **भारत संघ एवं अन्य बनाम चमन राणा**

**(उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जहां पदोन्नति चाहने वाले संबंधित कर्मचारी द्वारा देर से दावा किया गया था और सर्वोच्च

न्यायालय ने अवधारित किया कि विलंबित दावे के आलोक में 17 से 20 वर्षों के बाद पदोन्नति के लिए पूर्वव्यापी विचार का निर्देश पूरी तरह से अस्थिर था।

30. उपरोक्त प्राधिकारियों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के संबंध में कोई विवाद नहीं है। हालाँकि, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को संभावित अधिनिर्णय करने या कोई राहत देने की अवधारणा की जांच इस तथ्य के आलोक में की जानी चाहिए कि आक्षेपित चयन वर्ष 2004 में किया गया था और रिट याचिका तत्काल वर्ष 2005 में दायर की गई थी, इसी दौरान शपथपत्र का आदान-प्रदान किया गया था। समय के साथ मामला वर्ष 2015 में वृहद पीठ को भेजा गया। वृहद पीठ यानी पूर्ण पीठ ने वर्ष 2019 में मामले का फैसला किया और सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2021 में विवाद का निस्तारण किया और उसके बाद, इस रिट याचिका पर वर्ष 2023 में सुनवाई हुई है।

31. इसके अलावा, वर्तमान मामले में 2005 में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसे 2009 में संशोधित किया गया था ताकि प्रत्यर्थी संख्या 4 एवं 5 की सेवाओं की रक्षा की जा सके, जो अंतरिम आदेश का लाभ प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो चुके हैं। इस न्यायालय ने रिट याचिका के लंबन के दौरान निष्पक्षता को संतुलित करने के लिए दिनांक 27.05.2009 के संशोधन आदेश में पारित किया।

32. कहावत "न्यायालय के कृत्य के कारण किसी भी पक्ष को नुकसान नहीं होना चाहिए"

का अर्थ यह है कि किसी को भी न्यायालय की गलती का खामियाजा भुगतने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। यह समानता का एक महत्वपूर्ण लैटिन सिद्धांत है, जिसका भारत की अधीनस्थ और उच्च न्यायपालिका में व्यापक अनुप्रयोग है। *इंदरचंद जैन (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि बनाम मोतीलाल (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि* (2009) 14 एससीसी 663, मामले में इसका उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि उक्त सिद्धांत समानता और न्याय पर आधारित है और कानून के प्रशासन में सहायक है।

33. मामले की उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, यदि उपरोक्त कारणों से रिट याचिका के निस्तारण में विलंब को याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार करने के आधार के रूप में लिया जाता है, तो यह कानूनी प्रणाली और न्याय संस्थान का मजाक होगा, जिसके लिए इसकी स्थापना की गई है। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, विशेष रूप से सौरव यादव (उपरोक्त) के निर्णय में प्रस्तर संख्या 44 और इसके विभिन्न उप - प्रस्तरों पर प्रकाश डालते हुए, मैं याचिकाकर्ता को राहत देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूँ और मैंने पाया कि विभिन्न श्रेणी के अभ्यर्थी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता थे और प्रस्तर संख्या 49 में याचिकाकर्ताओं के एक समूह को राहत देने से इनकार करना और प्रस्तर संख्या 44 में याचिकाकर्ताओं के अन्य समूह को कुछ राहत देना तथ्यों और परिस्थितियों के वर्तमान समूह में चिंता का विषय है।

34. सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 42 में संबंधित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र जारी करने का आदेश दिया था और प्रस्तर संख्या 44.6 में यह स्पष्ट किया गया था कि वरिष्ठता, वेतन-निर्धारण और अन्य मुद्दों सहित सभी उद्देश्यों के लिए, ऐसे अभ्यर्थियों के रोजगार की गणना नियुक्ति आदेश जारी होने की तारीख से की जाएगी।

35. इस संबंध में, अनिल तिवारी ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता न केवल रिक्त पड़े किसी भी पद पर नियुक्ति का हकदार है, बल्कि उसकी वरिष्ठता और अन्य लाभों की भी गणना और समायोजन उस वरिष्ठता के अनुसार किया जाना चाहिए जो याचिकाकर्ता को मिलती, यदि विवादित कार्रवाई उसके हितों को नुकसान पहुंचाने वाली नहीं होती। हालाँकि, प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि याचिकाकर्ता एक अलग कैडर का अभ्यर्थी है, इसलिए उसे वरिष्ठता या अन्यथा का कोई लाभ नहीं दिया जा सकता क्योंकि इसमें शामिल मुद्दा पूरी तरह से एक अलग कैडर से संबंधित है।

36. निर्णय का समापन करते हुए, मुझे लगता है कि महिला अभ्यर्थियों को क्षैतिज आरक्षण देकर दो पदों को भरना आयोग के लिए उचित नहीं था, लेकिन वह केवल एक ही पद भर सकता था और इसलिए याचिकाकर्ता को श्रेष्ठता क्रम में अगला होने के कारण रिक्त पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था।

37. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और *आंशिक रूप से अनुमति* दी जाती है।

38. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के किसी भी पहलू से छेड़छाड़ किए बिना, याचिकाकर्ता को कैडर में किसी भी रिक्त पद पर नियुक्ति देने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 को निर्देश जारी किया जाता है। यदि याचिकाकर्ता नियुक्ति के प्रस्ताव को स्वीकार करता है, तो प्रत्यर्थीगणों को सौरव यादव (उपरोक्त) के निर्णय के प्रस्तर 44.6 के अनुसार याचिकाकर्ता को मिलने वाले लाभों के संबंध में कानून के अनुसार निर्णय लेने की स्वतंत्रता होगी।

-----  
(2023) 9 ILRA 481

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-सी संख्या 2610 वर्ष 2023

रज़ा हुसैन उर्फ राजा मियां ...याचिकाकर्ता  
बनाम

अपर आयुक्त लखनऊ एवं अन्य...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

महेंद्र प्रताप सिंह, आशुतोष मिश्र

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, दिलीप कुमार पांडे

सिविल कानून - शत्रु संपत्ति अधिनियम,

1968 - धारा 18बी और 22ए - उत्तर प्रदेश

जमींदारी विनाश और भूमि सुधार

अधिनियम, 1950 - धारा 229-बी - अधिकारों की घोषणा के लिए राजस्व वाद - 'शत्रु संपत्ति' के रूप में दर्ज भूमि - 1968 अधिनियम की धारा 18बी द्वारा सिविल न्यायालय और राजस्व प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार को बाहर रखा गया - धारा 22ए के अंतर्गत पूर्वव्यापी विधिमान्यीकरण का प्रभाव - कोई भी सिविल वाद पोषणीय नहीं - खतौनी में प्रविष्टि रिट न्यायालय द्वारा न्यायिक जांच के लिए खुली नहीं है - 1968 अधिनियम के अंतर्गत उपचार निहित है - याचिका गलत समझ से है और खारिज कर दी गई।

अभिनिर्धारित हुआ: राजस्व अभिलेखों में अभिरक्षक द्वारा प्रबंधित भूमि को शत्रु संपत्ति के रूप में दर्शाने वाली प्रविष्टि, शत्रु संपत्ति अधिनियम, 1968 की धारा 18बी के अनुसार, जिसे 2017 संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है, किसी भी वाद या कार्यवाही का निर्णय करने के लिए सिविल न्यायालयों या प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार को रोकती है। धारा 22ए, धारा 18बी की पूर्वव्यापी प्रयोज्यता को वैध बनाती है। यह उपचार 1968 के अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारी के समक्ष है, न कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के माध्यम से या उ.प्र. जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी का आह्वान करके।

अतः याचिका पोषणीय नहीं है और तदनुसार खारिज की जाती है।

### उद्धरण:

रजा हुसैन उर्फ राजा मियां बनाम अपर आयुक्त, लखनऊ एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा पारित)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आज अदालत में प्रस्तुत प्रति शपथपत्र को रिकॉर्ड पर लिया गया है।

याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री महेंद्र प्रताप सिंह को सुना गया, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे को तथा प्रत्यर्थी संख्या 3/ संबंधित ग्राम सभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडे को सुना गया।

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "1950 का अधिनियम") की धारा 333 के अंतर्गत दर्ज वाद संख्या 1319/2016, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या C20161000001319 (रजा हुसैन @ राजा मियां बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के तहत दायर पुनरीक्षण में प्रतिवादी संख्या 1/अपर आयुक्त, लखनऊ मंडल, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.01.2023 को चुनौती दी है जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और दिनांक 08.06.2016 के आदेश की पुष्टि की, जो इस याचिका में भी मुद्दा है, जिसे



प्रतिवादी संख्या 2/सहायक कलेक्टर प्रथम, अतिरिक्त न्यायालय, सीतापुर द्वारा 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत दायर वाद संख्या डी 2013106400123 (रजा हुसैन @ राजा मियां बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित किया गया था।

आदेश दिनांक 08.06.2016 द्वारा, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता द्वारा 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत अधिकारों की घोषणा के लिए दायर मुकदमे/मामले को खारिज कर दिया।

उपरोक्त वाद/मुकदमा खाता संख्या 123, गाटा संख्या 87/3, 428, 193/1.250, 835/0.304, 891/0.170, 892/0.174, 893/0.174, 905क/0.158, 907/0.235, 908क/0.089, 910/0.113, 911/0.166, 913/0.166, 1002/0.231, 1003/0.275, 1004/0.214, 1008/0.138, 1009/0.304, 1012/0.267, 1053/0.300, 1056/0.235, 1057/0.255, 1059/0.352, 1063/0.300, 1148/0.275, 1208/0.138, 1209/0.437, 1210Ka/0.295, 1212/0.223, 1213/0.368, 1214/0.251, 1215/0.375, 1218/1.41, 1260/0.016, 1383/0.089, 1410/0.328, 1412/0.267, 1491/0.336, 1011/1497/0.206 के संबंध में दायर किया गया था।

यह ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता का यह स्वीकृत मामला है कि फसली वर्ष 1360 (सामान्य युग के 1950वें वर्ष का राजस्व अभिलेख) के विवादित संपत्ति के राजस्व अभिलेख (खतौनी) में प्रविष्टि से पता

चलता है कि संपत्ति का प्रबंधन कस्टोडियन (जेरे इंतिजाम कस्टोडियन साहब बहादुर जिला सीतापुर) द्वारा किया जा रहा है।

मुकदमे में विवादित भूमि को राजस्व अभिलेखों में 'शत्रु संपत्ति' के रूप में दर्ज किया गया था और राजस्व अभिलेखों में उक्त प्रविष्टि को ध्यान में रखते हुए, शत्रु संपत्ति अधिनियम, 1968 (संक्षेप में "1968 का अधिनियम") की धारा 18-बी के मददेनजर मुकदमा/मामला इस आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह पोषणीय नहीं है, जैसा कि दिनांक 08.06.2016 के आदेश के कार्यकारी भाग से प्रतीत होता है, जिसे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागण के तर्कों का सुना तथा पत्रावली का विधिवत परिशीलन किया गया। अधिकृत प्राधिकारी, मुख्य पर्यवेक्षक कार्यालय शत्रु सम्पत्ति अभिरक्षक लखनऊ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने बहस के समय शत्रु सम्पत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) विधेयक, 2016 प्रस्तुत कर उसकर धारा 18 ख की ओर ध्यान आकर्षित कराया और यह कहा कि इस धारा के अन्तर्गत यह वाद न्यायालय में नहीं चल सकता है,

क्योंकि शत्रु सम्पत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) अध्यादेश 2016 के प्रभाव से शत्रु सम्पत्ति अधिनियम की धारा 18 के उपरान्त धारा 18 ख मूल अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से अतः स्थापित रूप से की जायेगी। धारा 18 ख इस प्रकार है कि "कोई भी सिविल न्यायालय या अन्य प्राधिकरण शत्रु सम्पत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) अध्यादेश द्वारा यथा संशोधित इस अधिनियम की विषयवस्तु वाली किसी सम्पत्ति या इस बाबत केन्द्रीय सरकार या अभिरक्षक द्वारा की गयी उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागण के तर्कों का सुना तथा पत्रावली का विधिवत परिशीलन किया गया। अधिकृत प्राधिकारी, मुख्य पर्यवेक्षक कार्यालय शत्रु सम्पत्ति अभिरक्षक लखनऊ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने बहस के समय शत्रु सम्पत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) विधेयक, 2016 प्रस्तुत कर उसकर धारा 18 ख की ओर ध्यान आकर्षित कराया और यह

कहा कि इस धारा के अन्तर्गत यह वाद न्यायालय में नहीं चल सकता है, क्योंकि शत्रु सम्पत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) अध्यादेश 2016 के प्रभाव से शत्रु सम्पत्ति अधिनियम की धारा 18 के उपरान्त धारा 18 ख मूल अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से अतः स्थापित रूप से की जायेगी। धारा 18 ख इस प्रकार है कि "कोई भी सिविल न्यायालय किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में कोई भी वाद या अन्य कार्यवाही ग्रहण नहीं करेगा। " वादीय विषयवस्तु स्वीकारतः राजस्व अभिलेखों में जेरे इन्तजाम कस्टोडियन काफी लम्बे अर्से से दर्ज है। उक्त प्रतिस्थापित धारा 18 ख के प्रभाव से इस सम्पत्ति के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में ग्रहण की गयी प्रक्रिया / कार्यवाही तथा अवधारणा विधानतः निष्प्रयोज्य हो गयी है और वादीय विषयवस्तु पर न्यायालय में विचारण करना विधिक रूप से वर्जन की श्रेणी में आता है।

**आदेश**

अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर वादी द्वारा प्रस्तुत घोषणात्मक वाद निरस्त किया जाता है। पत्रावली वाद आवश्यक कार्यवाही अभिलेखागार में संचित हो।"

पुनरीक्षण प्राधिकारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 ने भी प्रत्यर्थी नंबर 2 द्वारा दिनांक 12.01.2023 के आदेश के तहत पारित आदेश दिनांक 08.06.2016 की पुष्टि की।

मामले की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, वर्तमान याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 08.06.2016 एवं 12.01.2023 के आदेशों का विरोध करते हुए कहा कि वर्तमान मामले में अधिनियम 1968 की धारा 18-बी लागू नहीं होती है, ऐसे में वर्तमान मुद्दा वाद/मामला पोषणीय था, अतः इसका निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना चाहिए था, तथा अधिनियम 1968 की धारा 18-बी को ध्यान में रखते हुए सुनवाई योग्य होने के आधार पर दिनांक 08.06.2016 के आदेश द्वारा इसे खारिज करते हुए संबंधित न्यायालय/प्राधिकरण ने विधि एवं तथ्य दोनों में त्रुटि की है, तथा वाद की सुनवाई योग्य होने के मुद्दे पर सही भावना से निर्णय लिए बिना पुनरीक्षण प्राधिकारी/प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दिनांक 12.01.2023 को पारित पुष्टि आदेश भी विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।

उन्होंने आगे कहा कि राजस्व रिकॉर्ड में की गई प्रविष्टि इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश दिए बिना प्रतीत होती है। वास्तव में, 1968 के अधिनियम के तहत किसी भी प्राधिकारी का कोई आदेश नहीं है जिसके अनुपालन में, राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टि की गई थी और कस्टोडियन के समक्ष, केवल एक 'आदेश' को चुनौती दी जा सकती है, इस प्रकार भी, विधि के अनुसार आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं हैं।

इसके अलावा, उन्होंने प्रस्तुत किया कि पहले, संबंधित मुकदमे को दिनांक 12.01.1997 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था और उसके बाद अपील दिनांक 26.04.1999 में पारित आदेश के माध्यम से मामले को वापस भेज दिया गया था। दूसरी बार, वाद को दिनांक 30.05.2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और उसके बाद, अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 19.07.2004 को आदेश पारित किया और मामले को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया। आदेश दिनांक 19.07.2004 को आदेश दिनांक 21.12.2004 द्वारा संशोधित किया गया था, जिसमें यह देखा गया है कि यदि 1968 के अधिनियम के तहत पारित कोई आदेश या उक्त मामले का रिकॉर्ड प्रस्तुत किया जाता है तो निर्णय लेते समय उस पर भी विचार किया जाएगा। रिमांड के आदेश की शर्तें, हालाँकि, न तो 1968 के अधिनियम के तहत पारित कोई आदेश प्रस्तुत किया गया था और न ही 1968 के अधिनियम के तहत किसी भी मामले का रिकॉर्ड पेश किया गया था और इसके बावजूद,

आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं। मामले की इन परिस्थितियों में, मामले में इस न्यायालय की कृपा आवश्यक है। प्रार्थना है कि इस याचिका को वादव्यय सहित स्वीकार किया जाए।

वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमन्त कुमार पांडे का कहना है कि जहां तक रिमांड आदेश का सवाल है, दिनांक 19.07.2004 के आदेश सहित रिकॉर्ड का अवलोकन, दिनांक 21.12.2004 के आदेश द्वारा संशोधित, यह दिखाएगा कि अपीलीय प्राधिकारी ने रिमांड आदेश दिया था। मामला केवल इस आधार पर वापस आया कि विचारण न्यायालय मामले को खारिज करते समय, याचिकाकर्ता द्वारा रखे गए दस्तावेजी सबूतों पर ध्यान देने में विफल रहा और संशोधित आदेश दिनांकित 21.12.2004 को किया गया, सक्षम प्राधिकारी को निर्देश दिया गया था कि यदि उनके समक्ष 1968 के अधिनियम से संबंधित रिकॉर्ड या आदेश रखा जाए तो उस पर विचार किया जाए, लेकिन इस समय और पहले के अवसर पर भी जब मामले को वापस भेजा गया था, जब 1968 का अधिनियम को संशोधित नहीं किया गया था। 1968 के अधिनियम को अधिनियम संख्या 3/ 2017 अर्थात् शत्रु संपत्ति (संशोधन और सत्यापन) अधिनियम, 2017 के माध्यम से संशोधित किया गया था। इस मामले में, 1968 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान धारा 18-बी और धारा 22-ए हैं। धारा 22-ए के अनुसार, धारा 18-बी का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा यानी यह होगा उस तारीख से लागू होता है जिस

दिन से 1968 का अधिनियम प्रख्यापित हुआ और लागू हुआ। इस प्रकार, विचारण न्यायालय का दायित्व था कि वह मामले के गुण-दोष पर विचार करने से पहले, 1968 के अधिनियम की धारा 18-बी से संबंधित मुद्दे पर विचार करे और उचित विचार के बाद, विचारण न्यायालय ने मुकदमे को खारिज कर दिया और उसके बाद, पुनरीक्षण प्राधिकारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने विचारण न्यायालय/प्रत्यर्थी संख्या 2 दिनांक 08.06.2016 के आदेश की पुष्टि दिनांक 12.01.2023 के आदेश के माध्यम से की। इस प्रकार, रिमांड के आदेश(आदेशों) के आधार पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील में कोई दम नहीं है।

आगे कहा गया है कि धारा 18-बी यह नहीं कहती है कि कस्टोडियन को केवल पारित 'आदेश' के खिलाफ ही संपर्क करना होगा। इसमें कहा गया है कि बशर्ते इस अधिनियम में प्रावधानित है, किसी भी नागरिक अदालत या प्राधिकरण के पास शत्रु संपत्ति (संशोधन और सत्यापन) अधिनियम, 2017 या इस संबंध में केंद्र सरकार या संरक्षक द्वारा की गई कोई कार्रवाई द्वारा संशोधित इस अधिनियम की विषय वस्तु, किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी भी मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। इस प्रकार, अधिकारों की घोषणा या राजस्व रिकॉर्ड से उक्त प्रविष्टि को हटाने सहित 'शत्रु संपत्ति' के रूप में दर्ज संपत्ति के विवाद से संबंधित कस्टोडियन से संपर्क करने के लिए 'आदेश' की आवश्यकता नहीं है।

इस स्तर पर, 1968 के अधिनियम की धारा 18-सी, जो उच्च न्यायालय में अपील का प्रावधान करती है, के आधार पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि इस धारा में, अभिव्यक्ति "आदेश" का संकेत दिया गया है, जैसे, केवल एक 'आदेश' कस्टोडियन के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की धारा 18-सी पर आधारित उपरोक्त दलील पूरी तरह से गलत है क्योंकि यह धारा अपील के माध्यम से इस न्यायालय से संपर्क करने से संबंधित है, यदि कोई व्यक्ति कस्टोडियन द्वारा पारित किसी भी आदेश से व्यथित है और इस संबंध में अभिव्यक्ति धारा 18-सी में "आदेश" दर्शाया गया है। इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से 1968 के अधिनियम की धारा 3 का भी हवाला दिया, जो कस्टोडियन की नियुक्ति से संबंधित है। यह पहलू इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने योग्य नहीं है, क्योंकि 1968 के अधिनियम की धारा 3 पर आधारित इस याचिका में कोई आधार नहीं लिया गया है। इसके अलावा, 1968 के अधिनियम की धारा 18-बी के मददेनजर, सिविल कोर्ट या प्राधिकरण को कस्टोडियन की नियुक्ति से संबंधित तथ्य पर मामले की योग्यता में प्रवेश करने और निष्कर्ष दर्ज करने का अधिकार नहीं है।

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया गया और रिकार्ड का अवलोकन किया गया।

इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा राजस्व न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है और ऐसा होने पर, यह न्यायालय मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर ध्यान नहीं दे रहा है, क्योंकि मामले के तथ्यों/गुणों पर कोई भी टिप्पणी उचित मंच/अदालत के समक्ष पक्षों के अधिकारों को प्रभावित करेगी।

1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत, ऊपर बताए गए संपत्ति पर अधिकारों की घोषणा के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर मुकदमे की स्थिरता के मुद्दे की जांच करने के लिए, धारा 18, 18 बी, 1968 के अधिनियम की धारा 18सी और 22ए को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा।

**"[18. कुछ मामलों में शत्रु संपत्ति के रूप में निहित संपत्ति का हस्तांतरण-केन्द्रीय सरकार, किसी व्यक्ति से अभिरक्षक को शत्रु संपत्ति के रूप में संपत्ति सौंपने के आदेश से व्यथित होने पर, ऐसे आदेश की प्राप्ति की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर या राजपत्र में इसके प्रकाशन की तारीख से, जो भी पहले हो, और सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, यदि उसकी राय है कि इस अधिनियम के तहत अभिरक्षक में निहित और उसके पास रहने वाली कोई**

शत्रु संपत्ति शत्रु संपत्ति नहीं थी, तो वह सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अभिरक्षक को निर्देश दे सकती है कि अभिरक्षक में शत्रु संपत्ति के रूप में निहित ऐसी संपत्ति उस व्यक्ति को हस्तांतरित की जा सकती है, जिससे ऐसी संपत्ति अर्जित की गई थी और अभिरक्षक में निहित थी।]

**18बी. सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन-**इस अधिनियम में अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर, किसी भी नागरिक अदालत या प्राधिकरण को शत्रु संपत्ति (संशोधन और सत्यापन) अधिनियम, 2017 द्वारा संशोधित, इस अधिनियम की विषय वस्तु, किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी भी मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। या इस संबंध में केंद्र सरकार या संरक्षक द्वारा की गई कोई कार्रवाई।

**18सी. उच्च न्यायालय में अपील-**इस अधिनियम की धारा 18 के तहत केंद्र सरकार के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, संचार या

आदेश की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर, तथ्य के किसी भी प्रश्न पर उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है। ऐसे आदेशों से उत्पन्न होने वाला कानून, और ऐसी अपील पर उच्च न्यायालय, पक्षों को सुनने के बाद, उस पर ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे:

बशर्ते कि उच्च न्यायालय, यदि यह संतुष्ट है कि अपीलकर्ता को उक्त अवधि के भीतर अपील दायर करने से पर्याप्त कारण से रोका गया था, तो इसे साठ दिनों से अधिक की अतिरिक्त अवधि के भीतर दायर करने की अनुमति दे सकता है।

स्पष्टीकरण.—इस धारा में, "उच्च न्यायालय" का अर्थ उस राज्य या केंद्र शासित प्रदेश का उच्च न्यायालय है जिसमें धारा 18 में निर्दिष्ट संपत्ति स्थित है।]

**[22ए. मान्यता-**किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश में किसी बात के होते हुए भी,-

(ए) इस अधिनियम के प्रावधान, शत्रु संपत्ति (संशोधन और मान्यकरण) अधिनियम, 2017 द्वारा संशोधित, सभी उद्देश्यों के लिए हमेशा प्रभावी माने जाएंगे जैसे कि इस अधिनियम के प्रावधान, जैसा कि उक्त द्वारा संशोधित किया गया है अधिनियम, हर भौतिक समय पर लागू रहा था;

(बी) इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत कस्टोडियन से किसी भी व्यक्ति को विनिवेशित की गई कोई भी शत्रु संपत्ति, जैसा कि शत्रु संपत्ति (संशोधन और मान्यकरण) अधिनियम, 2017 के प्रारंभ होने से ठीक पहले थी, हस्तांतरित हो जाएगी और निहित हो जाएगी या निहित बनी रहेगी, सभी बाधाओं से मुक्त, कस्टोडियन में उसी तरह से जैसे कि इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत शत्रु संपत्ति के विनिवेश से पहले यह कस्टोडियन में निहित था, जैसे कि के प्रावधान उपरोक्त अधिनियम द्वारा संशोधित

यह अधिनियम, सभी भौतिक समयों पर लागू था;

(सी) पूर्वगामी प्रावधानों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण या प्राधिकारी द्वारा दिए गए किसी डिक्री या आदेश या निर्देश को लागू करने के लिए किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण या प्राधिकरण में कोई मुकदमा या अन्य कार्यवाही नहीं की जाएगी या जारी नहीं रखी जाएगी। इस अधिनियम की धारा 5 के तहत अभिरक्षक से शत्रु संपत्ति का विनिवेश, जैसा कि शत्रु संपत्ति (संशोधन और मान्यकरण) अधिनियम, 2017 के प्रारंभ होने से पहले था, और ऐसे शत्रु संपत्ति इस अधिनियम की धारा 5 के तहत कस्टोडियन में निहित रहेगी, जैसा कि पूर्वोक्त अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है, क्योंकि उक्त धारा, जैसा कि पूर्वोक्त अधिनियम द्वारा संशोधित है, सभी भौतिक समय पर लागू थी;

(घ) अभिरक्षक में निहित किसी शत्रु संपत्ति का कोई हस्तांतरण, किसी सिविल

न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में कुर्की, जब्ती या बिक्री के किसी आदेश या अभिरक्षक में निहित शत्रु संपत्ति के संबंध में किसी न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण के आदेशों के आधार पर, जो शत्रु संपत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण)

अधिनियम, 2017 द्वारा संशोधित इस अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत है, शून्य और अमान्य माना जाएगा और ऐसे हस्तांतरण के बावजूद, इस अधिनियम के तहत अभिरक्षक में निहित रहेगा।]"

धारा 18बी के अनुसार, किसी भी सिविल न्यायालय या प्राधिकरण को 'शत्रु संपत्ति' के रूप में दर्ज किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी भी मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

धारा 22ए, पूर्वव्यापी प्रभाव प्रदान करती है और तदनुसार 2017 के अधिनियम संख्या 3 के तहत जोड़ी गई धारा 18बी याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए मुकदमे पर लागू होगी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 1968 का अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और ऐसा होने पर, 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी सहित किसी भी अन्य कानून या

प्रावधान पर इसका प्रभाव पड़ेगा, जो एक पीड़ित व्यक्ति को कृषि भूमि पर अधिकार की घोषणा के लिए मुकदमा दायर करने के लिए उपाय प्रदान करता है।

धारा 18सी के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के उपाय और 1968 के अधिनियम की योजना पर विचार करने के बाद, जिसे भारत के रक्षा नियम, 1962 के तहत भारत के शत्रु संपत्ति के संरक्षक में निहित शत्रु संपत्ति के निरंतर निहित होने और उससे जुड़े मामले के लिए अधिनियमित किया गया था और जो 10.07.1968 से लागू हुआ था, याचिकाकर्ता का यह भी स्वीकार किया गया मामला है कि फसली वर्ष 1360 (सामान्य युग के 1950वें वर्ष का राजस्व अभिलेख) के विवादित संपत्ति के राजस्व अभिलेख (खतौनी) में प्रविष्टि से पता चलता है कि संपत्ति का प्रबंधन कस्टोडियन (जेरे इंतिजाम कस्टोडियन साहब बहादुर जिला सीतापुर) द्वारा किया जा रहा है और धारा 2(बी), 2(सी) और धारा 18 सहित 1968 के असंशोधित/मूल अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, यह न्यायालय इस बात पर विचार करता है कि वर्तमान मामले में अभिव्यक्ति (अभिव्यक्तियाँ) 'संपत्ति को शत्रु संपत्ति के रूप में कस्टोडियन में निहित करने का आदेश' धारा 18 में उल्लिखित 'ऐसे आदेश की प्राप्ति' या 'आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से' तथा 1968 के अधिनियम की अन्य धाराओं में उल्लिखित 'आदेश' शब्द, जो 2017 के अधिनियम संख्या 3 द्वारा तामील किया गया है, धारा 18बी के मद्देनजर सिविल न्यायालय या प्राधिकरण को कस्टोडियन के पक्ष में राजस्व प्रविष्टि से संबंधित मुद्दे पर



निर्णय लेने का अधिकार नहीं देगा, क्योंकि यह धारा विशेष रूप से सिविल न्यायालय या प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को बाहर करती है।

तदनुसार, इस न्यायालय के विचार में, राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टि की वैधता से संबंधित प्रश्न, जिसमें यह प्रश्न भी शामिल है कि क्या राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि, किसी संपत्ति को कस्टोडियन के पक्ष में शत्रु संपत्ति के रूप में निहित करने के आदेश पर आधारित है, का निर्णय प्राधिकरण द्वारा 1968 के अधिनियम के तहत किया जाना है।

उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय ने पाया कि याचिका में कोई बल नहीं है। यह गलत धारणा है और इसलिए खारिज किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 487

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-सी संख्या 7663 वर्ष 2023

एम/एस रामकली बालिका इंटर कॉलेज,  
सुल्तानपुर एवं एक अन्य ...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

आशीष वर्मा, आशीष कुमार पांडे

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, डी.के. सिंह चौहान

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश हाई स्कूल एवं इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों के वेतन भुगतान) अधिनियम, 1971 - धारा 4, 5 एवं 6- धारा 4(1) के अंतर्गत शक्ति वेतन के उचित भुगतान और वित्तीय औचित्य के पालन को सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण और निर्देश जारी करने तक सीमित है - वेतन भुगतान से संबंधित किसी भी अनियमितता के अभाव में, निरीक्षक के पास प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति की अनुशंसा करने का क्षेत्राधिकार नहीं था। - ऐसी नियुक्ति का आधार बनने वाली रिपोर्ट मनमानी, काल्पनिक और अधिनियम के दायरे से बाहर पाई गई - शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 14 के विरुद्ध छलपूर्ण और उल्लंघनकारी अभिनिर्धारित किया गया।

आक्षेपित आदेश निरस्त कर दिए गए।

चर्चा की गई वाद विधि:

व्हेलपूल कार्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य; (1998) 8 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका दिनांक 13.02.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए योजित की गई है, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश हाईस्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 (संक्षेप में '1971 अधिनियम') की धारा 5 के अंतर्गत शक्ति के कथित प्रयोग में प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति की गई थी, साथ ही दिनांक 09.08.2023 के आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा योजित अपील को निरस्त कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क संक्षेप में यह है कि रिट याचिका के अनुलग्नक-2 में निहित निर्देशों के अंतर्गत दिनांक 13.02.2023 के आदेश के द्वारा प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति का आदेश पारित किया गया था। उक्त आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि उक्त आदेश यह देखते हुए पारित किया गया है कि दिनांक 17.01.2023 की रिपोर्ट में गंभीर वित्तीय अनियमितताएं पाई गई थीं और 1971 अधिनियम की धारा 4(1) और धारा 6(1) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति के लिए अनुशंसा की गई थी और उक्त रिपोर्ट व अनुशंसा के आधार पर प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति की गई थी।

4. याचिकाकर्ताओं ने प्रारंभ में दिनांक 13.02.2023 के आदेश के विरुद्ध अपील की थी, जिसे निरस्त कर दिया गया था। उक्त आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने रिट-सी संख्या 3977/2023 योजित करके इस

न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जिसका निर्णय 17.05.2023 को हुआ था। उक्त आदेश के अनुसार अपील को निरस्त करने वाले दिनांक 19.04.2023 के अपीलीय आदेश को अपास्त किया गया और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए प्रतिप्रेषित किया गया। उक्त के आलोक में, दिनांक 24.07.2023 को अपील को निरस्त करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि दिनांक 17.01.2023 की रिपोर्ट को सत्य मानते हुए, 1971 अधिनियम की धारा 4(1) या धारा 6(1) के अंतर्गत प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति की अनुशंसा करने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि किसी भी अनियमितता या वेतन का भुगतान न करने के संबंध में कोई आरोप नहीं है। उनका तर्क है कि 1971 अधिनियम राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेजों के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन के भुगतान को विनियमित करने और उससे जुड़े मामलों के लिए प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। उन्होंने मेरा ध्यान 1971 के अधिनियम की धारा 4(1) की ओर आकर्षित किया, जो इस प्रकार है:

**"4. निरीक्षण आदि की शक्ति - (1)**

*निरीक्षक किसी भी समय, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, किसी भी संस्था का निरीक्षण कर सकता है या निरीक्षण करवा सकता है या उसके शिक्षकों या कर्मचारियों को वेतन के भुगतान के संबंध में उसके*

प्रबंधन से ऐसी जानकारी और अभिलेख (रजिस्टर, लेखा बही और वाउचर सहित) मांग सकता है या उसके प्रबंधन को वित्तीय औचित्य के ऐसे सिद्धांतों के पालन के लिए कोई निर्देश दे सकता है (जिसमें किसी शिक्षक या कर्मचारी की छंटनी या किसी भी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का निर्देश शामिल है) जैसा वह उचित समझे।"

बशर्ते कि खाता खोले जाने के बाद, निरीक्षक, यदि वह इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए किसी भी नियम के अधीन है, तो यह संतुष्ट हो सकता है कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में समीचीन है, बैंक को निर्देश दे सकता है कि खाता प्रतिनिधि द्वारा प्रबंधन के रूप में अकेले संचालित किया जाएगा, और किसी भी समय ऐसे निर्देश को रद्द कर सकता है:

6. अधिनियम के उद्देश्य, धारा 5 और 6 जो प्रासंगिक हैं, वे इस प्रकार हैं:

**"अधिनियम का उद्देश्य/उद्देश्य**

राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेजों के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन के भुगतान को विनियमित करने और उससे संबंधित मामलों के लिए प्रावधान करने के लिए एक अधिनियम।

आगे यह भी प्रदान किया गया है कि उपधारा (2) के प्रावधान में निर्दिष्ट मामले में, या जहां प्रबंधन की किसी भी चूक के कारण वेतन के वितरण में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, निरीक्षक बैंक को निर्देश दे सकता है कि खाते का संचालन केवल स्वयं या ऐसे अन्य अधिकारी द्वारा किया जाएगा जिसे उसके द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत किया गया हो और वह किसी भी समय ऐसे निर्देश को रद्द कर सकता है।

**"5. कुछ संस्थाओं के मामले में वेतन के भुगतान की प्रक्रिया-** (1) प्रत्येक संस्था का प्रबंधन अपने शिक्षकों और कर्मचारियों को वेतन वितरित करने के उद्देश्य से [अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक में] एक अलग खाता खोलेगा, जिसे प्रबंधन के प्रतिनिधि और निरीक्षक या ऐसे अन्य अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से खोला जाएगा, जिसे निरीक्षक द्वारा उस संबंध में अधिकृत किया जा सकता है:

(2) प्रबंधन निरीक्षक द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट तिथि तक उक्त राशि में अस्सी प्रतिशत जमा करेगा, या जहां राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई अधिकारी वितरित किए जाने वाले धन को ध्यान में रखते हुए उच्चतर प्रतिशत का निर्देश दे, तो वह उच्चतर प्रतिशत, जो वह निर्देश दे, छात्रों से फीस के रूप में प्राप्त राशि का, जो

राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेश के अनुसार [और जब तक निरीक्षक के निर्देश के अनुसार ऐसे आदेश नहीं किए जाते हैं] भरण-पोषण निधि का भाग बनता है:

बशर्ते कि जहां फीस का उक्त प्रतिशत पूर्वोक्त रूप से जमा नहीं किया जाता है, वहां निरीक्षक आदेश द्वारा प्रबंधतंत्र को छात्रों से फीस की वसूली करने से रोक सकता है, और उसके बाद निरीक्षक छात्रों से सीधे फीस वसूल कर सकता है (या तो संस्था के शिक्षकों के माध्यम से या ऐसे अन्य तरीके से जैसा वह उचित समझे) और इस प्रकार वसूल की गई फीस को उक्त खाते में जमा करेगा।

(3) भरण-पोषण अनुदान की पूरी राशि तथा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई अधिकारी, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, निःशुल्क शिक्षा तथा अन्य समान रियायतों की प्रतिपूर्ति के लिए अनुदान का अस्सी प्रतिशत या उससे अधिक प्रतिशत भी राज्य सरकार द्वारा उक्त खाते में जमा किया जाएगा।

(4) उक्त खाते में जमा की गई कोई भी राशि निम्नलिखित के अलावा किसी अन्य प्रयोजन के लिए उपयोग नहीं की जाएगी, अर्थात्:

(क) 31 मार्च, 1971 के पश्चात किसी अवधि के लिए देय उक्त वेतन का भुगतान;

(ख) शिक्षकों और कर्मचारियों के भविष्य निधि खातों में संस्था का अंशदान, यदि कोई हो, जमा करना;

(ग) संस्था के प्रयोजनों के लिए ऐसा अन्य व्यय, जैसा राज्य सरकार द्वारा उस निमित्त निर्देशित किया जाए;

तथा प्रत्येक वर्ष जुलाई माह के अंत में खातों में शेष का ऐसा भाग, जो विद्यार्थियों से फीस वसूल किए जाने की अवधि के लिए उनके वेतन के भुगतान के दायित्व को पूरा करने के पश्चात संस्था के शिक्षकों और कर्मचारियों के एक माह के वेतन के योग से अधिक हो, संस्था पर व्यय के लिए प्रबन्धन को सौंप दिया जाएगा;

(5) शिक्षक या कर्मचारी का वेतन उक्त खाते से उसी बैंक में उसके खाते में, यदि कोई हो, राशि अंतरित करके या यदि उसका उस बैंक में कोई खाता नहीं है, तो चेक द्वारा भुगतान किया जाएगा।

(6) ऐसे स्थान के संबंध में, जहां कोई अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक नहीं है, इस धारा के प्रावधान ऐसे संशोधनों

के साथ लागू होंगे, जैसा कि राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट करे, और इस धारा में बैंक के संदर्भ को उस स्थिति में डाकघर बचत बैंक के संदर्भ के रूप में समझा जाएगा।

#### 6. प्रावधानों और निर्देशों का प्रवर्तन-

(1) जहां निरीक्षक, किसी संस्था या उसके अभिलेखों या अन्यथा के निरीक्षण के आधार पर संतुष्ट हो जाता है कि उसके प्रबंधन ने धारा 4 के अंतर्गत दिए गए किसी निर्देश या धारा 3 या धारा 5 के किसी प्रावधान का पालन करने में चूक की है, वह क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक को अनुशंसा कर सकता है कि संस्था के विरुद्ध उप-धारा (2) के अंतर्गत कार्रवाई की जाए।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत अनुशंसा प्राप्त होने पर क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक प्रबंधन को उक्त निर्देश या प्रावधानों का अनुपालन करने के लिए कह सकता है या एक सप्ताह के भीतर कारण बता सकता है कि प्रबंधन को निलंबित क्यों न किया जाए।

(3) जहां प्रबंधन पूर्वोक्त अनुपालन करने या कारण बताने में विफल रहता है, या क्षेत्रीय शिक्षा उपनिदेशक बताए गए कारण को अपर्याप्त मानता है, वह आदेश द्वारा प्रबंधन को एक वर्ष

से अनधिक अवधि के लिए अधिक्रमित कर सकता है जैसा कि आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है, और किसी व्यक्ति (जिसे इसके बाद प्राधिकृत नियंत्रक के रूप में संदर्भित किया जाता है) को उक्त अवधि के लिए संस्था का प्रबंधन संभालने के लिए अधिकृत कर सकता है:

बशर्ते कि क्षेत्रीय शिक्षा उपनिदेशक, जहां वह ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, -

(i) उक्त अवधि को समय-समय पर बढ़ा सकता है, हालांकि, इस प्रकार बढ़ाई गई अवधि कुल मिलाकर पांच वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए; या

(ii) किसी भी समय आदेश को रद्द कर सकता है:

आगे यह भी प्रावधान है कि पूर्ववर्ती परंतुक के खंड (ii) में कुछ भी इस धारा के अंतर्गत नए आदेश पारित करने पर रोक नहीं लगाएगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन आदेश दिए जाने पर प्राधिकृत नियंत्रक, प्रबंधन को छोड़कर तथा क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक, निदेशक या राज्य सरकार के निर्देशों, यदि कोई हों, के अधीन रहते हुए, संस्थान की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा तथा संस्थान में निहित

संपत्ति के प्रबंधन सहित प्रबंधन के सभी कार्य करेगा तथा विशेष रूप से धारा 5 में निर्दिष्ट बैंक खाते का अकेले संचालन करेगा:

बशर्ते कि इस धारा की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्राधिकृत नियंत्रक को ऐसी किसी संपत्ति को हस्तांतरित करने की शक्ति प्रदान करती है (सिवाय इसके कि प्रबंधन के सामान्य क्रम में महीने-दर-महीने किराए पर दिया जाए) या उस पर कोई प्रभार सृजित करने की शक्ति प्रदान करती है (सिवाय इसके कि संस्था को राज्य सरकार से कोई अनुदान सहायता प्राप्त होने की शर्त के रूप में)।

(5) इस धारा के अंतर्गत दिया गया कोई भी आदेश या निर्देश, संस्था के प्रबंधन और नियंत्रण (प्रशासन की किसी भी योजना सहित) या संस्था से संबंधित या उसमें निहित संपत्ति से संबंधित किसी भी अन्य अधिनियम या साधन में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद प्रभावी होगा।"

7. उक्त के आलोक में, यह तर्क दिया गया है कि धारा 4(1) में वेतन के भुगतान के संबंध में प्रबंधन से निरीक्षण करने और जानकारी और अभिलेखों को मांगने या किसी शिक्षक या कर्मचारी की छंटनी या किसी भी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने के लिए किसी भी निर्देश सहित वित्तीय औचित्य के ऐसे सिद्धांतों के पालन के

लिए प्रबंधन को कोई निर्देश देने की शक्ति निहित है, जैसा कि वह उचित समझे।

8. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क है कि उक्त प्रावधानों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, निरीक्षण या रिकॉर्ड मांगने की शक्ति केवल उसी उद्देश्य के लिए हो सकती है, जिसके लिए अधिनियम बनाया गया था और किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। उनका तर्क है कि संपूर्ण रिपोर्ट में, जो धारा 5 के अंतर्गत आदेश पारित करने का आधार है, शिक्षकों या कर्मचारियों को किसी भी अनियमित भुगतान या वेतन का भुगतान न करने के संबंध में कोई भी आरोप नहीं है, ऐसे में निरीक्षक के पास, प्रथम दृष्टया, उन बिन्दुओं से परे कोई निष्कर्ष दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था, जो इस अधिनियम के दायरे और उद्देश्य के अंतर्गत नहीं आते हैं।

9. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि सूचना और अभिलेखों को मांगने के संबंध में धारा 4(1) के अंतर्गत शक्ति का दूसरा अंग निरीक्षक को वित्तीय औचित्य बनाए रखने और किसी भी व्यर्थ व्यय से बचने के लिए निर्देश देने का अधिकार देता है और उक्त शक्ति का प्रयोग भी केवल अधिनियम के उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। उनका तर्क है कि धारा 4(1) के अंतर्गत शक्ति की आड़ में, निरीक्षक ने ऐसा कार्य किया, मानो वह संस्थान के संपूर्ण मामलों के नियंत्रण में है, जो न तो अधिनियम के अंतर्गत अधिकृत है और न ही अन्यथा।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि शक्ति का सही प्रयोग किया गया क्योंकि कारण बताओ नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया गया और अपील को भी सही तरीके से निरस्त कर दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया कि 1971 अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत राज्य सरकार के समक्ष अपीलीय आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण योजित किया जा सकता है, ऐसे में याचिकाकर्ता को पुनरीक्षण का उपाय प्रयोग करने दिया जाना चाहिए।

11. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि पारित आदेश निरीक्षक को दी गई शक्तियों के दायरे से बाहर है और इस प्रकार अधिकार क्षेत्र के बिना है, इसलिए वैकल्पिक उपाय प्रयोग करने का तर्क निरर्थक है। वह **वर्ल्डपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य; (1998) 8 एससीसी 1** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देते हैं।

12. न्यायालय में दिये गए तथा ऊपर दर्ज किए गए तर्कों पर विचार करते हुए, प्रथम दृष्टया, अधिनियम के उद्देश्य तथा धारा 4(1) के स्पष्ट वाचन पर, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, यह स्पष्ट है कि निरीक्षक को 'इस अधिनियम के उद्देश्य' के लिए किसी भी संस्था का निरीक्षण करने अथवा निरीक्षण करवाने का अधिकार है तथा इसी प्रकार वह केवल 'इस अधिनियम के उद्देश्य' के लिए सूचना तथा अभिलेख मांग सकता है। अधिनियम का उद्देश्य, जैसा कि उद्धृत किया गया है, केवल वेतन का भुगतान सुनिश्चित करना है। उक्त व्याख्या धारा 5 के अधिदेश

द्वारा पुष्ट होती है, जो निरीक्षक को खाते का एकल संचालन करने का अधिकार देती है, जो केवल शिक्षकों तथा कर्मचारियों को वेतन वितरित करने के लिए खोला जाता है। धारा 4 तथा 5, वे शक्तियां हैं, जो प्रथम दृष्टया, स्वामित्व-संबंधी प्रकृति की हैं तथा 'अधिनियम के उद्देश्य' के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए प्रयोग किए जाने पर संस्था के कामकाज को चलाने के लिए प्रबंधन के अधिकारों पर आघात करती हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक स्वामित्व-रहित शक्ति का प्रयोग कानून के अनुसार सख्ती से किया जाना चाहिए और यदि इसका प्रयोग उस विचार और उद्देश्य के अलावा किया जाता है, जिसके लिए शक्ति निहित है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के विपरीत होगा।

13. वर्तमान मामले में तर्क के लिए रिपोर्ट तो सही मानते हुए, इसे पढ़ने मात्र से पता चलता है कि इसमें 'अधिनियम के उद्देश्य' के अंतर्गत आने वाली किसी भी कमी को दर्ज नहीं किया गया है। स्पष्ट रूप से रिपोर्ट मनमानी है, उदाहरण के लिए, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि चूंकि वर्ष 2012-13 में 14 लाख रुपये का नुकसान दिखाया गया था, इसलिए बिना किसी निष्कर्ष या सामग्री के, 2022-23 तक के बाद के वर्षों में भी इसी तरह की हानि मानी जानी चाहिए। रिपोर्ट में व्यक्त किया गया उक्त दृष्टिकोण केवल रिपोर्ट के लेखक के दिमाग की कल्पना है।

14. मुझे यह निर्धारण करने में कोई संकोच नहीं है कि निरीक्षक ने प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति के लिए अनुशंसा करने में स्पष्ट रूप

से अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है, और उन सामग्री और उद्देश्यों पर आधारित है, जो 'शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का भुगतान' से भिन्न हैं। मैं यह कहने के लिए विवश हूँ कि निरीक्षक ने 1971 के अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध और उन कारणों से अनुशंसा करने में स्पष्ट रूप से गलती की है, जो धारा 4(1) के अंतर्गत निर्धारित नहीं हैं। चूंकि आधार ही मनमाना पाया गया है, इसलिए उक्त आधार पर पारित आदेश भी बने रहने योग्य नहीं हैं, अतः 13.02.2023 का आक्षेपित आदेश और साथ ही बाद का अपीलीय आदेश दिनांक 24.07.2023 पूरी तरह से मनमाना और अवैध है और केवल अधिकार क्षेत्र की कमी और शक्ति के मनमाने प्रयोग के आधार पर निरस्त किया जाता है। परिणामी आदेश दिनांक 09.08.2023 को भी निरस्त किया जाता है।

15. उपरोक्त टिप्पणियों पर रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 492

मूल क्षेत्राधिकार  
सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

रिट-सी संख्या 10049 वर्ष 2014

गौरी गर्ग

बनाम

आई.ओ.सी. एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

...प्रतिवादीगण

**याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:**

श्री राकेश कुमार, श्री तरुण अग्रवाल

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

श्री प्रकाश पाडिया, श्री आनंद तिवारी, श्री राजीव गुप्ता, स्थायी अधिवक्ता

**अभिनिर्धारित हुआ:**

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा जारी ब्रोशर के अनुसार, वित्तीय सुदृढ़ता का मूल्यांकन - विशेष रूप से अचल और चल परिसंपत्तियों के शीर्षक के अंतर्गत - सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता द्वारा विधिवत प्रमाणित मूल्यांकन रिपोर्ट पर आधारित होना चाहिए। किसी भी पक्ष की ओर से ऐसी रिपोर्ट के अभाव में, उस शीर्षक के अंतर्गत अंक प्रदान करना अस्वीकार्य था। ब्रोशर में प्रयुक्त "आवश्यक" शब्द को "अनिवार्य" माना जाना चाहिए, और किसी भी प्रकार का विचलन मूल्यांकन को त्रुटिपूर्ण बनाता है। इसलिए, इस आवश्यकता का पालन किए बिना की गई चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण थी।

**चर्चा की गई वाद विधि:**

निर्णय में प्रत्यक्ष रूप से किसी का उल्लेख नहीं किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी द्वारा पारित)

मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) का आदेश दिनांक 31.01.2014 को रद्द कर दिया गया - मामले को सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ताओं



से मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद ब्रोशर दिशानिर्देशों के अनुसार नए सिरे से मूल्यांकन के लिए वापस भेज दिया गया।

### याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत।

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिज़वी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन ने 17.12.2010 को दैनिक समाचार पत्र, अमर उजाला में एक विज्ञापन जारी किया और पूर्वी यूपी में विभिन्न स्थानों पर खुदरा दुकानों की डीलरशिप के लिए आवेदन आमंत्रित किए। प्रश्नगत स्थान राज्य राजमार्ग संख्या 51 पर किलोमीटर पत्थर 119 और 124 के बीच था। यह श्रेणी "आपॉन वूमेन" श्रेणी थी। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी सं. 4 ने आईओसी के संबंधित कार्यालय में 31.1.2011 को विधिवत भरे हुए आवेदन पत्र जमा किए। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी सं. 4 दोनों को उम्मीद थी कि उनके आवेदनों का मूल्यांकन विवरणिका में दिए गए मानकों के अनुसार किया जाएगा। विवरणिका में दो आधारों पर मूल्यांकन की परिकल्पना की गई है, एक रिटेल आउटलेट के लिए भूमि की उपयुक्तता के संबंध में और दूसरा वित्तीय सुदृढ़ता के संबंध में। विवाद वित्तीय सुदृढ़ता के इर्द-गिर्द घूमता है। वित्तीय सुदृढ़ता कॉलम में बीस अंक दिये जाने थे। इन बीस अंकों में से

तरल नकदी का मूल्यांकन बारह के पैमाने पर किया जाना था, अचल और चल संपत्तियों का मूल्यांकन चार के पैमाने पर किया जाना था और व्यवसाय, ब्याज, किराया, रॉयल्टी आदि से आय का मूल्यांकन चार के पैमाने पर किया जाना था।

3. प्रारंभ में याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नं. 4 को सभी आवेदकों में से सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार माना गया और समग्र मूल्यांकन पर उन्हें क्रमशः 90.90 अंक और 91.53 अंक दिए गए। वित्तीय सुदृढ़ता श्रेणी के तहत याचिकाकर्ता को अचल और चल संपत्ति के लिए चार अंक दिए गए और प्रतिवादी संख्या 4 को 2.95 अंक दिये गये। जहां तक आय कॉलम का सवाल है, याचिकाकर्ता को 1.08 अंक दिए गए जबकि प्रतिवादी नं. 4 को पूरे अंक यानी 4 अंक दिए गए।

4. याचिकाकर्ता, इस तथ्य से व्यथित थी कि उसे आय के कॉलम यानी व्यवसाय, ब्याज, किराया, रॉयल्टी आदि से आय के तहत उसकी योग्यता से कम अंक दिए गए थे, उसने प्रतिवादी संख्या 2 - मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) के समक्ष एक शिकायत याचिका दायर की। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 4, के मामले का मूल्यांकन करने पर, मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) जो याचिकाकर्ता की शिकायत को देख रहे थे, ने पाया कि याचिकाकर्ता को गलत तरीके से केवल 1.08 अंक दिए गए थे और वास्तव में उन्हें उस मद के तहत चार अंक दिए जाने चाहिए थे। परिणामस्वरूप, 30.11.2012 को किए गए मूल्यांकन को रद्द

कर दिया गया और मामले को नए सिरे से पुनर्विचार करने के लिए भेज दिया गया।

5. हमने पाया कि मामले पर 18.11.2013 को फिर से नए सिरे से विचार किया गया और उस दिन याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों नं. 4 को पूरे अंक यानी आय धारा के तहत चार अंक दिए गए। हालाँकि, याचिकाकर्ता को अचल और चल संपत्ति के लिए केवल 1.25 अंक दिए गए जबकि प्रतिवादी नं. 4 अचल एवं चल संपत्ति के लिए पूरे चार अंक दिए गए। इस प्रकार, याचिकाकर्ता फिर से 91.07 अंकों के साथ दूसरे स्थान पर रही और प्रतिवादी नं. 4, 92.58 अंकों के साथ प्रथम स्थान पर रहे। याचिकाकर्ता ने मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) के समक्ष एक शिकायत याचिका दायर करके फिर से मूल्यांकन को चुनौती दी एवं और मुख्य प्रबंधक ने दिनांक 31.1.2014 को निष्कर्ष के पश्चात यह पाया कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नं 4 दोनों ने अपनी अचल और चल संपत्तियों के संबंध में किसी भी सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता की कोई रिपोर्ट नहीं दी थी, उन्होंने स्वयं अपनी संपत्तियों का मूल्यांकन किया है और निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी को उसके द्वारा प्रस्तुत विक्रय पत्र के आधार पर सही रूप से 4 अंक दिए गए थे और याचिकाकर्ता को द्वारा प्रस्तुत विक्रय पत्र के आधार पर सही ढंग से 1.25 अंक दिए गए थे।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) के आदेश दिनांक 31.1.2014 को इस आधार पर चुनौती दी है कि विवरणिका में प्रदान की गई अचल और

चल संपत्ति के मुकाबले अंकों के मूल्यांकन के संबंध में प्रावधान था उसके परिप्रेक्ष्य में उचित तरीके से विचार नहीं किया गया। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि यदि यह विवरणिका के प्रावधानों के अनुसार जाना था, तो मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) को विवरणिका में दिए गए निर्देशों का सख्ती से पालन करना चाहिए, जिसमें प्रावधान है कि अचल और चल संपत्तियों को एक अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता की मूल्यांकन रिपोर्ट के आधार पर चिह्नित किया जाएगा और मूल्यांकनकर्ता को सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता होना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि उम्मीदवारों द्वारा स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किए गए विक्रय पत्र पर सरकारी मूल्यांकनकर्ताओं की रिपोर्ट के बिना विचार नहीं किया जाना चाहिए था।

7. इसके पर्याय, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रेषित विशेष विक्रय पत्र 26.10.1998 पर भी विचार नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि या तो दोनों आवेदकों को सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकक रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराने के लिए 'शून्य' दिया जाए या प्रस्तुत विक्रय पत्र के आधार पर सही अंक दिए जाएं। इसके अलावा, याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि याचिकाकर्ता की चल संपत्ति के मूल्यांकन के लिए उसके वाणिज्यिक वाहन पर भी विचार नहीं किया गया।

8. इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन के विद्वान अधिवक्ता ने हालांकि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलीलों का विरोध किया

है और कहा है कि जब सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता की रिपोर्ट नहीं थी तो निश्चित रूप से मुख्य प्रबंधक (खुदरा बिक्री) जो शिकायत याचिका को देख रहे थे वह पक्षों की चल और अचल संपत्तियों पर गौर कर सकते थे और उन्होंने आगे कहा है कि अचल और चल संपत्तियों का मूल्यांकन यह जानने के लिए किया जाना चाहिए कि क्या वह आवेदक वित्तीय रूप से मजबूत था।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के विद्वान वकील को सुनने के बाद, इस न्यायालय का मानना है कि विवरणिका के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि अचल और चल संपत्तियों को केवल मूल्यांकन रिपोर्ट जिसे सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता द्वारा विधिवत प्रमाणित किया जाना था के अनुसार देखा जाना चाहिए और हमने पाया कि विवरणिका कहती है कि सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता रिपोर्ट एक आवश्यक इकाई थी। हमने पाया कि वित्तीय सुदृढ़ता का आकलन विवरणिका में दी गई विधि के अनुसार किया जाना था। विवरणिका में विशेष रूप से कहा गया है कि वित्तीय सुदृढ़ता “संपत्ति के समर्थन में सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ताओं द्वारा विधिवत प्रमाणित मूल्यांकन रिपोर्ट” पर आधारित होनी चाहिए। इसमें आगे कहा गया है कि रिपोर्ट “आवश्यक” थी।

10. इस प्रकार हमारा विचार है कि ‘आवश्यक’ शब्द की व्याख्या अनिवार्य के रूप

में की जानी चाहिए। मौजूदा मामले में जब याचिकाकर्ता के लिए और प्रतिवादी संख्या 4 के लिए सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता की कोई रिपोर्ट नहीं थी, तो एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष यह होगा कि न तो याचिकाकर्ता और न ही प्रतिवादी संख्या 4 को अचल और चल संपत्ति श्रेणी के तहत कोई अंक दिया जाना चाहिए था और वास्तव में आईओसी को पक्षों पर सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए जोर देना चाहिए था। ऐसा नहीं किए जाने पर, हमारा मानना है कि मुख्य प्रबंधक, खुदरा बिक्री द्वारा की गई पूरी कवायद निरर्थक थी। उन्हें सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ताओं की रिपोर्ट पर जोर देना चाहिए था और उसके बाद “अचल और अचल संपत्ति” शीर्षक के तहत अंक आवंटित करने चाहिए थे।

11. उपरोक्त लिखित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित किया गया आदेश दिनांक 31.1.2014 को रद्द किया जाता है और एतद्वारा अलग रखा जाता है। मामला प्रतिवादी संख्या 2 को वापस भेज दिया जाता है, जो अब सरकार द्वारा अनुमोदित मूल्यांकनकर्ताओं से रिपोर्ट प्राप्त करेंगे और उसके बाद याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी संख्या 4 को अंक आवंटित करने हेतु आगे बढ़ेंगे।

12. उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 495

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार

श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 10192 वर्ष 2023

पलटू राम यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री हेमंत कुमार राय, श्री अरविंद कुमार राय,  
श्री एस.बी. सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री मयंक कृष्ण एस  
चंदेल, श्री राम निवास सिंह, श्री रामेश्वर प्रसाद  
शुक्ला, श्री विनोद कुमार चंदेल

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 207, 209 और 210 - जोत के विभाजन के लिए वाद - अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील की अनुमति - मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज दिया गया - क्या पुनरीक्षण का उपचार धारा 210 के अंतर्गत निहित है - "कार्यवाही निर्णीत" का दायरा और अर्थ -

अभिनिर्धारित हुआ:

गुणदोष पर सम्प्रेक्षणों को रखनेवाला और पक्षकारों के अधिकारों के सम्बन्ध में निष्कर्ष

देने वाला अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित प्रतिपेण आदेश को 'प्रतिपेण सामान्यतः' या एक अन्तर्वर्ती आदेश नहीं माना जा सकता- ऐसे आदेश को धारा 210 के अंतर्गत "कार्यवाही निर्णीत" अभिनिर्धारित किया गया- पुनरीक्षण पोषणीय - वैधानिक वैकल्पिक उपचार के दृष्टिगत रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

अभिनिर्धारित हुआ: उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 207 के अंतर्गत तीन अपीलों को निर्णीत करते हुए आयुक्त द्वारा पारित प्रतिपेण आदेश गुणदोष पर विस्तृत विवरण रखने वाला है, जिसमें पंजीकृत विक्रय विलेखों के आधार पर संपत्ति की प्रकृति और कब्जे के सम्बन्ध में निष्कर्ष और पक्षकारों को अवसर प्रदान करने के बाद नये न्यायनिर्णयन हेतु निर्देश शामिल हैं - ऐसे आदेश को 'प्रतिपेण सामान्यतः' नहीं माना जा सकता - अभिव्यक्ति 'कार्यवाही निर्णीत' धारा 210 के अंतर्गत ऐसे अपीलीय आदेशों को सम्मिलित करती है - इसलिए, धारा 210 के अंतर्गत पुनरीक्षण का उपचार उपलब्ध है - याचिका वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर खारिज की गई।

याचिका खारिज।

चर्चा की गई वाद विधि:

1. राम भजन एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, इलाहाबाद एवं एक अन्य

2. महेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद् उत्तर प्रदेश और अन्य

3. झिनका देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

4. दीनानाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एसबी सिंह के साथ श्री हेमंत कुमार राय, प्रतिवादी राज्य के लिए उपस्थित श्री कुणाल रवि सिंह, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता उनके साथ श्री अभिषेक शुक्ला, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार चंदेल को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका में एक अपील में पारित रिमांड के आदेश के खिलाफ उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, धारा 210/2006 के तहत दाखिल पुनरीक्षण के वैधानिक उपाय की उपलब्धता के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया है।

3. पक्षों के बीच स्वीकार किए गए तथ्य यह हैं कि ग्राम हरखपुर, परगना और तहसील सगड़ी, जिला आजमगढ़ में स्थित 0.150 हेक्टेयर क्षेत्र को मापने वाले भू-धारी भूखंड संख्या 89 पर संयुक्त रूप से दो सगे भाइयों राजदेव और हरदेव बराबर हिस्से पर काबिज थे। उपरोक्त भूखंड के अविभाजित हिस्से का आधा हिस्सा प्रतिवादी संख्या 6 और प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के पूर्ववर्तियों द्वारा दिनांक 20.05.2003 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से

खरीदा गया था, जिसे सह-मालिकों में से एक द्वारा निष्पादित किया गया था, जो हरदेव था। शेष आधा हिस्सा याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 01.10.2004 को अन्य सह-मालिक अर्थात् राजदेव से एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा गया था। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ प्रतिवादी प्रतिवादियों के नाम राजस्व रिकॉर्ड में विचाराधीन भूखंड के सह-हिस्सेदार के रूप में दर्ज किए गए थे।

4. याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006<sup>2</sup> की धारा 116 के तहत न्यायालय उप-खंड अधिकारी, सगड़ी, आजमगढ़ में जोत के विभाजन के लिए मुकदमा दायर किया।

5. निजी प्रतिवादियों जो कि मामले में पक्षकार थे, ने अपने लिखित बयान दर्ज नहीं किए, और दिनांक 23.01.2019 को एक प्रारंभिक डिक्री पारित की गई।

6. इसके बाद, संबंधित लेखपाल द्वारा पक्षकारों के आनुपातिक शेयरों को दर्शाने वाली एक कुरा रिपोर्ट और नक्शा तैयार किया गया, जिसकी पुष्टि की गई और अंतिम डिक्री करने के लिए दिनांक 26.10.2019 को एक आदेश पारित किया गया।

7. इस स्तर पर प्रतिवादी संख्या 6 ने दिनांक 13.12.2019 को एक पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र दायर किया, जिसमें दिनांक 26.10.2019 के आदेश को वापस लेने की मांग की गई। यह तर्क दिया गया था कि संबंधित प्रतिवादी को

जोत के विभाजन के लिए वाद में आदेश पारित करने के संबंध में कोई नोटिस नहीं मिला।

8.प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को उप-खण्ड मजिस्ट्रेट ने दिनांक 27.12.2021 के आदेश के संदर्भ में खारिज कर दिया। संबंधित न्यायालय ने पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को खारिज करते हुए उसे गुण-दोष के आधार पर इस आशय की कुछ टिप्पणियां भी कीं कि किसी भी विभाजन की अनुपस्थिति में संयुक्त जोत में, बिक्री विलेख को वैध नहीं ठहराया जा सकता है और उसके आधार पर जोत के विभाजन का कोई दावा नहीं किया जा सकता है।

9.धारा 116 के तहत वाद में पारित पूर्वोक्त अंतिम आदेश दिनांक 26.10.2019 को स्वीकार करते हुए, प्रतिवादी संख्या 6 ने राजस्व संहिता की धारा 207 के तहत अपील की। प्रतिवादी संख्या 5 ने भी उक्त आदेश के खिलाफ अपील की।

10.प्रतिवादी संख्या 6 ने आगे दिनांक 27.12.2021 के आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत उक्त प्रतिवादी द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 207 के तहत अपील में खारिज कर दिया गया था।

11.उपरोक्त तीनों अपीलों पर प्रतिवादी संख्या 2/आयुक्त आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ द्वारा पारित एक सामान्य आदेश दिनांक 18.11.2022 द्वारा सुनवाई और निर्णय लिया गया। प्रतिवादी संख्या 2 ने अपनी अपीलीय

शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को गुणदोष पर टिप्पणी करके खारिज कर दिया था। इस संबंध में, अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि पंजीकृत बिक्री विलेख जो मामले के रिकॉर्ड पर उपलब्ध था, इस तथ्य का संकेत था कि विचाराधीन भूखंड पक्षकारों की पैतृक संपत्ति नहीं थी, लेकिन इसे दोनों पक्षों द्वारा मूल कार्यकाल धारक से क्रमशः वर्ष 2003 और 2004 में निष्पादित पंजीकृत बिक्री विलेखों के आधार पर खरीदा गया था, अलग-अलग सीमाएं दिखा रहा है। यह भी देखा गया कि उपरोक्त बिक्री विलेखों के आधार पर संबंधित पक्षों ने राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम दाखिल खारिज करवा लिया था और उनके संबंधित हिस्से उनके कब्जे में थे।

12.अपीलीय न्यायालय ने यह भी देखा कि जोत के विभाजन के लिए मुकदमा बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख से लगभग 14 वर्षों के बाद स्थापित किया गया था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह केवल पंजीकृत बिक्री विलेख में वर्णित सीमाओं के आधार पर था कि क्रेता कब्जे के अधिकार का दावा कर सकता था और यह ऐसा मामला नहीं था जहां पक्षकार पैतृक संपत्ति में अपने संबंधित शेयरों के आधार पर विभाजन का दावा कर रही थीं, यह माना गया कि जहां तक मामले की योग्यता का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां कानूनी रूप से अस्थिर थीं। इसके अलावा, चूंकि अधीनस्थ न्यायालय ने सुनवाई का अवसर दिए बिना

और अपीलकर्ता (प्रतिवादी संख्या 6) को साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना मुकदमे की एकतरफा डिक्री की थी, और इसके बाद दिनांक 27.12.2021 के आदेश के संदर्भ में पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया, इसने एक स्पष्ट त्रुटि की थी।

13.अपीलीय न्यायालय ने उपरोक्त निष्कर्ष पर आने के बाद माना कि संबंधित पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने और योग्यता के आधार पर अपना मामला प्रस्तुत करने का उचित अवसर देने के बाद अधीनस्थ न्यायालय के लिए यह उचित होगा कि वह एक नया आदेश पारित करे। तदनुसार, दिनांक 26.10.2019 और 27.12.2019 के आदेशों को रद्द कर दिया गया है और मामले को सुनवाई का अवसर प्रदान करने और साक्ष्य प्रस्तुत करने और गुण-दोष के आधार पर मामले पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए अधीनस्थ न्यायालय में भेज दिया गया है।

14.वर्तमान रिट याचिका की ग्राहिता के संबंध में राज्य-प्रतिवादियों के लिए उपस्थित अधिवक्ता और निजी प्रतिवादियों के लिए उपस्थित अधिवक्ता द्वारा भी आपत्ति उठाई गई है, जो प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपील में पारित दिनांक 18.11.2022 के आदेश पर यह इंगित करते हुए तीव्रता से कहना चाहता है कि याचिकाकर्ता के पास राजस्व बोर्ड के समक्ष उक्त आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर करने का एक प्रभावी वैधानिक उपाय होगा।

15.याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रतिवादियों की ओर से उठाई गई उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति

का खंडन करने की मांग करते हुए कहा है कि चूंकि अपीलीय न्यायालय ने मामले के गुणों पर किसी भी टिप्पणी के बिना और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों को अलग किए बिना मामले को अधीनस्थ न्यायालय में भेज दिया था, यह रिमांड सरलीकरण का मामला था और इसलिए पुनरीक्षण का उपाय उपलब्ध नहीं होगा। इस संबंध में, **राम भजन और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, इलाहाबाद और एक अन्य**<sup>3</sup> में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया गया था यह प्रस्तुत करने के लिए कि 'रिमांड सरलीकरण' का आदेश एक अंतर्वर्ती प्रकृति का होगा, और उक्त आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण पोषणीय नहीं होगा।

16.निजी प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने मामले के गुणों पर अपीलीय न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करके उपरोक्त प्रस्तुतियों का खंडन किया है, यह इंगित करने के लिए कि न्यायालय ने अपील का निर्णय करते समय अधीनस्थ न्यायालय द्वारा सौंपे गए तर्क पर विचार किया है और योग्यता के आधार पर टिप्पणियों के साथ मामले को वापस भेज दिया है; इसलिए, आदेश को 'रिमांड सरलीकरण' नहीं कहा जा सकता है, जिसे एक अंतर्वर्ती प्रकृति का माना जा सकता है और वैधानिक पुनरीक्षण के उपाय के लिए उत्तरदायी नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने राजस्व संहिता के तहत पुनरीक्षण शक्तियों के दायरे पर **महेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड उ०प्र० और अन्य**<sup>4</sup> और

3 2001 (92) आरडी 330

4 2022(8) एडीजे 105

**झिंका देवी बनाम उ०प्र० राज्य और अन्य<sup>5</sup>** में दिए गए इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख किया है।

17.राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने अपील का निर्णय करते समय प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश का भी उल्लेख किया है, और कहा कि अपीलीय आदेश में मामले को उसके गुण-दोष के आधार पर विस्तृत विचार किया गया है और रिमांड को विशिष्ट निर्देशों के साथ बनाया गया है, उक्त आदेश को किसी भी तरह से 'रिमांड सरलीकरण' नहीं ठहराया जा सकता है और इसलिए एक पुनरीक्षण के उपाय के लिए योग्य नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि भूमि प्रकृति में पैतृक नहीं है और पाटियां अपने संबंधित बिक्री विलेखों में वर्णित सीमाओं के अनुसार कब्जे में थीं और उसी के अनुसार कब्जे में रहेंगी।

18.आगे यह बताया गया है कि **राम भजन (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय, जिस पर याचिकाकर्ता की ओर से बल देने की मांग की गई है, **दीना नाथ और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी<sup>6</sup>** में इस न्यायालय के बाद के डिवीजन बेंच के फैसले के आलोक में अच्छा कानून नहीं माना जा सकता है, जिसमें एक संदर्भ का निर्णय लेते समय, बिंदु पर, यह माना गया था कि चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी का आदेश, जिसने अंततः चकबंदी

अधिकारी के आदेश को रद्द करके और मामले को चकबंदी अधिकारी को भेजकर अपील का फैसला किया था, जो कि अपील का फैसला करने वाला आदेश था और इस तरह इसे एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं कहा जा सकता था।

19.राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार रिमांड पक्षकारों के अधिकारों के बारे में निष्कर्षों के साथ किया गया है, आदेश अनुसूची III के अनुसार अपील योग्य होगा और रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी। वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपील का उपाय उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में भी, संहिता की धारा 210 के तहत पुनरीक्षण के उपाय का लाभ उठाया जा सकता है।

20.प्रतिद्वंद्वी तर्कों की सराहना करने के लिए, प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों को विज्ञापित करने की आवश्यकता होगी, जो इस प्रकार हैं:

**नियम 116. जोत के विभाजन के लिए वाद-(1)** भूमिधर ऐसी जोत के जिसका वह सह-अंशधारी है, विभाजन का वाद प्रस्तुत कर सकता है।

'[(2) ऐसे प्रत्येक वाद में न्यायालय ऐसी जोत के विद्यमान वृक्षों, कुँओं और अन्य सुधार का विभाजन कर सकता है लेकिन जहाँ पर ऐसा विभाजन सम्भव नहीं है, वहाँ पर उपरोक्त वृक्षों, कुँओं और अन्य सुधारों एवं उनके मूल्यांकन का विहित रीति से

5 2022 (7) एडीजे 31

6 2010 (6) AWC 6099 All (DB)



विभाजन और समायोजन  
किया जायेगा।]

(3) जहाँ ग्राम पंचायत से  
भिन्न वाद के सभी पक्षकार  
प्रत्येक जोत में संयुक्त रूप  
से हित रखते हो. वहाँ एक से  
अधिक जोतों के विभाजन के  
लिए एक ही वाद संस्थित  
किया जा सकता है।

(4) इस धारा के अधीन  
प्रत्येक वाद के लिए  
सम्बन्धित ग्राम पंचायत को  
पक्षकार बनाया जायेगा।

(ख) उक्त संहिता  
की धारा 104 में,  
या

(ग) उक्त संहिता की  
प्रथम अनुसूची के  
आदेश 43, नियम 1  
में।

(3) इस धारा के अधीन  
प्रथम अपील दाखिल किये  
जाने के लिए परिसीमा की  
अवधि, अपीलीय आदेश या  
डिक्री के दिनांक से तीस दिन  
होगी।

**नियम 207. प्रथम अपील** (1) तृतीय  
अनुसूची के स्तम्भ 2 में विनिर्दिष्ट  
किसी वाद, प्रार्थना पत्र या कार्यवाही  
में पारित किसी अंतिम आदेश या  
डिक्री से व्यथित कोई व्यक्ति स्तम्भ  
4 में विनिर्दिष्ट न्यायालय या  
अधिकारी को प्रथम अपील कर सकता  
है, जहां इस अनुसूची के स्तम्भ 3 के  
समक्ष विनिर्दिष्ट किसी न्यायालय या  
अधिकारी द्वारा ऐसा आदेश या डिक्री  
पारित किया गया हो।

(2) निम्नलिखित प्रकृति के  
आदेश में भी प्रथम अपील  
होगी:-

(क) सिविल प्रक्रिया  
संहिता, 1908 की  
धारा 47 में, या

**नियम 209. कतिपय अपीलों के  
विरुद्ध वर्जन** धारा 207 और 208 में  
किसी बात के होते हुए भी  
निम्नलिखित किसी आदेश या डिक्री के  
विरुद्ध अपील नहीं होगी जो

(क) इस संहिता के  
अध्याय ग्यारह के  
अधीन किया गया:

(ख) परिसीमा  
अधिनियम, 1983  
की धारा 5 के  
अधीन विलम्ब की  
माफी के लिए किसी  
प्रार्थना-पत्र को  
स्वीकार करना या  
अस्वीकार करना:

(ग) पुनरीक्षण के  
लिए किसी प्रार्थना

पत्र को अस्वीकार करना

(घ) रोक के लिए किसी प्रार्थना पत्र को स्वीकार करना या अस्वीकार करना:

(ड.) किसी अधीनस्थ न्यायालय को मामले को प्रतिप्रेषित करना

(च) जहां ऐसा आदेश या डिक्री अंतरिम प्रकृति का है।

(छ) पक्षकारों की सहमति से न्यायालय या अधिकारी द्वारा पारित या

(ज) जहां ऐसा आदेश एकपक्षीय या व्यतिक्रम में पारित किया गया है

परन्तु यह कि एकपक्षीय या व्यतिक्रम में पारित आदेश से क्षुब्ध पक्षकार ऐसे आदेश के दिनांक से तीस दिन की अवधि के अन्दर उक्त आदेश को अपास्त कराने के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकता है:

परन्तु यह और कि ऐसा कोई आदेश उस पक्षकार को

जिसके पक्ष में आदेश किया गया है, उपस्थित होने एवं इसके समर्थन में सुने जाने के लिए, पहले समन किये बिना उलटा या परिवर्तित नहीं किया जायेगा।

### नियम 210. अभिलेख मंगाने की शक्ति

(1) परिषद् या आयुक्त किसी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा निर्णीत किसी बाद या कार्यवाही कर, जिसमें कोई अपील नहीं हुयी, ऐसे पाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश की बैठता या औचित्य के प्रति अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए अभिलेख मंगा सकता है और यदि यह प्रतीत होता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने-

(क) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है, या

(ख) इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया है, या

(ग) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग अविधितः किया है या तात्त्विक अनियमितता के साथ किया है,

तो यथास्थिति परिषद् या आयुक्त ऐसे आदेश पारित कर सकता है जिसे वह ठीक समझे।

(2) यदि किसी व्यक्ति द्वारा इस धारा के अधीन कोई प्रार्थना पत्र या तो परिषद या आयुक्त को दिया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा अग्रेतर किसी प्रार्थना पत्र को उनमें से दूसरे द्वारा विचार नहीं किया जायेगा।

(3) इस धारा के अधीन किसी प्रार्थना पत्र पर, पुनरीक्षित कराये जाने वाले आदेश के दिनांक से या इस संहिता के प्रारंभ के दिनांक से जो भी बाद में हो, साठ दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् विचार नहीं किया जायेगा।

21.संदर्भ में आसानी के लिए, उ०प्र० राजस्व संहिता नियम 2016 के तहत प्रासंगिक नियम, जो जोत के विभाजन से संबंधित वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप हैं, को भी नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

**नियम 108. विभिन्न जोतों के विभाजन के लिये वाद (धारा 116)**- जहां एक से अधिक जोतों के लिये वाद हो, वहां नियम 107 में वर्णित विभाजन के विवरण, वाद पत्र में सभी जोतों के लिये दिया जायेगा।

**नियम 109. प्रारम्भिक एवं अन्तिम डिक्री (धारा 117) -** (1) यदि वाद पत्र नियम 107 अथवा नियम 108 के अनुसार है तोइसे दावे के रूप में दर्ज रजिस्टर कर लिया जायेगा और प्रतिवादीगणको अपना लिखित अभिकथन दाखिल करने के लिए बुलाया जायेगा। तब ऐसे दावे का निस्तारण सिविल प्रक्रिया संहिता,

1908 के प्रावधानों के अनुसार किया जायेगा।

(2) विभाजन करने के पहले न्यायालय-

(क) वादी और अन्य सह-खातेदारों में प्रत्येक का अंश अलग-अलग निर्धारित करेगा;

(ख) यह अभिलिखित करेगा कि कौन-कौन से खातेदार, यदि कोई हों, संयुक्त बने रहना चाहते हैं; और

(ग) जोत में प्रत्येक गाटे पर लागू कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्किल रेट के अनुसार जोत (या जोतों) का मूल्यांकन करेगा।

(3) यदि दावा डिक्री किया जाता है तो न्यायालय वादी का हिस्सा घोषित करने के लिए प्रारम्भिक डिक्री पारित करेगा।

(4) प्रारम्भिक डिक्री तैयार होने के बाद उपजिलाधिकारी लेखपाल से कुरा तैयार करवायेगा।

(5) लेखपाल इस निमित्त आदेश प्राप्त करने के दिनांक से एक माहकी अवधि के अन्दर कुरा की आख्या प्रेषित करेगा और कुरा तैयार करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करेगा-

(क) प्रत्येक पक्षकार को जोत में उसके अंश के अनुपात में

गाटा अथवा गाटों को  
आबंटित किया जायेगा;

(ख) प्रत्येक पक्षकार को दिया  
गया भाग यथासम्भव संहत  
होगा;

(ग) जहां तक सम्भव हो  
सकेगा किसी भी पक्षकार को  
न तो सारी की सारी निम्न  
श्रेणियों की भूमि ही दी  
जायेगी और न सारी की सारी  
प्रवर श्रेणियों की ही भूमि दी  
जायेगी;

(घ) जहां तक सम्भव हो सके  
वर्तमान खेतों को विभक्त  
नहीं किया जायेगा;

(ङ) ऐसे गाटे जो किसी  
खातेदार के कब्जे में अलग  
से हों, यथासम्भव उस  
खातेदार को आबंटित किये  
जायेंगे यदि वे उसके अंश से  
अधिक न हों;

(च) यदि गाटा या उसका  
कोई भाग वाणिज्यिक मूल्य  
का है अथवा सड़क, आबादी  
या किसी अन्य वाणिज्यिक  
मूल्य वाली भूमि से लगा  
हुआ है तो उसे प्रत्येक  
खातेदार को आनुपातिक रूप  
से आबंटित किया जायेगा  
और द्वितीय शर्त के प्रकरण  
में उसे सड़क, आबादी अथवा  
वाणिज्यिक मूल्य की अन्य

भूमि से लगा हुआ  
आनुपातिक रूप से आबंटित  
किया जायेगा; और

(छ) यदि सह-खातेदार आपसी  
सहमति अथवा पारिवारिक  
बन्दोबस्त के आधार पर  
अलग-अलग कब्जे में हैं तो  
कुरा यथासम्भव तदनुसार  
नियत किया जायेगा।

(6) जब लेखपाल द्वारा कुरा से  
सम्बन्धित आख्या प्रेषित की जायेगी  
तो उस पर आपत्ति आमंत्रित की  
जायेगी और उसके बाद  
उपजिलाधिकारी पक्षों को सुनवायी का  
अवसर प्रदान करने और लेखपाल  
द्वारा प्रेषित आख्या के विरुद्ध  
दाखिल आपत्ति, यदि कोई हो, पर  
विचार करने के बाद समुचित आदेश  
पारित करेगा।

(7) यदि आख्या और कुरा की पुष्टि  
उपजिलाधिकारी द्वारा कर दी जाती है  
तो अन्तिम डिक्री बनायी जायेगी।

(8) अन्तिम डिक्री के प्रक्रम पर,  
न्यायालय-

(क) वादी के अंश को  
प्रतिवादी अंश से सीमांकन  
द्वारा पृथक कर देगा।

(ख) अभिलेख पर एक  
मानचित्र रखेगा जिसमें वादी  
को दी जाने वाली सम्पत्तियों  
को प्रतिवादी को दी जाने  
वाली सम्पत्तियों से पृथक

विभिन्न रंगों से दर्शाया जायेगा।

(ग) पक्षों द्वारा देय भू-राजस्व को विभाजित करेगा।

(घ) अधिकार अभिलेख एवं मानचित्र को तदनुसार संशोधित करने का निदेश देगा।

(9) यदि पक्षों के बीच साम्या का समायोजन करने के लिये पेड़ों, कुओं या अन्य सुधारों के सम्बन्ध में प्रतिकर का भुगतान आवश्यक हो जाता है तो सम्बन्धित राजस्व न्यायालय अन्तिम डिक्री के प्रक्रम पर आवश्यक आदेश भी पारित कर सकेगा।

(10) उपजिलाधिकारी छः माह की अवधि के अन्दर वाद को तय करने का प्रयास करेगा और यदि वाद ऐसी अवधि के अन्दर तय नहीं किया जाता है तो कारण अभिलिखित किया जायेगा।

22.इस मामले के तथ्य जिसके बारे में चुनाव लड़ने वाले पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं प्रतीत होता है, वह यह है कि दो भाइयों द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित भूमि के एक भूखंड के अविभाजित हिस्से का आधा हिस्सा, प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा सह-मालिकों में से एक द्वारा निष्पादित पंजीकृत बिक्री-विलेख के माध्यम से खरीदा गया था। शेष आधा हिस्सा याचिकाकर्ता द्वारा दूसरे सह-हिस्सेदार द्वारा एक अन्य बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा

गया था। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ प्रतिवादियों ने राजस्व रिकॉर्ड में अपने नाम को विचाराधीन भूखंड के सह-हिस्सेदार के रूप में दाखिल, खारिज करवाया।

23.इसके बाद, याचिकाकर्ता ने उप-खण्ड अधिकारी की न्यायालय में जोत के विभाजन के लिए राजस्व संहिता की धारा 116 के तहत एक मुकदमा दायर किया। निजी प्रतिवादी, हालांकि वाद में पक्षकारों ने अपने लिखित बयान दर्ज नहीं किए, और 23.01.2019 के आदेश के संदर्भ में एक प्रारंभिक डिक्री की गई, और इसके बाद, वाद को अंततः दिनांक 26.10.2019 के आदेश द्वारा डिक्री किया गया। पूर्वोक्त आदेश को वापस लेने की मांग करते हुए प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर दिनांक 13.12.2019 को एक पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को उप-खण्ड मजिस्ट्रेट ने दिनांक 27.12.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। न्यायालय ने पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को खारिज करते हुए गुण-दोष के आधार पर कुछ टिप्पणियां भी कीं।

24.उपरोक्त अंतिम आदेश दिनांक 26.10.2019, जिसके संदर्भ में वाद की डिक्री की गई थी, राजस्व संहिता की धारा 207 के तहत प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर अपील के अधीन था। उक्त आदेश के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा भी अपील दायर की गई थी। प्रतिवादी संख्या 6 ने दिनांक 27.12.2021 के आदेश के खिलाफ राजस्व संहिता की धारा 207 के तहत अपील भी की, जिसके संदर्भ में उक्त प्रतिवादी द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को खारिज कर दिया गया था।

25.आयुक्त, आजमगढ़ द्वारा पारित एक सामान्य आदेश दिनांक 18.11.2022 द्वारा तीन अपीलों पर सुनवाई और निर्णय लिया गया। दिनांक 26.10.2019 और 27.12.2019 के आदेशों को रद्द कर दिया गया और संबंधित पक्षों को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए मामले को अधीनस्थ न्यायालय में भेज दिया गया।

26.आयुक्त द्वारा पारित यह आदेश पूर्वोक्त आदेश दिनांक 18.11.2022 के खिलाफ है जो वर्तमान याचिका दायर की गई है, जिसमें निजी प्रतिवादियों की ओर से याचिका की पोषणीयता के संबंध में यह कहते हुए आपत्ति उठाई गई है कि अपील में पारित आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता के पास पुनरीक्षण दायर करने का एक प्रभावी वैधानिक उपाय उपलब्ध है।

27.उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति का खंडन करने के लिए याचिकाकर्ता की ओर से जो तर्क दिया गया है, वह यह है कि रिमांड आदेश गुणों पर किसी भी अवलोकन के बिना है और इसलिए, यह एक 'रिमांड सरलीकरण' है, और आदेश एक अंतर्वर्ती प्रकृति का है, इसके खिलाफ एक पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य नहीं होगा।

28.उपरोक्त समझौते का परीक्षण करने के लिए अपील में पारित आदेश का परीक्षण करना आवश्यक होगा। अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते हुए आयुक्त द्वारा पारित आदेश इस तथ्य पर ध्यान देता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना-पत्र को पोषणीयता के

आधार पर टिप्पणी करके खारिज कर दिया है। अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि पंजीकृत बिक्री विलेख जो मामले के रिकॉर्ड पर उपलब्ध था, इस तथ्य का संकेत था कि विचाराधीन भूमि पक्षकारों की पैतृक संपत्ति नहीं थी, लेकिन इसे दोनों पक्षों द्वारा मूल कार्यकाल धारक से पंजीकृत बिक्री विलेखों के माध्यम से खरीदा गया था, अलग-अलग सीमाएं दिखा रहा है। अपीलीय न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों पर चर्चा करने के बाद इसे कानूनी रूप से अस्थिर माना है। इसके अलावा, चूंकि अधीनस्थ न्यायालय ने सुनवाई का अवसर दिए बिना और पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना मुकदमे की एकतरफा डिक्री की थी, संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद नए आदेश पारित करने के लिए अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश देते हुए मामले को रिमांड पर भेज दिया गया है। इस प्रकार, आयुक्त द्वारा पारित रिमांड आदेश, जिसमें मामले के गुणों पर विस्तृत विचार किया गया था और उसके बाद एक निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष कानूनी रूप से अस्थिर थे, को 'रिमांड सरलीकरण' नहीं माना जा सकता है।

29.राम भजन और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय, जिस पर याचिकाकर्ता की ओर से बल दिया गया है, इस प्रकार, मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा। इसके अलावा, **दीना नाथ और अन्य (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय के बाद के डिवीजन बेंच के फैसले के आलोक में उक्त निर्णय को अच्छा कानून नहीं माना जा सकता है। जिसमें बिंदु पर संदर्भ तय करते

समय, यह माना गया कि यूपी चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 11 के तहत अपील में पारित एक आदेश, निपटान अधिकारी (चकबंदी) द्वारा अपील पर अंतिम रूप से निर्णय लेते हुए चकबंदी के आदेश को रद्द कर दिया गया। अधिकारी और मामले को रिमांड पर लेना एक अंतरिम आदेश नहीं होगा और उक्त आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण वर्जित नहीं होगा।

30.वर्तमान मामले में रिमांड का आदेश, जिसके संदर्भ में मामले की योग्यता पर कुछ टिप्पणियां करने के बाद मामले को रिमांड किया गया है, और पक्षों को सुनवाई का अवसर देने और साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए निचली अदालत को निर्देश जारी किया जाना, 'रिमांड सरलीकरण' या 'इंटरलोक्यूटरी प्रकृति' का आदेश नहीं माना जा सकता है। यह इसलिए भी अधिक है क्योंकि आयुक्त द्वारा पारित आदेश में इस अर्थ में एक अंतिमता जुड़ी हुई है कि इसमें अपील के निस्तारण का प्रभाव है।

31.राजस्व संहिता की धारा 207 के तहत प्रथम अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करते हुए आयुक्त द्वारा पारित आदेश, जिसके परिणामस्वरूप रिमांड पर लिया गया, धारा 209 के खंड (ई) के तहत निहित प्रतिबंध को आकर्षित किया जाएगा और आगे वैधानिक अपील का उपाय उपलब्ध नहीं होगा।

32.अपील दायर करने के खिलाफ धारा 209 के तहत प्रतिबंध, आकर्षित होने के बाद, यह देखा जाना आवश्यक होगा कि क्या धारा 210 के

तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को अपील में आयुक्त द्वारा पारित आदेश के खिलाफ लागू किया जा सकता है। धारा 210 की भाषा इंगित करती है कि पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किसी वाद में पारित किसी आदेश या 'कार्यवाही निर्धारित' के संबंध में किया जा सकता है।

33.'कार्यवाही' शब्द हालांकि राजस्व संहिता के तहत परिभाषित नहीं है, लेकिन जब इसे किसी मुकदमे पर लागू किया जाता है, तो आम तौर पर इसका इस्तेमाल मुकदमे के दौरान उठाए गए अलग-अलग कदमों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

34.शब्द 'कार्यवाही' को वेबस्टर के तीसरे अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोश<sup>7</sup> में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है एक विशेष कदम या कुछ करने या पूरा करने के लिए अपनाए गए कदमों की श्रृंखला से है।

35.ब्लैक लॉ डिक्शनरी<sup>8</sup> 'कार्यवाही' को एक मुकदमे की नियमित और व्यवस्थित प्रगति के रूप में परिभाषित करती है, जिसमें प्रारंभ होने के समय और निर्णय के प्रवेश के बीच सभी कार्य और घटनाएं शामिल हैं।

36.शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी<sup>9</sup> 'कार्यवाही' शब्द को 'कानूनी कार्रवाई करने के तथ्य या तरीके' के रूप में परिभाषित करता है; एक कानूनी कार्रवाई; न्यायालय के प्राधिकार

7 वेबस्टर्स थर्ड इंटरनेशनल डिक्शनरी पृष्ठ 1807 पर

8 ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी 11वां संस्करण

9 शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, छठा संस्करण 2007, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

द्वारा किया गया कार्य; एक मामले में एक पार्टी द्वारा उठाया गया कदम' से है।

**37.सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत वकालत का कानून**<sup>10</sup> निम्नलिखित शब्दों में 'कार्यवाही' का वर्णन करता है:

"'कार्यवाही' एक ऐसा शब्द है जिसका उपयोग न्यायालयों में किए गए व्यवसाय को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। अदालत में कार्यवाही अदालत के प्राधिकरण या निर्देश द्वारा व्यक्त या निहित एक कार्य है। यह 'कार्रवाई' शब्द की तुलना में अधिक व्यापक है, लेकिन इसमें इसके सामान्य अर्थों में किसी कार्रवाई के अभियोजन या बचाव में उठाए गए सभी कदम या उपाय शामिल हो सकते हैं, जिसमें दलील और निर्णय शामिल हैं। जैसा कि कार्यों पर लागू होता है, 'कार्यवाही' शब्द में शामिल हो सकते हैं- (1) कार्रवाई की संस्था; (2) प्रतिवादी की उपस्थिति; (3) सभी सहायक या अनंतिम कदम, जैसे गिरफ्तारी, संपत्ति की कुर्की, गार्निशमेंट, निषेधाज्ञा, एनई एक्साइट; (4) दलील; (5) मुकदमे से पहले गवाही लेना; (6) दिशा में किए गए सभी गति; (7) परीक्षण; (8) निर्णय; (9) निष्पादन; (10) न्यायालय अभ्यास में निष्पादन के लिए पूरक कार्यवाही; (11) अपील या त्रुटि की

रिट लेना; (12) प्रेषण, या अपीलिय या समीक्षा न्यायालय से अधीनस्थ अदालत को रिकॉर्ड वापस भेजना; (13) निर्णय का प्रवर्तन, या एक नया विचारण, जैसा कि अंतिम उपाय के न्यायालय द्वारा निर्देशित किया जा सकता है।

38.शब्द 'कार्यवाही' को **शब्दों और वाक्यांशों, स्थायी संस्करण**<sup>11</sup> में एक व्यापक शब्द के रूप में वर्णित किया गया है, जिसका अर्थ है कानूनी अधिकार को लागू करने के लिए कार्रवाई का एक निर्धारित पाठ्यक्रम और इसलिए अपेक्षित कदमों को गले लगाते हुए जिसके द्वारा न्यायिक कार्रवाई का आह्वान किया जाता है।

39.पूर्वगामी चर्चा इस बात का संकेत है कि 'कार्यवाही' शब्द आमतौर पर उन तरीकों से संबंधित है जिनमें न्यायिक लेनदेन किए जाते हैं। इस शब्द को एक व्यापक शब्द के रूप में समझा जाना चाहिए और आम तौर पर कानूनी अधिकार को लागू करने के लिए कार्रवाई का एक निर्धारित पाठ्यक्रम होगा। यह उन अपेक्षित कदमों को गले लगाने के लिए भी आयोजित किया जाएगा जिनके द्वारा न्यायिक कार्रवाई को लागू किया जाता है और इसमें कानून की न्यायालय के समक्ष न्यायिक कार्य करने का रूप और तरीका शामिल होगा। इस प्रकार 'कार्यवाही' शब्द को 'केस' शब्द से व्यापक माना जाएगा।

40.राजस्व संहिता की धारा 210 जो पुनरीक्षण का उपाय प्रदान करती है, बोर्ड या आयुक्त को

10 एडविन ई. ब्रायंट, सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत दलील देने का कानून 3-4 (दूसरा संस्करण 1899)

11 शब्द और वाक्यांश, स्थायी संस्करण खंड 34



किसी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा 'किसी भी मुकदमे या कार्यवाही का निर्णय' के रिकॉर्ड के लिए कॉल करने का अधिकार देती है जिसमें कोई अपील वाद या कार्यवाही में पारित किसी भी आदेश की वैधता या औचित्य के रूप में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से नहीं है।

41. राजस्व संहिता की धारा 210 का एक सादा पठन इंगित करता है कि निम्नलिखित परिस्थितियों की संचयी संतुष्टि पर एक पुनरीक्षण मनोरंजक होगा:

I. (i) आक्षेपित आदेश एक 'वाद या कार्यवाही का निर्णय' के बराबर है;

(ii) ऐसा आदेश राजस्व बोर्ड या आयुक्त के अधीनस्थ किसी राजस्व न्यायालय द्वारा पारित किया गया हो;

(iii) ऐसा आदेश अपील योग्य नहीं होना चाहिए।

II. अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि के संबंध में एक दावा होना चाहिए, अर्थात:

(i) क्षेत्राधिकार का प्रयोग जो कानून द्वारा इसमें निहित नहीं है, या

(ii) इस प्रकार निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफलता, या

(iii) अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कार्य करना।

42. धारा में दो भाग होते हैं, पहला उस शर्त को निर्धारित करता है जिसके तहत बोर्ड या आयुक्त का अधिकार क्षेत्र उत्पन्न होता है, अर्थात एक अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा 'मुकदमा या कार्यवाही का फैसला किया जाता है' जिसमें कोई अपील नहीं होती है, दूसरा उन परिस्थितियों को निर्धारित करता है जिनमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

43. बोर्ड या आयुक्त द्वारा पुनरीक्षण की अनुरक्षणीयता से संबंधित प्रश्न इस प्रश्न से अलग और स्वतंत्र होगा कि बोर्ड या आयुक्त, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में कब हस्तक्षेप करेंगे। पूर्व बोर्ड या आयुक्त द्वारा इसके अधीनस्थ न्यायालयों के रिकॉर्ड मांगने की शक्ति से संबंधित है और पूर्ववर्ती शर्त के अस्तित्व से संबंधित है जिसके आधार पर धारा 210 के तहत अधिकार क्षेत्र का ऐसा प्रयोग निर्भर करता है। उत्तरार्द्ध उन परिस्थितियों को बताने से संबंधित है जिनके तहत धारा 210 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

44. इसलिए पुनरीक्षण की पोषणीयता दो स्थितियों पर निर्भर करेगी; पहला, यह बोर्ड या आयुक्त के अधीनस्थ किसी राजस्व न्यायालय द्वारा तय किए गए मुकदमे या कार्यवाही से संबंधित होना चाहिए और दूसरा, यह किसी भी 'सूट या कार्यवाही का फैसला' के संबंध में होना चाहिए, जिसके खिलाफ कोई अपील नहीं है। एक बार जब ये दोहरी शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य नहीं होगा। प्रश्न, क्या किसी

दिए गए मामले में, न्यायालय किसी मुकदमे या कार्यवाही में अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का विकल्प चुनता है, यह किसी विशेष मामले में क्षेत्राधिकार त्रुटि के संकेत देने वाले तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

45. यह अच्छी तरह से तय है कि एक अपील मुकदमे की निरंतरता है। जब भी किसी डिक्री के विरुद्ध अपील की जाती है और जब अपील दायर की जाती है तो विचारण न्यायालय की डिक्री की अंतिमता समाप्त हो जाती है। इसके बाद, यह अपीलीय न्यायालय का निर्णय और डिक्री है जो ट्रायल कोर्ट के डिक्री और फैसले को प्रतिस्थापित करेगा।

46. इसलिए यह कहा जा सकता है कि 'कार्यवाही' शब्द में अपीलीय स्तर पर 'कार्यवाही' भी शामिल होगी। यह इस कारण से अधिक होगा कि कानूनी उपाय, सूट, अपील या दूसरी अपील की खोज कार्यवाही की एक श्रृंखला में कदम हैं जो सभी एक आंतरिक एकता से जुड़े हैं और इसे एक कानूनी कार्यवाही के रूप में माना जाना चाहिए।

47. इस प्रकार 'कार्यवाही' शब्द के लिए जिम्मेदार ठहराया जाने वाला अर्थ अधिनियमन के दायरे पर निर्भर करेगा जिसमें अभिव्यक्ति का उपयोग किया जाता है और उस विशेष संदर्भ के संदर्भ में जिसमें यह होता है। सामान्य अर्थ में, 'कार्यवाही' शब्द का अर्थ न्यायालय के समक्ष न्यायिक कार्य करने के रूप और तरीके से माना जाता है। इसे

मुकदमेबाजी की यात्रा में एक चरण के रूप में देखा जा सकता है - न्यायिक प्रक्रिया की सीढ़ी में एक कदम से है।

48. इसलिए राजस्व संहिता की धारा 210 में आने वाली अभिव्यक्ति 'कार्यवाही तय' में 'कार्यवाही' शब्द को इतना व्यापक माना जाना चाहिए कि इसके दायरे में अपीलीय आदेश के अनुसार शुरू की गई कार्यवाही को भी समझा जा सके। वास्तव में, इसमें कोई भी मुकदमा, अपील या आवेदन शामिल होगा। कानून की अदालत में किसी पक्ष के संदर्भ में 'कार्यवाही' शब्द में अपीलीय चरण सहित मुकदमे की प्रगति के पहले या उसके दौरान उठाए गए प्रत्येक कदम या कार्रवाई को शामिल करना होगा।

49. धारा 210 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को लागू करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त को इसके दायरे में 'मुकदमा तय' के अलावा 'निर्णय की गई कार्यवाही' को शामिल करने के लिए देखा गया है। इसे किसी मुकदमे की संपूर्ण कार्यवाही तक सीमित नहीं किया जा सकता है। 'कार्यवाही का निर्णय' को संपूर्ण कार्यवाही के रूप में व्याख्या करना और कार्यवाही का एक हिस्सा नहीं मानना पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग को प्रतिबंधित करने जैसा होगा जो कि धारा 210 के तहत परिकल्पित नहीं है।

50. पुनरीक्षण न्यायालय के पास मुकदमे या कार्यवाही के किसी भी चरण में अधीनस्थ राजस्व न्यायालय के आदेश को सुधारने की शक्ति है, भले ही, आदेश अंततः मुकदमे या कार्यवाही का निपटान नहीं करता हो। 'कार्यवाही

तय' अभिव्यक्ति में कार्यवाही का एक भाग शामिल होगा और पार्टियों के अधिकारों और दायित्वों को सीधे प्रभावित करने वाले एक अंतरिम आदेश को भी इसके दायरे में शामिल करना होगा।

51.आयुक्त द्वारा अपील पर अंतिम रूप से निर्णय लेते हुए पारित आदेश को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 210 में घटित होने वाली अभिव्यक्ति 'कार्यवाही निर्णय' के दायरे में माना जाएगा और इसलिए इसके विरुद्ध पुनरीक्षण के उपाय को खारिज नहीं किया जा सकता है।

52.यूपी राजस्व संहिता की धारा 210 के तहत पुनरीक्षण के वैधानिक उपचार के लिए उत्तरदायी मानी गई अपीलों पर निर्णय लेते हुए आयुक्त द्वारा दिनांक 18.11.2022 को आदेश पारित किया गया, प्रभावी वैधानिक कानूनी उपाय की उपलब्धता के मद्देनजर यह न्यायालय रिट याचिका पर विचार करने के लिए इच्छुक नहीं होगा।

53.तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

-----

**(2023) 9 ILRA 505**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 25.07.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार**

**श्रीवास्तव**

**रिट सी संख्या 13852 वर्ष 2023**

**तारकेश्वर और अन्य ...याचिकाकर्तागण**  
**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादीगण**

**याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:**

श्री मदन जी पाण्डेय, श्री सुधांशु पाण्डेय

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री सुधीर भारती

**सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 24 (1), 24(4), 206, 207 & 209(एच) - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 - नियम 22 - राजस्व संहिता 2006 की धारा 24 के अन्तर्गत एक पक्षीय आदेश के विरुद्ध वापसी के लिए आवेदन, अपोषणीय नहीं अभिनिर्धारित की जा सकती है, विशेष रूप से जब कार्यवाही के आवश्यक पक्षकार व्यक्ति द्वारा अधिनियम और नियमावली की योजना के अधीन उसके अंतर्गत मांग की जाती है - यह प्रासंगिक है कि जहाँ एक पक्षीय आदेश संहिता की धारा 209(एच) के रोक के प्रभाव से गैर-अपीलीय प्रतिपादित की गई है - नियमावली 2016 के अंतर्गत निजी पक्षकार समीपस्थ और सटे हुए खेतों के जोतधारक होने के नाते आवश्यक पक्षकार थे- चूँकि राजस्व संहिता, 2006 के अधीन आदेश उनके विरुद्ध एक पक्षीय पारित हुआ, उक्त आदेश के वापसी की मांग करने के लिए उन्हें सम्बंधित न्यायालय के अन्तर्निहित क्षेत्राधिकार के आह्वान करने से रोका नहीं जा सकता - वापसी आवेदन जैसा कि निजी प्रतिवादियों द्वारा दाखिल किया गया है, उसकी**

**पोषणीयता को चुनौती में कोई गुणदोष नहीं है और असंधार्य है। (पैरा 37 से 40)**

**रिट याचिका खारिज की गई। (E-13)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. ग्रिन्डलेज बैंक लिमिटेड बनाम सेन्ट्रल गवर्नमेंट इंडस्ट्रीयल ट्रिब्यूनल एंड अदर्स, 1980 सप्लीमेंट एससीसी 420, (पैरा 6, 10, 13)
2. जे.के. सेंथेटिक्स लिमिटेड बनाम कलेक्टर सेन्ट्रल इक्साईज(1996) 6 एससीसी 92
3. कपड़ा मजदूर एकता यूनियन बनाम बिरला काटन स्पिनिंग एंड वीविंग
4. मिल्स लिमिटेड एंड एनादर्स (2005) 13 एससीसी 777
5. असित कुमार कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, (2009) 2 एससीसी 703

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता सुधांशु पाण्डे के साथ उपस्थित श्री मदन जी पाण्डे, एवं प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह, विद्वान अपर महाधिवक्ता, के साथ उपस्थित श्री अभिषेक शुक्ला और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अमित मनोहर को राज्य की ओर से सुना गया।

2. वर्तमान याचिका में एक प्रस्ताव पेश करने को माँग की गई है कि उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 24 के तहत कार्यवाही में पारित एक पक्षीय आदेश के खिलाफ वैधानिक अपील का उपाय उपलब्ध होने के कारण, किसी गैर- पक्ष के आदेश वापस बुलाने का आवेदन विचारणीय नहीं होगा।

3. मामले के तथ्यों जैसा कि रिट याचिका में दलीलों से परिलक्षित होता है, इंगित करता है कि याचिकाकर्ता द्वारा उ. प्र0. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 24 के तहत दायर एक आवेदन सन 2022 के प्रकरण क्रमांक 994 के रूप में दर्ज, कम्प्यूटरीकृत प्रकरण क्रमांक टी 202205200400994 (तारकेश्वर एवं अन्य बनाम किशोर एवं अन्य) में सीमाओं के सीमांकन को अनुमति एक पक्षीय आदेश दिनांक 22.07.2022 के माध्यम से दी गई थी।

4. इसके बाद, निजी प्रतिवादी संख्या 3 से 5 खुद को निकटवर्ती भूखण्डों के किरायेदार धारक और संहिता, 2006 धारा 24 के तहत कार्यवाही में आवश्यक पक्ष होने का दावा करते हुए दिनांक 13.09.2022 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें दिनांक 23.07.2022 के एक पक्षीय आदेश को वापस लेने की माँग की गई।

5. उक्त आवेदन को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा लिया गया था, और स्थगन आवेदन पर पार्टियों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद , पिछले आदेश दिनांक 22.07.2022 के प्रभाव पर रोक लगाने का आदेश पारित किया गया था।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीले उठाकर दिनांक 12.01.2023 के आदेश को चुनौती देने की मांग की है:-

6.1 आदेश दिनांक 22-07-2022 की संहिता 2006 की धारा 24 के तहत कार्यवाही में पारित किया गया, इसकी उपधारा (4) के सन्दर्भ में अपील योग्य होने के कारण, किसी भी व्यक्ति के आदेश पर इसका लाभ उठाने के लिए निजी उत्तरदाताओं के लिए खुला था, अपील का वैधानिक उपाय, और उसी के मद्देनजर, वापस बुलाने का आवेदन पोषणीय नहीं था।

6.2 धारा 209 (एच) जो एक पक्षीय या गलत रूप से पारित आदेश के खिलाफ अपील पर रोक लगाती है, जो प्रावधान के तहत निहित शर्तों के अधीन है जिसके अनुसार एक पक्षीय पारित आदेश से व्यथित किसी भी पक्ष के लिए खुला है या गलत रूप से उक्त आदेश को रद्द करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत करें। निजी उत्तरदाताओं के गैर-पक्षकार होने के कारण, दिनांक 22.02.2022 के आदेश को न तो एक पक्षीय और न ही गलत रूप से पारित आदेश कहा जा सकता है, और तदनुसार धारा 209 के प्रावधान के तहत आदेश को वापस लेने का उपाय उक्त प्रतिवादियों के लिए उपलब्ध नहीं होगा।

6.3 निजी उत्तरदाताओं ने धारा 24 के तहत कार्यवाही के लंबित होने के चरण में खुद को पक्षकार बनाने का विकल्प नहीं चुना है, इसलिए वाद में आदेश को वापस लेने की मांग करना, उनके लिए खुला नहीं है।

7. राज्य के उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गये दावों को निम्नानुसार खारिज कर दिया है:-

7.1 संहिता, 2006 को धारा 24(4) के तहत वैधानिक अपील दायर करने का अधिकार, किसी भी तरह से निजी उत्तरदाताओं के एक पक्षीय पारित आदेश को वापस लेने के अधिकार को छीनने वाला नहीं समझा जा सकता है, यह उस मामले में और भी अधिक होगा जहाँ उ0प्र0 राजस्व संहिता, नियम 2016(2) के नियम 22 के तहत नीहित प्रावधानों के अनुसार निजी उत्तरदाताओं के कार्यकाल धारक है जो सन्निहित भूखण्ड, कार्यवाही में आवश्यक पक्ष होंगे।

7.2 नियम 22 में कहा गया है कि धारा 24 (1), संहिता 2006 के तहत दायर आवेदन में सन्निहित भूखण्डों का विवरण निदिष्ट करता है, और साथ ही, संबंधित किरायेदार धारकों को मामले में सुनवाई का अधिकार रखने वाला पक्ष बनाया जाना है: तदनुसार निजी उत्तरदाता आवश्यकपक्ष और आदेश उन्हें पक्षकार बनाये बिना एक पक्षीय रूप से पारित किए जाने के बाद, उनके लिए आदेश को वापस लेने की मांग करना, खुला होगा।

7.3 नियम 209 के प्रावधानों के तहत व्यथित अभिव्यक्ति ' कोई भी पत्र' जो एक पक्षीय पारित आदेश के खिलाफ रिकाल आवेदन दाखिल करने का उपाय देता है, इसके दायरे में निजी उत्तरदाताओं को शामिल किया जायेगा, जो प्रासंगिक वैधानिक नियमों के अनुसार

आवश्यक है। कार्यवाही में पक्षकार और केवल इस तथ्य से कि उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया, इस प्रकार प्रदत्त अधिकार छीन नहीं लिए जायेंगे।

**7.4** किसी भी आदेश पूर्व *डेबिटो जस्टिसिया* को वापस लेने का अधिकार, प्रत्येक न्यायालय या न्यायाधिकरण में निहित है, जिसने आदेश पारित किया है इस तथ्य के बावजूद कि ऐसा अधिकार स्पष्ट रूप से कानून द्वारा प्रदान किया गया है, इस संबंध में 'प्रक्रियात्मक समीक्षा' और 'मौलिक समीक्षा' के बीच अन्तर सर्वविदित है।

8. प्रतिद्वंदी विवादों पर विचार करने के लिए, प्रासंगिक संहिता 2006 के तहत नीहित वैधानिक प्रावधान नीचे दिए जा रहे हैं:-

**"धारा 24 सीमा सम्बन्धी विवाद-** (1) उप जिलाधिकारी [स्वप्रेरणा] से या किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा इस निमित्त आवेदन दिये जाने पर सीमा सम्बन्धी समस्त विवाद का विनिश्चय वर्तमान सर्वेक्षण नक्शों के आधार पर या जहाँ उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 के उपबन्धों के अनुसार उनका पुनरीक्षण करा दिया गया हो वहाँ उन नक्शों के आधार पर, किन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो तो वास्तविक कब्जे के आधार पर सरसरी जाँच द्वारा कर सकता है।

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किसी विवाद में जाँच के दौरान उप जिलाधिकारी अपना यह समाधान न कर सके कि किस पक्ष का कब्जा है या यदि यह दिखाया गया हो कि विधिपूर्ण

अध्यासी को सदोष बेदखल करके कब्जा प्राप्त किया गया है, तो उप जिलाधिकारी-

(क) प्रथम स्थिति में, संक्षिप्त जाँच द्वारा यह अभिनिश्चित करेगा कि सम्पत्ति का सर्वाधिक हकदार व्यक्ति कौन है और ऐसे व्यक्ति को कब्जा देगा;

(ख) द्वितीय स्थिति में, इस प्रकार बेदखल किये गये व्यक्ति को कब्जा दिलायेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसे बल का प्रयोग कर या करवा सकेगा जैसी आवश्यकता हो और तत्पश्चात् सीमा का निर्धारण तदनुसार करेगा।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक कार्यवाही उप जिलाधिकारी द्वारा आवेदन के दिनांक से, यथासम्भव [तीन माह] के भीतर समाप्त कर ली जायेगी।

(4) उप जिलाधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसे आदेश के दिनांक से 30 दिन के भीतर आयुक्त के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता है। [आयुक्त का आदेश, धारा 210 के उपबन्धों के अध्याधीन अन्तिम होगा।]

**धारा 206: सिविल न्यायालय और राजस्व न्यायालय की अधिकारिता** (1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी के होते हुए परन्तु इस संहिता के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोई सिविल न्यायालय किसी मामले पर जिसमें राज्य सरकार, परिषद्, कोई राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी, इस संहिता द्वारा या के अधीन अवधारण करने, निर्णय करने या निस्तारित करने के लिए सशक्त है, निर्णय

प्राप्त करने के लिए कोई वाद, प्रार्थना-पत्र या कार्यवाही पर विचार नहीं करेगा।

(2) धारा (1) के उपबन्धों की सामान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय या इस संहिता के अधीन-

(क) कोई न्यायालय द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी भी मामले में अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा; और

(ख) तृतीय अनुसूची के [स्तम्भ 3] में विनिर्दिष्ट राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी से भिन्न कोई न्यायालय इसी अनुसूची के [स्तम्भ 3] में विनिर्दिष्ट किसी वाद, प्रार्थना- पत्र या कार्यवाही पर विचार नहीं करेगा।

(3) इस संहिता में किसी बात के होते हुए भी, यह आपत्ति कि उपधारा (2)(ख) में वर्णित न्यायालय या अधिकारी के पास किसी वाद, आवेदन या कार्यवाही के संबंध में कोई अधिकारिता थी या नहीं थी, किसी अपीलीय, पुनरीक्षण या निष्पादन न्यायालय द्वारा तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी, जब तक कि आपत्ति प्रथम दृष्टया न्यायालय या अधिकारी के समक्ष, यथाशीघ्र अवसर पर नहीं लाई गई हो, और उन सभी मामलों में जहां मुद्दों का निपटारा ऐसे निपटारे के समय या उससे पहले हो जाता है, और जब तक कि परिणामस्वरूप न्याय में असफलता न हुई हो।

**धारा 207. प्रथम अपील-** (1) तृतीय अनुसूची के [स्तम्भ 2] में विनिर्दिष्ट किसी बाद,

प्रार्थनापत्र या कार्यवाही में पारित किसी अन्तिम आदेश या डिक्री से व्यथित कोई व्यक्ति [स्तम्भ 4] [में विनिर्दिष्ट न्यायालय या अधिकारी को प्रथम अपील कर सकता है, जहाँ इस अनुसूची के [ स्तम्भ 3] के समक्ष विनिर्दिष्ट किसी न्यायालय या अधिकारी द्वारा ऐसा आदेश या डिक्री] पारित किया गया हो।

(2) निम्नलिखित प्रकृति के आदेश में भी प्रथम अपील होगी:-

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47 में, या

(ख) उक्त संहिता की धारा 104 में, या

(ग) उक्त संहिता को प्रथम अनुसूचों के आदेश 43 नियम 1 में।

(3) इस धारा के अधीन प्रथम अपील दाखिल किये जाने के लिए परिसीमा की अवधि, अपीलीय आदेश या डिक्री के दिनांक से तीस दिन होगी।

**धारा 209. कतिपय अपीलों के विरुद्ध वर्जन-** धारा 207 और 208 में [किसी बात के होते हुए भी निम्नलिखित किसी आदेश या डिक्री] के विरुद्ध अपील नहीं होगी जो-

(क) इस संहिता के [अध्याय ग्यारह] के अधीन किया गया,

(ख) परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा पाँच के अधीन विलम्ब की माफी के लिए किसी

प्रार्थना-पत्र को स्वीकार करना या अस्वीकार करना;

का नियम 22 है, और उसे नीचे निकाला गया है:-

(ग) [पुनरीक्षण] के लिए किसी प्रार्थना पत्र की अस्वीकार करना;

**“22. धारा 24 सीमा विवादों का निपटारा -**

(घ) रोक के लिए किसी प्रार्थना-पत्र को स्वीकार करना या अस्वीकार करना;

(1) राजस्व संहिता की धारा 24(1) के अधीन खातेदार एक या एक से अधिक समीपस्थ गाटो के लिए सीमा विवाद निस्तारण के लिए आवेदन पत्र दो प्रतियों में उपजिलाधिकारी को प्रस्तुत करेगा और उसमें निम्नलिखित विशिष्टियां अन्तर्विष्ट होंगी-

(ङ) किसी अधीनस्थ न्यायालय को मामले को प्रतिप्रेषित करना;

(च) जहाँ ऐसा [ आदेश या डिक्री] अन्तरिम प्रकृति का है;

(क) गाटा का विवरण गाटा संख्या खातेदार का नाम पिता/पति का नाम ग्राम/तहसील का नाम। यदि एक से अधिक खातेदार हैं तो सभी की विशिष्टियां उल्लिखित की जायेगी, चालू अद्यतन कृत खतौनी भी आवेदन पत्र के साथ संलग्न की जायेगी।

(छ) पक्षकारों की सहमति से न्यायालय या अधिकारी द्वारा पारित; या

(ज) जहां ऐसा आदेश एकपक्षीय या व्यक्तिगत रूप से पारित किया गया है:

परन्तु यह कि एकपक्षीय या व्यक्तिगत रूप से पारित आदेश से क्षुब्ध पक्षकार ऐसे आदेश के दिनांक से तीस दिन की अवधि के अन्दर उस आदेश, को अपास्त कराने के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकता है: परन्तु यह और कि ऐसा कोई आदेश उस पक्षकार को जिसके पक्ष में आदेश किया गया है, उपस्थित होने एवं इसके समर्थन में सुने जाने के लिए, पहले समन किये बिना उलटा या परिवर्तित नहीं किया जायेगा।

(ख) समीपस्थ गाटों का विवरण- गाटा संख्या, खातेदार का नाम पिता/पति का नाम, ग्राम/तहसील का नाम। यदि एक से अधिक खातेदार हैं, तो सभी की विशिष्टियां उल्लिखित की जायेगी। चालू अद्यतन कुत खतौनी भी आवेदन पत्र के साथ संलग्न की जायेगी।

(2) यदि खतौनी में खाता अलग है, किन्तु मू-बित्र में उप-विभाजन नहीं है. तो भू-चित्र में उपविभाजन कराया जाना आवश्यक होगा।

9.निहित प्रावधानों के अनुरूप वैधानिक नियम धारा 24 के तहत ,नियम2016

(3) यदि सीमांकित किये जाने वाले गाटा/गादों से ग्राम पंचायत/राज्य सरकार की किती सम्पत्ति की सीमा संलग्न है, तो अध्यक्ष भूमि



प्रबंधक समिति / ग्राम प्रधान और राज्य सरकार को तत्सम्बन्ध में पक्षकार बनाया जायेगा।

(4) समीपस्थ गाटों की सीमा के सीमांकन हेतु आवेदन किये जाने पर बाहरी सीमा का ही सीमांकन किया जायेगा।

(5) आवेदक को गाटा/सम्बद्ध गाटों के सीमांकन हेतु राजकीय कोषागार में 1000/ की फीस जमा करनी होगी। आवेदन पत्र के साथ चालान, रसीद की प्रतिलिपि भी संलग्न की जायेगी।

(6) सीमांकन हेतु आवेदन प्राप्त किये जाने पर उसी दिन या अगले कार्य दिवस पर उपजिलाधिकारी, राजस्व न्यायालय कम्प्यूटरीकृत प्रबंधन प्रणाली (आर0सी0सी0 एम0एस0) पर याद दर्ज करेगा। कम्प्यूटरीकृत प्रणाली से नोटिस की तीन प्रतियां जारी की जायेगी। और तहसीलदार के माध्यम से राजस्व निरीक्षक को प्रदत्त की जायेगी।

(7) राजस्व निरीक्षक, लेखपाल या अन्य किसी माध्यम से उपनियम (1) में यथा उल्लिखित सम्बन्धित खातेदार /खातेदारों को नोटिस तामील करेगा। खातेदारों की अनुपस्थिति में नोटिस, खातेदार / खातेदारों के वयस्क पारिवारिक सदस्य को तामील की जायेगी। सीमांकन की सूचना, भूमि प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष को भी प्रदान की जायेगी।

(8) यदि राजस्व निरीक्षक सूचना भेजते समय या स्थलीय सीमांकन से पूर्व किसी अन्य

प्रभावित व्यक्ति को तत्सम्बन्ध में पक्षकार बनाना चाहता है। तो यह ऐसा कर सकता है।

(9) राजस्व निरीक्षक अथवा कोई अन्य राजस्व पदाधिकारी सीमांकन हेतु दिनांक नियत करने के पश्चात और सभी सम्बन्धित खातेदारों को सूचित करने के पश्चात यथास्थिति मूखण्ड या भूखण्डों, का सीमांकन करेगा। सीमांकन करते समय यदि कोई प्रभावित खातेदार तत्सम्बन्ध में पक्षकार न हो तो ऐसा खातेदार राजस्व निरीक्षक द्वारा तत्सम्बन्ध में स्थलीय पक्षकार बनायेगा तथा यह अपनी सीमांकन आख्या में इसका उल्लेख करेगा। सीमांकन उपजिलाधिकारी द्वारा तन्निमित्त कृत आदेश के दिनांक से एक माह के भीतर पूर्ण किया जायेगा।

(10) राजस्व निरीक्षक या अन्य राजस्व पदाधिकारी स्थल झाप सहित सीमांकन आख्या तैयार करेंगे। यदि तत्निमित्त कोई आपत्तियां न हों, तो सीमांकन आख्या पर समी संबंधित पक्षकारों की सहमति तथा हस्ताक्षर प्राप्त करने के पश्चात उसे तहसीलदार के माध्यम से उपजिलाधिकारी को एक सप्ताह में प्रेषित कर दिया जायेगा। राजस्व निरीक्षक की पूर्वोक्त आख्या प्राप्त करने पर उपजिलाधिकारी सीमांकन आख्या की पुष्टि करते हुए आदेश पारित करेगा।

(11) यदि सीमांकन से प्रभावित पक्षकारों ने सीमांकन पर अपनी सहमति न दी हो अथवा यदि सीमांकन आख्या में कोई आपत्ति हो, तो उपजिलाधिकारी द्वारा सभी पक्षकारों को सुनवाई का दिनांक नियत करते हुए नोटिस

(नोटिस) जारी की जायेगी/की जायेंगी जो नोटिस जारी किये जाने के दिनांक से पन्द्रह दिन के बाद की नहीं होगी।

(12) उपजिलाधिकारी समस्त सम्बन्धित पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात सीमा का सीमांकन करने के सम्बन्ध में आदेश पारित करेगा। राजस्व निरीक्षक को आदेश किये जाने के दिनांक से दो सप्ताह के भीतर ऐसे आदेश का अनुपालन करना होगा और उप जिलाधिकारी को अपनी आख्या प्रस्तुत करनी होगी।

(13) जहां पर गाटा/सर्वे संख्या की सीमा भूमि के जलोढ़ या आप्लाव अथवा भारी वर्षा के कारण या किन्हीं, अन्य कारण से हुई क्षति के कारण शिनाख्त योग्य न हो, वहां पर उस ग्राम के ग्राम राजस्व समिति के अध्यक्ष के आवेदन पर अथवा राजस्व निरीक्षक या लेखपाल की आख्या पर अथवा सभी सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित संयुक्त आवेदनपत्र पर, उपजिलाधिकारी लिखित रूप से सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा राजस्व निरीक्षक अथवा लेखपाल को अनुदेश देगा कि वह वर्तमान सर्वे मानचित्र के आधार पर अथवा जहाँ पर सम्भव हो, कब्जा के आधार पर स्थल पर सीमा का सीमांकन करें और यदि कोई शिकायत हो तो राजस्व ग्राम समिति के परामर्श से पारस्परिक सहमति के आधार पर उसका समाधान करे। राजस्व निरीक्षक या लेखपाल को आदेश किये जाने के दिनांक से दो सप्ताह के भीतर ऐसे आदेश का अनुपालन करना होगा और अपनी आख्या उप-जिलाधिकारी को प्रस्तुत करनी होगी।

(14) उपनियम (10). (13) या (14) के अधीन सीमांकन के लिये आदेश पारित करते समय उपजिलाधिकारी सम्बन्धित थाने के थानाध्यक्ष को निर्देशित कर सकता है कि यह सीमांकन के समय स्थल पर कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये पुलिस बल उपलब्ध कराये।

(15) उप-जिलाधिकारी संहिता की धारा 24(3) में यथा उल्लिखित निर्धारित समय के भीतर प्रक्रिया को पूरा करने का प्रयास करेगा और यदि प्रक्रिया ऐसे समय के भीतर पूर्ण नहीं होती है तो उसके लिये कारण अभिलिखित किया जायेगा।

10. राजस्व संहिता, 2006, की धारा 24 सीमाओं से संबंधित विवादों से संबंधित है, सीमा विवादों के निपटारे के संबंध में प्रक्रिया नियमावली, 2016 के नियम 22 के तहत प्रदान की गई है।

11. नियम 22 के उप नियम (1) में शर्तों के अनुसार, खातेदार को एक या एक से अधिक सन्निहित गाटा के लिए सीमा विवादों के निपटारे आवेदन की दो प्रतियों उप विभागीय अधिकारी को प्रस्तुत करता आवश्यक है, जिसमें विवरण शामिल है के संबंध में; (ए) गाटा का विवरण और (बी) सन्निहित गाटा का विवरण। उप-नियम (7) में प्रावधान है कि सीमांकन के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, उप विभागीय अधिकारी राजस्व न्यायालय कम्प्यूटीकृत प्रबन्ध प्रणाली (आर सी

सी एम एस) से मामला दर्ज करेगा और नोटिस की तीन प्रतियाँ कम्प्यूटरीकृत से जारी की जायेगी। सिस्टम और तहसीलदार के माध्यम से राजस्व निरीक्षक को दिया जायेगा राजस्व निरीक्षक, उप-नियम (7) के अनुसार, उप नियम (1) में उल्लिखित संबंधित खातेदार /कास्तधारकों को लेखपाल के माध्यम से या किसी अन्य माध्यम से नोटिस देगा। सीमांकन स्थल पर या उससे पहले सूचना भेजते समय राजस्व निरीक्षक को उप-नियम (8) के तहत किसी अन्य प्रभावित व्यक्ति / मामले में पक्षकार बनाने का अधिकार है। सीमांकन की तारीख तय करने और सभी संबंधितों को सूचना देने के बाद, राजस्व निरीक्षक या कोई अन्य राजस्व अधिकारी, उप-नियम 9 के तहत, भूमि पार्सल या पार्सल का सीमांकन करेगा और सीमांकन के दौरान यदि कोई प्रभावित किरायेदार है तथा प्रकरण में पक्षकार नहीं है तो ऐसे खातेदार को राजस्व निरीक्षक द्वारा मौके पर ही प्रकरण में पक्षकार बनाया जायेगा तथा इसका उल्लेख सीमांकन रिपोर्ट में भी किया जायेगा, सीमांकन रिपोर्ट, साइट मेमो के साथ राजस्व निरीक्षक या किसी अन्य राजस्व अधिकारी द्वारा उप नियम(10) के तहत तैयार की जानी है, और यदि उस पर कोई आपत्ति नहीं है, तो सभी की सहमति और हस्ताक्षर प्राप्त करने के बाद सीमांकन रिपोर्ट पर संबंधित पक्षों को तहसील कार के

माध्यम से अनुविभागीय अधिकारी को भेजी जायेगी, उपरोक्त रिपोर्ट प्राप्त होने पर उपखण्ड अधिकारी को सीमांकन रिपोर्ट की पुष्टि के लिए एक आदेश पारित करना होता है, यदि सीमांकन से प्रभावित पक्षों ने अपनी सहमति नहीं दी है, या सीमांकन रिपोर्ट पर कोई आपत्ति है तो उप-नियम (11) के तहत यह प्रावधान है कि उपखण्ड अधिकारी सभी संबंधितों को नोटिस जारी करेगा। पक्षकार सुनवाई के लिए तारीख तय कर रहे हैं। इसके बाद, उप-विभागीय अधिकारी एक आदेश पारित करेगा, जैसा कि उप-नियम (12) के तहत परिकल्पित है, सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद सीमा, सीमांकन के मामले पर।

12. नियम 16 का नियम 22 जैसा कि उपर बताया गया है, धारा 24 के तहत सीमा विवादों के निपटारे से संबंधित मामलों के संबंध में राजस्व अधिकारियों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन करता है। पह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि आवेदन किया जाता है। उप नियम(1) के तहत दायर की गई फाइल में गाटा के संबंध में विवरण शामिल है, जिसमें सन्निहित गाटा का विवरण भी शामिल है, आवेदन प्राप्त होने पर राजस्व निरीक्षक जो उप-नियम (7) के तहत, संबंधित किरायेदार धारकों को नोटिस देना आवश्यक है, जैसा कि उप नियम (1) में उल्लिखित है। उप

नियम (8) में कहा गया है कि सूचना भेजने के समय या साइट पर सीमांकन से पहले राजस्व को निरीक्षक को किसी अन्य प्रभावित व्यक्ति को मामले में पक्षकार बनाने का अधिकार है। इसके अलावा सभी संबंधित किरायदारों को सीमांकन और सूचना की तारीख तय करने के बाद उपनियम (9) में कहा गया है कि राजस्व निरीक्षक भूमि पार्सल का सीमांकन करेगा और सीमांकन के दौरान यदि कोई प्रभावित किरायेदार धारक मामले का पक्ष नहीं है, ऐसे खातेदार को राजस्व निरीक्षक द्वारा मौके पर ही पक्षकार बनाया जायेगा तथा सीमांकन रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया जायेगा इसके बाद राजस्व निरीक्षक, उप-नियम (10) के तहत साइट जापन के साथ सीमांकन रिपोर्ट तैयार करेगा, और यदि उस पर कोई आपत्ति नहीं है, तो सीमांकन के लिए सभी संबंधित पक्षों की सहमति और हस्ताक्षर प्राप्त करने के बाद रिपोर्ट, उस तहसीलदार के माध्यम से उप- विभागीय अधिकारी को भेजा जाना है, जिसके बाद, उप-विभागीय का को एक आदेश पारित करना होता है, रिपोर्ट की पुष्टि के लिए, यदि प्रभावित पक्षों के सीमांकन रिपोर्ट पर अपनी सहमति नहीं दी है या यदि सीमांकन रिपोर्ट पर कोई आपत्ति है तो उप विभागीय अधिकारी को उप-नियम (11) के तहत सभी पक्षों को नोटिस जारी करने की तारीख

तय करनी होगी, सुनवाई और उसके बाद उप-नियम(12) के तहत आवश्यक सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद एक आदेश पारित किया जाना है।

13.सीमांकन के मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में, उपरोक्त चर्चा जिसे नियमावली 2016 के नियम 22 के तहत विस्तार में चिन्नित किया गया है, जिससे पता चलता है कि निपटान चाहने वाले आवेदन में सन्निहित गाटा का विवरण प्रदान किया जाना आवश्यक है, सीमा विवाद और उसके बाद संवन्धित गाटा धारकों संहित संबंधित खाता धारको का नोटिस देए जाने की आवश्यकता होती है। राजस्व अधिकारियों को नोटिस भेजने के समय या मौके पर सीमांकन से पहले किसी भी प्रभावित व्यक्ति को मामले में एक पक्ष बनाने का अधिकार है, इसके अलावा सीमांकन के चरण में यदि कोई प्रभावित खातेदार मामले मे पक्षकार नहीं है तो ऐसे खातेदार को मौके पर ही एक पक्ष बनाया जाना आवश्यक है और इसका उल्लेख सीमांकन रिपोर्ट में तैयार किया जाना आवश्यक है, राजस्व निरीक्षक या इसके अलावा साइट मेमो के साथ सीमांकन रिपोर्ट तैयार करने के बाद सभी संवन्धित पक्षों को सहमति और हस्ताक्षर प्राप्त किए जाने है इसके बाद उप-विभागीय अधिकारी को रिपोर्ट की पुष्टि करने वाला एक आदेश पारित करता है,

हालाकि प्रभावित पक्षों ने अपनी सहमति नहीं दी है या पदि सीमांकन रिपोर्ट पर कोई आपत्ति है, तो सभी पक्षकारों को नोटिस जारी किए जायेंगे तथा सुनवाई के लिए एक तारीख तय करना और उसके बाद उप-विभागिय अधिकारी सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद ही सीमा का सीमांकन रिपोर्ट पर कोई आपत्ति है तो सभी पक्षों को नोटिस जारी किए आयेंगे।

14.सीमा विवादों के निपटारे के सम्बन्ध में अधिनियम को पूर्वोक्त योजना जैसा कि नियम 22 के तहत निर्दिष्ट प्रक्रिया से देखा जा कता है, स्पष्ट शब्दों में इंगित करती है कि सन्निहित भूखण्ड का एक खाताधारक आपत्तियों का अधिकार रखने वाली कार्यवाही में आवश्यक पक्ष होगा और सीमांकन रिपोर्ट और निष्कर्ष कार्यवाही की पुष्टि करने वाले आदेश पहले सुने जाने का भी अधिकार है।

15.धारा 209 में उसके खण्ड (एच) की कुछ अपील शर्तों के खिलाफ रोक शामिल है, एक पक्षीय पारित आदेश को गैर-अपील योग्य बना दिया गया है, धारा 209 का प्रावधान पारित आदेश से व्यथित किसी भी पक्ष को राहत देता है और ऐसे आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दायर कर सकता है।

16. निजी, उत्तरदाता वर्तमान मामले में निकटवर्ती भूखण्डों के धारक है अधिनियम की योजना और नियम 22 के तहत प्रक्रिया के

अनुसार पक्ष होंगे, और इसलिए, इस स्थिति में सीमांकन आदेश एक पक्षीय रूप से पारित किया गया है जो धारको के खिलाफ है, उन्हें आवश्यक रूप से धारा 209 के तहत “पीड़ित पक्ष” को अभिव्यक्ति के भीतर रखा जाना होगा, और वे इस तरह के एक तरफा आदेश को रद्द करने के लिए एक आवेदन दायर करने का हकदार होगा।

17. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क उठाया गया है कि निजी उत्तरदाता “गैर पक्षकार” है, इस कारण से उन्हें कार्यवाही में शामिल नहीं किया गया था, वे एक पक्षीय आदेश को वापस लेने के हकदार नहीं होंगे। धारा 209 के परन्तुक को इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि नियम 22 के तहत निर्धारित प्रक्रिया, सीमांकन के लिए आवेदन करने वाले पक्ष को यह विकल्प नहीं देता है कि यह सन्निहित गाटा के खाताधारक को कार्यवाही में एक पक्ष न बनाये, बल्कि अधिनियम और नियमों की योजना यह कहती है कि निकटवर्ती गाटा के खातेदार या किसी कन्य ऐसे प्रभावित व्यक्ति को आवश्यक रूप से कार्यवाही में पक्षकार बनाना होगा।

18.यहाँ दूसरे तर्क को सामने रखने को माँग की गई, कि यह निजी उत्तरदाताओं का काम है कि वे खुद को पक्षकार बनाएं, इसे भी इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि विधि की योजना के तहत, सीमांकन के लिए आवेदन करने वाले पक्ष को पक्षकार बनाया एक कर्तव्य था, उक्त सन्निहित भूखण्डों के

किरायेदार धारको सहित सभी प्रभावित पक्षों को।

19. इसलिए केवल इस कारण से निजी उत्तरदाताओं को निकटवर्ती भूखण्डों के खाताधारक होने के बावजूद कार्यवाही में एक पक्ष नहीं बनाया गया था। इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है कि वे प्रभावित पक्ष नहीं होंगे या इसके अन्तर्गत शामिल नहीं होंगे। अभिव्यक्ति का अर्थ व्यथित पक्ष है ताकि एक पक्षीय पारित आदेश को वापस लेने की मांग की जा सके।

20. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 209 के पहले प्रावधान के तहत प्रदत्त एक पक्षीय आदेश को वापस लेने की वैधानिक शक्ति के अलावा, प्रत्येक अदालत न्यायाधिकरण के पास न्याय के उद्देश्य को संरक्षित करने के लिए एक पक्षीय आदेश वापस लेने की एक अन्तरनीहित शक्ति होगी।

21. **ग्रिडलेज बैंक लिमिटेड बनाम केन्द्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण एवं अन्य में** "प्रतिक्रियात्मक समीक्षा" और गुणों पर समीक्षा के बीच अन्तर को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया कि भले ही कानून के तहत कोई स्पष्ट प्रावधान न हो, एक पक्षीय आदेश को रद्द करने के अधिकार क्षेत्र में तो न्यायालयया न्यायाधिकरण को ऐसी आकस्मिक या सहायक शक्तियों से सम्पन्न माना जायेगा, जो पक्षों के बीच न्याय करने के उद्देश्य से अपने कार्यों को प्रभावी ढंग से निर्वहन करने के लिए आवश्यक है। इस संबन्ध में फैसले में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"6... यह सच है कि अधिनियम या उसके तहत बनाये गये नियमों में न्यायाधिकरण के ऐसा करने का अधिकार क्षेत्र देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।

लेकिन यह इस वैधानिक निर्माण का एक प्रसिद्ध नियम है कि एक न्यायाधिकरण या निकाय को ऐसा माना जाना चाहिए, ऐसी सहायक या आकस्मिक शक्तियों से सम्पन्न जो पक्षों के बीच न्याय करने के उद्देश्य से अपने कार्यों को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने के लिए आवश्यक है, इस प्रकृति के मामले में हमारा विचार है कि न्यायाधिकरण को ऐसी आकस्मिक या सहायक शक्तियों से सम्पन्न माना जाना चाहिए, शक्तियाँ, जब तक कि विधि में इसके विपरीत कोई संकेत न हो।

10.... हमारा मानना है कि जहाँ एक पक्ष को पर्याप्त कारण के कारण सुनवाई में उपस्थित होने से रोका जाता है, और उसे एक पक्षीय पुरस्कार का सामना करना पड़ता है तो यह ऐसा है जैसा कि पक्ष को बिना किसी सूचना के पुरस्कार के साथ दौरा किया जाता है, कार्यवाही का, इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है कि जहाँ न्यायाधिकरण किसी पक्ष को नोटिस दिए बिना फैसला सुनाने के लिए आगे बढ़ता है, वहाँ फैसला अमान्य होने के अलावा और कुछ नहीं है, ऐसी परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण के पास न केवल शक्ति है, बल्कि एक पक्षीय फैसले को रद्द करने और मामले को नये सिरे से सुनने का निर्देश देने का कर्तव्य भी है।

13....."अभिव्यक्ति समीक्षा" का प्रयोग अलग अलग अर्थों में किया जाता है अर्थात् (1) एक प्रक्रियात्मक समीक्षा जो या तो किसी अदालत या न्यायाधिकरण में स्पष्ट रूप से त्रुटियों को दूर करने के लिए अन्तर्निहित या नीहित होती है। इसमें द्वारा गलत आशंका के तहत पारित आदेश और, और (2) जब त्रुटियों को ठीक करने की मांग की गई योग्यता के आधार पर समीक्षा कानून में से एक है और जो रिकार्ड के सम्मुख स्पष्ट है तथा यह बाद के अर्थ में है कि पटेल नरशी ठाकरी वाद" में अदालत ने माना कि कोई भी समीक्षा योग्यता के आधार नहीं होती जब तक कि कोई विधि विशेष रूप से इसके लिए प्रदान नहीं करता है, जाहिर तौर पर जब किसी प्रक्रियात्मक दोष के कारण समीक्षा की मांग की जाती है तो न्यायाधिकरण द्वारा की गई अनजाने में हुई त्रुटि को इसकी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए पूर्व डेविटियो जस्टिसिया में सुधारा जाना चाहिए और ऐसी शक्ति हर अदालत या न्यायाधिकरण में नीहित है।"

22.जे. के. सिन्वेटिक्स लिमिटेड बनाम वालेका सेंट्रल एक्साइज कलेक्टर में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया था, जिसमें यह माना गया श्री कि किसी दिए गये मामले में, यदि यह स्थापित हो गया कि प्रतिवादी अपनी गलती के बिना उपस्थित होने में असमर्थ था, तो न्याय के अन्त में स्पष्ट रूप से यह आवश्यक होगा कि उसके खिलाफ एक पक्षीय आदेश दिया जाए, उसे अलग रखा जाना चाहिए, और ऐसा करने की शक्ति प्रत्येक न्यायाधिकरण में अन्तर्निहित है।

23. कपड़ा मजदूर एकता युनियन बनाम बिड़ला काटन स्पीनिंग एण्ड \* वीविंग मिल्स लिमिटेड एवं अन्य के मामले गुणों पर समीक्षा और "प्रक्रियात्मक समीक्षा" के बीच अन्तर को दोहराया गया था और यह माना गया था कि "गुणों की समीक्षा को अनुमति है केवल उस स्थिति में जब विचाराधीन मंच को कानून द्वारा समीक्षा की शक्ति प्राप्त हो, हालाँकि "प्रक्रियात्मक समीक्षा" देने की शक्ति अन्तर्निहित है।

24.यह प्राकृतिक न्याय का मूल सिद्धांत और न्यायशास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि सुनवाई का अवसर किए बिना किसी पक्ष के खिलाफ कोई प्रतिकूल आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए और एक पक्षीय पारित आदेश के खिलाफ संबंधित व्यक्ति को मांग करने का अधिकार होगा, याद रहे कि समीक्षा और वापस बुलाने की याचिका के बीच अन्तर अच्छी तरह से स्थापित है। गीता और वापस बनाने की याचिका के बीच अन्तर अच्छी तथ से स्थापित है।

4. (1971)3 एससीसी844, 5. (1996) 6 एससीसी 92, 6.(2005) 13 एससीसी 777

25.असित कुमार कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य के मामले में उपरोक्त अन्तर को यह कहते हुए इंगित किया गया था कि समीक्षा याचिका में अदालत गुण-दोष के आधार पर विचार करती है कि क्या रिकार्ड में स्पष्ट रूप से कोई त्रुटि है, एक रिकाल याचिका में न्यायालय गुण- दोष पर ध्यान नहीं देता है बल्कि केवल उस आदेश रिकॉल करता है जो

प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया था।

26.वर्तमान मामले में, नियमावली, 2016 के नियम 22 में एक विशिष्ट आदेश शामिल है कि आसन्न भूखण्डों का एक खाताधारक 24 के तहत धारिता के विभाजन को कार्यवाही में एक आवश्यक पक्ष होगा। यह राजस्व अधिकारियों को आगे निर्देशित करता है कि वे सुनिश्चित करें कि सीमांकन के लिए कार्यवाही शुरू करने से पहले ऐसे पक्षकार को नोटिस जारी किया जाना चाहिए, और इसके अलावा, किसी भी आपत्ति को उठाये जाने पर अन्तिम आदेश पारित होने से पहले उक्त खाता धारक को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए।

27.जिससे इसका परिणाम यह होगा कि यदि राजस्व अधिकारी प्रभावित पक्ष को नोटिस या अवसर दिए बिना एक पक्षीय आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़े हैं, तो संबंधित राजस्व प्राधिकरण को वापस बुलाने की शक्ति का प्रयोग करने से नहीं रोका जायेगा तथा पक्षकारों के बीच न्याय करने के लिए प्रक्रियात्मक दोष, एक्स डे बिटियो जस्टिसिया को ठीक करने का इसका आदेश करेगा।

28.गुण- दोष के आधार पर किसी आदेश की समीक्षा करने की शक्ति को केवल अदालत या न्यायाधिकरण में निहित माना जा सकता है, वैधानिक प्रावधान व्यक्त करें या आवश्यक निहितार्थ से "प्रक्रियात्मक समीक्षा" को शक्ति पूरी तरह से एक अलग स्तर पर खड़ी होगी और प्रक्रियात्मक अबैधता को सही करने के लिए प्रत्येक अदालत न्यायाधिकरण में निहित,

अन्तर्निहित शक्ति के संदर्भ में होगी जो मामले की जड़ तक जाती है और स्वयं कार्यवाही के फलस्वरूप उसमें पारित आदेश अमान्य कर देती है।

29.एक पक्षीय आदेश को रद्द करने को शक्ति एक "प्रक्रियात्मक समीक्षा" के बराबर होगी जो हर अदालत या न्यायाधिकरण में अन्तर्गत या निहित है और गुणों के आधार पर समीक्षा देने की शक्ति से अलग है।

30 वर्तमान मामले में तथ्यों में जहाँ अधिनियम की योजना और उसके महत् बनाये गये नियमों में विशेष रूप हो आसन्न भूखण्डों के किरायेदार "धारकों को नोटिस देने का आदेश दिया गया है और संबंधित राजस्व प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश बिना किसी नोटिस या अवसर के पक्षकार प्रभावित है यानी निजी उत्तरदाताओं को प्रक्रियात्मक समीक्षा की शक्ति का उपयोग करने से नहीं रोका जायेगा।

31.आदेश को समीक्षा या वापस लेने की मांग करने वाली पार्टी, इसे प्रमाणित करने के लिए प्रक्रियात्मक कारणों की आवश्यकता नहीं हो सकती है। पारित आदेश प्रथम दृष्टया स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है, रिकार्ड या किसी अन्य आधार पर जो समीक्षा को उचित ठहरा सकता है केवल यह स्थापित करने की आवश्यकता होगी कि न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा अपनाई गयी प्रक्रिया प्रक्रियात्मक त्रुटि या अवैधता से ग्रस्त है, जिसका प्रभाव कार्यवाही को खराब करने पर पड़ता है जिससे उसमें पारित आदेश अमान्य हो जाता है, क्योंकि



संबन्धित पक्ष को अपनी गलती के बिना या किसी अन्य कारण से नहीं सुना जाता है।

32 ऐसे मामले में, मामले की गुणवत्ता पर जाये बिना विधि के अनुसार और दोबारा सुनवाई की आवश्यकता होगी, और पारित आदेश को इस कारण से वापस नहीं लिया जा सकता है कि यह गलत था बल्कि इसलिए क्योंकि यह एक कार्यवाही में पारित किया गया था, जो - प्रक्रिया या गलती से दूषित हो गया था, जो मामले की जड़ तक पहुँच गया और जिसका प्रभाव पूरी कार्यवाही को अमान्य करने पर पड़ा।

33 याचिकाकर्ता की ओर से दलील दी गई कि धारा 24 के तहत कार्यवाही में पारित आदेश उसकी उपधारा (4) के संदर्भ में अपील योग्य है, यही निजी निजी उत्तरदाताओं के लिए अपील के वैधानिक उपाय का लाभ उठाने के लिए खुला है और इस कारण से मान्य नहीं होगा, कि धारा 209 के खण्ड (एच) में एक विशिष्ट रोक शामिल है, कि एक पक्षीय पारित आदेश किसी अपील के समाधान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

34. यह वैधानिक निर्माण का एक स्थापित नियम माना गया है कि विधि के तहत शक्ति का अनुदान, इन शक्तियों के अभ्यास को पूरी तरह से प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक सभी शक्तियाँ और कर्तव्यों को आवश्यक रूप से नीहित करता है। इस संबंध में **सुथरलैण्ड-स्टेट्टरी कॉन्स्ट्रक्शन**<sup>8</sup> में कानून की व्याख्या का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें इसे इस प्रकार कहा गया है:

“जहाँ कोई कानून सामान्य शब्दों में शक्तियाँ या कर्तव्य प्रदान करता है, ऐसे कानून को प्रभावी बनाने के लिए सभी शक्तियाँ और कर्तव्य प्रासंगिक और आवश्यक हैं, निहितार्थ द्वारा शामिल किए जाते हैं... शक्ति का एक स्पष्ट वैधानिक अनुदान या एक निश्चित कर्तव्य का अधिरोपण, किसी सीमा के अभाव में, निहितार्थ द्वारा उन सभी साधनों को नियोजित करने का अधिकार देता है जो आमतौर पर नियोजित होते हैं और जो शक्ति के प्रयोग या कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए आवश्यक हैं... जो स्पष्ट रूप से निहित है वह कानून का उतना ही हिस्सा है जितना कि जो व्यक्त किया गया है।”

35. **डोमाट्स सिविल लॉ**<sup>9</sup> का उल्लेख करना की भी उपयुक्त होगा, जिसमें इसे निम्नानुसार देखा गया है:

“यह न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि वे विधि को न केवल उन पहलू पर लागू करें जो उनके व्यक्त स्वभाव द्वारा विनियमित प्रतीत होते हैं, बल्कि उन सभी मामलों पर भी जहाँ उन्हें उचित रूप से लागू किया जा सकता है, और जो इससे प्राप्त होने वाले परिणामों के भीतर समझे जा सकते हैं।”

36. **मैक्सवेल ऑन इन्टरप्रीटेशन ऑफ स्टेट्यूट्स**<sup>10</sup> में अधिनियम की व्याख्या पर एक बयान भी शामिल है कि “जहाँ एक अधिनियम एक क्षेत्राधिकार प्रदान करता है, यह निहित रूप से ऐसे सभी कार्य करने पा ऐसे साधनों को नियोजित करने की शक्ति भी प्रदान करता है जो इसके निष्पादन के लिए

अनिवार्य रूप से आवश्यक है, जिसे अधिकार क्षेत्र दिया गया है, उन्हें दिया हुआ माना जायेगा, जिसके बिना क्षेत्राधिकार ब्याख्या नहीं की जा सकती।“

37.उपरोक्त चर्चा से एक आवश्यक निष्कर्ष यह निकलेगा कि 30प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 24 के तहत कार्यवाही में पारित एक पक्षीय आदेश के विरुद्ध किसी रिकॉल आवेदन को पोषणीय नहीं माना जा सकता, खासकर जब किसी व्यक्ति द्वारा रिकॉल की मांग की जा रही हो, जो अधिनियम की योजना और उसके तहत बनाये गये नियमों के अनुसार कार्यवाही में एक आवश्यक पक्ष होगा यह उस मामले में और अधिक होगा, जहाँ एक पक्षीय आदेश को संहिता, 2006 की धारा 209 के खण्ड (एच) के तहत निहित रोक के आधार पर गैर-अपील योग्य बना दिया गया है।

38.वर्तमान मामले में निजी उत्तरदाता निकटवर्ती भूखण्डों के धारक है और इसलिए नियम 2016 के नियम 22 के अनुसार आवश्यक पक्ष है, और धारा 24 के तहत कार्यवाही में आदेश उनके खिलाफ, एक पक्षीय रूप से पारित किया गया है जो उक्त उत्तरदाता नहीं कर सकते है इसलिए संहिता 2006 की धारा 24 के तहत कार्यवाही में पारित आदेश को वापस लेने के लिए संबंधित न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का उपयोग करने से रोका जा सकता है।

8 सुथर लैण्ड स्टेट्यूटरी कॉन्सट्रक्शन्स, तीसरा एडिशन, वाल्यूम III, आर्टिकल 5402

9 डोमाटस सिविल लॉ कुशिंग्स एडिशन  
वोल्यूम 1 पेज 88

10 मैक्सवेल ऑन इन्टरपीटेशन ऑफ  
स्टेट्यूट्स, इलेवेन्थ एडिशन

39 चुनौती जिसे निजी उत्तरदाताओं द्वारा दायर रिकॉल आवेदन पर प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश के खिलाफ उठाया जाना है, इस आधार पर कि रिकॉल की मांग करने वाला आवेदन पोषणीय नहीं था, जिसे कायम नहीं रखा जा सकता है।

40. इसलिए, रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार खारिज कर दी जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 516

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट-सी संख्या 39355 वर्ष 2015

अजय बहादुर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री रामानंद गुप्ता, श्री राम किशोर पांडे, श्री राम नंद गुप्ता

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य

स्थायी

अधिवक्ता

सिविल कानून - स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33/47-ए और 56 - उ.प्र. स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियमावली, 1997 - उ.प्र. जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - मौजूदा कमरों के साथ कृषि भूमि का विक्रय विलेख - उ.प्र. जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143 के अंतर्गत कोई घोषणा नहीं - लेखापरीक्षा आपत्ति कार्यवाही का आधार बनी - स्टाम्प शुल्क की कमी और जुर्माना लगाने का आदेश बिना मौके पर निरीक्षण के पारित किया गया - अभिनिर्धारित हुआ: धारा 143 के अंतर्गत घोषणा के अभाव में, भूमि कृषि चरित्र को बरकरार रखती है - नियम 7 (3) (सी) के अंतर्गत मौके पर निरीक्षण अनिवार्य है - उपयोगकर्ता में छिपाव या परिवर्तन सिद्ध करने का भार राज्य पर है - आपराधिक मनःस्थिति अनुपस्थित - जुर्माना अस्थिर - 2010 में निष्पादित बिक्री विलेख के रूप में प्रतिप्रेषण खारिज - वर्तमान निरीक्षण अप्रासंगिक - आदेश खारिज किए गए - जमा की गई राशि 6% ब्याज के साथ वापस की जाएगी।

अभिनिर्धारित हुआ: उ.प्र. जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143 के अंतर्गत घोषणा न करने से यह स्पष्ट होता है कि विक्रय विलेख के दिनांक पर भूमि का कृषि स्वरूप बरकरार था। केवल छह कमरों के निर्माण से इसकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता। अधिकारियों ने अनिवार्य स्थल निरीक्षण के बिना केवल एकपक्षीय लेखापरीक्षा रिपोर्ट के आधार पर कार्रवाई की। साक्ष्य छिपाने या धोखाधड़ी को सिद्ध करने का भार राज्य

सरकार पर है, जिसमें कमी है। बिना किसी आपराधिक मनःस्थिति के जुर्माना लगाना अवैध है। प्रतिप्रेषण का कोई उद्देश्य नहीं होगा क्योंकि प्रभार्यता का निर्धारण दस्तावेज के निष्पादन के दिनांक पर होता है।

### याचिका स्वीकृत।

#### चर्चा की गई वाद विधि:

1. अनिरुद्ध कुमार और अश्विनी कुमार बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, 2000 (3) एडब्ल्यूसी 2587
2. श्रीमती सुशीला वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (2) एडब्ल्यूसी 1492
3. सुदामा बनाम मुख्य नियंत्रण प्राधिकारी, 2013 (4) एडब्ल्यूसी 3571
4. अजय अग्रवाल बनाम कमिश्नर, 2023 (2) एडीजे 561 (एलबी)
5. राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2005 (2) एडब्ल्यूसी 1087
6. श्रीमती आशा कपूर बनाम अपर कलेक्टर (एफ एंड आर), 2008 (72) एएलआर 125
7. शाहिद अली बनाम कमिश्नर बरेली, 2013 (6) एडीजे 425
8. हर चरण लाल आइस एंड कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2013 (2) एडब्ल्यूसी 1731

9. राज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-सी संख्या 19644 वर्ष 2016, दिनांक 13.04.2023 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थना के साथ वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है:-

"1- मामले के अभिलेखों को तलब करते हुए उत्प्रेषण लेख की प्रकृति का रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए और स्टॉप अपील संख्या 46/2012-13 में मुख्य राजस्व नियंत्रण प्राधिकारी, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांकित 29-05-2015 और वाद संख्या 45/2012-13 राज्य बनाम श्री अजय बहादुर प्रसाद में विद्वान अपर कलेक्टर वित्त एवं राजस्व/स्टॉप कलेक्टर झांसी जिला- झांसी (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 और 2 के रूप में संलग्न) द्वारा पारित आदेश दिनांकित 31-10-2012 को रद्द किया जाए।"

2. वर्तमान मामले के तथ्य यह हैं कि पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 02.06.2010 के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्लॉट संख्या 537/5 (एमआईएन) खाता संख्या 00065,00190, 00011 का कुल क्षेत्रफल 2.492 हेक्टेयर (24290 वर्ग मीटर के बराबर) की भूमि खरीदी है, जो ग्राम पाली, पहाड़ी ब्लॉक बबीना, जिला- झांसी में स्थित है। उक्त भूमि पर छह कमरों का निर्माण कार्य चल रहा था।

3. महालेखाकार उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक 30.11.2010 को लेखापरीक्षा आपति की गई थी, दिनांक 30.11.2010 की लेखापरीक्षा रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को नहीं दी गई थी।

4. लेखापरीक्षा आपति के अनुसरण में, भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 33/47-ए के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता को 27.04.2011 को नोटिस जारी किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने खसरा की प्रति के साथ दिनांक 22.06.2011 को अपनी आपति दर्ज कराई थी, जिसमें उल्लेख किया गया था कि विवादित भूमि कृषि भूमि है।

5. प्रतिवादी संख्या 2- अपर कलेक्टर वित्त एवं राजस्व, झांसी ने दिनांक 31.10.2012 को एक आदेश पारित कर 17,84,500/- रुपये के स्टाम्प शुल्क की कमी और 17,84,500/- रुपये का जुर्माना तथा बिक्री विलेख के निष्पादन से 1.5% साधारण ब्याज लगाया।

6. प्रतिवादी संख्या 2 - अपर कलेक्टर वित्त एवं राजस्व, झांसी द्वारा पारित दिनांक 31.10.2012 के आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी/याचिकाकर्ता ने मुख्य नियंत्रण प्राधिकारी, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद (प्रतिवादी संख्या 3) की अदालत में भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 56 के तहत स्टाम्प अपील प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। इसे स्टाम्प अपील संख्या 46/2012-13 के रूप में क्रमांकित किया गया। अपील दायर करते समय अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों के अनुसार याचिकाकर्ता

द्वारा एक तिहाई राशि अर्थात् 14,57,342/- रुपये जमा कराये गये।

न्यायालय के कई निर्णयों पर अवलम्ब लिया है।

7. उक्त अपील को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 29.05.2015 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। उपरोक्त से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि विवादित भूमि विक्रय-पत्र के निष्पादन की तिथि पर कृषि जोत के रूप में दर्ज थी, जो कि खसरा के साथ-साथ अनुपूरक हलफनामे के अनुलग्नक संख्या (1) के रूप में संलग्न दिनांक 2.6.2010 के विक्रय-पत्र से स्पष्ट है। आगे यह तर्क दिया गया कि यूपीजेडए और एल.आर. अधिनियम की धारा 143 के तहत घोषणा बिक्री-पत्र के निष्पादन की तिथि पर नहीं की गई थी और भूमि को कृषि भूमि के रूप में दर्ज किया गया था, इसलिए, स्टाम्प शुल्क केवल कृषि जोतों के लिए लागू दर के अनुसार ही लिया जाना चाहिए। आगे यह तर्क दिया गया कि विक्रय-पत्र में ही यह उल्लेख है कि विवादित भूखंड पर विद्यमान निर्माण के लिए विक्रय-पत्र निष्पादित करने हेतु अलग से स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि प्राधिकारियों द्वारा कोई मौके का निरीक्षण नहीं किया गया है तथा पूरा निर्णय एकपक्षीय लेखापरीक्षा रिपोर्ट पर आधारित है। आगे यह तर्क दिया गया कि पूरी तरह से अवैध रूप से, बिना कोई विशेष कारण बताए, याचिकाकर्ता पर अत्यधिक जुर्माना लगाया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस

9. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी कि संबंधित प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश पूर्णतया सही और वैध हैं, तथा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के प्रावधान इस समय स्टाम्प शुल्क की प्रभार्यता तय करने के लिए अप्रासंगिक हैं। अतः विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि आक्षेपित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम किशोर पाण्डेय और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री विजय शंकर को सुनते हुए, मैंने पाया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अंतर्गत भूमि को आबादी के रूप में घोषित न किया जाना एक स्वीकृत तथ्य है। राज्य का यह तर्क कि उक्त गैर-घोषणा भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत कार्यवाही में प्रासंगिक नहीं है, इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत वैधानिक शक्तियों के प्रयोग में, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियमावली, 1997 तैयार किया गया है। नियमों के नियम 3(1)(ए) के अनुसार, निम्नलिखित प्रावधान है:

*"स्थावर सम्पत्ति से संबंधित ऐसे लिखित की स्थिति में, जिस पर सम्पत्ति के बाजार मूल्य*

पर मूल्यानुसार शुल्क प्रभार हो, सम्पत्ति के बाजार मूल्य के अतिरिक्त लिखत में निम्नलिखित विवरण भी सही-सही और पूरा-पूरा दिया जायेगा-

(1) भूमि की स्थिति में-

(क) जो भौमिक अधिकारों से संबंधित विधि में परिभाषित खातेदार की जोत में सम्मिलित है-

(एक) लिखत की विषयवस्तु के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक गाटे की खसरा संख्या और क्षेत्रफल,

(दो) सिंचित या असिंचित और यदि सिंचित है तो सिंचाई का श्रोत,

(तीन) यदि उस पर खेती होती है तो दो फसली है या अन्यथा,

(चार) ऐसे खातेदार द्वारा देय भू-राजस्व या लगान चाहे माफ हो या नहीं,

(पाँच) मिट्टी का वर्गीकरण जो विधि के अनुसार जारी किये गये सुसंगत राजस्व अभिलेखों के उद्घरणों या प्रमाणित प्रतिलिपियों द्वारा समर्पित होगा यदि लिखत बीस हजार रुपये से अधिक मूल्य का हो,

(छ) अवस्थिति (यदि किसी नगरीय क्षेत्र, अर्ध-नगरी क्षेत्र या ग्रामीण क्षेत्र में पड़ता है), और

(सात) जिले के कलेक्टर द्वारा नियत न्यूनतम मूल्य।"

11. स्वीकृत रूप में, बिक्री-पत्र के निष्पादन की तिथि पर, उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रावधान लागू थे। उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 3(14) के तहत "भूमि" की परिभाषा इस प्रकार है:

(14) "भूमि" [धारा 109, 143 और 144 और अध्याय VII को छोड़कर] का अर्थ है कृषि, बागवानी या पशुपालन से जुड़े उद्देश्यों के लिए रखी गई या कब्जा की गई भूमि जिसमें मछली पालन और मुर्गी पालन शामिल हैं;

12. भूमि अधिग्रहण से संबंधित कानून अर्थात् उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 में निहित भूमि की परिभाषा के मद्देनजर, यह तथ्य कि भूमि को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अंतर्गत आबादी घोषित नहीं किया गया था, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 3(14) के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है, स्वयं ही उस भूमि की प्रकृति का निर्धारण करने के लिए एक प्रासंगिक कारक बन जाता है जो कि दस्तावेज की विषय वस्तु थी। इस न्यायालय ने विभिन्न प्राधिकरणों में माना है कि जब भूमि कृषि प्रयोजनों के लिए खरीदी गई है और यूपीजेडए और एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत घोषणा नहीं की गई है और केवल इसलिए कि भूमि पर कुछ निर्माण यानी छह कमरे हैं, तो स्टांप शुल्क लगाने के प्रयोजनों के लिए यह कृषि भूमि के रूप में अपना चरित्र नहीं खो देगी। इस न्यायालय के कुछ प्राधिकारियों का संदर्भ लिया जा सकता है, जिनमें अनिरुद्ध कुमार और अश्विनी कुमार बनाम मुख्य नियंत्रण राजस्व प्राधिकारी, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद और अन्य, 2000 (3) ए.डब्ल्यू.सी. 2587; श्रीमती सुशीला वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2006 (2) ए.डब्ल्यू.सी. 1492 और सुदामा बनाम मुख्य

**नियंत्रण प्राधिकारी और अन्य, 2013 (4) एडब्ल्यू.सी. 3571** शामिल हैं।

13. इसके अलावा, यदि राज्य का आरोप यह होता कि यद्यपि भूमि कृषि प्रयोजनों के लिए खरीदी गई थी, लेकिन तुरंत ही इसका उपयोगकर्ता बदल दिया गया और बिक्री विलेख की तिथि पर इसका उपयोग किसी अन्य उद्देश्य जैसे औद्योगिक, वाणिज्यिक या यहां तक कि आवासीय के लिए किया जा रहा था, तो स्थिति अलग होती। यहां तक कि उन परिस्थितियों में भी, प्रासंगिक समय पर मौके पर निरीक्षण आवश्यक था, लेकिन, निस्संदेह, वर्तमान मामले में, कोई मौके पर निरीक्षण नहीं किया गया है। उक्त नियमावली, 1997 के नियम 7(3)(सी) के संदर्भ में, स्थल निरीक्षण की आवश्यकता और इसकी अनिवार्य प्रकृति को इस न्यायालय द्वारा **अजय अग्रवाल एवं अन्य बनाम कमिशनर लखनऊ एवं अन्य, 2023(2) एडीजे 561 (एलबी), तथा राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, 2005(2) एडब्ल्यू.सी. 1087** सहित विभिन्न प्राधिकारियों के मामलों में बार-बार दोहराया गया है।

14. आक्षेपित आदेशों में दर्ज टिप्पणियां/निष्कर्ष भी साक्ष्य के दायित्व के सिद्धांतों के विपरीत हैं, विशेष रूप से ऐसे मामले में जहां कार्यवाही राजकोषीय कानून से उत्पन्न होती है। एक बार जब राज्य याचिकाकर्ता पर अपर्याप्त स्टाम्प शुल्क लगाने के लिए आगे बढ़ रहा था, तो उचित संदेह से परे यह साबित करने का पूरा दायित्व राज्य पर था कि याचिकाकर्ता ने अपने पक्ष में बिक्री-पत्र निष्पादित करते समय कुछ छिपाया था या कि

तारीखों के निकट होने के कारण, विवादित भूमि का उपयोगकर्ता बदल दिया गया था ताकि अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क लगाया जा सके। इस आशय की कोई बात अभिलेख पर नहीं लाई गई है, बल्कि, न केवल आरोपित आदेशों में दर्ज निष्कर्ष भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899, जो उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, के साथ-साथ उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 के प्रावधानों के विपरीत हैं, बल्कि निश्चित रूप से इस न्यायालय द्वारा लगातार निर्धारित कानून के भी विपरीत हैं।

15. जहां तक एक बार जुर्माना लगाने का सवाल है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जब तक क्रेता की ओर से "मनुष्य का उद्देश्य" स्थापित नहीं हो जाता, तब तक कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता, भले ही जुर्माने का प्रावधान कानून द्वारा निर्मित हो। जुर्माना लगाने के संबंध में, **श्रीमती आशा कपूर बनाम अतिरिक्त कलेक्टर (वित्त और राजस्व), गाजियाबाद और अन्य, 2008 (72) एलआर 125** के मामले में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां इस न्यायालय ने माना है कि यदि स्टाम्प शुल्क से बचने का प्रयास किया जाता है तो जुर्माना लगाया जा सकता है और जुर्माना लगाने में दोषसिद्धि और अधिकारियों के साथ धोखाधड़ी करने या छिपाने का इरादा शामिल है। मुझे रिकार्ड में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं मिला है, जिसके आधार पर प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा कोई राय बनाई गई हो कि याचिकाकर्ता ने बिक्री-पत्र निष्पादित करते समय सरकार के साथ धोखाधड़ी की है। यहां तक कि रिट याचिका के

अनुलग्नकों में भूमि की प्रकृति का खुलासा करने पर भी राज्य द्वारा जवाबी हलफनामे में कोई विवाद नहीं किया गया है। मैं यह भी पाता हूँ कि विचाराधीन बिक्री-पत्र 1997 के नियम 3(1)(ए) के अनुसार आवश्यक विवरणों के प्रकटीकरण की वैधानिक आवश्यकताओं के अनुरूप है। इसलिए, जुर्माना लगाना भी देश के कानून के विपरीत है।

16. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि मौके पर निरीक्षण न करना आदेश पारित करने के पीछे एक अवैधता के रूप में माना जाता है, तो मामले को अधिकारियों को मौके पर निरीक्षण करने या करवाने के लिए वापस भेजा जा सकता है और फिर एक नया आदेश पारित किया जा सकता है।

17. तथापि, मेरा मानना है कि मामले को प्राधिकारियों के पास वापस भेजने से कोई सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं होगा और वस्तुतः इस मामले में रिमांड एक निरर्थक कार्य होगा, क्योंकि विचाराधीन दस्तावेज 02.06.2010 को निष्पादित किया गया था और यह अच्छी तरह से स्थापित है कि स्टाम्प शुल्क की प्रभार्यता की जांच दस्तावेज के निष्पादन की तारीख के संदर्भ में की जानी चाहिए। इस आशय का प्रस्ताव इस न्यायालय द्वारा **शाहिद अली बनाम कमिश्नर बरेली डिवीजन बरेली और अन्य, 2013 (6) एडीजे 425 और हर चरण लाल आइस एंड कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, 2013 (2) एडब्ल्यूसी 1731** सहित विभिन्न प्राधिकरणों में लगातार रखा गया है। इसलिए, रिमांड के संबंध में विद्वान स्थायी अधिवक्ता का आग्रह

अस्वीकार किए जाने योग्य है, इस कारण से भी कि यदि निरीक्षण आज, अर्थात् वर्ष 2023 में किया जाता है तो वह बिक्री विलेख के निष्पादन की तिथि अर्थात् 2010 को स्टाम्प शुल्क के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए पूरी तरह अप्रासंगिक होगा। इसलिए, इस तरह के मौके पर किए गए निरीक्षण का न तो कोई महत्व होगा और न ही मामले पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक होगा।

18. यही दृष्टिकोण इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने भी **रिट-सी संख्या 19644/2016 (राज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य)** में अपने निर्णय एवं आदेश 13.4.2023 में लिया था।

19. उपर्युक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है।

20. स्टाम्प अपील संख्या 46/2012-13 में प्रतिवादी संख्या 3- मुख्य राजस्व नियंत्रण प्राधिकारी, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 29.5.2015 के आदेश और प्रतिवादी संख्या 2- अपर कलेक्टर वित्त एवं राजस्व/स्टाम्प कलेक्टर, झांसी द्वारा पारित दिनांक 31.10.2012 के आदेश को उत्प्रेषण-लेख रिट जारी करके रद्द किया जाता है।

21. इस आशय का एक परमादेश भी जारी किया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा इस रिट याचिका को दायर करने से पहले या वर्तमान मामले में पारित किसी अंतरिम आदेश के अनुसरण में जमा की गई कोई भी राशि, याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित प्राधिकारी के समक्ष



इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ उचित आवेदन प्रस्तुत करने पर, जमा की तारीख से वास्तविक भुगतान की तारीख तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को वापस कर दी जाएगी।

-----  
(2023) 9 ILRA 521

मूल क्षेत्राधिकार  
सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर  
रिट-सी संख्या 1001865 वर्ष 2013

मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

फूल चंद्र मिश्रा, सचिन गर्ग

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल कानून - स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 9 और 47-ए - कृषि/खाद्य पार्क की स्थापना के लिए 19.01.2005 की शासकीय अधिसूचना के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क में छूट दी गई - छूट के अनुसरण में 20.06.2006 को बिक्री विलेख पंजीकृत किया गया - याचिकाकर्ता द्वारा औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की

गई - 6 वर्ष बीत जाने के बाद धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई - अभिनिर्धारित हुआ: बाद की शासन नीति (शासनादेश दिनांक 21.08.2009) के आधार पर स्टाम्प शुल्क की मांग असंधार्य - निष्पादन के दिनांक पर कानून के संदर्भ में देय शुल्क का निर्धारण किया जाएगा - छूट में कोई अस्थिरता नहीं - धारा 47-ए का आह्वान अवैध और अधिनियम के विरुद्ध - आक्षेपित आदेश निरस्त।

अभिनिर्धारित हुआ: स्टाम्प शुल्क देयता का निर्धारण प्रपत्र के निष्पादन के दिनांक पर किया जाता है; नीति में बाद में किया गया परिवर्तन अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत दी गई वैध छूट को पूर्वव्यापी रूप से रद्द नहीं कर सकता - धारा 47-ए के अंतर्गत छूट-आधारित पंजीकरण को पुनः खोलने का कोई प्राधिकार नहीं है।

याचिका स्वीकृता

चर्चा की गई वाद विधि:

1. शांति भूषण (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489
2. स्वीडिश मैच एबी बनाम सेबी, (2004) 11 एससीसी 641
3. सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 आईटीआर 741

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा  
पारित)

1. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन गर्ग तथा प्रतिवादी की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को भी सुना, और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका में निर्धारित प्राधिकारी/सहायक आयुक्त (स्टांप), रायबरेली द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (इसके पश्चात '1899 का अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 26.11.2012 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा धारा 47-ए के अंतर्गत दिए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए, उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा 20.06.2006 को निष्पादित विक्रय-पत्र पर देय स्टाम्प-शुल्क को स्टाम्प में कमी के रूप में निर्धारित किया है और इस प्रकार याचिकाकर्ता को रु. 16,65,100.00 के साथ-साथ रु. 3,67,330.00 का जुर्माना और 20.06.2006 से प्रति माह 1.5% की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया प्रश्न यह है कि जब 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत जारी छूट की अधिसूचना के आधार पर, स्टाम्प ड्यूटी में छूट दी गई है और दस्तावेज़ पंजीकृत हो गया है, तो क्या सरकार की नीति में बाद में हुए परिवर्तन से धारा 47-ए का प्रावधान लागू किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति को संपत्ति के बाजार मूल्य पर स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान करने की आवश्यकता होगी?

4. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि भारत सरकार ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के माध्यम से देश में 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क की स्थापना हेतु एक योजना शुरू की थी, जिसका उद्देश्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उक्त नीति को अपनाया और एक अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 पारित किया, जिसके अंतर्गत उन्होंने सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी व्यापार प्रक्रिया आउटसोर्सिंग इकाई, कॉल सेंटर, कृषि प्रसंस्करण इकाई आदि की स्थापना हेतु भूमि क्रय के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी और पंजीकरण शुल्क से छूट प्रदान करने का निर्णय लिया, जो ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क नीति का लाभ उठाकर स्थापित की जा रही थीं।

5. याचिकाकर्ता ने, एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क स्थापित करने में रुचि रखते हुए, महानिरीक्षक (पंजीकरण), उत्तर प्रदेश के समक्ष उक्त भूमि के क्रय हेतु स्टाम्प ड्यूटी और पंजीकरण शुल्क से छूट मांगते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के आवेदन पर विधिवत कार्यवाही की गई और महाप्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, रायबरेली ने अपने पत्र दिनांक 18.04.2006 के माध्यम से उप निबंधक, महाराजगंज, रायबरेली को एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क स्थापित करने हेतु याचिकाकर्ता द्वारा क्रय की गई भूमि क्षेत्रों के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी से छूट प्रदान करने का निर्देश दिया।

6. याचिकाकर्ता को दी गई उक्त स्टाम्प ड्यूटी छूट के अनुसरण में, दिनांक 20.06.2006 को विक्रय विलेख पंजीकृत किया गया था।

7. विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात, याचिकाकर्ता ने उक्त भूमि का उपयोग कृषि-आधारित उद्योग स्थापित करने हेतु नहीं किया, जिसके लिए उसे छूट प्रदान की गई थी। कलेक्टर ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की, क्योंकि याचिकाकर्ता औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने में विफल रहा था। स्टाम्प ड्यूटी में छूट राज्य सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी, और याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता का पालन नहीं किया था, इसलिए वह उक्त विक्रय विलेख के पंजीकरण पर लगाए जाने वाले स्टाम्प ड्यूटी की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने बाद में एक शासनादेश दिनांक 21.08.2009 जारी किया है, जिसमें नए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग स्थापित करने से संबंधित योजना के कार्यान्वयन हेतु कुछ नई शर्तें शामिल की गई हैं, जिसमें लाभ प्राप्त करने के लिए आवेदकों को अब उस स्टाम्प ड्यूटी के बराबर राशि की एक बैंक गारंटी या सावधि जमा देना होगा जो उस स्थिति में देय होता यदि आवेदकों को उक्त नीति के अंतर्गत छूट का लाभ नहीं दिया जाता। आवेदकों को बैंक गारंटी या सावधि जमा देने की आवश्यकता का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आवेदक भूमि क्रय करने के पश्चात औद्योगिक इकाई स्थापित

करने के लिए आगे बढ़ें, अन्यथा उक्त बैंक गारंटी या सावधि जमा को भुनाया जा सकता है। नीति में यह परिवर्तन सुनिश्चित करता है कि राज्य सरकार द्वारा भूमि के पंजीकरण के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी में रियायत प्राप्त करने के पश्चात आवेदक औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए आगे बढ़ें।

9. उक्त शासनादेश, दिनांक 19.01.2005 के पूर्व शासनादेश के एक स्पष्टीकरण के रूप में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नए उद्योग स्थापित करने के लिए नीति का लाभ उठाने की इच्छा रखने वाले संभावित व्यक्तियों के चयन के पश्चात, राज्य सरकार द्वारा उन्हें विभिन्न लाभ और रियायतें प्रदान की गई थीं, किन्तु बाद में कई आवेदक जिन्होंने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाते हुए गहरी रुचि दिखाई थी और यहां तक कि भूमि भी क्रय की थी, उन्होंने कभी भी औद्योगिक उपक्रम स्थापित नहीं किए, जिससे सरकार द्वारा पूरी नीति पर पुनर्विचार करने और शासनादेश दिनांक 21.08.2009 जारी करने की आवश्यकता हुई। उक्त शासनादेश में, यह प्रावधान किया गया था कि जब भी ऐसा कोई मामला राज्य सरकार के समक्ष आता है जहां कोई व्यक्ति एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क आदि स्थापित करने हेतु भारत सरकार के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य की नीति का लाभ उठाना चाहता है, तो उक्त आवेदन का उद्योग विभाग द्वारा विधिवत परीक्षण किया जाएगा और ऐसे आवेदकों को यह भी निर्देश दिया जाएगा कि वे प्रदर्शन-गारंटी दें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध

कराए गए लाभों के अलावा, वे उत्तर प्रदेश राज्य में अपनी इकाइयाँ भी लागू और स्थापित करें। यह भी प्रावधान किया गया था कि जहां भी स्टॉप-इयूटी में छूट दी जाती है, उसी राशि के लिए एक बैंक-गारंटी भी प्राप्त की जाएगी और यदि नीति के नियमों और शर्तों का कोई उल्लंघन होता है, तो राज्य सरकार उक्त बैंक-गारंटी को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

10. सरकारी नीति में परिवर्तन लाया गया ताकि एक नए उपक्रम की स्थापना सुनिश्चित की जा सके और यदि भूमि क्रय करने के पश्चात भी वे स्थापित नहीं होते हैं, तो राज्य सरकार नए उद्योग स्थापित करने की इच्छा रखने वाले संभावित आवेदक द्वारा उपलब्ध कराए गए निश्चित जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

11. उक्त शासनादेशों के अनुसरण में सहायक आयुक्त (स्टॉप), रायबरेली द्वारा याचिकाकर्ता स्टॉप अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत एक कारण बताओ नोटिस भेजा गया, जिसमें उसे निर्देशित किया गया कि 20.06.2006 को विक्रय-विलेख के पंजीकरण के संबंध में उससे स्टॉप-शुल्क में कमी क्यों नहीं वसूली जाए। याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का विधिवत जवाब दिया और अपना आपत्ति प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि उक्त विक्रय-विलेख, अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अनुसार राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2006 के पत्र के अनुसार दी गई छूट के आधार पर पंजीकृत किया गया था।

12. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि आवेदक को प्रदान की गई स्टाम्प इयूटी की छूट में कोई अनियमितता नहीं है क्योंकि अनुवर्ती अधिसूचना के आधार पर दिनांक 19.01.2005 को जारी प्रारंभिक अधिसूचना को न तो निरस्त किया गया है और न ही वापस लिया गया है और न ही स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई शर्त मौजूद है, और इसलिए, कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित प्रस्तावित आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

13. सहायक आयुक्त (स्टाम्प) ने आवेदक द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विधिवत विचार किया और उन्हें अस्वीकृत कर दिया और आक्षेपित आदेश दिनांक 26.11.2012 के माध्यम से आवेदक को भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार मूल्यांकन के बराबर राशि जमा करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश में यह कहा गया है कि उक्त भूमि आवेदक को सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी जिसमें आवेदक को एक नया उपक्रम स्थापित करना था और केवल ऐसे उपक्रमों को ही स्टाम्प इयूटी की छूट का लाभ दिया गया था, जिन्होंने राज्य सरकार की नीति के अनुसार नए उद्योग स्थापित करने पर सहमति दी थी। आवेदक ने राज्य सरकार के निर्देशों का पालन नहीं किया और बार-बार पत्र लिखने के बावजूद उसके द्वारा कोई औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की गई और परिणामस्वरूप आक्षेपित आदेश के माध्यम से आवेदक को सम्पूर्ण स्टाम्प इयूटी का भुगतान करने का निर्देश दिया गया, जो उस दशा में देय होता यदि छूट न दी गई होती।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है और बिना अधिकार क्षेत्र का है क्योंकि ऐसा आदेश 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित नहीं किया जा सकता था। यह भी तर्क दिया गया है कि दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान नियम, शर्तें और प्रावधान ही एकमात्र प्रासंगिक कारक हैं, जिन्हें दस्तावेज़ पर स्टॉप शुल्क लगाते समय ध्यान में लिया जा सकता था। उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन के पश्चात घटित हुए बाद के परिवर्तनों और विचारों को 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश पारित करते समय ध्यान में नहीं लिया जा सकता है और इसलिए आदेश अवैध है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

15. वर्तमान मामले में यह बताया गया है कि दस्तावेज़ पंजीकृत किए जाने के दिनांक अर्थात् 20.06.2006 को, सरकार की अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में रियायत का एक वैध आदेश पारित था। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को दी गई रियायत अथवा राज्य सरकार की नीति दिनांक 19.01.2005 को निरस्त नहीं किया गया है और परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए का सतही वाचन मात्र यह इंगित करेगा कि स्टॉप-शुल्क का निर्धारण केवल उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान प्रावधानों के संदर्भ में किया जाना है, और साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा उक्त

दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर भुगतान किए गए स्टॉप-शुल्क में कोई कमी नहीं थी, क्योंकि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के मामले में स्टॉप-शुल्क से रियायत प्रदान की थी, और परिणामस्वरूप, यदि बाद में सरकारी नीति में कोई बदलाव होता है, तो याचिकाकर्ता द्वारा बिक्री-पत्र के निष्पादन के समय भुगतान किए गए शुल्क पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के शांति भूषण (डी) थू एलआर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2023 SCC Online SC 489 के मामले में दिये गए निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें यह कहा गया है कि पंजीकरण प्राधिकरण को दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर सही बाजार मूल्य का पता लगाना होगा। यह कहा गया है कि उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता के पास एक वैध रियायत पत्र था, जिसे प्रतिवादियों द्वारा विधिवत माना और स्वीकार किया गया था और परिणामस्वरूप इसमें कोई बदलाव स्वीकार्य नहीं है और फलस्वरूप आक्षेपित आदेश का विरोध किया गया। अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि बाद के शासनादेश का अवलोकन भी यह इंगित करेगा कि नई इकाई स्थापित करने के लिए सरकारी नीति का लाभ उठाने वाले व्यक्ति द्वारा देय स्टॉप-शुल्क के समान राशि की वसूली हेतु प्रावधान किया गया है। अनुवर्ती नीति एक बैंक गारंटी के रूप में एक सावधि जमा के प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है और यदि ऐसा व्यक्ति नीति की शर्तों को पूरा नहीं करता है और नई इकाई स्थापित नहीं करता है, तो सरकार के लिए बैंक गारंटी

का प्रयोग करने और सावधि जमा को भुनाने का मार्ग खुला था ताकि उसकी क्षतिपूर्ति इस प्रकार से की जा सके जैसे कि स्टॉप-शुल्क का वास्तव में भुगतान कर दिया गया हो। यहां तक कि अनुवर्ती नीतियों और अधिसूचनाओं दिनांक 21.08.2009 या 22.11.2007 में यह प्रदान नहीं किया गया है कि ऐसे दस्तावेज़ के निष्पादन पर भुगतान किए गए घाटे के स्टॉप-शुल्क को वसूल करने के लिए भारतीय स्टॉप अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के प्रावधानों का सहारा लिया जा सकता है।

17. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाया है और उक्त भूमि को पंजीकृत करते समय स्टॉप-शुल्क से रियायत प्राप्त की है, जो एक नई इकाई स्थापित करने के उद्देश्य के लिए थी। याचिकाकर्ता ने स्वयं राज्य सरकार की नीति का उल्लंघन किया है और बार-बार अनुस्मारक के बावजूद कोई इकाई स्थापित नहीं की है और परिणामस्वरूप राज्य सरकार के लिए उसे दी गई रियायत वापस लेना खुला था, और इसलिए, उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

18. मैंने पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है। अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि ऐसे सभी व्यक्ति जो खाद्य प्रसंस्करण आदि के संबंध में कृषि/खाद्य संबंधी व्यवसाय स्थापित करना चाहते थे, को स्टॉप-शुल्क से रियायत का लाभ दिया गया था ताकि कम लागत पर भूमि क्रय हेतु उन्हें सक्षम

किया जा सके, यह नीति राज्य उत्तर प्रदेश राज्य में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने हेतु तैयार की गई थी। राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाने के आशय से याचिकाकर्ता ने भी एक आवेदन दिया, और उसके आवेदन की जांच करने और उसे नियमानुकूल पाकर आदेश दिनांक 28.03.2006 के माध्यम से स्टॉप शुल्क से रियायत प्रदान की गई। लगभग छह वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात राज्य सरकार को ज्ञात हुआ कि याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता नहीं पूरी की है और औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की है, परिणामस्वरूप, भारतीय स्टॉप अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और 01.06.2012 को याचिकाकर्ता को एक नोटिस जारी किया गया जिसमें 20.06.2006 को उसके द्वारा निष्पादित बिक्री-पत्र के संबंध में उसे स्टॉप-शुल्क का बाजार मूल्य देने के लिए कहा गया।

19. याचिकाकर्ता ने 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही की शुरुआत पर ही प्रश्न उठाया है। वर्तमान याचिका में उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह देखा गया है कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अनुसार, निर्दिष्ट प्राधिकारी को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह दस्तावेज़ का निष्पादन करने वाले व्यक्ति से उक्त दस्तावेज़ में निर्धारित संपत्ति के बाजार मूल्य पर पूर्ण स्टॉप-शुल्क का भुगतान करवाए। पंजीकरण के लिए उक्त दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के तुरंत बाद इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। प्रतिवादियों का यह मामला नहीं है कि उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर

याचिकाकर्ता ने पर्याप्त स्टॉप-शुल्क का भुगतान नहीं किया था। यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा भारतीय स्टॉप अधिनियम 1899 की धारा 9 के अंतर्गत दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी अधिसूचना के अनुसार स्टॉप-शुल्क के भुगतान से रियायत प्रदान की गई थी, जहां सरकार के पास यह शक्ति सुरक्षित है कि वह अपने प्रशासन के अधीन के राज्यक्षेत्रों के सम्पूर्ण या किसी भाग में, एक शुल्क को भविष्यलक्षी या भूतलक्षी प्रभाव से कम कर सकती है या उससे छूट दे सकती है जिससे कोई लिखतें या किसी विशिष्ट वर्ग की लिखतें या ऐसे वर्ग से संबन्ध रखने वाली लिखतों में से कोई लिखत या कोई लिखतें जब ऐसे विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों द्वारा या उनके पक्ष में या ऐसे वर्ग के किन्हीं सदस्यों द्वारा या उनके पक्ष में निष्पादित की जाएँ। तदनुसार 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अनुसार स्टॉप-शुल्क कम या माफ करने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार ने रियायत की अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 जारी करते समय अधिनियम 1899 की धारा 9 के प्रावधान का प्रयोग किया था।

20. यह स्पष्ट है कि धारा 9-ए के अंतर्गत राज्य सरकार की शक्ति केवल "कम या माफ" करने के संबंध में है, जो तदनुसार किया गया था जब उसने अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के माध्यम से स्टॉप-शुल्क को कम करने और छूट देने के अपने आशय को अधिसूचित किया। कोई अन्य आदेश जो याचिकाकर्ता या प्रतिवादियों द्वारा लाया गया है, रद्द करने, निरस्त करने या राज्य सरकार की नीति के

अनुसरण में स्थापित इकाइयों पर स्टॉप-शुल्क की छूट को संशोधित करने के लिए नहीं है।

21. इस तथ्य पर विचार करने पर कि राज्य सरकार द्वारा जारी आदेश दिनांक 28/03/2006 के माध्यम से याचिकाकर्ता को राज्य सरकार की नीति के अनुसार औद्योगिक इकाई स्थापित करने के मामले में स्टॉप शुल्क लगाने से छूट दी गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा अपने पंजीकरण की तिथि को भुगतान किए गए स्टॉप शुल्क में कोई दोष या कमी नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने कई मामलों में यह निर्णय दिया है कि किसी दस्तावेज़ पर देय स्टॉप शुल्क का निर्धारण करने हेतु प्रासंगिक तिथि उस दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि होती है। वर्तमान मामले में, विक्रय विलेख 20/06/2006 को निष्पादित किया गया था, जिस समय राज्य सरकार द्वारा पारित एक वैध छूट का आदेश लागू था। उच्चतम न्यायालय ने शांति भूषण (डी) थू एलआर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2023 SCC OnLine SC 489 के मामले में यह अवलोकन किया है:-

"23. इसलिए, जब किसी विक्रय विलेख को पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर दस्तावेज़ के विषय में संपत्ति का सही बाजार मूल्य सुनिश्चित करना चाहिए। स्टॉप शुल्क इस तरह के बाजार मूल्य के आधार पर देय होता है, न कि दस्तावेज़ में उल्लिखित मूल्य पर। यदि उल्लिखित मूल्य बाजार मूल्य से अधिक है, तो स्टॉप शुल्क दिखाए गए मूल्य पर देय होगा। इसके

अतिरिक्त, विक्रय विलेख में उल्लिखित बाजार मूल्य या विलेख की तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य या उस तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य जिस दिन सौदा किया गया था, स्टॉप शुल्क तय करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। प्रासंगिक बाजार मूल्य वह है जो विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर प्रचलित है। इसलिए, हमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ताओं पर उस स्टॉप शुल्क के भुगतान करने का दायित्व था जिसकी गणना विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर की गई थी।"

22. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के उपरोक्त तथ्यों और तर्कों को ध्यान में रखते हुए, मैं याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए इस तर्क में बल पाता हूँ कि धारा 47-ए के अंतर्गत वर्तमान मामले में शक्ति का ऐसा प्रयोग, याचिकाकर्ता के विरुद्ध नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसके पंजीकरण की तिथियों पर दस्तावेज़ पर लगाए जाने वाले स्टॉप शुल्क के संबंध में कोई दोष नहीं था। धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विचार की जाने वाली प्रासंगिक तिथि दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि है। प्रतिवादियों ने विक्रय विलेख पर देय स्टॉप शुल्क की छूट में भी कोई दोष प्रदर्शित नहीं किया है, जिसे 20.06.2006 को पंजीकृत किया गया था। प्रतिवादियों के अनुसार भी, वादमूल केवल 20.06.2006 के पश्चात ही उत्पन्न हुआ, जब काफी समय व्यतीत हो जाने के पश्चात याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति के अनुसार इकाई स्थापित नहीं की।

23. राज्य सरकार को जब ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जिसमें इच्छुक उद्यमियों ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की नीति का लाभ उठाकर भूमि क्रय कर ली, किन्तु बाद में उद्योग स्थापित करने में विफल रहे, तब उसने अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और 12.11.2007 के माध्यम से एक स्पष्टीकरण जारी किया और उन व्यक्तियों द्वारा नए उद्योग स्थापित करने हेतु सख्त दिशानिर्देश जारी किए, जिन्होंने नीति का लाभ उठाया है। स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से प्रत्याशावादी प्रकृति का है, क्योंकि यह उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई के विषय में मौन है, जिन्होंने पहले से ही रियायत-अधिसूचना का लाभ उठाया है, किन्तु औद्योगिक इकाई स्थापित करने में विफल रहे हैं।

24. इस मामले में प्रासंगिक तथ्य यह है कि जैसा कि राज्य सरकार ने अपने अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और 12.11.2007 में पहले ही प्रदान किया है, जहां यह शर्त आरोपित की गई है कि यदि ऐसे व्यक्तियों ने सावधि जमा या बैंक गारंटी जमा की है, तो यह राज्य सरकार के लिए खुला था कि वह उसे भुना ले। हमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिसके द्वारा स्टाम्प ड्यूटी, जो वास्तव में अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 द्वारा वसूले जाने योग्य थी, किन्तु जिसमें एक वैध रियायत अधिसूचना द्वारा छूट प्रदान की गई थी, बाद में वसूल की जा सकती है। शक्ति का प्रयोग, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है, स्पष्ट रूप से अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ-साथ प्रतिवादियों द्वारा जारी अधिसूचना के भी बाहर है।



25. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1989, एक राजकोषीय विधान होने के कारण, इसके प्रावधानों की सख्त व्याख्या की जानी चाहिए। **स्वीडिश नैच एबी बनाम सेबी, 2004 (11) SCC 641 और सीआईटी बनाम अजैक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 ITR 741** के मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया है कि राजकोषीय विधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय न्यायालयों को खंडों के तात्कालिक अर्थ के प्रावधानों में न तो शब्द जोड़ना चाहिए और न ही शब्दों को घटाना चाहिए। यहाँ यह उल्लिखित किया जा सकता है कि व्याख्या की प्रत्येक प्रणाली में राजकोषीय विधानों की व्याख्या का सबसे प्रमुख सिद्धांत सख्त व्याख्या का नियम है जो यह प्रदान करता है कि जहां विधान के शब्द निरपेक्ष रूप से स्पष्ट और अस्पष्ट हों, तो शाब्दिक नियम के अतिरिक्त व्याख्या के सिद्धांतों का सहारा नहीं लिया जा सकता।

26. तदनुसार, ऐसे विधान की व्याख्या करते समय, न्यायसंगत विचार लागू नहीं किए जा सकते हैं। कर अधिनियम की उसमें स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई बात के अनुसार व्याख्या की जानी चाहिए। ऐसे विधान की व्याख्या करते समय और कर का भुगतान करने का दायित्व निर्धारित करते समय, प्रावधानों का सख्ती से माना जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, कर अधिनियम की व्याख्या करते समय शाब्दिक निर्माण के नियम को लागू किया जाना चाहिए। इसकी व्याख्या शब्दों के प्राकृतिक निर्माण के संदर्भ में की जानी चाहिए। जो स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, उसे निहित करने का कोई औचित्य नहीं है। स्टाम्प ड्यूटी आरोपित

करने का निर्णय लेते समय न्यायसंगत सिद्धांतों को लागू करने का कोई औचित्य नहीं है। वर्तमान मामले का निर्णय न्यायसम्यता के आधार पर नहीं किया जा सकता है और इस न्यायालय का विचार है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के प्रावधान उन लिखतों पर स्टाम्प लगाने का प्रावधान नहीं करते हैं जिनमें पूर्व में 1989 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत राज्य सरकार के वैध अधिसूचना द्वारा रियायत प्रदान की गई थी। तदनुसार, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और मनमाना है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

27. उपरोक्त के आलोक में, आक्षेपित आदेश दिनांक 26.11.2012 अवैध और मनमाना है और, इसलिए, अपास्त किया जाता है। तदनुसार रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 528

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 1002134 वर्ष 2013

मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

पी.सी. मिश्रा, सचिन गर्ग

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

3. सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड,  
(1969) 55 आईटीआर 741 (एससी)**अभिनिर्धारित हुआ:**

सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क देयता का आकलन दस्तावेज़ के निष्पादन के दिनांक के संदर्भ में किया जाना चाहिए। जहाँ पंजीकरण के समय लागू किसी शासकीय अधिसूचना के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क से वैध छूट प्रदान की गई थी, वहाँ बाद में नीतिगत परिवर्तनों के कारण पूर्वव्यापी रूप से देयता नहीं लगाई जा सकती। विहित प्राधिकारी ने निष्पादन के वर्षों बाद, केवल याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तावित औद्योगिक इकाई स्थापित करने में विफलता के आधार पर, धारा 47-ए को लागू करने में क्षेत्राधिकार के बिना कार्य किया। वसूली केवल बाद की नीति में प्रदान की गई व्यवस्था (जैसे, बैंक गारंटी) के माध्यम से ही की जा सकती है, न कि पहले से छूट प्राप्त स्टाम्प शुल्क का पुनर्मूल्यांकन करके।

**रिट याचिका स्वीकृत।****चर्चा की गई वाद विधि:**

1. शांति भूषण (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489

2. स्वीडिश मैच एबी बनाम सेबी, (2004) 11 एससीसी 641

**प्रमुख कानूनी प्रतिपादनाएं:**

• भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 9 सरकार को स्टाम्प शुल्क से छूट देने का अधिकार देती है, जो तब तक बाध्यकारी है जब तक कि इसे विशेष रूप से रद्द न कर दिया जाए।

• बाद में नीतिगत स्पष्टीकरण के आधार पर छूट प्राप्त लेनदेन से स्टाम्प शुल्क वसूलने के लिए धारा 47-ए को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता।

• राजकोषीय कानूनों की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए - जब तक स्पष्ट रूप से कानून नहीं बनाया जाता, तब तक न्यायसंगत विचारों या पूर्वव्यापी अधिरोपण की कोई गुंजाइश नहीं है।

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन गर्ग और प्रतिवादियों के लिये विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका में भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (जिसे आगे '1899 का अधिनियम' कहा जाएगा) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी/सहायक आयुक्त (स्टाम्प),

रायबरेली के दिनांक 26.11.2012 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा 20.06.2006 को निष्पादित विक्रय-पत्र पर देय स्टाम्प-शुल्क को स्टाम्प की कमी के रूप में निर्धारित किया है और इसके द्वारा याचिकाकर्ता को 12,14,940.00 रुपये की राशि के साथ 13,580.00 रुपये का जुर्माना और दिनांक 20.06.2006 से 1.5% प्रति माह ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या, एक बार 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत जारी छूट की अधिसूचना के आधार पर स्टाम्प शुल्क से छूट दे दी गई है और विलेख पंजीकृत हो गया है, तो क्या सरकारी नीति में अनुवर्ती परिवर्तन करके धारा 47-ए के प्रावधान को लागू किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति को संपत्ति के बाजार मूल्य पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने की आवश्यकता हो?

4. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के माध्यम से भारत सरकार ने 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देश में ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क की स्थापना के लिए एक योजना शुरू की थी, जिसका उद्देश्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उक्त नीति को अपनाया और 19.01.2005 को एक अधिसूचना पारित की थी, जिसके अंतर्गत उन्होंने सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी व्यवसाय प्रक्रिया आउटसोर्सिंग

इकाई, कॉल सेंटर, कृषि प्रसंस्करण इकाई आदि की स्थापना के लिए भूमि की खरीद के संबंध में स्टाम्प शुल्क से छूट के साथ-साथ पंजीकरण शुल्क से छूट देने का निर्णय लिया था, जिन्हें ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क नीति का लाभ उठाकर स्थापित किया जा रहा था।

5. याचिकाकर्ता ने एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क की स्थापना में रुचि होने के कारण, महानिरीक्षक (पंजीकरण), उत्तर प्रदेश के समक्ष उक्त भूमि की खरीद के लिए स्टाम्प-शुल्क और पंजीकरण शुल्क से छूट मांगते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के आवेदन पर विधिवत कार्रवाई की गई और महाप्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, रायबरेली ने दिनांक 18.04.2006 के अपने पत्र के माध्यम से उप-निबंधक, महाराजगंज, रायबरेली को याचिकाकर्ता द्वारा एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क की स्थापना के लिए खरीदी गई भूमि के संबंध में स्टाम्प-शुल्क से छूट प्रदान करने का निर्देश दिया।

6. याचिकाकर्ता को दी गई स्टाम्प शुल्क से उपरोक्त छूट के अनुसरण में, दिनांक 20.06.2006 को विक्रय विलेख पंजीकृत किया गया।

7. विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद याचिकाकर्ता ने कृषि आधारित उद्योग की स्थापना के लिए उक्त भूमि का उपयोग नहीं किया, जिसके लिए उसे रियायतें दी गई थीं। कलेक्टर द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47ए के अंतर्गत कार्यवाही इस आधार पर शुरू की गई कि याचिकाकर्ता

औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने में विफल रहा है। स्टाम्प शुल्क से छूट राज्य सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी, और याचिकाकर्ता द्वारा अपनी प्रतिबद्धता का पालन नहीं किये जाने के कारण वह स्टाम्प शुल्क की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे उक्त विक्रय विलेख के पंजीकरण पर लगाया जाने वाला था।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने बाद में दिनांक 21.08.2009 को एक सरकारी आदेश जारी किया है जहां लाभ प्राप्त करने के लिए नए खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना से संबंधित योजना के कार्यान्वयन में कुछ नई शर्तों को शामिल किया गया है। आवेदकों को अब स्टाम्प शुल्क के बराबर राशि की बैंक गारंटी या सावधि जमा देनी होगी, जो कि, यदि आवेदकों को उक्त नीति के अन्तर्गत छूट का लाभ नहीं दिया गया होता, तो देय होती। आवेदकों से बैंक गारंटी या सावधि जमा देने की अपेक्षा करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आवेदक भूमि क्रय करने के पश्चात औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए आगे बढ़ें, अन्यथा उक्त बैंक गारंटी या सावधि जमा को भुनाया जा सकेगा। नीति में उक्त परिवर्तन से यह सुनिश्चित हो गया है कि आवेदक भूमि के पंजीकरण के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा दी गई स्टाम्प शुल्क में रियायत का लाभ उठाने के पश्चात औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए आगे बढ़ेंगे।

9. उक्त शासनादेश पूर्व शासनादेश दिनांक 19.01.2005 के स्पष्टीकरण के रूप में है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नए उद्योग स्थापित करने के लिए नीति का लाभ उठाने के इच्छुक संभावित व्यक्तियों के चयन के बाद, उन्हें राज्य सरकार द्वारा विभिन्न लाभ और रियायतें दी गईं, लेकिन बाद में कई आवेदकों ने जिन्होंने गहरी रुचि दिखाई थी और यहां तक कि भूमि भी खरीद ली थी, राज्य सरकार की नीति का फायदा उठाते हुए औद्योगिक उपक्रम की स्थापना कभी नहीं की, जिससे सरकार द्वारा सम्पूर्ण नीति पर पुनः विचार करना आवश्यक हो गया और फलस्वरूप दिनांक 21.08.2009 का शासनादेश पारित किया गया। उक्त शासनादेश में यह व्यवस्था की गई कि जब भी ऐसा मामला राज्य सरकार के समक्ष आए, जहां कोई व्यक्ति एग्री फूड पार्क/मेगा फूड पार्क आदि की स्थापना के लिए भारत सरकार के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य की नीति का लाभ लेना चाहता हो, तो उद्योग विभाग द्वारा उक्त आवेदन की विधिवत जांच की जाएगी और ऐसे आवेदकों को कार्य निष्पादन गारंटी देने के लिए भी निर्देशित किया जाएगा, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए लाभों को प्राप्त करने के अतिरिक्त वे उत्तर प्रदेश राज्य में अपनी इकाइयां भी क्रियान्वित और स्थापित करेंगे। यह भी प्रावधान किया गया कि जहां भी स्टाम्प शुल्क में छूट दी गई है, वहां उसी राशि के लिए बैंक गारंटी भी प्राप्त की जाएगी और यदि नीति के नियम और शर्तों का उल्लंघन होता है, तो राज्य सरकार उक्त बैंक गारंटी को का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होगी।

10. सरकार की नीति में परिवर्तन, एक नए उपक्रम की स्थापना को सुनिश्चित करने के लिए लाया गया था और यदि भूमि की खरीद के पश्चात् वे स्थापित नहीं होते हैं, तो राज्य सरकार नए उद्योग की स्थापना के लिए भावी आवेदक द्वारा उपलब्ध कराई गई सावधि जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

11. उपरोक्त सरकारी आदेशों के अनुपालन में सहायक आयुक्त (स्टाम्प), रायबरेली द्वारा स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के अन्तर्गत याचिकाकर्ता को दिनांक 20.06.2006 को नोटिस भेजा गया, जिसमें उसे यह बताने का निर्देश दिया गया कि विक्रय-पत्र के पंजीकरण के संबंध में स्टाम्प शुल्क में कमी की वसूली उससे क्यों न की जाए। याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का विधिवत जवाब दिया तथा अपनी आपत्तियां दर्ज कराईं। उसने कहा कि उक्त विक्रय-विलेख राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2006 के पत्र के अनुसार दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अनुसरण में दी गई छूट के आधार पर पंजीकृत किया गया था।

12. उनके द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता को दी गई स्टाम्प-शुल्क की छूट में कोई दोष नहीं है, क्योंकि अनुवर्ती अधिसूचना के आधार पर न ही दिनांक 19.01.2005 के प्रारंभिक अधिसूचना को निरस्त किया गया है या वापस लिया गया है और न ही स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई शर्त मौजूद हैं और, परिणामस्वरूप, आदेश, जैसा कि कारण बताओ नोटिस में

पारित किया जाना प्रस्तावित है, पारित नहीं किया जा सकता।

13. सहायक आयुक्त (स्टाम्प) ने याची द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विधिवत् विचार किया तथा उन्हें अस्वीकार कर दिया तथा दिनांक 26.11.2012 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची को भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार किये गए मूल्यांकन के बराबर धनराशि जमा करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश में कहा गया है कि याची को उक्त भूमि सरकार की नीति के अंतर्गत दी गई थी, जिसके अंतर्गत याची को नया उपक्रम स्थापित करना था तथा केवल ऐसे उपक्रमों को स्टाम्प शुल्क में छूट का लाभ दिया गया था, जो राज्य सरकार की नीति के अंतर्गत नया उद्योग स्थापित करने के लिए सहमत हुए थे। याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के निर्देशों का पालन नहीं किया और बार-बार पत्र लिखने के बावजूद उसके द्वारा कोई औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की गई और परिणामस्वरूप आक्षेपित आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को पूरा स्टाम्प शुल्क अदा करने का निर्देश दिया गया, जिसका भुगतान करने के लिए वह उत्तरदायी था मानो कि उसे छूट नहीं दी गई थी।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है और अधिकार क्षेत्र से बाहर है क्योंकि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत अपनी शक्तियों के प्रयोग से ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता था। आगे प्रस्तुत किया गया है कि दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान नियम

और शर्तें और प्रावधान ही एकमात्र प्रासंगिक कारक हैं, जिन्हें विलेख पर स्टांप-शुल्क उदगृहीत करते समय ध्यान में रखा जा सकता था। उक्त विलेख के निष्पादन के बाद होने वाले परिवर्तनों और विचारों को 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश पारित करते समय ध्यान में नहीं रखा जा सकता है और इसलिए यह आदेश अवैध है और अपास्त किये जाने योग्य है।

15. वर्तमान मामले में यह कहा गया है कि जिस तिथि, यानी 20.06.2006 को, विलेख पंजीकृत किया गया था, सरकार की दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में छूट के लिए एक वैध आदेश पारित था। यह कहा गया है कि न तो याचिकाकर्ता को दी गई छूट, और न ही राज्य सरकार की दिनांक 19.01.2005 की नीति को रद्द किया गया है और, परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है। वह आगे कहते हैं कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए को पढ़ने मात्र से यह संकेत मिलेगा कि स्टाम्प शुल्क का निर्धारण केवल उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान प्रावधानों के संदर्भ में होना चाहिए और यह भी कि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क में कोई कमी नहीं थी, क्योंकि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के मामले में स्टाम्प शुल्क में छूट दी थी और, परिणामस्वरूप, भले ही बाद में सरकारी नीति में कोई बदलाव हो, लेकिन इसका विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय याचिकाकर्ता

द्वारा भुगतान किए गए शुल्क पर कोई असर या प्रभाव नहीं होगा।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने एलआर के माध्यम से शांति भूषण (डी) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें कहा गया है कि पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर सही बाजार मूल्य का पता लगाना होगा। यह कहा गया है कि उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता के पास वैध छूट पत्र था, जिसे प्रतिवादियों द्वारा विधिवत मान्य और स्वीकार किया गया और परिणामस्वरूप उसमें कोई बदलाव स्वीकार्य नहीं है और फलस्वरूप आक्षेपित आदेश का विरोध किया। अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि अनुवर्ती सरकारी आदेश का अवलोकन यह भी इंगित करेगा कि नई इकाई की स्थापना के लिए सरकार की नीति का लाभ लेने वाले व्यक्ति द्वारा देय स्टाम्प-शुल्क के बराबर राशि की वसूली के लिए प्रावधान किया गया है। अनुवर्ती नीति में बैंक गारंटी को सावधि जमा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रावधान है और यदि ऐसा व्यक्ति नीति की शर्तों को पूरा नहीं करता है और नई इकाई स्थापित नहीं करता है, तो सरकार बैंक गारंटी को लागू करने और सावधि जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र थी, ताकि वे खुद को इस तरह से पुनर्स्थापित कर सकें जैसे कि स्टाम्प शुल्क वास्तव में चुकाया गया हो। यहां तक कि 21.08.2009 या 22.11.2007 के बाद की नीतियों और अधिसूचनाओं में भी यह प्रावधान

नहीं किया गया है कि ऐसे विलेख के निष्पादन पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क की कमी को वसूलने के लिए भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के प्रावधानों का सहारा लिया जा सके।

17. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाया है और उक्त भूमि का पंजीकरण करते समय स्टाम्प शुल्क से छूट प्राप्त की है, जिसका उद्देश्य एक नई इकाई की स्थापना करना था। याचिकाकर्ता ने खुद राज्य सरकार की नीति का उल्लंघन किया है और बार-बार याद दिलाने के बावजूद इकाई स्थापित नहीं की है और इसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार के लिए उसे दिए गए लाभ को वापस लेने का खुला विकल्प था और इसलिए उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

18. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेख का अवलोकन किया है। दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जो नीति उत्तर प्रदेश राज्य में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई थी उसके अंतर्गत ऐसे सभी व्यक्ति जो खाद्य प्रसंस्करण आदि के संबंध में कृषि/खाद्य से संबंधित व्यवसाय स्थापित करना चाहते थे, उन्हें स्टाम्प शुल्क से छूट का लाभ दिया गया था ताकि वे कम लागत पर भूमि खरीद सकें। याचिकाकर्ता ने भी राज्य सरकार की नीति का लाभ लेने के लिए आवेदन किया था तथा उसके आवेदन की जांच करने तथा उसे उचित पाए जाने के पश्चात दिनांक 28.03.2006 के

आदेश के माध्यम से स्टाम्प शुल्क से छूट प्रदान की गई थी। लगभग छह वर्ष बीत जाने के बाद राज्य सरकार को यह एहसास हुआ कि याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता पूरी नहीं की है और औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की है, परिणामस्वरूप, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और याचिकाकर्ता को 01.06.2012 को एक नोटिस जारी किया गया, जिसमें उसे दिनांक 20.06.2006 को उसके द्वारा निष्पादित विक्रय-पत्र के संबंध में स्टाम्प शुल्क के बाजार मूल्य का भुगतान करने के लिए कहा गया।

19. याचिकाकर्ता ने वर्तमान मामले के तथ्यों में 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने पर ही सवाल उठाया है। वर्तमान याचिका में उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह देखा गया है कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अनुसार निर्धारित प्राधिकारी को यह शक्ति दी गई है कि वह उक्त दस्तावेज में निर्धारित संपत्ति के बाजार मूल्य पर पूर्ण स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए दस्तावेज निष्पादित करने वाले व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है। पंजीकरण के लिए उक्त दस्तावेज की प्रस्तुति के तुरंत बाद यह प्रक्रिया की जा सकती है। प्रतिवादियों का यह मामला नहीं है कि उक्त विलेख के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता ने पर्याप्त स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया था। यह स्वीकार किया जाता है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 9 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य

सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार याचिकाकर्ता को स्टाम्प शुल्क के भुगतान से छूट दी गई थी, जहां सरकार को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह अपने प्रशासनाधीन सम्पूर्ण क्षेत्र या उसके किसी भाग में किन्हीं विलेखों या किसी विशेष वर्ग के विलेखों, या उस वर्ग में आने वाले किन्हीं विलेखों, या ऐसे विलेखों को जो किसी वर्ग विशेष के व्यक्तियों द्वारा, या उनके पक्ष में या ऐसे वर्ग के किन्हीं सदस्यों द्वारा, या उनके पक्ष में निष्पादित किये गये हों, पर प्रभार्य शुल्क को पूर्वगामी या अनुगामी प्रभाव से घटा या माफ कर सकती है। तदनुसार, 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अनुसार स्टाम्प शुल्क को कम करने या हटाने की शक्ति राज्य सरकार के पास निहित है। राज्य सरकार ने दिनांक 19.01.2005 को छूट की अधिसूचना जारी करते समय 1899 के अधिनियम की धारा 9 के प्रावधान को लागू किया था।

20. यह स्पष्ट है कि धारा 9-ए के अंतर्गत राज्य सरकार की शक्ति केवल स्टाम्प शुल्क को "कम करने या माफ करने" के संबंध में है, जो तदनुसार तब किया गया था जब इसने दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के माध्यम से स्टाम्प शुल्क को कम करने और छूट देने के अपने इरादे अधिसूचित किए थे। ऐसा कोई अन्य आदेश नहीं है जिसे याचिकाकर्ता या प्रतिवादियों द्वारा राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में स्थापित इकाइयों पर स्टाम्प शुल्क की छूट को रद्द, निरस्त या संशोधित करने के लिए अभिलेख पर लाया गया हो।

21. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि राज्य सरकार ने दिनांक 28/03/2006 को एक आदेश जारी किया था जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में औद्योगिक इकाई स्थापित करने के मामले में स्टाम्प-शुल्क उद्ग्रहण से छूट दी गई थी, याचिकाकर्ता द्वारा पंजीकरण की तिथि पर भुगतान की गई स्टाम्प शुल्क में कोई दोष या कमी नहीं थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक मामलों में माना है कि दस्तावेज पर देय स्टाम्प शुल्क निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक तिथि निष्पादन की तिथि है। वर्तमान मामले में विक्रय विलेख दिनांक 20/06/2006 को निष्पादित किया गया था और राज्य सरकार द्वारा पारित एक वैध छूट का आदेश अस्तित्व में था। एलआर के माध्यम से शांति भूषण (डी) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है:-

*"23. इसलिए, जब एक विक्रय विलेख पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर दस्तावेज की विषय वस्तु से सम्बंधित संपत्ति का सही बाजार मूल्य सुनिश्चित करना चाहिए। स्टाम्प शुल्क ऐसे बाजार मूल्य के आधार पर देय होता है, न कि दस्तावेज में उल्लिखित प्रतिफल पर। यदि उल्लिखित प्रतिफल बाजार मूल्य से अधिक है, तो स्टाम्प शुल्क दिखाए गए प्रतिफल पर देय होगा। इसके अतिरिक्त, विक्रय के लिए समझौते में उल्लिखित बाजार मूल्य या समझौते की तिथि को प्रचलित बाजार मूल्य या*



जिस तिथि को सौदा हुआ था उस दिन प्रचलित बाजार मूल्य, स्टॉप शुल्क तय करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। प्रासंगिक बाजार मूल्य वह है जो हस्तांतरण के निष्पादन की तिथि को प्रचलित है। इसलिए, हमें इस बात पर कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि को विक्रय विलेख संपत्ति के बाजार मूल्य पर गणना की गई स्टॉप शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य थे।"

22. उपरोक्त तथ्यों और पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करते हुए, मैं याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्क के साथ पूर्णतयः सहमत हूँ कि धारा 47-ए के अंतर्गत की गई शक्ति का ऐसा प्रयोग जैसा की वर्तमान मामले में किया गया है, याचिकाकर्ता के विरुद्ध नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसके पंजीकरण की तिथियों पर विलेख पर लगाए जाने वाले स्टॉप-शुल्क के संबंध में कोई दोष नहीं था। धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग के लिए विचार की जाने वाली प्रासंगिक तिथि दस्तावेज के निष्पादन की तिथि है। प्रतिवादियों ने विक्रय विलेख पर देय स्टाम्प-शुल्क की छूट में कोई कमी भी प्रदर्शित नहीं की है, जो दिनांक 20.06.2006 को पंजीकृत किया गया था। प्रतिवादियों के अनुसार भी, कार्रवाई का कारण दिनांक 20.06.2006 के बाद ही उत्पन्न हुआ, जब काफी समय बीत जाने के बाद भी याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में इकाई की स्थापना नहीं की।

23. राज्य सरकार ने जब ऐसी स्थिति का सामना किया कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग नीति का लाभ लेने वाले इच्छुक उद्यमियों ने भूमि खरीदी है, लेकिन बाद में उद्योग स्थापित करने में विफल रहे, तो उसने दिनांक 21.08.2009 और दिनांक 12.11.2007 की अधिसूचना के माध्यम से स्पष्टीकरण जारी किया और नीति का लाभ लेने वाले व्यक्तियों द्वारा नए उद्योग स्थापित करने के लिए सख्त दिशा-निर्देश प्रस्तावित किए। स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से भावी प्रकृति का है, क्योंकि यह उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई के बारे में मौन है जिसने पहले ही छूट की अधिसूचना का लाभ उठाया है, लेकिन औद्योगिक इकाई स्थापित करने में विफल रहा है।

24. इस मामले में प्रासंगिक तथ्य यह है, जैसा कि राज्य सरकार ने अपनी अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और दिनांक 12.11.2007 में पहले ही उल्लेख किया है, जिसमें यह प्रावधान है कि यदि ऐसे व्यक्तियों ने सावधि जमा या बैंक गारंटी जमा की है, तो राज्य सरकार उसे भुनाने के लिए स्वतंत्र है। हमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिसके अंतर्गत स्टाम्प शुल्क, जो वास्तव में दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना द्वारा लगाया गया, लेकिन वैध छूट-अधिसूचना द्वारा छूट दी गई, बाद में वसूल किया जा सकता है। शक्ति का प्रयोग जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है, स्पष्ट रूप से अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ-साथ खुद प्रतिवादियों द्वारा जारी अधिसूचना के विरुद्ध है।

25. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1989 एक राजकोषीय कानून होने के कारण, इसके प्रावधानों की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए। **स्वीडिश नैच एबी बनाम सेबी, 2004 (11) एससीसी 641 और सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 आईटीआर 741** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि राजकोषीय कानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय न्यायालयों को धाराओं के तात्कालिक अर्थ के लिए प्रावधानों में कोई शब्द न तो जोड़ना चाहिए और न ही घटाना चाहिए। यह उल्लेख किया जा सकता है कि व्याख्या की प्रत्येक प्रणाली में राजकोषीय कानूनों की व्याख्या का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत सख्त व्याख्या का नियम है जो यह प्रदान करता है कि जहाँ कानून के शब्द बिल्कुल स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, वहाँ शाब्दिक नियम के अलावा व्याख्या के सिद्धांतों का आश्रय नहीं लिया जा सकता है।

26. तदनुसार, ऐसे कानून की व्याख्या करते समय, साम्यापूर्ण विचारणाएँ लागू नहीं की जा सकती हैं। कर लगाने वाले कानून की व्याख्या उसमें स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई बातों के अनुसार की जानी चाहिए। ऐसे कानून की व्याख्या करते समय और कर का भुगतान करने की देयता का निर्धारण करते समय, प्रावधानों की सख्ती से व्याख्या किये जाने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में, कर लगाने वाले कानून की व्याख्या करते समय शाब्दिक निर्माण के नियम को लागू किया जाना चाहिए। इसकी व्याख्या उपयोग किए गए शब्दों के प्राकृतिक निर्माण के संदर्भ में की जानी चाहिए।

ऐसा कुछ भी निहित करने की कोई गुंजाइश नहीं है जो स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है। स्टाम्प शुल्क के उद्ग्रहण का फैसला करते समय साम्यापूर्ण सिद्धांतों के क्रियान्वयन की कोई गुंजाइश नहीं है। वर्तमान मामले का निर्णय साम्या के आधार पर नहीं किया जा सकता है तथा न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के प्रावधानों में उन विलेखों पर स्टाम्प के उद्ग्रहण का प्रावधान नहीं है, जिन्हें राज्य सरकार की वैध अधिसूचना द्वारा 1989 के अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत पूर्व में छूट दी जा चुकी है। तदनुसार, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैधानिक तथा मनमाना है तथा अपास्त किये जाने योग्य है।

27. उपरोक्त के आलोक में, दिनांक 26.11.2012 का आक्षेपित आदेश अवैधानिक तथा मनमाना है तथा, फलस्वरूप, अपास्त किया जाता है। तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकृत** की जाती है।

-----

**(2023) 9 ILRA 535**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 24.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर**

**रिट-सी संख्या 1002142 वर्ष 2013**

**मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**

**...प्रतिवादीगण**

**याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:**

पी.सी. मिश्रा, सचिन गर्ग

2. स्वीडिश मैच एबी बनाम सेबी, (2004) 11

एससीसी 641

**प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:**

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

3. सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड,

55 आईटीआर 741

**अभिनिर्धारित हुआ-**

जहाँ याचिकाकर्ता ने 10वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत एग्रो फूड पार्क स्थापित करने के लिए ज़मीन खरीदी थी और उसे 19.01.2005 की शासकीय अधिसूचना के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क से छूट दी गई थी, वहीं औद्योगिक इकाई स्थापित करने में बाद में हुई विफलता ने प्राधिकारियों को भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए लागू करने का अधिकार नहीं दिया। अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत दी गई छूट कभी रद्द नहीं की गई और 20.06.2006 के विक्रय विलेख के निष्पादन के समय स्टाम्प शुल्क से विधिपूर्वक छूट दी गई थी। 21.08.2009 और 12.11.2007 के शासनादेशों के माध्यम से किए गए बाद के नीतिगत परिवर्तन भावी थे और धारा 47-ए के माध्यम से स्टाम्प शुल्क की पूर्वव्यापी वसूली को अधिकृत नहीं करते थे। स्टाम्प शुल्क और जुर्माने में कमी की माँग करने वाले आक्षेपित आदेश को मनमाना, क्षेत्राधिकार के बिना और रद्द किए जाने योग्य अभिनिर्धारित किया गया।

**चर्चा की गई वाद विधि:**

1. शांति भूषण (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन गर्ग तथा प्रतिवादी की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को भी सुना, और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका में निर्धारित प्राधिकारी/सहायक आयुक्त (स्टांप), रायबरेली द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (इसके पश्चात '1899 का अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 26.11.2012 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा धारा 47-ए के अंतर्गत दिए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए, उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा 20.06.2006 को निष्पादित विक्रय-पत्र पर देय स्टाम्प-शुल्क को स्टाम्प में कमी के रूप में निर्धारित किया है और इस प्रकार याचिकाकर्ता को रु. 94,940.00 के साथ-साथ रु. 43,980.00 का जुर्माना और 20.06.2006 से प्रति माह 1.5% की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया प्रश्न यह है कि जब 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत जारी छूट की अधिसूचना के आधार पर, स्टाम्प इयूटी में

छूट दी गई है और दस्तावेज़ पंजीकृत हो गया है, तो क्या सरकार की नीति में बाद में हुए परिवर्तन से धारा 47-ए का प्रावधान लागू किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति को संपत्ति के बाजार मूल्य पर स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान करने की आवश्यकता होगी?

4. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि भारत सरकार ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के माध्यम से देश में 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क की स्थापना हेतु एक योजना शुरू की थी, जिसका उद्देश्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उक्त नीति को अपनाया और एक अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 पारित किया, जिसके अंतर्गत उन्होंने सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी व्यापार प्रक्रिया आउटसोर्सिंग इकाई, कॉल सेंटर, कृषि प्रसंस्करण इकाई आदि की स्थापना हेतु भूमि क्रय के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी और पंजीकरण शुल्क से छूट प्रदान करने का निर्णय लिया, जो ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क नीति का लाभ उठाकर स्थापित की जा रही थीं।

5. याचिकाकर्ता ने, एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क स्थापित करने में रुचि रखते हुए, महानिरीक्षक (पंजीकरण), उत्तर प्रदेश के समक्ष उक्त भूमि के क्रय हेतु स्टाम्प ड्यूटी और पंजीकरण शुल्क से छूट मांगते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के आवेदन पर विधिवत कार्यवाही की गई और महाप्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, रायबरेली ने अपने पत्र

दिनांक 18.04.2006 के माध्यम से उप निबंधक, महाराजगंज, रायबरेली को एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क स्थापित करने हेतु याचिकाकर्ता द्वारा क्रय की गई भूमि क्षेत्रों के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी से छूट प्रदान करने का निर्देश दिया।

6. याचिकाकर्ता को दी गई उक्त स्टाम्प ड्यूटी छूट के अनुसरण में, दिनांक 20.06.2006 को विक्रय विलेख पंजीकृत किया गया था।

7. विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात, याचिकाकर्ता ने उक्त भूमि का उपयोग कृषि-आधारित उद्योग स्थापित करने हेतु नहीं किया, जिसके लिए उसे छूट प्रदान की गई थी। कलेक्टर ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की, क्योंकि याचिकाकर्ता औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने में विफल रहा था। स्टाम्प ड्यूटी में छूट राज्य सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी, और याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता का पालन नहीं किया था, इसलिए वह उक्त विक्रय विलेख के पंजीकरण पर लगाए जाने वाले स्टाम्प ड्यूटी की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने बाद में एक शासनादेश दिनांक 21.08.2009 जारी किया है, जिसमें नए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग स्थापित करने से संबंधित योजना के कार्यान्वयन हेतु कुछ नई शर्तें शामिल की गई हैं, जिसमें लाभ प्राप्त करने के लिए आवेदकों को अब उस स्टाम्प ड्यूटी के बराबर राशि की

एक बैंक गारंटी या सावधि जमा देना होगा जो उस स्थिति में देय होता यदि आवेदकों को उक्त नीति के अंतर्गत छूट का लाभ नहीं दिया जाता। आवेदकों को बैंक गारंटी या सावधि जमा देने की आवश्यकता का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आवेदक भूमि क्रय करने के पश्चात औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए आगे बढ़ें, अन्यथा उक्त बैंक गारंटी या सावधि जमा को भुनाया जा सकता है। नीति में यह परिवर्तन सुनिश्चित करता है कि राज्य सरकार द्वारा भूमि के पंजीकरण के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी में रियायत प्राप्त करने के पश्चात आवेदक औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए आगे बढ़ें।

9. उक्त शासनादेश, दिनांक 19.01.2005 के पूर्व शासनादेश के एक स्पष्टीकरण के रूप में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नए उद्योग स्थापित करने के लिए नीति का लाभ उठाने की इच्छा रखने वाले संभावित व्यक्तियों के चयन के पश्चात, राज्य सरकार द्वारा उन्हें विभिन्न लाभ और रियायतें प्रदान की गई थीं, किन्तु बाद में कई आवेदक जिन्होंने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाते हुए गहरी रुचि दिखाई थी और यहां तक कि भूमि भी क्रय की थी, उन्होंने कभी भी औद्योगिक उपक्रम स्थापित नहीं किए, जिससे सरकार द्वारा पूरी नीति पर पुनर्विचार करने और शासनादेश दिनांक 21.08.2009 जारी करने की आवश्यकता हुई। उक्त शासनादेश में, यह प्रावधान किया गया था कि जब भी ऐसा कोई मामला राज्य सरकार के समक्ष आता है जहां कोई व्यक्ति एग्री फूड पार्क/मेगा फूड पार्क आदि स्थापित करने हेतु भारत सरकार के

साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य की नीति का लाभ उठाना चाहता है, तो उक्त आवेदन का उद्योग विभाग द्वारा विधिवत परीक्षण किया जाएगा और ऐसे आवेदकों को यह भी निर्देश दिया जाएगा कि वे प्रदर्शन-गारंटी दें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए लाभों के अलावा, वे उत्तर प्रदेश राज्य में अपनी इकाइयाँ भी लागू और स्थापित करें। यह भी प्रावधान किया गया था कि जहां भी स्टॉप-ड्यूटी में छूट दी जाती है, उसी राशि के लिए एक बैंक-गारंटी भी प्राप्त की जाएगी और यदि नीति के नियमों और शर्तों का कोई उल्लंघन होता है, तो राज्य सरकार उक्त बैंक-गारंटी को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

10. सरकारी नीति में परिवर्तन लाया गया ताकि एक नए उपक्रम की स्थापना सुनिश्चित की जा सके और यदि भूमि क्रय करने के पश्चात भी वे स्थापित नहीं होते हैं, तो राज्य सरकार नए उद्योग स्थापित करने की इच्छा रखने वाले संभावित आवेदक द्वारा उपलब्ध कराए गए निश्चित जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

11. उक्त शासनादेशों के अनुसरण में सहायक आयुक्त (स्टॉप), रायबरेली द्वारा याचिकाकर्ता स्टॉप अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत एक कारण बताओ नोटिस भेजा गया, जिसमें उसे निर्देशित किया गया कि 20.06.2006 को विक्रय-विलेख के पंजीकरण के संबंध में उससे स्टॉप-शुल्क में कमी क्यों नहीं वसूली जाए। याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का विधिवत जवाब दिया और अपना आपत्ति

प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि उक्त विक्रय-विलेख, अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अनुसार राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2006 के पत्र के अनुसार दी गई छूट के आधार पर पंजीकृत किया गया था।

12. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि आवेदक को प्रदान की गई स्टाम्प ड्यूटी की छूट में कोई अनियमितता नहीं है क्योंकि अनुवर्ती अधिसूचना के आधार पर दिनांक 19.01.2005 को जारी प्रारंभिक अधिसूचना को न तो निरस्त किया गया है और न ही वापस लिया गया है और न ही स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई शर्त मौजूद है, और इसलिए, कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित प्रस्तावित आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

13. सहायक आयुक्त (स्टाम्प) ने आवेदक द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विधिवत विचार किया और उन्हें अस्वीकृत कर दिया और आक्षेपित आदेश दिनांक 26.11.2012 के माध्यम से आवेदक को भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार मूल्यांकन के बराबर राशि जमा करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश में यह कहा गया है कि उक्त भूमि आवेदक को सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी जिसमें आवेदक को एक नया उपक्रम स्थापित करना था और केवल ऐसे उपक्रमों को ही स्टाम्प ड्यूटी की छूट का लाभ दिया गया था, जिन्होंने राज्य सरकार की नीति के अनुसार नए उद्योग स्थापित करने पर सहमति दी थी। आवेदक ने राज्य सरकार के निर्देशों का पालन नहीं किया और बार-बार पत्र लिखने के बावजूद उसके

द्वारा कोई औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की गई और परिणामस्वरूप आक्षेपित आदेश के माध्यम से आवेदक को सम्पूर्ण स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान करने का निर्देश दिया गया, जो उस दशा में देय होता यदि छूट न दी गई होती।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है और बिना अधिकार क्षेत्र का है क्योंकि ऐसा आदेश 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित नहीं किया जा सकता था। यह भी तर्क दिया गया है कि दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान नियम, शर्तें और प्रावधान ही एकमात्र प्रासंगिक कारक हैं, जिन्हें दस्तावेज पर स्टाम्प शुल्क लगाते समय ध्यान में लिया जा सकता था। उक्त दस्तावेज के निष्पादन के पश्चात घटित हुए बाद के परिवर्तनों और विचारों को 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश पारित करते समय ध्यान में नहीं लिया जा सकता है और इसलिए आदेश अवैध है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

15. वर्तमान मामले में यह बताया गया है कि दस्तावेज पंजीकृत किए जाने के दिनांक अर्थात् 20.06.2006 को, सरकार की अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में रियायत का एक वैध आदेश पारित था। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को दी गई रियायत अथवा राज्य सरकार की नीति दिनांक 19.01.2005 को निरस्त नहीं किया गया है और परिणामस्वरूप,

आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए का सतही वाचन मात्र यह इंगित करेगा कि स्टॉप-शुल्क का निर्धारण केवल उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान प्रावधानों के संदर्भ में किया जाना है, और साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर भुगतान किए गए स्टॉप-शुल्क में कोई कमी नहीं थी, क्योंकि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के मामले में स्टॉप-शुल्क से रियायत प्रदान की थी, और परिणामस्वरूप, यदि बाद में सरकारी नीति में कोई बदलाव होता है, तो याचिकाकर्ता द्वारा बिक्री-पत्र के निष्पादन के समय भुगतान किए गए शुल्क पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के शांति भूषण (डी) थू एलआर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2023 SCC Online SC 489, के मामले में दिये गए निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें यह कहा गया है कि पंजीकरण प्राधिकरण को दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर सही बाजार मूल्य का पता लगाना होगा। यह कहा गया है कि उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता के पास एक वैध रियायत पत्र था, जिसे प्रतिवादियों द्वारा विधिवत माना और स्वीकार किया गया था और परिणामस्वरूप इसमें कोई बदलाव स्वीकार्य नहीं है और फलस्वरूप आक्षेपित आदेश का विरोध किया गया। अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि बाद के शासनादेश का अवलोकन भी यह इंगित करेगा कि नई इकाई स्थापित

करने के लिए सरकारी नीति का लाभ उठाने वाले व्यक्ति द्वारा देय स्टॉप-शुल्क के समान राशि की वसूली हेतु प्रावधान किया गया है। अनुवर्ती नीति एक बैंक गारंटी के रूप में एक सावधि जमा के प्रस्तुत करने का प्रावधान करती है और यदि ऐसा व्यक्ति नीति की शर्तों को पूरा नहीं करता है और नई इकाई स्थापित नहीं करता है, तो सरकार के लिए बैंक गारंटी का प्रयोग करने और सावधि जमा को भुनाने का मार्ग खुला था ताकि उसकी क्षतिपूर्ति इस प्रकार से की जा सके जैसे कि स्टॉप-शुल्क का वास्तव में भुगतान कर दिया गया हो। यहां तक कि अनुवर्ती नीतियों और अधिसूचनाओं दिनांक 21.08.2009 या 22.11.2007 में यह प्रदान नहीं किया गया है कि ऐसे दस्तावेज के निष्पादन पर भुगतान किए गए घाटे के स्टॉप-शुल्क को वसूल करने के लिए भारतीय स्टॉप अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के प्रावधानों का सहारा लिया जा सकता है।

17. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाया है और उक्त भूमि को पंजीकृत करते समय स्टॉप-शुल्क से रियायत प्राप्त की है, जो एक नई इकाई स्थापित करने के उद्देश्य के लिए थी। याचिकाकर्ता ने स्वयं राज्य सरकार की नीति का उल्लंघन किया है और बार-बार अनुस्मारक के बावजूद कोई इकाई स्थापित नहीं की है और परिणामस्वरूप राज्य सरकार के लिए उसे दी गई रियायत वापस लेना खुला था, और इसलिए, उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

18. मैंने पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है। अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि ऐसे सभी व्यक्ति जो खाद्य प्रसंस्करण आदि के संबंध में कृषि/खाद्य संबंधी व्यवसाय स्थापित करना चाहते थे, को स्टॉप-शुल्क से रियायत का लाभ दिया गया था ताकि कम लागत पर भूमि क्रय हेतु उन्हें सक्षम किया जा सके, यह नीति राज्य उत्तर प्रदेश राज्य में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने हेतु तैयार की गई थी। राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाने के आशय से याचिकाकर्ता ने भी एक आवेदन दिया, और उसके आवेदन की जांच करने और उसे नियमानुकूल पाकर आदेश दिनांक 28.03.2006 के माध्यम से स्टॉप शुल्क से रियायत प्रदान की गई। लगभग छह वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात राज्य सरकार को ज्ञात हुआ कि याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता नहीं पूरी की है और औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की है, परिणामस्वरूप, भारतीय स्टॉप अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और 01.06.2012 को याचिकाकर्ता को एक नोटिस जारी किया गया जिसमें 20.06.2006 को उसके द्वारा निष्पादित बिक्री-पत्र के संबंध में उसे स्टॉप-शुल्क का बाजार मूल्य देने के लिए कहा गया।

19. याचिकाकर्ता ने 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही की शुरुआत पर ही प्रश्न उठाया है। वर्तमान याचिका में उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह देखा गया है कि 1899 के अधिनियम की धारा 47-ए के अनुसार, निर्दिष्ट प्राधिकारी

को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह दस्तावेज़ का निष्पादन करने वाले व्यक्ति से उक्त दस्तावेज़ में निर्धारित संपत्ति के बाजार मूल्य पर पूर्ण स्टॉप-शुल्क का भुगतान करवाए। पंजीकरण के लिए उक्त दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के तुरंत बाद इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। प्रतिवादियों का यह मामला नहीं है कि उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता ने पर्याप्त स्टॉप-शुल्क का भुगतान नहीं किया था। यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा भारतीय स्टॉप अधिनियम 1899 की धारा 9 के अंतर्गत दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी अधिसूचना के अनुसार स्टॉप-शुल्क के भुगतान से रियायत प्रदान की गई थी, जहां सरकार के पास यह शक्ति सुरक्षित है कि वह अपने प्रशासन के अधीन के राज्यक्षेत्रों के सम्पूर्ण या किसी भाग में, एक शुल्क को भविष्यलक्षी या भूतलक्षी प्रभाव से कम कर सकती है या उससे छूट दे सकती है जिससे कोई लिखतें या किसी विशिष्ट वर्ग की लिखतें या ऐसे वर्ग से संबन्ध रखने वाली लिखतों में से कोई लिखत या कोई लिखतें जब ऐसे विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों द्वारा या उनके पक्ष में या ऐसे वर्ग के किन्हीं सदस्यों द्वारा या उनके पक्ष में निष्पादित की जाएँ। तदनुसार 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अनुसार स्टॉप-शुल्क कम या माफ करने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार ने रियायत की अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 जारी करते समय अधिनियम 1899 की धारा 9 के प्रावधान का प्रयोग किया था।



20. यह स्पष्ट है कि धारा 9-ए के अंतर्गत राज्य सरकार की शक्ति केवल "कम या माफ" करने के संबंध में है, जो तदनुसार किया गया था जब उसने अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के माध्यम से स्टांप-शुल्क को कम करने और छूट देने के अपने आशय को अधिसूचित किया। कोई अन्य आदेश जो याचिकाकर्ता या प्रतिवादियों द्वारा लाया गया है, रद्द करने, निरस्त करने या राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में स्थापित इकाइयों पर स्टांप-शुल्क की छूट को संशोधित करने के लिए नहीं है।

21. इस तथ्य पर विचार करने पर कि राज्य सरकार द्वारा जारी आदेश दिनांक 28/03/2006 के माध्यम से याचिकाकर्ता को राज्य सरकार की नीति के अनुसार औद्योगिक इकाई स्थापित करने के मामले में स्टांप शुल्क लगाने से छूट दी गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा अपने पंजीकरण की तिथि को भुगतान किए गए स्टांप शुल्क में कोई दोष या कमी नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने कई मामलों में यह निर्णय दिया है कि किसी दस्तावेज़ पर देय स्टांप शुल्क का निर्धारण करने हेतु प्रासंगिक तिथि उस दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि होती है। वर्तमान मामले में, विक्रय विलेख 20/06/2006 को निष्पादित किया गया था, जिस समय राज्य सरकार द्वारा पारित एक वैध छूट का आदेश लागू था। उच्चतम न्यायालय ने शांति भूषण (डी) थू एलआर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2023 SCC OnLine SC 489 के मामले में यह अवलोकन किया है:-

"23. इसलिए, जब किसी विक्रय विलेख को पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर दस्तावेज़ के विषय में संपत्ति का सही बाजार मूल्य सुनिश्चित करना चाहिए। स्टांप शुल्क इस तरह के बाजार मूल्य के आधार पर देय होता है, न कि दस्तावेज़ में उल्लिखित मूल्य पर। यदि उल्लिखित मूल्य बाजार मूल्य से अधिक है, तो स्टांप शुल्क दिखाए गए मूल्य पर देय होगा। इसके अतिरिक्त, विक्रय विलेख में उल्लिखित बाजार मूल्य या विलेख की तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य या उस तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य जिस दिन सौदा किया गया था, स्टांप शुल्क तय करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। प्रासंगिक बाजार मूल्य वह है जो विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर प्रचलित है। इसलिए, हमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ताओं पर उस स्टांप शुल्क के भुगतान करने का दायित्व था जिसकी गणना विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर की गई थी।"

22. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के उपरोक्त तथ्यों और तर्कों को ध्यान में रखते हुए, मैं याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए इस तर्क में बल पाता हूं कि धारा 47-ए के अंतर्गत वर्तमान मामले में शक्ति का ऐसा प्रयोग, याचिकाकर्ता के विरुद्ध नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसके पंजीकरण की तिथियों पर दस्तावेज़ पर लगाए जाने वाले स्टांप शुल्क के संबंध में कोई दोष नहीं था। धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विचार की जाने वाली प्रासंगिक तिथि दस्तावेज़

के निष्पादन की तिथि है। प्रतिवादियों ने विक्रय विलेख पर देय स्टॉप शुल्क की छूट में भी कोई दोष प्रदर्शित नहीं किया है, जिसे 20.06.2006 को पंजीकृत किया गया था। प्रतिवादियों के अनुसार भी, वादमूल केवल 20.06.2006 के पश्चात ही उत्पन्न हुआ, जब काफी समय व्यतीत हो जाने के पश्चात याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति के अनुसार इकाई स्थापित नहीं की।

23. राज्य सरकार को जब ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जिसमें इच्छुक उद्यमियों ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की नीति का लाभ उठाकर भूमि क्रय कर ली, किन्तु बाद में उद्योग स्थापित करने में विफल रहे, तब उसने अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और 12.11.2007 के माध्यम से एक स्पष्टीकरण जारी किया और उन व्यक्तियों द्वारा नए उद्योग स्थापित करने हेतु सख्त दिशानिर्देश जारी किए, जिन्होंने नीति का लाभ उठाया है। स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से प्रत्याशावादी प्रकृति का है, क्योंकि यह उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई के विषय में मौन है, जिन्होंने पहले से ही रियायत-अधिसूचना का लाभ उठाया है, किन्तु औद्योगिक इकाई स्थापित करने में विफल रहे हैं।

24. इस मामले में प्रासंगिक तथ्य यह है कि जैसा कि राज्य सरकार ने अपने अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और 12.11.2007 में पहले ही प्रदान किया है, जहां यह शर्त आरोपित की गई है कि यदि ऐसे व्यक्तियों ने सावधि जमा या बैंक गारंटी जमा की है, तो यह राज्य सरकार के लिए खुला था कि वह

उसे भुना ले। हमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिसके द्वारा स्टाम्प ड्यूटी, जो वास्तव में अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 द्वारा वसूले जाने योग्य थी, किन्तु जिसमें एक वैध रियायत अधिसूचना द्वारा छूट प्रदान की गई थी, बाद में वसूल की जा सकती है। शक्ति का प्रयोग, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है, स्पष्ट रूप से अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ-साथ प्रतिवादियों द्वारा जारी अधिसूचना के भी बाहर है।

25. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1989, एक राजकोषीय विधान होने के कारण, इसके प्रावधानों की सख्त व्याख्या की जानी चाहिए। *स्वीडिश नैच एबी बनाम सेबी, 2004 (11) SCC 641 और सीआईटी बनाम अजैक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 ITR 741* के मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया है कि राजकोषीय विधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय न्यायालयों को खंडों के तात्कालिक अर्थ के प्रावधानों में न तो शब्द जोड़ना चाहिए और न ही शब्दों को घटाना चाहिए। यहाँ यह उल्लिखित किया जा सकता है कि व्याख्या की प्रत्येक प्रणाली में राजकोषीय विधानों की व्याख्या का सबसे प्रमुख सिद्धांत सख्त व्याख्या का नियम है जो यह प्रदान करता है कि जहां विधान के शब्द निरपेक्ष रूप से स्पष्ट और अस्पष्ट हों, तो शाब्दिक नियम के अतिरिक्त व्याख्या के सिद्धांतों का सहारा नहीं लिया जा सकता।

26. तदनुसार, ऐसे विधान की व्याख्या करते समय, न्यायसंगत विचार लागू नहीं किए जा सकते हैं। कर अधिनियम की उसमें स्पष्ट रूप

से व्यक्त की गई बात के अनुसार व्याख्या की जानी चाहिए। ऐसे विधान की व्याख्या करते समय और कर का भुगतान करने का दायित्व निर्धारित करते समय, प्रावधानों का सख्ती से माना जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, कर अधिनियम की व्याख्या करते समय शाब्दिक निर्माण के नियम को लागू किया जाना चाहिए। इसकी व्याख्या शब्दों के प्राकृतिक निर्माण के संदर्भ में की जानी चाहिए। जो स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, उसे निहित करने का कोई औचित्य नहीं है। स्टाम्प ड्यूटी आरोपित करने का निर्णय लेते समय न्यायसंगत सिद्धांतों को लागू करने का कोई औचित्य नहीं है। वर्तमान मामले का निर्णय न्यायसम्यता के आधार पर नहीं किया जा सकता है और इस न्यायालय का विचार है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के प्रावधान उन लिखतों पर स्टाम्प लगाने का प्रावधान नहीं करते हैं जिनमें पूर्व में 1989 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत राज्य सरकार के वैध अधिसूचना द्वारा रियायत प्रदान की गई थी। तदनुसार, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और मनमाना है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

27. उपरोक्त के आलोक में, आक्षेपित आदेश दिनांक 26.11.2012 अवैध और मनमाना है और, इसलिए, अपास्त किया जाता है। तदनुसार रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 541

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 1002143 वर्ष 2013

मेसर्स अंजलि एक्जिम प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

पी.सी. मिश्रा, सचिन गर्ग

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल कानून - स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - स्टाम्प शुल्क से छूट - याचिकाकर्ता को एगो फूड पार्क स्थापित करने के लिए अधिसूचना दिनांक 19.01.2005 के अंतर्गत छूट प्रदान की गई - तदनुसार 20.06.2006 को विक्रय विलेख पंजीकृत किया गया - कोई औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं हुई - प्राधिकारियों ने नीति के उल्लंघन का संदर्भ देते हुए धारा 47-ए के अंतर्गत वसूली शुरू की -अभिनिर्धारित हुआ: निष्पादन के दिनांक पर छूट वैध - उस समय स्टाम्प शुल्क में कोई कमी नहीं - बाद में नीतिगत परिवर्तनों के आधार पर धारा 47-ए पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं - वसूली कार्रवाई अधिनियम के विरुद्ध - आक्षेपित आदेश निरस्त।

स्टाम्प शुल्क के निर्धारण के लिए प्रासंगिक दिनांक, दस्तावेज के निष्पादन का दिनांक है - बाद के नीतिगत परिवर्तन, अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत जारी वैध अधिसूचना के अंतर्गत

पहले से दी गई छूट को प्रभावित नहीं कर सकते हैं - राजकोषीय कानूनों की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए।

### चर्चा की गई वाद विधि:

1. शांति भूषण (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489

2. स्वीडिश मैच एबी बनाम सेबी, (2004) 11 एससीसी 641

3. सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 आईटीआर 741

### याचिका स्वीकृति

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता हेतु उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन गर्ग और प्रतिवादियों हेतु उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका में भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (जिसे आगे '1899 का अधिनियम' कहा जाएगा) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी/सहायक आयुक्त (स्टाम्प), रायबरेली के दिनांक 26.11.2012 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 20.06.2006 को

निष्पादित विक्रय-विलेख पर देय स्टाम्प-शुल्क को स्टाम्प की कमी के रूप में निर्धारित किया है और इसके द्वारा याचिकाकर्ता को 6,32,220.00 रुपये की राशि के साथ 28,082.00 रुपये का जुर्माना और दिनांक 20.06.2006 से 1.5% प्रति माह ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या जब एक बार 1899 के अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत जारी छूट की अधिसूचना के आधार पर स्टाम्प शुल्क से छूट दे दी गई है और लिखत पंजीकृत हो गया है, तो क्या शासकीय नीति में अनुवर्ती परिवर्तन द्वारा धारा 47-ए के प्रावधान को लागू किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति को संपत्ति के बाजार मूल्य पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने की आवश्यकता हो।

4. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के माध्यम से भारत सरकार ने 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देश में ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क की स्थापना के लिए एक योजना प्रारंभ की थी, जिसका उद्देश्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उपरोक्त नीति को अपनाया और 19.01.2005 को एक अधिसूचना पारित की थी जिसके अंतर्गत उन्होंने सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग इकाई, कॉल सेंटर, कृषि प्रसंस्करण इकाई आदि की स्थापना के लिए भूमि की खरीद के संबंध में स्टाम्प शुल्क से छूट के साथ-साथ पंजीकरण

शुल्क से छूट देने का निर्णय लिया था, जिन्हें ग्रीन फील्ड एगो फूड पार्क नीति का लाभ उठाकर स्थापित किया जा रहा था।

5. याचिकाकर्ता ने एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क की स्थापना में रुचि होने के कारण, महानिरीक्षक (पंजीकरण), उत्तर प्रदेश के समक्ष उक्त भूमि की खरीद के लिए स्टांप-शुल्क और पंजीकरण शुल्क से छूट मांगते हुए एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के प्रार्थनापत्र पर समुचित कार्यवाही की गई और महाप्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, रायबरेली ने दिनांक 18.04.2006 के पत्र द्वारा उप-निबंधक, महाराजगंज, रायबरेली को याचिकाकर्ता द्वारा एगो फूड पार्क/मेगा फूड पार्क की स्थापना के लिए खरीदी गई भूमि के संबंध में स्टांप-शुल्क से छूट प्रदान करने का निर्देश दिया।

6. याचिकाकर्ता को दी गई स्टांप शुल्क से उपरोक्त छूट के अनुसरण में, दिनांक 20.06.2006 को विक्रय विलेख पंजीकृत किया गया।

7. विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात याचिकाकर्ता द्वारा कृषि आधारित उद्योग की स्थापना के लिए उक्त भूमि का प्रयोग नहीं किया गया जिसके लिए उसे रियायतें दी गई थीं। कलेक्टर ने इस आधार पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47ए के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ की कि याचिकाकर्ता औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने में विफल रहा था। स्टाम्प शुल्क से छूट राज्य सरकार की नीति के अनुसार दी गई थी, और

याचिकाकर्ता द्वारा अपनी प्रतिबद्धता का पालन नहीं किये जाने के कारण वह स्टाम्प शुल्क की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था जो उक्त विक्रय विलेख के पंजीकरण पर आरोप्य थी।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि बाद में राज्य सरकार ने दिनांक 21.08.2009 को एक शासनादेश जारी किया जहां लाभ प्राप्त करने के लिए नवीन खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना से संबंधित योजना के क्रियान्वयन हेतु कुछ नवीन शर्तों को सम्मिलित किया गया है, जिसके अनुसार आवेदकों को अब स्टाम्प शुल्क के बराबर राशि की बैंक गारंटी या सावधि जमा देनी होगी, जो उस स्थिति में देय होती जब आवेदकों को उक्त नीति के अन्तर्गत छूट का लाभ नहीं दिया गया होता। आवेदकों से बैंक गारंटी या सावधि जमा प्रस्तुत करने की अपेक्षा करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आवेदक भूमि खरीदने के पश्चात औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए ही कार्रवाई करें, जिसमें विफल रहने पर उक्त बैंक गारंटी या सावधि जमा को भुनाया जा सकता था। नीति में उक्त परिवर्तन से यह सुनिश्चित हो गया कि आवेदकगण भूमि के पंजीकरण के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा दी गई स्टाम्प शुल्क में छूट का लाभ उठाने के बाद औद्योगिक इकाई स्थापित करने की कार्रवाई करेंगे।

9. उक्त शासनादेश पूर्व शासनादेश दिनांक 19.01.2005 के स्पष्टीकरण के रूप में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नवीन उद्योग स्थापित करने के लिए नीति का लाभ उठाने के इच्छुक

संभावित व्यक्तियों के चयन के पश्चात, उन्हें राज्य सरकार द्वारा विभिन्न लाभ और रियायतें दी गईं, लेकिन बाद में कई आवेदकों ने, जिन्होंने गहन रुचि प्रदर्शित की थी और यहां तक कि भूमि भी खरीद ली थी, राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाते हुए औद्योगिक उपक्रम की स्थापना कभी भी नहीं की, जिससे शासन द्वारा सम्पूर्ण नीति पर पुनर्विचार अनिवार्य हो गया और परिणामतः दिनांक 21.08.2009 का शासनादेश पारित किया गया। उक्त शासनादेश में यह प्रावधान किया गया कि जब भी ऐसा मामला राज्य सरकार के समक्ष उपस्थित हो, जहाँ कोई व्यक्ति एग्री फूड पार्क/मेगा फूड पार्क आदि की स्थापना के लिए भारत सरकार के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य की नीति का लाभ लेना चाहता हो, उद्योग विभाग द्वारा उक्त आवेदन का सम्यक परीक्षण किया जाएगा एवं ऐसे आवेदकों को यह सुनिश्चित करने के लिये कार्य निष्पादन गारंटी प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए भी निर्देशित किया जाएगा कि राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए लाभों को प्राप्त करने के अतिरिक्त वे उत्तर प्रदेश राज्य में अपनी इकाइयां भी कार्यान्वित एवं स्थापित करेंगे। यह भी प्रावधान किया गया कि जहाँ भी स्टाम्प शुल्क में छूट दी गई है, वहां उसी राशि के लिए बैंक गारंटी भी प्राप्त की जाएगी और यदि नीति के नियम और शर्तों का कोई उल्लंघन होता है, तो राज्य सरकार उक्त बैंक गारंटी को भुनाने के लिये स्वतंत्र होगी।

10. सरकार की नीति में परिवर्तन, एक नए उपक्रम की स्थापना को सुनिश्चित करने के लिए लाया गया था और यदि भूमि की खरीद

के पश्चात उन्हें स्थापित नहीं किया गया, तब राज्य सरकार नए उद्योग की स्थापना के लिए भावी आवेदक द्वारा उपलब्ध कराई गई सावधि जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र होगी।

11. उपरोक्त शासनादेशों के अनुपालन में सहायक आयुक्त (स्टाम्प), रायबरेली द्वारा स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के अन्तर्गत याचिकाकर्ता को दिनांक 20.06.2006 को नोटिस भेजा गया, जिसमें उसे यह बताने का निर्देश दिया गया कि क्यों न उससे विक्रय-पत्र के पंजीकरण के संबंध में स्टाम्प शुल्क में कमी की वसूली की जाए। याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का समुचित उत्तर दिया तथा अपनी आपत्तियां प्रस्तुत की। उसने कहा कि उक्त विक्रय-विलेख राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2006 के पत्र के अनुसार दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अनुसरण में प्रदान की गई छूट के आधार पर पंजीकृत किया गया था।

12. उनके द्वारा यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता को दी गई स्टाम्प-शुल्क छूट में कोई कमी नहीं है, क्योंकि उत्तरवर्ती अधिसूचना के आधार पर न ही दिनांक 19.01.2005 के प्रारंभिक अधिसूचना को अतिष्ठित किया गया है अथवा वापस लिया गया है और न ही स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए कोई शर्त वर्तमान हैं, और परिणामस्वरूप कारण बताओ नोटिस में प्रस्तावित आदेश पारित नहीं किया जा सकता।

13. सहायक आयुक्त (स्टाम्प) ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों पर सम्यक विचार

किया तथा उन्हें अस्वीकृत कर दिया तथा दिनांक 26.11.2012 के प्रश्नगत आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को भूमि के बाजार मूल्य के अनुरूप मूल्यांकन के समान धनराशि जमा करने का निर्देश दिया गया। उक्त आदेश में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को उक्त भूमि सरकार की नीति के अंतर्गत दी गई थी, जिसके अनुक्रम में याचिकाकर्ता को नवीन उपक्रम स्थापित करना था तथा मात्र ऐसे उपक्रमों को स्टाम्प शुल्क में छूट का लाभ दिया गया था, जो राज्य सरकार की नीति के अंतर्गत नवीन उद्योग स्थापित करने के लिए सहमत हुए थे। याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के निर्देशों का पालन नहीं किया और बार-बार पत्र लिखने के बावजूद उसके द्वारा कोई औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की गई और परिणामस्वरूप प्रश्नगत आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को पूर्ण स्टाम्प शुल्क अदा करने का निर्देश दिया गया, जिसके भुगतान हेतु वह उत्तरदायी था मानो कि उसे उक्त छूट दी ही नहीं गई थी।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है तथा अधिकार क्षेत्र से परे है क्योंकि अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत अपनी शक्तियों के प्रयोग द्वारा ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता था। यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान नियम, शर्तें एवं प्रावधान ही मात्र प्रासंगिक कारक हैं, जिन्हें लिखत पर स्टाम्प-शुल्क आरोपित करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिये था। उक्त विलेख के निष्पादन के बाद होने वाले परिवर्तनों और

विचारों को अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत आदेश पारित करते समय ध्यान में नहीं रखा जा सकता है और इसलिए यह आदेश अवैध है और अपास्त किये जाने योग्य है।

15. वर्तमान वाद में यह कहा गया है कि उस तिथि, अर्थात् 20.06.2006, को, जब विलेख पंजीकृत किया गया था, सरकार की दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में छूट के लिए एक वैध आदेश विद्यमान था। यह कहा गया है कि न तो याचिकाकर्ता को दी गई छूट, और न ही राज्य सरकार की दिनांक 19.01.2005 की नीति को रद्द किया गया है और, परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है। उनका यह भी तर्क है कि अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के पठन मात्र से यह संकेत मिलता है कि स्टाम्प शुल्क का निर्धारण मात्र उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर विद्यमान प्रावधानों के संदर्भ में होना चाहिए और यह संकेत भी मिलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क में कोई कमी नहीं थी, क्योंकि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के मामले में स्टाम्प शुल्क में छूट दी थी और, परिणामस्वरूप, भले ही बाद में सरकारी नीति में कोई बदलाव हो, किन्तु इसका विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किए गए शुल्क पर कोई असर या प्रभाव नहीं होगा।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शांति भूषण (डी) द्वारा एलआर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023

एससीसी ऑनलाइन एससी 489 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें कहा गया है कि पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर सही बाजार मूल्य का अभिनिश्चय करना होगा। यह कहा गया है कि उक्त दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता के पास वैध छूट पत्र था, जिसे प्रतिवादियों द्वारा यथोचित रूप से मान्य और स्वीकार किया गया, अतः उसमें कोई परिवर्तन अनुमत नहीं है और फलस्वरूप आक्षेपित आदेश का विरोध किया गया। अंततः यह प्रस्तुत किया गया कि उत्तरवर्ती शासनादेश का अवलोकन यह भी इंगित करता है कि नवीन इकाई की स्थापना हेतु शासन की नीति का लाभ लेने वाले व्यक्ति से देय स्टाम्प-शुल्क के समान राशि की वसूली हेतु प्रावधान किया गया है। उत्तरवर्ती नीति में बैंक गारंटी को सावधि जमा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रावधान है और यदि ऐसा व्यक्ति नीति की शर्तों को पूर्ण नहीं करता है और नवीन इकाई स्थापित नहीं करता है, तो सरकार बैंक गारंटी को लागू करने और सावधि जमा को भुनाने के लिए स्वतंत्र थी, ताकि उन्हें इस प्रकार पुनर्स्थापित किया जा सके मानो स्टाम्प शुल्क वास्तव में चुकाया गया हो। यहां तक कि 21.08.2009 या 22.11.2007 के बाद की नीतियों और अधिसूचनाओं में भी यह प्रावधान नहीं किया गया है कि ऐसे लिखत के निष्पादन पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क की कमी की राशि की वसूली हेतु भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 47-ए के प्रावधानों का अवलंब लिया जा सके।

17. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति का लाभ उठाया है और उक्त भूमि का पंजीकरण करते समय स्टाम्प शुल्क से छूट प्राप्त की है, जिसका उद्देश्य एक नवीन इकाई की स्थापना करना था। याचिकाकर्ता ने स्वयं राज्य सरकार की नीति का उल्लंघन किया है और बारंबार अनुस्मारकों के बावजूद इकाई स्थापित नहीं की है, अतः राज्य सरकार के पास उसे दिए गए लाभ को वापस लेने का विकल्प खुला था, अतः उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

18. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेख का परिशीलन किया है। दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जो नीति उत्तर प्रदेश राज्य में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई थी उसके अंतर्गत ऐसे सभी व्यक्ति जो खाद्य प्रसंस्करण आदि के संबंध में कृषि/खाद्य से संबंधित व्यवसाय स्थापित करना चाहते थे, उन्हें स्टाम्प शुल्क से छूट का लाभ दिया गया था ताकि वे कम लागत पर भूमि खरीद सकें। याचिकाकर्ता ने भी राज्य सरकार की नीति का लाभ लेने के लिए आवेदन किया था तथा उसके आवेदन की जांच करने तथा उसे उचित पाए जाने के पश्चात दिनांक 28.03.2006 के आदेश के माध्यम से स्टाम्प शुल्क से छूट प्रदान की गई थी। लगभग छह वर्ष बीत जाने के बाद राज्य सरकार को यह एहसास हुआ कि याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिबद्धता पूरी नहीं की है और औद्योगिक इकाई स्थापित नहीं की है, परिणामस्वरूप, भारतीय स्टाम्प अधिनियम,



1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और याचिकाकर्ता को 01.06.2012 को एक नोटिस जारी किया गया, जिसमें उसे दिनांक 20.06.2006 को उसके द्वारा निष्पादित विक्रय-पत्र के संबंध में बाजार मूल्य पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए कहा गया।

19. याचिकाकर्ता ने वर्तमान वाद के तथ्यों के आधार पर अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने पर ही प्रश्न उठाया है। वर्तमान याचिका में उठाए गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह पाया गया है कि अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अनुसार निर्धारित प्राधिकारी को यह शक्ति दी गई है कि वह उक्त लिखत में प्रस्तुत संपत्ति के बाजार मूल्य पर पूर्ण स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए लिखत निष्पादित करने वाले व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है। पंजीकरण हेतु उक्त दस्तावेज की प्रस्तुति के तत्काल पश्चात् यह प्रक्रिया की जा सकती है। प्रतिवादियों का वाद यह नहीं है कि उक्त लिखत के निष्पादन की तिथि पर याचिकाकर्ता ने पर्याप्त स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया था। यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 9 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार याचिकाकर्ता को स्टाम्प शुल्क के भुगतान से छूट दी गई थी, जहां सरकार को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह अपने प्रशासनाधीन सम्पूर्ण क्षेत्र या उसके किसी भाग में किन्हीं लिखतों या किसी विशेष वर्ग के लिखतों, या उस वर्ग में आने वाले किन्हीं लिखतों, या ऐसे लिखतों को जो किसी

वर्ग विशेष के व्यक्तियों द्वारा, या उनके पक्ष में या ऐसे वर्ग के किन्हीं सदस्यों द्वारा, या उनके पक्ष में निष्पादित किये गये हों, पर प्रभार्य शुल्क को पूर्वगामी या अनुगामी प्रभाव से घटा या माफ कर सकती है। तदनुसार अधिनियम, 1899 की धारा 9 के अनुसार स्टाम्प शुल्क को कम करने या हटाने की शक्ति राज्य सरकार के पास निहित है। राज्य सरकार ने दिनांक 19.01.2005 को छूट की अधिसूचना जारी करते समय अधिनियम, 1899 की धारा 9 के प्रावधान को लागू किया था।

20. यह स्पष्ट है कि धारा 9-ए के अंतर्गत राज्य सरकार की शक्ति केवल स्टाम्प शुल्क को "घटाने या माफ करने" के संबंध में है, जो तदनुसार तब किया गया था जब इसने दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना के माध्यम से स्टाम्प शुल्क को घटाने और छूट देने का अपना आशय अधिसूचित किया था। ऐसा कोई अन्य आदेश नहीं है जिसे याचिकाकर्ता या प्रतिवादियों द्वारा राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में स्थापित इकाइयों पर स्टाम्प शुल्क की छूट को रद्द, निरस्त या संशोधित करने के लिए अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया हो।

21. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि राज्य सरकार ने दिनांक 28/03/2006 को एक आदेश जारी किया था जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में औद्योगिक इकाई स्थापित करने के मामले में स्टाम्प-शुल्क से छूट दी गई थी, याचिकाकर्ता द्वारा पंजीकरण की तिथि पर भुगतान की गई स्टाम्प शुल्क में कोई दोष या कमी नहीं थी।

सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक निर्णयों में यह धारित किया है कि लिखत पर देय स्टाम्प शुल्क निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक तिथि निष्पादन की तिथि है। वर्तमान मामले में विक्रय विलेख दिनांक 20/06/2006 को निष्पादित किया गया था और राज्य सरकार द्वारा पारित एक वैध छूट का आदेश विद्यमान था। शांति भूषण (डी) द्वारा एलआर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 489 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है:-

“23. इसलिए, जब एक विक्रय विलेख पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण प्राधिकारी को दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर दस्तावेज की विषय वस्तु से सम्बंधित संपत्ति का सही बाजार मूल्य अभिनिश्चित करना चाहिए। स्टाम्प शुल्क ऐसे बाजार मूल्य के आधार पर देय होता है, न कि दस्तावेज में उल्लिखित प्रतिफल पर। यदि उल्लिखित प्रतिफल बाजार मूल्य से अधिक है, तो स्टाम्प शुल्क दिखाए गए प्रतिफल पर देय होगा। इसके अतिरिक्त, विक्रय के लिए समझौते में उल्लिखित बाजार मूल्य या करार की तिथि को प्रचलित बाजार मूल्य या सौदा होने वाली तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य, स्टाम्प शुल्क तय करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। प्रासंगिक बाजार मूल्य वह है जो हस्तांतरण पत्र के निष्पादन की तिथि को प्रचलित है। इसलिए, हमें इस बात पर कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि को संबंधित संपत्ति के बाजार मूल्य पर गणना की

गई स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे।”

22. उपरोक्त तथ्यों और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण के तर्कों पर विचार करते हुए, मैं याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए इस तर्क में बल पाता हूँ कि धारा 47-ए के अंतर्गत की गई शक्ति का ऐसा प्रयोग जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है, याचिकाकर्ता के विरुद्ध नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसके लिखतों के पंजीकरण की तिथियों पर लगाए जाने वाले स्टाम्प-शुल्क के संबंध में कोई दोष नहीं था। धारा 47-ए के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग के लिए विचार की जाने वाली प्रासंगिक तिथि लिखत के निष्पादन की तिथि है। प्रतिवादियों ने विक्रय विलेख पर देय स्टाम्प-शुल्क की छूट में कोई कमी भी प्रदर्शित नहीं की है, जो दिनांक 20.06.2006 को पंजीकृत किया गया था। प्रतिवादियों के अनुसार भी वादहेतुक दिनांक 20.06.2006 के उपरांत ही उत्पन्न हुआ, जब अत्यधिक समय व्यतीत होने के पश्चात भी याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार की नीति के अनुसरण में इकाई की स्थापना नहीं की।

23. राज्य सरकार के समक्ष जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग नीति का लाभ लेने वाले इच्छुक उद्यमियों ने भूमि खरीदी है, लेकिन तत्पश्चात उद्योग स्थापित करने में विफल रहे, तो उसने दिनांक 21.08.2009 और दिनांक 12.11.2007 की अधिसूचना के माध्यम से स्पष्टीकरण जारी किया और नीति का लाभ लेने वाले व्यक्तियों द्वारा नवीन उद्योग स्थापित करने के लिए

कठोर दिशा-निर्देश जारी किये। स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से भावी प्रकृति का है, क्योंकि यह उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई के बारे में मौन है जिसने पहले ही छूट की अधिसूचना का लाभ उठाया है, लेकिन औद्योगिक इकाई स्थापित करने में विफल रहा है।

24. इस मामले में प्रासंगिक तथ्य यह है, जैसा कि राज्य सरकार ने अपनी अधिसूचना दिनांक 21.08.2009 और दिनांक 12.11.2007 में पहले ही यह प्रावधान किया है कि यदि ऐसे व्यक्तियों ने सावधि जमा या बैंक गारंटी जमा की है, तो राज्य सरकार उसे भुनाने के लिए स्वतंत्र है। हमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिसके अंतर्गत स्टाम्प शुल्क, जो वास्तव में दिनांक 19.01.2005 की अधिसूचना द्वारा आरोपित किया गया किन्तु जिसे वैध छूट-अधिसूचना द्वारा छूट दी गई, को बाद में वसूल किया जा सकता है। शक्ति का जैसा प्रयोग वर्तमान मामले में किया गया है, वह स्पष्ट रूप से अधिनियम और नियमावली के साथ ही स्वयं प्रतिवादियों द्वारा जारी अधिसूचना से असंगत है।

25. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1989 एक राजकोषीय विधि है, अतः, इसके प्रावधानों का कठोर निर्वचन होना चाहिये। **स्वीडिश नैच एबी बनाम सेबी, 2004 (11) एससीसी 641 और सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 55 आईटीआर 741** के निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि राजकोषीय विधि के प्रावधानों का निर्वचन करते समय न्यायालयों को धाराओं के तत्काल अर्थ प्राप्त करने के उद्देश्य से उनके प्रावधानों में

कोई शब्द न तो जोड़ना चाहिए और न ही घटाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि निर्वचन की प्रत्येक प्रणाली में राजकोषीय विधियों के निर्वचन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत कठोर निर्वचन का नियम है जो यह उपबंध करता है कि जहां विधि के शब्द नितान्त स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, वहाँ शाब्दिक नियम के अतिरिक्त निर्वचन के सिद्धांतों का आश्रय नहीं लिया जा सकता है।

26. तदनुसार, ऐसी विधि का निर्वचन करते समय, साम्योचित विचार लागू नहीं किया जा सकता है। कर विधियों का निर्वचन उसमें स्पष्ट रूप से व्यक्त तत्वों के अनुसार किया जाना चाहिये। ऐसी विधि का निर्वचन विधि और कर भुगतान की देयता का निर्धारण करते समय, प्रावधानों का निर्वचन कठोरतापूर्वक किये जाने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में, कर विधियों का निर्वचन करते समय शाब्दिक निर्माण के नियम को लागू किया जाना चाहिए। इसकी व्याख्या उपयोग किए गए शब्दों के प्राकृतिक निर्माण के संदर्भ में की जानी चाहिए। ऐसा कुछ भी विवक्षित करने की कोई संभावना नहीं है जो अभिव्यक्त रूप से उपबंधित न हो। स्टाम्प शुल्क आरोपित करने का निर्णय करते समय साम्योचित सिद्धांतों के अनुप्रयोग का कोई स्थान नहीं है। वर्तमान वाद का निर्णय साम्या के आधार पर नहीं किया जा सकता है तथा इस न्यायालय का यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के प्रावधानों में उन लिखतों पर स्टाम्प का प्रावधान नहीं है, जिन्हें राज्य सरकार की वैध अधिसूचना द्वारा अधिनियम, 1989 की धारा 9 के अन्तर्गत पहले छूट दी जा चुकी

है। तदनुसार, प्रश्नगत आदेश स्पष्ट रूप से अवैधानिक तथा मनमाना है तथा अपास्त किये जाने योग्य है।

27. उपरोक्त के आलोक में, दिनांक 26.11.2012 का प्रश्नगत आदेश अवैध तथा मनमाना है तथा, परिणामस्वरूप, अपास्त किया जाता है। तदनुसार, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 548

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 1005717 वर्ष 2009

राम बचानी

...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.डी.जे. लखनऊ

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

ब्रिजेश कुमार सक्सैना, प्रीतीश कुमार, उत्कर्ष श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, वी.के. श्रीवास्तव, विजय कृष्ण

सिविल कानून - सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 - धारा 4 और 7 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 22 नियम 6 - निर्धारित

प्राधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा किरायेदार का विधिवत प्रतिनिधित्व किया गया - याचिकाकर्ता 03.04.2002 को उपस्थित हुआ और आदेश-पत्र पर हस्ताक्षर किए - किरायेदार की ओर से लिखित प्रस्तुतियाँ 04.08.2002 को दायर की गईं - 06.08.2002 को प्रतिवादी की मृत्यु के बावजूद कार्यवाही समाप्त नहीं हुई, क्योंकि निर्णय लिखित प्रस्तुतियों पर आधारित था और 03.10.2002 को दिया गया - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि निर्धारित प्राधिकारी के पास क्षेत्राधिकार का अभाव है क्योंकि अधिनियम, 1971 से पहले की किरायेदारी है - उक्त मुद्दा निर्धारित प्राधिकारी या अपीलीय न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया - यह प्रश्न कि किरायेदारी कब बनाई गई या याचिकाकर्ता या उसके पूर्ववर्ती हितधारक कब किरायेदार बने, तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न है, इसे रिट कार्यवाही में पहली बार नहीं उठाया जा सकता - हस्तक्षेपाधिकार के अभाव के कारण अपील भी खारिज कर दिया गया, क्योंकि अपील की अनुमति नहीं मांगी गई थी और न ही दी गई थी - इस निष्कर्ष को चुनौती देने के लिए कोई आधार नहीं लिया गया, न ही कोई तर्क दिया गया - बिक्री पत्र में केवल मेसर्स ए. जेम्स एंड कंपनी के व्यवसाय को हस्तांतरित किया गया, किरायेदारी अधिकारों को नहीं - इसने याचिकाकर्ता को मालिकों से नया पट्टा प्राप्त करने की विशेष रूप से अनुमति दी - याचिकाकर्ता ने किरायेदारी वाले परिसर पर कब्जा करने से पहले प्रतिवादी-बैंक को न तो सूचित किया और न ही उसकी सहमति ली - अनधिकृत कब्जे से किरायेदारी के अधिकार या मूल किरायेदार के कानूनी प्रतिनिधि के रूप में

दर्जा नहीं मिलता - याचिकाकर्ता के पास अपील दायर करने का कोई हस्तक्षेपाधिकार नहीं था - चूंकि इस मुद्दे पर कोई तर्क नहीं दिया गया, इसलिए अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 23, 25, 26)

रिट याचिका खारिज कर दी गई। (ई-13)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. गुरमन सिंह (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य के बनाम गुर बचन कारू (मृत), 2007 (13) एससीसी 414, (पैरा 18)
2. एन.पी. थिरुगनम बनाम आर. जगन मोहन राव (डॉ), (1995) 5 एससीसी 115 पृष्ठ 116 पर
3. चेतन चरण दास बनाम बलभद्र दास, 1899 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 66, आईएलआर (1899) 21 इलाहाबाद 314 पृष्ठ 910 पर
4. सुहास एच. पोफले बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और उसके वरिष्ठ अधिकारी (2014) 4 एससीसी 657

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने अपर जिला न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.10.2009 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा

लोक परिसर अधिनियम, 1971 (जिसे आगे 'अधिनियम 1971' कहा जाएगा) के तहत विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील को निरस्त कर दिया गया था और साथ ही विहित प्राधिकारी/संपदा अधिकारी, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, आंचलिक अधिकारी, भोपाल द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.10.2002 को भी निरस्त कर दिया गया था।

2. वर्तमान विवाद को विनिश्चित करने हेतु आवश्यक तथ्य यह है कि प्रतिवादी, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, 73, हजरतगंज, लखनऊ स्थित परिसर का भू-स्वामी है और याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती जवाहर लाल भार्गव, उक्त परिसर के भूतल के उत्तर पूर्वी भाग के अभिधारी थे। 1976 में, प्रतिवादी बैंक ने उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराये पर देना, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 के तहत नियत प्राधिकारी के समक्ष जवाहर लाल भार्गव के अभिधृति में परिसर को मुक्त करने के लिए एक आवेदन दायर किया था, जिसकी तत्काल आवश्यकता थी। उक्त आवेदन को आदेश दिनांक 01.09.1976 के द्वारा निरस्त कर दिया गया।

3. उक्त आदेश से व्यथित होकर, प्रतिवादी-बैंक द्वारा एक अपील दायर की गई थी। अपील के लंबित रहने के दौरान, सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 में कुछ संशोधन लागू हुए और जवाहर लाल भार्गव की ओर से एक आवेदन दायर किया गया कि बेदखली का उपचार उक्त अधिनियम के तहत नियत

प्राधिकारी के समक्ष है और परिणामस्वरूप उक्त दावे पर, अपील निरस्त कर दी गई। बेदखली का वाद, लघु वाद अधिनियम, लखनऊ के न्यायालय में भी दायर किया गया था, जिसमें एससीसी वाद संख्या 583/1980 दर्ज किया गया था, इसे भी दिनांक 31.03.1982 को निरस्त कर दिया गया था।

4. इसके बाद, जवाहर लाल भार्गव दिल्ली चले गए और प्रतिवादी-बैंक की जानकारी और सहमति के बिना उक्त परिसर याचिकाकर्ता को हस्तांतरित कर दिया। प्रतिवादी का यह भी दावा है कि अभिधारी पर 01.04.1997 से 06.07.1999 तक किराया बकाया था और उसने दिनांक 03.06.1999 को नोटिस देकर अभिधृति समाप्त भी कर दी थी, लेकिन अभिधारी ने नोटिस में प्रदत्त अवधि की समाप्ति पर उक्त परिसर खाली नहीं किया और तदनुसार लोक परिसर बेदखली अधिनियम के तहत अभिधारी को इस आधार पर बेदखल करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया कि अभिधारी, अधिनियम में परिभाषित अप्राधिकृत अधिभोगी बन गए हैं।

5. विहित प्राधिकारी ने प्रतिवादी-बैंक द्वारा दायर आवेदन की अनुमति देते समय इस तथ्य पर विचार किया है कि प्रतिवादियों ने दिनांक 03.06.1999 को एक सूचना देकर अभिधृति समाप्त कर दी है और उक्त सूचना से 30 दिनों की समाप्ति के बाद अभिधारी अप्राधिकृत अधिभोगी बन गए हैं।

6. बैंक के उपरोक्त दावे का विरोध करते हुए, दूसरी ओर, अभिधारियों ने कथन किया कि

उन्होंने पहले ही चेक के माध्यम से अग्रिम भुगतान कर दिया था और प्रतिवादी बैंक को उक्त परिसर की तत्काल या वास्तविक आवश्यकता नहीं थी और संपदा अधिकारी द्वारा जारी नोटिस का उन्मोचन करने के लिए विहित प्राधिकारी से प्रार्थना की थी। दूसरी ओर, प्रतिवादी बैंक ने कथन किया कि उसने चेक स्वीकार या भुनाया नहीं था और उसका विवादित परिसर के किराए की राशि प्राप्त करने का कोई इरादा नहीं है और केवल चेक/भुगतान आदेश प्राप्त करना किराए की स्वीकृति नहीं माना जाता है और फलस्वरूप प्रार्थना की कि अभिधारियों को अप्राधिकृत अधिभोगी घोषित किया जाए और अभिधारी परिसर से बेदखल कर दिए जाए।

7. विहित प्राधिकारी ने अभिधारियों के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया कि वर्तमान मामले में संपदा अधिकारी द्वारा श्री राम बचानी (याचिकाकर्ता) को सूचना नहीं दिया गया था, जो एम/एस ए जेम्स एंड कंपनी के नाम पर व्यवसाय चला रहे हैं। उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि श्री राम बचानी ने कार्यवाही की जानकारी होने के बाद भी परिसर में हित का दावा नहीं किया था क्योंकि वह दिनांक 03.08.2002 यानी बहस की तारीख पर उपस्थित रहे थे और आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर भी किए थे और उनके द्वारा लोक परिसर एवं बेदखली अधिनियम, 1971 की धारा 4 एवं 7 के तहत सूचना जारी करने के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी।

8. उपरोक्त परिस्थितियों में ही बेदखली के लिए आवेदन की अनुमति दी गई थी और

प्रतिवादियों को दिनांक 01.04.1997 से 06.07.1999 तक किराये की बकाया धनराशि @ रु. 89/95 प्रति माह की दर से तथा आवेदक को 07.07.1999 से कब्जे की तारीख तक 1000/- की दर से हर्जाना के भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

9. विहित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध याची द्वारा जिला न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष अपील दाखिल की गयी। अपील में पहली बार यह उजागर हुआ कि श्री जवाहर लाल भार्गव ने बिक्री पत्र दिनांक 03.04.1999 के माध्यम से व्यापार में चल रहे व्यवसाय के सामान, फर्नीचर, फिक्सचर और फिटिंग और उससे जुड़ी सामग्रियों को एम/एस ए जेम्स एंड कंपनी के नाम और शैली के तहत चल रहे व्यापार को अच्छी तरह से याचिकाकर्ता - श्री राम बचानी को बेच दिया था। उक्त विक्रय पत्र में यह भी कहा गया है कि श्री राम बचानी सीधे मालिक से पट्टा लेने के लिए स्वतंत्र होंगे और तब तक वह मालिक को किराया और अन्य देय राशि का भुगतान करेंगे। उक्त अपील में यह भी कहा गया था कि पूर्व अभिधारी जवाहर लाल भार्गव की मृत्यु दिनांक 06.08.2002 को हो गई थी और विहित प्राधिकारी का आदेश दिनांक 02.10.2002 अवैध और मनमाना है क्योंकि यह प्रतिवादी की मृत्यु के बाद दिया गया था और उपरोक्त आदेश निरर्थक होगा।

10. जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता और प्रतिवादी बैंक के तर्कों पर विधिवत विचार किया। पहला पहलू जिस पर उन्होंने विचार किया वह यह था कि क्या याचिकाकर्ता को वर्तमान अपील दायर करने का कोई अधिकार

था क्योंकि वह जवाहरलाल भार्गव का विधिक वारिस नहीं था और न ही विहित प्राधिकारी के समक्ष एक पक्षकार था। इस संबंध में, उन्होंने विक्रय पत्र दिनांक 03.04.1999 की सामग्री और प्रभाव पर चर्चा की है और अभिनिर्धारित किया है कि उक्त पत्र एक अपंजीकृत दस्तावेज होने के कारण अचल संपत्ति में कोई अधिकार हस्तांतरित नहीं कर सकता है और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता अभिधारी श्री जवाहरलाल भार्गव के अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकता है। उक्त पत्र की विषयवस्तु पर विधिवत विचार किया गया, जिसके अनुसार स्पष्ट शर्त है कि याचिकाकर्ता सीधे मालिक से पट्टा लेने के लिए स्वतंत्र होगा। इस संबंध में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि न तो बिक्री पत्र कभी भी प्रतिवादी बैंक को बताया गया था और न ही उक्त परिसर में प्रवेश करने से पहले उक्त परिसर के मकान मालिक से कोई पूर्व अनुमति ली गई थी और इसलिए याचिकाकर्ता की स्थिति महज अतिचारी से ज्यादा कुछ नहीं होगी।

11. यह प्रस्तुत किया गया है कि विहित प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान जवाहरलाल भार्गव की मृत्यु हो गई थी और एक मृत व्यक्ति के विरुद्ध पारित आज्ञा अमान्य होगी। उक्त तर्क को खारिज करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया कि सबसे पहले याचिकाकर्ता ने जवाहर लाल भार्गव की ओर से विहित प्राधिकारी के समक्ष मामले को चुनौती दी थी। वाद दिनांक 03.08.2002 को सूचीबद्ध किया गया था, जिस तारीख को याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ था और दिनांक 30.08.2022 को आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर भी

किए थे और प्रतिवादी द्वारा लिखित दलीलें दाखिल करने के लिए वाद को दिनांक 14.08.2002 तक के लिए स्थगित कर दिया गया था और बैंक ने लिखित प्रस्तुतियाँ दाखिल करने से इनकार कर दिया था। दिनांक 24.08.2002 की आदेश पत्रक में दर्ज है कि लिखित दलीलें दायर की गईं और निर्णय दिनांक 03.10.2002 को सुनाया गया था। यह भी अभिलेख पर है कि जवाहरलाल भार्गव की ओर से लिखित दलीलें उनकी मृत्यु से दो दिन पहले दिनांक 04.08.2002 को दायर की गई थीं और लिखित दलीलों के आधार पर निर्णय सुनाया गया था और दिनांक 04.08.2002 के बाद कोई सुनवाई नहीं हुई।

12. प्रकरण के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अपीलीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आदेश 22 नियम 6 सि० प्र० सं० में निहित प्रावधानों के अनुसार प्रकरण की सुनवाई के बाद और निर्णय सुनाने से पहले मृत्यु हो गई थी और तदनुसार अपील की कार्यवाही का उपशमन नहीं हुआ और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क को निरस्त कर दिया जाता है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.के. सक्सेना ने दृढ़तापूर्वक तर्क प्रस्तुत किया कि विहित प्राधिकारी का आदेश अवैध और मनमाना था क्योंकि यह एक मृत व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया था और अपीलीय न्यायालय ने तथ्य और विधि की सही परिप्रेक्ष्य में विवेचना नहीं की थी और तदनुसार आवेदन अस्वीकार किये जाने योग्य है।

14. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने **गुरमन सिंह (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य बनाम गुर बचन कारू (मृत), 2007 (13) एससीसी 414**, के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जो निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है: -

*"18) इस मुद्दे पर विधि की सुस्थापित प्रक्रिया है। अपील के किसी भी पक्षकार की मृत्यु पर, यदि अपील से संबंधित पक्षकार या मृतक के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा, जिन पर मुकदमा करने का अधिकार है, मृत पक्षकार के स्थान पर उनके नाम के प्रतिस्थापन के लिए पक्षकार की मृत्यु की तारीख से 90 दिन के भीतर कोई आवेदन नहीं किया जाता है, तो ऐसी अपील पक्षकार की मृत्यु की तारीख से 90 दिन की समाप्ति पर स्वतः उपशमन हो जाती है। दूसरे शब्दों में, 91वें दिन, न्यायालय के समक्ष कोई अपील लंबित नहीं रहेगा। इसे "उपशमन मानकर निरस्त" किया जाता है।*

19) आदेश 22 नियम 3(2) जो वादी/अपीलकर्ता की मृत्यु के मामले में लागू होता है और आदेश 22 नियम 4(3) जो विरोधी पक्ष या प्रतिवादी के मामले में लागू होता है, संबंधित पक्ष द्वारा निर्धारित समय के भीतर विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन के लिए आवेदन दाखिल नहीं करने के परिणाम प्रदान करता है। ये प्रावधान निम्नानुसार वर्णित हैं:-



आदेश 22 नियम 3(2) "जहाँ विधि द्वारा परिसीमित समय के भीतर कोई आवेदन उपनियम (1) के अधीन नहीं किया जाता है वहाँ वाद का उपशमन वहाँ तक जो जायेगा मृत वादी का सम्बन्ध है और प्रतिवादी के आवेदन पर न्यायालय उन खर्चों को उसके पक्ष में अधिनिर्णीत कर सकेगा जो उसने वाद की प्रतिक्षा में उपगत किये हों और वे मृत वादी की सम्पदा से वसूल किये जायेंगे।" आदेश 22 नियम 4(3) "जहाँ विधि द्वारा परिसीमित समय के भीतर कोई आवेदन उपनियम (1) के अधीन नहीं किया जाता है वहाँ वाद का, जहाँ तक वह मृत प्रतिवादी के विरुद्ध है, उपशमन जो जाएगा।"

20) मौजूदा प्रकरण में, उपरोक्त दोनों प्रावधान लागू हो गए क्योंकि अपीलकर्ता और दो प्रतिवादियों की द्वितीय अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया था। जैसा कि उपरोक्त कथन है, आदेश 22 के नियम 3(2) और 4(3) के गैर-अनुपालन का वैधानिक प्रभाव लागू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप 10.05.1994 से 90 दिनों की समाप्ति पर द्वितीय अपील का उपशमन कर दिया गया अर्थात् दिनांक 10.08.1994 को। इसलिए, उच्च न्यायालय के पास द्वितीय अपील पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं रह गया, जिसे दिनांक 10.08.1994 को पहले ही निरस्त कर दिया गया था। वास्तव में,

दिनांक 10.08.1994 को और उसके बाद कोई भी अपील लंबित नहीं थी।

21) हमारे विचार में, अपील को सुनवाई के लिए तभी पुनर्जीवित किया जा सकता है जब सबसे पहले, मृत व्यक्तियों के प्रस्तावित विधिक प्रतिनिधियों ने अपने नामों के प्रतिस्थापन के लिए एक आवेदन दायर किया था और दूसरे, उन्होंने आदेश 22 नियम 9 के तहत उपशमन अपास्त किये जाने के लिए आवेदन किया था और उसमें उपशमन अपास्त करने के लिए पर्याप्त कारण बताया गया और अंत में, 90 दिनों की वैधानिक अवधि से परे परिसीमन अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसमें संहिता के आदेश 22 नियम 3 और 4 के तहत प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने में विलम्ब मर्षण की मांग की गई थी। यदि इन आवेदनों को उच्च न्यायालय ने अनुमति दे दी होती, तो द्वितीय अपील को अंतिम सुनवाई के लिए पुनर्जीवित किया जा सकता था, लेकिन अन्यथा नहीं। यहां ऐसा मामला नहीं था क्योंकि ऐसा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था।

22) यह किरण सिंह के प्रकरण (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का एक मौलिक सिद्धांत है कि न्यायालय द्वारा पारित एक डिक्री, यदि यह अकृतता है, जब भी डिक्री धारक द्वारा ऐसी डिक्री को लागू करने की मांग की जाती है तो निष्पादन कार्यवाही या यहां तक कि संपाश्विक

कार्यवाही सहित किसी भी कार्यवाही में इसकी वैधता पर प्रश्न उठाया जा सकता है। कारण यह है कि इस प्रकृति का दोष ऐसी डिक्री पारित करने में न्यायालय के अधिकार को प्रभावित करता है और प्रकरण की तह तक जाता है। यह सिद्धांत, हमारी सुविचारित राय में, पूरी तरह से इस प्रकरण पर लागू होता है क्योंकि यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि किसी मृत व्यक्ति के लिए या उसके विरुद्ध न्यायालय द्वारा पारित डिक्री एक "अकृतता" है (देखें- एन. जयराम रेड्डी और अन्य बनाम राजस्व मंडल अधिकारी और भूमि अधिग्रहण अधिकारी, कुरनूल, (1979) 3 एससीसी 578, अशोक ट्रांसपोर्ट एजेंसी बनाम अवधेश कुमार और अन्य, (1998) 5 एससीसी 567 और अंबा बाई और अन्य बनाम गोपाल एवं अन्य (2001) 5 एससीसी 570)।

23) अपीलकर्ता प्रतिवादी संख्या 2 और 4 के विधिक प्रतिनिधि हैं जिन पर मुकदमा करने का अधिकार हस्तांतरित किया गया है। इसलिए, उन्हें अन्य बातों के साथ-साथ इसके निरर्थक होने के आधार पर आक्षेपित आदेश की वैधता पर प्रश्न उठाने का अधिकार था। हमारी राय में, ऐसी आपत्ति अपील में या ऐसे डिक्री से उत्पन्न निष्पादन कार्यवाही में भी उठाई जा सकती है। इसलिए, हमारे विचार में, आपत्ति स्वीकृत किये जाने योग्य है। तदनुसार, इसे अक्षुण्ण रखा गया है।

24) पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, हम अपील की अनुमति देते हैं और आक्षेपित निर्णय/डिक्री को अपास्त करते हैं।"

15. दूसरी ओर प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री वी.के.श्रीवास्तव ने रिट याचिका का विरोध किया और आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया। उन्होंने संतोष व्यक्त किया है कि मूल प्रतिवादी की मृत्यु के समय दलीलें पूरी हो चुकी थीं और यहां तक कि लिखित दलीलें भी दायर की जा चुकी थीं। साक्ष्य भी अभिलेखित किए गए थे और लिखित तर्क प्रस्तुत किए गए थे। पक्षकार इस बात पर सहमत हुए थे कि प्रकरण का निर्णय लिखित तर्कों के आधार पर किया जाएगा और लिखित तर्क दाखिल करने के बाद कोई मौखिक तर्क नहीं दी जाएगी। मूल प्रतिवादी की मृत्यु लिखित तर्क दाखिल करने के बाद और आदेश 22 नियम 6 के निर्णय प्रावधानों के वितरण से पहले हुई है, और मामले के वर्तमान तथ्यों में कार्यवाही समाप्त नहीं हुई है। उन्होंने आगे कथन प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पास निर्धारित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील को अक्षुण्ण बनाये रखने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि उसने बिक्री पत्र के बारे में खुलासा नहीं किया था जिसके माध्यम से उसने मूल प्रतिवादी का व्यवसाय खरीदा था और अभिधारी परिसर में भी प्रवेश किया था। उन्होंने आगे कथन किया कि याचिकाकर्ता द्वारा अपील करने की कोई अनुमति नहीं मांगी गई थी और इसलिए यह उनके आदेश पर विचार करने योग्य नहीं था,

और आक्षेपित आदेशों में कोई अवसन्नता नहीं है।

16. प्रतिवादी की ओर से आगे कथन प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता ने कार्यवाही में भाग लिया था, जो इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि उसने मूल प्रतिवादी (जवाहरलाल भार्गव) के हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए दिनांक 03.08.2002 को आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन कभी भी यह खुलासा नहीं किया कि वास्तव में उसने किराए के परिसर में प्रवेश किया है और यदि बेदखली का कोई आदेश पारित किया जाता है, तो उसे उसके विरुद्ध लागू करना होगा, और इसलिए उसने जानबूझकर विहित प्राधिकारी से प्रासंगिक और तात्विक तथ्यों को छुपाया और इसलिए इस न्यायालय के समक्ष नेक नियत से नहीं आया है। यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलीय न्यायालय ने उचित ही अभिनिर्धारित किया था कि याचिकाकर्ता के पास अपील को बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह विहित प्राधिकारी के समक्ष एक पक्ष नहीं था, और वह मूल अभिधारी यानी जवाहरलाल भार्गव का स्थान नहीं लेता है। चूँकि उक्त पत्र अपंजीकृत स्टाम्प पेपर पर था, और इस प्रकार अचल संपत्ति में कोई भी अधिकार विक्रेता के हाथों में नहीं जा सकता।

17. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किये गए तर्क के

संबंध में कि विहित प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही का उपशमन कर दिया जाना चाहिए, यह दृष्टिगत है कि आदेश 22 सि० प्र० सं० के प्रावधानों के अनुसार वादी या प्रतिवादी की मृत्यु के प्रकरण में कार्यवाही की लम्बितता के दौरान अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के प्रावधान किए गए हैं। आदेश 22 नियम 3(2) सि० प्र० सं० के अनुसार जहां कई वादी या एकमात्र वादी में से एक की मृत्यु हो जाती है और परिसीमा अवधि के दौरान प्रतिस्थापन के लिए कोई आवेदन नहीं किया जाता है, जहां तक मृत वादी का संबंध है, मुकदमा उपशमन हो जाएगा, जबकि नियम 4 के अनुसार, प्रतिवादी या एकमात्र प्रतिवादी की मृत्यु के मामले में, जहां विधि द्वारा सीमित समय के भीतर कोई आवेदन नहीं किया जाता है, मृतक-प्रतिवादी के विरुद्ध वाद का उपशमन हो जाएगा।

18. सि० प्र० सं० के आदेश 22 नियम 6 में प्रावधान है कि उपरोक्त नियमों में किसी भी बात के बावजूद जहां कार्रवाई का कारण जीवित है या नहीं है, सुनवाई के समापन और निर्णय सुनाए जाने के बीच किसी भी पक्ष की मृत्यु के कारण कोई उपशमन नहीं होगी, और ऐसे मामले में मृत्यु के बावजूद निर्णय हो सकता है, सजा सुनाई जाएगी और उसका बल और प्रभाव समान होगा।

19. उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मृत वादी या प्रतिवादी को प्रतिस्थापित करने के पीछे उद्देश्य यह है कि वाद के पक्षकार को उक्त कार्यवाही में भाग लेने और लड़ने का पूरा अवसर मिलना चाहिए और यदि कार्यवाही के दौरान किसी भी पक्षकार

की मृत्यु हो जाती है और वाद करने का अधिकार जीवित रहता है तो मामले में आगे बढ़ने से पहले उसके विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार बनाया जाना अनिवार्य है। लेकिन सि० प्र० सं० के आदेश 22 नियम 6 एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जहां पक्षकारों द्वारा कार्यवाही के दौरान जो कुछ भी किया जाना आवश्यक है वह पूरा हो चुका है और यहाँ तक कि तर्क भी समाप्त हो चुके हैं और केवल निर्णय सुनाया जाना है, फिर यदि वादी या प्रतिवादी की मृत्यु हो जाती है तो कार्यवाही जारी रहेगी उपशमन नहीं होगा और उतना ही बल होगा जितना उक्त मृतक, वादी या प्रतिवादी की मृत्यु से पहले निर्णय सुनाया गया था।

20. यह स्पष्ट है कि सुनवाई होने के बाद, किसी भी पक्ष को कोई और कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उस समय तक सभी दलीलें, सबूत और दस्तावेज़ दाखिल करने और मौखिक प्रस्तुतियाँ पूर्ण हो चुकी होती हैं और न्यायालय को केवल अपना निर्णय सुनाना होता है। ऐसी अवधि के दौरान किसी पक्ष की मृत्यु होने पर कार्यवाही को उपशमन करने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

21. एन.पी. तिरुगननम बनाम आर. जगन मोहन राव (डॉ.), (1995) 5 एससीसी 115 के प्रकरण में पृष्ठ 116 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मुद्दे से निपटते हुए कथन किया: -

3. आदेश 22 के नियम 6 में प्रावधान है कि:

“6. सुनवाई के पश्चात् मृत्यु हो जाने से उपशमन न होना - पूर्वगामी नियमों में किसी बात के होते हुए भी, चाहे वाद हेतुक बचा हो या न बचा हो, सुनवाई की समाप्ति और निर्णय के बीच वाले समय में किसी पक्षकार की मृत्यु के कारण कोई भी उपशमन नहीं होगा, किन्तु ऐसी दशा में मृत्यु हो जाने पर भी, निर्णय सुनाया जा सकेगा और उसका वही बल और प्रभाव होगा मनो वह मृत्यु होने के पूर्व सुनाया गया हो।”

आदेश 22 के नियम 6 में स्पष्ट भाषा में वर्णित है कि सुनवाई के समापन और निर्णय की घोषणा के बीच किसी भी पक्षकार की मृत्यु के कारण कोई उपशमन नहीं हो सकती है। इसे मृत्यु के बावजूद सुनाया जा सकता है, और इसका वही बल और प्रभाव होगा जैसे कि पक्षकार की मृत्यु होने से पहले निर्णय सुनाया गया हो। इसलिए, यह तर्क कि अपीलीय न्यायालय का निर्णय और डिक्ली अकृतता है, सार विहीन है।”

22. संबंधित विद्वत विधि इस न्यायालय द्वारा तय किया गया है और 1899 से समान रूप से पालन किया जा रहा है। चेतन चरण दास बनाम बलभद्र दास, 1899 एससीसी

ऑनलाइन सभी 66, आईएलआर (1899) 21

सभी 314 पृष्ठ 910, के प्रकरण में -

[315] ब्लेयर और बर्किट, जे.जे.- इस प्रकरण में अपील के आधारों की लंबी सूची में से पहला, जो हमारे सामने तर्क दिया गया था वह 11वां था। इसे निम्नलिखित शब्दों में लिखा गया है: - "क्योंकि वाद में डिक्री वादी की मृत्यु के बाद उसके प्रतिनिधि के रूप में किसी भी व्यक्ति को अभिलेख पर लाए बिना अवैध रूप से पारित की गई थी।" तथ्य यह है कि विचारण का परिणाम निकला गया, दलीलें सुनी गईं और 5 सितंबर 1896 को निर्णय सुरक्षित रख लिया गया। वादी की मृत्यु 9 सितंबर 1896 को हो गई। वह तब उड़ीसा में अनुपस्थित था, और उसकी मृत्यु के बारे में किसी भी पक्षकार या न्यायालय को जानकारी नहीं थी। निर्णय सुनाया गया, और 15 सितंबर 1896 को डिक्री पारित की गई। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि वादी की मृत्यु के क्षण से वाद उपशमन हो गया, और न्यायालय डिक्री पारित करने में अक्षम था, मृतक के कोई प्रतिनिधि अभिलेख से बाहर है। यह एक ऐसा प्रकरण है जिसे इंग्लैंड में एक्टस क्यूरिया नेमिनी फैसिल इंजुरियम विधि के एक बड़े सामान्य सिद्धांत के अंतर्गत आवेदन द्वारा लंबे समय से निपटाया जा रहा है। उस सिद्धांत को कंबर बनाम वेन [1 स्मिथ एल.सी. 10वां संस्करण. 325.] के प्रमुख प्रकरण में लागू किया गया था। भूलवश एक प्रतिवादी की मृत्यु उस समय

के बाद हो गई जब न्यायालय ने विचार करने के लिए समय लिया था। यह प्रार्थना की गई थी कि निर्णय को उस समय के बाद करने की अनुमति देना, जिस समय तक उसे किया जाना चाहिए था, के रूप में अभिलेखित किया जाए; दूसरे शब्दों में, निर्णय की तारीख उस दिन की होनी चाहिए जब न्यायालय ने अपना निर्णय सुरक्षित रखा था, और उस प्रार्थना को न्यायालय ने स्वीकार कर लिया था। इंग्लैंड में ऐसी ही प्रथा रही है; और यह प्रथा 1875 के न्यायिक अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों में अभिव्यक्ति पाती है। हमें ऐसा लगता है कि जिस निर्णय का हमने उल्लेख किया है और उसके बाद न्यायालयों की कार्यशैली न्याय संगत तथा अच्छी समझ के अनुरूप है। निर्णय सुरक्षित रखे जाने के बाद से पक्षकारों के पास करने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। जो भी विलम्ब हुआ वह न्यायालय की तरफ से विलम्ब था, और हमें यह जानकर आश्चर्य नहीं हुआ कि इस देश में न्यायालयों द्वारा आंग्ल प्रथा का पालन किया जाता है, विशेष रूप से रामाचार्य बनाम अनंताचार्य [21 बी 314] के प्रकरण में। इसके विपरीत कोई भी प्रकरण हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया हुआ। सुरेंद्रो केशुब रॉय बनाम डोरगासुंडरी डोसी [19 सी. 513.] [316] के प्रकरण में प्रिवी काउंसिल द्वारा एक समान दृष्टिकोण अपनाया गया है। हमारा मानना है कि यह निर्णय एक प्राधिकार के समान है जिसका अनुपालन करने के लिए यह न्यायालय बाध्य है।

हम तदनुसार उसका पालन करते हैं। इस प्रकरण में हमारे निर्धारित सिद्धांत को सख्ती से इसके तथ्यों तक ही सीमित माना जाना चाहिए, अर्थात्, पक्षकारों द्वारा जो कुछ भी किया जाना था वह किया जा चुका है, और आदेश परिदान के अलावा कुछ भी नहीं शेष है, जिसे न्यायालय द्वारा संरक्षित रखा गया था। इसलिए, हम अपील के इस आधार को निरस्त करते हैं। अपील निरस्त किया जाता है।"

23. उपरोक्त निर्णय की उक्ति को वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू करने पर, यह दृष्टिगत हुआ कि जवाहर लाल भार्गव जो कि अभिधारी थे, के हितों का याचिकाकर्ता द्वारा विहित प्राधिकारी के समक्ष हर समय विधिवत प्रतिनिधित्व किया गया था। निर्विवाद तथ्यों से भी, वाद दिनांक 03.04.2002 को सूचीबद्ध किया गया था, जिस तारीख को याचिकाकर्ता विधिवत उपस्थित हुआ और विहित प्राधिकारी के समक्ष आदेश-पत्र पर हस्ताक्षर किए। अभिधारी की ओर से लिखित दलीलें दाखिल करने के लिए वाद को स्थगित कर दिया गया था, जो दिनांक 04.08.2002 को दायर किया गया था और तदनुसार लिखित दलीलें दाखिल करने पर सुनवाई पूर्ण हो गई है और दिनांक 03.10.2002 को निर्णय सुनाया गया। दिनांक 06/08/2002 को प्रतिवादी की मृत्यु से कार्यवाही के उपशमन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि लिखित प्रस्तुतियाँ दायर की गई हैं, और निर्णय

लिखित प्रस्तुतियों के आधार पर दिया गया था।

24. उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि आदेश 22 नियम 6 का प्रावधान वर्तमान वाद के तथ्यों पर पूर्णतः लागू होता है और तदनुसार मूल अभिधारी जवाहरलाल भार्गव की मृत्यु पर कार्यवाही उपशमन नहीं हुई। **वैधानिक अभ्यावेदन द्वारा गुरमन सिंह (मृत) एवं अन्य बनाम गुर बचन कारू (मृत)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश वर्तमान वाद के तथ्यों के समान तथ्यों से संबंधित नहीं है और इसलिए विशिष्टतया प्राप्त है।

25. याचिकाकर्ता की ओर से यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि विहित प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही अधिकारिता के बिना की गई थी क्योंकि अभिधृति लोक परिसर और बेदखली अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के लागू होने से पहले बनाई गई थी। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के **सुहास एच पोफले बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और उसके संपत्ति अधिकारी (2014) 4 एससीसी 657** के प्रकरण में पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि उक्त मुद्दा कभी भी विहित प्राधिकारी या जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में उसके समक्ष नहीं उठाया गया था। यह प्रश्न कि अभिधृति कब बनाई गई या याचिकाकर्ता या उसके पूर्ववर्ती अभिधारी कब बने, यह केवल विधि का प्रश्न नहीं है बल्कि तथ्य और विधि का एक मिश्रित प्रश्न है। याचिकाकर्ता

ने विहित प्राधिकारी या अपीलीय न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न नहीं उठाया है, इसलिए उसे वर्तमान रिट कार्यवाही में पहली बार इसे उठाने से रोका गया है। यह भी देखा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को भी इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि उसे जिला न्यायाधीश के समक्ष विहित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने का कोई अधिकार नहीं था। जिला न्यायाधीश द्वारा अपील करने की कोई अनुमति नहीं दी गयी और न ही मांगी गई। वर्तमान रिट याचिका में उक्त निष्कर्षों पर आक्रमण करने के लिए कोई आधार नहीं लिया गया है, न ही याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा इस संबंध में कोई तर्क दिया गया है, और तदनुसार उक्त निष्कर्षों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

26. बिक्री पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को कोई अभिधृति अधिकार हस्तांतरित नहीं किया गया था और केवल एम/एस ए जेम्स एंड कंपनी के नाम और शैली में व्यापार, फर्नीचर आदि में सद्भावना स्टॉक के साथ स्थानांतरित किया गया था। उक्त विक्रय पत्र में स्पष्ट शर्त है कि याचिकाकर्ता मालिकों से पट्टा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र होगा। यह निर्विवाद है कि अभिधारी परिसर में प्रवेश करने से पहले याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-बैंक को कभी सूचित नहीं किया या सहमति नहीं ली और केवल अभिधृति परिसर पर अनधिकृत रूप से कब्जा करके वास्तव में अभिधारी नहीं बन गया और निश्चित रूप से मूल अभिधारी के वैधानिक प्रतिनिधि नहीं थे और

तदनुसार जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में विहित प्राधिकारी के आदेश को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं था। इस संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा कोई दलील नहीं दी गई, और इसलिए अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष किसी भी हस्तक्षेप के योग्य नहीं हैं।

27. उपरोक्त के आलोक में, इस न्यायालय को दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभिलेखित तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है। रिट याचिका में गुण रहित है और इसलिए इसे निरस्त किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 556

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 7795 वर्ष  
2018

मोहम्मद अयूब रिज़वी और अन्य ...प्रार्थीगण

बनाम

श्रीमती सलमा खान एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

प्रार्थीगण के लिए अधिवक्ता:

जागेश्वरी प्रसाद माथुर

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, मनीष सिंह चौहान,  
सैय्यद फारुक अहमद

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए और 323 - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 4 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173 - समन आदेश - रद्द करना - प्रतिपक्षी संख्या 2 ने 31.01.2018 को परिवाद दर्ज की, बाद में 16.02.2018 को प्र.सू.रि. दर्ज की, दोनों ने प्रार्थीगण पर दहेज उत्पीड़न का आरोप लगाया - विचारण न्यायालय ने धारा 210 दं.प्र.सं. का उल्लंघन करते हुए, कार्यवाही पर रोक लगाए बिना या पुलिस रिपोर्ट मांगे बिना उपरोक्त धाराओं के अंतर्गत प्रार्थीगण को समन करने की कार्यवाही की - धारा 200 और 202 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज और साक्षी के अभिकथन प्रार्थीगण की वास्तविकता या पते का खुलासा नहीं करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप धारा 202 (1) दं.प्र.सं. का अनुपालन नहीं होता है - समन आदेश में कारणों की अनुपस्थिति कानून की दृष्टि में उसे दूषित करता है, अतएव आक्षेपित आदेश खारिज किया जाता है- मामला प्रतिषेधित किया जाता है। (पैरा 10, 11, 12, 17)

आवेदन स्वीकृत। (ई-13)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. गीता मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2012 (10) एडीजे 464
2. कहकशां कौसर उर्फ सोनम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2022) 6 एससीसी 599

3. अभिजीत पवार बनाम हेमंत मधुकर निंबालकर एवं एक अन्य, (2017) 3 एससीसी 528

4. अनिल कुमार एवं अन्य बनाम एम.के.अयप्पा एवं एक अन्य, (2013)10 सर्वोच्च न्यायालय केस 705 (पैरा 11) में रिपोर्ट किया गया

5. मकसूद सैयद बनाम गुजरात के राज्य एवं अन्य, (2008)5 सुप्रीम कोर्ट केसज, 668 (पैरा 13) में प्रतिवेदित

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता श्री जागेश्वरी प्रसाद माथुर, विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सैय्यद फारूक अहमद, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, विद्वान ए.जी.ए.-1 तथा श्री संजय कुमार यादव, विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान आवेदन, सिविल जज (जूनियर डिवीजन) एफटीसी/न्यायिक मजिस्ट्रेट, उन्नाव के न्यायालय में लंबित शिकायत वाद संख्या-942/18 (श्रीमती सलमा खान बनाम मोहम्मद ऐजाज), धारा 498-ए, 323 आईपीसी तथा धारा 4 डी.पी.एक्ट, की सम्पूर्ण कार्यवाही के साथ समन आदेश दिनांक 13.9.2018 पर रोक लगाने की प्रार्थना के साथ योजित किया गया है।



3. मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि दिनांक 11.3.2012 को विपक्षी संख्या 1 ने आवेदक संख्या 1 के पुत्र अयाज उर्फ बाबू के साथ लखनऊ में विवाह कर लिया तथा चूंकि अयाज सऊदी अरब में काम करता था, अतः विपक्षी संख्या 1 उसके साथ सऊदी अरब में रहने को तैयार है। जब अयाज विपक्षी संख्या 1 को भारत में छोड़कर दिनांक 20.4.2015 को सऊदी अरब चली गया तो उसने पूरे परिवार में क्लेश करना शुरू कर दिया तथा बालागंज में अलग रहने लगी तथा उसके बाद अपने माता-पिता के घर उन्नाव चली गई। इसके पश्चात दिनांक 31.1.2018 को शिकायत दर्ज कराई गई। इसके अतिरिक्त दिनांक 16.2.2018 को एफ.आई.आर. भी दर्ज कराई गई। विचारण न्यायालय ने दिनांक 13.9.2018 को आदेश पारित कर वर्तमान आवेदक को धारा 498ए, 323 आई.पी.सी. और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4, के अंतर्गत तलब किया, जिसे वर्तमान आवेदन में चुनौती दी गई है।

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दो आपराधिक कार्यवाही एक साथ शुरू की गई थी-एक 16.2.2018 को एफआईआर दर्ज करने के माध्यम से और दूसरी 13.1.2018 को शिकायत दर्ज करने के माध्यम से, जिसमें वर्तमान आवेदक को बुलाया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 202 (1) के प्रावधान का उल्लंघन किया है। उन्होंने आगे कहा कि स्वीकार्य रूप से आवेदक संबंधित मजिस्ट्रेट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रहते हैं, क्योंकि आवेदक लखनऊ में रहते हैं और समन विचारण न्यायालय, उन्नाव द्वारा जारी

किया गया है। उन्होंने कहा कि मामले में आगे बढ़ने से पहले न तो कोई जांच की गई है और न ही कोई परीक्षण किया गया है, जो आदेश से ही स्पष्ट है। अपने तर्कों को बढ़ाते हुए, उन्होंने आगे तर्क दिया कि सीआरपीसी की धारा 210 का भी उल्लंघन है, क्योंकि एक बार जब मजिस्ट्रेट शिकायत मामले में कार्यवाही कर रहा है और सुनवाई के दौरान यदि मजिस्ट्रेट के संज्ञान में यह आता है कि पुलिस द्वारा अपराध के संबंध में जांच चल रही है, जो उसके द्वारा जांच या परीक्षण का विषय है, तो मजिस्ट्रेट ऐसी जांच या परीक्षण की कार्यवाही रोक देगा और जांच करने वाले पुलिस अधिकारी से मामले में रिपोर्ट मांगेगा। यह भी तर्क दिया गया है कि यदि धारा 173 सीआरपीसी के अंतर्गत रिपोर्ट की जाती है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट शिकायत मामले और पुलिस रिपोर्ट से उत्पन्न मामले की एक साथ जांच या सुनवाई करेगा, जैसे कि दोनों मामले पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किए गए थे। उन्होंने कहा कि जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, उसी अपराध के लिए 16.2.2018 को एफआईआर भी दर्ज की गई थी और जांच अधिकारी से कोई रिपोर्ट मांगे बिना, विचारण न्यायालय ने शिकायत मामले में कार्यवाही की जो कि धारा 210 सीआरपीसी के प्रावधानों के खिलाफ है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 13.9.2018 का समन आदेश अतार्किक है और इसे लापरवाही से पारित किया गया है। उन्होंने कहा कि यह एक स्थापित कानून है कि शिकायत मामले से उत्पन्न मामले में कार्यवाही करते समय यदि मजिस्ट्रेट का विचार है कि आरोपी व्यक्तियों को समन जारी किया जाना चाहिए, तो कारण दर्ज किया जाना चाहिए, जो कि

दिनांक 13.9.2018 के आक्षेपित आदेश में गायब है और इस दृष्टिकोण से भी, दिनांक 13.9.2018 का आदेश बने रहने योग्य नहीं है।

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का आगे तर्क यह है कि आवेदक विपक्षी संख्या 1 के ससुराल वाले, पति और देवर हैं। आवेदकों के विरुद्ध दहेज के लिए प्रताड़ित करने के सामान्य आरोप हैं, यद्यपि आवेदक अलग-अलग रह रहे हैं और विपक्षी संख्या 2 काफी समय से उनके साथ नहीं रह रही है, इसलिए विपक्षी संख्या 2 पर दहेज की मांग या प्रताड़ित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने कहा कि विपक्षी संख्या 2 के पति के अकेले सऊदी अरब चले जाने के बाद वह परेशान है क्योंकि वह उसे अपने साथ नहीं ले गया और इसलिए आवेदक आसान लक्ष्य होने के कारण परेशान किए जा रहे हैं और उनके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही शुरू कर दी गई है।

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने **गीता मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2012 (10) एडीजे 464 और कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2022) 6 एससीसी 599** के मामलों में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का संदर्भ दिया और तर्क दिया है कि आवेदकों का मामला निर्णयों के सिद्धान्त से पूरी तरह से आच्छादित है।

7. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, उनका कहना है कि विवाद, यदि कोई हो, पति और पत्नी के बीच हो सकता है और वर्तमान आवेदक ससुराल वाले हैं, इसका किसी भी तरह

के अपराध से कोई लेना-देना नहीं है, जैसा कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा शिकायत में उल्लेख किया गया है। उनका तर्क है कि आवेदकों के खिलाफ कोई ठोस सबूत नहीं है, जिससे उन्हें अपराध करने में जोड़ा जा सके, जिसके अंतर्गत वर्तमान आवेदकों को 13.9.2018 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से सम्मन किया गया है। इसलिए, तर्क दिया गया है कि 13.9.2018 के आदेश को निरस्त करने योग्य है और आवेदकों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को समाप्त किया जाए।

8. इसके विपरीत, राज्य सरकार और विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त तर्क का बलपूर्वक विरोध किया और आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का स्पष्ट उत्तर दिया और कहा कि जहां तक धारा 202 सीआरपीसी के अधिदेश के उल्लंघन का प्रश्न है, मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता और गवाह के बयान दर्ज किए हैं, जिसमें गवाह ने अपने बयान में वर्तमान आवेदकों का नाम बताया है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आवेदक ही वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपराध किया है और इसलिए धारा 202 सीआरपीसी के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं किया गया है।

9. यह तर्क दिया गया है कि आवेदक निस्संदेह ससुराल वाले हैं, लेकिन विपक्षी संख्या 2 उसी घर में रह रही है, जहां वर्तमान आवेदक रह रहे हैं और इसलिए यह कहना कि विपक्षी संख्या 2 उन्नाव में रह रही है, सही नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि सम्मन आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, क्योंकि इसमें तथ्य और

कारण दोनों का उल्लेख किया गया है, जो दिनांक 13.9.2018 के आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है। उन्होंने कहा कि आवेदकों द्वारा सत्य को झुठलाया जा रहा है, हालांकि शिकायत को धारा 200 के अंतर्गत शिकायतकर्ता के बयान और सीआरपीसी की धारा 202 के अंतर्गत गवाह के बयान द्वारा समर्थित किया गया है, जो मामले में आगे बढ़ने के लिए प्रथम दृष्टया वैधानिक आवश्यकता है और आवेदकों को विचारण न्यायालय के समक्ष कहने का पूरा अवसर मिलेगा, इसलिए, दलील यह है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई विकृति या गैरकानूनी नहीं है।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात यह पता चलता है कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा दिनांक 31.1.2018 को शिकायत दर्ज कराई गई थी, जिसमें यह कहा गया था कि आवेदकों ने विपक्षी संख्या 2 को दहेज के लिए प्रताड़ित किया है तथा दूसरी ओर दिनांक 16.2.2018 को उन्हीं आरोपों के साथ एक एफ.आई.आर. भी दर्ज कराई गई थी।

11. जब इस न्यायालय ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए इस तर्क की जांच की कि क्या सीआरपीसी की धारा 210 के अधिदेश का कोई उल्लंघन हुआ है, तो अभिलेखों से पता चलता है कि दिनांक 31.1.2018 को शिकायत दर्ज कराने के पश्चात दिनांक 16.2.2018 को उसी घटना के लिए एफ.आई.आर. दर्ज कराई गई, जबकि सीआरपीसी की धारा 210 के अंतर्गत निर्धारित

प्रक्रिया स्पष्ट है कि यदि मामला पुलिस रिपोर्ट के अलावा किसी अन्य तरीके से संस्थित किया जाता है और जांच या परीक्षण के दौरान मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि पुलिस द्वारा जांच की जा रही है, जो उसके द्वारा की गई जांच या परीक्षण का विषय है, तो मजिस्ट्रेट ऐसी जांच या परीक्षण की कार्यवाही पर रोक लगा देगा और ऐसी जांच करने वाली पुलिस से रिपोर्ट मांगेगा, लेकिन जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 210 सीआरपीसी के प्रावधानों की अनदेखी करते हुए मामले में कार्यवाही की और वर्तमान आवेदकों को धारा 498ए, 323 आईपीसी और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत सम्मन किया है।

12. इसके अलावा, अब तक यह तर्क दिया गया है कि धारा 202 (1) सीआरपीसी के प्रावधान का उल्लंघन किया गया है; रिकॉर्ड से पता चलता है कि शिकायतकर्ता और गवाह के बयान क्रमशः धारा 200 और 202 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए हैं, जिसमें आवेदकों/आरोपियों की वास्तविकता और उनके पते के बारे में कोई जानकारी नहीं है, क्योंकि धारा 202 (1) के अंतर्गत निर्धारित प्रावधान स्पष्ट रूप से कहता है कि यदि प्रस्तावित आरोपी संबंधित मजिस्ट्रेट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रह रहे हैं, तो वह जांच या परीक्षण करेगा, हालांकि अगर गवाहों या शिकायतकर्ता का बयान ऐसे प्रस्तावित आरोपी व्यक्तियों की वास्तविकता दिखाने के लिए पर्याप्त है, तो आगे कोई जांच या परीक्षण की आवश्यकता नहीं है।

13. अभिजीत पवार बनाम हेमंत मधुकर निंबालकर और अन्य, (2017) 3 एससीसी 528, में यह निर्धारित किया गया है कि प्रक्रिया जारी करने से पहले, जांच करने या परीक्षण का निर्देश देने की आवश्यकता, औपचारिकता मात्र नहीं है और इसलिए, मजिस्ट्रेट या न्यायालय को संहिता के अंतर्गत परीक्षण के अलावा 'जांच' का पालन करना है, हालांकि यह धारा 202 सीआरपीसी में निर्धारित नहीं है कि जांच का विशिष्ट तरीका या प्रकार क्या होगा।

14. अनिल कुमार व अन्य बनाम एम.के. अयप्पा और अन्य, (2013)10 सुप्रीम कोर्ट केस 705 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या-11 में निम्न प्रकार निर्धारित किया:-

"11. धारा 156(3) सीआरपीसी का दायरा इस न्यायालय के समक्ष कई मामलों में विचारार्थ आया। मकसूद सैयद मामले में इस न्यायालय ने धारा 156(3) के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक के प्रयोग की आवश्यकता की जांच की और माना कि जहां धारा 156(3) या धारा 200 सीआरपीसी के अंतर्गत दायर शिकायत पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को विवेक का प्रयोग करना आवश्यक है, ऐसे मामले में विशेष न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट वैध स्वीकृति आदेश के बिना किसी लोक सेवक के विरुद्ध धारा 156(3)

के अंतर्गत मामले को संदर्भित नहीं कर सकते। मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक का प्रयोग आदेश में परिलक्षित होना चाहिए। केवल यह कथन कि उन्होंने शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, जैसा कि आदेश में परिलक्षित होता है, पर्याप्त नहीं होगा। शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन करने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, क्या मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 156(3) सीआरपीसी के अंतर्गत जांच का आदेश देने के लिए उठाए गए कदमों को आदेश में दर्शाया जाना चाहिए, हालांकि उनके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति की न तो आवश्यकता है और न ही इसकी गारंटी है। हमने पहले ही विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को उद्धृत कर लिया है, जिसमें हमारे विचार से जांच का आदेश देने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट को अपना विवेक प्रयोग करना आवश्यक है और मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक प्रयोग आदेश में प्रतिबिम्बित होना चाहिए और केवल यह कथन कि उसने शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, पर्याप्त नहीं होगा।

16. इसके अतिरिक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मकसूद सैयद बनाम गुजरात

राज्य और अन्य, (2008)5 सर्वोच्च न्यायालय मामले, 668 में पैराग्राफ संख्या-13 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"13. जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) या धारा 200 के अनुसार दायर की गई शिकायत याचिका पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपने विवेक का प्रयोग करना आवश्यक है। दंड संहिता में कंपनी के प्रबंध निदेशक या निदेशकों की ओर से प्रतिनिधिक दायित्व संलग्न करने का कोई प्रावधान नहीं है, जब अभियुक्त कंपनी है। विद्वान मजिस्ट्रेट अपने आप से सही प्रश्न पूछने में विफल रहे कि क्या शिकायत याचिका, भले ही अंकित मूल्य पर दी गई हो और पूरी तरह से सही मानी गई हो, इस निष्कर्ष पर ले जाएगी कि प्रतिवादी किसी भी अपराध के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी थे। बैंक एक निगमित निकाय है। प्रबंध निदेशक और निदेशक की प्रतिनिधिक देयता उत्पन्न होगी, बशर्ते कि कानून में उस संबंध में कोई प्रावधान मौजूद हो। कानून में निर्विवाद रूप से ऐसी प्रतिनिधिक देयताओं को तय करने का प्रावधान होना चाहिए। यहां तक कि उक्त उद्देश्य के लिए भी, यह पक्ष पर अनिवार्य है। शिकायतकर्ता को अपेक्षित आरोप लगाने के लिए बाध्य नहीं किया गया है, जो

प्रतिरूपी दायित्व के प्रावधानों को आकर्षित करेगा।"

17. अब, यह उभर कर आता है कि यदि मामला शिकायत मामले से उत्पन्न हो रहा है, तो सम्मन आदेश में अनिवार्य रूप से कारण दर्ज किए जाने चाहिए। स्पष्ट रूप से, आक्षेपित सम्मन आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि इसमें कारण दर्ज नहीं किए गए हैं और इसलिए, यह कानून की दृष्टि में गलत है।

18. उपर्युक्त तर्कों और चर्चाओं के दृष्टिगत, यह न्यायालय इस मत का है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित सम्मन आदेश दिनांक 13.9.2018 कानून के स्थापित सिद्धान्त के विरुद्ध है।

19. परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित सम्मन आदेश दिनांक 13.9.2018 को अपास्त किया जाता है।

20. मामले को कानून के अनुसार, इस आदेश की तिथि से 45 दिनों की अवधि के भीतर नया आदेश पारित करने के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

21. कार्यालय इस आदेश को तत्काल विचारण न्यायालय को सूचित करेगा।

22. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 561

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 1518 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं.)

और अन्य मामले

रामजी सिंह

...आवेदक

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय इलाहाबाद उप-क्षेत्रीय  
कार्यालय

...प्रतिवादी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

पूर्णन्दु चक्रवर्ती, अनुज टंडन, ऋषभ चौहान

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

रोहित त्रिपाठी

ए. आपराधिक कानून - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 45 - अग्रिम जमानत - धारा 44(2) के कारण धारा 45 के अंतर्गत जमानत पर प्रतिबंध संवैधानिक न्यायालयों पर लागू नहीं - धारा 439 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियां परिरक्षित।

बी. आपराधिक कानून - अग्रिम जमानत - आर्थिक अपराध - अवैध कोयला विचलन के आरोप - प्रार्थीगण से अपराध की कोई आय बरामद नहीं हुई - प्रार्थीगण ने अन्वेषण में

सहयोग किया - 7-12 वर्ष की विलंब के बाद शिकायत दर्ज की गई - अंतरिम अग्रिम जमानत दी गई और पुष्टि की गई।

अभिनिर्धारित हुआ:

न्यायालय ने माना कि पीएमएलए की धारा 45 के अंतर्गत जमानत देने पर प्रतिबंध धारा 44(2) के प्रावधान के कारण संवैधानिक न्यायालयों पर लागू नहीं होते हैं, जो धारा 439 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों को परिरक्षित रखता है। धन शोधन और अवैध कोयला विचलन को बढ़ावा देने के अभियुक्त प्रार्थीगण को निम्नलिखित को ध्यान में रखते हुए अग्रिम जमानत दी गई थी: (i) अपराध की आय की कोई वसूली नहीं, (ii) अन्वेषण में सहयोग, (iii) शिकायत दर्ज करने में महत्वपूर्ण विलंब (7-12 वर्ष), (iv) आवेदक रामजी सिंह की आयु (72 वर्ष) और चिकित्सा स्थिति, और (v) अंतरिम जमानत शर्तों का कोई उल्लंघन नहीं। न्यायालय ने धारा 482 दं.प्र.सं. कार्यवाही के दायरे को जमानत आवेदनों से अलग किया, इस बात पर जोर दिया कि रद्द करने वाले आवेदनों को खारिज करने से जमानत नहीं मिलती है। अंतरिम अग्रिम जमानत के आदेशों की पुष्टि की गई, और आवेदनों को बिना नये जमानत बंधपत्र को आवश्यक किए अनुमति दी गई।

चर्चा की गई वाद विधि:

1. विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929

2. प्रवर्तन निदेशालय बनाम एम. गोपाल रेड्डी,  
2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1862

3. वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम  
सीबीआई, (2013) 7 एससीसी 439

4. बिहार बनाम अमित कुमार, (2017) 13  
एससीसी 751

5. रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय,  
(2018) 11 एससीसी 46

6. पी. चिदंबरम बनाम सीबीआई, (2020) 13  
एससीसी 337

7. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय,  
(2020) 13 एससीसी 791

8. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई,  
(2022) 10 एससीसी 51

9. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी  
दिल्ली), (2020) 5 एससीसी 1

10. कमलेश बनाम राजस्थान राज्य, 2019  
एससीसी ऑनलाइन एससी 1822

11. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992  
सप्पलिमेंट (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा  
पारित)

1. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-  
1611/2023, 1617/2023, 1636/2023,

1638/2023 तथा 1639/2023 में आवेदकों की  
ओर से उपस्थित श्री हिमांशु हेमंत गुप्ता, श्री  
ऐश्वर्या सिन्हा तथा श्री राघव तिबरवाल  
अधिवक्ताओं की सहायता से श्री अजीत कुमार  
सिन्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता, अग्रिम जमानत  
आवेदन संख्या -1518/2023, 1523/2023 व  
1602/2023 में आवेदकों की ओर से उपस्थित  
श्री पूर्णन्दु चक्रवर्ती अधिवक्ता तथा प्रतिवादी-  
प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री  
रोहित त्रिपाठी, अधिवक्ता, को सुना तथा  
अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. उपरोक्त सभी आवेदनों द्वारा अलग-  
अलग मामलों में अलग-अलग आरोपियों के  
लिए अग्रिम जमानत की मांग की गई है,  
लेकिन आरोपों के एक जैसे सेट से, जो  
25.03.2011 को रेलवे और नॉर्दर्न  
कोलफील्ड्स लिमिटेड (एनसीएल) के कुछ  
अधिकारियों द्वारा (1) मेसर्स स्वास्तिक  
सीमेंट प्रोडक्ट्स लिमिटेड, (2) मेसर्स फर्टिको  
मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड,  
(3) मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज, (4) मेसर्स श्री  
राम फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड और (5) मेसर्स  
डोलिया कोक इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड के  
फैक्ट्री परिसर में की गई संयुक्त औचक जांच  
से उत्पन्न हुए हैं। यह पाया गया कि उक्त  
कम्पनियां स्पेशल स्मोकलेस फ्यूल  
(एसएसएफ) के निर्माण के लिए नॉर्दर्न कोल  
फील्ड्स लि. (एनसीएल) से कोयला प्राप्त  
करती थीं तथा कोयले का प्रसंस्करण करने  
के बजाय कम्पनियां इसे उच्च प्रीमियम पर  
काला बाजार में बेचती थीं, जिससे सरकार  
को सदोष हानि होती थी तथा आरोपी  
व्यक्तियों को सदोष लाभ होता था।

3. दिनांक 13.04.2011 को सीबीआई/एसीबी लखनऊ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी, 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सपठित 13(1)(डी) के अंतर्गत 5 एफआईआर दर्ज की थीं, जिनमें एनसीएल से प्राप्त कोयले को प्रसंस्करण किए बिना एसएसएफ में खुले बाजार में भेजकर कम्पनियों को गलत लाभ पहुंचाने का आरोप था। मेसर्स स्वास्तिक प्रोडक्ट्स लिमिटेड के विरुद्ध आरसी 4(ए) 2011, मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड के विरुद्ध आरसी 5(ए) 2011, मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज के विरुद्ध आरसी 6(ए) 2011, मेसर्स श्री राम फ्यूल्स के विरुद्ध आरसी 7(ए) 2011 तथा मेसर्स ड्रोलिया कोड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड के विरुद्ध आरसी 8(ए) दायर की गई। जिला उद्योग केंद्र (डीआईसी) के अज्ञात अधिकारियों तथा एनसीएल के अज्ञात अधिकारियों को भी सभी एफआईआर में आरोपी बनाया गया है। सीबीआई ने उक्त पांच एफआईआर के संबंध में दिनांक 31.05.2012 को पांच अलग-अलग आरोप-पत्र दाखिल किए।

4. जिन मामलों के संबंध में उक्त 8 आवेदन दायर किए गए हैं, उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:-

| क्र<br>म<br>सं. | अ<br>जमा<br>नत<br>सं. | प्रसू<br>रि<br>सं. | ईसीआ<br>ईआर<br>सं. | परिवा<br>द सं. | परिवाद<br>की<br>तिथि | सत्र<br>वाद<br>सं. |
|-----------------|-----------------------|--------------------|--------------------|----------------|----------------------|--------------------|
| 1               | 151<br>8              | 05                 | 02                 | 02/2<br>019    | 03.06.<br>2019       | 512/2<br>023       |
| 2               | 152<br>3              | 06<br>&            | 01 &<br>03,        | 08/2<br>022    | 24.06.<br>2023       | 124/2<br>023       |

|   |          |               |                              |             |                 |              |
|---|----------|---------------|------------------------------|-------------|-----------------|--------------|
|   |          | 08            | संविली<br>त<br>01            |             |                 |              |
| 3 | 160<br>2 | 04            | 04                           | 06/2<br>018 | 12.07.<br>2018  | 492/2<br>023 |
| 4 | 161<br>1 | 07            | 05                           | 02/2<br>016 | अप्रैला<br>2016 | 513/2<br>023 |
| 5 | 161<br>7 | 06<br>&<br>08 | 01 &<br>03<br>संविली<br>त 01 | 08/2<br>022 | 24.06.<br>2023  | 124/2<br>023 |
| 6 | 163<br>6 | 04            | 04                           | 06/2<br>018 | 12.07.<br>2018  | 492/2<br>023 |
| 7 | 163<br>8 | 05            | 02                           | 02/2<br>019 | 03.06.<br>2019  | 512/2<br>023 |
| 8 | 163<br>9 | 05            | 02                           | 02/2<br>019 | 03.06.<br>2019  | 512/2<br>023 |

5. ईसीआईआर/03/वीएसआई/एलजेडओ/2012 को ईसीआईआर/01/वीएसआई/एलजेडओ/2012 के साथ 29.03.2016 को विलय कर दिया गया।

6. सीबीआई द्वारा दायर आरोप-पत्र में कहा गया है कि वर्ष 2000 तक कोयला एक नियंत्रित वस्तु थी और औद्योगिक इकाइयों को उद्योग निदेशालय की अनुशंसा और प्रायोजन पर कोयला मिलता था। वर्ष 2000 में भारत सरकार ने कोयला विनियंत्रण आदेश अधिसूचित किया और उसके बाद औद्योगिक इकाइयों को कोयले के आवंटन के लिए उद्योग निदेशालय की अनुशंसा की आवश्यकता नहीं रही और वर्ष 2003 में उद्योग निदेशालय से कोयले का प्रायोजन बंद कर दिया गया था। सरकार ने अक्टूबर 2007 में नई कोयला वितरण नीति (एनसीडीपी) की घोषणा की, जिसके अंतर्गत गैर-कोर लघु औद्योगिक उपभोक्ताओं को ईंधन



आपूर्ति समझौतों (एफएसए) के माध्यम से सीधे कोल इंडिया लिमिटेड/सहायक कोयला कंपनियों से कोयला आपूर्ति की जानी थी।

7. एफएसए के खंड 4.4 में प्रावधान है कि क्रेता किसी भी अन्य उद्देश्य के लिए कोयले को नहीं बेचेगा/डायवर्ट या स्थानांतरित नहीं करेगा और इसे समझौते का गंभीर उल्लंघन माना जाएगा। क्रेता द्वारा कोयले के किसी पुनर्विक्रय में संलग्न होने या संलग्न होने की योजना बनाने की स्थिति में, विक्रेता (एनसीएल/सीआईएल) क्रेता को देय किसी भी देयता या क्षति के बिना अनुबंध को तत्काल समाप्त कर देगा।

8. कारखानों के संयुक्त निरीक्षण पर, यह पाया गया कि कारखाने गैर-कार्यात्मक थे और उन्होंने एफएसए के खंड 4.4 में निहित शर्त का उल्लंघन करते हुए कोयले को एसएसएफ में प्रसंस्करित किए बिना बेच दिया था।

9. रामजी सिंह के संबंध में-अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1518/2023, 1523/2023 और 1602/2023 में आवेदक, ईडी द्वारा दायर परिवादों में यह कहा गया है कि उन्होंने और योगेंद्र नाथ पांडे-डीआईसी के एक अन्य अधिकारी, ने एनसीएल से प्राप्त कोयले के उचित उपयोग और एसएसएफ विनिर्माण इकाइयों के कामकाज के बारे में कंपनियों द्वारा तैयार की गई झूठी/फर्जी रिपोर्टों को बिना उचित भौतिक निरीक्षण के प्रमाणित करके अपने आधिकारिक पदों का दुरुपयोग किया था। उनके कृत्य ने एनसीएल से कोयले की निरंतर आपूर्ति की सुविधा प्रदान की,

जिसके परिणामस्वरूप सदोष लाभ अर्जित हुआ। आवेदक रामजी सिंह और योगेंद्र नाथ पांडे अप्रत्यक्ष रूप से अपराध की आय के सृजन के संबंध में उकसाने की गतिविधि में शामिल थे और इस तरह उन्होंने मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध किया।

10. परिवाद में आगे कहा गया है कि आवेदक रामजी सिंह को तीन सम्मन जारी किए गए थे और अंतिम सम्मन के जवाब में, उन्होंने अपनी चिकित्सा स्थितियों के कारण उपस्थिति से छूट मांगी थी।

11. आवेदक रामजी सिंह के अग्रिम जमानत आवेदनों के समर्थन में दायर हलफनामों में कहा गया है कि आवेदक द्वारा प्रस्तुत स्थिति रिपोर्ट के आधार पर अधिसूचित मूल्य पर कोई कोयला आपूर्ति नहीं की गई थी, क्योंकि कोयले की आपूर्ति एफएसए के अंतर्गत की गई थी और समझौते के खंड 4.4 के अनुसार, क्रेता से किसी भी दस्तावेज का निरीक्षण/आह्वान करना और कोयले के अंतिम उपयोग का भौतिक सत्यापन करना और इसकी सत्यता के बारे में खुद को संतुष्ट करना एनसीएल का कर्तव्य था। आवेदक रामजी सिंह ने किसी भी आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप कोई पैसा प्राप्त नहीं किया है।

12. तर्क दिया गया है कि आवेदक रामजी सिंह 72 वर्ष के व्यक्ति हैं, जो अशक्त और बीमार हैं और वे बुढ़ापे से संबंधित कई बीमारियों से पीड़ित हैं। मेदांता अस्पताल, गुरुग्राम से आवेदक के निरंतर उपचार को दर्शाने वाले कई दस्तावेज संलग्न किए गए हैं,

जिनसे पता चलता है कि आवेदक उच्च रक्तचाप, मधुमेह, लैकुनर स्ट्रोक, अवसाद और कुछ हृदय संबंधी समस्याओं से पीड़ित है और वह टीबी का रोगी रहा है।

13. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1611/2023 और 1617/2013 में आवेदक रविंद्र अग्रवाल के संबंध में, यह आरोप लगाया गया है कि वह मेसर्स एस.बी.सी. मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड का मालिक है, जिसने वर्ष 2010-11 के दौरान मेसर्स श्री राम फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज और मेसर्स ड्रोलिया कोक इंडस्ट्रीज से कम वजन का कोयला खरीदा था और यह लेनदेन झूठा साबित हुआ था। रविंद्र अग्रवाल पर कम वजन के कोयले की फर्जी खरीद दिखाकर कोयले के अवैध डायवर्जन की आपराधिक साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। परिवाद में रविंद्र अग्रवाल का कथन दर्ज है कि श्री राम फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज और मेसर्स ड्रोलिया कोक इंडस्ट्रीज से खरीदा गया कोयला, मेसर्स डालमिया सीमेंट भारत लिमिटेड और अन्य खरीदारों को बेचा गया। विक्रेता को दस लाख रुपये बैंक हस्तांतरण के माध्यम से दिए गए और शेष भुगतान नकद में किया गया।

14. जय नारायण अग्रवाल, आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1639/2023 में आवेदक, आनंद कोल मूर्स, मेसर्स शिवम कोल मूर्स और मेसर्स त्रिशूल इंडस्ट्रीज के मालिक हैं, जिन्होंने मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड से कोयला खरीदा था, बिना इसे

एसएसएफ में प्रसंस्करित किए। परिवाद में आवेदक का कथन दर्ज है कि मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड से खरीदा गया कोयला अन्य खरीदारों को बेचा गया था। कोयले की खरीद के लिए पूरी राशि का भुगतान चेक और बैंक हस्तांतरण के माध्यम से किया गया था, केवल 1,00,000/- रुपये की राशि को छोड़कर, जिसका भुगतान नकद में किया गया था।

15. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1636/2023 और 1638/2023 के आवेदक सुभाष चंद्र तुलस्यान, मेसर्स तुलस्यान कोल सिंडिकेट और मेसर्स पूर्णागिरी होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड के मालिक हैं। उनके विरुद्ध आरोप है कि वर्ष 2010-11 के दौरान मेसर्स स्वास्तिक सीमेंट प्रोडक्ट्स और मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड ने प्रसंस्करण और इसे विशेष धुआं रहित ईंधन (एसएसएफ) में परिवर्तित करने के लिए एफएसए के अंतर्गत एनसीएल से कोयला खरीदा था, लेकिन उन्होंने गलत तरीके से कोयले को बिना प्रसंस्करण के खुले बाजार में मेसर्स तुलस्यान कोल सिंडिकेट और मेसर्स पूर्णागिरी होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड को बेच दिया। यह आरोप है कि कुछ बिक्री लेनदेन फर्जी प्रतीत हुए। सुभाष चंद्र तुलस्यान पर एसएसएफ की फर्जी खरीद दिखाकर कोयले के अवैध डायवर्जन की आपराधिक साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। परिवादों में आवेदक का बयान दर्ज किया गया है कि मेसर्स स्वास्तिक सीमेंट प्रोडक्ट्स और मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड से खरीदा गया कोयला अन्य खरीदारों को बेच दिया गया। कोयले के लिए

पूरा भुगतान केवल चेक के माध्यम से किया गया था।

उपरोक्त मामलों के अलावा, कोई भी आवेदक किसी अन्य मामले में शामिल नहीं है।

16. अजमानत संख्या-1611, 1617, 1636, 1638 और 1639/2023 में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, अर्थात् रविन्द्र अग्रवाल, जय नारायण अग्रवाल और सुभाष चंद्र तुलसियान ने प्रस्तुत किया है कि आवेदकों ने श्री राम फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज, मेसर्स डोलिया कोक इंडस्ट्रीज, मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड और मेसर्स स्वास्तिक सीमेंट प्रोडक्ट्स से कोयला खरीदकर कोई अपराध नहीं किया है। अधिक से अधिक, उपरोक्त कंपनियां एनसीएल के साथ समझौते के उल्लंघन की दोषी हैं, जो खुले बाजार में कोयले की बिक्री को प्रतिबंधित करता है और जिसके अंतर्गत कंपनियों को कोयले को प्रसंस्करित करने, इसे एसएसएफ में परिवर्तित करने और उसके बाद इसे खुले बाजार में बेचने के लिए बाध्य किया गया था। आवेदक या उनकी सहयोगी एनसीएल और उपरोक्त तीन कंपनियों के बीच अनुबंध के पक्ष नहीं थे। उपरोक्त किसी भी आवेदक से कोई अपराधिक आय बरामद नहीं हुई है तथा उनकी कोई भी सम्पत्ति कुर्क नहीं की गई है।

17. उपरोक्त तथ्यों पर विचार करते हुए सभी आवेदकों को अनुसूचित अपराधों में अग्रिम जमानत प्रदान की गई है।

18. 25.03.2011 को किए गए संयुक्त निरीक्षण के अनुसरण में लगाए गए कोयले की अवैध बिक्री के संबंध में आरोपों से उत्पन्न

19. आवेदक रामजी सिंह को परिवाद मामला संख्या-02/2016 में पीएमएलए की धारा 3/4 के अंतर्गत इस इलाहाबाद न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या-32061/2017 में पारित आदेश दिनांक 31.10.2017 के माध्यम से जमानत प्रदान की गई है। ।

20. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक रामजी सिंह डीआईसी के महाप्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं और वर्तमान में उनकी आयु लगभग 72 वर्ष है; कि वे विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त हैं; कि आवेदक से किसी अपराध की आय की वसूली का कोई आरोप नहीं है, उन्हें निम्नलिखित शर्तों पर अंतरिम आदेश द्वारा अग्रिम जमानत दी गई और किसी भी अन्य शर्तों के अधीन, जो विचारण न्यायालय द्वारा तय की जा सकती हैं:-

(i). कि आवेदक प्रत्येक निर्धारित तिथि को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो;

(ii). कि आवेदक, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा, जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का

खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ की जा सके;

(iii). कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv). आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाह पर दबाव नहीं डालेगा/डराया-धमकाएगा नहीं।

21. अन्य आवेदकों को भी इसी तरह की शर्तों पर अंतरिम अग्रिम जमानत दी गई है।

22. प्रतिवादी-ई.डी. ने अ.जमानत संख्या-1518/2023, 1523/2023, 1602/2023, 1617/2023 और 1636/2023 में प्रति-शपथपत्र दायर किए हैं। प्रति-शपथपत्रों में इस बात पर विवाद नहीं किया गया है कि आवेदकों ने जांच में सहयोग किया है और जांच के दौरान उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया, लेकिन यह कहा गया है कि ये तथ्य आवेदन पर निर्णय लेने के लिए शायद ही प्रासंगिक हैं। प्रति-शपथपत्रों में कहा गया है कि अपराध की आय किसी विशेष आरोपी से संबंधित या पता लगाने योग्य नहीं होनी चाहिए, जब तक कि वह पहचान योग्य हो और मामले से संबंधित हो।

23. प्रति-शपथपत्र में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ** 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929, **प्रवर्तन निदेशालय बनाम एम. गोपाल रेड्डी और अन्य** 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1862, **वाई.एस. जगन**

**मोहन रेड्डी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो**, (2013) 7 एससीसी 439, **बिहार राज्य और अन्य बनाम अमित कुमार**, (2017) 13 एससीसी 751 और **रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, (2018) 11 एससीसी 46 के मामलों में निर्धारित विधि का संदर्भ दिया गया है।

24. **प्रवर्तन निदेशालय बनाम एम. गोपाल रेड्डी और अन्य और विजय मदनलाल चौधरी बनाम प्रवर्तन निदेशालय** (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि पीएमएलए की धारा 45 की कठोरता धारा 438 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदनों पर लागू होती है।

25. **वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई**, (2013) 7 एससीसी 439 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि: -

*“34. आर्थिक अपराध एक अलग श्रेणी का गठन करते हैं और जमानत के मामले में एक अलग दृष्टिकोण के साथ देखा जाना चाहिए। गहरी साजिश वाले और सार्वजनिक धन की भारी हानि वाले आर्थिक अपराधों को गंभीरता से देखा जाना चाहिए और उन्हें पूरे देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले गंभीर अपराध के रूप में और इस तरह देश के वित्तीय स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा करना वाला माना जाना चाहिए।”*

26. **बिहार राज्य बनाम अमित कुमार**, (2017) 13 एससीसी 751 में, एक कॉलेज के छात्र बिहार इंटरमीडिएट शिक्षा परिषद द्वारा आयोजित इंटरमीडिएट परीक्षा की मेरिट सूची में पहले दस स्थानों पर कब्जा करने में सफल रहे। धारा 420, 465, 468, 471, 120-बी आईपीसी के अंतर्गत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। जांच में पता चला कि बिहार इंटरमीडिएट परीक्षा में कॉलेज के छात्रों और प्रबंधन की धोखाधड़ी की प्रथा प्रचलित थी, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी की गिरफ्तारी हुई। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को जमानत दे दी थी। अपील में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

*8. आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि उच्च न्यायालय ने जमानत देते समय कोई तर्क नहीं दिया है। यात्रिक तरीके से, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर जमानत दी कि आरोपी पहले से ही लंबे समय से हिरासत में है। जब अपराध इतना गंभीर है तो केवल यह तथ्य कि वह कितने समय से जेल में था, अदालतों की चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। हम ऐसे मामले में जमानत देते समय इस तरह के लापरवाह दृष्टिकोण समझ नहीं कर पा रहे हैं, जिसका प्रभाव बिहार राज्य में शिक्षा प्रणाली की अखंडता में लोगों के विश्वास को कम करने वाला है। (बल प्रदत्त)*

27. **रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, (2018) 11 एससीसी 46 में, नोटबंदी के कुछ

समय बाद अपीलकर्ता के कार्यालय परिसर में अपराध शाखा और आयकर विभाग द्वारा संयुक्त रूप से की गई छापेमारी के दौरान 13.62 करोड़ रुपये की करेंसी बरामद की गई, जिसमें 2.62 करोड़ रुपये की नई करेंसी 2,000 रुपये के मूल्यवर्ग में शामिल थी। इसके अलावा, अपीलकर्ता ने अपने कार्यालय और आवासीय परिसर में आयकर विभाग द्वारा की गई छापेमारी के दौरान 128 करोड़ रुपये सरेंडर कर दिए थे। अपीलकर्ता की जमानत याचिका उच्च न्यायालय ने खारिज कर दी थी। अपीलकर्ता ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी जमानत याचिका दायर की और उसने अपनी अंतरिम रिहाई के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया कि उसकी मां गंभीर रूप से बीमार है और उन्हें तत्काल चिकित्सा की आवश्यकता है। आवेदक के अनुरोध पर दूसरी जमानत याचिका वापस ले ली गई थी, फिर भी उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की कारावास अवधि, मुख्य मामले में आरोप-पत्र प्रस्तुत करने और याचिकाकर्ता की मां की बीमारी को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता को 3 सप्ताह के लिए अंतरिम जमानत प्रदान की। उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

*“21. इस न्यायालय द्वारा लिया गया सुस्थापित दृष्टिकोण यह है कि गहरी साजिश वाले आर्थिक अपराधों और सार्वजनिक धन की भारी हानि को गंभीरता से लिया जाना चाहिए और उन्हें गंभीर अपराध माना जाना चाहिए, जो पूरे देश की अर्थव्यवस्था*

को प्रभावित करते हैं और इस प्रकार देश के वित्तीय स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं। इसके अलावा, जब अपराध की आय को बेदाग धन के रूप में पेश करने का प्रयास किया जाता है और यह भी कि आरोप अंततः स्थापित नहीं हो सकते हैं, लेकिन लगाए जाने के बाद, यह साबित करने का भार कि धन अपराध की आय नहीं थे और इसलिए, दूषित नहीं थे, 2002 अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत अभियुक्त व्यक्तियों पर आ जाता है।”

28. प्रति-शपथपत्र में राकेश कुमार पांडे बनाम मुन्नी सिंह @ माता बक्स सिंह, एसएलपी संख्या 4059/2000 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 12.03.2001 को पारित निर्णय से निम्नलिखित अंश का संदर्भ भी दिया गया है:-

“उच्च न्यायालय ने जमानत के लिए आवेदन पर विचार किया और अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखे बिना अभियुक्त-प्रतिवादी को जमानत पर रिहा कर दिया, क्योंकि अभियुक्त, जिस पर समान भूमिका का आरोप लगाया गया था, को पहले ही जमानत दी जा चुकी थी।”

29. प्रति-शपथपत्र को प्रवर्तन निदेशालय के सहायक निदेशक द्वारा सत्यापित

किया गया है, जिन्होंने अपनी योग्यता स्नातक बताई है, तथा प्रति-शपथपत्र में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के संबंध में किए गए सभी कथनों को अभिसाक्षी के व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर सत्यापित किया गया है। राकेश कुमार पांडे (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का संदर्भ अभिसाक्षी के मन में एक निराधार और अनुचित गलतफहमी को इंगित करता है कि यह न्यायालय अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री या अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखे बिना जमानत आवेदन पर निर्णय लेगा।

30. पीएमएलए की धारा 45 में आरोपी व्यक्ति को जमानत देने के लिए निम्नलिखित शर्तें दी गई हैं: -

**“45. अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना-**

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति जमानत पर या अपने बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि -

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और यह कि वह जमानत पर रहते हुए कोई अपराध करने की संभावना नहीं है:

बशर्ते कि कोई व्यक्ति, जो सोलह वर्ष से कम आयु का है, या महिला है या बीमार या अशक्त है या जिस पर अकेले या अन्य सह-अभियुक्तों के साथ एक करोड़ रुपये से कम की धनराशि के धन शोधन का आरोप है, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश दे:

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि

... \* \* \*

(2) उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट जमानत देने की सीमा, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या जमानत देने पर वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत सीमाओं के अतिरिक्त है। \* \* ”

(बल प्रदत्त)

31. यह ध्यान देने योग्य है कि पीएमएलए की धारा 44 में निम्नलिखित प्रावधान है: -

“44. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारणीय अपराध-(1) दंड प्रक्रिया

संहिता, 1973 (2, 1974) में निहित किसी भी बात के बावजूद,-

(क) धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध और उस धारा के अंतर्गत अपराध से जुड़ा कोई अनुसूचित अपराध उस क्षेत्र के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होगा जिसमें अपराध किया गया है:

बशर्ते कि विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले अनुसूचित अपराध की सुनवाई कर रहा हो, ऐसे अनुसूचित अपराध की सुनवाई जारी रखेगा; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के अंतर्गत इस संबंध में अधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा किए गए परिवाद पर, अभियुक्त को विचारण के लिए सौंपे बिना धारा 3 के अंतर्गत अपराध का संज्ञान ले सकता है।

बशर्ते कि जांच पूरी होने के बाद, यदि धन शोधन का कोई ऐसा अपराध नहीं बनता, जिसके लिए ऐसी परिवाद दर्ज करने की आवश्यकता हो, तो उक्त प्राधिकारी विशेष न्यायालय के समक्ष समापन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा; या

(ग) यदि अनुसूचित अपराध का संज्ञान लेने वाला न्यायालय, उप-खण्ड (ख) के अन्तर्गत धन-शोधन के अपराध के परिवाद का संज्ञान लेने

वाले विशेष न्यायालय से भिन्न हैं, तो वह इस अधिनियम के अन्तर्गत परिवाद दर्ज करने के लिए प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा आवेदन किए जाने पर अनुसूचित अपराध से सम्बन्धित मामले को विशेष न्यायालय को सौंप देगा और विशेष न्यायालय ऐसे मामले की प्राप्ति पर उस चरण से उस पर कार्यवाही करेगा, जिस स्तर पर वह अपराध किया गया है।

(घ) अनुसूचित अपराध या धन-शोधन के अपराध पर विचार करते समय विशेष न्यायालय, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबन्धों के अनुसार विचारण करेगा, जैसा कि सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण पर लागू होता है।

स्पष्टीकरण.- संदेहों को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि,-

(i) इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध से निपटने के दौरान, इस अधिनियम के अंतर्गत जांच, पूछताछ या परीक्षण के दौरान विशेष न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अनुसूचित अपराध के संबंध में पारित किसी भी आदेश पर निर्भर नहीं होगा, और एक ही न्यायालय द्वारा दोनों प्रकार के अपराधों के परीक्षण को संयुक्त परीक्षण के रूप में नहीं माना जाएगा;

(ii) परिवाद में आगे की जांच के संबंध में कोई भी बाद की परिवाद

शामिल मानी जाएगी, जो अपराध के संबंध में शामिल किसी भी आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध कोई और मौखिक या दस्तावेजी सबूत लाने के लिए आयोजित की जा सकती है, जिसके लिए परिवाद पहले ही दायर की जा चुकी है, चाहे उसका नाम मूल परिवाद में हो या नहीं।] (2) इस धारा में निहित कुछ भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा और उच्च न्यायालय उस धारा की उप-धारा (1) के खंड (बी) के अंतर्गत शक्ति सहित ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है, जैसे कि उस धारा में "मजिस्ट्रेट" के संदर्भ में धारा 43 के अंतर्गत नामित "विशेष न्यायालय" का संदर्भ भी शामिल है।" (बल प्रदत्त)

32. आश्चर्यजनक रूप से, पीएमएलए की धारा 45, जिसमें जमानत देने के लिए न्यायालयों की शक्ति पर कुछ प्रतिबंध हैं, में धारा 439 सीआरपीसी द्वारा उच्च न्यायालयों को दी गई जमानत देने की विशेष शक्तियों के पक्ष में कोई प्रावधान नहीं है, जबकि पीएमएलए की धारा 44, जो अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के परीक्षण के लिए विशेष न्यायालयों को अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है और जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो जमानत देने के संबंध में किसी भी न्यायालय की शक्तियों को प्रभावित कर सकता है, यह प्रावधान करती है कि धारा 44 में निहित कुछ भी धारा 439



सीआरपीसी के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित नहीं करेगा।

33. ऐसा प्रतीत होता है कि पीएमएलए की धारा 44 (2) में निहित प्रावधान, जो जमानत देने के संबंध में उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों के पक्ष में है, को अधिनियम की धारा 45 में शामिल किया जाना था, लेकिन इसे गलती से धारा 45 के ठीक ऊपर रखा गया है। यह निष्कर्ष अन्य कानूनों में निहित समान प्रावधानों के अध्ययन से समर्थित है, जिनका उल्लेख निम्नलिखित प्रस्तर में किया जा रहा है।

34. एंटी-हाइजैकिंग एक्ट, 2016 की धारा 12 (1) और 12 (2) में पीएमएलए की धारा 45 (1) और 45 (2) के समान प्रावधान है, लेकिन पीएमएलए की धारा 44 (2) के समान प्रावधान एंटी-हाइजैकिंग एक्ट की धारा 12 (3) में भी निहित है। उपरोक्त धारा इस प्रकार है: -

**"12. जमानत के संबंध में प्रावधान.-**

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति, यदि वह हिरासत में है, जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि—

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां विनिर्दिष्ट न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या उस समय लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत जमानत देने की सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

(3) इस धारा में निहित कोई भी बात दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।" (बल प्रदत्त)

35. धारा 439 सीआरपीसी के अंतर्गत जमानत देने के लिए उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों को तब भी बचा लिया गया है, जब धारा 4 में दिए गए हाइजैकिंग के अपराध के लिए मृत्यु दंड तक का प्रावधान है।

36. इसी प्रकार, नागरिक उड्डयन सुरक्षा के विरुद्ध गैरकानूनी कृत्यों के दमन अधिनियम, 1982 के अंतर्गत अपराधों के लिए आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है और

अधिनियम की धारा 6ए में यह प्रावधान है कि:-

**शक्तियों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।"**

**"6-ए. जमानत के संबंध में प्रावधान.-**

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति, यदि वह हिरासत में है, जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि-

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या जमानत देने के संबंध में वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

(3) इस धारा में निहित कोई भी बात दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष

**37. समुद्री डकैती विरोधी अधिनियम, 2022**

की धारा 3 में प्रावधान है कि समुद्री डकैती के अपराध के लिए अधिकतम आजीवन कारावास की सजा होगी और यदि समुद्री डकैती करने वाला व्यक्ति, किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनता है या मृत्यु कारित करने का प्रयास करता है, तो उसे मृत्युदंड दिया जा सकता है। उक्त अधिनियम की धारा 12 में प्रावधान है कि: -

**"12. जमानत के संबंध में प्रावधान.-**

(1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति, यदि वह हिरासत में है, तो उसे जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि-

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का उचित अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) इस धारा में निहित कोई भी बात संहिता की धारा 439 के अंतर्गत जमानत दिए जाने के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।“

38. समुद्री नौवहन और महाद्वीपीय शelf पर स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध गैरकानूनी कृत्यों का दमन अधिनियम, 2002 के अंतर्गत अपराधों के लिए मृत्युदंड तक की सजा हो सकती है और पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 8 में यह प्रावधान है कि: -

“8. जमानत के संबंध में प्रावधान.-(1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति, यदि हिरासत में है, तो उसे जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि -

(क) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ख) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा

कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

(2) उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं संहिता या किसी अन्य कानून के अंतर्गत जमानत देने पर लागू सीमाओं के अतिरिक्त हैं।

(3) इस धारा में निहित कुछ भी संहिता की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा।“

39. औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अंतर्गत अपराधों में आजीवन कारावास तक की सजा है और औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 36 एसी में प्रावधान है कि: -

“36-एसी-कुछ मामलों में अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना--(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी,-

(क) मिलावटी या नकली औषधि से संबंधित प्रत्येक अपराध और धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) और (ग), धारा 13 की उपधारा (2) के खंड (क), धारा 22 की उपधारा (3), धारा 27 के खंड (क) और (ग), धारा 28, धारा 28-ए, धारा 28-बी और धारा 30 की उपधारा (1) और (2) के अंतर्गत

दंडनीय तथा मिलावटी औषधि या नकली औषधि से संबंधित अन्य अपराध संज्ञेय होंगे।

(ख) धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) और (ग), धारा 13 की उपधारा (2) के खंड (क), धारा 22 की उपधारा (3), धारा 27 के खंड (क) और (ग), धारा 28, धारा 28-ए, धारा 28-बी तथा धारा 30 की उपधारा (1) और (2) तथा मिलावटी औषधियों या नकली औषधियों से संबंधित अन्य अपराधों के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी कोई भी व्यक्ति जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि—

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है; और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय को यह विश्वास है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और यह कि वह जमानत पर रहते हुए कोई अपराध करने की संभावना नहीं है:

बशर्ते कि कोई व्यक्ति, जो सोलह वर्ष से कम आयु का है, या महिला है या बीमार या अशक्त है, जमानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश देती है।

(2) उपधारा (1) के खंड (बी) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या जमानत देने पर वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत सीमाओं के अतिरिक्त है।

(2) इस धारा में निहित कोई भी बात दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी और उच्च न्यायालय उस धारा की उपधारा (1) के खंड (बी) के अंतर्गत शक्तियों सहित ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जैसे कि उस धारा में "मजिस्ट्रेट" के संदर्भ में धारा 36-एबी के अंतर्गत नामित "विशेष न्यायालय" का संदर्भ भी शामिल है।"

40. उपर्युक्त अधिनियम, हवाई जहाज के हाइजैकिंग, नागरिक उड्डयन की सुरक्षा के विरुद्ध गैरकानूनी कृत्यों, समुद्री डकैती, समुद्री नौवहन और महाद्वीपीय शelf पर स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध गैरकानूनी कृत्यों और मिलावटी या नकली दवाओं के निर्माण और बिक्री से संबंधित अपराधों जैसे जघन्य अपराधों से निपटते हैं, जो बहुत बड़ी आबादी को प्रभावित करेंगे, और जहां अपराधों के लिए मृत्युदंड तक की सजा है। सभी अधिनियमों में अभियुक्त व्यक्ति को जमानत देने के न्यायालयों की शक्ति पर प्रतिबंध हैं, जो पीएमएलए की धारा 45 (1) और (2) में

दिए गए प्रतिबंध के समान हैं। सभी अधिनियमों में प्रावधान है कि विशेष न्यायालयों द्वारा सोलह वर्ष से कम आयु के व्यक्ति, महिला या बीमार या अशक्त व्यक्ति के मामले में उपरोक्त प्रतिबंधों को हटाया जा सकता है, जैसा कि पीएमएलए की धारा 45 (1) में दिए गए प्रावधान में निहित है।

41. यद्यपि, विमानों की हाइजैकिंग और जहाजों पर डकैती या मिलावटी या नकली दवाओं के निर्माण या बिक्री जैसे गंभीर अपराधों के संबंध में जमानत देने के मामले में, उस विशेष धारा में, जिसमें जमानत देने के विरुद्ध प्रतिबंध हैं, एक उप-धारा डालकर उच्च न्यायालयों के विवेकाधिकार को बचाया गया है, पर पीएमएलए में, उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों को बचाने वाले खंड को धारा 44 में गलत स्थान पर रखा गया है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

42. इसी प्रकार की त्रुटि स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 में भी हुई प्रतीत होती है। अधिनियम की धारा 36-ए अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र का प्रावधान करती है कि:-

**“36-ए. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारणीय अपराध-(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी-**

(क) इस अधिनियम के अंतर्गत सभी अपराध जो तीन वर्ष से अधिक की

अवधि के कारावास से दंडनीय हैं, केवल उस क्षेत्र के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होंगे, जिसमें अपराध किया गया है या जहां ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायालय हैं, वहां उनमें से किसी एक द्वारा, जिसे सरकार द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट किया जाए;

(ख) जहां इस अधिनियम के अधीन अपराध करने का आरोपी या संदिग्ध व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उपधारा (2) या उपधारा (2ए) के अधीन मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसे व्यक्ति को ऐसी हिरासत में रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, जिसे वह ठीक समझे, जहां ऐसा मजिस्ट्रेट न्यायिक मजिस्ट्रेट है, वहां कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक की अवधि के लिए और जहां ऐसा मजिस्ट्रेट कार्यपालक मजिस्ट्रेट है, वहां कुल मिलाकर सात दिन से अधिक की अवधि के लिए: बशर्ते कि ऐसे मामलों में, जो विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं, जहां ऐसा मजिस्ट्रेट यह समझता है कि-

(i) जब ऐसा व्यक्ति पूर्वोक्त रूप में उसके पास भेजा जाता है; या

(ii) उसके द्वारा प्राधिकृत हिरासत की अवधि की समाप्ति पर या उससे पूर्व किसी भी समय; कि ऐसे व्यक्ति को

हिरासत में रखना अनावश्यक है, वह ऐसे व्यक्ति को अधिकारिता रखने वाले विशेष न्यायालय में भेजने का आदेश देगा;

(ग) विशेष न्यायालय, खंड (ख) के अधीन उसे भेजे गए व्यक्ति के संबंध में वही शक्ति प्रयोग कर सकता है जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के अधीन किसी मामले की सुनवाई करने का अधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट ऐसे मामले में अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में प्रयोग कर सकता है जिसे उस धारा के अधीन उसे भेजा गया है;

(घ) विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के अधीन अपराध गठित करने वाले तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट के अवलोकन पर या उसकी ओर से प्राधिकृत केंद्र सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी द्वारा की गई परिवाद पर, अभियुक्त को सुनवाई के लिए सौंपे बिना उस अपराध का संज्ञान ले सकता है।

(2) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध की सुनवाई करते समय, विशेष न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के अलावा किसी अन्य अपराध की सुनवाई भी कर सकता है जिसके लिए अभियुक्त पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन

उसी सुनवाई में आरोप लगाया जा सकता है।

(3) इस धारा में निहित कुछ भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा, और उच्च न्यायालय उस धारा की उपधारा (1) के खंड (बी) के अंतर्गत शक्ति सहित ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जैसे कि उस धारा में "मजिस्ट्रेट" के संदर्भ में धारा 36 के अंतर्गत गठित "विशेष न्यायालय" का संदर्भ भी शामिल है। \*

\* \*

43. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 में जमानत देने के विरुद्ध प्रतिबंध हैं, जो पीएमएलए और अन्य अधिनियमों में दिए गए प्रतिबंधों के समान हैं और यह प्रदान करता है कि: -

**"37. अपराधों का संज्ञेय और गैर-जमानती होना** - (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी भी बात के बावजूद, -

(ए) इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा;

(ख) धारा 19 या धारा 24 या धारा 27-ए के अंतर्गत अपराधों के लिए दंडनीय अपराध और वाणिज्यिक मात्रा

से संबंधित अपराधों के लिए भी आरोपी किसी व्यक्ति को जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि-

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो, और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

(2) उप-धारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या जमानत देने पर वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत सीमाओं के अतिरिक्त हैं।”

44. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37, जिसमें जमानत देने के लिए न्यायालयों की शक्ति पर प्रतिबंध शामिल हैं, में धारा 439 सीआरपीसी द्वारा उच्च न्यायालयों को दी गई जमानत देने की विशेष शक्तियों को बचाने वाला कोई प्रावधान नहीं है, जबकि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 36-ए, जो अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के परीक्षण के लिए विशेष न्यायालयों को अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है और जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो

जमानत देने के संबंध में किसी न्यायालय की शक्तियों को प्रभावित कर सकता है, यह प्रावधान करती है कि धारा 36-ए में निहित कुछ भी धारा 439 सीआरपीसी के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित नहीं करेगा।

45. ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत देने के संबंध में उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों के बारे में एनडीपीएस अधिनियम की धारा 36-ए (3) में निहित प्रावधान को अधिनियम की धारा 37 में शामिल किया जाना था, लेकिन इसे गलती से धारा 37 के ठीक ऊपर रखा गया है।

46. मृत्यु तक की सजा वाले जघन्य अपराधों से निपटने वाले कई कानूनों में निहित समरूप प्रावधानों के उपरोक्त अध्ययन से, एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष जो निकाला जा सकता है वह यह है कि जमानत देने के संबंध में उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों को बचाने वाले पीएमएलए की धारा 44 (2) में निहित प्रावधान को अधिनियम की धारा 45 में शामिल किया जाना था, लेकिन इसे गलती से धारा 45 के ठीक ऊपर रखा गया है। कंप्यूटर के वर्तमान समय में, ऐसी त्रुटियों को आमतौर पर "कॉपी-पेस्ट त्रुटियां" कहा जाता है।

47. **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसले के प्रस्तर 274 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स एलडी के मामले में किंग्स बेंच के फैसले का हवाला दिया, जो इस प्रकार है:

-

“274. हम सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स एलडी [1949] 2 के.बी. 481 के फैसले पर लाभप्रद रूप से विचार कर सकते हैं, जिसमें कहा गया है:

“...एक न्यायाधीश, जो खुद को इस कथित नियम से बंधा हुआ मानता है कि उसे भाषा को देखना चाहिए और कुछ नहीं, इस बात पर अफसोस जताता है कि मसौदा तैयार करने वालों ने इस या उस के लिए प्रावधान नहीं किया है, या कुछ या अन्य अस्पष्टता के दोषी हैं। यह निश्चित रूप से न्यायाधीशों की परेशानी को बचाएगा यदि संसद के अधिनियमों को दिव्य दूरदर्शिता और पूर्ण स्पष्टता के साथ तैयार किया गया हो। इसके अभाव में, जब कोई दोष दिखाई देता है तो न्यायाधीश बस अपने हाथ जोड़कर मसौदा तैयार करने वाले को दोष नहीं दे सकता। उसे संसद की मंशा जानने के रचनात्मक कार्य पर काम करना चाहिए, और उसे यह न केवल कानून की भाषा से करना चाहिए, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार करना चाहिए जिन्होंने इसे जन्म दिया, और जिस शरारत को दूर करने के लिए इसे पारित किया गया था, और फिर उसे लिखित शब्द को पूरक करना चाहिए जिससे विधानमंडल की मंशा को “बल और जीवन” दिया जा सके। हेयडन के मामले में न्यायाधीशों के संकल्प द्वारा यह स्पष्ट रूप से

निर्धारित किया गया था, (1584) 3 कंपनी प्रतिनिधि 7 ए, और यह आज सबसे सुरक्षित मार्गदर्शक है। इस विषय पर अच्छी व्यावहारिक सलाह लगभग उसी समय प्लॉडेन ने अपने दूसरे खंड एस्टन बनाम स्टड (1574) 2 प्लॉडेन 465 में दी थी। इसे घरेलू रूपक में इस प्रकार रखा गया है: एक न्यायाधीश को खुद से यह सवाल पूछना चाहिए: यदि अधिनियम के निर्माता स्वयं इसकी बनावट में इस गड़बड़ी को देखते, तो वे इसे कैसे ठीक करते? फिर उसे वैसा ही करना चाहिए जैसा उन्होंने किया होता। एक न्यायाधीश को उस सामग्री को नहीं बदलना चाहिए जिससे इसे बनाया गया है, लेकिन वह सिलवटों को इस्त्री कर सकता है और करना चाहिए।”

48. राजेंद्र प्रसाद यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1997) 6 एससीसी 678 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून की व्याख्या के सुस्थापित सिद्धांत को दोहराया कि “सभी प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या की जानी चाहिए जिससे सभी प्रावधानों को प्रभावी बनाया जा सके और उनका कोई भी हिस्सा अनावश्यक या व्यर्थ न हो।”

49. यदि हम पीएमएलए की धारा 44 और 45 की मूल भाषा को देखें, तो धारा 44(2) में निहित प्रावधान के गलत स्थान का दोष स्पष्ट हो जाता है। धारा 44 में जमानत देने के संबंध में किसी भी न्यायालय की शक्तियों पर कोई प्रतिबंध नहीं है, फिर भी धारा 44(2) में



प्रावधान है कि इस धारा में निहित कोई भी बात सीआरपीसी की धारा 439 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की विशेष शक्तियों को प्रभावित नहीं करेगी। धारा 44(2) को केवल धारा 44(1) के साथ पढ़ने से पीएमएलए की धारा 44(2) निरर्थक और सारहीन हो जाएगी, लेकिन यह न्यायालय ऐसी व्याख्या नहीं कर सकता है, जो पीएमएलए की धारा 44(2) में निहित प्रावधान को निरर्थक या सारहीन बना दे।

50. जाहिर है, धारा 44(2) संसद द्वारा सीआरपीसी की धारा 439 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की विशेष शक्ति को बचाने के इरादे से डाली गई थी, जो इरादा ऊपर बताए गए प्रावधान के गलत स्थान के कारण पूरा नहीं हो सकता है। इस न्यायालय को पीएमएलए की धारा 44 और 45 में निहित प्रावधानों की सामूहिक रूप से व्याख्या करनी है जिससे अधिनियम में धारा 44(2) डालने के पीछे विधायिका के इरादे को “बल और जीवन” दिया जा सके। निस्संदेह, यदि अधिनियम के निर्माताओं ने स्वयं कॉपी-पेस्ट त्रुटि के कारण धारा 44 और 45 के प्रावधानों की इस गड़बड़ी को देखा होता, तो उन्होंने धारा 44(2) और धारा 45 को एक-दूसरे के साथ जोड़कर इसे ठीक कर लिया होता। इसलिए, कानून के प्रावधानों में बदलाव किए बिना दोष को ठीक करने के लिए, धारा 44 और 45 के प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्याख्या की जानी चाहिए जिससे धारा 44(2) निरर्थक या बेकार न हो जाए।

51. उपरोक्त चर्चा से जो एकमात्र निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वह यह है कि पीएमएलए की धारा 44 और 45 में निहित प्रावधानों को बनाते समय विधानमंडल की मंशा स्पष्ट और असंदिग्ध थी और वह यह थी कि विशेष न्यायालयों को अधिनियम के अंतर्गत अपराधों की सुनवाई करने का अधिकार होगा और कोई भी न्यायालय किसी आरोपी व्यक्ति को तब तक जमानत नहीं देगा जब तक कि: -

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो; और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है:

बशर्ते कि कोई व्यक्ति, जो सोलह वर्ष से कम आयु का है, या महिला है या बीमार या अशक्त है या जिस पर अकेले या अन्य सह-अभियुक्तों के साथ एक करोड़ रुपये से कम की धनराशि के धन शोधन का आरोप है, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश दे:

(2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट जमानत देने की सीमा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या जमानत देने पर वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत सीमाओं के अतिरिक्त है।

धारा 44 या 45 में निहित कुछ भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा और उच्च न्यायालय उस धारा की उपधारा (1) के खंड (बी) के अंतर्गत शक्ति सहित ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जैसे कि उस धारा में "मजिस्ट्रेट" के संदर्भ में धारा 43 के अंतर्गत नामित "विशेष न्यायालय" का संदर्भ भी शामिल है।

52. उपर्युक्त चर्चा के दृष्टिगत, मेरा यह विचार है कि पीएमएलए की धारा 45 में निहित प्रतिबंध संवैधानिक न्यायालयों के अलावा अन्य न्यायालयों पर लागू होने के लिए थे और पीएमएलए की धारा 44 (2) में निहित प्रावधान के दृष्टिगत, वे प्रतिबंध संवैधानिक न्यायालयों पर लागू नहीं होते हैं।

53. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने आगे तर्क दिया है कि सी.बी.आई. ने अनुसूचित अपराधों के संबंध में आरोप-पत्र पहले ही प्रस्तुत कर दिए गए हैं और आरोप-पत्रों की वैधता को चुनौती देने वाली धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत दायर 23 आवेदनों को

इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 17.03.2021 के एक सामान्य निर्णय और आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया है, जिसमें प्रमुख आवेदन धारा 482 संख्या-4253/2012 के अंतर्गत आवेदन है। श्री त्रिपाठी ने तर्क दिया है कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदनों को खारिज करने से अनुसूचित अपराध के कमीशन में आवेदकों की प्रथम दृष्टया भागीदारी स्थापित होती है और यह न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है कि आवेदक अनुसूचित अपराध के कमीशन के लिए प्रथम दृष्टया दोषी हैं या नहीं।

54. जैसा कि पिछले प्रस्तर में पहले ही कहा जा चुका है, पीएमएलए की धारा 45 में निहित प्रतिबंध कि पीएमएलए के अंतर्गत अपराध के आरोपी व्यक्ति को आवेदक की निर्दोषता की प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज किए बिना जमानत नहीं दी जा सकती, पीएमएलए की धारा 44 और 45 की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या के दृष्टिगत संवैधानिक न्यायालयों पर लागू नहीं होती है और इसलिए, धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदनों की नियति के बावजूद, इस न्यायालय को आवेदकों की निर्दोषता की प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, मैं अग्रिम जमानत आवेदन पर धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदनों की अस्वीकृति के प्रभाव के बारे में तर्क पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूँ।

55. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक जांच का दायरा और अग्रिम जमानत के लिए

आवेदन पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक जांच का दायरा पूरी तरह से अलग है।

दुर्भावनापूर्ण तरीके से शुरू की गई हो। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में निम्नलिखित सुरक्षात्मक टिप्पणी की: -

**56. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992**

अनुपूरक (1) एससीसी 335 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र के दायरे को यह मानते हुए स्पष्ट किया था कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत निहित शक्तियों का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते हैं, या जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, या जहां एफआईआर या परिवाद में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, या जहां सीआरपीसी में स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है या कार्यवाही को संस्थित करने एवं बनाए रखने के लिए कोई अधिनियम या जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण तरीके से की गई हो या जहां कार्यवाही अभियुक्त पर बदला लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से

*“103. हम इस आशय की चेतावनी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयम से और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि न्यायालय द्वारा एफआईआर या परिवाद में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करना न्यायोचित नहीं होगा और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी मर्जी या सनक के अनुसार कार्य करने का मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।”*

57. जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारक कार्यवाही को रद्द करने के लिए आवेदन पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारकों से पूरी तरह अलग हैं और उन्हें पी. चिदंबरम बनाम सीबीआई, (2020) 13 एससीसी 337 में निर्णय के प्रस्तर 21 में दोहराया गया है, जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है: -

*“21. जमानत देने का अधिकार क्षेत्र प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्थापित सिद्धांतों के आधार पर प्रयोग किया जाना चाहिए। जमानत के*

लिए आवेदन पर विचार करते समय निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(i) आरोप की प्रकृति और सजा की गंभीरता और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री की प्रकृति;

(ii) गवाहों के साथ छेड़छाड़ या परिवादकर्ता या गवाहों को धमकी की उचित आशंका;

(iii) परीक्षण के समय अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने की उचित संभावना या उसके फरार होने की संभावना;

(iv) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार और स्थिति और परिस्थितियाँ जो अभियुक्त के लिए विशिष्ट हैं;

(v) जनता या राज्य का व्यापक हित और इसी तरह के अन्य विचार।

58. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2020) 13 एससीसी 791 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आर्थिक अपराधों के संदर्भ में कहा कि: -

“23. इस प्रकार, इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय सहित दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत निर्णयों के संचयी अवलोकन से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जमानत से संबंधित मूल न्यायशास्त्र

वही रहता है क्योंकि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिले। हालाँकि, इस पर विचार करते समय अपराध की गंभीरता एक ऐसा पहलू है जिसे न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। उक्त उद्देश्य के लिए गंभीरता को प्रत्येक मामले में उत्पन्न होने वाले तथ्यों और परिस्थितियों से प्राप्त करना होगा। वित्तीय अनियमितताओं के मामलों में समाज पर पड़ने वाले परिणामों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया है कि आर्थिक अपराध भी "गंभीर अपराध" की श्रेणी में आते हैं और ऐसी परिस्थितियों में ऐसे मामलों में जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को आरोपी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति के प्रति संवेदनशील होकर उनसे निपटना होगा। अपराध की गंभीरता पर विचार करने की परिस्थितियों में से एक सजा की अवधि भी है जो आरोपी द्वारा किए गए अपराध के लिए निर्धारित है। अपराध की गंभीरता के संबंध में ऐसा विचार एक ऐसा कारक है जो सामान्य रूप से लागू होने वाले ट्रिपल टेस्ट या ट्राइपॉइंट टेस्ट के अतिरिक्त है। इस संबंध में यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भले ही आरोप गंभीर आर्थिक अपराध का हो, यह नियम नहीं है कि हर मामले में

जमानत से इनकार किया जाना चाहिए क्योंकि विधायिका द्वारा पारित प्रासंगिक अधिनियम में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं बनाया गया है और न ही जमानत न्यायशास्त्र ऐसा प्रदान करता है। इसलिए, निष्कर्ष यह है कि आरोप की प्रकृति और गंभीरता के बावजूद, अकेले किसी अन्य मामले की मिसाल जमानत देने या न देने का आधार नहीं होगी, हालांकि इसका सिद्धांत पर असर हो सकता है। लेकिन अंततः मामले-दर-मामला आधार पर इसमें शामिल तथ्यों और अभियुक्त की सुनवाई के लिए उपस्थिति सुनिश्चित करने पर विचार करना होगा।”

(बल प्रदत्त)

59. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, (2022) 10 एससीसी 51 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी. चिदंबरम (उपरोक्त) से ऊपर उद्धृत अंश को स्वीकृति के साथ उद्धृत किया है और दोहराया है कि "यह सिद्धांत कि जमानत नियम है और जेल अपवाद है, इस न्यायालय के बार-बार दिए गए निर्णयों के माध्यम से अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है।"

60. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी ऑफ दिल्ली), (2020) 5 एससीसी 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

“7.1. ...धारा 438 के अंतर्गत गिरफ्तारी से पहले जमानत आदेश

और धारा 437 और 439 सीआरपीसी के अंतर्गत जमानत आदेश के बीच कोई अंतर या भेद नहीं है। धारा 438 के अंतर्गत गिरफ्तारी से पहले जमानत आदेश और धारा 437 और 439 के अंतर्गत जमानत आदेश के बीच एकमात्र अंतर वह चरण है, जिस पर जमानत आदेश पारित किया जाता है। धारा 438 सीआरपीसी के अंतर्गत जमानत आदेश उसकी गिरफ्तारी से पहले और उसकी गिरफ्तारी की प्रत्याशा में होता है और धारा 437 और 439 के अंतर्गत जमानत का आदेश किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के बाद होता है।”

61. आर्थिक अपराधों में अग्रिम जमानत दिए जाने के मामले में विभिन्न उदाहरणों पर विचार करने के बाद, सुशीला अग्रवाल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

“75. उपरोक्त कारणों से, इस पीठ के समक्ष प्रस्तुत संदर्भ में पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि धारा 438(4) में वर्णित अपराधों को छोड़कर, ऐसा कोई भी अपराध नहीं है जो धारा 438 के दायरे से बाहर रखा गया हो। दूसरे शब्दों में, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सभी अपराधों के संबंध में अग्रिम जमानत दी जा सकती है। साथ ही, यदि किसी विशेष कानून या कानून में ऐसे संकेत हैं, जो धारा 438(1) के अंतर्गत राहत को बाहर

रखते हैं, तो उन पर उचित रूप से विचार किया जाना चाहिए। साथ ही, किसी मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, जहां गंभीर प्रकृति के अपराधों के होने से संबंधित आरोप, कुछ विशेष शर्तों के साथ, अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए या नहीं, यह विवेक का विषय है, जिसमें अपराधों की प्रकृति, दर्शाए गए तथ्य, आवेदक की पृष्ठभूमि, उसके न्याय से भागने की संभावना (या न्याय से नहीं भागने की संभावना), जांच एजेंसी या पुलिस के साथ सहयोग या असहयोग की संभावना आदि को ध्यान में रखा जाता है। अग्रिम जमानत के आदेश को जारी रखने के लिए कोई कठोर समय-सीमा नहीं हो सकती है।

76. इसलिए, यह न्यायालय मानता है कि सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1996) 1 एससीसी 667, के.एल. वर्मा बनाम राज्य, (1998) 9 एससीसी 348, निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 558, सतपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2018) 13 एससीसी 813, अद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2005) 4 एससीसी 303, एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम जे.जे. मन्नान, (2010) 1 एस.सी.सी. 679 और नरेश कुमार यादव बनाम रविन्द्र कुमार, (2008) 1 एस.सी.सी. 632 में सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के बारे

में कहा गया है कि वह सीमित अवधि के लिए अग्रिम जमानत देने के लिए बाध्य है या जांच की प्रतीक्षा कर रहा है, जिससे "सामान्य न्यायालय" को "बाईपास" न किया जा सके या कुछ प्रकार के गंभीर अपराधों में अग्रिम जमानत सामान्य रूप से नहीं दी जानी चाहिए - जिसमें आर्थिक अपराध आदि शामिल हैं - अच्छा कानून नहीं है।" (बल प्रदत्त)

62. कमलेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1822 में, राजस्थान उच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया था कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना करने वाली याचिका पहले ही खारिज कर दी गई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर अपील को स्वीकार करते हुए कहा कि:-

"5. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय के आदेश को बनाए नहीं रखा जा सकता। उच्च न्यायालय को आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार करना चाहिए था। तथ्य यह है कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत याचिका को खारिज कर दिया गया था, जो निर्णायक नहीं था और आवेदन को खारिज करने का कारण नहीं हो सकता था।"

63. उपर्युक्त चर्चा के दृष्टिगत, मुझे श्री त्रिपाठी के इस कथन में कोई बल नहीं मिलता कि धारा 482 के अंतर्गत आवेदन को खारिज करने से अनुसूचित अपराध में आवेदकों की प्रथम दृष्टया संलिप्तता स्थापित होती है और इस कारण अग्रिम जमानत आवेदन को खारिज कर देना चाहिए। इस न्यायालय को अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन की अस्वीकृति से प्रभावित हुए बिना, उसके अपने गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेना है। तदनुसार, मैं मामले के तथ्यों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूँ।

64. वर्तमान मामले में संयुक्त औचक निरीक्षण 25.03.2011 को किया गया था। सी.बी.आई./ए.सी.बी. लखनऊ ने 13.04.2011 को 5 एफ.आई.आर. दर्ज की तथा 31.05.2012 को 5 आरोप पत्र प्रस्तुत किए। ई.डी. ने 12.07.2018, 03.06.2019 तथा 24.06.2013 को शिकायतें दर्ज की, अर्थात् एफ.आई.आर. दर्ज होने के 7 से 12 वर्ष से अधिक समय पश्चात तथा सी.बी.आई. द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के 6 से 11 वर्ष से अधिक समय पश्चात। विशेष न्यायालय ने परिवादों को वर्ष 2023 में सत्र वाद के रूप में पंजीकृत किया है।

65. आवेदकों का दावा है कि एफआईआर में लगाए गए आरोप एफएसए की शर्तों के उल्लंघन का मामला मात्र हैं, जो दो पक्षों के बीच द्विपक्षीय वाणिज्यिक समझौता था। इस तरह के उल्लंघन का परिणाम केवल समझौतों को रद्द करना हो सकता है, जैसा कि समझौते

के खंड 4.4 में प्रावधान है। कोयला अधिसूचित दरों पर आपूर्ति किया गया था और कोई सब्सिडी नहीं दी गई थी। सूचना के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत मांगी गई जानकारी के उत्तर में, कोल इंडिया लिमिटेड ने स्वीकार किया है कि किसी भी सरकार द्वारा कोई सब्सिडी या वित्तीय सहायता नहीं दी जाती है और कोयले की कीमत, कोल इंडिया लिमिटेड द्वारा तय और अधिसूचित की गई थी। इसलिए, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार को कोई नुकसान नहीं हुआ और किसी भी आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध धोखाधड़ी का कोई अपराध नहीं बनता है।

66. आवेदक रामजी सिंह से अपराध की कोई आय बरामद नहीं हुई है और आवेदक के विरुद्ध एकमात्र आरोप यह है कि वह अपराध की आय के सृजन के संबंध में उकसाने की गतिविधि में अप्रत्यक्ष रूप से शामिल था और परिवाद के अनुसार भी किसी अपराध के कमीशन में उसकी प्रत्यक्ष भागीदारी का कोई आरोप नहीं है। इस बीच आवेदक रामजी सिंह की आयु 72 वर्ष हो गई है और जाहिर है कि वह बहुत पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं और वह गवाहों को प्रभावित करने या सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की स्थिति में नहीं दिखते हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद, आवेदक रामजी सिंह द्वारा अग्रिम जमानत दिए जाने के बाद इसी तरह के अपराध के कमीशन में लिप्त होने की कोई उचित आशंका नहीं दिखती है।

67. अ.जमानत संख्या-1611/2023 और 1617/2023 में आवेदक रवींद्र अग्रवाल, मेसर्स एसबीसी मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड के मालिक

हैं, जिसने मेसर्स श्री राम फ्यूल्स प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स जय दुर्गा इंडस्ट्रीज और मेसर्स झोलिया कोक इंडस्ट्रीज से वर्ष 2010-11 के दौरान कोयला खरीदा था। रविंद्र अग्रवाल पर एफएसए की शर्तों का उल्लंघन करते हुए कोयले के अवैध डायवर्जन और कम आकार के कोयले की फर्जी खरीद दिखाने के आपराधिक षड्यंत्र में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। परिवाद में रविंद्र अग्रवाल का बयान दर्ज किया गया है कि इस तरह खरीदा गया कोयला अन्य खरीदारों को बेच दिया गया। मेसर्स एसबीसी मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड एनसीएल और उपरोक्त तीनों कंपनियों के बीच हुए अनुबंध में पक्ष नहीं थी। रविंद्र अग्रवाल से अपराध की कोई आय बरामद नहीं हुई है और उनकी कोई भी संपत्ति कुर्क नहीं की गई है।

68. अजमानत संख्या-1639/2023 में आवेदक जय नारायण अग्रवाल, मेसर्स आनंदा कोल मूवर्स, मेसर्स शिवम कोल मूवर्स और मेसर्स त्रिशूल इंडस्ट्रीज के मालिक हैं, जिन्होंने मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड से कोयला खरीदा था, बिना उसे एस.एस.एफ. में प्रसंस्करित किए। परिवाद में आवेदक का यह कथन दर्ज है कि मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड से खरीदा गया कोयला अन्य खरीदारों को बेचा गया था। कोयले की खरीद के लिए पूरी राशि चेक और बैंक हस्तांतरण के माध्यम से भुगतान की गई थी, केवल 1,00,000/- रुपये की राशि को छोड़कर, जिसका भुगतान नकद में किया गया था। जय नारायण अग्रवाल या उनकी फर्म एनसीएल और मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड

इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड के बीच अनुबंध में पक्ष नहीं थे। आवेदक जय नारायण अग्रवाल से अपराध की कोई आय बरामद नहीं हुई है और उनकी कोई भी संपत्ति कुर्क नहीं की गई है।

69. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1636/2023 और 1638/2023 में आवेदक सुभाष चंद्र तुलसियान, मेसर्स तुलसियान कोल सिंडिकेट और मेसर्स पूर्णागिरी होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड के मालिक हैं। उनके विरुद्ध आरोप है कि मेसर्स स्वास्तिक सीमेंट प्रोडक्ट और मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड ने वर्ष 2010-11 के दौरान मेसर्स तुलसियान कोल सिंडिकेट और मेसर्स पूर्णागिरी होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड को कोयला बेचा था और कुछ बिक्री लेनदेन फर्जी प्रतीत हुए थे। उन पर एसएसएफ की फर्जी खरीद दिखाकर कोयले के अवैध डायवर्जन की आपराधिक साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। मेसर्स स्वास्तिक सीमेंट प्रोडक्ट्स और मेसर्स फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड ने एफएसए के अंतर्गत एनसीएल से कोयला खरीदा था, जिससे उसे प्रोसेसिंग करके विशेष धुआं रहित ईंधन (एसएसएफ) में बदला जा सके, लेकिन उन्होंने बिना प्रोसेसिंग किए ही कोयले को खुले बाजार में गलत तरीके से बेच दिया। खरीदे गए कोयले को अन्य खरीदारों को बेच दिया गया। कोयले के लिए पूरी रकम चेक के जरिए ही चुकाई गई। आवेदक सुभाष चंद्र तुलसियान से न तो कोई अपराधिक आय बरामद की गई है और न ही उनकी कोई संपत्ति कुर्क की गई है।



70. सभी आवेदकों ने जांच में सहयोग किया है और उन्होंने अपने बयान दर्ज करवाए हैं। जांच पूरी हो चुकी है और ईडी ने जांच पूरी होने के बाद परिवाद दर्ज कर ली है।

71. यदि कानून में अभियोजन और दंड के लिए कठोर प्रावधान हैं और जमानत देने पर प्रतिबंध हैं, तो यह राज्य का कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि ऐसे मुकदमों को प्राथमिकता मिले और उचित समय के भीतर उनका निस्तारण हो, लेकिन वर्तमान मामले में तो शिकायतें भी 7 से 12 वर्षों की अत्यधिक देरी के बाद दर्ज की गई हैं।

72. सभी आवेदकों ने इस न्यायालय द्वारा उन्हें अंतरिम अग्रिम जमानत देने के अंतरिम आदेशों के अनुपालन में पहले ही जमानत बांड जमा कर दिए हैं। ईडी द्वारा दायर किसी भी प्रति-शपथपत्र में किसी भी आवेदक को दी गई अंतरिम अग्रिम जमानत की किसी भी शर्त का उल्लंघन नहीं बताया गया है।

73. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मेरा मानना है कि आवेदकों को अंतरिम अग्रिम जमानत देने के सभी आदेश पुष्ट किए जाने योग्य हैं और आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य हैं।

74. तदनुसार, सिविल विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-1518/2023, 1523/2023, 1602/2023, 1611/2023, 1617/2023, 1636/2023, 1638/2023 तथा 1639/2023 स्वीकार किए जाते हैं। चूंकि आवेदकों ने अपने पक्ष में पारित अंतरिम आदेशों के अनुसरण में पहले ही

जमानत बांड प्रस्तुत कर दिए हैं, इसलिए उन्हें कोई नया जमानत बांड प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। अंतरिम आदेशों में लगाई गई जमानत की शर्तें आवेदकों को बाध्य करती रहेंगी।

-----

**(2023) 9 ILRA 582**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 06.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी**

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 1981 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं.)

**खालिद अनवर उर्फ अनवर खालिद ...आवेदक बनाम**

**सी.बी.आई.**

**...प्रतिवादी**

**आवेदक के लिए अधिवक्ता:**

शीतला प्रसाद त्रिपाठी, अमरेश सिंह

**प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:**

अनुराग कुमार सिंह

(ए) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी, 419 और 420-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 7 (सी), 13 (1) (ए) सहपठित 13 (2) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 82 - फरार व्यक्ति के लिए उद्घोषणा, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 - धारा 104, 110, 135 (1)। (पैरा -18)

आवेदक के विरुद्ध धारा 82 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की गई - 15,48,000/- रुपये मूल्य का 400 ग्राम विदेशी सोना ले जा रहा था - सीमा शुल्क अधिनियम के अंतर्गत जब्त - उद्घोषित अपराधी घोषित नहीं - 19.12.2019 को बरामदगी - 10.08.2022 को प्र.सू.रि. दर्ज - प्र.सू.रि. दर्ज करने में विलंब के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं - गैर-संज्ञेय, जमानती - अधिकतम 3 वर्ष तक का दंडादेश - लोक सेवक नहीं - कोई अन्य आपराधिक इतिहास नहीं - सह-अभियुक्त को जमानत दी गई।

(पैरा - 18)

**अभिनिर्धारित हुआ:-** आवेदक को अग्रिम जमानत देने का मामला बनाने के लिए पर्याप्त तथ्य। (पैरा-18)

**अग्रिम जमानत आवेदन स्वीकार किया गया।**  
(ई-7)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2012) 8 एससीसी 730

2. सनातन पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (4) क्रिमिनल सीसी 512

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री शीतला प्रसाद त्रिपाठी तथा प्रतिवादी-सी.बी.आई.

के विद्वान अधिवक्ता, श्री अर्पित चौधरी के तर्क सुने तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

2. आवेदक द्वारा वर्तमान आवेदन, पुलिस स्टेशन-सी.बी.आई./ई.ओ.-II/नई दिल्ली, जिला-नई दिल्ली में पंजीकृत, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा-120-बी, सपठित 419, 420 आई.पी.सी. तथा धारा-7 (सी), 13(1)(ए) सपठित 13(2) के अंतर्गत, आर.सी. संख्या- 220/2022/ई0011-सी.बी.आई./ई.ओ.-11/एन.डी. में अग्रिम जमानत के लिए योजित की गई है।

3. उपरोक्त वाद एक एफ.आई.आर. के आधार पर पंजीकृत किया गया है। 10.08.2022 को आवेदक सहित 19 नामजद व्यक्तियों और कुछ अज्ञात लोक सेवकों और निजी व्यक्तियों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया, जिसमें कहा गया कि दिनांक 01.07.2022 को सहायक आयुक्त, सतर्कता महानिदेशालय, अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क, लखनऊ क्षेत्रीय इकाई से विदेशी मूल के प्रतिबंधित सामान जैसे सोना (5501.99 ग्राम), प्रतिष्ठित विदेशी ब्रांड की सिगरेट (434400 स्टिक) और केसर (30 किलोग्राम) की तस्करी के संबंध में एक लिखित शिकायत प्राप्त हुई थी।

4. प्रतिवादी-सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि आवेदक के विरुद्ध धारा-82 सीआरपीसी के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की गई है और इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लवेश बनाम राज्य (एनसीटी ऑफ दिल्ली),

(2012) 8 एससीसी 730 में निर्धारित कानून के दृष्टिगत, आवेदक अग्रिम जमानत दिए जाने का हकदार नहीं है।

5. धारा 82 सीआरपीसी इस प्रकार है: -

**82. फरार व्यक्ति के लिए उद्घोषणा-(1)** यदि किसी न्यायालय को (चाहे साक्ष्य लेने के पश्चात या लिए बिना) यह विश्वास करने का कारण है कि कोई व्यक्ति, जिसके विरुद्ध उसने वारंट जारी किया है, फरार हो गया है या अपने को छिपा रहा है जिससे ऐसे वारंट का निष्पादन नहीं किया जा सकता, तो ऐसा न्यायालय उससे यह अपेक्षा करने वाली लिखित उद्घोषणा प्रकाशित कर सकता है कि वह व्यक्ति विनिर्दिष्ट स्थान में और विनिर्दिष्ट समय पर, जो उस उद्घोषणा के प्रकाशन की तारीख से कम से कम तीस दिन पश्चात का होगा, हाजिर हो।

(2) उद्घोषणा निम्नलिखित रूप से प्रकाशित की जाएगी:-

(क) वह उस नगर या ग्राम के, जिसमें ऐसा व्यक्ति सामान्यतः निवास करता है, किसी सहजदृश्य स्थान में सार्वजनिक रूप से पढ़ी जाएगी;

(ख) वह उस घर या ग्राम के, जिसमें ऐसा व्यक्ति सामान्यतः निवास करता है, किसी सहजदृश्य भाग पर या ऐसे नगर या ग्राम के किसी सहजदृश्य स्थान पर लगाई जाएगी;

(ग) उसकी एक प्रति उस न्याय सदन ए किसी सहजदृश्य भाग पर लगाई जाएगी;

(ii) यदि न्यायालय उचित समझता है तो वह यह निदेश भी दे सकता है कि उद्घोषणा के एक प्रति उस स्थान में परिचालित किसी दैनिक समाचारपत्र में प्रकाशित की जाए जहां ऐसा व्यक्ति सामान्यतः निवास करता है।

(3) उद्घोषणा जारी करने वाले न्यायालय द्वारा यह लिखित कथन की विनिर्दिष्ट दिन उपधारा (2) के खंड (i) में विनिर्दिष्ट रीति से सम्यक रूप से प्रकाशित कर दी गई है, इस बात का निश्चायक साक्ष्य होगा कि इस धारा की अपेक्षाओं का अनुपालन कर दिया गया है और उद्घोषणा उस दिन प्रकाशित कर दी गई थी।

(4) जहां उपधारा (1) के अधीन प्रकाशित उद्घोषणा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 302, 304, 364, 367, 382, 392, 393, 394, 395, 396, 397, 398, 399, 400, 402, 436, 449, 459 या 460 के अधीन दंडनीय अपराध का अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में है और ऐसा व्यक्ति उद्घोषणा में अपेक्षित विनिर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होने में असफल रहता है तो न्यायालय, तब ऐसी जांच करने के पश्चात, जैसी वह ठीक समझे, उसे उद्घोषित अपराधी घोषित कर सकता है और उस प्रभाव की घोषणा कर सकेगा।

(5) उपधारा (2) और (3) के उपबंध, न्यायालय द्वारा उपधारा (4) के अधीन की गई घोषणा

पर उसी प्रकार लागू होंगे जैसे वे उपधारा (1) के अधीन प्रकाशित उद्घोषणा पर लागू होते हैं।"

6. वर्तमान मामले में, धारा 82 (1) सीआरपीसी के अंतर्गत एक उद्घोषणा 01.08.2023 को जारी की गई है, जिसमें आवेदक को 02.09.2023 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना था। हालांकि, अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह इंगित करे कि उद्घोषणा को धारा-82 सीआरपीसी की उपधारा (1) के अंतर्गत 'प्रकाशित' किया गया है, क्योंकि यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि उद्घोषणा को शहर या गांव के किसी प्रमुख स्थान पर सार्वजनिक रूप से पढ़ा गया था, जिसमें आवेदक सामान्यतः रहता है या यह कि इसे घर या वासस्थान के किसी प्रमुख भाग पर चिपका दिया गया है, जिसमें आवेदक सामान्यतः रहता है या ऐसे शहर या गांव के किसी प्रमुख स्थान पर या उद्घोषणा की एक प्रति न्यायालय भवन के किसी प्रमुख भाग पर चिपका दी गई है या इसे उस स्थान पर प्रसारित होने वाले दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित किया गया है, जहां आवेदक सामान्यतः रहता है, जो कि धारा 82 सीआरपीसी की उपधारा (2) में अनिवार्य प्रकाशन के तरीके हैं।

7. उद्घोषणा जारी करने वाले न्यायालय ने धारा 82 सीआरपीसी की उपधारा (3) के अनुसार लिखित रूप में कोई कथन नहीं किया है कि उद्घोषणा उपधारा (2) के खंड (i) में विनिर्दिष्ट तरीके से विधिवत प्रकाशित की गई थी।

8. जब उद्घोषणा कानून के अनुसार प्रकाशित ही नहीं हुई है, तो आवेदक को धारा-82 सीआरपीसी की उपधारा (4) के अंतर्गत घोषित अपराधी 'घोषित' करने का अवसर अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है।

9. लवेश (उपरोक्त) में आवेदक को घोषित अपराधी घोषित किया गया था और इन परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि:-

"सामान्य रूप से, जब अभियुक्त "फरार" होता है और उसे "घोषित अपराधी" घोषित किया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति, जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया हो और वह वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार हो रहा हो या खुद को छिपा रहा हो और उसे संहिता की धारा 82 के अनुसार घोषित अपराधी घोषित किया गया हो, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।"

10. इसलिए, चूंकि आवेदक को अभी तक घोषित अपराधी घोषित नहीं किया गया है, इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लवेश (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के सिद्धांत द्वारा अधिरोपित प्रतिबंध वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा।

11. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सनातन पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2021 (4) आपराधिक सीसी 512 में पारित एक अन्य निर्णय का संदर्भ दिया है। उस मामले में,

याचिकाकर्ता पर धारा 147, 148, 323, 324, 307, 308, 504, 452 आईपीसी के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप लगाया गया था। घटना 05.03.2017 को हुई थी। 20.11.2018 को आरोप पत्र दायर किया गया था। याचिकाकर्ता ने धारा-482 सीआरपीसी के अंतर्गत आरोप पत्र को रद्द करने की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया था और उस आवेदन को उच्च न्यायालय ने 10.12.2019 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया था। धारा-482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन को खारिज करते हुए, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था कि यदि याचिकाकर्ता 30 दिनों के भीतर अदालत के सामने पेश होता है और आत्मसमर्पण करता है और जमानत के लिए आवेदन करता है, तो उसकी जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार किया जाएगा और उस अवधि के दौरान आवेदक के विरुद्ध कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाया जाएगा। 10.12.2019 के आदेश का लाभ लेने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने आत्मसमर्पण नहीं किया और जमानत देने के लिए आवेदन नहीं किया। इसके बाद, उसके विरुद्ध एक गैर-जमानती वारंट जारी किया गया और धारा-82 सीआरपीसी के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई। इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध उपरोक्त अपराधों के लिए प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था, उसके विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया गया था और वह फरार था। इसलिए, याचिकाकर्ता को अग्रिम जमानत देने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं था।

12. उपरोक्त आधारों पर एस.एल.पी. को खारिज करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सनातन पांडे (उपरोक्त) में कहा कि "अदालत ऐसे अभियुक्त को बचाने या उसकी मदद करने नहीं आएगी जो जांच एजेंसी का सहयोग नहीं कर रहा है और फरार है और जिसके विरुद्ध न केवल गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है बल्कि धारा-82 सीआरपीसी के अंतर्गत उद्घोषणा भी जारी की गई है।"

13. यह नियम, कानून को तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू करके निकाला जा सकता है, जो वाद का सिद्धान्त निर्मित करता है न कि तथ्यों पर आधारित कोई निष्कर्ष, खासकर तब जब तथ्य दूर-दूर तक समान न हों। चूंकि आवेदक को अभी तक घोषित अपराधी घोषित नहीं किया गया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लवेश (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के सिद्धांत द्वारा अधिरोपित प्रतिबंध वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है, इसलिए मैं प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करता हूं। सनातन पांडे (उपरोक्त) के मामले में तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया गया तथा मैं आवेदन की योग्यता की भी जांच कर रहा हूं।

14. आवेदक के विरुद्ध आरोप है कि वह 15,48,000 रुपये मूल्य का 400 ग्राम विदेशी सोना ले जा रहा था, जिसे सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 110 के अंतर्गत जब्त कर लिया गया।

15. इसी आरोप के आधार पर राजस्व खुफिया निदेशालय ने आवेदक के विरुद्ध शिकायत दर्ज की है। सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 135(1) के अंतर्गत ऐसे मामलों में आरोपी को तीन साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है तथा सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 104 के अंतर्गत अपराध गैर-संज्ञेय और जमानती होगा।

16. सीबीआई ने आरोपों के आधार पर एफआईआर दर्ज की है, जो पहले से ही राजस्व खुफिया निदेशालय द्वारा दायर शिकायत की विषय-वस्तु हैं। सीबीआई ने अन्य बातों के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत अपराध करने का आरोप लगाया है और आवेदक लोक सेवक नहीं है।

17. सह-आरोपी अजीत तिवारी, जिसके पास से 22,000 आयातित सिगरेट बरामद की गई थीं, को इस अदालत द्वारा आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-664/2023 में पारित आदेश दिनांक 24.07.2023 के माध्यम से अग्रिम जमानत दी गई है। ।

18. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कथित बरामदगी 19.12.2019 को की गई थी, लेकिन एफ.आई.आर.10.08.2022 को दर्ज की गई है और एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है; आवेदक द्वारा कथित रूप से किया गया मुख्य अपराध असंज्ञेय, जमानती है तथा इसके लिए अधिकतम 3 वर्ष के कारावास की सजा हो

सकती है; यद्यपि सीबीआई ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत अपराध किए जाने का आरोप लगाया है, आवेदक लोक सेवक नहीं है; आवेदक का कोई अन्य आपराधिक इतिहास नहीं है तथा सह-आरोपी अजीत कुमार को पहले ही जमानत दी जा चुकी है तथा मामले के परिणाम को प्रभावित करने वाली कोई टिप्पणी किए बिना, मेरा विचार है कि उपरोक्त तथ्य आवेदक को अग्रिम जमानत दिए जाने के लिए पर्याप्त हैं।

19. उपरोक्त के दृष्टिगत, आवेदकों की अग्रिम जमानत याचिका स्वीकार की जाती है। आवेदक खालिद अनवर उर्फ अनवर खालिद की उपरोक्त अपराध मामले में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष गिरफ्तारी/उपस्थिति की स्थिति में, उसे संबंधित अधिकारी/न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बांड और समान राशि के दो सॉल्वेंट जमानत प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों और विचारण न्यायालय द्वारा तय की गई अन्य शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाएगा:

(i) आवेदक को प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो;

(ii) आवेदक को मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करना चाहिए, जिससे उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों का खुलासा

करने से रोका जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की जा सके;

(iii) आवेदक को अभियोजन पक्ष के गवाह पर दबाव नहीं डालना चाहिए/डराना नहीं चाहिए।

-----

(2023) 9 ILRA 586

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.09.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 107 वर्ष 2000

ओम प्रकाश उर्फ प्रकाश और अन्य

.....अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्री जे.पी.अवस्थी, श्री अनुज पांडे, श्री शेख वली-उज़ ज़मां

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 306-दोषसिद्धि को चुनौती-पीडब्लू2-राज कुमार को पक्षद्रोही घोषित किया गया है-पीडब्लू5 जिसने सबसे पहले मृतका के भाई को इस घटना के बारे में सूचित किया था, उसने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है-उसने

इस सिद्धांत को खारिज कर दिया है कि मृतका सुंदर नहीं थी और इसलिए उसका पति उसके साथ दुर्व्यवहार कर रहा था-अभियोजन पक्ष ने उससे प्रति-परीक्षण नहीं की है-तीसरे साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में केवल इतना कहा कि मृतका के साथ दुर्व्यवहार किया गया क्योंकि वह सुंदर नहीं थी लेकिन वह अपनी प्रति-परीक्षण में इस संस्करण पर कायम नहीं रहा-इस मामले में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अभियुक्त ने अपराध के लिए दुष्प्रेरित किया-पीडब्लू1 के अभिकथन में ज्यादा तथ्य नहीं है कि अभियुक्त व्यक्ति मृतका के पति को दोबारा विवाह करने के लिए दुष्प्रेरित करते थे-इस सिद्धांत पर साक्ष्य इसे सत्य के रूप में अंकित करने के लिए काफी अपर्याप्त हैं-इसके अलावा यह दिखाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि मृतका अपनी जान लेने के इस चरम कदम के पीछे, अभियुक्त की ओर से कुछ तात्कालिक दुष्प्रेरण थे, जिसने उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया - अभियोजन पक्ष आत्महत्या के कृत्य और अभियुक्त द्वारा मृतक के साथ किए गए कृत्य या आचरण या व्यवहार के बीच कोई निकटता सिद्ध करने में विफल रहा है - इस प्रकार, अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि वास्तव में उसके साथ इस हद तक दुर्व्यवहार या उत्पीड़न किया गया था जो अनिवार्य रूप से आत्महत्या करने के लिए 'दुष्प्रेरण' की शब्दावली के अंतर्गत आएगा। (पैरा 1 से 26)

बी. किसी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत दोषी ठहराने के लिए,

अपराध करने का स्पष्ट आशय होना चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय या प्रत्यक्ष कृत्य भी आवश्यक है जिसके कारण मृतक को कोई अन्य विकल्प न मिलने पर आत्महत्या करनी पड़े और यह कृत्य अभियुक्त के आशय को दर्शाता हो ताकि मृतक को ऐसी स्थिति में धकेला जा सके कि वह आत्महत्या कर ले। अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे यह सिद्ध करना होगा कि मृतक ने आत्महत्या की थी। वर्तमान मामले में, दोनों ही तत्व अनुपस्थित हैं। (पैरा 21)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. मारियानो एंटो ब्रूनो और एक अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक क्रिमिनल अपील संख्या 1628 वर्ष 2022

2. एम. अर्जुनन बनाम राज्य, प्रतिनिधित्व द्वारा पुलिस निरीक्षक (2019) 3 एससीसी 315

3. उदे सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2019) 17 एससीसी 301

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री शेख वली-उज जमन और राज्य के विद्वान एजीए श्री अजय कुमार श्रीवास्तव को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील, अपीलकर्ताओं ओम प्रकाश उर्फ प्रकाश और नरेश उर्फ राम नरेश द्वारा दायर की गई है, जिसमें सप्तम अपर सत्र न्यायाधीश, हरदोई द्वारा एसटी संख्या-652/1995 में पारित दोषसिद्धि एवं दंड आदेश दिनांक 08.02.2000 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा-306 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया है और 5 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. अपीलकर्ताओं द्वारा कई कानूनी और तथ्यात्मक बिंदु उठाए गए हैं, जिन पर निर्णय के मुख्य भाग में उचित चरणों में विचार किया जाएगा।

4. सुसंगत तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

(i) प्रथम सूचनादाता अशर्फी लाल ने सम्बन्धित थाने में टाइप शुदा रिपोर्ट दी कि उसकी सगी बहन रामलडैती की शादी लगभग 7 वर्ष पूर्व प्रकाश से हुई थी; इस विवाह से उसकी दो पुत्रियां हैं, उसके परिवार के लोग उसे परेशान करते थे, क्योंकि वह सुन्दर नहीं थी, अभियुक्तगण प्रथम सूचनादाता की बहन को धमकाते थे कि उसका पति प्रकाश दूसरी शादी कर लेगा, उसकी बहन ने प्रथम सूचनादाता को सारी बातें बता दी थीं, जिस पर उसने अपनी बहन को समझाकर पुनः उसके ससुराल भेज दिया, अगहन माह में जब वह अपनी बहन की विदा लेने गया तो अभियुक्तगणों ने पहले तो उसे भेजने से मना कर दिया, परन्तु जब वह जिद पर अड़ा रहा तो उसके साथ मारपीट कर उसे भेज दिया। दिनांक 10.07.1995 की सुबह



प्रथम सूचनादाता के बहनोई (चचेरा बहनोई)- ब्रज मोहन ने आकर बताया कि उसकी बहन ने पिछली रात को फांसी लगा ली है; प्रथम सूचनादाता घटनास्थल पर गया और उसे प्लास्टिक की रस्सी से लटकता हुआ पाया; उसकी बहन के साथ प्रकाश और उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा इस हद तक दुर्व्यवहार किया गया और उसे इस हद तक प्रताड़ित किया गया कि वह अपनी जान देने के लिए मजबूर हो गई।

(ii) अभियोजन पक्ष के अनुसार प्रथम सूचनादाता-अशर्फी लाल द्वारा दी गई पूर्व लिखित सूचना दिनांक 10.07.1995 के आधार पर, मृतका के शव की जांच दिनांक 10.07.1995 को दोपहर 1 बजे से की गई और पोस्टमार्टम दिनांक 11.07.1995 को अपराह्न 3.30 बजे किया गया।

(iii) एक अन्य टाइप-शुदा लिखित रिपोर्ट के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या-174/1995 धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत 11.08.1995 को 12.30 बजे पंजीकृत किया गया और जांच की गई।

5. जांच अधिकारी ने घटनास्थल का निरीक्षण किया, दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र किए, गवाहों के मौखिक साक्ष्य दर्ज किए और सभी आरोपियों के खिलाफ धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। मामला आगे बढ़ा और सत्र न्यायालय ने दोनों आरोपियों के खिलाफ धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत आरोप विरचित किए।

6. अभियोजन पक्ष ने पीडब्लू1-अशर्फी लाल (सूचनाकर्ता), पीडब्लू2-राज कुमार, पीडब्लू3-डॉ एस.के. रस्तोगी, पीडब्लू4-एसआई दल बहादुर, पीडब्लू5-ब्रज मोहन, पीडब्लू6-रामखेलावन, पीडब्लू7-एसआई राम सहाय का परीक्षण किया।

7. निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए (i) टाइप-शुदा लिखित तहरीर दिनांक 11.07.1995 (प्रदर्श क-1), (ii) टाइप-शुदा लिखित तहरीर दिनांक 09.08.1995 (प्रदर्श क-2), (iii) जीडी की प्रति दिनांक 11.07.1995 (प्रदर्श क-6), (iv) चिक (प्रदर्श क-5), (v) जीडी संख्या 14 की प्रति दिनांक 10.07.1995, (vi) जीडी संख्या 32 की प्रति दिनांक 10.07.1995, (vii) मेमो जब्ती रस्सी (प्रदर्श क-13), (viii) साइट मैप (प्रदर्श क-14), (ix) पोस्टमार्टम (प्रदर्श क-4), (x) पंचायतनामा (प्रदर्श क-3), (xi) जीडी संख्या 14 की प्रति दिनांक 10.07.1995 (प्रदर्श क-16), (xii) आरोप पत्र (प्रदर्श क-15), (xiii) अशर्फी लाल की हस्तलिखित तहरीर दिनांक 10.07.1995 (प्रदर्श क-10)।

8. धारा-313 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज बयान में, अभियुक्तों ने निर्दोष होने का दावा किया और अपराध में किसी भी तरह की संलिप्तता से इनकार किया। बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया गया।

9. सभी अभियुक्तों अर्थात् ओम प्रकाश उर्फ प्रकाश, नरेश उर्फ राम नरेश, राम सरन, रूप रानी और श्रीमती जयदेवी पर मुकदमा चलाया गया। उनमें से केवल दो को ही विचारण

न्यायालय ने दोषी ठहराया, जो अब इस अपील में इस अदालत के समक्ष हैं।

10. अभियोजन पक्ष की ओर से दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने से पहले, गवाहों द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य को संक्षेप में संदर्भित करना उपयोगी होगा:-

(i) **पीडब्लू 1-अशफी लाल**, प्रथम सूचनादाता ने कहा है कि उसकी बहन दिखने में सुंदर नहीं थी, इसलिए अभियुक्तगण उसे अक्सर मारते थे और उस पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार करते थे; उन्होंने उससे 'भैंस' की मांग की; उसका आरोप है कि वे चाहते थे कि उसकी बहन घर छोड़ दे ताकि ओम प्रकाश उर्फ प्रकाश पुनर्विवाह कर सके; उसने आगे कहा है कि जब वह अपनी बहन को मायके के लिए विदा कराने गया था, तो आरोपी व्यक्तियों ने उसकी मौजूदगी में दो बार उसकी पिटाई की थी।

(ii) **पीडब्लू 2-राज कुमार** मूलतः जांच का गवाह है और उसके पास अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में कहने के लिए कोई उपयोगी बात नहीं है; उसे वास्तव में पक्षद्रोही घोषित किया गया है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने से यह कहते हुए इनकार कर दिया है कि उसने कभी भी धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत यह बयान नहीं दिया कि उसका पति, देवर और सास मृतका को परेशान करते थे।

(iii) **पीडब्लू 3-डॉ. एस.के. रस्तोगी** ने पोस्टमार्टम किया और उसकी गर्दन पर

लिगचर का निशान और उसके दाहिने अंगूठे के आधार पर एक कटा हुआ घाव और बाएं एड़ी पर चोट का निशान पाया।

(iv) **पीडब्लू 4- एसआई दल बहादुर**, एक औपचारिक गवाह जिसने चिक और विभिन्न तिथियों की जी.डी. की प्रति को साबित किया है, जिसका इस निर्णय में उचित स्थानों पर उल्लेख किया जाएगा।

(v) **पी.डब्लू.5-ब्रज मोहन**, वह महिला जिसने रामलडैती की मृत्यु की सूचना उसके भाई को दी, ने अपने बयान में कहा है कि मृतका यद्यपि बहुत सुन्दर नहीं थी, परन्तु बुरी भी नहीं थी; उसने कहा है कि अभियुक्तगणों ने कभी भी उसे यह कहकर नहीं धमकाया कि प्रकाश किसी अन्य महिला से विवाह कर लेगा।

(vi) **पी.डब्लू.6-राम खेलावन** ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष का समर्थन करते हुए कहा है कि अभियुक्तगण ओम प्रकाश तथा नरेश (देवर) एवं परिवार के अन्य सदस्य उसे यह कहकर अपमानित करते थे कि वह पर्याप्त सुन्दर नहीं है।

(vii) **पी.डब्लू.7-एस.आई. राम सहाय**, जांच अधिकारी जिसने जांच रिपोर्ट, सम्बन्धित कागजात, स्थल मानचित्र, आरोप पत्र आदि को प्रमाणित करने के अतिरिक्त अपने द्वारा दर्ज किये गये गवाहों के साक्ष्य के बारे में भी बताया है।

11. अपनी गवाही में पीडब्लू 1, जो प्रथम सूचनाकर्ता होने के साथ-साथ मृतका का सगा

भाई भी है, ने आरोप लगाया है कि मृतका को उसके पति प्रकाश और अन्य आरोपियों द्वारा परेशान किया जा रहा था ताकि वह घर छोड़ दे और उसका पति दूसरी शादी कर सके; यह भी कहा गया है कि वह सुंदर नहीं थी, इसलिए वह किसी दूसरी महिला से शादी करना चाहता था; दूसरी बात, आरोपी उससे 'भैंस' की मांग कर रहे थे। अपनी गवाही में उसने कहा कि दो बार ऐसा हुआ कि उसकी बहन पर उसके ससुराल वालों ने उसकी मौजूदगी में शारीरिक हमला किया।

आत्महत्या करने से पहले के तथ्यों के बारे में गवाह ने बस इतना ही कहा है।

12. एफआईआर दर्ज कराने के संबंध में पीडब्लू-1 ने कहा है कि वह सुबह करीब साढ़े नौ बजे घटनास्थल, अपनी बहन के छप्पर/घर पर पहुंचा था; वे दोपहर करीब 12 बजे थाना बेनीगंज पहुंचे और वहां के पुलिस अधिकारी को सारी बात बताई; घटना के संबंध में लिखित रिपोर्ट लालाजी (तहरीर के लेखक) की मदद से तैयार की गई थी; उसने इस बात से इनकार किया है कि वह उस दिन संबंधित थाने में गया ही नहीं था। उसने कहा है कि एफआईआर की प्रति उसे उसी दिन सौंप दी गई थी और उसने घटना के तीसरे दिन उस कागज को एक वकील को सौंप दिया था; उसने जिला मजिस्ट्रेट को एक लिखित रिपोर्ट दी थी; उसे उस रिपोर्ट की प्रति एक महीने बाद मिली थी। इस गवाह ने पुलिस को मामले की सूचना देने के संबंध में अलग-अलग बयान दिए हैं। पीडब्लू-1 ने निम्नानुसार कहा है:-

“मैं इसके बाद मुलजिम ओम प्रकाश के घर के अंदर जाकर देखा तो मुल्जिमा जय देवी के अलावा घर में कोई अन्य सदस्य मौजूद नहीं था। आधा घण्टा तक रुकने के पश्चात मैं थाना बेनीगंज रिपोर्ट करने गया। थाना बेनीगंज में मुंशी को मैंने घटना का जबानी हाल बताया था परन्तु मुंशीजी ने जैसा मैंने बताया था वैसा हाल मुंशीजी ने नहीं लिखा था। उसके बाद मैं दरोगा रामसहाय से मिला। तो उन्होंने मुझे डांट-फटकार कर भगा दिया। मैं लौटकर ग्राम खेरवा लौट आया। इसके बाद पोस्टमार्टम होने के दूसरे दिन एक प्रा.पत्र जिला मजिस्ट्रेट, कप्तान तथा सीओ को दिये थे। मैंने यह प्रा.पत्र सीओ संडीला को दिया था। मैं आज रजिस्ट्री रशीद तारीखी 11.7.95 अंडरपोस्टिंग सर्टिफिकेट चिकित्साधिकारी हरदोई दिनांक 11.7.95 तथा अपने दस्तखती प्रा.पत्र की प्रति जिस पर मेरे हस्ताक्षर हैं।”

साक्षी ने दिनांक 11.07.1995 एवं 09.08.1995 की टाइप-शुदा रिपोर्ट प्रदर्श क-1 एवं क-2 को सिद्ध किया है। अपने प्रति-परीक्षा में उसने असंगत कथन दिए हैं, जैसा कि उसके साक्ष्य के पृष्ठ संख्या 7 एवं 8 पर प्रति-परीक्षा से स्पष्ट है।

13. निस्संदेह, यह प्राथमिकी एक टाइप-शुदा रिपोर्ट के आधार पर पंजीकृत की गई है, जो प्रदर्श क-2 है तथा पी.डब्लू.1 द्वारा सिद्ध है; यह टाइप-शुदा रिपोर्ट दिनांक 09.08.1995 को

अपर पुलिस अधीक्षक, संडीला, हरदोई को संबोधित की गई थी, तथा इसमें पांच व्यक्तियों के नाम थे। इस लिखित रिपोर्ट में प्रथम सूचनादाता ने उल्लेख किया है कि अभियुक्तगण उसे इसलिए परेशान करते थे, क्योंकि वह सुंदर नहीं थी तथा प्रकाश को दूसरी शादी करने के लिए उकसाते थे। एक और लिखित रिपोर्ट है, जिसे अभियोजन पक्ष ने प्रदर्श क-1 सिद्ध किया है, जिसमें 5 व्यक्तियों का नहीं, बल्कि मात्र 4 व्यक्तियों का उल्लेख है; इस लिखित रिपोर्ट में ऐसा कुछ भी उल्लिखित नहीं है। दिनांक 11.07.1995 के प्रदर्श क-1 में उसकी बहन के सुंदर न होने के कारण पुनर्विवाह की धमकी के बारे में कुछ नहीं कहा गया है; बल्कि दिनांक 11.07.1995 की टाइप-शुदा रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है कि भैंस आदि की मांग पूरी न हो पाने के कारण उन्होंने उसकी बहन की हत्या कर दी।

14. दिनांक 10.07.1995 की एक और हस्तलिखित रिपोर्ट है, जो प्रथम सूचनादाता अशर्फी लाल द्वारा हस्ताक्षरित है तथा अभियोजन पक्ष के साक्षी पी.डब्लू.7 द्वारा प्रमाणित है, जिसमें थाने को मात्र यह सूचना दी गई है कि सुबह लगभग 5 बजे उसके बहनोई ब्रज मोहन (चचेरा बहनोई) उसके घर आए तथा बताया कि प्रथम सूचनादाता की बहन की मृत्यु हो गई है तथा उसका शव उसके घर के अन्दर लटक रहा है; उसके घर में उसकी सास के अलावा कोई नहीं है; ऐसी सूचना मिलने पर प्रथम सूचनादाता तत्काल अपने सह-ग्रामीणों सूरज प्रसाद पाल, चन्द्रभाल, शिव राज पाल और माजिर अली को साथ लेकर अपनी बहन के घर पहुंचा, तो उसने देखा

कि वह छप्पर के अन्दर रस्सी से लटकी हुई थी।

मैंने इस पत्र का अवलोकन किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस रिपोर्ट पर दिनांक 10.07.1995 अंकित है, अर्थात् प्रदर्श क-1 के टाइप होने के ठीक एक दिन पूर्व की, तथा इस पत्र में अवैध रूप से भैंस की मांग या दुर्व्यवहार या पुनर्विवाह की धमकी के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं है।

15. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह बलपूर्वक तर्क किया गया है कि अभियोजन पक्ष ने धीरे-धीरे एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना को धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत अपराध में बदलने के लिए एक कहानी विकसित की है; यह तर्क दिया गया है कि आरोपों में कोई सच्चाई नहीं है; सबसे महत्वपूर्ण गवाह पी.डब्लू.1, जो प्रथम सूचनाकर्ता है तथा जिसके कहने पर तीन रिपोर्ट तैयार की गई, ने अपनी गवाही में इन तीनों रिपोर्ट को तैयार करने से इनकार नहीं किया है। अपनी जिरह में वह पिछली रिपोर्ट के बाद की रिपोर्ट में नए आरोप जोड़े जाने के संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे सका। इस समय यह ध्यान देने योग्य है कि इस मामले में दिनांक 10.07.1995 की रिपोर्ट के आधार पर जांच तथा पोस्टमार्टम किया गया था। इस मामले में पोस्टमार्टम तथा जांच आदि के लगभग एक माह बाद एफ.आई.आर. दर्ज की गई है। अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध की गई पूर्व रिपोर्टों को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यद्यपि दिनांक 10.07.1995 तथा 11.07.1995 की रिपोर्टों को प्रथम सूचना नहीं

माना जा रहा है, लेकिन वे निश्चित रूप से प्रासंगिक तथा साक्ष्य में स्वीकार्य हैं।

16. उपरोक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में पी.डब्ल्यू.1 के साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि मृतका के भाई ने थाने में जो सूचना देने का प्रयास किया था, उसमें इस बात की कोई चर्चा नहीं हुई कि उसके सुंदर न होने के कारण उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा था। बाद में मामला प्रदर्श क-2 के आधार पर दर्ज किया गया, जिसमें मृतका के सुंदर न होने के कारण उसके साथ दुर्व्यवहार के साथ-साथ भैंस की मांग का तथ्य शामिल था।

मेरे विचार में बीच की अवधि ने प्रथम सूचनाकर्ता को झूठे और अलंकृत तथ्य डालने का अवसर प्रदान किया; जिन कारकों ने उसे एफआईआर दर्ज करने के लिए प्रेरित किया, उनमें क्रोध, असंतोष या अपनी बहन की असामयिक मृत्यु का बदला लेना या इसी तरह का कोई अन्य तथ्य शामिल हो सकता है।

17. सबसे महत्वपूर्ण गवाहों और अभियोजन पक्ष के कागजात के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालने से पहले, यह ध्यान देने योग्य है कि पीडब्ल्यू 2-राज कुमार ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है; पी.डब्ल्यू.5-ब्रज मोहन, जिसने अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, मृतका के भाई को इस घटना के बारे में सबसे पहले सूचना दी थी, ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है; उसने इस तर्क को ध्वस्त कर दिया है कि मृतका सुंदर नहीं थी और इसलिए उसके पति द्वारा

उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा था; यह काफी आश्चर्यजनक है कि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन न करने के बावजूद अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी प्रति-परीक्षा नहीं की गई है।

18. तथ्य के तीसरे गवाह राम खेलावन ने अपने मुख्य परीक्षण में केवल इतना कहा है कि ओम प्रकाश और एक अन्य मृतका रामलडैती के साथ दुर्व्यवहार करते थे क्योंकि वह सुंदर नहीं थी; उसने अपने प्रति-परीक्षा में इस कथन पर कायम नहीं रहा है।

19. निष्कर्ष निकालने से पहले, सबसे पहले धारा-306 आईपीसी के दायरे, आत्महत्या के लिए उकसाने की जांच करना और व्यापक रूप से यह जांचना उपयोगी होगा कि किस तरह के कृत्यों को धारा-306 आईपीसी के दायरे में लाया जा सकता है।

**धारा 306 आईपीसी इस प्रकार है:-**

*"306. आत्महत्या के लिए उकसाना:- यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, तो जो कोई भी ऐसी आत्महत्या के लिए उकसाता है, उसे दस साल तक की अवधि के कारावास से दंडित किया जाएगा और जुर्माना भी देना होगा।"*

भारतीय दंड संहिता की धारा-107 के अंतर्गत उकसावे को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:-

*"107. किसी कार्य के लिए उकसाना:- कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए उकसाता है, जो-पहला-किसी*

व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए उकसाता है; या दूसरा-उस कार्य को करने के लिए किसी षडयंत्र में एक या एक से अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ शामिल होता है, यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में और उस कार्य को करने के लिए कोई कार्य या अवैध चूक होती है; या तीसरा-जानबूझकर किसी कार्य या अवैध चूक द्वारा उस कार्य को करने में सहायता करता है।

**स्पष्टीकरण 1-** कोई व्यक्ति जो जानबूझकर गलत बयानी करके या जानबूझकर किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाकर, जिसे प्रकट करने के लिए वह बाध्य है, स्वेच्छा से किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करता है या करवाता है, या करवाने या करवाने का प्रयास करता है, उसे उस कार्य को करने के लिए उकसाने वाला कहा जाता है।

**स्पष्टीकरण 2-** जो कोई भी, या तो पहले या उस समय किसी कार्य के किए जाने के संबंध में, उस कार्य के किए जाने को सुगम बनाने के लिए कुछ भी करता है, और इस प्रकार उसके किए जाने को सुगम बनाता है, तो उसे उस कार्य के किए जाने में सहायता करने वाला कहा जाता है।”

20. धारा-306 आईपीसी को लागू करने के लिए, कानून की आवश्यकता है कि आत्महत्या

के कृत्य और आरोपी द्वारा पीड़ित के साथ किए गए व्यवहार या कृत्य के बीच निकटता होनी चाहिए या ऐसे कृत्य जो जानबूझकर मृतक को उसकी जान देने के लिए उकसाने के समान हों।

21. उदे सिंह व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 17 एससीसी 301 में सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायमूर्तियों के पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

“16. आत्महत्या के कथित उकसावे के मामलों में, आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्य/कार्यों का सबूत होना चाहिए। इस बात पर शायद ही कोई विवाद हो सकता है कि आत्महत्या के कारण का सवाल, विशेष रूप से आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के संदर्भ में, एक पेचीदा सवाल बना हुआ है, जिसमें मानवीय व्यवहार और प्रतिक्रियाओं की बहुमुखी और जटिल विशेषताएं शामिल हैं। आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप के मामले में, न्यायालय आत्महत्या के लिए उकसाने के कृत्य/कृत्यों के ठोस और पुख्ता सबूत की तलाश करेगा। आत्महत्या के मामले में, मृतक को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा परेशान करने का आरोप लगाना तब तक पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त की ओर से ऐसा कोई कार्य न हो जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता हो; और ऐसा आपत्तिजनक कार्य

घटना के समय के करीब होना चाहिए। किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने में उकसाया है या नहीं, यह केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है।

16.1. यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने में उकसाया है; विचारणीय यह होगा कि क्या अभियुक्त आत्महत्या के कृत्य के लिए उकसाने के कृत्य का दोषी है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णयों में स्पष्ट और दोहराया गया है,

**उकसाने का अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ाना, या प्रोत्साहित करना।** यदि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति अतिसंवेदनशील थे और अभियुक्त की कार्यवाही से अन्यथा समान परिस्थितियों वाले व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, तो अभियुक्त को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराना उचित नहीं होगा। लेकिन, दूसरी ओर, यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं दिखता है, तो मामला धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत आ सकता है। यदि अभियुक्त पीड़ित के

आत्मसम्मान और स्वाभिमान को धूमिल करने में सक्रिय भूमिका निभाता है, जो अंततः पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है, तो अभियुक्त को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से मेन्स रीया के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कार्यों के संदर्भ में की जाएगी और यदि कृत्य और कार्य केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का उत्पीड़न या क्रोध के अचानक प्रदर्शन के अलावा और कुछ नहीं था, तो कोई विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर आरोपी मृतक को शब्दों या कामों से तब तक परेशान करता रहा जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं की या उसे उकसाया नहीं गया, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। चूंकि यह मानवीय व्यवहार के नाजुक विश्लेषण का मामला है, इसलिए प्रत्येक मामले की जांच उसके अपने तथ्यों के आधार पर की जानी चाहिए, साथ ही आरोपी और मृतक के कार्यों और मानसिकता पर असर डालने वाले सभी आसपास के कारकों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।”

**मारियानो एंटो ब्रूनो और अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक, आपराधिक अपील संख्या-1628/2022 दिनांक 12.10.2022 में में**

**सर्वोच्च न्यायालय ने पारित आदेश में निम्न प्रकार से टिप्पणी की:-**

उसी निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने प्रस्तर संख्या-36 और 38 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

**"25. धारा 306 आईपीसी के तत्वों को एम. अर्जुनन बनाम राज्य, द्वारा पुलिस निरीक्षक; (2019) 3 एससीसी 315 में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है, जो इस प्रकार हैं: -**

"धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के आवश्यक तत्व हैं: (i) उकसाना; (ii) मृतक को आत्महत्या करने के लिए सहायता या उकसाने का अभियुक्त का इरादा। हालांकि, अभियुक्त द्वारा अपमानजनक भाषा का उपयोग करके मृतक का अपमान करने का कृत्य, अपने आप में, आत्महत्या के लिए उकसाने का गठन नहीं करेगा। ऐसे साक्ष्य होने चाहिए जो यह सुझाव दे सकें कि अभियुक्त ने इस तरह के कृत्य से मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का इरादा किया था। जब तक आत्महत्या के लिए उकसाने/उकसाने के तत्व संतुष्ट नहीं होते, तब तक आरोपी को धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत दोषी नहीं ठहराया जा सकता।"

**"36. धारा-306 आईपीसी के अंतर्गत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने की स्पष्ट मंशा होनी चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है, जो मृतक को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है और कोई अन्य विकल्प न होने पर भी यह कार्य आरोपी के इरादे को दर्शाता है कि मृतक को ऐसी स्थिति में धकेला जाए कि वह आत्महत्या कर ले। अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे यह साबित करना होगा कि मृतक ने आत्महत्या की और अपीलकर्ता नंबर-1 ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। वर्तमान मामले में, दोनों तत्व अनुपस्थित हैं।**

37. ....

38. इस न्यायालय ने बार-बार दोहराया है कि धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत किसी आरोपी को दोषी ठहराने से पहले न्यायालय



को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए और उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य का भी आकलन करना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि पीड़िता के साथ की गई क्रूरता और उत्पीड़न के कारण पीड़िता के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प तो नहीं बचा था। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि आत्महत्या के कथित उकसावे के मामलों में आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्यों का सबूत होना चाहिए। केवल उत्पीड़न के आरोप के आधार पर, बिना किसी संकोचपूर्ण कार्रवाई के, जिसके कारण आरोपी ने आत्महत्या की, धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत दोषसिद्धि बनी नहीं रह सकती।"

22. सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखते हुए चेताया कि प्रत्येक आत्महत्या एक व्यक्तिगत त्रासदी है, जो समय से पहले किसी व्यक्ति की जान ले लेती है और इसका निरंतर प्रभाव होता है, जो परिवारों, मित्रों और समुदायों के जीवन को नाटकीय रूप से प्रभावित करता है, हालांकि, निर्णय देते समय कानून की अदालत को भावनाओं या भावुकता से निर्देशित नहीं होना

चाहिए, बल्कि रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेना चाहिए।

23. वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि आरोपी ने अपराध करने के लिए उकसाया, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है, 'उकसाने' का अर्थ है "किसी कार्य" को करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ाना या प्रोत्साहित करना। स्पष्ट है कि इरादा, प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर जाना जाता है। समान रूप से लागू करने के लिए कोई सिद्धान्त निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

24. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में पर्याप्त संकेत हैं, जिससे यह आभास होता है कि अभियोजन पक्ष की कहानी बाद में विकसित की गई है। यदि यह आरोप सत्य होता कि मृतका को उसके सुंदर न होने के कारण परेशान किया जा रहा था, तो यह तथ्य निश्चित रूप से उसके सगे भाई द्वारा तैयार किए गए पिछले आवेदन/लिखित रिपोर्ट में उल्लिखित होता। प्रदर्श क-1 और 10.07.1995 की तहरीर में किसी भी प्रकार की शिकायत का अभाव उचित संदेह पैदा करता है। तर्क के लिए, यदि यह मान लिया जाए कि एफआईआर में या पीडब्लू 1 द्वारा दिए गए साक्ष्य में जो कुछ भी कहा गया है, वह उचित रूप से सत्य है, तब भी यह आत्महत्या के लिए उकसाने का कृत्य नहीं माना जाएगा। पीडब्लू-1 के बयान में बहुत अधिक तथ्य नहीं हैं कि अभियुक्तों ने मृतका के पति को दूसरी शादी करने के लिए उकसाया था। इस तरह के सिद्धांत पर साक्ष्य

इसे सत्य के रूप में ब्रांड करने के लिए काफी अपर्याप्त हैं। इसके अलावा, यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि मृतका द्वारा अपनी जान लेने जैसा चरम कदम उठाने से ठीक पहले, आरोपी व्यक्ति की ओर से कोई तात्कालिक उकसावे की स्थिति थी, जिसने उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया। मेरी दृढ़ राय में, अभियोजन पक्ष आत्महत्या के कृत्य और मृतका के साथ आरोपी द्वारा किए गए कृत्य, आचरण या व्यवहार के बीच कोई निकटता साबित करने में विफल रहा है। मेरी राय में अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि वास्तव में उसके साथ उस हद तक दुर्व्यवहार या उत्पीड़न किया गया था, जो अनिवार्य रूप से आत्महत्या करने के लिए 'उकसाने' की अवधि के अंतर्गत आता है।

25. सप्तम अपर सत्र न्यायाधीश, हरदोई द्वारा एसटी संख्या-652/1995 में पारित निर्णय और दंड आदेश दिनांक 08.02.2000 को एतद्वारा निरस्त किया जाता है और आरोपी व्यक्तियों को बरी किया जाता है।

26. तदनुसार, यह आपराधिक अपील स्वीकार की जाती है।

27. आवश्यक कार्रवाई के लिए निर्णय की प्रति तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

28. अपीलकर्ता को संबंधित न्यायालय के समक्ष, अगले चार सप्ताह की अवधि के भीतर, दो जमानतदारों और समान राशि के व्यक्तिगत बांड के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के

लिए जमानत बांड निष्पादित करना होगा, ताकि जब भी उच्चतर न्यायालय इस मामले के संबंध में नोटिस जारी करे, तो वह उसके समक्ष उपस्थित हो सके। ऐसे जमानत बांड निष्पादन की तिथि से छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी रहेंगे।

-----

(2023) 9 ILRA 594

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

आपराधिक अपील संख्या 193 वर्ष 2020

समीर सिंह

...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

पूर्णन्दु चक्रवर्ती, अभिनीत जयसवाल, अनुज टंडन, गौरव मेहरोत्रा

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2)

- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा

27 और 13(1)(डी), धारा 13(2) के साथ

पठित - दोषसिद्धि को चुनौती - अपीलार्थी की

नियुक्ति 22.06.1999 को ग्राम विकास

अधिकारी के पद पर हुई थी। उनका कहना है

कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, अर्थात् पीडब्लू-1 और

पीडब्लू-2 के अभिकथनों में विसंगतियां और

भिन्नताएं हैं। पीडब्लू-5 और पीडब्लू-7, जो पति-पत्नी हैं, के अभिकथन भी असंगत हैं। पीडब्लू-7 लाभार्थी है। उनका यह भी कहना है कि पीडब्लू-1, पीडब्लू-8 (आईओ) और पीडब्लू-9 के अभिकथनों में भी विसंगतियां हैं। रिश्वत की मांग और स्वीकृति उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं हुई है-पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की परिसाक्ष्य के दृष्टिगत घटनास्थल को संदिग्ध बना दिया गया है-बारामदगी स्थल के संबंध में पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के अभिकथनों में गंभीर विसंगतियां हैं-पीडब्लू-5 और पीडब्लू-7 जो पति-पत्नी हैं, के साक्ष्य भी मूलभूत तथ्य यानी लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति को सिद्ध करने के लिए विरोधाभासी हैं-पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के असंगत अभिकथनों और पीडब्लू-1, पीडब्लू-8 और पीडब्लू-9 के असंगत अभिकथनों को देखते हुए अभियोजन पक्ष द्वारा चार लाभार्थियों से अवैध परितोषण की मांग को सिद्ध नहीं कहा जा सकता है-पीडब्लू-1 और पीडब्लू-8 और पीडब्लू-9 के बीच विरोधाभासी अभिकथन को देखते हुए फर्द बारामदगी भी संदिग्ध हो जाती है-चार में से दो लाभार्थियों ने विचारण में अभिसाक्ष्य नहीं दी है, इस प्रकार, रिश्वत की मांग और ऐसी रिश्वत के भुगतान का मूलभूत तथ्य सिद्ध नहीं हुआ है नीरज दत्ता के निर्णय में तथ्य सिद्ध करने के लिए ऐसे साक्षियों के अभिकथन के लिए जो अपवाद बनाया गया है, वह इस मामले में लागू होता है और अभियोजन पक्ष ने ऐसे महत्वपूर्ण साक्षियों को रोके रखने के लिए कोई कारण नहीं बताया है- इसके अलावा, दूसरे स्वतंत्र साक्षी, जो दूसरी ट्रेप टीम का

हिस्सा था, से अभियोजन पक्ष ने न्यायालय में स्वतंत्र साक्षी के रूप में पूछताछ नहीं की है- गिरफ्तारी के समय घटित घटनाओं की श्रृंखला के संबंध में अभिसाक्ष्य देने के लिए वह एक बहुत ही महत्वपूर्ण साक्षी था- भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (जी) के दृष्टिगत प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष स्वतंत्र साक्षी की जांच करने में विफलता, इस तथ्य के साथ कि ट्रेप टीम द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है- इसलिए, स्वतंत्र साक्षियों को पेश न करना केवल इस धारणा को जन्म देता है कि यदि उन्हें पेश किया गया होता, तो उनका साक्ष्य अपीलार्थी के पक्ष में होता। इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र साक्षियों को पेश न करना अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल अनुमान को आकर्षित करता है। (पैरा 1 से 15)

बी. धारा 114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है। न्यायालय किसी ऐसे तथ्य के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है जिसके घटित होने की वह सम्भावना समझता है, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण तथा सार्वजनिक और निजी कार्य के सामान्य क्रम को ध्यान में रखते हुए। दृष्टांत, न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है

(ए) यदि कोई व्यक्ति चोरी के तुरंत बाद चोरी का माल अपने कब्जे में ले लेता है तो वह या तो चोर है या उसने माल को चोरी का जानते

हुए प्राप्त किया है, जब तक कि वह अपने कब्जे का कारण न बता सके;

(बी) कि कोई सह-अपराधी तब तक विश्वास के योग्य नहीं है, जब तक कि उसके बारे में भौतिक विवरण की पुष्टि न हो जाए;

(सी) कि विनिमय पत्र, स्वीकृत या पृष्ठांकित, अच्छे प्रतिफल के लिए स्वीकृत या पृष्ठांकित किया गया था;

(डी) कि कोई वस्तु या वस्तुओं की अवस्था, जो उस अवधि से कम अवधि के भीतर अस्तित्व में होना दर्शाई गई है, जिसके भीतर ऐसी वस्तुएं या वस्तुओं की अवस्था आमतौर पर अस्तित्व में नहीं रहती, अभी भी अस्तित्व में है;

(ई) न्यायिक और आधिकारिक कार्य नियमित रूप से किए गए हैं;

(एफ) कि विशेष मामलों में सामान्य कार्यविधि का पालन किया गया है;

(जी) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता था और प्रस्तुत नहीं किया गया, यदि प्रस्तुत किया जाता, तो जो व्यक्ति इसे रोकता है उसके लिए प्रतिकूल होगा;

(एच) यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इंकार कर देता है जिसका उत्तर देने के लिए वह कानून द्वारा बाध्य नहीं है, तो उत्तर, यदि दिया गया हो, तो उसके प्रति प्रतिकूल होगा;

(आई) जब दायित्व सृजित करने वाला कोई दस्तावेज दायित्वकर्ता के हाथ में होता है, तो दायित्व का निर्वहन हो जाता है।" (पैरा 12, 13)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. टॉमसो ब्रूनो और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य(2015) 7 एससीसी 178

2. कृष्णगौड़ा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य द्वारा अर्कलगुड पुलिस (2017) 13 एससीसी 98

3. रवीन कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2021) 12 एससीसी 557

4. रमेश भवन राठौड़ बनाम विशनभाई हीराभाई मकवाना (कोली) और एक अन्य (2021) 6 एससीसी 230

5. नीरज दत्ता बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार) (2023) 4 एससीसी 731

6. एन. सुंकन्ना बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2016) 1 एससीसी 713.

7. देवी लाल बनाम राजस्थान राज्य (2019) 19 एससीसी 447.

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. प्रस्तुत आपराधिक अपील विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक द्वारा पारित आपराधिक मामला संख्या 58/2003 (यूपी राज्य बनाम समीर सिंह) में पारित दिनांक 23.01.2020 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश दिनांक 23.01.2020 के खिलाफ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 27 सपठित धारा 374(2) के तहत दायर की गई है। न्यायालय संख्या-5, लखनऊ ने अपीलकर्ता को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत तीन साल के कठोर कारावास और 2,000 रुपये के जुर्माने और धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(2) पी.सी. अधिनियम, 1988 के तहत चार साल के सश्रम कारावास और 3,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई।

2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा के साथ-साथ राज्य के लिए श्री जयंत सिंह तोमर, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

3. अभियोजन का मामला यह है कि शिकायतकर्ता किशन द्वारा अपीलकर्ता समीर सिंह के खिलाफ शिकायत की गई थी कि इंदिरा आवास योजना के तहत घर बनाने के उद्देश्य से, सरकार द्वारा शिकायतकर्ता, गांव के महादेव की पत्नी को 10,000 रुपये का अनुदान स्वीकृत किया गया था, तेजी की पत्नी और अवतार की पत्नी प्रत्येक को 20,000 रुपये का अनुदान दिया गया था। 3000/-रुपये की राशि का चेक बकाया है जो ब्लॉक मोहनलाल गंज से सचिव समीर सिंह के माध्यम से सभी चार लाभार्थियों को दिया जाना है और इस उद्देश्य के लिए, 13.03.2002 को, शिकायतकर्ता, अवतार और महादेव मोहनलाल

गंज में ग्राम प्रधान बच्चा बाबू की फोटोस्टेट दुकान पर गए, जहां समीर सिंह, सचिव ग्राम प्रधान लगभग 11 बजे आए और उनसे कहा कि यदि वे शेष 3000 रुपये का चेक चाहते हैं, फिर वर्ष 15.03.2002 की दोपहर तक उन्हें प्रत्येक को 200/-रुपये लाने होंगे और सामूहिक रूप से उसे रिश्वत के रूप में भुगतान करना होगा, उसके बाद, वह उन्हें चेक प्रदान करेगा। उन्होंने आगे कहा कि उनका तबादला कर दिया गया है और अगर उन्हें शेष राशि लेनी है, तो कार्यालय में 800 रुपये लेकर आए; अन्यथा वह नहीं जानता है और उन्हें चेक नहीं दिया जाएगा। इस प्रकार, सचिव जानबूझकर रिश्वत लेने के उद्देश्य से शिकायतकर्ता और अन्य लाभार्थियों के चेक में देरी कर रहा है।

आगे आरोप यह है कि वह और उसके साथी (अन्य लाभार्थी) समीर सिंह को रिश्वत नहीं देना चाहते हैं, लेकिन उसे रंगे हाथ पकड़ना चाहते हैं। शिकायतकर्ता ने उनमें से प्रत्येक को 200/-रुपये लाने और उनके साथ 800/-रुपये लेने के लिए कहा। शिकायतकर्ता द्वारा इस आशय की शिकायत पुलिस अधीक्षक, उत्तर प्रदेश सतर्कता विभाग, लखनऊ, सेक्टर लखनऊ को दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप पुलिस अधीक्षक, सतर्कता, लखनऊ ने ट्रैप कार्रवाई की सिफारिश की और उसके बाद एक ट्रैप टीम का गठन किया गया। इसके बाद, शिकायतकर्ता को ब्लॉक मोहनलाल गंज भेजा गया, जहां शिकायतकर्ता को देखने के बाद, सचिव समीर सिंह ने अपने हीरो पुक वाहन को धीमा कर दिया और गेट में प्रवेश करने के बाद उसे रोक दिया। उन्होंने शिकायतकर्ता से पूछा कि क्या वह उनके द्वारा बताई गई सहमत राशि लिए

हैं, इस पर उन्होंने कहा कि जैसा कि उनके द्वारा बताया गया है, वह सभी लाभार्थियों से 800 रुपये लाए हैं। हीरो पुक पर बैठे-बैठे उसने रकम की मांग की, इस पर फरियादी श्री किशन ने अपनी शर्ट की बायीं जेब से पैसे निकाले जो उसके बाएं हाथ से लिए गए थे और दोनों हाथों से गिनने लगे। बातचीत देखने, सुनने, देने और रिश्वत लेने के बाद ट्रैप टीम ने आरोपी समीर सिंह को 800/-रुपये के साथ गिरफ्तार कर लिया।

गिरफ्तार आरोपियों के पास से बरामद नोटों के आधार पर फर्ड बरामदगी तैयार किया गया था और कांस्टेबल मोहररिंद द्वारा चौदह घंटे में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। जनरल डायरी में भी उसी समय यानी 14.00 बजे रिपोर्ट संख्या-13 पर प्रविष्टि की गई थी। गुलाम अकबर को विवेचनाधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के गवाहों और शिकायतकर्ता के बयान लिए और नक्शा नज़री तैयार किया और आरोपी/अपीलकर्ता समीर सिंह के खिलाफ प्रथम दृष्टया अपराध पाए जाने के बाद, उन्होंने अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 7 के साथ धारा 3(1)(डी) और 13(2) के तहत आरोप पत्र दायर किया।

4. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में निम्नलिखित गवाह पेश किए हैं: -

- (i) अ.सा.-रामकर सिंह (शिकायतकर्ता)
- (ii) अ.सा.-2 कृष्ण (शिकायकर्ता)
- (iii) अ.सा.-3 पीयूष मोहन श्रीवास्तव (बीडीओ)
- (iv) अ.सा.-4 अखिलेश कुमार सिंह
- (v) अ.सा.-5 महादेव

- (vi) अ.सा.-6 सी अजेंद्र कुमार
- (vii) अ.सा.-7 श्रीमती सुन्दरा (महादेव की पत्नी)
- (viii) अ.सा.-8 गुलाम अकबर, पुलिस उपाधीक्षक (सेवानिवृत्त), विवेचनाधिकारी
- (ix) अ.सा.-9 ओम प्रकाश श्रीवास्तव (स्वतंत्र गवाह)।

अभियोजन पक्ष द्वारा दिनांक 19-04-2002 की विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट भी प्रस्तुत की गई थी।

अ.सा.-1 रामकर सिंह, पुलिस उपाधीक्षक, यूपी सतर्कता विभाग ने अ.सा.-2 किशन के आवेदन पर ट्रैप टीम का गठन किया था। उन्होंने सुपुर्दगीनामा को प्रदर्श क-1 और फर्ड बरामदगी रिश्वती नोट और अभियुक्त की गिरफ्तारी को प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया। मौके पर ले जाए गए आरोपी समीर सिंह के हाथ का ढोन प्रदर्श 1 से 6 तक सिद्ध हुआ। उन्होंने प्रदर्श 7 से 15 तक भी साबित किया जो एक लिफाफा है जिसमें केस विवरण, तारीख का उल्लेख किया गया था और 100/- रुपये के आठ नोट थे।

अ.सा.-2 शिकायतकर्ता किशन ने अपने अंगूठे के निशान को साबित किया है जो प्रदर्श क-1 और क-2 पर है जो फर्ड बरामदगी है और इसे सत्यापित किया है।

अ.सा.-3 पीयूष मोहन श्रीवास्तव अगस्त 2001 से जून 2002 तक खंड विकास अधिकारी थे। उन्होंने इंदिरा आवास योजना के लिए हितग्राहियों को स्वीकृति देने और उनके

खाते में राशि वितरित करने की प्रक्रिया बताई। उन्होंने रजिस्टर ए 15/60 और 19.03.2002 के रजिस्टर की फोटोकॉपी को प्रदर्श क-4 के रूप में साबित किया। उन्होंने प्रदर्श क-5 क-6 भी साबित किया है। उन्होंने दूसरी किस्त के लिए आवेदन को प्रदर्श क-7 और क-8 के रूप में साबित किया और प्रदर्श क-9 से क-17 भी साबित किया जो अ.सा.-2 किशन द्वारा दिया गया आवेदन है और भुगतान का विवरण जो उनके द्वारा अन्य लोगों के साथ हस्ताक्षरित किया गया था।

अ०सा०-4 अखिलेश कुमार सिंह को दिनांक 09.10.2003 को जिला विकास अधिकारी लखनऊ के पद पर पदस्थ किया गया था। उन्होंने अभियोजन के लिए स्वीकृति दी है और इसे प्रदर्श क-18 के रूप में साबित किया है।

अ०सा०-5 लाभार्थी श्रीमती सुंदरा का पति है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

अ०सा०-6 एसआई अजेंद्र कुमार ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 7/13(1)(डी) के तहत अपराध संख्या 35/02 अपराध संख्या 81/2002 को साबित किया है और पुष्टि की है कि यह उनके लेखन और हस्ताक्षर में है, और इसे प्रदर्श क-19 के रूप में साबित किया है। उन्होंने प्रदर्श क-20 को भी साबित किया जो जनरल डायरी में उनके द्वारा तैयार किए गए 14.00 बजे रिपोर्ट संख्या-30 के रूप में दर्ज है और कहा है कि यह उनके लेखन और हस्ताक्षर में है।

अ०सा०-7 श्रीमती सुंदर लाभार्थी हैं और उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

अ०सा०-8 गुलाम अकबर विवेचनाधिकारी हैं जिन्होंने प्रदर्श क-5 को साबित किया है। उन्होंने निरीक्षण के बाद नक्शा नज़री तैयार किया और इसे प्रदर्श क-21 साबित किया। उन्होंने फोरेंसिक साइंस प्रयोगशाला की रिपोर्ट को भी रिपोर्ट संख्या-1 से 6 के रूप में साबित किया जिसमें सोडियम और फिनोल्फथेलीन नोट में मौजूद पाया गया था। रिपोर्ट को उनके द्वारा प्रदर्श क-22 के रूप में साबित किया गया है। उन्होंने अपीलकर्ता के खिलाफ दिनांक 13.10.2003 के आरोप पत्र को प्रदर्श क-23 के रूप में साबित किया है। वह उत्तर प्रदेश के सतर्कता विभाग में तैनात थे। उन्होंने प्रदर्श क-2 और प्रदर्श क-3 पर अपने हस्ताक्षर सत्यापित किए हैं।

अ०सा०-9 ओम प्रकाश श्रीवास्तव स्वतंत्र गवाह हैं। उन्होंने प्रदर्श क-2 पर अपने हस्ताक्षर की पुष्टि की। उन्होंने आगे प्रदर्श क-3, मौके पर उनकी उपस्थिति और प्रदर्श क-3 पर उनके हस्ताक्षर के आधार पर कार्रवाई की पुष्टि की।

5. धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने अभियोजन मामले से इनकार किया है। उन्होंने बचाव किया है कि शिकायतकर्ता, लाभार्थियों के पति और प्रधान अनिल त्रिपाठी उनसे नाराज थे क्योंकि उन्होंने उनके अवैध कार्य करने से इनकार कर दिया था। उसने खुद को बेकसूर बताया। उन्होंने कहा कि उन्होंने कभी भी गांव

के किसी भी व्यक्ति से कोई राशि नहीं मांगी, न ही 15.03.2002 को रिश्वत मांगी। उसके पास से कुछ भी बरामद नहीं हुआ और उसके हाथ मौके पर नहीं धुले और पूरी घटना झूठी है।

6. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को 22.06.1999 को ग्राम विकास अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि चशमदीद गवाहों यानी अ.सा.-1 और अ.सा.-2 के बयानों में विसंगतियां और भिन्नताएं हैं। अ.सा.-5 और अ.सा.-7 के बयान भी असंगत हैं जो पति-पत्नी हैं। अ.सा.-7 लाभार्थी है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि अ.सा.-1, अ.सा.-8 (विवेचनाधिकारी) और अ.सा.-9 के बयानों में भी विसंगतियां हैं। रिश्वत की मांग और स्वीकृति उचित संदेह से परे साबित नहीं होती है। अ.सा.-1 और अ.सा.-2 की गवाही के मददेनजर घटनास्थल को संदिग्ध बना दिया गया है।

वह आगे प्रस्तुत करता है कि अपीलकर्ता की दोषसिद्धि अपीलकर्ता-दोषी के जमानत आवेदन में किए गए कथनों के आधार पर है। रिश्वत की मांग और उक्त रिश्वत का भुगतान जैसा कि आरोप लगाया गया है, साबित नहीं हुआ है क्योंकि चार लाभार्थियों में से दो को परीक्षण में पेश नहीं किया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि अपीलकर्ता द्वारा सभी चार लाभार्थियों से अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार रिश्वत की मांग की गई थी। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि रिश्वत की मांग और भुगतान के

संबंध में मूलभूत तथ्यों को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया जा सका। ट्रैप टीम के साथ ले जाए गए स्वतंत्र गवाह बाबू राम पाल से पूछताछ नहीं की गई है, बल्कि उसे रोक लिया गया है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम उदाहरण (जी) की धारा 114 के तहत अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए।

अपीलकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि निर्णय में दर्ज निष्कर्ष कयासों और अनुमानों पर आधारित हैं। सतर्कता दल द्वारा जाल बिछाने की उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अ.सा.-9 के बयान के अनुसार, जो फ़र्द बरामदगी का एक स्वतंत्र गवाह है, उसने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। अपने तर्क के समर्थन में, अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

(i) टोमासो ब्रूनो और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015)7 एस.सी.सी. 178 (पैरा 39 पर जोर दिया गया है)

(ii) अर्कालगुड पुलिस द्वारा कृष्णगौड़ा & अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2017)13 एस.सी.सी. 98

(iii) रवीन कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2021) 12 एस.सी.सी. 557

(iv) रमेश भवन राठौड़ बनाम विशनभाई हीराभाई मकवाना (कोली) और अन्य, (2021)6



एस.सी.सी. 230 (पैरा-13 पर बल दिया गया (घटना का स्थान) है)

(v) नीरज दत्ता बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार), (2023)4 एस.सी.सी. 731

(vi) एन सुंकन्ना बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2016)1 एस.सी.सी. 713

(vii) देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2019 19 एस.सी.सी. 447।

7. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध करते हुए कहा है कि रिश्वत की मांग और स्वीकृति अभियोजन पक्ष द्वारा विधिवत साबित होती है। अपीलकर्ता को ट्रैप टीम ने रंगे हाथों पकड़ा है। चश्मदीद गवाह का खाता है। उन्होंने यह भी कहा कि जांच में मामूली बदलाव और दुर्बलता मुकदमे को खत्म नहीं करेगी। अपर शासकीय अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया: -

(i) नीरज दत्ता बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार), (2023) 4 एस.सी.सी. 731 में रिपोर्ट किया गया।

(ii) गुजरात राज्य बनाम नवीनभाई चंद्रकांत जोशी, (2018) 9 एस.सी.सी. 242

8. पक्षकारों के वकीलों को सुनने, अभिलेख का अवलोकन करने और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने के लिए मामले के अधिनिर्णय के लिए निम्नलिखित मुद्दों पर ध्यान देना उचित होगा:-

9. अंसा०-1 के पुलिस उपाधीक्षक और अंसा०-2 शिकायतकर्ता किशन के बयान बरामदगी के स्थल/घटनास्थल के संबंध में विपरीत हैं।

अंसा०-1 ने चश्मदीद गवाह होने के नाते गवाही दी है कि आरोपी समीर सिंह मोटरसाइकिल पर आया था और शिकायतकर्ता किशन को देखने के बाद, उसने अपनी मोटरसाइकिल धीमी कर दी और उससे पूछा कि क्या वह पैसे लेकर आया है, जिस पर किशन (शिकायकर्ता) ने उसकी शर्ट की दाहिनी जेब से 800/-रुपये दिए और कहा कि कृपया आज ही अपना चेक दे दें। आरोपी मोटरसाइकिल पर बैठा था और शिकायतकर्ता से बात कर रहा था तभी आरोपी के हाथ में पड़े नोट बरामद हुए। घटना के बाद वह प्रखंड कार्यालय के अंदर नहीं गए।

अंसा०-2, जो शिकायतकर्ता है और चश्मदीद गवाह भी है, ने कहा कि आरोपी समीर सिंह ब्लॉक के अंदर गया और रिश्वत मांगने के बाद, उसने रिश्वत दी। उन्होंने आगे कहा कि कमरे के बाहर आरोपी से मिलने के बाद, वह समीर सिंह के साथ ब्लॉक कार्यालय के अंदर गया। जब वह और आरोपी समीर सिंह कमरे के अंदर गए तो कोई और व्यक्ति नहीं आया। ट्रैप टीम ने समीर सिंह को कमरे के अंदर ही पकड़ लिया। इस प्रकार, अंसा०-1 द्वारा बताए गए कथित अपराध की घटना की सही जगह/बरामदगी की जगह को अ.सा.-2 द्वारा पूरी तरह से विरोधाभास किया गया है। यह

घटना/बरामदगी के स्थान के बारे में एक बड़ा विरोधाभास है। अभियोजन पक्ष घटना/बरामदगी के स्थान को सिद्ध नहीं कर पाया है। कथित चश्मदीद गवाहों यानी अ.सा.-1 और अ.सा.-2 की गवाही का यह हिस्सा विश्वास को प्रेरित नहीं करता है।

अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों के बीच विसंगतियां:

10. अंसा०-5 महादेव, जो लाभार्थियों में से एक श्रीमती सुंदर (अंसा०-7) के पति हैं, ने बयान में गवाही दी है कि अपीलकर्ता/दोषी ने अनुदान की अंतिम किस्त के भुगतान के लिए 200 रुपये की रिश्वत मांगी थी, जबकि सुंदर अंसा०-7 ने अपने बयान में गवाही दी थी कि अपीलकर्ता/दोषी ने अंसा०-2 किशन गुप्ता (अन्य लाभार्थी) से 200 रुपये की रिश्वत मांगी थी। अंसा०-7 ने अ.सा.-5 की पत्नी होने के बावजूद अपीलकर्ता द्वारा अपने पति से की गई किसी भी मांग का उल्लेख नहीं किया है जैसा कि अ.सा.-5 द्वारा गवाही दी गई है। विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय अ.सा.-5 और अ.सा.-7 के बयानों में विसंगतियों को नजरअंदाज कर दिया है।

अ.सा.-1, अ.सा.-8 और अ.सा.-9 के बयानों में भी विसंगतियां हैं। अंसा०-1 के बयान के अनुसार, पूरी ट्रेप टीम को तीन समूहों में विभाजित किया गया था, जहां अ.सा.-8 और अ.सा.-9 दोनों ने कहा कि अ.सा.-9 ओम प्रकाश जो स्वतंत्र गवाह है, अ.सा.-1 और अन्य व्यक्तियों के साथ ट्रेप टीम के पहले समूह का हिस्सा था।

अ.सा.-9 जो स्वतंत्र गवाह है, उस संस्करण की पुष्टि नहीं करता है जिसे अ.सा.-1 द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अंसा०-9 ने कहा है कि उसने अ.सा.-2 और अपीलकर्ता के बीच नोटों का कोई आदान-प्रदान नहीं देखा था, न ही उसने उनके बीच कोई बातचीत सुनी थी। अंसा०-9 ने आगे कहा कि वह यह गवाही नहीं दे सकता कि गिरफ्तारी के स्थान पर अ.सा.-2, अ.सा.-1 और अपीलकर्ता के हाथ धोए गए थे। इसी तरह, असंगति अ.सा.-8 और अ.सा.-9 के बयान में भी है। अंसा०-8 ने कहा कि ट्रेप के समय स्वतंत्र गवाह पास में थे और कार्यवाही देख और सुन रहे थे, अ.सा.-9 ने हालांकि इनकार कर दिया है कि उसने अपीलकर्ता और अ.सा.-2 के बीच कोई आदान-प्रदान सुना या देखा है।

अ.सा.-1 ने अपने बयान में गवाही दी है कि गिरफ्तारी के स्थान पर फर्ड बरामदगी बनाया गया था और मौके पर सभी गवाहों के हस्ताक्षर लिए गए थे। फर्ड बरामदगी में यह भी नोट किया गया है कि गवाहों के हस्ताक्षर फर्ड पर लिए जा रहे हैं, हालांकि, अ.सा.-9 ने अपनी जिरह में गवाही दी है कि उसने थाने पर फर्ड बरामदगी पर हस्ताक्षर किए थे, न कि गिरफ्तारी के स्थान पर। अन्य अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान के बीच विरोधाभास और अ.सा.-9 के बीच जो बरामदगी के संबंध में स्वतंत्र गवाह है, बरामदगी को संदिग्ध बनाता है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2020 में दर्ज निष्कर्ष दोषी की जमानत याचिका में किए गए कथनों के आधार पर हैं।

(रिश्वत की मांग और इस तरह की रिश्वत का भुगतान)

11. अ०सा०-2 ने अपनी परीक्षा में गवाही दी है कि अपीलकर्ता ने चार लाभार्थियों, किशन (शिकायकर्ता), महादेव की पत्नी, तेजी की पत्नी और अवतार की पत्नी से 200/-रुपये की रिश्वत मांगी है, जिन्हें क्रमशः 10,000/-रुपये, 10,000/-रुपये, 20,000/-रुपये और 20,000/-रुपये का अनुदान प्राप्त होना था। अ०सा०-5 महादेव द्वारा भी यही गवाही दी गई है, हालांकि, केवल एक लाभार्थी यानी महादेव की पत्नी सुंदर ने गवाही दी है कि किशन (शिकायकर्ता) के आदेश पर अपीलकर्ता को 200 रुपये की राशि दी गई थी।

जहां तक तेजी की पत्नी और अवतार की पत्नी से 200 रुपये की रिश्वत मांगने का सवाल है, दोनों व्यक्तियों को मुकदमे में अभियोजन पक्ष द्वारा गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष द्वारा पूरे मुकदमे में ऐसे महत्वपूर्ण गवाहों को छुपाने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

नीरज दत्ता (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने संदर्भ का निर्णय लेते समय माना है कि रिश्वत की मांग और भुगतान के संबंध में मूलभूत तथ्यों को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया जाना आवश्यक है। इस तथ्य को साबित करने के लिए गवाहों की गवाही के लिए तीन अपवाद बनाए गए हैं, कि (ए) गवाहों की मृत्यु की स्थिति में (बी) गवाहों के मुकरने की स्थिति में और (सी) गवाह की अनुपलब्धता के कारण। अभियोजन पक्ष द्वारा दो महत्वपूर्ण

गवाहों को रोकने के लिए इनमें से कोई भी आधार नहीं लिया गया है, न तो कोई कारण बताया गया है और न ही विचारण न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि किन कारणों से इन दो महत्वपूर्ण अभियोजन गवाहों को रोक दिया गया है।

विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि एक ही तथ्य को साबित करने के लिए कई गवाहों की आवश्यकता नहीं है, गलत है क्योंकि चार अलग-अलग लाभार्थियों को 10,000/-, 10,000/-, 20,000/- और 20,000/-रुपये के अनुदान के भुगतान के चार लेनदेन से संबंधित 4 अलग-अलग मूलभूत तथ्य थे। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, अपीलकर्ता द्वारा चार अलग-अलग लाभार्थियों से 200 रुपये की मांग की गई थी, जिसे कथित तौर पर अपीलकर्ता को रिश्वत के रूप में भुगतान किया गया था। इस प्रकार, लाभार्थियों के अनुदान के भुगतान के चार लेनदेन और प्रत्येक 200/-रुपये की कथित मांग और रिश्वत का कथित भुगतान चार अलग-अलग कार्य हैं और एक ऐसा नहीं है जिसे उन चार लाभार्थियों से स्वतंत्र रूप से साबित करने की आवश्यकता थी जिनसे रिश्वत का कथित भुगतान किया गया था।

नीरज दत्ता के मामले (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

88. पूर्वोक्त चर्चा से जो उभरता है उसका सारांश निम्नानुसार है:

88.1. (ए) अभियोजन पक्ष द्वारा जारी किए गए तथ्य के रूप में एक लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति का प्रमाण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत आरोपी लोक सेवक के अपराध को स्थापित करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

88.2. (ख) आदेश में अभियुक्त के अपराध घर लाने के लिए, अभियोजन पक्ष तथ्य की बात के रूप में पहले अवैध परितोषण और बाद में स्वीकृति की मांग साबित करने के लिए है। इस तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य की प्रकृति में हो सकता है।

88.3. (ग) इसके अलावा, मुद्दे में तथ्य, अर्थात्, मांग का प्रमाण और अवैध परितोषण की स्वीकृति भी प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है।

88.4. (घ) मुद्दे में तथ्य को साबित करने के लिए, अर्थात्, लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति, निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(i) यदि लोक सेवक से कोई मांग किए बिना रिश्वत देने वाले द्वारा भुगतान करने का प्रस्ताव है और बाद वाला केवल प्रस्ताव स्वीकार करता है और अवैध परितोषण प्राप्त करता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार स्वीकृति का मामला है। ऐसे मामले

में, लोक सेवक द्वारा प्रदर्श मांग की आवश्यकता नहीं है।

(ii) दूसरी ओर, यदि लोक सेवक मांग करता है और रिश्वत देने वाला मांग को स्वीकार करता है और मांगे गए परितोषण को निविदा देता है जो बदले में लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह प्राप्ति का मामला है। प्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण की प्रदर्श मांग लोक सेवक से निकलती है। यह अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध है।

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) के दोनों मामलों में, क्रमशः रिश्वत देने वाले द्वारा पेशकश और लोक सेवक द्वारा मांग को अभियोजन पक्ष द्वारा एक तथ्य के रूप में साबित किया जाना है। दूसरे शब्दों में, बिना किसी और चीज के अवैध परितोषण को स्वीकार करना या प्राप्त करना इसे अधिनियम की धारा 7 या धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध नहीं बना देगा। इसलिए, अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत, अपराध को साबित करने के लिए, रिश्वत देने वाले की ओर से एक प्रस्ताव अवश्य दिया जाना चाहिए जिसे लोक सेवक द्वारा स्वीकार किया जाता है और इससे यह अपराध बन जाएगा। इसी तरह, लोक सेवक द्वारा रिश्वत देने वाले द्वारा स्वीकार किए जाने पर प्रदर्श मांग और बदले में भुगतान किया जाता है जो लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत प्राप्त करने का अपराध होगा।

88.5. (ई) मांग और स्वीकृति या एक अवैध परितोषण की प्राप्ति के संबंध में तथ्य की धारणा कानून की अदालत द्वारा एक अनुमान के माध्यम से ही की जा सकती है जब मूलभूत तथ्यों को प्रासंगिक मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साबित किया गया हो और उसके अभाव में नहीं। रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर, अदालत के पास यह विचार करते समय तथ्य की धारणा को बढ़ाने का विवेक है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मांग का तथ्य साबित हुआ है या नहीं। बेशक, तथ्य की एक धारणा अभियुक्त द्वारा खंडन के अधीन है और खंडन अनुमान के अभाव में खड़ा है।

88.6. (च) यदि शिकायतकर्ता "शत्रुतापूर्ण" हो जाता है, या मर गया है या परीक्षण के दौरान अपने साक्ष्य में जाने के लिए अनुपलब्ध है, तो अवैध परितोषण की मांग किसी अन्य गवाह के साक्ष्य को देकर साबित की जा सकती है जो फिर से मौखिक रूप से या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साक्ष्य दे सकता है या अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा मामले को साबित कर सकता है। मुकदमा समाप्त नहीं होता है और न ही इसके परिणामस्वरूप आरोपी लोक सेवक को बरी करने का आदेश होता है।

88.7. (छ) जहां तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, मुद्दे में तथ्यों के प्रमाण पर, धारा 20 अदालत को एक अनुमान लगाने के लिए अनिवार्य करती है कि अवैध परितोषण एक मकसद या इनाम के उद्देश्य से था जैसा कि उक्त धारा में उल्लेख किया गया है। उक्त अनुमान को अदालत द्वारा कानूनी अनुमान या कानून में अनुमान के रूप में उठाया जाना है।

बेशक, उक्त अनुमान भी खंडन के अधीन है। धारा 20 अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) पर लागू नहीं होती है।

88.8. (ज) हम स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के तहत कानून में अनुमान ऊपर उप-पैरा-88.5 (ई) में ऊपर संदर्भित तथ्य की धारणा से अलग है, क्योंकि प्रदर्श एक अनिवार्य अनुमान है जबकि बाद वाला प्रकृति में विवेकाधीन है।

आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2020 में दर्ज निष्कर्ष अनुमानों और कयासों पर आधारित है। आक्षेपित निर्णय के आंतरिक पृष्ठ 11 पर पैरा-30 में, विशेष न्यायाधीश ने एक निष्कर्ष दिया है कि भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में, यह बहुत अप्राकृतिक है, कुछ काम जो इतने दिनों से लंबित हैं, प्रत्येक अधिकारी स्तर पर एक दिन में किया जाता है। विशेष न्यायाधीश द्वारा दिया गया एक और निष्कर्ष यह है कि अपीलकर्ता द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट निर्णय के आंतरिक पृष्ठ संख्या 12 के पैरा-30 में मंजूरी रिपोर्ट के लिए इस्तेमाल की गई स्याही से अलग प्रतीत होती है। फिर, यह निष्कर्ष स्याही के बारे में किसी विशेषज्ञ की राय मांगे बिना दिया गया है।

बचाव पक्ष द्वारा दिए गए तर्कों पर कि वर्ष 2002 में भी 200/-रुपये की राशि रिश्वत के रूप में मांगी जाने वाली एक मामूली राशि थी और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज करते हुए अविश्वसनीय रूप से खारिज कर दिया कि इस तरह की राशि 3000/-रुपये की राशि का लगभग छह प्रतिशत

होगी यानी अंतिम किश्त। ऐसा प्रतीत होता है कि छह प्रतिशत का आंकड़ा अंतिम किस्त को ध्यान में रखते हुए गलत अनुमान पर निकाला गया है और 10,000/-, 20,000/-रुपये की कुल राशि की अनदेखी की गई है। इस प्रकार, एक धारणा देने की कोशिश की जाती है कि गलत अनुमान पर रिश्वत के रूप में बड़ी राशि की मांग की गई थी। यह भी केवल संदेह के आधार पर है और इस निष्कर्ष को केवल अनुमानों और कयासों के आधार पर कहा जा सकता है क्योंकि इस तरह के निष्कर्षों को दर्ज करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी। देवीलाल के मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"18. प्रस्तुत मामले में समय तथ्य की स्थिति के विश्लेषण पर, और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य की शृंखला पर विचार करते हुए और आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा देखा गया, यह साबित करने के लिए आरोप स्पष्ट रूप से अधूरा और असंगत है कि अपीलकर्ताओं को संदेह के किसी भी निशान के बिना उसके आधार पर दोषी ठहराने की अनुमति दी जाए। हालांकि रिकॉर्ड पर सामग्री उनके प्रति कुछ संदेह रखती है, लेकिन अभियोजन पक्ष अपने मामले को "सच हो सकता है" के दायरे से "सच होना चाहिए" तक बढ़ाने में विफल रहा है जैसा कि आपराधिक आरोप में सजा के लिए कानून में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह कहना ठीक है कि एक आपराधिक मुकदमे में, संदेह, चाहे वह कितना भी गंभीर हो, सबूत का विकल्प नहीं हो सकता है।

ट्रैप टीम द्वारा प्रक्रिया का पालन करने में विफलता:

12. अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में कहा है कि ट्रैप टीम की स्थापना करते समय, शिकायतकर्ता अ.सा.-2 द्वारा लाए गए नोटों पर पाउडर लगाया गया था, फिर अ.सा.-1 के हाथों को धोया गया था और धोवन को बोतल सं-1 के रूप में लेबल की गई बोतल में एकत्र किया गया था। शिकायतकर्ता अ०सा०-2 को नोट सौंपे जाने के बाद, उसके हाथ भी धोए गए और धोवन को बोतल संख्या-2 के रूप में लेबल की गई बोतल में संग्रहीत किया गया। शिकायतकर्ता अ०सा०-2 की शर्ट भी धोई गई थी क्योंकि पैसे बाईं शर्ट की जेब में रखे गए थे और शर्ट के धोवन को बोतल संख्या-3 के रूप में लेबल किया गया था। शिकायतकर्ता के धोवन को कथित तौर पर बोतल संख्या-4 के रूप में लेबल की गई बोतल में रखा गया था। अपीलकर्ता/दोषी के हाथों को कथित तौर पर गिरफ्तारी के स्थान पर धोया गया था और एक तरल गुलाबी हो गया था, अपीलकर्ता/दोषी के हाथों की धोवन वाली बोतल को बोतल संख्या-5 के रूप में लेबल किया गया था। अ०सा०-1 के हाथों को कथित तौर पर गिरफ्तारी के स्थान पर फिर से धोया गया था और धोवन को बोतल संख्या-6 के रूप में लेबल की गई बोतल में संग्रहीत किया गया था। हालांकि, जब इन बोतलों को प्रति परीक्षण के समय पेश किया गया, तो बोतल संख्या-4, 5 और 6 जिसमें गिरफ्तारी के समय एकत्र किए गए धोवन थे, खाली थे। शेष बोतल में धोवन बरकरार है और केवल वही बोतलें खाली हैं जिनमें कथित तौर पर गिरफ्तारी के स्थान

पर एकत्र की गई धोवन थी। धोवन की खाली बोतलें जो अपीलकर्ता की गिरफ्तारी से संबंधित हैं, अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता पर संदेह पैदा करती हैं। बोतलों पर अपीलकर्ता के कोई हस्ताक्षर नहीं हैं। अ०सा०-2 द्वारा एकत्र किए गए और लाए गए करेंसी नोट, जिस पर पाउडर लगाया गया था और अपीलकर्ता/दोषी को सौंप दिया गया था, गिरफ्तारी के समय अ.सा.-1 द्वारा कथित तौर पर लिफाफे में संग्रहीत किया गया था। हालांकि, स्वयं अ०सा०-1 के बयान के अनुसार, लिफाफे को सील नहीं किया गया था और न ही उस पर अपीलकर्ता के हस्ताक्षर लिए गए हैं। यह फिर से अभियोजन पक्ष के मामले को बनाता है, जहां तक अपीलकर्ता से बरामद मुद्रा नोट संदिग्ध हैं।

फेनोल्फथैलिन पाउडर जिसे कथित तौर पर नोटों पर लगाया गया था, को भी प्रक्रिया के अनुसार अपीलकर्ता के हस्ताक्षर के साथ एक सीलबंद लिफाफे में संग्रहीत नहीं किया गया है, साथ ही अ.सा.-1 के बयान के साथ जहां उन्होंने कहा कि गिरफ्तारी के स्थान पर फर्द बरामदगी पर हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, बल्कि अ.सा.-9 ने कहा कि उन्होंने थाना में हस्ताक्षर किए थे जो फिर से बरामदगी को संदिग्ध बनाता है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-1 द्वारा तीन ट्रैप टीमों का गठन किया गया था और स्वतंत्र गवाह बाबू राम पाल जो दूसरी ट्रैप टीम का हिस्सा थे, को भी रोक दिया गया और अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त महत्वपूर्ण गवाह को रोकने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

इस मामले में अभियोजन पक्ष ने दो लाभार्थियों और दूसरे ट्रैप टीम के स्वतंत्र गवाह बाबू राम पाल को रोक लिया है। उसने ग्राम प्रधान को पेश नहीं किया है, जिसकी फोटोस्टेट दुकान पर रिश्वत मांगी गई थी। यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि इनमें से कोई भी गवाह मुकर गया है, या मर गया है या अनुपलब्ध है। अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण गवाहों को छुपाने का कोई कारण नहीं बताया गया है। स्वतंत्र गवाह की गैर-पेशी का मूल्यांकन साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत न्यायालय में किया जाना है जो निम्नानुसार प्रदान करता है: -

"114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकता है- न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व को मान सकता है जो उसे लगता है कि होने की संभावना है, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानव आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम के संबंध में उदाहरण न्यायालय मान सकता है:

(ए) एक आदमी जो चोरी के तुरंत बाद चोरी के सामान के कब्जे में है, या तो चोर है या माल चोरी होने के बारे में जानते हुए प्राप्त किया है, जब तक कि वह अपने कब्जे का हिसाब नहीं दे सकता;

(बी) कि एक साथी भरोसे के योग्य नहीं है, जब तक कि वह भौतिक विवरणों में पुष्टि नहीं करता है;

(ग) विनिमय का एक बिल, स्वीकार या समर्थित, अच्छे विचार के लिए स्वीकार या समर्थन किया गया था;

अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र गवाहों को पेश न करने से अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

(घ) वस्तुओं की कोई वस्तु या अवस्था जो उस अवधि से कम समय के भीतर अस्तित्व में दिखाई गई है, जिसके भीतर ऐसी चीजें या चीजों की स्थिति आमतौर पर अस्तित्व में नहीं रहती है, अभी भी अस्तित्व में है;

14. इस प्रकार, ऊपर की गई चर्चा से, यह स्पष्ट है कि बरामदगी की साइट या घटनास्थल के बारे में अ.सा.-1 और अ.सा.-2 के बयानों के बीच गंभीर विसंगतियां हैं। अ०सा०-5 और अ०सा०-7 के पति और पत्नी के साक्ष्य, यानी एक लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति भी मूलभूत तथ्यों को साबित करने के लिए विरोधाभासी हैं। अ.सा.-1 और अ.सा.-2 के असंगत बयानों और अ.सा.-1, अ.सा.-8 और अ.सा.-9 के असंगत बयानों को देखते हुए अभियोजन पक्ष द्वारा चार लाभार्थियों से अवैध परितोषण की मांग को साबित नहीं किया जा सका। अ०सा०-1 और अ.सा.-8 और अ०सा०-9 के बीच विरोधाभासी बयान को देखते हुए फर्द बरामदगी भी संदिग्ध हो जाता है। चार लाभार्थियों में से दो ने मुकदमे में गवाही नहीं दी है, इस प्रकार, रिश्वत की मांग और इस तरह की रिश्वत के भुगतान का मूलभूत तथ्य साबित नहीं हुआ है, न ही अपवाद जो नीरज दत्ता (उपरोक्त) के फैसले में तथ्य को साबित करने के लिए ऐसे गवाहों के बयान के लिए तैयार किया गया है, इस मामले में लागू होता है और अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण गवाहों को रोकने के लिए कोई कारण नहीं बताया गया है।

(ई) न्यायिक और आधिकारिक कृत्यों को नियमित रूप से निष्पादित किया गया है;

(च) कि विशेष मामलों में कार्य की सामान्य प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है;

(छ) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत नहीं किया जाता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है;

(ज) यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इंकार करता है जिसका उत्तर देने के लिए वह विधि द्वारा बाध्य नहीं है तो यदि उत्तर दिया गया है तो वह उसके प्रतिकूल होगा;

(i) कि जब दायित्व बनाने वाला कोई दस्तावेज बाध्यताधारी के हाथों में होता है, तो दायित्व का निर्वहन किया जाता है।

13. इसलिए, स्वतंत्र गवाहों का गैर-उत्पादन केवल इस धारणा को जन्म देता है कि यदि उन्हें पेश किया गया होता, तो उनके साक्ष्य अपीलकर्ता के अनुकूल होते। इसलिए,

बाबू राम पाल दूसरा स्वतंत्र गवाह है। वह दूसरी ट्रेप टीम का हिस्सा था, हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा अदालत में स्वतंत्र गवाह के रूप में उससे पूछताछ नहीं की गई है। वह



गिरफ्तारी के समय हुई घटनाओं की श्रृंखला के रूप में गवाही देने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण गवाह था। विचारण न्यायालय के समक्ष बाबू राम पाल से पूछताछ करने में विफलता भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (जी) के मददेनजर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया, इस तथ्य के साथ कि ट्रेप टीम द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

गवाहों यानी अ.सा.-1 और अ.सा.-2 की गवाही के मददेनजर बरामदगी की जगह यानी घटना का स्थान विवादित है। अभियोजन पक्ष द्वारा रिश्वत की मांग या स्वीकृति साबित नहीं हुई है और अभियोजन पक्ष के गवाहों विशेष रूप से अ.सा.-1, अ.सा.-8 और अ.सा.-9 के विरोधाभासी बयान बरामदगी को संदिग्ध बनाते हैं। इस प्रकार, मैं चुनौती के तहत फैसले को बरकरार रखने के लिए इच्छुक नहीं हूँ।

15. अपील की अनुमति दी जाती है। विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, न्यायालय संख्या-5, लखनऊ द्वारा पारित आपराधिक मामला संख्या 58/2003 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम समीर सिंह) में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2020 तथा दोषसिद्धि के आदेश दिनांक 24.01.2020 को अपास्त किया जाता है। अपीलकर्ता समीर सिंह को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 7, 13(डी) के तहत दंडनीय अपराधों से बरी किया जाता है। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और ज़ामिनान को उन्मोचित किया जाता है।

इस फैसले की एक प्रति निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ संबंधित जिला न्यायालय को भेजी जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 606

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी

आपराधिक अपील संख्या 234 वर्ष 2023

छोटाई एवं अन्य

...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिपक्षी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री सती शंकर त्रिपाठी, श्री ए.के. मिश्रा, श्री मोहम्मद हैदर

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147, 302 और 306-वैकल्पिक आरोप-नए सिरे से विचारण-वर्तमान मामले में आरोपों को 12.10.2022 को विरचित किया गया है, उन साक्षियों की परिसाक्ष्य उस दिनांक से बहुत पहले खत्म हो गई थी- इतना ही नहीं, अभियुक्त व्यक्ति ने धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपना अभिकथन दर्ज करवाया है- यह शायद ही प्रदर्शित करने

की आवश्यकता है, कि धारा 216 और 217 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य हैं, क्योंकि वे न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता को पूरा करते हैं बल्कि महत्वपूर्ण अधिकार की गारंटी देते हैं जो अभियुक्त व्यक्तियों को पूरा अवसर देकर उचित रूप से अपना बचाव करने के लिए दिया जाता है- प्रक्रिया में साक्षियों की प्रति-परीक्षण इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण पहलू है- किसी भी साक्षी की विश्वसनीयता तभी स्थापित हो सकती है जब अभियुक्त व्यक्ति द्वारा उक्त साक्षी को प्रति-परीक्षण के लिए रखा जाए- विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए किसी भी प्रकार की छूट या कमी अभियुक्त अपीलार्थियों के इस मूल्यवान अधिकार को प्रतिस्थापित नहीं करेंगे- वर्तमान मामले में, अब तक कोई प्रति-परीक्षण नहीं हुई है क्योंकि धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत वैकल्पिक आरोप कभी भी नहीं किया गया था - इस तरह के आरोप का संयोजन और / या प्रतिस्थापन अपीलार्थियों के लिए पूर्वाग्रह पैदा करेगा - इस तरह के आरोप को मूल आरोप के रूप में माना जाना चाहिए - उक्त पूर्वाग्रह का ध्यान रखने के लिए, अभियोजन पक्ष पर साक्षियों को वापस बुलाने, धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत नए विरचित किए गए आरोप के संदर्भ में उनकी जांच करने और अभियुक्त व्यक्तियों को उन साक्षियों से प्रति-परीक्षण करने की अनुमति देने का दायित्व था - ऐसा कुछ भी कभी नहीं हुआ है - इस प्रकार धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत कोई भी दोषसिद्धि नहीं हो सकती थी, निर्णय पारित करते समय विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित

किया जा सकता था, इस प्रकार इसे रद्द किया जा सकता है। (पैरा 1 से 38)

बी. दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध आपराधिक अपील की सुनवाई करने वाली अपीलीय न्यायालय को संहिता की धारा 386 के अंतर्गत अभियुक्त के विरुद्ध पुनः विचारण का आदेश देने का अधिकार है। यह धारा 386(बी) की मूल भाषा से स्पष्ट है। यद्यपि ऐसी शक्ति विद्यमान है, फिर भी इसका प्रयोग नियमित रूप से नहीं किया जाना चाहिए। 'नए सिरे से विचारण' या पुनः विचारण दूसरा विचारण नहीं है; यह उसी विचारण और उसी अभियोजन का निरन्तरता है। पुनः विचारण के लिए मार्गदर्शक कारक सदैव न्याय की मांग ही होनी चाहिए। स्पष्टतः, संहिता की धारा 386(बी) के अंतर्गत पुनः विचारण की शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसके लिए कोई निश्चित सूत्र नहीं बनाया जा सकता, लेकिन अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि अभियुक्त के निष्पक्ष विचारण और उचित प्रक्रिया के अधिकार की रक्षा करते हुए, कानून की सुरक्षा चाहने वाले लोग न्याय व्यवस्था से निराश न हों और समाज के हितों की पूरी तरह से अनदेखी न हो। (पैरा 28 से 33)

सी. किसी आपराधिक मामले की पुनः विचारण का आदेश असाधारण मामलों में दिया जाता है, और तब तक नहीं जब तक अपीलीय न्यायालय इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि कार्यवाही का विचारण करने वाले न्यायालय को इसके विचारण करने का

क्षेत्राधिकार नहीं था या यह कि विचारण गंभीर अवैधताओं या अनियमितताओं के कारण या कार्यवाही की प्रकृति के बारे में गलत धारणा के कारण दूषित हो गया था और इस कारण से वास्तव में कोई वास्तविक विचारण नहीं हुआ था या अभियोजक या अभियुक्त को, उन कारणों से जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था, आरोप के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने या पेश करने से रोका गया था, और न्याय के हित में अपीलीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह उचित समझता है कि अभियुक्त पर पुनः विचारण चलाया जाए। पुनः विचारण का आदेश अभिलेख से पूर्ववर्ती कार्यवाही को मिटा देता है, तथा अभियुक्त व्यक्ति को एक अन्य विचारण के लिए प्रस्तुत करता है, जो अभियोजक को पूर्ववर्ती विचारण में प्रकट की गई कमियों को सुधारने का अवसर प्रदान करता है, तथा सामान्यतः इसका समर्थन नहीं किया जाएगा, जब यह केवल अभियोजक को साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम बनाने के लिए किया जाता है, जिसे वह प्रस्तुत कर सकता था, परन्तु मामले की प्रकृति की अपर्याप्त समझ के कारण या अन्य कारणों से प्रस्तुत नहीं कर पाया। (पैरा 31)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. अजय कुमार घोषाल एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2017)12 एससीसी 699

2. आर. राचैया बनाम गृह सचिव, बेंगलोर(2017)3एससीसी(क्रिमिनल)710=2016 12एससीसी172

3. शमनसाहेब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य (2001) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 358

4. उखा कोल्हे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1963) एआईआर एससी 1531

5. मध्य प्रदेश राज्य बनाम भूराजी (2001) एससीसी (क्रिमिनल) 1373

6. जाहिरा हबीबुल्लाह एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) एससीसी (क्रिमिनल) 999

7. मोहम्मद हुसैन बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य (2012) 3 एससीसी (क्रिमिनल) 1139

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

और

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी द्वारा पारित)

1. श्री ए.के. मिश्रा, श्री सती शंकर त्रिपाठी, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तागण और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का कहना है कि उन्होंने 30.01.2023 को प्रति शपथ पत्र दायर किया है।

3. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने राज्य द्वारा दायर प्रति शपथ पत्र पर कोई भी प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर करने से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया और न्यायालय से मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने का अनुरोध किया।

4. यह अपील अपीलकर्ताओं द्वारा प्राथमिकता दी गयी, अर्थात्, (i) पंचू के पुत्र छोटई, (ii) राजेंद्र प्रसाद के पुत्र योगेश कुमार, (iii) पंचू के पुत्र शिवधारी पासी, (iv) पंचू के पुत्र बुधनी, और (v) पंचू के पुत्र राजेंद्र प्रसाद, सभी निवासी ग्राम अकोढ़ा, थाना ऊंझ, जिला भदोही, जो अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), कोर्ट नंबर II, भदोही, ज्ञानपुर द्वारा एस.टी. 2017 की संख्या 118 (राज्य बनाम छोटई और अन्य) 2016 की अपराध संख्या 43 की धारा 302 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-ऊंझ, जिला-भदोही (ज्ञानपुर) में पारित फैसले और आदेश के अनुसार 19.11.2022 से जेल में बंद हैं, आदेश के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराते हुए और धारा 302 आईपीसी के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। कारावास और रुपये का जुर्माना 25,000/- प्रत्येक और डिफॉल्ट के मामले में, अपीलकर्ताओं को एक वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा दी गई।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने विशुद्ध रूप से कानून का प्रश्न उठाया है वह आक्षेपित निर्णय की वैधता और प्रामाणिकता और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर पारित आदेश को चुनौती दिया

है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए, कि अर्जित विचारण न्यायाधीश ने कानून और प्रक्रिया के स्थापित सिद्धांतों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया है, जिससे अपीलकर्ताओं को न्याय न मिलने का आरोप है। विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया न केवल भ्रामक है और इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत कई कमी शामिल हैं, जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रमुख सिद्धांतों के खिलाफ है।

6. आक्षेपित निर्णय की वैधता और वैधता की जांच करने से पहले, इसमें शामिल विवाद को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए मुद्दे के तथ्यात्मक पहलू पर विहंगम दृष्टि डालना अनिवार्य है

#### **केस का तथ्यात्मक मैटिक्स**

7. उपरोक्त परीक्षण का मामला पुलिस द्वारा अपराध संख्या 43 सन् 2016 धारा 306 आईपीसी, थाना ऊंझ, जनपद भदोही में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद शुरू हुआ। ।

8. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुति यह है कि, 20.03.2016 को एक बिहारी पासी पुत्र देव सरन पासी निवासी पपुलिस थाना ऊंझ, भदोही, अपने भाई लल्लू के साथ रात के लगभग 11.00 बजे अपने खेत में सिंचाई करने जा रहे थे, अचानक आम के पेड़ के नीचे उन्हें कुछ अजीब सी आवाज सुनाई दी टॉर्च की रोशनी में उन्होंने देखा कि उनका बेटा जय प्रकाश की हत्या कर

उसके शव को पेड़ पर लटकाने का प्रयास कर रहा था। इसमें योगेश कुमार, राजेंद्र प्रसाद, बुधनी, छोटाई, शिवधारी सभी बेटे पांचू शामिल थे। उनसे पूछताछ की गई तो उन्होंने बताया कि मृतक उनकी बेटी माला से प्यार करता था, इसीलिए, उन्होंने उसे खत्म कर दिया है। घटना के बाद सभी लोग मौके से फरार हो गए। सूचना देने वाले और उसके भाई ने मौके पर जाकर देखा कि जय प्रकाश की मृत्यु हो गई थी और उसका शव पेड़ से नीचे उतरा हुआ था।

9. इस लिखित तहरीर पर दिनांक 21.03.2016 को मुकदमा अपराध सं. 43/2016, आईपीसी की धारा 147 और 302 उपरोक्त नामित अभियुक्त अपीलकर्ताओं के खिलाफ के तहत दर्ज किया गया था, लेकिन पुलिस ने गहन जांच करने के बाद आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आईपीसी की धारा 306 में धारा 173 (2) सीआरपीसी के तहत एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

10. 07.07.2017 को, मामले की सुनवाई के बाद विद्वान निचली न्यायालय ने केवल धारा 306 आईपीसी के तहत आरोप तय किए। इसके बाद 12.10.2022 को मुकदमे में लगभग पांच साल से अधिक की अत्यधिक देरी हुई, अभियोजन पक्ष जाग गया और आरोप में संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया। नामित आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आईपीसी की धारा 302 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तय किया गया था।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि संपूर्ण मुकदमा धारा 306

आईपीसी को ध्यान में रखते हुए आयोजित किया गया था, लेकिन मुकदमे के अंतिम अंत में, धारा 302 आईपीसी को विभिन्न धाराओं के बीच शामिल किया गया था। आश्चर्य की बात है कि अपीलकर्ताओं को अंततः धारा 216 के तहत अनिवार्य प्रावधान का पालन किए बिना दोषी ठहराया गया था, जिससे अपीलकर्ताओं को न्याय का गंभीर नुकसान हो रहा है।

11. आक्षेपित निर्णय से, आठ गवाह और ग्यारह दस्तावेज पेश किए गए, जिन्हें अभियोजन पक्ष के मामले को स्थापित करने के लिए प्रदर्शित किया गया था। फैसले से, यह आग्रह किया गया कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने 'सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने' में मृतक को मार डाला और आत्महत्या का रंग देने के इरादे से उसके शव को पेड़ पर लटका दिया। इस घटना को सूचक बिहारी पासी और उसके भाई लल्लू ने देखा था, जिन्होंने प्रत्यक्ष गवाही दी थी कि मृतक छोटाई की बेटी माला के साथ नाजुक रिश्ता रखता था और अपने परिवार की गरिमा और सम्मान को बचाने के लिए, सभी आरोपी अपीलकर्ताओं ने "ऑनर किलिंग" के नाम पर मृतक को मिटा दिया।

12. पोस्टमार्टम डॉ. अभय सिंह द्वारा किया गया था, लेकिन परीक्षण के दौरान उनकी मृत्यु के कारण, पोस्टमार्टम रिपोर्ट को पीडब्लू-5 उदय नारायण वर्मा, फार्मासिस्ट द्वारा साबित किया गया था, जिन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट, इसकी सामग्री और स्वर्गीय डॉ. अभय सिंह के हस्ताक्षर की पहचान की थी। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, "ऊपरी गर्दन के चारों ओर, पूरी गर्दन के अंदर और बाथी और मास्टॉयड

प्रक्रिया तक और दाहिनी ओर गर्दन के पिछले हिस्से से मध्य जबड़े तक एक संयुक्ताक्षर का निशान है"।

हालाँकि, डॉक्टर ने मृतक की मृत्यु का तात्कालिक कारण पूर्व-मृत्यु (फॉसी) के कारण दम घुटना बताया है।

13. तथ्य यह है कि आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और मूल आरोप 07.07.2017 को तय किया गया था। पूरी सुनवाई भी सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करने के चरण तक धारा 306 आईपीसी को ध्यान में रखते हुए की गई थी, लेकिन अचानक, अभियोजन पक्ष द्वारा एक आवेदन दायर किया गया, जिसके परिणामस्वरूप, धारा 302 आईपीसी को वैकल्पिक आरोप के रूप में जोड़ा गया, जो अभियुक्त अपीलकर्ताओं के लिए आश्चर्य की बात है।

14. हालाँकि, मामले का केस इतिहास काफी लंबा है, जिस पहलू पर हम ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि केवल उस पहलू पर, यह अपील सफल होती है, अनावश्यक तथ्यात्मक विवरणों के साथ निर्णय पर बोझ डालना आवश्यक नहीं है। इसलिए, हम उन तथ्यों को नजरअंदाज कर देंगे, जो हमारे उद्देश्य के लिए अप्रासंगिक हैं और ऐसे तथ्यों का रिकॉर्ड लेंगे जो इस मुद्दे के लिए प्रासंगिक होंगे, जिन पर हम ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं।

#### मुद्दे का कानूनी पहलू

15. (I) वर्तमान मामले में निर्धारण के लिए कानून का मूल और विवादास्पद प्रश्न यह है कि यदि परिवर्तित या जोड़े गए आरोपों से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो बदले हुए या जोड़े गए आरोपों को मूल आरोप बताकर मुकदमे को आगे बढ़ाना होगा। यदि कोई नया आरोप लगाया जाता है या बदला जाता है, तो अपीलकर्ताओं पर इस तरह के प्रत्याशित पूर्वाग्रह से निपटने के लिए नए मुकदमे पर जोर दिया जाता है, यह अभियोजन पक्ष पर निर्भर है कि वह गवाहों को वापस बुलाए, आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप के संदर्भ में उनकी जांच करे और आरोपी व्यक्ति को उन गवाहों से जिरह करने की अनुमति दें।

(II) यदि अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले नए आरोप द्वारा आरोपों को बदल दिया जाता है और अभियुक्त को जिरह के अवसर से वंचित करते हुए नए सिरे से मुकदमा नहीं चलाया जाता है, तो दोषसिद्धि सहित पूरी कार्यवाही खराब हो जाएगी।

(III) आईपीसी की धारा 306 और 302 के तहत आरोप एक साथ कायम नहीं रह सकते।

16. अभियोजन पक्ष ने आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने को ध्यान में रखते हुए और जब मामला अंतिम बहस के लिए तैयार था, धारा 313 सीआरपीसी के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं के बयान दर्ज करने के बाद, अपने साक्ष्य रखे। आवेदन 86 ख अभियोजन पक्ष द्वारा दायर किया गया था और इसकी

आपति 89 ख बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई थी। दिनांक 01.10.2022 को विद्वान सत्र न्यायाधीश, एससी/एसटी एक्ट, कोर्ट नं.2 भदोही जानपुर एस.टी. क्रमांक 118/2017 (राज्य बनाम छोटाई एवं अन्य) धारा 306 आईपीसी के तहत दिनांक 01.10.2022 को धारा 302 आईपीसी में आरोप जोड़ने/परिवर्तित करने का निर्देश देते हुए आवेदन 86 खा की अनुमति दी है। न्यायालय को उपरोक्त अंतरिम आदेश 01.10.2022 को देखने का अवसर मिला है जिसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 ने अपने बयान में और अपनी जिरह में यह भी नहीं बताया कि मृतक जय प्रकाश ने आत्महत्या की थी। हालाँकि, जाँच अधिकारी ने मुख्य रूप से डॉक्टर की राय पर भरोसा करते हुए कि मौत का कारण मृत्यु पूर्व फांसी के परिणामस्वरूप दम घुटना है और आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया है।

अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्तर पर उक्त आरोप पत्र पर विरोध नहीं किया है और आरोपी अपीलकर्ताओं को आईपीसी की धारा 306 के तहत माननीय उच्च न्यायालय से जमानत मिल गई है। इस स्तर पर भी, अभियोजन पक्ष की ओर से कोई आपति या विरोध नहीं किया गया कि यह धारा 306 आईपीसी का मामला नहीं बल्कि धारा 302 आईपीसी का मामला है। इतना ही नहीं, जैसा कि ऊपर बताया गया है, 07.07.2017 को आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोप तय किए गए और अपीलकर्ताओं को समझाया गया। वस्तुतः, पूरे मुकदमे के दौरान

अभियोजन पक्ष ने चुप्पी साधे रखी और केवल आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप साबित करने में भाग लिया।

दिनांक 01.10.2022 के आदेश में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि, मामले का रिकॉर्ड मामले की योग्यता पर अंतिम बहस के लिए तय किया गया है और अंत में उपरोक्त आवेदन 86 ख को आरोप में बदलाव के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा स्थानांतरित किया गया है और आदेश दिनांक 01.10.2022 के तहत आवेदन संख्या 86 ख को आईपीसी की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप तय करने के निर्देश के साथ अनुमति दी गई है। परिणामस्वरूप, 12.10.2022 को विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी एक्ट, कोर्ट संख्या 2 भदोही जानपुर ने 20.03.2016 को हुई घटना के लिए धारा 302 आईपीसी के तहत आरोप तय किया है।

17. दिलचस्प बात यह है कि उसी दिन यानी 12.10.2022 को आईपीसी की धारा 302 का वैकल्पिक आरोप तय करते हुए एक और आदेश पारित किया गया और तदनुसार, वैसा ही किया गया। उपरोक्त आदेश पारित करते समय, विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों की जांच की गई है, यहां तक कि धारा 313 सीआरपीसी के तहत बयान भी दर्ज किए गए थे और मामला अंतिम बहस के लिए तय किया गया है, यदि आरोपी अपीलकर्ता जिरह करना चाहते हैं नये बनाये गये आरोप के गवाह, वे ऐसा कर सकते हैं।

18. विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 2, भदोही, जानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.10.2022 का प्रासंगिक उद्धरण नीचे उद्धृत किया गया है।

**"जैसा कि अभियोजन की ओर समस्त साक्षियों को परीक्षित कराया जा चुका है और अभियुक्तगण का बयान अंतर्गत धारा 313 द० प० सं० अंकित हो चुका है। पत्रावली बहस में चल रही है। अभियुक्तगण यदि किसी साक्षी से नवीन वैकल्पिक आरोप के सन्दर्भ में जिरह करना चाहे तो उक्त हेतु स्वतंत्र है। पत्रावली वास्ते बहस हेतु दिनांक 19.10.2022 को पेश हो।"**

उपरोक्त उद्धरण को पढ़ने से, विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि यह सही प्रतीत होता है, रियायत की कुछ निश्चित मात्रा में औपचारिकता पूरी करने के लिए विद्वान विचारण जज द्वारा दिया गया जिरह का कुछ गवाहों से इस संबंध में, यह दावा किया गया है कि प्रावधान धारा 216 & 217 सी.आर.पी.सी का ये केवल औपचारिकता नहीं है बल्कि कानून का आदेश है, जिसका अक्षरशः पालन करना होता है

19. इस मोड़ पर, स्पष्ट करना अनिवार्य है धारा 216 और 217 से बाहर सीआर.पी.सी., जो यहां त्वरित संदर्भ के लिए नीचे दिए गए हैं:

"216. न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता है-

(1) कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या वृद्धि कर सकता है।

(2) ऐसे प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन को पढ़ा जाएगा और अभियुक्त को समझाया जाएगा।

(3) यदि किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि मुकदमे के साथ तुरंत आगे बढ़ना, न्यायालय की राय में, अपने बचाव में अभियुक्त या मामले के संचालन में अभियोजक पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय अपने विवेक से, ऐसा परिवर्तन या परिवर्धन किया गया है, तो मुकदमे को ऐसे आगे बढ़ाएं जैसे कि बदला हुआ या जोड़ा गया आरोप मूल आरोप था।

(4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि मुकदमे के साथ तुरंत आगे बढ़ने से, न्यायालय की राय में, अभियुक्त या अभियोजक पर पूर्वोक्त रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, तो न्यायालय या तो एक नए मुकदमे का निर्देश दे सकता है या मुकदमे को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकता है जो आवश्यक हो।

(5) यदि परिवर्तित या जोड़े गए आरोप में बताया गया अपराध एक ऐसा अपराध है जिसके अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक है, तो ऐसी मंजूरी प्राप्त होने तक मामले को आगे नहीं बढ़ाया जाएगा, जब तक कि उन्हीं तथ्यों पर अभियोजन के लिए मंजूरी पहले ही प्राप्त नहीं कर ली गई हो, जिन



तथ्यों पर परिवर्तन किया गया है, या अतिरिक्त शुल्क स्थापित किया गया है।

\*\*\*\*\*

\*\*\*\*\*

217. आरोप बदलने पर गवाहों को वापस बुलाना। जब भी मुकदमा शुरू होने के बाद न्यायालय द्वारा कोई आरोप बदला या जोड़ा जाता है, तो अभियोजक और अभियुक्त को अनुमति दी जाएगी-

(ए) किसी भी ऐसे गवाह को, जिसकी जांच की गई हो, वापस बुलाना या फिर से बुलाना और ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के संदर्भ में जांच करना, जब तक कि न्यायालय, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, यह नहीं मानती कि अभियोजक या अभियुक्त, जैसा भी मामला हो, ऐसा करना चाहता है। परेशान करने या देरी करने या न्याय के उद्देश्य को विफल करने के उद्देश्य से ऐसे गवाह को वापस बुलाना या दोबारा जांच करना;

(बी) साथ ही किसी और गवाह को बुलाने के लिए जिसे न्यायालय महत्वहीन समझे"

20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि मुकदमे के अंतिम अंत में विद्वान मुकदमे ने बचाव पक्ष की आपति को खारिज कर दिया है आईपीसी की धारा 302 के तहत वैकल्पिक शुल्क से दोषी ठहराया है। इस समय अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों से पहले ही पूछताछ की जा चुकी है, सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दिए गए हैं। दर्ज किया गया और मामले को अंतिम प्रस्तुति के लिए तय किया गया। यानी यह प्रस्तुत किया गया

है कि अंततः उपरोक्त सभी पांच आरोपियों को कानून के उपरोक्त अनिवार्य आदेश का पालन किए बिना वैकल्पिक आरोप धारा 302 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया था।

21. अपीलकर्ताओं ने उक्त दोषसिद्धि आदेश के खिलाफ यह अपील दायर की, इस आशय की विशिष्ट दलील देते हुए कि उन्हें आईपीसी की धारा 302 के तहत कोई दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। इस संबंध में, यह दलील दी गई है कि आईपीसी की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप गलत तरीके से तय किया गया था और अपीलकर्ताओं को धारा 216 और 217 सी.आर.पी. सी. के तहत प्रक्रिया का पालन किए बिना दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आर. रथैया बनाम गृह सचिव, बंगलुरु के मामले में अपने फैसले में (2017) 3एससीसी (CrI.) 710=201612 एससीसी 172 में कानून के सटीक प्रस्ताव पर विचार करते हुए राय दी है:-

"धारा 216 को पढ़ने से पता चलता है कि हालांकि किसी भी न्यायालय को फैसला सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप में बदलाव करने या जोड़ने की अनुमति है, लेकिन उस आरोपी व्यक्ति के हित को ध्यान में रखते हुए, जिस पर अतिरिक्त आरोप या बदलाव का आरोप लगाया गया है, कुछ सुरक्षा उपाय किए गए हैं। अतिरिक्त शुल्क, विशेष रूप से उप-अनुभागों के अंतर्गत भी प्रदान किए

जाते हैं (3) और संहिता की धारा 216 के 4 उपधारा (3), बिना किसी अनिश्चित अवधि के, यह निर्धारित करता है कि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन के साथ यदि अभियुक्त को अपने बचाव में या अभियोजक को मामले के संचालन में कोई पूर्वाग्रह होने वाला है, तो न्यायालय को मुकदमे को आगे बढ़ाना होगा जैसे कि उसने बदला या जोड़ा हो। अतिरिक्त या वैकल्पिक शुल्क को मूल शुल्क बताकर मूल शुल्क। स्पष्ट संदेश यह है कि इसे पहली बार लगाए गए आरोप के रूप में माना जाना चाहिए और परीक्षण उसी चरण से आगे बढ़ना चाहिए। यह स्थिति संहिता की धारा 216 की उप-धारा (4) को पढ़ने से और भी स्पष्ट हो जाती है, जो न्यायालय को ऐसी स्थिति में, या तो नए मुकदमे का निर्देश देने या मुकदमे को आवश्यक अवधि के लिए स्थगित करने का अधिकार देती है। यदि आरोप पूरी तरह से अलग और विशिष्ट है तो नए परीक्षण पर जोर दिया जाता है।"

भले ही आरोप एक ही प्रजाति का हो, मुकदमे को स्थगित करने का प्रावधान आरोपी को खुद को तैयार करने और बचाव के लिए पर्याप्त अवसर देने के लिए किया गया है। इसी प्रक्रिया में, संहिता की धारा 217 यह प्रावधान करती है कि जब भी मुकदमा शुरू होने के बाद न्यायालय द्वारा कोई आरोप बदला जाता है या जोड़ा जाता है, तो अभियोजक के साथ-साथ अभियुक्त को भी किसी भी गवाह को वापस

बुलाने या फिर से बुलाने या उसकी जांच करने की अनुमति दी जाएगी। ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के संदर्भ में पहले ही जांच की जा चुकी है। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय को किसी भी अतिरिक्त गवाह को भी अनुमति देनी होगी जिसे न्यायालय बदले हुए या अतिरिक्त आरोप के संबंध में महत्वपूर्ण समझता है।"

23. आरोपी व्यक्तियों पर शुरू में आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था, जो आत्महत्या के लिए उकसाना है। अभियोजन पक्ष ने किसी भी समय आरोप पत्र पर उंगली नहीं उठाई। मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चला है कि मौत का कारण फांसी के कारण दम घुटना है। ऐसा लगता है कि पुलिस पर आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोप पत्र का मामला दर्ज करने का यही कारण हावी था। अपीलकर्ताओं ने कहा कि उन्होंने मृतक को यह चरम कदम उठाने के लिए सहायता दी और उकसाया। इतना ही नहीं, विशिष्ट विद्वान परीक्षण न्यायाधीश ने आईपीसी की धारा 306 के तहत आत्महत्या के लिए उकसाने का आरोप लगाया है और धारा 306 आईपीसी के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा सभी अभियोजन गवाहों की जांच और जिरह की गई थी। जाहिर तौर पर जब अपीलकर्ताओं पर आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था, यानी आत्महत्या के लिए उकसाने पर, जिरह में फोकस और तनाव केवल उस आरोप पर होगा। लेकिन मुकदमे के अंतिम अंत में, यदि आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप तय करने के साथ आरोपों को वैकल्पिक आरोप के साथ बदल

दिया गया, तो यह अभियोजन मामले को पूरी तरह से अलग रंग और आयाम देता है। विचारण की पूरी बनावट ऊपर से नीचे तक बदल जाती है।

24. वर्तमान जैसे मामले में, ऐसे आरोप का जोड़ और/या प्रतिस्थापन अपीलकर्ताओं के लिए पूर्वाग्रह पैदा करने के लिए बाध्य होगा। ऐसे आरोप को मूल माना जाएगा। उक्त पूर्वाग्रह से निपटने के लिए, अभियोजन पक्ष पर यह दायित्व था कि वह गवाहों को वापस बुलाए, धारा 302 आईपीसी के तहत नए लगाए गए आरोप के संदर्भ में उनकी जांच करे और आरोपी व्यक्तियों को उन गवाहों से जिरह करने की अनुमति दे। उस तरह का कुछ भी कभी नहीं हुआ है

25. यदि, हम दिनांक 12.10.2022 के आक्षेपित आदेश का उल्लेख करते हैं जिसमें विवेचक परीक्षण न्यायाधीश ने उल्लेख किया है कि **"अभियुक्तगण यदि किसी साक्षी से नवीन वैकल्पिक आरोप के सन्दर्भ में जिरह करना चाहें तो उक्त हेतु स्वतन्त्र हैं"**। इससे यह स्पष्ट है कि विद्वान विचारण जज ने आरोपी अपीलकर्ताओं को रियायत और छूट देने की जल्दबाजी की, यदि वे अपनी पसंद के किसी अभियोजन गवाह से जिरह करना चाहते हैं, तो वे ऐसा कर सकते हैं। यह कानून का आदेश नहीं है। जब अभियोजन पक्ष मामले के स्वर, बनावट और कार्यकाल को काफी हद तक उल्टा कर रहा है, तो ये रियायतें और छूट काम नहीं करेंगी। सीआरपीसी की धारा 217 के तहत इस प्रकार की रियायत छूट पर विचार नहीं किया गया है।

वर्तमान मामले में आरोप की खेती 12.10.2022 को की गई है, उन गवाहों की गवाही उस तारीख से बहुत पहले खत्म हो गई थी। केवल यह नहीं, आरोपी व्यक्ति ने धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपना बयान दर्ज करवाया है। इसे प्रदर्शित करने की शायद ही आवश्यकता है, कि धारा 216 के तहत प्रावधान **प्रकृति में अनिवार्य हैं**, क्योंकि वे न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता का पालन करते हैं बल्कि गारंटी और महत्वपूर्ण अधिकार की गारंटी देते हैं जो आरोपी व्यक्तियों को उचित रूप से अपना बचाव करने के लिए उन्हें पूरा अवसर देकर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में गवाहों से जिरह इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण पहलू है। किसी भी गवाह की विश्वसनीयता तभी स्थापित हो सकती है जब उक्त गवाह से आरोपी व्यक्ति द्वारा जिरह की जाए। विद्वान विचारण जज द्वारा दी गई कोई भी रियायत या छूट आरोपी अपीलकर्ताओं के इस मूल्यवान अधिकार को प्रतिस्थापित नहीं करेगी। निष्पक्ष सुनवाई के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विद्वान विचारण कोर्ट एक बार फिर 'शतरंज बोर्ड' खोलने के लिए कानूनी दायित्व के तहत है। मौजूदा मामले में, आईपीसी की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप के संबंध में अब तक कोई जिरह नहीं की गई है और इस प्रकार हमारी सुविचारित राय है कि आईपीसी की धारा 302 के तहत कोई भी दोषसिद्धि नहीं हो सकती थी, जिसे विद्वान विचारण जज द्वारा पारित किया जा सकता था। निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश दिनांक 19/22.11.2022 और इस प्रकार रद्द किया जा सकता है।

26. किसी निर्णय को रद्द करना भी न्याय के हित में कोई उपाय नहीं है। आरोपी अपीलकर्ताओं पर एक अपराध का आरोप पत्र दायर किया गया है और न्याय की मांग है कि उन पर आईपीसी की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप तय करने के चरण से दोबारा मुकदमा चलाया जाना चाहिए। पहले के दोषसिद्धि आदेश को तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया गया है, लेकिन पूरी निष्पक्षता से आरोपी अपीलकर्ताओं को वैकल्पिक आरोप पर मुकदमे का सामना करना होगा। यह कानून का आदेश है और इसका अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। इस संबंध में सीआरपीसी की धारा 386 के तहत उपाय है, जो अपीलीय न्यायालय को नए सिरे से सुनवाई शुरू करने का अधिकार देता है। धारा 386 सीआरपीसी पर आने से पहले, जो इस प्रकार है:-

**"386. अपीलीय न्यायालय की शक्ति, इस तरह के रिकॉर्ड का अवलोकन करने और अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुनने के बाद, यदि वह उपस्थित होता है, और लोक अभियोजक यदि वह उपस्थित होता है, और धारा 377 या धारा 378 के तहत अपील के मामले में, यदि आरोपी उपस्थित होता है, तो अपीलीय न्यायालय, यदि मानती है कि हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, अपील खारिज कर सकता है, या हो सकता है-**

(ए) किसी आदेश या दोषमुक्ति की अपील में, ऐसे आदेश को उलट दें और निर्देश दें कि आगे की जांच की जाए, या आरोपी पर फिर से मुकदमा चलाया जाए या मुकदमे के लिए

प्रतिबद्ध किया जाए, जैसा भी मामला हो, या उसे दोषी पाया जाए और कानून के अनुसार उसे सजा दी जाए।

(बी) किसी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में

(i) निष्कर्ष और सजा को उलट दें और आरोपी को बरी या आरोप मुक्त कर दें, या उस पर ऐसे अपीलीय न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पुनः मुकदमा चलाने का आदेश दें या मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध करें, या

(ii) निष्कर्ष को बदलना, वाक्य को बनाए रखना, या

(iii) निष्कर्ष को बदलने के साथ या उसके बिना, वाक्य की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति और सीमा को बदलें, लेकिन समान को बढ़ाने के लिए नहीं

(सी) सजा बढ़ाने की अपील में-

(i) निष्कर्ष और सजा को उलट दें और आरोपी को बरी कर दें या आरोपमुक्त कर दें या उस पर अपराध का मुकदमा चलाने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा फिर से मुकदमा चलाने का आदेश दें, या

(ii) वाक्य को बरकरार रखते हुए निष्कर्ष को बदलें, या

(iii) निष्कर्ष को बदलने के साथ या उसके बिना, वाक्य की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति

और सीमा को बदल दें, ताकि उसे बढ़ाया या घटाया जा सके;

(डी) किसी अन्य आदेश के खिलाफ अपील में, ऐसे आदेश को बदलना या उलटना;

(ई) कोई संशोधन या कोई परिणामी या आकस्मिक आदेश देना जो न्यायसंगत या उचित हो; बशर्ते कि सजा तब तक नहीं बढ़ाई जाएगी जब तक कि आरोपी को ऐसी वृद्धि के खिलाफ कारण बताने का अवसर न मिल जाए: बशर्ते कि अपीलीय न्यायालय उस अपराध के लिए अधिक सजा नहीं देगी जो अपील के तहत आदेश या सजा पारित करने वाला न्यायालय की राय में आरोपी ने किया है, जो उस अपराध के लिए दी जा सकती थी।

27. चूंकि, हमने पहले ही गंभीर प्रक्रियात्मक दोष और भ्रान्ति को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को रद्द कर दिया है और आरोप पत्र दायर आरोपी अपीलकर्ताओं के पुनः परीक्षण की आवश्यकता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस तरह की भ्रान्ति के परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं के लिए न्याय का गंभीर नुकसान हुआ है और इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि मामले को फिर से सुनवाई के लिए वापस भेज दिया जाना चाहिए। पहली अपीलीय न्यायालय होने के नाते उच्च न्यायालय सबूतों की जांच करने और पहुंचने के लिए बाध्य है। ऐसे सबूतों के मूल्यांकन के आधार पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर और जांच करें कि क्या ऐसी चूकों ने वास्तव में अभियोजन मामले को प्रभावित किया है या ऐसी चूकों के परिणामस्वरूप

वास्तव में न्याय विफल हो गया है। जो परिस्थितियाँ मौजूद हैं, वे अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पुनः परीक्षण की गारंटी देती हैं। न्यायालय द्वारा बिना किसी क्षेत्राधिकार या सुनवाई के किया गया मुकदमा कार्यवाही की प्रकृति के बारे में गलत धारणा के कारण गंभीर अवैधता या अनियमितता के कारण बिगड़ गया था या उस अनियमितता के परिणामस्वरूप आरोपी अपीलकर्ताओं को न्याय नहीं मिल पाया था।

28. धारा 386 सी.आर.पी.सी. अपीलीय न्यायालय की शक्तियों से संबंधित है। एस्पर धारा 386(बी) सी.आर.पी.सी. दोषसिद्धि से अपील में अपीलीय न्यायालय कर सकती है; (1) निष्कर्ष और सजा को उलट दिया जाएगा और आरोपी को बरी कर दिया जाएगा या आरोपमुक्त कर दिया जाएगा या उसे ऐसी अपीलीय न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम क्षेत्राधिकार की न्यायालय में फिर से मुकदमा चलाने का आदेश दिया जाएगा या सुनवाई के लिए प्रतिबद्ध किया जाएगा या (ii) निष्कर्ष को बदल दिया जाएगा, सजा बरकरार रखी जाएगी या (iii) साथ या निष्कर्ष को बदले बिना, वाक्य की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति और सीमा को बदलें, लेकिन उसे बढ़ाने के लिए नहीं।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अजय कुमार घोषाल और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2017) 12 एससीसी 699 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

29. शब्द "पुनः-विचारण" का उपयोग सीआरपीसी की धारा 386 (बी) (i) के तहत किया जाता है, इस खंड द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण मामलों में किया जाना है, जहां अपीलीय न्यायालय संतुष्ट है कि चूक या अनियमितता से 'न्याय की विफलता' हुई है। पुनः सुनवाई के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ ऐसी होनी चाहिए कि सुनवाई बिना किसी अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा की गई हो या कार्यवाही की प्रकृति के बारे में गलत धारणा के कारण सुनवाई गंभीर अवैधता या अनियमितता के कारण खराब हो गई हो या ऐसी सुनवाई के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता को न्याय करने में गंभीर विफलता हुई हो। उन मामलों में पुनः सुनवाई का आदेश पारित किया जा सकता है, जहां मूल सुनवाई कुछ गंभीर प्रक्रियात्मक खामियों के कारण संतोषजनक नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं के लिए न्याय की हानि हुई है, जैसे गलत प्रवेश या साक्ष्य की गलत अस्वीकृति या न्यायालय ने कुछ गवाहों को सुनने से इनकार कर दिया है, जिन्हें सुना जाना चाहिए था या अनिवार्य प्रक्रिया का पालन किए बिना, इस संबंध में अपराध की गंभीर धारा में 'आरोप' जोड़ना या प्रतिस्थापित करना शामिल है।

30. हमने 'न्याय की विफलता' वाक्यांश का प्रयोग किया है, ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण 'न्याय की विफलता' का क्या अर्थ है? माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शमनसाहेब एम. मुल्तानी बनाम स्टेट ऑफ़ कनाटक, 2001 (1) एससीसी (सीआरएल.) 358 में रिपोर्ट दी कि:-

"हम अक्सर 'न्याय की विफलता' के बारे में सुनते हैं और अक्सर आपराधिक न्यायालय में प्रस्तुतीकरण को उक्त अभिव्यक्ति के साथ जोड़ा जाता है। शायद यह वास्तव में लचीला या आसान और अभिव्यक्ति है जिसे मामले की किसी भी स्थिति में फिट किया जा सकता है। आपराधिक न्यायालय, विशेष रूप से उच्च न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या न्याय की विफलता हुई है या क्या यह केवल एक दिखावा है"

मुकदमे के अंत में अपराध की गंभीर धारा जोड़ना लेकिन उचित अवसर प्रदान नहीं करना जैसा कि धारा 216 और 217 के तहत विचार किया गया है 'आरोपी अपीलकर्ताओं को न्याय की 'विफलता' के लिए बाध्य किया जाएगा। वर्तमान मामले के तथ्य, अपीलकर्ताओं को गंभीर पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा, यदि पूरे मुकदमे को दोबारा नहीं खोला जाता है और उन्हें अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह करने का उचित अवसर दिया जाता है। यह कोई दिखावा नहीं है बल्कि समय की मांग है।

31. डे-नोवो विचारण का अर्थ है अपीलीय न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया "नया विचारण" असाधारण मामलों में जब मूल विचारण कोर्ट कानून द्वारा निर्धारित तरीके से निर्धारण करने में विफल रहा हो। विचारण कोर्ट को नए सिरे से विचारण चलाने की आवश्यकता होती है, जैसे कि पहली बार में कोई विचारण नहीं हुआ हो। निस्संदेह, अपीलीय न्यायालय के पास निचली न्यायालय को "डे-नोवो" विचारण आयोजित करने का निर्देश देने की शक्ति है। लेकिन सवाल यह है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग

कब किया जाना चाहिए। जैसा कि उखा कोल्हे बनाम महाराष्ट्र राज्य के फैसले में एआईआर 1963 (एससी) 1531 में सूचित, कि ऐसा माना गया है:-

"आपराधिक मामले की दोबारा सुनवाई का आदेश असाधारण मामलों में दिया जाता है, और तब तक नहीं जब तक कि अपीलीय न्यायालय इस बात से संतुष्ट न हो कि कार्यवाही की कोशिश करने वाले न्यायालय के पास इसकी सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है या यह कि मुकदमा गंभीर अवैधताओं या अनियमितताओं के कारण या प्रकृति की गलतफहमी के कारण खराब हो गया था। कार्यवाही के बारे में और उस कारण से वास्तव में कोई वास्तविक सुनवाई नहीं हुई थी या अभियोजक या अभियुक्त को, उन कारणों से, जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था, आरोप के लिए सबूत पेश करने या प्रस्तुत करने से रोका गया था, और न्याय के हित में अपीलीय न्यायालय का मानना है परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए यह उचित है मामले में, आरोपी पर फिर से मुकदमा चलाया जाना चाहिए। पुनः सुनवाई का आदेश पहले की कार्यवाही के रिकॉर्ड को मिटा देता है, और आरोपी व्यक्ति को दूसरे मुकदमे में उजागर करता है जो अभियोजक को पहले के मुकदमे में प्रकट की गई कमजोरियों को सुधारने का अवसर देता है, और जब यह केवल अभियोजक को सक्षम करने के लिए किया जाता है तो इसे आम तौर पर स्वीकार नहीं किया जाएगा। वह सबूत पेश कर सकता था, लेकिन मामले की प्रकृति की अपर्याप्त समझ या अन्य कारणों से उसने ऐसा करने की परवाह नहीं की।"

32. एक अन्य मामले में म.प्र. राज्य बनाम भूराजी ने 2001एससीसी (सीआरएल) 1373 में सूचित:-

"इस सवाल से निपटते समय कि क्या उच्च न्यायालय को केवल एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराधों से जुड़े मामलों के बारे में प्रक्रियात्मक पहलू के संबंध में सुप्रीम कोर्ट द्वारा की गई कानूनी स्थिति की घोषणा के आधार पर कार्यवाही को रद्द कर देना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि नए सिरे से मुकदमा चलाना अंतिम उपाय होना चाहिए और वह भी तभी जब ऐसी न्यायालय अत्यंत अपरिहार्य हो जाए। न्याय की विफलता को रोकने के लिए इसे अत्यधिक आवश्यकता तक सीमित किया जाना चाहिए।"

33. जाहिरा हबीबुल्लाह एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (बेस्ट बेकरी केस), 2004 एससीसी (सीआरएल) 999 में सूचित, सुप्रीम कोर्ट आश्वस्त था कि गवाहों को खुद को न्यायालय से दूर रखने की धमकी दी गई थी और मामले की ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय ने न केवल नए सिरे से सुनवाई करने का निर्देश दिया बल्कि एक नए अभियोजक की नियुक्ति के लिए और निर्देश दिए गए और पुनः मुकदमा गुजरात राज्य से बाहर आयोजित करने का निर्देश दिया गया। हालाँकि असाधारण परिस्थितियों में यह एक असाधारण मामला था।

34. हम एक और बहुत ही सामान्य वाक्यांश का सामना कर रहे हैं, "किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के लिए 'स्पीडी विचारण' और

'निष्पक्ष सुनवाई' और निर्णयों की समीक्षा के बाद एक टिप्पणी जो पुनः सुनवाई के लिए मार्गदर्शक कारक है, न्याय की मांग होनी चाहिए।" मोहम्मद हुसैन बनाम, एनसीटी दिल्ली राज्य के मामले में 2012 (3) एससीसी (सीआरएल) 1139 में सूचित निर्णय के पैराग्राफ 41 और 42 में माननीय ने राय जो नीचे उद्धृत की गई है:-

" 41.- किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के लिए 'शीघ्र सुनवाई' और 'निष्पक्ष सुनवाई' अनुच्छेद 21 का अभिन्न अंग हैं। हालांकि, त्वरित सुनवाई के अधिकार और अभियुक्त के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार के बीच गुणात्मक अंतर है। अभियुक्त के अधिकार के विपरीत निष्पक्ष सुनवाई के मामले में, त्वरित सुनवाई के अधिकार से वंचित होने से अभियुक्त को अपना बचाव करने में कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अपने स्वभाव में सापेक्ष है। यह विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आपराधिक मुकदमे के समापन में देरी के प्रत्येक मामले को ऐसे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में देखा जाना चाहिए। अभियोजन शुरू होने के बाद से कई वर्षों का अंतराल अपने आप में अभियोजन को बंद करने या अभियोग को खारिज करने को उचित नहीं ठहरा सकता है। अभियुक्त के त्वरित मुकदमे के अधिकार से संबंधित कारकों को समाज पर अपराध के प्रभाव और न्यायिक प्रणाली में लोगों के विश्वास के साथ तौला जाना चाहिए। त्वरित सुनवाई अभियुक्त के अधिकारों को सुरक्षित करती है लेकिन यह सार्वजनिक न्याय के अधिकारों को बाधित नहीं करती है। अपराध

की प्रकृति और गंभीरता, इसमें शामिल व्यक्तियों, सामाजिक प्रभाव और सामाजिक जरूरतों को आरोपी के त्वरित मुकदमे के अधिकार के साथ तौला जाना चाहिए और यदि संतुलन पूर्व के पक्ष में झुकता है तो आपराधिक मुकदमे के समापन में लंबी देरी अभियोजन की निरंतरता के खिलाफ नहीं होनी चाहिए और यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त का अधिकार और स्थिति की तात्कालिकता उसके पक्ष में संतुलन झुकाती है, तो अभियोजन समाप्त किया जा सकता है। ये सिद्धांत तब भी लागू होने चाहिए जब अपील न्यायालय को इस सवाल का सामना करना पड़े कि क्या किसी आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं।

42. दोषसिद्धि के फैसले के खिलाफ आपराधिक अपील की सुनवाई करने वाली अपीलीय न्यायालय को संहिता की धारा 386 के तहत आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने का आदेश देने की शक्ति है। यह धारा 386 (बी) की भाषा से स्पष्ट है। हालांकि ऐसी शक्ति मौजूद है, लेकिन इसका प्रयोग नियमित तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। 'डे नोवो विचारण' या पुनः परीक्षण दूसरा परीक्षण नहीं है; यह उसी मुकदमे और उसी अभियोजन की निरंतरता है। पुनः सुनवाई के लिए मार्गदर्शक कारक हमेशा न्याय की मांग होनी चाहिए। जाहिर है, संहिता की धारा 386 (बी) के तहत पुनः सुनवाई की शक्ति का प्रयोग, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसके लिए कोई स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला तैयार नहीं किया जा सकता है, लेकिन अपील न्यायालय को



आरोपी के अधिकार की रक्षा करते समय इस बात को बारीकी से ध्यान में रखना चाहिए। निष्पक्ष सुनवाई और उचित प्रक्रिया के कारण, जो लोग कानून की सुरक्षा चाहते हैं, वे कानूनी प्रणाली में आशा नहीं खोते हैं और समाज के हितों को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जाता है।"

35. सीआरपीसी की धारा 386 (बी) के तहत प्रयुक्त भाषा, किसी आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने की अनुमति हालांकि नियमित तरीके से नहीं दी जानी चाहिए, लेकिन असाधारण और असाधारण परिस्थितियों में ही इसका आदेश दिया जाना चाहिए, जब अपीलीय न्यायालय की राय के अनुसार न्याय की विफलता को रोकने के लिए ऐसा कदम अपरिहार्य हो जाता है। "पुनः मुकदमा" दूसरा मुकदमा नहीं है। यह उसी मुकदमे और उसी अभियोजन की निरंतरता है। लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पुनः सुनवाई का मार्गदर्शक कारक हमेशा न्याय की मांग के लिए होना चाहिए। जाहिर है, सीआरपीसी की धारा 386 (बी) के तहत 'पुनः परीक्षण' के लिए शक्ति का प्रयोग न्यायालय की जो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जिसके लिए कोई चोरी-छिपे सूत्र तैयार नहीं किया जा सकता है, लेकिन अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि निष्पक्ष सुनवाई और उचित प्रक्रिया के आरोपी के अधिकार की रक्षा करते समय, जो लोग कानून की सुरक्षा चाहते हैं, वे ऐसा नहीं करते हैं। कानूनी प्रणाली में ढीली आशा और समाज के हित को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जाता है, जिसका अर्थ है कि एक व्यवस्थित समाज के

लिए निष्पक्ष सुनवाई और त्वरित सुनवाई साथ-साथ चलनी चाहिए।

36. जैसा कि हमने पहले ही विस्तृत कारण देकर, यानी धारा 216 और 217 सीआरपीसी में निर्धारित अनिवार्य प्रक्रिया का पालन नहीं करके, चुनौती के तहत, आक्षेपित आदेश और दोषसिद्धि के फैसले को रद्द कर दिया है। अभियुक्त अपीलकर्ताओं को जो कष्ट हुआ है, उससे गंभीर पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। आईपीसी की धारा 306 के स्थान पर आईपीसी की धारा 302 में परिवर्तन/प्रतिस्थापन करके उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया गया और उसके बाद विद्वान विचारण कोर्ट द्वारा एक रियायत और छूट दी गई, कि बचाव पक्ष यदि चाहे तो किसी भी गवाह से जिरह कर सकता है। यह रियायत या छूट एक दिखावा है और आईपीसी की धारा 302 के तहत सजा के आदेश को सही ठहराने के लिए एक झूठा बहाना है। उन्होंने आईपीसी की धारा 306 के स्थान पर धारा 302 आईपीसी के तहत एक नया आरोप चिपकाकर अपना कदम वापस ले लिया है, इस तरह की लुका-छिपी की प्रथा अज्ञात है और आपराधिक न्याय व्यवस्था प्रणाली के लिए विस्मृति है। किसी भी आरोपी को आश्चर्यचकित नहीं किया जाना चाहिए या जिरह करने के लिए, यदि कोई हो, कोई रियायत या छूट नहीं दी जानी चाहिए। लेकिन साथ ही आरोपी अपीलकर्ता, जो आरोप पत्र दायर किए गए आरोपी हैं, को मुकदमा चलाए बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

37. उपरोक्त कारणों से तत्काल आपराधिक अपील की अनुमति दी जाती है, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/ विशेष न्यायाधीश,

एससी/एसटी अधिनियम, कोर्ट नंबर 2, भदोही, ज्ञानपुर द्वारा पारित एस.टी. क्रमांक 118/2017 (राज्य बनाम छोटाई एवं अन्य) प्रकरण अपराध क्रमांक. 2016 का 43, पी.एस. ऊंझ, जिला भदोही, ज्ञानपुर का आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 19/22.11.2022 को निम्नलिखित निर्देशों के साथ निरस्त कर अपास्त किया जाता है:-

(i) उपरोक्त टिप्पणी के मद्देनजर आईपीसी की धारा 302 के तहत अतिरिक्त आरोप तय करने के चरण से नए सिरे से सुनवाई शुरू करने के लिए मामले को विचारण कोर्ट में वापस भेज दिया गया है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद, आरोपी अपीलकर्ताओं को उनसे जिरह करने की आवश्यकता होती है और विचारण कोर्ट को निर्देश दिया जाता है कि वह सभी गंभीर प्रयास करें और प्रावधानों का सख्ती से पालन करते हुए दिन-प्रतिदिन सुनवाई करें (यदि संभव हो तो) धारा 309 सी.आर.पी.सी. और 31.03.2024 तक मुकदमे को समाप्त करने के लिए सभी ईमानदार प्रयास करें।

(ii) चूंकि अपीलकर्ता 19.11.2022 से जेल में हैं, इसलिए उन्हें अपराध संख्या 43/2016 धारा 302 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-ऊंझ, जिला-भदोही (ज्ञानपुर) से उत्पन्न एस.टी. संख्या 118/2017 (राज्य बनाम छोटाई और अन्य) में जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया जाता है तहत, उन्हें संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि में एक निजी बांड और दो

जमानतदार (एक परिवार का सदस्य होना चाहिए) प्रस्तुत करना होगा।

(iii) इसके अलावा, सभी आरोपी अपीलकर्ता जमानत पर रिहा होने के एक सप्ताह के भीतर विद्वान विचारण कोर्ट को एक लिखित वचन देंगे कि वे विद्वान विचारण कोर्ट द्वारा उन पर लगाए गए 'आरोपों' को तय करने और समझाने पर न्यायालय में उपस्थित रहेंगे। विचारण कोर्ट रिकॉर्ड पर मौजूद पूरी सामग्री को एक बार फिर से देखेगा ताकि उन्हें संतुष्ट किया जा सके कि आरोपी अपीलकर्ताओं पर आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप लगाने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है। सीआरपीसी की धारा 313 के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं को आरोप तय होने पर न्यायालय में उपस्थित रहना कानूनी बाध्यता है। और इसके अतिरिक्त, जब भी मुकदमे के दौरान विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा उनकी उपस्थिति की आवश्यकता होती है। उपरोक्त उल्लिखित शर्तों का पालन करते समय आरोपी अपीलकर्ताओं की ओर से कोई भी चूक गंभीर परिणाम की गारंटी देगी, जिसमें उनके जमानत बांड को रद्द करना और इसके कारण दर्ज करने के बाद विचारण कोर्ट द्वारा उन्हें हिरासत में लेना शामिल है।

38.. नतीजतन, वर्तमान आपराधिक अपील की अनुमति दी जाती है और निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाता है और मामले को 'प्रस्तावित' वैकल्पिक आरोप के तहत पुनः परीक्षण के लिए संबंधित न्यायालय में वापस भेजा जाता है।

(2023) 9 ILRA 619

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 335 वर्ष 1999

इतवारी एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

एआर खान, विमल किशोर सिंह, विश्वनाथ सिंह

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323/34, 504, 506 और 308/34- दोषसिद्धि को चुनौती-पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयान से पता चलता है कि उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है जबकि उनके बयान धारा 161 सीआरपीसी के तहत जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए थे, हालांकि, मुख्य परीक्षा के समय उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी को पूरी तरह से नकार दिया था, इसलिए उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था- घायल गवाहों के शरीर पर लगी चोटों का कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं

दिया गया है। केवल सुझाव देना पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा यह अपने आप में एक झूठे मामले का संकेत देता है। सभी गवाह करीबी रिश्तेदार होने के कारण, यह आशंका से परे है कि उन्होंने असली अपराधी का नाम बताने के बजाय, वे आरोपियों को निर्दोष जानते हुए भी उन्हें झूठा फंसा देंगे- बयान की समग्रता को देखते हुए गवाहों के मामले में, अवर न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को उचित नहीं कहा जा सकता। साक्ष्य विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि गवाह के बयान को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और केवल गवाह के बयान के एक वाक्य को लेकर निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए। इस प्रकार, अवर न्यायालय ने अभियुक्त के अपराध के संबंध में अभिलेख पर उपलब्ध भौतिक साक्ष्यों की अनदेखी की है और इस हद तक अवर न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और विकृत है, इसलिए इसे उलटकर रद्द किया जा सकता है। (अनुच्छेद 1 से 41)

बी. फाल्सस इन यूनो फाल्सस इन ओमिनिस  
" (एक बात में झूठ, हर चीज में झूठ) का सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता। अनाज को भूसे से अलग करना न्यायालय का कर्तव्य है। भले ही साक्ष्य का बड़ा हिस्सा अपर्याप्त पाया जाता है, यदि अवशेष किसी अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं, तो अनाज को भूसे से अलग करना न्यायालय का कर्तव्य है। किसी विशेष भौतिक गवाह या भौतिक विशेषता का झूठा होना उसे शुरू से

अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। भारत में "फाल्सस इन यूनो फाल्सस इन ओम्निबस" (एक बात में झूठ, हर चीज में झूठ) का कोई अनुप्रयोग नहीं है और गवाह को झूठा नहीं कहा जा सकता। यदि यह कहावत सभी मामलों में लागू होती है तो यह आशंका है कि आपराधिक न्याय की व्यवस्था ठप हो जाएगी। गवाह किसी कहानी को गढ़ने में मदद नहीं कर सकते, हालाँकि, सत्य ही मुख्य है। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस हद तक विश्वसनीय है, और केवल इसलिए कि कुछ मामलों में न्यायालय उन्हें अपर्याप्त या भरोसे के योग्य नहीं मानती है, यह आवश्यक रूप से विधि के मामले के रूप में अनुसरण नहीं करता है कि उन्हें सभी मामलों में भी नजरअंदाज किया जाना चाहिए। (पैरा 25, 26)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. परमजीत सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2011) एआईआर एससी 200
2. सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य (2003) एआईआर एससी 3617
3. खुज्जी @ सुरेन्द्र तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1991) एआईआर एससी पृष्ठ 1853

(माननीय न्यायमूर्ति शमीन अहमद द्वारा पारित)

1. वादों की सूची संशोधित कर दी गई है और वाद को संशोधित सुनवाई के लिए ग्रहण किया जा रहा है।

2. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

3. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बहराइच की दिनांक 11.12.2018 के प्रतिवेदन के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या 1 इतवारी की मृत्यु इस अपील के लंबित रहने के दौरान ही हो चुकी थी, इसलिए उनकी ओर से अपील निरस्त मानी जाती है। यह न्यायालय अपीलकर्ता संख्या-2 नबी उल्लाह, अपीलकर्ता संख्या-3 रफी उल्लाह और अपीलकर्ता संख्या-4 मुल्जिम के संबंध में कार्यवाही कर रहा है।

4. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 327/1994 में धारा 323/34, 504, 506, 308/34 आई.पी.सी., थाना-रिसिया, जिला-बहराइच के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 30.07.1999 के विरुद्ध अपीलकर्ताओं की ओर से धारा 374(2) सी.आर.पी.सी. के तहत तत्काल आपराधिक अपील दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं को दोषी करार देते हुए धारा 323/34 आई.पी.सी. के तहत छह माह के कठोर कारावास, धारा 506 आई.पी.सी. के तहत दो वर्ष के कठोर कारावास और धारा 308/34 आई.पी.सी. के तहत दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। सभी सजाएं एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया है।

5. अभियोजन पक्ष का संक्षेप में कहना यह है कि दिनांक 04.05.1993 को वादी अब्दुल मन्नान ने थाना रिसिया, जिला बहराइच में लिखित आख्या दी थी, जिसमें कहा गया था कि अभियुक्त इतवारी अपने पुत्र (नबी उल्लाह) की शादी वादी के परिवार में तय कर रहा था। वादी के रिश्तेदार ने इतवारी से उसकी जमीन व सम्पत्ति के बारे में पूछा तो उसने सच बता दिया। इस पर वादी के रिश्तेदार ने शादी से इंकार कर दिया, जिससे वादी इतवारी वादी के रिश्तेदारों से नाराज हो गया। घटना दिनांक को प्रातः लगभग 07:00 बजे जब वादी के चाचा (अशरफ अली) व भाई (इब्राहिम) बाजार से आ रहे थे, तो अभियुक्तों ने उन्हें पकड़ लिया तथा गंदी-गंदी गालियां देने लगे तथा लाठी-डण्डे से मारपीट की, जिससे अशरफ अली व इब्राहिम गम्भीर रूप से घायल हो गये। चोट लगने से इब्राहिम अचेत हो गया। घटना को देखकर आस-पास के ग्रामीण अलीउल्लाह व सब्दर अली ने घायलों को बचाया।

6. प्रथम सूचक अब्दुल मन्नान द्वारा प्रस्तुत लिखित आख्या के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 43/1993 धारा 308, 323, 504, 506 आई.पी.सी. के अन्तर्गत थाना रिसिया, जिला बहराइच पर दर्ज की गयी।

7. मामला जांच अधिकारी को सौंप दिया गया, जिन्होंने घटनास्थल का दौरा किया, गवाहों के बयान दर्ज किए और घटना स्थल का नक्शा तैयार किया और जांच पूरी करने के बाद, धारा 308, 323 आई.पी.सी. के तहत अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

8. आरोप पत्र के आधार पर अपीलार्थी-अभियुक्तों को न्यायालय द्वारा तलब किया गया तथा उनके विरुद्ध धारा 323/34, 504, 506, 308/34 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आरोप तय किए गए। अपीलार्थी-अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया तथा मुकदमा चलाए जाने की मांग की।

9. अपीलकर्ता-आरोपियों के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने पी.डब्लू.-1 अली उल्लाह, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, पी.डब्लू.-2 सफदर अली, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, पी.डब्लू.-3 अब्दुल मन्नान, परिवादी, पी.डब्लू.-4 हेड मोहरिर छवि लाल, जिन्होंने लिखित शिकायत लिखी थी, पी.डब्लू.-5 इब्राहिम, घायल, पी.डब्लू.-6 अशरफ अली, घायल, पी.डब्लू.-7 डॉ. धर्मवीर कुमार, जिन्होंने घायलों की मेडिकल जांच की, पी.डब्लू.-8 सब इंस्पेक्टर सत्य नारायण तिवारी, जिन्होंने मामले की जांच की, से पूछताछ की।

10. उपरोक्त मौखिक साक्ष्यों के अलावा, निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी चिह्नित किए गए थे। लिखित आख्या प्रदर्शक-1, चिक एफ.आई.आर. प्रदर्शक-3, नकल रोजनामचा, प्रदर्शक-4, इब्राहिम की चोट आख्या प्रदर्शक-5, अशरफ की चोट आख्या प्रदर्शक-6, घटना स्थल का नक्शा प्रदर्शक-7 और चार्जशीट एक्स. का-8।

11. साक्ष्य प्रक्रिया समाप्त होने के पश्चात, अभियुक्तगण/अपीलकर्ताओं का धारा 313 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत बयान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया, जिसमें

सम्पूर्ण साक्ष्य एवं अन्य परिस्थितियों की व्याख्या की गई, जिसमें अपीलकर्ताओं ने अभियोजन पक्ष की कहानी का खंडन किया तथा अभियोजन पक्ष की सम्पूर्ण कहानी को गलत एवं मनगढ़ंत बताया गया।

12. बचाव पक्ष के मामले को पुष्ट करने के लिए, आरोपी अपीलकर्ताओं ने विचारण न्यायालय के समक्ष मोहले से डी.डब्ल्यू.-1 के रूप में पूछताछ की।

13. पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलें सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-आरोपी को दोषी पाया, इसलिए उन्हें दोषी ठहराया और धारा 323/34 आई.पी.सी. के तहत छह महीने के कठोर कारावास, धारा 506 आई.पी.सी. के तहत दो साल के कठोर कारावास और धारा 308/34 आई.पी.सी. के तहत दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई।

14. विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता-अभियुक्त ने यह अपील प्रस्तुत की है।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश तथ्यों और कानून दोनों के आधार पर गलत है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों को गलत तरीके से पढ़ा और गलत व्याख्या की। विद्वान विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से माना था कि परिवादी अब्दुल मन्नान, जिसने एफ.आई.आर. दर्ज की

थी, एक गवाह था, उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था और जिरह में उसने स्वीकार किया था कि पक्षों ने मामले में समझौता कर लिया था, इसलिए, उसके बयान के एक हिस्से पर भरोसा किया जा सकता है। अन्य गवाहों ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से इस बात पर भरोसा किया है कि जब किसी गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया जाता है, तो उसके बयान पर कुछ हद तक भरोसा किया जा सकता है। इस प्रकार, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने कानून में गलती की है और विवादित आदेश पारित किया है, इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए और वर्तमान अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए।

17. अपीलकर्ता-आरोपी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का विरोध करते हुए, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी व्यक्तियों द्वारा घायलों पर हमला करने के तथ्य को साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत दिए गए थे। एफ.आई.आर. भी तुरंत दर्ज की गई थी और अभियोजन पक्ष के गवाहों ने भी अपराध के होने को साबित कर दिया है, ऐसे में, इस आदेश में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और अपील खारिज किए जाने योग्य है।

18. आपराधिक न्यायशास्त्र के पूरे जाल में, एक सुनहरा धागा हमेशा देखा जाता है कि

अभियुक्त के अपराध को साबित करना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है। अपराध साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर सबूत के इस बोझ को निर्दोषता की धारणा के रूप में भी जाना जाता है। निर्दोषता की धारणा, जिसे कभी-कभी लैटिन अभिव्यक्ति "ई इनकमबिट प्रोबेटियो क्विडिसिट, नॉन क्विनेगेट" (साबित करने का बोझ उस व्यक्ति पर होता है जो घोषणा करता है, न कि उस व्यक्ति पर जो इनकार करता है) द्वारा संदर्भित किया जाता है, वह सिद्धांत है कि जब तक अपराध साबित नहीं हो जाता तब तक किसी को निर्दोष माना जाता है। आपराधिक न्यायशास्त्र में हर आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि अपराध साबित न हो जाए। निर्दोषता की धारणा एक मानवीय अधिकार है। अभियोजन पक्ष केवल तभी आपराधिक सजा प्राप्त कर सकता है जब सबूत उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को साबित करते हैं।

19. वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष के लगभग सभी गवाह अपने बयान से पलट गए हैं। यह अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही पर आधारित है, जिससे अभियुक्त के अपराध का अनुमान लगाया जा सकता है।

20. गवाहों को तीन अलग-अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। वे पूरी तरह से विश्वसनीय हो सकते हैं। इसी तरह ऐसे गवाह भी हो सकते हैं जिन्हें पूरी तरह से अविश्वसनीय माना जा सकता है। जब कोई साक्ष्य पूरी तरह से विश्वसनीय या पूरी तरह से अविश्वसनीय हो तो उस पर भरोसा करने या उस पर अविश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं

होती है, लेकिन तीसरी श्रेणी के मामले में कठिनाई होती है यानी जहां गवाह न तो पूरी तरह से विश्वसनीय हो और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। शत्रुतापूर्ण गवाह आमतौर पर उन गवाहों की श्रेणी में आते हैं जो न तो पूरी तरह से विश्वसनीय होते हैं और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। खुज्जी उर्फ सुरेंद्र तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1991 एस.सी. पृष्ठ 1853 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

*"अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को सिर्फ इसलिए पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे शत्रुतापूर्ण मानकर उससे जिरह की। ऐसे गवाहों के साक्ष्य को मिटाया हुआ या अभिलेख से पूरी तरह से हटा हुआ नहीं माना जा सकता, लेकिन उन्हें इस हद तक स्वीकार किया जा सकता है कि उनके बयान को सावधानीपूर्वक जांचने पर भरोसेमंद पाया जाता है।"*

21. साक्ष्य अधिनियम 1872 (जिसे संक्षिप्तता के लिए 1872 का अधिनियम कहा जाता है) में "प्रतिकूल गवाह" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यह अंग्रेजी कानून से लिया गया शब्द है। हालांकि अंग्रेजी कानून में किसी पक्ष को अपने ही गवाह का खंडन करने की अनुमति देना स्वीकार्य दृष्टिकोण नहीं था। अपने ही गवाह का खंडन करने के सिद्धांत का इस आधार पर विरोध किया गया कि पक्ष को अपने ही गवाह को खारिज करने या उसका खंडन करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जो उसे बुलाने वाले पक्ष के लिए प्रतिकूल हो जाता

है, हालांकि, सामान्य कानून में "प्रतिकूल" या "अप्रतिकूल गवाह" शब्द विकसित करके नियम की इस कठोरता को शिथिल करने का प्रयास किया गया।

22. 1872 के अधिनियम की धारा 154 (1) को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:-

*"न्यायालय अपने विवेकानुसार, गवाह को बुलाने वाले व्यक्ति को उससे कोई भी प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकता है, जिसे प्रतिकूल पक्ष द्वारा जिरह में पूछा जा सकता है।"*

23. 1872 के अधिनियम की धारा 154 की उपधारा (2) में आगे प्रावधान है कि:-

*"इस धारा की कोई बात उपधारा (1) के अधीन अनुमति प्राप्त व्यक्ति को ऐसे गवाह के साक्ष्य के किसी भाग पर भरोसा करने से वंचित नहीं करेगी।"*

24. इस प्रकार न्यायालय में विवेकाधिकार निहित है कि वह किसी व्यक्ति को ऐसा प्रश्न पूछने की अनुमति दे, जो प्रतिकूल पक्ष द्वारा पूछा जा सकता है, यदि न्यायालय इसे उचित समझे। इस प्रकार "शत्रु गवाह" शब्द अंग्रेजी कानून से उधार लिया गया है और विधि-निर्णय के माध्यम से विकसित किया गया है।

25. "फाल्सस इन यूनो फाल्सस इन ओम्नीबस" (एक बात में झूठ, हर चीज में झूठ) का सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता। न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अनाज को

भूसे से अलग करे। उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2003 एससी 3617 के मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

*"भले ही साक्ष्यों का बड़ा हिस्सा अपर्याप्त पाया जाए, लेकिन अगर किसी आरोपी के अपराध को साबित करने के लिए अवशेष पर्याप्त हैं, तो न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अनाज को भूसे से अलग करे किसी खास महत्वपूर्ण गवाह या किसी खास खासियत के झूठ बोलने से शुरुआत से लेकर आखिर तक मामला बर्बाद नहीं होगा। भारत में फाल्सस इन यूनो फाल्सस इन ओम्नीबस (एक बात में झूठ, हर चीज में झूठ) कहावत लागू नहीं होती और गवाह को झूठा नहीं कहा जा सकता। अगर यह कहावत सभी मामलों में लागू होती है, तो यह डरना चाहिए कि आपराधिक न्याय प्रशासन ठप हो जाएगा। गवाह कहानी को और भी जटिल नहीं बना सकते, लेकिन सच्चाई ही मुख्य है। इसलिए, हर मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि सबूत किस हद तक विश्वसनीय हैं और सिर्फ इसलिए कि न्यायालय कुछ मामलों में उसे अपर्याप्त या भरोसे के लायक नहीं मानती, इसका यह मतलब नहीं है कि कानून के तौर पर उसे सभी मामलों में नजरअंदाज कर दिया जाना चाहिए।"*

26. इसी प्रकार परमजीत सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य; एआईआर 2011 एससी 200 के वाद में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की थी:-



"जब शाशकीय अधिवक्ता के कहने पर गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया और उसे गवाह से जिरह करने की अनुमति दी गई, तो गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने का कोई औचित्य नहीं बनता। हालांकि, न्यायालय को बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि प्रथम दृष्टया, एक गवाह जो अलग-अलग समय पर अलग-अलग बयान देता है, उसे सच्चाई की कोई परवाह नहीं होती। उसके साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या उसे कोई महत्व दिया जाना चाहिए। न्यायालय को ऐसे गवाह की गवाही पर कार्रवाई करने में धीमी गति से काम करना चाहिए; आम तौर पर, उसे उसकी गवाही की पुष्टि की तलाश करनी चाहिए।"

27. प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पी.डब्लू.-1 अली उल्लाह के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि उसने मुख्य परीक्षण के दौरान स्पष्ट रूप से कहा था कि परिवादी ने लगभग 3-4 वर्ष पूर्व एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी, जिसमें उसे प्रत्यक्षदर्शी के रूप में रखा गया था, लेकिन वह नहीं जानता कि परिवादी ने उसे प्रत्यक्षदर्शी क्यों बनाया, क्योंकि उसने घटना नहीं देखी थी और न ही वह घटना के समय मौजूद था।

28. इसी तरह प्रत्यक्षदर्शी पी.डब्लू.-2 सफ़दर अली ने भी पी.डब्लू.-1 अली उल्लाह की तरह ही बात दोहराई। उसने यह भी कहा कि उसे नहीं पता कि परिवादी ने उसे प्रत्यक्षदर्शी क्यों बनाया, क्योंकि उसने भी घटना नहीं देखी थी।

29. इसके अतिरिक्त, पी.डब्लू.-3 अब्दुल मन्नान परिवादी है और मुख्य परीक्षण में अपनी गवाही में उसने एफ.आई.आर. के संस्करण को पूरी तरह दोहराया है और अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया है, जबकि वह कथित घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था।

30. पी.डब्लू.-4 हेड मोहम्मद छवि लाल ने विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में कहा था कि उसने लिखित आख्या को प्रथम सूचना रिपोर्ट में लिखा है और लिखते समय इब्राहिम और अशरफ मौजूद थे।

31. पी.डब्लू.-5 घायल, इब्राहिम ने भी एफ.आई.आर. के बयान को दोहराया और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया। उसने यह भी कहा कि उसे चिकित्सीय जांच के लिए बहराइच भेजा गया था।

32. घायल व्यक्ति अशरफ अली, पी.डब्लू.-6 ने भी एफ.आई.आर. के कथन को दोहराया था तथा अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था।

33. पी.डब्लू.-7 डॉ. धर्मवीर दुबे, हड्डी रोग शल्य चिकित्सक, जिला अस्पताल, कानपुर ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा था कि उन्होंने दिनांक 04.05.1993 को सुबह लगभग 08:30 बजे घायल इब्राहिम और घायल अशरफ अली की जांच की थी। घायल व्यक्तियों को आरक्षी सी.पी./218 रमेश कुमार यादव द्वारा लाया गया था। उन्होंने घायल इब्राहिम के साथ-साथ

अशरफ अली की चिकित्सीय आख्या भी तैयार की थी।

दिए गए अपने पूर्ववर्ती बयान के बारे में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना आवश्यक था।

34. पी.डब्लू.-8 उपनिरीक्षक सत्य नारायण तिवारी, पेशकार पुलिस अधीक्षक, इलाहाबाद ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा था कि दिनांक 04.05.1993 को वह थाना रिसिया, जिला बहराइच के थाना प्रभारी के पद पर तैनात थे। उन्हें इस मामले की जांच सौंपी गई थी, तत्पश्चात उन्होंने जांच पूरी कर ली।

35. डी.डब्लू.-1 मोहले ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में कहा था कि वह आरोपियों के साथ-साथ घायल व्यक्तियों को भी जानता था और उसने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपित ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी।

36. पी.डब्लू.-1 अली उल्लाह और पी.डब्लू.-2 सफ़दर अली के बयानों के अवलोकन से पता चलता है कि उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, जबकि उनके बयान जांच अधिकारी द्वारा धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज किए गए थे, हालांकि, उनके मुख्य परीक्षण के समय, उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी को पूरी तरह से नकार दिया था। इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि ये गवाह अभियुक्तों द्वारा उन पर डाले गए दबाव के कारण मुकर गए। उन्होंने घटना के बारे में सच्चाई बताने से इनकार कर दिया, और इसलिए, उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। उन्हें अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत

37. यह देखकर दुख होता है कि हमारे मौजूदा विचारण प्रणाली में न्यायाधीश के पास सच्चाई का पता लगाने के लिए गवाहों से सवाल पूछने का पर्याप्त अधिकार होने के बावजूद, ज्यादातर न्यायाधीश गवाहों से सवाल नहीं पूछते हैं। जब कोई गवाह मुकर जाता है तो उसे अधिवक्ताओं के भरोसे छोड़ देने की प्रथा विचारण न्यायालय में आम बात है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार याद दिलाया है कि एक न्यायाधीश सिर्फ इसलिए आपराधिक मुकदमे की सुनवाई नहीं करता कि कोई निर्दोष व्यक्ति सज़ा न पाए, बल्कि न्यायाधीश यह भी देखता है कि कोई दोषी व्यक्ति बच न पाए। ये दोनों ही सार्वजनिक कर्तव्य हैं, जिन्हें न्यायाधीश को निभाना होता है। इसलिए विचारण न्यायालय को अपनी जड़ता छोड़नी चाहिए और उन सभी मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए जहाँ न्याय के लिए हस्तक्षेप ज़रूरी हो।

38. घायल गवाहों के शरीर पर लगी चोटों का कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। केवल सुझाव देना पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा यह अपने आप में एक झूठे मामले की ओर इशारा करता है। सभी गवाह करीबी रिश्तेदार हैं, इसलिए यह आशंका से परे है कि वे असली अपराधी का नाम बताने के बजाय, उन्हें निर्दोष जानते हुए भी आरोपियों को झूठा फंसा देंगे।

39. इस न्यायालय ने विवादित निर्णय और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का अध्ययन किया

है। निचली न्यायालय ने गवाहों की गवाही पर भरोसा करते हुए, भले ही उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया हो, यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्तों ने घायल व्यक्तियों पर हमला किया था। गवाहों के बयानों की समग्रता को देखते हुए, अवर न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को उचित नहीं कहा जा सकता है।

40. साक्ष्य विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि गवाह के बयान को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और गवाह के बयान के केवल एक वाक्य को लेकर निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए। इस प्रकार विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के अपराध के संबंध में अभिलेख पर उपलब्ध भौतिक साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया है और इस हद तक विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और विकृत है और इसलिए इसे उत्क्रामित कर दिया जाना चाहिए और रद्द किया जाना चाहिए।

41. इस प्रकार उपर्युक्त के मद्देनजर, उपरोक्त स्थापित कानूनी सिद्धांतों के प्रकाश में वर्तमान मामले की परिस्थितियों के विश्लेषण के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि विचारण न्यायालय ने विवादित निर्णय और आदेश पारित करने में गलती की है, इसलिए, यह अपील सफल होती है और इसे स्वीकार किया जाता है। सत्र परीक्षण संख्या 327/1994 में धारा 323/34, 504, 506, 308/34 आई.पी.सी. के तहत, थाना -रिसिया, जिला-बहराइच द्वारा दिनांक 30.07.1999 को पारित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया और उत्क्रामित कर दिया गया। अपीलकर्ता,

अर्थात् अपीलकर्ता संख्या 2 नबी उल्लाह, अपीलकर्ता संख्या-3, रफी उल्लाह और अपीलकर्ता संख्या-4 मुल्लिम को धारा 323/34, 506, 308/34 आई.पी.सी. के तहत आरोपों से बरी किया जाता है

42. अवर न्यायालय का अभिलेख, निर्णय और आदेश की प्रति सहित सूचनार्थ संबंधित न्यायालय को वापस भेजा जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 625

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 520 वर्ष 1999

प्रेम एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

दिवाकर सिंह, अजीत कुमार, पीके राय, उपेन्द्र प्रकाश पाठक, विश्व नाथ सिंह

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156 (3), 161 और 164 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 376 और 376 (2) (जी) - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा - 114 (जी) -

अपील - दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ - अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 2 के संबंध में जीवित रहती है क्योंकि अपीलकर्ता संख्या 1 और 3 की मृत्यु हो गई है - धारा 156 (3) के तहत आवेदन - एफआईआर - बलात्कार का अपराध - पीड़िता ने आरोप लगाया कि, उसके साथ आरोपी-अपीलकर्ता संख्या 1 ने बलात्कार किया, जबकि अन्य अपीलकर्ता संख्या 2 और 3 उसके पक्ष में थे - अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि, सत्र न्यायाधीश ने कई गलतियाँ कीं, जिसमें बचाव पक्ष के सबूतों पर विचार न करना, आवेदन दाखिल करने में देरी, सरकारी गवाहों की कमी और अभियोजन पक्ष के सबूतों में विरोधाभास शामिल हैं - और पीड़िता और आरोपी के बीच संपत्ति का विवाद था, जिससे झूठे आरोप लगे - सबूतों का मूल्यांकन - न्यायालय ने पाया कि - अभियोजन पक्ष ने पीड़िता, उसके पति और उसकी बेटी सहित कई गवाह पेश किए - इसके अलावा, मेडिकल जांच में पीड़िता पर कोई चोट नहीं पाई गई - अभियोजन पक्ष के मामले में कई विसंगतियाँ हैं, जिसमें घटना के दौरान प्रकाश का स्रोत, पीड़िता के सोने का स्थान और आरोपी की भूमिकाएं शामिल हैं - माना गया, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा - इसलिए, अपील स्वीकार करने योग्य है और दोषसिद्धि और सजा का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है। (पैरा - 39, 53, 55)

**अपील स्वीकार की गई। (ई-11)**

### उद्धृत वादों की सूची :

1. संतोष प्रसाद उर्फ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य, (2020) 3 एससीसी 443,
2. लालता प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1979 एससी 1276,
3. चरण सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1988) 3 अपराध 85 (पी एंड एच),
4. जहूर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1989 सीआरएलजे 1177 (सभी),
5. सकारिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 सीआरएलजे 1925 (एमपी),
6. महाराष्ट्र बनाम अब्दुल हफीस फारूकी, 1998 सीआरएलजे 3603 (एससी),
7. जोसेफ बनाम केरल राज्य, 2000 सी.आर.एल.जे. 2467 (एस.सी.),
8. संपद बनाम उड़ीसा राज्य, 2001 सीआरएलजे 793 (उड़ीसा),
9. उड़ीसा राज्य बनाम राम स्वैन एवं अन्य, 2007 सी.आर.एल.जे. 714 (उड़ीसा),
10. गोवर्धन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2006 सी.आर.एल.जे. 4118,
11. मानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 सीआरएलजे 201 (एमपी),

12. महाराष्ट्र राज्य बनाम रामेश्वर श्रीधर जवारे, 2008 सीआरएलजे 675 (बीओएम),

दोषी को चार माह का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

13. सुरेश गोविंदा नागदेवे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 सी.आर.एल.जे. 2943 (बॉम्बे)।

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

1. दिनांक 17.02.2014 के आदेश के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या-3, मोहन के संबंध में यह अपील, उसकी मृत्यु के पश्चात, उपशमित कर दी गई है और अपीलकर्ता संख्या-1, प्रेम के संबंध में भी, दिनांक 29.11.2016 के आदेश के अनुसार यह अपील उपशमित कर दी गई है। इसलिए, यह अपील केवल अपीलकर्ता संख्या-2, नंद किशोर के संबंध में ही बची हुई है।

2. जीवित अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत कुमार, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री अरविंद कुमार सिंह को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

3. यह अपील, मुकदमा अपराध संख्या-98/1992, धारा 376(2)(जी) आई.पी.सी., थाना टिकैत नगर, जिला बाराबंकी से उत्पन्न एस.टी. संख्या-99/1994 (राज्य बनाम प्रेम व अन्य) में विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, बाराबंकी द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 01.10.1999 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा प्रत्येक दोषी को दस वर्ष का कठोर कारावास एवं 2500/- रुपये का जुर्माना तथा जुर्माना अदा न करने पर प्रत्येक

#### (I) अपील के आधार-

4. अपीलकर्ताओं ने यह आधार लिया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के साक्ष्य पर विचार न करके स्पष्ट गलती की है; न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने में लगभग 9 दिन का अत्यधिक विलम्ब हुआ; कथित घटना के संबंध में कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की गई; सत्र न्यायाधीश ने देरी पर विचार न करके तथा बिना विवेक के अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराकर स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है; कथित अपराध का कोई सार्वजनिक गवाह नहीं था; अपीलकर्ताओं को पूर्व दुश्मनी के कारण मामले में झूठा फंसाया गया है; अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया है; अभियोक्त्री और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विसंगति थी; चक्षुदर्शी साक्षियों ने अभियोक्त्री के कथन का खंडन किया है, जिससे अभियोजन पक्ष का पूरा मामला गलत साबित होता है; धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान और साक्ष्य में गंभीर विरोधाभास था; अभियोक्त्री के कपड़ों को रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था; अपीलकर्ता (प्रेम और नंद किशोर) दोनों देवर हैं और मोहन अभियोक्त्री का ससुर है; सभी गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभासों को न समझकर विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है; अभियोक्त्री के गुप्तांग में कोई शुक्राणु नहीं पाया गया; अभियोक्त्री और अपीलकर्ताओं के बीच पारिवारिक विवाद था; अभियोक्त्री के गुप्तांग या शरीर पर कोई

चोट नहीं पाई गई; पीडब्लू-6, चिकित्सा अधिकारी ने बयान दिया है कि बलात्कार की कोई राय नहीं दी जा सकती; न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन दाखिल करने में देरी का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, जिससे अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी पर संदेह पैदा होता है; कथित गवाह छोटका, बहादुर और अन्य, जिन्होंने कथित तौर पर घटना देखी थी, उनका जानबूझकर गवाह के रूप में परीक्षण नहीं किया गया, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा को अपास्त किया जाए और अपीलकर्ता को बरी किया जाए।

#### (II) मामले के संक्षिप्त तथ्य-

5. अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार पीड़िता ने धारा 156(3) सीआरपीसी के अंतर्गत संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रार्थना पत्र दिया कि दिनांक 09/10.06.1992 की रात्रि में लगभग 12 बजे जब वह अपने दरवाजे पर सो रही थी तथा लालटेन जल रही थी तथा उसका पति सोहन लाल रिश्तेदारी में गया हुआ था, तभी आरोपी प्रेम मौके पर पहुंचा तथा उसके साथ दुष्कर्म करने लगा। उसने आरोपी को लात-घुंसी से पीटा तथा धक्का दिया, तब तक नंद किशोर व मोहन ने उसे पकड़ लिया। उसके शोर मचाने पर पड़ोसी वहां पहुंच गए तथा आरोपी भाग गए। पति के मौजूद न होने के कारण वह थाने नहीं जा सकी, जब उसका पति आया तो वह थाने गई। अतः आपसे अनुरोध है कि थाना टिकैत नगर को एफआईआर दर्ज कर मामले की जांच करने का निर्देश देने की कृपा करें।

6. उक्त आवेदन कथित घटना के आठ दिन बाद दिनांक 18.06.1992 को प्रस्तुत किया गया। मामला अपराध संख्या-98/1992 धारा 376 आईपीसी के अंतर्गत दर्ज किया गया। जांच अधिकारी (संक्षेप में 'आईओ') ने मामले की जांच की, साइट प्लान प्रदर्शक-6 तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद धारा 376 आईपीसी के अंतर्गत आरोप पत्र अदालत में प्रस्तुत किया गया। मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, जिसे अपर सत्र न्यायाधीश चतुर्थ, बाराबंकी की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया जिन्होंने दिनांक 07.06.1995 को अभियुक्त प्रेम के विरुद्ध धारा-376 आईपीसी के अंतर्गत और अभियुक्त नंद किशोर और मोहन के विरुद्ध धारा-376 सहपठित धारा-34 आईपीसी के अंतर्गत आरोप विरचित किए और सभी अभियुक्तों के विरुद्ध धारा-376(2)(जी) आईपीसी के अंतर्गत वैकल्पिक आरोप विरचित किए गए। अभियुक्तों ने आरोप से इनकार किया और सुनवाई की मांग की।

7. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया:-

|   |           |                          |
|---|-----------|--------------------------|
| 1 | पीडब्लू-1 | पीड़िता                  |
| 2 | पीडब्लू-2 | सोहन लाल, पीड़िता का पति |
| 3 | पीडब्लू-3 | मंटोरा, पीड़िता की बेटी  |
| 4 | पीडब्लू-4 | अरविंद प्रताप सिंह       |
| 5 | पीडब्लू-5 | गिरिधर प्रसाद गुप्ता     |
| 6 | पीडब्लू-6 | डॉ. चंद्र लेखा           |

8. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं:-

|   |             |                              |
|---|-------------|------------------------------|
| 1 | प्रदर्श क-1 | लिखित शिकायत                 |
| 2 | प्रदर्श क-2 | फर्द (ढिबरी/लालटेन)          |
| 3 | प्रदर्श क-3 | चिक एफ.आई.आर.                |
| 4 | प्रदर्श क-4 | कायमी केस जी.डी. कार्बन कॉपी |
| 5 | प्रदर्श क-5 | मूल जी.डी. की वीडिंग रिपोर्ट |
| 6 | प्रदर्श क-6 | नक्शा                        |
| 7 | प्रदर्श क-7 | चार्जशीट                     |
| 8 | प्रदर्श क-8 | मेडिकल रिपोर्ट               |

### (III) अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य/बयानों पर संक्षिप्त चर्चा-

9. पीडब्लू-1, पीड़िता ने बयान दिया है कि करीब 6 साल पहले गर्मी की एक रात करीब 12 बजे, वह सहन में चारपाई पर सो रही थी, उसकी बेटी व बेटा भी पास की दूसरी चारपाई पर सो रहे थे। ढिबरी जल रही थी, आरोपी प्रेम आया और उसकी साड़ी उठाकर उसके साथ दुष्कर्म करने लगा, वह जाग गई और उसे लात मारने लगी, इसके बाद आरोपी नंद किशोर और मोहन, जो प्रेम के साथ आए थे, ने उसे पकड़ लिया और प्रेम ने उसके साथ जबरदस्ती दुष्कर्म किया। वह रोने लगी, जिस पर तीनों आरोपी भाग गए। उसके रोने पर उसका बेटा और बेटी भी जाग गए, जिन्होंने आरोपियों को देखा और पहचान लिया। साक्षी ने अदालत में आरोपियों को पहचान लिया और आरोपी प्रेम की ओर इशारा करते हुए बयान दिया कि उसने उसके साथ दुष्कर्म किया था और नंद किशोर

और मोहन ने उसे पकड़ लिया था। घटना के समय उसने उन्हें अच्छी तरह से पहचान लिया था। उसका पति घर से बाहर रिश्तेदारी में गया हुआ था। कुछ दिनों बाद जब वह लौटा, तो उसने पूरी कहानी बताई, जो बाराबंकी गया और मजिस्ट्रेट के समक्ष एफआईआर दर्ज करने के लिए प्रार्थना पत्र दिया। साक्षी ने आवेदन पत्र, प्रदर्श क-1 पर अपने अंगूठे के निशान को पहचाना तथा यह कि टाइपिंग की गलती के कारण ढिबरी के स्थान पर लालटेन लिख दिया था, जिसे उसने सुधारा। उक्त आवेदन पत्र के आधार पर रिपोर्ट दर्ज की गई, जांच अधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया। उसने घटनास्थल बताया, जांच अधिकारी उसे जिला अस्पताल ले गए, जहां उसका चिकित्सकीय परीक्षण किया गया। ढिबरी की जांच की गई तथा उसे उसके पति की सुपुर्दगी में दिया गया। उसके शोर मचाने पर साक्षी श्रीमती छोटका, बहादुर (नेत्रहीन) व अन्य लोग भी मौके पर पहुंचे तथा उन्होंने घटना देखी।

10. प्रति-परीक्षा में इस साक्षी ने स्वीकार किया कि वह एफआईआर दर्ज कराने थाने नहीं गई थी। वह न्यायालय आई थी, अन्य किसी स्थान पर नहीं गई थी। *न्यायालय परिसर में उसने अधिवक्ता से मुलाकात की तथा उसे निर्देश दिया कि ऐसा केस तैयार करें जिसमें अभियुक्तों को जेल जाना पड़े तथा दोषसिद्ध होना पड़े।* उक्त वकील ने कागज टाइप किया था और उसके अंगूठे का निशान लिया था। *उसे आवेदन पढ़कर नहीं सुनाया गया।* उसने जांच अधिकारी को खाट दिखाई थी। घटना वाले दिन वह सो रही थी और सुबह 5:00 बजे उठी थी। वह रात 8:00 बजे सो गई थी। उसने आगे यह

भी बयान दिया कि वह अक्सर घर से बाहर सोती थी।

11. आगे की प्रति-परीक्षा में इस गवाह ने बयान दिया कि झोपड़ी के नीचे लालटेन जलाई गई थी। वह अपने दरवाजे से 20 कदम की दूरी पर खाट पर सो रही थी। *यह सच है कि वह झोपड़ी के नीचे सो रही थी। यह कहना गलत है कि वह सहन में सो रही थी। उसने आगे यह भी बयान दिया कि उसने किसी गवाह का नाम नहीं लिया है, कोई भी मौके पर नहीं आया था।* इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि आरोपी प्रेम के साथ कोई विवाद था। इस गवाह के अनुसार जांच अधिकारी ने घटना के दो दिन बाद ही उसकी मेडिकल जांच कराई थी। वह अपने पति के साथ वहां गई थी और मेडिकल जांच के बाद वह कोर्ट परिसर में गई थी। इस साक्षी ने आगे यह भी बयान दिया कि उसके ससुर की मौत से पहले से ही सभी अलग-अलग रह रहे थे। जमीन भी अलग-अलग हो गई थी। उसके ससुर ने अपने हिस्से की जमीन पर कब्जा कर लिया था। बरसाती की जमीन का बंटवारा हो गया था। *बरसाती की जमीन पर प्रेम और नंद किशोर खेती करते थे। वह उसमें हिस्सा मांग रही थी और वे उसे उसके ससुर की संपत्ति में हिस्सा नहीं दे रहे थे।* साक्षी ने इस बात से इनकार किया कि उसने केस दर्ज कराया है और मोहन को भी फंसाया है क्योंकि वह बाकी आरोपियों का दोस्त और मददगार था।

12. पीडब्लू-2, सोहन लाल, पीड़िता के पति ने बयान दिया है कि घटना वाले दिन वह रिश्तेदारी में गया था और 4-5 दिन बाद जब

वह लौटा तो उसकी पत्नी ने कहानी सुनाई थी। उसकी पत्नी न्यायालय परिसर में आई, आवेदन बोला और न्यायालय में प्रस्तुत किया। घटना के समय जलाई गई ढिबरी को जांच अधिकारी को दिखाया गया। ढिबरी का रिकवरी मेमो तैयार किया गया और उसके बाद उसे वापस कर दिया गया। गवाह ने रिकवरी मेमो प्रदर्शक-2 पर अपने अंगूठे के निशान को पहचाना। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि चूंकि आरोपी व्यक्ति बरसाती की संपत्ति में हिस्सा नहीं दे रहे थे, इसलिए उसने अपनी पत्नी के माध्यम से आरोपियों के विरुद्ध झूठी एफआईआर दर्ज कराई थी।

13. पी.डब्लू.-3, पीड़िता की पुत्री मंटोरा ने बयान दिया है कि कथित घटना के समय उसकी आयु लगभग 12-13 वर्ष थी। वह अपनी मां के पास दरवाजे पर लेटी हुई थी, ढिबरी जल रही थी। उसके पिता सोहन लाल रिश्तेदारी में गए हुए थे। तभी अभियुक्त प्रेम, नन्द किशोर व मोहन आ गए, मोहन ने उसकी मां का हाथ पकड़ लिया तथा अभियुक्त प्रेम ने उसकी मां के साथ गलत काम करना शुरू कर दिया। उसकी मां चिल्लाई, जिस पर वह जाग गई और उसने देखा कि अभियुक्त मोहन ने उसकी मां का हाथ पकड़ लिया था तथा प्रेम उसकी मां की सहमति के बिना उसके साथ गलत काम कर रहा था। नन्द किशोर दूर खड़ा था। जब वह चिल्लाई, तो अभियुक्तगण भाग गए। अभियुक्त प्रेम गलत काम करके भाग गया था तथा दो अन्य अभियुक्त भी भाग गए थे। बहादुर व छोटका अपने घरों से चिल्लाते हुए निकले थे तथा मौके पर नहीं आए थे। घटना के तीन दिन बाद उसके पिता घर आए



तथा उसकी मां ने पूरी कहानी बताई थी। जांच अधिकारी ने उससे पूछताछ की थी। घटना के तीन दिन बाद जब उसके पिता आये तो वह उसकी मां के साथ एफआईआर दर्ज कराने गये थे। उसकी मां उससे दो-चार कदम की दूरी पर सोई थी। बरसाती उसके दादा थे। उनके पिता चार भाई थे। उनके बड़े भाई की मृत्यु हो चुकी है। जब जांच अधिकारी उसके घर गये थे तो उसकी मां ने लालटेन दिखायी थी जिसे देखकर उसने वापस कर दिया था। आरोपी मोहन रिश्ते में उसका दादा था। उसके पिता की उम्र करीब 60-65 वर्ष थी। मोहन उसके पिता से बड़ा है। गवाह ने इस बात से इंकार किया कि चूंकि आरोपियों ने उसके चाचा सुन्दर की जमीन पर कब्जा कर रखा था और हिस्सा देने का इरादा नहीं था, इसलिए झूठी एफआईआर दर्ज करायी गयी।

14. पीडब्लू-4 कांस्टेबल अरविन्द कुमार सिंह ने एफआईआर प्रदर्श क-3 और कायमी केस जीडी प्रदर्श क-5 साबित किया है। उनके अनुसार उन्होंने एफआईआर दर्ज करायी थी और कायमी केस जीडी 15.07.1992 को तैयार की थी। प्रति-परीक्षा में इस साक्षी ने स्पष्ट किया कि एफआईआर दर्ज करने के संबंध में कोई आदेश नहीं था। घटना की जांच कर सूचना देने का आदेश था। उन्होंने एसओ के आदेश पर एफआईआर दर्ज कराई थी।

15. पीडब्लू-5 गिरधर प्रसाद गुप्ता, जांच अधिकारी ने बयान दिया है कि 15.07.1992 को यह मामला दर्ज हुआ था और उन्हें मामले की जांच सौंपी गई थी, जिसके बाद उन्होंने घटनास्थल का दौरा किया और सूचनादाता के

संकेत पर अपने हाथ से लिखावट व हस्ताक्षर से नक्शा प्रदर्श क-5 तैयार किया। ढिबरी को कब्जे में लेने के बाद उन्होंने उसे वापस कर दिया था और अपने हाथ से लिखावट व हस्ताक्षर से मेमो प्रदर्श क-2 तैयार किया था। उन्होंने गवाहों मंटोरा, श्रीमती छोटका, श्रीमती कुंवर, बहादुर, गंगा राम के बयान दर्ज किए थे और 24.07.1992 को आरोपियों को गिरफ्तार किया था। पीड़िता का मेडिकल परीक्षण कराया गया तथा धारा 164 सीआरपीसी के अंतर्गत उसका बयान दर्ज किया गया तथा जांच पूरी होने के बाद आरोप पत्र प्रदर्श क-7 प्रस्तुत किया।

16. प्रति-परीक्षा के दौरान इस साक्षी ने स्वीकार किया कि उसने नक्शा नज़री में दर्शाए गए स्थानों की दूरी नहीं बताई है। साक्षी झोपड़ी की लंबाई-चौड़ाई नहीं बता सका। वह यह नहीं बता सका कि दरवाजे और झोपड़ी से अभियोक्त्री की चारपाई की दूरी कितनी है। वह यह नहीं बता सका कि अभियुक्तों के घर से पीड़िता के घर की दूरी कितनी है। उसने यह भी बयान दिया कि उसे स्थान-सी पर दीवार पर बनी ढिबरी मिली थी जो जमीन से 4 फीट ऊपर थी। लालटेन के बारे में कुछ नहीं बताया गया है। इस साक्षी ने स्वीकार किया है कि जांच अधिकारी ने दिनांक 07.07.1992 को न्यायालय को एक रिपोर्ट भेजी थी जिसमें पीड़िता के पति के बयान के आधार पर कहा गया था कि उसके पिता बरसाती की डेढ़ माह पहले मृत्यु हो गई थी। तेरही के दिन वह बरसाती की संपत्ति में हिस्सा चाहता था, प्रेम और नंद किशोर ने हिस्सा नहीं दिया और प्लॉट पर कब्जा कर लिया, इसलिए पीड़िता

दुश्मनी के कारण प्रेम और नंद किशोर को आरोपी बनाना चाहती है। गवाह ने आगे कहा कि पीड़िता की पेटिकोट और साड़ी को कब्जे में नहीं लिया गया और रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि उसने सूचनादाता की मिलीभगत से झूठा और फर्जी आरोप पत्र पेश किया था।

17. पी.डब्ल्यू.-6, डॉ. चंद्र लेखा ने यह बयान दिया है कि 29.07.1992 को उन्होंने साक्षी की मेडिकल जांच की थी। पीड़िता के शरीर पर कोई चोट नहीं थी। हाइमन पहले से ही फटी हुई थी और ठीक हो चुकी थी तथा दो उंगलियां आसानी से उसके गुप्तांग में प्रवेश कर रही थीं। साक्षी ने पहले ही यह राय दे दी है कि बलात्कार के संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकती क्योंकि पीड़िता संभोग की आदी थी।

18. प्रति-परीक्षा में इस साक्षी ने यह बयान दिया कि पीड़िता की उम्र को देखते हुए उसे उसकी उम्र का पता लगाने के लिए एक्स-रे या जांच के लिए नहीं भेजा गया। उसने यह भी बयान दिया कि न तो उसने कोई पूरक मेडिकल रिपोर्ट तैयार की थी और न ही वीर्य परीक्षण की कोई रिपोर्ट रिकॉर्ड में है। घटना के समय पीड़िता के शरीर पर कोई आंतरिक या बाहरी चोट नहीं पाई गई थी और बलात्कार का कोई निशान भी नहीं मिला था।

19. अभियोजन साक्ष्य के समापन के पश्चात गवाहों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें अभियुक्त प्रेम और नंद किशोर ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अभियोग, आरोप और

मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य से इनकार किया और कहा कि सूचनादाता और उसका पति उसके पिता की संपत्ति में हिस्सा मांग रहे थे। इस दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया।

20. अभियुक्त मोहन ने भी अभियोगों, आरोप, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से इनकार किया और आगे कहा कि वह अभियुक्त नंद किशोर और प्रेम के साथ उठता-बैठता था, इसलिए उसे झूठा फंसाया गया।

21. साक्ष्य पर विचार करने और बहस सुनने के बाद, अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 376(2)(जी) के अंतर्गत दोषी ठहराया गया और प्रत्येक अभियुक्त को दस साल के कठोर कारावास और 25,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई।

22. व्यथित होने के कारण यह अपील योजित की गई है।

23. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार एफआईआर दर्ज करने में अनावश्यक विलम्ब हुआ है। पांच दिन की देरी के बाद एफआईआर दर्ज की गई है तथा कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अभियोजन पक्ष का स्पष्टीकरण यह है कि चूंकि पीड़िता का पति सोहन लाल घर से बाहर था तथा रिश्तेदारी में गया हुआ था, इसलिए एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकी। उल्लेखनीय है कि पीड़िता घर में अकेली नहीं थी। उसकी पुत्री व पुत्र भी वहां मौजूद थे, इसलिए वह अपने बच्चों के साथ संबंधित थाने में जाकर बिना किसी अनावश्यक विलम्ब के एफआईआर दर्ज

कराने में सक्षम थी। हालांकि यह साबित नहीं हो पाया है कि उसका पति किस रिश्तेदारी में गया था। यदि वह वास्तव में रिश्तेदारों के यहां गया था, तो संबंधित रिश्तेदार से उसके पति की उसके घर पर उपस्थिति साबित करने के लिए पूछताछ की जा सकती थी।

#### (IV) दुश्मनी-

24. तथ्य के गवाह पी.डब्लू.-1, 2 व 3 ने स्वीकार किया है कि दोनों पक्षों के बीच संपत्ति का विवाद था। पी.डब्लू.-1, पीड़िता ने स्वीकार किया है कि उसके ससुर बरसाती ने भी सम्पत्ति में हिस्सा लिया था तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् अभियुक्तगण ने उस पर कब्जा कर लिया। वह अपना हिस्सा मांग रही थी, किन्तु अभियुक्तगण हिस्सा नहीं दे रहे थे तथा उस पर कब्जा नहीं दे रहे थे।

25. पी.डब्लू.-2, सोहन लाल ने स्वीकार किया है कि उसके पिता की भूमि को लेकर विवाद था, यद्यपि उसने इस बात से इन्कार किया है कि रंजिश के कारण अभियुक्तगण को झूठा फंसाया गया है।

26. पी.डब्लू.-3, पीड़िता की पुत्री मंटोरा ने भी स्वीकार किया है कि अभियुक्त मोहन उसके रिश्ते में दादा है तथा उसकी आयु लगभग 60-65 वर्ष है। इस साक्षी ने भी सम्पत्ति विवाद से इन्कार किया है। रंजिश दोधारी हथियार है। रंजिश के कारण अपराध हो भी सकता है तथा किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठे व मनगढ़ंत मुकदमे में फंसाया भी जा सकता है। इस मामले में तथ्यों, परिस्थितियों, चिकित्सकीय और

मौखिक साक्ष्यों तथा मूल मामले में सुधार को ध्यान में रखते हुए, सुनवाई के दौरान यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दुश्मनी के कारण आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाया गया था, क्योंकि पीड़िता अपने ससुर बरसाती की जमीन के हिस्से का दावा कर रही थी, जो दोनों आरोपियों के कब्जे में थी।

#### (V) प्रकाश का स्रोत-

27. अभियोजन पक्ष का यह मामला है कि पीड़िता और गवाहों ने अभियुक्तों को ढिबरी या लालटेन की रोशनी में पहचाना। ढिबरी जल रही थी या लालटेन जलाई गई, इस बारे में गवाहों के साक्ष्य में अंतर है। पी.डब्लू.-1 ने पृष्ठ-1 और 3 पर यह बयान दिया है कि ढिबरी जलाई गई थी और उसने झोपड़ी की दीवार पर रखी ढिबरी की रोशनी में अभियुक्तों को पहचाना, लेकिन उसी गवाह ने पृष्ठ-7 पर यह बयान दिया है कि झोपड़ी के नीचे लालटेन जलाई गई थी।

28. पी.डब्लू.-2 पीड़िता का पति सोहन लाल मौके पर मौजूद नहीं था, लेकिन उसके अनुसार अपराध के समय ढिबरी जलाई गई थी।

29. पी.डब्लू.-3, पीड़िता की पुत्री मंटोरा ने पृष्ठ-1 पर यह बयान दिया है कि ढिबरी जलाई गई थी, जबकि इसी साक्षी ने पृष्ठ-3 पर यह बयान दिया है कि लालटेन जलाई गई थी तथा जब जांच अधिकारी मौके पर गए थे, तो उनकी मां ने लालटेन उन्हें दिखाई थी। उल्लेखनीय है कि जांच अधिकारी के अनुसार उन्हें ढिबरी दिखाई गई थी तथा उन्होंने ढिबरी के संबंध में

फर्द तैयार की थी तथा ढिबरी पीड़िता को वापस कर दी गई थी।

30. पी.डब्ल्यू.-5, जांच अधिकारी के अनुसार उन्हें बताया गया था कि अपराध के समय ढिबरी जलाई गई थी। इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि उन्हें कोई लालटेन दिखाई गई थी। इस प्रकार, प्रकाश का स्रोत क्या था, यह संदेह से मुक्त नहीं है।

#### (VI) सोने का स्थान-

31. आरोप के अनुसार पीड़िता अपने घर के दरवाजे पर सो रही थी लेकिन पी.डब्ल्यू.-1, पीड़िता ने पृष्ठ-1 पर बयान दिया है कि वह अपनी बेटी और बेटे की खाट के पास एक अलग खाट पर सहन में सो रही थी, जिस पर वे सो रहे थे। पीड़िता के अनुसार उसके साथ अपराध लगभग 12 बजे किया गया था लेकिन इस गवाह ने पृष्ठ-5 पर बयान दिया है कि घटना के दिन वह रात 08:00 बजे सो गई थी और सुबह 05:00 बजे जाग गई थी। इस न्यायालय के अनुसार, यदि ऐसी घटना किसी महिला के साथ होती, तो वह ऐसी घटना के बाद शायद ही सोती और सुबह 05:00 बजे उठती। पीड़िता पी.डब्ल्यू.-1 ने पृष्ठ-7 पर बयान दिया है कि वह छप्पर के नीचे सो रही थी। यह कहना गलत है कि वह सहन में सो रही थी। पी.डब्ल्यू.-3 मंटोरा ने बयान दिया है कि वह दरवाजे पर अपनी मां के पास दूसरी चारपाई पर सो रही थी। जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.-5 के अनुसार पीड़िता सहन में सो रही थी तथा उसने सहन में पीड़िता की चारपाई भी दिखाई है। इस प्रकार तथ्य के गवाहों के साक्ष्य में अंतर के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला

गया है कि अभियोजन पक्ष घटनास्थल तथा कथित अपराध के समय पीड़िता कहां सो रही थी, यह स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा है।

32. घटना के तरीके से न्यायालय को यह विश्वास नहीं होता कि ऐसी परिस्थितियों में पीड़िता के साथ ऐसा अपराध किया जा सकता है। तथ्य के गवाहों के अनुसार पीड़िता के बच्चे पीड़िता से 2-4 कदम की दूरी पर सो रहे थे। ऐसे में कोई ऐसा अपराध करने की हिम्मत कैसे कर सकता है। अभिलेख के अनुसार यह घटना झूठी प्रतीत होती है तथा पूरी कहानी न्यायालय को विश्वास नहीं दिलाती।

33. यह भी सिद्ध हुआ है कि तीन अभियुक्तों में से दो अभियुक्त सगे भाई हैं। इस न्यायालय के अनुसार दो सगे भाई एक साथ ऐसा अपराध नहीं कर सकते। इस आधार पर भी अभियोजन की कहानी संदिग्ध प्रतीत होती है।

#### (VII) एकमात्र जीवित अभियुक्त नन्द किशोर की भूमिका-

34. यह सिद्ध हुआ है कि अभियुक्त मोहन और प्रेम की मृत्यु हो चुकी है। अभियुक्त प्रेम को पीड़िता के साथ बलात्कार करने की भूमिका सौंपी गई थी तथा पीड़िता को पकड़ने की भूमिका अभियुक्त मोहन को सौंपी गई है। एफआईआर के अनुसार नन्द किशोर और मोहन ने पीड़िता को पकड़ा था तथा प्रेम ने उसके साथ बलात्कार किया जबकि पीड़िता की निशानदेही पर तैयार की गई साइट प्लान के अनुसार कथित अपराध स्थान-ए पर किया गया था तथा उसके बच्चे स्थान-बी पर कुछ कदम

की दूरी पर सो रहे थे तथा दो अभियुक्त स्थान-डी पर लगभग चार कदम की दूरी पर खड़े थे।

35. इस संबंध में तथ्य के साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करना उचित होगा। पी.डब्लू.-1, पीड़िता ने यह बयान दिया है कि नन्द किशोर और मोहन ने उसे पकड़ लिया था और प्रेम ने उसके साथ बलात्कार किया था जबकि पी.डब्लू.-3, पीड़िता की पुत्री के अनुसार अभियुक्त मोहन ने पीड़िता के हाथ पकड़ लिए थे और अभियुक्त प्रेम ने उसकी माँ के साथ बलात्कार किया था। इस साक्षी ने अभियुक्त नन्द किशोर की कोई भूमिका नहीं बताई है। उसने पृष्ठ-2 पर बयान दिया है कि नन्द किशोर कुछ दूरी पर खड़ा था और उसकी माँ के साथ गलत काम करने के बाद दोनों अभियुक्त भाग गए।

36. इस न्यायालय के अनुसार पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-3 के साक्ष्य में भारी भिन्नता है। यदि वहाँ तीन अभियुक्त होते तो तीनों ही अभियुक्त भाग जाते, केवल दो नहीं।

37. इस मामले में दो स्वतंत्र चक्षु-दर्शी साक्षी, छोटका और बहादुर प्रस्तुत किए गए हैं, लेकिन उनका परीक्षण नहीं किया गया है, इस प्रकार पीड़िता के साक्ष्य को किसी स्वतंत्र साक्ष्य से समर्थन नहीं मिलता है। यहां तक कि उसके बेटे से भी पूछताछ नहीं की गई है। इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(जी) का संदर्भ देना उचित होगा:-

**“114. न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है।**  
न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है, जिसके बारे में उसे लगता है कि वह घटित हुआ है, प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य क्रम को ध्यान में रखते हुए, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में।

X X X X X X

(छ) वह साक्ष्य जो पेश किया जा सकता है और पेश नहीं किया जाता है, अगर पेश किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो उसे रोके रखता है।”

38. यह भी उल्लेखनीय है कि पी.डब्लू.-1 ने साक्ष्य में पृष्ठ-4 पर यह बयान दिया है कि उसने अपने वकील को ऐसा मामला तैयार करने का निर्देश दिया था, जिससे अभियुक्त को जेल भेजा जा सके और उसे दंडित किया जा सके। इसके बाद वकील ने एक कागज टाइप किया और उसके अंगूठे का निशान लिया। आवेदन की विषय-वस्तु उसे पढ़कर नहीं सुनाई गई। इस प्रकार यह साबित होता है कि एफआईआर की विषय-वस्तु पीड़िता की विषय-वस्तु और तथ्य नहीं है, बल्कि अनुचित देरी के बाद विधिक सहायता से अनुचित परामर्श के बाद एफआईआर तैयार की गई थी। इसलिए इस तरह की देरी से अभियुक्तों के साथ अन्याय होता है। यह साबित हो गया है कि अभियुक्त आपराधिक प्रकृति के नहीं थे, वे सज्जन व्यक्ति थे और उन्हें बरसाती और

सुंदर की संपत्ति और हिस्से को लेकर दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था।

धारा 376 आईपीसी के अंतर्गत अपीलकर्ता की सजा को निरस्त कर दिया गया।

#### (VIII) निष्कर्ष-

39. संतोष प्रसाद @ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य, (2020) 3 एससीसी 443 में आरोप लगाया गया कि घर में जबरन घुसने का अपराध करने के बाद आरोपी ने एक विवाहित महिला के साथ बलात्कार किया। अभियोक्त्री के बयान में भौतिक विरोधाभास थे। न तो अभद्र गवाह और न ही मेडिकल गवाह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन कर रहा था। एफएसएल रिपोर्ट भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं कर रही थी। दी गई शिकायत के बारे में अभियोक्त्री के बयान में भिन्नता थी। अभियोक्त्री "सर्वश्रेष्ठ गवाह" बनने की परीक्षा पास करने में विफल रही। एफआईआर दर्ज करने में भी देरी हुई। जमीन को लेकर दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी/विवाद भी था। कोई अन्य सहायक साक्ष्य नहीं होने पर आरोपी को संदेह का लाभ दिया गया और दोषसिद्धि को निरस्त कर दिया गया।

40. लालता प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1979 एससी 1276, यह स्थापित नहीं किया जा सका कि अभियोक्त्री के साथ कभी भी अभियुक्त द्वारा उसकी इच्छा के विरुद्ध यौन संबंध बनाए गए थे। दूसरी ओर, डॉक्टर का साक्ष्य था कि घटना के बाद जब उसकी जांच की गई, तो डॉक्टर ने पाया कि उसकी योनि की झिल्ली फटी हुई थी और उसके साथ किसी बलात्कार या जबरदस्ती संभोग का कोई संकेत नहीं था। ऐसा होने पर,

41. चरण सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1988) 3 क्राइम 85 (पी एंड एच) में यह 16 वर्ष से अधिक उम्र की लड़की का मामला था, जिसके साथ कथित रूप से बलात्कार किया गया था। इस मामले में भी सवाल यह था कि जब उसने घटना के दौरान अपनी पीठ पर कुछ चोटों को स्वीकार किया और जब वे नहीं मिलीं, तो क्या किया जाना था। हालांकि, महिला डॉक्टर ने उसकी जांच की और चिकित्सकीय जांच के दौरान उसके गुप्तांगों या शरीर पर कोई चोट नहीं पाई। योनि में कोई कोमलता, सूजन या खून नहीं पाया गया। उसने यह भी पाया कि योनि में दो उंगलियां आसानी से डाली जा सकती हैं। प्रति-परीक्षा के दौरान, उसने सही स्वीकार किया कि अभियोक्त्री को योनि में कोमलता और सूजन होती, यदि उसके साथ दो युवा लड़कों ने बलात्कार किया होता। घटना और उसकी चिकित्सकीय जांच के बीच के अंतराल ने किसी भी घर्षण के ठीक होने की संभावना को खारिज कर दिया। संदेह का लाभ देते हुए आरोपियों को बरी कर दिया गया।

42. जहूर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1989 सी.आर.एल.जे. 1177 (इला) में डॉक्टर ने लड़की के गुप्तांगों पर कोई ताज़ा चोट नहीं पाई। हाइमन पहले से फटी हुई पाई गई और ठीक हो गई। इसलिए, आरोप साबित नहीं हुआ।

43. सकारिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 सी.आर.एल.जे. 1925 (म.प्र.) में एक विवाहित

महिला पर बलात्कार का आरोप लगाया गया था, जिसे कथित तौर पर घटनास्थल की ओर घसीटा गया था और फिर बलात्कार किया गया था, लेकिन जहां तक वीर्य के दाग और योनि में शुक्राणुओं की उपस्थिति का सवाल है, चिकित्सा जांच की रिपोर्ट नकारात्मक थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके शरीर पर एक खरोंच तक नहीं थी और आरोपी को बरी कर दिया गया था।

**44. महाराष्ट्र बनाम अब्दुल हफीस फारूकी, 1998 सी.आर.एल.जे. 3603 (एस.सी.)** में, आठ व्यक्तियों पर एक लड़की के साथ बारी-बारी से दो बार बलात्कार करने और लड़की को चलती ट्रेन से धक्का देने का आरोप लगाया गया था। हालांकि, जब लड़की के शरीर पर कोई गंभीर चोट नहीं पाई गई और साक्ष्य से पता चला कि अभियोक्त्री के आरोपी के साथ स्वेच्छा से जाने की संभावना थी, तो आरोपी को बरी करना उचित पाया गया।

**45. जोसेफ बनाम केरल राज्य, 2000 सी.आर.एल.जे. 2467 (एससी)** में, अभियुक्त की धोती पर खून या वीर्य के धब्बे नहीं थे और पीड़िता के शरीर के निजी अंग पर कोई चोट नहीं लगी थी। दोषसिद्धि इस तथ्य से साबित करने की कोशिश की गई कि योनि स्मीयर की जांच में वीर्य और शुक्राणुओं की मौजूदगी की पुष्टि हुई। यह माना गया कि यह बलात्कार के अपराध के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार नहीं था और अभियुक्त संदेह के लाभ के आधार पर बरी होने का हकदार था।

**46. संपद बनाम उड़ीसा राज्य, 2001 सी.आर.एल.जे. 793 (ओआरआई)** में, आरोपियों के विरुद्ध सामूहिक बलात्कार का आरोप था, जो कथित तौर पर पीड़िता को चाकू की नोंक पर जबरन उठाकर पास के नदी तट पर ले गए थे और उसके साथ यौन संबंध बनाए थे, लेकिन मौके पर या अभियोक्त्री की चिकित्सा जांच के दौरान जबरन संभोग या हिंसा का कोई निशान नहीं पाया गया था। यह निर्धारित किया गया कि उचित साक्ष्य के अभाव में उन्हें धारा 376(2)(जी) के अंतर्गत दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

**47. उड़ीसा राज्य बनाम रामा स्वैन और अन्य, 2007 सी.आर.एल.जे. 714 (ओआरआई)** में आरोपियों पर अभियोक्त्री के साथ एक के बाद एक जबरन बलात्कार करने का आरोप था, लेकिन साक्ष्यों से पता चला कि पीड़िता और आरोपियों के बीच आरोपियों द्वारा खेती की गई जमीन पर पीड़िता के मवेशियों द्वारा फसल को नुकसान पहुंचाने के बारे में विवाद था। पीड़िता के कपड़ों पर वीर्य का कोई दाग नहीं पाया गया। इस प्रकार अभियोक्त्री के साक्ष्य ने विश्वास पैदा नहीं किया और दोषमुक्ति का निर्णय बरकरार रखा गया।

**48. गोवर्धन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2006 सी.आर.एल.जे. 4118** में, पक्षकार में अतीत के संबंध अच्छे नहीं थे और एक दूसरे के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज कराई थी। मेडिकल रिपोर्ट अभियोक्त्री द्वारा दिए गए संस्करण की पुष्टि नहीं करती थी। यह निर्धारित किया गया कि अपराध साबित नहीं हुआ और दोषसिद्धि अनुचित थी।

49. इसी प्रकार, मेडिकल रिपोर्ट का समर्थन न करने के कारण, **मानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 सी.आर.एल.जे. 201 (मध्य प्रदेश)** में, अभियुक्त की दोषसिद्धि को निरस्त किया गया क्योंकि अभियोजन पक्ष का मामला मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं था।

50. **महाराष्ट्र राज्य बनाम रामेश्वर श्रीधर जावरे, 2008 सी.आर.एल.जे. 675 (बीओएम)** में, अभियुक्तों पर 16 वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार करने का आरोप लगाया गया था। मेडिकल रिपोर्ट और रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट अभियोक्त्री के साक्ष्य के विपरीत थी। यह निर्धारित किया गया कि झूठे आरोप की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है और अभियुक्त को बरी किया जाना चाहिए।

51. **सुरेश गोविंदा नागदेवे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 सी.आर.एल.जे. 2943 (बीओएम)** में, आरोप यह था कि अभियोक्त्री के साथ तीन अभियुक्तों द्वारा बलात्कार किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि रात में, अपराध एक खुले मैदान में किया गया था, लेकिन अभियोक्त्री के निजी अंग या पीठ पर कोई चोट नहीं पाई गई और डॉक्टर यौन संभोग के सिद्धांत की पुष्टि नहीं कर सके। इसी तरह, अभियुक्त के निजी अंगों या शरीर पर कोई संगत चोट नहीं थी। संदेह का लाभ देते हुए अभियुक्तगणों को दोषमुक्त किया गया।

52. उपरोक्त सभी न्यायिक निर्णय, जीवित अपीलकर्ता के पक्ष में तथा अभियोजन पक्ष के विरुद्ध लागू होते हैं।

53. उपरोक्त विवेचना के आधार पर इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन नहीं किया है तथा पीड़िता के साक्ष्य को सत्य मानकर बिना किसी आधार के अभियुक्तगणों को दोषी करार देते हुए दण्डित कर दिया। अतः अपील स्वीकार किए जाने योग्य है।

54. तदनुसार अपील स्वीकृत की जाती है।

55. विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, बाराबंकी द्वारा पारित दिनांक 01.10.1999 का आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि व दण्डादेश निरस्त किया जाता है। जीवित अभियुक्त को तत्काल रिहा किया जाए, यदि वह जेल में है, तथा किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित नहीं है।

56. निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ इस निर्णय की एक प्रति संबंधित न्यायालय को आवश्यक अनुपालन एवं दाखिल दफ्तर करने हेतु भेजी जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 636

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.09.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 586 वर्ष 2003

दया राम पासी

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षी



**अपीलकर्ता के अधिवक्ता:**

निशा श्रीवास्तव

**विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

क. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 395 और 397-दोषसिद्धि को चुनौती- पीडब्लू1, पीडब्लू2, पीडब्लू3 और पीडब्लू4 जो इस तथ्य के गवाह हैं, ने लगातार बयान दिया है कि उस दिन उनके घरों में डकैती की घटना हुई थी- पीडब्लू1 और पीडब्लू2 ने डकैती कारित करने में वर्तमान अपीलकर्ता की संलिप्तता के संबंध में कुछ नहीं कहा है- पीडब्लू3 ने खुली न्यायालय में आरोपी की पहचान की है इसी तरह पीडब्लू4 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी, जो न्यायालय में मौजूद है, वह व्यक्ति था जिसने अपने घर और पड़ोस में डकैती की थी- जिला जेल में एक पहचान परेड आयोजित की गई थी जहां दोनों ने आरोपी की सही पहचान की- बचाव पक्ष ने तर्क दिया कि पहचान परेड कई महीनों के अंतराल के बाद की गई है और यह कि इतने लंबे समय तक चेहरे की याददाश्त बनाए रखना संभव नहीं है, इसलिए अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता, लेकिन उनके चेहरों को पर्याप्त रूप से देखने के लिए प्रकाश के स्रोत थे- इसके अलावा, जब गंभीर प्रकृति की कोई घटना होती है, तो पीड़ित को जीवन भर इसकी ज्वलंत स्मृति बनी रह सकती है- इस प्रकार, खुली न्यायालय में अभियुक्त की पहचान एक ठोस साक्ष्य है- जांच के दौरान पहचान परेड का आयोजन, हालांकि साक्ष्य का एक बहुत ही

महत्वपूर्ण हिस्सा है, अधिक से अधिक एक पुष्टिकरण मूल्य है- ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि उनके पास अभियुक्त को झूठा फंसाने का कोई कारण था- अभियुक्त का नाम एफआईआर में नहीं था और वह दूसरे गांव का निवासी है- किसी भी पूर्व दुश्मनी या किसी भी कारण का सुझाव भी नहीं है जो गवाहों को अभियुक्त को डकैतों में से एक के रूप में गलत तरीके से पहचानने या अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए पहचान के साक्ष्य पर संदेह करने के लिए प्रेरित कर सके- इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विस्तार से विचार किया है और बचाव पक्ष की ओर से व्यवस्थित रूप से पेश किए गए सभी तर्कों को लिया है और आरोपों को उचित संदेह से परे साबित पाया है। (पैरा 1 से 19)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. संपत तातिया शिंदे बनाम महाराष्ट्र (1974) एससीसी सीआरआई 382
2. सुरेन्द्र नारायण उर्फ मुन्ना पांडेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1998) एससी आपराधिक नियम 508

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा पारित)

1. अपीलार्थी की विद्वान अधिवक्ता श्रीमती निशा श्रीवास्तव तथा राज्य की ओर से विद्वान

ए.जी.ए. श्री युगल किशोर को सुना गया तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. इस आपराधिक अपील के माध्यम से एकमात्र अपीलकर्ता, दया राम पासी, ने अपराध संख्या-10/1991, धारा 395/397 भारतीय दंड संहिता, थाना-राम नगर, जिला-बाराबंकी से उत्पन्न एस.टी. संख्या 192/1993 में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 29, बाराबंकी द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.03.2008 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषी करार देते हुए 10,000/- रुपये के अर्थदंड सहित सात वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. इस अपील से संबंधित तथ्य इस प्रकार हैं:-

\*अभियोजन पक्ष के अनुसार प्रथम सूचनादाता भाई लाल ने हस्तलिखित तहरीर के आधार पर एफ.आई.आर. दर्ज कराई। तहरीर में कहा गया कि बीती रात करीब 1:00 बजे कुछ चोर बांस की मदद से छत पर चढ़ गए और चोरी करने के लिए अंदर घुस आए। कुछ शोर सुनकर उनकी पत्नी जाग गई और शोर मचा दिया। प्रथम सूचनादाता ने उन्हें पकड़ने की कोशिश की, लेकिन उन्होंने अपने डंडे से उसे पीट दिया; वे सात व्यक्ति थे। प्रथम सूचनादाता लालटेन की रोशनी में उनके चेहरे देख सकता था; उन्होंने बरामदे में लेटे उसके ससुर की भी पिटाई की। वे सोने और चांदी से बनी कई वस्तुएं (जैसा कि तहरीर में विस्तार से बताया गया है) लूट ले गए। उनके घर में डकैती

डालने के बाद वे उनके पड़ोस में रहने वाले माया राम और सतगुरु के घर में घुस गए। प्रथम सूचनाकर्ता माया राम, सतगुरु, मुनेश्वर प्रसाद, हिंसित लाल व अन्य कई ग्रामीण शोर मचाने पर एकत्र हुए, सभी ने डकैतों को उनका सामान ले जाते देखा। जब ग्रामीणों ने उनका पीछा करने की कोशिश की तो उन्होंने उन पर हथगोले फेंके।

\*इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या-10/1991, धारा 459 आईपीसी के अंतर्गत पंजीकृत कर जांच की गई, जिसमें एक आरोपी दया राम पासी के विरुद्ध धारा-395 व 397 आईपीसी के अंतर्गत पूरक आरोप पत्र दाखिल कर आरोपित किया गया।

\*जांच अधिकारी ने घटनास्थल पर जाकर घटनास्थल का नक्शा बनाया, लालटेन, टार्च, बांस को कब्जे में लेकर अलग-अलग जब्ती ज़ापन तैयार किए, ईश्वरदीन, भाई लाल व अरविंद कुमार की मेडिकल जांच रिपोर्ट एकत्र की; संदिग्ध अभियुक्तों को जिला कारागार, बाराबंकी में पहचान परीक्षण के लिए रखा गया तथा वर्तमान अभियुक्त दया राम पासी की पहचान गवाहों द्वारा की गई तथा उसके विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया।

\*अभियुक्त पर मुकदमा चलाया गया तथा उसे धारा-395 सपठित 397 आई.पी.सी. के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया तथा उसे सात वर्ष के कठोर कारावास तथा 10,000/- रुपये के अर्थदण्ड की सजा सुनाई गई। अब दोषी अपीलकर्ता इस अपील में इस न्यायालय के समक्ष है।

4. अभियोजन पक्ष के कागजात जैसे तहरीर की फोटोकॉपी, पहचान परीक्षण की प्रति, एफआईआर, आरोप पत्र, स्थल मानचित्र, एक्स-रे रिपोर्ट तथा चोट रिपोर्ट प्रस्तुत करने के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष ने पी.डब्लू.1- रमा देवी उर्फ फूलमती, पी.डब्लू.2- अरविन्द कुमार तथा पी.डब्लू.4-माया राम को प्रत्यक्षदर्शी के रूप में; पी.डब्लू.3- भाई लाल (प्रथम सूचनादाता और प्रत्यक्षदर्शी), पी.डब्लू.5- एस.आई. ओम प्रकाश (जांच अधिकारी), पी.डब्लू.6- एस.आई. रघुनंदन प्रसाद (जांच अधिकारी) और पी.डब्लू.7- डॉ. मदन लाल, को परीक्षित किया।

5. बचाव पक्ष के तर्कों पर आगे बढ़ने से पहले अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा दी गई मौखिक गवाही का संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी होगा।

**\*पी.डब्लू.1- राम देवी उर्फ फूलमती** ने कहा है कि वह अपने बच्चों के साथ छत पर सो रही थी। डकैत ऊपर चढ़ गए और उससे दरवाजा खोलने को कहा। उसने हिलने से इनकार कर दिया। उन्होंने दरवाजा तोड़ दिया और उसके साथ मारपीट करने और उसे अंदर खींचने की कोशिश की। वह किसी तरह खुद को छुड़ाने में कामयाब रही और जमीन पर कूद गई। वे कुल पांच थे। उन्होंने अंदर से मुख्य दरवाजा खोला। बाहर खड़े डकैत अंदर घुस आए। उन्होंने उसके पति पर हमला किया; 800 रुपये नकद, 1 लाख रुपये मूल्य के चांदी और सोने के आभूषण लूट लिए; शुरु में उसके पति ने उन्हें उस स्थान के बारे में बताने से इनकार कर दिया, जहां आभूषण आदि सुरक्षित रखे गए थे, लेकिन जब उन्होंने उसे मिट्टी का तेल डालकर

आग लगाने की धमकी दी, तो उसके पति ने जगह बताई और उन्होंने आभूषण निकाल लिए। उनके पास आग्नेयास्त्र और हथगोले थे; वह उन्हें पहचान नहीं सकी क्योंकि वे सीधे उसके चेहरे पर रोशनी डाल रहे थे।

**\*पी.डब्लू.2- अरविंद कुमार** ने कहा है कि उसने डकैतों को डकैती डालते देखा। उन्हें उन्होंने देख लिया और उन्होंने उन पर हथगोले फेंके और उनके विस्फोट से वह घायल हो गया। वह उनमें से किसी को भी नहीं पहचान सका।

**\*पी.डब्लू.3- भाई लाल (प्रथम सूचनादाता)** ने अभियोजन पक्ष की कहानी और पी.डब्लू.1 के रूप में उनकी पत्नी द्वारा दिए गए साक्ष्य का समर्थन करते हुए कहा कि डकैत उनकी छत पर चढ़कर अंदर घुस आए। उन्होंने मुख्य द्वार खोला और उन्हें बंधक बना लिया। 5 या 6 व्यक्ति अंदर थे और कुछ बाहर थे। उन्होंने उसके साथ मारपीट की और उसके सिर पर चोटें पहुंचाईं। उन्होंने उसे मिट्टी का तेल डालकर आग लगाने की धमकी दी। उन्होंने 1 लाख रुपये के आभूषण, 800 रुपये नकद और रजाई, गद्दा, कंबल आदि कुछ अन्य सामान लूट लिया।

अपराधी की पहचान के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य इस साक्षी द्वारा दिया गया है। उसने बताया कि संदिग्ध अभियुक्तों की पहचान परेड कराई गई थी। उसने उनमें से एक दया राम पासी की सही पहचान की। इस साक्षी ने खुली अदालत में अभियुक्त दया राम पासी की पहचान की तथा बताया कि इसी ने डकैती डाली थी तथा उसके साथ मारपीट की

थी, जिससे वह घायल हो गया था। उस दिन तीन घरों में लूट हुई थी। साक्षी ने अपनी मेडिकल जांच तथा घटना की हस्तलिखित रिपोर्ट के सम्बन्ध में भी साक्ष्य दिया है।

**\*पी.डब्लू.4- माया राम** ने बताया है कि भाई लाल के घर में डकैती डालने के पश्चात डकैत उसके घर में घुसे। तब तक वह घर की महिलाओं तथा बच्चों को उठाकर सुरक्षित स्थान पर ले जा चुका था। साक्षी ने यह भी बताया कि डकैतों ने उसके तथा उसके भाई सतगुरु के घर से संपत्ति लूटी। वह टॉर्च की रोशनी में उनके चेहरे देख पाया था।

इस साक्षी ने पहचान परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की है; वह एक अपराधी को पहचान सका, जो न्यायालय में उपस्थित है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस साक्षी ने उसने खुली अदालत में अभियुक्त को पहचाना तथा कहा कि यह वही है, जिसने उसके घर में डकैती डाली थी। इसने अपने साथियों के साथ मिलकर उसके घर से आभूषण, कपड़े तथा नकदी लूटी थी।

**\*पी.डब्लू.5- एस.आई. ओम प्रकाश त्रिपाठी** (जांच अधिकारी) ने आरोप-पत्र को सिद्ध किया है।

**\*पी.डब्लू.6- एस.आई. रघुनंदन प्रसाद कन्नौजिया** (जांच अधिकारी) ने अभियोजन के कागजात यथा स्थल मानचित्र (प्रदर्श क-4), लालटेन की जब्ती ज्ञापन (प्रदर्श क-5), बांस

की जब्ती ज्ञापन (प्रदर्श क-6) को सिद्ध किया है; उन्होंने कहा है कि पहचान परेड के पश्चात उन्होंने कुछ अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, तत्पश्चात जांच एस.आई. ओम प्रकाश त्रिपाठी द्वारा अपने हाथ में ली गई।

**\*पी.डब्लू.7- डॉ. मदन लाल** ने घायलों अर्थात् ईश्वरदीन, भाई लाल तथा अरविंद कुमार की चोट रिपोर्ट को सिद्ध किया है। डॉक्टर ने पाया कि कुछ चोटें विस्फोटक पदार्थ और कुछ कुंद वस्तुओं के कारण आई थीं।

6. अभियुक्त-अपीलकर्ता दया राम पासी ने धारा-313 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में घटना में अपनी संलिप्तता से इनकार किया; उसने कहा कि पुलिस ने उसके विरुद्ध गलत चालान पेश किया था। उसने धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान में उठाए गए विशिष्ट प्रश्न के उत्तर में कहा कि गवाह भाई लाल उसे पहचान पाया था क्योंकि पुलिस ने उसे साक्षी को दिखाया था। उसने बचाव में कोई सबूत नहीं दिया।

7. रिकॉर्ड पर मौजूद कागजात से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान अभियुक्त/अपीलकर्ता के विरुद्ध एक पूरक आरोप-पत्र दायर किया गया था और उस समय कई अन्य आरोपियों के विरुद्ध जांच चल रही थी क्योंकि उन्हें पकड़ा नहीं जा सका था। इसके अलावा दो आरोपियों केशन यादव और राम सुरेश पासी को पहले ही आरोपित किया जा चुका था।

8. जहां तक घटना का संबंध है, पी.डब्लू.1- राम देवी, पी.डब्लू.2- अरविंद कुमार, पी.डब्लू.3-

भाई लाल और पी.डब्लू.4- माया राम, जो तथ्य के गवाह हैं, ने लगातार बयान दिया है कि उस दिन, मध्यरात्रि 12:00 बजे के बाद, कई डकैतों ने पहले भाई लाल के घर में डकैती की; वे दीवार फांदकर बांस के डंडे की मदद से उसके घर की छत तक पहुंचने में कामयाब रहे; उन्होंने दरवाजा खोलकर संपत्ति लूट ली; उन्होंने हिंसा का सहारा लिया। साक्ष्य में आया है कि उन्होंने पहले सूचनादाता भाई लाल को आग लगाने की धमकी दी थी। उन्होंने कहा है कि न केवल भाई लाल को पीटा गया था बल्कि उसके घर का दरवाजा खोलने में आसानी के लिए उसकी पत्नी का हाथ भी खींचा गया था। चोट की रिपोर्ट और एफआईआर इस तथ्य की पर्याप्त पुष्टि करती है कि डकैती की घटना हुई थी। उन्होंने घर के निवासियों को प्रतिरोध करने से रोकने के लिए हथगोले भी विस्फोट किए।

9. मेरे विचार में अभियोजन पक्ष यह साबित करने में सफल रहा है कि भाई लाल, माया राम और सतगुरु के घर में डकैती की घटना हुई थी। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न जो इस न्यायालय द्वारा तय किया जाना बाकी है, वह यह है कि क्या वर्तमान अपीलकर्ता डकैतों में से एक था?

10. मैंने इस संबंध में गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य का अवलोकन किया; पी.डब्लू.1 और पी.डब्लू.2 ने डकैती डालने में वर्तमान अपीलकर्ता की संलिप्तता के संबंध में कुछ नहीं कहा है। पी.डब्लू.3 भाई लाल ने खुली अदालत में अभियुक्त की पहचान की है और कहा है कि वह, वह व्यक्ति था जिसने उसके घर में

डकैती डाली थी; इसी तरह पी.डब्लू.4- माया राम ने विशेष रूप से कहा है कि अभियुक्त, जो अदालत में मौजूद है, वह वह व्यक्ति था जिसने भाई लाल और उसके अपने घर में डकैती डाली थी।

11. इस मामले में जिला कारागार, बाराबंकी में 02.12.1991 को नियमानुसार परीक्षण शिनाख्त परेड कराई गई, जो प्रदर्श संख्या-1 है। गवाह भाई लाल और माया राम दोनों ने अभियुक्त की सही पहचान की। दोनों ने परीक्षण शिनाख्त परेड में संबंधित अधिकारी के समक्ष कहा था कि वह उन अभियुक्तों में से एक है, जिन्होंने उनके घरों में डकैती डाली थी।

12. बचाव पक्ष की ओर से यह तर्क दिया गया है कि कई महीनों के अंतराल के बाद शिनाख्त परेड कराई गई है और इतने लंबे समय तक चेहरे की याददाश्त बनाए रखना संभव नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्त को गवाहों को थाने में ही दिखाया गया था, इसलिए अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

13. मुझे निम्नलिखित कारणों से उपरोक्त तर्कों में कोई तथ्य नहीं दिखता:-

(i) सबसे पहले, उनके चेहरे को पर्याप्त रूप से देखने के लिए प्रकाश के स्रोत थे।

(ii) यह सामान्य ज्ञान का तथ्य है कि जब कोई गंभीर प्रकृति की घटना होती है, तो पीड़ित को जीवन भर इसकी ज्वलंत स्मृति बनी रहती है।

(iii) धारा-313 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में, आरोपी ने दावा किया है कि उसका चेहरा प्रथम सूचनादाता भाई लाल को दिखाया गया था। गवाह माया राम द्वारा दी गई गवाही के संबंध में ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान दर्ज करने के दौरान आरोपी से इस संबंध में दो विशिष्ट प्रश्न पूछे गए थे; आरोपी ने यह नहीं कहा है कि उसका चेहरा पी.डब्लू.4- माया राम को भी दिखाया गया था। दोनों गवाहों ने कहा है कि वह वह व्यक्ति था, जिसने उनके घरों में डकैती की थी; उन्होंने खुले न्यायालय में आरोपी की स्पष्ट पहचान की। मौखिक गवाही का प्रासंगिक अंश नीचे दिया गया है।

\*पीडब्लू-3 ने कहा है कि "वही डकैत इस समय न्यायालय में उपस्थित दयाराम पासी है। इसी ने मुझे मारा पीटा और मेरे घर में डकैती डाली थी। इसने मेरे घर से माल लूटा था।"

\*पीडब्लू-4 ने कहा है कि "वही डकैत न्यायालय में उपस्थित दयाराम है। इसी ने डकैती डाली थी। अभिज्ञान परीक्षण के स्मरण पत्र प्रदर्शक-1 पर मेरा हस्ताक्षर है।"

(iv) दोनों गवाहों ने परीक्षण पहचान परेड से पहले आरोपी का चेहरा दिखाए जाने से इनकार किया है; इस संबंध में दोनों गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य काफी सशक्त और ठोस हैं।

14. खुली अदालत में अभियुक्त की पहचान एक ठोस सबूत है। जांच के दौरान पहचान परेड का संचालन, हालांकि साक्ष्य का एक बहुत

ही महत्वपूर्ण टुकड़ा है, अधिक से अधिक, एक पुष्टिकारक मूल्य है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि आरोपियों को झूठा फंसाने का उनके पास कोई कारण था। आरोपी का नाम एफ.आई.आर. में नहीं था। यह ध्यान देने योग्य है कि आरोपी दूसरे गांव का निवासी है। किसी भी पूर्व दुश्मनी या किसी भी कारण का कोई संकेत नहीं है, जिसके कारण गवाहों ने आरोपी को डकैतों में से एक के रूप में गलत तरीके से पहचाना हो या अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए पहचान संबंधी साक्ष्य पर संदेह किया हो।

15. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि डकैती करने वाले पांच से अधिक व्यक्ति थे। अन्य पांच व्यक्तियों का क्या हुआ, क्या उन्हें पकड़ा गया, क्या उन पर मुकदमा चलाया गया, क्या उन्हें बरी किया गया, इसका इस मामले में कोई संबंध नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि डकैती करने वाले पांच से अधिक व्यक्ति थे।

16. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विस्तार से विचार किया है तथा बचाव पक्ष की ओर से प्रस्तुत सभी तर्कों को व्यवस्थित रूप से देखा है तथा पाया है कि आरोप संदेह से परे सिद्ध हुए हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने *संपत टाटिया शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1974 एससीसी (क्रिमिनल) 382 तथा सुरेन्द्र नारायण उर्फ मुन्ना पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1998, एससी सीआरएल आरयूएल 508* में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि साक्ष्यों की रिकॉर्डिंग

के दौरान अभियुक्त की पहचान महत्वपूर्ण है तथा पहचान कार्यवाही के परिणाम या निकाले गए निष्कर्ष केवल पुष्टिकारक मूल्य रखते हैं।

17. मैं विचारण न्यायालय की राय से सहमत हूँ; विद्वान विचारण न्यायालय ने पहचान कार्यवाही की नियमितता का भी परीक्षण किया है तथा पाया है कि यह नियमों और विनियमों के अनुसार किया गया था तथा इसका पुष्टिकारक मूल्य बरकरार रखा गया है।

18. मुझे विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में कोई कमी नहीं दिखती। विचारण न्यायालय का फैसला तथ्यों और कानून दोनों के आधार पर सही है और अपील में कोई बल नहीं है।

19. तदनुसार, यह आपराधिक अपील निरस्त की जाती है। अभियुक्त-अपीलकर्ता को सजा का शेष भाग भुगतने के लिए तुरंत संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा। जमानतदारों को उनके दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

20. इस आदेश की प्रति अनुपालन के लिए तुरंत संबंधित न्यायालय को भेजी जाएगी।

21. फैसले की एक प्रति अभियुक्त/उसके अधिवक्ता को भी तुरंत निःशुल्क प्रदान की जाए।

22. संबंधित न्यायालय, निर्णय की एक प्रति संबंधित जिला जेल अधीक्षक को भेजेगा, जो

उसे अभियुक्त को सौंपेगा, जब वह हिरासत में लिया जाएगा और वहां बंद किया जाएगा।

-----

**(2023) 9 ILRA 641**

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 06.09.2023**

**समक्ष**

**माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्स्ना शर्मा**

**आपराधिक अपील संख्या 677 वर्ष 2002**

**कल्लू एवं अन्य**

**...अपीलकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य**

**...विपक्षी**

**अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:**

**प्रेम शंकर, आरएनएस चौहान**

**विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:**

**शासकीय अधिवक्ता**

**क. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 307, 325, 324, 323, 504 और 506-दोषसिद्धि को चुनौती- दो पक्षों के बीच दुश्मनी एक स्वीकृत तथ्य है- आरोपी व्यक्तियों ने एक सुनियोजित तरीके से शिकायतकर्ता पक्ष के दो व्यक्तियों पर हमला किया और उन्हें आग्नेयास्त्र, एक बांका और एक लाठी से घायल कर दिया - इस्तेमाल किए गए हथियार की प्रकृति, जिस तरह से इसका इस्तेमाल किया गया, मकसद, लगी चोटों की प्रकृति, शरीर के जिन हिस्सों में चोट लगी थी, वे कुछ ऐसे कारक हो सकते हैं जो इरादे या ज्ञान की उपस्थिति या कमी की**

और निश्चित संकेत देते हैं- यह दिखाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि आरोपियों ने घायल को शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से पर गोली मारने की कोशिश की, लेकिन किसी तरह यह उसके निचले अंगों पर लगी- आरोपियों के पास एक बांका था जो एक तेज धार वाला हथियार है और खतरनाक भी है, लेकिन घायल को केवल एक वार किया गया जिससे उसके श्रोणि क्षेत्र में चोट जो त्वचा के नीचे गहरी थी- दूसरे घायल को त्वचा के नीचे गहरी तीन चोटें आईं, सभी घुटने के नीचे, उसके शरीर के किसी भी महत्वपूर्ण हिस्से पर एक भी कटने वाला घाव नहीं पहुंचा है, इस घायल को अपने हाथों पर कुंद हथियार से दो चोटें आईं, दाहिने ऊपरी अंग पर कुंद वस्तु से लगी एक चोट को छोड़कर, बाकी सभी चोटें सामान्य प्रकृति की थीं- न्यायालय अनुमानों और संयोगों के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं दे सकता- यदि सभी चोटों पर संचयी रूप से विचार किया जाता है, तो आरोपी व्यक्तियों को धारा- 307/34 आईपीसी के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं है- निश्चित रूप से बांका, आग्नेयास्त्र और लाठी जैसे हथियारों का उपयोग करके चोट और गंभीर चोट पहुंचाने का इरादा था- अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय, नेत्र संबंधी और दस्तावेजी साक्ष्य पेश करके उचित संदेह से परे आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा- 323/34, 324/34 और 325/34 आईपीसी के अपराध को साबित कर दिया है- इसलिए, आरोपित निर्णय को संशोधित किया जाता है और आरोपी-अपीलकर्ता धारा 307/34 आईपीसी के तहत आरोपों से बरी कर दिया गया। शेष निर्णय और सजा की पुष्टि की जाती है। (पैरा 1 से 23)

ख. एक घायल गवाह के साक्ष्य को इस बात को ध्यान में रखते हुए देखा जाना चाहिए कि आमतौर पर जिस व्यक्ति पर किसी ने हमला किया हो, वह उसे बिना किसी रोक-टोक के जाने नहीं देगा और न ही उन लोगों के अलावा किसी और को झूठा फंसाएगा जिन्होंने उस पर हमला किया था। घायल गवाह का साक्ष्य अभियोजन पक्ष द्वारा प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उद्धृत किसी भी अन्य गवाह, जो घटना को देखने का दावा करता है, की तुलना में अलग स्तर पर होता है। (पैरा 15)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

रामकृष्ण बनाम हरियाणा राज्य (2004)  
एआईआर एससी 4678

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा पारित)

1. इस अपील की सुनवाई के दौरान अपीलकर्ता सं.-1, कल्लू की मृत्यु हो गई, अतः उसके संबंध में अपील उपशमित कर दी गई है।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.एन.एस. चौहान, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री राजेश कुमार शुक्ला को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।



3. इस आपराधिक अपील के माध्यम से अपीलकर्ता सं.-2, 3 व 4, शमसुद्दीन, सरफुद्दीन तथा जमालुद्दीन ने मुकदमा अपराध संख्या-79/1997, धारा-307, 325, 324, 323, 504, 506 आई.पी.सी., थाना-रामपुर कलां, जिला-सीतापुर से उत्पन्न एस.टी. संख्या 971/1997 "राज्य बनाम कल्लू एवं अन्य" में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश (न्यायालय सं. 1), सीतापुर द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 16.05.2002 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा अपीलकर्तागण को दोषसिद्ध करते हुए धारा 323 सपठित धारा 34 आई.पी.सी. के अन्तर्गत एक-एक वर्ष के कठोर कारावास, धारा 324 सपठित धारा 34 आई.पी.सी. के अन्तर्गत तीन-तीन वर्ष के कठोर कारावास, धारा 325 सपठित धारा 34 आई.पी.सी. के अन्तर्गत चार-चार वर्ष के कठोर कारावास एवं 2,000/- रुपये के अर्थदण्ड तथा धारा 307 सपठित धारा 34 आई.पी.सी. के अन्तर्गत सात-सात वर्ष के कठोर कारावास एवं 3,000/- रुपये के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है।

4. इस आपराधिक अपील के प्रयोजन के लिए सुसंगत तथ्य निम्नानुसार हैं:-

\*प्रथम सूचनादाता फारुख पुत्र मुनीर ने लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें आरोप लगाया गया कि उसके पिता मुनीर और चाचा अब्दुल करीम दिनांक 12.04.1997 की सुबह 6:00 बजे शौच के लिए तालाब के पास गए थे, उसी गांव के निवासी आरोपीगण कल्लू, शम्सुद्दीन, सरफुद्दीन और जमालुद्दीन घात लगाए बैठे थे, वे अचानक बाहर आए और उसके पिता

और चाचा पर हमला कर दिया, शम्सुद्दीन और जमालुद्दीन ने देशी कट्टे से उन पर फायर कर दिया, कल्लू और सरफुद्दीन ने लाठी और बांका से उन पर वार किया, प्रथम सूचनादाता के पिता और चाचा ने शोर मचाया, आरोपीगण भाग गए, उन दोनों को गंभीर चोटें आईं, वे उनकी जान लेना चाहते थे, घटना के गवाह शमशेर अली और मेहंदी हसन थे।

\*उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर एफ.आई.आर., मुकदमा अपराध संख्या-79/1997 पंजीकृत कर विवेचना की गई।

\*घायल व्यक्तियों की जिला अस्पताल सीतापुर की इमरजेंसी में जांच की गई। जांच अधिकारी ने घटनास्थल का निरीक्षण किया। उन्होंने गवाहों के बयान लिए, मेडिकल रिपोर्ट एकत्रित की तथा जांच पूरी करने के बाद चारों नामजद आरोपियों के विरुद्ध धारा 307, 323, 324, 325, 504, 506 आईपीसी के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

\*मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, सभी के विरुद्ध मुकदमा चलाया गया।

5. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए, अर्थात् लिखित तहरीर, दो एक्स-रे रिपोर्ट, दो चोट रिपोर्ट, चिक एफ.आई.आर., जी.डी. की प्रति, साइट मैप, मिट्टी के नमूने की जब्ती फर्द, आरोप पत्र (क्रमशः प्रदर्श क-1 से प्रदर्श क-10)।

6. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों का परीक्षण किया:-

- पी.डब्लू.1-** फारुख (प्रथम सूचनादाता)  
**पी.डब्लू.2-** अब्दुल करीम (घायल गवाह)  
**पी.डब्लू.3-** मुनीर (दूसरा घायल गवाह)  
**पी.डब्लू.4-** डॉ. ए.के. निगम (रेडियोलॉजिस्ट)  
**पी.डब्लू.5-** डॉ. ए.के. अग्रवाल (घायल गवाहों की चोटों की जांच करने वाले डॉक्टर)  
**पी.डब्लू.6-** श्री कृष्ण वर्मा (कांस्टेबल)  
**पी.डब्लू.7-** राघव राम यादव (जांच अधिकारी)

7. आरोपियों के बयान दर्ज किए गए और दोनों पक्षों को सुनने के बाद विद्वान सत्र न्यायालय ने सभी आरोपियों को धारा-323 सपठित 34, 324 सपठित 34, 325 सपठित 34 और 307 सपठित 34 आई.पी.सी. के अंतर्गत दोषी ठहराया। इन सभी को भारतीय दंड संहिता की धारा-504 व 506 के अंतर्गत आरोपों से बरी कर दिया गया।

8. अपीलकर्ताओं और राज्य के तर्कों पर विचार करने से पहले अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा दिए गए बयानों को संक्षेप में प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।

\*इस मामले में प्राथमिकी दर्ज कराने वाले **पी.डब्लू.1-फारुख** ने शपथ पर बताया कि सभी आरोपी उसके गांव के हैं, आरोपी कल्लू एक मकान खरीदना चाहता था, जिसे प्रथम सूचनादाता के चाचा अब्दुल करीम ने घटना से करीब 15-20 वर्ष पूर्व खरीदा था, आरोपी कल्लू ने इस संबंध में सिविल केस दायर किया था, जिसमें उसके चाचा अब्दुल करीम ने केस जीत लिया था। इसके बाद उनमें कहासुनी हो गई, जो मारपीट में बदल गई। आरोपियों में से एक सरफुद्दीन ने स्थानीय थाने में घटना की

रिपोर्ट दर्ज कराई थी, सरफुद्दीन द्वारा दर्ज कराया गया आपराधिक मामला विचाराधीन है, आरोपी उनसे रंजिश रखते थे। घटना के दिन उसके पिता व चाचा सुबह शौच के लिए गए थे। जब वे लौट रहे थे, तो कल्लू ने अपने बेटों को उन्हें मारने के लिए उकसाया, अचानक कल्लू, शम्सुद्दीन व जमालुद्दीन गेहूं के खेत से निकल आए और सरफुद्दीन झाड़ियों से निकल आया। अभियुक्त-कल्लू लाठी, अभियुक्त-शम्सुद्दीन देसी कट्टा, अभियुक्त-सरफुद्दीन बांका तथा अभियुक्त-जमालुद्दीन देसी कट्टा पकड़े हुए थे, सभी ने उन पर हमला कर दिया।

घटना का विवरण देते हुए साक्षी ने कहा है कि शम्सुद्दीन तथा जमालुद्दीन ने उसके पिता पर गोली चलाई, कल्लू तथा सरफुद्दीन ने क्रमशः लाठी तथा बांका से वार किया। उसके चाचा अब्दुल करीम पर कल्लू ने लाठी तथा सरफुद्दीन ने बांका से वार किया। शोर सुनकर गांव के कई लोग आ गए तथा अभियुक्तगण भाग निकले। साक्षी ने लिखित रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की है तथा यह सिद्ध किया है कि एफ.आई.आर. उसी ने दर्ज कराई है।

\***पी.डब्लू.2- अब्दुल करीम** ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए कहा है कि जब वह शौच क्रिया से वापस आ रहा था, तो चारों अभियुक्तगण ने अचानक उस पर हमला कर दिया। शम्सुद्दीन और जमालुद्दीन ने उसके भाई मुनीर पर गोलियां चलाईं, जबकि कल्लू और सरफुद्दीन ने उसके भाई को लाठी और बांका से पीटा। उसे भी कल्लू और सरफुद्दीन ने पीटा। जब गांव के लोग उसे बचाने आए तो आरोपी भाग निकले। उसने

बताया कि कल्लू उसी मकान को खरीदना चाहता था, जिसे उसने घटना से कम से कम 15-20 साल पहले खरीदा था और कल्लू उसके मकान के 'सेहन वाले हिस्से' पर अवैध कब्जा करना चाहता था और इसी बात को लेकर दोनों में झगड़ा हुआ था। इस विवाद से जुड़ा मामला अभी भी विचाराधीन है।

**\*पी.डब्लू.3- मुनीर** ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और अपनी गवाही में पी.डब्लू.2 द्वारा बताई गई कहानी ही बताई है।

**\*पी.डब्लू.4- डॉ. ए.के. निगम** ने एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की है और उसे सिद्ध किया है।

**\*पी.डब्लू.5- डॉ. ए.के. अग्रवाल** ने कहा है कि उन्होंने 12.04.1997 को दोपहर 2:00 बजे जिला अस्पताल, सीतापुर में मुनीर को लगी चोटों की जांच की और पाया कि उसके दाएं और बाएं जांघ पर फायर आर्म के दो घाव हैं, इलियाक स्पाइन पर एक कटने का निशान है और खोपड़ी के बाएं हिस्से पर दो घाव हैं।

गवाह ने कहा है कि उसी दिन दोपहर करीब 2:10 बजे उन्होंने घायल अब्दुल करीम की चोटों की जांच की और पाया कि उसके दाहिने ऊपरी अंग पर सूजन है, बाएं ऊपरी अंग पर चोट के निशान हैं, दाहिने घुटने पर दो कटने के निशान हैं और बाएं टखने के पास एक कटने का निशान है।

**\*पी.डब्लू.6- कांस्टेबल, श्री कृष्ण वर्मा** एक औपचारिक गवाह हैं, जिन्होंने 12.04.1997 की रात 8:30 बजे चिक एफ.आई.आर. और जी.डी. रिपोर्ट संख्या 11 को सिद्ध किया है।

**\*पी.डब्लू.7- जांच अधिकारी,** जिसने आरोप पत्र एवं स्थल-मानचित्र आदि कागजातों को

प्रमाणित करने के अतिरिक्त अपने द्वारा की गई जांच के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। जब भी आवश्यकतानुसार संबंधित अंशों का संदर्भ लिया जाएगा।

9. अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना दिनांक 12.04.1997 को प्रातः लगभग 6:00 बजे घटित हुई, जब प्रथम सूचनादाता के पिता एवं चाचा गांव के दक्षिणी छोर पर स्थित तालाब के पास से शौच करके लौट रहे थे। घटना के साक्षी पी.डब्लू.2 एवं पी.डब्लू.3, जो स्वयं घायल हैं, ने इस संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं तथा इस तथ्य के बारे में भी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं कि घटना की सूचना लगभग 8:30 बजे अर्थात् घटना के ढाई घंटे के भीतर थाने पर दी गई थी। साक्ष्य में यह बात सामने आई है कि प्रथम सूचनादाता ने दोनों घायलों को सह-ग्रामीणों से मांगकर ठेले पर बिठाकर ले गया था। थाने की दूरी गाँव से लगभग 3 किमी है। इस बात के सुसंगत साक्ष्य हैं कि घायलों को मेडिकल जांच के लिए जाने से पहले पुलिस स्टेशन ले जाया गया था।

10. प्रदर्श क-7 जी.डी., जिसमें एफ.आई.आर. दर्ज करने के बारे में प्रविष्टि की गई है, अभियोजन पक्ष के इस कथन के इस भाग की पुष्टि करता है कि जब एफ.आई.आर. दर्ज की जा रही थी, तो घायल व्यक्ति प्रथम सूचनाकर्ता के साथ थे। प्रदर्श क-7 में उन तथ्यों का उल्लेख है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पत्र में घायल व्यक्ति के शरीर पर उसी तरह की चोटों का उल्लेख है, जो मेडिकल जांच में पाई गई थीं। इस मामले में एफ.आई.आर. उचित तत्परता के साथ दर्ज की

गई है, जिससे किसी भी तरह की छेड़छाड़, बनाए गए तथ्यों को पेश करने या गलत आरोप लगाने की संभावना समाप्त हो गई है।

11. जहां तक घटना की पृष्ठभूमि का सवाल है, साक्ष्य में यह स्पष्ट रूप से सामने आया है कि दोनों पक्षों में एक घर और उसके "सहन" को लेकर लंबे समय से दुश्मनी थी। पी.डब्लू.1, पी.डब्लू.2 एवं पी.डब्लू.3 के साक्ष्य में आया है कि अभियुक्त कल्लू (जो अब मर चुका है तथा जिसकी अपील उपशमित हो चुकी है) उसी मकान को खरीदना चाहता था, जिसे शिकायतकर्ता पक्ष ने खरीदा था; साक्ष्य में यह भी आया है कि दोनों पड़ोसी थे तथा बगल की जगह "सहन" पर कब्जे को लेकर भी विवाद था; विवादित संपत्ति के संबंध में एक सिविल मामला दायर किया गया था तथा यह घटना घटित होने के समय दोनों पक्षों के बीच लंबित था। सिविल अपील संख्या-19/1993 दिनांक 29.07.2014 (कल्लू बनाम अब्दुल करीम) में सुनाए गए निर्णय की प्रमाणित प्रति अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई है, जिससे यह पता चलता है कि दोनों पक्ष अचल संपत्ति को लेकर मुकदमेबाजी में लगे हुए थे। गवाहों ने साक्ष्य दिया है कि वर्तमान घटना घटित होने से पूर्व एक और आपराधिक घटना घटित हुई थी, जिसके लिए एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी। मुकदमा अपराध संख्या-23/1995, धारा 324, 323, 504 आईपीसी के अंतर्गत शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध दर्ज किया गया था, जिसमें अब्दुल करीम (पी.डब्लू.2), मुनीर (पी.डब्लू.3) और फारुख (यहाँ प्रथम सूचनादाता) शामिल थे। उपरोक्त सभी तथ्य और परिस्थितियां यह दर्शाती हैं कि निर्विवाद

रूप से दोनों पक्ष कुछ मुद्दों पर एक दूसरे के विरुद्ध दुश्मनी रखते थे और इस घटना से काफी समय पहले से ही दीवानी और फौजदारी मुकदमे में लिप्त थे।

12. घायल गवाह पी.डब्लू.2 और पी.डब्लू.3 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए गवाही दी है, जिससे यह सिद्ध होता है कि चारों आरोपी व्यक्ति घात लगाए बैठे थे और गेहूं के खेत और झाड़ियों के पीछे छिपे हुए थे, जब उन्हें अब्दुल करीम और मुनीर पर हमला करने का मौका मिला। यह साक्ष्य में स्पष्ट रूप से आया है कि जमालुद्दीन और शम्सुद्दीन प्रत्येक ने आग्नेयास्त्र लिया हुआ था, सरफुद्दीन ने बांका (एक तेज धार वाला हथियार) और कल्लू ने लाठी पकड़ रखी थी। अभियोजन पक्ष यह दिखाने में सफल रहा है कि एफआईआर दर्ज होने के बाद, घायल व्यक्तियों को मेडिकल परीक्षण के लिए भेजा गया था और उनकी जांच जिला अस्पताल, सीतापुर में दोपहर 2:00 बजे से 2:10 बजे के बीच की गई थी। मुनीर को आग्नेयास्त्र से कई घाव हुए; पहला बाएं जांघ के अंदरूनी और पार्श्व पहलू पर 25 सेमी x 10 सेमी के क्षेत्र को कवर करता हुआ; दूसरा दाहिने जांघ के अंदरूनी और पार्श्व पहलू पर 15 सेमी x 10 सेमी के क्षेत्र को कवर करता हुआ; कालापन मौजूद पाया गया। यह साक्ष्य में आया है कि आरोपी जमालुद्दीन और शम्सुद्दीन ने मुनीर पर अपने पास मौजूद देसी आग्नेयास्त्रों से गोली चलाई थी। पी.डब्लू.3 मुनीर ने बताया कि आग्नेयास्त्रों से घायल होने के बाद वह खेतों की ओर भागने लगा, तभी सरफुद्दीन और कल्लू ने उसका पीछा किया और बांका

और लाठी से उसे घायल कर दिया। मेडिकल रिपोर्ट से पता चलता है कि मुनीर के इलियाक स्पाइन क्षेत्र पर 5 सेमी x 1 सेमी आकार का एक घाव और 5 सेमी x 0.5 सेमी और 3 सेमी x 0.5 सेमी आकार के दो घाव हैं; दोनों खोपड़ी में गहरे और दोनों सिर के बाईं ओर। डॉक्टर ने सिद्ध किया है कि चोटें ताजा थीं। चोट की रिपोर्ट गवाहों द्वारा दिए गए बयानों को और पुष्टा करती है।

13. दूसरे घायल गवाह पी.डब्लू.2 अब्दुल करीम ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और घटना के संबंध में पर्याप्त विवरण दिया है। पी.डब्लू.3 मुनीर की तरह, उनके साक्ष्य विश्वसनीय और पुष्टा प्रतीत होते हैं। उनके मौखिक साक्ष्य पर संदेह करने के लिए कोई विसंगति या कोई आधार नहीं दिखता है।

14. बचाव पक्ष ने तर्क दिया है कि प्रथम सूचनाकर्ता पी.डब्लू.1 ने घटना नहीं देखी और वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं था, इसलिए उसकी गवाही सुनी-सुनाई बातों के अलावा कुछ नहीं है। बचाव पक्ष का एक और तर्क यह है कि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह सामने नहीं आया है।

मैंने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों को देखा; पी.डब्लू.1 ने कहा है कि जब उसके चाचा और पिता शौच के बाद वापस आ रहे थे तो वह उसी उद्देश्य से उसी स्थान पर जा रहा था और उसने अपनी आँखों से देखा कि आरोपी व्यक्ति उसके पिता और चाचा पर हमला कर रहे थे और उन्हें चोट पहुँचा रहे थे। यह तर्क

दिया गया है कि यदि वह मौके पर होता, तो वह निश्चित रूप से हस्तक्षेप करने और अपने परिवार के सदस्यों को बचाने की कोशिश करता, हालांकि उसने ऐसा कोई प्रयास नहीं किया, जो अप्राकृतिक है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पी.डब्लू.1 ने कहा है कि वह केवल शोर मचाता रहा और उसने उन्हें बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। मेरे विचार में, यह अलग-थलग बयान यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वह मौके पर नहीं था। स्वाभाविक रूप से, उसका आचरण या पहल निश्चित रूप से कई कारकों द्वारा निर्देशित थी, जैसे कि क्या उसके पास प्रतिक्रिया करने और अपने परिवार के सदस्यों को बचाने के लिए पर्याप्त समय था या क्या वह वास्तव में उन्हें बचाने के लिए पर्याप्त निकट था आदि। भले ही तर्कों के लिए यह माना जाए कि वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं था और केवल इसी कारण से उसके साक्ष्य को खारिज कर दिया जाता है, पी.डब्लू.2 और पी.डब्लू.3 के साक्ष्य, जो घायल व्यक्ति हैं और जिन्होंने घटना का विश्वसनीय, सुसंगत और ठोस विवरण दिया है, अभियोजन पक्ष के मामले को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। तात्कालिक प्राथमिकी, जी.डी., चिकित्सा साक्ष्य, मकसद की उपस्थिति ऐसे पुष्ट करने वाले साक्ष्य हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह सिद्ध करते हैं। स्वतंत्र गवाह की कमी महत्वहीन है।

15. **रामकृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2004 एससी 4678** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न प्रकार से टिप्पणी की:-

*"घायल गवाह के साक्ष्य को इस बात को ध्यान में रखते हुए देखा जाना चाहिए कि आम तौर पर जिस व्यक्ति पर किसी ने हमला*

**किया है, वह उसको छोड़कर, जिसने उसपर वास्तव में हमला किया था, किसी अन्य व्यक्ति को झूठा नहीं फंसाएगा। घायल गवाह का साक्ष्य अभियोजन पक्ष द्वारा प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उद्धृत किसी अन्य गवाह की तुलना में अलग स्तर पर खड़ा होता है, जो घटना को देखने का दावा करता है।"**

16. दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी एक स्वीकृत तथ्य है। दुश्मनी आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकती है; साथ ही दुश्मनी आरोपी पक्ष को अपराध करने के लिए प्रेरित कर सकती है। मेरा मत है कि इस मामले में, आरोपीगण शिकायतकर्ता पक्ष के प्रति शत्रुतापूर्ण होने के कारण अपराध करने के लिए प्रेरित हुए।

17. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर विचार किया तथा उसका सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया; मैं अभियोजन पक्ष के मामले के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय की राय से सहमत हूँ कि, दोनों पक्षों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों से प्रेरित होकर, आरोपीगण ने सुनियोजित तरीके से शिकायतकर्ता पक्ष के दो व्यक्तियों पर हमला किया तथा उन्हें आग्नेयास्त्र, बांका (एक धारदार हथियार) तथा लाठी (एक कुंद हथियार) से घायल कर दिया। अब, विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या आरोपीगण ने शिकायतकर्ता पक्ष पर इस इरादे से या ज्ञान से तथा ऐसी परिस्थितियों में हमला किया कि यदि उन्होंने उस कृत्य से किसी की मृत्यु कर दी होती, तो वे हत्या के दोषी होते?

18. इस बात पर दो राय नहीं हो सकती कि अभियुक्तों के पास अपेक्षित इरादा या ज्ञान था या नहीं और इसके अतिरिक्त क्या उनके कृत्य से घायल व्यक्ति की मृत्यु होने की परिस्थितियाँ थीं, यह केवल उस विशेष घटना के सभी तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है। इस्तेमाल किए गए हथियार की प्रकृति, जिस तरह से उसका इस्तेमाल किया गया, मकसद, लगी चोटों की प्रकृति, शरीर के वे हिस्से जहाँ चोट लगी, कुछ ऐसे कारक हो सकते हैं जो इरादे या ज्ञान की मौजूदगी या कमी की ओर निश्चित संकेत देते हैं। जब न्यायालय ऐसे इरादे या ज्ञान की मौजूदगी या अनुपस्थिति का निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ता है, तो उसे सावधानी से चलना पड़ता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ऊपर बताए गए कारकों में से कोई भी अपने आप में ऐसे इरादे को निर्णायक रूप से सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, हालाँकि सभी कारक संचयी रूप से पर्याप्त प्रकाश डाल सकते हैं और न्यायालय को एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता कर सकते हैं। सब कुछ कहने और करने के बाद, यह सिद्ध करने का भार अभियोजन पक्ष पर रहता है कि वास्तव में हत्या का प्रयास किया गया था।

19. विद्वान विचारण न्यायालय ने इस संबंध में मामले पर विचार किया है तथा यह मत दिया है कि जब किसी व्यक्ति पर हमला होता है, तो सबसे अधिक संभावना है कि वह भाग जाएगा तथा एक स्थान पर स्थिर नहीं रहेगा, इसलिए ऐसे व्यक्ति के शरीर के विभिन्न भागों

पर चोटें लगना स्वाभाविक है। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी राय दी है कि चोटों का संचयी प्रभाव हत्या करने के इरादे को दर्शाने के लिए पर्याप्त था।

20. मैंने इस संबंध में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का अध्ययन किया; साक्ष्य में यह आया है कि सबसे पहले शमसुद्दीन तथा जमालुद्दीन ने मुनीर पर गोली चलाई; उसके बाद शेष दो अभियुक्तों अर्थात् कल्लू तथा सरफुद्दीन ने उसे लाठी तथा बांका से पीटा। अब्दुल करीम अगला व्यक्ति था, जिस पर लाठी तथा बांका से हमला किया गया; यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्तों ने मुनीर पर दूसरी बार गोली चलाने का कोई प्रयास किया। यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि उन्होंने प्रथम सूचनादाता के चाचा अब्दुल करीम पर गोली चलाने का कोई प्रयास किया; इस बात के कोई सबूत नहीं हैं कि अभियुक्तों ने घायल को शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से पर गोली मारने की कोशिश की, लेकिन किसी तरह गोली उसके निचले अंगों पर लगी। अभियुक्तों के पास बांका था, जो एक तेज धार वाला हथियार है और खतरनाक भी है, लेकिन घायल मुनीर को केवल एक वार किया गया, जिससे उसकी रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में गहरी चोट आई। दूसरे घायल अब्दुल करीम को तीन गहरी चोटें आईं; सभी घुटने के नीचे; उसके शरीर के किसी भी महत्वपूर्ण हिस्से पर एक भी चीरा हुआ घाव नहीं है; इस घायल को हाथों पर कुंद हथियार से दो चोटें आईं; दाहिने ऊपरी अंग पर कुंद वस्तु से लगी एक चोट को छोड़कर, बाकी सभी चोटें सामान्य प्रकृति की थीं। न्यायालय अनुमानों और संयोगों के आधार

पर कोई निष्कर्ष नहीं दे सकता। यह नहीं माना जा सकता कि वास्तव में अभियुक्त घायल को शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से पर मारना चाहते थे, लेकिन किसी मध्यवर्ती परिस्थिति के कारण गोली कमर के नीचे लगी। मेरे विचार में, यदि सभी चोटों पर संचयी रूप से विचार किया जाए, तो भी मुझे अभियुक्तों को धारा-307/34 आई.पी.सी. के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराना उचित नहीं लगता। मेरे विचार में, निश्चित रूप से बांका, आग्नेयास्त्र और लाठी जैसे हथियारों का उपयोग करके चोट और गंभीर चोट पहुंचाने का इरादा था। अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय, प्रत्यक्ष और दस्तावेजी साक्ष्य पेश करके अभियुक्तों के विरुद्ध धारा-323/34, 324/34 और 325/34 आई.पी.सी. के अपराध को उचित संदेह से परे सिद्ध कर दिया है। मुझे निर्णय व सजा के उस अंश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं लगता।

21. बचाव पक्ष की ओर से अभियुक्तों को परिवीक्षा पर रिहा करने के लिए तर्क दिया गया है। मैं इस मामले को उन्हें परिवीक्षा का लाभ देने के लिए उपयुक्त नहीं मानती, क्योंकि शिकायतकर्ता के पक्ष पर सुनियोजित तरीके से हमला किया गया था; आरोपी व्यक्ति शिकायतकर्ता के पिता और चाचा पर हमला करने से पहले गेहूं के खेत और झाड़ियों के पीछे छिपे हुए थे; यह ऐसा मामला नहीं है, जहां घटना अचानक लड़ाई या उकसावे में हुई हो; दोनों पक्षों में लंबे समय से दुश्मनी चल रही है। अभियुक्तों को परिवीक्षा पर रिहा करने का उद्देश्य अपराधी को सुधारना और उन्हें अपने तरीके सुधारने

का अवसर प्रदान करना है। मेरे विचार से, कानून और न्याय की अदालतों को उन मामलों में ढील नहीं दिखानी चाहिए, जहां वास्तविक सुधार की संभावनाओं का समर्थन करने के लिए कोई संकेत नहीं मिल रहे हैं। हमले का सुनियोजित तरीका विपरीत दिशा की ओर इशारा करता है। इसके अलावा, कानून को इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए कि अपराधियों को अपराध करने और स्वतंत्र रूप से घूमने का साहस मिले। जब न्यायालय आरोपी व्यक्तियों को परिवीक्षा का लाभ देने का निर्णय ले, तो उसे पीड़ित की संवेदनशीलता को भी ध्यान में रखना चाहिए। आरोपी व्यक्तियों के प्रति अनावश्यक सहानुभूति जनता के विश्वास को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी तथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करेगी; तथा न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कानून के व्यापक उद्देश्य को ध्यान में रखे। कानून का सम्मान तभी होता है, जब वह दृश्य हो। अतः धारा 323/34, 324/34 तथा 325/34 आई.पी.सी. के अंतर्गत अपराध के संबंध में आदेश के दण्डात्मक भाग में हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा है।

22. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश (न्यायालय संख्या 1), सीतापुर द्वारा एस.टी. संख्या-971/1997 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 16.05.2002 को संशोधित किया जाता है तथा आरोपी-अपीलकर्ताओं को धारा 307/34 आई.पी.सी. के अंतर्गत आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। शेष निर्णय और सजा की पुष्टि की जाती है।

23. तदनुसार, यह आपराधिक अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

24. अभियुक्त-अपीलकर्ता तुरंत संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और सजा का शेष भाग भुगतेंगे।

25. निर्णय की प्रति तुरंत संबंधित न्यायालय को अनुपालन के लिए अधिसूचित की जाए।

26. निचली अदालत का रिकॉर्ड तुरंत वापस किया जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 649

**अपीलीय क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा**

**माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी**

आपराधिक अपील संख्या 4894 वर्ष 2005  
के साथ संबंध

आपराधिक अपील संख्या 5303 वर्ष 2005  
और

आपराधिक अपील संख्या 5068 वर्ष 2005  
और

शासकीय अपील संख्या 983 वर्ष 2006

**अनिल कुमार अहिरवार**

**...अपीलकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य**

**...विपक्षी**



**अपीलकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री एसएन गुप्ता, श्री भोले राम, श्री मिथिलेश कुमार मिश्रा, श्री मो. फारूक, श्री एनआई जाफरी, श्री शरद चंद्र सिंह, श्री सुखवीर सिंह

**विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता, श्री एमसी चतुर्वेदी, श्री एमडी मिश्रा

क. दाण्डिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302/34, 302/114 एवं 120 - शस्त्र अधिनियम, 1878 - धारा 25 - दोषसिद्धि को चुनौती-अभियोजन पक्ष के गवाह इस बिंदु पर एकमत रहे हैं कि उसने मृतक पर अपनी आधी बैरल वाली बंदूक से गोली चलाई थी और उसे मौके पर ही पकड़ लिया गया था। इस संबंध में पीडब्लू-1 और पीडब्लू-5 की गवाही विशिष्ट है- यद्यपि प्रथम अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से पहचान परेड न कराने को चुनौती दी गई है, लेकिन इसमें कोई तथ्य नहीं है- अभिलेखों से पता चलता है कि वास्तव में एक अज्ञात व्यक्ति को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में पेश किया गया था, जिसकी आयु लगभग 25 वर्ष थी और पुलिस उसे अपनी जीप में लेकर आई थी- अभियोजन पक्ष के गवाह, जो निर्विवाद रूप से मौके पर मौजूद थे, ने स्पष्ट रूप से बताया है कि किस प्रकार प्रथम अभियुक्त ने अपनी आधी बैरल वाली बंदूक से नजदीक से गोली चलाई थी, जिसके कारण मृतक की मृत्यु हो गई थी- दूसरे अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है- उसे मौके पर पकड़ा नहीं गया था। उसके पास से न तो वह आग्नेयास्त्र बरामद हुआ है जिससे उसने

घायलों पर गोली चलाई थी और न ही उससे कोई ऐसी वस्तु बरामद हुई है जिससे उसका अपराध से संबंध स्थापित हो सके। जांच अधिकारी ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि दूसरे आरोपी की पहचान स्वयं ही सुनिश्चित कर ली गई थी। आरोपी की पहचान का यह पता लगाना मुख्य आरोपी द्वारा किए गए खुलासे पर आधारित है। एक बार जब आरोपी की पहचान पुलिस को ज्ञात हो गई, तो यह अपेक्षा की गई कि या तो उसे गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाएगा या पुलिस कम से कम कथित आरोपी से पूछताछ करने का प्रयास करेगी। हालांकि, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि आरोपी से पूछताछ करने या अपराध करने में उसकी भूमिका को सत्यापित करने का कोई प्रयास किया गया था। इस पहलू पर अभियोजन पक्ष का मामला कुछ हद तक असामान्य है। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, सूचनाकर्ता पीडब्लू-1 ने रेलवे स्टेशन का दौरा किया और आरोपी को वहां एक बेंच पर बैठा पाया- पीडब्लू-1 ने तब पुलिस को सूचित किया, जिसके बाद, आरोपी को कथित तौर पर रेलवे स्टेशन से गिरफ्तार कर लिया गया- पीडब्लू-8 की गवाही के साथ-साथ पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयानों के रूप में अभियोजन पक्ष का मामला स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है- ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी गवाही केवल दो बेटों को फंसाने के इरादे से बाद में पेश की गई है- इसलिए, विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि अभियोजन दोनों आरोपियों के अपराध को साबित करने में सफल नहीं हुआ है और इस प्रकार उन्हें बरी

कर दिया जाता है- इसलिए, पहली आरोपी अपील खारिज की जाती है जबकि दूसरी आरोपी अपील को अनुमति दी जाती है।

अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं।  
(ई-6)

### उद्धृत वादों की सूची:

1. मोहिंदर सिंह बनाम राज्य (1953)  
एआईआर एससी 415
2. राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य  
(1975) 4 एससीसी 497
3. शिवेंद्र सिंह उर्फ भोला बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य सीआरएलए संख्या 2641/2012
4. जगत पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश  
राज्य सीआरएलए संख्या 612/1996
5. सर्वेश दिवाकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य  
सीआरएलए नंबर 5735/2009

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा)  
और  
माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन  
रिज़वी द्वारा पारित)

1. ये चारों अपीलें एक साथ सूचीबद्ध हैं, क्योंकि वे मुकदमा अपराध संख्या 166/2004, पुलिस स्टेशन कोंच, जिला जालौन से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 199/2004 (राज्य बनाम अनिल कुमार अहिरवार और

अन्य), शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 167/2004, पुलिस स्टेशन कोंच, जिला जालौन से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 200/2004 (राज्य बनाम अनिल कुमार अहिरवार) में विशेष न्यायाधीश (ई.सी. अधिनियम), जालौन में उरई द्वारा पारित एक समग्र निर्णय और आदेश दिनांक 27.10.2005 से उत्पन्न हुए हैं, जिसमें आरोपी अपीलार्थी अनिल कुमार अहिरवार को दोषी ठहराया गया है और आईपीसी की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास एवं 5,000/- रुपये जुर्माने की सजा, आईपीसी की धारा 307 सहपठित धारा 34 के तहत सात साल का कठोर कारावास की सजा, शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के तहत तीन वर्ष के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है; जिसके तहत आरोपी अपीलकर्ता छोटू पायलट उर्फ दीपक नाई को दोषी ठहराया गया है और आईपीसी की धारा 302 सहपठित धारा 34 के तहत आजीवन कारावास और 5,000/- रुपये जुर्माने की सजा; आईपीसी की धारा 307 के तहत सात साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है; और जिसके तहत आरोपी अपीलकर्ता सत्य नारायण शुक्ला को दोषी ठहराया गया है और आईपीसी की धारा 302 सहपठित धारा 114 के तहत आजीवन कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा; आईपीसी की धारा 120 के तहत तीन साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है। सभी सज़ाएं एक साथ चलेंगी। जुर्माना जमा न करने पर प्रत्येक आरोपी को छह-छह माह अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

2. आपराधिक अपील संख्या 4894/ 2005 आरोपी अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार द्वारा दायर की गई है, जबकि संबंधित आपराधिक अपील संख्या 5303/ 2005 छोट्ट पायलट उर्फ दीपक नाई द्वारा दायर की गई है। राज्य ने भी शासकीय अपील संख्या 983/ 2006 को अधिमानित किया है, जहां तक दो आरोपियों नामतः सोनू शुक्ला उर्फ अभिषेक और पप्लू उर्फ अवनीश शुक्ला को विचारण न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया है। आपराधिक अपील संख्या 5068/ 2005 आरोपी सत्य नारायण शुक्ला द्वारा दायर की गई थी, जिनकी पहले ही मृत्यु हो चुकी है और परिणामस्वरूप, उनकी अपील पहले ही समाप्त हो चुकी है।

3. अभियोजन पक्ष का मामला प्रमोद कुमार शुक्ला (पीडब्लू-1) द्वारा बनाई गई एक लिखित आख्या पर आधारित है, जिसे विपिन शुक्ला ने लिखा है, जिसके अनुसार 19.5.2004 को सूचना देनेवाला और उसका बड़े भाई अशोक कुमार शुक्ला, अध्यक्ष, नगर पालिका परिषद कोंच और उसका चचेरा भाई संतोष कुमार शुक्ला अपने पड़ोसी अमर चंद्र अग्रवाल के अंतिम संस्कार में शामिल होने गये थे। दाह संस्कार संपन्न होने के बाद वे सुबह करीब साढ़े दस बजे वापस लौट रहे थे और जब वे कोंच के तिलक नगर स्थित कंछड़ बाबा मंदिर के पास पहुंचे तभी एक अज्ञात व्यक्ति पीछे से आया और एक अर्धनाली बंदूक निकालकर अशोक शुक्ला के सिर में पीछे से गोली मार दी। हमलावर को सूचना देने वाले के चचेरे भाई संतोष शुक्ला ने मौके पर ही पकड़ लिया और मौके पर मौजूद अन्य लोग उस पर टूट पड़े

और उसके साथ मारपीट की गई। अज्ञात हमलावर की बंदूक छीन ली गई। तभी दूसरे आरोपी ने जान से मारने की नियत से गोली चला दी और इस कार्रवाई में विनोद अग्रवाल पुत्र बाबूलाल, संतोष शुक्ला पुत्र उमा शंकर और लक्ष्मी नारायण तिवारी पुत्र मथुरा प्रसाद गोली लगने से घायल हो गए। मुख्य हमलावर के साथी ने पकड़े गए आरोपी को छुड़ाने की कोशिश की और जब लोगों ने उसका पीछा किया तो दूसरा हमलावर मौके से भाग गया और कि सूचना देनेवाला उसे पहचान सकता है। मौके पर अशोक शुक्ला का शव पड़ा हुआ था। मुख्य हमलावर को भी उसकी अर्धनाली बंदूक के साथ पकड़ लिया गया। आरोप लगाया गया था कि मृतक को पैसे देकर सुपारी हत्यारों से मरवाया गया है। ऐसी लिखित आख्या (प्रदर्शक-1) के आधार पर दिनांक 19.5.2004 को सुबह करीब 11.20 बजे मुकदमा अपराध संख्या 166/ 2004 में धारा 302, 307 आईपीसी के तहत प्रथम सूचना आख्या दर्ज करायी गयी। घटना स्थल थाने से करीब दो किलोमीटर दूर था। पुलिस मौके पर आयी और अर्धनाली 12 बोर क्षतिग्रस्त बंदूक का रिकवरी मेमो तैयार किया, जिसे प्रदर्शक-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जांच अधिकारी ने घटना स्थल से सादी मिट्टी और खून से सनी मिट्टी (प्रदर्शक-19) भी एकत्र की। पूछताछ उसी दिन 11.50 बजे शुरू हुई और 12.50 बजे समाप्त हुई। मुकदमा अपराध संख्या का जिक्र करते समय धारा 307 के उल्लेख पर पूछताछ में स्पष्ट रूप से ओवरराइटिंग है। गवाहों से पूछताछ के अनुसार मृतक की मौत गोली लगने से हुई और मौत का सही कारण पता लगाने के लिए पोस्टमॉर्टम कराना जरूरी था।

परिणामस्वरूप, दिनांक 19.5.2004 को दोपहर 2.00 बजे मृतक का पोस्टमॉर्टम किया गया। मृतक की उम्र लगभग 50 वर्ष थी और मृत्यु का समय 6 घंटे निर्धारित किया गया है। मृतक औसत कद काठी का था और मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्युपूर्व आग्नेयास्त्र के चोटों के कारण सदमा और रक्तस्राव है:

“(1) आग्नेयास्त्र के प्रवेश का 3 सेमी x 2.5 सेमी का घाव खोपड़ी के बाईं ओर बायीं आँख की भौंह से 4 सेमी पार्श्व में मौजूद है। कनपटी की हड्डी टूटी हुई। गोदने और खुरखुरा आंसू देखे गए। कालापन भी मौजूद है।

(2) आग्नेयास्त्र के बाहर निकलने का 16 सेमी x 9 सेमी का घाव खोपड़ी के बाएं कर्णपटी-पश्चकपाल क्षेत्र और चेहरे तथा गर्दन के बाएं पश्च-पार्श्व क्षेत्र पर मौजूद, मस्तिष्क पदार्थ और रक्त निकल रहा है। कनपटी की हड्डी टूटी हुई और बायां जबड़ा टूटा हुआ। बायां कान पूरी तरह से गायब और अलग से शव के साथ लाया गया। मस्तिष्कावरक का टूटा हुआ घाव 9 सेमी गहरा है।

(3) खरोंच लाल रंग 2.5 सेमी x 1 सेमी माथे के दाईं ओर दाहिनी आँख की भौंह से 2.5 सेमी ऊपर मौजूद है।”

4. इससे पता चलता है कि घायल विनोद कुमार अग्रवाल, उम्र लगभग 35 वर्ष, की जांच जिला अस्पताल, जालौन में दिनांक 19.5.2004 को की गई थी और उन पर निम्नलिखित चोट पाई गई:-

“एलडब्ल्यू1 सेमी x .5 सेमी x गर्दन के दाहिने भाग पर त्वचा की गहराई दाहिने कान से 9 सेमी नीचे। किनारे उलटे। सामने की तरफ घिसा हुआ कॉलर मौजूद। चोट यू.ओ. एक्स-रे की सलाह।”

5. इसी प्रकार संतोष कुमार शुक्ला की जांच भी दिनांक 19.5.2004 को दोपहर 2.00 बजे जिला अस्पताल में की गई थी और उन पर निम्नलिखित चोट पाई गई:-

“1. आग्नेयास्त्र की .75 सेमी x .75 सेमी x दाहिने घुटने के मध्य भाग पर गहरी चोट। किनारे उलटे, घिसा हुआ कॉलर मौजूद। जांघ और पिंडली क्षेत्र पर गोदना मौजूद। यू.ओ. रखा एक्स-रे की सलाह।”

6. लक्ष्मी नारायण की चोटों की भी जांच दिनांक 19.5.2004 को दोपहर 2.10 बजे जिला अस्पताल में की गई, जिसे आगे उद्धृत किया गया है:-

“छाती के बायीं ओर पीछे 1.5 सेमी x .5 सेमी का घिसा हुआ घाव। बाएं कंधे के जोड़ के शिखर से 7 सेमी नीचे निचला किनारा घिसे हुए कॉलर के साथ विचलन दिखाता है जबकि बाकी हिस्सा उलटा मार्जिन दिखाता है। यू.ओ. रखा किसी भी गोली का स्थानीयकरण करने को एक्स-रे की सलाह।”

7. तीनों घायलों का परीक्षण जालौन के कॉच के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी द्वारा किया गया और उस संबंध में आख्या को 99ख के रूप में प्रदर्शित

किया गया है। आख्या में दर्ज है कि मौके से पकड़े गए अज्ञात हमलावर को पुलिस जीप में लादकर लाई थी। घायल हमलावर को बाद में जिला अस्पताल, झाँसी रेफर कर दिया गया, जहाँ उसे मेडिकल कॉलेज, झाँसी में भर्ती कराया गया और अंततः 23.5.2004 को छुट्टी दे दी गई। इसके बाद हमलावर को औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर लिया गया।

8. जांच आगे बढ़ी और अंततः धारा 302, 307, 34 और 120-बी आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 166/ 2004 में 5 आरोपियों, नामतः अनिल कुमार अहिरवार, छोटू पायलट @ दीपक नाई, सोनू शुक्ला उर्फ अभिषेक, पपलू उर्फ अवनीश शुक्ला और सत्य नारायण शुक्ला के खिलाफ आरोप पत्र 28.6.2004 को प्रस्तुत किया गया। मुकदमा अपराध संख्या 167/ 2004 में अनिल कुमार अहिरवार के विरुद्ध धारा 25/27 आर्म्स एक्ट के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। मजिस्ट्रेट ने उपरोक्त दो आरोप पत्रों पर संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध के संबंध में दो सत्र परीक्षण यानी सत्र परीक्षण संख्या 199/ 2004 और सत्र परीक्षण संख्या 200/ 2004 दर्ज किए गए।

9. इस स्तर पर यह गौर करने वाली बात है कि आरोपियों के खिलाफ आरोपपत्र दाखिल होने के बाद, पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 ने जांच अधिकारी के समक्ष अपने हलफनामे प्रस्तुत किए जिसमें कहा गया कि घटना के दिन आरोपी अनिल कुमार अहिरवार और छोटू पायलट सुबह सत्य नारायण शुक्ला के घर

आए थे जहां दाह संस्कार के दौरान भीड़ और भीड़ का फायदा लेकर अशोक शुक्ला को खत्म करने की साजिश रची गई थी। पी.डब्ल्यू.-3 राम बाबू वर्मा हैं, जो स्पष्ट रूप से आरोपी सत्य नारायण शुक्ला के मवेशियों की देखभाल कर रहे थे, जबकि पी.डब्ल्यू.-4, श्रीमती विमला देवी, सत्य नारायण शुक्ला के घर में घरेलू काम देखती थी। इन दोनों गवाहों का बयान तब जांच अधिकारी द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया और उन्हें अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में गवाह के रूप में पेश किया गया।

10. सत्र न्यायालय द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध अलग से आरोप दिनांक 18.9.2004 को तय किये गये। आरोपी सत्य नारायण शुक्ला, सोनू शुक्ला और पपलू शुक्ला पर सत्र परीक्षण संख्या 199/ 2004 में आईपीसी की धारा 120-बी के साथ-साथ धारा 302 आईपीसी संपठित धारा 114 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया, जबकि आरोपी अनिल कुमार अहिरवार पर सत्र परीक्षण संख्या 200/ 2004 में शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया। आरोपी अनिल कुमार अहिरवार पर धारा 302 आईपीसी के साथ-साथ धारा 307(34) आईपीसी के तहत भी आरोप लगाया गया और आरोपी छोटू पायलट पर सत्र परीक्षण संख्या 199/ 2004 में धारा 307 आईपीसी के साथ-साथ धारा 302 (34) आईपीसी, दोनों के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया। सभी आरोपियों को आरोप पढ़कर सुनाए गए, जिन्होंने अपने निहितार्थ से इनकार किया और मुकदमा चलाने की मांग की।

11. उपरोक्त के अलावा, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रदर्श क-4 के रूप में एफआईआर; प्रदर्श क-1 के रूप में लिखित आख्या; प्रदर्श क-2 के रूप में अर्धनाली बंदूक का रिकवरी मेमो; प्रदर्श क-19 के रूप में खून से सने और सादे मिट्टी का रिकवरी मेमो; प्रदर्श क-15 के रूप में विनोद कुमार अग्रवाल की चोट आख्या; प्रदर्श क-16 के रूप में संतोष कुमार शुक्ला की चोट आख्या; प्रदर्श क-17 के रूप में लक्ष्मी नारायण की चोट आख्या; प्रदर्श क-14 के रूप में पोस्टमॉर्टम आख्या; प्रदर्श क-23 के रूप में फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की आख्या दिनांक 3.1.2005; प्रदर्श क-24 के रूप में फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की आख्या दिनांक 21.2.2005; प्रदर्श क-6 के रूप में पंचायतनामा; प्रदर्श क-20 के रूप में मुकदमा अपराध संख्या 166/ 2004 में आरोप पत्र; प्रदर्श क-21 के रूप में मुकदमा अपराध संख्या 167/ 2004 में आरोप पत्र; और प्रदर्श क-18 के रूप में सूचकांक के साथ नक्शा नजरी पेश किए।

12. पी.डब्लू.-1 प्रमोद कुमार शुक्ला है, जो सूचक है और अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है, जिसके अनुसार आरोपी अनिल कुमार अहिरवार ने अपनी अर्धनाली बंदूक से मृतक पर पीछे से गोली चलाई, जबकि दूसरे आरोपी छोटू पायलट ने अनिल कुमार अहिरवार के बचाव में गोली चलाई और गोली तीनों घायलों को लग गई। इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन किया है, जिसके अनुसार मृतक और सत्य नारायण शुक्ला के

बीच संपत्ति विवाद था, जिसे इस स्तर पर विस्तृत करने की आवश्यकता है। अभियोजन पक्ष के अनुसार पी.डब्लू.-2 बृजमोहन के पास गांव में 8 बीघा उपजाऊ जमीन थी। इस जमीन को आरोपी सत्य नारायण शुक्ला ने अपनी पत्नी श्रीमती सीता देवी के पक्ष में चोरी-छिपे अदला-बदली करा लिया था। मृतक बृजमोहन की मदद के लिए आया और संपत्ति के संबंध में प्रदीप शुक्ला और अवध किशोर निरंजन के पक्ष में बिक्री का एक समझौता करवाया, जिसे मुख्य आरोपी सत्य नारायण शुक्ला ने प्राप्त कर लिया था। जाहिर तौर पर यही सत्य नारायण शुक्ला और मृतक अशोक कुमार शुक्ला के बीच कलह का कारण था। अभियोजन पक्ष के अनुसार इसी कारण से सत्य नारायण शुक्ला ने अनिल कुमार अहिरवार और छोटू पायलट नामक सुपारी हत्यारों की व्यवस्था की और यह अनिल कुमार अहिरवार ही था, जिसने ऐसी साजिश के तहत मृतक की गोली मारकर हत्या कर दी। हालाँकि इस गवाह से विस्तृत जिरह की गई, लेकिन वह अपने बयान पर कायम है।

13. बृजमोहन पी.डब्लू.-2 के रूप में उपस्थित हुए हैं और उन्होंने मृतक की हत्या का कारण साजिश होने के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

14. राम बाबू वर्मा को पी.डब्लू.-3 के रूप में पेश किया गया है। उनकी गवाही भी अभियोजन पक्ष की साजिश की दलील के समर्थन में है। पी.डब्लू.-3 को आरोपी सत्य नारायण शुक्ला ने अपने मवेशियों की देखभाल के लिए नियुक्त किया था और उसका दावा है

कि उसने घटना की तारीख की सुबह आरोपी सत्य नारायण शुक्ला को दो मुख्य आरोपियों अनिल कुमार अहिरवार और छोटू पायलट से बात करते हुए सुना था। गवाह स्पष्ट रूप से मवेशियों के लिए चारे की व्यवस्था कर रहा था जब उसने आरोपी सत्य नारायण शुक्ला से यह बात सुनी कि यह मृतक को खत्म करने का एक अच्छा अवसर है क्योंकि दाह संस्कार के दौरान बहुत भीड़ होगी। गवाह का यह भी आरोप है कि सुपारी हत्यारों को बंदूक और कुछ पैसे सत्य नारायण शुक्ला और उनके बेटों द्वारा मुहैया कराए गए थे। इसी तरह का रुख पी.डब्ल्यू.-4 श्रीमती विमला देवी ने भी अपनाया है, जो आरोपी सत्य नारायण शुक्ला के साथ घरेलू सहायिका के रूप में काम कर रही थी। इस स्तर पर, यह ध्यान देने योग्य है कि पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 दोनों को अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपपत्र दाखिल करने के लगभग ढाई महीने बाद पेश किया गया था। अभियोजन पक्ष के अनुसार इन दोनों गवाहों ने हलफनामा देकर कहा है कि उन्होंने घटना किन **की तारीख पर** उपरोक्त बातचीत सुनी थी और उसके बाद उनका बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया था। पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 से जिरह की गई है, खासकर संबंधित घटना के संबंध में जांच अधिकारी को देर से खुलासा करने के पहलू पर। अभियोजन पक्ष के दो गवाहों ने इस आधार पर देरी की व्याख्या की है कि सत्य नारायण शुक्ला ने उन्हें धमकी दी थी क्योंकि पी.डब्ल्यू.-3 ने उसे मुख्य सुपारी हत्यारों से बात करते हुए सुना था और धमकी दी गई थी कि अगर वह ऐसे तथ्यों का किसी के सामने खुलासा करेगा तो उसे खत्म कर दिया जाएगा। यही कारण है कि

इन गवाहों ने लगभग ढाई महीने तक गाँव छोड़ दिया था और उसके बाद जब उन्हें पता चला कि सत्य नारायण शुक्ला और उनके दोनों बेटों को गिरफ्तार कर लिया गया है तो वे इतनी हिम्मत जुटा सके कि पुलिस के पास आकर जो कुछ उन्होंने सुना है कह सकें। हालांकि, जिरह में ये दोनों गवाह यह नहीं बता सके कि उन्हें आरोपियों की गिरफ्तारी के बारे में अखबार के माध्यम से कब पता चला। बचाव पक्ष द्वारा पूछे गए विशिष्ट प्रश्न के उत्तर में, पी.डब्ल्यू.-3 ने निम्नानुसार कहा: -

“इनका पहले से डर है यह बदमाश किस्म के हैं इसलिये मैंने किसी से इस षडयन्त्र के बारे में नहीं बताया। मैं यह अक्सर सुनता था कि अशोक शुक्ला से सत्यनारायण का जमीन-अमीन का विवाद चलता है। इस घटना के सभी मुलजिम कितने दिन में गिरफ्तार हो गये थे यह मुझे जानकारी नहीं है। अखबार जिससे मुझे यह जानकारी हुयी कि सब मुल्जिम पकड गये मैंने स्वयं पढा था। पढने के दूसरे दिन हम कोंच चले आये। यह घटना मई की है। मैं नही बता सकता कि 5 जून को पप्लू व सोनू गिरफ्तार हुये थे या नहीं यह समाचार 6 जून को निकला या नहीं मैं नहीं जानता था। कौन-कब गिरफ्तार हुआ मैं नहीं बता सकता। वह अखबार जिसको पढकर मैं कोंच आया किस महीने में मैंने पढा याद नहीं। सत्यनारायण के यहां मैं नौकरी करता था इसका कोई लिखित प्रमाण मेरे पास नहीं है। यह कहना गलत है कि मैंने झूठ बयान दिया है और प्रमोद शुक्ला ने लालच देकर गवाही दिलवायी।”

15. विचारण न्यायालय ने मुख्य रूप से इस आधार पर पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-4 की विश्वसनीयता पर संदेह किया है कि उनके विलंब से किये गए खुलासे को स्पष्ट नहीं किया गया है। इस तथ्य का भी प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया है कि उनके कहने पर शपथ पत्र आदि बहुत बाद में तैयार कराए गए और उनका संस्करण बिल्कुल अभियोजन पक्ष के अनुरूप है।

16. पी.डब्लू.-5 महेंद्र सिंह यादव हैं, जो घटना के गवाह होने का दावा करते हैं। हालाँकि, पी.डब्लू.-5 का उल्लेख एफआईआर में नहीं है और उनका बयान घटना के लगभग दो महीने बाद सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया है। इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। पी.डब्लू.-5 ने न्यायालय में आरोपी की पहचान की है। उसने अपना बयान दर्ज करने में हुई देरी का कारण यह बताया कि आरोपियों को गिरफ्तार नहीं किया गया था। उसने आगे कहा है कि इस घटना के बारे में उसने अपनी पत्नी के अलावा किसी को नहीं बताया है। जिरह में पी.डब्लू.-5 को सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसके पिछले बयान से रूबरू कराया गया, जिसमें उसने घटना को जिस तरह से देखा है, उसे लेकर विरोधाभास दिखा। उसने, हालाँकि, अपराध के हथियार की बरामदगी के तथ्य का खुलासा जांच अधिकारी को नहीं किया था। पी.डब्लू.-5 ने स्वीकार किया है कि वह एक मजदूर के रूप में काम करता है। उसे सुझाव दिया गया कि वह प्रमोद शुक्ला की ट्रांसपोर्ट कंपनी में काम करता है, जो आरोपी का दुश्मन है, जिससे उसने इनकार कर दिया। उसे इस

तथ्य से भी अवगत कराया गया कि पी.डब्लू.-5 का बयान राम बाबू और विमला के साथ एक ही दिन दर्ज किया गया था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि न्यायालय में दिए गए अपने बयान के विपरीत, उसके द्वारा जांच अधिकारी को मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों के बारे में नहीं बताया गया है। उसने यह भी कहा है कि जांच अधिकारी ने उसके घर पर उसका बयान दर्ज नहीं किया है, बल्कि वह खुद अपना बयान दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन गया है। उसके अनुसार, मृतक को आरोपी अनिल कुमार अहिरवार द्वारा बंदूक से चोट पहुंचाई गई थी। उसने यह भी कहा है कि गोली नजदीक से चलाई गई थी। इस गवाह ने सत्य नारायण शुक्ला के दो बेटों को इस आधार पर फंसाया है कि जब उन्होंने मृतक के साथ मारपीट शुरू कर दी, तो उसने प्रतिवाद किया कि वे उसे क्यों पीट रहे हैं, लेकिन यह बयान उसने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत पुलिस को नहीं दिया है।

17. पी.डब्लू.-6 लक्ष्मी नारायण तिवारी घायल गवाह हैं जिन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है। उन्होंने आरोपी अनिल कुमार अहिरवार की पहचान उस व्यक्ति के रूप में की है, जिसने मृतक पर गोली चलाई थी जिससे उसकी मौत हो गई। उन्होंने आगे बताया कि मृतक को गोली मारने के बाद उसके साथी ने जान से मारने की नियत से गोली चला दी जिससे संतोष शुक्ला को गोली लग गयी। जब लोगों ने अन्य आरोपियों को पकड़ने की कोशिश की तो उसने दोबारा गोली चला दी जो विनोद कुमार अग्रवाल को लगी। इसके बाद दूसरा साथी भाग गया। दूसरे साथी छोटू



पायलट की पहचान भी पीड़ित ने की है। उसने आगे कहा है कि कोंच में उसका इलाज ठीक से नहीं किया गया। इसलिए उसे जिला अस्पताल भेजा गया जहां उसका चिकित्सीय परीक्षण किया गया। उसका दावा है कि उसके कंधों पर बन्दूक की चोटें कायम हैं। इस गवाह ने जिरह में कहा है कि वह न तो झाँसी गया है और न ही उसने अपना एक्स-रे कोंच में कराया है। वह दवाइयां लेता रहा और इंजेक्शन लगवाए। थाने में कोई सूचना नहीं दी। इस गवाह से जांच अधिकारी द्वारा घटना के लगभग 40 दिनों के बाद पूछताछ की गई है। उसने आगे कहा है कि उसने मौके पर आरोपियों की पहचान नहीं की और न ही उसके द्वारा इस बारे में पुलिस को कोई खुलासा किया गया। उसने यह भी स्वीकार किया है कि अज्ञात आरोपी का नाम अखबार में 2-3 दिन बाद प्रकाशित हुआ था और तब उसे उनकी पहचान पता चली। उसने यह भी कहा है कि पुलिस को दिये गये बयान में उसने बताया है कि आरोपियों ने पूर्व दिशा से गोली चलायी थी। उसने यह नहीं बताया है कि दूसरे आरोपी के पास दोनाली बंदूक थी और उसने उससे दो बार फायरिंग की थी। उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसे लगी चोटों के साथ छेड़छाड़ की गई थी और वास्तव में उसे कोई चोट नहीं लगी थी। उसने यह भी कहा है कि आरोपी का चेहरा ढका हुआ नहीं था।

18. पी.डब्लू.-7 दूसरा घायल गवाह है। उसने भी अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। उसने यह भी कहा कि हालांकि उसे इलाज के लिए झाँसी निर्दिष्ट किया गया था लेकिन वह झाँसी नहीं गया था और उसका एक्स-रे जालौन के

उरई में ही किया गया था। उसने इस सुझाव का खंडन किया कि कोई एक्स-रे नहीं किया गया था और इसकी केवल सलाह दी गई थी। उसने इस बात से इनकार किया कि उसे लगी चोटों के साथ छेड़छाड़ की गई है। इस गवाह ने न्यायालय में दो आरोपियों की पहचान भी की है। उसका बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत घटना के डेढ़ महीने बाद दर्ज किया गया था।

19. पी.डब्लू.-8 कमाल अहमद है, जिसका आरोप है कि आरोपी ने उसके सामने न्यायेतर बयान दिया था, लेकिन बाद में उसने कहा है कि सत्य नारायण शुक्ला ने 24.05.2004 को शाम लगभग 5.30 बजे उसके सामने अपनी संलिप्तता का न्यायेतर कबूलनामा किया है। सत्य नारायण शुक्ला के दो बेटे नामतः अभिषेक उर्फ सोनू और पपलू भी उसके साथ थे। जिरह में पी.डब्लू. 8 ने खुलासा किया कि वह मृतक को पिछले 8 1/2-9 वर्षों से जानता है और वह एक राजनीतिक व्यक्ति है। सत्य नारायण शुक्ला से पहले भी चार-पांच बार मुलाकात हो चुकी है लेकिन वह अपनी मुलाकात की तारीखों का खुलासा नहीं कर सका। हालांकि इस गवाह से विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत जिरह की गई है, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि आरोपी का नाम 24.05.2004 को दैनिक जागरण, झाँसी में प्रकाशित किया गया था, लेकिन उसने अनभिज्ञता का दावा किया।

20. पी.डब्लू. 9 प्रेम सागर प्रधान सिपाही है जिसने चिक/एफ.आई.आर. साबित किया है। पी.डब्लू. 10 राजीव कुमार मिश्रा ने कानूनी

जांच साबित की है। पी.डब्लू. 11 डॉ. मणि राम शव-परीक्षा सर्जन हैं जिन्होंने पोस्टमार्टम आख्या को साबित किया है, जिसके अनुसार मृतक की उम्र लगभग 80 वर्ष थी और घटना का दिन दोपहर 2.00 बजे पोस्टमार्टम होने से लगभग छह घंटे पहले उसकी मृत्यु हो गई होगी। उन्होंने यह भी बताया कि मृतक ने घटना से 4-5 घंटे पहले खाना खाया था। मृतक की मृत्यु मानव वध के कारण हुई है। जिरह में डॉक्टर ने बताया है कि संभव था कि मृतक ने रात 12 बजे खाना खाया हो और घटना सुबह छह बजे के करीब हुई हो। उसमें कालापन भी पाया गया है लेकिन कोई बाहरी वस्तु नहीं मिली।

21. डॉ. जे.पी. भट्टाचार्य पी.डब्लू. 12 के रूप में पेश हुए हैं और विनोद कुमार अग्रवाल की चोटों को साबित किया है जिसे पुलिस सिपाही द्वारा उनके पास लाया था। उनके अनुसार, विनोद कुमार अग्रवाल को लगी चोटें बन्दूक की थीं और ताज़ा थीं। उन्होंने लक्ष्मी नारायण को लगी चोटों को भी साबित किया है। जिरह में उन्होंने स्वीकार किया है कि उनके द्वारा एक्स-रे के आधार पर कोई पूरक चिकित्सा विवरण नहीं दी गयी थी।

22. पी.डब्लू. 13 सिपाही राम चरण है जो मृतक के शव को पोस्टमार्टम के लिए ले गया था। पी.डब्लू. 14 एसआई जय नारायण वर्मा है जो वर्तमान मामले में प्रथम जांच अधिकारी थे। उन्होंने आरोपियों के पास से असलहे की बरामदगी साबित किया है। उन्होंने नक्शा नजरी सिद्ध किया है तथा रक्त-रंजित एवं सादी मिट्टी आदि भी लिया है। उन्होंने जांच

के दौरान अपने द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों के बारे में बताया है। उनके मुताबिक अर्धनाली बंदूक उन्हें प्रमोद शुक्ला ने दी थी और उस वक्त उन्हें आरोपी अनिल कुमार अहिरवार मौके पर नहीं मिला था। तब तक आरोपी अनिल कुमार अहिरवार को सिपाही अमृत लाल और सोहन लाल सी.एच.सी. कॉच ले जा चुके थे। इस गवाह से विस्तृत जिरह की गई है। उन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि प्रमोद शुक्ला का बयान 28 मई 2004 को दर्ज किया गया था। उन्होंने असलहे की बरामदगी साबित किया है। अन्य आरोपी छोटू पायलट के बारे में गवाह ने कहा था कि उसका नाम जांच के दौरान 23.05.2023 को सामने आया था और उसे उसी तारीख को आरोपी के माता-पिता और पते के बारे में पता चला था। हालाँकि, उन्होंने ललितपुर स्थित उसके घर जाने या उसकी गिरफ्तारी सुनिश्चित करने का कोई प्रयास नहीं किया। उसकी गिरफ्तारी के लिए पुलिस अधिकारियों से कोई अनुमति नहीं मांगी गई थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वह पी.डब्लू. 4 द्वारा दिए गए बयान के अनुसार सत्य नारायण शुक्ला के घर नहीं गए और न ही घटना स्थल का दौरा किया। इस गवाह ने इस सुझाव का खंडन किया है कि आरोपी के बेहोश होने या अस्पताल में रखे जाने के बयान में बाद में हेरफेर किया गया है।

23. पी.डब्लू. 15 सिपाही अमृत लाल है जो घायल आरोपी को अस्पताल ले गया। पी.डब्लू. 16 राधे श्याम त्रिवेदी हैं जो दूसरे जांच अधिकारी हैं और आरोप पत्र साबित कर चुके हैं। उनकी तैनाती कोतवाली कॉच में कार्यवाहक निरीक्षक के रूप में 26.05.2004 को हुई थी।

इस साक्षी का कथन है कि मुखबिर प्रमोद कुमार शुक्ला उससे दिनांक 28.05.2004 को लगभग 4 बजे अपराहन में रेलवे क्रासिंग के पास मिला। उसकी निशानदेही पर दूसरे आरोपी छोटू पायलट को शाम 04.10 बजे गिरफ्तार कर लिया गया। मुखबिर का दूसरा बयान 29.05.2004 को दर्ज किया गया था। आरोपी सत्य नारायण शुक्ला को दिनांक 11.06.2004 को गिरफ्तार किया गया। उन्होंने 16.06.2004 को आरोपी सोनू उर्फ अभिषेक और पपलू शुक्ला का बयान भी दर्ज किया है। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि उसे प्रमोद शुक्ला ने बताया था कि उसने अन्य अभियुक्तों को शाम पौने चार बजे थाना कोंच में बेंच पर बैठे देखा था। गवाह ने इस सुझाव का खंडन किया कि वास्तव में छोटू पायलट को 27.5.2004 को ही गिरफ्तार कर लिया गया था और उसे धोखाधड़ी से 28.05.2004 को गिरफ्तार किया गया दिखाया गया था।

24. पी.डब्लू. 17 डॉ. राजेंद्र नाथ हैं जो मेडिकल कॉलेज, कानपुर में प्रोफेसर और ऑर्थोपेडिक सर्जन थे। अपने मुख्य परीक्षा में, उन्होंने कहा है कि मेडिकल कॉलेज, कानपुर में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनाती के दौरान, उन्होंने संतोष कुमार शुक्ला की जांच की, जिसके दाहिने घुटने में बंदूक की गोली से चोट लगी थी। उन्होंने उसका ऑपरेशन किया था और यह चोटें उसे 19.05.2004 को 10.30 बजे लगी होंगी। जिरह में गवाह ने कहा कि इसके मेडिको-लीगल मामले होने का कोई संदर्भ नहीं मिला। हालाँकि, आरोपी को मेडिको-लीगल मामले के रूप में माना गया। घायल के शरीर से निकाली गई गोली को एक लिफाफे में

रखकर पुलिस अधीक्षक, कानपुर को भेजा गया। उन्होंने यह भी कहा है कि निकटतम पुलिस स्टेशन स्वरूप नगर को सूचित किया गया था।

25. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर सभी अभियुक्तों का बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया है। आरोपी अनिल कुमार अहिरवार ने अपने निहितार्थ से इनकार किया है। उसके अनुसार, उसे प्रथम मुखबिर के दबाव में दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है। अंत में उसने बताया कि वह ग्राम सलैया का निवासी है और जब उसके पिता ललितपुर में नौकरी करते थे तो विपणन करने के लिए कोंच आया करते थे। उसने आरोप लगाया है कि वह अपने गांव लौट रहा था जब पुलिस ने कुछ सार्वजनिक व्यक्तियों के साथ मिलकर उसे जबरन पकड़ लिया; उसके साथ मारपीट की और 3-4 दिनों तक अवैध कारावास में रखा; और उसके बाद उसे इस मामले में झूठा फंसा दिया। आरोपी छोटू पायलट ने भी अपने निहितार्थ से इनकार किया है और कहा है कि उसे 27.05.2004 को सुबह 10.00 बजे ललितपुर से गिरफ्तार किया गया था और कोंच पुलिस को सौंप दिया गया था। इस संबंध में उसके पिता ने एक टेलीग्राम भी भेजा है। आरोपी सत्य नारायण शुक्ला की पहले ही मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उसके बयान को सीआरपीसी की धारा 313 के तहत संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अभिषेक उर्फ सोनू ने बताया है कि उसके पिता और मृतक के बीच कृषि भूमि को लेकर कोई दुश्मनी नहीं थी। उसने इस बात से इनकार

किया है कि पी.डब्ल्यू. 3 उसके पिता के लिए काम कर रहा था या पी.डब्ल्यू. 4 उसके घर में घरेलू सहायिका थी। उसने कहा है कि उसकी संपत्ति हड़पने की नियत से उसके भाई और पिता को झूठा फंसाया गया है।

26. बचाव पक्ष की ओर से राम गुलाम सेन को डीडब्ल्यू 1 के रूप में पेश किया गया है, जो आरोपी छोटू पायलट के पिता हैं। उसका दावा है कि 27 मई 2004 को सुबह 10 बजे दो सिपाही आए और उसके बेटे को गिरफ्तार लिया। उसका दावा है कि जब उसे बताया गया कि उसके बेटे को कोंच पुलिस ले गई है, उसने सुबह 11 बजे, फिर शाम 6 बजे और उसके बाद रात 11 बजे पुलिस स्टेशन का दौरा किया। जिरह में गवाह ने खुलासा किया कि वह नगर पालिका, ललितपुर में चपरासी के पद पर काम करता है। उसने इस बात से इनकार किया कि उसका बेटा आपराधिक गतिविधियों में शामिल है। बचाव पक्ष ने देवी प्रसाद को डीडब्ल्यू 2 के रूप में पेश किया जिसने भी आरोपी छोटू पायलट की दिनांक 27.05.2004 को गिरफ्तारी के तथ्य को साबित किया है। डॉ. मणिराम को डीडब्ल्यू 3 के रूप में पेश किया गया है, जिनका दावा है कि एक अज्ञात व्यक्ति को पुलिस स्टेशन द्वारा उनके पास लाया गया था। वह होश में नहीं था और उन्होंने उसे उच्च चिकित्सा केंद्र के लिए भेज दिया था। इस गवाह ने अनिल कुमार अहिरवार की पहचान उस व्यक्ति के रूप में की है, जिससे उसने 19.05.2004 को ही पूछताछ की थी। शैलेन्द्र तिवारी को डीडब्ल्यू 4 के रूप में पेश किया गया है जो पुलिस अधीक्षक, ललितपुर के कार्यालय में अभिलेखपाल हैं। यह

गवाह मुकर गया है। डीडब्ल्यू 5, तैय्यब अली आयुक्त कार्यालय, झाँसी में कनिष्ठ सहायक हैं जिन्होंने आयुक्त कार्यालय, झाँसी में आवेदक के बेटे को पुलिस द्वारा परेशान किये जाने के संबंध में 28.05.2004 को टेलीग्राम की प्राप्ति स्वीकार की है।

27. परीक्षण के दौरान प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर निचली न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि जमीन-जायदाद को लेकर दुश्मनी के कारण, सत्य नारायण शुक्ला और उनके दो बेटों द्वारा रची गई योजनाबद्ध साजिश के अनुसार, मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया है, जिसमें दो आरोपियों अनिल कुमार अहिरवार और छोटू पायलट को सुपारी हत्यारा के रूप में शामिल किया गया है, और अनिल कुमार अहिरवार ने न केवल मृतक अशोक कुमार शुक्ला की हत्या की, बल्कि उसके साथी ने अन्य तीन घायलों को भी आग्नेयास्त्र से घायल कर दिया। एक निष्कर्ष यह आया है कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया है और परिणामस्वरूप आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है। इस प्रकार, सत्र परीक्षण संख्या 199/ 2004 और 200/ 2004 में पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाली पीड़ित की अपीलें इस न्यायालय के समक्ष हैं।

28. परीक्षण न्यायालय ने, हालाँकि, आरोपी अभिषेक उर्फ सोनू और पप्पू शुक्ला को बरी कर दिया है क्योंकि परीक्षण न्यायालय द्वारा पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 की गवाही के आधार उनके बरी किए जाने की सीमा तक

उनकी संलिप्तता का संस्करण विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं पाया गया था, राज्य ने अपनी अपील में ऐसे निष्कर्षों को चुनौती दी है।

29. अभियुक्त-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है और न तो अभियोजन पक्ष घटनास्थल पर उसकी गिरफ्तारी साबित करने में सफल रहा है और न ही उसके पास से आग्नेयास्त्र की कथित बरामदगी के आधार पर उसकी भूमिका स्थापित की गई है। आगे यह भी कहा गया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच अत्यधिक देरी के बाद की गई है। यह भी तर्क दिया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का अन्यथा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और सुपारी हत्यारा होने की दलील की पुष्टि नहीं हुई है। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपराध को अंजाम देने में उसका कोई मकसद या संबंध नहीं है और इसलिए, उसकी दोषसिद्धि और सजा अस्वीकार्य है।

30. आरोपी-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार की ओर से, यह कहा गया है कि मृतक अशोक शुक्ला की चोटें आरोपी को निर्दिष्ट किए गए हथियार से मेल नहीं खाती हैं और इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार के निहितार्थ को कायम नहीं रखा जा सकता है। इस तरह के तर्क के समर्थन में, आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सुप्रीम कोर्ट के **मोहिंदर सिंह बनाम राज्य; एआईआर 1953 एससी 415; राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य 1975 (4) एससीसी 497;**

**आपराधिक अपील संख्या 2641/ 2012 (शिवेंद्र सिंह उर्फ भोला बनाम उ.प्र. राज्य), आपराधिक अपील संख्या 612/ 1996 (जगत पाल और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य) के साथ ही आपराधिक अपील संख्या 5735/ 2009 (सर्वेश दिवाकर बनाम उ.प्र. राज्य) में इस न्यायालय के हालिया निर्णय के फैसले पर भरोसा जताया है।**

31. अभियुक्त-अपीलकर्ता छोटू पायलट की ओर से, यह तर्क दिया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया है और वर्तमान घटना में उसे फंसाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री मौजूद नहीं है। आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यद्यपि यह आरोप लगाया गया है कि उसे घटनास्थल पर देखा गया था, लेकिन उसकी पहचान सुनिश्चित नहीं की गई थी और 28.05.2004 को रेलवे स्टेशन कौंच पर उसकी गिरफ्तारी विश्वसनीय या भरोसेमंद नहीं है। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता छोटू पायलट की पहचान 23.05.2004 को ही सुनिश्चित कर ली गई थी और यह दलील कि उसे कौंच रेलवे स्टेशन से उठाया गया था, एक काल्पनिक घटना है। यह भी तर्क दिया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को वास्तव में 27.04.2004 को ही उसके घर से गिरफ्तार किया गया था और अभियोजन पक्ष का मामला कि कौंच रेलवे स्टेशन पर अभियोजन गवाहों द्वारा उसकी पहचान की गई थी, विश्वसनीय नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता छोटू पायलट का अन्यथा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और उसके

पास से कोई आपत्तिजनक सामग्री एकत्र नहीं की गई है ताकि उसे वर्तमान मामले में फंसाया जा सके।

32. विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 की गवाही विश्वसनीय है और चूंकि बरी किए गए आरोपी के पिता का मृतक से संपत्ति विवाद अभिलेख पर अच्छी तरह से स्थापित है, इसलिए परीक्षण न्यायालय ने दोनों आरोपियों को बरी करने में गलती की है।

33. बरी किए गए दो अभियुक्तों की ओर से यह कहा गया है कि पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 की गवाही विश्वसनीय नहीं है और आरोप-पत्र दाखिल होने के कई महीनों बाद उनका निहितार्थ पुलिस द्वारा स्थापित एक काल्पनिक मामले के अलावा कुछ और नहीं है।

34. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उनके न्यायेतर कबूलनामे के संबंध में पी.डब्ल्यू.-8 की गवाही बेहद कमजोर सबूत है, जो विश्वसनीय नहीं है और दो आरोपियों को केवल झूठा फंसाने के लिए बनाया गया है।

35. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुखवीर सिंह, अभियुक्त-अपीलकर्ता छोटू पायलट के विद्वान अधिवक्ता श्री कमल किशोर मिश्रा, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. सुश्री अर्चना सिंह और बरी किए गए आरोपी अभिषेक उर्फ सोनू और पपलू शुक्ला के विद्वान अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा को सुना और परीक्षण कार्यवाही के अभिलेखों सहित वर्तमान आपराधिक अपीलों

के अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्रियों का अवलोकन किया।

36. वर्तमान मामले में प्रथम सूचना आख्या घटना के एक घंटे से भी कम समय में दर्ज की गई है, जो कथित तौर पर 19.05.2004 को सुबह 10:30 बजे हुई थी। लिखित आख्या विपीन शुक्ला द्वारा लिखी गई है तथा इसकी विषयवस्तु सूचक प्रमोद कुमार शुक्ला द्वारा प्रमाणित की गई है। एफआईआर के अनुसार, मृतक अपने पड़ोसी नामतः अमर चंद्र अग्रवाल के दाह संस्कार से लौट रहा था तभी एक अज्ञात व्यक्ति ने अर्धनाली बंदूक निकालकर के सिर में पीछे से गोली मार दी, जिससे उसकी तत्काल मौत हो गई। अभियोजन पक्ष के अनुसार, अज्ञात आरोपी को घटनास्थल पर ही पकड़ लिया गया था और जनता के सदस्यों द्वारा उसके साथ मारपीट भी की गई थी। आरोपी द्वारा प्रयोग की गई अर्धनाली बंदूक भी बरामद कर ली गई थी और बरामदगी को प्रदर्शक-2 के रूप में सिद्ध किया गया है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, उसी समय दूसरे आरोपी-अपीलकर्ता छोटू पायलट ने अपने सहयोगी अनिल कुमार अहिरवार को बचाने के इरादे से गोली चला दी। गोली विनोद कुमार अग्रवाल को लगी उसके बाद, दूसरे आरोपी छोटू पायलट ने फिर से गोली चलाई और इस बार चोट घायल लक्ष्मी नारायण तिवारी और संतोष शुक्ला को लगी। दूसरा आरोपी मौके से भाग गया और उसे 28.05.2004 को गिरफ्तार किया जा सका।

37. अभियुक्त-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार की ओर से, उसकी गिरफ्तारी की

घटना पर मुख्य रूप से इस आधार पर सवाल उठाया गया है कि न तो उसकी गिरफ्तारी मौके पर साबित हुई है और न ही कोई ऐसा मकसद दिखाया गया है जिसके कारण उसके लिए अपराध करने कोई अवसर था। अभियुक्त-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुखवीर सिंह ने जोर देकर बताया किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को 24.05.2004 को ही गिरफ्तार किया गया है और अभियोजन पक्ष का मामला कि उसे मौके पर ही गिरफ्तार किया गया था, प्रमाणित नहीं है। उनका आगे तर्क है कि अभियुक्त अनिल कुमार अहिरवार पर हमले का अभियोजन मामला भी पूरी तरह से प्रमाणित नहीं है, क्योंकि उसकी चोटें आदि साबित नहीं हुई हैं। एफ.एस.एल. आख्या के मद्देनजर उसके पास से बरामद आग्नेयास्त्र की ताकत पर उसके निहितार्थ पर भी सवाल उठाया गया है, जो मृतक को लगी चोट के साथ आरोपी के पास से बरामद आग्नेयास्त्र से मेल नहीं खाता है।

38. जहां तक आरोपी-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार का सवाल है, अभियोजन पक्ष के गवाह इस बात पर कायम हैं कि उसने अपनी अर्धनाली बंदूक से मृतक पर गोली चलाई थी और उसे मौके पर ही पकड़ लिया गया था। उस संबंध में पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.5 की गवाही विशिष्ट है। हालाँकि आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से परीक्षण पहचान प्रदर्शन के न होने पर चुनौती दी गई है, लेकिन हमें ऐसी चुनौती में ज्यादा दम नहीं दिखता है। अभिलेखों से पता चलता है कि वास्तव में एक अज्ञात व्यक्ति को चिकित्सा अधीक्षक, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, काँच (जालौन) के सामने पेश

किया गया था, जिसकी उम्र लगभग 25 वर्ष थी और पुलिस उसे अपनी जीप में लेकर आई थी। घायलों को 19.05.2004 को दी गई दवा 'पेपर संख्या 99 ख' के रूप में प्रस्तुत की गई है।

*"नाम - अज्ञात*

*आयु/लिंग - लगभग 25 वर्ष/पु*

*निवासी - अज्ञात*

*द्वारा लाया गया - पुलिस - कामेश - जीप*

*बी.पी. 110/76 एमएमएचजी*

*पल्स 80/मिनट*

*नाड़ी 80 /मिनट*

*इंजेक्शन आर.एल. II*

*इंजेक्शन 10% डेक्सट्रोज़।*

*इंजेक्शन डेकाड्रोन 2 सीसी आई.एम. स्टेट*

*इंजेक्शन जेंटामाइसिन 80 एमजी. आई.एम. स्टेट*

*इंजेक्शन वोवेरॉन 1 एएमपी. आई.एम. स्टेट*

*इंजेक्शन सेफ़ाज़ोल 500 एमजी. आई.एम.*

*एक्स-रे और आगे के उपचार और मेडिको लीगल आख्या के लिए अस्पताल, उरई भेजा गया।"*

39. पहला जांच अधिकारी अर्थात्; जय नारायण वर्मा, पी.डब्ल्यू.-14 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार को पुलिस सिपाहियों द्वारा चिकित्सीय परीक्षण के लिए सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, काँच (जालौन) ले जाया गया था, जिसके बाद उसे जिला अस्पताल, झाँसी के लिए भेज दिया गया था। इस गवाह ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि पकड़े गए अज्ञात आरोपी को मेडिकल कॉलेज, झाँसी में भर्ती

कराया गया था और अंततः 23.05.2004 को छुट्टी दे दी गई, जिसके बाद उसे 24.05.2004 को औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर लिया गया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, इसलिए, स्पष्ट रूप से इसका खुलासा करते हैं कि आरोपी-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार को मौके पर ही पकड़ लिया गया था और उसे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, कोंच (जालौन) में चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजा गया था और उसके बाद उसे मेडिकल कॉलेज, झाँसी में भर्ती कराया गया था जहाँ से, उसे 23.04.2004 को छुट्टी दे दी गई। यद्यपि अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त अनिल कुमार अहिरवार का विशिष्ट उपचार कार्ड प्रस्तुत नहीं किया गया है, फिर भी गवाहों की मौखिक गवाही के रूप में अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का भारी वजन, जिन्होंने घटना देखी है, न्यायालय को अभियोजन पक्ष के मामले को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है कि यह वास्तव में आरोपी अनिल कुमार अहिरवार था, जिसने मृतक पर गोली चलाई थी और जनता के सदस्यों ने उसे मौके पर ही पकड़ लिया था। इस समय यह भी देखा जा सकता है कि डॉ. मनीराम को डी.डब्ल्यू.-3 के रूप में भी पेश किया गया है, जिन्होंने सी.एच.सी., कोंच (जालौन) में आरोपी अनिल कुमार अहिरवार की जांच की थी और स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी को पुलिस द्वारा उनकी जीप में लाया गया था और उन्होंने उसे वास्तव में अज्ञात के रूप में जांचा था। घायल आरोपी होश में नहीं था और उन्होंने उसे आगे की चिकित्सा जांच के लिए भेजा दिया था। हालाँकि इस गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है, लेकिन उसने स्पष्ट रूप से आरोपी को पहचान लिया कि यह वही

व्यक्ति है जिसे वास्तव में अज्ञात के रूप में उसके सामने लाया गया था और उसके द्वारा जांचा गया था। बचाव पक्ष द्वारा अभियुक्त को गलत फंसाने के किसी भी संभावित कारण का हवाला देते हुए अन्यथा कोई कारण नहीं बताया है। यह विवाद में अन्यथा नहीं है कि मृतक को नजदीक से आग्नेयास्त्र से चोट लगी थी जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। घटनास्थल पर निर्विवाद रूप से मौजूद अभियोजन पक्ष के गवाहों ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है कि किस तरह से आरोपी अनिल कुमार अहिरवार ने अपनी अर्धनाली बंदूक से नजदीक से गोली चलाई, जिससे मृतक की मृत्यु हो गई। बचाव पक्ष का तर्क कि अनिल कुमार अहिरवार को मौके पर नहीं पकड़ा गया था या घटना के समय उसकी पहचान सत्यापित या स्थापित नहीं की गई थी, खारिज किया जाता है।

40. अन्य आरोपी-अपीलकर्ता छोटू पायलट की बात करें तो, हम पाते हैं कि अभियोजन का मामला स्पष्ट रूप से घटना के स्थान पर एक दूसरे आरोपी की उपस्थिति को संदर्भित करता है, जिसने कथित तौर पर दो बार गोलीबारी की थी, जिससे विनोद कुमार अग्रवाल, लक्ष्मी नारायण तिवारी और संतोष शुक्ला घायल हो गए थे। अभियोजन पक्ष का कहना है कि दूसरा आरोपी मौके से भाग गया और उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सका। अभियोजन पक्ष के मुताबिक दूसरा आरोपी, जिसने दो बार फायरिंग की और मौके से भाग गया, वास्तव में छोटू पायलट है।

41. बचाव पक्ष की ओर से जोरदार तर्क दिया गया कि न तो आरोपी छोटू पायलट की



पहचान स्थापित की गई है और न ही कोई परीक्षण पहचान प्रदर्शन आयोजित की गई है, इसलिए उसकी पहचान अनिर्धारित है। यह भी तर्क दिया गया कि वास्तव में आरोपी छोटू पायलट को 27.05.2004 को उसके घर से गिरफ्तार किया गया था और पुलिस स्टेशन में 28.05.2004 को उसकी पहचान और गिरफ्तारी विश्वसनीय नहीं है।

42. हमने आरोपी छोटू पायलट की ओर से दिए गए तर्क का मूल्यांकन करने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की जांच की है, जो निर्विवाद है कि आरोपी छोटू पायलट जिला ललितपुर का निवासी है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। माना कि उसे मौके पर नहीं पकड़ा गया था। उसके पास से कोई भी आग्नेयास्त्र बरामद नहीं किया गया है जिससे उस पर घायल पर गोली चलाने का आरोप है और न ही उससे कोई ऐसी बरामदगी हुई है जो उसे अपराध आदि से जोड़ सके। जांच अधिकारी ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि दूसरे आरोपी छोटू पायलट की पहचान 24.05.2004 को ही हो गई थी। आरोपी छोटू पायलट की पहचान का यह पता मुख्य आरोपी अनिल कुमार अहिरवार द्वारा किए गए खुलासे पर आधारित है। एक बार जब पुलिस को आरोपी छोटू पायलट की पहचान पता चल गई, तो यह उम्मीद थी कि या तो उसे गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाएगा या पुलिस कम से कम कथित आरोपी से पूछताछ करने की कोशिश करेगी। हालाँकि, यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि आरोपी छोटू पायलट से पूछताछ करने या अपराध को अंजाम देने में उसकी भूमिका

को सत्यापित करने का कोई प्रयास किया गया था। इस पहलू पर अभियोजन का मामला कुछ हद तक असामान्य है। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, सूचक यानी पी.डब्ल्यू.-1 ने 28.05.2004 को रेलवे स्टेशन कॉच का दौरा किया था और आरोपी को वहां एक बेंच पर बैठा पाया। पी.डब्ल्यू.-1 ने इसके बाद पुलिस को सूचित किया, जिसके बाद कथित तौर पर आरोपी को 28.05.2004 को रेलवे स्टेशन कॉच से गिरफ्तार कर लिया गया।

43. अभियुक्त छोटू पायलट की गिरफ्तारी के बिंदु पर, बचाव पक्ष ने आरोपी छोटू पायलट के पिता की गवाही डी.डब्ल्यू.-1 के रूप में पेश की है और जिनके अनुसार दिनांक 27.05.2004 को ही आरोपी छोटू पायलट को उसके घर से उठा लिया गया था। आरोपी छोटू पायलट के पिता द्वारा 27.05.2004 को ही मुख्यमंत्री को एक टेलीग्राम भेजा गया था। बचाव पक्ष द्वारा मूल अभिलेख प्रस्तुत किये गये हैं एवं विधिवत प्रमाणित किये गये हैं, जिसके अनुसार, आरोपी छोटू पायलट की गिरफ्तारी के संबंध में टेलीग्राम 27.05.2004 को ही रात्रि 11:52 बजे भेजा गया है। आरोपी छोटू पायलट की 27.05.2004 को गिरफ्तारी और टेलीग्राम भेजने आदि के संबंध में बचाव गवाहों को उनके विशिष्ट दावे पर विशेष रूप से विवादित नहीं किया गया है। बचाव पक्ष ने, इसलिए, अभिलेख पर स्थापित किया है कि आरोपी छोटू पायलट को उसके घर से 27.05.2004 को ही गिरफ्तार किया गया था। एक बार ऐसा होने पर, हमें अभियोजन का आरोपी छोटू पायलट की 28.05.2004 की शाम रेलवे स्टेशन कॉच से गिरफ्तारी का मामला विश्वसनीय नहीं

लगता। अभियुक्त छोटू पायलट की रेलवे स्टेशन कोंच से गिरफ्तारी के बिंदु पर गवाहों की पूरी कहानी संदिग्ध पाई गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस ने आरोपी छोटू पायलट की परीक्षण पहचान प्रदर्शन न कराने की कमी से छुटकारा पाने के लिए ही मुखबिर की निशानदेही पर आरोपी छोटू पायलट को रेलवे स्टेशन कोंच से गिरफ्तार करने का मामला पेश किया है। आखिर आरोपी छोटू पायलट की पहचान कैसे हुई यह अज्ञात है। उस संबंध में अभियोजन पक्ष का मामला ठोस नहीं पाया गया।

आरोपी छोटू पायलट को अन्यथा फंसाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है, यहां तक कि न ही 24.05.2004 से पहले किसी भी गवाह के बयान में अभियुक्त की शारीरिक विशेषताएं दर्ज की गई हैं और न ही जांच के दौरान पहचान का कोई अन्य विशिष्ट चिह्न निर्दिष्ट किया गया है, जिससे वैध रूप से आरोपी छोटू पायलट की पहचान हो सके। मामले के उस दृष्टिकोण में, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी छोटू पायलट का अपराध सिद्ध नहीं कर सका है।

44. जहां तक आरोपी अभिषेक उर्फ सोनू और पप्पू शुक्ला को बरी करने के संबंध में शासकीय अपील का सवाल है, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें बरी करने के लिए दिए गए तर्क अच्छी तरह से स्थापित है। इन दोनों आरोपियों का निहितार्थ मुख्य रूप से पी.डब्ल्यू.-3, पी.डब्ल्यू.-4 और पी.डब्ल्यू.-8 की गवाही पर आधारित है।

पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 कथित तौर पर सत्य नारायण शुक्ला के घर में काम कर रहे थे और अभियोजन पक्ष के अनुसार, उन्होंने सत्य नारायण शुक्ला को मृतक को खत्म करने की साजिश के संबंध में दोनों आरोपियों से बात करते हुए सुना था। हालांकि, पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 ने घटना के तुरंत बाद या उचित अवधि के भीतर भी पुलिस के सामने ऐसा कोई खुलासा नहीं किया है। आरोप पत्र दाखिल होने तक भी पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 अभिलेख पर सामने नहीं आए हैं। पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 द्वारा 24.08.2004 को पुलिस अधिकारियों को एक हलफनामा दिया गया है, जो दिनांक 28.06.2004 को आरोप पत्र दाखिल होने के लगभग दो महीने बाद है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 सत्य नारायण शुक्ला के घर में नौकर, घरेलू सहायक थे। पी.डब्ल्यू.-3 मवेशियों की देखभाल करता था, जबकि पी.डब्ल्यू.-4 फर्श आदि साफ करती थी। यह स्पष्ट नहीं है कि इन दोनों लोगों को अचानक पूरे मामले की जानकारी कैसे हो गई और अपने शपथ पत्र उच्च पुलिस अधिकारियों को सौंपने का निर्णय लिया, किसने उन्हें अपने हलफनामे तैयार करने और अधिकारियों के समक्ष दायर करने के लिए राजी किया। पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 का उनके हलफनामे का संस्करण बिल्कुल वही है, जो अभियोजन का समर्थन करता है। पी.डब्ल्यू.-3 ने कहा है कि जब उसने सत्य नारायण शुक्ला की दोनों आरोपियों के साथ बातचीत सुनी थी, तो सत्य नारायण शुक्ल द्वारा उसे चेतावनी दी गई कि वे इस संबंध में किसी को भी तथ्य

न बताएं। इन दोनों गवाहों के अनुसार, सत्य नारायण शुक्ला और उनके दो बेटों की गिरफ्तारी के बाद ही उन्होंने गांव तुरंत छोड़ दिया और अपना शपथ पत्र दिया। दोनों गवाहों से सत्य नारायण शुक्ला और उनके दोनों बेटों की गिरफ्तारी की जानकारी के संबंध में जिरह की गई है। उस संबंध में कोई विशेष विवरण का खुलासा नहीं किया गया है। यह स्वीकार किया गया है कि सत्य नारायण शुक्ला और उनके दोनों बेटों को जून 2004 में ही गिरफ्तार कर लिया गया था और इस संबंध में तथ्य समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए थे। अगर ऐसा था तो यह समझना मुश्किल है कि इन दोनों ने करीब दो महीने बाद शपथ पत्र क्यों दिया। पी.डब्ल्यू.-8, जो साजिश का दूसरा गवाह है, भी पी.डब्ल्यू.-8 को दिए गए न्यायेतर स्वीकारोक्ति के एक मामले के साथ सामने आया है। पी.डब्ल्यू.-8 के साक्ष्यों का हमारे द्वारा परीक्षण किया गया है, जो अधिक प्रेरक नहीं पाया गया है। पी.डब्ल्यू.-8 एक राजनीतिक व्यक्ति है। उसका आरोप है कि आरोपी उन्हें पहले से जानते थे, लेकिन यह नहीं बता पाए कि आरोपी उससे कब और किस संदर्भ में मिले हैं। अपनी प्रकृति से न्यायेतर स्वीकारोक्ति अन्यथा साक्ष्य का एक बहुत ही कमजोर टुकड़ा है। पी.डब्ल्यू.-8 की गवाही के साथ-साथ पी.डब्ल्यू.-3 और पी.डब्ल्यू.-4 के बयानों के रूप में अभियोजन का मामला स्वाभाविक और ठोस प्रतीत नहीं होता है। उनकी गवाही सिर्फ सत्य नारायण शुक्ला के दो बेटों को फंसाने की मंशा से बाद में पेश की गई प्रतीत होती है। इसलिए, हमारा विचार है कि विचारण न्यायालय ने

इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कि अभियोजन पक्ष दोनों आरोपियों का अपराध सिद्ध करने में सफल नहीं हुआ है और उन्हें बरी करने में गलती नहीं की है। हमें शासकीय अपील संख्या 983/ 2006 में कोई दम नहीं दिखता, जिसे परिणामस्वरूप खारिज किया जाता है और अभिलेख में भेजा जाता है।

45. उपरोक्त विचार-विमर्श और चर्चा के मद्देनजर, आरोपी-अपीलकर्ता अनिल कुमार अहिरवार की ओर से दायर आपराधिक अपील संख्या 4894/ 2005 विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। वह जमानत पर है। शेष सजा काटने के लिए उसे 15 दिनों की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा।

46. आपराधिक अपील संख्या 5303/ 2005 छोट्ट पायलट @ दीपक नाई सफल हुआ और उसे अनुमति दी गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता छोट्ट पायलट उर्फ दीपक, जो जमानत पर है, इसलिए, उसके जमानत मुचलका को उन्मोचित किया जाएगा। उसे समर्पण की जरूरत नहीं है। वह चार सप्ताह की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय की संतुष्टि का सीआरपीसी की धारा 437ए के अनुपालन में व्यक्तिगत मुचलका और जमानत मुचलका दाखिल करेगा।

47. कार्यालय को अवर न्यायालय के अभिलेख को निर्णय की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय में भेजने का निर्देश दिया गया है जो अनुपालन सुनिश्चित करेगा।

-----

(2023) 9 ILRA 663

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 259 वर्ष 2004

महेश चंद्र

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:

शरद पाठक

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री बी बी सिंह

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397 तथा धारा 401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 एवं 304 भाग II - दण्ड में पुनर्वासात्मक एवं सुधारात्मक पहलू - 'आनुपातिकता का सिद्धांत' - दण्ड दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होना चाहिए - अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, अभियुक्त की आयु एवं लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए - दण्ड देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने या मनमानी ढंग से नहीं किया जा सकता - दण्ड न तो अत्यधिक कठोर होना चाहिए और न ही अत्यधिक कम। (पैरा - 8,9)

प्रतिवादी संख्या-2 को धारा 302 आईपीसी के स्थान पर धारा 304 भाग II आईपीसी के

अंतर्गत दोषी ठहराया गया - कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं - पांच वर्ष के कारावास और जुर्माने की सजा - अतः पुनरीक्षण। (पैरा-2)

**अभिनिर्धारित:-** कोई भी अभियुक्त सुधार के अयोग्य नहीं है, इसलिए उसे सामाजिक धारा में लाने के लिए उसे सुधार का अवसर प्रदान करने हेतु सभी उपाय किए जाने चाहिए। न्यायालय का निर्णय वैध कारणों पर आधारित था और उसे संभाव्य एवं तार्किक माना गया। अगर न्यायालय के निर्णय को अवैध, अतार्किक और असम्भाव्य नहीं कहा जा सकता और न ही यह अभिलेख में उपलब्ध सामग्री पर आधारित है, न ही यह गलत विचारों पर आधारित है और न ही यह विधि की स्थापित स्थिति के विरुद्ध है। इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 11,13)

पुनरीक्षण खारिज।(ई-7)

उद्धृत वादों की सूची :

1. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम एपी राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
2. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257
3. रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166
4. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) एससीसी 12 532

5. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य,  
(2012) 8 एससीसी 734

भा.द.वि. के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया था तथा पांच वर्ष के कारावास एवं 1000/- रुपये के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया था।

6. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014)  
7 एससीसी 323

3. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि अवर न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों की सराहना नहीं की। उन्होंने आगे दलील दी कि अभियोजन पक्ष ने साक्ष्यों के आधार पर आरोपी/विपरीत पक्ष संख्या 2 के खिलाफ अपराध को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है। गवाहों के बयान पर विचार किए बिना ही फैसला सुनाया गया और अभियोजन पक्ष ने अनुमान और अटकलों के आधार पर मामला बनाया।

7. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3  
एससीसी 441

8. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016)  
1 एससीसी 463

9. जागृति देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य,  
(2009) 14 एससीसी 771

10. भगवान सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य,  
(2020) 14 एससीसी 184

4. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने दलील दी है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं दिखाई देती है, इसलिए इस पुनरीक्षण को खारिज किया जा सकता है।

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा  
पारित)

1. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और आधार पर विचार किया है, साथ ही विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता पर भी विचार किया है तथा अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अध्ययन किया है।

2. यह पुनरीक्षण अपीलकर्ता द्वारा धारा 397 सहपठित धारा 401 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अतिरिक्त जिला सत्र न्यायाधीश/ एफटीसी-II, सुल्तानपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 192/2002: राज्य बनाम राजा राम में पारित दिनांक 18.03.2004 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या-2 को धारा 302 भा.द.वि. के स्थान पर धारा 304 भाग II

6. वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत गवाहों/साक्ष्यों द्वारा दिए गए बयानों से, अवर न्यायालय ने रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री को देखने के बाद, यह निष्कर्ष दिया है कि विपक्षी संख्या 2 ने धारा 302 भा.द.वि. के तहत अपराध नहीं किया है, बल्कि अवर न्यायालय ने धारा 304 (II) भा.द.वि. के तहत

आरोप तय किए हैं और उसे पांच साल के कठोर कारावास और 1000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि धारा 302 भा.द.वि. के तहत अपराध/अपराध आरोपी/विपक्षी संख्या 2 द्वारा किया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 302 भा.द.वि. के तहत अपराध/अपराध में विपक्षी संख्या 2 की संलिप्तता के बारे में कोई प्रत्यक्ष सबूत पेश नहीं किया गया था।

7. इसके अतिरिक्त, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी पक्षों के पक्ष में पारित आदेश, जो इस न्यायालय के समक्ष हैं, में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं बता सके।

8. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद गयासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926] के मामले में सजा सुनाते समय पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं पर गौर किया था:

*"अपराध एक विकृत विकृति है। अपराधी को सामान्यतः क्षमा किया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना चाहिए। समाज विरोधी व्यवहार को जन्म देने वाली उप-संस्कृति का मुकाबला अनावश्यक क्रूरता से नहीं बल्कि पुनःसंस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंडशास्त्र में व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित किया जाता है और लक्ष्य उसे समाज के लिए*

*बचाना होता है। इस प्रकार कठोर और बर्बर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मनुष्य दंड को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंक में' दृष्टिकोण के बजाय एक उपचारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर तरीके से कैद करने से केवल उसके दिमाग को क्षति पहुँचती है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे चोट पहुँचानी चाहिए। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना चाहिए और, चोट पहुँचाने से व्यक्ति में सुधार नहीं होता है।"*

9. यह भी ध्यान देने योग्य है कि सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा सुनाने में न्यायालय का विवेक मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम, जैसा कि **देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**

[(2004) 7 एससीसी 257] के मामले में देखा गया है।

10. इसके अलावा **रवाड़ा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** एआईआर 2017 एससी 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने **जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** [(2010) 12 एससीसी 532], **गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य**, [(2012) 8 एससीसी 734], **सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह**, [(2014) 7 एससीसी 323], **पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह**, [(2015) 3 एससीसी 441], **राज बाला बनाम हरियाणा राज्य**, [(2016) 1 एससीसी 463], **जागृति देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य** (2009) 14 एससीसी 771 और **भगवान सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य** (2020) 14 एससीसी 184 में निर्णयों को संदर्भित किया है और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को सुधारात्मक मशीनरी या निरोध को अपनाना चाहिए तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर आधारित। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा सुनाने में अत्यधिक सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुँचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। अपराध की प्रकृति और इसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि

न्यायालयों को न केवल अपराध के शिकार के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि पूरे समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति को खत्म करना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक साधन के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता और विकसित नहीं हो सकता। इसलिए, सजा देने में अनुचित नरमी से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और संशोधनात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचना चाहिए।

11. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो कि सुधारात्मक और संशोधनात्मक है, न कि प्रतिशोधात्मक, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार के अयोग्य नहीं है, इसलिए उसे सामाजिक धारा में लाने

के लिए उसे सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

12. उपर्युक्त दिशा-निर्देशों के आलोक में, इस निर्णय पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए कि क्या अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संभावित दृष्टिकोण था या यह पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण निर्णय है, जिसमें कोई गुण-दोष नहीं है।

13. अभियोजन पक्ष के मामले की उपरोक्त कमजोरी को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि अवर न्यायालय ने उल्लेख किया है, मेरा मानना है कि अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित और तार्किक दृष्टिकोण था, जो वैध कारणों पर आधारित है। अवर न्यायालय के फैसले को अवैध, अतार्किक और असंभव नहीं कहा जा सकता है और यह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर आधारित नहीं है या गलत विचारों पर आधारित है और कानून की स्थापित स्थिति के खिलाफ है। इसलिए, यह न्यायालय संतुष्ट है कि इस संशोधन में सफलता की बिल्कुल भी उम्मीद नहीं है और तदनुसार, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

14. तदनुसार, वर्तमान पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

15. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

16. इस निर्णय की प्रति अनुपालन हेतु अवर न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 9 ILRA 667

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 301 वर्ष 2023

मोहित कुमार गोयल

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: श्री प्रशांत व्यास, सुश्री कंचन शर्मा, श्री नितिन कुमार अग्रवाल

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री सौमित्र द्विवेदी, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री विनय सरन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 एवं 120-बी - भारत का संविधान - अनुच्छेद 21 - साक्षियों को समन करने, मामलों को स्थगित करने, जमानत के आदेश पारित करने, रिपोर्ट मंगवाने और लंबित कार्यवाही की सहायता में उठाए गए ऐसे अन्य कदम, निस्संदेह अंतर्वर्ती आदेशों की श्रेणी में आ सकते हैं, जिनके विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 (2) के तहत कोई पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं होगा। (पैरा - 30, 31)



**ट्रांजिट अग्रिम जमानत** - अभियुक्त हिरासत में - कोई जमानत आवेदन नहीं किया गया - मजिस्ट्रेट ने रिमांड आवेदन स्वीकार किया - अभियुक्त की रिमांड स्वीकार की - अभियुक्त को तिहाड़ जेल में तलब किया जाना चाहिए - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के तहत 'वारंट बी' लेना - अभियुक्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से न्यायालय की हिरासत में है - अभियुक्त को अग्रिम जमानत का लाभ नहीं दिया जा सकता। (पैरा - 17)

**अभिनिर्धारित:** संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। ऐसे व्यक्ति की ओर से अग्रिम जमानत याचिका स्वीकार्य नहीं होगी जो पहले से ही पुलिस की हिरासत में है या किसी अन्य आपराधिक मामले में पहले से ही जेल में है; ऐसे अभियुक्त को अग्रिम जमानत देना न्याय का मखौल ही होगा। आक्षेपित आदेश जैसे अंतर्वर्ती/अंतरिम आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। (पैरा - 27, 32)

**आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।** (ई-7)

#### **उद्धृत वादों की सूची :**

1. अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र एवं अन्य, (2012) 9 एससीसी 460

2. नरेंद्रजीत सिंह साहनी एवं अन्य बनाम भारत संघ, (2002) 2 एससीसी 210

3. अमर नाथ एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 1977 0 एआईआर (एससी) 2185

4. होन्नैया टी.एच. बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1001

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा पारित)

1. श्री नितिन कुमार अग्रवाल, सुश्री कंचन शर्मा अधिवक्ता के लिए ब्रीफ होल्डिंग अधिवक्ता, श्री प्रशांत व्यास, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता, श्री विनय सरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, के साथ श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता, और राज्य के विद्वान ए.जी.ए.-I श्री रत्नेश नंदन सिंह को सुना।

2. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से, पुनरीक्षणवादी भा. दं. सं. की धारा 406, 420, 467, 468 471 एवं 120-बी के तहत पुलिस स्टेशन सूरजपुर, जिला गौतमबुद्ध नगर द्वारा पंजीकृत केस अपराध संख्या 106/2021 में द्वितीय अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.11.2022 को चुनौती दे रहा है, जिसके तहत विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड को स्वीकार कर लिया है और "बी" वारंट जारी किया, साथ ही अभियुक्त-पुनरीक्षणवादी को जेल में पेश होने का निर्देश दिया है।

#### **अभिलेखों से प्राप्त तथ्य**

3. दिनांक 09.02.2021 को प्रातः 0634 बजे सूचनाकर्ता देवेन्द्र बंसल द्वारा पुनरीक्षणवादी और 5 अन्य के खिलाफ भा. दं. सं. की धारा 420, 467, 468, 471, 406 और 120-बी के

तहत पुलिस स्टेशन-सूरजपुर, जिला-केंद्रीय आयुक्तालय गौतमबुद्ध नगर में कथित घटना के बाबत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी है जिसे केस अपराध संख्या-0106/2021 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त घटना की कोई तारीख और समय नहीं बताई गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि पुनरीक्षणवादी, उसकी पत्नी धारणा गर्ग ने चार अन्य लोगों के साथ मिलकर एक फर्जी कंपनी बनाकर सूचनाकर्ता और उसकी पत्नी से कुल 1.96 करोड़ रुपये लिए जो सूचनाकर्ता को वापस नहीं लौटाए गए तथा उनके साथ धोखाधड़ी भी की गई।

4. पुनरीक्षणवादी एफ.आई.आर. संख्या 838/2021, पुलिस स्टेशन-नोएडा सेक्टर-58, दिनांक 20 सितंबर, 2021 में भी आरोपी है। उपरोक्त दोनों मामलों की जांच इन्स्पेक्टर रविंदर गौतम के नेतृत्व में विशेष जांच दल (एसआईटी) द्वारा की गई है।

5. केस अपराध संख्या 0106/2021 दिनांक 9 फरवरी, 2021, भा. दं. सं. की धारा 420, 467, 468, 471, 406 और 120-बी, पुलिस स्टेशन-सूरजपुर, जिला-केंद्रीय कमिश्नरेट गौतमबुद्ध नगर में, पुनरीक्षणवादी द्वारा भा. दं. प्र. सं. की धारा 438 (ट्रांजिट अग्रिम जमानत) के तहत रोहिणी न्यायालय, दिल्ली के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे दिनांक 2 नवंबर, 2022 के आदेश द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी गई है, जिसकी एक प्रति वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण याचिका के साथ हलफनामे के अनुलग्नक -8 के रूप में संलग्न की गई है।

6. 3 नवंबर, 2022 को, पुनरीक्षणवादी को अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, गौतमबुद्ध नगर के समक्ष पेश किया गया, जहां उसने मौखिक प्रार्थना की कि चूंकि उसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली द्वारा पहले ही आठ दिनों की अवधि के लिए ट्रांजिट अग्रिम जमानत दी जा चुकी है, उसे उक्त अवधि के लिए उस न्यायालय से कुछ सुरक्षा प्रदान की जाए, जिसको संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया कि रोहिणी कोर्ट के पास पुनरीक्षणवादी को ट्रांजिट अग्रिम जमानत देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसी आदेश के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

7. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि पुनरीक्षणवादी ने रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 505/2022 (मोहित कुमार गोयल बनाम यूपी राज्य एवं अन्य) दायर करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जहां उसने आदेश दिनांक 03.11.2022 को चुनौती दी थी और सर्वोच्च न्यायालय ने उसे कानून के अनुसार उपचार का लाभ उठाने का निर्देश दिया था।

### **पुनरीक्षणवादी का मामला**

8. पुनरीक्षणवादी मोहित कुमार गोयल मैसर्स फैमिली ऑफ़ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के पूर्व निदेशक हैं जिसका कार्यालय यू-25/ए, डीएलएफ फेज-3, पिंक टाउन के पास, हाउस मार्केट, सेक्टर-24, गुरुग्राम (हरियाणा) में है। पुनरीक्षणवादी ने कभी भी मैसर्स आर.डी. ड्राई फ्रूट्स प्रा. लिमिटेड और मैसर्स. सेठ जी

ड्राई फ्रूट्स प्रा. लिमिटेड नाम की कंपनी नहीं बनाई थी।। पुनरीक्षणवादी मेसर्स आर.डी. ड्राई फ्रूट्स प्रा. लिमिटेड और मैसर्स. सेठ जी ड्राई फ्रूट्स प्रा. लिमिटेड में निदेशक/शेयरधारक/लाभार्थी या हस्ताक्षरकर्ता नहीं है। पुनरीक्षणवादी की कंपनी और श्री श्याम ट्रेडिंग कंपनी अलग-अलग कंपनी हैं और श्री श्याम ट्रेडिंग कंपनी के मालिक का मेसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के मामलों से कोई लेना-देना नहीं है। पुनरीक्षणवादी ने अपने निजी खाते में कोई धनराशि हस्तांतरित नहीं की थी और न ही सूचनाकर्ता द्वारा मैसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के खाते में एकमुश्त राशि हस्तांतरित की गई थी। यह महज एक आरोप है कि सूचनाकर्ता द्वारा इसे ट्रांसफर किया गया था।' वास्तविक तथ्य यह है कि पुनरीक्षणवादी को सूचनाकर्ता द्वारा धोखा दिया जा रहा है, जिसके संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट केस अपराध संख्या 1851/2019, भा. दं. सं. की धारा 406, 420, 467, 468, 471, 384, 388, 389, 504, 506 एवं 120-बी आईपीसी, थाना-सूरजपुर, जिला-गौतमबुद्धनगर में सूचक व अन्य के विरुद्ध दर्ज करायी गयी थी लेकिन पुलिस द्वारा आज तक कोई कार्रवाई नहीं की गयी और न ही विवेचक का बयान दर्ज किया गया है. सूचनाकर्ता के इरादे को देखकर यह स्पष्ट है कि जब वह अपने अवैध लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका तो उसने लगभग 1 वर्ष और 7 महीने की देरी के बाद वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसके लिए प्रतिवादी द्वारा कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था। मैसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स

इंडिया प्राइवेट लिमिटेड का कार्यालय नोएडा और गाजियाबाद में स्थित है।

### **9. पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान परामर्शदाता की प्रस्तुति**

(I) प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 106 सन् 2021 में इस बारे में एक भी शब्द का उल्लेख नहीं है कि आपूर्ति नोएडा में की गई थी। जबकि वास्तव में सारी आपूर्ति गुरुग्राम/गुडगांव में की गई थी। ऐसे में उ.प्र. पुलिस के पास नोएडा में वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

(II) पुनरीक्षणवादी द्वारा सूचनाकर्ता, देवेंद्र बंसल, के विरुद्ध के खिलाफ मामला दर्ज कराया गया था, जिसे भा. दं. सं. की धारा 406, 420, 467, 468, 471, 384, 388, 389, 504, 506 और 120-बी के तहत थाना-सूरजपुर, जिला-गौतमबुद्धनगर में केस अपराध संख्या 1851 सन् 2019 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट विद्वान सिविल जज (एस.डी.) एफटीसी, गौतमबुद्ध नगर के भा. दं. प्र. सं. की धारा 156(3) के तहत आवेदन पत्र में पारित आदेश के अनुपालन में दर्ज की गई थी। सूचनाकर्ता को केस अपराध संख्या 1851 सन् 2019 की प्रथम सूचना रिपोर्ट में भा. दं. सं. की धारा 406, 420, 467, 468, 471, 384, 388, 389, 504, 506 और 120-बी के तहत पुलिस थाना- सूरजपुर, जिला-गौतमबुद्ध नगर में आरोपी संख्या 9 के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। उसने मैसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड और मैसर्स श्री श्याम

ट्रेडिंग कंपनी के बीच विवाद का फायदा उठाया था। सूचनाकर्ता ने अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए प्रदीप सिंह निर्वाण के नाम से आधार कार्ड और ड्राइविंग लाइसेंस बनवाए थे, जो कि फर्जी हैं। सूचनाकर्ता को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, लेकिन उसकी खराब सेहत के आधार पर उसी तारीख को रिहा कर दिया गया। पुनरीक्षणवादी ने एस.एस.पी., गौतमबुद्ध नगर से संपर्क किया था, जिन्होंने आश्वासन दिया था कि सूचनाकर्ता को जल्द ही गिरफ्तार कर लिया जाएगा, लेकिन उसे गिरफ्तार नहीं किया गया। दरअसल, जांच अधिकारी ने उसे रिहा कर दिया था। दिनांक 18.03.2020 को पुनरीक्षणवादी द्वारा एसीजेएम-द्वितीय, गौतमबुद्धनगर के समक्ष एक शिकायत की गई थी, जिसकी परिवाद वाद संख्या 147/2020 (राज्य बनाम देवेन्द्र एवं अन्य) थी। उपरोक्त शिकायत के आधार पर, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, गौतमबुद्धनगर ने अपने आदेश दिनांकित 17.07.2020 के माध्यम से, रिकॉर्ड पर मौजूद सभी सामग्रियों पर विचार करने के बाद, पुलिस आयुक्त, गौतमबुद्धनगर को मामले को देखने और जांच करने का निर्देश दिया था और एस. एच. ओ., पुलिस स्टेशन - सूरजपुर को एक महीने के भीतर सूचनाकर्ता को गिरफ्तार करने और उसके समक्ष पेश करने का निर्देश दिया। आज तक सूचनाकर्ता को गिरफ्तार नहीं किया गया और न ही द्वितीय एसीजेएम, गौतमबुद्धनगर के आदेश दिनांक 17.07.2020 का अनुपालन किया गया है। वास्तव में, पुलिस अधिकारी मामले की जांच कराने के लिए पुनरीक्षणवादी से 5 लाख रुपये की मांग कर रहे हैं।

(III) वर्तमान मामला पुनरीक्षणवादी द्वारा सूचनाकर्ता के खिलाफ केस अपराध संख्या 1851 सन् 2019, भा. दं. सं. की धारा 406, 420, 467, 468, 471, 384, 388, 389, 504, 506 एवं 120-बी के तहत थाना-सूरजपुर, जिला-गौतमबुद्धनगर में दर्ज किए गए मामले का जवाबी हमला है।

(IV) दोनों पक्षों के बीच विवाद आपराधिक की बजाय दीवानी प्रकृति का है, इसलिए, सूचनाकर्ता को उचित अदालत/फोरम के समक्ष कानून के तहत उचित उपाय का लाभ उठाने के लिए कहा जाना चाहिए, जिसे उसने नहीं चुना है।

(V) मैसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के नाम और शैली में को वर्तमान आपराधिक कार्यवाही में आरोपी नहीं बनाया गया है, जो कि कानून के अनुसार अनिवार्य है। वर्तमान मामला माल की बिक्री अधिनियम, 1930 के दायरे में आता है और उक्त अधिनियम की धारा 55 वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होगी। माल की बिक्री का कोई आदान-प्रदान नहीं हुआ है और न ही पार्टियों द्वारा कोई माल बेचा गया है। पुनरीक्षणवादी का मैसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स को छोड़कर प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेखित किसी भी फर्म और कंपनी से कोई सरोकार नहीं था जो अभी भी परिचालन में है और पुनरीक्षणवादी उक्त कंपनी के पूर्व निदेशक हैं।

(VI) पैराग्राफ संख्या 37 में, पुनरीक्षणवादी ने 33 आपराधिक मामलों का विवरण दिया है, जो

उसके खिलाफ शुरू किए गए हैं और उन्होंने उक्त मामलों के बारे में संतोषजनक ढंग से स्पष्टीकरण भी दिया है।

छोड़कर प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेखित किसी भी कंपनी में लाभार्थी/शेयरधारक/हस्ताक्षरकर्ता नहीं है।

(VII) संबंधित मजिस्ट्रेट ने ट्रांजिट अग्रिम जमानत पर विचार करने में गलती की है यह टिप्पणी कहकर अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन कर दिया कि रोहिणी कोर्ट, दिल्ली के पास दिनांक 03 नवंबर 2022 को आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। इसी तरह के मामले में, इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 5284/2022 (अमिता गर्ग एवं 6 अन्य बनाम यूपी राज्य एवं 3 अन्य) में आदेश दिनांक 16.07.2022 द्वारा याचिका को स्वीकार कर लिया था। वर्तमान मामले में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के मौखिक अधिकारों का उल्लंघन है। पुनरीक्षणवादी अवैध हिरासत में है और यह दिनांक 03.11.2022 के आदेश से स्पष्ट है। सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के समय कोर्ट ने मौखिक रूप से पुनरीक्षणवादी को निर्देश दिया था कि वह मामले को उचित फोरम के समक्ष दायर करें क्योंकि हिरासत अवैध है और माननीय सुप्रीम कोर्ट इसके लिए सही फोरम नहीं है।

(VIII) सूचनाकर्ता ने यह उल्लेख नहीं किया था कि पुनरीक्षणवादी किस तरह से उपरोक्त फर्म और कंपनी में शामिल है और न ही कोई विशिष्ट दावा किया गया था कि पुनरीक्षणवादी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों के लिए जिम्मेदार है, जो कि मामले के निर्णय के लिए आवश्यक है। पुनरीक्षणवादी मेसर्स फैमिली ऑफ ड्राई फ्रूट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड को

(IX) पुनरीक्षणवादी ने कोई जाली दस्तावेज तैयार नहीं किए थे और न ही उसके कब्जे से कुछ भी आपत्तिजनक सामग्री बरामद किया गया था, जिससे उसे वर्तमान आपराधिक मामले से जोड़ा जा सके।

(X) पुनरीक्षणवादी को वर्तमान मामले में इस तथ्य के कारण फंसाया गया है कि उसकी किसी देवेन्द्र बंसल के साथ व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता थी, जिसके खिलाफ पुनरीक्षणवादी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। लेकिन चूंकि पुलिस की देवेन्द्र बंसल के साथ मिलीभगत थी, इसलिए वर्तमान मामले में पुलिस ने पुनरीक्षणवादी को फंसाया था।

(XI) भा. दं. सं. की धारा 406 के तहत पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि किसी भी संपत्ति को न्यस्त नहीं सौंपा गया है और न ही पुनरीक्षणवादी के पास कोई संपत्ति पर कोई अख्तियार था और न ही पुनरीक्षणवादी ने बेईमानी से उस संपत्ति का दुर्विनियोग किया था अथवा उसे अपने प्रयोग में संपरिवर्तित किया था अथवा उस संपत्ति का व्ययन किसी भी निर्धारित कानून का उल्लंघन करके किया था। इसके अलावा भा. दं. सं. की धारा 420 के तहत पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि शुरुआत से ही धोखाधड़ी का कोई इरादा नहीं है। भा. दं. सं. की धारा 467, 468, 471 के तहत भी पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई अपराध नहीं

बनता है क्योंकि पुनरीक्षणवादी ने कोई मिथ्या दस्तावेज नहीं बनाया है। इसके अलावा आईपीसी की धारा 506 के तहत पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि पुनरीक्षणवादी ने किसी भी तरह से धमकी या भयभीत करने का प्रयास नहीं किया था। अंत में, भा. दं. सं. की धारा 120-बी के तहत पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि उनके द्वारा कोई साजिश नहीं रची गई थी और न ही उन्होंने किसी भी प्रकार की साजिश में हिस्सा लिया था।

(XII) अभियुक्त-पुनरीक्षणवादी की अवैध हिरासत के संबंध में, इस न्यायालय के दिनांक 18.06.1992 के निर्णय और आदेश, जिसकी एक प्रति वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के साथ हलफनामे के अनुबंध संख्या 11 के रूप में संलग्न की गई है, का उल्लेख पुनरीक्षणवादी की ओर से किया गया है।

(XIII) भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 15 के अनुसार, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, गौतमबुद्धनगर को विवादित आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है, भले ही पुनरीक्षणवादी को ट्रांजिट अग्रिम जमानत देने का आदेश अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली द्वारा दिनांक 2 नवंबर, 2023 को पारित किया गया हो। संबंधित मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करते समय पदानुक्रम को गलत पढ़ा और नजरअंदाज किया।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का

कहना है कि चूंकि पुनरीक्षणवादी का उपरोक्त अपराध करने का कोई मकसद नहीं है और वह प्रथम सूचना रिपोर्ट में उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से पूरी तरह से निर्दोष है, यह न्यायालय भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए केस अपराध संख्या -106/2021 में भारतीय दंड संहिता की धारा 406, 420, 467, 468, 471 और 120-बी, पुलिस स्टेशन -सूरजपुर, जिला-गौतमबुद्ध नगर में द्वितीय अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गौतमबुद्धनगर द्वारा पारित दिनांक 03.11.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर सकती है।

10. इसके विपरीत, गुण-दोष के आधार पर मामले पर विचार करने से पहले, श्री विनय सरन, प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और विद्वान ए.जी.ए. द्वारा वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण याचिका की पोषणीयता पर प्रारंभिक आपत्ति यह तर्क देकर की है कि चूंकि विवादित आदेश एक अंतरिम/अंतर्वर्ती आदेश है, इसलिए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका भा. दं. प्र. सं. की धारा 397/401 के तहत पोषणीय नहीं है। आक्षेपित आदेश के गुण-दोष के आधार पर, उन्होंने पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई सभी प्रस्तुतियों का यह तर्क देकर विरोध किया है कि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा "बी" वारंट जारी करने और आरोपी- पुनरीक्षणवादी को अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, नोएडा, जिला गौतमबुद्धनगर की अदालत में पेश होने के

लिए निर्देशित करने वाले आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या न्यायिक दुर्बलता नहीं है।

11. श्री सरन का यह भी तर्क है कि यदि कोई व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अन्य आपराधिक मामले के संबंध में पुलिस या न्यायिक हिरासत में है, जो समान या अलग अपराध के लिए हो सकता है, तो ऐसे में अग्रिम जमानत के लिए कोई आधार नहीं होगा और ऐसी याचिका पोषणीय नहीं होगी। अपनी याचिका के समर्थन में, श्री सरन ने 25 अक्टूबर, 2021 को राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा एस.बी. आपराधिक विविध. जमानत आवेदन संख्या 9155 सन् 2019 (सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य लोक अभियोजक के माध्यम से) में पारित निर्णय का हवाला दिया है। श्री सरन ने इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 9 दिसंबर, 2022 को भा. दं. प्र. सं की धारा 438 के तहत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-4633 सन् 2022 (राजेश कुमार शर्मा बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो) में पारित के निर्णय का भी हवाला दिया है।

12. इस न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश सहित वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के रिकॉर्ड को देखा है।

13. सबसे पहले, यह न्यायालय यह दर्ज करता है कि पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा वर्तमान आपराधिक कार्यवाही की वैधता,

अवैधता या अन्यथा के बारे में की गई सभी दलीलों, जो पुनरीक्षणवादी के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा शुरू की गई हैं, की जांच इस न्यायालय द्वारा भा. दं. प्र. सं. की धारा 397/401 के तहत अपनी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए नहीं की जा सकती है। उक्त दलीलों की जांच बेंच द्वारा केवल भा. दं. प्र. सं की धारा 482 के तहत अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करके की जा सकती है। यह न्यायालय केवल उस आदेश की शुद्धता, वैधता, अवैधता या अन्यथा की जांच कर सकता है जो कि वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण याचिका में चुनौती के अधीन है।

14. **अमित कपूर बनाम रमेश चंदर एवं अन्य** (2012) 9 एससीसी 460 में वर्णित के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि भा. दं. प्र. सं की धारा 397 के तहत अदालत का क्षेत्राधिकार का प्रयोग ट्रायल कोर्ट या निचली अदालत द्वारा पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच करने के लिए किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो, जबकि भा. दं. प्र. सं की धारा 482 न्यायालय को न्याय करने और यह सुनिश्चित करने की बहुत व्यापक शक्ति प्रदान करता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं होने पाए।

15. **अमित कपूर (सुप्रा)** के मामले में निर्णय के पैराग्राफ संख्या. 12, 13, 18, 20 और 21, जो उपरोक्त मुद्दे पर प्रासंगिक हैं, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

*“12. संहिता की धारा 397 अदालत को किसी मामले में की*

गई किसी भी कार्यवाही या आदेश की वैधता और नियमितता के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से निचली अदालत के रिकॉर्ड को मंगाने और उसकी जांच करने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रावधान का उद्देश्य पेटेंट दोष या अधिकार क्षेत्र या कानून की त्रुटि को ठीक करना है। वहाँ पर सुस्पष्ट त्रुटि होनी चाहिए और अदालत के लिए उन आदेशों की जांच करना उचित नहीं होगा, जो प्रथम दृष्टया सावधानीपूर्वक विचारण के उपरांत दिए गए हों और कानून के अनुसार प्रतीत होते हैं। यदि कोई व्यक्ति इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को देखता है, तो यह सामने आता है कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को वहाँ लागू किया जा सकता है जहाँ पर चुनौती के तहत निर्णयों में घोर गलती हो, कानून के प्रावधानों का कोई अनुपालन नहीं किया गया हो, दर्ज किए गए निष्कर्ष किसी भी सबूत पर आधारित न हो, भौतिक साक्ष्य को नजरअंदाज किया गया हो, न्यायिक विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या विकृत तरीके से किया गया हो। ये संपूर्ण वर्ग नहीं हैं, बल्कि केवल सांकेतिक हैं। प्रत्येक मामले का निर्धारण उसके अपने गुण-दोष के आधार पर करना होगा।

13. एक और सर्वमान्य मानदंड यह है कि उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है और इसका प्रयोग नियमित तरीके से नहीं किया जा सकता है। अंतर्निहित प्रतिबंधों में से एक यह है कि इसका प्रयोग अंतरिम या अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। न्यायालय को यह ध्यान रखना होगा कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से ही प्रथम दृष्टया अन्याय न हो। जहाँ न्यायालय इस सवाल से निपट रहा है कि क्या किसी मामले में आरोप ठीक से और कानून के अनुसार तय किया गया है, तो वह अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने में अनिच्छुक हो सकता है जब तक कि मामला काफी हद तक उपरोक्त श्रेणियों के अंतर्गत नहीं आता है। यहाँ तक कि भा. दं. प्रं. सं. के तहत कार्यवाही में आरोप तय करना भी एक बहुत उन्नत चरण है।

....

18. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार एक तरह से अंतिम है और ऐसे मामलों में कोई अंतर-न्यायालय उपचार उपलब्ध नहीं है। बेशक, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद



के तहत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन हो सकता है। आम तौर पर, कानून के प्रश्न पर पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। हालाँकि, जब तथ्यात्मक प्रश्न शामिल हो, तो इसे उन मामलों की श्रेणी में जगह मिलनी चाहिए जिनके परिणामस्वरूप विकृत निष्कर्ष निकलता है। मूलतः, शक्ति का प्रयोग आवश्यक है ताकि न्याय हो सके और न्यायालय द्वारा शक्ति का दुरुपयोग न हो। केवल इसकी आशंका या संदेह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा।

....

20. धारा 397 के तहत न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग इसलिए किया जा सकता है ताकि ट्रायल कोर्ट या निचली अदालत, जैसा भी मामला हो, द्वारा पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या क्षेत्राधिकार की जांच की जा सके। हालाँकि यह धारा विशेष रूप से 'किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने' की अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं करती है, धारा 397 के तहत क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है। किसी अदालत द्वारा पारित आदेश की वैधता,

क्षेत्राधिकार या शुद्धता धारा 397 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग का मूल आधार है लेकिन अंततः इसके लिए न्याय की आवश्यकता भी होती है। क्षेत्राधिकार का प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां स्पष्ट त्रुटि हो, कानून के प्रावधानों का अनुपालन न किया गया हो, निर्णय पूरी तरह गलत हो या जहां न्यायिक विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से किया गया हो। दूसरी ओर, धारा 482 इस कहावत पर आधारित है कि कानून जब किसी को भी कुछ देता है, तो उसे वह सारी चीज भी देता है जिसके बिना वह अपरिहार्य नहीं हो सकती। यह धारा न्यायालय को न्याय करने और यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत व्यापक शक्ति प्रदान करती है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं होने दिया जाए।

21. इन दो प्रावधानों के तहत न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की तुलनात्मक अध्ययन करना कुछ हद तक आवश्यक है। इन दोनों शक्तियों के बीच कुछ ओवरलैपिंग हो सकती है क्योंकि दोनों का उद्देश्य न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करना है और दोनों में विवेक का तत्व है। लेकिन, साथ ही, संहिता की धारा 482 के

तहत अंतर्निहित शक्ति एक असाधारण और अवशिष्ट शक्ति है, यह उन मामलों के संबंध में लागू नहीं है जो विशेष रूप से संहिता के अन्य प्रावधानों के तहत प्रदान किए गए हैं। सीधे शब्दों में कहें तो, आम तौर पर अदालत संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती है, जहां कोई पक्ष संहिता की धारा 397 के तहत उपलब्ध उपचार का लाभ उठा सकता है। संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां व्यापक परिमाण की हैं और धारा 397 के तहत शक्ति जितनी सीमित नहीं हैं। धारा 482 को वहां लागू किया जा सकता है जहां विचाराधीन आदेश न तो धारा 397 (2) के अर्थ के भीतर एक अंतर्वर्ती आदेश है और न ही सख्त अर्थों में कोई अंतिम आदेश हो। इस संबंध में राज कपूर और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य। [एआईआर 1980 एससी 258: (1980) 1 एससीसी 43]} का संदर्भ दिया जा सकता है। । इसी मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि यदि धारा 397 (2) और 397 (3) के तहत रोक लागू होती है, तो असाधारण स्थितियों को छोड़कर, अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 482 के तहत निहित शक्ति

का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह तथ्य इन दो प्रावधानों के तहत न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के बीच सूक्ष्म अंतर को दर्शाता है। इसी मामले में, न्यायालय ने इस बात पर भी विचार किया कि क्या धारा 397 के तहत पुनरीक्षण शक्ति ओवरलैप होने पर धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां निरस्त हो जाती हैं। उक्त तर्क को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा कि धारा 482 के शुरुआती शब्द इस तर्क का खंडन करते हैं क्योंकि संहिता में कुछ भी , यहां तक कि धारा 397 भी, धारा 482 के द्वारा संरक्षित अंतर्निहित शक्तियों के आयाम को प्रभावित नहीं कर सकती है। जहां न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या किसी अन्य असाधारण स्थिति में जहां न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो, वहां अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। इसकी सीमा आत्म-संयम है, इससे अधिक कुछ नहीं। अंतिम और अंतर्वर्ती आदेश के बीच का अंतर कानून में सर्वविदित है। जो आदेश धारा 397 (2) की रोक से मुक्त होंगे, वे ऐसे आदेश होंगे जो पूरी तरह से अंतरिम नहीं हैं, लेकिन साथ

ही, अंतिम निपटान से भी कम हैं। वे ऐसे आदेश होने चाहिए जो कुछ अधिकार निर्धारित करते हैं और फिर भी अंततः न्यायालय को मामले की आधिकारिक जानकारी प्रदान नहीं कर रहे हैं। धारा 482 के प्रावधान व्यापक हैं। इसे समान संहिता में लिखे गए कानूनी अंतर्विरोधों को नष्ट नहीं करना चाहिए, लेकिन, हालांकि, न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को निर्विवाद रूप से पढ़ा जाना चाहिए और प्रतिबंध से मुक्त माना जाना चाहिए।

के इतनी ही राशि की एक प्रतिभूति प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।। यह आदेश 8 दिनों की अवधि के लिए लागू रहेगा, इस अवधि के दौरान आवेदक/अभियुक्त नोएडा, यूपी के संबंधित न्यायालय या माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय, उत्तर प्रदेश के समक्ष उचित आवेदन दायर कर सकता है। उक्त अवधि के दौरान अभियुक्तों पर निम्नलिखित शर्तें लगाई जा रही हैं:-

16. आक्षेपित आदेश की गुण दोष पर आने से पहले, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली द्वारा दिनांक 2 नवंबर, 2022 को पारित आदेश के प्रासंगिक हिस्से को पुनः प्रस्तुत करना जरूरी है, जो इस प्रकार है:

"निष्कर्ष:

प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए और मामले की गुण दोष पर जाए बिना, मेरी राय है कि आवेदक/अभियुक्त को कानून के तहत अनुमत कानूनी उपचारों का लाभ उठाने के लिए सीमित अवसर मिलना चाहिए, इसलिए गिरफ्तारी की स्थिति में आवेदक/अभियुक्त मोहित गोयल को 50,000/- रु. रुपये की राशि का निजी मुचलका तथा गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की संतुष्टि

"(1) आवेदक/अभियुक्त संबंधित अदालत की अनुमति के बिना देश नहीं छोड़ेगा।

(2) आवेदक/अभियुक्त को जांच अधिकारी को अपना पता और मोबाइल नंबर तुरंत प्रदान करना होगा और आईओ के साथ अपने निवास स्थान की जानकारी भी साझा करना होगा।

(3) आवेदक/ अभियुक्त शिकायतकर्ता को धमकी नहीं देगा या संपर्क नहीं करेगा और सबूतों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा। सुरक्षा का यह आदेश 11.11.2022 को स्वतः ही निरस्त हो जाएगा। आवेदक/अभियुक्त को कोई और

विस्तार नहीं दिया जाएगा/यह कहने की जरूरत नहीं है कि यदि आरोपी को उक्त अवधि की समाप्ति के बाद आत्मसमर्पण करना होगा यदि उसे कानूनी उपचारों का लाभ उठाते हुए कोई और सुरक्षा नहीं दी जाती है। यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां उल्लिखित कोई भी बात मामले के गुण-दोष पर राय की अभिव्यक्ति के समान नहीं होगी। इन टिप्पणियों के साथ, जमानत अर्जी का निपटारा किया जाता है। इस आदेश की प्रति आवेदक/अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सौंपी जाए।"

17. अब आक्षेपित आदेश के गुण-दोष पर आते हैं। संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष लोक अभियोजन अधिकारी द्वारा बताया गया है कि अभियुक्त के विरुद्ध न्यायालय द्वारा समन वारंट/'बी' वारंट दिनांक 19-10-2022 जिला कारागार तिहाड़ भेजा गया है, जिसके कारण अभियुक्त हिरासत में है। लोक अभियोजन अधिकारी द्वारा यह भी कहा गया है कि भा. दं. प्र. सं. की धारा 177 सपठित अध्याय-XXXIII के तहत आरोपी को ट्रांजिट रिमांड देने का अधिकार एएसजे (बिजली) (एन-डब्ल्यू) रोहिणी कोर्ट, दिल्ली को नहीं है। लोक अभियोजन अधिकारी द्वारा यह भी कहा गया है कि चूंकि संबंधित जेल को आरोपी के खिलाफ बी-वारंट दिनांक 19-10-2022 के माध्यम से आरोपी को संबंधित मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश करने का आदेश दिया गया था

और आरोपी प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से न्यायालय की हिरासत में था तो उस स्थिति में आरोपी को अग्रिम जमानत का लाभ नहीं दिया जा सकता।

18. अभियुक्त-पुनरीक्षणवादी और लोक अभियोजन अधिकारी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार करने के बाद, संबंधित मजिस्ट्रेट ने अपना निष्कर्ष दर्ज किया है कि वर्तमान मामले में, अभियुक्त को हिरासत में अदालत में पेश किया गया है और उसकी ओर से नियमित जमानत के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया है। संबंधित मजिस्ट्रेट ने आगे दर्ज किया है कि एएसजे (बिजली) (एन-डब्ल्यू) रोहिणी कोर्ट, दिल्ली ने जांच अधिकारी को निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया है। उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर संबंधित मजिस्ट्रेट आक्षेपित आदेश के तहत इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिमांड आवेदन को स्वीकार करने का आधार पर्याप्त है। आरोपी का रिमांड 16-11-2022 तक स्वीकृत की जाती है। अभियुक्त को भा. दं. प्र. सं. की धारा 167 के तहत वारंट "बी" जारी करके दिनांक 16-11-2022 को तिहाड़ जेल में तलब किया जाए।

19. इस न्यायालय के समक्ष सामने आए सभी तथ्यों के समग्र आकलन और मूल्यांकन पर, यह स्पष्ट है कि दो कानूनी मुद्दे हैं, जिनकी वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण पर निर्णय लेते समय और लागू आदेश की जांच करते समय इस न्यायालय द्वारा गहन जांच की आवश्यकता है:

(i) क्या अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, गौतमबुद्ध नगर द्वारा दिनांक 3 नवंबर, 2022 का विवादित आदेश कानूनी रूप से पारित किया गया है, और

(ii) क्या आक्षेपित आदेश के विरुद्ध वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण कानूनी रूप से पोषणीय है या नहीं?

20. पहले मुद्दे पर आने से पहले, यह न्यायालय यह रिकॉर्ड करता है कि ऐसा कोई कानून या कानून नहीं है जो "ट्रांजिट अग्रिम जमानत" को निश्चित या विशिष्ट शब्दों में परिभाषित करता हो। 1969 में 41 वें विधि आयोग की रिपोर्ट ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा के लिए अग्रिम जमानत के प्रावधान की सिफारिश की। भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में, ऐसी सिफारिश पर, धारा 438 में अग्रिम जमानत का प्रावधान डाला गया था। 'ट्रांजिट' शब्द का अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की क्रिया है, जबकि 'अग्रिम जमानत' शब्द का अर्थ गिरफ्तारी की आशंका वाले किसी भी आरोपी व्यक्ति की अस्थायी रिहाई है, इसलिए, ट्रांजिट अग्रिम जमानत का तात्पर्य किसी भी व्यक्ति को दी गई उस जमानत से है, जिसे उस राज्य, जहां वह वर्तमान में स्थित है, के अलावा किसी अन्य राज्य की पुलिस द्वारा गिरफ्तारी की आशंका है।

21. भा.दं. प. सं. की धारा 438 गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के लिए

निर्देश निर्दिष्ट करती है और इसके अलावा उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को ही अग्रिम या ट्रांजिट जमानत देने की शक्ति प्रदान करती है, यदि वे उचित समझें। जब किसी व्यक्ति को यह आशंका होती है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है। न्यायालय, अगर उचित समझे, यह निर्देश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी के मामले में, उसे अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

22. बहरहाल, ट्रांजिट अग्रिम जमानत सामान्य जमानत से अलग है। साधारण जमानत गिरफ्तारी के बाद दी जाती है जिससे आरोपी को हिरासत से रिहा कर दिया जाता है, जबकि अग्रिम जमानत गिरफ्तारी की आशंका में दी जाती है, यानी यह आरोपी की हिरासत से पहले दी जाती है और गिरफ्तारी के समय तुरंत प्रभावी होती है। सरल शब्दों में, जब किसी अभियुक्त को न्यायालय के आदेश के अनुसार गिरफ्तार किया जाता है और जब आरोपी पर उपरोक्त मामले में अधिकार क्षेत्र रखने वाली किसी अन्य सक्षम अदालत में मुकदमा चलाने की जरूरत है तो ऐसी स्थिति में आरोपी को ट्रांजिटरी अवधि के लिए जमानत दी जाती है, यानी, आरोपी को उसकी गिरफ्तारी की जगह से सक्षम अदालत तक पहुंचने के लिए आवश्यक समय अवधि।

23. आगे यह रिकॉर्ड किया जाए कि ट्रांजिट अग्रिम जमानत एक निश्चित अवधि के लिए गिरफ्तारी से सुरक्षा है जैसा कि न्यायालय

द्वारा ऐसी ट्रांजिट अग्रिम जमानत प्रदान करते समय तय की जाती है। केवल इस तथ्य के आधार पर कि किसी आरोपी को ट्रांजिट अग्रिम जमानत दी गई है, नियमित अदालत, जिसके अधिकार क्षेत्र में मामला आएगा, ऐसी ट्रांजिट अग्रिम जमानत का विस्तार नहीं करेगा और न ही ऐसी ट्रांजिट अग्रिम जमानत को अग्रिम जमानत में बदलेगा। ट्रांजिट अग्रिम जमानत दिए जाने पर, आरोपी व्यक्ति, जिसे ऐसी ट्रांजिट अग्रिम जमानत दी गई है, को नियमित अदालत के समक्ष अग्रिम जमानत या नियमित जमानत के लिए आवेदन करना होगा।

24. इस न्यायालय के पास यह संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली जिसके द्वारा पारित पुनरीक्षणवादी, जो कि पहले से ही एक अन्य मामले में जेल में था, को ट्रांजिट अग्रिम जमानत देने का दिनांक 2 नवंबर, 2022 का आदेश दिया गया था अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, गौतमबुद्धनगर की अदालत, जिसने पुनरीक्षणवादी के खिलाफ "बी" वारंट जारी करने का आदेश पारित किया था और उसे जेल में पेश होने का भी निर्देश दिया था, से बेहतर/उच्च न्यायालय है। । हालाँकि, पुनरीक्षणवादी को ट्रांजिट अग्रिम जमानत देने के आदेश में, यह स्पष्ट है कि उक्त आदेश 8 दिनों की अवधि के लिए ही मान्य होगा, जिस अवधि के दौरान आरोपी-पुनरीक्षणवादी नोएडा, यूपी में संबंधित न्यायालय या माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश के समक्ष एक उचित आवेदन दायर कर सकता है। जिसका अर्थ यह है कि जब भी आरोपी-पुनरीक्षणवादी नोएडा में संबंधित मजिस्ट्रेट की

अदालत के समक्ष उपस्थित होता है या आत्मसमर्पण करता है या उसे पुलिस द्वारा तिहाड़ जेल, दिल्ली से उक्त न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, ऐसी स्थिति में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली द्वारा पुनरीक्षणवादी को ट्रांजिट अग्रिम जमानत देने का आदेश स्वतः समाप्त हो जाएगा। उक्त सुरक्षा पुनरीक्षणवादी को नोएडा में संबंधित मजिस्ट्रेट की अदालत तक पहुंचने के लिए एक सीमित स्थान यानी तिहाड़ जेल, दिल्ली के लिए ही दी गई थी। इसलिए, संबंधित मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करते समय कोई अवैधता या न्यायिक त्रुटि नहीं की है और साथ ही उसने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रोहिणी कोर्ट, दिल्ली के 2 नवंबर, 2022 के आदेश को अनदेखा नहीं किया है और न ही उसका गलत अर्थ नहीं निकाला है। इसलिए पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का यह कहना कि भा.दं. प्र.सं. की धारा 15 के अनुसार, संबंधित मजिस्ट्रेट के पास पुनरीक्षणवादी के खिलाफ "बी" वारंट जारी करने वाले आदेश को पारित करने की कोई शक्ति नहीं है, सही नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले के तथ्यों में धारा 15 लागू नहीं है।

25. उपरोक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि मुद्दा नंबर 1 पुनरीक्षणवादी के खिलाफ जाता है, क्योंकि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या न्यायिक त्रुटि नहीं है।

26. उपरोक्त के अलावा, यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलील में भी तथ्य पाता है कि अग्रिम

जमानत देने के लिए किसी ऐसे आरोपी का आवेदन जो पहले से ही किसी अन्य आपराधिक मामले में जेल में है पोषणीय नहीं है।

27. इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि भा.दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत ऐसे व्यक्ति को अग्रिम जमानत देना जो पहले से ही पुलिस की हिरासत में है या किसी अन्य आपराधिक मामले में पहले से ही जेल में है उचित नहीं होगा, और ऐसे आरोपी को अग्रिम जमानत की अनुमति देना न्याय का उपहास होगा। (संदर्भ **नरिंदरजीत सिंह साहनी एवं अन्य बनाम भारत संघ (2002) 2 एससीसी 210**) में वर्णित।

28. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि आक्षेपित आदेश में ही यह दर्ज है कि अभियुक्त -पुनरीक्षणवादी ने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष अग्रिम जमानत के लिए कोई आवेदन नहीं किया है।

**अब यह कोर्ट दूसरे मुद्दे पर आता है।**

29. यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए.जी.ए. द्वारा किए गए प्रस्तुतीकरण में तथ्य पाता है। भा.दं.प्र.सं. की धारा 397/401 के तहत आक्षेपित आदेश, जो एक अंतरिम/अंतर्वर्ती आदेश है, के विरुद्ध वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है, जिसके तहत संबंधित मजिस्ट्रेट ने पुनरीक्षणवादी के खिलाफ "बी" वारंट जारी किया है और जांच अधिकारी द्वारा दिये गये आवेदन पर उसे अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, नोएडा, जिला गौतमबुद्धनगर की अदालत में पेश होने

का भी निर्देश दिया है। मामले के इस पहलू पर, जब न्यायालय ने पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता से यह प्रश्न किया कि कानून के किस प्रावधान के तहत, एक अंतरिम/अंतरिम आदेश के खिलाफ वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण कायम रखने योग्य है, तो वह इसका उत्तर नहीं दे सके।

30. **अमरनाथ एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य 1977 0 एआईआर (एससी) 2185** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का मत इस प्रकार है:

"इस प्रकार, उदाहरण के लिए, **गवाहों को बुलाने, मामलों को स्थगित करने, जमानत के लिए आदेश पारित करने, रिपोर्ट मांगने और लंबित कार्यवाही की सहायता के लिए ऐसे अन्य कदम उठाने के आदेश, निस्संदेह अंतरिम आदेश हो सकते हैं, जिनके खिलाफ भा.दं.प्र.सं. की धारा 397 (2) के तहत कोई पुनरीक्षण पोषणीय नहीं होगी।**"

(बल दिया गया)

31. सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय का हाल ही में **होन्नैया टी.एच. बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1001 में वर्णित)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा अनुसरण किया गया है। होन्नैया टी.एच. के मामले में शीर्ष अदालत (सुप्रा) ने इस प्रकार राय दी है:

"13. यदि बयान को प्रदर्शन के रूप में चिह्नित नहीं किया गया तो आपराधिक मुकदमे के दौरान न्याय की गंभीर विफलता होगी क्योंकि यह एफआईआर के पंजीकरण का आधार बनता है। इन परिस्थितियों में ट्रायल जज के आदेश को केवल प्रक्रियात्मक या अंतर्वर्ती प्रकृति का नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें अभियोजन को मूल रूप से प्रभावित करने की क्षमता है। भा.दं.प्र.सं. की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां सार्वजनिक न्याय के हित में प्रकट अवैधता के सुधार या घोर अन्याय की रोकथाम के लिए हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। एक अदालत दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के अंतिम आदेश, या एक मध्यवर्ती आदेश जो प्रकृति में अंतर्वर्ती नहीं है, के विरुद्ध अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकती है। अमरनाथ बनाम हरियाणा राज्य के निर्णय में, इस न्यायालय ने धारा 397 (2) सीआरपीसी में "इंटरलॉक्यूटरी ऑर्डर" शब्द का अर्थ समझाया। इस न्यायालय ने माना कि अभिव्यक्ति "इंटरलॉक्यूटरी ऑर्डर" पूरी तरह से अंतरिम या अस्थायी प्रकृति के आदेशों को दर्शाता है जो पार्टियों के महत्वपूर्ण

अधिकारों या देनदारियों पर निर्णय या स्पर्श नहीं करते हैं। इसलिए, कोई भी आदेश जो पार्टियों के अधिकार को काफी हद तक प्रभावित करता है, उसे "अंतरवर्ती आदेश" नहीं कहा जा सकता है। दो-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए, न्यायमूर्ति मुर्तजा फ़ज़ल अली ने कहा: "6. [...] हमें ऐसा लगता है कि 1973 की संहिता की धारा 397 (2) में "इंटरलॉक्यूटरी ऑर्डर" शब्द का उपयोग एक प्रतिबंधित अर्थ में किया गया है, न कि किसी अर्थ में। यह केवल विशुद्ध रूप से अंतरिम या अस्थायी प्रकृति के आदेशों को दर्शाता है जो पार्टियों के महत्वपूर्ण अधिकारों या देनदारियों पर निर्णय या स्पर्श नहीं करते हैं। कोई भी आदेश जो अभियुक्तों के अधिकार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है, या पार्टियों के कुछ अधिकारों का निर्णय करता है, उसे एक अंतरिम आदेश नहीं कहा जा सकता है ताकि उस आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण पर रोक लगाई जा सके, क्योंकि वह उसी उद्देश्य के खिलाफ होगा जिससे 1973 संहिता की धारा 397 में इस विशेष प्रावधान को सम्मिलित गया था। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, गवाहों को



बुलाने, मामलों को स्थगित करने, जमानत के लिए आदेश पारित करने, रिपोर्ट मांगने और लंबित कार्यवाही की सहायता के लिए ऐसे अन्य कदम उठाने के आदेश निस्संदेह अंतरिम आदेश हैं जिनके खिलाफ 1973 संहिता की धारा 397 (2) के तहत कोई पुनरीक्षण नहीं होगा। लेकिन जो आदेश क्षणिक मामले हैं और जो अभियुक्तों के अधिकारों या मुकदमे के किसी विशेष पहलू को प्रभावित करते हैं, उन्हें अंतरिम आदेश नहीं कहा जा सकता है, इसलिए अमित कपूर बनाम रमेश चंदर, (2012) 9 एससीसी 460; शीतला प्रसाद बनाम श्री कांत, (2010) 2 एससीसी 190 6 (1977) 4 एससीसी 137 जो कि उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के दायरे से बाहर हैं।" (बल दिया गया)

14. भा.दं.प्र.सं. की धारा 397 (2) के अधिनियमन के ऐतिहासिक कारण को समझाते हुए, इस न्यायालय ने अमरनाथ (सुप्रा) में कहा कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की व्यापक शक्ति विवेक के अधीन है, न कि कानून के, एक आदेश के लिए कि "कानून की किसी त्रुटि या किसी कानूनी कमबली से पीड़ित था जिसके कारण आरोपी

के साथ अन्याय या पूर्वाग्रह हुआ या वह स्पष्ट रूप से मूर्खतापूर्ण या विकृत था।"

के.के. पटेल बनाम गुजरात राज्य, 7 में जहां संज्ञान लेने और जारी करने की प्रक्रिया के आदेश के खिलाफ एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया था, इस न्यायालय ने अमरनाथ (सुप्रा) में व्यक्ति दृष्टिकोण का पालन किया।

32. उपरोक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय यह पाता है कि दूसरा मुद्दा भी पुनरीक्षणवादी के खिलाफ जाता है। भा.दं.प्र.सं. की धारा 397/401 के तहत आपराधिक पुनरीक्षण आक्षेपित आदेश जैसे अंतर्वर्ती/अंतरिम आदेश के विरुद्ध पोषणीय नहीं है।

33. तदनुसार, वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 679

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 353 वर्ष 2023

मोहम्मद आरिफ

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

**पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता:**

श्री प्रदीप कुमार

का कोई मामला नहीं है। अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं है। (पैरा - 7,9)

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता, श्री आमिर खान

**पुनरीक्षण खारिज।(ई-7)**

**(ए) आपराधिक विधि - पुनरीक्षण - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 - भरण-पोषण - घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 - धारा 12, 29, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 112 - विवाह के दौरान जन्म, वैधता का निर्णायक साक्ष्य।**

**उद्धृत वादों की सूची :**

रजनेश बनाम नेहा एवं अन्य, (2021) 2 एससीसी 324

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

भरण-पोषण हेतु आवेदन - प्राकृतिक संरक्षक (माँ) के माध्यम से - वैवाहिक क्रूरता - दहेज की मांग की पूर्ति न होना - प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा खारिज - आदेश के विरुद्ध आपराधिक अपील - पारिवारिक न्यायालय द्वारा भरण-पोषण का आदेश - पुनरीक्षणवादी की पत्नी का दावा - उसकी पुत्री का जन्म 03.09.2015 को हुआ था - 19.12.2014 को अपने वैवाहिक घर से जाने के बाद - न्यायालय ने गलत पाया कि उसकी पुत्री का जन्म 10.07.2015 को हुआ था - पुनरीक्षणवादी को प्रतिवादी संख्या 2 को भरण-पोषण देने का निर्देश दिया - जो कि उसकी वैध संतान नहीं है - इसे निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा - 2,4)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को सुना और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया।

2. वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश परिवार न्यायालय, न्यायालय संख्या 2, बुलंदशहर द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत भरण-पोषण प्रकरण संख्या 174/2017 (कुमारी हुमा बनाम मोहम्मद आरिफ) में पारित दिनांक 20.12.2022 के आदेश को चुनौती दी है।

**अभिनिर्धारित:-** प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में वैधता की धारणा इस वैधानिक प्रावधान पर आधारित है कि वह अपनी माँ के पुनरीक्षणवादी से विवाह के दौरान, उनके अलग होने के 280 दिनों के भीतर पैदा हुई थी, और माँ द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करने

3. आपराधिक पुनरीक्षण से संबंधित मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि आवेदक कुमारी हुमा ने अपनी प्राकृतिक अभिभावक मां श्रीमती मदीना, मोहम्मद आरिफ (वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता) की पत्नी के माध्यम से प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय के समक्ष धारा

125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत भरण-पोषण के लिए आवेदन दिया, जिसमें प्रति माह 5,000 रुपये तक का गुजारा भत्ता मांगा गया। आवेदक ने कहा कि श्रीमती मदीना और प्रतिपक्षी संख्या 2 का विवाह वर्ष 2000 के आसपास हुआ था। आवेदक की प्राकृतिक अभिभावक श्रीमती मदीना को दहेज की मांग पूरी न होने के कारण प्रतिपक्षी, उसके पति (मोहम्मद आरिफ) और उसके ससुराल वालों द्वारा वैवाहिक क्रूरता का शिकार होना पड़ा। उनके विवाह से चार बच्चे पैदा हुए, जिनमें से एक पुरुष बच्चे की मृत्यु हो गई, तीन मादाओं के जन्म के तुरंत बाद, कुमारी उजमा, कुमारी रेहमा और कुमारी हुमा (वर्तमान आवेदक) बच गए। श्रीमती मदीना के पति और ससुराल वालों ने 19.12.2014 को उसे बुरी तरह से पीटा और उसे मारने की कोशिश की और गर्भवती होने पर उसे बस स्टैंड, अनूपशहर के पास छोड़ दिया। उसने अपने माता-पिता के घर शरण ली और 10.07.2015 को एक महिला को जन्म दिया, उसका नाम हुमा रखा गया। विपरीत पक्ष (मोहम्मद आरिफ) एक प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में काम करता है और वर्ष 2017 में आवेदन दाखिल करने के समय उसे लगभग 45,000 रुपये का वेतन मिल रहा था। प्रारंभ में, प्रतिवादी संख्या 2 की मां और अभिभावक श्रीमती मदीना ने अपने पति के खिलाफ भरण-पोषण के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे रखरखाव मामला संख्या 155/2015 के रूप में दर्ज किया गया था, जिसमें उसने अपने साथ-साथ अपनी दो नाबालिग बेटियाँ उजमा और रहनुमा के लिए अपने पति से गुजारा भत्ता मांगा था क्योंकि उसे उसके पति ने छोड़ दिया था। वर्तमान

आवेदक उस समय पैदा नहीं हुआ था। प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय बुलंदशहर ने उक्त आवेदन को आंशिक रूप से निर्णय और आदेश दिनांक 10.03.2017 के तहत स्वीकार कर लिया और आवेदकों श्रीमती मदीना को 4,500 रुपये और उसकी नाबालिग बेटियों उजमा और रहनुमा को 1,500 रुपये का मासिक गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया। इस प्रकार, न्यायालय ने श्रीमती मदीना और उसकी दो बेटियों को कुल 7,500 रुपये का मासिक गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया है। इसके बाद, श्रीमती मदीना ने अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर की न्यायालय के समक्ष घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की धारा 12 के तहत मौद्रिक राहत सहित विभिन्न संरक्षण आदेशों के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर द्वारा पारित 29.10.2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। आवेदकों ने घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की धारा 29 के तहत एक आपराधिक अपील दायर की, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, कोर्ट संख्या 2 बुलंदशहर द्वारा पारित 20.07.2022 के आदेश के तहत एकपक्षीय निर्णय दिया गया, जिसके तहत अपीलीय न्यायालय ने श्रीमती मदीना और अन्य की अपील को स्वीकार कर लिया और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 20.10.2020 के आदेश को रद्द कर दिया। न्यायालय ने आवेदकों को प्रतिपक्षी मोहम्मद आरिफ और अन्य के घर में एक कमरे में रहने की अनुमति देने के अलावा, 5,000 रुपये और 3,000 रुपये प्रति माह का गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया। आवेदकों

श्रीमती मदीना और उनकी तीन नाबालिग बेटियों को एकमुश्त भुगतान के रूप में मुआवजे के रूप में 1 लाख रुपये का एकमुश्त भुगतान भी किया गया। उक्त आदेश को वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता और उनके परिवार के सदस्यों द्वारा चुनौती दी गई थी जो घरेलू हिंसा अधिनियम के मामले में प्रतिवादी थे। धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता संख्या 25268/2022 के तहत एक आवेदन में मोहम्मद आरिफ और 7 अन्य बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य, जिसमें इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने **रजनेश बनाम नेहा और अन्य (2021) 2 एससीसी 324** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में पूरे मुद्दे पर विचार किया और विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.07.2022 की पुष्टि की और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया। उस आदेश में, यह भी देखा गया कि आवेदकों द्वारा धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन में 20.07.2022 के एकपक्षीय निर्णय को रद्द करने के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की धारा 12,18,19,20,20,22, थाना-अनूपशहर, जिला-बुलंदशहर, के तहत विविध आपराधिक मामला संख्या 55/2016 (आरिफ और अन्य बनाम श्रीमती मदीना और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 20.10.2020 के खिलाफ निर्देशित आपराधिक अपील संख्या 33/2020 में पारित आदेश दिनांक 20.07.2022 को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई थी। जिसके तहत अपीलकर्ताओं को प्रति माह 8,000/- रुपये और

रखरखाव के साथ-साथ उन्हें एकमुश्त भुगतान के रूप में 1 लाख रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। उस मामले में, इस न्यायालय ने दिनांक 16.05.2023 के आदेश में, धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन किया, इस न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को बरकरार नहीं रखा कि उपरोक्त आपराधिक अपील संख्या 33/2020 में पारित 20.07.2022 के निर्णय का अतिव्यापी प्रभाव पड़ रहा था, जैसा कि धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही में दिनांक 10.03.2017 के आदेश द्वारा किया गया था। विचारण न्यायालय ने श्रीमती मदीना को 4,500 रुपये और उसकी नाबालिग बेटियों को 1,500 रुपये देने का आदेश दिया, इस प्रकार प्रति माह 7,500 रुपये की कुल राशि गुजारा भत्ता के रूप में दी गई, जो विपरीत पक्ष संख्या 2 के पति द्वारा देय थी। इस न्यायालय ने यह भी कहा कि बाद में, तीसरी बेटी हुमा के जन्म पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत एक आवेदन किया गया। उसकी ओर से उसकी मां (श्रीमती मदीना) द्वारा स्थानान्तरित किया गया था और आदेश की तारीख से और आवेदन दाखिल करने की तारीख से 20.12.2022 को आदेश की तारीख तक 1500 रुपये की दर से 4,000 रुपये की अतिरिक्त रखरखाव राशि भी प्रदान की गई थी। इस प्रकार, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ दिया गया कुल रखरखाव और प्रतिवादी संख्या 2, उसकी मां और भाई-बहनों को देय कुल 19,500 रुपये प्रति माह है। इस न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या 2 से 5 की इस दलील पर भरोसा किया कि आवेदक मोहम्मद आरिफ को

वर्ष 2019 में प्रति माह 59,800 रुपये का वेतन मिल रहा था और यह राशि अब तक बढ़ गई होगी और धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत आदेश के तहत 11,500 रुपये का गुजारा भत्ता दिया जाएगा और घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 29 के तहत अपील में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित 20.07.2022 के एकपक्षीय निर्णय के तहत 8,000/- रुपये का भरण-पोषण दिया गया।

4. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता घरेलू हिंसा अधिनियम की कार्यवाही के तहत आपराधिक अपील संख्या 55/2016 में पारित 29.10.2020 के आदेश के खिलाफ दायर आपराधिक अपील संख्या 33/2020 में दिनांक 20.07.2022 के आदेश के अनुपालन में अपनी पत्नी और उसकी बेटियों को 8,000 रुपये का भुगतान कर रहा है। विपक्षी पार्टी नंबर 2 ने धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत 2017 का वर्तमान भरण-पोषण मामला संख्या 174 दायर किया है, जिसे प्रथम दृष्टया न्यायालय ने खारिज कर दिया था, लेकिन उक्त आदेश के खिलाफ आपराधिक अपील में, अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश परिवार न्यायालय ने दिनांक 20.12.2022 के आक्षेपित आदेश के तहत उसे भरण-पोषण का आदेश दिया। धारा 125 आपराधिक प्रक्रिया संहिता संख्या 155/2015 के तहत प्रारंभिक भरण-पोषण मामले में, श्रीमती मदीना को अपने और अपनी दो नाबालिग बेटियों के भरण-पोषण के लिए 7,500/- रुपये प्रति माह का भरण-पोषण प्रदान किया गया। पुनरीक्षणवादी श्रीमती मदीना की

पत्नी का मामला यह है कि उनकी बेटी का जन्म 10.07.2015 को उसके माता-पिता के घर में हुआ था क्योंकि उसने 19.12.2014 को अपना वैवाहिक घर छोड़ दिया था। पुनरीक्षणकर्ता ने रखरखाव मामले संख्या 174/2017 में उक्त मामले में जवाब दायर किया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि कुमारी हुमा का जन्म संशोधनवादी और उनकी पत्नी के विवाह से हुआ था और उनका जन्म उनके अलगाव के 280 दिनों से अधिक समय बाद हुआ था। श्रीमती मदीना के दिनांक 23.01.2015 के अल्ट्रासाउंड के अवलोकन से पता चलता है कि मदीना की गर्भावस्था लगभग 8 सप्ताह थी, 07.04.2015 का अल्ट्रासाउंड के अवलोकन से पता चलता है कि उसकी गर्भावस्था लगभग 18 सप्ताह 4 दिन थी और 22.06.2015 की अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट से पता चलता है कि गर्भावस्था 28 सप्ताह 2 दिन थी और अस्थायी प्रसव तिथि 2/3.09.2015 के रूप में दिखाई गई है। इस प्रकार, श्रीमती मदीना की तीसरी बेटी का प्रसव 10.07.2015 को संभव नहीं था क्योंकि उसका तीसरा अल्ट्रासाउंड 22.06.2015 को किया गया था, जिसमें उसकी गर्भावस्था केवल 28 सप्ताह 2 दिन थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि श्रीमती मदीना ने अपनी अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट पेश की है, लेकिन विचारण न्यायालय के समक्ष अपने तीसरे बच्चे का जन्म प्रमाण पत्र पेश नहीं किया है, जो प्रतिवादी संख्या 2 कुमारी हुमा की जन्म तिथि के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है, जैसा कि उसकी मां द्वारा प्रतिपादित किया गया था, क्योंकि श्रीमती मदीना ने पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ एफआईआर दर्ज की थी, जिसमें उसने कहा है

कि उसकी गर्भावस्था लगभग 50 दिनों की थी और स्थगन आवेदन में, उन्होंने कहा कि उनकी बेटी का जन्म 03.09.2015 को हुआ है। इसलिए, श्रीमती मदीना ने स्वयं प्रतिवादी संख्या 2 के जन्म के संबंध में दो परस्पर विरोधी तिथियां बताईं। विचारण न्यायालय ने गलत निष्कर्ष दिया है कि मेडिकल रिपोर्ट के अवलोकन से, यह साबित होता है कि उसका जन्म 10.07.2015 को हुआ था। जिसमें फाइल में ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है जिसमें कुमारी हुमा की जन्म तिथि का उल्लेख किया गया हो। उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता को बिना कोई कारण बताए आवेदन दाखिल करने की तारीख से प्रतिवादी संख्या 2 को गुजारा भत्ता का भुगतान करने का निर्देश दिया है, जबकि यह बहुत स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष बहुत शुरुआती चरण में पेश हुआ है और उसने मामले के निर्णय में देरी में कोई गलती नहीं की है। इसलिए, वह मामले के निर्णय में देरी के लिए जिम्मेदार नहीं है। प्रतिवादी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता की वैध संतान नहीं है और उसने गलत तरीके से उसे अलग से गुजारा भत्ता देने के लिए उत्तरदायी बनाया है। दिनांक 20.12.2022 का आक्षेपित आदेश, प्रथम दृष्टया अवैध और कानून के विपरीत है, इसलिए, इसे इस माननीय न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से पेश हुए अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता और विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि नीचे दी गई न्यायालय द्वारा पारित आदेश में

कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं है। अवर न्यायालय ने इस संबंध में एक विशिष्ट मुद्दे की पुष्टि की है कि "क्या कुमारी हुमा प्रतिपक्षी मोहम्मद आरिफ की बेटी है और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई सभी प्रस्तुतियों और प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित दस्तावेजों पर विचार करने के बाद इस मुद्दे पर सकारात्मक निर्णय लिया। न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि तीसरी अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट में बच्चे के प्रसव की संभावित तारीख 03.09.2015 दिखाई गई है, यह अस्थायी तारीख है और इसे निर्णायक नहीं माना जा सकता है। प्रसव की तारीख कई कारकों पर निर्भर करती है जो मां के गर्भ में भ्रूण के विकास को प्रभावित करते हैं और डॉक्टर द्वारा दी गई प्रसव की अस्थायी तारीख अन्य चिकित्सा मानकों के आधार पर बदली जा सकती है। इस न्यायालय ने यह भी कहा कि चूंकि प्रतिवादी संख्या 2 कुमारी हुमा का जन्म प्रतिवादी संख्या 2 की मां के अपने वैवाहिक घर से अंतिम प्रस्थान के 280 दिनों के भीतर हुआ था, इसलिए वैधता की धारणा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में है। इसलिए, उपरोक्त प्रस्तुतियों के आधार पर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसकी पुष्टि की जानी चाहिए।

6. यदि हम प्रतिवादी संख्या 2 की मां श्रीमती मदीना की गर्भावस्था के संबंध में अल्ट्रासाउंड रिपोर्टों को देखें, जो वर्तमान संशोधन जापन के अनुबंध संख्या 5 के रूप में दायर की गई हैं, तो हम पाते हैं कि श्रीमती मदीना के दिनांक

22.06.2015 के तीसरे अल्ट्रासाउंड में, गर्भधारण 28 सप्ताह 2 दिन पाया गया था और अपेक्षित प्रसव तिथि 02.09.2015 दिखाई गई थी। जबकि यह प्रतिवादी पक्ष का मामला है कि तीसरे बच्चे का जन्म 10.07.2005 को हुआ था। गर्भावस्था के 7 महीने के बाद बच्चे की डिलीवरी काफी स्वाभाविक है, हालांकि, प्रसव की सामान्य अवधि को गर्भाधान की तारीख से 9 महीने माना जाता है। डॉक्टर ने प्रसव की तारीख 02.09.2015 को अनुमानित तारीख के रूप में दिखाया है और इसका निर्णायक इलाज नहीं किया जा सकता है। यह प्रतिवादी संख्या 2 का भी मामला है कि प्रतिवादी संख्या 2 की डिलीवरी उसकी मां के घर पर हुई थी, न कि अस्पताल में। इस संबंध में किसी भी पक्ष द्वारा अस्पताल का कोई अभिलेख अभिलेख में नहीं रखा गया है। प्रतिवादी संख्या 2 की मां के अधिवक्ता द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष दिए गए स्थगन आवेदन में दिए गए बयान कि बच्चे का जन्म 03.09.2015 को हुआ था, को इस तथ्य के निर्णायक प्रमाण के रूप में भी नहीं लिया जा सकता है कि प्रतिवादी संख्या 2 का जन्म 03.09.2015 को हुआ था क्योंकि यह उसके अधिवक्ता के माध्यम से दायर उसके स्थगन आवेदन में पार्टी का बयान है। यदि हम श्रीमती मदीना के पुनरीक्षण स्थल से उसके माता-पिता के स्थान अर्थात् 19.12.2014 को प्रस्थान की स्वीकृत तिथि की गणना करते हैं और एक क्षण के लिए मान लें कि बच्चे का जन्म 03.09.2015 को हुआ था, जैसा कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा कहा गया है, तब भी 257 दिनों की अवधि इन दो तिथियों के बीच हस्तक्षेप करती है और इस प्रकार, उस स्थिति

में भी बच्चे का जन्म 280 दिनों के भीतर होता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

**भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 112**

112. विवाह के दौरान जन्म, वैधता का निर्णायक प्रमाण—तथ्य यह है कि किसी व्यक्ति का जन्म उसकी माँ और किसी पुरुष के बीच वैध विवाह के जारी रहने के दौरान हुआ था, या इसके विघटन के दो सौ अस्सी दिनों के भीतर, माँ का अविवाहित रहना, निर्णायक प्रमाण होगा कि वह उस व्यक्ति का वैध पुत्र है, जब तक कि यह नहीं दिखाया जा सकता है कि विवाह के पक्षकारों की किसी भी समय एक-दूसरे से कोई पहुँच नहीं थी। जब उसे जन्म दिया जा सकता था।

7. प्रतिवादी संख्या 2 के माता-पिता होने के किसी भी वैज्ञानिक प्रमाण के अभाव में, उसके पक्ष में वैधता की धारणा होगी। उपरोक्त वैधानिक प्रावधान को ध्यान में रखते हुए क्योंकि उसका जन्म उसकी मां और पुनरीक्षणकर्ता के बीच विवाह जारी रहने के दौरान हुआ था और वह भी उनके अलगाव के 280 दिनों के भीतर और यह संशोधनवादी का कोई मामला नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 2 की मां ने अपने पति से अलग होने के बाद किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाह किया है।

8. जहां तक गुजारा भत्ता की मात्रा का संबंध है, अवर न्यायालय ने आवेदन दाखिल करने की तारीख से आदेश की तारीख तक केवल

1,500 रुपये और आदेश की तारीख से 4,000 रुपये का गुजारा भत्ता प्रतिवादी संख्या 2 को दिया है, जो श्रीमती मदीना की तीसरी बेटी है, जो दावा करती है कि बेटी का जन्म पुनरीक्षणकर्ता के साथ उसके विवाह से हुआ था। यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन करता है। संख्या 25268/2022 में पुनरीक्षणकर्ता की भुगतान क्षमता पर भी विचार किया गया है, जिसमें उसकी पत्नी श्रीमती मदीना, उसकी दो नाबालिग बेटियों के साथ-साथ उसकी तीसरी बेटी कुमारी हुमा को दिए गए रखरखाव की अलग-अलग राशि के लिए विभिन्न कार्यवाहियों में दी गई भरण-पोषण की राशि पर विचार किया गया है और यदि विभिन्न कार्यवाहियों में पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ दिए गए गुजारा भत्ता की कुल राशि पर विचार किया जाता है तो यह 19,500 रुपये बनता है। यह राशि उस पुनरीक्षणकर्ता के वेतन का लगभग 1/3 है जो सरकारी सेवा में लगा हुआ है और बुनियादी प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक है। इसलिए, मामले से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 2 को नीचे दी गई न्यायालय द्वारा दी गई राशि को अत्यधिक नहीं माना जा सकता है।

9. पूर्वगामी चर्चाओं पर, मैं पाता हूँ कि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता, विकृति नहीं है। वर्तमान संशोधन गुण-दोष रहित है और इसलिए, इसे तदनुसार खारिज किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 684

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023 और  
16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र  
आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 800 वर्ष 2023

करण सिंह एवं अन्य

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादियों के अधिवक्ता:

श्री विजय कुमार राय, श्री तेज बहादुर राय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अनुप कुमार, श्री राम दास यादव, श्री संतोष कुमार दुबे

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 239 - अभियुक्त को कब आरोपमुक्त किया जा सकता है, धारा 240 - आरोप का निर्धारण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, 406 - उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है और इसे नियमित तरीके से प्रयोग नहीं किया जा सकता है - अंतर्निहित प्रतिबंध - अंतरिम या मध्यवर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं होना चाहिए - पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग विधि के प्रश्न पर किया जाना चाहिए - जब तथ्यात्मक मूल्यांकन शामिल होता है, तो इसे उन मामलों की श्रेणी में जगह मिलनी चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप



विकृत निष्कर्ष निकलता है - शक्ति का प्रयोग किया जाना आवश्यक है ताकि न्याय हो और न्यायालय द्वारा शक्ति का दुरुपयोग न हो - केवल आशंका या संदेह हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा। (पैरा - 17,18)

अवर न्यायालय ने अभियुक्त-पुनरीक्षणवादियों का आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया - धोखाधड़ी से पुनरीक्षणवादी संख्या 2 के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया - सूचनाकर्ता, जो भूखंड का मालिक था, विलेख के निष्पादन के दिन नशे में था - अभियुक्तों को अपने लेन-देन साबित करने और आरोपों का खंडन करने का अवसर दिया गया - न्यायालय ने टिप्पणी की कि सुनवाई के दौरान पुनरीक्षणवादियों के दस्तावेजों पर विचार नहीं किया जा सकता - इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा - 19)

**निर्णय:-** अवर न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में सही ही टिप्पणी की है कि पुनरीक्षणवादी द्वारा अपने आरोपमुक्ति के दावे के समर्थन में प्रस्तुत दस्तावेजों को आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र की सुनवाई और निस्तारण के चरण में विचार में नहीं लिया जा सकता। न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता, क्योंकि यह अनियमित, अवैध या अनौचित्य नहीं है, और अभियुक्त पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध आरोप निराधार नहीं हैं। (पैरा - 19,20)

**पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची :**

1. मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 628

2. सौ. कमल शिवाजी पोकरणेकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2019 0 सुप्रीम (एससी) 145

3. अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र, (2012) 9 एससीसी 460

4. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य, 2020 5 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है और इसे अभिलेख पर लिया गया है।

2. उपस्थित पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

3. भा.दं.सं. की धारा 420, 406 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 29/2022, पुलिस थाना बाबूगढ़, जिला हापुड से उत्पन्न आपराधिक मुकदमा संख्या 670/2022 (राज्य बनाम करण सिंह और अन्य) में विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, हापुड द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3.1.2023 के खिलाफ वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी गई है, जिसके तहत पुनरीक्षणवादी अभियुक्त द्वारा

प्रस्तुत उन्मोचन आवेदन खारिज कर दिया गया है।

4. मामले की तथ्यात्मक स्थिति यह है कि विपक्षी संख्या 2 ने पुनरीक्षणवादियों के खिलाफ 20.1.2022 को संबंधित पुलिस थाना में एफ.आई.आर. दर्ज कराई, जिसमें कहा गया कि सूचक एक वरिष्ठ दीवानी और शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति है। वह कृषि जमीन खसरा संख्या 955, रकबा 0.2530 हेक्टेयर का जमीनधर है, जिसे उसने अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए खरीदा था। उनके सह-ग्रामीण करण सिंह पुत्र छिद्दा सिंह ने उससे एक उपहार विलेख में गवाह बनने के लिए कहा, जिसे उन्हें अपनी बहू मोनिका त्यागी के पक्ष में निष्पादित करना था और सूचक ने प्रस्तावित उपहार का गवाह बनने की बात स्वीकार कर ली, हालाँकि, 21.8.2019 को जब वह उप-रजिस्ट्रार अधिकारी, हापुड के पास पहुँचा, तो आरोपियों ने उसे शराब पिलाकर नशा करा दिया और अमरपाल (पुनरीक्षणवादी संख्या 3) के साथ मिलकर उक्त कृषि जमीन के संबंध में एक विक्रय विलेख पर हस्ताक्षर करा लिए। सूचक को इस फर्जीवाड़े के बारे में तब पता चला जब उसे उप-रजिस्ट्रार कार्यालय से इसकी एक प्रति मिली। उक्त विक्रय विलेख के संबंध में कोई विचार पारित नहीं किया गया और विक्रय विलेख के नीचे जिन चेकों का वर्णन किया गया है, वे करण सिंह के खाते के हैं, लेकिन चेक की राशि उक्त खाते में जमा नहीं की गई थी। वास्तव में, उक्त विक्रय विलेख के संबंध में ग्राहक और विक्रेता के बीच कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया है।

5. पुलिस ने मामले की जांच की और उक्त अपराध में आरोपी व्यक्तियों की संलिप्तता पाए जाने के बाद आरोपी पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया। सत्र न्यायालय के आदेश से अभियुक्तों को अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया।

6. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणवादियों को दिनांक 20.1.2023 के आदेश द्वारा अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया था। विवाद अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का है, यहां तक कि सूचना देने वाला/विपक्षी संख्या 2 ने 20.10.2019 को सिविल जज, जूनियर डिवीजन-प्रथम हापुड की अदालत में मुकदमा संख्या 148/2019 (हुसनचंद बनाम मोनिका त्यागी) के रूप में एक सिविल मुकदमा दायर किया है, जिसमें उन्होंने कथित बिक्री पत्र को रद्द करने की राहत मांगी है। विपक्षी संख्या 2 ने गलत इरादे से चेक भुनाने के लिए अपने बैंकर के समक्ष कभी प्रस्तुत नहीं किया। पुनरीक्षणवादी अभी भी 7,60,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए तैयार हैं। वर्तमान एफ.आई.आर. जमीन खरीदने के लिए संशोधनवादी संख्या 2 को वंचित करने की दृष्टि से घटना के ढाई साल बाद गलत इरादे से दर्ज की गई क्योंकि जमीन की दर बढ़ गई थी। सिविल मुकदमा दायर करने के बाद 20.1.2022 को एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी।

7. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 628 मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय के एक

फैसले का हवाला दिया, जिसमें माननीय शीर्ष न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 44 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

44. इसके अलावा, दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के संबंध में हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य 9 के ऐतिहासिक फैसले में, इस न्यायालय ने उदाहरणों की निम्नलिखित श्रेणियां निर्धारित की हैं जिनमें न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। ये हैं:-

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है;

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफ.आई.आर. के साथ संलग्न अन्य सामग्रियों में आरोप, यदि कोई हों, संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए

किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा न करें;

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं;

(3) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत माना गया है;

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है;

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही की स्थापना और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट

कानूनी रोक है और/या जहां कोई विशिष्ट प्रावधान है संहिता या संबंधित अधिनियम, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है; (7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

8. अधीनस्थ न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर जमानत पर रिहा उन्मोचन के आवेदन को खारिज कर दिया है। कुल 7,60,000/- रुपये में से 10,000/- रुपये का भुगतान संशोधनकर्ता द्वारा नकद में किया गया था और शेष राशि के लिए, दो उत्तर दिनांकित चेक, 6,00,000/- रुपये का दिनांकित 15.1.2020 का चेक और 1,60,000/- रुपये का दिनांकित 15.10.2019 का अन्य चेक विक्रेता (विपरीत पक्ष संख्या 2) को दिए गए थे।

9. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यह तथ्यशुदा कानून है कि जब एक सिविल कार्यवाही लंबित होती है, तो उसी कारण पर आपराधिक कार्यवाही कायम नहीं रहती है, लेकिन इस तथ्य पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, वास्तव में पुनरीक्षणवादी द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है और उसे गलत इरादे के कारण वर्तमान

मामले में झूठा फंसाया गया है, इसलिए पुनरीक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए और आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है।

10. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जवाबी हलफनामे में विवादित चेकों की फोटोकॉपी पेज संख्या 30 से 31 पर दाखिल की गई है, जिससे पता चलता है कि चेक में उल्लिखित तिथि विवादित विक्रय विलेख में उल्लिखित तिथि के समान नहीं है, क्योंकि 1,60,000/- रुपये के चेक पर तिथि 15.10.2019 अंकित है और 6,00,000/- रुपये की राशि के चेक पर तिथि 15.1.2020 अंकित है जबकि विक्रय विलेख में चेक की तिथि क्रमशः 15.1.2020 और 15.10.2020 अंकित है।

11. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने **साव कमल शिवाजी पोकरणेकर बनाम. महाराष्ट्र सरकार और अन्य, 2019 0 सुप्रीम (एससी) 145** मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय के एक निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें माननीय शीर्ष न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 9 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

*"9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर मौजूद सामग्री की जांच करने के बाद, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय को परीक्षण न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों को समन जारी करने के आदेश को रद्द नहीं करना चाहिए*

था। शिकायत का अवलोकन प्रथम दृष्ट्या, प्रतिवादियों के विरुद्ध कथित अपराधों का खुलासा करता है। उक्त आरोपों की सत्यता या अन्यथा का निर्णय केवल परीक्षण में किया जाना है। प्रक्रिया जारी करने के प्रारंभिक चरण में अदालतों के लिए यह खुला नहीं है कि वह अभियुक्त की ओर से दिए गए तर्कों के गुण-दोषों पर विचार करके कार्यवाही को रोकें। आपराधिक शिकायतों को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि उनमें लगाए गए आरोप दीवानी प्रकृति के प्रतीत होते हैं। यदि आरोपी के खिलाफ कथित अपराध की सामग्री प्रथम दृष्ट्या शिकायत में सामने आती है, तो आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।"

12. यह स्थापित कानून है कि तथ्यों के एक ही समूह पर दीवानी और आपराधिक दायित्व दोनों हो सकते हैं और आपराधिक कार्यवाही शुरू करने पर कोई रोक नहीं है, जहां समान तथ्यों के आधार पर, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आपराधिक दायित्व भी बनता है। विवादित चेकों में अदाकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं किया जाता है, जो प्रारंभ से ही पुनरीक्षणवादी की दुर्भावनापूर्ण मंशा को दर्शाता है। मैंने अदाकर्ता द्वारा चेक भुनाने के लिए उक्त चेक में शामिल राशि को कभी भी अपने खाते में जमा नहीं किया। पुनरीक्षणवादी संख्या 1 ने उक्त चेक को भुगतानकर्ता द्वारा भुनाए जाने के लिए उक्त चेक में शामिल राशि को

कभी भी अपने खाते में जमा नहीं किया। वास्तव में, विपक्षी संख्या 2 ने कभी भी भूमि के विक्रय विलेख को निष्पादित करने का इरादा नहीं किया था और उसे साधन की प्रकृति के संबंध में पुनरीक्षणवादी द्वारा धोखा दिया गया था और उसे एक उपहार विलेख में हेरफेर करके विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए मजबूर किया गया था।

13. जांच अधिकारी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत बैंक अधिकारी रवीश कुमार के बयान दर्ज किए, जिन्होंने बताया कि अगस्त, 2019 से फरवरी, 2022 के बीच करण सिंह (पुनरीक्षणवादी संख्या 1) के खाते में अधिकतम शेष राशि केवल रु. थी और उक्त चेक उनके बैंक द्वारा जारी किए गए थे लेकिन उसकी राशि अभी तक बैंक से निकाली नहीं की गई है।

14. उन्होंने अंततः प्रस्तुत किया कि यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रतिवादी संख्या 2 का कब्जा अभी भी उस भूमि पर जारी है जिसे पुनरीक्षणवादी संख्या 2 को बेचा गया दिखाया गया है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है, इसलिए, पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है। आरोपी पुनरीक्षणवादी आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और उसके आपराधिक इतिहास का उल्लेख जवाबी हलफनामे में किया गया है।

15. दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 32456/2022 में पारित इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उन्मोचन आवेदन दायर किया गया था, जिसमें

इस न्यायालय ने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट, हापुड के न्यायालय में भा.दं.सं. की धारा 420, 406, थाना बाबूगढ़, जिला हापुड के वर्तमान मुकदमा अपराध संख्या 29/2022 में न्यायालय द्वारा जारी आरोप पत्र, गैर जमानती वारंट के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को खारिज करते समय आरोपी व्यक्तियों को एक महीने के भीतर संबंधित अदालत के समक्ष उपस्थित होने और उन्मोचन के लिए एक आवेदन दायर करने का अवसर दिया और दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद संबंधित न्यायालय द्वारा उस पर कानून के अनुसार विचार और निपटान किया जाएगा। यह भी निर्देश दिया गया कि एक माह की अवधि तक और उन्मोचन के लिए आवेदन के निस्तारण तक आवेदकों के खिलाफ कोई उत्पीड़नात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी। आरोपी व्यक्तियों ने दं.प्र.सं. की धारा 239 के तहत आरोपमुक्त करने की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दायर किया था, जिसे परीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और इसमें यह भी देखा गया है कि चूंकि आरोपी व्यक्तियों को आज तक जमानत नहीं मिली है और उन्हें मामले की पूरी जानकारी है, इसलिए उनके खिलाफ गैर जमानती वारंट जारी किया जाए।

16. दं.प्र.सं. की धारा 239 एवं दं.प्र.सं. की धारा 240 निम्नानुसार पढ़ी जाएगी:-

"239. अभियुक्त को कब उन्मोचित किया जाएगा। यदि धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजी गई दस्तावेजों पर

विचार कर लेने पर और अभियुक्त की ऐसी परीक्षा, यदि कोई हो, जैसी मजिस्ट्रेट आवश्यक समझे, कर लेने पर और अभियोजन और अभियुक्त को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, मजिस्ट्रेट अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को निराधार समझता है तो वह उसे उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारण को लेखबद्ध करेगा।

240. आरोप का निर्धारण।

(1) यदि, ऐसे विचार, परीक्षा, यदि कोई हो, और सुनवाई कर लेने पर मजिस्ट्रेट की यह राय है कि ऐसी उपधारणा करने का आधार है कि अभियुक्त ने इस अध्याय के अधीन विचारणीय ऐसा अपराध किया है जिसका विचारण करने के लिए, वह मजिस्ट्रेट सक्षम है और जो उसकी राय में उसके द्वारा पर्याप्त रूप से दंडित किया जा सकता है तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप लिखित रूप में विरचित करेगा।

(2) तब वह आरोप अभियुक्त को पढ़ कर सुनाया और समझाया जाएगा और उससे यह पूछा जाएगा कि क्या वह उस अपराध का, जिसका आरोप लगाया गया है दोषी होने का अभिवाक् करता है या विचारण किए जाने का दावा करता है।

17. उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त को केवल तभी रिहा कर सकता है जब यह पाया जाए कि आरोपमुक्त करना निराधार है और ऐसे मामले में आरोपी को आरोपमुक्त करते

समय वह ऐसा करने के कारणों को दर्ज करेगा। **अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र (2012) 9 एससीसी 460** में माननीय शीर्ष न्यायालय ने एक मामले में दं.प्र.सं. की धारा 397, 482 के प्रावधानों के दायरे पर विस्तार से विचार किया था, जहां उच्च न्यायालय ने भा.दं.सं. की धारा 306 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए एक आपराधिक पुनरीक्षण में प्रतिवादी के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 306 के तहत लगाए गए आरोप को रद्द कर दिया था। माननीय शीर्ष न्यायालय ने माना कि सर्वमान्य मानदंड यह है कि उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है और इसका प्रयोग नियमित तरीके से नहीं किया जा सकता है। अंतर्निहित प्रतिबंधों में से एक यह है कि यह अंतरिम या अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। न्यायालय को यह ध्यान रखना होगा कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से ही प्रथम दृष्टया अन्याय न हो। जहां न्यायालय इस सवाल से निपट रहा है कि क्या किसी मामले में आरोप ठीक से और कानून के अनुसार तय किया गया है, तो वह अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने में अनिच्छुक हो सकता है जब तक कि मामला काफी हद तक उपरोक्त श्रेणियों के अंतर्गत नहीं आता है। यहां तक कि दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में आरोप तय करना भी एक बहुत उन्नत चरण है। पश्चिम बंगाल राज्य एवं स्रोत और अन्य बनाम स्वपन कुमार गुहा और अन्य [(1982) 1 एससीसी 561] के मामले से ही, जिसे हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य [1992 पूरक (1) एससीसी 335] के मामले में अनुमोदन के साथ दोहराया गया था), अदालतों ने सिद्धांत कहा है

कि यदि एफआईआर किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करती है, तो न्यायालय के लिए निर्धारित या प्राप्त जानकारी के आधार पर जांच को रद्द करना उचित होगा। आगे कहा गया है कि कानूनी स्थिति यह प्रतीत होती है कि यदि किसी अपराध का खुलासा किया जाता है, तो अदालत आम तौर पर मामले की जांच में हस्तक्षेप नहीं करेगी और कथित अपराध की जांच की अनुमति देगी, हालाँकि, यदि सामग्री किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो आम तौर पर किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। किसी अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए। यदि प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने पर, न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि अपराध का खुलासा हो गया है, तो वह आम तौर पर अपराध की जांच में हस्तक्षेप नहीं करेगा और आम तौर पर अपराध को साबित करने के लिए सामग्री एकत्र करने के लिए अपराध की जांच को पूरा करने की अनुमति देगा। भजन लाल मामले (सुप्रा) में, न्यायालय ने यह भी कहा कि यद्यपि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित, पर्याप्त रूप से व्यवस्थित और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना या असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें एफआईआर को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, ऐसी परिस्थितियां हैं जहां न्यायालय को इस तरह के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना उचित हो सकता है। ये हैं, जहां एफआईआर प्रथम दृष्टया किसी अपराध का

गठन नहीं करती है, पुलिस द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है; जहां आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है; जहां संहिता के किसी भी प्रावधान में कोई स्पष्ट कानूनी बाधा मौजूद हो; और जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है। इन आधारों को बताने के बावजूद, न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस आशय की चेतावनी दी कि किसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; न्यायालय ने यह भी चेतावनी दी कि एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरू करना न्यायालय के लिए उचित नहीं होगा और असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को उसकी मनमर्जी के अनुसार कार्य करने का मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।

18. उपर्युक्त सिद्धांत स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अंतर्निहित और पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि किसी एफआईआर को रद्द करने के संबंध में संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार ऊपर

बताए गए तथ्य और सावधानी से सीमित है, तो उस स्थिति में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार, विशेष रूप से आरोप तय करने से निपटने के दौरान, और भी अधिक सीमित होना चाहिए। आरोप तय करना संहिता की धारा 228 के संदर्भ में परीक्षण न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार का प्रयोग है, जब तक कि आरोपी को संहिता की धारा 227 के तहत आरोपमुक्त नहीं कर दिया जाता। इन दोनों प्रावधानों के तहत, न्यायालय को 'मामले के अभिलेख' और उसके साथ प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों पर विचार करना आवश्यक है और, पक्षों को सुनने के बाद, या तो आरोपी को आरोपमुक्त कर सकती है या जहां यह न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है और उसकी राय में यह मानने का आधार है कि आरोपी ने अपराध किया है, वह आरोप तय करेगा। एक बार धारा के तथ्य और सामग्रियां मौजूद हो जाएं, तो न्यायालय यह मानने में सही होगा कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने और उसके अनुसार आरोप तय करने का आधार है। यह धारणा किसी कानून की धारणा नहीं है। किसी अपराध के घटकों के अस्तित्व और उस अपराध के लिए जिम्मेदार तथ्यों के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए एक अनिवार्य शर्त है। यह प्रथम दृष्टया मामले से भी कमजोर हो सकता है। संहिता की धारा 227 और 228 की भाषा के बीच एक अच्छा अंतर है। धारा 227 न्यायालय की निश्चित राय और निर्णय की अभिव्यक्ति है जबकि धारा 228 अस्थायी है। इस प्रकार, यह कहना कि आरोप तय करने के चरण में, न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध करने का दोषी है, एक ऐसा दृष्टिकोण है जो संहिता



की धारा 228 के संदर्भ में अस्वीकार्य है। यह भी देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार एक तरह से अंतिम है और ऐसे मामलों में कोई अंतर न्यायालय उपचार उपलब्ध नहीं है। बेशक, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन हो सकता है। आम तौर पर, कानून के प्रश्न पर पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। हालाँकि, जब तथ्यात्मक गुण दोष विवेचना शामिल होती है, तो इसे उन मामलों की श्रेणी में जगह मिलनी चाहिए जिनके परिणामस्वरूप विकृत निष्कर्ष निकलता है। मूलतः, शक्ति का प्रयोग आवश्यक है ताकि न्याय हो सके और न्यायालय द्वारा शक्ति का दुरुपयोग न हो। केवल इसकी आशंका या संदेह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा।

19. वर्तमान मामले में, विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने एक तर्कसंगत आदेश पारित करते हुए और मामले के तथ्यों पर विस्तार से चर्चा करते हुए आरोपी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया है। यह स्वीकृत मामला है कि आरोपी एक ही परिवार के हैं। आरोप यह है कि आरोपी व्यक्तियों ने सूचक, जो कि संबंधित भूखंड का मालिक था, को धोखा देकर मोनिका के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित करवाया। यह भी आरोप है कि उक्त बिक्री विलेख को सूचक द्वारा आरोपी व्यक्तियों के कहने पर उस दस्तावेज की प्रकृति के बारे में अंधेरे में रखकर निष्पादित किया गया था जिसे वह निष्पादित करने जा रहा था। सूचक ने उक्त विक्रय

विलेख को इस धारणा के साथ निष्पादित किया कि उसे आरोपी करण द्वारा अपनी बहू मोनिका त्यागी के पक्ष में अपनी जमीन के संबंध में निष्पादित किए जाने वाले उपहार विलेख का गवाह बनना था और विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर वह आरोपी व्यक्तियों द्वारा नशे में कर दिया गया था। यहां तक कि जिन चेकों का उल्लेख विवादित विक्रय विलेख के नीचे किया गया था, वे भी आरोपी करण के बैंक खाते से नहीं, बल्कि क्रेता श्रीमती मोनिका त्यागी के खाते से निकाले गए थे। चेक पर भुगतानकर्ता (विक्रेता) का नाम लिखा हुआ था। यहां तक कि उक्त चेक भुनाने के लिए रकम भी अपर्याप्त था। इस स्तर पर इन सभी तथ्यों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और आरोपी व्यक्तियों को अपने वास्तविक कथित लेनदेन को स्थापित करने और एफ.आई.आर. के साथ-साथ दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज गवाहों के बयान में लगाए गए आरोपों का खंडन करने का अवसर मिलेगा। विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में सही टिप्पणी की है कि उन्मोचन के लिए अपने दावे के समर्थन में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर किए गए दस्तावेजों को उन्मोचन आवेदन की सुनवाई और निपटान के चरण में ध्यान में नहीं रखा जा सकता है।

20. मामले के तथ्यों पर प्रथम दृष्टया आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के लिए मुकदमा चलाने का मामला बनता है और यह नहीं माना जा सकता है कि आरोपी पुनरीक्षणवादी के खिलाफ आरोप निराधार हैं, इसलिए, मुझे विद्वान अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में

हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखता है क्योंकि यह अनियमितता, अवैधता या किसी स्वामित्व से ग्रस्त नहीं है। पुनरीक्षण गुणहीन है और खारिज किये जाने योग्य है। पुनरीक्षण खारिज किया जाता है, तथापि, चूंकि अपराध अधिकतम सात वर्ष के कारावास से दंडनीय है, इसलिए यह निर्देश दिया जाता है कि पुनरीक्षणकर्ता आज से एक महीने के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और यदि नियमित जमानत आवेदन दायर किया जाता है, तो उस पर 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 825 में रिपोर्ट की गई सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर निर्णय लिया जाएगा।

21. आज से एक माह की अवधि के लिए या संबंधित अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ताओं के आत्मसमर्पण के समय तक, जो भी पहले हो, उपरोक्त मामले में पुनरीक्षणवादियों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

22. उपरोक्त टिप्पणियों एवं निर्देशों के साथ यह आवेदन निस्तारित किया जाता है।

पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया।

2. यह दिनांक 20.7.2023 के आदेश का संशोधन आवेदन है।

3. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 20.7.2023 के अंतिम पृष्ठ पर निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"... तथापि, चूंकि अपराध अधिकतम सात वर्ष के कारावास से दंडनीय है, इसलिए यह निर्देश दिया जाता है कि पुनरीक्षणकर्ता आज से एक महीने के भीतर संबंधित निचली अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और यदि नियमित जमानत आवेदन दायर किया जाता है, तो उस पर सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 825 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर निर्णय लिया जाएगा।

आज से एक माह की अवधि तक अथवा संबंधित निचली अदालत के समक्ष पुनरीक्षणकर्ताओं के आत्मसमर्पण के समय तक, जो भी पहले हो, उपरोक्त मामले में पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।"

4. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि उपर्युक्त निर्देश अपर सत्र न्यायालय/

एफटीसी, न्यायालय संख्या 2 द्वारा द्वितीय अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 131/2023 (करण सिंह एवं 2 अन्य बनाम राज्य) में पारित आदेश के विरोधाभास में है, जिसके तहत निचली अदालत ने आदेश दिनांकित 20.1.2023 के तहत पुनरीक्षणकर्ता की दूसरी अग्रिम जमानत अर्जी को अनुमति दी और उन्हें बिना किसी समय सीमा तय किए कुछ शर्तों के अधीन अग्रिम जमानत पर बढ़ा दिया और अग्रिम जमानत आदेश सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, 2020 5 एससीसी 1 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में मुकदमे के समापन तक लागू माना जाएगा और इसलिए निचली अदालत के समक्ष आरोपी के आत्मसमर्पण और नियमित जमानत मांगने के संबंध में कोई निर्देश जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

5. इसके विपरीत, निजी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि अभियुक्त का आचरण किसी नरमी का पात्र नहीं है, लेकिन उन्होंने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि अभियुक्त पुनरीक्षणकर्ताओं को अपर सत्र न्यायालय के आदेश द्वारा अग्रिम जमानत पर रिहा किया गया था और उसी आदेश को किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया गया है।

6. संशोधन आवेदन को एतद्वारा स्वीकार किया जाता है।

7. इस न्यायालय की उपर्युक्त उद्धृत टिप्पणियाँ अंतिम आदेश दिनांकित 20.7.2023 में हटा दी गई हैं।

8. इस आदेश को आदेश दिनांकित 20.7.2023 का हिस्सा माना जाएगा।

-----

(2023) 9 ILRA 692

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र  
आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1026 वर्ष 2023

देव नारायण

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:

श्री अभय राज यादव, श्री वीके ओझा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) दंड विधि - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए, 304-बी एवं 323 - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 216 - न्यायालय आरोप बदल सकता है - न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन कर सकता है या उसे जोड़ सकता है, लेकिन आरोप में परिवर्तन और आरोप को हटाना अलग-अलग

क्षेत्र रखता है और इन दोनों को आपस में नहीं मिलाया जा सकता, अन्यथा इससे न्याय की विफलता होगी - धारा 216 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय अपने द्वारा विरचित आरोपों को हटा नहीं सकता। (पैरा - 9,11)

याचिकाकर्ता ने षड्यंत्र के आरोप को हटाने की मांग की है - पुनरीक्षणवादी द्वारा धारा 216 सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया है - उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों में परिवर्तन के लिए - अवर न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया - इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा - 4)

**निर्णय:-** संहिता की धारा 216 के अंतर्गत आरोप हटाना स्वीकार्य नहीं है। एक बार विरचित आरोप द्वारा विचारण के अंत में या तो दोषसिद्धि या दोषसिद्धि हो जानी चाहिए। अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनौचित्य नहीं है। (पैरा - 14,16)

**पुनरीक्षण खारिज।(ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची :**

1. नन्हे भैया @ नन्हन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव, अन्तर्गत धारा 482 संख्या 2556 वर्ष 2023

2. पी. कार्तिकालक्ष्मी बनाम श्री गणेश एवं अन्य, (2017) 3 एससीसी 347

3. विभूति नारायण चौबे @ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2003 सीआरएलजे 196

4. वर्गीस स्टीफन बनाम सी.बी.आई., 2007 सी.आर.एल.जे. 4080

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री अभय राज यादव की ओर से अधिवक्ता श्री वी.के. ओझा और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दीपक कपूर को सुना और अभिलेख पर रखी सामग्री का अवलोकन किया।

2. कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, तामीला रिपोर्ट अभी भी प्रतीक्षित है।

3. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान पुनरीक्षण 2.2.2023 से लंबित है और नोटिस की तामीला विपक्षी संख्या 2 पर विद्वान सीजेएम द्वारा प्रभावित नहीं की जा सकती है। मामले की सुनवाई में और देरी से बचने के लिए, जो अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष चल रही है, इस न्यायालय की राय है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 पर नोटिस की तामीला के लिए इंतजार करने की कोई आवश्यकता नहीं है और पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुनने के बाद गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय किया जा सकता है, क्योंकि यह पुलिस रिपोर्ट पर आधारित मामला है।

4. भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 304-बी, 323 एवं 3/4 डीपी एक्ट, 1961, पुलिस स्टेशन कर्वी कोतवाली नगर, जिला चित्रकूट के तहत मुकदमा अपराध संख्या 479/2016 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 117/2016, "राज्य बनाम देव नारायण" मामले में विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश (एफटीसी), चित्रकूट द्वारा पारित दिनांक 30.1.2023 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी गई है, जिसके तहत अधीनस्थ न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों में परिवर्तन हेतु दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत दायर आवेदन 29-ख को खारिज कर दिया है।

5. सावधानी के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्तमान मामले में विपक्षी संख्या 2 विभूति भूषण गर्ग के कहने पर एफआईआर इस आधार पर दर्ज की गई थी कि उसकी बहन रश्मी की शादी 22 फरवरी 2016 को कमल किशोर उर्फ सत्यनारायण से हुई थी, जिसमें उन्होंने आरोपी पक्ष को पर्याप्त नकदी और उपहार दिए थे, लेकिन फिर भी उसकी बहन का पति और उसके परिवार के सदस्य एक चार पहिया वाहन और वॉशिंग मशीन की मांग करते रहे और दहेज की मांग पूरी न होने पर वे उसके साथ क्रूरता करते थे और धमकी भी देते थे। प्राथमिकी दर्ज होने के चार दिन पहले, वह अपनी बहन के ससुराल गया और उसके पति और उसके ससुराल वालों ने फिर से दहेज की मांग की और दहेज की मांग पूरी किए बिना उसे उसके साथ भेजने से इनकार कर दिया। वह घर वापस गया और अपने पिता को

फोन पर आरोपियों की करतूत से अवगत कराया। 25.5.2016 को, श्री नारायण, जो उसकी बहन के पति का बड़ा भाई है, ने उसे सूचित किया कि उसकी बहन का घर बाहर से बंद है। वह तुरंत वहां पहुंचा और पुलिस की मौजूदगी में ताला तुड़वाया और पाया कि उसकी बहन का शव था और उसके शरीर पर आघातें थीं। एफआईआर में पति, श्री नारायण (जेठ), देव नारायण (देवर) और पति के तीन रिश्तेदारों को नामित किया गया था। मृतिका का पोस्टमार्टम 26.5.2016 को किया गया था, जिसमें उसके शरीर पर छह एंटीमॉर्टम आघातें पाई गईं और डॉक्टर द्वारा मौत का कारण एंटीमॉर्टम आघातों के कारण सदमा और कोमा पाया गया। मृत्यु तात्कालिक थी। मृतिका का पति सत्य नारायण घटना दिनांक से लापता पाया गया और बाद में पता चला कि उसका शव रेलवे ट्रैक के बीच पाया गया था। शव के पास से एक नोकिया मोबाइल फोन (जुड़वां सिम) भी बरामद हुआ और जब सब-इंस्पेक्टर ने अपने मोबाइल फोन में सिम डाला और एक नंबर डायल किया, तो एक अशोक कुमार द्विवेदी ने कॉल का जवाब दिया और कहा कि उक्त नंबर उसके साला (पत्नी के भाई) सत्य नारायण का है, जिसने आकर सत्य नारायण के शव की पहचान की। उनकी पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में भी, उसके शरीर पर आघातें पाई गईं और मौत का कारण एंटीमॉर्टम आघातों के कारण दम घुटना दर्ज किया गया, जिससे कार्डियो श्वसन विफलता हुई और तत्काल कारण गला घोटना पाया गया। पुलिस ने मामले की जांच की और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया और मृतक सत्य नारायण को छोड़कर अन्य आरोपी व्यक्तियों

का नाम जांच के दौरान हटा दिया गया, क्योंकि मृतक रश्मी की दहेज हत्या के अपराध में उनकी मिलीभगत नहीं पाई गई थी। अभियुक्त देव नारायण, जो मृतक का बहनोई है, ने परीक्षण न्यायालय के समक्ष उन्मोचन के लिए एक आवेदन दायर किया था, जिसे दिनांक 28.7.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और मामला अभियोजन साक्ष्य के लिए तय किया गया था। आरोपी देव नारायण ने इस न्यायालय के समक्ष अपने उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर की थी, जिसे इस न्यायालय ने इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया था कि "आवेदक परीक्षण न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत आरोप में परिवर्तन के लिए आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र है"। इस न्यायालय के अवलोकन के अनुसार, एकमात्र आरोपी देव नारायण, जो मृतक का देवर है, ने दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत एक आवेदन दायर किया है, जिसमें उसने कहा है कि उसने यह आवेदन दिनांक 9.6.2017 के आदेश के तहत माननीय उच्च न्यायालय की टिप्पणी के अनुसार दायर किया है। मृतिका के पति कमल किशोर उर्फ सत्यनारायण की मृत्यु एवं उसके शव को रेलवे ट्रैक से बरामद किये जाने का तथ्य दिनांक 26.5.2016 को समय 15:10 बजे, थाना मानिकपुर में जीडी प्रविष्टि संख्या 21 में दर्ज किया गया था। जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आवेदक के विरुद्ध जांच अधिकारी द्वारा परीक्षण किए गए किसी भी गवाह द्वारा दहेज की मांग करने या मृतक को वैवाहिक क्रूरता के अधीन करने का कोई विशेष आरोप नहीं लगाया गया है। ऐसा प्रतीत होता

है कि मृतक रश्मी और उसका पति अलग-अलग घर में रहते थे और वह रेलवे में कार्यरत था और उनके बीच किसी न किसी बात पर झगड़ा होता रहता था। जिस घर में मृतक का शव पड़ा था उसकी चाबी कमल किशोर के शव के मिलने पर उसके पहने हुए कपड़े की जेब से मिली थी। मृतक और उसका पति पुनरीक्षणवादी और परिवार के अन्य सदस्यों से अलग रह रहे थे और उन्हें एक-दूसरे के दैनिक मामलों से कोई सरोकार नहीं था। पुनरीक्षणवादी कथित तौर पर मृतिका के पति द्वारा मृतिका और उसके परिवार के सदस्यों से की गई दहेज की किसी भी मांग का लाभार्थी नहीं हो सकता है। इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि उनकी मृत्यु से ठीक पहले या उससे पहले उसके साथ वैवाहिक क्रूरता की गई थी। आवेदक के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 304-बी एवं 323 एवं डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप नहीं बनते हैं। इसलिए, उक्त आरोप रद्द किए जाने योग्य हैं और आवेदक को आरोपों से मुक्त किया जा सकता है। यह आवेदन अधीनस्थ न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है। अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदन को खारिज करते हुए कहा है कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर आवेदक के विरुद्ध 6.9.2016 को लगाए गए आरोपों में कोई त्रुटि नहीं पाई गई है, इसलिए आरोप में परिवर्तन का कोई सवाल ही नहीं है। पीडब्लू-1- सूचक के साक्ष्य मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए हैं जिसमें उसने अपने एफआईआर संस्करण का समर्थन किया है और उसने जिरह में भी कहा है कि उसकी बहन की हत्या के मामले में उसके पति (दिवंगत) और बहनोई श्री नारायण, देव नारायण और अन्य

रिशतेदारों की मिलीभगत शामिल है और इन लोगों ने उसकी हत्या की है।

6. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत आवेदन में लिए गए आधारों पर भरोसा करते हुए अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध कोई साक्ष्य या सामग्री नहीं है जो यह सुझाव दे सके कि वह किसी भी तरह से मृतक रश्मी की दुर्भाग्यपूर्ण मौत में शामिल था, जो उसकी भाभी थी और उसके दिवंगत भाई सत्य नारायण से शादी की थी। परिस्थितियों से पता चलता है कि उस दिन पति-पत्नी के बीच कुछ विवाद हुआ होगा और वे किसी विवाद में शामिल रहे होंगे और झगड़े में उसे घातक आघातें आई होंगी और उसके बाद घृणा और अपराधबोध में उसके पति ने घर का दरवाजा बाहर से बंद कर दिया होगा और ट्रेन से कटकर आत्महत्या कर ली होगी। इसलिए, पुनरीक्षणवादी किसी भी तरह से मृतक की मृत्यु में शामिल नहीं है। एफआईआर के साथ-साथ दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत जांच किए गए गवाहों के बयान में पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई विशेष कथन नहीं दिया गया है। यहां तक कि पीडब्लू-1 ने भी न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में पुनरीक्षणवादी को अपनी गवाही में कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी है। पुनरीक्षणवादी को कथित अपराध से जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है। जांच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र में सभी आरोपियों को बरी कर दिया गया और पुनरीक्षणकर्ता को बिना किसी पर्याप्त कारण के आरोप पत्र में शामिल कर दिया गया। पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप

तुच्छ प्रकृति के हैं और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उन्हें हटा दिया जाना चाहिए था, लेकिन अधीनस्थ न्यायालय ने बिना कोई उचित कारण बताये दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन को खारिज कर दिया है। इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून के तहत टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है और यह न्यायालय उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को बदलने के लिए या ऐसे अन्य आदेश पारित कर सकता है, जो यह न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित समझे।

7. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, जिसके तहत दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत आरोप में परिवर्तन के लिए पुनरीक्षणवादी द्वारा दायर आवेदन 29-ख खारिज कर दिया गया है और मामला अभियोजन साक्ष्य के लिए तय किया जा रहा है। मुकदमा चल रहा है और पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को रद्द करने का कोई ठोस आधार नहीं है क्योंकि यह आरोपमुक्त करने जैसा होगा और यह स्थापित कानून है कि आरोप तय होने के बाद परीक्षण न्यायालय द्वारा आरोपमुक्त करने का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है और मामले को पक्षों के साक्ष्य प्राप्त करने के बाद तार्किक निष्कर्ष पर ले जाना होगा।

8. दं.प्र.सं. की धारा 216 इस प्रकार है:-

**"न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है-(1)**

**कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने के पूर्व**

किसी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है।

के लिए मंजूरी पहले ही अभिप्राप्त नहीं कर ली गई है।"

(2) ऐसा प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा।

(3) यदि आरोप में किया गया परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से अभियुक्त पर अपनी प्रतिरक्षा करने में या अभियोजक पर मामले के संचालन में कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के पश्चात् स्वविवेकानुसार विचारण को ऐसे आगे चला सकता है मानो परिवर्तित या परिवर्धित आरोप ही मूल आरोप है।

(4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से इस बात की संभावना है कि अभियुक्त या अभियोजक पर पूर्वोक्त रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय या तो नए विचारण का निदेश दे सकता है या विचारण को इतनी अवधि के लिए, जितनी आवश्यक हो, स्थगित कर सकता है।

(5) यदि परिवर्तित या परिवर्धित आरोप में कथित अपराध ऐसा है, जिसके अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता है, तो उस मामले में ऐसी मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी जब तक कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर, जिन पर परिवर्तित या परिवर्धित आरोप आधारित हैं, अभियोजन

9. उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न्यायालय निर्णय सुनाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है, लेकिन आरोप में परिवर्तन और आरोप को हटाना अलग-अलग क्षेत्र रखता है और इन दोनों को आपस में नहीं जोड़ा जा सकता है, अन्यथा यह न्याय के विफलता का कारण बनेगा। यह स्वीकृत तथ्य है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन को परीक्षण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण को इस न्यायालय ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2500/2017 में दिनांक 9.8.2017 के आदेश के तहत खारिज कर दिया है, जिसमें इस न्यायालय ने पाया कि तात्कालिक आपराधिक पुनरीक्षण को अंततः इस निर्देश के साथ निपटाया जाता है कि यदि, पुनरीक्षणकर्ता आज की तारीख में आरोप तय करने के संबंध में व्यथित है, तो वह उचित चरण में एक उचित आवेदन दायर कर सकता है जब आरोप में परिवर्तन के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना हो और यदि ऐसा कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो उस पर सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद कानून के अनुसार सुनवाई और निर्णय लिया जाएगा।

10. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आरोपी के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 304-बी, 323 और डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप तय किया गया है। पीडब्लू-1



विभूति भूषण गर्ग की गवाही 1.9.2017 से 29.5.2018 तक दर्ज की गई और उसके बाद आरोप में परिवर्तन के लिए आवेदन दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत वर्तमान आवेदन दायर किया गया है। पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध मामला यह है कि वह उस मृत्तिका का देवर है जिसकी मृत्यु उसी के घर के अंदर उस मनहूस दिन को हुई थी और उसी दिन उसके पति का शव रेलवे ट्रैक के पास मिला था और यहां तक कि जिस घर में मृत्तिका का शव मिला था उसकी चाबियां भी साक्ष्य के उसी क्रम में मृत्तिका के पति के शव से बरामद की गई थीं। मृतक सत्य नारायण की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से भी उसकी हत्या का पता चलता है।

11. दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत आवेदन में की गई प्रार्थना के अवलोकन से संक्षेप में यह प्रतीत होता है कि यह उन्मोचन के लिए एक आवेदन है क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता ने कहा है कि उसे आरोपित दंडात्मक धाराओं से उन्मोचित किया जा सकता है और उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप रद्द किए जा सकते हैं। दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए परीक्षण न्यायालय ने उक्त अपराधों के लिए लगाए गए आरोपों को नहीं हटा सकता है क्योंकि आपराधिक प्रक्रिया संहिता न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान नहीं करती है। परीक्षण न्यायालय केवल उस आरोप में परिवर्तन कर सकता है या आरोप जोड़ सकता है, जो पहले ही तय हो चुका है। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन को पहले ही खारिज कर दिया गया है और कहा गया है कि आदेश अंतिम रूप ले चुका है।

12. इस न्यायालय ने धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 2556/2023 (नन्हे भैया उर्फ नन्हें सिंह और 2 अन्य बनाम प्रधान सचिव के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य) में 31.3.2023 को अभिनिर्धारित किया है कि निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय किसी भी आरोप में दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत को परिवर्तित या परिवर्धित करने की न्यायालय की शक्ति विशेष रूप से न्यायालय तक ही सीमित है और किसी भी पक्ष के पास किसी भी आरोप को जोड़ने या बदलने की मांग करने का कोई निहित अधिकार नहीं है।

13. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2017) 3 एससीसी 347 में रिपोर्ट किये गये पी. कार्तिकालक्ष्मी बनाम श्री गणेश और अन्य में पैराग्राफ संख्या 6, 7 और 8 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"6. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमें प्रतिवादी 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील में बल मिलता है। दं.प्र.सं. की धारा 216 न्यायालय को निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को परिवर्तित या परिवर्धित करने का अधिकार देती है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि न्यायालय में निहित शक्ति केवल न्यायालय के पास है और किसी भी पक्ष को अधिकार के रूप में कोई आवेदन दायर करके इस तरह के परिवर्तन या परिवर्धन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यदि आरोप तय करने में कोई चूक हुई हो और यदि यह अपराध की सुनवाई करने वाले न्यायालय के संज्ञान में आता है, तो

दं.प्र.सं. की धारा 216 के तहत को परिवर्तित या परिवर्धित करने शक्ति हमेशा न्यायालय में निहित होती है और ऐसी शक्ति निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय न्यायालय के पास उपलब्ध है। यह न्यायालय के लिए कुछ आकस्मिकताओं के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक सक्षम प्रावधान है जो उसके संज्ञान में आती है या उसके ध्यान में लाई जाती है। ऐसी स्थिति में, यदि न्यायालय को यह पता चलता है कि आरोप को परिवर्तित या परिवर्धित करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है, तो वह स्वयं ऐसा कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के परिवर्तन या परिवर्धन के बाद जब अंतिम निर्णय दिया जाएगा, तो पक्षों के लिए कानून के अनुसार अपने समाधान निकालने के लिए खुला होगा।

14. इस न्यायालय ने विभूति नारायण चौबे उपनाम बनाम उ.प्र. राज्य, 2003 सीआरएलजे 196 मामले में अभिनिर्धारित किया है कि संहिता की धारा 216 में किसी आरोप के विलोपन का प्रावधान नहीं है और विधायिका द्वारा जानबूझकर "विलोप" शब्द का उपयोग नहीं किया गया है। मैं इस निष्कर्ष से सहमत हूं। याचिकाकर्ता साजिश के एक आरोप को पूरी तरह से विलोप करने की मांग कर रहा है जो संहिता की धारा 216 के तहत स्वीकार्य नहीं है। एक बार आरोप तय हो जाने के बाद मुकदमे के समापन पर या तो बरी होना चाहिए या दोषसिद्धि होनी चाहिए। संहिता की धारा 216 इसके विलोपन की अनुमति नहीं देती है। इसके बाद, वर्गीस स्टीफन बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, 2007 सीआर.एल.जे. 4080 मामले में

दिल्ली उच्च न्यायालय ने विभूति नारायण चौबे (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा किया है।

15. दं.प्र.सं. की धारा 222(2) में प्रावधान है कि जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का आरोप लगाया जाता है और ऐसे तथ्य साबित कर दिए जाते हैं जो इसे एक छोटे अपराध में बदल देते हैं, तो उसे छोटे अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है, भले ही उस पर इसका आरोप नहीं लगाया गया हो।

16. उपरोक्त उद्धृत न्यायिक प्राधिकारियों के साथ इस मामले के तथ्यों पर आधारित पूर्वगामी चर्चाओं के आधार पर, मुझे लगता है कि पुनरीक्षण बलहीन है। विद्वान परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनौचित्य नहीं है और पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है।

17. तदनुसार, वर्तमान पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 697

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1526 वर्ष 2023

जमशेद एवं अन्य

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

**पुनरीक्षणवादियों के अधिवक्ता:**

श्री हरीश कुमार त्रिपाठी

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता, श्री अजय कुमार  
श्रीवास्तव, श्री राम राज पांडेय

(ए) आपराधिक विधि - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 452, 323, 506, 354, 354बी, 324, 325 और 308 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227- उन्मोचन, धारा 228 - आरोप का निर्धारण - प्रस्तुत सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता और स्वीकार्यता की जांच केवल परीक्षण के चरण में की जा सकती है - धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए साक्ष्य को छांटना होता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं - अपराध के गंभीर संदेह पर अभियुक्त के खिलाफ आरोप लगाया जा सकता है। (पैरा - 16,17,19)

(बी) आपराधिक विधि - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 308 - गैर इरादतन हत्या का प्रयास - आईपीसी की धारा 308 के तहत दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए - अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि अभियुक्त के पास गैर इरादतन हत्या करने का अपेक्षित इरादा या ज्ञान था, जिससे वास्तविक चोट के साथ-साथ अन्य परिस्थितियों का भी पता लगाया जा सके। (पैरा - 12)

पुनरीक्षणवादी (अभियुक्त) ने आरोप मुक्त करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया - धारा 308 आईपीसी के तहत आरोप मुक्त करने के लिए - धारा 308 आईपीसी के तहत कोई मामला नहीं बना - मुख्य घायल की खोपड़ी का एक्स-रे - कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया - किसी भी डॉक्टर का कोई बयान नहीं कि कोई भी चोट जीवन के लिए खतरनाक थी - मूल सीटी स्कैन फिल्म रिकॉर्ड पर नहीं रखी गई - चोट की रिपोर्ट में एक कटा हुआ घाव, एक चोट और चेहरे पर दो सूजन दिखाई देती है - धारा 308 आईपीसी के तहत आरोप मुक्त करने के लिए आरोपी पुनरीक्षणवादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन खारिज कर दिया गया - इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा -2,9,19)

**अभिनिर्धारित:-** धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज घायलों और अन्य गवाहों के बयानों के आधार पर, आरोप तय करने के चरण में यह नहीं माना जा सकता कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 308 आईपीसी के तहत कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। आरोप तय करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला अवर न्यायालय द्वारा यह राय बनाना है कि अभियुक्त पर उक्त आरोप के लिए मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त आधार हैं, न कि यह राय बनाना कि जाँच के दौरान एकत्र की गई उक्त सामग्री, यदि मुकदमे के दौरान साबित हो जाती है, तो अभियुक्त को उक्त आरोप के लिए दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त होगी। अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं है। (पैरा - 20)

**पुनरीक्षण खारिज।(ई-7)**

विद्वान न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन 8बी को खारिज कर दिया है।

**उद्धृत वादों की सूची :**

1. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल, (1979) 3 एससीसी 39

2. पी. विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2010) एससीसी 398

3. कैप्टन मंजीत सिंह विरदी (सेवानिवृत्त) बनाम हुसैन मोहम्मद शताफ एवं अन्य, 2023 लाइवलो (एससी) 462

4. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप, (2021) 11 एससीसी 191

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता, निजी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण मुकदमा अपराध संख्या 759/2021 से उत्पन्न, एस.टी. संख्या 344/2022 (राज्य बनाम जमशेद व अन्य) में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, बागपत द्वारा पारित आदेश दिनांकित 1.3.2023 के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 149, 452, 323, 506, 354, 354बी, 324, 325, 308, थाना बडौत, जिला बागपत के तहत दायर किया गया है, जिसके तहत निचली

3. वर्तमान पुनरीक्षण के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक मामले का तथ्यात्मक पृष्ठभूमि यह है कि सूचनादाता इरफान ने संबंधित थानाप्रभारी के समक्ष लिखित रिपोर्ट दर्ज करके दिनांक 1.7.2021 को 18:06 बजे संबंधित थाने में एक प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें कहा गया कि दिनांक 30.6.2021 को रात्रि लगभग 10:00 बजे वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ अपने घर पर बैठा हुआ था, आरोपी व्यक्ति जो घटना से पूर्व उससे दुश्मनी रखते हैं, अचानक बिना किसी कारण के धारदार हथियारों, डंडों और लाठियों से लैस होकर आये और जान से मारने की नीयत से उस पर हमला कर दिया। इस घटना में सूचनादाता, उसके बेटे दानिश और आमिर गंभीर रूप से घायल हो गए। आरोपियों ने उसकी पत्नी और बेटे के कपड़े भी फाड़ दिए तथा उनके साथ छेड़छाड़ की। सूचनादाता पक्ष की चीख-पुकार सुनकर पड़ोसी आ गए, जिसके बाद आरोपीगण सूचनादाता व उसके परिवार को धमकी देते हुए घटनास्थल से चले गए। घटना दिनांक को रात्रि लगभग 11:00 बजे सी.एच.सी., बडौत में घायलों की जांच की गई तथा मुख्य घायल आमिर को चार चोटें आईं, जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

(1) हड्डी में 4 x 0.5 सेमी आकार का कटा हुआ घाव।  
बाईं भौंह के पार्श्व में मार्जिन स्पष्ट है। चेहरे के किनारे

केयूओ एक्स-रे माथा (खोपड़ी)  
एप-लट।

(ii) चेहरे के दाहिनी ओर  
दाहिनी आँख के ठीक नीचे 2  
x 1 सेमी आकार का चोट  
का निशान।

(iii) दाहिनी बांह के अधोभाग  
पर 4 x 2 सेमी आकार की  
सूजन।

(iv) दाहिने हाथ के पृष्ठीय  
पहलू पर 05.0.5 सेमी  
आकार की चोट वाली सूजन।  
केयूओ एक्स-रे दाहिने हाथ  
एपी-तिरछा। चोट की अवधि  
ताज़ा।

4. डॉक्टर की राय में, चोट संख्या 1 को  
निगरानी में रखा गया है, जो तेज धार वाली  
वस्तु से लगी थी। चोट संख्या 4 को निगरानी  
में रखा गया है। चोट संख्या 2 और 3 को  
सामान्य प्रकृति का पाया गया।

4. घायल इरफान को तीन चोटें आईं, जिनमें  
से एक चोट बाएं कंधे के जोड़ पर थी, जिसे  
निगरानी में रखा गया है। चोट किसी कठोर  
और कुंद वस्तु से लगी पाई गई।

5. घायल दानिश को छह चोटें आईं, जिनमें से  
दो को निगरानी में रखा गया तथा बाकी चोटें  
सामान्य पाई गईं। घायल आमिर की खोपड़ी के  
एक्स-रे में कोई हड्डी की चोट नहीं देखी गई,  
हालांकि आमिर के दाहिने हाथ के एक्स-रे में  
मेटाकार्पल हड्डी की दूसरी और चौथी हड्डी में  
फ्रैक्चर देखा गया। डॉक्टर ने घायल आमिर की

पूरक रिपोर्ट तैयार की और दाहिने हाथ की  
उंगली की चोटों को गंभीर बताया। इरफान के  
बाएं हाथ की एक्स-रे रिपोर्ट में पांचवीं  
मेटाकार्पल हड्डी में फ्रैक्चर पाया गया। ये चोटें  
गंभीर पाई गईं।

6. घायल व्यक्तियों ने दं.प्र.सं. की धारा 161  
के तहत अपने बयान में तथा सूचनादाता के  
परिवार की पीड़ित महिलाओं नूरनिशा और  
साजिया ने दं.प्र.सं. की धारा 164 सीआरपीसी  
के तहत अपने बयान में एफआईआर के  
विवरण का समर्थन किया। घायल आमिर ने  
दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत बयान में कहा  
कि आरोपियों ने उस पर धारदार हथियार,  
लाठी और डंडे से हमला किया है, जिसमें उसके  
सिर और शीर्ष की हड्डी पर चोटें आई हैं और  
उसे उपचार के लिए सीएचसी, बडौत से जिला  
अस्पताल बागपत रेफर कर दिया गया है।  
स्वतंत्र गवाहों ने भी दं.प्र.सं. की धारा 161 के  
तहत अपने बयानों में एफआईआर कथानक का  
समर्थन किया। घायल आमिर के सिर का  
सीटी-स्कैन दिनांक 1.7.2021 को किया गया  
और संबंधित डॉक्टर/रेडियोलॉजिस्ट ने बाएं  
मैक्सिलरी साइनस की पूर्वकाल पार्श्व दीवार से  
जुड़े एक रैखिक फ्रैक्चर पाया, हालांकि, कोई  
असामान्यता, पैरेन्काइमा का पता नहीं चला।

7. जांच अधिकारी ने घायल व्यक्तियों की  
एमएलसी करने वाले तथा पूरक रिपोर्ट  
प्रस्तुत करने वाले डॉक्टर प्रवेन्द्र चौरसिया के  
बयान दर्ज किए, जिन्होंने अपने बयान में  
कहा है कि आमिर सहित तीनों घायल  
व्यक्तियों की पूरक रिपोर्ट के आधार पर  
भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत कोई अपराध

नहीं बनता है तथा आमिर की एक्स-रे रिपोर्ट में हड्डी में कोई चोट नहीं देखी गई है। मेडिकल साक्ष्य के आधार पर जांच अधिकारी ने भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत आरोप हटा दिया था, हालांकि, बाद में क्षेत्राधिकारी के आदेश पर आगे की जांच के बाद मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर चार्जशीट में भा.दं.सं. की धारा 308 भी जोड़ दी गई थी।

8. निम्न विद्वान न्यायालय ने आरोप पत्र के आधार पर अपराध का संज्ञान लिया और आरोपी व्यक्तियों को भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 149, 452, 323, 324, 325, 308, 506, 354, 354बी के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया।

9. अभियुक्तगण, जो इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणवादी हैं, ने भारतीय दंड संहिता की धारा 308 के तहत आरोप से मुक्त करने की प्रार्थना के साथ निर्वहन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 308 के तहत उनके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है, क्योंकि मुख्य घायल आमिर के खोपड़ी के एक्स-रे में कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया, तथापि, जीवन ज्योति नर्सिंग होम, बडौत के डॉक्टर जैन की सीटी स्कैन रिपोर्ट में केवल बाएं मैक्सिलरी साइनस की पूर्वकाल पार्श्व दीवार में रेखिक फ्रैक्चर पाया गया तथा अभियुक्तगण की कोई भी चोट जीवन के लिए खतरनाक नहीं प्रतीत होती है। किसी भी डॉक्टर ने यह नहीं कहा कि आमिर की कोई भी चोट जीवन के लिए खतरनाक थी। क्योंकि, मूल सीटी स्कैन फिल्म को रिकॉर्ड में नहीं रखा गया था।

10. मोमिन की पत्नी समीना की शिकायत पर एक क्रॉस केस शुरू किया गया है, जो आपराधिक शिकायत मामला संख्या 3394/2021 (समीना बनाम दानिश और अन्य), थाना बडौत, जिला बागपत के रूप में पंजीकृत है, जिसमें वर्तमान मामले के अभियोजन पक्ष के इरफान, गुलफाम, जावेद, अरशद, दानिश और आमिर को भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 452, 323, 307, 506 के तहत दिनांक 1.7.2022 के आदेश द्वारा निचली अदालत द्वारा आरोपी के रूप में तलब किया गया है।

11. भा.दं.सं. की धारा 308 इस प्रकार है:-

*“308. आपराधिक मानव वध करने का प्रयत्न - जो कोई किसी कार्य को ऐसे आशय या ज्ञान से और ऐसी परिस्थितियों में करेगा कि यदि उस कार्य से वह मृत्यु कारित कर देता, तो वह हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध का दोषी होता, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ; और यदि ऐसे कार्य द्वारा किसी व्यक्ति को उपति हो जाए तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी,*

या जुर्माने से, या दोनों से,  
दण्डित किया जाएगा।

दृष्टांत- क गम्भीर और  
अचानक प्रकोपन पर, ऐसी  
परिस्थितियों में, य पर  
पिस्तौल चलाता है कि यदि  
तद्द्वारा वह मृत्यु कारित  
कर देता तो वह हत्या की  
कोटि में न आने वाले  
अपराधिक मानव वध का  
दोषी होता। क ने इस धारा  
में परिभाषित अपराध किया  
है।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने  
आपराधिक अपील संख्या 2204/2010, रूप  
चंद उर्फ लाला बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी)  
में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में भा.दं.सं.  
की धारा 308 के दायरे पर विचार किया और  
माना कि भा.दं.सं. की धारा 308 के अंतर्गत  
दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए  
अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा  
कि अभियुक्त के पास गैर इरादतन हत्या  
करने का अपेक्षित इरादा या ज्ञान था, जिससे  
वास्तविक चोट के साथ-साथ अन्य आस-पास  
की परिस्थितियों का पता लगाया जा सकता  
है। भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत इरादे या  
ज्ञान को साबित करना अनिवार्य है। इसलिए,  
यह निर्धारित करना महत्वपूर्ण है कि क्या  
अभियुक्त का इरादा या ज्ञान था कि पीड़ित  
को पहुंचाई गई चोट बाद में उसकी मृत्यु का  
कारण बन सकती है और इसके  
परिणामस्वरूप अभियुक्त गैर इरादतन हत्या  
का दोषी हो सकता है।

13. दं.प्र.सं. की धारा 227 के तहत उन्मोचन  
की मांग करने वाली याचिका के मामले में,  
माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायिक  
निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ  
बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल (1979) 3  
एससीसी 39** के मामले में, उन्मोचन के प्रश्न  
पर निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"यह कि न्यायाधीश को  
संहिता की धारा 227 के  
अन्तर्गत आरोप विरचित  
करने के प्रश्न पर विचार  
करते समय, इस सीमित  
प्रयोजन के लिए साक्ष्यों की  
छानबीन करने और उनका  
मूल्यांकन करने की निस्संदेह  
शक्ति प्राप्त है कि अभियुक्त  
के विरुद्ध प्रथम दृष्टया  
मामला बनता है या नहीं।

(2) जहां न्यायालय के समक्ष  
प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के  
विरुद्ध गंभीर संदेह प्रकट  
करती है, जिसे उचित रूप से  
स्पष्ट नहीं किया गया है,  
वहां न्यायालय आरोप तय  
करने तथा मुकदमा चलाने में  
पूर्णतः न्यायसंगत होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामला  
निर्धारित करने का परीक्षण  
स्वाभाविक रूप से प्रत्येक

मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा तथा सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम निर्धारित करना कठिन है। तथापि, यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं तथा न्यायाधीश संतुष्ट है कि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के विरुद्ध कुछ संदेह उत्पन्न करते हैं, लेकिन गंभीर संदेह नहीं, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त करने के अपने पूर्ण अधिकार में होगा।"

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी. विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य (2010) एससीसी 398 के मामले में, उन्मोचन के प्रश्न पर निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"धारा 227 के स्तर पर, न्यायाधीश को केवल साक्ष्यों की छानबीन करनी होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता के अंतर्गत पुलिस द्वारा दर्ज साक्ष्य या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों की प्रकृति को शामिल किया जाएगा, जो स्पष्ट रूप से यह प्रकट

करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियां हैं, जिससे उसके विरुद्ध आरोप निर्धारित किया जा सके।"

16. हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कैप्टन मंजीत सिंह विरदी (सेवानिवृत्त) बनाम हुसैन मोहम्मद शताफ एवं अन्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 462 मामले में दिए गए फैसले में कहा कि प्रस्तुत सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता और स्वीकार्यता की जांच केवल परीक्षण के चरण में ही की जा सकती है। यदि इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में मामले के तथ्यों की जांच की जाए, तो यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने आरोप पत्र के साथ प्रस्तुत जांच एजेंसी द्वारा एकत्रित साक्ष्य का भी उल्लेख नहीं किया है, बल्कि जांच के दौरान दर्ज किए गए कुछ व्यक्तियों के बयानों का चयनात्मक संदर्भ दिया है। इससे पता चलता है कि पूरी तरह से विवेक का प्रयोग नहीं किया गया। उच्च न्यायालय ने हत्या के आरोपी व्यक्तियों को इस तरह से बरी करते हुए अपने अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया जो गहन अपराध के मुकदमे को विफल करने के लिए उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। आरोप लगाने के चरण में, न्यायालय को यह संतुष्ट होना था कि अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। उस चरण में न्यायालय का हस्तक्षेप केवल तभी आवश्यक है जब यह मानने के लिए ठोस कारण हों कि यदि मुकदमे को आगे बढ़ने दिया जाता है, तो यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।



17. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप, (2021) 11 एससीसी 191 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी विजयन बनाम केरल राज्य (उपरोक्त) में अपने पिछले निर्णय पर अवलम्ब लिया, जिसमें यह देखा गया और अवधारित किया गया कि धारा 227 के स्तर पर, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए सबूतों की छानबीन करनी है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता के अंतर्गत पुलिस द्वारा दर्ज साक्ष्य या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों की प्रकृति को शामिल किया जाएगा, जो स्पष्ट रूप से यह प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियां हैं, जिससे उसके विरुद्ध आरोप निर्धारित किया जा सके। यदि न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह धारा 228 के तहत आरोप तय करेगा, यदि नहीं, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त कर देगा। यह भी कहा गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे के लिए मामला बनाया गया है या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए मामले के तथ्यों पर अपनी न्यायिक बुद्धि का प्रयोग करते समय न्यायालय के लिए मामले के पक्ष-विपक्ष में जाना या साक्ष्यों और संभावनाओं का मूल्यांकन करना तथा उनका संतुलन करना आवश्यक नहीं है, जो कि वास्तव में न्यायालय का कार्य है, मुकदमा शुरू होने के बाद।

18. वर्तमान मामले में, हालांकि डॉ. प्रवेन्द्र ने घायल व्यक्तियों की एम.एल.सी. की और पूरक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि पूरक

रिपोर्ट के आधार पर भा.दं.सं. की धारा 308 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि घायल की खोपड़ी पर कोई हड्डी की चोट नहीं देखी गई थी, हालांकि, घायल आमिर की सीटी स्कैन रिपोर्ट में, बाएं मैक्सिलरी साइनस की पूर्ववर्ती पार्श्व दीवार से जुड़ी एक रैखिक फ्रैक्चर का पता चला था, हालांकि इस चोट की प्रकृति और प्रभाव के बारे में डॉक्टर की कोई राय नहीं है, हालांकि, यह चोट खोपड़ी के ठीक नीचे शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से पर है। घायल आमिर ने भी अपने बयान में कहा है कि आरोपियों ने उसे तथा उसके पिता व भाई दानिश पर डंडों, लाठियों व अंदरूनी हथियारों से हमला किया, जिसमें उसके सिर व रीढ़ की हड्डी पर चोटें आईं।

19. आमिर की चोट रिपोर्ट में हड्डी में 4 x 0.5 सेमी आकार का एक घाव बताया गया है। चेहरे के बायीं ओर बायीं भौं के पार्श्व में मार्जिन स्पष्ट है और चेहरे के दाहिनी ओर दाहिनी आंख के ठीक नीचे 2 x 1 सेमी आकार का एक चोट का निशान पाया गया, इसके अलावा दाहिनी बांह और दाहिने अग्रभाग पर दो चोट के निशान पाए गए, इस प्रकार आमिर की चोट संख्या 1 की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जो कि डॉक्टर की राय में किसी तेज धार वाली वस्तु से लगी है और घायल और अन्य गवाहों के बयान को दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया है, आरोप तय करने के चरण में यह नहीं माना जा सकता है कि जैसा कि ऊपर कहा गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में आरोपी के खिलाफ दं.प्र.सं. की धारा 308 के तहत कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त

आधार नहीं है क्योंकि अपराध के गंभीर संदेह पर भी आरोपी के खिलाफ आरोप लगाया जा सकता है। आरोप निर्धारण के लिए प्रथम दृष्टया विचारण न्यायालय द्वारा यह राय बनाना कि उक्त आरोप के लिए अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त आधार है, न कि यह राय बनाना कि जांच के दौरान एकत्र की गई उक्त सामग्री, यदि परीक्षण के दौरान साबित हो जाती है, तो उक्त आरोप के लिए अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त होगी।

20. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागणों की विरोधी दलीलों, रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करते हुए, मुझे कोई त्रुटि नजर नहीं आती। निम्न विद्वान न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसके तहत आरोपी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा भारतीय दंड संहिता धारा 308 के तहत आरोप के लिए प्रस्तुत उन्मोचन आवेदन को खारिज किया जाता है। विद्वान अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं पाई गई है। पुनरीक्षण में कोई मेरिट नहीं है तथा पूर्वोक्त चर्चाओं के आलोक में यह खारिज किये जाने योग्य है।

21. तदनुसार, निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की पुष्टि की जाती है तथा पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 702

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2941 वर्ष 2023

कृष्णा एवं अन्य ... पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादियों के अधिवक्ता:

श्री प्रदीप मिश्रा, श्री तंजील अहमद, श्री विनय सरन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अंकित सरन, श्री अनुज श्रीवास्तव

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 504 और 506 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - तथ्य, धारा 65-बी इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य, धारा 103 - किसी विशेष तथ्य के रूप में साक्ष्य का भार - अन्यत्र उपस्थिति की दलील - बचाव पक्ष द्वारा ली गई अन्यत्र उपस्थिति की दलील को अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के खिलाफ अपना मामला साबित करने के बाद ही साबित करना आवश्यक है - साक्ष्य की योग्यता का मूल्यांकन केवल मुकदमे के दौरान, गवाहों की जिरह और न्यायालय की जांच के द्वारा किया जाना चाहिए - धारा 319 के स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए - प्राधिकरण / न्यायिक मिसाल को उन तथ्यों के

संदर्भ में समझना होगा जिनके आधार पर उसमें अवलोकन किए गए हैं - किसी निर्णय का अनुपात आम तौर पर सेकेंडम सब्जेक्टम मटेरियम होता है। (पैरा - 20,21)

विपक्षी संख्या 2 द्वारा धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया गया - पुनरीक्षणवादियों को आरोपी के रूप में तलब करना - विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर आपत्ति - पुनरीक्षणवादियों की अन्यत्र उपस्थिति की दलील पर विचार नहीं किया गया - जांच अधिकारी द्वारा एकत्र मौखिक, इलेक्ट्रॉनिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर - उस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं - इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा -10,11,13)

**निर्णय:-** विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 2 के आवेदन को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत स्वीकार करने तथा पुनरीक्षणवादियों को अभियुक्त के रूप में समन करने का आदेश पारित करते समय पुनरीक्षणवादियों के अन्यत्र उपस्थिति के तर्क पर विचार न करके कोई अवैधता या अनियमितता नहीं की। (पैरा -22)

**आपराधिक पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)**

**उद्धृत वादों की सूची :**

1. शिव प्रकाश मिश्रा बनाम यूपी राज्य, (2019) मुकदमा (एससी) 1340

2. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एससीसी 92

3. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य ( 2017) 7 एससीसी 706

4. सुगीव कुमार बनाम पंजाब राज्य, 2019 (3) सुप्रीम 7

5. विजयपाल बनाम राज्य (जीएनसीटी) दिल्ली, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 214

6. मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (पैरा 38), मनु/एससी/0546/2021

7. संदीप कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य , 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 888

8. दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2016 0 सुप्रीम (एससी) 2

9. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर एवं अन्य, (2012) 9 एससीसी 460

10. हरियाणा राज्य बनाम शेर सिंह, मनु एससी/0236/1981 ,

11. गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य, मनु एससी/0122/1955

12. चंद्रिका प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, मनु एससी/0084/1971

13. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी, 2004(8) एससीसी 568

14. क्विन बनाम लीथम, (1901) एसी 495,  
अल्स ऑफ हेल्सबरी एलसी

(माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद द्वारा  
पारित)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विनय सरन सहायक श्री प्रदीप कुमार मिश्रा और श्री तंजील अहमद, विरोधी पक्ष संख्या- 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित सरन, और राज्य के ए.जी.ए.श्री आर.एन. सिंह, को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण सामग्री का अवलोकन किया।

#### वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण को चुनौती

2. यह पुनरीक्षण, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 7, मेरठ के समक्ष लंबित मुकदमा अपराध संख्या 333 वर्ष 2014, आई.पी.सी. की धाराओं 302, 504, 506, पुलिस स्टेशन कंकरखेड़ा, जिला मेरठ से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 297 वर्ष 2015 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 7, मेरठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 28.04.2023 को निरस्त करने के लिए दायर किया गया है।

#### मामले की उत्पत्ति

3. 24 मई, 2014 को सुबह लगभग 11:30 बजे की कथित घटना के लिए, दिनेश कुमार सिंह यानी सूचनाकर्ता/विरोधी पक्ष संख्या- 2 द्वारा 24 मई, 2014 को 13:00 बजे (01:00 बजे) कृष्णपाल, विकास और प्रवीण (कृष्णपाल और विकास यहां पुनरीक्षणकर्ता हैं) के खिलाफ

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है। उक्त एफआईआर मुकदमा अपराध संख्या 333 वर्ष 2014 के रूप में पुलिस स्टेशन कंकरखेड़ा, मेरठ, जिला मेरठ में आई.पी.सी. की धाराओं 504, 506 और 302 के तहत दर्ज की गई थी। एफआईआर में यह आरोप लगाया गया है कि 24 मई, 2014 को सूचनाकर्ता अपनी बहन और भाई रेखा और भाई नीरज के साथ अपनी होंडा अमेज व्हाइट कार से मेरठ डॉ अनिल रस्तोगी के यहां जा रहे थे, जो उसका इलाज कर रहे थे। जैसे ही वे अपने लखवाया से निकले, एक सफेद स्कॉर्पियो कार ने ओवरटेक किया और उनकी कार को रोक दिया। नामजद अभियुक्तगण स्कॉर्पियो कार से बाहर निकले और एक आपराधिक मामले में धर्मद्र कीर्तल की मदद करने के लिए नीरज को जान से मारने की धमकी दी। उन्होंने नीरज पर गोलियां चलाई, जिससे उसकी कार में मौत हो गई। आगे आरोप है कि सूचनाकर्ता, उसकी बहन रेखा और सतेंद्र और हरेंद्र, जो उसकी कार के पीछे आ रहे थे, ने उक्त घटना को देखा।

4. एफआईआर दर्ज करने के बाद, विवेचना शुरू की गई और विवेचना अधिकारी ने दिनांक 24.05.2014 को पहले सूचनाकर्ता, दिनेश कुमार सिंह का बयान सी.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज किया, जिसमें उन्होंने एफआईआर के कथानक को दोहराया।

#### पुनरीक्षणकर्ताओं का विशिष्ट मामला

5. घटना की अगली तारीख यानी 25 मई, 2014 को गवाहों के बयान अर्थात् सतीश

कुमार, संजीव कुमार और महक सिंह को विवेचना अधिकारी द्वारा सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि प्रधान कृष्णपाल और विकास नामक पुनरीक्षणकर्ता घटना के दिन गांव में थे और उन्हें मृतक नीरज की हत्या में झूठा फंसाया गया है। इस प्रकार, घटना के तुरंत बाद पुनरीक्षणकर्ताओं की अन्यत्र रहने की दलील सामने आई। दिनांक 29.05.2014 को मृतका की बहन श्रीमती रेखा और एक हरेंद्र का बयान, जिन्हें एफआईआर के गवाह के रूप में उल्लेख किया गया था, सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए थे, जिसमें उन्होंने एफआईआर में सामने आए संस्करण का समर्थन नहीं किया था और पहले सूचनाकर्ता/विरोधी पक्ष संख्या- 2 के बयान में कहा गया था कि एक प्रवीण उर्फ बिल्लू और एक अंकित थे जिन्होंने मृतक को गोली मारी थी और घटना के अपराधियों में से एक के रूप में पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम नहीं लिया था। इसके बाद पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम विवेचना से हटा दिया गया और अंकित उर्फ गुड्डू को प्रश्नगत अपराध में अभियुक्त के रूप में जोड़ा गया। तथापि, उपर्युक्त गवाहों श्रीमती रेखा और हरेन्द्र पर प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा दबाव डाला गया था और दिनांक 20.06.2014 को उन्होंने एफआईआर के पक्ष में अपने शपथपत्र दायर किए हैं और अपने पहले के बयानों से इंकार किया है जिन्हें विवेचना अधिकारी द्वारा सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया था। पुलिस ने दिनांक 10.07.2014 को सत्येन्द्र का बयान दर्ज किया जिसमें उन्होंने एफआईआर के पक्ष का समर्थन किया लेकिन पूरी घटना के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर

देने में असफल रहे। इसके बाद दिनांक 19.07.2014 को सीडी नंबर XXI के माध्यम से, विवेचना अधिकारी ने उपरोक्त दिनेश कुमार, श्रीमती रेखा, सत्येंद्र और हरेंद्र के बयानों को धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया ताकि भविष्य में अपने बयानों से न मुकरने के लिए दबाव डाला जा सके। इसके बाद विवेचना अधिकारी ने दिनांक 2.8.2014 को उपरोक्त श्रीमती रेखा का, दिनांक 4.8.2014 को दिनेश कुमार का बयान दर्ज किया। सीआरपीसी के अध्याय 12 के तहत विवेचना पूरी होने के बाद, विवेचना अधिकारी ने सह-अभियुक्तगण, प्रवीण और अंकित के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया और पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ विवेचना को लंबित रखा। तत्पश्चात् विवेचना को अपराध शाखा को अंतरित कर दिया गया था और विवेचना के दौरान परचा एससीडी-III दिनांकित 17.11.2014 के तहत पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 और उसके सुरक्षा गार्ड अर्थात् गगन और अंकुर की कॉल डिटेल रिपोर्ट (सीडीआर) प्राप्त की गई थी और उसे अभिलेख में लाया गया था। उपरोक्त पुलिस सुरक्षा गार्ड, अर्थात् पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 के गगन और अंकुर का बयान भी सीआरपीसी की धारा 161 के तहत विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, जिन्होंने पुनरीक्षणकर्ताओं के अन्यत्र रहने की दलील का समर्थन किया और आगे इस घटना में पुनरीक्षणकर्ता की भागीदारी से इनकार किया। पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ विवेचना पूरी होने के बाद, कथित घटना में उनकी भागीदारी को पर्चा दिनांकित 28.1.2015 के तहत गलत पाया गया। सह-अभियुक्तगण के खिलाफ आरोप पत्र दायर करने के बाद

संज्ञान लिया गया और बाद में मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया और सत्र परीक्षण संख्या 297 वर्ष 2015 के रूप में दर्ज किया गया और अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 7, मेरठ के न्यायालय में लंबित है। मुकदमे के दौरान, पीडब्लू -1 दिनेश और पीडब्लू -2 हरेंद्र सिंह के बयान दर्ज किए गए जिसमें उन्होंने फिर से अभियोजन पक्ष की कहानी को दोहराया जैसा कि एफआईआर में वर्णित है जिसमें अभियुक्त के रूप में पुनरीक्षणकर्ताओं के नाम शामिल हैं। इसके बाद दिनांक 25.1.2023 को, विरोधी पक्ष संख्या 2/सूचनाकर्ता ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष पुनरीक्षणकर्ताओं को बुलाने के लिए सीआर.पी.सी. की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया और इसे पेपर संख्या 110-ख के रूप में नामित किया गया, लेकिन आदेश दिनांकित 28.2.2023 के तहत नया आवेदन दायर करने की अनुमति प्राप्त किए बिना इसपर जोर नहीं दिया गया। इसके बाद और कोई सामग्री अभिलेख में नहीं लाई गई और बिना किसी नए आधार के और नया आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता की मांग किए बिना, आवेदन दिनांकित 25.1.2023 पर जोर न देते हुए, सीआर.पी.सी. की धारा 319 के तहत एक और आवेदन दिनांक 18.4.2023 को विरोधी पक्ष संख्या- 2 द्वारा एक झूठा बहाना देकर पेश किया गया था कि पुनरीक्षणकर्ताओं की धमकी पर पहले आवेदन पर जोर नहीं दिया गया था, हालांकि तथ्य यह है कि पुनरीक्षणकर्ता को आवेदन दिनांकित 25.1.2023 की कोई जानकारी नहीं थी क्योंकि वे अदालत में उपस्थित नहीं हो रहे थे और विचारण का सामना नहीं कर रहे थे।

6. ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 28.4.2023 के आदेश के तहत विवेचनाके दौरान एकत्र की गई रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की जांच किए बिना विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर द्वितीय आवेदन को सबसे यांत्रिक तरीके से अनुमति दी। आदेश दिनांकित 28 अप्रैल, 2023 में सीआर.पी.सी. की धारा 319 के तहत विपरीत पक्ष संख्या 2 के आवेदन की अनुमति देते हुए, ट्रायल कोर्ट ने पुनरीक्षणकर्ताओं के किसी भी निष्कर्ष को दर्ज नहीं किया है, जो गवाहों के बयानों और सीडीआर में सामने आए थे, जिसे कथित घटना के समय गांव किरथल बागपत में पुनरीक्षणकर्ताओं के स्थान के बारे में विवेचना का हिस्सा बनाया गया था और पुलिस सुरक्षा गार्ड उक्त तथ्यों का समर्थन करते हैं। संबंधित सत्र न्यायाधीश आदेश दिनांकित 28 अप्रैल, 2023 पारित करते हुए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री यानी विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के साथ-साथ मुकदमे के दौरान लाई गई सामग्री पर गवाही आदि के माध्यम से विचार करने के लिए बाध्य थे। हालांकि, सत्र न्यायाधीश ने विवेचना के दौरान एकत्र किए गए रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की अनदेखी करते हुए घोर अवैधता की, जो पुनरीक्षणकर्ताओं के पक्ष में थी। यह, पुनरीक्षणकर्ताओं को अभियुक्त के रूप में तलब करने के लिए विपरीत पक्ष संख्या 2 के आवेदन को अनुमति देते हुए संबंधित सत्र न्यायाधीश के इस आदेश दिनांकित 28 अप्रैल, 2023 के खिलाफ है कि वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया है।

#### 7. पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलें

(i) पुनरीक्षणकर्ता पूरी तरह से निर्दोष हैं और उन्हें गुप्त उद्देश्य के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है और उन्होंने कथित अपराध नहीं किया है। एफआईआर में लगाए गए आरोप पूरी तरह से झूठे और निराधार हैं।

(ii) घटना की कथित तारीख और समय पर, पुनरीक्षणकर्ता संख्या- 1 जो एक प्रधान और राजनीतिक व्यक्ति थे और उनके सुरक्षा पुलिस गार्ड, अर्थात् कांस्टेबल अंकुर कुमार और कांस्टेबल गगन पवार अपने भतीजे यानी पुनरीक्षणकर्ता संख्या- 1 विकास के साथ गांव किरथल जिला बागपत में थे जो घटना के कथित स्थान यानी गांव लोकवाया जिला मेरठ से लगभग 100 किलोमीटर दूर है। जहां वे दो पक्षों के बीच एक नाले के गांव के विवाद को हल करने के लिए एक पंचायत आयोजित कर रहे थे। पुनरीक्षणकर्ताओं की उक्त अन्यत्र होने की दलील का समर्थन सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज गवाहों द्वारा किया गया है, जिसमें सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत ग्रामीणों और सुरक्षा गार्डों के बयान शामिल हैं। संबंधित सत्र न्यायाधीश द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय पुनरीक्षणकर्ताओं की ऐसी अन्यत्र दलील पर विचार नहीं किया गया, जो मनमाना और अवैध है। आवेदक की अन्यत्र रहने की मजबूत दलील विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र की गई ठोस सामग्री द्वारा समर्थित है और पीडब्ल्यू-1 द्वारा पहले से उपलब्ध सामग्री का विरोध/सामना करने वाली कोई नई/अतिरिक्त/ताजा सामग्री रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई थी, इसलिए, सीआर.पी.सी. की धारा 319 के तहत विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा शक्ति का

प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए था। उस संबंध में शिव प्रकाश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) मुकदमा (एससी) 1340, (पैरा 10, 11, 12) में उल्लिखित, के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

(iii) संबंधित सत्र न्यायाधीश, आक्षेपित आदेश पारित करते समय पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने में विफल रहे हैं, इसलिए, यह अवैध है। इस संबंध में हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 3 एससीसी 92में उल्लिखित, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(iv) संबंधित सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 28 अप्रैल, 2023 का आदेश पारित करते समय विवेचना के दौरान एकत्र की गई रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार नहीं किया और पुनरीक्षणकर्ता को तलब करने में घोर अवैधता की। इस प्रस्तुतिकरण के समर्थन में, बृजेंद्र सिंह व अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706 में उल्लिखित, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(v) प्रारंभ में 29 मई, 2014 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किए गए बयानों में प्रत्यक्षदर्शी गवाहान मृतक की बहन रेखा और हरेन्द्र ने घटना के समय और तारीख पर मौके पर पुनरीक्षणकर्ताओं की उपस्थिति से इंकार किया है और उन्होंने विशेष रूप से एक प्रवीण उर्फ बिल्लू और एक अंकित का नाम लिया है कि उन्होंने मृतक को गोली मारी थी।

हालांकि, पहले सूचनाकर्ता द्वारा दबाव डाले जाने के बाद, उन्होंने 22 दिनों के बाद अपने संबंधित हलफनामे दायर किए हैं जिसमें कहा गया है कि धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत पुलिस के समक्ष उनके द्वारा दिए गए पहले के बयान झूठे हैं और उन्होंने एफआईआर में पहले सूचनाकर्ता/विरोधी पक्ष संख्या- 2 द्वारा लगाए गए आरोपों का समर्थन किया है और साथ ही सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान में भी इन दो चश्मदीद गवाहों के ऐसे विरोधाभासी बयानों के आधार पर और पुनरीक्षणकर्ताओं के अन्यत्र रहने को साबित करने वाले गवाहों के बयानों से विवेचना अधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल करते समय वर्तमान मामले से मृतक नीरज की हत्या में उनकी संलिप्तता को दोषमुक्त कर दिया है। हालांकि, विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की अनदेखी करते हुए, संबंधित सत्र न्यायाधीश ने वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ताओं को अभियुक्त के रूप में तलब करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है।

(vi) प्रथम सूचनाकर्ता/पीडब्ल्यू-1 ने पुनः पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध आरोपों को दोहराया है जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है जिसकी जांच/विवेचना विवेचना अधिकारी द्वारा पहले ही की जा चुकी थी और निष्पक्ष विवेचना में यह झूठा पाया गया था और उसे आरोप पत्र से दोषमुक्त कर दिया गया था। यह कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत राज्य (अभियोजन) द्वारा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है और सीआरपीसी की धारा 319 के तहत वर्तमान आवेदन प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा, संज्ञान के स्तर पर अंतिम

रिपोर्ट का विरोध किए बिना, स्वयं दायर किया गया है।

(vii) विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय विधिक प्रावधान और माननीय सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न घोषणाओं के गंभीर उल्लंघन में सबसे यांत्रिक तरीके से रिकॉर्ड पर सामग्री की जांच न करते हुए घोर अवैधता की है और आदेश दिनांकित 28.04.2023 के तहत पुनरीक्षणकर्ता को तलब किया है और एक भी सबूत पर चर्चा किए बिना जिस पर उसने धारा 319 सीआरपीसी के तहत पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज की है। यह सुस्थापित है कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करने के लिए संतुष्टि की डिग्री बहुत सख्त है [संदर्भ: बृजेंद्र सिंह (सुप्रा)]।

(viii) आक्षेपित आदेश पारित करते समय संबंधित सत्र न्यायाधीश को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में बुलाने के लिए नियोजित सबूत के मानक को ध्यान में रखना चाहिए था, जो आरोप तय करने के लिए नियोजित सबूत के मानक से अधिक है और इस तरह उसने घोर अवैधता की है (संदर्भ सुगीव कुमार बनाम पंजाब राज्य, 2019 (3) सुप्रीम 7, पैरा -12 में उल्लिखित)।

उपरोक्त की संचयी ताकत पर, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि संबंधित सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को कानूनी रूप से कायम नहीं



रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है।

### **8. विरोधी पक्ष संख्या 1 और 2 की ओर से दी गई दलीलें**

इसके विपरीत, विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान एजीए ने पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विवाद करते हुए तर्क दिया है कि सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, जिसमें मामले में अभियुक्त के रूप में पुनरीक्षणकर्ताओं को बुलाने के लिए धारा 319 सीआरपीसी के तहत विपरीत पक्ष संख्या 2 के आवेदन की अनुमति दी गई थी।

9. उपरोक्त के अलावा, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित सरन ने निम्नानुसार तर्क दिया है:

(i) वर्तमान विवाद तब उत्पन्न हुआ जब दिनांक 24.05.2014 को लगभग 11:30 बजे हुई एक घटना के संबंध में दिनांक 24.05.2014 को लगभग 13:00 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता, जिन्हें प्रथम सूचना रिपोर्ट में विशेष रूप से और स्पष्ट रूप से अभियुक्त व्यक्तियों के रूप में वर्णित किया गया था।

(ii) प्रथम सूचना रिपोर्ट त्वरित थी और उसमें मौजूद सामग्री से यह पता चलेगा कि प्रथम सूचनाकर्ता, मृतक की बहन रेखा और हरेन्द्र प्रत्यक्षदर्शी गवाह थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से

वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं पर सीधे कथित अपराध में उनकी संलिप्तता की उंगली उठाई थी। एक बार प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज हो जाने के बाद, विवेचना अधिकारी ने कार्यवाही को गति प्रदान करते हुए नक्शा-नजरी तैयार किया, शव परीक्षण के लिए मृतक की लाश को भेजा, और वह पुनः सूचनाकर्ता के साथ-साथ घटना के अन्य गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए आगे बढ़ा।

(iii) विवेचना अधिकारी पुनरीक्षणकर्ताओं के करीबी थे और मृतक की बहन रेखा और स्वतंत्र गवाह अर्थात् हरेन्द्र के बयानों को सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया था, जिससे यह पता चलेगा कि विवेचना अधिकारी विवेचनाकी शुरुआत से ही पुनरीक्षणकर्ताओं को दोषमुक्त करने के लिए इच्छुक था। विवेचना अधिकारी के उपर्युक्त कृत्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद, शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता के साथ-साथ घटना के चश्मदीद गवाह तुरंत विवेचना अधिकारी के पास पहुंचे और शपथ पत्र के माध्यम से शपथ पर अपने से संबंधित बयान प्रस्तुत किए जिसमें उन सभी ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए पूरे संस्करण को खत्म कर दिया और पिछले संस्करण की पुष्टि की जैसा कि पहली सूचना रिपोर्ट में सामने आया है। हलफनामों में किए गए कथानकों के अलावा, प्रथम सूचनाकर्ता दिनेश, चश्मदीद गवाहों रेखा, सतेंद्र और हरेन्द्र ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत सर्वसम्मति से पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ गवाही दी और नीरज (मृतक) की हत्या में वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं की भागीदारी

को स्पष्ट रूप से दिखाया। सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज बयानों में भी पहले सूचनाकर्ता के साथ-साथ चश्मदीद गवाह, अर्थात्, हरेंद्र ने अपने बयान की पुष्टि नहीं की जब उन्हें संबंधित गवाहियों में अभियोजन पक्ष के गवाह नंबर 1 और 2 के रूप में अदालत के समक्ष पेश किया गया था और उन्होंने स्पष्ट रूप से पुनरीक्षणकर्ताओं को मृतक को आग्नेयास्त्र से चोट पहुंचाने की भूमिका भी सौंपी थी।

(iv) सीडीआर रिपोर्ट के साथ-साथ पुनरीक्षणकर्ताओं के मोबाइल फोन के स्थान के बारे में कि घटना के स्थान की तुलना में फोन दूर के स्थान पर था पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील यह दर्शाता है कि वे घटना के स्थान पर मौजूद नहीं थे, अधूरा, गलत है और इसमें कोई बल नहीं है, जैसा कि पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से उठाए गए बहाने की दलील स्पष्ट नहीं है। घटना के समय पुनरीक्षणकर्ता जिन उपकरणों (मोबाइल फोन) का उपयोग कर रहे थे, उनका स्थान कथित अपराध के कारित करने में उनकी गैर-भागीदारी को स्थापित करने के लिए अपर्याप्त है। घटना के समय पुनरीक्षणकर्ता जिन उपकरणों (मोबाइल फोन) का उपयोग कर रहे थे और इसकी सीडीआर रिपोर्ट चश्मदीद गवाहों द्वारा रखे गए कथानकों की अवहेलना नहीं करेगी। इसके अलावा, इस तरह के बहाने के होने पर सीआरपीसी की धारा 319 के तहत उनके सम्मन के चरण में इस कारण से विचार नहीं किया जाएगा कि यह एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य है जिसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के तहत, साक्ष्य अधिनियम के

65-बी के प्रावधानों के तहत एक विशेषज्ञ द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता होगी। जिसे अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद प्रमाणित किया जाना आवश्यक है। इसलिए, पुनरीक्षणकर्ताओं की अनुपस्थिति की दलील अधूरी है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्त ने पूर्ण निश्चितता के साथ साबित किया है ताकि घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति की संभावना को बाहर किया जा सके। पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा पेश किए गए साक्ष्य ऐसी गुणवत्ता के नहीं हैं कि अदालत किसी भी उचित संदेह पर विचार करेगी।

(v) अभियुक्तों/पुनरीक्षणकर्ताओं पर दायित्व अपेक्षाकृत जादा है और उन्हें प्रमाणिकता के साथ अनुपस्थिति स्थापित करना अपेक्षित है। वर्तमान मामले में, यह स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना के समय अपराध स्थल पर मौजूद नहीं थे और वे उस समय किसी अन्य स्थान पर मौजूद थे। उपरोक्त दलील के समर्थन में विजयपाल बनाम दिल्ली राज्य (जीएनसीटी) वर्ष 2015 0 सुप्रीम (एससी) 214 में उल्लिखित के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय और आदेश पर भरोसा किया गया है।

(vi) पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता का सटीक तर्क सीआरपीसी के प्रावधान के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को बुलाने से पहले संतुष्टि दर्ज करने के संबंध में था और आगे तर्क यह था कि अदालत को अनुपस्थिति के आधार पर रखे गए सबूतों को दर्ज करना चाहिए था, जो गलत हैं। इस तरह

के साक्ष्य को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन पर विचार के चरण में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, साक्ष्य के गुणों को केवल गवाहों की जिरह और न्यायालय द्वारा विवेचना द्वारा परीक्षण के दौरान ही समझा जाना चाहिए। यह उस स्तर पर नहीं किया जाना है जब धारा 319 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन पर विचार किया जाना है। इस तरह की याचिका के समर्थन में, मनजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (पैरा 38) MANU/SC/0546/2021 में वर्णित, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश पर भरोसा किया गया है, जो कि 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 888 में वर्णित संदीप कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले में पालन किया गया है।

(vii) जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अभियुक्त को तलब करने के चरण में अनुपस्थिति की दलील पर विचार करने का संबंध है, ऐसा विचार करना समय से पहले होगा। बचाव पक्ष द्वारा ली गई दलील को तभी साबित करने की आवश्यकता है जब अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अभियुक्त के खिलाफ अपना मामला साबित कर दे। उस संबंध में दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य वर्ष 2016 0 सुप्रीम (एससी) 2 में वर्णित, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(viii) हर चरण पर अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज बयानों, विवेचना अधिकारी को मृतक की बहन

रेखा और स्वतंत्र गवाह हरेंद्र द्वारा दिए गए हलफनामों और अदालत के समक्ष दर्ज गवाहियों में, कथित अपराध के कारित होने में सीधे पुनरीक्षणकर्ताओं की भागीदारी के बारे में स्पष्ट रूप से कहा गया है और वास्तव में, निश्चित रूप से गवाहों द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के तहत विवेचना अधिकारी के समक्ष दिए गए बयानों में दिए गए कथानक की तुलना में अधिक साक्ष्य मूल्य होगा।

(ix) निर्णयों की श्रेणी में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि न्यायालय के समक्ष रखे गए साक्ष्य से केवल प्रथम दृष्टया मामला ही सिद्ध किया जाना है, यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिपरीक्षा के समय परीक्षण किया जाए, इसके लिए उनकी संलिप्तता की संभावना की तुलना में अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है। परीक्षण को एक में लागू किया जाना चाहिए जो आरोप तय करने के समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, यदि अखंडित हो जाता है, तो दोषसिद्धि का कारण बन जाएगा।

उपरोक्त के समेकित बल पर, श्री अंकित सरन, विरोधी पक्ष नंबर 2 के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि इस तथ्य की समग्रता में कि अभियुक्तों/पुनरीक्षणकर्ताओं को विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा सही तरीके से बुलाया गया है और उन पर दायित्व है कि वे बरी करें, पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से इस प्रकार उठाई गई अनुपस्थिति की दलील के कारण, न्यायालय ने इसकी सही अनदेखी की है क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा

पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ सभी उचित संदेहों से परे अपना मामला रखने के बाद उसी पर विचार किया जाना चाहिए। इसलिए, आक्षेपित आदेश न्यायसंगत और उचित है और सीआरपीसी की धारा 397/401 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय इस माननीय न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण के अभिलेख का अध्ययन किया है, विशेष रूप से ट्रायल कोर्ट द्वारा वर्तमान आपराधिक कार्यवाही में पुनरीक्षणकर्ताओं को अभियुक्त के रूप में बुलाने के लिए धारा 319 सीआरपीसी के तहत विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर आवेदन पर पारित आक्षेपित आदेश का।

11. पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को छोड़कर कि ट्रायल कोर्ट ने शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के आवेदन की अनुमति देते समय और पुनरीक्षणकर्ताओं को अभियुक्त के रूप में बुलाते समय आक्षेपित आदेश के संदर्भ में, विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए मौखिक और साथ ही साक्ष्य के आधार पर पुनरीक्षणकर्ताओं की दलील पर विचार नहीं किया है और न ही उस संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज किया है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें, वर्तमान आपराधिक कार्यवाही की वैधता, अवैधता या अन्यथा जो पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा शुरू की

गई हैं, की विवेचना इस न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के तहत अपनी पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते समय नहीं की जा सकती है। इस तरह की दलीलों की विवेचना केवल उस पीठ द्वारा की जा सकती है जिसके पास सीआरपीसी की धारा 482 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र है। यह न्यायालय केवल उस आदेश की शुद्धता, वैधता, अवैधता या अन्यथा की विवेचना कर सकता है जिसे पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई अनुपस्थिति की दलील पर वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है।

12. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर और अन्य (2012) 9 एससीसी 460 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धारा 397 सीआरपीसी के तहत अदालत के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है ताकि ट्रायल कोर्ट या अवर अदालत द्वारा पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य की विवेचना की जा सके, जैसा भी मामला हो, जबकि सीआरपीसी की धारा 482 न्यायालय को न्याय करने और यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत व्यापक शक्ति प्रदान करती है कि अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं है।

13. अमित कपूर (सुप्रा) के मामले में निर्णय के पैराग्राफ संख्या 12, 13, 18, 20 और 21, जो पूर्वोक्त मुद्दे पर प्रासंगिक हैं, को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"12. संहिता की धारा 397 न्यायालय को किसी मामले में की गई किसी कार्यवाही या

आदेश की वैधता और नियमितता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के प्रयोजनों के लिए एक अवर न्यायालय के रिकॉर्ड को मंगाने और उसकी विवेचना करने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रावधान का उद्देश्य एक पेटेंट दोष या अधिकार क्षेत्र या कानून की त्रुटि को ठीक करना है। एक अच्छी तरह से स्थापित त्रुटि होनी चाहिए और अदालत के लिए आदेशों की विवेचना करना उचित नहीं हो सकता है, जो इसके भाव पर सावधानीपूर्वक विचार का प्रतीक है और कानून के अनुसार प्रतीत होता है। यदि कोई इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को देखता है, तो यह उभरता है कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को लागू किया जा सकता है जहां चुनौती के तहत निर्णय पूरी तरह से गलत हैं, कानून के प्रावधानों का कोई अनुपालन नहीं है, दर्ज निष्कर्ष बिना किसी सबूत पर आधारित है, भौतिक साक्ष्य की अनदेखी की जाती है या न्यायिक विवेक का उपयोग मनमाने ढंग से या विकृत रूप से किया जाता है। ये संपूर्ण वर्ग नहीं हैं, बल्कि केवल सांकेतिक हैं। प्रत्येक मामले को अपने गुणों के आधार पर निर्धारित करना होगा।

13. एक और सुस्वीकृत मानदंड यह है कि उच्चतर न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है और इसका नियमित तरीके से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। निहित प्रतिबंधों में से एक यह है कि यह अंतरिम या वादकालीन आदेश के खिलाफ नहीं होना चाहिए। न्यायालय को यह ध्यान रखना होगा कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से स्वयं प्रथम दृष्टया अन्याय नहीं होना चाहिए। जहां न्यायालय इस सवाल से निपट रहा है कि क्या

आरोप ठीक से और किसी दिए गए मामले में कानून के अनुसार तैयार किया गया है, यह अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक हो सकता है जब तक कि मामला काफी हद तक पूर्वोक्त श्रेणियों के भीतर नहीं आता है। यहां तक कि आरोप तय करना भी सीआरपीसी के तहत कार्यवाही का एक बहुत ही उन्नत चरण है।

18. यह भी देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार एक तरह से अंतिम है और ऐसे मामलों में कोई अंतर न्यायालय उपाय उपलब्ध नहीं है। बेशक, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद के तहत इस अदालत के अधिकार क्षेत्र के अधीन हो सकता है। सामान्यतः कानून के प्रश्न पर पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। हालांकि, जब तथ्यात्मक प्रशंसा शामिल होती है, तो इसे मामलों की श्रेणी में जगह मिलनी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप विकृत खोज होती है। मूलतः शक्ति का प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है ताकि न्याय किया जा सके और न्यायालय द्वारा शक्ति का दुरुपयोग न हो। केवल इसकी आशंका या संदेह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा।

20. धारा 397 के तहत न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग ट्रायल कोर्ट या अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या मालिकाना की विवेचनाकरने के लिए किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो। यद्यपि यह धारा विशिष्ट रूप से 'न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा

अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं करती है', धारा 397 के तहत अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित है। किसी न्यायालय द्वारा पारित आदेश की वैधता, स्वामित्व या शुद्धता धारा 397 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की नींव है, लेकिन अंततः इसके लिए न्याय की भी आवश्यकता होती है। क्षेत्राधिकार का प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां स्पष्ट त्रुटि हो, कानून के प्रावधानों का अनुपालन न हो, निर्णय पूरी तरह से गलत हो या जहां न्यायिक विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता है। दूसरी ओर, धारा 482 इस कहावत पर आधारित है कि वह किसी विरोध के विरोध में कुछ भी देती है, अर्थात्, जब कानून किसी को कुछ भी देता है, तो वह उन सभी चीजों को भी देता है जिनके बिना वह चीज अपरिहार्य होगी। यह धारा न्यायालय को न्याय करने और यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत व्यापक शक्ति प्रदान करती है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं है।

21. इन दो प्रावधानों के तहत न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की तुलनात्मक विवेचनाकरना कुछ हद तक आवश्यक हो सकता है। इन दो शक्तियों के बीच कुछ अतिव्यापन हो सकता है क्योंकि दोनों का उद्देश्य न्याय के सिरो को सुरक्षित करना है और दोनों में विवेक का एक तत्व है। लेकिन, साथ ही, संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्ति एक असाधारण और अवशिष्ट शक्ति होने के कारण, यह उन मामलों के संबंध में लागू नहीं होती है जो विशेष रूप से संहिता के अन्य प्रावधानों के तहत प्रदान किए जाते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो, आम तौर पर अदालत

संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकती है, जहां एक पक्ष संहिता की धारा 397 के तहत उपलब्ध उपाय का लाभ उठा सकता है। संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां व्यापक परिमाण की हैं और धारा 397 के तहत शक्ति के रूप में सीमित नहीं हैं। धारा 482 को लागू किया जा सकता है जहां प्रश्न में आदेश न तो धारा 397 (2) के अर्थ के भीतर एक वादकालीन आदेश है और न ही सख्त अर्थों में अंतिम आदेश है। इस संबंध में संदर्भ राज कपूर और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य [एआईआर 1980 एससी 258: (1980) 1 एससीसी 43]] के लिए किया जा सकता है। इसी मामले में, इस न्यायालय ने देखा है कि धारा 482 के तहत निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है यदि धारा 397 (2) और 397 (3) के तहत प्रतिबंध, असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए लागू होता है। यह अपने आप में इन दो प्रावधानों के तहत न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के बीच बारीक अंतर को दर्शाता है। इसी मामले में, न्यायालय ने यह भी विचार किया कि क्या धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की निहित शक्तियां निरस्त हो जाती हैं जब धारा 397 के तहत पुनरीक्षण शक्ति ओवरलैप होती है। तर्क को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा कि धारा 482 के शुरुआती शब्द इस विवाद का खंडन करते हैं क्योंकि संहिता में कुछ भी नहीं, धारा 397 भी नहीं, धारा 482 की भाषा द्वारा इतने सारे शब्दों में संरक्षित निहित शक्तियों के आयाम को प्रभावित नहीं कर सकता है। निहित शक्तियों के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं

है जहां न्यायालय की प्रक्रिया या किसी अन्य असाधारण स्थिति का दुरुपयोग अदालत के अधिकार क्षेत्र को आमंत्रित करता है। सीमा आत्म-संयम है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। एक अंतिम और वार्ताकार आदेश के बीच का अंतर कानून में अच्छी तरह से जाना जाता है। जो आदेश धारा 397 (2) के प्रतिबंध से मुक्त होंगे, वे आदेश होंगे जो विशुद्ध रूप से इंटरलोक्यूटरी नहीं हैं, लेकिन साथ ही, अंतिम निपटान से कम हैं। वे आदेश होने चाहिए जो कुछ अधिकार निर्धारित करते हैं और अभी भी अंततः अदालत के फंक्टस को प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। धारा 482 के प्रावधान व्यापक हैं। इसे एक ही संहिता में लिखे गए कानूनी निषेधों को पलटना नहीं चाहिए, हालांकि, न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को निर्विवाद रूप से पढ़ा जाना चाहिए और प्रतिबंध से मुक्त माना जाना चाहिए।

13. अब यह न्यायालय केवल पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर आक्षेपित आदेश की वैधता या अन्यथा की विवेचनावकरने के लिए आता है कि ट्रायल कोर्ट ने इसे पारित करते समय विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए मौखिक, इलेक्ट्रॉनिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर पुनरीक्षणकर्ताओं की दलील पर विचार नहीं किया है।

14. संहिता की धारा 319 के तहत अदालत को यह सुनिश्चित करने की शक्ति प्रदान की गई है कि अपराध के दोषी सभी लोगों को न्याय के लिए न्याय दिया जाए। आपराधिक न्याय प्रणाली के उद्देश्य और उद्देश्यों में से

एक सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना है। उस संदर्भ में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति जो दोषी प्रतीत होता है, उस अपराध के संबंध में उचित परीक्षण से बच न जाए। अपराध के शिकार व्यक्ति को न्याय प्रदान करना भी कर्तव्य है। यह इस बात की मान्यता में है कि संहिता ने विशेष रूप से अदालत में उन लोगों के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्ति प्रदान की है जो इस धारा द्वारा निर्धारित परिस्थितियों में अभियुक्त के रूप में नहीं हैं। यह एक हितकारी शक्ति है जो किसी अपराध के दोषी लोगों को सजा दिलाने के लिए समाज के प्रति अदालत के दायित्व के निर्वहन को सक्षम बनाती है।

15. हरदीप सिंह के मामले में, जिस पर विरोधी पक्ष नंबर 2 के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बहुत अधिक भरोसा किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"12. सीआरपीसी की धारा 319 सिद्धांत जुडेक्स दमनातुर कम नोकेन्स एब्सोल्विटुर (दोषी को बरी होने पर न्यायाधीश की निंदा की जाती है) से निकलती है और इस सिद्धांत का उपयोग सीआरपीसी की धारा 319 के अधिनियमन के दायरे और अंतर्निहित भावना की व्याख्या करते हुए एक प्रकाश स्तंभ के रूप में किया जाना चाहिए।

न्यायालय का कर्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधी को सजा देकर न्याय करे। जहां विवेचना एजेंसी किसी भी कारण से असली दोषियों में से एक को अभियुक्त के रूप में नहीं

रखती है, अदालत उक्त अभियुक्त को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। सवाल यह है कि किन परिस्थितियों में और किस स्तर पर अदालत को सीआरपीसी की धारा 319 में अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए?

हमारे सामने जो दलीलें उठाई गई थीं, वे बहुत व्यापक क्षेत्र पर आधारित थीं और विद्वान अधिवक्ता ने हमें, सीआरपीसी के विभिन्न प्रावधानों और उक्त उद्देश्य के लिए जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनके माध्यम से हमें अवगत कराया है। विवाद उस चरण के इर्द-गिर्द केंद्रित है जिस पर अदालत द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है और ऐसी सामग्री जिसके आधार पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

13. यह रिकॉर्ड पर रखना आवश्यक होगा कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत प्रदत्त शक्ति केवल अदालत के पास है। इसे इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए कि सीआरपीसी की धारा 319 केवल अदालत को ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने का अधिकार देती है। आपराधिक अदालतों के हमारे पदानुक्रम में "अदालत" शब्द को सीआरपीसी की धारा 6 के तहत परिभाषित किया गया है, जिसमें सत्र न्यायालय, न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट और कार्यकारी मजिस्ट्रेट भी शामिल हैं। सत्र न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 9 में परिभाषित किया गया है और न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों को धारा 11 के तहत परिभाषित किया गया है। मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के न्यायालयों को सीआरपीसी की

धारा 16 के तहत परिभाषित किया गया है। जो अदालतें भारतीय दंड संहिता, 1860 या किसी अन्य कानून के तहत किसी भी अपराध के तहत किए गए अपराधों की कोशिश कर सकती हैं, उन्हें पहली अनुसूची के साथ पठित धारा 26 सीआरपीसी के तहत निर्दिष्ट किया गया है। पहली अनुसूची के तहत अपराधों का वर्गीकरण शीर्षक के तहत व्याख्यात्मक टिप्पणी (2) में मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट को शामिल करने के लिए प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट और किसी भी मजिस्ट्रेट की अभिव्यक्ति को विनिर्दिष्ट किया गया है जिन्हें उक्त अनुसूची के तहत अपराधों का विचारण करने का अधिकार है लेकिन कार्यकारी मजिस्ट्रेट शामिल नहीं हैं।

14. इस स्तर पर सीआरपीसी की धारा 319 के तहत इस्तेमाल किए गए शब्दों की तुलना को धारा 2 (जी) के तहत इस्तेमाल किए गए शब्द से अलग तरीके से समझा जाना चाहिए, जो मजिस्ट्रेट या अदालत द्वारा मुकदमे के अलावा किसी अन्य विवेचना को परिभाषित करता है। यहां विधायिका ने दो शब्दों का इस्तेमाल किया है, अर्थात् मजिस्ट्रेट या अदालत, जबकि धारा 319 सीआरपीसी के तहत, जैसा कि ऊपर बताया गया है, केवल "अदालत" शब्द का पाठ किया गया है। यह विधायिका द्वारा इस बात पर जोर देने के लिए किया गया है कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति केवल अदालत द्वारा प्रयोग की जा सकती है, न कि किसी अधिकारी द्वारा जो अदालत के रूप में कार्य नहीं कर रहा है। इस प्रकार, मजिस्ट्रेट जो अदालत के रूप में काम नहीं कर रहा है या शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा है, वह एक मुकदमे के अलावा विशेष कार्यवाही में



एक विवेचनाकर सकता है, लेकिन इस तरह एकत्र की गई सामग्री एक विवेचना या परीक्षण के दौरान अदालत द्वारा नहीं होगी। इसलिए, संक्षेप में, निष्कर्ष यह है कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए, यह केवल सत्र न्यायालय या मजिस्ट्रेट की अदालत है जो सीआरपीसी के तहत एक अदालत के रूप में कर्तव्यों का पालन करती है जो उक्त धारा के उद्देश्य के लिए इसके समक्ष सामग्री का उपयोग कर सकती है।

15. सीआरपीसी की धारा 319 अदालत को किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ आगे बढ़ने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में अभियुक्त नहीं है। इस प्रकार, जिस व्यक्ति के खिलाफ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए समन जारी किए जाते हैं, जरूरी नहीं कि वह पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहा अभियुक्त हो। वह या तो सीआरपीसी की धारा 173 के तहत दायर चार्जशीट के कॉलम 2 में नामित व्यक्ति हो सकता है या ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसके नाम का खुलासा अदालत के समक्ष किसी भी सामग्री में किया गया है, जिस पर अपराध की कोशिश करने के उद्देश्य से विचार किया जाना है, लेकिन विवेचना नहीं की गई है। उसे एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी जटिलता का संकेत दिया जा सकता है और अपराध के कारित होने से जुड़ा हो सकता है।

16. विधायिका को सभी परिस्थितियों की कल्पना करने के लिए नहीं माना जा सकता है और इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों

को पूर्ण प्रभाव प्रदान करे ताकि किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे अदालत को किसी अपराध की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते समय निपटना पड़ सकता है और ऐसे व्यक्ति को अनुमति नहीं दी जा सकती है जिस पर मुकदमा चलाया जा सकता है उसकी संलिप्तता की संभावना जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से एकत्र की जा सकती है।

17. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए उस पर एक कर्तव्य डाला गया है और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालतों के साथ ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से इनकार करना अनुचित होगा जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त, कभी-कभी, विवेचना और/या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके बच निकलते हैं। मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि एक अभियुक्त कई बार विवेचना या पूछताछ के चरण में भी खुद को दोषमुक्त करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध से जुड़ा हो।

16. अनिवार्य रूप से, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान वकीलों का मुख्य जोर अनुपस्थिति की दलील पर है जो उनके अनुसार एक त्रुटिहीन गुणवत्ता का था और इस प्रकार, ट्रायल जज को सीआरपीसी की धारा 161 के तहत विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रखते हुए इस पर विचार करना चाहिए था ताकि एक सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज किया जा सके कि पुनरीक्षणकर्ता अपराध के स्थान पर मौजूद नहीं हो सकते थे

ट्रायल जज को पुनरीक्षणकर्ताओं के अनुपस्थिति की दलील को स्थापित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य यानी पुनरीक्षणकर्ताओं की कॉल डिटेल् रिपोर्ट को भी ध्यान में रखना चाहिए था। यह सुस्थापित है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज बयान सबूत का एक ठोस हिस्सा नहीं है। सीआरपीसी की धारा 162 की उपधारा (1) के परंतुक के मददेनजर, बयान का उपयोग केवल उक्त प्रावधान में निर्धारित तरीके से बयान के निर्माता का खंडन करने के सीमित उद्देश्य के साथ किया जा सकता है। इसलिए, ट्रायल जज विवेचना के दौरान एकत्र किए गए अनुपस्थिति के पूरी तरह से अस्वीकार्य साक्ष्य पर भरोसा नहीं करने के लिए पूरी तरह से न्यायसंगत था और यदि उसने उसी पर भरोसा किया था तो यह हरदीप सिंह के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दी गई व्याख्या के खिलाफ होगा क्योंकि यह विवेचना के दौरान एकत्र की गई बाहरी सामग्री है और इसे धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्तियों के प्रयोग के प्रयोजनों के लिए एक सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता है। सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय एक अन्य कोण से भी देखा जा सकता है यानी साक्ष्य अधिनियम की धारा 103 जो यह निर्धारित करती है कि किसी विशेष तथ्य के रूप में सबूत का भार उस व्यक्ति पर है जो चाहता है कि अदालत अपने अस्तित्व में विश्वास करे, जब तक कि यह किसी कानून द्वारा साबित नहीं किया जाता है कि उस तथ्य का प्रमाण किसी विशेष व्यक्ति पर है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 103 का दूसरा उदाहरण निम्नानुसार है:

"बी चाहता है कि अदालत यह विश्वास करे कि उस प्रश्नगत समय वह कहीं और था, उसे इसे साबित करना होगा।

17. यह प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणकर्ताओं की दलील स्थापित करने का भार उन पर पूरी तरह से है। इस कानूनी प्रस्ताव के बारे में शायद ही कोई संदेह हो। हरियाणा राज्य बनाम शेर सिंह मनु एससी/0236/1981 में उल्लिखित, गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य मनु एससी/0122/1955 में उल्लिखित और चंद्रिका प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य मनु एससी/0084/1971 में उल्लिखित, के मामलों का संदर्भ दिया जा सकता है।

18. यह ट्रायल कोर्ट में प्रमुख साक्ष्य द्वारा किया जा सकता है न कि विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री पर भरोसा करके। ऐसे मामले में अभियोजन पक्ष को इस गवाह से जिरह करने का मौका देना होगा ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि उनकी गवाही सही नहीं थी। न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए संज्ञान लेने, आरोप तय करने या धारा 319 सीआरपीसी के तहत दर्ज साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को तलब करने के स्तर पर अभियुक्त की दलील पर विचार नहीं कर सकता है। अभियुक्तों के पास अपने साक्ष्य को उचित स्तर पर रखने का पर्याप्त अवसर होगा। इस संबंध में उड़ीसा राज्य बनाम देबेन्द्र नाथ पाधी 2004(8) उच्चतम न्यायालय के मामलों 568 में वर्णित, के मामले में दिए गए

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था:

" ..... इसके अलावा, आरोप तय करने के चरण में बिना घटना से संबंधित तथ्यों की विवेचना की अनुमति नहीं है। यदि अभियुक्त की दलील स्वीकार कर ली जाती है तो आरोप तय करने के चरण में एक छोटा मुकदमा होगा। यह संहिता के उद्देश्य को निष्फल करेगा। यह सुस्थापित है कि आरोप तय करने के चरण में अभियुक्त का बचाव नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता के तर्क की स्वीकृति का अर्थ अभियुक्त को आरोप तय करने के चरण में अपने बचाव को स्वीकार करने और उस स्तर पर उसकी विवेचना करने की अनुमति देना होगा जो आपराधिक न्यायशास्त्र के खिलाफ है। दृष्टांत के माध्यम से, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभियुक्त द्वारा ली गई अनुपस्थिति की दलील की विवेचना आरोप तय करने के चरण में की जा सकती है यदि अभियुक्त के तर्क को अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव के बावजूद स्वीकार किया जाता है कि इस तरह की याचिका को बनाए रखने के लिए मुकदमे में साक्ष्य का नेतृत्व करना अभियुक्त के लिए है। यदि हम अभियुक्त की ओर से दिए गए तर्क को स्वीकार करते हैं, तो अभियुक्त आरोप तय करने के चरण में ऐसी दलील के प्रमाण में सामग्री और दस्तावेज पेश करने का हकदार होगा। अब एक सौ से अधिक वर्षों से कानून का यह इरादा कभी भी अच्छी तरह से तय नहीं किया गया है। यह इस प्रकाश में है कि धारा 227 द्वारा अभियुक्त की दलीलों को सुनने के बारे में प्रावधान को समझा जाना

चाहिए। इसका मतलब केवल अभियोजन पक्ष द्वारा दायर मामले के रिकॉर्ड पर अभियुक्त की दलीलों और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों को सुनना है और इससे ज्यादा कुछ नहीं। अभिव्यक्ति 'अभियुक्त की दलीलों को सुनने' का मतलब अभियुक्त को दी जाने वाली सामग्री दर्ज करने का अवसर नहीं हो सकता है और इस तरह तय कानून में बदलाव हो सकता है। आरोप तय करने की स्थिति में, अभियुक्त की दलीलें पुलिस द्वारा पेश की गई सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए।

19. पुनरीक्षणकर्ताओं की कॉल डिटेल रिपोर्ट के आधार पर पुनरीक्षणकर्ताओं की दलील पर भी सीआरपीसी की धारा 319 के तहत तलब करने के चरण में इस आधार पर विचार नहीं किया जा सकता है कि यह एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य है जिसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अनुसार साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत एक विशेषज्ञ द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता होगी, जिसे अभियोजन पक्ष के साक्ष्य यानी मुख्य परीक्षा और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह समाप्त होने के बाद प्रमाणित किया जाना आवश्यक है।

20. दर्शन सिंह (सुप्रा) के मामले में, जिस पर विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी है:

"ऐलिबी शब्द का अर्थ है 'कहीं और'। अन्यत्र की दलील आईपीसी के अध्याय IV में निहित सामान्य अपवादों में से एक नहीं है। यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 के तहत मान्यता

प्राप्त साक्ष्य का नियम है। तथापि, अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने के बाद ही बचाव पक्ष द्वारा दी गई दलील को साबित किया जाना अपेक्षित है। वर्तमान मामले में उक्त शर्त पूरी हो गई है।

("प्रभाववर्धित")

21. संदीप कुमार (सुप्रा) के मामले में, जिस पर विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बहुत अधिक भरोसा किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 12 में निम्नानुसार राय दी है:

"उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन पर विचार के चरण में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। साक्ष्य के गुणावगुण को केवल विचारण के दौरान, गवाहों की प्रतिपरीक्षा और न्यायालय की संवीक्षा द्वारा ही समझा जाना चाहिए। यह धारा 319 के चरण में नहीं किया जाना है, हालांकि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने ठीक यही किया है। इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य की विवेचना नहीं की कि अभियुक्तों द्वारा सामना किए जा रहे आरोप धारा 458, 460, 323, 285, 302, 148 और 149 आईपीसी के तहत थे। इस प्रकार, आरोपों में से एक धारा 149 है, जो एक गैरकानूनी सभा का सदस्य होने का है, धारा 149 आईपीसी के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए, बस एक गैरकानूनी सभा का हिस्सा होना चाहिए। कोई विशिष्ट व्यक्तिगत भूमिका या कार्य भौतिक नहीं है। [देखें: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 632-

मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य पैरा 38]।

22. निर्णयों की उपरोक्त श्रृंखला में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समझाए गए कानून के स्थापित कानूनी प्रस्ताव के मददेनजर, इस न्यायालय ने पाया कि ट्रायल कोर्ट ने धारा 319 सीआरपीसी के तहत विपरीत पक्ष संख्या 2 के आवेदन की अनुमति देने और पुनरीक्षणकर्ताओं को अभियुक्त के रूप में बुलाने के आदेश को पारित करते समय पुनरीक्षणकर्ताओं की अनुपस्थिति की दलील पर विचार नहीं करने में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं की है। यह न्यायालय उस संबंध में विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों में भी सार पाता है।

23. अब यह न्यायालय बृजेंद्र सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की प्रयोज्यता की विवेचना करता है, जिस पर पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बहुत अधिक भरोसा किया गया है।

24. मैं कानूनी पहलू से निपटना चाहूंगा कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत किन सामग्री/सबूतों पर विचार किया जाना है, जैसा कि हरदीप सिंह (सुप्रा) के मामले में दिए गए संवैधानिक पीठ के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में निर्धारित किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरदीप सिंह (सुप्रा) के मामले में संविधान पीठ के अपने फैसले में सीआरपीसी की धारा 319 के दायरे, क्षेत्र और व्यापकता पर विस्तार से

विचार किया है और प्रश्न संख्या (iii) सहित कई प्रश्न तैयार किए हैं जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"प्रश्न (iii) - क्या सीआरपीसी की धारा 319 (1) में प्रयुक्त शब्द "सबूत" का व्यापक अर्थ में उपयोग किया गया है और इसमें विवेचना के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या "सबूत" शब्द मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सबूतों तक ही सीमित है?

25. उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित तरीके से दिया गया है: -

"85. की गई चर्चा और ऊपर निकाले गए निष्कर्ष के मद्देनजर, पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि परीक्षण के दौरान दर्ज साक्ष्य के अलावा, संज्ञान लेने के बाद और विचारण शुरू होने से पहले अदालत द्वारा प्राप्त की गई किसी भी सामग्री का उपयोग केवल पुष्टि के लिए और सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए अदालत द्वारा साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार " साक्ष्य " परीक्षण के दौरान साक्ष्य तक सीमित है ।

26. हरदीप सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के फैसले और बृजेंद्र सिंह के मामले में बाद के फैसलों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद इस न्यायालय की राय है कि बृजेंद्र सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि हरदीप सिंह के मामले के पूर्व के फैसले पर

विचार किया गया था, हालांकि, सीआरपीसी की धारा 319 के तहत निहित और पैरा 85 में व्याख्या की गई अभिव्यक्ति "साक्ष्य" के दायरे, क्षेत्र और व्यापकता पर बाद के मामलों में इस हद तक विचार नहीं किया गया था कि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में विवेचना के दौरान एकत्र किए गए किसी भी साक्ष्य को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। 'साक्ष्य' शब्द की स्पष्ट व्याख्या के दृष्टिकोण में; यह विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए सबूतों तक सीमित है।

27. अपने आदेश पर गहरे सम्मान और अत्यंत विनम्रता के साथ, मैं यह अभिलिखित कर सकता हूँ कि यह सुस्थापित है कि प्राधिकरण/न्यायिक मिसाल को उन तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिनके आधार पर उसमें निहित टिप्पणी की गई है। एक निर्णय का अनुपात आम तौर पर विषयवस्तु के अनुसार होता है।

28. क्विन बनाम लीथम में, (1901) एसी 495, अल्स ऑफ हैल्सबरी एल.सी. ने कहा:

"... कि प्रत्येक निर्णय को साबित किए गए विशेष तथ्यों पर लागू होने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, या साबित माना जाना चाहिए, क्योंकि अभिव्यक्तियों की व्यापकता जो वहां पाई जा सकती है, पूरे कानून की व्याख्या करने का इरादा नहीं है, लेकिन उस मामले के विशेष तथ्यों द्वारा शासित और योग्य है जिसमें ऐसी अभिव्यक्तियां पाई जानी हैं। दूसरा

मामला केवल एक अधिकार है कि वास्तव में यह क्या तय करता है।

29. यह भी सुस्थापित है कि एक निर्णय अपने स्वयं के तथ्यों पर पूर्वोदाहरण है। प्रत्येक मामला अपनी विशेषता प्रस्तुत करता है। निर्णय देते समय न्यायाधीश द्वारा कही गई सारी बातें पूर्वोदाहरण नहीं बनती हैं। एक पक्ष को बाध्य करने वाले न्यायाधीश के निर्णय में एकमात्र चीज वह सिद्धांत है जिस पर मामले का फैसला किया जाता है और इस कारण से किसी निर्णय का विश्लेषण करना और उससे आनुपातिक निर्णय को अलग करना महत्वपूर्ण है।

30. यह न्यायालय हमेशा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बृजेंद्र सिंह (सुप्रा) के मामले में व्यक्त किए गए किसी भी दृष्टिकोण के समान व्यक्त किए दृष्टिकोण का सम्मान करता है लेकिन सीआर.पी.सी. की धारा 319 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' के अर्थ के एक ही बिंदु पर परस्पर विरोधी दृष्टिकोण मौजूद प्रतीत होता है, बड़ी संघटक पीठ द्वारा हरदीप सिंह (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में प्रतिपादित, बृजेंद्र सिंह (सुप्रा) के मामले और अन्य निर्णयों पर प्रबल होगा। इसलिए, बृजेंद्र सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है।

31. इस न्यायालय ने विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए अभिकथनों में भी सार निकाला है कि विवेचना अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत

हलफनामे में रेखा यानी मृतक की बहन द्वारा दिए गए बयान और सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए गए बयान के साथ-साथ स्वतंत्र चश्मदीद गवाह अर्थात्, हरेंद्र द्वारा विवेचना अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत शपथ पत्र में दिए गए बयान, सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दिये गये और ट्रायल कोर्ट के समक्ष पीडब्ल्यू -2 के रूप में भी दिये गये बयान, उनके द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत पुलिस के समक्ष दिए गए बयानों के मूल्य के बजाय, अधिक महत्वपूर्ण हैं। हलफनामे में और सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए गए बयानों में, चश्मदीद गवाह रेखा ने स्पष्ट रूप से कथित अपराध यानी मृतक की हत्या के कारित करने में पुनरीक्षणकर्ताओं की भागीदारी के बारे में बताया है। इसी तरह, विवेचना अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत हलफनामों में, सीआर.पी.सी. की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए गए बयानों में और ट्रायल कोर्ट के समक्ष दिए गए बयानों में, अभियोजन पक्ष के दोनों चश्मदीद गवाहान, अर्थात् दिनेश कुमार (प्रथम सूचनाकर्ता/विरोधी पक्ष संख्या 2) और हरेंद्र, जो एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह भी हैं, ने कथित अपराध को अंजाम देने के लिए पुनरीक्षणकर्ता की ओर इंगित किया है।

32. उपर्युक्त के आलोक में, वर्तमान पुनरीक्षण योग्यता से परे है। विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पूरी तरह से उचित है और हरदीप सिंह (सुप्रा) के मामले में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के फैसले और ऊपर संदर्भित अन्यत्र जगह होने के विषय पर निर्णयों द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों/मापदंडों के अनुसार है।

33. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण तदनुसार खारिज किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 718

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

द्वितीय अपील संख्या 1486 वर्ष 1999

काशी राम

...अपीलकर्ता

बनाम

रामजी लाल

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री पीसी जैन

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

श्री कुणाल शाह, श्री माधव जैन, श्री शशांक शेखर मिश्रा, श्री सुवंसित कुमार जयसवाल, श्री तरुण झा

ए. सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 100-विशिष्ट राहत अधिनियम। 1963-धारा 9 और 10 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 91 और 92-विशिष्ट पालन-इस मामले में वादी ने न केवल पहला

वाद-समझौता किया, बल्कि इसके तहत समय समाप्त होने से पहले, पक्षकारों के बीच दायित्वों को एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाते हुए दूसरा वाद-समझौता निष्पादित करवाया।-यह दिखाने के लिए भी साक्ष्य है कि उसने प्रतिवादी को उप-पंजीयक के समक्ष उपस्थित होने की तिथि निर्दिष्ट करते हुए बिक्री विलेख को निष्पादित करने के लिए एक नोटिस जारी करवाया।-नोटिस में इंगित तिथि पर, वादी उप-पंजीयक के समक्ष उपस्थित रहा, लेकिन प्रतिवादी उपस्थित नहीं हुआ, एक तथ्य जिसके बारे में दोनों अवर न्यायालय एकमत हैं -प्रतिवादी को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए प्रेरित करने में वादी का यह आचरण सुसंगत है, जिसे निचली अदालतों ने विशिष्ट पालन प्रदान करने में अपने विवेक का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा है।-पक्षकारों के आचरण के बारे में एक अतिरिक्त विशेषता है। लिखित बयान के पैराग्राफ 2 और 11 में प्रतिवादी ने वादी के इस मामले से इनकार किया है कि उसने वादी से बयाना में 60,000/- रुपये प्राप्त किए थे, लेकिन केवल 40,000/- रुपये प्राप्त किए थे, जिसके बारे में यह दलील दी गई है कि यह किसी अन्य व्यक्ति को भुगतान करने के लिए उधार ली गई धनराशि थी। हालांकि, अपने मुख्य परीक्षण में, प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये उधार लिए थे, जिसमें से उसे चुकाने के लिए 40,000/- रुपये की आवश्यकता थी। अपने जिरह में, उसने इस तथ्य को फिर से स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये उधार लिए थे, जिसमें से 20,000/- रुपये समक्ष वाद समझौते के निष्पादन से समक्ष और 40,000/- रुपये उक्त

समझौते के पंजीकरण के समय चुकाए गए थे। यद्यपि, प्रतिवादी ने अपनी गवाही में लेन-देन की प्रकृति को ऋण बताया है, लेकिन इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये प्राप्त किए, जिनमें से 20,000/- प्रथम वाद-समझौते के पंजीकरण से पहले और 40,000/- उसके पंजीकरण के समय प्राप्त हुए। यह लिखित बयान के पैराग्राफ 2 और 11 में उसके रुख के बिल्कुल विपरीत है, जहाँ उसने कहा है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये नहीं, बल्कि 40,000/- रुपये उधार लिए थे। निचली अदालतों ने लेन-देन की प्रकृति को ऋण नहीं माना है, जिसे इस न्यायालय ने भी विधि के मूल प्रश्न (1) का उत्तर देते हुए अनुमोदित किया है; लेकिन यह वर्तमान प्रश्न के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक नहीं है। सिद्धांत, एक पक्ष के बारे में जो लिखित दस्तावेज पर भरोसा नहीं करता है, लेकिन कहता है कि उसमें निहित लेनदेन का इरादा व्यक्त शब्दों से पूरी तरह से अलग था, यह दिखाने के लिए स्वतंत्र है कि पैरोल या बाह्य साक्ष्य द्वारा, गंगाबाई के मामले में सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति द्वारा अलग इरादा घोषित किया गया था। (पैरा 1 से 69)

बी. यहाँ प्रश्न से संबंधित तथ्य यह है कि प्रतिवादी का आचरण वादी के साथ और न्यायालय के समक्ष भी निष्पक्ष नहीं रहा है। उसने जानबूझकर अपनी दलीलों में यह तर्क दिया कि उसने केवल 40,000 रुपये उधार लिए थे, और वादी के इस तर्क को नकार दिया कि उसने प्रतिवादी को 60,000 रुपये का भुगतान किया था। बाद में, अपनी गवाही में, प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि

उसने वादी से 60,000 रुपये की राशि तब तक प्राप्त की थी जब तक उसने पहला वाद-समझौता नहीं किया। यह भी प्रासंगिक आचरण है क्योंकि यह दर्शाता है कि प्रतिवादी लेन-देन के संबंध में वादी से प्राप्त धनराशि को गलत तरीके से बताकर अनुबंध के तहत अपने दायित्वों से बचने की कोशिश कर रहा था। आक्षेपित निर्णयों को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इन सभी तथ्यों को निचली अदालतों ने विशिष्ट निष्पादन प्रदान करते समय ध्यान में रखा है, हालाँकि उन्होंने उस विवेकाधिकार के प्रयोग के अपने कारण नहीं लिखे होंगे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, न्यायालय के लिए यह हमेशा वांछनीय हो सकता है कि वह कारण बताए कि विशिष्ट निष्पादन क्यों प्रदान किया गया क्योंकि विवेकाधिकार का प्रयोग अपीलीय न्यायालय द्वारा जाँच के अधीन है, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। कारण बताना अनिवार्य नहीं है, चाहे वह कितना भी वांछनीय क्यों न हो, क्योंकि यदि अवर न्यायालयों द्वारा विचार किए गए साक्ष्य और अभिलेखों से, न्यायालय द्वारा जिस तरह से विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है, उसके लिए प्रासंगिक कारक मौजूद हैं, तो केवल इस आधार पर डिफ्री को अमान्य ठहराना कि कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है, किसी ठोस बात से ज़्यादा एक औपचारिकता होगी। (पैरा 66, 67)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. महेंद्र सिंह बनाम रमेश सिंह



2. राजेंद्र सिंह बनाम चंद्र पाल

3. के. लक्ष्मणन बनाम थेक्कयिल पद्मिनी और अन्य

4. मंगला वामन करंदीकर बनाम प्रकाश दामोदर रानाडे

5. गंगाबाई बनाम छब्बूबाई (1982) 1 एससीसी 4 : एआईआर 1982 एससी 20

6. ईश्वर दास जैन बनाम सोहन लाल (2000) 1 एससीसी 434: एआईआर 2000 एससी 426

7. वी. अनंत राजू और अन्य बनाम टीएम नरसिम्हन

8. रूप कुमार बनाम मोहन थेदानी गुरदयाल सिंह और अन्य बनाम राज कुमार अनेजा एवं अन्य

9. मधुकर निवृत्ति जगताप और अन्य बनाम प्रमिलाबाई चंदूलाल परांडेकर (मृत) एलआर के माध्यम से और अन्य, विमल चंद घेवरचंद जैन एवं अन्य बनाम रमाकांत एकनाथ जादू

10. प्लासीडो फ्रांसिस्को पिंटो बनाम जोस फ्रांसिस्को पिंटो

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

यह अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमे से उत्पन्न प्रतिवादी की अपील है।

2. रामजी लाल ने सिविल जज (अब सिविल जज, सीनियर डिवीजन), आगरा की अदालत में काशी राम के खिलाफ मुकदमा संख्या 538/1986 दायर किया, जिसमें 06.07.1984 के विक्रय समझौते और 18.06.1985 के विक्रय समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री की मांग की गई, साथ ही मुकदमे की विषय वस्तु, संपत्ति का कब्जा अदालत द्वारा निर्धारित समय के भीतर देने का निर्देश दिया गया; और चूक होने पर, अदालत की एजेंसी के माध्यम से डिक्री का पालन करने का निर्देश दिया गया। मुकदमे की लागत के अलावा, 10,000/- रुपये प्रति वर्ष की दर से वाद कालीन और भविष्य के मध्य लाभ के अधिनिर्णय के लिए एक और डिक्री का दावा किया गया।

3. वादी, रामजी लाल ने इस आशय का मामला दायर किया कि वादी और प्रतिवादी काशी राम ने कृषि भूखंड संख्या 306, जिसका माप 5 बीघा 15 बिस्वा और 15 बिसवांसी है और जो प्रतिवादी के स्वामित्व में है और ग्राम थेरई, परगना फतेहाबाद, जिला आगरा में स्थित है, की बिक्री के लिए सौदा किया। प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में उक्त भूमि के भूखंड को कुल 65,000/- रुपये के विक्रय मूल्य पर बेचने पर सहमति व्यक्त की। वादी के अनुसार, प्रतिवादी द्वारा वादी के पक्ष में दिनांक 06.07.1984 को विक्रय के लिए पंजीकृत समझौता निष्पादित किया गया था। पार्टियों के बीच निष्पादित दिनांक 06.07.1984 को विक्रय के लिए समझौता, सब-रजिस्ट्रार, तहसील फतेहाबाद, जिला आगरा को पंजीकरण के लिए 06.07.1984 को प्रस्तुत

किया गया था। उपर्युक्त करार, जिसे आगे चलकर 'प्रथम वाद करार' कहा जाएगा, में पक्षों के बीच वे सभी शर्तें शामिल थीं, जिनके आधार पर प्रतिवादी ने अपनी कृषि भूमि, जो ऊपर वर्णित है, वादी के पक्ष में बेचने का वचन दिया था। वह भूमि, जिसके विक्रय के लिए सहमति हुई और तथा जिसका ऊपर वर्णन किया गया है, आगे चलकर 'वाद संपत्ति' कहलाएगी।

4. एकमात्र प्रतिवादी-अपीलकर्ता काशी राम की इस अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उनके उत्तराधिकारियों और एल.आर. को अपील में प्रतिवादी-अपीलकर्ता संख्या 1/1, 1/2, 1/3 और 1/4 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। मृतक-प्रतिवादी, काशी राम, जिसका प्रतिनिधित्व अब उसके उत्तराधिकारियों और एल.आर. द्वारा किया जाता है, आगे चलकर 'प्रतिवादी' कहलाएगा। एकमात्र वादी-प्रतिवादी रामजी लाल को आगे चलकर 'वादी' कहा जाएगा।

5. वादी का मामला यह है कि प्रतिवादी ने उससे सहमत बिक्री प्रतिफल के हिस्से के रूप में 60,000/- रुपये की राशि प्राप्त की और आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 230-ए के तहत आयकर प्रमाणपत्र प्राप्त करने के बाद, पहले वाद समझौते के एक वर्ष के भीतर पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने का वचन दिया। प्रतिवादी ने अनुबंध के अपने हिस्से को निष्पादित करने के लिए समय अवधि के विस्तार का अनुरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप 18.06.1985 को एक अन्य पंजीकृत समझौते का निष्पादन हुआ, जिसने

पहले वाद समझौते के तहत दायित्वों के प्रदर्शन के लिए समय अवधि को एक वर्ष यानी 18.06.1986 तक बढ़ा दिया। 18.06.1985 की तारीख वाले पंजीकृत विक्रय समझौते को इसके बाद 'दूसरा वाद समझौता' कहा जाएगा, और पहले और दूसरे वाद समझौतों को, जहाँ कहीं भी एक साथ संदर्भित किया जाता है, 'वाद समझौते' कहा जाएगा। वादी का कहना है कि उसने प्रतिवादी से मुकदमे के समझौतों के तहत विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा था, लेकिन प्रतिवादी ने किसी न किसी बहाने से अपने दायित्व का निर्वहन करने से परहेज किया।

6. वादी ने 29 मई, 1986 को एक पंजीकृत नोटिस जारी किया, जिसमें प्रतिवादी को 12.06.1986 को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कहा गया। प्रतिवादी वादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए उक्त तिथि को तहसील फतेहाबाद, जिला आगरा में सब-रजिस्ट्रार कार्यालय में नहीं आया। इसके बजाय, उसने गलत तथ्यों का उल्लेख करते हुए एक उत्तर भेजा। वादी ने दलील दी कि उसके पास वर्तमान मुकदमा दायर करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। फिर वादी ने दलील दी कि वह हमेशा अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक रहा है और अभी भी मुकदमे के समझौतों के तहत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक है। वादी द्वारा यह भी दलील दी गई है कि प्रतिवादी उसे वादग्रस्त संपत्ति के उपयोग और कब्जे के लिए 10,000 रुपये प्रति वर्ष की दर से हर्जाना देने के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि प्रतिवादी अनुबंध के

अनुसार बिक्री विलेख निष्पादित करने और वादग्रस्त संपत्ति का कब्जा वादी को देने में विफल रहा, जिससे वादी उक्त संपत्ति के लाभकारी उपयोग से वंचित हो गया, जिससे उसे आय हो सकती थी। प्रतिवादी द्वारा किए गए अनुबंध के उल्लंघन के कारण वादी का पैसा अवरुद्ध रह गया है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर 10.07.1986 को वाद दायर किया गया, जिससे यह अपील उत्पन्न हुई।

7. 15.05.1992 को प्रतिवादी की ओर से एक लिखित बयान दायर किया गया था। वाद में लगाए गए आरोपों को आम तौर पर नकार दिया गया, हालांकि वाद के समझौतों के निष्पादन के तथ्य को नहीं नकार दिया गया। यह दलील दी गई कि वाद समझौते वादी को वाद संपत्ति हस्तांतरित करने के इरादे से निष्पादित नहीं किए गए थे, बल्कि 40,000 रुपये की राशि के लिए सुरक्षा के रूप में थे, जो प्रतिवादी ने अपने लेनदार ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए वादी से उधार लिया था, जिनके पास भी प्रतिवादी द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित एक विक्रय समझौता था, वह भी उधार दिए गए धन को सुरक्षित करने के उद्देश्य से। अपने बचाव के एक और विस्तार में, प्रतिवादी ने दलील दी है कि उसने 14 सितंबर, 1979 को या उसके आसपास सुजान सिंह के बेटे सौदान सिंह से 20,000 रुपये की राशि उधार ली थी और संपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में, 14.09.1979 की तारीख को एक विक्रय समझौता निष्पादित किया, जिसमें 29,000 रुपये की कुल बिक्री प्रतिफल के लिए सौदान सिंह के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति हस्तांतरित करने का वचन दिया गया था।

8. प्रतिवादी का मामला यह था कि वह ऋण की तिथि से दो वर्ष की समाप्ति तक सौदान सिंह से उधार ली गई धनराशि में से बहुत छोटी राशि का भुगतान कर सकता था। इसलिए, प्रतिवादी ने सौदान सिंह को भुगतान करने के लिए ज्ञान सिंह पुत्र बेटाल सिंह से उधार लिया। ज्ञान सिंह से उधार ली गई राशि को सुरक्षित करने के लिए, प्रतिवादी ने उसके पक्ष में दिनांक 23.09.1982 को एक पंजीकृत विक्रय करार निष्पादित किया, जिसमें 45,000/- रुपये की राशि में वाद संपत्ति हस्तांतरित करने का वचन दिया गया, जिसमें प्रतिवादी द्वारा ज्ञान सिंह से 40,000/- रुपये की राशि बयाना में प्राप्त करने की स्वीकृति दी गई। यह लेन-देन प्रतिवादी द्वारा पिछले लेनदार को भुगतान करने के लिए ज्ञान सिंह से लिए गए ऋण को सुरक्षित करने के लिए एक वित्तीय व्यवस्था थी। प्रतिवादी द्वारा यह दलील दी गई है कि ज्ञान सिंह ने उस धन की मांग की जो उसने उधार दिया था। ज्ञान सिंह को चुकाने के लिए प्रतिवादी ने वादी से, जो प्रतिवादी के बड़े भाई का बेटा है, 40,000 रुपये उधार लिए। यह 06.07.1984 को किया गया था। प्रतिवादी ने 06.07.1984 को ज्ञान सिंह का कर्ज चुका दिया, जिसने प्रतिवादी द्वारा उसके पक्ष में पहले निष्पादित किए गए बिक्री समझौते को रद्द करने के लिए एक पंजीकृत उपकरण निष्पादित किया। रद्दीकरण का यह उपकरण ज्ञान सिंह द्वारा 06.07.1984 को निष्पादित किया गया था। 06.07.1984 को अपने भतीजे (वादी) द्वारा 40,000 रुपये के ऋण को सुरक्षित करने के लिए प्रतिवादी ने उसके साथ पहला वाद समझौता किया, जहां वाद समझौते का उद्देश्य एक संपार्श्विक सुरक्षा

से अधिक कुछ नहीं था। यह दलील दी गई है कि प्रतिवादी द्वारा वादी के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति को बेचने का कभी कोई इरादा नहीं था। प्रथम वाद समझौते का उद्देश्य प्रतिवादी द्वारा ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए उधार ली गई धनराशि की वापसी सुनिश्चित करना था।

9. प्रतिवादी ने आगे दलील दी है कि चूंकि वह एक वर्ष की निर्धारित अवधि के भीतर वादी को 40,000/- रुपये का ऋण नहीं चुका सका, इसलिए उसने एक और बिक्री समझौता किया, दूसरा वाद समझौता, जो कि संपार्श्विक सुरक्षा के रूप में था, जिसमें एक वर्ष की अवधि बढ़ा दी गई। दूसरा वाद समझौता, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, 18.06.1985 को निष्पादित किया गया था।

10. प्रतिवादी का यह भी तर्क है कि दूसरे वाद समझौते के अनुसार दायित्व के नवीकरण के समय, यानी 18.06.1985 को, प्रतिवादी ने वादी को नकद में 15,000/- रुपये और 100 मन गेहूं का भुगतान किया, जिसे प्रतिवादी के अनुसार, ऋण के विरुद्ध सेट ऑफ किया जाना है।

11. प्रतिवादी का कहना है कि वर्तमान लेन-देन की प्रकृति को समझने के लिए उसके और तीसरे पक्ष के बीच पिछले लेन-देन को ध्यान में रखना होगा, जहाँ इन पक्षों से लिए गए ऋणों की अदायगी को सुरक्षित करने और फिर चुकाने के लिए समझौते किए गए थे। लेन-देन की वास्तविक प्रकृति को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है जब ऋणों की अदायगी के लिए सुरक्षा के रूप में काम करने वाली सूट की

संपत्ति के बारे में तीसरे पक्ष के साथ पहले के लेन-देन को ध्यान में रखा जाता है, यहाँ पक्षों के बीच रक्त संबंध को ध्यान में रखा जाता है। सूट के समझौतों में निहित वर्तमान लेन-देन वादी द्वारा उधार दिए गए धन की अदायगी के लिए एक सुरक्षा से अधिक कुछ नहीं है। सूट के समझौतों ने प्रतिवादी को कभी भी बाध्य नहीं किया, जहाँ तक सूट की संपत्ति को उसमें दी गई शर्तों पर हस्तांतरित करने के उसके दायित्व का संबंध है। यह भी प्रतिवादी का मामला है कि कोई भी संविदात्मक दायित्व प्रतिवादी को सूट की संपत्ति को वादी को हस्तांतरित करने के लिए बाध्य नहीं करता है।

12. प्रतिवादी का यह भी मामला है कि वर्ष 1984 में, कृषि भूमि की कीमत, जहाँ वाद वाली संपत्ति स्थित है, 30,000-35,000/- रुपये प्रति बीघा से कम नहीं थी। इसलिए, वाद वाली संपत्ति का मूल्य 1,75,000/- रुपये से 2,00,000/- रुपये के बीच होगा, जिसे प्रतिवादी से मामूली कीमत पर छोड़ने की उम्मीद नहीं की जा सकती। प्रतिवादी ने आगे दलील दी है कि वाद वाली संपत्ति के अलावा, उसके पास कोई अन्य कृषि भूमि नहीं है। यदि वाद वाली संपत्ति उसके हाथ से निकल जाती है, तो इससे उसे बहुत कठिनाई होगी क्योंकि प्रतिवादी के पास आय का कोई अन्य स्रोत नहीं है, सिवाय उस आय के जो उसे उक्त संपत्ति के दोहन से प्राप्त होती है। यदि विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री पारित की जाती है, तो इससे प्रतिवादी को अप्रत्याशित कठिनाई होगी और इसलिए, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग वादी के पक्ष में नहीं किया जाना चाहिए। प्रतिवादी को प्रति वर्ष

10,000/- रुपये या किसी अन्य दर पर उपयोग और कब्जे के लिए हर्जाना देने की देयता से इनकार किया गया।

14. 20.10.1997 को एक अतिरिक्त मुद्दा, जिसे मुद्दा संख्या 8 के रूप में गिना गया, तैयार किया गया, जो इस प्रकार है:

13. पक्षों की दलीलों पर, 24.01.1995 को निम्नलिखित मुद्दे उठाए गए:

“(1) क्या प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में 06.07.1984 को बिक्री के लिए समझौता किया था?

(2) क्या 06.07.1984 के बिक्री के समझौते को 18.06.1985 के समझौते के माध्यम से बढ़ाया गया था?

(3) क्या वादी हमेशा समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था?

(4) क्या प्रतिवादी वाद के पैराग्राफ संख्या 7 में आरोपित 10,000/- रुपये प्रति वर्ष की क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है?

(5) क्या वादी ने प्रतिवादी से बकाया ऋण की वसूली के लिए 6433-20 रुपए का भुगतान किया, जैसा कि प्रतिवाद के पैराग्राफ संख्या 4, 48-जीए में आरोपित किया गया है?

(6) क्या कथित बिक्री समझौता एक ऋण लेनदेन था जैसा कि डब्ल्यूएस में आरोपित किया गया है?

(7) वादी किस राहत का हकदार है?

“(8) क्या प्रतिवादी ने 18.06.1985 को नवीनीकरण के समय वादी को 15,000/- रुपये नकद और 100 मन गेहूं का भुगतान किया था?”

नोट: ऊपर दिए गए मुद्दे, ट्रायल कोर्ट के आदेश-पत्र से पुनः प्रस्तुत किए गए हैं। ट्रायल कोर्ट द्वारा तैयार किए गए मुद्दे अंग्रेजी भाषा में हैं। नीचे के दो न्यायालयों ने अपने निर्णयों में तैयार किए गए मुद्दों का हिंदी अनुवाद किया है, जिसमें कुछ महत्वहीन अंतर हैं।

15. वादी ने अपने दस्तावेजी साक्ष्य में प्रथम वाद समझौता पत्र संख्या 22-का, द्वितीय वाद समझौता पत्र संख्या 21-का, सब-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थिति के लिए आवेदन पत्र संख्या 23-ग, नोटिस की प्रति पत्र संख्या 24-ग तथा प्रत्युत्तर नोटिस पत्र संख्या 25-ग दाखिल किया। वादी ने अपने मामले के समर्थन में स्वयं को पीडब्लू-1, शिव स्वरूप को पीडब्लू-2 तथा हेत सिंह को पीडब्लू-3 के रूप में परीक्षित किया।

16. प्रतिवादी ने अपने मामले के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया, जिसमें सौदान सिंह के पक्ष में निष्पादित विक्रय समझौता पत्र संख्या 29-ग, ज्ञान सिंह के पक्ष में दिनांक

23.09.1982 का विक्रय समझौता पत्र संख्या 30-ग तथा ज्ञान सिंह द्वारा काशी राम के पक्ष में दिनांक 06.07.1984 का निष्पादित निरस्तीकरण प्रलेख पत्र संख्या 90-ग दाखिल किया। अपने मामले के समर्थन में, प्रतिवादी ने स्वयं को डी.डब्लू.-1, छीतरिया को डी.डब्लू.-2 तथा भीमसेन को डी.डब्लू.-3 के रूप में परीक्षित किया।

17. मुकदमे की सुनवाई के बाद, विचारण न्यायालय ने मुद्दा संख्या 1, 2 तथा 6 को एक साथ तय किया, जिसमें मुद्दा संख्या 1 तथा 2 का उत्तर वादी के पक्ष में तथा मुद्दा संख्या 6 का उत्तर प्रतिवादी के विरुद्ध दिया गया। मुद्दा संख्या 3 का उत्तर वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी के विरुद्ध दिया गया। मुद्दा संख्या 4 का उत्तर वादी के विरुद्ध दिया गया। मुद्दा संख्या 5 का निर्णय विचारण न्यायालय ने यह कहते हुए करने से मना कर दिया कि यह पक्षकारों की दलीलों पर आधारित नहीं है तथा प्रतिवादी को इसका उत्तर देने का कोई अवसर नहीं मिला। इसे एक विविध आवेदन के आधार पर तैयार किया गया था। मुद्दा संख्या 7 का उत्तर वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादी के विरुद्ध दिया गया, जिसमें वादी को विशिष्ट निष्पादन की राहत का हकदार माना गया। मुद्दा संख्या 8 का निर्णय प्रतिवादी के विरुद्ध दिया गया।

18. ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 29.07.1985 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत के लिए मुकदमा चलाया, लेकिन इसे मध्यवर्ती लाभ के लिए खारिज कर दिया।

19. प्रतिवादी ने डिक्री के विरुद्ध जिला न्यायाधीश, आगरा में अपील की, जहां इसे सिविल अपील संख्या 294/1998 के रूप में पंजीकृत किया गया। असाइनमेंट पर अपील 10.08.1999 को 8वें अपर जिला न्यायाधीश, आगरा के समक्ष निर्धारण के लिए आई। निचली अपीलीय अदालत ने लागत के साथ अपील को खारिज कर दिया और ट्रायल कोर्ट की डिक्री की पुष्टि की।

20. व्यथित होकर, प्रतिवादी द्वारा यह अपील दायर की गई है।

21. अपील को 04.05.2001 को निम्नलिखित विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया:

*क्या निचली अदालतों ने काशी राम द्वारा निष्पादित दिनांक 14.9.1979 और 23.9.1972 (23.09.1982) के बिक्री समझौतों पर विचार न करके विधिक रूप से गलती की है और इस प्रकार इस प्रश्न पर निष्कर्ष कि क्या लेनदेन एक ऋण था, निचली अदालतों द्वारा दर्ज किया गया है, गलत है?*

22. जब अपील 22.09.2021 को इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आई, तो

विधि का पहला महत्वपूर्ण प्रश्न फिर से लिखा गया, जबकि दूसरा प्रश्न जोड़ा गया। इसलिए, अपील पर निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर सुनवाई की गई, जिनमें से पहला प्रश्न 04.05.2001 को तैयार किए गए प्रश्न का पुनःवाक्यांश मात्र था:

(1) क्या मुकदमे का विषय वस्तु समझौता, सार रूप में, एक लेनदेन को शामिल करता है जो एक ऋण है जिसमें समझौता सुरक्षा के रूप में कार्य करता है?

(2) क्या न्यायालय के लिए यह अनिवार्य है कि वह कारण बताए कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 के अंतर्गत विशिष्ट पालन प्रदान करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग क्यों किया गया है?

23. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.सी. जैन और वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री कुणाल शाह को सुना।

24. विधि के पहले महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपने तर्कों को आगे बढ़ाते हुए, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.सी. जैन ने इस न्यायालय का ध्यान कुछ परिस्थितियों की ओर आकर्षित किया है, जो उनके अनुसार इस अपरिहार्य

निष्कर्ष पर ले जाती हैं कि वाद समझौते सुरक्षा के उद्देश्य से निष्पादित किए गए थे और प्रतिवादी को वादी के पक्ष में स्पष्ट शर्तों के अनुसार बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए बाध्य नहीं करते थे। इन परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए, श्री जैन ने बताया कि बिक्री के लिए पहले के दो समझौते, पहला सौदान सिंह के पक्ष में और दूसरा ज्ञान सिंह के पक्ष में, जो दोनों ही बयाना की वापसी पर पारस्परिक रूप से रद्द कर दिए गए थे, यह दर्शाते हैं कि प्रतिवादी ने वाद समझौतों के निष्पादन से ठीक पहले दो अन्य व्यक्तियों से धन उधार लिया था और वाद संपत्ति के संबंध में बिक्री के लिए एक समझौता निष्पादित करके इसकी वापसी सुनिश्चित की थी। श्री जैन ने दलील दी है कि पहले के दो लेन-देन प्रतिवादी की प्रवृत्ति या मन को दर्शाते हैं, जो पैसे उधार लेने, बेचने के समझौते के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति पर सुरक्षा बनाने के बारे में था, लेकिन इसे स्थानांतरित करने की कभी भी दुश्मनी नहीं थी।

25. श्री जैन के अनुसार, उपरोक्त परिस्थिति में यह तथ्य भी शामिल है कि जिस दिन वादी के पक्ष में पहला वाद समझौता निष्पादित किया गया था, अर्थात् 06.07.1984 को, प्रतिवादी और पिछले ऋणदाता ज्ञान सिंह के बीच एक निरस्तीकरण का दस्तावेज निष्पादित किया गया था, जिसमें उधार दी गई धनराशि प्राप्त होने पर वादी के पक्ष में विक्रय समझौते को समाप्त कर दिया गया था। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर भी जोर दिया कि बिक्री प्रतिफल के उस हिस्से के आंकड़े में समानता है, जिसे पहले वाद समझौते

में सब-रजिस्ट्रार के समक्ष प्राप्त किया गया था, और जिसका उल्लेख ज्ञान सिंह द्वारा उसी दिन निष्पादित किए गए निरस्तीकरण के दस्तावेज में किया गया था। दोनों दस्तावेजों में प्रतिफल के रूप में 40,000/- रुपये की राशि का उल्लेख है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य के आधार पर आग्रह किया कि प्रतिवादी द्वारा वादी से प्राप्त 40,000/- रुपये की राशि, जिसे सब-रजिस्ट्रार के समक्ष 60,000/- रुपये के बयाने के हिस्से के रूप में दिखाया गया था, का उपयोग पिछले लेनदार ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए किया गया था, ताकि बाद के पक्ष में समझौते का निर्वहन सुनिश्चित किया जा सके, इसलिए वाद समझौतों को ऋण की चुकौती सुनिश्चित करने के लिए लेनदेन के रूप में माना जाना चाहिए।

26. श्री जैन ने यह भी बताया कि दोनों दस्तावेजों को एक ही व्यक्ति शिव स्वरूप द्वारा लिखा गया था, जिसे दोनों दस्तावेजों के निष्पादन को साबित करने के लिए पीडब्लू-2 के रूप में परीक्षित किया गया है। यह विशेष रूप से जोर दिया जाता है कि डीडब्लू-2, छीतरिया पहले वाद समझौते और रद्दीकरण के साधन का एक सामान्य सीमांत गवाह है। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि पहला वाद समझौता वादी द्वारा प्रतिवादी को दिए गए ऋण के लिए सुरक्षा के रूप में काम करने के लिए निष्पादित किया गया था और वाद संपत्ति को बेचने के लिए कोई दायित्व बनाने के लिए नहीं। इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि वादी ने, साक्षी-पेटी में पीडब्लू-1 के रूप में गवाही देते हुए, प्रतिवादी द्वारा तीसरे पक्ष के पक्ष में निष्पादित बिक्री के पिछले समझौतों

और उनके रद्द होने से इनकार नहीं किया, लेकिन कहा कि उन्हें इन लेनदेन के बारे में कुछ भी पता नहीं था।

27. अगली परिस्थिति, जिस पर श्री जैन ने इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, वह यह है कि 65,000/- रुपये के सहमत बिक्री प्रतिफल में से, पहले वाद समझौते में 06.07.1984 को 60,000/- रुपये के भुगतान को स्वीकार किया गया है, जिससे 5000/- रुपये का अवशेष रह गया है। तत्काल बिक्री से बचने का संकेतित कारण आयकर अधिनियम की धारा 230-ए के तहत आयकर अधिकारियों से अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता है, जो उस कानून के प्रावधानों के अनुसार कृषि भूमि की बिक्री के मामले में आवश्यक नहीं है। इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि दूसरा कारण कि 5000/- रुपये की शेष राशि का इंतजाम करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता थी, अत्यधिक असंभव है। श्री जैन के अनुसार, ये परिस्थितियाँ दर्शाती हैं कि पार्टियों के विचार में बिक्री का कोई वास्तविक लेन-देन नहीं था। दूसरे मुकदमे के समझौते के अनुसार एक वर्ष के लिए समय बढ़ाने में विचार के तौर पर कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है।

28. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान डी.डब्लू.-2, छीतरिया और डी.डब्लू.-3, भीमसेन की गवाही की ओर भी आकर्षित किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि प्रतिवादी ने दूसरे मुकदमे के समझौते के निष्पादन के समय वादी को 15,000/- रुपये के अलावा 100 मन गेहूं दिया था। विद्वान



अधिवक्ता ने यह भी बताया है कि वादी ने अपने जिरह के पैराग्राफ संख्या 8 में अपनी गवाही में प्रतिवादी द्वारा लिए गए पूर्व ऋणों के बारे में कहा है कि उसे पहले के लेन-देन के बारे में पता नहीं था। पी.डब्लू.-3 के बारे में, विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि इस गवाह पर निचली अपीलीय अदालत ने वादी के मामले को स्वीकार करने के लिए स्टार गवाह के रूप में भरोसा किया है, जिसकी गवाही को अन्य गवाहों के मुकाबले स्वीकार किया गया है। इस साक्षी के बारे में यह बताया गया है कि उसने कहा है कि वह सौदान सिंह और ज्ञान सिंह के साथ पिछले समझौतों के बारे में नहीं जानता था और यह भी नहीं जानता था कि उसी लेखक शिव स्वरूप गुप्ता द्वारा लिखे गए पहले वाद समझौते के दिन ही रद्द करने का कोई दस्तावेज निष्पादित किया गया था या नहीं।

29. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर भी जोर दिया गया है कि वादी के नोटिस के जवाब में, जिसमें प्रतिवादी को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कहा गया था, प्रतिवादी ने विशेष रूप से इस बात से इनकार किया कि पहला वाद समझौता वाद संपत्ति की बिक्री के लिए कोई दायित्व बनाने के लिए निष्पादित किया गया था और कहा कि इसका उद्देश्य अग्रिम ऋण के लिए सुरक्षा के रूप में काम करना था। वादी ने आगे पत्राचार करके इस उत्तर का कभी खंडन नहीं किया। प्रतिवादी के अनुसार, वाद के पैराग्राफ संख्या 5 में, वादी के नोटिस के जवाब में दिए गए प्रतिवादी के उत्तर में दावे का विशेष रूप से खंडन नहीं किया गया, सिवाय प्रतिवादी के उत्तर को झूठा

करार देने के। इसी प्रकार, अपने मुख्य परीक्षण के पैराग्राफ संख्या 7 में वादी ने लेन-देन के ऋण होने के आरोपों से इनकार नहीं किया, बल्कि कहा कि प्रतिवादी ने उसके नोटिस का गलत उत्तर दिया।

30. निचली अपीलीय अदालत के फैसले की इस आधार पर आलोचना की गई है कि निचली अपीलीय अदालत ने हेत सिंह, पी.डब्लू.-3 की गवाही को स्वीकार कर लिया है कि वाद के समझौतों में वाद की संपत्ति की बिक्री के लिए लेन-देन शामिल है न कि ऋण सुरक्षित करने के लिए। इस गवाह की गवाही को इस तथ्य के बारे में भी स्वीकार किया गया है कि इरादा वाद की संपत्ति को परिवार के पास बनाए रखना और नीलामी में किसी अजनबी को खोने से बचाना था। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त निष्कर्ष की स्पष्ट रूप से अवैधानिक रूप से आलोचना की है, क्योंकि उनके अनुसार निचली अदालतों ने डी.डब्लू.-2 और डी.डब्लू.-3 की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं माना या दर्ज नहीं किया, जिनमें से दोनों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह लेन-देन ऋण सुरक्षित करने के लिए किया गया था। इस मामले में निचली अदालतों के निष्कर्षों की भी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर आलोचना की है कि जिस समय वाद समझौते निष्पादित किए गए थे, उस समय किसी का भी यह मामला नहीं था कि भूमि किसी प्रकार के संकट या नीलामी के खतरे में थी। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि जब दस्तावेज के वास्तविक चरित्र पर सवाल उठाया जाता है, तो अनुबंध से बाहर के साक्ष्य पर गौर किया

जा सकता है। उक्त दलील के समर्थन में, श्री जैन ने गंगाबाई बनाम छब्बूबाई<sup>1</sup>, विमल चंद घेवरचंद जैन और अन्य बनाम रमाकांत एकनाथ जादु<sup>2</sup>, और प्लासिडो फ्रांसिस्को पिंटो बनाम जोस फ्रांसिस्को पिंटो<sup>3</sup> में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

31. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कुणाल शाह ने दलील दी कि सिद्धांत रूप में, हालांकि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां परिस्थितियों के आधार पर बिक्री के लिए समझौते की प्रकृति के बारे में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक ऐसे लेनदेन को दर्शाता है जो दिखने वाले से अलग है, लेकिन उस तरह के अनुमान के लिए, एक ऐसे बाहरी सबूत द्वारा समर्थित स्पष्ट तथ्य होने चाहिए जो अनुबंध के स्पष्ट अर्थ को दूर कर दें। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को पक्षकारों की मौखिक और दस्तावेजी दलीलों तथा साक्ष्यों के साथ-साथ निचली अदालतों के निष्कर्षों के आधार पर यह दिखाया कि वास्तव में ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है जो यह साबित करती हो कि लेन-देन की वास्तविक प्रकृति वाद-समझौते में बताई गई प्रकृति से भिन्न है। इस सिद्धांत के समर्थन में कि यह दिखाने के लिए कि बिक्री के लिए एक समझौते में शामिल अनुबंध, जो कि वह प्रतीत होता है उससे अलग है, परिस्थितियों को बहुत स्पष्ट होना चाहिए और एक अपरिहार्य चरित्र के बाहरी साक्ष्य द्वारा समर्थित होना चाहिए, श्री शाह ने गुरदयाल सिंह और अन्य बनाम राज कुमार अनेजा और अन्य<sup>4</sup> और मधुकर निवृत्ति जगताप और अन्य बनाम प्रमिलाबाई चंदलाल परांदेकर (मृत)

एलआर और अन्य<sup>5</sup> के माध्यम से सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस मामले में प्रतिवादी की दलीलें और सबूत अधूरे, विरोधाभासी और अस्पष्ट हैं। यह उन मामलों में से एक नहीं है जहाँ इस न्यायालय को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 18726 की धारा 91 और 92 के अपवाद के मामले के रूप में समझौते के पीछे देखने की ज़रूरत है ताकि पार्टियों द्वारा किए जाने वाले लेनदेन की वास्तविक प्रकृति का पता लगाया जा सके। यह पक्षकारों की दलीलों और साक्ष्यों के संदर्भ में है, जिसका उल्लेख इस निर्णय के दौरान किया जाएगा, कि श्री शाह ने प्रस्तुत किया है कि ऐसी कोई विकृति नहीं है जिसके कारण इस न्यायालय को मुकदमे के समझौतों के स्पष्ट स्वरूप के अनुसार, दो निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को बाधित करने की आवश्यकता हो।

32. इस न्यायालय ने कानून के सारवान प्रश्न (1) पर दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया है। एक नियम के रूप में, अचल संपत्ति की बिक्री के बारे में एक गंभीर अनुबंध जिसे लिखित और पंजीकृत किया गया है, जिसके निष्पादन और सामग्री पर विवाद नहीं है, उसकी व्याख्या उसके स्पष्ट स्वरूप के अनुसार की जानी चाहिए। अनुबंध की लिखित शर्तों से अलग पक्षकारों का पैरोल साक्ष्य, मौखिक दस्तावेजी साक्ष्य के बहिष्कार के नियम के विरुद्ध है। नियम के अपवादों को साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 के छह प्रावधानों के अलावा अंतिम उल्लिखित अधिनियम की धारा

95, 96, 97, 98, 99 और 100 में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।

33. यह प्रश्न कि क्या किसी दस्तावेज के वास्तविक स्वरूप, जो उसके द्वारा प्रकट रूप से कहे गए से भिन्न आशय को व्यक्त करता है, को न्यायालय द्वारा उसके बारे में दिए गए पैरोल साक्ष्य के संदर्भ में देखा जा सकता है, बार-बार न्यायिक ध्यान का विषय रहा है। यह न्यायिक रूप से स्वीकृत सिद्धांत है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 द्वारा लगाया गया प्रतिबंध तब लागू नहीं होगा जब कोई पक्षकार दस्तावेज की शर्तों पर भरोसा नहीं करता है, लेकिन कहता है कि पक्षों द्वारा प्रकट शर्तों से भिन्न कुछ करने का इरादा था। इस संबंध में, **गंगाबाई (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। सिद्धांत के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए, **गंगाबाई** में तथ्य बहुत प्रासंगिक हैं और इन्हें उनके माननीयों के शब्दों में सबसे अच्छी तरह से संक्षेपित किया जा सकता है। **गंगाबाई** में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 2 में, तथ्यों का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

2. प्रतिवादी ने अमरावती के द्वितीय संयुक्त सिविल न्यायाधीश की अदालत में एक मुकदमा दायर किया जिसमें आरोप लगाया गया कि अमरावती में सर्राफा बाजार के पास स्थित घर उसने 1950 में 4000 रुपये में खरीदा था और

उसके बाद उसने संपत्ति में सुधार कार्य कराया था। पैसे की जरूरत होने के कारण, उसने अपीलकर्ता के साथ 2000 रुपये के ऋण के लिए एक समझौता किया और यह निर्णय लिया गया कि उसे एक ही समय में बिक्री का एक नाममात्र का दस्तावेज और एक किराया नोट निष्पादित करना चाहिए। ये दस्तावेज 7 जनवरी, 1953 को निष्पादित किए गए थे। उसने आरोप लगाया कि दस्तावेजों पर कार्रवाई करने का कभी इरादा नहीं था, और उसके द्वारा भुगतान किया गया किराया वास्तव में ऋण पर 18 प्रतिशत ब्याज का प्रतिनिधित्व करता है। वह पूरे समय घर की संपत्ति पर कब्जा बनाए रही और, ऐसा कहा जाता है कि उसने समय-समय पर मरम्मत भी करवाई। यह कहा गया कि अपीलकर्ता किराए की वसूली के लिए लघु वाद न्यायालय में मुकदमा दायर करके दस्तावेज को बिक्री विलेख के रूप में लागू करने का

प्रयास कर रहा था। चूंकि दो मुकदमों के परिणामस्वरूप डिक्री हो गई थी, इसलिए उसने यह आवश्यक समझा कि वह यह घोषणा करने के लिए वर्तमान वाद दायर करे कि वह घर की संपत्ति की मालिक थी और बनी रहेगी। बचाव में, अपीलकर्ता ने कहा कि बिक्री विलेख एक वास्तविक लेनदेन का प्रतिनिधित्व करता है, और घर की संपत्ति का स्वामित्व अपीलकर्ता को हस्तांतरित हो गया था। यह दलील दी गई कि लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित डिक्री ने प्रतिवादी को यह दलील देने से रोक दिया कि बिक्री विलेख केवल एक नाममात्र का लेनदेन था। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 पर भी भरोसा किया गया।

**34.** एक पक्ष के बारे में सिद्धांत, जो लिखित दस्तावेज पर भरोसा नहीं करता है, लेकिन कहता है कि उसमें निहित लेनदेन का इरादा स्पष्ट शब्दों से पूरी तरह से अलग था, यह दिखाने के लिए स्वतंत्र है कि पैरोल या बाहरी साक्ष्य द्वारा अलग इरादा, **गंगाबाई** में सुप्रीम

कोर्ट के न्यायमूर्तियों द्वारा इस प्रकार घोषित किया गया था:

11. .... यह हमारे लिए स्पष्ट है कि धारा 92 की उपधारा (1) द्वारा लगाया गया प्रतिबंध केवल तभी लागू होता है जब कोई पक्षकार लेनदेन की शर्तों को शामिल करने वाले दस्तावेज पर भरोसा करना चाहता है। उस स्थिति में, कानून घोषित करता है कि लेनदेन की प्रकृति और इरादे को दस्तावेज की शर्तों से ही समझा जाना चाहिए और किसी भी मौखिक समझौते या कथन के साक्ष्य को ऐसे दस्तावेज के पक्षों के बीच इसकी शर्तों का खंडन या संशोधन करने के उद्देश्य से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उपधारा तब लागू नहीं होती जब किसी पक्ष का मामला यह हो कि दस्तावेज में दर्ज लेनदेन का कभी भी पक्षों के बीच कार्रवाई करने का इरादा नहीं था और यह दस्तावेज एक दिखावा है। ऐसा सवाल तब उठता है जब पक्षकार दावा करता है कि

एक अलग लेनदेन था और दस्तावेज़ में जो कुछ भी दर्ज किया गया था उसका कोई परिणाम नहीं था। इस प्रयोजन के लिए मौखिक साक्ष्य यह दिखाने के लिए स्वीकार्य है कि निष्पादित दस्तावेज़ को कभी भी समझौते के रूप में कार्य करने का इरादा नहीं था, लेकिन यह कि दस्तावेज़ में दर्ज नहीं किए गए कुछ अन्य समझौते, पक्षों के बीच दर्ज किए गए थे (त्यागराज मुदलियार बनाम वेदाथन्नी [एआईआर 1936 पीसी 70: 63 आईए 126: 1936 ऑल एलजे 136: 40 कैल डब्ल्यूएन 353])। ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादी को उसकी दलील के समर्थन में मौखिक साक्ष्य पेश करने की अनुमति देने में सही किया था कि 7 जनवरी, 1953 की बिक्री विलेख एक फर्जी दस्तावेज़ था और इस पर कभी कार्रवाई करने का इरादा नहीं था। ....”

**35. विमल चंद घेवरचंद जैन** (उपरोक्त) में स्थापित विधि पर सिद्धांत को रिपोर्ट के

पैराग्राफ संख्या 31 में उनके माननीय न्यायाधीशों की निम्नलिखित टिप्पणियों द्वारा स्वीकार किया गया था:

“31. निस्संदेह, जब किसी दस्तावेज़ के वास्तविक चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है, तो मौखिक साक्ष्य के रूप में बाह्य साक्ष्य स्वीकार्य होता है। (देखें आर. जानकीरमन बनाम राज्य [(2006) 1 एससीसी 697: (2006) 1 एससीसी (क्रि) 442], एससीसी पैरा 24; रूप कुमार बनाम मोहन थेडानी [रूप कुमार बनाम मोहन थेडानी, (2003) 6 एससीसी 595], एससीसी पैरा 19 और एसबीआई बनाम मूला सहकारी साखा कारखाना लिमिटेड [(2006) 6 एससीसी 293], एससीसी पैरा 23 से 32।) इसलिए, हम इस आधार पर आगे बढ़ेंगे कि प्रतिवादी के लिए दस्तावेज़ की प्रकृति के संबंध में मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करना खुला था.....”

36. यही सिद्धांत सुप्रीम कोर्ट ने **गुरदयाल सिंह** (उपरोक्त) में प्रतिपादित किया था, जहां पूर्वी पंजाब शहरी किराया प्रतिबंध अधिनियम, 1949 के तहत बेदखली के लिए वैधानिक

कार्यवाही का विषय पट्टा विलेख, परिसर के कब्जे में पक्षों द्वारा दावा किया गया था कि वास्तव में यह पट्टा नहीं था, बल्कि एक अलग लेनदेन था, जिस पर पक्षों द्वारा कार्यवाई करने का कभी इरादा नहीं था। इस मुद्दे पर कि क्या अधिभोगी, जो मालिक और पट्टेदार गोयल के बीच पट्टा विलेख के पक्षकार नहीं हैं, बल्कि गोयल के उप-पट्टेदार हैं, पट्टे के वास्तविक स्वरूप को उसके स्पष्ट अर्थ के विपरीत दिखाने के हकदार हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने माना था:

“11. यह सच है कि मालिकों और गोयल के बीच निष्पादित पंजीकृत पट्टा विलेख की उपलब्धता के बावजूद, कब्जाधारियों को यह तर्क देने से रोका नहीं गया है कि मालिकों और गोयल के बीच लेन-देन वैसा नहीं था, जैसा पट्टा विलेख को पढ़ने से प्रतीत होता है। लिखित बयानों में जो दलील दी गई है, उसे उठाकर अधिभोगी लीज डीड की शर्तों को मुद्दा बनाने और मौखिक साक्ष्य देने का प्रस्ताव नहीं कर रहे हैं। वे लीज डीड की शर्तों का खंडन करने,

उसमें बदलाव करने, उसमें कुछ जोड़ने या घटाने के उद्देश्य से कोई दलील नहीं दे रहे हैं या मौखिक साक्ष्य नहीं दे रहे हैं। वे लीज डीड के पक्षकार नहीं हैं। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 और 92 लागू नहीं होती हैं। अधिभोगी लीज डीड की बाहरी वैधता पर यह दलील देकर आपत्ति कर रहे हैं कि कागज पर जो लिखा गया है, वह पक्षों का वास्तविक इरादा नहीं है; लीज डीड और उसमें वर्णित लेनदेन एक दिखावा या काल्पनिक लेनदेन था, जिस पर कार्यवाई करने का इरादा नहीं था, बल्कि किराया नियंत्रण कानून के प्रभाव को दूर करने या उससे बचने का इरादा था। ऐसी दलील देना और उसे प्रमाणित करने के लिए सबूत पेश करना जायज़ है। दलील दी जा सकती है, हालांकि इसका

दायित्व ऐसी दलील देने वाले पक्ष के कंधों पर होगा। दायित्व का निर्वहन करने के लिए, प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध हो भी सकते हैं और नहीं भी, तथा परिस्थितियों से निष्कर्ष निकालना जायज होगा। हालाँकि, परिस्थितियों से निकाला जाने वाला निष्कर्ष अपरिहार्य होना चाहिए, न कि केवल अनुमान और अनुमान का विषय होना चाहिए।” (न्यायालय द्वारा जोर)

37. मौखिक साक्ष्य के बहिष्कार के संबंध में नियम का सबसे विस्तृत विवरण और किन परिस्थितियों में प्रतिबंध नहीं लगाया जाएगा, रूप कुमार बनाम मोहन थेडानी में मिलता है, जहां यह देखा गया है:

"17. इसी तरह यह एक सामान्य और सबसे कठोर नियम है कि जहां भी लिखित दस्तावेजों को, कानून की आवश्यकता के अनुसार, या पार्टियों के अनुबंध द्वारा,

सत्य के भंडार और स्मारक के रूप में नियुक्त किया जाता है, किसी भी अन्य साक्ष्य को ऐसे उपकरणों के विकल्प के रूप में या उनका खंडन करने या उन्हें बदलने के लिए उपयोग करने से बाहर रखा जाता है। यह सिद्धांत और नीति दोनों का मामला है। यह सिद्धांत का मामला है क्योंकि ऐसे उपकरण अपनी प्रकृति और उत्पत्ति में, मौखिक साक्ष्य की तुलना में बहुत अधिक विश्वसनीयता के हकदार हैं। यह नीतिगत है क्योंकि अगर उन साधनों, जिन पर पुरुषों के अधिकार निर्भर हैं, को ढीले-ढाले साक्ष्यों के आधार पर चुनौती दी जा सके, तो इससे बहुत नुकसान होगा। (देखें स्टार्की ऑन एविडेंस, पृष्ठ 648.)

18. धारा 92 में विधानमंडल ने अनुबंध के पक्षकारों के बीच अनुबंध में परिवर्तन करने के उद्देश्य से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने पर रोक लगा दी है; लेकिन धारा 91 के तहत ऐसी कोई सीमाएं नहीं लगाई गई हैं। धारा 91 और 92 की न्यायिक स्थिति और धारा 91 से सीमाओं के ऐसे शब्दों को जानबूझकर छोड़े जाने को ध्यान में रखते हुए, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि यहां तक कि यदि कोई तीसरा पक्ष कुछ अन्य लोगों के बीच कोई विशेष अनुबंध स्थापित करना चाहता है, या तो जब ऐसा अनुबंध किसी दस्तावेज के रूप में हो गया हो या जहां कानून के तहत ऐसा अनुबंध लिखित में होना चाहिए, तो वह केवल

ऐसे लेखन को प्रस्तुत करके ही ऐसे अनुबंध को साबित कर सकता है।

19. धारा 91 और 92 केवल तभी लागू होती हैं जब दस्तावेज में पहली नजर में अनुबंध की सभी शर्तें शामिल हों या शामिल होती दिख रही हों। धारा 91 केवल दस्तावेज के सबूत के तरीके से संबंधित है, जबकि धारा 92 द्वारा लगाई गई सीमाएं केवल दस्तावेज के पक्षकारों से संबंधित हैं। यदि धारा 91 के तहत इसकी शर्तों को साबित करने के लिए दस्तावेज पेश किए जाने के बाद, किसी मौखिक समझौते या कथन के साक्ष्य को बाहर करने के उद्देश्य से धारा 92 के प्रावधान लागू होते हैं, ताकि इसके नियमों का खंडन, परिवर्तन, जोड़ने या घटाने के उद्देश्य से



ऐसा किया जा सके।  
धारा 91 और 92  
वास्तव में एक दूसरे  
के पूरक हैं। धारा 91  
धारा 92 की  
सहायता के बिना  
निष्क्रिय होगी, और  
इसी तरह धारा 92  
धारा 91 की  
सहायता के बिना  
निष्क्रिय होगी।

20. हालांकि, दोनों  
धाराएं कुछ भौतिक  
विवरणों में भिन्न हैं।  
धारा 91 सभी  
दस्तावेजों पर लागू  
होती है, चाहे वे  
अधिकारों का  
निस्तारण करने का  
दावा करते हों या  
नहीं, जबकि धारा  
92 उन दस्तावेजों  
पर लागू होती है  
जिन्हें  
निस्ताराणात्मक के  
रूप में वर्णित किया  
जा सकता है। धारा  
91 उन दस्तावेजों  
पर लागू होती है जो  
द्विपक्षीय और  
एकतरफा दोनों हैं,  
धारा 92 के विपरीत  
जिसका आवेदन

केवल द्विपक्षीय  
दस्तावेजों तक ही  
सीमित है। (देखें:  
*बाई हीरा देवी बनाम  
बॉम्बे की  
आधिकारिक असाइनी*  
[एआईआर 1958  
एससी 448]।) ये  
दोनों प्रावधान  
"सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य  
नियम" पर आधारित  
हैं। बेकन के मैक्सिम  
रेगुलेशन 23 में,  
लॉर्ड बेकन ने कहा  
"कानून विशेष  
मामलों को, जो  
उच्चतर महत्व के हैं,  
कथन के मामले के  
साथ नहीं मिलाएगा  
जो कानून में  
निम्नतर महत्व के  
हैं।" यह  
असुविधाजनक होगा  
कि सलाह और  
विचार-विमर्श के बाद  
लिखित रूप में बनाए  
गए मामले, और जो  
अंततः पक्षों के  
समझौते की निश्चित  
सच्चाई को दर्शाते हैं,  
उन्हें पार्टियों के  
कथन द्वारा  
नियंत्रित किया जाना  
चाहिए जिसे फिसलन

भरी स्मृति की अनिश्चित गवाही द्वारा साबित किया जाना चाहिए।

21. बाह्य साक्ष्य के बहिष्कार के आधार हैं: (i) जब कानून उच्चतर साक्ष्य की आवश्यकता करता है, तो निम्नतर साक्ष्य को स्वीकार करना कानून को निरस्त करने के बराबर होगा, और (ii) जब पक्षों ने जानबूझकर अपने समझौते को लिखित रूप में रखा है, तो यह उनके और उनके निजी लोगों के बीच निर्णायक रूप से माना जाता है कि उन्होंने लेखन को अपने इरादों का पूर्ण और अंतिम बयान बनाने का इरादा किया था, और जिसे भविष्य के विवाद, बुरे विश्वास और विश्वासघाती स्मृति की पहुंच से परे रखा जाना चाहिए।

22. इस न्यायालय ने *गंगाबाई बनाम छब्बूबाई* [(1982) 1 एससीसी 4: एआईआर 1982 एससी 20] और *ईश्वर दास जैन बनाम सोहन लाल* [(2000) 1 एससीसी 434: एआईआर 2000 एससी 426] में धारा 92(1) के संदर्भ में माना कि किसी विलेख के पक्षकार को यह तर्क देने की अनुमति है कि विलेख पर कार्रवाई करने का इरादा नहीं था, बल्कि यह केवल एक दिखावटी दस्तावेज़ था। प्रतिबंध केवल तभी उठता है जब दस्तावेज़ पर भरोसा किया जाता है और इसकी शर्तों में बदलाव और विरोधाभास की मांग की जाती है। मौखिक साक्ष्य यह दिखाने के लिए स्वीकार्य है कि निष्पादित दस्तावेज़ का कभी भी एक समझौते के रूप में

संचालन करने का इरादा नहीं था, लेकिन दस्तावेज़ में दर्ज नहीं किए गए किसी अन्य समझौते को पक्षों के बीच दर्ज किया गया था।

23. लेकिन सवाल यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा अपने साक्ष्य में समझौते को फर्जी दस्तावेज बताने के लिए दिए गए कारणों को स्वीकार किया जा सकता है।”

38. रूप कुमार (उपरोक्त) का अनुसरण करते हुए, प्लासीडो फ्रांसिस्को पिंटो (उपरोक्त) में यह माना गया:

“27. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह पता चलता है कि लिखित समझौते का मौखिक साक्ष्य मान्य नहीं है, सिवाय तब जब यह आरोप लगाया गया हो कि दस्तावेज फर्जी लेनदेन है।

28. यह विवाद से परे है कि बिक्री विलेख का पंजीकरण होना आवश्यक है, अर्थात् कानून द्वारा अपेक्षित दस्तावेज को दस्तावेज के रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए। इसलिए, किसी भी मौखिक समझौते या कथन का कोई भी साक्ष्य उसकी शर्तों का खंडन करने, उसमें परिवर्तन करने, जोड़ने या घटाने के उद्देश्य से स्वीकार नहीं किया जाएगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 का प्रावधान (1) जिस पर भरोसा किया गया था, ऐसे तथ्य का प्रमाण है जो किसी भी दस्तावेज को अमान्य कर देगा जैसे कि धोखाधड़ी, धमकी, अवैधता, उचित निष्पादन की कमी, किसी भी अनुबंध पक्ष में क्षमता की कमी, विचार की कमी या विफलता,

या तथ्य या कानून  
में गलती। साक्ष्य  
अधिनियम की धारा  
92 इस प्रकार है:

“92. साक्ष्य या  
मौखिक समझौते का  
बहिष्कार - जब  
किसी ऐसे अनुबंध,  
अनुदान या संपत्ति के  
अन्य निस्तारण, या  
किसी मामले की  
शर्तें, जिसे कानून  
द्वारा दस्तावेज के  
रूप में प्रस्तुत किया  
जाना अपेक्षित है,  
अंतिम खंड के  
अनुसार साबित कर  
दी गई हैं, किसी भी  
मौखिक समझौते या  
कथन का कोई  
साक्ष्य, किसी भी ऐसे  
दस्तावेज के पक्षकारों  
या उनके हित  
प्रतिनिधियों के बीच,  
इसके नियमों का  
खंडन करने,  
परिवर्तन करने,  
जोड़ने या घटाने के  
उद्देश्य से स्वीकार  
नहीं किया जाएगा:

प्रावधान (1)। - कोई  
भी तथ्य साबित

किया जा सकता है  
जो किसी भी  
दस्तावेज को अमान्य  
कर देगा, या जो  
किसी भी व्यक्ति को  
उससे संबंधित किसी  
भी डिब्री या आदेश  
का हकदार बना  
देगा; जैसे धोखाधड़ी,  
धमकी, अवैधता,  
उचित निष्पादन की  
कमी, किसी भी  
अनुबंध पक्ष में  
क्षमता की कमी,  
विचार की कमी या  
विफलता, या तथ्य  
या कानून में गलती।

29. प्रतिवादी बिब्री  
विलेख के निष्पादन  
में धोखाधड़ी साबित  
करने के लिए स्वतंत्र  
थे। हालांकि,  
तथ्यात्मक रूप से,  
प्रतिवादियों ने अपने  
मुकदमे में या  
अपीलकर्ता नंबर 1  
द्वारा दायर मुकदमे  
में लिखित बयान में  
किसी भी धोखाधड़ी  
का आरोप नहीं  
लगाया है। दस्तावेज  
की प्रकृति के बारे में  
दिखावटी अज्ञानता

को धोखाधड़ी का उदाहरण नहीं कहा जा सकता है। धोखाधड़ी के किसी भी दलील या सबूत के अभाव में, प्रतिवादी नंबर 1 लिखित दस्तावेज से बंधा हुआ है, जिस पर उसने अपने और अपनी पत्नी के हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं। ऐसा कोई मौखिक सबूत नहीं है जो धोखाधड़ी, धमकी, अवैधता या विचार की विफलता को साबित कर सके, जिससे प्रतिवादियों को 14.9.1970 के बिक्री विलेख पर विवाद करने के लिए मौखिक सबूत पेश करने की अनुमति मिल सके। इसलिए, श्री मेहता द्वारा संदर्भित निर्णय उनके तर्कों के समर्थन में सहायक नहीं हैं। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, जैसा कि उच्च

न्यायालय ने पुष्टि की है, कानून की दृष्टि से स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण हैं और इसलिए उन्हें खारिज किया जाता है।"

39. वी. अनंथा राजू एवं अन्य बनाम टी.एम. नरसिम्हन में, यह प्रश्न फिर से सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचारार्थ आया, जहां पैरोल साक्ष्य द्वारा यह दर्शाने की अनुमति के बारे में सिद्धांत कि लिखित अनुबंध एक दिखावा था, और पक्षों द्वारा जो इरादा किया गया था, वह पूरी तरह से अलग था, इस प्रकार प्रतिपादित किया गया:

"23. इस न्यायालय ने आगे कहा है कि साक्ष्य अधिनियम की धाराएँ 91 और 92 केवल तभी लागू होंगी जब दस्तावेज में अनुबंध की सभी शर्तें शामिल हों या उनमें शामिल होने का आभास हो। यह माना गया है कि धारा 91 के तहत इसकी शर्तों को साबित करने के लिए दस्तावेज पेश किए जाने के बाद, इसकी शर्तों का खंडन करने, परिवर्तन करने, जोड़ने या घटाने के उद्देश्य से किसी भी मौखिक समझौते या बयान के साक्ष्य को बाहर करने के

उद्देश्य से धारा 92 के प्रावधान लागू होते हैं। यह माना गया है कि यह असुविधाजनक होगा कि सलाह और विचार-विमर्श के बाद लिखित रूप में किए गए मामले, और जो अंततः पक्षों के समझौते की निश्चित सच्चाई को दर्शाते हैं, उन्हें विस्मृति की अनिश्चित गवाही द्वारा साबित किए जाने वाले पक्षों के कथन द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए। यह माना गया है कि जब पक्ष जानबूझकर अपने समझौते को लिखित रूप में रखते हैं, तो यह उनके और उनके निजी लोगों के बीच निर्णायक रूप से माना जाता है कि उन्होंने अपने इरादों का एक पूर्ण और अंतिम बयान बनाने के लिए लेखन किया था, और ऐसा बयान जिसे भविष्य के विवाद, बुरे विश्वास और विश्वासघाती स्मृति की पहुंच से परे रखा जाना चाहिए।

**24.** यद्यपि गंगाबाई पत्नी रामबिलास गिल्डा (श्रीमती) बनाम छब्बूबाई पत्नी पुखराजजी गांधी (श्रीमती)

और ईश्वर दास जैन (मृत) बनाम सोहन लाल (मृत) का उल्लेख करते हुए, यह माना गया है कि किसी विलेख के पक्षकार के लिए यह तर्क देना स्वीकार्य है कि विलेख पर कार्रवाई करने का इरादा नहीं था, बल्कि यह केवल एक दिखावा दस्तावेज था, यह दिखाने के लिए मौखिक साक्ष्य पेश करना आवश्यक होगा कि निष्पादित दस्तावेज कभी भी एक समझौते के रूप में कार्य करने का इरादा नहीं था, बल्कि यह कि कुछ अन्य समझौता, जो दस्तावेज में दर्ज नहीं है, पक्षों के बीच दर्ज किया गया था।

**25.** इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि एक बार जब वादी ने विशेष रूप से यह तर्क दिया था कि 1992 के एस.सी.5356 विलेख की शर्तों को 1995 के विलेख द्वारा संशोधित/परिवर्तित किया गया था, और प्रतिवादियों ने उक्त दस्तावेज, अर्थात् 1995 के विलेख के निष्पादन के बारे में स्वीकार किया था, यदि प्रतिवादियों का यह मामला था कि 1995 के विलेख में

उल्लिखित शर्तें अनजाने में थीं या वास्तव में एक गलती थी, तो इसे साबित करने का भार प्रतिवादियों पर आ गया। साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 के मद्देनजर, लिखित अनुबंध की शर्तों का खंडन करने, परिवर्तन करने, जोड़ने या घटाने के उद्देश्य से मौखिक समझौते के संबंध में कोई भी साक्ष्य तब तक बाहर रखा जाएगा जब तक कि मामला धारा 92 में दिए गए किसी भी प्रावधान के अंतर्गत नहीं आता हो। प्रतिवादियों ने यह तर्क देकर अपने मामले को साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 के पहले प्रावधान के अंतर्गत लाने का प्रयास किया है कि साझेदारी फर्म के लाभ और घाटे में प्रत्येक वादी को 25% हिस्सेदारी का उल्लेख करना वास्तव में एक गलती थी।"

40. **मंगला वामन करंदीकर बनाम प्रकाश दामोदर रानाडे** में सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक अन्य पीठ, जिसे **वी. अनंथा राजू** (उपरोक्त) की तुलना में समय के लिहाज से थोड़ा पहले सुनाया गया था, में मौखिक साक्ष्य द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य के बहिष्कार के बारे में सिद्धांत का कहीं अधिक

सख्त बयान है। **मंगला वामन करंदीकर (उपरोक्त)** में, अपीलकर्ता द्वारा स्टेशनरी के चल रहे व्यवसाय को प्रतिवादी को केवल व्यवसाय चलाने के लिए हस्तांतरित करने के लिए एक समझौते के संदर्भ में प्रश्न उठा, जिसके लिए अपीलकर्ता को 90/- रुपये प्रति माह की रॉयल्टी प्राप्त हुई। समझौते में यह नहीं दिखाया गया था कि जिस व्यक्ति को समझौते के तहत व्यवसाय चलाने के लिए सौंपा गया था, वह उसका पट्टेदार होगा, क्योंकि अपीलकर्ता खुद परिसर में पट्टेदार थी और समझौते की स्पष्ट शर्तों के अनुसार मकान मालिक को किराया देने के लिए बाध्य थी। बाद में, जब अपीलकर्ता ने अनुबंधकर्ता से व्यवसाय को उसे वापस करने के लिए कहा, तो प्रतिवादी ने यह रुख अपनाया कि अनुबंध एक किराया समझौता था और केवल व्यवसाय चलाने के लिए नहीं था। उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में **मंगला वामन करंदीकर** मामले में यह माना गया था:

"15. इन दोनों धाराओं से यह स्पष्ट है कि केवल उन मामलों में जहां दस्तावेज की शर्तें प्रश्न को संदेह में छोड़ती हैं, तब परंतुक का सहारा लिया जा सकता है। लेकिन जब कोई दस्तावेज सीधा होता है और इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है, तो परंतुक लागू नहीं होता है। इस संबंध में, हम कह सकते हैं कि धारा 95 केवल धारा

92 के परंतुक (6) पर आधारित है।

16. यदि विपरीत दृष्टिकोण को सही माना जाता है तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 को निरर्थक बना देगा और परंतुक (6) के दायरे को मुख्य धारा से परे भी बढ़ा देगा। उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान की गई ऐसी व्याख्या कानूनी व्याख्या के बुनियादी सिद्धांतों का उल्लंघन करती है। [रोहितश कुमार बनाम ओम प्रकाश शर्मा, (2013) 11 एससीसी 451 पृ 459 : (2013) 3 एससीसी (एलएंडएस) 368] धारा 92 विशेष रूप से किसी भी मौखिक समझौते या बयान के साक्ष्य को प्रतिबंधित करती है जो इसके नियमों का खंडन, परिवर्तन, वृद्धि या कमी करेगी। यदि, जैसा कि विद्वान न्यायाधीश ने कहा है, यह दिखाने के लिए मौखिक साक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है कि दस्तावेज़ के नियम वास्तव में उसमें व्यक्त नियमों से भिन्न थे, तो यह उन नियमों का खंडन या परिवर्तन करने के

लिए साक्ष्य देने की अनुमति देने के बराबर होगा और इस तरह यह धारा 92 के प्रतिबंधों के अंतर्गत आता है। यह नहीं माना जा सकता है कि विधायिका का इरादा उस धारा के अपवादों को लागू करके धारा 92 के उद्देश्य को निष्प्रभावी करना था।

17. निर्धारित कानून के अनुसार, यह स्पष्ट है कि अनुबंध में 90 रुपये प्रति माह रॉयल्टी का भुगतान करके "करंदीकर ब्रदर्स" के नाम पर व्यवसाय जारी रखने का प्रावधान था। एक बार जब पक्षों ने कथन और अनुबंध को स्वीकार कर लिया, तो प्रतिवादी विपरीत बाह्य पैरोल साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सकता था, जब तक कि उसने भाषा में अस्पष्टता नहीं दिखाई। यह ध्यान देने योग्य है कि अनुबंध का विस्तार उन्हीं शर्तों पर किया गया था।

18. मामले पर विचार करने पर, उच्च न्यायालय ने धारा 95 के दायरे को समझने में गलती की, जिसके कारण ऐसे साक्ष्य



पर विचार किया गया जो अनुबंध की भाषा में अस्पष्टता के बजाय केवल उल्लंघन को इंगित करता है। साक्ष्य यह भी इंगित करते हैं कि लाइसेंस दुकान परिसर के लाइसेंस/लीज के बजाय मौजूदा व्यवसाय को जारी रखने के लिए बनाया गया था। यदि उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए अर्थ को स्वीकार किया जाता है, तो यह पार्टियों द्वारा किए गए सौदे को प्रतिस्थापित करने के लिए अदालतों के बराबर होगा। प्रतिवादी के अधिवक्ता ने भुगतान की रसीद पर बहुत जोर दिया है, जिसमें "प्राप्त किराया" शब्द का उल्लेख है। हालांकि, अनुबंध की स्पष्ट अस्पष्ट भाषा के अनुरूप, ऐसे साक्ष्य को कानून की नजर में नहीं माना जा सकता है।"

41. सिद्धांत रूप से, जहां पक्षकारों ने एक गंभीर और लिखित विलेख या अनुबंध में प्रवेश किया है, वहां पैरोल साक्ष्य को स्वीकार करने पर प्रतिबंध नियम है। अपवादों के बारे में, प्राधिकरण पर एक करीबी नज़र डालने से पता चलता है कि रूढ़िवादी दृष्टिकोण लिखित विलेख, समझौते या दस्तावेज़ की शर्तों के विपरीत मौखिक साक्ष्य को स्वीकार करने की

अनुमति देना है, यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा 92 के छह प्रावधानों में उल्लिखित एक या अन्य अपवादों को आकर्षित किया जाता है, या अधिनियम की धारा 93, 95, 96, 97, 98, 99 और 100 में से किसी एक अपवाद को आकर्षित किया जाता है। ऐसे मामले में, जहां धारा 92 में नियम के लिए वैधानिक अपवाद लागू नहीं होते हैं, वहां न्यायिक रूप से विकसित यह सिद्धांत बहुत ही संकीर्ण क्षेत्र में काम करता है और मौखिक साक्ष्य पेश करने की मांग करने वाले पक्ष पर बोझ के बहुत सख्त मानकों के अधीन है, जो केवल उन मामलों में लागू होता है, जहां कोई पक्ष लिखित दस्तावेज़ की शर्तों का खंडन, भिन्नता, जोड़ने या घटाने के लिए कुछ भी दलील नहीं देना चाहता है, लेकिन यह दर्शाता है कि पार्टियों का वास्तव में एक ऐसे लेनदेन में प्रवेश करने का इरादा था, जो कि दिखने वाले से बहुत अलग है। इसलिए, न्यायिक रूप से मान्यता प्राप्त यह अपवाद उन मामलों पर लागू होता है, जहां मौखिक साक्ष्य पेश करने का इरादा रखने वाला पक्ष दस्तावेज़ पर भरोसा नहीं करता है, लेकिन कहता है कि यह दिखावा है, और पार्टियों का इरादा बयानों से बिल्कुल अलग था।

42. मंगला वामन करंदीकर और कुछ हद तक प्लासीडो फ्रांसिस्को पिंटो के मामले में दिए गए सिद्धांत को पढ़ने से पता चलता है कि न्यायालय ने मौखिक साक्ष्य को स्वीकार करने के लिए एक सख्त दृष्टिकोण के पक्ष में झुकाव किया है, जहां पक्षों के पास उनके अधिकारों को नियंत्रित करने वाला एक लिखित कार्य या अनुबंध है, केवल अपवादों के साथ जो साक्ष्य की धारा 92 या धारा 93, 95, 96, 97, 98,

99 और 100 के प्रावधानों में उल्लिखित हैं। लेकिन, यह भी उतना ही सच है कि **प्लासीडो फ्रांसिस्को पिंटो** में दिए गए निर्णय में इस सिद्धांत को भी स्वीकार किया गया है कि लिखित समझौते के विपरीत मौखिक साक्ष्य उन मामलों में पेश किया जा सकता है, जहां एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है कि दस्तावेज़ नकली हैं और पक्षों ने जो अनुबंध किया वह वास्तव में पूरी तरह से अलग है। इस स्तर पर, उन मानकों पर ध्यान देना आवश्यक है जिनके द्वारा एक व्यक्ति, जो अपने और दूसरे पक्ष के बीच लेनदेन या अनुबंध के लिखित रिकॉर्ड पर भरोसा करने से इनकार करता है और कहता है कि जो अनुबंध किया गया था वह पूरी तरह से अलग था, उसे उस तथ्य को साबित करना चाहिए। इस संबंध में, **गुरदयाल सिंह** का संदर्भ दिया जाना चाहिए, जहां यह कहा गया है कि लिखित अनुबंध से भिन्न इरादे का अनुमान "परिस्थितियों से एक अपरिहार्य अनुमान होना चाहिए और केवल अटकलों और अनुमानों का विषय नहीं होना चाहिए", माननीय न्यायमूर्तियों के शब्दों के अनुसार।

43. वर्तमान मामले में, दो निचली अदालतों की समवर्ती राय को पलटने के लिए प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत मुख्य परिस्थिति यह है कि प्रतिवादी द्वारा दो पूर्ववर्ती लेन-देन हुए थे, जहां उसने तीसरे पक्ष के साथ समझौते किए और फिर उन्हें रद्द करवाकर दूसरे व्यक्ति से उधार लेकर विक्रेता को उसकी अग्रिम राशि का भुगतान किया, जिसके पक्ष में भी बिक्री के लिए एक समझौता किया गया था। अंतिम व्यक्ति, जिससे प्रतिवादी ने पहले की कीमत

के अनुबंधकर्ता को भुगतान करने के लिए ऋण लिया, उसका भतीजा, वादी था। प्रतिवादी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रतिवादी द्वारा तीसरे पक्ष के साथ किए गए लेन-देन की यह श्रृंखला, प्रत्येक मामले में मुकदमे की संपत्ति को बेचने के लिए अनुबंध करना, यह दिखाएगी कि प्रत्येक अवसर पर, अनुबंध ऋण के लिए एक सुरक्षा से अधिक कुछ नहीं था; और, मुकदमे के समझौते अलग नहीं हैं। मुकदमे के समझौतों की शर्तों पर नज़र डालने से यह नहीं लगता कि ये दिखावटी बातों से अलग थे। प्रतिवादी का मामला यह है कि मुकदमे के समझौते दिखावटी थे और वास्तव में, ऋण की अदायगी सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा से ज्यादा कुछ नहीं थे, इस मुद्दे पर सीधे तौर पर असर डालने वाली परिस्थितियाँ और उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाले कुछ पैरोल साक्ष्य निर्णायक होंगे।

44. बेशक, इस मुद्दे पर राय देते हुए कि क्या वास्तव में मुकदमे के समझौते दिखावटी हैं और सुरक्षा के रूप में काम करने के लिए हैं, न्यायालय साक्ष्य की पूरी समीक्षा नहीं कर सकता है और इसे प्रथम अपील न्यायालय या ट्रायल जज के तरीके से एक खुले मुद्दे के रूप में उत्तर नहीं दे सकता है। यह न्यायालय परिस्थितियों और उन्हें स्पष्ट करने वाले पैरोल साक्ष्य की जाँच कर सकता है ताकि नीचे के न्यायालयों से अलग निष्कर्ष पर पहुँच सके, अगर उन न्यायालयों के निष्कर्ष विपरीत हैं; अन्यथा नहीं। यह परिस्थिति कि प्रतिवादी द्वारा पहले दो अन्य समान लेन-देन किए गए थे, जहाँ समझौते रद्द कर दिए गए थे, मुकदमे के समझौतों के उसी तरह की

संपाशिवक प्रतिभूतियाँ होने की संभावना को जन्म दे सकता है, लेकिन यह केवल एक संभावना है; ज़मानत नहीं। यह भी उतना ही संभव है कि मुकदमे के समझौतों में स्पष्ट अवधि के अनुसार इच्छित बिक्री का लेन-देन शामिल हो।

45. दूसरी परिस्थिति, जो इस न्यायालय के संज्ञान में लाई गई है, वह यह है कि ज्ञान सिंह के पक्ष में पहले पंजीकृत समझौते को रद्द करने का दस्तावेज 06.07.1984 को निष्पादित किया गया था, अर्थात्, उसी दिन जब वादी के पक्ष में पहला मुकदमा समझौता निष्पादित किया गया था। यह तर्क दिया जाता है कि यह परिस्थिति बताती है कि प्रतिवादी ने ज्ञान सिंह को भुगतान करने और मुकदमे की संपत्ति को मुक्त करने के लिए वादी से उधार लेने के अलावा और कुछ नहीं किया। यह विशेष रूप से जोर दिया जाता है कि प्रतिवादी ने वादी से उधार लिया, क्योंकि वादी उसका रक्त संबंधी रिश्तेदार है, और उधारदाताओं द्वारा सख्त समय पर अपना पैसा वापस मांगने के दो पहले के प्रकरणों के साथ, प्रतिवादी ने अपने भतीजे से उधार लेने का अधिक सुविधाजनक विकल्प चुना। यह, इस न्यायालय की राय में, फिर से एक निर्णायक परिस्थिति नहीं है।

46. तथ्यों की इस स्थिति को देखने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण विकल्प यह है कि प्रतिवादी को पैसे की आवश्यकता थी, और वह अपनी जमीन के लिए सर्वोत्तम संभव मूल्य चाहता था। उसने कम राशि के लिए दो लेन-देन किए और पहले के खरीदारों को भुगतान

करके उन लेन-देन के तहत अपने दायित्वों से छुटकारा पा लिया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पहले के खरीदारों ने प्रतिवादी के उनके पक्ष में निष्पादित समझौतों को रद्द करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, यह सुझाव देता है कि वे लेन-देन वास्तव में ऋण थे। लेकिन, यह समान रूप से सुझाव देता है कि दूसरे लेन-देन के बाद, प्रतिवादी के पास ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए अपने स्वयं के श्रम या साधनों से उत्पन्न संसाधन नहीं थे। उसे मुकदमे की संपत्ति को बेचने के लिए सहमत होने वाले लेन-देन के माध्यम से धन जुटाने पर निर्भर रहना पड़ा। इसलिए, यह बहुत संभावना है कि जब वह ज्ञान सिंह को भुगतान नहीं कर सका, तो उसने अपने भतीजे के साथ मुकदमे की संपत्ति को बेचने, ज्ञान सिंह को भुगतान करने और अपने लिए कुछ पैसे बचाने के लिए अधिक कीमत पर सौदा किया।

47. अतिरिक्त लाभ यह था, जैसा कि निचली अपीलीय अदालत ने सोचा था, कि मुकदमे की संपत्ति को वादी को बेचने के लिए सहमत होने पर, प्रतिवादी को इस बात की मनोवैज्ञानिक संतुष्टि होगी कि उसकी जमीन किसी अजनबी के हाथों में नहीं जा रही है, बल्कि उसके वंश में बनी हुई है। मामले के बाद के दृष्टिकोण को निचली अपीलीय अदालत ने स्वीकार कर लिया है और कहा है कि यह लेनदेन एक बिक्री थी और ऋण के लिए मात्र सुरक्षा नहीं थी, निम्नलिखित टिप्पणियों के संदर्भ में:

“10- पक्षकारों के अधिवक्ता तर्कों पर विचार विमर्श पर विचारण करने

से स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी द्वारा विवादित इकरारनामा ऋण पत्र नहीं था बल्कि उसने अपनी जमीन को बेचने के लिये अनुबंध बिक्रय-पत्र रामजीलाल के पक्ष में निष्पादित किया था क्योंकि स्वयं कांशीराम के भाई ने जो रामजीलाल के भी चाचा है स्पष्ट रूप से निवेदन किया है कि यह पत्र ऋण-पत्र नहीं था बल्कि घर की जमीन घर में ही रह जाये इसलिये विवादित जमीन को नीलामी से बचाने के लिये रामजीलाल ने इस जमीन को खरीदने का प्रस्ताव पेश किया और तदनुसार 65000/- रुपये में यह जमीन का सौदा करके अनुबंध बिक्रय-पत्र तैयार किया गया।....”

48. मामले की दूसरी विशेषता यह है कि वादी ने शिकायत के पैराग्राफ 1 और 2 में एक विशिष्ट मामले की पैरवी की थी कि उसने 65,000/- रुपये के अनुबंधित बिक्री प्रतिफल में से 60,000/- रुपये मुकदमे के समझौतों के लिए बयाना में भुगतान किया था। लिखित बयान के पैराग्राफ 2 में प्रतिवादी ने 60,000/- रुपये की प्राप्ति से इनकार किया और पैराग्राफ 11 में प्रतिवादी ने दावा किया है कि ज्ञान सिंह

को 40,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया जाना था और यह वह धनराशि (40,000/- रुपये) थी जो प्रतिवादी द्वारा (वादी से) उधार ली गई थी। प्रतिवादी द्वारा दायर लिखित बयान के पैराग्राफ 2 और 11 में लिखा है:

“2. शिकायत के पैराग्राफ 2 में निहित आरोप झूठे हैं और उनका खंडन किया जाता है। प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में कोई बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए सहमति नहीं जताई और न ही प्रतिवादी ने 60,000/- रुपए प्राप्त किए जैसा कि इस पैराग्राफ में झूठा आरोप लगाया गया है, बल्कि प्रतिवादी आयकर प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के लिए सहमत है।

11. हालांकि, 6-7-1984 को उपरोक्त ज्ञान सिंह ने अपने पैसे की मांग की, जो प्रतिवादी ने उससे उधार लिया था और इस तरह श्री ज्ञान सिंह को उप रजिस्ट्रार के समक्ष 40000/- रुपये का भुगतान किया गया, जहां उन्होंने

प्रतिवादी द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित बिक्री के समझौते के संबंध में रद्द करने का एक समझौता किया। यह 6-7-1984 को किया गया था। ज्ञान सिंह को भुगतान की गई 40,000/- रुपये की उपरोक्त धनराशि वास्तव में वादी से उधार ली गई थी, जो प्रतिवादी के असली बड़े भाई का बेटा है और उसी दिन एक संपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में सब रजिस्ट्रार, फतेहाबाद के समक्ष 40,000/- रुपये की रसीद दिखाते हुए बेचने का एक समझौता किया (हालांकि किसी जमीन को बेचने या हस्तांतरित करने का कोई इरादा नहीं था)। उपरोक्त राशि प्रतिवादी द्वारा वादी से उधार ली गई और पूर्वोक्त तरीके से श्री ज्ञान सिंह को भुगतान की गई।

49. इसी तरह, प्रतिवादी द्वारा दायर दिनांक 09.06.1986 के उत्तर नोटिस के पैराग्राफ संख्या 5 में, वादी के दिनांक 29.05.1986 के

नोटिस का जवाब देने के लिए भेजे गए पेपर नंबर 25-जीए में कहा गया है कि प्रतिवादी द्वारा वादी से उधार लिया गया धन 40,000/- रुपये था। इस प्रकार, वादी का मामला उस समय से सुसंगत है जब उसने प्रतिवादी को बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए नोटिस भेजा था, और उस समय, जब उसने मुकदमा दायर किया था। यह है कि, पार्टियों के बीच बिक्री प्रतिफल के रूप में 65,000/- रुपये की राशि तय की गई थी, जिसमें से 60,000/- रुपये बयाना में भुगतान किए गए थे, बिक्री विलेख के निष्पादन के समय भुगतान किए जाने वाले 5000/- रुपये की शेष राशि छोड़ दी गई थी।

50. प्रतिवादी का मामला उसकी दलीलों के चरण तक यह है कि उसने 40,000/- रुपये की राशि उधार ली थी; इससे अधिक कुछ नहीं। उसके अनुसार, यह ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए आवश्यक धनराशि थी और उसे इससे अधिक कुछ नहीं मिला। प्रतिवादी ने अपने मुख्य परीक्षण में गवाह-बॉक्स में गवाही देते समय निम्नलिखित बयान दिया है:

“3. मैंने ज्ञान सिंह से Rs. 40,000/- रु० लिये थे और बतौर जमानत इकरारनामा लिखा था। फिर रामजीलाल से 60,000/- रुपये लेकर सन् 1984 में ज्ञान सिंह को दे दिये।”

51. अपनी जिरह में, डी.डब्लू.-1 के रूप में गवाही देते हुए प्रतिवादी ने कहा है:

"4. मैंने रामजीलाल से 60,000/- रुपया कर्जा लिया था। उसमें से 20,000/- रुपये राम जी लाल ने रजिस्ट्री इकरारनामा से पहिले व 40,000/- रजिस्ट्री इकरारनामा के समय दिये थे।"

52. प्रतिवादी का यह दावा कि उसने ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए वादी से 40,000/- रुपये उधार लिए थे और इससे अधिक कुछ नहीं, वादी द्वारा अनुबंध निष्पादित करने के नोटिस के उत्तर में तथा उसके लिखित कथन में भी सुसंगत है। लेकिन, उसकी गवाही में, यह भी समान रूप से सुसंगत है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये उधार लिए थे, जिसमें से उसने ज्ञान सिंह को 40,000/- रुपये का भुगतान किया, जो कि बाद में उस पर बकाया था। यह ध्यान में रखना होगा कि वह पक्ष, जो लिखित रूप में विलेख या अनुबंध के स्पष्ट शब्दों के विपरीत यह कहते हुए दलील देता है कि कुछ और इरादा था, जो कि स्पष्ट शर्तों से अलग था, उस पर इस तथ्य को निर्विवाद और उत्कृष्ट गुणवत्ता के सुसंगत साक्ष्य द्वारा साबित करने का बहुत भारी बोझ है। इसलिए, तथ्य यह है कि प्रतिवादी ने एक ऐसे मामले की पैरवी की है जो केवल 40,000/- रुपये की राशि उधार लेने के बारे में है, और अपने साक्ष्य में, उसने वादी

के मामले को स्वीकार कर लिया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये की राशि ली थी, जिसे प्रतिवादी ने ऋण बताया है, लेकिन यह वादी के मामले से मेल खाता है कि उसने प्रतिवादी को 60,000/- रुपये की राशि बयाना के रूप में दी थी, और बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 5000/- रुपये का भुगतान किया जाना था। वादी द्वारा आरोपित किए गए धन के आंकड़े, जो हाथ बदले, प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किए गए हैं, जो उसके दलील वाले मामले के विपरीत है। यह सच है कि भुगतान की प्रकृति पक्षों द्वारा अलग-अलग तरीके से वर्णित की गई है, जिसमें प्रतिवादी ने 60,000/- रुपये की राशि को वादी द्वारा ऋण कहा है, जबकि वादी ने इसे 65,000/- रुपये के सहमत बिक्री प्रतिफल में से बयाना कहा है।

53. दलीलों और साक्ष्यों की इन स्थितियों के साथ-साथ परिस्थितियों के आधार पर, अपनी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, साक्ष्यों के खुले और पूर्ण मूल्यांकन के निषिद्ध क्षेत्र में कदम रखते हुए, हम सोचते हैं कि हम निचली अदालतों से असहमत नहीं हो सकते, जिन्होंने मुकदमे के समझौतों के स्पष्ट स्वर के विपरीत प्रतिवादी के पैरोल साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया है। ताकि यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में तथ्य न्यायालयों से अलग किसी भी प्रकार के साक्ष्य पर विचार कर सके, यह आवश्यक है कि तथ्य न्यायालयों को विपरीत निष्कर्ष निकालना चाहिए, या ऐसे निष्कर्ष, जिन पर कोई भी उचित व्यक्ति साक्ष्य की स्थिति को देखते हुए नहीं पहुंच सकता। हमें नहीं लगता कि, यहाँ ऐसा मामला

है। निचली अदालतों ने प्रतिवादी के मुकदमे के समझौतों और उनके स्पष्ट स्वर के विपरीत प्रतिवादी के पैरोल साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है ताकि प्रतिवादी के मामले को स्वीकार किया जा सके कि मुकदमे के समझौते उनके प्रकट चरित्र के दस्तावेज नहीं थे, बल्कि वादी के ऋण की सुरक्षा के लिए केवल संपार्श्विक सुरक्षा थे। इस न्यायालय के पास प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय देने तथा मुकदमे के समझौतों में निहित लेन-देन को सुरक्षा सृजित करने वाला मानने का कोई कारण नहीं है, न कि बेचने का समझौता।

54. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, ऊपर दर्शाए गए सभी कारणों से, मूल प्रश्न (1) का उत्तर **नकारात्मक** में दिया जाना चाहिए।

55. यह न्यायालय अब मूल विधि प्रश्न (2) का उत्तर देने के लिए आगे बढ़ता है। श्री जैन ने प्रस्तुत किया है कि वादी शहर में व्यवसाय करता है। उन्होंने वादी की जिरह का हवाला दिया है, जहां यह स्वीकार किया गया है कि वह 15 से 30 किमी दूर लोहा मंडी में रहता है। उसके पास कोई कृषि भूमि नहीं है। उसकी कृषि जोत उसके पिता ने 20 वर्ष पहले बेच दी थी। पी.डब्ल्यू.-3, जो वादी का चाचा और प्रतिवादी का भाई है, ने गवाही दी है कि उसने 26 वर्ष पहले अपनी कृषि भूमि बेची थी। यह भी बताया गया है कि लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 17 में प्रतिवादी ने अपनी कठिनाई का तर्क देते हुए कहा है कि उसके पास मुकदमे की संपत्ति के अलावा आजीविका का कोई अन्य स्रोत नहीं है। इस बात पर जोर दिया गया है कि वादी ने अपने प्रतिवेदन, पेपर

संख्या 48-जीए में प्रतिवादी की इस दलील का खंडन या विरोध नहीं किया है कि उसके पास आजीविका के स्रोत के लिए मुकदमे की संपत्ति के अलावा कुछ भी नहीं है। श्री जैन ने तर्क दिया है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा इस बात पर कोई चर्चा नहीं की गई है कि विशिष्ट प्रदर्शन देने के पक्ष में विवेकाधिकार का प्रयोग क्यों किया गया है। इसके बाद प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि निचली अपीलीय अदालत के समक्ष अपील में ग्राउंड संख्या 16, 17 और 18 ने प्रतिवादी को होने वाली कठिनाई का मुद्दा उठाया है, यदि विशिष्ट निष्पादन दिया जाता है, लेकिन निचली अपीलीय अदालत ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 9 में प्रस्तुतीकरण दर्ज किया, लेकिन कभी भी इस बात पर चर्चा नहीं की कि प्रतिवादी को क्या कठिनाई होगी। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा विशिष्ट निष्पादन देने के लिए विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है।

56. श्री जैन ने कहा कि तथ्य न्यायालयों के लिए यह आवश्यक है कि वे इस बात पर निष्कर्ष दें कि विशिष्ट निष्पादन क्यों दिया जा रहा है, और उन निष्कर्षों के अभाव में, विवादित डिब्री को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

57. श्री कुणाल शाह ने श्री जैन द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विवाद किया है। उन्होंने कहा कि जो आवश्यक है वह यह है कि न्यायालय को मनमाने ढंग से नहीं बल्कि स्थापित मापदंडों पर विशिष्ट निष्पादन देने के

लिए विवेक का प्रयोग करना चाहिए था। न्यायालय द्वारा विशिष्ट निष्पादन देने के लिए चुने जाने के विशिष्ट और विस्तृत कारणों को दर्ज करना हमेशा अनिवार्य नहीं होता है। इस बात पर जोर दिया जाता है कि लिखित बयान के पैराग्राफ नंबर 17 का खंडन न करना, जहां प्रतिवादी ने दावा किया है कि यदि मुकदमे की संपत्ति उसके हाथ से निकल जाती है, तो उसे कठिनाई होगी, किसी भी तरह से गैर-प्रत्यावर्तन द्वारा स्वीकृति नहीं है।

58. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि जहां तक लिखित बयान के पैराग्राफ नंबर 17 में प्रतिवादी द्वारा आरोपित कठिनाई का खंडन न करने का संबंध है, उस मामले का कोई आधार नहीं है। वादी द्वारा प्रतिवेदन के बारे में, जो अभिलेख में है, यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि यह किसी भी तरह से दलीलों का हिस्सा नहीं है। ट्रायल कोर्ट के आदेश-पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि दिनांक 01.01.1993 के आदेश द्वारा, वादी की प्रतिवेदन, पेपर संख्या 48-जीए को अभिलेख में लेते हुए, केवल इतना कहा गया है कि प्रतिवेदन को निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष रखा जाए। आदेश-पत्र यह नहीं दर्शाता है कि किसी भी बाद की तिथि पर, ट्रायल कोर्ट द्वारा आदेश VIII नियम 9 के तहत वादी द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी। दिनांक 01.01.1993 को न्यायालय का निर्देश, जब प्रतिवेदन दायर किया गया था कि इसे बिना किसी और आदेश के निर्धारित तिथि पर रखा जाए, संहिता के आदेश VIII के नियम 9 के तहत अनुमति नहीं

देता है। प्रतिवेदन तब तक दलीलों का हिस्सा नहीं है जब तक कि न्यायालय इसे प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं देता है, ऐसी शर्तों के अधीन जिन्हें वह उचित समझता है। यहाँ ऐसा नहीं हुआ है।

59. चूंकि, अभिलेख के अवलोकन से हम इस बात से संतुष्ट हैं कि न्यायालय द्वारा प्रतिवादी द्वारा दलील दायर करने की अनुमति नहीं दी गई है, इसलिए प्रतिवादी द्वारा कठिनाई के बारे में दलील दी गई लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 17 पर वादी द्वारा कोई टिप्पणी न करना कोई मायने नहीं रखता। चूंकि यह ऐसा मामला है, जहां प्रतिवादी द्वारा दलील दायर करने की अनुमति न मिलने के कारण, पेपर संख्या 48-जीए को दलीलों के हिस्से के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए, इसलिए सवाल यह है कि क्या वादी द्वारा लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 17 में प्रतिवादी की दलील पर अनुमति प्राप्त करने और टिप्पणी न करने की विफलता वादी की ओर से स्वीकृति का गठन करती है। कानून यह है कि लिखित बयान में उठाई गई दलील का वादी द्वारा इनकार न करना उसके द्वारा स्वीकृति का अनुमान नहीं लगा सकता। इस संबंध में, **के. लक्ष्मणन बनाम थेक्कयिल पद्मिनी और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां यह माना गया है:

“29. जैसा कि हम सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "संहिता") के तहत समझते हैं और जैसा कि संहिता के



नियम 1, आदेश 6 के प्रावधान के तहत परिभाषित किया गया है, दलीलों में केवल एक शिकायत और एक लिखित बयान शामिल है। प्रतिवादी-वादी लिखित बयान में उठाए गए तर्क के संबंध में एक प्रतिवेदन दायर कर सकता था, जिसे यदि अदालत द्वारा अनुमति दी जाती तो वह दलीलों का हिस्सा बन जाता, लेकिन केवल प्रतिवेदन दायर न करने का मतलब यह नहीं है और न ही हो सकता है कि लिखित बयान में बताए गए तथ्यों को स्वीकार कर लिया गया है। निषेधाज्ञा आवेदनों के संबंध में दायर हलफनामों में इनकार के रूप में विशिष्ट आपत्ति उठाई गई थी जिसे ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर स्वीकार कर लिया था और इसके अलावा उक्त हलफनामे की रिकॉर्ड पर स्वीकृति को वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा न तो चुनौती दी गई और न ही उस पर सवाल उठाया गया।"

60. उपर्युक्त कानूनी स्थिति को देखते हुए, श्री जैन के इस तर्क में कोई बल नहीं है कि पेपर

संख्या 48-जीए, जो कि, हालांकि एक प्रतिकृति है, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन अदालत की अनुमति के साथ रिकॉर्ड में स्वीकार नहीं किया गया है, गैर-ट्रैवर्स द्वारा लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 17 में प्रतिवादी के मामले की स्वीकृति का गठन करता है।

61. जहां तक विशिष्ट निष्पादन प्रदान करने के उद्देश्य से न्यायालय द्वारा कारणों को रिकॉर्ड करने की आवश्यकता का संबंध है, इस न्यायालय की राय है कि कारण बताना वांछनीय है, लेकिन तब तक अनिवार्य नहीं है जब तक कि किसी अपील की सुनवाई करने वाले किसी भी उच्च न्यायालय के लिए यह स्पष्ट हो कि विशिष्ट निष्पादन प्रदान करने का विवेक रिकॉर्ड से प्राप्त प्रासंगिक विचारों पर आधारित है। कारणों की अनुपस्थिति डिक्री को प्रभावित नहीं करेगी। न्यायिक प्राधिकरण की व्यापक सहमति सिद्धांतों के बारे में है, जिसके आधार पर न्यायालय को विशिष्ट निष्पादन या बयाना की वापसी की वैकल्पिक राहत देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए; या यदि उस संबंध में राहत मांगी जाती है और मामला बनता है तो क्षतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए।

62. विशिष्ट निष्पादन की राहत प्रदान करते समय विचार किए जाने वाले कारकों में से एक यह है कि मुकदमे के समय तक वादी द्वारा समग्र रूप से निभाई गई भूमिका क्या है। यहाँ नीचे दिए गए दो तथ्य न्यायालयों ने पाया है कि निपटाए गए कुल बिक्री मूल्य में से, यानी 65,000/- रुपये की राशि, वादी द्वारा 60,000/- रुपये का भुगतान उस समय

तक किया गया था जब तक कि वाद समझौते निष्पादित नहीं हो गए। इसलिए, वादी ने वाद समझौतों के तहत अपने लगभग पूरे दायित्व का पालन किया है। वाद समझौतों के निष्पादन तक प्रतिवादी द्वारा प्राप्त बिक्री मूल्य निपटाए गए मूल्य का 92% है। इस संबंध में, राजेंद्र सिंह बनाम चंद्र पाल<sup>12</sup> में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जहाँ यह माना गया था:

“11. वर्तमान मामले में विशिष्ट निष्पादन की राहत देने के लिए आवश्यक अनुबंध के अपने हिस्से को निष्पादित करने की तत्परता और इच्छा, सिद्ध तथ्य है। न केवल निचली अदालतों ने वादी-अपीलकर्ता के पक्ष में ऐसा निष्कर्ष दिया था, बल्कि यह तथ्य इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि 80,000/- रुपये के कुल सहमत बिक्री मूल्य में से वादी-अपीलकर्ता ने पहले ही 77,000/- रुपये का भुगतान कर दिया था, जो बिक्री मूल्य का 96.25% है। बिक्री मूल्य की इस राशि का उपयोग और हड़प प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था, जो

विवादित संपत्ति के कब्जे का भी आनंद ले रहे थे।

12. इस प्रकार कुल प्रतिफल से लगभग थोड़ा कम राशि का उपयोग और भोग प्रतिवादी-प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था, जो न केवल विचाराधीन संपत्ति का आनंद ले रहे थे, बल्कि पहले से ही बुरे विश्वास और दुर्भावनापूर्ण तरीके से काम कर रहे थे, जब उन्होंने कथित ऋण और राशि की वापसी आदि का झूठा बचाव किया था, जो दोनों निचली अदालतों द्वारा गलत और झूठे पाए गए थे। वह बार-बार झूठ बोल रहा था, और झूठे साक्ष्य देकर अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रहा था।

13. विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 (2) में कुछ शर्तें दी गई हैं, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, जिसमें न्यायालय विशिष्ट निष्पादन का आदेश न देने के लिए उचित रूप से विवेक का प्रयोग कर सकता है। वर्तमान मामले के प्रकाश में उन शर्तों पर

विचार करते हुए यह पाया गया है कि (क) अनुबंध की शर्तें या अनुबंध करते समय पक्षों का आचरण ऐसा नहीं था जिससे वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ मिल सके, क्योंकि वादी ने पहले ही बिक्री प्रतिफल का 96% से अधिक प्राप्त कर लिया था, और यदि विशिष्ट निष्पादन का कोई अनुतोष नहीं दिया जाता है तो प्रतिवादी को वादी-अपीलकर्ता पर अनुचित लाभ मिलेगा; (ख) वर्तमान मामले में ऐसा कुछ भी नहीं दिखाई दिया जिसे प्रतिवादी-प्रत्यर्थी पूर्वानुमान नहीं कर सकता था, और प्रतिवादी के बजाय यह वादी-अपीलकर्ता होगा जो गैर-निष्पादन से कठिनाई झेलेगा, जिसने संपत्ति की लगभग पूरी कीमत का भुगतान किया था, और जब संपत्ति की कीमतों में उछाल के वर्तमान युग में उक्त भूमि की वास्तविक कीमत की अल्प राशि प्राप्त होगी, भले ही धन ब्याज के साथ वापस कर दिया जाए; और (ग)

प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने बिक्री प्रतिफल का लगभग 96% से अधिक प्राप्त करने के बाद, किसी भी परिस्थिति में अनुबंध में प्रवेश नहीं किया था जो विशिष्ट निष्पादन को लागू करना अनुचित बनाता है।”

63. मुझे **महेंद्र सिंह बनाम रमेश सिंह** में इस मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला, जहां 50000/- रुपये के तय प्रतिफल में से प्रतिवादी ने अनुबंध के निष्पादन के समय 47000/- रुपये की राशि प्राप्त की थी। महेंद्र सिंह (उपरोक्त) में, मैंने यह अवधारित किया:

70. एक बार जब यह न्यायालय आश्वस्त हो जाता है कि निचली अपीलीय अदालत ने सही निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी ने 50000/- रुपये के कुल बिक्री प्रतिफल में से 45000/- रुपये की राशि प्राप्त की है, तो विशिष्ट निष्पादन के पक्ष में विवेक के प्रयोग के लिए तराजू निर्णायक रूप से झुक जाता है। तथ्य यह है कि प्रतिवादी ने एक भाग के लिए रु 45,000/- की राशि, प्रतिवादी के साथ उसकी निरक्षरता आदि के

कारण वादी द्वारा अनुचित तरीके से व्यवहार किए जाने के बारे में किसी भी संदेह को समाप्त करती है। साथ ही, यह तथ्य कि प्रतिवादी को एक राशि प्राप्त हुई है, जो बिक्री प्रतिफल का नब्बे प्रतिशत है, वादी को ऐसी स्थिति में रखता है जहाँ उसने अनुबंध के अपने हिस्से के प्रदर्शन में पर्याप्त कार्य किए हैं। वादी की ओर से 5000/- रुपये की शेष राशि का भुगतान करने और हस्तांतरण के निष्पादन और पंजीकरण के खर्चों को पूरा करने के अलावा कुछ भी करने को शेष नहीं है। अनुबंध के वादी के हिस्से के प्रदर्शन में सभी पर्याप्त कार्यों को करना, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 की उप-धारा (3) के तहत एक प्रासंगिक विचार है।”

64. चूंकि विशिष्ट निष्पादन एक न्यायसंगत राहत है, इसलिए इसे प्रदान करने का विवेक भी पक्षकारों के आचरण पर काफी हद तक निर्भर करता है। जहां तक वादी का संबंध है, इस मामले में यह स्पष्ट है कि उसने न केवल पहला वाद समझौता किया, बल्कि इसके तहत

समय समाप्त होने से पहले, पक्षों के बीच दायित्वों को एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाते हुए दूसरा वाद समझौता निष्पादित करवाया। यह दिखाने के लिए भी साक्ष्य है कि उसने प्रतिवादी को सब-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित होने की तिथि निर्दिष्ट करते हुए बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए नोटिस जारी करवाया। दिनांक 29.05.1986 को नोटिस में इंगित तिथि पर, वादी 12.06.1986 को सब-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित रहा, लेकिन प्रतिवादी उपस्थित नहीं हुआ, एक तथ्य जिसके बारे में दोनों निचली अदालतें एकमत हैं। बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी का पीछा करने में वादी का यह आचरण सुसंगत है, जिसे निचली अदालतों ने विशिष्ट निष्पादन प्रदान करने में अपने विवेक का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा है।

65. पक्षकारों के आचरण के बारे में एक अतिरिक्त विशेषता है। लिखित कथन के पैराग्राफ संख्या 2 और 11 में प्रतिवादी ने वादी के इस मामले से इनकार किया है कि उसने वादी से बयाना के रूप में 60,000/- रुपये प्राप्त किए थे, लेकिन केवल 40,000/- रुपये प्राप्त किए थे, जिसके बारे में यह तर्क दिया गया है कि यह ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए उधार ली गई धनराशि थी। हालांकि, अपने मुख्य परीक्षण में प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये उधार लिए थे, जिसमें से उसे ज्ञान सिंह को भुगतान करने के लिए 40,000/- रुपये की आवश्यकता थी। अपने प्रतिपरीक्षण में उसने इस तथ्य को फिर से स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये उधार लिए

थे, जिनमें से 20,000/- रुपये पहले वाद समझौते के निष्पादन से पहले और 40,000/- रुपये उक्त समझौते के पंजीकरण के समय चुकाए गए थे। यद्यपि, प्रतिवादी ने अपनी गवाही में लेन-देन की प्रकृति को ऋण के रूप में वर्णित किया है, लेकिन इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये की राशि प्राप्त की, पहले वाद समझौते के पंजीकरण से पहले 20,000/- रुपये और उसके पंजीकरण के समय 40,000/- रुपये प्राप्त किए। यह लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 2 और 11 में उसके रुख के विपरीत है, जहां वह कहता है कि उसने वादी से 60,000/- रुपये नहीं बल्कि 40,000/- रुपये की राशि उधार ली थी। लेन-देन की प्रकृति के बारे में निचली अदालतों ने राय दी है कि यह ऋण नहीं है, जिसे इस अदालत ने महत्वपूर्ण विधि प्रश्न (1) का उत्तर देते समय अनुमोदित किया है; लेकिन यह वर्तमान प्रश्न के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक नहीं है।

66. यहां प्रश्न पर जो बात लागू होती है वह यह तथ्य है कि प्रतिवादी का आचरण वादी के साथ और अदालत के समक्ष भी उचित नहीं रहा है। उन्होंने जानबूझकर अपनी दलीलों में यह मामला उठाया कि उन्होंने अकेले 40,000 रुपये उधार लिए थे, जबकि वादी के इस मामले को नकार दिया कि उन्होंने प्रतिवादी को 60,000 रुपये का भुगतान किया था। बाद में, अपनी गवाही में, प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि उसने वादी से 60,000 रुपये की राशि प्राप्त की थी, जब तक कि उसने पहला मुकदमा समझौता नहीं कर लिया। यह भी प्रासंगिक आचरण है क्योंकि यह दर्शाता है

कि प्रतिवादी ने लेन-देन के संबंध में वादी से प्राप्त धनराशि को गलत तरीके से बताकर अनुबंध के तहत अपने दायित्वों से बचने की कोशिश की थी। विवादित निर्णयों को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इन सभी तथ्यों को विशिष्ट निष्पादन प्रदान करने में निचली अदालतों के साथ तौला गया है, हालांकि उन्होंने उस विवेक के प्रयोग के लिए अपने कारणों को नहीं लिखा होगा। जैसा कि पहले ही कहा गया है, न्यायालय के लिए यह हमेशा वांछनीय हो सकता है कि वह कारण बताए कि विशिष्ट प्रदर्शन क्यों दिया गया क्योंकि विवेक का प्रयोग अपीलीय न्यायालय द्वारा जांच के अधीन है, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। इस बात के लिए कारण बताना अनिवार्य नहीं है, चाहे वह कितना भी वांछनीय क्यों न हो, क्योंकि यदि निचली अदालतों द्वारा विचार किए गए साक्ष्यों और अभिलेखों में, विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रासंगिक कारक मौजूद हैं, तो केवल इस आधार पर डिक्री को अमान्य ठहराना कि कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है, किसी भी महत्वपूर्ण बात से अधिक औपचारिकता होगी।

67. इसलिए, विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न (2) का उत्तर **नकारात्मक** में दिया जाता है।

68. किसी अन्य बिंदु पर जोर नहीं दिया गया।

69. यह अपील **विफल** हो जाती है और पूरी तरह से लागत के साथ **खारिज** की जाती है। अंतरिम आदेश दिनांक 04.05.2001 के अनुपालन में प्रतिवादी द्वारा ट्रायल कोर्ट में

जमा की गई धनराशि, बैंक द्वारा भुगतान किए गए अर्जित ब्याज के साथ, जहां इसे निवेश किया गया है, वादी को तुरंत भुगतान की जाएगी।

70. तदनुसार, डिक्री तैयार की जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 742

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-ए संख्या 2829 वर्ष 2022

और

रिट-ए संख्या 1527 वर्ष 2021

और

रिट-ए संख्या 1216 वर्ष 2021

और

रिट-ए संख्या 11308 वर्ष 2021

राजीव सिंह एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सुधीर कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

ए. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950

- अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समानता -

पारिश्रमिक में समानता - पीआरडी जवान और

होमगार्ड - पुलिस के सहायक के रूप में समान कर्तव्यों का पालन - नियुक्ति का समान तरीका - भर्तों में विभेदकारी व्यवहार - न्यायोचित नहीं - अनुच्छेद 14 का उल्लंघन स्थापित।

प्रांतीय रक्षक दल अधिनियम, 1948 के तहत प्रांतीय रक्षक दल (पीआरडी) के सदस्य हैं, उत्तर प्रदेश होमगार्ड अधिनियम, 1963 के तहत नियुक्त होमगार्डों के साथ दैनिक पारिश्रमिक में समानता का दावा किया। यह पाया गया कि दोनों श्रेणियों के जवानों ने सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए समान कर्तव्य निभाए और समान चयन प्रक्रियाओं के माध्यम से उनकी नियुक्ति हुई। पीआरडी जवानों को 395 रुपये प्रतिदिन का भुगतान किया गया, जबकि होमगार्डों को 500 रुपये प्रतिदिन का भुगतान किया गया। अलग-अलग विभागीय संरचनाओं और वित्तीय सीमाओं के बारे में सुप्रीम कोर्ट के तर्क को मनमाना माना गया। न्यायालय ने स्पष्ट अंतर के अभाव में इस तरह के भेदभाव को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना।

बी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950

- अनुच्छेद 23 - जबरन श्रम का निषेध -

पीआरडी जवानों को न्यूनतम मजदूरी से कम

भुगतान - यह अभिनिर्धारित किया गया कि

यह जबरन श्रम के बराबर है।

न्यायालय ने माना कि पीआरडी जवानों को

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए निर्धारित

न्यूनतम वेतन से कम वेतन देना संविधान के

अनुच्छेद 23 के अंतर्गत जबरन श्रम के समान

है। पीपुल्स यूनिन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स

**बनाम भारत संघ**, (1982) 3 एससीसी 235 के मामले में, यह दोहराया गया कि न्यूनतम वेतन से कम पर काम स्वीकार करने के लिए प्रेरित आर्थिक मजबूरी जबरन श्रम के अंतर्गत आती है।

**सी. पूर्व उदाहरण - बाध्यकारी प्रभाव - सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रयोज्यता - पुलिस कर्मियों के साथ न्यूनतम वेतन समानता - तदनुसार जारी किए गए निर्देश।**

गृह रक्षक, होमगार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2015) 6 एससीसी 247 मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने राज्य को पीआरडी जवानों के पारिश्रमिक की पुनर्गणना करने का निर्देश दिया ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि कुल मासिक वेतन पुलिस कांस्टेबलों के न्यूनतम मासिक वेतन के बराबर हो। होमगार्ड्स के साथ भत्तों में समानता सुनिश्चित करने के भी निर्देश दिए गए।

**पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ,**

(1982) 3 एससीसी 235 : एआईआर 1982 एससी 1473

बेंच: भगवती, पाठक और रेड्डी जे.

निर्णय: न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत "जबरन श्रम" के समान है।

**गृह रक्षक, होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य,**

(2015) 6 एससीसी 247 : एआईआर 2015 एससी 1952

बेंच: टीएस ठाकुर और आर भानुमति, जेजे।

निर्णय: पुलिस कर्मियों के समान कर्तव्य निभाने वाले होमगार्ड वेतन में समानता के हकदार हैं; राज्य मानद सेवा की आड़ में पारिश्रमिक से इनकार नहीं कर सकते।

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा पारित)

1. उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं का निर्णय इस सामान्य आदेश के माध्यम से किया जा रहा है। सुविधा के लिए रिट-ए संख्या 2829/2022 को अग्रणी मामले के रूप में लिया जा रहा है।

2. सभी रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता चयनित हैं और कई जिलों में प्रांतीय रक्षक दल (पीआरडी) में तैनात हैं और याचिकाकर्ता के समान तरीके से नियुक्त होम गार्डों को भुगतान किए जाने वाले लाभों के मामले में समानता चाहते हैं। अधिनियम के प्रावधान, जो उत्तर प्रदेश होम गार्ड अधिनियम, 1963 के समान है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं को संशोधित संयुक्त प्रांत रक्षक दल अधिनियम, 1948 के आदेश के अनुसार प्रांतीय

रक्षक दल में चुना और तैनात किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि उक्त प्रांतीय रक्षक दल को वर्ष 1948 में अधिनियमित किया गया था जोकि (यूपी प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल) सार्वजनिक शांति के संरक्षण के लिए, पुरुषों को हथियारों के इस्तेमाल का प्रशिक्षण देकर आत्म-सहायता और अनुशासन पैदा करने और उत्तर प्रदेश के भीतर समुदाय और संपत्ति के जीवन की सुरक्षा के लिए है।

4. यह तर्क दिया गया है कि इसी तर्ज पर, 'उत्तर प्रदेश होम गार्ड्स अधिनियम अधिनियम, 1963' के नाम से जाना जाने वाला एक अधिनियम उत्तर प्रदेश होम गार्ड्स के समय में कर्तव्यों के लिए उनकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए एक बल के गठन का प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। आपातकाल के समय और भूमि एवं व्यवस्था के रखरखाव के लिए पुलिस के सहायक के रूप में कार्य करना। यह तर्क दिया जाता है कि यद्यपि अधिनियम सार्वजनिक शांति बनाए रखने और सहायक बल के रूप में हथियार रखने वालों के प्रशिक्षण के लिए रक्षक दल/विकास दल के निर्माण का प्रावधान करता है, तथापि, उनकी सेवाएं सामान्य समय के दौरान और स्थानीय या राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान भी ली जाती हैं। तर्क दिया जाता है कि दल के सदस्यों के लिए एक पोशाक भी निर्धारित है। यह तर्क दिया जाता है कि प्रांतीय रक्षक दल राज्य सरकार के युवा कल्याण विभाग के अंतर्गत आता है और इसे 'प्रादेशिक विकास दल' कहा जाता है और इसके सदस्यों को शुल्क और भुगतान प्रदान

करने के संबंध में समय-समय पर कई सरकारी आदेश जारी किए गए हैं। दाल. रिट याचिका के अनुलग्नक - 2 में निहित जिला मजिस्ट्रेट को जारी किए गए सरकारी आदेशों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

5. सभी याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं ने आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है और प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया है और जब भी सरकार को ऐसा करने की आवश्यकता होती है, वे समय-समय पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। दल के सदस्यों के कर्तव्यों और आचरण के संबंध में जारी किए गए सरकारी आदेशों पर भी भरोसा किया जाता है। यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश होम गार्ड अधिनियम के साथ-साथ प्रांतीय रक्षक दल के तहत नियुक्त होम गार्ड को 2009 तक 126 रुपये प्रति दिन की दर से दैनिक ड्यूटी भत्ता का भुगतान किया जा रहा था, हालांकि, वर्ष 2010 में, होम गार्ड जवानों को देय भत्ते को बढ़ाकर 140/- रुपये प्रति दिन कर दिया गया और वर्ष 2013 में इसे बढ़ाकर 210/- रुपये कर दिया गया और बाद में इसे और भी बढ़ाया गया, हालांकि, प्रांतीय रक्षक के सदस्यों दल को वर्ष 2013 तक 126/- रुपये मिलते रहे। याचिकाकर्ताओं ने राज्य सरकार से अनुरोध किया कि जब काम की प्रकृति, नियुक्ति का तरीका समान है, तो उन्हें देय पारिश्रमिक होम गार्ड स्वयंसेवकों के समान होना चाहिए, हालांकि बजटीय आवंटन की समस्याओं का हवाला देते हुए ऐसा नहीं किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि होम गार्ड जवानों को देय भत्ता 27.08.2018 को 375/- रुपये से बढ़ाकर 500/- रुपये कर दिया गया था, हालांकि,



प्रांतीय रक्षक दल जवानों के संबंध में ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की गई थी।

6. उक्त से व्यथित होकर, समान स्थिति वाले कुछ व्यक्तियों ने रिट - ए संख्या 17684/2018 (अमर सिंह और 4 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उक्त रिट याचिका का निपटारा 07.01.2019 को राज्य सरकार को शिकायतों पर विचार करने और तीन महीने की अवधि के भीतर इसका मूल्यांकन करने के निर्देश के साथ कर दिया गया। कोर्ट द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन नहीं होने पर अवमानना याचिका दायर की गई। उक्त निर्देशों के संदर्भ में, अंततः 01.05.2019 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें प्रांतीय रक्षक दल जवानों को देय भत्ते को पहले के 250/- रुपये से बढ़ाकर 375/- रुपये प्रति दिन कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं की शिकायतें बिना किसी तर्कसंगत आधार के अभी भी जारी हैं, याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव किया गया है, ऐसे में वर्तमान याचिकाएं दायर की गई हैं।

7. रिट याचिकाओं में वर्णित और दर्ज किए गए तथ्यों के मद्देनजर, संपूर्ण याचिकाएं भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आरोप पर आधारित हैं।

8. उक्त तर्क का परीक्षण करने के लिए, उस तरीके पर ध्यान देना आवश्यक है जिसमें दोनों अधिनियम अधिनियमित किए गए हैं। वह निम्न प्रकार हैं:

उत्तर प्रदेश प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल अधिनियम वर्ष 1948 में सार्वजनिक शांति के संरक्षण के लिए एक बल गठित करने की दृष्टि से लागू किया गया था।

प्रांतीय रक्षक दल के कार्यों का वर्णन इस प्रकार किया गया:

"5. प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल के सदस्य को जब निर्धारित प्राधिकारी द्वारा ऐसा करने के लिए कहा जाएगा, तो वह उत्तर प्रदेश के भीतर ऐसे क्षेत्र में सार्वजनिक शांति के संरक्षण और निवासियों की सुरक्षा और संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में ऐसे कार्यों का निर्वहन करेगा। ऐसे निर्धारित प्राधिकारी के रूप में प्रदेश निर्देशित कर सकता है।"

शक्तियां, सुरक्षा और नियंत्रण आदि को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

7.(1) इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए किसी नियम या विनियम के प्रावधान को लागू करने के लिए, प्रांतीय रक्षा

उत्तर प्रदेश होम गार्ड्स अधिनियम वर्ष 1963 में एक बल के गठन और आपातकाल के समय में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस के सहायक के रूप में इसकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

होम गार्ड के कार्यों का वर्णन इस प्रकार है:

"4. होम गार्ड के निम्नलिखित कार्य होंगे:-

(ए) वे पुलिस के सहायक के रूप में काम करेंगे, और आवश्यकता पड़ने पर सार्वजनिक व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने में मदद करेंगे;

(बी) वे हवाई हमलों, आग, बाढ़, महामारी और अन्य आपात स्थितियों में समुदाय की मदद करेंगे;

(सी) वे ऐसे विशेष कार्यों के लिए एक आपातकालीन बल के रूप में कार्य करेंगे जो निर्धारित किए जा सकते हैं;

(डी) वे आवश्यक सेवाओं के लिए कार्यात्मक इकाइ प्रदान करेंगे; और

(ई) वे सार्वजनिक कल्याण के किसी भी उपाय से संबंधित ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करेंगे जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

होम गार्ड की शक्तियां, विशेषाधिकारों और सुरक्षा को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

9. (1) इस अधिनियम के

|                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                         |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                   |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| <p>दल/विकास दल के प्रत्येक सदस्य को, जब इयूटी पर या इयूटी के लिए बुलाया जाएगा, एक पुलिस अधिकारी और विषय माना जाएगा। किसी भी नियम, शर्तों और प्रतिबंधों के लिए, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, रखना और उनके अधीन होना, जहां तक यह इस अधिनियम के साथ असंगत नहीं है, एक विधिवत नियुक्त पुलिस अधिकारी के रूप में सभी शक्तियां, विशेषाधिकार, दायित्व और सुरक्षा, पुलिस अधिनियम, 1861 (उसकी धारा 29 को छोड़कर) या उस समय लागू किसी अन्य कानून के आधार पर हैं।</p> <p>(2) प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल के किसी सदस्य के खिलाफ ऐसे सदस्य के रूप में अपने कार्यों के निर्वहन में किए गए या किए जाने वाले कथित किसी भी कार्य के संबंध में कोई अभियोजन स्थापित नहीं किया जाएगा, सिवाय इसके कि इसमें निर्धारित प्राधिकारी की उस ओर से पूर्व मंजूरी हो।</p> | <p>प्रावधानों और इसके तहत बनाए गए नियमों के अधीन, एक होम गार्ड को जब धारा 8 के तहत पुलिस के सहायक के रूप में सेवा करने या सार्वजनिक व्यवस्था या आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने में मदद करने के लिए बुलाया जाता है, तो उसके पास समान शक्तियां होंगी। किसी भी समय लागू अधिनियम के तहत नियुक्त पुलिस बल के सदस्य के रूप में विशेषाधिकार और सुरक्षा, और ऐसे अनुकूलन और संशोधनों के अधीन होगी, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किया जा सकता है। पुलिस अधिनियम के 1861 प्रावधानों के अधीन होगा। और उसके तहत बनाए गए नियम या विनियम उसी तरीके से और उसी हद तक बनाए गए जैसे वह चाहता था। यदि ऐसे होम गार्ड के पास पुलिस बल में उस रैंक के बराबर रेस्पॉन्सिबल रैंक है जो फिलहाल उसके पास होम गार्ड में है।</p> <p>(2) होम गार्ड के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वहन में उसके द्वारा किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में वह किसी होम गार्ड के खिलाफ कोई अभियोजन स्थापित नहीं करेगा। उस क्षेत्र पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले जिला मजिस्ट्रेट की पिछली मंजूरी को छोड़कर जिसमें होम गार्ड नामांकित था या जिसमें कार्य किया गया था।</p> | <p>(3) किसी क्षेत्र में बल का अधीक्षण ऐसे अधिकारी या अधिकारियों में निहित होगा जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जा सकता है।</p> <p>सेवा की अवधि और सेवामुक्ति को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:</p> <p>8. प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल के प्रत्येक सदस्य को निर्धारित अवधि के लिए राज्य सरकार की सेवा करनी होगी। इसके बाद उसे निर्धारित अवधि के दौरान किसी भी समय इयूटी पर बुलाया जाएगा। ऐसी अतिरिक्त अवधि की समाप्ति के बाद सदस्य को प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल से मुक्त माना जाएगा।</p> | <p>सेवाओं के लिए दायित्व को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:</p> <p>11. (1) इस संबंध में बनाए गए किसी भी नियम के अधीन, एक होम गार्ड, होम गार्ड की किसी भी इकाई में सेवा करने के लिए बाध्य होगा। फिलहाल संलग्न किया जा रहा है।</p> <p>(2) प्रारंभिक अवधि जिसके दौरान एक होम गार्ड की सेवा की आवश्यकता हो सकती है, उसके नामांकन की तारीख से तीन वर्ष होगी। इस अवधि को निर्धारित तरीके से उसकी सहमति दर्ज कर बढ़ाया जा सकता है।</p> <p>(3) प्रत्येक होम गार्ड राज्य के किसी भी हिस्से में इयूटी के लिए बुलाए जाने पर निर्धारित तरीके से सेवा करने के लिए उत्तरदायी होगा। किसी भी होम गार्ड को राज्य के बाहर सेवा देने की आवश्यकता नहीं होगी जब तक कि उसने ऐसी सेवा के लिए निर्धारित तरीके से अपनी सहमति न दे दी हो।</p> <p>(4) इयूटी के लिए बुलाए गए होम गार्डों को ऐसे भत्ते का भुगतान किया जा सकता है जो निर्धारित किए जाएं।</p> <p>(5) होम गार्डों को आम तौर पर उनके नामांकन के क्षेत्रों में और केवल अंशकालिक इयूटी के लिए बुलाया जाएगा।</p> |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|

9. उत्तर प्रदेश प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल अधिनियम की धारा 9 में अपराधों का प्रावधान

है और यदि चयनित व्यक्ति इयूटी के लिए रिपोर्ट नहीं करता है या उपेक्षा करता है या आदेश का पालन करने से इनकार करता है या अपने कर्तव्य से विमुख होता है या किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है तो इसे अपराध बना दिया गया है।

*“9. प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल का कोई भी सदस्य जो-*

*(ए) धारा 5 के तहत इयूटी के लिए बुलाए जाने पर खुद को रिपोर्ट करने में विफल रहता है, या*

*(बी) बिना पर्याप्त कारण के इस वरिष्ठ अधिकारी के आदेशों का पालन करने में उपेक्षा करता है या इनकार करता है या इयूटी पर रहते हुए प्रांतीय रक्षक दल/विकास दल के सदस्य के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करने में विफल रहता है, या*

*(सी) अपना कर्तव्य छोड़ देता है, या*

*(डी) इस अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों और विनियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, तीन महीने तक की कैद या पांच सौ रुपये तक का जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।”*

10. उत्तर प्रदेश होम गार्ड्स अधिनियम की धारा 13 लगभग समरूप है और यदि होम गार्ड इयूटी के लिए रिपोर्ट करने में विफल रहता है या भाग जाता है या आदेश का पालन करने से इनकार करता है या उपेक्षा करता है, तो दंड का प्रावधान करता है।

दोनों अधिनियम स्वयंसेवकों द्वारा प्रदान किए गए कर्तव्यों के लिए पारिश्रमिक/मुआवजे के भुगतान के संबंध में चुप हैं।

11. ऊपर बताई गई समानताओं के आलोक में, यह स्पष्ट है कि स्वयंसेवकों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। कार्यों की प्रकृति लगभग समान होती है, आदेशों का पालन करने की कठोरता आदि समान होती है। इस प्रकार, विद्वान वकील की दलील है कि सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वे समान हैं और इस प्रकार, उन्हें समान भत्ते का भुगतान किया जाना चाहिए और वे अपने रोजगार के संबंध में होम गार्ड जवानों के साथ समानता का दावा करते हैं।

12. दूसरी ओर, राज्य सरकार ने 2021 की रिट-ए संख्या 1527 में एक जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसे सभी मामलों में एक जवाबी हलफनामा माना जाता है। जवाबी हलफनामे के पैरा - 9 और 10 में, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए कथनों के खंडन में निम्नलिखित प्रस्तुत किया गया है:

*“9. पीआरडी कर्मियों की सेवाएं पीआरडी अधिनियम और नियम, 1948 द्वारा शासित होती हैं। पीआरडी कर्मियों की नियुक्ति की मंजूरी राज्य सरकार द्वारा जिला प्रशासन की मांग पर उपलब्ध धनराशि के आधार पर दी जाती है। जहां तक पीआरडी कर्मियों के इयूटी भत्ते को होम गार्ड के कर्मियों के बराबर निर्धारित करने का सवाल है, यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने होम गार्ड और प्रांतीय रक्षक दल के लिए दो अलग-अलग*

विभाग स्थापित किए हैं। दोनों विभागों के अलग-अलग अधिनियम और नियम हैं। हालाँकि दोनों विभागों के कार्य की प्रकृति समान होने की संभावना है, लेकिन चूंकि दोनों विभाग अलग-अलग हैं और सरकार द्वारा स्वीकृत उपलब्ध धनराशि के अनुसार दोनों विभागों की दर तय की जाती है। सरकार ने हाल ही में इयूटी भत्ते को 375 रुपये से बढ़ाकर शासनादेश दिनांक 06.01.2022 द्वारा पीआरडी कर्मिकों को 395/- प्रतिदिन कर दिया है।

10. यूपी सरकार ने होम गार्ड्स और प्रांतीय रक्षक दल के लिए दो अलग-अलग विभाग स्थापित किए हैं। दोनों विभागों के अलग-अलग अधिनियम और नियम हैं। हालाँकि दोनों विभागों के कार्य की प्रकृति समान होने की संभावना है, लेकिन चूंकि दोनों विभाग अलग-अलग हैं और सरकार ने दोनों विभागों का प्रभार सरकार द्वारा स्वीकृत उपलब्ध धनराशि के अनुसार तय किया है। सरकार ने दिनांक 06.01.2022 के सरकारी आदेश के तहत पीआरडी कर्मियों के लिए भत्ते के रूप में 395/- रुपये प्रति दिन की मंजूरी दी है और तदनुसार पीआरडी कर्मियों के मुआवजे और भत्ते दिए गए हैं।

13. दिलचस्प बात यह है कि, पैरा - 11 में, राज्य सरकार ने निम्नानुसार कहा है:

"11. उसी की निरंतरता में, निदेशालय ने अपने क्रमांक 239/ईके-129/ पीआरडी/2019 दिनांक 09.07.2020 के माध्यम से अपने पहले के पत्रों का हवाला देते हुए पीआरडी कर्मियों के दैनिक मुआवजे और भत्ते को

बढ़ाकर 500/- रुपये प्रति दिन करने के संबंध में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को संलग्न कर सरकार से इस नीतिगत मामले पर उचित निर्णय लेने का अनुरोध किया तथा उसी के क्रम में सरकार द्वारा पत्र क्रमांक 975/पचास-वाई. यू.के.ए./2020 102(पीवीडी)/1988 दिनांक 17.09.20 द्वारा सूचित किया गया कि 417/पचास-यु.का.-2019-102(पीवीडी)/1988 दिनांक 08.03.2019 के द्वारा पीआरडी कर्मिकों के मुआवजे एवं भत्ते की दर स्वीकृत की गई है। 1 वर्ष 5 माह के बाद पीआरडी कर्मिकों के दैनिक भत्ते को 250/- से बढ़ाकर 375/- प्रतिदिन कर दिया गया है। तदनुसार, निदेशालय के पत्र दिनांक 25.09.2020 द्वारा इस मामले का निर्णय लिया गया है।"

14. इस प्रकार, राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए रुख से जैसा कि प्रति शपथ पत्र में दर्शाया गया है और यहां ऊपर उद्धृत किया गया है, यह रुख है कि यद्यपि दोनों द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति समान है, क्योंकि वे अलग-अलग विभागों के तहत काम कर रहे हैं, भुगतान समान हैं शासन द्वारा स्वीकृत धनराशि की उपलब्धता के अनुसार।

15. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रिट-ए संख्या 47479/2015 पर निर्णय करते समय इस न्यायालय को होम गार्ड के सैनिकों द्वारा उठाए गए मुद्दे का सामना करना पड़ा था, जो नियमित पुलिस को प्रदान किए जा रहे वेतनमान के संदर्भ में समानता का दावा कर रहे थे, और इस न्यायालय ने गृह रक्षक, होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम एच.पी. राज्य और अन्य; (2015) 6 एससीसी 247 के

मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद 08.07.2016 को निर्णय सुनाया। हालांकि कोर्ट ने प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी, राज्य सरकार को ऐसी दरों पर इयूटी भत्ता देने के निर्देश जारी किए गए, जिनमें से कुल 30 दिन (एक महीना) वेतन के न्यूनतम के बराबर आते हैं। राज्य सरकार के पुलिस कर्मी गृह रक्षक, होम गार्ड्स वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार हकदार हैं।

16. इस न्यायालय के उक्त फैसले को 2017 की एसएलपी (सी) संख्या 226 में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे 30.07.2019 को खारिज कर दिया गया था और जारी निर्देश के अनुसार, होम गार्ड को देय भत्ता बढ़ा दिया गया था।

17. वर्तमान मामले में, ऊपर दर्ज दोनों अधिनियमों की योजना के साथ-साथ जवाबी हलफनामे में राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए रुख के आधार पर दोनों बलों के सदस्यों द्वारा किए गए कर्तव्यों की प्रकृति में कोई अंतर नहीं है और इस प्रकार, जाहिरा तौर पर, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है क्योंकि यह राज्य सरकार के पुलिस कर्मियों को देय न्यूनतम वेतन के लाभ से इनकार करता है।

18. दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का दूसरा तर्क है कि 375/- रुपये की राशि निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम है और इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 का उल्लंघन है। **मध्यान भोजन**

**रसोइया मजदूर संघ हुसैनगंज लखनऊ बनाम भारत संघ और अन्य 08.02.2023** को रिट - ए संख्या 3479/2015 में निर्णय लिया गया, के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया जिसमें इस न्यायालय को राज्य सरकार द्वारा नियोजित रसोइयों को भुगतान की जाने वाली राशि न्यूनतम मजदूरी से कम होने पर विचार करने का अवसर मिला, और न्यूनतम मजदूरी के भुगतान के लिए निर्देश जारी किए गए जो उन व्यक्तियों के लिए निर्धारित थे जो रसोइया के रूप में काम कर रहे थे। इस न्यायालय ने पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स एंड अदर्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स (1982) 3 एससीसी 235 के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी गौर किया था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पारिश्रमिक के दायरे का विश्लेषण किया था जो न्यूनतम मजदूरी से कम था और उन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत परिभाषित बलपूर्वक श्रम के दायरे में 'बलपूर्वक श्रम' माना गया था, और आयोजित किया गया है:

**"14. अब अगला प्रश्न जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या अनुच्छेद 23 का कोई उल्लंघन है जब कोई व्यक्ति राज्य या किसी अन्य व्यक्ति को श्रम या सेवा प्रदान करता है और उसे इसके लिए न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान किया जाता है। यह स्पष्ट है कि आम तौर पर कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से किसी दूसरे को न्यूनतम वेतन से कम पर श्रम या सेवा की आपूर्ति नहीं करेगा, जब वह जानता है कि कानून के तहत वह अपने द्वारा प्रदान किए गए श्रम या सेवा के लिए न्यूनतम वेतन पाने का हकदार है। इसलिए वैध रूप से**

यह माना जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन से कम पारिश्रमिक प्राप्त करने पर दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो वह किसी मजबूरी के तहत कार्य कर रहा है जो उसे काम करने के लिए प्रेरित करता है, भले ही उसे उससे कम भुगतान किया जाता है जो कानून के तहत प्राप्त करने का हकदार है। अनुच्छेद 23 "बलपूर्वक श्रम" को प्रतिबंधित करता है, जो श्रम या सेवा है जिसे एक व्यक्ति प्रदान करने के लिए मजबूर किया जाता है और "बल" जो ऐसे श्रम या सेवा को "बलपूर्वक श्रम" बनाता है, कई तरीकों से उत्पन्न हो सकता है। यह शारीरिक बल हो सकता है जो किसी व्यक्ति को दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर कर सकता है या इसे कानूनी प्रावधान के माध्यम से लगाया जा सकता है जैसे कि कर्मचारी द्वारा श्रम या सेवा प्रदान करने में विफल रहने पर कारावास या जुर्माने का प्रावधान या ऐसा भी हो सकता है। भूख और गरीबी, अभाव और अभाव से उत्पन्न मजबूरी। कोई भी कारक जो किसी व्यक्ति को विकल्पों की पसंद से वंचित करता है और उसे कार्रवाई का एक विशेष तरीका अपनाने के लिए मजबूर करता है उसे उचित रूप से "बल" माना जा सकता है और यदि ऐसे "बल" के परिणामस्वरूप श्रम या सेवा को मजबूर किया जाता है, तो यह होगा "मजबूर श्रम"। जहां एक व्यक्ति भूख या भुखमरी से पीड़ित है, जब उसके पास बीमारी से लड़ने या अपनी पत्नी और बच्चों को खिलाने या यहां तक कि अपनी नग्नता को छिपाने के लिए कोई संसाधन नहीं है, जहां अत्यधिक गरीबी ने उसकी कमर तोड़ दी है और उसे असहाय स्थिति में ला दिया है और निराशा और जहां उसकी गरीबी की

कठोरता को कम करने के लिए कोई अन्य रोजगार उपलब्ध नहीं है, उसके पास उसके सामने आने वाले किसी भी काम को स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, भले ही उसे दिया जाने वाला पारिश्रमिक न्यूनतम मजदूरी से कम हो। वह नियोक्ता के साथ मोलभाव करने की स्थिति में नहीं होगा; उसे वह स्वीकार करना होगा जो उसे दिया गया है। और ऐसा करने पर वह विकल्पों के बीच चयन करने वाले एक स्वतंत्र एजेंट के रूप में नहीं बल्कि आर्थिक परिस्थितियों की मजबूरी के तहत कार्य करेगा और उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा स्पष्ट रूप से "बलपूर्वक श्रम" होगी। ऐसा कोई कारण नहीं है कि "बलपूर्वक" शब्द को संकीर्ण और प्रतिबंधित तरीके से पढ़ा जाए ताकि इसे केवल भौतिक या कानूनी "बल" तक ही सीमित रखा जाए, खासकर तब जब राष्ट्रीय चार्टर, इसके मौलिक दस्तावेज में एक नए समाजवादी गणराज्य के निर्माण का वादा किया गया हो। सभी के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय होगा और सभी को काम करने, शिक्षा और आजीविका के पर्याप्त साधन पाने का अधिकार होगा। संविधान निर्माताओं ने हमें एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की शुरुआत के लिए इतिहास में सबसे उल्लेखनीय दस्तावेजों में से एक दिया है और उन्होंने हमारे लिए जो संविधान बनाया है उसका एक सामाजिक उद्देश्य और एक आर्थिक मिशन है और इसलिए संविधान में प्रत्येक शब्द या वाक्यांश इसकी व्याख्या ऐसे तरीके से की जानी चाहिए जिससे संविधान के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके। यह असामान्य नहीं है कि पूंजीवादी समाज में किसी व्यक्ति को किसी विशेष कार्य

के लिए प्रेरित करने में शारीरिक बाध्यता या विधायी प्रावधानों की तुलना में आर्थिक परिस्थितियाँ कहीं अधिक दबाव डालती हैं। इसलिए "बल" शब्द का अर्थ न केवल शारीरिक या कानूनी बल, बल्कि आर्थिक परिस्थितियों की मजबूरी से उत्पन्न बल भी माना जाना चाहिए, जो किसी जरूरतमंद व्यक्ति के लिए कोई विकल्प नहीं छोड़ता है और उसे पारिश्रमिक के बावजूद श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर करता है। इसके लिए प्राप्त न्यूनतम वेतन से भी कम है। निःसंदेह, यदि कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन प्राप्त करने के एवज में दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो यह कहना संभव नहीं होगा कि उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा "बलपूर्वक श्रम" है क्योंकि उसे वही मिलता है जिसे पाने का वह कानून के तहत हकदार है। ऐसे मामले में तर्कसंगत रूप से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि उसे केवल इस कारण से श्रम या सेवा प्रदान करने के लिए मजबूर किया जाता है कि वह किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह, जो किसी भी मजबूरी के बल अंतर्गत नहीं है, जो उसके लिए कानूनी रूप से देय है, की प्राप्ति के विरुद्ध श्रम या सेवा प्रदान करेगा। इसलिए हमारा विचार है कि जहां कोई व्यक्ति न्यूनतम वेतन से कम पारिश्रमिक के लिए दूसरे को श्रम या सेवा प्रदान करता है, तो उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 23 के तहत "बलपूर्वक श्रम" शब्द के दायरे और क्षेत्र में आती है। ऐसा व्यक्ति अनुच्छेद 23 के तहत अपने मौलिक अधिकार को लागू करने के लिए अदालत में आने का हकदार होगा, ताकि अदालत से उसे न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करने का निर्देश

दिया जा सके ताकि उसके द्वारा प्रदान किया गया श्रम या सेवा "बलपूर्वक श्रम" न रह जाए। और अनुच्छेद 23 के उल्लंघन का निवारण किया जाता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि जब याचिकाकर्ताओं ने आरोप लगाया कि ठेकेदारों द्वारा नियोजित श्रमिकों को न्यूनतम वेतन का भुगतान नहीं किया गया था, तो शिकायत वास्तव में प्रभावी थी और अनुच्छेद 23 के तहत श्रमिकों के मौलिक अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ एक शिकायत थी।

19. वैधानिक प्रावधानों के मददेनजर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए रुख और इस तथ्य के मददेनजर कि पारिश्रमिक के रूप में किया गया भुगतान चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए भी निर्धारित न्यूनतम वेतन से कम है, राज्य सरकार की कार्रवाई स्पष्ट मनमाना है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत याचिकाकर्ताओं के अधिकारों का उल्लंघन किया गया है और राज्य सरकार द्वारा होम गार्ड जवानों को दिए जाने वाले पारिश्रमिक के बराबर पारिश्रमिक का भुगतान नहीं करने का औचित्य स्पष्ट रूप से मनमाना और अवैध है। इसे ध्यान में रखते हुए, रिट याचिकाएँ अनुमति के योग्य हैं और तदनुसार अनुमति दी जाती हैं।

20. उत्तर प्रदेश प्रांतीय रक्षक दल के जवानों को देय पारिश्रमिक/भत्तों की ऐसी दरों पर पुनर्गणना करने के निर्देश जारी किए जाते हैं, जिनका कुल योग 30 दिन (एक माह) राज्य सरकार के एक पुलिसकर्मी के वेतन का न्यूनतम होता है। गृह रक्षक, होम गार्ड्स

वेलफेयर एसोसिएशन (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्देशानुसार हकदार हैं।

राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं को समय-समय पर होम गार्डों को भुगतान की जाने वाली दर के बराबर परिलब्धियाँ/पारिश्रमिक देने के आदेश भी पारित करेगी।

राज्य सरकार आज से तीन महीने की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार अपेक्षित आदेश पारित करेगी।

-----

(2023) 9 ILRA 750

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-ए संख्या 6097 वर्ष 2023

भारत संघ और अन्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

श्री कौशल्या नंदन शरण वर्मा एवं अन्य

... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

विनय त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

आशीष कुमार वर्मा

सेवा विधि - केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 - नियम 17 - केंद्रीय

सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 2021 - नियम

65 - प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम,

1985 - धारा 22 (1) - प्रतिवादी नंबर 1,

1976 में गार्ड के रूप में नियुक्त, जन्मतिथि

की त्रुटि थी, सेवा रिकॉर्ड में सही किया गया

- 2012 में उनकी सेवानिवृत्ति से समक्ष, एक

बेमेल देखा गया था - उनके स्पष्टीकरण को

अस्वीकार कर दिया गया था और स्कूल के

साथ सत्यापन शुरू किया गया था - उन्हें

5,65,405 रुपये के देय के मुकाबले भविष्य

निधि के रूप में 3,25,535 रुपये मिले। -

पेंशन 33 साल की सेवा के लिए तय की गई

थी, हालांकि उन्होंने 35 साल से अधिक का

दावा किया था - स्पष्टीकरण मांगने पर,

उन्हें सूचित किया गया कि गणना

31.01.2010 की सेवानिवृत्ति तिथि पर

आधारित थी 12,64,300 रुपये अतिरिक्त

वेतन के रूप में वसूलने का आदेश दिया

गया - प्रतिवादी ने न्यायाधिकरण का

दरवाजा खटखटाया, मामले को नए आदेश

पारित करने के निर्देश के साथ वापस भेज

दिया गया - याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती दी

गई, खारिज कर दी गई, याचिकाकर्ताओं ने

तीन किस्तों में कर्मचारी को 9,00,990

रुपये का भुगतान किया - विलंबित पेंशन

और ग्रेच्युटी पर, न्यायाधिकरण ने

01.02.2012 से 28.06.2018 तक जीपीएफ

ब्याज देने का आदेश दिया - याचिकाकर्ता ने

समीक्षा और देरी माफी आवेदन को खारिज

कर दिया - माना गया, न्यायाधिकरण की

कार्यवाही गलत थी और रेस ज्यूडिकाटा

द्वारा रोक दी गई थी, अंतिम आदेश दिनांक

11.03.2016 के बावजूद एक तय मुद्दे को

गलत तरीके से फिर से खोला गया -



हालांकि, इसमें देरी को माफ करने की शक्ति थी - आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया (पैरा 4, 28, 29)

9. सत्यध्यान घोषाल और अन्य बनाम श्रीमती देवराजिन देबी एवं अन्य, एआईआर 1969 एससी 941)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

10. हर प्यारी देवी बनाम घनश्याम सिंह, (1982) 2 एससीसी 109

### उद्धृत वादों की सूची :

1. दरियाओ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1961 एससी 1457

11. ओएन भटनागर बनाम श्रीमती रुकीबाई नरसिंदास एवं अन्य, एआईआर 1982 एससी 1097

2. आयकर आयुक्त, बॉम्बे बनाम टीपी कुमारन, जेटी 1996 (8) 68

12. पी. लाल बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2003) 3 एससीसी 393

3. हरियाणा राज्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, 2004 सप्प(2) एससीआर 849

13. मथुरा प्रसाद सरजू जायसवाल एवं अन्य बनाम दोसीबाई एनबीजीजीभाँय, एआईआर 1971 एससी 2355

4. केनरा बैंक बनाम एनजी सुब्बाराय शेट्टी और अन्य, एआईआर 2018 एससी 3395

14. पश्चिम बंगाल बनाम हेमंत कुमार, एआईआर 1966 एससी 1061

5. सुरेन्द्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य, रिट-ए संख्या- 5564/2023, 24.08.2023 को निर्णय लिया गया

15. कर्मचारी कल्याण संघ बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1990 एससी 334

6. मैसूर स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम बेंगलोर वूलन, कॉटन एंड सिल्क मिल्स और अन्य, एआईआर 1963 एससी 1128

16. आयकर आयुक्त बनाम टी.ई.कुमारन, 1990 (10) एससीसी 567

7. अर्जुन सिंह बनाम मोहिन्द्र कुमार, एआईआर 1964 एससी 993

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा पारित)

8. एलआर गणपति थेवर (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा बनाम श्री नवनीतस्वरस्वामी देवस्थानम, एआईआर 1969 एससी 764

### क. परिचय

(1) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत वर्तमान रिट याचिका में, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ पीठ,

लखनऊ (जिसे आगे "न्यायाधिकरण" कहा जाएगा) द्वारा आवेदक/प्रतिवादी संख्या-1 द्वारा योजित मूल आवेदन संख्या-332/00515/2018 को स्वीकृत करते हुए पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.10.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने के भीतर जी.पी.एफ. की दर से देय पेंशन और ग्रेच्युटी के ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

(2) उक्त मूल आवेदन संख्या-332/00515/2018 में आवेदक/प्रतिवादी संख्या-1 ने निम्नलिखित अनुतोष मांगे हैं:-

"मूल आवेदन, इस माननीय न्यायाधिकरण के दिनांक 11.3.2016 के निर्णय एवं माननीय उच्च न्यायालय, लखनऊ के निर्णय, जिसके द्वारा रिट याचिका को 5000/- रुपये के जुर्माने के साथ निरस्त कर दिया गया था, के विपरीत प्रतिवादियों द्वारा सेवानिवृत्ति बकाया राशि को अवैध रूप से रोक रखने की अवधि के लिए सेवानिवृत्ति बकाया राशि का भुगतान बिना ब्याज के करने के अवैध, मनमाने और दुर्भावनापूर्ण कार्यवाहियों के विरुद्ध दाखिल किया जा रहा है।

आवेदक ने आगे प्रार्थना की कि प्रतिवादियों को सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात् 31.1.2012 से भुगतान की तिथि अर्थात् 28.6.2018 तक सेवानिवृत्ति बकाया राशि के विलंबित

भुगतान पर 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।"

(3) याचिकाकर्ताओं ने विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 06.07.2023 के निर्णय व आदेश की सत्यता को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 14.10.2022 (उपरोक्त) के उपरोक्त निर्णय/आदेश की समीक्षा की मांग करते हुए योजित समीक्षा आवेदन संख्या 332/00004/2023 के साथ-साथ उपरोक्त समीक्षा आवेदन योजित करने में हुई देरी को माफ करने की मांग करने वाले आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा समीक्षा आवेदन लगभग पांच महीने की देरी से योजित किया गया है, यानी केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम 17 के अंतर्गत निर्धारित अवधि से परे, इसलिए यह विचारणीय नहीं हो सकता है।

बी. तथ्यात्मक मैट्रिक्स

(4) इस रिट याचिका पर विचार करने के लिए आवश्यक निम्नलिखित प्रासंगिक तथ्य इस रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड से मुख्य रूप से निकाले गए हैं:-

4.1. प्रतिवादी संख्या 1-श्री कौशल्या नंदन शरण वर्मा (जिन्हें आगे **कर्मचारी** कहा जाएगा) उत्तर रेलवे में गार्ड (ग्रेड-सी) के मूल पद पर नियुक्त हुए तथा दिनांक 13.09.1976 को सेवा में शामिल हुए। उन्होंने वर्ष 1966 में गांधी विद्यालय इंटर कॉलेज, मारूपपुर,

मर्यादपुर, जिला मऊ (जिसे आगे **विद्यालय** कहा जाएगा) से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। शैक्षिक अभिलेखों में उनकी जन्मतिथि गलती से 01.02.1950 अंकित थी, जबकि उनकी वास्तविक जन्मतिथि 01.02.1952 थी, इसलिए कर्मचारी के पिता ने इसे सही कराने का प्रयास किया। वर्ष 1976 में परीक्षा बोर्ड द्वारा एक नया हाई स्कूल प्रमाण पत्र जारी किया गया था। इसके अनुसरण में, उन्होंने अपने मूल प्रमाण पत्रों के साथ-साथ वर्ष 1976 में बोर्ड द्वारा जारी हाई स्कूल प्रमाण पत्र की सत्यापित प्रतियां भी प्रस्तुत कीं। इसके बाद, उनके सेवा रिकॉर्ड में उनकी जन्मतिथि 01.02.2050 के स्थान पर 01.02.1952 के रूप में सही ढंग से दर्शाई गई।

4.2. स्पष्टतः, कर्मचारी को उसकी जन्मतिथि 31.01.2012 के आधार पर सेवानिवृत्त होना था, अतः दिनांक 25.01.2012 को मंडल रेल प्रबंधक (कार्मिक), मंडल कार्यालय, उत्तर रेलवे, हजरतगंज, लखनऊ ने दिनांक 27.01.2012 को एक पत्र जारी किया, जिसमें कहा गया कि सेवा अभिलेखों में रखे गए नियुक्ति पत्र में उसकी जन्मतिथि 01.02.1950 दर्शाई गई है, जबकि सेवा अभिलेख के प्रथम पृष्ठ पर उसकी जन्मतिथि 01.02.1952 दर्शाई गई है, अतः कर्मचारी को एक बार फिर जन्मतिथि आदि का मूल प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। इसके प्रत्युत्तर में कर्मचारी ने दिनांक 27.01.2012 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उल्लेख किया गया कि शैक्षिक प्रमाण-पत्र गुम हो गए हैं। तत्पश्चात, कर्मचारी को दिनांक 31.01.2012 का पत्र दिया गया, जिसमें कहा गया कि उसका स्पष्टीकरण

संतोषप्रद नहीं है, तथा मामले की पुष्टि संबंधित संस्थान से की जाएगी।

4.3. तत्पश्चात, दिनांक 02.02.2012 को भविष्य निधि की राशि के 3,25,535/- रुपये की राशि कर्मचारी के खाते में जमा कर दी गई, जबकि कुल देय राशि 5,65,405/- रुपये थी। उसे पेंशन भुगतान आदेश संख्या 0112070079 दिनांक 3.8.2012 भेजा गया, जिसमें उसकी जन्म तिथि 01.02.1950 तथा सेवानिवृत्ति तिथि 31.01.2010 दर्शाई गई। उसकी पेंशन 13675/- रुपये प्रतिमाह स्वीकृत की गई, जिसमें अर्हकारी सेवा 33 वर्ष दर्शाई गई, जबकि कर्मचारी के अनुसार उसने वास्तव में 35 वर्ष 4 माह 8 दिन काम किया था। तत्पश्चात, उसने दिनांक 27.02.2012 को आवेदन प्रस्तुत कर किए गए तथा रोके गए भुगतान का विवरण मांगा। इसके जवाब में, कर्मचारी को भुगतान का विवरण प्रदान किया गया था, जिसे 03.10.2012 के पत्र के अनुसार उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख 31.01.2010 मानते हुए कटौती के लिए गणना की गई थी। इसके अलावा, 01.02.2010 से 31.01.2012 तक वेतन के अधिक भुगतान के रूप में 12,64,300/- रुपये की वसूली का निर्देश दिया गया था, जिसमें से 9,78,853/- रुपये की राशि डीसीआरजी और छुट्टी नकदीकरण की राशि से काट ली गई/वसूल की गई है और शेष 2,85,853/- रुपये पेंशन राहत से वसूलने का निर्देश दिया गया था।

4.4. उपरोक्त से व्यथित होकर, कर्मचारी ने ट्रिब्यूनल के समक्ष मूल आवेदन संख्या

438/2012: कौशैया नंदन शरण वर्मा बनाम भारत संघ और अन्य योजित किया।

4.5. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 11.03.2016 के आदेश के द्वारा उपरोक्त मूल आवेदन संख्या 438/2012 का निस्तारण निम्नलिखित निर्देशों के साथ किया:-

(क) आवेदक 01.02.2010 से 31.01.2012 की अवधि के लिए वेतन पाने का हकदार है।

(ख) 01.02.2010 से 31.01.2012 की अवधि के लिए भुगतान किए गए वेतन के विरुद्ध कोई वसूली नहीं की जाएगी।

(ग) 01.02.2010 से 31.01.2012 के बीच प्राप्त वेतन के विरुद्ध की गई कोई भी वसूली, वापस की जाएगी।

(घ) आवेदक अपनी वास्तविक सेवानिवृत्ति तिथि अर्थात् 31.01.2010 को देय पेंशन लाभ पाने का हकदार है।

(ई) पीपीएफ, डीसीआरजी, परिवर्तित पेंशन आदि सहित सभी सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान आवेदक को 31.01.2010 को धारित पद/वेतन के आधार पर किया जाना है।

13. मामले को प्रतिवादियों को ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार संशोधित पीपीओ सहित नए आदेश पारित करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है। पूरी कार्रवाई इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार महीने के भीतर पूरी की जानी है।”

4.6. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 11.03.2016 के उपरोक्त निर्णय/आदेश को भारत संघ/याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-16855/2016 योजित करके चुनौती दी थी। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 25.01.2018 के निर्णय/आदेश के माध्यम से 5000/- रुपये की लागत के साथ रिट याचिका को खारिज कर दिया। इसके बाद, 28.04.2018 को याचिकाकर्ताओं ने कर्मचारी को किशतों में भुगतान किया, यानी 18.04.2018 को 587787/- रुपये की राशि, 27.06.2018 को 285853/- रुपये की राशि और 28.06.2018 को 27350/- रुपये की राशि (कुल राशि 9,00,990/- रुपये)।

4.7. दो साल और 3 महीने के बाद पेंशन और ग्रेच्युटी के भुगतान से व्यथित महसूस करते हुए, कर्मचारी ने ट्रिब्यूनल के समक्ष मूल आवेदन संख्या-332/00515/2018 योजित किया। विद्वान न्यायाधिकरण ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कर्मचारी की पेंशन और ग्रेच्युटी 01.02.2012 को देय थी, लेकिन इसका भुगतान 28.06.2018 को किया गया और सीसीएस (पेंशन) नियम, 2021 के नियम 65 को भी ध्यान में रखते हुए, दिनांक 14.10.2022 के आदेश के द्वारा मूल आवेदन को अनुमति दी और याचिकाकर्ताओं को निर्देश दिया गया कि वे पेंशन और ग्रेच्युटी पर देय ब्याज का भुगतान जीपीएफ की दर से उसकी देय तिथि यानी 01.02.2012 से 28.06.2018 तक आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने के भीतर करें।

4.8. इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने न्यायाधिकरण के समक्ष समीक्षा आवेदन संख्या- 332/00004/2023 प्रस्तुत किया, जिसमें 14.10.2022 के उपरोक्त निर्णय/आदेश की समीक्षा की मांग की गई, जिसमें 5 महीने की देरी हुई। विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 06.07.2023 के निर्णय/आदेश के माध्यम से समीक्षा आवेदन के साथ-साथ समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी के लिए माफी के आवेदन को भी खारिज कर दिया।

4.9. दोनों निर्णयों/आदेशों अर्थात् 14.10.2022 (उपरोक्त) और 06.07.2023 (उपरोक्त) से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका योजित की है।

सी. तर्क

(5) भारत संघ/याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री विनय त्रिपाठी और प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार वर्मा को सुना।

(6) विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 के आक्षेपित निर्णय/आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 14.10.2022 के आक्षेपित निर्णय/आदेश के माध्यम से जी.पी.एफ. की दर से देय पेंशन और ग्रेच्युटी पर ब्याज के भुगतान में कथित देरी पर इसकी नियत तिथि यानी 01.02.2012 से 28.06.2018 तक ब्याज का भुगतान करने का निर्देश देकर कानून की घोर त्रुटि की है।

उन्होंने तर्क दिया कि कर्मचारी/प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पूर्व मूल आवेदन संख्या 438/2012 में मांगी गई राहत संख्या 4, जिस पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 11.03.2016 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया था, तथा कर्मचारी/प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा बाद के मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 में मांगी गई एकमात्र राहत लगभग समान हैं, इसलिए, बाद के मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 *रेस जुडीकेटा (पूर्व निर्णीत)* द्वारा बाधित था और केवल इसी आधार पर, मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 को खारिज किया जाना था, तथापि, विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 14.10.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 को स्वीकृत करने में त्रुटि की है।

(7) अपने तर्कों को बल प्रदान करने के लिए, याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने **दरियाओ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: एआईआर 1961 एससी 1457, आयकर आयुक्त, बॉम्बे बनाम टीपी कुमारन: जेटी 1996 (8) 68, हरियाणा राज्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य: 2004 एसयूपीपी (2) एससीआर 849 और केनरा बैंक बनाम एनजी सुब्बाराय शेट्टी और अन्य: एआईआर 2018 एससी 3395** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों का संदर्भ दिया है।

(8) याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि चूंकि मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 को दिनांक 14.10.2022 के आदेश द्वारा स्वीकृत करने में स्पष्ट त्रुटि थी और इस तरह,

याचिकाकर्ताओं ने देरी के लिए माफी के आवेदन के साथ-साथ दिनांक 14.10.2022 के आदेश की समीक्षा की मांग करते हुए समीक्षा आवेदन संख्या 332/00004/2023 योजित किया, हालांकि, विद्वान न्यायाधिकरण ने समीक्षा आवेदन के साथ-साथ दिनांक 06.07.2023 के आक्षेपित आदेश के द्वारा देरी के लिए माफी के आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि न्यायाधिकरण के पास केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम 17 के दृष्टिगत समीक्षा आवेदन योजित करने में देरी को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि हाल ही में, इस न्यायालय ने रिट-ए संख्या-5564/2023: *सुरेन्द्र कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य* में इस बिन्दु पर निर्णय दिया है कि विद्वान न्यायाधिकरण के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने की शक्ति है या नहीं और निर्धारित किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण के पास देरी को माफ करने की शक्ति है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश 06.07.2023 भी खारिज किये जाने योग्य है।

(9) इसके विपरीत, कर्मचारी/प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णयों/आदेशों का समर्थन किया है और तर्क दिया है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 22 (1) में प्रावधान है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के समक्ष कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 बाध्यकारी नहीं होगी, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होगी, जो प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी के पक्ष में है।

उन्होंने प्रस्तुत किया कि चूंकि मूल आवेदन संख्या 515/2018 को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के आलोक में दिनांक 14.10.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से स्वीकृत किया गया था और इस प्रकार, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 के अंतर्गत कार्यवाही में *रेस ज्यूडिकेटा* के सिद्धांत की कोई भूमिका नहीं है। उनके अनुसार, विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा *रेस ज्यूडिकेटा* की दलील नहीं उठाई गई थी, इसलिए, याचिकाकर्ताओं को वर्तमान कार्यवाही में इस न्यायालय के समक्ष इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(10) प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि यद्यपि प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी ने पूर्व मूल आवेदन सं.438/2012 में पेंशन लाभों के देय भुगतान पर 18% की दर से ब्याज का दावा किया था, लेकिन विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा उस पर विचार नहीं किया गया। उनके अनुसार, याचिकाकर्ताओं ने गलत अनुमान लगाया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने पेंशन लाभों के देय भुगतान पर ब्याज से इनकार कर दिया है, जबकि मूल आवेदन सं.438/2012 में पारित दिनांक 11.03.2016 के आदेश में, ब्याज के दावे के संबंध में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा कुछ भी नहीं देखा गया है। इसलिए, यदि प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी का दावा अनसुना किया गया था, तो उसे उसी के लिए एक अन्य कार्यवाही के माध्यम से मुकदमा करने का पूरा अधिकार है। इस प्रकार, विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक

14.10.2022 के आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या कमी नहीं है।

भुगतान आदेश जारी करने का निर्देश दें।

(11) जहां तक दिनांक 06.07.2023 के आक्षेपित निर्णय/आदेश का संबंध है, प्रतिवादी सं. 1/कर्मचारी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम 17 के दृष्टिगत, विद्वान न्यायाधिकरण के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने का कोई अधिकार नहीं है, इसलिए विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 06.07.2023 के आक्षेपित आदेश के द्वारा समय बीत जाने के कारण समीक्षा आवेदन को सही रूप से खारिज कर दिया है।

2. विपक्षीगण द्वारा जारी दिनांक 10.05.2012 के पत्र संख्या 6 को रद्द/निरस्त करें, जिसकी फोटो प्रति ओ.ए. के अनुलग्नक संख्या 1 में दी गई है।

3. विपक्षीगण द्वारा पारित आदेश संख्या 2 से 5, यदि कोई हो, को रद्द/निरस्त करें, जिसमें विपक्षीगण से उसकी मूल प्रति मंगाने के पश्चात आवेदक से 12,64,300/- रुपए की वसूली करने का निर्देश दिया गया है।

#### घ. विश्लेषण और निष्कर्ष

(12) पक्षों द्वारा दिये गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड का अध्ययन करते हुए, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि इससे पहले कर्मचारी/प्रतिवादी सं. 1 ने न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन सं.438/2012 योजित किया था, जिसमें निम्नलिखित अनुतोष मांगी गई थी:-

4. विपक्षी पक्षों को बकाया राशि अर्थात् ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण और पेंशन के बकाया की राशि से काटी गई/वसूली गई 12,64,300/- रुपए की राशि आवेदक को 01.02.2012 से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित वापस करने का निर्देश दिया जाए।

“1. दिनांक 03.08.2012 के पेंशन भुगतान आदेश को रद्द/निरस्त करें तथा विपक्षीगण को आवेदक को उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि 31.01.2012 मानते हुए दिनांक 01.02.2012 से उसकी पेंशन निर्धारित करते हुए नया पेंशन

5. कोई अन्य आदेश या निर्देश पारित करें, जिसे यह माननीय न्यायाधिकरण मामले की परिस्थितियों में उचित और सही समझे।

6. आवेदन का व्यय प्रदान करें।”

(13) स्पष्टतः, विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 11.03.2016 के आदेश के द्वारा उपरोक्त मूल आवेदन संख्या 438/2016 का निस्तारण प्रस्तर संख्या 4.5 में दिए गए निर्देश के साथ किया। दिनांक 11.03.2016 के इस आदेश को भारत संघ द्वारा रिट याचिका संख्या-16855 (एस/बी)/ 2016 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 25.01.2018 के आदेश के द्वारा रिट याचिका को निरस्त कर दिया और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 11.03.2016 के निर्णय/आदेश को बरकरार रखा।

(14) कर्मचारी/प्रतिवादी सं.1 ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि उपर्युक्त निर्णयों/आदेशों के अनुपालन में कर्मचारी/प्रतिवादी सं.1 को 6,09,222/- रुपए का भुगतान किया गया था, जिसे पे ऑर्डर सं. 491926 दिनांक 28.03.2018 के अंतर्गत डीसीआरजी से काट लिया गया था; 3,69,225/- रुपए की राशि, जिसे पे ऑर्डर सं. 491927 दिनांक 28.03.2018 के अंतर्गत अवकाश नकदीकरण से काट लिया गया था; तथा 2,85,853/- रुपए, जिसे पे ऑर्डर सं. 491950 दिनांक 12.06.2018 के अंतर्गत पेंशन से वसूल किया गया था। हालांकि, इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 1/आवेदक ने मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 योजित किया, जिसमें निम्नलिखित अनुतोष की मांग की गई:-

“(i) यह माननीय न्यायाधिकरण कृपया प्रतिवादियों को सेवानिवृत्ति बकाया के विलंबित भुगतान पर देय तिथि अर्थात् 01.02.2012 से 28.6.2018 तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश देने की कृपा करे।

(ii) ऐसे अन्य आदेश पारित करे, जो मामले की परिस्थितियों के अंतर्गत उचित और सही पाए जाएं।

(iii) मूल आवेदन को व्यय के साथ स्वीकार किया जाए।”

(15) विद्वान न्यायाधिकरण ने इस तथ्य को संज्ञान में लेते हुए कि डीसीआरजी लाभ 01.02.2012 को देय था, लेकिन कर्मचारी/प्रतिवादी संख्या 1 को इसका भुगतान 28.06.2018 को किया गया और सीसीएस (पेंशन) नियम, 2021 के नियम 65 के आलोक में दिनांक 14.10.2022 के निर्णय/आदेश द्वारा उपरोक्त मूल आवेदन का निस्तारण कर दिया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

(16) इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने न्यायाधिकरण के समक्ष समीक्षा आवेदन संख्या 332/00004/2023 प्रस्तुत किया, जिसे विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 06.07.2023 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।



(17) संक्षेप में, इस मामले में उत्तर दिया जाने वाला प्रश्न यह है कि (i) क्या मूल आवेदन संख्या 332/00515/2018 रैस ज्यूडिकेटा के सिद्धांत से बाधित था; और (ii) क्या विद्वान न्यायाधिकरण के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने की शक्ति है या नहीं?

(18) जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रैस ज्यूडिकेटा इक्विटी और सार्वजनिक नीति पर आधारित कानून का एक सिद्धांत है जिसके अनुसार किसी पक्ष को दूसरे पक्ष को परेशान करने और उसी मुद्दे को फिर से उठाकर अदालत का समय बर्बाद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। मैसूर स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम बैंगलोर वूलन, कॉटन एंड सिल्क मिल्स एंड ऑर्स: एआईआर 1963 एससी 1128 में सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने कहा कि जो रैस ज्यूडिकेटा बन जाता है वह एक 'मामला' है, जिस पर वास्तव में निर्णय लिया जाता है और वह कारण नहीं है जो अदालत को 'मामले' पर निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए, यह निर्णय कानूनी रूप से सही नहीं हो सकता है लेकिन यह बाध्यकारी हो जाता है और पार्टी को उसी मुद्दे को फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(19) यह स्थापित कानूनी सिद्धान्त है कि कानून के किसी प्रश्न पर एक गलत निर्णय भी इसके पक्षों के बीच न्यायिक निर्णय है। न्यायिक निर्णय की शुद्धता या अन्यथा इस सवाल पर कोई असर नहीं पड़ता है कि यह

न्यायिक निर्णय के रूप में कार्य करता है या नहीं। (देखें अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्रा कुमार: एआईआर 1964 एससी 993; एल.आर. गणपति थेवर (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधियों बनाम श्री नवनीतेश्वरस्वामी देवस्थानम: एआईआर 1969 एससी 764; और सत्यध्यान घोषाल और अन्य बनाम श्रीमती देवराजिन देवी और अन्य: एआईआर 1969 एससी 941)।

(20) हर प्यारी देवी बनाम घनश्याम सिंह: (1982) 2 एससीसी 109; ओ.एन.भटनागर बनाम श्रीमती रुकीबाई नरसिंहदास एवं अन्य: एआईआर 1982 एससी 1097; और पी. लाल बनाम भारत संघ एवं अन्य: (2003) 3 एससीसी 393 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि किसी प्राधिकारी, न्यायाधिकरण या न्यायालय को तथ्य के उस निष्कर्ष को पुनः खोलने की अनुमति नहीं है, जो पहले की कार्यवाहियों में अंतिम हो चुका है।

(21) मथुरा प्रसाद सरजू जायसवाल एवं अन्य बनाम दोसीबाई एन.बी.जीजीभाय: एआईआर 1971 एससी 2355 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि रैस ज्यूडिकेटा के मुद्दे पर विचार करते समय न्यायालय के लिए यह जांच करना खुला नहीं है कि पहले दर्ज किए गए निष्कर्ष सही थे या नहीं। चूंकि यह अंतिमता प्राप्त करने पर बाध्यकारी हो जाता है, इसलिए इस सिद्धांत को लागू करने का उद्देश्य यह है कि जो अधिकार पहले से निर्धारित किए गए थे, वे निरर्थक न हो जाएं, इसलिए, पक्षों को उन मुद्दों को फिर से खोलने या फिर से लड़ने से रोका जाना चाहिए जो अंतिम हो गए हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"यह सच है कि रेस जुडिकाटा के नियम के आवेदन का निर्धारण करने में न्यायालय पहले के निर्णय की सत्यता या अन्यथा से चिंतित नहीं है। यदि मुद्दा विशुद्ध रूप से तथ्यात्मक है, तो सक्षम न्यायालय द्वारा पहले की कार्यवाही में तय किया गया मामला उसी पक्षकारों के बीच बाद के मुकदमे में अंतिम रूप से तय माना जाना चाहिए और उसे फिर से नहीं खोला जा सकता। उसी पक्षकारों के बीच पहले की कार्यवाही में निर्धारित कानून और तथ्य का मिश्रित प्रश्न, उसी कारण से, उसी पक्षकारों के बीच बाद की कार्यवाही में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है। लेकिन, जहां निर्णय कानून के प्रश्न पर है, यानी किसी कानून की व्याख्या, तो यह उन्हीं पक्षों के बीच बाद की कार्यवाही में रेस जुडिकाटा होगा जहां कार्रवाई का कारण समान है, क्योंकि धारा 11, सिविल प्रक्रिया संहिता में "मुद्दे में मामला" अभिव्यक्ति का अर्थ पक्षों के बीच मुकदमा चलाया जाने वाला अधिकार है, यानी, वे तथ्य जिन पर अधिकार का दावा किया जाता है या अस्वीकार किया जाता है और उस मुद्दे के निर्धारण के लिए लागू कानून। हालांकि, जहां प्रश्न विशुद्ध रूप से कानून का है और यह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र या

न्यायालय के किसी ऐसे निर्णय से संबंधित है जो किसी ऐसी चीज को मंजूरी देता है जो अवैध है, तो रेस जुडिकाटा के नियम का सहारा लेकर निर्णय से प्रभावित पक्ष को रेस जुडिकाटा के नियम के अंतर्गत आदेश की वैधता को चुनौती देने से नहीं रोका जाएगा, क्योंकि प्रक्रिया का नियम देश के कानून को प्रभावित नहीं कर सकता है।"

(22) पश्चिम बंगाल राज्य बनाम हेमंत कुमार: एआईआर 1966 एससी 1061 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया कि अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा गलत निर्णय, पक्षों के बीच उतना ही बाध्यकारी है जितना कि सही निर्णय और इसे पुनरीक्षण जैसी अन्य प्रक्रिया द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है, जिसका प्रावधान कानून में है।

(23) कर्मचारी कल्याण संघ बनाम भारत संघ और अन्य: एआईआर 1990 एससी 334 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"...यदि कानून का प्रश्न वाद बिन्दु से संबंधित है, तो कानून के ऐसे प्रश्न पर गलत निर्णय, यदि कार्रवाई का कारण एक ही है, तो यह बाद में उस मुकदमे या कार्यवाही में पक्षकारों के बीच रेस-जुडिकाटा के रूप में कार्य कर सकता है। दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय कानून के किसी अमूर्त

प्रश्न का निर्णय नहीं करता है और इसमें अधिकार क्षेत्र का कोई प्रश्न भी शामिल नहीं है। यह मानते हुए कि दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय त्रुटिपूर्ण है, ऐसा निर्णय तथ्य के प्रश्न पर होने के कारण भी उसी कार्रवाई के कारण परवर्ती मुकदमे या कार्यवाही में उन्हीं पक्षों के बीच रेस-ज्युडिकेटा के रूप में कार्य करेगा।"

(24) आयकर आयुक्त बनाम टी.ई.कुमारन : 1990 (10) एस.सी.सी. 567 में सर्वोच्च न्यायालय ने रेस-ज्युडिकेटा के सिद्धांत को लागू करते हुए स्पष्ट रूप से निर्धारित किया:-

"यह दावा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 स्पष्टीकरण IV के अंतर्गत रचनात्मक रेस-ज्युडिकेटा द्वारा बाधित है, जिसमें यह परिकल्पना की गई है कि कोई भी बिन्दु, जिसे पूर्ववर्ती मुकदमे में बचाव या हमले का आधार बनाया जा सकता था और बनाया जाना चाहिए था, उसे बाद के मुकदमे में सीधे तौर पर बिन्दु माना जाएगा। इसलिए जब पहले भी दावा किया गया था, तो वह ब्याज के लिए डिक्री मांग सकता था या प्राप्त कर सकता था। उसने ऐसा नहीं मांगा और इसलिए, यह रेस-ज्युडिकेटा के रूप में कार्य करता है। अन्यथा भी, जब उसने मुकदमा योजित किया और विशेष रूप से उसी आदेश 2 का दावा नहीं किया, तो सिविल प्रक्रिया संहिता का नियम 2 याचिकाकर्ता को अलग से अनुतोष

मांगने से बाधित करता है। किसी भी स्थिति में मूल आवेदन संधारणीय नहीं है।"

(25) उपर्युक्त कानूनी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका में उपलब्ध अभिलेखों के अवलोकन से हमें यह पता चलता है कि मूल आवेदन संख्या-438/2012 (मुकदमेबाजी के पहले दौर में) में प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी द्वारा मांगी गई अनुतोष, 4, 12,64,300/- रुपये की राशि की वापसी के लिए थी, जिसे निपटान बकाया राशि यानी ग्रेच्युटी, छुट्टी नकदीकरण और पेंशन के बकाया की राशि से 01.02.2012 से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ काटा/वसूला गया था, जबकि मूल आवेदन संख्या-332/00515/2018 (मुकदमेबाजी के दूसरे दौर) में प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी द्वारा मांगी गई राहत 12% की दर से ब्याज का भुगतान करने के लिए थी। सेवानिवृत्ति बकाया राशि के विलंबित भुगतान के लिए देय तिथि अर्थात् 01.02.2012 से 28.06.2018 तक प्रति वर्ष की दर से जुर्माना देना होगा।

(26) जाहिर है, मूल आवेदन संख्या-438/2012 में प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी द्वारा मांगी गई राहत संख्या-4 पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 11.03.2016 के निर्णय/आदेश के अंतर्गत पहले ही निर्णय लिया जा चुका था, विद्वान न्यायाधिकरण ने अन्य राहतों के साथ-साथ इस पर भी निर्णय लिया और प्रस्तर संख्या 4, 5 में उल्लिखित अनुसार निर्देश जारी किया गया। दिनांक 11.03.2016 के इस

आदेश को भारत संघ/याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिका संख्या- 16855/2016 में चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 25.01.2018 के निर्णय/आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसका अर्थ है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 11.03.2016 (उपरोक्त) के निर्णय/आदेश को बरकरार रखा गया। प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी ने विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 11.03.2016 (उपरोक्त) के आदेश को कभी चुनौती नहीं दी थी, तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि जब प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी को सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करते समय याचिकाकर्ताओं/भारत संघ द्वारा दिनांक 11.03.2016 के आदेश का अनुपालन किया गया था, तब प्रतिवादी सं.1/कर्मचारी ने बाद में मूल आवेदन सं.-332/00515/2018 प्रस्तुत किया, जिसमें सेवानिवृत्ति बकाया राशि के विलंबित भुगतान पर देय तिथि अर्थात् 01.02.2012 से 28.06.2018 तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने की मांग की गई थी, जो कि मूल आवेदन सं.-438/2012 में मांगी गई राहत के बराबर प्रतीत होता है और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 11.03.2016 के आदेश के अनुसार निर्णय दिया गया था।

(27) स्वीकार्य रूप से, मूल आवेदन संख्या-438/2012 में तथ्य के निष्कर्ष को प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए, एक समान मुद्दे की वैधता या अन्यथा, यानी सेवानिवृत्ति बकाया के विलंबित भुगतान पर ब्याज देने के लिए, जैसा कि प्रतीत होता है, मूल आवेदन संख्या-

332/00515/2018 योजित करके मुकदमे के दूसरे दौर में कार्यवाही का विषय नहीं हो सकता था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी विद्वान न्यायाधिकरण के दिनांक 11.03.2016 के निर्णय/आदेश के अनुसार सेवानिवृत्ति बकाया पर ब्याज प्राप्त करने का हकदार नहीं था, तो फिर सेवानिवृत्ति बकाया पर ब्याज का सवाल ही नहीं उठता।

(28) प्रतिवादी/ कर्मचारी ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या-332/ 00515/ 2018 इस ज्ञान के साथ योजित किया कि इससे पहले के मूल आवेदन संख्या 438/2012 में, हालांकि उसके द्वारा ब्याज की राहत का दावा किया गया था, लेकिन विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा इसे प्रदान नहीं किया गया था। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी मूल आवेदन संख्या-332/00515 /2018 (मुकदमेबाजी का दूसरा दौर) योजित करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश II नियम 2 में निहित प्रावधानों या उसके अनुरूप सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अपना दावा करने के लिए बाध्य था। प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी ने दिनांक 11.03.2016 (उपरोक्त) के पिछले आदेश की वैधता या अन्यथा के बारे में विवाद उठाने के लिए विद्वान न्यायाधिकरण से कोई अनुमति नहीं मांगी और न ही प्राप्त की, जो अंतिम हो चुका था। इस मामले को देखते हुए, हमारे विचार में, सेवानिवृत्ति बकाया राशि के भुगतान में देरी पर ब्याज न देने के मामले में याचिकाकर्ताओं की कार्रवाई पर सवाल उठाने वाली विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष शुरू की गई कार्यवाही

पूरी तरह से गलत थी और रस जूडीकेटा के सिद्धांत से बाधित थी और किसी भी स्थिति में विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष मुकदमे के दूसरे दौर में कर्मचारी द्वारा मांगी गई प्रार्थना इक्विटी, अच्छे विवेक और निष्पक्ष नहीं थी। यहां तक कि विद्वान न्यायाधिकरण भी उक्त बारीकियों को समझने में विफल रहा और एक राहत प्रदान की, जो 11.03.2016 के निर्णय/आदेश की अंतिमता को देखते हुए नहीं दी जानी चाहिए थी। दूसरे शब्दों में, 11.03.2016 को दिए गए पहले के निर्णय/आदेश के बाद देय राशि पर ब्याज का मुद्दा अंतिम रूप प्राप्त कर चुके बाध्यकारी निर्णय को अस्थिर करने के लिए फिर से उठाया जाने के लिए उपलब्ध नहीं था।

(29) जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है कि क्या विद्वान न्यायाधिकरण के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने की शक्ति है, इस न्यायालय ने हाल ही में 24.08.2023 को निर्णीत रिट-ए संख्या-5564/2023: सुरेन्द्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य में इस बिन्दु पर निर्णय दिया है, जिसमें कहा गया कि विद्वान न्यायाधिकरण के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने की शक्ति है। इसलिए, इस संबंध में प्रतिवादी संख्या 1/कर्मचारी की दलील में कोई सार नहीं है।

ई. निष्कर्ष

(30) उपर्युक्त कारणों से, हमारा यह सुविचारित मत है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश निरस्त किये जाने योग्य हैं।

(31) उपर्युक्त के दृष्टिगत, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। मूल आवेदन संख्या-332/00515/2018 में पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश दिनांक 14.10.2022 तथा समीक्षा आवेदन संख्या 332/00004/2023 में पारित आक्षेपित निर्णय दिनांक 06.07.2023 को निरस्त किया जाता है।

(32) व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 760

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

रिट-ए संख्या 6719 वर्ष 2023

प्रवीण कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विभु राय, श्री धनन्जय राय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री शाद खान, श्री सुरेश कुमार

**निर्णय** - डाइंग इन हार्नेस नियमों के अंतर्गत की गई अनुकंपा नियुक्ति को प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित और स्थायी नियुक्ति माना जाएगा और यह समेकित वेतन पर नहीं हो सकती। जिला बेसिक शिक्षा

अधिकारी द्वारा दिनांक 17.06.1996 और 30.01.1996 के शासनादेशों के आधार पर ऐसे दावे को खारिज करने वाला पारित आक्षेपित आदेश, इस न्यायालय द्वारा **रवि करण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1999 (3) यूपीएलबीईसी 2263 , इतवारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट याचिका संख्या 5112 (एस/एस) वर्ष 2014,** और अन्य सहित कई बाध्यकारी उदाहरणों में निर्धारित विधि के विपरीत है।

न्यायालय ने दोहराया कि डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति वितीय कठिनाई को कम करने के लिए की जाती है और इसलिए इसे सेवा में प्रवेश की तिथि से नियमित नियुक्ति माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के दावे पर विधि के अनुसार पुनर्विचार करने के निर्देश जारी किए गए।

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा पारित)

1.याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ उत्तरदाता संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शाद खान को सुना गया।

2.याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.2.2023 को चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की

तारीख से नियमित रूप से नियुक्त मानने का मामला अस्वीकार कर दिया गया है। वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से एक निर्देश देने की भी प्रार्थना की है, जिससे उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता की नियुक्ति को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से नियमित नियुक्ति मानने का आदेश दिया जा सके और उसे परिणामी सेवा लाभ का भुगतान भी किया जा सके।

3.मामले के तथ्य, संक्षेप में, यह हैं कि याचिकाकर्ता को शुरू में उप बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा द्वारा पारित नियुक्ति आदेश दिनांक 18.8.2004 के तहत 2550/- रुपये प्रति माह के समेकित वेतन पर चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता ने अपने नियुक्ति आदेश दिनांक 18.8.2004 के अनुसार अपने पद पर काम करना शुरू कर दिया और उसे समेकित वेतन का भुगतान किया गया।

4.इसके बाद, दिनांक 8.12.2010 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को नियमित वेतनमान रुपये 1300/- का ग्रेड वेतन के साथ 4440-7440/- रुपये का नियमित वेतनमान प्रदान किया गया और तब से वह नियमित वेतनमान में वेतन प्राप्त कर रहा है।

5.याचिकाकर्ता ने जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज के समक्ष अपना दावा पेश किया कि उनकी नियुक्ति को उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख यानी 18.8.2004 से नियमित नियुक्ति माना जा सकता है और उन्हें परिणामी सेवा लाभ का भुगतान किया जा

सकता है। चूँकि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज द्वारा कुछ नहीं किया गया, ऐसे में याचिकाकर्ता ने रिट- ए संख्या 12808/2021 दायर की और इस न्यायालय ने दिनांक 24.9.2021 के आदेश के तहत, **1999 (3) यूपीएलबीईसी 2263 में रिपोर्ट किया गया रवि करण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में दिए गए इस न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के, वर्ष 2004 से 2010 के बीच प्रदान की गई उनकी सेवाओं को शामिल करने के दावे पर विचार करने के लिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज को निर्देश देते हुए उक्त रिट याचिका का निपटारा कर दिया।

6. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज ने रिट- ए संख्या 12808/2021 में पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 24.9.2021 के अनुपालन में दिनांक 15.2.2023 को एक आदेश पारित किया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता का चतुर्थ श्रेणी पद पर उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित नियुक्ति होने को दावा खारिज कर दिया गया है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज ने अपने आदेश दिनांक 15.2.2023 में दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता को 18.8.2004 को समेकित वेतन पर अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी और उसे दिनांक 8.12.2010 के आदेश के तहत नियमित वेतनमान प्रदान किया गया है। और इसलिए, उक्त आदेश के पारित होने से याचिकाकर्ता अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से अपनी नियुक्ति को नियमित नियुक्ति मानने का हकदार नहीं है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज ने उनके

आदेश दिनांक 15.2.2023 में आगे कहा है कि निदेशक, बेसिक शिक्षा, उ.प्र., लखनऊ ने 17.6.1996 को एक आदेश जारी किया है, जिसके तहत यह प्रावधान किया गया है कि जिन चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को समेकित वेतन पर अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी, वे नियमित वेतनमान में वेतन भुगतान के आदेश पारित होने की तिथि से नियमित वेतनमान के लिए हकदार होंगे और उनकी नियुक्तियों को प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति नहीं माना जाएगा।

7. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस रिट याचिका में शामिल मुद्दे का निर्णय इस अदालत द्वारा रिट याचिका संख्या 5112 (एस/एस)/2014 (इतवारी लाल बनाम यूपी राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 18.8.2015 के फैसले और आदेश के तहत पहले ही किया जा चुका है। और इस अदालत द्वारा यह माना गया है कि प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से अनुकंपा नियुक्ति को नियमित नियुक्ति माना जाना चाहिए और संबंधित उम्मीदवार उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से नियमित वेतनमान में वेतन के भुगतान का हकदार है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि इस अदालत ने उपरोक्त निर्णय और रिट याचिका संख्या 5112 (एस/ एस)/2014 में पारित दिनांक 18.8.2015 के आदेश के मामले में इस अदालत द्वारा पारित **1999 (3) यूपीएलबीईसी 2263 में रिपोर्ट किया गया रवि करण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में फैसले पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ता की ओर से

उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि इस न्यायालय ने 13.12.2019 को रिट- ए संख्या 6717/2018 (प्रदीप कुमार और 6 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित एक अन्य फैसले में उसी मुद्दे का फैसला किया है, जो वर्तमान रिट याचिका में शामिल है। अंत में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने रिट- ए संख्या 15205/2022 (आसिफ खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में 23.9.2022 को पारित इस अदालत के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें एक समान मुद्दा, जो याचिकाकर्ता के मामले में शामिल है, का निर्णय लिया गया है।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति समेकित वेतन पर की गई थी और उसके बाद, दिनांक 8.12.2010 के आदेश के तहत उसे नियमित वेतनमान पर नियुक्ति दी गई है। इसलिए याचिकाकर्ता अपनी नियुक्ति को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से, यानी 18.8.2004 से, नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति के रूप में माने जाने का हकदार नहीं है। प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि निदेशक, बेसिक शिक्षा, उ.प्र., लखनऊ द्वारा जारी आदेश दिनांक 17.6.1996 में प्रावधान है कि जहां अनुकंपा नियुक्ति समेकित वेतन पर दी गई थी और बाद में नियमित वेतनमान दी गई है, तो उम्मीदवार उस तारीख से नियमित वेतन भुगतान का हकदार होगा जब नियमित वेतनमान में वेतन भुगतान का आदेश पारित किया गया है और

इसके अलावा, उक्त उम्मीदवार की नियुक्ति को उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से नियमित नहीं माना जा सकता है।

9. मैंने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

10. मुझे लगता है कि इस अदालत ने वर्तमान रिट याचिका में शामिल मुद्दे पर पहले ही फैसला कर दिया है और इस अदालत ने यह माना है कि अनुकंपा नियुक्ति समेकित वेतन पर नहीं हो सकती है और इसे नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति होनी चाहिए। इसलिए भले ही किसी व्यक्ति को अनुकंपा के आधार पर समेकित वेतन पर नियुक्त किया गया हो, उक्त नियुक्ति को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति माना जाएगा।

11. इस अदालत ने रवि करण सिंह (उपरोक्त) के मामले में दिए गए अपने फैसले में उस नियुक्ति को अनुकंपा के आधार पर माना है। अनुकंपा नियुक्ति को स्थायी नियुक्ति माना जाना चाहिए। इस न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है: -

*"यह याचिका हमारे समक्ष विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उनके दिनांक 19.12.1997 के आदेश द्वारा दिए गए एक संदर्भ पर आई है। इसमें शामिल बिंदु बहुत सरल हैं, यानी कि क्या डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति स्थायी नियुक्ति है या अस्थायी नियुक्ति है। विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, इस न्यायालय ने पहले ही बुद्धि सागर दुबे बनाम*



डी.आई.ओ.एस., (1993) 1 यूपीएलबीईसी 197; गुलाब यादव बनाम यूपी राज्य और अन्य, 1991) 2 यूपीएलबीईसी 995; और धीरेंद्र प्रताप सिंह बनाम डी.आई.ओ.एस. और अन्य। (1991) 1 यूपीएलबीईसी 427 में पारित आदेश के तहत डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत एक नियुक्ति को स्थायी नियुक्ति माना था। दिनांक 19.12.1997 को संदर्भित आदेश पारित करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश उपर्युक्त निर्णयों से असहमत थे और इसलिए उन्होंने मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया है।

हमारी राय में, डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत एक नियुक्ति को स्थायी नियुक्ति माना जाना चाहिए अन्यथा यदि ऐसी नियुक्ति को अस्थायी नियुक्ति माना जाता है तो यह होगा कि नियुक्ति के तुरंत बाद सेवा समाप्त की जा सकती है और यह डाइंग इन हार्नेस नियम का उद्देश्य ही रद्द हो जाएगा। क्योंकि इस तरह की नियुक्ति का उद्देश्य रोटी कमाने वाले की अचानक मृत्यु पर परिवार को तत्काल राहत प्रदान करना है। इसलिए, हम मानते हैं कि डाइंग इन हार्नेस नियम के तहत नियुक्ति एक स्थायी नियुक्ति है न कि अस्थायी नियुक्ति और इसलिए यू.पी. के प्रावधान अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियम, 1975, ऐसी नियुक्तियों पर लागू नहीं होंगे।

याचिका का तदनुसार निपटारा किया जाता है।"

12. इस न्यायालय ने दिनांक 18.8.2015 के फैसले और आदेश के माध्यम से **इतवारी लाल** (उपरोक्त) के मामले का फिर से फैसला किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि यू.पी.बेसिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 30.1.1996 को पारित किया गया आदेश अनुकंपा नियुक्ति के मामले में लागू नहीं है, जबकि वर्तमान मामले में याची का मामला उपरोक्त आदेश दिनांक 30.1.1996 के आधार पर खारिज कर दिया गया है। दिनांक 18.8.2015 के निर्णय और आदेश का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है: -

"आक्षेपित आदेश पारित करने का एकमात्र आधार दिनांकित 4.9.2014 है, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद, द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 30.1.1996। उक्त का प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में नवीनतम शासनादेश संख्या-४८०/१५-५-१०-३०-८२ दिनांक २३ मार्च १९९० के पैरा-६ में निम्नवत प्रावधान किया गया है।

"शासनादेश संख्या-२१३७/१५-५-८१-४४८/७६ दिनांक २० जनवरी १९८२ के अंतर्गत चतुर्थ श्रेणी के फालतू कर्मचारियों के समायोजन हेतु नई नियुक्तियां न किये जाने का प्रतिबन्ध मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के नियुक्ति में लागू न होगा।"

उक्त के आलोक में जनपद स्तर पर इकाईवार आवंटित चतुर्थ श्रेणी के पदों को सुनिश्चित करने के उपरांत सीधी भर्ती से किसी प्रकार की कोई नियुक्ति न करने का निर्देश प्रसारित कर दें और मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के लिए आवंटित रिक्त पदों के प्रति ज्येष्ठता क्रम में सम्बन्धित इकाई के नियुक्ति प्राधिकारी (शिक्षा अधीक्षक/उप विद्यालय निरीक्षक प्रथम) द्वारा नियमानुसार नियुक्तियों की जा सकती है।"

दिनांक 30.1.1996 का शासनादेश उन व्यक्तियों के मामले में लागू नहीं होता है, जिन्हें डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था, इसलिए विपक्षी संख्या 3 की ओर से कार्रवाई की गई, जिससे आदेश दिनांक 4.9.2014 के तहत याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया गया। दिनांक 30.1.1996 के सरकारी आदेश को ध्यान में रखते हुए प्रारंभ से ही और क्षेत्राधिकार के बिना और साथ ही इस आधार पर अमान्य है कि समेकित वेतन पर अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह स्थायी प्रकृति का है जैसा कि इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने रवि करण सिंह (उपरोक्त) के मामले में माना है।

x x x x x x x x x x x x x x x x

इसलिए उक्त तथ्य के साथ-साथ रवि करण सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, विपरीत पक्ष संख्या 3 द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जा सकता है।

उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका स्वीकार की जाती है

और विपक्षी संख्या 3, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.9.2014 को रद्द कर दिया जाता है। विपक्षी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वह ऊपर दी गई टिप्पणियों के आलोक में, यानी इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके सामने पेश होने की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर मामले की दोबारा जांच करे।"

**13. इस न्यायालय ने रिट-ए संख्या 6717/2018 (प्रदीप कुमार और 6 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) दिनांक 13.12.2019 का भी फैसला किया है। दिनांक 13.12.2019 के निर्णय और आदेश के प्रासंगिक भाग को निम्नानुसार निकाला गया है:-**

"अपनी बात के समर्थन में श्री राय ने रवि करण सिंह बनाम यूपी राज्य 1999 (2) एडव्ल्यूसी 976 के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय में भरोसा जताया है, जिसमें इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया गया है और बुद्धि सागर दुबे बनाम डी.आई.ओ.एस. 1993 ईएससी 21; गुलाब यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1991 (2) यूपीएलबीईसी 995; एवं धीरेन्द्र प्रताप सिंह बनाम डी.एल.ओ.एस. और अन्य 1991 (1) यूपीएलबीईसी 427 में पारित निर्णय पर भरोसा किया गया है, और यह माना गया है कि नियुक्ति डाइंग-इन-हार्नेस नियमों के तहत इसे स्थायी नियुक्ति माना जाएगा अन्यथा यदि ऐसी नियुक्ति को अस्थायी नियुक्ति माना जाएगा तो इससे यह होगा कि नियुक्ति के तुरंत बाद सेवा समाप्त की जा सकती है और इससे डाइंग-इन-हार्नेस नियमावली का उद्देश्य निष्प्रभावी हो जाएगा क्योंकि ऐसी नियुक्ति अभीष्ट है क्योंकि कमाने वाले की आकस्मिक मृत्यु पर परिवार को तत्काल राहत प्रदान करना आशित है। सर्विस सिंगल संख्या 5112/2014 (इतवारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के माध्यम से सचिव बेसिक शिक्षा एलकेओ) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.08.2015 पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें मामले पर भरोसा करने के बाद रवि करण सिंह (उपरोक्त), रिट याचिका की अनुमति दी गई और लागू आदेश को रद्द कर दिया गया। निर्धारित अवधि के

भीतर उसमें की गई टिप्पणियों के आलोक में मामले की नए सिरे से जांच करने के लिए विपक्षी संख्या 3 को निर्देश जारी किया गया है। उन्होंने रवींद्र नाथ टैगोर और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 2018 (3) एडीजे 1641, के मामले में दिए गए फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता, जिन्हें वर्ष 2005 में डाइंग-इन-हार्नेस नियमों के तहत नियुक्त किया गया था, वे सभी समान रूप से नियुक्त अन्य सभी लोगों के समान व्यवहार किए जाने के हकदार हैं। इसके लिए बेसिक स्कूलों में सहायक शिक्षकों को स्थायी किया जाएगा। उनकी पेंशन और भविष्य निधि लाभ और तदनुसार, शासनादेश दिनांक 15.11.2011 को निरस्त कर दिया गया है।

विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा कानूनी और तथ्यात्मक स्थिति पर विवाद नहीं किया गया है, लेकिन साथ ही, उनका तर्क है कि याचिकाकर्ताओं की प्रारंभिक नियुक्ति समेकित आधार पर थी और उसके बाद उन्हें पद पर नियमित कर दिया गया है और स्वीकार्य लाभ प्रदान किए गए हैं। ऐसे में, इस विलंबित चरण में, इस न्यायालय को मामले में बिल्कुल भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

वर्तमान मामले में, यह बताने या सुझाव देने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि जिन पदों पर याचिकाकर्ताओं को नियुक्त किया गया है, वे पर्याप्त रूप से रिक्त नहीं थे। इस मुद्दे पर कानून तय है कि डाइंग-इन-हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति केवल एक मूल रिक्ति के विरुद्ध ही बढ़ाई जा सकती है और यदि कोई रिक्ति नहीं है, तो ऐसे उद्देश्य के लिए अतिरिक्त पद सृजित किया जाएगा।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में रवि करण सिंह (उपरोक्त), इतवारी लाल (उपरोक्त) और साथ ही रवींद्र नाथ टैगोर (उपरोक्त), के मामले में की गई टिप्पणियों का मुद्दा अब पुनः एकीकरण का नहीं रह गया है और इस प्रकार, न्यायालय की सुविचारित राय है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा जो सेवाएँ समेकित वेतन पर प्रदान की गई हैं, की गणना नियमित सेवा के रूप में की जानी चाहिए। और तदनुसार, परिणामी लाभों का अनुसरण भी कर सकते हैं।"

**14. इस अदालत ने हाल ही में इसी मुद्दे पर विचार किया है, जो वर्तमान रिट याचिका में**

शामिल है और रिट-ए संख्या 15205/2022 (आसिफ खान बनाम यूपी राज्य और अन्य) में निर्णय और आदेश दिनांक 23.9.2022 द्वारा निर्णय हो चुका है। निर्णय और आदेश दिनांक 23.9.2022 का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है:-

"आक्षेपित आदेश दिनांक 2.9.2022 को पारित करने का एकमात्र आधार दिनांक 30.1.1996 को, सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद द्वारा जारी शासनादेश है। उक्त का प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में नवीनतम शासनादेश संख्या-880/१५-५-९०-3-८२ दिनांक २३ मार्च १९९० के पारा ६ में निम्नवत प्रावधान किया गया है

शासनादेश संख्या-२१३७/१५/८९-४४८/७६ दिनांक २० जनवरी १९८२ के अंतर्गत चतुर्थ श्रेणी के फालतू कर्मचारियों के समायोजन हेतु नयी नियुक्तियाँ न किये जाने का प्रतिबन्ध मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के नियुक्ति में लागू न होगा"

उक्त के आलोक में जनपद स्तर पर इकाईवार आबंटित चतुर्थ श्रेणी के पदों को सुनिश्चित करने के उपरांत सीढ़ी भर्ती से किसी प्रकार की कोई नियुक्ति न करने का निर्देश प्रसारित कर दें और मृतक आश्रितों की चतुर्थ श्रेणी के लिए आबंटित रिक्त पदों के प्रति ज्येष्ठता क्रम में सम्बंधित इकाई के नियुक्ति प्राधिकारी (शिक्षा अधीक्षक/उप विद्यालय निरीक्षक प्रथम) द्वारा नियमानुसार नियुक्तियों की जा सकती है।"

दिनांक 30.1.1996 का शासनादेश उन व्यक्तियों के मामले पर लागू नहीं होता है, जिन्हें डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था, इसलिए विपक्षी संख्या 3 की ओर से कार्रवाई की गई, जिससे आदेश दिनांक 4.9.2014 के तहत याचिकाकर्ता के दावे को, सरकारी आदेश दिनांक 30.1.1996 को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया। प्रारंभ से ही शून्य और क्षेत्राधिकार के बिना है। अनुकंपा नियुक्ति समेकित वेतन पर नहीं दी जा सकती क्योंकि यह स्थायी प्रकृति की है जैसा कि रवि करण

सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने माना था, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"यह याचिका हमारे समक्ष विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उनके आदेश दिनांक 19.12.1997 द्वारा दिए गए एक संदर्भ पर आई है। इसमें शामिल बिंदु बहुत सरल है, यानी कि क्या डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति एक स्थायी नियुक्ति है, अस्थायी नियुक्ति है विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, इस न्यायालय ने पहले माना था कि बुद्धि सागर दुबे बनाम डी.ओ.आई.एस., (1993) 1 यूपीएलबीईसी 197; गुलाब यादव बनाम यूपी राज्य और अन्य, (1991) के तहत डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत एक नियुक्ति स्थायी नियुक्ति है। 2 यूपीएलबीईसी 995 और धीरेंद्र प्रताप सिंह बनाम डीआईओएस और अन्य। (1991) 1 यूपीएलबीईसी 427। दिनांक 19.12.1997 को संदर्भित आदेश पारित करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश उपरोक्त से असहमत थे और इसलिए मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया गया है।

हमारी राय में, डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत एक नियुक्ति को स्थायी नियुक्ति माना जाना चाहिए अन्यथा यदि ऐसी नियुक्ति को अस्थायी नियुक्ति माना जाता है तो यह होगा कि नियुक्ति के तुरंत बाद सेवा समाप्त की जा सकती है और डाइंग इन हार्नेस नियम का उद्देश्य ही रद्द हो जाएगा। क्योंकि इस तरह की नियुक्ति का उद्देश्य रोटी कमाने वाले की अचानक मृत्यु पर परिवार को तत्काल राहत प्रदान करना है। इसलिए, हम मानते हैं कि डाइंग इन हार्नेस नियम के तहत नियुक्ति एक स्थायी नियुक्ति है न कि अस्थायी नियुक्ति और इसलिए यूपी. अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियम, 1975 के प्रावधान ऐसी नियुक्तियों पर लागू नहीं होंगे।

याचिका का तदनुसार निपटारा किया जाता है।"

याचिकाकर्ता के मामले में स्वीकार किए गए तथ्यों के साथ-साथ रवि करण सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश को खारिज नहीं किया जा सकता है और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जा सकता है।"

15. सरकारी कर्मचारी के निधन के कारण परिवार को होने वाले तात्कालिक वित्तीय संकट से उबरने के लिए डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति हमेशा मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रित को दी जाती है और इसलिए, उक्त नियुक्ति प्रकृति में अस्थायी नहीं हो सकती है। अनुकंपा नियुक्ति का स्थायी होना आवश्यक है क्योंकि यदि उक्त नियुक्ति अस्थायी रूप से की जाती है तो परिवार पर यह खतरा रहेगा कि किसी भी समय उक्त नियुक्ति रद्द की जा सकती है या सेवाएँ समाप्त की जा सकती हैं, इसलिए मृत सरकारी सेवक के परिवार कभी भी शांति से नहीं रहेगी।

16. इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों में इस रिट याचिका में शामिल मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है और यह माना है कि अनुकंपा नियुक्ति कभी भी समेकित वेतन पर नहीं हो सकती है और यह हमेशा नियमित वेतनमान में स्थायी नियुक्ति होती है।

17. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता को 18.8.2004 को समेकित वेतन पर नियुक्त किया गया था और बाद में उसे 8.12.2010 से नियमित वेतनमान में नियुक्ति दी गई है, इसलिए इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के मददेनजर, नियुक्ति याचिकाकर्ता को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख यानी 18.8.2004 से नियमित वेतनमान में स्थायी माना जाना चाहिए। इस अदालत ने रिट-ए संख्या 12808/2021 (प्रवीण कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 24.9.2021 के जरिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज को इस फैसले के आलोक में याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने का

निर्देश दिया। न्यायालय ने रवि करन सिंह (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपादित किया, लेकिन जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज ने रवि करन सिंह (उपरोक्त) के मामले में पारित इस न्यायालय के निर्णय पर विचार किए बिना दिनांक 15.2.2023 का आदेश पारित कर दिया जिससे याचिकाकर्ता का दावा, अपनी नियुक्ति को 18.8.2004 से नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति मानने की मांग को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज द्वारा खारिज किया गया। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज ने अपने आदेश दिनांक 15.2.2023 में सचिव, उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद, द्वारा जारी आदेश दिनांक 30.1.1996 को आधार बनाया है और याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया है।

18. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज द्वारा दिनांक 15.2.2023 को पारित आदेश कानून की नजर में पोषणीय नहीं है क्योंकि इस अदालत ने पहले ही इस मुद्दे पर फैसला कर दिया है और माना है कि अनुकंपा नियुक्ति को प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से नियमित वेतनमान में नियमित नियुक्ति माना जाएगा। और इसके अलावा इस अदालत ने इतवारी लाल (उपरोक्त) के मामले में दिनांक 18.8.2015 को निर्णय और आदेश पारित किया है कि अनुकंपा नियुक्ति के मामले में सचिव, यूपी बेसिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद, द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.1.1996 लागू नहीं है।

19. उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है। जिला

बेसिक शिक्षा अधिकारी, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.2.2023 को निरस्त किया जाता है। प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वह यहां ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में मामले की नए सिरे से जांच करे और इस आदेश की प्रमाणित प्रति की सेवा की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर शीघ्रता से नया आदेश पारित करे।

-----

**(2023) 9 ILRA 767****मूल क्षेत्राधिकार****सिविल पक्ष****दिनांक: इलाहाबाद 25.07.2023****समक्ष****माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार****रिट-ए संख्या 7547 वर्ष 2020****शेषमणि चौबे****...याचिकाकर्ता****बनाम****उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य****...प्रतिवादी****याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री श्री प्रकाश द्विवेदी

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

**निर्णय** - नियुक्ति के समय सेवा पुस्तिका में जन्मतिथि दर्ज होने के बाद उसे तीसरे पक्ष की शिकायत के आधार पर तब तक नहीं बदला जा सकता जब तक कि उत्तर प्रदेश सेवा में भर्ती (जन्मतिथि का निर्धारण) नियम, 1974 के अनुसार हाई स्कूल प्रमाण पत्र द्वारा इसकी पुष्टि न हो जाए - कर्मचारी द्वारा सुधार के

लिए कभी कोई आवेदन नहीं किया गया - नियोक्ता द्वारा सेवा में प्रवेश के समय धोखाधड़ी पाए बिना, केवल कर्मचारी के पुत्र की शिकायत पर कार्यवाही शुरू की गई - ओवरराइटिंग वाले पुराने, जर्जर स्कूल रजिस्टर पर आधारित जांच रिपोर्ट - जारीकर्ता प्राधिकारी से प्रमाणीकरण के बिना आधार कार्ड और डाइविंग लाइसेंस पर विश्वास नहीं किया गया। - सेवा पुस्तिका प्रविष्टि में संशोधन किए बिना पूर्वव्यापी सेवानिवृत्ति का निर्देश दिया गया - विधि के अनुसार कार्रवाई बरकरार नहीं रह सकती - दुर्भावनापूर्ण तीसरे पक्ष की शिकायतों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए - कर्मचारी बहाली और सभी परिणामी लाभों का हकदार है।

**चर्चा की गई वादविधि:**

उत्तर प्रदेश सेवा में भर्ती (जन्म तिथि का निर्धारण) नियम, 1974

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री श्री प्रकाश द्विवेदी और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता, जो जीप चालक के रूप में काम कर रहा है, को दिनांक 14.02.2019 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें उससे पूछा गया कि उसकी जन्मतिथि के संबंध में जांच क्यों न की जाए। कारण बताओ नोटिस का आधार कर्मचारी के पुत्र द्वारा की

गई शिकायत थी, जिसमें कहा गया था कि उसके चाचा राजमणि चौबे उसके पिता से पांच वर्ष छोटे थे और चूंकि उनके चाचा पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके थे, तो उनके पिता अभी भी सेवा में कैसे हो सकते हैं, जबकि उन्हें अपने चाचा से पहले सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए था।

3. उपरोक्त कारण बताओ नोटिस के प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर के साथ वर्ष 2002 में जारी मोटर ड्राइविंग लाइसेंस, आधार कार्ड और मेडिकल प्रमाण पत्र के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य संलग्न करते हुए अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जो उसके सेवा रिकार्ड में दर्ज जन्मतिथि 01.01.1963 के समर्थन में था।

4. सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा कुछ प्रारंभिक तथ्यान्वेषण जांच की गई, जिसकी रिपोर्ट 04.09.2019 को प्रस्तुत की गई, जिसमें बताया गया कि स्कूल प्रवेश रजिस्टर में यह पाया गया कि पिछले पृष्ठ पर वर्ष का कोई उल्लेख नहीं था और प्रवेश रोल में क्रम संख्या 61 पर याचिकाकर्ता का नाम लक्ष्मी धर चौबे पुत्र के रूप में दर्शाया गया था और जन्म तिथि 10.01.1952 दर्ज की गई थी, लेकिन उसमें ओवर राइटिंग थी। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि स्कूल के प्रधानाध्यापक के अनुसार मूल रजिस्टर बहुत पुराना और जर्जर हालत में है और शेष मणि चौबे द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्र के आधार पर ही उनकी जन्मतिथि 01.01.1963 होने का प्रमाण पत्र जारी किया गया था। बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ने रिपोर्ट को बहुत विरोधाभासी पाया और चूंकि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति से संबंधित मूल अभिलेख उपलब्ध नहीं थे, इसलिए उन्होंने दिनांक

10.10.2019 के आदेश द्वारा कार्यवाही को समाप्त कर दिया।

5. तथापि, अभिलेखों से यह पता चलता है कि आयुक्त (चकबंदी) के समक्ष तीसरे पक्ष की शिकायतों को आगे बढ़ाया गया, जिन्होंने मामले में कुछ नए सिरे से जांच का निर्देश दिया और पुनः उन्हीं स्कूल अभिलेखों तथा अन्य तीसरे पक्ष के अभिलेखों के आधार पर एक नई रिपोर्ट तैयार की गई, जिसके अनुसार उनकी जन्मतिथि जो सेवा पुस्तिका में पहले से ही 01.01.1963 के रूप में दर्ज थी, उस पर विश्वास नहीं किया गया तथा प्रारंभिक स्कूल अभिलेखों के अनुसार 10.01.1952 होने का दावा किया गया। बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ने निष्कर्ष दिया कि याचिकाकर्ता ने आधार कार्ड, पहचान पत्र और मतदाता पहचान पत्र में अपनी जन्मतिथि धोखाधड़ी से दर्ज कराई है, इसलिए संबंधित विभागों को अपने अभिलेखों में जन्मतिथि सही करने का निर्देश दिया जाए।

6. चूंकि याचिकाकर्ता को संशोधित जन्मतिथि 01.01.1952 के अनुसार 01.01.2012 को सेवानिवृत्त माना गया था, इसलिए निपटान अधिकारी (चकबंदी) द्वारा उसे सेवानिवृत्ति की नई संशोधित तिथि के बाद पहले से भुगतान किए गए वेतन की राशि की वसूली करने का निर्देश जारी किया गया था।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश सेवा में भर्ती (जन्म तिथि निर्धारण) नियमावली, 1974 के प्रावधानों के आलोक में जब तक सेवा अभिलेख में दर्ज जन्म तिथि को कक्षा 10 के प्रमाण पत्र के

आधार पर परिवर्तित करने की मांग नहीं की जाती है, तब तक सेवा में प्रवेश के समय सेवा पुस्तिका में पहले से दर्ज जन्म तिथि को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। जब इस रिट याचिका पर दिनांक 15.10.2020 के आदेश द्वारा विचार किया गया, तो बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा दिनांक 09.02.2020 को पारित आदेश पर रोक लगा दी गई थी।

8. प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के साथ सेवा पुस्तिका का एक अंश संलग्न था, जिसमें याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 01.01.1963 दर्ज थी। यद्यपि दाखिल की गई फोटोकॉपी सुपाठ्य थी, लेकिन ऐसा प्रतीत होता था कि इसे बाद में मूल प्रति पर चिपकाए गए कागज के किसी टुकड़े पर लिखा गया था और इसलिए इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 04.07.2023 के तहत स्थायी अधिवक्ता को मूल सेवा पुस्तिका प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और उसे अब इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया है।

9. मूल सेवा पुस्तिका के अवलोकन पर मैंने पाया कि उसमें जन्मतिथि 01.01.1963 अंकित है तथा यह उसी हस्तलिपि में है जिसमें सेवा पुस्तिका तैयार करते समय अन्य प्रविष्टियां की गई थीं तथा पारदर्शी सेलो टेप लगाया गया है ताकि कोई अन्तर्वेधन न हो सके जो कि बहुत पुरानी प्रतीत होती है, यह वर्ष 1989 में सेवा पुस्तिका तैयार करते समय बन्दोबस्त अधिकारी (चकबंदी), मिर्जापुर, वाराणसी के हस्ताक्षर से अंकित है।

10. इस प्रकार, मूल सेवा पुस्तिका के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि 01.01.1963 है और वह भी उस समय की जब सेवा पुस्तिका प्रारंभ में तैयार की गई थी। सम्पूर्ण जवाबी हलफनामे में इस आशय का कोई कथन नहीं है कि याचिकाकर्ता ने सेवा पुस्तिका में दर्ज अपनी जन्मतिथि में परिवर्तन के लिए कभी कोई आवेदन किया था, न ही प्रतिवादियों ने कभी भी याचिकाकर्ता के स्कूल रिकार्ड के आधार पर सेवा पुस्तिका में इस प्रविष्टि को सही किया है। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि यह प्रविष्टि सेवा में प्रवेश के समय उपलब्ध अभिलेख के आधार पर की गई है।

11. उत्तर प्रदेश सेवा में भर्ती (जन्म तिथि निर्धारण) नियमावली, 1974 के अंतर्गत सेवा पुस्तिका में प्रारम्भ में दर्ज जन्म तिथि को नहीं बदला जा सकता, सिवाय उस स्थिति के जब जन्म तिथि बदलवाने के लिए हाई स्कूल प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया जाए। 1974 के नियमों के प्रासंगिक प्रावधान नीचे पुनः प्रस्तुत हैं:

*“3. किसी सरकारी सेवक की हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण करने के प्रमाण पत्र में दर्ज जन्म तिथि, या जहां किसी सरकारी सेवक ने पूर्वोक्त कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, वहां उसके सरकारी सेवा में प्रवेश के समय उसकी सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि या आयु, उसकी सेवा के संबंध में सभी प्रयोजनों के लिए, जिसमें पदोन्नति, अधिवर्षिता,*

*समयपूर्व सेवानिवृत्ति या सेवानिवृत्ति लाभों के लिए पात्रता भी शामिल है, उसकी सही जन्म तिथि या आयु मानी जाएगी, जैसा भी मामला हो और किसी भी परिस्थिति में ऐसी तिथि या आयु में सुधार के लिए कोई आवेदन या अभ्यावेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा।"*

12. सेवा न्यायशास्त्र में सेवा/रोजगार को नियोक्ता और कर्मचारी के बीच रोजगार अनुबंध के रूप में परिभाषित किया गया है और जब तक नियोक्ता को किसी आंतरिक जांच में यह पता नहीं चलता कि ऐसा अनुबंध धोखाधड़ी का परिणाम है, जिसके कारण उसे रोजगार देने के लिए दिए गए झूठे बयान को सच मान लिया गया, तब तक वह तीसरे पक्ष की शिकायत पर अनुबंध को रद्द करने की कार्यवाही नहीं कर सकता। वर्तमान मामले में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं है कि याचिकाकर्ता ने कोई धोखाधड़ी की या रोजगार पाने के लिए अपने नियोक्ता से कोई तथ्य छिपाया, इसके बजाय, विभाग ने वर्ष 2019 में जांच को बंद करते हुए याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने के लिए तीसरे पक्ष के बार-बार अनुनय पर नए सिरे से कार्यवाही की। इसने तथ्यान्वेषण जांच शुरू की और एक रजिस्टर के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ जन्मतिथि के संबंध में निष्कर्ष दिया, जो इतना पुराना और इतनी जर्जर स्थिति में था कि उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

13. इसके अलावा, आधार कार्ड और ड्राइविंग लाइसेंस के दस्तावेजों पर बिना किसी जांच के और इन्हें जारी करने वाले प्राधिकारियों से सही जानकारी प्राप्त किए बिना ही विश्वास नहीं किया गया। ड्राइविंग लाइसेंस और आधार कार्ड आदि जैसे आधिकारिक अभिलेखों में जन्मतिथि को सही करवाने के लिए कदम उठाने का निर्देश, नियोक्ता की क्षमता से परे था, जिसे याचिकाकर्ता को रोजगार पाने के लिए किसी भी धोखाधड़ी या गलत बयानी का दोषी ठहराने का आधार कहा जा सकता है। न्यायालय को इस बात पर और अधिक आश्चर्य हुआ कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने के बजाय, जबकि प्रतिवादी जांच में प्राप्त निष्कर्षों के बारे में अधिक आश्वस्त थे, उन्होंने उसे पूर्वव्यापी प्रभाव से सेवानिवृत्त कर दिया और वह भी सेवा रिकॉर्ड में जन्मतिथि में कोई परिवर्तन या संशोधन किए बिना। यह सब दर्शाता है कि प्रतिवादी विभागीय जांच के निष्कर्षों की सत्यता के बारे में भी आश्वस्त नहीं थे, जो उन्होंने तीसरे पक्ष की बार-बार की गई शिकायत पर की थी। प्रतिवादियों का यह दृष्टिकोण, खासकर जब वे राज्य के हों, निश्चित रूप से स्वीकृत नहीं है। तीसरे पक्ष की शिकायत पर कार्रवाई करते समय, नियोक्ता को सबसे पहले यह जांच करनी चाहिए कि कर्मचारी के सेवा करियर के अंतिम चरण में या उसके द्वारा रोजगार में पर्याप्त सेवा देने के बाद तीसरे पक्ष द्वारा ऐसी शिकायत क्यों की गई। तीसरे पक्ष की शिकायतें अक्सर स्थानीय गांव की दुश्मनी और/या परिवार या रिश्तेदार में से किसी व्यक्ति द्वारा कर्मचारी से ईर्ष्या के कारण होती हैं, जबकि इसमें उनका कोई हित नहीं



होता। सेवा अनुबंध के मामलों में सामान्य तौर पर नियोक्ता को, जैसा कि मैं कहूंगा, ऐसी शिकायतों को अनदेखा करना चाहिए जब वे किसी तीसरे पक्ष द्वारा रोजगार में प्रवेश के लंबे समय बाद की जाती हैं। ऐसे मामलों में जहां किसी तीसरे पक्ष का कोई हित शामिल है, नियोक्ता को शिकायत के उद्देश्य की जांच करनी चाहिए। कर्मचारियों के निकट संबंधियों द्वारा दुर्भावनापूर्ण इरादे से की गई शिकायतों को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाना चाहिए तथा तब तक जांच नहीं की जानी चाहिए जब तक कि सच्चाई का पता न चल जाए, यदि यह बात रोजगार में प्रवेश के समय बताई गई होती तो कर्मचारी पूरी तरह से अयोग्य हो जाता, लेकिन फिर भी ऐसे मामलों में, यदि शिकायतकर्ता को इसकी जानकारी थी और वह समय से पहले नहीं आया, तो उसे सेवा के अंतिम समय में शिकायत करने से हतोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, प्रारंभिक जांच के मामले में यदि कर्मचारी को परेशान करने की मंशा छिपी हुई प्रतीत होती है, तो उसे उसी स्तर पर खारिज कर दिया जाना चाहिए। रोजगार का एक वैध अनुबंध तब तक सम्मानित किया जाना चाहिए जब तक कि यह इसे प्राप्त करने के लिए किए गए धोखाधड़ी का परिणाम न हो। किसी कर्मचारी द्वारा की गई लंबी और बेदाग सेवा, जिसके कार्य की सराहना की गई हो, को अचानक ऐसी शिकायतों के कारण नौकरी से नहीं निकाला जा सकता।

14. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के प्रारंभिक स्कूल रिकॉर्ड देखने के बाद

शिकायत में कोई तथ्य नहीं पाया गया, इसलिए दिनांक 10.10.2019 के आदेश के तहत कार्यवाही समाप्त कर दी गई। इन परिस्थितियों में, बेटे द्वारा बार-बार शिकायत करना यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त था कि बेटे का अपने पिता को परेशान करने का एकमात्र मकसद यह हो सकता है कि उसने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद एक अन्य महिला से विवाह कर लिया था।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 19.02.2020 को पारित आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि के विपरीत, जिसे कभी नहीं बदला गया है, केवल तीसरे पक्ष की शिकायत के आधार पर सेवानिवृत्त किया गया, कानून में कायम नहीं रह सकता है और इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए। तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और उसे स्वीकार किया जाता है। आदेश दिनांक 19.02.2020 (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5) को रद्द किया जाता है।

16. याचिकाकर्ता को सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि 01.01.1963 के अनुसार सेवा में माना जाएगा तथा उसे तदनुसार सभी परिलब्धियां तथा पेंशन आदि सहित अन्य सेवा लाभ का भुगतान किया जाएगा।

17. मूल अभिलेख राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को वापस किये जाते हैं।

-----

(2023) 9 ILRA 771

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

रिट-ए संख्या 10379 वर्ष 2023

श्रीमती प्रतिभा त्रिपाठी

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मणिशंकर पांडेय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एसजीआई, श्री जय प्रकाश राय

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 226 - सेवा विवाद - याचिकाकर्ता

भारतीय विद्यालय प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद,

नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त निजी

विद्यालय में सहायक अध्यापक के रूप में

कार्यरत है - सेवानिवृत्ति की आयु के अनुसार

सेवानिवृत्ति नोटिस जारी किया गया है - उत्तर

प्रदेश सरकार के नियमों के अनुसार शैक्षणिक

सत्र के अंत तक सेवा जारी रखने का दावा -

माना गया कि ऐसे नियम निजी गैर-सहायता

प्राप्त विद्यालयों पर लागू नहीं होते - सेवा शर्तें

वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं हैं। -

इसमें कोई सार्वजनिक विधि तत्व शामिल नहीं

है। रिट पोषणीय नहीं है।

अभिनिर्धारित:

निजी सोसाइटी द्वारा संचालित और आईसीएसई परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालय, सरकारी विद्यालयों या उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद के अंतर्गत आने वाले विद्यालयों पर लागू नियमों द्वारा शासित नहीं होते हैं। शैक्षणिक सत्र पर आधारित सेवानिवृत्ति नीति बाध्यकारी नहीं है। वैधानिक सेवा नियमों के अभाव में, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट अधिकारिता का प्रयोग विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों के लिए नहीं किया जा सकता है।

याचिका खारिज।

भरोसा किया गया:

सेंट मैरी एजुकेशन सोसाइटी एवं अन्य बनाम राजेंद्र प्रसाद भार्गव एवं अन्य, (2023) 4 एससीसी 498 - चर्चा की गई और लागू किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और श्री जय प्रकाश राय, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने इस रिट याचिका के माध्यम से प्रबंधक, ज्योति निकेतन स्कूल, एटलस पोखरा, आजमगढ़ द्वारा 28 मार्च, 2023 को जारी सेवानिवृत्ति नोटिस को चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को 27.6.2023 को सेवा से सेवानिवृत्त होने का निर्देश दिया गया

हैं।

हकदार हैं।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि ज्योति निकेतन स्कूल, एटलस पोखरा, आजमगढ़ सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत एक निजी सोसायटी द्वारा चलाया जा रहा है और भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है।

4. याचिकाकर्ता को ज्योति निकेतन स्कूल के प्राचार्य द्वारा नियुक्ति आदेश दिनांक 1.7.2000 द्वारा सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता ने अपने नियुक्ति आदेश के अनुसार स्कूल में काम करना जारी रखा और उसकी जन्मतिथि के अनुसार उसे 27.6.2023 को 60 वर्ष की आयु प्राप्त करनी थी, इसलिए स्कूल के प्रबंधक ने याचिकाकर्ता को 28.3.2023 को एक पत्र जारी किया जिससे याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद 27.6.2023 को सेवानिवृत्त हो जाएगी।

5. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि चूंकि राज्य सरकार के संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों के साथ-साथ उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद के स्कूलों में कार्यरत शिक्षकों को शैक्षणिक सत्र के अंत में सेवानिवृत्त होना है और चूंकि राज्य सरकार के स्कूलों में शैक्षणिक सत्र 1 अप्रैल से शुरू होता है और अगले वर्ष 31 मार्च को समाप्त होता है और चूंकि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तारीख 27.6.2023 है, इसलिए वह 31 मार्च, 2024 तक पद पर बने रहने की

6. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि ज्योति निकेतन स्कूल, एटलस पोखरा, आजमगढ़ एक निजी सोसायटी द्वारा संचालित स्कूल है और भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है, इसलिए, उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित स्कूलों और राज्य सरकार द्वारा संचालित स्कूलों पर लागू राज्य सरकार के नियम और कानून याचिकाकर्ता के स्कूल पर लागू नहीं होते हैं।

7. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता यह नहीं बता सके कि सरकारी स्कूलों और उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित स्कूलों पर लागू होने वाले यूपी सरकार के नियम याचिकाकर्ता के स्कूल पर किस प्रकार लागू होते हैं।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने केवल यह प्रस्तुत किया है कि जिन स्कूलों को भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है, उन्हें राज्य सरकार से "अनापत्ति प्रमाण पत्र" लेना आवश्यक है और इसलिए, राज्य सरकार स्कूलों पर लागू होने वाले सभी नियम और कानून याचिकाकर्ता के स्कूल पर भी लागू होते हैं।

8. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि केवल इसलिए कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के स्कूल को भारतीय स्कूल

प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता के लिए 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' दे दिया है, राज्य सरकार के स्कूलों और शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित स्कूलों पर लागू नियम और कानून याचिकाकर्ता के स्कूल पर लागू नहीं होंगे।

9. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अन्यथा भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2023) 4 एससीसी 498 में रिपोर्ट किए गए **सेंट मैरी एजुकेशन सोसाइटी और एक अन्य बनाम राजेंद्र प्रसाद भार्गव और अन्य** मामले में दिए गए अपने निर्णय में स्पष्ट रूप से माना है कि निजी सोसायटी द्वारा संचालित स्कूलों में काम करने वाले कर्मचारियों के सेवा विवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। **सेंट मैरी एजुकेशन सोसाइटी (सुप्रा)** मामले में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक अंश निम्नानुसार निकाले गए हैं:-

*“2. वर्तमान अपील में, दो आधारभूत मुद्दे इस न्यायालय के विचारार्थ हैं:*

*2.1. (क) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका एक निजी गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान के विरुद्ध सुनवाई योग्य है?*

*2.2. (ख) क्या निजी शैक्षणिक संस्थान और उसके कर्मचारी से जुड़े निजी क्षेत्र में सेवा विवाद का निर्णय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत*

*दायर रिट याचिका में किया जा सकता है?*

*3. दूसरे शब्दों में, भले ही सार्वजनिक कर्तव्य निभाने वाला कोई निकाय रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है, क्या उसके सभी निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं या केवल वे निर्णय जिनमें सार्वजनिक तत्व हैं, रिट क्षेत्राधिकार के तहत न्यायिक समीक्षा की जा सकती है?*

*4. उपरोक्त दो प्रश्न, हालांकि जटिल नहीं हैं, फिर भी ढेर सारे विधिक निर्णयों के बावजूद, हमेशा एक बहस को जन्म देते हैं।*

*XXXXXXXXXXXXXXXXXX*

*75. हम अपने अंतिम निष्कर्षों को इस प्रकार सारांशित कर सकते हैं:*

*75.1. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक आवेदन सार्वजनिक कर्तव्यों या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन करने वाले किसी व्यक्ति या निकाय के विरुद्ध सुनवाई योग्य है। सार्वजनिक कर्तव्य वैधानिक या अन्यथा हो सकता है और जहां यह अन्यथा है, निकाय या व्यक्ति को सार्वजनिक कानून तत्व को शामिल करते हुए जनता के प्रति उस कर्तव्य या दायित्व का पालन करना दिखाया जाना चाहिए। इसी प्रकार, सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन को सुनिश्चित करने के*

लिए, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि निकाय या व्यक्ति जनता या उसके एक वर्ग के सामूहिक लाभ के लिए इसे हासिल करना चाह रहा था और ऐसा करने का अधिकार जनता द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए।

75.2. भले ही यह मान लिया जाए कि एक शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक कर्तव्य निभा रहा है, जिस अधिनियम की शिकायत की गई है उसका सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन से सीधा संबंध होना चाहिए। यह निर्विवाद रूप से एक सार्वजनिक कानूनी कार्रवाई है जो पीड़ित को अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण रिट क्षेत्राधिकार को विशेषाधिकार रिट के रूप में लागू करने का अधिकार प्रदान करती है। किसी भी सार्वजनिक तत्व के अभिन्न अंग के बिना व्यक्तिगत गलतियों या आपसी अनुबंधों के उल्लंघन को अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सकता है। जहां भी न्यायालयों ने अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप किया है, या तो सेवा शर्तों को वैधानिक प्रावधानों द्वारा विनियमित किया गया था या नियोक्ता को अनुच्छेद 12 के तहत विस्तृत परिभाषा के भीतर "राज्य" का दर्जा प्राप्त था, यह पाया गया कि जिस कार्रवाई की शिकायत की गई है उसमें सार्वजनिक कानूनी तत्व है।

75.3. परिणामस्वरूप यह माना जाना चाहिए कि जब कोई निकाय किसी सार्वजनिक कार्य का निर्वहन कर रहा हो या सार्वजनिक कर्तव्य का पालन कर रहा हो और इस प्रकार इसके कार्य संवैधानिक न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं, लेकिन इसके कर्मचारियों को सेवा से संबंधित मामले के संबंध में अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायालय की शक्तियों को लागू करने का अधिकार नहीं होगा जहां वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं हैं। एक शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक जीवन और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं को छूने वाले असंख्य कार्य कर सकता है। हालांकि ऐसे कार्य जो "सार्वजनिक कार्य" या "सार्वजनिक कर्तव्य" के दायरे में आते हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती और जांच के लिए निर्विवाद रूप से खुले हैं, सेवा के एक सामान्य अनुबंध के दायरे में पूरी तरह से किए गए कार्यों या निर्णयों को, बिना किसी वैधानिक बल या समर्थन के, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती देने योग्य नहीं माना जा सकता है। सेवा शर्तों को वैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित या शासित किए जाने के अभाव में, मामला सेवा के सामान्य अनुबंध के दायरे में ही रहेगा।

75.4. भले ही यह माना जाए कि निजी गैर-सहायता प्राप्त स्कूल द्वारा

शिक्षा प्रदान करना शब्द की विस्तारित अभिव्यक्ति के तहत एक सार्वजनिक कर्तव्य है, स्कूल द्वारा अपने प्रशासन या आंतरिक प्रबंधन के उद्देश्य से नियुक्त किया गया कोई कर्मचारी या गैर-शिक्षण कर्मचारी केवल उसके द्वारा बनाई गई एक संस्था है। यह सारहीन है कि स्कूल द्वारा "क" या "ख" को उस कर्तव्य के निर्वहन के लिए नियुक्त किया गया है। किसी भी मामले में, स्कूल और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के बीच अनुबंध के रोजगार की शर्तों को शिक्षा प्रदान करने के दायित्व का एक अविभाज्य हिस्सा नहीं माना जा सकता है और न ही माना जाना चाहिए। यह विशेष रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में है जो किसी विशेष कर्मचारी के विरुद्ध शुरू की जा सकती है। यह केवल वही है जहां गैर-शिक्षण कर्मचारियों के किसी कर्मचारी को हटाना कुछ वैधानिक प्रावधानों द्वारा विनियमित होता है, कानून के उल्लंघन में नियोक्ता द्वारा इसके उल्लंघन में अदालत द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है। लेकिन ऐसा हस्तक्षेप कानून के उल्लंघन के आधार पर होगा न कि सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन में हस्तक्षेप के आधार पर।

75.5. मूल रिट याचिका में दलीलों से यह स्पष्ट है कि किसी भी सार्वजनिक कानून का कोई भी तत्व संदीप्त नहीं है या अन्यथा बनाया गया है। दूसरे

शब्दों में, चुनौती दी गई कार्रवाई में कोई सार्वजनिक तत्व नहीं है और परमादेश की रिट जारी नहीं की जा सकती क्योंकि कार्रवाई अनिवार्य रूप से निजी चरित्र की थी।

76. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश का यह दृष्टिकोण अपनाना उचित था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर मूल रिट आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। कहा जा सकता है कि अपील न्यायालय ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाने में त्रुटि की है।

9. मैंने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और मुझे पता चला है कि याचिकाकर्ता का स्कूल यानी ज्योति निकेतन स्कूल एक निजी संस्था द्वारा चलाया जा रहा है और भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है। मैंने आगे पाया कि ज्योति निकेतन स्कूल में याचिकाकर्ता की सेवा शर्तें किसी भी वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं हैं।

10. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील कि राज्य सरकार द्वारा संचालित और उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित स्कूलों पर लागू राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम और कानून याचिकाकर्ता के स्कूल पर लागू होते हैं, पूरी

तरह से गलत धारणा है क्योंकि माना जाता है कि याचिकाकर्ता का स्कूल एक निजी सोसायटी द्वारा चलाया जाता है और भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से प्रकट है कि राज्य सरकार द्वारा शैक्षणिक सत्र के संबंध में और शिक्षकों के संबंध में बनाये गये नियम और कानून कि यदि सेवानिवृत्ति की तिथि शैक्षणिक सत्र के बीच में आती है, तो उन्हें शैक्षणिक सत्र के अंत तक बने रहने की अनुमति दी जाएगी, याचिकाकर्ता के स्कूल के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *सेंट मैरी एजुकेशन सोसाइटी (सुप्रा)* मामले में दिए गए अपने निर्णय में स्पष्ट रूप से माना है कि जहां निजी संस्थान में काम करने वाले कर्मचारी की सेवा शर्तें वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं होती हैं, तो उक्त कर्मचारी का सेवा विवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निहित उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं है।

12. चूंकि याचिकाकर्ता की सेवा शर्तें किसी भी वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं हैं, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून के मददेनजर, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका पोषणीय नहीं है और इसलिए खारिज की जाती है।

(2023) 9 ILRA 775

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 10459 वर्ष 2023

उत्तर प्रदेश विद्युत निगम संविदा कर्मचारी

संघ, लखनऊ

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री ब्रज मोहन सिंह, शिखा सिंह गौतम

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री आदर्श भूषण, श्री देवेश विक्रम

अभिनिर्धारित:

आउटसोर्स एजेंसी के तहत काम करने वाले संविदा कर्मचारी, सेवा समाप्ति के बाद बहाली का दावा नहीं कर सकते, भले ही उनकी सेवा समाप्ति किसी अवैध हड़ताल में भाग लेने के बाद हुई हो। ऐसे मामलों में निगम के साथ कोई अनुबंध संबंधी गोपनीयता नहीं होती। विचाराधीन हड़ताल एस्मा अधिसूचना का उल्लंघन थी। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के तहत बहाली राहत वर्जित है। जब आवश्यक सेवाओं को बाधित करने वाली हड़ताल के बाद सेवा समाप्ति की जाती है, तो न्यायिक हस्तक्षेप उचित नहीं है।

**चर्चा की गई वादविधि:**

1. राजेश कुमार सिंह बनाम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं अन्य, 2022 (4) एडीजे 535

2. राजेश भारद्वाज बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2019 (2) एडीजे 830 (डीबी)

3. कैलाश सिंह बनाम प्रबंध समिति, मेयो कॉलेज, अजमेर एवं अन्य, (2018) 10 स्केल 638

**मुख्य विधिक बिंदु :**

अनुच्छेद 226 के तहत अनुबंध कर्मचारियों को बहाली की राहत नहीं दी जा सकती। व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध का विशिष्ट प्रदर्शन विधि के तहत लागू नहीं करवाया जा सकता है जब तक कि वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित न हो।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ब्रज मोहन सिंह, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री मोनिका आर्य, प्रतिवादी संख्या 3 और 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश विक्रम और प्रतिवादी संख्या 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आदर्श भूषण को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह रिट याचिका उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन

संविदा कर्मचारी संघ, लखनऊ द्वारा अपने महासचिव के माध्यम से दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता का मामला है कि याचिकाकर्ता संविदा कर्मचारियों का एक पंजीकृत संघ है, जो पूरे उत्तर प्रदेश राज्य के अलावा, कुशीनगर जिले में बिजली विभाग में कार्यरत हैं। याचिकाकर्ता की प्रबंध समिति ने दिनांक 28.05.2023 के एक प्रस्ताव द्वारा संघ के महासचिव देवेन्द्र कुमार पांडे को संघ के पीड़ित सदस्यों की ओर से यह रिट याचिका दायर करने के लिए अधिकृत किया है। आरंभ में ही यह टिप्पणी कर देनी चाहिए कि याचिकाकर्ता का यह कहने का कि इसके सदस्य कुशीनगर और पूरे राज्य में बिजली विभाग के संविदा कर्मचारी हैं, स्पष्ट अर्थ यह है कि वे उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (संक्षेप में 'यूपीपीसीएल') और यूपीपीसीएल के नियंत्रण में कार्यरत विभिन्न क्षेत्रीय विद्युत वितरण निगमों के कर्मचारी हैं। यह न्यायालय इसे इस प्रकार समझने के लिए बाध्य है, क्योंकि वास्तव में उत्तर प्रदेश राज्य में सरकार का कोई विद्युत विभाग नहीं है।

4. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 4 में दिए गए कथनों के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने इसके लगभग 167 सदस्यों के हितों का समर्थन किया है, जो कि कुशी नगर में पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड की सेवा करने वाले संविदा कर्मचारी हैं। इन संविदा कर्मचारियों की एक सूची, संख्या 167, सटीक कहें तो 170, पैराग्राफ संख्या 4 में दिए गए कथन और संलग्न सूची



के वास्तविक खाते के बीच आंकड़ों में विसंगति है, रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता संघ के सदस्यों (संक्षेप में, 'श्रमिक') का कहना है कि वे संविदा कर्मचारी हैं, पिछले लगभग 10 वर्षों से कुशल और अकुशल काम कर रहे हैं। वे एक निश्चित मेसर्स की देखरेख और नियंत्रण के तहत अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। वे विद्युत वितरण खंड, हाटा और कसया, जिला कुशी नगर के भीतर विभिन्न केवी उप-स्टेशनों पर इसके प्रबंध निदेशक द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए एक निश्चित मेसर्स एसएमएम इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड की देखरेख और नियंत्रण के तहत अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं। मेसर्स एसएमएम इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड का पूर्वाचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड (संक्षेप में, 'निगम') के साथ संबंध के बारे में अधिक विशेषित या वर्णित नहीं किया गया है, लेकिन उक्त पक्ष निगम के लिए कार्यबल आपूर्तिकर्ता प्रतीत होती है।

5. माना जाता है कि 16 मार्च से 19 मार्च, 2023 के बीच 2-3 दिनों के लिए यूपीपीसीएल और निगम के तहत काम करने वाले बिजली कर्मियों की हड़ताल में श्रमिकों ने भाग लिया था। यह तथ्य रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 8 में स्वीकार किया गया है और दिनांक 26.04.2023 को एक पत्र में भी स्वीकार किया गया है, जिसे हाटा और कसया, जिला कुशी नगर में काम करने वाले श्रमिकों ने कलेक्टर, कुशी नगर को संबोधित किया था। रिट याचिका के साथ अधिशाषी अभियंता, विद्युत वितरण खण्ड, हाटा, कुशी

नगर द्वारा कलेक्टर, कुशी नगर एवं उपखण्ड अधिकारी, तहसील हाटा/कप्तानगंज को संबोधित 1 मई, 2023 के पत्र की एक प्रति रिट याचिका में परिशिष्ट संख्या 5 के रूप में संलग्न की गई है। रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 9 में एक कथन है कि अधिशाषी अभियंता का पत्र उनके व्यापार में श्रमिकों की विशेषज्ञता को स्वीकार करता है, लेकिन कहता है कि वे 2-3 दिनों के लिए हड़ताल पर थे। पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि अधिशाषी अभियंता ने कहा है कि गुमराह होकर कर्मचारी हड़ताल शामिल हुए, जिसके कारण मेसर्स एसएमएम इंफ्राटेक प्रा. लि. ने उनकी सेवाएं समाप्त कर दी।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि श्रमिक संविदा कर्मचारी हैं और उनके स्थान पर अन्य संविदा कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए उनकी सेवाएं समाप्त नहीं की जा सकती। उन्होंने राजेश कुमार सिंह बनाम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं अन्य, 2022 (4) एडीजे 535 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

7. दूसरी ओर, सुश्री मोनिका आर्य, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री आदर्श भूषण और श्री देवेश विक्रम, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि श्रमिक केवल संविदा कर्मचारी हैं और राहत नहीं मांग सकते हैं, जो सेवा में बहाली के रूप में हो सकती है। यह आग्रह किया जाता है कि इस मुद्दे पर राजेश कुमार सिंह (उपरोक्त) का निर्णय सीधे श्रमिकों के खिलाफ जाता है। इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर भी

आकर्षित किया गया है कि 4 जनवरी, 2023 को राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश आवश्यक सेवा रखरखाव अधिनियम, 1966 की धारा 3 की उप-धारा (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक अधिसूचना जारी की, जिसमें पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, वाराणसी और यूपीपीसीएल सहित सभी सेवाओं में छह महीने के लिए हड़ताल पर रोक लगा दी गई है।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह स्पष्ट है कि 16 से 19 मार्च, 2023 के बीच यूपीपीसीएल के कर्मचारियों द्वारा राज्यव्यापी हड़ताल के दौरान श्रमिकों ने काम बंद कर दिया। यह हड़ताल अवैध थी क्योंकि इसे ईएसएमए के तहत राज्य सरकार द्वारा जारी एक अधिसूचना द्वारा प्रतिबंधित किया गया था। इस तथ्य के अलावा कि हड़ताल अवैध थी, यह न्यायालय इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लेता है कि समकालीन दुनिया में विद्युत आपूर्ति में व्यवधान, जो ज्यादातर विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर चलता है, ऑक्सीजन को खत्म करने जैसा है। तीन दिनों की हड़ताल का राज्य पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा, जिसे तुच्छ नहीं समझा जा सकता। इस न्यायालय की राय में, हड़ताली संविदा कर्मियों को बाहर करने के निगम या कार्य बल आपूर्तिकर्ता के निर्णय में, कर्मियों द्वारा कही गई बात को 'मामूली उल्लंघन' मानकर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

9. जहां तक श्रमिकों के बहाली के राहत के अधिकार का सवाल है, इस तथ्य में कोई

संदेह नहीं है कि श्रमिक संविदा पर निगम की सेवा कर रहे हैं। यदि संविदा उनके और कार्यबल आपूर्तिकर्ता के बीच है, तो निगम के साथ बहुत अधिक गोपनीयता नहीं हो सकती है। हालाँकि, वर्तमान मामले के लिए, न्यायालय मानता है कि प्रभावी रूप से श्रमिक किसी प्रकार के संविदा पर निगम की सेवा कर रहे हैं। वे निगम के अधीन किसी भी प्रकार के पद पर नहीं हैं। जैसा कि अब तक यह अच्छी तरह से तय हो चुका है, एक संविदा कर्मचारी नियोक्ता के खिलाफ अपने अधिकारों को लागू नहीं कर सकता है, यहां तक कि अपनी सेवाओं के गलत निर्धारण के मामले में भी राहत की मांग करके, जिसका प्रभाव बहाली पर पड़ता है। इस संबंध में, **राजेश भारद्वाज बनाम भारत संघ और अन्य, 2019 (2) एडीजे 830 (डीबी)** में इस न्यायालय की एक खंडपीठ के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां यह कहा गया है:

\*30. अब हम प्रश्न-(2), (3) और (4) पर आते हैं, जिनसे, हमारे विचार में, एक साथ निपटा जा सकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता पर लागू रोजगार के नियम और शर्तों को चुनौती नहीं दी गई है कि ऐसे नियम और शर्तें मनमाने हैं और संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ पठित भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1872" कहा जाएगा) की धारा 23 का उल्लंघन करते करते हुए अनुचित, अनुचित या अचेतन और सार्वजनिक नीति के

विरुद्ध हैं। बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि याचिकाकर्ता को बचाव का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है और बर्खास्तगी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि नियम और शर्तें किसी कानून या वैधानिक प्रावधान या कानून के किसी भी प्राधिकार के तहत किए गए किसी प्रावधान द्वारा शासित नहीं होती हैं। याचिकाकर्ता प्रबंधक संवर्ग में होने के कारण, उसके नियम और शर्तें भी औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 (इसके बाद 'अधिनियम, 1946' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा शासित कर्मचारियों के संबंध में नियोक्ता द्वारा किए गए स्थायी आदेशों द्वारा शासित नहीं हैं। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता जैसे मामलों में, लगातार यह निर्धारित किया गया है कि रोजगार केवल संविदा का एक हिस्सा है। यदि रोजगार समाप्त कर दिया गया है या सेवा का अनुबंध समाप्त कर दिया गया है, तो न्यायालय बहाली की राहत नहीं देगा, यानी व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध का विशिष्ट निष्पादन, क्योंकि यह विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 (इसके बाद "अधिनियम 1963" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा वर्जित है और, इसलिए, अनुच्छेद 226 के

तहत कोई उपचार उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि कर्मचारी, यदि गलत तरीके से सेवा समाप्त करने के बारे में शिकायत करता है, तो उसे नुकसान का दावा करके सामान्य कानून में उपचार का लाभ उठाना चाहिए।

32. वर्तमान मामले में भी, याचिकाकर्ता और सीयूपीजीएल के बीच रोजगार का संबंध पूरी तरह से सेवा का एक सामान्य अनुबंध है जो किसी कानून या वैधानिक प्रावधान द्वारा शासित नहीं है। ऐसे मामलों में, नौकरी में बहाली या निरंतरता की राहत देकर सेवा के अनुबंध को नियम विधान द्वारा लागू करने की मांग नहीं की जा सकती क्योंकि यह राहत अधिनियम, 1963 के तहत वर्जित है।"

10. उक्त दृष्टिकोण को इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **राजेश कुमार सिंह** (उपरोक्त) में अपनाया गया है, एक निर्णय जिस पर श्रमिकों ने भरोसा किया, जो शायद ही उनका समर्थन करता है। राजेश कुमार सिंह मामले में, याचिकाकर्ता को शुरू में जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया द्वारा जिला समन्वयक (सिविल) के पद पर नियुक्त किया गया था। उनका अनुबंध आगे नहीं बढ़ाया गया और संविदा जारी न रखने के खिलाफ उनकी रिट याचिका एकल न्यायाधीश के समक्ष और अपील में भी विफल रही। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, देवरिया द्वारा उन्हें पुनः जिला

समन्वयक (सिविल) के पद पर नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता ने दावा किया कि वह पदभार ग्रहण किया और पूरी ईमानदारी और समर्पण के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन किया। कुछ आरोपों में उन पर आरोपपत्र दायर किया गया था। उन्होंने आरोपों के खिलाफ जवाब दाखिल कर आरोपों का खंडन किया था। उस मामले में याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने के बाद उनके खिलाफ कोई जांच नहीं की गई। बाद में, याचिकाकर्ता की सेवाएं जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया द्वारा दिनांक 06.08.2021 के एक आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई, जिसे निर्णय की रिपोर्ट में याचिकाकर्ता को जिला समन्वयक (सिविल), देवरिया के पद पर कार्य करने से रोकने वाले आदेश के रूप में वर्णित किया गया है। यह राज्य के अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता की संविदात्मक नियुक्ति की उपरोक्त समाप्ति के संदर्भ में था कि यह राजेश कुमार सिंह (उपरोक्त) में आयोजित किया गया था:

"15. राजेश भारद्वाज (उपरोक्त) मामले में उपरोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए खंडपीठ ने कैलाश सिंह बनाम प्रबंध समिति, मेयो कॉलेज, अजमेर और अन्य, (2018) 10 स्केल 638 में शीर्ष अदालत के हालिया निर्णय पर भरोसा किया है, जहां मेयो कॉलेज के एक कर्मचारी की बर्खास्तगी से संबंधित विवाद के संबंध में, न्यायालय ने माना कि रोजगार रोजगार के सरल अनुबंध द्वारा

शासित होता है और इसलिए, बहाली की कोई राहत नहीं दी जा सकती है, लेकिन गलत तरीके से बर्खास्त किए जाने पर कर्मचारी हर्जाने का दावा कर सकता है।

16. जहां तक याचिकाकर्ता की बहाली के संबंध में राहत का सवाल है, यदि कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया गया है या सेवा का अनुबंध समाप्त कर दिया गया है, तो न्यायालय बहाली की राहत नहीं देगा, यानी व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध का विशिष्ट प्रदर्शन, क्योंकि यह विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, इसलिए, प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती है।"

11. श्रमिक ठेके पर लगे कर्मचारियों से ज्यादा कुछ नहीं हैं। वे बहाली की किसी राहत का दावा नहीं कर सकते।

12. इन परिस्थितियों में, प्रतिवादियों को श्रमिकों को काम करने की अनुमति देने और वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने वाला परमादेश जारी करने का कोई मामला नहीं बनता है।

13. याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 779

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 10561 वर्ष 2023

थी, और प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन को मानते हुए भी, गैर-वैधानिक अनुबंध में बहाली की कोई राहत कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं है। इसके अलावा, आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ताओं को अन्यत्र रोजगार पाने से अयोग्य नहीं ठहराता है और यह केवल प्रतिवादी निगम के साथ भविष्य में नियुक्ति तक ही सीमित है।

आशीष कुमार पांडेय एवं अन्य ...याचिकाकर्ता  
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री राम प्रवेश पांडेय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अभिषेक श्रीवास्तव,  
श्री सिया राम यादव, श्री आदर्श भूषण

राजेश भारद्वाज बनाम भारत संघ एवं अन्य,  
2019 (2) एडीजे 830 (डीबी) और राजेश  
कुमार सिंह बनाम जिला बेसिक शिक्षा  
अधिकारी एवं अन्य, 2022 (4) एडीजे 535 -  
पर भरोसा किया गया।

याचिका खारिज।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

संविदा रोजगार - आउटसोर्सिंग एजेंसी के  
माध्यम से नियोजित लाइनमैन - हड़ताल में  
कथित भागीदारी के लिए अनुबंध की समाप्ति  
- ईएसएमए अधिसूचना लागू - सेवा के  
साधारण अनुबंध के मामले में बहाली स्वीकार्य  
नहीं - कलंक का आरोप प्राकृतिक न्याय के  
सिद्धांतों को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं  
है -

निर्णय: याचिकाकर्ता, तृतीय-पक्ष आउटसोर्सिंग  
एजेंसी के माध्यम से नियोजित संविदा  
कर्मचारी हैं और निगम के सीधे अधीन नहीं हैं,  
इसलिए वे बहाली की मांग नहीं कर सकते।  
उनकी बर्खास्तगी ईएसएमए अधिसूचना के  
उल्लंघन में की गई हड़ताल के आधार पर हुई

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान  
अधिवक्ता श्री आर.पी. पांडे, प्रतिवादी संख्या 1  
की ओर से विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी  
अधिवक्ता श्री गिरिजेश त्रिपाठी, प्रतिवादी  
संख्या 2 व 3 की ओर से उपस्थित विद्वान  
अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव और प्रतिवादी  
संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान  
अधिवक्ता श्री आदर्श भूषण को सुना गया।

2. यह रिट याचिका तीस संविदा कर्मचारियों  
द्वारा दायर की गई है, जो पूर्वांचल विद्युत  
वितरण निगम लिमिटेड (संक्षेप में, 'निगम') के  
लाइनमैन थे और निगम के प्रबंध निदेशक  
द्वारा पारित अनुमोदन के आदेशों के तहत  
उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। हालांकि  
याचिकाकर्ताओं की संख्या तीस है, लेकिन प्रबंध

निदेशक की मंजूरी के आधार पर सेवा के अनुबंध को समाप्त करने का आदेश, जिसे रिट याचिका में अनुबंध संख्या 10 के रूप में संलग्न किया गया है, को रद्द करने की मांग की गई है, जो अकेले पहले याचिकाकर्ता से संबंधित है। अन्य याचिकाकर्ताओं से संबंधित समान आदेश संलग्न नहीं हैं।

3. फिर भी याचिकाकर्ताओं की ओर से आग्रह किया गया है कि उनके साथ पहले याचिकाकर्ता आशीष कुमार पांडे की तरह ही निगम के प्रबंध निदेशक ने उनके अनुबंध को समाप्त करने की मंजूरी दे दी है, साथ ही यह निर्देश भी दिया है कि भविष्य में निगम द्वारा किसी भी काम के लिए उनकी सेवाएं नहीं ली जाएंगी। इसलिए, याचिकाकर्ताओं ने एक परमादेश के लिए प्रार्थना की है, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ताओं को निगम के लिए काम करना जारी रखने की अनुमति दें और उन्हें उनकी उचित परिलब्धियों का भुगतान करें।

4. जैसा कि उनका कहना है, याचिकाकर्ता सिंगल साइन-ऑन और लाइनमैन के पद पर कार्यरत थे। याचिकाकर्ताओं को एक निश्चित आउटसोर्सिंग एजेंसी मैसर्स ओरिएंट सेकेयर प्रा. लि., नई दिल्ली के माध्यम से अनुबंध श्रमिकों के रूप में भर्ती किया गया था। यह दलील दी गई है कि बाद में, उक्त आउटसोर्सिंग एजेंसी को कार्यबल आपूर्तिकर्ता नियुक्त किया गया था और याचिकाकर्ता निगम के विभिन्न केंद्रों पर काम करने वाले सेकेयर के कर्मचारी हैं। याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे ईमानदार, निष्कपट और समर्पित कार्यकर्ता रहे हैं। रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 6 में अनुरोध किया

गया है कि इस तरह की नाराजगी का स्वर है जो बिजलीकर्मियों की हड़ताल को बढ़ावा दे सकता है, जिसका संदर्भ थोड़ी देर बाद दिया जाएगा। वहां कहा गया है कि निगम याचिकाकर्ताओं के साथ खासकर उनके वेतन के संबंध में गलत व्यवहार कर रहा था। याचिकाकर्ताओं की तरह अनुबंध पर रखे गए व्यक्तियों द्वारा न्यूनतम वेतन के प्रावधान की मांग की गई थी। यह भी कहा जा रहा है कि अन्य राज्यों में भी संविदा पर काम करने वाले कर्मियों की न्यूनतम वेतन संबंधी मांगें मानी जा रही हैं, लेकिन उत्तर प्रदेश में ऐसा नहीं है। इसके बाद पैराग्राफ संख्या 6 में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने अपनी लंबे समय से चली आ रही मांग पूरी न होने के बावजूद कभी भी काम पर हड़ताल नहीं किया या अपने कर्तव्यों का पालन करने से इनकार नहीं किया।

5. याचिकाकर्ताओं का मामला है कि निगम के नियमित कर्मचारियों, जिनका प्रतिनिधित्व उनके संघ, जिसे विद्युत कर्मचारी संयुक्त संघर्ष समिति, उत्तर प्रदेश के नाम से जाना जाता है, ने अपने पदाधिकारियों और संबंधित विभाग के मंत्री सहित निगम के अधिकारियों के बीच एक बैठक की, लेकिन आश्वासन के बावजूद अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं की मांगें पूरी नहीं की। अतः कर्मचारी संघ ने 16.02.2023 को उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन के चेयरमैन को हड़ताल का नोटिस दिया। पुनः 03.03.2023 को यूनियन के कर्मचारियों द्वारा निगम के अध्यक्ष को एक समान नोटिस दिया गया था।

6. पैराग्राफ संख्या 9 में यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त यूनियन के सदस्य नहीं हैं, क्योंकि यह उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (संक्षेप में, यूपीपीसीएल) के तहत पूरे उत्तर प्रदेश में काम करने वाले नियमित कर्मचारियों का एक संघ है। यह भी दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश विद्युत आउटसोर्स मजदूर संघ, आजमगढ़ नामक एक अन्य संघ के सदस्य हैं। उक्त यूनियन को 8 दिसंबर, 2022 को ट्रेड यूनियन रजिस्ट्रार, उत्तर प्रदेश, कानपुर के साथ पंजीकृत किया गया था। याचिकाकर्ता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि 4 जनवरी, 2023 को, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश आवश्यक सेवा रखरखाव अधिनियम, 1966 (संक्षेप में, 'ईएसएमए') की धारा 3 की उप-धारा (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक अधिसूचना जारी की, जिसमें यूपीपीसीएल के तहत अन्य सेवाओं सहित सभी सेवाओं में छह महीने के लिए हड़ताल पर रोक लगा दी गई। याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया कि इस अधिसूचना के जारी होने के बाद, छह महीने की अवधि के लिए यूपीपीसीएल में नियमित या संविदा कर्मचारियों द्वारा किसी भी हड़ताल की अनुमति नहीं थी। फिर भी यूपीपीसीएल, जिसमें निगम के कर्मचारी भी शामिल हैं, के कर्मचारियों द्वारा 20.02.2023 को हड़ताल का नोटिस दिया गया।

7. यूपीपीसीएल के प्रबंध निदेशक द्वारा एक जापन जारी किया गया जिसमें प्रमुख सचिव (गृह), उ.प्र. सरकार, लखनऊ को कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए कहा गया। 12.03.2023 को उ.प्र. सरकार के ऊर्जा विभाग के सचिव द्वारा राज्य के सभी पुलिस

आयुक्तों, सभी जिला कलेक्टरों और सभी वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों/पुलिस अधीक्षकों को संबोधित एक परिपत्र भी जारी किया गया था कि प्रस्तावित हड़ताल अवैध है और कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक बल की तैनाती की जाए। याचिकाकर्ताओं का मामला, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 15, 16, 19 और 22 में बताया गया है कि जब बिजली कर्मियों ने 16.03.2023 से 72 घंटे की हड़ताल की थी, तो याचिकाकर्ता ड्यूटी पर रहे और भाग नहीं लिया। फिर भी, निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा ईएसएमए के तहत जारी हड़तालों पर रोक लगाने वाली अधिसूचना के उल्लंघन में हड़ताल करने के लिए पहले याचिकाकर्ता के मामले में पारित दिनांक 17.03.2023

जैसे आदेशों के अनुसार याचिकाकर्ताओं की संविदात्मक नियुक्ति समाप्त कर दी गई है और भविष्य में निगम से संबंधित किसी भी कार्य के लिए उनकी नियुक्ति पर रोक लगा दी गई है।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ताओं के मामले में ईएसएमए के प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि उन्होंने कभी काम नहीं रोका। यह भी तर्क दिया गया है कि पहले याचिकाकर्ता के मामले में पारित दिनांक 17.03.2023 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलेगा कि इसे आकस्मिक तरीके से पारित किया गया है, जिससे अनुबंध की समाप्ति को मंजूरी मिल गई है और याचिकाकर्ताओं को अयोग्य घोषित कर दिया गया है। विशेष रूप से, यह तर्क

दिया गया है कि निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा लिया गया निर्णय कलंकपूर्ण है, जिसके परिणाम अक्षम करने वाले हैं, लेकिन याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना पारित किया गया है, इससे उनमें काफी पूर्वाग्रह उत्पन्न होता है।

9. आक्षेपित आदेश को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि यह आदेश सेवा प्रदाता मेसर्स प्राइम सेकेयर वर्कफोर्स प्राइवेट लिमिटेड, जिसे आदेश में मेसर्स प्राइमोन के रूप में वर्णित किया गया है, की सिफारिश पर प्रबंध निदेशक द्वारा पारित किया गया है। याचिकाकर्ताओं के पास सेवा प्रदाता के साथ अनुबंध की गोपनीयता है न कि निगम के साथ। ऐसा कोई कारण नहीं है कि सेवा प्रदाता पहले याचिकाकर्ता या अन्य को प्रबंध निदेशक को रिपोर्ट करके उनकी नियुक्ति समाप्त करने के लिए कहेगा। इसके अलावा, उत्तर प्रदेश में बिजलीकर्मियों की हड़ताल सर्वव्यापी और कमजोर करने वाली थी, और इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जाना चाहिए कि सभी बिजलीकर्मियों की कुल भागीदारी के बिना, इतनी व्यापक हड़ताल और बिजली में व्यवधान संभव नहीं था। एक बार ईएसएमए के तहत एक अधिसूचना जारी की गई थी, इस तथ्य के अलावा कि इसने हड़ताल को पूरी तरह से अवैध बना दिया था, आधुनिक जीवन में बिजली की निर्बाध आपूर्ति के महत्व को देखते हुए, जो मानव प्रयास या अन्य संसाधनों की तुलना में बिजली से चलने वाले गैजेट पर अधिक चलता है, इस न्यायालय की राय में, हड़ताली संविदा कर्मियों को बाहर करने के निगम के निर्णय में प्राकृतिक न्याय के

उल्लंघन के सिद्धांतों के आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। निगम के अध्यक्ष या कार्यबल आपूर्तिकर्ता सेकेयर के खिलाफ दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है, जिन्होंने याचिकाकर्ताओं को कार्रवाई के लिए निगम के अध्यक्ष को सूचित किया था। किसी भी घटना में, याचिकाकर्ता कार्यबल आपूर्तिकर्ता के माध्यम से अनुबंध, पदभार ग्रहण की प्रकृति जो याचिकाकर्ताओं को सेवा में बहाली या अपने अनुबंध की बहाली की मांग करने का अधिकार नहीं देती है, पर लगे हुए थे।

10. इस संबंध में, **राजेश भारद्वाज बनाम भारत संघ और अन्य, 2019 (2) एडीजे 830 (डीबी)** में इस न्यायालय की एक खंडपीठ के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां यह कहा गया है:

"30. अब हम प्रश्न-(2), (3) और (4) पर आते हैं, जिनसे, हमारे विचार में, एक साथ निपटा जा सकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता पर लागू रोजगार के नियम और शर्तों को चुनौती नहीं दी गई है कि ऐसे नियम और शर्तें मनमाने हैं और संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ पठित भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1872" कहा जाएगा) की धारा 23 का उल्लंघन करते करते हुए अनुचित, अनुचित या अचेतन और सार्वजनिक नीति के विरुद्ध हैं। बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि याचिकाकर्ता को बचाव का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है और बर्खास्तगी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि नियम और शर्तें किसी कानून या



वैधानिक प्रावधान या कानून के किसी भी प्राधिकार के तहत किए गए किसी प्रावधान द्वारा शासित नहीं होती हैं। याचिकाकर्ता प्रबंधक संवर्ग में होने के कारण, उसके नियम और शर्तें भी औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 (इसके बाद 'अधिनियम, 1946' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा शासित कर्मचारियों के संबंध में नियोक्ता द्वारा किए गए स्थायी आदेशों द्वारा शासित नहीं हैं। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता जैसे मामलों में, लगातार यह निर्धारित किया गया है कि रोजगार केवल संविदा का एक हिस्सा है। यदि रोजगार समाप्त कर दिया गया है या सेवा का अनुबंध समाप्त कर दिया गया है, तो न्यायालय बहाली की राहत नहीं देगा, यानी व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध का विशिष्ट निष्पादन, क्योंकि यह विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 (इसके बाद "अधिनियम 1963" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा वर्जित है और, इसलिए, अनुच्छेद 226 के तहत कोई उपचार उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि कर्मचारी, यदि गलत तरीके से सेवा समाप्त करने के बारे में शिकायत करता है, तो उसे नुकसान का दावा करके सामान्य कानून में उपचार का लाभ उठाना चाहिए।

32. वर्तमान मामले में भी, याचिकाकर्ता और सीयूपीजीएल के बीच रोजगार का संबंध पूरी तरह से सेवा का एक सामान्य अनुबंध है जो किसी कानून या वैधानिक प्रावधान द्वारा शासित नहीं है। ऐसे मामलों में, नौकरी में बहाली या निरंतरता की राहत देकर सेवा के अनुबंध को नियम विधान

द्वारा लागू करने की मांग नहीं की जा सकती क्योंकि यह राहत अधिनियम, 1963 के तहत वर्जित है।"

11. राजेश भारद्वाज (उपरोक्त) में खंडपीठ के फैसले का पालन इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने राजेश कुमार सिंह बनाम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं अन्य, 2022 (4) एडीजे 535 में किया था, जहां याचिकाकर्ता को शुरू में जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया द्वारा जिला समन्वयक (सिविल) के पद पर नियुक्त किया गया था। उनका अनुबंध आगे नहीं बढ़ाया गया और संविदा जारी न रखने के खिलाफ उनकी रिट याचिका एकल न्यायाधीश के समक्ष और अपील में भी विफल रही। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, देवरिया द्वारा उन्हें पुनः जिला समन्वयक (सिविल) के पद पर नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता ने दावा किया कि वह पदभार ग्रहण किया और पूरी ईमानदारी और समर्पण के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन किया। कुछ आरोपों में उन पर आरोपपत्र दायर किया गया था। उन्होंने आरोपों के खिलाफ जवाब दाखिल कर आरोपों का खंडन किया था। उस मामले में याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने के बाद उनके खिलाफ कोई जांच नहीं की गई। बाद में, याचिकाकर्ता की सेवाएं जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया द्वारा दिनांक 06.08.2021 के एक आदेश दद्वारा समाप्त कर दी गई, जिसे निर्णय की रिपोर्ट में याचिकाकर्ता को जिला समन्वयक (सिविल), देवरिया के पद पर कार्य करने से रोकने वाले आदेश के रूप में वर्णित किया गया है। यह राज्य के अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता की

संविदात्मक नियुक्ति की उपरोक्त समाप्ति के संदर्भ में था कि यह **राजेश कुमार सिंह** (उपरोक्त) में आयोजित किया गया था:

"15. राजेश भारद्वाज (उपरोक्त) मामले में उपरोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए खंडपीठ ने कैलाश सिंह बनाम प्रबंध समिति, मेयो कॉलेज, अजमेर और अन्य, (2018) 10 स्केल 638 में शीर्ष अदालत के हालिया निर्णय पर भरोसा किया है, जहां मेयो कॉलेज के एक कर्मचारी की बर्खास्तगी से संबंधित विवाद के संबंध में, न्यायालय ने माना कि रोजगार रोजगार के सरल अनुबंध द्वारा शासित होता है और इसलिए, बहाली की कोई राहत नहीं दी जा सकती है, लेकिन गलत तरीके से बर्खास्त किए जाने पर कर्मचारी हर्जाने का दावा कर सकता है।

16. जहां तक याचिकाकर्ता की बहाली के संबंध में राहत का सवाल है, यदि कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया गया है या सेवा का अनुबंध समाप्त कर दिया गया है, तो न्यायालय बहाली की राहत

नहीं देगा, यानी व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध का विशिष्ट प्रदर्शन, क्योंकि यह विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, इसलिए, प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती है।"

15. यहां याचिकाकर्ताओं का मामला एक कार्यबल आपूर्तिकर्ता के माध्यम से एक संविदात्मक नियुक्ति से ज्यादा कुछ नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता बहाली की किसी राहत का दावा नहीं कर सकते, भले ही यह प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन का मामला हो।

12. जहां तक याचिकाकर्ताओं पर लगे कलंक का सवाल है, निगम के प्रबंध निदेशक का आदेश किसी भी तरह से याचिकाकर्ताओं को कहीं और संविदात्मक रोजगार के लिए अयोग्य नहीं ठहराता है। यह, अधिक से अधिक, निगम की स्थापना में याचिकाकर्ताओं की भागीदारी पर रोक लगाने का निर्णय है। यह याचिकाकर्ताओं को अन्यत्र रोजगार खोजने से अक्षम नहीं करता है।

13. संपूर्ण परिस्थितियों में, आक्षेपित आदेश या मांगे गए परमादेश के मुद्दे में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

14. याचिका विफल हो जाती है और **खारिज की जाती है।**

-----

(2023) 9 ILRA 783

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

रिट-ए संख्या 10696 वर्ष 2023

जीत लाल सरोज

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री शिवेंदु ओझा, श्री स्नेह पांडेय, श्री आर.के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री रमेश चंद्र द्विवेदी, श्री संतोष कुमार मिश्रा, श्री प्रदीप श्रीवास्तव, श्री अनिल भूषण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - स्थिरता - प्रतिवादी को व्याख्याता वेतनमान दिए जाने को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता के अधिकार क्षेत्र पर आपत्ति उठाई गई - कानूनी क्षति - प्रासंगिकता - 25.10.2000 के शासनादेश का उल्लंघन - प्रभाव - न्यायालय का कर्तव्य - व्याख्या - माना गया, एक बार व्याख्याता का पदनाम देने का आधार ही बेबुनियाद हो गया तो बुनियाद ही खत्म हो जाती है - इसलिए, कोई भी लाभ जो किसी अयोग्य सहायक अध्यापक को उपलब्ध होगा, वह योग्य अध्यापक के भविष्य

की संभावनाओं के संबंध में उनके हितों के लिए हानिकारक होगा - न्यायालयों का त्रुटियों को सुधारने का गंभीर कर्तव्य है - उच्च न्यायालय ने रिट की स्थिरता पर सवाल उठाने वाली आपत्ति को खारिज कर दिया। (अनुच्छेद 32)

बी. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 14 - नकारात्मक समानता की अवधारणा - व्याख्याता वेतनमान - पात्रता - प्रतिवादी, शर्त को पूरा नहीं करते हुए, इस आधार पर व्याख्याता वेतनमान प्रदान किया गया कि कुछ अन्य सहायक अध्यापक भी इसे प्राप्त कर रहे हैं - अनुमति - दिमाग का गैर-प्रयोग - प्रभाव - माना गया कि उच्च न्यायालय डीआईओएस द्वारा लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन नहीं कर सकता है कि चूंकि अन्य सहायक अध्यापकों को समान लाभ दिए गए हैं, इसलिए इसे चौथे प्रतिवादी को दिया जाना चाहिए विशेष रूप से इस तथ्य के मद्देनजर कि नकारात्मक समानता की कोई अवधारणा नहीं है क्योंकि विधि के न्यायालयों को इस तरह से न्याय को आगे बढ़ाना चाहिए कि अनुच्छेद 14 के तहत कोई भेदभाव नहीं किया जा रहा है - समान परिस्थितियों में अवैध रूप से बढ़ाया गया कोई भी लाभ किसी ऐसे पदधारी को देने का आधार नहीं हो सकता है जो अन्यथा भी इसके लिए हकदार नहीं है। (पैरा 36)

सी. सेवा विधि - व्याख्याता वेतनमान/व्याख्याता पद - पात्रता के लिए पात्रता - दिनांक 28.02.1990 और 25.10.2000 के शासनादेश - व्याख्याता वेतनमान/व्याख्याता

पद का लाभ प्राप्त करने के लिए पात्रता प्राप्त करने के लिए, आवश्यक पात्रता में से एक यह थी कि एक शिक्षक को गैर-सरकारी और सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय में इंटरमीडिएट कक्षाओं में 10 वर्षों तक लगातार कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, शिल्प आदि पढ़ाना है - पात्रता की पूर्ति न करना - प्रभाव - माना जाता है कि, एक इंटरमीडिएट कक्षा में पढ़ाने के दौरान 10 वर्षों की निरंतर सेवाओं के साथ-साथ एक व्याख्याता के रूप में पदनाम को दिनांक 25.10.2000 के शासनादेश के खंड (6) के प्रकाश में देखा जाना चाहिए - दिनांक 25.10.2000 के शासनादेश का खंड (6) चौथे प्रतिवादी के रास्ते में आएगा, जिससे वह उक्त लाभों के लिए अयोग्य हो जाएगा। (पैरा 24 और 25)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

#### उद्धृत वादों की सूची :

1. रिट ए संख्या 43794/2011; विजय बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 14.12.2011 को निर्णीत

2. रिट ए संख्या 16881/2012; बानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 07.02.2019 को निर्णय लिया गया

3. शिव पूजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2019 (6) एडीजे 654

4. विशेष अपील संख्या 48/2020; श्रीमती कृष्णा श्री गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 11.02.2020 को निर्णीत

5. रिट ए संख्या 49341/2008; संगम लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, दिनांक 05.10.2012 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा पारित)

1. श्री आर.के. ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सहायक श्री शिवेंदु ओझा, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार शाही, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता जो प्रतिवादीगण संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित हुए, श्री आर.सी.द्विवेदी विद्वान अधिवक्ता जो प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित हुए, श्री प्रभाकर अवस्थी विद्वान अधिवक्ता जो प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से उपस्थित हुए हैं, को सुना।

2. चूंकि पक्षकारों के बीच शपथपत्रों का आदान-प्रदान हो चुका है और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता कोई और शपथपत्र दायर करने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं, इसलिए, पक्षकारों की सहमति से, रिट याचिका पर नए सिरे से निर्णय लिया जा रहा है।

3. इस मामले के तथ्यों में अनावश्यक विवरणों को शामिल नहीं किया गया है जैसा कि रिट याचिका में कहा गया है कि तीसरा प्रतिवादी, सरस्वती शिक्षा सदन इंटरमीडिएट कॉलेज मैरॉन, हंडिया, जिला प्रयागराज (संक्षेप में प्रतिवादी संस्थान) उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के प्रावधानों के तहत एक मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त संस्थान है, यू.पी. (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम, 1982

के साथ-साथ उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 के प्रावधान लागू हैं।

4. रिट याचिकाकर्ता जीत लाल सरोज पुत्र श्री राम शिरोमणि सरोज के अनुसार, उसे विज्ञापन संख्या 1 वर्ष 2009 के तहत यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड द्वारा की गई भर्ती प्रक्रिया के अनुसार प्रवक्ता (संस्कृत) के रूप में चयनित और नियुक्त किया गया था और रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 08.12.2010 के पत्र के आधार पर महाराणा प्रताप इंटर कॉलेज राम दयालगंज, जिला जौनपुर में नियुक्ति प्रदान की गई। रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने दिनांक 04.01.2011 को महाराणा प्रताप इंटर कॉलेज, राम दयालगंज, जिला जौनपुर में प्रवक्ता (संस्कृत) के पद पर कार्यभार ग्रहण किया था। रिट याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि उनके अनुरोध पर, उन्हें अपर शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), यूपी., प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 28.06.2019 के आधार पर महाराणा प्रताप इंटर कॉलेज राम दयालगंज, जिला जौनपुर से तीसरे प्रतिवादी, सरस्वती शिक्षा सदन इंटरमीडिएट कॉलेज मैरौन, हंडिया, जिला प्रयागराज में स्थानांतरित कर दिया गया था और याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.07.2019 को तीसरे प्रतिवादी संस्थान में प्रवक्ता (संस्कृत) के पद पर कार्यभार ग्रहण किया। रिट याचिका के पैरा 8 में यह अनुरोध किया गया है कि चौथे प्रतिवादी हुब लाल के पुत्र लालमणि को यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड दिनांकित 05.07.2006 की सिफारिश और जिला विद्यालय निरीक्षक,

इटावा दिनांकित 19.08.2006 के परिणामी पत्र के अनुसार सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में चुना गया था। रिट याचिका के पैरा 9 में, यह पुनः कहा गया है कि चौथे प्रतिवादी को दिनांक 05.10.2006 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था, जिसके अनुसार उसने जिला पंचायत इंटर कॉलेज, हैवरा, इटावा में सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में कार्यभार ग्रहण किया।

5. दलीलों से यह भी पता चलता है कि चौथे प्रतिवादी ने तीसरे प्रतिवादी संस्थान में स्थानांतरण की मांग करते हुए एक आवेदन दिया था, जिसके अनुसरण में उसे दिनांक 07.01.2016 को तीसरे प्रतिवादी संस्थान में सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया था। रिट याचिका के पैरा 11 में, आगे दलील दी गई है कि चौथे प्रतिवादी को दिनांक 01.02.2016 को तीसरे प्रतिवादी संस्थान में सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में शामिल होने की अनुमति दी गई थी। रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, चौथे प्रतिवादी ने शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के अनुसरण में प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद का दावा करने के लिए दिनांक 21.09.2018 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, हालांकि, दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज आदेश दिनांकित 26.11.2018 द्वारा प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद देने से इस आधार पर इनकार कर दिया गया कि चौथा प्रतिवादी प्रश्नगत सरकारी आदेशों में निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं कर रहा था। हालांकि, रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक,

प्रयागराज ने दिनांक 18.07.2018 को चौथे प्रतिवादी को चयन ग्रेड वेतन प्रदान किया। बताया जाता है कि दिनांक 05.10.2016 से प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद के अनुरूप न मिलने से व्यथित होकर चौथे प्रतिवादी ने कार्यवाही करते हुए एससी/एसटी आयोग से संपर्क किया था जिसपर एससी/एसटी आयोग ने शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) , यूपी, प्रयागराज से स्पष्टीकरण मांगा था और उसके बाद आदेश दिनांकित 14.05.2023 के आधार पर दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज ने चौथे प्रतिवादी को दिनांक 05.10.2016 से प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद के लाभ का हक प्रदत्त किया।

6. दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 14.05.2023 पर सवाल उठाते हुए, चौथे प्रतिवादी को शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के अनुपालन में प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद के लिए हकदार बनाते हुए, रिट याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

7. रिट याचिका पर विचार करते हुए, यह न्यायालय दिनांक 11.07.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा-

“विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा, सहायक श्री शिवेंदु ओझा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संतोष कुमार जो प्रतिवादी संख्याओं 1 और 2 के लिए उपस्थित हैं और विद्वान वरिष्ठ

अधिवक्ता श्री अनिल भूषण सहायक श्री प्रदीप श्रीवास्तव जो चौथे प्रतिवादी के लिए उपस्थित हैं, को सुना।

श्री ओझा ने यह तर्क दिया है कि दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 14.5.2023 तथ्यों और कानून की गलत अवधारणा पर आधारित है, विशेष रूप से इस तथ्य के दृष्टिकोण से कि प्रश्नगत आदेश में एक पुनरावृत्ति है इसका प्रभाव यह है कि पहले, चौथे प्रतिवादी का दावा जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा दिनांक 26.11.2018 को खारिज कर दिया गया था, जिसके अनुसार यह माना गया था कि चौथा प्रतिवादी दिनांक 5.10.2016 से प्रवक्ता वेतन/प्रवक्ता पद का लाभ पाने का हकदार नहीं है हालांकि समीक्षा की कोई शक्ति न होने के कारण आदेश की समीक्षा की मांग की गई है, वह भी इस संबंध में एससी/एसटी आयोग के आदेश पर। उन्होंने आगे कहा कि प्रश्नगत आदेश में निहित विवरण के अनुसार चौथे प्रतिवादी को दिनांक 5.10.2006 को जिला पंचायत इंटर कॉलेज हैवरा, इटावा में सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक 7.1.2016 को वह तीसरे प्रतिवादी संस्थान के रूप में नियुक्त किया गया था और उसने दिनांक 1.2.2016 को सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। इसलिए शासनादेश दिनांकित 25 अक्टूबर के तहत, जो वास्तव में पहले के शासनादेश दिनांकित 20 फरवरी, 1990 को ध्यान में रखते हुये, इस तथ्य के संबंध में दोहरी शर्तें लागू होती हैं कि एक

शिक्षक कक्षा-11 और 12 के छात्रों को 10 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए शिक्षा प्रदान करता है और प्रवक्ता का वेतनमान भी प्राप्त करता है, उक्त लाभ प्राप्त करने का पात्र हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह भी कहना है कि एससी/एसटी आयोग के दबाव और निर्देशों पर चौथे प्रतिवादी को लाभ देने के लिए पूरी प्रक्रिया तैयार की गई है।

दूसरी ओर, श्री भूषण का कहना है कि, सबसे पहले, रिट याचिकाकर्ता के पास वर्तमान याचिका को कायम रखने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उक्त लाभों के अनुदान के आधार पर केवल पुनः पदनाम/उन्नयन किया गया है, जबकि वास्तव में इस वर्तमान क्षण में भी रिट याचिकाकर्ता को कानूनी कार्यवाई की गति देने के लिए कोई कानूनी क्षति नहीं पहुंचाने दी जाएगी। उन्होंने दूसरे अंतिम पैराग्राफ की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए आक्षेपित आदेश का भी उल्लेख किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि आदेश को जानबूझकर नहीं लिखा जाता है और बच्चू लाल को दिए गए लाभों के आधार पर चौथे प्रतिवादी को लाभ दिया गया है। यहां तक कि वास्तव में उक्त लाभ कई पदधारियों को दिए गए हैं और किसी भी तरह की अवैधता की ओर इशारा नहीं किया जा सकता है।

दूसरी ओर, श्री ओझा का कहना है कि चौथे प्रतिवादी द्वारा प्रस्तावित कानूनी क्षति का प्रश्न उनके किसी लाभ का नहीं है क्योंकि एक बार कोई लाभ अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों और प्रश्नगत शासनादेश के अनुसार नहीं दिया जाता है तो उक्त लाभ

आरंभ से ही शून्य हो जाते हैं क्योंकि आगे उक्त आदेश के आधार पर अब चौथा प्रतिवादी प्रिंसिपल बनने के अपने दावे पर कायम रहेगा और उस संबंध में लाभ प्राप्त करेगा। मामले पर विचार करने की जरूरत है।

चूंकि प्रबंधन की समिति तीसरी प्रतिवादी इस अदालत के समक्ष नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तीन दिन की अवधि के भीतर दोनों तरीकों से तीसरे प्रतिवादी को सेवा प्रदान करेंगे।

अगली तारीख से पहले अनुपालन का शपथ पत्र दाखिल किया जाए।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता 10 दिनों के भीतर अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएँ दाखिल करेंगे। याचिकाकर्ता को जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए तीन दिन का समय दिया जाता है।

इस मामले को नये मामले के रूप में दिनांक 21.7.2023 को पेश करें।

चूंकि मामला प्रयागराज से ही जुड़ा है और इसमें कानूनी सवाल भी जुड़ा है, इसलिए यह उम्मीद की जाती है कि विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादीगण अगली तारीख से पहले अपना जवाब दाखिल करेंगे।

शासनादेश दिनांकित 22 फरवरी, 1990 और विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों

का संग्रह परिशिष्ट-1 और 2 के रूप में अभिलेख में रखा गया है।

8. आदेश दिनांकित 11.07.2023 के अनुसार, आदेश पत्र निरूपित करता है कि तीसरे प्रतिवादी को नोटिस जारी की गई थी क्योंकि पहले और दूसरे प्रतिवादीगण का प्रतिनिधित्व विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा किया गया था और चौथे प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व उसके अधिवक्ता द्वारा किया गया था। विद्वान स्थायी अधिवक्ता जो दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज की ओर से दिनांक 20.07.2023 को सशपथ उपस्थित हुए हैं, द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है। तीसरे प्रतिवादी, प्रबंधन समिति, सरस्वती शिक्षा सदन इंटरमीडिएट कॉलेज मैरॉन, हंडिया, जिला प्रयागराज द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसका जवाबी हलफनामा रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। चौथे प्रतिवादी द्वारा एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामा दायर किया गया है और उसके जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा एक संक्षिप्त प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया है।

9. जैसा कि ऊपर देखा गया है, प्रतिद्वंद्वी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने कोई और हलफनामा दाखिल करने का प्रस्ताव नहीं दिया है, इस प्रकार, मामले को अंतिम निस्तारण के लिए ले लिया गया है।

10. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा सहायक श्री शिवेंदु ओझा आदेश दिनांकित 14.05.2023 पर हमला करते हुए प्रस्तुत किया है कि दूसरे प्रतिवादी, जिला

विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज के आदेश को विभिन्न मामलों में एक क्षण के लिए भी कायम नहीं रखा जा सकता है, सबसे पहले, शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 चौथे प्रतिवादी के मामले में लागू नहीं होते हैं क्योंकि चौथा प्रतिवादी उक्त शासनादेशों के जारी होने के बाद प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता के अनुदान के लिए पात्र और उपयुक्त हो गया है। शासनादेशों दिनांकित 25.10.2000 में निहित विशिष्ट खंड के मद्देनजर, पात्रता, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के जारी होने की तारीख से पहले या उसी दिन तक, प्राप्त की जानी है और चूंकि चौथे प्रतिवादी ने शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने के बाद पात्रता प्राप्त की, इस प्रकार, चौथा प्रतिवादी लाभ का हकदार नहीं है। द्वितीय, पहले भी आदेश दिनांकित 26.11.2018 के आधार पर, दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज ने चौथे प्रतिवादी को इसके लिए अयोग्य होने के कारण प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद देने से इनकार कर दिया था, इस प्रकार, परिस्थितियों में बदलाव न होने के कारण दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज को अपने आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं थी, तीसरा, दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा रिट याचिका में पारित आक्षेपित आदेश एससी/एसटी आयोग के दबाव और आदेश पर पारित किया गया है क्योंकि इसमें कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया है, चौथा, केवल इसलिए कि कुछ सहायक शिक्षकों को शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के अनुसरण में प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता ग्रेड का अवैध रूप से हकदार बना



दिया गया है, चौथे प्रतिवादी को उक्त लाभ देने और बढ़ाने का आधार नहीं होगा, पांचवें, चौथा प्रतिवादी अन्यथा भी उस संबंध में सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के पद पर नियुक्त होने के लिए पात्र और योग्य नहीं है।

11. उक्त प्रस्तुतीकरण को विस्तृत करते हुए, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एल.टी ग्रेड और एल.टी. ग्रेड शिक्षक से लेक्चरर के रूप में उपयुक्तता और पात्रता, जिसका आगामी शासनादेश दिनांकित 25.10.200 में पालन किया गया, के अधीन सी.टी. ग्रेड शिक्षक के मामले में वेतनमान की अनुमति देते हुए शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 का यह अर्थ नहीं है कि उक्त लाभ अनंत काल के लिए दिया जाना है, हालाँकि, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 में एक विशिष्ट शर्त थी कि पात्रता एक सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) द्वारा शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि तक/पर प्राप्त की जानी है, चूंकि चौथे प्रतिवादी को उसके स्वयं के कहे अनुसार दिनांक 05.10.2006 को सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्त किया गया था और एक शर्त यह थी कि प्रवक्ता के वेतनमान की स्वीकृति के साथ लगातार 10 वर्ष की निर्बाध सेवा, प्रवक्ता पद की स्वीकृति के लिए एक अनिवार्य शर्त थी, लेकिन चूंकि चौथे प्रतिवादी ने वर्ष 2016 में यानी दिनांक 05.10.2016 को शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने के बाद उक्त पात्रता प्राप्त की, अतः चौथा प्रतिवादी उक्त लाभ का हकदार नहीं है।

12. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओझा ने अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए कि उक्त सुविधा/लाभ, सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के लिए उपलब्ध थी एक बार के उपाय के रूप में, रिट ए संख्या 43794 वर्ष 2011(विजय बहादुर सिंह बनाम यू.पी. राज्य व अन्य) 14.12.2011 को निर्णीत उसके बाद की रिट ए संख्या 16881 वर्ष 2012 (बानी सिंह बनाम यू.पी. राज्य और अन्य) 07.02.2019 को निर्णीत, के निर्णय पर भरोसा करने की मांग की है। वह, 2019 (6) एडीजे 654 में वर्णित शिव पूजन बनाम यू.पी. राज्य के मामले में हुए निर्णय पर भी भरोसा करते हैं।

13. इसके अतिरिक्त, रिट याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क देने की मांग की जा रही है कि नकारात्मक समानता की कोई अवधारणा नहीं है क्योंकि भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 इसकी अनुमति नहीं देता है बल्कि इसके विपरीत इसे प्रतिबंधित करता है और आगे यह तर्क दिया गया है कि दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश बिना किसी कारण के है, जिसे कानून के चतुष्कोणों के भीतर कहा जा सकता है और उनके अनुसार, रिट याचिका में आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और नया आदेश पारित करने के लिए मामले को दूसरे प्रतिवादी के पास वापस भेज दिया जाना चाहिए। हालाँकि रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर रिट याचिकाकर्ता की सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्ति पर सवाल उठाने का प्रयास किया गया है कि चौथा प्रतिवादी उक्त पद के लिए

पात्र और योग्य नहीं है, लेकिन उक्त प्रभाव की दलील रिट याचिका में नहीं हैं और इसे प्रत्युत्तर हलफनामे में वर्णित करने की मांग की गई है।

14. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील का विरोध करते हुए, श्री प्रभाकर अवस्थी ने यह तर्क देने की मांग की है कि जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 14.05.2023 में पूरी तरह से कानून का पालन किया गया है और इस संबंध में कोई भी गलती नहीं हो सकती है। उनका कहना है कि शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 जिसका अनुसरण शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 में किया गया, चौथे प्रतिवादी के मामले में स्पष्ट रूप से लागू होता है क्योंकि उनके अनुसार, उक्त सरकारी आदेश की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है कि उन सहायक शिक्षकों (शारीरिक शिक्षा) को बाहर कर दिया जाए जिनकी नियुक्ति प्रारंभ से ही वैध थी, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि राज्य सरकार की ओर से विशेष रूप से लाभ देने के लिए कोई औपचारिक शासनादेश जारी नहीं किया गया है, यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि राज्य सरकार सहायक अध्यापकों, जिन्होंने शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के जारी होने के बाद भी पात्रता प्राप्त की, को प्रवक्ता वेतन और प्रवक्ता पद प्रदान करते हुए उक्त लाभों में विस्तार कर रही है। संक्षेप में, तर्क यह है कि चौथा प्रतिवादी सभी प्रकार से पात्र है क्योंकि शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 में पूर्ववर्ती शर्तें चौथे प्रतिवादी की ओर से पूरी की गई हैं। चौथे प्रतिवादी की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि यदि रिट याचिकाकर्ता के

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क को पर्याप्त महत्व दिया जाए तो यह घातक और अवांछित परिणाम पैदा करेगा विशेष रूप से जब सहायक शिक्षकों (शारीरिक शिक्षा) का भविष्य अंधकार और अनिश्चितता में रखा जाएगा। प्रस्तुतीकरण यह है कि एक बार जब चौथा प्रतिवादी शासनादेशों में प्रदान की गई पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है तो उस संबंध में शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के खंड 6 को नजरअंदाज किया जाना चाहिए।

15. चौथे प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि रिट याचिकाकर्ता के पास इस तथ्य के मद्देनजर वर्तमान कार्यवाही शुरू करने और बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता को अभी तक केवल प्रवक्ता पद और प्रवक्ता वेतनमान देने से कोई कानूनी क्षति नहीं होगी ताकि वर्तमान कार्यवाही को बनाए रखा जा सके।

16. चौथे प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्रवक्ता पद और प्रवक्ता वेतनमान की अनुमति किसी विशेष शिक्षक को दिए जाने वाले लाभों तक ही सीमित व्यक्तिगत पहलू हैं और यह संभवतः क्षति का कारण नहीं बन सकती है क्योंकि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें वर्तमान चरण में किसी भी वरिष्ठता को प्रभावित करने की मांग की जा रही है या पदोन्नति का कोई मुद्दा शामिल है, विशेष रूप से उस बिंदु पर जब रिट याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका दायर की जा रही है। इस प्रकार, उनका कहना है कि रिट

याचिका को जुर्माने के साथ खारिज कर दिया जाना चाहिए।

17. चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अवस्थी ने, विशेष अपील संख्या 48 वर्ष 2020 (श्रीमती कृष्णा श्री गुप्ता बनाम यू.पी. राज्य और अन्य) दिनांक 11.02.2020 को निर्णीत और रिट ए संख्या 49341 वर्ष 2008(संगम लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दिनांक 05.10.2012 को निर्णीत, के निर्णय पर भरोसा जताया है।

18. विद्वान अधिवक्ता श्री आरसी द्विवेदी जो तीसरे प्रतिवादी प्रबंधन समिति की ओर से उपस्थित हुए, ने चौथे प्रतिवादी के मामले का समर्थन किया है और वह चौथे प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन को स्वीकार करते हैं। हालाँकि, उन्होंने अपने द्वारा दायर जवाबी हलफनामे की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह तर्क देने की मांग करते हैं कि पृष्ठ 18 पर अनुलग्नक 2 एक दस्तावेज है जो जिला पंचायत इंटर कॉलेज हैवरा, इटावा का प्रमाण पत्र है जो दर्शाता है कि चौथा प्रतिवादी ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में पढ़ा रहा था। तीसरे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित श्री द्विवेदी के अनुसार, शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के अनुसरण में चौथे प्रतिवादी को जो लाभ दिया गया है, वह कई सहायक शिक्षकों को भी दिया गया है और वह, इस प्रकार, पेपर बुक के पृष्ठ 27 पर अनुलग्नक 4 पर भरोसा करते हैं।

19. विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार शाही जो पहले और दूसरे प्रतिवादीगण

के लिए उपस्थित हुए हैं, ने तर्क दिया है कि दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज के आदेश को किसी भी तरह से गलत नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि जो भी हो, इसे शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 को आगे बढ़ाने के लिए पारित किया गया है और चौथा प्रतिवादी उन लाभों का हकदार है जो उसे उपलब्ध कराए गए हैं।

20. दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश की वैधानिकता और वैधता के संबंध में जांच शुरू करने से पहले, इस क्षेत्र पर लागू शासनादेशों पर ध्यान देना उचित होगा।

#### शासनादेश दिनांकित 28.02.1990

कक्षा, व्यायाम शिक्षकों का वेतन प्रेषक,  
श्री शरविवन्द, संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश शासन।  
सेवा में,  
शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश ,  
लखनऊ/इलाहाबाद  
शिक्षा [8] अनुभाग लखनऊ: दिनांक  
फरवरी 28, 1990

विषय- वेतन पुनरीक्षण समिति, उत्तर प्रदेश , 1989 की संस्तुतियों पर लिये गये निर्णयानुसार अशासकीय सहायता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/इण्टर कालेजों में शैक्षिक पदों पर पुनरीक्षित वेतनमानों की स्वीकृति।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक शासनादेश संख्या 4749/15-8-89/3087/89 दिनांक 4-अक्टूबर 1989 के पैरा-3 के अनुक्रम में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि कला, व्यायाम, भाषा, गृह विज्ञान, शिल्प, संगीत, विभाषा, पेंटिंग टंकण, आशुलिपि तथा क्राफ्ट विषयों को कक्षा 9-10 में पढ़ाने वाले सी०टी० ग्रेड में निर्धारित अर्हता के अधीन नियुक्त अध्यापकों को जब कक्षा 9-10 में पढ़ाते हुए 10 वर्ष पूरे हो जायें तो उन्हें एल०टी० ग्रेड के साधारण वेतनमान सं० 1400-40-1800-द० रो०-50-2300 दिया जाय।

2- उक्त विषयों को कक्षा 11-12 में पढ़ाने वाले एल०टी० ग्रेड के ऐसे अध्यापकों को जिनकी नियुक्ति निर्धारित अर्हता के अधीन हुई है- जब कक्षा 11-12 में पढ़ाते हुए 10 वर्ष पूरे हो जायें तो उन्हें प्रवक्ता वेतनमान रू० 1600-50-2300-द० रो०-60-2600 दिया जाय।

3- भविष्य में उपर्युक्त विषयों को पढ़ाने वाले अध्यापकों की एल०टी० एवं प्रवक्ता वेतनमान में नियुक्ति के लिए सम्बन्धित व्यवसाय की अर्हता के साथ क्रमशः स्नातक/स्नातकोत्तर अर्हता निर्धारित की जाती है।

4- ये आदेश वित्त (वेतन आयोग) अनुभाग-2 के अशासकीय संख्या- वे०आ०(2) 55/10-90 दिनांक 28 फरवरी, 1990 में प्राप्त उनकी सहमति से जारी किये जा रहे हैं।

भवदीय  
(शरविन्दु) संयुक्त सचिव

संलग्न प्राइमरी शिक्षकों का वेतन संख्या:

1120/15-8-90/3087/89

प्रेषक,

श्री शरविन्दु, संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश शासन।

**Government Order dated 25.10.2000**

कला, व्यायाम, भाषा, शिल्प आदि अध्यापकों को प्रवक्ता पदनाम दिया जाना

संख्या-3203/15-8-2000,3287/90

प्रेषक,

सेवा में,

पी०के० झा,

शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)

सचिव,

उत्तर प्रदेश, लखनऊ/इलाहाबाद।

उत्तर प्रदेश शासन।

शिक्षा (8) अनुभाग।

लखनऊ दिनांक: 25

अक्टूबर, 2000

विषय:- अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों के कला, व्यायाम, भाषा शिल्प आदि विषयों के अध्यापकों को प्रवक्ता पद की निर्धारित अर्हता रहने पर प्रवक्ता पद नाम दिये जाने के सम्बन्ध में।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक निदेशालय के पत्रांक:संख्या -(1)शि ०/8744/2000-2001, दिनांक 4 सितम्बर, 2000 के सन्दर्भ में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि अशासकीय सहायता प्राप्त ऐसे माध्यमिक विद्यालयों (इण्टर कालेजों), जो कला, व्यायाम, भाषा, शिल्प आदि विषयों से इण्टर स्तर तक

मान्यता प्राप्त है, मैं कार्यरत उक्त विषयों के ऐसे अध्यापकों जो निरन्तर 10 वर्ष से इण्टर में पढ़ा रहे हैं तथा प्रवक्ता वेतनमान प्राप्त कर रहे हैं, को निम्न शर्तों एवं प्रतिबन्धों के अधीन "प्रवक्ता" पद नाम दिये जाने की श्री राज्यपाल सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।

(1) जिन अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों (इण्टर कालेजों) में कला, व्यायाम, भाषा, शिल्प, संगीत आदि विषयों में प्रवक्ता के पद सृजित नहीं है, उनमें प्रवक्ता वेतनमान में कार्य करने वाले अध्यापकों को स्नातक श्रेणी के मूल पद को समाप्त करते हुए प्रवक्ता पद में उच्चकृत किया जायेगा तथा प्रवक्ता वेतनमान प्राप्त अध्यापकों को यदि वे प्रवक्ता पद हेतु निर्धारित अर्हता रखते हों, उपर्युक्तानुसार उच्चकृत पदों के सापेक्ष नियुक्त कर दिया जायेगा।

(2) प्रवक्ता वेतनमान प्राप्त ऐसे अध्यापक जो प्रवक्ता पद हेतु निर्धारित अर्हता नहीं रखते हैं, वे पूर्ववत् स्नातक वेतन क्रम की भांति शिक्षा प्रदान करते रहेंगे तथा उनकी सेवानिवृत्त के उपरान्त स्नातक श्रेणी का पद उसी तिथि से समाप्त होकर प्रवक्ता पद में परिवर्तित हो जायेगा।

(3) उपर्युक्त प्रस्तर-1 एवं 2 में वर्णित सुविधा केवल उन्हीं अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्राप्त होगी, जिन्हें सम्बन्धित विषय में इण्टर स्तर की मान्यता प्राप्त हो।

(4) सम्बन्धित अध्यापक को शासनादेश संख्या: 1121/15-8-90/3087/89, दिनांक: 28 फरवरी, 1990 के प्रस्तर-3 के अधीन सम्बन्धित व्यवसाय की अर्हता के साथ स्नातकोत्तर की उपाधि की अर्हता रखना आवश्यक है।

(5) यह सुविधा केवल उन्हीं अध्यापकों को अनुमन्य होगी, जो सम्बन्धित विषयों में कक्षा-11 एवं कक्षा 12 को पढ़ाते हुये 10 वर्ष की निरन्तर संतोषजनक सेवा पूरी करते हुए प्रवक्ता का वेतनमान 1600-2660 (पुराना) वैयक्तिक रूप से प्राप्त कर चुके हों।

(6) उक्त विषयों के केवल उन्हीं अध्यापकों को प्रवक्ता पद नाम अनुमन्य होगा, जो इस आदेश के जारी होने की तिथि तक निर्धारित अर्हता पूरी कर चुके हों।

(7) प्रवक्ता पद पर कार्यभार ग्रहण करने वाले अध्यापकों की ज्येष्ठता उक्त पद पर कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से ही निर्धारित की जायेगी। उनकी पूर्व सेवाएं स्नातक श्रेणी के अध्यापक के रूप में मानी जायेगी तथा प्रवक्ता पद का कार्यभार ग्रहण करने के बाद स्नातक श्रेणी की सेवाओं का कोई लाभ प्रवक्ता पद के चयन/प्रोन्नति वेतनमान दिये जाने हेतु अनुमन्य न होगा।

(8) पद नाम परिवर्तित होने के फलस्वरूप यदि किसी भी प्रकार का वित्तीय भार उत्पन्न होगा, तो उसका वहन राज्य सरकार अथवा शिक्षा विभाग के मुख्यालय द्वारा नहीं किया जायेगा और न ही इस विषय

में किसी भी प्रकार का अनुदान किसी भी श्रोत से उपलब्ध कराया जायेगा।

(9) उपर्युक्तानुसार प्रवक्ता पद की अर्हता रखने वाले अध्यापकों को पदनाम दिये जाने से पूर्व उनके उल्लिखित अण्डर टेकिंग ले ली जायेगी, ताकि ज्येष्ठता निर्धारण आदि के सम्बन्ध में बाद में कोई विवाद उत्पन्न न हो।

2- यह आदेश (वित्त आयोग) अनुभाग-2 के अशासकीय संख्या: वे०आ०(2)/507/दस/2000, दिनांक 25 अक्टूबर, 2000 में प्राप्त उनकी सहमति से निर्गत किये जा रहे हैं।

भवदीय,  
पी०के० झा,  
सचिव।

21. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है।

22. निर्विवाद रूप से, तीसरी प्रतिवादी संस्था, सरस्वती शिक्षा सदन इंटरमीडिएट कॉलेज मैरॉन, हंडिया, जिला प्रयागराज, यू.पी. माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921, उ.प्र. अधिनियम संख्या 5 वर्ष 1982 के प्रावधानों के तहत शासित एक इंटर कॉलेज है एवं उ.प्र. अधिनियम संख्या 24 वर्ष 1971 लागू होती है। यह भी विवाद में नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 04.01.2011 को महाराणा प्रताप इंटर कॉलेज राम दयालगंज, जिला जौनपुर में प्रवक्ता (संस्कृत) के रूप में नियुक्त किया गया था और उन्हें प्रवक्ता (संस्कृत) के रूप में तीसरे प्रतिवादी

संस्थान में स्थानान्तरित कर दिया गया था और उन्होंने दिनांक 04.07.2019 को कार्यभार ग्रहण किया। इसी तरह, चौथे प्रतिवादी को दिनांक 05.10.2006 को जिला पंचायत इंटर कॉलेज हैवरा, जिला इटावा में सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक 07.01.2016 को उनका स्थानान्तरण हो गया और उन्होंने दिनांक 01.02.2016 को सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में तीसरी प्रतिवादी संस्था में कार्यभार ग्रहण किया। प्रतिद्वंद्वी पक्षकारों के बीच विवाद की जड़ यह है कि क्या चौथा प्रतिवादी शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के आलोक में 10 साल की सेवा पूरी करने के बाद प्रवक्ता वेतनमान और प्रवक्ता पद का लाभ पाने का हकदार है। यद्यपि चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी ने जोरदार तर्क दिया है कि रिट याचिकाकर्ता के पास वर्तमान याचिका को स्थापित करने और बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह इस तथ्य के मद्देनजर पीड़ित व्यक्ति नहीं है कि केवल चौथे प्रतिवादी को ही प्रवक्ता वेतनमान एवं प्रवक्ता पद का लाभ प्रदान किया गया है। लोकस स्टैंडी का प्रश्न पहले उदाहरण में निर्धारित किया जाना है, हालांकि, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या रिट याचिकाकर्ता के पास वर्तमान कार्यवाही को बनाए रखने का कोई अधिकार है या नहीं, वर्तमान मामले में इस न्यायालय को पृष्ठभूमियों और तथ्यों के क्रम पर अपना विचार देना है तभी किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

23. मूलतः दो शासनादेश हैं पहला दिनांक 28.02.1990 का और दूसरा दिनांक 25.10.2000 का। जहां तक शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 का संबंध है, इसे विषय कॉलम में बताया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा वेतन आयोग वर्ष 1989 की सिफारिशों और स्वीकृति के आधार पर सरकारी सहायता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/इंटर कॉलेजों में शिक्षण पद के वेतनमान में संशोधन के संबंध में, एक सहमति प्रदान की गयी है। इस प्रकार, उक्त शासनादेश वेतनमान में संशोधन की बात करता है। उक्त शासनादेश के अनुसार शासनादेश दिनांकित 04.10.1989 के पैरा 3 के अनुसार सी.टी. ग्रेड शिक्षकों जो IX-X कक्षाओं में कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, गृह विज्ञान, शिल्प, संगीत, टंकण, आशुलिपि और शिल्प पढ़ा रहे थे और 10 वर्षों की सेवाओं को पूरा करने के बाद आवश्यक योग्यता को प्राप्त कर लिया था, को एल.टी. ग्रेड वेतनमान रु. 1400-40-1800-डीए-50-2300, का हकदार बना दिया गया। शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 का दूसरा खंड आगे प्रावधान करता है कि वे एल.टी. ग्रेड शिक्षक जिनके पास पात्रता थी और जो 10 वर्षों की अवधि से XI-XII कक्षाओं में पढ़ा रहे हैं, उन्हें रुपये 1600-50-2300-ईबी60-2600 का प्रवक्ता वेतनमान दिया जाना था। उक्त शासनादेश के खंड (3) में आगे प्रावधान किया गया है कि भविष्य में एल.टी. ग्रेड और प्रवक्ता के संबंध में योग्यताएं ग्रेजुएट/पोस्ट ग्रेजुएट होंगी। मुख्य रूप से, शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 में वेतनमान उपबंधित किया गया था, हालाँकि, बाद में दिनांक 25.10.2000 को एक और

शासनादेश जारी किया गया था जिसमें गैर सरकारी सहायता प्राप्त इंटर कॉलेजों में कला, शारीरिक प्रशिक्षण, साहित्य, शिल्प आदि पढ़ाने वाले शिक्षकों को "प्रवक्ता" के रूप में पदनाम देने का प्रावधान किया गया था। उक्त शासनादेश पत्र क्रमांक (1)/शि./8744/2000-2001 दिनांकित 4 सितंबर 2000 के संदर्भ में जारी किया गया था, जिसके तहत महामहिम राज्यपाल ने विभिन्न नियमों और शर्तों के अधीन प्रवक्ता का पदनाम देने की सहमति दी थी। उन शिक्षकों के लिए जो विषयों के साथ इंटरमीडिएट स्तर तक मान्यता प्राप्त गैर-सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों (इंटर कॉलेजों) में 10 वर्षों से लगातार कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, शिल्प आदि पढ़ा रहे हैं और प्रवक्ता के रूप में ऐसा वेतनमान प्राप्त कर रहे हैं। शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के अन्य खंडों के अलावा, खंड (6) में आगे निर्धारित किया गया है कि उपरोक्त उल्लिखित विषयों के संबंध में लाभ उन शिक्षकों तक ही सीमित है जो शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि पर पात्रता पूरी कर रहे थे।

24. अब मुख्य प्रश्न जो इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है वह यह है कि क्या चौथा प्रतिवादी "प्रवक्ता" पदनाम का लाभ पाने का हकदार था या नहीं। यह विवाद में नहीं है कि चौथे प्रतिवादी को दिनांक 05.10.2006 को सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्त किया गया था, इस प्रकार, प्रवक्ता वेतनमान/प्रवक्ता पद के लाभ प्रदान करने के लिए पात्रता प्राप्त करने के लिए आवश्यक पात्रता में से एक यह थी कि एक शिक्षक को

गैर-सरकारी और सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय (इंटर कॉलेजों) में इंटरमीडिएट स्तर तक के विषयों में 10 वर्षों तक लगातार इंटरमीडिएट कक्षाओं में कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, शिल्प आदि पढ़ाना है और ऐसे प्रवक्ताओं का वेतनमान प्राप्त कर रहा है।

25. शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 के तहत निहित विभिन्न प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि उक्त विषयों में शिक्षक को उस संस्थान में पढ़ाना है जो इंटरमीडिएट स्तर पर मान्यता प्राप्त है और लगातार इंटरमीडिएट कक्षाओं में 10 वर्ष की अवधि से शिक्षा प्रदान कर रहा है वह भी शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि पर। इस तथ्य का विश्लेषण करने के लिए कि चौथा प्रतिवादी शर्तों को पूरा करता है या नहीं, इस न्यायालय को चौथे प्रतिवादी के कामकाज (शिक्षण) के कालक्रम और तारीखों और घटनाओं पर ध्यान देना होगा। निर्विवाद तथ्यों से पता चलता है कि चौथे प्रतिवादी को दिनांक 05.10.2006 को जिला पंचायत इंटर कॉलेज हैवरा, इटावा में सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में नियुक्त किया गया था, उसे स्थानांतरण आदेश दिनांकित 07.01.2016 के द्वारा दिनांक 01.02.2016 को तीसरे प्रतिवादी संस्थान में सहायक अध्यापक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी गई थी। रिट याचिका में आक्षेपित आदेश के अनुसार, रिट याचिकाकर्ता को दिनांक 05.10.2016 से प्रवक्ता का वेतनमान और प्रवक्ता का पदनाम/पद प्रदान किया गया है। जाहिर तौर पर इंटरमीडिएट कक्षा में पढ़ाने के

साथ-साथ प्रवक्ता के रूप में पदनाम होते हुए, 10 वर्षों की निरंतर सेवा को शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के खंड (6) के आलोक में देखा जाना चाहिए। शुद्ध तार्किक निष्कर्ष यह है कि आक्षेपित आदेश के अनुसार रिट याचिकाकर्ता दिनांक 05.10.2016 को पात्रता प्राप्त करता है जो कि शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने के बाद है, इस प्रकार, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 का खंड (6), चौथे प्रतिवादी को उक्त लाभों की अनुमति देने के लिए अयोग्य बनाते हुए रास्ते में आ जाएगा।

26. फिर भी, शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 की पृष्ठभूमि में, यह विधि, विजय बहादुर सिंह (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा जांच और व्याख्या का विषय रही है, जिसमें निम्नलिखित देखा गया था: -

"16. शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 कहता है कि उन सभी गैर सरकारी सहायता प्राप्त महाविद्यालयों में जहां कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, संगीत आदि विषयों में प्रवक्ता के पद सृजित नहीं हैं (एलटी ग्रेड) पद को प्रवक्ता पद के रूप में अपग्रेड किया जाएगा और जिन शिक्षकों के पास प्रवक्ता पद के लिए अपेक्षित योग्यता है, उन्हें ऐसे उन्नत पद पर नियुक्त किया जाएगा। हालांकि, यह लाभ केवल ऐसे शिक्षकों को ही मिलेगा जो पिछले दस वर्षों से ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में शिक्षा दे रहे हैं, जिन्होंने संतोषजनक सेवाएँ पूरी की हैं और, व्यक्तिगत रूप से प्रवक्ता का वेतनमान भी प्रदान किया गया है। इसके



अलावा, उपरोक्त लाभ केवल उन शिक्षकों तक ही सीमित है, जिन्होंने शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि पर अपेक्षित पात्रता पूरी कर ली है। इसमें यह भी प्रावधान है कि ऐसे शिक्षकों की वरिष्ठता की गणना केवल उस तारीख से की जाएगी जिस दिन प्रवक्ता के रूप में पदोन्नत व्यक्ति किसी पदोन्नत पद पर कार्यभार ग्रहण करता है। उनकी पिछली सेवा एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में की गई सेवा मानी जाएगी और प्रवक्ता पद पर चयन एवं प्रोन्नति वेतनमान हेतु कोई लाभ नहीं दिया जाएगा।

17. यदि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा कही गई बात को सही भी माना जाए, तो यह स्पष्ट है कि शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि पर उन्होंने सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) (पी.टी.आई.) के रूप में भी दस साल की सेवा पूरी नहीं की थी और, इसलिए, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 का पैरा 6 उन्हें उक्त शासनादेश के तहत किसी भी लाभ का दावा करने के लिए अयोग्य बनाता है। पैरा 6 इस प्रकार पठनीय है:

“6. उक्त विषयों के केवल उन्हीं अध्यापकों को प्रवक्ता पद का नाम अनुमन्य होगा, जो इस आदेश के जारी होने की तिथि तक निर्धारित अर्हता पूरी कर चुके हों”।

“प्रवक्ता का पदनाम उक्त विषयों के केवल उन्हीं शिक्षकों के लिए स्वीकार्य होगा जिन्होंने इस आदेश के जारी होने की तिथि तक निर्धारित पात्रता/अर्हता प्राप्त कर ली हो।” (कोर्ट द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

18. पैरा 6 शासनादेश में उल्लिखित विषयों, अर्थात् कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, शिल्प आदि को संदर्भित करता है। प्रतिवादी संख्या 5 को दिनांक 29.1.1991 को नियुक्त किया गया था, यहां तक कि एलटी ग्रेड में भी दस साल की सेवा पूरी नहीं की थी, इसलिए दिनांक 25.10.2000 को ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के लिए दस साल की शिक्षा प्रदान करने का सवाल ही नहीं उठता। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी संख्या 5 को उक्त शासनादेश का लाभ देते समय प्रतिवादीगण संख्या 3 और 4 द्वारा इस पहलू पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। इसके अलावा प्रतिवादी संख्या 5 सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) था और इसलिए, ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के छात्रों को शिक्षा प्रदान नहीं कर सकता था। शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के पहले पैराग्राफ से पता चलता है कि यह उन शिक्षकों पर लागू होता है जो पिछले दस वर्षों से इंटरमीडिएट के छात्रों को शिक्षा दे रहे हैं और पहले से ही प्रवक्ता वेतनमान में हैं। उन्हें इसमें उल्लिखित कुछ शर्तों और प्रतिबंधों के साथ प्रवक्ता पदनाम का लाभ दिया गया है। शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तिथि पर न तो प्रतिवादी संख्या 5 दस वर्षों से इंटरमीडिएट कक्षा के छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे शिक्षक के रूप में कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था और न ही प्रवक्ता के वेतनमान में कार्यरत था। शासनादेश दिनांकित 25.8.2000 का प्रारंभिक पैराग्राफ इस प्रकार पठनीय है:

“उपर्युक्त विषयक निदेशालय पत्रांक संख्या- (1)/शि0/8744/2000-2001, दिनांक 4 सितम्बर, 2000 के सन्दर्भ में मुझे यह कहने

का निर्देश हुआ है कि अशासकीय सहायता प्राप्त ऐसे माध्यमिक विद्यालयों (इण्टर कॉलेजों), जो कला, व्यायाम, भाषा, शिल्प आदि विषयों से इण्टर स्तर तक मान्यता प्राप्त हैं, में कार्यरत उक्त विषयों के ऐसे अध्यापकों, जो निरन्तर 10 वर्ष से इण्टर में पढ़ा रहे हैं तथा प्रवक्ता वेतनमान प्राप्त कर रहे हैं, को निम्न शर्तों एवं प्रतिबन्धों के अधीन "प्रवक्ता" पद नाम दिये जाने की श्री राज्यपाल सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।" (प्रभाववर्धित)

"पत्र संख्या (1)/शि./8744/2000-2001, दिनांकित 4 सितंबर 2000 के संदर्भ में, मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि महामहिम राज्यपाल निम्नलिखित शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन 'प्रवक्ता' का पदनाम उन शिक्षकों को प्रदान करने के लिए सहमत हैं, जो ऐसे विषयों के साथ इंटरमीडिएट स्तर तक मान्यता प्राप्त गैर-सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों (इंटर कॉलेजों) में दस वर्षों से लगातार इंटरमीडिएट कक्षाओं में कला, शारीरिक प्रशिक्षण, भाषा, शिल्प आदि पढ़ा रहे हैं और प्रवक्ता के रूप में वेतनमान प्राप्त कर रहे हैं।" (प्रभाववर्धित) (न्यायालय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

19. जवाबी हलफनामे के पैरा 10 में प्रतिवादी संख्या 5 ने स्वीकार किया है कि उसकी नियुक्ति दिनांक 29.01.1991 को एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में हुई थी। दिनांक 25.10.2000 को उन्हें प्रवक्ता ग्रेड नहीं मिल रहा था। इस प्रकार इस शासनादेश का, प्रतिवादी संख्या 5 को कोई लाभ देने के लिए यानी प्रवक्ता का ग्रेड देने के लिए, न ही

सहारा लिया गया और न ही लिया जा सकता था। इसलिए, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के संदर्भ में प्रतिवादी संख्या 5 को प्रवक्ता वेतनमान देने में प्रतिवादी अधिकारियों की ओर से की गई आदेश दिनांकित 8.7.2006 की पूरी प्रक्रिया उपरोक्त शासनादेश से परे थी। यह मानते हुए भी कि डी.आई.ओ.एस. सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांकित 08.07.2006 के बाद, लेकिन विनियमों के परिशिष्ट-ए अध्याय II के प्रयोजन के लिए, प्रतिवादी संख्या 5 की, प्रवक्ता का वेतनमान प्राप्त करते हुए इंटरमीडिएट कक्षाओं में शिक्षा प्रदान करने के लिए, वास्तविक कार्यप्रणाली उक्त आदेश की तारीख, अर्थात् दिनांक 08.07.2006 से प्रारंभ होगी, तब भी उसके पास स्थानापन्न प्राचार्य की पात्रता ग्रहण करने के लिए दस वर्ष का अनुभव नहीं था और न ही हो सकता था जैसा कि उपरोक्त विनियम में उपबंधित है।

20. वर्तमान मामले में जाहिर तौर पर प्रतिवादीगण संख्या 3 और 4 ने पूरी तरह से अवैध कार्य किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रतिवादी संख्या 5 को कुछ लाभ प्रदान करने के लिए, जो कि कानूनन उस पर लागू नहीं थे, उपरोक्त शासनादेशों की गंभीर रूप से गलत व्याख्या की और उन्हें गलत तरीके से लागू किया। इसलिए, प्रतिवादीगण संख्या 3 और 4 की कार्रवाई पूरी तरह से अन्यायपूर्ण, अवैध है और कानून में द्वेष के दायरे में आती है, अर्थात्, संपाश्विक उद्देश्य से प्रतिवादी संख्या 5 को अनुचित और अवैध लाभ प्रदान करने के लिए। आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रतिवादी संख्या 3 को मामले के इन

सभी पहलुओं पर विचार और गौर करना चाहिए था। दुर्भाग्य से इसने संबंधित पदधारियों की पात्रता आदि से संबंधित मामले के इन पहलुओं पर ध्यान दिए बिना कार्यवाहक प्राचार्य के पद पर प्रतिवादी संख्या 5 की स्थानापन्न पदोन्नति को मंजूरी देकर एक स्पष्ट त्रुटि की है।

27. विजय बहादुर सिंह (सुप्रा) के मामले में दिए गए फैसले का बनी सिंह (सुप्रा) के मामले में भी पालन किया गया।

28. शिव पूजन (सुप्रा) का मामला शासनादेशों दिनांकित 28.02.1990 और 25.10.2000 पर प्रकाश डालता है जिसमें इस न्यायालय ने पैरा 5, 6, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 22, 23 और 24 में निम्नानुसार देखा है:-

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त दो शासनादेश केवल संबंधित शिक्षक को प्रवक्ता के वेतनमान और पदनाम का लाभ देते हैं, जो उसका व्यक्तिगत है, वह प्रवक्ता के पद पर मूल रूप से कार्यरत नहीं है और न ही वह प्रवक्ता पद पर वरिष्ठता का हकदार होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इंटरमीडिएट संस्थान में पदोन्नति आवश्यक रूप से यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के प्रावधानों के साथ-साथ यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998 और किसी अन्य तरीके से दी जानी चाहिए। ग्रेड में प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति या पदोन्नति प्रदान करना वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 16 (2) के

आधार पर वर्जित होगा। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 12 सपठित वर्ष 1998 के नियमों के नियम 14 के तहत विचार की गई प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है क्योंकि प्रवक्ता के पद पर ऐसी वरिष्ठता प्रदान करने से वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 16(2) प्रभावित होगी, लेकिन मामले के इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि संबंधित संस्थान में शारीरिक शिक्षा में प्रवक्ता का पद स्वीकृत नहीं था और कि यह शासनादेश दिनांकित 25 अक्टूबर, 2000 के अनुसार स्वीकृत किया गया कि एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में 10 साल काम करने के बाद एलटी ग्रेड शिक्षक का पद प्रवक्ता के पद पर अपग्रेड किया गया। यह तर्क दिया गया है कि पद का उन्नयन स्वचालित था और उसके तहत लाभ प्रदान किया जाना एक स्वाभाविक परिणाम है, जब उसमें उल्लिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं। तर्क यह है कि केवल इस कारण से कि नियम 14 के साथ पठित धारा 12 के तहत कार्यवाही नहीं की गई है, प्रतिवादी संख्या 4 को शासनादेश दिनांकित 15 अक्टूबर 2000 के अर्थों में प्रवक्ता पद और वेतनमान का लाभ देने से इनकार नहीं किया जाएगा। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि वरिष्ठता के मुद्दे का निर्धारण करते समय, प्रारंभिक नियुक्ति या पदोन्नति की वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है जब उस संबंध में कोई विशेष दलील नहीं दी गई हो।

15. दिनांक 28.02.1990 के शासनादेश में यह प्रावधान है कि शारीरिक शिक्षा सहित विनिर्दिष्ट विषयों में नियुक्त शिक्षक, जो पिछले 10 वर्षों से कक्षा 9वीं तथा 10वीं में पढ़ा रहे हैं और सीटी ग्रेड में नियुक्त किए गए हैं, यदि उनके पास ऐसी योग्यता है तो उन्हें एलटी ग्रेड का वेतनमान दिया जाएगा। इसी प्रकार, एलटी ग्रेड के पद पर नियुक्त शिक्षकों को संबंधित विषय में 10 वर्ष का शिक्षण पूरा करने पर प्रवक्ता ग्रेड प्रदान किया जाता है बशर्ते शिक्षक के पास अपेक्षित योग्यता हो। यह शासनादेश केवल संबंधित शिक्षक को उच्च पद पर कोई मौलिक अधिकार प्रदान किए बिना उच्च वेतनमान का लाभ प्रदान करता है। तथापि, 25 अक्टूबर, 2000 के बाद के शासनादेश में उन शिक्षकों को प्रवक्ता के पद पर पदनाम और लाभ प्रदान किया गया है जो पिछले 10 वर्षों से इंटरमीडिएट कक्षाओं को पढ़ा रहे हैं। इस शासनादेश के खंड (1) में प्रावधान है कि एलटी ग्रेड शिक्षक के पद, जो मूल रूप से आयोजित किया जाता है, को प्रवक्ता के पद पर अपग्रेड किया जाएगा और एलटी ग्रेड शिक्षक के मूल पद को समाप्त कर दिया जाएगा। शासनादेश के खंड (7) में प्रावधान है कि प्रवक्ता के पद पर वरिष्ठता का लाभ केवल उस तारीख से दिया जाएगा जब ऐसे शिक्षक ने अपग्रेड किए गए पद पर कार्यभार ग्रहण किया है और इससे पहले किसी भी अवधि के लिए कोई लाभ नहीं दिया जाएगा। इस शासनादेश के संदर्भ में प्रतिवादी संख्या 4 में कहा गया है कि चूंकि वह शारीरिक शिक्षा के विषय में पिछले 10 वर्षों से कक्षा 11 वीं और 12 वीं के छात्रों को पढ़ा रहा था, इसलिए वह 25 अक्टूबर, 2000 से प्रवक्ता

के पद पर वरिष्ठता के लाभ का हकदार था और इस तरह के दावे को संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

16. वर्ष 1921 के अधिनियम के अधीन मान्यता प्राप्त संस्था में प्रवक्ता के पद को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड के माध्यम से सीधी नियुक्ति द्वारा या वर्ष 1998 के नियमों के नियम 14 के साथ पठित वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 12 के अनुसार पदोन्नति द्वारा भरा जा सकता है। संबंधित संस्था में प्रवक्ता के पद पर मौलिक नियुक्ति करने का कोई अन्य तरीका नहीं है। वर्ष 1982 के अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसमें संबंधित शिक्षक द्वारा निचले ग्रेड में धारित पद के उन्नयन के माध्यम से प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति पर विचार किया गया हो। वर्ष 1982 का अधिनियम भी राज्य सरकार को कोई शासनादेश जारी करने का अधिकार नहीं देता है, जिसके तहत प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति एलटी ग्रेड में स्थायी रूप से रखे गए पद को अपग्रेड करके दी जा सकती है।

17. एकमात्र शक्ति जिसके तहत ऐसा शासनादेश जारी किया जा सकता है, वह वर्ष 1921 के अधिनियम की धारा 9 (4) है। राज्य सरकार इसके तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए वर्ष 1921 के अधिनियम के तहत कवर किए गए किसी भी मामले के संबंध में कोई भी विनियमन कर सकती है, रद्द कर सकती है या कोई विनियमन बना सकती है। इसलिए, शासनादेश वर्ष 1921 के अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमन को संशोधित या

रद्द कर सकता है या एक विनियमन तैयार कर सकता है।

18. दिनांक 25.10.2000 के शासनादेश को यदि वर्ष 1921 के अधिनियम के अधीन मान्यता प्राप्त संस्था में प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति के लिए समर्थकारी उपबंध माना जाता है तो शासनादेश नियुक्ति का एक नया अवसर प्रस्तुत करेगा जिस पर वर्ष 1982 के अधिनियम में विचार नहीं किया गया है और इससे वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 32 का नुकसान होगा।

19. माना जाता है कि प्रतिवादी नंबर 4 को दिनांक 7.8.1993 को एलटी ग्रेड में शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया है। प्रवक्ता के पद पर वह केवल वर्ष 1998 के नियमों के नियम 14 के साथ पठित वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 12 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके पदोन्नति के माध्यम से हो सकता है। प्रतिवादी संख्या 4 को प्रवक्ता के पद पर उस तरीके से पदोन्नति नहीं दी गई है जिस पर विचार किया गया है। कोई अन्य तरीका जिसमें प्रवक्ता के ग्रेड और पद में वरिष्ठता की पेशकश की जाती है, वर्ष 1982 के अधिनियम की धारा 16 (2) के आधार पर अनिवार्य रूप से शून्य हो जाएगी।

20. 25 अक्टूबर, 2000 का शासनादेश विशिष्ट परिस्थितियों में एलटी ग्रेड शिक्षक के पद को अपग्रेड करता है और प्रवक्ता के पद पर पदनाम के साथ-साथ प्रवक्ता के पद पर किसी व्यक्ति के कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से वरिष्ठता का लाभ भी प्रदान करता

है। इस संबंध में लाभ संबंधित शिक्षक के लिए व्यक्तिगत है क्योंकि एलटी ग्रेड शिक्षक के पद को समाप्त कर दिया गया माना जाएगा। ऐसी पदोन्नति को प्रवक्ता के ग्रेड और संवर्ग में महत्वपूर्ण पदोन्नति नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया वर्ष 1982 के अधिनियम के अनुसार नहीं की जाती है। इस तरह की पदोन्नति को अधिक से अधिक एक पूर्व-कैंडर पद के खिलाफ संबंधित शिक्षक के लिए प्रकृति में व्यक्तिगत माना जा सकता है अन्यथा शासनादेश स्वयं वर्ष 1982 के अधिनियम के साथ असंगत हो जाएगा। इसलिए 25 अक्टूबर, 2000 के शासनादेश के तहत व्यक्तिगत पदोन्नति का लाभ प्राप्त करने वाले शिक्षक की वरिष्ठता को अलग से बनाए रखना होगा। इसलिए प्रवक्ता के संवर्ग में वरिष्ठता का लाभ वर्ष 1921 के अधिनियम के अध्याय-II के तहत बनाए गए विनियमन 3 के तहत नहीं दिया जा सकता है।

22. भारती रॉय बनाम शिक्षा उप निदेशक-II, कानपुर और अन्य, 2008 (2) एडीजे 134 में इस न्यायालय ने यह भी विचार किया है कि वरिष्ठता का लाभ तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि नियुक्ति या पदोन्नति विनियमों और वर्ष 1982 के अधिनियम के अनुसार न हो। मदन गोपाल अग्रवाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के निर्णय का उल्लेख करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय लिया है। जिला विद्यालय निरीक्षक, बिजनौर और अन्य, 1996 (3) ईएससी 202, में इस न्यायालय ने पैरा 26 से 29 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"26. मदन गोपाल अग्रवाल और अन्य मामले में एक अन्य माननीय एकल न्यायाधीश (न्यायमूर्ति डॉ. बी.एस. चौहान, ) द्वारा भी यही विचार लिया गया था। (v) जिला विद्यालय निरीक्षक, बिजनौर और अन्य 1996 (3) ईएससी 202 (सभी)। हालांकि, इस न्यायालय ने यह भी माना कि उपरोक्त शासनादेशों के तहत एलटी ग्रेड का अनुदान व्यक्तिगत है और इसका मतलब एलटी ग्रेड में पोस्टिंग नहीं है, क्योंकि जब ऐसा व्यक्ति सेवानिवृत्त होगा, तो इसके परिणामस्वरूप सीटी ग्रेड में रिक्ति होगी न कि एलटी ग्रेड में क्योंकि अवलंबी को एलटी ग्रेड में सहायक शिक्षक का पद धारण करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय की टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

"7. ... समय-समय पर जारी विभिन्न शासनादेशों के तहत सीटी ग्रेड में काम करने वाले शिक्षक व्यक्तिगत वेतनमान के रूप में एलटी ग्रेड के लिए विचार किए जाने के पात्र हो जाते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि एलटी ग्रेड में पोस्टिंग और ऐसे शिक्षक की सेवानिवृत्ति के बाद खाली होने वाले पद को एलटी कैडर में रिक्त पद नहीं माना जाएगा और न ही ऐसा व्यक्ति पदोन्नति और वरिष्ठता के लिए एलटी ग्रेड के पद पर लाभ ले सकता है क्योंकि वह, रश्मि श्रीवास्तव बनाम विश्वविद्यालय, वीरेंद्र पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1994 (24) एएलआर (एच) 19, रिट याचिका संख्या 30754 वर्ष 1991 मदलजुरी देवी बनाम बालिका विद्यालयों का क्षेत्रीय निरीक्षण, दिनांक 20.3.1995 को निर्णीत और विपिन कुमार बनाम जिला स्कूलों का निरीक्षण 1993 (2)

शैक्षिक और सेवा मामले 456, के संदर्भ में एल.टी. ग्रेड का पद धारण नहीं करता है।

8. इसे एलटी ग्रेड में उनकी पदोन्नति के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, जब तक कि उन्हें विधि के अनुसार एलटी ग्रेड के पद पर पदोन्नत नहीं किया जाता है।

27. यही विचार एक अन्य माननीय एकल न्यायाधीश (माननीय न्यायमूर्ति अशोक भूषण) द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 39731 वर्ष 2000, अंसन लाल झा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक और अन्य, दिनांक 13-2-2006 को निर्णीत, में व्यक्त किया गया है। ।

28. दिनांक 28.02.1990 को एक समरूप सामग्री शासकीय आदेश जारी किया गया जिसमें उन शिक्षकों को प्रवक्ता ग्रेड प्रदान किया गया जो एलटी ग्रेड में कार्यरत थे और जिन्होंने दस वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी तथा XI और XII कक्षा के छात्रों को लगातार दस वर्ष तक शिक्षा प्रदान कर रहे थे। पदधारी को शासनादेश दिनांकित 28.2.1990 के अनुसार प्रवक्ता ग्रेड प्रदान किया गया था और उन्होंने एक समान विवाद उठाया जो विपिन कुमार बनाम स्कूलों के जिला निरीक्षक (1993) 3 यूपीएलबीईसी 1900 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के समक्ष निर्णय के लिए आया था और पैराग्राफ संख्या 6, 9 और 13 में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

"6. ... प्रवक्ता के पद पर कोई रिक्ति न होने पर भी शिक्षक को प्रवक्ता का वेतनमान दिया

जा सकता है। प्रवक्ता के वेतनमान का अनुदान किसी विशेष पद में रिक्ति को भरने के साथ सहसंबद्ध नहीं है। जिस कॉलेज में एलटी ग्रेड में शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है और उन्हें प्रवक्ता का वेतनमान दिया जाता है, तो उस स्थिति में प्रवक्ता के पद पर कोई रिक्ति नहीं होगी और दूसरी तरफ पद मौजूद नहीं हो सकता है लेकिन शिक्षकों को प्रवक्ता का वेतनमान दिया जाता है। "ग्रेड" शब्द के किसी विशेष कानून के संदर्भ में अलग-अलग अर्थ हैं।

"9. कठिनाई निवारण आदेश, 1981 के पैरा 4 (2), उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग नियम, 1983 के नियम 9 और इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय 2 के विनियम 6 में प्रयुक्त शब्द "ग्रेड" को प्रवक्ता के "पद" के रूप में लिया जाना चाहिए। एक शिक्षक, जो एलटी ग्रेड में काम कर रहा है, को इस अर्थ में प्रवक्ता के पद पर पदोन्नत किया जाना है कि उसे एक संस्था में प्रवक्ता के पद पर पदोन्नत किया जाना है। एक शिक्षक को प्रवक्ता का वेतनमान दिया जा सकता है लेकिन उसे पद नहीं दिया जा सकता है। जब तक उन्हें कोई पद नहीं दिया जाता है, केवल इस तथ्य को नहीं माना जाएगा कि उन्हें प्रवक्ता का वेतनमान दिया गया है, जब तक कि उन्हें संविधि के प्रावधानों के अनुसार उक्त पद पर विधिवत पदोन्नत नहीं किया जाता है।

"13. प्रवक्ता ग्रेड के शिक्षक की वरिष्ठता पर भी प्रवक्ता ग्रेड में पद पर नियुक्ति की तारीख से विचार किया जाना है, न कि प्रवक्ता के वेतनमान के भुगतान की तारीख से। इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के विनियमों के

अध्याय ॥ के विनियम 3 में नियुक्ति की तारीख से वरिष्ठता पर विचार किया गया है और तदर्थ आधार पर नियुक्त व्यक्तियों के मामले में भी यही सिद्धांत लागू किया जाना है। वरिष्ठता का निर्धारण सरकार द्वारा अपने आदेशों के तहत दिए गए वेतनमान के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

29. पूर्वोक्त प्राधिकारियों के मददेनजर, जो इस न्यायालय पर भी बाध्यकारी हैं और अन्यथा भी, मैं उसमें निर्धारित कानून के साथ सम्मानपूर्वक सहमत हूं, यह स्पष्ट है कि पहले याचिकाकर्ता को भले ही एलटी ग्रेड दिया गया हो, सीटी ग्रेड में दस साल की सेवा पूरी करने के बाद दिनांक 1.7.1992 से एलटी ग्रेड दिया गया हो, जो उसे सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर वरिष्ठता का दावा करने का हकदार नहीं बनाएगा जब तक कि उसे उक्त पद पर विनियम और वर्ष 1982 अधिनियम के अनुसार नियुक्त या पदोन्नत नहीं किया जाता है। न तो पहले याचिकाकर्ता द्वारा दायर किसी भी याचिका में कोई कथन है और न ही यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई आदेश उपलब्ध है कि पहले याचिकाकर्ता को वर्ष 1921 अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमों के साथ पठित वर्ष 1982 के अधिनियम के अनुसार सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर पदोन्नत किया गया था। इन परिस्थितियों में, मेरा स्पष्ट विचार है कि उसे सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर वरिष्ठता का लाभ नहीं दिया जा सकता था और उसे दूसरे याचिकाकर्ता से ऊपर नहीं रखा जा सकता था, जिसे सीधे सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक

27.1.1994 को उक्त पद पर नियमित किया गया था। इस प्रकार, पहले याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया पूरा दावा और विवाद अपना आधार खो देता है, जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त शिक्षा निदेशक, कानपुर क्षेत्र द्वारा पारित दिनांक 12.7.2006 के आदेश को रद्द कर दिया गया है, जिसके तहत उसे इस विषय पर कानून की व्याख्या की पूरी तरह से अनदेखी करते हुए दूसरे याचिकाकर्ता से वरिष्ठ याचिकाकर्ता घोषित किया गया है।

23. इसलिए प्रतिवादी संख्या 4 प्रवक्ता के ग्रेड में वरिष्ठता का दावा नहीं कर सकता और न ही उसे वर्तमान याचिकाकर्ता से वरिष्ठ ठहराया जा सकता है। प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा एलटी ग्रेड में स्थायी रूप से आयोजित पद का प्रवक्ता के ग्रेड में उन्नयन एक पूर्व-कैंडर पद पर उसके लिए व्यक्तिगत माना जाएगा। ऐसे शिक्षकों के संबंध में अलग से वरिष्ठता सूची बनानी होगी।

24. तथ्यों के आधार पर अन्यथा भी यह स्वीकार किया जाता है कि एल.टी. ग्रेड पर मौलिक नियुक्ति का लाभ प्रतिवादी संख्या 4 को दिनांक 7.8.1993 को प्रदान किया गया है। उन्हें प्रवक्ता पद के लाभ का हकदार केवल 10 वर्ष तक कार्य करने पर ही माना जा सकता है, उससे पहले नहीं। इसलिए, दिनांक 7.8.2003 को दस साल पूरे होंगे और इससे पहले नियुक्त याचिकाकर्ता को वरिष्ठता में प्रतिवादी संख्या 4 से ऊपर रखा जाएगा।

29. चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी ने

श्रीमती कृष्णा श्री गुप्ता (सुप्रा) के मामले में फैसले पर भरोसा किया है, पैरा 31 पर भरोसा करते हुए -

“31. वर्तमान मामले के तथ्य, जैसा कि डीआईओएस द्वारा पारित आदेश दिनांकित 16.05.2013 से परिलक्षित होता है, जिसे रिट याचिका में चुनौती दी गई थी, दर्शाते हैं कि अपीलकर्ता के पास द्वितीय श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री (संस्कृत में एम.ए.) थी, और उसे दिनांक 17.02.2001 से प्रवक्ता का वेतनमान प्रदान किया गया था। दिनांक 30.06.2009 को प्रिंसिपल के पद पर रिक्ति होने की तिथि तक उनके पास इंटरमीडिएट कक्षाओं में 10 वर्षों का शिक्षण अनुभव भी था। इसके अलावा, अपीलकर्ता के पास सी.पी.एड. और डी.पी.एड. की प्रशिक्षण योग्यता भी थी।

30. आगे संगम लाल (सुप्रा) के मामले में निर्णय के पैरा 4 से 7 पर भरोसा किया गया है, जो यहां उद्धृत किया गया है।-

"4. उपरोक्त तर्कों के जवाब में स्थायी अधिवक्ता ने कहा कि लखन कुमार श्रीवास्तव को प्रवक्ता ग्रेड के पद पर पदोन्नत नहीं किया गया था। उन्हें केवल शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 के मद्देनजर पदोन्नति वेतनमान दिया गया था। तदनुसार, प्रवक्ता ग्रेड का कोई पद नहीं था, जिसमें लखन कुमार श्रीवास्तव कार्यरत थे और न ही प्रवक्ता ग्रेड में कोई भी रिक्ति उनकी सेवानिवृत्ति पर उत्पन्न हुई।

5. जवाबी हलफनामे में, यह स्वीकार किया गया है कि लखन कुमार श्रीवास्तव को



शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 के तहत प्रवक्ता ग्रेड का वेतनमान दिया गया था क्योंकि वह 10 वर्षों के अधिक समय से इंटरमीडिएट अनुभाग में नियमित रूप से हिंदी पढ़ा रहे थे, लेकिन यह कहा गया है कि लखन कुमार श्रीवास्तव को प्रवक्ता ग्रेड का मात्र वेतनमान दिया गया और उन्हें प्रवक्ता ग्रेड में कभी प्रोन्नति नहीं दी गयी। इस प्रकार महाविद्यालय में प्रवक्ता (हिन्दी) का कोई पद सृजित नहीं है। प्रतिवादीगण ने शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 का उल्लेख नहीं किया जिसमें स्पष्ट प्रावधान था कि यदि कोई व्यक्ति 10 वर्षों से लगातार प्रवक्ता ग्रेड में पढ़ा रहा है और शासनादेश दिनांकित 28.02.1990 के तहत प्रवक्ता ग्रेड प्राप्त कर रहा है, तो उसके मूल पद एलटी ग्रेड का प्रवक्ता ग्रेड के पद में विलय कर दिया जाए।

6. तदनुसार शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के परिप्रेक्ष्य में लखन कुमार श्रीवास्तव का पद प्रवक्ता ग्रेड का पद माना जायेगा तथा दिनांक 30.06.2002 को उनकी सेवानिवृत्ति पर विद्यालय में प्रवक्ता (हिन्दी) के पद पर रिक्ति उत्पन्न हुई। याचिकाकर्ता की पदोन्नति के लिए प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को इस आधार पर खारिज करने का आदेश कि क्षेत्रीय स्तर की पदोन्नति समिति द्वारा कोई रिक्ति नहीं थी, अवैध है।

7. तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। क्षेत्रीय स्तर पदोन्नति समिति (प्रतिवादी-2) का आदेश दिनांकित 28.07.2008 निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता को कॉलेज में प्रवक्ता (हिन्दी) के

पद पर दिनांक 01.07.2002 से पदोन्नत करने हेतु प्रबंधन समिति (प्रतिवादी-4) के दिनांक 19.04.2003 के प्रस्ताव को मंजूरी देने के लिए मामला क्षेत्रीय स्तर की पदोन्नति समिति (प्रतिवादी-2) को भेजा जाता है और जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद के समक्ष आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर बकाया वेतन और अन्य सभी परिणामी लाभों को प्रदान किया जाए।

31. विजय बहादुर सिंह (सुप्रा) के मामले के साथ ही बानी सिंह (सुप्रा) के मामले में दिए गए निर्णय पूरे मुद्दे को स्पष्ट करते हैं क्योंकि यह मामले के वर्तमान तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होता है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत शासनादेशों को लागू किया गया है, न केवल संदर्भित किया जा रहा है बल्कि विस्तार से चर्चा की जा रही है। जहां तक चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अवस्थी के निर्णय पर भरोसा करने का संबंध है, वे वास्तव में रिट याचिका में उक्त मुद्दों को नहीं छूते हैं, उक्त दृष्टिकोण से उक्त मुद्दा न्यायालय के समक्ष मामला नहीं था।

32. अब एक प्रश्न उठता है कि क्या इस न्यायालय को रिट याचिकाकर्ता के आदेश पर दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 14.05.2023 को पारित आक्षेपित आदेश की वैधता पर निर्णय देना है या नहीं। यह चौथे प्रतिवादी का मामला है कि रिट याचिकाकर्ता के पास रिट याचिका को बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है।

सामान्य परिस्थितियों में, विधिक न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे किसी ऐसे पक्ष के कहने पर किसी मुद्दे पर निर्णय दें, जिसके पास कार्यवाही को बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है, बल्कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए है कि क्या कोई अधिकार क्षेत्र है या नहीं, विभिन्न कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यहां, चौथे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अवस्थी ने कहा कि चौथे प्रतिवादी को केवल प्रवक्ता वेतनमान और प्रवक्ता पदनाम (पद) दिया गया है, जो वास्तव में चौथे प्रतिवादी के लिए एक व्यक्तिगत लाभ है, जिससे रिट याचिकाकर्ता को कोई कानूनी क्षति नहीं हुई है। इस प्रकार, इस न्यायालय को अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए। एक पल के लिए मान लें कि चौथे प्रतिवादी के अनुसार, लाभ, चौथे प्रतिवादी के लिए व्यक्तिगत हैं तो इस न्यायालय को इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा राज्य प्राधिकरण और उसके पदाधिकारी अपने कर्तव्यों और कार्य को कैसे कर रहे हैं। विशेष रूप से, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के खंड (6) में एक विशिष्ट प्रावधान है, जिसमें यह प्रतिबंध लगाया गया है कि संबंधित विषय में प्रवक्ता ग्रेड के लिए पात्रता चाहने वाले सहायक शिक्षक को शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तारीख से पहले या उस पर पात्रता प्राप्त करनी होगी। हालांकि, उक्त प्रतिबंध के अस्तित्व के बजाय अब राज्य और उसके उपकरण उन सहायक शिक्षकों को उक्त लाभ दे रहे हैं, जिन्होंने शासनादेश जारी होने के बाद पात्रता प्राप्त कर ली है। विधिक न्यायालय उक्त अवैधता को हमेशा के लिए

जारी रखने की अनुमति देते समय मूकदर्शक नहीं बन सकतीं, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति पैदा होगी, जिससे सहायक शिक्षक जो बिना किसी वैधानिक समर्थन के अयोग्य हैं, उन लाभों के हकदार होंगे जो यहां तक कि अन्यथा वे इसके हकदार नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 के खंड (6) की व्याख्या करते हुए उक्त पहलुओं पर दो निर्णय भी हुए हैं, जिसमें कहा गया है कि पात्रता शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 जारी होने की तारीख पर देखी जानी है। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, प्रतिवादीगण द्वारा की गई पूरी कवायद, जो कि जिला विद्यालय निरीक्षक, दूसरे प्रतिवादी, प्रयागराज के आदेश दिनांकित 14.05.2023 के रूप में है, पूरी तरह से अनुचित थी और आक्षेपित आदेश को कानून की नजरों में बरकरार नहीं रखा जा सकता है। श्री प्रभाकर अवस्थी ने स्पष्ट रूप से तर्क दिया है कि रिट याचिका दायर करने के वर्तमान चरण में, किसी भी तरह की कानूनी क्षति नहीं हुई है, हालांकि, श्री अवस्थी इस तथ्य के बारे में सचेत हैं कि उनके अनुसार बाद में क्षति हो सकती है। इसके अलावा, जब एक बार प्रवक्ता के पदनाम का मूल आधार ही बिना किसी आधार के रह जाता है तो आधार ही कमजोर हो जाता है, इसलिए गैर-योग्य सहायक शिक्षक को मिलने वाला कोई भी लाभ योग्य शिक्षक के, उनकी भविष्य की संभावनाओं के संबंध में, हित के लिए हानिकारक होगा। विधिक न्यायालयों का यह औपचारिक कर्तव्य है कि यदि कोई त्रुटि हो, तो उसे उस समय ठीक किया जाए, जब यह उसके संज्ञान में आए अर्थात् रिट याचिका के माध्यम से।

33 तदनुसार, इस न्यायालय की दृढ़ राय है कि श्री अवस्थी की आपत्ति कि रिट याचिकाकर्ता की ओर से दायर रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है, खारिज करने योग्य है।

34. अन्यथा भी यह न्यायालय दिनांक 16.08.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा-

आज जब मामले की सुनवाई हुई तो सवाल उठा कि क्या शासनादेश दिनांकित 25.10.2000 उसके खंड छह में निहित विशिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर अभी भी अस्तित्व में है? इसके अलावा, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता अदालत को इस तथ्य से भी अवगत कराएंगे कि क्या 2019 (6) एडीजे 654 में वर्णित शिव पूजन बनाम यू.पी. राज्य और अन्य के मामले में फैसले के खिलाफ कोई इंट्रा-कोर्ट अपील दायर की गई है।

इस मामले को एक दिन बाद यानी दिनांक 18.08.2023 को दोपहर 02:00 बजे नये सिरे से पेश करें।

35. उक्त आदेश पारित करने का मूल कारण विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को राज्य सरकार का पक्ष रखने का अवसर देना था कि क्या सरकारी आदेश दिनांकित 25.10.2000 को आगे स्पष्ट या संदर्भित किया गया है और अस्तित्व में है। विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार शाही ने बार में एक बयान दिया है कि दिनांक 25.10.2000 अंतिम शासनादेश है और उसके

बाद प्रवक्ता/वेतनमान के पदनाम का लाभ देने वाला कोई अन्य शासनादेश नहीं है।

36. जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज दूसरे प्रतिवादी की रिट याचिका में दिए गए आक्षेपित आदेश पर आते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि उक्त आदेश विभिन्न कमियों पर आगे बढ़ता है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उक्त आदेश के लेखक द्वारा कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया है। हालांकि आदेश में कहा गया है कि चौथे प्रतिवादी को दिनांक 26.11.2018 को प्रवक्ता वेतन/प्रवक्ता पद के अनुदान के लिए शर्तों को पूरा नहीं करने के लिए दोषी ठहराया गया था, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एससी/एसटी आयोग द्वारा स्पष्टीकरण मांगा गया था और इसी तरह के लाभ अन्य लाभों के साथ-साथ दिए गए हैं। रिट याचिकाकर्ता उक्त लाभों का हकदार है। जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज के आदेश दिनांकित 14.05.2023 में दिए गए उक्त तर्क और कारण बिल्कुल भी ठोस नहीं हैं क्योंकि आदेश के लेखक कुछ ऐसे कारकों से प्रभावित प्रतीत होते हैं जो सेवा न्यायशास्त्र के लिए पूरी तरह से बाहरी और अनावश्यक हैं। फिर भी, यह न्यायालय डीआईओएस, प्रयागराज द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन नहीं कर सकता है कि चूंकि अन्य सहायक शिक्षकों को समान लाभ दिए गए हैं, इसलिए इसे चौथे प्रतिवादी तक भी पहुंचाया जाना चाहिए, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि नकारात्मक समानता की कोई अवधारणा नहीं है चूंकि विधिक न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे न्याय को इस तरह से आगे बढ़ाएं कि भारत

के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत कोई भेदभाव न हो, जिसका अर्थ है कि समान परिस्थितियों में अवैध रूप से दिया गया कोई भी लाभ विस्तार उसके विस्तार का आधार नहीं हो सकता है। यह उस पदधारी के लिए भी समान है जो अन्यथा भी इसका हकदार नहीं है। पुनः, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओझा ने हालांकि पात्रता की कमी के आधार पर सहायक शिक्षक (शारीरिक शिक्षा) के रूप में चौथे प्रतिवादी की नियुक्ति पर सवाल उठाने का एक कमजोर प्रयास किया है, लेकिन उन्होंने इसकी पुष्टि नहीं की है। रिट याचिका में उस संबंध में दलीलों का पूरी तरह से अभाव है। इसके अलावा प्रत्युत्तर हलफनामे में इसे कुछ हद तक विकसित करने का प्रयास किया गया है, लेकिन जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, इसकी पुष्टि नहीं की गई है, इस प्रकार, यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर विचार नहीं कर रहा है।

37. चूंकि जिला विद्यालय निरीक्षक दूसरे प्रतिवादी, प्रयागराज द्वारा रिट याचिका में पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 14.05.2023 स्पष्ट और अभिव्यक्ति की अवैधता से ग्रस्त है और मूल और मौलिक मुद्दों को बताया नहीं गया है, इस प्रकार, तथ्यों और मामले की परिस्थितियों के अनुसार, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज का आदेश कानून की नजरों में पोषणीय नहीं है और यह रद्द किये जाने योग्य है।

38. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है, दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश

दिनांकित 14.05.2023 को रद्द किया जाता है। मामले को दूसरे प्रतिवादी, जिला विद्यालय निरीक्षक, प्रयागराज को, आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर, ऊपर दी गई टिप्पणियों के आलोक में और कानून के अनुसार संबंधित/प्रभावित पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, एक नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेजा जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 803

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 11797 वर्ष 2023

अमित कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री लवलेश कुमार शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

स्थानांतरण - इस आधार पर चुनौती दी गई कि याचिकाकर्ता की पत्नी भी सरकारी सेवा में है और हाल ही में उसी स्थान पर तैनात है - यह स्थानांतरण मनमाना है और दोनों पति-पत्नी की एक ही स्थान पर अनिवार्य तैनाती वाली सरकारी नीति के विरुद्ध है - निर्णय:

नीति कार्यकारी प्रकृति की है और वैधानिक नहीं है - कोई लागू करने योग्य अधिकार उत्पन्न नहीं होता - स्थानांतरण नीति का उल्लंघन अकेले हस्तक्षेप का आधार नहीं है, जब तक कि दुर्भावना या वैधानिक नियम का उल्लंघन न दर्शाया गया हो - यदि प्रतिनिधित्व कार्यभार ग्रहण करने के बाद दायर किया जाता है तो उस पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ याचिका का निस्तारण किया गया।

#### अभिनिर्धारित:

स्थानांतरण सेवा का एक मामला है और इसमें संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है जब यह दुर्भावना से प्रेरित हो या किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करता हो। किसी सरकारी कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर पदस्थापित होने का कोई निहित अधिकार नहीं है। केवल कार्यकारी स्थानांतरण नीति का उल्लंघन करने से न्यायिक समीक्षा का कोई कानूनी अधिकार या आधार नहीं मिलता। एसएल अब्बास और गोवर्धन लाल के मामलों में बाध्यकारी मिसाल के मददेनजर दीपा वशिष्ठ और राम अवध राम पर भरोसा करना अनुचित है। हालाँकि, याचिकाकर्ता को कार्यभार ग्रहण करने के बाद अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गई है, जिस पर शीघ्र निर्णय लिया जाना चाहिए।

#### चर्चा की गई वादविधि:

1. दीपा वशिष्ठ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1995 एससीसी ऑनलाइन सभी 897

2. राम अवध राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2005 (5) एडब्ल्यूसी 4379

3. श्रीमती शिल्पी बोस बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1991 एससी 532

4. भारत संघ बनाम एसएल अब्बास, (1993) 4 एससीसी 357

5. यूपी राज्य बनाम गोवर्धन लाल, (2004) 11 एससीसी 402

#### याचिका निस्तारित।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.06.2023 के अपने स्थानांतरण आदेश को चुनौती दी है। याचिकाकर्ता निदेशक, सहकारी समितियां और पंचायत लेखा परीक्षा, लखनऊ, उत्तर प्रदेश के प्रतिष्ठान में एक वरिष्ठ लेखा परीक्षक है। स्थानांतरण आदेश जनहित में पारित किया गया है।

2. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उनकी पत्नी, जो सरकारी प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापिका हैं, को हाल ही में दिनांक 26.06.2023 को बहराइच से अमरौहा स्थानांतरित किया गया। उसका स्थानांतरण सेवा नियमों और उसके नियोक्ता पर लागू स्थानांतरण नीति के अनुसार किया गया है, जो पति-पत्नी को एक ही स्थान पर तैनात करने का प्रयास करता है।

3. यह बताया गया है कि राज्य सरकार ने वर्ष 2022-23 के लिए एक स्थानांतरण नीति जारी की है, जहां पैराग्राफ संख्या 5(4) में यह प्रावधान है:

“iv. यदि पति-पत्नी दोनों सरकारी सेवा में हों, तो उन्हें यथासंभव एक ही जनपद/नगर/स्थान पर तैनात करने हेतु स्थानान्तरण किया जा सकता है।”

4. इस नीति पर जोर देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि उसे पीलीभीत से 200 किमी दूर स्थित दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित करने वाला आक्षेपित स्थानांतरण आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और मनमाना है।

5. आगे यह तर्क है कि याचिकाकर्ता की पत्नी पर लागू सेवा नियमों के अधिकारों को विफल नहीं किया जा सकता है, विशेषकर, जब उसे हाल ही में याचिकाकर्ता की नियुक्ति के स्थान पर स्थानांतरित किया गया है, जहां से उसे बाहर कर दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने आक्षेपित स्थानांतरण आदेश देते समय पिक एंड चूज की नीति का पालन किया है।

6. यह कथन किया गया है कि स्थानांतरण को सेवा की अनिवार्यता के बावजूद, इस शक्ति का प्रयोग मनमाने और यांत्रिक तरीके से नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से दंडात्मक उद्देश्य के लिए। यह तर्क दिया गया है कि स्थानांतरण का आदेश, जो कि पिक एंड चूज

की नीति पर आधारित है, दंडात्मक प्रकृति का है और जनहित में नहीं है।

7. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दीपा वशिष्ठ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 1995 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. 897 में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय का अवलम्ब लिया है, जहाँ यह माना गया है:-

“15. हालांकि, गृह सचिव, यू.टी. चंडीगढ़ बनाम दर्शजीत सिंह ग्रेवाल, जे.टी. 1993 (4) एस.सी. 387 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए निर्णय में, उनके माननीय न्यायमूर्तिगण ने निर्णय दिया है कि नीतिगत दिशा-निर्देश प्रशासन की कार्यकारी शक्ति से संबंधित हैं, तथा सामान्य अनुप्रयोग की नीति घोषित करने तथा सभी संबंधितों को इसकी सूचना देने के पश्चात, प्रशासन इसके लिए बाध्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह नीति में परिवर्तन कर सकता है, परन्तु जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, तब तक यह इसका पालन करने के लिए बाध्य है।

16. अब, वर्तमान मामले पर आते हुए, सरकारी आदेश/दिशा-निर्देश/नीति, जिनका पालन नहीं किया गया है, इस याचिका के अनुलग्नक-16, 17 तथा 18 में निहित हैं तथा वे इस प्रकार निर्धारित करते हैं:-

1. यदि दम्पति शिक्षा विभाग में हैं, तो नियुक्ति तथा स्थानांतरण के समय दोनों को एक ही स्थान पर रखा जाना चाहिए।

2. यदि पति-पत्नी में से कोई एक शिक्षा विभाग से संबंधित है तथा दूसरा किसी अन्य विभाग से, तब भी उनमें से एक को उस स्थान पर स्थानांतरित करने का प्रयास किया जाना चाहिए, जहां दूसरा है।

3. एक ही स्थान पर तैनात पति-पत्नी का तबादला नहीं किया जाना चाहिए।

4. अलग-अलग स्थानों पर तैनात होने के कारण पति-पत्नी को परेशानी होती है, इसलिए जहां तक संभव हो उन्हें एक ही स्थान पर रखा जाना चाहिए।

17. इस प्रकार सरकारी सेवा में दम्पति के संबंध में दिशानिर्देशों में इस बात का ध्यान रखा गया है कि पति-पत्नी को एक ही स्थान पर नियुक्त रखा जाए। “जहां तक संभव हो” शब्दों को नकारात्मक रूप में नहीं रखा गया है और तदनुसार ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या की गई है।

18. मानवीय विचारों और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त दिशानिर्देश तैयार किए गए हैं और इसके पीछे मूल विचार यह है कि परिवार की पूरी व्यवस्था को परेशान नहीं किया जाना चाहिए, भले ही उक्त दिशानिर्देश अनिवार्य रूप में न हों। इस प्रकार, इस पर तब तक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ विचार करने की आवश्यकता है जब तक कि गृह सचिव, यू.टी. चंडीगढ़ के मामले (उपरोक्त) के निर्णय के दृष्टिगत नीति में परिवर्तन या संशोधन नहीं किया जाता है, और यदि पति और पत्नी को एक स्थान पर रखना

संभव नहीं है, तो ऐसे मामलों में ठोस कारण बताए जाने की अपेक्षा की जाती है ताकि स्थानांतरित पति या पत्नी, जैसा भी मामला हो, कारणों को जान सकें। यदि कोई नीति तैयार की गई है और अभी भी प्रभावी है, तो कार्यकारी कार्यवाही के अनुरूप होने की अपेक्षा की जाती है, न कि इसे अस्वीकार करने की।

19. दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक हित या प्रशासनिक आवश्यकताओं की आड़ में, पति और पत्नी में से किसी एक को अलग स्थान पर स्थानांतरित करके परिवार को परेशान करना प्राधिकारी की मर्जी पर नहीं है क्योंकि दिशानिर्देश अनिवार्य रूप में नहीं हैं या उनके पास कोई विधिक बल नहीं है। यदि प्रशासनिक आवश्यकताएं या सार्वजनिक हित की आवश्यकता होती है, तो निश्चित रूप से पति और पत्नी को अलग-अलग स्थानों पर स्थानांतरित किया जा सकता है परन्तु मात्र आपवादिक मामलों में, दुर्लभतम मामलों में, जिनके लिए कोई उदहारण नहीं दिया जा सकता हो।

20. परन्तु आजकल यह देखने में आ रहा है कि विभाग को ज्ञात कारणों से इस प्रकार के स्थानांतरण किये जा रहे हैं, जिससे दम्पति परेशान हो रहे हैं। इस न्यायालय की राय में, इस प्रकार की प्रथा की निंदा की जानी चाहिए।

21. किसी पति या पत्नी के किसी अन्य स्थान पर पदस्थापित होने की स्थिति में उन्हें किस प्रकार की उलझनों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, इसकी कल्पना कोई भी व्यक्ति स्वयं को उस स्थिति में

रखकर आसानी से कर सकता है और तब उसे समझ आएगा कि पति और बच्चों को एक स्थान पर छोड़कर स्थानांतरित स्थान पर एकाकी जीवन व्यतीत करना वास्तव में कितना कष्टदायक और पीड़ादायक है। इसलिए, ऐसी अशांति और मानसिक पीड़ा से बचने के लिए, उपरोक्त दिशा-निर्देश तैयार किये गये हैं।”

8. इसके पश्चात इस न्यायालय द्वारा **राम अवध राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2005 (5) ए.डब्ल्यू.सी. 4379** में दिये गये निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है, जिसमें कहा गया है:-

“15. इस न्यायालय (खंडपीठ) ने विजय कुमार चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2004) 3 यू.पी.एल.बी.ई.सी. 2463 में माना है कि आमतौर पर उच्च न्यायालय सेवा की शर्तों के एक भाग के रूप में सेवा की अनिवार्यता में किए गए स्थानांतरण के आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, जब तक कि स्थानांतरण दुर्भावनापूर्ण रूप से किया गया न पाया जाए या सेवा नियम ऐसे स्थानांतरण को प्रतिबंधित न करें।

16. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना। मुझे लगता है कि ऊपर किए गए विश्लेषण के दृष्टिगत, प्रश्नगत स्थानांतरण एक सामान्य स्थानांतरण आदेश द्वारा नियमित तरीके से नहीं किया जा सकता था, क्योंकि याचिकाकर्ता दिनांक 02.11.2003 को निर्वाचित एक संघ का पदाधिकारी था और जैसा कि शासनादेश दिनांकित 03.06.2004 (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक-3) के साथ-साथ नियम 27, 1980

के संदर्भ में प्रावधान है, उसका स्थानांतरण प्रारंभ से ही अवैध था। यह उल्लेखनीय है कि ऐसा कुछ नहीं था या किसी विशेष कारण या अनुमान के बिना स्थानांतरण को टाला नहीं जा सकता था, जबकि याचिकाकर्ता का स्थानांतरण अन्य लोगों के साथ नियमित तरीके से किया गया था, जो नियमों के विरुद्ध है। दिनांक 09.07.2004 के अनुवर्ती स्थानांतरण आदेश द्वारा पूर्व के स्थानांतरण आदेश दिनांकित 29/30.06.2004 को रद्द नहीं किया गया था, अपितु यह नया स्थानांतरण आदेश है, जिसे भी चुनौती दी गई है। इन परिस्थितियों में, आक्षेपित आदेश दिनांकित 29/30.06.2003 और अनुवर्ती स्थानांतरण आदेश दिनांकित 09.07.2004 विधिक रूप से पोषणीय नहीं हैं, इसलिए उन्हें अपास्त किया जाता है।”

9. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रूपेश तिवारी ने याचिकाकर्ता द्वारा याचित अनुतोष देने का विरोध किया है। उन्होंने कथन किया कि स्थानांतरण सेवा की अनिवार्यता है और स्थानांतरण नीति के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए रिट जारी नहीं की जा सकती।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने के पश्चात, इस न्यायालय की राय है कि अब तक कानून काफी हद तक तय हो चुका है। स्थानांतरण वास्तव में सेवा की एक आवश्यकता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हमारे रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप केवल तभी स्वीकार्य है जब स्थानांतरण वास्तव में दुर्भावना से प्रेरित हो या



कानून में दुर्भावना से दूषित हो। फिर भी, एक और रास्ता है, जहां यह न्यायालय स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है, और, वह है जहां स्थानांतरण आदेश किसी वैधानिक नियम का उल्लंघन करता है। हालांकि, किसी भी स्थिति में राज्य की स्थानांतरण नीति के उल्लंघन के आधार पर स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। **श्रीमती शिल्पी बोस व अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 532** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत यह विधिक स्थिति सुस्थापित है।

11. **श्रीमती शिल्पी बोस (उपरोक्त)** में, यह माना गया था:-

“4. हमारी राय में, न्यायालयों को ऐसे स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जो सार्वजनिक हित में और प्रशासनिक कारणों से किए गए हों (जब तक कि स्थानांतरण आदेश किसी अनिवार्य वैधानिक नियम का उल्लंघन करके या दुर्भावना के आधार पर नहीं किए गए हों। स्थानांतरणीय पद धारण करने वाले सरकारी कर्मचारी को एक स्थान या दूसरे स्थान पर नियुक्त रहने का कोई निहित अधिकार नहीं है, वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होने के लिए उत्तरदायी है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी स्थानांतरण आदेश उसके किसी भी विधिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करते हैं। यहां तक कि अगर कार्यकारी निर्देशों या आदेशों का उल्लंघन करके स्थानांतरण आदेश पारित किया जाता है, तो न्यायालयों को सामान्यतः आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, अपितु प्रभावित

पक्ष को विभाग के उच्चाधिकारियों से संपर्क करना चाहिए। यदि सरकार एवं उसके अधीनस्थ प्राधिकरणों द्वारा दिन-प्रतिदिन जारी स्थानांतरण आदेशों में न्यायालय हस्तक्षेप करते रहे तो प्रशासन में पूर्ण अराजकता फैल जाएगी, जो जनहित में सहायक नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने स्थानांतरण आदेशों में हस्तक्षेप करते हुए इन पहलुओं को नजरअंदाज कर दिया।”

12. जहां तक **राम अवध राम (उपरोक्त)** के निर्णय का संबंध है, इस न्यायालय का मानना है कि उस मामले में उत्तर प्रदेश जिला कार्यालय (कलेक्ट्रेट) मिनिस्टीरियल सेवा नियम, 1980 के एक निश्चित नियम के अंतर्गत जारी किए गए शासनादेश का उल्लंघन हुआ था और न्यायालय ने पाया कि वैधानिक नियम का उल्लंघन स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने का एक वैध आधार है। इसलिए, उक्त निर्णय इस मामले के तथ्यों से आकर्षित नहीं होता है। जहां तक **दीपा वशिष्ठ (उपरोक्त)** में खंडपीठ के निर्णय का संबंध है, इस न्यायालय की राय है कि **भारत संघ व अन्य बनाम एस.एल. अब्बास, (1993) 4 एस.सी.सी. 357** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के दृष्टिगत, **दीपा वशिष्ठ** में सिद्धांत को उस मामले के तथ्यों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। **एस.एल. अब्बास (उपरोक्त)** में प्रश्न पति और पत्नी, दोनों केंद्र सरकार के कर्मचारियों के स्थानांतरण के संदर्भ में उठा, जहां पति शिलांग से पौड़ी (उत्तर प्रदेश) में अपने स्थानांतरण का विरोध कर रहा था। इस मामले में सरकार की स्थानांतरण नीति के बारे में आधार दिया गया था, जिसमें अन्य

बातों के अलावा, पति-पत्नी को उसी स्थान पर नियुक्त करने का पक्ष लिया गया था, यदि वे केंद्र सरकार में कार्यरत हों। यह नीति सरकार के कुछ कार्यकारी निर्देशों के संदर्भ में थी, जिनमें वैधानिक बल नहीं था। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में ही एस.एल. अब्बास के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने कहा था:-

“7. किसको कहां स्थानांतरित किया जाए, यह उचित प्राधिकारी द्वारा तय किया जाने वाला मामला है। जब तक स्थानांतरण का आदेश दुर्भावना से प्रेरित न हो या किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करके न किया गया हो, तब तक न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। स्थानांतरण का आदेश पारित करते समय, इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्राधिकारी को इस विषय पर सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपने स्थानांतरण के संबंध में कोई अभ्यावेदन करता है, तो उचित प्राधिकारी को प्रशासन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार करना चाहिए। दिशा-निर्देशों में कहा गया है कि जहां तक संभव हो, पति और पत्नी को एक ही स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए। हालांकि उक्त दिशा-निर्देश सरकारी कर्मचारी को कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार प्रदान नहीं करता है।

Xxxxx

9. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री गोस्वामी ने बैंक ऑफ इंडिया बनाम जगजीत सिंह मेहता (1992) 1 एस.सी.सी. 306: 1992

एस.सी.सी. (एल एंड एस) 268: (1992) 19 ए.टी.सी. 528, में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है जो एक पीठ द्वारा पारित किया गया है, जिसके हम में से एक (माननीय न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा) सदस्य थे। निर्णय के अवलोकन पर, हमें नहीं लगता कि यह किसी भी तरह से प्रत्यर्थी का समर्थन करता है। इसमें यह कहा गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 308-09, पैरा 5: ए.टी.सी. पृष्ठ 530-31, पैरा 5)

“इसमें कोई संदेह नहीं है कि सामान्यतः और जहाँ तक संभव हो पति और पत्नी, जो दोनों कार्यरत हैं, को एक ही स्थान पर नियुक्त किया जाना चाहिए, भले ही उनके नियुक्ता अलग-अलग हों। इस तरह के कदम की वांछनीयता स्पष्ट है। हालाँकि, इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी नियुक्ति का स्थान हमेशा उनकी पसंद का होना चाहिए, परन्तु प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुसार निर्णय लेते समय उनकी पसंद को ध्यान में रखा जा सकता है। अखिल भारतीय सेवाओं के मामले में, दोनों को अलग-अलग स्थानों पर नियुक्त किए जाने से होने वाली कठिनाई कई बार अपरिहार्य हो सकती है, विशेषकर तब जब वे अलग-अलग सेवाओं से संबंधित हों और उनमें से एक को दूसरे की नियुक्ति के स्थान पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता हो। कैरियर और किसी विशेष सेवा का चयन करते समय, दंपति को इस कारक को ध्यान में रखना चाहिए और ऐसी कठिनाई का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए, यदि प्रशासनिक आवश्यकताएँ और स्थानांतरण नीति प्रशासन की आवश्यकताओं और अन्य कर्मचारियों की आवश्यकताओं का त्याग किए बिना दोनों को

एक स्थान पर नियुक्त करने की अनुमति नहीं देती है। ऐसे मामले में दंपति को कैरियर की संभावनाओं और पारिवारिक जीवन के मध्य अपना चुनाव करना पड़ता है। भारत में किसी भी स्थान पर स्थानांतरण की घटना के साथ अखिल भारतीय सेवा में इस तरह की पदोन्नति या कोई नियुक्ति स्वीकार करके कैरियर की संभावनाओं को वरीयता देने के पश्चात, एक स्थान पर साथ रहने वाले दम्पति की जरूरत को अधीनस्थ करते हुए, वे अधिकार के तौर पर अखिल भारतीय सेवा की सामान्य घटनाओं से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकते और इस आधार पर अलग स्थान पर स्थानांतरण से नहीं बच सकते कि इससे पति-पत्नी अलग-अलग स्थानों पर तैनात हो जाएंगे...। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिशानिर्देशों के अनुसार दोनों पति-पत्नी को यथासंभव एक ही स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए, परन्तु इससे कोई भी पति-पत्नी अधिकार के तौर पर ऐसी तैनाती का दावा करने में सक्षम नहीं हो जाता है, यदि विभागीय प्राधिकारी इसे संभव नहीं मानते हैं। मात्र एक चीज की आवश्यकता है कि विभागीय प्राधिकारी प्रशासन की आवश्यकताओं के साथ-साथ इस पहलू पर भी विचार करें और दोनों पति-पत्नी को एक स्थान पर साथ रहने में सक्षम बनाएं, अगर यह प्रशासनिक जरूरतों और अन्य कर्मचारियों के दावे को किसी भी तरह की हानि के बिना संभव हो।”

(बल दिया गया)

10. वास्तव में, उक्त टिप्पणी प्रत्यर्थी के तर्क के समर्थन के बजाय इसके विरुद्ध है। यह निर्णय प्रत्यर्थीगण के इस तर्क का भी समर्थन

नहीं करता है कि यदि किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण में ऐसे आदेश पर प्रश्न उठाया जाता है, तो प्राधिकरण इसके लिए कारण बताकर स्थानांतरण को उचित ठहराने के लिए बाध्य है। यह भी नहीं कहा गया है कि यदि किसी प्रशासनिक निर्देश/दिशानिर्देश का पालन नहीं किया जाता है, तो न्यायालय या न्यायाधिकरण हस्तांतरण के आदेश को रद्द कर सकता है, और न ही इसे उस कारण से दुर्भावनापूर्ण माना जा सकता है। पुनः दोहराते हुए, हस्तांतरण के आदेश पर न्यायालय या न्यायाधिकरण में मात्र तभी प्रश्न उठाया जा सकता है जहां इसे दुर्भावनापूर्ण तरीके से पारित किया गया हो या जहां इसे वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करके पारित किया गया हो।”

13. यदि दीपा वशिष्ठ मामले में खंडपीठ के निर्णय में एस.एल. अब्बास को संक्षेप में संदर्भित करने वाले उद्धरण का अनुसरण करने के औचित्य के बारे में कुछ था, तो यह मामला दीपा वशिष्ठ के बाध्यकारी अधिकार के विरुद्ध समाप्त हो जाता है, वो भी बहुत बाद में उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम गोबर्धन लाल, (2004) 11 एस.सी.सी. 402 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत। गोबर्धन लाल (उपरोक्त) मामले में, स्थानांतरण नीति का उल्लंघन करते हुए भी, पारित किए गए स्थानांतरण आदेश के साथ, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे को स्पष्ट करते हुए, यह देखा गया था:

“7. किसी भी सरकारी कर्मचारी के लिए यह तर्क देने में बहुत देर हो चुकी है कि एक बार

किसी विशेष स्थान या पद पर नियुक्त या तैनात होने के पश्चात्, उसे तब तक ऐसे स्थान या पद पर बने रहना चाहिए, जब तक उसकी इच्छा हो। किसी कर्मचारी का स्थानांतरण न केवल नियुक्ति की शर्तों में निहित है अपितु सेवा की शर्तों को नियंत्रित करने वाले कानून में किसी भी विशिष्ट संकेत के अभाव में यह सेवा की आवश्यक शर्त में भी अंतर्निहित है। जब तक स्थानांतरण आदेश अधिकार के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग का परिणाम या किसी वैधानिक प्रावधान (अधिनियम या नियम) का उल्लंघन या ऐसा करने के लिए अक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं दिखाया जाता है, तब तक स्थानांतरण के आदेश में किसी भी या हर प्रकार की शिकायत के लिए सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यहां तक कि स्थानांतरण को विनियमित करने या स्थानांतरण नीतियों को शामिल करने के लिए प्रशासनिक दिशानिर्देश अधिक से अधिक संबंधित अधिकारी या कर्मचारी को निवारण के लिए अपने उच्च अधिकारियों से संपर्क करने का अवसर दे सकते हैं, परन्तु इसका परिणाम यह नहीं हो सकता है कि सक्षम प्राधिकारी को किसी विशेष अधिकारी/कर्मचारी को सार्वजनिक हित में किसी स्थान पर स्थानांतरित करने से वंचित या इनकार कर दिया जाए और जैसा कि सेवा की अनिवार्यताओं द्वारा आवश्यक पाया जाता है, जब तक कि आधिकारिक स्थिति प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होती है और वरिष्ठता, वेतनमान और सुरक्षित परिलब्धियों जैसी किसी भी कैरियर की संभावनाओं का उल्लंघन नहीं होता है। इस न्यायालय ने

अक्सर दोहराया है कि प्रशासनिक दिशानिर्देशों के उल्लंघन में भी किए गए स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे कोई कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार प्रदान नहीं करते हैं, जब तक कि, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दुर्भावना से दूषित नहीं दिखाया जाता है या किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया जाता है।”

14. सुस्थापित विधि के दृष्टिगत, राज्य की अधिसूचित स्थानांतरण नीति का उल्लंघन, जो कि प्रशासनिक दिशानिर्देशों की प्रकृति में है, वैधानिक नियमों से अलग है, सरकारी कर्मचारियों को इसके उल्लंघन में स्थानांतरित होने पर, उस आधार पर स्थानांतरण का विरोध करने का अधिकार नहीं देता है। इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई उचित आधार नहीं मिलता है।

15. हालांकि, यदि याचिकाकर्ता स्थानांतरण के स्थान पर कार्यभार ग्रहण कर लेता है और अपना मामला प्रस्तुत करता है, तो निदेशक, सहकारी समितियां एवं पंचायत लेखा परीक्षा, लखनऊ, उत्तर प्रदेश को आदेश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर उसकी प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर निर्णय लें और उसके एक सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ता को उसका परिणाम सूचित करें।

16. यह याचिका उपरोक्त आदेश के अनुसार निस्तारित की जाती है। हर्जा नहीं।

(2023) 9 ILRA 809

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-ए संख्या 65946 वर्ष 2008

प्रभात भटनागर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री संजय कुमार ओम, श्री चन्द्र शेखर सिन्हा,  
श्री दिलीप कुमार श्रीवास्तव, श्री राजीव त्रिवेदी,  
श्री एस.के.शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

अभिनिर्धारित:

अनुशासनात्मक कार्यवाही में, किसी तृतीय पक्ष द्वारा विक्रय पत्र में स्वयं को सरकारी सेवक की पत्नी बताना मात्र प्रथम विवाह के रहते हुए द्वितीय विवाह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद का कोई निर्णायक साक्ष्य अभिलेख में प्रस्तुत नहीं किया गया। ऐसे प्रमाण के अभाव में, बर्खास्तगी का वृहद दण्ड धारणीय नहीं है। यदि कदाचार सिद्ध भी हो जाए, तो भी उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के नियम 29 के अनुसार, केवल लघु दण्ड ही लगाया जा सकता

है। बर्खास्तगी और अपीलीय अस्वीकृति के आदेश निरस्त। याचिकाकर्ता पूर्ण परिणामी लाभों के साथ पुनः नियुक्ति का हकदार है।

चर्चा की गई वादविधि:

1. राम मिलन दुबे बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, सेवा एकल संख्या 2681/2010

2. श्रवण कुमार पांडेय बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2010 (8) एडीजे 243

3. श्रीमती राज बाला शर्मा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2009 (2) एलबीईएसआर 949 (सभी)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार ओम, राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. याचिकाकर्ता को 08.04.1999 को जिला विकास अधिकारी, बरेली के कार्यालय में प्रशिक्षु के रूप में समूह 'ग' पद पर नियुक्त किया गया था। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने 24.11.1999 को अनुराधा सक्सेना से शादी की थी, हालांकि, विवाद याचिकाकर्ता द्वारा कथित तौर पर अंजू खंडेलवाल के साथ की गई दूसरी शादी के इर्द-गिर्द घूमता है, जो उसी विभाग में उसके साथ काम करती थी। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप

इस आशय का था कि अनुराधा सक्सेना के साथ पहली शादी के दौरान उसने दूसरी शादी की और इसलिए, उसने दुराचार किया। वही आरोप लगाते हुए याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता की ओर से जवाब पेश किया गया, जिसमें उसने दूसरी शादी करने के तथ्य से इनकार किया।

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि कोई उचित जांच नहीं की गई और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार करने के बाद, कथित जांच पूरी कर ली गई और बाद में आदेश दिनांक 04.07.2005 दिया गया जिसके तहत याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्तगी करते हुए बड़ा दंड दिया गया। याचिकाकर्ता ने एक विभागीय अपील दायर की जिसे भी खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार ओम का तर्क इस आशय का है कि याचिकाकर्ता की पत्नी अनुराधा सक्सेना ने दूसरी शादी का आरोप लगाते हुए विभाग के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी और दूसरी शादी के निष्पादन और कथित अपराध या कदाचारको साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं था, सिवाय इसके कि विभाग के समक्ष, एक विक्रय विलेख था, जिसके द्वारा अंजू खंडेलवाल द्वारा कुछ संपत्ति खरीदी गई थी, जिसमें उसने खुद को याचिकाकर्ता की पत्नी बताया था और उसकी पत्नी अनुराधा सक्सेना का यही आरोप था। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि उक्त त्रुटि को भी पूरक विलेख के निष्पादन के माध्यम से ठीक किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि

अंजू खंडेलवाल के खिलाफ भी विभागीय जांच की गई थी और उन्हें कोई बड़ी सजा नहीं दी गई थी, बल्कि आदेश दिनांक 23.11.2011 द्वारा उन्हें केवल निंदा प्रविष्टि दी गई थी जिसे रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया था और संशोधन आवेदन के साथ रिकॉर्ड पर लाया गया है। दलील यह है कि एक बार अंजू खंडेलवाल को निंदा प्रविष्टि देते समय, स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि अंजू खंडेलवाल और याचिकाकर्ता के बीच कोई विवाह नहीं हुआ था, इस न्यायालय के समक्ष विचार करने योग्य मुद्दा यह है कि इस तथ्य को स्वीकार करना भी कि अंजू खंडेलवाल ने विक्रय पत्र में खुद को याचिकाकर्ता की पत्नी बताया है, क्या पहली शादी के अस्तित्व के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा दूसरी शादी करने के संबंध में पर्याप्त सबूत है।

5. दूसरा मुद्दा इस आशय का है कि नियम 29 उ.प्र. सरकारी सेवक आचरण नियम, 1956 (संक्षेप में 'नियम, 1956') में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि, यदि कोई सरकारी कर्मचारी एक पत्नी के होते हुए सरकार की अनुमति के बिना दूसरी शादी करता है, तो तीन साल के लिए वेतन वृद्धि रोकने के रूप में केवल मामूली सजा दी जा सकती है। श्री ओम का कहना है कि यह सजा भी तभी दी जा सकती है जब दूसरी शादी का निष्पादन सिद्ध हो जाए।

6. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि एक बार जब महिला ने खुद को याचिकाकर्ता की पत्नी बताया था, तो किसी

और सबूत की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि विवाह के पक्षों द्वारा दिए गए किसी भी मौखिक या दस्तावेजी बयान पर भरोसा करके पति और पत्नी के बीच संबंध स्थापित किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान अंजू खंडेलवाल के मामले में पारित आदेश अप्रासंगिक है क्योंकि जब याचिकाकर्ता को सजा दी गई थी, तो उक्त आदेश अस्तित्व में नहीं था।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, मुझे पता चला कि एक वैध हिंदू विवाह की शर्तों को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 के तहत वर्णित किया गया है, अर्थात्, यदि कोई किसी भी विवाह के प्रदर्शन का आरोप लगाता है, चाहे वह पहली या दूसरी हो, तो यह न्यायालय या यहां तक कि प्रशासनिक अधिकारियों के समक्ष यह स्थापित करना होगा कि विवाह कानून के प्रावधानों के अनुसार कानूनी रूप से किया गया था, जो वर्तमान मामले में, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 है।

8. विभाग के समक्ष, यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं था कि याचिकाकर्ता और अंजू खंडेलवाल के बीच विवाह संपन्न हुआ था, सिवाय उपरोक्त विक्रय पत्र और उसमें निहित पूर्वोक्त पाठ को छोड़कर और यहां तक कि बाद में उसे भी सही कर दिया गया था। हालाँकि, अंजू खंडेलवाल को भी निंदा प्रविष्टि की प्रकृति में मामूली जुर्माना देने के मामले में दंडित किया गया था, भले ही इसके लिए राज्य की ओर

से दिए गए तर्क के आधार पर, यह स्वीकार किया जाता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में किसी भी कार्रवाई से बचने के लिए अंजू खंडेलवाल की ओर से बिक्री विलेख में सुधार का कार्य बाद में सोचा गया था, सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या, कानून में भले ही, विक्रय पत्र में वर्णित याचिकाकर्ता की पत्नी के रूप में अंजू खंडेलवाल की स्थिति को प्रमाणित माना जाये और बाद में सुधार को नजरअंदाज कर दिया जाये, क्या उक्त कथन, जैसा कि यह है, लगाए गए आक्षेपित आदेश को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त होगा।

9. इस संबंध में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 50 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1872') से संदर्भ लेना आवश्यक है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है:-

***"50. संबंध पर राय, जब प्रासंगिक हो।-***

*जब न्यायालय को एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के साथ संबंध के बारे में राय बनानी होती है, तो ऐसे रिश्ते के अस्तित्व के बारे में आचरण द्वारा व्यक्त राय, किसी ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व द्वारा होती है, जो परिवार के सदस्य के रूप में या अन्यथा, उक्त विषय पर विशेष ज्ञान के रूप में है जो एक प्रासंगिक तथ्य है:*

***बशर्ते कि ऐसी राय भारतीय तलाक अधिनियम, 1869***

**(1869 का 4) के तहत  
कार्यवाही में या भारतीय दंड  
संहिता (1860 का 45) की  
धारा 494, 495, 497 या  
498 के तहत अभियोजन में  
विवाह साबित करने के लिए  
पर्याप्त नहीं होगी।**

10. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, भले ही अंजू खंडेलवाल द्वारा विक्रय पत्र में या यहां तक कि याचिकाकर्ता की पहली पत्नी द्वारा विभाग के समक्ष अंजू खंडेलवाल और याचिकाकर्ता के बीच संबंध के बारे में दिया गया बयान एक तथ्य है, जिससे इस संबंध में याचिकाकर्ता और अंजू खंडेलवाल के बीच विवाह सम्बन्ध साबित किया जा सके। अधिनियम, 1872 की धारा 50 का प्रावधान उक्त बयान के विपरीत पाया जाएगा और ऐसी राय भारतीय तलाक अधिनियम के तहत कार्यवाही में विवाह या धारा 494, 495, 497 या 498 आईपीसी के तहत अभियोजन साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। इसका मतलब यह है कि जब भी यह सवाल उठता है कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा कोई अपराध किया गया है जो आईपीसी की उपरोक्त धाराओं के किसी भी प्रावधान के तहत दंडनीय है, तो अधिनियम, 1872 की धारा 50 से जुड़ा प्रावधान उस व्यक्ति को उस राय से बचाएगा जो दूसरी शादी के संबंध में आई.पी.सी. के तहत अपराध साबित कर सकती है। यह सिद्धांत किसी सेवा

मामले में कदाचार के पहलू की जांच में भी लागू होगा, खासकर जब मुद्दा एक ही हो, यानी, पहली शादी के अस्तित्व के दौरान दूसरी शादी का पाया जाना।

11. उपरोक्त तथ्यात्मक और कानूनी प्रस्ताव पर विचार करते हुए, जैसा कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में बताया गया है और इस न्यायालय के समक्ष या अधिकारियों के समक्ष कोई अन्य सामग्री नहीं है, मैं पाता हूं कि याचिकाकर्ता को प्रथम विवाह के अस्तित्व में रहते हुए याचिकाकर्ता द्वारा दूसरी शादी किया जाना मानकर दंडित किया जाना तथ्य एवं कानून के अनुरूप नहीं था।

12. इसलिए, विवादित आदेशों में निहित इस आशय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं है।

13. जहां तक याचिकाकर्ता को सजा देने का सवाल है, भले ही सरकारी कर्मचारी की ओर से उपरोक्त प्रभाव का कदाचार स्थापित हो, केवल मामूली जुर्माना ही दिया जा सकता है, बड़ा जुर्माना नहीं।

14. इस संबंध में 1956 के नियमों का नियम 29 इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

*"29 (1) कोई भी सरकारी सेवक जिसकी पत्नी जीवित है, सरकार*



की अनुमति प्राप्त किए बिना दूसरी शादी नहीं करेगा। उसके बाद उस पर लागू होने वाले पर्सनल लॉ के तहत अगली शादी की अनुमति है।

(2) कोई महिला सरकारी नौकर सरकार की अनुमति प्राप्त किए बिना किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करेगा जिसकी पत्नी जीवित है।

(3) उप नियम (1) या उप नियम (2) के उल्लंघन में लगाई जाने वाली एक छोटी सजा का प्रावधान है जिसके तहत तीन साल के लिए वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी।

15. इस संबंध में निम्नलिखित प्राधिकारियों का संदर्भ लिया जा सकता है:-

(ए) **सर्विस सिंगल नंबर 2681/2010 (राम मिलन दुबे बनाम यूपी राज्य व अन्य);**

(बी) **श्रवण कुमार पांडे बनाम यूपी राज्य और**

**अन्य, 2010 (8) एडीजे 243;**

(सी) **2009 (2)  
एलबीईएसआर 949  
(इलाहाबाद) श्रीमती राज  
बाला शर्मा बनाम. यूपी  
राज्य व अन्य।**

16. उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, एक बार जब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि पहली शादी के अस्तित्व के दौरान दूसरी शादी को स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं था, तो लगाए गए दोनों आदेश टिकाऊ नहीं हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं।

17. उक्त रिट याचिका सफलतापूर्वक स्वीकार की जाती है।

18. आदेश दिनांकित **04.07.2005 और 23.08.2008** जिन्हें क्रमशः जिला विकास अधिकारी, बरेली एवं अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित गया था, उन्हें रद्द कर दिया गया है।

19. प्रतिवादियों को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के एक माह के भीतर याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। याचिकाकर्ता सभी वित्तीय और अन्य सेवा लाभ का उसकी बर्खास्तगी की तारीख से उसकी बहाली तक और

उसके बाद के लाभ का भी हकदार होगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 813

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 1533 वर्ष 2021

एचकेएस डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राहुल अग्रवाल, पूर्वा अग्रवाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री पुनित कुमार गुप्ता, श्री अभिषेक शुक्ला,  
मुख्य स्थाई अधिवक्ता

समेकन - हक विवाद - हस्तांतरिती पेंडेंट लाइट

- रिकॉल आवेदन - बिक्री विलेख - अपंजीकृत

विलेख - आदेश की अंतिमता

**निर्णय:** याचिकाकर्ता, चकबंदी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान निष्पादित और पुनरीक्षण न्यायालय के दिनांक 17.4.2013 के आदेश के बाद 7.10.2014 को पंजीकृत दिनांक 26.4.2010 के विक्रय विलेख के माध्यम से अधिकारों का दावा करते हुए, उक्त आदेश को वापस लेने का

हकदार नहीं है। 1988 में शुरू हुआ और उप-निदेशक, चकबंदी के दिनांक 17.4.2013 के आदेश द्वारा अंतिम रूप दिया गया शीर्षक विवाद, काश्तकारों के बीच समझौते के आधार पर, 11.5.2015 को संबंधित रिट याचिकाओं को खारिज करने के बाद अंतिम रूप प्राप्त कर लिया। याचिकाकर्ता, एक लंबित हस्तांतरिती के रूप में, लंबे विलंब के बाद, विशेष रूप से पुनरीक्षण न्यायालय के निर्णय के समय अपंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर, निपटाए गए शीर्षक विवाद को फिर से नहीं खोल सकता। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के दिनांक 18.6.2018 के रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को सही रूप से खारिज कर दिया, क्योंकि याचिकाकर्ता के विक्रेताओं का पक्ष सुना गया था, और दिनांक 17.4.2013 का आदेश एकपक्षीय नहीं था। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कोई हस्तक्षेप उचित नहीं है।

रिट याचिका खारिज, अंतरिम आदेश निरस्त।

चर्चा की गई वादविधि:

1. थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड बनाम नानक बिल्डर्स एंड इन्वेस्टर्स पी. लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2013 एससी 2389 - विशिष्ट।

2. प्रयास बिल्डकॉन प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2022 एआईआर (एल्ड.) 279 - पर भरोसा किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा  
पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल, प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत कुमार गुप्ता तथा राज्य प्रतिवादी की ओर से विद्वान अपर सी.एस.सी. श्री अभिषेक शुक्ला को सुना।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि चकबंदी कार्रवाई के मूल वर्ष में खाता संख्या 35 के भूखंड जमुना प्रसाद पुत्र गोविंद के नाम दर्ज थे। खतौनी के सत्यापन के समय जमुना प्रसाद की विधवा होने के कारण ओम कुमारी और कृष्णावती का नाम दर्ज किए जाने की बात कही गई। चकबंदी कार्रवाई के दौरान ओम कुमारी और कृष्णावती ने आपत्ति दर्ज कराई कि खाता संख्या 35 के भूखंडों पर उनका नाम संयुक्त रूप से दर्ज किया जाए। सहायक चकबंदी अधिकारी ने 2.3.1988 को मामला चकबंदी अधिकारी के समक्ष भेजा और चकबंदी अधिकारी ने 15.3.1988 के आदेश के तहत जमुना प्रसाद की विधवा होने के कारण ओम कुमारी और कृष्णावती का नाम संयुक्त रूप से दर्ज करने का आदेश दिया और खाता संख्या 35 के भूखंडों से जमुना प्रसाद का नाम हटाने का भी आदेश दिया। चकबंदी अधिकारी के आदेश दिनांक 15.3.1988 के विरुद्ध नरेश पाल व अन्य ने बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के समक्ष विलम्ब क्षमा प्रार्थना के साथ अपील दायर की है। सहायक बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ने दिनांक 27.11.2004 के आदेश द्वारा चकबंदी अधिकारी के दिनांक 15.3.1988 के आदेश को अपास्त कर दिया

तथा अपंजीकृत वसीयत के आधार पर नरेश पाल व वेद पाल के नाम दर्ज करने का आदेश दिया। दिनांक 27.11.2004 के अपीलीय आदेश के विरुद्ध ओम कुमारी व अन्य ने पुनरीक्षण संख्या 247 तथा सुरेन्द्र व अन्य ने उप निदेशक चकबंदी के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 290 दायर किया है। उक्त पुनरीक्षणों पर उप निदेशक चकबंदी द्वारा सुनवाई की गई तथा दिनांक 25.1.2007 के आदेश द्वारा उक्त दोनों पुनरीक्षणों को स्वीकार करते हुए सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के दिनांक 27.11.2004 के आदेश को निरस्त करते हुए मामले को अपीलीय न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया गया ताकि सुरेन्द्र द्वारा दायर लंबित अपील के साथ अपील का निर्णय किया जा सके। सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने दिनांक 30.7.2008 के आदेश द्वारा सुरेन्द्र द्वारा दायर अपील को साक्ष्य के अभाव में खारिज कर दिया तथा नरेश पाल एवं अन्य द्वारा दायर अपील को स्वीकार करते हुए मामले को चकबंदी कार्यालय के समक्ष वापस भेज दिया ताकि विवाद का गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय किया जा सके। अपीलीय न्यायालय के दिनांक 30.7.2008 के आदेश के विरुद्ध ओम कुमारी ने उप निदेशक चकबंदी के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 203 दायर किया है। उक्त पुनरीक्षण संख्या 203 पर उप निदेशक चकबंदी द्वारा सुनवाई की गई तथा उसे दिनांक 13.3.2009 के आदेश द्वारा अनुमति प्रदान की गई, जिसमें दिनांक 30.7.2008 एवं 27.11.2004 के आदेशों को निरस्त करते हुए जमुना प्रसाद की विधवाओं कृष्णावती एवं ओम कुमारी के नाम दर्ज करने का आदेश दिया गया। कलावती नामक एक

व्यक्ति ने उप निदेशक चकबंदी के दिनांक 13.3.2009 के आदेश के विरुद्ध पुनर्स्थापना आवेदन प्रस्तुत किया तथा चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 15.3.1988 एवं 7.3.2011 के आदेशों के विरुद्ध तथा बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित दिनांक 30.10.2012 के आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण संख्या 173 आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि उसका नाम जमुना प्रसाद की पुत्री के रूप में दर्ज किया जाए। उत्तर प्रदेश राजस्व अधिनियम की धारा 34 के अन्तर्गत दाखिल खारिज की कार्यवाही में नायब तहसीलदार ने दिनांक 23.4.2010 को पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 2.2.1992 के आधार पर वसीयत धारक का नाम दर्ज करने का आदेश पारित किया, जिसे कथित रूप से ओम कुमारी तथा कृष्णावती द्वारा मीना कुमारी, पत्नी मुलायम सिंह (पुत्री ओम कुमारी) के पक्ष में निष्पादित किया गया था। दाखिल खारिज आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई, जिसे 30.7.2010 को स्वीकार कर लिया गया और मामला वापस नायब तहसीलदार के समक्ष भेज दिया गया। नायब तहसीलदार ने दिनांक 30.4.2011 को पुनः पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 2.2.1992 के आधार पर मीना कुमारी का नाम दर्ज करने का आदेश दिया। कृष्णावती और मीना कुमारी पर 26.4.2010 को याचिकाकर्ता (एच.के.एस. डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड) के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने का आरोप लगाया गया। कलावती पर आरोप है कि उसने 13.4.2011 को सुरेन्द्र सिंह, पुत्र ब्रह्म सिंह के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की थी, जिसे बाद में 5.9.2012 को रद्द कर दिया गया था।

कलावती पर आरोप है कि उसने 15.10.2010 को राजीव कुमार के पक्ष में बिक्री के लिए समझौता निष्पादित किया था।

जमुना प्रसाद, नगर निगम बरेली में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे। आरोप है कि जमुना प्रसाद की तीन पत्नियाँ थीं, ओम कुमारी, कृष्णावती और रामदेई। जमुना प्रसाद और रामदेई के विवाह से एक पुत्री कलावती पैदा हुई और जमुना प्रसाद और ओम कुमारी के विवाह से मीना कुमार पैदा हुई। उप निदेशक चकबंदी ने 17.4.2013 के आदेश द्वारा ओम कुमारी द्वारा दाखिल पुनरीक्षण संख्या 203 और कलावती द्वारा दाखिल पुनरीक्षण संख्या 173 को स्वीकार कर लिया और दिवंगत दर्ज खातेदार जमुना प्रसाद की विधवाओं के रूप में कृष्णावती, ओम कुमारी और रामदेई का नाम दर्ज करने का आदेश दिया। पुनरीक्षण न्यायालय ने मृतक ओम कुमारी और रामदेई के स्थान पर मीना कुमारी और कलावती पुत्री जमुना प्रसाद का नाम दर्ज करने का आदेश दिया। पुनरीक्षण न्यायालय ने आगे आदेश दिया कि चक आउट भूखंडों को छोड़कर खाते के भूखंडों का विभाजन कृष्णावती, मीना कुमारी और कलावती के संबंध में 1/3, 1/3 और 1/3 किया जाएगा। तदनुसार अपील संख्या 145/2004 और 30.7.2008 में पारित अपीलीय आदेश दिनांक 27.11.2004 को रद्द किया गया। दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध श्रीमती कलावती द्वारा रिट बी संख्या 48903/2013, श्रीमती मीना कुमारी व अन्य द्वारा रिट बी संख्या 26659/2013 तथा मीना कुमारी व अन्य द्वारा रिट बी संख्या 26674/2013 भी वर्ष 2013 में इस न्यायालय

के समक्ष दायर की गई थी। तीनों रिट याचिकाएं लगभग 2 वर्षों तक लंबित रहीं तथा उक्त तीनों रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों ने समझौता कर लिया तथा समझौते के आधार पर पक्षकारों ने रिट याचिकाओं को वापस लिए जाने के रूप में खारिज करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। इस न्यायालय ने दिनांक 11.5.2015 के आदेश द्वारा रिट याचिकाओं को वापस लिए जाने के रूप में खारिज कर दिया तथा पुनरीक्षण न्यायालय/उप निदेशक चकबंदी के दिनांक 17.4.2013 के आदेश की पुष्टि की। उक्त तीनों रिट याचिकाओं के निस्तारण के पश्चात याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.6.2018 को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष दिनांक 17.4.2013 के आदेश को वापस लेने तथा पुनरीक्षण को उसके मूल क्रमांक पर बहाल करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, ताकि याचिकाकर्ता को विवादित भूखण्ड के क्षेत्र के हिस्से का विक्रेता होने का अवसर मिल सके। पुनरीक्षण न्यायालय/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) ने दिनांक 7.6.2019 के आदेश द्वारा दिनांक 18.6.2018 को बहाली/वापस बुलाने के आवेदन को खारिज कर दिया, इसलिए यह रिट याचिका है।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 28.9.2021 के आदेश के तहत रिट याचिका पर विचार किया है और अंतरिम संरक्षण प्रदान किया है। दिनांक 28.9.2021 का आदेश इस प्रकार है:-

**1.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल को सुना गया, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने**

**प्रतिवादी संख्या 1 और 2 का प्रतिनिधित्व किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।**

**2.याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जमुना प्रसाद प्रश्नगत सम्पत्ति पर पंजीकृत खातेदार थे। चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 15.03.1988 के आदेश के अनुसार, जमुना प्रसाद के स्थान पर ओम कुमारी (प्रतिवादी संख्या 4 की माता) और कृष्णावती जो जमुना प्रसाद की विधवा हैं, के नाम दर्ज करने का आदेश दिया गया था। बाद में नरेश पाल, वेद पाल, सुरेन्द्र के हस्तक्षेप के कारण मामला पुनरीक्षण चरण तक चला गया और दिनांक 13.03.2009 को उप निदेशक चकबंदी (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा ओम कुमारी और कृष्णावती के पक्ष में पारित आदेश के अनुसार इसका समापन हुआ। ओम कुमारी की मृत्यु पर उनकी पुत्री श्रीमती मीना कुमारी (प्रतिवादी संख्या 4) का नाम को पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 02.02.1992 के आधार पर दिनांक 23.04.2010 के आदेश द्वारा नामांतरण का आदेश दिया गया है। अपील दायर होने पर मामला पुनः वापस भेज दिया गया तथा नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 30.04.2011 के आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में निर्णय दिया गया। इस**

बीच प्रतिवादी संख्या 4 तथा कृष्णावती ने याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 26.04.2010 को एक प्रतिरोधी विक्रय विलेख निष्पादित किया था।

3. बहुत विलम्ब से श्रीमती कलावती (प्रतिवादी संख्या 3) ने राम देवी (जमुना प्रसाद की पत्नी) की पुत्री होने के नाते अपना अधिकार और स्वामित्व का दावा करते हुए चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 15.03.1988 के आदेश के विरुद्ध दिनांक 31.08.2010 को पुनर्स्थापना आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 17.10.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तथा अपील में चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 30.10.2012 के आदेश द्वारा इसकी पुष्टि की गई।

4. व्यथित होकर, प्रतिवादी संख्या 3 ने 30.10.2012 के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण संख्या 173 दायर की है, साथ ही पुनरीक्षण संख्या 203 में पारित दिनांक 13.03.2009 के आदेश के विरुद्ध दिनांक 22.11.2012/01.12.2012 को बहाली आवेदन दायर किया है, जिसे ओम कुमारी और कृष्णावती ने दायर किया था।

5. दिनांक 17.04.2013 के सामान्य आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 ने

बहाली आवेदन के साथ-साथ दोनों संशोधनों को भी अनुमति दी है और प्रतिवादी संख्या 3 के नाम के साथ प्रतिवादी संख्या 4 और कृष्णावती का नाम दर्ज करने का निर्देश दिया है, जिनमें से प्रत्येक का 1/3 हिस्सा है। 17.04.2013 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर बहाली आवेदन को दिनांक 07.06.2019 के विवादित आदेश द्वारा खारिज किया जाता है।

6. याचिकाकर्ता की शिकायत इस प्रकार है:-

i. प्रतिवादी संख्या 2 ने अवैध रूप से बहाली आवेदन, विलम्ब माफी आवेदन और पुनरीक्षण संख्या 203 तथा पुनरीक्षण संख्या 173 को एक साथ सामान्य आदेश दिनांक 17.04.2013 द्वारा अनुमति दी है, बिना याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए, जो दिनांक 26.04.2010 के विक्रय विलेख के आधार पर प्रश्नगत सम्पत्ति में महत्वपूर्ण रूप से हितबद्ध व्यक्ति है तथा बहाली आवेदन और पुनरीक्षण के विरोध में सुनवाई का हकदार है।

ii.प्रतिवादी संख्या 2 ने बिना खंडन का अवसर दिए पुनरीक्षण चरण में अवैध रूप से अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार कर लिया है और प्रतिवादी संख्या 3 के अधिकार और हक को अवैध रूप से मान्यता दे दी है, जो उन दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रति के आधार पर जमुना प्रसाद और राम देवी की बेटी है, जो साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। इसके अलावा पुलिस रिपोर्ट बेटी और पिता के बीच स्थापित रिश्ते के लिए निर्णायक सबूत नहीं हो सकती।

iii.प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 15.03.1988 से अगस्त-2010 तक चुप्पी साधे रखने का कोई ठोस कारण नहीं बताया गया है कि वह जमुना प्रसाद की पुत्री होने के नाते सक्षम न्यायालय द्वारा अपने अधिकार और स्वामित्व का निर्णय क्यों नहीं करा सकी तथा उसने यूपीसीएच अधिनियम की धारा 52(1) के तहत अधिसूचना रद्द होने के कई वर्षों बाद चकबंदी न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

iv.याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनर्स्थापना आवेदन को इस आधार पर अवैध रूप से खारिज कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने जमुना प्रसाद के उत्तराधिकार/म्यूटेशन मामले के दौरान संपत्ति खरीदी है, जबकि जमुना प्रसाद का उत्तराधिकार पहले ही प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 13.03.2009 के आदेश द्वारा तय किया जा चुका था। वर्ष 2010 में प्रतिवादी संख्या 4 का नाम उसकी मां श्रीमती ओम कुमारी के स्थान पर म्यूटेशन कर दिया गया था। अन्यथा भी, दिनांक 31.08.2010 का पुनर्स्थापना आवेदन और दिनांक 22.11.2012 /01.12.2012 का एक अन्य पुनर्स्थापना आवेदन दिनांक 26.04.2010 के विक्रय विलेख के बाद दाखिल किया गया था।

v.पुनरीक्षण संख्या 173 दिनांक 31.08.2010 को बहाली आवेदन की अस्वीकृति से उत्पन्न हुआ था, लेकिन इसे बहाली आवेदन की गुण-दोष पर

चर्चा किए बिना अवैध रूप से अनुमति दी गई है।

7.मामले पर विचार करने की आवश्यकता है।

8.प्रतिवादी संख्या 3 से 5 को नोटिस जारी करें, जिसका जवाब शीघ्र दिया जाए।

9.इस मामले को 24.11.2021 को सूचीबद्ध करें।

10.इस बीच, पक्षों को अपने-अपने हलफनामों का आदान-प्रदान करने का निर्देश दिया जाता है।

11.इस न्यायालय के अगले आदेश तक उप निर्देशक चकबंदी, द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.04.2013 एवं 07.06.2019, अनुलग्नक संख्या 7 एवं 20 का प्रभाव एवं क्रियान्वयन स्थगित रहेगा।

आदेश के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. संख्या 5881/2022 भी दायर की, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 8.4.2022 के आदेश के तहत एस.एल.पी. का निस्तारण कर दिया, जिसमें इस न्यायालय को 8 सप्ताह के भीतर रिकॉल/स्थगन आवेदन के साथ मुख्य रिट याचिका पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

5. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 8.4.2022 के आदेश के अनुपालन में, माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा मामले को अन्य न्यायालय में नामित किया गया था, लेकिन इसे पहले के न्यायालय द्वारा निर्मुक्त कर दिया गया था, इस प्रकार, माननीय मुख्य न्यायाधीश ने दिनांक 28.3.2023 के आदेश के तहत मामले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में निस्तारण के लिए इस न्यायालय में नामित किया है। यह मामला कई तारीखों पर सूचीबद्ध था, लेकिन याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुरोध पर, मामले को स्थगित कर दिया गया था, तदनुसार, मामले की सुनवाई नहीं की जा सकी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर निस्तारण नहीं किया जा सका, हालांकि मामले की अंतिम सुनवाई 2.8.2023 को हुई है।

4. इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.9.2021 के आदेश के अनुसरण में, प्रतिवादी संख्या 3 ने उपस्थित होकर दिनांक 28.9.2021 के आदेश को वापस लेने के लिए एक रिकॉल आवेदन दायर किया है। प्रतिवादी संख्या 3 ने दिनांक 28.9.2021 के अंतरिम

6. याची के अधिवक्ता ने कहा कि याची अपने पक्ष में निष्पादित दिनांक 26.4.2010 के विक्रय विलेख के आधार पर उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत कार्यवाही में पक्षकार बनने तथा सुनवाई का अधिकारी है। उन्होंने आगे कहा कि याची द्वारा



दाखिल रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को अपर जिला मजिस्ट्रेट/पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अवैधानिक/मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया है। आगे कहा कि ओम कुमारी एवं कलावती द्वारा दाखिल रिविजन में उप निदेशकचकबंदी द्वारा पारित दिनांक 17.4.2013 का आदेश एकपक्षीय है, अतः याची के कहने पर दिनांक 17.4.2013 का आदेश रिकॉल किये जाने योग्य था, किन्तु याची द्वारा दाखिल आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि अपर जिला मजिस्ट्रेट ने गलत तरीके से माना है कि याचिकाकर्ता का विक्रय विलेख कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान है, ऐसे में याचिकाकर्ता कार्यवाही में सुनवाई का हकदार नहीं है। उन्होंने आगे **एआईआर 2013 एससी 2389, थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड बनाम नानक बिल्डर्स एंड इन्वेस्टर्स पी. लिमिटेड और अन्य** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिखाया ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि *हस्तांतरिती पेंडेंट लाइट* कार्यवाही में पक्षकार बनने का हकदार है क्योंकि विवादित भूखंड का वास्तविक खरीदार होने के नाते बिक्री विलेख के आधार पर हस्तांतरिती को ब्याज हस्तांतरित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि विवादित भूखंड के संबंध में अंतिम आदेश पारित करने से पहले विवादित आदेशों को रद्द किया जाना चाहिए और याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए।

7. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित श्री पुनीत कुमार गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 17.4.2013 के आदेश को चुनौती देते हुए

दायर रिट याचिका, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय 22 नियम 1 के तहत निहित प्रावधान के मद्देनजर पोषणीय नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि उप निदेशक चकबंदी के दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध खातेदारों द्वारा दायर की गई पूर्व रिट याचिकाएं खातेदारों के बीच हुए समझौते के आधार पर वापस ले ली गई थीं, ऐसे में याचिकाकर्ता को उप निदेशक चकबंदी के समक्ष दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध वापस लेने/बहाली का आवेदन दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि उप निदेशक चकबंदी द्वारा पारित दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध दायर रिट याचिकाओं के निस्तारण के कारण अंतिम हो गया है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रतिवादी का क्षेत्र और खसरा संख्या 355 पर शांतिपूर्ण कब्जा है और याचिकाकर्ता का यह आरोप गलत है कि याचिकाकर्ता का खसरा संख्या 355 के पूरे क्षेत्र पर शांतिपूर्ण कब्जा है। उन्होंने आगे कहा कि हितबद्ध पूर्ववर्ती कलावती और मीना कुमारी तथा याचिकाकर्ता के बीच आपसी विवाद है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 2010 में कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान संपत्ति खरीदी थी, जबकि चकबंदी के उप निदेशक ने 17.4.2013 को अंतिम आदेश पारित किया था, जिसमें पट्टेधारकों को 1/3, 1/3 और 1/3 हिस्सा घोषित किया गया था, ऐसे में याचिकाकर्ता 26.4.2010 को निष्पादित किए गए कथित बिक्री विलेख के आधार पर किसी भी अधिकार और शीर्षक का दावा

नहीं कर सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 26.4.2010 को निष्पादित किया गया विक्रय विलेख दिनांक 7.10.2014 तक पंजीकृत नहीं किया गया था, ऐसे में पुनरीक्षण न्यायालय के पास अपंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि पुनरीक्षण न्यायालय ने 17.4.2013 को विवाद का अंतिम रूप से निर्णय कर दिया है, ऐसे में 7.10.2014 को पंजीकृत होने वाला कथित विक्रय विलेख याचिकाकर्ता को कोई अधिकार नहीं देगा। यह भी कहा गया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने 17.4.2013 के आदेश के तहत विवाद का सही ढंग से निर्णय किया है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मीना कुमारी, कृष्णावती, कलावती, रूपराम के मध्य सौहार्दपूर्ण समझौता हो गया है तथा समझौते के आधार पर दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध दायर रिट याचिकाओं को वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया तथा उप निदेशक चकबंदी के दिनांक 17.4.2013 के आदेश को बरकरार रखा गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और 28.9.2021 का अंतरिम आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। उन्होंने इस न्यायालय के निर्णय 2022 एआईआर (एल्ड.) 279, प्रयास बिल्डकॉन प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में प्रमुख सचिव, आवास

और शहरी नियोजन और अन्यपर भरोसा किया, ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि उसी वादकरण पर बाद की रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि शीर्षक संशोधन के पक्षकारों द्वारा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत दायर शीर्षक संशोधन का निर्णय अपर जिला मजिस्ट्रेट/उप निदेशक चकबंदी द्वारा पुनरीक्षण संख्या 203 एवं 173 में पारित आदेश दिनांक 17.4.2013 द्वारा किया गया, जिसके द्वारा पक्षकारों को 1/3, 1/3 एवं 1/3 हिस्सा दिया गया। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध दायर रिट याचिकाओं को लंबित रिट याचिका में दायर समझौते के आधार पर वापस ले लिया गया मानते हुए खारिज कर दिया गया। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा 26.4.2010 को निष्पादित और 7.10.2014 को पंजीकृत बिक्री विलेख के आधार पर पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष दिनांक 17.4.2013 के आदेश के विरुद्ध दायर रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को दिनांक 7.6.2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

10. यह तथ्य प्रासंगिक है कि जमुना प्रसाद की जोत के संबंध में वर्ष 1988 में चकबंदी विवाद उत्पन्न हुआ था, जिसका अंततः उप

निदेशक चकबंदी ने 17.4.2013 के आदेश के तहत काशतकारों के बीच विवाद का निपटारा करते हुए प्रत्येक को एक तिहाई हिस्सा दे दिया। यह भी महत्वपूर्ण है कि दिनांक 17.4.2013 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर रिट याचिकाओं पर इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.5.2015 को काशतकारों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौते के आधार पर निर्णय दिया गया, जिससे चकबंदी के उप निदेशक के दिनांक 17.4.2013 के आदेश को अंतिम मान्यता मिल गई।

11. चूंकि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 17.4.2013 के आदेश को बरकरार रखा गया है, तथा रिट याचिकाओं को वापस ले लिया गया मानते हुए खारिज कर दिया गया है, अतः याचिकाकर्ता 5 वर्ष पश्चात उप निदेशक चकबंदी के समक्ष आदेश को वापस लेने तथा याचिकाकर्ता को अपंजीकृत बिक्री विलेख के आधार पर, जो कथित रूप से 26.4.2010 को निष्पादित किया गया था तथा तत्पश्चात 7.10.2014 को पंजीकृत किया गया था, अवसर प्रदान करने के लिए वापसी/पुनर्स्थापना आवेदन दायर करने का हकदार नहीं है। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट/पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 7.6.2019 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता के रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को खारिज करते हुए यह पाया है कि याचिकाकर्ता को रिकॉल आवेदन दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि वह *लंबित हस्तांतरिती* है।

12. अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 7.6.2019 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता के बहाली आवेदन को खारिज करते हुए दर्ज किया

गया निष्कर्ष अवलोकन के लिए प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

मैंने विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखों का परिशीलन व परीक्षण किया। विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों तथा पत्रावली पर उपलब्ध प्रपत्रों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वादान्तर्गत भूमि गाटा संख्या 355 के मूल काशतकार जमुना प्रसाद के उत्तराधिकार निर्धारण हेतु वाद की निरन्तरता में श्रीमती कलावती व ओमकुमारी द्वारा दिनांक 26.04.2010 को पुनर्स्थापन प्रार्थी के पक्ष में विक्रय पत्र का निष्पादन किया गया था। स्पष्टतः विक्रय पत्र Pendentelite होने की दशा में पुनर्स्थापन प्रार्थी को Pendentelite क्रेता के अधिकार ही प्राप्त होते हैं। यह भी प्रासंगिक है कि किसी भी क्रेता को अपने विक्रेता के अधिकारी से

अधिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। उप संचालक चकबन्दी के समक्ष निगरानी के निस्तारण में पुर्नस्थापन प्रार्थी के विक्रेता श्रीमती कलावती व ओमकुमारी पक्ष थे तथा उक्त विक्रेता पक्षों को सुनवाई व साक्ष्य का अवसर दिये जाने के उपरान्त ही आदेश दिनांक 17.04.13 पारित किया गया। उक्त स्थिति में आदेश दिनांक 17.04.2013 को एक पक्षीय आदेश अवधारित नहीं किया जा सकता। तदनुसार उपरोक्त विवेचना के क्रम में पुर्नस्थापन प्रार्थना पत्र दिनांक 18.06.2018 सारहीन होने की स्थिति में निरस्त किये जाने योग्य है।

अस्तु पुर्नस्थापन पत्र दिनांक 18.06.2018 निरस्त किया जाता है।

दिनांक 07/06/2019

(मनोज कुमार पाण्डेय)

अपर जिलाधिकारी  
(वि०/रा०) बरेली।

13. अपर जिला मजिस्ट्रेट/पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता के कहने पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता अपंजीकृत विलेख के आधार पर अधिकार का दावा कर रहा है, जिसे 26.4.2010 को निष्पादित किया गया था, जिसे वर्ष 2014 में पंजीकृत किया गया था, अर्थात्, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा शीर्षक विवाद पर निर्णय की तारीख के बाद।

14. एक बार जब उत्तर प्रदेश राज्य आवास योजना अधिनियम के तहत शीर्षक विवाद, पंजीकृत काश्तकारों से अधिकार का दावा करने वाले काश्तकारों के मामले में अंतिम रूप ले लेता है, तो याचिकाकर्ता, 17.4.2013 के आदेश के अनुसार पुनरीक्षण के निर्णय की तिथि को अपंजीकृत बिक्री विलेख के आधार पर, इतनी लंबी अवधि के बाद मामले को फिर से नहीं खोल सकता है। यह भी तथ्यपूर्ण है कि मूल वर्ष प्रविष्टि के विरुद्ध विवाद 25 वर्षों से अधिक समय से चल रहा था तथा वर्ष 2013 में इसका अंतिम निर्णय हुआ, अतः याचिकाकर्ता द्वारा 8.6.2018 को पुनः शीर्षक कार्यवाही शुरू करने के लिए दायर की गई रिकॉल/पुनर्स्थापना को अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 10.4.2019 को आदेश पारित करते हुए सही रूप से अस्वीकार कर दिया गया।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस कानून ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है।

16. मामले के सम्पूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को खारिज करते हुए, मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

17. तदनुसार रिट याचिका खारिज की जाती है। 28.9.2021 को दिया गया अंतरिम आदेश निरस्त किया जाता है।

18. रिट याचिका में सभी लंबित आवेदनों का निस्तारण कर दिया गया है।

-----  
(2023) 9 ILRA 821

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट-सी संख्या 10936 वर्ष 2014

अरुण कुमार जैन एवं अन्य ...याचिकाकर्ता  
बनाम

पीओ, ऋण वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद  
और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री एचएन सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री विनीत कुमार सिंह, श्री सुदीप हरकौली, श्री शेखर चौधरी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

स्थायी अधिवक्ता, श्री ब्रिजेश कुमार केशरवानी, श्री अनादि कृष्ण नारायण, श्री डीवी जयसवाल,

श्री केएम अस्थाना, श्री मनीष मेहरोत्रा, श्री राजेश केसरवानी, श्री संदीप कुमार सिंह

सिविल विधि - वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - धारा 13(2), 13 (3ए), 13(4) एवं 18(1)- प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 - नियम (8)(1), 9(3), 9(4) - नीलामी दिनांक 12.08.2010 को हुई, नीलामी क्रेताओं ने नीलामी कार्यवाही से पूर्व अग्रिम राशि का भुगतान किया तथा बिक्री राशि का 25% अगले कार्य दिवस पर जमा किया - शेष 75% 26/27.08.2010 तक देय था - इस बीच, 23.08.2010 को डीआरटी ने उधारकर्ताओं को बकाया राशि चुकाने के लिए 30 दिन का समय दिया, लेकिन वे ऐसा करने में असफल रहे - चूक की आशंका होने पर, नीलामी क्रेताओं ने 21.09.2010 और 25.09.2010 के बीच शेष राशि का भुगतान किया - यद्यपि 15 दिनों से अधिक विलंब का कारण स्पष्ट किया गया है, इससे कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता उधारकर्ता - रिट कार्यवाही के दौरान, उधारकर्ता राशि की पेशकश करने में विफल रहे - क्या 25% बिक्री राशि में बयाना राशि शामिल है, यदि अगले कार्य दिवस पर जमा की जाती है, और क्या नियम, 2002 के संशोधित नियम 9(3) लागू होते हैं - डीआरटी ने नीलामी के दिन ही 25% जमा करने की आवश्यकता पर कठोर दृष्टिकोण अपनाया - अनिवार्य प्रावधानों को इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए जिससे अनुपालन अव्यावहारिक हो जाए - नीलामी खरीदारों का कार्य 'तुरंत' की श्रेणी में था, बिना किसी देरी के, निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया -

पुनरीक्षण ने स्पष्ट किया कि 25% में समक्ष से जमा की गई बयाना राशि शामिल है - बिक्री नोटिस, बैंक के उत्तर और नियम स्पष्टीकरण के मद्देनजर, डीआरएटी ने इसे अन्यथा मानने में गलती की - आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण है, इसलिए इसे अपास्त किया जाता है। (पैरा 20, 23, 26, 29, 33, 35)

दी गई थी। संशोधन द्वारा, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 153/2009 में ऋण वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा पारित 23.10.2013 के आदेश को भी चुनौती दी है।

### तथ्यात्मक आव्यूह

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

### उद्धृत वादों की सूची :

1. महाप्रबंधक, श्री सिद्धेश्वर सहकारी बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम इकबाल एवं अन्य .. (2013) 10 एससीसी 83 (पैरा 19)

2. ज़िले सिंह बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2004) 8 एससीसी 1 (पैरा 14 से 18)

3. वरिमाडुगु ओबी रेड्डी बनाम बी. श्रीनिवासुबु और अन्य, (2023) 2 एससीसी 168 (पैरा 44 से 46)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

### आक्षेपित आदेश

1. यह रिट याचिका नीलामी क्रेताओं द्वारा ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा अपील संख्या आर-214/2013 में पारित आदेश दिनांक 19.11.2013 से व्यथित होकर दायर की जा रही है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील खारिज कर

2. मेसर्स फ़िरोज़ाबाद कोल्ड स्टोरेज लिमिटेड, इसके प्रबंध निदेशक और अन्य, जो प्रतिवादी संख्या 4 से 8 हैं (बाद में "उधारकर्ता" के रूप में संदर्भित) ने कोल्ड स्टोरेज के व्यवसाय के लिए 14.10.2005 को प्रतिवादी बैंक (बैंक ऑफ़ बड़ौदा) द्वारा स्वीकृत ऋण सुविधा का लाभ उठाया है।

3. उधारकर्ता ऋण राशि चुकाने में विफल रहे हैं, इसलिए, प्रतिवादी बैंक ने वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और सुरक्षा ब्याज अधिनियम, 2002 की धारा 13 (2) के तहत दिनांक 06.04.2009 को एक नोटिस जारी किया है (संक्षेप में) "सरफेसी अधिनियम")। उधारकर्ताओं ने सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (3ए) के तहत 01.06.2009 को अपना जवाब प्रस्तुत किया है।

4. उधारकर्ता ऋण चुकाने में विफल रहे, इसलिए, बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) और सुरक्षा ब्याज (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम (8) (संक्षेप में "नियम") के तहत दिनांक 13.09.2009 को एक नोटिस जारी किया गया था। बाद में, संबंधित संपत्ति की नीलामी के लिए प्रतिवादी बैंक द्वारा

दिनांक 14.11.2009 को एक नीलामी नोटिस प्रकाशित किया गया था।

5. उधारकर्ताओं ने दिनांक 13.09.2009 के नोटिस यानी सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) और नियम 8(1) के तहत जारी किए गए कब्जे के नोटिस को चुनौती देते हुए 14.12.2009 को ऋण वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष एस.ए. संख्या 153/2009 दायर किया है।

6. प्रतिवादी बैंक ने 23.09.2009 को नीलामी के तहत संपत्ति पर कब्जा कर लिया और नीलामी बिक्री की दिनांक 16.12.2009 को तय की गई, हालांकि, 16.12.2009 को नीलामी नहीं हो पाई।

7. उपरोक्त संदर्भित एस.ए. संख्या 153/2009 के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी बैंक ने 05.07.2010 को समाचार पत्रों में दूसरी नीलामी सूचना प्रकाशित की, जिसमें नीलामी बिक्री के लिए 12.08.2010 की दिनांक तय की गई। नोटिस में उल्लिखित नियम और शर्तों को यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया है :-

“नियम व शर्त :-

(1) इच्छुक निविदाकर्ता सम्बन्धित सम्पत्ति क्रय करने हेतु अपने प्रस्ताव टेंडर राशि मांग ड्राफ्ट द्वारा जो प्राधिकृत अधिकारी बैंक ऑफ बड़ौदा के पक्ष में आहरित किया गया हो, के साथ बंद लिफाफे में भेजें।

असफल निविदाकर्ताओं को बयानों की राशि बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी। यदि सफल बोलीदाता विक्रय की शर्तों समय का पालन नहीं करता या अन्य किसी प्रकार की चूक करता है तो बयान की राशि बिना किसी पूर्व सूचना के जब्त कर ली जाएगी। प्रस्ताव सम्बन्धित शाखा के पास दिनांक 12.8.10 को दोपहर 2बजे तक या इससे पहले जमा कर दिए जाएँ।

(2) सील बन्द निविदाएँ प्राधिकृत अधिकारी द्वारा उपस्थित निविदाकर्ताओं के समक्ष ऊपर दर्शित जगह व समय पर खोली जाएँगी।

(3) निविदाएँ खुलने के बाद प्राधिकृत अधिकारी के विवेक पर इच्छुक खरीददारों को परस्पर सहमति द्वारा प्रस्तावित मूल्य को बढ़ाने का अवसर दिया जा सकता है।

(4) सफल निविदादाता को विक्रय मूल्य की 25% धनराशि (बयाना राशि सहित) विक्रय तिथि को ही नकद अथवा उपरोक्तानुसार मांग ड्राफ्ट द्वारा जमा करनी होगी विक्रय मूल्य की शेष धनराशि प्राधिकृत अधिकारी अथवा सिक्योर्ड क्रेडिटर्स द्वारा विक्रय की पुष्टि के 15 दिन के भीतर अथवा दिए गये समय तक जमा करनी होगी। इसमें चूक होने

पर उस समय तक जमा की गयी सम्पूर्ण रकम जब्त कर ली जाएगी।

(5) सफल निविदादाता को सम्पत्ति की रजिस्ट्री कराने हेतु समस्त स्टॉम्प व रजिस्ट्रेशन शुल्क व अन्य व्यय स्वयं वहन करने होंगे। प्राधिकृत अधिकारी के पास बिना कारण बताए किसी भी निविदा को स्वीकृत/अस्वीकृत/स्थगित/रद्द करने का अधिकार और विक्रय नियमों एवं शर्तों में संशोधन करने के अधिकार सुरक्षित होंगे।

(6) प्राधिकृत अधिकारी, मालिक/ बोलीदाता/ आम जनता को सूचना दिए बिना बिक्री को रद्द/स्थगित कर सकता है और/या किसी भी नियम व शर्तों को किसी भी समय बदल सकता है/ जोड़ सकता है/हटा सकता है।

(7) इच्छुक खरीददार सम्बन्धित शाखा से किसी भी कार्य दिवस में सम्पर्क कर सम्पत्ति का मुआयना कर सकते हैं एवं अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कर सकते हैं।

स्थान: आगरा दिनांक:-05.07.10  
प्राधिकृत अधिकारी”

(जोर दिया गया)

8. याचिकाकर्ता 1,05,00,000/- रुपये की उच्चतम बोली लगाते हुए नीलामी कार्यवाही में सफल रहे। उन्होंने पूरी राशि का भुगतान

किया, यानी सबसे पहले, 25% (बयाना राशि सहित) और बाद में शेष 75% राशि का भुगतान अलग-अलग किश्तों में किया।

9. याचिकाकर्ताओं (नीलामी खरीददारों) द्वारा विभिन्न तिथियों पर भुगतान की गई राशि के विवरण के संबंध में विवाद है, इसलिए, संदर्भ के लिए, नीलामी खरीददारों द्वारा प्रदान किए गए विवरण इस प्रकार हैं -:

| दिनांक     | राशि       | माध्यम   |
|------------|------------|----------|
| 16.08.2010 | 10.20 लाख  | चेक      |
| 13.08.2010 | 16.05 लाख  | नकद      |
| 21.09.2010 | 15.00 लाख  | आरटीजीएस |
| 23.09.2010 | 12.675 लाख | चेक      |
| 23.09.2010 | 21.00 लाख  | आरटीजीएस |
| 24.09.2010 | 2.50 लाख   | नकद      |
| 25.09.2010 | 14.00 लाख  | चेक      |
| 25.09.2010 | 8.00 लाख   | आरटीजीएस |
| 25.09.2010 | 2.80 लाख   | नकद      |
| 25.09.2010 | 2.775 लाख  | नकद      |

10. इस बीच, ऋण वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद ने एस.ए. संख्या 153/2009 में दिनांक 23.08.2010 को निम्नलिखित आदेश पारित किया -:

“इस आवेदन के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि बैंक ने 5.7.2010 को बिक्री नोटिस प्रकाशित किया और सुरक्षित की गयी संपत्ति का आरक्षित मूल्य 102.00 लाख रुपए तय करते हुए बिक्री के लिए 12.08.2010 की दिनांक तय की गयी। बैंक को 105.00 लाख रुपये की पेशकश की बोली प्राप्त हुई थी। बैंक द्वारा पत्र दिनांक 14.8.2010 के माध्यम से आवेदक को पस्ताव दिया गया कि एक ऐसे बोलीदाता की



व्यवस्था 10 दिनों के भीतर की जाये जिसका प्रस्ताव 102.00 लाख रुपये से अधिक है। ऐसा न करने पर बैंक बिक्री के विज्ञापन की शर्तों के अनुसार बोली लगाने वाले की बोली स्वीकार कर लेगा। बैंक के दिनांक 14.8.2010 के पत्र के जवाब में आवेदक ने एक विस्तृत प्रस्ताव प्रस्तुत किया और कहा कि आवेदक के पास एक संभावित खरीददार है जिसने 108.50 लाख रुपये की पेशकश की है। हालांकि यह बैंक को मिली बोली से ज्यादा है। पार्टियों के प्रतिद्वंदी विवाद पर विचार किया गया। पिछला बिक्री नोटिस दिनांक 14.11.2009 देखा गया जिसमें क्रेता का आरक्षित मूल्य दर्शाया गया था, जो उक्त संपत्ति को 105.00 रुपये की पेशकश से बेहतर कीमत पर खरीदेगा। कथित तौर पर, उनके पास एक खरीददार है जो 108.50 लाख रुपये की पेशकश कर रहा है। इसे देखते हुए मेरी राय है कि आवेदक को संभावित खरीददार की व्यवस्था करने के लिए 30 दिनों का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि 30 दिनों से पहले, आवेदकों को अधिक उचित प्रस्ताव प्राप्त होता है, तो वे उक्त प्रस्ताव के 25% टोकन मनी के साथ उक्त राशि की पेशकश करने के लिए स्वतंत्र हैं। बैंक इस पर विचार करेगा। ऐसा न होने पर बैंक बिक्री नोटिस के नियमों और शर्तों के अनुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र होगा। अग्रिम आदेशों के लिए 27.09.2010 तिथि तय करें। (जोर दिया गया)

11. प्रतिवादी, इस अवसर के बावजूद, कोई ऐसा खरीददार पेश करने में असमर्थ रहे जो याचिकाकर्ताओं की पेशकश से अधिक की पेशकश कर सके और एसए में तय की गई

अगली तारीख यानी 27.09.2010 से पहले, नीलामी खरीददारों ने पूरी राशि जमा कर दी है।

12. तदनुसार याचिकाकर्ताओं यानी नीलामी क्रेताओं को दिनांक 27.09.2010 को एक बिक्री प्रमाणपत्र जारी किया गया और कब्जा भी उन्हें सौंप दिया गया।

13. इसलिए, उत्तरदाताओं ने वर्ष 2010 की रिट सी संख्या 74713 दायर करके इस न्यायालय से संपर्क किया है, हालांकि, इस न्यायालय ने उनकी प्रार्थना की अनुमति दिए बिना ट्रिब्यूनल को लंबित मामलों का निर्णय करने का एक निर्देश देते हुए आदेश दिनांक 23.12.2010 पारित करते हुए निपटारा कर दिया।

14. उत्तरदाताओं के कुछ अन्य प्रयास भी विफल रहे, हालांकि, ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने दिनांक 13.04.2013 के आदेश द्वारा उत्तरदाताओं द्वारा दायर एस.ए. संख्या 153/2009 को अनुमति दे दी और माना कि सरफेसी अधिनियम के तहत बैंक द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया दोषपूर्ण थी और तदनुसार, इसे दरकिनार किया गया और यथास्थिति बहाल कर दी गई थी। नीलामी बिक्री, बिक्री प्रमाणपत्र और बैंक द्वारा जारी या निष्पादित बिक्री विलेख और सुरक्षित संपत्तियों की नीलामी के लिए बैंक द्वारा उठाए गए सभी सहायक और बाद के कदमों को दरकिनार कर दिया गया था। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने माना कि :-  
(ए) मांग पर ऋणी के के उत्तर/आपत्ति दिनांक 01.06.2009 जिसमें नोटिस दिनांक

06.04.2009 की मांग का निराकरण नहीं किया गया।

(बी) नीलामी खरीददारों ने नीलामी की शर्तों के अनुसार शेष राशि (बोली का 25%) नीलामी के अगले दिन जमा की है, न कि उसी दिन।

(सी) नीलामी क्रेताओं ने 30 दिन की समय सीमा यानी दिनांक 23.09.2010 समाप्त होने के बाद बोली राशि का शेष 75% जमा किया था। उन्होंने 21.09.2010 को उक्त राशि जमा करना शुरू कर दिया और 25.09.2010 को विभिन्न किस्तों/स्लॉटों में जमा कर समाप्त किया था।

15. याचिकाकर्ताओं (नीलामी खरीददार) ने उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, सरफेसी अधिनियम की धारा 18(1) के तहत अपील संख्या 455/2013 दायर किया जिसे दिनांक 19.11.2013 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

16. ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण ने माना है कि -:

"उसी के आधार पर, यह स्पष्ट है कि इस न्यायाधिकरण द्वारा पहले ही यह विचार किया जा चुका है कि बिक्री मूल्य का 25%, जो बिक्री के तुरंत बाद अपीलकर्ता द्वारा जमा किया गया था, उस राशि में बयाना राशि शामिल नहीं की जा सकती है और इसलिए, इन परिस्थितियों में, राशि जमा करते समय अपीलकर्ता द्वारा तत्काल तिथि पर राशि का

25% जमा नहीं किया गया था।

शेष राशि के संदर्भ में अपीलार्थी द्वारा दिनांक 25.09.2010 के अंत तक जमा किया गया। विचार के लिए प्रश्न यह उठता है कि क्या सुरक्षा हित प्रवर्तन नियमावली, 2002 के नियम 9 (4) के अनुसार किसी समझौते के तहत अनुपस्थिति समय में विस्तार किया गया है, क्या यह नियमावली के नियम 9 (4) के अनुपालन में वैध जमा था, 2002? इस संबंध में, यह देखा जाना चाहिए कि ट्रिब्यूनल ने 23.08.2010 को एक आदेश पारित किया था जिसके द्वारा ट्रिब्यूनल द्वारा अंतरिम आदेश पारित करके संभावित खरीददार को पेश करने का अवसर दिया गया था जो अधिक राशि देकर संपत्ति खरीदने के लिए तैयार हो। उधारकर्ता संभावित खरीददार को प्रस्तुत करने में विफल रहा जो अपीलकर्ता द्वारा नीलामी खरीददार द्वारा प्रस्तावित राशि से अधिक राशि की पेशकश कर सकता था। जब ट्रिब्यूनल ने आदेश पारित किया, उस समय अपीलकर्ता एक पक्ष नहीं था। इस प्रकार, अपीलकर्ता को सुरक्षा हित प्रवर्तन नियमावली, 2002 के नियम 9 (4) के अनुसार बिक्री की तारीख से 15 दिनों की अवधि के भीतर राशि का 25% (लगभग 75%) जमा करने से नहीं रोका गया। अपीलकर्ता नीलामी क्रेता का मामला यह नहीं है कि उसने बैंक को शेष राशि जमा करने की पेशकश की लेकिन बैंक ने

इसे स्वीकार नहीं किया। इन परिस्थितियों में, नीलामी क्रेता होने के नाते अपीलकर्ता सुरक्षा हित प्रवर्तन नियमावली, 2002 के नियम 9 (4) के प्रावधान का अनुपालन नहीं करने की अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकता है। जी.एम., श्री सिद्धेश्वरा सहकारी बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम इकबाल और अन्य [2013 (2) डी.आर.टी.सी. 457 में शीर्ष न्यायालय द्वारा माना गया है कि सुरक्षा हित प्रवर्तन अनिवार्य नियमावली, प्रकृति 2002 के नियम 9 (3) और (4) का अनुपालन को अनिवार्य स्थिति में ही माफ किया जा सकता है। अनिवार्य शर्त की छूट पार्टियों के बीच एक समझौते के तहत ही होनी है। वर्तमान मामले में, बैंक अकेले जमा की अवधि नहीं बढ़ा सकता है और अपीलकर्ता ने भी समय के विस्तार के लिए आवेदन नहीं किया है। ऐसा हो सकता है कि दिनांक 23.08.2013 को ट्रिब्यूनल ने अंतरिम आदेश पारित करते हुए उधारकर्ता को कुछ संभावित खरीददार पेश करने का अवसर दिया, जो बैंक द्वारा नीलामी खरीददार से प्राप्त अपीलकर्ता से बेहतर कीमत की पेशकश करने के लिए तैयार हो। डीआरटी के पूर्वोक्त आदेश के आधार पर, अपीलकर्ता/नीलामी क्रेता को किसी भी मामले में ट्रिब्यूनल या बैंक द्वारा शेष राशि जमा करने से नहीं रोका गया था और यह अपीलकर्ता नीलामी क्रेता का मामला भी नहीं है कि उसने

जमा करने की पेशकश की लेकिन इसे स्वीकार नहीं किया गया और डी.आर.टी. यह भी आदेश नहीं दिया कि बैंक नीलामी क्रेता से जमा राशि स्वीकार नहीं करेगा।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जी.एम., श्री सिद्धेश्वरा सहकारी बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम इकबाल और अन्य [2013 (2) डी.आर.टी.सी. 457 (उपरोक्त) में पारित निर्णय वर्तमान मामले में पूरी ताकत से लागू होता है कि सबसे पहले नियम 9 (3) का कोई अनुपालन नहीं हुआ क्योंकि बिक्री मूल्य का 25% बिक्री के तुरंत बाद अपीलकर्ता द्वारा जमा नहीं किया गया था। इसमें बयाना राशि का 10% शामिल है, जिसे बिक्री मूल्य के 25% में समायोजित नहीं किया जा सकता है अपितु यह केवल नीलामी में भाग लेने के लिए बयाना राशि के रूप में जमा किया जाता है और इस प्रकार इस धन को 25% से बाहर रखा जाएगा।

अपने समग्र मूल्यांकन के आधार पर, मेरा विचार है कि वर्तमान मामले में ट्रिब्यूनल ने नीलामी को सही ढंग से रद्द कर दिया है और डीआरटी द्वारा पारित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में

ट्रिब्यूनल ने नीलामी को रद्द करते समय और कब्जा बहाल करने का निर्देश देते समय एक गंभीर गलती की है, उसने अपीलकर्ता द्वारा जमा की गई राशि वापस करने का निर्देश नहीं दिया है। यह स्वीकार करने योग्य है।

इन परिस्थितियों में, बैंक को नीलामी क्रेता की राशि प्रति वर्ष 10% साधारण ब्याज की दर से ब्याज सहित लौटाने का निर्देश दिया जाता है और इस सीमा तक अपील की अनुमति दी जाती है।  
(जोर दिया गया)

#### प्रविष्टियां

17. याचिकाकर्ताओं की तरफ से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह व सहायक अधिवक्ता श्री विनीत कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया है -:

(i) याचिकाकर्ताओं/नीलामी खरीददारों ने पूरी नीलामी राशि यानी 10% बयाना राशि, बोली से पहले, 25% (10% बयाना राशि सहित) नीलामी के अगले कार्य दिवस पर और शेष 75% राशि भी निर्धारित समय के भीतर चुका दी है। यानी उधारकर्ताओं को समय दिया गया, जबकि उत्तरदाताओं/उधारकर्ता ने न तो बकाया ऋण राशि जमा की है और न ही कोई

खरीददार सामने आया है जो याचिकाकर्ताओं की बोली मूल्य से अधिक की पेशकश कर सके।

(ii) डीआरएटी ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया है कि नीलामी की कार्यवाही के तुरंत बाद जमा की जाने वाली बोली राशि का 25% बोली के समय जमा की गई 10% राशि शामिल नहीं है और महाप्रबंधक श्री सिद्धेश्वर सहकारी बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम इकबाल और अन्य (2013) 10 एससीसी 83 में पारित उच्चतम न्यायालय आदेश पर निर्भरता राखी जिसमें उल्लेखित है कि नियमावली के नियम 9(3) और 9(4) अनिवार्य हैं जब तक इन्हें विशेष रूप से छूट देने की बात स्पष्ट न हो।

(iii) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि वर्तमान मामले में, बोली 12.08.2010 को लगभग 3.00 बजे खोली गई थी और प्रक्रिया को लगभग 4.30 बजे अंतिम रूप दिया गया था और उस समय तक बैंक बंद हो गया था और अगली तारीख (यानी 13.08.2010) को कुल रही के रु. 25% यानी 16,05,000/- रूपए का ड्राफ्ट बनाते हुए के बांक में जमा किया

गया जबकि 10,20,000/- रुपये बयाना राशि के रूप में पहले ही जमा कर दिए गए थे।

(iv) विद्वान वरिष्ठ वकील ने समाचार पत्र में प्रकाशित नीलामी नोटिस में उल्लिखित शर्तों का हवाला दिया कि सफल बोली लगाने वाले को नीलामी के दिन 25% बोली राशि (बयाना राशि सहित) जमा करनी होगी।

(v) विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे प्रस्तुत किया है कि नियमों के संशोधित नियम 9(3) (04.11.2016 से) ने एक अस्पष्टता को स्पष्ट कर दिया है कि खरीददार को नीलामी के दिन या अगले कार्य दिवस के बाद बिक्री मूल्य की राशि का 25% की जमा राशि का भुगतान करना होगा जिसमें जमा की गई बयाना राशि, यदि कोई हो, शामिल होगी। नियमावली, 2002 का संशोधित नियम 9(3) इस प्रकार है -:

“(3) अचल संपत्ति की प्रत्येक बिक्री पर, क्रेता तुरंत, यानी उसी दिन या अगले कार्य दिवस के बाद, जैसा भी मामला हो, बिक्री मूल्य की राशि का पच्चीस प्रतिशत की राशि

जिसमें जमा की गई बयाना राशि, यदि कोई हो, शामिल है, बिक्री का संचालन करने वाले अधिकृत अधिकारी को जमा करेगा, और ऐसी जमा राशि के डिफॉल्ट होने पर, संपत्ति फिर से बेची जाएगी।

(vi) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि प्रासंगिक समय में, नियमों का असंशोधित नियम 9 (3) लागू था, लेकिन संशोधित नियम ने अस्पष्टता को स्पष्ट कर दिया है, इसलिए, इसका लाभ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वव्यापी रूप से बढ़ाया जा सकता है।

(vii) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए **जिले सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2004)**

**8 एससीसी 1** का हवाला दिया है कि कुछ परिस्थितियों में, संशोधन का प्रभाव और लाभ इसके प्रारंभ होने की तारीख से पूर्वव्यापी रूप से संचालित होगा।. उसके प्रासंगिक

पैराग्राफ 14 से 18 नीचे  
उल्लिखित हैं :-

“14. पूर्वव्यापी संचालन के विरुद्ध धारणा घोषणात्मक कानूनों पर लागू नहीं होती है... इसलिए, अधिनियम की प्रकृति का निर्धारण करते समय, स्वरूप के बजाय सार पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि कोई नया अधिनियम किसी पुराने अधिनियम की "व्याख्या" करता है, तो यह बिना किसी उद्देश्य के होगा जब तक कि पूर्वव्यापी रूप से इसका अर्थ न लगाया जाए। एक व्याख्यात्मक अधिनियम आम तौर पर एक स्पष्ट चूक प्रदान करने या पिछले अधिनियम के अर्थ के बारे में संदेह को दूर करने के लिए पारित किया जाता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि कोई कानून उपचारात्मक है या पिछले कानून की केवल घोषणात्मक है तो पूर्वव्यापी कार्रवाई का आम तौर पर इरादा होता है...। एक संशोधन अधिनियम मूल

अधिनियम के एक प्रावधान के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विशुद्ध रूप से घोषणात्मक हो सकता है जो पहले से ही अंतर्निहित था। इस प्रकृति के स्पष्टीकरण संशोधन का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा (उक्त, पृ. 468-69)।

15. हालांकि पूर्वव्यापीता की कल्पना नहीं की जानी चाहिए और बल्कि पूर्वव्यापीता के खिलाफ धारणा है, क्रेज़ (संविधि कानून, 7वां संस्करण) के अनुसार, यह विधायिका के लिए पूर्वव्यापी संचालन वाले कानून बनाने के लिए खुला है। इसे स्पष्ट अधिनियमन द्वारा या नियोजित भाषा से आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि प्रयुक्त भाषा से यह आवश्यक निहितार्थ है कि विधायिका किसी विशेष खंड को पूर्वव्यापी कार्रवाई करने का इरादा रखती है, तो अदालतें उसे ऐसी कार्रवाई करने देंगी। पूर्वव्यापी कार्रवाई के स्पष्ट रूप से दिए जाने के अभाव में, अदालतों को

प्रावधानों की व्याख्या करने और इस सवाल का जवाब देने के लिए कहा जा सकता है कि क्या विधायिका ने कानून को पूर्वव्यापीता देते हुए उस इरादे को पर्याप्त रूप से व्यक्त किया था।

चार कारकों को प्रासंगिक के रूप में सुझाया गया है:

(i) कानून का सामान्य दायरा :

(ii) जिस उपाय को लागू करने की मांग की गई है:

(iii) कानून की पूर्व स्थिति: और

(iv) विधायिका ने क्या विचार किया था। (पृ.

388) पूर्वप्रभावीता के विरुद्ध नियम निरसन के प्रभाव से बचाने के लिए विस्तारित नहीं है, एक विशेषाधिकार जो अर्जित अधिकार के बराबर नहीं है। (पृ. 392)

16. जहां किसी कानून को पूर्व कानून में स्पष्ट चूक की आपूर्ति करने या किसी पूर्व कानून को "व्याख्या" करने के उद्देश्य से पारित किया जाता है, वहां बाद वाले

कानून का संबंध उस समय से होता है जब पिछला अधिनियम पारित किया गया था।

पूर्वप्रभावीता के विरुद्ध नियम ऐसे विधानों पर लागू नहीं होता है जो प्रकृति में व्याख्यात्मक और घोषणात्मक होते हैं।

एक उत्कृष्ट उदाहरण अटॉर्नी जनरल बनाम पौगेट का मामला है [(1816) 2 मूल्य 381: 146 ईआर 130] (मूल्य पृष्ठ 392)। 1873 के सीमा शुल्क अधिनियम (53 जियो. 3, सी. 33) द्वारा 9एस 4डी की खाल पर एक शुल्क लगाया गया था, लेकिन अधिनियम में यह कहना छोड़ दिया गया कि यह प्रति सीडब्ल्यूटी 9एस 4डी होना था, और इस चूक को ठीक करने के लिए एक और सीमा शुल्क लगाया गया था।

अधिनियम (53 जियो. 3, सी. 105) उसी वर्ष बाद में पारित किया गया था। इन दोनों अधिनियमों के पारित होने के बीच कुछ खालें निर्यात की गईं, और यह तर्क दिया गया कि वे

प्रति सीडब्ल्यूटी 9एस 4डी के शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं थे, लेकिन थॉमसन, सी.बी. ने अटॉर्नी जनरल के लिए निर्णय देते हुए कहा: (ईआर पी) .134

“इस उदाहरण में कर्तव्य, वास्तव में, पहले अधिनियम द्वारा लगाया गया था; लेकिन भार के चूक की घोर गलती, जिसके लिए व्यक्त राशि देय होनी चाहिए थी, बाद के अधिनियम द्वारा किए गए संशोधन का कारण बनी: लेकिन जैसे ही यह पारित हुआ, उसमें पूर्व कानून का संदर्भ था, और उन्हें एक साथ लिया जाना चाहिए मानो वे एक ही अधिनियम हों;” (कीमत पृष्ठ 392 पर)

17. मैक्सवेल ने *कानून की व्याख्या* (12वां संस्करण) पर अपने काम में कहा है कि पूर्वव्यापी संचालन के खिलाफ नियम केवल एक अनुमान है, और इस तरह इसे "न केवल अधिनियम में व्यक्त शब्दों से बल्कि

पर्याप्त रूप से इसे विस्थापित करने के लिए” (पृ. 225) मजबूत परिस्थितियों से भी दूर किया जा सकता है” । यदि विधायिका के प्रमुख इरादे को स्पष्ट रूप से और निस्संदेह स्पष्ट किया जा सकता है, तो शाश्वतता के खिलाफ नियम में निहित निषेध संदिग्ध प्रयोज्यता बन जाता है क्योंकि “नियम का निषेध” डिगी का मामला है जो “*सेकेंडम मटेरियम*” को अलग अलग करेगा (पृष्ठ 226)। कभी-कभी, जहां कानून की भावना इसकी मांग करती है या जहां मसौदा तैयार करने में कोई स्पष्ट गलती हुई है, अदालत उस शब्द या वाक्यांश को प्रतिस्थापित करने के लिए हमेशा तैयार रहेगी जो वास्तव में अधिनियम के पाठ में दिखाई देता है (पृष्ठ 231)।

18. *राष्ट्रीय कृषि सहकारी फेडरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया* [(2003) 5 एससीसी 23] के मामले में इस



न्यायालय के एक हालिया फैसले में यह तय किया गया है:-

किसी अधिनियम को पूर्वप्रभावीता देने के विधायी इरादे की अभिव्यक्ति के लिए कोई निश्चित फॉर्मूला नहीं है। प्रत्येक कानून, चाहे वह भावी हो या पूर्वव्यापी हो, विधायी क्षमता के प्रश्न के अधीन होना चाहिए। पूर्वव्यापीता का निर्णय कुछ कसौटी पर किया जाना चाहिए जैसे: (i) इस्तेमाल किए गए शब्दों को स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी संचालन प्रदान करना चाहिए या स्पष्ट रूप से संकेत देना चाहिए; (ii) पूर्वव्यापीता उचित होनी चाहिए और अत्यधिक या कठोर नहीं होनी चाहिए, अन्यथा इसे असंवैधानिक करार दिए जाने का जोखिम है; (iii) जहां न्यायिक निर्णय पर काबू पाने के लिए कानून पेश किया जाता है, वहां निर्णय के वैधानिक आधार को हटाए बिना निर्णय को पलटने के लिए शक्ति का उपयोग नहीं किया जा

सकता है। किसी अधिनियम को पूर्वप्रभावीता देने के विधायी इरादे की अभिव्यक्ति के लिए कोई निश्चित फॉर्मूला नहीं है। एक वास्तविक वैधानिक परिवर्तन के साथ युग्मित एक मान्य खंड, असंशोधित कानून के तहत अस्थिर कार्यों को अबाधित छोड़ने के तरीकों में से एक है। नतीजतन, वैधानिक खंड की अनुपस्थिति स्वयं वैधानिक प्रावधान के पूर्वव्यापी संचालन को प्रभावित नहीं करेगी, यदि ऐसी पूर्वव्यापीता अन्यथा स्पष्ट है।

(जोर दिया गया)

(viii) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि उत्तरदाताओं/उधारकर्ताओं के एक अधिवक्ता द्वारा दिनांक 01.06.2009 को एक पंजीकृत नोटिस भेजा गया था, जिसे सरफेसी अधिनियम के धारा 13 (2) के तहत बैंक द्वारा जारी नोटिस दिनांक 06.04.2009 के विरुद्ध आपत्ति नहीं माना जा

सकता है। चूंकि पंजीकृत नोटिस दिनांक 01.06.2009 की सामग्री में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि यह पंजीकृत नोटिस उक्त नोटिस के जवाब में था और साथ ही इसमें किसी आपत्ति या नोटिस के संदर्भ में पूर्ण दायित्व के निर्वहन के बारे में भी उल्लेख नहीं किया गया था, बल्कि यह एक नोटिस (उत्तर नहीं) बल्कि ब्याज या जुर्माना माफ करने और पुनर्भुगतान के लिए साधारण ब्याज के साथ चार किश्तें तय करने का अनुरोध करने के लिए था। यह सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3ए) के संदर्भ में निपटाए जाने वाले आवश्यक प्रतिनिधित्व या आपत्ति के अंतर्गत नहीं आएगा।

18. इसके विपरीत, उत्तरदाताओं (उधारकर्ताओं) के विद्वान वकील श्री ब्रिजेश कुमार केशरवानी ने **महाप्रबंधक, श्री सिद्धेश्वर (उपरोक्त)** के पैरा 19 का उल्लेख किया है कि -:

“19. इसमें कोई संदेह नहीं है कि नियम 9(1) अनिवार्य है लेकिन यह प्रावधान निश्चित रूप से उधारकर्ता के लाभ के लिए है। इसी प्रकार, नियम 9(3) और नियम 9(4) सुरक्षित ऋणदाता के लाभ के लिए हैं (या किसी भी मामले में उधारकर्ता के लाभ के लिए)। कानून में यह स्थापित स्थिति है कि भले ही कोई प्रावधान अनिवार्य हो, इसे हमेशा उस पार्टी (या पार्टियों) द्वारा माफ किया जा सकता है जिसके लाभ के लिए ऐसा प्रावधान किया गया है। नियम 9(1) में प्रावधान उधारकर्ता के लाभ के लिए है और नियम 9(3) और नियम 9(4) में निहित प्रावधान सुरक्षित ऋणदाता के लाभ के लिए है (या उस मामले में उधारकर्ता के लाभ के लिए है) सुरक्षित ऋणदाता और उधारकर्ता कानूनी तौर पर अपना अधिकार छोड़ सकते हैं। ये प्रावधान न तो स्पष्ट रूप से और न ही प्रासंगिक रूप से अन्यथा संकेत देते हैं। जाहिर है, यह सवाल कि

छूट है या नहीं, प्रत्येक  
मामले के तथ्यों पर  
निर्भर करता है और इस  
संबंध में कोई कठोर  
नियम नहीं बनाया जा  
सकता है।

(जोर दिया गया)

(i) विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि नीलामी 12.8.2010 को हुई थी, इसलिए, नियम, 2002 के असंशोधित नियम 9 (3) के प्रावधान लागू होंगे और नियम, 2002 के संशोधित नियम 9 (3) नहीं, जो दिनांक 4.11.2016 से प्रभावी हुए। संशोधित कानून में पूर्वव्यापी प्रभाव का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए और यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि बिक्री राशि के 25% प्रतिशत में बयाना राशि शामिल नहीं थी।

(ii) विद्वान वकील ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 23.10.2013 के एक आदेश का भी हवाला दिया जिसमें उत्तरदाताओं

(उधारकर्ताओं) द्वारा दायर एस.ए. संख्या 153/2009 को अनुमति दी गई थी और अनिवार्य प्रावधानों के विपरीत होने के कारण पूरी नीलामी कार्यवाही को रद्द कर दिया गया था। विद्वान वकील ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निम्नलिखित निष्कर्षों का उल्लेख किया है कि :-

"उधारकर्ता द्वारा जारी दिनांक 1.6.2009 के नोटिस का निपटान नहीं किया गया और इस प्रकार बैंक सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (3ए) के प्रावधानों का पालन करने में विफल रहा, जिसमें कहा गया है कि:-  
"[(3ए) यदि, उप-धारा (2) के तहत नोटिस प्राप्त होने पर, उधारकर्ता कोई प्रतिनिधित्व करता है या कोई आपत्ति उठाता है, तो ऋणदाता ऐसे प्रतिनिधित्व या आपत्ति पर विचार करेगा और यदि सुरक्षित ऋणदाता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसा अभ्यावेदन या आपत्ति स्वीकार्य या तर्कसंगत नहीं

है, तो वह ऐसे अभ्यावेदन या आपत्ति की प्राप्ति के [पंद्रह दिनों के भीतर] उधारकर्ता को अभ्यावेदन या आपत्ति स्वीकार न करने के कारणों के बारे में बताएगा: बशर्ते कि इस प्रकार संप्रेषित कारण या कारणों के संप्रेषण के चरण में ऋणदाता की संभावित कार्रवाई उधारकर्ता को धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण या धारा 17ए के तहत जिला न्यायाधीश की अदालत में आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं देगी।]"

(iii) विद्वान वकील ने यह भी उल्लेख किया कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (2) के तहत जारी नोटिस का एक विशिष्ट उत्तर 30.12.2010 को भेजा गया था, हालांकि इसमें देरी हुई लेकिन यह अनुत्तरित रहा।

(iv) नीलामी क्रेता नीलामी की तिथि पर बिक्री राशि का 25% जमा करने में विफल रहे हैं।

बैंक तत्कालिकता को देखते हुए नकद राशि बंद करने के बाद जमा की सुविधा देने में विफल रहा है। निर्विवाद रूप से, शेष (25%) नीलामी के अगले दिन जमा कर दिया गया था, लेकिन इसमें बयाना राशि भी शामिल थी जो क़ानून की मांग नहीं थी।

(v) नीलामी खरीददारों ने शेष 75% राशि अलग-अलग स्लॉट में जमा कर दी है जो अनिवार्य अवधि के 30 दिनों के बाद जारी रही।

(vi) आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है। बैंक नीलामी की नई कार्यवाही शुरू कर सकता है और नीलामी क्रेता द्वारा जमा किया गया पैसा 10% ब्याज के साथ वापस करने का निर्देश दिया गया है और इसलिए, याचिकाकर्ताओं को कोई पूर्वाग्रह नहीं है। 19. बैंक के विद्वान वकील ने याचिकाकर्ताओं के तर्कों को अपनाया और प्रस्तुत किया कि ऋण

वसूली न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ बैंक द्वारा दायर अपील अभी भी ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित है और उन्होंने बैंक की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के कुछ पैराग्राफ यानी 17, 18, 22 और 23 का उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख आगे किया गया है:

“17. कि, उस समय यानि शाम के 4.30 बजे. 12-8-2010 को नीलामी की कार्यवाही को अंतिम रूप दिया गया, बैंकिंग समय बंद हो गया था और बैंक का कैश काउंटर बंद था, इसलिए कैश काउंटर की अनुपलब्धता के कारण, नीलामी क्रेता बोली राशि का 25% में से 15% की शेष राशि दिनांक 12-8-2010 को जमा नहीं कर और उन्होंने इसे अगले कार्य दिवस यानी 13-8-2010 को जमा कर दिया और इस प्रकार नियम 9(3) के अनुपालन की आवश्यकता पूरी हो गई।

18. कि, नियम 9(3) के तहत माल की बिक्री अधिनियम 1930 के तहत निजी नीलामी बिक्री के मामले में "तुरंत" शब्द का एक यांत्रिक अर्थ एक साथ या कदमताल करने के बजाय होता है, जहां नीलामी राशि का भुगतान बोली की राशि हथौड़े का गिरना ही आवश्यक है और इसके विपरीत यहां खंड के तहत "तत्काल" शब्द को प्रासंगिक अर्थ दिया गया है जिसका

अर्थ है "सभी उचित शीघ्रता के साथ और उचित त्वरित समय के भीतर" जैसा कि माननीय शीर्ष कोर्ट ने राम महमूद खान बनाम श्री रणबीर सिंह और अन्य एआईआर 1995 एससी 2195 (2198) और यूपी के नियम जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियम, 1952 285-डी में के मामले में व्याख्या की गयी है जिसमें उल्लेखित है की निहित वसूली और नीलामी बिक्री से संबंधित कानून का एक समान है और उनमें समान प्रावधान है।

22. यह कि, ट्रिब्यूनल ने स्वयं संबंधित शाखा पर नीलामी बिक्री को अंतिम रूप देने के लिए 30 दिनों तक इंतजार करने के लिए रोक लगा दी थी, जिसे ट्रिब्यूनल ने अंतिम निर्णय में पूरी तरह से गलत व्याख्या की थी कि इस संबंध में कोई स्थगन आदेश नहीं था।

23. यदि समय के भीतर कुछ किया जाता है तो उस पर विचार करने के लिए एक आदेश में प्रदान की गई आवश्यकता एक स्थगन आदेश के अलावा और कुछ नहीं है और उपरोक्त स्थगन आदेश के रूप में रुकावट समाप्त होने/खत्म होने के बाद, नीलामी क्रेता ने शेष 75% का भुगतान किया नीलामी मूल्य 21-9-2010 से 25-9-2010 के बीच, क्योंकि उधारकर्ताओं को 30 दिन की समय सीमा समाप्त होने से पहले संपर्क करने का निर्देश दिया गया था और 21-9-2010 आदेश दिनांक 23-8-2010 की तारीख से 30 वां दिन था और ट्रिब्यूनल ने 30वें दिन 23-9-2010 को समाप्त होने वाली बात मानकर कानूनी और तथ्यात्मक रूप से घोर गलती की। ”

**विचार एवं निष्कर्ष**

20. विचार का मुद्दा यह है कि बिक्री राशि का 25% बयाना राशि सहित होगा या नहीं और क्या कुछ परिस्थितियों में, उक्त राशि अगले कार्य दिवस पर भी जमा की जा सकती है और नियम 9 (3) में किए गए संशोधन का प्रभाव नियम, 2002 (यानी 'संबंध सिद्धांत वापस') का वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से कोई लेना-देना है?

21. निर्विवाद तथ्यों की पृष्ठभूमि में कि याचिका (नीलामी खरीददारों) ने नीलामी की कार्यवाही से काफी पहले बयाना राशि का भुगतान कर दिया है और नीलामी बिक्री 12.8.2010 को लगभग 4.30 बजे अंतिम रूप दी गई थी। यानी बैंक के कामकाजी घंटे खत्म होने के बाद और बिक्री राशि का शेष 25% (बयाना राशि सहित) अगले कार्य दिवस यानी 13.8.2010 को जमा किया गया था, अदालत तथ्यों और कानून पर प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियों पर भी विचार करने के लिए आगे बढ़ी।

22. नियम 2002 के नियम 9 (3) को प्रतिस्थापित करके संशोधन से पहले प्रयुक्त शब्द थे "क्रेता को इसकी बिक्री मूल्य की राशि का पच्चीस प्रतिशत तुरंत जमा करना होगा"। न तो 'तुरंत' शब्द और न ही 'पच्चीस प्रतिशत' शब्द स्पष्ट थे और कुछ अस्पष्टता थी, इसलिए, 2016 में नियम, 2002 के नियम 9 (3) को प्रतिस्थापित किया गया और इसे स्पष्ट किया गया यानी 'तुरंत' और 'पच्चीस प्रतिशत' शब्दों को स्पष्ट किया गया कि:

“3. अचल संपत्ति की प्रत्येक

बिक्री पर, क्रेता को तुरंत, अर्थात, उसी दिन या अगले

कार्य दिवस के बाद, जैसा भी मामला हो, पच्चीस प्रतिशत की जमा राशि जिसमें जमा की गई बयाना राशि, यदि कोई हो, शामिल है, का भुगतान बिक्री का संचालन करने वाले अधिकृत अधिकारी के पास जमा करना होगा और ऐसी जमा राशि के डिफॉल्ट होने पर, संपत्ति फिर से बेची जाएगी।

23. जैसा कि ऊपर बताया गया है, पहले की अस्पष्टता अब स्पष्ट कर दी गई है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने एक बहुत ही तकनीकी और सख्त दृष्टिकोण अपनाया है कि नीलामी बिक्री खरीददारों को नीलामी के दिन ही बिक्री राशि का 25% जमा करना होगा और इसके लिए बैंक को काम के घंटों के बाद भी राशि जमा करने की सुविधा देनी होगी। प्रावधानों का अनुपालन अनिवार्य है लेकिन उन्हें इस हद तक जटिल नहीं बनाया जा सकता कि प्रावधानों का पालन करना ही असंभव हो जाए।

24. 'तत्काल' शब्द का अर्थ 'उचित समय के भीतर' अभिव्यक्ति से अधिक मजबूत है और इसका अर्थ बिना किसी देरी के तुरंत जोरदार कार्रवाई करना है। इसका मतलब है सभी सुविधाजनक गति के साथ। 'तत्काल' शब्द का अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि किसी ऐसी चीज़ की आवश्यकता हो जो असंभव हो। (हेल्सबरी का इंग्लैंड का नियम, चौथा संस्करण, खंड 23, पैरा 1618, पृष्ठ 1178)

25. ब्लैक लॉ डिक्शनरी (छठे संस्करण) के अनुसार 'तत्काल' शब्द का अर्थ किसी चीज़ को तुरंत या तत्काल करना है, लेकिन जब अनुबंध के संदर्भ में उपयोग किया जाता है, तो इसका अर्थ आमतौर पर मामले की परिस्थितियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उचित समय के भीतर किया जाना माना जाता है।

26. 'तत्काल' का अर्थ है 'शीघ्र', 'उचित समय के भीतर' या 'निर्धारित अवधि के भीतर।' वर्तमान मामले में, माना जाता है कि नीलामी की कार्यवाही दिनांक 12.8.2010 को शाम 4.30 बजे तक समाप्त हो गई, जब बैंक का कार्य समय समाप्त हो गया था और सामान्य परिस्थितियों में, बिक्री राशि का 25% अगले कार्य दिवस से पहले जमा नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्ताओं (नीलामी क्रेताओं) ने तुरंत अगले कार्य दिवस (13.8.2010) को राशि यानी बिक्री मूल्य का 25% जमा कर दिया है जिसमें बयाना राशि भी शामिल है। इसलिए, यह कार्य निश्चित रूप से बिना किसी देरी के 'तुरंत' की श्रेणी में था। इसलिए, यह नहीं माना जा सकता कि निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया।

27. अब नियमावली, 2002 (2016 में संशोधित) के नियम 9 (3) में संशोधन (प्रतिस्थापन द्वारा) ने स्पष्टीकरण द्वारा सभी अस्पष्टता को दूर कर दिया है कि "उसी दिन अगले कार्य दिवस के बाद नहीं"। इसलिए, डीआरएटी के दृष्टिकोण में एक कानूनी खामी है और संबंधित निष्कर्ष को कानूनी रूप से उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

28. 25% राशि में बयाना राशि शामिल होगी या नहीं, इससे जुड़ा मुद्दा इस पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए कि नीलामी नोटिस दिनांक 5.7.2010 (अखबार में प्रकाशित), जो पैरा 2 (v) का हिस्सा है निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बिक्री की 25% राशि तुरंत जमा की जाएगी जिसमें बयाना राशि भी शामिल होगी। प्रयुक्त विशिष्ट शब्द इस प्रकार है सफल निविदादाता के विक्रय मूल्य की 25% धनराशि (बयाना राशि सहित) विक्रय तिथि को ही नकद अथवा उपरोक्तानुसार मांग ड्राफ्ट द्वारा जमा करनी होगी, हालाँकि, यह तथ्य डीआरएटी द्वारा विचार से पूरी तरह से छूट गया है। श्री सिद्धेश्वरा (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि नियम 9 (3) और 9 (4) उधारकर्ता के लाभ के लिए अनिवार्य प्रावधान हैं, लेकिन इन्हें माफ किया जा सकता है। इस निर्णय में इस मुद्दे पर विचार नहीं किया गया है कि 25% बयाना राशि सहित होगा या नहीं, जहां इसने एक ऐसे मामले का निपटारा किया है जहां उधारकर्ता ने सहमति दी है कि शेष राशि यानी 75% नीलामी क्रेता द्वारा देर से स्वीकार की जा सकती है या नहीं।

29. 2016 में किए गए प्रतिस्थापन द्वारा संशोधन में स्पष्ट किया गया है कि 25% राशि में पहले से जमा की गई बयाना राशि शामिल होगी। इसलिए, नोटिस में उल्लिखित शर्तों, प्रतिवादी बैंक के उत्तर और नियमों के बाद के स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए, न्यायालय की राय के अनुसार बिक्री राशि का 25% पहले से जमा की गई बयाना राशि सहित होगी। इसलिए डीआरएटी ने इस मुद्दे पर भी कानूनी गलती की है। निमयवली में

संशोधन, स्पष्टीकरण के माध्यम से कुछ परिस्थितियों में पूर्वव्यापी रूप से विचार किया जा सकता है जैसा कि ज़िले सिंह (उपरोक्त) में बताया गया है:

"जहां किसी कानून को किसी पूर्व कानून में स्पष्ट चूक की आपूर्ति करने या किसी पूर्व कानून को "समझाने" के उद्देश्य से पारित किया जाता है, वहां बाद के कानून का संबंध उस समय से होता है जब पूर्व अधिनियम पारित किया गया था।"

30. नियम, 2002 के संशोधित नियम 9 (3) में स्पष्ट रूप से एक स्पष्टीकरण निर्धारित किया गया है और नियम का हिस्सा यानी ("वह है" या "दूसरे शब्दों में") से शुरू होता है, जो लैटिन अभिव्यक्ति 'आई डी ई एस टी' को छोटा कर रहा है और इसका उपयोग आम तौर पर आगे की व्याख्या या विवरण पेश करने के लिए किया जाता है। जैसा कि ज़िले सिंह (उपरोक्त) में बताया गया है, एक स्पष्टीकरण वापस संबंधित किया जा सकता है यानी यह पूर्वव्यापी रूप से लागू हो सकता है। संशोधन व्याख्यात्मक होने के कारण, इसे पूर्वव्यापी प्रकृति का माना जा सकता है।

31. दूसरा मुद्दा सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (4) के तहत बैंक के नोटिस पर उधारकर्ताओं की कथित आपत्तियों पर विचार न करने का है। मैंने दिनांक 1.6.2009 के कानूनी नोटिस (उधारकर्ता की ओर से एक वकील द्वारा भेजा गया और संदर्भित नोटिस का उत्तर होने का आरोप लगाया गया है) का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, हालांकि, इसकी सामग्री से

यह संकेत नहीं मिलता है कि यह बैंक के नोटिस का उत्तर था। इसमें उक्त नोटिस के बारे में भी उल्लेख नहीं है, इसलिए, इसे बैंक द्वारा जारी किए गए नोटिस पर आपत्ति नहीं माना जाएगा और नियमों के अनुसार विलंबित उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

32. उत्तरदाताओं (उधारकर्ताओं) के वकील ने बताया है कि बिक्री राशि का 75% हिस्सा 15 दिनों के बाद जमा किया गया था और इस प्रकार, अधिनियम की धारा 13 (2) की अनिवार्य शर्तों का उल्लंघन हुआ।

33. नीलामी 12.8.2010 को हुई और जैसा कि ऊपर बताया गया है, बयाना राशि सहित बिक्री राशि का 25% नीलामी खरीददारों (याचिकाकर्ताओं) द्वारा अगले कार्य दिवस पर भुगतान किया गया था। सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अनुसार विक्रय मूल्य की शेष 75% राशि 26/27-8.2010 या उससे पहले जमा की जानी थी। हालांकि, 23.8.2010 को (अर्थात् 15 दिनों से पहले) मध्यवर्ती अवधि के दौरान, ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने, उधारकर्ताओं के एक आवेदन पर, उन्हें बकाया ऋण राशि का भुगतान करने के लिए 1.08 करोड़ रुपये जमा करने के लिए 30 दिनों की अवधि दी और माना कि उधारकर्ता उक्त राशि जमा करने में विफल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि जब नीलामी खरीददारों को पता चला कि उधारकर्ता उक्त राशि जमा करने में विफल हो सकता है, तो उन्होंने 21.9.2010 से 25.9.2010 के बीच अलग-अलग स्लॉट में 75% शेष राशि का भुगतान शुरू कर दिया,



यानी डीआरटी से पहले तय की गई तारीख से पहले और 30 दिनों के खत्म होने के ठीक दो दिन बाद तक। 15 दिन का समय अपरिहार्य नहीं है क्योंकि इसे बढ़ाया जा सकता था। उपरोक्त परिस्थितियों में, हालांकि कोई लिखित समझौता नहीं था, फिर भी देरी की व्याख्या की गई है और कहा गया है कि देरी ने उधारकर्ताओं पर किसी भी तरह से प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला है, क्योंकि वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान भी, उधारकर्ता पैसे देने में विफल रहे हैं।

34. इसी तरह की परिस्थितियों में, **वरिमादुग ओबी रेड्डी बनाम बी.श्रीनिवासुलु एवं अन्य, (2023) 2 एससीसी 168** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि बिक्री राशि के 75% के भुगतान में देरी अवैधता नहीं होगी, जब उधारकर्ता ने पुनर्भुगतान के लिए समय मांगा हो और विफल रहा हो। प्रासंगिक पैराग्राफ 44, 45 और 46, इसलिए, प्रासंगिक होने के कारण, इसके बाद पुनः प्रस्तुत किए गए हैं :-

“44. वर्तमान मामले में, हालांकि तीनों साझेदारों, अर्थात् सुरक्षित लेनदारों, उधारकर्ताओं और नीलामी-क्रेता द्वारा कोई लिखित सहमति नहीं थी, जैसा कि श्री सिद्धेश्वरा सहकारी बैंक (श्री सिद्धेश्वरा सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम इकबाल, (2013) 10 एससीसी 83: (2013) 4 एससीसी (सिव) 638) मामले में इस न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया था, लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं

किया जा सकता है कि मौजूदा मामले में, अजीब स्थिति तब सामने आई है जब प्रतिवादी उधारकर्ताओं ने पहली बार ट्रिब्यूनल का दरवाजा खटखटाया। प्रतिवादी बैंक (सुरक्षित लेनदार) द्वारा जारी किए गए ई-नीलामी नोटिस का विरोध करते हुए और ट्रिब्यूनल से दिनांक 26-3-2015 को एक अंतरिम आदेश प्राप्त करने में सक्षम हो गए, जिसमें नीलामी की कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी गई थी, इस शर्त के अधीन कि उधारकर्ता 6 लाख रुपये आदेश की तारीख से 15 दिनों के भीतर सीधे प्रतिवादी बैंक के पास जमा करेगा। उक्त समय 9-4-2015 को समाप्त हो गया और प्रतिवादी उधारकर्ता उपरोक्त राशि जमा करने में विफल रहे।

45. अंतिम तिथि पर जब अवधि 9-4-2015 को समाप्त होनी थी, का आईए संख्या 1687/2015 दायर किया गया था जिसमें 6 लाख रुपये की राशि जमा करने के लिए समय अवधि को 15 दिन बढ़ाने की मांग की गई थी और चूंकि इसमें ई-नीलामी कार्यवाही को रोकने की कोई प्रक्रिया नहीं थी, अपीलकर्ता ने न केवल बयाना राशि बल्कि बोली राशि का 25% पहली बार में 28-3-2015 को जमा कर दिया, बोली राशि का शेष 75% हिस्सा 15-4-2015 को जमा कर दिया और अंतराल अवधि

प्रवाह के अधूरे चरण में थी कि ट्रिब्यूनल के समक्ष लंबित कार्यवाही में नीलामी-क्रेता का भविष्य क्या होगा, खासकर तब जब प्रतिवादी उधारकर्ताओं द्वारा 9-4-2015 को समय विस्तार की मांग करते हुए आवेदन दायर किया गया था और वह स्थिति के अनुसार, बोली राशि का 75% हिस्सा 15-4-2015 को जमा कर चुका था और तब उसे बिक्री प्रमाण पत्र जारी किया गया था और उसके बाद भी जब ट्रिब्यूनल ने 17-4-2015 के आदेश द्वारा प्रतिवादी उधारकर्ताओं को 15 दिनों का समय विस्तार दिया था, वह उक्त 6 लाख रुपये की राशि जमा करने में विफल रहा और जैसा कि रिकॉर्ड से पता चलता है, दिनांक 1-5-2015 के आदेश द्वारा प्रतिवादी उधारकर्ताओं को 6 लाख रुपये की राशि जमा करने के लिए अतिरिक्त समय दिया गया था। और उससे बहुत पहले, नीलामी की कार्यवाही को अंतिम रूप दे दिया गया था और यहां तक की सुधार कार्य भी 21-4-2015 को निष्पादित कर दिया गया था।

46. दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, मूल नीलामी नोटिस के संदर्भ में हुई चार दिनों की देरी किसी भी तरह से नीलामी की कार्यवाही को विफल या रद्द नहीं करेगी और ऋण वसूली

न्यायाधिकरण ने इसे सही माना है क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रवाह, खासकर जब बैंक/सुरक्षित लेनदार ने नीलामी-खरीददार से कुछ समय तक इंतजार करने का अनुरोध किया क्योंकि उधारकर्ता ट्रिब्यूनल के 26-3-2015 के अंतरिम आदेश के आलोक में बैंक के साथ बातचीत कर रहे थे, जिससे 75% जमा करने में देरी हो रही थी। चार दिन की बोली राशि किसी भी तरह से पार्टियों के अधिकारों को कुंठित नहीं करेगी, खासकर तब, जब उधारकर्ताओं का आचरण दो अलग-अलग अवसरों पर विस्तार आदेश प्राप्त करने में हो और ट्रिब्यूनल के आदेश के संदर्भ में अभी भी 6 लाख रुपये जमा नहीं कर रहा हो। यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करेगा कि उधारकर्ताओं का इरादा केवल किसी न किसी कारण से नीलामी-बिक्री को विफल करना था, जिसमें वे सफल नहीं हो सके।”

(जोर दिया गया)

35. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि डीआरएटी द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.11.2013 गलत है और इसलिए, अपास्त करने योग्य है, इसलिए, रद्द किया जाता है।

36. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। इसका कानूनी परिणाम तत्काल प्रभावी होगा।

-----

(2023) 9 ILRA 834

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 13576 वर्ष 2023

प्रबंधन समिति, मेरठ एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री शिवेंदु ओझा, श्री शिव प्रकाश गुप्ता, श्री राधा कांत ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अभिषेक पांडेय, श्री राजीव शर्मा

सिविल विधि - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 23, 2 और 25 (1) - याचिकाकर्ता ने 05.04.2023 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 ने नए चुनावों तक अपने मामलों का प्रबंधन करने के लिए प्रभागीय निदेशक को प्रशासक नियुक्त किया और साथ ही 09.09.2022 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) के तहत याचिकाकर्ता की कार्यकारी संस्था को भंग कर नए चुनाव कराने का निर्देश दिया - अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) के तहत पदाधिकारी को हटाने या चुनाव रद्द करने जैसी कोई भी कार्रवाई

धारा 25(1) के तहत आदेश पर आधारित होनी चाहिए - प्रतिवादी एकतरफा कार्रवाई नहीं कर सकते - धारा 25(1) के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई या कोई आदेश पारित नहीं किया गया - यदि अचल संपत्ति के संबंध में आरोप मौजूद हैं, तो उपनियमों के खंड 38 के अनुसार आयोग को ऐसे मामलों को कार्रवाई के लिए मूल सोसायटी या रजिस्ट्रार को भेजना होगा, न कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ सीधे कार्रवाई करनी होगी - उपनियम उप रजिस्ट्रार को धारा 25(2) के तहत निर्वाचित संस्था को सीधे हटाने या नए चुनाव कराने का आदेश देने की अनुमति नहीं देते - रजिस्ट्रार लेखा परीक्षा या कुप्रबंधन के लिए धारा 23 या 24 के तहत कार्रवाई कर सकता है - चूंकि ऐसी कोई कार्यवाही नहीं हुई और धारा 25(1) के तहत कोई आदेश पारित नहीं हुआ, इसलिए उप रजिस्ट्रार के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था - 09.09.2022 का आदेश बिना अधिकार के है - कोई प्रावधान नहीं प्रशासक की नियुक्ति की अनुमति देने वाले उपनियमों में - धारा 38 अधिकार नहीं देती - प्रभागीय निदेशक को प्रशासक नियुक्त करने का कोई कानूनी आधार नहीं है, रद्द किया गया। (पैरा 2, 23, 24, 25, 26)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची :

1. इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स प्राइस वाटरहाउस एवं अन्य, एआईआर 1998 एससी 74

2. क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर, (1846) 6 मूर पीसी 1
3. गुजरात राज्य एवं अन्य बनाम दिलीपभाई नाथजीभाई पटेल और अन्य जेटी 1998 (2) एससी 253
4. स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिप्टन) लिमिटेड, 1978 (1) ऑल ईआर 948 (एचएल)
5. विकर्स संस एंड मैक्सिम लिमिटेड बनाम इवांस, (1910) एसी 445 (एचएल)

6. जाम्मा मस्जिद, मरकारा बनाम कोडिमनियांड्रा देवैया और अन्य, एआईआर 1962 एससी 847

7. लेनिघ वैली कोल कंपनी बनाम येनसावेज, 218 एफआर 547

8. भारत संघ एवं अन्य बनाम वेदेम वास्को डी गामा के फिलिप टियागो डी गामा, एआईआर 1990 एससी 981

9. डी.आर. वेंकटचलम एवं अन्य आदि बनाम उप परिवहन आयुक्त एवं अन्य आदि, एआईआर 1977 एससी 842

10. बिक्री कर आयुक्त, मप्र बनाम पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी, उज्जैन, 2000 (5) एससीसी 515

11. ग्रे बनाम पियर्सन 6 एचएल केस 61

12. एबली बनाम डेल 11, सीबी 378

13. सेंट्रल इंडिया स्पिनिंग एंड वीविंग मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम म्युनिसिपल कमिटी, वर्धा एआईआर 1958 एससी 341

14. गिरधारी लाल एंड संस बनाम बलबीर नाथ माथुर, 1986(2) एससीसी 237

15. उत्कल कॉन्ट्रैक्टर्स एंड जॉइनरी प्राइवेट लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य, 1987 (3) एससीसी 279

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता श्री शिव प्रकाश गुप्ता द्वारा सहायता प्राप्त, श्री राधा कांत ओझा, वरिष्ठ अधिवक्ता, राज्य-प्रतिवादी संख्या 1 और 4 के लिए स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा और शिकायतकर्ता के लिए अधिवक्ता श्री अभिषेक पाण्डेय को सुना, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय XXII नियम 5-ए के अधीन शक्ति के प्रयोग में, चूंकि उक्त शिकायतकर्ता ने चेतावनी आवेदन दाखिल किया था, लेकिन प्रतिवादी के रूप में शामिल नहीं किया गया है।

2. यह रिट याचिका दिनांक 05.04.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा निदेशक, खादी और ग्रामोद्योग आयोग (प्रतिवादी संख्या 3) ने मंडल निदेशक को सूचित किया है कि सक्षम प्राधिकारी ने उन्हें आयोग के अनुमोदन के पूर्वानुमान में

क्षेत्रीय श्री गांधी आश्रम, मेरठ के दैनिक कार्यों की देखभाल के लिए एक प्रशासक के रूप में कार्य करने के लिए अधिकृत किया है, जब तक कि नियत प्रक्रिया का पालन करने के बाद एक नया प्रबंधन चुना नहीं जाता है, खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी) द्वारा नियोजित निधियों की सुरक्षा करने और साथ ही साथ खादी उद्योग से जुड़े बड़ी संख्या में कारीगरों और श्रमिकों की रक्षा करने के लिए। एक अन्य आदेश दिनांक 09.09.2022 को चुनौती दी जा रही है, जिसके द्वारा उप-पंजीयक (प्रतिवादी संख्या 4) ने याचिकाकर्ता प्रबंध समिति के कार्यकारी निकाय को हटा दिया है और सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) के तहत शक्तियों के कथित प्रयोग में नए चुनाव कराने का निर्देश दिया है।

3. रिट याचिका में निहित दलीलों के अनुसार, क्षेत्रीय श्री गांधी आश्रम, गढ़ रोड, मेरठ, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत एक पंजीकृत सोसायटी है। इसकी मूल संस्था श्री गांधी आश्रम, लखनऊ है, जैसा कि सोसायटी के उप-नियमों की धारा-21 में प्रदान किया गया है। इसके दो प्रकार के सदस्य हैं; एक ट्रस्टी है और दूसरा साधारण सदस्य है और इस समय कुल 11 सदस्य जीवित और कार्यरत हैं, जिनमें से 4 ट्रस्टी हैं और 7 साधारण सदस्य हैं। समिति में (1) जीवित ट्रस्टियों में से तीन स्थायी ट्रस्टी और (2) आम सदस्यों में से 3 वर्ष की अवधि के लिए सदस्य प्रबंध समिति के लिए चुने जाएंगे। उप-नियमों की धारा 6 में, यह प्रावधान किया गया है कि (1) प्रबंध समिति के सदस्यों में से एक को सभापति के

रूप में चुना जाएगा (2) एक या कई सचिव नियुक्त किए जाएंगे और प्रबंध समिति में 4 कार्यरत ट्रस्टी और 7 सामान्य सदस्य होते हैं। आम सदस्यों के नामांकन/चुनाव के लिए भी एक प्रक्रिया प्रदान की गई है। चूंकि यह एक स्थायी निकाय है: (क) ट्रस्टी समिति के स्थायी सदस्य होते हैं और (ख) कुल निर्वाचित सदस्यों में से 1/3 सदस्य समिति से सेवानिवृत्त होंगे। यदि समिति के सचिव/अध्यक्ष सेवानिवृत्त हो जाते हैं या कोई रिक्त पद होता है, तो उसी पद पर शेष 3 वर्षों की अवधि के लिए एक व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। वर्तमान कार्यवाहक अध्यक्ष, श्री राम नरेश सिंह को अगस्त, 2021 में अध्यक्ष के रूप में चुना गया था, इसलिए, वह अगस्त, 2024 तक अपना कार्यभार संभालेंगे। जहां तक सचिव, श्री पृथ्वी सिंह रावत का सवाल है, उन्हें जुलाई, 2020 में सचिव के रूप में चुना गया था, इसलिए, सचिव पद पर नए चुनाव जुलाई, 2023 में होंगे। इसी प्रकार, समिति के 1/3 सदस्यों का आम चुनाव जुलाई, 2023 में होगा। मूल संस्था यानी श्री गांधी आश्रम, लखनऊ ने क्षेत्रीय श्री गांधी आश्रम, गढ़ रोड, मेरठ को 239 अशोदा हाउस, पश्चिमी कचहरी रोड, मेरठ निवासी रानुका आशियाना प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में कुछ संपत्ति को पट्टे पर देने का निर्देश दिया है और इस निर्देश पर, क्षेत्रीय श्री गांधी आश्रम, गढ़ रोड, मेरठ के सचिव ने रजिस्टर्ड बिक्री विलेख को रानुका आशियाना प्राइवेट लिमिटेड, 239 अशोदा हाउस, पश्चिमी कचहरी रोड, मेरठ निवासी के पक्ष में रुपये 1,80,000/- के किराए पर निष्पादित किया है और साथ ही मूल संस्था यानी श्री गांधी आश्रम, लखनऊ के पक्ष में 5 करोड़ रुपये की अग्रिम राशि भी दी गई है और उपरोक्त

पट्टे के निष्पादन के बाद, कुछ शिकायतों की गई, जिस पर जिलाधिकारी, मेरठ द्वारा जांच की गई और जांच अतिरिक्त सिटी मजिस्ट्रेट (सिविल लाइंस), मेरठ द्वारा विधिवत रूप से की गई, जिन्होंने 29.09.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें पाया गया कि उपरोक्त बिक्री विलेख को निष्पादित करने में कुछ भी विपरीत नहीं है।

4. वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री आर.के. ओझा ने तर्क दिया है कि हालांकि कुछ विलेखों (deeds) का निष्पादन मूल संस्था द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार किया गया था, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ जो कार्रवाई की गई है वह मामले के तथ्यों के संदर्भ में उचित नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि जहां तक 09.09.2022 के आदेश के तहत समिति को हटाने और चुनाव कराने का निर्देश देने का संबंध है, यह आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है क्योंकि धारा 25 के तहत परिकल्पित कोई भी आपात स्थिति (exigencies) वर्तमान मामले में नहीं थी। इस कारण से, उन्होंने आगे कहा कि 05.04.2023 का आदेश, एक प्रशासक की नियुक्ति, भी अवैध है और यह अपास्त किये जाने योग्य है।

5. प्रतिवादी पक्ष से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 खादी और ग्रामोद्योग आयोग के अधिकारी हैं। यह संस्था खादी और ग्रामोद्योग गतिविधियों को बढ़ावा देने के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में गरीबों के उत्थान के बारे में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सपनों को पूरा करने के

उद्देश्य से संसद के अधिनियम के तहत भारत सरकार द्वारा स्थापित की गई संस्था है। केवीआईसी के कार्यक्रम मुख्य रूप से सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत सोसायटी और संस्थानों के माध्यम से कार्यान्वित किए जाते हैं। केवीआईसी बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए अनुदान प्रदान करने के अलावा, शून्य ब्याज पर खादी और ग्रामोद्योग गतिविधियों को करने के लिए सोसायटी और संस्थानों को सभी प्रकार की वित्तीय और अन्य सहायता प्रदान करता है। जिन सोसायटी और संस्थानों को केवीआईसी द्वारा वित्त पोषित किया जाता है, वे या तो केवीआईसी के पक्ष में अपनी संपत्तियों का न्यायसंगत बंधक (mortgage) बनाते हैं या अपने उप-नियमों में यह शर्त शामिल करते हैं कि जब तक केवीआईसी के सभी बकाया ब्याज सहित चुकाए नहीं जाते, वे केवीआईसी की मंजूरी और अनुमति के बिना अपनी किसी भी अचल संपत्ति का निपटान नहीं करेंगे। यह भी प्रावधान है कि यदि कोई सोसायटी या संस्था केवीआईसी की पूर्व अनुमति के बिना अपनी किसी भी संपत्ति का निपटान करती है, तो प्रतिवादियों संख्या 2 और 3 को उस सोसायटी या संस्थान के पदाधिकारियों के खिलाफ दीवानी और आपराधिक दोनों तरह की कानूनी कार्रवाई शुरू करनी होगी। याचिकाकर्ता के उप-नियमों के खंड 37, 38 और 40 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि जब तक केवीआईसी का बकाया नहीं चुकाया जाता है, तब तक सोसायटी की कोई भी चल या अचल संपत्ति किसी को हस्तांतरित नहीं की जाएगी। सोसायटी अपनी संपत्तियों का निपटान तभी

कर सकती है जब केवीआईसी का पूरा बकाया चुका दिया जाए और मंजूरी प्रमाण पत्र (clearance certificate) प्राप्त कर लिया जाए। यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि केवीआईसी के संज्ञान में यह आता है कि किसी सोसायटी के पदाधिकारी ठीक से काम नहीं कर रहे हैं, तो केवीआईसी को सोसायटी के कामकाज में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा और वह मामले को ऐसे पदाधिकारियों को हटाने के लिए या तो मूल सोसायटी या पंजीयक के पास भेजेगा। इस मामले में, 2021-22 के बैलेंस शीट के अनुसार केवीआईसी के बकाये के रूप में याचिकाकर्ताओं का कुल बकाया 6,46,57,252.29 रुपये है। एक सूचना प्राप्त हुई थी कि याचिकाकर्ता आयोग की अनुमति के बिना सोसायटी की संपत्ति का पट्टा विलेख (lease deed) बनाने जा रहे हैं। यह जानकारी प्रतिवादी संख्या 4 के संज्ञान में लाई गई थी, जिन्होंने दिनांक 08.01.2021 के आदेश द्वारा अगले आदेश तक इस संपत्ति की बिक्री/हस्तांतरण पर रोक लगा दी थी। इस सब के बावजूद, याचिकाकर्ताओं ने मेरठ के श्री गांधी आश्रम, गांधी नगर, गढ़ रोड पर स्थित नगर निगम, खसरा संख्या 4674 में दर्ज 3271.40 वर्ग मीटर भूमि का पट्टा विलेख मैसर्स रेणुका आशियाना प्रा. लिमिटेड के पक्ष में निष्पादित किया है। यह पट्टा विलेख याचिकाकर्ता द्वारा केवीआईसी की अनुमति और मंजूरी के बिना निष्पादित किया गया और इसलिए यह गैरकानूनी और मनमाना है। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 4 अपने पत्र दिनांक 17.12.2021 केवीआईसी द्वारा पारित परिपत्र दिनांक 26.10.2007 के

मददेनजर पट्टा विलेख को रद्द करने के लिए राजी हो गए। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित 17.12.2021 के आदेश को किसी भी अदालत में चुनौती नहीं दी गई थी। इस पट्टा विलेख की रजिस्ट्री की प्रमाणित प्रति के अनुसार, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं की भूमि 18 बिस्वा 3 बिस्वांसी (केवल 2745 वर्ग गज) है, जबकि पट्टा विलेख 3271.40 वर्ग मीटर (3912.59 वर्ग गज) के लिए हस्ताक्षरित किया गया है जिसका अर्थ है कि मैसर्स रेणुका आशियाना प्रा. लिमिटेड को 1167.50 वर्ग गज की अतिरिक्त भूमि पट्टे पर दी गई है। याचिकाकर्ताओं की जमीन के खसरा संख्या 4674 के निकटवर्ती भूमि/संपत्ति के मूल्यांकन रिपोर्ट के अनुसार इस 1167.59 वर्ग गज की अतिरिक्त भूमि का बाजार मूल्य 7.59 करोड़ रुपये है, जिससे याचिकाकर्ताओं के कारण स्पष्ट रूप से सोसायटी को नुकसान हुआ है।

6. याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कई अन्य आरोप लगाए गए हैं, और संक्षेप में, प्रतिवादियों का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता वित्तीय गबन करने के दोषी हैं और मूल संस्था और सहायक निकायों के अधिकारी एक-दूसरे के हाथों में दस्ताने पहने हुए हैं और मिलीभगत कर रहे हैं, और अचल संपत्तियों का लेन-देन उप-नियमों के विपरीत किया गया है, गांधी और ग्रामोद्योग के हित में सही निर्णय लिया गया है।

7. उपरोक्त पंक्तियों पर तर्क प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए हैं और इस संबंध में संबंधित उप-नियमों के खंड 37,

38, 39 और 40 का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार हैं:-

“37. यदि कारणवण संस्था की गतिविधियां पूर्ण या आंशिक रूप से बंद हो जाती हैं और कमीशन का देय फंड शेष रह जाता है तो आयोग पहले संस्था की सभी अचल व चल सम्पत्ति पर अपना प्रथम भार रक्खेगा और संस्था किसी भी प्रकार अपनी चल, अचल सम्पत्ति को तब तक किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों या किसी दूसरी एजेंसियों को हस्तांतरित या बेच नहीं सकती जब तक कि संस्था द्वारा आयोग की सभी देयतायें पूर्णतया वापस नहीं कर दी जाती और उसको दूर नहीं कर दिया जाता।

38- यदि कभी आयोग के नोटिस में ऐसी बातें आती हैं कि संस्था का कार्य सूचारु रूप से नहीं चल रहा है या इसका प्रबन्ध ठीक नहीं है तो आयोग को संस्था के कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकारी होगा व ऐसे कुप्रबन्धकीय मामले के उचित समाधान हेतु मातृ संस्था या रजिस्ट्रार के पास भेजने में कमीशन सक्षम होगा व संस्था के ऐसे अधिकारियों को हटाने के लिए कहेगा, जिनके रहने से संस्था के हितों को नुकसान पहुंचता हो।

39- संस्था द्वारा आयोग से ऋण व अनुदान के रूप में प्राप्त आर्थिक सहायता संस्था द्वारा केवल उसी

उद्देश्य के लिए उपयोग में लाई जायेगी जिसके लिए वह स्वीकृत की गई है और इसे किसी भी हालत में किसी दूसरे उद्देश्य के लिए हस्तांतरित नहीं किया जा सकता।

40- किसी मामले में यदि कमीशन का कोई ऋण बकाया है तो संस्था अपनी चल-अचल सम्पत्ति को बेचने की तभी पात्र होगी जब उसने कमीशन के सभी ऋणों को वापस कर दिया हो और उसके लिए आयोग से अधिकृत जानकारी या अधिकारियों से क्लीयरेंस सर्टिफिकेट ले लिया हो।”

8. वादी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं के पदाधिकारियों के खिलाफ कुछ प्राथमिकी दर्ज की गई थीं और इस तथ्य के बावजूद कि जांच एजेंसी द्वारा अवैध रूप से अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, उसी को अभी तक संबंधित न्यायालय द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया है। प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की लखनऊ खंड पीठ के निर्णय दिनांक 13.05.2019 पर भरोसा किया है, जो कि विविध बेंच संख्या 31167 वर्ष 2018 में पारित हुआ था, साथ ही दिनांक 22.09.2022 का आदेश जो रिट-सी संख्या 28763 वर्ष 2022 में पारित हुआ था और यह तर्क दिया गया है कि एक बार वित्तीय गबन और संपत्तियों के दुरुपयोग के आधार पर, गांधी और ग्रामोद्योग आयोग के अधिकारियों ने उसी तरह की कार्रवाई की जैसी उन्होंने वर्तमान मामले में की है, तो किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।



9. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, मुझे उन प्रावधानों का उल्लेख करना उचित लगता है जिनके तहत दिनांक 09.09.2022 का आदेश पारित किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, उप रजिस्ट्रार ने अधिनियम, 1860 की धारा 25 (2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए कथित रूप से नए चुनाव कराने का निर्देश दिया है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है:

*"25 (2) जहां उप-धारा (1) के तहत किए गए आदेश द्वारा, किसी निर्वाचन को रद्द कर दिया जाता है या किसी पदाधिकारी को अब कार्यालय में बने रहने का हकदार नहीं माना जाता है या जहां रजिस्ट्रार संतुष्ट हो जाता है कि किसी सोसायटी के पदाधिकारियों का कोई चुनाव उस सोसायटी के नियमों में निर्दिष्ट समय के भीतर नहीं कराया गया है, तो वह ऐसे पदाधिकारी या पदाधिकारियों के चुनाव के लिए ऐसी सोसायटी की आम सभा की बैठक बुला सकता है, और ऐसी बैठक की अध्यक्षता और संचालन रजिस्ट्रार या उसके द्वारा इस हेतु प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा किया जाएगा, और बैठकों और निर्वाचनों से संबंधित सोसायटी के नियमों के प्रावधान आवश्यक संशोधनों के साथ ऐसी बैठक और निर्वाचन पर लागू होंगे।"*

10. इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए यह मुद्दा है कि क्या उप- रजिस्ट्रार के पास

अधिनियम की धारा 25(2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए मौजूदा प्रबंध समिति को हटाने और नए चुनाव कराने का निर्देश जारी करने का अधिकार था।

11. श्री ओझा का तर्क है कि धारा 25 की उप-धारा (2) के तहत आदेश तभी पारित किया जा सकता है, जब उप-धारा (1) के तहत किए गए आदेश द्वारा किसी चुनाव को रद्द कर दिया जाए या किसी पदाधिकारी को अब कार्यालय में बने रहने का हकदार नहीं माना जाता है या जहां रजिस्ट्रार संतुष्ट हो जाता है कि किसी सोसायटी के पदाधिकारियों का कोई चुनाव उस सोसायटी के नियमों में निर्दिष्ट समय के भीतर नहीं कराया गया है। उनका तर्क है कि अधिनियम की धारा 25(1) के तहत उपरोक्त प्रभाव का कोई आदेश पारित नहीं किया गया है और इसलिए, मौजूदा समिति को हटाने या नए चुनाव कराने का निर्देश कानून के विरुद्ध है। वह यह भी कहते हैं कि प्रशासक की नियुक्ति करने का परिणामी आदेश भी मामले के तथ्यों के अनुसार अमान्य है।

12. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जवाबी हलफनामे में बताए गए कारणों और इस निर्णय में पहले से उद्धृत उप-नियम 37 से 40 का हवाला देते हुए तर्क दिए जाने के कारण कार्रवाई की गई है।

13. श्री राजीव शर्मा ने जोरदार तर्क दिया है कि हालांकि उप-धारा (2) के तहत कार्रवाई उप-धारा (1) के तहत पारित आदेश पर निर्भर करती है, हालांकि, यह कानून में एकमात्र

आकस्मिकता नहीं है और उप-धारा (1) के तहत पारित आदेश के अभाव में भी कार्रवाई की जा सकती है, जहां रजिस्ट्रार अन्यथा संतुष्ट है कि चुनाव कराने का निर्देश दिया जाए और वर्तमान मामले में, चूंकि संबंधित उप-नियमों के मददेनजर याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्रवाई करने के गंभीर आधार हैं, जो प्रबंधन को लेने के लिए अधिकारियों को सशक्त बनाते हैं, तो नए चुनाव कराने के लिए परिणामी कार्रवाई कानून के अनुसार है।

14. चूंकि दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) से संबंधित भिन्न व्याख्याएं की जा रही हैं, इसलिए यह न्यायालय संदर्भ के साथ किसी कानून की व्याख्या के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून को संदर्भित करना आवश्यक समझता है।

15. शब्द और मुहावरे ऐसे प्रतीक हैं जो मानसिक संदर्भों को सन्दर्भित करने के लिए उत्तेजित करते हैं। किसी विधि या किसी वैधानिक प्रावधान की व्याख्या करने का उद्देश्य विधायिका या इसे अधिनियमित करने वाले प्राधिकरण के आशय का पता लगाना है। (भारतीय चार्टर्ड एकाउंटेंट्स संस्थान बनाम मैसर्स प्राइस वाटरहाउस एंड अन्य, एआईआर 1998 एससी 74 देखें)। निर्माता का इरादा मुख्य रूप से उपयोग की गई भाषा से एकत्र किया जाना है, जिसका अर्थ है कि जो कहा गया है और जो नहीं कहा गया है, उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, एक ऐसे निर्माण से बचा जाना चाहिए जिसे जोड़ने या शब्दों के प्रतिस्थापन की आवश्यकता हो या

जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन माना जाए। जैसा कि क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर, (1846) 6 मूर पीसी 1, न्यायालय में देखा गया है, विधायिका के दोषपूर्ण वाक्यांश, हम जोड़ या सुधार नहीं कर सकते हैं, और निर्माण करके उन कमियों को पूरा नहीं कर सकते जो वहां छोड़ी गई हैं। (यह भी देखें गुजरात राज्य और अन्य बनाम दिलीपभाई नाथजीभाई पटेल और अन्य, जेटी 1998 (2) एससी 253)। किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विपरीत है, जब तक कि ऐसा करना नितांत आवश्यक न हो। (स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिपटन) लिमिटेड, 1978 (1) एएलएल ईआर 948 (एचएल) देखें)। व्याख्या के नियम न्यायालयों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि जैसा वह है, प्रावधान अर्थहीन या संदिग्ध अर्थ वाला न हो। न्यायालय संसद के किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ने के हकदार नहीं हैं, जब तक कि इसके लिए स्पष्ट कारण अधिनियम के चार कोनों के भीतर ही नहीं पाया जाता है। (लॉर्ड लोरेबर्न एल.सी. द्वारा विकर्स संस एंड मैक्सिम लिमिटेड बनाम इवांस, (1910) एससी 445 (एचएल), जम्मा मस्जिद, मर्कारा बनाम कोडिमनीद्रा देविया और अन्य, एआईआर 1962 एससी 847 में उद्धृत)।

16. सवाल यह नहीं है कि क्या माना जा सकता है और क्या इरादा किया गया है, बल्कि यह है कि क्या कहा गया है। "विधियों का निर्माण यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में नहीं किया जाना चाहिए"। जज लर्न्ड हैंड ने कहा, "लेकिन शब्दों का निर्माण कुछ कल्पना के साथ किया जाना चाहिए, जो उनके पीछे के उद्देश्यों के

बारे में हो।" (देखें लेनही वैली कोल कंपनी बनाम येन्सवेज, 218 एफआर 547)। यह दृश्य भारत संघ और अन्य बनाम फिलिप टियागो डी गामा ऑफ वेदेम वास्को डी गामा, एआईआर 1990 एससी 981 में दोहराया गया था।

17. डी.आर. वेंकटचलम और अन्य बनाम उप परिवहन आयुक्त और अन्य, एआईआर 1977 एससी 842 में यह पाया गया कि न्यायालयों को अपनी पूर्व-कल्पित धारणाओं के आधार पर किसी प्रावधान के अर्थ के पूर्व निर्धारण के खतरे से बचना चाहिए। वैचारिक संरचना या योजना जिसमें व्याख्या किए जाने वाले प्रावधान को कुछ हद तक फिट किया जाता है। वे व्याख्या की आड़ में विधायी कार्य करने के हकदार नहीं हैं।

18. किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय, न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है और उसे विधि का निर्माण नहीं कर सकता। यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और उसे कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अधीन किया जाता है, तो विधायिका को इसे संशोधित करने या रद्द करने का अधिकार है, यदि आवश्यक समझा जाए। (देखें कमिश्नर ऑफ सेल्स टैक्स, एम.पी. बनाम पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी, उज्जैन, 2000 (5) एससीसी 515। विधायी कैसस ओमिसस को न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा आपूर्ति नहीं की जा सकती।

19. वसीयतों, विधियों और वास्तव में, सभी लिखित उपकरणों के निर्माण के लिए सुनहरा नियम इस प्रकार बताया गया है: "शब्दों के

व्याकरणिक और साधारण अर्थ का पालन किया जाना चाहिए जब तक कि यह किसी बेतुकापन या किसी प्रतिकर्षण या असंगतता के लिए न ले जाए। बाकी के उपकरण के साथ, जिस मामले में शब्दों के व्याकरणिक और साधारण अर्थ को संशोधित किया जा सकता है, ताकि उस बेतुकेपन और असंगतता से बचा जा सके, लेकिन आगे नहीं" (देखें ग्रे बनाम पियरसन 6 एचएल केस 61)। जहां उनका अर्थ संदिग्ध या अस्पष्ट होता है वहां शब्दों को संशोधित या बदला जा सकता है। लेकिन हम विधायकों के कार्यों को मान लेते हैं जब हम उपयोग किए गए सटीक शब्दों के सामान्य अर्थ से हट जाते हैं, केवल इसलिए कि हम देखते हैं, या हमें लगता है कि हम देखते हैं उनके शाब्दिक अर्थ के पालन से बेतुकापन या स्पष्ट अन्याय।" (देखें एबली बनाम डेल 11, सी.बी. 378)।

20. वैधानिक व्याख्या का न्यायशास्त्र शाब्दिक व्याख्या से प्रयोजनपरक व्याख्या की ओर बढ़ गया है, जो कानून के उद्देश्य और वस्तु को आगे बढ़ाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में शाब्दिक व्याख्या बनाम प्रयोजनपरक व्याख्या के मुद्दे से निपटाया है। सर्वोच्च न्यायालय ने सेंट्रल इंडिया स्पिनिंग एंड वीविंग मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम द म्युनिसिपल कमेटी, वर्धा; एआईआर 1958 एससी 341 में कहा है कि यह भी निर्माण का एक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि सामान्य शब्द और वाक्यांश चाहे कितने भी व्यापक हों, आमतौर पर अधिनियम के वास्तविक उद्देश्यों तक सीमित माने जाते हैं।

21. सर्वोच्च न्यायालय ने **गिरधारी लाल एंड संस बनाम बलबीर नाथ मथुर; 1986(2) एससीसी 237** में कहा है कि किसी कानून की व्याख्या करने में न्यायालय का प्राथमिक और सर्वोत्तम कार्य विधायिका के इरादे का पता लगाना है, चाहे वह वास्तविक हो या आरोपित। इरादे का पता लगाने के बाद, न्यायालय को तब कानून की व्याख्या करने का प्रयास करना चाहिए ताकि अधिनियमन के उद्देश्य और उद्देश्य को बढ़ावा दिया जा सके और उसका पालन किया जा सके। इस उद्देश्य के लिए, जहां आवश्यक हो, न्यायालय उस नियम से भी हट सकता है कि सादे शब्दों का उनके सरल अर्थ के अनुसार अर्थ निकाला जाए। भाषा की सादगी के लिए न तो नम्र और न ही मूक अधीनता की आवश्यकता है। स्पष्ट अन्याय, विसंगति या बेतुकेपन से बचने के लिए या कानून को अमान्य होने से बचाने के लिए, न्यायालय निर्माण के तथाकथित सुनहरे नियम से हटकर कार्य करने के लिए अच्छी तरह से उचित होगी ताकि अधिनियमन के उद्देश्य और उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए यदि आवश्यक हो तो लिखित शब्द को पूरक बनाया जा सके। सर्वोच्च न्यायालय ने आम तौर पर यह दृष्टिकोण लिया है कि विधायी इरादे का पता लगाना वैधानिक निर्माण का एक मूल नियम है और निर्माण का एक नियम पसंद किया जाना चाहिए जो कानून के उद्देश्य और वस्तु को आगे बढ़ाता है और यद्यपि सादे भाषा के अनुसार निर्माण को आम तौर पर अपनाया जाना चाहिए, ऐसा निर्माण नहीं अपनाया जाना चाहिए जहां यह विसंगतियों, अन्यायों या बेतुकापन की ओर ले जाता है, के.पी. वर्गीज बनाम आईटीओ, (1981) 4 एससीसी 173,

स्टेट बैंक ऑफ़ त्रावणकोर बनाम मोहम्मद एम. खान, (1981) 4 एससीसी 82, सोम प्रकाश रेखी बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 449, रावुला सुब्बा राव बनाम सीआईटी, एआईआर 1956 एससी 604, गोविंदलाल बनाम कृषि उत्पादन बाजार समिति, (1975) 2 एससीसी 482 और बाबाजी कोंडाजी बनाम नाशिक मर्चेण्ट्स को-ऑप बैंक लि. (1984) 2 एससीसी 50.

22. सर्वोच्च न्यायालय के **उक्तल कॉन्ट्रैक्टर्स एंड जॉइनरी प्राइवेट लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य; 1987 (3) एससीसी 279** के समान निर्णय के संदर्भ का भी उल्लेख किया जा सकता है।

23. उपरोक्त न्यायिक घोषणाओं के आलोक में, इस न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1860 की धारा 25(2) की जांच की जानी है। उप-धारा (2) की पहली पंक्ति में शब्दों और आंकड़े "उप-धारा (1)" के बाद प्रयुक्त **अल्पविराम (,)** यह स्पष्ट करता है कि उप-धारा (2) के बाद के भाग को उप-धारा (1) के तहत किए गए आदेश के संबंध में पढ़ा जाना है, न कि अलग से। धारा 25 की उप-धारा (2) में प्रयुक्त शब्द **"या किसी पदाधिकारी को अब पद पर बने रहने का हकदार नहीं माना जाता है"** को अल्पविराम (,) के तुरंत बाद आने वाले शब्दों से अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है, अर्थात् किसी चुनाव को रद्द कर दिया जाता है या किसी पदाधिकारी को अब पद पर बने रहने का हकदार नहीं माना जाता है और दोनों ही स्थितियां धारा 25 की उप-धारा (1) के तहत किए गए आदेश के अनुसरण में अस्तित्व में आनी चाहिए, न कि अन्यथा।

इसलिए, भले ही प्रतिवादियों को यह लगे कि याचिकाकर्ताओं के किसी कृत्य से याचिकाकर्ता समिति/सोसायटी का कोई पदाधिकारी अब पद पर बने रहने का हकदार नहीं रह गया है, वे स्वयं, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कोई निर्णय नहीं ले सकते, न तो किसी पदाधिकारी को हटाकर और न ही उस शासी निकाय की समिति/सोसायटी को हटा सकते हैं, जो उन्होंने वर्तमान मामले में किया है।

24. स्वीकार्यतः, धारा 25 की उप-धारा (1) के तहत कोई कार्यवाही नहीं की गई थी और न ही उस प्रावधान के तहत किसी प्राधिकरण द्वारा कोई आदेश पारित किया गया था। मुझे यह भी लगता है कि भले ही अचल संपत्तियों के लेन-देन के संबंध में याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कुछ आरोप थे, उप-नियमों के खंड 38 में यह प्रावधान है कि आयोग को प्रबंधन में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा और कुप्रबंधन के उचित समाधान के प्रयोजनों के लिए आयोग मामले को मूल सोसाइटी या रजिस्ट्रार को भेजने के लिए सक्षम होगा और उनसे ऐसे अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए कहेगा जिनकी सोसाइटी में उपस्थिति सोसायटी के हित को नुकसान पहुंचा रही थी।

25. उप-नियमों में मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला, जिससे उप- रजिस्ट्रार सीधे अधिनियम की धारा 25(2) के तहत चुनाव कराने का आदेश दे सके या वह सीधे निर्वाचित निकाय को हटा सके, और न्यायालय की राय में, यदि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कुछ आरोप थे, तो आयोग मूल निकाय को मामले को संदर्भित करने के लिए सक्षम था और यदि आरोप भी मूल निकाय के खिलाफ है, तो मामले को रजिस्ट्रार को भेजा

जा सकता है। ऐसे मामले में, रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 23 या 24 के तहत प्रक्रिया शुरू कर सकता था जो सोसायटी द्वारा वित्तीय दस्तावेजों के उत्पादन के आधार पर लेखा परीक्षा करने और मामलों के कुप्रबंधन या प्रत्ययी या अन्य दायित्वों के उल्लंघन और समाज के मामलों में परिणामी जांच के लिए भी प्रावधान हैं। बेशक, वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 23 और 24 के तहत कोई कार्यवाही नहीं की गई है और न ही अधिनियम की धारा 25 (1) के तहत कोई आदेश पारित किया गया है। ऐसी किसी कार्रवाई या कार्यवाही के अभाव में, मुझे उप- रजिस्ट्रार के अधिकार क्षेत्र में नहीं लगता कि वह सीधे समिति को हटा सकता है और नए चुनाव कराने का आदेश दे सकता है। इसलिए, दिनांक 09.09.2022 के आदेश को बिना क्षेत्राधिकार के पाया जाता है।

26. जहाँ तक दिनांक 05.04.2023 के आदेश का संबंध है, मुझे उप-नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिसके तहत प्रशासक नियुक्त किया जा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोपों की प्रकृति को देखते हुए, निदेशक ने मंडल निदेशक, मेरठ को प्रशासक नियुक्त करने के लिए कार्यवाही की है। दिनांक 05.04.2023 के आदेश में उप-नियमों के खंड 38 का संदर्भ दिया गया है और उक्त खंड का अवलोकन करने के बाद भी, प्रशासक नियुक्त करने की शक्ति का अनुमान नहीं लगाया गया है।

27. उपरोक्त सभी कारणों से, दिनांक 09.09.2022 और 05.04.2023 के आक्षेपित आदेश कायम नहीं रहते हैं और एतद्वारा रद्द

किए जाते हैं। रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है।

श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी, श्री मृदुल त्रिपाठी

28. हालांकि, आक्षेपित आदेशों को अलग रखने से प्रतिवादियों को धारा 23 और 24 के तहत कार्यवाही करने या सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत किसी अन्य कार्यवाही को करने से नहीं रोका जाएगा, जैसा कि मामले के तथ्यों में वांछित हो सकता है, मूल निकाय की भूमिका को भी ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वास्तव में कौन दुरुपयोग आदि का दोषी है, यदि कोई है। यह आदेश प्रतिवादी आयोग को उप-नियम 38 के तहत प्रावधान के अनुसार संदर्भ बनाने से भी नहीं रोकेगा। यह अपेक्षा की जाती है कि यदि उपरोक्त प्रावधानों के तहत कोई कार्रवाई प्रस्तावित है, तो याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ मूल निकाय को भी प्रावधानों और पंजीकृत उप-कानूनों को ध्यान में रखते हुए सुनवाई का पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

-----

(2023) 9 ILRA 842

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-सी संख्या 18585/2023

सुधीर कुमार जैन

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

अभिनिर्धारित -

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (अब उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104) - धारा 166/167 - का निर्णय अपर कलेक्टर द्वारा नहीं किया जा सकता। केवल सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी या उप-जिलाधिकारी ही ऐसे मामलों का निर्णय करने के लिए सक्षम हैं। अपर कलेक्टर और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा अधिकार क्षेत्र के बिना पारित आदेश निरस्त किए जा सकते हैं।

चर्चा की गई वादविधि:

राकेश कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2012 (116) आरडी 69 (आल)

मुख्य कानूनी बिंदु :

सिविल विधि - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 104 - कृषि भूमि हस्तांतरण को शून्य घोषित करना - केवल उप-जिलाधिकारी या सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी को क्षेत्राधिकार है - कलेक्टर या अपर कलेक्टर को यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 के तहत कोई क्षेत्राधिकार नहीं है - क्षेत्राधिकार के बिना पारित आदेश शून्य और अमान्य हैं।

अभिनिर्धारित:

न्यायालय ने माना कि अपर कलेक्टर और अपर आयुक्त द्वारा क्रमशः 17.02.2023 और 31.03.2023 को पारित किए गए आक्षेपित आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर थे, क्योंकि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 के तहत ऐसे मामलों से निपटने के लिए सक्षम प्राधिकारी उप-मंडल अधिकारी हैं। *राकेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश* (2012) के निर्णय का हवाला दिया गया, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि अधिनियम के तहत सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी को सौंपे गए कार्य कलेक्टर या अपर कलेक्टर द्वारा नहीं किए जा सकते। तदनुसार, दोनों आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया गया और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए सक्षम प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संशोधन आवेदन दाखिल किया गया जिसको रिकार्ड पर लिया गया।

### सिविल विधिक संशोधन आवेदन संख्या कोई नहीं सन् 2023: के सम्बन्ध

1. कार्यालय को उक्त आवेदन को संख्या आवंटित करने का निर्देश दिया गया।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

3. आवेदन के समर्थन में दाखिल किये गए शपथ पत्र के कथनों के आलोक में, आवेदन को स्वीकार किया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को दिवस के दौरान रिट याचिका में आवश्यक संशोधन करने की अनुमति दी जाती है।

### रिट याचिका पर आदेश

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी एवं राज्य-प्रतिवादियों की ओर से श्री अभिषेक शुक्ला, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. पक्षों की सहमति से बिना जवाबी हलफनामे के सुनकर अंतिम रूप से निस्तारित किया जा रहा है।

3. यह याचिका निम्नलिखित राहत हेतु दाखिल की गई है:

*“1. अतिरिक्त आयुक्त, प्रशासन, द्वितीय, क्षेत्र और जिला-सहारनपुर द्वारा केस संख्या 403 सन् 2023 में पारित आदेश दिनांक 31.3.2023 (अनुलग्नक संख्या 13) एवं उप-जिला अधिकारी प्रशासन, सहारनपुर द्वारा केस संख्या 04669 सन् 2019 (अनुलग्नक संख्या 12) में पारित निर्णय और आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण*

लेख प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

2. गांव- दारा-कोट-ताला स्वाद बैरुन परगना, तहसील और जिला-सहारनपुर के में स्थित खसरा संख्या 497 एम से संबंधित 2.048 क्षेत्र में से 0.0195 हेक्टेयर (233-1/3) क्षेत्र के भूखंड का लेनदेनध्विक्रय विलेख संख्या 4578 दिनांक 24.5.1985 को आवश्यक शुल्क के भुगतान पर मान्य करने हेतु प्रतिवादियों को आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

3. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में माननीय न्यायालय को जैसा उचित एवं उपयुक्त लगे, रिट, आदेश या निर्देश की प्रकृति में जारी करें।

4. याचिकाकर्ता को याचिका की लागत को अधिनिर्णित करें "

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि श्रीमती. अरुण जैन ने 20.9.1982/2.5.1983 को प्लॉट नंबर 497 एम खरीदा। याचिकाकर्ता ने खसरा नंबर 497 एम क्षेत्रफल 2.048 हेक्टेयर में से 0.0195 हेक्टेयर का भूखंड श्रीमती अरुण जैन से खरीदा। 01.12.2015 को, इसरार खान पुत्र जमील खान ने गांव-दारा-

कोट-ताला स्वाद बैरुन परगना, तहसील और जिला-सहारनपुर में स्थित वही भूखंड संख्या 497एम (क्षेत्रफल 2.048 हेक्टेयर में से 0.0195 हेक्टेयर) 24.5.1983 को श्रीमती अरुण जैन से खरीदने का आरोप लगाया। विवादित भूखंड के संबंध में निष्पादित पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर श्रीमती अरुण जैन, याचिकाकर्ता और इसरार खान द्वारा दाखिल खारिज की कार्यवाही तहसीलदार के समक्ष शुरू की गई थी, जो केस नंबर टी201709601012276, टी201709 601012278 और टी201709 60101630 के रूप में दर्ज किए गए थे। याचिकाकर्ता ने 6.6.2017 को इसरार खान द्वारा दायर दाखिल खारिज आवेदन पर आपत्ति दर्ज की। नायब तहसीलदार ने आदेश दिनांक 24.8.2017 द्वारा विवादित भूमि पर याचिकाकर्ता का नाम उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34 की कार्यवाही में दर्ज करने का आदेश दिया। इसरार खान ने दिनांक 24.8.2017 के आदेश को वापस लेने हेतु दिनांक 8.9.2017 को एक आवेदन दायर किया, जिसपर आदेश दिनांक 30.10.2017 द्वारा अनुमति दी गई थी। दिनांक 30.10.2017 का आदेश याचिकाकर्ता को बिना किसी सूचना और अवसर के पारित किया गया था, तदनुसार, याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.10.2017 के आदेश को वापस लेने के लिए 7.12.2017 को एक आवेदन दायर किया। उप-जिलाधिकारी, सहारनपुर ने क्षेत्राधिकार के आधार पर मामले को वापस तहसीलदार के समक्ष भेज दिया। अपर जिलाधिकारी, सहारनपुर ने श्रीमती अरुण जैन और श्री रजनीश त्रिपाठी को विक्रय पत्र दिनांक



20.9.1982/2.5.1983 से संबंधित लंबित कार्यवाही के संबंध में नोटिस जारी किया, याचिकाकर्ता ने लंबित कार्यवाही में एक आवेदन दिया कि उन्हें पक्षकार बनाया जा सकता है और कार्यवाही का विरोध करने का अवसर दिया जा सकता है। अपर कलेक्टर, सहारनपुर ने आदेश दिनांक 17.2.2023 द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्ति को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 17.2.2023 के आदेश को पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती दी, जिसे अतिरिक्त आयुक्त ने दिनांक 31.3.2023 के आदेश के माध्यम से सुना और खारिज कर दिया, इसलिए यह रिट याचिका है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि विवादित आदेश अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है। उन्होंने आगे कहा कि अपर कलेक्टर को यू.पी.जेड.ए. की धारा 166/167 एवं एल.आर. अधिनियम अब धारा 104 उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 के तहत कार्यवाही में आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उन्होंने रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के **2012 (116) आर.डी.69 (राकेश कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य) में 28.2.2012** को दिए गए फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें यह माना गया है कि सहायक कलेक्टर प्रथम क्लास अधिनियम की धारा 166 के तहत कृषि भूमि के किसी भी लेनदेन को अमान्य करने का निर्णय लेने के लिए सक्षम प्राधिकारी है, यदि यह अधिनियम की धारा 154 और 157-ए या फिर अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन है। आगे यह माना गया कि कलेक्टर या अपर कलेक्टर को यू.पी.जेड.ए

एवं एल.आर. की धारा 166/167 अब उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 के तहत कार्यवाही में आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि इस न्यायालय ने **राकेश कुमार (उपरोक्त)** के मामले में यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 166/167 अब उ.प्र. भूमि राजस्व संहिता की धारा 104 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के विवाद का निर्णय करते समय यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. की धारा 3(4) के प्रावधानों एवं उ.प्र. भूमि राजस्व संहिता की धारा 14, 14-ए एवं 15 के प्रावधानों पर भी विचार किया था। उन्होंने आगे कहा कि **राकेश कुमार (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून के अनुपात को देखते हुए, विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। उन्होंने इस मुद्दे की योग्यता पर भी तर्क आगे बढ़ाया ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि भूमि को राज्य में निहित करने वाला आदेश अवैध है।

6. दूसरी ओर, राज्य-प्रतिवादियों के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील श्री अभिषेक शुक्ला ने कहा कि लेनदेन यूपी राजस्व संहिता, 2006 के तहत अनुसार शून्य है, परन्तु क्षेत्राधिकार के संबंध में श्री अभिषेक शुक्ला, अ.मु.स्थ.अधि. इस न्यायालय द्वारा **राकेश कुमार (उपरोक्त)** में निर्धारित अनुपात पर विवाद नहीं किया गया। उन्होंने आगे कहा कि अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर, विवाद को नए सिरे से सुनने और निर्णय लेने के लिए मामले को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष वापस भेजा जा सकता है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है

8. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि अपर जिलाधिकारी, सहारनपुर ने यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर की धारा 166/167 अब उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 के तहत कार्यवाही करते हुए विवादित भूमि को राज्य सरकार में निहित करने का आदेश पारित किया है। .

9. रिट याचिका में शामिल विवाद की मूल्यांकन करने के लिए, अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पारित दिनांक 17.2.2023 के आक्षेपित निर्णय के प्रासंगिक भाग का अवलोकन प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

“आदेश पत्रक

न्यायालय: अपर जिलाधिकारी, प्रशासन

मण्डल: सहारनपुर, जनपद: सहारनपुर, तहसील:

सहारनपुर

वाद संख्या:- 04669/2019

कंप्यूटरीकृत वाद संख्या:-

D201909600004669

सरकार बनाम अरूण जैन

अंतर्गत धारा: 104/105, अधिनियम:- उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता - 2006

जिला शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) सहारनपुर एवं प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता की बहस को सुना गया। पत्रावली का सम्यक

अवलोकन किया गया। पत्रावली के अवलोकन एवं परिशीलन से विदित है कि उप जिलाधिकारी, सदर, सहारनपुर की जांचाख्या दिनांक 22.11.2019 में स्पष्ट किया गया है कि ग्राम दराकोटतला स्वाद बैरून परगना व तहसील व जिला सहारनपुर में स्थित ख0नं0 497 म क्षेत्रफल 2.048 हे0 में से 0.0195 हे0 के पंजीकृत लेखपत्र दिनांक 20.09.1982/02.05.1983 के निष्पादन में धारा 168 ए उ0प्र0ज0वि0 अधिनियम का उलंघन किया गया है। प्रतिवादीगण की ओर से ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता हो कि प्रश्नगत लेखपत्र दिनांक 26.05.2015 के निष्पादन में धारा 168 ए उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन अधिनियम का उलंघन न हुआ हो। जहां तक प्रतिवादी पक्ष का कथन है कि धारा 104/105 उ0प्र0 राजस्व संहिता के अन्तर्गत कार्यवाही पोषणीय नहीं है, उचित नहीं है। उक्त वाद उ0प्र0 राजस्व, 2006 के प्रभावी होने के उपरान्त प्रस्तुत होने के कारण धारा 231 उ0प्र0 राजस्व संहिता में दिए गए प्राविधानों के अनुरूप उ0प्र0 राजस्व संहिता की धारा 104/105 के अंतर्गत वाद की कार्यवाही की गई है। इस प्रकार प्रश्नगत अन्तरण शून्य है। उ0प्र0ज0वि0 अधिनियम व्यवस्था की धारा 168 ए का उलंघन होने के

कारण यह भूमि अन्तरण के दिनांक से सब भार आदि से मुक्त होकर राज्य पक्ष में निहित मानी जाएगी। अतः वाद ग्रस्त भूमि ख0नं0 497 म क्षेत्रफल 2.048 हे0 में से 0.0195 हे0 के पंजीकृत लेखपत्र दिनांक 20.09.1982/02.05.1983 के निष्पादन से विपक्षीगण का नाम खारिज कर सम्पत्ति राज्य सरकार दर्ज किया जाकर राज्य सरकार के पक्ष में कब्जा दिया जाना विधिनुकूल एवं न्यायोचित है।

#### आदेश

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर भूमि 497 में क्षेत्रफल 2.048 हे0 में से 0.0195 हे0 स्थित ग्राम दराकोटला स्वाद बैरून परगना व तहसील व जिला सहारनपुर से विपक्षीगण के नाम की प्रविष्टि को निरस्त करते हुए इस भूमि को राज्य सरकार के नाम दर्ज किया जाए तथा भूमि का राज्य सरकार के पक्ष में दखल प्राप्त किया जाए। आदेश की प्रतिलिपि उप जिलाधिकारी, नकुड, सहारनपुर को अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए। पत्रावली वाद आपूर्ति अभिलेखागार में संचित की जाए।

दिनांक - फरवरी, 17, 2023

(डॉ0 अर्चना द्विवेदी)  
अपर कलेक्टर (प्रशासन)  
सहारनपुर”

10. **राकेश कुमार (उपरोक्त)** में दिए गए फैसले के पैराग्राफ संख्या 21 से 25 अवलोकन के लिए प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:

“21. अधिनियम की धारा 3(4) और उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 14, 14-ए और 15 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कलेक्टर में अपर कलेक्टर के साथ-साथ सहायक कलेक्टर भी शामिल हैं और वह अधिनियम या लागू किसी अन्य कानून के तहत उसे प्रदत्त शक्तियों और कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अधिकृत है। उपरोक्त अधिनियम कलेक्टर को अधिनियम की धारा 154 या 157-ए का उल्लंघन होने पर अधिनियम की धारा 166 के तहत लेनदेन को शून्य घोषित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है। ऐसी शक्ति केवल सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी में निहित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा कलेक्टर के सभी या किसी भी कार्य का निर्वहन करने के लिए अधिकृत किया जा सकता है, लेकिन इसके साथ उसको उलटने की अनुमति नहीं है। इसमें सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी को सौंपे गए कर्तव्य और कार्य कानून के तहत कलेक्टर द्वारा नहीं किये जा

सकते हैं, भले ही वह सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी का नियंत्रण प्राधिकारी हो। वह सहायक कलेक्टरों को सौंपे गए कार्यों को संभालने के लिए अधिकृत नहीं है। इस प्रकार, कलेक्टर से उपरोक्त दो अधिनियमों के तहत सहायक कलेक्टरों को विशेष रूप से सौंपे गए कार्यों का निर्वहन नहीं किया जा सकता है, जिसमें स्थानांतरण को शून्य घोषित करना भी शामिल है।

22. उपरोक्त के अलावा प्रारंभिक आदेश जिसे अतिरिक्त आयुक्त के समक्ष अपील में चुनौती दी गई थी, सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी द्वारा पारित किया गया था और इसलिए, अपील में आदेश को रद्द किए जाने पर, मामले को सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी के पास वापस भेज दिया जाना चाहिए था।

23. तदनुसार, मैं यह मानते हुए प्रश्न का उत्तर देता हूँ कि सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी अधिनियम की धारा 166 के तहत कृषि भूमि के किसी भी लेनदेन को शून्य घोषित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी है, यदि वह अधिनियम की धारा 154 और

**157-ए या फिर अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान का उल्लंघन है।**

24. ऐसी स्थिति में, अपर आयुक्त ने मामले को कलेक्टर को भेजकर कानूनी त्रुटि की।

25. रिट याचिका को तदनुसार स्वीकार किया जाता है और अतिरिक्त आयुक्त के दिनांक 27.8.2010 के आदेश को इस हद तक संशोधित किया जाता है कि मामला निर्देशानुसार कलेक्टर के स्थान पर सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी को भेज दिया जाए।”

11. 30प्र0 राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 103 का अवलोकन भी प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

“(1) यदि किसी भूमिधर या आसामी ने ऐसी जोत या उसके हिस्से का अपना हित किसी को स्थानांतरित कर दिया है, जो धारा 104 के तहत शून्य है, तो लेखपाल तुरंत उप-खण्ड अधिकारी को नियम 97 (1) में निर्दिष्ट विवरण उल्लिखित करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(2) उपनियम (1) के तहत लेखपाल की रिपोर्ट प्राप्त होने

पर, या अन्यथा प्राप्त जानकारी पर, उप-खण्ड अधिकारी स्थानांतरण के पक्षों को कारण बताने के लिए बुलाएगा कि प्रश्नगत भूमि के संबंध में क्यों धारा 104 सःपठित धारा105 के तहत कार्रवाई न की जाए।

(3) पक्षों को सुनने और जो आवश्यक समझी जाए, ऐसी पूछताछ करने के बाद यदि उप-खण्ड अधिकारी संतुष्ट है कि प्रश्नगत स्थानांतरण धारा 104 के तहत शून्य है, तो वह घोषणा करेगा कि

-

(ए) ऐसे स्थानांतरण की विषय वस्तु राज्य सरकार में निहित होगी ,

(बी) जोत या भाग पर मौजूद पेड़, फसलें, कुएं और अन्य सुधार सभी बाधाओं से मुक्त राज्य सरकार में निहित होंगे और

(सी) ऐसे हस्तांतरण की तारीख से हस्तांतरणकर्ता के साथ-साथ हस्तांतरिती के हित समाप्त हो जाएंगे:

(4) उपखण्ड अधिकारी निर्देश देगा कि राजस्व अभिलेखों को तदनुसार ठीक किये जाए और जहां संहिता के प्रावधानों के उल्लंघन में हस्तांतरण जोत के

एक हिस्से से संबंधित है, वह अंतरणकर्ता के बचे हुए हिस्से के संबंध में इन नियमों के अध्याय ग् के अनुसार भू-राजस्व भी तय करेगा। ।

(5) इस नियम के तहत उपखण्ड अधिकारी के प्रत्येक आदेश को आवश्यक कार्यवाही हेतु समिति को पृष्ठांकित किया जायेगा।

(6) जहां धारा 105 में निर्दिष्ट कोई संपत्ति राज्य सरकार में निहित हो गई है, कलेक्टर ऐसी संपत्ति के अनधिकृत कब्जे वाले किसी भी व्यक्ति को बेदखल कर सकता है और संबंधित ग्राम पंचायत को उसका कब्जा दे सकता है।

12. उ.प्र. राजस्व संहिता नियमावली 2016 के नियम 103, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है और साथ ही **राकेश कुमार (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून का अनुपात, स्पष्ट रूप से बताता है कि उप-खण्ड अधिकारी उ.प्र राजस्व संहिता नियम 2016 के नियम 104 के तहत भूमि को राज्य सरकार में निहित करने से संबंधित मुद्दे की कार्यवाही में आदेश पारित करेंगे। यह माना जाता है कि, इस मामले में, यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. की धारा 166/167 अब उ.प्र राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 के तहत कार्यवाही कर भूमि को राज्य /गांव सभा में निहित करने हेतु आदेश दिनांक 17.2.2023 अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पारित

किया गया है, जो कानून की नजर में कायम नहीं रह सकता है।

13. पुनरीक्षण न्यायालय भी क्षेत्राधिकार के बिंदु पर विचार करने में विफल रहा है, इस प्रकार, पुनरीक्षण आदेश भी कानून की त्रुटि से ग्रस्त है।

14. संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त आयुक्त, प्रशासन, द्वितीय, क्षेत्र व जिला-सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.3.2023 और अपर-जिला अधिकारी प्रशासन, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.2.2023 को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और ये हैं रद्ध जाने योग्य हैं और इसे रद्ध किया जाता है।

15. रिट याचिका *आंशिक रूप से स्वीकार* की जाती है। याचिकाकर्ता एवं विवाद के अन्य पक्षों को कानून के अनुसार सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद, निर्णय के मुख्य भाग में की गई टिप्पणी के आलोक में सक्षम प्राधिकारी द्वारा केस संख्या 04669 सन् 2019, कम्प्यूटरीकृत केस संख्या D201909600004669 के नए निर्णय के लिए मामला वापस भेजा जाता है।

-----

**(2023) 9 ILRA 848**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय**

**रिट-सी संख्या 18937 वर्ष 2023**

**विपिन कुमार**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री अरुण कुमार श्रीवास्तव, प्रियंका श्रीवास्तव

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव

**अभिनिर्धारित:**

**सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908**

- धारा 92 - जहाँ किसी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास के संबंध में धारा 92 सीपीसी के अंतर्गत कोई सिविल वाद सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित है, वहाँ उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत पूर्व संक्षिप्त आदेश के क्रियान्वयन हेतु कोई भी निर्देश अनुज्ञेय नहीं है। किसी धार्मिक मंदिर के प्रशासन एवं प्रबंधन के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत, धारा 92 सीपीसी के अनुसार सिविल न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। सिविल वाद के लंबित रहने के दौरान तहसीलदार के ऐसे आदेश के क्रियान्वयन हेतु प्रस्तुत अभ्यावेदन विधिक रूप से मान्य नहीं है।

**मुख्य शब्द :**

सार्वजनिक न्यास - धार्मिक मंदिर - धारा 92 सीपीसी - संक्षिप्त कार्यवाही - तहसीलदार का आदेश - सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र - परमादेश - मंदिर का प्रबंधन - म्यूटेशन

निर्णय:

2. तत्काल याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है:

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

**सिविल विधि - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 92** - तहसीलदार के दिनांक 09.06.1993 के आदेश को लागू करने और मंदिर की संपत्ति से अनाधिकृत कब्जाधारियों को बेदखल करने का निर्देश देने हेतु परमादेश की मांग करने वाली याचिका, धारा 92 सीपीसी के तहत लंबित सिविल मुकदमे के मददेनजर खारिज कर दी गई। न्यायालय ने कहा कि ऐसे मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, ट्रस्ट की संपत्ति के प्रशासन, प्रबंधन और कब्जे से संबंधित सभी मुद्दों को सिविल न्यायालय में ही उठाया जाना चाहिए। ऐसे कार्यान्वयन के लिए उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत दाखिल-खारिज की कार्यवाही पर निर्भर रहना अनुचित माना गया।

**रिट याचिका खारिज।**

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार श्रीवास्तव, राज्य-उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला और प्रतिवादी संख्या 4- गांव सभा के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव को सुना गया।

"i. दिनांक 1.4.2023 के अभ्यावेदन पर उचित कार्रवाई करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादी प्राधिकारियों को आदेश दिया जाए कि वे भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत, 1993 के मुकदमा संख्या 213/90 (विजय प्राल बनाम माया देवी) में तहसीलदार द्वारा पारित आदेश दिनांक 9.6.1993 का अनुपालन सुनिश्चित करें और ठाकुर

रामचन्द्रजी महाराज विराजमान मंदिर, पचोखरा, तहसील-टुण्डला, जिला-फिरोजाबाद

मंदिर का प्रबंधन एवं नियंत्रण सौंपें।

iii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादी प्राधिकारियों को आदेश दिया जाए कि वे प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को ठाकुर रामचन्द्रजी महाराज विराजमान मंदिर के अनधिकृत कब्जे से बेदखल करें और मंदिर का प्रबंधन ग्राम पंचायत, पचोखरा, तहसील-टुण्डला, जिला-फिरोजाबाद को सौंप दें।

iv. कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय वर्तमान

मामले की परिस्थितियों के तहत उपयुक्त और उचित समझे।

v. याचिकाकर्ता के पक्ष में याचिका की लागत का फैसला करें।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि तहसीलदार ने आदेश दिनांक 9.6.1993 के माध्यम से उत्परिवर्तन मामले का फैसला करते हुए आदेश दिया कि पार्टियों को सरवरकर की नियुक्ति के लिए सक्षम न्यायालय से संपर्क करना चाहिए और साथ ही विवादित मंदिर के संबंध में कुछ व्यवस्थाएं भी की। उन्होंने आगे कहा कि बाद में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत सिविल वाद दायर किया गया और जिसमें दिनांक 15.4.2014 को निर्णय द्वारा डिक्ली दी गई। उन्होंने आगे कहा कि सिविल वाद की डिक्ली को अपील द्वारा चुनौती दी गई और अपीलीय न्यायालय ने अपील की अनुमति देते हुए सिविल वाद में दिनांक 15.4.2014 को पारित निर्णय व डिक्ली को रद्द किया और सीपीसी की धारा 92 के तहत के मुकदमा संख्या 1/2012 को उसके मूल नंबर पर बहाल कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि चूंकि के सिविल मुकदमा संख्या 1/2012 को उसके मूल नंबर पर बहाल कर दिया गया है, इसलिए तहसीलदार द्वारा दिनांक 9.6.1993 को पारित आदेश को लागू किया जाए। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-अधिकारियों के समक्ष इस आशय का अभ्यावेदन दायर किया है, जो लंबित है, इसलिए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर कानून के अनुसार निर्णय लेने के लिए आवश्यक निर्देश जारी किया जाना चाहिए।

4. दूसरी ओर, राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला ने तर्क दिया चूंकि याचिकाकर्ता ने तत्काल याचिका में दावा किया है सी.पी.सी. की धारा 92 के तहत मुकदमा सिविल कोर्ट के समक्ष लंबित है, ऐसे में याचिकाकर्ता को उचित राहत के लिए सिविल कोर्ट से संपर्क करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि सी.पी.सी. की धारा 92 के तहत मुकदमे के लंबित रहने के दौरान सी.पी.सी. की धारा 92(1)(सीसी) तहत राहत देने का प्रावधान है, इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा दायर अभिवेदन को कानून सम्मत नहीं माना जा सकता।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

6. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि सी.पी.सी. की धारा 92 के तहत मुकदमा दायर किया गया है जो सिविल न्यायालय में विचाराधीन है।

7. विवाद को समझने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 का अवलोकन प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है:-

**"92. लोक पूर्त कार्य - (1) पूर्त या धार्मिक प्रकृति के लोक प्रयोजनों के लिए सृष्ट किसी अभिव्यक्त या आन्वयिक न्यास के किसी अभिकथित भंग के मामले में, या जहां ऐसे किसी न्यास के प्रशासन के लिए न्यायालय का निदेश**



आवश्यक समझा जाता है वहां महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले ऐसे दो या अधिक व्यक्ति, जिन्होंने अन्य न्यायालय की इजाजत] अभिप्राप्त कर ली है, ऐसा वाद, चाहे वह प्रतिविरोधात्मक हो या नहीं, आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किए गए किसी अन्य न्यायालय में जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर न्यास की सम्पूर्ण विषय-वस्तु या उसका कोई भाग स्थित है, निम्नलिखित डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए संस्थित कर सकेंगे-

(क) किसी न्यासी को हटाने की डिक्री;

(ख) नए न्यासी को नियुक्त करने की डिक्री;

(ग) न्यासी में किसी सम्पत्ति को निहित करने की डिक्री; [(गग) ऐसे न्यासी को जो हटाया जा चुका है या ऐसे व्यक्ति को जो न्यासी नहीं रह गया है, अपने कब्जे में की किसी न्यास- सम्पत्ति का कब्जा उस व्यक्ति को जो उस सम्पत्ति के कब्जे का

हकदार है, परिदत्त करने का निर्देश देने की डिक्री:]

(घ) लेखाओं और जांचों को निर्दिष्ट करने की डिक्री;

(ङ) यह घोषणा करने की डिक्री कि न्यास- सम्पत्ति का या उसमें के हित का कौन सा अनुपात न्यास के किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए आबंटित होगा;

(च) सम्पूर्ण न्यास- सम्पत्ति या उसके किसी भाग का पट्टे पर उठाया जाना, विक्रय किया जाना, बन्धक किया जाना या विनिमय किया जाना प्राधिकृत करने की डिक्री;

(छ) स्कीम स्थिर करने की डिक्री; अथवा

(ज) ऐसा अतिरिक्त या अन्य अनुतोष अनुदत्त करने की डिक्री जो मामले की प्रकृति से अपेक्षित हो ।

(2) उसके सिवाय जैसा धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 (1863 का 20 ) द्वारा [या [उन राज्यक्षेत्रों में, '[जो 1 नवम्बर, 1956 के ठीक पूर्व भाग ख राज्यों में समाविष्ट] थे

प्रवृत्त तत्समान किसी विधि द्वारा] उपबन्धित है, उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अनुतोषों में से किसी के लिए दावा करने वाला कोई भी वाद ऐसे किसी न्यास के सम्बन्ध में जो उसमें निर्दिष्ट है, उस उपधारा के उपबन्धों के अनुरूप ही संस्थित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

[(3) न्यायालय, पूर्त या धार्मिक प्रकृति के लोक प्रयोजनों के लिए सृष्ट किसी अभिव्यक्त या आन्वयिक न्यास के मूल प्रयोजनों में परिवर्तन कर सकेगा और ऐसे न्यास की सम्पत्ति या आय को अथवा उसके किसी भाग को निम्नलिखित में से एक या अधिक परिस्थितियों में समान उद्देश्य के लिए उपयोजित कर सकेगा, अर्थात् :-

(क) जहां न्यास के मूल प्रयोजन पूर्णतः या भागतः, -

(i) जहां तक हो सके पूरे हो गए हैं, अथवा

(ii) क्रियान्वित किए ही नहीं जा सकते हैं या न्यास को सृष्ट करने वाले लिखत में दिए गए निदेशों के अनुसार या जहां ऐसी कोई लिखत नहीं है वहां, न्यास की भावना के अनुसार क्रियान्वित नहीं किए जा सकते हैं, अथवा

(ख) जहां न्यास के मूल प्रयोजनों में, न्यास के आधार पर उपलब्ध सम्पत्ति के केवल एक भाग के उपयोग के लिए ही उपबन्ध है; अथवा

(ग) जहां न्यास के आधार पर उपलब्ध सम्पत्ति और समान प्रयोजन के लिए उपयोजित की जा सकने वाली अन्य सम्पत्ति का न्यास की भावना और सामान्य प्रयोजनों के लिए उसके उपयोजन को ध्यान में रखते हुए, किसी अन्य प्रयोजन के साथ-साथ अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है और वह उस उद्देश्य से किसी अन्य प्रयोजन के लिए उपयुक्त रीति से उपयोजित की जा सकती है; अथवा

(घ) जहां मूल प्रयोजन पूर्णतः या भागतः, किसी ऐसे क्षेत्र के बारे में बनाए गए थे जो ऐसे प्रयोजनों के लिए उस समय एक इकाई था किन्तु अब नहीं रह गया है; अथवा

(ङ) जहां-

(i) मूल प्रयोजनों को बनाए जाने के पश्चात्, पूर्णतः या भागतः, अन्य साधनों से

पर्याप्त रूप से व्यवस्था कर दी है; अथवा

मौजा० पचोखरा  
नकल आदेश दिनांक 9-6-93

(ii) मूल प्रयोजन बनाए जाने के पश्चात्, पूर्णतः या भागतः, समाज के लिए अनुपयोगी या अपहानिकर होने के कारण समाप्त हो गए हैं; अथवा

(iii) मूल प्रयोजन बनाए जाने के पश्चात् पूर्णतः या भागतः, विधि के अनुसार पूर्त नहीं रह गए हैं; अथवा

(iv) मूल प्रयोजन बनाए जाने के पश्चात्, पूर्णतः या भागतः, न्यास की भावना को ध्यान में रखते हुए, न्यास के आधार पर उपलब्ध सम्पत्ति के उपयुक्त और प्रभावी उपयोग के लिए किसी अन्य रीति से उपबन्ध नहीं करते हैं  
।]

8. उ.प्र. भू-राजस्व संहिता की धारा 34 के तहत कार्यवाही में दिनांक 9.6.1993 को तहसीलदार द्वारा पारित आदेश का भी अवलोकन आवश्यक है जो इस प्रकार है:-

"न्यायालय तहसीलदार, तहसील एवं जिला  
फिरोजाबाद, शिविर न्यायालय टूंडला  
रिट याचिका क्रमांक 213/90 सन् 1993 ई  
विजयपाल बनाम मायादेवी  
धारा-34 एल० आर एक्ट

यह वाद विजयपालदास बाबा रामबीर वास्ते सर्वराही मायादेवी बाई निवासी अधैत पचोखरा तहसील फिरोजाबाद व बाबा बहोरीदास व रघुनाथदास निवासी श्रीनगर पचोखरा व स्वामी विवेकानन्द महाराज द्वारा पृथक पृथक दाखिल खारिज की रिपोर्ट पर प्रारम्भ हुआ है सभी में विधिवत इशतहार जारी किया गया है जो वाद तामील वापस आया है। विजयपाल दास की दाखिल खारिज रिपोर्ट में बाबा बहोरीदास व रघुनाथदास व जगतानन्द जी महाराज द्वारा अपनी आपत्ति प्रस्तुत की गई है विजयपालदास द्वारा किसी में कोई आपत्ति नहीं दी गयी है विजयपालदास द्वारा मौजा पचौखरा के खाता सं० 170 खसरा सं०- 1251 रकबा 3-4-1 पर मायादेवी बाई की मृत्यु उपरान्त फौती के आधार पर नामान्तरण चाहा गया है तथा बहोरीदास व रघुनादास द्वारा चेला के आधार पर अपना अपना नाम अंकित कराने की प्रार्थना का मौका दिया गया है साक्ष्य में श्रीराम व ज्वालासिंह व भगवानसिंह व विजयपाल स्वयं ने अपने ब्यान अंकित कराये हैं श्रीराम गवाह ने अपने ब्यान में विजयपाल को गांव चौगान का बताया है तथा खाते पर अंकित पूर्व सरबराकार द्वारिका प्रसाद को गांव चौगान का बताते हुए विजयपाल का बाबा बताया है तथा यह भी कहा है कि यह जमीन विजयपाल को मिलनी चाहिए ज्वालाप्रसाद गवाह ने बहोरीदास को बाबा बताया है तथा विजयपाल को ग्रहस्थ जीवन यापन करते हुए कहा है कि भगवानसिंह ने कहा है कि मन्दिर से लगनी चाहिए द्वारिकाप्रसाद का कोई चेला नहीं था अन्य

गवाहों ने भी भूमि को मन्दिर से लगे रहने का मत प्रकट किया है विजयपाल दास ने भी यही स्वीकार किया कि जमीन मन्दिर की ही रहे मैं अपने नाम नहीं चाहता यह भूमि मेरे बाबा श्री द्वारिका प्रसाद द्वारा खरीद कर मन्दिर के हित में लगाई गई थी। मैंने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन किया है विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क सुने हैं आपत्तिकर्ता के अधिवक्ता ने कहा है कि मन्दिर की भूमि ग्राम सभा में दे दी जाये और ग्राम सभा उसकी देखभाल कर वादी पक्ष के अधिवक्ता ने राजस्व परिषद की निगरानी सं० 130/82-83 महन्त सदाशिव भारती बनाम भूपेन्द्रसिंह की निगरानी का छायाप्रति प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया है कि जब तक पूर्व सरबराकार द्वारा लिखित रूप में कोई सरबराकार नियुक्ति न किया गया हो तब ऐसी दशा में सरबराकार की नियुक्ति सिविल न्यायालय द्वारा ही तय की जायेगी। न्यायालय माल को सरबराकार तय करने का अधिकार नहीं है। दोनों पक्षों के तर्कों के आधार पर मैं निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि पत्रावली में ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि पूर्व सरबराकार द्वारा कोई सरबराकार या चेला नियुक्ति किया गया है ऐसी दशा में यह मामला इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर है जब तक सक्षम न्यायालय से सरबराकार नियुक्ति नहीं हो जाता तब तक खातेदार श्रीठाकुर रामचन्द्र जी महाराज ब्रजमान मन्दिर बदस्तूर खाता कायत रहेगा तथा मन्दिर की देखभाल एवं भूमि की व्यवस्था हेतु आदेश दिया जाता है कि अध्यक्ष ग्राम सभा पचोखरा अपने अपने स्तर से मन्दिर की पूजा अर्चना हेतु एवं भूमि की देखभाल अपने स्तर से करेंगे साथ ही उन्हें यह

भी निर्देशित किया जाता है कि मन्दिर से लगी भूमि से होने वाली आय का ब्यौरा विधिक रूप से रखेंगे। जब तक किसी सक्षम अदालत द्वारा सरबराकार बनने का अधिकार प्राप्त नहीं नहीं जाता सभी पक्ष सरबराकार या प्रबन्धक तय कराने के लिए सक्षम न्यायालय में वाद प्रस्तुत करे नामान्तरण प्रार्थना पत्र बतौर सरबराकार एवं विरासतन विजयपाल रस, बहोरोदास, जगतानन्द निरस्त किये जाते हैं। पत्रावली वाद आवश्यक कार्यवाही दखिल दफ्तर की जायें।

एस0डी0

तहसीलदार”

9. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत मुकदमे के लंबित होने के तथ्य के साथ-साथ सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत पारित तहसीलदार के दिनांक 9.6.1993 के आदेश के कार्यान्वयन का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत मुकदमे के लंबित रहने के दौरान संपत्ति के रखरखाव के लिए संपूर्ण प्रक्रिया प्रदान की गई है।

10. चूंकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत मुकदमा लंबित है, इसलिए बजाए उ0प्र0 भू-राजस्व की धारा 34 के अन्तर्गत संक्षिप्त कार्यवाही में पारित निर्देश के क्रियान्वयन के, सी.पी.सी. की धारा 92 के तहत लंबित मुकदमे में उचित आवेदन दायर किया जा सकता है।

11. मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. *तदनुसार*, रिट याचिका *खारिज* की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 852

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-सी संख्या 18993 वर्ष 2023

महावीर एवं अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री हरीश यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

अभिनिर्धारित:

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- धारा 152 - धारा 152 सीपीसी के तहत आवेदन, दिनांक 07.04.1993 के निहित आदेश में आकस्मिक चूक को सुधारने की मांग - पहले के विक्रय विलेख को सिविल न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया गया - कलेक्टर ने रिकॉल आवेदन को पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया - कलेक्टर यूपीजेडए और एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 341 और

यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 214 के मददेनजर धारा 152 सीपीसी की प्रयोज्यता का मूल्यांकन करने में विफल रहे - *सूरजभान शर्मा* और *शर्मा सिंह* के मामले में निर्णय बाध्यकारी - सिविल वाद संख्या 18/2015 में फैसला सुनाया गया; राज्य उसमें पक्षकार थे - आक्षेपित आदेश स्थिर नहीं - आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय करने के लिए मामला कलेक्टर को भेजा गया।

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

चर्चा की गई वादविधि:

1. *सूरजभान शर्मा* बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 58827/2011, 21.10.2011 को निर्णीत

2. *शर्मा सिंह* अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 29898/2014, 28.05.2014 को निर्णीत

3. एमएस अहलावत बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 1 एससीसी 278

4. जय नारायण बनाम छेदालाल, एआईआर 1960 सभी 385

संदर्भित महत्वपूर्ण प्रावधान :

1. धारा 152, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

2. धारा 214, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006

3. धारा 341, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई - दिनांक 15.04.2023 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया - मामला गौतम बुद्ध नगर के कलेक्टर को वापस भेजा गया ताकि वे 3 महीने के भीतर गुण-दोष के आधार पर धारा 152 सीपीसी के तहत आवेदन पर निर्णय ले सकें - अंतिम निर्णय से पहले इच्छुक पक्षों को नोटिस जारी किया जाए।

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. श्रीमान हरीश यादव, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और श्रीमान अभिषेक शुक्ला, राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, को सुना।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से, तत्काल याचिका को प्रतिवादी का हलफनामा आमंत्रित किए बिना अंतिम रूप से सुना और निपटाया गया।

3. तत्काल याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है:

i) प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित 15.4.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के

लिए और आगे यह प्रार्थना की जाती है कि 09.05.2019 को याचिकाकर्ताओं द्वारा इस माननीय न्यायालय के सुराजभान शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में दिये गए निर्णय के तहत धारा 152 सी.पी.सी. के तहत दायर आवेदन को अनुमति दी जाए।

ii) प्रतिवादी को याचिकाकर्ताओं के प्रश्नगत भूमि पर शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने और आगे भूमि की स्थिति में परिवर्तन न करने या उसे किसी अन्य एजेंसी को हस्तांतरित न करने के लिए निर्देशित और निर्देशित करने के लिए प्रकृति में परमादेश के स्वरूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए।

iii) ऐसी कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जैसा कि यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में

न्यायपूर्ण और उचित  
समझे।

iv) याचिकाकर्ता को  
याचिका के खर्च  
अधिनिर्णीत करें।

4.मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि कुडिया, हरशरण और किरण, गिरोही उर्फ गिरबर के पुत्र, खसरा संख्या 197, क्षेत्रफल 6-8-0, ग्राम-सोरखा, तहसील- दादरी, जिला- गौतम बुद्ध नगर के भूमिधर थे। किरण पुत्र गिरोही ने 3.6.1966 के पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से अपना 1/3 हिस्सा याचिकाकर्ता संख्या 1, 2 और 3 के पिता, क्रमशः महावीर, सुरेश और जतन के पक्ष में बेच दिया था, साथ ही याचिकाकर्ता संख्या 5 और 6 के पिता को भी, जिनका बाद में निधन हो गया। याचिकाकर्ताओं के पिता या याचिकाकर्ताओं ने विवादित भूमि के संबंध में प्रगतिशील सहकारी समिति के पक्ष में कभी भी किसी बिक्री विलेख पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। याचिकाकर्ताओं को पता चला कि विवादित भूखंड को उत्तर प्रदेश जमीन सुधार अधिनियम की धारा 154 (2) / 167 (2) के तहत कार्यवाही में राज्य में निहित कर दिया गया है। जगमल @ जगराम, जो विवादित भूखंड के सह-धारक थे, ने कभी भी विवादित भूखंड के अपने हिस्से को किसी भी समय नहीं बेचा, लेकिन 5.1.1983 / 22.1.1983 दिनांकित एक नकली पंजीकृत बिक्री विलेख पेश करके कथित तौर पर प्रगतिशील सहकारी समिति के पक्ष में अपने 5.1.1983 / 22.1.1983 दिनांकित बिक्री विलेख के माध्यम से 1/9

हिस्से के लिए निष्पादित किया गया था। याचिकाकर्ता ने बिक्री विलेख दिनांक 5.1.1983 / 22.1.1983 को शून्य और शून्य घोषित करने के लिए O.S. No.18 of 2015 नामक एक दीवानी वाद दायर किया। उपरोक्त वाद में, उत्तर प्रदेश राज्य / कलेक्टर को प्रतिवादी संख्या 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया था। सिविल कोर्ट ने 8.10.2018 दिनांकित निर्णय द्वारा वाद को डिक्री पारित किया और 5.1.1983 / 22.1.1983 दिनांकित बिक्री विलेख को रद्द कर दिया। 8.10.2018 दिनांकित निर्णय और डिक्री की अंतिमता के बाद, तदनुसार, याचिकाकर्ताओं ने 7.4.1993 के आदेश के विरुद्ध 9.5.2019 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत आवेदन संख्या 7/2019 दायर की। प्रतिवादी संख्या 2 ने याचिकाकर्ताओं द्वारा सी.आर.पी.सी. की धारा 152 के तहत अपने आवेदन में स्थापित किए गए मामले पर विचार किए बिना, दिनांक 15.04.2023 के आदेश द्वारा इसे बनाए नहीं रखने योग्य के रूप में खारिज कर दिया है, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 15.04.2023 के आदेश को निरस्त करने और सी.पी.सी. की धारा 152 के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर दिनांक 09.05.2019 के आवेदन को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 58827/2011 (सूरजभान शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दिनांक 21.10.2011 को निर्णयित और रिट-सी संख्या 29898/2014 (शर्मा सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) दिनांक 28.05.2014 को निर्णयित के निर्णय के आलोक में स्वीकार करने के लिए यह रिट याचिका दायर की गई है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं के पिता / याचिकाकर्ताओं ने प्रश्नगत भूखंड के संबंध में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया है, इस प्रकार, संपत्ति राज्य सरकार में निहित नहीं हो सकती है। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि 5.1.1983 को विचाराधीन भूखंड के संबंध में निष्पादित किए जाने वाले कथित बिक्री विलेख को सिविल सूट संख्या 18/2015 में सिविल न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कलेक्टर, गौतमबुद्ध नगर, पक्षकार था, इसलिए, 7.4.1993 के आदेश के विरुद्ध सी.पी.सी. की धारा 152 के तहत दायर याचिकाकर्ताओं का आवेदन खारिज करना पूरी तरह से गैरकानूनी है। उन्होंने इसके बाद प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 2 ने विवादित आदेश के माध्यम से यह माना है कि सिविल सूट में पारित निर्णय लागू नहीं होगा क्योंकि राज्य को उक्त सूट में पक्षकार नहीं बनाया गया था, हालांकि राज्य को कलेक्टर गौतमबुद्ध नगर के माध्यम से सूट कार्यवाही में पक्ष बनाया गया था।

6. दूसरी ओर, राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि विवादित आदेश के खिलाफ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि भूमि को सही ढंग से राज्य सरकार में निहित किया गया है क्योंकि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत निहित प्रावधानों का उल्लंघन हुआ था। उन्होंने इसके बाद प्रस्तुत

किया कि मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्क पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

8. इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के पिता या याचिकाकर्ताओं ने विवादित संपत्ति किसी सोसाइटी को नहीं बेची है। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा राज्य-सरकार में भूखंड निहित करने के आदेश के खिलाफ सी.पी.सी. की धारा 152 के तहत 9.5.2019 को दायर आवेदन को पोषणीय नहीं होने के कारण खारिज कर दिया गया है।

9. मामले में शामिल विवाद को समझने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 214 और उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 341 का अध्ययन आवश्यक होगा, जो इस प्रकार हैं:

#### **सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152**

**"152: निर्णयों, डिक्रियों या आदेशों का संशोधन:-** निर्णयों, डिक्रियों या आदेशों में ही लेखन या गणित सम्बन्धी भूलें या किसी आकस्मिक भूल या लोप से उसमें हुयी गलतियाँ न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से या पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर किसी भी समय शुद्ध की जा सकेगी।"



**उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 214**

"214. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और परिसीमा अधिनियम, 1963 का लागू होना- जब तक इस संहिता द्वारा या इसके अधीन अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित न हो तब तक इस संहिता के अधीन प्रत्येक वाद, प्रार्थना-पत्र या कार्यवाही पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबन्ध लागू होंगे।"

**उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम अधिनियम की धारा 341**

"341. इस अधिनियम की कार्यवाही में कुछ अधिनियमों का अनुप्रयोग- जब तक इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, भारतीय कोर्ट फीस अधिनियम, 1908, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और [परिसीमा अधिनियम, 1963] [इसकी धारा 5 सहित] के प्रावधान इस अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे। "

10. सूरजभान शर्मा (उपरोक्त) के निर्णय के प्रासंगिक भाग का अवलोकन करना आवश्यक होगा, जो इस प्रकार है-

"इसके अलावा, जिन निर्णयों पर याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किया गया है, वे स्पष्ट रूप से कानून निर्धारित करते हैं कि एक सुधार जो या तो लिपिकीय या एक

आकस्मिक चूक है, इसे बिना किसी प्राधिकरण के अपील या समीक्षा के लिए पार्टी को फाइल करने की आवश्यकता के बिना भी ठीक किया जा सकता है। यदि 7.4.1993 के आदेश में उल्लिखित क्षेत्र की गलती को पूरी तरह से प्रतिवादी को जिम्मेदार ठहराया जाना है, तो कलेक्टर, जो जिले में प्रविष्टियों को ठीक करने के लिए अधिकृत उच्चतम प्राधिकारी है, यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत, 7.4.1993 के आदेश के संबंध में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए बाध्य था, जो यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के तहत एक कार्यवाही थी, जिस पर 1901 अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

इतना ही नहीं, अधिनियम-1950 की धारा 341 के तहत, 1950 अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों पर सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को लागू करती है। तदनुसार, सीपीसी की धारा 151 और

धारा 152 के सिद्धांत भी लागू होते हैं, जिन्हें याचिकाकर्ता के आवेदन को निपटाने के लिए त्रुटि को सुधारने के लिए कलेक्टर द्वारा प्रयोग किया जाना चाहिए था। मेरी राय में, कलेक्टर कानून के अनुसार और उपरोक्त किए गए अवलोकनों के प्रकाश में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा और इसलिए 6.9.2011 का आदेश इस आधार पर भी उचित नहीं है।

राज्य के हलफनामे में निहित तर्क के अनुसार कि प्रत्यावर्तन आवेदन पर आगे बढ़ना और निर्णय लेना बाकी है, यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि एक बार 6.9.2011 का आदेश बरकरार रहता है, अपर जिला मजिस्ट्रेट उसके खिलाफ आगे नहीं बढ़ सकता है। इसलिए, इस तर्क को लघु-प्रति शपथ पत्र में नहीं लिया जा सकता है और वास्तव में जिला मजिस्ट्रेट को मामले की पृष्ठभूमि में और उपरोक्त किए गए अवलोकनों के प्रकाश में पूरे मामले का निपटान स्वयं करना चाहिए

था। प्रतिवादियों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि जैसे मामला अभी भी अपर जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित है। मेरी राय में यह एक दिखावा है और इस प्रक्रियात्मक फेरबदल से याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं होने वाला है। विद्वान अपर महाधिवक्ता का कहना है कि एक बार जब अधिकारी द्वारा अनुभव किए जा रहे कानूनी बाधा को स्पष्ट कर दिया जाय, तो मामले का फैसला कानून के अनुसार किया जाएगा।

उपरोक्त निष्कर्षों के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के आवेदन पर निर्णय लेने और याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए गए भूमि की स्थिति की पुष्टि करने के बाद सुधार करने में कोई बाधा नहीं है, जो कि 7.4.1993 के आदेश में शामिल लेनदेन का हिस्सा नहीं है। इसलिए, कलेक्टर को उपरोक्त किए गए अवलोकनों के प्रकाश में इस कार्य को पूरा करना होगा और इस संबंध में किसी भी मामले को दूर किए बिना निष्पक्ष रूप से आदेश पारित करना होगा। इसके परिणामस्वरूप,

6.9.2011 का आदेश निरस्त कर दिया गया है। कलेक्टर, गौतम बुद्ध नगर को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत करने की तिथि से 6 सप्ताह के भीतर आदेश पारित करे, और यदि याचिकाकर्ता को इस संबंध में कोई जानकारी प्रदान करनी है, तो याचिकाकर्ता को यह अवसर दिया जाए।

तदनुसार, रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया है। ”

11. **शर्मा सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय के प्रासंगिक भाग का भी अवलोकन करना आवश्यक होगा, जो इस प्रकार है:

“7. मैंने पक्षकारों के वकील के तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड की जांच की है। यू.पी. अधिनियम संख्या 1 की धारा 341 के तहत 1951 के प्रावधानों को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के रूप में लागू किया गया है, और यह कि सीपीसी की धारा 152 के तहत आवेदन बनाए रखने योग्य था। सीपीसी की धारा 152 अदालत को निर्णयों, डिक्री या आदेशों में लिपिकीय या अंकगणितीय गलतियों को

सुधारने या किसी भी आकस्मिक फिसलन या चूक से उत्पन्न होने वाली त्रुटियों को अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या किसी भी पक्ष के आवेदन पर किसी भी समय ठीक करने के लिए अधिकृत करती है। अतः इस धारा के तहत, शब्द "किसी भी समय" का प्रयोग किया गया है। परिसीमा अधिनियम, 1963 में धारा 152 सी. पी. सी. के तहत आवेदन के लिए कोई सीमा नहीं निर्धारित है। कई उच्च न्यायालयों द्वारा यह लगातार माना गया है कि धारा 152 सी.पी.सी. के तहत आवेदन के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है, उदहारण के लिए जय नारायण बनाम छेदालाल, ए.आई.आर. 1960 आल 385 एवं सिविल विविध याचिका संख्या 58827 /2011 सूरजभान शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य 21.10.2011 का निर्णय। इसी तरह, धारा 152 सी.पी.सी. के तहत शक्तियों का प्रयोग स्वयमेव किया जा सकता है, क्योंकि तीसरे पक्ष द्वारा दायर आवेदन से भी गलती का नोटिस लिया जा सकता है। याचिकाकर्ता किसी भी स्तर

पर पक्ष नहीं थे, इसलिए आदेश की अंतिमता से संबन्धित दावे को याचिकाकर्ता के खिलाफ नहीं दायर किया जा सकता है।

8. जहां तक 7.04.1993 के आदेश को 28.07.2011 के सुप्रीम कोर्ट के आदेश में मिलाने का संबंध है। आदेश में हुई लिपिकीय या अंकगणितीय गलती को दुर्घटनावश छूट जाने या चूक के कारण हमेशा ठीक किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने एम.एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 1 एससीसी 278 में कहा कि गलती को बनाए रखना नहीं अपितु उसे सुधाराना एक गुण है, न्यायिक विवेक से भी सही है। जब कोई वादी इस न्यायालय की शक्तियों के प्रयोग से न्याय के गलत होने की शिकायत करता है, जो बिना किसी अधिकार क्षेत्र के या उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद नहीं हुई है, जिसके परिणामस्वरूप उसे जेल में कैद कर लिया गया है, जिससे वह अपनी बहुमूल्य स्वतंत्रता को खो देता है और उसके करियर और जीवन पर आपत्ति आती है, हमारे पास उसके दावों की सत्यता की

जांच करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।“

9. इस मामले में, याचिकाकर्ता शिकायत कर रहे हैं कि उनकी भूमि को ,प्रगतिशील सामूहिक सहकारी कृषि समिति लिमिटेड द्वारा 12.50 एकड़ से अधिक खरीदी गई भूमि मानते हुए,अवैध रूप से उत्तर प्रदेश राज्य में निहित कर लिया गया है हालांकि इसे कभी भी उनके द्वारा नहीं बेचा गया था और न ही उन्हें सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था। यदि याचिकाकर्ताओं के आरोप सही हैं तो यह आकस्मिक चूक की प्रकृति की गलती है और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के तहत शक्ति का प्रयोग कर ठीक किया जा सकता है। आवेदन को अवैध रूप से खारिज कर दिया गया है।

10. परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। कलेक्टर का दिनांक 06.09.2011 का आदेश रद्द कर दिया जाता है। मामले को कानून के अनुसार पक्षकारों की सुनवाई के बाद योग्यता के आधार पर याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर निर्णय लेने के लिए कलेक्टर को वापस भेज दिया जाता है। चूंकि मामला लंबे समय से लंबित है, इसलिए आवेदन को शीघ्रता से,अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो महीने के भीतर, निपटाया जाना चाहिए।”

12. प्रतिवादी संख्या 2 यानी कलेक्टर, जिला-गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 7.4.1993 के आदेश के संबंध में, इस न्यायालय के समक्ष कई रिट याचिकाएं दायर की गईं और विवाद को सिविल विविध रिट सी

**संख्या 58827/2011 (सूरजभान शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दिनांक 21.10.2011 को निर्णीत** में और यह कहा गया कि भू-धृतिधारक द्वारा भूमि की स्थिति को सत्यापित करने के बाद सुधार करने के लिए दायर किए गए आवेदन पर, जिसके बारे में भू-धृतिधारक का दावा है कि वह 7.4.1993 के आदेश द्वारा कवर किए गए लेनदेन का हिस्सा नहीं है, कानून के अनुसार गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए साथ ही साथ **रिट सी संख्या 29898/2014 (शर्मा सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) 28.5.2014 को निर्णीत में**, इस न्यायालय ने कलेक्टर को निर्देश दिया था कि वह याचिकाकर्ता द्वारा सी.पी.सी. की धारा 152 के तहत 7.4.1993 के आदेश के खिलाफ दायर आवेदन पर, जिसके भूखंडों को राज्य सरकार के निहित किया गया था, कानून के अनुसार गुण-दोष के आधार पर निर्णय लें, वह भी निर्धारित अवधि के भीतर।

13. इस मामले में, याचिकाकर्ताओं के पिता द्वारा सी.पी.सी. की धारा 152 के तहत दिनांक 7.4.1993 के आदेश के विरुद्ध दायर वापसी आवेदन को बनाए नहीं रखने योग्य के रूप में खारिज कर दिया गया है, जो सूरजभान शर्मा (उपरोक्त) और शर्मा सिंह (उपरोक्त) में निर्धारित निर्णय के विरुद्ध है।

14. चूंकि दिनांक 7.4.1993 के आदेश के विरुद्ध दायर आवेदन के संबंध में विवाद पहले ही सुलझा लिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 9.5.2019 को दायर आवेदन पर **सूरजभान शर्मा (उपरोक्त)**

**और शर्मा सिंह और अन्य (उपरोक्त)** में निर्धारित निर्णय के मद्देनजर गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना था।

15. यह भी वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण है कि बिक्री-विलेख को रद्द करने के लिए दायर सिविल सूट संख्या 18 वर्ष 2015 को डिक्री कर दिया गया है और बिक्री-विलेख को रद्द कर दिया गया है। यह आगे महत्वपूर्ण तथ्य है कि राज्य को कलेक्टर के माध्यम से उपर्युक्त सूट संख्या 18 वर्ष 2015 में प्रतिवादी बनाया गया था, इस प्रकार, आक्षेपित आदेश के तहत दर्ज निष्कर्ष पूरी तरह से गलत है।

16. मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रतिवादी संख्या-2 अर्थात् कलेक्टर, जिला- गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 15.4.2023 के आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं और अतः उन्हें निरस्त किया जाता है।

17. रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और इस मामले को प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष वापस भेज दिया गया है ताकि मामले संख्या 7/2019 को उसके मूल नंबर पर दर्ज किया जा सके और **सूरजभान शर्मा (उपरोक्त) और शर्मा सिंह (उपरोक्त)** में निर्धारित निर्णय पर विचार करते हुए गुण-दोष के आधार पर कानून के अनुसार निर्णय लिया जा सके, और इसे अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके समक्ष पेश करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर निस्तारित किया जाये। यह आगे निर्देशित किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 2 मामले

संख्या 7/2019 पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने से पहले विवाद के सभी संबंधित पक्षों को नोटिस जारी करेगा, यदि कोई हो।

-----  
(2023) 9 ILRA 858

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 21618/2022

जौनपुर द्वारा बिना अधिकार क्षेत्र के पारित दिनांक 23.06.2022 का आदेश, जिसमें पट्टा विलेख को शून्य घोषित किया गया, विधिक रूप से दोषपूर्ण है और निरस्त किए जाने योग्य है।

कलेक्टर एसडीओ की शक्तियाँ तब तक ग्रहण नहीं कर सकते जब तक कि ऐसी कार्यवाई संहिता की धारा 19 के तहत वैध कारणों से उचित न हो। नियम 103 कलेक्टर को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करता है।

श्रीमती मीरू सेठ

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

विधिक सिद्धांत :

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आदया प्रसाद तिवारी, श्री बाल कृष्ण राय

जहां कोई विधि किसी मामले पर निर्णय करने के लिए किसी प्राधिकारी को विशेष रूप से नामित करता है, वहां उच्च प्राधिकारी ऐसे अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकते, जब तक कि उन्हें स्पष्ट रूप से सशक्त न किया जाए।

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री पंकज कुमार गुप्ता

प्रशासनिक व्यावहारिकता वैधानिक आदेश को दरकिनार नहीं कर सकती।

अभिनिर्धारित -

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम, 2016 - नियम 103 - अनुसूचित जाति के व्यक्ति की भूमि का कलेक्टर की पूर्व अनुमति के बिना गैर-अनुसूचित जाति के व्यक्ति को हस्तांतरण उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 सहपठित धारा 105 के अंतर्गत शून्य है। हालाँकि, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 103 के अंतर्गत, ऐसे मामलों में निर्णय लेने का विशेष अधिकार उप-विभागीय अधिकारी (एसडीओ) को है। इस प्रकार, कलेक्टर, जिला

रिट याचिका स्वीकृत।

चर्चा की गई वादविधि:

1. उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की वैधानिक व्याख्या - धारा 4(8), 13(3), 19, 98, 104, 105, 210

2. उ.प्र. राजस्व संहिता नियमावली, 2016 - नियम 102, 103

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा  
पारित)

1.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आदया प्रसाद तिवारी और प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 8 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री धनन्जय सिंह, तथा ग्राम सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता, जिन्हें विशेष रूप से याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये गये विधि के जटिल प्रश्न से संबंधित मामले में सहायता के लिए न्यायालय द्वारा बुलाया गया है, को सुना गया।

2.वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.06.2022 को चुनौती देने के लिए स्थापित की गई है, जो 30प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 व 105 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ की गई। जबकि एक विदेशी व्यक्ति श्री संतोष कुमार जयसवाल जिन्हें प्रतिवादी संख्या 3 के रूप में वर्तमान याचिका में सूचीबद्ध किया गया है जिसकी प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष स्थानान्तरण के लिए मैं मुखबिर के रूप में भूमिका है जो याचिकाकर्ता के समर्थन में प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा किया गया है। इसे 30प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 एवं 105 के सन्दर्भ में शून्य मानने के लिए यह स्पष्ट करती है। यहाँ याचिकाकर्ता प्लॉट नं0 4, 5-एम 6 और 7 का क्रेता है जो ग्राम बुसानपुर तहसील केराकत जिला- जौनपुर में स्थित है, जो प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा निष्पादित दिनांक 19.12.2018 को लीज डीड के माध्यम से स्थापित किया गया है और इस प्रकार

प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 30प्र0 राजस्व संहिता 2006 को धारा 104 एवं 105 के अन्तर्गत शुरू की गई कार्यवाही के तहत कभी भी एक पक्ष नहीं था।

3.प्रकरण संख्या 2264/2021 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या डी 2021143600002264) (संतोष कुमार जयसवाल बनाम मीनू सेठ एवं अन्य) के रूप में कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, मैं रिपोर्ट मांगी गई है और उसे उप जिलाधिकारी, तहसील केराकत जिला जौनपुर द्वारा दिनांक 30.07.2021 को प्रस्तुत किया गया जो दिनांक 28.06.2021 को सहायक कलेक्टर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के पूरक और परिवर्धन में था जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 4 से 7 का नाम राजस्व अभिलेखों में 30प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 67(1) के अन्तर्गत हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया है। केवल दिनांक 06.07.2020 के बाद प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित लीज डीड की शुरुआत के बाद।

4.प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा निकाले गये निष्कर्ष पर पहुंचते समय महत्वपूर्ण तथ्य यह भी उल्लिखित है कि अनुसूचित जाति समुदाय के व्यक्ति से संबंधित भूमि को गैर-अनुसूचित जाति समुदाय के व्यक्ति को हस्तान्तरित करने की पूर्व शर्त कलेक्टर द्वारा दी गई अनुमति है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त नहीं किया गया है। प्रतिवादी संख्या 4,5,6 एवं 7 द्वारा प्रस्तुत प्रतिवादी पुस्ततियों के साथ कई अन्य तथ्यात्मक और तकनीकी

आधारों का उल्लेख और चर्चा की गई है। वाद संख्या 2264 सन 2021 के फैसले के दौरान और अन्ततः 23.06.2022 के आदेश के समापन पैरा में दर्ज विशिष्ट निष्कर्ष के साथ इसका निर्णय लिया गया, जिसने वर्तमान याचिका को चुनौती दी थी, यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:-

“अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि आवेदक द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र दिनांक 1-2-2020 स्वीकार किया जाता है, तथा गाटा संख्या 1650.073 हे० व 1660.077 हे० स्थित ग्राम रसडा व गाटा संख्या 4/0.024 हे० 5 मि०/0.020 हे० व 6/0.040 हे० तथा 7/0.057 हे० स्थित ग्राम विशुनपुर परगना व तहसील केराकत जनपद जौनपुर की भूमि का लीज प्रहिता मीनू सेठ पत्नी प्रभाकर वर्मा मोहना मेहदी तला पो० केराकत तहसील केराकत जिला जौनपुर जो पिछड़ी जाति की है, के पक्ष में बिना कलेक्टर की अनुमति लिये किया गया लीजडीड दिनांक 19-12-2018 उ०प्र० रा० सं० 2006 की धारा 104 से बाधित होने के कारण शून्य है जिसे उ०प्र० रा० सं० 2006 की धारा 105 के अन्तर्गत राज्य सरकार में निहित किया जाता है, तथा आराजी निजाई पर लिखित खातेदारों का नाम निरस्त करते हुए आराजी निजाई राज्य सरकार के खाते में अंकित की जाती है। आदेश के अनुपालन हेतु आदेश की प्रति तहसीलदार केराकत जौनपुर को प्रेषित किया जाय। बाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल दस्तर हो।

5.आक्षेपित आदेश के उपर्युक्त पैरा के अवलोकन से जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्रतिवादी क्रमांक 4,5,6 एवं 7 द्वारा किया गया स्थानान्तरण याचिकाकर्ता के पक्ष में लीज डीड के आकार में, को इस सटीक आधार पर शून्य घोषित कर दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 4,5,6 एवं 7 द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में स्थानान्तरण विलेख निस्पादित करने से पहले कलेक्टर से कभी कोई अनुमति नहीं मांगी गई है।

6.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दिनांक 23.06. 2022 के आदेश को कई अन्य आधारों पर चुनौती दी कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा धारा 104 एवं 105 के तहत बिना क्षेत्राधिकार के कार्यवाही की गई, और इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 2, उ०प्र० राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 एवं 105 के साथ पठित, उ.प्र. राजस्व संहिता नियमावली, 2016 के नियम 103 के अन्तर्गत निहित वैधानिक प्रावधानों के अनुपालन में सक्षम नहीं था।

7.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये गये तर्कों की जाँच करते समय, उ०प्र० राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 एवं 105 के साथ पठित ,उ०प्र० राजस्व संहिता नियम ,2016के नियम 103 संहिता को उद्धृत करना आवश्यक है , जो निम्नानुसार है:

“ धारा 104. इस संहिता के उल्लंघन में स्थानान्तरण शून्य : इस संहिता के उपबन्धों के उल्लंघन में किसी भूमिधर या किसी आसामी द्वारा किसी जोत अथवा उसके



आंशिक भाग का प्रत्येक पट्टा अथवा हित संक्रमण शून्य होगा।

**धारा 105 संहिता के उल्लंघन में भूमिधर द्वारा अन्तरण का परिणाम-** (1) जहाँ किसी भूमिधर द्वारा किसी जोत या उसके भाग में हित का अन्तरण धारा 104 के अधीन शून्य हो जाये वहाँ ऐसे अन्तरण के दिनांक से निम्नलिखित परिणाम होंगे। अर्थात् :-

(क) ऐसे अन्तरण की विषय-वस्तु सभी भागों से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो जायेगी:

(ख) उस जोत या उसके भाग में विद्यमान वृक्ष, फसल, कुएं और अन्य सुधार सभी भागों से मुक्त होकर, राज्य सरकार में निहित हो जायेंगे;

(ग) खण्ड (क) और खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट सम्पत्तियों में अन्तरक और अन्तरिती का हित समाप्त हो जायेगा;

(घ) खण्ड (ग) के अधीन अन्तरक के हित की समाप्ति से किसी असामी का उसके अधीन धारण करने वाला हित समाप्त हो जायेगा ।

(ङ) इस धारा के उपबन्ध, धारा 94 के अधीन किये गये किसी पट्टे पर लागू नहीं होंगे। (2) जहाँ कोई भूमि या अन्य सम्पत्ति उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार में निहित हो गयी है कलेक्टर के लिये ऐसी भूमि और अन्य सम्पत्ति का कब्जा लेना और ऐसे व्यक्ति को जिसका ऐसी भूमि या सम्पत्ति पर अध्यासन हो, को उससे बेदखल करने का निदेश देना

विधिसम्मत होगा। और इस प्रयोजन के लिए कलेक्टर ऐसे बल का प्रयोग कर सकता है या करा सकता है जो आवश्यक हो और धारा 59 के उपबन्ध आवश्यक परिवर्तन सहित ऐसी सम्पत्ति पर लागू होंगे।

**नियम 103-संहिता के उपबन्धों के उल्लंघन में अन्तरण (धारा 105)-**

(1) यदि किसी भूमिधर या असामी ने किसी जोत या उसके हिस्सों से सम्बन्धित अपने हितों का अन्तरण किया है, जो धारा 104 के अन्तर्गत शून्य है तो लेखपाल अविलंब नियम 97(1) में विहित विवरणों सहित अपनी आख्या उपजिलाधिकारी को प्रस्तुत करेगा।

(2) उपनियम (1) के अन्तर्गत लेखपाल की आख्या प्राप्त होने पर अथवा अन्य प्रकार से सूचना प्राप्त होने पर उपजिलाधिकारी पक्षकारों को तलब करेगा कि क्यों न प्रश्नगत भूमि के अन्तरण के सम्बन्ध में धारा 104 सपठित धारा 105 के अधीन कार्यवाही कर दी जाय।

(3) पक्षकारों को सुनने एवं आवश्यक जांच करने के पश्चात यदि उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि प्रश्नगत अन्तरण धारा 104 के अधीन शून्य है तो वह घोषित करेगा कि:-

(क) ऐसे अन्तरण की विषयवस्तु राज्य सरकार में निहित हो जायेगी:

(ख) जोत या उसके किसी हिस्से पर स्थित वृक्ष, फसल व अन्य आस्तियां समस्त भागों से

मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो जायेंगी और

(ग) अन्तरिती और अन्तरक के समस्त हित ऐसे अन्तरण के दिनांक से समाप्त हो गये।

(4) उपजिलाधिकारी राजस्व अभिलेखों को तदनुसार संशोधित करने का निदेश देगा और जहां इस संहिता के प्रावधानों के उल्लंघन में किया गया अन्तरण किसी जोत के अंश से सम्बन्धित है तो वह अध्याय-ग्यारह में वर्णित नियमों के अनुसार अन्तरणकर्ता के पास बची हुई भूमि का भू-राजस्व निर्धारित करेगा।

(5) इस नियम के अधीन उपजिलाधिकारी द्वारा पारित प्रत्येक आदेश आवश्यक कार्यवाही के लिए समिति को पृष्ठांकित किया जायेगा।

(6) जहां धारा 105 में वर्णित कोई सम्पत्ति राज्य सरकार में निहित हो गयी है वहां कलेक्टर ऐसी सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति के अवैध कब्जे को खाली करायेगा और सम्बन्धित ग्राम पंचायत को उक्त सम्पत्ति का कब्जा सौंपेगा।“

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आद्या प्रसाद तिवारी ने धारा 104 एवं 105 के प्रतिक्रियात्मक भाग पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया जो नियम 103 के तहत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित है, जिसमें यह उपविभागीय अधिकारी है जो प्रस्तुत रिपोर्ट प्राप्त करेगा, संबंधित लेखपाल द्वारा या अन्यथा प्राप्त सूचना पर स्थानान्तरण के पक्षकारों को 30प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 के

साथ पठित धारा 105 के तहत कारण बताने के लिए प्रश्नगत भूमि के संबन्ध में बुलाया जायेगा तथा पक्षकारों को नहीं बुलाया जाना चाहिए अर्थात् यदि किसी भी मामले में, किसी भूमि के हस्ताक्षरण को शून्य घोषित किया जाना है तो उसके निर्णय के लिए सक्षम प्राधिकारी, उपविभागीय अधिकारी ही होंगे, इसके अलावा, अनुविभागीय अधिकारी द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार राजस्व रिकार्ड को सही करने के लिए, अनुभागीय अधिकारी निर्देशित करेंगे कि राजस्व रिकार्ड को तदनुसार सही किया जाना चाहिए।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तत्काल मामला बताया गया है कि सम्पूर्ण न्यायनिर्णयन प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर शुरु हुआ, जिसकी शुरुआत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा की गई है जो कलेक्टर/ जिला मजिस्ट्रेट, जिला जौनपुर है और इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा शुरु की गयी कार्यवाही अधिकार क्षेत्र से बाहर है और इसे रद्द किया जा सकता है।

10. इसके विपरीत श्री धनन्जय सिंह, विद्वान स्थायी अधिवक्ता और श्री पंकज कुमार गुप्ता, गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और साथ ही याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये गये रुख का खण्डन किया कि धारा 104 एवं 105 30प्र0 राजस्व संहिता, 2006 में नीहित प्रावधान है जिसमें इसका परिणाम यह है कि कोई अपील नहीं होगी और यह इस तरह हमेशा तत्काल वरिष्ठ प्राधिकारी का

विशेषाधिकार था कि वह अधीनस्थ प्राधिकारी के साथ निहित शक्ति का प्रयोग करें जहाँ कोई अपील न हो, और इस प्रकार उ० प्र० राजस्व संहिता 2006, की धारा 104 एवं 105 के तहत कार्यवाही शुरू करने की कार्यवाही प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा की गई।, अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है और यह उचित है और उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 एवं 105 के तहत कलेक्टर द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के लिए कोई रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। इतना ही नहीं, उत्तरदाताओं के दोनों विद्वान अधिवक्ताओं ने जोरदार तर्क दिया कि उ० प्र० राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत याचिकाकर्ता के समक्ष उपलब्ध वैकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री धनन्जय सिंह ने भी यह प्रस्तुत किया कि उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 एवं 105 के साथ पठित उ० प्र० राजस्व संहिता 2016, नियम 103 का सारवाचन मात्र है जो व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है कि रिपोर्ट या मामला प्रस्तुत किया जायेगा। कलेक्टर और उसका निर्णय अनुविभागीय अधिकारी द्वारा किया जायेगा जो कलेक्टर का अधीनस्थ प्राधिकारी है और उसके बाद यदि कोई हो निर्णय निष्पादन अनुमण्डल प्राधिकारी द्वारा किया गया है। अनुविभागीय अधिकारी द्वारा निकाले गये आदेश निर्णय का भाग, एवं उसका निष्पादन कलेक्टर द्वारा किया जाना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए

श्री धनन्जय सिंह विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उ० प्र० राजस्व संहिता नियम 2016 के नियम 103 के उपनियम (3) का हवाला दिया जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि धारा 105 में संदर्भित कोई भी सम्पत्ति राज्य सरकार में नीहित है, कलेक्टर किसी भी व्यक्ति को बेदखल कर सकता है ऐसी संपत्ति पर अनाधिकृत कब्जा करना और उसका कब्जा प्रदान करना, संबन्धित ग्राम पंचायत को है।

12. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाये गये रुख का समर्थन न करने के लिए, श्री प्रकाश कुमार गुप्ता ने उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 4 की उपधारा (8) के तहत उल्लिखित परिभाषा खण्ड को आगे जोड़ा, जिसमें कलेक्टर का अर्थ धारा 12 की उपधारा (1) के तहत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी है और इसमें शामिल होगा -

(ए) उक्त धारा की उपधारा (2) के तहत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक अतिरिक्त कलेक्टर; और (बी) इस संहिता के तहत कलेक्टर के सभी या किसी भी कार्य का निर्वहन करने के लिए राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा सशक्त प्रथम श्रेणी का एक सहायक कलेक्टर; धारा 13(3) के साथ, जो यह बताती है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) में निर्दिष्ट अधिकारी सभी शक्तियों का प्रयोग करेंगे और इस संहिता या अन्य किसी के तहत उन्हें प्रदत्त और लगाए गये सभी कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो कुछ समय के लिए लागू अन्य विधि जो कलेक्टर के नियंत्रण के अधीन है।

13. गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता ने प्रदर्शित किया कि यह कलेक्टर ही है जो सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी को प्रदत्ता शक्तियों का प्रयोग करने के लिए हर समय सशक्त है और कलेक्टर जिला जौनपुर द्वारा तत्काल मामले में भी आदेश पारित करते हुए इसका प्रयोग किया है जो वर्तमान याचिका पर आपत्ति जताई, इस प्रकार प्रतिवादी संख्य 2 द्वारा की गई पूरी कार्यवाही उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 13 (3) के साथ-साथ धारा 4(5) द्वारा परिभाषित और संरक्षित क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है।

14. तर्कों को विस्तृत करने के लिए, गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता ने उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 19 और 215 पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:-

**धारा 19. राजस्व अधिकारियों की अन्य शक्तियाँ-** (1) जब इस संहिता के अधीन किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा कोई शक्ति या कोई कर्तव्य पालनीय हो तो किसी वरिष्ठतर अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा भी ऐसी प्रयोक्तव्य शक्ति का प्रयोग और कर्तव्य का पालन किया जा सकता है।

(2) इस संहिता के अधीन नियुक्त राजस्व अधिकारी राज्य सरकार के नियंत्रण में ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करेंगे जैसा कि राज्य सरकार किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निदेश दे।

**धारा 215. प्रक्रिया में अनियमितता के कारण आदेश अविधिमान्य नहीं होंगे -** किसी

राजस्व अधिकारी द्वारा पारित कोई आदेश इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाही के पूर्व या उसके दौरान सम्मन, नोटिस, उद्घोषणा, वारंट या आदेश अथवा अन्य कार्यवाही में त्रुटि, लोप या अनियमितता मात्र के कारण किसी अपील या पुनरीक्षण में तब तक उल्टा या परिवर्तित नहीं किया जायेगा जब तक कि ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता से वास्तव में न्याय का हनन न हुआ हो।

उपरोक्त धाराओं का उल्लेख करते हुए श्री पंकज कुमार गुप्ता ने कहा कि शक्ति का प्रयोग करते हुए कलेक्टर द्वारा पारित आदेश को उचित ठहराया। उ० प्र० राजस्व संहिता नियम 2016 के नियम 102 के तहत परिभाषित उपविभागीय अधिकारी के पास निहित है, जो नीचे उद्धृत किया गया है :-

**नियम 102 उपजिलाधिकारी द्वारा विनिमय की अनुमति प्रदान किया जाना (धारा 101 और 102):-**

(1) नियम 100 अथवा नियम 101 के अन्तर्गत आवेदन प्राप्त होने पर उपजिलाधिकारी भूमिधर या सम्बन्धित ग्राम पंचायत को इस आशय का कारण बताओ नोटिस जारी करेगा कि क्यों न विनिमय की अनुमति प्रदान कर दी जाय?

(2) उपजिलाधिकारी विनिमय में ली या दी जाने वाली भूमि के बाजार मूल्य का आगणन करायेंगा और

यदि कोई पट्टाधारक, बन्धकदार या अन्य कोई भारधारक यदि कोई हो तो सुनवाई करेगा।

(3) आवश्यक जांच करने के पश्चात यदि उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि कि पक्षकार ऐसे विनिमय के लिए सहमत है और धारा 101(2) के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है तो वह ऐसे विनिमय की अनुमति देगा और तदनुसार अधिकार अभिलेख (खतौनी) में संशोधन करने के लिए निदेश देगा।

(4) यदि उपधारा (1) के खण्ड (ख) में अमिदिष्ट भूमि के सम्बन्ध में आवेदन है और यदि यह नियोजित प्रयोग के लिये आरक्षित है अथवा ऐसी भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार उद्भूत नहीं होते हैं और उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि विनिमय की अनुज्ञा आवेदक के हित में और जनहित में भी है तो वह मामले को समुचित आदेश के लिये राज्य सरकार को सन्दर्भित कर सकेगा और यदि राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो उपजिलाधिकारी अधिकार अभिलेख (खतौनी) को तदनुसार संशोधित करने का निदेश देगा।”

गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि वर्तमान याचिका को स्थापित करने का एक मात्र आधार, 2006 की संहिता की धारा 19 के तहत विफल हो रहा है जो वरिष्ठ प्राधिकारी को अधीनस्थ प्राधिकारी के साथ प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम बनाता है और इस तरह यदि 2016 के नियमों के नियम 102, 103 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा दिए गये

आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है, इस प्रक्रियात्मक त्रुटि के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है जो कि 2006 की संहिता की धारा 215 द्वारा वर्जित है।

15. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने भी इस मुद्दे पर दिनांक 23-06-2022 के आदेश का समर्थन किया कि प्रतिवादी संख्या 2 ने उस मुद्दे का फैसला किया जो उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 98 से संबंधित है जिसमें केवल कलेक्टर को ही विशिष्ट आदेश पारित करने का अधिकार है, यदि अनुसूचित जाति समुदाय के व्यक्ति द्वारा उस भूमि को हस्तान्तरित करने की अनुमति मांगी गई है जिस पर उसका भूमिधर के रूप में हस्तान्तरणीय अधिकार है। उक्त अधिकार तत्काल मामले में परिवादी संख्या 4,5,6 एवं 7 द्वारा ऐसी कोई अनुमति नहीं मांगी गई थी, अपनी भूमि को याचिकाकर्ता के पक्ष में स्थानान्तरित करने के लिए और इस प्रकार प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दी गई किसी भी उचित अनुमति के अभाव में प्रतिवादी संस्था 4,5,6 एवं 7 द्वारा किया गया स्थानान्तरण की धारा 104 एवं 105 उपर 2006 का राजस्व संहिता के अन्तर्गत शून्य ठहराया गया है।

16. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियाँ दिये जाने के बाद, विवाद को समाप्त करने के लिए कुछ प्रश्न निर्धारित किये गये हैं जैसा कि तत्काल याचिका के माध्यम से उठाया गया है जो वास्तव में कम और विधिक पहलुओं में अधिक है और वहीं निम्नानुसार है:-

(i) क्या कलेक्टर को उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104/105 के अन्तर्गत कार्यवाही का निर्णय लेने का अधिकार है? जब उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 98 का आकर्षण हो?

(ii) उ0प्र0. राजस्व संहिता 2006 की धारा 104/105 के अन्तर्गत स्थानान्तरण को शून्य घोषित करते हुए, बिना क्षेत्राधिकार के कोई आदेश पारित किया जा सकता है। क्या संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत अन्तिम निर्णय के अधीन होगा?

(iii) उ0प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 4(8), धारा 13(3) का आकर्षण एवं उ.प्र. राजस्व संहिता नियम 2016 के नियम 103 के संदर्भ में उसका प्रभाव?

17. हालाँकि उपर दिये गये पहले प्रश्न का उत्तर देने के संबंध में वाद संख्या 2264 सन 2021 के रूप में शुरू की गई पूरी कार्यवाही पर निर्भर किया आयेगा और तत्काल याचिका का भाग्य लेकिन पहले इसका उत्तर देना आवश्यक है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये तर्क पर विचार करते हुए, उ0प्र0 राजस्व संहिता के नियम 103 के तहत परिभाषित वैधानिक प्रावधान में शायद ही कोई अस्पष्टता है, जिसका उल्लेख समान नियमों के नियम 103(3) के तहत किया गया है, यह उप विभागीय अधिकारी है जो धारा 104 के तहत प्रश्नगत हस्तान्ताण को शून्य घोषित करने का अधिकार रखता है। और इस प्रकार धारा 4(8) के साथ-साथ धारा 13(3) पर भरोसा करते हुए विद्वान स्थायी अधिवक्ता और श्री पंकज

गुप्ता द्वारा की गई दलील टिकाऊ नहीं है, क्योंकि शक्ति का सार निहित है, राज्य सरकार द्वारा जारी विशेष अधिसूचना द्वारा कलेक्टर को सहायक कलेक्टर उप-विभागीय अधिकारी के सौंपा या स्थानान्तरित या अधिसूचित किया जा सकता है, लेकिन कलेक्टर के नियंत्रण में, के लिए कानून के तहत संहिताबद्ध शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्रबल नहीं होता है। 2006 का राजस्व संहिता प्रावधान, इसे एक प्रतिवर्ती सिद्धान्त के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है, जिसे विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया था, उप-जिलाधिकारी को ही उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम, 2016 के नियम 103(3) के अन्तर्गत विशेष रूप से उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 104 एवं 105 के अन्तर्गत निहित प्रावधानों से निपटने के लिए उल्लेखित किया गया है।

18. दूसरा मुद्दा जैसा कि उपर बताया गया है, उ0प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 104 एवं 105 की कार्यवाही से आदेश के परिणाम की स्थिरता के संबंध में है। उ0प्र0 राजस्व संहिता 2006 में के वाद धारा 210 के तहत कार्यवाही के बाद स्पष्ट रूप से अन्तिम रूप प्राप्त कर लिया है, यदि अधिकार क्षेत्र वाले प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया है तो उसे धारा 210 के तहत परिभाषित प्राधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करके अवगत कराया जा सकता है। वर्तमान मामले में उस आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके बाद इस न्यायालय द्वारा अन्तरिम सुरक्षा प्रदान की गई है और दलीलों के आदान-प्रदान के बाद और समय बीतने के बाद दलील और आधार के संबंध में

विद्वान् स्थायी अधिवक्ता द्वारा विचार किया गया। वैकल्पिक उपचार के आधार पर तत्काल याचिका को स्थिरता, अब याचिकाकर्ता के वैध अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी, जो कि धारा 104 एवं 105 से निपटने के दौरान निर्णय लेने वाले प्राधिकारी की योग्यता पर विशेष विचार के लिए इस न्यायालय के समक्ष आया है। उ. प्र. राजस्व संहिता 2006 और इस प्रकार त्वरित याचिका का निर्णय केवल योग्यता के परीक्षण के साथ साथ कानूनी प्रावधानों के आधार पर किया जाना चाहिए जो प्राधिकरण को धारा 104 एवं 105 के तहत स्थानान्तरण मामले की प्रकृति पर विचार करते समय कार्यवाही करने में सक्षम बनाता है।

19. यहाँ उपर दिये गये तीसरे प्रश्न का उत्तर पहले और दूसरे प्रश्न में दिया गया है और इसे अलग से निपटाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह प्रतिद्वंद्वी पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता द्वारा कानूनी मुद्दे के समवर्ती प्रदर्शन के साथ बिल्कुल स्पष्ट है जिसके स्पष्ट रूप से यह स्पष्ट कर दिया कि यह उप-विभागीय अधिकारी है जो उ0प्र0. राजस्व संहिता 2006 की धारा 104/105 के संबंध में शुरू की गई किसी भी कार्यवाही पर निर्णय लेने के लिए सक्षम प्राधिकारी है। हालांकि राजस्व संहिता 2006 की धारा 19 और 215 पर विचार के लिए गाँव सभा के विद्वान् अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता द्वारा दिए गये तर्कों का संबंध है, यह स्पष्ट करता है कि कर्तव्यों का पालन करने की शक्ति उच्च प्राधिकारी के पास भी निहित है, साथ ही अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रदत्त 2006 की संहिता के तहत परिभाषित शक्ति विशेष

परिस्थितियों में है और उसका प्रयोग सामान्य और सामान्य तरीके से नहीं किया जा सकता है यदि ऐसा है तो इसके कारण यदि ऐसा है, तो 2006 की संहिता की धारा 19 को आकर्षित करने वाली शक्तियों का प्रयोग करने के कारण वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गये प्रशंसनीय और संतोषजनक कारणों के साथ होने चाहिए। अधीनस्थ प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग करना उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 में धारा 19 बनाते समय विधायिका की नेक मंशा थी जो कि बड़े पैमाने पर वरिष्ठ प्राधिकारी को प्रदत्त एक विशेष और असाधारण शक्तियाँ हैं, यू.पी. जेड, ए, एवं एल.आर अधिनियम 1950, में उपलब्ध नहीं थी, केवल न्याय के वितरण को सुनिश्चित करने के लिए था, न कि इसे सामान्य एवं और सामान्य तरीके से उपयोग करने के लिए, और उ0प्र0 राजस्व संहिता 2006 को धारा 19 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय यह तर्कों को दर्ज करके वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का आवश्यक घटक है कि किन परिस्थितियों में धारा 19 की शक्ति का प्रयोग वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा एक बार अधीनस्थ प्राधिकारी के साथ निहित होने के बाद किया गया है।

20. विद्वान् स्थायी अधिवक्ता द्वारा किए गये प्रस्तुतीकरण के संबंध में कि उस तरीके में शामिल व्यवहारिकता की व्यवहार्यता के संबंध में, जहाँ निर्णय उप-विभागीय अधिकारी द्वारा किया जायेगा और उसे कलेक्टर द्वारा निष्पादित किया जायेगा यहां अस्पष्ट करें कि उपखण्ड अधिकारी उ.प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 104, 105 के अनुसरण में निर्णायक प्राधिकारी है जिसमें उ0प्र0 राजस्व संहिता

विनियम 2016 के अर्गतगत प्रक्रिया को परिभाषित किया गया है, यह कलेक्टर नहीं है जो उपविभागीय अधिकारी द्वारा दिए गये आदेशों या निर्णय को निष्पादित करेगा, बल्कि उपविभागीय अधिकारी द्वारा शुन्य घोषित की गई सम्पत्ति का हस्तान्तरण राज्य में नीहित होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि कलेक्टर ही है जो राज्य के रूप में जिले में नामित अधिकारी है और राज्य की श्रेणी और नामकरण के तहत शुरु होने वाले सभी प्रदर्शन जिला मजिस्ट्रेट / कलेक्टर के तदनुसार कार्य करने के लिए सशक्त बनाते हैं और इस तरह यदि शक्ति और सम्पत्ति या किसी भी सन्निहित निर्णय में राज्य शब्द शामिल होता है जो सीधे तौर पर व्यक्तिगत तरीके से प्रदर्शित करता है कि जिले के अन्दर कलेक्टर है, एक बार जब सम्पत्ति, जिसे उपविभागीय अधिकारी द्वारा शुन्य घोषित कर दिया है, राज्य में नीहित हो जाएगी तो केवल कलेक्टर ही राज्य की क्षमता के तहत उस पर कब्जा करेगा और उसे आगे, सौंप दिया जायेगा। राज्य द्वारा गाँव सभा के पक्ष में अर्थात् स्वयं कलेक्टर द्वारा और इस प्रकार विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाये गये आधार को स्पष्ट किया जाता है कि यह निष्पादन नहीं है यह केवल राज्य की शक्ति को प्राप्त करने के लिए कलेक्टर में निहित करना है वह सम्पत्ति जो हस्तान्तरण के दौरान शुन्य घोषित की गई हो और उसे 30प्र0 राजस्व संहिता नियम 2016 के नियम 103(6) के तहत प्रदान किया गया है।

21. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ,और तीनो विद्वान

अधिवक्ताओं द्वारा दिये गये पर्याप्त तर्कों ने न्यायालय को निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जगह और पर्याप्त सहायता प्रदान की जो इस प्रकार है:-

(i) आदेश दिनांक 23.06.2022 को 30प्र0 राजस्व संहिता 2006 की धारा 104/105 के तहत शुरु की गई कार्यवाही के विपरीत पारित और स्थगित किया जाता है प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा राजस्व संहिता 2006 के तहत उल्लिखित प्रावधानों के तहत सक्षम नहीं होने और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा निकाले गये निर्णय के प्रभाव और प्रभाव का किसी भी प्रयोजन से कोई संबन्ध नहीं होगा।

22. इस न्यायालय द्वारा निकाले गये निष्कर्ष से अलग होने से पहले , मैं व्यक्तिगत रूप से याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आदया प्रसाद तिवारी और गाँव सभा की ओर से पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ लेकिन वर्तमान मामले में उन्होंने राजस्व और सिविल क्षेत्राधिकार से संबंधित मामलो मे विशेषज्ञ होने के नाते न्यायालय मे सहायता के लिए विशेष रूप से बुलाया गया था, साथ ही साथ श्री धनंजय सिंह, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने भी राज्य अधिकारियों द्वारा अपनाए गए रुख का समर्थन करने के लिए अपनी सक्षम सहायता प्रदान की, जो अंततः वर्तमान याचिका का फैसला करने में सहायक थी।

23. तदनुसार रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।



(2023) 9 ILRA 866

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

रिट-सी संख्या 21891/2023

सरिता यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

सरोज देवी एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राम प्रवेश पांडेय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री राज करण यादव,  
 श्री विद्या धर यादव, श्री यादवेंद्र कुमार यादव,  
 श्री सीबी यादव (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री आनंद  
 उपाध्याय

सिविल विधि - यूपी पंचायत राज  
 अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी - यूपी  
 पंचायत राज (सदस्यों, प्रधानों और उप-  
 प्रधानों का चुनाव), नियम, 1994 - नियम  
 96, 106, 107, 112 - चुनाव विवादों का  
 निपटारा नियम, 1994 - नियम - 3 -  
 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - नियम 4 -  
 याचिकाकर्ता ने प्रधान पद के लिए चुनाव  
 लड़ा, जो ओबीसी उम्मीदवारों के लिए  
 आरक्षित था - मतदान 26.04.2021 को  
 हुआ, 02.05.2021 को मतगणना हुई -  
 याचिकाकर्ता ने 471 वोट हासिल किए,

निर्वाचित घोषित किया, प्रतिवादी को 23  
 वोटों से हराया - प्रतिवादी ने चुनाव  
 याचिका दायर की, निर्धारित प्राधिकारी ने  
 पुनर्मतगणना के लिए आदेश पारित किया -  
 आदेश को चुनौती दी - माना गया, चुनाव  
 याचिकाकर्ता, असत्यापित आंकड़ों को उद्धृत  
 करने के अलावा, उनके आधार का खुलासा  
 करने में विफल रहा और सामान्य - चुनाव  
 याचिकाकर्ता को नियम, 1994 के तहत  
 मतपत्र का हिसाब मांगने का अवसर मिला  
 था, लेकिन न तो उसने ऐसा किया और न  
 ही कथित हेराफेरी के संबंध में लिखित  
 आपत्तियां उठाईं - मतगणना के दौरान  
 नियम 104 के उल्लंघन का आरोप लगाते  
 हुए कोई दलील नहीं दी गई - रसीद में  
 कथित कटिंग या ओवरराइटिंग के संबंध में  
 पहले कोई लिखित आपत्ति नहीं की गई -  
 रिकॉर्ड में ऐसी छेड़छाड़ नहीं दिखाई देती -  
 न्यायाधिकरण को पुनर्गणना का आदेश देने  
 से पहले रसीद 45 और 46 की जांच करनी  
 चाहिए - आरोप निराधार हैं, क्योंकि रसीद  
 मतगणना के बाद मतदान एजेंटों को दिखाई  
 गई थी, तब कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी  
 - मतदान एजेंट के साक्ष्य वोट अस्वीकृति,  
 अवैध वोट स्वीकृति या वोट मिश्रण के दावों  
 का समर्थन नहीं करते - चुनाव अधिकारी  
 द्वारा अनियमितता का कोई निष्कर्ष नहीं  
 निकाला गया - पुनर्गणना आदेश रद्द किया  
 गया। (पैरा 2, 11, 48, 49, 54, 64, 67)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची :

1. महेंद्र पाल बनाम श्री राम दास मालंगेर एवं अन्य, (2002) 3 एससीसी 457
2. राम अधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 11079/1983
3. आर. नारायणन बनाम एस. सेम्मालाई एवं अन्य, 1980 एआईआर 206: 1980 एससीआर (1) 571
4. सुरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 3701/2011, 24.01.2011 को निर्णयित
5. श्रीमती हरमाया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 18599/2017, 03.05.2017 को निर्णित
6. ओम प्रकाश उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 (5) एडीजे 454
7. श्रीमती उषा देवी बनाम श्रीमती चंद्रकांता एवं अन्य, (2018) 4 यूपीएलबीईसी 2706
8. एफ.ए. सापा आदि बनाम सिंगोरा एवं अन्य, 1991 (2) जे.टी. 503
9. श्री वी. नारायणस्वामी बनाम श्री सीपी थिरुनावुक्कारासु, (2000) 2 एससीसी 294 (पैरा 23)
10. सबरुन्निशा बनाम ताहिरा एवं अन्य, 2013 (0) सुप्रीम (इलाहाबाद) 2251
11. राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई एवं अन्य, एआईआर 1964 एससी 1249, (पैरा 8)
12. भाभी बनाम शिव गोविंद एवं अन्य, एआईआर 1975 एससी 2117
13. जीतेन्द्र बहादुर सिंह बनाम कृष्ण बिहारी, एआईआर 1970 एससी 276, (पैरा 8)
14. एन. नारायणन बनाम एस. सेम्मालाई, एआईआर 1980 एससी 206
15. डॉ. जगजीत सिंह बनाम जानी करतार सिंह एवं अन्य, एआईआर 1966 एससी 773
16. राम सिंह बनाम काजी मोहिउद्दीन एवं अन्य, एआईआर 1988 इलाहाबाद 210
17. मार्कियो टाडो बनाम तकम सोरांग, एआईआर 2012 एससी 993
18. एस. रघबीर सिंह गिल बनाम एस. गुरचरण सिंह तोहरा एवं अन्य, एआईआर 1980 एससी 1362, (पैरा 22, 23)
19. कु. श्रद्धा देवी बनाम कृष्ण चंद्र पंत एवं अन्य, एआईआर 1982 एससी 1569: (1982) 3 एससीसी 389.2
20. सुरेश प्रसाद यादव बनाम जय प्रकाश मिश्रा एवं अन्य, एआईआर 1975 एससी 376, (पैरा 5, 6)

21. एमआर गोपालकृष्णन बनाम थचाडी प्रभाकरन और अन्य, 1995 सप्लिमेंट (2) एससीसी 101, (पैरा 16)

22. चंद्रिका प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2004) 6 एससीसी 331

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका संख्या 7687/2021 में उप- विभागीय अधिकारी/ विहित प्राधिकारी, मिर्जापुर द्वारा पारित दिनांक 03.07.2023 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जिसके तहत वोट के पुनर्गणना का निर्देश पारित किया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश में पंचायत के चुनाव वर्ष 2021 में हुए थे, याचिकाकर्ता ग्राम पंचायत कोबाही, विकास खंड - छानबे, तहसील सदर, जिला मिर्जापुर के प्रधान पद के उम्मीदवारों में से एक था। ग्राम पंचायत 'ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार' के लिए आरक्षित थी। याचिकाकर्ता ने पात्र होने के नाते, चुनाव चिन्ह के रूप में 'कार' आवंटित होने पर उपरोक्त चुनाव लड़ा। मतदान 26.04.2021 को हुआ और मतगणना 02.05.2021 को हुई। याचिकाकर्ता को 471 वोट मिले और उसे उक्त ग्राम पंचायत का प्रधान निर्वाचित घोषित किया गया। प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात सरोजा देवी को 448 वोट मिले और इस प्रकार याचिकाकर्ता को 23 वोटों के अंतर से निर्वाचित घोषित किया गया।

3. उपरोक्त चुनाव को कई आधारों पर चुनौती देते हुए, यह कहते हुए कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से नहीं हुआ, प्रतिवादी संख्या 1 पराजित उम्मीदवार ने यूपी की धारा 12- सी के तहत चुनाव याचिका पंचायत राज अधिनियम, 1947 अन्य बातों के साथ- साथ निम्नलिखित आधारों पर दायर की है:

3.1 सरोजा देवी यहां प्रतिवादी संख्या 1, (चुनाव याचिकाकर्ता), के पक्ष में डाले गए वैध वोट को अवैध घोषित कर दिया गया;

3.2 प्रतिवादी संख्या 1- सरोजा देवी के पक्ष में डाले गए वैध वोट को याचिकाकर्ता सरिता यादव (चुनाव याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 1) और प्रतिवादी संख्या 7 -

नीलम (चुनाव याचिका में विपक्षी संख्या 2) के बंडलों में मिलाया गया था;

3.3 अवैध घोषित किए गए वोटों को याचिकाकर्ता के बंडल में मिला दिया गया और उसके पक्ष में गिना गया;

3.4 याचिकाकर्ता के पक्ष में डाले गए वोटों की संख्या जिन्हें अवैध घोषित कर दिया गया, उन्हें उसके पक्ष में वैध वोटों के रूप में गिना गया।

4. गणना में की गई अवैधताओं के संबंध में उपरोक्त तथ्य प्रतिवादी संख्या 1 सरोजा देवी के पति द्वारा बताया गया था, जो उनके अभिकर्ता के रूप में उपस्थित था, ने इस संबंध में मतगणना पर्यवेक्षक एवं

मतगणना गणनाकर्मी के समक्ष आपत्ति जताई लेकिन कोई ध्यान नहीं दिया गया। चुनाव याचिका में यह भी आरोप लगाया गया है कि मतगणना पूरी होने के बाद प्रतिवादी संख्या 1 जिसका चुनाव चिह्न 'किताब' था, प्रतिवादी संख्या 1 के वैध कागजात के बंडल याचिकाकर्ता से अधिक थे। इसकी सूचना प्रतिवादी संख्या 1/ चुनाव याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित मतगणना अभिकर्ता को पर्यवेक्षक एवं गणनाकर्मी द्वारा दी गयी कि उसे 448 वोट मिले थे, जबकि याचिकाकर्ता (चुनाव याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 1) जिसका चिह्न 'कार' था, को 413 वोट मिले थे, जबकि विपक्षी पक्ष संख्या 2 चुनाव याचिका में - नीलम देवी जिसका चुनाव चिह्न 'इमली' था को 60 वोट मिले थे, विपक्षी पक्ष संख्या 3, अर्थात्, अनिता देवी जिसका चिह्न 'अनाज ओसाता किसान' था को 2 वोट मिले, विपक्षी पक्ष संख्या 4 जिसका चिह्न 'कन्नी' था को 1 वोट मिला और कुल 80 वोट खारिज कर दिए गए।

5. उपरोक्त जानकारी देने के बाद, पर्यवेक्षक और गणनाकर्मी ने प्रतिवादी संख्या 1 के पति से पूछा, जो उसकी ओर से गणना अभिकर्ता के रूप में उपस्थित था, की वह प्रतिवादी संख्या 1 को बुलाए, ताकि उन्हें इस संबंध में प्रमाण पत्र दिया जा सके। चुनाव याचिका की पैराग्राफ-6 में यह भी आरोप लगाया गया है कि पर्यवेक्षक एवं गणनाकर्मी ने इसके अनुरूप चार्ट बनाया था। उपरोक्त जानकारी प्राप्त करने के बाद, मतगणना अभिकर्ता अपनी पत्नी/ प्रतिवादी संख्या 1 को बुलाने के लिए मतगणना हॉल से

बाहर चला गया। उसने मतगणना केंद्र कन्या इंटर कॉलेज, के दरवाजे पर खड़े होकर अपनी पत्नी से केंद्र के अंदर आने को कहा।

6. चुनाव याचिका की पैराग्राफ-7 में यह आरोप लगाया गया है कि जैसे ही मतगणना अभिकर्ता अपनी पत्नी अर्थात् सरोजा देवी/ प्रतिवादी संख्या 1 के साथ उक्त मतगणना केंद्र में प्रवेश किया वैसे ही उन्होंने देखा कि पर्यवेक्षक और गणनाकर्मी ने बिना काउंटिंग चार्ट बनाये ही बूथ संख्या 158 एवं 159 का बंडल खोल दिया है, उनमें हेराफेरी करने हेतु कुछ घपला किया गया जिस पर चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा आपत्ति की गई परन्तु कोई ध्यान नहीं दिया गया, आपत्ति को नजरअंदाज करते हुए उन्होंने जबरदस्ती अपनी सुविधा के अनुसार बंडल बनाकर गणना चार्ट/परिशिष्ट बनाना शुरू कर दिया। उपरोक्त के बाद प्रतिवादी संख्या 1 को 448 वोट प्राप्त हुए दिखाए गए जबकि याचिकाकर्ता को 471 वोट मिले और उसे 23 वोटों से विजयी उम्मीदवार घोषित किया गया।

7. यह भी आरोप लगाया गया है कि 80 वोटों की जगह सिर्फ 44 वोट ही अवैध घोषित किये गये। याचिकाकर्ता को प्रमाणपत्र भी जल्दबाजी में जारी कर दिया गया। चुनाव याचिका की पैराग्राफ-8 में आरोप लगाया गया है कि मतदाता सूची में कुल 1354 मतदाता अंकित हैं, जिनमें से 1004 वोट प्रधान, क्षेत्र पंचायत सदस्य, जिला पंचायत सदस्य के चुनाव के लिए डाले गए थे लेकिन अनुचित तरीके से कार्यवाही करते हुए हेराफेरी की गई और प्रापत्र में 22 अतिरिक्त वोट दर्शाए गए हैं। 44 के स्थान पर 80 अवैध मत ही दर्शाये गये हैं, शेष

36 अवैध मतों को याची के बंडल में डालकर उसके पक्ष में गणना कर ली गयी और याची के बंडल के ऊपर 471 मत दिखाए गए।

8. उपरोक्त पहलू को निर्दिष्ट करते हुए, चुनाव याचिका के पैराग्राफ-9 में यह आरोप लगाया गया है कि मतदान केंद्र 158 पर कुल 573 वोट पड़े; जबकि मतदान केन्द्र क्र. 159 पर 431 वोट पड़े, इस प्रकार कुल 1004 वोट पड़े, लेकिन याचिकाकर्ता के बंडल में 36 अवैध वोट डाले गए और पहले गिने गए 413 वोटों की जगह 471 वोट उनके पक्ष में दिखाए गए हैं, तदनुसार, प्रपत्र बनाकर घोषणा की गई याचिकाकर्ता 23 वोटों के अंतर से जीता है।

9. चुनाव याचिका की पैराग्राफ-11 में प्रधान के चुनाव में की गई हेराफेरी/ हेरफेर पर जोर देते हुए आरोप लगाया गया है कि मतगणना चार्ट, गणना पर्ची, परिशिष्ट 5 प्रपत्र 43 एवं परिशिष्ट 7 प्रपत्र 45, परिशिष्ट 8 प्रपत्र 46 में काट- छाँट कर गलत प्रविष्टियाँ की गई हैं और तदनुसार परिणाम घोषित कर दिया गया है, जो अवैध है।

10. प्रतिवादी संख्या 1 का पति, जो वोटों की गणना के समय उसका अभिकर्ता था, के शपथ पत्र को चुनाव याचिका में लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए सबूत के रूप में प्रस्तुत किया गया था। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत गवाह की प्रतिपरीक्षा की।

11. विहित प्राधिकारी ने चुनाव के रिकॉर्ड जैसे मतपत्र के काउंटरफ़ोइल और मतदाता

सूची को भी तलब किया, जिसके आधार पर वोटों की पुनर्गणना का निर्देश देने का आदेश दिनांक 03.07.2023 को पारित किया गया, इस प्रकार उपरोक्त आदेश को चुनौती देने वाली वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गयी।

12. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. पांडे, राज्य के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री विजय प्रकाश मिश्रा और निजी उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.बी. यादव, साथी विद्वान अधिवक्ता श्री वी.डी. यादव, उपस्थित हुए।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उस आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए जिसमें वोटों की दोबारा गणना का आदेश दिया गया है, कहा है कि चुनाव याचिका निम्नलिखित आधार पर दायर की गई है:

**13.1** वैध मतों की अनुचित अस्वीकृति:

**13.2** अवैध मतपत्रों की अनुचित स्वीकृति, और रिट याचिकाकर्ता के पक्ष में उन्हें वैध मतों के रूप में गिना जाना;

**13.3** मतपत्रों की गणना का क्रम के दौरान की गई घोर अनियमितताएँ/ गलतियाँ;

**13.4** कुल मतों की संख्या में कटौती कर गलत प्रविष्टियाँ करना और प्रपत्र में ओवरराइटिंग;

**13.5** अंततः प्रधान पद के लिए उक्त तिथि को पड़े मतों की कुल संख्या 1026 के स्थान पर 1004 होने पर विवाद किया गया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि न्यायालय को केवल मतपत्रों की पुनर्गणना का आदेश देना वहा उचित होगा, जहां चुनाव याचिका में भौतिक तथ्यों का पर्याप्त विवरण है, जिस पर मतगणना में अनियमितता या अवैधता के आरोप पाए जाते हैं, और इसके आधार पर पेश किए गए सबूतों से ऐसे आरोप प्रथम दृष्टया स्थापित होते हैं, जिससे यह विश्वास करने का अच्छा आधार मिलता है कि गणना में गलती हुई है, साथ ही यदि याचिका की सुनवाई कर रही अदालत प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निर्णय और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। उनकी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के **महेन्द्र पाल बनाम श्री राम दास मलंगेर और अन्य<sup>6</sup>** के केस में निर्णय पर भरोसा किया है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अस्पष्ट दलीलों का समर्थन करने के लिए, भौतिक तथ्यों के समर्थन के बिना या ऐसी दलीलों का समर्थन करने के लिए सबूत निकालने के लिए मतपत्रों के निरीक्षण का आदेश नहीं दिया जा सकता है। मामले को भौतिक तथ्यों के आधार पर समर्थित प्रावधान के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए और केवल यह आरोप कि वोटों का अनुचित प्रतिग्रह, इनकार या अस्वीकृति हुई है,

निरीक्षण के आदेश का समर्थन करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इस संबंध में **राम आधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश<sup>7</sup>** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय का संदर्भ दिया गया है।

16. **आर. नारायणन बनाम एस. सेम्मलाई और अन्य<sup>8</sup>** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जिन परिस्थितियों के तहत पुनर्गणना का आदेश दिया जा सकता है, उस विषय पर कानून को संक्षेप में निम्नलिखित अनुसार प्रस्तुत किया गया है:

"न्यायालय द्वारा मतपत्रों की पुनर्गणना का आदेश केवल तभी उचित होगा जब:

(1) चुनाव याचिका में उन सभी भौतिक तथ्यों का पर्याप्त विवरण शामिल होगा जिन पर मतगणना में अनियमितता या अवैधता के आरोप आधारित हैं;

(2) प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर ऐसे आरोप प्रथम दृष्टया स्थापित किये जाय जिससे इस बात पर विश्वास करने का अच्छा आधार मिल जाय की वोट गिनने में गलती हो गई है; और

(3) याचिका पर सुनवाई करने वाली अदालत प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का फैसला करने और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जो आरोप लगाए गए हैं, वे न केवल स्पष्ट रूप से लगाए जाने चाहिए बल्कि ठोस सबूतों और वोटों के संकीर्ण अंतर से साबित भी होने चाहिए, निस्संदेह यह एक महत्वपूर्ण कारक है जिस पर विचार किया जाना चाहिए, लेकिन यह अपने आप में गणना को खराब नहीं करेगा या पुनर्गणना को उचित नहीं ठहराएगा। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के केस **सुरेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य**<sup>9</sup> के निर्णय पर भरोसा जताया है।

18. इस प्रकार, उपरोक्त स्थिति को साबित करने का कोई आधार न होने पर, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोप वाली ऐसी चुनाव याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है और पुनर्गणना का निर्देश देने वाला आदेश अपास्त किया जाने योग्य है।

19. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि जिस आक्षेपित आदेश के तहत वोटों की पुनर्गणना का निर्देश दिया गया है, उसमें कोई अवैधता नहीं है। उनका निवेदन है कि चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में डाले गए वैध वोटों को अवैध घोषित किए जाने, चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में डाले गए वैध वोटों को याचिकाकर्ता सरिता यादव और एक नीलम के बंडलों में मिलाए जाने और अवैध वोटों को याचिकाकर्ता के बंडल में मिलाये जाने और उसके पक्ष में गिने जाने और साथ ही याचिकाकर्ता के अवैध वोटों को उसके पक्ष में वैध वोटों के रूप में गिने जाने के संबंध में विशेष आरोप हैं। इसका समर्थन पराजित

उम्मीदवार के पति सूर्यमणि यादव नामक चुनाव अभिकर्ता के बयान से भी किया गया है। कुल डाले गए वोटों की संख्या यानी 1004 के संबंध में भी एक निश्चित आरोप है, जिसमें हेरफेर किया गया और कुल डाले गए वोटों को 1026 दिखाया गया।

20. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रतिवादी चुनाव याचिकाकर्ता ने उपरोक्त अनियमितताओं के संबंध में विशेष रूप से आरोप लगाए हैं और गणना अभिकर्ता के बयान के आधार पर इसे साबित किया है, इस प्रकार चुनाव की शुद्धता बनाए रखने के लिए, पुनर्गणना का आदेश पारित किया जाना चाहिए जहां इसने चुनाव के परिणाम को भौतिक रूप से प्रभावित किया है, वहां इसने पराजित उम्मीदवार को पक्षों के बीच में न्याय करने के लिए गंभीर रूप से पूर्वाग्रहित किया गया है। अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के केस **श्रीमती हरमाया बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य**<sup>10</sup> के निर्णय पर भरोसा किया है।

21. प्रतिवादी की ओर से बहस करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि वोटों की संख्या में अस्पष्ट विसंगति के साथ-साथ अन्य आरोपों जैसे वैध मतों को अवैध घोषित किये जाने और पराजित उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मतों को याचिकाकर्ता के पक्ष में गिने जाने के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से प्रथम दृष्टया मामला बनाने के लिए गणना अभिकर्ता के बयान के रूप में पर्याप्त सामग्री थी, इसलिए पुनर्गणना के निर्देश देने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं है और उपरोक्त के लिए

पराजित उम्मीदवार द्वारा आपत्ति भी उठाई गई थी, लेकिन उक्त को विचार नहीं किया गया। उन्होंने इस न्यायालय के केस **ओम प्रकाश उपाध्याय बनाम यूपी राज्य और अन्य**<sup>11</sup> के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें, चुनाव याचिका के प्रासंगिक पैराग्राफ में कहा गया है कि, गणना के समय, कुछ व्यक्तियों के प्रभाव पर, अनुचित दबाव डाला गया था और पराजित उम्मीदवार के पक्ष में डाले गए वैध वोटों को विजयी उम्मीदवार के बंडल में जोड़ा गया था, जिसमें अवैधताओं के खिलाफ आपत्ति की गई थी, कुल मतों में अस्पष्ट विसंगति के लिए पुनर्गणना का निर्देश देने वाला आदेश बुरा नहीं है।

22. प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह भी तर्क है कि चुनाव याचिका में उन सभी तथ्यों का पर्याप्त विवरण है, जिन पर अनियमितता या अवैधता के आरोप पाए जाते हैं, चुनाव याचिका के प्रासंगिक पैराग्राफ में विशिष्ट कथन दिए गए हैं और उन्हें विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है, चुनाव याचिका में दिए गए कथनों के समर्थन में प्रतिवादियों के गणना अभिकर्ता द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं, प्रथम दृष्टया से यह विश्वास करने का एक अच्छा आधार स्थापित होता है कि गणना में अवैधता और अनियमितता रही है, इसलिए, विवाद का फैसला करने और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए, वर्तमान मामले में चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्टि पर पुनर्गणना के आदेश को किसी भी तरह की अनियमितता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने

इस न्यायालय के केस **श्रीमती उषा देवी बनाम श्रीमती. चंद्रकांता और अन्य**<sup>12</sup> के निर्णय पर भरोसा किया है।

23. श्री यादव ने उ.प्र. पंचायत राज (चुनाव के सदस्यों, प्रधानों और उप- प्रधानों), नियम, 1994 के प्रावधान भी रखे, जिसमें नियम 76 से 96 तक के प्रावधानों से संकेत मिलता है कि रिटर्निंग अधिकारी, मतदान के अंत में, निर्दिष्ट प्रारूप में मतपत्र तैयार करेगा और यदि उपरोक्त कागजात की गणना कर ली जाती है तो मतदान अभिकर्ता को मतदान में डाले गए वास्तविक वोटों के बारे में जानने का पूरा अधिकार है, इसलिए उपरोक्त तथ्य यह है कि मतदान अभिकर्ता को डाले गए वोटों की संख्या की जानकारी नहीं थी और हेराफेरी के बाद कटिंग और ओवरराइटिंग करके प्रपत्र तैयार किया गया था, इस तरह के आरोप निष्पक्ष और उचित होने के कारण दोबारा वोटों की गणना का निर्देश देने के बाद ही इस पर गौर किया जा सकता है, इसलिए उपरोक्त के बारे में जानने के लिए कि कितने वोट पड़े, 1004 या 1026, ट्रिब्यूनल ने उचित रूप से मतदाता सूची और काउंटरफॉइल को मंगाया है और उक्त में विसंगति देखकर, आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो अवैध नहीं है, इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।

24. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

25. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की सहमति से, न्यायालय के



नियमों के अनुसार, इस स्तर पर, जवाबी हलफनामा मांगे बिना, रिट याचिका पर अंतिम रूप से सुनवाई की जा रही है।

(i) किसी नामांकन की अनुचित स्वीकृति या अस्वीकृति से,  
या

26. इस संबंध में एकमात्र प्रश्न जो निर्धारित किया जाना है वह यह है कि क्या पुनर्गणना का निर्देश देने वाला आदेश वर्तमान मामले के तथ्यों में उचित है। इस प्रश्न पर विचार करते समय, उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनावी विवादों का निपटारा) नियमावली, 1994 के साथ पठित उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 के भौतिक प्रावधानों पर सबसे पहले ध्यान दिया जाना चाहिए।

27. उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12- सी के प्रासंगिक भाग का उल्लेख करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

**"12-C.** चुनावों पर सवाल उठाने के लिए आवेदन- (1) किसी व्यक्ति के प्रधान [\*\*\*] या ग्राम पंचायत के सदस्य [\*\*\*] के रूप में चुनाव को प्रश्न में नहीं लाया जाएगा सिवाय एक आवेदन द्वारा ऐसे प्राधिकारी को ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति से देकर जो इस आधार पर विहित की जाए कि-

(a) चुनाव इस कारण से स्वतंत्र चुनाव नहीं रहा है कि चुनाव में रिश्वतखोरी या अनुचित प्रभाव का भ्रष्ट आचरण बड़े पैमाने पर प्रचलित है, या

(b) कि चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है-

(ii) इस अधिनियम के प्रावधानों का या उसके तहत बनाए गए नियमों अनुपालन करने में घोर विफलता से।

28. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि चुनाव याचिका में भौतिक तथ्य का संक्षिप्त विवरण होना चाहिए, जिस पर याचिकाकर्ता भरोसा करता है, और उसके तहत लगाए गए आरोपों का समर्थन करने वाली सामग्री होनी चाहिए। इससे यह भी पता चलता है कि जिन आधारों पर ग्राम प्रधान और उसके सदस्यों के चुनाव को चुनौती दी जा सकती है, वे हैं (a) चुनाव इस कारण से स्वतंत्र चुनाव नहीं रहा है कि चुनाव में रिश्वतखोरी या अनुचित प्रभाव का भ्रष्ट आचरण बड़े पैमाने पर प्रचलित है, या (बी) कि चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है।

29. अधिनियम, 1947 की धारा 12- सी की उपधारा (3) उपधारा (1) के अधीन आवेदन दाखिल करने की प्रक्रिया प्रदान करती है इसके बाद इसे 'चुनाव याचिका' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। कानून कहता है कि चुनाव याचिका में ऐसे विवरण शामिल होंगे जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

30. आगे की प्रक्रिया के संबंध में, कानून चुनाव विवाद निपटान नियम, 1994 द्वारा इसके निर्धारण पर विचार करता है। उक्त

नियम, 1994 का नियम-3 यहां पुनः प्रस्तुत करने के लिए प्रासंगिक है:

**"3. चुनाव याचिका.-** (1) अधिनियम की धारा 12- सी की उप- धारा (1) के तहत एक आवेदन उप- विभागीय अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा, जिसके अधिकार क्षेत्र में संबंधित ग्राम पंचायत स्थित है। उस दिन से नब्बे दिनों के भीतर जिस दिन प्रश्नगत चुनाव के परिणाम की घोषणा की जाती है और उस आधार या आधारों को उल्लिखित किया जाएगा जिस पर प्रतिवादी के चुनाव पर सवाल उठाया गया है और इसमें उन परिस्थितियों का सारांश शामिल होगा जो ऐसे आधार पर चुनाव पर सवाल उठाए जाने को उचित ठहराते हैं।"

31. विवाद निपटान नियम, 1994 का नियम-4 याचिका पर सुनवाई करते समय टिब्युनल द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित करता है। यह प्रदान करता है कि अधिनियम और इन नियमों के प्रावधानों के अधीन, प्रत्येक चुनाव याचिका की सुनवाई सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत लागू प्रक्रिया के अनुसार, एक उप- विभागीय अधिकारी द्वारा की जाएगी। नियम -4 यहाँ- नीचे उद्धृत है:

**"4. याचिका की सुनवाई.-** (1) अधिनियम के प्रावधानों के अधीन और इन नियमों के अनुसार, प्रत्येक चुनाव याचिका की सुनवाई सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत लागू प्रक्रिया, यथासंभव, मुकदमे के विचारण के लिए उप- विभागीय अधिकारी द्वारा की जाएगी।"

32. 30प्र0 पंचायत राज (चुनाव के सदस्यों, प्रधानों और उप- प्रधानों), नियम, 1994 के अन्तर्गत निर्धारित चुनाव कराने की प्रक्रिया है। नियम 96, 104 और 112 का उल्लेख नीचे किया जाना आवश्यक है:

**96. मतपत्रों का लेखा---** मतदान अध्यक्ष मतदान समाप्ति पर निर्दिष्ट प्रपत्र में मतपत्र लेखा तैयार करेगा।

**104. गणना की प्रक्रिया---** नियम 101 के तहत नियुक्त तिथि और समय और स्थान पर, निर्वाचन अधिकारी निम्नानुसार कार्यवाही करेगा:

(a) निर्वाचन अधिकारी खुद को संतुष्ट करेगा कि मतदान में उपयोग की जाने वाली और उस स्थान पर गणना की जाने वाली सभी मतपेटियाँ प्राप्त हो गई हैं और उनका हिसाब-किताब कर लिया गया है;

(b) निर्वाचन अधिकारी उस समय गणना में उपस्थित उम्मीदवारों और उनके निर्वाचन अभिकर्ताओं और गणना अभिकर्ताओं को मतपेटियों और उनकी मुहरों का निरीक्षण करने का अवसर देगा ताकि वे संतुष्ट हो सकें कि वे क्रम में हैं;

(c) निर्वाचन अधिकारी को यह भी संतुष्ट करना होगा कि वास्तव में किसी भी बक्से के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई है। यदि उसे पता चलता है कि किसी मतपेटि के साथ छेड़छाड़ की गई है या उसे नष्ट कर दिया गया है या खो दिया गया है, तो निर्वाचन अधिकारी वोटों

की गणना के लिए आगे नहीं बढ़ेगा और नियम 100 के प्रावधान लागू होंगे।

अधिकारी ऐसे मतपत्र पर संक्षेप में उसकी अस्वीकृति का कारण रिकॉर्ड करेगा;

(d) यदि निर्वाचन अधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि ऐसी सभी मतपेटियाँ जिनकी गणना उस स्थान पर की जानी है, प्राप्त हो गई हैं और वे क्रम में हैं, तो वह मतपेटियों में मौजूद मतपत्रों की गणना का कार्य करेगा। मतदान स्थल पर उपयोग की गई सभी मतपेटियाँ खोली जाएंगी, और उसी समय राज्य चुनाव आयोग के निर्देशों के अनुसार, उन बक्सों में पाए गए मतपत्रों की गणना की जाएगी।

(e) मतदान स्थल के बक्सों में पाए गए मतपत्रों का लेखा- जोखा राज्य चुनाव आयोग द्वारा निर्दिष्ट प्रपत्र में एक बयान में दर्ज किया जाएगा;

(f) निर्वाचन अधिकारी उम्मीदवारों, उनके निर्वाचन अभिकर्ताओं और गणना अभिकर्ताओं को, जो उपस्थित हो सकते हैं, सभी मतपत्रों का निरीक्षण करने का उचित अवसर देगा, जो निर्वाचन अधिकारी की राय में अस्वीकार किए जाने योग्य हैं, लेकिन उन्हें उन या किसी अन्य मतपत्र को सँभालने की अनुमति नहीं देगा।

निर्वाचन अधिकारी प्रत्येक अस्वीकृत मतपत्र पर हिंदी में अस्वीकृत अंकित करेगा।

यदि कोई उम्मीदवार या उसका निर्वाचन अभिकर्ता किसी मतपत्र की अस्वीकृति की शुद्धता पर सवाल उठाता है, तो निर्वाचन

(g) मतदान स्थल की मतपेटियों में मौजूद सभी मतपत्रों की गणना पूरी हो जाने के बाद निर्वाचन अधिकारी ऐसे सभी मतपत्रों को एक अलग पैकेट में रखवाएगा, जिस पर नाम की पहचान के लिए ऐसे विवरण अंकित होंगे जो उस ग्राम पंचायत का नाम बताएँगे जिससे मतपत्र संबंधित हैं।

\*\*\*

\*\*\* \*\*

## 112. निर्वाचन पत्रों का उत्पादन एवं

**निरीक्षण-** (1) सहायक जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत एवं स्थानीय निकाय) की अभिरक्षा में रहते हुए मतपत्रों के पैकेट चाहे वैध हों, अस्वीकृत हों या निविदत हों, तथा मतदाता सूची की अंकित प्रति किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी के समक्ष निरीक्षण या प्रस्तुत नहीं किया जाएगा सिवाय सक्षम न्यायालय के आदेश या चुनाव याचिका की सुनवाई करने वाले प्राधिकारी को छोड़कर।

(2) नियम 111 के उप- नियम (1) के तहत निर्वाचन अधिकारी द्वारा अग्रेषित चुनाव रिटर्न की प्रतियां प्रत्येक प्रति के लिए बारह रुपये के शुल्क के भुगतान पर सहायक जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत और स्थानीय निकाय) द्वारा प्रस्तुत की जाएंगी।

(3) चुनाव से संबंधित अन्य सभी कागजात ऐसी शर्तों के अधीन और ऐसी फीस के भुगतान के अधीन सार्वजनिक निरीक्षण के

लिए खोले जाएंगे जो राज्य चुनाव आयोग द्वारा निर्दिष्ट की गयी हैं।

33. नियमावली, 1994 का नियम-95 मतदान के बाद मतपेटियों आदि को सील करने के बारे में बताता है; नियमावली, 1994 का नियम-96 निर्दिष्ट प्रपत्र में मतपत्रों के खाते से संबंधित है; नियम-97 मतपेटियों आदि को चुनाव अधिकारी तक पहुंचाने के बारे में कहता है; नियम-103 उस व्यक्ति के बारे में है जो मतगणना के समय उपस्थित हो सकता है; नियम-106 में मतदान अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत खातों के सत्यापन की परिकल्पना की गई है; नियम 107 चुनाव अधिकारी द्वारा चुनाव रिटर्न की गणना करता है। गणना के लिए समय, स्थान और तारीख की नियुक्ति, गणना अधिकारी, गणना की प्रक्रिया, मतपत्रों को अस्वीकार करने का आधार, वोटों की समानता, परिणाम की घोषणा के संबंध में अन्य प्रावधान नियम 101 से 109 के बीच प्रदान किए गए हैं।

34. चुनाव याचिका पर निर्णय लेते समय, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए और जैसा कि अच्छी तरह से स्थापित है, कि चुनाव का अधिकार मौलिक है, हालांकि यह लोकतंत्र के लिए है, लेकिन यह असामान्य रूप से पर्याप्त है, न तो मौलिक अधिकार है और न ही सामान्य कानून का अधिकार है। अधिक विशिष्ट होने के लिए, चुनाव का अधिकार, निर्वाचित होने का अधिकार और चुनाव पर विवाद करने का अधिकार वैधानिक रचनाएँ हैं, इसलिए, वैधानिक सीमा के अधीन हैं। चुनाव याचिका सामान्य कानून या समानता में कार्यवाही नहीं है। यह एक वैधानिक कार्यवाही

है जिसमें न तो सामान्य कानून और न ही समानता के सिद्धांत लागू होते हैं, बल्कि केवल वे नियम लागू होते हैं, जो कानून बनाता है। यह एक विशेष क्षेत्राधिकार है और विशेष क्षेत्राधिकार का प्रयोग हमेशा इसे बनाने वाले कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। इसका मतलब यह है कि चुनावी विवादों की सुनवाई में अदालत को मुश्किल में डाल दिया जाता है।

35. **एफ.ए. सापा आदि बनाम सिंगोरा और अन्य**<sup>17</sup> के मामले में, न्यायालय ने कहा, "यह काफी अच्छी तरह से तय है कि" हमारा चुनाव कानून चरित्र रूप से वैधानिक है जिसका कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए क्योंकि एक चुनाव याचिका न्याय के बदलते सामान्य कानून सिद्धांतों और समानता की धारणाओं द्वारा निर्देशित नहीं होती है। वैधानिक स्वरूप होने के कारण यह आवश्यक है कि यह हमारे चुनाव कानून की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। लेकिन, साथ ही, चुनाव प्रक्रिया की शुद्धता हर कीमत पर बनाए रखी जानी चाहिए और जो लोग वैधानिक मापदंडों का उल्लंघन करते हैं उन्हें इस तरह के उल्लंघन के लिए दंडित किया जाना चाहिए।"

36. **श्री वी. नारायणस्वामी बनाम श्री सी.पी. थिरुनावुक्कारासु**<sup>18</sup> के एक अन्य मामले में पैराग्राफ -23 में न्यायालय ने कहा, "चुनाव याचिका अधिकारों पर आधारित है, जो पूरी तरह से कानून का सृजन हैं, और यदि कानून किसी विशेष आवश्यकता को अनिवार्य बनाता है, तो अदालत गैर- अनुपालन को माफ करने के लिए वितरण शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती है"।

37. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि चुनाव याचिका पर निर्णय लेते समय, ऊपर बताए गए प्रावधानों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

38. निर्णयों की श्रृंखला में यह माना गया है कि मतपत्रों की गोपनीयता पवित्र है और इसे हर कीमत पर बनाए रखना आवश्यक है और तुच्छ, फर्जी और अनिश्चितकालीन आरोपों पर पुनर्गणना का आदेश देने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस प्रकार, पराजित उम्मीदवार का चुनाव परिणाम की वैधता पर सवाल उठाने और वोटों की पुनर्गणना की मांग करने का अधिकार बुनियादी सिद्धांत के अधीन है क्योंकि मतपत्र की गोपनीयता पवित्र है और पुनर्गणना केवल तभी की जा सकती है जब प्रथम दृष्टया मामला बनता है। **सबरुग्निशा बनाम ताहिरा और अन्य**<sup>19</sup> के केस में निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है।"

39. **राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई और अन्य**<sup>20</sup> के मामले से लेकर **भाभी बनाम शेओ गोविंद और अन्य**<sup>21</sup> के मामले तक, और कई अन्य मामलों में यह माना गया है कि निरीक्षण पुनर्गणना का आदेश एक मामले के रूप में नहीं दिया जा सकता है। मतपत्रों की गोपनीयता पर जोर देने को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय द्वारा निरीक्षण/पुनर्गणना का आदेश देना उचित होगा, बशर्ते दो शर्तें पूरी हों: (i) कि चुनाव को अपास्त करने की याचिका में भौतिक तथ्यों का पर्याप्त विवरण शामिल हो जिसपर याचिकाकर्ता अपने मामले के समर्थन में भरोसा करता है और (ii) ट्रिब्यूनल प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निर्णय करने और पक्षों के बीच पूर्ण न्याय

करने के लिए मतपत्रों का निरीक्षण आवश्यक है।

40. उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि मतपत्रों के निरीक्षण का आदेश रिट याचिका में की गई अस्पष्ट दलीलों का समर्थन करने के लिए नहीं दिया जा सकता है, जो भौतिक साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या ऐसी दलीलों का समर्थन करने के लिए सबूत ढूंढने के लिए नहीं दिया जा सकता है। चुनाव याचिकाकर्ता के मामले को भौतिक तथ्यों पर आधारित सटीकता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत मामले को स्थापित करने के लिए, यदि न्याय के हित में आवश्यक हो, तो निःसंदेह निरीक्षण का आदेश दिया जा सकता है। लेकिन केवल यह आरोप कि चुनाव याचिकाकर्ता को संदेह या विश्वास है कि वोटों को अनुचित तरीके से स्वीकार किया गया है, अस्वीकार किया गया है या अस्वीकार किया गया है, निरीक्षण/पुनर्गणना के आदेश का समर्थन करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

41. इस प्रकार, यह प्रश्न उठता है कि पुनर्गणना की मांग वाली याचिका में भौतिक तथ्य क्या होंगे। यह बिंदु पूर्णतः एकीकृत नहीं है, क्योंकि यह निर्णय के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कई बार आया है। सभी निर्णयों में सर्वसम्मति यह है कि चूंकि पुनर्गणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को छूता है, इसलिए इसे हल्के में या बिना सोचे-समझे नहीं लिया जाना चाहिए। **राम सेवक यादव (सुप्रा)** के मामले में, जो पुनर्गणना के मुद्दे पर एक प्रमुख मामला है, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"8. इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि वोटों की जांच और गणना की प्रक्रिया में हर चरण में उम्मीदवार या उसके अभिकर्तों को वोटों की गणना में उपस्थित रहने, रिटर्निंग अधिकारी की कार्यवाही देखने, किसी भी अस्वीकृत वोट का निरीक्षण करने का अवसर मिलता है, इसलिए एक उम्मीदवार जो इस आधार पर चुनाव को चुनौती देना चाहता है कि गणना के समय वोटों को अनुचित तरीके से स्वीकार किया गया, इनकार किया गया या अस्वीकार किया गया, उसके पास पर्याप्त अवसर है जिस तरीके से मतपेटियों की जांच की गई, उन्हें खोला गया और वोटों की गणना की गई। उनके पास अस्वीकृत मतपत्रों का निरीक्षण करने और पुनर्गणना की मांग करने का भी अवसर है। यह धारा 83(1) के प्रावधानों के आलोक में है जिसके लिए उन भौतिक तथ्यों के संक्षिप्त विवरण की आवश्यकता होती है जिन पर याचिकाकर्ता भरोसा करता है और पराजित उम्मीदवार को गणना के समय, देखने और फिर से पुनर्गणना के दावा करने का अवसर होता है कि निरीक्षण के आवेदन पर विचार किया जाए।"

42. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक अभ्यर्थी एवं उसके अभिकर्ताओं को मतगणना की कार्यवाही देखने का पर्याप्त अवसर मिलने के कारण याचिका में यह स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि कैसे, किसकी उपस्थिति में तथा किस चक्र की मतगणना में अनियमितता हुई और मतगणना के समय उस अनियमितता पर कैसे आपत्ति की गई। वर्तमान मामले के तथ्यों में, वैध वोटों की अनुचित अस्वीकृति, अवैध मतपत्रों की अनुचित स्वीकृति और 1026 के स्थान पर डाले गए वोटों की कुल संख्या

1004 होने के विवाद के संबंध में आरोप हैं। जैसा कि चुनाव याचिका के विभिन्न पैराग्राफ में लगाए गए आरोप विशिष्ट नहीं हैं और मतदान अभिकर्तों के बयान द्वारा समर्थित हैं, जिसमें मतदान के समय अनियमितताओं के संबंध में कोई विवाद नहीं उठाया गया है, इसे और अधिक विशिष्ट बनाते हुए रिट याचिका में लगाए गए आरोप मतदान के समय से लेकर मतपेटियों के मतगणना स्थल तक पहुंचने तक किसी भी अनियमितता के संबंध में नहीं हैं। चुनाव के किसी भी पैराग्राफ में ऐसा रुख नहीं अपनाया गया है कि मतदान के समय कोई हेरफेर हुआ हो, इसलिए मतदान समाप्ति के बाद मतगणना के समय मतपत्रों की संख्या में अंतर का कोई सवाल ही नहीं उठता। जैसा कि नियम, 1994 के नियम-95 के तहत प्रदान किया गया है, मतदान अध्यक्ष को प्रत्येक मतपेटी के छेद को बंद करना होगा और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार या उसके अभिकर्ता (अभिकर्ता) की उपस्थिति में छेद को सील करना होगा, जो सील करने के लिए उपस्थित हो सकता है। उपरोक्त तथ्य पोलिंग अभिकर्ता के बयान से भी स्पष्ट होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

“जो मतदान के पश्चात जो बाक्स सील किये थे सभी एजेन्ट मौजूद थे

मतदान में किसी प्रकार की धांधली नहीं हुई थी इसकी जानकारी थी।”

43. नियम-106 में प्रावधान है कि निर्वाचन अधिकारी नियम-96 के तहत मतदान अधिकारी द्वारा प्रस्तुत विवरण को गिने गए मतों और अस्वीकृत मतपत्रों की संख्या के साथ अपने

पास मौजूद अप्रयुक्त या खराब मतपत्रों और टेंडर किए गए मतों की सूची से तुलना करके सत्यापित करेगा। वह अपने द्वारा खोले गए प्रत्येक पैकेट को दोबारा बंद करेगा और दोबारा सील करेगा और प्रत्येक पैकेट पर उसकी सामग्री का विवरण, ग्राम पंचायत का नाम, चुनाव की तारीख, जिसका वह संदर्भ देता है, दर्ज करेगा। नियम, 1994 के नियम-107 के अनुसार, निर्वाचन अधिकारी निर्दिष्ट प्रपत्र में चुनाव रिटर्न तैयार और प्रमाणित करेगा-

"(a) उन उम्मीदवारों के नाम जिनके लिए वैध वोट दिए गए हैं;

(b) प्रत्येक उम्मीदवार के लिए दिए गए वैध वोटों की संख्या;

(c) वैध मतपत्रों की कुल संख्या;

(d) अस्वीकृत मतपत्रों की संख्या;

(e) निविदित मतपत्रों की संख्या; और

(f) निर्वाचित उम्मीदवार का नाम.

वह किसी भी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार या उसके निर्वाचन अभिकर्ता या गणना

अभिकर्ता को ऐसे रिटर्न की एक प्रति या उद्धरण लेने की अनुमति भी देगा।

44. इस प्रकार, नियम, 1994 के नियम -107 के प्रावधानों के अनुसार, निर्वाचन अधिकारी द्वारा तैयार की गई चुनाव रिटर्न की एक प्रति चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार, या निर्वाचन अभिकर्ता या गणना अभिकर्ता / मतदान अभिकर्ता को भी दी जाती है, लेकिन इस संबंध में इसमें कोई उल्लेख नहीं है कि क्या चुनाव रिटर्न में उल्लिखित वोटों की संख्या में कोई अंतर था और चुनाव याचिका में कोई विशेष

उल्लेख नहीं है और न ही चुनाव याचिका के समर्थन में दिए गए मतदान अभिकर्ता के बयान में इसके बारे में संदर्भ दिया गया है। इसलिए, चुनाव याचिका में लगाए गए आरोप निश्चित, सटीक नहीं हैं, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में पुनर्गणना का निर्देश देने वाला ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

45. **जितेंद्र बहादुर सिंह बनाम कृष्ण बिहारी**<sup>22</sup> के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना भी उचित होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा था:

"8....वर्तमान मामले में कुछ आंकड़े देने के अलावा चाहे सही हों या काल्पनिक, याचिकाकर्ता ने याचिका में उस आधार का खुलासा नहीं किया है जिसके आधार पर वह उन आंकड़ों पर पहुंचा। उसका दावा है कि उसे ये आंकड़े कांग्रेस के मतगणना अभिकर्ताओं से मिले थे उम्मीदवार आवश्यक आधार नहीं दे सकते। उन्होंने याचिका में यह नहीं बताया कि वे

कार्यकर्ता कौन थे और उनकी जानकारी का आधार क्या था? उनका मामला यह नहीं है कि उन्होंने कोई नोट बनाए रखा था या उन्होंने उनके नोट्स की जांच की थी, यदि कोई थे भी...."

46. अंत में, **एन. नारायणन बनाम एस. सेम्मला**<sup>23</sup> के मामले के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि केवल त्रुटि होने की संभावना पर पुनर्गणना की राहत स्वीकार नहीं की जा सकती।

47. सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के सिद्धांत को लागू करते हुए, निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि पुनर्गणना की मांग करने वाले मामले में, चुनाव याचिकाकर्ता को न केवल वोटों के आंकड़े देने चाहिए, जो उसके अनुसार अनुचित रूप से स्वीकार या अस्वीकार कर दिए गए थे बल्कि आरोपों का आधार भी बताना होगा।

48. मौजूदा मामले में, कुछ आंकड़े देने के अलावा चाहे सही हों या काल्पनिक, चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में यह खुलासा नहीं किया है कि वह उन आंकड़ों पर किस आधार पर पहुंचा। उनका यह दावा कि उन्हें वे आंकड़े मतगणना अभिकर्ता से मिले थे, जैसा कि उन्हें पर्यवेक्षक और गणनाकर्मी ने बताया था, आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए आवश्यक आधार नहीं रख सकते। यह भी उल्लेख करना जरूरी होगा कि बंडल के साथ-साथ डाले गए वोटों की कुल संख्या को मिलाकर अनुचित स्वीकृति, अस्वीकृति और वोटों की गणना के संबंध में आरोप सामान्य प्रकृति के हैं, जिसका आधार सभी अभिकर्ता ने बताया है जो वहां मौजूद है। उपरोक्त कथन के समर्थन में पोलिंग अभिकर्ता के बयान में इस प्रकार कहा गया है:

"सभी एजेण्टों ने कहा था कि कुल 1004 मत ही पड़ा है इसी के आधार पर याचिका दायर की गयी है।"

49. चुनाव याचिकाकर्ता के पास मतपत्रों का हिसाब प्राप्त करने के लिए आवेदन करने का पर्याप्त अवसर था जोकि नियम, 1994 के नियम -96 के तहत आवश्यक निर्दिष्ट प्रपत्र में

बताया गया है, जिसमें मतदान के अंत में मतदान अध्यक्ष मतपत्र की गणना दिए गए निर्दिष्ट प्रपत्र में तैयार करें। चुनाव याचिका में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने मतपत्रों का उपरोक्त लेखा-जोखा प्राप्त करने का प्रयास किया था और न ही हेरफेर के संबंध में कोई लिखित आपत्तियां रखी गई हैं जैसा कि वोटों की अनुचित स्वीकृति या अस्वीकृति के संबंध में आरोप लगाया गया है। चुनाव याचिका में यह बिल्कुल भी दलील नहीं दी गई है कि वोटों की गणना के दौरान किसी भी स्तर पर नियमावली, 1994 के नियम-104 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का कोई उल्लंघन हुआ है।

50. वर्तमान मामले में, मुख्य आरोप वैध वोटों, अवैध वोटों, मिलावट और अन्य उम्मीदवारों के पक्ष में वोटों की गणना में हेरफेर संबंध में हैं। वोटों की पुनर्गणना की प्रार्थना केवल तभी उचित है जब याचिकाकर्ता ने भौतिक तथ्य द्वारा समर्थित सटीकता के साथ अपना मामला प्रस्तुत किया हो। केवल यह आरोप कि चुनाव याचिकाकर्ता के वैध वोटों को अवैध घोषित करने, या किसी अन्य बंडल में मिलाने जिसे किसी अन्य उम्मीदवार के पक्ष में गिना जा रहा है के संबंध में हेरफेर किया गया है, या उम्मीदवारों के अवैध वोटों को वैध के रूप में गिना जा रहा है, पुनर्गणना के आदेश का समर्थन करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा अर्थात्, एक उम्मीदवार जो उपरोक्त आधार पर चुनाव को चुनौती देना चाहता है, उसे प्रासंगिक अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के आलोक में उन भौतिक तथ्यों का संक्षिप्त विवरण देना चाहिए जिन पर याचिकाकर्ता भरोसा करता है



और उक्त को साबित करने के आधार पर पुनर्गणना के आवेदन के लिए विचार किया जा सकता है। **डॉ. जगजीत सिंह बनाम ज्ञानी करतार सिंह और अन्य**<sup>24</sup> के मामले में, चुनाव याचिका में दावा किया गया था कि अपीलकर्ता के पक्ष में बड़ी संख्या में वोट डाले गए थे, जिसे अनुचित तरीके से खारिज कर दिया गया था और इससे चुनाव के परिणाम पर असर पड़ा था। इस प्रकार, पूर्वोक्त पर जोर देते हुए और **राम सेवक यादव (सुप्रा)** के निर्णय पर भरोसा करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **जितेंद्र बहादुर सिंह (सुप्रा)** के मामले में निम्नलिखित कानून निर्धारित किया गया है:

"8....वर्तमान मामले में कुछ आंकड़े देने के अलावा चाहे सही हों या काल्पनिक, याचिकाकर्ता ने याचिका में उस आधार का खुलासा नहीं किया है जिसके आधार पर वह उन आंकड़ों पर पहुंचा है। उसका दावा है कि उसे ये आंकड़े कांग्रेस उम्मीदवार के मतगणना अभिकर्तों से मिले थे वे आवश्यक आधार नहीं दे सकते। उन्होंने याचिका में यह नहीं बताया कि वे कार्यकर्ता कौन थे और उनकी जानकारी का आधार क्या था? उनका मामला यह नहीं है कि उन्होंने कोई नोट बनाए रखा था या उन्होंने उनके नोट्स की जांच की थी, यदि वहां कोई थे। बताए जाने वाले आवश्यक भौतिक तथ्य वे तथ्य हैं जिन्हें लगाए गए आरोपों का समर्थन करने वाली सामग्री के रूप में माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में वे ऐसे तथ्य होने चाहिए जो याचिका में लगाए गए आरोपों के लिए आधार प्रदान कर सकें। चुनाव याचिका के पैरा 13 और 14 में और अनुसूची 'ई' में बताए गए तथ्य केवल आरोप हैं और उन आरोपों का

समर्थन करने वाले भौतिक तथ्य नहीं हैं। इस न्यायालय ने जोर देकर कहा कि चुनाव याचिकाकर्ता को याचिका में बताना चाहिए कि भौतिक तथ्य सार के बिंदु का जिक्र कर रहे थे, न कि किसी मुद्दे का मात्र रूप. ..."

51. उपरोक्त आधिकारिक घोषणा दर्शाती है कि पुनर्गणना मतपत्रों की गोपनीयता को छूती है। यदि चुनाव याचिका में उन सभी भौतिक तथ्यों, जिन पर मतगणना में अनियमितता या अवैधता के आरोप लगाए गए हैं, को पर्याप्त रूप से प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो न्यायालय द्वारा वोटों की पुनर्गणना का आदेश देना उचित नहीं होगा। जहां आरोप सामान्य हैं, अस्पष्ट हैं, याचिकाकर्ता के संदेह या विश्वास पर आधारित हैं या सटीक नहीं हैं, वहां केवल त्रुटि होने की संभावना पर पुनर्गणना की राहत स्वीकार नहीं की जा सकती।

52. चुनाव याचिका तथा उसके समर्थन में साक्ष्यों के परिशीलन से यह पता लगाया जा सकता है कि इस तथ्य के बारे में जानकारी कहाँ से मिली की प्रारंभ में पोलिंग अभिकर्ता 80 अवैध वोटों के बारे में बताया गया, जिन्हें बाद में 36 बताया गया, जिसका आधार न तो चुनाव याचिका में बताया गया है और न ही रखे गए साक्ष्यों में समर्थित है, यानी पोलिंग अभिकर्ता का बयान चुनाव याचिका पर विचार करने का आधार नहीं देता है इस प्रकार जहां किसी भी हेरफेर के मामले में, उपस्थित मतदान अभिकर्ता के पास सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लिखित रूप में एक आवेदन दायर करने का पर्याप्त अवसर था, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है, ट्रिब्यूनल को छिपे हुए

तथ्य को पता लगाने के लिए मतदाता- सूची या काउंटरफॉइल मंगाने के लिए कोई अवसर नहीं था। वह तथ्य जो चुनाव याचिका में आरोपित नहीं किया गया है, इस प्रकार वर्तमान मामले में चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका में लगाए गए आरोप अस्पष्ट और सामान्य हैं क्योंकि उस संबंध में कुछ भी विशेष नहीं कहा गया है। अंकित मूल्य पर ली गई चुनाव याचिका में लगाए गए आरोपों को भौतिक साक्ष्य के पर्याप्त विवरण द्वारा समर्थित नहीं किया गया है, जिस पर चुनाव याचिकाकर्ता कार्यवाही के कारण के समर्थन में भरोसा करता है, इसलिए पुनर्गणना का निर्देश देने वाला आदेश उचित नहीं है।

53. मतदान अभिकर्ता के बयान के रूप में साक्ष्यों के परिशीलन से पता चलता है कि उनके द्वारा कई पृष्ठों में विरोधाभासी साक्ष्य दिये गये हैं, जैसे एक स्थान पर मतदान अभिकर्ता ने कहा है कि मतदान में कोई अवैधता नहीं हुई है तथा सभी अभिकर्तों की की उपस्थिति में मतपेटियां सील कर दी गईं, जबकि वह डाले गए वोटों की कुल संख्या पर विवाद कर रहे हैं, क्योंकि एक बार मतपेटियां सील हो जाने के बाद मतपत्रों की संख्या कैसे बढ़ाई या घटाई जा सकती है, इस प्रकार कुल वोट 1026 दिखाए गए हैं, जिसके लिए प्रपत्र भी बनाया गया था, इस पर विवाद नहीं किया जा सकता, चुनाव याचिका में लगाए गए आरोप के लिए कोई सहायक साक्ष्य या कोई आधार नहीं है। यह भी नहीं बताया गया है कि क्या किसी अन्य अभिकर्ता, जिसने गणना देखी थी, को इस संबंध में कोई बयान देने के लिए बुलाया गया है या वह स्वयं से आया है।

54. प्रपत्र में अगली आपत्ति कटिंग और ओवरराइटिंग को लेकर थी। चुनाव याचिका दाखिल करने से पहले सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस संबंध में कोई लिखित आवेदन नहीं दिया गया है और वर्तमान याचिका में रखे गए रिकॉर्ड में प्रपत्र में ऐसी कोई कटिंग या ओवरराइटिंग नहीं दिखाई गई है। ट्रिब्यूनल के लिए यह उचित होगा कि पुनर्गणना का निर्देश देने से पहले प्रपत्र - 45 और 46 के रिकॉर्ड मंगाए जाएं। चुनाव याचिकाकर्ता को कटिंग और ओवरराइटिंग के बाद किए गए बदलावों के बारे में भी विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए था। आरोप का कोई आधार नहीं है क्योंकि जब गणना पूरी होने के बाद प्रपत्र तैयार किया जाता है, तो उसे पोलिंग अभिकर्तों को दिखाया जाता है, जिन्हें उसी चरण में अलार्म/ आपत्ति उठानी चाहिए थी।

55. उपरोक्त चर्चा से और उपरोक्त निर्णय पर विचार करने के बाद, जैसा कि राम सिंह बनाम काजी मोहिउद्दीन और अन्य के मामले में हुआ है, कि चूंकि पुनर्गणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को छूता है, इसलिए इसे हल्के में या सामान्य मामले में नहीं लिया जाना चाहिए। चुनाव याचिकाकर्ता को न केवल वह आधार बताना चाहिए जिसके आधार पर उसके वैध वोटों को अन्य बंडलों के साथ मिलाए जाने, अवैध वोटों को अन्य उम्मीदवारों के पक्ष में वैध माना जा रहा है, बल्कि आरोपों के आधार का भी खुलासा किया जाना चाहिए, जो कि वर्तमान मामले में नहीं किया गया है इसलिए पोलिंग अभिकर्ता के बयान में विरोधाभास है। जो आरोप चुनाव याचिका में नहीं लगाए गए हैं, उन्हें पराजित उम्मीदवार के

पोलिंग अभिकर्ता के बयान के रूप में साक्ष्य के माध्यम से प्रतिस्थापित किया गया है और ऐसे साक्ष्य को दलीलों से परे नहीं पढ़ा जा सकता है जैसा कि **मार्कियो टाडो बनाम ताकम सोरंग** के मामले में माना गया है।

56. मतपत्रों की गोपनीयता और चुनाव की शुद्धता की दलीलों और दावे पर विचार करने में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण का संकेत देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **एस. रघबीर सिंह गिल बनाम एस. गुरचरण सिंह तोहरा और अन्य** के मामले में कहा है:

"22...स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए मतपत्र की गोपनीयता पर विचार किया गया था। यदि मतपत्र की गोपनीयता स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के बजाय स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के सिद्धांत की जड़ पर हमला करती है तो लोकतंत्र का यह मूल सिद्धांत स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों को पूर्ववत् करने के लिए उपयोग होगा जो संसदीय लोकतंत्र को जीवन-रक्त प्रदान करते हैं..."

23...स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए मतपत्र की गोपनीयता निस्संदेह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जिसे स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए बड़े सार्वजनिक हित, अर्थात् चुनाव की शुद्धता, को ध्यान में रखते हुए इसे कानून में प्रतिष्ठापित किया गया था। मतपत्र की गोपनीयता का सिद्धांत अलग या पृथक और स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों की बुनियाद viz चुनाव की शुद्धता से टकराव में खड़ा नहीं रह सकता है।

वे सह-अस्तित्व में रह सकते हैं, लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, जहां एक का उपयोग दूसरे को नष्ट करने के लिए किया जाता है, पहले को व्यापक सार्वजनिक हित में चुनाव की शुद्धता के सिद्धांत का पालन करना चाहिए। वास्तव में मतपत्र की गोपनीयता, मतदाता का विशेषाधिकार, अनुलंघनीय नहीं है और इस देश के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने और बेईमानी को उजागर करने के लिए इसे छोड़ा जा सकता है।"

57. सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय **श्रद्धा देवी बनाम कृष्ण चंद्र पंत और अन्य** के मामले में, यह माना गया है कि विजयी उम्मीदवारों या अन्य उम्मीदवारों के पक्ष में वैध और अवैध वोटों की गणना के साथ-साथ कुल वोटों की संख्या में विसंगति के आरोपों पर पुनर्गणना के लिए प्रार्थना के साथ दायर चुनाव याचिका के मामले में, चुनाव याचिकाकर्ता को गणना में त्रुटियों का प्रथम दृष्टया सबूत पेश करना होगा और यदि गणना में त्रुटि प्रथम दृष्टया स्थापित हो जाती है, तो पुनर्गणना का आदेश दिया जा सकता है।

58. **सुरेश प्रसाद यादव बनाम जय प्रकाश मिश्रा और अन्य**<sup>29</sup> के मामले में, न्यायालय द्वारा समय-समय पर पुनर्गणना के लिए प्रार्थना निर्देश देने में निर्धारित सिद्धांतों का सारांश देते हुए, इसे इस प्रकार देखा गया है:

"5....इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि मतपत्रों के निरीक्षण और पुनर्गणना का आदेश

एक सामान्य मामले के रूप में नहीं दिया जा सकता है। इसके दो कारण हैं। सबसे पहले इस तरह का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को प्रभावित करता है जिसे कानून के तहत हस्तछेप नहीं किया जाना चाहिए। दूसरा, नियमावली मतपत्रों की गणना के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में गणना में गलतियों और धोखाधड़ी के खिलाफ बहुत सारी वैधानिक जांच और प्रभावी सुरक्षा उपाय शामिल हैं, इसे लगभग अचूक कहा जा सकता है..."

59. उच्चतम न्यायालय ने **सुरेश प्रसाद यादव (सुप्रा)** में कहा कि कोई भी कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है, फिर भी उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होने वाले व्यापक सिद्धांतों को निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है:

"6. न्यायालय द्वारा केवल तभी मतपत्रों की पुनर्गणना का आदेश देना उचित होगा जब:

(1) चुनाव- याचिका में उन सभी भौतिक तथ्यों का पर्याप्त विवरण शामिल है जिन पर मतगणना में अनियमितता या अवैधता के आरोप स्थापित किए गए हैं;

(2) प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर ऐसे आरोप प्रथम दृष्टया स्थापित हैं यह विश्वास करने के लिए एक अच्छा आधार प्रदान करते हुए कि गणना में गलती हुई है; और

(3) याचिका पर विचार करने वाली अदालत प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निर्णय और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने

के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

60. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि चुनाव याचिका के दावे जिनमें चुनौती के आधार, वोटों की गणना में अवैधता या अनियमितता के आरोप शामिल हैं, न केवल नकली हैं, यहां तक कि बुनियादी भौतिक तथ्य भी झूठे हैं, चुनाव न्यायाधिकरण की प्रथम दृष्टया संतुष्टि कि मतपत्रों की पुनर्गणना आवश्यक है, याचिका में गायब है। पोलिंग अभिकर्ता के बयान के रूप में साक्ष्य दलीलों से परे है, इसलिए उस पर विचार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, जीतने वाले उम्मीदवार और चुनाव याचिकाकर्ता के बीच वोटों का कम अंतर यह कहने का अधिकार नहीं देता है कि वोटों की गणना में अवैधता या अनियमितता हुई है।

61. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि नियमावली उम्मीदवार, चुनाव अभिकर्ता और मतगणना अभिकर्ता को परिणाम घोषित होने से पहले मतगणना प्रक्रिया पर नजर रखने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं और यदि वे इसकी वैधता के बारे में या अन्यथा किसी मतपत्र के बारे में कोई आपत्ति उठाते हैं या यदि उक्त आपत्ति को अनुचित तरीके से खारिज कर दिया जाता है, तो उम्मीदवार, उसकी गणना और चुनाव अभिकर्ता को मतपत्रों के संबंध में उठाई गई आपत्ति की प्रकृति के बारे में अच्छी तरह से सूचित किया जाता है और उसके संबंध में चुनाव याचिका में भौतिक तथ्यों का संक्षिप्त बयान दिया जाता है। इन्हीं कारणों से अदालतों ने बार- बार माना है कि मतदान की गोपनीयता बनाए रखी जानी

चाहिए और पुनर्गणना की मांग आम तौर पर तब तक नहीं दी जानी चाहिए, जब तक कि चुनाव याचिकाकर्ता प्रथम दृष्टया मामला न बना ले।

62. जैसा कि यह स्पष्ट है कि नियम एक उम्मीदवार और उसके चुनाव और गणना अभिकर्ता को हर चरण पर परिणाम घोषित होने से पहले गणना प्रक्रिया पर नजर रखने का पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं, इसलिए चुनाव याचिका में भौतिक तथ्यों का संक्षिप्त विवरण यह देखने के लिए साक्ष्य द्वारा समर्थित होना चाहिए कि पुनर्गणना के लिए निर्देश उचित होगा या नहीं। **एम.आर. गोपालकृष्णन बनाम थचाडी प्रभाकरन और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही कहा है:

"16. ऊपर चर्चा किए गए प्रासंगिक प्रावधानों पर सरसरी नजर डालने के बाद यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि नियम एक उम्मीदवार, उसके चुनाव अभिकर्ता और गणना अभिकर्ता को परिणाम घोषित होने से पहले गणना प्रक्रिया पर नजर रखने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं और यदि वे किसी भी मतपत्र की वैधता या अन्यथा के बारे में कोई आपत्ति उठाएं और यदि उक्त आपत्ति को अनुचित तरीके से खारिज कर दिया जाता है, तो उम्मीदवार, उसके गणना और चुनाव अभिकर्ता को मतपत्र के संबंध में उठाए गए आपत्ति की प्रकृति के बारे में अच्छी तरह से सूचित किया जाता है और उसके संबंध में चुनाव याचिका में भौतिक तथ्यों का एक संक्षिप्त बयान दिया जाता है। यही कारण है

कि इस न्यायालय ने बार- बार माना है कि मतदान की गोपनीयता बनाए रखी जानी चाहिए और पुनर्गणना की मांग आम तौर पर तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि याचिकाकर्ता मतगणना में त्रुटियों के संबंध में प्रथम दृष्टया मामला न बना ले और यह दिखाने में सक्षम हो कि त्रुटियां इतनी परिणाम की हैं कि निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित होता है। पुनर्गणना का आदेश प्राप्त करने के लिए चुनाव याचिकाकर्ता को वास्तविक रूप से पुनर्गणना का आदेश देने से पहले सामग्री रखनी होगी और प्रथम दृष्टया मामला बनाना होगा। वोटों की दोबारा गणना के लिए पराजित उम्मीदवार की मांग पर यह ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि लोकतंत्र में मतपत्र की गोपनीयता पवित्र है और इसलिए, जब तक कि चुनाव याचिकाकर्ता न केवल दलील देने और भौतिक तथ्यों का खुलासा करने में सक्षम हो बल्कि विश्वसनीय साक्ष्य के माध्यम से इसे प्रमाणित करें कि पुनर्गणना के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद था, तब तक किसी भी न्यायाधिकरण या अदालत द्वारा पुनर्गणना का निर्देश देना उचित नहीं होगा।"

63. वर्तमान मामले के तथ्यों और कानून की स्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जिसे **भाभी (सुप्रा)** में संक्षेपित किया गया है, निरीक्षण और वोटों की पुनर्गणना के निर्देश के प्रश्न से निपटते समय, और इस न्यायालय के विभिन्न प्राधिकारियों के सावधानीपूर्वक विचार के बाद, कुछ दिशानिर्देश और शर्तें, जो न्यायालय द्वारा मतपत्रों के निरीक्षण और

पुनर्गणना की अनुमति देने से पहले अनिवार्य हैं, इस प्रकार हैं:

"15....

(1) मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो पवित्र है और तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर इसका उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए;

(2) निरीक्षण की अनुमति देने से पहले, निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोप स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए और भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित होने चाहिए;

(3) पुनर्गणना के लिए लगाए गए आरोपों की सत्यता के संबंध में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर न्यायालय को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए;

(4) निरीक्षण हेतु प्रार्थना पर अनुदान देने के लिए न्यायालय को इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचना चाहिए कि पक्षों के बीच पूर्ण न्याय आवश्यक एवं अनिवार्य है;

(5) कि न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए ताकि आवेदक को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से पूछताछ में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके; और

(6) किसी दिए गए मामले के विशेष तथ्यों पर नमूना निरीक्षण का आदेश पुनर्गणना

के लिए लगाए गए आरोपों की सच्चाई के संबंध में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि को और अधिक आश्वासन देने के लिए दिया जा सकता है, न कि सामग्री निकालने के उद्देश्य से। "

64. इस न्यायालय का मानना है कि मतपत्रों की पुनर्गणना को निर्देशित करने के लिए जो दिशानिर्देश और शर्तें अनिवार्य हैं, वे वर्तमान मामले के तथ्यों में नहीं हैं। याचिकाकर्ता ने अस्पष्ट दलीलों के आधार पर अवैधता और अनियमितता का स्वाद जोड़ने की कोशिश की है जिनमें कोई सार नहीं है। जिम्मेदारी उस व्यक्ति की होती है, जो रिटर्न उम्मीदवार के चुनाव को चुनौती देता है। चुनाव को चुनौती देने का एक आधार पुनर्गणना की मांग करना है जो गणना के समय किसी भी अनियमितता को प्रदर्शित करने के लिए पुनर्गणना को उचित ठहरा सकता है। हालाँकि, इस संबंध में दलीलें वस्तुतः मौन हैं और किसी भी मामले में बेहद अस्पष्ट और गूढ़ हैं। यह सर्वविदित है कि चुनाव को चुनौती देने के मामले में दलीलें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पोलिंग अभिकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में, जो गणना के समय उपस्थित था, ऐसे कोई तथ्य सामने नहीं आए हैं जहां से वह वैध वोटों को खारिज करने, अवैध वोटों को स्वीकार करने, वैध वोटों को अन्य उम्मीदवारों के बंडल में मिलाने या डाले गए वोटों की कुल संख्या के संबंध में दावों का समर्थन कर सकते हैं। ट्रिब्यूनल मतगणना के समय चुनाव अधिकारी द्वारा की गई किसी भी अनियमितता को प्रदर्शित करने या यहां तक कि संदर्भित करने के लिए किसी भी निष्कर्ष को रिकॉर्ड करने में सक्षम नहीं रहा है।

मतदाता- सूची या काउंटरफॉइल मंगाने का कोई आधार न होने और ना ही दोनों में कुछ विसंगति पाने पर भी पुनर्गणना का आदेश पारित कर दिया गया है, जो मनमाना और अस्थिर है।

65. उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनाव के सदस्यों, प्रधानों और उप- प्रधानों) नियम, 1994 के तहत दिए गए प्रावधानों को पढ़ने पर पता चलता है कि मतपेटी को सील करने से लेकर मतपत्रों की गणना, मतदान अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत खातों के साथ- साथ निर्वाचन अधिकारी द्वारा चुनाव रिटर्न के सत्यापन, चुनाव याचिकाकर्ता और अन्य चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के पक्ष में डाले जाने वाले वोटों की संख्या के संबंध में वहां विशिष्ट दलील द्वारा आपत्ति उठाने के लिए हर चरण में पर्याप्त अवसर थे। लेकिन वर्तमान मामले में ऐसा नहीं किया गया है।

66. चुनाव नियमों में यह भी प्रावधान है कि प्रपत्र 45 और 46 को कानून के तहत निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए गणना के बाद तैयार किया जाता है, और यदि गणना के समय कोई कमी या अनियमितता होती है तो उसे बहुत अच्छी तरह से उपरोक्त प्रपत्र से जाना जाता है, जो कि एक आधार हो सकता था, यानी डाले गए वोटों की कुल संख्या के संबंध में, जिसे पुनर्गणना का निर्देश देते समय ध्यान में रखा जाना था, वह भी ऐसे मामले में, जहां प्रपत्र में ओवरराइटिंग और काटने के आरोप बनाये जाते हैं। याचिका में उपरोक्त कथन किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है और इसलिए, टिकने के लिए कोई आधार नहीं

है। ट्रिब्यूनल ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया है कि चंद्रिका प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य<sup>31</sup> के मामले में कानून की अच्छी तरह से तय स्थिति के अनुसार, निम्नलिखित शर्तें पूरी होने पर वोटों की पुनर्गणना का आदेश पारित किया जा सकता है:

"(i) प्रथम दृष्टया मामला;

(ii) वोटों की गणना में अनियमितताएं बताते हुए भौतिक तथ्यों की दलील देना;

(iii) वोटों की दोबारा गणना का निर्देश देते फिशिंग और रोविंग इन्क्वारी नहीं की जाएगी,

और

(iv) उक्त आशय पर आपत्ति का सहारा लिया गया है।"

67. उपरोक्त चर्चा से, इस न्यायालय की राय यह है कि पुनर्गणना का निर्देश देने वाला आदेश कानून की नजर में कायम है। तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 2 के द्वारा दिनांक 03.07.2023 को पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है। अंततः प्रतिवादी संख्या 2 को निर्देश जारी किया जाता है कि निर्धारित प्रक्रिया और प्रासंगिक अधिनियम के साथ- साथ नियमों के अनुसार, शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर, बिना किसी भी पक्ष को कोई भी अनावश्यक स्थगन की अनुमति दिए बिना और इस आदेश में की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना चुनाव याचिका पर निर्णय लेने के लिए सभी प्रयास करें।

68. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

69. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 884

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम

रिट-सी संख्या 27338/2023

रजिया एवं अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री शरद चंद राय, श्री अनवीर सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 19 और 21 - लिव-इन-रिलेशनशिप -

संरक्षण - याचिकाकर्ता, वयस्क और विभिन्न

धर्मों के, स्वेच्छा से एक साथ रह रहे हैं -

परिवार के सदस्यों से सम्मान हत्या का खतरा

- संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के तहत

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में

साथी चुनने का अधिकार शामिल है - निर्णय

दिया गया, माता-पिता सहित किसी को भी

हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है - धमकी के

मामले में, पुलिस तत्काल सुरक्षा प्रदान करेगी

- यदि दस्तावेज जाली पाए जाते हैं तो कानूनी उपाय करने के लिए निजी प्रतिवादी को स्वतंत्रता दी गई।

धमकी की स्थिति में पुलिस सुरक्षा मांगने की स्वतंत्रता के साथ याचिका का निस्तारण किया गया।

चर्चा की गई वादविधि:

1. लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 5 एससीसी 475

2. जियान देवी बनाम अधीक्षक, नारी निकेतन, (1976) 3 एससीसी 234

3. शफीन जहां बनाम अशोकन केएम, (2018) 16 एससीसी 368

4. सोनी गेरी बनाम गेरी डगलस, (2018) 2 एससीसी 197

5. डी. वेलुसामी बनाम डी. पचैअम्मल, (2010) 10 एससीसी 469

6. धनु लाल बनाम गणेश राम, (2015) 12 एससीसी 301

7. नंदकुमार बनाम केरल राज्य, (2018) 16 एससीसी 602

8. किरण रावत बनाम यूपी राज्य, 2023 मुकदमा (आल) 953 - विशिष्ट



**अभिनिर्धारित:**

जो जोड़ा बालिग है और सहमति से लिव-इन रिलेशनशिप में रह रहा है, उसे सुरक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता। ऐसे रिश्ते में सामाजिक, धार्मिक या व्यक्तिगत विरोध के कारण परिवार के सदस्यों द्वारा हस्तक्षेप अस्वीकार्य है। साथी चुनने का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों का हिस्सा है।

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री शरद चंद राय, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री योगेश कुमार द्वारा सहायता प्राप्त अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री उपेंद्र नाथ को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है जिसमें निजी प्रतिवादी को याचिकाकर्तागण के शांतिपूर्ण जीवन में हस्तक्षेप न करने के लिए परमादेश की प्रकृति में निर्देश देने की मांग की गई है। इसके अलावा, याचिकाकर्तागण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को निर्देश देने की मांग की गई है।

3. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दोनों याचिकाकर्ता वयस्क हैं। याचिकाकर्ता संख्या 1 की जन्म तिथि जैसा कि उसके पैन कार्ड और आधार कार्ड में उल्लिखित है, 13.04.2001 है और याचिकाकर्ता संख्या 2 की जन्म तिथि

जैसा कि उसके आधार कार्ड और पैन कार्ड में उल्लिखित है, 01.01.1997 है। यह दावा किया गया है कि दोनों याचिकाकर्ता लिव-इन-रिलेशनशिप में अपनी मर्जी से शांति पूर्वक एक साथ रह रहे हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4, पहले याचिकाकर्ता की मां और उसके परिवार के सदस्य पक्षकारों के लिव इन रिलेशनशिप के खिलाफ हैं। वह परिवार के अन्य सदस्यों के साथ याचिकाकर्तागण के शांतिपूर्ण जीवन में बाधा डाल रही है और परेशान कर रही है। उसने याचिकाकर्तागण को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी है। याचिकाकर्तागण को उसके परिवार के सदस्यों से इज्जत के नाम पर हत्या की आशंका है। याचिकाकर्ता संख्या 1 ने पुलिस आयुक्त, आयुक्तालय गौतम बुद्ध नगर को दिनांक 04.08.2023 को एक प्रार्थना पत्र दायर किया है, जिसमें उनकी सुरक्षा की मांग की गई है, लेकिन कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। याचिकाकर्तागण की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि दोनों याचिकाकर्ता निकट भविष्य में अपनी शादी करने का इरादा रखते हैं। यह भी कहा गया है कि आज तक उनके लिव-इन-रिलेशनशिप से संबंधित कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है और दोनों याचिकाकर्ता खुशी से एक साथ रह रहे हैं।

4. इस न्यायालय द्वारा पारित किए जाने वाले आदेश की प्रकृति को देखते हुए, निजी प्रतिवादी को नोटिस जारी करने से छूट दी जाती है। हालांकि, यदि उक्त प्रतिवादी आज पारित आदेश से व्यथित महसूस करता है, तो इस निर्णीत याचिका में प्रार्थना पत्र करने के लिए स्वतंत्र होगा।

5. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि दोनों याचिकाकर्ता अलग-अलग धार्मिक समूहों से संबंधित हैं। लिब-इन-रिलेशनशिप में रहना मुस्लिम पर्सनल लॉ में ज़िना (व्यभिचार) के रूप में दंडनीय है।

6. याचिकाकर्तागण द्वारा **लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2006) 5 एससीसी 475** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"17. जाति व्यवस्था राष्ट्र पर एक अभिशाप है और जितनी जल्दी इसे नष्ट कर दिया जाए, उतना अच्छा है। वास्तव में, यह राष्ट्र को ऐसे समय में विभाजित कर रहा है जब हमें एकजुट होकर राष्ट्र के समक्ष चुनौतियों का सामना करना होगा। इसलिए, अंतरजातीय विवाह वास्तव में राष्ट्रीय हित में हैं क्योंकि वे जाति व्यवस्था को नष्ट कर देंगे। हालांकि, देश के कई हिस्सों से परेशान करने वाली खबरें आ रही हैं कि अंतरजातीय विवाह करने वाले युवा पुरुषों और युवतियों को हिंसा की धमकी दी जाती है, या वास्तव में उन पर हिंसा की जाती है। हमारी राय में, हिंसा या धमकी या उत्पीड़न के ऐसे कार्य पूरी तरह से अवैध हैं और जो लोग उन्हें करते हैं उन्हें गंभीर रूप से दंडित किया जाना चाहिए। यह एक स्वतंत्र और

लोकतांत्रिक देश है, और एक बार जब कोई व्यक्ति बालिग हो जाता है तो वह जिससे चाहे शादी कर सकता है। यदि लड़का या लड़की के माता-पिता इस तरह के अंतर-जातीय या अंतर-धार्मिक विवाह को मंजूरी नहीं देते हैं, तो वे अधिकतम यह कर सकते हैं कि वे बेटे या बेटे के साथ सामाजिक संबंधों को काट सकते हैं, लेकिन वे धमकी नहीं दे सकते हैं या हिंसा के कृत्यों को भड़का नहीं सकते हैं और उस व्यक्ति को परेशान नहीं कर सकते हैं जो इस तरह के अंतर-जातीय या अंतर-धार्मिक विवाह से गुजरता है। इसलिए, हम निर्देश देते हैं कि देश भर के प्रशासन/पुलिस अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि यदि कोई लड़का या लड़की जो बालिग है, किसी महिला या पुरुष के साथ अंतरजातीय या अंतर-धार्मिक विवाह करता है, तो उस जोड़े को किसी के द्वारा परेशान नहीं किया जाय और न ही धमकी या हिंसा के कृत्यों के अधीन किया जाय, और जो कोई भी इस तरह की धमकी देता है या परेशान करता है या हिंसा के कृत्यों को करता है, या तो वह खुद या उसके उकसाने पर हिंसक कार्य करता है तो ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध पुलिस द्वारा आपराधिक कार्यवाही शुरू करके उनके विरुद्ध कठोर कार्रवाई की जाय और कानून द्वारा यथा उपबंधित ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध आगे कड़ी कार्रवाई की जाय।

**(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)**

18. कभी-कभी हम ऐसे व्यक्तियों की "इज्जत" के लिए हत्या के बारे में सुनते हैं जो अपनी मर्जी से अंतर-जातीय या अंतर-धार्मिक विवाह से गुजरते हैं। इस तरह की हत्याओं में कुछ भी सम्मानजनक नहीं है, और वास्तव में वे क्रूर, सामंती दिमाग वाले व्यक्तियों द्वारा किए गए हत्या के बर्बर और शर्मनाक कृत्यों के अलावा कुछ भी नहीं हैं, जो कठोर सजा के पात्र हैं। केवल इस तरह से हम बर्बरता के ऐसे कृत्यों को समाप्त कर सकते हैं।"

7. ज्ञान देवी बनाम अधीक्षक, नारी निकेतन, दिल्ली और अन्य, (1976) 3 एससीसी 234 में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अवलोकित किया है कि जहां एक व्यक्ति अठारह वर्ष से अधिक आयु का है, उसकी पसंद पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है कि वह कहां निवास करे या उस व्यक्ति के बारे में जिसके साथ वह रह सकती है:

"..... याचिकाकर्ता की जन्म तिथि जो भी हो, तथ्य यह है कि वह वर्तमान में 18 वर्ष से अधिक आयु की है। चूंकि याचिकाकर्ता अपने आप में स्वयं के अधिकार का प्रबंधन करने में सक्षम है, इसलिए उसकी न ही पसंद पर बेड़ियां लगाई जा सकती हैं, जिसके साथ उसे रहना है, न ही उस

स्थान के बारे में कोई प्रतिबंध लगाया जा सकता है जहां उसे रहना चाहिए। न्यायालय या याचिकाकर्ता के रिश्तेदार भी इस तरह के मामले में याचिकाकर्ता की राय या वरीयता के लिए अपनी राय या वरीयता को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते हैं.....

8. शफीन जहां बनाम अशोकन केएम और अन्य, (2018) 16 एससीसी 368 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक वयस्क व्यक्ति की पसंद के अधिकार को उचित महत्व देने पर जोर दिया, जो संविधान एक वयस्क व्यक्ति को प्रदान करता है। न्यायालय ने कहा कि:

"52. यहां यह बताना अनिवार्य है कि कानून के अनुसार पसंद की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत पहचान की स्वीकृति है। उस अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाना और उससे उत्पन्न होने वाली अंतिम करवाई सामाज के प्रति आज्ञाकारिता की वैचारिक संरचनावाद पर व्यक्ति की व्यक्तिगत इकाई को नष्ट कर देगी। सामाजिक मूल्यों और नैतिकता का अपना स्थान है, लेकिन वे संविधान द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता से ऊपर नहीं हैं। उक्त स्वतंत्रता एक संवैधानिक और मानव अधिकार दोनों है। उस स्वतंत्रता से वंचित करना जो विश्वास की दलील पर चुनाव में निहित है, अस्वीकार्य है। किसी व्यक्ति की आस्था उसके सार्थक अस्तित्व का अभिन्न अंग है। आस्था की स्वतंत्रता उसकी स्वायत्तता के लिए

आवश्यक है; और यह संविधान के मूल मानदंडों को मजबूत करता है। आस्था का चयन व्यक्तित्व का आधार है और इसके बिना, पसंद का अधिकार एक छाया बन जाता है। यह याद रखना होगा कि अधिकार प्रदान करने की तुलना में अधिकार प्राप्ति का एहसास अधिक महत्वपूर्ण है। इस तरह की वास्तविकता वास्तव में किसी भी प्रकार की सामाजिक बदनामी को बहिष्कृत करती है और पितृसत्तात्मक वर्चस्व को दूर रखती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि व्यक्तिवादी आस्था और पसंद की अभिव्यक्ति अधिकार के फलदायी होने के लिए मौलिक है। इस प्रकार, हम इसे अपरिहार्य प्रारंभिक शर्त कहना चाहेंगे।”

9. सोनी गेरी बनाम गेरी डगलस, (2018) 2 एससीसी 197 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ, जहां अपीलकर्ता और प्रतिवादी की बेटी, जिसने वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी, ने अपने पिता के साथ कुवैत में रहने की इच्छा व्यक्त की, जहां वह अपनी शिक्षा प्राप्त कर रही थी, ने कहा:

“10. यह बताने के लिए किसी विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि किसी व्यक्ति के जीवन में वयस्कता की आयु प्राप्त करने का अपना महत्व है। वह अपनी पसंद बनाने का हकदार है। जब तक विकल्प मौजूद है, न्यायालय माता पिता की भूमिका नहीं निभा सकती। बेटी अपनी स्वतंत्रता का

आनंद लेने की हकदार है जैसा कि कानून अनुमति देता है और न्यायालय को मां की किसी भी तरह की भावना या पिता के अहंकार से प्रेरित होकर सुपर गार्जियन की भूमिका नहीं निभानी चाहिए। हम ऐसा बिना किसी आरक्षित भाव के कह रहे हैं।”

10. डी. वेलुसामी बनाम डी. पत्ताजम्मल, (2010) 10 एससीसी 469 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2 के तहत दी गई परिभाषाओं पर विचार करते हुए, विवाह की प्रकृति में एक संबंध के रूप में "घरेलू संबंध" की परिभाषा पर विचार किया। इसने विवाह की प्रकृति में संबंध के लिए निम्नलिखित अपेक्षित मानदंड निर्धारित किए:

(क) जोड़े को समाज के समक्ष खुद को पति-पत्नी के रूप में पेश करना चाहिए।

(ख) उन्हें विवाह करने की कानूनी उम्र का होना चाहिए।

(ग) उन्हें अविवाहित होने सहित कानूनी रूप से विवाह में प्रवेश करने के लिए योग्य होना चाहिए।

(घ) उन्हें स्वेच्छा से सहवास करना चाहिए और खुद को एक महत्वपूर्ण अवधि के लिए जीवनसाथी के रूप में दुनिया के सामने पेश करना चाहिए।

11. धनु लाल बनाम गणेश राम, (2015) 12 एससीसी 301 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि लिव इन रिलेशनशिप में रहने वाले जोड़ों

को कानूनी रूप से विवाहित माना जाएगा। यह भी माना गया कि लिव इन रिलेशनशिप में रहने वाली महिला एक साथी की मृत्यु के बाद संपत्ति की वारिस होने की पात्र होगी।

**12. नंदकुमार और अन्य बनाम केरल राज्य, (2018) 16 एससीसी 602** में, सर्वोच्च न्यायालय ने जोर देकर कहा कि लिव इन रिलेशनशिप को अब विधायिका द्वारा ही मान्यता प्राप्त है और इसे घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 से महिलाओं के संरक्षण के प्रावधानों के तहत अपना स्थान प्राप्त है।

**13.** उपरोक्त चर्चा और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि एक लड़का या लड़की, जिसने वयस्कता प्राप्त कर ली है, अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी करने या उसके साथ रहने के लिए स्वतंत्र है और उसके माता-पिता या उनकी ओर से कोई भी व्यक्ति अपने साथी चुनने की स्वतंत्रता के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से उत्पन्न होता है।

**14.** राज्य की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने **किरण रावत और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 लॉसूट (एएलएल) 953** में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि न्यायालय ने लिव-इन-रिलेशनशिप में एक साथ रहने वाले जोड़ों को सुरक्षा प्रदान करने से इनकार कर दिया है।

**15. किरण रावत (पूर्वोक्त)** मामले में इस न्यायालय के फैसले के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने यह नहीं माना है कि लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने वाले जोड़े न्यायालय के संरक्षण के हकदार नहीं हैं, बल्कि यह न्यायालय के समक्ष उस मामले की विशेष परिस्थितियों के कारण है, कि न्यायालय ने लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने वाले जोड़े को सुरक्षा से इनकार कर दिया है।

**16.** मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों की श्रेणी में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता एक साथ रहने के लिए स्वतंत्र हैं और उनके माता-पिता या उनकी ओर से कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति को उनके शांतिपूर्ण लिव-इन-रिलेशनशिप में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यदि याचिकाकर्तागण के शांतिपूर्ण जीवन में कोई व्यवधान उत्पन्न होता है, तो याचिकाकर्ता इस आदेश की एक प्रति के साथ संबंधित पुलिस अधीक्षक से संपर्क करेंगे, जो याचिकाकर्तागण को तत्काल सुरक्षा प्रदान करेंगे।

**17.** निजी प्रत्यर्थी को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि यदि झूठे तथ्य बताए जाते हैं या अभिलेख पर लाए गए दस्तावेज गढ़े या जाली होते हैं, तो इस याचिका में प्रार्थना पत्र दायर करने हेतु स्वतंत्र होगा।

**18.** उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका **निस्तारित** किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 889

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 1006454 वर्ष 2011

यूपी कॉर्प फेड लिमिटेड और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

पीओ, औद्योगिक न्यायाधिकरण, लखनऊ और  
अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सिविल विधि - यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 6एफ और 6एच - यूपी सहकारी समिति अधिनियम, 1965 - धारा 70, 135 - याचिकाकर्ता ने यूपी औद्योगिक न्यायाधिकरण के 23.04.2011 के फैसले को चुनौती दी है, जिसने प्रतिवादी की बर्खास्तगी को रद्द कर दिया, 01.01.1985 से उसकी बहाली का निर्देश दिया और 50% पिछला वेतन दिया - सहकारी समिति विवादों पर औद्योगिक न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार पर अपनी आपत्ति को खारिज करने के 09.03.2010 के आदेश को भी चुनौती दी है - प्रतिवादी/कर्मचारी ने 16.02.1982 से 31.12.1984 तक लगातार काम किया, एक वर्ष में 240 दिन से अधिक काम किया - उसकी बर्खास्तगी बिना किसी नोटिस या यूपी

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6एफ के अनुपालन के हुई थी - कोई विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया और न्यायाधिकरण का आदेश उचित पाया गया 09.03.2010 - जैसा कि गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड के मामले में निर्णय दिया गया है, श्रम न्यायालय को सोसायटी अधिनियम, 1965 के अंतर्गत सोसायटी से संबंधित विवादों पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है - आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं। (पैरा 1, 2, 17, 31, 32)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची :

1. गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम अपर श्रम आयुक्त एवं अन्य, 2008 (1) एससीसी (एलएनएस) 90
2. धरप्पा बनाम बीजापुर सहकारी दुग्ध उत्पादक समिति संघ लिमिटेड, (2007) 9 एससीसी 109
3. केए अन्नम्ममा बनाम सचिव, कोचीन कोऑपरेटिव हॉस्पिटल सोसाइटी लिमिटेड, 2018 (2) एससीसी 729
4. गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम अपर श्रम आयुक्त, 2007 (11) एससीसी 756 (पैरा 65)
5. रामजी लाल तिवारी बनाम यूपी को-ऑपरेटिव शुगर फेडरेशन लिमिटेड लखनऊ,

विशेष अपील संख्या 524/2015 (दिनांक 02.11.2015 को निर्णीत)

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा दिनांक 23.4.2011 को पारित आदेश पर प्रश्न उठाया है, जिसमें प्रतिवादी-कर्मचारी के दावे को स्वीकार किया गया है, तथा उसकी सेवा समाप्ति के आदेश को निरस्त कर दिया गया है तथा याचिकाकर्ताओं को उसे दिनांक 1.1.1985 से सेवा में पुनः बहाल करने का निर्देश दिया गया है, तथा उसे 50 प्रतिशत बकाया वेतन का भी हकदार माना गया है।

2. याचिकाकर्ता ने दिनांक 9.3.2010 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा सहकारी समिति से संबंधित विवाद का निर्णय करने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार कर दिया गया है।

3. वर्तमान विवाद के निर्णय के लिए आवश्यक तथ्य संक्षेप में यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 3-कर्मचारी, अर्थात् अजय कुमार मिश्रा को दिनांक 16.2.1982 से 89 दिनों के लिए तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था। समय-समय पर उनकी सेवा अवधि 31.12.1984 तक बढ़ाई गई, जिसके बाद उन्हें सेवा में बने रहने की अनुमति नहीं दी गई।

4. याचिकाकर्ता द्वारा उसकी सेवा समाप्त करने की कार्रवाई से व्यथित होकर, उसने उत्तर प्रदेश औद्योगिक अधिकरण अधिनियम, 1947 के अंतर्गत सुलह अधिकारी के समक्ष आवेदन किया। सुलह कार्यवाही विफल होने पर मामले को न्यायाधिकरण द्वारा उनकी सेवा समाप्ति की वैधता के संबंध में 1.1.1985 से निर्णय के लिए संदर्भित किया गया। याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए, जो न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित हुए और प्रतिवादी-कर्मचारी के दावे का विरोध किया। यह कहा गया कि उन्हें प्रारंभ में ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था और 16.2.1982 को कोपागंज, जिला आजमगढ़ में तैनात किया गया था और बाद में 12.11.1983 से उनके स्वयं के अनुरोध पर कोल्ड स्टोरेज, शाहजहांपुर (जौनपुर) में स्थानांतरित कर दिया गया था। कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच भी की गई थी, क्योंकि उक्त कोल्ड स्टोरेज में आलू खराब हो गए थे, जिसके कारण उसे शाहजहांपुर से मुख्यालय लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया था, जहां उसने 31.12.1984 तक काम किया। तत्पश्चात, उसका नाम उपस्थिति रजिस्टर से काट दिया गया।

5. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित कथन में कहा गया था कि कर्मचारी को केवल 89 दिनों के लिए नियुक्त किया गया था, लेकिन बाद में संघ के कामकाज में उसकी सेवाओं की आवश्यकता को देखते हुए समय-समय पर उसकी सेवाओं को बढ़ाया गया था।

6. कर्मचारी ने अपने दावे के समर्थन में स्वयं साक्ष्य प्रस्तुत किए, जबकि श्री लाल

बहादुर, अपर जिला सहकारी संघ अधिकारी, नियोक्ता की ओर से उपस्थित हुए और दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात न्यायाधिकरण ने कर्मचारी के दावे को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उसकी सेवाएं नियुक्ति पत्र में निर्धारित अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो गई थीं और वह 3.4.1991 के आदेश के अनुसार किसी भी अनुतोष का हकदार नहीं था।

7. कर्मचारी ने ट्रिब्यूनल के दिनांक 3.4.1991 के आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-1350 (एस/एस)/1994 [अजय कुमार मिश्रा बनाम औद्योगिक ट्रिब्यूनल (द्वितीय), लखनऊ] दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 11.4.2008 के निर्णय एवं आदेश के द्वारा दिनांक 3.4.1991 के अवार्ड को निरस्त कर दिया तथा मामले को नए सिरे से न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिप्रेषित कर दिया।

8. जब मामला प्रतिप्रेषित किया गया तो याचिकाकर्ता ने अपना लिखित बयान पुनः प्रस्तुत किया तथा कहा कि विचाराधीन विवाद का न्यायाधिकरण द्वारा **गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम अपर श्रम आयुक्त एवं अन्य, 2008 (1) एससीसी (एलएनएस) 90** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार नहीं किया जा सकता, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि सहकारी समिति अधिनियम, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 सहित अन्य श्रम कानूनों को छोड़कर, समिति के रोजगार के विवादों के निर्णय के लिए लागू होगा।

9. याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को दिनांक 09.03.2010 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जिस आदेश को वर्तमान रिट याचिका में भी चुनौती दी गई है।

10. प्रारंभिक आपत्ति के खारिज होने के बाद मामले को आगे बढ़ा और कर्मचारी की ओर से सहायक लेखाकार विनोद कुमार पांडे और लेखाकार के बयान दर्ज किए गए, जबकि नियोक्ता की ओर से लखनऊ में तैनात वरिष्ठ सहायक राकेश कुमार सिंह पेश हुए।

11. न्यायाधिकरण ने दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करने के बाद यह पाया कि कर्मचारी ने अपनी सेवा समाप्ति से पहले एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों से अधिक काम किया है और यह भी कि उसकी सेवा समाप्ति अवैध और मनमानी थी और कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई थी और उसे कोई नोटिस नहीं दिया गया था। यह भी पाया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई जांच में भी उसे कोई अवसर नहीं दिया गया और तदनुसार उसके दावे को स्वीकार करते हुए 1.1.1985 के सेवा समाप्ति के आदेश को रद्द कर दिया गया और उसे 50 प्रतिशत बकाया वेतन के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया गया।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त आदेश का विरोध करते हुए कहा कि यह अवैध और मनमाना है क्योंकि कर्मचारी को एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया गया था, जिसके समाप्त होने पर उसकी सेवाएं



समाप्त हो गई और इसलिए यह आदेश अवैध और मनमाना है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि कर्मचारी ने एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे नहीं किए हैं और इस आधार पर भी उसके द्वारा मांगा गया अनुतोष नहीं दिया जा सकता था।

13. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है। उन्होंने कहा कि न्यायाधिकरण ने सभी सामग्रियों पर उचित रूप से विचार किया है और नियोक्ता द्वारा प्रस्तुत सभी आपत्तियों का निस्तारण किया है और स्पष्ट रूप से यह दर्ज करने के बाद कि याचिकाकर्ता ने एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे कर लिए हैं और उसकी सेवाएं कानून के प्रावधानों के विरुद्ध समाप्त कर दी गई हैं, दिनांक 1.1.1985 के मौखिक सेवा समाप्ति आदेश को अपास्त किया गया तथा इसमें कोई कमी नहीं है, जिसके लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो।

14. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना तथा अभिलेखों का अवलोकन किया।

15. दिनांक 23.4.2011 के आदेश की वैधता के सम्बन्ध में यह पाया गया कि न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर विचार किया है कि कर्मचारी को 18.1.1985 को ऑपरेटर के पद पर विधिवत चयन के पश्चात नियुक्त किया गया था, जिसमें उसने साक्षात्कार भी दिया था तथा उसे 240-380/- रुपये के वेतन पर गौरीगंज कोल्ड स्टोरेज, जिला आजमगढ़ में

तैनात किया गया था। उसने उक्त पद पर दिनांक 16.2.1982 को कार्यभार ग्रहण किया तथा दिनांक 11.7.1983 को शाहगंज (जौनपुर) स्थित कोल्ड स्टोरेज में स्थानान्तरित होने तक उक्त पद पर लगन से कार्य किया। उन्होंने 31.7.1984 तक शाहगंज स्थित कोल्ड स्टोरेज में कार्य किया, जिसके बाद उन्हें लखनऊ मुख्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया, जहां उन्हें 31.12.1984 तक कार्य करने की अनुमति दी गई।

16. कोल्ड स्टोरेज में भंडारित आलू को नष्ट करने में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के संबंध में, यह बताया गया कि इस संबंध में जांच की गई है और यह पाया गया है कि एयर कंडीशनिंग प्लांट ठीक से काम नहीं कर रहा था, जिसके कारण तापमान कम नहीं हो पा रहा था। यह भी पाया गया कि मशीन में अमोनिया नहीं भरा गया था, जिसके कारण तापमान कम नहीं हुआ और तदनुसार चार ऑपरेटरों को लापरवाह पाया गया, इसलिए, उनका कार्यकाल नहीं बढ़ाया गया और उनके स्थान पर नए व्यक्तियों की नियुक्ति की जा चुकी है। कर्मचारी ने अपने सेवा रिकॉर्ड, उपस्थिति रजिस्टर आदि सहित अतिरिक्त दस्तावेज भी दाखिल किए थे, जिसके अनुसार 1 जनवरी से जून 2008 तक उसने 196 दिन और 13 दिसंबर तक 84 दिन, कुल 139 दिन और 1984 में कुल 308 दिन काम किया था और तदनुसार न्यायाधिकरण ने विधिवत निष्कर्ष निकाला है कि कर्मचारी ने 1984 दिनों में 308 दिन काम किया था, यानी 240 दिनों से अधिक, जो औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत वैधानिक आवश्यकता है और

परिणामस्वरूप उसे 1947 के अधिनियम की धारा 6एफ का लाभ दिए जाने का हकदार माना गया। उन्होंने इस तथ्य पर भी विचार किया कि उसे उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद नियुक्त किया गया था और उसका चयन साक्षात्कार के माध्यम से किया गया था। न्यायाधिकरण ने नियोक्ता के इस कथन पर विश्वास नहीं किया कि नियुक्ति पत्र अधिकार क्षेत्र के बिना जारी किया गया था, क्योंकि इस तर्क के समर्थन में कोई सामग्री या दस्तावेज दाखिल नहीं किया गया था। यह पाया गया कि प्रथम नियुक्ति पत्र जारी होने के बाद भी उनकी सेवाओं को बार-बार 89 दिनों के लिए बढ़ाया गया तथा यह भी पाया गया कि उन्होंने एक से अधिक जिलों में सेवा की है तथा पाया गया कि उनकी नियुक्ति अवैध नहीं थी तथा तदनुसार यह पाया गया कि सेवा समाप्ति का आदेश अवैध और मनमाना था तथा वे उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6एफ के तहत लाभ पाने के हकदार थे तथा परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को 50 प्रतिशत बकाया वेतन के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया गया।

17. इस न्यायालय को न्यायाधिकरण के आदेश में कोई कमी नहीं लगती। यह पूर्णतः स्थापित है कि प्रतिवादी कर्मचारी ने एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन से अधिक कार्य किया है तथा उसने याचिकाकर्ता के साथ 16.2.1982 से 31.12.1984 तक लगातार कार्य किया है तथा सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने से पूर्व कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई तथा नोटिस के बदले कोई वेतन नहीं दिया गया, फलस्वरूप वह उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम

की धारा 6एफ के अंतर्गत लाभ पाने का हकदार है। न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए निर्णय के विपरीत कोई सामग्री उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई है, तथा तदनुसार इस न्यायालय को लगता है कि औद्योगिक न्यायाधिकरण के आदेश में कोई कमी नहीं है।

18 अगला प्रश्न, जिस पर याचिकाकर्ता ने काफी बहस की है, वह दिनांक 9.3.2010 के आदेश की वैधता के संबंध में है, जिसके द्वारा कार्यवाही की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति को खारिज कर दिया गया था। यह तर्क दिया गया है कि सहकारी समिति के नियोक्ता और कर्मचारी के बीच विवाद में कर्मचारी के लिए उपाय यू.पी. सहकारी समिति अधिनियम की धारा 70 के तहत निहित है, और मामले को रजिस्ट्रार द्वारा स्वयं या उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थता के लिए भेजा जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को गलत तरीके से खारिज कर दिया गया था और औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित अवार्ड पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर है। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने **गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम अतिरिक्त श्रम आयुक्त और अन्य, 2008 (1) एससीसी (एलएनएस) 90** के निर्णय पर भरोसा किया है।

19. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि **गाजियाबाद (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय एक अच्छा कानून नहीं है, क्योंकि इसमें **धरप्पा बनाम बीजापुर सहकारी दुग्ध उत्पादक**

**समिति संघ लिमिटेड (2007) 9 एससीसी 109**

के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पिछले निर्णय को ध्यान में नहीं रखा गया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जब तक कानून श्रम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से समाप्त नहीं करता है, तब तक दोनों न्यायालयों का समवर्ती अधिकार क्षेत्र होगा और सहकारी समिति का कर्मचारी श्रम न्यायालय के समक्ष या सहकारी समिति अधिनियम के तहत रजिस्ट्रार के समक्ष विवाद उठा सकता है।

20. **कर्नाटक सहकारी समिति अधिनियम** के प्रावधानों से संबन्धित इसी तरह के विवाद का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया था और यह निर्धारित किया गया कि कर्नाटक सहकारी समिति अधिनियम की धारा 17 में संशोधन के बाद भी, भले ही धारा 70(2) में 20-1-1976 से खंड (डी) जोड़ा गया था, धारा 70(1) ने सोसायटी और उसके कर्मचारियों के बीच औद्योगिक विवाद का फैसला करने के लिए आईडी अधिनियम के तहत श्रम न्यायालयों और औद्योगिक न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र को बाहर नहीं किया या छीना नहीं था। परिणामस्वरूप, 20-1-1976 से धारा 70(2) में खंड (डी) डालने के बाद भी, औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत श्रम न्यायालयों और औद्योगिक न्यायाधिकरणों के पास सोसाइटियों और उनके कर्मचारियों के बीच विवादों का फैसला करने का अधिकार क्षेत्र बना रहा।

21. यह भी तर्क दिया गया कि **धरप्पा संगप्पा नंद्याल बनाम बीजापुर सहकारी दुग्ध उत्पादक**

**सोसायटी संघ लिमिटेड** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने **के.ए. अन्नाम्मा बनाम सचिव, कोचीन सहकारी अस्पताल सोसायटी लिमिटेड, 2018(2) एससीसी 729** के मामले में पुष्ट किया और निर्धारित किया कि कर्नाटक सोसायटी अधिनियम ने श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण के लिए सहकारी सोसायटी के कर्मचारी और उसके नियोक्ता (सहकारी सोसायटी) के बीच उत्पन्न होने वाले सेवा विवादों का फैसला करने में कोई स्पष्ट प्रतिबंध नहीं लगाया है।

दूसरे, सहकारी समिति का कोई भी कर्मचारी, जो औद्योगिक विवाद अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित "कर्मचारी", "औद्योगिक विवाद" तथा सहकारी समिति को "उद्योग" मानता है, को अपने सेवा विवाद के संबंध में मामला दायर करने के लिए दो मंचों में से एक मंच चुनने का विकल्प है।

22. यह तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम के क्षेत्राधिकार पर रोक नहीं लगाता है। उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 135 में विशेष रूप से उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों को बाहर करने का प्रावधान है, लेकिन उक्त धारा को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति नहीं दी गई है, इसलिए यह उत्तर प्रदेश राज्य में लागू नहीं है। यह बलपूर्वक तर्क दिया गया कि जब तक किसी प्रावधान को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति नहीं दी जाती है, तब तक इसे कानून का भाग नहीं माना जा सकता है, और इसे विधानमंडल के आशय को निर्धारित करने के लिए ध्यान में

नहीं रखा जा सकता है। उपरोक्त कारणों से तर्क दिया गया कि सहकारी समिति के कर्मचारी और सहकारी समिति के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए **धरप्पा संगप्पा नंद्याल बनाम बीजापुर सहकारी दुग्ध उत्पादक समिति संघ लिमिटेड** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **गाजियाबाद जिला (उपरोक्त)** के निर्णय पर पूर्णतः प्रभावी होगा और तदनुसार न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है।

23. यह भी कहा गया कि यदि सहकारी समितियों के कर्मचारियों पर उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम लागू नहीं होता है, तो ऐसे कर्मचारी/कर्मचारी को औद्योगिक विवाद अधिनियम में 6एच के प्रावधानों और अन्य समान लाभकारी प्रावधानों के लाभ से अनुचित रूप से वंचित किया जाएगा। दूसरी ओर, यदि विवादों का निस्तारण सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा किया जाता है, तो सामान्य कानून लागू होगा और कर्मचारी अवैध बर्खास्तगी के मामले में बहाली के आदेश से वंचित हो जाएंगे। यह भी कहा गया कि इस तरह की व्याख्या भेदभावपूर्ण होगी और सहकारी समितियों के कर्मचारी को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 द्वारा प्रस्तुत लाभकारी कानून से भी वंचित करेगी।

24. हमने पक्षों के तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

25. सहकारी समिति के कर्मचारियों और सहकारी समिति के बीच विवादों के समाधान से संबंधित मामलों में उत्तर प्रदेश सहकारी

समिति अधिनियम की धारा 70 के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए और क्या ऐसे विवादों को उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के तहत श्रम न्यायालय द्वारा सुना जा सकता है, इस संबंध में इन दोनों अधिनियमों के संबंधित प्रावधानों पर विचार करना प्रासंगिक होगा।

26. वर्तमान मामले का विवाद अनिवार्य रूप से कानूनी प्रकृति का है और उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 70 के वैधानिक प्रावधानों का संदर्भ देना आवश्यक होगा:-

“70. विवाद जो मध्यस्थता के लिए भेजे जा सकते हैं-(1)वर्तमान में लागू किसी कानून में किसी बात के होते हुए भी, यदि किसी सहकारी समिति के गठन, व्यवसाय के प्रबंधन से संबंधित कोई विवाद, किसी समिति के वेतनभोगी कर्मचारी के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्रवाई के संबंध में विवाद के अलावा, उत्पन्न होता है-

(क) सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और मृतक सदस्यों के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच; या

(ख) किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य या किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य या मृतक सदस्य के माध्यम से दावा करने वाले किसी व्यक्ति और समिति, उसकी समिति या समिति के किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी के प्रबंधन,

जिसमें कोई भूतपूर्व अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी शामिल है;

(ग) समिति या उसकी समिति और किसी भूतपूर्व समिति, किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी या किसी भूतपूर्व अधिकारी, भूतपूर्व अभिकर्ता या भूतपूर्व कर्मचारी या समिति के किसी मृतक अधिकारी, मृतक अभिकर्ता या मृतक कर्मचारी के नामिती, उत्तराधिकारी या विधिक प्रतिनिधि के बीच; या

(घ) किसी सहकारी समिति और किसी अन्य सहकारी समिति या समितियों के बीच: ऐसे विवाद को इस अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अनुसार कार्रवाई के लिए रजिस्ट्रार को भेजा जाएगा और किसी भी न्यायालय को ऐसे किसी विवाद के संबंध में कोई वाद या अन्य कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होगा:

[बशर्ते कि इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के तहत चुनाव से संबंधित विवाद ऐसे चुनाव के परिणाम की घोषणा के बाद तक रजिस्ट्रार को नहीं भेजा जाएगा] (2) उप-धारा (1) के प्रयोजन के लिए, सहकारी समिति के गठन, प्रबंधन या व्यवसाय से संबंधित विवाद में निम्नलिखित को शामिल माना जाएगा, अर्थात् -

(क) देय राशियों के लिए दावे, जब भुगतान की मांग की जाती है तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है या उसका अनुपालन नहीं किया जाता है, चाहे ऐसे दावों को विरोधी पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाए या नहीं;

(ख) किसी जमानतदार द्वारा मुख्य ऋणी के विरुद्ध दावा, जहां समिति ने जमानतदार से मुख्य ऋणी के चूक के परिणामस्वरूप मुख्य ऋणी से बकाया किसी ऋण या मांग के संबंध में कोई राशि वसूल की है, चाहे ऐसा ऋण या मांग स्वीकार की गई हो या नहीं;

(ग) किसी सदस्य, अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी, जिसमें भूतपूर्व या मृत सदस्य, अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी शामिल हैं, चाहे व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप के द्वारा समिति को हुई हानि के लिए समिति द्वारा दावा, चाहे ऐसी हानि स्वीकार की गई हो या नहीं; और

(घ) उप-नियमों में उल्लिखित समिति के उद्देश्यों से संबंधित सभी मामले तथा पदाधिकारियों के चुनाव से संबंधित मामले।

(3) यदि कोई प्रश्न उठता है कि इस धारा के अंतर्गत रजिस्ट्रार को भेजा गया विवाद सहकारी समिति के गठन, प्रबंधन या व्यवसाय से संबंधित विवाद है या नहीं, तो रजिस्ट्रार का निर्णय अंतिम होगा और किसी भी न्यायालय में उस पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

27. उ.प्र. सहकारी समिति अधिनियम, 1965 (जिसे आगे "अधिनियम, 1965" कहा जाएगा) के प्रावधानों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम अपर श्रम आयुक्त, 2007 (11) एससीसी 756 के मामले में विधिवत विचार किया गया और उक्त आदेश के प्रस्तर 65 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि

कर्मचारी द्वारा उठाए गए विवाद से संबंधित मामले में उपाय अधिनियम, 1965 की धारा 70 के तहत है न कि उ.प्र. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जिसे आगे "अधिनियम, 1947" कहा जाएगा) के प्रावधानों के अंतर्गत सहायक श्रम आयुक्त के समक्ष। त्वरित संदर्भ के लिए उक्त निर्णय के प्रस्तर 65 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

*"65. अतः हमारा विचार है कि सहायक श्रम आयुक्त (एएलसी) के अधिकार क्षेत्र का गलत तरीके से आवाहन किया गया और धारा 6एच, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत उनका आदेश दिनांक 15.03.2003 अधिकार क्षेत्र से बाहर है और इसलिए शून्य और अमान्य है, और यह कहा जा सकता है कि उक्त सामान्य कानूनी सिद्धांत के दृष्टिगत, यह महत्वहीन है कि सरकार ने धारा 135 (यूपीसीए अधिनियम) को लागू किया है या नहीं, क्योंकि किसी भी मामले में उक्त प्रावधान (एस.135) को केवल स्पष्टीकरण और प्रचुर सावधानी के माध्यम से अधिनियम में शामिल किया गया था।"*

28. कामगार/प्रतिवादियों द्वारा संदर्भित दूसरा निर्णय **के.ए. अन्नाम्मा बनाम सचिव, कोचीन सहकारी अस्पताल सोसायटी लिमिटेड, 2018(2) एससीसी 729** के मामले में था। उपरोक्त मामले में केरल सहकारी सोसायटी अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष समान विवाद उत्पन्न हुआ था और सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि विवादों का निस्तारण दोनों अधिनियमों अर्थात् केरल सहकारी सोसायटी अधिनियम के

साथ-साथ अधिनियम, 1947 के तहत किया जा सकता है, क्योंकि सहकारी सोसायटी के कर्मचारी और उसके नियोक्ता (सहकारी सोसायटी) के बीच उत्पन्न होने वाले किसी भी सेवा विवाद को निर्णीत करने के लिए उन्हें समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

29. तत्काल विवाद में दोनों पक्षों द्वारा उठाया गया बिन्दु यह है कि क्या सहकारी समिति का कोई कर्मचारी अधिनियम, 1965 या अधिनियम, 1947 का सहारा लेकर अपने सेवा विवाद से संबंधित आवेदन योजित कर सकता है। इस न्यायालय ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ वैधानिक प्रावधानों पर भी विचार किया है और स्वयं को **गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से बाध्य पाया है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम, 1965 के प्रावधानों पर उक्त अधिनियम की धारा 135 के साथ बहुत विस्तार से विचार करने के बाद निष्कर्ष निकाला है कि सहकारी समितियों के कर्मचारियों के संबंध में अधिनियम, 1947 के प्रावधान अपवर्जित हैं।

30. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **रामजी लाल तिवारी बनाम यू.पी. सहकारी चीनी संघ लि. लखनऊ**, विशेष अपील संख्या-524/2015 (दिनांक 02.11.2015 को निर्णीत) में भी **गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लि. (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है तथा निर्धारित किया गया है कि यदि किसी सहकारी समिति के कर्मचारी एवं नियोक्ता के मध्य कोई विवाद है तो

मामले का समाधान उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 के प्रावधानों के अनुसार किया जाना चाहिए।

दिनांक: लखनऊ 25.04.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

रिट-सी संख्या 1006884 वर्ष 2007

31. वर्तमान मामले में, कर्मचारी ने श्रम न्यायालय, लखनऊ में अपील की थी तथा याचिकाकर्ताओं द्वारा पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपति उठाई गई थी, जिसे श्रम न्यायालय द्वारा दिनांक 09.03.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था तथा तदनुसार, श्रम न्यायालय द्वारा दिनांक 09.03.2010 के आदेश द्वारा प्रारंभिक आपतियों को खारिज करने में त्रुटि हुई। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **गाजियाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है और उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि श्रम न्यायालय को अधिनियम, 1965 के तहत गठित सोसायटी से संबंधित उक्त मामले पर विचार करने और निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं था।

32. उपरोक्त के आलोक में, औद्योगिक न्यायाधिकरण (2) उत्तर प्रदेश, लखनऊ के पीठासीन अधिकारी द्वारा वाद संख्या-113/1988 में पारित आक्षेपित निर्णय दिनांक 23.04.2011 और आदेश दिनांक 09.03.2010 को अपास्त किया जाता है।

33. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 896

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

जुगल किशोर श्रीवास्तव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

राजेंद्र नाथ, किमी. गीतांजलि शुक्ला, निरंकार सिंह, आरके किटवई, सुनील शर्मा, विनोद कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7 (X) - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14, 16 एवं 311(2) - याचिकाकर्ता सरकारी सेवा में था, गंभीर बीमारी के कारण वह चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं कर सका - विभाग ने जांच शुरू की और कारण बताओ नोटिस जारी किया - 1980 में फरार होने सहित उसके पिछले कदाचार को ध्यान में रखते हुए और यह मानते हुए कि कोई नई जांच की आवश्यकता नहीं है, आक्षेपित आदेश पारित किया गया - आरोपित कर्मचारी (याचिकाकर्ता) उचित नोटिस के बावजूद आरोपों का जवाब देने या जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहा - नियम, 1999 के अनुसार, यदि आरोपित सरकारी सेवक नोटिस के बावजूद उपस्थित होने में विफल

रहता है, तो जांच अधिकारी एकपक्षीय कार्यवाही कर सकता है - याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति और जवाब प्रस्तुत करने में विफलता के बावजूद जांच अधिकारी ने एकपक्षीय कार्यवाही नहीं की और नियम, 1999 के उल्लंघन में जांच समाप्त कर दी, जिससे कार्यवाही दूषित हो गई - श्रम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का अभाव महसूस करने पर उन्होंने याचिका वापस ले ली और वर्तमान याचिका दायर की - जांच विधिन दोषपूर्ण है, क्योंकि आदेश अवैध और त्रुटिपूर्ण है - आक्षेपित आदेश रद्द - प्रतिवादी को 1991 से 2007 तक की अवधि के लिए पेंशन सहित बकाया राशि जारी करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 22, 24, 26, 31, 33, 34, 35)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत (ई-13)

#### उद्धृत वादों की सूची :

1. सतवती देसवाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 2010(1) एससीसी 126 (पैरा 5 से 9)
2. मफतलाल नाराणदास बारोट बनाम जेडी राठौड़, एआईआर 996 एससी 1364 (पैरा 12)
3. भारत संघ एवं अन्य बनाम बिशम्बर दास डोगरा, (2009) 13 एसएससी 102 (पैरा 30, 31)
4. टाटा ऑयल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उनके कर्मचारी, (1963) 11 एलएलजे. 78(एससी)
5. इंपीरियल टोबैको कंपनी लिमिटेड बनाम उसके कर्मचारी, एआईआर 1962 एससी 1348

6. उमा शंकर बनाम रजिस्ट्रार, 1992(65) एफएलआर 674(आल)

7. सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक, यूपी को-ऑपरेटिव स्पिनिंग मिल्स फेडरेशन लिमिटेड, कानपुर एवं अन्य, 2000(1) यूपीएलबीईसी 541 में रिपोर्ट किया गया

8. दुर्गा एंटरप्राइजेज (पी) लिमिटेड एवं अन्य बनाम प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य, (2004) 13 एससीसी 665 में रिपोर्ट किया गया

9. आरपी पांडेय बनाम यूपी पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य, 2004(22) एलसीडी20 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निरंकार सिंह को एवं राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री कुलदीप सिंह को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा पारित दिनांक 19.01.2007 के आदेश के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित 30 जुलाई, 1991 के आदेश को चुनौती दी गई है।

3. मामले के तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने प्रारंभ में ही 4 फरवरी, 1972 को पंचायत सेवक के पद पर सेवा में सम्मिलित हुआ और



अपने वरिष्ठों की संतुष्टि के स्तर की सर्वोत्तम सेवा प्रदान की। 15 जून, 1990 को, याचिकाकर्ता को विकास खंड-मसोढ़ा में तैनात किया गया था, और उसे स्थानांतरित कर दिया गया था और सोहावल ब्लॉक, जिला फैजाबाद में सेवा हेतु भारमुक्त किया गया था। स्थानांतरण आदेश पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता स्थानांतरण स्थल पर कार्यभार ग्रहण नहीं कर सका क्योंकि वह शय्या ग्रस्त था और तीव्र मानसिक अवसाद और अन्य गंभीर बीमारियों से पीड़ित था, इसलिए, वह संबंधित अधिकारियों से संपर्क नहीं कर सका, लेकिन उसने कई प्रार्थनपत्र भेजे थे और साथ ही चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी चिकित्सा पर्चे / प्रमाण पत्र भी विभाग को भेजे थे।

4. कथित तौर पर विभाग के अधिकारियों ने याचिकाकर्ता को कभी भी सूचित नहीं किया कि उसकी कथित अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए उसके विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही शुरू की गई है और वर्तमान याचिकाकर्ता की पीठ के पीछे, उपरोक्त जाँच कार्यवाही पूरी की गई और 30 जुलाई, 1991 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

5. इसके अतिरिक्त, यह भी याचिकाकर्ता का वाद है कि 30 जुलाई, 1991 का आक्षेपित आदेश वर्ष 2001 से पूर्व याचिकाकर्ता के संज्ञान में कभी नहीं आया, क्योंकि वह गंभीर रोगों से ग्रस्त था और शय्याग्रस्त था, और जैसे ही याचिकाकर्ता के संज्ञान में 30 जुलाई, 1991 का आदेश आया, उसने तुरंत श्रम अदालत के समक्ष 30 जुलाई 1991 के आदेश का विरोध करते हुए एक वाद दायर किया।

श्रम अदालत के समक्ष वाद संख्या 56/ 2001 (जुगल किशोर श्रीवास्तव बनाम जिला पंचायत राज अधिकारी, फैजाबाद) दर्ज किया गया था। याचिकाकर्ता पूर्वोक्त मामले की पैरवी करता रहा और अंततः 19.01.2007 को उस पर निर्णय लिया गया। उपरोक्त वाद में, जिला पंचायत राज अधिकारी, जो विभाग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, ने उत्तर/लिखित बयान प्रस्तुत कर आपत्ति/लिखित बयान दायर किया और उपरोक्त उत्तर के पश्चात, श्रम न्यायालय ने दिनांक 19-01-2007 को मामले पर निर्णय दिया, जिसमें निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं। आदेश का प्रवर्तनशील भाग निम्नवत है:

#### **अभिनिर्णय**

"उप श्रमायुक्त, फैजाबाद के आदेश सं०-825-29/एफ.आर.सी.पी. 56/2009, दिनांक 25-1-2002 द्वारा निम्नलिखित औद्योगिक विवाद, उ०प्र० औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा - 2ए के अंतर्गत अभिनिर्णय हेतु श्रम न्यायालय, फैजाबाद को प्रेषित किया गया था जिसे अभि० विवाद सं० 02/2002 के रूप में पंजीकृत कर सुनवाई की जाती रही। तदोपरान्त उ०प्र० शासन श्रम अनुभाग-1 (शाखा सचि०), कानपुर के आदेश सं० 1853-67, दिनांक 18-10-06 द्वारा इस न्यायालय को स्थानांतरित किया गया जिसे अभि०वि०सं० 313/2006 के रूप में पंजीकृत कर सुनवाई की गयी।

#### **औद्योगिक विवाद का विवरण**

"क्या सेवायोजक द्वारा अपने श्रमिक श्री जुगल किशोर पुत्र श्री द्वारिका प्रसाद को दिनांक 7.9.2001 से सेवा से पृथक/कार्य से वंचित करना उचित एवं वैधानिक है? यदि नहीं तो

सम्बन्धित श्रमिक क्या क्षतिपूर्ति/हितलाभ पाने का अधिकारी है ? व अन्य किन विवरणों सहित ?

विवाद का संज्ञान लेकर उभय पक्षों को सम्मन भेजकर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए निर्देशित किया गया। श्रमिक के अधिकृत प्रतिनिधि न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुये तथा अपना अधिकार पत्र दाखिल किया।

दिनांक 17.1.07 को वादी श्रमिक के अधिकृत प्रतिनिधि ने 21/ए (नाट प्रेस) प्रार्थना पत्र इस आशय का प्रस्तुत किया कि न्यायालय पत्रावली के अध्ययन के बाद यह जानकारी प्राप्त हुई है कि मेरा विभाग राज्य सरकार का अंग है जिस कारण यह विवाद श्रम न्यायालय में नहीं चल सकता है। इस तकनीकी त्रुटि के कारण प्रार्थी इस वाद को आगे नहीं चलाना चाह रहा है।

उक्त तकनीकी त्रुटि को ध्यान में रखते हुए वादी श्रमिक के अधिकृत प्रतिनिधि ने वाद को दाखिल दफ्तर करते हुए अभिनिर्णय दिये जाने का अनुरोध किया है। श्रमिक के हस्ताक्षर को श्रमिक के अधिकृत प्रतिनिधि ने प्रमाणित किया।

उपरोक्त वाद में सेवायोजन पक्ष को रजिस्टर्ड नोटिस 19/डी भेजा गया जो पोस्टमैन के रिमार्क "दरियाफा सही पता नहीं, सही पता के लिए वापस" के साथ वापस प्राप्त हुआ।

उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों को आधार मानक, वादी श्रमिक के अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा दाखिल प्रार्थना पत्र 21/ए (नाट प्रेस),

दिनांकित 17.1.07 को एतद्वारा स्वीकार किया जाता है तथा वाद की कार्यवाही समाप्त की जाती है। वादी श्रमिक कोई हितलाभ पाने का अधिकारी नहीं है।"

6. उपरोक्त आदेश द्वारा, श्रम न्यायालय के समक्ष दायर मामले को दाखिल दफ्तर कर दिया गया था। 17.01.2007 की स्थिति के अनुसार, याचिकाकर्ता ने स्वयं एक प्रार्थनापत्र इस कथन के साथ प्रस्तुत किया था कि उसने गलत सलाह पर उपरोक्त मामला दायर किया था क्योंकि उसके सरकारी कर्मचारी होने के नाते श्रम न्यायालय द्वारा विचारण नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार श्रम न्यायालय ने कार्यवाही बंद कर दी।

7. वर्ष 2007 में, जब मामला अंततः श्रम न्यायालय के समक्ष बंद कर दिया गया था, तब याचिकाकर्ता ने श्रम न्यायालय के आदेश के साथ-साथ जिला पंचायत राज अधिकारी, फैजाबाद द्वारा पारित दिनांक 30 जुलाई 1991 के आदेश का विरोध करते हुए यह रिट याचिका दायर की।

8. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 15-06-1990 को अमानीगंज से कार्यमुक्त कर दिया गया था, हालांकि वह अन्य रोगों के साथ तीव्र मानसिक अवसाद के कारण शय्याग्रस्त था और इसलिए, वह अपनी नियुक्ति स्थान पर कार्यभार ग्रहण नहीं कर सका। चूंकि, याचिकाकर्ता अपनी लंबी गंभीर बीमारी के कारण वर्ष 2001 तक शय्याग्रस्त था और जब वह शारीरिक रूप से स्वस्थ हो गया, तो उसने

एक प्रार्थनापत्र भेजा और सूचित किया कि रोगग्रस्त होने के कारण, वह पद पर कार्यभार ग्रहण करने में सक्षम नहीं है। श्रम अदालत के समक्ष प्रतिवादी विभाग द्वारा प्रस्तुत उत्तर में कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं 30-07-1991 को समाप्त कर दी गई थीं, हालांकि, उपरोक्त आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि कथित तौर पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई थी, और उसे निलंबित कर दिया गया था, हालांकि याचिकाकर्ता को कभी भी सूचित नहीं किया गया था और इसके बाद याचिकाकर्ता को निर्वाह भत्ता का भुगतान कभी नहीं किया गया था और इस प्रकार, 30-07-1991 का सेवा-समाप्ति आदेश प्रारंभ से ही शून्य है।

9. उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (इसके बाद नियमावली, 1999 के रूप में संदर्भित) के नियम 7 में दीर्घ शास्ति प्रदान करने की प्रक्रिया के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क की संकल्पना की गई है। उपरोक्त नियमावली में दीर्घ शास्ति प्रदान करने के मामले में विस्तृत प्रक्रिया विहित की गई है। चूंकि, नियमावली, 1999 के अधीन नियुक्त जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है और इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन करना ही होगा। उन्होंने यह भी कहा कि नियमावली, 1999 के नियम 7 (X) के तहत भी प्रक्रिया उपबंधित की गई है, जहाँ आरोपित सरकारी कर्मचारी नोटिस की तामील के बावजूद

जाँच में तय तारीख पर या कार्यवाही के किसी भी चरण में उपस्थित नहीं होता है। तत्काल संदर्भ के लिए नियमावली, 1999 के नियम 7(X) निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है:-

*(x) जहाँ आरोपित सरकारी सेवक जाँच में नियत तारीख को या कार्यवाही के किसी भी चरण में नोटिस तामील होने या तारीख की जानकारी होने के बावजूद उपस्थित नहीं होता है, वहाँ जाँच अधिकारी एकपक्षीय जाँच करेगा। ऐसे मामले में जाँच अधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित साक्षियों के बयान दर्ज करेगा।*

10. पूर्वोक्त नियम का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि वर्तमान मामले में विवाद यह है कि अपचारी कर्मचारी जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए, जाँच अधिकारी ने जाँच समाप्त कर दी है, लेकिन, जाँच अधिकारी ने कथित एक -पक्षीय जाँच की कार्यवाही करते, नियमावली के नियम 7 (X) की आजानुसार कार्य नहीं किया।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे यह अभिकथन है कि इतने सारे प्रार्थनापत्रों एवं चिकित्सा पर्चों के साथ-साथ विभागीय अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाण पत्र के बावजूद, याचिकाकर्ता को न तो यह सूचित किया गया था कि कोई विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई है अथवा वे ऐसे प्रार्थनापत्रों और प्रमाणपत्रों पर विचार करने जा रहे हैं। सभी विभागीय कार्यवाही याचिकाकर्ता की पीठ पीछे की गई है और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया

गया था और नियमावली, 1999 के नियमों की अवहेलना करते हुए विभागीय कार्यवाही समाप्त हो गई है। उन्होंने कहा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ नियमावली, 1999 के अंतर्गत विहित प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए, जाँच की कार्यवाही समाप्त हो गई है और याचिकाकर्ता को दीर्घ शास्ति प्रदान की गई है, जो याचिकाकर्ता के अधिकारों का उल्लंघन करता है, जिसकी गारंटी भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के साथ-साथ अनुच्छेद 311 (2) में प्रदान गई है।

12. विलंब और कमियों को बताए हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान रिट याचिका दायर करने में यह आशयपूर्ण अथवा लापरवाहीपूर्ण नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता तीव्र मानसिक अवसाद और अन्य रोगों के कारण वर्ष 2001 तक बिस्तर पर पड़ा था, और तत्पश्चात जैसे ही वह शारीरिक रूप से स्वस्थ हो गया, उसने श्रमायुक्त के समक्ष एक वाद दायर किया, जिसे दिनांक 19-01-2007 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और निर्देश को भी दिनांक 23-05-2007 को खारिज कर दिया गया। चूंकि, याचिकाकर्ता ने गलत सलाह पर उपरोक्त मामला दायर किया था और इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से जानबूझकर देरी या कमी नहीं थी।

13. उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि यह मानते हुए भी कि वर्तमान याचिकाकर्ता विभागीय कार्यवाही में जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने से रहा था, जाँच अधिकारी के लिए यह अनिवार्य था

कि वह नियमावली, 1999 के नियम 7 (X) में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार जाँच कार्यवाही संपन्न करे। लेकिन, जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, जाँच अधिकारी द्वारा एकपक्षीय जाँच से संबंधित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है और सीधे समाप्ति का आदेश पारित किया गया है।

14. उनका यह अभिकथन भी है कि वास्तव में वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष पोषणीय है, यहाँ तक कि राज्य सरकार के समक्ष अपील दायर करने का प्रावधान है क्योंकि यह सुस्थापित विधि है कि जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन होता हो अथवा चुनौती के अधीन आदेश अधिकार क्षेत्र के अभाव में पारित किया जाता है, वहाँ वैकल्पिक उपचार एक पूर्ण वर्जन नहीं होगा, और वर्तमान वाद प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के घोर उल्लंघन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है क्योंकि याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया।

15. उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि मामला वर्ष 2007 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है और पंद्रह वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद, अपील दायर करने के उद्देश्य से इसे राज्य सरकार को प्रेषित कोई सार्थक उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा।

16. उपरोक्त तर्क देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 2010 (1) एससीसी 126 सतवती देसवाल बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में प्रदत्त निर्णय पर विश्वास किया है

और प्रस्तर 5, 6, 7, 8 और 9 को संदर्भित किया है जो निम्नवत हैं;

" 5. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त आधार पर रिट याचिका को खारिज करने में गंभीर त्रुटि की थी। प्रथम, अपीलकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना और अधिकारियों द्वारा कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू किए बिना और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना सेवा-समाप्ति का यह आदेश पारित किया गया था। यह सुस्थापित है कि कोई रिट याचिका तब भी पोषणीय मानी जा सकती है, भले ही किसी पीड़ित पक्ष के लिए ऐसी स्थितियों में वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो जहाँ न्यायालय अथवा अधिकरण में अन्तर्निहित अथवा अथवा मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु क्षेत्राधिकार का अभाव हो; अथवा यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो; अथवा जहाँ अधिनियम की अधिकारिता संदिग्ध हो

6. उपरोक्त अपवादों को इस न्यायालय द्वारा एवी वेंकटेश्वरन, सीमा शुल्क कलेक्टर, बॉम्बे बनाम रामचंद्र शोभराज वाधवानी और अन्य (एआईआर 1961 एससी 1506) के मामले में मान्यता प्रदान की गई थी, जिसमें संविधान पीठ ने उपरोक्त अपवादों के सिद्धांतों को प्रतिपादित किया था जब किसी पीड़ित पक्ष के

लिए एक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के बावजूद भी रिट याचिका पर विचार किया जा सकता था। यही दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा एलके वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड और अन्य (एआईआर 2006 एससी 975) और मध्य प्रदेश राज्य कृषि उद्योग विकास निगम और अन्य बनाम जहान खान (एआईआर 2007 एससी 3153) के वाद में व्यक्त किया गया था।

7. इस तरह की स्थिति और इस मामले में स्वीकार किए गए इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने से पूर्व, कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ नहीं की गई थी और न ही अपीलकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था। पत्रावली से यह स्पष्ट है कि सेवा-समाप्ति का आदेश किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही को प्रारंभ किये बिना और अपीलकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया था। वाद के इस पक्ष के मददेनजर, हमारा विचार है कि रिट याचिका विधि के अनुसार पोषणीय थी और उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की थी कि समाप्ति के आदेश को चुनौती देने के लिए वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के दृष्टिगत, रिट याचिका विधितः पोषणीय नहीं थी।

8. इसके अतिरिक्त, परिषद कार्य समितियों के संविधान के वैधानिक प्रावधान पर सरसरी निगाह डालने से यह स्पष्ट होता है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई दीर्घ शास्ति आरोपित करने से पूर्व, अर्थात् सेवा समाप्ति के आदेश के पूर्व, वैधानिक नियमों में निर्दिष्ट तरीके से एक जाँच होनी चाहिए जिसके द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी उन आरोपों के आधार पर निश्चित आरोप लगाएगा जिन पर जाँच प्रस्तावित की जाएगी और कर्मचारी को एक लिखित बयान प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए जिसमें यह बताया गया हो कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करना चाहता है, और प्रबंध समिति के अनुमोदन के बिना सेवा-समाप्ति का कोई आदेश भी पारित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हमारे विचार से, मात्र इसी आधार पर उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाकर्ता की रिट याचिका को खारिज करने में गंभीर त्रुटि की थी।

9. तदनुसार, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है और अपीलकर्ता के विरुद्ध पारित सेवा-समाप्ति के आदेश को रद्द किया जाता है और रिट याचिका को स्वीकृत किया जाता है। हालांकि, यद्यपि वांछित हो तो, प्राधिकारीगण अपीलकर्ता के विरुद्ध उसकी सेवा-समाप्ति हेतु अनुशासनात्मक कार्यवाही

प्रारंभ करने के लिए स्वतंत्र होंगे और यदि इस प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की जाती है, तो अधिकारी सुनवाई का उचित अवसर देंगे और पक्षकारों को अपने संबंधित पक्ष के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देंगे, और ऐसा अवसर देने के बाद, तत्पश्चात् अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर देंगे और फिर अपीलकर्ता पर लागू संबंधित वैधानिक नियमों के अनुपालन में अपीलकर्ता की सेवा समाप्त करने के प्रश्न पर अंतिम आदेश पारित करेंगे।

17. उन्होंने एआईआर 996 एससी 1364, मफत्तलाल नरनदास बारोट बनाम जेडी राठौड़ वाद में प्रदत्त निर्णय पर विश्वास किया है, और उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 12 को संदर्भित किया है, जो निम्नवत है;

"12. यह सत्य है कि प्रतिवादी किसी ऐसे व्यक्ति को सेवामुक्ति अथवा सेवासमाप्ति की शास्ति प्रदान कर सकता है जो अवकाश के बिना एवं उचित कारण बिना अनुपस्थित रहा है, किन्तु वह ऐसे व्यक्ति को यह कारण, कि क्यों न उसे सेवा से हटा दिया जाए, बताने का उचित अवसर दिए बिना सेवा से स्वतः निष्कासित नहीं कर सकता है। अपीलकर्ता यह प्रदर्शित करने हेतु एक उचित अवसर का अधिकारी है जिसके अंतर्गत आरोप को नकारने और अपनी निर्दोषिता स्थापित करने का अवसर सम्मिलित है। वह ऐसा मात्र तभी कर सकता है जब वह अपने विरुद्ध लगाए गए

आरोप और उन आरोपों की पृष्ठभूमि की घटनाएं जानता हो। हमारे निर्णय में, अपीलकर्ता अपने विरुद्ध की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का अवसर पाने का अधिकारी था।

18. पूर्वोक्त निर्णयों का उल्लेख करते हुए, उनका अभिकथन यह है कि वास्तव में एक नियोक्ता उचित जाँच हेतु बाध्य है, भले ही अपचारी कर्मचारी जाँच अधिकारी के समक्ष अनुपस्थित हो, क्योंकि विधि की सम्यक प्रक्रिया का पालन किए बिना सेवा से स्वतः निष्कासन नहीं हो सकता है।

19. उन्होंने नियमावली, 1999 के प्रावधानों को भी उद्धृत किया, जिसमें एकपक्षीय जाँच का प्रावधान है और इस तरह उन्होंने प्रस्तुत किया है कि वास्तव में भले ही याचिकाकर्ता जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हो रहा था, जाँच अधिकारी नियमावली, 1999 में उपबंधित एक पक्षीय जाँच के प्रावधानों का पालन करते हुए जाँच के समापन हेतु बाध्य था, जिनका पालन नहीं किया गया है। इसलिए, प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका को स्वीकृत किया जा सकता है, और दिनांक 19-01-2007 तथा दिनांक 30-07-1991 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जा सकता है।

20. पूर्वोक्त तर्कों का विरोध करते हुए, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने पूर्वोक्त तर्कों का प्रबल विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि वास्तव में रिट याचिका इस आधार पर सुनवाई योग्य नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास राज्य

सरकार के समक्ष अपील दायर करने के लिए प्रभावी और वैकल्पिक उपचार है। उन्होंने यह भी कहा कि वास्तव में जहाँ तक याचिकाकर्ता के इस दावे का संबंध है कि उसने चिकित्सा पर्चे और चिकित्सा प्रमाण पत्र के साथ प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किये हैं, जो कि विभाग के कार्यालय में कभी भी प्राप्त नहीं हुए थे। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि वास्तव में कारण बताओ नोटिस जारी किए गए थे, लेकिन उनका उत्तर नहीं दिया गया और इस प्रकार जाँच की कार्यवाही समाप्त हो गई और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 30 जुलाई, 1991 को आदेश पारित किया।

21. अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने (2009) 13 एसएससी 102 यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम बिशम्बर दास डोगरा वाद के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है और निर्णय के प्रस्तर 30 और 31 का उल्लेख किया है जो निम्नवत हैं : -

"30. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि अपचारी कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा यह सूचित किया जाना वांछनीय है कि सजा प्रदान करते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में रखा जाएगा। लेकिन गंभीर प्रकृति के कदाचार या अनुशासनहीनता के मामले में, वैधानिक नियमों की अनुपस्थिति में भी, प्राधिकारी कर्मचारी के निर्विवाद विगत आचरण/सेवा रिकॉर्ड को ध्यान में रख सकता है ताकि सजा देने के निर्णय में महत्व योजित किया जा सके, यदि वाद के तथ्यों के अनुसार यह आवश्यक हो।

31. यह स्थापित विधिक प्रतिपादना है कि आदतन अनुपस्थिति का अर्थ है अनुशासन का घोर उल्लंघन।

[बर्न एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वर्कमेन 20 (एआईआर पी. 530, प्रस्तर 5) और एल एंड टी कोमात्सु लिमिटेड बनाम एन उदयकुमार 21 (एससीसी पृष्ठ 226, प्रस्तर 6) के अनुसार]

22. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने और अभिलेखों के परिशीलन के उपरान्त, यह प्रकट होता है कि याचिकाकर्ता को गंभीर रोगों से पीड़ित बताया गया था और इस तरह वह चिकित्सा प्रमाण पत्र के साथ विभाग को प्रार्थनापत्र प्रेषित नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त, विभाग ने जाँच प्रारंभ की और कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और याचिकाकर्ता द्वारा अतीत में कदाचार कारित किया गया था, क्योंकि इसके पूर्व वह वर्ष 1980 में पलायन कर चुका था और इसलिए, इस धारणा के अधीन कि कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद किसी नई जाँच की आवश्यकता नहीं है, 30 जुलाई, 1991 का आदेश पारित किया गया था।

23. याचिकाकर्ता सरकारी सेवा में था, इस प्रकार उत्तर प्रदेश सरकार (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (एतदपश्चात नियमावली, 1999 के रूप में संदर्भित), के नियम 7 के प्रासंगिक प्रावधानों के दृष्टिगत यह स्पष्ट होता है कि जहाँ कोई आरोपित सरकारी कर्मचारी, नोटिस दिए जाने के बावजूद भी, निर्धारित तारीख को, जाँच अथवा अनुशासनात्मक कार्यवाही के किसी भी चरण में

(तारीख का ज्ञान होने के बावजूद) उपस्थित नहीं होता है, तो जाँच अधिकारी एकपक्षीय जाँच की कार्यवाही करेगा, जिसमें आरोप पत्र में उल्लिखित साक्षीगण के बयान भी दर्ज किए जाएंगे।

24. 'नियमावली, 1999', स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि ऐसी स्थिति में जहाँ कोई अपचारी /आरोपित कर्मचारी जानबूझकर स्वयंम जाँच कार्यवाही के साथ संबद्ध करने से बचता है, जाँच अधिकारी एक -पक्षीय जाँच की कार्यवाही के लिये स्वतंत्र है, जिसका अर्थ है कि अपचारी कर्मचारी स्वयं प्रस्तुत नहीं होता है अथवा अपना उत्तर भी नहीं देता है, तब जाँच अधिकारी जाँच में एकपक्षीय कार्यवाही करने को बाध्य होगा, और इसलिए, समस्त संभाव्य परिस्थितियों में, जाँच की कार्यवाही अपने तार्किक अंत को प्राप्त करेगी। वर्तमान वाद में, यह स्पष्ट है कि आरोपित कर्मचारी ने नोटिस की तामील और जाँच अधिकारी द्वारा तय की गई तारीख, समय और स्थान के बाद भी आरोप पत्र के माध्यम से अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों का कोई उत्तर नहीं दिया है और न ही वह कभी जाँच अधिकारी के सामने उपस्थित हुआ है।

25. अब यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी कर्मचारी के अनधिकृत रूप से कार्य से अनुपस्थित होने पर एकपक्षीय विभागीय जाँच अपेक्षित है, भले ही अतीत में भी ऐसे कर्मचारी द्वारा कदाचार किया गया हो। इसके अतिरिक्त, यदि दोषी कर्मचारी उपस्थित नहीं



होता है और जाँच में उत्तर नहीं देता है, तो क्या ऐसी घटनाओं में सम्यक जाँच अपेक्षित है?

26. अनुशासनात्मक जाँच करने की प्रक्रिया नियमावली, 1999 में संकल्पित है, जिसमें यह उपबंध है कि यदि आरोपित सरकारी कर्मचारी नोटिस दिए जाने के बावजूद जाँच में निर्धारित तारीख को या कार्यवाही के किसी भी चरण में उपस्थित नहीं होता है, तो जाँच अधिकारी जाँच में एकपक्षीय कार्यवाही करने को बाध्य होगा।

27. टाटा ऑयल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उनके कर्मकार, (1963) ॥ एलएलजे 78 (एससी), इम्पीरियल टोबैको कंपनी लिमिटेड बनाम इसके कर्मकार, एआईआर 1962 एससी, 1348 और उमा शंकर बनाम रजिस्ट्रार, 1992(65) एफएलआर 674(AII) के निर्णयों में विधि प्रतिपादित की गई है, तथा स्पष्ट रूप से यह धारित किया गया है कि यदि आरोपित कर्मचारी जाँच में भाग लेने से इंकार करता है तो भी नियोक्ता उसे सीधे बर्खास्त नहीं कर सकता है, अपितु उसे एकपक्षीय जाँच अवश्य करनी चाहिये।

28. सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक, यूपी को-ऑपरेटिव स्पिनिंग मिल्स फेडरेशन लिमिटेड, कानपुर और 2000 (1) यूपीएलबीईसी 541 वाद में न्यायालय ने निम्नवत धारित किया है: -

"हमारी राय में याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का उत्तर देने के पश्चात जाँच के लिए एक तारीख निश्चित की जानी चाहिए थी

और याचिकाकर्ता को जाँच की तारीख, समय और स्थान की सूचना दी जानी चाहिए थी, और उस तारीख को याचिकाकर्ता के विरुद्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य उसकी उपस्थिति में प्रस्तुत किये जाने चाहिए थे और उसे उसके विरुद्ध साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए था और साथ ही उसे अपने स्वयं के साक्षी एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए था। यदि याचिकाकर्ता इस सूचना के उतर में जाँच के लिए उपस्थित होने में विफल रहा था, तो एक पक्षीय जाँच होनी चाहिए थी, लेकिन याचिकाकर्ता की सेवा को बिना जाँच किए समाप्त नहीं किया जाना चाहिए था। वर्तमान वाद में यह प्रतीत होता है कि कोई नियमित जाँच नहीं की गई थी। मात्र यह किया गया था कि याचिकाकर्ता से आरोप पत्र का उत्तर प्राप्त होने के बाद उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उसके बाद बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया था। हमारी राय में यह उचित विधिक प्रक्रिया नहीं थी और प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन था। चूंकि जाँच के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई थी और न ही कोई जाँच हुई थी जिसमें साक्ष्य प्रस्तुत किया गया हो, अतः, हमारी राय में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है।

29. निर्णयों का पूर्वोक्त आधार विधि के इस सिद्धांत पर स्थित है कि जहाँ आरोपों हेतु दीर्घ शास्ति का प्रावधान है, वहाँ विभाग का प्रारंभिक भार अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करना है, और आगे यह

बताया गया है कि जाँच अधिकारी को साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा और जाँच भी करनी होगी।

30. यह स्थापित विधि है कि जाँच अधिकारी अर्ध-न्यायिक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है और इस प्रकार, उसका अस्तित्व विभाग में उसके पद या धारणाधिकार से भिन्न है और उसे निष्पक्ष और विवेकपूर्ण रहते हुए सत्य की खोज करनी होगी। चूँकि किसी कर्मचारी को दी गई दीर्घ शास्ति का गहरा प्रभाव पड़ता है, अतः नियमों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना चाहिए।

31. अतः, स्वीकृत रूप से, जाँच अधिकारी ने एकपक्षीय जाँच की कार्यवाही नहीं की क्योंकि यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता जानबूझकर जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और उसने उत्तर के रूप में कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत नहीं की और इसलिए, आरोप सिद्ध होते हैं। अतः, जाँच अधिकारी ने नियमावली, 1999 के नियम 7 (X) के अंतर्गत संकल्पित प्रावधानों की अनदेखी करते हुए जाँच का समापन किया है जो जाँच कार्यवाही को दूषित करता है।

32. वैकल्पिक उपचार के बिंदु पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया है कि यह मामला वर्ष 2007 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है और लगभग 15 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए

मामले को अंतिम रूप से निर्णीत करने के मार्ग में वैकल्पिक उपचार बाधा नहीं बनेगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दुर्गा इंटरप्राइजेज (प्रा) लि और एक अन्य बनाम प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य, (2004) 13 एससीसी 665 वाद में वैकल्पिक उपचार के आधार पर पोषणीयता के प्रश्न का समाधान यह धारित करते हुए कर दिया गया है कि जिन रिट याचिकाओं में दलीलें पूरी हो गई हैं, उनमें पक्षकारों को अन्य वैकल्पिक मंचों पर भेजने के बजाय उन्हें योग्यता के आधार पर निर्णीत किया जाना चाहिए था। उक्त तर्क की पृष्ठभूमि में यह सादृश्य है कि वैकल्पिक उपचार का नियम सुविधा का नियम है और इसे कठोरतापूर्वक और विशेषतः ऐसे मामलों में लागू नहीं किया जाना चाहिए, जो दीर्घ अवधि से उच्च न्यायालयों के समक्ष लंबित हैं। उक्त तर्क को इस न्यायालय की खंडन्यायपीठ द्वारा 2004 (22) एलसीडी, 20, आरपी पांडे बनाम उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य में दोहराया गया है।

33. जहाँ तक रिट याचिका दायर करने में विलंब का संबंध है, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने गलत मंच चुना है, यद्यपि उसने श्रम न्यायालय के समक्ष वाद दायर किया है और राज्य ने आपत्ति/लिखित बयान दायर किया है, किन्तु कभी भी पोषणीयता का प्रश्न नहीं उठाया। याचिकाकर्ता ने स्वयं आगे आकर एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया और कहा कि चूँकि याचिकाकर्ता सरकारी कर्मचारी है अतः, श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार लागू नहीं होगा और इस प्रकार श्रम न्यायालय ने कार्यवाही बंद कर दी और याचिकाकर्ता ने इस

न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका दायर की, और इस प्रकार, यह वर्तमान मामले में सारहीन है।

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 3000014 वर्ष 1991

34. उपरोक्त तर्कों और चर्चा के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि जाँच कार्यवाही विधिक दृष्टि से दूषित है क्योंकि दिनांक 30-07-1991 का आदेश अवैध एवं हीन है।

राम कली देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

गोविंद सरन निगम, अभिष्ट सरन, गोविंद सरन निगम, निर्मल तिवारी, राहुल कुमार कश्यप, वीआर सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

35. परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश दिनांक 30-07-1991 एतद्वारा रद्द किया जाता है। चूँकि, अपचारी कर्मचारी सेवानिवृत्त हो गया है, अतः, नए सिरे से जाँच हेतु प्रकरण को वापस भेजने से कोई सार्थक उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा, अतः, प्रतिवादी संख्या 4 को एतद्वारा वर्ष 1991 से 2007 की अवधि को ध्यान में रखते हुए पेंशन सहित बकाया राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिनियम, 1960 पर सीलिंग का आरोपण - धारा 13-ए - दायरा और सीमा - गुण-दोष के आधार पर पारित अंतिम आदेश को वापस लेना - अनुमति - धारा 10(2) के तहत नोटिस जारी करने का आदेश दिनांक 16.03.1991, नायब तहसीलदार के माध्यम से राज्य द्वारा उचित प्रतिवाद और उपस्थिति के बाद पारित - अधिवक्ता की गैर-उपस्थिति के आधार पर धारा 13-ए के तहत राज्य द्वारा रिकॉल आवेदन दायर किया गया - निर्णय: अंतिम निर्णय के बाद निर्धारित प्राधिकारी पदेन कार्य बन जाता है - धारा 13-ए केवल रिकॉर्ड पर दिखाई देने वाली गलती को सुधारने की अनुमति देती है - ऐसी कोई गलती नहीं दिखाई गई - वापस लेने योग्य नहीं - उचित उपाय धारा 13 के तहत अपील करना था - रिकॉल आवेदन की अनुमति देने वाला आक्षेपित आदेश रद्द किया गया।

36. यह स्पष्ट किया जाता है कि विभाग, विधि की स्थापित प्रतिपादना, अर्थात् 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के अनुसार विगत मजदूरी का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं है।

37. परिणामस्वरूप, रिट याचिका आंशिक रूप से अनुमत की जाती है।

38. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

-----

(2023) 9 ILRA 905

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.09.2023

**निर्णय:** अधिनियम की धारा 13-ए, विहित प्राधिकारी को अभिलेख में स्पष्ट त्रुटियों को दो वर्षों के भीतर सुधारने का अधिकार देती है, लेकिन समीक्षा का अधिकार नहीं देती। जहाँ मामले पर विधिवत बहस हो चुकी थी और गुण-दोष के आधार पर निर्णय हो चुका था, वहाँ नायब तहसीलदार की भागीदारी के बावजूद, केवल इस आधार पर मामले को वापस बुलाने की अनुमति देना कि राज्य के अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे, धारा 13-ए का दुरुपयोग है। आवेदन मूलतः एक समीक्षा थी, सुधार नहीं, इसलिए विचारणीय नहीं है।

जे - अनुवर्ती: *ज्वाला प्रसाद सिंह बनाम जिला न्यायाधीश*, रिट-सी संख्या 965/1978, 13.11.1978 को निर्णीत

- इस पर भरोसा किया गया: *देवेंद्र नाथ सिंह बनाम सिविल जज, बस्ती*, (1999) 1 एससीसी 71

**रिट याचिका स्वीकृत - दिनांक 16.04.1991 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया।**

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अभिष्ट सरन तथा प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।
2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने अपर जिला मजिस्ट्रेट/विहित प्राधिकारी द्वारा सीलिंग अधिनियम के अंतर्गत

पारित आदेश दिनांक 16.04.1991 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा उन्होंने राज्य द्वारा अपने पिछले आदेश दिनांक 16.03.1991 को वापस लेने के लिए प्रस्तुत आवेदन को स्वीकार किया था।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान विवाद याचिकाकर्ता पर उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिनियम, 1960 की धारा 10 (2) के अंतर्गत नोटिस जारी करने पर शुरू हुआ था।

4. याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस पर अपनी आपत्तियां दर्ज की थीं और कहा था कि जिन भूमियों को अधिनियम 1960 के तहत अधिशेष घोषित करने की मांग की जा रही है, वास्तव में पहले उनके बेटे श्रीप्रकाश उर्फ मुन्ना के स्वामित्व में थीं। आगे कहा गया कि उसके बेटे श्रीप्रकाश ने 05.01.1978 को अपनी बहनों के पक्ष में एक वसीयत की थी, जिसे 27.12.1980 को विधिवत पंजीकृत किया गया था और उक्त संपत्ति उक्त वसीयत की विरासत पर हस्तांतरित की गई थी और उक्त हस्तांतरण के बाद उक्त भूमि, सीलिंग अधिनियम 1960 के अधीन नहीं होगी, और इसे याचिकाकर्ता की होल्डिंग के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है।

5. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों पर विहित प्राधिकारी द्वारा विधिवत विचार किया गया और इस संबंध में 16.03.1991 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता के संस्करण को स्वीकार कर लिया गया और

अधिनियम 1960 की धारा 10 (2) के तहत नोटिस उन्मोचित किए गए।

6. इसके एक माह बाद राज्य सरकार द्वारा आदेश दिनांक 16.03.1991 को वापस लेने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें कहा गया कि विहित प्राधिकारी द्वारा उन्हें सुनवाई का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया और फलस्वरूप उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिनियम, 1960 की धारा 13 (ए) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 16.03.1991 के आदेश को वापस लिया जाना चाहिए और मामले की गुण-दोष के आधार पर पुनः सुनवाई की जानी चाहिए।

7. राज्य सरकार द्वारा योजित आवेदन को दिनांक 16.04.1991 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से स्वीकार किया गया है, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त आदेश का विरोध करते हुए तर्क दिया है कि अधिनियम, 1960 की धारा 13 (ए) में निहित प्रावधानों के अनुसार, यह केवल किसी स्पष्ट गलती को सुधारने हेतु है।

9. यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 16.04.1991 के आदेश का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि यद्यपि राज्य के अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे, लेकिन मामले की विधिवत पैरवी तहसीलदार द्वारा की गई, जो मौके पर उपस्थित थे और उन्होंने राज्य की ओर से सभी दलीलें पेश कीं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विहित प्राधिकारी द्वारा संपूर्ण

अभिलेखों का अवलोकन किया गया और प्रस्तुत किए गए सभी साक्ष्यों पर, उक्त आदेश पारित करने से पहले विधिवत विचार किया गया। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि इस संबंध में यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिलेख में कोई गलती या त्रुटि थी, जिसके लिए राज्य द्वारा मांगे गए सुधार की आवश्यकता थी।

10. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वास्तव में राज्य द्वारा समीक्षा की आड़ दायर आवेदन, 1960 के अधिनियम की धारा 13(ए) के तहत स्वीकार्य नहीं है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा ज्वाला प्रसाद सिंह बनाम जिला न्यायाधीश, रिट याचिका संख्या-965/1978 में 13.11.1978 को पारित निर्णय का संदर्भ दिया है।

12. दूसरी ओर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है और तर्क दिया है कि राज्य की ओर से विहित प्राधिकारी के समक्ष कोई पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था और परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है, क्योंकि राज्य की ओर से प्रासंगिक तर्क प्रस्तुत नहीं किए जा सके, जो रिकॉर्ड की गलती या अभिलेख में स्पष्ट होने के अर्थ में आएंगे, जिसके लिए विहित प्राधिकारी ने अपना पिछला आदेश पारित किया था और उसमें कोई त्रुटि नहीं है।

13. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

14. याचिकाकर्ता रामकली, श्री प्रकाश की मां हैं। श्री प्रकाश को उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिनियम, 1960 की धारा 10 (2) के अंतर्गत पहले नोटिस दिया गया था और उनकी आपतियों पर विचार करने के बाद, कृषि भूखंड में से 19 बीघा 7 बिस्वा, 2 बिसवांसी भूमि को अधिशेष घोषित किया गया था। कार्यवाही अंतिम हो गई और उक्त आदेश को राजस्व अभिलेखों में शामिल कर लिया गया।

15. वर्तमान रिट याचिका की विषय वस्तु, याचिकाकर्ता रामकली को उसके पुत्र श्री प्रकाश की मृत्यु के पश्चात अधिनियम 1960 की धारा 10 (2) सपठित धारा 29/30 के अन्तर्गत नोटिस जारी करके कार्यवाही प्रारम्भ की गई है। श्रीप्रकाश ने अपने जीवनकाल में 05/01/1978 को वसीयत की थी। वसीयत के निष्पादन के पश्चात उसकी मृत्यु हो गई, किन्तु उसे 27/12/1980 को पंजीकृत कराया गया। उक्त वसीयत के माध्यम से श्रीप्रकाश ने अपनी सम्पत्ति अपनी तीन बहनों कृष्णा त्रिवेदी, शकुन्तला दुबे तथा सुशीला त्रिपाठी के पक्ष में वसीयत की है। उनकी मृत्यु के पश्चात जिला न्यायाधीश, कानपुर के न्यायालय से प्रोबेट प्राप्त किया गया तथा राजस्व अभिलेखों में आवश्यक प्रविष्टियां भी सम्मिलित की गई। उप-परगना अधिकारी, उन्नाव की रिपोर्ट के आधार पर, धारा 10(2) के तहत नोटिस याची को दिया गया, जिसमें श्री प्रकाश की भूमि भी शामिल थी, जो बहनों के पक्ष में स्थानांतरित की गई थी। याची ने आपति दर्ज कराई कि स्वर्गीय श्री प्रकाश के पास जो भूमि थी, उसे गलत तरीके से याची की भूमि में जोड़ दिया

गया है, क्योंकि श्री प्रकाश ने अपने जीवनकाल में ही वसीयत कर दी थी, जिसके अनुसार उनकी मृत्यु के बाद उनकी भूमि उनकी बहनों को हस्तांतरित हो गई, तथा जिला न्यायाधीश, कानपुर के न्यायालय से प्रोबेट प्राप्त करने के बाद उक्त भूमि बहनों के कब्जे में है, तथा राजनीतिक प्रभाव और गांव की प्रतिद्वंद्विता के तहत दिया गया नोटिस अवैधानिक और मनमाना है, तथा इसे रद्द किया जाना चाहिए। आगे बताया गया कि नामांतरण पहले ही किया जा चुका है और भूमि अब श्रीप्रकाश के नाम पर नहीं है।

16. उक्त मामले का संचालन सीलिंग लिटिगेशन के प्रभारी नायब तहसीलदार, श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव द्वारा किया गया। उक्त नायब तहसीलदार ने भी याचिकाकर्ता द्वारा जारी नोटिस पर प्रस्तुत उत्तर पर आपति दर्ज की थी, तथा मामले को विहित प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी थी। 16/03/1991 के आदेश एवं निर्णय के माध्यम से याचिकाकर्ता के तर्क को स्वीकार किया गया तथा पाया गया कि भूमि को याचिकाकर्ता की जोत के साथ गलत तरीके से जोड़ दिया गया है, क्योंकि उक्त भूमि श्रीप्रकाश की बहनों को उनके पक्ष में उनके द्वारा की गई वसीयत के तहत पहले ही हस्तांतरित कर दी गई थी, जिसे जिला न्यायाधीश कानपुर द्वारा पहले ही प्रमाणित कर दिया गया था। उन्होंने आगे दर्ज किया कि ऐसा अधिकार श्रीप्रकाश में यूपीजेडए एवं एलआर अधिनियम की धारा 171 में निहित प्रावधानों के अनुसार निहित है, तथा तदनुसार नोटिसों का निर्वहन किया गया।

17. राज्य ने 10/04/1991 को 16/03/1991 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि मामले को राज्य की ओर से नायब-तहसीलदार द्वारा चुनौती दी गई थी और कोई अधिवक्ता उपस्थित नहीं हो सका। इसलिए उन्होंने विहित प्राधिकारी के निष्कर्ष पर यह कहते हुए हमला किया कि श्रीप्रकाश द्वारा संपत्ति का हस्तांतरण कानूनी नहीं था और यह केवल सीलिंग कार्यवाही से बचने के लिए किया गया है।

18. 16/04/1991 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से राज्य का आवेदन स्वीकार किया गया और 16/03/1991 के आदेश को इस आधार पर वापस ले लिया गया कि नायब-तहसीलदार को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था।

19. वर्तमान मामले में निर्णय लिया जाने वाला मुख्य बिन्दु यह है कि क्या 1960 के अधिनियम की धारा 13 ए के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, किसी भी पक्ष के विस्तृत प्रस्तुतीकरण पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने के बाद पारित किए गए आदेश को रिकॉर्ड पर कोई स्पष्ट तथ्य दर्ज किए बिना वापस लिया जा सकता है या आदेश में 1960 के अधिनियम की धारा 13 ए के तहत निर्धारित किसी सुधार की आवश्यकता है।

21. दिनांक 16.03.1991 का आदेश याचिकाकर्ता के साथ-साथ नायब तहसीलदार के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद पारित किया गया था। उक्त आदेश से संकेत मिलता है कि सभी बिन्दुओं पर विस्तार से विचार

किया गया है और नायब तहसीलदार ने राज्य का प्रभावी ढंग से बचाव किया है और सभी आपत्तियां उठाई हैं। उक्त कार्यवाही के दौरान किसी भी समय यह दर्ज नहीं किया गया है कि राज्य के अधिवक्ता की गैर-उपस्थिति पर मामले को स्थगित करने की मांग की गई थी। वापस लेने के आवेदन में भी अधिवक्ता का नाम नहीं बताया गया है।

22. यह सूचित किया गया है कि ऐसे सभी मामलों में नायब तहसीलदार, जो सभी सीलिंग कानूनों में पारंगत है, राज्य की ओर से उपस्थित होता है और मामले को चुनौती देता है और इस मामले में भी वह राज्य की ओर से उपस्थित हुआ और प्रभावी ढंग से मामले पर बहस की, जो दिनांक 16.03.1991 के आदेश से ही स्पष्ट है।

23. 1960 के अधिनियम की धारा 13(2) को पढ़ने से पता चलता है कि एक बार जब विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित कर दिया जाता है, तो वह पदेन हो जाता है और उसके द्वारा पारित आदेश, जो काश्तकार द्वारा दायर सभी आपत्तियों का निस्तारण करता है, वह आदेश, 1960 के अधिनियम की धारा 13 के तहत दायर अपील में पारित किसी भी आदेश के अधीन अंतिम हो जाता है।

24. धारा 13(ए) के तहत किसी भी आदेश को पुनः-विचार का एकमात्र तरीका केवल किसी सुधार या गलती के कारण है, जिसे उक्त आदेश की तारीख से दो साल की समयावधि के भीतर ठीक करने की मांग की जाती है।

25. इस न्यायालय ने **ज्वाला प्रसाद सिंह बनाम जिला न्यायाधीश (रिट याचिका संख्या 965/1978), 13.11.1978** को निर्णीत, में भी उक्त विचार व्यक्त किया है और निम्न प्रकार से निर्णय दिया था:-

“3. याचिकाकर्ता संख्या 1 श्री ज्वाला प्रसाद सिंह को अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत नोटिस जारी किया गया था, तथा उन्होंने आपतियां दर्ज की थीं। नोटिस 1974 में किसी समय जारी किया गया था, तथा विहित प्राधिकारी ने 24.3.1975 के अपने आदेश द्वारा आपतियों पर निर्णय दिया था, तथा उक्त प्राधिकारी ने पाया था कि याचिकाकर्ता के पास 7 बीघा से अधिक भूमि अधिशेष थी। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता सह-हिस्सेदार था और इसलिए, 24 मार्च, 1975 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के मामले में निर्धारित प्राधिकारी द्वारा किए गए निर्धारण के अनुसार सभी सह-हिस्सेदारों के खिलाफ भी कार्यवाही की गई थी। 31 दिसंबर, 1975 के आदेश द्वारा, अन्य सह-हिस्सेदारों की आपतियों का भी फैसला किया गया था। इसके बाद विहित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 10 (2) के तहत एक नया नोटिस जारी किया और उसने ऐसा यू.पी. अधिनियम 20, 1976 की धारा 31 (3) में निहित प्रावधानों के मद्देनजर किया, यथा- भूमि जोत की अधिकतम सीमा

अधिरूपण (संशोधन) अधिनियम, 1976। उक्त संशोधित अधिनियम की धारा 31 में संक्रमणकालीन प्रावधान निर्धारित किया गया है और इसकी उपधारा (3) निम्नलिखित शब्दों में है: “31(3) जहां किसी खातेदार के संबंध में अधिशेष भूमि का निर्धारण करने वाला आदेश अक्टूबर, 1975 के दसवें दिन से पहले मूल अधिनियम के तहत किया गया है, विहित प्राधिकारी (जैसा कि मूल अधिनियम में परिभाषित किया गया है) उक्त तिथि से दो वर्ष की अवधि के भीतर किसी भी समय इस अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के अनुसार अधिशेष भूमि का पुनर्निर्धारण कर सकता है, चाहे ऐसे आदेश के खिलाफ कोई अपील दायर की गई हो या नहीं और अधिशेष भूमि के निर्धारण के मूल आदेश के खिलाफ किसी अपील (चाहे लंबित हो या निर्णीत) के बावजूद।”

4. इस नोटिस द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि उसके पास लगभग 31 बीघा भूमि अधिशेष थी। तथापि, जब उन्होंने आपतियां दर्ज की तो उन्हें स्वीकार कर लिया गया और विहित प्राधिकारी ने 31 जनवरी, 1977 के अपने आदेश द्वारा नोटिस निरस्त कर दिया। विहित प्राधिकारी ने 14 फरवरी, 1977 के अपने आदेश द्वारा निर्देश दिया कि 31 जनवरी, 1977 के आदेश, जिसके द्वारा नोटिस निरस्त किया गया था, को



प्रभावी किया जाना चाहिए। इसके पश्चात राज्य सरकार ने दो आवेदन प्रस्तुत किए, एक 23 जून, 1977 का और दूसरा 12 जुलाई, 1977 का, जिसके द्वारा 31 जनवरी, 1977 के आदेश की समीक्षा की मांग की गई और प्रार्थना की गई कि उक्त आदेश की समीक्षा की जाए और 14 फरवरी, 1977 के बाद के आदेश को निरस्त किया जाए। उक्त आवेदन अधिनियम की धारा 13-ए के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए थे। उक्त आवेदनों की सत्य प्रतियां क्रमशः अनुलग्नक '4' और '5' हैं। विहित प्राधिकारी ने उक्त आवेदनों को स्वीकार कर लिया तथा अपील में विहित प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखा गया।

5. अब याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका दायर की है और इसके समर्थन में मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संकठा राय को सुना है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता को विपक्ष में सुना गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13-ए वास्तव में लागू नहीं होती, क्योंकि रिकॉर्ड में कोई गलती स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि निर्धारित प्राधिकारी और निचली अपीलीय अदालत ने यह गलत माना कि 24 मार्च, 1975 का आदेश अंतिम हो गया था क्योंकि उक्त आदेश के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई थी। अधिवक्ता ने

अपने तर्क के लिए धारा 31(3) पर भरोसा किया है कि चूंकि आदेश अक्टूबर, 1975 के दसवें दिन से पहले पारित किया गया था, लेकिन 17 जनवरी, 1975 के बाद, इसलिए, विहित प्राधिकारी के लिए प्रासंगिक तिथि से दो वर्ष की अवधि के भीतर उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के अनुसार अधिशेष भूमि का पुनर्निर्धारण करना खुला था। दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि धारा 10(2) के तहत नया नोटिस जारी करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि यू.पी. अधिनियम 20, 1976 में संशोधन किसी भी तरह से मूल निर्धारण को प्रभावित नहीं करता था और, इसलिए, उक्त संशोधन अधिनियम की धारा 31(3) का सहारा लेकर कार्यवाही करने का कोई अवसर नहीं था। मैं यहाँ यह कहना चाहूँगा कि विद्वान स्थायी अधिवक्ता का यह तर्क विहित प्राधिकारी के आदेश और निचली अपीलीय अदालत के निर्णय में कहीं नहीं मिलता। उनके लिए वास्तविक मुद्दा यह था कि चूंकि 24 मार्च, 1975 के आदेश के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की गई थी, इसलिए यह अंतिम हो गया था और धारा 10(2) के तहत कोई नया नोटिस जारी नहीं किया जा सकता था। यह निस्संदेह धारा 31(3) की अपेक्षा के विपरीत है, जिसे ऊपर प्रस्तुत किया गया है और जो स्पष्ट

रूप से कहता है कि यद्यपि पहले आदेश के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की गई थी, संशोधित अधिनियम के तहत नई कार्यवाही शुरू की जा सकती है। मुझे ऐसा लगता है कि इसलिए धारा 10(2) के तहत दूसरा नोटिस अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं कहा जा सकता। किसी भी मामले में, मुझे नहीं लगता कि धारा 10(2) के तहत दूसरे नोटिस के परिणामस्वरूप विहित प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 31.3.1977 के आदेश में रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट रूप से कोई गलती होने के बारे में कहा जा सकता है, भले ही अधिनियम की धारा 10(2) के तहत दूसरा नोटिस जारी करने में कोई गलती हुई हो, इसे रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट रूप से कोई गलती नहीं कहा जा सकता है और इसे एक लंबी प्रक्रिया के बाद और मामले के विवादास्पद पहलुओं को शामिल करके स्थापित करने की आवश्यकता है। इसलिए, मैं याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करता हूँ कि अधिनियम की धारा 13-ए के तहत किसी भी आवेदन पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था और विहित प्राधिकारी और निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित बाद के आदेश, धारा 13-ए के तहत राज्य के आवेदनों को अनुमति देने को अधिकार क्षेत्र के बिना माना जाना चाहिए।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है और विहित प्राधिकारी के आदेश तथा निचली अपीलीय अदालत के फैसले को निरस्त किया जाता है तथा विहित प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह 31 जनवरी, 1977 के अपने बाद के आदेश तथा 14 फरवरी, 1977 के निम्नलिखित आदेश को वैध तथा प्रभावी आदेश माने तथा उसे प्रभावी करे। इन परिस्थितियों में व्यय के संबंध में निर्णय लिया जाएगा।"

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देवेन्द्र नाथ सिंह बनाम सिविल जज, बस्ती, (1999) 1 एससीसी 71 के मामले में निम्न प्रकार से निर्णय दिया:-

"3. अधिनियम की धारा 13-ए और धारा 38-बी के प्रावधानों की जांच करने के बाद, हम इस राय पर पहुंचे हैं कि धारा 13-ए के तहत, विहित प्राधिकारी को धारा 14 की उप-धारा (4) के तहत अधिसूचना की तारीख से दो साल के भीतर मामले को फिर से खोलने की शक्ति है ताकि रिकॉर्ड में दिखाई देने वाली किसी भी स्पष्ट गलती को ठीक किया जा सके। उस शक्ति में निश्चित रूप से नए साक्ष्य को ग्रहण करने और इस सवाल की फिर से जांच करने की शक्ति शामिल नहीं होगी कि दोनों बेटे, अर्थात् हेमेंद्र और शैलेंद्र वयस्क थे या नहीं। धारा 38-बी के तहत शक्ति केवल यह दर्शाती है कि यदि किसी

मामले के संबंध में किसी सहायक फोरम द्वारा उक्त धारा के प्रारंभ से पहले कोई निष्कर्ष या निर्णय था, जो सीलिंग अधिनियम द्वारा शासित है, तो ऐसे निष्कर्ष अधिनियम के तहत कार्यवाही में रिस-ज्यूडिकेटा के रूप में काम नहीं करेंगे। यह उस मामले को कवर नहीं करेगा, जहां निष्कर्ष अधिनियम के तहत उसी मामले में पहले से ही अंतिम रूप ले चुके हैं। मामले के इस दृष्टिकोण में, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विहित प्राधिकारी के पास धारा 13-ए के तहत शक्ति के कथित प्रयोग में दोनों बेटों के वयस्कता के प्रश्न को फिर से खोलने का कोई अधिकार नहीं था। यदि प्राधिकारी के पास कोई अधिकार नहीं था, तो अधिकार क्षेत्र से छूट का सवाल ही नहीं उठता। जैसा कि प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है।“

27. वर्तमान मामले में, केवल इसलिए कि राज्य के अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए, पूरे आदेश को वापस लेने की मांग की गई है और वास्तव में वापस लेने के लिए आवेदन आगे यह इंगित करता है कि विहित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को पहले ही गलत माना जा चुका है और यह कहा गया है कि वसीयत का निष्पादन स्वयं धोखाधड़ीपूर्ण था। यह इंगित करता है कि राज्य प्राधिकारियों का इरादा पूरे मामले को फिर से खोलना और गुण-दोष के आधार पर इसकी फिर से सुनवाई

करना और सभी साक्ष्यों की फिर से जांच करना था।

28. वापस लेने के लिए आवेदन वास्तव में सुधार के लिए आवेदन के बजाय विहित प्राधिकारी के दिनांक 16.03.1991 के आदेश की समीक्षा के लिए एक आवेदन था। यह निस्संदेह स्पष्ट है कि विहित प्राधिकारी के पास समीक्षा की कोई शक्ति नहीं है, क्योंकि यह 1960 के अधिनियम में निर्धारित नहीं है और समीक्षा की आड़ में वापस लेने के लिए आवेदन इस आधार पर पेश किया गया कि राज्य के अधिवक्ता मामले का विरोध करने के लिए उपस्थित नहीं हुए।

29. यह भी देखा गया है कि यदि राज्य, विहित प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 16.03.1991 के आदेश से व्यथित था, तो उनके लिए 1960 के अधिनियम की धारा 13 के तहत आयुक्त के समक्ष अपील करना हमेशा खुला था, लेकिन अपील दायर करने के बजाय वापस लेने का आवेदन प्रस्तुत किया गया।

30. उपरोक्त के प्रकाश में, यह न्यायालय इस विचार पर है कि विहित प्राधिकारी द्वारा 1960 के अधिनियम की धारा 13 (ए) के तहत कथित रूप से प्रयोग किया गया अधिकार क्षेत्र उसके पास निहित नहीं है और इसलिए आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाना है और तदनुसार इसे रद्द किया जाता है।

31. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 911

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

सिविल पुनरीक्षण संख्या 44 वर्ष 2023

शारदा सिंह

...पुनरीक्षणवादी

बनाम

विजय कुमार रस्तोगी

...विपक्ष

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:

श्री राजेश कुमार सिंह, श्री कृष्णकांत विश्वकर्मा

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- आदेश 37- नियम 3(5), नियम 4 - भारत

का संविधान, 1950 -अनुच्छेद 227 - बचाव

के लिए बिना शर्त छुट्टी प्रदान करना -

पुनरीक्षणवादी ने दिनांक 03.03.2023 के

आदेश को चुनौती दी, जिसमें प्रतिवादी को

आदेश 37 सीपीसी के तहत 68,55,000/- रुपये

की वसूली के लिए एक सारांश मुकदमा लड़ने

के लिए बिना शर्त छुट्टी दी गई थी, जिसे

कथित तौर पर चेक के माध्यम से उधार दिया

गया था, जिसमें से केवल 1,20,000/- रुपये

ही चुकाए गए थे। पुनरीक्षणवादी ने दावा

किया कि प्रतिवादी का बचाव दुर्भावनापूर्ण था

और इसमें सद्भाविक परीक्षण योग्य मुद्दों का

अभाव था, उन्होंने अस्वीकृत चेक का हवाला

दिया और बीएल कश्यप पर भरोसा किया।

प्रतिवादी ने कोई भी ऋण लेने से इनकार किया, और पुनरीक्षणवादी के पति द्वारा संपत्ति खरीद और मिलीभगत के लिए 31,80,000/- रुपये के भुगतान का आरोप लगाया। न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी ने एक विचारणीय मुद्दा उठाया, जिसमें ऋण देने से इनकार किया गया और भुगतान का दावा किया गया, जो *बीएल कश्यप के चौथे संभावित परिस्थिति* (संदर्भित लेकिन असंभाव्य बचाव जिसमें शर्तों की आवश्यकता होती है) के अंतर्गत नहीं आता। किसी भी पक्ष ने अपने दावों के समर्थन में ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए। बचाव पक्ष तुच्छ या परेशान करने वाला नहीं था, जिससे प्रतिवादी को आदेश 37 नियम 3(5) के तहत बिना शर्त छूट का अधिकार प्राप्त हो। विचारण न्यायालय का आदेश क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि या अवैधता से मुक्त था। पुनरीक्षण खारिज। (अनुच्छेद 12, 16-19)

पुनरीक्षण खारिज।

उद्धृत वादों की सूची:

बीएल कश्यप एंड संस लिमिटेड बनाम जेएमएस स्टील्स एंड पावर कॉर्पोरेशन और अन्य, (2022) 3 एससीसी 294

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. संशोधनवादी के विद्वान वकील को सुना।

2. पुनरीक्षणकर्ता, जो आदेश 37 सीपीसी के तहत 2020 के मूल सूट नंबर 37 में वादी है,

ने सिविल जज (सीनियर डिवीजन) वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 03.03.2023 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें प्रतिवादी को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा स्थापित मुकदमे को लड़ने के लिए बिना शर्त छुट्टी दी गई है। .

3. मुकदमा इस आधार पर स्थापित किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता ने प्रतिवादी को विभिन्न चेक और अन्य माध्यमों से 69,75,000/- रुपये की राशि उधार दी थी, लेकिन प्रतिवादी ने केवल 1,20,000/- रुपये वापस किए हैं।

4. मुकदमे में नोटिस जारी किये गये। मुकदमे में प्रतिवादी की उपस्थिति पर सीपीसी के आदेश 37 नियम 4 के तहत विचार की गई प्रक्रिया के अनुसार संशोधनकर्ता प्रतिवादी को विभिन्न चेक के माध्यम से प्रतिवादी द्वारा भुगतान किए गए कुल 1,20,000/- रुपये के विभिन्न भुगतानों के संबंध में शपथ पत्र के पैराग्राफ 4 में विवरण बताते हुए हलफनामे द्वारा समर्थित परिशिष्ट बी में फॉर्म संख्या 4-ए में निर्णय के लिए समन भेजा गया। फैसले के समन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा 5 में प्रतिवादी ने प्रतिवादी द्वारा दिए गए चेक के विवरण का खुलासा किया है, जो धन की कमी के कारण बैंक द्वारा बाउंस हो गया था। हलफनामे के पैरा 6 में, संशोधनकर्ता ने प्रतिवादी से प्राप्त 1,20,000/- रुपये के दो चेक का खुलासा किया है, जिन्हें भुना लिया गया। आगे कहा गया है कि प्रतिवादी बेईमान हो गया है और संशोधनवादी द्वारा दिए गए पैसे का भुगतान करने का इरादा नहीं रखता है और चूंकि प्रतिवादी के पास मुकदमे के लिए कोई बचाव नहीं है इसलिए प्रतिवादी मुकदमे का

बचाव करने के लिए सीपीसी के आदेश 37 नियम 3 (5) के तहत प्रदान किए गए किसी भी अवसर का हकदार नहीं है।

5. प्रतिवादी ने उपरोक्त हलफनामे का जवाब दाखिल करते हुए इस तथ्य से इनकार किया कि उन्होंने संशोधनकर्ता से कोई ऋण लिया है। आगे कहा गया है कि विवेचक का पति सब इंस्पेक्टर है और उसके पति की मिलीभगत से मुकदमा कायम कराया गया है। आगे कहा गया है कि प्रतिवादी ने विभिन्न चेकों के माध्यम से 31,80,000/- रुपये की राशि दी है, जिसका विवरण प्रतिवादी के उत्तर के पैराग्राफ 11 में बताया गया है और ऐसी राशि के भुगतान से बचने के लिए, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा मुकदमा स्थापित किया गया है। तदनुसार, यह प्रार्थना की जाती है कि प्रतिवादी को मुकदमा लड़ने के लिए बिना शर्त अनुमति दी जाए।

6. आदेश को चुनौती देते हुए, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अधीनस्थ न्यायालय ने महत्वपूर्ण अनियमितता की है और आवेदन को खारिज करने में अपने निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है। यह प्रस्तुत किया गया है कि समन के समर्थन में संशोधनकर्ता द्वारा दायर हलफनामे के खिलाफ प्रतिवादी के उत्तर को पढ़ने से पता चलता है कि प्रतिवादी द्वारा स्थापित बचाव दुर्भावनापूर्ण है और प्रतिवादी के पास मुकदमा लड़ने के लिए कोई प्रशंसनीय बचाव नहीं है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी को मुकदमा लड़ने के लिए बिना शर्त छुट्टी देकर कानूनी गलती की है। यह प्रस्तुत किया गया है कि

आपत्ति के अवलोकन से पता चलता है कि आपत्ति में कोई वास्तविक या वास्तविक विचारणीय मुद्दा नहीं उठाया गया है और ऐसी स्थिति में, ट्रायल कोर्ट को छुट्टी देते समय छुट्टी देने में कुछ सख्त शर्तें लगानी चाहिए थीं।

6. आदेश को चुनौती देते हुए, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अधीनस्थ न्यायालय ने महत्वपूर्ण अनियमितता की है और आवेदन को खारिज करने में अपने निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है। यह प्रस्तुत किया गया है कि समन के समर्थन में संशोधनकर्ता द्वारा दायर हलफनामे के खिलाफ प्रतिवादी के उत्तर को पढ़ने से पता चलता है कि प्रतिवादी द्वारा स्थापित बचाव दुर्भावनापूर्ण है और प्रतिवादी के पास मुकदमा लड़ने के लिए कोई प्रशंसनीय बचाव नहीं है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी को मुकदमा लड़ने के लिए बिना शर्त छुट्टी देकर कानूनी गलती की है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आपत्ति के अवलोकन से पता चलता है कि आपत्ति में कोई वास्तविक या वास्तविक विचारणीय मुद्दा नहीं उठाया गया है और ऐसी स्थिति में, ट्रायल कोर्ट को छुट्टी देते समय छुट्टी देने में कुछ सख्त शर्तें लगानी चाहिए थीं।

7. मैंने संशोधनवादी के विद्वान वकील की दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

8. रिकॉर्ड से प्राप्त तथ्य यह है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा सीपीसी के आदेश 37 के तहत जमीन पर ब्याज सहित 68,55,000/- रुपये की राशि की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया गया है। कि संशोधनकर्ता ने विभिन्न चेकों के माध्यम से 68,55,000/- रुपये का ऋण दिया है, जिसमें से प्रतिवादी ने केवल 1,20,000/- रुपये का भुगतान किया है। मुकदमे में आगे का आधार यह है कि प्रतिवादी द्वारा दिए गए दो चेक धन की कमी के कारण बाउंस हो गए थे।

9. अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी को नोटिस जारी किया। प्रतिवादी के उपस्थित होने पर पुनरीक्षणकर्ता ने पुनः दोहराते हुए परिशिष्ट बी के प्रपत्र 4-ए में शपथ पत्र के साथ समन दायर किया कि संशोधनकर्ता ने विभिन्न चेकों के माध्यम से 68,55,000/- रुपये का भुगतान किया है, जिसका विवरण शपथ पत्र के पैराग्राफ 4 में बताया गया है। उत्तरदाताओं द्वारा जारी किए गए चेक जो बाउंस हो गए थे, उनके संबंध में विवरण संशोधनकर्ता द्वारा हलफनामे के पैराग्राफ 5 में बताया गया है।

10. प्रतिवादी ने प्रतिवादी से कोई भी ऋण लेने के तथ्य से इनकार किया है और आगे एक बचाव स्थापित किया है कि उन्होंने संशोधनवादी की संपत्ति की खरीद के लिए 31,80,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया है। प्रतिवादी ने बैंक द्वारा बाउंस किए गए किसी भी चेक को जारी करने से इनकार किया है।

11. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करने के बाद ट्रायल कोर्ट ने माना कि प्रतिवादी ने एक विचारणीय मुद्दा उठाया है और वह बचाव के लिए बिना शर्त छुट्टी का हकदार है।

12. संशोधनवादी के विद्वान वकील ने बीएल कश्यप एंड संस लिमिटेड बनाम जेएमएस स्टील्स एंड पावर कॉर्पोरेशन एंड अदर, 2022 (3) एससीसी 294 के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया है। वर्तमान मामले के संदर्भ में पैराग्राफ 33.1 से 33.3 प्रासंगिक हैं और उन्हें यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"33.1. जैसा कि देखा गया है, यदि प्रतिवादी अदालत को संतुष्ट करता है कि उसके पास पर्याप्त बचाव है, यानी, एक बचाव जो सफल होने की संभावना है, तो वह बचाव के लिए बिना शर्त छुट्टी का हकदार है। दूसरी स्थिति में, जहां प्रतिवादी निष्पक्ष या प्रामाणिक या उचित बचाव का संकेत देने वाले विचारणीय मुद्दों को उठाता है, हालांकि सकारात्मक रूप से अच्छा बचाव नहीं है, वह आम तौर पर बचाव के लिए बिना शर्त छुट्टी का हकदार होगा। तीसरी स्थिति में, जहां प्रतिवादी विचारणीय मुद्दे उठाता है, लेकिन यह संदिग्ध रहता है यदि प्रतिवादी इसे अच्छे विश्वास में या मुद्दों की वास्तविकता के बारे में उठा रहा है, तो ट्रायल कोर्ट से एक तरफ वाणिज्यिक कारणों के शीघ्र निपटान की आवश्यकताओं और दूसरी तरफ अनावश्यक रूप से गंभीर आदेशों द्वारा विचारणीय मुद्दों को बंद न करने की आवश्यकताओं को संतुलित करने की

उम्मीद की जाती है। इसलिए, ट्रायल कोर्ट ट्रायल के समय या तरीके के साथ-साथ कोर्ट में भुगतान या सुरक्षा जमा करने, दोनों के संबंध में शर्तें लगा सकता है। चौथी स्थिति में, जहां प्रस्तावित बचाव प्रशंसनीय लेकिन असंभव प्रतीत होता है, परीक्षण के समय या तरीके के साथ-साथ न्यायालय में भुगतान या सुरक्षा प्रस्तुत करने या दोनों के संबंध में ऊंची शर्तें लगाई जा सकती हैं जो उचित और अपेक्षित ब्याज सहित संपूर्ण मूल राशि तक बढ़ाया जा सकता है।

**33.2.** इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि पर्याप्त बचाव के मामले में, प्रतिवादी बिना शर्त छुट्टी का हकदार है; और यहां तक कि निष्पक्ष और उचित बचाव पर विचारणीय मुद्दे के मामले में भी, प्रतिवादी आमतौर पर बचाव के लिए बिना शर्त छुट्टी का हकदार है। के बारे में संदेह के मामले में प्रतिवादी का इरादा या विचारणीय मुद्दों की वास्तविकता और साथ ही बचाव की संभावना, छुट्टी अभी भी दी जा सकती है, लेकिन परीक्षण के समय या तरीके या भुगतान या सुरक्षा प्रस्तुत करने की शर्तें लगाते हुए। इस प्रकार, संदेह या आपत्ति के ऐसे मामलों में भी, बचाव की अनुमति देने से इनकार करना नियम नहीं है; लेकिन छुट्टी मंजूर करते समय उचित शर्तें लगाई जा सकती हैं। यह केवल उस मामले में है जहां प्रतिवादी के पास कोई पर्याप्त बचाव नहीं है और/या न्यायालय के दृष्टिकोण के साथ कोई वास्तविक विचारणीय मुद्दे नहीं उठा रहा है कि बचाव तुच्छ या कष्टप्रद है, बचाव की अनुमति देने से इनकार कर दिया जाना चाहिए और वादी तुरंत निर्णय का हकदार है। बेशक, ऐसे मामले में जहां वादी द्वारा दावा की गई राशि

का कोई हिस्सा प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया जाता है, बचाव की अनुमति तब तक नहीं दी जाती है जब तक कि स्वीकार की गई राशि प्रतिवादी द्वारा अदालत में जमा नहीं की जाती है।

**33.3. इसलिए, बचाव के लिए छुट्टी मांगने वाले आवेदन पर विचार करते समय, इस तरह आगे बढ़ना सही दृष्टिकोण नहीं होगा जैसे कि छुट्टी अस्वीकार करना नियम है या कि बचाव के लिए छुट्टी केवल असाधारण मामलों में दी जानी है या केवल उन मामलों में जहां बचाव सराहनीय प्रतीत होगा यहां तक कि विचारणीय मुद्दों को उठाने के मामले में भी, जब प्रतिवादी यह संकेत देता है कि उसके पास निष्पक्ष या उचित बचाव है, तो वह आम तौर पर बचाव के लिए बिना शर्त छुट्टी का हकदार है, जब तक कि छुट्टी से इनकार करने का कोई मजबूत कारण न हो। यह बात बार-बार दोहराई जाती है कि भले ही रक्षा की संभावना के बारे में उचित संदेह बना रहे, लेकिन छुट्टी देते समय ऊपर बताई गई कड़ी या उच्चतर शर्तें लगाई जा सकती हैं लेकिन, छुट्टी से इनकार करना आम तौर पर केवल ऐसे मामलों में ही स्वीकार्य होगा जहां प्रतिवादी कोई वास्तविक विचारणीय मुद्दा दिखाने में विफल रहता है और अदालत बचाव को तुच्छ या परेशान करने वाला मानती है।**

13. उपरोक्त अनुच्छेदों को पढ़ने से पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आमतौर पर प्रतिवादी को मामला लड़ने के अवसर से वंचित नहीं किया जाना चाहिए जब तक यह साबित न हो जाए कि कोई ठोस

बचाव नहीं किया गया है या बचाव व्यवस्था इस तथ्य के साथ वास्तविक विचारणीय मुद्दों को नहीं उठाती है कि बचाव तुच्छ या कष्टप्रद है, तो अदालत बचाव की इजाजत देने से इनकार कर सकती है और वादी तुरंत फैसले का हकदार है।

14. इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 33.1 में मामलों की चार घटनाओं को रेखांकित किया है जो इस प्रकार के मामलों में उत्पन्न हो सकती हैं और दिशानिर्देश प्रदान किए हैं जिनका न्यायालय को पालन करना चाहिए। शीर्ष अदालत ने प्रावधान किया है कि ट्रायल कोर्ट को चौथी स्थिति वाले मामलों में प्रतिवादी को छुट्टी देने में शर्त लगानी चाहिए।

15. वर्तमान मामले में, संशोधनवादी के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामला चौथी स्थिति में आता है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ संख्या 33.1 में वर्गीकृत किया है, जो है "चौथी स्थिति में, जहां प्रस्तावित बचाव प्रशंसनीय लेकिन असंभव प्रतीत होता है, वहां सुनवाई के समय या तरीके के साथ-साथ न्यायालय में भुगतान या सुरक्षा जमा करने या दोनों के संबंध में ऊंची शर्तें लगाई जा सकती हैं जो उचित और अपेक्षित ब्याज के साथ पूरी मूल राशि तक बढ़ाया जा सकता है।"

16. इस न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ 33.1 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई चौथी घटना के आलोक में मामले के तथ्यों का विश्लेषण किया और पाया कि प्रतिवादी ने मुकदमा लड़ने के लिए बिना शर्त छुट्टी देने के



लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा रखा है और प्रतिवादी का मामला चौथी घटना की श्रेणी में नहीं आता है। यह नोट करना और भी प्रासंगिक है कि संशोधनवादी द्वारा हलफनामे पर बिना किसी सामग्री को रिकॉर्ड पर रखे यह दावा किया गया है कि हलफनामे के पैराग्राफ 4 में विस्तृत भुगतान संशोधनवादी द्वारा प्रतिवादी को किया गया है।

17. हालांकि यह सच है कि प्रतिवादी ने रिकॉर्ड पर कोई सामग्री रखे बिना जमीन की खरीद के लिए उसके द्वारा किए गए भुगतान के संबंध में भी अपनी आपत्ति जताई है, लेकिन यह न्यायालय यह नोट कर सकता है कि संशोधनवादी ने भुगतान की प्रामाणिकता स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री रखे बिना हलफनामे पर भुगतान का दावा किया है, जिसे प्रतिवादी ने अपनी आपत्ति में अस्वीकार कर दिया है। दोनों पक्ष अपने दावे के समर्थन में रिकॉर्ड पर कोई भी सामग्री पेश करने में विफल रहे हैं।

18. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी द्वारा अपनी आपत्ति में स्थापित बचाव विचारणीय मुद्दा है जो प्रतिवादी को सीपीसी के आदेश 37 नियम 5 के तहत मुकदमा लड़ने के लिए असंवैधानिक छुट्टी का अधिकार देता है।

19. इस स्तर पर सी.पी.सी. के आदेश 37 नियम 3(5) के पहले प्रावधान पर विचार करना भी उचित होगा। जो न्यायालय को आदेश देता है कि वह बचाव की अनुमति देने से तब तक इनकार न करे जब तक कि वह संतुष्ट न हो

जाए कि प्रतिवादी द्वारा बताए गए तथ्य यह नहीं दर्शाते हैं कि उसके पास उठाने के लिए पर्याप्त बचाव है या प्रतिवादी द्वारा किया जाने वाला बचाव तुच्छ और काल्पनिक है। मौजूदा मामले में, संशोधनवादी यह प्रदर्शित करने में विफल रहा है कि प्रतिवादी द्वारा अपनी आपत्ति में प्रकट किए गए तथ्य यह प्रकट नहीं करते हैं कि उसके पास उठाने के लिए पर्याप्त बचाव है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी को बिना शर्त छुट्टी देने में कोई अवैधता या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं की है।

20. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के पुनरीक्षण को खारिज कर दिया जाता है।

-----

**(2023) 9 ILRA 915**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 04.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी**

**मामले अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 3002**

**वर्ष 2019 (सिविल)**

**श्रीमती प्रेमा देवी**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**देवीदीन एवं अन्य**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री अरविन्द कुमार यादव, श्री निखिल कुमार

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

श्री गिरीश सिंह, श्री आशीष कुमार

**सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - यूपी शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 12 (3), 14 और 16 (2) - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 17 - मानद रिक्ति और पुनरीक्षण आदेश** - याचिकाकर्ता ने 23.01.2019 के पुनरीक्षण आदेश को चुनौती दी, जिसने 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 के तहत क्रमशः 10.03.2010 और 08.06.2011 के रिक्ति और रिलीज आदेशों को अलग करते हुए, किराया पुनरीक्षण संख्या 70 वर्ष 2011 को अनुमति दी। रिक्ति आदेश प्रतिवादी-किरायेदार के वाद संख्या 893/1993 में लिखित बयान में स्वीकारोक्ति पर आधारित था, जिसमें मकान संख्या 85/183 में स्वामित्व और निवास का दावा किया गया था। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने इस स्वीकरण पर विचार न करके और नियामक प्राधिकरण के निष्कर्षों को उलटने के बिना मामले को वापस भेजकर गलती की, *बसंत सिंह* और *प्रेमलता @ सुनीता* का हवाला दिया गया। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि धारा 12 (3) के तहत एक खाली वैकल्पिक आवास की आवश्यकता है, जो विवाद में था, और *गोपाल सिंह* का हवाला देते हुए धारा 16 (2) के तहत सद्भावना की आवश्यकता और धारा 14 के तहत वैधानिक किरायेदारी के मुद्दों को उठाया। न्यायालय ने माना कि *बसंत सिंह* और *प्रेमलता @ सुनीता* के अनुसार किरायेदार के किसी अन्य संपत्ति में स्थायी निवास की स्वीकृति ने धारा 12 (3) के तहत रिक्तता को ट्रिगर किया और किरायेदार

अनुमोदन और खंडन नहीं कर सकता। स्वीकरण पर विचार करने में पुनरीक्षण न्यायालय की विफलता ने उसके आदेश को अस्थिर बना दिया। प्रतिवादियों द्वारा धारा 14 और 16(2) पर भरोसा करना, रिक्त पद माने जाने के कारण प्रयोज्य नहीं था। पुनरीक्षण आदेश अपास्त, याचिका स्वीकृत। (पैरा 15-24)

**याचिका स्वीकार की गई।**

### उद्धृत वादों की सूची:

1. बसंत सिंह बनाम जानकी सिंह एवं अन्य, (1967) 1 एससीआर 1
2. डॉ. दिनेश चंद्र बनाम कृष्ण कुमार गोयल, सिविल पुनरीक्षण संख्या 214/2013
3. प्रेमलता @सुनीता बनाम नसीब बी एवं अन्य, (2022) 6 एससीसी 585
4. गोपाल सिंह बनाम किराया नियंत्रण एवं बेदखली अधिकारी, देहरादून एवं अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 29155/1991
5. चेतन सेन जैन बनाम एडीजे, तृतीय, देहरादून एवं अन्य, एआरसी 1992 (2)

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल कुमार और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार को सुना।

2. वर्तमान याचिका नवम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा किराया पुनरीक्षण संख्या 70/2011 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 23.01.2019 चुनौती देते हुए दायर की गई है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि एक विमोचन प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, जिसे वाद सं0 1/2009 के रूप में पंजीकृत किया गया था, जिस पर दिनांक 10.03.2010 का रिक्ति आदेश पारित किया गया था और उसके बाद दिनांक 08.06.2011 का विमोचन आदेश भी पारित किया गया था। उक्त आदेशों के विरुद्ध प्रत्यर्थी ने किराया पुनरीक्षण संख्या 70/2011 दायर किया था, जिसे आदेश दिनांकित 23.01.2019 द्वारा स्वीकार किया गया था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि दो आधारों पर आक्षेपित आदेश गलत है। प्रथमतः, किराया नियंत्रण एवं विनियामक अधिकारी (एतदपश्चात् "विनियामक प्राधिकरण" के रूप में संदर्भित) के निष्कर्ष को रद्द किए बिना, पुनरीक्षण की अनुमति दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि रिक्ति आदेश और विमोचन आदेश इस आधार पर पारित किए गए हैं कि याचिकाकर्ता के पास अपना घर है और वह उसमें रह रही है। उन्होंने बताया कि प्रत्यर्थी और उसकी बहन के बीच वाद सं0 893/1993 लंबित है, जिसमें उसने शपथ पर लिखित बयान दाखिल किया है, जिसमें उसने विशेष रूप से कथन किया है कि वह उक्त मकान सं0 85/183 में एकमात्र मालिक के रूप में रह रहा है। प्रत्यर्थी द्वारा

उक्त वाद में की गई स्वीकारोक्ति पर विश्वास करते हुए एक रिक्ति आदेश पारित किया गया है, परन्तु इस निष्कर्ष को रद्द किए बिना, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। एक बार, घर के साथ-साथ आवास के स्वामित्व के बारे में किसी अन्य न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही में इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा उस पर कोई विशेष निष्कर्ष दिए बिना इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। द्वितीय, याचिका के साथ दायर शपथपत्र के पैराग्राफ 13 में याचिकाकर्ता ने विशिष्ट तर्क दिया है कि प्रत्यर्थी मकान सं0 85/183 में रह रहा है। इस न्यायालय में दायर जवाबी शपथपत्र के पैराग्राफ 13 में भी इस तथ्य को स्वीकार किया गया है, परन्तु इस पर विचार किए बगैर ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने बसंत सिंह बनाम जानकी सिंह व अन्य; (1967) 1 एस.सी.आर. 1 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ डॉ. दिनेश चंद्र बनाम कृष्ण कुमार गोयल, सिविल रिवीजन संख्या 214/2013 दिनांक 27 मई 2013 को निर्णित के मामले में इस न्यायालय के निर्णय, का अवलम्ब लिया है। उन्होंने प्रेमलता उर्फ सुनीता बनाम नसीब बी व अन्य; (2022) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 585 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है; ।

5. उन्होंने आगे कहा कि रिमांड आदेश नियमित तरीके से पारित नहीं किया जा सकता है, सिवाय इसके कि ऐसे आदेश पारित करने के लिए असाधारण परिस्थितियाँ हों।

6. प्रत्यर्थागण (किरायेदार) के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार ने इसका पुरजोर विरोध किया और कहा कि 1972 के यू.पी. अधिनियम संख्या 13 की धारा 12(3) में प्रावधान है कि रिक्ति केवल तभी घोषित की जा सकती है जब वैकल्पिक आवास खाली हो। वर्तमान मामले में, यह खाली नहीं है क्योंकि प्रत्यर्था और उसकी बहन के बीच विवाद है जिस पर न्यायालय ने यथास्थिति का आदेश पारित किया है, इसलिए, धारा 12(3) के प्रकाश में, आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

7. उन्होंने आगे कहा कि 1972 के यू.पी. अधिनियम संख्या 13 की धारा 16(2) के अनुसार, किराया प्राधिकरण की ओर से सद्भावनापूर्ण आवश्यकता पर विचार करना अपेक्षित है, जिस पर एस.सी.सी. न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, इसलिए, पुनरीक्षण को सही रूप से अनुमति दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 101 के प्रकाश में, वादी की ओर से अपना स्वयं का मामला स्थापित करना अपेक्षित है और किसी अन्य न्यायालय में दायर किसी भी शपथपत्र/बयान को प्रत्यर्था के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने दिनांक 08.02.1993 को निर्णीत गोपाल सिंह बनाम किराया नियंत्रण और बेदखली अधिकारी, देहरादून व अन्य के मामले में सिविल विविध रिट याचिका संख्या 29155/1991 में पारित इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

8. प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 1972 के यू.पी. अधिनियम संख्या 13 की धारा 14 के प्रकाश में प्रत्यर्था वैधानिक किरायेदार है, इसलिए उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने ए.आर.सी. 1992 (2) में सूचित किए गए चेतन सेन जैन बनाम तृतीय अपर जनपद न्यायाधीश, देहरादून व अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया है।

9. अपने प्रत्युत्तर बहस में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल अग्रवाल ने कथन किया कि विमोचन प्रार्थना पत्र के विरुद्ध दायर लिखित बयान या पुनरीक्षण में विमोचन प्रार्थना पत्र की सद्भावना के साथ-साथ पोषणीयता पर कभी प्रश्न नहीं उठाया गया है, इसलिए इस स्तर पर इसे नहीं उठाया जा सकता है, जिस पर प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि यह शुद्ध विधिक मुद्दा है, इसलिए वह इसे किसी भी समय उठा सकते हैं।

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिद्वन्दी तर्कों पर विचार किया तथा विधिक प्रावधानों व उपरोक्त निर्णयों का परिशीलन किया।

11. वर्तमान मामले का मूल तथ्य निर्विवाद है कि मूल वाद संख्या 893/1993 प्रत्यर्था और उसकी बहन के बीच लंबित है जिसमें उसने शपथ पर लिखित बयान दर्ज कराया है जिसमें विशेष रूप से कहा गया है कि वह उक्त मकान

संख्या 85/183 में एकमात्र मालिक के रूप में रह रहा है।

प्रयोजनों के लिए सार्वजनिक भवन का कब्जाधारी है;

12. अब न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि मूल वाद संख्या 893/1993 में प्रत्यर्थी द्वारा शपथ पर दिए गए बयान की पवित्रता क्या होगी और 1972 के यू.पी. अधिनियम 13 की धारा 12(3) की प्रयोज्यता क्या होगी। संदर्भ के लिए, 1972 के यू.पी. अधिनियम 13 की धारा 12 (3) नीचे उद्धृत की जा रही है;

“(3) आवासीय भवन के मामले में यदि किरायेदार या उसके परिवार का कोई सदस्य उसी शहर, नगर पालिका, अधिसूचित क्षेत्र या नगर क्षेत्र में आवासीय भवन बनाता है या अन्यथा खाली कराता है या खाली करा लेता है, जिसमें किरायेदारी के अंतर्गत भवन स्थित है, तो यह माना जाएगा कि उसने अपनी किरायेदारी के अंतर्गत भवन पर कब्जा छोड़ दिया है:

बशर्ते कि यदि किरायेदार या उसके परिवार के किसी सदस्य ने इस अधिनियम के प्रारम्भ की तिथि से पूर्व ऐसा कोई आवासीय भवन बनाया हो, तो ऐसा किरायेदार उक्त तिथि से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति पर अपनी किरायेदारी के अन्तर्गत भवन पर कब्जा नहीं रख पाया माना जाएगा।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए:-

(क) कोई व्यक्ति भवन को अन्यथा अर्जित कर चुका माना जाएगा, यदि वह किरायेदार, आवंटी या लाइसेंसी के रूप में आवासीय

(ख) किरायेदार के सम्बन्ध में “परिवार के किसी सदस्य” के अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति सम्मिलित नहीं होगा, जो न तो ऐसे किरायेदार के साथ सामान्य रूप से रह रहा है और न ही उस पर पूर्णतः आश्रित है।”

13. 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम 13 की धारा 12 की भाषा बहुत स्पष्ट है कि यदि किरायेदार या उसके परिवार के किसी सदस्य ने ऐसा निवास ले लिया है, जो अस्थायी न हो तो रिक्ति मानी जाएगी।

14. जहां तक किसी अन्य न्यायालय के समक्ष लिखित बयान या स्वीकारोक्ति का संबंध है, इस मामले पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने भी बार-बार विचार किया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बसंत सिंह (उपरोक्त)** के मामले में इस मुद्दे पर विचार किया है और यह दृष्टिकोण अपनाया है कि किसी पक्ष द्वारा याचिका में की गई स्वीकारोक्ति का इस्तेमाल अन्य मुकदमों में उसके विरुद्ध साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 6 नीचे उद्धृत है;

“इस प्रकार, अंग्रेजी कानून के अंतर्गत भी, किसी पक्ष द्वारा शपथ पर, हस्ताक्षरित या अन्यथा दिया गया बयान अन्य कार्यवाहियों में उसके विरुद्ध स्वीकार्य है। मैरिएन्स्की बनाम

केन्स (1) मैक. 212. में हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने निर्णीत किया कि किसी पक्ष द्वारा हस्ताक्षरित तर्क में दी गई स्वीकारोक्ति, न केवल एक अलग विषय-वस्तु के संबंध में अपितु एक अलग प्रतिद्वंद्वी के विरुद्ध भी दूसरे मुकदमे में उसके विरुद्ध साक्ष्य थी। इसके अतिरिक्त, हमारा अंग्रेजी कानून की तकनीकी बातों से कोई सरोकार नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 17 किसी पक्ष द्वारा किसी अभिवचन में की गई स्वीकृति और अन्य स्वीकृतियों के बीच कोई अंतर नहीं करती है। भारतीय कानून के अंतर्गत, किसी पक्ष द्वारा हस्ताक्षरित और सत्यापित वादपत्र में की गई स्वीकृति को अन्य मुकदमों में उसके विरुद्ध साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। अन्य मुकदमों में, इस स्वीकृति को निर्णायक नहीं माना जा सकता है, और पक्ष को यह दिखाने की छूट है कि यह सच नहीं है।”

16. यह बिन्दु डॉ. दिनेश चंद्र (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के समक्ष था और सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने माना है कि किसी को भी अनुमोदन और खंडन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं;

“किसी को भी अनुमोदन और खंडन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह विनिरोध का सिद्धांत है। जब याचिकाकर्ता ने बिजली अधिकारियों के विरुद्ध अपनी रिट याचिका में समझौते का लाभ प्राप्त किया, तो उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती

कि समझौता उसके लिए बाध्यकारी नहीं है या साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है। किरायेदारी समझौते के किसी भी खंड के बारे में उक्त रिट याचिका में कोई आरक्षण नहीं किया गया था। किसी को भी यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उसे उस समझौते का लाभ दिया जाना चाहिए जिस पर वह हस्ताक्षरकर्ता है, परन्तु यदि उक्त समझौते में उसके विरुद्ध कुछ भी है, तो उसे उसके विरुद्ध नहीं पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि समझौता पर्याप्त रूप से स्टाम्प पेपर पर नहीं है और पंजीकृत होने के बावजूद पंजीकृत नहीं है। इस तरह के विरोधाभासी तर्कों को उठाने की अनुमति देना बेईमानी पर प्रीमियम देने के बराबर होगा।”

17. यह मुद्दा प्रेमलता उर्फ सुनीता (उपरोक्त) में पुनः माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष था और विस्तार से विचारोपरांत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वही दृष्टिकोण अपनाया है कि किसी को भी अनुमोदन और खंडन करने और पहले लिए गए विपरीत रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं;

“सबसे पहले, यह ध्यान देने योग्य है और यह विवाद का विषय नहीं है कि वादी ने एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 250 के अंतर्गत राजस्व प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही संस्थित की। इन्हीं प्रत्यर्थीगण ने राजस्व प्राधिकरण के समक्ष आपत्ति उठाई कि राजस्व प्राधिकरण के पास इस मामले के निस्तारण का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। तहसीलदार ने उक्त आपत्ति को स्वीकार कर लिया और एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 250 के अंतर्गत आवेदन को यह

कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि विवाद स्वामित्व के संबंध में है, इसलिए राजस्व प्राधिकरण के पास एम.पी.एल.आर.सी. के अंतर्गत कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। तहसीलदार द्वारा पारित उक्त आदेश की अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की गई है (निःसंदेह उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान)। इस आधार पर कि राजस्व प्राधिकरण के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, तहसीलदार द्वारा एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 250 के अंतर्गत आवेदन को खारिज करने का आदेश पारित करने के पश्चात, जो कि यहां के प्रत्यर्थीगण द्वारा उठाई गई आपत्ति पर था - मूल प्रत्यर्थीगण/वादी ने सिविल न्यायालय के समक्ष एक वाद संस्थित किया। सिविल न्यायालय के समक्ष, प्रत्यर्थीगण - मूल प्रतिवादी ने राजस्व प्राधिकरण के समक्ष उनके द्वारा लिए गए रुख के विपरीत रुख अपनाया तथा सिविल न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थीगण ने यह आपत्ति उठाई कि सिविल न्यायालय के पास वाद पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। प्रत्यर्थीगण - मूल प्रतिवादीगण को दो भिन्न प्राधिकरणों/न्यायालय के समक्ष दो विरोधाभासी रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। एक बार जब मूल प्रत्यर्थीगण की ओर से उठाई गई आपत्ति कि राजस्व प्राधिकरण के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार द्वारा स्वीकार कर ली गई तथा एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 250 के अंतर्गत कार्यवाही खारिज कर दी गई तथा उसके पश्चात जब वादी ने सिविल न्यायालय के समक्ष वाद संस्थित किया तो प्रत्यर्थीगण - मूल प्रतिवादीगण के लिए यह आपत्ति उठाना संभव

नहीं था कि सिविल न्यायालय के समक्ष वाद भी एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 257 के अंतर्गत बाधित होगा। यदि प्रत्यर्थीगण - प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत किए गए कथन को स्वीकार कर लिया जाता है तो उस स्थिति में मूल वादी उपचारहीन हो जाएगा। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया कि जब अपीलकर्ता - मूल वादी राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार के पास गया तो इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार के पास वाद संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में विवाद निर्णीत करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इसके पश्चात जब मुकदमा दायर किया गया और प्रत्यर्थीगण - प्रतिवादीगण ने विपरीत रुख अपनाया तो सिविल मुकदमा भी बाधित हो जाएगा। उस स्थिति में मूल वादी के उपायहीन हो जाएगा। किसी भी मामले में प्रत्यर्थीगण - मूल प्रतिवादीगण को राजस्व प्राधिकरण के समक्ष लिए गए रुख से अलग रुख अपनाने और उसे स्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को उचित रूप से खारिज कर दिया और वादपत्र को खारिज करने से इनकार कर दिया। उच्च न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने और इस आधार पर शिकायत को खारिज करने में गंभीर गलती की है कि एम.पी.एल.आर.सी. की धारा 257 के दृष्टिगत वाद बाधित होगा। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और पोषणीय नहीं है और इसे अपास्त किए जाने योग्य है।

18. 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 12(3) की प्रयोज्यता के विषय में प्रत्यर्थी (किरायेदार) के विद्वान अधिवक्ता का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि मूल वाद संख्या 893/1993 में दाखिल लिखित बयान के अनुसार यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी (किरायेदार) मकान संख्या 85/183 में स्वामी की हैसियत से रह रहा है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में वह अलग रुख नहीं अपना सकता और उसे स्वीकार व अस्वीकार की अनुमति दी जाए। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि एक बार मूल वाद संख्या 893/1993 में किरायेदार द्वारा लिखित बयान दाखिल कर दिया गया है तो इसे वैध साक्ष्य माना जाना चाहिए और रिक्तता मानी जानी चाहिए।

19. जहां तक 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 16(2) का संबंध है, इसके लिए वास्तविक आवश्यकता जरूरी है। वर्तमान मामले में, यह बचाव उपलब्ध नहीं है। एक बार जब यह मान लिया गया है कि किराएदार के पास 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 12(3) के प्रकाश में अपना स्वयं का आवास है, तो **गोपाल सिंह (उपरोक्त)** का निर्णय वर्तमान मामले में केवल इस कारण से प्रयोज्य नहीं है कि उक्त मामले में तथ्य पूर्ण रूप से भिन्न हैं और लिखित बयान में, एक दूसरे के विरोधाभासी दो तथ्यात्मक कथन हैं।

20. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की

धारा 14 की प्रयोज्यता के बारे में कथन किया और उक्त धारा के अनुसार, प्रत्यर्थी एक वैध किराएदार है, इसलिए, उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। यह तर्क इस साधारण कारण से भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि एक बार, 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 12(3) के प्रकाश में, प्रत्यर्थी (किराएदार) स्थायी आवास पर काबिज हो गया है, तो 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 14 की प्रयोज्यता पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है।

21. जहां तक **चेतर सेन जैन (उपरोक्त)** के निर्णय का संबंध है, उस मामले में तथ्य पूर्ण रूप से भिन्न हैं क्योंकि मुद्दा 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 के प्रारंभ होने से पूर्व से संबंधित था और आंशिक रूप से किरायेदारी को स्वीकार किया गया था। उस मामले में, पहले किरायेदार विवादित स्थान पर रह रहा था और उसके बाद उसे खाली कर दिया, परन्तु नए मौखिक समझौते के साथ, उसने गोदाम के उद्देश्य के लिए प्रश्नगत आवास को बरकरार रखा था। इसलिए, नए अधिनियम अर्थात् 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 के प्रकाश में, न्यायालय द्वारा किराएदार के पक्ष में वाद निर्णीत किया गया था।

22. विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने मामले को विनियामक प्राधिकरण के समक्ष प्रतिप्रेषित करते समय इस बात का कोई निष्कर्ष नहीं दिया है कि मूल वाद संख्या 893/1993 में प्रत्यर्थी (किराएदार) द्वारा स्थायी आवास होने



के बारे में की गई स्वीकारोक्ति को क्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए, पुनरीक्षण आदेश दूषित है और इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता। यदि पुनरीक्षण न्यायालय का यह विचार है कि मूल वाद संख्या 893/1993 में दिया गया शपथपत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता, तो इस संबंध में कारणों सहित विशिष्ट निष्कर्ष अवश्य होने चाहिए थे, जो कि आक्षेपित आदेश में अनुपस्थित है।

23. अतः 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 12(3) तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में मेरा यह दृढ़ मत है कि किसी भी न्यायालय में दिया गया कोई भी शपथपत्र, यदि उस विवाद से संबंधित हो, तो किसी भी न्यायालय के समक्ष आगामी कार्यवाही में निर्णायक साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

24. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी (किरायेदार) ने मूल वाद संख्या 893/1993 में स्वीकार किया है कि उसके पास स्थायी वैकल्पिक आवास है, इसलिए नियामक प्राधिकरण के आदेश को रद्द करने और मामले को नए सिरे से विचार के लिए प्रतिप्रेषित करने का कोई मामला नहीं बनता है।

25. अतः मामले के तथ्यों और ऊपर चर्चा किए गए कानून के आलोक में नवम अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 23.01.2019 विधिक दृष्टि से दूषित है और इसे अपास्त किया जाता है।

26. तदनुसार, याचिका स्वीकार की जाती है। हर्ज का कोई आदेश नहीं।

-----  
(2023) 9 ILRA 921

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

मामले अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 7573

वर्ष 2022 (सिविल)

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य  
...याचिकाकर्ता

बनाम

वाणिज्यिक न्यायालय, वाराणसी एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री प्रमोद कुमार राय, श्री अनिल शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री प्रणब कुमार गांगुली, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 5, 33, 34, 36 और 85 (2) (ए) - मध्यस्थता अधिनियम, 1940 - धारा 3, 14 और 28 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 2 (2) और 47 - मध्यस्थ पंचाट और निष्पादन - याचिकाकर्ताओं ने मध्यस्थता पंचाट और

दिनांक 21.02.2006 के अतिरिक्त पुरस्कार की निष्पादन कार्यवाही में धारा 47 सीपीसी के तहत आपतियों को खारिज करने वाले दिनांक 08.08.2022 के आदेश को चुनौती दी। मध्यस्थता मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के तहत शुरू हुई, लेकिन मध्यस्थ के 14.04.2002 के आदेश के अनुसार, जो वैधानिक पुनर्संशोधनों की अनुमति देने वाले मध्यस्थता खंड पर आधारित था, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के तहत जारी रही। याचिकाकर्ताओं ने *थिसेन स्टाहलूनियन शासकीय अधिवक्तामबीएच का हवाला देते हुए तर्क दिया कि मध्यस्थ के पास 1996 के अधिनियम के तहत पक्षकार की सहमति के अभाव में अधिकार क्षेत्र का अभाव था और अतिरिक्त पंचाट समय-बाधित था*। प्रतिवादियों ने प्रतिवाद किया कि मध्यस्थता खंड 1996 के अधिनियम के आवेदन की अनुमति देता है, याचिकाकर्ताओं ने पहले आपति न करके सहमति व्यक्त की, और एक मध्यस्थ पंचाट धारा 2(2) सीपीसी के तहत एक डिक्री नहीं है, जिससे धारा 47 की आपतियां अमान्य हो जाती हैं, उन्होंने *परमजीत सिंह पथेजा का हवाला दिया*। न्यायालय ने माना कि मध्यस्थता खंड में वैधानिक पुनर्संशोधन के लिए प्रावधान 1996 अधिनियम की धारा 85(2)(ए) को संतुष्ट करता है, जिससे 1996 अधिनियम के तहत कार्यवाही की अनुमति मिलती है, जैसा कि *थिसेन स्टाहलूनियन शासकीय अधिवक्तामबीएच* (रानी कंस्ट्रक्शन्स) द्वारा समर्थित है। याचिकाकर्ताओं द्वारा 1996 अधिनियम की प्रयोज्यता को पहले चुनौती न देने के कारण उन्हें रोक दिया गया। एक

मध्यस्थता निर्णय, न कि एक डिक्री, को सीपीसी की धारा 47 के तहत चुनौती नहीं दी जा सकती है, और *लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड के अनुसार, धारा 34 के बाद आपतियों पर रोक लगा दी गई थी*। याचिका 1,00,000 रुपये के वादव्यय के साथ खारिज कर दी गई। (पैरा 31-48)

### याचिका खारिज।

### उद्धृत वादों की सूची:

1. थिसेन स्टाहलूनियन जीएमबीएच आदि बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, (1999) 9 एससीसी 334
2. एनडी नायक बनाम गोवा राज्य, (2003) 6 एससीसी 56
3. नीरज मुंजाल बनाम अतुल ग़ोवर माइनर, (2005) 5 एससीसी 404
4. किरण सिंह एवं अन्य बनाम चमन पासवान एवं अन्य, एआईआर 1954 एससी 340
5. भवन वाजा बनाम सोलंकी हणुजी खोदाजी मानसांग, (1973) 2 एससीसी 40
6. हरसाद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लिमिटेड, (2005) 7 एससीसी 791
7. मुख्य अभियंता जल विद्युत परियोजना बनाम रविंदर नाथ, एआईआर 2008 एससी 1315

9.इला इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम वाणिज्यिक न्यायालय वाराणसी एवं अन्य 1259

8. श्रीमती शकुंतला देवी बनाम श्रीमती विमला,  
(2005) 59 एलआर 599

18. रामशाई बनाम जॉयलाल, एआईआर 1928  
कैल 840

9. कैरेवेल शिपिंग सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड  
बनाम प्रीमियर सी फूड्स एक्जिम प्राइवेट  
लिमिटेड, (2019) 11 एससीसी 461

19. गुलाम हुसैन बनाम शाहबान, एआईआर  
1938 सिंध 220

10. ट्रेडिंग इंजीनियर्स इंटरनेशनल लिमिटेड  
बनाम यूपी पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन  
लिमिटेड, 2022 (10) एडीजे 176 (एलबी)

20. सिद्धार्थ श्रीवास्तव बनाम केके मोदी  
इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल सर्विस प्राइवेट  
लिमिटेड, (2002) 4 माह एलजे 281

11. श्वेता कंस्ट्रक्शन बनाम छत्तीसगढ़ स्टेट  
पावर जनरेशन कंपनी लिमिटेड, 2022  
एससीसी ऑनलाइन एससी 1447

21. रेशमा कंस्ट्रक्शन्स बनाम गोवा राज्य,  
(1999) 1 एमएलजे 462

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा  
पारित)

12. परमजीत सिंह पथेजा बनाम आईसीडीएस  
लिमिटेड, (2006) 13 एससीसी 322

13. लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड बनाम महाराजी  
एजुकेशनल ट्रस्ट, 2010 एससीसी ऑनलाइन  
आल 1866

14. भारत पंप्स एंड कंप्रेसर्स लिमिटेड बनाम  
चोपड़ा फैब्रिकेटर्स एंड मैनुफैक्चर्स प्राइवेट  
लिमिटेड, सिविल पुनरीक्षण संख्या 53/2022

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता  
श्री पी.के. राय के सहयोग से श्री अनिल  
शर्मा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा  
प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रणब  
कुमार गांगुली की सहायता से विद्वान  
अधिवक्ता श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ  
अधिवक्ता को सुना।

15. हरि शंकर लाल बनाम शरत्भू नाथ,  
एआईआर 1962 एससी 78

16. त्रिभुवनदास कालिदास बनाम जीवन चंद,  
(1911) 35 बॉम 196

17. मणिलाल बनाम द भारत स्पिनिंग एंड  
वीविंग, (1935) बॉम एलआर 941

2. वर्तमान याचिका, वाणिज्यिक न्यायालय,  
वाराणसी अर्थात प्रत्यर्थी सं0 1 द्वारा निष्पादन  
वाद संख्या 24/2020 (पुराना वाद सं0  
21/2012) में पारित आदेश दिनांकित  
08.08.2022 को तथा मेसर्स विद्यावती  
कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम आई.ओ.सी.एल. व  
अन्य के मामले में मध्यस्थ द्वारा पारित  
अतिरिक्त अधिनिर्णय दिनांकित 21.02.2006  
का, चुनौती देने हेतु दायर की गई है।

3. चूंकि, वर्तमान याचिका में केवल कानूनी प्रश्न शामिल हैं और पक्षों के बीच तर्कों का आदान-प्रदान किया गया है, इसलिए, पक्षों की सहमति से, याचिका को प्रवेश चरण में ही निस्तारित किया जा रहा है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मूल वाद संख्या 436/1989 को मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (एतदपश्चात् “पुराना अधिनियम, 1940” के रूप में संदर्भित) के प्रावधान के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए दिनांक 01.07.1989 को दायर किया गया था, जो उस समय लागू था। दिनांक 12.08.1991 के आदेश द्वारा विद्वान सिविल न्यायालय ने विवाद निस्तारित करने के लिए माननीय न्यायमूर्ति आर.पी. सिंह (सेवानिवृत्त) को एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया। मुकदमेबाजी लंबित होने के कारण मध्यस्थता वर्ष 2001 में ही शुरू हो सकी और मध्यस्थ ने दिनांक 07.05.2001 को नोटिस जारी किया। प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 24.05.2001 को मध्यस्थ के समक्ष दावे का विवरण दाखिल किया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने विस्तृत आपत्ति और प्रतिदावा भी दाखिल किया। मध्यस्थ ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद “नया अधिनियम, 1996” के रूप में संदर्भित) के प्रावधान के अनुसार कार्यवाही जारी रखने के लिए आदेश दिनांकित 14.04.2002 पारित किया। अंततः मध्यस्थता कार्यवाही पूर्ण हुई और दिनांक 27.04.2005 को याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी दोनों के पक्ष में आंशिक रूप से अधिनिर्णय दिया गया। धनराशि की गणना के पश्चात्, यह पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी को रूप

7,79,871/- का भुगतान किया जाना है। इसके बाद मध्यस्थ ने उसी दिन अर्थात् दिनांक 27.04.2005 को मूल अभिलेख अपर जनपद न्यायाधीश-9, सिविल कोर्ट, वाराणसी को भेज दिए। प्रत्यर्थी ने नए अधिनियम, 1996 की धारा 33 के अंतर्गत अधिनिर्णय में संशोधन हेतु प्रार्थना पत्र दिया। मध्यस्थ ने आदेश दिनांकित 21.02.2006 के द्वारा अधिनिर्णय में वृद्धि कर दी।

5. उक्त अधिनिर्णय को अनुच्छेद 227 संख्या 30461/2006 के अंतर्गत याचिका दायर करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे दिनांक 08.05.2012 के आदेश द्वारा वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था, साथ ही अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी। नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, जिसे मध्यस्थता मामला संख्या 79/2012 के रूप में पंजीकृत किया गया था और इसे आदेश दिनांकित 23.03.2013 द्वारा खारिज कर दिया गया। उस आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने आदेश से प्रथम अपील संख्या 1584/2013 दायर की, जिसे भी आदेश दिनांकित 08.04.2016 द्वारा खारिज कर दिया गया था। चूंकि प्रत्यर्थी भी अधिनिर्णय में की गई कुछ टिप्पणियों से व्यथित था, इसलिए उसने विशेष अपील (सी) संख्या 681/2017 दायर की, जिसे आदेश से प्रथम अपील संख्या 1584/2013 में पारित आदेश दिनांकित 08.04.2016 में की गई कुछ टिप्पणियों को हटाने के पश्चात् आदेश दिनांकित 20.01.2017 द्वारा खारिज कर दिया गया था।

अंततः, अधिनिर्णय को अंतिमता प्राप्त हो गई है।

6. प्रतिवादियों ने निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 21/2012 (निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 24/2020 के रूप में पुनः क्रमांकित) दायर किया है, जिसमें याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्ति दर्ज की है और इसे आदेश दिनांकित 08.08.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसलिए, आदेश दिनांकित 08.08.2022 को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा रही है।

7. उपरोक्त तथ्य पक्षकारों के मध्य अविवादित है।

8. श्री अनिल शर्मा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कथन किया कि मध्यस्थता कार्यवाही पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत शुरू की गई थी और दिनांक 27.04.2005 को अधिनिर्णय दिया गया था। उन्होंने आगे कथन किया कि पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 14 के अनुसार, दिनांक 15.05.2005 के पत्र द्वारा मध्यस्थ ने अधिनिर्णय के साथ संपूर्ण अभिलेख को एक तालाबंद और सीलबंद बक्से में जनपद न्यायाधीश, वाराणसी के न्यायालय में भेज दिया है और खर्च हेतु दावा भी किया है। उसके बाद, मध्यस्थ का प्राधिकार समाप्त हो गया और उसे किसी भी प्रार्थना पत्र पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने यह भी कथन किया कि अब प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 21.10.2005 को नए अधिनियम, 1996 की धारा 33 के अंतर्गत अधिनिर्णय में संशोधन के लिए एक प्रार्थना पत्र सीमासीमा के

पश्चात दायर किया है, अर्थात् अधिनिर्णय प्राप्त होने की तिथि से 30 दिनों के पश्चात, जब तक कि पक्षों द्वारा समय की एक और अवधि पर सहमति नहीं हो जाती। वर्तमान मामले में, ऐसा कोई समझौता नहीं है और मध्यस्थ की ओर से केवल सीमा के आधार पर प्रार्थना पत्र को खारिज करना आवश्यक है, परन्तु इसके विपरीत, प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया गया और प्रत्यर्थी के दावे को छोड़कर दिनांक 21.02.2006 को अतिरिक्त अधिनिर्णय दिया गया है। उन्होंने कथन किया कि मध्यस्थ ने अतिरिक्त अधिनिर्णय में बहुत अधिक राशि की अनुमति दी, जो दावा याचिका में कभी मांगी भी नहीं गई थी। अतिरिक्त अधिनिर्णय द्वारा प्रदान की गई राशि भी सीमा से परे थी जो कि पक्षकारों की सहमति प्राप्त किए बिना दिया गया था, जैसा कि अधिनियम की धारा 33 के अंतर्गत प्रदत्त है। अतिरिक्त अधिनिर्णय के विरुद्ध, उन्होंने रिट सी सं0 30461/2006 दायर की, जिसमें पहले अंतरिम आदेश दिनांक 26.05.2006 को पारित किया गया था, परन्तु अंततः याचिका को नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत अतिरिक्त अधिनिर्णय को चुनौती देने की स्वतंत्रता के साथ आदेश दिनांकित 08.05.2012 के द्वारा खारिज कर दिया गया।

9. उन्होंने आगे कथन किया कि नए अधिनियम, 1996 की धारा 85 के अनुसार, पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू होने के पश्चात, मध्यस्थ के पास नए अधिनियम, 1996 में दावे का निर्णय करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, जब तक कि पक्षों के बीच कोई समझौता न हो। वर्तमान मामले में,

समझौता न तो कभी नहीं मांगा गया या दिया गया, इसलिए, नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत मध्यस्थ द्वारा दिया गया कोई भी अधिनिर्णय बिना क्षेत्राधिकार के है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **थिसेन स्टाहलूनियन जी.एम.बी.एच. आदि बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड: 1999 9 एस.सी.सी. 334, एन.डी. नायक बनाम गोवा राज्य: 2003(6) एस.सी.सी. 56 और नीरज मुंजाल बनाम अतुल शोवर माइनर: 2005 5 एस.सी.सी. 404** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया।

10. इसके पश्चात उन्होंने कथन किया कि चूंकि अधिनिर्णय क्षेत्राधिकार के बिना है, इसलिए इस बिन्दु को निष्पादन के चरण में भी उठाया जा सकता है और इसके लिए कोई रोक नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **किरण सिंह व अन्य बनाम चमन पासवान व अन्य: ए.आई.आर. सर्वोच्च न्यायालय 340, भवन वाजा बनाम सोलंकी हनुजी खोडाजी मानसांग: 1973(2) एस.सी.सी. 40, हरसद चिमन लाल मोदी बनाम डी.एल.एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड 2005(7) एस.सी.सी. 791 और चीफ इंजीनियर हाइडल प्रोजेक्ट बनाम रविंदर नाथ: ए.आई.आर. 2008 सर्वोच्च न्यायालय 1315** के मामलों पर अवलम्ब लिया।

11. अंत में उन्होंने कथन किया कि ऐसी स्थिति में जब कोई निर्णय बिना क्षेत्राधिकार के या वर्तमान कानून के विपरीत पारित किया गया है, तो वहां पर रैस जूडिकाटा का सिद्धांत

लागू नहीं होगा। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **श्रीमती शकुंतला देवी बनाम श्रीमती विमला के 2005 (59) ए.एल.आर. 5999** के निर्णय का अवलम्ब लिया।

12. श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने पुरजोर विरोध किया और कथन किया कि याचिकाकर्ता को कभी हां कभी ना दोनों प्रकार की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि एक बार दिनांक 14.04.2002 को नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत कार्यवाही करने के लिए आदेश पारित किया गया और उसे कभी चुनौती नहीं दी गई। उन्होंने आगे कहा कि दिनांक 27.04.2005 का प्रथम अधिनिर्णय भी नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत दिया गया था, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता-वादी को इस आधार पर पीड़ित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है कि नए अधिनियम, 1996 की धारा 33 के अंतर्गत अतिरिक्त अधिनिर्णय दिया गया है जिसका प्राधिकार मध्यस्थ को नहीं है। याचिकाकर्ता ने पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अंतर्गत अपील दायर करने के बजाय रिट न्यायालय के आदेश दिनांकित 08.05.2012 के अनुपालन में नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत अपील दायर की है।

13. जहां तक पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 14 के अंतर्गत अभिलेख प्रस्तुत करने का प्रश्न है, उन्होंने दृढ़ता से कथन किया कि मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में, मध्यस्थ नियुक्त करने वाली न्यायालय को अभिलेख प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान मामले में,

मध्यस्थ को जनपद न्यायाधीश द्वारा नियुक्त किया गया था और पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 14 के अनुसार न्यायालय द्वारा पक्षों को नोटिस जारी करना आवश्यक है, परन्तु वर्तमान मामले में, नोटिस कभी जारी नहीं किया गया है, न ही याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा बल दिया गया है। इसलिए, पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधान के अंतर्गत न्यायालय द्वारा अभिलेख को कभी स्वीकार नहीं किया गया है, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है।

14. उन्होंने आगे कथन किया कि पक्षों के बीच अनुबंध का समझौता है और अनुबंध के समझौते की धारा 9 में मध्यस्थता खंड शामिल है। संविदा अधिनियम की धारा 9.1.1.0 स्वयं भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के प्रावधान प्रदान करती है, इसके सभी पुनः अधिनियमन और संशोधन तथा इसके अधीन बनाए गए नियम कुछ शर्तों के अधीन, ऐसी सभी मध्यस्थता पर लागू होंगे। उन्होंने बताया कि धारा 9.1.1.0, धारा 85(2)(ए) नवीन अधिनियम, 1996 में प्रदत्त सभी वैधानिक पुनः अधिनियमन या संशोधन की प्रयोज्यता का समझौता प्रदान करती है।

15. उन्होंने यह भी कथन किया कि **थिसेन स्टाहलूनियन जी.एम.बी.एच. (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में न्यायालय द्वारा तीन बिन्दु तय किए गए हैं और तीसरा बिन्दु वर्तमान याचिका में शामिल बिन्दु के लगभग समरूप है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 रानी कंस्ट्रक्शन के मामले को निस्तरित कर रहे हैं जिसमें

याचिकाकर्ता के मामले की तरह ही मध्यस्थता समझौते की भाषा मौजूद है। इसका उत्तर निर्णय के पैराग्राफ 35 में दिया गया, जहाँ न्यायालय ने माना है कि रानी कंस्ट्रक्शन के मामले में नया अधिनियम, 1996 लागू होगा। इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का वही अनुपात वर्तमान मामले में भी लागू होगा। उसी पर अवलम्ब लेते हुए, वर्तमान मामले में मध्यस्थ ने कार्यवाही जारी रखने के लिए आदेश दिनांकित 14.04.2002 पारित किया है। उन्होंने यह भी कथन किया कि आदेश दिनांकित 14.04.2002 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उक्त आदेश पारित करते समय, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा इसे बहुत अच्छी तरह से स्वीकार किया गया था और इस पर कभी आपत्ति नहीं की गई। याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने मध्यस्थता कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए चार शपथपत्र दाखिल किए। इसलिए, **थिसेन स्टाहलूनियन जी.एम.बी.एच. आदि (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 9 में निर्धारित कानून के अनुपात के अनुसार, समझौता है और नए अधिनियम, 1996 की धारा 85 (ए) (2) के प्रकाश में, मध्यस्थ ने नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने के लिए आदेश दिनांकित 14.04.2002 पारित करने के लिए उचित रूप से कार्यवाही की है।

16. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने कभी भी मध्यस्थता समझौते के खंड 9 के खंड 9.1.1.0 पर विवाद नहीं किया है और फिर कभी भी

मध्यस्थ के समक्ष कोई प्रार्थना पत्र दाखिल नहीं किया है कि नया अधिनियम, 1996 लागू नहीं होगा। इतना ही नहीं, उन्होंने नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत अपील दायर करने की कार्यवाही की है और अपील दायर करते समय इस आधार को नहीं लिया है। निष्पादन कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत दाखिल आपति में भी उन्होंने इस तथ्य को छिपाया है। उन्होंने दृढ़ता से कथन किया कि एक बार ऐसी तथ्यात्मक स्थिति होने के बाद, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी इन आधारों को न तो निष्पादन न्यायालय के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष उठा सकते हैं।

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कथन किया कि पक्षकारों के मध्य एक समझौता था, जो मध्यस्थता का खंड प्रदान करता है तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता मात्र मध्यस्थता खंड पर अवलम्ब ले रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि अब तक यह वर्तमान अधिनियम, अर्थात् अधिनियम, 1940 के अनुसार मध्यस्थता प्रदान करता है, उन्हें कोई आपति नहीं है। दूसरी ओर, वही समझौता नए अधिनियम के लिए सहमति भी प्रदान करता है, जिस पर याचिकाकर्ता ने आपति जताई है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के पास समझौते को आंशिक रूप से स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, या तो उसे पूरा समझौता स्वीकार करना होगा या उसे त्यागना होगा। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने (2019) 11 एस.सी.सी. 461 में सूचित किए गए कैरवेल शिपिंग सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रीमियर सी फूड्स एक्जिम प्राइवेट

लिमिटेड के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया है।

18. जहां तक, एन.एस. नाइक (उपरोक्त) के निर्णय का प्रश्न है, उन्होंने बलपूर्वक कथन किया कि उस मामले में, वर्ष 1991 में अधिनिर्णय सुनाया गया था और केवल निष्पादन शेष था। इसलिए, न्यायालय का मत है कि नए अधिनियम, 1996 के प्रावधान के अंतर्गत अपीलीय कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है और एन.एस. नाइक (उपरोक्त) के मामले में इस बिन्दु को निस्तारित करते समय, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने थिसेन स्टाहलूनियन जी.एम.बी.एच. इत्यादि (उपरोक्त) के मामले में निर्णय में संदर्भित रानी कंस्ट्रक्शन के मामले पर विचार नहीं किया है, जो इस मामले के समान है।

19. उन्होंने आगे कहा कि मध्यस्थता के संबंध में अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का दायरा अत्यंत सीमित है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ट्रेडिंग इंजीनियर्स इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम यू.पी. पावर ट्रांसमिशन कारपोरेशन लिमिटेड: 2022(10) ए.डी.जे. 176 (एल.बी.) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया।

20. उन्होंने आगे कहा कि धारा 34 के अंतर्गत अपील और धारा 37 के अंतर्गत एफ.ए.एफ.ओ. दायर करते समय अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने स्वेता कंस्ट्रक्शन बनाम छत्तीसगढ़ स्टेट पावर जनरेशन कंपनी लिमिटेड: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1447 के मामले



में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया।

इसके अलावा, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति पोषणीय नहीं है।

21. इसके पश्चात उन्होंने कथन किया कि मध्यस्थता अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2, उप-धारा (ई) के अंतर्गत परिभाषित डिक्ली नहीं है और डिक्ली और अधिनिर्णय के बीच अंतर होता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को लागू करते हुए नए अधिनियम, 1996 की धारा 36 के अंतर्गत अधिनिर्णय लागू करने योग्य होता है। इस बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पद्मजीत सिंह पथेजा बनाम आई.सी.डी.एस. लिमिटेड: (2006) एस.सी.सी. 322** के मामले में विस्तार से विचार किया था।

22. उन्होंने आगे कथन किया कि चूंकि अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (ई) के अर्थ में एक डिक्ली नहीं है, इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति भी पोषणीय नहीं है। इस बिन्दु पर पूर्व में इस न्यायालय ने **लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड बनाम महाराजी एजुकेशनल ट्रस्ट: 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.आई.आई. 1866** के मामले में **पद्मजीत सिंह पथेजा (उपरोक्त)** के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए विचार किया था। **पद्मजीत सिंह पथेजा (उपरोक्त)** के निर्णय का इस न्यायालय ने सिविल रिवीजन संख्या 53/2022 **भारत पंप्स एंड कंप्रेसर्स लिमिटेड बनाम चोपड़ा फैब्रिकेटर्स एंड मैनुफैक्चर्स प्राइवेट लिमिटेड**, में पुनः अनुसरण किया। यहां न्यायालय ने कानून को दोहराया है कि मध्यस्थता अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(ई) के अर्थ में डिक्ली नहीं है और

23. **भारत पंप्स एंड कंप्रेसर्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के निर्णय के विरुद्ध, विपक्षी ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में एस.एल.पी. दायर की, परन्तु माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और मात्र धारा 34 के अंतर्गत लंबित विवाद के पहले के निस्तारण की निगरानी शुरू की। इसलिए, वर्तमान में स्थापित कानून है कि धारा 2(ई) के परिप्रेक्ष्य में मध्यस्थता अधिनिर्णय कोई डिक्ली नहीं है तथा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति पोषणीय नहीं है।

24. उन्होंने अंततः में कथन किया कि जहां तक मध्यस्थता कार्यवाही में क्षेत्राधिकार के बिन्दु का प्रश्न है, इसे कार्यवाही के किसी भी चरण में नहीं उठाया जा सकता। धारा 34 के साथ-साथ 36 के अंतर्गत आपतियों के लिए विशिष्ट प्रावधान है, इसलिए जब आपति प्रथम चरण में नहीं ली गई है, तो याचिकाकर्ता को इस बिन्दु को इस न्यायालय के समक्ष उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

25. अपने जवाबी बहस में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल शर्मा ने कथन किया कि उनका कभी भी यह मामला नहीं रहा कि पहला अधिनिर्णय वैध है और चूंकि मध्यस्थ के पास क्षेत्राधिकार नहीं है, इसलिए दोनों अधिनिर्णय अमान्य हैं। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने अधिनियम, 1940 की धारा 3 को प्रथम अनुसूची के पैराग्राफ 3 के साथ पढ़ा, जिसमें

प्रावधान है कि अधिनिर्णय चार माह के भीतर दिया जाना चाहिए, जबकि वर्तमान मामले में यह पूर्वाेक्त अनुसूची में निर्धारित समय के भीतर नहीं दिया गया है, इसलिए, अधिनिर्णय अमान्य हैं। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **1962 0 ए.आई.आर. (एस.सी.) 78 (पैराग्राफ संख्या 10, 11 और 12) में सूचित किए गए हरि शंकर लाल बनाम शरत्भू नाथ** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है। उपरोक्त निर्णय के प्रकाश में, यदि निर्धारित समयसीमा के भीतर अधिनिर्णय नहीं दिया जाता है, तो पक्षों के लिए पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 28 के अंतर्गत समय बढ़वाना आवश्यक है, ऐसा न करने पर अधिनिर्णय शून्य हो जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 28 के अंतर्गत पक्ष की सहमति से, मध्यस्थ समय बढ़ा सकता है, जो वर्तमान मामले में कभी नहीं बढ़ाया गया था।

26. न्यायालय द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उन्होंने चार माह के पश्चात् अधिनिर्णय जारी रहने के बाद अपनी असहमति दर्ज कराई है, जिस पर उन्होंने उत्तर दिया है कि इस उद्देश्य के लिए उनकी सहमति या असहमति का कोई अर्थ नहीं है।

27. जहां तक अधिनियम, 1940 की धारा 3 के साथ प्रथम अनुसूची के पैराग्राफ 3 के साथ-साथ पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 28 के संबंध में, तर्क का संबंध है, श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रथम अधिनिर्णय की शून्यता के बारे में न तो तर्क दिया न

बहस की, इसलिए उसे जवाबी बहस में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उनके पास इस न्यायालय के समक्ष नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 और एफ.ए.एफ.ओ. के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दाखिल करते समय, यह आपति उठाने का अवसर है।

28. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया और अभिलेख के साथ-साथ पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए अवलम्ब लिए गए निर्णयों का भी अवलोकन किया। यह निर्विवाद है कि वर्तमान याचिका मध्यस्थता अधिनिर्णय के निष्पादन की कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति की अस्वीकृति के विरुद्ध दायर की गई है।

29. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल शर्मा ने तर्क दिया कि नए अधिनियम, 1996 के प्रावधान उस स्थिति में लागू नहीं होंगे जिसमें मध्यस्थता अधिनिर्णय प्रदान किया गया है, इसलिए अधिनिर्णय अमान्य है और वह किसी भी स्तर पर यह आपति उठा सकते हैं।

30. अब न्यायालय इस बिन्दु पर आता है कि इस तथ्य के दृष्टिगत कि मध्यस्थता कार्यवाही पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधानों के अंतर्गत शुरू की गई थी, क्या वह नए अधिनियम, 1996 में जारी रह सकती है या नहीं। इस प्रयोजन के लिए नए अधिनियम, 1996 की धारा 85 (2)(ए) प्रासंगिक है और उसी को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

**“85 (2) (ए)। निरसन और व्यावृत्ति-**

(1) मध्यस्थ प्रत्येक दावे के संबंध में अपना अधिनिर्णय अलग से देगा”

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, -

(क) उक्त अधिनियमों के प्रावधान इस अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू हुई मध्यस्थता कार्यवाहियों के संबंध में लागू होंगे, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति न हो, परन्तु यह अधिनियम इस अधिनियम के लागू होने पर या उसके बाद शुरू हुई मध्यस्थता कार्यवाहियों के संबंध में लागू होगा।”

(2) जहां तक मध्यस्थता के लिए संदर्भित कोई विवाद या मतभेद किसी ऐसे मामले या चीज से संबंधित या शामिल होगा, जिसके संबंध में स्वामी या महाप्रबंधक या प्रभारी अभियंता या साइट अभियंता या किसी अन्य व्यक्ति का निर्णय, राय या निर्धारण (चाहे वह किसी भी तरह से व्यक्त किया गया हो) अनुबंध की शर्तों के अनुसार अंतिम माना गया है। ऐसा निर्णय, राय और/या निर्धारण, जैसा भी मामला हो, मध्यस्थ पर बाध्यकारी होगा।”

31. इसके अवलोकन से, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि इस अधिनियम से पहले शुरू की गई मध्यस्थता कार्यवाही पुराने अधिनियम, 1940 में जारी रहेगी, जब तक कि पक्षों के बीच अन्यथा सहमति न हो। अब प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में पक्षकार कार्यवाही जारी रखने के लिए सहमत हुए या नहीं। इसके लिए मुझे अनुबंध के समझौते की धारा 9 देखनी होगी, जिसमें मध्यस्थता खंड शामिल है और वर्तमान विवाद के लिए धारा 9.1.1.0 बहुत प्रासंगिक है और इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

32. अनुबंध के समझौते की धारा 9.1.1.0 भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 अर्थात् पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधान प्रदान करती है और उसके सभी वैधानिक पुनः अधिनियमन या संशोधन और उसके अधीन बनाए गए नियम लागू होंगे।

33. धारा 9.1.1.0. स्वयं पुराने अधिनियम, 1940 के लिए ही नहीं, अपितु सभी वैधानिक पुनः अधिनियमन और उसके संशोधन तथा उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के लिए भी एक समझौता प्रदान करती है। उक्त समझौता पक्षों के बीच निर्विवाद है, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि अनुबंध के समझौते की धारा 9 के प्रकाश में, नए अधिनियम, 1996 की प्रयोज्यता के लिए पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं है।

**धारा 9.1.1.0**

“भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के प्रावधान और उसके सभी वैधानिक पुनः अधिनियमन और संशोधन तथा उसके अधीन बनाए गए नियम ऐसे सभी मध्यस्थताओं पर लागू होंगे, जो आगे निम्नलिखित शर्तों के अधीन होंगे:

34. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल शर्मा ने **थिसेन स्टाहलनियन (उपरोक्त)**

के पैराग्राफ 32 पर अवलम्ब लिया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:-

“32. निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत दर्शाते हैं कि निरस्त अधिनियम के अंतर्गत किसी पक्ष को कब अधिकार प्राप्त होता है। यह आवश्यक नहीं है कि अधिकार प्राप्त होने के लिए कानूनी कार्यवाही लंबित होनी चाहिए, जब नया अधिनियम, 1996, लागू हो। पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत उसी अधिनियम के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने पर अधिनिर्णय लागू होना निश्चित रूप से एक अर्जित अधिकार है। मध्यस्थता कार्यवाही के बाद जिन पक्षों के विरुद्ध अधिनिर्णय दिया जाता है, उनके लिए परिणाम पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत माने गए हैं, हालांकि यह अधिनिर्णय नए अधिनियम, 1996 के लागू होने के बाद दिया गया है, परन्तु अगर उन्हें पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधानों के अंतर्गत अधिनिर्णय को चुनौती देने से रोक दिया जाता है, तो यह बहुत गंभीर होगा। दोनों अधिनियमों की संरचना अलग-अलग है। जब पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत मध्यस्थता की कार्यवाही आरंभ हुई, तो हर किसी, अर्थात् मध्यस्थों और पक्षों के मन में यह बात रही होगी कि दिया गया निर्णय पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 30 और 32 के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। उस समय कोई भी यह नहीं सोच सकता था कि पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 30 को नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। वास्तव में, अपीलकर्ता थिसेन ने सिविल अपील संख्या

6036/98 में स्वयं यह समझा था कि पुराना अधिनियम, 1940 लागू होगा, जब उसने न्यायालय का निर्णय नियम बनाने के लिए पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 14 और 17 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। बाद में ही उसने अपना रुख बदला और अब यह रुख अपनाया कि नया अधिनियम, 1996 लागू होगा तथा उस प्रयोजन हेतु, अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया। उस समय तक नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत अधिनिर्णय को रद्द करने की समय सीमा समाप्त हो गई थी। अपीलकर्ता ने स्वयं प्रत्यर्थी सेल को यह विश्वास दिलाया कि पुराना अधिनियम, 1940 लागू होगा। सेल ने पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 14 और 17 के अंतर्गत थिसेन द्वारा दायर प्रार्थना पत्र पर अधिनिर्णय दाखिल करने के लिए नोटिस प्राप्त होने के बाद पुराने अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अंतर्गत अधिनिर्णय पर आपत्तियां दर्ज की थीं। हमें सूचित किया गया है कि पूरे देश में ऐसे कई मामले लंबित हैं जहां समान परिस्थितियों में अधिनिर्णय को पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधानों के अंतर्गत लागू करने या रद्द करने की मांग की गई है। इसलिए, हम ऐसा कोई उपाय नहीं अपना सकते, जिससे ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न हो जहां अधिनिर्णय को रद्द करने की मांग करने वाला पक्ष खुद को बिना किसी उपाय के पाए। इसलिए, हमारा मानना है कि सिविल अपील संख्या 6036/1998 के मामले में अधिनिर्णय के प्रवर्तन के लिए पुराने अधिनियम, 1940 के प्रावधान ही लागू होंगे। धारा 85(2) (ए) पर कोई अन्य कार्यवाही मात्र भ्रम और कठिनाई को ही जन्म देगा। हमारे

द्वारा किया गया यह गठन धारा 85(2)(ए) के शब्दों के अनुरूप है जिसमें “प्रावधान” और “मध्यस्थ कार्यवाही के संबंध में” शब्दों का उपयोग किया गया है, जिसका अर्थ यह होगा कि एक बार जब पुराने अधिनियम, 1940 के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही शुरू हो जाती है तो यह पुराना अधिनियम, 1940 ही होगा, जो अधिनिर्णय को लागू करने के लिए भी लागू होगा।

35. श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी इसी निर्णय पर अवलम्ब लिया है और इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है कि तीन बिन्दु हैं, जिन पर निर्णय लिया जाना है। जहां तक बिन्दु संख्या 3 रानी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड का संबंध है, यह इस न्यायालय के समक्ष बिन्दु के समरूप है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 9 रानी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड के बिन्दु हेतु है और इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

“मेसर्स रानी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड (सी.ए. सं. 61/1999) के मामले में, एक अनुबंध के अंतर्गत जो हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड के कुछ कार्यों के निर्माण के लिए था, खंड 25 में एक मध्यस्थता समझौता निहित था जो प्रासंगिक भाग में निम्नानुसार है:-

“अनुबंध के प्रावधानों के अधीन, जैसा कि पूर्वोक्त है, भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 या उसके किसी भी वैधानिक संशोधन या पुनः अधिनियमन और उसके अंतर्गत बनाए गए नियम और वर्तमान में लागू प्रावधान इस

खंड के अंतर्गत सभी मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होंगे।”

36. इसके अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि मध्यस्थता खंड की धारा 9.1.1.0 की भाषा रानी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड के मामले के लगभग समान है। इस बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से विचार किया गया था और **थिसेन स्टाहलूनियन (उपरोक्त)** के निर्णय के पैराग्राफ 35 से 38 में इसका उत्तर दिया गया था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:-

“35. पक्षकार नए अधिनियम के लागू होने से पहले और जब पुराना अधिनियम अभी भी लागू है, तब भी नए अधिनियम की प्रयोज्यता पर सहमत हो सकते हैं। धारा 85(2)(ए) की भाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पक्षों को इस तरह सहमत होने से रोकता हो। हालाँकि, एक प्रतिबंध यह है कि वे नए अधिनियम के लागू होने के बाद पुराने अधिनियम की प्रयोज्यता पर सहमत नहीं हो सकते हैं, जब पुराने अधिनियम के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही शुरू नहीं हुई है, हालाँकि मध्यस्थता समझौता पुराने अधिनियम के अंतर्गत था। रानी कंस्ट्रक्शन (सिविल अपील सं0 61/1999) के मामले में अनुबंध में मध्यस्थता खंड “वर्तमान में लागू” अभिव्यक्ति का उपयोग करता है जिसका अर्थ है कि उस अधिनियम का प्रावधान मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होगा, जो उस प्रासंगिक समय पर लागू होगा, जब मध्यस्थता कार्यवाही आयोजित की जाती है। “वर्तमान में लागू” अभिव्यक्ति की व्याख्या पर हमें दो निर्णयों का संदर्भ दिया

गया है - एक बॉम्बे उच्च न्यायालय का और दूसरा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का और हम उनसे सहमत हैं कि उपर्युक्त अभिव्यक्ति न केवल मध्यस्थता समझौते के समय लागू कानून को संदर्भित करती है, अपितु मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन के लिए लागू किसी भी कानून को भी संदर्भित करती है, जिसमें अधिनिर्णय का प्रवर्तन भी शामिल होगा। नए अधिनियम की धारा 85(2)(ए) में दर्शित अभिव्यक्ति “जब तक अन्यथा सहमति न हो” सिविल अपील संख्या 61/1999 में रानी कंस्ट्रक्शन के मामले में स्पष्ट रूप से लागू होगी। पक्षकारों के मन में यह स्पष्ट था कि यह पुराना अधिनियम या उस अधिनियम का कोई वैधानिक संशोधन या पुनः अधिनियमन होगा, जो मध्यस्थता को नियंत्रित करेगा। हम अपीलकर्ता रानी कंस्ट्रक्शन के इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि पक्षकार यह अनुमान लगा सकते हैं कि विवाद होने के समय नया अधिनियम लागू हो सकता है। हमने अनुबंध अधिनियम की धारा 28 देखी है। हमारे लिए यह समझना कठिन है कि मध्यस्थता समझौते को कानूनी कार्यवाही में बाधा कहा जा सकता है। प्रत्यर्थी के इस कथन में कोई सार नहीं है कि पक्षकार नए अधिनियम के प्रावधानों को जानने तक उसके प्रार्थना पत्र पर सहमत नहीं हो सकते थे और इसका अर्थ यह होगा कि मध्यस्थता खंड में उल्लिखित ऐसा कोई भी समझौता नए अधिनियम के लागू होने के बाद ही किया जा सकता है। जब समझौते में “जब तक अन्यथा सहमति न हो” और “लागू कानून” जैसे शब्दों का उपयोग किया जाता है, तो यह पक्षों को इस बात पर सहमत होने का विकल्प देता है कि नया अधिनियम लंबित

मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होगा। यह समझौता नए अधिनियम के लागू होने से पहले भी किया जा सकता है और यह नहीं कहा जा सकता है कि नए अधिनियम के लागू होने के बाद ही समझौता किया जाना चाहिए। 36. श्री देसाई ने रेश्मा कंस्ट्रक्शन बनाम गोवा राज्य, (1999) 1 एम.एल.जे. 462 में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए बॉम्बे उच्च न्यायालय (गोवा पीठ) के निर्णय का उल्लेख किया था। उस मामले में अनुबंध में मध्यस्थता खंड में निम्नानुसार प्रावधान किया गया था:-

“जैसा कि पूर्वोक्त है, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 या उसके किसी वैधानिक संशोधन या पुनः अधिनियमन तथा उसके अधीन बनाए गए और वर्तमान में लागू नियमों के प्रावधान इस खंड के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होंगे।”

37. न्यायालय ने माना कि खंड में ये शर्तें यह प्रकट करती हैं कि पक्षकार मध्यस्थता समझौते के निष्पादन के समय लागू कानून के साथ-साथ ऐसे कानून में लाए जा सकने वाले किसी भी अन्य वैधानिक परिवर्तन द्वारा शासित होने के लिए सहमत हुए थे। उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष इस बिन्दु पर इस प्रकार विचार किया:

“अधिनियम की योजना पर विचार करते हुए, धारा 85 की उपधारा (2) में निहित उक्त प्रावधान का सामंजस्यपूर्ण पठन यह प्रकट करेगा कि “अन्यथा सहमत” संदर्भ अनिवार्य रूप से मध्यस्थता कार्यवाही के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में पक्षों

के उद्देश्य को संदर्भित करता है, न कि समझौतों के निष्पादन के संबंध में समय कारक को। यह प्रावधान करता है कि यद्यपि कानून यह प्रावधान करता है कि धारा 85 में उक्त व्यावृत्ति खंड के आधार पर पुराने अधिनियम के प्रावधान लंबित कार्यवाही पर लागू होते रहेंगे, साथ ही यह एक प्रावधान यह करता है कि पक्ष इसके विपरीत सहमत हो सकते हैं। इस तरह का प्रावधान कार्यवाही के पक्षकारों के विवेक पर छोड़ देता है कि वे अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में निर्णय लें - नए अधिनियम या पुराने अधिनियम के संदर्भ में - निश्चित रूप से अधिनियम की योजना के अनुरूप है, जिसके अंतर्गत नए अधिनियम के अधिकांश प्रावधानों में, मध्यस्थता कार्यवाही के विभिन्न चरणों के बारे में प्रक्रिया पक्षों के बीच विपरीत समझौतों के अधीन की जाती है, जिससे पक्षों ऐसी कार्यवाही में पालन की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में निर्णय लेने की पर्याप्त स्वतंत्रता मिलती है; ऐसा होने के कारण, यह स्वाभाविक है कि विधानमंडल ने अपने विवेक से लंबित कार्यवाही में पक्षकारों के विकल्प पर छोड़ दिया है कि वे ऐसी लंबित कार्यवाही के लिए प्रक्रिया का चयन करें। इसलिए, नए अधिनियम की धारा 85(2)(सी) में “पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति” के संदर्भ में, नए अधिनियम के लागू होने से पहले भी पक्षों के बीच पहले से ही किया गया समझौता और नए अधिनियम के लागू होने के बाद किया गया समझौता भी शामिल होगा। ऐसा निष्कर्ष स्वाभाविक है क्योंकि “अन्यथा सहमति” अभिव्यक्ति समय कारक को संदर्भित नहीं करती है, अपितु नए या पुराने अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता

के बारे में पक्षों के उद्देश्य को संदर्भित करती है।”

हम अनुबंध में मध्यस्थता खंड की व्याख्या पर उच्च न्यायालय से सहमत हैं।

38. अनुबंध अधिनियम की धारा 28 में कानूनी कार्यवाही के प्रतिबंध में समझौतों के बारे में प्रावधान है। अनुबंध अधिनियम की धारा 28 का अपवाद 1 किसी ऐसे अनुबंध को अवैध नहीं बनाता है जिसके द्वारा पक्षकार सहमत होते हैं कि भविष्य में किसी विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा। ऐसा होने पर पक्षकार इस बात पर भी सहमत हो सकते हैं कि उस समय विद्यमान मध्यस्थता कानून के प्रावधान मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होंगे। पक्षों के लिए यह जानना आवश्यक नहीं है कि मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन के समय कौन सा कानून लागू होगा। वे हमेशा इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि प्रासंगिक समय पर लागू प्रावधान लागू होंगे। मामले के इस दृष्टिकोण से, यदि पक्षकार इस बात पर सहमत हुए हैं कि प्रासंगिक समय पर उस समय विद्यमान कानून के प्रावधान लागू होंगे, तो उस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार, रानी कंस्ट्रक्शन (सी.ए. 61/99) में धारा 25 की व्याख्या करते हुए, नया अधिनियम लागू होगा।”

37. चूंकि दोनों मामलों की भाषा समान है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तार से विचार करने के पश्चात माना है कि नए अधिनियम, 1996 के लागू होने से पहले भी इसकी प्रयोज्यता के लिए समझौता किया जा सकता है और मध्यस्थता खंड में ऐसा

समझौता पहले से मौजूद है, इसलिए धारा 85(2)(ए) के अनुपालन के लिए कोई नया समझौता करने की आवश्यकता नहीं है और कार्यवाही नए अधिनियम, 1996 के अंतर्गत जारी रखी जा सकती है। इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन कि धारा 85(2)(ए) के अंतर्गत पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। **थिसेन स्टाहलुनियन (उपरोक्त)** का निर्णय याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं बल्कि प्रत्यर्थी के पक्ष में है क्योंकि समान बिन्दु पर विचार किया गया है और उत्तर दिया गया है।

38. चूंकि न्यायालय का मानना है कि पुराने अधिनियम, 1940 में शुरू की गई कार्यवाही नए अधिनियम, 1996 में जारी रह सकती है, इसलिए नए अधिनियम, 1996 की प्रयोज्यता पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अन्य तर्कों के बारे में निष्कर्ष देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

39. अब दूसरे बिन्दु पर आते हैं कि क्या मध्यस्थता अधिनिर्णय, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अंतर्गत परिभाषित डिक्ली है या नहीं और यदि यह डिक्ली नहीं है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत दाखिल आपति पोषणीय है या नहीं। यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या मध्यस्थता अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के साथ नए अधिनियम, 1996 की धारा 36 को लागू करके उसी तरह लागू किया जा सकता है जैसे कि यह न्यायालय की डिक्ली है।

40. इस बिन्दु पर राय देने के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के नए अधिनियम, 1996 की धारा 2(2) और धारा 36 का अवलोकन आवश्यक है और नीचे उसी को उद्धृत किया जा रहा है:-

**“डिक्ली- सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2)**

“डिक्ली” का अर्थ है एक न्यायनिर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति जो जहाँ तक न्यायालय द्वारा इसे व्यक्त करने का संबंध है, मुकदमे में विवाद के सभी या किसी भी मामले के संबंध में पक्षों के अधिकारों को निर्णायक रूप से निर्धारित करती है और यह प्रारंभिक या अंतिम हो सकती है। इसमें वादपत्र की अस्वीकृति और धारा 144 के अंतर्गत किसी भी प्रश्न का निर्धारण शामिल माना जाएगा, परन्तु इसमें निम्नलिखित शामिल नहीं होंगे-

(क) कोई ऐसा न्यायनिर्णयन जिससे किसी आदेश की अपील के रूप में अपील की जा सकती है;

या

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश।

स्पष्टीकरण - डिक्ली तब प्रारंभिक होती है जब वाद का पूर्णतः निस्तारण किए जाने से पहले आगे की कार्यवाही की जानी होती है। यह अंतिम होती है जब ऐसा न्यायनिर्णयन वाद का पूर्णतः निस्तारण कर देता है, यह अंशतः प्रारंभिक और अंशतः अंतिम हो सकता है;”

**नए अधिनियम, 1996 की धारा 36**



“36. (1) जहां धारा 34 के अधीन मध्यस्थता अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए प्रार्थना पत्र दाखिल करने का समय समाप्त हो गया है, वहां उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसा अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों के अनुसार उसी प्रकार प्रवर्तित किया जाएगा मानो वह न्यायालय की डिक्री हो।

(2) जहां मध्यस्थता अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए न्यायालय में धारा 34 के अधीन प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया है, वहां ऐसे प्रार्थना पत्र का दाखिल किया जाना, अपने आप में उस अधिनिर्णय को अप्रवर्तनीय नहीं बना देगा, जब तक कि न्यायालय उस प्रयोजन के लिए किए गए पृथक प्रार्थना पत्र पर उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार उक्त मध्यस्थता अधिनिर्णय के प्रवर्तन पर रोक लगाने का आदेश न दे।

(3) उपधारा (2) के अधीन मध्यस्थता अधिनिर्णय के प्रवर्तन पर रोक लगाने के लिए प्रार्थना पत्र दाखिल किए जाने पर न्यायालय ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जिन्हें वह ठीक समझे, ऐसे अधिनिर्णय के प्रवर्तन पर लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से रोक लगा सकेगा:

परंतु न्यायालय मध्यस्थता अधिनिर्णय की दशा में, धन के भुगतान के स्थगन हेतु प्रार्थना पत्र पर विचार करते समय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों के अधीन धन डिक्री पर स्थगन देने के उपबंधों पर सम्यक् ध्यान देगा।

2 (इसके अतिरिक्त यह भी परंतु कि जहां न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है,-

(क) यह कि मध्यस्थता समझौता या संविदा, जो अधिनिर्णय का आधार है; या

(ख) अधिनिर्णय का बनाया जाना

कपट या भ्रष्टाचार द्वारा प्रेरित या प्रभावित किया गया था, वहां वह अधिनिर्णय को धारा 34 के अधीन चुनौती के निस्तारण तक बिना शर्त रोक देगा।

स्पष्टीकरण- संदेहों को दूर करने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि उपर्युक्त प्रावधान मध्यस्थता कार्यवाही से उत्पन्न या उसके संबंध में सभी न्यायालयी मामलों पर लागू होगा, भले ही मध्यस्थता या न्यायालयी कार्यवाही मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 के लागू होने से पहले या बाद में शुरू की गई हो।”

41. मध्यस्थता अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अर्थ में डिक्री है या नहीं, इस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **परमजीत सिंह पथेजा (उपरोक्त)** के मामले में विचार किया है। उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं: - 20 से 29

“सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) और 2(14) परिभाषित करती है कि “डिक्री” और “आदेश” का क्या अर्थ है। यह देखने के लिए कि कोई निर्णय या निर्धारण डिक्री या

आदेश है या नहीं, यह आवश्यक रूप से परिभाषा की भाषा के अंतर्गत आना चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) “डिक्री” को इस प्रकार परिभाषित करती है कि किसी निर्णय की औपचारिक अभिव्यक्ति जो, जहाँ तक न्यायालय द्वारा इसे व्यक्त करने का संबंध है, मुकदमे में विवादित किसी भी मामले के संबंध में पक्षों के अधिकारों को निर्णायक रूप से निर्धारित करती है और यह प्रारंभिक या अंतिम हो सकती है। इसमें वाद की अस्वीकृति और धारा 144 के अंतर्गत किसी भी प्रश्न का निर्धारण शामिल माना जाएगा, परन्तु इसमें शामिल नहीं होगा-

(क) कोई भी निर्णय जिसके विरुद्ध किसी आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है, या

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश।

स्पष्टीकरण- एक डिक्री तब प्रारंभिक होती है जब मुकदमे का पूर्ण रूप से निस्तारण किए जाने से पहले आगे की कार्यवाही की जानी होती है। यह तब अंतिम होती है जब ऐसा निर्णय मुकदमे का पूर्ण रूप से निस्तारण कर देता है। यह आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम हो सकता है।”

“न्यायालय”, “न्यायनिर्णय” और “वाद” शब्द निर्णायक रूप से दर्शाते हैं कि केवल न्यायालय ही डिक्री पारित कर सकता है और वह भी केवल उस वाद में जो वादपत्र द्वारा शुरू किया गया हो और न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णय द्वारा विवाद के

न्यायनिर्णयन के बाद। यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ न्यायालय नहीं है, मध्यस्थता न्यायनिर्णयन नहीं है और इसलिए, अधिनिर्णय डिक्री नहीं है।

धारा 2(14) “आदेश” को “किसी सिविल न्यायालय के किसी निर्णय की औपचारिक अभिव्यक्ति जो डिक्री नहीं है” के रूप में परिभाषित करती है;

“निर्णय” और “सिविल न्यायालय” शब्द स्पष्ट रूप से मध्यस्थों द्वारा दिए गए अधिनिर्णय को खारिज करते हैं।

भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1899 की धारा 15 पर निर्णयों में उपरोक्त दृष्टिकोण लगातार लिया गया है जैसे त्रिभुवनदास कालिदास बनाम जीवन चंद 1911(35) बॉम्बे 196, मणिलाल बनाम भारत स्पनिंग एंड वीविंग (35) बॉम्बे एल.आर. 941, रामशाई बनाम जोलाल, ए.आई.आर. 1928 कलकत्ता 840, गुलाम हुसैन बनाम शाहबान ए.आई.आर. 1938 सिंध 220। रामशाई बनाम जोलाल (उपरोक्त) में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इस प्रकार माना:-

“(1) प्रेसिडेंसी टाउन दिवालियापन अधिनियम, धारा 9 (ई) अधिनिर्णय के निष्पादन में कुर्की, एक डिक्री के निष्पादन में एक जैसी नहीं है।

धारा 9 (ई) के अनुसार में अधिनिर्णय के निष्पादन में कुर्की, एक डिक्री के निष्पादन में एक जैसी नहीं है, दिवालियापन का एक अधिनियम बनाने के उद्देश्य से है। री. - दिवालियापन नोटिस, (1907) 1 के.बी. 478, संदर्भ।

(2) मध्यस्थता अधिनियम, धारा 15 अधिनिर्णय, एक अधिनिर्णय केवल उस अधिनिर्णय को लागू करने के उद्देश्य के लिए एक डिक्री है।”

गुलाम हुसैन बनाम शाहबान ए.आई.आर. 1938 सिंध 220 में, न्यायालय ने इस प्रकार देखा:-

“धारा 9(ई) को उस देनदार के पक्ष में विशेषता से समझा जाना चाहिए जिसके लिए दिवालियापन कानून के अंतर्गत दिवालिया के रूप में न्यायनिर्णयन का मामला अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस तरह के गठन से उत्पन्न होने वाली किसी भी असुविधा पर विधानमंडल को विचार करना चाहिए और यदि वे उचित समझें तो संशोधन द्वारा उसका समाधान करना चाहिए; विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त शब्दों के अर्थ को विस्तृत करना न्यायालय का कार्य नहीं है। किसी अधिनिर्णय के निष्पादन में कुर्की, दिवालियापन अधिनियम बनाने के उद्देश्य से धारा 9(ई) के अर्थ के अंतर्गत न्यायालय की डिक्री के निष्पादन नहीं है: ए.आई.आर. 1928 कैल. 840 को मंजूरी दी गई और उसका पालन किया गया; 35 बॉम. 196 पर अवलम्ब लिया गया।”

“शब्द: “धन के भुगतान के लिए किसी न्यायालय के निर्णय के निष्पादन में” को सादृश्य द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो उन्हें विधानमंडल द्वारा विस्तारित किया जाना चाहिए और हम यह नहीं मान सकते कि जब विधानमंडल द्वारा दी गई परिभाषा का

अनुपालन नहीं किया गया है तो दिवालियापन का कार्य हुआ है।

ये पुष्ट शब्द और पुष्ट भाषा है, और जैसा कि मैंने ऊपर कहा है रैंकिन सी.जे. के निर्णय को सबसे अधिक सम्मान के साथ माना जाना चाहिए। रामसहाय बनाम जॉयलाल के मामले का उल्लेख सर डी. मुल्ला ने दिवालियापन कानून पर अपनी टिप्पणी में पृष्ठ 94 पर किया है। पैरा 123 में सर डी. मुल्ला कहते हैं:-

“आई.ए.ए. 1890 की धारा 11 के अंतर्गत न्यायालय में दायर धन के भुगतान के लिए एक अधिनिर्णय वर्तमान खंड के अर्थ के भीतर एक “डिक्री” नहीं है, हालांकि यह उस अधिनियम के अंतर्गत लागू करने योग्य है जैसे कि यह एक डिक्री थी। इसलिए किसी भी दिवालियापन याचिका को किसी अधिनिर्णय के निष्पादन में कुर्की या बिक्री पर आधारित नहीं किया जा सकता है।”

इस प्रस्ताव के समर्थन में सर डी. मुल्ला ने रामसहाय बनाम जोलाल (उपरोक्त) के मामले का हवाला दिया है। टिप्पणीकार आगे कहते हैं:-

इसलिए यह विचारणीय है कि क्या सी.एल.(ई) में “या धन के भुगतान के लिए एक अधिनिर्णय के निष्पादन में” शब्द जोड़कर संशोधन नहीं किया जाना चाहिए। अब, यह विवादित नहीं हो सकता कि दिवालियापन के कानून के टिप्पणीकार के रूप में सर डी. मुल्ला को सार्वभौमिक रूप से एक प्राधिकारी माना

जाता है, और दिवालियेपन के कानून पर अपनी टिप्पणी के दौरान सर डी. मुल्ला ने कई स्थानों पर अपनी सम्मानजनक असहमति दर्ज करने में संकोच नहीं किया है, जब उन्होंने माना है कि भारत में किसी उच्च न्यायालय का निर्णय संदिग्ध या गलत है। यह महत्वपूर्ण है कि ए.आई.आर. 1928 कैल. 840 में मामले का जिक्र करते हुए विद्वान टिप्पणीकार ने कोई असहमति दर्ज नहीं की है, अपितु इसके विपरीत कहा है कि यह विचारणीय है कि क्या सी.एल.(ई) में “या धन के भुगतान के लिए एक अधिनिर्णय के निष्पादन में” शब्द जोड़कर संशोधन नहीं किया जाना चाहिए। अपनी टिप्पणी के इस भाग में सर डी. मुल्ला ने 35 बॉम्बे 196 के मामले का भी उल्लेख किया है, जहाँ बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक पीठ ने माना था कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत न्यायालय में दायर किया गया अधिनिर्णय, एक अधिनिर्णय से अधिक कुछ नहीं था, हालाँकि यह एक डिक्री के रूप में लागू करने योग्य था। उस मामले में डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने के लिए आदेश 21, नियम 29 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र दिया गया था। सर बेसिल स्कॉट सी.जे. के निर्णय में बताए गए निम्नलिखित आधारों पर प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया था:-

“अब, ऐसा आदेश न्यायालय द्वारा केवल तभी दिया जा सकता है, जब किसी व्यक्ति की ओर से न्यायालय के डिक्री धारक के विरुद्ध कोई मुकदमा लंबित हो, जिसके विरुद्ध डिक्री पारित की गई है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता उस अधिनिर्णय हेतु न्यायालय की डिक्री का धारक नहीं है, जिसके लिए आवेदकगण डिक्री का बल देना

चाहते हैं, वह एक अधिनिर्णय से अधिक कुछ नहीं है, यद्यपि यह उसी प्रकार लागू करने योग्य है जैसे कि यह एक डिक्री हो।”

सिद्धार्थ श्रीवास्तव बनाम के.के. मोदी इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल सर्विस प्राइवेट लिमिटेड 2002(4) महाराष्ट्र एल.जे. 281 में 1996 अधिनियम की धारा 36 पर भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया था। यह इस प्रकार माना गया था:-

“जहां याचिकाकर्ता लेनदार के पक्ष में अधिनिर्णय सहमति की शर्तों के आधार पर पारित किया गया था न कि न्यायनिर्णयन के आधार पर, तो अधिनिर्णय जिसमें डिक्री का बल है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) द्वारा परिकल्पित डिक्री की आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं करता है। यद्यपि दिनांक 05.09.1997 का अधिनिर्णय ऐसे लागू करने योग्य है जैसे कि यह एक डिक्री हो, फिर भी यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) में परिभाषित शब्द के अर्थ के अंतर्गत एक डिक्री नहीं है और इसलिए, इस तरह के अधिनिर्णय को प्राप्त करना प्रेसिडेंसी टाउन दिवालियापन अधिनियम की धारा 9(1) के खंड (1) द्वारा परिकल्पित अपेक्षित शर्तों को पूरा नहीं करता है। परिणामस्वरूप, उस आधार पर प्रत्यर्थी को अधिनियम की उप-धारा 9(1) के खंड (1) या धारा 9 की उप-धारा (2) के अंतर्गत दिवालियापन का कृत्य करने वाला नहीं कहा जा सकता है। ए.आई.आर. 1928 कैल. 840, ए.आई.आर. 1938 सिंध 220, ए.आई.आर. 1975 कैल. 169 और ए.आई.आर. 1976 एससी 1503, संदर्भ।”

इस न्यायालय के निर्णयों से यह तय हो गया है कि “जैसे कि” शब्द वास्तव में दो चीजों के बीच अंतर को दर्शाते हैं और ऐसे शब्दों का उपयोग सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है। वे आगे यह भी दर्शाते हैं कि एक कानूनी कल्पना को उस उद्देश्य तक सीमित होना चाहिए जिसके लिए इसे बनाया गया था।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 जो 1899 अधिनियम की धारा 15 के समरूप है, नीचे दी गई है:-

“36. प्रवर्तन जहां धारा 34 के अंतर्गत मध्यस्थ अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए प्रार्थना पत्र दाखिल करने का समय समाप्त हो गया है, या ऐसा प्रार्थना पत्र दिए जाने के बाद उसे अस्वीकार कर दिया गया है, अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत उसी तरह लागू किया जाएगा जैसे कि यह न्यायालय का आदेश हो।”

वास्तव में, धारा 36 1899 अधिनियम की धारा 15 से आगे जाती है और संदेह से परे यह स्पष्ट करती है कि प्रवर्तनीयता केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत ही होनी चाहिए। यह किसी भी उस तर्क को खारिज करता है कि डिक्री के रूप में प्रवर्तनीयता किसी अन्य कानून के अंतर्गत मांगी जा सकती है या दिवालियापन कार्यवाही शुरू करना सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत डिक्री को लागू करने का एक तरीका है।

इसलिए प्रत्यर्थीगण का तर्क कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत दिए गए अधिनिर्णय को यदि अपेक्षित अवधि के भीतर चुनौती नहीं दी जाती है, तो यह धारा 35 के अंतर्गत अंतिम और बाध्यकारी हो जाता है और इसे डिक्री के रूप में लागू किया जा सकता है क्योंकि यह धारा 36 के अंतर्गत प्रदान किए गए बाध्यकारी और निर्णायक है और अधिनिर्णय और डिक्री के बीच कोई अंतर नहीं है, यह बात सही नहीं है।”

42. उपर्युक्त के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण रखा है कि हालांकि मध्यस्थता अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ-साथ नए अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत लागू किया जा सकता है, परन्तु मध्यस्थता अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अंतर्गत डिक्री नहीं है। वर्तमान मामले में, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि एक अधिनिर्णय के प्रवर्तन के लिए नए अधिनियम, 1996 की धारा 36 के अंतर्गत निष्पादन कार्यवाही शुरू की जाती है, जो कि ऊपर की गई चर्चा के आलोक में एक डिक्री नहीं है।

43. अब दूसरा बिन्दु यह है कि नए अधिनियम, 1996 की धारा 36 के अंतर्गत निष्पादन कार्यवाही में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्ति पोषणीय है या नहीं। विचार के लिए यही बिन्दु **लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष था।

44. इस न्यायालय ने **लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में **पद्मजीत सिंह पथेजा (उपरोक्त)** के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए इस बिन्दु पर विचार किया है कि एक बार नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 का चरण समाप्त हो गया है और जो प्रश्न उस चरण में उठाए गए थे या उठाए जा सकते थे, उन्हें अधिनिर्णय के निष्पादन के समय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्ति दर्ज करके फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। **लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड (उपरोक्त)** के निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

“विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (एतदपश्चात “अधिनियम” कहा जाएगा) की धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता का अवलम्ब लेते हुए, धारा 36 के अंतर्गत इसके प्रवर्तन के लिए कार्यवाही करते समय मध्यस्थता अधिनिर्णय की वैधता को चुनौती दी जा सकती है या नहीं।

मामले को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता में डिक्री को निष्पादित करने वाले न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले प्रश्नों का प्रावधान है। उक्त धारा इस प्रकार है:-

“47. डिक्री निष्पादित करने वाले न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले प्रश्न: (1) जिस वाद में डिक्री पारित की गई थी, उसके पक्षकारों के मध्य उठने वाले प्रश्न या उनके प्रतिनिधिगण के और डिक्री के

निष्पादन, निर्वहन या संतुष्टि से संबंधित सभी प्रश्न, डिक्री निष्पादित करने वाले न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाएंगे, न कि किसी अलग वाद द्वारा।

(2) सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन अधिनियम, 1976, धारा 20 द्वारा (दिनांक 01.02.1977 से प्रभावी) हटा दिया गया।

(3) जहां यह प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति किसी पक्ष का प्रतिनिधि है या नहीं, ऐसा प्रश्न, इस धारा के प्रयोजनों के लिए, न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

स्पष्टीकरण 1- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, एक वादी जिसका वाद खारिज कर दिया गया है और एक प्रत्यर्थी जिसके विरुद्ध एक वाद खारिज कर दिया गया है, वे वाद के पक्षकार हैं।

स्पष्टीकरण 2- (क) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, डिक्री के निष्पादन में बिक्री पर संपत्ति का खरीदार उस वाद का पक्षकार माना जाएगा, जिसमें डिक्री पारित की गई है; और

(ख) सभी ऐसी संपत्ति के ऐसे क्रेता या उसके प्रतिनिधि को कब्जे की सुपुर्दगी से संबंधित प्रश्न, इस धारा के अर्थ के अंतर्गत डिक्री के निष्पादन, निर्वहन या संतुष्टि से संबंधित प्रश्न माने जाएंगे।”

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता को लागू करने के लिए, एक डिक्री होनी चाहिए। धारा 2 (2) सिविल

प्रक्रिया संहिता डिक्री को परिभाषित करती है। किसी निर्णय या निर्धारण को डिक्री होने के लिए, यह आवश्यक रूप से परिभाषा में प्रयुक्त भाषा के अग्रभाग के भीतर आना चाहिए। धारा 2(2) सिविल प्रक्रिया संहिता डिक्री को “एक न्यायनिर्णय की औपचारिक अभिव्यक्ति” के रूप में परिभाषित करती है, जो अब तक न्यायालय द्वारा इसे व्यक्त करने के संबंध में, विवाद में सभी या किसी भी मामले के संबंध में पक्षों के अधिकारों को निर्णायक रूप से निर्धारित करती है और प्रारंभिक या अंतिम हो सकती है। इसमें धारा 144 के भीतर किसी भी वादपत्र का निर्धारण और शिकायत को अस्वीकार करना शामिल माना जाएगा, परन्तु इसमें शामिल नहीं होगा - (ए) कोई भी न्यायनिर्णय जिसके विरुद्ध किसी आदेश से अपील के रूप में अपील की जाती है, या (बी) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश।” स्पष्टीकरण- डिक्री तब प्रारंभिक होती है जब मुकदमे का पूरी तरह से निस्तारण करने से पूर्व आगे की कार्यवाही करनी होती है। यह तब अंतिम होती है जब इस तरह के निर्णय से मुकदमे का पूर्ण रूप से निस्तारण हो जाता है। यह आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम हो सकती है।

विधानमंडल द्वारा प्रयोग किए गए “न्याय-निर्णयन” और “वाद” शब्दों से यह स्पष्ट है कि यह केवल एक न्यायालय ही है जो किसी वाद में डिक्री पारित कर सकती है, जो कि वादपत्र से आरंभ हुआ तथा पक्षकारों के बीच विवाद का न्याय-निर्णयन न्यायालय में निर्णय पारित करके कर सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने परमजीत सिंह पथेजा

बनाम आई.सी.डी.एस. लिमिटेड, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 168 के मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता के पैराग्राफ 29 में निहित डिक्री की परिभाषा पर विचार करने के बाद माना है कि “यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ न्यायालय नहीं है, मध्यस्थता न्याय-निर्णयन नहीं है और इसलिए, अधिनिर्णय डिक्री नहीं है”। पुनः पैराग्राफ 31 में, यह माना गया है कि शब्द “निर्णय” और “सिविल कोर्ट” स्पष्ट रूप से मध्यस्थों द्वारा दिए गए अधिनिर्णय को डिक्री होने से रोकते हैं। उक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या मध्यस्थता अधिनिर्णय के आधार पर प्रेसिडेंसी टाउन दिवालियापन अधिनियम, 1909 की धारा 9 के अंतर्गत दिवालियापन नोटिस जारी किया जा सकता है, माना कि इस तरह का नोटिस जारी नहीं किया जा सकता है क्योंकि मध्यस्थता अधिनिर्णय दिवालियापन अधिनियम की धारा 9(2) के अर्थ के अंतर्गत न तो डिक्री है और न ही भुगतान के लिए आदेश है और यह किसी मुकदमे में नहीं दिया गया है। इस प्रकार, अधिनिर्णय डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है, इसकी वैधता के संबंध में आपत्ति केवल अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत प्रदान की गई व्यवस्था के अनुसार ही उठाई जा सकती है, न कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 का सहारा लेकर।

उपरोक्त के अतिरिक्त, न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा अधिनियम की धारा 5 द्वारा सीमित कर दी गई है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम के अंतर्गत प्रदान की गई व्यवस्था को छोड़कर न्यायिक व्याख्या निषिद्ध है।

अधिनियम की धारा 5 में निम्नलिखित लिखा है:-

“धारा 5. न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा: इस भाग द्वारा शासित मामलों में, वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायिक प्राधिकारी हस्तक्षेप नहीं करेगा, सिवाय इसके कि इस भाग में ऐसा प्रावधान हो।

अधिनियम की धारा 5 भाग-1 के अंतर्गत आती है, जिसके दायरे में अधिनियम की धारा 2 से धारा 43 तक शामिल हैं। इस प्रकार, धारा 34 और 36 भी अधिनियम के भाग-1 में शामिल हैं। विधायिका द्वारा न्यायिक हस्तक्षेप को सीमित कर दिए जाने के कारण, न्यायालय अधिनियम में उपलब्ध आधारों के अलावा किसी भी स्तर पर हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इस प्रकार, एक बार जब धारा 34 का चरण समाप्त हो जाता है और धारा 35 के अंतर्गत अधिनिर्णय अंतिम हो जाता है, तो धारा 36 के अंतर्गत अधिनिर्णय के निष्पादन में न्यायिक हस्तक्षेप को अधिनियम की धारा 5 द्वारा लगाई गई सीमा के दृष्टिगत, किसी भी आधार पर स्वीकार्य नहीं माना जा सकता है।

इस प्रकार, अधिनियम की धारा 5, 12, 13, 16, 34, 35 और 36 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल वे आधार जो किसी अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं, अधिनियम की धारा 34 के दायरे और क्षेत्र के भीतर हैं। एक बार जब धारा 34 का चरण समाप्त हो जाता है और जो प्रश्न

उस चरण में उठाए गए थे या उठाए जा सकते थे, उन्हें अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत अधिनिर्णय के निष्पादन के समय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 को सेवा में लाकर बार-बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

उपरोक्त तथ्यों और चर्चाओं के दृष्टिगत, आवेदक को धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता का सहारा लेकर अधिनिर्णय की प्रवर्तनीयता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं था और वे खारिज किए जाने योग्य थे। यह पूरी तरह से अलग प्रश्न है कि आपत्तियों को विभिन्न आधारों और कारणों से अवर न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है परन्तु चूंकि वे खारिज किए जाने योग्य हैं, इसलिए आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

तदनुसार पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

हालांकि, तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, हर्जे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।”

45. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, स्थिति वही है जो **लार्सन एंड दुब्रो लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में चर्चा की गई थी। याचिकाकर्ता के पास नए अधिनियम, 1996 की धारा 34 और एफ.ए.एफ.ओ. में अपील दायर करते समय इन सभी बिन्दुओं को उठाने का पूरा अवसर था, परन्तु इसे कभी नहीं उठाया गया। इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपत्ति के माध्यम से,



उन्हें अधिनियम, 1996 की धारा 36 के प्रावधान को निष्प्रभावी करने वाले इन बिन्दुओं को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

46. पुनः सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति दर्ज करने का वही बिन्दु **भारत पंप्स एंड कंप्रेशर्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय के समक्ष आया और न्यायालय ने **लार्सन एंड टुब्रो लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधिक अनुपात का पालन करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

“22. मध्यस्थता अधिनियम, 1940 एक स्व-निहित, पूर्ण संहिता है और इसकी धारा 17 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 के समतुल्य है। इसकी धारा 20 में मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने का प्रावधान है। पुनरीक्षणकर्ता ने कभी भी इसकी धारा 20 के अंतर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती नहीं दी। मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 30/33 और 37 सपठित अनुच्छेद 119 परिसीमा अधिनियम, अधिनिर्णय की सूचना के 30 दिनों के भीतर प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का प्रावधान देते हैं; हालाँकि, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उक्त अवधि के भीतर ऐसा कोई प्रार्थना पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया।

23. संघर्ष के माध्यम से मध्यस्थता अधिनिर्णय को डिक्री के रूप में निष्पादित किया जाता है, परन्तु यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अंतर्गत परिभाषित डिक्री नहीं है और इसलिए, सिविल प्रक्रिया

संहिता की धारा 47 के अंतर्गत आपति, जो केवल डिक्री के निष्पादन में दायर की गई थी (जैसा कि धारा 2(2) सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत परिभाषित है), अधिनिर्णय के निष्पादन की मांग करने वाली कार्यवाही में पोषणीय नहीं है।”

47. इस न्यायालय ने यह पुनः अवलोकित किया है कि मध्यस्थता अधिनिर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अंतर्गत डिक्री नहीं है, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत प्रस्तुत आपति पोषणीय नहीं है।

48. निर्विवाद तथ्य के आधार पर इस बिंदु पर निष्कर्ष निकालने के लिए, मध्यस्थता अधिनिर्णय के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत प्रस्तुत आपति पोषणीय नहीं है क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अंतर्गत डिक्री नहीं है। इसके अतिरिक्त, मध्यस्थता अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ-साथ नए अधिनियम, 1996 की धारा 36 को लागू करके उसी तरह निष्पादित किया जा सकता है जैसे कि यह न्यायालय का निर्णय हो।

49. इसलिए, मामले के तथ्यों, विधिक प्रावधानों और माननीय सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में, मुझे आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा कारण नहीं मिला है। रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, यह रु 1,00,000/- हर्ज के साथ

खारिज की जाती है, जिसका भुगतान याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रत्यर्थी सं० 2 को किया जाएगा।

-----  
(2023) 9 ILRA 938

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या 58 वर्ष  
2009

विनोद कुमार गुप्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रार्थी

...विपक्षी

प्रार्थी के अधिवक्ता:

आरबीएस राठौड़, आदित्य विक्रम सिंह, अरुण  
सिन्हा, जीत बहादुर

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860  
- धारा 376 और 120-बी - दंड प्रक्रिया संहिता,  
1973 - धारा 319 और 482 - अतिरिक्त  
अभियुक्तों को समन - आदेश की वैधता -  
अभियोजन पक्ष द्वारा 01.08.2007 को दर्ज  
कराई गई प्राथमिकी में आशा उर्फ संजना और  
दो अज्ञात व्यक्तियों पर चारबाग रेलवे स्टेशन  
के पास एक होटल में बलात्कार का आरोप  
लगाया गया था। आशा उर्फ संजना और सागर  
सिन्हा के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा

376 और 120-बी के तहत आरोप पत्र दायर  
किया गया। मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष  
ने प्रार्थी (विनोद कुमार गुप्ता) और अन्य को  
बलात्कार में शामिल होने का आरोप लगाते  
हुए, अभियुक्त के रूप में समन करने के लिए  
सीआरपीसी की धारा 319 के तहत एक प्रार्थना  
पत्र दायर किया। विचारण न्यायालय ने रेलवे  
विभाग के साथ एक आंतरिक जांच के आधार  
पर, जिसमें प्रार्थी की चारबाग रेलवे स्टेशन पर  
ट्रेवलिंग टिकट परीक्षक के रूप में पोस्टिंग की  
पुष्टि की गई और अभियोजन पक्ष का दावा था  
कि वह उसे पहचान सकती है, 11.12.2008  
को प्रार्थना पत्र को अनुमति दी। प्रार्थी ने आदेश  
को चुनौती दी, यह तर्क देते हुए कि कोई  
साक्ष्य उसकी भागीदारी का समर्थन नहीं करता  
है, और विचारण न्यायालय ने अनधिकृत  
पत्राचार और अनुमानों पर भरोसा करके अपने  
अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। न्यायालय  
ने माना कि धारा 319 सीआरपीसी के तहत  
हरदीप सिंह के अनुसार अतिरिक्त आरोपी को  
बुलाने के लिए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक  
मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है।  
विचारण न्यायालय का रेलवे पत्राचार पर  
भरोसा करना अनुचित था, और यह धारणा कि  
अभियोजन पक्ष प्रार्थी की पहचान कर सकता  
है, अनुमान मात्र था। प्रार्थी को अपराध से  
जोड़ने वाला कोई ठोस साक्ष्य नहीं है। आक्षेपित  
आदेश दिनांकित 11.12.2008 और संबंधित  
आपराधिक कार्यवाही रद्द की जाती है। (पैरा  
6-8, 22-26, 29)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत।

उद्धृत वादों की सूची:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य,  
(2014) 3 एससीसी 92

2. लाभुजी अमृतजी ठाकोर एवं अन्य बनाम  
गुजरात राज्य एवं अन्य, (2019) 12 एससीसी  
644

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा  
पारित)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता  
श्री आदित्य विक्रम सिंह तथा राज्य की ओर से  
विद्वान ए.जी.ए.-I, श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह  
से व ए.जी.ए. श्री संजय कुमार यादव को सुना  
गया।

2. वर्तमान आवेदन, मुकदमा अपराध संख्या-  
271/2007, धारा 376, 120 बी आईपीसी,  
थाना नाका, जिला लखनऊ से उत्पन्न एस.टी.  
केस संख्या 119/2008 (राज्य बनाम आशा  
उर्फ संजना एवं अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश  
एफटीसी (तृतीय), लखनऊ द्वारा पारित आदेश  
दिनांक 11.12.2008 को निरस्त करने की  
प्रार्थना के साथ योजित किया गया है तथा  
आगे प्रार्थना की गई है कि अपर सत्र  
न्यायाधीश/एफटीसी-तृतीय, लखनऊ द्वारा  
पारित आदेश दिनांक 11.12.2008 के संचालन,  
कार्यान्वयन और प्रभाव पर रोक लगाई जाए।

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि  
प्रथम सूचना रिपोर्ट, केस अपराध संख्या  
271/2007, पीड़िता/अभियोकत्री द्वारा पुलिस  
स्टेशन-नाका, जिला-लखनऊ में आईपीसी की  
धारा 376 के अंतर्गत दर्ज कराया गया, जिसमें

आशा @ संजना और दो अज्ञात व्यक्तियों को  
नामित किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में  
आरोप लगाया गया है कि अभियोकत्री  
27.07.2007 को आशा @ संजना के साथ  
यात्रा कर रही थी और चारबाग रेलवे स्टेशन  
पर पहुँचने पर, वह दो अन्य अज्ञात व्यक्तियों  
से मिली, हालाँकि वे आशा @ संजना को  
जानते थे और वे अभियोकत्री को आशा के  
साथ पास के होटल में ले गए और उसके बाद,  
उन्होंने उसके साथ बलात्कार किया।

4. आदेश पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है  
कि दिनांक 20.10.2022 को इस न्यायालय ने  
आदेश पारित किया है तथा यह भी उल्लेख  
किया है कि मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, कानपुर  
नगर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट दिनांक 22.01.2020  
के अवलोकन से पता चलता है कि इस मामले  
में पीड़िता ने अपना निवास स्थान बदल लिया  
है तथा किसी अन्य अज्ञात स्थान पर चली गई  
है, जिसके बारे में किसी को जानकारी नहीं है  
तथा उपरोक्त परिस्थितियों में नोटिस तामील  
नहीं हो सका। अब यह न्यायालय मामले में  
आगे बढ़ रहा है।

5. मामले में गहन जांच के बाद,  
08.10.2007 को आशा @ संजना और सागर  
सिन्हा के खिलाफ आईपीसी की धारा 376 और  
120 बी के अंतर्गत आरोप पत्र दायर किया  
गया था और सुनवाई के दौरान, जिसे सत्र  
परीक्षण संख्या 119/2008 (राज्य बनाम  
श्रीमती आशा @ संजना और अन्य) के रूप में  
क्रमांकित किया गया था, अभियोजन पक्ष  
द्वारा 29.08.2008 को सीआरपीसी की धारा  
319 के अंतर्गत एक आवेदन पेश किया गया

था, जिसमें मनीष दुबे और राजेश यादव को आरोपी के रूप में बुलाने की प्रार्थना की गई थी, जिन्होंने घटना की तिथि पर अभियोक्त्री के साथ बलात्कार किया था। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आवेदन को सत्र न्यायालय द्वारा दिनांक 11.12.2008 के आदेश के माध्यम से स्वीकृत किया गया, जिसके अंतर्गत आवेदक के साथ-साथ एक अन्य आरोपी को भी बुलाया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में 11.12.2008 का आदेश, जो सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत आवेदन में पारित किया गया था, चुनौती के अधीन है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आवेदक को उसके खिलाफ कोई सबूत न होने पर भी तलब किया है, क्योंकि 11.12.2008 के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने, अभियोक्त्री द्वारा सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन के बाद, भारतीय रेलवे विभाग के कुछ अधिकारी से आंतरिक रिपोर्ट मांगकर अपनी जांच की और विद्वान ट्रायल कोर्ट और रेलवे के बीच उक्त आंतरिक संचार के आधार पर, आवेदक को तलब किया गया है।

7. अपनी तर्कों को आगे बढ़ाते हुए, उन्होंने कहा कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर अनुमान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि आवेदक घटना की तारीख पर ट्रैवलिंग टिकट परीक्षक (टी.टी.ई.) के रूप में काम कर रहा था, इसलिए, वह, वह व्यक्ति होना चाहिए, जिसने अभियोक्त्री के साथ बलात्कार किया,

न कि वास्तव में वह व्यक्ति जिसका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है। इसके अलावा, ट्रायल कोर्ट ने यह भी माना है कि एक बार जब आवेदक को अभियोक्त्री के सामने पेश किया जाएगा, तो वह वर्तमान आवेदक को अपराध में शामिल होने के रूप में पहचान सकती है। उन्होंने कहा कि जहां तक अभियोक्त्री के बयान का सवाल है, उसने शुरू में सागर सिन्हा जैसे कुछ अन्य आरोपियों का नाम लिया था और इस प्रकार, यह मानने का कोई कारण नहीं था कि वर्तमान आवेदक ने बलात्कार किया है, क्योंकि सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल करने के लिए ट्रायल कोर्ट के समक्ष अभियोक्त्री के बयान के अलावा कोई सबूत नहीं था। जहां तक अपराध में शामिल बताए गए दो अज्ञात आरोपियों का सवाल है, जांच अधिकारी ने वर्तमान आवेदक के अलावा दो अन्य व्यक्तियों को अभियोक्त्री के साथ बलात्कार करने का दोषी पाया, हालांकि अभियोजन पक्ष अंततः उनके खिलाफ उचित संदेह से परे अपना मामला साबित करने में विफल रहा।

8. अपने तर्क को बढ़ाते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत निहित अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया है और मामले में वर्तमान आवेदक की भागीदारी के बारे में व्यक्तिगत राय के आधार पर गलत तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किया है।

9. सीआरपीसी की धारा 319 को यहां उद्धृत किया गया है:-

319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्ति।

(क) ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से आरंभ की जाएगी और साक्षियों की पुनः सुनवाई की जाएगी;

(1) जहां, किसी अपराध की जांच या परीक्षण के दौरान, साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति के खिलाफ उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकता है जो उसने किया प्रतीत होता है।

(ख) खंड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मामला इस प्रकार आगे बढ़ सकता है मानो ऐसा व्यक्ति उस समय अभियुक्त था, जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान लिया था, जिस पर जांच या विचारण आरंभ किया गया था।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है, उसे पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए, मामले की परिस्थितियों के अनुसार गिरफ्तार किया जा सकता है या बुलाया जा सकता है।

10. पूर्वोक्त का संदर्भ देते हुए, उन्होंने निवेदन किया कि किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान, किसी भी व्यक्ति को बुलाया जा सकता है, यदि ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपराध किया है, अतः निर्णय सुनाए जाने के पश्चात, किसी भी व्यक्ति को उपरोक्त उपबंधों के अधीन बुलाया नहीं जा सकता।

(3) न्यायालय में उपस्थित होने वाले किसी भी व्यक्ति को, यद्यपि वह गिरफ्तार न हो या सम्मन पर न हो, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध की जांच या विचारण के प्रयोजनार्थ निरुद्ध किया जा सकता है, जो उसने किया प्रतीत होता है।

11. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने (2014) 3 एससीसी पृष्ठ 92, हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा किया है और प्रस्तर 78, 95 और 105 का संदर्भ दिया है।

12. निर्णय के प्रस्तर 78, 95 और 105 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

(4) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, वहां-

78. इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 319 सीआरपीसी में "साक्ष्य" शब्द का अर्थ केवल ऐसे साक्ष्य से है जो बयानों के संबंध में अदालत के समक्ष बनाया गया है, और दस्तावेजों के संबंध में

अदालत के समक्ष पेश किया गया है। यह केवल ऐसा साक्ष्य है जिसे मजिस्ट्रेट या अदालत द्वारा यह तय करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग किया जाना है या नहीं और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर नहीं।

95. संज्ञान लेते समय, अदालत को यह देखना होगा कि क्या अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है। धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत, हालांकि प्रथम दृष्टया मामले का परीक्षण एक ही है, लेकिन संतुष्टि की जिस डिग्री की आवश्यकता है वह बहुत सख्त है। विकास बनाम राजस्थान राज्य [(2014) 3 एससीसी 321: (2013) 11 एससीएलई 23] में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि न्यायालय की वस्तुनिष्ठ संतुष्टि पर किसी व्यक्ति को "गिरफ्तार" या "सम्मन" किया जा सकता है, जैसा कि मामले की परिस्थितियों की आवश्यकता हो सकती है, यदि साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर पहले से ही आरोपित अभियुक्तों के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है,

105. धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत सामने आते हैं, तब ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि लापरवाही से।

13. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह तय हो चुका है कि मजिस्ट्रेट किसी आरोपी को समन करते समय सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है, अगर उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं ज्यादा मजबूत सबूत हैं। यह भी माना गया है कि जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह यह है कि आरोप तय करते समय जैसा मामला था, उससे कहीं ज्यादा मामला प्रथम दृष्टया है और अगर ऐसा नहीं है, तो अदालत को सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए।

14. उन्होंने लाभूजी अमृतजी ठाकोर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2019) 12

एसएससी पेज 644 के मामले में दिए गए निर्णय पर आगे निर्भरता व्यक्त की है और उपर्युक्त निर्णय के प्रस्तर 8 और 13 का हवाला दिया है। निर्णय के प्रस्तर 8 और 13 नीचे उद्धृत हैं:-

"8. हरदीप सिंह के मामले में उपरोक्त निर्णय में संविधान पीठ ने माना है कि धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही कर सकता है, जो उसके समक्ष किसी मामले में आरोपी नहीं है। हालांकि, संविधान पीठ ने माना है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ न्यायालय कार्यवाही करने का फैसला करता है, "वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी सहभागिता का संकेत दिया जा सकता है और जो अपराध के होने से जुड़ा हो"।

13. उच्च न्यायालय ने इस बात पर भी संतोष नहीं जताया कि पीड़िता और उसकी मां के बयान से पता चला कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपराध का प्रथम दृष्टया मामला बनाते हैं। केवल इस तथ्य से कि न्यायालय को धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने का अधिकार है जिसका नाम एफआईआर या चार्जशीट में नहीं है, इसका मतलब यह नहीं है कि जब भी न्यायालय के समक्ष दर्ज किए गए बयान में किसी व्यक्ति का नाम लिया

जाता है, तो न्यायालय को धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत यांत्रिक रूप से प्रक्रिया जारी करनी होगी। न्यायालय को साक्ष्य के सार पर विचार करना होगा, जो उसके समक्ष आया है और जैसा कि हरदीप सिंह के मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित किया गया है, उसे परीक्षण लागू करना होगा अर्थात् "आरोप तय करते समय प्रथम दृष्टया मामला अधिक प्रतीत होता है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि यदि साक्ष्य का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो सकती है।"

15. सर्वोच्च न्यायालय ने हरदीप सिंह के मामले में निर्धारित सिद्धांत को दोहराया है और सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का उपयोग करने के लिए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक के परीक्षण को फिर से स्वीकार किया है। इसके अलावा जहां तक सत्र परीक्षण संख्या 119/2008 (राज्य बनाम श्रीमती आशा @ संजना और अन्य) का संबंध है, वह समाप्त हो गया था और 12.05.2014 को निर्णय और आदेश पारित किया गया था, जिसमें आरोपी व्यक्तियों अर्थात् आशा @ संजना और सागर सिन्हा को बरी कर दिया गया था।

16. अपनी दलीलों को समाप्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 11.12.2008 के आदेश में उल्लिखित वर्तमान आवेदक को बुलाने के कारण, हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य तथा लाभुजी अमृतजी ठाकोर

और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित कानून के स्थापित सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, क्योंकि यह संयोग और अनुमान के आधार पर पारित किया गया है और वह भी ट्रायल कोर्ट द्वारा रेलवे विभाग को आंतरिक पत्राचार के आधार पर, जो कानून के अंतर्गत अस्वीकार्य है। उन्होंने कहा कि उपरोक्त तथ्यों के अलावा, आवेदक के खिलाफ कोई मजबूत सबूत नहीं था, जो दिनांक 11.12.2008 के आदेश में विद्वान ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों को पुष्ट कर सके।

17. उपरोक्त तर्कों के अलावा, उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक किसी भी तरह से अपराध करने में शामिल नहीं है और वह लगभग सत्तावन वर्ष का है और अग्र श्रेणी के कार्सिनोमा से पीड़ित है, इसलिए, वर्तमान आवेदक के खिलाफ आगे की आपराधिक कार्यवाही उत्पीड़न के समान होगी। इस प्रकार, दलील यह है कि दिनांक 11.12.2008 के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाए और वर्तमान आवेदक के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही बंद की जाए।

18. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त दलील का पुरजोर विरोध किया और तर्क दिया कि वास्तव में अभियोकत्री अपराध के समय दो आरोपियों की पहचान नहीं कर सकी और जब मामला आगे बढ़ा, तो उसने सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत एक आवेदन दायर करके आरोपियों को बुलाने की प्रार्थना की और यह भी प्रार्थना की कि वर्तमान आवेदक पर अन्य आरोपियों के

साथ मुकदमा चलाया जाए, जिनका नाम पहले से ही एफआईआर में है। उन्होंने कहा कि वास्तव में अभियोकत्री के पास वर्तमान आवेदक की पहचान करने का कोई साधन नहीं था और इसलिए, जिन व्यक्तियों को वह पहचान सकती थी, उनका नाम एफआईआर में दर्ज किया और दो अज्ञात व्यक्तियों को भी उसके साथ बलात्कार करने का कहा।

19. उन्होंने आगे तर्क दिया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 11.12.2008 को आदेश पारित करते समय, साक्ष्य पर गहन चर्चा की है, जो कि उसके अवलोकन से स्पष्ट है, क्योंकि स्पष्ट रूप से, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार लागू करने के लिए दो आधारों पर विचार किया गया है। पहला, जैसा कि ट्रायल कोर्ट ने चर्चा की है कि चूंकि विभाग द्वारा यह सूचित किया गया था कि घटना की तारीख पर, अन्य सह-अभियुक्तों सहित वर्तमान आवेदक चारबाग रेलवे स्टेशन पर तैनात थे और दूसरा, अभियोकत्री ने आवेदक सहित दो अन्य अज्ञात आरोपियों का नाम लिया है। दिनांक 11.12.2008 के आक्षेपित आदेश में जिन साक्ष्यों पर चर्चा की गई है, वे आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले से अधिक दिखाने के लिए पर्याप्त हैं, इस प्रकार, दलील यह है कि दिनांक 11.12.2008 का आदेश वैध है और इसमें कोई हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं है।

20. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह पता चला कि शुरू में एफआईआर 01.08.2007 को दर्ज की गई थी, जिसमें आशा उर्फ संजना और दो अन्य आरोपियों का



नाम था, हालांकि, पुलिस ने सागर सिन्हा के खिलाफ सीआरपीसी की धारा 376 के अंतर्गत आरोप पत्र दायर किया। इसके बाद, मुकदमा समाप्त हो गया और एफआईआर में नामित आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् आशा उर्फ संजना और सागर सिन्हा को 12.05.2014 के फैसले और आदेश के अंतर्गत बरी कर दिया गया।

21. तथ्य यह है कि सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत आवेदन 29.03.2008 को पीड़िता द्वारा स्वयं ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश किया गया था और उसके बाद, 11.12.2008 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। आवेदक ने वर्तमान आवेदन के माध्यम से 11.12.2008 के आदेश को चुनौती दी थी, जिसमें, 16.04.2009 को अंतरिम आदेश पारित किया गया था और तब से, मामला इस न्यायालय के समक्ष लंबित है, जबकि, अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामला 12.05.2014 को समाप्त हो गया था, जिसके द्वारा उन सह-आरोपियों को बरी कर दिया गया था।

22. आक्षेपित आदेश को पढ़ने से, यह सामने आता है कि ट्रायल कोर्ट ने रेलवे विभाग को कुछ आंतरिक पत्राचार किया था, जिसमें रेलवे विभाग द्वारा सूचित किया गया था कि वर्तमान आवेदक सहित एक अन्य आरोपी व्यक्ति कथित घटना की अवधि के दौरान चारबाग रेलवे स्टेशन पर तैनात थे। ऐसा लगता है कि ट्रायल कोर्ट ने यह मानकर कि चूंकि वर्तमान आवेदक भी चारबाग रेलवे स्टेशन पर तैनात था, इसलिए वह उक्त अपराध में शामिल रहा होगा, मामले में आगे बढ़ा और

सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया और आवेदक को तलब किया।

23. दूसरे, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत पीड़िता के आवेदन पर विचार करने का आधार यह है कि, यदि आवेदक सहित अन्य आरोपी व्यक्तियों को अभियोकत्री के सामने लाया जाएगा, तो वह उनकी पहचान करेगी, जो वास्तव में अनुमान पर आधारित है। ट्रायल कोर्ट ने अपने निष्कर्ष को परिकल्पना के आधार पर निकाला है क्योंकि भविष्य में प्रकाश में आने वाले साक्ष्य को वर्तमान आवेदक को तलब करने के लिए सबसे मजबूत आधारों में से एक माना गया था।

24. जब इस न्यायालय ने दिनांक 11.12.2008 के आक्षेपित आदेश में ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज निष्कर्षों की जांच की, तो यह सामने आया कि रेलवे विभाग को भेजा गया पत्र, जिसमें आवेदक की चारबाग रेलवे स्टेशन पर पोस्टिंग के संबंध में जानकारी मांगी गई थी और इसके बाद जो प्रतिक्रिया मिली, वह गैरकानूनी है क्योंकि सीआरपीसी या किसी अन्य कानून में ऐसी कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं है, जो ट्रायल कोर्ट को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी भी एजेंसी या संस्थान के साथ किसी भी आंतरिक पत्राचार का आदान-प्रदान करने का अधिकार दे सके और इसलिए, जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, ट्रायल कोर्ट ने रेलवे विभाग को पत्र भेजकर कुछ सूचनाएं मांगते हुए मामले को गलत तरीके से आगे बढ़ाया है। इसके अलावा, इस तरह की

जानकारी को ट्रायल के किसी भी चरण में सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता था।

परिणाम नहीं है, लेकिन यह प्रथम दृष्टया तर्कों की पुष्टि करता है।

25. इस न्यायालय का यह भी मानना है कि आपराधिक कानून के प्रावधान कठोर हैं और यह किसी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को प्रभावित करता है तथा उसे सीमित करता है, इसलिए, परिकल्पना के आधार पर कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता, जब तक कि प्रथम दृष्टया बहुत मजबूत साक्ष्य होने की संतुष्टि न हो। वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश में यह स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है कि 'यदि आवेदक को अभियोकत्री/पीड़ित के समक्ष लाया जाएगा, तो वह अपराध में शामिल अभियुक्तों की पहचान करेगी।' यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इस बात की कोई संभावना नहीं है कि वर्तमान आवेदक अपराध करने में शामिल था।

28. यह न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य तथा लाभुजी अमृतजी ठाकोर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय से भी अनभिज्ञ नहीं है, जो आवेदक के कथन का समर्थन करता है।

29. परिणामस्वरूप, दिनांक 11.12.2008 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है तथा सत्र परीक्षण वाद संख्या 119/2008 (राज्य बनाम श्रीमती आशा उर्फ संजना व अन्य) की आपराधिक कार्यवाही, जो मुकदमा अपराध संख्या 271/2007 धारा 376, 120 बी आईपीसी, थाना नाका, जिला लखनऊ से उत्पन्न हुई थी, को निरस्त किया जाता है।

26. यह सामान्य कानून है कि सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का उपयोग करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की प्रकृति 'आरोपों के निर्धारण' के लिए आवश्यक संतुष्टि की डिग्री के समान है और इसलिए, मिलीभगत की मात्र संभावना की तुलना में बहुत मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है, लेकिन जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, ट्रायल कोर्ट उपर्युक्त परीक्षण का पालन करने में विफल रहा है।

30. तदनुसार आवेदन स्वीकार किया जाता है।

-----

**(2023) 9 ILRA 944**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 19.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी**

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या 1663

वर्ष 2023

27. इसके अलावा, आवेदक के अधिवक्ता की यह दलील भी निर्विवाद है कि आवेदक की उम्र 57 साल है और वह अग्र श्रेणी के कार्सिनोमा से पीड़ित है। हालांकि, इसका कोई कानूनी

**मोहन लाल राठी**

**... प्रार्थी**

**बनाम**

**भारत संघ एवं अन्य**

**...विपक्ष**

**प्रार्थी के अधिवक्ता:**

सुनील कुमार सिंह

**विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:**

कुलदीप श्रीवास्तव, अनुराग कुमार सिंह

**धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 3, 4 और 50 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 306, 308 और 482 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - पीएमएलए कार्यवाही पर अनुसूचित अपराध में क्षमा का प्रभाव - प्रार्थी, एक चार्टर्ड अकाउंटेंट और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 109, 120-बी आईपीसी और धारा 13 (2) के साथ 13 (1) (ई) के तहत आय से अधिक संपत्ति के लिए सीबीआई मामले में सरकारी गवाह, ने पीएमएलए कार्यवाही, संज्ञान आदेश दिनांक 08.08.2019 और गैर-जमानती वारंट दिनांक 04.02.2023 को रद्द करने की मांग की, यह तर्क देते हुए कि अनुसूचित अपराध में क्षमा ने उसे पीएमएलए दायित्व से मुक्त कर दिया। प्रवर्तन निदेशालय ने तर्क दिया कि पीएमएलए अपराध स्वतंत्र होते हैं और सीआरपीसी की धारा 306 के तहत क्षमादान पीएमएलए पर लागू नहीं होता, जब तक कि विशेष रूप से प्रदान न किया जाए। *विजय मदनलाल चौधरी के मामले पर भरोसा करते हुए*, न्यायालय ने माना कि क्षमादान, अनुसूचित अपराध से मुक्ति, बरी या निरस्तीकरण के समान नहीं है, क्योंकि यह अपराध में शामिल किसी साथी को प्रदान किया जाता है,**

किसी निर्दोष व्यक्ति को नहीं। पीएमएलए की कार्यवाही तब तक जारी रह सकती है जब तक कि अभियुक्त पूर्ण प्रकटीकरण के साथ पीएमएलए अपराधों के लिए क्षमादान की मांग न करे। अवैध धन को एकत्रित करने में प्रार्थी की भूमिका ने मुकदमे को उचित ठहराया। संज्ञान आदेश या कार्यवाही में कोई अवैधता नहीं पाई गई। प्रार्थना पत्र खारिज। (पैरा 24-25, 48-56)

प्रार्थना पत्र खारिज।

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929
2. जे. सेकर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2022) 7 एससीसी 370
3. पार्वती कोल्लूर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1975
4. न्यायनिर्णायक प्राधिकरण बनाम श्री अजय कुमार गुप्ता एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1269/2017
5. प्रवर्तन निदेशालय बनाम मेसर्स ओबुलापुरम माइनिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, आपराधिक अपील संख्या 1269/2017
6. ईएमटीए कोल लिमिटेड बनाम उप निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय, डब्ल्यूपी (सी) संख्या 3821/2022

7. हरीश फैबियानी एवं अन्य बनाम प्रवर्तन निदेशालय एवं अन्य, डब्ल्यूपी (सीआरएल) 408/2022
8. प्रकाश इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, 2023/डीएचसी/000481
9. नरेश गोयल बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 ऑलएमआर (क्रि) 1840
10. देबेंद्र कुमार पांडा बनाम भारत संघ, 2023 (243) एआईसी 451
11. मैनाक मेहता बनाम सीबीआई, आपराधिक रिट याचिका संख्या 2444/2022
12. राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम जगजीत सिंह, एआईआर 1989 एससी 598
13. जसबीर सिंह बनाम विपिन कुमार जग्गी एवं अन्य, (2001) 8 एससीसी 289
14. ए. देवेंद्रन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1997) 11 एससीसी 720
15. चांदमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 127
16. संजय कुमार अग्रवाल बनाम प्रवर्तन निदेशालय 2022 एससीसी ऑनलाइन झार 1248
17. पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य, (1998) 5 एससीसी 749
18. भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम मैसर्स भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड, (2001) 7 एससीसी 401
19. हरियाणा बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 सप्प (1) एससीसी 335
20. दीपेश चांडक बनाम भारत संघ, (2004) 8 एससीसी 511
21. एजे पेडरिस बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1954 एससी 616
22. महाराष्ट्र राज्य बनाम अबू सलेम अब्दुल कर्यूम अंसारी, (2010) 10 एससीसी 179
23. याकूब अब्दुल रजाक मेमन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 13 एससीसी 1
24. सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, (2013) 15 एससीसी 222
25. राधेश्याम केजरीवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2011) 3 एससीसी 581
26. बावा फकीर सिंह बनाम सम्राट, एआईआर 1938 पीसी 266
27. कैचवा कोम बनाम गिरीमल्लप्पा चन्नप्पा, एआईआर 1924 पीसी 209
28. वेल्लिकन्नु बनाम आर. सिंगापेरुमा, (2005) 6 एससीसी 222

29. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय,  
(2020) 13 एससीसी 791

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा  
पारित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री ध्रुव गुप्ता, प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव और प्रतिवादी-सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह के लिए श्री धर्मेन्द्र प्रताप सिंह को सुना गया।

2. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत योजित इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पी.एम.एल.ए., लखनऊ की अदालत में परिवाद वाद संख्या-121/2019 शीर्षक "प्रवर्तन निदेशालय बनाम यादव सिंह और अन्य" में दिनांक 08.08.2019 को पारित संज्ञान/सम्मन आदेश को चुनौती दी है, जिसमें आवेदक को धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के अंतर्गत अपराध के मुकदमे के लिए और उपरोक्त शिकायत मामले की सभी कार्यवाहियों के लिए बुलाया गया है, जिसमें दिनांक 04.02.2023 का आदेश भी शामिल है, जिसके अंतर्गत आवेदक के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है।

3. रिट याचिका संख्या-12396 (एम/बी) 2014 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.2015 के अनुसरण में, सीबीआई ने पांच व्यक्तियों-(1) यादव सिंह, तत्कालीन मुख्य अभियंता नोएडा, (2) श्रीमती कुसुमलता, यादव सिंह

की पत्नी, (3) सुश्री गरिमा भूषण, यादव सिंह की पुत्री, (4) सन्नी यादव, यादव सिंह का पुत्र और (5) राजेंद्र मनोचा, यादव सिंह के सहयोगी के रूप में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 109 सपठित 120-बी आईपीसी, सपठित धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(ई) के अंतर्गत अपराध करने के लिए 30.07.2015 को एफआईआर दर्ज की थी।

4. जांच के बाद सीबीआई ने आवेदक समेत 11 लोगों के विरुद्ध 26.09.2017 को आरोप पत्र दाखिल किया। आरोप पत्र में कहा गया है कि यादव सिंह के पास 231,541,514 रुपये की आय से अधिक संपत्ति पाई गई, जो उनके ज्ञात आय स्रोतों से 512.66% अधिक है। यह संपत्ति या तो उनके खुद के नाम पर है या उनके परिवार के सदस्यों के नाम पर है। आवेदक यादव सिंह का चार्टर्ड अकाउंटेंट था।

5. यादव सिंह के परिवार के सदस्यों ने कई कंपनियां और फर्म बनाई थीं और उन संस्थाओं में पाए गए अधिकांश व्यापारिक लेन-देन फर्जी थे और चार्टर्ड अकाउंटेंट की मदद से यादव सिंह के अवैध धन को सफेद धन में बदलने के लिए इस्तेमाल किया गया था। चार्टर्ड अकाउंटेंट ने अवैध धन को विभिन्न अन्य कंपनियों में निवेश करके और खातों में समायोजन प्रविष्टियां करके इसे इकट्ठा करने में मदद की।

6. आवेदक द्वारा योजित एक आवेदन पर, विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण

अधिनियम, सीबीआई, गाजियाबाद ने विशेष वाद संख्या-08/2017 में एक आदेश पारित किया है, जिसके अंतर्गत आवेदक को सरकारी गवाह बनाया गया है और उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ई) के साथ पठित धारा 109 सपठित 120-बी आईपीसी के अंतर्गत अपराधों के संबंध में आरसी संख्या डीएसटी/2015/ए/0003/सीबीआई/एसटीएफ/डीएलआई से उत्पन्न उपरोक्त मामले में क्षमा प्रदान की गई है।

7. आवेदक को क्षमा प्रदान करने वाले दिनांक 25.06.2017 के आदेश को सह-अभियुक्त यादव सिंह ने धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या-31498/2018 योजित करके चुनौती दी थी, जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 11.09.2018 के आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया था। उपरोक्त आदेश के विरुद्ध यादव सिंह द्वारा योजित एस.एल.पी. (सीआरएल.) संख्या- 9692/2018 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 07.12.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

8. सी.बी.आई. के मामले में आवेदक की मुख्य परीक्षा की रिकॉर्डिंग 18.09.2018 को शुरू हुई और यह 30.10.2018 को समाप्त हुई और उसके बाद उसकी प्रति-परीक्षा शुरू हुई। हालाँकि, उसकी प्रति-परीक्षा पूरी नहीं हो सकी क्योंकि सी.बी.आई. मुकदमे की कार्यवाही, श्रीमती कुसुमलता और एक अन्य द्वारा योजित रिट याचिका (आपराधिक) संख्या- 322/2018 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय

द्वारा पारित दिनांक 07.12.2018 के आदेश के माध्यम से स्थगित कर दी गई थी।

9. प्रवर्तन निदेशालय ने 23.10.2015 को ईसीआईआर/05/पीएमएलए/एलकेजेडओ/2015 पंजीकृत किया और यादव सिंह, उनकी पत्नी कुसुमलता और मेसर्स पीजीपी चैरिटेबल ट्रस्ट के विरुद्ध 23.12.2017 को परिवाद दर्ज की।

10. 28.12.2018 को प्र.नि. ने आवेदक सहित पांच व्यक्तियों के विरुद्ध एक अनुपूरक परिवाद दर्ज किया। परिवाद में कहा गया है कि आवेदक यादव सिंह का चार्टर्ड अकाउंटेंट था और उसने विभिन्न व्यक्तियों की व्यवस्था की थी, जिनके माध्यम से अवैध धन को यादव सिंह और कुसुमलता के स्वामित्व वाली कंपनियों में व्यापार आय, रेफरल कमीशन और असुरक्षित ऋण के रूप में समायोजन प्रविष्टियां करके भेजा गया था, जिसका उपयोग बाद में संपत्तियों के निर्माण और खरीद के लिए किया गया था।

11. 29.04.2019 को, प्र.नि. ने आवेदक को धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 50 की उप-धारा (2) और (3) के अंतर्गत समन जारी किया, जिसमें उसे 13.05.2019 को उपस्थित होने का निर्देश दिया गया और 27.05.2019 को एक और समन जारी किया गया, जिसमें उसे 11.06.2019 को उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। इसके बाद आवेदक के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया गया।

12. 04.02.2023 को, आवेदक ने ट्रायल कोर्ट में पेश हुए बिना गैर-जमानती वारंट को वापस लेने के लिए एक आवेदन योजित किया और उसी तारीख को आवेदन खारिज कर दिया गया।

13. आवेदक ने इस आधार पर धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही को रद्द करने की मांग की है कि उसे सरकारी गवाह बनाया गया है और अनुसूचित अपराध में उसे क्षमादान दिया गया है। अब, वह अनुसूचित अपराध में आरोपी नहीं है। धन शोधन निवारण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही उस व्यक्ति के विरुद्ध जारी नहीं रह सकती है, जो अनुसूचित अपराध में आरोपी है और अनुसूचित अपराध में क्षमादान दिए जाने के बाद, उस पर पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध के लिए भी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

14. आवेदन के समर्थन में योजित हलफनामे में इन निर्णयों का संदर्भ है-**विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929, जे. सेकर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2022) 2 एससीसी 370, पार्वती कोल्लूर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, आपराधिक अपील संख्या 1254/2022** 16.08.2022 को निर्णीत, **न्याय निर्णायक प्राधिकरण बनाम श्री अजय कुमार गुप्ता और अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1269/2017** 02.12.2022 को निर्णीत, **प्रकाश इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, रिट याचिका (सी) संख्या 13361/2018** में दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय दिनांक 24.01.2023, **जसबीर सिंह**

**बनाम विपिन कुमार जग्गी और अन्य, (2001) 8 एससीसी 289, ए. देवेंद्रन बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 1988 एससी 2821, पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, एआईआर 1998 एससी 128, चांदमल @ चंदनमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या 359/2023 07.02.2023 को निर्णीत, भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम मेसर्स भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड लिमिटेड (2001) 7 एससीसी 401, सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, 2022 एससीसी ऑनलाइन 825 और हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल और अन्य, 1992 सप. (1) एससीसी 335।**

15. प्र.नि. ने एक प्रति-शपथपत्र योजित किया है जिसमें कहा गया है कि पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध, एक अलग अपराध है और आवेदक को उपरोक्त अपराध के संबंध में क्षमा नहीं दी गई है। प्रति-शपथपत्र में **विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929, श्याम सुंदर सिंघवी बनाम भारत संघ, आपराधिक रिट याचिका संख्या 273/2019** जो एक अज्ञात तिथि को राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत है, **नीरज उपाध्याय बनाम भारत संघ, डब्ल्यू.पी. संख्या 5916/2019** इस न्यायालय द्वारा एक अज्ञात तिथि को निर्णीत, **वीजीएन डेवलपर्स बनाम उप निदेशक, सीआरएल.ओ.पी. संख्या 9796/2019**, एक अज्ञात न्यायालय द्वारा एक अज्ञात तिथि को निर्णीत, **भारत संघ बनाम सुशील कुमार कटियार**, एक अज्ञात न्यायालय द्वारा एक अज्ञात तिथि पर निर्णीत, के निर्णयों का संदर्भ दिया गया है, जिनमें यह

निर्धारित किया गया है कि पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध एक विशिष्ट अपराध है।

16. आवेदन के समर्थन में योजित शपथपत्र में **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) के संदर्भ के उत्तर में, प्रति-शपथपत्र में कहा गया है कि जमानत आवेदन पर केस-टू-केस आधार पर विचार किया जाना चाहिए और इस संबंध में, प्रति-शपथपत्र में **पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2020) 13 एससीसी 791** का भी संदर्भ दिया गया है।

17. प्रति-शपथपत्र में धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति के दायरे के बारे में **बिहार राज्य बनाम के. जे. डी. सिंह और आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य** के मामलों में दिए गए फैसलों का उल्लेख किया गया है, लेकिन न तो उनके उद्धरणों का उल्लेख किया गया है और न ही निर्णयों के किसी अन्य विवरण का खुलासा किया गया है और इन निर्णयों की प्रतियां भी न्यायालय को नहीं दी गई हैं। नज़ीरों का संदर्भ देने का यह लापरवाही भरा तरीका न्यायालय द्वारा सराहा नहीं जा सकता।

18. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 का अध्याय-4 "शपथपत्र और शपथ आयुक्तों" से संबंधित है और अध्याय-4 का नियम 8 यह प्रावधान करता है कि *"शपथपत्र में कोई ऐसा कथन नहीं होना चाहिए, जो राय या तर्क की अभिव्यक्ति की प्रकृति का हो"* वर्तमान मामले में योजित शपथपत्र और प्रति-शपथपत्र, कथनों के समर्थन में तर्कों और नज़ीरों से भरा हुआ है, जो निश्चित रूप से पूर्वोक्त नियम 8 का उल्लंघन है।

19. इसके अलावा, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम के अध्याय-4 का नियम 12 यह प्रावधान करता है कि *"अंतर्वर्ती आवेदनों को छोड़कर, शपथपत्र ऐसे तथ्य तक सीमित होगा जिसे अभिसाक्षी अपने ज्ञान से साबित करने में सक्षम हैं"*

20. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन निश्चित रूप से एक अंतर्वर्ती आवेदन नहीं है और वर्तमान मामले में योजित शपथपत्र और प्रति-शपथपत्र संबंधित शपथपत्रों के अभिसाक्षी के व्यक्तिगत ज्ञान के तथ्यों तक ही सीमित होना चाहिए था।

21. यद्यपि उपर्युक्त नियमों का सामान्य रूप से पालन किया जा रहा है, कुछ मामलों में एक नई उभरती हुई प्रथा देखी गई है, जहाँ अधिवक्ता शपथपत्रों और प्रति-शपथपत्रों में कई केस-लॉ का उल्लेख करते हैं, हालाँकि उच्च न्यायालय के नियमों में ऐसा करना प्रतिबंधित है। केस-लॉ को शपथपत्रों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुतियाँ देते समय, निर्णय के अनुपात निर्णय वाले विशिष्ट अंश के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। न्यायालयों के समक्ष योजित शपथपत्रों में केस-लॉ का उल्लेख करने की प्रथा, और वह भी बिना किसी उद्धरण या अन्य पूर्ण विवरण जैसे न्यायालय का नाम, केस संख्या और निर्णय की तिथि, और निर्णय के अनुपात निर्णय वाले प्रासंगिक पैराग्राफ का उल्लेख किए बिना, न्यायालय के समय की बर्बादी होती है। ऐसी प्रथा निंदनीय है और इसे रोका जाना चाहिए।



22. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि आवेदक को क्षमा प्रदान करने का परिणाम यह है कि वह अनुसूचित अपराध में दोषमुक्त हो गया है और इसलिए, उस पर पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

23. इसके विपरीत, प्र.नि. के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि आवेदक को विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषमुक्त नहीं किया गया है, बल्कि वह सरकारी गवाह बन गया है और उसे इस आधार पर क्षमा प्रदान की गई है, जो कि धारा 306 सीआरपीसी में उल्लिखित कुछ शर्तों के अधीन है, अनुसूचित अपराध में क्षमा प्रदान करने से पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

24. **विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

*“253... यदि अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि में नामित व्यक्ति को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उन्मोचन, दोषमुक्ति के आदेश के कारण या उसके विरुद्ध आपराधिक मामले (अनुसूचित अपराध) को रद्द करने के कारण अंततः दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो ऐसे व्यक्ति या उसके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध उक्त अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति के*

*संबंध में धन शोधन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।*

\* \* \*

269. 2002 अधिनियम की धारा 3 की साधारण भाषा से यह स्पष्ट है कि धन शोधन का अपराध अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि के संबंध में एक स्वतंत्र अपराध है, जो अनुसूचित अपराध से संबंधित या उसके संबंध में आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त या प्राप्त किया गया था...”

(बल प्रदत्त)

25. **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) में दर्ज निष्कर्षों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि: -

“467. उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में, अब हम निम्नलिखित शब्दों में मुद्दे के मौलिक बिंदुओं पर अपने निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

- \* \* \*

(v) ...

(डी) 2002 अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत अपराध अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के अवैध लाभ पर निर्भर है। यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो मनी-लॉन्ड्रिंग का अपराध बनता है। 2002 अधिनियम के अंतर्गत अधिकारी किसी व्यक्ति पर काल्पनिक आधार पर या इस धारणा पर मुकदमा

नहीं चला सकते कि अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि यह अधिकार क्षेत्र वाली पुलिस के साथ पंजीकृत न हो और/या सक्षम फोरम के समक्ष आपराधिक शिकायत सहित जांच/परीक्षण लंबित न हो। यदि व्यक्ति को अनुसूचित अपराध से अंततः बरी/उन्मोचित कर दिया जाता है या उसके विरुद्ध आपराधिक मामला सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो उसके विरुद्ध या उसके माध्यम से उक्त अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति होने के कारण ऐसी संपत्ति का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध मनी-लॉन्ड्रिंग का कोई अपराध नहीं हो सकता है।

(बल प्रदत्त)

26. तर्कों के समाप्त होने के बाद, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने 15 निर्णयों की फोटोकॉपी का संकलन प्रस्तुत किया है, और उन्होंने अपने लिखित तर्कों के साथ दो निर्णयों की प्रतियां प्रस्तुत की हैं और मैं निम्नलिखित पैराग्राफों में उन निर्णयों का विवेचन करने के लिए आगे बढ़ता हूँ: -

27. दीपेश चांडक बनाम भारत संघ, (2004)

8 एससीसी 511 में, अपीलकर्ता बिहार के पशुपालन विभाग में चारा घोटाले से संबंधित कई मामलों में एक आरोपी था, लेकिन विचारण न्यायाधीश ने 28.08.1998 को एक आदेश पारित किया, जिसमें उसे इस शर्त पर क्षमा प्रदान की गई कि वह पूर्ण और संपूर्ण

खुलासा करे। आरोपी द्वारा दिए गए बयान के आधार पर, आयकर विभाग ने उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया कि उसके विरुद्ध आयकर अधिनियम की धारा 277 और 278 के अंतर्गत आयकर का गलत रिटर्न दाखिल करने के लिए मुकदमा क्यों न चलाया जाए। अपीलकर्ता ने कहा कि उसे सीआरपीसी की धारा 306 के अंतर्गत क्षमा प्रदान की गई है और इस प्रकार कारण बताओ नोटिस पोषणीय नहीं था। आयकर आयुक्त ने इस तर्क को खारिज कर दिया और पाया कि क्षमा केवल आईपीसी के अंतर्गत अपराधों तक ही सीमित थी। तदनुसार, आयकर अधिनियम की धारा 277 और 278 के अंतर्गत परिवाद वाद दर्ज किया गया और आर्थिक अपराध न्यायालय, पटना ने संज्ञान लिया और समन जारी किया। अपीलकर्ता ने इस परिवाद को रद्द करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत याचिका योजित की। उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर याचिका को खारिज कर दिया कि उस समय तक क्षमा की शर्त पूरी नहीं हुई थीं और जब तक अपीलकर्ता द्वारा पूर्ण साक्ष्य नहीं दिए जाते और सभी मामलों की सुनवाई समाप्त नहीं हो जाती, तब तक वह एक आरोपी बना रहेगा और इसलिए अभियोजन से प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

“13. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं था कि जब तक अपीलकर्ता द्वारा साक्ष्य नहीं दिए जाते, तब तक क्षमा लागू नहीं हो सकती। हालांकि, तथ्य यह है कि धारा

306 सीआरपीसी के अंतर्गत उस अपराध के संबंध में क्षमा प्रदान की जाती है, जिसके लिए उसे आरोपी के रूप में आरोपित किया गया था। बेशक, दंड संहिता, 1860 के अंतर्गत अपराध के संबंध में ही क्षमा प्रदान करना आवश्यक नहीं है। किसी व्यक्ति पर उसी लेनदेन या कार्य के संबंध में दंड संहिता, 1860 और किसी अन्य अधिनियम जैसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आरोप लगाया जा सकता है। उस लेनदेन से संबंधित सभी अपराधों के संबंध में क्षमा लागू होगी। हालांकि, जिस अपराध के संबंध में क्षमा प्रदान की गई है, उससे पूरी तरह असंबंधित लेनदेन या कार्य के संबंध में क्षमा लागू नहीं होती है। इस मामले में, धन के दुरुपयोग के अपराध के लिए क्षमा प्रदान की गई है। इस अपराध का अपीलकर्ता द्वारा गलत रिटर्न दाखिल करने से कोई लेना-देना नहीं है। धारा 277 और 278 के अंतर्गत अभियोजन गलत रिटर्न दाखिल करने और गलत घोषणा करने के संबंध में है। जो क्षमा प्रदान की गई है, वह उन अपराधों को कवर नहीं करेगी। (बल प्रदत्त)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया।

28. ए.जे. पीरिस बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1954 एससी 616 में यह निर्धारित किया गया कि जिस क्षण अभियुक्त को क्षमा प्रदान की जाती है, उसे दोषमुक्त मान लिया

जाना चाहिए, जिसके बाद वह अभियुक्त नहीं रह जाता और गवाह बन जाता है।

29. प्रकाश इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, 2023/डीएचसी/000481 = 298 (2023) डीएलटी 444 में निहित प्रश्नों को निर्णय के प्रथम प्रस्तर में इस प्रकार बताया गया था:-

“1. ये दोनों रिट याचिकाएं प्रवर्तन निदेशालय की शक्तियों से संबंधित एक महत्वपूर्ण सवाल उठाती हैं 1 धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 2 की धारा 5 के अंतर्गत संपत्तियों को अनंतिम रूप से कुर्क करने की, भले ही किसी स्वतंत्र कानून के अंतर्गत काम करने वाली सक्षम एजेंसी द्वारा पूर्ववर्ती अपराध से संबंधित कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई हो और जिसके संदर्भ में अनुसूचित अपराध बनाया गया हो। सहायक और फिर भी समान रूप से मौलिक मुद्दा जिसका उत्तर देने के लिए न्यायालय को कहा गया है कि क्या ईडी को अधिनियम की धारा 5 में परिकल्पित उपायों को लागू करने का अधिकार क्षेत्र केवल इस राय पर माना जा सकता है। प्रस्तुत प्रश्न उन शक्तियों के सहायक मुद्दे को भी उठाएंगे जो ईडी को धन शोधन के अपराध की जांच करते समय अधिनियम से प्राप्त होने के लिए मान्यता दी जा सकती है।”

30. वर्तमान मामले में यह तथ्य नहीं है कि आवेदक के विरुद्ध पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत

कार्यवाही उसके विरुद्ध शुरू किए गए किसी अनुसूचित अपराध के लिए कोई कार्यवाही किए बिना शुरू की गई है। इसलिए, **प्रकाश इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) आवेदक के लिए कोई लाभ नहीं है।

31. **जे. सेकर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2022) 7 एससीसी 370** में, आयकर विभाग ने 106,98,89,800 रुपये की मुद्रा और 128.495 किलोग्राम सोना जब्त किया था। सीबीआई ने धारा 120-बी के साथ धारा 409, 420 आईपीसी और धारा 13(2) के साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(सी) और 13(1)(डी) के अंतर्गत अपराधों के लिए एफआईआर दर्ज की। प्र.निदे. ने ईसीआईआर दर्ज की। सीबीआई ने समान तथ्यों के आधार पर अनुसूचित अपराधों के संबंध में 3 मामले दर्ज किए थे, लेकिन जांच के बाद, सीबीआई ने मुख्य मामले में एक क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की और उक्त रिपोर्ट को ट्रायल कोर्ट ने स्वीकार कर लिया। अन्य दो एफआईआर को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। आयकर विभाग ने भी तलाशी के आधार पर शुरू की गई जांच को बंद कर दिया था। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि जब सीबीआई ने क्लोजर रिपोर्ट दाखिल की थी, तो अपीलकर्ता पर पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था।

32. **जे. सेकर** (उपरोक्त) में दिए गए फैसले के पैरा 20 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम केजरीवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2011) 3 एससीसी 581** के पूर्व निर्णय

पर भरोसा किया, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि: -

“(v) प्रवर्तन निदेशालय द्वारा की गई न्यायिक कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 20(2) या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 300 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा अभियोजन नहीं है;

(vi) समान उल्लंघन के लिए मुकदमे का सामना कर रहे व्यक्ति के पक्ष में न्यायिक कार्यवाही में निष्कर्ष, निष्कर्ष की प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि न्यायिक कार्यवाही में दोषमुक्ति तकनीकी आधार पर है और गुण-दोष के आधार पर नहीं है, तो अभियोजन जारी रह सकता है; तथा

(vii) दोषमुक्ति के मामले में, हालांकि, जहां आरोप को बिल्कुल भी टिकने लायक नहीं पाया जाता है और व्यक्ति को निर्दोष माना जाता है, तथ्यों और परिस्थितियों के एक ही सेट पर आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, अंतर्निहित सिद्धांत आपराधिक मामलों में सबूत के उच्च मानक हैं।’

\* \* \*

39. इसलिए, हमारी राय में, यह तय करना मानदंड होगा कि क्या न्यायनिर्णयन कार्यवाही में आरोप और अभियोजन के लिए कार्यवाही समान है

और न्यायनिर्णयन कार्यवाही में संबंधित व्यक्ति को दोषमुक्त करना गुण-दोष के आधार पर है। यदि यह गुण-दोष के आधार पर पाया जाता है कि न्यायनिर्णयन कार्यवाही में अधिनियम के प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं है, तो संबंधित व्यक्ति का मुकदमा अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।'

(बल प्रदत्त)

**लिमिटेड बनाम भारत संघ,** 2023/डीएचसी/000481 = 298 (2023) डीएलटी 444, **नरेश गोयल बनाम प्रवर्तन निदेशालय** 2023 एएलएलएमआर (सीआरआइ.) 1840 तथा **देवेन्द्र कुमार पांडा बनाम भारत संघ,** 2023 (243) एआइसी 451 में आरोपी व्यक्तियों को अनुसूचित अपराध से बरी कर दिया गया था, इसलिए उन्हें पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध के आरोप से मुक्त कर दिया गया।

33. **पार्वती कोल्लूर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1975** में, अपीलकर्ता को अनुसूचित अपराध के मुकदमे में बरी कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुसूचित अपराध के लिए बरी होने के बाद, अपीलकर्ता अब किसी भी अनुसूचित अपराध में आरोपी नहीं रह गया है।

34. **एडजुडिकेटिंग अथॉरिटी बनाम श्री अजय कुमार गुप्ता और अन्य** में, आपराधिक अपील संख्या 1269/2017 का फैसला 02.12.2022 को हुआ, **प्रवर्तन निदेशालय बनाम मेसर्स ओबुलपुरम माइनिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड,** आपराधिक अपील संख्या 1269/2017 का फैसला 02.12.2022 को हुआ, **ईएमटीए कोल लिमिटेड बनाम उप निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय,** डब्ल्यूपी (सी) संख्या 3821/2022 दिनांक 10.01.2023 को निर्णीत, **हरीश फैबियानी एवं अन्य बनाम प्रवर्तन निदेशालय एवं अन्य,** डब्ल्यू.पी. (सीआरएल.) 408/2022 तथा अन्य संबंधित मामले दिनांक 26.09.2022 को निर्णीत, **प्रकाश इंडस्ट्रीज**

35. **मैनाक मेहता बनाम सीबीआई,** आपराधिक रिट याचिका संख्या 2444/2022 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.07.2022 मात्र एक अंतरिम आदेश है और उक्त अंतरिम आदेश के माध्यम से कुछ भी तय नहीं किया गया है और इसलिए, वर्तमान मामले को तय करने के लिए उक्त अंतरिम आदेश की कोई प्रासंगिकता नहीं है।

36. **राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम जगजीत सिंह** एआईआर 1989 एससी 598 और **जसबीर सिंह बनाम विपिन कुमार जग्गी एवं अन्य** (2011) 8 एससीसी 279 विवादित बिंदु से निपटते नहीं हैं।

37. **ए. देवेन्द्रन बनाम तमिलनाडु राज्य,** (1997) 11 एससीसी 720 में विचाराधीन प्रश्न थे (1) क्या अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप को पुष्ट करने के लिए अनुमोदक के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है?, (2) क्या क्षमादान के पश्चात अनुमोदक की गवाह के रूप में जांच न करना तथा इस प्रकार धारा 306 की उपधारा 4(ए) का अनुपालन न करना

पूरी कार्यवाही को दूषित करता है तथा (3) क्या अभियोजन पक्ष के मामले को अनुमोदक के साक्ष्य को विचार से बाहर रखते हुए उचित संदेह से परे सिद्ध माना जा सकता है। ए. देवेन्द्रन (उपरोक्त) में ऐसा कोई मुद्दा नहीं था, जो वर्तमान मामले के निर्णय के लिए प्रासंगिक होता।

38. **चांदमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 127 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि "क्या आरोप पत्र योजित किए जाने और उस अवधि के दौरान अपीलकर्ताओं द्वारा सहयोग किए जाने पर भी व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि एक अधिवक्ता के माध्यम से न्यायालय में पेश होने के बाद, गैर-जमानती वारंट जारी करने की ट्रायल कोर्ट की कार्यवाही कुछ ऐसी है जिसे बरकरार रखा जा सकता है।" अभियुक्त के सरकारी गवाह बन जाने के परिणामस्वरूप अनुसूचित अपराध में क्षमादान के प्रभाव के बारे में कोई मुद्दा नहीं था। इसलिए, उपरोक्त मामला वर्तमान मामले के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं है।

39. **संजय कुमार अग्रवाल बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, 2022 एससीसी ऑनलाइन झारखण्ड 1248 में, झारखंड उच्च न्यायालय, रांची, धारा 205 सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन को खारिज करने वाले ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के लिए योजित याचिका का निस्तारण कर रहा था। याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने के लिए, और अनुसूचित अपराध में क्षमादान के प्रभाव के बारे में मुद्दा इसमें

शामिल नहीं था। इसलिए, उपरोक्त मामला भी वर्तमान मामले के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं है।

40. **पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य**, (1998) 5 एससीसी 749 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि "आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को स्वाभाविक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को शिकायत में अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए केवल दो गवाहों को लाना होगा, तभी आपराधिक कानून लागू हो सकता है। अभियुक्त को समन करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उन्होंने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून पर अपना बुद्धि प्रयोग किया है।"

41. **भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम मेसर्स भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड लिमिटेड**, (2001) 7 एससीसी 401, निगोशिएबल इंडस्ट्रिज एक्ट की धारा 138 के अंतर्गत एक शिकायत से उत्पन्न मामला था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया प्रश्न यह था कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की व्यक्तिगत उपस्थिति को छूट दी जा सकती है।

42. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आवेदन के समर्थन में योजित हलफनामे में संदर्भित या संकलन के एक भाग के रूप में दिए गए कई निर्णय बिल्कुल अप्रासंगिक हैं

और उन निर्णयों को प्रदान करके, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अदालत का कीमती समय बर्बाद किया है।

43. **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल और अन्य, 1992** अनुपूरक (1) एससीसी 335 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत हस्तक्षेप के दायरे को स्पष्ट किया है और वर्तमान मामले में इस बिंदु के बारे में कोई विवाद नहीं है।

44. अनुसूचित अपराध में बरी होने के प्रभाव के मुद्दे पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, जिनमें **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) भी शामिल है, द्वारा संदर्भित कई निर्णयों में यह निर्धारित किया गया है कि यदि अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि में नामित व्यक्ति को 'उसके खिलाफ आपराधिक मामले (अनुसूचित अपराध) को समाप्त करने या उन्मोचन के आदेश के कारण सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से दोषमुक्त कर दिया जाता है', तो ऐसे व्यक्ति या उसके माध्यम से उक्त अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति के संबंध में दावा करने वाले व्यक्ति के खिलाफ धन शोधन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। वर्तमान मामले में आवेदक को सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा उन्मोचन के आदेश, दोषमुक्त होने या उसके खिलाफ अनुसूचित अपराध को समाप्त करने के कारण अंतिम रूप से दोषमुक्त नहीं किया गया है।

45. **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी.एम.एल.ए.

के अंतर्गत कार्यवाही पर अनुसूचित अपराध के संबंध में धारा 306 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षमा प्रदान करने के प्रभाव के प्रश्न पर विचार नहीं किया। यह सुस्थापित सिद्धांत है कि एक निर्णय एक प्राधिकार है, जिसके लिए वह निर्णय लेता है और न कि उससे क्या तार्किक रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा अंतर एक निर्णय के दृष्टांत मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है।

46. उपर्युक्त सिद्धांत के प्रकाश में, इस न्यायालय को यह विचार करना है कि क्या धारा 306 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षमा प्रदान करना भी 'अंततः सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा निर्वहन, बरी करने या उसके विरुद्ध अनुसूचित अपराध को रद्द करने के आदेश के कारण दोषमुक्त' के दायरे में आएगा।

47. धारा 306 दंड प्रक्रिया संहिता, जो क्षमा प्रदान करने के मुद्दे से संबंधित है, इस प्रकार प्रावधानित करती है: -

**306. सह-अपराधी को क्षमा प्रदान करना।-** (1) किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य प्राप्त करने की दृष्टि से, जो किसी ऐसे अपराध से प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः संबंधित या उससे परिचित माना जाता है, जिस पर यह धारा लागू होती है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट अपराध की जांच या अन्वेषण या विचारण के किसी भी चरण में, और अपराध की जांच या विचारण करने

वाला प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, जांच या विचारण के किसी भी चरण में, ऐसे व्यक्ति को इस शर्त पर क्षमा प्रदान कर सकता है कि वह अपराध के संबंध में अपने ज्ञान में सभी परिस्थितियों का और अपराध करने में मुख्य या दुष्प्रेरक के रूप में संबंधित प्रत्येक अन्य व्यक्ति के संबंध में, जो उसके ज्ञान में है, पूर्ण और सत्य प्रकटीकरण करे। \* \* \*

**(4) उपधारा (1) के अधीन क्षमादान स्वीकार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की -**

क. अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट के न्यायालय में तथा उसके पश्चातवर्ती परीक्षण में, यदि कोई हो, साक्षी के रूप में जांच की जाएगी;

**(ख) जब तक कि वह पहले से जमानत पर न हो, परीक्षण की समाप्ति तक हिरासत में रखा जाएगा।**

(बल प्रदत्त)

48. अभियुक्त को उन्मोचित करने का आदेश पारित किया जाता है या उसके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही रद्द कर दी जाती है, जब आरोपों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध कोई विचारणीय अपराध नहीं बनता है तथा दोषमुक्त करने का आदेश तब पारित किया जाता है, जब अभियुक्त परीक्षण का सामना करने के पश्चात भी दोषी सिद्ध नहीं हो पाता है। दूसरी ओर, क्षमा उस व्यक्ति को दी जाती है, जिसके बारे में माना जाता है कि वह अपराध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संलिप्त

था या उससे परिचित था। क्षमा केवल उन व्यक्तियों को दी जाती है, जो अपराध करने में संलिप्त थे, न कि ऐसे व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है या कोई मामला स्थापित नहीं किया जा सका है। इसलिए, एक व्यक्ति जिसे अनुसूचित अपराध में धारा 306 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षमा प्रदान की जाती है, वह ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जिसे विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) में उल्लिखित 'उसके विरुद्ध निर्वहन, बरी करने या अनुसूचित अपराध को रद्द करने के आदेश के कारण सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा अंततः दोषमुक्त कर दिया गया हो', जिसके विरुद्ध पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत कोई कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है।

49. **महाराष्ट्र राज्य बनाम अबू सलेम अब्दुल कय्यूम अंसारी**, (2010) 10 एससीसी 179 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

**“15. एक साथी को क्षमा प्रदान करने का हितकर सिद्धांत एक गंभीर अपराध में सच्चाई को उजागर करना है ताकि अपराध करने में संबंधित अन्य आरोपी व्यक्तियों के अपराध को सामने लाया जा सके। इस न्यायालय द्वारा बार-बार कहा गया है कि धारा 306 का उद्देश्य ऐसे मामलों में क्षमा प्रदान करना है, जहां कई व्यक्तियों द्वारा जघन्य अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया हो, ताकि क्षमा प्रदान किए गए व्यक्ति के साक्ष्य की सहायता से अपराध को बाकी लोगों के**



समक्ष लाया जा सके। धारा 306 सीआरपीसी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट को किसी ऐसे व्यक्ति को क्षमा प्रदान करने का अधिकार देती है, जिसके बारे में माना जाता है कि वह किसी अपराध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है या उससे परिचित है, जिस पर यह धारा लागू होती है, अपराध की जांच या पूछताछ या परीक्षण के किसी भी चरण में, इस शर्त पर कि वह अपराध से संबंधित अपनी जानकारी में सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सही खुलासा करे। \* \* \*

17. एक साथी जिसे धारा 306 या 307 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षमा प्रदान की गई है, उसे अभियोजन से संरक्षण प्राप्त है। जब उसे अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में बुलाया जाता है, तो उसे अपराध के संबंध में अपने ज्ञान के भीतर सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सही खुलासा करने की शर्त का पालन करना होगा और अपराध के कारित होने में संबंधित हर अन्य व्यक्ति को, चाहे वह मुख्य हो या दुष्प्रेरक, और यदि वह अपराध के कारित होने के संबंध में अपने ज्ञान के भीतर किसी भी महत्वपूर्ण और आवश्यक बात को छिपाता है या उस शर्त का पालन करने में विफल रहता है या इनकार करता है जिस पर निविदा की गई थी और सरकारी अभियोजक धारा 308 सीआरपीसी के

अंतर्गत उस प्रभाव के लिए अपना प्रमाण पत्र देता है, तो उसे दिया गया संरक्षण हटा लिया जाता है।

(बल प्रदत्त)

50. याकूब अब्दुल रजाक मेमन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 13 एससीसी 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 306 सीआरपीसी के अधिनियमन के पीछे विधायी मंशा को इस प्रकार प्रकट किया: -

“312. धारा 306 का उद्देश्य उन मामलों में क्षमा प्रदान करना है जहां कई व्यक्तियों द्वारा गंभीर अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया है ताकि क्षमा किए गए व्यक्ति के साक्ष्य की सहायता से अपराध को साबित किया जा सके। इसलिए, इस प्रावधान का विधायी उद्देश्य अपराध से संबंधित सभी परिस्थितियों के संबंध में, जो उसके ज्ञान में हैं, और संबंधित प्रत्येक अन्य व्यक्ति के संबंध में एक साथी के साक्ष्य को सुरक्षित करना है।”

(बल प्रदत्त)

51. किसी सरकारी गवाह को क्षमादान देने की नीति निर्धारित करने के पीछे विधायी मंशा को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, (2013) 15 एससीसी 222 में स्पष्ट किया था, जो दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश के विरुद्ध योजित की गई अपील थी, जिसके द्वारा उसने विशेष न्यायाधीश के उस आदेश को खारिज

कर दिया था, जिसमें प्रतिवादी 2 को सीआरपीसी की धारा 306 के अंतर्गत क्षमादान दिया गया था और उसे उस मामले में सरकारी गवाह बनाया गया था, जिसमें प्रतिवादी 1 भी एक आरोपी था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया कि:

“33. उपरोक्त के मद्देनजर और बावा फकीर सिंह एआईआर 1938 पीसी 266 में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर विचार करते हुए, हम इस मत के हैं कि अभियुक्त द्वारा पूछे जाने पर और राज्य द्वारा विधिवत समर्थन किए जाने पर धारा 306 सीआरपीसी के अंतर्गत एक अदालत द्वारा क्षमा प्रदान करना एक न्यायिक कार्य है और उक्त कार्य करते समय, मजिस्ट्रेट राज्य की नीति को ध्यान में रखते हुए क्षमा प्रदान करने के परिणामों पर विचार करने के लिए बाध्य है और कुछ हद तक अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में क्षमा मांगने वाले व्यक्ति की दोषीता की तुलना करना है।

34. उदाहरण के लिए, हम एक ऐसा मामला लेते हैं जहां एक व्यक्ति अपने पूरे परिवार यानी पिता और भाइयों को मारने के लिए एक पेशेवर अपराधी को किराए पर लेता है और उक्त मिशन में सफल होता है। बाद में, अगर वह सरकारी गवाह बन जाता है, तो साजिश को अंजाम देने के लिए पैसे पाने वाले भाड़े के व्यक्ति को

फांसी की सजा हो जाती है, जबकि भाड़े के व्यक्ति को काम पर रखने वाला मुख्य आरोपी न केवल आपराधिक मुकदमे में उत्तरदायित्व से बच जाता है, बल्कि अपने परिवार की पूरी संपत्ति का वारिस बनने में भी सफल हो जाता है, जो कि उत्तराधिकार आदि के कानून के मद्देनजर अनुमेय नहीं है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अंतर्गत, हत्यारा उत्तराधिकार के लिए अयोग्य है। प्रावधान इस प्रकार है:

“25. हत्यारा अयोग्य-कोई व्यक्ति जो हत्या करता है या हत्या के लिए उकसाता है, वह मारे गए व्यक्ति की संपत्ति, या उस उत्तराधिकार को आगे बढ़ाने वाली किसी अन्य संपत्ति के उत्तराधिकार से अयोग्य होगा, जिसके लिए उसने हत्या की है या हत्या के लिए उकसाया है।”

यह धारा उस व्यक्ति को उत्तराधिकार से अयोग्य ठहराने से संबंधित है, जिसने हत्या की हो या हत्या के लिए उकसाया हो। इस धारा का प्रावधान हिंदू कानून को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत नियम को पाठ के आधार पर नहीं, बल्कि न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांत पर लागू किया जाता है। (केंचवा कोम बनाम गिरिमल्लप्पा चन्नप्पा एआईआर 1924 पीसी 209 देखें) यह नियम इस न्यायालय सहित

सभी न्यायालयों द्वारा लगातार लागू किया गया है, जैसा कि वेलिकन्नु बनाम आर. सिंगापुर (2005) 6 एससीसी 222 के फैसले से स्पष्ट है।

35. एक बार जब अभियुक्त को उन्मुक्ति प्रदान कर दी जाती है और अभियुक्त को सरकारी गवाह बना दिया जाता है, तो वह उन्मोचित हो जाता है, जिसके बाद वह अभियुक्त नहीं रह जाता और उससे केवल गवाह के रूप में पूछताछ की जाएगी, जब तक कि पूर्ण सत्य का खुलासा करने की शर्त के उल्लंघन पर उक्त विशेषाधिकार रद्द नहीं कर दिया जाता। [देखें राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम जगजीत सिंह और जसबीर सिंह (उपरोक्त)]।]

36. इस प्रकार, 1956 अधिनियम की धारा 25 को उद्धृत करते हुए ऊपर दिया गया उदाहरण कानून की नीति को दर्शाता है और न्यायालय को आदेश पारित करते समय ऐसी स्थितियों के प्रति सजग होना चाहिए अन्यथा परिणाम बहुत ही भयानक हो सकते हैं।

(बल प्रदत्त)

52. धारा 306 सीआरपीसी में प्रयुक्त शब्द "ऐसे व्यक्ति को इस शर्त पर क्षमा प्रदान कर सकता है कि वह अपराध के संबंध में अपने ज्ञान के भीतर सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सही खुलासा करे" उनके दायरे में अपराध की

आय से जुड़ी प्रक्रियाओं या गतिविधियों के बारे में सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सही खुलासा भी शामिल होगा, अर्थात्-(ए) छिपाना; या (बी) कब्जा; या (सी) अधिग्रहण; या (डी) उपयोग; या (ई) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; या (एफ) बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना, क्योंकि ये भी अनुसूचित अपराध से संबंधित तथ्य हैं। धारा 306, सीआरपीसी की उपरोक्त व्याख्या सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उदाहरण द्वारा समर्थित है।

53. इसके अलावा, धारा 308, सीआरपीसी में प्रावधान है कि: -

"308. क्षमा की शर्तों का पालन न करने वाले व्यक्ति का परीक्षण।-(1) जहां, किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में जिसने धारा 306 या धारा 307 के अंतर्गत किए गए क्षमादान को स्वीकार कर लिया है, लोक अभियोजक यह प्रमाणित करता है कि उसकी राय में ऐसे व्यक्ति ने जानबूझकर कोई आवश्यक बात छिपाकर या मिथ्या साक्ष्य देकर, उस शर्त का पालन नहीं किया है जिस पर क्षमादान किया गया था, ऐसे व्यक्ति का उस अपराध के लिए परीक्षण किया जा सकता है जिसके संबंध में क्षमादान दिया गया था या किसी अन्य अपराध के लिए जिसके लिए वह उसी मामले के संबंध में दोषी प्रतीत होता है, और मिथ्या साक्ष्य देने के अपराध के लिए भी:...

(बल प्रदत्त)

54. धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 46 में प्रावधान है कि विशेष न्यायालय के समक्ष अभियोजन का संचालन करने वाले व्यक्ति लोक अभियोजक माने जाएंगे। हालांकि, विशेष न्यायालय के समक्ष पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध का परीक्षण करने वाला लोक अभियोजक अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रियाओं या गतिविधियों से संबंधित तथ्यों को छिपाने के बारे में आपतियां दर्ज नहीं कर सकता है, अर्थात् - (ए) छिपाना; या (ख) कब्जा; या (ग) अर्जन; या (घ) उपयोग; या (ङ) बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना; या (च) अनुसूचित अपराध का विचारण करने वाले न्यायालय के समक्ष बेदाग संपत्ति के रूप में दावा करना।

55. अभियुक्त को मुक्त करने का आदेश तब पारित किया जाता है या उसके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही तब रद्द कर दी जाती है, जब आरोपों के आधार पर, अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध कोई विचारणीय अपराध नहीं बनता है और दोषमुक्त करने का आदेश तब पारित किया जाता है जब अभियुक्त को मुकदमे का सामना करने के बाद भी दोषी साबित नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, क्षमा उस व्यक्ति को दी जाती है जो 'अपराध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल या उससे जुड़ा हुआ माना जाता है'। क्षमा केवल उस व्यक्ति को दी जाती है जो अपराध करने में शामिल था, न कि उस व्यक्ति को जिसके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है या कोई मामला स्थापित नहीं किया जा सका।

56. धारा 306 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षमा प्रदान करना **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयुक्त शब्दों 'मुक्ति, दोषमुक्ति या उसके विरुद्ध अनुसूचित अपराध को रद्द करने के आदेश के कारण सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा अंततः दोषमुक्त' के दायरे में नहीं आएगा। किसी व्यक्ति को अनुसूचित अपराध में सीआरपीसी की धारा 306 के अंतर्गत दी गई क्षमा, पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध में उसके बरी होने का स्वतः परिणाम नहीं होगी, जब तक कि, निश्चित रूप से, आरोपी व्यक्ति पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध के संबंध में अपने ज्ञान के भीतर सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सच्चा खुलासा करके पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत मामले में भी क्षमा की मांग नहीं करता है।

57. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, जैसा कि **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल**, 1992 एसयूपीपी (1) एससीसी 335 में निर्धारित किया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए सावधानी बरती थी कि "आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में"। यदि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत अपराध करने का आरोपी व्यक्ति बिना मुकदमे का सामना किए और अपराध

के संबंध में अपनी जानकारी में सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सही खुलासा करके पी.एम.एल.ए. मामले में क्षमा मांगे बिना ही छूट जाएगा और यह न्याय के उद्देश्यों को विफल करेगा।

58. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा सुविचारित मत है कि सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पी.एम.एल.ए., लखनऊ के न्यायालय में परिवारवाद संख्या-121/2019 में पारित संज्ञान/सम्मन आदेश दिनांक 08.08.2019 में कोई अवैधानिकता नहीं है और आवेदक के विरुद्ध पी.एम.एल.ए. के अंतर्गत योजित शिकायत की कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार नहीं है। धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन में योग्यता का अभाव है और तदनुसार इसे निरस्त किया जाता है।

-----  
(2023) 9 ILRA 958

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

शासकीय अपील संख्या 213 वर्ष 1984

साथ

आपराधिक अपील संख्या 2419 वर्ष 1983

उत्तर प्रदेश राज्य

...अपीलकर्ता

बनाम

महिपाल सिंह

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

अपर शासकीय अधिवक्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

श्री पी.एन.मिश्रा, श्री देवेन्द्र कुमार तिवारी, श्री आर.एस.यादव, श्री राजीव लोचन शुक्ल, श्री सुरेंद्र कुमार यादव, श्री राय साहब यादव

**दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 302, 304 भाग-II, 34 और 300 अपवाद 4 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील -** राज्य ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत अभियुक्त की दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की, जबकि अभियुक्त ने धारा 304 भाग-II सहपठित धारा 34 के अंतर्गत अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की, जिसमें उसे 13.08.1981 को मृतक की चाकू मारकर हत्या के लिए सत्र परीक्षण के परिणामस्वरूप पाँच वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। अभियोजन पक्ष ने प्रत्यक्षदर्शियों (अभि.सा.-1, अभि.सा.-2, अभि.सा.-3), रक्त से सने कपड़ों (समूह 'ओ') की बरामदगी, और जाँघ में घातक चोट के पोस्टमार्टम साक्ष्य के माध्यम से अभियुक्त की संलिप्तता साबित की। *महेश बाल्मीकि* और *राजस्थान राज्य* के अनुसार, अभियुक्त ने आत्मरक्षा का दावा किया और कहा कि खून के धब्बे पुलिस की पिटाई से थे, लेकिन साक्ष्यों ने उसकी उपस्थिति और अचानक हुए झगड़े के दौरान उसके किसी महत्वपूर्ण अंग पर चाकू से वार की पुष्टि की। न्यायालय ने माना कि धारा 300 आईपीसी का अपवाद 4 लागू होता है, और

पूर्व-योजना के अभाव और चोट की गैर-महत्वपूर्ण प्रकृति के कारण धारा 304 भाग-II के तहत अवर न्यायालय की दोषसिद्धि को उचित ठहराया। आत्मरक्षा का दावा खारिज कर दिया गया क्योंकि साक्ष्यों से आपसी उकसावे का पता चला। दोनों अपीलें खारिज कर दी गईं, दोषसिद्धि बरकरार रखी गई, जमानत बांड रद्द कर दिए गए, और अभियुक्त को निर्देश दिया गया कि यदि सजा पूरी नहीं हुई तो आत्मसमर्पण कर दें या गिरफ्तारी का सामना करें। (पैरा 16-26)

**दोनों अपीलें खारिज कर दी गईं।**

#### **उद्धृत वादों की सूची :**

1. मुंशी राम एवं अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन, एआईआर 1968 एससी 702
2. महेश बाल्मीकि @ मुन्ना बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2000) 1 एससीसी 319
3. धीरजभाई गोरखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य, (2003) 9 एससीसी 322
4. पुलिचेरला नागराजुन बनाम एपी राज्य, (2006) 11 एससीसी 444
5. राजस्थान राज्य बनाम लीला राम @ लीला धर, (2019) 13 एससीसी 131

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी और

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला)

1. **शासकीय अपील संख्या 213/1984** दायर की गई है जिसमें आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोपी/विरोधी पक्ष को बरी करने के निर्णय को रद्द करने की प्रार्थना की गई है। **आपराधिक अपील संख्या 2419/1983** को धारा 304 भाग-2 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत अपीलकर्ता की सजा को रद्द करने और आरोपी /अपीलकर्ता को बरी करने के लिए प्रार्थना करते हुए दायर किया गया है। दोनों अपीलें 1982 के सत्र विचारण संख्या 156 (राज्य बनाम महिपाल) में 10.10.1983 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न होती हैं, जिसमें सत्र न्यायाधीश, झांसी द्वारा आरोपी महिपाल को धारा 304, भाग 2 आईपीसी, धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया था, और उसे पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी।

2. ये दोनों अपीलें पिछले लगभग 40 वर्षों से इस न्यायालय में जुड़ी हुई और लंबित हैं। चूंकि, अभियुक्त/अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, इसलिए इस न्यायालय ने 1984 की सरकारी अपील संख्या 213 में दिनांक 01.07.2013 के आदेश के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी को निर्देश दिया कि वह आरोपी महिपाल के खिलाफ जमानती वारंट जारी करने सहित कानून के तहत अनुमेय सभी प्रक्रियाओं का सहारा लें ताकि 05.08.2013 को इस न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति सुनिश्चित की जा सके। यह भी देखा गया कि यदि अभियुक्त/प्रतिवादी की मृत्यु हो गई है, तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अभियुक्त प्रतिवादी

की मृत्यु के तथ्य की पुष्टि करेगा। दिनांक 06.09.2013 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, प्रतिवादी महिपाल सिंह ने लगभग 20 साल पहले अपने निवास स्थान को छोड़ दिया था। इसके बाद, समय-समय पर कई आदेश पारित किए गए और कार्यालय रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इस न्यायालय द्वारा पारित **आदेश दिनांक 18.04.2015** निम्नानुसार है:

"उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता सुना:

वर्तमान मामले में, आरोपी-प्रतिवादी, महिपाल के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है क्योंकि उसके ठिकाने का पता नहीं था। बताया गया है कि उन्होंने लगभग पच्चीस साल पहले उसी को बेचकर अपना गांव छोड़ दिया था।

दिनांक 21-07-2014 के आदेश की अनुपालन रिपोर्ट मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी से प्राप्त नहीं हुई है। ऐसी परिस्थिति में, हम निर्देश दे रहे हैं कि आरोपी व्यक्ति, महिपाल के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने वाले इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का अनुपालन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, झांसी द्वारा आरोपी-प्रतिवादी महिपाल की गिरफ्तारी सुनिश्चित करने के माध्यम से किया जाए। अभियुक्त-प्रतिवादी, महिपाल को गिरफ्तार करने के बाद, उसे 20 जुलाई, 2015 को इस अदालत के समक्ष पेश किया जाएगा।

20 जुलाई 2015 को सूचीबद्ध करें।

इस आदेश की एक प्रति झांसी के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के माध्यम से झांसी के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को अनुपालन के लिए तत्काल प्रेषित की जाए।"

3. इसके बाद, श्री रे साहब यादव और श्री सुरेंद्र कुमार यादव आरोपी-प्रतिवादी की ओर से पेश हुए, जिन्होंने 20.07.2015 को कहा कि दोषसिद्धि के खिलाफ आपराधिक अपील को प्राथमिकता दी गई है। दिनांक 05.08.2015 के आदेश के तहत, इस न्यायालय ने कार्यालय को उक्त अपील का पता लगाने का निर्देश दिया। कार्यालय ने आईपीसी की धारा 304 भाग-2 और धारा 34 के तहत दोषसिद्धि के खिलाफ आरोपी-प्रतिवादी द्वारा दायर अपील का पता लगाया। दिनांक 27.08.2015 और 21.09.2015 के आदेश के तहत आरोपी महिपाल द्वारा दायर 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 को 1984 की वर्तमान सरकारी अपील संख्या 213 से जोड़ने का निर्देश दिया गया था। अभियुक्त/प्रतिवादी महिपाल ने 2015 की आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 434823 दायर की थी और उसे 29.01.2016 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था। इसके बाद, इन दो अपीलों को कई बार सूचीबद्ध किया गया लेकिन आरोपियों की ओर से कोई भी पेश नहीं हुआ। नतीजतन, 27.02.2019 के आदेश द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था। दिनांक 15.05.2019 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें पुलिस अधीक्षक, झांसी को आरोपी महिपाल सिंह की गिरफ्तारी सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया। ऐसा

प्रतीत होता है कि इसके बाद कार्यालय रिपोर्टों के आधार पर, इस न्यायालय ने दिनांक 09.09.2022 को एक आदेश पारित किया, जो निम्नानुसार है:

अदालत ने कहा, "आरोपी प्रतिवादी की ओर से कोई भी मौजूद नहीं है। हमने पाया कि पहले के मौकों पर भी आरोपी प्रतिवादी के लिए कोई मौजूद नहीं था। 14.9.2021 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, आरोपी प्रतिवादी महिपाल सिंह ने लगभग 15 साल पहले अपना घर छोड़ दिया है और कहीं और रह रहा है और इस कारण से गैर-जमानती वारंट निष्पादित नहीं किया जा सका है।

कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आरोपी प्रतिवादी महिपाल सिंह की जमानत राशि का विवरण एक सप्ताह के भीतर नीचे की अदालत को भेजे ताकि जमानतदारों के खिलाफ सीआरपीसी की धारा 446 के तहत कार्यवाही शुरू की जा सके।

छह सप्ताह के बाद सूचीबद्ध करें।

4. रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी महिपाल सिंह आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति है।

5. तथ्यों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने श्री राजीव लोचन शुक्ला को सरकारी अपील में आरोपी/विपरीत पक्ष की ओर से अपील और 1983 की संबंधित आपराधिक अपील संख्या 2419 में अपीलकर्ता की ओर से बहस करने के

लिए न्याय मित्र नियुक्त किया। दिनांक 03.07.2023 का आदेश नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"इस अपील के आदेश पत्र से, ऐसा प्रतीत होता है कि 1983 की संबंधित आपराधिक अपील संख्या 2419 का आरोपी-विरोधी पक्ष/अपीलकर्ता आर्थिक रूप से बहुत कमजोर व्यक्ति है। झांसी के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की दिनांक 01.12.2022 की रिपोर्ट के अनुसार, वर्तमान में, आरोपी/विरोधी पक्ष ब्रह्मा नगर कॉलोनी, लहरगिर्द, थाना- सिरपरी बाजार, झांसी में रहता है और वह चमन गंज चौकी, सीपरी बाजार झांसी के पास "मूंगफली का ठेला" चलाता है। दो बार आरोपी/विरोधी पक्ष को गैर जमानती वारंट जारी किए गए। उन्होंने अधिवक्ता से बात की, हालांकि, उनके द्वारा नियुक्त अधिवक्ता उपस्थित नहीं हो रहे हैं।

2. इन परिस्थितियों में हमें न्यायमित्र नियुक्त करना उचित लगता है।

3. श्री राजीव लोचन शुक्ला (इलाहाबाद उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति के विद्वान पैनल अधिवक्ता) को 1983 की संबंधित आपराधिक अपील संख्या 2419 के आरोपी-विरोधी पक्ष/अपीलकर्ता की ओर से इस मामले में बहस करने के लिए न्याय मित्र नियुक्त किया जाए।



4. पेपर बुक और अन्य प्रासंगिक कागजात की एक प्रति एक सप्ताह के भीतर उपरोक्त एमिकस क्यूरी को मामले को तैयार करने और बहस करने के लिए प्रदान की जाए।

5. न्यायमित्र को मानदंडों के अनुसार शुल्क का भुगतान किया जाएगा।

6. उपरोक्त संबंधित आपराधिक अपील के साथ अगस्त, 2023 के महीने में उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करें।

6. दिनांक 03.07.2023 के उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, श्री राजीव लोचन शुक्ला, अधिवक्ता ने सरकारी अपील में आरोपी-महिपाल सिंह/विरोधी पक्ष और 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 में अपीलकर्ता की ओर से अपील पर बहस की है।

1984 की सरकारी अपील संख्या 213 में आरोपी महिपाल सिंह के अधिवक्ता श्री केपी पाठक और 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 से जुड़े राज्य के विद्वान श्री केपी पाठक और श्री राजीव लोचन शुक्ला को सुना।

#### तथ्य:

8. वर्तमान मामले के संक्षेप में उल्लिखित तथ्य यह हैं कि 13.08.1981 को धारा 302 आईपीसी, पुलिस स्टेशन - मऊरानीपुर, जिला-झांसी के तहत शाम लगभग 6:30 बजे एफआईआर दर्ज की गई थी, जो लगभग 5:30

बजे हुई थी। एफ.आई.आर. के अनुसार, आरोपी महिपाल सिंह और गुच्चन ने 13.08.1981 को मृतक-इंदल पर चाकू से वार किया, जिससे उसके पेट और जांघ में चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। सूचना देने वाला पीडब्ल्यू-1, कैलाश है, जो मृतक इंदल का सगा भाई है। आरोपी महिपाल सिंह को उसी दिन गिरफ्तार कर लिया गया था और उसके खून से सने कपड़े बरामद कर लिए गए थे और रासायनिक जांच के लिए भेज दिया गया था। कोई चाकू बरामद नहीं किया जा सका। जांच अधिकारी ने उसी दिन घटना स्थल का दौरा किया और धरती पर मिले खून और 'चबूतरा' के नमूने लेकर रिकवरी मेमो तैयार किया, जिसे रासायनिक जांच के लिए भी भेजा गया। 14.08.1981 को मृतक-इंदल के शरीर पर शव परीक्षण किया गया था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित पोस्टमार्टम चोटें पाई गईं:

#### " मृत्यु-पूर्व चोटें:

1. चाकू से किया गया घाव (पंचर) 1"x 1/2" x 3 1/2" तिरछा है और बाईं जांघ के पीछे 3/4" ऊपर, पार्श्व और पीछे की ओर फीमर के बाएं पार्श्व कोंडिल तक, घाव का किनारा एक तेज और दूसरा कुंद है, घाव वेज के आकार का है। प्रावरणी, मांसपेशियों की धमनी, नस कट जाती है और जांघ के पार्श्व और पीछे की चोटें होती हैं। पॉपलाइटल धमनी और नस को पीछे से काट दिया जाता है। घाव की दिशा बाएं से दाएं और थोड़ा नीचे की ओर होती है।

2. सतही घाव बाएं पेट के पार्श्व पक्ष पर 3/4 "x रैखिक, ऊपरी भाग तिरछा और नीचे ऊपर की ओर"।

9. पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मौत का कारण जांघ पर लगी चोट के कारण शॉक हैमरेज है। चोट नंबर 2 यानी पेट पर लगी चोट सतही पाई गई। चोट नंबर 1 यानी जांघ पर लगी चोट के कारण मांसपेशियों की धमनी, नस कट गई और जांघ के पार्श्व और पीछे की चोट लग गई। पॉपलाइटल धमनी और नसों को पीछे से काट दिया गया था और घाव की दिशा बाएं से दाएं और थोड़ा नीचे की ओर थी।

10. रासायनिक जांच रिपोर्ट के अनुसार, मृतक के पायजामा, शर्ट, अंडरवियर और कुर्ते पर मानव रक्त पाया गया था। मृतक के खून से सने कपड़ों यानी पैंट, शर्ट, अंडरवियर और बनियान पर रक्त समूह 'ओ' पाया गया।

11. अभियोजन पक्ष ने छह गवाहों से पूछताछ की, जिनमें प्रत्यक्षदर्शी पीडब्ल्यू-1/मुखबिर (केलाश, मृतक का सगा भाई), प्रत्यक्षदर्शी पीडब्ल्यू-2 (पुराण), प्रत्यक्षदर्शी पीडब्ल्यू-3 (राम सरूप), पीडब्ल्यू-4 (हरिदयाल, आरोपी-महिपाल सिंह के खून से सने कपड़ों की बरामदगी ज़ापन का गवाह और आरोपी-महिपाल सिंह की गिरफ्तारी का गवाह), पीडब्ल्यू-5 (डॉ. डीबी मंगल) शामिल हैं। जिन्होंने मृतक -इंदल और पीडब्ल्यू -6 (शंभू दयाल, एसआई-जांच अधिकारी) के मृत शरीर का शव परीक्षण किया।

12. बचाव पक्ष की ओर से, आरोपी-महिपाल ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपना बयान दिया। एक सवाल के जवाब में, उन्होंने कहा कि उन्हें पुलिस ने लगभग 7:30 बजे उनके घर से पकड़ा और उनकी पिटाई की, जिसके परिणामस्वरूप उनके कपड़ों पर खून के धब्बे थे। एक अन्य सवाल के जवाब में उन्होंने कहा कि मृतक इंदल की हत्या दूसरे आरोपी गुच्छन ने की थी। आरोपी गुच्छन फरार हो गया और उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सका। बचाव पक्ष ने डीडब्ल्यू-1 (शिव पैथोलॉजिकल लेबोरेटरी, पंचकुड़ियां चौराहा, झांसी के निजी पैथोलॉजिस्ट डॉ. एसके खरे) को भी पेश किया, जिन्होंने 24.09.1983 को अपने साक्ष्य में कहा कि उन्होंने 22.09.1983 को आरोपी महिपाल के रक्त के नमूने उसके रक्त समूह की जांच के लिए लिए थे और परीक्षण करने पर, रक्त समूह 'ओ' पाया गया था।

13. सबूतों पर विचार करने के बाद, सत्र न्यायालय ने दिनांक 10.10.1983 का विवादित निर्णय पारित किया था, जिसके तहत सत्र न्यायालय ने आरोपी-महिपाल को धारा 304 पार्ट-2 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और उसे 5 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। इससे व्यथित होकर राज्य ने 1984 की उपर्युक्त सरकारी अपील संख्या 213 दायर की है और आरोपी महिपाल ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 दायर की है।

**प्रस्तुतियाँ:**

14. श्री के.पी. पाठक, राज्य के लिए विद्वान एजीए प्रस्तुत करते हैं कि अभियोजन पक्ष ने आरोपी-महिपाल के अपराध को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है कि उसने मृतक-इंदल की हत्या की है और इस प्रकार, ट्रायल कोर्ट के लिए आरोपी-महिपाल सिंह को धारा 304 भाग-2 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराने का कोई अवसर नहीं था, इसके बजाय आरोपी-महिपाल सिंह को धारा 302 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया जाना और सजा सुनाई जानी चाहिए। विद्वान एजीए ने चश्मदीद गवाहों, रिकवरी मेमो और रासायनिक परीक्षाओं की रिपोर्ट के साक्ष्य पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

15. श्री राजीव लोचन शुक्ला, 1984 की सरकारी अपील संख्या 213 में अभियुक्त-विरोधी पक्ष की ओर से और 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 में अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से पेश हुए न्यायमित्र ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:

(i) मौके पर चश्मदीदगवाहों की उपस्थिति संदिग्ध है।

(ii) गवाह अविश्वसनीय होते हैं क्योंकि उन्होंने अपने सबूतों में लगातार सुधार किया है और उनके सबूतों में विसंगतियां हैं।

(iii) जांच अधिकारी द्वारा बरामद किए गए आरोपी-महिपाल के कपड़ों में केवल आरोपी महिपाल सिंह के खून के धब्बे हैं, जो गिरफ्तारी के समय पुलिस द्वारा पीटे जाने के कारण थे। पैथोलॉजिस्ट की रिपोर्ट के अनुसार,

आरोपी महिपाल सिंह का ब्लड ग्रुप 'ओ' है और आरोपी-महिपाल सिंह के खून से सने कपड़ों पर पाया गया ब्लड ग्रुप भी 'ओ' है, जिससे साबित होता है कि आरोपी महिपाल सिंह के कपड़ों पर खून के धब्बे दिखाई दिए- महिपाल सिंह वास्तव में आरोपी महिपाल सिंह का खून था, जिसका कारण पुलिस द्वारा पिटाई के कारण खून बह रहा था। अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक-इंदल के रक्त समूह का कोई सबूत दायर नहीं किया जा सका, जिससे यह स्थापित हो सके कि मृतक-इंदल का रक्त समूह वही था जो आरोपी-महिपाल सिंह के खून से सने कपड़ों पर पाया गया था। आरोपी महिपाल सिंह ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपने बचाव बयान में स्पष्ट रूप से अपनाया है कि कपड़ों पर खून के धब्बे दरोगा द्वारा पीटे जाने के कारण उसके खून के थे, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा खारिज नहीं किया जा सका। अपने बचाव में, आरोपी महिपाल सिंह ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत यह भी कहा है कि मृतक-इंदल की हत्या केवल आरोपी-गुच्छन द्वारा की गई थी। मृतक के कपड़ों पर रक्त समूह को वर्गीकृत नहीं किया गया था। इसलिए, आरोपी-महिपाल सिंह के कपड़ों पर पाए गए खून की पुष्टि मृतक-इंदल के रक्त समूह से नहीं होती है। रासायनिक परीक्षक ने अपनी रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया है कि मृतक का रक्त समूह 'ओ + ' था या 'ओ-' और यह केवल रक्त समूह 'ओ' के रूप में उल्लिखित था और इस प्रकार, उसके कपड़ों पर पाए गए मृतक के रक्त समूह को आरोपी-महिपाल सिंह के रक्त समूह से नहीं जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष इस घटना में आरोपी-महिपाल सिंह की संलिप्तता

को उचित संदेह से परे साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा है और आरोपी-महिपाल सिंह संदेह के लाभ का हकदार है।

(iv) प्रथम सूचना रिपोर्ट और पीडब्ल्यू-1 के साक्ष्य के अनुसार, मृतक-इंदल ने अभियुक्त-महिपाल सिंह को धमकी दी थी और आत्मरक्षा में, आरोपी-महिपाल ने मृतक-इंदल के शरीर के गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर एक वार किया था। इस प्रकार, भले ही अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, यह मान लिया जाए कि मृतक-इंदल की जांघ पर चोट आरोपी-महिपाल सिंह द्वारा दी गई थी, फिर भी आरोपी-महिपाल सिंह आत्मरक्षा के लाभ का हकदार है, खासकर, जब जांघ पर लगी चोट, शरीर के गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर है। एआईआर 1968 एससी 702 में रिपोर्ट किए गए मुंशी राम और अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने कानून का निपटारा किया है कि भले ही कोई अभियुक्त आत्मरक्षा की दलील न दे, लेकिन यह अदालत के लिए खुला है कि वह ऐसी याचिका पर विचार करे यदि यह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से उत्पन्न होता है। इसलिए, आरोपी-महिपाल सिंह आत्मरक्षा के लाभ का हकदार है और उसे धारा 304 भाग-2 आईपीसी के तहत भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

#### चर्चा और निष्कर्ष:

हमने पार्टियों के लिए विद्वान अधिवक्तों की प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

16. मृतक-इंदल के खून से सने कपड़ों की दिनांक 13.08.1981 की रिकवरी मेमो को पीडब्ल्यू-6 (जांच अधिकारी) द्वारा साबित कर दिया गया है। आरोपी महिपाल सिंह के खून से सने कपड़ों की बरामदगी और पीडब्ल्यू-4 की मौजूदगी में उसकी गिरफ्तारी के दिनांक 13.08.1981 के रिकवरी मेमो को पीडब्ल्यू-4 ने अपने साक्ष्य में साबित कर दिया है। उन्होंने साबित कर दिया कि गिरफ्तारी के समय आरोपी महिपाल सिंह के शरीर से कोई खून नहीं बह रहा था। पीडब्ल्यू -6 (जांच अधिकारी) ने यह भी कहा है कि आरोपी-महिपाल को गिरफ्तार करते समय, कुछ हाथापाई हुई थी। आरोपी-महिपाल सिंह के खून से सने कपड़ों पर पाया गया ब्लड ग्रुप और मृतक-इंदल के खून से सने कपड़ों पर पाया गया ब्लड ग्रुप एक ही यानी ग्रुप 'ओ' है। इसलिए, सबूतों से, घटना की तारीख, समय और स्थान पर आरोपी-महिपाल सिंह की उपस्थिति और भागीदारी साबित होती है। इसके अलावा, घटना की तारीख, समय और स्थान पर उसकी उपस्थिति और अपराध में उसकी भागीदारी को भी प्रत्यक्षदर्शियों पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 द्वारा साबित किया गया है। हालांकि, प्रत्यक्षदर्शी पीडब्ल्यू -2 अपने सबूतों में कुछ हद तक मुकर गया, लेकिन फिर भी उसने कहा कि मृतक इंदल को चोट आरोपियों-महिपाल सिंह और गुच्छन द्वारा दी गई थी। इस प्रकार, घटना की तारीख, समय और स्थान पर अपराध में आरोपी-महिपाल सिंह की उपस्थिति साबित होती है।

17. पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि जब वह अपने मृतक-भाई के साथ शाम

लगभग 5 बजे भूतपत के घर के पास लौट रहा था, तो आरोपी व्यक्ति, महिपाल और गुच्छन आए और जब मृतक-इंदल ने उनसे पूछा कि वे पीडब्ल्यू -1 को क्यों परेशान कर रहे हैं, तो उन्होंने मृतक से बात की कि आप अपने भाई का पक्ष ले रहे हैं और हम आपके दिमाग को ठीक कर देंगे और अचानक उन्होंने मृतक - इंदल पर चाकू से हमला कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि घटना के समय आरोपी महिपाल सिंह ने पैंट और बुशर्ट पहन रखी थी, जिस पर मृतक के खून के धब्बे हैं। पी.डब्ल्यू.-1 की जिरह में बचाव पक्ष की ओर से कुछ भी प्रतिकूल नहीं निकला, जिससे यह संकेत मिलता हो कि आरोपी महिपाल सिंह को घटना में मृतक इंदल के कपड़ों पर खून के धब्बे नहीं मिले हैं।

18. अपने साक्ष्य में चशमदीद गवाह पी.डब्ल्यू.-2 ने यह भी साबित किया है कि आरोपी-महिपाल और गुच्छन ने मृतक-इंदल को चाकू से चोट पहुंचाई है, जिसके पेट और जाघ में चोटें आई हैं। अपनी जिरह में पीडब्ल्यू-2 ने कहा कि उसने आरोपी महिपाल सिंह को मृतक इंदल को छुरा घोंपते नहीं देखा था, बल्कि उसने आरोपी व्यक्तियों को चाकू से और मृतक-इंदल को घायल अवस्था में देखा था और जब उसने मृतक-इंदल से पूछा, तो उसने बताया कि आरोपी व्यक्तियों, महिपाल और गुच्छन ने उस पर हमला किया है।

19. अपने साक्ष्य में, प्रत्यक्षदर्शी पी.डब्ल्यू.-3 ने कहा है कि आरोपी-महिपाल ने मृतक-इंदल की जाघ पर वार किया था और आरोपी गुच्छन ने उसके पेट पर चाकू से वार किया था।

उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने आरोपी व्यक्तियों, महिपाल और गुच्छन को मृतक इंदल पर चाकू से वार करते हुए देखा है। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी कहा कि मृतक इंदल ने यह भी बताया है कि आरोपी व्यक्तियों ने उस पर चाकू से वार किया है।

20. इस प्रकार, पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 के साक्ष्य को एक साथ पढ़ने पर कोई संदेह नहीं होता है कि आरोपी-महिपाल सिंह ने मृतक-इंदल की बाईं जाघ पर चाकू से एक वार (छुरा घोंपना) किया था। उनकी मौत का कारण बाईं जाघ पर चोट भी पोस्टमार्टम रिपोर्ट और पीडब्ल्यू -5 (डॉक्टर, जिन्होंने शव परीक्षण किया था) के सबूतों से साबित होता है। पी.डब्ल्यू.-5 ने मृतक इंदल के कपड़ों और उस पर पाए गए खून के धब्बों के संबंध में रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट को भी साबित कर दिया है। उन्होंने अपनी जिरह में कहा कि यदि मृतक का इलाज तुरंत एक बहुत अच्छे अस्पताल में किया जा सकता था, तो रक्तस्राव को रोकना संभव था और मृतक-इंदल के जीवन को बचाने की संभावना हो सकती थी।

21. डीडब्ल्यू -1 (एक निजी पैथोलॉजिस्ट) ने आरोपी महिपाल सिंह की 22.09.1983 (प्रदर्शक- 6) की रक्त समूह रिपोर्ट दी है और मूल रिकॉर्ड से इसका अवलोकन करने पर, हम पाते हैं कि इसमें केवल आरोपी-महिपाल सिंह के रक्त समूह का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार, यह रक्त परीक्षण रिपोर्ट आरोपी-महिपाल सिंह को किसी भी तरह से मदद नहीं करती है क्योंकि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट और निजी पैथोलॉजिस्ट (डीडब्ल्यू -1) की

रिपोर्ट के अनुसार, मृतक-इंदल के कपड़ों पर पाए गए रक्त के धब्बों का रक्त समूह और आरोपी-महिपाल के कपड़ों पर पाए गए रक्त का रक्त समूह एक ही यानी समूह 'ओ' है।

22. जहां तक आरोपी महिपाल सिंह को धारा 302 आईपीसी के बजाय धारा 304 पार्ट-2 और धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराए जाने का सवाल है, हम पाते हैं कि जांच शरीर का एक गैर-महत्वपूर्ण हिस्सा है। आरोपी महिपाल सिंह ने चाकू से चोट पहुंचाई थी। पी.डब्ल्यू.-1 के अपने साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि यह जुनून की गर्मी थी कि अचानक झगड़े पर और आरोपी के बिना-महिपाल सिंह ने अनुचित लाभ उठाया, मृतक-इंदल के शरीर के एक गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर मृतक इंदल को चाकू से वार किया।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने महेश बाल्मीकि @मुन्ना बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2000) 1 एससीसी 319 में कहा है कि:

"9. .... ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि एक झटके के सभी मामलों में आईपीसी की धारा 302 आकर्षित नहीं होती है। कुछ मामलों में आईपीसी की धारा 302 के तहत, कुछ मामलों में आईपीसी की धारा 304 के तहत और कुछ अन्य मामलों में धारा 326 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि हो सकती है। अपराध की प्रकृति के संबंध में प्रश्न तथ्यों और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। चोट की प्रकृति,

चाहे वह शरीर के महत्वपूर्ण या गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर हो, इस्तेमाल किया गया हथियार, जिन परिस्थितियों में चोट लगी है और जिस तरह से चोट लगी है, वे सभी प्रासंगिक कारक हैं जो अपराधी के आवश्यक इरादे या ज्ञान और उसके द्वारा किए गए अपराध को निर्धारित करने के लिए जा सकते हैं।

(बल दिया गया)

24. राजस्थान राज्य बनाम लीला राम @लीला धर (2019) 13 एससीसी 131 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर चर्चा की है जहां एक चाकू का वार आईपीसी की धारा 302 या 304 भाग 1 या 304 भाग 2 के अंतर्गत आएगा और निम्नानुसार माना जाएगा: -

"धीरजभाई गोरखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य (2003) 9 एससीसी 322 में, इस न्यायालय ने धारा 300 आईपीसी के अपवाद 4 के अवयवों पर चर्चा करते हुए कहा: "धारा 300 आईपीसी का चौथा अपवाद अचानक लड़ाई में किए गए कृत्यों को कवर करता है। उक्त अपवाद अभियोजन के एक मामले (एसआईसी उकसावे) से संबंधित है जो पहले अपवाद द्वारा कवर नहीं किया गया है, जिसके बाद इसका स्थान अधिक उपयुक्त होगा। अपवाद एक ही सिद्धांत पर स्थापित किया गया है, क्योंकि दोनों में पूर्वध्यान का अभाव है। लेकिन, जबकि अपवाद 1 के मामले में आत्म-नियंत्रण

का पूर्ण अभाव है, अपवाद 4 के मामले में, केवल जुनून की गर्मी है जो पुरुषों के शांत तर्क को कम करती है और उन्हें उन कार्यों के लिए प्रेरित करती है जो वे अन्यथा नहीं करेंगे। अपवाद 1 के रूप में अपवाद 4 में उकसावा है, लेकिन की गई चोट उस उत्तेजना का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। वास्तव में, अपवाद 4 उन मामलों से संबंधित है जिनमें भले ही कोई झटका मारा गया हो, या विवाद के मूल में कुछ उकसावा दिया गया हो या जिस भी तरह से झगड़ा शुरू हुआ हो, फिर भी दोनों पक्षों का बाद का आचरण उन्हें अपराध के संबंध में समान स्तर पर रखता है। "अचानक लड़ाई" का अर्थ है प्रत्येक पक्ष पर आपसी उकसावा और मार। तब की गई हत्या स्पष्ट रूप से एकतरफा उकसावे का पता लगाने योग्य नहीं है, न ही ऐसे मामलों में पूरे दोष को एक तरफ रखा जा सकता है। यदि ऐसा था, तो अपवाद अधिक उचित रूप से लागू होगा अपवाद 1. लड़ने के लिए कोई पिछला विचार-विमर्श या दृढ़ संकल्प नहीं है। एक लड़ाई अचानक होती है, जिसके लिए दोनों पक्षों को दोषी ठहराया जाता है। यह हो सकता है कि उनमें से एक इसे शुरू करता है, लेकिन अगर दूसरे ने इसे अपने आचरण से नहीं बढ़ाया होता तो यह गंभीर रूप नहीं लेता जैसा कि उसने किया था। तब आपसी उत्तेजना और उत्तेजना होती है, और प्रत्येक लड़ाकू

को दोष देने वाले हिस्से को विभाजित करना मुश्किल होता है। अपवाद 4 की सहायता तब ली जा सकती है जब मृत्यु (ए) पूर्व-विचार के बिना, (बी) अचानक लड़ाई में, (सी) अपराधियों द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से काम किए बिना हुई हो, और (डी) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ होनी चाहिए। अपवाद 4 के भीतर एक मामले को लाने के लिए आईपीसी की धारा 300 आईपीसी के अपवाद 4 में उल्लिखित सभी सामग्री आईपीसी में परिभाषित नहीं है। एक लड़ाई करने में दो लगते हैं। जुनून की गर्मी के लिए आवश्यक है कि जुनून को ठंडा होने का समय नहीं होना चाहिए और इस मामले में, पार्टियों ने शुरुआत में मौखिक झगड़े के कारण खुद को रोष में काम किया था। एक लड़ाई दो और दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक लड़ाई है चाहे हथियारों के साथ या बिना। किसी भी सामान्य नियम को प्रतिपादित करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा क्या माना जाएगा। यह तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक होता है या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। अपवाद 4 के आवेदन के लिए, यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वधारणा नहीं थी। यह आगे दिखाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या

असामान्य तरीके से काम नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त "अनुचित लाभ" शब्द का अर्थ है "अनुचित लाभ"।

*पुलिचेरला नागराजुन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2006) 11 एससीसी 444* मामले में, इस न्यायालय ने यह निर्णय लेते हुए कि क्या कोई मामला धारा 302 या 304 भाग I या 304 भाग II आईपीसी के अंतर्गत आता है, इस प्रकार कहा: "इसलिए, न्यायालय को सावधानी और सावधानी के साथ इरादे के निर्णायक प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि यह तय करेगा कि मामला धारा 302 या 304 भाग 1 या 304 भाग 2 के अंतर्गत आता है या नहीं। कई छोटे-मोटे या महत्वहीन मामले - फल तोड़ना, मवेशियों का भटकना, झगड़ा या बच्चे, अशिष्ट शब्द बोलना या यहां तक कि आपत्तिजनक नज़र, झगड़े और समूह संघर्ष का कारण बन सकते हैं और मौतों का कारण बन सकते हैं। ऐसे मामलों में बदला, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य पूरी तरह से अनुपस्थित हो सकते हैं। कोई इरादा नहीं हो सकता है। कोई पूर्व-ध्यान नहीं हो सकता है। वास्तव में, आपराधिकता भी नहीं हो सकती है। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर, हत्या के मामले हो सकते हैं जहां आरोपी एक मामला सामने रखने का प्रयास करके हत्या के लिए दंड से बचने का प्रयास

करता है कि मौत का कारण बनने का कोई इरादा नहीं था। यह सुनिश्चित करना न्यायालयों का दायित्व है कि धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के मामलों को धारा 304 भाग 1/2 के तहत दंडनीय अपराधों में परिवर्तित न किया जाए या गैर इरादतन हत्या के मामलों को धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के रूप में माना जाए। **मृत्यु का कारण बनने का इरादा आम तौर पर अन्य परिस्थितियों के अलावा, निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से एकत्र किया जा सकता है:** (i) उपयोग किए गए हथियार की प्रकृति; (ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ले जाया गया था या उसे मौके से उठाया गया था; (iii) क्या यह झटका शरीर के एक महत्वपूर्ण अंग को लक्षित करता है; (iv) चोट पहुंचाने में कितना बल नियोजित किया गया है; (v) क्या यह कृत्य अचानक हुए झगड़े अथवा अचानक हुए झगड़े के दौरान किया गया था अथवा सभी प्रकार की लड़ाई के लिए स्वतंत्र था; (vi) क्या यह घटना संयोग से हुई है या क्या इसके पीछे कोई पूर्वाभास था; (vii) क्या पहले से कोई दुश्मनी थी या क्या मृतक अजनबी था; (viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावा दिया गया था और यदि हां, तो ऐसे उकसावे के क्या कारण हैं; (ix) क्या यह जुनून की गर्मी में था; (x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया



है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है, (xi) क्या आरोपी ने एक ही झटका दिया है या कई बार किए हैं; परिस्थितियों की उपरोक्त सूची, निश्चित रूप से, संपूर्ण नहीं है और व्यक्तिगत मामलों के संदर्भ में कई अन्य विशेष परिस्थितियां हो सकती हैं जो इरादे के सवाल पर प्रकाश डाल सकती हैं।

(बल दिया गया)

25. इन परिस्थितियों में, गैर-इरादतन हत्या को परिभाषित करने वाली धारा 300 आईपीसी का अपवाद 4 वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होता है। नतीजतन, धारा 304 भाग-2 आईपीसी को लागू करने के लिए विद्वान ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष को गलत या अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

26. आत्मरक्षा की दलील उठाने वाले न्यायमित्र की दलील पूरी तरह से गलत है क्योंकि पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-3 के साक्ष्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि अचानक झगड़े पर जुनून की गर्मी में अचानक कार्रवाई हुई थी, क्योंकि मृतक-इंदल ने ही आरोपी-महिपाल से पहली बार बात की थी कि उसके भाई के उत्पीड़न की रिपोर्ट बनाई जाएगी और वह उनकी हड्डियां तोड़कर उन्हें ठीक करेगा। इसके बाद हाथापाई हुई और आरोपी-महिपाल ने मृतक इंदल की बाईं जांघ पर चाकू से वार किया, जो शरीर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपनी जिरह में पीडब्ल्यू-5 (डॉक्टर, जिन्होंने शव परीक्षण किया था) ने यह भी कहा है कि

अगर तत्काल सर्जिकल ऑपरेशन से रक्तस्राव को रोका जा सकता था, तो मृतक-इंदल की जान बचाई जा सकती थी। इससे पता चलता है कि धारा 300 आईपीसी का अपवाद 4 लागू किया जा सकता है और ट्रायल कोर्ट ने आरोपी-महिपाल सिंह को धारा 304 पार्ट-2 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई है।

27. उपर्युक्त सभी कारणों से, हमें 1984 की सरकारी अपील संख्या 213 और 1983 की आपराधिक अपील संख्या 2419 में कोई दम नहीं मिलता है। इसलिए दोनों अपीलों को खारिज किया जाता है।

28. हम इन पुरानी लंबित अपीलों पर निर्णय लेने में न्यायालय को बहुमूल्य सहायता प्रदान करने के लिए श्री राजीव लोचन शुक्ला, विद्वान न्यायमित्र की सराहना करते हैं।

29. आरोपी महिपाल सिंह की जमानत रद्द की जाती है। आरोपी महिपाल सिंह को संबंधित अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा। यदि वह आत्मसमर्पण नहीं करता है, तो संबंधित अदालत उसकी गिरफ्तारी के लिए सभी उचित कदम उठाएगी, अगर आरोपी-महिपाल सिंह ने अभी तक आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत उसे दी गई सजा पूरी नहीं की है। यदि आरोपी-महिपाल सिंह पहले ही आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत दी गई सजा पूरी कर चुका है, तो उसे तब तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

30. रिकॉर्ड के साथ-साथ निर्णय की प्रति को सूचना और अनुपालन के लिए ट्रायल कोर्ट को प्रेषित किया जाए।

-----

(2023) 9 ILRA 967

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 2611 वर्ष 2003

संजय कुमार सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

डि. महिला कल्याण यूपी लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

पीके खरे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 226 - पदोन्नत पद से प्रत्यावर्तन -

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - याचिकाकर्ता ने

24.04.2003 के प्रत्यावर्तन आदेश को चुनौती दी,

जिसने 27.10.1994 को पदोन्नति के लगभग

एक दशक बाद, बिना किसी नोटिस या सुनवाई

का अवसर दिए, उसे वरिष्ठ क्लर्क से जूनियर

क्लर्क के रूप में वापस कर दिया। याचिकाकर्ता,

जिसे 1985 में जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्त

किया गया था और वरिष्ठ क्लर्क के रूप में

पदोन्नत किया गया था, ने पीएन प्रेमचंद्रन और

शेखर घोष पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि इतने लंबे समय के बाद, उसकी ओर से कोई गलती नहीं होने के बावजूद, प्रत्यावर्तन अवैध था।

प्रतिवादियों ने भारत संघ बनाम रघुवर पाल

सिंह का हवाला देते हुए तर्क दिया कि आदेश एक

अक्षम प्राधिकारी की कार्रवाई को सही करने के

लिए वैध था। न्यायालय ने माना कि सुनवाई का

अवसर दिए बिना, लंबे समय के बाद प्रत्यावर्तन

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है,

जैसा कि शेखर घोष और पी.एन. प्रेमचंद्रन

मामले में स्थापित है। आक्षेपित आदेश न्यायिक

विवेक का प्रयोग किए बिना, सरसरी तौर पर

पारित किया गया था, और प्रतिवादियों द्वारा

उद्धृत मामले अलग-अलग थे। रिट याचिका

स्वीकार की गई, प्रत्यावर्तन आदेश रद्द किया

गया। (पैरा 12-19)

रिट याचिका स्वीकृत।

उद्धृत वादों की सूची:

1. पीएन प्रेमचंद्रन बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2004) 1 एससीसी 245

2. शेखर घोष बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2007) 1 एससीसी 331

3. पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य बनाम अघोर नाथ डे व अन्य, (1993) 3 एससीसी 371

4. असम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम मोहम्मद सरीफुज ज़मान एवं अन्य, (2003) 12 एससीसी 408

5. भारत संघ एवं अन्य बनाम रघुवर पाल सिंह, (2018) 15 एससीसी 463

आधार पर पदोन्नति के लिए स्वतः ही हकदार हो गया है।

6. संतोष कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1997) 2 एससीसी 713

7. राम उजरे बनाम भारत संघ, (1999) 1 एससीसी 685

8. कैचवा कोम बनाम गिरीमल्लप्पा चन्नप्पा, एआईआर 1924 पीसी 209

9. वेल्लिकन्नु बनाम आर. सिंगापेरुमा, (2005) 6 एससीसी 222

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यवीर सिंह और राज्य प्रत्यर्थी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश कुमार वर्मा को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता रिट याचिका के अनुलग्नक-1 में निहित दिनांक 24.4.2003 के प्रत्यावर्तन आदेश को चुनौती दे रहा है। यह प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए ताकि उप निदेशक, फैजाबाद डिवीजन फैजाबाद के आदेश में अवैधताओं को ठीक किया जा सके और उस तारीख से प्रभावी आदेश पारित किया जाए जिस तारीख तक याचिकाकर्ता वरिष्ठता के

3. प्रकरण का तथ्यात्मक सार यह है कि याचिकाकर्ता को उप निदेशक, फैजाबाद मंडल फैजाबाद के आदेश से जूनियर क्लर्क के पद पर चयन समिति के परिणाम के अनुसार 4.2.1985 को नियुक्त किया गया था। 27.10.1994 को याचिकाकर्ता को वरिष्ठ क्लर्क के पद पर पदोन्नत किया गया। तदनुसार उन्होंने पोस्टिंग के कार्यालय अर्थात् जिला प्रोबेशन अधिकारी, गोंडा में कार्यभार ग्रहण किया। उसके बाद उन्हें जिला प्रोबेशन अधिकारी, सुल्तानपुर के कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ उन्होंने वरिष्ठ क्लर्क के रूप में कार्यभार ग्रहण किया और आज तक अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया। उन्हें सरकारी आदेश के अनुसार वेतन वृद्धि प्रदान की गई जो उस कर्मचारी पर लागू होती है जो आठ वर्षों की अवधि तक किसी विशेष पद पर बना रहता है।

4. दिनांक 24.4.2003 के आरोपित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को लगभग एक दशक के बाद जूनियर क्लर्क के पद पर वापस कर दिया गया है, जो वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का विषय था, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांक 12.5.2003 के आदेश के तहत अंतरिम आदेश दिया था, जिसका प्रभावी हिस्सा नीचे उद्धृत है: -

"इस बीच, रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित दिनांक 24.4.2003 के आदेश का क्रियान्वयन स्थगित रहेगा।"

5. इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता आज तक वरिष्ठ लिपिक के पद पर कार्यरत है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विवादित आदेश की आलोचना करते हुए कहा कि जिस कर्मचारी की पदोन्नति पाने में कोई गलती नहीं है, उसे एक दशक बाद प्रत्यावर्तन का विवादित आदेश पारित करके दंडित नहीं किया जा सकता। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **पी.एन. प्रेमचंद्रन बनाम केरल राज्य और अन्य [(2004) 1 सर्वोच्च न्यायालय केस 245]** के प्रकरण में दिए गए फैसले का हवाला दिया।

7. अगली दलील यह है कि याचिकाकर्ता को जूनियर क्लर्क के पद पर वापस भेजने का आदेश पारित करते समय सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया। उक्त बिंदु पर, उन्होंने **शेखर घोष बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य [(2007) 1 सर्वोच्च न्यायालय केस 331]** के प्रकरण में दिए गए फैसले पर भरोसा किया।

8. उन्होंने **पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम अघोर नाथ डे एवं अन्य [(1993) 3 सर्वोच्च न्यायालय केस 371]** के प्रकरण में दिए गए फैसले पर भरोसा जताया और अंत में, उन्होंने **असम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम मोहम्मद सरीफुज जमां एवं अन्य [(2003) 12 सर्वोच्च न्यायालय केस 408]** पर भरोसा जताया।

9. प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत

किया कि प्रत्यर्थी द्वारा पारित आदेश स्वयं में अवैध है और कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है तथा इस न्यायालय द्वारा इसे रद्द किया जाना चाहिए।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी कि विवादित आदेश में कोई कमी या अवैधता नहीं है और यह एक न्यायसंगत और वैध आदेश है। उन्होंने दलील दी कि यदि आदेश अक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है, तो उसे सुधारा और सही किया जा सकता है। उन्होंने निम्नलिखित दो निर्णयों पर भरोसा किया: -

(i) **भारत संघ एवं अन्य बनाम रघुवर पाल सिंह [(2018) 15 सर्वोच्च न्यायालय केस 463]**

(ii) **संतोष कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य [(1997) 2 सर्वोच्च न्यायालय केस 713]**

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री तथा उनके द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलोकन किया है।

12. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पदोन्नति के आदेश के एक दशक बीत जाने के बाद यह आदेश सरसरी तौर पर पारित किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि आदेश याचिकाकर्ता को नोटिस और सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पी.एन. प्रेमचंद्रन (पूर्वोक्त) के प्रकरण में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है। प्रासंगिक पैराग्राफ 7 नीचे उद्धृत है: -

"7. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पदों को पदोन्नति द्वारा भरा जाना था। हम यह समझने में विफल हैं कि अपीलकर्ता, इस प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, निजी प्रतिवादियों को दी गई पूर्वव्यापी पदोन्नति पर कैसे सवाल उठा सकता है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रशासनिक चूक के मद्देनजर, विभागीय पदोन्नति समिति ने 1964 से 1980 तक कोई बैठक नहीं की। केरल राज्य की ओर से इस तरह की प्रशासनिक चूक के कारण प्रतिवादियों को उनकी ओर से कोई गलती न होने के कारण नुकसान नहीं उठाना चाहिए। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि सामान्य तौर पर वे सहायक निदेशक के पद पर पदोन्नत होने के हकदार थे, यदि विभागीय पदोन्नति समिति का गठन समय पर किया गया होता। प्रकरण के इस दृष्टिकोण से, यह माना जाना चाहिए कि केरल राज्य ने इस आशय का एक सचेत निर्णय लिया कि जो लोग लंबे समय से उच्च पद पर कार्य कर रहे हैं, हालांकि अस्थायी आधार पर, लेकिन उस समय योग्य थे जब उन्हें पदोन्नत किया गया था और बाद की तारीख में विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा योग्य पाया गया था, उन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव से पदोन्नत किया जाना चाहिए। "

14. उन्होंने शेखर घोष (पूर्वोक्त) पर भरोसा जताया। प्रासंगिक पैराग्राफ 17 और 19 नीचे उद्धृत हैं: -

" 17.. इस बात से इनकार या विवाद नहीं किया जा सकता है कि जब किसी गलती को सुधारने की मांग की जाती है, तब भी यदि उसके कारण किसी कर्मचारी को सिविल परिणाम भुगतना पड़ता है तो आमतौर पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना आवश्यक होता है। राम उजारे बनाम भारत संघ [(1999) 1 एससीसी 685] में निम्नलिखित शब्दों में ऐसा माना गया था : -

"17. प्रत्यावर्तन के विवादित आदेश में एक और कमी है। अपीलकर्ता को 1964 से 1972 तक लोको विभाग में कोयला खलासी के रूप में की गई सेवा का लाभ दिया गया था क्योंकि उस अवधि को उसकी वरिष्ठता में गिना जाता था और इसी आधार पर उसे ट्रेड टेस्ट के लिए बुलाया गया था जिसे अपीलकर्ता ने पास कर लिया था और उसके बाद उसे सेमी-स्किल्ड फिटर और स्किल्ड फिटर के पदों पर पदोन्नत किया गया था। यदि 1964 से 1972 तक उसके द्वारा की गई सेवा का लाभ वापस लेने का इरादा था और पदोन्नति आदेश को गलती के कारण पारित होने के रूप में रद्द किया जाना था, तो प्रतिवादियों को पहले अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर देना चाहिए था। अपीलकर्ता ने ट्रेड टेस्ट पास करने के बाद दो पदोन्नति अर्जित की थी, इसलिए उसे कानूनी तौर पर दो कदम नीचे वापस नहीं लाया जा सकता था और उसे खलासी के पद पर वापस नहीं लाया जा सकता था, बिना यह बताए कि

1964 से 1972 तक उसके द्वारा की गई सेवा की अवधि को उसकी वरिष्ठता में नहीं गिना जा सकता था और, इसलिए, पदोन्नति आदेश रद्द कर दिए जाएंगे। इस तरह की स्थिति में, प्रतिवादियों के लिए उन तथ्यों पर एकतरफा निर्णय लेना संभव नहीं था, जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा गलत साबित किया जा सकता था, लेकिन ऐसा मौका कभी नहीं आया क्योंकि अपीलकर्ता को किसी भी स्तर पर उस कार्रवाई के बारे में सूचित नहीं किया गया था, जिसे प्रत्यर्थी उसके खिलाफ करने का इरादा रखते थे।"

19. यदि किसी गलती को सुधारना है तो उसे यथाशीघ्र सुधारा जाना चाहिए। [देखें माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, असम बनाम मोहम्मद सरजुम्मा (2003) 12 एससीसी 408]"

15. उन्होंने पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त) पर भी भरोसा जताया। प्रासंगिक पैराग्राफ 25 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

"25. हमारी राय में निष्कर्ष (बी) को एक अलग तरह की स्थिति को कवर करने के लिए जोड़ा गया था, जिसमें नियुक्तियां अन्यथा नियमित हैं, नियमों द्वारा निर्धारित कुछ प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं की कमी को छोड़कर। यह निष्कर्ष (बी) के शुरुआती शब्दों से स्पष्ट है, अर्थात्, 'यदि प्रारंभिक नियुक्ति नियमों द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके नहीं की जाती है' और बाद में अभिव्यक्ति 'नियमों के अनुसार उसकी सेवा के नियमितीकरण तक'। हम निष्कर्ष (बी) पढ़ते हैं,

और इसे निष्कर्ष (ए) के साथ फिर से पढ़ा जाना चाहिए, उन मामलों को कवर करने के लिए जहां प्रारंभिक नियुक्ति मौजूदा रिक्ति के खिलाफ की जाती है, जो नियुक्ति आदेश द्वारा स्वयं एक निश्चित समय अवधि या उद्देश्य तक सीमित नहीं हैं, और नियमितीकरण के समय पद के लिए नियुक्त व्यक्ति की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए नियमों द्वारा निर्धारित प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं की कमी के अधीन है, नियुक्त व्यक्ति ऐसे मामलों में प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख को नियमित नियुक्ति के लिए हर तरह से पात्र और योग्य है। नियुक्ति की प्रकृति के बारे में निर्णय, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या यह इस श्रेणी में आता है, प्रारंभिक नियुक्ति की शर्तों और नियमों में प्रावधानों के आधार पर किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में, नियमों द्वारा निर्धारित प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं में कमी को कर्मचारी की किसी भी चूक के बिना, पहले उपलब्ध अवसर पर ठीक किया जाना चाहिए, और नियुक्त व्यक्ति को नियमों के अनुसार अपनी सेवा के नियमितीकरण तक निर्बाध रूप से पद पर बने रहना चाहिए। ऐसे मामलों में, नियुक्त व्यक्ति अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के समय नियमों के तहत प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं में कमी के लिए दोषी नहीं है, और नियुक्ति एक निश्चित समय अवधि तक सीमित नहीं होने के कारण, नियमों की शेष प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं को जल्द से जल्द पूरा करने के अधीन, एक नियमित नियुक्ति होने का इरादा है। ऐसे मामलों में भी, यदि नियुक्त व्यक्ति की किसी गलती के कारण दोषों को ठीक करने में कोई देरी होती है, तो नियुक्त व्यक्ति को उसकी चूक के कारण पहले

की अवधि का पूरा लाभ नहीं मिलेगा, लाभ केवल उस अवधि तक सीमित होगा जिसके लिए वह दोषी नहीं है। मामलों की यह श्रेणी निष्कर्ष (ए) में दिए गए उप-अनुच्छेद द्वारा कवर किए गए मामलों से अलग है, जो केवल अस्थायी व्यवस्था के रूप में तदर्थ आधार पर नियुक्ति से संबंधित है, न कि नियमों के अनुसार। इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि वर्तमान प्रकरण निष्कर्ष (बी) के दायरे में आ सकते हैं, भले ही वे निष्कर्ष (ए) में दिए गए उप-अनुच्छेद द्वारा पूरी तरह से कवर किए गए हों।"

16. अंत में, उन्होंने असम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (पूर्वोक्त) पर भरोसा जताया। प्रासंगिक पैराग्राफ 10 और 12 नीचे उद्धृत हैं: -

"10. कोई भी व्यक्ति किसी शैक्षणिक संस्थान द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्र में किसी प्रविष्टि को सही करने का अधिकार नहीं ले सकता, वह भी उस संस्थान द्वारा जिसे अधिनियम के तहत वैधानिक बोर्ड का दर्जा प्राप्त है। आवेदक के किसी त्रुटि या गलती को सही करवाने के अधिकार के साथ-साथ बोर्ड का यह कर्तव्य या दायित्व भी जुड़ा हुआ है कि वह अपने अभिलेखों और अपने द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्र को सही करे। न केवल यह एक संगत कर्तव्य या दायित्व है, बल्कि इसे बोर्ड द्वारा अपने द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्र में दिखाई गई प्रविष्टि को सही करने के लिए प्रयोग की जाने वाली शक्ति के रूप में भी माना जाना चाहिए। लोग, संस्थान और सरकारी विभाग आदि सभी बोर्ड द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्रों में की गई प्रविष्टियों को

बहुत उच्च स्तर की विश्वसनीयता, लगभग अंतिमता देते हैं। प्रमाण-पत्रों में प्रविष्टियों को सही करने की शक्ति का बार-बार प्रयोग और वह भी ऐसी शक्ति के प्रयोग पर किसी सीमा के बिना, शक्ति को स्वयं मनमाना बना देगा और इसके परिणामस्वरूप बोर्ड द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्रों की विश्वसनीयता कम हो सकती है। इसलिए, हमें यह तर्क देना मुश्किल लगता है कि ऐसे प्रमाण-पत्रों में प्रविष्टियों को सही करने की मांग करने वाले आवेदकों के पास ऐसा कोई अधिकार या निहित अधिकार है।

12. विलम्ब विवेकाधिकार को नष्ट कर देता है तथा सीमा की हानि से उपाय स्वयं नष्ट हो जाता है। विलम्ब के कारण विवेकाधिकार का लाभ समता के सिद्धांतों पर नहीं मिल पाता। सीमा की हानि के कारण उपाय से वंचित होना सार्वजनिक नीति तथा उपयोगिता पर आधारित सिद्धांत है, न कि केवल समता पर। समय की एक सीमा होनी चाहिए जिसके भीतर मानवीय प्रकरण निपट जाएं तथा अनिश्चितता समाप्त हो जाए। विनियमन 8 आवेदक को अधिकार तथा बोर्ड को जन्मतिथि में सुधार करने का दायित्व प्रदान करता है, बशर्ते कि गलत गणना या लिपिकीय त्रुटि की गई हो। स्कूल निरीक्षक के माध्यम से आवेदन पर कार्रवाई करने के लिए एक उचित प्रक्रिया निर्धारित की गई है, जो स्कूल अभिलेखों का सत्यापन करेगा तथा बोर्ड को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, ताकि विनियमन 8 के ढांचे के भीतर स्वीकार्य दावों के अलावा अन्य दावों पर विचार न किया जा सके। सुधार के लिए आदेश पारित करने की शक्ति बोर्ड के सचिव जैसे उच्च पदाधिकारी के पास निहित

हैं। प्रमाण-पत्र लिखने के चरण में ही अशुद्धि आ सकती है, जबकि अन्य सभी पूर्व दस्तावेज सभी मामलों में सही हैं। प्रमाण पत्र जारी करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर सुधार किया जाना चाहिए।"

17. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने **यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य (पूर्वोक्त)** पर भरोसा जताया। प्रासंगिक पैराग्राफ 19 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"19. अब हम कार्यालय आदेश में दर्ज कारणों की प्रभावकारिता पर विचार करेंगे। पशु चिकित्सा कम्पाउंडर के पद के संबंध में भर्ती प्रक्रिया " केन्द्रीय मवेशी प्रजनन फार्म (श्रेणी III और श्रेणी IV पद) भर्ती नियम, 1969 नामक वैधानिक नियमों द्वारा शासित होती है, जिसे समय-समय पर संशोधित किया जाता है और जिसमें उस संबंध में जारी कार्यकारी निर्देश शामिल हैं। ऐसी भर्ती के लिए बताई गई व्यवस्था के अनुसार, नियुक्ति पत्र केवल अधिकृत अधिकारी द्वारा और सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन प्रदान करने के बाद ही जारी किया जा सकता है। प्रत्यर्थी द्वारा दायर मूल आवेदन में कहीं भी यह दावा नहीं किया गया है कि नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए ऐसा पूर्व अनुमोदन आवश्यक नहीं है।"

18. उन्होंने **संतोष कुमार वर्मा एवं अन्य (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा जताया। प्रासंगिक पैराग्राफ 5 नीचे उद्धृत है: -

"5. अधिनियम की धारा 6(3) प्राधिकरण को केवल सचिव तथा प्राधिकरण के अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति करने का अधिकार देती है। प्रावधान के तहत दी गई शक्ति प्राधिकरण को अस्थायी नियुक्तियां करने के लिए दी गई एक अस्थायी शक्ति मात्र है, ताकि भर्ती होने तक विकास प्राधिकरण का काम चलता रहे। इसलिए, जब भर्ती के लिए विज्ञापन दिया गया, तो यह स्पष्ट रूप से भर्ती को आगे बढ़ाने के लिए था, यह स्पष्ट रूप से सीमित अवधि के लिए प्रावधान के तहत दी गई शक्ति को आगे बढ़ाने के लिए था। इस प्रकार, नियुक्तियां स्पष्ट रूप से केवल अस्थायी नियुक्तियां हैं, जिन्होंने नियमितीकरण के लिए सरकार से सहायता मांगी थी, जिसे लोक सेवा आयोग ने अस्वीकार कर दिया था। यह देखा गया है कि ये पद लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में हैं। इसलिए, सरकार ने लोक सेवा आयोग की सहमति मांगी और लोक सेवा आयोग ने सहमति नहीं दी और हमारे विचार में, सरकार द्वारा किए गए अनुरोध के साथ सही ढंग से काम किया। इसलिए, लोक सेवा आयोग द्वारा की जाने वाली भर्ती के उल्लंघन में कोई भी नियमितीकरण कानून का उल्लंघन है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने नियमों का उल्लंघन करके की गई सेवाओं के नियमितीकरण के लिए कोई आदेश जारी नहीं किया और कानून का उल्लंघन करने के लिए कोई आदेश या निर्देश जारी नहीं किया जाएगा।

19. यह कानून का सुस्थापित प्रस्ताव है कि पदोन्नति के आदेश पारित होने के तुरंत बाद प्रत्यावर्तन का आदेश पारित किया जा सकता है और यदि आदेश को लंबे समय तक जारी



रखने की अनुमति दी गई थी, तो पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद आदेश पारित किया जाना चाहिए। वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना प्रत्यावर्तन का आदेश पारित किया गया है, इसलिए, यह आदेश कानून में पोषणीय नहीं है।

20. आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आदेश पारित करते समय स्थापित कानून के संबंध में विचार नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिए गए निर्णय वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह लागू होते हैं, जबकि विद्वान स्थायी अधिवक्ता के निर्णय प्रकृति में भिन्न हैं और वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों से संबंधित नहीं हैं।

21. ऊपर दर्ज कारणों के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे स्वीकार किया जाता है। दिनांक 24.4.2003 का विवादित आदेश निरस्त किया जाता है। इसके परिणाम बाद में आएंगे।

-----  
(2023) 9 ILRA 973

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 6418 वर्ष 2023

मेसर्स आर्यन ग्रुप ऑफ गार्ड सर्विसेज, लखनऊ

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

डीपी दत्त तिवारी, चंद्र मोहन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एसजीआई, शिशिर प्रधान

सिविल विधि - कर्मचारी बीमा अधिनियम,

1948 - धारा 44, 45, 45ए, 45एए, 45सी

और 45ई - अंशदानों की वसूली - वसूली

आदेश की वैधता - याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी

संख्या 2 द्वारा धारा 45-सी से 45-आई के

तहत जारी किए गए 17.01.2020 के वसूली

आदेश को चुनौती दी, जिसमें नवंबर 2018 से

जुलाई 2019 तक के अवैतनिक अंशदान और

ब्याज के रूप में रु 67,33,238 की वसूली की

मांग की गई थी, आरोप लगाया गया कि इसे

धारा 45ए के तहत निर्धारण के बिना जारी

किया गया था। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि

ईएसआईसी पोर्टल (सी-6 अनुपालन रजिस्टर)

पर याचिकाकर्ता के स्व-घोषित अंशदान ने

प्रत्यक्ष वसूली को उचित ठहराया, क्योंकि राशि

ज्ञात थी। न्यायालय ने माना कि अधिनियम

की योजना के तहत, नियोक्ताओं को धारा 44

के तहत रिटर्न दाखिल करना चाहिए, जिसकी

सामाजिक सुरक्षा अधिकारियों द्वारा धारा 45

के तहत जांच की जाती है। धारा 45सी से

45आई के तहत वसूली शुरू करने से समक्ष,

रिटर्न दाखिल होने पर भी, धारा 45ए के तहत

अंशदान का निर्धारण अनिवार्य है। धारा 45ए

के आदेश का अभाव वसूली की कार्यवाही को

अवैध बनाता है, क्योंकि नियोक्ता धारा 45ई

के तहत वसूली राशि को चुनौती नहीं दे सकते, लेकिन धारा 45ए के तहत धारा 45ए के निर्धारण के विरुद्ध अपील कर सकते हैं। धारा 45ए के तहत कोई निर्धारण नहीं किया गया, जिससे वसूली आदेश मनमाना और विधि के विपरीत हो गया। 17.01.2020 का आदेश रद्द किया जाता है, साथ ही प्रतिवादियों को धारा 45ए के तहत नए आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी जाती है। (पैरा 7-9, 12-16)

### रिट याचिका स्वीकृत।

#### उद्धृत वादों की सूची:

हेम कुमार गोगोई बनाम कर्मचारी बीमा निगम एवं अन्य, (2016) 09 गौ सीके 0004

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.पी. दत्त तिवारी और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर प्रधान को सुना गया।

2. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से दाखिल प्रति-शपथपत्र को अभिलेख पर लिया जाता है।

3. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (जिसे आगे 1948 का अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 45-सी से 45-आई के अंतर्गत विपक्षी संख्या 2 द्वारा

निर्गत दिनांक 17.1.2020 के वसूली आदेश को रद्द करने की मांग की है।

4. याचिकाकर्ता ने उक्त वसूली आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि इसे बिना किसी कार्यवाही या अधिनियम 1948 की धारा 45ए के अंतर्गत कोई आदेश पारित किए तथा ईएसआई अधिनियम की धारा 45ए की उपधारा (1) के अंतर्गत वैधानिक रूप से अपेक्षित कोई मूल्यांकन आदेश पारित किए बिना पारित किया गया है। वसूली अधिकारी कर्मचारी राज्य बीमा निगम, उप क्षेत्रीय अधिकारी, सरोजनी नगर, लखनऊ (विरोधी पक्ष संख्या 3) को 67,33,238/- रुपए की राशि वसूलने से सीधे तौर पर निर्देश देना अवैधानिक एवं मनमाना है।

5. दूसरी ओर, श्री शिशिर प्रधान ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को 1.1.2020 को पत्र जारी किया गया था, जिसमें उनसे कारण बताने के लिए कहा गया था कि उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा नियोजित श्रमिकों के लिए वैधानिक बीमा अंशदान राशि क्यों नहीं जमा की है, जिसके लिए अंशदान विवरण प्रस्तुत किए गए थे और ईएसआईसी पोर्टल पर उपलब्ध थे। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने स्वयं ईएसआईसी के ऑनलाइन सी-6 अनुपालन रजिस्टर में नवंबर, 2018, दिसंबर, 2018, जनवरी, 2019, फरवरी, 2019, मार्च, 2019, अप्रैल, 2019, मई, 2019, जून, 2019 और जुलाई, 2019 की अवधि के लिए देय अंशदान राशि और उनके द्वारा नियोजित श्रमिकों की संख्या घोषित की थी और इसलिए, चूंकि राशि ज्ञात थी, स्थापना और सीधे वसूली

की कार्यवाही के संबंध में धारा 45 ए के अंतर्गत कोई आदेश या निर्धारण शुरू नहीं किया गया था। उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल विवरणी की प्रति संलग्न की है।

6.याचिकाकर्ता ने उप निदेशक द्वारा पारित दिनांक 17.1.2020 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसमें अधिनियम 1948 की धारा 45 सी से 45 आई के अंतर्गत अंशदान की राशि वसूलने की मांग की गई है। उक्त आदेश में कहा गया है कि ईएसआई अधिनियम के प्रावधान याचिकाकर्ता पर लागू होते हैं और याचिकाकर्ता को नवंबर, 2018 से जुलाई, 2019 की अवधि के लिए अपने कर्मचारियों के संबंध में अंशदान के रूप में 61,82,611/- रुपये का भुगतान करना था, साथ ही प्रत्येक दिन के लिए 12 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी देना था, इसलिए, वसूली योग्य कुल राशि 67,33,238/- रुपये थी।

7.इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या प्रतिवादियों द्वारा आरोपित आदेश के माध्यम से की जाने वाली वसूली, 1948 के अधिनियम की धारा 45ए के प्रावधानों का सहारा लिए बिना पारित की जा सकती थी? इस संबंध में, 1948 के अधिनियम में निहित योजना के अनुसार। धारा 44 के अंतर्गत नियोक्ताओं द्वारा कुछ मामलों में विवरणी प्रस्तुत करना तथा रजिस्टर बनाए रखना। - (1) प्रत्येक प्रधान और तात्कालिक नियोजक निगम को या निगम के ऐसे अधिकारी को, जिसे वह निदेश दे, ऐसे प्रारूप में और अपने द्वारा नियोजित व्यक्तियों से

या किसी कारखाने या स्थापन से, जिसके संबंध में वह प्रधान या तात्कालिक नियोजक है, संबंधित ऐसे विवरण प्रस्तुत करेगा, जो इस निमित्त बनाए गए विनियमों में विनिर्दिष्ट हों।

(2) जहां किसी कारखाने या स्थापन के संबंध में निगम के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उपधारा (1) के अधीन विवरणी प्रस्तुत की जानी चाहिए थी किन्तु इस प्रकार प्रस्तुत नहीं की गई है, वहां निगम कारखाने या स्थापन के भारसाधक किसी व्यक्ति से ऐसी विशिष्टियां प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जिन्हें वह निगम को यह विनिश्चय करने में समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक समझे कि कारखाना या स्थापन ऐसा कारखाना या स्थापन है, जिस पर यह अधिनियम लागू होता है।

(3) प्रत्येक प्रधान और तात्कालिक नियोजक अपने कारखाने या स्थापन के संबंध में ऐसे रजिस्टर या अभिलेख रखेगा जैसा कि इस निमित्त बनाए गए विनियमों द्वारा अपेक्षित हो।

8.धारा 44 के अंतर्गत प्रावधानित विवरणी दाखिल होने के बाद, प्रतिवादी निगम द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत इसकी जांच की जानी आवश्यक है, जहां यह प्रावधान है कि निगम द्वारा नियुक्त सामाजिक सुरक्षा अधिकारी धारा 44 में निर्दिष्ट किसी भी विवरणी में बताए गए किसी भी विवरण की सत्यता की जांच करने के लिए या यह पता लगाने के लिए कि क्या इस

अधिनियम के किसी भी प्रावधान का अनुपालन किया गया है,

(ए) किसी प्रधान या तात्कालिक नियोजक से ऐसी जानकारी देने की अपेक्षा कर सकेगा जिसे वह इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे; या (बी) किसी भी उचित समय पर ऐसे प्रमुख या तात्कालिक नियोक्ता के कब्जे में किसी कार्यालय, स्थापन, कारखाने या अन्य परिसर में प्रवेश करेगा तथा वहां के प्रभारी किसी व्यक्ति से अपेक्षा करेगा कि वह उसे ऐसे सामाजिक सुरक्षा अधिकारी या अन्य अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करे तथा उसे व्यक्तियों के रोजगार और मजदूरी के भुगतान से संबंधित खातों, पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों की जांच करने दे या उसे ऐसी जानकारी देने दे, जिसे वह आवश्यक समझे; या (सी) पूर्वोक्त प्रयोजनों से सुसंगत किसी मामले के संबंध में प्रधान या तात्कालिक नियोक्ता, उसके अभिकर्ता या सेवक, या ऐसे कारखाने, स्थापन, कार्यालय या अन्य परिसर में पाए जाने वाले किसी व्यक्ति, या किसी ऐसे व्यक्ति की, जिसके बारे में उक्त सामाजिक सुरक्षा अधिकारी या अन्य पदाधिकारी के पास यह मानने का उचित कारण है कि वह कर्मचारी है या रहा है, जांच करना; (डी) ऐसे कारखाने, प्रतिष्ठान, कार्यालय या अन्य परिसर में रखे गए किसी रजिस्टर, खाता बही या अन्य दस्तावेज की प्रतियां बनाना या उनसे उद्धरण लेना; (इ) ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करना जो विहित की जाएं। 3) [सामाजिक सुरक्षा अधिकारी] ऐसे कार्य करेगा तथा ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जैसा कि निगम द्वारा प्राधिकृत किया जा सकता है या

जैसा कि विनियमों में निर्दिष्ट किया जा सकता है। [(4) निगम द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत कोई भी अधिकारी, सामाजिक सुरक्षा अधिकारी द्वारा किए गए निरीक्षण की सत्यता और गुणवत्ता की पुष्टि करने के प्रयोजनार्थ धारा 44 के अधीन प्रस्तुत अभिलेखों और विवरणियों का पुनः निरीक्षण या परीक्षण निरीक्षण कर सकता है।]

9. धारा 45 ए कुछ मामलों में अंशदान के निर्धारण से संबंधित है। - (1) जहां किसी कारखाने या स्थापन के संबंध में धारा 44 के उपबंधों के अनुसार कोई विवरणी, विवरण, रजिस्टर या अभिलेख प्रस्तुत, प्रस्तुत या अनुरक्षित नहीं किए जाते हैं या धारा 45 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट निगम के किसी [सामाजिक सुरक्षा अधिकारी] या अन्य पदाधिकारी को प्रधान या तात्कालिक नियोजक या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा धारा 45 के अधीन अपने कृत्यों का प्रयोग या अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से [किसी भी प्रकार रोका जाता है], वहां निगम अपने पास उपलब्ध सूचना के आधार पर आदेश द्वारा उस कारखाने या स्थापन के कर्मचारियों के संबंध में देय अंशदान की राशि निर्धारित कर सकेगा।]

10. यदि नियोक्ता ऐसे निर्धारण से व्यथित है, तो धारा 45ए ऐसे निर्धारण के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है। धारा 45 सी में वसूली अधिकारी द्वारा वसूली प्रमाण पत्र जारी करने का प्रावधान है, जिसमें यह प्रावधान है कि (1) जहां इस अधिनियम के तहत कोई राशि बकाया है, वहां प्राधिकृत अधिकारी वसूली अधिकारी को अपने हस्ताक्षर से बकाया राशि

निर्दिष्ट करते हुए प्रमाण पत्र जारी कर सकता है और वसूली अधिकारी ऐसे प्रमाण पत्र की प्राप्ति पर, कारखाने या प्रतिष्ठान से उसमें निर्दिष्ट राशि वसूलने के लिए आगे बढ़ेगा या, जैसा भी मामला हो,

11. धारा 45 ई के तहत यह भी प्रावधान किया गया है कि जब प्राधिकृत अधिकारी धारा 45-सी के तहत वसूली अधिकारी को प्रमाण पत्र जारी करता है, तो फैक्ट्री या प्रतिष्ठान या स्वामी या तत्काल नियोक्ता को वसूली अधिकारी के समक्ष राशि की शुद्धता पर विवाद करने का अधिकार नहीं होगा और वसूली अधिकारी द्वारा किसी अन्य आधार पर प्रमाण पत्र पर कोई आपत्ति भी स्वीकार नहीं की जाएगी।

12. उपर्युक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि कर्मचारियों पर अपने अंशदान के रूप में देय राशि के निर्धारण के लिए 1948 के अधिनियम के अंतर्गत स्पष्ट रूप से एक तंत्र प्रदान किया गया है। नियोक्ता को अधिनियम की धारा 44 के अंतर्गत अपनी विवरणी दाखिल करने का आदेश दिया गया है। उक्त विवरणी की जांच अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा अधिकारी द्वारा की जानी है तथा धारा 44 के अंतर्गत दाखिल विवरणी अथवा धारा 45 के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को अधिनियम की धारा 45 ए के अंतर्गत नियोक्ता द्वारा बकाये का निर्धारण माना जाएगा। धारा 45 ए के उपखंड 2 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि ऐसा निर्धारण निगम द्वारा धारा 45 ए (1) के अंतर्गत दिए गए आदेश के समान होगा तथा

धारा 75 के अंतर्गत निगम के दावे अथवा धारा 45 बी के अंतर्गत भूमि राजस्व के बकाये के रूप में ऐसे आदेश द्वारा निर्धारित राशि की वसूली अथवा धारा 45 सी के अंतर्गत धारा 45 आई की वसूली के लिए पर्याप्त सबूत होगा।

13. उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि धारा 45 ए के अंतर्गत यह प्रावधान है कि निश्चित राशि का निर्धारण उन सभी मामलों में किया जाना होगा जहां नियोक्ता के अंशदान पर विवाद हो।

14. धारा 45ए के अंतर्गत पारित किसी आदेश के अभाव में किसी भी वसूली की कार्यवाही नहीं की जा सकती। यह भी एकमात्र व्याख्या प्रतीत होती है क्योंकि नियोक्ता को वसूली नोटिस में बताई गई राशि और वसूली अधिकारी द्वारा जारी आदेश को चुनौती देने से रोका गया है जबकि धारा 45 ए के तहत किया गया निर्धारण धारा 45 एए के तहत अपील योग्य है और यह केवल तभी संभव है जब धारा 45 ए के तहत आदेश को अंतिम रूप दिया गया हो और यदि कोई अपील दायर नहीं की गई हो या अपील दायर किए जाने के बाद और उसके बाद धारा 45 एए के तहत अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के बाद राशि का अंतिम रूप से निर्धारण किया गया हो और इसलिए प्रतिवादी धारा 45 सी के तहत राशि की वसूली के लिए आगे बढ़ सकते हैं।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय का विचार है कि भले ही नियोक्ता ने कोई विवरणी दाखिल नहीं किया है, फिर भी प्रतिवादी 1948 के अधिनियम की धारा 45ए के तहत निर्धारण करने के लिए बाध्य हैं। वर्तमान मामले में, यह

विवादित नहीं है कि धारा 45 ए के तहत कोई निर्धारण नहीं है और प्रतिवादियों ने सीधे धारा 45 ई के तहत वसूली नोटिस पारित करने की कार्यवाही की है जो तदनुसार अवैध और मनमाना है और अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध है। मामले के इस पहलू पर गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा हेम कुमार गोगोई बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम एवं अन्य के मामले में (2016) 09 गौहाटी सीके 0004 में पहले ही विचार किया जा चुका है, जिसका प्रासंगिक अंश निम्नानुसार उद्धृत है:-

"20. जब तक कि धारा 45 ए (1), धारा 45 ए (2), धारा 45 बी और 45 सी के तहत कारखाने या प्रतिष्ठान के कर्मचारियों के संबंध में देय अंशदान की राशि निर्धारित करने वाला कोई आदेश नहीं होता, तब तक यह लागू नहीं होगा। धारा 45 ए (1) के तहत पारित किसी भी अंतिम आदेश के अभाव में, जैसा कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से ज्ञात होता है, दिनांक 10.06.2010 के प्रश्नगत आदेश को विधि की दृष्टि में अधिकारिता से रहित माना जाना चाहिए।"

16. उपरोक्त के आलोक में, प्रतिवादियों द्वारा धारा 45ए के अंतर्गत कोई निर्धारण नहीं किया गया है और तदनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई वसूली कार्यवाही अवैध और मनमानी है और विधि के प्रावधानों के विरुद्ध है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 45-सी से 45-आई के अंतर्गत विपक्षी

संख्या 2 द्वारा निर्गत दिनांक 17.1.2020 के प्रश्नगत आदेश को निरस्त किया जाता है तथा उक्त आदेश के अनुसरण में समस्त कार्यवाही भी अपास्त की जाती है।

17. प्रतिवादियों को धारा 45ए के अनुसार नए आदेश पारित करने तथा तदनुसार मामले में विधि के अनुरूप अग्रेतर कार्यवाही करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है।

18. इस प्रकार रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 977

मूल क्षेत्राधिकार  
सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 11005 वर्ष 2023

के साथ

रिट-सी संख्या 5992 वर्ष 2023

अंजुमन सिद्दीकिया जामिया नूरुल ओलूम  
मुंशीपुर, मुबारकपुर आजमगढ़ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री अमी टंडन, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों

के

अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

**सिविल विधि - उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड अधिनियम, 2004 - धारा 2, 3, 9, 10 और 13 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 और 226 -** एसआईटी रिपोर्ट और सरकारी संकल्प की वैधता - प्राकृतिक न्याय - याचिकाकर्ताओं ने 30.11.2022 की एसआईटी रिपोर्ट के आधार पर 19.12.2022 के संकल्प को मंजूरी देने वाले 09.01.2023 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें मदरसा आधुनिकीकरण योजना के तहत धन के कथित गबन के लिए याचिकाकर्ताओं सहित 219 गैर-मौजूद मदरसों के लिए आपराधिक कार्रवाई और मान्यता वापस लेने की सिफारिश की गई थी। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि एसआईटी जांच एकपक्षीय थी, जो प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करती थी और रिट-सी संख्या 11005 में मदरसा 2017 में बंद कर दिया गया था। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि एसआईटी ने गहन स्पॉट और पोर्टल-आधारित निरीक्षण किए, जिसमें पाया गया कि याचिकाकर्ताओं के मदरसे अस्तित्व में नहीं थे, और अधिकारियों की मिलीभगत से धन का दुरुपयोग किया गया था। न्यायालय ने माना कि धारा 13(4) के तहत राज्य सरकार की शक्ति बोर्ड के संदर्भ के बिना तत्काल कार्रवाई की अनुमति देती है, जो

संभावित रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कमजोर करता है। धारा 10(2)(vi) संस्थानों को बोर्ड की कार्रवाई के समक्ष जवाब देने का अवसर सुनिश्चित करती है। *आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023* में खंडपीठ के दिनांक 09.02.2023 के आदेश ने एसआईटी रिपोर्ट और प्रस्ताव को बरकरार रखा, जिसमें पाया गया कि प्राथमिकी दर्ज करने के लिए प्रारंभिक जांच में पूर्व सूचना की कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है। संबंधित मामलों में अंतरिम आदेशों को खंडपीठ के फैसले की अनदेखी करने के कारण अनुचित माना गया। रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं, और याचिकाकर्ताओं को सक्षम प्राधिकारियों के समक्ष अपनी शिकायतें उठाने की छूट दी गई। अंतरिम आदेश निरस्त। (पैरा 33-36, 39-43, 52)

**रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं।**

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. भारत संघ बनाम जेएन सिन्हा एवं अन्य, एआईआर 1971 एससी 40
2. यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन कंपनी लिमिटेड, (1944) 2 ऑल ईआर 293
3. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य, (1991) 4 एससीसी 139

4. निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, जेटी 2004 (7) एससी 161
5. आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य बनाम बी. सत्यनारायण राव (मृत) एलआरएस द्वारा, (2000) 4 एससीसी 262
6. बिहार बनाम कालिका कुअर @ कालिका सिंह एवं अन्य, जेटी 2003 (4) एससी 489
7. ममलेश्वर प्रसाद एवं अन्य बनाम कन्हैया लाल (मृत), (1975) 2 एससीसी 232
8. राजपुर रूदा मेहा एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1980 एससी 1707
9. एआर अंतुले बनाम आरएस नायक, एआईआर 1988 एससी 1531
10. दिल्ली नगर निगम बनाम गुरनाम कौर, एआईआर 1989 एससी 38
11. पंजाब भूमि विकास और पुनर्गठन निगम लिमिटेड, चंडीगढ़ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ एवं अन्य, (1990) 3 एससीसी 682
12. महाराष्ट्र राज्य सहकारी कपास उत्पादक विपणन संघ लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्मचारी संघ एवं अन्य, 1994 अनुपूरक (3) एससीसी 385
13. पवन अलॉयज एंड कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ बनाम यूपी राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, (1997) 7 एससीसी 251
14. राम गोपाल बाहेती बनाम गिरधारीलाल सोनी एवं अन्य, (1999) 3 एससीसी 112
15. सरनाम सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, (1999) 5 एससीसी 638
16. आंध्र प्रदेश सरकार बनाम बी. सत्यनारायण राव, एआईआर 2000 एससी 1729
17. अर्नित दास बनाम बिहार राज्य, (2000) 5 एससीसी 488
18. मेसर्स फ्यूस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड, एआईआर 2001 एससी 2293
19. ए-वन ग्रेनाइट्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2001) 3 एससीसी 537
20. सुगंती सुरेश कुमार बनाम जगदीशन, एआईआर 2002 एससी 681
21. निपटान निदेशक एपी और अन्य बनाम एमआर अप्पाराव और अन्य, (2002) 4 एससीसी 638
22. एस. शनमुगावेल नादर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, (2002) 8 एससीसी 361



9.इला अंजुमन सिद्दीकिया जामिया नूरुल ओलूम मुंशीपुर, मुबारकपुर आजमगढ़ एवं अन्य  
बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1337

23. बिहार राज्य बनाम कालिका कुएर कालिका  
सिंह एवं अन्य, एआईआर 2003 एससी 2443

24. मंदा जगनाथ बनाम केएस रत्नम और  
अन्य, (2004) 7 एससीसी 492

एस.आई.टी. रिपोर्ट को स्वीकार करने की  
अनुशंसा की गई थी। एक अन्य अनुतोष यह  
याचित है कि प्रत्यर्थी याचिकाकर्ताओं को  
परेशान नहीं करे या उनके विरुद्ध बलपूर्वक  
कोई कार्रवाई नहीं करे।

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा  
पारित)

1. एक दूसरे से संबंधित इन दोनों रिट  
याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई की गई और  
चूंकि इनमें समान तथ्यात्मक और कानूनी  
विवाद शामिल हैं, इसलिए दोनों को एक ही  
निर्णय से निस्तारित किया जा रहा है।

#### रिट-सी संख्या 11005/2023

##### चुनौती

2. यह रिट याचिका विशेष सचिव, उत्तर  
प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा पारित आदेश  
दिनांकित 09.01.2023 को चुनौती देते हुए  
दायर की गई है, जहां तक यह याचिकाकर्ताओं  
से संबंधित है और इसमें दिनांक 19.12.2022  
को हुई बैठक में विचार किए गए विशेष जांच  
दल (एस.आई.टी.) द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट  
दिनांकित 30.11.2022 के अनुसरण में उनके  
विरुद्ध कार्रवाई करने का निर्देश शामिल है।  
आगे की प्रार्थना एस.आई.टी. रिपोर्ट को उस  
सीमा तक रद्द करने के लिए है, जहां तक यह  
याचिकाकर्ताओं से संबंधित है और राज्य  
सरकार के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक  
बैठक में पारित दिनांक 19.12.2022 के  
प्रस्ताव को रद्द करने के लिए है जिसमें

#### मामले के तथ्य

3. याचिकाकर्ता संख्या 1 अंजुमन  
सिद्दीकिया जामिया नूरुल ओलूम मुंशीपुर,  
मुबारकपुर, आजमगढ़ द्वारा प्रबंधक श्री जहीन  
अहमद (एतदपश्चात 'सोसायटी' के रूप में  
संदर्भित) के माध्यम से सोसायटी पंजीकरण  
अधिनियम, 1860 (एतदपश्चात 'अधिनियम,  
1860' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत पंजीकृत  
होकर, याचिकाकर्ता संख्या 2 मदरसा  
अशरफिया मदीनतुल बनात, मुबारकपुर,  
आजमगढ़ (एतदपश्चात 'मदरसा' के रूप में  
संदर्भित) के नाम और शैली में एक मदरसा  
स्थापित किया, जो पट्टे और विक्रय से ली गई  
संपत्तियों पर है; विलेख संलग्न है। उचित  
सत्यापन के पश्चात, मदरसे को उत्तर प्रदेश  
मदरसा शिक्षा बोर्ड अधिनियम, 2004  
(एतदपश्चात 'अधिनियम, 2004' के रूप में  
संदर्भित) के प्रावधानों के अंतर्गत पंजीकरण  
प्रमाण पत्र दिनांकित 27.07.2011 द्वारा  
पंजीकृत किया गया था और राज्य सरकार ने  
मदरसों को शिक्षक प्रदान करने और विभिन्न  
विषयों को पढ़ाने के प्रयोजनों के लिए उन्हें  
वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए "मदरसा  
आधुनिकीकरण (आधुनिकीकरण) योजना"  
नामक एक योजना शुरू की थी और उक्त  
योजना के अंतर्गत, याचिकाकर्ता संख्या 2  
मदरसा ने तीन योग्य शिक्षकों को नियुक्त

किया था, जिनके नाम कहकशा परवीन (याचिकाकर्ता संख्या 3), सुबी परवीन (याचिकाकर्ता संख्या 4) और मोहम्मद शाह फैजल (याचिकाकर्ता संख्या 5) हैं।

4. यह भी तर्क दिया गया है कि उक्त योजना के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा दिनांक 31.01.2016 तक दो बार में (30,000/- रुपये + 72,000/- रुपये) कुल 1,02,000/- रुपये जारी किए गए और उक्त राशि याचिकाकर्ता संख्या 3, 4 और 5 अर्थात् शिक्षकों के बैंक खातों में सीधे अंतरित कर दी गई और इसका विवरण मद्रसे के पोर्टल पर अपलोड कर दिया गया और बाद में वित्तीय संकट सहित विभिन्न कठिनाइयों के कारण मद्रसा बंद करने का निर्णय लिया गया और उक्त के दौरान याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ को दिनांक 31.07.2017 को एक पत्र लिखकर मद्रसे को उक्त योजना से बाहर करने के लिए कहा गया और इसके अतिरिक्त, दिनांक 27.11.2017 को याचिकाकर्ता संख्या 2 मद्रसा द्वारा एक अन्य पत्र के माध्यम से मद्रसा बंद करने के निर्णय की जानकारी प्रत्यर्थी संख्या 4 को दी गई तथा परिणामस्वरूप, मद्रसा अंततः नवंबर, 2017 में बंद हो गया।

#### याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया मुद्दा

5. उठाया गया मुद्दा यह है कि मद्रसे के विरुद्ध विभिन्न शिकायतों की जांच के लिए गठित विशेष जांच दल (एस.आई.टी.) ने दिनांक 30.11.2022 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे राज्य सरकार के मुख्य सचिव की अध्यक्षता वाली समिति के समक्ष दिनांक

19.12.2022 की बैठक में रखा गया और उक्त बैठक की कार्यवाही से याचिकाकर्ता मद्रसा सहित विभिन्न मद्रसों के विरुद्ध प्रस्तावित विभिन्न कार्रवाई का पता चलता है, जिसमें मद्रसे के पदाधिकारियों के विरुद्ध धारा 409, 420, 467, 468 और 471 भा.दं.सं. के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना शामिल है। याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि मद्रसा-प्राधिकारियों को एस.आई.टी. द्वारा की गई जांच में शामिल होने या दिनांक 19.12.2022 के प्रस्ताव को पारित करने से पूर्व या आक्षेपित आदेश दिनांकित 09.01.2023 के अंतर्गत एस.आई.टी. रिपोर्ट और प्रस्ताव को स्वीकार करने से पूर्व कभी भी कोई अवसर नहीं दिया गया। उन्होंने आरोप लगाया है कि संपूर्ण कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करते हुए की गई है तथा इसे पूर्ण रूप से एकपक्षीय, मनमाना, विकृत, त्रुटिपूर्ण, भेदभावपूर्ण, अनुचित तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन बताया है।

#### प्रति शपथपत्र में बचाव

6. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है, जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, राज्य एस.आई.टी., उत्तर प्रदेश, लखनऊ की ओर से दिया गया है और यह बचाव लिया गया है कि विशेष सचिव, गृह (पुलिस) अनुभाग-3, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा जारी पत्र दिनांकित 23.10.2020 के अनुसरण में, निदेशक, अल्पसंख्यक कल्याण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिनांक 12.07.2017 को की गई अनुशंसा के आधार पर, जिला आजमगढ़ के संबंधित पोर्टल पर अपलोड किए गए

मदरसों के सत्यापन के दौरान, 313 मदरसों के बारे में जांच की गई और विभिन्न अनुचित गतिविधियों और विसंगतियों को पाते हुए, एस.आई.टी. के माध्यम से जांच कराने का निर्णय लिया गया और, परिणामस्वरूप, एस.आई.टी. द्वारा जांच की गई और निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए, जैसा कि प्रत्यर्थागण द्वारा तर्क दिए गए हैं:-

I. राज्य विशेष जांच दल, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा जिला-आजमगढ़ में मदरसा पोर्टल पर अपलोड किए गए मदरसों के सत्यापन के दौरान जांच में 313 मदरसे मानकों के विपरीत पाए जाने की बात सामने आई है। हालांकि, उक्त 313 मदरसों में से 72 मदरसे मानकों के अनुरूप नहीं पाए गए हैं। अर्थात्, ये मदरसे चल तो रहे थे, परन्तु मान्यता के संबंध में विभिन्न शर्तें पूरी नहीं कर रहे थे। इन मदरसों ने कई वर्षों के बाद भी मान्यता देने के लिए आवश्यक शर्तें पूरी नहीं कीं, इनके पास न तो भवन था और न ही भूमि। इस प्रकार, गंभीर लापरवाही और अनियमितता बरतते हुए इन मदरसों को संबंधित अधिकारियों द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई। इसलिए इन 72 मदरसों की मान्यता समाप्त करने और मान्यता देने वाले कर्मचारी/अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करने की संस्तुति की गई है।

II. जांच के दौरान 313 मदरसों में से 219 मदरसे अस्तित्वहीन पाए गए। अर्थात् मदरसे केवल कागजों पर चल रहे हैं। वास्तव में, जिन मदरसों को संचालित दिखाया गया है, उनका

उद्देश्य केवल सरकारी सहायता को हड़पना है। मदरसा आधुनिकीकरण योजना वर्ष 1994 में प्रारंभ हुई थी। उक्त योजना के अंतर्गत, उक्त अस्तित्वहीन मदरसों के नाम पर कितनी धनराशि स्वीकृत की गई, इस संबंध में अल्पसंख्यक कल्याण विभाग पूर्ण एवं संतोषप्रद जानकारी उपलब्ध नहीं करा सका। जांच के दायरे में आए 313 मदरसों में से केवल 8 मदरसों की ही वर्ष 2014-15 एवं 2015-16 की मान्यता पत्रावलियां उपलब्ध कराई गईं। इनमें कितनी धनराशि का भुगतान किया गया, इसका विवरण उपलब्ध कराया गया है।

III. सम्बन्धित विभागीय अधिकारी/कर्मचारी द्वारा प्रबन्धक एवं आधुनिक विषय के अध्यापकों (जिनके खातों में मानदेय की धनराशि का भुगतान किया जा रहा है) से मिलीभगत कर षड्यन्त्र, कूटरचना एवं धोखाधड़ी करते हुए उक्त फर्जी मदरसों को कागजों पर संचालित दिखाया गया है तथा सरकारी धन का गबन किया गया है। लगभग 25 वर्षों से संचालित केन्द्रीय पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण योजना में सरकारी धन के दुरुपयोग के अलावा अल्पसंख्यक छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति के अलावा महत्वपूर्ण सरकारी अभिलेख गायब हैं। उपरोक्त 219 अस्तित्वहीन मदरसों की मान्यता निरस्त करने के साथ ही कुल 219 मदरसों को मान्यता प्रदान करने वाले कर्मचारियों/अधिकारियों के विरुद्ध अभिलेख गायब करने एवं सरकारी धन का गबन करने के आरोप में अभियोग पंजीकृत कराने की संस्तुति की गई है। इसके साथ ही सरकारी धन का गबन करने के उद्देश्य से

7. याचिकाकर्ता संख्या 2-मदरसा के संबंध में, एस.आई.टी. रिपोर्ट के अनुसार प्रत्यर्थीगण द्वारा निम्नलिखित तथ्यात्मक स्थिति प्रस्तुत की गई है:-

IV. मदरसे द्वारा मदरसा पोर्टल पर आधुनिकीकरण स्टाफ के अंतर्गत आधुनिक शिक्षकों के तीन नाम कहकशा परवीन, शाह फैसल और सुबी परवीन दिए गए हैं। भुगतान चार्ट का विवरण इस प्रकार है:-

| केन्द्रीय मानदेय भुगतान विवरण - 1 |    |     |     |    |      |     |    |    |       |
|-----------------------------------|----|-----|-----|----|------|-----|----|----|-------|
| क्र                               | लॉ | मद  | शि  | भु | खा   | बैं | भु | अ  | अप्रू |
| .                                 | ट  | रसे | क्ष | ग  | ता   | क   | ग  | प  | का    |
|                                   | सं | का  | क   | ता | सं   | का  | ता | लो | विवरण |
|                                   |    | ना  |     | न  | ख्या | ना  | न  | ड  |       |

अंजुमन सिद्दीकिया जामिया नूरुल ओलूम मुंशीपुर, मुबारकपुर आजमगढ़ एवं अन्य  
बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1341

| ख  | म    | का                                                               | की                |         | म                      | दि                   | र              |                  |        |
|----|------|------------------------------------------------------------------|-------------------|---------|------------------------|----------------------|----------------|------------------|--------|
| ख  | व    | ना                                                               | गई                |         |                        | नां                  | का             |                  |        |
|    | आ    | म                                                                | ध                 |         |                        | क                    | वि             |                  |        |
|    | ई.   |                                                                  | न                 |         |                        |                      | व              |                  |        |
|    | डी.  |                                                                  | रा                |         |                        |                      | र              |                  |        |
|    |      |                                                                  | शि                |         |                        |                      | ण              |                  |        |
| 90 | 1506 | मदर सा अ शर फि या म दी न तु ल ब ना त, मु बा रक पुर 19 12 00 85 5 | क ह क शा प र वी न | 72 00 0 | 49 55 02 01 00 06 15 7 | यू0 बी 0 आ ई अ मि लो | 28 .0 3. 20 17 | इ र शा द अ ह म द | लालम न |
|    |      |                                                                  | मो 0 शा ह फै ज ल  | 72 00 0 | 49 55 02 01 10 07 46 3 | यू0 बी 0 आ ई अ मि लो | 28 .0 3. 20 17 | इ र शा द अ ह म द | लालम न |
|    |      |                                                                  | शू बी प र वी न    | 72 00 0 | 49 55 02 01 10 02 78 9 | यू0 बी 0 आ ई अ मि लो | 28 .0 3. 20 17 | इ र शा द अ ह म द | लालम न |
|    |      |                                                                  | क ह क शा प        | 30 00 0 | 49 55 02 01 00 06      | यू0 बी 0 आ ई अ       | 28 .0 3. 20 17 | इ र शा द अ       | लालम न |

|  |  |            |                                    |                      |                                             |                                           |                            |                                       |           |
|--|--|------------|------------------------------------|----------------------|---------------------------------------------|-------------------------------------------|----------------------------|---------------------------------------|-----------|
|  |  |            | र<br>वी<br>न                       |                      | 15<br>7                                     | मि<br>लो                                  |                            | ह<br>म<br>द                           |           |
|  |  |            | मो<br>0<br>शा<br>ह<br>फै<br>ज<br>ल | 30<br>00<br>0        | 49<br>55<br>02<br>01<br>10<br>07<br>46<br>3 | यू0<br>बी<br>0<br>आ<br>ई<br>अ<br>मि<br>लो | 28<br>.0<br>3.<br>20<br>17 | इ<br>र<br>शा<br>द<br>अ<br>ह<br>म<br>द | लालम<br>न |
|  |  |            | शू<br>बी<br>प<br>र<br>वी<br>न      | 30<br>00<br>0        | 49<br>55<br>02<br>01<br>10<br>02<br>78<br>9 | यू0<br>बी<br>0<br>आ<br>ई<br>अ<br>मि<br>लो | 28<br>.0<br>3.<br>20<br>17 | इ<br>र<br>शा<br>द<br>अ<br>ह<br>म<br>द | लालम<br>न |
|  |  | कुल<br>योग |                                    | 3,<br>06<br>,0<br>00 |                                             |                                           |                            |                                       |           |

V. मदरसा पोर्टल पर अपलोड की गई सूचना का प्रिंटआउट लेकर मदरसा प्रबंधक द्वारा हस्ताक्षरित एवं मोहर लगाकर जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी को उपलब्ध नहीं कराया गया।

VI. जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी द्वारा मदरसे को अपने पोर्टल पर लॉक नहीं किया गया है और इसके साथ ही जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने मान्यता का पत्रावली अभिलेख भी उपलब्ध नहीं कराया।

VII. निरीक्षण में उपर्युक्त मदरसा अस्तित्व में नहीं पाया गया। मदरसे की मान्यता से संबंधित पत्रावली अभिलेख भी जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा उपलब्ध नहीं कराया गया। मदरसे के प्रबंधक ने मदरसा पोर्टल पर गलत सूचना अपलोड कर दी है। हालाँकि, जैसा कि उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड अधिनियम और उसके अंतर्गत नियम के अंतर्गत प्रावधान किया गया है, याचिकाकर्ताओं ने भवन, छात्रों की संख्या और सभी मान्यता से संबंधित अन्य शर्तों का उल्लंघन किया है। इस अस्तित्वहीन मदरसे के विरुद्ध, अल्पसंख्यक कल्याण विभाग ने नियमानुसार मामले में कार्यवाही करते हुए, इसे दी गई मान्यता वापस लेना उचित होगा।

VIII. केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण मदरसा योजना के अन्तर्गत जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी आजमगढ़ ने प्राप्त जानकारी के अनुसार, वर्ष 2014-15 एवं 2015-16 की विभिन्न अवधियों के लिए धनराशि मदरसों को उपलब्ध कराई है। केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण मदरसा योजना के अन्तर्गत वर्ष 2016-17 के लिए आधुनिक विषय की अध्यापक कहकशां परवीन, मो. शाह फैजल एवं शूबी परवीन को मानदेय के रूप में रु 3,06,000/- का भुगतान बैंक खाते में किया गया है। इसकी स्वीकृति तत्कालीन जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी श्री लालमन द्वारा दी गई है। इस अस्तित्वहीन मदरसे के सम्बन्ध में प्रबन्धक अहमदउल्लाह ने तत्कालीन जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी श्री लालमन एवं आधुनिकीकरण अध्यापक कहकशां परवीन, मो. शाह फैजल एवं

शूबी परवीन से मिलीभगत कर सरकारी सहायता का गबन कर लिया।”

8. यह भी तर्क दिया गया है कि उपरोक्त रिपोर्ट के दृष्टिगत, दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध आपराधिक कार्रवाई करने का निर्णय लिया गया है और कुछ मदरसा के कुछ शिक्षकों द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 (श्रीमती नेशात फातमा दाउदी व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अपर मुख्य सचिव, गृह, लखनऊ व अन्य) इस न्यायालय के समक्ष दायर करके समान चुनौती दी गई थी, जिसे आदेश दिनांकित 09.02.2023 के द्वारा एक खंडपीठ द्वारा खारिज कर दिया गया था। कथित एकपक्षीय कार्यवाही के संबंध में, अधिनियम, 2004 के उद्देश्यों और कारणों के कथन के साथ-साथ अधिनियम, 2004 की धारा 13 के अंतर्गत शक्ति सहित राज्य सरकार को प्रदत्त विभिन्न शक्तियों पर अवलम्ब लिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने जांच कार्यवाही में भाग लिया परन्तु प्रबंधक ने प्रासंगिक अभिलेख उपलब्ध नहीं कराए और न ही पोर्टल जांच के दौरान और मौके पर निरीक्षण के दौरान विवरण अपलोड किए गए और समग्र स्थिति से पता चलता है कि मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

#### **प्रति शपथपत्र**

9. याचिकाकर्ताओं के प्रति शपथपत्र में कार्यवाही के एकपक्षीय होने के बारे में उनके रुख को दोहराया गया है, साथ ही आगे यह भी कहा गया है कि वर्ष 2016 में खंड शिक्षा अधिकारी, आजमगढ़ की अध्यक्षता में एक

निरीक्षण समिति गठित की गई थी, जिसने मौके पर जाकर निरीक्षण किया और मदरसे के अस्तित्व को प्रमाणित किया तथा उसके बाद ही याचिकाकर्ता संख्या 3, 4 और 5 (शिक्षकगण) का वेतन जारी किया गया। दिनांक 20.07.2016 के निरीक्षण ज्ञापन का अवलम्ब लिया गया है, जिसकी एक प्रति जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ के हस्ताक्षरों के साथ उनके पत्र दिनांकित 13.06.2023 के साथ आर.टी.आई. अधिनियम के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को दी गई है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 11.04.2023 और 19.05.2023 के दो अंतरिम आदेशों पर अवलम्ब लिया गया है, जो क्रमशः प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 3380/2023 (जावेद असलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रधान सचिव, गृह, उत्तर प्रदेश लोक भवन लखनऊ व 4 अन्य) और प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 4891/2023 (लालमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रधान सचिव, अपर मुख्य सचिव, गृह विभाग व अन्य) में पारित किए गए थे, जिसके अंतर्गत इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने एस.आई.टी. रिपोर्ट के प्रभाव और संचालन के साथ-साथ संबंधित आवेदकों के संबंध में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी है।

10. मैंने याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री अमी टंडन की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी और राज्य-प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल तथा विद्वान

अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आई.पी. श्रीवास्तव को सुना।

11. बहस के दौरान, इस न्यायालय ने जिलाधिकारी, आजमगढ़ द्वारा विभिन्न प्राधिकारियों को जारी पत्र दिनांकित 25.08.2017 की प्रति तथा उसके संलग्नक अभिलेख पर लिए गए, जिसे याचिकाकर्ताओं द्वारा न्यायालय के समक्ष रखा गया था तथा उस पर बहस भी सुनी गई। निर्णय सुरक्षित रखते हुए दिनांक 21.08.2023 के आदेश में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है।

#### याचिकाकर्ताओं का तर्क

12. याचिकाकर्ताओं की ओर से उठाए गए अधिकांश तर्कों का इस निर्णय में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, जबकि याचिकाओं का संदर्भ दिया गया है, इसलिए उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में, कथन यह है कि यद्यपि मदरसा वर्ष 2011 में सही तरीके से स्थापित और मान्यता प्राप्त था और वर्ष 2017 में बंद कर दिया गया है, परन्तु एस.आई.टी. की एकपक्षीय रिपोर्ट के अनुसार मदरसा या उसके अधिकारियों या शिक्षकों के विरुद्ध की गई या प्रस्तावित कोई भी कार्रवाई अवैध है और इसलिए न केवल एस.आई.टी. रिपोर्ट अपितु दिनांक 19.12.2022 का प्रस्ताव और दिनांक 09.01.2023 के आदेश के अंतर्गत इसकी मंजूरी भी अवैध और अपोषणीय है। तर्क यह है कि एस.आई.टी. ने याचिकाकर्ताओं को कभी भी जांच में भाग लेने की अनुमति नहीं दी और मौके पर निरीक्षण कभी नहीं किया गया, अपितु मात्र पोर्टल की जानकारी के

आधार पर निर्णय लिया गया है। आगे तर्क यह है कि 2016 में एक बार स्थलीय निरीक्षण किया गया था (प्रतिउत्तर शपथपत्र के अनुलग्नक आर.ए.-1 द्वारा) जहां याचिकाकर्ता-मदरसा कार्यरत पाया गया था और इसलिए, आपेक्षित प्रस्ताव में लिया गया आधार कि वर्ष 2014-2015 और 2015-2016 में याचिकाकर्ता-मदरसा कार्यरत नहीं था और राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता हेरफेर से प्राप्त की गई थी, तथ्यात्मक रूप से गलत है और यहां तक कि दिनांक 20.07.2016 की उक्त स्थलीय निरीक्षण रिपोर्ट पर भी एस.आई.टी. ने विचार नहीं किया है।

#### प्रत्यर्थीगण का तर्क

13. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण की ओर से तर्क दिया गया है कि एस.आई.टी. ने पोर्टल की जानकारी और स्थलीय निरीक्षण दोनों के आधार पर गहन जांच की और पाया कि मदरसा अस्तित्व में नहीं है और दिनांक 19.12.2022 का आक्षेपित प्रस्ताव राज्य सरकार द्वारा मुख्य सचिव, गृह मंत्रालय, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में आयोजित बैठक में पारित किया गया है उनके साथ, अल्पसंख्यक कल्याण एवं वक्फ विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के अपर मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश लखनऊ भी उपस्थित थे और उन्होंने कार्यवाही पर हस्ताक्षर किए तथा ऐसे उच्च स्तर के अधिकारियों के निर्णय को हल्के में नहीं लिया जा सकता।

14. जहां तक प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 3380/2023 और 4891/2023

के अंतर्गत प्रार्थना पत्रों में पारित अंतरिम आदेशों का संबंध है, यह तर्क दिया गया है कि उन्हें तब पारित किया गया था जब मदरसा बोर्ड के निबंधक और एक अन्य अधिकारी के विरुद्ध आपराधिक कार्रवाई की जा रही थी और इस न्यायालय द्वारा वर्तमान रिट-सी संख्या 11005/2023 में पारित अंतरिम आदेश दिनांकित 19.04.2023, प्रस्ताव दिनांकित 19.12.2022 और एस.आई.टी. रिपोर्ट दिनांकित 30.11.2022 के साथ-साथ आगे की परिणामी कार्यवाहियों को ध्यान में रखते हुए, जहां तक उक्त प्रार्थना पत्रों के आवेदकों से संबंधित थे, स्थगित कर दी गई थी। यह आगे तर्क दिया गया है कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उपरोक्त प्रार्थना पत्रों में पारित स्थगन आदेश का कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि एस.आई.टी. रिपोर्ट दिनांकित 30.11.2022 को दी गई चुनौती के साथ-साथ सरकार द्वारा दिनांक 19.12.2022 के प्रस्ताव को मंजूरी देने के लिए दिनांक 09.01.2023 को लिए गए आक्षेपित निर्णय को इस न्यायालय की खंडपीठ ने आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 में पारित आदेश दिनांकित 09.02.2023 में पहले ही अस्वीकार कर दिया गया है। एस.आई.टी. रिपोर्ट के प्रासंगिक अंश और जांच के दौरान एस.आई.टी. द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और दिनांक 19.12.2022 के प्रस्ताव पर राज्य की ओर से जोर दिया गया और अभिलेख में शामिल तर्कों के संबंध में यह भी तर्क दिया गया कि एक बार जब याचिकाकर्ता-मदरसा के अस्तित्व में न होने के संबंध में विशिष्ट विवरण प्रति शपथपत्र के "पैरा 6" के विभिन्न उप-पैरा में बताए गए थे, तो प्रति शपथपत्र में उनका खंडन नहीं किया



गया है और प्रति शपथपत्र के "पैरा 10" में मात्र इतना ही कहा गया है कि प्रति शपथपत्र के "पैराग्राफ 6 (I), (II), (III) एवं (IV) की सामग्री अभिलेखों का मामला है और इस पर जवाब देने की आवश्यकता नहीं है।

15. यह कथन किया गया है कि खंडपीठ का अंतिम आदेश दिनांकित 09.02.2023, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 3380/2023 और 4891/2023 में पारित अंतरिम आदेशों पर प्रबल होगा और, अन्यथा भी, अंतरिम आदेश केवल मदरसा बोर्ड के अधिकारियों के संबंध में थे और याचिकाकर्ताओं से कोई संबंध नहीं है और दिनांक 09.02.2023 के आदेश पर विचार किए बिना पारित किए गए थे।

16. राज्य सरकार की कार्रवाई करने की शक्ति के संबंध में, अधिनियम, 2004 की धारा 13 पर अवलम्ब लिया गया है और यह भी तर्क दिया गया है कि रिट याचिका असामयिक है, क्योंकि आज तक न तो याचिकाकर्ता-मदरसा को दी गई मान्यता वापस ली गई है, न ही रद्द की गई है और न ही याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कोई आपराधिक कार्रवाई की गई है और इसके अतिरिक्त एस.आई.टी. की रिपोर्ट, अन्यथा भी, रिट क्षेत्राधिकार में रद्द नहीं की जा सकती है।

17. इस न्यायालय द्वारा विपक्षी तर्कों पर संबंधित रिट-सी संख्या 5992/2023 (सी/एम मदरसा इस्लामिया व 12 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 5 अन्य) के तथ्यात्मक

विश्लेषण पर चर्चा के बाद विचार किया जाएगा।

### रिट-सी संख्या 5992/2023

#### चुनौती

18. यह रिट याचिका 13 मदरसों की प्रबंधन समिति द्वारा दायर की गई है और इसमें की गई प्रार्थनाएँ कमोबेश रिट-सी संख्या 11005/2023 में की गई प्रार्थनाओं के समान हैं, सिवाय इसके कि एस.आई.टी. रिपोर्ट को कोई चुनौती नहीं दी गई है।

#### मामले के तथ्य

19. इस रिट याचिका में, यह स्थापित करने के लिए विभिन्न दस्तावेजों पर अवलम्ब लिया गया है कि वर्ष 2008, 2009, 2010 में मदरसों को उचित रूप से मान्यता दी गई थी, शिक्षकों की नियुक्ति की गई थी और राज्य सरकार की सहायता से उन्हें मानदेय दिया गया था और मामला यह है कि मनमाने तरीके से और याचिकाकर्ताओं को कोई अवसर प्रदान किए बिना, दिनांक 19.12.2022 के विवादित प्रस्ताव को पारित किया गया और दिनांक 09.01.2023 को राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित कर दिया गया।

#### प्रति शपथपत्र

20. एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिसे अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, राज्य एस.आई.टी., उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिया गया है, जिसमें विभिन्न मदरसों के संबंध में उठाए गए कदमों के संदर्भ में एस.आई.टी. द्वारा की गई कार्यवाही की वैधता का तर्क

दिया गया है और तर्कों को, जैसा कि वे हैं, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“7. मदरसा इस्लामिया निस्वास समैसा पवई, आजमगढ़ के संबंध में पूछताछ के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए:-

I. यह कि दिनांक 08.09.2008 को, उक्त मदरसा को तत्कालीन जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़, श्री प्रभात कुमार ने कलर्क, वक्फ ओम प्रकाश पांडे और वक्फ निरीक्षक मुन्नर राम के साथ मिलकर अस्थायी मान्यता दी थी।

II. यह कि मदरसा पोर्टल पर तहतानिया स्तर के 300 वर्ग फीट के 3 कमरे और तहतानिया स्तर के 105 छात्र दिखाए गए थे और मदरसा द्वारा अपलोड की गई जानकारी का प्रिंटआउट प्राप्त करने के बाद जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ की टीम ने मदरसा का निरीक्षण किया। मदरसा अस्तित्व में नहीं था, मदरसे द्वारा दी गई सभी सूचनाएं गलत पाई गईं, वास्तव में कोई मदरसा अस्तित्व में ही नहीं था।

III. जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने मदरसे को पोर्टल पर लॉक नहीं किया तथा मान्यता का रिकार्ड फाइल भी उपलब्ध नहीं कराया।

IV. मदरसा के प्रबंधक ने गलत सूचना अपलोड की तथा मान्यता प्रदान करने की अपेक्षित शर्त को पूरा नहीं किया।

V. इस अस्तित्वहीन मदरसे के लिए जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा केन्द्र पूरक मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत रु 3,45,000/- उपलब्ध कराया गया, जो कि मदरसा प्रबंधक की मिलीभगत से वर्ष 2014-15 एवं 2015-16 की अवधि के लिए आधुनिकीकरण शिक्षिकाओं साधना यादव, सुमिता एवं सरिता को वर्ष 2016-17 में भुगतान कर दिया गया तथा इस प्रकार सरकारी धनराशि का गबन कर लिया गया।

8. यह कि मदरसा मॉडर्न पब्लिक स्कूल, तकिया गुलाम अली शाह समीसा, पवई आजमगढ़ के संबंध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. यह कि दिनांक 22.01.2009 को तत्कालीन जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़, श्री प्रभात कुमार, वक्फ लिपिक, ओम प्रकाश पाण्डेय एवं वक्फ निरीक्षक, मुन्नर राम द्वारा उक्त मदरसे को अस्थाई मान्यता प्रदान की गयी थी।

II. यह कि मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर के लिए 300 वर्ग फीट के 3 कमरे दर्शाये गये थे जबकि मौके पर 200 वर्ग फीट के 3 कमरे स्कूल के रूप में चल रहे थे जिसके बगल में मदरसा चलना बताया गया था। फौकानिया स्तर पर मदरसा चलाने के लिए 6 कमरे एवं 2 कार्यालय कक्ष की आवश्यकता होती है। मदरसा अस्तित्व में नहीं पाया गया।

III. यह कि पोर्टल पर तहतानिया स्तर पर शून्य छात्र तथा फौकानिया स्तर पर 115 छात्र दर्शाये गये थे परन्तु निरीक्षण करने पर यह नहीं पाया गया तथा मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

IV. यह कि मदरसा के नाम पर पब्लिक स्कूल चल रहा था, जो दर्शित करता था कि कोई मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

V. यह कि अपलोड की गई जानकारी का प्रिंटआउट प्राप्त करने के बाद जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी और उनकी टीम ने मदरसे का निरीक्षण किया, परन्तु उन्होंने पोर्टल पर मदरसे को लॉक नहीं किया और इसके अलावा उन्होंने मदरसे की मान्यता का फाइल रिकॉर्ड भी उपलब्ध नहीं कराया।

VI. यह कि मदरसा अस्तित्व में नहीं था, प्रबंधक ने मदरसा पोर्टल पर गलत जानकारी अपलोड की।

VII. यह कि इस अस्तित्वहीन मदरसे के लिए जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत रु 56,000/- उपलब्ध कराया गया, जो कि प्रबन्धक रौनक की मिलीभगत से वर्ष 2016-17 में अवधि 2014-15 एवं 2015-16 के लिए आधुनिकीकरण शिक्षक विनोद कुमार यादव, मोतीलाल एवं संगीता को भुगतान कर दिया गया तथा इस प्रकार सरकारी धनराशि का गबन किया गया।

9. यह कि मदरसा इस्लामिया इमाम अली रज्जाकपुर, पवई, आजमगढ़ के सम्बन्ध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. उक्त मदरसा को फौकानिया स्तर पर दिनांक 26.06.2009 को मान्यता प्राप्त थी तथा मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर पर 3 कमरे 300 वर्ग मीटर दर्शाए गए थे, किन्तु निरीक्षण करने पर वहां कोई मदरसा नहीं था, अपितु एक टीन शेड के नीचे एक आवास पाया गया। वहां एक कार तथा दो छोटे कमरे मिले। कोई बोर्ड नहीं मिला। यह भी कहा गया कि एक मकान में दो मान्यता प्राप्त मदरसे चल रहे थे। यह मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

II. पोर्टल पर तहतानिया स्तर पर शून्य तथा फौकानिया स्तर पर 102 विद्यार्थी दर्शाए गए थे, मौके पर सत्यापन नहीं किया गया तथा मदरसा अस्तित्व में नहीं पाया गया। निरीक्षण के पश्चात जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने पोर्टल पर मदरसे को लॉक नहीं किया।

III. जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी लालमन प्रबंधक कमरुद्दीन की मिलीभगत से अध्यापकों तबस्सुम, मो. वसीम तथा शाहनवाज आलम को 66,000/- रुपये का भुगतान किया गया, अतः सरकारी धन का गबन पाया गया।

10. मदरसा अमीना निशावां रज्जाकपुर, पवई, आजमगढ़ के संबंध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए:-

I. यह कि दिनांक 08.09.2008 को उक्त मदरसे को तहतानिया स्तर पर अस्थाई मान्यता प्रदान की गई थी। मदरसा पोर्टल पर तहतानिया स्तर के 300 वर्ग फीट के 3 कमरे दर्शाए गए थे, किन्तु मौके पर निरीक्षण करने पर कोई मदरसा नहीं पाया गया। एक आवास दर्शाया गया था, जहां गैराज में एक चार पहिया वाहन खड़ा था। 2 छोटे कमरे पाए गए। मदरसे पर कोई बोर्ड नहीं था।

II. यह कि पोर्टल पर तहतानिया स्तर के 150 छात्र दर्शाए गए थे, किन्तु मौके पर निरीक्षण करने पर 150 छात्रों वाला कोई मदरसा नहीं पाया गया। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

III. यह कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी द्वारा मान्यता की कोई अभिलेख फाइल उपलब्ध नहीं कराई गई तथा प्रबंधक कमालुद्दीन ने पोर्टल पर गलत सूचना अपलोड की थी।

IV. यह कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा प्रबंधक की मिलीभगत से केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत रु0 66,000/- मदरसा को उपलब्ध कराया गया, जिसका भुगतान अध्यापिकाओं अमीना खातून, सुषमा एवं तारुल को किया गया। इस प्रकार मदरसा न होते हुए भी प्रबंधक कमालुद्दीन, शिक्षकों एवं जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा सरकारी धन का गबन किया गया।

11. कि मदरसा अशरफिया निसवां माहुल, आजमगढ़ के सम्बन्ध में की गयी जाँच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. यह कि उक्त मदरसा को 8 सितम्बर, 2008 को तहतानिया स्तर पर अस्थाई मान्यता प्रदान की गयी थी। मदरसा पोर्टल पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे, 150 वर्ग फीट का एक प्रधानाचार्य कक्ष एवं 150 वर्ग फीट का एक कार्यालय कक्ष दर्शाया गया था, जबकि मौके पर कोई मदरसा चल नहीं रहा था तथा मदरसा अस्तित्व में नहीं था

II. मदरसा पोर्टल पर तहतानिया स्तर के 130 छात्र दर्शाए गए थे, परंतु निरीक्षण करने पर कोई छात्र नहीं मिला। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

III. प्रबंधक अहतशाम अहमद खां द्वारा पोर्टल पर उपलब्ध सूचनाओं का कोई प्रिंटआउट जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ को नहीं सौंपा गया। जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ ने पोर्टल को लॉक नहीं किया तथा मान्यता का अभिलेख भी उपलब्ध करा दिया गया।

IV. प्रबंधक ने इस प्रकार मदरसा पोर्टल पर गलत सूचनाएं अपलोड कर दी तथा जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी से मिलीभगत कर केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अंतर्गत वर्ष 2016-17 में वर्ष 2014-15 एवं 2015-16 के लिए रु0 66,000/- प्राप्त कर शिक्षिकाओं शबाना बानो, अलशा बानो एवं नाहिद फात्मा के बैंक खाते में

भुगतान कर दिया। इस प्रकार प्रबंधक अहतशाम अहमद खां, जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़, श्री लालमन एवं उपरोक्त शिक्षकों द्वारा सरकारी धनराशि का गबन कर लिया गया।

यह भुगतान उस मदरसे के शिक्षक निर्मला कुमार, विमला देवी एवं राम समुझ यादव के बैंक खाते में किया गया, जो अस्तित्व में नहीं था। इस प्रकार सरकारी धन का गबन सिद्ध होता है।

12. मदरसा नूर इस्लाम शिक्षण संस्थान, खालिसपुर, आजमगढ़ के संबंध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

13. यह कि मदरसा अशफाक उल्लाह, धनकटिया, आजमगढ़ के सम्बन्ध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. उक्त मदरसे को तहतानिया स्तर की अस्थायी मान्यता दी गई थी, क्योंकि मदरसा पोर्टल पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे, 150 वर्ग फीट का एक कार्यालय कक्ष दिखाया गया था, परन्तु मौके पर एक पब्लिक स्कूल चल रहा था। आस-पास के लोगों के बयान से पता चला कि कोई मदरसा नहीं चल रहा था, अपितु मदरसे के अलावा एक स्कूल चल रहा था। मौके पर, डॉ अंबेडकर पब्लिक स्कूल चल रहा था, जिसे संक्षेप में वी.ए.ए.एस.एस. लिखा गया था। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

I. यह कि उक्त मदरसे को तहतानिया स्तर की अस्थाई मान्यता दी गयी थी तथा मदरसा पोर्टल पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे दर्शाये गये थे, किन्तु मौके पर पब्लिक स्कूल चल रहा था। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

II. मदरसा पोर्टल पर गलत तरीके से तहतानिया स्तर के 134 छात्र दिखाए गए थे, परन्तु मौके पर पब्लिक स्कूल चल रहा था और मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

II. मदरसा पोर्टल पर तहतानिया स्तर के 133 छात्र दर्शाये गये थे, किन्तु मौके पर पब्लिक स्कूल चल रहा था। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

III. यह कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, जनपद- आजमगढ़ द्वारा प्रबंधक की मिलीभगत से मदरसा पोर्टल पर गलत सूचना अपलोड कर केन्द्र पुरातन मदरसा आधुनिकीकरण योजना हेतु वर्ष 2016-17 में 2014-15 एवं 2015-16 के लिए 80,000/- रुपये का भुगतान मदरसे को किया गया तथा

III. मदरसा पोर्टल पर जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ ने लॉक नहीं किया तथा आधुनिक शिक्षण स्टाफ, जिन्हें मदरसा पोर्टल पर दर्शाया गया था, के लिए ₹0 55,000/- का भुगतान अध्यापक संजय कुमार, विमला देवी एवं राजेश कुमार मौर्य के बैंक खाते में कर दिया गया। मदरसा अस्तित्व में नहीं था, इस प्रकार प्रबंधक अलीम अली ने जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, लालमन के साथ मिलकर आधुनिक शिक्षण अध्यापकों के साथ मिलकर वर्ष 2014-15 एवं 2015-16 में सरकारी धनराशि का गबन कर लिया।

14. मदरसा कैर साहब, इब्राहिमपुर, सठियांव, आजमगढ़ के सम्बन्ध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. दिनांक 10.06.2008 को उक्त मदरसे को तहतानिया स्तर पर अस्थायी मान्यता प्रदान की गयी थी।

II. मदरसा पोर्टल पर दिये गये पते पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे तथा तहतानिया स्तर के 127 छात्र पाये गये। मदरसा अस्तित्व में नहीं है।

III. जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा न तो मदरसा पोर्टल पर लॉक किया गया और न ही मान्यता पत्र उपलब्ध कराया गया।

IV. यह कि प्रबंधक अलीम अली ने जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़, श्री लालमन के साथ मिलीभगत करके वर्ष 2014-15 और 2016-16 के लिए केन्द्र पुरातन संयुक्त मदरसा आधुनिकीकरण योजना के नाम पर 4,43,000/- रुपये का भुगतान प्राप्त कर लिया और भुगतान गैर-मौजूद मदरसा शिक्षकों सुमन लाल, रंजना यादव, पार्वती देवी और रीमा भारती के बैंक खाते में किया गया और इस प्रकार सरकारी धन का गबन किया गया।

15. यह कि मदरसा नूर इस्लाम निस्वां शिक्षण संस्थान, खालिसपुर, आजमगढ़ के संबंध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए:-

I. यह कि दिनांक 26.09.2009 को उक्त मदरसा को फौकानिया स्तर पर अस्थायी मान्यता प्रदान की गई थी। मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे तथा 150 वर्ग फीट का 1 कमरा दिखाया गया, जबकि मौके पर पब्लिक स्कूल चल रहा था। मोहल्ले के लोगों के बयानों से पता चला कि वी.ए.एच.एस.एस. नामक स्कूल चल रहा था। वहां कोई मदरसा नहीं था तथा मदरसा अस्तित्व में ही नहीं था।

II. प्रबंधन के लोगों द्वारा बताया गया कि 2 मदरसे चल रहे थे। मदरसा पोर्टल पर तहतानिया स्तर पर शून्य छात्र तथा फौकानिया स्तर पर 97 छात्र दिखाए गए, जबकि मौके पर निरीक्षण करने पर पब्लिक स्कूल चल रहा था। मदरसा अस्तित्व में ही नहीं था।

III. मदरसा पोर्टल पर आधुनिकीकरण स्टाफ के मद में 3 शिक्षक शैलेश कुमार, रविन्द्र कुमार एवं अमीना खातून दर्शाये गये थे तथा प्रबंधक मोजिबुल गफ्फार एवं जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ श्री लालमन एवं उक्त शिक्षकों की मिलीभगत से अस्तित्वहीन मदरसे के लिए केन्द्र सरकार द्वारा संचालित पुरानिधि मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत 1,68,000/- रुपये का भुगतान किया गया। सरकारी धनराशि का गबन किया गया।

IV. मदरसा को जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी के पोर्टल पर भी लॉक नहीं किया गया, न ही मान्यता अभिलेख फाइल उपलब्ध करायी गयी।

16. मदरसा अशफाक उल्लाह निवास शिक्षण संस्थान, बहकलिया, आजमगढ़ के संबंध में जाँच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए:-

I. उक्त मदरसे को फौकानिया स्तर की अस्थायी मान्यता प्रदान की गई थी और मदरसा पोर्टल पर 300 वर्ग फीट के 3 कमरे और तहतानिया स्तर के 100 छात्र और फौकानिया स्तर के 85 छात्र देखे गए।

II. लोगों के बयान से मौके पर कोई मदरसा नहीं पाया गया, इलाके में एक अंग्रेजी माध्यम स्कूल चल रहा था और कोई मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

III. आधुनिकीकरण स्टाफ के शीर्षक के अंतर्गत पोर्टल पर 3 शिक्षकों के नाम दिखाए गए थे अर्थात् आजाद कुमार गौतम, रामायण सिंह और प्रवीण कुमार, जिन्होंने वर्ष 2016-17 में 2 साल की अवधि अर्थात् 2014-15 और 2015-16 के लिए अपने बैंक खाते में रु 2,60,000/- प्राप्त किए हैं।

IV. यह कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने मदरसा को पोर्टल पर लॉक नहीं किया तथा प्रबंधक मोजिबुल गफ्फार के साथ मिलकर शिक्षकों से मिलीभगत कर सरकारी धनराशि का गबन कर लिया।

17. यह कि मदरसा अरबिया तालिमा कुरान गहनी, मिर्जापुर, आजमगढ़ के संबंध में जांच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये-

I. यह कि दिनांक 20.06.2009 को उक्त मदरसे को फतुआनियां स्तर की अस्थायी मान्यता प्रदान की गयी थी तथा मदरसा पोर्टल पर फौकानिया लेवल के 2 कमरे 300 वर्ग फीट के, तहतानिया लेवल के 3 कमरे 300 वर्ग फीट के पाये गये, जो निर्धारित स्तर के नहीं थे। पास के कमरों में घरेलू सामान पाया गया। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

II. यह कि मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर के 131 छात्र दर्शाये गये थे, जो मौके पर नहीं पाये गये। मदरसा अस्तित्व में नहीं था।

III. यह कि पोर्टल पर मदरसा जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी द्वारा लॉक कर दिया गया था और न ही उनके द्वारा मान्यता अभिलेख फाइल उपलब्ध करायी गयी थी। प्रबंधक ने मदरसा पोर्टल पर गलत सूचना अपलोड की है।

IV. यह कि कथित मदरसा नसीम अहमद के प्रबंधक ने जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, श्री लालमन के साथ मिलीभगत करके केन्द्र पुरोविधानित मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत आधुनिक शिक्षकों, कौसर, होमा बानो और सूफिया बानो के खाते में वर्ष 2016-17 में 2014-15 और 2015-16 की अवधि के लिए रु 3,45,000/- प्राप्त किये। इस प्रकार उन्होंने सरकारी धन का गबन किया।

18. यह कि मदरसा कमरुन्निशा, बलईपुर, पवई, आजमगढ़ के संबंध में जाँच के दौरान निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये:-

I. यह कि दिनांक 22.01.2009 को उक्त मदरसा को फौकानिया स्तर की अस्थायी मान्यता प्रदान की गयी थी। मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर के 225 वर्ग फीट के 3 कमरे, 225 वर्ग फीट का 1 कार्यालय कक्ष दिखाया गया था, जबकि मौके पर केवल 3 कमरे और 150 वर्ग फीट का एक कार्यालय कक्ष पाया गया, जो मान्यता प्रदान करने के लिए निर्धारित मानक के अनुरूप नहीं थे।

II. यह कि मदरसा पोर्टल पर फौकानिया स्तर के 102 छात्र दिखाए गए थे, परन्तु मौके पर इसकी पुष्टि नहीं की गई और मदरसा अस्तित्व में नहीं पाया गया।

III. जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ द्वारा मदरसे को पोर्टल पर लॉक नहीं किया गया था और न ही उनके द्वारा मान्यता रिकॉर्ड फाइल उपलब्ध कराई गई थी।

IV. यह कि उक्त मदरसे के लिए केंद्र पुरोविधानित मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अंतर्गत आधुनिक विषय के शिक्षकों विनोद सोनी, इस्लियाक अहमद और सविता के खाते में प्रबंधक और जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, श्री लालमन की मिलीभगत से रु 168000/- दिए गए थे। इस प्रकार उन्होंने सरकारी धन का गबन किया।”

21. उपर्युक्त रुख अपनाते हुए, आक्षेपित कार्रवाई को उसी आधार पर उचित ठहराया गया है जिस आधार पर रिट सी संख्या 11005/2023 के विरुद्ध प्रति शपथपत्र में इसका तर्कसंगतता प्रस्तुत की गई है।

#### प्रत्युत्तर शपथपत्र

22. याचिकाकर्ताओं के प्रत्युत्तर शपथपत्र में रिट याचिका में लिए गए उनके रुख को दोहराया गया है और पूरा जोर निर्णय की एकपक्षीय प्रकृति पर है।

23. मैंने इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री राजेंद्र कुमार यादव की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे और राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल और विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आई.पी. श्रीवास्तव को सुना।

#### याचिकाकर्ताओं का तर्क

24. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे का कथन है कि आक्षेपित निर्णय के गंभीर दीवानी परिणाम होंगे और इसलिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए; एस.आई.टी. रिपोर्ट को कभी भी ठोस साक्ष्य नहीं माना जा सकता है और चूंकि सरकार ने दिनांक 19.12.2022 के आक्षेपित प्रस्ताव में याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने की सिफारिश पहले ही कर दी है, इसलिए किसी भी स्तर पर किसी भी अधिकारी, चाहे वह प्रशासनिक हो या पुलिस, के लिए मामले पर अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए कुछ नहीं बचा है तथा एस.आई.टी. रिपोर्ट सभी



कार्यवाहियों में सदा निर्णायक मानी जाएगी तथा याचिकाकर्ता कहीं टिक नहीं पाएंगे। आगे यह तर्क दिया गया है कि मदरसों/अल्पसंख्यकों में शिक्षा प्रदान करने की योजना (एस.पी.ई.एम.एम.) के अंतर्गत ऐसे मदरसों में आधुनिक विषय पढ़ाने वाले शिक्षकों को निश्चित मानदेय दिया जाना था और मानदेय वितरण के लिए सभी याचिकाकर्ता-मदरसों की पहचान की गई थी; किसी भी समय ऐसे किसी पहलू का उचित रूप से विश्लेषण नहीं किया गया; लगाए गए आरोपों के संबंध में याचिकाकर्ताओं को नहीं सुना गया; दिनांक 19.12.2022 के आक्षेपित प्रस्ताव में गलत और विकृत निष्कर्ष निकाला गया है और आक्षेपित निर्णय की प्रकृति यह है कि याचिकाकर्ताओं की गैरकानूनी गतिविधियों को अंतिम रूप दे दिया गया है और आगे निर्णय के लिए कुछ भी नहीं बचा है।

#### प्रत्यर्थीगण के तर्क

25. इस रिट याचिका के विरोध में भी राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से दिए गए तर्क एक जैसे हैं, जैसा कि रिट सी संख्या 11005/2023 के संबंध में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

#### दोनों याचिकाओं में प्रतिद्वंद्वी तर्कों का विश्लेषण

26. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को विस्तार से सुनने के पश्चात, इन मामलों में शामिल तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने से पूर्व, उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड अधिनियम, 2004 के प्रावधानों पर चर्चा की आवश्यकता

है। उक्त अधिनियम दिनांक 03.12.2004 को लागू हुआ। धारा 2(a), 2(d) और 2(j) क्रमशः “बोर्ड”, “संस्था के प्रमुख” और “मान्यता” को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित करती हैं:-

“धारा 2(a). “बोर्ड” का तात्पर्य धारा 3 के अंतर्गत स्थापित उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड से है;

(d). “संस्था का प्रमुख” का तात्पर्य उस संस्था के प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक से है, जैसा भी मामला हो।”

(j). “मान्यता” का तात्पर्य बोर्ड की परीक्षा में प्रवेश के लिए अभ्यर्थियों को तैयार करने के प्रयोजन के लिए मान्यता से है;”

27. बोर्ड के गठन का प्रावधान अधिनियम, 2004 की धारा 3 के अंतर्गत किया गया है, जो इस प्रकार है:-

“3. बोर्ड का गठन - (1) उस तिथि से, जिसे राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा नियत करे, लखनऊ में उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड के नाम से एक बोर्ड स्थापित किया जाएगा।

(2) बोर्ड एक निगमित निकाय होगा।

(3) बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थातः

(a) पारंपरिक मदरसा शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध मुस्लिम शिक्षाविद्, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाएगा, जो बोर्ड का अध्यक्ष होगा;

(b) निदेशक, जो बोर्ड का उपाध्यक्ष होगा;

(c) प्राचार्य, राजकीय ओरिएंटल कॉलेज, रामपुर;

(d) एक सुन्नी-मुस्लिम विधायक, जिसे राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों द्वारा चुना जाएगा;

- (e) एक शिया-मुस्लिम विधायक, जिसे राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों द्वारा चुना जाएगा;
- (f) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद का एक प्रतिनिधि;
- (g) राज्य सरकार द्वारा नामित सुन्नी-मुस्लिम द्वारा स्थापित और प्रशासित संस्था के दो प्रमुख;
- (h) शिया-मुस्लिम द्वारा स्थापित एवं प्रशासित एक संस्था का प्रमुख, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;
- (i) सुन्नी-मुस्लिम द्वारा स्थापित एवं प्रशासित संस्थाओं के दो शिक्षक, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;
- (j) शिया-मुस्लिम द्वारा स्थापित एवं प्रशासित संस्था का एक शिक्षक, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;
- (k) विज्ञान या तिब्ब संस्था का एक शिक्षक, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;
- (l) अल्पसंख्यक कल्याण निदेशालय, उत्तर प्रदेश में लेखा एवं वित्त अधिकारी;
- (m) निरीक्षक;
- (n) राज्य सरकार द्वारा नामित उप निदेशक के पद से अन्यून एक अधिकारी, जो सदस्य निबंधक होगा।”

28. बोर्ड के कार्यों को अधिनियम, 2004 की धारा 9 के अंतर्गत तथा इसकी शक्तियों को धारा 10 के अंतर्गत निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया गया है:-

“9. **बोर्ड के कार्य** - इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, बोर्ड के निम्नलिखित कार्य होंगे, अर्थात्-

- (a) तहतानिया, फौकानिया, मुंशी, मौलवी, आलिम, कामिल, फाजिल और अन्य पाठ्यक्रमों के लिए अनुदेश पाठ्य पुस्तकें, अन्य पुस्तकें और शिक्षण सामग्री, यदि कोई हो, विहित करना;
- (b) हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड द्वारा इसके लिए अवधारित पाठ्यक्रम के अनुसार हाई स्कूल और इंटरमीडिएट स्तर तक की कक्षाओं के लिए अरबी, उर्दू और फारसी के पाठ्यक्रमों की पाठ्य पुस्तकें, अन्य पुस्तकें और शिक्षण सामग्री विहित करना;
- (c) खंड (ख) में निर्दिष्ट पाठ्य पुस्तकों, अन्य पुस्तकों और शिक्षण सामग्री की पांडुलिपि उसमें निहित विषयों को पूर्णतः या आंशिक रूप से या अन्यथा अपवर्जित करके तैयार करना और उन्हें प्रकाशित करना;
- (d) राज्य के विभिन्न कार्यालयों में उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति के लिए मानक निर्धारित करना और नियुक्ति प्राधिकारी के माध्यम से रिक्त पदों को भरने के संबंध में आवश्यक कार्रवाई सुनिश्चित करना;
- (e) ऐसे व्यक्तियों को डिग्री, डिप्लोमा, प्रमाण पत्र या अन्य शैक्षणिक उपाधियाँ प्रदान करना, जिन्होंने-

- (i) बोर्ड द्वारा विशेषाधिकार या मान्यता प्राप्त संस्था में अध्ययन का पाठ्यक्रम पूरा किया हो;
- (ii) विनियमों में निर्धारित शर्तों के अधीन निजी तौर पर अध्ययन किया हो और वैसी ही शर्तों के अधीन बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण की हो;

(f) मुंशी, मौलवी, आलिम तथा कामिल और फाजिल पाठ्यक्रमों की परीक्षाएँ संचालित करना;

**(g) अपनी परीक्षा के प्रयोजनों के लिए संस्थाओं को मान्यता देना:**

(h) अपनी परीक्षा में अभ्यर्थियों को प्रवेश देना;

(i) विनियमों में निर्धारित शुल्क की माँग करना और प्राप्त करना;

(j) अपनी परीक्षाओं के परिणाम को पूर्णतः या भागतः प्रकाशित करना या प्रकाशन को रोकना;

(k) अन्य प्राधिकारियों के साथ ऐसी रीति से और ऐसे प्रयोजनों के लिए सहयोग करना, जैसा बोर्ड निर्धारित करे;

(l) मान्यता प्राप्त संस्थाओं या मान्यता के लिए आवेदन करने वाली संस्थाओं की स्थिति पर निदेशक से रिपोर्ट मांगना;

(m) किसी मामले पर राज्य सरकार को अपने विचार प्रस्तुत करना जिससे वह संबंधित हो;

(n) अपने द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाओं से संबंधित बजट में शामिल किए जाने वाले प्रस्तावित नई मांगों की अनुसूचियाँ देखना और यदि वह ठीक समझे तो उन पर अपने विचार राज्य सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत करना;

(o) फाजिल तक मदरसा शिक्षा को विनियमित और पर्यवेक्षण करने के लिए गठित निकाय के रूप में बोर्ड के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए ऐसे सभी अन्य कार्य और चीजें करना जो अपेक्षित हो सकते हैं;

(p) मदरसा शिक्षा की किसी शाखा में अनुसंधान या प्रशिक्षण की व्यवस्था करना जैसे

दारुल उलूम नव उलूम, लखनऊ, मदरसा बाबुल इल्म, मुबारकपुर, आजमगढ़, दारुल उलूम देवबंद, सहारनपुर, ओरिएंटल कॉलेज रामपुर और कोई अन्य संस्था जिसे राज्य सरकार समय-समय पर अधिसूचित करे।

(q) तहतानिया या फौकानिया स्तर तक की शिक्षा के लिए जिला स्तर पर कम से कम तीन सदस्यों वाली एक समिति गठित करना, तथा ऐसी समिति को अपने नियंत्रण में शैक्षिक संस्थाओं को मान्यता देने की शक्ति सौंपना।

(r) ऐसे सभी कदम उठाना जो इस अधिनियम द्वारा उसको प्रदान की गई या उस पर आरोपित किसी शक्ति के प्रयोग, या किसी कृत्य या कर्तव्य के पालन या निर्वहन के लिए आवश्यक या सुविधाजनक हों या उसके लिए आनुषंगिक हों।

10. बोर्ड की शक्तियाँ।- (1) बोर्ड को इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए ऐसी सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन उसके कृत्यों के पालन और उसके कर्तव्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक हों।

(2) विशिष्टतया तथा पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, बोर्ड को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त होंगी,-

(i) किसी अभ्यर्थी की परीक्षा रद्द करना या परीक्षा का परिणाम रोकना, या उसे भविष्य में किसी परीक्षा में बैठने से रोकना, जो इसके द्वारा निम्नलिखित का दोषी पाया जाता है,-

- (a) परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग करना; या
- (b) परीक्षा में प्रवेश के लिए आवेदन पत्र में कोई गलत बयान देना या महत्वपूर्ण सूचना या तथ्य को छिपाना, या
- (c) परीक्षा में धोखाधड़ी या छद्मवेश धारण करना, या
- (d) ऐसी परीक्षा में प्रवेश को नियंत्रित करने वाले नियमों का उल्लंघन करके परीक्षा में प्रवेश प्राप्त करना; या
- (e) परीक्षा के दौरान घोर अनुशासनहीनता का कोई कार्य करना;

(ii) खंड (1) के उपखंड (क) से (घ) में वर्णित सभी या किसी भी कृत्य के लिए किसी उम्मीदवार के किसी परीक्षा परिणाम को निरस्त करना;

(1) या परिणाम की घोषणा में बोर्ड की किसी वास्तविक त्रुटि के लिए किसी अभ्यर्थी का परीक्षा परिणाम रद्द करना;

(iii) अपने द्वारा आयोजित परीक्षाओं के लिए शुल्क निर्धारित करना और उसकी वसूली की रीति तय करना;

(iv) किसी संस्था को मान्यता देने से इंकार करना,

(a) जो बोर्ड द्वारा इस संबंध में निर्धारित स्टाफ, निर्देश, उपकरण या भवन के मानकों को पूरा नहीं करता है, या पूरा करने की स्थिति में नहीं है, या उन तक नहीं पहुंचता है; या

(b) जो बोर्ड द्वारा इस संबंध में निर्धारित मान्यता की शर्तों का पालन नहीं करता है, या उनका पालन करने के लिए इच्छुक नहीं है;

(v) किसी संस्था की मान्यता वापस लेना जो बोर्ड द्वारा निर्धारित स्टाफ, निर्देश, उपकरण या भवन के मानकों का पालन करने में सक्षम नहीं है, या उनके लिए प्रावधान नहीं कर सकता है, या बोर्ड की संतुष्टि के अनुसार मान्यता की शर्तों का पालन करने में विफल रहता है;

(vi) बोर्ड के नियमों या विनियमों, निर्णयों, निर्देशों या निर्देशों के उल्लंघन के किसी भी कृत्य के संबंध में संस्था के प्रमुख से रिपोर्ट मांगना और बोर्ड के नियमों या विनियमों, निर्णयों, निर्देशों या निर्देशों को लागू करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करना, ऐसे तरीके से जैसा कि विनियमों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है;

(vii) अध्ययन के निर्धारित पाठ्यक्रमों के उचित पालन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से किसी संस्था का निरीक्षण करना और यह सुनिश्चित करना कि निर्देशों के लिए सुविधाएं; और

(vii) किसी संस्थान में अध्ययन के पाठ्यक्रम में प्रवेश दिए जाने वाले छात्रों की अधिकतम संख्या तय करना।

(3) उप-धारा (1) और (2) में उल्लिखित सभी मामलों में बोर्ड का निर्णय अंतिम होगा।”

29. जहां तक राज्य सरकार की शक्तियों का संबंध है, वे अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत निहित हैं जो इस प्रकार हैं:-

**“13. राज्य सरकार की शक्तियाँ -**

**(1) राज्य सरकार को बोर्ड द्वारा संचालित या किए गए किसी कार्य के संदर्भ में बोर्ड को संबोधित करने और बोर्ड से संबंधित किसी मामले पर अपने विचार बोर्ड को संप्रेषित करने का अधिकार होगा।**

**(2) बोर्ड राज्य सरकार को ऐसी कार्रवाई की रिपोर्ट करेगा, यदि कोई हो, जो उसके द्वारा संप्रेषित किए जाने पर प्रस्तावित है या की गई है।**

**(3) यदि बोर्ड उचित समय के भीतर राज्य सरकार की संतुष्टि के लिए कार्रवाई नहीं करता है, तो राज्य सरकार बोर्ड द्वारा प्रस्तुत किसी स्पष्टीकरण या किए गए प्रतिनिधित्व पर विचार करने के पश्चात, इस अधिनियम के अनुरूप ऐसे निर्देश जारी कर सकती है, जैसा वह ठीक समझे, और बोर्ड ऐसे निर्देश का पालन करेगा।**

**(4) जब भी, राज्य सरकार की राय में, तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक या समीचीन है, तो वह पूर्वगामी प्रावधानों के अंतर्गत बोर्ड को कोई संदर्भ दिए बिना, ऐसा आदेश पारित कर सकती है या इस अधिनियम के अनुरूप ऐसी अन्य कार्रवाई कर सकती है, जैसा वह आवश्यक समझे और विशेष रूप से, ऐसे आदेश द्वारा, किसी भी मामले के संबंध में कोई भी**

**विनियमन संशोधित या रद्द या बना सकती है और बोर्ड को तुरंत तदनुसार सूचित करेगी।**

(5) उपधारा (4) के अधीन राज्य सरकार द्वारा की गई किसी कार्रवाई पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।”

30. अधिनियम, 2004 की पूर्वोक्त धाराओं के समग्र वाचन से यह स्पष्ट होता है कि बोर्ड, जिसमें अनेक अधिकारी होते हैं, विभिन्न कार्य करता है, जिसमें संस्थाओं को मान्यता देने का कार्य और मान्यता प्राप्त संस्थाओं या मान्यता के लिए आवेदन करने वाली संस्थाओं की शर्तों पर निदेशक अल्पसंख्यक कल्याण, उत्तर प्रदेश से रिपोर्ट मांगने का कार्य भी शामिल है। बोर्ड को अधिनियम, 2004 की धारा 10(2)(iv) के अनुसार मान्यता देने से इंकार करने और अधिनियम, 2004 की धारा 10(2)(v) के अनुसार, उसमें उल्लिखित आकस्मिकताओं के अनुसार मान्यता वापस लेने का भी अधिकार है। अधिनियम बोर्ड को संस्थाओं के प्रमुखों से रिपोर्ट मांगने, अपेक्षित निरीक्षण करने और बोर्ड के नियमों, विनियमों, निर्णयों, अनुदेशों या निर्देशों को लागू करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करने का भी अधिकार देता है।

31. जहां तक बोर्ड और राज्य सरकार की पारस्परिक भूमिका का संबंध है, अधिनियम की धारा 13 में स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह बोर्ड द्वारा संचालित या किए गए किसी कार्य के संदर्भ में बोर्ड को संबोधित कर सकती है और बोर्ड से संबंधित किसी मामले पर अपने विचार बोर्ड को

बता सकती है और इसके बाद बोर्ड का दायित्व है कि वह राज्य सरकार को किसी ऐसी कार्रवाई के बारे में सूचित करे या प्रस्तावित कार्रवाई के बारे में सूचित करे, साथ ही यह भी प्रावधान है कि राज्य सरकार बोर्ड द्वारा दिए गए किसी स्पष्टीकरण या किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद अधिनियम, 2004 के अनुरूप निर्देश जारी कर सकती है, जिनका बोर्ड द्वारा अनुपालन किया जाएगा।

32. उपर्युक्त के दृष्टिगत, न तो बोर्ड और न ही राज्य सरकार शक्तिहीन या कार्यहीन है, यदि किसी भी तरह से कोई अवैधता, अनियमितता, दोष, रिश्टि, मिथ्यानिरूपण आदि उनके संज्ञान में आती है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी मदरसे को या तो गलत तरीके से मान्यता दी गई थी या सही तरीके से दी गई थी, मान्यता की शर्तों का उल्लंघन किया जा रहा है या यह बोर्ड या राज्य सरकार की राय में उचित नहीं है कि मान्यता अनिश्चित काल के लिए जारी रहनी चाहिए।

33. उपर्युक्त प्रावधानों के प्रकाश में, मैं पाता हूं कि यदि राज्य सरकार ने निरीक्षण करने के लिए एक विशेष जांच दल का गठन किया है, चाहे वह स्थलीय निरीक्षण, भौतिक सत्यापन या यहां तक कि बोर्ड द्वारा पोर्टल पर अपलोड की गई जानकारी के माध्यम से हो, तो इसकी कार्रवाई को अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

34. इसलिए, यह प्रश्न उठता है कि क्या आक्षेपित एस.आई.टी. रिपोर्ट या दिनांक 19.12.2022 का प्रस्ताव या दिनांक

09.01.2023 का उसका अनुमोदन, कथित रूप से एकपक्षीय होने के कारण, किसी भी प्रकार से याचिकाकर्ताओं के हितों को प्रभावित करेगा या यह कि न्याय के दरवाजे उनके लिए हमेशा के लिए बंद हो जाएंगे। जहां तक रिट सी संख्या 11005/2023 के याचिकाकर्ताओं का संबंध है, यह तर्क कि संबंधित मदरसा विभिन्न कारणों से 2017 में पहले ही बंद हो चुका है, प्रासंगिक नहीं है क्योंकि मदरसा को स्थायी या अस्थायी रूप से बंद करने का मतलब यह नहीं होगा कि इसकी मान्यता समाप्त हो गई है या मान्यता वापस लेने की कार्रवाई नहीं की जा सकती है या इसके बंद होने से पहले किया गया कोई भी काम एक या दूसरे उद्देश्य के लिए अपना महत्व खो देता है।

35. जहां तक प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन का सवाल है, हालांकि एस.आई.टी. ने रिपोर्ट दी है कि उसने स्थलीय निरीक्षण किया और पाया कि संबंधित मदरसे अस्तित्व में नहीं हैं और मदरसे के पदाधिकारी किसी भी तरह से आवश्यक विवरण नहीं दे सके, फिर भी, यदि याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत यह तर्क कि एस.आई.टी. द्वारा की गई जांच एकपक्षीय थी, बहस के लिए स्वीकार कर भी ली जाती है, तो न्यायालय पाता है कि चूंकि यह मुद्दा मदरसों को वापस लेने या उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई करने से संबंधित है, इसलिए अधिनियम, 2004 की धारा 10 के अनुसार ऐसी प्रत्याहृत की शक्ति बोर्ड में निहित है और अधिनियम, 2004 की धारा 13 के अंतर्गत राज्य सरकार की भूमिका का उल्लेख किया गया है। निश्चित रूप से, उक्त धारा की भाषा यह स्पष्ट करती है कि सरकार को बोर्ड को संबोधित करने और

बोर्ड को किसी भी मामले पर अपने विचार संप्रेषित करने का अधिकार है, जिससे बोर्ड संबंधित है और वास्तव में, राज्य सरकार और बोर्ड के बीच अंतर-विभागीय या अंतर-विभागीय संचार के प्रावधान हैं।

36. इसलिए, यदि विशेष जांच दल के गठन या उसके द्वारा की गई जांच/विवेचना की जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के कथित उल्लंघन से जुड़े याचिकाकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्कों के आलोक में की जाए, तो न्यायालय पाता है कि राज्य सरकार कुछ आकस्मिक परिस्थितियों में बोर्ड को कोई संदर्भ दिए बिना भी अधिनियम, 2004 के अनुरूप तत्काल कार्रवाई करने के लिए पूरी तरह से सक्षम है, यहां तक कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कमजोर किया जा सकता है, यदि उनका कथित रूप से उल्लंघन किया गया है, जैसा कि याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है। इस संबंध में यू.ओ.आई. बनाम जे.एन. सिन्हा और ए.आई.आर. 1971 सर्वोच्च न्यायालय 40 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वैधानिक प्रावधानों के संबंध में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के कथित उल्लंघन के मुद्दे पर विचार करते हुए कहा कि यह सच है कि यदि किसी वैधानिक प्रावधान को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप पढ़ा जा सकता है, तो न्यायालयों को ऐसा करना चाहिए क्योंकि यह माना जाना चाहिए कि विधायिका और वैधानिक प्राधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने का उद्देश्य रखते हैं। परन्तु, यदि दूसरी

ओर कोई वैधानिक प्रावधान या तो विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के किसी या सभी नियमों के अनुप्रयोग को बाहर करता है, तो न्यायालय विधायिका या वैधानिक प्राधिकरण के आदेश की अनदेखी नहीं कर सकता है और संबंधित प्रावधान में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नहीं पढ़ सकता है। किसी प्रदत्त शक्ति का प्रयोग प्राकृतिक न्याय के किसी सिद्धांत के अनुसार किया जाना चाहिए या नहीं, यह शक्ति प्रदान करने वाले प्रावधान के स्पष्ट शब्दों, प्रदत्त शक्ति की प्रकृति, जिस उद्देश्य के लिए उसे प्रदान किया गया है तथा उस शक्ति के प्रयोग के प्रभाव पर निर्भर करता है।

37. इसलिए, न्यायालय यह भी देखता है कि यदि एस.आई.टी. द्वारा जांच करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है, हालांकि प्रत्यर्थीगण द्वारा एक विपरीत रुख अपनाया गया है, जैसा कि पहले ही विस्तार से चर्चा की गई है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन/अनुपालन न करना धारा 13 की विभिन्न उपधाराओं के अंतर्गत कुछ हद तक ऐसे प्रावधान के निहित बहिष्करण और अधिनियम, 2004 की धारा 10 (2)(vi) के अंतर्गत स्पष्ट समावेशन के प्रकाश में समझा जा सकता है, और इसलिए, यदि बोर्ड अधिनियम, 2004 की धारा 10 के अंतर्गत कार्रवाई करने का प्रस्ताव करता है, तो वह संस्थान के प्रमुख से रिपोर्ट मांग सकता है और संस्थान द्वारा किए गए प्रतिनिधित्व पर विचार कर सकता है और खंडपीठ के दिनांक 09.02.2023 के निर्णय/आदेश के अनुसार

पर्याप्त बचाव पहले ही प्रदान की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 2004 की धारा 10(2)(vi) को अधिनियम, 2004 के अन्य प्रावधानों के साथ पढ़ने पर, संस्थान के प्रमुख को अवसर देने का प्रावधान है, यदि नियमों या विनियमों आदि का उल्लंघन आरोपित किया जाता है और इसलिए, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 में दिनांक 09.02.2023 को पारित निर्णय में खंडपीठ द्वारा दी गई स्वतंत्रता के दृष्टिगत, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ताओं को आवेदन/अभ्यावेदन देने और ऐसे सभी तर्क लेने के माध्यम से संबंधित अधिकारियों के समक्ष अपनी शिकायतें उठाने का पर्याप्त अवसर है, जो उनके लिए उपलब्ध हो सकती हैं और इसके साथ सभी दस्तावेज संलग्न करना है, जिन पर वे अवलम्ब लेना चाहते हैं और एक बार ऐसा आवेदन या अभ्यावेदन पेश किए जाने पर, सक्षम प्राधिकारी उस पर विचार करेंगे और याचिकाकर्ताओं को उचित सूचना के साथ उचित चरणों में उचित आदेश पारित करेंगे।

38. जहां तक आक्षेपित प्रस्ताव के अनुसरण में संबंधित याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई का संबंध है, जबकि मैं देखता हूं कि संकल्प में विभिन्न तालिकाएं हैं, जिनमें से पहली तालिका 219 अस्तित्वहीन मदरसों और उन्हें मान्यता प्रदान करने वाले अधिकारियों के विवरण से संबंधित है, जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 2-मदरसा, रिट सी संख्या 11005/2023 शामिल है, दूसरी तालिका 39 अस्तित्वहीन मदरसों से संबंधित है, जिसके संबंध में सरकारी धन के दुरुपयोग और गबन के आरोप लगाए गए हैं

और याचिकाकर्ता संख्या 2-मदरसा, रिट सी संख्या 11005/2023 को इसमें शामिल किया गया है, इस खुलासे के साथ कि 1,06,000/- रुपये की राशि मानदेय के रूप में दुरुपयोग की गई थी। तीसरी तालिका 180 मदरसों से संबंधित है, जिनके संबंध में आपराधिक मुकदमा चलाने का प्रस्ताव किया गया है, हालांकि, याचिकाकर्ता संख्या 2 का विवरण उसमें नहीं है और चौथी तालिका घटिया मदरसों के मदरसों और अधिकारियों के विवरण को संदर्भित करती है, जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 2-मदरसा भी शामिल नहीं है। जहां तक रिट सी संख्या 5992/2023 के याचिकाकर्ताओं का संबंध है, उक्त रिट याचिका के "पैरा 29" में तर्क दिया गया है कि वे 39 मदरसों की सूची में शामिल हैं और आरोपों के आधार पर आपराधिक मुकदमा चलाने की अनशंसा की गई है।

39. न्यायालय ने पहले ही इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 में पारित आदेश दिनांकित 09.02.2023 का उल्लेख किया है और इस स्तर पर उक्त आदेश को इस रूप में पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता है:-

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

**भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर इस रिट याचिका के माध्यम से, दिनांक 09.01.2023 के सरकारी आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जिसे रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है, जिसके अंतर्गत राज्य**



सरकार ने पुलिस महानिदेशक (विशेष जांच दल) को विशेष जांच दल द्वारा की गई प्रारंभिक जांच के आधार पर उचित कार्रवाई करने की आवश्यकता बताई है, जिसने दिनांक 30.11.2022 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

उक्त सरकारी आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के दो तर्क हैं।

सर्वप्रथम उन्होंने तर्क दिया है कि विशेष जांच दल ने दिनांक 30.11.2022 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया और न ही जांच और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के दौरान एस.आई.टी. द्वारा याचिकाकर्ताओं से किसी भी तरह से सामना हुआ और दूसरी बात यह कि विशेष जांच दल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की सामग्री के अवलोकन से भी ऐसा कोई मामला नहीं लगता है जिसके बारे में कहा जा सके कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कोई संज्ञेय अपराध है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता केवल शिक्षक हैं जिन्हें मदरसा में नियुक्त किया गया था और उन्हें कानून और प्रक्रिया की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद विधिवत नियुक्त किया गया था और तदनुसार, इस समय याचिकाकर्ताओं पर आपराधिक मुकदमा चलाना उचित नहीं है।

जहां तक याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रथम तर्क का प्रश्न है, हमारा मानना है कि किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए, ऐसी कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है कि

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की कार्रवाई किसी तथ्यान्वेषी जांच या प्रारंभिक जांच से पहले होनी चाहिए। हमारी राय में, ऐसी किसी कानूनी आवश्यकता के अभाव में, राज्य अधिकारियों के लिए विशेष जांच दल द्वारा की गई प्रारंभिक जांच में याचिकाकर्ताओं को शामिल करना आवश्यक नहीं था। वास्तव में, प्रारंभिक जांच करने का उद्देश्य सूचना और सामग्री एकत्र करना है ताकि इस बारे में राय बनाई जा सके कि मामले में आपराधिक जांच होनी चाहिए या नहीं। इस प्रकार, हम याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए प्रथम तर्क से सहमत नहीं हैं।

दूसरे कथन के संबंध में कि विशेष जांच दल द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में भी याचिकाकर्ताओं द्वारा किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं किया गया है, हम केवल यह देख सकते हैं कि इस समय ऐसी चुनौती देना असामयिक है, और यदि यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करता है तो संज्ञेय अपराध के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अपराध किया गया है या नहीं, यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद की जाने वाली जांच के अधीन है और उसके बाद यदि जांच के आधार पर आरोपपत्र दाखिल किया जाता है तो यह विचारण के अधीन है। उपर्युक्त कारणों से, हम इस रिट याचिका में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, जिसे एतद्वारा खारिज किया जाता है।

हालांकि, रिट याचिका खारिज होने के बावजूद, हम याचिकाकर्ताओं को अपनी शिकायतें, यदि कोई हों, संबंधित प्राधिकारी के

**समक्ष आवेदन/अभ्यावेदन के माध्यम से उठाने की अनुमति देते हैं, जिसमें उनके पास उपलब्ध सभी तर्क शामिल हों और उसके साथ वे सभी दस्तावेज संलग्न हों जिन पर वे अवलम्ब लेना चाहते हैं। जब ऐसा कोई आवेदन/अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जाता है, तो राज्य सरकार में सक्षम प्राधिकारी उस पर विचार करेगा और उचित आदेश पारित करेगा, जिसकी सूचना याचिकाकर्ताओं को भी दी जाएगी।”**

40. खंडपीठ के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि दिनांक 09.01.2023 के उसी निर्णय को चुनौती दी गई थी, जिसे दोनों रिट याचिकाओं में भी चुनौती दी गई है और वास्तव में, यह उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव द्वारा संबंधित पुलिस महानिदेशक को दिनांक 19.12.2022 के प्रस्ताव को आगे बढ़ाने और सरकार के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए किया गया एक संप्रेषण है। खंडपीठ ने एस.आई.टी. द्वारा की गई जांच की एकपक्षीय प्रकृति और उसकी दिनांक 30.11.2022 की रिपोर्ट के संबंध में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत समान तर्कों पर विचार करने के पश्चात स्पष्ट रूप से राय दी कि संज्ञेय अपराध के संबंध में दं.प्र.सं. की धारा 154 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए ऐसी कोई विधिक आवश्यकता नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना आवश्यक रूप से किसी तथ्यान्वेषी जांच या प्रारंभिक जांच से पूर्व हो और इसलिए ऐसी किसी विधिक आवश्यकता के अभाव में खंडपीठ ने राय दी कि उक्त प्राधिकारियों के लिए एस.आई.टी. द्वारा की गई प्रारंभिक जांच में याचिकाकर्ताओं को शामिल करना आवश्यक नहीं था और

वास्तव में प्रारंभिक जांच करने का उद्देश्य सूचना और सामग्री एकत्र करना है ताकि इस बारे में राय बनाई जा सके कि मामले पर आपराधिक रूप से कार्यवाही की जानी चाहिए या नहीं और इस अवलोकन के साथ आपराधिक कार्रवाई का प्रस्ताव करने के लिए आक्षेपित निर्णय/एस.आई.टी. रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों को दी गई चुनौती को खारिज कर दिया गया। खंडपीठ ने आगे कहा कि इस आधार पर जांच रिपोर्ट को चुनौती देना कि कोई संज्ञेय अपराध नहीं हुआ है, असामयिक है और आदेश में किसी भी तरह का हस्तक्षेप संज्ञेय अपराध के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में बाधा उत्पन्न करेगा और यह कि कोई अपराध हुआ है या नहीं, यह हमेशा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद की जाने वाली विवेचना का विषय होता है और उसके बाद विवेचना के आधार पर चार्जशीट दाखिल होने के पश्चात विचारण का विषय होता है। **खंडपीठ ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में हर तर्क को अस्वीकार कर दिया और रिट याचिका को खारिज कर दिया** और इसलिए, यह न्यायालय दिनांक 30.11.2022 की एस.आई.टी. रिपोर्ट या दिनांक 19.12.2022 के प्रस्ताव की पुष्टि करने वाले दिनांक 09.01.2023 के आदेश के संबंध में अलग दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है।

41. इस न्यायालय ने आगे पाया कि रिट याचिका खारिज होने के बावजूद, खंडपीठ ने संबंधित याचिकाकर्ताओं को अपनी शिकायतें, यदि कोई हों, संबंधित प्राधिकारी के समक्ष उठाने की अनुमति दी है, जिसमें वे सभी तर्क दे सकते हैं जो उनके पास उपलब्ध हो और

इसके साथ वे सभी दस्तावेज संलग्न कर सकते हैं जिन पर वे अवलम्ब लेना चाहते हैं। खंडपीठ ने यह भी देखा कि एक बार ऐसा कोई आवेदन/अभ्यावेदन प्रस्तुत किए जाने पर, राज्य सरकार में सक्षम प्राधिकारी उस पर विचार करेगा और उचित आदेश पारित करेगा, जिसे याचिकाकर्ताओं को भी सूचित किया जाएगा।

42. यह विवादित नहीं है कि खंडपीठ का उपरोक्त निर्णय एकल पीठ के समक्ष नहीं रखा गया था, जिसने प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 3380/2023 और 4891/2023 में क्रमशः दिनांक 11.04.2023 और 19.05.2023 को अंतरिम आदेश पारित किए हैं और संभवतः इसी कारण से, उक्त अंतरिम आदेश खंडपीठ के दिनांक 09.02.2023 के निर्णय/आदेश की अज्ञानता में पारित किए गए प्रतीत होते हैं। इन दोनों रिट याचिकाओं में पारित दिनांक 19.04.2023 और 28.03.2023 के अंतरिम आदेशों के संबंध में भी यही स्थिति है, जो एकपक्षीय थे और स्पष्ट रूप से खंडपीठ के निर्णय/आदेश की अज्ञानता में थे, क्योंकि खंडपीठ के आदेश को राज्य द्वारा दायर प्रति शपथपत्र के साथ रखा गया था। मेरा यह भी मानना है कि जहां एस.आई.टी. रिपोर्ट में 313 मदरसों के विरुद्ध की गई कार्रवाई का जिक्र है, वहीं केवल एक मदरसे द्वारा रिट सी संख्या 11005/2023 और 13 मदरसों द्वारा रिट सी संख्या 5992/2023 में की गई चुनौती पर, एस.आई.टी. द्वारा दिनांक 30.11.2022 की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने में किए गए पूरे प्रयास को रद्द नहीं किया जाना चाहिए या

यहां तक कि पूरी तरह से या यहां तक कि याचिकाकर्ताओं के संबंध में आगे की कार्यवाही को रोककर निलंबित भी नहीं किया जाना चाहिए।

43. मेरा दृढ़ मत है कि प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उपरोक्त आवेदनों में पारित अंतरिम आदेश या यहां तक कि इन रिट याचिकाओं में पारित अंतरिम आदेश किसी भी उद्देश्य के लिए बाध्यकारी नहीं होंगे क्योंकि उन्हें निस्संदेह दिनांक 09.02.2023 के खंडपीठ के आदेश पर विचार किए बिना पारित किया गया था। न्यायालय की राय में यह अंतरिम आदेश “सावधानी की कमी” के दोष से ग्रसित है। “इन्क्यूरिया” का शाब्दिक अर्थ होता है “लापरवाही”। व्यवहार में, पर इनक्यूरियम का अर्थ प्रति अज्ञानता माना जाता है। अंग्रेजी न्यायालयों ने स्टेयर डेसिसिस के नियम में ढील देते हुए इस सिद्धांत को विकसित किया है। यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन कंपनी लिमिटेड (1944) 2 ए.एल.एल.ई.आर. 293 में कहा गया “कानून में उद्धृत करने योग्य” को टाला जाता है और अनदेखा किया जाता है, अगर इसे “किसी कानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकरण की अज्ञानता में” प्रस्तुत किया जाता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 141 की व्याख्या करते समय इसे स्वीकार, अनुमोदित और अपनाया है, जो कानून के मामले के रूप में मिसाल के सिद्धांत को दर्शाता है। उपरोक्त स्थिति को उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड व अन्य (1991) 4 एस.सी.सी. 139 में उजागर किया गया था।

**किसी गलती को कायम रखना कोई वीरता नहीं है। इसे सुधारना न्यायिक विवेक की बाध्यता है।** कानून के उपरोक्त प्रस्ताव को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य व अन्य, जे.टी. 2004 (7) एस.सी. 161 के मामले में दोहराया गया है।

44. हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून (चौथा संस्करण) खंड 26: निर्णय और आदेश न्यायिक निर्णय प्राधिकरण के रूप में (पृष्ठ 297-298, अनुच्छेद 578) में पर इनक्यूरियम के बारे में कहा गया है कि पर इनक्यूरियम तब निर्णय दिया जाता है जब न्यायालय ने अपने या समन्वय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के पिछले निर्णय की अनदेखी करते हुए काम किया हो, जबकि उसके सामने मामला चल रहा हो, ऐसी स्थिति में उसे यह तय करना होगा कि किस मामले का अनुसरण करना है या जब उसने हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय की अनदेखी करते हुए काम किया हो, ऐसी स्थिति में उसे उस निर्णय का अनुसरण करना होगा; या जब निर्णय किसी कानून या वैधानिक बल वाले नियम की शर्तों की अनदेखी करते हुए दिया गया हो। भले ही अपील की अदालत के निर्णय ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स के पिछले निर्णय की गलत व्याख्या की हो, अपील की अदालत को अपने पिछले निर्णय का पालन करना चाहिए और हाउस ऑफ लॉर्ड्स को गलती सुधारने के लिए छोड़ देना चाहिए।

45. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2000) 4 एस.सी.सी. 262, आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम बी. सत्यनारायण राव (मृत)

एल.आर.एस. में माना है कि पर इनक्यूरियम का नियम तब लागू किया जा सकता है जब कोई न्यायालय उसी मुद्दे पर उसी न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए बाध्यकारी उदाहरण पर विचार करना छोड़ देता है या जब कोई न्यायालय उस मुद्दे पर निर्णय लेते समय किसी कानून पर विचार करना छोड़ देता है। दो न्यायाधीशों द्वारा लिए गए निर्णय का दो न्यायाधीशों की दूसरी समन्वय पीठ पर बाध्यकारी प्रभाव होता है, जब तक कि यह प्रदर्शित न हो जाए कि कानून या निर्णय में किसी बाद के परिवर्तन द्वारा उक्त निर्णय सही कानून निर्धारित करना बंद कर देता है। इसी विधिक प्रस्ताव को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जे.टी. 2003 (4) एस.सी. 489 में सूचित बिहार राज्य बनाम कालिका कुअर उर्फ कालिका सिंह व अन्य के मामले में दोहराया है। “पर इनक्यूरियम” की अवधारणा पर सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार विचार किया है और समझाया है कि इस अभिव्यक्ति का अर्थ है अनजाने में या कानून का कोई बिंदु जानबूझकर निर्धारित नहीं किया गया है। यदि कोई मुद्दा न तो उठाया जाता है और न ही उस पर बहस की जाती है, तो इस मुद्दे पर गहराई से विचार करने के बाद न्यायालय द्वारा लिया गया निर्णय न्यायालयों के लिए बाध्यकारी नहीं होगा। (देखें ममलेश्वर प्रसाद व अन्य बनाम कन्हैया लाल (मृत), (1975) 2 एस.सी.सी. 232; राजपुर रूडा मेहा व अन्य बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 1707; ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 1531; दिल्ली नगर निगम बनाम गुरनाम कौर, ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 38; पंजाब

भूमि विकास एवं पुनर्ग्रहण निगम लिमिटेड, चंडीगढ़ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ व अन्य, (1990) 3 एस.सी.सी. 682; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम सिंथेटिक्स एवं केमिकल्स लिमिटेड, (1991) 1 एस.सी.सी. 139; महाराष्ट्र राज्य सहकारी कपास उत्पादक विपणन संघ लिमिटेड व अन्य बनाम कर्मचारी संघ व अन्य, 1994 सप (3) एस.सी.सी. लिमिटेड, मेरठ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड व अन्य, (1997) 7 एस.सी.सी. 251; राम गोपाल बाहेती बनाम गिरधारीलाल सोनी व अन्य, (1999) 3 एस.सी.सी. 112; सरनाम सिंह बनाम उप संचालक, चकबंदी व अन्य, (1999) 5 एस.सी.सी. 638; आंध्र प्रदेश सरकार बनाम बी. सत्यनारायण राव, ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 1729; अर्जित दास बनाम बिहार राज्य (2000) 5 एस.सी.सी. 488; मेसर्स फ्यूस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2293; ए-वन ग्रेनाइट्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2001) 3 एस.सी.सी. 537; सुगंथी सुरेश कुमार बनाम जगदीशन, ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 681 निदेशक सेटलमेंट ए.पी. व अन्य बनाम एम.आर. अप्पाराव व अन्य, (2002) 4 एस.सी.सी. 638; एस शानमुगावेल नादर बनाम टी.एन. राज्य व अन्य, (2002) 8 एस.सी.सी. 361; बिहार राज्य बनाम कालिका कुएर कालिका सिंह व अन्य, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2443; और मंदा जगन्नाथ बनाम के.एस. रत्नम व अन्य, (2004) 7 एस.सी.सी. 492।

46. सामान्यतः, “पर इनक्यूरियम” की अवधारणा पर चर्चा की जाती है और अंतिम निर्णयों के संदर्भ में इसे लागू किया जाता है, हालांकि, वर्तमान मामले में, आपराधिक विविध में पारित दिनांक 09.02.2023 के आदेश का उल्लेख करते हुए, रिट याचिका संख्या 1131/2023, प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. अंतर्गत उपरोक्त आवेदनों में और साथ ही इन दो रिट याचिकाओं में पारित अंतरिम आदेशों के संबंध में, न्यायालय को लगता है कि “पर इनक्यूरियम” की अवधारणा में अंतर्निहित दर्शन का उपयोग करना उचित है और यह देखता है कि अंतरिम आदेश पारित करते समय भी वही सिद्धांत लागू होगा क्योंकि यह किसी भी निर्णय से जुड़ी अंतिमता के मामले में लागू होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. के उपरोक्त आवेदनों और साथ ही इन दो रिट याचिकाओं में अंतरिम आदेश को इस न्यायालय की खंडपीठ के रिट याचिका संख्या 1131/2023 के दिनांक 09.02.2023 के निर्णय की अनदेखी में पारित किया गया है, तो सभी चार अंतरिम आदेश “पर इनक्यूरियम” के सिद्धांत से प्रभावित होंगे।

47. इस मामले का एक और पहलू है जो बहस के दौरान परिलक्षित हुआ। याचिकाकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया कि दिनांक 09.02.2023 का निर्णय/आदेश उन परिस्थितियों से उत्पन्न एक आपराधिक विविध रिट याचिका में पारित किया गया था, जिसके अंतर्गत संबंधित याचिकाकर्ता आपराधिक कार्रवाई का सामना कर रहे थे; हालांकि,

वर्तमान मामलों में शामिल मुद्दे प्रकृति में बहुत व्यापक हैं और इसलिए, आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली पीठ द्वारा पारित आदेश वर्तमान मामलों में अधिक महत्व नहीं रखेगा।

48. मैं इस तरह के तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। इसका कारण यह है कि हमारा भारतीय संविधान “न तो नागरिक प्रकृति की पुस्तक है और न ही आपराधिक”। जब भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग की बात आती है, तो यह निश्चित रूप से संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को पाँच विशेषाधिकार रिटों में से किसी एक या अधिक के माध्यम से लागू करने के लिए है, अर्थात् बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 को व्यावहारिक रूप से लागू करते समय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय 22 नियम 1 (एतदपश्चात् “नियम, 1952” के रूप में संदर्भित) का संदर्भ लिया जा सकता है। उक्त अध्याय एकल/खंड पीठ के समक्ष संज्ञान को छोड़कर विभिन्न प्रकृति के रिटों के बीच अंतर नहीं करता है। इसलिए, न्यायालय के नियम भी हर प्रकृति के रिट के लिए समान रूप से लागू होते हैं। उक्त अध्याय नियम, 1952 के भाग 4 के अंतर्गत **“मौलिक अधिकारों का प्रवर्तन”** शीर्षक के अंतर्गत दिया गया है जहां तक सिविल और आपराधिक क्षेत्राधिकार का संबंध है, सिविल क्षेत्राधिकार नियम, 1952 के भाग 2 में समाहित है, जबकि आपराधिक क्षेत्राधिकार नियम, 1952 के भाग 3 में आता है और दोनों

भाग क्रमशः सिविल और आपराधिक क्षेत्राधिकार की विभिन्न कार्यवाहियों की प्रकृति का विस्तृत वर्णन करते हैं।

49. नियम, 1952 के भाग 2, 3 और 4 के साथ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 की उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि रिट न्यायालय का कोई भी निर्णय, चाहे वह सिविल विविध रिट याचिका हो या आपराधिक विविध रिट याचिका, संबंधित रिट न्यायालय द्वारा उठाए गए और तय किए गए मुद्दों पर निर्भर करते हुए, किसी भी तरह से प्रभाव डालेगा। उपरोक्त आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 में, खंडपीठ के समक्ष मुद्दा वही था जो इन दोनों रिट याचिकाओं के साथ-साथ प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत पूर्वोक्त आवेदनों में शामिल है, अर्थात् कि क्या विशेष जांच दल द्वारा प्रस्तुत दिनांक 30.11.2022 की रिपोर्ट और राज्य सरकार के दिनांक 19.12.2022 के परिणामी प्रस्ताव और/या दिनांक 09.01.2023 के आक्षेपित संप्रेषण द्वारा इसके अनुमोदन के साथ परिणत होने वाली जांच प्रक्रिया के दौरान भाग लेने के कथित अवसर की इच्छा के लिए, याचिकाकर्ता किसी भी अनुतोष के हकदार हैं या नहीं। इसलिए, आपराधिक विविध रिट याचिका में खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय को तथ्यों या कानून या वर्गीकरण आदि पर **“वर्तमान कार्यवाही से अलग”** नहीं माना जा सकता है।

50. अब अभिलेखों पर दो और दस्तावेजों का जिक्र करते हुए, मुझे लगता है कि रिट-सी संख्या 11005/2023 के लिए दिनांक 27.07.2011 के मान्यता पत्र, “अनुलग्नक

संख्या 5" में भी स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि मान्यता अधिनियम, 2004 की धारा 10 के उप-खंड (v), (vi), (vii) और (viii) के अधीन है। इसका अर्थ है कि यदि कानून के उपरोक्त प्रावधानों का उल्लंघन पाया जाता है, तो मान्यता वापस लेना एक आवश्यक परिणाम हो सकता है। जहाँ तक जिलाधिकारी, आजमगढ़ द्वारा विभिन्न अधिकारियों को जारी दिनांक 25.08.2017 के पत्र का प्रश्न है, मैं पाता हूँ कि संबंधित समिति की अध्यक्षता संबंधित तहसीलों के उप-मंडल अधिकारियों द्वारा की गई थी और इसके सदस्य संबंधित जिला पिछड़ा वर्ग कल्याण अधिकारी, जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी और जिला समाज कल्याण अधिकारी थे और यहाँ तक कि जिलाधिकारी ने भी माना था कि मदरसों की बड़ी संख्या और उनके मानकों को पूरा न करने के तथ्य को देखते हुए व्यापक जाँच अपेक्षित है। इसलिए, यदि एस.आई.टी. ने व्यापक जाँच की है, तो इसकी रिपोर्ट को केवल इसलिए अवैध नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि 2016-2017 में तहसील स्तर पर कुछ जाँच की गई थी।

51. इस निर्णय का समापन करते समय, अधिनियम, 2004 की धारा 13 (4) द्वारा प्रदत्त राज्य सरकार की शक्ति से जुड़ी एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता पर चर्चा की जानी चाहिए क्योंकि उक्त शक्ति यह कहती है कि जब भी राज्य सरकार की राय में तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक या समीचीन हो, तो वह पूर्वगामी प्रावधानों के अंतर्गत बोर्ड को कोई संदर्भ दिए बिना, ऐसा आदेश पारित कर

सकती है या इस अधिनियम के अनुरूप ऐसी अन्य कार्रवाई कर सकती है जिसे वह आवश्यक समझे और विशेष रूप से, ऐसे आदेश द्वारा किसी भी मामले के संबंध में कोई विनियमन संशोधित या रद्द या बना सकती है और बोर्ड को तुरंत सूचित करेगी। इसलिए, यदि राज्य सरकार ने निरीक्षण करने के लिए एक विशेष जांच दल का गठन किया और उसने स्थलीय निरीक्षण के माध्यम से या बोर्ड द्वारा अपलोड की गई पोर्टल सूचना के माध्यम से या दोनों तरीकों से जांच की, तो उसके द्वारा की गई कार्रवाई या उठाए गए कदमों को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में अनुचित नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि विस्तार से चर्चा की गई है।

52. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, इस रिट-कार्यवाही का अंतिम परिणाम निम्नलिखित है:-

(i) एस.आई.टी. रिपोर्ट दिनांकित 30.11.2022 या राज्य सरकार के प्रस्ताव दिनांकित 19.12.2022 या विशेष सचिव के संप्रेषण दिनांकित 09.01.2023 को रद्द करने या अपास्त करने की प्रार्थनाओं को एतद्वारा अस्वीकार किया जाता है और दोनों रिट याचिकाओं को याचिकाकर्ताओं को उसी स्वतंत्रता के साथ खारिज किया जाता है, जैसा कि इस न्यायालय के खंडपीठ द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1131/2023 में पारित आदेश दिनांकित 09.02.2023 में दी गई थी।

(ii) रिट-सी संख्या 11005/2023 में पारित अंतरिम आदेश दिनांकित 19.04.2023 और रिट-सी संख्या 5992/2023 में पारित अंतरिम आदेश दिनांकित 28.03.2023 को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

-----

**(2023) 9 ILRA 1002**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 28.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र**

रिट-सी संख्या 15412 वर्ष 2023

के साथ संबद्ध

रिट-सी संख्या 11662 वर्ष 2023 और 21573

वर्ष 2023

**सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबूसराय, भदोही**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री आशीष कुमार सिंह, श्री अजय कुमार सिंह,  
श्री तेजस सिंह

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री संकल्प नारायण,  
श्री जीके सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

**सिविल विधि - सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 4-बी - यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - धारा 16-ए (7) - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - सदस्यता सूची और चुनाव की वैधता - रिट-सी**

संख्या 15412 और 11662/2023 में याचिकाकर्ताओं ने सहायक रजिस्ट्रार द्वारा 16.12.2022 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें सामान्य निकाय के 29 सदस्यों को वैध घोषित किया गया, जिसमें 2014 में राम रेखा शास्त्री द्वारा मनगढ़ंत आरोप लगाया गया। रिट-सी संख्या 21573/2023 ने संयुक्त शिक्षा निदेशक और जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा 02.06.2023 के आदेशों को चुनौती दी, जिसमें रिकॉर्ड तलब किए गए और प्रतिद्वंद्वी चुनाव विवादों को क्षेत्रीय स्तर की समिति को संदर्भित किया गया याचिकाकर्ताओं ने दावा किया कि 74 सदस्यों की सूची वैध थी, जिसका समर्थन पूर्व के आदेशों द्वारा किया गया था, जबकि प्रतिवादियों ने 29 सदस्यों की सूची पर भरोसा करते हुए आरोप लगाया कि याचिकाकर्ताओं के नामांकन ने उप-नियमों का उल्लंघन किया है। न्यायालय ने पाया कि जून 2014 में याचिकाकर्ताओं द्वारा सदस्यों का नामांकन अवैध था क्योंकि बैंक ड्राफ्ट के लिए समिति की स्वीकृति आवश्यक उप-नियमों का पालन नहीं किया गया था, और 28.06.2014 और 29.06.2014 की बैठकों में पवित्रता का अभाव था। जालसाजी के आरोपों के लिए विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 31 और 34, और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 के तहत दीवानी न्यायालय में निर्णय की आवश्यकता थी। 16.12.2022 के आदेश को 26 सदस्यों के लिए बरकरार रखा गया, जबकि तीन सदस्यों पर विवाद पक्षकार के रूप में उनकी अनुपस्थिति के कारण सुलझ नहीं सका।



9.इला सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबूसराय, भदोही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1369

जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 01.06.2023 को आयोजित चुनाव, पूर्व न्यायालय के आदेशों के अनुसार वैध थे, जिससे संयुक्त निदेशक का आदेश और क्षेत्रीय स्तरीय समिति को भेजा गया संदर्भ अस्थिर हो गया। रिट-सी संख्या 15412 और 11662 को सिविल न्यायालय में जाने की छूट के साथ खारिज कर दिया गया; रिट-सी संख्या 21573 को स्वीकार किया गया, जिससे दिनांक 02.06.2023 के आदेश निरस्त हो गए। (अनुच्छेद 27-29, 31-34)

**रिट-सी संख्या 15412 और 11662 खारिज;  
रिट-सी संख्या 21573 स्वीकृत।**

#### **उद्धृत वादों की सूची:**

1. अजब सिंह बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, मेरठ एवं अन्य, 1980 यूपीएलबीईसी 308

2. केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल एवं अन्य बनाम अबरार अली, (2017) 4 एससीसी 507

3. कृष्णा राइस एंड दाल मिल एवं अन्य बनाम खाद्य आयुक्त/खाद्य सचिव एवं अन्य, 2002 (3) एडब्ल्यूसी 2466

4. सचिव एवं क्यूरेटर, विक्टोरिया मेमोरियल हॉल बनाम हावड़ा गणतान्त्रिक नागरिक समिति एवं अन्य, एआईआर 2010 एससी 1285

5. भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुणसेकरन, (2015) 2 एससीसी 610

6. एस. श्रीसंत बनाम भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड एवं अन्य, (2019) 4 एससीसी 660

7. सी/एम दयानंद इंटर कॉलेज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 335/2023

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. इन तीन रिट याचिकाओं पर 24.08.2023 को विस्तार से सुनवाई हुई और चूंकि कोई समय नहीं बचा था, इसलिए मामलों को आज दोनों पक्षों के तर्कों को संक्षेप में प्रस्तुत करने और निर्णय सुनाने के लिए रखा गया था। आज भी करीब दो घंटे तक मामलों की सुनवाई हुई है।

#### **चुनौती**

2. प्रबंधन इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबूसराय, जिला भदोही की समिति द्वारा रिट सी संख्या 15412/2023 दायर किया गया है, जिसमें दिनांक 16.12.2022 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, वाराणसी ने 29 सदस्यों की निकाय को सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-बी के तहत वैध घोषित किया है। इसी आदेश को कुछ सदस्यों द्वारा रिट सी संख्या 11662/2023 दायर करके चुनौती दी गई है। तीसरी रिट याचिका संख्या 21573/2023 प्रबंधन समिति द्वारा दायर की गई है जो 01.06.2023 को हुए चुनावों के अनुसार निर्वाचित हुई है और पहला

आदेश दिनांक 02.06.2023 का है जिसे चुनौती दी गयी है, जिसके तहत संयुक्त शिक्षा निदेशक, भदोही ने जिला विद्यालय निरीक्षक, भदोही का रिकॉर्ड तलब किया है। इस आदेश का आधार यह है कि पार्टियों द्वारा पूर्व में आयोजित दो चुनावों के सम्बन्ध में दावा किया गया है और इसलिए, यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16 ए (7) के तहत जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रतिद्वंदी चुनावों का पूरा रिकॉर्ड विशिष्ट रिपोर्ट के साथ भेजा जाये ताकि मामले पर शासनादेश दिनांक 19.12.2000 के अनुसार निर्णय लिया जा सके। एक और आदेश दिनांक 02.06.2023 का है जिसको चुनौती दी गयी है जिसके तहत जिला विद्यालय निरीक्षक, भदोही ने संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.06.2023 को आगे बढ़ाते हुए मामले को क्षेत्रीय स्तर की समिति को भेज दिया है।

**रिट सी संख्या 15412/2023 और 11662/2023 के याचिकाकर्ताओं का मामला और विवाद**

3. रिट सी संख्या 15412/2023 में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिंह और रिट सी संख्या 11662/2023 में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी की दलीलें लगभग सामान्य हैं और दोनों की तरफ से यही जोरदार तर्क दिया गया है कि सोसायटी की स्थापना 1967 में हुई थी और सोसायटी द्वारा संचालित संस्था में दया प्रसाद बरनवाल 1973 से 1992 तक प्रबंधक चुने गए

और उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र अनिल कुमार बरनवाल वर्ष 1992 में प्रबंधक बने और 2014 तक वे इसी पद पर रहे।

4. याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि श्री राम रेखा शास्त्री, जो संस्थान के प्राचार्य थे, 30.06.2014 को सेवानिवृत्त होने वाले थे और, अपनी सेवानिवृत्ति से ठीक पहले, उन्होंने कुछ चीजों में हेरफेर किया और 29 सदस्यों की एक सूची पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत की। याचिकाकर्ताओं के अनुसार उक्त सूची और इस सूची के साथ प्रस्तुत किया गया दिनांक 25.03.2014 का वह पत्र मनगढ़ंत है। इस बात पर जोर दिया गया कि दिनांक 25.03.2014 के पत्र पर अनिल कुमार बरनवाल के फर्जी हस्ताक्षर किए गए थे और यहां तक कि उनके नाम पर जाली शपथ पत्र दिनांक 29.05.2014 को सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जिसकी शिकायत याचिकाकर्ताओं ने सहायक सामग्री के साथ संयुक्त निदेशक शिक्षा और सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष भी की गयी थी हालांकि संयुक्त शिक्षा निदेशक ने राम रेखा शास्त्री को उठाए गए मुद्दों का जवाब देने के लिए बुलाया, लेकिन उक्त मामला अभी भी लंबित है और इसका निपटारा नहीं हुआ है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं की समिति ने जून, 2014 के महीने में कुछ सदस्यों को नामांकित किया था, कुछ स्थानों पर सटीक संख्या 74 थी और कुछ अन्य स्थानों पर 79 थी।

5. रिकॉर्ड के अवलोकन से, मुझे पता चला है कि कई मौकों पर, वैध सदस्यता से संबंधित विवाद ने इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। एक समय पर, जिला विद्यालय निरीक्षक ने योगेश चंद्र मिश्रा को चुनाव कराने की अनुमति दे दी थी, लेकिन बाद में, दिनांक 18.06.2014 के आदेश द्वारा, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा उक्त आदेश को वापस ले लिया गया। नतीजतन, रिट सी संख्या 33694/2014 (योगेश चंद्र मिश्रा और 9 अन्य बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य) दायर की गई थी, जिसे 04.07.2014 के आदेश द्वारा निपटाया गया था, जिसमें संयुक्त शिक्षा निदेशक को या तो स्वयं या उसके द्वारा नियुक्त किसी अधिकारी के माध्यम से संस्था के निर्वाचक मंडल का निर्धारण करने का निर्देश दिया गया था।

6. यह तर्क दिया गया है कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने आदेश दिनांक 29.05.2015 द्वारा 74 सदस्यों को चुनाव कराने के उद्देश्य से वैध पाते हुए वैध निर्वाचक मंडल का निर्धारण किया और सूची को अंतिम रूप दिया गया। योगेश चंद्र मिश्रा और 9 अन्य ने रिट सी संख्या 36602/2015 (योगेश चंद्र मिश्रा और 8 अन्य बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य) दायर करके उक्त निर्णय को चुनौती दी, जिसे दिनांक 06.07.2015 के आदेश द्वारा निपटाया गया, जिसके तहत दोनों पक्षों को सूचित किया गया कि उन्हें अपनी शिकायतों के निवारण के लिए क्षेत्रीय स्तर की समिति से संपर्क करने की स्वतंत्रता है। उक्त आदेश दिनांक 06.07.2015 के विरुद्ध दायर विशेष अपील संख्या 477/2015 (योगेश चंद्र

मिश्रा एवं 8 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य) को भी डिवीजन बेंच द्वारा दिनांक 27.07.2015 के आदेश द्वारा निस्तारित कर दिया गया, जिससे क्षेत्रीय स्तर समिति को एक माह के भीतर कार्यवाही समाप्त करने का निर्देश दिया गया।

7. आगे यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त आदेशों के अनुसरण में, क्षेत्रीय स्तर की समिति ने 74 सदस्यों की सूची को अंतिम रूप देते हुए दिनांक 09.10.2015 के एक आदेश द्वारा विवाद का फैसला किया। दिनांक 09.10.2015 के आदेश के विरुद्ध, योगेश चंद्र मिश्रा और 8 अन्य ने रिट सी संख्या 60481/2015 दायर की, जिसे आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी, दिनांक 18.11.2015 के आदेश द्वारा क्षेत्रीय स्तर समिति के आदेश दिनांक 09.10.2015 को रद्द करते हुए और समिति को निर्देशित किया गया था कि कानून के अनुसार नया आदेश पारित करें।

8. याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि क्षेत्रीय स्तर की समिति ने 20.05.2016 को फिर से उनके पक्ष में फैसला सुनाया, जिस पर योगेश चंद्र मिश्रा और 8 अन्य ने रिट सी संख्या 24802/2016 दायर करके फिर से क्षेत्रीय स्तर की समिति के आदेश को चुनौती दी गयी, जिसमें इस न्यायालय द्वारा 22.11.2016 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसके तहत अगले आदेश तक क्षेत्रीय स्तरीय समिति के निर्णय के प्रभाव और संचालन पर रोक लगा दी गई थी और संस्थान के शिक्षकों और कर्मचारियों को वेतन का भुगतान खातों के एकल संचालन के माध्यम से

करने का निर्देश दिया गया था। अंतरिम आदेश दिनांक 22.11.2016 को विशेष अपीलीय पीठ के समक्ष विशेष अपील संख्या 790/2016 (सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबू सराय बनाम यूपी राज्य और 12 अन्य) दायर करके आदेश दिनांक 15.12.2016 द्वारा खारिज कर के निपटाया गया था। आदेश दिनांक 15.12. 2016 के द्वारा जिला मजिस्ट्रेट या अपर जिला मजिस्ट्रेट को प्रबंधन समिति के नए चुनाव कराने के निर्देश के साथ एक और निर्देश भी जारी किया गया था कि ये अधिकारी इस प्रश्न का निर्णय करेंगे कि क्या विवादित 52 नए सदस्य, सदस्य बने रहने के हकदार हैं और उन्हें चुनाव में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है। डिवीजन बेंच द्वारा चुनावों पर रोक नहीं लगाई गई और अपीलकर्ता-प्रबंधन समिति, यानी रिट सी संख्या 15412/2023 के याचिकाकर्ताओं को नए निर्वाचित निकाय के कार्यभार संभालने तक कार्य करने की अनुमति दी गई। रिट सी संख्या 24802/2016 का भी डिवीजन बेंच ने निपटारा कर दिया।

9. आगे यह तर्क दिया गया है कि विशेष अपीलीय पीठ के आदेश के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 13.02.2017 को एक विस्तृत आदेश पारित किया जिसमें जून, 2014 की विभिन्न तारीखों के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई कार्यवाही के आधार पर 74 सदस्यों को फिर से वैध माना गया। विशेष रूप से, दिनांक 28.06.2014 की बैठक की कार्यवाही, जिसमें कथित तौर पर सदस्यों के बैंक ड्राफ्ट रखे गए थे और संबंधित समिति द्वारा स्वीकार किए गए थे। आगे तर्क

दिया गया कि दिनांक 13.02.2017 के आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता प्रबंधन समिति ने 19.03.2017 को चुनाव कराए, जिन्हें मंजूरी दे दी गई और 20.03.2017 को अनिल कुमार बरनवाल के हस्ताक्षर भी सत्यापित किए गए। उक्त चुनावों और हस्ताक्षरों के सत्यापन को चुनाव में प्रतिद्वंदी-प्रतिवादी ने रिट सी संख्या 29385/2017 दायर करके चुनौती दी है, जो लंबित है और इसमें कोई अंतरिम आदेश नहीं है।

10. यह भी रिकॉर्ड में आया है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन समिति ने 17.04.2022 को एक और चुनाव कराया, जिसे 26.04.2022 को जिला विद्यालय निरीक्षक ने अस्वीकार कर दिया और उसके बाद, 11.05.2022 को एकल हाथ संचालन का आदेश पारित किया गया। तब तक 2017 के चुनाव का कार्यकाल खत्म हो चुका था। याचिकाकर्ताओं ने रिट सी संख्या 16556/2022 (इंटरमीडिएट कॉलेज के सी/एम बनाम यूपी राज्य और 6 अन्य) दायर करके उपरोक्त चुनाव दिनांक 17.04.2022 और आदेश दिनांक 26.04.2022 और 11.05.2022 को चुनौती दी, जिसका निस्तारण आदेश दिनांक 25.07.2022 द्वारा कर दिया गया।

इस आदेश के निम्नलिखित प्रावधान हैं :-

*“अब न्यायालय निर्वाचक मंडल के विषय में कहता है की निर्वाचक मंडल चुनाव करने के लिए आवश्यक है। इससे पहले खंड पीठ ने पीड़ित पक्ष को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अंतिम रूप दी गई सूची के खिलाफ आपति दर्ज करने का अधिकार दिया था, लेकिन यदि कोई आपति दर्ज की गई थी, तो उस पर निर्णय का*

इंतजार नहीं किया जा सकता था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि पिछला चुनाव जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 13.02.2017 के आदेश के तहत अंतिम रूप दिए गए निर्वाचक मंडल पर हुआ था, जो रिट-सी संख्या 29385/2017 में चुनौती के अधीन है, जिसमें कोई अंतरिम आदेश नहीं है। इसलिए, खंड पीठ के आदेश पर विचार करते हुए, यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश देता है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति के जारी होने वाली दिनांक के दो महीने के भीतर नए सिरे से चुनाव कराये जाये। चुनाव उस निर्वाचक मंडल के आधार पर हों जिसे प्रतिवादी संख्या 07 द्वारा अनुमोदित किया गया हो या उस निर्वाचक मंडल के आधार पर जिसे पहले जिला अधिकारी द्वारा आदेश दिनांक 13.02.2017 के तहत अंतिम रूप दिया गया था। हर स्थिति में चुनाव इस आदेश की प्रमाणित प्रति की दिनांक से दो महीने के भीतर होगा।"

11. उपरोक्त आदेश से यह स्पष्ट है कि खंड पीठ के आदेश को ध्यान में रखते हुए, समन्वय पीठ ने जिला विद्यालय निरीक्षक को दो महीने के भीतर नए सिरे से चुनाव कराने का निर्देश दिया तथा निर्वाचक मंडल के निर्धारण का भी निर्देश देते हुआ कहा कि निर्वाचक मंडल को रिट याचिका के प्रतिवादी संख्या 7 के द्वारा अनुमोदित किया गया हो या निर्वाचक मंडल का गठन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 13.02.2017 के आदेश के तहत किया जाये।

12. दिनांक 25.07.2022 के आदेश में, समन्वय पीठ ने यह भी दर्ज किया कि प्रशासन

की योजना के अनुसार, प्रबंधन समिति का कार्यकाल पांच वर्ष और एक महीने है, जो निर्विवाद रूप से समाप्त हो गया है, इसलिए, निवर्तमान प्रबंधन समिति को नए चुनाव कराने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। केवल जिला विद्यालय निरीक्षक या उनके द्वारा नियुक्त प्राधिकृत नियंत्रक ही कानून के अनुसार नए चुनाव कराने के लिए अधिकृत हैं।

13. इस बीच, उत्तरदाताओं ने रिट सी संख्या 28466/2022 (योगेश चंद्र मिश्रा और 15 अन्य बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य) दायर की और इस न्यायालय से निर्देश मांगा कि सामान्य निकाय के 29 सदस्यों की सूची को अंतिम रूप दिया जाए, हालांकि इस न्यायालय ने 26.09.2022 को रिट याचिका का निपटारा करते हुए पाया कि सदस्यों की सूची के पंजीकरण के लिए सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-बी के तहत कार्यवाही सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष लंबित थी, इसलिए, एक निर्देश जारी किया गया था सहायक रजिस्ट्रार उक्त कार्यवाही पर निर्णय लें।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्ष 2014 में श्री राम रेखा शास्त्री द्वारा की गई जालसाजी से 29 सदस्यों की सूची को धोखाधड़ी से अंतिम रूप दिया गया के सम्बन्ध में की गयी शिकायत पर कार्यवाही सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष लंबित थी और याचिकाकर्ताओं ने सहायक से अनुरोध किया था रजिस्ट्रार को उक्त मनगढ़ंत कार्यवाही को रद्द करने के लिए कहा गया था, लेकिन आज तक, इस पर सहायक रजिस्ट्रार द्वारा

अंतिम फैसला नहीं लिया गया है और इस बीच, दिनांक 29.12.2022 के आदेश द्वारा, उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किए गए 29 सदस्यों की सूची को अंतिम रूप दे दिया गया है।

सम्बंधित कार्यवाही का भी संदर्भ लिया गया है जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक ने अपने लिखित बयान में यह कहा कि 74 सदस्य वैध थे।

15. यह भी रिकॉर्ड में आया है कि याचिकाकर्ताओं ने जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा जारी कुछ निर्देशों के अनुसार 18.09.2022 को चुनाव कराया था। यहां तक कि 20.09.2022 को ऐसे चुनावों के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा अनुमोदन भी प्रदान किया गया था। उक्त चुनावों को योगेश चंद्र मिश्रा और 15 अन्य द्वारा रिट सी संख्या 3997/2023 दायर करके चुनौती दी गयी, जिसे इस न्यायालय ने रिट संख्या 16556/2022 के सम्बन्ध में पारित पिछले आदेश दिनांक 25.07.2022 को ध्यान में रखते हुए दिनांक 15.03.2023 के आदेश द्वारा अनुमति दी थी और याचिकाकर्ताओं द्वारा आयोजित चुनावों के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दी गई मंजूरी को रद्द कर दिया गया था। **जिला विद्यालय निरीक्षक को रिट सी संख्या 16556/2022 में पारित आदेश दिनांक 25.07.2022 का निष्ठापूर्वक अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु निर्देशित किया गया।**

16. इसके बाद भी, चुनाव दो बार हुए, एक चुनाव याचिकाकर्ताओं द्वारा 23.05.2023 को आयोजित किया गया और दूसरा चुनाव उत्तरदाताओं द्वारा 01.06.2023 को आयोजित किया गया। कुछ सदस्यों द्वारा सहायक रजिस्ट्रार और अन्य के खिलाफ दायर मूल वाद संख्या 319/2022 (निर्भय कुमार और अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार और अन्य) से

17. कुल मिलाकर, रिट सी संख्या 15412/2023 और 11662/2023 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलील यह है कि कार्यवाही के हर चरण में, 74 सदस्यों की सूची वैध पाई गई है और इसलिए, 29 सदस्यों को लेकर उत्तरदाताओं द्वारा किए गए कोई भी दावा का आधार नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि सहायक रजिस्ट्रार द्वारा दर्ज एकमात्र रिकॉर्ड यह है कि चूंकि 29 सदस्यों की सूची अध्यक्ष के रूप में योगेश चंद्र मिश्रा और प्रबंधक के रूप में अनिल कुमार बरनवाल के संयुक्त हस्ताक्षर के तहत प्रस्तुत की गई थी, इसलिए यह सूची सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-बी के अनुसार अनुमोदित होने का हकदार है। आगे यह तर्क दिया गया है कि हालांकि, याचिकाकर्ताओं द्वारा बैंक ड्राफ्ट आदि जमा करने के संबंध में कुछ विसंगतिय मिली हैं और उत्तरदाताओं के खिलाफ भी समान निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं जैसे 29 सदस्यों के नामांकन के संबंध में कोई रिकॉर्ड प्रस्तुत नहीं किया गया था और एक रजिस्टर नए सिरे से तैयार किया गया था और उप रजिस्ट्रार के समक्ष रखा गया था, जिसमें 29 सदस्यों का नामांकन दिखाया गया था। पूरा जोर इस पहलू पर है कि मनगढ़ंत और जालसाजी के आधार पर कार्यवाही हुई है जिसमें राम रेखा शास्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका थी, पर उक्त कार्यवाही पर अनुमोदन की मुहर लगा दी गई है, जो कि

9.इला सी/एम इंटरमीडिएट कॉलेज, बाबूसराय, भदोही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1375

नहीं किया जा सकता था खासकर तब जब उस मनगढ़ंत और जालसाजी युक्त कार्यवाही उक्त के संबंध में अभी तक अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है।

18. आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी भी अपने रुख पर कायम नहीं रहते हैं और कभी-कभी वे 29 सदस्यों की सूची पर जोर देते हैं, लेकिन उप रजिस्ट्रार के समक्ष जब उक्त नामांकन का विरोध किया गया, तो उत्तरदाताओं ने यह रुख अपनाया कि 29 सदस्यों में से केवल 22 सदस्य ही वैध हैं और ऐसे 22 वैध सदस्यों की सूची दर्ज की जाए। इसलिए, दलील यह है कि आदेश का प्रभावी हिस्सा आदेश के मुख्य भाग में दर्ज की गई टिप्पणियों के विपरीत है और इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए। श्री प्रभाकर अवस्थी द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि उनके मुवक्किलों को दिनांक 16.12.2022 को लागू आदेश पारित करने से पहले इस मामले में कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था और यह निर्णय दे दिया गया कि उक्त संस्थान का पंजीकरण सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-बी के अनुरूप है।

19. इस बिंदु पर कि अर्ध न्यायिक शक्तियों या प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करने वाले किसी भी प्रशासनिक अधिकारी को आदेश पारित करते समय एक ठोस और वैध तर्क दर्ज करना चाहिए, और ऐसे किसी भी आदेश की न्यायिक समीक्षा करने की इस न्यायालय की शक्ति के बिंदु पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि निम्नलिखित

मामलों पर लिए गए फैसलों पर भरोसा जताया है:

(i) **केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल और अन्य बनाम अबरार अली**, 2017 (4) एससीसी 507 के मामले में दर्ज की गई रिपोर्ट;

(ii) **कृष्णा चावल और दाल मिल और अन्य बनाम खाद्य आयुक्त/खाद्य सचिव और अन्य**, 2002 (3) एडब्ल्यूसी 2466 के मामले दर्ज की गयी रिपोर्ट ;

(iii) **सचिव और क्यूरेटर, विक्टोरिया मेमोरियल हॉल बनाम हावड़ा गणतान्त्रिक नागरिक समिति और अन्य**, एआईआर 2010 एससी 1285 के मामले दर्ज की गयी रिपोर्ट;

(iv) **भारत संघ और अन्य बनाम पी. गुणसेकरन**, 2015 (2) एससीसी 610 के मामले दर्ज की गयी रिपोर्ट

(v) **एस श्रीसंत बनाम भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड और अन्य**, 2019 (4) एससीसी 660 के मामले दर्ज की गयी रिपोर्ट।

#### चुनाव लड़ने वाले प्रतिवादियों का मामला और विवाद

20. दूसरी ओर, श्री जी.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री संकल्प नारायण की सहायता से, दोनों रिट याचिकाओं के विरोध में, प्रतियोगी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 29 सदस्यों के अलावा अतिरिक्त सदस्यों के नामांकन के समर्थन में याचिकाकर्ताओं द्वारा लिया गया कोई भी रुख

इसके विपरीत है। उन्होंने सोसायटी के पंजीकृत उपनियम के खंड 3 और 6 का उल्लेख किया है, जो सदस्यता प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए हैं जिसके तहत सदस्यों की श्रेणियों के आधार पर 11,000/- और 5100/- रुपये के बैंक ड्राफ्ट प्रबंधक के नाम पर जारी करने का प्रावधान है और खंड 6-ई के अनुसार, ऐसे ड्राफ्ट प्रबंधन समिति की बैठक में रखे जाएंगे और, एक बार ऐसे बैंक ड्राफ्ट सामान्य निकाय द्वारा स्वीकार जाने पर और अनुमोदित और प्रमाणित होने के बाद ही संबंधित आवेदकों को सदस्यों के रूप में नामांकित किया जा सकता है। उन्होंने उपनियमों के खंड 9 का भी उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि निर्वाचित प्रबंधन समिति का कार्यकाल पांच वर्ष है, लेकिन निर्वाचित प्रत्येक पदाधिकारी का कार्यकाल उसके उत्तराधिकारी के कार्यभार संभालने तक वैध रहेगा। उपरोक्त उपनियमों पर भरोसा करते हुए, जिला मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 13.02.2017 का हवाला दिया गया है, जो दिनांक 28.06.2014 की बैठक में कुछ सदस्यों के नामांकन के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए रुख पर आधारित है।

21. उपरोक्त लंबित रिट सी संख्या 29385/2017 (योगेश चंद्र मिश्रा और 9 अन्य बनाम यूपी राज्य बनाम प्रमुख सचिव, माध्यमिक शिक्षा, यूपी सरकार, लखनऊ) में दायर जवाबी हलफनामे की एक प्रति भी न्यायालय के समक्ष रखी गई है जिसे रिकार्ड में लिया गया है। उक्त जवाबी हलफनामा रिट सी संख्या 15412/2023 के सापेक्ष में याचिकाकर्ताओं

की ओर से दायर किया गया था, जिसके पैराग्राफ संख्या 56 में, याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 28.06.2014 की बैठक के मिनट्स पर भरोसा रखा गया था और उस बैठक में दूसरे पक्ष द्वारा लिए गए अन्य स्टैंड को याचिकाकर्ताओं द्वारा नहीं स्वीकार किया गया। दिनांक 28.06.2014 की उक्त बैठक के कार्यवृत्त को रिट सी संख्या 15412/2023 में दायर पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक संख्या एससीए -6 के रूप में संलग्न किया गया है, जिसमें नए 47 सदस्यों को शामिल करने की मंजूरी देने की कार्यवाही शामिल है जिससे सदस्यों की संख्या 79 हो जाये।

22. श्री जी.के. सिंह द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान रिट याचिका दिनांक 29.06.2014 की बैठक के मिनटों को आधार मानते हुए दायर की गई है। इस बैठक को जनरल बॉडी, सोसाइटी की समिति और कॉलेज की समिति के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित किया गया था। इस बैठक में दिनांक 20.05.2014 में हुई कार्यवाही को अनुमोदित किया गया तथा कुछ नये सदस्यों के नामांकन का हवाला देकर बैठक सम्पन्न दिखायी गयी है। इस संबंध में, 1980 के यूपीएलबीईसी 308 में रिपोर्ट किए गए **अजब सिंह बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, मेरठ और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के फैसले पर भरोसा किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि यदि बाहरी लोग बैठक में भाग लेते हैं तो ऐसी बैठक वैध नहीं मानी जाएगी।



23. श्री जी.के. सिंह ने याचिकाकर्ताओं द्वारा जालसाजी के आरोप के संदर्भ में, रिट सी संख्या 15412/2023 में याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पूरक हलफनामे के अनुबंध संख्या एसए -4 का हिस्सा बनने वाले अनिल कुमार बरनवाल के एक हलफनामे का भी उल्लेख किया है जिसके कंडिका संख्या 2 में अनिल कुमार बरनवाल द्वारा यह दर्शाया गया है कि उन्होंने 27.06.2014 को वैध 79 सदस्यों की सूची प्रस्तुत की थी। इसलिए, श्री सिंह का कहना है कि जिस तारीख यानी 27.06.2014 को अनिल कुमार बरनवाल ने सूची प्रस्तुत करने का दावा किया है, इसलिए याचिकाकर्ताओं द्वारा 28.06.2014 और 29.06.2014 की बैठकों का जो ज़िक्र किया गया है पूरी तरह भ्रामक है। उन्होंने विभिन्न बैंक ड्राफ्ट के साथ-साथ सदस्यता शुल्क जमा करने की रसीदों का भी उल्लेख किया है और तर्क दिया है कि दो समाचार पत्रों में प्रकाशित एक विज्ञापन में, सदस्यता शुल्क जमा करने के लिए 21.06.2014 और 27.06.2014 के बीच की अवधि निर्दिष्ट की गई थी और, उक्त मध्यवर्ती अवधि के दौरान, उक्त बैंक ड्राफ्ट जारी किए गए थे और उन्हें याचिकाकर्ताओं द्वारा एक खाते में जमा किया गया था, जो 20.06.2014 को नया खोला गया था।

24. रसीदों और बैंक ड्राफ्ट जारी करने की तारीखों और रसीद संख्याओं के सम्बन्ध में कुछ विसंगतियां भी बताई गई हैं। दलील यह है कि एक बार, स्वयं याचिकाकर्ताओं के अनुसार, एक बैठक 28.06.2014 को आयोजित की गई थी और फिर 29.06.2014 को आयोजित की गयी जबकि याचिकाकर्ताओं

द्वारा कहा गया की 27.06.2014 को, यानी ऐसी बैठकों के आयोजन से पहले सूची प्रस्तुत किया गया जो कि उपनियमों के विरुद्ध है क्योंकि ड्राफ्ट कभी भी प्रबंधन समिति के समक्ष नहीं रखे गए थे और उन्हें एक नए बैंक खाते में जमा करके भुनाया गया था, जो 20.06.2016 को खोला गया था। उन्होंने ऐसे बैंक ड्राफ्टों को जमा करने की तारीखों का उल्लेख किया है, यानी 25.06.2014 और 27.06.2014 के साथ 02.07.2014 के विभिन्न बिलों के कुछ अन्य दिलचस्प विवरणों के साथ जिसमें 5100/- रुपये के क्रेडिट का वर्णन किया गया है जो की सदस्यता शुल्क के रूप में निर्धारित है। इसलिए, उनका कहना है कि भले ही 28.06.2014 या 29.06.2014 को आयोजित बैठकों में से किसी को भी वैध बैठक माना जाता है, माना जाता है कि उक्त दो बैठकों में समिति के समक्ष कोई बैंक ड्राफ्ट नहीं थे और जैसा कि यहां पहले ही ऊपर बताया गया है, कोई भी किया गया नामांकन उपनियमों के विपरीत है और इस प्रकार सदस्यों को जोड़ने की क्रिया अवैध है। श्री सिंह ने आगे कहा कि पूरक हलफनामे के पैराग्राफ 19 में रिट सी संख्या 15412/2023 के याचिकाकर्ताओं की स्वीकारोक्ति है कि 74 सदस्यों की सूची में प्रतिवादी योगेश चंद्र मिश्रा द्वारा दिए गए 29 में से 26 नाम शामिल हैं और विवाद केवल तीन व्यक्तियों राम रेखा शास्त्री और उनके दो पुत्रों सुयश पाठक और उत्कर्ष पाठक को लेकर है। इसलिए, प्रस्तुतीकरण यह है कि एक बार इस न्यायालय के समक्ष, विभिन्न दौर की मुकदमेबाजी के बाद, वैध सदस्यता के निर्धारण को चुनौती देते हुए, 26 सदस्यों के तथ्य को स्वीकार कर

लिया गया है, कम से कम 26 सदस्यों की सूची की वैधता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है और सदस्यों को जोड़ने के संबंध में विवाद का निर्णय रखी गई सामग्री, विशेषकर याचिकाकर्ताओं द्वारा आयोजित विभिन्न बैठकों के आधार पर किया जाना चाहिए।

**रिट सी संख्या 21573/2023 के याचिकाकर्ताओं का मामला और विवाद**

25. रिट सी संख्या 21573/2023 द्वारा, दिनांक 01.06.2023 के चुनावों के अनुसार चुनी गई कॉलेज की प्रबंधन समिति ने दिनांक 02.06.2023 के आदेशों की वैधता को चुनौती दी और यह तर्क दिया गया है कि किसी भी संस्था ने संयुक्त शिक्षा निदेशक से संपर्क नहीं किया। और यद्यपि, चुनाव के दो सेट थे, जिसमें एक ओर, गणेशजी बरनवाल निर्वाचित होने का दावा करते हैं और दूसरी ओर, योगेश चंद्र मिश्रा निर्वाचित होने का दावा करते हैं। गणेशजी बरनवाल ने जिन चुनावों पर भरोसा किया था, वो चुनाव न्यायालय द्वारा रिट सी संख्या 3997/2023 में पारित आदेश दिनांक 15.03.2023 में जारी निर्देशों के साथ-साथ रिट सी संख्या 16556/2022 में पारित आदेश दिनांक 25.07.2022 के विपरीत हुए थे। इस न्यायालय के अंतिम निर्देश के रूप में यह कहा गया था कि चुनाव निवर्तमान समिति द्वारा करवाने के बजाये जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा कराये जाने थे। श्री जी.के. सिंह ने चुनाव कार्यवाही का हवाला दिया है, जिसमें योगेश चंद्र मिश्रा को निर्वाचित बताया गया है और जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा नियुक्त

पर्यवेक्षक द्वारा भेजे गए दिनांक 01.06.2023 के पत्र को परिशिष्ट संख्या 18 के रूप में न्यायालय में दिखाया गया है। रिट याचिका में यह तर्क दिया गया है कि न्यायालय के निर्देशों के अनुसार एकमात्र वैध चुनाव दिनांक 01.06.2023 को संपन्न हुए हैं। दिनांक 02.06.2023 को लागू किए गए आदेशों की वैधता के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तरदाताओं ने जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष कुछ आवेदन दिए हैं, जिसकी एक प्रति पैराग्राफ संख्या 2 के अनुसार संयुक्त शिक्षा निदेशक को संबोधित की गई थी। उनके द्वारा पारित आदेश और उक्त समर्थन का हवाला देकर संयुक्त शिक्षा निदेशक ने स्वयं जिला विद्यालय निरीक्षक से शासनादेश दिनांक 19.12.2000 के अनुसार विवाद का निर्णय करने हेतु अभिलेख तलब किया है। यद्यपि उक्त शासनादेश ऐसी किसी भी विपरीत प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है। बल्कि सही प्रक्रिया यह है कि एक बार चुनावों के दो सेट जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं या रखे जाते हैं तो जिला निरीक्षक ही ज़रूरत होने पर मामले को संयुक्त शिक्षा निदेशक को संदर्भित कर सकता है।

26. सभी रिट याचिकाओं में पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैंने पाया कि रिट सी संख्या 15412/2023 और 11662/2023 में याचिकाकर्ताओं का रुख राम रेखा शास्त्री द्वारा की गई कथित मनगढ़ंत कहानी पर आधारित है। रिट सी संख्या 11662/2023 में राम रेखा शास्त्री द्वारा की गई ऐसी किसी भी मनगढ़ंत बात के संबंध में कोई दलील नहीं है। न तो राम रेखा शास्त्री

और न ही उनके दोनों बेटे सुयश पाठक और उत्कर्ष पाठक किसी भी रिट याचिका में पक्षकार हैं। इसके अलावा, पूरा जोर कथित मनगढ़ंत कहानी पर दिया गया है जिसे वर्ष 2014 में किया गया था और यह बताया गया है कि उक्त मामले में कार्यवाही को अभी तक अंतिम रूप नहीं दिया गया है।

27. न्यायालय, वर्तमान कार्यवाही में, दिनांक 16.12.2022 के आदेश की वैधता से चिंतित है, जिसे रिट सी संख्या 15412/2023 और 11662/2023 में चुनौती दी गई है और दिनांक 02.06.2023 के आदेश को रिट सी संख्या 21573/2023 में चुनौती दी गई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 21.06.2023 और 27.06.2023 के बीच बैंक ड्राफ्ट जमा करने के बाद नए सदस्यों का नामांकन हुआ और अनिल कुमार बरनवाल द्वारा दायर हलफनामे के अनुसार 27.06.2023 को उप रजिस्ट्रार के समक्ष सूची जमा की गई। उस समय, माना जाता है कि दिनांक 28.06.2014 और 29.06.2014 में से कोई भी बैठक नहीं हुई थी, मैंने पाया कि बैंक ड्राफ्ट कभी भी प्रबंधन समिति के समक्ष नहीं रखे गए थे और 25.06.2014 और 27.06.2014 को बैंक में जमा किए गए थे। अन्यथा भी, प्रबंधन समिति का कार्यकाल 11.06.2014 को पहले ही समाप्त हो चुका था और उपनियमों के अनुसार किसी भी पदाधिकारी का कार्यकाल जारी रहने का मतलब यह नहीं होगा कि समिति कार्यात्मक थी। दिनांक 28.06.2014 और 29.06.2014 की बैठकों के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा विभिन्न दलीलों और कार्यवाही के रिकॉर्ड का संदर्भ देकर लिया गया

विरोधाभासी रुख, इस न्यायालय को यह राय बनाने के लिए प्रेरित करता है कि याचिकाकर्ता कभी भी इस संबंध में अपने रुख पर कायम नहीं रहे हैं। सदस्यों के नये नामांकन के लिए न्यायालय के समक्ष, ऐसी कोई कार्यवाही प्रस्तुत नहीं की गयी है जिसमें नए नामांकन के संबंध में कोई स्पष्ट पवित्रता जुड़ी हो, और राम रेखा शास्त्री और उनके दो बेटों सुयश पाठक और उत्कर्ष पाठक के नामांकन के संबंध में कुछ आपत्तियां हो सकती हैं और हो सकता है याचिकाकर्ताओं के इस रुख में कुछ दम है कि अपने प्रधान पद पर बने रहने के दौरान, राम रेखा शास्त्री समिति की आम सभा में सदस्य बनने के लिए सक्षम नहीं थे।

28. जहां तक जालसाजी आदि के संबंध में विभिन्न प्रस्तुतियों का संबंध है, मुझे लगता है कि न तो उप रजिस्ट्रार, न ही जिला विद्यालय निरीक्षक, न ही जिला मजिस्ट्रेट, न ही संयुक्त शिक्षा निदेशक और न ही क्षेत्रीय स्तर की समिति के पास जालसाजी के तथ्य को निर्धारित करने की कोई क्षमता है क्योंकि इसकी जांच करना और जालसाजी पहलुओं पर निष्कर्ष दर्ज करना सिविल अदालत का विशेषाधिकार है। यह न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, किसी भी निष्कर्ष को दर्ज नहीं कर सकता है कि क्या किसी दस्तावेज़ पर किसी के हस्ताक्षर वास्तव में किए गए थे या वे मनगढ़ंत थे। इस विवाद के संबंध में पहले से ही एक सिविल मुकदमा, मूल मुकदमा संख्या 319/2022 लंबित है। इसलिए, जैसा कि ऊपर बताया गया है, 26 सदस्यों के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को

ध्यान में रखते हुए, दिनांक 16.12.2022 के आदेश में दर्ज निष्कर्ष कुछ मामलों में विरोधाभासी हैं। हालाँकि इन 26 सदस्यों के विषय में कोई विवाद नहीं है यद्यपि तीन सदस्यों, यानी राम रेखा शास्त्री, सुयश पाठक और उत्कर्ष पाठक का नामांकन अमान्य हो सकता है, लेकिन कार्यवाही में पक्षकारों के रूप में तीन व्यक्तियों का न होने के कारण कोई विशेष निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जा सकता है।

29. जब, मैंने पाया कि 28.06.2014 और 29.06.2014 की बैठकें उपनियमों के अनुसार और स्वयं याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए रुख के अनुसार सदस्यों के नामांकन को पवित्रता और वैधता प्रदान नहीं कर सकती हैं और 01.06.2023 के चुनाव इस न्यायालय द्वारा पारित दो आदेशों क्रमशः दिनांक 15.03.2023 को रिट सी संख्या 3997/2023 और दूसरा दिनांक 25.07.2022 को रिट सी संख्या 16556/2022 के मददेनजर जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पर्यवेक्षक नियुक्त करके आयोजित किए गए थे, एक । इसलिए, संयुक्त शिक्षा निदेशक का आदेश दिनांक 02.06.2023 स्पष्टतः पोषणीय नहीं है।

30. जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 02.06.2023 के आक्षेपित आदेश के पालन के संदर्भ, यह तर्क दिया गया है कि एक बार जिला विद्यालय निरीक्षक ने स्वयं इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार पर्यवेक्षक नियुक्त करके याचिकाकर्ताओं का चुनाव कराया था। इसलिए, मामले को संयुक्त शिक्षा निदेशक या क्षेत्रीय स्तरीय समिति को यांत्रिक रूप से संदर्भित करना कानून के

अनुसार नहीं है। इस संबंध में विशेष अपील दोष संख्या 335/2023 (सी/एम दयानंद इंटर कॉलेज और अन्य बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य) में इस न्यायालय की खंड पीठ के दिनांक 06.07.2023 के फैसले पर भरोसा किया गया है कि संदर्भ यंत्रवत् नहीं बनाया जा सकता, बल्कि तभी दिया जा सकता है जब कोई वास्तविक विवाद हो।

31. जब, मैंने पाया कि याचिकाकर्ताओं के चुनाव दिनांक 01.06.2023 को इस न्यायालय द्वारा दो मौकों पर जारी निर्देशों के अनुसार आयोजित किए गए हैं, जबकि संयुक्त शिक्षा निदेशक का आदेश दिनांक 02.06.2023 उसके अधिकार क्षेत्र के बिना पाया गया है। जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रेषित किया गया सन्दर्भ भी अनुचित प्रतीत होता है।

32. दिनांक 16.12.2022 के आदेश द्वारा निर्वाचक मंडल के निर्धारण के संबंध में, याचिकाकर्ता अपने अधिकारों के लिए विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 31 और 34 के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9 के अनुसार सिविल कोर्ट का रुख कर सकते हैं क्योंकि पूरा मामला विभिन्न दस्तावेजों में कथित जालसाजी पर आधारित है और न तो कोई प्रशासनिक अधिकारी और न ही यह न्यायालय ऐसे मुद्दे पर निर्णय दे सकता है क्योंकि इसके लिए धारा 45 के अनुसार मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य और यहां तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अनुसार विशेषज्ञ की राय की आवश्यकता पड़ती है।

33. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 31 को सिविल न्यायालय के समक्ष तब लागू किया जा सकता है जब कोई लिखत अमान्य या अमान्य करने योग्य हो, यदि वह तथ्य छूट गया हो, उस लिखत से किसी भी व्यक्ति को गंभीर हानि सकती है और, ऐसी परिस्थितियों में, उक्त लिखत को सिविल न्यायालय की डिफ्री के माध्यम से अमान्य किया जा सकता है। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34 के अनुसार, कोई भी व्यक्ति अपने चरित्र के बारे में किसी भी घोषणा का दावा करते हुए उस संबंध में सिविल कोर्ट से डिफ्री प्राप्त कर सकता है। ऐसी किसी भी कार्यवाही में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 के तहत विशेषज्ञ की राय के रूप में बाहरी सहायता हमेशा न्यायालय द्वारा ली जा सकती है। तत्काल संदर्भ के लिए, विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 31 और 34 को यहां-नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

**“31. कब रद्द करने का आदेश दिया जा सकता है-**

(1) कोई भी व्यक्ति जिसके विरुद्ध कोई लिखित लिखत शून्य या शून्यकरणीय है, और जिसे उचित आशंका है कि ऐसा लिखत, यदि बकाया छोड़ दिया गया, तो उसे गंभीर हानि हो सकती है, वह इसे शून्य या शून्यकरणीय घोषित कराने के लिए मुकदमा कर सकता है, और अदालत, अपने विवेक से, इस

पर निर्णय दे सकती है और इसे रद्द करने का आदेश दे सकती है।

(2) यदि लिखत भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 के तहत पंजीकृत किया गया है, तो अदालत अपने डिफ्री की एक प्रति उस अधिकारी को भी भेजेगी जिसके कार्यालय में लिखत पंजीकृत किया गया है; और ऐसा अधिकारी अपनी पुस्तकों में निहित लिखत की प्रति पर इसके रद्द होने के तथ्य को नोट करेगा।”

**“34. स्थिति या अधिकार की घोषणा के संबंध में न्यायालय का विवेक:-** कोई भी व्यक्ति जो किसी भी कानूनी चरित्र, या किसी संपत्ति के किसी भी अधिकार का हकदार हो, ऐसे चरित्र या अधिकार पर अपना हक देने से इनकार करने वाले या इनकार करने में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा दायर कर सकता है और अदालत अपने विवेक से घोषणा कर सकती है कि वह इसका हकदार है और वादी को ऐसे मुकदमे में कोई और राहत मांगने की आवश्यकता नहीं है।

बशर्ते कि कोई भी अदालत ऐसे मामले में कोई घोषणा नहीं करेगी जहां वादी, केवल

स्वामित्व की घोषणा के अलावा और राहत मांगने में सक्षम था पर ऐसा करने से चूक गया है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 यहां नीचे उद्धृत की गई है:

**“45. विशेषज्ञों की राय-** जब न्यायालय को विदेशी कानून या विज्ञान या कला के किसी मुद्दे पर, या लिखावट [या उंगलियों के निशान] की पहचान के बारे में एक राय बनानी होती है, तो उस मुद्दे पर ऐसे विदेशी कानून, विज्ञान या कला, [या लिखावट की पहचान से संबंधित प्रश्नों में] [या उंगलियों के निशान] में विशेष रूप से कुशल व्यक्तियों की ली गयी राय प्रासंगिक तथ्य हैं। ऐसे व्यक्तियों को विशेषज्ञ कहा जाता है।”

34. तदनुसार, रिट सी संख्या 15412/2023 और रिट सी संख्या 11662/2023 को उपरोक्त स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया जाता है और रिट सी संख्या 21573/2023 को अनुमति दी जाती है।

35. संयुक्त शिक्षा निदेशक, भदोही एवं जिला विद्यालय निरीक्षक, भदोही द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.06.2023 को निरस्त किया जाता है

-----  
(2023) 9 ILRA 1013

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 17575 वर्ष 2023

श्रीमती प्रेमलता पांडेय

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सुधांशु पांडेय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 226 - शासनादेश दिनांक

11.04.2020 - कोविड-19 मृत्यु के लिए

अनुग्रह मुआवजा - याचिकाकर्ता ने अपने पति,

हेड कांस्टेबल अशोक कुमार पांडेय की मृत्यु के

लिए 50,00,000/- रुपये के अनुग्रह मुआवजे

को जारी करने के लिए परमादेश मांगा, जो

सिविल एयरपोर्ट, गोरखपुर में झूटी के दौरान

कोविड-19 से संक्रमित हुए और 20.04.2021

को उनकी मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता ने तर्क

दिया कि उनके पति कोविड-19 प्रोटोकॉल को

लागू कर रहे थे, जो पुलिस अधीक्षक और मुख्य चिकित्सा अधिकारी के इयूटी प्रमाण पत्रों द्वारा समर्थित थे, और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अग्रेषित किए गए थे। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि वह सुरक्षा के लिए तैनात थे, न कि कोविड-19 की रोकथाम, संरक्षण या उपचार के लिए, और राजस्व समिति ने मुआवजे को मंजूरी नहीं दी। न्यायालय ने पाया कि पति कोविड-19 प्रोटोकॉल को लागू करने में शामिल थे, जैसा कि आधिकारिक रिपोर्टों द्वारा सत्यापित किया गया है, और शासनादेश ऐसे कर्तव्य के दौरान कोविड-19 से मरने वाले कर्मचारियों के आश्रितों को मुआवजे का हकदार बनाता है। कोविड-19 प्रोटोकॉल लागू करने वाले कर्मचारियों के बीच कोई कृत्रिम भेदभाव नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ता को 50,00,000/- रुपये की अनुग्रह राशि का हकदार माना गया, जो एक महीने के भीतर जारी की जानी है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा 6-10)

### रिट याचिका स्वीकृत।

(माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय एवं माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य प्रत्यार्थिगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सुधांशु पांडे को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता अपने पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे (हेड कांस्टेबल, यूपी पुलिस) अपनी इयूटी

निभाते हुए कोविड-19 से संक्रमित हो गए, की मृत्यु के लिए दिनांक 11.4.2020 के सरकारी आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता को 50,00,000/- रुपये की अनुग्रह राशि जारी करने के लिए प्रत्यार्थियों को निर्देश देने का परमादेश मांग रही है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता के पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे महाराजगंज पुलिस, यूपी पुलिस में हेड कांस्टेबल के पद पर कार्यरत थे। अपर महानिदेशक, गोरखपुर जोन, गोरखपुर, 30प्र0 के आदेश दिनांक 12.11.2020 द्वारा उन्हें सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर पर तैनात किया गया। उस आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता के पति ने 26.11.2020 को सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर में कार्यभार ग्रहण कर लिया था। सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर पर इयूटी के दौरान 16.4.2021 को उन्हें सांस लेने में दिक्कत महसूस हुई और उसके बाद मेडिकल जांच कराने पर वह कोरोना पॉजिटिव पाए गए और बाद में 20.4.2021 को कोविड-19 के कारण उनकी मृत्यु हो गई। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के पति सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर में काम करते समय, वह कोविड-19 के प्रोटोकॉल लागू करवा रहे थे और कोविड-19 के रोकथाम, सुरक्षा और उपचार संचालन में हवाई अड्डे पर शामिल थे। इसलिए, दिनांक 11.4.2020 के सरकारी आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता ने मृतक अशोक कुमार पांडे की पत्नी होने के नाते 50,00,000/- रुपये की अनुग्रह राशि जारी करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया।

4. शासनादेश दिनांक 11.4.2020 के अनुसार आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण कर पुलिस अधीक्षक (विभागाध्यक्ष) का कर्तव्य प्रमाण पत्र साथ में मुख्य चिकित्सा अधिकारी का प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया गया। इसके बाद सक्षम प्राधिकारी होने के नाते जिलाधिकारी, महाराजगंज ने पत्र दिनांक 29.9.2021 द्वारा याचिकाकर्ता का मामला अपर मुख्य सचिव, राजस्व, उत्तर प्रदेश सरकार को याचिकाकर्ता को उसके पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे की मृत्यु के मद्देनजर 50,00,000/- रुपये जारी करने के लिए भेज दिया। । जब कोई कार्रवाई नहीं हुई तो पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज ने पुनः दिनांक 6.10.2021 को जिला मजिस्ट्रेट, महाराजगंज को एक पत्र लिखकर अनुग्रह राशि के रूप में रुपये जारी करना सुनिश्चित करने हेतु पत्र लिखा। याचिकाकर्ता को उसके पति की इयूटी पर मृत्यु के लिए 50,00,000/- रु. पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज के उपरोक्त पत्र दिनांक 6.10.2021 के बाद अपर जिलाधिकारी (वित्त एवं राजस्व), महाराजगंज के पत्र दिनांक 23.12.2021 का उत्तर प्रदेश सरकार के सचिव एवं राहत आयुक्त को पत्र दिया गया। याचिकाकर्ता को अनुग्रह राशि जारी करने के लिए। जब कोई कार्रवाई नहीं हुई तो वर्तमान याचिका दायर की गई।

5. इस न्यायालय ने दिनांक 23.5.2023 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी नंबर 1 को अपना व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया कि वह बताएं कि याचिकाकर्ता के पक्ष में अनुग्रह मुआवजा क्यों जारी नहीं किया गया। इस न्यायालय के उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, यूपी सरकार के अतिरिक्त मुख्य सचिव,

राजस्व, सुधीर गर्ग द्वारा व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया गया था, जिसमें यह पक्ष लिया गया कि याचिकाकर्ता के पति को सिविल एयरपोर्ट, गोरखपुर पर उनके अनुरोध पर सुरक्षा के उद्देश्य से तैनात किया गया था, न कि कोविड -19 की रोकथाम, सुरक्षा और उपचार के लिए, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट, महाराजगंज द्वारा अग्रेषित दस्तावेजों और रिपोर्ट पर विचार के बाद राजस्व सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में बनी समिति ने याचिकाकर्ता को 50,00,000/- रु. की अनुग्रह राशि जारी करने को मंजूरी नहीं दी।

6. प्रभारी निरीक्षक, सिविल एयरपोर्ट, गोरखपुर की पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज को दी गई रिपोर्ट दिनांक 28.12.2021 में स्पष्ट उल्लेख है कि याची के पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे 29.3.2021 से 18.4.2021 तक कोरोना टेस्ट टीम के साथ वहीं तैनात रहे। इसके अलावा पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज ने भी अपने पत्र दिनांक 27.5.2021 के साथ-साथ पत्र दिनांक 6.10.2021 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि याचिकाकर्ता के पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे को रोकथाम, सुरक्षा और उपचार के लिए सिविल एयरपोर्ट, गोरखपुर पर तैनात किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता अपने पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे की कोविड-19 प्रोटोकॉल के कार्यान्वयन के दौरान इयूटी पर मृत्यु के लिए 50,00,000/- रुपये के अनुग्रह मुआवजे की हकदार हैं।

7. इसके विपरीत, स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे को सुरक्षा के उद्देश्य से सिविल



एयरपोर्ट गोरखपुर पर तैनात किया गया था, न कि कोविड -19 की रोकथाम, सुरक्षा और उपचार के लिए याचिकाकर्ता अपने पति, हेड कांस्टेबल स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे की मृत्यु के लिए अनुग्रह मुआवजे की हकदार नहीं है।

8. पक्षों की दलीलों पर विचार करते हुए और अभिलेखों के अवलोकन से हम पाते हैं कि दिनांक 29.9.2021 की रिपोर्ट में, जिसे जिला मजिस्ट्रेट, महाराजगंज द्वारा अपर मुख्य सचिव, राजस्व, उ.प्र. सरकार को भेजा गया था, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि हेड कांस्टेबल के विभागाध्यक्ष स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे, पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज ने कोविड-19 की रोकथाम, सुरक्षा और उपचार के लिए अपनी ड्यूटी का विधिवत सत्यापन किया है। इसी प्रकार प्रभारी निरीक्षक, सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर के पुलिस अधीक्षक, महाराजगंज को लिखे पत्र दिनांक 28.12.2021 में स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के पति की नियुक्ति दिनांक 29.3.2021 से 18.4.2021 तक कोविड-19 प्रोटोकॉल के प्रवर्तन हेतु किये जाने का उल्लेख है। शासनादेश दिनांक 11.4.2020 से स्पष्ट है कि कोविड-19 की रोकथाम, बचाव एवं उपचार हेतु कार्यरत किसी भी कर्मचारी की ड्यूटी के दौरान मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रित अनुग्रह मुआवजे के हकदार होंगे। दिनांक 11.4.2020 के सरकारी आदेश का प्रासंगिक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है:-

"2. कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के लिये कार्यरत कार्मिकों में कोविड-१९ के संक्रमण की आशंका सदैव बनी रहती है। कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव

के लिये कार्यरत कार्मिक की कोविड-19 के संक्रमण से मृत्यु की दशा में उसके आश्रितों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिये राज्य सरकार द्वारा उस मृतक के आश्रितों को रु० 50.00 लाख की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि स्वीकृति किये जाने का निर्णय लिया गया है।

9. याचिकाकर्ता के पति, हेड कांस्टेबल अशोक कुमार पांडे, सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर में काम करते समय यात्रियों के बीच सामाजिक दूरी सुनिश्चित करने के साथ-साथ उन्हें कोरोना परीक्षण कराने के लिए मजबूर करके COVID-19 प्रोटोकॉल को लागू करने में शामिल थे। स्वीकृत रूप से हवाई अड्डे पर पुलिसकर्मियों के अलावा कोई अन्य बल या कर्मचारी नहीं है जो इस विशिष्ट उद्देश्य के लिए तैनात किया गया हो। राज्य अपने कर्मचारियों के बीच कृत्रिम भेदभाव नहीं कर सकता है, ताकि एक वर्ग के कर्मचारियों को उनकी मृत्यु पर अनुग्रह मुआवजा पाने से वंचित किया जा सके, इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें कोविड-19 की अवधि के दौरान ड्यूटी पर कोरोना संक्रमण हुआ था। प्रत्येक पुलिसकर्मी या अन्य सरकारी कर्मचारी जो कोविड 19 के प्रोटोकॉल को लागू करने के लिए कोविड-19 अवधि के दौरान अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है जैसा कि शासनादेश दिनांक 11.4.2020 में उल्लेखित है, कोविड-19 प्रोटोकॉल के तहत कोविड-19 की रोकथाम एवं सुरक्षा हेतु कर्तव्य का पालन माना जायेगा तथा यदि अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान कोरोना संक्रमण के कारण मृत्यु हो जाती है तो उनके आश्रित सरकारी आदेश दिनांक 11.4.2020 के अनुसार अनुग्रह मुआवजा पाने के हकदार होंगे।

10. उपरोक्त के दृष्टिगत, याची के पति स्वर्गीय अशोक कुमार पांडे (हेड कांस्टेबल) सिविल एयरपोर्ट गोरखपुर पर कार्यरत रहते हुए कोविड-19 की रोकथाम, सुरक्षा एवं उपचार की इयूटी में शामिल थे, अतः उनकी मृत्यु पर याची दिनांक 11.4.2020 के सरकारी आदेश के अनुसार अनुग्रह मुआवजे का हकदार है। प्रत्यर्थी संख्या 1 को आज से एक महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को 50,00,000/- रुपये की अनुग्रह राशि जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

11. उपरोक्त निर्देश के साथ, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

-----

**(2023) 9 ILRA 1016**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 08.08.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा**

**माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज**

**रिट-सी संख्या 18463 वर्ष 2023**

**रामवीर**

**...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री रजनीश कुमार, श्री संजीव कुमार मिश्रा

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

**सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - यूपी खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2018 - नियम 12 - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 207 - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत** - याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट के 25.02.2023 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें रॉयल्टी, जुर्माना और खनिज मूल्य के लिए वित्तीय दायित्व लगाया गया और कथित अवैध खनिज परिवहन के लिए उसके वाहन (यूपी 83 एयू 1915) को जब्त करने के बाद पर्यावरण प्रदूषण विभाग को मामला भेजा गया। वाहन को शुरू में मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत जब्त किया गया था, और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के 07.02.2023 को रिलीज आदेश के बावजूद इसे जारी नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि आदेश से पहले कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया, जो प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने खनिज ले जाने की बात स्वीकार की है, और उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2021 के नियम 12 और 72 में सुनवाई का आदेश नहीं दिया गया है। न्यायालय ने माना कि ए.के. क्राइपक और एस.एल. कपूर के मामले में स्थापित प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, वित्तीय परिणामों वाली प्रशासनिक कार्रवाइयों पर लागू होते हैं, जिसके लिए कारण बताओ नोटिस और निष्पक्ष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, भले ही याचिकाकर्ता के आवेदन में स्वीकारोक्ति का संकेत दिया गया हो। मोटर वाहन अधिनियम के तहत वाहन ज़बती और बाद में पुलिस रिपोर्टों ने याचिकाकर्ता के बचाव के अवसर को सीमित

कर दिया। आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया, वाहन को तत्काल छोड़ने का आदेश दिया गया, और प्रतिवादियों को विधि के अनुसार आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी गई। (पैरा 3, 7, 10-12)

### रिट याचिका स्वीकृत।

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. ए.के. क्राइपक एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1969) 2 एससीसी 262
2. सुरेश कोशी जॉर्ज बनाम केरल विश्वविद्यालय एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 990/68
3. रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (1) एडीजे 240
4. एसएल कपूर बनाम जगमोहन और अन्य, एआईआर 1981 एससी 136
5. आर. बनाम गृह सचिव, एक्स पी. होसेनबॉल, (1977) 1 डब्ल्यूएलआर 766
6. अल्टको लिमिटेड बनाम सदरलैंड, (1971) 2 लॉयड्स रप 515
7. आर. बनाम थेम्स मजिस्ट्रेट कोर्ट, एक्स पी. पोलेमिस, (1974) 1 डब्ल्यूएलआर 1371

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज द्वारा पारित)

1. आज दाखिल किए गए अनुदेशों को रिकार्ड में रखा जाए।
2. अभिलेख से हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता की ट्रैक्टर ट्रॉली, वाहन संख्या यूपी 83 एयू 1915 को थाना शिकोहाबाद, जिला फिरोजाबाद की पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया था और याचिकाकर्ता को सूचना भेजी गई थी कि वाहन को मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए जब्त कर लिया गया था और इसलिए, इसका मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत चालान किया गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 7.2.2023 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद के समक्ष वाहन की रिहाई के लिए एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि कृषि कार्य हेतु वाहन की आवश्यकता थी। इसके बाद पुलिस रिपोर्ट मांगी गई और पुलिस ने भी 7.2.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी, जिसमें कहा गया कि वाहन को मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत जब्त कर लिया गया है। 7.2.2023 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने वाहन छोड़ दिया। हालाँकि, जब वाहन को नहीं छोड़ा गया तो याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन किया और उन्हें सूचित किया कि भले ही वह कानूनी रूप से कुछ खनिजों को ले जा रहा था, लेकिन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 7.2.2023 के बावजूद वाहन को जब्त कर लिया गया था। इसके बाद वाहन को छोड़ने के बजाय, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 25.2.2023 को आपत्तिजनक आदेश पारित किया, जिसमें पाए गए खनिज की कीमत, उस पर राजस्व और जुर्माना मांगा गया। इसके अलावा यह मामला

पर्यावरण प्रदूषण पर विचार करने वाले विभाग को भी भेजा गया। इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने यह तत्काल रिट याचिका दायर की है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि दिनांक 25.2.2023 का आक्षेपित आदेश, प्रथमदृष्टया, त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि कोई भी आदेश पारित करने से पूर्व तथा उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन एवं भण्डारण निवारण) नियमावली 2018 (एतस्मिनपश्चात् "नियमावली 2018" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के अन्तर्गत वाहन को जब्त/जब्त करने से पूर्व याचिकाकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता पर वित्तीय दायित्व थोपने से पहले उसकी बात सुनी जानी चाहिए थी। विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए ए.के. क्राइपक एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 1969 (2) एस.सी.सी. 262 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने पैराग्राफ 20 पर अत्यधिक भरोसा किया है, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"20. प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय को सुरक्षित करना या इसे नकारात्मक रूप से कहें तो न्याय की विफलता को रोकना है। ये नियम केवल उन क्षेत्रों में ही लागू हो सकते हैं जो वैध रूप से

बनाए गए किसी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में वे देश के कानून का स्थान नहीं लेते बल्कि उसका पूरक होते हैं। हाल के वर्षों में प्राकृतिक न्याय की अवधारणा में काफी बदलाव आया है। अतीत में यह माना जाता था कि इसमें केवल दो नियम शामिल हैं: (1) कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होगा (नेमो डेबेट एसे जुडेक्स प्रोप्रिया कॉसा) और (2) किसी पक्ष के खिलाफ उसे उचित सुनवाई का अवसर दिए बिना कोई निर्णय नहीं दिया जाएगा (ऑडी अल्टरम पार्टम)। इसके तुरंत बाद एक तीसरा नियम परिकल्पित किया गया और वह यह है कि अर्ध-न्यायिक जांच सद्भावनापूर्वक, बिना किसी पूर्वाग्रह के तथा मनमाने ढंग से या अनुचित तरीके से नहीं की जानी चाहिए। लेकिन समय के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के नियमों में कई और सहायक नियम जोड़े गए। हाल ही तक न्यायालयों की यह राय थी कि जब तक संबंधित प्राधिकारी को उस कानून द्वारा न्यायिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता न हो

जिसके तहत वह कार्य करता है, तब तक प्राकृतिक न्याय के नियमों के लागू होने की कोई गुंजाइश नहीं है। उस सीमा की वैधता पर अब सवाल उठाया जाता है। यदि प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय की विफलता को रोकना है, तो कोई यह नहीं समझ पाता कि उन नियमों को प्रशासनिक जांचों पर लागू क्यों नहीं किया जाना चाहिए। कई बार प्रशासनिक जांचों और अर्ध-न्यायिक जांचों के बीच अंतर करना आसान नहीं होता। एक समय में जिन जांचों को प्रशासनिक माना जाता था, उन्हें अब अर्ध-न्यायिक माना जा रहा है। न्यायोचित निर्णय पर पहुंचना अर्ध-न्यायिक जांच और प्रशासनिक जांच दोनों का उद्देश्य है। प्रशासनिक जांच में लिए गए अन्यायपूर्ण निर्णय का प्रभाव अर्ध-न्यायिक जांच के निर्णय से कहीं अधिक दूरगामी हो सकता है। जैसा कि इस न्यायालय ने सुरेश कोशी जॉर्ज बनाम केरल विश्वविद्यालय एवं अन्य (सिविल अपील संख्या 990/68, दिनांक 15-7-1968

को निर्णीत) में कहा था, प्राकृतिक न्याय के नियम मूर्त नियम नहीं हैं। किसी मामले में प्राकृतिक न्याय का कौन सा विशेष नियम लागू होना चाहिए, यह काफी हद तक उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, उस कानून के ढांचे जिसके अंतर्गत जांच की जा रही है तथा न्यायाधिकरण या उस प्रयोजन के लिए नियुक्त व्यक्तियों के निकाय के गठन पर निर्भर करता है। जब भी किसी अदालत के सम्मक्ष यह शिकायत की जाती है कि प्राकृतिक न्याय के किसी सिद्धांत का उल्लंघन किया गया है, तो अदालत को यह निर्णय करना होता है कि क्या उस मामले के तथ्यों पर न्यायोचित निर्णय के लिए उस नियम का पालन आवश्यक था।"

(प्रभाव वर्धित)

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यदि कानून में सुनवाई का प्रावधान नहीं है तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कानून में शामिल किया जाना चाहिए। इस दलील के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य 2017 (1) एडीजे 240 में इस न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है।

चूंकि, उन्होंने विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ संख्या 30 और 33 पर भरोसा किया है, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"30. इस प्रकार, इस विषय पर कानून स्पष्ट है कि यदि इस बारे में कोई प्रक्रिया प्रदान नहीं की गई है कि किस प्रकार और किस प्रकार प्राधिकरण का प्रयोग किया जाना है, तो उक्त समय पर, लोक प्राधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग उचित रूप से किया जाना चाहिए, अर्थात् इसे निष्पक्षता के साथ और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन करने के बाद तय किया जाना चाहिए और न्याय और समानता की भावना को विवाद के गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने में ऐसी कार्यवाही करते समय संबंधित अधिकारियों का मार्गदर्शन करना जारी रखना चाहिए, क्योंकि उक्त निर्णय से उस व्यक्ति पर बड़े पैमाने पर वित्तीय प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जिसके विरुद्ध संबंधित कार्यवाही शुरू की गई है।

33. एक बार जब दायित्व याचिकाकर्ता के कंधों पर डाल दिया गया, तो यह राज्य का

दायित्व था कि वह उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्य के माध्यम से यह साबित करे कि यह याचिकाकर्ता था, जो अवैध खनन में लिप्त था और उक्त निर्देश में, कारण बताओ नोटिस जारी करने के अलावा, सभी साक्ष्य जिन पर भरोसा करने की मांग की गई थी यानी जिन पदाधिकारियों ने तलाशी और सर्वेक्षण किया था और जो पदाधिकारी याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही देने के लिए आगे आए थे, उनके नाम का खुलासा किया जाना चाहिए था और उन्हें राज्य के मामले का समर्थन करने के लिए पेश किया जाना चाहिए था कि याचिकाकर्ता वास्तव में अवैध खनन में लिप्त है। इतना ही नहीं, प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, याचिकाकर्ता को उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य की सत्यता पर प्रश्न उठाकर तथा अपने बचाव में साक्ष्य, यदि कोई हो, प्रस्तुत करके अपना बचाव करने का उचित अवसर पाने का अधिकार है। निर्णयकर्ता निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है, क्योंकि प्रदान की गई योजना के तहत, उसके द्वारा किए

*गए निर्णय के परिणामस्वरूप नागरिक परिणाम भुगतने होंगे, क्योंकि अवैध खनन के आरोप सिद्ध होने पर आरोपी व्यक्ति पर वित्तीय दायित्व डाला जाएगा और इसके विपरीत स्थिति में, राज्य को नुकसान होगा।"*

5. इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि किसी नियम में कोई विशिष्ट कानून या प्रक्रिया प्रदान नहीं की गई है जिसके द्वारा खान कानून के तहत किसी वाहन को जब्त/जब्त किया जा सके, तो सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग उचित रूप से किया जाना चाहिए, अर्थात् इसे निष्पक्षता के साथ और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के बाद तय किया जाना चाहिए। न्याय और समानता हमेशा एक मार्गदर्शक कारक होना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक बार जब याचिकाकर्ता पर दायित्व तय हो गया तो राज्य के लिए उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपराध को साबित करना अनिवार्य था और याचिकाकर्ता को भी सबूत पेश करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पास खनिजों के मालिक मुकेश कुमार से अपने ट्रॉली पर खनिजों को ले जाने की अनुमति थी।

7. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही याचिकाकर्ता के दिनांक 9.2.2023 के संचार

को याचिकाकर्ता के अपराध की स्वीकृति के रूप में लिया जा रहा था, लेकिन आदेश से पहले कारण बताओ नोटिस दिया जाना चाहिए था। इस तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन एवं अन्य एआईआर 1981 एससी 136 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ संख्या 24 पर अवलम्ब लिया है, इसलिए उसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

*"24. इस मामले को इस सामान्य सिद्धांत के अनुप्रयोग के रूप में भी देखा गया है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। जैक्सन की नेचुरल जस्टिस (1980 संस्करण) में इस विषय पर बहुत ही रोचक चर्चा है। वे कहते हैं:*

*"न्याय किए जाने और न्याय होते हुए दिखने के बीच के अंतर पर कई मामलों में जोर दिया गया है।*

*xx xx xx*

*यह अपेक्षा कि न्याय होते हुए दिखना चाहिए, एक सामान्य सिद्धांत के रूप में माना जा सकता है जिसे कुछ मामलों में केवल प्राकृतिक न्याय के नियमों के पालन से या स्वयं उन नियमों में से*

एक मानकर ही संतुष्ट किया जा सकता है। इस कहावत के महत्व की दोनों व्याख्याएं लॉर्ड विडगेरी सीजे के आर.वी. होम सेक्रेटरी, एक्स पी. होसेनबॉल, (1977) 1 डब्ल्यू.एल.आर. 766, 772 के निर्णय में पाई जाती हैं, जिसके बाद उन्होंने कहा कि "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत वे मौलिक नियम हैं, जिनके उल्लंघन से न्याय होते हुए नहीं देखा जा सकेगा" उन्होंने इस कहावत का वर्णन "प्राकृतिक न्याय को बनाने वाले नियमों के समूह में सामान्यतः स्वीकृत नियमों में से एक" के रूप में किया। न्याय होते हुए देखने की आवश्यकता के महत्व को मान्यता देना ही वादी को उपचार प्रदान करने को उचित ठहराता है, भले ही यह दावा किया जा सकता हो कि प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन से प्रभावित कथित निर्णय पर तब भी पहुंचा जा सकता था, जब निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा उचित सुनवाई की गई होती। यह कहावत तब सटीक रूप से लागू होती है जब न्यायालय का सरोकार वास्तविक अन्याय के मामले से नहीं बल्कि अन्याय की

उपस्थिति या संभावित अन्याय से होता है। एल्टोको लिमिटेड बनाम सदरलैंड, (1971) 2 लॉयड्स आरईपी 515 मामले में न्यायमूर्ति डोनाल्डसन ने कहा कि न्यायालय, यह निर्णय लेते समय कि क्या हस्तक्षेप करना है, जहां मध्यस्थ ने पक्षकार को पूर्ण सुनवाई का अवसर नहीं दिया है, इस बात से चिंतित नहीं था कि आगे की सुनवाई से कोई भिन्न या समान परिणाम निकलेगा। यह महत्वपूर्ण था कि पक्षों को न केवल न्याय दिया जाए, बल्कि विवेकशील व्यक्तियों के रूप में उन्हें यह पता हो कि उनके साथ न्याय हुआ है, या "समय के पवित्र वाक्यांश का प्रयोग करें" तो न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। आर.वी. थेम्स मजिस्ट्रेट कोर्ट, एक्स.पी. पोलेमिस, (1974) 1 डब्ल्यू.एल.आर. 1371 मामले में, आवेदक ने एक वेतनभोगी मजिस्ट्रेट द्वारा अपनी दोषसिद्धि को इस आधार पर रद्द करने के लिए एक उत्प्रेषण आदेश प्राप्त किया कि उसके पास अपना बचाव तैयार करने के



लिए पर्याप्त समय नहीं था। डिवीजनल कोर्ट ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि उसे अपने विवेकानुसार राहत देने से इनकार कर देना चाहिए क्योंकि आवेदक के पास आरोप के लिए कोई बचाव नहीं था।

'यह हमारी प्रणाली का पूर्णतया आधारभूत तत्व है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि यह स्पष्ट रूप से देखा जाना चाहिए कि न्याय किया गया है। यदि न्याय स्पष्ट रूप से होता नहीं दिख रहा था, जैसा कि यहां दोपहर को हुआ, तो मुझे लगता है कि आवेदक को यह कहना कोई जवाब नहीं है कि: 'खैर, यदि मामला ठीक से चलाया गया होता, तो भी परिणाम वही होता।' यह न्याय करने और न्याय होते देखने को एक साथ मिला देने जैसा है (मुख्य न्यायाधीश लॉर्ड विडगेरी के अनुसार, पृष्ठ 1375 पर)।"

हमारे विचार में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों में किसी प्रकार के बहिष्करण संबंधी नियम का उल्लेख नहीं है।

जो इस बात पर निर्भर करता है कि यदि प्राकृतिक न्याय का पालन किया गया होता तो क्या इससे कोई अंतर पड़ता। प्राकृतिक न्याय का पालन न करना अपने आप में किसी भी व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह है और प्राकृतिक न्याय के इनकार के प्रमाण से स्वतंत्र रूप से पूर्वाग्रह का प्रमाण देना अनावश्यक है। यह बात उस व्यक्ति से गलत है जिसने न्याय से इनकार किया है, कि जिस व्यक्ति को न्याय से वंचित किया गया है, वह पूर्वाग्रही नहीं है। जैसा कि हमने पहले कहा था कि जहां स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों के आधार पर केवल एक निष्कर्ष संभव है और कानून के तहत केवल एक दंड अनुमेय है, न्यायालय प्राकृतिक न्याय के पालन को बाध्य करने के लिए अपनी रिट जारी नहीं कर सकता है, इसलिए नहीं कि प्राकृतिक न्याय का पालन करना आवश्यक नहीं है, बल्कि इसलिए कि न्यायालय निरर्थक रिट जारी नहीं करते हैं। हम अपील के तहत निर्णय में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए

**विपरीत दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं।"**

(प्रभाव वर्धित)

8. हालांकि, जवाब में विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंकुर टंडन ने प्रस्तुत किया है कि जब वाहन को 2.2.2023 को जब्त किया गया था, तब श्री महेंद्र सिंह, उप-निरीक्षक, पुलिस स्टेशन शिकोहाबाद, जिला फिरोजाबाद ने एक रिपोर्ट भेजी थी कि हालांकि वाहन को मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत जब्त किया गया था, लेकिन इसमें कुछ खनिज थे जिन्हें वाहन अवैध रूप से ले जा रहा था। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने स्वयं 9.2.2023 को कहा था कि वह खनिज ले जा रहा था। विद्वान स्थायी वकील ने आगे कहा कि जब याचिकाकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया था कि वह खनिज ले जा रहा था और जब खनिजों के साथ 2018 के नियम 22 के तहत प्रदान किए गए किसी भी कागजात नहीं थे, तो यह नामित अधिकारियों का कर्तव्य था, जैसा कि 2018 के नियम 12 (2) में उल्लिखित है, वाहन को रोकना, जांच करना और पकड़ना। वर्तमान मामले में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कहा कि यद्यपि वाहन को मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत जब्त किया गया था, फिर भी खान विभाग द्वारा की गई कार्रवाई न्यायोचित थी।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि चूंकि न तो 2018 नियमावली के नियम 12 के प्रावधान और न ही यूपी लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2021 के 72 के प्रावधान किसी भी अवसर

प्रदान करने का प्रावधान करते हैं, इसलिए यह उचित ही था कि जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 25.2.2023 को आक्षेपित आदेश पारित किया था।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम इस विचार पर पहुंचे हैं कि पुलिस द्वारा 2.2.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट के लिए यह आवश्यक था कि वह कारण बताओ नोटिस जारी करते, भले ही याचिकाकर्ता वह आवेदन प्रस्तुत कर रहा था, जिसके बारे में प्रतिवादी कह रहे हैं कि यह उसकी ओर से एक स्वीकारोक्ति थी कि वह अवैध रूप से खनिज ले जा रहा था। पुलिस सर्वशक्तिमान है और हमारा मानना है कि आवेदक ने पुलिस के निर्देश पर ही आवेदन लिखा होगा। एस.एल. कपूर (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन का आदेश दिया गया है, भले ही अपराध स्वीकार कर लिया गया हो।

11. ऐसी परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि भले ही याचिकाकर्ता ने अपने आवेदन में कहा था कि वह खनिज ले जा रहा था, लेकिन आदेश पारित करने से पहले कारण बताओ नोटिस दिया जाना चाहिए था और उसके बाद आदेश पारित करने वाले अधिकारी/प्राधिकारी द्वारा पूरी प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए थी। हमने यह भी पाया कि वाहन को मोटर वाहन अधिनियम की धारा 207 के तहत जब्त किया गया था, जो याचिकाकर्ता के कब्जे में नहीं था। वाहन जब्त होने के बाद पुलिस द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की जा रही थी। इसलिए याचिकाकर्ता

के पास अपना बचाव करने का बहुत कम अवसर था। यह उल्लेख किया जा सकता है कि आवेदन में हालांकि यह उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता खनिज ले जा रहा था, लेकिन इसमें यह नहीं कहा गया था कि खनिजों को अवैध रूप से ले जाया जा रहा था।

12. ऐसी परिस्थितियों में, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। दिनांक 25.2.2023 का आदेश रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता का वाहन तत्काल छोड़ा जाए। हालांकि, इस आदेश के पारित होने से प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई करने से नहीं रोका जा सकेगा।

-----

**(2023) 9 ILRA 1021**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 28.07.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा**

**माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज**

**रिट-सी संख्या 20699 वर्ष 2023**

**श्रीमती मीरा देवी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:**

**श्री अंशुल कुमार सिंघल**

**प्रतिवादियों के अधिवक्ता:**

**मुख्य स्थाई अधिवक्ता**

**सिविल विधि - खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 - धारा 21 - उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियम, 1963 - धारा 77 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - याचिकाकर्ताओं, कृषि के लिए उपयोग किए जाने वाले भूखंडों के भूमिधरों ने जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 08.12.2018 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें 13,228 घन मीटर मिट्टी के कथित अवैध खनन के लिए 3,96,840/- रुपये की रॉयल्टी, 19,84,200/- रुपये का खनिज मूल्य और 25,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया था, और अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक 08.05.2023 को चुनौती दी जिसके तहत उनकी अपील को खारिज कर दिया गया था। आदेश 20.01.2018 की एकपक्षीय लेखपाल रिपोर्ट पर आधारित थे, जिसमें निरीक्षण तिथि या स्वतंत्र गवाहों का विवरण नहीं था। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि 05.02.2018, 24.04.2018 और 11.10.2018 के नोटिस प्राप्त नहीं हुए थे, और आदेशों ने लेखपाल के निष्कर्षों या उत्खनन की गई मिट्टी के अंतिम उपयोग को सत्यापित न करके प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन किया, जैसा कि *प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन के तहत आवश्यक है* । प्रतिवादीगण ने तर्क दिया कि कई नोटिस दिए गए थे, और गैर-जवाब ने आदेशों को सही ठहराया। न्यायालय ने माना कि अधिकारियों ने लेखपाल की रिपोर्ट, निरीक्षण विवरण, या खनिज निपटान की पुष्टि किए बिना दायित्व लागू करने में गलती की और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने में विफल रहे, जैसा कि *रणवीर सिंह और मोडुल इंडिया द्वारा***

समर्थित है। दिनांक 08.12.2018 और 08.05.2023 के आदेश रद्द कर दिए गए, मामला याचिकाकर्ताओं की सुनवाई के बाद नए सिरे से निर्णय के लिए जिला मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया गया। प्राकृतिक न्याय के स्पष्ट उल्लंघन के कारण पुनरीक्षण उचित नहीं माना गया। (पैरा 7, 12-13)

आदेश दिया कि उन्होंने भूखंडों से अवैध रूप से खनन किया था और जुर्माना भी लगाया, तब याचिकाकर्ताओं ने अपीलीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और जब अपीलीय न्यायालय ने भी 8.5.2023 को अपील खारिज कर दी, तो तत्काल रिट याचिका दायर की गई है।

### रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत।

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. मॉड्यूल इंडिया बनाम कामाक्ष्य सिंह देव, एआईआर 1989 एससी 162

2. रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (1) एडीजे 240

3. प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन, पुणे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 12 एससीसी 736

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज द्वारा पारित)

2. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि दिनांक 8.12.2018 का आदेश लेखपाल की दिनांक 20.1.2018 की एक रिपोर्ट पर आधारित था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह रिपोर्ट आवश्यक थी क्योंकि लेखपाल को अपने ही रिश्तेदारों से कुछ शिकायतें मिली थीं कि याचिकाकर्ता उनके भूमिधारी भूखंडों पर अवैध खनन कर रहे थे। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि लेखपाल की रिपोर्ट दिनांक 20.1.2018 का अवलोकन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखपाल ने यह नहीं लिखा था कि मिट्टी किस तिथि को हटाई गई थी। लेखपाल ने यह भी नहीं बताया था कि 20.1.2018 को निरीक्षण किसकी उपस्थिति में किया गया था।

1. याचिकाकर्ता प्लॉट संख्या 2744 और 2745 क्षेत्रफल क्रमशः .271 हेक्टेयर और .3040 हेक्टेयर के भूमिधर हैं। वे अपने भूखंडों का उपयोग कृषि कार्यों के लिए कर रहे थे। हालाँकि जब खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957, (इसके बाद 1957 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) के विभिन्न प्रावधानों के तहत अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को दिनांक 8.12.2018 को एक

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामे में दिए गए कथनों पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि इसके बाद, लेखपाल की रिपोर्ट को देखे बिना, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट ने दिनांक 30.1.2018 को लेखपाल की रिपोर्ट को अपर जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर) मथुरा को भेज दिया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने फिर से जवाबी हलफनामे में दिए गए कथनों पर

भरोसा किया और कहा कि संभवतः याचिकाकर्ता को 5.2.2018 को एक नोटिस भी भेजा गया था। जब इस नोटिस का जवाब नहीं दिया गया, तो 24.4.2018 को एक और नोटिस भेजा गया और जब इस नोटिस पर भी याचिकाकर्ताओं ने ध्यान नहीं दिया तो अंतिम नोटिस दिनांक 11.10.2018 को भेजा गया।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि दिनांक 11.10.2018 के नोटिस के अवलोकन से पता चलेगा कि याचिकाकर्ताओं पर 1957 के अधिनियम की धारा 21(4) के प्रावधानों का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि इस नोटिस में बिना किसी वास्तविक रिकॉर्ड के यह मान लिया गया था कि याचिकाकर्ताओं ने 13228 घन मीटर साधारण मिट्टी का उत्खनन किया था और बिना किसी आधार के खनिज (मिट्टी) पर रॉयल्टी का मूल्यांकन 3,96,840/- रुपये किया गया था और इसकी कीमत का मूल्यांकन 19,84,200/- रुपये किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा कुल देय राशि 23,81,040/- रुपये थी। इस राशि के अतिरिक्त 25,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि नोटिस दिनांक 8.12.2018 के एक आदेश के बाद दिया गया था और उनका कहना है कि यह आदेश भी याचिकाकर्ताओं के संज्ञान में नहीं आया। जब 24,06,040/- रुपये

की वसूली शुरू की जा रही थी तभी याचिकाकर्ताओं ने रिट सी संख्या 23885/2019 के तहत एक रिट याचिका दायर की। हालांकि, रिट याचिका में, याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियम, 1963 की धारा 77 के तहत अपील दायर करने से रोक दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने एक अपील दायर की और जब इसे बिना किसी आधार के खारिज कर दिया गया, तो तत्काल रिट याचिका दायर की गई।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अनिवार्य रूप से निम्नलिखित तर्क उठाए हैं:

I. लेखपाल रिपोर्ट दिनांकित 20.1.2018 एक पक्षीय थी।

II. लेखपाल ने कोई तिथि नहीं बताई कि किस दिन लेखपाल ने मौके का दौरा किया था।

III. लेखपाल द्वारा निकाले गए सभी निष्कर्ष एक पक्षीय थे, और रिपोर्ट किसी भी स्वतंत्र गवाह की उपस्थिति के बिना तैयार की गई थी।

IV. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि कोई भी नोटिस जैसा कि जवाबी हलफनामे में दर्शाया गया था, याचिकाकर्ताओं को कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए, याचिकाकर्ताओं को बिना किसी आधार के रॉयल्टी, खनिजों की कीमत और जुर्माना राशि का भुगतान करने की जिम्मेदारी दी गई।

V. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का

कहना है कि भले ही नोटिस का कोई जवाब नहीं आया, लेकिन इससे जिला मजिस्ट्रेट को गलत आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं मिल गया। जिलाधिकारी को आदेश पारित करने से पहले यह देखना चाहिए था कि क्या लेखपाल की रिपोर्ट सही है तथा उन्हें यह भी पुष्टि करनी चाहिए थी कि क्या अधिनियम 1957 की धारा 21(5) के प्रावधानों के अनुसार जिन खनिजों को भूमि से उठाया गया था उनका निपटान कर दिया गया और अन्यत्र उपयोग किया गया। इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में याचिकाकर्ताओं पर राज्य को मुआवजा देने की जिम्मेदारी नहीं डाली जा सकती।

VI. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि हालांकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII नियम 10 के तहत लिखित बयान दाखिल करने हेतु नोटिस जारी होने के बाद लिखित बयान दाखिल न करने पर मुकदमा दायर किया जा सकता है **एआईआर 1989 एससी 162 में प्रतिवेदित : मॉड्यूल इंडिया बनाम कामाख्या सिंह देव** मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि यदि किसी मुकदमे का निर्णय लिखित बयान के बिना किया जाना है तो अदालत को अपने निर्णय को ठोस कारणों पर आधारित करना होगा। मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि यह मानने का कोई कारण नहीं बताया गया है कि याचिकाकर्ता को कीमत और रॉयल्टी का भुगतान करना होगा। साथ ही याचिकाकर्ता को दंडित करने का कोई कारण नहीं बताया गया। केवल इसलिए कि याचिकाकर्ताओं ने नोटिस का जवाब नहीं दिया,

उन्हें दंडित किया जा रहा है। इसलिए, अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को दोषी ठहराने में गलती की।

VII. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह भी कहना है कि अपीलीय न्यायालय ने भी इस तथ्य पर गौर किए बिना कि जिला मजिस्ट्रेट ने 5.12.2018 को बिना किसी विवेक के आदेश पारित किया था, 8.5.2023 को अपील को खारिज करने में गलती की थी।

VIII. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने **2017 (1) एडीजे 240 (रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य)** में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि जब किसी कानून या अधिनियम में कोई प्रक्रिया प्रदान नहीं की गई है तो निर्णय निष्पक्ष होना चाहिए और निष्पक्ष प्रक्रिया पर आधारित होना चाहिए और वह भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के बाद होना चाहिए। चूंकि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **2017 (1) एडीजे 240 (रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य)** में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 30 और 33 पर बहुत अधिक भरोसा किया है उसको यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"30. इस प्रकार इस विषय पर स्पष्ट कानून है कि यदि इस बात के लिए कोई प्रक्रिया प्रदान नहीं की गई है कि अधिकार का प्रयोग किस प्रकार और तरीके से किया जाना है, तो उक्त समय पर, सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग उचित रूप

किया जाना चाहिए यानी इसे निष्पक्षता के साथ तय किया जाना चाहिए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और न्याय और समानता की भावना का पालन करते हुए योग्यता के आधार पर विवाद का निर्णय करने में ऐसी कार्यवाही का संचालन करते समय संबंधित अधिकारियों का मार्गदर्शन करना जारी रखना चाहिए क्योंकि विचाराधीन उक्त निर्णय का उस पदधारी पर बड़े पैमाने पर वित्तीय प्रभाव पड़ेगा जिसके विरुद्ध विचाराधीन कार्यवाही शुरू की गई है।

33. एक बार जब दायित्व याचिकाकर्ता के कंधे पर डाला जाना था, तो उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्य के माध्यम से यह साबित करना राज्य का दायित्व था कि यह याचिकाकर्ता ही था, जो अवैध खनन में लिप्त था और उक्त दिशा में कारण बताओ नोटिस जारी करने के अलावा, जिन सभी सबूतों पर भरोसा करने की मांग की गई थी, यानी वे पदाधिकारी जिन्होंने जाँच और सर्वेक्षण किया है और जो पदाधिकारी याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही देने के लिए आगे आए हैं, उनके नामों का खुलासा किया जाना चाहिए था और उन्हें राज्य के मामले का समर्थन करने के लिए पेश किया जाना चाहिए था कि याचिकाकर्ता वास्तव में अवैध खनन में शामिल है। इतना ही नहीं, प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, याचिकाकर्ता

अपने खिलाफ पेश किए गए सबूतों की सत्यता पर सवाल उठाकर और अपने स्वयं के बचाव साक्ष्य, यदि कोई हो, जोड़कर खुद का बचाव करने का उचित अवसर पाने का हकदार था। निर्णय लेने वाला निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है, क्योंकि प्रदान की गई चीजों की योजना के तहत, उसके द्वारा किए गए निर्धारण के सिविल परिणाम होंगे, जैसे कि अवैध खनन का आरोप साबित होने पर जिस व्यक्ति पर अवैध खनन का आरोप लगाया गया है, उस पर वित्तीय दायित्व आ जाएगा और इसके विपरीत स्थिति में राज्य को नुकसान होगा।"

IX. अपीलीय न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के सभी तर्कों का उल्लेख किया, लेकिन उन पर ध्यान नहीं दिया और इसलिए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपीलीय न्यायालय का आदेश निरर्थक था।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को मजबूत करते हुए प्रस्तुत किया कि उत्खनित खनिजों की मात्रा और कीमत निर्धारित की जानी चाहिए थी और उसके बाद **2015 (12) एससीसी 736** में प्रतिवेदित **पुणे के प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आधार पर इसकी कीमत और रॉयल्टी तय की जानी चाहिए थी। चूंकि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 16 पर बहुत अधिक भरोसा किया, इसलिए इसे यहाँ निम्नानुसार

पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

प्रजाति नहीं होगी।"

"16. चूंकि उपयोग केवल निष्कर्षण या उत्खनन के बाद ही किया जा सकता है, इसलिए उत्खनन का उद्देश्य देखा जाना चाहिए। इसलिए सामान्य मिट्टी की खुदाई के लिए धारा 48(7) के तहत दायित्व वास्तव में उस उपयोग/उद्देश्य के निर्धारण पर निर्भर करेगा जिसके लिए खोदी गई मिट्टी का उपयोग किया गया था। किसी इमारत की नींव रखने के लिए की जाने वाली खुदाई में आमतौर पर खुदाई की गई मिट्टी को भरने या समतल करने के उद्देश्य से उपयोग करने का इरादा नहीं होता है। दायित्व का एक व्यापक निर्धारण केवल इसलिए कि साधारण मिट्टी खोदी गई थी, इसलिए, उचित नहीं होगा; जिस चीज़ की आवश्यकता है वह खुदाई की गई मिट्टी के अंतिम उपयोग का अधिक सटीक निर्धारण है; बिल्डरों के रुख की सत्यता पर एक निष्कर्ष कि निकाली गई मिट्टी का व्यावसायिक उपयोग नहीं किया गया था बल्कि भवन निर्माण कार्यों में पुनः उपयोग किया गया था। यदि निर्णय बिल्डरों द्वारा किए गए दावे के पक्ष में एक निष्कर्ष देने का था, तो जाहिर है, अधिसूचना दिनांक 3.2.2000 का कोई उपयोग नहीं होगा; दिनांक 3.2.2000 की अधिसूचना के साथ पठित 1957 के अधिनियम की धारा 3(ई) के तहत उत्खनित मिट्टी गौण खनिज की एक

निर्णय पर भरोसा करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि इस बात का पता लगाया जाना चाहिए कि खोदी गई मिट्टी का अंतिम परिणाम क्या था।

9. हालांकि, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री प्रियंका मिधा ने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने उन्हें दिए गए नोटिस के प्रति बहुत ही लापरवाही बरती है। जवाबी हलफनामे में दिए गए कथनों पर भरोसा करते हुए उन्होंने कहा है कि याचिकाकर्ताओं को दिनांक 5.2.2018, 24.4.2018, 1.5.2018 और 11.10.2018 के नोटिस प्राप्त हुए, लेकिन किसी भी नोटिस का जवाब नहीं दिया गया।

10. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि नोटिस दिए गए थे और वह भी दो गवाहों की उपस्थिति में। विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि जब नोटिस का कोई जवाब प्रस्तुत नहीं किया गया तो अधिकारियों के पास यह पता लगाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था कि हटाया गया खनिज क्या था। उनका कहना है कि मात्रा का पता लगाने के बाद कीमत और रॉयल्टी तय की गई थी।

11. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ताओं के पास पुनरीक्षण दाखिल करने का एक उपाय था।



12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अंशुल कुमार सिंघल और विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री प्रियंका मिधा को सुनने के बाद, न्यायालय का मानना है कि जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 8.12.2018 को आदेश पारित करते समय और अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 8.5.2023 को आदेश पारित करते समय एकपक्षीय निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की कि वह कौन सी सामग्री थी जिसकी खुदाई की गई थी और रॉयल्टी तथा कीमत तय करने में भी गलती की गई। निश्चित रूप से जब याचिकाकर्ताओं ने नोटिस का कोई जवाब दाखिल नहीं किया तो यह अधिकारियों पर निर्भर था कि वे देखें कि क्या लेखपाल ने उचित निरीक्षण किया था; क्या निरीक्षण किसी विशेष तिथि पर किया गया था; क्या यह किसी स्वतंत्र गवाह की उपस्थिति में किया गया था और यह निष्कर्ष निकालने से पहले कि याचिकाकर्ताओं की भूमि से खनिजों को हटा दिया गया था और इसे बेच भी दिया गया था, उन्हें यह भी पता लगाना था कि वास्तव में हटाया गया खनिज क्या था। ऐसा नहीं किए जाने पर, हम निश्चित रूप से मानते हैं कि प्राधिकारियों यानी जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, मथुरा और आयुक्त, आगरा मंडल, आगरा ने क्रमशः दिनांक 8.12.2018 और 8.5.2023 को आदेश पारित करने में गलती की। ऐसी परिस्थितियों में, जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.12.2018 और आयुक्त, आगरा मंडल, आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.5.2023 को रद्द किया जाता है।

13. चूंकि हमने पाया कि याचिकाकर्ताओं ने

नोटिस का जवाब नहीं दिया था, इसलिए हम याचिकाकर्ताओं को सुनने के बाद नए निर्णय के लिए मामले को जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, मथुरा को वापस भेजते हैं। जहां तक पुनरीक्षण दाखिल करने का सवाल है, हम इसे उचित उपाय नहीं मानते क्योंकि इसमें निश्चित रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है और हम यह भी पाते हैं कि आक्षेपित आदेश में उस प्रक्रिया को ध्यान में नहीं रखा गया जिसका पालन किया जाना चाहिए था।

14. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 1026

मूल क्षेत्राधिकार  
सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय  
रिट-सी संख्या 22242 वर्ष 2023

रामवीर सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री द्विजेंद्र प्रसाद

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन  
एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा

**229बी, 331(3) एवं 333 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 9 नियम 13 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 -** एकपक्षीय निर्णय एवं प्रक्रियागत अनुपालन - याचिकाकर्ता ने 18.01.2013 के उस आदेश को चुनौती दी है जिसमें आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत 07.01.2013 के एकपक्षीय निर्णय को रद्द करने के लिए राज्य की अर्जी स्वीकार की गई थी, जिसमें धारा 229बी के तहत चार भूखंडों पर भूमिधरी अधिकार के लिए उनके वाद का आदेश दिया गया था, और 29.04.2023 के उस आदेश को भी खारिज कर दिया गया था जिसमें उनके पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि राज्य को आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन करने के बजाय धारा 331(3) के तहत अपील दायर करनी चाहिए थी, और ये आदेश मनमाने थे। प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि एकपक्षीय निर्णय गूढ़ था और इसमें साक्ष्यों या मुद्दों पर उचित निर्णय का अभाव था, जैसा कि *कल्लू खान और श्रीमती कनीज़ फ़ातिमा के मामले में* अपेक्षित था। न्यायालय ने माना कि अवर न्यायालय का एकपक्षीय निर्णय उचित निर्णय के लिए सीपीसी की आवश्यकताओं का पालन करने में विफल रहा, जिससे यह अवैध हो गया। आक्षेपित आदेशों को रद्द करने से एक अवैध निर्णय बहाल हो जाएगा, जो *पारस नाथ सिंह के मामले में अस्वीकार्य है*। एकपक्षीय निर्णय को रद्द करने और पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने के आदेशों को बरकरार रखा गया, क्योंकि उन्होंने गुण-दोष के आधार पर एक नया निर्णय सुनिश्चित किया। रिट याचिका खारिज। (पैरा 8-12, 14)

रिट याचिका खारिज कर दी गई।

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. सुनील पोद्दार एवं अन्य बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, 2008 एआईआर (एससी) 1006
2. कल्लू खान एवं अन्य बनाम आयुक्त चित्रकूट धाम मंडल बांदा एवं अन्य, (2016) 133 आरडी 375
3. पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 1985 आरडी 71
4. श्रीमती कनीज़ फातिमा और अन्य बनाम शाह नईम अशरफ, एआईआर 1983 इलाहाबाद 450

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. श्री द्विजेन्द्र प्रसाद, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और श्री अभिषेक शुक्ला, विद्वान अपर मुख्य स्थायी परामर्शक जो राज्य-प्रतिवादी के अधिवक्ता हैं, दोनों से सुनवाई हुई।

2. तत्काल याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए प्रस्तुत की गई है :

*"i. एक उत्प्रेषण प्रकृति की रिट, आदेश या दिशा जारी करें, जिससे अतिरिक्त आयुक्त, आगरा प्रभाग,*

आगरा द्वारा 29.4.2023 को पास किए गए उत्तर प्रदेश जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 333 के तहत 2012-13 के पुनरीक्षण संख्या 81 के आपत्तिजनक आदेश (कंप्यूटरीकृत मामला संख्या सी2013100000274) को और सहायक संग्रहक पहले श्रेणी/राजस्व अधिकारी मैनपुरी द्वारा 18.01.2013 को पास किए गए 2009-10 के मामला संख्या 95 के आदेश को रद्द करें, जो उत्तर प्रदेश जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत था (रामवीर सिंह बनाम विनोद और अन्य)।

ii. परमादेश प्रकृति की एक रिट, आदेश या दिशा जारी करें, जिससे प्रतिवादियों को आदेश दिया जाए कि वे केवल विधिक रूप से अनुसार आवश्यक प्रक्रिया का पालन करते हुए जो रिट याचिका में अच्छी तरह से वर्णित है विवाद में रहनेवाली भूमि पर याचिकाकर्ता के अधिकार, उपाधि और कब्जा को बाधित न करें।

iii. परमादेश प्रकृति की एक रिट, आदेश या दिशा जारी करें जिससे प्रतिवादी प्राधिकारियों को आदेश दिया जाए कि वे संबंधित वैधानिक अभिलेखों में प्रविष्टियों को तब तक आज के रूप में ही बनाए रखें जब तक उन्हें किसी सक्षम न्यायिक पीठ

द्वारा संशोधित, परिवर्तित या हटाए जाने का आदेश नहीं दिया जाता है।

iv. परमादेश प्रकृति में एक रिट, आदेश या परमादेश जारी करें, जिससे कार्यकारी प्राधिकृतियों को आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता को किसी व्यवस्थापत्र के जरिए विच्छेदित न करें, जब तक यह विधि के अनुसार न हो।

v. ऐसे अन्य और अधिक आदेश पारित करें जो यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उचित और ठीक समझे।

vi. याचिकाकर्ता के पक्ष में याचिका की लागत को प्रदान करें।"

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत एक मुकदमा दायर किया, जिसमें घोषणा की गई कि याचिकाकर्ता को प्लॉट नंबर 638, 736, 762, और 774 के संबंध में संपत्ति स्थानांतरण अधिकार वाला भूमिधर माना जाए। इन चार प्लॉटों का कुल क्षेत्रफल 1.234 हेक्टेयर है। कब्जे के आधार पर, राज्य ने उक्त मुकदमे में लिखित बयान दायर किया। विचारण न्यायालय ने 7.1.2013 को एक एकतरफा निर्णय और डिक्री दी जिसमें वादी का मुकदमा मान्य किया गया। 18.1.2013 को, राज्य ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 13 के तहत एक आवेदन दायर किया

ताकि 7.1.2013 के तिथि का एकतरफा निर्णय और डिक्री को रद्द किया जा सके। विचारण न्यायालय ने 18.1.2013 को आदेश जारी किया जिसमें राज्य द्वारा 18.1.2013 को दायर किए गए आवेदन को मान्यता दी गई, 7.1.2013 के तिथि का एकतरफा निर्णय रद्द किया और मुकदमे को पुनः निर्णय के लिए पुनर्स्थापित किया। याचिकाकर्ता ने 18.1.2023 की तारीख के आदेश का समीक्षा हेतु आयुक्त के समक्ष चुनौती दी, जिसे 29.4.2023 की तारीख के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है, इसलिए इस रिट याचिका को याचिकाकर्ता की तरफ से 29.4.2023 और 18.1.2023 की तारीख के आदेश की चुनौती देने के लिए दायर किया गया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत दायर मुकदमा, राज्य द्वारा हलफनामा दायर करने के बाद डिक्री हो गई थी। उसने आगे स्वीकार किया कि उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 331 (3) के तहत अपील दायर करने के बजाय, राज्य ने उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत मुकदमा निर्णय करने के तीन दिनों बाद सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश 9 नियम 13 के तहत एक आवेदन दायर किया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ट्रायल न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश 9 नियम 13 के तहत दायर आवेदन को मनमाने ढंग से स्वीकृत किया। उसने अगले तर्क के रूप में यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने राज्य द्वारा दायर

किए गए आवेदन को स्वीकार करने वाले आदेश के खिलाफ पुनरावलोकन दायर किया था जिसे भी मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया। उसने यह भी प्रस्तुत किया कि जब निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है, तो विवादित आदेश को बनाए रखना संभव नहीं है। वह आगे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर जो 2008 एआईआर (SC) 1006 (सुनील पोद्दार और अन्य बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया) में प्रकाशित हुआ था, यह प्रदर्शित करने के लिए निर्भरता करते हुए प्रस्तुत करते हैं, कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन, किसी भी आदेश को वापस लिया जाने के लिए किया जाना चाहिए।

5. वहीं, श्री अभिषेक शुक्ला, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ट्रायल कोर्ट ने छविमय आदेश पास करके प्रतिवादी का मुकदमा डिक्री किया है। उसने आगे प्रस्तुत किया कि हालांकि मुद्दे तैयार किए गए हैं, लेकिन उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के प्रक्रिया में निर्धारित रूप से तय किए जाने के अनुसार मुकदमे का निर्णय नहीं है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि मुद्दों को तैयार करने के बाद, मुद्दों को कानून के अनुसार निर्णयित किया जाना चाहिए, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादी के मुकदमे को डिक्री करते हुए प्रतिवादी द्वारा मुकदमे में आधारित किसी भी सबूत पर चर्चा किए बिना ऐसा अस्पष्ट आदेश पारित किया है कि प्रतिवादी ने प्रतिकूल कब्जे का मामला साबित किया है। वह आगे (2016) 133 आर.डी. 375, कल्लू खान और 6 अन्य बनाम आयुक्त चित्रकूट धाम प्रभाग बांदा और

तीन अन्य, पर निर्भरता करते हुए प्रस्तुत करते हैं कि एकपक्षीय पारित निर्णय भी प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत सबूत को ध्यान में रखकर पारित किए जाने चाहिए।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क को ध्यान में रखा है और अभिलेख की समीक्षा की है।

7. इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमा ट्रायल कोर्ट द्वारा डिक्री हो गई थी, लेकिन फैसला सुनाए जाने के तीन दिनों बाद राज्य द्वारा दायर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 13 के तहत किए गए आवेदन पर निर्णय को वापस लिया गया और मुकदमा को कानून के अनुसार ताजा निर्णय के लिए उसके मूल नंबर पर पुनर्स्थापित किया गया।

8. चूंकि, उ.प्र.ज.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229 B के तहत मुकदमा 7.1.2013 के अप्रकट आदेश द्वारा डिक्री हो चुका है, इसलिए, उसकी समीक्षा करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नलिखित है:

“न्यायालय राजस्वा अधिकारी , मैनपुरी।  
न्यायालय सहायक कलेक्टर प्रथम (माल)/  
राजस्व अधिकारी मैनपुरी।

वाद संख्या - ६५/०९-१० धारा -२२९ वी ज वि  
अधिनियम।

मौजा -ईसाई मधु पुरी - कुरावली, तहसील व  
जिला मैनपुरी।

रामवीर सिंह बनाम विनोद आदि

निर्णय

सूक्ष्म विवरण वाद इस प्रकार है की रामवीर सिंह ने ग्राम ईसाई मधु पुरी के नंबरान ६३८/०. , ७३६/०.५२६ , ७७४/२/०. कुल चार किता 1. ३६ लगानी २२-०० पैसा जो की प्रतिवादी ०१ लगायत ०२ के नाम खतौनी में अंकित है , से नाम प्रतिवादीगण ०१ लगायत ०२ के पिता महावीर सिंह के समय से चला आ रहा है। इन्द्राज खतौनी प्रतिवादीगण ०१ व ०२ अवैधानिक है। किसी प्रतिवादीगण का कोई कब्जा नहीं है।

सम्मन प्रतिवादीगण जारी किये गए हैं। दिनांक १५. ०.९७ को विनोद पप्पू के ओर से आपत्ति दाखिल की गई है। दिनांक २३. ११.९६ को स्टेट ने भी प्रतिवादी पत्र दाखिल किया है। पक्षगण की दलीलों के आधार पर निम्नलिखित वाद बिंदु दिनांक ०३.०१.९६ को बनाये गए हैं

१- आया की वादी कब्जा गास्वाना के आधार पर आराजी का कास्तकार भूमिधर है।

२- आया की धारा ८० - सी पी सी एवं १०६ पं राज एक्ट के नोटिस विधिवत वादी द्वारा दिए गए हैं।

३- आया की आराजी सार्वजानिक प्रयोग की भूमि है।

४- आया की वाद अवैध हस्तान्तरण का है।

दावा करने से पूर्व विधिवत नोटिस दिए गए हैं। वादी द्वारा अपने कथन की पुष्टि करते हुए दाखिल किया है। इन तीनों ही गवाहान के बयान संदेह से परे हैं, जिन्होंने कब्जा गास्वान को बखूब साबित किया है। स्टेट के ओर से कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। वाद बिंदु बार वाद का निस्तारण निम्नवत किया जाता है :-

वाद बिंदु संख्या -१ कब्जा गास्वान को साबित बखूबी साबित वादी स्वयं व उनके गवाहान ने किया है। प्रतिखंडन में कोई भी साक्ष्य नहीं आया है। अतः वाद बिंदु सकारात्मक रूप से तय की जाती है। वाद बिंदु संख्या -२ धरा ८० सी पी सी एवं १०६ पं राज एक्ट के नोटिस की प्रतियां मई रसीद रजिस्ट्री की प्रतियां पत्रावली पर मौजूद हैं , जिन्हे साबित कराया गया है। अतः उक्त वाद बिंदु सकारात्मक रूप से तय की जाती है।

वाद संख्या -३ क्योंकि पत्रावली स्टेट की ओर से पैसा कोई जवादी एवं तहरीर अभिलेखा दाखिल किया गया है जिससे यह साबित हो की भूमि निजाइ सार्वजनिक प्रयोजन की भूमि है। अतः उक्त वाद बिंदु नकारात्मक रूप से निर्णीत की जाती है।

वाद बिंदु संख्या -४ उक्त वाद अवैध हस्तांतरण का नहीं है, क्योंकि वादी द्वारा कब्जा साबित करने को अपना साक्ष्य संतोषजनक रूप से दिया है। अतः उक्त वाद बिंदु नकारात्मक रूप से निर्णीत की जाती है।

मैंने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों का भलीभांति अवलोकन किया। प्रतिवादीगण द्वारा कोई बहस प्रस्तुत नहीं की गए न ही कोई साक्ष्य प्रस्तुत

किया है। प्रतिवादी की आदम पैरवी की कारन प्रतिवादी के आधार पर वादी अपना कथन साबित करने में सफल रहा है। अतः वाद एक पक्षीय रूप से डिक्री योग्य है।

#### आदेश

दावा वादी एक पक्षीय रूप से अज्ञात किया जाता है तथा आराजी नंबर 638/0.081, 736/0.020, 762/0.526, 774/0.607 कुल चार किता 1. ३४ लगानो २२-०० ग्राम ईसाई मधु पूरी पर नाम वादी बतौर संक्रामंडियाँ भूमिधर दर्ज किया जावे। तदनुसार आदेश पत्रक जारी हो। वादी आवश्यक कार्यवाही दाखिल दफ्तर हो।

ह. अप.

राजस्वा कलेक्टर प्रथम श्रेणी (माल)

मैनपुरी।

आज यह आदेश मेरे द्वारा खुले न्यायालय में हस्ताक्षरित एवं दिनांकित का निर्गत किया गया ।

दिनांक ०७. ०१. १३

ह. अप.

राजस्वा कलेक्टर प्रथम श्रेणी (माल)

मैनपुरी।”

9. ट्रायल कोर्ट का उपर्युक्त निर्णय स्पष्ट करता है कि प्रतिवादी द्वारा उ.प्र.ज.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत दायर की गई मुकदमे का उचित तरीके से निर्णय नहीं हुआ है। यह महत्वपूर्ण है कि यहां तक कि एकपक्षीय निर्णय में भी प्रतिवादी के सबूत की उचित विचारधीनता और विश्लेषण होना चाहिए और विवाद का उचित तरीके से निर्णय होना चाहिए जैसा कि उ.प्र. राजस्व

संहिता, 2006 की अब धारा 144 के अंतर्गत उ.प्र.ज.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229बी के अंतर्गत मुकदमा विशेष प्रकृति का है, जिसे अप्रकट निर्णय पास करके नहीं निर्धारित किया जा सकता है।

10. राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी सहायक अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला द्वारा संदर्भित कल्लू खान और अन्य (उपरोक्त) मामले का निर्णय भी अवलोकन के लिए प्रासंगिक है। कल्लू खान और अन्य (उपरोक्त) मामले के निर्णय में पैराग्राफ नंबर 16 से 23 अवलोकन के योग्य हैं, जो इस प्रकार हैं:

"16. यह ध्यान देना उपयुक्त होगा कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर की गई लिखित हलफनामे के परिणामस्वरूप 6 मुद्दे तय किए गए हैं। हालांकि, ट्रायल कोर्ट ने अपने आदेश दिनांक 05.04.2010 के अनुसार मुकदमा को डिक्री किया, यह किसी भी तय किए गए मुद्दे को संदर्भित नहीं करता। इस आदेश में गाँव सभा या राज्य की ओर से किए गए किसी भी प्रस्तुतियों का संदर्भ नहीं है। इसलिए यह स्पष्ट है कि दिनांक 05.04.2010 का आदेश गाँव सभा और उत्तर प्रदेश राज्य के खिलाफ स्पष्ट रूप से एकपक्षीय है।

17. इसके अलावा, यह आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदत्त निर्णय की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता

है। जो मामला निर्णयित किया गया था, वह अधिनियम की धारा 229-B के तहत एक नियमित शीर्षक मुकदमा था। इसलिए, निर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रावधानों के अनुसार आवश्यक रूप से पालन करना था और प्रत्येक तय किए गए मुद्दों पर निर्णय आवश्यक रूप से दर्ज करना था। ऐसा कोई अभ्यास नहीं किया गया है। 05.04.2010 के निर्णय में तय किए गए मुद्दे अभी तक संदर्भित नहीं किए गए हैं। विपरीत में, आखिरी पंक्ति में, ट्रायल कोर्ट ने निरीक्षण किया कि यह कागजात के सुधार का मामला है।

18. ऊपर चर्चा को देखते हुए और चूंकि इस न्यायालय का दृढ़ मानना है कि 05.04.2010 की तारीख का आदेश एकपक्षीय था, मैं इसे तकनीकता पर हस्तक्षेप करने योग्य मामला नहीं मानता हूँ।

19. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिविरोध है कि राज्य को सुना गया था और यह कि अभिलेखपाल का अभिसाक्ष्य राज्य की पहल पर दर्ज किया गया था, यह रिकॉर्ड से प्रतिष्ठित नहीं होता। जैसा कि ऊपर देखा गया, अभिलेखपाल को प्रतिवादी के आवेदन पर बुलाया गया था और जब वह रिकॉर्ड के साथ प्रकट हुआ तो उसका अभिसाक्ष्य दर्ज किया गया। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि

अभिलेखपाल को राज्य या गाँव सभा की ओर से प्रस्तुत किया गया था। वह प्रतिवादी के आवेदन पर बुलाया गया होने पर, उसका अभिसाक्ष्य अवश्य ही प्रतिवादी की ओर से माना जाएगा।

20. उपयुक्त दिनांक 05.04.2010 के निर्णय में सुनवाई की अवैधता और अनियमितता को तकनीकता की भूमिका में फटकारने का प्रयास किया गया है, पहला कि निर्णय को प्रतिवादी या उसके वारिसों को सूचित किए बिना पुनः बुलाया गया था और कि डिक्री को माफ नहीं किया गया था और कि आदेश एक मृत व्यक्ति के खिलाफ था।

21. उठाए गए इन तथ्यों में हो सकता है महत्व हो, लेकिन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत समाजी न्याय के अधिकार में इस अदालत ने ऐसी तकनीकता पर विवादित आदेशों में हस्तक्षेप करने का प्रस्ताव नहीं किया है। यह तकनीकता विवादित आदेशों को अवैध बना सकती है, फिर भी इस अदालत ने इनको अवैध आदेश के रूप में स्थित करने से इंकार किया है क्योंकि किसी भी हस्तक्षेप से ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित एक समान रूप से अवैध आदेश को पुनः स्थापित करना होगा जिस पर पहले ही यहाँ ध्यान दिया गया था कि यह स्पष्ट रूप से राज्य और गाँव सभा के खिलाफ एकपक्षीय था, यह

भी सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रावधानों का पालन करने में विफल रहा और इसलिए इसे कानून की दृष्टि में एक निर्णय नहीं कहा जा सकता है।

22. इसलिए और ऊपर दिए गए कारणों के आधार पर, रिट याचिका हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है। इसलिए यह खारिज की जाती है।

23. पक्षकार ट्रायल कोर्ट के सामने प्रकट हो सकते हैं और मामले की यथार्थता पर मुकदमा कर सकते हैं। विद्वान स्थायी काउंसल द्वारा प्रस्तुत मौलिक अभिलेख सूची संख्या 9 का 2009-10 को वापस किया जाए, ताकि इसे ट्रायल कोर्ट को प्रेषित किया जा सके। "

11. इस न्यायालय ने 1985 आर.डी. 71 में प्रकाशित मामले, पारस नाथ सिंह बनाम उप-निदेशक चकबंदी और अन्य में तय किया है कि यदि आपत्तिजनक आदेश को अलग करके एक और अवैध आदेश पुनः स्थापित होगा तो भारतीय संविधान की धारा 226 के तहत न्यायालय को आपत्तिजनक आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, यद्यपि आपत्तिजनक आदेश अवैध या अनियमित हो। पारस नाथ (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ नंबर 21 उपयुक्त है, जो निम्नलिखित है:-

"21. यह निस्संदेह सही है कि किसी भी आदेश को जो क्षेत्राधिकार के बिना



पास किया गया हो वह एक अमान्यता है और उसे रद्द कर देना चाहिए। लेकिन अगर उस आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप एक और गलत और अवैध आदेश पुनः स्थापित हो, तो यह न्यायालय आपत्तिजनक आदेश से हस्तक्षेप करने से इंकार करेगा, जो काफी उचित, न्यायसंगत और न्यायपूर्ण आदेश प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संविधान की धारा 226 के तहत शक्ति न्याय को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई है और इसे रोकने के लिए नहीं। मुझे यह प्रतीत होता है कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जो आदेश अवैध है उसे रिट अधिकार के अंतर्गत रद्द या अलग नहीं किया जा सकता है अगर इसे रद्द करने से एक और अवैध आदेश रिकॉर्ड पर लाया जाता है।"

12. इस न्यायालय ने एआईआर 1983 इलाहाबाद 450, श्रीमती कानिज फातिमा और दूसरे बनाम शाह नाईम अशरफ के मामले में तय किया है कि अगर पक्षों के अभिवचन से उत्पन्न प्रश्न पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया जाता है, तो अदालत उस बिंदु पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आगे नहीं बढ़ सकती है। निर्णय के पैराग्राफ नंबर 19 और 20 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-"

"19. उपर्युक्त निर्णय में विधि के प्रतिपादन से कोई विवाद नहीं है, किंतु उस नियम की सच्ची परिप्रेक्ष्य यह

होगी कि जहां पक्ष उनके द्वारा उठाए गए सभी तर्क पर अपने पूरे सबूत दे चुके हैं, उन्हें आखिरी में या अपील में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उन्हें उस विशेष बिंदु पर मुद्दा न तैयार करने के कारण आश्चर्यचकित किया गया, जिस पर उन्होंने पहले ही अपने सबूत को समाप्त कर दिया। ऐसे मामले में यह नहीं कहा जा सकता है कि मुद्दा न तैयार करने के कारण पक्षों को किसी भी प्रकार से पक्षपातपूर्ण हुआ है। लेकिन उक्त नियम से उन मामलों में अर्थ नहीं लगाया जा सकता है जहां सबूत पक्षों द्वारा उन मुद्दों पर प्रस्तुत किए गए थे जिन पर वे वास्तव में मुकदमे में गए थे, क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि पक्षों द्वारा किसी विशेष मुद्दे पर प्रस्तुत सबूत को किसी अन्य और अलग तर्क के निर्णय के आधार के रूप में नहीं बनाया जा सकता है जिस पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि मुद्दे के बिना वे इसे समर्थन करने या इसका खंडन करने का अवसर पाने के लिए कहे जाने वाले नहीं हैं। इसे माना नहीं जा सकता है कि पक्ष अभिवचन में उठाए गए सभी तर्कों पर सम्पूर्णतः सबूत प्रस्तुत कर चुके हैं। पक्ष को केवल मुकदमे में तैयार मुद्दों पर सबूत प्रस्तुत करने का माना जाता है। दूसरा पक्ष का आपत्ति कर सकता है और अदालत वह सबूत रिकॉर्ड करने से

इंकार कर सकती है जो मुकदमे में तैयार मुद्दों से संबंधित नहीं है। यद्यपि सबूत प्रस्तुत किया गया है और रिकॉर्ड पर लाया गया है, अदालत को मुद्दों के अंतरगत ना आने वाले किसी बिंदु पर निर्णय के लिए उस सबूत में देखने के लिए औचित्य नहीं होगा। इस प्रकार, यह कहा नहीं जा सकता है कि यदि पक्षों ने मामले में सबूत प्रस्तुत किया है तो इसे अभिवचन में उठाए गए सभी तर्कों को सम्मिलित करना चाहिए जबकि उस बिंदु पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया है।

20. मुद्दा तैयार करने का उद्देश्य है कि पार्टियों का ध्यान उस विशेष मुद्दे पर सबूत प्रस्तुत करने की ओर आकर्षित किया जाए जो तैयार किया गया है, और यदि कोई सबूत नहीं प्रस्तुत किया जाता है तो संबंधित पक्ष के खिलाफ यह माना जाएगा कि उसके पास मुद्दे में सम्मिलित तर्क को समर्थन या प्रतिस्पर्धा में लाने के लिए कोई सबूत नहीं है। लेकिन जब सभी अभिवचन में उठाए गए तर्कों को सम्मिलित करने वाले उपयुक्त मुद्दे नहीं तैयार किए जाते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता कि पार्टियों ने अपने सभी सबूत या उन सभी तर्कों पर सबूत प्रस्तुत किए हैं जो मुद्दों द्वारा सम्मिलित नहीं किए जाते हैं। इस दृष्टिकोण में, हम पाते हैं कि वर्तमान मामले में, चूंकि पार्टियों के अभिवचन

से उठने वाले उपयुक्त मुद्दे नहीं तैयार किए गए हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने अपने सभी सबूत प्रस्तुत किए हैं जो वे उन तर्कों का समर्थन करने के लिए प्रस्तुत करते हैं जो मुकदमे में तैयार किए गए मुद्दों द्वारा सम्मिलित नहीं किए जाते हैं। इसलिए नीचे अदालत द्वारा दर्ज किया गया निर्णय, प्रतिवादी के विद्वान सलाहकार द्वारा उठाए गए आधार पर बनाए जाने योग्य नहीं है। इसलिए, मामला पुनः ट्रायल कोर्ट को मुकदमे में उचित अतिरिक्त मुद्दे तैयार करने के बाद ताजा निर्णय के लिए पुनः भेजने के योग्य है और पार्टियों को अपने मामले का समर्थन करने में जो सबूत वे प्रस्तुत करना चाहते हैं, उसे प्रस्तुत करने के लिए पूरा अवसर देना है। नीचे विद्वान अदालत ध्यान से अभिवचन की जाँच करेगा और आवश्यक अतिरिक्त मुद्दे तैयार करेगा।”

13. प्रतिवादी के विद्वान सलाहकार द्वारा उद्धृत निर्णय इस मामले की तथ्यों और परिस्थितियों में प्रासंगिक नहीं होगा, बल्कि कल्लू खान (उल्लेखित), पारस नाथ सिंह (उल्लेखित) और श्रीमती कनीज फ़ातिमा (उल्लेखित) में दिया गया निर्णय इस तत्काल मामले में प्रासंगिक होगा।

14. सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, साथ ही इस अदालत द्वारा

कल्लू खान और अन्य (उल्लेखित), पारस नाथ (उल्लेखित) तथा श्रीमती कनीज फ़ातिमा (उल्लेखित) में निर्धारित कानून के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधिकार में विवादित आदेशों के खिलाफ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विवादित आदेशों को रद्द करने का परिणाम 7.1.2013 के अवैध ट्रायल आदेश को पुनः स्थापित करना होगा जो कल्लू खान और अन्य (उल्लेखित) तथा स्मृति कनीज फ़ातिमा (उल्लेखित) में इस अदालत द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात के उल्लंघन के कारण उ.प्र.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के धारा 229बी के तहत डिक्री किये गए थे।

15. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

-----  
(2023) 9 ILRA 1032

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 7434

वर्ष 2023

मकबूल हसन

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रार्थी

...विपक्ष

प्रार्थी के अधिवक्ता:

अशोक कुमार मिश्रा

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

सिविल विधि - परक्राम्य लिखत अधिनियम,

1881 - धारा 138 - दंड प्रक्रिया संहिता,

1973 - धारा 82 और 482 - गैर-जमानती

वारंट और उद्घोषणा जारी करना - वैधता -

प्रार्थी ने 5,00,000/- रुपये के चेक बाउंस के

शिकायत मामले में गैर-हाजिर होने के कारण

जारी किए गए गैर-जमानती वारंट (एनबीडब्ल्यू)

आदेश दिनांक 31.01.2023, 20.02.2023,

28.03.2023, 28.04.2023 और संयुक्त

एनबीडब्ल्यू/धारा 82 सीआरपीसी आदेश दिनांक

04.07.2023 को चुनौती दी। प्रार्थी

31.01.2023 से पहले नियमित रूप से

उपस्थित हुआ था, लेकिन अपरिहार्य

परिस्थितियों के कारण उस तिथि को उपस्थित

नहीं हो सका। विचारण न्यायालय ने बिना

कारण बताए या निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन

किए धारा 82 सीआरपीसी के तहत गैर

जमानती वारंट और उद्घोषणा जारी कर दी।

प्रार्थी ने तर्क दिया कि गैर जमानती वारंट जारी

करना यांत्रिक था, जिससे रघुवंश दीवानचंद

भस्सीन के दिशानिर्देशों का उल्लंघन हुआ और

धारा 82 की उद्घोषणा में कारण, प्रकाशन और

अनिवार्य 30-दिन की सूचना अवधि का अभाव

था। न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 21 के

तहत स्वतंत्रता के मनमाने हनन से बचने के

लिए गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए

दर्ज संतुष्टि आवश्यक है। धारा 82 के अनुसार,

अभियुक्त के फरार होने का कारण बताना

अनिवार्य है, साथ ही उद्घोषणा का उचित

प्रकाशन भी अनिवार्य है, जिसका पालन नहीं

किया गया। 31.01.2023 के आदेश और उसके

बाद के आदेश, जिनमें उद्घोषणा भी शामिल है, गैरकानूनी घोषित कर दिए गए। प्रार्थी को सहयोग करने और नियमित रूप से उपस्थित होने के निर्देश के साथ मामला अवर न्यायालय को भेज दिया गया। (पैरा 6, 8-9, 19-25)

### आवेदन स्वीकृत.

### उद्धृत वादों की सूची:

1. रघुवंश दीवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1758 वर्ष 2011
2. सुनील त्यागी बनाम दिल्ली सरकार एवं अन्य, 2021 क्रिएलजे 3461
3. देवेंद्र सिंह नेगी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, उद्धरण उपलब्ध नहीं कराया गया

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार मिश्रा तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अत्रे त्रिपाठी को सुना गया।
2. वर्तमान आवेदन के माध्यम से, शिकायत मामला संख्या 2479/2019 (मोहम्मद नासिर बनाम मुकबूल हसन), एन.आई. अधिनियम की धारा 138, थाना अलीगंज जिला- लखनऊ में याचिकाकर्ता के खिलाफ पीठासीन अधिकारी, अतिरिक्त न्याय कक्ष संख्या 5, लखनऊ द्वारा

पारित गैर-जमानती वारंट दिनांकित 31-1-2023, 20-2-2023, 28-3-2023, 28-4-2023 के आदेशों और एनबीडब्लू/82 सीआरपीसी, दिनांकित 4-7-2023 के संयुक्त आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की गई है।

3. चूंकि मामला प्रवेश स्तर पर तय हो चुका है, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या 2 को नोटिस देने से छूट दी जाती है।

4. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 15.10.2018 को वर्तमान आवेदक द्वारा शिकायतकर्ता के पक्ष में 5,00,000/- रुपये का चेक जारी किया गया, और उसके बाद, इसे बाउंस कहा गया और आवेदक को दिनांक 01.02.2019 को प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा उसके अधिवक्ता के माध्यम से नोटिस जारी किया गया था, लेकिन इसकी तामील आवेदक को कभी नहीं की गई।

5. उन्होंने प्रस्तुत किया कि 23.03.2019 को, शिकायतकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कस्टम, लखनऊ के समक्ष परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (एतस्मिनपश्चात अधिनियम, 1881 के रूप में संदर्भित) की धारा 138 के तहत एक मामला दायर किया और उसके बाद कई तारीखें तय की गईं, जिसमें 31.01.2023 को अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण, वर्तमान आवेदक ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका, जिसे इस आवेदन के पैराग्राफ 19 में स्पष्ट किया गया है और एक दिन के लिए ट्रायल कोर्ट के समक्ष गैर-उपस्थित होने के लिए, गैर-जमानती

वारंट जारी किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 31.01.2023 के आदेश के बाद, अन्य तिथियां अर्थात् 20.02.2023, 28.03.2023 और अंततः 28.04.2023 तय की गई और आवेदक के खिलाफ धारा 82 के तहत गैर-जमानती वारंट के साथ-साथ उद्घोषणा का आदेश भी जारी किया गया और आवेदक ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दोनों आदेशों से व्यथित है क्योंकि यह दं.प्र.सं. की धारा 82 के प्रावधान के आदेश का पालन नहीं करता है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि शिकायत दर्ज की गई थी और उसके बाद, जब सम्मन जारी किया गया, आवेदक 31.01.2023 से पहले प्रत्येक तारीख को ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित होता रहा और उसके समक्ष उपस्थिति में कोई जानबूझकर विचलन नहीं किया गया था। उन्होंने कहा कि जिस तरीके से गैर-जमानती वारंट का आदेश पारित किया गया, वह निर्धारित प्रक्रिया के तहत पूर्णतः विधि विरुद्ध है।

7. अपने तर्कों को जोड़ते हुए, उन्होंने दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया की ओर ध्यान आकर्षित किया है। दं.प्र.सं. की धारा 82 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है: -

**“82. फरार व्यक्ति के लिए उद्घोषणा -**

(1) यदि किसी न्यायालय को (चाहे साक्ष्य लेने के पश्चात् या लिए बिना) यह

विश्वास करने का कारण है कि कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध उसने वारंट जारी किया है, फरार हो गया है, या अपने को छिपा रहा है जिससे ऐसे वारंट का निष्पादन नहीं किया जा सकता तो ऐसा न्यायालय उससे यह अपेक्षा करने वाली लिखित उद्घोषणा प्रकाशित कर सकता है कि वह व्यक्ति विनिर्दिष्ट स्थान में और विनिर्दिष्ट समय पर, जो उस उद्घोषणा के प्रकाशन की तारीख से कम से कम तीस दिन पश्चात् का होगा, हाजिर हो।

(2) उद्घोषणा निम्नलिखित रूप से प्रकाशित की जाएगी-

(i) (क) वह उस नगर या ग्राम के, जिसमें ऐसा व्यक्ति मामूली तौर पर निवास करता है, किसी सहजदृश्य स्थान में सार्वजनिक रूप से पढ़ी जाएगी;

(ख) वह उस गृह या वासस्थान के, जिसमें ऐसा व्यक्ति मामूली तौर पर निवास करता है, किसी सहजदृश्य भाग पर या ऐसे नगर या ग्राम के किसी

सहजदृश्य स्थान पर लगाई जाएगी;

(ग) उसकी एक प्रति उस न्याय सदन के किसी सहजदृश्य भाग पर लगाई जाएगी;

(ii) यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह यह निदेश भी दे सकता है कि उद्घोषणा की एक प्रति उस स्थान में, परिचालित किसी दैनिक समाचार-पत्र में प्रकाशित की जाए जहां ऐसा व्यक्ति मामूली तौर पर निवास करता है।

(3) उद्घोषणा जारी करने वाले न्यायालय द्वारा यह लिखित कथन कि उद्घोषणा विनिर्दिष्ट दिन उपधारा (2) के खंड (i) में विनिर्दिष्ट रीति से सम्यक् रूप से प्रकाशित कर दी गई है, इस बात का निश्चयक साक्ष्य होगा कि इस धारा की अपेक्षाओं का अनुपालन कर दिया गया है और उद्घोषणा उस दिन प्रकाशित कर दी गई थी।”

8. उपर्युक्त का संदर्भ देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त प्रावधान यह निर्धारित करता है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध जारी

किए गए किसी वारंट के मामले में और वह फरार है तथा ऐसे वारंट से स्वयं को छिपा रहा है, तो न्यायालय एक लिखित उद्घोषणा प्रकाशित कर सकता है, जिसमें निर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होने की आवश्यकता होगी, जो ऐसी उद्घोषणा प्रकाशित होने की तिथि से तीस दिन से कम नहीं होगी। उन्होंने तर्क दिया कि जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करते समय कोई कारण दर्ज नहीं किया, जो कि ट्रायल कोर्ट के आदेश पत्र से स्पष्ट है। इसके अलावा, जिस उद्घोषणा को प्रकाशित किया जाना आवश्यक है, उसे कभी प्रकाशित नहीं किया गया, जो कि ट्रायल कोर्ट के आदेश में महत्वपूर्ण खामियों में से एक है।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का दूसरा पहलू यह है कि जहां तक गैर-जमानती वारंट के संबंध में आदेश का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या 1758/2011 (विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 5412/2008 से उद्भूत) में रघुवंश दीवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में अवधारित किया है कि 'गैर-जमानती वारंट के निष्पादन में सीधे तौर पर किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती शामिल होती है और इस प्रकार, इसे यांत्रिक तरीके से जारी नहीं किया जा सकता है, बल्कि केवल इस बात की संतुष्टि दर्ज करने के बाद ही जारी किया जा सकता है कि यह कैसे वारंट किया गया है। इसके अलावा, इसी निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 23 में अधीनस्थ न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट

जारी करने के लिए कुछ दिशा-निर्देश जारी किए हैं। निर्णय का पैराग्राफ 23 नीचे उद्धृत है:-

"23. हालांकि, निर्णय देने से पूर्व, हम महसूस करते हैं कि इस तरह की विरोधाभासी स्थिति को रोकने के लिए, जिसका हम इस मामले में सामना कर रहे हैं, और गिरफ्तारी वारंट के दुरुपयोग की संभावना को रोकने या समाप्त करने के लिए, ऊपर उल्लिखित वैधानिक और संवैधानिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त, निम्नलिखित दिशानिर्देश जारी करना उचित होगा, जिन्हें उन सभी मामलों में अपनाया जाना चाहिए जहां न्यायालयों द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं:

(क) सभी उच्च न्यायालय यह सुनिश्चित करेंगे कि अधीनस्थ न्यायालय गिरफ्तारी वारंट जारी करने के लिए मुद्रित और मशीन क्रमांकित फॉर्म संख्या 2 का उपयोग करें और प्रत्येक ऐसे फॉर्म का विधिवत हिसाब-किताब रखा जाए;

(ख) प्रमाणीकृत करने से पहले, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि

वारंट पर मामले का पूरा विवरण अंकित हो;

(ग) वारंट जारी करने वाले न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश (या उच्च न्यायालयों के मामले में इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से अधिकृत जिम्मेदार अधिकारी) को प्रक्रिया पर अपने पूर्ण और सुपाठ्य हस्ताक्षर करने चाहिए, साथ ही यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि न्यायालय की पूरी जानकारी वाली न्यायालय की मुहर उस पर प्रमुखता से अंकित हो;

(घ) न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वारंट किसी विशेष पुलिस अधिकारी (या प्राधिकारी) को निर्देशित किया गया है और जब तक कि इसे ओपन-एंडेड नहीं माना जाता है, इसे निष्पादित या अनिष्पादित, उसमें निर्दिष्ट तिथि को या उससे पहले वापस किया जाना चाहिए;

(ङ) प्रत्येक न्यायालय को एक रजिस्टर (नीचे दिए गए प्रारूप में) बनाए रखना चाहिए, जिसमें जारी किए गए प्रत्येक गिरफ्तारी वारंट को कालानुक्रमिक रूप से दर्ज किया जाना चाहिए और ऐसी

प्रविष्टि की क्रम संख्या प्रक्रिया के शीर्ष दाहिने हाथ पर दिखाई देनी चाहिए;

(च) ऊपर वर्णित रजिस्टर में दर्ज किए बिना कोई गिरफ्तारी वारंट जारी नहीं किया जाएगा और संबंधित न्यायालय समय-समय पर इसकी जांच/निगरानी करेगा ताकि यह पुष्टि हो सके कि प्रत्येक ऐसी प्रक्रिया हमेशा उचित रिपोर्ट के साथ न्यायालय को वापस कर दी जाती है और संबंधित मामले के रिकॉर्ड में रखी जाती है;

(छ) उपर्युक्त खण्ड (ड) के सदृश एक रजिस्टर संबंधित पुलिस थाने में रखा जाएगा। संबंधित पुलिस थाने का थाना प्रभारी यह सुनिश्चित करेगा कि न्यायालय द्वारा जारी प्रत्येक गिरफ्तारी वारंट, प्राप्त होने पर उक्त रजिस्टर में विधिवत दर्ज किया जाए और निष्पादन के लिए औपचारिक रूप से एक जिम्मेदार अधिकारी को सौंपा जाए;

(ज) सामान्यतः न्यायालयों को वारंटों की वापसी या निष्पादन के लिए अधिक समय नहीं देना चाहिए, क्योंकि अनुभव से पता चला है कि यदि वारंट लंबे समय

तक निष्पादन एजेंसियों के नियंत्रण में रहते हैं तो उनका दुरुपयोग होने की संभावना रहती है;

(झ) वारंट की वापसी के लिए निर्धारित तिथि पर, न्यायालय को संबंधित पुलिस थाने के थाना प्रभारी या संबंधित एजेंसी के प्रभारी अधिकारी द्वारा उस पर की गई कार्रवाई पर अनुपालन रिपोर्ट पर जोर देना चाहिए;

(ञ) ऐसे वारंटों पर रिपोर्ट स्पष्ट, ठोस और सुपाठ्य होनी चाहिए तथा वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा विधिवत् अंग्रेषित की जानी चाहिए, ताकि दुरुपयोग के मामले में जिम्मेदारी तय करने में सुविधा हो;

(ट) यदि निष्पादन हेतु वारंट जारी करने वाले न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है, तो संहिता की धारा 78 और 79 में निर्धारित प्रक्रिया का कड़ाई और ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए; तथा

(ठ) न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी वारंट रद्द करने की स्थिति में, वारंट रद्द करने का आदेश केस फाइल में दर्ज किया जाएगा तथा रजिस्टर रखा जाएगा। इसकी



एक प्रति संबंधित प्राधिकारी को भेजी जाएगी तथा प्रक्रिया को तत्काल बिना निष्पादित किए वापस करने को कहा जाएगा। अप्रयुक्त वारंट की प्राप्ति की तारीख उपरोक्त रजिस्ट्रारों में दर्ज की जाएगी। ऐसे आदेश की एक प्रति अभियुक्त को भी उपलब्ध कराई जाएगी।"

10. उपरोक्त निर्णय का सन्दर्भ देते हुए उन्होंने कहा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट निर्देश जारी किया गया है, जो देश का कानून है, लेकिन विद्वान ट्रायल कोर्ट ने इसकी अनदेखी की है।

11. इसके अलावा 2021 क्रिएल जे 3461:एआईआर आनलाइन 2021 डेल 912 सुनील त्यागी बनाम दिल्ली सरकार और अन्य के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए, उन्होंने इसके पैराग्राफ 386, 387 और 388 का उल्लेख किया है। प्रस्तर 386, 387 और 388 नीचे उद्धृत हैं:-

"386. दंड प्रक्रिया संहिता में निर्धारित 'घोषित व्यक्ति' और 'घोषित अपराधी' की घोषणा की प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल हैं:

(i) दं.प्र.सं. धारा 82(1) के तहत उद्घोषणा जारी करने के लिए पूर्व-आवश्यकताएं -

उद्घोषणा केवल तभी प्रकाशित की जा सकती है जिसमें निर्देश दिया गया हो कि 'उद्घोषित व्यक्ति' प्रकाशन की तारीख से कम से कम 30 दिनों के भीतर निर्दिष्ट समय और स्थान पर उपस्थित हो, जब न्यायालय संतुष्ट हो जाए कि:

(क) गिरफ्तारी वारंट पहले ही जारी किया जा चुका है और वारंट को निष्पादित करने के सभी संभव प्रयास किए जा चुके हैं;

(ख) वारंट जारी होने के बाद, व्यक्ति फरार हो रहा है या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए खुद को छिपा रहा है।

(ii) यह सुनिश्चित करने के लिए जांच की जाएगी कि गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया है और पुलिस अधिकारी द्वारा उसे निष्पादित करने के सभी प्रयास किए गए हैं - उद्घोषणा जारी करने से पहले संहिता की दूसरी अनुसूची, प्रपत्र संख्या 2 या प्रपत्र संख्या 9 के अनुसार वारंट जारी किया जाना चाहिए।

387. उद्घोषणा के प्रकाशन की प्रक्रिया दं.प्र.सं. की धारा

82(2) - दं.प्र.सं. की धारा 82(2) के अनुसार, उद्घोषणा को उस शहर या गांव के किसी प्रमुख स्थान पर पढ़ा जाना चाहिए जिसमें व्यक्ति निवास करता है। इसे उस घर के किसी प्रमुख भाग पर, जिसमें व्यक्ति रहता है, या शहर या गांव के किसी प्रमुख स्थान पर भी लगाया जाएगा। इसके अलावा, इसकी एक प्रति न्यायालय भवन के किसी प्रमुख भाग पर भी लगाई जानी चाहिए। न्यायालय यह भी निर्देश दे सकता है कि उद्घोषणा की एक प्रति उस स्थान पर प्रसारित होने वाले दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित की जाए जहां वह व्यक्ति सामान्यतः निवास करता है। दं.प्र.सं. की धारा 82 की शर्तें अनिवार्य हैं और गिरफ्तारी वारंट जारी किए बिना उद्घोषणा जारी नहीं की जा सकती।

388. जहां प्रकाशित उद्घोषणा किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में है जो कुछ निर्दिष्ट जघन्य अपराधों का आरोपी है और ऐसा व्यक्ति उद्घोषणा द्वारा अपेक्षित निर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होने में विफल

रहता है, वहां उसे 'उद्घोषित अपराधी' घोषित किया जा सकता है और दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत इस आशय की घोषणा की जा सकती है।"

12. उपर्युक्त निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि माननीय उच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करने का आदेश पारित करते समय, कारण दर्ज किए जाने चाहिए और यदि ऐसा नहीं है, तो पूरी कार्यवाही अविधिक हो जाएगी।

13. उन्होंने पुनः देवेन्द्र सिंह नेगी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है तथा उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 13 और 14 पर अवलम्ब लिया है। निर्णय के प्रस्तर 13 और 14 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"13. संहिता की धारा 83 के अन्तर्गत कुर्की का उद्देश्य अभियुक्त को दण्डित करना नहीं है, बल्कि उसे उपस्थित कराना है। मेरा दृष्टिकोण दयानंद बनाम राज्य (1) के खण्डपीठ मामले द्वारा समर्थित है। धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा के लाभकारी प्रावधानों को किसी अनजान व्यक्ति के विरुद्ध विरोध जताने तथा उसे यह नोटिस देने के लिए

अधिनियमित किया गया है कि वह अपराध में वांछित है, ताकि वह हिरासत में आत्मसमर्पण कर सके। धारा 82 (2) में घोषणा प्रकाशित करने के तरीके के संबंध में कठोर शर्तें निर्धारित की गई हैं। अन्य बातों के साथ-साथ, प्रकाशन में अभियुक्त के घर और निवास स्थान के किसी प्रमुख स्थान पर तथा न्यायालय भवन के नोटिस बोर्ड पर उद्घोषणा को चिपकाना भी शामिल है।

14. संहिता की धारा 82 में "फरार हो गया है या अपने आप को छिपा रहा है ताकि ऐसे वारंट को निष्पादित नहीं किया जा सके" शब्द महत्वपूर्ण हैं। हर व्यक्ति जो तत्काल उपलब्ध नहीं हो पाता, उसे भगोड़ा नहीं कहा जा सकता। अदालत को अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि अभियुक्त फरार हो गया है या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए छिप रहा है। धारा 82 के प्रावधान अनिवार्य हैं और उनका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। धारा 82 के अनुसार न्यायालय को प्रथम दृष्टया वारंट जारी करना होगा तथा यह मानने के अपने कारण

भी बताने होंगे कि अभियुक्त फरार है या अपने आप को छिपा रहा है। मेरे ऊपर व्यक्त विचार दीप नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य (2) के खण्ड पीठ मामले द्वारा समर्थित है। इस प्रकार, प्रत्येक मामले में जहां वारंट निष्पादित नहीं किया गया है, धारा 82 का सहारा नहीं लिया जा सकता है और संबंधित अधिकारी की जांच करना आवश्यक हो सकता है जो वारंट निष्पादित करने गया था और उसके द्वारा उसे तामील करने के लिए अपनाए गए उपायों की जांच करना आवश्यक हो सकता है। (देखें कुंवर सिंह बनाम राज्य (3)।"

14. उपर्युक्त का संदर्भ देते हुए उन्होंने दलील दी कि वर्तमान आवेदक का मामला उपरोक्त निर्णय के दायरे में आता है।

15. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, उन्होंने कहा कि चूंकि वर्तमान आवेदक ट्रायल कोर्ट द्वारा तय की गई प्रत्येक तारीख पर उपस्थित हो रहा था, इसलिए वर्तमान आवेदक की एक दिन यानी दिनांक 31.01.2023 को उपस्थिति न होना वास्तविक है और उक्त तारीख को ट्रायल कोर्ट ने बिना कोई कारण दर्ज किए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों का पालन किए बिना, वर्तमान आवेदक के

विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया, जो आवेदक के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को कम करता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधिदेश के विरुद्ध जाता है। उन्होंने आगे कहा कि गैर-जमानती वारंट जारी करने के साथ-साथ दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत उद्घोषणा भी जारी की गई है और वह भी बिना कोई कारण बताए और उद्घोषणा के प्रकाशन के बिना। इस प्रकार, दलील यह है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही, आदेश दिनांकित 31.01.2023 और 28.04.2023 के अनुसार, न केवल विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है, बल्कि वे विधि के स्थापित प्रस्ताव के विरुद्ध भी हैं।

16. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त दलीलों का पुरजोर विरोध किया और कहा कि प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा उचित रूप से शिकायत दर्ज की गई थी और विद्वान ट्रायल कोर्ट ने समन जारी करते हुए सही कार्यवाही की है। उन्होंने कहा कि दिनांक 31.01.2023 के आदेश पारित करने से पूर्व ट्रायल कोर्ट की कार्यवाही में कोई त्रुटि नहीं है, हालांकि, इसके बाद कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि ट्रायल कोर्ट ने कानून के प्रावधानों का पालन नहीं किया, जबकि, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि आवेदक दिनांक 31.01.2023 को और उसके बाद भी अनुपस्थित था, इस प्रकार, ट्रायल कोर्ट के पास आवेदक की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उसके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

17. उन्होंने आगे तर्क दिया कि गैर-जमानती वारंट जारी करने के साथ-साथ दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करने की प्रक्रिया अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए परिकल्पित की गई है, ताकि मुकदमे को समय पर और प्रभावी ढंग से समाप्त किया जा सके, लेकिन जहां तक वर्तमान आवेदक का संबंध है, आवेदक के पास कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि वह दिनांक 31.01.2023 को और उसके बाद 28.04.2023 को, अर्थात् उस तारीख को, जब दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी की गई थी, उपस्थित क्यों नहीं हुआ। इसलिए, राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं है।

18. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण पर विचार करने तथा रिकार्ड में प्रस्तुत सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह पता चला कि कुछ राशि, जो चेक के माध्यम से देने का वादा किया गया था, बाद में बाउंस हो गई तथा इसके पश्चात वर्तमान आवेदक को नोटिस दिया गया तथा शिकायतकर्ता ने अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत मामला दर्ज कराया।

19. मामले के तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से यह पता चला कि दिनांक 31.01.2023 से पहले, वर्तमान आवेदक को उपस्थित होना पड़ा और 31.01.2023 को, उन कारणों से, जिन्हें आवेदन के प्रस्तर 19 में समझाया गया है, आवेदक ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और ट्रायल कोर्ट ने 31.01.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किए हैं।

**“पत्रावली प्रस्तुत। परिवादी  
उपस्थित पी.डब्लू. मो. नासिर  
का साक्ष्य शपथ-पत्र दाखिल  
हुआ। अभियुक्त अनुपस्थित।  
अभियुक्त के विरुद्ध  
एन.बी.डब्लू. जारी हो। वास्ते  
हाजिरी जिरह पी.डब्लू.  
20.02.23 पेश हो।”**

20. उपरोक्त आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि आवेदक के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए कोई कारण निर्दिष्ट किया गया है, हालांकि, गिरफ्तारी वारंट के दुरुपयोग की संभावना की जांच करने के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिसमें सभी उच्च न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है कि अधीनस्थ न्यायालयों को मुद्रित और मशीन क्रमांकित फॉर्म 2 का उपयोग करना चाहिए और वारंट पर मामले का पूरा विवरण अंकित किया जाना चाहिए और इसके अलावा, अदालतों के पीठासीन न्यायाधीशों को प्रक्रिया पर पूर्ण सुपाठ्य हस्ताक्षर करने चाहिए, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अदालत की मुहर पर पूरा विवरण अंकित हो। यह भी कहा गया है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि वारंट किसी विशेष पुलिस अधिकारी को निर्देशित किया जाए, तथा निर्दिष्ट तिथि को या उससे पहले निष्पादित या अ-निष्पादित होने पर वापस किया जा सके और प्रत्येक न्यायालय रजिस्टर बनाए रखेगा, जिसमें गिरफ्तारी के प्रत्येक वारंट को क्रमवार दर्ज किया जाएगा।

21. यह एक सामान्य कानून है कि 'गैर-जमानती वारंट में सीधे तौर पर किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया जाता है' और इसलिए, इसे यांत्रिक तरीके से पारित नहीं किया जाना चाहिए और गैर-जमानती वारंट जारी करते समय ट्रायल कोर्ट को हमेशा सतर्क रहना चाहिए। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय विधि के स्थापित प्रस्ताव की अनदेखी की है।

22. इस न्यायालय की भी सुविचारित राय है द.प्र.सं. की धारा 82 का प्रावधान भी बहुत स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को उद्घोषणा जारी करते समय कारण दर्ज करने होंगे और द.प्र.सं. की धारा 82 के प्रावधान के पहले शब्दांकन से यह भी स्पष्ट है कि इसे तभी जारी किया जा सकता है जब 'विश्वास करने का कारण' हो और इसका अर्थ यह है कि आदेश में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।

23. धारा 82 का प्रावधान स्पष्ट रूप से यह आदेश देता है कि जब न्यायालय को यह विश्वास करने का कारण हो कि कोई अभियुक्त व्यक्ति, जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है, फरार हो गया है या अपने आपको छिपा लिया है, जिससे वारंट निष्पादित नहीं किया जा सकता, तो वह लिखित घोषणा प्रकाशित कर सकता है, जिसमें उसे निर्दिष्ट स्थान और निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होने की आवश्यकता होगी। इससे स्पष्ट है कि धारा 82 की उद्घोषणा ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जारी की

जा सकती है, जिसके विरुद्ध वारंट पहले ही निष्पादित किया जा चुका है।

24. जब इस न्यायालय ने विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दिनांक 28.03.2023 के आदेश की जांच की, तो इसमें दं.प्र.सं.की धारा 82 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुपालन का अभाव पाया गया, क्योंकि दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत गैर-जमानती वारंट और उद्घोषणा एक साथ जारी की गई है और इसके अलावा, आदेश में निर्दिष्ट तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया गया है, जो दं.प्र.सं. की धारा 82 के प्रावधानों का उल्लंघन है।

25. इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक व्यक्ति जो वारंट जारी होने के पश्चात उपस्थित नहीं होता, भगोड़ा है, किन्तु न्यायालय, जो धारा 82 के अधीन उद्घोषणा जारी कर रहा है, के पास यह मानने का कुछ कारण है कि ऐसा व्यक्ति फरार है या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए उसे छिपा रहा है। 'विश्वास करने का कारण' संक्षेप में लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। विधायिका ने अपनी बुद्धिमत्ता से, उद्घोषणा के प्रावधानों को लागू करने में पर्याप्त सावधानी बरती, जो एक कठोर प्रावधान है और इसलिए, प्रावधान में ही सुरक्षा उपाय भी अंतर्निहित हैं। इस प्रकार, इस प्रावधान के सर्वोच्च महत्व का सम्मान किया जाना चाहिए और इसे लागू किया जाना चाहिए, ताकि इसके द्वारा प्रदत्त कानून के किसी भी प्रकार के दुरुपयोग को रोका जा सके।

26. उपर्युक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, आदेश दिनांकित 31-1-2023 और शिकायत संख्या 2479/2019 (मोहम्मद नासिर बनाम मुकबूल हसन), अन्तर्गत एन.आई. अधिनियम की धारा 138, थाना अलीगंज जिला- लखनऊ में विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बाद के आदेशों को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

27. मामले को सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निर्देश, आदेश और दिशानिर्देशों का पालन करते हुए विधिसम्मत आगे बढ़ने के लिए संबंधित ट्रायल कोर्ट को वापस भेजा जाता है।

28. आवेदक को निर्देश दिया जाता है कि वह मुकदमे की कार्यवाही में सहयोग करेगा और वह ट्रायल कोर्ट के समक्ष निर्धारित प्रत्येक तारीख पर उपस्थित रहेगा तथा वह आगे कोई स्थगन नहीं मांगेगा, जब तक कि अपरिहार्य परिस्थितियों में ऐसा आवश्यक न हो।

29. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि आवेदक अदालती कार्यवाही से बचता है, तो ट्रायल कोर्ट कानून के अनुसार आगे की कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है।

30. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, यह आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 1039

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 15078

वर्ष 2023

नहीं किया जाना चाहिए - चूंकि प्रार्थी ने पहले ही उसी आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया था, इसलिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत वर्तमान प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं माना गया - खारिज।

प्रार्थना पत्र खारिज।

उद्धृत वादों की सूची:

आशु जैन

...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्ष

1. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 2 एससीसी 370

प्रार्थी के अधिवक्ता:

सुश्री श्रुति मालवीय

2. प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य, (2016) 16 एससीसी 30

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अमित डागा

3. आशु धीमान बनाम श्रीमती ज्योति धीमान, 2018 (उत्तराखंड एचसी)

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 397 और 482 - पारिवारिक न्यायालय

अधिनियम, 1984 - धारा 19 - पोषणीयता -

धारा 125 सीआरपीसी के तहत पारिवारिक न्यायालय के आदेश को चुनौती देने के लिए

धारा 482 सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र -

धारा 397 सीआरपीसी के साथ पारिवारिक

न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के तहत

पुनरीक्षण का वैधानिक उपाय उपलब्ध - धारा

482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय का

अंतर्निहित क्षेत्राधिकार व्यापक है, लेकिन इसका

प्रयोग संयम से और असाधारण परिस्थितियों

में किया जाना चाहिए जैसे कि क्षेत्राधिकार की

कमी या स्पष्ट अन्याय - जहां प्रभावोत्पादक

वैधानिक उपाय मौजूद है, वहां इसका उपयोग

4. राजेंद्र कुमार बनाम श्रीमती रुखमणी बिसेन, 2022 (एमपी एचसी)

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा पारित)

1. आवेदक की अधिवक्ता सुश्री श्रुति मालवीय, राज्य के लिए ए.जी.ए. और विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता श्री अमित डागा को सुना गया।

2. वर्तमान प्रार्थना-पत्र निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर किया गया है: -

"वर्तमान सीआरपीसी 482 प्रार्थना-पत्र 2015 के केस संख्या 244/11 (श्रीमती आशु जैन और अन्य बनाम श्री आशु

जैन) में पारित आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसे अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, कोर्ट संख्या 1, मुजफ्फर नगर द्वारा पारित किया गया था।"

3. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित डागा ने प्रारंभिक आपत्ति जताई है और तथ्य प्रस्तुत किया है कि आवेदक के पास परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 (इसके बाद 'अधिनियम, 1984' के रूप में संदर्भित) की धारा 19 के तहत पुनरीक्षण दायर करने के लिए वैधानिक उपाय है, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 के साथ पढ़ा जाता है, (इसके बाद, 'सीआरपीसी' के रूप में संदर्भित) इसलिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य नहीं है।

4. सुश्री श्रुति मालवीय, आवेदक की अधिवक्ता ने हालांकि विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुति पर विवाद नहीं किया, लेकिन तथ्य प्रस्तुत किया कि हालांकि पुनरीक्षण फैमिली कोर्ट के आदेश के खिलाफ सुनवाई योग्य है, लेकिन कोई पूर्ण रोक नहीं है। वर्तमान मामले में, आवेदक तथ्य का प्रश्न भी उठा रहा है, जो निगरानी में संभव नहीं है, इसलिए, प्रार्थना-पत्र पर विचार किया जा सकता है।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य: 2009 (2) एससीसी 370 और प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और अन्य: (1977) एससीसी 551 के मामले

में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया है और यह विचार व्यक्त किया है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक प्रार्थना-पत्र समान रूप से सुनवाई योग्य है, जिसमें फैमिली कोर्ट द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई है।

6. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता ने तथ्य प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1984 की धारा 19 के प्रकाश में, जिसे सीआरपीसी की धारा 396 के साथ पढ़ा जाता है, अधिनियम, 1984 की धारा 19 में प्रदान किए गए प्रावधान को छोड़कर, परिवार न्यायालय के किसी भी निर्णय, आदेश या डिक्री से किसी भी न्यायालय में कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं किया जाएगा। उन्होंने यह भी बताया कि इसी निर्णय/आदेश दिनांक 03.03.2023 के खिलाफ, वादी/विपरीत पक्ष संख्या 2 ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3148/2023 दायर किया है, जो इस उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है। इसलिए, यह प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य नहीं है और आवेदक के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय आपराधिक पुनरीक्षण दायर करना है। उन्होंने उत्तराखंड उच्च न्यायालय के फैसले आपराधिक मामला प्रार्थना-पत्र (सी-482) संख्या 434/2018 : आशु धीमान बनाम श्रीमती ज्योति धीमान, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के आपराधिक मामला संख्या 60364/2022 : राजेंद्र कुमार बनाम श्रीमती रुखमणी बिसेन पर भरोसा जताया।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है, रिकॉर्ड के साथ-साथ उन निर्णयों का भी



अध्ययन किया है जिन पर भरोसा किया गया है।

8.वर्तमान मामले में, इस न्यायालय को यह निर्णय लेना है कि क्या परिवार न्यायालय द्वारा पारित अंतिम आदेश के खिलाफ, अधिनियम, 1984 की धारा 19 के तहत प्रदान किए गए आपराधिक पुनरीक्षण दायर करने के बजाय, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य है या नहीं।

9.मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि, वादी/प्रतिवादी संख्या 2 ने रखरखाव के भुगतान के लिए सीआरपीसी की धारा 125 के तहत मामला दर्ज किया है, जिसे आंशिक रूप से दिनांक 03.03.2023 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। चूंकि दोनों पक्ष उक्त आदेश से असंतुष्ट हैं, इसलिए, वादी/प्रतिवादी संख्या 2 ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3148/2023 को दाखिल किया गया है, जबकि, याचिकाकर्ता/आवेदक ने उसी आदेश को चुनौती देते हुए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान प्रार्थना-पत्र को दाखिल किया है।

10.आवेदक की अधिवक्ता सुश्री श्रुति मालवीय ने **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

11.उपर्युक्त निर्णय के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से साफ है कि निर्विवाद रूप से, न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रार्थना-पत्र पर विचार कर सकता है, लेकिन उस पर विचार करते समय उसे यह देखना होगा कि

क्या मामला सिविल प्रकृति का है और इसे आपराधिक अपराध का जामा दिया गया है या न्याय का घोर उल्लंघन या अधिकार क्षेत्र की कमी है। न्यायालय द्वारा यह भी व्यक्त किया गया है कि इस धारा के तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग संयम से, सावधानीपूर्वक और एहतियात के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी जब इस तरह के अभ्यास को अनुभाग में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है।

1. उन्होंने **प्रभु चावला (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

"10 पहला सवाल यह है कि क्या धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को हटा दिया जाता है जब धारा 397 के तहत पुनरीक्षण शक्ति अधिव्याप्त होती है। धारा 482 के शुरुआती शब्द इस विवाद का खंडन करते हैं क्योंकि संहिता की कोई भी बात, यहां तक कि धारा 397 भी धारा 482 की भाषा द्वारा इतने शब्दों में संरक्षित अंतर्निहित शक्ति के आयाम को प्रभावित नहीं कर सकता है। फिर भी, एक सामान्य सिद्धांत विधि की इस शाखा में व्याप्त है जब एक विशिष्ट दृष्टिकोण बनाया जाता है: अंतर्निहित शक्ति का आसान सहारा सम्मोहक परिस्थितियों को छोड़कर सही नहीं है। ऐसा नहीं है कि अधिकार क्षेत्र का

अभाव है, लेकिन अंतर्निहित शक्ति को उसी संहिता के तहत विशिष्ट शक्ति के लिए अलग किए गए क्षेत्रों पर आक्रमण नहीं करना चाहिए।

मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में इस न्यायालय ने विस्तृत रूप से और, अगर मैं बहुत सम्मान के साथ ऐसा कह सकता हूँ, गलती से परे कानून पर सही ढंग से चर्चा की और उसका चित्रण किया है। हालाँकि यह सच है कि धारा 482 व्यापक है, लेकिन इसे उसी संहिता में लिखे गए कानूनी अंतर्विरोधों को खत्म नहीं करना चाहिए, उदाहरण के लिए, धारा 397(2) में, दो प्रावधानों के बीच कुछ स्थितियों में स्पष्ट विरोधाभास उत्पन्न हो सकता है और एक सुखद समाधान यह होगा कि धारा 397 की उप-धारा (2) में प्रदान की गई रोक केवल उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग में संचालित होती है, जिसका अर्थ है कि उच्च न्यायालय के पास किसी अंतर्वर्ती आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की कोई शक्ति नहीं होगी। फिर ऊपर बताए गए एक या अन्य सिद्धांतों के अनुसार, अंतर्निहित शक्ति काम में आएगी, पीड़ित पक्ष की शिकायत के निवारण के लिए संहिता में कोई अन्य प्रावधान नहीं है। लेकिन फिर, यदि विवादित आदेश पूरी तरह से अंतर्वर्ती प्रकृति का है, जिसे 1898 संहिता के तहत उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति के

प्रयोग में ठीक किया जा सकता है, तो उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने से इंकार कर देगा। लेकिन यदि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से ऐसी स्थिति लाता है जो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना नितांत आवश्यक है, तो धारा 397(2) में निहित कुछ भी नहीं हो सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को सीमित करना या प्रभावित करना। लेकिन ऐसे मामले इक्का-दुक्का ही होंगे। उच्च न्यायालय को अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित ढंग से करना चाहिए। ऐसा ही एक मामला अवैध रूप से, उत्पीड़नात्मक तरीके से या अधिकार क्षेत्र के बिना शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की आवश्यकता होगी। संक्षेप में, जहां अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति अदालत के अधिकार क्षेत्र को लागू करती है, वहां अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। समय सीमा आत्म-अवरोध है, इससे अधिक कुछ नहीं। विधि की नीति स्पष्ट है कि शुद्ध और सरल अंतर्वर्ती आदेशों को उच्च न्यायालय तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक मुकदमेबाजी और देरी हो। दूसरी ओर, अंतिम आदेश स्पष्ट रूप

से अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके विचार किए जाने में सक्षम हैं, अगर स्पष्ट अन्याय अदालत के सामने आता है। बीच में एक टर्शियम क्विड है, जैसा कि उंटवालिआ, जे० ने उदाहरण के लिए बताया है, जहां यह पूरी तरह से अंतर्वर्ती आदेश से अधिक और अंतिम निस्तारण से कम है। वर्तमान मामला उस श्रेणी में आता है जहां आरोपी अदालत की प्रक्रिया के माध्यम से उत्पीड़न की शिकायत करते हैं। क्या हम बता सकते हैं कि इस तीसरी श्रेणी में अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है? उंटवालिआ जे० के शब्दों में: (एससीसी पृष्ठ 556, पैरा 10) उत्तर स्पष्ट है कि बार न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और/या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए काम नहीं करेगा। किसी पीड़ित पक्ष द्वारा दायर याचिका का लेबल महत्वहीन है। उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों के तहत उचित मामले में मामले की जांच कर सकता है। वर्तमान मामला निस्संदेह 1973 संहिता की धारा 482 के अनुसार उच्च न्यायालय की शक्ति के प्रयोग के अंतर्गत आता है, यहां तक कि यह मानते हुए भी कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति को लागू करना अस्वीकार्य है। इसलिए, "मेरे विचार में यह स्पष्ट है कि हमारे सामने मौजूद मामले में अंतर्निहित शक्ति का खंडन नहीं किया जाता है। दोनों पक्षों

के अधिवक्ताओं ने वैधता के प्रति हमारी तीव्रग्राहिता पर संवेदनशीलता से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सही सहमति व्यक्त की कि समाप्ति के तहत आदेश की एक प्रति औपचारिक रूप से दायर करने पर तीव्र आग्रह को इस अदालत का समय लेने की आवश्यकता नहीं है। हमारा निष्कर्ष दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की सहमति से संतुष्ट है कि केवल इसलिए कि अदालत में रिकॉर्ड में मौजूद होने के बावजूद आदेश की एक प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है, मेरे लिए यह मानना संभव नहीं है कि संपूर्ण पुनरीक्षण शक्ति विफल है और अंतर्निहित शक्ति कुंठित हो गयी।" हमारे विचार में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति से संबंधित मुद्दे के संबंध में विधि को और अधिक समझाने का कोई भी प्रयास अनुचित है। हम बस यह दोहराएंगे कि धारा 482 एक गैर-अस्थिर खंड से शुरू होती है जिसमें कहा गया है: "इस संहिता में कुछ भी ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा जो किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।" इस संहिता के तहत, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए।" एक

फोर्टियोरी के रूप में, ऐसे संपूर्ण क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है, जहां, माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के शब्दों में, "न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को तीव्र करती है। सीमा आत्म-संयम है, इससे अधिक कुछ नहीं।" हम समर्थन में एक और कारण जोड़ने का साहस करते हैं। चूंकि धारा 397 सीआर.पी.सी. अंतर्वर्ती के अलावा अन्य सभी आदेशों के विरुद्ध लागू होता है, एक विपरीत दृष्टिकोण सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों की उपलब्धता को सीमित कर देगा। केवल छोटे-मोटे वार्तात्मक आदेशों के लिए! यह स्थिति पूरी तरह से अनुचित और अवांछनीय है।

हमारी सुविचारित राय में उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश को धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त) और अन्य पहले के मामलों के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का पालन करना चाहिए था, जिनका हवाला दिया गया था, लेकिन फैसले को दायर करते हुए उन्हें गलत तरीके से नजरअंदाज कर दिया गया था। संजय भंडारी (उपरोक्त) के मामले में उस न्यायालय ने एसबी आपराधिक विविध याचिका संख्या 289/2006 में

05.02.2009 को एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किया था, जो कि विशेष अनुमति याचिका संख्या 4744/2009 से उत्पन्न संबंधित आपराधिक अपील में लगाया गया है। परिणामस्वरूप, दोनों अपीलें, एक प्रभु चावला द्वारा पसंद की गईं और दूसरी जगदीश उपासने और अन्य को दायर किया गया और स्वीकार किया गया। राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 02.04.2009 के सामान्य आदेश को रद्द कर दिया गया है और सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिकाओं की नए सिरे से सुनवाई के लिए मामलों को ऊपर बताए गए विधि के आलोक में और विधि के अनुसार निपटान के लिए, उच्च न्यायालय में वापस भेज दिया गया है। चूंकि मामले लंबे समय से लंबित हैं, इसलिए उच्च न्यायालय से अधिमानतः छह महीने के भीतर मामलों की शीघ्रता से सुनवाई और निर्णय लेने का अनुरोध किया जाता है।

13. उपरोक्त मामले में इस मुद्दे से निपटते हुए, उच्चतम न्यायालय ने धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा किया है, न्यायालय ने यह बहुत स्पष्ट कर दिया है कि हालांकि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य है, लेकिन एक बहुत ही विशेष परिस्थिति में अवैध रूप से या अधिकार क्षेत्र के बिना शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही जैसी है। न्यायालय ने

आगे स्पष्ट किया है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का उपयोग उस स्थिति में किया जा सकता है जब न्यायालय के सामने स्पष्ट अन्याय होता है।

14 जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, इसमें कुछ भी असाधारण परिस्थिति नहीं है और केवल निवेदन यह है कि आवेदक कुछ तथ्यात्मक मुद्दों को उठाना चाहता है, जिन पर पुनरीक्षण में विचार नहीं किया जा सकता है, इसलिए, न्यायालय आवेदक की सुविधा के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रार्थना-पत्र पर विचार कर सकता है, जो **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के साथ-साथ **प्रभु चावला (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या के प्रकाश में स्वीकार्य नहीं है।

15.सीआरपीसी की धारा 125 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए, अधिनियम, 1984 में प्रक्रिया प्रदान की गई है और संबंधित प्रावधान अधिनियम, 1984 की धारा 19 है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

**“19. अपील -** (1) उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी परिवार न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या आदेश की, जो अन्तर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील उच्च

न्यायालय में तथ्यों और विधि, दोनों के संबंध में होगी।

(2) परिवार न्यायालय द्वारा पक्षकारों की सहमति से पारित [किसी डिब्री या आदेश की या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश की कोई अपील नहीं होगी :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात परिवार न्यायालय (पुनरीक्षण) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ के पूर्व किसी उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित किसी अपील या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश पर लागू नहीं होगी।]

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, किसी परिवार न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी।

(4) उच्च न्यायालय, स्वप्रेरणा से या अन्यथा, ऐसी किसी कार्यवाही का, जिसमें उसकी अधिकारिता के भीतर स्थित परिवार न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कोई आदेश पारित किया है, अभिलेख, उस आदेश को, जो अन्तर्वर्ती आदेश न हो, तथ्यता, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसी कार्यवाही की नियमितता के

बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है।]

(5)जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय, किसी परिवार न्यायालय के किसी निर्णय, आदेश या डिक्री की किसी न्यायालय में कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा।

(6) उपधारा (1) के अधीन की गई किसी अपील की सुनवाई दो या अधिक न्यायाधीशों से मिलकर बनी किसी न्यायपीठ द्वारा की जाएगी।

16.अधिनियम, 1984 की धारा 19 में स्पष्ट रूप से केवल परिवार न्यायालय के आदेश या डिक्री के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण का प्रावधान है। विधि में तय है कि विशेष विधि सामान्य विधि पर प्रभावी होगा। इसलिए, अधिनियम, 1984 की धारा 19 के तहत प्रावधान के प्रकाश में, आवेदक के सामने एकमात्र उपाय धारा 397 सीआरपीसी के तहत पुनरीक्षण दायर करना है, यदि मामला **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के साथ-साथ **प्रभु चावला (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए अपवादों के भीतर नहीं आता है।

17.इसी तरह का मामला उत्तराखंड उच्च न्यायालय के समक्ष **आशु धीमान (उपरोक्त)** में था और न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:

"17. अंतर्वर्ती आदेश की परिभाषा और पूर्व निर्णय के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि सीआरपीसी की धारा 125 की उपधारा (1) के प्रावधानों के तहत लंबित कार्यवाही के दौरान भरण-पोषण के लिए एक प्रार्थना-पत्र को खारिज करने या अनुमति देने का आदेश एक अंतरिम आदेश नहीं है जो कुछ हद तक पार्टियों के अधिकारों का फैसला करता है। सीआरपीसी की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण सुनवाई योग्य है। यह माना गया है कि ऐसा आदेश इस न्यायालय के पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी है। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां प्रकृति में अंतर्निहित हैं और इसका उपयोग वहां किया जा सकता है जहां सीआरपीसी के तहत अपील और पुनरीक्षण का वैधानिक उपाय उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार, ऊपर दर्ज निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए कि इस तरह के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण सुनवाई योग्य है, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य नहीं होगा। विवाद से निपटने के लिए इस न्यायालय द्वारा तैयार किए गए मुख्य मुद्दे का तदनुसार उत्तर दिया जाता है। चूंकि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदकों द्वारा दायर आपराधिक गलत प्रार्थना-पत्र सुनवाई योग्य नहीं हैं, इसलिए आवेदकों को सलाह दिए जाने पर पुनरीक्षण दायर करने के उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता होगी।

18.यह मुद्दा **राजेंद्र कुमार (उपरोक्त)** में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः विषय वस्तु था और न्यायालय का दृष्टिकोण फिर से वही था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:

"18. उपरोक्त कानूनी स्थिति पर विचार करते हुए, मेरा विचार है कि गुजारा भत्ता का आदेश किसी व्यक्ति के अधिकार को काफी हद तक प्रभावित करता है, इसलिए, इसे अंतर्वर्ती आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है और परिवार न्यायालय द्वारा अंतरिम भरण-पोषण के लिए प्रार्थना-पत्र पर पारित आदेश के खिलाफ परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 19(4) के तहत आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया जाना चाहिए।

19.इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ ऊपर चर्चा किए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान प्रार्थना-पत्र इस तथ्य के साथ सुनवाई योग्य नहीं है कि 03.03.2023 के उसी आदेश के खिलाफ विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3148 आफ 2023 इस न्यायालय के समक्ष लंबित है।

20.तदनुसार, प्रार्थना-पत्र को पोषणीयता के आधार पर खारिज कर दिया गया है।

21.कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति रिकॉर्ड पर

रखने के बाद आवेदक के अधिवक्ता को वापस करे।

-----  
(2023) 9 ILRA 1045

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 24945

वर्ष 2023

राम कुमार

...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्ष

प्रार्थी के अधिवक्ता:

श्री सत्य प्रकाश चतुर्वेदी

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 344 और 482 - भारत का संविधान,

1950 - अनुच्छेद 226 - झूठे साक्ष्य के लिए

कार्यवाही को रद्द करना - प्रार्थी, एक सरकारी

शिक्षक और अपने पिता द्वारा दर्ज की गई

एफआईआर के लिए तहरीर लेखक, ने धारा

344 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही को रद्द

करने की मांग की, जिसमें संज्ञान आदेश

दिनांक 12.01.2023 और नोटिस दिनांक

18.05.2023 शामिल है, जो एक सत्र परीक्षण

से उत्पन्न हुआ था जहां आरोपियों को बरी

कर दिया गया था। प्रार्थी पर झूठे साक्ष्य देने

का आरोप लगाया गया था, लेकिन उसने तर्क दिया कि वह एक औपचारिक गवाह था, घटना के समय मौजूद नहीं था, और उसने केवल तहरीर को लिखवाया था। न्यायालय ने माना कि विचारण न्यायालय का आदेश दिनांक 03.11.2022 महिला विनोद कुमारी के तहत अनिवार्य शर्तों का पालन करने में विफल रहा, जिसमें यह स्पष्ट राय की आवश्यकता थी कि गवाह ने जानबूझकर गलत साक्ष्य दिया और न्याय के हित में संक्षिप्त सजा आवश्यक थी। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला जिससे यह सिद्ध हो कि प्रार्थी ने जानबूझकर झूठे बयान दिए। इन शर्तों का पालन न करने के कारण, आक्षेपित आदेश और कार्यवाही बरकरार रहने योग्य नहीं थी, जो प्रक्रिया का दुरुपयोग है। प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है, कार्यवाही, संज्ञान आदेश और नोटिस रद्द किए जाते हैं। (पैरा 6-8 )

**प्रार्थना पत्र स्वीकृत।**

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. ललित कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 मुकदमा (सभी) 2058
2. संजय बाबूराव गिते बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2017 मुकदमा (बॉम) 2798
3. महिला विनोद कुमारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [2008] 10 एससीआर 869
4. नारायणस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 2 एससीसी 182

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा पारित)

आवेदक के विद्वान वकील श्री सत्य प्रकाश चतुर्वेदी और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह आवेदन आवेदक द्वारा आपराधिक विविध मामले संख्या 1/ 2023 (यूपी राज्य बनाम विजय सिंह और अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के साथ-साथ संज्ञान आदेश 12.01.2023 और नोटिस दिनांक 18.5.2023 जो निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2022 से उत्पन्न हुआ है, जो एसटी नंबर 38/2018 (राज्य बनाम नारायणदास कुशवाह और अन्य) धारा 344 सीआरपीसी के तहत, पुलिस स्टेशन नदीगांव, जिला जालौन और जो विद्वान विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी एक्ट, उरई - जालौन के समक्ष विचाराधीन है को रोकने के लिए दायर किया गया है।

मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि आवेदक प्राथमिक विद्यालय में पदस्थ सरकारी शिक्षक है। आवेदक के पिता दुर्गा प्रसाद ने 20.10.2018 को नारायण दास कुशवाहा, सुरतन सिंह और लाखन सिंह के खिलाफ धारा 306 आईपीसी और 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम, के तहत पुलिस स्टेशन नदीगांव, जिला जालौन में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। आवेदक अपने पिता और ग्रामीणों द्वारा बोली गई तहरीर का लेखक है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आवेदक को मोबाइल फोन से सूचना मिली



कि उसकी मां ने रात में नारायण दास कुशवाहा के घर के सामने आत्महत्या कर ली है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और संबंधित जांच अधिकारी द्वारा बयान दर्ज किए गए थे। यह भी कहा गया कि अदालत ने मामले के संपूर्ण तथ्यों की जांच करने के बाद आरोपियों को दोषी नहीं पाया और आरोपियों को दोषमुक्त कर दिया गया। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक पर अदालत में झूठे साक्ष्य उपलब्ध कराने का आरोप लगाया गया है और उसे सीआरपीसी की धारा 344 के तहत कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है। निवेदन यह है कि आवेदक घटना का मात्र एक औपचारिक गवाह है। वह न तो घटना की तारीख और स्थान पर मौके पर मौजूद था और न ही वह कथित घटना का चश्मदीद गवाह है। निवेदन यह है कि प्रार्थी ने केवल वही तहरीर लिखी है जो उसके पिता दुर्गा प्रसाद व ग्रामीणों ने कही है। तर्क यह है कि यदि आवेदक के खिलाफ कार्यवाही जारी रहने दी गई तो इसके परिणामस्वरूप कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

आवेदक के विद्वान वकील ने अपनी दलीलों की सत्यता प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:-

(i) ललित कुमार शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2009 मुकदमा (सभी) 2058

(ii) संजय बाबूराव गिते बनाम महाराष्ट्र राज्य 2017 मुकदमा (बीओएम) 2798

इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने आवेदक के वकील द्वारा की गई दलीलों का विरोध किया है, लेकिन उपरोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं कर सके।

शीर्ष अदालत ने महिला विनोद कुमारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य [2008] 10 एस सी आर 869 के मामले में धारा 344 सीआरपीसी के तहत आरोपियों को तलब करने के संबंध में दिशानिर्देश तय किए हैं। :-

“2.1. सीआरपीसी की धारा 344 को अधिनियमित करने का उद्देश्य अधिक गंभीर मामलों से निपटने के लिए न्यायालय को एक हथियार से लैस करना प्रतीत होता है, न कि पहले से ही उसके कब्जे में मौजूद हथियार को छीन लेना। प्रावधान को लागू करने में अंतर्निहित विधायिका का उद्देश्य यह है कि झूठी गवाही और साक्ष्य गढ़ने की बुराई को खत्म करना और इसे अब बेहतर तरीके से हासिल किया जा सकता है क्योंकि ऐसे मामलों में धारा 340(1) का सहारा लेने के लिए अदालतें खुली हैं जिनमें सीआरपीसी की धारा 344 के तहत कार्रवाई करने में विफल रहे हैं”

2.2. संहिता की धारा 344/ के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को निर्णय या अंतिम आदेश सुनाते समय सबसे पहले इस आशय की राय व्यक्त करनी चाहिए कि उसके समक्ष गवाह ने या तो जानबूझकर झूठे साक्ष्य दिए हैं या ऐसे साक्ष्य गढ़े हैं। दूसरी शर्त यह है कि न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि न्याय के हित में संबंधित गवाह को उस अपराध के लिए संक्षेप में दंडित किया

जाना चाहिए जो गवाह द्वारा किया गया प्रतीत होता है। और तीसरी शर्त यह है कि सजा के लिए संक्षिप्त सुनवाई शुरू करने से पहले गवाह को यह कारण बताने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए कि उसे इतनी सजा क्यों नहीं दी जानी चाहिए। ये सभी शर्तें अनिवार्य हैं। प्रावधान का उद्देश्य झूठी गवाही की बुराई से संक्षेप में निपटना है। [नारायणस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 2 एससीसी 182]

2.3. झूठी गवाही की बुराई ने मौखिक साक्ष्य के आधार पर मामलों में चिंताजनक स्थिति पैदा कर दी है और इस समस्या से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए अदालतों के लिए इस प्रावधान का वर्तमान की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से और बार-बार उपयोग करना वांछनीय है।"

विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदक को नोटिस जारी करते हुए दिनांक 03.11.2022 को आदेश पारित किया है। आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

" अभियोजन सीक्षीगण पी० डब्लू ०२ विजय सिंह, पी० डब्लू ०३ सोवरन सिंह, पी० डब्लू०४ रामकुमार, पी० डब्लू०५ धर्मन्द्र सिंह द्वारा विवेचक को दिए गए धरा १६१ द० प्र० सं० के बयान के विरुद्ध न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत की गयी है। अतः साक्षीगण उपरोक्त के विरुद्ध आपराधिक वाद अन्तर्गत धारा ३४४ द० प्र० सं० पंजीकृत कर कारण बताओ नोटिस जारी किया जाये कि क्यों न न्यायालय में मिथ्या साक्ष्य देने हेतु दंडित किया जाये?

मामले के संपूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों के साथ-साथ गवाहों के बयानों को ध्यान में रखते हुए ऐसा नहीं लगता है कि आवेदक ने जानबूझकर गलत बयान दिया है। वह तो महज एक तहरीर लेखक थे। उन्होंने कथित घटना देखी भी नहीं है। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय शर्त संख्या 1 और 2 का अनुपालन नहीं किया गया है। इस आशय की कोई राय नहीं है कि उसके समक्ष संबंधित गवाहों ने या तो जानबूझकर झूठे साक्ष्य दिए हैं या ऐसे साक्ष्य गढ़े हैं और न ही अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि न्याय के हित में संबंधित गवाहों को उस अपराध के लिए संक्षेप में दंडित किया जाना चाहिए जो प्रतीत होता है कि गवाहों द्वारा किया गया है। इसलिए महिला विनोद कुमारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (सुप्रा) के फैसले में दी गई दोनों शर्त संख्या 1 और 2 का अनुपालन नहीं किया गया है। इस प्रकार, विवादित आदेश कानून की दृष्टि में टिकाऊ नहीं है। अतः आवेदन स्वीकार किये जाने योग्य है।

इसलिए आवेदन स्वीकार किया जाता है और आक्षेपित संज्ञान आदेश दिनांक 12.01.2023 और नोटिस दिनांक 18.5.2023 के साथ-साथ धारा 344 सीआरपीसी के तहत, पुलिस स्टेशन नदीगांव, जिला जालौन, के सेशनस्ट्रियल नंबर 38/ 2018 से उत्पन्न आपराधिक विविध मामले संख्या 1/2023 की पूरी कार्यवाही (राज्य बनाम नारायणदास कुशवाह एवं अन्य) को एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

-----

(2023) 9 ILRA 1048

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आपराधिक प्रकीर्ण द्वितीय जमानत आवेदन

संख्या 16871 वर्ष 2023

के साथ

आपराधिक प्रकीर्ण द्वितीय जमानत आवेदन

संख्या 27375 वर्ष 2023

के साथ

आपराधिक प्रकीर्ण द्वितीय जमानत आवेदन

संख्या 29855 वर्ष 2021

के साथ

आपराधिक प्रकीर्ण द्वितीय जमानत आवेदन

संख्या 29718 वर्ष 2023

भंवर सिंह उर्फ करमवीर

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रार्थी

...विपक्षी

प्रार्थी के अधिवक्ता:

श्री ब्रतेन्द्र सिंह

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-

धारा 439 - भारत का संविधान, 1950-

अनुच्छेद 21 --- विचारणों में देरी के कारण

अभियुक्तों की लंबी कैद भारत के संविधान के

अनुच्छेद 21 के तहत अभियुक्तों की मौलिक

स्वतंत्रता की गारंटी का उल्लंघन करती है, जब

अभियुक्त की कोई गलती के बिना विचारण में अत्यधिक देरी हो जाती है। शीघ्र सुनवाई का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से निकलने वाला एक मौलिक अधिकार है --- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का अध्याय VI अभियुक्त और गवाहों को मुकदमे में भाग लेने के लिए मजबूर करने की प्रक्रिया प्रदान करता है। द.प्र.स. के अध्याय VI के प्रावधान अभियुक्त और गवाहों की उपस्थिति को मजबूर करने के लिए कठोर उपायों की एक क्रमिक प्रक्रिया पर विचार करते हैं। प्रक्रिया समन जारी करने के साथ शुरू होती है जिसके बाद जमानती वारंट जारी किया जाता है। गैर-जमानती वारंट जारी करके उपायों को बढ़ाया जाता है। प्रक्रिया के अंतिम चरण उद्घोषणा और कुर्की हैं - पुलिस प्राधिकारियों द्वारा समन तामील कराने या जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट तामील करने में विफलता को विधि और न्यायालय दोनों ही संदेह की दृष्टि से देखते हैं - संहिता के तहत न्यायालयों को समन तामील करने या जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट तामील करने में विफल रहने वाले पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध दंडात्मक कार्यवाही करने का अधिकार दिया गया है। (पैरा 12, 17, 24, 25 और 51)

जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। (ई-15)

उद्धृत वादों की सूची:

1. गुडीकांति नरसिम्हलु एवं अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय (1978) 1 एससीसी 240

2. मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 915/2023

3. हुसैनारा खातून एवं अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य 1980 (1) एससीसी 81

4. अनिल गौड़ उर्फ सोनू उर्फ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश (आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 16961/2022, 2022 एससीसी ऑनलाइन सभी 623

5. अजीत चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 एससीसीऑनलाइन सभी 17

6. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 (6) एडीजे 511

7. मोनीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 55026/2021

8. जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 9126/2023

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा पारित)

1. सभी संबंधित मामलों में विचार के लिए उठने वाला मुद्दा उत्तर प्रदेश राज्य की आपराधिक कानून प्रक्रिया में एक आवर्ती विषय बन चुका है, और इस न्यायालय के समक्ष आने वाले जमानत आवेदनों में नियमित रूप से प्रकट हो रहा है। समन तामील करने और न्यायालय द्वारा जारी

की गई बलपूर्ण प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करने में पुलिस की विफलता, और इससे अभियुक्त के स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार एवं जमानत के अधिकार के निष्पक्ष वितरण पर होने वाले प्रभाव इन मामलों में प्रत्यक्ष रूप से उठ रहे हैं जिन्हें सीधे तौर पर संबोधित किया जाना चाहिए। विद्वान विचारण न्यायालयों द्वारा भेजी गई स्टेटस रिपोर्ट्स से पता चलता है कि मुकदमों में देरी इसलिए हो रही है क्योंकि पुलिस ने समन की पेशी, एवं मुकदमे की नियत तारीख पर न्यायालय में गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित कराने हेतु न्यायालय द्वारा जारी किए गये बलपूर्ण निर्देशों का निष्पादन समय से नहीं किया। उन स्थिति रिपोर्टों को रिकॉर्ड का हिस्सा बनाया जाता है।

2. जमानत का अधिकार दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 से प्राप्त होता है।

3. संविधान के लागू होने और संवैधानिक विधि के विकास के साथ, जमानत का वैधानिक क्षेत्र संवैधानिक क्षेत्राधिकार में आ गया।

4. जमानत का अधिकार विधि से प्राप्त होता है, लेकिन इसे संवैधानिक निगरानी से नहीं हटाया जा सकता।

5. अभियुक्त का जमानत मांगने का अधिकार भारत के संविधान द्वारा सुनिश्चित कराए गये मौलिक अधिकारों के परिपेक्ष्य में पुख्ता प्राधिकार द्वारा काफ़ी पहले ही स्थापित किया जा चुका है।

6. गुडिकंती नरसिम्हुलु एवं अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्रा प्रदेश उच्च न्यायालय के वाद में जमानत न्यायशास्त्र को संवैधानिक मौलिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में दृढ़ता से अंतर्निहित कर दिया गया था। अपने ओजस्वी भाषण के ज़रिये कानून के एक स्थायी सिद्धांत को रूप देते हुए न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने कहा:

1. “मुकदमा शुरू होने से पहले या दोषी करार दिये जाने के बाद के चरणों में “जमानत या जेल?” का प्रश्न आपराधिक न्याय प्रणाली के धुंधले क्षेत्र में आता है और काफी हद तक न्यायपीठ के झुकाव पर निर्भर करता है, जिसे दूसरे शब्दों में न्यायिक विवेक भी कहा जाता है। संहिता इस विषय पर गूढ़ है और न्यायालय शांत रहना पसंद करता है, भले ही आदेश हिरासत के पक्ष में हो या नहीं। फिर भी मुद्दा स्वतंत्रता, न्याय, जनता की सुरक्षा, और राजकीय कोष पर पड़ने वाले बोझ का है, जो इस बात पर जोर देते हैं कि जमानत का परिपक्व विधिदर्शन एक सामाजिक रूप से संवेदनशील न्यायिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इस उच्चतम न्यायालय में चैंबर जज होने के नाते मुझे मुकदमों के इस अव्यवस्थित प्रवाह से निपटना है, और इस लम्बी सूची के प्रति मेरी तदर्थ प्रतिक्रिया होती है देर रात तक काम करना। इसलिए बेहतर होगा कि मुद्दे का निपटारा किसी बुनियादी सिद्धांत के आधार पर किया जाए, न कि विवेक का रूप धर कर बैठी मौक़े पर सौंची गई संक्षिप्तता के आधार पर। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जमानत न मिलने पर जिसका हनन हो जाता है, अनुच्छेद 21 के तहत मान्यता प्राप्त हमारी संवैधानिक प्रणाली

का एक बहुमूल्य आदर्श है जिससे वंचित करने की न्यायिक शक्ति एक गहरे भरोसे के तहत मिली है, जिसे आकस्मिक नहीं बल्कि न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए, व्यक्ति और समुदाय पर पड़ने वाली उसकी कीमत के प्रति जीवंत चिंता रखते हुए। प्रभाव जमाने वाले आदेशों को विवेक आधारित कह कर महिमांडित करना, कभी कभी मुकदमेबाज़ी के जुए के दांव को मौलिक अधिकारों पर निर्णायक बना सकता है। आखिरकार, किसी अभियुक्त या दोषी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता मौलिक है, जिस पर केवल "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के तहत ही वैधानिक ग्रहण लगाया जा सकता है। अनुच्छेद 21 के अंतिम चार शब्द उस मानवाधिकार के प्राण हैं।”

7. अनुच्छेद 21 के तहत आश्वसित संवैधानिक स्वतंत्रता और एक विचाराधीन कैदी के जमानत के वैधानिक अधिकार के मध्य होने वाली परस्पर क्रिया की पुष्टि अभी हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने मोहम्मद मुस्लिम उर्फ हुसैन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) के वाद में की थी।

8. जमानत विधिशास्त्र में मौलिक अधिकारों को संलग्न करना संवैधानिक विधि में निरंतर रहा है।

9. जमानत आवेदन की जांच करते समय न्यायालय को अभियुक्त की संवैधानिक स्वतंत्रता की आवश्यकता, अपराधी के साथ निष्पक्ष और त्वरित न्याय करने की अनिवार्यता, और विधि का पालन करने का अधिदेश जैसे विभिन्न उद्देश्यों को संतुलित

कर उनका आपस में सामंजस्य बिठाना पड़ता है।

10. जमानत के मापदंड न्यायिक पूर्व-निर्णय एवं न्यायिक प्रथाओं द्वारा अच्छी तरह तय किए जा चुके हैं, और उपरोक्त लक्ष्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त करते हैं।

11. जमानत देने के कुछ निर्धारित मापदंडों में अपराध की प्रकृति एवं गंभीरता, एवं अभियुक्त के उस अपराध का दोषी होने की संभावना शामिल है। जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय अभियुक्त द्वारा पुनः अपराध करने, गवाहों को प्रभावित करने एवं सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने, या फ़रार हो जाने के जोखिम जैसे प्रासंगिक कारकों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

12. मुकदमे में देरी के कारण अभियुक्त को लंबे समय तक कारावास में रखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अभियुक्त की आश्वासित मौलिक स्वतंत्रता का उल्लंघन है, जब मुकदमे में अत्यधिक देरी होने के पीछे अभियुक्त की कोई गलती नहीं होती। त्वरित सुनवाई का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से प्राप्त एक मौलिक अधिकार है। [हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य देखें]

13. त्वरित सुनवाई का अधिकार संवैधानिक विधि का अधिदेश है। मुकदमों में देरी होना न्याय प्रणाली की वास्तविकता है।

14. तदानुसार, न्यायालय जमानत आवेदनों पर निर्णय लेते समय आरोपी की हिरासत में रहने की अवधि और मुकदमे की स्थिति को भी परखता है। (मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन (उपर देखें)। इसके अलावा, मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, न्याय दिलाने हेतु विचारण न्यायालय को मुकदमे में तेजी लाने के निर्देश जारी करना भी स्वीकृत न्यायिक अभ्यास है। उक्त मानदंड और जमानत क्षेत्राधिकार प्रयोग करने के तरीके संविधान की इबारत में अंतर्निहित संवैधानिक मूल्यों और संवैधानिक विधि द्वारा विकसित मूल्यों के अनुरूप हैं। इस प्रक्रिया में न्यायालय अभियुक्त के त्वरित सुनवाई के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति कराते हैं, और जमानत क्षेत्राधिकार में निष्पक्ष न्याय प्रदान करते हुए विधि का शासन बरकरार रखते हैं।

15. कैदी की स्वतंत्रता और जमानत क्षेत्राधिकार में न्याय के निष्पक्ष प्रशासन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले वैधानिक मुद्दे जमानत आवेदन के तथ्यों पर विचारण के दौरान अक्सर सीधे तौर पर उठते हैं। जमानत क्षेत्राधिकार की संकीर्ण व्याख्या को आधार बना कर ऐसे मुद्दों का निर्णय ना करना इस न्यायालय के संवैधानिक दायित्वों का त्याग होगा जिसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय की स्थिति उत्पन्न होगी। इस आख्यान को प्राधिकार का लाभ प्राप्त है। अनिल गौड़ उर्फ सोनू उर्फ सोनू तोमर बनाम उ०प्र० राज्य (आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 16961/2022) के वाद में इस न्यायालय ने द.प्र.सं. की धारा 439 से उत्पन्न जमानत का निर्धारण करते हुए इस न्यायालय के

संवैधानिक क्षेत्राधिकार को निम्नवत सुदृढ़ किया:

प्रक्रिया के अंतिम चरण होते हैं उद्घोषणा और सम्पत्ति की ज़बती।

2. "जमानत निर्धारण में न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते समय ये न्यायालय एक संवैधानिक न्यायालय होने के अपने ओहदे से वंचित नहीं हो जाता। न्यायालय पर उन सभी वैधानिक और संवैधानिक मुद्दों को संबोधित करने का एक संवैधानिक दायित्व होता है जो किसी मामले के तथ्यों में सामने आ कर जमानत का निर्धारण प्रभावित करते हैं।"

18. समन, जमानती वारंट और गैर जमानती वारंट पुलिस अधिकारियों की तरफ निर्देशित किये जाते हैं। समन की तामील, न्यायालय द्वारा जारी किए गए जमानती एवं गैर-जमानती वारंट जैसे अन्य बाध्यकारी उपायों को समयबद्ध रूप से निष्पादित कराना द.प्र.सं. द्वारा पुलिस प्राधिकारियों का दायित्व बनाया गया है।

16. **अजीत चौधरी बनाम उ०प्र० राज्य, जुनैद बनाम उ०प्र० राज्य, एवं मोनीष बनाम उ०प्र० राज्य** का संदर्भ लेना भी यहाँ लाभप्रद होगा जिसमें जमानत आवेदनों में विधि और संवैधानिक स्वतंत्रता के प्रश्न उठे थे। उन मुद्दों का विधिवत निर्धारण किया गया, जिससे न्यायालय को जमानत क्षेत्राधिकार के निष्पक्ष प्रशासन की प्रक्रिया सुव्यवस्थित करने में सहायता मिली।

19. कुछ वैधानिक प्रावधानों का संक्षिप्त सर्वेक्षण आख्यान के लिए लाभकारी होगा।

17. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का अध्याय VI मुकदमों के विचारण में भाग लेने के लिए अभियुक्तों और गवाहों की उपस्थिति बाध्य करने की प्रक्रिया प्रदान करता है। द.प्र.सं. के अध्याय VI में अभियुक्तों और गवाहों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने के लिए दंडात्मक उपायों की एक क्रमिक प्रक्रिया प्राविधानित है। ये प्रक्रिया समन जारी करने से शुरू होती है, जिसके बाद जमानती वारंट जारी किया जाता है। उसके बाद और कठोर कदम उठाते हुए गैर-जमानती वारंट निकाले जाते हैं।

20. द.प्र.सं. की धारा 61 गवाहों को उपस्थित होने का समन जारी करने की शक्ति न्यायालयों में निहित करती है:

"धारा 61. समन का प्रपत्र. किसी न्यायालय द्वारा इस संहिता के तहत जारी किया गया प्रत्येक समन लिखित रूप में, दो प्रतियों में, उस न्यायालय के पीठासीन अधिकारी या ऐसे अन्य अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा जिसे उच्च न्यायालय समय-समय पर नियम द्वारा निर्देशित करेगा, और उस पर न्यायालय की मुहर लगी होगी।"

21. द.प्र.सं. की धारा 62 समन की तामील करने की जिम्मेदारी पुलिस अधिकारियों पर डालती है।

“धारा 62. समन कैसे तामील किया जाए।

(1) प्रत्येक समन की तामील एक पुलिस अधिकारी द्वारा, या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन, समन जारी करने वाले न्यायालय के किसी अधिकारी या अन्य लोक सेवक द्वारा की जाएगी।

(2) यदि साध्य हो तो समन की तामील समन किए गए व्यक्ति पर व्यक्तिगत रूप से की जाएगी, उसे समन की दो प्रतियों में से एक का परिधान या निविदान करके।

(3) यदि समन की तामील करने वाले अधिकारी द्वारा अपेक्षित हो तो प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर इस प्रकार समन तामील किया गया है, समन की दूसरी प्रति के पीछे प्राप्ति हस्ताक्षर करेगा।

22. द.प्र.सं. की धारा 70 वारंट जारी करने की शक्ति न्यायालयों में निहित करती है।

“धारा 70. गिरफ्तारी वारंट का प्रपत्र और अवधि।

(1) किसी न्यायालय द्वारा इस संहिता के तहत जारी किया गया प्रत्येक गिरफ्तारी वारंट लिखित रूप में होगा,

जो उस न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उस पर न्यायालय की मुहर होगी।

(2) ऐसा प्रत्येक वारंट तब तक लागू रहेगा जब तक कि जारी करने वाले न्यायालय द्वारा इसे रद्द नहीं किया जाता, या जब तक इसे निष्पादित नहीं किया जाता।

23. द.प्र.सं. की धारा 72 एवं 74 के तहत वारंट आमतौर पर पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट किए जाते हैं। द.प्र.सं. की धारा 78 के तहत वारंट को निष्पादन के लिए उसे जारी करने वाले न्यायालय के स्थानीय क्षेत्राधिकार के बाहर भी भेजा जा सकता है। द.प्र.सं. की धारा 78 के तहत वारंट पुलिस अधीक्षक या पुलिस आयुक्त या संबंधित कार्यकारी मजिस्ट्रेट को निर्दिष्ट किया जाता है जिसके स्थानीय अधिकार क्षेत्र में इसे निष्पादित किया जाना है। प्रासंगिक प्रावधान यहां नीचे उद्धरित हैं :

“धारा 72. वारंट किसको निर्दिष्ट होंगे।

(1) गिरफ्तारी का वारंट आम तौर पर एक या अधिक पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट होगा; लेकिन यदि इसका तत्काल निष्पादन आवश्यक है और कोई पुलिस अधिकारी तुरंत उपलब्ध नहीं है तो वारंट जारी करने वाला



न्यायालय इसे किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्दिष्ट कर सकता है, और ऐसा व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति इसे निष्पादित करेंगे।

(2) जब कोई वारंट एक से अधिक अधिकारियों या व्यक्तियों को निर्दिष्ट हो तो इसे उन सभी द्वारा, या उनमें से किसी एक या अधिक द्वारा निष्पादित किया जा सकता है।"

24. समन तामील करने या जमानती वारंट या गैर जमानती वारंट निष्पादित करने में पुलिस अधिकारियों की विफलता को कानून और न्यायालयों द्वारा संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है।

25. समन की तामील ना करने या जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट निष्पादित ना करने वाले दोषी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही करने की विधिवत शक्ति न्यायालयों को संहिता द्वारा प्राप्त है।

26. समन की तामील या वारंट के निष्पादन में पुलिस अधिकारियों की विफलता, और आधिकारिक गवाहों की अनुपस्थिति न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराध हैं।

27. द.प्र.सं. के अध्याय 26 में न्याय के प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के संबंध में विस्तृत प्रावधान उपस्थित हैं।

28. भा.द.सं. की धारा 173 में समन या अन्य कार्यवाही की तामील रोकने पर भी सजा का प्रावधान है। इस संबंध में भा.द.सं. की धारा 217 में किसी व्यक्ति को सजा से बचाने या संपत्ति को जब्त होने से बचाने की मंशा से विधि के निर्देश की अवहेलना करने वाले लोक सेवक को दंडित करने का भी प्रावधान है। समन की तामील रोकने या अदालत के सामने पेश ना होने पर सरकारी कर्मचारियों पर लागू होने वाले कुछ प्रावधानों में धारा 345 द.प्र.सं., धारा 349 द.प्र.सं., एवं धारा 350 द.प्र.सं. शामिल हैं। ये प्रावधान परिशिष्ट 1<sup>i</sup> में उद्धरित हैं।

29. इस मामले का एक और पहलू भी है। विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए समन या प्रपीड़क उपाय के आदेशों का अनुपालन ना करना सीधे तौर पर न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है और न्यायालय की अवमानना करता है।

30. लेकिन विधि के अन्तर्गत ऐसी कार्रवाई से मुकदमेबाजी में तीव्र वृद्धि हो जाएगी और बहुमूल्य न्यायिक समय बर्बाद होगा। समस्या इतनी व्यापक है कि हर मामले में दोषी अधिकारियों के खिलाफ आपराधिक या अवमानना कार्यवाही शुरू करने से पुलिस और राज्य के अन्य विभाग भी अत्यधिक एवं परिहार्य मुकदमेबाजी में फंस जाएंगे। इस प्रकार की वैधानिक कार्यवाही पुलिस बल के दुर्लभ संसाधनों को पुलिसिंग, विवेचना, और द.प्र.सं. के तहत वैधानिक कर्तव्यों के निर्वहन के उनके मुख्य कार्यों से दूर कर देगी।

31. उल्लेखनीय है कि सरकारी परिपत्रों के साथ-साथ सामान्य नियम (आपराधिक) भी समन की तामील और न्यायालयों द्वारा जारी अन्य प्रपीड़क उपायों के अनुपालन हेतु अधिकारियों के उत्तरदायित्व के क्षेत्रों की भी व्याख्या करते हैं।

32. परिपत्र संख्या 51/IV-एच-36 दिनांक 10 मार्च, 1977 पुलिस अधीक्षक और पुलिस महानिरीक्षक, उत्तर प्रदेश पर भी उत्तरदायित्व डालता है:

“(b) सामान्य समन पुलिस अधीक्षक के माध्यम से संबंधित थानाधिकारी को तीन दिनों के भीतर भेजा जाना चाहिए। थाना अधिकारी पुलिस अधीक्षक के कार्यालय में समन की प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर उसके अनुपालन की रिपोर्ट सीधे संबंधित न्यायालय को देगा।

(c) पुलिस महानिरीक्षक, उत्तर प्रदेश ने इस संबंध में अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अलग से निर्देश जारी किये हैं। यदि निर्धारित समय के भीतर थानाधिकारी से कोई रिपोर्ट नहीं प्राप्त होती या गवाह के संबंध में गैर-अनुपालन की रिपोर्ट प्राप्त होती है तो अदालत को संबंधित पुलिस अधीक्षक के साथ मामले को तत्काल उठाना चाहिए।”

33. परिपत्र संख्या 65/VIIबी-9 दिनांक 14 जून, 1979, स्थानांतरित पुलिस अधिकारियों

या कर्मचारियों की गवाह के रूप में उपस्थिति सुनिश्चित करने का प्रावधान करता है। इस संबंध में समन जिले के पुलिस अधीक्षक एवं पुलिस उप महानिरीक्षक को निर्दिष्ट होगा:

“स्थानांतरित पुलिस अधिकारियों या कर्मचारियों की गवाह के रूप में उपस्थिति की आवश्यकता वाले समन पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद भेजे जाने के बजाय लोक अभियोजक से उन अधिकारियों या कर्मचारियों का पता मालूम करवाने के बाद संबंधित जिले के पुलिस अधीक्षक को भेजे जाने चाहिए। यदि स्थानांतरित पुलिस अधिकारियों या कर्मचारियों का पता लोक अभियोजक से प्राप्त होना संभव ना हो तो अराजपत्रित पुलिस अधिकारियों का समन स्थानीय पुलिस अधीक्षक को और राजपत्रित पुलिस अधिकारियों का समन सहायक पुलिस महानिरीक्षक, उ०प्र०, लखनऊ को भेजा जाना चाहिए, समन के तामील की व्यवस्था कराने का अनुरोध करते हुए।”

34. न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन ना करना परिपत्र संख्या 42/98 दिनांक: इलाहाबाद: 20/8/1998 में शामिल किया गया है:

“4. यदि पुलिसकर्मी न्यायालय के निर्देशों का पालन नहीं कर रहे हैं तो उनके विरुद्ध न्यायालय की अवमानना अधिनियम के प्रावधान तहत उचित कार्रवाई प्रारंभ की जाए।”

35. परिपत्र क्रमांक 76/प्रशासन (एफ); इला०. दिनांक: 14.12.2007, जो उच्च न्यायालय की विभिन्न सिफारिशों के अनुसरण में जारी किया गया था, समन की तामील में होने वाले विलम्ब को आपराधिक मामलों के निपटारे में होने वाली देरी के मुख्य कारण के रूप में स्वीकार करता है और समन प्रकोष्ठ स्थापित करता है जो प्रत्येक जिले में पुलिस आरक्षियों द्वारा संचालित किए जाते हैं:

“समन की तामील में होने वाली देरी को आपराधिक मामलों का निपटारा विलम्ब से होने के मुख्य कारण के रूप में पहचानते हुए, माननीय न्यायालय की सिफारिशों के अनुसरण में प्रत्येक जिला न्यायालय से अनन्यत संबद्ध एक प्रकोष्ठ का गठन किया गया है जिसमें पर्याप्त संख्या में पुलिस आरक्षी तैनात होंगे जो सत्र न्यायाधीश / सी.जे.एम. के निर्देशानुसार प्रत्येक न्यायालय का कार्य करेगा। मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि आप उन प्रकोष्ठ पर प्रभावी नियंत्रण रखेंगे और प्रत्येक माह के प्रदर्शन को संलग्न निर्धारित प्रपत्र पर दर्शाते हुए माननीय न्यायालय को एक त्रैमासिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत करेंगे।

36. समन की तामील और न्यायालय द्वारा आदेशित प्रपीड़क उपायों को निष्पादित करने की मौजूदा प्रक्रियाएं और विभागीय जवाबदेही की प्रणाली काफी हद तक अप्रभावी हैं और अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रही

हैं। पुलिस विभाग को मौजूदा संगठनात्मक प्रक्रियाओं, विभागीय निगरानी और समन की तामील के संबंध में उत्तरदायित्व का निर्धारण और न्यायालयों द्वारा जारी किए गए बाध्यकारी उपायों के निष्पादन पर पुनः विचार करना होगा। व्यक्तिगत जवाबदेही तय करने के लिए प्रणाली की कमजोरियों की जांच के बाद कुछ आवश्यक परिवर्तन लाने होंगे, उनके अलावा जो इस आदेश में बताए गए हैं।

37. इस परिप्रेक्ष्य में, समन की तामील या प्रपीड़क प्रक्रियाओं को निष्पादित करने में विफल होने वाले दोषी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही, या यहां तक कि अवमानना कार्यवाही शुरू करने की न्यायालय की शक्तियों को पुलिस विभाग में उत्तरदायित्व रेखांकित करने और जवाबदेही तय करने वाली प्रभावी विभागीय प्रक्रियाओं द्वारा अनुपूरित करना होगा। समन की तामील और प्रपीड़क प्रक्रियाओं का निष्पादन एक समयबद्ध ढांचे के अन्तर्गत सुनिश्चित करने हेतु पुलिस बल में एक स्वतंत्र और प्रभावी आंतरिक जवाबदेही प्रणाली शायद समय की मांग है। न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करने वाले कृत्यों को दंडित करने वाली न्यायालय की अवमानना शक्तियों और द.प्र.सं. के प्रावधानों के साथ समन की तामील और वारंट का निष्पादन समय पर सुनिश्चित करने के लिए विभागीय जवाबदेही की एक समग्र योजना पुलिस अधिकारियों के खिलाफ संभावित आपराधिक मुकदमे खत्म करने के अलावा मुकदमों का शीघ्र समापन कराने में भी सहायक होगी।

38. पूर्व में जब ऐसे मुद्दों का सामना करना पड़ा तो इस न्यायालय ने न्यायालयों द्वारा जारी समन और प्रपीड़क उपायों दोनों का समयबद्ध रूप से निष्पादन सुनिश्चित कराने के निर्देश संबंधित जिले के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक को जारी किए। निर्देश प्रभावी साबित हुए और मुकदमे में अभियुक्तों या गवाहों को समय पर उपस्थित होने के लिए बाध्य करने का उद्देश्य प्राप्त हो गया [संदर्भ: **जीतेन्द्र बनाम उ० प्र० राज्य**]। संदर्भ में सरलता हेतु **जीतेन्द्र (उपरोक्त)** का प्रभावी भाग यहां पुनः प्रस्तुत है:

"यद्यपि समन की तामील और न्यायालय द्वारा जारी प्रपीड़क प्रक्रियाओं का निष्पादन त्वरित रूप से सुनिश्चित करने हेतु नियम बनाये की प्रक्रिया चालू है, ये न्यायालय कुछ टिप्पणियां करना चाहेगा। इस न्यायालय के अनुभवानुसार ऐसे मामलों में समन की तामील / प्रपीड़क प्रक्रियाओं के निष्पादन का पर्यवेक्षण करने हेतु केवल किसी वरिष्ठ अधिकारी, जो पद में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक से कम ना हो, को नामित करना ही सबसे प्रभावी साबित होगा। न्यायालय ने पिछले अवसरों पर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए थे कि समन की विधिवत तामील समय पर की जाए एवं विचारण न्यायालय द्वारा जारी प्रपीड़क प्रक्रियाओं का त्वरित निष्पादन किया जाए। ऐसा करने में विफल होने पर

वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को उस विफलता के कारण बताने और विफलता का उत्तरदायित्व तय करने हेतु एक व्यक्तिगत हलफनामा प्रस्तुत करना होगा। यह प्रक्रिया प्रभावशाली साबित हुई क्योंकि न्यायालय ने पाया कि अधिकांश मामलों में समन की तामील और प्रपीड़क प्रक्रियाओं का निष्पादन दोनों ही त्वरित था, एवं जिसके परिणामस्वरूप मुकदमे का विचारण समय पर पूरा हो सका।

दूसरा कि गवाहों को ट्रैक करने का एक कार्यक्रम जिसमें गवाह की नवीनतम नियुक्ति और पता शामिल हो, वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे अधिक सहायक होगा।"

39. गवाहों की अनिवार्य उपस्थिति हेतु विभिन्न स्तरों पर नोडल अधिकारियों की नियुक्ति संकट की स्थिति से निपटने का एक प्रभावी उपाय हो सकता है। लेकिन यह प्रणाली तभी फलदायी होगी जब नोडल अधिकारी संबंधित स्तर पर पुलिस प्रमुख भी हों। नोडल अधिकारियों के पास विभिन्न स्तरों पर, चाहे वह जिला, मण्डल, राज्य या अंतरराज्यीय हो, पुलिस बलों के साथ समन्वय करने का अधिकार होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि पूर्व में चर्चित विभिन्न सरकारी परिपत्रों और वैधानिक प्रावधानों में जिला पुलिस प्रमुख या जोनल प्रमुखों पर, स्थितिअनुसार, जिम्मेदारी डाली गई है।

40. अदालतों के आदेश पर गवाहों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने का पुलिस

अधिकारियों का वैधानिक दायित्व नोडल अधिकारियों के कर्तव्यों के चार्टर में भी शामिल किया जाना चाहिए, जिसके प्रति वे जवाबदेह होंगे। उक्त अधिकारियों का प्रदर्शन भी उक्त मानदंडों के आधार पर मूल्यांकित किया जा सकता है, और विचलन होने पर विभाग द्वारा उसे ठीक किया जाना चाहिए।

41. अनुपस्थित गवाहों की समस्या का पैमाना और समन और प्रपीड़क उपायों को लागू करने के लिए पुलिस की प्रतिक्रिया की अपर्याप्तता एक प्रणालीगत दोष रेखा को उजागर करती है जो न्याय वितरण प्रणाली की विश्वसनीयता को खतरे में डालती है।

42. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए समन की तामील और प्रपीड़क उपायों का निष्पादन निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर करने में पुलिस अधिकारियों की असमर्थता एक स्थानिक समस्या है और आपराधिक विधि प्रक्रिया में एक बड़ी बाधा है। पुलिस की कार्यप्रणाली में इस कमी के परिणामस्वरूप अदालतों में गवाहों की अनुपस्थिति होती है और मुकदमों में अत्यधिक देरी होती है, तथा न्याय वितरण प्रणाली में जनता के विश्वास की जड़ पर आघात होता है। पुलिस प्राधिकारी विभागीय कमियों की ओर से नज़रें नहीं फेर सकते, और वरिष्ठ अधिकारी जवाबदेही से नहीं बच सकते।

43. पुलिस विभाग की इन विफलताओं के परिणामस्वरूप भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अभियुक्त को प्राप्त त्वरित विचारण के अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है

और जमानत के अधिकार का निष्पक्ष प्रशासन बाधित हो रहा है।

44. यह सच है कि न्यायिक शक्ति न्यायालयों का एकाधिकार है और न्यायिक आदेश न्यायालयों का परमाधिकार हैं। यह भी सच है कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति राज्य के सभी अंगों की बाध्यता है और नागरिकों को न्याय दिलाना शासन के सभी उपकरणों का उत्तरदायित्व है। न्यायालयों के आदेश पर समय पर समन की तामील और वारंट के निष्पादन द्वारा गवाहों को शीघ्र उपस्थित होने के लिए बाध्य करने के अपने वैधानिक कर्तव्य को पुलिस नकार नहीं सकती। राज्य उन कैदियों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के अपने संवैधानिक दायित्व का त्याग नहीं कर सकता जिन्हें विलंबित मुकदमों के कारण लंबे समय तक कारावास में रहना पड़ता है। दोनों में से कोई भी संस्थान जवाबदेही से बच नहीं सकता।

45. इस मुद्दे को स्पष्ट रूप से संबोधित करने की आवश्यकता के कारण इस न्यायालय ने राज्य सरकार को समन की तामील और न्यायालयों द्वारा जारी प्रपीड़क प्रक्रियाओं का निष्पादन समय पर कराने हेतु पुलिस विभाग के भीतर जवाबदेही की एक प्रभावी प्रणाली के लिए नियम बनाने पर विचार करने का निर्देश दिया था। [संदर्भ: **जीतेंद्र (उपरोक्त)**]। चूंकि उस पर विचार चल रहा है, इसलिए राज्य सरकार मामले के इन पहलुओं की भी जांच कर सकती है। इस कार्य को गहरी सावधानी और तेज़ी के साथ पूरा करना होगा।

46. पुलिस अधिकारियों की विफलता और राज्य सरकार द्वारा क्रमशः अपने वैधानिक कर्तव्यों और संवैधानिक दायित्वों को स्वीकार करने की उपेक्षा से घोर अन्याय होगा। कैदी लंबे समय तक जेल में सिर्फ इसलिए बिताते हैं क्योंकि पुलिस अधिकारी विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की अवहेलना करते हुए समय पर गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं करते हैं। न्याय की विफलता और भी गंभीर हो जाती है क्योंकि कई कैदी समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों से आते हैं और गरीबी और कानूनी अशिक्षा के कारण अक्षम हो जाते हैं। सभी हितधारकों के लिए अच्छा होगा कि **अनिल गौड़ (उपरोक्त)** में दी गई इस न्यायालय की चेतावनी को याद रखें:

“59...गरीबी की सज़ा कानून में दी गई सज़ाओं से भी अधिक गंभीर है। उनके लिए आज़ादी के 75वें वर्ष की गौरवशाली सुबह ने आज़ादी के आदर्शों की चमक और भ्रष्टाचार के वादे का सार खो दिया है।

60. अन्याय गुलाम राष्ट्र का जन्मचिह्न है। न्याय स्वतंत्र लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार है और हमारा संविधान कहता है कि वे इसे लेकर रहेंगे।”

47. एक प्रति पुलिस महानिदेशक, उ.प्र. सरकार, महानिदेशक (अभियोजन), गृह सचिव, उ.प्र. सरकार, विधि परामर्शी/प्रमुख सचिव (विधि), उ.प्र. सरकार, लखनऊ और निदेशक, जे.टी.आर.आई., लखनऊ को भेजी जाएगी।

**जमानत आवेदन में आदेश**

48. दूसरे जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 147, 148, 149 और 302 भा.द.सं. और धारा 7 अपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या 37, 2014 (एस.टी. संख्या 260, 2014) पुलिस स्टेशन-ओनचा, जिला मैनपुरी में जमानत पर रहने की प्रार्थना की है।

49. आवेदक इस न्यायालय द्वारा 21.07.2023 को दी गई अंतरिम जमानत पर है।

50. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ब्रतेंद्र सिंह द्वारा दिए गए निम्नलिखित तर्क, जिनका रिकार्ड पर श्री पारितोष कुमार मालवीय, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा संतोषजनक ढंग से खंडन नहीं किया जा सका, जो आवेदक को जमानत लेने का अधिकार देता है:

I. आवेदक एक कानून का पालन करने वाला नागरिक है और उसने हमेशा जांच में सहयोग किया है और मुकदमे की कार्यवाही में शामिल हुआ है।

II. मुकदमा अत्यंत धीमी गति से चल रहा है और जल्द निष्कर्ष का कोई संकेत नहीं दिख रहा है। मुकदमे में देरी के लिए आवेदक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

III. विचारण न्यायालय द्वारा भेजी गई स्थिति रिपोर्ट में यह दर्ज किया गया है कि मुकदमे में देरी पुलिस अधिकारियों द्वारा समन की तामील करने और विचारण न्यायालय द्वारा

जारी किए गए दंडात्मक उपायों को निष्पादित करने में विफलता के कारण भी हो रही है।

IV. मुकदमे के समापन में अत्यधिक देरी के कारण आवेदक को अपराध में फंसाने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं होने के कारण उसे अनिश्चित काल के लिए जेल में डाल दिया गया और आवेदक के शीघ्र सुनवाई के अधिकारों का उल्लंघन हुआ।

V. आवेदक का इस मामले के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

VI. आवेदक का भागने का जोखिम नहीं है। कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया है और मुकदमे की कार्यवाही में शामिल होने का वचन दिया है। उसके गवाहों को प्रभावित करने, सबूतों से छेड़छाड़ करने या दोबारा अपराध करने की कोई संभावना नहीं है।

51. पूर्ववर्ती चर्चा के आलोक में और मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी किये बिना जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

52. आवेदक - **भंवर सिंह उर्फ करमवीर** को उक्त उपरोक्त अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जाए। अंतरिम जमानत बढ़ाए जाने के दौरान जमानत पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है। न्याय के हित में निम्नलिखित शर्तें लगाई जाएं:-

(ए) आवेदक मुकदमे के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा या किसी भी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(बी) आवेदक तय तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

### दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

#### **345. अवमान के कुछ मामलों में प्रक्रिया-**

(1) जब कोई ऐसा अपराध, जैसा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180 या धारा 228 में वर्णित है, किसी सिविल, दंड या राजस्व न्यायालय की दृष्टिगोचरता या उपस्थिति में किया जाता है तब न्यायालय अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकता है और उसी दिन न्यायालय के उठने के पूर्व किसी समय, अपराध का संज्ञान कर सकता है और अपराधी को ऐसा कारण दर्शित करने का, कि क्यों न उसे इस धारा के अधीन दंडित किया जाए, उचित अवसर देने के पश्चात् अपराधी को दो सौ रुपए से अनधिक जुर्माने का और जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने पर एक मास तक की अवधि के लिए, जब तक कि ऐसा जुर्माना उससे पूर्वतर न दे दिया जाए, सादा कारावास का दंडादेश दे सकता है।

(2) ऐसे प्रत्येक मामले में न्यायालय वे तथ्य जिनसे अपराध बनता है, अपराधी द्वारा किए गए कथन के (यदि कोई हो) सहित, तथा निष्कर्ष और दंडादेश भी अभिलिखित करेगा।

(3) यदि अपराध भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 228 के अधीन है तो अभिलेख में यह दर्शित होगा कि जिस न्यायालय के कार्य में विघ्न डाला गया था या जिसका अपमान किया गया था, उसकी बैठक किस प्रकार की न्यायिक कार्यवाही के संबंध में और उसके किस प्रक्रम पर हो रही थी और किस प्रकार का विघ्न डाला गया या अपमान किया गया था।

**349. उत्तर देने या दस्तावेज पेश करने से इंकार करने वाले व्यक्ति को कारावास या उसकी सुपुर्दगी** - यदि दंड न्यायालय के समक्ष कोई साक्षी या कोई व्यक्ति, जो किसी दस्तावेज या चीज को पेश करने के लिए बुलाया गया है, उन प्रश्नों का, जो उससे किए जाएं, उत्तर देने से या अपने कब्जे या शक्ति में की किसी दस्तावेज या चीज को, जिसे पेश करने की न्यायालय उससे अपेक्षा करे, पेश करने से इंकार करता है और ऐसे इंकार के लिए कोई उचित कारण पेश करने के लिए युक्तियुक्त अवसर दिए जाने पर ऐसा नहीं करता है तो ऐसा न्यायालय उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, उसे सात दिन से अनधिक की किसी अवधि के लिए सादा कारावास का दंडादेश दे सकेगा अथवा पीठासीन मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षरित वारण्ट द्वारा न्यायालय के किसी अधिकारी की अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकेगा, जब तक कि उस बीच ऐसा व्यक्ति अपनी परीक्षा की जाने और उत्तर देने के लिए या दस्तावेज या चीज पेश करने के लिए सहमत नहीं हो जाता

है और उसके इंकार पर डटे रहने की दशा में उसके बारे में धारा 345 या धारा 346 के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही की जा सकेगी।

### **350. समन के पालन में साक्षी के हाजिर न होने पर उसे दंडित करने के लिए संक्षिप्त प्रक्रिया -**

(1) यदि किसी दंड न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए समन किए जाने पर कोई साक्षी समन के पालन में किसी निश्चित स्थान और समय पर हाजिर होने के लिए वैध रूप से आबद्ध है और न्यायसंगत कारण के बिना, उस स्थान या समय पर हाजिर होने में उपेक्षा या हाजिर होने से इंकार करता है अथवा उस स्थान से, जहां उसे हाजिर होना है, उस समय से पहले चला जाता है जिस समय चला जाना उसके लिए विधिपूर्ण है और जिस न्यायालय के समक्ष उस साक्षी को हाजिर होना है उसका समाधान हो जाता है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि ऐसे साक्षी का संक्षेपतः विचारण किया जाए तो वह न्यायालय उस अपराध का संज्ञान कर सकता है और अपराधी को इस बात का कारण दर्शित करने का कि क्यों न उसे इस धारा के अधीन दंडित किया जाए अवसर देने के पश्चात् उसे एक सौ रुपए से अनधिक जुर्माने का दंडादेश दे सकता है।

(2) ऐसे प्रत्येक मामले में न्यायालय उस प्रक्रिया का यथासाध्य अनुसरण करेगा जो संक्षिप्त विचारणों के लिए विहित है।



(2023) 9 ILRA 1057

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आपराधिक विविध द्वितीय जमानत प्रार्थना पत्र

संख्या 36536 वर्ष 2023

जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकृत (ई-15)

उद्धृत वादों की सूची:1. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य  
2021 (6) एडीजे 5112. बरुण चंद्र ठाकुर बनाम मास्टर भोलू एवं  
अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 870

सिद्धांत @ आशु

...प्रार्थी

बनाम

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा  
पारित)

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपरीत पक्ष

प्रार्थी के अधिवक्ता:

श्री आत्माराम नाडीवाल, श्री दिनेश कुमार  
यादव

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट1. परिचर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए  
निर्णय को निम्नलिखित अवधारणात्मक ढांचे  
में व्यवस्थित किया जा रहा है:

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439—

अभियोजन पक्ष के कहने पर गवाहों को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है - विचारण की समाप्ति में अत्यधिक विलंब के कारण प्रार्थी को अपराध में शामिल करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य न होने के कारण उसे वस्तुतः अनिश्चित काल के लिए कारावास में डाल दिया गया है और यह प्रार्थी के शीघ्र मुकदमे के अधिकार का उल्लंघन है--- प्रार्थी भूमिका में एकरूपता का दावा करता है और सह-अभियुक्त, जिसे इस न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा किया गया है, को दी गई राहत में समानता चाहता है। (पैरा 63 और 64)

|     |                                                                                              |
|-----|----------------------------------------------------------------------------------------------|
| I   | परिचय                                                                                        |
| II  | सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट पर दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की दलीलें।                         |
| III | वैधानिक योजनाएँ:                                                                             |
|     | 1. प्रासंगिक प्रावधान                                                                        |
|     | 2. विचार हेतु मुद्दे:                                                                        |
|     | क. बच्चे की सुरक्षा एवं देखभाल के संबंध में प्रक्रिया                                        |
|     | ख. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 के संदर्भ में सीडब्ल्यूसी की भागीदारी के लिए पूर्व शर्तें |
|     | ग. सीडब्ल्यूसी द्वारा पूछताछ                                                                 |
|     | घ. सीडब्ल्यूसी की सहायता करने वाली एजेंसियां                                                 |
|     | ड. सीडब्ल्यूसी द्वारा पीड़ित बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन                          |
|     | च. सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट और न्यायालयों की प्रक्रिया                                         |

|    |                           |
|----|---------------------------|
| IV | निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश |
| V  | जमानत अर्जी पर आदेश       |
| VI | परिशिष्ट                  |

### 1. परिचय:

2. मौजूदा मामले में यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012' के तहत अपराधों में जमानत की कार्यवाही में पीड़ित की न्यायोचित सुनवाई सुनिश्चित करने में बाल कल्याण समिति की भूमिका पर भी विचार करने की आवश्यकता है। पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण नियमावली, 2020 पीड़ितों को समान न्याय प्रदान करने के लिए एक समग्र योजना का निर्माण करते हैं, और सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट का जमानत क्षेत्राधिकार के निष्पक्ष प्रशासन और विचारण प्रक्रिया पर सीधा असर पड़ता है।

3. अभियोजन पक्ष से इस बात का पता चलता है कि पीड़िता के अपहरण के बाद, ग्रामीणों ने आरोपियों का पीछा किया और उन्हें रोक लिया। एफआईआर तुरंत दर्ज करवाई गई। आरोपियों को मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया और पीड़िता को छुड़ा लिया गया। उसी दिन मेडिकल रिपोर्ट तैयार की गई। धारा 161 सीआरपीसी और धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान, गवाहों के विवरण और साथ ही मेडिकल रिपोर्ट से अपहरण और बलात्कार के अभियोजन कथानक की पूरी तरह से पुष्टि होती है। हालाँकि बाद में पीड़िता विचारण के दौरान मुकर गई।

1 एतश्मिनपश्चात 'पॉक्सो अधिनियम, 2012' के रूप में संदर्भित

2 एतश्मिनपश्चात 'सीडब्ल्यूसी' के रूप में संदर्भित

3 एतश्मिनपश्चात 'पॉक्सो नियमावली 2020' के रूप में संदर्भित

इन परिस्थितियों में पॉक्सो अधिनियम, 2012 के कार्यान्वयन और यौन अपराधों के शिकार बच्चों को न्याय दिलाने में सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट की भूमिका की जांच की जानी चाहिए।

4. विद्वान एजीए के पास उपलब्ध सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट पीड़िता और आरोपियों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की जांच नहीं दर्शाती है। इस मामले में सहायक व्यक्ति की नियुक्ति से पहले अपेक्षित पूछताछ नहीं की गई और यांत्रिक तरीके से की गई थी। सहायक व्यक्ति ने पीड़िता की स्थिति के संबंध में किसी भी स्तर पर सीडब्ल्यूसी को कोई रिपोर्ट नहीं भेजी। रिपोर्ट में यौन उत्पीड़न के बाद पीड़िता की मानसिक स्थिति का जिक्र नहीं किया गया है। इन कमियों का विचारण पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। इस मामले में पीड़ित बच्ची की सुरक्षा और पुनर्वास की जरूरतें रिपोर्ट में अनुपस्थित थीं।

5. संक्षेप में सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट में पीड़िता की स्थिति के संबंध में विभिन्न प्रासंगिक पहलुओं की उपेक्षा की गई है और यह कानून के अनुरूप नहीं है।

6. न्यायालय यह पाता है कि सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट अक्सर अपर्याप्त होती हैं और पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 में विहित वैधानिक मापदंडों के अनुरूप नहीं होती हैं। यह

पॉक्सो अधिनियम के अपराधों में जमानत क्षेत्राधिकार के निष्पक्ष प्रशासन और यौन अपराधों के शिकार बच्चों को न्याय देने में बाधाएँ पैदा करता है।

## II. सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट पर दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की दलीलें:

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री आत्माराम नाडीवाल और विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार यादव ने ये दलीलें दी हैं:

I. बाल कल्याण समिति की विफलता के लिए आवेदक को दंडित नहीं किया जा सकता है।

II. सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट का जमानत अर्जी पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

8. विद्वान एजीए-। श्री पारितोष कुमार मालवीय: विद्वान एजीए श्री ऋषि चड्ढा और राज्य की ओर से विद्वान एजीए सुश्री सुजाता चौधरी ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

1. सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट पॉक्सो अधिनियम की एक अनिवार्य विशेषता है और पीड़ित को न्याय दिलाने में सहायता करती है।

II. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में जमानत पर सुनवाई करते समय सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट की न्यायालय द्वारा जांच की जानी चाहिए।

III. सीडब्ल्यूसी रिपोर्ट पॉक्सो अधिनियम और नियमावली के अनुरूप नहीं है और इसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि हुई है।

## III. वैधानिक योजनाएँ :

### III (1). प्रासंगिक प्रावधान

9. पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत अपराधों में जमानत देना दंड प्रक्रिया संहिता, 19735 की धारा 439 के साथ-साथ पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के प्रावधानों से विनियमित होती है।

10. पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि आरोपी की जमानत अर्जी पर सुनवाई का वैधानिक अधिकार पीड़ित में निहित होता है। यह अधिनियम दाण्डिक न्यायशास्त्र के पहले के सिद्धांतों से बदलाव का प्रतीक है, जो राज्य द्वारा अभियोजित आपराधिक मामलों में पीड़ित को सुनवाई का कमजोर अधिकार देता था। पॉक्सो अधिनियम, -----

4 2021 (6) ADJ 511

5 एतश्मिनपश्चात 'सीआरपीसी' के रूप में संदर्भित

2012 के अपराधों के पीड़ित बच्चे एक अलग और अच्छी तरह से परिभाषित वर्ग का गठन करते हैं। विधायिका ने इस वर्ग की अपनी कमजोरियों को स्वीकार किया है और अधिनियमन की योजना में उनकी दुर्दशा पर स्पष्ट रूप से विचार किया गया है। पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत सुरक्षात्मक और सुधारात्मक व्यवस्था, विचारण से पहले वाले चरण में शुरू

की जाती है और विचारण प्रक्रिया के दौरान चलती है।

6 2021 (6) ADJ 511

11. इस न्यायालय ने **जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** एवं अन्य के मामले में जमानत आवेदनों के संदर्भ में सीडब्ल्यूसी के कार्यों की जांच करते समय निम्नवत धारित किया:

IV. क्रमशः जिला न्यायालय और उच्च न्यायालय में बच्चे को उचित मामलों में मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए डीएलएसए और एचसीएलएससी के साथ समन्वय करना।

**"ख. सीडब्ल्यूसी के कार्य:-**

V. उच्च न्यायालय के साथ-साथ विचारण न्यायालय को बच्चे को प्रदान की गई मुफ्त कानूनी सहायता सहित हकदार जानकारी और सेवाओं की स्थिति की जानकारी देना और जब जमानत आवेदन अदालत के समक्ष रखा जाए तो प्रासंगिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना।"

I. पुलिस से जानकारी और दस्तावेज प्राप्त करना और उस पर पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 में यथा उपबंधित उचित कार्यवाही करना।

12. पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 यौन शोषण के शिकार बच्चों के अधिकारों और हितों को सुरक्षित करने में बाल कल्याण समिति की महत्वपूर्ण भूमिका अभिकल्पित करता है।

II. बच्चे को पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत उसके अधिकारों से अवगत कराना। उस व्यक्ति की पहचान करना जो बच्चे के हितों की रक्षा के लिए सबसे उपयुक्त होगा और निम्नलिखित व्यक्तियों में से उसकी ओर से कानूनी कार्यवाही के नोटिस प्राप्त करना: बच्चे के माता- पिता/अभिभावक/कोई अन्य व्यक्ति जिस पर बच्चे को भरोसा और विश्वास हो या जब भी आवश्यकता हो, बच्चे के लिए एक सहायक व्यक्ति नियुक्त करना।

13. किसी अपराध की जांच करते समय पुलिस प्राधिकारियों को ऐसी जानकारी मिलने पर जो पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 19 (1) की शर्तों को पूरा करती हो, प्रावधान में बताए गए तरीके से बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश करेंगे। प्रावधान यहां नीचे दिया गया है:

III. बच्चों को उनके अधिकार की जानकारी और सेवाएँ प्रदान करने के लिए रिपोर्ट तैयार करना और पुलिस तथा विभिन्न सरकारी एजेंसियों के साथ समन्वय करना।

"19. अपराधों की रिपोर्टिंग:- (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति (बच्चे सहित), जिसे आशंका है कि इस अधिनियम के तहत कोई अपराध

-----

होने की आशंका है या उसे जानकारी है कि ऐसा अपराध किया गया है, वह ऐसी जानकारी प्रदान करेगा, --

(क) विशेष किशोर पुलिस इकाई; या

(ख) स्थानीय पुलिस।

प्रक्रिया के दौरान बच्चे की सहायता करने वाला कोई अन्य व्यक्ति।"

16. बच्चे के लाभ के लिए विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों से जुड़ने और उनकी सहायता लेने का अधिदेश पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 39 है। प्रावधान इस प्रकार है:-

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत दी गई प्रत्येक रिपोर्ट --

(क) एक प्रविष्टि संख्या निर्दिष्ट की जाएगी और लिखित रूप में दर्ज की जाएगी;

(ख) सूचनादाता को पढ़कर सुनाई जाएगी;

(ग) पुलिस इकाई द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में दर्ज की जाएगी।"

"39. विशेषज्ञ आदि की सहायता लेने के लिए बालक के लिए मार्गनिर्देश राज्य सरकार, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, गैर-सरकारी संगठनों, वृत्तियों और विशेषज्ञों या ऐसे व्यक्तियों जिनके पास मनोविज्ञान, सामाजिक कार्य, चिकित्सीय स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और बाल विकास में ज्ञान है, बालक की सहायता करने के लिए पूर्व विचारण और विचारण प्रक्रम पर सहयोजित करने के लिए मार्गनिर्देश तैयार करेगी।"

14. निगरानी ढांचे को पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 12 में वर्णित किया गया है (परिशिष्ट। देखें)।

15. पॉक्सो अधिनियम, 2012 संपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 की सुरक्षात्मक योजना में 'सहायक व्यक्ति' की नियुक्ति भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है:

"2 परिभाषा:

(च) "सहायक व्यक्ति" का अर्थ बाल कल्याण समिति द्वारा नियम 4 के उपनियम (7) के अनुसार अधिनियम के तहत अपराध के संबंध में जांच और विचारण की प्रक्रिया के दौरान बच्चे को सहायता देने के लिए उपलब्ध कराया व्यक्ति या विचारण से पहले या विचारण

17. पॉक्सो अधिनियम, 2012 के प्रावधानों को किशोर न्यायाधीश (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015' के प्रावधानों के संयोजन के साथ लागू किया जाना है। जे.जे. अधिनियम, 2015 की धारा 2 (14) देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चे को परिभाषित करती है। इस प्रावधान का दायरा व्यापक है और इसमें यौन शोषण का शिकार हुए बच्चों को भी शामिल किया गया है। प्रावधान यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"2. परिभाषाएं -

(14) "देखरेख और संरक्षण का जरूरतमंद बालक" से ऐसा बालक अभिप्रेत है-

(iii) जो किसी व्यक्ति के साथ रहता है (चाहे वह बालक का संरक्षक हो या नहीं) और ऐसे व्यक्ति ने, (क) बालक को क्षति पहुंचाई है, उसका शोषण किया है, उसके साथ दुर्यवहार किया है या उसकी उपेक्षा की है अथवा बालक के संरक्षण के लिए अभिप्रेत तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि का अतिक्रमण किया है; या (ख) बालक को मारने, उसे क्षति पहुंचाने, उसका शोषण करने या उसके साथ दुर्यवहार करने की धमकी दी है और उस धमकी को कार्यान्वित किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है; (ग) किसी अन्य बालक या बालकों का वध कर दिया है, उसके या उनके साथ दुर्यवहार किया है, उसकी या उनकी उपेक्षा या उसका या उनका

7 एतस्मिनपश्चात् इसे "जेजे अधिनियम, 2015" के रूप में जाना जाएगा शोषण किया है और प्रश्नगत बालक का उस व्यक्ति द्वारा वध किए जाने, उसके साथ दुर्यवहार, उसका शोषण या उसकी उपेक्षा किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है; या (v) जिसके माता-पिता अथवा कोई संरक्षक है और ऐसी माता या ऐसे पिता अथवा संरक्षक को बालक की देखरेख करने और उसकी सुरक्षा तथा कल्याण की संरक्षा करने के लिए, समिति या बोर्ड द्वारा अयोग्य या असमर्थ पाया जाता है; या (viii) जिसका लैंगिक दुर्यवहार या अवैध कार्यों के प्रयोजन के लिए दुर्यवहार, प्रपीड़न या शोषण किया गया है, किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है; या (ix) जो असुरक्षित पाया गया है और उसे मादक द्रव्य दुरुपयोग या अवैध व्यापार में सम्मिलित किया गया है या सम्मिलित किया जा रहा है या सम्मिलित

किए जाने की संभावना है; या (x) जिसका पूर्णतया अयुक्तियुक्त अभिलाषों के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है; या (xii) जिसको विवाह की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का आसन्न जोखिम है और जिसके माता-पिता और कुटुंब के सदस्यों, संरक्षकों और अन्य व्यक्तियों के ऐसे विवाह के अनुष्ठापन के लिए उत्तरदायी होने की संभावना है।"

18. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 31 उस व्यक्ति को नामित करती है जो सीडब्ल्यूसी के समक्ष देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चे को जन्म दे सकता है। प्रावधान परिशिष्ट II(II) का हिस्सा है।

19. बच्चे को पेश करने के बाद सीडब्ल्यूसी के समक्ष प्रक्रिया किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016<sup>8</sup> के नियम 18 (1) में

8 एतस्मिनपश्चात् "जेजे नियमावली, 2016 के रूप में संदर्भित। उल्लिखित है। यह प्रावधान परिशिष्ट III (III) का हिस्सा है।

20. बच्चे की परिस्थितियों की जांच करने की प्रक्रिया जेजे नियमावली, 2016 के नियम 19 में निर्धारित है। प्रावधान परिशिष्ट IV (IV) का हिस्सा है।

21. जेजे अधिनियम, 2015 में सीडब्ल्यूसी की जांच के प्रावधान अधिक व्यापक हैं। हालांकि, पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 के तहत विचार की गई जांच के साथ कोई टकराव

नहीं है। दोनों प्रावधानों की व्याख्या बालक के सर्वोत्तम हित में सामंजस्यपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए। जेजे नियमावली, 2016 और पॉक्सो अधिनियम, 2012 के प्रावधानों को पॉक्सो नियमावली, 2020 के साथ पढ़ा जाए, जहां तक वे यौन अपराधों के शिकार बच्चों से संबंधित हैं, उन्हें सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक एकीकृत योजना के रूप में समझा जाना चाहिए जो कि पीड़ित बच्चे का कल्याण है।

### III. वैधानिक योजनाएँ:

#### III (2). विचार के लिए उपबंध और मुद्दे:

22. सीडब्ल्यूसी के कामकाज के कुछ पहलुओं और सीडब्ल्यूसी रिपोर्टों के संबंध में मुद्दे जो इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सीधे विचार के लिए उठते हैं, संदर्भ के इस भाग में चर्चा की गई है।

III (2) क. बालक की देखभाल एवं सुरक्षा संबंधित प्रक्रिया

23. एक बच्चे की देखभाल और सुरक्षा से संबंधित प्रक्रिया और पुलिस अधिकारियों, सीडब्ल्यूसी और अन्य एजेंसियों के कर्तव्यों को पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 में वर्णित किया गया है। पॉक्सो नियमावली, 2020 का नियम 4(3), एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस को पहले उत्तरदाताओं के रूप में नामित करता है और उन्हें पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 19(1) के प्रावधानों के अनुसार सूचना प्राप्त होने पर विभिन्न कार्रवाई करने की

आवश्यकता होती है। प्रासंगिक प्रावधान यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"4. बच्चे की देखभाल और सुरक्षा के संबंध में प्रक्रिया:-

(3) जब किसी एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस, जैसा भी मामला हो, को अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (1) के अधीन अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार कोई अपराध जो किया गया हो या करने का प्रयत्न किया गया हो या किए जाने की संभावना हो, के संबंध में सूचना प्राप्त होती है, तो संबंधित प्राधिकारी करेगा, जहां लागू हो :

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 154 के उपबंधों के अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट रिकॉर्ड और दर्ज करने की कार्यवाही, और ऐसी रिपोर्ट करने वाले व्यक्ति को उक्त संहिता की धारा 154 की उप-धारा (2) के अनुसार उसकी एक प्रति निःशुल्क प्रतिलिपि देना;

(ख) जहां बालक को अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (5) या इन नियमों के अधीन आपातकालीन चिकित्सा देखभाल की आवश्यकता हो, तो नियम 6 के अनुसार, बालक की ऐसी देखभाल की पहुंच की व्यवस्था करना;

(ग) अधिनियम की धारा 27 के अनुसार बालक को चिकित्सीय परीक्षा हेतु अस्पताल ले जाना;

(घ) यह सुनिश्चित करना कि फॉरेंसिक परीक्षणों के प्रयोजनों के लिए एकत्र किए गए नमूनों को तुरंत फॉरेंसिक प्रयोगशाला में भेजा जाए;

(ड) बालक और बालक के माता-पिता या संरक्षक या अन्य व्यक्ति जिस पर बालक को भरोसा और विश्वास है को परामर्श सहित सहायक सेवाओं की उपलब्धता की सूचना देना और इन सेवाओं और अनुतोष प्रदान करने वाले लोगों से संपर्क करने में उनकी सहायता करना;

(च) बालक और बालक के माता-पिता या संरक्षक या अन्य व्यक्ति जिस पर बालक को भरोसा और विश्वास है को अधिनियम की धारा 40 के अनुसार बालक के विधिक सलाह और वकील के अधिकार तथा वकील द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने के अधिकार के बारे में सूचित करना।"

III (2) ख. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 के संदर्भ में सी. डब्ल्यू. सी. की भागीदारी के लिए पूर्ववर्ती शर्तें।

24. बालक के विस्तृत मूल्यांकन के लिए सीडब्ल्यूसी के समक्ष बालक को पेश करने से पहले एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस को जिन शर्तों को पूरा करना होता है, वे पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (4) में बताई गई हैं:

"(4) जहां एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस को अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (1) के अधीन

सूचना प्राप्त होती है और उसे यह युक्तियुक्त आशंका है कि अपराध बालक के या उसके साझे घर में रहने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया या प्रयत्न किया गया या किए जाने की संभावना है, या बालक किसी बाल देखरेख संस्थान में और माता-पिता के बिना रह रहा है, या बालक बेघर या माता-पिता के बिना पाया जाता है, तो संबंधित एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने के 24 घंटे के भीतर बालक को संबंधित बालक कल्याण समिति (इसे इसमें इसके पश्चात "सीडब्ल्यूसी" कहा गया है) के समक्ष लिखित कारणों में कि क्या बालक को अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (5) के अधीन देखभाल और सुरक्षा की अपेक्षा है और सीडब्ल्यूसी द्वारा विस्तृत आकलन के अनुरोध सहित प्रस्तुत करेगी।"

(प्रभाव वर्धित)

25. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (4) में "बच्चा किसी घर और माता-पिता के बिना पाया गया है" शब्द दर्शाते हैं कि विधायी मंशा इस तथ्य से परे जाना है कि बच्चा बस अपने माता-पिता के साथ रह रहा है और एक अस्थायी/स्थायी गृह में रहता है। यह प्रावधान परिवार में बच्चे की स्थिति, माता-पिता द्वारा बच्चे को दिए जाने वाले समर्थन और समझ



की प्रकृति की जांच करने का कर्तव्य रखता है। यह तथ्य विशेष रूप से विषम मूल्य प्रणालियों या दमनकारी सामाजिक मानदंडों के कारण कई परिवारों में बालिकाओं और विकलांग बच्चों के महत्वहीन स्थिति में निर्वासन को देखते हुए महत्वपूर्ण है।

Wanted to Know About Gender-Neutral Pronouns)]

यह निर्धारित करेगा, कि क्या बालक को बालक के परिवार या साझा घर की अभिरक्षा से बाहर निकालना और बालक गृह या आश्रय गृह में रखा जाना आवश्यक है।"

### III (2) ग. सी.डब्ल्यू.सी. द्वारा जाँच:

26. सी.डब्ल्यू.सी. की भूमिका पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (3) में एक रिपोर्ट प्राप्त होने पर शुरू होती है। इसके बाद सीडब्ल्यूसी जे. जे. अधिनियम, 2015 की धारा 31 (1) के तहत निहित शक्तियों के अनुसार, पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (5) के तहत अपना निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ेगी। संबंधित प्रावधानों को नीचे उद्धृत किया गया है:

"4 (5) उप-नियम (3) के अधीन कोई रिपोर्ट प्राप्त होने पर, संबंधित सीडब्ल्यूसी किशोर न्याय अधिनियम, 2015 (2016 का 2) की धारा 31 की उप-धारा (1) के अधीन अपनी शक्तियों के अनुसार, तीन दिनों के भीतर, या तो स्वयं या किसी सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता से,

27. सीडब्ल्यूसी को कानून द्वारा पीड़ितों से उनकी स्थितियों से संबंधित विभिन्न पहलुओं के मिलने के बाद एक रिपोर्ट बनाने का आदेश दिया गया है। सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्ट के मापदंड जो इसके उद्देश्य को भी परिभाषित करते हैं, पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (6) में दिए गए हैं। संदर्भ में आसानी के लिए विवाद से संबंधित प्रावधानों को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: "(6) उप-नियम (4) के अधीन निर्धारण करते समय, सीडब्ल्यूसी निम्नलिखित विचारों के संबंध में बालक के सर्वोत्तम हितों के साथ मामले पर बालक द्वारा व्यक्त की गई किसी प्राथमिकता या राय पर को ध्यान में रखेगा, यथा:

(i) माता-पिता, या दोनों में से एक, या कोई अन्य व्यक्ति जिस पर बालक को भरोसा और विश्वास है, की बालक को चिकित्सा जरूरतों और परामर्श सहित तत्काल देखभाल और संरक्षण आवश्यकता को प्रदान करने की क्षमता;

(प्रभाव वर्धित)

(ii) बालक के माता-पिता, परिवार और विस्तारित परिवार की देखभाल में रहने और उनके साथ संबंध बनाए रखने की आवश्यकता;

9 लिंग समावेशी सर्वनाम के रूप में "उसके" या "उसके" के स्थान पर 'उनके' का उपयोग किया जा रहा है। ऐसी स्थितियों में "उनका" एकवचन के रूप में प्रयोग किया जाता है। [ see: Time (Everything You Ever

10 लिंग समावेशी सर्वनाम के रूप में "उसके" या "उसके" के स्थान पर "उनके" का उपयोग किया जा रहा है। ऐसी स्थितियों में "उनका" एकवचन के रूप में प्रयोग किया जाता है। [see: Time (Everything You Ever Wanted to Know About Gender-Neutral Pronouns)]

(iii) बालक की उम्र और परिपक्वता का स्तर, लिंग और सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि:

(iv) बालक की निःशक्तता, यदि कोई हो;

(v) कोई पुरानी बीमारी, जिससे बालक पीड़ित हो सकता है;

(vi) बालक या बालक के परिवार के सदस्य सहित पारिवारिक हिंसा का कोई इतिहास; और,

(vii) कोई अन्य सुसंगत कारक जो बालक के सर्वोत्तम हितों पर असर डाल सकते हैं:

परंतु ऐसा निर्धारण करने से पूर्व, इस तरह से जांच की जाएगी कि बालक को अनावश्यक रूप से चोट या असुविधा न पहुंचे।"

28. "माता-पिता की योग्यता" की जांच करते हुए, सी.डब्ल्यू.सी. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (6) के तहत, संकट की घड़ी में पीड़ित को बिना शर्त समर्थन देने और बच्चे के पीछे परिवार को एकजुट करने के लिए माता-पिता की योग्यता की जांच करेगी। वैधानिक आदेश को पीड़ित की दुर्दशा के प्रति माता-पिता द्वारा दिखाई गई सहानुभूति का पता लगाने और बच्चे को इस कठिन परीक्षा से उबरने में सहायता करने के लिए उत्तरदायी जुड़ाव के

द्वारा आगे बढ़ाया जाता है। माता-पिता की क्षमता इस बात से प्रतिबिंबित होती है कि वे पीड़िता के पुनर्वास और सामाजिक मुख्यधारा में आत्मविश्वास से पुनः प्रवेश की सुविधा कैसे प्रदान करते हैं। जांच में माता-पिता की दबाव झेलने की ताकत और जांच/मुकदमे के दौरान बच्चे को अस्वस्थ प्रभावों से बचाने की

11 लिंग समावेशी सर्वनाम के रूप में "उसे" या "उसके" के स्थान पर "उन्हें" का उपयोग किया जा रहा है। ऐसी स्थितियों में "उन्हें" का प्रयोग एकवचन के रूप में किया जाता है। [see: Time (Everything You Ever Wanted to Know About Gender-Neutral Pronouns)]

क्षमता को ध्यान में रखना चाहिए।

29. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में "माता-पिता की क्षमता" पीड़िता और उसके परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और कमजोरियों को निर्धारित करने की आवश्यकता को दर्शाती है। इन्हें, बच्चे पर अपराध के प्रभाव और माता-पिता की पीड़ित बच्चे के लिए उनके 2 न्याय पाने और गरिमा के साथ समापन की तलाश में अनुकूल माहौल प्रदान करने की क्षमता के आलोक में देखा जाना चाहिए।

### III (2) घ. सी.डब्ल्यू. सी. की सहायता करने वाली एजेंसियां

30. सी. डब्ल्यू. सी. अपनी रिपोर्ट तैयार करने में पॉक्सो नियमावली, 2020 (पहले उद्धृत) के नियम 4 (5) के आलोक में एक सामाजिक

कार्यकर्ता और अन्य विशेषज्ञ एजेंसियों की सहायता ले सकता है। सी. डब्ल्यू. सी. द्वारा प्रक्रिया का प्रयोग तंग करने वाला नहीं होना चाहिए और बच्चे और परिवार की निजता का सम्मान करना चाहिए।

31. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (8) से 4 (12) में सी.डब्ल्यू.सी. द्वारा एक उपयुक्त "सहायक व्यक्ति" की नियुक्ति पर विचार किया गया है। सी. डब्ल्यू. सी. को प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और मुकदमे की प्रक्रिया द्वारा से बच्चे की हर संभव तरीके से सहायता करने के लिए एक उपयुक्त सहायक व्यक्ति नियुक्त करना चाहिए और पीड़ित पर किसी भी मामले में दबाव डालने की संभावना को भी दूर करना चाहिए। सहायक व्यक्ति की जानकारी पुलिस अधिकारियों को दी जाएगी। सहायक व्यक्ति की निगरानी सी. डब्ल्यू. सी. द्वारा की जाएगी। जिसके प्रावधान को नीचे उद्धृत है:

-----  
12 "उनका "उसका" या "उसका" के स्थान पर लिंग समावेशी सर्वनाम के रूप में उपयोग किया जा रहा है। ऐसी स्थितियों में उनका "एकवचन के रूप में उपयोग किया जाता है। [see: Time (Everything You Ever Wanted to Know About Gender-Neutral Pronouns)]

"(8) सीडब्ल्यूसी, अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (6) के अधीन रिपोर्ट प्राप्त करने पर या उपनियम (5) के अधीन किए

गए उसके निर्धारण के आधार पर, बालक और बालक के माता-पिता या संरक्षक या वह व्यक्ति जिस पर बालक का भरोसा और विश्वास है की सहमति से जांच और परीक्षण की प्रक्रिया के दौरान बालक को हरसंभव तरीके से सहायता प्रदान करने के लिए एक सहायक व्यक्ति उपलब्ध करा सकता है, और बालक को एक सहायक व्यक्ति उपलब्ध कराने के बारे में एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस को तुरंत सूचित करेगा।

(9) सहायक व्यक्ति हर समय उस बालक से संबंधित सभी सूचनाओं, जिन तक उसकी पहुंच है की गोपनीयता बनाए रखेगा और वह बालक और बालक के माता-पिता या संरक्षक या अन्य व्यक्ति जिस पर बालक को भरोसा और विश्वास है, को उपलब्ध सहायता, न्यायिक प्रक्रियाओं और संभावित परिणामों सहित मामले की कार्यवाही के बारे में सूचित करेगा। सहायक व्यक्ति बालक को न्यायिक प्रक्रिया में सहायक व्यक्ति की भूमिका के बारे में भी सूचित करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि अभियुक्त के संबंध में बालक की सुरक्षा के बारे में बालक को होने वाली किसी भी चिंता और

सहायक व्यक्ति द्वारा बालक की गवाही देने के तरीके से संबंधित अधिकारियों को सूचित किया जाए।

(10) जहां बालक को कोई सहायक व्यक्ति उपलब्ध कराया जाता है, तो एसजेपीयू या स्थानीय पुलिस ऐसा दायित्व सौंपने के 24 घंटे के भीतर विशेष अदालत को लिखित में सूचित करेगी।

(11) बालक और बालक के माता-पिता या संरक्षक या वह व्यक्ति जिस पर बालक को भरोसा और विश्वास है, के अनुरोध पर सीडब्ल्यूसी द्वारा सहायक व्यक्ति की सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं, और समाप्ति का अनुरोध करने वाले बालक को ऐसे अनुरोध का कोई कारण बताना आवश्यक नहीं होगा। विशेष अदालत को ऐसी सूचना लिखित में दी जाएगी।

(12) सीडब्ल्यूसी जांच के पूरा होने तक सहायक व्यक्ति से शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य पर केंद्रित पारिवारिक स्थिति और आघात से बचाव की दिशा में प्रगति सहित बालक की स्थिति और देखभाल के संबंध में मासिक

रिपोर्ट मांगेगा; मनोवैज्ञानिक देखभाल और परामर्श सहित बालक को आवश्यकता-आधारित निरंतर चिकित्सा सहायता सुनिश्चित करने के लिए, सहायक व्यक्ति के समन्वय से, चिकित्सा देखभाल सुविधाओं के साथ संलग्न करेगा; और बालक की शिक्षा को पुनः चालू करना, या जारी रखना, या अपेक्षित होने पर बालक को नए स्कूल में शिफ्ट करना सुनिश्चित करेगा।"

III (2) ई- सी. डब्ल्यू. सी. द्वारा पीड़ित बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन:

32. किसी मामले में बच्चे की प्राथमिकता या राय को ध्यान में रखते हुए, बच्चे के सर्वोत्तम हितों के साथ सी.डब्ल्यू.सी. द्वारा जांच का दायरा पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (6) में प्रदान किया गया है (जैसा उद्धृत किया गया है) पहले)।

33. पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 और नियम 4 (6) (vii) में प्रयुक्त शब्द विशेष रूप से "बच्चे के सर्वोत्तम हित" वाक्यांश सी. डब्ल्यू. सी. जांच के व्यापक दायरे को दर्शाते हैं। पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 (6) (vii) की व्यापक शर्तों को लागू करना सी. डब्ल्यू. सी. के विधायी उद्देश्य को प्राप्त करने की कुंजी है। पॉक्सो नियमावली 2020 15 के नियम 4 (6) (vii) में पॉक्सो अधिनियम के अपराध से पीड़ित व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक स्थिति की जांच भी शामिल है।

34. यौन अपराधों से पीड़ित बच्चों के साथ जुड़ना और उनकी स्थितियों का मूल्यांकन करना एक जटिल कार्य है। इस प्रक्रिया के लिए बाल मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य और संबद्ध क्षेत्रों के विशेषज्ञों द्वारा पीड़ित के संवेदनशील जुड़ाव और पेशेवर प्रबंधन की आवश्यकता होती है। कई मामलों में सी. डब्ल्यू. सी. के सदस्य पेशेवर मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य और व्यवहार विज्ञान के विशेषज्ञ नहीं होते हैं, और अक्सर उनके पास इन विशेषज्ञों की सलाह तक पहुंच नहीं होती है। विशेषज्ञ सलाह की अभाव के परिणामस्वरूप सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्टों में दुर्बलता होती है जो पीड़ितों को स्थायी आघात दे सकती है, उनके पुनर्वास में बाधा डाल सकती है और यहां तक कि न्याय की प्रक्रिया को भी धोखा दे सकती है। इन परिस्थितियों में सी. डब्ल्यू. सी. के लिए यह अनिवार्य है कि वह यौन शोषण से पीड़ित बच्चों की मानसिक स्थिति और जरूरतों का मूल्यांकन करने के लिए एक वैज्ञानिक ढांचा विकसित करने के लिए विशेषज्ञ एजेंसियों के साथ काम करे।

35. राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और तंत्रिका विज्ञान संस्थान, बेंगलूर ने अगस्त 2023 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों और मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों की कमी देखी थी, जिसे 'जुवेनाइल्स इन कानफिल्ट विद लॉ के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया था।'

36. एन. आई. एम. एच. ए. एन. एस. जैसी विशेषज्ञ एजेंसियों द्वारा विकसित पूछताछ और टेम्पलेटों की मानकीकृत पंक्तियों का निर्माण

वर्तमान प्रणाली में कमियों को पूरा कर सकता है। एन. आई. एम. एच. ए. एन. एस. जैसे संस्थानों द्वारा तैयार की गई मानकीकृत मूल्यांकन प्रणाली / पूछताछ प्रारूप सी. डब्ल्यू. सी. को पॉक्सो अधिनियम के अपराध से पीड़ित बच्चे की मानसिक स्थिति का

-----  
13 एतस्मिनपश्चात् "एन. आई. एम. एच. ए. एन. एस." के रूप में संदर्भित आकलन करने और उसके पुनर्वास की प्रक्रिया निर्धारित करने में मार्गदर्शन कर सकते हैं। जांच के उक्त मानक सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्ट का आधार बन सकते हैं। 37. सी. डब्ल्यू. सी. की रिपोर्टों में मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों / मनोवैज्ञानिकों की राय एक कानूनी आदेश है जो न्यायालयों को पीड़ित बच्चे की न्यायालय के समक्ष गवाही देने की क्षमता निर्धारित करने और मुकदमे की कार्यवाही को संवेदनशील बनाने में सहायता करता है। उक्त रिपोर्टों में मानसिक स्वास्थ्य पेशेवरों/मनोवैज्ञानिकों की राय को शामिल करने से आवश्यकता पड़ने पर लंबे समय तक उपचार के लिए मानसिक स्वास्थ्य पेशेवरों को समय पर संदर्भित करके पीड़ित के पुनर्वास में भी सहायता मिलेगी।

38. कई क्षेत्रों में विधायिका ने अन्य क्षेत्रों और क्षेत्र विशेषज्ञों के साथ कानून और कानूनी पेशेवरों के इंटरफेस की आवश्यकता को स्वीकार किया है।

39. कभी-कभी अदालतों की शांत प्रक्रिया द्वारा बनाई गई बौद्धिक पूंजी इस समय के जटिल कानूनी मुद्दों को संबोधित करने के लिए

अपर्याप्त होती है। ऐसी स्थितियों में, न्यायालयों ने ज्ञान के अन्य क्षेत्रों या विशेषज्ञता के क्षेत्रों से लाभ उठाने में संकोच नहीं किया है। अंतःविषय जुड़ाव बौद्धिक पूंजी प्राप्त करता है जो यौन अपराधों के नाबालिग पीड़ितों से संबंधित जटिल निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में न्याय प्रदान करने के लिए आवश्यक है। अंतःविषय जुड़ाव की अवधारणा को कानूनी प्रक्रिया में वैधता मिली है। संवैधानिक न्यायालयों के संचालन में समावेशी निर्णय लेना ध्यान देने योग्य है। कानून की प्रक्रिया में इस प्रतिमान परिवर्तन को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बरुण चंद्र ठाकुर बनाम मास्टर भोलू और अन्य**<sup>14</sup> मामले में मान्यता दी गई थी।

40. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न हुई बरुण चंद्र ठाकुर (उपरोक्त) में अपनाई गई कार्यप्रणाली

-----  
14 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 870

और अवधारणा से चर्चा को लाभ होगा।

41. बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र में अदालतों और विशेषज्ञों के बीच अंतःविषय जुड़ाव की अवधारणा की पुष्टि **बरुण चंद्र ठाकुर (उपरोक्त)** में एन.आई.एम.एच.ए.एन.एस, बेंगलूर जैसी विभिन्न विशेष एजेंसियों और संस्थानों पर संदर्भ और भरोसा करके की गई थी।

42. बरुण चंद्र ठाकुर उपरोक्त ने बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र की विशेष प्रकृति और जेजे

अधिनियम, 2015 की धारा 15 द्वारा अनिवार्य प्रारंभिक मूल्यांकन में ऐसे विशेषज्ञों की रिपोर्ट को एकीकृत करने के महत्व पर ध्यान देते हुए कहा:

"75. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाल मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा है, इसकी उत्पत्ति इस आधार पर आधारित है कि बच्चों और वयस्कों की एक अलग विचार प्रक्रिया होती है। किशोर मानसिक क्षमता और अपराध के परिणामों को समझने की योग्यता का व्यक्तिगत मूल्यांकन अधिनियम, 2015 की धारा 15 द्वारा अनिवार्य प्रारंभिक मूल्यांकन के सबसे महत्वपूर्ण निर्धारकों में से एक है। प्रारंभिक मूल्यांकन की रिपोर्ट 16 से 18 वर्ष की आयु के बच्चे के मामले को बाल न्यायालय में स्थानांतरित करने के सार्थक प्रश्न का निर्णय करती है। कानून के साथ संघर्ष में बच्चे की 'मानसिक क्षमता और परिणामों को समझने की योग्यता' के इस मूल्यांकन को किसी भी तरह से एक असावधानीपूर्वक और नियमित कार्य की स्थिति में नहीं डाला जा सकता है। एक निर्णय लेने की प्रक्रिया जिस पर विधि के साथ द्वन्द्व में बच्चे का भाग्य अनिश्चित रूप से निर्भर

करता है, जिसे एक सावधानीपूर्वक मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किए बिना नहीं लिया जाना चाहिए।"

43. न्यायिक प्रक्रिया में अंतःविषय इंटरफेस का नेतृत्व न्यायाधीश लुई डी. ब्रांडेस ने किया था। न्यायालयों के जुड़ाव और ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के साथ कानून की प्रक्रिया का एक लंबा इतिहास रहा है। यह हाल के दिनों में हमारे देश में अधिक स्वीकार्यता प्राप्त कर रहा है। न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अदालतों ने लगातार पर्यावरण विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों आदि की रिपोर्ट मांगी है।

### III (2) एफ - सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्ट और न्यायालयों की प्रक्रिया

44. जमानत आवेदनों पर निर्णय लेते समय सी. डब्ल्यू. सी. की रिपोर्टों पर विचार करना पॉक्सो अधिनियम द्वारा बनाए गए कानून की नई रूपरेखा को दर्शाता है [सन्दर्भ: जुनैद (उपरोक्त)]।

45. सी. डब्ल्यू. सी. की रिपोर्ट पॉक्सो अधिनियम, 2012 के साथ सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत पीड़ितों के विभिन्न सुरक्षात्मक उपायों और अन्य अधिकारों के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है

46. सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्ट न्यायालयों को पीड़ित की स्थिति का मूल्यांकन करने और कानून की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाने में

सहायता करती है। सी. डब्ल्यू. सी. रिपोर्ट न्यायालय को यह निर्धारित करने में भी मदद करती है कि क्या पीड़ित के पास पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत विभिन्न सुरक्षात्मक और पुनर्वास उपायों तक पहुंच है, जिसे पॉक्सो नियमावली, 2020 के साथ पढ़ा जाता है। अदालतें अधिकारियों को निर्देश देने के लिए बाध्य हैं कि जब भी कमियां पाई जाएं, वे पॉक्सो अधिनियम, 2012 के साथ सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत बाल पीड़ितों को लाभ और हक प्रदान करें। बाल पीड़ितों के अधिकारों को इस तरह से पूरा किया जाता है।

47. परामर्श सेवाओं, चिकित्सा देखभाल, सहायक व्यक्तियों और कानूनी सहायता जैसी वैधानिक सहायता प्रणालियों से इनकार करने से पीड़ितों को न्यायालयी कार्यवाही में नुकसान होता है, उनके पुनर्वास में बाधा आती है और वे विधायिका के इरादे को विफल कर देते हैं।

48. सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट अदालतों को विभिन्न सरकारी एजेंसियों और वैधानिक निकायों के कामकाज की देखरेख करने में भी सक्षम बनाती है जिन पर पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 को लागू करने के कर्तव्यों का प्रभार है।

49. जिन अधिकारियों पर संविधि पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत पीड़ितों के अधिकारों को सुरक्षित करने का कर्तव्य लागू करती है, वे उन अदालतों के प्रति जवाबदेह हैं जहां विधिक

कार्यवाहियां लंबित हैं। **जुनैद (उपरोक्त)** में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"42.... यह कहा जाना चाहिए कि दिल्ली उच्च न्यायालय और बॉम्बे उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय कानूनी बहस को समृद्ध करते हैं और बाल अधिकारों की चिंताओं को अदालत की अंतरात्मा तक उठाते हैं। इन फैसलों ने कानून की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाया है और अदालतों की जिम्मेदारियों को स्वीकार करके और सीडब्ल्यूसी, विधिक सेवा प्राधिकरणों और पुलिस अधिकारियों को जमानत प्रार्थना पत्रों में अदालतों के प्रति जवाबदेह बनाकर बाल पीड़ितों की दुर्दशा को कम किया है। कानून के इन मान्यता प्राप्त सिद्धांतों को **रीना झा (उपरोक्त)**, **मिस जी (उपरोक्त)**, **अर्जुन किशनराव मालगे (उपरोक्त)** से स्पष्ट रूप से प्राप्त किया जा सकता है।"

50. संक्षेप में सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट अधिनियम के अनुरूप पॉक्सो अधिनियम, 2012 के अपराधों से पीड़ित बच्चों को न्याय दिलाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार यह आवश्यक है कि जमानत प्रार्थना-पत्रों की सुनवाई के समय सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट को विचार के लिए विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय के समक्ष रखा जाना चाहिए।

#### IV. निष्कर्ष और निर्देश

51. पॉक्सो अधिनियम के अपराधों के पीड़ित बच्चों को न्याय आरोपी को कानून का सामना करने के लिए लाने के एक एकल कार्य मात्र से ही सुरक्षित नहीं हो जाता। पॉक्सो अधिनियम योजना बच्चों के यौन शोषण के खतरे पर एक समग्र दृष्टिकोण रखती है और अधिनियम के तहत न्याय के कई पहलू हैं। यौन अपराधों से पीड़ित बच्चों को न्याय वास्तव में तब मिलता है जब विधायन की सुरक्षात्मक पटकथा कानून की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाती है, अधिनियम के तहत पीड़ा को करने वाले उपाय आघात को ठीक करते हैं और पीड़ित को हुए घावों को मिटा देते हैं और विधायिका द्वारा विचार की गई पुनर्वास योजना पीड़ित को पूरी गरिमा के साथ सामाजिक मुख्यधारा में समाहित करती है।

52. इस संदर्भ में, निष्पादन के लिए सक्षम अधिकारियों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:

I. न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, राज्य सरकार, उच्च विधिक शिक्षा संस्थानों, उच्च अनुसंधान और शिक्षण संस्थानों, निमहन्स जैसे विशेष विशेषज्ञता वाले संस्थानों, सीडब्ल्यूसी और इस क्षेत्र के अन्य विशेषज्ञों के परामर्श से पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत अपराधों के पीड़ितों की मानसिक स्थिति



निर्धारित करने और उनके पुनर्वास के लिए एक मानकीकृत मूल्यांकन प्रणाली / जांच प्रणाली बनाएगा। उक्त मानकीकृत जांच प्रणाली सीडब्ल्यूसी को बच्चे के साथ जुड़ने और पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 के तहत एक रिपोर्ट बनाने के लिए आधार प्रदान करेगी।

II. राज्य सरकार/अपर मुख्य सचिव, महिला और बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ इस कार्य में जेटीआरआई को हर संभव सहायता प्रदान करेंगे।

III. निमहन्स जेटीआरआई के अनुरोध पर यौन अपराधों से पीड़ित बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य और पुनर्वास उपायों को अवधारित करने के लिए मानकीकृत मूल्यांकन जांच / टेम्पलेट बनाएगा।

IV. इसी तरह जेटीआरआई राज्य सरकार, सीडब्ल्यूसी और विशेषज्ञता व उच्च शिक्षा के अन्य संस्थानों के साथ परामर्श के बाद उचित मानकीकृत मूल्यांकन प्रारूप/टेम्पलेट बनाएगा जिसमें पॉक्सो नियमावली, 2020 के नियम 4 और जेजे नियमावली, 2016 के नियम 19

और विधि के अन्य प्रासंगिक प्रावधानों में विचार किए गए अन्य सभी प्रासंगिक तथ्य शामिल होंगे।

V. सीडब्ल्यूसी पॉक्सो अधिनियम, 2012 सपठित पॉक्सो नियमावली, 2020 के तहत सीडब्ल्यूसी रिपोर्टों को तैयार करने के लिए उपरोक्त मानकीकृत जांच / टेम्पलेट का उपयोग करेंगे।

VI. राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि जिन एजेंसियों की सहायता सीडब्ल्यूसी द्वारा पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 39 के तहत ली जा सकती है, उनके विवरण सीडब्ल्यूसी को विधिवत प्रदान किया जाए।

VII. जेटीआरआई राज्य सरकार, सीडब्ल्यूसी और अन्य हितधारकों के साथ उचित परामर्श के बाद राज्य में सभी सीडब्ल्यूसी सदस्यों के लिए प्रशिक्षण मॉड्यूल तैयार करेगा। प्रशिक्षण मॉड्यूल राज्य सरकार द्वारा लागू किए जाएंगे।

VIII. जेटीआरआई, लखनऊ, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की

तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर कार्य समाप्त करेगा।

53. इस तरह निर्मित उपरोक्त मानकीकृत मूल्यांकन प्रणाली / टेम्पलेटों के अलावा, सीडब्ल्यूसी के पास किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और कानून के अनुसार किसी भी अन्य प्रासंगिक मुद्दों की आगे की जांच करने का अधिकार होगा।

54. इस न्यायालय ने यह भी नोटिस किया है कि सीडब्ल्यूसी को आवश्यक बुनियादी ढांचा प्रदान नहीं किया गया है और उनके कार्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक साधनों की कमी है। राज्य सरकार / अपर मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को निर्देश दिया जाता है कि वे सीडब्ल्यू के वैधानिक कार्यों के निर्वहन को सुविधाजनक बनाने के लिए सीडब्ल्यूसी के पास उपलब्ध बुनियादी ढांचे का तत्काल मूल्यांकन करें और उनका उन्नयन करें (बढ़ाएँ)।

55. सीडब्ल्यूसी को रिपोर्ट बनाते समय अपने अधिकार क्षेत्र के दायरे और सीमाओं के प्रति सचेत रहना होगा। सीडब्ल्यूसी की रिपोर्ट धारा 173 सीआरपीसी के तहत अपराधों में पुलिस द्वारा की गई विवेचना का हिस्सा नहीं है। रिपोर्ट को सीआरपीसी के सुसंगत प्रावधानों के तहत दिए गए पीड़ित के बयानों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है।

56. सीडब्ल्यूसी को अपने वैधानिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विधिक औचित्य के मानदंडों का पालन करना होगा और अपने अधिकार क्षेत्र की सीमा

के भीतर कार्य करना होगा। इन सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करने वाली सीडब्ल्यूसी पीड़ितों की दुर्दशा के लिए वैधानिक अधिकारियों और न्याय की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाएगी और उनके अधिकारों को पूरा करेगी।

57. सीडब्ल्यूसी के कार्यों में गड़बड़ी और उनकी रिपोर्टों की उपेक्षा पाँक्सो अधिनियम, 2012 के संचालन को बाधित करती है, विधायिका के वादे को नकारती है और यौन शोषण से पीड़ित बच्चों के लिए न्याय की गुणवत्ता को कमतर करती है। राज्य सरकार द्वारा तत्काल उपचारात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए।

58. इस आदेश की प्रति को सम्मानपूर्वक माननीय किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम समिति और यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम समिति के समक्ष उचित विचार और उचित कार्रवाई के लिए रखा जा सकता है और निदेशक, न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के समक्ष भी अनुपालन के लिए रखा जा सकता है।

59. निदेशक, जेटीआरआई, लखनऊ और अपर मुख्य सचिव, महिला और बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, विभिन्न हितधारकों के परामर्श से बाल कल्याण समितियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करेंगे।

## V. जमानत प्रार्थना-पत्र में आदेश

60. यह दूसरी जमानत याचिका है।

61. जमानत प्रार्थना-पत्र के माध्यम से, आवेदक ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 363, 366, 376 घ और पाँक्सो अधिनियम की धारा 5 (जी) 6 के तहत पुलिस स्टेशन-बडगांव, जिला-सहारनपुर में मुकदमा अपराध संख्या 150/2021 में जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना की है।

62. आवेदक इस न्यायालय द्वारा दिनांक 22.08.2023 को दी गई अंतरिम जमानत पर है।

63. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आत्माराम नदीवाल और विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार यादव द्वारा दी गई निम्नलिखित दलीलों, जिनका अभिलेख में राज्य की ओर से विद्वान एजीए। श्री परितोष कुमार मालवीय, विद्वान एजीए श्री ऋषि चंडा और विद्वान एजीए सुश्री सुजाता चौधरी द्वारा संतोषजनक रूप से खंडन नहीं किया जा सका, ने आवेदक को जमानत देने का हकदार बना दिया:

I. पीडब्ल्यू 1, जो प्रथम सूचनादाता और पीड़ित का पिता है और साथ ही पीड़ित ने विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष के मामले का खंडन किया है। अभियोजन पक्ष के कहने पर उपरोक्त गवाहों को पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

II. आवेदक एक कानून का पालन करने वाला नागरिक है जिसने पुलिस विवेचना में सहयोग किया और विचारण में शामिल हुआ था।

III. मुकदमा धीमी गति से चल रहा है और निकट भविष्य में इसके समाप्त होने की संभावना नहीं है। विचारण में देरी के लिए आवेदक जिम्मेदार नहीं है।

IV. विचारण के समापन में अत्यधिक देरी ने आवेदक को अपराध में अभियोजित करने के लिए किसी विश्वसनीय सबूत के बिना लगभग अनिश्चितकालीन कारावास का कारण बना दिया है और त्वरित मुकदमे के आवेदक के अधिकारों का उल्लंघन किया है।

V. आवेदक भूमिका में अनुरूपता का दावा करता है और सह-अभियुक्त को दी गई राहत में समानता चाहता है, जिसे इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना-पत्र संख्या 5489/2023 में दिनांक 27.07.2023 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया है।

VI. आवेदक के भागने का कोई खतरा नहीं है। कानून का पालन करने वाले नागरिक होने के नाते आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया है और मुकदमे की कार्यवाही में शामिल होने का वचन देता है। उसके गवाहों को प्रभावित करने, सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या फिर से अपराध करने की कोई संभावना नहीं है।

64. पूर्ववर्ती परिचर्चा के आलोक में और मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी किए बिना, जमानत प्रार्थना-पत्र को अनुमति दी जाती है।

65. आवेदक- सिद्धांत उर्फ आशु को अंतरिम जमानत पर रिहा करते समय पहले से ही प्रस्तुत प्रतिभूओं पर, उपरोक्त मुकदमा

अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जाए। न्याय हित में निम्नलिखित शर्तें लगाई जाएं: -

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा या किसी भी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(ii) जब तक व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट नहीं दी जाती है, तब तक आवेदक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होगा।

## VI

### I. परिशिष्ट - I

पॉक्सो नियमावली, 2020

### 12. अधिनियम का कार्यान्वयन और निगरानी-

(1) बाल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2005 (2006 के 4) के राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (जिसे इसके पश्चात् "एनसीपीसीआर" कहा गया है) या राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग (जिसे इसके पश्चात् "एससीपीसीआर" कहा गया है), जैसा भी मामला हो उन्हें सौंपे गए कार्यों के अतिरिक्त अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन करने के लिए निम्नलिखित कार्य करेंगे :

(क) राज्य सरकारों द्वारा विशेष न्यायालयों की अभिहित की निगरानी;

(ख) राज्य सरकारों द्वारा विशेष लोक अभियोजकों की नियुक्ति की निगरानी;

(ग) गैर-सरकारी संगठनों, वृत्तियों और विशेषज्ञों या बालक की सहायता करने के लिए पूर्व परीक्षण और परीक्षण चरण और इन मार्गदर्शक सिद्धांतों के उपयोग की निगरानी के लिए मनोविज्ञान, सामाजिक कार्य, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और बालकों के विकास से जुड़े संबंधित ज्ञान वाले व्यक्तियों के उपयोग के लिए राज्य सरकारों द्वारा अधिनियम की धारा 39 में वर्णित मार्गदर्शक सिद्धांतों के निरूपण की निगरानी;

(घ) अधिनियम के अधीन अपने कार्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों के अधिकारियों सहित पुलिस कर्मियों और अन्य संबंधित व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण मॉड्यूल की डिजाइन तैयार करने और कार्यान्वयन की निगरानी;

(ड.) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा टेलीविजन, रेडियो और प्रिंट मीडिया सहित मीडिया के

माध्यम से नियमित अंतराल पर अधिनियम के उपबंधों से संबंधित सूचना के प्रसार की निगरानी और समर्थन करना, ताकि आम लोग, बालकों के साथ-साथ उनके माता-पिता और अभिभावक अधिनियम के उपबंधों से अवगत हो सकें।

(च) सीडब्ल्यूसी के अधिकार क्षेत्र में आने वाले बाल यौन शोषण के किसी विशेष मामले की रिपोर्ट मंगाना।

(छ) निम्नलिखित से संबंधित जानकारी सहित अधिनियम के अधीन की प्रक्रियाओं के अधीन यौन दुर्व्यवहार के मामलों और उनके निपटान के बारे में संबंधित एजेंसियों या स्वयं से जानकारी या आंकड़ा संग्रह करना:

(i) अधिनियम के अधीन रिपोर्ट किए गए अपराधों की संख्या और विवरण;

(ii) क्या प्रक्रियाओं में शामिल टाइमप्रेम सहित अधिनियम और नियमों के अधीन विहित प्रक्रियाओं का पालन किया गया था;

(iii) इस अधिनियम के अधीन अपराधों के पीड़ितों की देखरेख और आपातकालीन चिकित्सा देखभाल और चिकित्सा परीक्षा की व्यवस्था सहित सुरक्षा की व्यवस्था का विवरण, और,

(iv) किसी भी विशिष्ट मामले में संबंधित सीडब्ल्यूसी द्वारा बालकों की देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता के आकलन के बारे में विवरण;

(ज) अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन का आकलन करने के लिए एकत्रित जानकारी का उपयोग करना। अधिनियम की निगरानी की रिपोर्ट को एनसीपीसीआर या एससीपीसीआर की वार्षिक रिपोर्ट में एक अलग अध्याय में शामिल किया जाएगा।

(2) संबंधित अधिकारियों को अधिनियम के अधीन डेटा एकत्र करने, इस तरह के डेटा को केंद्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार, एनसीपीसीआर और एससीपीसीआर के साथ साझा करने का अधिदेश प्राप्त है।

**जे. जे. अधिनियम, 2015**

**परिशिष्ट - II**

**31. समिति के समक्ष पेश किया जाना-**

(1) देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले किसी बालक को निम्नलिखित किसी व्यक्ति

द्वारा समिति के समक्ष पेश किया जा सकेगा, अर्थात्:

(i) किसी पुलिस अधिकारी द्वारा या विशेष किशोर पुलिस एकक या पदाभिहित बालक कल्याण पुलिस अधिकारी या जिला बालक कल्याण एकक के किसी अधिकारी या तत्समय प्रवृत्त किसी श्रम विधि के अधीन नियुक्त निरीक्षक द्वारा;

(ii) किसी लोक सेवक द्वारा;

(iii) ऐसी बालबद्ध सेवाओं या किसी स्वैच्छिक या गैर सरकारी संगठन या किसी अभिकरण द्वारा, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा मान्यता दी जाए;

(iv) बालक कल्याण अधिकारी या परिवीक्षा अधिकारी द्वारा;

(v) किसी सामाजिक कार्यकर्ता या लोक भावना से युक्त नागरिक द्वारा;

(vi) स्वयं बालक द्वारा; या

(vii) किसी नर्स, डाक्टर, परिचर्या गृह (नर्सिंग होम), अस्पताल या प्रसूति गृह के प्रबंध तंत्र द्वारा;

परन्तु बालक को समय नष्ट किए बिना, किन्तु यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घंटे की अवधि के भीतर समिति के समक्ष पेश किया जाएगा।

(2) राज्य सरकार, जांच की अवधि के दौरान समिति को रिपोर्ट प्रस्तुत करने की रीति का और बालक को, यथास्थिति, बाल गृह या उपयुक्त सुविधा तंत्र या योग्य व्यक्ति के पास भेजने या सौंपने की रीति का उपबंध करने के लिए इस अधिनियम से संगत नियम बना सकेगी

जे. जे. नियमावली, 2016

परिशिष्ट - III

18. समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना--

(1) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालको कार्य समय के दौरान समिति के बैठक स्थल पर समिति के समक्ष और कार्य समय के बाद इयूटी रोस्टर के अनुसार समिति के सदस्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा:

परंतु जहां बालक को समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, वहां स्वतः समिति बालक तक पहुंचने के लिए ऐसे बालक के स्थान तक जाएगी।

जे. जे. नियमावली, 2016

परिशिष्ट - IV

19. जांच की प्रक्रिया-

(1) समिति उन परिस्थितियों की जांच करेगी, जिनमें बालक को प्रस्तुत किया गया है, और तदनुसार ऐसे बालक को देखरेख और संरक्षण का जरूरतमंद बालक घोषित करेगी।

(2) यदि आवश्यक हुआ तो अधिनियम की धारा 94 के अनुसार आगे जांच कार्य लंबित रहने के समय समिति अपनी अधिकारिता का अभिनिश्चय करने के उद्देश्य से प्रथमदृष्ट्या बालक की आयु अवधारित करेगी।

(3) जब बालक को समिति के समक्ष लाया जाता है, तब समिति प्रारूप 21 में आदेश के माध्यम से अधिनियम की धारा 36 की उप धारा (2) के अधीन सामाजिक अन्वेषण करने के लिए वह मामला किसी सामाजिक कार्यकर्ता या मामला कार्यकर्ता या बाल कल्याण अधिकारी या किसी मान्यताप्राप्त गैर-सरकारी संगठन को सौंपेगी।

(4) समिति उपयुक्त पुनर्वास योजना सहित व्यक्तिगत देखरेख योजना प्रारूप 7 में तैयार करने का निर्देश संबंधित व्यक्ति या संगठन को देगी। संस्थागत देखरेख में रहने वाले प्रत्येक बालक के लिए तैयार की जाने वाली यह व्यक्तिगत देखरेख योजना मामले के पूर्ववृत्त, बालक की परिस्थितियों और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर उसके पूर्ण पुनर्वास और पुनर्संयोजन के उद्देश्य से तैयार की जाएगी।

(5) जांच कार्य से नैसर्गिक न्याय के आधारभूत सिद्धांतों की पूर्ति होगी और बालक एवं उसके माता-पिता या संरक्षक की जानकारी प्राप्त

भागीदारी सुनिश्चित होगी। बालक को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा और उसकी आयु और परिपक्वता के स्तर के अनुरूप उसके विचारों को भी ध्यान में रखा जाएगा। समिति के आदेश लिखित रूप में होंगे और उनमें कारणों का उल्लेख किया जाएगा।

(6) समिति बालक से संवेदनशील और बालक के अनुकूल तरीके से सवाल-जवाब करेगी और किसी भी प्रतिकूल या आरोप लगाने वाले शब्दों या बालक की गरिमा या आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करेगी।

(7) समिति प्रारूप 19 के अनुसार बालक को उसके सर्वोत्तम हित में निर्मुक्त या उसका प्रत्यावर्तन करने से पहले दस्तावेजों और सत्यापन रिपोर्टों के माध्यम से अपनी संतुष्टि करेगी।

(8) सामाजिक कार्यकर्ता या मामले के कार्यकर्ता या संस्था या किसी गैर-सरकारी संगठन के बाल कल्याण अधिकारी द्वारा किया जाने वाला सामाजिक अन्वेषण प्रारूप 22 के अनुसार होगा और इसमें बालक की पारिवारिक स्थिति के मूल्यांकन का विस्तृत विवरण होना चाहिए तथा लिखित रूप में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि क्या बालक के परिवार को उसका प्रत्यावर्तन उस बालक के सर्वोत्तम हित में होगा।

(9) बालक को निर्मुक्त करने या उसका प्रत्यावर्तन करने से पहले समिति उस बालक और उसके माता-पिता अथवा संरक्षक को परामर्शदाता के पास भेज सकेगी।

(10) समिति अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए बालकों के समुचित अभिलेख रखेगी, जिनमें चिकित्सीय रिपोर्ट, सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट, कोई अन्य रिपोर्ट (टैं) और बालक के विषय में समिति द्वारा पारित आदेश शामिल होंगे।

(11) जांच कार्य के लंबित रहने के सभी मामलों में, समिति बालक को पेशी की अगली तारीख की जानकारी पिछली तारीख के बाद अधिकतम 15 दिनों की अवधि में देगी और ऐसी प्रत्येक तारीख को जांच कार्य कर रहे सामाजिक कार्यकर्ता या मामले के कार्यकर्ता या बाल कल्याण अधिकारी से आवधिक स्थिति रिपोर्ट भी मांगेगी।

(12) जांच कार्य के लंबित रहने के सभी मामलों में, समिति बालक को प्रस्तुत किए जाने की पहली तारीख से शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण इत्यादि सहित बालक के पुनर्वास के उपाय करने के निर्देश उस व्यक्ति या संस्था को देगी, जिसके पास बालको रखा गया है।

(13) जब समिति की बैठक जारी न हो तब समिति के किसी एक सदस्य द्वारा लिए गए किसी निर्णय का अनुसमर्थन, समिति की अगली बैठक में किया जाएगा।

(14) किसी मामले के अंतिम निपटान के समय, अध्यक्ष सहित कम से कम तीन सदस्य उपस्थित होंगे और अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष द्वारा इस रूप में कार्य करने के लिए अभिहित सदस्य उपस्थित होगा।

(15) समिति एक निकाय के रूप में तालमेलपूर्ण ढंग से कार्य करेगी और इसलिए अपनी कोई उप-समिति गठित नहीं करेगी।

(16) जहां किसी बालक को किसी अन्य जिले या राज्य या देश को प्रत्यावर्तित किया जाना हो, वहां समिति जिला बाल संरक्षण इकाई को यथापेक्षित आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के निर्देश देगी, जैसे कि अनापत्ति प्रमाणपत्र के लिए विदेशी क्षेत्रीय रजिस्ट्रीकरण कार्यालयों और विदेश मंत्रालय से संपर्क करना, किसी अन्य जिले या राज्य या देश की समक्ष समिति या किसी अन्य स्वैच्छिक संगठन से संपर्क करना, जहां बालको भेजा जाना है।

(17) मामले के अंतिम निपटान के समय, समिति निपटान आदेश में यथास्थिति सामाजिक कार्यकर्ता या मामले के कार्यकर्ता या संस्था या किसी गैर-सरकारी संगठन के बालकल्याण अधिकारी द्वारा प्रारूप 7 में तैयार की गई ऐसे बालकी व्यक्तिगत देखरेख योजना को शामिल करेगी।

(18) मामले का अंतिम निपटान करते समय, समिति मामले के निपटान की तारीख से अधिकतम एक मास की अवधि में बालक के अनुवर्तन की तारीख देगी और उसके बाद छह मास की अवधि तक मास में एक बार तथा उसके बाद कम से कम एक वर्ष या ऐसी अवधि तक, जिसे समिति उपयुक्त समझे, हर तीन मास में एक बार अनुवर्तन की तारीख देगी।



(19) जहां बालक किसी अन्य जिले का हो, वहां समिति आयु संबंधी घोषणा और मामले की फाइल तथा व्यक्तिगत देखरेख योजना संबंधित जिले की समिति को भेजेगी, जो कि व्यक्तिगत देखरेख योजना का अनुवर्तन इस प्रकार करेगी जैसे कि निपटान आदेश उसी ने पारित किया हो।

(20) व्यक्तिगत देखरेख योजना की निगरानी निपटान आदेश पारित करने वाली समिति द्वारा इस प्रयोजनार्थ प्रारूप 14 में जारी किए गए पुनर्वास कार्ड द्वारा की जाएगी और यह कार्ड व्यक्तिगत देखरेख योजना के कार्यान्वयन का अनुवर्तन करने वाली समिति के अभिलेख में शामिल होगा। ऐसा पुनर्वास कार्ड पुनर्वास सह-स्थापन अधिकारी द्वारा रखा जाएगा।

(21) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालक के संबंध में समिति द्वारा पारित सभी आदेश बालक की गोपनीयता और निजता का विधिवत ध्यान रखते हुए अभिहित पोर्टल पर अपलोड भी किए जाएंगे।

(22) जब कोई माता-पिता या संरक्षक अधिनियम की धारा 35 की उप-धारा (1) के अधीन किसी बालक को अभ्यर्पित करना चाहे, तब ऐसे माता-पिता या संरक्षक प्रारूप 23 में समिति को आवेदन प्रस्तुत करेंगे। जिस मामले में ऐसे माता-पिता या संरक्षक निरक्षरता या अन्य किसी कारण से आवेदन प्रस्तुत न कर पाएं, उस मामले में समिति विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाले विधिक सहायता परामर्श के माध्यम से उन्हें आवेदन प्रस्तुत करने में सहायता करेगी।

अभ्यर्पण विलेख प्रारूप 24 के अनुसार निष्पादित किया जाएगा।

(23) समिति अधिनियम की धारा 35 की उप-धारा 3 के अधीन जांच शीघ्रतापूर्वक कराएगी और अभ्यर्पण की तारीख से साठ दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद अभ्यर्पित बालक को दत्तकग्रहण के लिए विधिक रूप से मुक्त घोषित करेगी।

(24) अनाथ या परित्यक्त बालक के मामले में समिति बालक के माता-पिता या संरक्षकों को खोजने के सभी संभव प्रयास करेगी और ऐसी जांच पूरी होने पर, यदि यह सिद्ध हो जाता है कि बालक या तो ऐसा अनाथ या परित्यक्त है, जिसकी देखरेख करने वाला कोई नहीं है तो समिति उस बालक को दत्तकग्रहण के लिए विधिक रूप से मुक्त घोषित करेगी।

(25) विशेषीकृत दत्तकग्रहण अभिकरण सहित किसी बाल देखरेख संस्था को प्राप्त हुए परित्यक्त या अनाथ बालक के मामले में, ऐसा बालक चौबीस घंटे की अवधि में (यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर) प्रारूप 17 में रिपोर्ट के साथ समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा और इस रिपोर्ट में बालक का विवरण और फोटो तथा उन परिस्थितियों का ब्यौरा दर्शाया जाएगा, जिन परिस्थितियों में वह बालप्राप्त हुआ और बाल देखरेख संस्था या विशेषीकृत दत्तकग्रहण एजेंसी द्वारा उसी अवधि में ऐसी रिपोर्ट की प्रति स्थानीय पुलिस को भी प्रस्तुत की जाएगी।

(26) समिति अधिनियम की धारा 36 के अधीन जांच के लंबित रहने के समय बालक के लिए अल्पावधिक स्थापन एवं अंतरिम देखरेख आदेश प्रारूप 18 में जारी करेगी।

(27) समिति अनाथ या परित्यक्त बालक के ब्यौरे को अपलोड कराते हुए, यह अभिनिश्चय करने के लिए अभिहित पोर्टल का प्रयोग करेगी कि क्या परित्यक्त या अनाथ बालक कोई गुमशुदा बालक है।

(28) समिति जोखिम कारकों पर विचार करने के बाद और बालक के सर्वोत्तम हित में उसके जन्मदाता माता-पिता या विधिक संरक्षक (कों) का पता लगाने के प्रयोजनार्थ बालक प्राप्त होने के समय से बहतर घंटे की अवधि में अनाथ या परित्यक्त बालक का ब्यौरा और फोटो व्यापक परिचालन वाले राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रकाशित किए जाने का निर्देश दे सकेगी।

(29) समिति अधिनियम के उपबंधों के अनुसार जांच करने के बाद परित्यक्त या अनाथ बालक को दत्तकग्रहण के लिए विधिक रूप से मुक्त घोषित करने वाला आदेश प्रारूप 25 में जारी करेगी और यह जानकारी प्राधिकरण को भेजेगी।

(30) जहां बालक के माता-पिता का पता लगा लिया जाता है, वहां बालक के प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया इन नियमों के नियम 82 के अनुसार होगी।

-----

(2023) 9 ILRA 1074

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या

655/2023

गोलू @ अरुण पटेल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री चन्द्र प्रकाश तिवारी, श्री महेश कुमार, श्री योगेन्द्र सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-

अनुच्छेद 226--- बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट---

केवल प्रार्थना यह मांगी गई है कि प्रतिवादी को निर्देश दिया जाए कि वह याचिकाकर्ता गोलू उर्फ अरुण पटेल को इस न्यायालय के समक्ष पेश करे और उसके बाद गोलू उर्फ अरुण पटेल को उसकी अपनी स्वतंत्रता पर मुक्त कर दे, जो अपराध संख्या 41/2023 के मामले में एफआईआर के अनुसरण में न्यायिक कारावास में है और अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956 की धारा 4, 5 और 6 के तहत एसटी संख्या 385/2023 में विचारण का सामना कर रहा है --- बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर विचार नहीं किया

जाएगा, जब किसी व्यक्ति को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में सौंप दिया जाता है, जो प्रथम दृष्टया अधिकार क्षेत्र के बिना या पूरी तरह से यांत्रिक तरीके से पारित या पूरी तरह से अवैध प्रतीत नहीं होता है ---जहां कथित न्यायिक रिमांड के संबंध में कोई प्रार्थना स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण या अवैध नहीं है, याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका को अनुमति नहीं दी जा सकती है ---50,000/- रुपये की लागत के साथ प्रार्थना खारिज कर दी गई।

(पैरा 21 और 24)

**याचिका खारिज (ई-15)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. गंभीर धोखाधड़ी जांच कार्यालय एवं अन्य बनाम राहुल मोदी एवं अन्य 2019 (5)एससीसी 266

2. मनुभाई रतिलाल पटेल थू उषाबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य 2013) 1 एससीसी 314

3. गृह सचिव बनाम ओ ब्रायन 1923 एसी 603

4. कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग 1976(2) एससीसी 674

5. संजय दत्त (2) बनाम राज्य 1994 (5)एससीसी 410

6. महाराष्ट्र बनाम तनसीम रिज़वान सिद्दीकी (2018) 9 एससीसी 745

7. वी.एस. सेंथिल बाला जी बनाम राज्य, उप निदेशक एवं अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व, आपराधिक अपील संख्या 2288-2289/2023

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी और माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री योगेन्द्र सिंह और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री सतेन्द्र तिवारी को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

2. गुण-दोष के आधार पर दलीलें सुनने से पहले, विद्वान एजीए ने याचिकाकर्ता गोलू उर्फ अरुण पटेल द्वारा कथित तौर पर दायर वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की 'पोषणीयता' के संबंध में आपत्ति जताई है। इस प्रकार न्यायालय ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को प्रवेश चरण में ही वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की 'पोषणीयता' के संबंध में अपने तर्क को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया है, ताकि उस पर प्रारंभिक चरण में ही निर्णय लिया जा सके।

3. 'पोषणीयता' के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों की सराहना करने से पहले, मामले के तथ्यों के साथ वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई 'प्रार्थना' को

बताना जरूरी है, जिससे कथित तौर पर यह रिट याचिका उत्पन्न हुई है:-

4. याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई प्रार्थना यह है कि:-

"(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश, जिसमें प्रत्यर्थीगणों को माननीय न्यायालय के समक्ष गोलू उर्फ अरुण पटेल नामक कॉर्पस को पेश करने का निर्देश दिया जाए और एफआईआर दिनांक 16.02.2023 के अनुसरण में गोलू उर्फ अरुण पटेल नामक कॉर्पस को मुकदमा अपराध संख्या 41/2023, सत्र विचारण संख्या 385/2023 के रूप में दर्ज अनैतिक तस्करी निवारण अधिनियम की धारा 4.5 और 6, पुलिस राज्य-जयपुरा, जिला-वाराणसी के तहत मुक्त किया जाए।

(ii) याचिकाकर्ता के पक्ष में और प्रत्यर्थीगणों के विरुद्ध मुआवजे का आदेश या निर्देश।

(iii) दोषी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच का आदेश पारित करना।

(iv) कोई अन्य रिट आदेश या निर्देश, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और ठीक समझे।

(v) याचिकाकर्ता के पक्ष में और प्रत्यर्थीगणों के खिलाफ याचिका की लागत का फैसला करें।"

5. इस प्रकार, मांगी गई प्रार्थना से यह स्पष्ट है कि एकमात्र प्रार्थना यह है कि प्रतिवादी

अधिकारियों को याचिकाकर्ता गोलू उर्फ अरुण पटेल को सशरीर इस न्यायालय के समक्ष पेश करने का निर्देश दिया जाए और उसके बाद गोलू उर्फ अरुण पटेल को अपनी स्वतंत्रता के लिए मुक्त करने के लिए, जो एफआईआर दिनांक 16.02.2023 के अनुसरण में मुकदमा अपराध संख्या 41/2023 के मामले में न्यायिक कारावास में है और अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956 की धारा 4, 5 और 6 के तहत सत्र विचारण संख्या 385/2023, पुलिस स्टेशन जैतपुरा, जिला वाराणसी में मुकदमे का सामना कर रहा है। इस आशय की न तो कोई प्रार्थना है और न ही कोई दलील है कि कथित न्यायिक रिमांड पूरी तरह से अवैध है या क्षेत्राधिकार की कमी से ग्रस्त है या संबंधित अदालत द्वारा बिल्कुल यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है। इसके अलावा, अब याचिकाकर्ता नियमित विचारण सत्र विचारण संख्या 385/2023 का सामना कर रहा है और इस प्रकार यह प्रचारित किया जा रहा है कि न्यायिक रिमांड बहुत मुश्किल है।

### **मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि**

6. दिनांक 16.02.2023 को लगभग 13.38 बजे हबीबुर्रहमान ने अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ दिनांक 12.02.2023 को हुई घटना के लिए पुलिस स्टेशन जैतपुरा, जिला काशी (पुलिस कमिश्नरेट वाराणसी) में आईपीसी की धारा 363 के तहत एफआईआर इस आरोप के साथ दर्ज कराई है कि सूचनादाता कोहिनूर गार्डन के निकट बगल की गली में किराये के मकान में रहता है। सूचनादाता की बेटी वी.पी. (बदला हुआ नाम) दिनांक 12.02.2023 को बिना किसी को बताए अपने घर से चली गई और

तब से उसका कोई पता नहीं चल रहा है और इसलिए उसने प्रार्थना की कि पुलिस उसकी बेटी वी.पी. को खोजने में मदद करे। प्राथमिकी दर्ज करने के बाद पुलिस ने सूचनादाता हबीबुर्रहमान से पूछताछ की, लेकिन 15 दिनों के बाद पीड़िता को बरामद कर लिया गया। उसका बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया था और उसे याचिका के साथ संलग्नक संख्या 2ए के रूप में संलग्न किया गया है। सीआरपीसी की धारा 161 दिनांक 25.02.2023 के बयान में उसने यह कहा है कि उसकी उम्र 16 साल है और उसने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में आगे कहा है कि उसने पैसे कमाने के लिए परिवार के किसी भी सदस्य को बिना किसी जानकारी या सूचना दिये अपना घर छोड़ दिया। वह कैंट रेलवे स्टेशन वाराणसी गई और अपने लिए काम की तलाश शुरू कर दी। स्टेशन पर उसकी मुलाकात प्रकाश नामक व्यक्ति से हुई। प्रकाश ने प्रस्ताव दिया है कि वह उसे इंदौर, मध्य प्रदेश में नौकरी देगा और उससे इंदौर के लिए टिकट खरीदने को कहा। इस काम के लिए उसने अपने ही पुराने परिचित गोलू नाम के शख्स से संपर्क किया। गोलू और उसके पिता स्टेशन आए और उसे घर ले गए। जब आई.ओ. ने पूछा कि प्रकाश ने कोई यौन शोषण किया था या नहीं तो वह चुप रही। उसने आगे बताया कि इन 15 दिनों के दौरान वह वाराणसी स्टेशन पर ही रही।

7. इसके बाद, मामले के आई.ओ. ने उसे दिनांक 27.02.2023 को सीआरपीसी की धारा 164 के तहत उसका बयान दर्ज करने के लिए मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया है, जिसमें,

उसने खुलासा किया कि उसकी उम्र 17 वर्ष है और वह आगे बताती है कि उसने खुद ही अपना घर छोड़ दिया, क्योंकि वित्तीय संकट और कमी के कारण घर की स्थिति अनुकूल नहीं थी। वह स्वयं को किसी काम में व्यस्त करने के लिए रेलवे स्टेशन गई, ताकि वह पैसे कमा सके। स्टेशन पर उसकी मुलाकात दो महिलाओं और एक पुरुष प्रकाश से हुई, महिलाओं ने अपना नाम या पहचान नहीं बताया और उन सभी ने उसके साथ इंदौर चलने की बात कही, ताकि वे उसके लिए अच्छी नौकरी की व्यवस्था कर सकें। परिणामस्वरूप, वह उनके साथ चली गई और उसके बाद उन सभी ने उसे 'बीयर' और कुछ अन्य 'नशीला पदार्थ' दिया, जिससे वह बेहोश हो गई। इतना ही नहीं, वे उसे पास के किसी होटल में ले गए, जहां प्रकाश ने उसे कुछ अज्ञात व्यक्तियों के साथ यौन गतिविधियों में शामिल कर लिया। इतना ही नहीं, प्रकाश और उसकी पत्नी ने उसे जबरन कुछ अज्ञात व्यक्तियों के साथ यौन गतिविधियों में शामिल कर दिया और उसे कई होटलों में भेजकर देह व्यापार में धकेल दिया और वास्तव में उन्होंने उसे 15 दिनों के लिए वेश्यावृत्ति के "तथाकथित पेशे" में डाल दिया।

8. हबीबुर्रहमान के 'मजीद बयान' में, अपनी बेटी से पूछताछ करने के बाद उसने इन 15 दिनों के दौरान अपने दयनीय और कठिन अनुभव का खुलासा किया। उसने अपने पिता को अपने साथ हुई तकलीफ की हर छोटी से छोटी जानकारी दी है। जिसमें उसने आवश्यक विवरण के साथ अपने बयान को सीआरपीसी की धारा 164 के तहत लगभग दोहराया है।

जब उसे देह व्यापार के बाज़ार में धकेल दिया गया तो उसकी कहानी में कई अन्य किरदार भी शामिल कर दिए गए। यहां यह बताना अनुचित नहीं होगा कि इस शर्मनाक पेशे में गोपनीयता के अंधेरे में कई लोग शामिल हैं। चूँकि उसे देह व्यापार की इस भट्टी में झोंक दिया गया था, उसने उन सभी व्यक्तियों के नामों का खुलासा किया है, जो दलाल, होटल मालिक, उसके प्रबंधक, ग्राहक आदि के रूप में इसमें लगे हुए थे। उसने कहा कि प्रकाश रकम इकट्ठा करता था और कभी भी उसे नहीं देता था, हालांकि, वह उसके चंगुल से निकलने में कामयाब रही और दिनांक 25.02.2023 को अपने पिता के पास आ गई।

9. इस जांच के दौरान पुलिस ने एक अन्य पीड़िता दुर्गा विश्वकर्मा का बयान दर्ज किया और उसे सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत बयान दर्ज किया। वह भी वी.पी. के साथ वेश्यावृत्ति के उसी धंधे में लिप्त थी। उसने भी मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने और वी.पी. की दयनीय गाथा सुनाकर अपना अनुभव साझा किया है। सुयोग गेस्ट हाउस के प्रबंधक आरोपी आबिद खान उर्फ रिकू ने इस रैकेट में वर्तमान याचिकाकर्ता गोलू उर्फ अरुण पटेल की सक्रिय संलिप्तता का खुलासा किया है। ये बयान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि याचिकाकर्ता वेश्यावृत्ति और देह व्यापार के इस कृत्य में सक्रिय रूप से शामिल था, जो एक दलाल या ब्रोकर के रूप में काम कर रहा था, जो अपने ग्राहक को गेस्ट हाउस में जगह उपलब्ध कराता था। दीपक कुमार ने भी सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपना बयान दर्ज कराया है, रमेश कुमार पाठक की पत्नी सुहानी पाठक ने

सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपना बयान दर्ज कराया है, आरोपी प्रकाश विश्वकर्मा, गोलू जयसवाल और अंत में पीड़ित वी.पी. का 'मजीद बयान' दर्ज कराया गया है। उसने अपने 'मजीद बयान' में कहा है कि प्रकाश अपने साथ चाकू रखता था और धमकी देकर उसे ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिए मजबूर किया जाता था। होटल के मालिक, प्रबंधक, होटल के वेटर सभी वेश्यावृत्ति के कार्य में संलग्न हैं। इतना ही नहीं, ऊपरोक्त नामित याचिकाकर्ता ने भी पुलिस के समक्ष अपने बयान में सीआरपीसी की धारा 161 में अपना अपराध और संलिप्तता कबूल कर लिया है।

10. जांच के दौरान सामग्री एकत्र करने और उसका गंभीर विश्लेषण करने के बाद, पुलिस ने ऊपर्युक्त नामित याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 01.07.2023 को धारा 363 और धारा 5, 4 और 6 अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 4, 17 और 7 के तहत एक पूरक "आरोप पत्र" प्रस्तुत किया है और विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अपराध का संज्ञान लिया है। इतना ही नहीं, विद्वान मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता और अन्य सभी अभियुक्तों, जो सत्र विचारण संख्या 385/2023 में मुकदमे का सामना कर रहे थे, के मुकदमे के लिए मामले को विद्वान सत्र न्यायाधीश के पास भेज दिया।

11. मामले के इन तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के कारावास आदेश पर सवाल उठाने की कोशिश की है। अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता को जेल में बंद करना

प्रक्रियात्मक भ्रांति का परिणाम है। याचिकाकर्ता को अपराध के सिलसिले में जेल नहीं भेजा जाना चाहिए। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता का नाम एफआईआर में नहीं है और पुलिस ने जिस तरह से याचिकाकर्ता की कथित संलिप्तता दिखाई है वह पूरी तरह से अविश्वसनीय है। इस संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कई प्रक्रियात्मक भ्रांतियों की ओर इशारा किया गया। सह-अभियुक्त दीपक कुमार और आबिद खान के बयान को सीआरपीसी की धारा 161 याचिकाकर्ता के खिलाफ पढ़ा जा सकता है। रोचक बात यह है कि पूरी दलीलों में याचिकाकर्ता ने न्यायिक रिमांड आदेश पारित करते समय अनिवार्य प्रावधानों के अनुपालन न करने के साथ-साथ बिना कोई विचार नहीं किया है और कोई बात नहीं की है।

हमने उन आधारों का परिशीलन किया है जिनमें रिमांड आदेश पारित करते समय कथित रिमांड आदेश या मजिस्ट्रेट की शक्तियों को चुनौती देने वाला कोई आधार नहीं लिया गया था।

12. इसमें कोई विवाद नहीं है कि जांच के बाद पुलिस पहले ही सीआरपीसी की धारा 173(2) के तहत रिपोर्ट पेश कर चुकी है, और विद्वान मजिस्ट्रेट ने पहले ही अपराध का संज्ञान ले लिया है। वर्तमान में, याचिकाकर्ता सक्षम न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश से न्यायिक रिमांड के अधीन है, जिसे न्यायिक रिमांड आदेश पारित करने का अधिकार है। इस याचिका में बिना किसी दलील या आधार के, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायिक रिमांड के संबंध में, बिना किसी पृष्ठभूमि या

आधार के, आधे-अधूरे मन से, ठोस तर्क देना शुरू कर दिया है। यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता सत्र विचारण संख्या 385/2023 का सामना कर रहा है। और न्यायिक रिमांड के अनुसार सलाखों के पीछे है। इस चरण में, जब आगामी सत्र की सुनवाई चल रही है, जिसमें याचिकाकर्ता मुकदमे का सामना कर रहा है, इसमें बहुत तर्क प्रस्तुत किया जा चुके हैं और इस समय हम पीछे नहीं जा सकते हैं और आरोप पत्र को चुनौती नहीं दे सकते हैं।

13. तर्क का दूसरा पहलू यह है कि सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के तहत पीड़िता का बयान अभिलिखित करने के बाद "मजिद बयान" पर गौर नहीं किया जा सकता। तीसरा, राज्य-प्राधिकरण द्वारा किया गया कारावास स्वयं अवैध है और रिमांड आदेश कानून की नजर में गलत है और इसलिए, याचिकाकर्ता जेल से रिहा होने का हकदार है क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

14. मोटे तौर पर उपर्युक्त विवादास्पद मुद्दे हैं, जो वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका के माध्यम से मांगी गई प्रार्थना के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए हैं।

15. इसके विपरीत, विद्वान एजीए श्री सतेंद्र तिवारी ने ने वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका के 'पोषणीयता' पहलू का जोरदार विरोध किया है। उन्होंने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता पर भौतिक तथ्य को छुपाने का आरोप लगाया है, इस तथ्य को छिपाने के लिए

सोच-समझकर और जानबूझकर प्रयास किया गया है कि याचिकाकर्ता की जमानत आवेदन संख्या 3252/2023 को अनैतिक तस्करी (रोकथाम) अधिनियम, 1956 की धारा, 4,5 और 6 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 41/2023 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 385/2023 में मामले से संबंधित अदालत द्वारा दिनांक 11.07.2023 को खारिज कर दिया गया था। इस संबंध में, विद्वान एजीए द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि याचिका के प्रस्तर 2ए में उपरोक्त जमानत अस्वीकृति आदेश का संदर्भ दिया गया है, लेकिन याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जानबूझकर छुपाया है और उन कारणों के लिए संबंधित न्यायालय द्वारा उक्त जमानत अस्वीकृति आदेश को संलग्न नहीं किया है, जो उन्हें सबसे अच्छी तरह से ज्ञात है। इसके अलावा, जब निचली अदालत ने याचिकाकर्ता की जमानत याचिका खारिज कर दी है, तो स्वाभाविक परिणाम सीआरपीसी की धारा 439 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत याचिका दायर करना होगा, न कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करके।

16. विद्वान एजीए ने सीरियस फ्रॉड इन्वेस्टिगेशन ऑफिस और अन्य बनाम राहुल मोदी और अन्य 2019 (5) एससीसी 266 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय प्रस्तुत किया है जिसमें इस प्रकार लिखा है: -

**“(21) इस प्रकार किसी अभियुक्त की रिमांड के निर्देश को एक न्यायिक कार्य**

**माना जाता है और बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में रिमांड के आदेश को चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।”**

हमने फैसले के प्रस्तर 19 में भी देखा है:-

**“(19) इस प्रकार कानून स्पष्ट है कि “बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में न्यायालय को वापसी के समय हिरासत की वैधता या अन्यथा को ध्यान में रखना होता है, न कि कार्यवाही की संस्था के संदर्भ में।”**

17. उपरोक्त के अलावा, विद्वान एजीए श्री सतेंद्र तिवारी ने मनुभाई रतिलाल पटेल के माध्यम से उषाबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2013) 1 एससीसी 314 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक और निर्णय को संदर्भित किया, उपरोक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की गहराई, पहुंच और आयात का मूल्यांकन करने का अवसर है, क्योंकि याचिकाकर्ता ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को जेल से हिरासत में लिए गए व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावी विधि के रूप में हमेशा उचित महत्व दिया गया है। पुराने दस्तावेजों में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के दायरे और विस्तार की व्याख्या करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:-



“बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्राचीन विशेषाधिकार रिट का नाम दो अनिवार्य शब्दों बंदी प्रत्यक्षीकरण और कॉर्पस से लिया गया है, जो उस समय शामिल थे जब इसे, सभी प्रकार की कानूनी प्रक्रिया के साथ, लैटिन में तैयार किया गया था। जैसा कि नाम से पता चलता है, इन रिटों का सामान्य उद्देश्य किसी व्यक्ति को सशरीर पेश करना था।”

18. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए कार्यवाही करने का पूरा उद्देश्य उन्हें शीघ्र बनाना, उन्हें यथासंभव बारीकियों से मुक्त रखना और उन्हें यथासंभव सरल रखना है।

19. कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग 1976(2) एससीसी 674 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि ये बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट न्याय की मशीनरी से संबंधित हैं, न कि किसी ठोस कानून से। रिट का उद्देश्य उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करना है जो इस स्वतंत्रता पर अवैध रोक लगा रहा है।

सेक्रेटरी ऑफ होम अफेयर बनाम ओ ब्रायन एसी 603 1923 मामले में यह देखा गया है कि:-

“यह देखा गया है कि यह शायद इंग्लैंड के संवैधानिक कानून के लिए ज्ञात सबसे महत्वपूर्ण रिट है क्योंकि यह अवैध संयम या कारावास के सभी मामलों में त्वरित और अनिवार्य उपाय करता है। यह अति प्राचीन काल का है, इसके प्रयोग का एक उदाहरण एडवर्ड-प्रथम के तैंतीसवें वर्ष में मिलता है। इसे युगों से कानून की अदालतों द्वारा झूठ की कीमत पर कार्यपालिका द्वारा सत्ता के अवैध कब्जे पर रोक लगाने के लिए ईर्ष्यापूर्वक बनाए रखा गया है।”

20. इस समय, हम संजय दत्त (2) बनाम राज्य 1994 (5) एससीसी 410 मामले में संवैधानिक पीठ के निर्णय का संदर्भ ले सकते हैं, निर्णय का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:-

“48.....संविधान पीठ के निर्णयों द्वारा यह तय किया गया है कि अभियुक्त की रिमांड या हिरासत के वैध आदेश की अनुपस्थिति के आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की मांग करने वाली याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए, यदि नियम की वापसी की तारीख पर हिरासत वैध आदेश के आधार पर होती है।”

“23. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के संबंध में उपरोक्त

अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अभियुक्त की पेशी के समय विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से संबंधित, रिमांड से संबंधित संहिता के तहत योजनाबद्ध अवधारणाओं पर ध्यान देना आवश्यक है। संहिता में दो प्रावधान यानी धारा 167 और 309 हैं जो रिमांड का प्रावधान करते हैं। मजिस्ट्रेट के पास संहिता की धारा 167(2) के तहत यह अधिकार है कि वह आरोपी को ऐसी हिरासत में, यानी पुलिस या न्यायिक हिरासत में रखने का निर्देश दे सकता है, अगर उसे लगता है कि आगे हिरासत आवश्यक है।

24. किसी अभियुक्त की रिमांड का निर्देश देने का कार्य मूल रूप से एक न्यायिक कार्य है। किसी आरोपी को हिरासत में लेने का आदेश देते समय मजिस्ट्रेट कार्यकारी क्षमता में कार्य नहीं करता है। इस न्यायिक अधिनियम का प्रयोग करते समय, मजिस्ट्रेट के लिए खुद को संतुष्ट करना अनिवार्य है कि क्या उसके सामने रखी गई

सामग्री ऐसी रिमांड को उचित ठहराती है या, इसे अलग तरीके से कहें तो, क्या आरोपी को हिरासत में लेने और उसकी रिमांड बढ़ाने के लिए उचित आधार मौजूद हैं। धारा 167 के तहत रिमांड का उद्देश्य यह है कि जांच 24 घंटे के भीतर पूरी नहीं की जा सकती। यह मजिस्ट्रेट को यह देखने में सक्षम बनाता है कि रिमांड वास्तव में आवश्यक है। इसके लिए जांच एजेंसी को रिमांड रिपोर्ट के साथ केस डायरी भेजने की आवश्यकता होती है ताकि मजिस्ट्रेट तथ्यात्मक परिदृश्य की साराहना कर सके और अपना दिमाग लगा सके कि क्या पुलिस रिमांड के लिए वारंट है या न्यायिक रिमांड के लिए औचित्य है या किसी रिमांड की कोई आवश्यकता नहीं है। मजिस्ट्रेट के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपना दिमाग लगाए और स्वचालित रूप से या यांत्रिक तरीके से रिमांड का आदेश पारित न करे। यह ध्यान देने योग्य है कि मधु लिमये (उपरोक्त) में, यह कहा गया है कि एक बार यह दिखाया गया है कि पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई

गिरफ्तारियां अवैध थीं, तो राज्य के लिए यह स्थापित करना आवश्यक था कि रिमांड के चरण में, मजिस्ट्रेट सभी प्रासंगिक मामलों पर अपना दिमाग लगाने के बाद जेल हिरासत में रखने का निर्देश दिया।”

और न ही कोई विचारण। इसकी जांच करना पुलिस के विशेष अधिकार क्षेत्र में है और मजिस्ट्रेट के किसी भी नियंत्रण से स्वतंत्र है। गतिविधियों का क्षेत्र स्पष्ट और अच्छी तरह से सीमांकित है, इस प्रकार हमारी सुविचारित राय है कि वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका के माध्यम से मांगी गई प्रार्थना याचिकाकर्ता के पक्ष में मंजूर नहीं की जा सकती।

21. इस प्रकार, क्षेत्राधिकार का प्रयोग स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि मजिस्ट्रेट न्यायिक कार्य करता है। जैसा कि हम समझते हैं रिमांड का आदेश, जो एक न्यायिक कार्य है किसी भी प्रकार की कमी से ग्रस्त नहीं है। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर विचार नहीं किया जाना चाहिए जब किसी व्यक्ति को एक सक्षम न्यायालय द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में एक आदेश द्वारा प्रतिबद्ध किया जाता है, जो प्रथम दृष्टया क्षेत्राधिकार के बिना प्रकट नहीं होता है या बिल्कुल यांत्रिक रूप से पारित नहीं होता है तरीके से या पूरी तरह से अवैध जैसा कि **बी.रामचंद्र राव (उपरोक्त) और कानू सान्याल (उपरोक्त)** के फैसले में कहा गया है। पारित किए गए हिरासत के आदेश की वैधता की न्यायालय को जांच करने की आवश्यकता है, जब तक कि न्यायालय संतुष्ट नहीं हो जाती कि व्यक्ति को एक आदेश के आधार पर जेल में निरुद्ध कर दिया गया है, जो क्षेत्राधिकार की कमी से ग्रस्त है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका को मंजूरी नहीं दी जा सकती है। जैसा कि अदालतों के विभिन्न प्राधिकरणों में विचार किया गया है, यह ध्यान रखना उचित है कि यह न तो कोई जांच है

22. महाराष्ट्र राज्य बनाम तनसीम रिजवान सिद्दीकी (2018) 9 एससीसी 745 मामले में एक और निर्णय से मदद की मांग की गई:-

“सवाल यह है कि क्या किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट कायम रखी जा सकती है जो जांच के तहत अपराध के संबंध में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में है, इस मुद्दे पर सौरभ कुमार के मामले में उनके पिता बनाम जेलर, कोनिला जेल और अन्य, [2014 13 एससीसी 346] और मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य [2013 1 एससीसी 314] के माध्यम से विचार किया गया है। यह अब अनिर्णीत विषय नहीं है। वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से, जब प्रतिवादी द्वारा 18/19 मार्च,

2018 को बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के लिए रिट याचिका दायर की गई थी और 21 मार्च, 2018 को उच्च न्यायालय द्वारा फैसला सुनाया गया था, तो उनके पति रिजवान आलम सिद्दीकी एफआईआर संख्या 131 के संबंध में दिनांक 17 मार्च, 2018 के आदेश के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा उनकी पुलिस हिरासत देने के आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में थे और पुलिस रिमांड 23 मार्च, 2018 तक देनी थी। इसके अलावा, मजिस्ट्रेट के कथित आदेश को चुनौती दिए बिना, बंदी प्रत्यक्षीकरण की राहत तक सीमित एक रिट याचिका दायर की गई थी। इस मामले को देखते हुए, यह लगातार अवैध हिरासत का मामला नहीं था, बल्कि न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश के आधार पर पदधारी न्यायिक हिरासत में था, जो एक आपराधिक मामले की जांच के दौरान पुलिस रिमांड देने के लिए लागू था। परिणामस्वरूप, कोई रिट नहीं बंदी प्रत्यक्षीकरण जारी किया जा सकता है।"

23. आपराधिक अपील संख्या 2288-2289/2023 में वी. सैथिल बाला जी बनाम उप निदेशक द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए राज्य और अन्य के मामले में दिनांक 07.08.2023 को दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा -

"29. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट केवल तभी जारी की जाएगी जब निरुद्धि अवैध हो। नियम के रूप में, न्यायिक अधिकारी द्वारा न्यायिक कार्य में परिणत रिमांड के आदेश को बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती है, जबकि पीड़ित व्यक्ति अन्य वैधानिक उपचारों की तलाश कर सकता है। जब अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन न करने के साथ-साथ समझ का पूरी तरह से गैर-प्रयोग किया जाता है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट पर विचार करने का मामला हो सकता है और वह भी चुनौती के माध्यम से।"

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ताओं ने न तो न्यायिक रिमांड आदेश को चुनौती दी और न ही पूरी कार्यवाही के दौरान इस आशय की कोई दलील दी गई।

न्यायालय उन तर्कों की सराहना करने में पूरी तरह असमर्थ है जो दलीलों के अनुरूप हैं।

24. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, जब कथित न्यायिक रिमांड के संबंध में कोई प्रार्थना नहीं की जाती है, तो यह पूर्वोक्त किसी भी दोष से दोषपूर्ण या अवैध है, हम याचिकाकर्ता के पक्ष में वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की अनुमति नहीं दे सकते। जैसा कि प्रार्थना से स्पष्ट है, केवल इस हद तक सीमित उपाय की मांग की गई है कि याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति का आदेश दिया जा सके और उसे स्वतंत्र किया जा सके। इस तथ्य के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है कि मजिस्ट्रेट द्वारा कथित रिमांड ऊपर बताए गए किसी भी दोष से ग्रस्त है। यहां तक कि तर्क के लिए यह भी मान लिया जाए कि उक्त न्यायिक रिमांड आदेश ऊपर उल्लिखित किसी भी दोष से ग्रस्त है, तो उपयुक्त उपाय के लिए पहले उचित उपाय लागू करके उक्त आदेश को चुनौती दी जाएगी और फिर इस न्यायालय से संपर्क किया जाएगा।

25. अब तर्क के अंतिम चरण पर आते हैं कि याचिकाकर्ता की जमानत अर्जी संबंधित अदालत द्वारा दिनांक 11.07.2023 के आदेश द्वारा पहले ही खारिज कर दी गई है, उसे सीआरपीसी की धारा 439 के तहत इस न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए था। जमानत आवेदन दायर करने के लिए, लेकिन उसे लागू करने के बजाय, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को न्यायिक रिमांड आदेश को चुनौती दिए बिना वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका दायर

करने की गलत सलाह दी, जो स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की पेशेवर अक्षमता को इंगित करता है। इतना ही नहीं, दो दिनों की मैराथन बहस के दौरान विद्वान अधिवक्ता ने कभी भी इस मुद्दे के इस महत्वपूर्ण पहलू का खुलासा नहीं किया कि याचिकाकर्ता की जमानत अर्जी दिनांक 11.07.2023 को खारिज कर दी गई थी। जब कोई अधिवक्ता इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान कर रहा है, तो उसे स्पष्ट छवि के साथ आना चाहिए। हमारी राय है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जमानत अस्वीकृति आदेश को संलग्न किए बिना एक पारित संदर्भ दिया है, ताकि उसके आचरण को उचित ठहराया जा सके।

26. इसके अलावा, जब उन्होंने केवल एक संक्षिप्त संदर्भ दिया था, तो याचिकाकर्ता की जमानत याचिका दिनांक 11.07.2023 को जमानत अस्वीकृति आदेश को संलग्न किए बिना खारिज कर दी गई थी, जिससे यह तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया कि वह इस न्यायालय के न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए कुछ छिपाना चाहते हैं, जो याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की ओर से भौतिक तथ्य छिपाकर अदालत की कार्यवाही में लुका-छिपी का खेल खेलने का जानबूझकर किया गया प्रयास था।

27. इस प्रकार हम उपरोक्त कारणों और आधार पर याचिकाकर्ता को वांछित प्रार्थना देने के लिए बिल्कुल भी इच्छुक नहीं हैं और **रुं 50,000/- (पचास हजार रुपये मात्र)** के खर्च के साथ वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को

खारिज कर दिया है, जिसे याचिकाकर्ता को आज से एक महीने की अवधि के भीतर महानिबंधक, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के पास जमा करना होगा। ऐसी राशि को जमा करने पर, इसे 'उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, इलाहाबाद' के खाते में भेजा जाएगा। यदि याचिकाकर्ता 50,000/- रुपये (केवल पचास हजार रुपये) की लागत जमा करने में विफल रहता है, तो इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल भू-राजस्व के बकाया के रूप में उक्त राशि की वसूली के लिए जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, वाराणसी को सूचित करेंगे, जो इसके बाद याचिकाकर्ता से उक्त राशि वसूल कर, इसे दो महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर 'उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति, इलाहाबाद' के खाते में जमा करने के लिए इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को प्रेषित करें। यदि याचिकाकर्ता 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये मात्र) की राशि को जमा करने में विफल रहता है, तो इस न्यायालय के महानिबंधक भू-राजस्व के बकाया के रूप में उक्त राशि की वसूली के लिए जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, वाराणसी को सूचित करेंगे, जो याचिकाकर्ता से उक्त राशि वसूलने के बाद, इसे दो महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर 'उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति, इलाहाबाद' के खाते में जमा करने के लिए इस न्यायालय के महानिबंधक को भेज देगा। उपरोक्त अवधि के भीतर आदेश निष्पादित करने के बाद अदालत को अवगत कराना भी डीएम/कलेक्टर का दायित्व है।

28. समयबद्ध अवधि के भीतर संबंधित कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता से

'लागत' वसूल करते समय न्यायालय के निर्देशों को क्रियान्वित करने में कोई लापरवाही बर्दाश्त नहीं की जाएगी।

-----

(2023) 9 ILRA 1083

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 948 वर्ष 2014

सुनील कुमार कटियार

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री यशपाल, श्री अभय नितिन सिंह, श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, श्री बिनोद कुमार त्रिपाठी, श्री राजेश यादव, श्री शमीमुल हसनैन

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-

धारा 374 - साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा

106- निर्णय के खिलाफ अपील जिसके तहत

अभियुक्त को धारा 302 आईपीसी के तहत

दोषी ठहराया गया है और डिफॉल्ट शर्त के

साथ 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ

आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है ---

परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला ---

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा के लिए अनिवार्य कोई भी घटक उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला भी अभियुक्त के खिलाफ स्थापित नहीं की जा सकी है --- विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश विधि की नजर में कायम रखने योग्य नहीं है और रद्द किए जाने योग्य है।  
(पैरा 15)

7. कैलाश चंद बनाम राजस्थान राज्य (2017) 11 एससीसी 268
8. गार्गी बनाम हरियाणा राज्य, 2019 0 सुप्रीम एससी 1042
9. सत्ये सिंह एवं अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, (2022) 5 एससीसी 438
10. देवीलाल; बाबूलाल बनाम राजस्थान राज्य, 2019 लॉ सूट (एससी) 36

अपील स्वीकार की गई। (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. उजागर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2007) 13 एससीसी 90
2. भास्कर राव एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 591
3. शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 121
4. कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 2868
5. गणपत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी (क्रि) 159
6. पी. मणि बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2006 एससी 1319

1. एकल अपीलार्थी की ओर से श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य की ओर से विद्वान श.अधि. को सुना गया।
2. यह अपील अपराध संख्या 104 सन् 2011, धारा 302 आई.पी.सी. थाना-सिकंदरा, कानपुर देहात से उत्पन्न एस.टी संख्या 446 सन् 2011 (राज्य बनाम सुनील कुमार कटियार) में विद्वान सत्र न्यायधीश, न्यायालय संख्या 9, कानपुर देहात द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 20.1.2014 के विरुद्ध दाखिल की गई है, जिसमें आरोपी-अपीलार्थी सुनील कुमार कटियार को धारा 302 के अंतर्गत अपराधी मानते हुए आजीवन कारावास के साथ रु 10,000/- के जुर्माने की सजा दी गई।
3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि दिनांक 21.7.2011 सूचक प्रमोद कुमार ने इस

प्रकथन के साथ प्राथमिकी दर्ज करायी. कि उसकी छोटी बहन किरण देवी कटियार का विवाह लगभग 26 वर्ष पूर्व आरोपी सुनील कुमार कटियार से हुआ था। उनकी शादीशुदा जिंदगी से तीन बच्चों का जन्म हुआ था। अंकुर कटियार नाम का बड़ा बेटा नोएडा में बीटेक कर रहा है, बेटी अनुपमा राजपुर डिग्री कालेज की छात्रा है डिग्री कॉलेज एवं छोटा बेटा अभय कटियार सिकंदरा में पढाई करता है। आरोपी नंदना गांव में खेती किया करता था और सिकंदरा के मौहल्ला मुहम्मदनगर में रहता था। उसकी बहन समय-समय पर दोनों घरों में रहा करती थी। उसका जीजा (बहनोई), आरोपी, शराब आदि पीया करता था जिसके लिए उसकी बहन उसे मना करती थी जिसपर वह गुस्से में उसकी बहन को पीटता था जिसके लिए आरोपी की गई बार शिकायत की गई थी। 19.7.2011 को उसको सूचना मिली कि उसकी बहन का शव मुहम्मदनगर स्थित मकान की दूसरी मंजिल पर पड़ा हुआ है। थाने में इसकी सूचना उसके चचेरे भाई रमेश कुमार कटियार द्वारा दी गई जिसके आधार पर पोस्टमार्टम किया गया। उसकी बहन के घर कोई अन्य व्यक्ति नहीं आया करता था। उसकी हत्या सुनील कुमार ने की थी और उसने की थी तब से लापता है। सूचनाकर्ता ने प्राथमिकी करने एवं आरोपी के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई किए जाने का अनुरोध किया।

4. उपरोक्त लिखित शिकायत, प्रदर्श क-1, के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई एवं धारा 302 आई.पी.सी के अंतर्गत अपराध संख्या 4 सन् 2011 पर चिक एफ.आई.आर दर्ज करते

हए दिनांक 21.07.2011 को शाम 4:30 बजे कयामी जी0डी में अंकित की गई।

5. इस सूचना के पश्चात् पी0डब्लू0 3, उ0नि0 आदित्य नारायण पाण्डे ने स्थल पर गए एवं अन्वीक्षण, प्रदर्श क - 2, तैयार किया एवं अन्य कागजात जैसे चालान नाश, प्रदर्श क 3, फोटो नाश प्रदर्श क 4, आर.आई को पत्र प्रदर्श क-5, सी.एम.ओ को पत्र प्रदर्श क 6 भी तैयार किए और शव को पोस्मार्टम के लिए भेजा।

6. डा0 रियाज अली मिर्जा, पी0डब्लू0 4 ने पोस्मार्टम किया एवं पोस्मार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क 7 तैयार की। एस0ओ0 संजय कुमार गुप्ता ने अन्वेषण किया एवं नक्षा नजरी तैयार किया। अन्वेषण के दौरान उन्होंने लोढा (मूसल) जिसे अपराध में इस्तेमाल करने का आरोप है बरामद किया एवं नक्षा नजरी, प्रदर्श क - 10 तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किए एवं मामला धारा 302 आई.पी.सी के अंतर्गत पाए जाने के पश्चात् आरोप पत्र प्रदर्श क -11 प्रेषित किया।

7. विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया एवं मामले को विचारण हेतु सत्र न्यायालय को सौंप दिया। 11.01.2012, अपीलार्थी को धारा 302 आई.पी.सी के अंतर्गत आरोपित किया गया जिसको उसने अस्वीकार करते हुए विचारण की मांग की।

8. अभियुक्त का अपराध सिद्ध करने के लिए अभियोजन द्वारा निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की गई:-



|              |                      |
|--------------|----------------------|
| पी0डब्ल्यू-1 | प्रमोद कुमार कटियार  |
| पी0डब्ल्यू-2 | रमेश कुमार कटियार    |
| पी0डब्ल्यू-3 | अतित्य नारायण पाण्डे |
| पी0डब्ल्यू-4 | डा0 आर0ए0 मिर्जा     |
| पी0डब्ल्यू-5 | अभय कटियार           |
| पी0डब्ल्यू-6 | अनुपम कटियार         |
| पी0डब्ल्यू-7 | संजय गुप्ता          |
| पी0डब्ल्यू-8 | कुंवर पाल            |

9. अभियोजन द्वारा निम्नलिखित साक्ष्यों पर भरोसा किया गया:-

|                    |                      |
|--------------------|----------------------|
| प्रदर्श क - 1      | लिखित रिपोर्ट        |
| प्रदर्श क - 2      | पंचनामा              |
| प्रदर्श क - 3      | चालान नाश            |
| प्रदर्श क - 4      | फोटो लास             |
| प्रदर्श क - 5      | आर0आई को पत्र        |
| प्रदर्श क - 6      | सी.एम.ओ को पत्र      |
| प्रदर्श क - 7      | पोस्टमार्टम रिपोर्ट  |
| प्रदर्श क - 8      | नक्षा नजरी           |
| प्रदर्श क - 9      | फर्द बरामदगी         |
| प्रदर्श क - 10     | नक्षा नजरी           |
| प्रदर्श क - 11     | आरोप-पत्र            |
| प्रदर्श क - 12     | चिक एफ.आई.आर         |
| प्रदर्श क - 13 एवं | क्यामी जी0डी0        |
| सामग्री एक्स - 1   | अपराध का हथियार मूसल |

10. अभियोजन साक्ष्यों के पश्चात्, धारा 313 सी.आर.पी.सी के अंतर्गत आरोपी के बयान दर्ज किए गए, जिसमें, उसने सभी आरोपों और

दोषारोपण साक्ष्यों को सिरे से नकारा और निर्दोष होने का दावा किया।

11. संक्षेप में, गवाहों के बयानों को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत है:-

(क) पी.डब्ल्यू.-1, सूचक प्रमोद कुमार कटियार ने लिखित शिकायत के समर्थन में साक्ष्य दिए हैं। उन्होंने गवाही दे दी है कि उसका जीजा शराब और नशीली दवाओं का सेवन किया करता था। जब भी उसकी बहन (मृतका) आरोपी को मना करती थी तो उसके साथ झगड़ा किया करता था और मारपीट किया करता था। उसके बच्चे उसके बचाव में आते तो उन्हें भी मारता था। सूचनाकर्ता और उसका परिजन ने जब भी मामले की शिकायत की, वह दोबारा न दोहराने का वादा करता था लेकिन कुछ दिनों बाद वह फिर से ऐसा करता था।

दिनांक 19.7.2011 को जब वे महोबा में थे, उनके चचेरे भाई रमेश कटियार ने उनको जानकारी दी कि उनकी बहन को जान से मार दिया गया है। सूचना मिलने पर वह रात 9-10 बजे के बीच सिकंदरा पहुंचे, उसे पता चला कि शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया है। वह रमाबाई नगर के पोस्टमार्टम हाउस में पहुंचे जहां उन्होंने मृतका शरीर को देखा। उन्होंने और उनके भाई ने अपनी बहन के अंतिम संस्कार में भाग लिया था। उसके भाई रमेश ने बताया कि सुनील ने मृतका की हत्या कर दी, उसके बाद दिनांक 21.7.2011 को शाम लगभग 4:30 बजे एफ.आई.आर. ने दर्ज

करायी गई। गवाह ने लिखित शिकायत प्रदर्शक-1 को प्रमाणित किया।

उपरोक्त साक्ष्यों के अवलोकन से, यह बहुत अधिक है स्पष्ट है कि यह गवाह चश्मदीद गवाह नहीं है और उसने वही बयान दिया है जैसा कि उसने पी.डब्ल्यू.-2 से सुना था।

(ख) पी.डब्ल्यू.-2, रमेश कुमार कटियार ने गवाही दी है कि 19.7.2011 को दोपहर को लगभग 12:00 बजे उनके चचेरे भाई सर्वेश कुमार उसे मोबाइल पर यह सूचना दी कि उसकी चचेरी बहन किरण देवी को जान से मार दिया गया है। सूचना पर वह सिकंदरा पहुंचे, जहां उसने देखा कि किरण का शव घर की दूसरी मंजिल पर पड़ा हुआ था। उसकी पीठ, छाती और आँखों पर चोटें थीं, वह अपने ससुराल में खुश नहीं थी। आरोपी नशे का आदी था, जो उन दोनों के बीच के झगड़े की वजह थी। आरोपी के पास दो मकान थे, एक गांव नंदना में और दूसरा सिकंदरा में। मृतका दोनों जगह रहते थी। उन्होंने आरोपी को उनकी बहन को न पीटने के लिए चेतावनी दी थी, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उन्होंने थाना सिकन्दरा में मौखिक रूप से जानकारी दी थी। सूचना के बाद पुलिस पहुंची अपराहन तीन बजे पहुंच और पूछताछ की। वह पंचों में से एक था एवं जांच रिपोर्ट पर हस्ताक्षर भी किए थे। गवाह ने पोस्टमार्टम हाउस एवं मृतक के अंतिम संस्कार के जो उसके ससुराल वालों द्वारा किया गया था उसे अपनी मौजूदगी की पुष्टि की है।

इस गवाह के अनुसार, उसकी बहन की हत्या आरोपी सुनील ने की थी जो नशे का आदी और शराबी था जिसका उसकी बहन ने विरोध किया करती थी। आई.ओ. ने उसका बयान दर्ज किया।

(ग) पी0डब्लू0 3, उ0नि0 आदित्य नायाण पाण्डे ने जांच रिपोर्ट प्रदर्शक 2 एवं अन्य सम्बन्धित कागजातों जैसे प्रदर्शक 3 से प्रदर्शक 6 तक की पुष्टि की।

(घ) पी0डब्लू0 4, डा0 रियाज अली मिर्जा ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्शक 7 की पुष्टि की। इस गवाह ने मृतका के शरीर पर निम्नलिखित चोटों को उल्लिखित किया:-

#### बाहरी परीक्षण:

लार टपक रही थी, मुँह आधा खुला था, आँखें बंद थी। मृतक शरीर के पिछले हिस्से पर दाग था। अकडन खत्म हो गया था। उसके निजी अंग के निचले हिस्से की दाईं ओर हरा निशान था। चेहरे, निचले हिस्से एवं दोनों कंधों पर रूग्णता थी।

#### मृत्यु पूर्व चोटें:

1. चेहरे के बाईं ओर नाक के पास 1/2 सेमी ग् 0.3 सेमी का खरोच का निशान.
2. छाती के दोनों तरफ 20 सेमी ग् 10 सेमी का नील, खून का थक्का था.

3. पेट के उपरी भाग पर दाहिनी ओर एकदम पसलियों की नीचे 10 सेमी ग 6 सेमी का नील पड़ा था।

4. सीधे पैर के घुटने के सीधे 15 सेमी नीचे बाहरी भाग में सामने 11 सेमी ग 6.1/2 से0मी की चोट।

5. योनि से खून बह रहा था।

#### आंतरिक परीक्षण:

इस गवाह ने पाया कि मस्तिष्क पीला और तीसरा एवं छोटी पसलियां टूट गई थी। स्टर्नम की हड्डी भी पांचवीं पसलियों की बराबरी पर टूट गई। फेफड़े फटे और पीले पड़ गये थे। दिल के दोनो गुहा खाली थे। छाती गुहा में 500 मि0ली रक्त पाया गया तथा उदर गुहा में 1.5 लीटर रक्त पाया गया। छोटी और बड़ी आंत में अर्ध पचा हुआ भोजन था। पित्तशय आधा खाली था, लीवर फट गया था। स्पलीन पीला था।

इस गवाह के अनुसार, मृतका की मृत्यु अत्यधिक रक्तस्राव होने के कारण हुई थी। मृतक की मृत्यु डेढ़ से दो दिन पहले हो गई होगी। इस साक्षी ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-7 की पुष्टि की है।

(ड) पी.डब्लू.-5, मृतका एवं आरोपी के पुत्र अभय कटियार ने पक्षद्रोही साक्ष्य दिए और गवाही दी है उसके माता-पिता के बीच कोई झगड़ा नहीं था। उसके पिता ने कोई नषा नहीं किया था। उसके पिता ने घटना से एक दिन पहले उसकी मां को नहीं पीटा था और उसके

पिता कोटा गए हुए थे। इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया।

अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह में इस गवाह ने अभियोजन के कथन का समर्थन नहीं किया।

(च) पी.डब्लू.-6, कु0 अनुपम कटियार मृतका की पुत्री जिसे घटना का चष्मदीद गवाह माना गया था, उसने भी अभियोजन के कहन का समर्थन नहीं किया और ऐसे ही बयान दिए जैसे उसके भाई, पी0डब्लू0 - 5 ने दिए थे।

(छ) पी.डब्लू.-7, संजय कुमार गुप्ता, ने नक्शा नजरी, प्रदर्श क-8 की पुष्टि की। इस गवाह ने आरोपी से संबंधित सभी गवाहों के बयान लिए थे एवं मूसल की बरामदगी फर्द प्रदर्श क -9 भी तैयार की थी। इस गवाह ने मूसल की बरामदगी से संबंधित नक्शा नजरी की भी पुष्टि की।

(ज) पी.डब्लू.-8, कास्टेबल मौहरीर, चिक एफ.आई.आर प्रदर्श क- 12 एवं कयामी जी0डी0 की कार्बल कापी प्रदर्श क-13 में उसकी लिखावट एवं हस्ताक्षरों की पुष्टि की।

12. आरोपी ने उसके खिलाफ धारा 313 सी.आर.पी.सी के तहत लगाए गए आक्षेप एवं आरोपों से इनकार किया और कहा कि गवाह पी.डब्ल्यू.1 और 2 ने उससे दुश्मनी के कारण गवाही दी है। उसने आगे कहा कि एक घटना से एक दिन पहले वह अपने भाई के पास कोटा, राजस्थान गया था। वह मौके पर मौजूद

नहीं था। उसे दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया जा रहा है।

13. बचाव पक्ष में दो गवाह डी.डब्ल्यू.-1 एवं डी.डब्ल्यू.-2 पेश किए गए:-

1. डी.डब्ल्यू.-1, सुशील कुमार, ने बयान दिया है कि वह पिछले पाँच वर्षों से कोटा में रह रहा है जहाँ वह रेजोर्नेस कोचिंग सेंटर में वह अध्यापक थे एवं रसायन विज्ञान पढ़ाते हैं। आरोपी उसका जैविक भाई है। घटना 19.7.2011 को हुई थी। उसका भाई उसके पास घटना से एक दिन पहले आया था। उसके भाई ने सिकंदरा मकान बनवाया था, लिंटर खुला था और प्लास्टर होना बाकी था जिसके लिए उसका भाई उसके पास पैसे लेने आया था। उसे घटना की जानकारी दोपहर करीब डेढ़ बजे फोन पर मिली। वहाँ उसका भाई भी था। सूचना मिलने पर वह और उसका भाई कार RJ 20 सीबी 2994 से कानपुर पहुंचे और शाम करीब 4-5 बजे नंदना पहुंचे। अंतिम संस्कार की तैयारी चल रही थी। कोटा और नंदना के बीच की दूरी लगभग छह सौ किलोमीटर है। रास्ते में गाड़ी होने के कारण वे देर से पहुँचे। अंतिम संस्कार उनके भाई सुनील कुमार ने किया। सूचनाकर्ता और रमेश कुमार वहाँ नहीं थे। अनुपम और अभय ने उससे कहा था कि जब लिंटर खुला था, कुछ ईंटें वहीं रह गई थीं जो मृतका के उपर गिर गई थी। उसके भाई एवं भाभी के बीच मधुर संबंध थे। उसका भाई शराब या अन्य कोई नशा नहीं करता।

14. डी.डब्ल्यू.-2, विपिन कटियार ने बताया कि आरोपी सुनील कटियार का घर उसके घर से 10-15 कदम की दूरी पर था। दिनांक 18.7.2011 को आरोपी उससे सिकंदरा बस स्टैंड पर मिला था। पूछने पर आरोपी ने बताया, था कि वह अपने भाई के पास कोटा राजस्थान जा रहा है। यह गवाह ने यह भी गवाही दी कि 19.7.2011 को जब वह समाचार पत्र देख रहा था, उसने खबर देखी कि सुनील कुमार की पत्नी की मौत हो चुकी है। जिस पर उसने सुनील कुमार के घर जाकर देखा तो एक खाट पर उसकी पत्नी मृत पड़ी थी, छत का कुछ हिस्सा उसकी छाती पर पड़ा हुआ था। सुनील कुमार वहाँ नहीं थे। सुनील को उसके बेटे ने फोन पर जानकारी दी। सूचना मिलने के बाद सुनील अपने भाई सुशील के साथ शाम करीब चार-पांच बजे गांव पहुंचा। 20.7.2011 को सुनील ने अपनी पत्नी और उनका अंतिम संस्कार किया था और वह भी वहाँ मौजूद था।

**अपील पर निम्नानुसार निर्णय लिया जा रहा है:**

14. उपरोक्त तथ्यों एवं साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि ऐसा है यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला नहीं है बल्कि यह परिस्थितिजनक साक्ष्यों पर आधारित है जिसमें यदि परिस्थितियाँ की कड़ियां पूर्ण हों तभी कोई अभियुक्त को अपराधी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में, मकसद, आखिरी बार देखा जाना, बरामदगी, गैर न्यायिक आरोप स्वीकार, जैसे आवश्यक तत्वों पर भी विचार किया जाता है। यह देखना होगा कि क्या किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए उपरोक्त आवश्यक तत्व मौजूद

हैं एवं अभियोजन पक्ष द्वारा पर्याप्त रूप से स्थापित और साबित किया गया है या नहीं। मामले के तथ्यों और सबूतों के आलोक ऐसे जरूरी तत्वों पर यहाँ नीचे बताया गया है:-

(क) **मकसद:** अभियोजन पक्ष और पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 के बयानों के अनुसार, अभियुक्त शराब पीता था और नशा करता था और जब मृतका उसे मना करता थी तो उनके बीच झगड़ा होता रहता था और जब बच्चों मृतका को बचाने आते तो अभियुक्त उन्हें भी पीटता था। इस बात को आरोपी और पी.डब्ल्यू.5, पी.डब्ल्यू.6 या पी.डब्ल्यू.7 ने स्वीकार नहीं किया है एवं उ0नि./आई.ओ. संजय गुप्ता ने भी आरोपी द्वारा नशा सेवन के संबंध में अभियोजन पक्ष के समर्थन में सकारात्मक साक्ष्य नहीं दिए हैं।

डी.डब्ल्यू.1 एवं डी.डब्ल्यू.2, सुशील कुमार एवं विपिन कटियार ने भी स्वीकार नहीं किया कि अभियुक्त घटना से पहले या उसके बाद शराब पीता था या नशा किया करता था। विद्वान सत्र न्यायालय ने उपरोक्त उद्देश्य को सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज बयानों के आधार पर स्वीकार किया है, जो कि साक्ष्यों में स्वीकार्य नहीं है।

अतः, अभियोजन पक्ष द्वारा जो मकसद सामने रखा गया सिद्ध नहीं माना जा सकता।

**भास्कर राव व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 591: उजागर सिंह बनाम. पंजाब राज्य, (2007) 13 एससीसी 90,** में ऐसा माना गया है कि परिस्थितिजनक

साक्ष्यों पर आधारित मामलों में मकसद का महत्व होता है।

**शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 121,** में यह माना गया कि परिस्थितिजनक साक्ष्यों के मामले में परिस्थितियों की शृंखला को पूरा करने की मकसद एक अहम मायना। अगर मकसद साबित न हो पाया, परिस्थितियों की शृंखला पूरा नहीं कहा जा सकता।

उपरोक्त उद्धरण अपीलकर्ता के पक्ष में लागू होते हैं और यह निष्कर्ष निकाला गया कि अपीलकर्ता का मृतका को जान से मारने का कोई मकसद नहीं था।

(ख) **अन्यत्र उपस्थिति और आखिरी बार देखा जाना:** इस मामले में आरोपी द्वारा अपनी अन्यत्र उपस्थिति बताई गई है कि घटना के एक दिन पहले वह कोटा गए थे और वह मृतका के साथ मौके पर मौजूद नहीं था। ऐसा ही बयान पी.डबलू - 5 पुत्र अभय कटियार, पी.डबलू.6 कु0 अनुपम, डी.डबलू.1, सुशील कुमार और डी.डबलू.2, विपिन कटियार, पड़ोसी ने भी दिया है।

डी.डबलू.-1 सुशील कुमार ने गवाही दी है कि घटना से एक दिन पहले आरोपी सुनील उसके पास मकान कार्य को पूरा करने के लिए पैसे लेने आया था क्योंकि लिंटर खुला था और प्लास्टर भी बाकी था। इस गवाह के अनुसार घटना की जानकारी होने के बाद, वह आरोपी के साथ अपनी कार RJ 20 सीबी 2994 से कानपुर आये थे। वे 20.7.2011 को शाम

करीब 4-5 बजे गांव पहुंचे जब मृतका के अंतिम संस्कार की तैयारी चल रही थी एवं जो कि आरोपी द्वारा किया गया। अनुपम और अभय ने उन्हें बताया कि लिंटर खुला होने पर कुछ ईंटें उससे चिपक कर रह गई और उनके मृतका के ऊपर गिरते ही यह हादसा हो गया। आरोपी और मृतका के बीच संबंध अच्छा था और आपस में कोई विवाद नहीं था। आरोपी नशा नहीं करता था।

ऐसा ही बयान डी0डब्लू-2 विपीन कटियार ने भी दिया है, कि आरोपी सुनील कटियार का मकान उनके घर से 10-15 कदम की दूरी पर था। 18.7.2011 को आरोपी उसे सिकंदरा बस स्टैंड पर मिले। पूछने पर, आरोपी ने उससे कहा था कि वह अपने भाई के पास कोटा राजस्थान जा रहा है। इस गवाह ने उस पर आगे गवाही दी है 19.7.2011 जब वह समाचार पत्र देख रहा था, उसने खबर देखी कि सुनील कुमार की पत्नी की मृत्यु हो गयी है, जिस पर वह सुनील कुमार के घर गया और देखा कि उसकी पत्नी चारपाई पर मृत पड़ी थी, छत के कुछ हिस्से उसकी छाती पर पड़े थे। सुनील कुमार वहां नहीं थे। सुनील को उनके बेटे द्वारा फोन पर सूचना दी गई। जानकारी मिलने पर सुनील 20.7.2011 को शाम करीब 4-5 बजे अपने भाई सुशील के साथ गांव पहुंचे। सुनील ने ही अपनी पत्नि अंतिम संस्कार किया था और वह भी वहां मौजूद था।

इस प्रकार, उपरोक्त साक्ष्य से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि घटना के दिन एवं समय पर अभियुक्त मौके पर उपस्थित नहीं था। अतः यह बात सिद्ध नहीं हुई है कि मृत्यु से

कुछ समय पहले मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था।

**कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 2868**, यह माना गया है कि समय और स्थान की निकटता होनी चाहिए। इस मामले में इसकी कमी है।

**गणपत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी (द) 159**, में यह देखा गया है, कुछ मामलों में जब लम्बा अंतराल हो तो सकारात्मक रूप से यह साबित करना मुश्किल होता है कि आखिरी बार आरोपी को मृतक के साथ देखा गया था और उस बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की भी संभावना बनी रहती है। आरोपी एवं मृतक के आखिरी बार साथ देखे जाने के निष्कर्ष हेतु सकारात्मक साक्ष्य का अभाव में, ऐसे मामलों में दोषी ठहराना संकटजनक है।

इस मामले में अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मौत से ठीक पहले मृतका आरोपी के साथ थी लेकिन यह साबित हो चुका है कि जब आरोपी घर से बाहर था, मृतका की मृत्यु हो गई।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि आवश्यक संदेह के आगे आखिरी बार एक साथ देखे जाने की परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की शृंखला साबित नहीं होती है और यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब आरोपी अपने भाई के साथ कोटा में था तब मृतका मृत्यु हो गई थी।

(ग) **इकबालिया बयान** - अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त द्वारा इकबालिया बयान को नहीं लिया है, हालांकि आईओ के अनुसार, अभियुक्त ने उसके सामने अपना अपराध कबूल कर लिया था और उसके प्रकटन बयान पर घर के पीछे उसके दिखाने पर भूखंड से मूसल बरामद किया गया था। केस डायरी में लिखे गए ऐसे बयानों को आईओ ने साबित नहीं किया है और ऐसे बयानों को साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के मद्देनजर माना नहीं जा सकता है।

(घ) **बरामदगी** - आई.ओ. के अनुसार, आरोपी ने अपना अपराध कबूल कर लिया और एक खुलासा बयान दिया, जिस पर अपराध करने में इस्तेमाल किया गया खून से सना मूसल उसकी निशानदेही पर बरामद किया गया। जहां तक बरामदगी का सवाल है, सुरेश कुमार, प्रताप नारायण, निर्मल सिंह, गोपी श्याम और विजय कुमार को बरामदगी फर्द में गवाह के रूप में दिखाया गया था, लेकिन बरामदगी फर्द को साबित करने के लिए उनमें से किसी की भी जांच नहीं की गई।

पी.डबल्यू.- 7, आई.ओ. बरामदगी फर्द की पुष्टि करने के लिए पूछने पर उन्होंने बरामदगी फर्द, प्रदर्शक - 9 पर अपनी लिखावट और हस्ताक्षर की पुष्टि की। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि पी.डबल्यू. - 7 आई.ओ. है एवं सम्बन्धित व्यक्ति है इसलिए स्वतंत्र गवाह की जांच करना आवश्यक था जिसके समक्ष कथित बरामदगी की बात कही गई है। इसलिए मूसल की बरामदगी संदेह से मुक्त नहीं है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कथित रूप से बरामद मूसल के संबंध में कोई एफएसएल रिपोर्ट नहीं मिली है कि इसमें मानव रक्त था और रक्त मृतका का था।

विद्वान ए.डी.जी.सी. (दाण्डिक) द्वारा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है कि मृतक के शरीर पर जो चोटें पाई गई हैं वह मूसल की हो सकती हैं।

जिरह में पी.डबल्यू.-4 डॉ. रियाज अली ने स्वीकार किया कि जब कोई व्यक्ति सीढ़ी से गिर जाए तो उसे चोट नं. 1 और 4 लग सकती है यदि कोई व्यक्ति किसी कठोर वस्तु पर गिरता है तो उसे चोट संख्या 2 और 3 लग सकती है।

इस प्रकार, पी.डबल्यू.-4, जिसने पोस्टमॉर्टम किया था ने यह नहीं बताया है कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें मूसल की हो सकती हैं।

इसलिए, इस न्यायालय का मानना है कि अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मूसल एम एक्स- 1 का प्रयोग अपराध कारित करने में किया गया था तथा उसमें मानव रक्त था एवं वह अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद किया गया था।

(ड) अभियोजन की ओर से यह भी नहीं कहा गया है कि अपराध करने के बाद आरोपी फरार हो गया था। कभी-कभी किसी आरोपी की फरारी को अभियोजन पक्ष के पक्ष में माना जाता है, लेकिन इस मामले में यह साबित हो

गया है कि यह जानने के बाद कि उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई है, वह कोटा से सीधे घर लौट आया।

का भार उस पर है कि उसके पास टिकट था।

(च) भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की प्रयोज्यता- इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आरोपी और मृतक अपने आवास गृह में एक साथ नहीं रह रहे थे, लेकिन यह साबित नहीं किया जा सका कि अपराध के समय आरोपी वहां मौजूद था।

धारा 106 साक्ष्य अधिनियम इस प्रकार है:-

“106. तथ्य को मुख्यतः जानकारी होने पर साबित करने का भार.- जब कोई तथ्य मुख्यतः जिसकी जानकारी व्यक्ति को होती है, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है। रेखांकन

(क) जब कोई व्यक्ति कार्य के चरित्र और परिस्थितियों से सुझाए गए इरादे के अलावा किसी अन्य इरादे से कोई कार्य करता है, तो उस इरादे को साबित करने का भार उस पर होता है।

(ख) ए पर बिना टिकट रेलवे में यात्रा करने का आरोप है। यह साबित करने

पी. मणि बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2006 एससी 1319, में यह माना गया है कि सभी उचित संदेहों से परे किसी आरोपी की संलिप्तता को साबित करना अभियोजन पक्ष का काम है। यह ऐसा मामला नहीं था जहां आरोपी और मृतक दोनों को आखिरी बार एक कमरे के अंदर एक साथ देखा गया था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 किसी भी तरह लागू होती है।

कैलाश चंद बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 11 एससीसी 268 में, यह माना गया है कि यह घिसी-पिटी बात है कि अभियोजन को आरोप साबित करने के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना होगा और पर्याप्त सबूत पेश करने पड़ेंगे, मुकदमे में अदालत द्वारा धारा 106 की कोई सहायता नहीं ली जा सकती

धारा 106 का उद्देश्य अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के अपराध को साबित करने के बोझ से राहत देना नहीं है, बल्कि यह धारा उन मामलों पर लागू होगी जहां अभियोजन उन तथ्यों को साबित करने में सफल रहा है जिनके लिए कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व के संबंध में उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है, जब तक कि अभियुक्त ऐसे तथ्यों के बारे में विशेष ज्ञान के आधार पर कोई स्पष्टीकरण देने में विफल न हो, जो न्यायालय को एक अलग निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित कर सके।



**शिवाजी चिन्तप्पा पाटिल (उपरोक्त) के**  
पैरा 22 में यह माना गया है कि ----

22. इस प्रकार यह देखा जा सकता है, कि यह अच्छी तरह से तय है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 सीधे तौर पर पति या पत्नी के एक ही छत के नीचे रहने और मृतक के साथ देखे गए अंतिम व्यक्ति होने के खिलाफ लागू नहीं होती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने प्राथमिक बोझ का निर्वहन करने से मुक्त नहीं करती है। ऐसा केवल तभी होता है जब अभियोजन पक्ष ने ऐसे सबूत पेश किए हों, जिन पर यदि विश्वास किया जाए, तो दोषसिद्धि कायम हो सकती है, या जो प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तब उन तथ्यों पर विचार करने का सवाल उठता है, जिन्हें साबित करने का बोझ आरोपी पर होगा।

**गार्गी बनाम हरियाणा राज्य, 2019 0**  
**सुप्रीम एससी 1042** के पैरा 28.1 में, यह माना गया है कि---

28.1. जहां तक 'आखिरी बार देखे जाने के सिद्धांत' का सवाल है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता कोई और नहीं बल्कि मृतक की पत्नी है और एक ही छत के नीचे रहती है, वह आखिरी व्यक्ति थी जिसके साथ मृतक को देखा गया था। हालाँकि, मृतक और अपीलकर्ता के इस तरह के साथ का मतलब यह नहीं है कि अपीलकर्ता के अपराध का अनुमान लगाया जाए। ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट इस धारणा पर आगे बढ़े हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम 11 की धारा 106 सीधे अपीलकर्ता के खिलाफ काम करती है। हमारे विचार में, ऐसा दृष्टिकोण भी त्रुटि से मुक्त नहीं है जहां इस बात पर विचार करना छोड़ दिया गया कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन को उसके प्राथमिक बोझ से मुक्त नहीं करती है। इस न्यायालय ने सावल दास (उपरोक्त) में सिद्धांत को निम्नलिखित में समझाया है: -

"10. हालाँकि, न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 103

और न ही 106 का आवेदन, अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने सामान्य या प्राथमिक बोझ के निर्वहन के कर्तव्य से मुक्त कर सकता है।

ऐसा तभी होता है जब अभियोजन पक्ष ने ऐसे सबूत पेश किए हों, जिन पर यदि विश्वास किया जाए, तो दोष सिद्धता बरकरार रहेगी, या जो प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तभी उन तथ्यों पर विचार करने का सवाल उठता है, जिन्हें साबित करने का बोझ आरोपी पर पड़ सकता है...

**सत्ये सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, (2022) 5 एससीसी 438** में, इस मामले में मृतक पत्नी थी, पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था क्योंकि कथित घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था, शव पर चोटें मृत्यु पूर्व प्रकृति की थीं, जांच के दौरान कोई भी आपत्तिजनक वस्तु बरामद नहीं की गई और आरोपियों को कथित अपराध से जोड़ने के लिए ठोस साक्ष्य तो दूर, कोई सबूत इकट्ठा करने का भी कोई प्रयास नहीं किया गया। मृतक कथित घटना की पिछली शाम को घर से निकला था। यह माना गया कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी मजबूत क्यों न हों, सबूत की जगह नहीं ले सकती और

अभियुक्तों का अपराध उचित संदेह से परे अभियोजन द्वारा साबित किया जाना चाहिए। अभियोजन पूरी परिस्थितियों में यह साबित करने में बुरी तरह विफल रहा कि कथित कृत्य केवल अभियुक्त द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं। इसलिए उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश को रद्द कर दिया गया और आरोपियों को बरी कर दिया गया।

**देवीलाल: बाबूलाल बनाम राजस्थान राज्य, 2019 लॉ सूट (एससी) 36** में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य की जांच करते समय, अदालत को निर्दोषता की किसी भी उचित संभावना को खारिज करने के लिए घटनाओं की श्रृंखला को स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से स्थापित करने के लिए इसका मूल्यांकन करना होगा। अभियुक्त के मामले में, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सबूत होना चाहिए कि अभियुक्त के अलावा कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता है जो अकेले कथित अपराध का अपराधी है और परिस्थितियों को केवल अपराधी के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप निर्णायक प्रकृति स्थापित करनी चाहिए।

**शिवाजी चिंताप्पा पाटिल (उपरोक्त) के पैरा 11** में भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार वाले मामलों के संबंध में समान सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं।

*“11/ परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में कानून को शरद*

बिरधीचंद सारदा बनाम  
महाराष्ट्र राज्य के  
मामले में इस  
न्यायालय के 5  
(2010) 9 एससीसी  
189 6 (2019) 19  
एससीसी 447 7  
(2006) 12 एससीसी  
254 फैसले में बहुत  
अच्छी तरह से स्पष्ट  
किया गया है-

“153. इस निर्णय का  
बारीकी से विश्लेषण  
करने पर पता चलेगा  
कि किसी आरोपी के  
खिलाफ मामला पूरी  
तरह से स्थापित होने  
से पहले निम्नलिखित  
शर्तों को पूरा किया  
जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों  
से अपराध का निष्कर्ष  
निकाला जाना है, उन्हें  
पूरी तरह से स्थापित  
किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया  
जाना चाहिए कि इस  
न्यायालय ने संकेत दिया  
है कि संबंधित  
परिस्थितियों को “हो  
सकता है” नहीं बल्कि

‘आवश्यक या होना  
चाहिए’ स्थापित होना  
चाहिए। “साबित किया  
जा सकता है” और  
“साबित किया जाना  
चाहिए या साबित करना  
होगा” के बीच न केवल  
व्याकरणिक बल्कि  
कानूनी अंतर है, जैसा  
कि इस न्यायालय ने  
शिवाजी साहबराव बोबडे  
बनाम महाराष्ट्र राज्य  
(1973) 2 एससीसी 793  
में माना था जहां  
अवलोकन किया गया  
था: (एससीसी पैरा 19,)   
पृ. 807: एससीसी (दण्ड)  
पी. 1047, “

19. ....निश्चित रूप  
से, अदालत द्वारा दोषी  
ठहराए जाने से पहले  
आरोपी का निश्चित रूप  
से दोषी होना आवश्यक  
है और न कि केवल  
दोषी होना चाहिए और  
‘हो सकता है’ व ‘होना  
चाहिए’ के बीच की  
मानसिक दूरी लंबी है  
और अस्पष्ट अनुमानों  
को निश्चित निष्कर्षों से  
विभाजित करती है। ”

(2) इस प्रकार, स्थापित  
तथ्य केवल अभियुक्त के

अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाने योग्य नहीं होना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, (4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) सबूतों की एक श्रृंखला होनी चाहिए जो इतनी पूर्ण हो कि निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न बचे। अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि हर तरह की मानवीय संभावना में यह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया है। “

15. उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का मानना है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के इस मामले में उचित संदेह से आगे अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा के लिए अनिवार्य कोई भी अंश साबित नहीं किया गया है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला भी अभियुक्त-अपीलार्थी के खिलाफ स्थापित नहीं

की जा सकी है। इस प्रकार, यह न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश कानून की नजर में कायम रहने योग्य नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है।

### आदेश

अपील स्वीकार की जाती है और दिनांक 20.1.2014 वाला दोषसिद्धि और सजा देने वाला आदेश रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को जेल से मुक्त किया जाए। यह आदेश तत्काल संबंधित जेल अधीक्षक को भेजा जाए। निचली अदालत का अभिलेख इस निर्णय की प्रति के साथ वापस भेजा जाए।

-----

(2023) 9 ILRA 1092

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

आपराधिक अपील संख्या 2202 वर्ष 2013

सोनू @ पिकू

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री टीके मिश्रा, अभिलाष सिंह, श्री आशुतोष यादव, श्री गौरव कक्कड़, श्री राजीव कुमार राय, श्री श्याम लाल

**प्रतिवादी के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

**आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374 - साक्ष्य अधिनियम, 1872-** निर्णय के खिलाफ अपील जिसके तहत अभियुक्त को धारा 363 और 376 (2) (एफ) आईपीसी और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत दोषी ठहराया गया है--

- अभियुक्त ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया और उसे सड़क के किनारे फेंक दिया, जहां उसे खून बहने के साथ घायल पाया गया था--- पीड़िता हालांकि एक बाल गवाह है, लेकिन संबंधित न्यायालय ने पीड़िता से पूछताछ के आधार पर अपनी संतुष्टि दर्ज की है कि वह उससे पूछे गए सवालों के जवाब देने में सक्षम है--- जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य योग्य है, यह विश्वास किया जा सकता है, और मकसद ज्यादा वजन नहीं रखता है, केवल इसलिए कि वर्तमान अपराध करने के लिए कोई मजबूत मकसद नहीं था, अभियोजन पक्ष के मामले पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है--- जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों को संदिग्ध बना दे। स्वाभाविक रूप से उनकी जांच में कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास और विसंगतियां सामने आई हैं, लेकिन वे मामले की जड़ तक नहीं जातीं। विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का समुचित मूल्यांकन करने के बाद, कथित धाराओं के तहत अभियुक्त को सही दोषी ठहराया है। आजीवन कारावास की सजा को संशोधित कर 14 वर्ष के कठोर कारावास में तब्दील

किया जाता है, यह देखते हुए कि अभियुक्त ने पहली बार अपराध किया है और उसके सुधार की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। (पैरा 22, 23, 25 और 28)

**अपील खारिज (ई-15)****उद्धृत वादों की सूची:**

1. पी. रमेश बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व, एआईआर (2019) एससी 3559
2. लोकेश शिवकुमार बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 3 एससीसी 196
3. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरी, (2012) 4 एससीसी 124
4. सचिन कुमार सिंघराहा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2019) 8 एससीसी 371
5. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह एवं अन्य, (2014) 7 एससीसी 323
6. शाम सुंदर बनाम पूरन (1990) 4 एससीसी 731
7. एमपी बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554
8. रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175

(माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV द्वारा  
पारित)

1. वर्तमान अपील आरोपी अपीलकर्ता सोनू द्वारा भा.दं.सं. की धारा 363, 366-केए और 376(2) (एफ) के तहत सत्र परीक्षण संख्या 629/2010 में तथा मुकदमा अपराध संख्या 824/2010, थाना सेक्टर-58, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर से उत्पन्न धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत सत्र परीक्षण संख्या 630/2010 (राज्य बनाम सोनू उर्फ पिकू) में द्वितीय अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.12.2012 के खिलाफ दायर की गई है जिसके तहत परीक्षण न्यायालय ने आरोपी सोनू उर्फ पिकू को दोषी ठहराया है और भा.दं.सं. की धारा 363 के तहत 5 साल के कठोर कारावास और 10,000 रुपये जुर्माना, भा.दं.सं. की धारा 366- केए के तहत 7 वर्ष का कठोर कारावास और 10,000/- रुपये का जुर्माना और भा.दं.सं. की धारा 376 (2) (एफ) के तहत आजीवन कारावास और 2000/- रुपये का जुर्माना और मूलभूत सजा के साथ 2 वर्ष का सश्रम कारावास एवं 1000 रुपये का जुर्माना और शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत 2000/- का जुर्माने की सजा सुनाई है।

2. एफ.आई.आर. में अभियोजन की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है :-

दिनांक 10.06.2010 को सूचक /शिकायतकर्ता के बच्चे पेट्रोल पम्प वाजिदपुर के पहले खाली प्लाट पर बनी मलिन बस्तियों/झुग्गियों के बाहर खेल रहे थे, जब सूचक प्रतिदिन की भाँति अपने काम पर गया

हुआ था। सुबह लगभग 11:30 बजे, एक काली इंडिका कार बच्चों के पास रुकी, जिसे आरोपी-अपीलकर्ता सोनू उर्फ पिकू चला रहा था, जिसने लगभग 8 साल की पीड़िता को बहकाया (न्यायालय ने नाम का खुलासा नहीं किया है) और 3-4 अन्य बच्चे वहां खेल रहे थे और उन्हें कार में बैठाया और कुछ दूरी तय करने के बाद उसने पीड़िता को छोड़कर सभी बच्चों को कार से उतार दिया और उसे (पीड़िता को) सेक्टर 62 की ओर ले गया। जिसकी सूचना पुलिस को दी गई तो पुलिस की गाड़ियां इंडिका कार की तलाश में मौके पर आई और उसकी तलाश शुरू कर दी। आरोपी अपीलकर्ता ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया और उसे नोएडा के ए-ब्लॉक सेक्टर 62 में सड़क के किनारे फेंक दिया, जहां वह रक्तस्राव के कारण घायल अवस्था में मिली, पीड़िता को घायल अवस्था में मेडिकल जांच के लिए अस्पताल ले जाया गया, जहां उसकी चिकित्सकीय जांच की गई।

3. पीड़िता के पिता रमेश उर्फ मेहदी हसन द्वारा संबंधित थाने में लिखित तहरीर प्रदर्श क-1 दी गई जिस पर कांस्टेबल मोहररिंद द्वारा एफ.आई.आर. (प्रदर्श क-4) तैयार की गई और जनरल डायरी में प्रविष्टि की गई।

4. पी.डब्ल्यू.-5 डॉ. अर्चना त्यागी ने पीड़िता का चिकित्सकीय परीक्षण किया और मेडिकल रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) तैयार की। बाद में, पी.डब्ल्यू.-8 डॉ. रेनू अवाना ने उसकी जांच की और मेडिकल रिपोर्ट प्रदर्श क-11 तैयार की। मरीज को भर्ती कराया गया और डॉ. रेनू

अवाना की देखरेख में 30.06.2010 तक अस्पताल में ऑपरेशन किया गया।

5. पी.डब्ल्यू.-7 राजेश भारती ने मामले की जांच की, घटनास्थल का दौरा किया, नक्शा नजरी तैयार किया, मुखबिर, पीड़िता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए और दिनांक 15.06.2010 को मुखबिर की सूचना पर आरोपी को पकड़ लिया और आरोपी अपीलकर्ता के कब्जे से एक देशी तमंचा 12 बोर मय एक कारतूस बरामद किया तथा उसकी निशानदेही पर एक खून से सना सीट कवर बरामद किया, उसकी फर्द (प्रदर्श क-8 और 9) तैयार किया और जांच की सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 363 और 376 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत (प्रदर्श क-10) किया।

6. पी.डब्ल्यू.-10 एस.आई. मांगेराम शर्मा ने शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 824/2010 की जांच की और जांच की सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद पर्याप्त सबूत पाए और आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-16) प्रस्तुत किया।

7. वाद, विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी-अपीलकर्ता के वाद को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां से इसे स्थानांतरित कर दिया गया और इसका निर्णय द्वितीय अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गौतमबुद्धनगर द्वारा किया गया।

8. विद्वान परीक्षण न्यायालय ने, अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, आरोपी-अपीलकर्ता सोनू उर्फ पिकू के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 363 और 376 तथा शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोप तय किए, जिससे उसने इनकार कर दिया, दोषी न होने की दलील दी और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

9. अपने वाद को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने दस गवाहों से पूछताछ की, जिनमें से पीडब्ल्यू-1 रमेश उर्फ मेहदी हसन, पीडब्ल्यू-2 पीड़िता, पीडब्ल्यू -3 रज्जब और पीडब्ल्यू-4 नाजरीन तथ्य के गवाह हैं और पीडब्ल्यू -5 डॉ. अर्चना त्यागी, पीडब्ल्यू-6 राजपाल सिंह, पीडब्ल्यू 7 राजेश भारती, पीडब्ल्यू-8 डॉ. रेनू अवाना, पी.डब्ल्यू. 9 सतीश चंद्र शर्मा और पीडब्ल्यू-10 मांगेराम शर्मा औपचारिक गवाह हैं।

10. अभियोजन साक्ष्य के समापन के बाद, न्यायालय द्वारा पूरे साक्ष्य और अन्य आपतिजनक परिस्थितियों को समझाते हुए दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत आरोपी अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया गया। दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने अभियोजन की कहानी को पूरी तरह से नकार दिया, कहानी और गवाहों के बयान को गलत बताया और और पुलिस के दबाव में उसने वर्तमान मामले में झूठा फंसाने का दावा किया। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि घटना से तीन-चार दिन पहले पीड़िता ने उसकी गाड़ी का शीशा तोड़ दिया था, उसने हर्जाने की मांग की थी, जिस पर उसका मौसा से झगड़ा हो गया, इसलिए उसे इस मामले में झूठा

फंसाया गया है। बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया गया।

11. परीक्षण न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में पूरे सबूतों की मूल्यांकन करने के बाद आरोपी अपीलकर्ता को दोषी पाया और उसे दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर बताया गया है। आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए अभियुक्त अपीलकर्ता द्वारा वर्तमान अपील दायर की गई है।

12. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष यादव और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अरुण कुमार को सुना और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की बहुमूल्य सहायता से अभिलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।

13. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपना तर्क निम्नलिखित तरीके से आगे बढ़ाया:-

(i) आरोपी-अपीलकर्ता निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अभियोजन पक्ष की ओर से अपने मामले के समर्थन में स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है।

(ii) आरोपी-अपीलकर्ता और पीड़िता के माता-पिता के बीच पहले से विवाद था। इस प्रकार, उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

(iii) आरोपी-अपीलकर्ता के पास ऐसा जघन्य अपराध करने का कोई प्रबल मकसद नहीं है, वह भी नाबालिग पीड़िता के साथ।

(iv) पीड़िता के बयान में ही विरोधाभास है। उन्होंने जिरह के कुछ हिस्से का हवाला दिया और तर्क दिया कि भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत कोई मामला नहीं बनता है।

(v) अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे अनुरोध किया कि यदि अपीलकर्ता को दोषी पाया जाता है, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता पहले ही 13 वर्ष से अधिक कारावास की सजा काट चुका है, इस प्रकार, उसे पहले ही भुगतने गए कारावास के लिए विचार किया जाना चाहिए।

14. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस तर्क का खंडन करते हुए कहा कि घटना के समय पीड़िता लगभग 8 वर्ष की थी। आरोपी अपीलार्थी ने उसके साथ बेरहमी से मारपीट की, जिससे वह घायल हो गई, पी.डब्ल्यू-3 रज्जब ने अभियोजन पक्ष का समर्थन किया जो घटना के समय उसके साथ खेल रहा था। अभियोजन पक्ष के मामले में किसी भी प्रकार के संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। परीक्षण न्यायालय ने मुकदमे में सबूतों का सही मूल्यांकन किया है और आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है। आरोपी अपीलकर्ता द्वारा नाबालिग बच्चे के साथ किए गए कृत्य को देखते हुए, ऐसी परिस्थितियों में किसी सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है। अपील में योग्यता नहीं है और यह खारिज किये जाने योग्य है।



15. अब, हम दोनों पक्षों द्वारा दिए गए तर्क और अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए सबूतों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं क्योंकि कोई बचाव साक्ष्य पेश नहीं किया गया है।

16. पी.डब्ल्यू.-1 रमेश उर्फ मेहदी हसन (पीड़िता के पिता) सूचक हैं। उन्होंने अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है लेकिन वह घटना के चश्मदीद गवाह नहीं हैं। उन्होंने यह कहते हुए एफ.आई.आर. दर्ज कराई कि उनकी नाबालिग बेटी/पीड़िता खाली प्लॉट में अन्य बच्चों के साथ खेल रही थी। घटना उनकी बेटी पीड़िता ने बताई, उन्होंने अपनी बेटी को सेक्टर 62 की ओर सड़क के किनारे घायल अवस्था में पाया। उनकी बेटी के साथ दुष्कर्म करने के बाद आरोपी-अपीलकर्ता सोनू ने उसे फेंक दिया था। उन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशन में एफ.आई.आर. दर्ज कराई। उन्होंने तहरीर प्रदर्शक-1 को प्रमाणित किया। सूचना देने वाले की पत्नी ने हेल्पलाइन संख्या 100 पर कॉल किया जिस पर पुलिस भी वहां आ गई, फिर उसकी पत्नी और पुलिस पीड़िता को अस्पताल ले गए जहां उसका इलाज किया गया। पीड़िता ने आरोपी का नाम सोनू बताया। पुलिस ने उससे भी पूछताछ की और उसका बयान दर्ज किया। गवाह को लंबी जिरह का सामना करना पड़ा। चूंकि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है, इसलिए उसके परीक्षण के गहन जांच की ज्यादा जरूरत नहीं है। जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं निकला जिससे उनके बयान पर अविश्वास किया जा सके।

17. पी.डब्ल्यू.-3 रज्जब, जिसकी उम्र 2011 में परीक्षण के समय लगभग 13 वर्ष थी, जो पीड़िता के साथ खेल रहा था, ने यह कहकर अभियोजन पक्ष का समर्थन किया कि वह आरोपी-अपीलकर्ता सोनू को पहले से जानता था और घटना के समय वह पेड़ के नीचे चाँद बाबू, शबाना और 2 या 3 अन्य बच्चों के साथ खेल रहा था। सोनू (आरोपी) इंडिका कार लेकर वहां आया और उनसे कार में चलने के लिए पूछा, वे कार में बैठ गए और थोड़ा आगे बढ़ने के बाद आरोपी सोनू ने सभी बच्चों को नीचे उतरने के लिए कहा, सबाना कार की अगली सीट पर बैठी थी, सभी ने सबाना को उतरने के लिए कहा लेकिन सोनू ने कार भगा दी। फिर वह सबाना के घर गया और उसकी मां को पूरी घटना बताई, उसके पिता वहां नहीं थे और काम पर गए थे। बाद में पुलिस ने उससे पूछताछ की तो उसने जो कुछ हुआ पुलिस को बता दिया। जिरह के समय भी यह गवाह नाबालिग था। वह पीड़िता के साथ खेल रहा था। उसने अभियोजन मामले का इस हद तक समर्थन किया कि उसने आरोपी को पीड़िता को अपने साथ ले जाते देखा था। गवाह से पर्याप्त जिरह की गई लेकिन साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं आया जिससे उसके स्वाभाविक कथन पर अविश्वास किया जा सके। दरअसल, उसने बलात्कार की घटना नहीं देखी थी लेकिन उसने यह साबित कर दिया कि आरोपी अपीलकर्ता सोनू पीड़िता को ले गया था। बाद में वह सेक्टर 62 की ओर सड़क के किनारे घायल अवस्था में पाई गई।

18. पी.डब्ल्यू.-4 नाजरीन, पीड़िता की मां ने वास्तविक घटना नहीं देखी थी। घटना के संबंध

में उन्हें जो भी जानकारी दी गई, उन्होंने दूसरों के कहने पर अभियोजन पक्ष का समर्थन किया। इस प्रकार, इस गवाह को भी गहन जांच की आवश्यकता नहीं है। उससे जिरह भी की गई लेकिन उसके बयान को अविश्वसनीय बनाने वाली कोई भी बात अभिलेख पर नहीं लाई जा सकी।

19. स्वयं पी.डब्ल्यू.-2 घायल का बयान महत्वपूर्ण है और उसकी सावधानीपूर्वक जांच की जानी है। पी.डब्ल्यू.-2, पीड़िता जिसकी उम्र घटना के समय लगभग 8 वर्ष थी, ने सशपथ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का समर्थन करते हुए कहा कि घटना के समय वह लगभग 11:00- 12:00 बजे प्लॉट में अन्य बच्चों के साथ खेल रही थी। आरोपी अपीलकर्ता सोनू एक कार लेकर वहां आया और उनसे कार में सवारी करने के लिए कहा। वह भी अन्य बच्चों के साथ कार में बैठ गई, कुछ दूरी तय करने के बाद उसने अन्य बच्चों को तो कार से उतार दिया, लेकिन उसे कार से उतरने नहीं दिया। वह उसे कुछ दूर तक आगे ले गया और कार रोक दी और कार की पिछली सीट पर उसके साथ गलत हरकत करने लगा। आरोपी सोनू ने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया और पीटा तो वह रोई, चिल्लाई। दुर्व्यवहार से उसका मतलब था, उसने उसकी चड़्डी उतार दी, उसने उसे चलती कार से फेंक दिया, उसके गुप्तांग से खून भी निकला। उसने अपने माता-पिता को सब कुछ बताया, पुलिस भी आई, उन्होंने उससे पूछताछ की और उसे अस्पताल ले गए जहां उसका इलाज किया गया। पीड़िता से पर्याप्त जिरह की गई।

अभियोजन की कहानी पर अविश्वास करने के लिए आरोपी अपीलकर्ता की ओर से जिरह में गवाहों के बयान पर बहुत जोर दिया गया, जहां उसने कहा कि आरोपी ने अपनी उंगली से उसके जननांग को फाड़ दिया था और अधिक उंगली करने के कारण रक्तस्राव हुआ था। आरोपी ने उसे अपनी उंगली से फाड़ने के अलावा और कुछ नहीं किया था, उसके बयान के उस हिस्से का हवाला देकर आरोपी अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह भा.दं.सं. की धारा 354 और कुछ अन्य धाराओं के तहत मामला हो सकता है लेकिन बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है।

20. जहां तक पीड़िता के उपरोक्त बयान का सवाल है, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि पीड़िता ने आगे स्पष्ट किया कि आरोपी अपीलकर्ता सोनू ने कार में उसके पैर दबाए और उसे थप्पड़ मारा और सबसे पहले अपनी उंगली डाली, फिर उसने अपना लिंग उसके गुप्तांग पर रख दिया जिससे वह रोई, चिल्लाई और लहलुहान हो गई। उसने आगे स्पष्ट किया कि आरोपी ने पेशाब करने के बहाने उसे कार से उतार दिया और भाग गया। जब वह कार से उतरी तो उसके शरीर से खून बह रहा था। इस प्रकार, पीड़िता के बयान से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उसके साथ आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा बलात्कार किया गया था और यह कानून की अच्छी तरह से स्थापित स्थिति है कि यदि पीड़िता का बयान विश्वसनीय पाया जाता है, तो उसके साक्ष्य आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त हैं। जहां तक झूठे मामले में फंसाने की बात है तो किसी भी पिता के लिए पिछले

विवाद का बदला लेने के लिए अपनी नाबालिग बेटी की इज्जत को दांव पर लगाना स्वाभाविक नहीं है, वह भी झूठा आरोप लगाकर कि उसके साथ बलात्कार हुआ है।

21. गौरतलब है कि मौजूदा मामले में पीड़िता एक आठ साल की बच्ची है, जिसे नोएडा के प्रकाश हॉस्पिटल में भर्ती कराया गया था। डॉक्टर द्वारा एक प्रमाण पत्र जारी किया गया है कि पीड़िता को अस्पताल में भर्ती कराया गया था और 25.06.2010 को थर्ड डिग्री पेरिनियल टियर रिपेयर किया गया था और 30.06.2010 को छुट्टी दे दी गई थी। डॉक्टर का प्रमाणपत्र क-11 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अभियोजन पक्ष ने डॉ. भीम राव मल्टी-स्पेशियलिटी हॉस्पिटल, सेक्टर-9, नोएडा के डॉक्टर द्वारा तैयार की गई नाबालिग पीड़िता की आघात रिपोर्ट को भी अभिलेख पर लाया है। डॉ. अर्चना त्यागी (पीडब्लू-5) द्वारा आघात रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में प्रमाणित किया गया है। पीडब्लू-5 ने विशेष रूप से कहा है कि पीड़िता को 10.06.2010 को शाम 04.00 बजे उप-निरीक्षक कल्पना गौतम द्वारा लाया गया था। डॉक्टर ने पीड़िता की आंतरिक जांच में पाया कि उसकी योनि से खून बह रहा है। घड़ी की 7 'बजे' की स्थिति पर एक घाव लगा था। पीड़िता को अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उसकी उम्र सात साल पाई गई। डॉक्टर ने साफ कहा है कि नाबालिग पीड़िता के साथ यौन उत्पीड़न की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। अभिलेख पर मौजूद सबूतों के साथ-साथ स्वयं पीड़िता द्वारा आरोपी के विशिष्ट निहितार्थ से, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष स्पष्ट रूप

से उचित संदेह से परे आरोपी के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है।

22. हालाँकि पीड़िता एक बाल गवाह है लेकिन हमें उसकी गवाही विश्वसनीय लगती है क्योंकि उसका बयान दर्ज करने से पहले न्यायालय ने उससे पूछताछ की है। पीड़िता ने स्पष्ट रूप से अपने गांव और जिला का नाम बताया है जहाँ वह रहती है। संबंधित न्यायालय ने पीड़िता से पूछताछ के आधार पर अपनी संतुष्टि दर्ज की है कि वह अपने द्वारा पूछे गए सवालों का जवाब देने में सक्षम है। गवाही देने के लिए बाल गवाह की क्षमता के संबंध में कानून की जांच उच्चतम न्यायालय द्वारा पी. रमेश बनाम पुलिस निरीक्षक प्रतिनिधि द्वारा राज्य, एआईआर (2019) एससी 3559 में की गई है, जिसमें न्यायालय ने निर्णय के पैरा 15 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

*"किसी बाल गवाह की योग्यता निर्धारित करने के लिए न्यायाधीश को अपनी राय बनानी होगी। न्यायाधीश एक बाल गवाह की क्षमता का परीक्षण करने के लिए स्वतंत्र है और बुद्धि और ज्ञान की उपाधि के संबंध में कोई सटीक नियम नहीं बनाया जा सकता है जो बच्चे को एक सक्षम गवाह बना देगा। किसी बाल गवाह की योग्यता का पता उससे पूछताछ करके लगाया जा सकता है ताकि देखी गई घटना को समझने और न्यायालय के सामने सच बोलने की क्षमता का पता लगाया जा सके। अपराधिक कार्यवाही में, किसी भी उम*

का व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम है यदि वह (1) गवाह के रूप में पूछे गए प्रश्नों को समझने में सक्षम है और (ii) प्रश्नों के ऐसे उत्तर देने में सक्षम है जिसे समझा जा सके। कम उम्र के बच्चे को गवाही देने की अनुमति दी जा सकती है यदि उसके पास प्रश्नों को समझने और उनके तर्कसंगत उत्तर देने की बौद्धिक क्षमता है। 9 एक बच्चा केवल तभी अक्षम होता है जब न्यायालय यह मानता है कि बच्चा 8 (2004) 1 एससीसी 64 को समझने में असमर्थ था। इसके बाद, निवृत्ति पांडुरंग के प्रश्नों पर भरोसा किया और उन्हें सुसंगत और समझने योग्य तरीके से उत्तर दिया। इसके बाद, निवृत्ति पांडुरंग कोकाटे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 12 एससीसी 565 दलसुखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य, (2004) 1 एससीसी 64 मामले के प्रश्नों पर विचार करे और उन्हें सुसंगत और समझने योग्य तरीके से उत्तर दे। यदि बच्चा उससे पूछे गए प्रश्नों को समझता है और उन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर देता है, तो यह माना जा सकता है कि वह जांच के लिए एक सक्षम गवाह है।

23. जहां तक मकसद का सवाल है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य गुण- संपन्न है, वहां उस पर विश्वास किया जा सकता है, और मकसद में ज्यादा वजन नहीं होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आरोपी

व्यक्तियों की मानसिकता एक-दूसरे से भिन्न होती है। इस प्रकार केवल इसलिए कि वर्तमान अपराध करने का कोई दृढ़ मकसद नहीं था, अभियोजन मामले पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क में हमें कोई तथ्य नहीं मिला।

24. लोकेश शिवकुमार बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 3 एससीसी 196 में न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

जहां तक मकसद का सवाल है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि अभियोजन का मामला विश्वसनीय नेत्र साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पूरी तरह से स्थापित हो जाता है, तो मकसद का मुद्दा व्यावहारिक रूप से सभी प्रासंगिकता खो देता है। इस मामले में, हम अभियोजन मामले के समर्थन में दिए गए प्रत्यक्ष साक्ष्य को पूरी तरह से विश्वसनीय पाते हैं और इसे खारिज करने का कोई कारण नहीं दिखता है।"

25. जहां तक अभियोजन मामले में विसंगतियों, भिन्नता और विरोधाभास का सवाल है, हमने विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रस्तुतीकरण के अनुरूप पूरे साक्ष्य का विश्लेषण किया है और गवाह पीडब्ल्यू 1, 2, 3 और 4 ने गवाह के रूप में अभियोजन मामले का समर्थन किया है। सभी चार गवाहों ने लंबी जिरह का सामना किया लेकिन

अभिलेख पर कोई भी प्रतिकूल सामग्री नहीं लाई जा सकी जिससे उनके बयानों पर अविश्वास किया जा सके। जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे उनके बयान संदिग्ध हो जाएं। स्वाभाविक रूप से उनकी जांच में कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास और विसंगतियां सामने आई हैं लेकिन वे मामले की तह तक नहीं जाते। 26. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरी, (2012) 4 एससीसी 124 में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि सच्चे गवाहों के बयानों में छोटे-मोटे विरोधाभास आना स्वाभाविक है क्योंकि स्मृति कभी-कभी झूठ बोलती है और अवलोकन की भावना हर व्यक्ति में भिन्न होती है।

27. सचिन कुमार सिंह राहा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2019) 8 एससीसी 371 में उच्चतम न्यायालय ने गौर किया है कि न्यायालय को ग्रामीणों के बयानों की देहाती प्रकृति को ध्यान में रखते हुए साक्ष्य का मूल्यांकन करना होगा, जो गणितीय परिशुद्धता के साथ सटीक भौगोलिक स्थानों के बारे में गवाही नहीं दे सकते हैं। इस प्रकृति की विसंगतियाँ जो मामले की जड़ तक नहीं जाती, अन्यथा स्वीकार्य साक्ष्य को नष्ट नहीं करती हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह अब तक अच्छी तरह से तय हो चुका है कि गवाहों की गवाही की विश्वसनीयता और समय रूप से अभियोजन संस्करण की स्थिरता का आकलन करते समय मामूली बदलावों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।

28. गवाहों के बयान, विशेष रूप से पीड़िता के बयान पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर,

हमारी राय है कि परीक्षण न्यायालय ने, सबूतों के उचित मूल्यांकन के बाद, आरोपी-अपीलकर्ता को कथित धाराओं के तहत सही ढंग से दोषी ठहराया है और हम परीक्षण न्यायालय से अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए खुद को राजी नहीं करते हैं।

29. हमें अपील में कोई योग्यता नहीं मिली, तदनुसार, अपील योग्यता के आधार पर खारिज की जाती है।

30. जहां तक कथित धाराओं में आरोपी अपीलकर्ता को परीक्षण न्यायालय द्वारा दी गई सजा का सवाल है, यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था, पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए। न्यायालय का यह दायित्व है कि वह लगातार खुद को पीड़िता के अधिकार की याद दिलाए, और यह कहा जा सकता है कि, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति के साथ-साथ बड़े पैमाने पर समाज भी पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिए पर नहीं रखा जाना चाहिए। सजा का माप अपराध की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए। सजा देने का उद्देश्य समाज की रक्षा करना और अपराधी को कानून के स्वीकृत उद्देश्य को प्राप्त करने से रोकना होना चाहिए। इसके अलावा, यह अपेक्षा की जाती है कि अदालतें सजा प्रणाली का संचालन करेंगी ताकि ऐसी सजा दी जा सके जो समाज की अंतरात्मा को प्रतिबिंबित करे और सजा की प्रक्रिया जहां सख्त होनी चाहिए वहां

सख्त होनी चाहिए। यदि उस अपराध के लिए उचित दंड नहीं दिया गया, जो न केवल व्यक्तिगत पीड़िता के खिलाफ बल्कि उस समाज के खिलाफ भी किया गया है, जिससे अपराधी और पीड़िता संबंधित हैं, तो न्यायालय अपने कर्तव्य में असफल हो जाएगा। किसी अपराध के लिए दी जाने वाली सज़ा अप्रासंगिक नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह उस अत्याचार और क्रूरता के अनुरूप और सुसंगत होनी चाहिए जो अपराध किया गया है, अपराध की विशालता के कारण सार्वजनिक घृणा उत्पन्न होती है और इसे 'अपराधी के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देना चाहिए।' [द्वारा: सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह और अन्य, (2014) 7 एससीसी 323, शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एससीसी 731, एम.पी. बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554, रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175]।

31. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत और जिस तरह से अपराध किया गया है और पीड़िता की उम्र, जिस पर यौन उत्पीड़न किया गया है, को ध्यान में रखते हुए हम परीक्षण न्यायालय द्वारा आरोपी अपीलकर्ता को दी गई सजा को संशोधित करना उचित समझते हैं। यह ध्यान में रखते हुए कि आरोपी पहला अपराधी है और उसके सुधार की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

(i) निर्दिष्ट धाराओं के तहत आरोपी की सजा बरकरार रखी गई है।

(ii) भा.दं.सं. की धारा 376 (2) (एफ) के तहत आजीवन कारावास की सजा को 14 वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर दिया गया है।

(iii) निर्दिष्ट धाराओं के तहत परीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए जुर्माने का भुगतान न करने पर, आरोपी-अपीलकर्ता को दो महीने की अतिरिक्त कारावास की सजा भुगतानी होगी।

(iv) सभी सजाएं एक साथ चलेंगी और आरोपी अपीलकर्ता दं.प्र.सं. की धारा 428 के लाभ का हकदार होगा।

32. तत्काल अनुपालन के लिए इस निर्णय की प्रति संबंधित परीक्षण न्यायालय को सनद करें।

-----

(2023) 9 ILRA 1099

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या 10  
वर्ष 2020

रैस्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड तमिलनाडु

...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी

प्रार्थी के अधिवक्ता:

रितेश कालिया, अभिषेक खरे, देबाशीष मोड़ना,  
प्रवीण कुमार वर्मा, वभु शंकर

**विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:**

विवेक कुमार राय, अजय कुमार, मुख्य स्थाई अधिवक्ता

विभाग द्वारा जारी संविदा के लिए संयुक्त रूप से बोली लगाई थी।

**सिविल विधि - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 11(6)** ---यह याचिका केवल कंसोर्टियम के एक सदस्य द्वारा दायर की गई है, जिसमें कंसोर्टियम के अन्य सदस्यों को शामिल नहीं किया गया है, जिनमें वे सदस्य भी शामिल हैं जिनके विरुद्ध आरोप लगाए गए हैं और उक्त आरोप प्रथम दृष्टया कंसोर्टियम के सदस्यों के बीच विवादों का संकेत देते हैं, जिन्हें मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं किया जा सकता है। --- इस प्रकार उठाए गए विवादों की प्रकृति के कारण अकेले याचिकाकर्ता के कहने पर याचिका पोषणीय नहीं है। (पैरा 61 और 62)

**याचिका खारिज (ई-15)**

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा पारित)

**A. पृष्ठभूमि तथ्य:-**

1. याचिकाकर्ता-कंपनी द्वारा मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत प्रस्तुत याचिका दायर की गई है, जो पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड और नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड के कंसोर्टियम का सदस्य है। उपर्युक्त दोनों कंपनियों ने प्रस्तुत याचिकाकर्ता कंपनी के साथ उत्तर प्रदेश राज्य में टेली मेडिसिन सेवाओं के कार्यान्वयन के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण

2. प्रस्ताव आमंत्रित किए गए थे और उत्तर प्रदेश राज्य में टेलीमेडिसिन सेवाओं के कार्यान्वयन के लिए बोलीदाताओं से बोलियां आमंत्रित करने के लिए बोलीदाता (निविदा दस्तावेज) को निर्देश के साथ योग्यता के लिए अनुरोध (आर.एफ.क्यू) सह (प्रस्ताव के लिए अनुरोध) (आर.एफ.पी.) शामिल थे। क्लॉज 2.1.1 में उक्त निविदा दस्तावेज ने बोलीदाता को वीडियो परामर्श सेवाओं और/या टेली-परामर्श सेवाओं के लिए केवल एक तकनीकी प्रस्ताव प्रस्तुत करने और ई-टेंडर पोर्टल पर वीडियो परामर्श सेवाओं और टेली-परामर्श सेवाओं के लिए प्रत्येक क्लस्टर के लिए अलग-अलग वित्तीय प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दी। इसने बोलीदाता को एक व्यक्ति के रूप में या कंसोर्टियम के सदस्य के रूप में बोली लगाने की अनुमति दी, लेकिन वे उसी क्लस्टर के लिए व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य कंसोर्टियम के सदस्य के रूप में, जैसा भी मामला हो, एक और बोली प्रस्तुत करने के हकदार नहीं थे।

3. खंड 2.1.10 ने निर्देश दिया कि बोलीदाता को बोली लगाने के लिए हस्ताक्षरकर्ता को अधिकृत करते हुए परिशिष्ट -1 के अनुलग्नक-सी में निर्धारित प्रारूप के अनुसार पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा) प्रस्तुत करना चाहिए। यदि बोलीदाता एक कंसोर्टियम है, तो उसके सदस्यों को परिशिष्ट -1 के अनुलग्नक-डी में निर्धारित प्रारूप के अनुसार लीड सदस्य के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा) प्रस्तुत

करनी चाहिए, जो निष्पादक के पक्ष में चार्टर्ड दस्तावेज या बोर्ड संकल्प के साथ विधिवत समर्थित हो।

4. खंड 2.1.14 में कहा गया है कि बोलीदाता के पास हितों का टकराव नहीं होगा जो बोली प्रक्रिया को प्रभावित करता है और उसके बाद कुछ शर्तों का उल्लेख किया जाता है जो बोली प्रक्रिया को प्रभावित करेगा और इसे हितों का टकराव माना जाएगा। इस विशेष खंड में एक स्पष्टीकरण भी था जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि यदि बोलीदाता एक कंजॉर्टियम है तो इस खंड 2.1.14 में प्रयुक्त बोलीदाता शब्द में ऐसे कंजॉर्टियम का प्रत्येक सदस्य शामिल होगा।

5. बोलीदाताओं की पात्रता से संबंधित खंड 2.2 और खंड 2.2.1(ए) में, यह कहा गया है कि एक बोलीदाता एक एकल इकाई या संस्थाओं का एक समूह (कंजॉर्टियम) हो सकता है जो परियोजना को लागू करने के लिए एक साथ आ रहा है, हालांकि, व्यक्तिगत रूप से या कंजॉर्टियम के सदस्य के रूप में आवेदन करने वाला कोई बोलीदाता, जैसा भी मामला हो, किसी अन्य बोलीदाता का सदस्य नहीं हो सकता है। यहां प्रयुक्त बोलीदाता शब्द एकल इकाई और कंजॉर्टियम दोनों पर लागू होगा।

6. खंड 2.2.1 के खंड (ख) भी विचार के लिए पात्र होने के लिए एक संघ खंड 2.2.3 में निर्धारित शर्तों के अधीन किया जाएगा कि कहा. जो प्रस्तुत मामले में, स्पष्टता के लिए इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

223 बोलीदाता (एकल कंपनी अथवा संस्थाओं का संघ) एक एसपीवी बना सकता है। वैकल्पिक रूप से, बोलीदाता (कंजॉर्टियम के मामले में अग्रणी सदस्य) स्वयं सेवा करार निष्पादित कर सकता है और परियोजना को कार्यान्वित कर सकता है। यदि बोलीदाता एक कंजॉर्टियम है, तो उसे निम्नलिखित अतिरिक्त आवश्यकताओं का अनुपालन करना चाहिए:

(क) बोली में कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य के लिए अपेक्षित सूचना होनी चाहिए बशर्ते कि परिसंघ के सदस्यों की संख्या-3(तीन) से अधिक न हो।

(ख) कंजॉर्टियम के सदस्य 1(एक) सदस्य को प्रमुख सदस्य (अग्रणी सदस्य) के रूप में नामित करेंगे, जिनके पास परियोजना का कम से कम 26% (छब्बीस प्रतिशत) पूंजी निवेश हिस्सा होगा:

(ग) लीड सदस्य के नामांकन को पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा) द्वारा समर्थित किया जाएगा,

परिशिष्ट-1 के अनुलग्नक डी में निर्धारित प्रारूप के अनुसार, अन्य सभी कंजॉर्टियम के सदस्यों, द्वारा हस्ताक्षरित;

(घ) कंजॉर्टियम के पक्षकार एक उपयुक्त एसपीवी बना सकते हैं अथवा स्वयं अग्रणी सदस्य के माध्यम से परियोजना का निष्पादन कर सकते हैं, कंजॉर्टियम के लिए और उसकी ओर से प्राधिकरण के साथ करार पर हस्ताक्षर करेंगे और अन्य सदस्य कन्फर्म पक्ष के रूप में



करार पर हस्ताक्षर करने में शामिल होंगे। इस संबंध में, यह स्पष्ट किया गया है कि कंजॉर्टियम के सभी सदस्य अनुबंध अवधि के दौरान परियोजना को निष्पादित करने के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होंगे, और

(ड) कंजॉर्टियम के सदस्य बोली प्रस्तुत करने के प्रयोजन के लिए बाध्यकारी संयुक्त बोली करार (संयुक्त बोली करार) करेंगे। संयुक्त बोली करार, अन्य बातों के साथ-साथ:

(i) पूंजी निवेश वचनबद्धता के साथ एसपीवी बनाने के आशय को इस आरएफपी के अनुसार अग्रणी सदस्य के माध्यम से निष्पादित किया जाएगा जो सेवा करार में प्रवेश करेगा और बाद में सेवा करार के अनुसार सेवा प्रदाता के रूप में सभी उत्तरदायित्वों का निर्वहन करेगा। यदि परियोजना शुरू करने का ठेका कंजॉर्टियम को दिया जाता है

(ii) प्रत्येक चरण में प्रत्येक सदस्य की प्रस्तावित भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से रेखांकित करना।

(iii) प्रत्येक सदस्य द्वारा न्यूनतम पूंजी निवेश अंशदान की वचनबद्धता, और

(iv) में इस आशय का विवरण शामिल है कि परिसंघ के सभी सदस्य, सेवा करारों के अनुसार सेवा करार के प्रारूप की शर्तों तक, परियोजना के संबंध में सेवा प्रदाताओं के सभी दायित्वों के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होंगे।

(च) इस आरएफपी और बोली दस्तावेजों के अंतर्गत किए गए प्रावधान को छोड़कर। प्राधिकरण की पूर्व लिखित सहमति के बिना संयुक्त बोली समझौते में कोई संशोधन नहीं किया जाएगा।

(टिप्पणी बोली के साथ संयुक्त बोली करार प्रस्तुत किया जाना चाहिए। कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच किया गया संयुक्त बोली करार परियोजना के लिए विशिष्ट होना चाहिए और उपर्युक्त अपेक्षाओं को पूरा करना चाहिए, ऐसा न करने पर बोली को गैर-उत्तरदायी माना जाएगा।

7. पूर्वोक्त खंड के अवलोकन से, यह इंगित करेगा कि एक बोलीदाता या तो एक इकाई या संस्थाओं का संघ एक एसपीवी (विशेष प्रयोजन वाहन) बना सकता है। वैकल्पिक रूप से, कंजॉर्टियम के मामले में प्रमुख सदस्य स्वयं सेवा समझौते को निष्पादित कर सकता है और परियोजना को लागू कर सकता है। यदि बोलीदाता एक कंजॉर्टियम है, तो उसे खंड 2.2.3 में प्रदान की गई अतिरिक्त आवश्यकताओं का अनुपालन करना चाहिए जिसे पहले ही ऊपर पुनः प्रस्तुत किया जा चुका है।

8. खंड 2.2.6 में कहा गया है कि बोली प्रक्रिया के दौरान बोली प्रस्तुत करने के बाद कंजॉर्टियम की संरचना में कोई बदलाव की अनुमति नहीं दी जाएगी।

9. निविदा दस्तावेज में परिशिष्ट के आकार में निर्धारित प्रारूप भी शामिल थे। तथापि,

बोलीदाता की सामान्य सूचना से संबंधित अनुबंध-ख, अनुबंध-ग, बोली पर हस्ताक्षर करने के लिए मुख्तारनामा, कंजॉर्टियम के अग्रणी सदस्य के लिए अनुबंध पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा), बोली प्रतिभूति (बैंक गारंटी) के प्रारूप से संबंधित अनुबंध-ई-और बोलीदाता की तकनीकी क्षमता से संबंधित अनुलग्नक-जी, संयुक्त बोली करार भी प्रदान किया गया था।

10. यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है कि याचिकाकर्ता ने पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड और नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड के साथ एक कंजॉर्टियम के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य में टेली-मेडिसिन सेवाओं के कार्यान्वयन के लिए आरएफक्यू-कम-आरएफपी के लिए बोली लगाई। पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड और नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड (पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के प्रमुख सदस्य होने के साथ) के साथ याचिकाकर्ता के कंजॉर्टियम की बोली को स्वीकार कर लिया गया और कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग, द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के साथ महानिदेशक के माध्यम से एक सेवा समझौता किया गया।

11. 30 जनवरी, 2019 के इस समझौते में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया था कि उत्तर प्रदेश राज्य के राज्यपाल को महानिदेशक, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के माध्यम से 'प्राधिकरण' के रूप में संदर्भित किया गया था और समझौते के

पहले भाग के पहले पक्ष के रूप में माना गया था और मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड, कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य होने के नाते कंजॉर्टियम के सदस्य (i) मैसर्स रास्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड (ii) मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड को सेवा प्रदाता और दूसरे भाग की पक्ष के रूप में संदर्भित किया गया था। समझौते में आगे स्पष्ट किया गया है कि समझौते के प्रयोजनों के लिए प्राधिकरण और सेवा प्रदाता दोनों को सामूहिक रूप से 'पक्षकार' और व्यक्तिगत रूप से एक 'पक्ष' के रूप में संदर्भित किया जाता है।

12. उसमें निरूपित विभिन्न शर्तों/दायित्वों के बीच समझौते ने अनुच्छेद 28 में एक पूर्ण विवाद समाधान तंत्र भी प्रदान किया। सुविधा के लिए, विवाद समाधान तंत्र से संबंधित संपूर्ण अनुच्छेद 28 को इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"अनुच्छेद 28-विवाद समाधान

## 28.1 विवाद समाधान

28.1.1 किसी भी विवाद, मतभेद या विवाद जो भी प्रकृति के तहत या बाहर या इस समझौते के संबंध में (इसकी व्याख्या सहित) पक्षों के बीच, और इसलिए किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को लिखित रूप में अधिसूचित किया गया है, ("विवाद") पहली बार में, खंड 28: 2 में निर्धारित सुलह प्रक्रिया के अनुसार amicably.in हल करने का प्रयास किया जाएगा

28.1.2 पक्षगण इस समझौते के तहत या उसके संबंध में उत्पन्न होने वाले सभी विवादों को तुरंत, समान रूप से और अच्छे विश्वास में हल करने के लिए अपने सर्वोत्तम प्रयासों का उपयोग करने के लिए सहमत हैं, और आगे सभी गैर-विशेषाधिकार प्राप्त रिकॉर्ड, सूचना और डेटा के लिए सामान्य व्यावसायिक घंटों के दौरान उचित पहुंच के साथ एक दूसरे को प्रदान करने के लिए सहमत हैं।

## 28.2 सुलह

28.2.1 पक्षों के बीच किसी भी विवाद की स्थिति में, कोई भी पक्ष प्राधिकरण के नामित अधिकारी को मध्यस्थता करने और पक्षों को सौहार्दपूर्ण सहमति पर पहुंचने में सहायता करने के लिए कह सकता है। प्राधिकरण द्वारा मध्यस्थता में विफल होने पर, कोई भी पक्ष इस तरह के विवाद को प्राधिकरण के अध्यक्ष या किसी नामित अधिकारी और अध्यक्ष या निदेशक मंडल के किसी भी नामित अधिकारी या सेवा प्रदाता के किसी भी समकक्ष अधिकारी को सौहार्दपूर्ण सजा के लिए संदर्भित करने की आवश्यकता कर सकता है और इस तरह के संदर्भ पर, उक्त व्यक्ति विवाद पर चर्चा करने और सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करने के लिए संदर्भ की तारीख से 7 दिनों के भीतर नहीं मिलेंगे। यदि ऐसी बैठक 7 दिनों की अवधि के भीतर नहीं होती है या बैठक के 15 दिनों के भीतर विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाया नहीं जाता है या विवाद का समाधान नहीं होता है, जैसा कि खंड 28.1.1 में संदर्भित लिखित नोटिस के 30 दिनों के भीतर लिखित शर्तों पर हस्ताक्षर करने से स्पष्ट है या ऐसी

लंबी अवधि जो पक्षों द्वारा पारस्परिक रूप से सहमत हो सकती है, कोई भी पक्ष खंड के प्रावधानों के अनुसार विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित कर सकता है 28.3.

## 28.3 मध्यस्थता

28.3.1 कोई भी विवाद जो सुलह द्वारा सौहार्दपूर्ण ढंग से हल नहीं किया जाता है, जैसा कि खंड 28.2 में प्रदान किया गया है, अंततः उपखंड 28.3.2 के अनुसार मध्यस्थता के संदर्भ में तय किया जाएगा। इस तरह की मध्यस्थता अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अवधारित की जाएगी। इस तरह के निर्माणकर्ता का स्थान लखनऊ होगा, और मध्यस्थता कार्यवाही की भाषा अंग्रेजी होगी

28.3.2 प्रत्येक पक्ष एक मध्यस्थ की नियुक्ति करेगा और दो नियुक्त मध्यस्थों एक तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करेगा, जो मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 और उसके किसी भी आदेश के अनुसार पीठासीन मध्यस्थ होगा, दो मध्यस्थों के बीच असहमति की स्थिति में, 1996 और उसका कोई संशोधन, नियुक्ति मध्यस्थता और सुलह अधिनियम के अनुसार होगी।

28.3.3 मध्यस्थों को एक तर्कसंगत पंचाट बनाना होगा। इस अनुच्छेद के अनुसार अवधारित किसी भी मध्यस्थता में किया गया कोई भी पंचाट 28 पक्षों पर अंतिम और बाध्यकारी होगा, जिस तारीख से इसे बनाया गया है, और सेवा प्रदाता और प्राधिकरण

सहमत हैं और बिना देरी के इस तरह के पंचाट को पूरा करने का वचन देते हैं।

28.3.4 सेवा प्रदाता और प्राधिकरण सहमत हैं कि एक पंचाट लागू किया जा सकता है

सेवा प्रदाता और/या प्राधिकरण के खिलाफ, जैसा भी मामला हो, और उनके

संबंधित परिसंपत्तियां, जहां भी स्थित हैं।

28.3.5 यह समझौता और पक्षों के अधिकार और दायित्व पूरी ताकत और प्रभाव में रहेंगे, यहां किसी भी मध्यस्थता कार्यवाही में पंचाट लंबित है। ...

13. पूर्वोक्त अनुच्छेद 28 के अवलोकन से, यह इंगित करेगा कि किसी भी मतभेद या विवाद, चाहे जो भी प्रकृति के, चाहे जो भी उत्पन्न हो, इस समझौते के तहत या बाहर या इसके संबंध में (इसकी व्याख्या सहित) पक्षों के बीच और किसी भी पक्ष द्वारा लिखित रूप में अधिसूचित (विवाद) पहले उदाहरण में सुलह प्रक्रिया के अनुसार सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास किया जाएगा।

14. पक्षों के बीच किसी भी विवाद की स्थिति में, किसी भी पक्ष को सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने में पक्षों की मध्यस्थता और सहायता करने के लिए प्राधिकरण के नामित अधिकारी को बुलाना आवश्यक है। प्राधिकरण द्वारा मध्यस्थता में विफल रहने पर, कोई भी पक्ष इस तरह के विवाद को अध्यक्ष या प्राधिकरण के किसी भी नामित अधिकारी को संदर्भित

करने की आवश्यकता कर सकता है और ऐसा नामित अधिकारी इस तरह के संदर्भ में प्रवेश करेगा और सात दिनों के भीतर पक्षों से मिलेगा। यदि बैठक सात दिनों के भीतर नहीं हुई या बैठक के 15 दिनों के भीतर विवाद सौहार्दपूर्ण ढंग से नहीं सुलझाया जाता है या विवाद हल नहीं होता है, जैसा कि लिखित रूप में नोटिस के 30 दिनों के भीतर निपटान में लिखित शर्तों पर हस्ताक्षर करके स्पष्ट किया जाता है या ऐसी लंबी अवधि जो पक्षों द्वारा पारस्परिक रूप से सहमत हो सकती है, तो कोई भी पक्ष विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित कर सकता है।

15. खंड 28.3.2 में निहित मध्यस्थता खंड के अनुसार प्रत्येक पक्ष एक मध्यस्थ नियुक्त करने का हकदार है और दो नियुक्त मध्यस्थ एक तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करेंगे जो पीठासीन मध्यस्थ होगा और कार्यवाही मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अनुसार अवधारित की जाएगी।

16. यह पूर्वोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में है कि मेसर्स रैस्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड, याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत उत्तरदाताओं की ओर से एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए एक वैकल्पिक प्रार्थना के साथ इस न्यायालय से संपर्क किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है या किसी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

**B- दलील और कार्रवाई का कारण:-**

17. याचिकाकर्ता ने टेली-मेडिसिन सेवा समझौते का उल्लेख किया है जिसे याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। याचिका के पैराग्राफ 9 में, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 17.06.2019 को एक पत्र लिखा था जिसमें सूचित किया गया था कि समझौते में कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य ने सभी शर्तों को पार कर लिया है और हर क्षेत्र का प्रभार ले रहा है जिसे करने के लिए वह सक्षम नहीं है और उसने एकतरफा रूप से कंजॉर्टियम समझौते का उल्लंघन किया है जैसा कि अनुलग्नक-बी के साथ पढ़े गए बोली दस्तावेज के अनुलग्नक-एफ के रूप में संदर्भित है।

18. यह भी कहा गया है कि कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य अर्थात् मेसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड द्वारा किए गए घोर उल्लंघन के कारण, जो मेडिको कानूनी मामलों को जन्म दे सकता है और चूंकि कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच देयता संयुक्त और कई थी, इसलिए, यह चीजों की उपयुक्तता में था कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता-कंपनी द्वारा चिह्नित ऐसे मुद्दों पर ध्यान देगा, जैसा कि उसके पत्र दिनांक 17.06.2019 में बताया गया है जिसे अनुबंध संख्या-4 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है।

19. याचिकाकर्ता ने उत्तरदाताओं से उन दावों और मुद्दों को निपटाने का अनुरोध किया, जिन्हें याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 17.06.2019 में गिनाया था, जिसके बाद 18.09.2019 को एक और पत्र लिखा गया था,

लेकिन प्रतिवादी ने विवादों के सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए मामले को नामित प्राधिकारी को संदर्भित नहीं किया।

20. चूंकि अनुच्छेद 28.2 में चिंतन के रूप में सुलह नहीं हुई, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 21 अक्टूबर, 2019 के माध्यम से अपने मध्यस्थ श्री राकेश कुमार को नामित किया। उक्त पत्र की एक प्रति अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में रिकॉर्ड पर लाई गई है। चूंकि उत्तरदाताओं की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं थी, तदनुसार, याचिकाकर्ता ने उन राहतों का दावा करते हुए प्रस्तुत याचिका दायर की, जिन्हें ऊपर पैरा-15 में ऊपर संदर्भित किया गया है।

21. इस न्यायालय ने दिनांक 31.01.2020 के आदेश के माध्यम से निम्नलिखित आदेश पारित किया था जो निम्नानुसार हैं:-

पीठ ने कहा, "याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने मध्यस्थता एवं सुलह कानून, 1996 की धारा 11(6) के तहत इस याचिका दायर की है। यह कहा गया है कि पवन श्री इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड और प्रतिवादियों के बीच दिनांक 13.01.2019 को एक समझौता किया गया था। उपर्युक्त करार में खंड-28 में विवाद समाधान तंत्र निहित है। यह भी कहा गया है कि उपरोक्त खंड को आगे बढ़ाने में, प्रस्तुत याचिकाकर्ता, जो कंजॉर्टियम का एक हिस्सा है, ने दिनांक 18.09.2019 के पत्र के माध्यम से सुलह तंत्र का आह्वान किया। चूंकि, यह अनसुलझा रहा, इसलिए, याचिकाकर्ता ने

21.10.2019 को अपने नोटिस के माध्यम से फिर से मध्यस्थता खंड का आह्वान किया।

प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच परस्पर है और एसपीवी और प्रतिवादियों के बीच ऐसा नहीं है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता से उपरोक्त स्थिति को स्पष्ट करने के लिए एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया था जिसके लिए वह समय चाहता है।

तदनुसार, इस मामले को 12.02.2020 को रखा। इस बीच, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता एसपीवी बनाने के लिए कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच दर्ज किए गए समझौते के साथ-साथ निविदा दस्तावेजों को भी रिकॉर्ड में लाएंगे जिसके द्वारा एसपीवी ले। पवन श्री इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड को टेंडर दिया गया। उपरोक्त दस्तावेज इस न्यायालय द्वारा तय की गई अगली तारीख से पहले एक पूरक हलफनामे के माध्यम से दायर किए जाएंगे।

22. याचिका में की गई दलीलों से, यह इंगित करेगा कि याचिकाकर्ता पवन श्री इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड और नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड के साथ एक कंजॉर्टियम सदस्य है और कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच विवाद हैं क्योंकि प्रत्येक कंजॉर्टियम सदस्य को कुछ विशिष्ट कर्तव्यों / दायित्वों को सौंपा गया था, हालांकि, अन्य सदस्यों के नुकसान के लिए प्रमुख सदस्य द्वारा इसे हड़प लिया गया है।

23. दलीलों को देखते हुए, इस न्यायालय ने पहली बार संकोच से देखा कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवादों ने किसी तरह कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच विवादों का स्वाद दिया है और एक तरफ कंजॉर्टियम और दूसरी तरफ प्रतिवादी-प्राधिकरण के बीच इतना नहीं है।

24. स्पष्ट करने के लिए, न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 31.01.2020 के माध्यम से याचिकाकर्ता को कंजॉर्टियम सदस्यों के बीच दर्ज किए गए समझौते को रिकॉर्ड में लाने का निर्देश दिया। गौरतलब है कि उक्त दस्तावेज याचिकाकर्ता द्वारा केवल 12 अगस्त, 2023 के पूरक हलफनामे के माध्यम से दायर किए गए थे।

25. इस बीच, रिकॉर्ड इंगित करता है कि राज्य की ओर से कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया था, हालांकि, इसका विधिवत प्रतिनिधित्व किया गया था। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.11.2021 को पारित आदेश में स्पष्ट संकेत है कि राज्य के अधिवक्ता को समय दिए जाने के बावजूद अभी तक न तो कोई जवाबी हलफनामा और न ही उनके पास कोई निर्देश उपलब्ध था।

26. पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, राज्य द्वारा दायर किसी भी जवाबी हलफनामे के अभाव में और चूंकि याचिकाकर्ता ने याचिका के लिए आवश्यक दस्तावेज भी दायर नहीं किए थे और न्यायालय के आदेश दिनांक 31.01.2020 में कहा गया था, तदनुसार, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने पाया कि चूंकि

मध्यस्थता खंड मौजूद था और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया गया था जिसका जवाब नहीं दिया गया है, इसलिए, न्यायालय ने इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश माननीय श्री न्यायमूर्ति बृजेश कुमार श्रीवास्तव-II का नाम प्रस्तावित मध्यस्थ के रूप में प्रस्तावित किया और दिनांक 16.11.2021 के आदेश के तहत उनकी सहमति मांगी। 06.12.2021 को, जैसा कि प्रस्तावित मध्यस्थ से सहमति प्राप्त हुई थी, परिणामस्वरूप, न्यायालय ने प्रतिवादी की ओर से इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश माननीय श्री बृजेश कुमार श्रीवास्तव-II को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया।

27. यह इस स्तर पर है, कंजॉर्टियम मेसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के प्रमुख सदस्य ने 2020 के मध्यस्थता आवेदन संख्या-10 में 2022 की संख्या-120 के साथ एक समीक्षा-आवेदन दायर किया, जिसमें दिनांक 16.11.2021 और 06.12.2021 के आदेश को वापस लेने की मांग की गई।

28. समीक्षा आवेदन में पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, न्यायालय ने दिनांक 13.12.2022 के आदेश के माध्यम से समीक्षा-आवेदन की अनुमति दी और दिनांक 16.11.2021 और 06.12.2021 के आदेश को वापस ले लिया और आगे प्रावधान किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के तहत आवेदन अब उपयुक्त न्यायालय के समक्ष रखा जाएगा। समीक्षाधीन आदेश, दिनांक 13.12.2022, इसके बाद सुलभ संदर्भ के लिए फिर से प्रस्तुत किया जा रहा है।

"आवेदक के अधिवक्ता श्री महेंद्र प्रताप सिंह, श्री विवेक शुक्ला, अतिरिक्त विवेक शुक्ला को सुना। मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री देबाशीष मोइत्रा, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता को सुना। 14.10.2022 को, इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था:-

"समीक्षा आवेदक के अधिवक्ता श्री महेंद्र प्रताप सिंह और प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री देबाशीष मोइत्रा, सुश्री विहा शंकर और श्री प्रवीण कुमार वर्मा को सुना।

पक्षों के अधिवक्ता सुनने के बाद, सबसे पहले जो सामने आता है वह यह है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत कार्यवाही में पारित एक आदेश की समीक्षा की मांग करने वाला समीक्षा आवेदन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2021 की विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या-4820 में दिए गए निर्णय दिनांक 05.04.2021 के पैरा-12 के मददेनजर पोषणीय है; मो. अनवर और अन्य बनाम पुष्पलता जैन और अन्य, जैन स्टूडियो लिमिटेड बनाम शिन सैटेलाइट पब्लिक कंपनी लिमिटेड; (2006)5 एस.सी.सी. 501 और ग्रेटर मुंबई नगर निगम और अन्य बनाम प्रतिभा इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य; (2019)3 एस.सी.सी. 203 और, दूसरी बात, अधिनियम की धारा 11(6) के तहत आवेदन दाखिल करते समय, आवेदक ने कंजॉर्टियम के अन्य दो सदस्यों यानी समीक्षा आवेदन दायर करने वाले प्रमुख सदस्य और अन्य सदस्य, अर्थात् मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड को शामिल नहीं किया। इससे आदेश पर भी कोई असर नहीं पड़ता, लेकिन

मध्यस्थता खंड के लिए जिसके अनुसार तीन सदस्यीय मध्यस्थ न्यायाधिकरण को मध्यस्थता कार्यवाही करनी है। चूंकि सरकार ने आवेदक द्वारा नोटिस दिए जाने के बावजूद अपने मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की थी, इसलिए, इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 11(6) के तहत एक मध्यस्थ नियुक्त किया, इसे आवेदक द्वारा नियुक्त मध्यस्थ और तीसरे मध्यस्थ को नियुक्त करने के लिए इस न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के लिए खुला छोड़ दिया।

अब, इस परिदृश्य में, समीक्षा की मांग करने वाले आवेदक के अधिवक्ता का कहना है कि मध्यस्थ नियुक्त करने के उसके मुवक्किल के अधिकार के बारे में क्या। इसी प्रकार कंजॉर्टियम के तीसरे सदस्य ने यहां ऊपर उल्लेख किया है, इसलिए, इसके परिणामस्वरूप आवेदक द्वारा कंजॉर्टियम के दो सदस्यों को पक्षकार न बनाए जाने और अधिनियम की धारा 11(6) के तहत कार्यवाही में उनकी पीठ पीछे एक आदेश पारित करने के कारण जटिलता हुई है, जो समीक्षाधीन आदेश को स्पष्ट रूप से गलत बनाता है, विशेष रूप से कंजॉर्टियम सदस्यों के बीच अंतर दिखाई देता है।

तथापि, इस स्तर पर, मूल आवेदक के अधिवक्ता, जो समीक्षा आवेदन में प्रतिवादी है, मैसर्स रास्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड का कहना है कि तीसरा सदस्य भी अगली तारीख को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा और तदनुसार मध्यस्थ को उसके मध्यस्थ के स्थान पर नियुक्त किया जाएगा।

आवेदक कंजॉर्टियम के तीसरे सदस्य यानी मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड को समीक्षा आवेदन में एक पक्ष के रूप में शामिल करे, भले ही वह मूल आवेदन में एक पक्ष न हो ताकि पूर्वोक्त अभ्यास को सुविधाजनक बनाया जा सके।

श्री डी. मोइत्रा, अधिवक्ता जो मूल आवेदक की ओर से पेश हुए हैं, को इस तरह के अभियोग पर कोई प्रतिवाद नहीं है।

नए पक्षकार को नोटिस जारी करें। इस मामले को 16.11.2022 को आने दें।

पूर्व में की गई अंतरिम व्यवस्था सूचीबद्धता की अगली तारीख तक जारी रहेगी।

न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना था कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत कार्यवाही में भी समीक्षा आवेदन माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के मद्देनजर पोषणीय है, इसके बाद, इस न्यायालय ने कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित करते समय हुई त्रुटि को इंगित किया था। न्यायालय ने पहले की तारीख पर ही समीक्षा आवेदन का निपटारा कर दिया होता, लेकिन आवश्यक पक्षों में से एक को पक्षकार नहीं बनाया गया था। समीक्षा आवेदन में, कंजॉर्टियम का तीसरा सदस्य, प्रमुख सदस्य समीक्षा की मांग करने वाला आवेदक है, और दूसरा सदस्य यहां प्रतिवादी है जो अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत कार्यवाही में मूल आवेदक था, आज उपस्थित है। कंजॉर्टियम के तीसरे सदस्य का प्रतिनिधित्व श्री विवेक



कुमार, एडवोकेट द्वारा किया जाता है जिन्होंने अपना वकालतनामा दायर किया है। 14.10.2022 के पहले के आदेश में पहले से ही बताई गई त्रुटि को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से, आवश्यक पक्षों को पक्षकार नहीं बनाया गया था और उन्हें नहीं सुना गया था और स्वयं कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच मतभेद है, इस न्यायालय की राय है कि 2020 के मध्यस्थता आवेदन संख्या-10 [रैस्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य] में पारित दिनांक 06.12.2021 के आदेश को वापस लेने की आवश्यकता है। इसे एतद्वारा याद किया जाता है। परिणाम तदनुसार चलेंगे। कार्यवाही को उसकी मूल संख्या में बहाल कर दिया गया है। अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत आवेदन अब उपयुक्त न्यायालय के समक्ष रखा जाएगा, जिसे ऐसे मामले 19.12.2022 को सौंपे गए हैं।

तदनुसार, समीक्षा के लिए आवेदन को पूर्वोक्त शर्तों में अनुमति दी जाती है।

29. यह इस पृष्ठभूमि में है कि मामला इस न्यायालय के समक्ष आया और एक बार फिर न्यायालय ने दिनांक 09.08.2023 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के अधिवक्ता से प्रस्तुत याचिका की पोषणीयता पर न्यायालय को संबोधित करने की अपेक्षा की थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 12 अगस्त, 2023 और 23 अगस्त, 2023 को एक पूरक हलफनामा दायर किया, जिसके द्वारा उसने संयुक्त बोली समझौते, निविदा दस्तावेज और कुछ अन्य पत्रों को रिकॉर्ड में लाया, जिन्हें बाद के चरण

में संदर्भित किया जाएगा। याचिकाकर्ता ने उन आदेशों को रिकॉर्ड में लाया जो आर्बिट्रल ट्रिब्यूनल द्वारा पारित किए गए थे, जिसका गठन दिनांक 06.12.2021 के आदेश को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था।

30. यह न्यायालय आगे नोटिस करता है कि राज्य को जवाब देने के लिए पर्याप्त समय दिए जाने के बावजूद, दुर्भाग्य से, न तो कोई जवाबी हलफनामा दायर किया गया था और न ही राज्य की ओर से कोई सहायता की गई थी। एक अवसर पर यानी 21.08.2023 को प्रतिवादी के निदेशक को भी न्यायालय की सहायता के लिए बुलाया गया था, हालांकि, वह प्रयास भी व्यर्थ था क्योंकि न तो निदेशक और न ही स्थायी अधिवक्ता न्यायालय के प्रश्न का उत्तर दे सके और उपरोक्त पृष्ठभूमि में राज्य द्वारा केवल दिखावटी प्रस्तुतियाँ की गईं जो किसी भी मदद की नहीं थीं और यह ध्यान रखना निराशाजनक है कि राज्य अपने मामले का संचालन कैसे करता है क्योंकि यह व्यावहारिक रूप से एक मामला है प्रतिवादी की ओर से कोई प्रतियोगिता नहीं।

C: याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ: -

31. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री विभु शंकर के साथ श्री देबाशीष मोइत्रा ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ की हैं: -

(क) आरएफक्यू-सह-आरएफपी ने एक कंजॉर्टियम को निविदा में भाग लेने और अपनी बोली लगाने की अनुमति दी थी। मेसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड,

मेसर्स रास्टर इमेजेज प्राइवेट लिमिटेड (यहां याचिकाकर्ता) और मेसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड के कंजॉर्टियम के सदस्यों ने 30 जनवरी, 2019 को प्रतिवादी के साथ एक समझौता किया था। यह आग्रह किया जाता है कि चूंकि कंजॉर्टियम को परियोजना को लागू करने के उद्देश्य से एक एसपीवी (स्पेशल पर्पज व्हीकल) बनाने की आवश्यकता थी और प्रत्येक कंजॉर्टियम सदस्य को विशिष्ट भूमिकाएं सौंपी गई थीं, लेकिन इसके उल्लंघन में प्रमुख सदस्य मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड एकतरफा परियोजनाओं को निष्पादित कर रहा था और कुछ अवांछनीय प्रथाओं में भी शामिल था जो परियोजना को पूरी तरह से नुकसान पहुंचाएगा, इस तथ्य के साथ कि याचिकाकर्ता कंजॉर्टियम का सदस्य होने के नाते, हालांकि, इस तरह की अवांछनीय प्रथाओं में कोई भूमिका या भागीदारी नहीं थी, फिर भी अनावश्यक रूप से फंसाया जाएगा क्योंकि समझौते में कंजॉर्टियम सदस्यों की संयुक्त और विभिन्न देनदारियों के लिए प्रावधान किया गया है। यह याचिकाकर्ता के लिए चिंता का विषय था और इसे प्रतिवादी-प्राधिकरण के साथ उचित रूप से हरी झंडी दिखाई गई थी, लेकिन इसे कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं मिली।

(ख) आगे यह तर्क दिया गया है कि स्थिति को सुधारने के बजाय, प्रतिवादी शायद मुख्य सदस्य के साथ मिले हुए थे और उन्होंने अनदेखा कर दिया। प्रतिवादी-प्राधिकरण के लिए यह आवश्यक था कि वह विवादों और मुद्दों को निपटाकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा चिह्नित

किया गया था, बजाय इसके कि स्थिति को नियंत्रण से बाहर जाने दिया जाए। (ग) इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक तरफ, याचिकाकर्ता ने सहमति के अनुसार नियमों और शर्तों के प्रमुख सदस्य द्वारा किए गए सकल उल्लंघनों को बढ़ाया था, और एक सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए अनुरोध किया था जिसे प्राधिकरण द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया था, लेकिन दूसरी ओर, प्रतिवादी प्राधिकरण द्वारा एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता सहित कंजॉर्टियम के सदस्यों को चेतावनी दी गई थी कि चूंकि काम करार के अनुसार, प्राधिकरण ऐसी कार्रवाई करेगा जो संयुक्त रूप से और अलग-अलग दोनों तरह से कंजॉर्टियम सदस्यों के खिलाफ होगी।

(घ) उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता ने माध्यस्थता खंड का सहारा लिया था और अपने माध्यस्थ को नामित किया था और प्राधिकरण से अपना माध्यस्थ नियुक्त करने का अनुरोध किया था जिसे स्वीकार नहीं किया गया था, इसलिए याचिका को स्वीकार नहीं किया गया था।

(ङ) यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि खंड 2114 में आरएफक्यू-सह-आरएफपी निविदा दस्तावेज और उसके साथ संलग्न स्पष्टीकरण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि बोलीदाता कंजॉर्टियम है तो खंड 2114 में प्रयुक्त बोलीदाता शब्द में ऐसे कंजॉर्टियम का प्रत्येक सदस्य शामिल होगा। श्री मोड़ना द्वारा इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि पूरे दस्तावेज के साथ-साथ टेली-मेडिसिन सेवा

समझौते के अवलोकन से, यह इंगित करेगा कि कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य को दूसरे पक्ष को कॉल करने का अधिकार था, अर्थात् प्राधिकरण को किसी भी विवाद को हल करने के लिए जो टेली-मेडिसिन सेवा समझौते से उत्पन्न हो रहा था, जैसा कि मध्यस्थता खंड व्यापक रूप से था।

(च) यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवादी-प्राधिकरण के ध्यान में लाए गए मुद्दे ऐसे सभी मुद्दे थे जो 30 जनवरी, 2019 के सेवा समझौते से उद्भूत हुए थे और इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक पक्ष को विवाद समाधान तंत्र को लागू करने का अधिकार था जिसमें याचिकाकर्ता भी शामिल था, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने विवाद समाधान तंत्र का आह्वान किया, जो विफल हो गया और अब उक्त कंपनी 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के संदर्भ में न्यायालय के समक्ष है।

(छ) श्री मोड़रा ने आगे 23 अगस्त, 2023 के पूरक हलफनामे का उल्लेख किया है और उस आदेश का उल्लेख किया है जो आर्बिट्रल ट्रिब्यूनल द्वारा दिनांक 02.06.2022 को पारित किया गया था, जिसके तहत मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दायर एक आवेदन पर प्रमुख सदस्य ने मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष अपना पक्ष रखने की मांग की थी। दिनांक 24.05.2022 के एक आदेश का भी संदर्भ दिया गया था, जिसके तहत इस न्यायालय ने प्रमुख सदस्य मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के समीक्षा-आवेदन पर विचार करते

हुए उत्तरदाताओं को समीक्षा-आवेदन पर अपना जवाब दाखिल करने का समय दिया था।

यह आग्रह किया गया था कि आर्बिट्रल ट्रिब्यूनल ने 02.06.2022 को मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के अभियोग के लिए आवेदन की अनुमति दी और इसे प्रतिवादी संख्या-2 के रूप में पेश करने का निर्देश दिया गया और बाद में दिनांक 06.07.2022 के आदेश द्वारा ट्रिब्यूनल ने मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दायर अभियोग के आवेदन पर विचार करने के लिए आगे रखा। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कुछ पत्रों की ओर न्यायालय का ध्यान भी आकर्षित किया है जो याचिकाकर्ता द्वारा 23 अगस्त, 2019 को उत्तरदाताओं को संबोधित करते हुए लिखे गए थे और साथ ही मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा लिखे गए दिनांक 22.06.2021 के पत्र को उत्तरदाताओं को संबोधित किया गया था, जिसमें प्रमुख सदस्य द्वारा शर्तों के उल्लंघन के बारे में चिंताओं को भी चिह्नित किया गया था जो याचिकाकर्ता कंपनी द्वारा उठाए गए लोगों के समान था। समझौते में खंडों और दस्तावेजों की सहायता से जैसा कि याचिका में और दो पूरक हलफनामों में संदर्भित है, प्रस्तुत करने का जोर यह है कि स्पष्ट रूप से पक्षों के बीच विवाद उभरे थे (जो सामूहिक रूप से कंजॉर्टियम के सदस्यों और प्रतिवादी का मतलब था) और अनुच्छेद के अनुसार 28 प्रत्येक पक्ष को विवाद समाधान तंत्र को लागू करने का अधिकार था और चूंकि इसका कोई फलदायी परिणाम नहीं निकला, नतीजतन, याचिकाकर्ता द्वारा नियुक्त मध्यस्थ एकमात्र

मध्यस्थ के रूप में आगे बढ़ सकता है या वैकल्पिक रूप से समझौते में निहित प्रावधानों के अनुसार एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण का गठन किया जा सकता है।

अपनी दलीलों के समर्थन में, श्री मोड़ना ने भारत संचार निगम लिमिटेड और अन्य बनाम नॉर्टल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है; (2021)5 एस.सी.सी. 738; केरल राज्य बनाम जूम डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड; (2009)4 एस.सी.सी. 563 और टेकप्रो सिस्टम्स लिमिटेड बनाम तेलंगाना स्टेट पावर जेनरेशन पावर लिमिटेड में तेलंगाना उच्च न्यायालय का निर्णय; 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन टीएस 1658 को उद्धरित किया।

(i) पूर्वोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, श्री मोड़ना द्वारा यह आग्रह किया गया है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6-बी) को अधिनियम में पेश किए गए संशोधन 2019 द्वारा संशोधित नहीं किया गया है, तदनुसार, उच्च न्यायालय किसी भी न्यायिक शक्ति का प्रयोग नहीं करता है जो याचिका की पोषणीयता का निर्धारण कर सकता है, मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व या वैधता, नॉर्टल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के पैरा-37.1 में अवधारित, जिसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाना है।

(ज) जूम डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में निर्णयों का उल्लेख करते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि चूंकि कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच जिम्मेदारियां और कार्य निर्धारित किए

गए थे, इसलिए यह कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य को शिकायत उठाने का अधिकार देगा और इसलिए प्रस्तुत मामले में भी, जैसा कि 17 अगस्त के संयुक्त बोली समझौते में दर्शाया गया है, 2018 में, प्रत्येक कंजॉर्टियम सदस्य को अलग-अलग जिम्मेदारियां सौंपी गई थीं, इसलिए, कोई भी पीड़ित सदस्य इस मुद्दे को उठा सकता था।

(ट) टेकप्रो सिस्टम लिमिटेड (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा करते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि उक्त मामले में यह माना गया है कि कंजॉर्टियम का कोई भी सदस्य माध्यस्थता खंड का आह्वान कर सकता है और इस प्रकार कंजॉर्टियम का सदस्य होने के नाते याचिकाकर्ता माध्यस्थता खंड को लागू करने का हकदार है और किसी भी विवादित या विवादास्पद मामले को अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए छोड़ा जा सकता है।

(ठ) याचिकाकर्ता यह स्थापित करने में सक्षम रहा है कि माध्यस्थता खंड, करार में परिकल्पित इसके उचित आह्वान और याचिकाकर्ता उक्त समझौते का एक पक्ष है और व्यावहारिक रूप से दूसरे पक्ष की ओर से कोई विरोध नहीं है, उपरोक्त सभी परिस्थितियों में, याचिका अनुमति दिए जाने योग्य है और माध्यस्थता अधिकरण का गठन किया जाए।

D- चर्चा और विश्लेषण:-

32. न्यायालय ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचारशील विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन भी किया है।

33. प्रारंभ में, यह देखा जा सकता है कि आरएफक्यू-सह-आरएफपी दस्तावेज एक बोलीदाता को अनुमति देता है जो एक एकल इकाई या संस्थाओं का एक समूह हो सकता है जिसे परियोजना को लागू करने के लिए एक साथ आने के लिए कंजॉर्टियम के रूप में संदर्भित किया जाता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री मोइत्रा द्वारा खंड 2.1.14 में संलग्न स्पष्टीकरण के संदर्भ में, यदि देखा जाए, तो यह प्रकट होगा कि यह केवल उक्त खंड 2.1.14 के संदर्भ में 'बोलीदाता' शब्द तक ही सीमित है और यह बोलीदाता के लिए हितों का टकराव नहीं होने की शर्तों से संबंधित है और उक्त खंड में कुछ गणना की गई है जिसे हितों के टकराव के रूप में माना जाएगा और इस प्रकार क्रम में इसे स्पष्ट करने के लिए, स्पष्टीकरण का अर्थ यह लगाया गया है कि बोलीदाता में ऐसे कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य को शामिल किया जाएगा।

34. टेली-मेडिसिन सेवा समझौते को देखा जाए तो इससे पता चलेगा कि इसमें दो पक्षीय शासन की परिकल्पना की गई है। एक उत्तर प्रदेश राज्य है जिसे उक्त समझौते में प्राधिकरण के रूप में संदर्भित किया गया है और दूसरा सेवा प्रदाता है अर्थात् मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य के रूप में जिसमें सदस्य अर्थात् याचिकाकर्ता और मैसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड शामिल हैं, को सेवा प्रदाता और दूसरे भाग का एक पक्ष कहा जाता है। उक्त समझौते में स्पष्ट किया गया है कि 'प्राधिकरण' शब्द और 'सेवा प्रदाता' को सामूहिक रूप से पक्षों के रूप में और

व्यक्तिगत रूप से एक पक्ष के रूप में संदर्भित किया जाता है।

35. न्यायालय ने उन पत्रों पर भी ध्यान दिया है जो याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या-4 के रूप में रिकॉर्ड पर लाए गए हैं, जो संचयी रूप से 17 जून, 2019 और 29 जून, 2019 के पत्रों को संदर्भित करते हैं। 17 जून, 2019 के पत्र को ध्यान में रखते हुए, जो प्रतिवादी को संबोधित है, याचिकाकर्ता ने पैराग्राफ 3, 4, 5, 6 और 7 में यह कहते हुए विवाद उठाया है कि श्री अनूप बर्दिया जिन्होंने सभी कंजॉर्टियम सदस्यों की ओर से पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा) रखने वाले अधिकृत व्यक्ति के रूप में सेवा समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं, अधिकृत नहीं हैं क्योंकि याचिकाकर्ता और अन्य कंजॉर्टियम सदस्य ने श्री शशांक जैन को पावर ऑफ अटॉर्नी (मुख्तारनामा) दी थी, मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के सीओओ और उस व्यक्ति को नहीं जिसने कंजॉर्टियम के लिए समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। यह भी आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी अन्य कंजॉर्टियम सदस्यों के बहिष्कार के लिए मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड को अनुचित लाभ दे रहा था।

36. यह भी आरोप लगाया गया था कि जो नैदानिक किट की आपूर्ति की गई थी वे एक विश्वसनीय विक्रेता से नहीं थे और कंजॉर्टियम के सदस्यों को सौंपी गई भूमिका और जिम्मेदारियों के खिलाफ थे। यह अनुरोध किया गया था कि अनूप बर्दिया द्वारा अन्य कंजॉर्टियम सदस्यों की ओर से स्वयं का

प्रतिनिधित्व करते हुए हस्ताक्षरित टेली-मेडिसिन सेवा समझौते का उल्लंघन किया जा रहा है, इसलिए सेवा अनुबंध रद्द किया जाए। अग्रणी सदस्य को एसपीवी बनाने और केवल एसपीवी के साथ एक संशोधित सेवा करार पर हस्ताक्षर कराने की आवश्यकता होगी। यह भी अनुरोध किया गया था कि परियोजना में ऐसे कंजॉर्टियम सदस्य द्वारा धारित हिस्सेदारी के अनुपात में कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य से बैंक गारंटी स्वीकार की जा सकती है और प्रतिवादी को परियोजना को किसी ऐसी इकाई द्वारा निष्पादित करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए जो समझौते का पक्षकार नहीं है और मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में कोई पैसा जारी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने सेवा समझौता का उल्लंघन किया था।

37. यह संदर्भ में है कि विवादों को उठाया गया है और यह पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में था कि न्यायालय ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को याचिका की पोषणीयता पर संबोधित करने की आवश्यकता थी, क्योंकि विवाद प्रथम दृष्टया कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच थे।

38. सेवा समझौते के अनुच्छेद 28 को भी पढ़ा जाना प्रासंगिक होगा और इसे पिछले पैराग्राफ में पहले ही पुनः प्रस्तुत किया जा चुका है। उक्त लेख से पता चलता है कि यह "पक्षों" और "पक्ष" शब्द को संदर्भित करता है जिसे सेवा समझौते की शुरुआत में ही स्पष्ट किया गया है। यदि दो यानी 'पक्षगण' और 'पक्ष' को अनुच्छेद 28 के संदर्भ में पढ़ा जाता है और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए भी, यह प्रकट

होगा कि समझौते के अनुसार प्रत्येक पक्ष को अपना नामांकित मध्यस्थ नियुक्त करना आवश्यक है। यह आगे इंगित करता है कि दो पक्ष शासन में प्रतिवादी-प्राधिकरण को एक पक्ष के रूप में लिया जाता है और दूसरी ओर कंजॉर्टियम के सदस्यों को सामूहिक रूप से दूसरे पक्ष के रूप में लिया जाता है। यह उक्त कारण के लिए है कि मध्यस्थता खंड प्रदान करता है कि प्राधिकरण अपने स्वयं के मध्यस्थ को नामित करेगा जबकि कंजॉर्टियम सदस्य, सामूहिक रूप से एक इकाई होने के नाते, एक मध्यस्थ नियुक्त करेंगे और दो ऐसे पक्ष नामित मध्यस्थ एक पीठासीन मध्यस्थ नियुक्त करेंगे।

39. इस स्तर पर, संयुक्त बोली समझौते पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा जिसे 12 अगस्त, 2023 के पूरक हलफनामे के अनुलग्नक-7 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है और उसी के संयुक्त पठन से संकेत मिलेगा कि कंजॉर्टियम के सदस्यों को आपस में एक पक्ष माना जाता है और प्राधिकरण को दूसरे पक्ष के रूप में माना जाता है।

40. इस प्रकार, चीजों को एक साथ रखकर, यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि, हालांकि, कंजॉर्टियम के सदस्य तीन अलग-अलग संस्थाएं हैं जो एक साथ आए हैं, स्वेच्छा से, एक इकाई के रूप में बोली लगाने के लिए एक बोलीदाता के रूप में माना जाना है। जहां तक प्राधिकरण के साथ इसके न्यायिक संबंधों (करार में संदर्भित है) के संबंध में तीन कंपनियों से युक्त कंजॉर्टियम सामूहिक एक निकाय का है। यह उक्त कारण से है कि

कंजॉर्टियम के सदस्यों की देयता संयुक्त है और प्राधिकरण के कई हिस्से हैं।

41. प्राधिकरण ने एक व्यक्ति या एक फर्म या एक कंजॉर्टियम से बोलियां आमंत्रित की थीं और पीछे का विचार स्पष्ट है कि एक से अधिक इकाई एक कंजॉर्टियम के रूप में एक साथ मिल सकती हैं और एक सामूहिक बोलीदाता के रूप में बोली लगा सकती हैं जिसे एक इकाई के रूप में माना जाता है। इसमें आगे यह प्रावधान है कि सफल बोलीदाता घोषित किए जाने पर कंजॉर्टियम एक एसपीवी बना सकता है और वैकल्पिक रूप से कंजॉर्टियम के मामले में अग्रणी सदस्य स्वयं सेवा करार निष्पादित कर सकता है और परियोजना को कार्यान्वित कर सकता है जो इस तथ्य को विश्वसनीयता प्रदान करता है कि कंजॉर्टियम के सदस्य अलग-अलग कंपनियां हो सकते हैं लेकिन जहां तक संविदा का संबंध है, यह अभी भी प्राधिकरण और सेवा प्रदाता के बीच एक द्विपक्षीय शासन बना हुआ है।

42. इस प्रकार, समझौते में ऊपर के रूप में देखा के रूप में सभी प्रासंगिक खंड के रूप में अच्छी तरह से संयुक्त बोली समझौते कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच हस्ताक्षर किए और बोली के हिस्से के रूप में प्राधिकरण को प्रस्तुत स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि जहां तक प्राधिकरण का संबंध है, यह एक इकाई और एक ही बोलीदाता के रूप में कंजॉर्टियम व्यवहार करता है। सफल होने पर, एसपीवी बनाने के लिए कंजॉर्टियम के सदस्यों के विवेक पर है, वैकल्पिक रूप से, प्रमुख सदस्य सेवा समझौते पर हस्ताक्षर करने का हकदार होगा।

43. बेशक, प्रस्तुत मामले में मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड कंजॉर्टियम का प्रमुख सदस्य है जिसने समझौते पर हस्ताक्षर किए। प्रतिवादी-प्राधिकारी कंजॉर्टियम के सदस्यों के साथ अलग से व्यवहार करने के लिए बाध्य नहीं है और न ही ऐसी स्थिति परिशिष्ट और अनुलग्नक के साथ बोली दस्तावेज के सार्थक पढ़ने से विचार की जाती है।

44. इस स्तर पर, यह न्यायालय आईटीडी सीमेंटेशन इंडिया लिमिटेड बनाम एसएसजेवी-संयुक्त उद्यम और अन्य में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक निर्णय को संदर्भित करता है; 2023(2) एस.सी.सी. ऑनलाइन दिल्ली 1391 जिसमें संयुक्त उद्यम के विभिन्न पहलुओं और जैसे कि एक कंजॉर्टियम पर विस्तार से चर्चा की गई है और यह इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को भी मजबूत करता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है: -

"6. डॉ जॉर्ज ने एक संयुक्त उद्यम की अवधारणा की व्याख्या करते हुए सबसे पहले गुजरात उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा एशिया फाउंडेशन एंड कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ गुजरा [एशिया फाउंडेशन एंड कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, 1985 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 93] में दिए गए फैसले पर भरोसा किया। एक निविदा प्रक्रिया के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए, जिसको चुनौती दी

गई थी, उक्त उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में एक संयुक्त उद्यम की आवश्यक विशेषताओं का वर्णन किया-

47. विभिन्न प्रपत्र 'क' से 'जी' जिन्हें ऊपर वर्णित तथ्यों में संदर्भित किया गया है, जिसमें पूर्वअर्हता प्राप्त करने वाले आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले अपेक्षित विवरण शामिल हैं, अन्य बातों के साथ, संयुक्त उद्यम से भी संबंधित हैं। संयुक्त उद्यम से संबंधित प्रपत्र 'ग' में प्रस्तुत किए जाने वाले विवरणों में निम्नलिखित शामिल हैं (1) संयुक्त उद्यम का नाम और पता; संयुक्त, उद्यम के सभी भागीदारों का नाम और पता; (3) संयुक्त उद्यम का नेतृत्व करने वाली फर्म की जिम्मेदारी और अन्य संयुक्त उद्यम भागीदारों की जिम्मेदारी; (4) बैंकों का नाम; और (5) संयुक्त उद्यम में प्रत्येक फर्म की वित्तीय भागीदारी। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि फर्मों के एक समूह के मामले में, आवेदक को अधिक विवरण देना होगा जो ऊपर निर्धारित किए गए हैं, अर्थात्, कौन सी फर्म निविदा के लिए आवेदन करने और प्रस्तुत करने और अनुबंध दस्तावेज को पूरा करने के लिए जिम्मेदार होगी, और साथ ही प्रमुख फर्म के साथ-साथ अन्य सदस्य-फर्मों की जिम्मेदारी भी स्पष्ट रूप से बताई जानी है। अनुदेशों और सूचना के ज्ञापन के साथ-साथ उन प्रपत्रों के संयुक्त पठन का प्रभाव जिसमें विवरण प्रस्तुत किए जाने थे, स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अधिकारियों ने फर्मों के समूह

के साथ-साथ संयुक्त उद्यम संघ को विभिन्न संस्थाओं के रूप में कल्पना और परिकल्पना की थी जो पूर्व-योग्यता प्राप्त कर सकते थे। प्रपत्र ग में प्रस्तुत किए जाने वाले अपेक्षित ब्यौरों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राधिकारियों ने परिकल्पना की थी कि संयुक्त उद्यम संघ के मामले हो सकते हैं जहां भागीदार फर्मों में से किसी एक की अग्रणी भूमिका हो सकती है और उनके संयुक्त उद्यम भागीदारों की जिम्मेदारी इतनी अग्रणी और महत्वपूर्ण नहीं हो सकती है। ऐसे मामलों के संबंध में संयुक्त उद्यम का नेतृत्व करने वाली फर्म की जिम्मेदारी और उसके अन्य भागीदारों की जिम्मेदारी के बारे में विवरण प्रस्तुत किया जाना है। संयुक्त उद्यम की कानूनी अवधारणा को भली-भांति मान्यता प्राप्त है और हम नहीं समझते कि इन उच्चाधिकार प्राप्त समितियों के प्राधिकारी इस मान्यता प्राप्त कानूनी अवधारणा से अनजान हो सकते हैं। यदि वे हैं, तो उन्होंने खुद को पूरी तरह से गलत दिशा में निर्देशित किया है। आम कानून ने सहकारिता के संबंध को मान्यता नहीं दी, लेकिन समय बीतने के साथ, न्यायिक निर्णयों ने दो या दो से अधिक व्यक्तियों के 'संयुक्त साहसिक कदम' के रूप में जाना जाता है, जो उनकी संपत्ति या श्रम को संयुक्त लाभ के लिए व्यापार की विशेष रेखा या एक सामान्य व्यवसाय के संचालन में जोड़ते हैं। अदालतें एक संयुक्त साहसिक कार्य को साझेदारी के समान नहीं मानती हैं, हालांकि यह प्रकृति में बहुत समान है, और ऐसे साहसी लोगों द्वारा बनाए गए संविदात्मक संबंध



में कि उनके बीच के अधिकार व्यावहारिक रूप से उन्हीं नियमों द्वारा शासित होते हैं जो साझेदारी को नियंत्रित करते हैं। इस संबंध को बिना किसी वास्तविक साझेदारी के लाभ के लिए संयुक्त रूप से कुछ विशिष्ट साहसिक कार्य करने वाले व्यक्तियों के एक विशेष संयोजन के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे संयुक्त रूप से कई व्यक्तियों द्वारा एक वाणिज्यिक या समुद्री उद्यम उपक्रम के रूप में भी वर्णित किया गया है; ऐसी सीमित भागीदारी जो भागीदारों की देयताओं के संबंध में सांविधिक अर्थों में ही सीमित न हो अपितु उसके कार्यक्षेत्र और अवधि तक ही सीमित हो। आम तौर पर, एक संयुक्त साहसिक और एक साझेदारी के बीच का अंतर यह है कि पूर्व एक एकल लेनदेन से संबंधित है 'हालांकि यह कई वर्षों तक जारी रखने के लिए एक व्यवसाय को समझ सकता है' जबकि बाद में एक विशेष प्रकार के संयुक्त व्यवसाय से संबंधित है (देखें: 48 अमेरिकन लॉ रिपोर्ट्स पृष्ठ 1055 पर 'व्हाट माउंट्स टू ए जॉइंट एडवेंचर' शीर्षक के तहत पीपी 1056-57 और 1060)। यह आम तौर पर सहमत है कि एक संयुक्त उद्यम का गठन करने के लिए, हित का समुदाय और संयुक्त नियंत्रण का अधिकार होना चाहिए। यह प्राधिकरण पर मान्यता प्राप्त है कि प्रत्येक पक्ष को अपने प्रदर्शन के मामले में एक समान आवाज होनी चाहिए और उसमें उपयोग की जाने वाली एजेंसियों पर नियंत्रण होना चाहिए, हालांकि एक प्राधिकरण दूसरे को प्रदर्शन सौंप सकता है।

वहां, इस आशय का एक अधिकार भी है कि एक संयुक्त उद्यम मौजूद हो सकता है, हालांकि पक्षों के संचालन का असमान नियंत्रण है। संयुक्त उद्यमों के अधिकार, कर्तव्य और दायित्व उन लोगों के समान या अनुरूप हैं जो भागीदारों के संबंधित अधिकारों, कर्तव्यों और देनदारियों को नियंत्रित करते हैं। भागीदारों के मामले में के रूप में, संयुक्त 'वेंचर' संयुक्त रूप से और गंभीर उद्यम के ऋण के लिए तीसरे पक्ष के लिए उत्तरदायी हो सकता है (देखें: अमेरिकी न्यायशास्त्र, 2nd संस्करण, vol. 46, पीपी पर पैरा-12 33-34 और पैरा-57 करने के लिए पी. 76)। संयुक्त उद्यम समूहों को निर्माण अनुबंध दायित्वों की संयुक्त पूर्ति में सहयोग के रूप में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है। निर्माण, उद्योग में संयुक्त उद्यम समूह समय और सामग्री दोनों में सीमित निर्माण सेवाओं के संयुक्त प्रतिपादन के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र ठेकेदारों के संयोजन के लिए समझौतों के माध्यम से आते हैं। आमतौर पर वे एक ही परियोजना तक सीमित होते हैं, जिस स्थिति में समूह के सदस्य निविदा और पंचाट दोनों चरणों में संयुक्त रूप से कार्य करते हैं। संयुक्त उद्यम समूह आम तौर पर अनिगमित संघ होते हैं। सामान्य रूप से कानूनी प्रणालियों ने संयुक्त उद्यम समूहों के बढ़ते आर्थिक साधनों के साथ तालमेल नहीं रखा है और इस प्रकार के सहयोग के लिए कोई विशेष कानूनी रूप नहीं है जो निर्माण उद्योग में रहने के लिए आया है। तथापि, आस्ट्रेलिया और जर्मनी में संयुक्त

उद्यम समूहों के साथ-साथ अनिगमित दीवानी कानून भागीदारी भी भागीदारी के कानून के अधीन है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी साझेदारी का नियम संयुक्त उद्यम संघ पर लागू होता है। यह केवल फ्रांस में है कि इस संबंध में एक विशेष कानूनी रूप बनाया गया है। संयुक्त उद्यम समूहों को, अन्य बातों के साथ-साथ, संयुक्त संगठन की विशेषताएं, सदस्यों के अनुदेशों पर कार्य करते हुए सभी व्यक्तिगत व्यक्तियों के सभी सदस्यों के सहयोग से संयुक्त कार्यवाई, तृतीय पक्षों को सेवाएं प्रदान करने के लिए संयुक्त दायित्व और भागीदारों के बीच संबंध संयुक्त उद्यम समूह करारों के अनुसार शासित होते हैं। एक ओर संयुक्त उद्यम संघ का आर्थिक महत्व, और दूसरी ओर विशिष्ट कानूनी प्रावधानों की अनुपस्थिति ने व्यक्तिगत मामलों में व्याख्या की कई समस्याओं को उठाया है क्योंकि किसी विशेष निर्माण परियोजना की आवश्यकताओं और सुविधा के अनुरूप विभिन्न प्रकार के मॉडल अनुबंधों और पूर्व-मुद्रित अनुबंध रूपों को अपनाया जाता है। इन समस्याओं का भागीदारों पर सीधा प्रभाव पड़ता है और ग्राहकों जैसे तीसरे पक्ष पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यदि कई निर्माण उद्यम संयुक्त रूप से निविदा करते हैं और संयुक्त रूप से निर्माण अनुबंध से सम्मानित किया गया है, तो वे संयुक्त उद्यम समूह के रूप में संयुक्त रूप से अनुबंध करने के लिए बाध्य हैं। कठिन समस्याओं में से एक जो तब उत्पन्न होने की संभावना है जब एक

निर्माण अनुबंध में प्रवेश किया जाने वाला होता है क्योंकि ग्राहक एक संयुक्त उद्यम के साथ अनुबंध का समापन करते समय समूह के सभी सदस्यों के साथ व्यवहार कर रहा है, जो संयुक्त रूप से सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इसलिए, अनुबंध को ऐसे समूह के सभी सदस्यों के अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा इस सरल कारण के लिए समाप्त किया जाना है कि संयुक्त उद्यम समूह अनिगमित संघ हैं। समूह द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को आंतरिक समझौते द्वारा उसी के सदस्यों के बीच आवंटित किया जाना है, और इसके परिणामस्वरूप सदस्यों के अधिकारों और कर्तव्यों को भी समूह समझौते द्वारा विनियमित किया जाता है। ये आंतरिक समझौते तीसरे पक्ष के लिए प्रभावी नहीं हैं, और वे परस्पर सदस्यों के बीच काम करते हैं। इस प्रकार, सभी सदस्य कार्य के आंतरिक विभाजन के बावजूद संयुक्त रूप से किए गए निर्माण कार्य के प्रदर्शन के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं। यदि संयुक्त उद्यम समूह का एक सदस्य अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा नहीं करता है, तो अन्य संयुक्त और ग्राहक के साथ ऐसे दायित्वों को पूरा करने के लिए कई दायित्वों के अधीन हैं। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न हो सकती है जब संयुक्त उद्यम समूह का कोई सदस्य परिसमापन या दिवालियापन के कारण समय से पहले बाहर हो जाता है। जब एक संयुक्त उद्यम समूह के साथ एक अनुबंध संपन्न होता है, तो सभी सदस्यों को संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी

बनाया जाता है, भले ही केवल एक ही प्रश्न में सेवा प्रदान करने में सक्षम हो। एक संयुक्त उद्यम समूह के सदस्यों की संयुक्त और कई देनदारियां अनुबंध प्रदर्शन के सीमांत क्षेत्रों को आच्छादित कर सकती हैं जैसे देर से प्रदर्शन, दोष, माल और सेवाओं की कमी आदि। इसलिए, संयुक्त उद्यम समूह के साथ इस तरह के अनुबंध में प्रवेश करते समय यह बहुत आवश्यक है कि निर्माण अनुबंधों को सावधानीपूर्वक तैयार किया जाए, और ऐसे समूह के सदस्यों को आपस में विस्तृत समझौते भी करने चाहिए, (देखें: संयुक्त उद्यम समूहों पर लेख - निर्माण अनुबंध के प्रभाव: डॉ. मैन्फ्रेड स्ट्रॉब, वाणिज्यिक कानून के प्रोफेसर, तकनीकी विश्वविद्यालय, वियना में 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अधिवक्ता', मार्च 1985, इंटरनेशनल बार एसोसिएशन, लंदन के बिजनेस लॉ के एक अनुभाग द्वारा प्रकाशित एक मासिक)।

48. भारत में, एक व्यक्ति किसी विशेष साहसिक कार्य या उपक्रम में किसी अन्य व्यक्ति के साथ भागीदार बन सकता है (देखें: साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 8)। इसे एक विशेष साझेदारी के रूप में भी वर्णित किया गया है क्योंकि यह एक विशेष साहसिक या उपक्रम तक ही सीमित है, या यह किसी विशेष लाभ या उपक्रम या व्यापार या व्यवसाय के दौरान एक अलग लेनदेन तक सीमित हो सकता है। हालांकि, साझेदारी के तीन तत्व, अर्थात्, समझौता, व्यापार और पारस्परिक एजेंसी निश्चित रूप से मौजूद होनी

चाहिए। संयुक्त उद्यम की प्रकृति और एक साधारण साझेदारी की प्रकृति में इस तरह की साझेदारी के बीच एकमात्र अंतर यह है कि संयुक्त उद्यम भागीदारों में विशेष साहसिक या व्यवसाय या उपक्रम की सीमा से परे कोई जिम्मेदारी नहीं होती है और इसलिए, अधिकार और दायित्व साधारण साझेदारी में भागीदारों की तुलना में कम व्यापक होते हैं (देखें: करमाली अब्दुल्ला अल्लारखिया बनाम वोरा करीमजी जीवनजी [करमाली अब्दुल्ला अल्लारखिया बनाम वोरा करीमजी जीवनजी, 1914 एस.सी.सी. ऑनलाइन पीसी 75: आईएलआर (1915) 39 बॉम 261: ए.आई.आर. 1914 पीसी 132])।

7. एशिया फाउंडेशन में व्यक्त किए गए विचारों को गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा कॉन्टिनेंटल कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में फिर से दोहराया गया। (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने गुजरात राज्य [कॉन्टिनेंटल कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, 1986 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 16] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार रिपोर्ट के पैरा-14 में यथा प्रदशत निम्नलिखित टिप्पणियों से स्पष्ट होगा।

"14. यह एक संयुक्त उद्यम समूह के सदस्यों के बीच आंतरिक समझौतों आम तौर पर तीसरे पक्ष की तुलना में प्रभावी नहीं हैं की दृष्टि नहीं खोना चाहिए, और वे केवल संयुक्त उद्यम समूह के भीतर

आपसी सेवाओं और हकदारियों के लिए आधार का गठन. संयुक्त उद्यम के सदस्य कार्य के आंतरिक विभाजन के बावजूद संयुक्त रूप से किए गए निर्माण कार्य के निष्पादन के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं। यदि संयुक्त उद्यम समूह का कोई सदस्य अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा नहीं करता है, तो उसके अन्य सदस्य ग्राहक को अनुपलब्ध सेवाएं प्रदान करने के लिए बाध्य हैं। यदि ग्राहक एक संयुक्त उद्यम समूह के साथ अनुबंध में प्रवेश करता है, तो यह निर्माण कार्य के उचित प्रदर्शन के लिए संयुक्त उद्यम के सदस्यों की देयता को बढ़ाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जब एक संयुक्त उद्यम समूह के साथ एक अनुबंध संपन्न होता है, तो सभी सदस्यों को संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी बनाया जाता है, भले ही केवल एक ही प्रश्न में सेवाओं को प्रस्तुत करने में सक्षम हो। इस तरह के दायित्व का औचित्य समूह के एक सदस्य पर दबाव डालने की संभावना है ताकि उसे सेवाओं का अपना हिस्सा प्रदान करने के लिए प्रेरित किया जा सके या यदि आवश्यक हो, तो एक विकल्प की व्यवस्था की जा सके। बेशक, एक संयुक्त उद्यम समूह के सदस्य जो अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा नहीं करते हैं, वे अपने सह-उद्यमकर्ताओं को क्षतिपूर्ति करने के लिए सह-साझा करने के लिए उत्तरदायी रहते हैं (देखें: उद्यम समूहों में शामिल होने पर लेख)। सह-उद्यमकर्ताओं की संयुक्त और कई देयता न केवल कार्यों के निष्पादन के

लिए है, बल्कि ग्राहक द्वारा नुकसान के लिए किसी भी दावे के संबंध में और आपूर्तिकर्ताओं, योजनाकारों और वास्तुकारों के लिए सभी संयुक्त वित्तीय प्रतिबद्धताओं के संबंध में और फीस, बकाया, दंड या सार्वजनिक प्राधिकरणों को अन्य भुगतानों के संबंध में भी है। किसी भी मामले में दायित्व के संबंध में आंतरिक समझौतों का तीसरे पक्ष के खिलाफ कोई प्रभाव नहीं है।

8. डॉ जॉर्ज ने न्यू होराइजन्स लिमिटेड बनाम भारत संघ मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया। भारत संघ [न्यू होराइजन्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1995) 1 एस.सी.सी. 478] जिसने निम्नलिखित शब्दों में एक संयुक्त उद्यम की अवधारणा को समझाया: (एस.सी.सी. पीपी 493-495, पैरा-24 से 26) "24. अभिव्यक्ति 'संयुक्त उद्यम' संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक बार उपयोग किया जाता है। यह पारस्परिक लाभ के लिए किसी विशेष लेनदेन के संयुक्त उपक्रम में लगी साझेदारी की प्रकृति में एक कानूनी इकाई या व्यक्तियों या कंपनियों के एक संघ को संयुक्त रूप से कुछ वाणिज्यिक उद्यम का उपक्रम करता है जिसमें सभी संपत्ति का योगदान करते हैं और जोखिम साझा करते हैं। इसके लिए विषय-वस्तु के प्रदर्शन में रुचि रखने वाले समुदाय की आवश्यकता होती है, इसके संबंध में नीति को निर्देशित और नियंत्रित करने का अधिकार, और कर्तव्य, जिसे समझौते द्वारा बदला जा सकता है, लाभ और हानि

दोनों में साझा करने के लिए। (ब्लैक लॉ डिक्शनरी, 6 वां संस्करण, पृष्ठ 839)। शब्दों और वाक्यांशों के अनुसार, स्थायी संस्करण, एक संयुक्त उद्यम लाभ के लिए एक एकल व्यावसायिक उद्यम करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक संघ है (पृष्ठ 117, वॉल्यूम 23)। एक संयुक्त उद्यम एक निगम का रूप ले सकता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति या कंपनियां एक साथ जुड़ सकती हैं। एक संयुक्त उद्यम निगम को एक निगम के रूप में परिभाषित किया गया है जो आमतौर पर तेल, रसायन, इलेक्ट्रॉनिक, परमाणु क्षेत्रों में पाए जाने वाले कुछ विशिष्ट उपक्रम में कॉर्पोरेट ढांचे के भीतर अन्य व्यक्तियों या निगमों के साथ जुड़ गया है। (ब्लैक लॉ डिक्शनरी, 6 वां संस्करण, पृष्ठ 342)। पूर्वी एशिया के तेजी से विकासशील देशों जैसे जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान, चीन, आदि में विदेशी पूंजी या तकनीकी विशेषज्ञता के प्रवाह की आवश्यकता वाली परियोजनाओं के संबंध में संयुक्त उद्यम कंपनियां अब तेजी से बन रही हैं [जैक्स बुहार्ट: पूर्वी एशिया में संयुक्त उद्यम - कानूनी मुद्दे (1991) देखें]। हमारे देश में संयुक्त उद्यमों की समान वृद्धि हुई है, जिसमें विदेशी कंपनियां भारतीय समकक्षों के साथ जुड़ती हैं और उद्यम की सफलता के लिए पूंजी और तकनीकी जानकारी के लिए योगदान करती हैं। उच्च न्यायालय ने 'संयुक्त उद्यम' अभिव्यक्ति के इस अर्थ पर ध्यान दिया है। लेकिन उच्च न्यायालय ने माना है कि एनएचएल एक संयुक्त

उद्यम नहीं है और इसमें विदेशी कंपनी द्वारा केवल एक निश्चित मात्रा में इक्विटी भागीदारी है। हम उच्च न्यायालय के उक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो पा रहे हैं।

25. जैसा कि पहले देखा गया था, एनएचएल ने अपनी निविदा में कहा था कि यह टीपीआई, एलएमआई और डब्ल्यूएमएल और आईआईपीएल द्वारा स्थापित एक संयुक्त उद्यम कंपनी है जिसमें टीपीआई, एलएमआई और डब्ल्यूएमएल और एक ही समूह की अन्य कंपनियों के साथ-साथ श्री अरुण पुरी के पास 60% शेयर हैं और आईआईपीएल के पास 40% शेयर हैं। यह भी कहा गया था कि संयुक्त उद्यम को भारत सरकार का अनुमोदन प्राप्त हो गया है और वर्तमान में संचालन में है और यह कि प्रमोटर परियोजना की आवश्यकता के अनुरूप अपनी पूंजी/योगदान में वृद्धि करेगा और कंपनी को डेटाबेस प्रोसेसिंग, प्रकाशन में विशेषज्ञता के साथ एक सूचना और डेटाबेस प्रबंधन कंपनी के रूप में स्थापित किया गया है। बिक्री/विपणन और संबंधित जानकारी का प्रसार, निविदा में यह भी कहा गया है कि सही अर्थों में एक संयुक्त उद्यम के रूप में कंपनी के पास अपनी मूल समूह कंपनियों के डेटाबेस प्रबंधन, बिक्री और प्रकाशन में विशेषज्ञता तक पहुंच होगी। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समूह की कंपनियों (टीपीआई, एलएमआई और डब्ल्यूएमएल) और सिंगापुर स्थित कंपनी (आईआईपीएल) ने अपने संसाधनों को इस अर्थ में एक साथ

जमा किया है कि टीपीआई, एलएमआई और डब्ल्यूएमएल ने देश के विभिन्न स्थानों पर अपने उपकरण और संगठन उपलब्ध कराए हैं जबकि आईआईपीएल ने इस क्षेत्र में अपने व्यापक अनुभव के साथ-साथ अपने प्रबंधकीय कर्मचारियों की विशेषज्ञता भी उपलब्ध कराई है। इस प्रकार एनएचएल के सभी संघटकों ने कंपनी (एनएचएल) के संसाधनों में योगदान दिया है। इससे पता चलता है कि एनएचएल संयुक्त रूप से एक वाणिज्यिक उद्यम करने वाली कंपनियों का एक संघ है जिसमें वे सभी संपत्ति का योगदान करेंगे और जोखिम साझा करेंगे और ब्याज का एक समुदाय होगा। इसलिए, हमारा विचार है कि एनएचएल का गठन भारतीय कंपनियों के समूह और सिंगापुर स्थित कंपनी आईआईपीएल द्वारा एक संयुक्त उद्यम के रूप में किया गया है और यह कहना सही नहीं होगा कि आईआईपीएल जिसकी उद्यम की सफलता में पर्याप्त हिस्सेदारी है, जिसकी 40% शेयरधारिता है, एनएचएल में केवल एक शेयरधारक है।

26. एक बार जब यह माना जाता है कि एनएचएल एक संयुक्त उद्यम है, जैसा कि निविदा में दावा किया गया है, तो इसके विभिन्न घटकों, अर्थात् टीपीआई, एलएमआई और डब्ल्यूएमएल के साथ-साथ आईआईपीएल के अनुभव को ध्यान में रखा जाना चाहिए यदि निविदा मूल्यांकन समिति ने एक विवेकपूर्ण व्यवसायी का दृष्टिकोण अपनाया था।

9. एक संयुक्त उद्यम की अवधारणा पर एक अधिक विस्तृत व्याख्या कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम में पाई जाती है, जो निम्नलिखित शब्दों में ऐसे उद्यमों की प्रकृति को परिभाषित करती है:

"A. संयुक्त उद्यम अनुसंधान संदर्भ की परिभाषा और प्रकृति

ए.एल.आर. पुस्तकालय

ए.एल.आर. इंडेक्स, संयुक्त उद्यम वेस्ट का एलआर डाइजेस्ट, जॉइंट एडवेंचर्स - 1, 1.1, 1.13

§ 1 आम तौर पर

अनुसंधान संदर्भ

वेस्ट की संख्या-डाइजेस्ट, जॉइंट एडवेंचर्स - 1, 1.1, 1.13

एक संयुक्त उद्यम अमेरिकी अदालतों द्वारा बनाया गया एक कानूनी संबंध है और आम तौर पर लाभ के लिए एकल व्यावसायिक उद्यम करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों के संघ के रूप में वर्णित किया जाता है।

'संयुक्त उद्यम', एक शब्द जिसका उपयोग परस्पर विनिमय के लिए किया जाता है और 'संयुक्त साहसिक' या सह-उद्यम का पर्याय है, को दो या दो से अधिक व्यक्तियों के विशेष संयोजन के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें लाभ के लिए कुछ विशिष्ट उद्यम संयुक्त रूप से बिना किसी वास्तविक साझेदारी या

कॉर्पोरेट पदनाम के मांगे जाते हैं। इसमें लाभ के लिए एक एकल व्यावसायिक उद्यम करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक संघ या लाभ के लिए संयुक्त रूप से कुछ विशिष्ट साहसिक कार्य करने वाले व्यक्तियों का एक विशेष संयोजन होता है, जिस उद्देश्य के लिए वे अपनी संपत्ति, धन, प्रभाव, कौशल और ज्ञान को जोड़ते हैं।

एक संयुक्त उद्यम या उद्यम को साझेदारी की प्रकृति में होने के रूप में भी परिभाषित किया गया है और मौजूदा जब दो या दो से अधिक व्यक्ति लाभ कमाने के उद्देश्य से कुछ व्यवसाय या लेनदेन में प्रवेश करने के इरादे से एक सामान्य निधि में नकदी, श्रम या संपत्ति का योगदान करते हैं। अभी तक एक और परिभाषा के तहत, एक संयुक्त उद्यम तब बनाया जाता है जब पक्षगण एक सामान्य उपक्रम में धन, संपत्ति, ज्ञान, कौशल या अन्य संपत्ति का योगदान करती हैं; पक्षों के पास उद्यम की विषय-वस्तु में एक संयुक्त संपत्ति हित है और प्रबंधन पर आपसी नियंत्रण का अधिकार है; पक्षों को लाभ या उद्यम की उपस्थिति की उम्मीदें हैं; पक्षों को मुनाफे में भाग लेने का अधिकार दिया जाता है; और पक्षों का उद्देश्य एक उपक्रम तक सीमित है। वास्तव में, संयुक्त उद्यम की कोई सटीक

परिभाषा नहीं दी जा सकती है, और निर्णयों ने संयुक्त उद्यम की कानूनी अवधारणा के लिए कोई तय या निश्चित सीमाएं स्थापित नहीं की हैं। बल्कि, प्रत्येक मामले में उत्तर काफी हद तक कथित पक्षों के इरादे पर निर्भर करता है जैसा कि प्रत्येक विशेष मामले में शामिल तथ्यों और परिस्थितियों से प्रकट होता है, समझौते की शर्तें, पक्षों के कार्य, उपक्रम की प्रकृति, और अन्य तथ्य।

उन कृत्यों या आचरण में से जो एक संयुक्त उद्यम के संकेत हैं, जिनमें से कोई भी यह निर्धारित करने में नियंत्रित नहीं है कि क्या एक संयुक्त उद्यम मौजूद: (1) संपत्ति का संयुक्त स्वामित्व और नियंत्रण; (2) खर्च, लाभ और हानि का बंटवारा, और शुद्ध आय के विभाजन का निर्धारण करने में कुछ प्रैक्टिस करना; (3) नियंत्रण का समुदाय, और व्यावसायिक उद्यम के प्रबंधन और दिशा में सक्रिय भागीदारी; (4) पक्षों का इरादा, व्यक्त या निहित; और (5) संयुक्त समझौते द्वारा वेतन तय करना। एक संयुक्त उद्यम या संयुक्त साहसिक किसी भी कानून पर आधारित नहीं है और विशुद्ध रूप से अमेरिकी अदालतों की उपज है।

प्रतिभागी:

एक संयुक्त उद्यम या साहसिक में भाग लेने वाले कोवेंचर्स, कोएडवेंचर्स, या, अधिक सामान्यतः, संयुक्त रोमांच हैं।

## § 2 संयुक्त उद्यम

अनुसंधान संदर्भ

पश्चिम की कुंजी संख्या-डाइजेस्ट,

संयुक्त एडवेंचर्स -1, 1.1, 1.13

'संयुक्त उद्यम' शब्द का उपयोग संयुक्त उद्यम के साथ परस्पर विनिमय के लिए किया जा सकता है, हालांकि अक्सर एक अंतर किया जाता है कि संयुक्त उद्यम व्यावसायिक उद्यमों पर लागू होते हैं जबकि संयुक्त उद्यम नहीं करते हैं।

एक संयुक्त उद्यम को दो या दो से अधिक व्यक्तियों के अनौपचारिक संघ के रूप में परिभाषित किया गया है, जो साझेदारी की प्रकृति का हिस्सा लेते हैं, आमतौर पर, लेकिन हमेशा नहीं, एक एकल लेनदेन तक सीमित होता है जिसमें प्रतिभागी अपने पैसे, प्रयासों, कौशल और ज्ञान को लाभ के लिए जोड़ते हैं, प्रत्येक के साथ खर्च और लाभ या हानि। 'संयुक्त उद्यम' कानून द्वारा बनाई गई स्थिति नहीं है, लेकिन सामान्य उद्देश्य की खोज में व्यक्तियों के बीच एकता का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियोजित पारस्परिक एजेंसी का एक संविदात्मक संबंध है, जिसके

परिणामस्वरूप समुदाय के एक सदस्य की लापरवाही दूसरे पर आरोपित की जा सकती है। एक संयुक्त उद्यम तब बनाया जाता है जब निम्नलिखित कारक स्थापित होते हैं: (1) एक समूह के सदस्यों के बीच एक समझौता, व्यक्त या निहित; (2) समूह द्वारा किया जाने वाला एक सामान्य उद्देश्य; (3) सदस्यों के बीच उस उद्देश्य में आर्थिक हित का एक समुदाय; और (4) उद्यम की दिशा में एक आवाज का समान अधिकार, जो नियंत्रण का समान अधिकार देता है।

'संयुक्त उद्यम' शब्द का उपयोग अक्सर 'संयुक्त उद्यम' के साथ परस्पर विनिमय के लिए किया जाता है और यह कहा गया है कि जब 'संयुक्त उद्यम' शब्द का उपयोग किसी व्यवसाय या वाणिज्यिक उपक्रम का वर्णन करने के लिए किया जाता है, तो शर्तों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं खींचा जा सकता है। शर्तों को अक्सर प्रतिष्ठित किया जाता है, हालांकि, एक संयुक्त उद्यम के विपरीत, एक संयुक्त उद्यम में आवश्यक रूप से एक सामान्य वाणिज्यिक उद्देश्य का कारक शामिल होता है। एक और तरीका कहा गया है, एक संयुक्त इंटरप्राइज़ और एक संयुक्त वेंचर के बीच बुनियादी अंतर यह है कि एक संयुक्त इंटरप्राइज़ के लिए एक



व्यावसायिक संबंध की आवश्यकता होती है, लेकिन संयुक्त वेंचर के लिए नहीं; यही है, संयुक्त उद्यम में पक्षों के प्रयासों को अंतर्निहित करने का कोई व्यावसायिक मकसद नहीं है। इसके अलावा, हालांकि यह कहा गया है कि संयुक्त इंटरप्राइज़ और एक संयुक्त वेंचर के तत्व अनिवार्य रूप से समान हैं, इस अंतर के साथ कि संयुक्त उद्यम व्यावसायिक उद्यमों पर लागू होते हैं जबकि संयुक्त उद्यम नहीं करते हैं, यह इंगित करने वाला प्राधिकरण है कि एक संयुक्त इंटरप्राइज़ और एक संयुक्त वेंचर के बीच एक और अंतर यह है कि बाद वाले को मुनाफे को साझा करने के लिए एक व्यक्ति या निहित समझौते की आवश्यकता होती है, साथ ही संयुक्त संबंध के अस्तित्व को प्रदर्शित करने वाला एक व्यक्ति या निहित अनुबंध।

\*\*\*\*\*

\*\*\*\*\*

.. 13. जैसा कि पूर्वोक्त सिद्धांतों से प्रकट होगा जो प्रतिपादित हैं, एक संयुक्त उद्यम को अर्ध साझेदारी के रूप में मान्यता दी जा सकती है जहां दो या दो से अधिक संस्थाएं संयुक्त रूप से पारस्परिक लाभ के लिए एक विशेष लेनदेन या अनुबंध करती हैं। यह अनिवार्य रूप से एक अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है जहां दो या दो से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक अनुबंध को लागू करने या लाभ

और मुनाफे के लिए एक उद्यम शुरू करने का दायित्व लेते हैं। जबकि कानून में एक कानूनी व्यक्ति होने के लिए कड़ाई से नहीं समझा जाता है, एक अनुबंध में प्रवेश करने के आधार पर एक संयुक्त उद्यम खुद को विभिन्न दायित्वों से बांधता है जो इसके तहत रखे गए हैं और उसमें प्रदत्त सभी अधिकारों का प्रयोग करते हैं। यह एक कंजॉर्टियम भी हो सकता है जहां दो या दो से अधिक व्यक्ति या कंपनियां दायित्वों का निर्वहन करने के लिए एक साथ आती हैं।

14. निर्विवाद रूप से, वर्तमान मामले में अनुबंध संयुक्त उद्यम द्वारा अपने सभी घटकों के लिए और उनकी ओर से कार्य करते हुए निष्पादित किया गया था। यह एक उद्यम था जिसमें उत्तरदाता 2 और 3 एक साथ आए और उद्यम से लाभ साझा करने के लिए सहमत हुए। जहां तक प्रवर्तन याचिकाकर्ता का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से कानून में उत्तरदाताओं के खिलाफ संयुक्त रूप से और अलग-अलग कार्यवाही करने का हकदार है। अदालत ने आगे कहा कि प्रवर्तन याचिकाकर्ता न तो बाध्य था और न ही संयुक्त उद्यम के व्यक्तिगत सदस्यों को पक्ष उत्तरदाताओं के रूप में शामिल करने के कर्तव्य के तहत रखा गया था। जब तक संयुक्त

उद्यम स्वयं मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष था, तब तक याचिकाकर्ता द्वारा रखे जाने वाले दावों के अधिनिर्णय के प्रयोजनों के लिए यह स्पष्ट रूप से पर्याप्त था। एक संयुक्त उद्यम के व्यक्तिगत सदस्य अपने स्वयं के सहमत या कथित व्यक्तिगत जिम्मेदारियों और दायित्वों के आधार पर ऐसे विवादों के परीक्षण की तलाश नहीं कर सकते हैं। वे स्पष्ट रूप से तीसरे पक्ष को बाध्य नहीं करेंगे। जब संयुक्त उद्यम के पक्ष में एक अनुबंध निष्पादित किया जाता है, तो उसे देने वाला व्यक्ति स्पष्ट रूप से इस आधार पर आगे बढ़ने का हकदार होता है कि संघ के प्रत्येक सदस्य संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होंगे। यह विषय निश्चित रूप से किसी भी अनुबंध या समझौते के विपरीत है। किसी भी मामले में, संयुक्त उद्यम का एक घटक उस दायित्व से बच नहीं सकता है जो उस उद्यम से उठाया गया है या उत्पन्न होता है। यह, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी रहेगा।

45. एक और महत्वपूर्ण विशेषता जो इस न्यायालय ने नोटिस की है, वह यह है कि दिनांक 16.11.2021 और 06.12.2021 के आदेश के माध्यम से, न्यायालय ने शुरू में माननीय श्री न्यायमूर्ति बृजेश कुमार श्रीवास्तव- II (सेवानिवृत्त) को प्राधिकरण के लिए मध्यस्थ

न्यायाधिकरण के सदस्य के रूप में नियुक्त किया था। इसके बाद, दो नियुक्त मध्यस्थों (एक याचिकाकर्ता द्वारा नामित और दूसरा प्रतिवादी के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त) ने एक पीठासीन मध्यस्थ नियुक्त किया था और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही शुरू हुई थी। कार्यवाही के दौरान, कंजॉर्टियम के प्रमुख सदस्य के कहने पर, 2022 का संख्या-120 वाला एक समीक्षा-आवेदन न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था, जिसे न्यायालय ने 13.12.2022 को अनुमति दी थी और उक्त आदेश को पहले ही ऊपर पुनः प्रस्तुत किया जा चुका है।

46. इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ता जो इस तथ्य से अवगत है कि एक बार मध्यस्थ को इस न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया था, और एक समीक्षा आवेदन मुख्य सदस्य के इशारे पर दायर किया गया था और यहां तक कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष भी, कंजॉर्टियम के अन्य दो सदस्यों ने अपने अभियोग की मांग करते हुए अलग-अलग आवेदन किए थे और मैसर्स पवनश्री फूड्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड के आवेदन की अनुमति दी गई थी (उक्त आदेश ट्रिब्यूनल द्वारा पारित पहले से ही याचिकाकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर लाया गया है), हालांकि, श्री मोड़ना, अधिवक्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि अन्य कंजॉर्टियम सदस्यों को तत्काल मध्यस्थता याचिका में एक पक्ष के रूप में क्यों नहीं शामिल किया गया था।

47. यह कंजॉर्टियम के किसी भी एक सदस्य मध्यस्थता आह्वान करने के हकदार है, लेकिन

एक ही समय में यह कंजॉर्टियम के अन्य सदस्यों को पूरी तरह से बाहर रखा जा रहा है कि इसका मतलब यह नहीं है कि एक बात है और भले ही कंजॉर्टियम के सदस्यों को एक दूसरे के साथ भिन्नता पर हो सकता है, लेकिन वे एक पक्ष के रूप में अधिक तो जब याचिका में आरोप नेतृत्व के खिलाफ कर रहे हैं, उन्हें जोड़ा जाना चाहिए एक ओर कंजॉर्टियम और दूसरी ओर प्राधिकरण के बीच एक मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने की मांग की जाती है और वह भी अन्य कंजॉर्टियम सदस्यों को नोटिस दिए बिना क्योंकि उन्हें याचिका में एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया है और समीक्षा-आवेदन में निर्णय के बाद, उनका न तो प्रतिनिधित्व किया जाता है और न ही अभियोजित किया जाता है।

48. इसी कारण से, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 06.12.2021 को पारित पहले के आदेश को दिनांक 13.12.2022 के आदेश के माध्यम से वापस ले लिया गया था और फिर भी याचिकाकर्ता ने अपनी याचिका में इस पेटेंट दोष को सुधारने के लिए कोई सुधारात्मक उपाय नहीं किया। यहां तक कि मेसर्स नैनोट्रिक्स इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा लिखे गए 23 अगस्त, 2023 के पूरक हलफनामे के साथ कुछ पत्र रिकॉर्ड पर लाए गए हैं, यह इंगित करने के लिए कि उन्हें भी प्रमुख सदस्य से शिकायत थी और उन्होंने सुलह प्रक्रिया को लागू करने की मांग की थी, लेकिन फिर भी याचिकाकर्ता द्वारा मेसर्स नैनोट्रिक्स को फंसाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। जो प्रस्तुत याचिका के लिए एक पक्ष के रूप में कंजॉर्टियम का सदस्य भी है।

49. यह पूर्वोक्त परिस्थितियों में है, इस न्यायालय ने पाया कि जाहिरा तौर पर, याचिका आवश्यक पक्षों के नॉन-जॉइंडर के दोष से ग्रस्त है।

50. प्रस्तुत मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में की गई चर्चाओं के प्रकाश में, इस न्यायालय ने पाया कि टेकप्रो सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में तेलंगाना उच्च न्यायालय के फैसले पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता का प्रस्तुत मामले पर कोई प्रयोज्य नहीं है। तेलंगाना उच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या कंजॉर्टियम का कोई सदस्य मध्यस्थता खंड को लागू कर सकता है। इसका जवाब तेलंगाना उच्च न्यायालय ने क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर दिया था; (2013) 1 एस.सी.सी. 641 जहां मुद्दा एक गैर-हस्ताक्षरकर्ता को मध्यस्थता के लिए बाध्य करने और ऐसे गैर-हस्ताक्षरकर्ता पर मध्यस्थ पंचाट के प्रभाव के संबंध में था। मौजूदा तथ्य स्पष्ट रूप से काफी भिन्न हैं क्योंकि समझौते के संदर्भ में, प्राधिकरण का एक पक्ष और कंजॉर्टियम का दूसरे के रूप में स्पष्ट सीमांकन है। जो विवाद संदर्भित हैं, वे एक ओर कंजॉर्टियम के बीच एक भाग के रूप में और दूसरी ओर प्राधिकरण के बीच एक पक्ष के रूप में विवाद के संदर्भ में हैं, न कि केवल कंजॉर्टियम सदस्यों के बीच परस्पर विवाद।

51. मध्यस्थता खंड का इरादा हर विवाद 'इंटर-से' कंजॉर्टियम के सदस्यों को संदर्भित

करने के लिए किया गया था, तो यह अलग तरह से शब्द किया गया होता. माध्यस्थता खंड के अनुसार, प्रत्येक पक्ष द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की जानी है, अर्थात् एक प्राधिकरण द्वारा और दूसरा कंजॉर्टियम द्वारा। कोई अन्य अर्थ, यदि उक्त खंड को दिया जाता है, तो अनुबंध और बोली दस्तावेज की शर्तों में स्पष्ट किए गए खंडों की भाषा के साथ उल्लंघन होगा, जो पक्षों को बाध्य करता है।

52. मध्यस्थता खंड का इरादा व्यर्थ हो जाएगा यदि प्रत्येक सदस्य को अपनी शिकायत पारस्परिक रूप से उठाने की अनुमति दी जाती है। ऐसे मामले में, तब कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य को अपना मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार होगा और फिर तीन मध्यस्थों को कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य की ओर से और एक प्राधिकरण द्वारा दी गई स्थिति में नियुक्त किया जाएगा और ये चार मध्यस्थ तब एक पीठासीन मध्यस्थ नियुक्त करेंगे जो ट्रिब्यूनल का गठन करने वाले मध्यस्थों की संख्या-को पांच के रूप में बनाएगा जो समझौते में परिकल्पित नहीं है और कानून में न्यायालय निहितार्थों पर भरोसा करके, अनुबंध की शर्तों को फिर से नहीं लिख सकता है।

53. इस स्थिति को देखने और भ्रम को स्पष्ट करने का एक और तरीका है कि यह देखा जाएगा कि, मामले में, सुलह अधिनियम की मध्यस्थता की धारा 10 के अनुसार, 1996, मध्यस्थों की संख्या-सम संख्या में नहीं हो सकती है और दो से अधिक सदस्यों के न्यायाधिकरण के मामले में बहुमत मध्यस्थों का पंचाट प्रबल होना है। फिर एक विवाद के

मामले में जहां कंजॉर्टियम के प्रत्येक सदस्य (के रूप में 3 प्रस्तुत मामले में) अपने 3 अलग मध्यस्थों की नियुक्ति और प्राधिकरण अपने स्वयं के नामांकित मध्यस्थ नियुक्त करता है और चार नामित मध्यस्थों पीठासीन मध्यस्थ के रूप में पांचवें की नियुक्ति, यह एक असमान संविधान को जन्म देगा, कंजॉर्टियम के सदस्यों द्वारा नियुक्त सभी तीन मध्यस्थों, बहुसंख्यक होने के नाते, हमेशा प्रबल करने की स्थिति में होगा। जिस प्राधिकरण ने अपना एक मध्यस्थ नामित किया होगा और भले ही पीठासीन मध्यस्थ प्राधिकरण द्वारा नामित मध्यस्थ के साथ नियम बनाता है, फिर भी पंचाट 3:2 होगा और यह निश्चित रूप से समझौते से पैदा हुआ इरादा नहीं है।

54. इस प्रकार, पूर्वोक्त कारणों के लिए, न्यायालय श्री मोड़ना द्वारा किए गए प्रस्तुतियाँ स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं है कि प्रत्येक सदस्य कंजॉर्टियम के अन्य सदस्यों के बहिष्करण में अलग से मध्यस्थता खंड लागू करने का हकदार होगा।

55. वहाँ एक और भ्रम है कि यहां तक कि यह मानते हुए कि कंजॉर्टियम के पीड़ित सदस्य में से प्रत्येक एक ही कंजॉर्टियम के अन्य सदस्यों के लिए बहिष्करण में एक मध्यस्थ नामित करने का एक अलग अधिकार है तो स्थिति उत्पन्न होगी कि वहाँ कई पंचाट होगा, प्रत्येक सदस्य विभाग के साथ अपनी कुछ शिकायतों उठाने को हो सकता है, इसलिए विभाग कंजॉर्टियम के सदस्यों द्वारा उठाए गए विवादों के संबंध में अलग-अलग मध्यस्थता का विरोध करेगा, जिसके परिणामस्वरूप बेतुके परिणाम

होंगे और उक्त कारण से भी, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सुझाए गए दृष्टिकोण की सदस्यता लेने में असमर्थ है। इस न्यायालय का स्पष्ट विचार है कि श्री मोड़्रा द्वारा निर्धारित विवाद वह नहीं है जो समझौते में परिकल्पित है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसे ठुकरा दिया गया है।

56. जहां तक इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में प्रस्तुत करने का संबंध है, जिसके लिए श्री मोड़्रा ने नॉर्टेल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया था, यह बताने के लिए पर्याप्त है कि उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन दाखिल करने के लिए सीमा की अवधि के संबंध में था, (ग) क्या न्यायालय 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत संदर्भ देने से इंकार कर सकता है जहां दावे पूर्वदृष्टया वर्जित हैं।

57. यह इस संदर्भ में है कि पैराग्राफ 37 और 37.1 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 11(6-बी) को 2019 अधिनियम और उप धारा 11(6-बी) द्वारा संशोधित नहीं किया गया है जो प्रदान करता है कि न्यायालय द्वारा किसी भी व्यक्ति या संस्था के पदनाम को न्यायिक शक्ति के प्रतिनिधिमंडल के रूप में नहीं माना जाएगा, नतीजतन, न्यायालय द्वारा नामित व्यक्ति या संस्था के लिए यह खुला नहीं होगा कि वह किसी भी न्यायिक शक्ति का प्रयोग करे और समझौते की वैधता या विवाद की

मनमानी से संबंधित किसी भी विवाद पर निर्णय ले।

58. इस मुद्दे की प्रस्तुत मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं है। जाहिर है, न तो समझौते की वैधता या विवाद के अस्तित्व या मध्यस्थता खंड के बारे में कोई विवाद है। बल्कि मुख्य मुद्दा यह है कि क्या कंजॉर्टियम का एक सदस्य अन्य सदस्यों को फंसाए बिना याचिका दायर कर सकता है और विवाद उठा सकता है जो प्रथम दृष्टया कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच हैं और प्राधिकरण में रोपिंग कर सकते हैं जिसके साथ समझौता किया गया है और उन कारणों के लिए जो पहले से ही इस न्यायालय द्वारा पिछले पैराग्राफ में दर्ज किए गए हैं, इस न्यायालय ने पाया कि नॉर्टेल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में निर्णय याचिकाकर्ता की मदद या सहायता के लिए नहीं आता है।

59. यहां तक कि जूम डेवलपर्स (उपरोक्त) के निर्णय, हालांकि, कंजॉर्टियम के सदस्यों के अधिकारों और देनदारियों से संबंधित हैं, लेकिन पूरी तरह से एक अलग संदर्भ में है जैसा कि जूम डेवलपर्स (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष देखा जाएगा, मुद्दा यह था कि क्या कंजॉर्टियम द्वारा किए गए बोली प्रस्ताव को गैर-स्वीकार्य के रूप में खारिज करने में बोली मूल्यांकन समिति का निर्णय था क्योंकि कंजॉर्टियम के सदस्यों की रचनाओं में बदलाव हुआ था जो कि प्रस्तुत मुद्दा नहीं है। इस प्रकार, वर्तमान मामले में शामिल मुद्दे की तुलना में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अलग-अलग तथ्यात्मक मैट्रिक्स के कारण, उक्त

निर्णय भी याचिकाकर्ता के लिए स्थिति को नहीं उबारता है।

60. महत्वपूर्ण रूप से, विद्या झोलिया और अन्य बनाम दुर्गा त्राडी निगम में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर ध्यान देना उचित होगा; 2021(2) एस.सी.सी. 1 जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने दायरे और मुद्दों के बारे में मुद्दे पर विचार किया है, जिन पर मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत रेफरल न्यायालय द्वारा विचार किया जाना है और प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या-96, 97, 98, 99, 100, 101, 138, 139, 140, 143, 144 और 145 को संदर्भ में आसानी के लिए इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"96. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009)1 एस.सी.सी. 267: (2009)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीश पीठ, पटेल इंजीनियरिंग पर स्पष्ट करते हुए। [एसबीपी & को० बनाम पटेल इंजीनियरिंग लि०, (2005)8 एससीसी 618], ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन में विचार के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दों की पहचान की थी और उन्हें तीन श्रेणियों में अलग किया था, अर्थात् (i) ऐसे मुद्दे जिन पर मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित निर्णय

लेने के लिए बाध्य हैं; (ii) ऐसे मुद्दे जिनका वह निर्णय भी कर सकता है, अर्थात्, ऐसे मुद्दे जिन्हें वह विनिश्चय करना चुन सकता है या विनिश्चय करने के लिए माध्यस्थता अधिकरण पर छोड़ सकता है; और (iii) जिन मुद्दों को तय करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए, और उसके बाद उन्हें निम्नानुसार गिनाया गया था: (बोधरा पॉलीफैब मामला [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009)1 एस.सी.सी. 267: (2009)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] एस.सी.सी. पी.पी 283-84, पैरा-22-24)

"22.1. मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति को जिन मुद्दों (प्रथम श्रेणी) पर निर्णय लेना होगा, वे हैं:

(क) क्या आवेदन करने वाले पक्षकार ने उपयुक्त उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

(ख) क्या कोई मध्यस्थता समझौता है और क्या वह पक्षकार जिसने अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन किया है, ऐसे करार का पक्षकार है।

22.2. वे मुद्दे (दूसरी श्रेणी) जिन्हें मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति तय करना चुन सकते हैं (या उन्हें मध्यस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय पर छोड़ सकते हैं) हैं:

(ए) क्या दावा एक मृत (लंबे समय से वर्जित) दावा है या एक जीवित दावा है।

(ख) क्या पक्षकारों ने अपने पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों की संतुष्टि दर्ज करके या बिना प्रतिवाद के अंतिम भुगतान प्राप्त करके अनुबंध/लेन-देन का समापन किया है।

22.3. वे मुद्दे (तीसरी श्रेणी) जिन्हें मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति को विशेष रूप से मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ देना चाहिए:

(i) क्या किया गया दावा मध्यस्थता खंड के भीतर आता है (उदाहरण के लिए, एक मामला जो एक विभागीय प्राधिकारी के अंतिम निर्णय के लिए सुरक्षित है और मध्यस्थता से बाहर या बाहर रखा गया है)।

(ii) योग्यता या मध्यस्थता में शामिल कोई दावा।

23. एसबीपी एंड कंपनी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] में इस न्यायालय द्वारा समझाई गई अधिनियम की योजना से यह स्पष्ट है कि दूसरी श्रेणी के अंतर्गत आने वाले मुद्दों के संबंध में, यदि अधिनियम की धारा 11 के तहत किसी भी आवेदन में उठाया जाता है, तो मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित, यदि आवश्यक हो, तो साक्ष्य लेकर, उन्हें तय कर सकते हैं। वैकल्पिक रूप से, वह उन मुद्दों को पंचाट न्यायाधिकरण को एक निर्देश के साथ

खुला छोड़ सकता है ताकि वह निर्णय ले सके. यदि मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति इस मुद्दे की जांच करना चुनते हैं और इसका निर्णय लेते हैं, मध्यस्थ न्यायाधिकरण उसी मुद्दे की फिर से जांच नहीं कर सकता है. मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति को यह चुनने में कि क्या वह इस तरह के मुद्दे का फैसला करेंगे या इसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ देंगे, अधिनियम के उद्देश्य से निर्देशित किया जाएगा (जो न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप के साथ मध्यस्थता प्रक्रिया में तेजी ला रहा है). जहां पूर्ण और अंतिम निपटान द्वारा संविदा के निर्वहन को अभिलिखित करने वाले दस्तावेज के संबंध में जालसाजी/फ्रॉड के आरोप लगाए जाते हैं, वहां यह उचित होगा यदि मुख्य न्यायमूर्ति/उनके पदनामित व्यक्ति मुद्दे का निर्णय करते हैं।

24. हालांकि यह स्पष्ट है कि जब एक प्रतिवादी का तर्क है कि विवाद एक समझौता या निर्वहन वाउचर या नो-क्लेम सर्टिफिकेट के तहत अनुबंध के निर्वहन के कारण मनमाना नहीं है, और दावेदार का तर्क है कि यह धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव से प्राप्त किया गया था, इस मुद्दे को या तो मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित द्वारा अधिनियम की धारा 11 के तहत कार्यवाही में या मध्यस्थ

न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाना होगा जैसा कि अधिनियम की धारा 11 के तहत आदेश द्वारा निर्देशित किया गया है। मध्यस्थता के लिए एक दावा केवल या पूरी तरह से इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि दावेदार द्वारा एक समझौता निर्वहन वाउचर निष्पादित किया गया था, यदि इसकी वैधता दावेदार द्वारा विवादित है।

97. पहली श्रेणी में शामिल मुद्दे थे: क्या आवेदन करने वाली पक्ष ने उपयुक्त उच्च न्यायालय से संपर्क किया था, अर्थात्, क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय; क्या कोई मध्यस्थता समझौता है और क्या धारा 11 के तहत आवेदन करने वाला व्यक्ति ऐसे समझौते का एक पक्ष है। इसमें यह सवाल शामिल होगा कि क्या प्रतिवादी या प्रतिपक्षी मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष है या मध्यस्थता अधिनियम की धारा 7 के संदर्भ में मध्यस्थता समझौते से बाध्य है। दूसरी श्रेणी के संबंध में, न्यायालय ने कहा कि मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति इस मुद्दे का फैसला कर सकते हैं, यदि आवश्यक हो, साक्ष्य लेकर या विकल्प में मध्यस्थ न्यायाधिकरण को निर्देश देने के साथ मुद्दों को खुला छोड़ सकते हैं। जहां मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति इस मुद्दे की जांच करते हैं और इसका निर्णय लेते हैं, मध्यस्थ न्यायाधिकरण इस

मुद्दे की फिर से जांच नहीं कर सकता है। मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित इस विकल्प का उपयोग मध्यस्थता अधिनियम के उद्देश्य से निर्देशित किया जाएगा, अर्थात्, न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप के साथ मध्यस्थता प्रक्रिया में तेजी लाना। जहां निपटान करार, डिस्चार्ज वाउचर, डिस्चार्ज या एग्रीमेंट और संतुष्टि की राशि के कारण विवाद उत्पन्न होता है, और दूसरा पक्ष यह तर्क देता है कि ऐसे प्रमाणपत्र धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव से प्राप्त किए गए थे, तो इस मुद्दे का निर्णय या तो मुख्य न्यायाधीश या उनके पदनामित द्वारा धारा 11 के तहत कार्यवाही में या अधिनियम की धारा 11 के तहत आदेश द्वारा निर्देशित मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा किया जाना होगा। मध्यस्थता के लिए एक दावे को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि निपटान समझौते या निर्वहन वाउचर को निष्पादित किया गया था यदि इसकी वैधता विवादित है। तीसरी श्रेणी मध्यस्थता खंड के भीतर अन्य सभी प्रश्नों को आच्छादित करेगी, जो अदालत का मानना था कि पहले चरण में मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र में हैं। यह विभागीय प्राधिकारी के अंतिम निर्धारण के लिए सुरक्षित मामले या अपवाद या बहिष्कृत मामलों का उदाहरण देकर समझाया गया था।



इसमें मध्यस्थता में शामिल किसी भी दावे के गुण भी शामिल होंगे।

98. बोघरा पॉलीफब (पी) लिमिटेड के पैरा-22 [राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम बोघरा पॉलीफब (पी) लिमिटेड, (2009)1 एस.सी.सी.267 : (2009)1 एस.सी.सी. (Civ) 117] , ध्यान से पढ़ा जाए, वर्गों के तहत एक आवेदन का निर्णय करते समय विचार किया जाने के लिए कारकों की आवश्यकता होगी कि क्या 8 तथा 11 मध्यस्थता अधिनियम की, वहाँ एक मध्यस्थता समझौते मौजूद है कि क्या एक परीक्षा की आवश्यकता होगी, अर्थात्, समझौते में उन विवादों के संबंध में मध्यस्थता कार्यवाही का प्रावधान है जो समझौते के पक्षों के बीच उत्पन्न हुए हैं। शुरुआती भाग में अदालत को अपने दिमाग को लागू करने की आवश्यकता है कि क्या जो विवाद उत्पन्न हुए हैं, उन्हें मध्यस्थता समझौते द्वारा सुलझाया जा सकता है। उपर्युक्त टिप्पणियां, हमारी राय में, पटेल इंजीनियरिंग मामले में संविधान पीठ के बहुमत के निर्णय के अनुरूप होंगी। लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] जिसमें यह देखा गया था कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 और 11 प्रकृति में पूरक हैं और न्यायालय, दो धाराओं के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय कि क्या मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा जाना चाहिए, समान शक्तियों

का आनंद लेता है, अन्यथा, यह एक विसंगतिपूर्ण स्थिति को जन्म देगा कि एक न्यायिक प्राधिकरण के पास धारा 8 के तहत व्यापक शक्ति है लेकिन धारा 11 के तहत परीक्षा की कम शक्ति है।

99. अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम लाफार्ज (इंडिया) (पी) लिमिटेड [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम लाफार्ज (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (2013) 15 एस.सी.सी. 414: (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 302] में, इस न्यायालय ने जांच की थी कि पटेल इंजीनियरिंग के बीच कोई संघर्ष है या नहीं। (2005) 8 एस.सी.सी. 618] और बोघरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009)1 एस.सी.सी.267: (2009)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के तहत एक आवेदन का निर्णय लेते समय जांच के दायरे के सवाल पर अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (प्रा) लिमिटेड [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (प्रा) लिमिटेड बनाम लाफार्ज (इंडिया) (प्रा) लिमिटेड, (2013) 15 एस.सी.सी. 414 (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 302] में डिवीजन बेंच ने पटेल इंजीनियरिंग में पैरा-47 के पैरा-39 और उप-पैरा-(iv) का उल्लेख किया था। लिमिटेड

[एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618], निरीक्षण करने के लिए: [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड केस [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम लाफार्ज (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (2013) 15 एस.सी.सी. 414: (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 302], एस.सी.सी. पीपी 423-24, पैरा-18]

"18. एसबीपी मामले के पैरा-47 में निर्धारित पैरा-39 और निष्कर्ष (iv) के सावधानीपूर्वक पढ़ने पर [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618], यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ प्रक्रिया को गति में स्थापित करने के उद्देश्य से मुख्य न्यायाधीश या उनके पदनाम को मुद्दों पर निर्णय लेने की आवश्यकता है, अर्थात्, (i) क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र, (ii) पक्षों के बीच एक मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व, (iii) एक जीवित दावे का अस्तित्व या अन्यथा, तथा (iv) मध्यस्थ की योग्यता के संबंध में शक्ति के प्रयोग और आगे की संतुष्टि के लिए शर्तों का अस्तित्व। इसके अलावा, कुछ परिस्थितियों में मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित को यह भी देखने की आवश्यकता होती है कि क्या लंबे समय से प्रतिबंधित दावे को प्रतिबंधित रखने की मांग की गई है और क्या पक्षों ने आपसी अधिकारों

और दायित्वों की संतुष्टि दर्ज करके या बिना प्रतिवाद के अंतिम भुगतान प्राप्त करके लेनदेन का समापन किया है।

100. इसके बाद, श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम यूटिलिटी प्रिमाइसेस (पी) लिमिटेड [श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम यूटिलिटी प्रिमाइसेस (पी) लिमिटेड, (2007) 4 एस.सी.सी. 599] में निर्णय में व्यक्त राय का संदर्भ दिया गया था, जिसके बारे में यह तर्क दिया गया था कि बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस.सी.सी. 267: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] असहमत, न्यायालय ने क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड [क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक, (2013) 1 एस.सी.सी. 641: (2013) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 689] में तीन-न्यायाधीश बेंच के फैसले का उल्लेख किया, जिसने इस मुद्दे पर विचार किया था कि क्या श्री राम मिल्स लिमिटेड [श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम यूटिलिटी परिसर (पी) लिमिटेड] के बीच कोई भिन्नता थी। (2007) 4 एस.सी.सी. 599] और बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस.सी.सी. 267: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117],

यह मानने के लिए कि कोई भी नहीं था और दोनों निर्णय पटेल इंजीनियरिंग में घोषित कानून के अनुरूप लाने के लिए सद्भाव में पड़े जाने में सक्षम हैं। [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005)8 एस.सी.सी.618] विशेष रूप से, श्री राम मिल्स लिमिटेड के पैरा-27 के निम्नलिखित भाग [श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम यूटिलिटी प्रिमाइसेस (पी) लिमिटेड, (2007)4 एस.सी.सी. 599] और क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड [क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेट वाटर प्यूरिफिकेशन इंक, (2013)1 एस.सी.सी. 641: (2013)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 689] जो निम्नानुसार हैं: [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड मामला [अरस्मेटा कैप्टिव पावर कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम लाफार्ज (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (2013)15 एस.सी.सी. 414: (2014)5 एस.सी.सी. (सीआईवी) 302], एस.सी.सी. पीपी 426-27, पैरा-24-25]

“24. ... ‘27. ... यदि मुख्य न्यायाधीश, सख्त अर्थों में, इस मुद्दे का फैसला नहीं करते हैं, तो उस स्थिति में यह उनके लिए है कि वह ऐसे मुद्दे का पता लगाएं और अपनी संतुष्टि दर्ज करें कि ऐसा मुद्दा पक्षों के बीच मौजूद है। यह केवल उस अर्थ में है कि एक जीवित मुद्दे पर निष्कर्ष दिया गया

है। पुनरावृत्ति की कीमत पर भी हमें यह अवश्य कहना चाहिए कि यह केवल यह पता लगाने के प्रयोजन के लिए है कि क्या मध्यस्थ प्रक्रिया शुरू की जानी है कि मुख्य न्यायाधीश को इस बात पर संतोष दर्ज करना होगा कि पक्षकारों के बीच एक जीवित मुद्दा बना हुआ है। यही बात सीमा के बारे में है जो हमेशा कानून और तथ्य का मिश्रित प्रश्न होता है। मुख्य न्यायाधीश को केवल अपनी संतुष्टि दर्ज करनी है कि प्रथम दृष्टया यह मुद्दा समय बीतने से मृत नहीं हुआ है या समझौते के किसी भी पक्ष ने समझौते द्वारा आच्छादित किए गए मुद्दों को आंदोलन करने के लिए कानून द्वारा अनुमत समय से परे अपने अधिकारों पर सोया नहीं है। यह इस कारण से है कि उपरोक्त पैराग्राफ में यह बताया गया था कि कभी-कभी आर्बिट्रल ट्रिब्यूनल द्वारा तय किए जाने वाले ज़िंदा दावे के बारे में प्रश्न को छोड़ना उचित होगा। उसे बस इतना करना है कि वह अपनी संतुष्टि दर्ज करे कि पक्षों ने अपने अधिकारों को बंद नहीं किया है और इस मामले को सीमा द्वारा वर्जित नहीं किया गया है। इस प्रकार, जहां मुख्य न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एक जीवित मुद्दा मौजूद है, तो स्वाभाविक रूप से इस निष्कर्ष में यह निष्कर्ष शामिल होगा कि पक्षों

के संबंधित दावे सीमा से वर्जित नहीं हुए हैं। (श्री राम मिल्स लिमिटेड मामले [श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम उपयोगिता परिसर (पी) लिमिटेड, (2007)4 एस.सी.सी. 599], एस.सी.सी. पी. 608, के लिए 27)

25. ... '119. ... इस प्रकार, बेंच ने एसबीपी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] में इस न्यायालय के फैसले की व्याख्या करते हुए कहा है कि मुख्य न्यायाधीश कुछ मुद्दों को अंतिम रूप से तय नहीं कर सकते हैं और संतुष्टि दर्ज करने पर कि प्रथम दृष्टया मुद्दा मृत नहीं हुआ है, यहां तक कि इसे निर्णय लेने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ दें। [क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड केस [क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक, (2013) 1 एस.सी.सी. 641: (2013) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 689], एस.सी.सी. पी. 700, पैरा-119] 101. अरेसमेटा कैप्टिव पावर कंपनी प्रो लिमिटेड [अरेसमेट कैप्टिव पावर प्रा लि बनाम लफ़र्ज इंडिया प्रा लि (2013)15 एस.सी.सी. 414:(2014)5 एस.सी.सी. (Civ) 302] में, इस प्रश्न पर स्पष्ट करते हुए कि क्या विवाद मध्यस्थता खंड के दायरे में मनमाना था, मुख्य न्यायाधीश/नामित

न्यायाधीश या मध्यस्थ द्वारा तय किया जाना चाहिए, इस न्यायालय ने कहा है: (एस.सी.सी. पीपी 432-33, पैरा-40)

"40. ... उस पर दिया गया दबाव अभिनव हो सकता है लेकिन जब न्यायाधीशों ने स्वयं पैरा-39 में अनुपात के निर्णय को हटा दिया है, तो यह कहना बेहद मुश्किल है कि एसबीपी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] में बताए गए सिद्धांत में मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित को विवादों की मनमानी से संबंधित विवाद का फैसला करने की आवश्यकता होती है। या अपवाद मामलों पर एक राय व्यक्त करने के लिए। न्यायसंगत प्रक्रिया द्वारा इस प्रकार के निष्कर्ष से इस क्षेत्र में विकसित विधिशास्त्र में तबाही आने की संभावना है। हम ऐसा सोचने के लिए तैयार हैं क्योंकि निर्णय से यहां और वहां से एक पंक्ति चुनना या इसे "अनुपात निर्णय" की स्थिति तक बढ़ाने के लिए यहां या वहां से एक टिप्पणी चुनना उचित नहीं है। यह खतरे के मार्ग पर प्रशस्त करने की सबसे अधिक संभावना है और इसे सावधानी से टाला जाना चाहिए। एसबीपी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005)8 एस.सी.सी. 618] में निर्धारित प्रस्तावों, हमारी राय में, बोधरा

पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंड्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस.सी.सी. 267: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] में दो-न्यायाधीश बेंच द्वारा सही ढंग से समझा गया है और इसे क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड [क्लोरो कंट्रोल्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम सेवर्न में तीन-न्यायाधीश बेंच द्वारा उचित रूप से अनुमोदित किया गया है ट्रेट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक, (2013)1 एस.सी.सी. 641: (2013)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 689] और हम सम्मानपूर्वक उसी से सहमत हैं। हमें इस सबमिशन में कोई दम नहीं मिलता कि उक्त निर्णयों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है, क्योंकि एसबीपी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005)8 एस.सी.सी. 618] में की गई कुछ टिप्पणियों पर ध्यान नहीं दिया गया था। हम यह जोड़ना जल्दबाजी कर सकते हैं कि तीन-न्यायाधीशों की पीठ संतुष्ट हो गई है कि एसबीपी [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] में निर्णय का अनुपात निर्णय वास्तव में निर्णय के पैरा-39 में निहित है।

\*\*\*\*\*-----\*\*\*\*\*-----

\*\*\*\*\*

..... 138. भारतीय संदर्भ में, हम सम्मानपूर्वक बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड [नेशनल इंड्योरेंस कंपनी

लिमिटेड बनाम बोधरा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस.सी.सी. 267: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 117] मुद्दों की पहली श्रेणी, अर्थात्, क्या पक्ष ने उपयुक्त उच्च न्यायालय से संपर्क किया है, क्या कोई मध्यस्थता समझौता है और क्या संदर्भ के लिए आवेदन करने वाला पक्ष इस तरह के समझौते के लिए पक्ष है, अधिक के अधीन होगा दूसरी और तीसरी श्रेणियों/मुद्दों की तुलना में पूरी तरह से जांच, जो संभवतः हैं, असाधारण मामलों को छोड़कर, मध्यस्थ को निर्णय लेने के लिए। पहली श्रेणी में, हम इस प्रश्न या मुद्दे को जोड़ेंगे और शामिल करेंगे कि क्या कार्रवाई का कारण व्यक्ति या रेम में कार्रवाई से संबंधित है; क्या विवाद की विषय-वस्तु तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करती है, एर्गा ओमेन्स प्रभाव है, केंद्रीकृत अधिनिर्णय की आवश्यकता है; क्या विषय-वस्तु राज्य के अहस्तांतरणीय संप्रभु और सार्वजनिक हित कार्यों से संबंधित है; और क्या विवाद की विषय-वस्तु अनिवार्य कानून (ओं) के अनुसार स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा गैर-मध्यस्थ है। इस तरह के सवाल शायद ही कभी उठते हैं और जब वे उठते हैं, तो ज्यादातर मौकों पर कानून के सवाल होते हैं। दूसरी ओर, संविदा निर्माण, मौजूदगी, वैधता और गैर-मध्यस्थता से संबंधित मुद्दों को संबंधित विवादों/दावों के गुणावगुण

के साथ जोड़ा जाएगा और आपस में जोड़ा जाएगा। वे तथ्यात्मक और विवादित होंगे और मध्यस्थ न्यायाधिकरण को तय करना होगा। [संपादन: बोधरा श्रेणियां पैरा-96 में पीपी 86-87 में निर्धारित की गई हैं, यहां ऊपर। यह देखते हुए कि बोधरा मामले का फैसला 2015 के संशोधन से पहले किया गया था, पैरा-225.1, 225.2 और 227 में इस मुद्दे पर रमण की टिप्पणियों को नीचे दिए गए पूरक राय में जोड़ना सार्थक है: "2015 के संशोधन के बाद, संदर्भ चरण में न्यायिक हस्तक्षेप को काफी हद तक कम कर दिया गया है ... पोस्ट 2015 संशोधन, अधिनियम की संरचना को मध्यस्थता समर्थक दृष्टिकोण के अनुरूप लाने के लिए बदल दिया गया था। संशोधित प्रावधान के तहत, अदालत केवल एक वैध मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व पर प्रथम दृष्टया राय दे सकती है। यह केवल बोधरा श्रेणियों का सहारा लेते हुए भी रेफरल चरण में अदालत द्वारा समीक्षा की सीमित और प्रतिबंधित प्रकृति पर जोर देता प्रतीत होगा, जिसे पैरा-138 में की गई टिप्पणियों के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए, 2015 के संशोधन और यहां पोस्ट की गई गैर-मनमानी के चार गुना परीक्षण के प्रकाश में उन्हें संशोधित और सीमित करना।

139. हम बहुत आदेशात्मक नहीं होना चाहेंगे, यद्यपि यह देखते हुए कि

अदालत वैध कारणों से सार्वजनिक और निजी संसाधनों की बर्बादी को रोकने के लिए, न्यायिक विवेक का प्रयोग कर सकती है ताकि यह सचेत रहते हुए एक गहन अभी तक सारांश प्रथम दृष्टया समीक्षा की जा सके कि यह मध्यस्थता प्रक्रिया की सहायता करने के लिए है और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र को हड़पने के लिए नहीं है। रेफरल चरण में एक विस्तृत पूर्ण समीक्षा या लंबी समीक्षा करने से विवाद समाधान तंत्र के रूप में मध्यस्थता की अखंडता और प्रभावकारिता को कम करने में बाधा आएगी और देरी होगी। इसके विपरीत, यदि अदालत हस्तक्षेप करने के लिए बहुत अनिच्छुक हो जाती है, यह मध्यस्थता और अदालत दोनों की प्रभावशीलता को कम कर सकता है। ऐसे कुछ मामले हैं जहां प्रथम दृष्टया परीक्षण पर गहन विचार की आवश्यकता हो सकती है। अदालत की चुनौती यह है कि वह सही मात्रा में और संदर्भ का पता लगाए कि वह प्रथम दृष्टया मामले की जांच कब करेगी या संयम बरतेगी। कानूनी आदेश को मध्यस्थता से बचने, रेफरल चरण में बाधा डालने की रणनीति और पक्षों को मध्यस्थता के लिए मजबूर होने से बचाने के बीच एक सही संतुलन की आवश्यकता होती है जब मामला स्पष्ट रूप से गैर-मध्यस्थता योग्य हो। [ ओज़लेम ससलर, "क्षमता-क्षमता के लिए अंग्रेजी दृष्टिकोण"

पेपरडाइन विवाद समाधान लॉ जर्नल,  
2013, वॉल्यूम।

140. तदनुसार, जब ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम दृष्टया समीक्षा अनिर्णायक होगी, या विचार पर अपर्याप्त होगा क्योंकि इसके लिए विस्तृत परीक्षा की आवश्यकता होती है, तो मामले को सहमति से पक्षों द्वारा चुने गए मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा अंतिम निर्धारण के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए. अंतर्निहित तर्क देरी या स्थगित नहीं करना और पक्षों को देरी और बाधा डालने के लिए एक चाल के रूप में रेफरल कार्यवाही का उपयोग करने से हतोत्साहित करना है। ऐसे मामलों में, इस स्तर पर अदालतों द्वारा एक पूर्ण समीक्षा मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करेगी और अदालतों और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के बीच क्षेत्राधिकार आवंटित करने वाली विधायी योजना का उल्लंघन करेगी. प्राथमिक और प्रथम अधिनिर्णायक के रूप में मध्यस्थ न्यायाधिकरण के साथ मुकदमेबाजी का केंद्रीकरण लाभकारी है क्योंकि यह विवादों के त्वरित और कुशल समाधान में मदद करता है।

..... 143. अब हम मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 की जांच करेंगे। जैसा कि ऊपर देखा गया है, उप-धारा (6-ए) को 2016 के

अधिनियम 3 द्वारा 23-10-2015 से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ डाला गया था और 2019 के अधिनियम 33 द्वारा छोड़ दिया गया था। अनुभाग 11(6) अदालत को किसी पक्ष द्वारा किए गए आवेदन पर मध्यस्थ नियुक्त करने की आवश्यकता होती है. धारा (6-ए) से धारा 11 यह निर्धारित करती है कि अदालत करेगी, उप-वर्गों के तहत नियुक्ति के चरण में (4), (5) या (6), एक मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व की परीक्षा तक ही सीमित है. उप-धारा (6-ए) को 2019 के अधिनियम 33 द्वारा हटा दिया गया था, लेकिन यह चूक न्यायमूर्ति बीएन श्रीकृष्ण की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट दिनांक 30-7-2017 के अनुसार संस्थागत मध्यस्थता की एक नई व्यवस्था की शुरुआत के मद्देनजर है, जो चूक की सिफारिश करने के कारण के रूप में रिकॉर्ड करता है: "इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि 2019 के संशोधन अधिनियम के बाद, अनुभाग 11(6-ए) छोड़ दिया गया है क्योंकि मध्यस्थों की नियुक्ति संस्थागत रूप से की जानी है, जिस स्थिति में पुराने वैधानिक शासन के तहत सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को अब मध्यस्थों को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है और परिणामस्वरूप यह निर्धारित करने के लिए कि मध्यस्थता समझौता मौजूद है या नहीं."

\*\*\*\*\*-----\*\*\*\*\*-----

\*\*\*\*\*

----- 144. जैसा कि पहले देखा गया है, पटेल इंजी. लि. [एसबीपी & क बनाम पटेल इंजीनियरिंग लि., (2005) 8 एस.सी.सी. 618] बताते हैं और मानते हैं कि धारा 8 और 11 प्रकृति में पूरक हैं क्योंकि दोनों मध्यस्थता के संदर्भ से संबंधित हैं. धारा 8 तब लागू होती है जब न्यायिक कार्यवाही लंबित होती है और न्यायिक कार्यवाही पर रोक लगाने और मध्यस्थता के संदर्भ के लिए आवेदन दायर किया जाता है। 2016 के अधिनियम 3 के माध्यम से धारा 8 में संशोधन को छोड़ा नहीं गया है। धारा 11 उस स्थिति को आच्छादित करती है जहां पक्षगण मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अदालत से संपर्क करती हैं। मायावती ट्रेडिंग (पी) लिमिटेड [मायावती ट्रेडिंग (पी) लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन, (2019) 8 एस.सी.सी. 714: (2019) 4 एस.सी.सी. (सीआईवी) 441], हमारी विनम्र राय में, सही मानते हैं कि पटेल इंजी. लि० [एसबीपी & क बनाम पटेल इंजीनियरिंग लि०, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] को विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है और इसलिए मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 में उप-धारा (6-A) की चूक के बाद भी लागू नहीं होगा। मायावती ट्रेडिंग (P) लि० [मायावती ट्रेडिंग (P) लि० बनाम Pradyuat

Deb Burman, (2019) 8 एस.सी.सी. 714: (2019) 4 एस.सी.सी. (Civ) 441] ने धारा 11 में संशोधन के उद्देश्य और लक्ष्यों और इतिहास पर विस्तार से बताया है, उप-धारा के संदर्भ में (6-ए) यह स्पष्ट करने के लिए कि अनुभाग, मूल रूप से अधिनियमित, अनुच्छेद के साथ प्रतिकृति थी 11 मध्यस्थता के कानून के युनीकट्रल मॉडल जिस पर मध्यस्थता अधिनियम का मसौदा तैयार किया गया था और अधिनियमित किया गया था. धारा 11 की विधायी योजना, विभिन्न व्याख्याओं और विधि आयोग की रिपोर्टों का उल्लेख करते हुए, यह माना गया है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 की छोड़ी गई उप-धारा (6-ए) पहले चरण में अधिकार क्षेत्र के दायरे पर अदालतों को लागू और मार्गदर्शन करना जारी रखेगी, अर्थात्, पूर्व-मध्यस्थता चरण।

145. 2019 के अधिनियम 33 द्वारा उप-धारा (6-ए) का लोप विशिष्ट उद्देश्य और लक्ष्य के साथ था और उप-वर्गों के प्रतिस्थापन से संबंधित है (12), (13) तथा (14) धारा 11 के अधिनियम द्वारा मध्यस्थता अधिनियम 33 का 2019, जो, उप-धारा (3-ए) के माध्यम से निर्धारित करता है कि उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के पास मध्यस्थ संस्थानों को नामित करने की शक्ति होगी



जिन्हें धारा 43- I, बशर्ते कि जहां एक श्रेणीबद्ध मध्यस्थ संस्थान उपलब्ध नहीं है, संबंधित उच्च न्यायालय कार्य के निर्वहन के लिए मध्यस्थों का एक पैनल बनाए रखेगा और उसके बाद उच्च न्यायालय मध्यस्थ न्यायाधिकरण के संदर्भ के लिए एक मध्यस्थ संस्था के कर्तव्य का पालन करेगा. इसलिए, यह स्वीकार करना गलत होगा कि धारा 11 की उप-धारा (6-ए) की चूक पटेल इंजीनियरिंग में अनुपात को छोड़ देती है। लिमिटेड [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एस.सी.सी. 618] लागू हो जाएगा।

ई:- निष्कर्ष:-

61. विस्तृत चर्चा पर, इस न्यायालय ने पाया कि रेफरल न्यायालय के लिए मुद्दा, कम से कम यह देखने के लिए है कि क्या सही पक्ष ने मध्यस्थता खंड के आह्वान के लिए सही तौर पर उच्च न्यायालय से संपर्क किया है जो पक्षों पर मौजूद और बाध्यकारी है और विवाद उक्त समझौते द्वारा आच्छादित किए गए हैं। इसकी जांच करने के लिए, न्यायालय प्रथम दृष्टया परीक्षण लागू करेगा और विद्या झोलिया (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय से ताकत प्राप्त करेगा, प्रथम दृष्टया यह न्यायालय एक अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचता है कि याचिका केवल कंजॉर्टियम के एक सदस्य द्वारा अन्य कंजॉर्टियम सदस्यों को शामिल किए बिना दायर की गई है, जिनके खिलाफ आरोप लगाए गए हैं और उक्त आरोप प्रथम दृष्टया कंजॉर्टियम के सदस्यों के बीच

विवादों का संकेत हैं, जो मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं हो सकते हैं।

62. ऊपर दिए गए विस्तृत कारणों से और इस न्यायालय की विनम्र राय में, इस तरह की याचिका अकेले याचिकाकर्ता के इशारे पर उठाए गए विवादों की प्रकृति के लिए पोषणीय नहीं है। नतीजतन, याचिका **खारिज** की जाती है। लागत आसान।

(2023) 9 ILRA 1129

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

आदेश से प्रथम अपील संख्या 49 वर्ष 2018  
तथा अन्य संबंधित वाद

भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

एसएम सिंह रायकवार, मोहम्मद एहतेशाम खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अरुण कुमार वर्मा, नीरव चित्रवंशी

सिविल विधि - रेलवे अधिनियम, 1989-  
धारा 93,94 और 97 -भारतीय साक्ष्य  
अधिनियम, 1872, धारा 101 और 102 --

- रेलवे प्रशासन किसी भी कारण से किसी भी माल की हानि, विनाश, क्षति, ह्रास या गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, सिवाय इसके कि यह साबित हो जाए कि ऐसी हानि, विनाश, क्षति, ह्रास या गैर-डिलीवरी उसकी ओर से या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार के कारण हुई थी --- वादी केवल अपने मामले के बल पर सफल हो सकता है, बचाव की कमजोरी पर नहीं --- पेट्रोलियम उत्पाद बीपीसीएल द्वारा अपनी साइडिंग पर लोड किया गया था और उसके बाद रेलवे ने रसीद जारी की, जिसमें टिप्पणी (टिप्पणियाँ) 'एस/सी' (जिसमें शामिल होने की बात कही गई है), 'एसडब्ल्यू' (प्रेषक का वजन स्वीकार किया गया) और साथ ही 'लोडिंग रेलवे कर्मचारियों द्वारा पर्यवेक्षित नहीं थी' और 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र' भी अधिनियम की धारा 94 के अनुसार रेलवे को इंगित करता है 1989 का आदेश किसी भी नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं है और इसलिए, बीपीसीएल का यह कर्तव्य था कि वह उचित साक्ष्य प्रस्तुत करके यह साबित करे कि (i) पेट्रोलियम उत्पाद/माल ठीक से लोड किया गया था; (ii) रसीद में दर्शाई गई मात्रा उचित थी और (iii) रेलवे या उसके कर्मचारियों की ओर से किसी कदाचार या लापरवाही के कारण क्षतिग्रस्त हुआ था--- बीपीसीएल, सभी मामलों में, अपने दावे को साबित करने में विफल रहा, साथ ही रेलवे प्रशासन की लापरवाही भी। (पैरा 37, 38 और 39 )

**अपील खारिज. (ई-15)**

### उद्धृत वादों की सूची:

1. एफएफओडी संख्या 182/2003 (भारत संघ बनाम मेसर्स इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन)
2. एफएओ संख्या 249/2019 (भारत संघ बनाम मेसर्स स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड)
3. भारत संघ बनाम एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड, मनु/ओआर/0040/1987
4. भारत संघ बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड; मनु/एपी/1039/2004
5. भारत संघ बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल; मनु/ ओआर/0026/1988
6. भारत संघ बनाम एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड; एआईआर 1987 ओरि 149
7. एफएओ संख्या 225/2013 (स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ), मनु/डीई/6299/2017
8. प्रथम अपील संख्या 309/1999 (मेसर्स हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारत संघ); मनु/एमएच/0223/2004
9. कन्हैया भालोटिया बनाम भारत संघ; 2013 एससीसी ऑनलाइन पैट 506

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा पारित)

1. चूंकि इन सभी अपीलों में निहित विवाद, मोटे तौर पर समान है, अतः दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से इस सामान्य आदेश द्वारा इनका निर्णय किया जा रहा है।

2. श्री एम.ई. खान के साथ-साथ अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक मिश्रा और प्रतिवादी-रेलवे के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार वर्मा तथा श्री महेंद्र कुमार मिश्रा को सुना गया।

3. उपरोक्त सभी अपीलों, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (संक्षेप में "बीपीसीएल") द्वारा रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षेप में "1987 का अधिनियम") की धारा 23 के अंतर्गत योजित की गई थी, जिसमें रेलवे दावा न्यायाधिकरण (संक्षेप में "न्यायाधिकरण"), लखनऊ द्वारा पारित अभिनिर्णय को चुनौती दी गई थी, जिसका विवरण नीचे दिया गया है:-

| क्र म सं. | वाद सं.   | पक्षकारों के नाम        | मांगी गई धनराशि | निरस्तीकरण तिथि |
|-----------|-----------|-------------------------|-----------------|-----------------|
| 1.        | ओए//04/09 | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.10,19,849/-  | 06.10.2017      |
| 2.        | ओए//07/09 | बीपीसी एल बनाम          | Rs.1,65,452/-   | 25.11.2016      |

|    |              | भारत संघ                |               |            |
|----|--------------|-------------------------|---------------|------------|
| 3. | ओसी//10/2010 | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.3,54,010/- | 25.08.2017 |
| 4. | ओए//32/2012  | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.1,88,626/- | 15.09.2017 |
| 5. | ओए//33/2012  | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.1,58,451/- | 15.09.2017 |
| 6. | ओए//03/14    | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.4,32,279/- | 04.11.2016 |
| 7. | ओसीओ0400030  | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.1,35,100/- | 01.12.2016 |
| 8. | ओए//0400045  | बीपीसी एल बनाम भारत संघ | Rs.3,41,542/- | 21.04.2017 |

4. ऊपर बताए गए सभीवादों में, न्यायाधिकरण ने बीपीसीएल द्वारा योजित दावा याचिकाओं को खारिज कर दिया।

5. यह उल्लेख करना उचित होगा कि सभी अपीलों विलंब की माफी के आवेदन व हलफनामे के साथ योजित की गई थीं और

उनमें बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने विलंब को माफ कर दिया और अब सभी अपीलों पर सुनवाई और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है। ऊपर बताए गए मामले से संबंधित न्यायाधिकरण का प्रासंगिक रिकॉर्ड भी उपलब्ध है।

6. सभी अपीलों से संबंधित प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि बीपीसीएल ने माल/पेट्रोलियम उत्पाद को अपनी साइडिंग से लोड किया, जिसका अर्थ है कि पेट्रोलियम उत्पाद, जो सभी अपीलों की विषयवस्तु है, रेलवे प्रशासन से संबंधित साइडिंग में लोड नहीं किया गया था और निर्विवाद रूप से वैगनों में पेट्रोलियम उत्पाद लोड करने के समय, वैगनों में लोड किए गए पेट्रोलियम उत्पाद का मिलान या पर्यवेक्षण करने के लिए रेलवे प्रशासन का कोई माल क्लर्क या कोई अन्य कर्मचारी मौजूद नहीं था और बीपीसीएल द्वारा लोड किए गए पेट्रोलियम उत्पाद को बीपीसीएल की साइडिंग में उतार दिया गया था और इसे उतारने से ठीक पहले, बीपीसीएल के अनुरोध पर, 'संयुक्त डिप प्रमाण पत्र' तैयार किए गए थे और इन प्रमाण पत्रों के अनुसार, बीपीसीएल द्वारा अपनी साइडिंग में वैगनों में लोड किए गए पेट्रोलियम उत्पाद में कमी पाई गई थी।

7. सभी 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्रों' में यह दर्शाया गया है कि "आरए 1989, एआर-94-(2), रेलवे किसी भी कमी के लिए जिम्मेदार नहीं है।"

8. यह उल्लेख करना उचित होगा कि दावे से संबंधित रेलवे रसीदें, बीपीसीएल को 'एस/सी' (शामिल है), 'एसडब्ल्यूए' (भेजने वाले का वजन स्वीकृत) और 'रेलवे स्टाफ द्वारा लोडिंग की निगरानी नहीं की गई' जैसी टिप्पणियों के साथ जारी की गई थीं।

9. यह भी ध्यान रखना उचित होगा कि बीपीसीएल ने यह नहीं बताया है कि रेलवे प्रशासन द्वारा बीपीसीएल को जारी की गई रसीदें ट्रिब्यूनल के समक्ष 'एस/सी' (शामिल है) एसडब्ल्यूए (भेजने वाले का वजन स्वीकृत), 'रेलवे स्टाफ द्वारा लोडिंग की निगरानी नहीं की गई' जैसी टिप्पणियों के साथ नहीं थीं।

10. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, दावा याचिका (याचिकाएँ), ऊपर बताए गए मामले, 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र (याचिकाओं)' के आधार पर योजित किए गए थे।

11. तर्कों के समर्थन में, बीपीसीएल ने एक मामले यानी केस नंबर ओसी0400030 को छोड़कर हलफनामे के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत किए।

12. साक्ष्य के हलफनामे बीपीसीएल की साइडिंग पर मौजूद किसी जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा दाखिल नहीं किए गए थे, जहाँ से पेट्रोलियम उत्पाद को वैगन में लोड किया गया था और जिसे बाद में बीपीसीएल द्वारा बताए गए स्थान पर पहुंचाया गया था और मामले के इस पहलू को निम्नलिखित विवरणों से नोट किया जा सकता है:-

(i) केस नंबर ओए/आई/04/09 में, साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट नंबर 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, यूपी के कार्यालय में योजित किया गया था।

(ii) वाद संख्या ओए/आई/07/09 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दाखिल किया गया था।

(iii) वाद संख्या ओ.सी./आई/10/2010 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दाखिल किया गया था।

(iv) वाद संख्या ओए/आई/32/2012 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दाखिल किया गया था।

(v) वाद संख्या ओए/आई/33/2012 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत

पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दाखिल किया गया था।

(vi) वाद संख्या ओए/आई/03/14 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा द्वारा महाप्रबंधक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर-1, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कार्यालय में दाखिल किया गया था।

(vii) वाद संख्या ओसी/आई/04/00030 में BPCL का साक्ष्य का हलफनामा दाखिल नहीं किया गया था।

(viii) वाद संख्या ओसी/आई/04/00045 में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक-दावा, महाप्रबंधक कार्यालय, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, प्लॉट संख्या 5 और 6, सेक्टर -1, नोएडा, यूपी द्वारा योजित किया गया था।

13. सभी दावा याचिकाओं में बीपीसीएल के दावे का रेलवे द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष विरोध किया गया। इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि रेलवे ने रेलवे अधिनियम, 1989 (संक्षेप में "1989 का अधिनियम") के प्रावधानों और रेलवे रसीदों तथा 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र' पर टिप्पणियों के आधार पर बीपीसीएल के दावे का विरोध किया तथा उसी के आधार पर रेलवे ने कहा कि रेलवे प्रशासन पर कोई दायित्व नहीं

है। न्यायाधिकरण के समक्ष रेलवे का पक्ष यह था कि पेट्रोलियम उत्पाद रेलवे की साइडिंग पर लोड नहीं किया गया था तथा लोडिंग की निगरानी रेलवे के माल क्लर्क/कर्मचारियों द्वारा नहीं की गई थी तथा इसे रेलवे प्रशासन द्वारा रेलवे प्रशासन से संबंधित साइडिंग पर डिलीवर किया जाना था तथा तदनुसार, रेलवे, कानून के अनुसार, माल युक्त वैगनों को इंटरचेंज के निर्दिष्ट बिंदु पर रखे जाने के पश्चात किसी भी कारण से होने वाले ऐसे माल के किसी भी नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं होगा। रेलवे ने बीपीसीएल के दावों को यह कहते हुए नकार दिया कि लोडिंग, सीलिंग और वाल्व आदि को कसने का काम हमेशा बीपीसीएल या उसके कर्मचारियों द्वारा बीपीसीएल से संबंधित साइडिंग पर किया जाता है और रेलवे रसीदें टिप्पणियों के साथ जारी की जाती हैं, जैसे 'एस/सी' ('शामिल है'), 'एसडब्ल्यू' ('प्रेषक का वजन स्वीकृत') 'लोडिंग रेलवे स्टाफ द्वारा निगरानी में नहीं की गई' और इस तरह 1989 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और इन टिप्पणियों को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि रेलवे ट्रांसशिपमेंट/परिवहन के दौरान होने वाले किसी भी नुकसान, यदि कोई हो, के लिए जिम्मेदार नहीं होगा।

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पेट्रोलियम उत्पाद बीपीसीएल द्वारा रेलवे प्रशासन से संबंधित साइडिंग में लोड किया गया था, जिसे रेलवे द्वारा ले जाया जा सकता था और बीपीसीएल द्वारा वैगनों में लोड किए गए पेट्रोलियम उत्पाद की गणना या निगरानी के लिए रेलवे द्वारा बीपीसीएल की साइडिंग में

माल क्लर्क या किसी अन्य कर्मचारी को तैनात नहीं किया गया था, साथ ही 1989 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और रसीदों और 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र' पर टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायाधिकरण ने बीपीसीएल के दावे को खारिज कर दिया, जैसा कि अपील किए गए आदेश से पता चलता है।

15. अपील किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए, अपीलकर्ता/भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता मोहम्मद एहतेशाम खान ने कहा कि न्यायाधिकरण बीपीसीएल के दावे को खारिज करते समय प्रासंगिक प्रावधानों यानी 1989 के अधिनियम की धारा 93, 94 और 110 पर विचार करने और उनकी विवेचना करने में विफल रहा। उन्होंने यह भी कहा कि पेट्रोलियम उत्पाद की कमी 'संयुक्त डिप सर्टिफिकेट' से स्पष्ट थी और यह प्रतिवादी और/या उनके कर्मचारियों/एजेंटों की ओर से गलत व्यवहार, लापरवाही, असावधानी और कदाचार के कारण थी और इसके बावजूद, न्यायाधिकरण ने बीपीसीएल के दावे को पूरी तरह से मनमाने और यांत्रिक तरीके से खारिज कर दिया। बीपीसीएल ने कमी के बारे में अपने सबूत के दायित्व को पूरा नहीं किया और दूसरी ओर, रेलवे प्रशासन 1989 के अधिनियम की धारा 93, 94 और 110 के अंतर्गत आवश्यक सबूत के दायित्व को पूरा करने में विफल रहा। इस प्रकार, आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है और अपील को रेलवे को यह निर्देश देते हुए स्वीकृत किया जा सकता है कि वह दावा याचिका में दावा की गई राशि को उचित ब्याज के साथ भुगतान करे।

16. अपने तर्क के समर्थन में, श्री खान ने दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा एफएओ संख्या 249/2016 (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड) में दिनांक 12.01.2018 को पारित निर्णय और इस न्यायालय द्वारा आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 182/2003 (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन) में दिनांक 14.02.2013 को पारित निर्णय पर भरोसा किया।

17. अपील का विरोध करते हुए, रेलवे की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार वर्मा और श्री महेंद्र कुमार मिश्रा ने कहा कि न्यायाधिकरण के समक्ष सभी दावा याचिकाओं का लिखित बयान दाखिल करके विरोध किया गया था और लिखित बयान में ली गई दलीलों के समर्थन में, कुछ मामलों में साक्ष्य के हलफनामे भी दाखिल किए गए थे। लिखित बयानों में ली गई दलीलों और 1989 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों तथा 'संयुक्त डिप सर्टिफिकेट' और रेलवे रसीद पर की गई टिप्पणियों को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि रेलवे प्रशासन पर कोई दायित्व नहीं अधिरोपित किया जा सकता है।

18. आगे कहा गया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र' के अनुसार, बीपीसीएल द्वारा टैंक/वैगन में लोड की गई सामग्री उपयुक्त नहीं पाई गई। हालांकि, तथ्य यह है कि प्रेषक अर्थात् बीपीसीएल ने बीपीसीएल से संबंधित साइडिंग में सामग्री लोड की और इसके लिए रसीदें योग्य टिप्पणियों अर्थात् 'एस/सी' (शामिल हैं), 'एसडब्ल्यू' (प्रेषक

का वजन स्वीकृत), 'रेलवे कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई लोडिंग' के अंतर्गत जारी की गई और उक्त टिप्पणियों के मददेनजर और साथ ही 'संयुक्त डिप प्रमाण पत्र' पर टिप्पणी, जिसे बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया गया था, विशेष रूप से टिप्पणी 'आरए 1989 एआर 94 (II) के अनुसार रेलवे किसी भी कमी के लिए जिम्मेदार नहीं है', रेलवे किसी भी कमी या नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं है और ऐसा होने के कारण, न्यायाधिकरण ने बीपीसीएल के दावे को सही ढंग से खारिज कर दिया और इसलिए न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने योग्य नहीं हैं।

19. रेलवे के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:-

(i) भारत संघ बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल: एआईआर 1988 उड़ीसा 113;

(ii) यूनियन ऑफ इंडिया बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड: (2004) 12 एपी सीके 0115;

(iii) यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड: 1986 एलएडब्लू एसयूआईटी (ओआरआई) 79;

(iv) स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया: 2017 में रिपोर्ट: डीएचसी:4760।

20. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

21. मामले की उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के समक्ष बिन्दु यह है कि 'क्या बीपीसीएल के दावे, 'संयुक्त डिप प्रमाणपत्र' के आधार पर, ऊपर बताए गए मामले में न्यायाधिकरण द्वारा सही रूप से खारिज किए गए थे।'

22. वर्तमान अपील (ओं) में शामिल उपरोक्त बिन्दु पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, यह न्यायालय अधिनियम, 1989 के कुछ प्रावधानों और भारतीय रेलवे वाणिज्यिक मैनुअल के प्रासंगिक पैराग्राफ को संदर्भित करना उचित समझता है, जिन्हें इंगित किया गया है।

**रेलवे अधिनियम, 1989 के सुसंगत प्रावधान**

धारा 62. माल प्राप्त करने आदि के लिए शर्तें।

(1) रेलवे प्रशासन किसी माल की प्राप्ति, अग्रोषण, वहन या सुपुर्दगी के संबंध में ऐसी शर्तें लगा सकता है, जो इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम से असंगत न हों।

(2) रेलवे प्रशासन प्रत्येक स्टेशन पर तथा ऐसे अन्य स्थानों पर, जहां माल परिवहन के लिए प्राप्त किया जाता है, उपधारा (1) के अधीन वर्तमान में

लागू शर्तों की एक प्रति रखेगा तथा उन्हें किसी भी व्यक्ति के संदर्भ के लिए सभी उचित घंटों के दौरान बिना किसी शुल्क के उपलब्ध कराएगा।

**धारा 63. जोखिम दरों का प्रावधान।**

(1) जहां कोई माल परिवहन के लिए रेलवे प्रशासन को सौंपा जाता है, वहां ऐसा परिवहन, सिवाय जहां ऐसे माल के संबंध में स्वामी की जोखिम दर लागू होती है, रेलवे जोखिम दर पर होगा।

(2) कोई भी माल, जिसके लिए स्वामी की जोखिम दर तथा रेलवे जोखिम दर लागू है, किसी भी दर पर परिवहन के लिए सौंपा जा सकता है तथा यदि कोई दर नहीं चुनी जाती है, तो माल को परिवहन के लिए सौंपा गया माना जाएगा कि स्वामी की जोखिम दर पर सौंपा गया है।

**धारा 64. अग्रोषण नोट.—**

(1) प्रत्येक व्यक्ति जो किसी माल को परिवहन के लिए रेलवे प्रशासन को सौंपता है, वह ऐसे प्रारूप में अग्रोषण नोट निष्पादित करेगा जैसा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है:

बशर्ते कि ऐसे माल के मामले में कोई अग्रोषण नोट निष्पादित नहीं किया जाएगा, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।



(2) प्रेषक, अग्रोषण नोट में उसके द्वारा दिए गए विवरणों की शुद्धता के लिए जिम्मेदार होगा।

साबित करने का भार प्रेषक, प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता पर होगा।

**धारा:73 वैगन में अधिक भार लाने के लिए दंडात्मक प्रभार।**

(3) प्रेषक, अग्रोषण नोट में विवरणों की अशुद्धता या अपूर्णता के कारण रेलवे प्रशासन को हुई किसी भी क्षति के लिए क्षतिपूर्ति करेगा।

जहां कोई व्यक्ति वैगन में उपधारा (2) या उपधारा (3) के अंतर्गत प्रदर्शित या धारा 72 की उपधारा (4) के अंतर्गत अधिसूचित उसकी अनुमेय वहन क्षमता से अधिक माल लोड करता है, वहां रेलवे प्रशासन माल की डिलीवरी से पहले, माल ढुलाई और अन्य शुल्कों के अतिरिक्त, प्रेषक, प्रेषक या पृष्ठांकितकर्ता से, जैसा भी मामला हो, निर्धारित दरों पर दंड के रूप में शुल्क वसूल कर सकता है:

**धारा 65. रेलवे रसीद-**

(1) रेलवे प्रशासन,-

(क) ऐसे मामले में जहां माल को ऐसे माल को सौंपने वाले व्यक्ति द्वारा लोड किया जाना है, ऐसे लोडिंग के पूरा होने पर; या

(ख) किसी अन्य मामले में, उसके द्वारा माल को स्वीकार करने पर, केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्दिष्ट प्रारूप में रेलवे रसीद जारी करेगा।

बशर्ते कि रेलवे प्रशासन के लिए वैगन की क्षमता से अधिक लोड किए गए माल को उतारना वैध होगा, यदि उसे अग्रोषण स्टेशन पर या गंतव्य स्टेशन से पहले किसी स्थान पर पाया जाता है और इस कारण किसी वैगन को रोके रखने के लिए किसी भी तरह के शुल्क और ऐसी उतराई की लागत वसूल करना।

(2) रेलवे रसीद, उसमें वर्णित वजन और पैकेजों की संख्या का प्रथम दृष्टया साक्ष्य होगी:

बशर्ते कि वैगन-लोड या ट्रेन-लोड में किसी माल की स्थिति में और वजन या पैकेजों की संख्या की जाँच इस निमित्त प्राधिकृत किसी रेलवे कर्मचारी द्वारा नहीं की जाती है, और उस रेलवे रसीद में उसके द्वारा इस आशय का कथन दर्ज किया जाता है, तो वजन या, जैसा भी मामला हो, उसमें वर्णित पैकेजों की संख्या को

**धारा 78. मापने, तौलने आदि की शक्ति**

रेलवे रसीद में निहित किसी भी बात के बावजूद, रेलवे प्रशासन को माल की डिलीवरी से पहले, निम्नलिखित का अधिकार हो सकता है-

(i) किसी भी माल को फिर से मापने,  
फिर से तौलने या फिर से वर्गीकृत करने का;

(ii) माल ढुलाई और अन्य शुल्कों की  
पुनः गणना करना; और

(iii) किसी अन्य त्रुटि को ठीक करना  
या कोई राशि वसूल करना जिसे वसूलने में  
चूक हुई हो।

**धारा 79. माल प्राप्तकर्ता या  
पृष्ठांकित के अनुरोध पर माल का वजन  
करना।**

रेल प्रशासन, माल प्राप्तकर्ता या  
पृष्ठांकित द्वारा किए गए अनुरोध  
पर, ऐसी शर्तों के अधीन और  
निर्धारित किए जा सकने वाले शुल्कों  
और विलंब शुल्क, यदि कोई हो, के  
भुगतान पर माल का वजन करने की  
अनुमति दे सकता है:

बशर्ते कि ऐसे मामलों को छोड़कर,  
जहां इस संबंध में प्राधिकृत रेल सेवक  
ऐसा करना आवश्यक समझता है,  
स्वामी के जोखिम दर पर बुक किए  
गए माल या ऐसे माल का वजन  
करने की अनुमति नहीं दी जाएगी जो  
जल्दी खराब हो जाएं और पारगमन में  
वजन कम होने की संभावना हो:

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि  
यदि यार्ड में भीड़भाड़ या निर्धारित की  
जा सकने वाली अन्य परिस्थितियों के  
कारण वजन करना संभव नहीं है, तो  
वैगन-लोड या ट्रेन-लोड में माल के  
वजन के लिए कोई अनुरोध नहीं किया  
जाएगा।

**धारा 93. माल के वाहक के रूप में  
रेल प्रशासन की सामान्य जिम्मेदारी।**

इस अधिनियम में अन्यथा प्रावधान  
के सिवाय, रेलवे प्रशासन  
निम्नलिखित कारणों को छोड़कर  
किसी भी कारण से होने वाली किसी  
भी खेप की हानि, विनाश, क्षति या  
गिरावट या डिलीवरी न होने के लिए  
जिम्मेदार होगा: -

(क) दैवीय कृत्य;

(ख) युद्ध का कार्य;

(ग) सार्वजनिक शत्रुओं का कृत्य;

(घ) कानूनी प्रक्रिया के अंतर्गत  
गिरफ्तारी, रोक या जब्ती;

(ङ) केंद्र सरकार या राज्य सरकार  
द्वारा या केंद्र सरकार या राज्य  
सरकार के अधीनस्थ किसी अधिकारी  
या प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में  
प्राधिकृत आदेश या प्रतिबंध;

(च) प्रेषक या प्रेषक या पृष्ठांकितकर्ता  
या प्रेषक या पृष्ठांकितकर्ता के एजेंट  
या सेवक का कृत्य या चूक या  
लापरवाही;

(छ) माल में निहित दोष, गुणवत्ता या  
दोष के कारण थोक या वजन में  
प्राकृतिक गिरावट या बर्बादी;

(ज) अव्यक्त दोष;

(i) आग, विस्फोट या कोई  
अप्रत्याशित जोखिम:

बशर्ते कि जहां भी यह साबित हो जाए  
कि ऐसी हानि, विनाश, क्षति, हास या

गैर-डिलीवरी उपरोक्त किसी एक या अधिक कारणों से उत्पन्न हुई है, वहां रेलवे प्रशासन तब तक हानि, विनाश, क्षति, हास या गैर-डिलीवरी के लिए अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा जब तक कि रेलवे प्रशासन यह साबित न कर दे कि उसने माल की दुलाई में उचित दूरदर्शिता और सावधानी बरती है।

**धारा 94. रेलवे प्रशासन से संबंधित न होने वाली साइडिंग पर माल का लदान या वितरण।-**

(1) जहां रेलवे द्वारा परिवहन के लिए रेलवे प्रशासन से संबंधित न होने वाली साइडिंग पर माल का लदान किया जाना आवश्यक है, वहां रेलवे प्रशासन किसी भी कारण से ऐसे माल की किसी भी हानि, विनाश, क्षति या हास के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, जब तक कि माल युक्त वैगन को साइडिंग और रेलवे प्रशासन के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर नहीं रखा जाता है और इस संबंध में अधिकृत रेलवे कर्मचारी को साइडिंग के मालिक द्वारा लिखित रूप में सूचित नहीं किया जाता है।

(2) जहां किसी माल को रेलवे प्रशासन द्वारा रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं किसी साइडिंग पर वितरित किया जाना अपेक्षित है, वहां रेलवे प्रशासन किसी भी नुकसान, विनाश, क्षति या

गिरावट या किसी भी कारण से ऐसे माल की गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, जो माल युक्त वैगन को रेलवे और साइडिंग के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर रखे जाने के बाद उत्पन्न होता है और साइडिंग के मालिक को इस संबंध में अधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा तदनुसार लिखित रूप में सूचित किया गया है।

**धारा 97. मालिक की जोखिम दर पर ले जाया गया माल।**

धारा 93 में निहित किसी भी बात के बावजूद, रेलवे प्रशासन, मालिक के जोखिम दर पर ले जाए जा रहे किसी भी माल की पारगमन में किसी भी हानि, विनाश, क्षति, हास या गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हो, सिवाय इसके कि यह साबित हो जाए कि ऐसी हानि, विनाश, क्षति, हास या गैर-डिलीवरी उसकी ओर से या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार के कारण हुई थी:

बशर्ते कि-

(क) जहां ऐसी पूरी खेप या ऐसी खेप का हिस्सा बनने वाले किसी भी पैकेज की पूरी डिलीवरी, प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकित को नहीं की जाती है और ऐसी गैर-डिलीवरी को रेलवे प्रशासन

द्वारा आग लगने या ट्रेन में किसी दुर्घटना के कारण साबित नहीं किया जाता है; या

(ख) जहां किसी ऐसे माल या ऐसे माल का हिस्सा बनने वाले किसी पैकेज के संबंध में जो इस तरह से ढका या संरक्षित था कि वह आवरण या संरक्षण हाथ से आसानी से हटाया नहीं जा सकता था, डिलीवरी के समय या उससे पहले रेल प्रशासन को यह बताया जाता है कि उस माल या पैकेज का कोई हिस्सा पारगमन में चुराया गया था,

तो रेल प्रशासन माल भेजने वाले, प्राप्त करने वाले या पृष्ठांकितकर्ता को यह बताने के लिए बाध्य होगा कि माल या पैकेज के साथ उस समय तक कैसे व्यवहार किया गया जब वह उसके कब्जे या नियंत्रण में था, लेकिन यदि रेल प्रशासन या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार का ऐसे खुलासे से उचित अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, तो ऐसी लापरवाही या कदाचार को साबित करने का भार माल भेजने वाले, प्राप्त करने वाले या पृष्ठांकितकर्ता पर होगा।"

**भारतीय रेल वाणिज्यिक मैनुअल खंड II के प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैं:-**

**1529. सहायता प्राप्त या निजी साइडिंग में माल की लोडिंग और अनलोडिंग।-**(क) जहां कोई माल क्लर्क

सहायता प्राप्त निजी साइडिंग में तैनात है, और उसका वेतन और अन्य व्यय यदि माल का मालिक लागत का भुगतान करता है, तो माल की लोडिंग की निगरानी और मिलान माल क्लर्क द्वारा किया जाएगा, और लोड किए गए पैकेजों की विशिष्ट संख्या के लिए रेलवे रसीदें दी जाएंगी। इसी तरह, आने वाले माल की उतराई की निगरानी और मिलान भी माल क्लर्क द्वारा किया जाएगा (पैरा 2513 भी देखें)।

(ख) जहां कोई माल क्लर्क तैनात नहीं है, वहां किसी सहायता प्राप्त निजी साइडिंग में लोड किए गए माल को अन्य किसी माल की तरह ही सेवारत स्टेशन पर बुक किया जाएगा। हालांकि, चूंकि लोडिंग की निगरानी रेलवे कर्मचारियों द्वारा नहीं की जाती है, और साथ ही पहले से लोड किए गए वैगन की सटीक जांच करने में कठिनाई को देखते हुए, ऐसे मामलों में केवल "कथित सामग्री" रसीद दी जानी चाहिए, रसीद पर 'रेलवे कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई लोडिंग और न ही सामग्री की जांच की गई है।'

**1582. पी.ओ.एल. यातायात का ट्रांसशिपमेंट-** (क) जहां रिसाव, दुर्घटना या किसी अन्य कारण से पेट्रोलियम या अन्य ज्वलनशील तरल पदार्थों से भरे टैंक वैगन की सामग्री को ट्रांसशिप

करना आवश्यक हो जाता है, तो ट्रांसशिपमेंट के लिए उपयुक्त क्षमता का एक नया टैंक वैगन व्यवस्थित किया जाना चाहिए। संदूषण के कारण माल को नुकसान की संभावनाओं को कम करने के लिए ताजा लंक मूल टैंक के समान ही होना चाहिए।

(ख) चूंकि टेल वैगनों में ऐसे यातायात का ट्रांसशिपमेंट प्रेषकों [प्रेषितियों] द्वारा किया जाना अपेक्षित है, इसलिए प्रेषकों को ट्रांसशिपमेंट के समय अपने प्रतिनिधि की उपस्थिति की तत्काल व्यवस्था करने के लिए टेलीग्राफ किया जाना चाहिए। ट्रांसशिपमेंट के दौरान सभी सावधानियां बरतने की जिम्मेदारी तेल कंपनियों के प्रतिनिधियों की है। हालांकि, स्टेशन स्टाफ को ट्रांसशिपमेंट किए जाने वाले क्षेत्र को घेरने के लिए प्रेषकों के प्रतिनिधि को सभी आवश्यक सहायता देनी चाहिए।

(ग) ऐसे टैंक वैगनों के ट्रांसशिपमेंट का प्रमाण पत्र तेल कंपनियों के प्रतिनिधि और स्टेशन मास्टर द्वारा रेलवे प्रशासन द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित प्रपत्र में संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित किया जाना चाहिए, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ ट्रांसशिपमेंट से पहले और बाद में सामग्री की डिप, विशिष्ट गुरुत्व और तापमान को फॉर्म पर दर्ज किया जाना आवश्यक है। स्टेशन मास्टर को

ट्रांसशिपमेंट शुरू होने से पहले क्षतिग्रस्त टैंक वैगन की 'डिप' आदि और ट्रांसशिपमेंट पूरा होने से पहले नए टैंक वैगन की भी व्यक्तिगत रूप से पुष्टि करनी चाहिए। प्रमाण पत्र की एक प्रति, ऊपर बताए अनुसार विधिवत हस्ताक्षरित, स्टेशन रिकॉर्ड के रूप में रखी जानी चाहिए।

(घ) पेट्रोलियम या अन्य ज्वलनशील तरल पदार्थों से युक्त टैंक वैगनों के ट्रांसशिपमेंट के मामले में पैरा 1581 में निर्धारित ट्रांसशिपमेंट सलाह आदि जारी करने के संबंध में अन्य निर्देश भी लागू होते हैं।

**1919.** डिपो या अन्य स्थानों पर, जहां विशेष रूप से व्यवस्था की गई है, माल क्लर्क रेलवे सामग्री और भंडार की लोडिंग को देखेंगे। ऐसे मामले में, वास्तव में लोड की गई वस्तुओं की संख्या के लिए रसीदें प्रेषण अधिकारी को दी जानी चाहिए। ऐसी खेपों का मिलान और वजन करने तथा वैगनों को स्केल करने और रिवेट करने की जिम्मेदारी, जहां आवश्यक हो, सार्वजनिक यातायात के लिए स्टेशन कर्मचारियों पर है।

**1920.** हालांकि, अन्य स्थानों पर, जहां माल क्लर्कों की व्यवस्था नहीं की गई है, विभागों द्वारा अपनी साइडिंग में लोड की गई रेलवे सामग्री और भंडार युक्त वैगन को संबंधित

डिपो द्वारा अपनी वैगन सील के साथ स्वतंत्र रूप से सील और रिबेट किया जाएगा। स्टेशन कर्मचारी अग्रोषण स्टेशनों पर 'रसीद रखने वाली रसीदें' प्रदान करेंगे। इसलिए रसीदों पर "प्रेषक द्वारा सीलबंद और रिबेट किया हुआ" दर्शाया जाना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि .....

**1921. रेलवे सामग्री और भंडार के लिए बाहरी पुस्तकें।** - स्टेशन से जारी रेलवे सामग्री और भंडार के चालानों को रिकॉर्ड करने के लिए स्थानीय और थू ट्रैफिक दोनों के लिए अलग-अलग बाहरी पुस्तकें (पैरा 2008 देखें) रखी जानी चाहिए। इन पुस्तकों को चालानों के रिकॉर्ड फ़ॉइल से प्रतिदिन पोस्ट किया जाना चाहिए, जिन्हें उनके जारी होने के क्रम में दर्ज किया जाना चाहिए, यानी उनके मुद्रित मशीन नंबरों के क्रम में।

**2515. (ए)** जहां साइडिंग में कोई अलग माल क्लर्क तैनात नहीं है, साइडिंग में लोड किए गए बाहरी माल को किसी अन्य माल की तरह ही सेवारत स्टेशन पर बुक किया जाएगा। हालांकि, पहले से लोड किए गए वैगन/वाहन की सटीक जांच करने में कठिनाई के कारण, 'कथित रूप से शामिल' रेलवे रसीद उन सभी मामलों में दी जाएगी जिनमें ऐसी जांच नहीं की गई है। आवक यातायात के मामले

में, बुक डिलीवरी रेलवे रसीद और माल ढुलाई तथा अन्य शुल्कों के संग्रह के बाद प्रभावित होगी, जो सेवारत स्टेशन पर फ़ाइल वैगनों को साइडिंग में रखे जाने से पहले इंटरचेंज के बिंदु पर निर्धारित की जाती है। माल क्लर्क न तो बाहरी माल की लोडिंग और न ही आवक माल की अनलोडिंग की निगरानी करेगा। (ख) किसी भी परिस्थिति में, वैगनों को साइडिंग में या इंटरचेंज के बिंदु पर नहीं रखा जाना चाहिए, जहां निर्धारित किया गया है, जब तक कि बुक डिलीवरी प्रभावी नहीं हो जाती है और सेवारत स्टेशन पर माल ढुलाई और अन्य शुल्क एकत्र नहीं किए जाते हैं। समझौते में दिए गए समय के भीतर स्टेशन पर आवक वैगन वाहनों के पहुंचने के बाद साइडिंग उपयोगकर्ता द्वारा बुक डिलीवरी करने में विफल रहने की स्थिति में, समय-समय पर निर्धारित अनुसार सामान्य विलंब शुल्क लगाया जाना चाहिए।

नोट.—रेलवे प्रशासन बुक डिलीवरी को प्रभावित किए बिना तथा मालभाड़ा और अन्य देय शुल्क वसूल किए बिना वैगनों को रखने की अनुमति दे सकता है, विशेष मामलों में, जहां परिचालन या अन्य कारणों से उपरोक्त (बी) में निहित अनुदेश को सख्ती से लागू करना संभव नहीं है। ऐसे मामलों में, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वैगनों को साइडिंग में रखे जाने के तुरंत बाद बुक डिलीवरी को प्रभावित

करने और देय शुल्क वसूलने में कोई देरी न हो।

(सी) यदि स्थान की अनुमति हो, तो साइडिंग उपयोगकर्ता को स्टेशन पर या साइडिंग की सेवा करने वाले माल शेड में माल उतारने का विकल्प दिया जा सकता है। ऐसे मामलों में, जब माल की डिलीवरी नहीं ली जाती है और इस उद्देश्य के लिए अनुमत खाली समय के भीतर उसे हटा दिया जाता है, तो घाटशुल्क शुल्क लगाया जाना चाहिए।

(घ) दोषपूर्ण सील, कटे हुए पैन्ल आदि के साथ सेवारत स्टेशन पर पहुंचने वाले आवक वैगनों/वाहनों को साइडिंग में तब तक नहीं रखा जाना चाहिए जब तक कि स्टेशन/माल शेड पर उनकी जांच न कर ली जाए।"

23. अधिनियम 1989 की धारा 94 और धारा 97 सहित उपर्युक्त उद्धृत वैधानिक प्रावधानों से जो बात सामने आई, जो वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक होगी, वह इस प्रकार है:-

(i) प्रेषक, अग्रेषण नोट में उसके द्वारा प्रस्तुत विवरणों की शुद्धता के लिए जिम्मेदार होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि रसीद (ओं) में प्रविष्टियां 'एफ/नोट' (अग्रेषण नोट) को इंगित करती हैं। [धारा 64 की उप-धारा 2]

(ii) यदि इस संबंध में प्राधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा वजन या पैकेजों की संख्या की जांच नहीं की जाती है और इस आशय का कथन

रेलवे में दर्ज किया जाता है, तो उसमें बताए गए वजन या, जैसा भी मामला हो, ऐसी रेलवे रसीद में पैकेजों की संख्या को साबित करने का भार प्रेषक, प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता पर होगा। यह इस तथ्य के मद्देनजर है कि रसीदें जिसमें टिप्पणी है कि 'रेलवे कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई' रेलवे द्वारा जारी की गई थीं। [धारा 65 की उप-धारा 2]

(iii) प्रेषक या प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता या प्रेषक या पृष्ठांकितकर्ता के एजेंट या कर्मचारी के कार्य या चूक या लापरवाही और माल के अंतर्निहित दोष, गुणवत्ता या दोष के कारण थोक या वजन में प्राकृतिक गिरावट या बर्बादी पर विचार किया जाना आवश्यक है। [धारा 93 की उपधारा (एफ) और (जी)]

(iv) धारा 93 का प्रावधान यह दर्शाता है कि यदि यह साबित हो जाता है कि हानि, विनाश, क्षति, हास या गैर-डिलीवरी धारा 93 के अंतर्गत बताए गए किसी एक या अधिक कारणों से हुई है, तो रेलवे प्रशासन हानि, विनाश, क्षति, हास या गैर-डिलीवरी के लिए अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा और उसके बाद यह साबित करने की जिम्मेदारी रेलवे प्रशासन की होगी कि उसने माल की दुलाई में उचित दूरदर्शिता और सावधानी बरती है। इस प्रकार, पहले दावेदार को अपना दावा साबित करना होगा और उसके बाद रेलवे प्रशासन पर जिम्मेदारी आ जाएगी।

(v) धारा 94(2) के अनुसार, जहां रेलवे प्रशासन द्वारा माल को रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं होने वाली साइडिंग पर पहुंचाना

आवश्यक है, रेलवे प्रशासन माल के किसी भी नुकसान, विनाश, क्षति या गिरावट या किसी भी कारण से होने वाली गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, जो माल युक्त वैगन को रेलवे और साइडिंग के बीच वैगन के इंटरचेंज के निर्दिष्ट बिंदु पर रखे जाने के बाद उत्पन्न होता है, इस संबंध में अधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा लिखित रूप से सूचित किया गया है। धारा 94(1) का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा, जो रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं होने वाली साइडिंग पर लोड किए गए माल से संबंधित है।

(vi) धारा 97 गैर-बाधा खंड से शुरू होती है। इसमें कहा गया है कि धारा 93 में निहित किसी भी बात के बावजूद, रेलवे प्रशासन, मालिकों के जोखिम दर पर ले जाए जाने वाले किसी भी माल की, चाहे किसी भी कारण से, पारगमन में किसी भी नुकसान, विनाश, क्षति, गिरावट या गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, सिवाय इसके कि यह साबित हो जाए कि ऐसा नुकसान, विनाश, क्षति, गिरावट या गैर-डिलीवरी उसके या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार के कारण हुई थी। इस धारा का प्रावधान (बी) यह भी इंगित करता है कि यदि रेलवे प्रशासन या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार को ऐसे प्रकटीकरण से निष्पक्ष रूप से अनुमानित नहीं किया जा सकता है, तो ऐसी लापरवाही या कदाचार को साबित करने का भार प्रेषक, माल प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता पर होगा। इस मामले के दृष्टिकोण से, रेलवे कर्मचारियों की लापरवाही या कदाचार के कारण नुकसान, विनाश, क्षति, गिरावट या गैर-

डिलीवरी को साबित करने का भार दावेदार पर है।

(vii) भारतीय रेलवे वाणिज्यिक मैनुअल खंड II के पैरा 1529, विशेष रूप से उप पैरा (बी) में यह प्रावधान है कि यदि लोडिंग की निगरानी रेलवे स्टाफ द्वारा नहीं की जाती है, तो ऐसी स्थिति में 'कथित सामग्री' वाली रसीद जारी की जानी चाहिए, साथ ही यह भी लिखा होना चाहिए कि 'लोडिंग की निगरानी रेलवे स्टाफ द्वारा नहीं की गई है और न ही सामग्री की जांच की गई है।'

(viii) पैरा 1920 में यह भी दर्शाया गया है कि जहां माल क्लर्क उपलब्ध नहीं हैं, वहां स्टेशन स्टाफ अग्रेषण स्टेशनों पर 'कथित सामग्री' वाली रसीदें प्रदान करेगा।

(ix) पैरा 2515 का उप-पैरा (ए) भी इसी प्रकार का संकेत देता है। इस पैरा के अनुसार, जहां साइडिंग में कोई अलग माल क्लर्क तैनात नहीं है, वहां पहले से लोड किए गए वैगन/वाहन की सटीक जांच करना बहुत मुश्किल है, सभी मामलों में 'कथित सामग्री' वाली रेलवे रसीद दी जाएगी। माल क्लर्क न तो किसी माल की लोडिंग की निगरानी करेगा और न ही अनलोडिंग की।

24. अब हम उस निर्णय पर आते हैं, जिस पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा जताया है।

25. एफएओ संख्या 249/2019 (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स स्टील अथॉरिटी ऑफ



इंडिया लिमिटेड) में पारित दिनांक 12.01.2018 के निर्णय में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने रेलवे दावा न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती देने वाली अपील को खारिज कर दिया। यह निर्णय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा उन तथ्यों पर ध्यान देने के बाद पारित किया गया था जो इस प्रकार हैं कि हॉट रोल्ड शीट्स (एचआर शीट्स) के 8 पैकेट रेलवे रसीद दिनांक 18.11.2008 के अंतर्गत बुक किए गए थे और उन्हें आरपीएफ कर्मचारियों द्वारा 19.11.2008 और फिर 24.11.2008 को चेक किया गया था और आरपीएफ कर्मचारियों ने दर्ज किया था कि वैगन में एचआर शीट्स के 8 बंडल थे और उसके बाद 28.11.2008 को गंतव्य पर केवल 5 पैकेट एचआर शीट्स पाए गए और साथ ही 19.11.2008 को वैगन को रेलवे को सौंप दिया गया, जो रेलवे की निगरानी में रहा और उसे वापस प्लॉट में नहीं ले जाया गया।

26. दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट है कि ट्रिब्यूनल के समक्ष दावेदार अर्थात् मेसर्स स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड ने अपना मामला साबित कर दिया कि एचआर शीट के 8 बंडल रेलवे को सौंपे गए थे और इसलिए ट्रिब्यूनल ने दावेदार के पक्ष में आदेश पारित किया और दिल्ली उच्च न्यायालय ने भी इसकी पुष्टि की।

27. एफएफओडी संख्या 182/2003 (यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन) में पारित दिनांक 14.02.2013 के निर्णय में, इस न्यायालय ने रेलवे की अपील को खारिज करते हुए और ट्रिब्यूनल के आदेश

की पुष्टि करते हुए, जो इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के पक्ष में था, यह टिप्पणी की कि "डिप माप प्रतिवादियों और रेलवे के कर्मचारियों द्वारा संयुक्त रूप से लिया गया था और उसके बाद, रेलवे की रसीद जारी की गई थी जिसमें परिवहन किए जाने वाले माल की मात्रा का उल्लेख किया गया था। पारगमन जोखिम रेलवे का था" और उसके बाद टिप्पणी की कि "धारा 94 इस मामले में लागू नहीं होगी। इस प्रकार, इस मामले में भी दावेदार ने उस मात्रा के बारे में अपना मामला साबित कर दिया, जिसे लोड किया गया था और रेलवे रसीद में उल्लिखित गंतव्य तक परिवहन के लिए रेलवे को सौंप दिया गया था।

**28. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड, एमएएनयू/ओआर/ 0040/ 1987** के मामले में पारित निर्णय में; उड़ीसा उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि दावेदार ने रेलवे खेपों से निपटने वाले केवल एक गवाह अर्थात् दावा सहायक का परीक्षण किया था तथा दावेदार की कंपनी के दावों और इस गवाह ने अपने बयान में कहा कि "उसे रेनुकूट में प्रेषक की साइडिंग पर वैगन की वास्तविक लोडिंग के बारे में कोई जानकारी नहीं है" और साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया कि लोडिंग का स्थान रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं बल्कि प्रेषक का साइडिंग था, अपील को स्वीकार किया और ट्रिब्यूनल के आदेश में हस्तक्षेप किया, जो दावेदार कंपनी के पक्ष में था। इसके प्रासंगिक पैरा इस प्रकार हैं:-

"6. वादी-कंपनी पर यह स्थापित करने का दायित्व है कि वास्तव में अग्रेशन स्टेशन पर कितनी मात्रा बुक की गई थी। माल प्रेषक की अपनी साइडिंग पर बुक किया गया था और वादी की ओर से साक्ष्य का अभाव है और प्रतिवादी की ओर से यह स्वीकार नहीं किया गया है कि रेलवे कर्मचारियों की देखरेख में लोडिंग की गई थी।

7. एमएनयू/एनए/ 0101/1949: एआईआर 1950 नाग 85. डोमिनियन ऑफ इंडिया बनाम फर्म मुसराम किशनप्रसाद मेलोनीगंज, जुबलपुर में रिपोर्ट किया गया निर्णय, रेलवे माल टैरिफ सामान्य नियम 15 और 22 से संबंधित था। यह निर्धारित किया गया:

"इसके अलावा इस मामले में कोई सबूत नहीं है कि 255 बैग वास्तव में लोड किए गए थे। उस समय लागू माल टैरिफ सामान्य नियमों के नियम 22 के अनुसार, वैगन लोड होने पर नारियल को प्रेषक और प्राप्तकर्ता द्वारा लोड और अनलोड किया जाना आवश्यक था। वादी द्वारा यह कहीं भी नहीं कहा गया या साबित नहीं किया गया कि बैग रेलवे कर्मचारियों द्वारा लोड किए गए थे या उन्हें नंबर सत्यापित करने का अवसर मिला था। वैगन को प्रेषक के पास रखा गया था और बताई गई संख्या को भाड़ा वसूलने के उद्देश्य से सही माना गया

था। इस प्रकार जारी की गई रसीद ने यह कहते हुए संख्या को योग्य बना दिया कि वैगन में 255 बैग होने की बात कही गई थी। यह पूरी तरह से उचित और सही था, और संख्या का उल्लेख केवल भाड़ा की गणना करने के लिए किया गया था।

नियम 15 के अंतर्गत यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रेलवे रसीद में वजन आदि का उल्लेख करके, रेलवे कथन की सत्यता को स्वीकार नहीं करता है। यह नियम और भी अधिक कठोरता से लागू होता है, जहां रेलवे रसीद में इसके अतिरिक्त 'कहा गया है कि इसमें शामिल है' टिप्पणी शामिल है।"

एआईआर 1956 एमएडी 176, यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एस.एल.एल. लेखू रेड्डीर में यह निर्धारित किया गया है कि जहां माल वैगन में प्रेषक द्वारा लोड किया गया था, न कि रेलवे कर्मचारियों द्वारा और प्रेषक द्वारा दी गई जानकारी को भाड़ा वसूलने के उद्देश्य से सही माना जाता है और रसीद दी जाती है और गंतव्य स्टेशन पर कमी पाई जाती है, तो यह वादी को स्थापित करना है कि वास्तव में अग्रेशन स्टेशन पर ले जाने के लिए रेलवे को दिया गया माल क्या था।

जैसा कि एमएनयू/ ओआर/ 0059/ 1961, साउथ ईस्टर्न रेलवे बनाम ईपरी सत्यनारायण में निर्धारित

किया गया है, रेलवे रसीद रेलवे प्रशासन द्वारा इस बात की कोई स्वीकृति नहीं देती है कि रसीद में दिखाए गए माल का वजन या प्रेषक द्वारा प्रस्तुत माल का विवरण सही है। रेलवे रसीद में दिखाए गए माल की वास्तविक बुकिंग के साक्ष्य के अभाव में, रेलवे कम डिलीवरी के लिए उत्तरदायी नहीं है, जहां माल सही और बरकरार स्थिति में प्राप्त होता है। यह प्रेषक या प्राप्तकर्ता पर निर्भर करता है कि वे माल की वास्तविक बुकिंग के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत करें, क्योंकि ये तथ्य उनके विशेष ज्ञान में हैं।

8. कमी प्रमाण पत्र न तो दायित्व की स्वीकृति है और न ही प्राप्तकर्ता को डिलीवरी के समय के बारे में कोई उम्मीद देता है और यह केवल वास्तविक घटना का प्रमाण है कि वादी द्वारा बताए गए अनुसार कुछ माल या वस्तुएं कम हैं। कमी प्रमाण पत्र इस तथ्य का कोई सबूत नहीं है कि जिस मात्रा में माल भेजे जाने का दावा किया गया है, वह वास्तव में भेजा गया है, जब तक कि माल की मात्रा के प्रेषण का तथ्य वास्तव में स्थापित न हो जाए। इस संबंध में, एमएएनयू/ ओआर/0012/1963, यूनियन ऑफ इंडिया बनाम प्रकाश चौधरी साहू में निर्धारित सिद्धांतों का संदर्भ लिया जा सकता है।

एमएएनयू /बीएच/0081 /1973, यूनियन ऑफ इंडिया बनाम छोटेला शिवनाथ राय में यह निर्धारित किया

गया है कि जहां वैगन में लोड किए गए माल के वास्तविक वजन को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है - और लोडिंग प्रेषक द्वारा प्रेषण स्टेशन पर की गई थी, रेलवे प्रशासन गंतव्य पर पाई गई कम डिलीवरी के लिए उत्तरदायी नहीं है। माल ढुलाई प्रभार की गणना के प्रयोजन के लिए रेलवे रसीद और अग्रेषण नोट पर किसी विशेष भार का उल्लेख मात्र से, रेलवे की ओर से लोड किए गए माल के भार की शुद्धता के बारे में कोई स्वीकृति नहीं की जा सकती है, जिससे देयता तय की जा सके।

9. एमएएनयू /एनए/0101/1949 : एआईआर 1950 एनएजी 85 (उपरोक्त) और एआईआर 1956 एमएडी 176 (उपरोक्त) में रिपोर्ट किए गए निर्णयों को मंजूरी देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने एमएएनयू /एससी/0099/1969 : एआईआर 1970 एससी 843, हरि साव बनाम बिहार राज्य, जो "एस.डब्ल्यू.ए." अभिव्यक्ति से भी संबंधित है, में निम्नलिखित निर्धारित किया है:

".....ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वैगन में रखा गया माल मिर्च था, क्योंकि रेलवे ने माल को इस रूप में स्वीकार नहीं किया और इसे मिर्च से भरे 251 बैग के रूप में वर्णित किया। न ही रेलवे द्वारा माल के वजन को स्वीकार किया गया। 'एस.डब्ल्यू.ए.' का समर्थन

इस दलील को नकार देगा कि वजन रेलवे द्वारा स्वीकार किया गया था। 'एल/यू' के समर्थन ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि माल लदान और उतराई का काम माल भेजने वाले का है, इसलिए रेलवे को लदान या उतराई में किसी भी लापरवाही के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।"

एमएनएनयू /ओआर/0046/1984, ओरिएंट पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने, हम में से एक (न्यायमूर्ति बी.के. बेहरा), ने यह निर्धारित किया है कि रेलवे प्रशासन के खिलाफ माल के नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति के मुकदमे में, माल की वास्तविक लोडिंग को स्थापित करने का दायित्व वादी पर है, जिसके नुकसान के लिए दावा किया गया है। यह भी एक ऐसा मामला था, जिसमें माल को प्रेषक की साइडिंग से लोड करके भेजा गया था।

10. एमएनएनयू/ओआर/0138/1984, यूनियन ऑफ इंडिया बनाम कृष्णा स्टोर्स, जिस पर प्रतिवादी ने भरोसा किया है, में माननीय न्यायाधीशों ने अधिनियम की धारा 73 और 74 के दायरे पर विचार किया है। उस मामले में, 660 टिन मूंगफली के तेल को हवागुड से सौराष्ट्र ऑयल मिल द्वारा भेजा गया था, जिसे रेलवे जोखिम दर पर प्रतिवादी रेलवे द्वारा वाहक के रूप में ले जाने के लिए रेलवे रसीद के

अनुसार एक वैगन में कंटाबांजी रेलवे स्टेशन पर पहुंचाया जाना था और मूंगफली के तेल के टिन को उचित रूप से पैक की गई स्थिति में प्रेषण के बिंदु पर प्रतिवादी रेलवे को दिया गया था। यह ऐसा मामला नहीं था, जिसमें रेलवे प्रशासन द्वारा किसी भी पर्यवेक्षण के बिना प्रेषक की साइडिंग पर लोडिंग की गई थी। रिपोर्ट किए गए मामले के तथ्यों और अधिनियम की धारा 73 और 74 में किए गए प्रावधानों के मद्देनजर, इस न्यायालय द्वारा रेलवे प्रशासन के खिलाफ पारित निर्णय और डिक्री को बरकरार रखा गया था।

11. इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई कानूनी सबूत नहीं है कि वास्तव में रेणुकूट में कंसाइनर की साइडिंग पर वैगन में 1122 एल्युमिनियम सिल्लियां लोड की गई थीं। कमी प्रमाण पत्र (प्रदर्श 5) और रेलवे रसीद (प्रदर्श ए) में दिए गए विवरण के अलावा, इस निष्कर्ष के समर्थन में कोई सबूत नहीं है कि वास्तव में कंसाइनर ने संबलपुर में वादी को डिलीवरी के लिए कंसाइनर की साइडिंग पर 1122 एल्युमिनियम सिल्लियां लोड की थीं। मुख्य रूप से कमी प्रमाण पत्र और रेलवे रसीद पर आधारित मुकदमा, जिसका साक्ष्य मूल्य ऊपर चर्चा किया गया है, ट्रायल कोर्ट द्वारा तय नहीं किया जाना था। यह निष्कर्ष निकालने का कोई कानूनी

आधार नहीं है कि 252 एल्युमिनियम सिल्लियों की कमी थी। जैसा कि पहले संकेत दिया गया था, इस बात का कोई सबूत नहीं था कि रेलवे कर्मचारियों ने मालवाहक के साइडिंग पर वैगन की लोडिंग और सीलिंग की निगरानी की थी और यह नहीं माना जाना चाहिए था, जैसा कि विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने किया है।"

29. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड; एमएनयू/एपी/1039/2004 के मामले में पारित निर्णय में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने रेलवे रसीद यानी एस/सी ('जिसमें शामिल है') पर टिप्पणी और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि 'लोडिंग की निगरानी रेलवे कर्मचारियों द्वारा नहीं की गई थी', अपील को स्वीकार कर लिया और दावेदार के पक्ष में न्यायाधिकरण के आदेश को खारिज कर दिया। उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"5. सर्वेयर की आवेदक गवाह संख्या 1 के रूप में परीक्षण किया गया। उसने कहा कि उसने माल युक्त वैगन को पहली बार 01.11.1990 को देखा था, अर्थात्, पुनः वजन करने से ठीक पहले और उसने माल को पहले नहीं देखा था, न ही उसने देखा कि माल किस हालत में पहुंचा और एसएआईएल साइडिंग में रखा गया था। माल की स्थिति के सार से उसे विश्वास हो गया कि कहीं चोरी हुई है।

6. सेल के जूनियर एग्जीक्यूटिव (मार्केटिंग) की ए.डब्ल्यू. 2 के रूप में जांच की गई। उसने यह भी कहा कि उसे बोकारो में बुकिंग छोर पर विषयगत माल की लोडिंग की परिस्थितियों और स्थितियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। उसने माल को पहली बार 25.10.1990 को एसएआईएल साइडिंग में माल के पहुंचने पर देखा। उसने वैगन के अंदर सामग्री के लोडिंग के स्तर में अवसाद देखा। एक बिंदु पर, बड़ी मात्रा में सामग्री को हटाने से पहले, वैगन का फर्श दिखाई दे रहा था। इससे उन्हें यह निष्कर्ष निकालने में मदद मिली कि माल के साथ छेड़छाड़ की गई है और वैगन को उनकी साइडिंग पर रखे जाने से पहले कुछ चोरी हुई थी।

7. बेशक, लोडिंग और डिलीवरी स्थान सेल की निजी साइडिंग हैं। इसके अलावा, रेलवे अधिनियम, 1989 की धारा 94 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अनुसार आवेदक किसी भी कारण से किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है। अधिनियम की धारा 94 इस प्रकार है-  
धारा 94: रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं होने वाली साइडिंग पर लोड या डिलीवर किया जाने वाला माल।-

(1) जहां रेलवे द्वारा परिवहन के लिए माल को रेलवे प्रशासन से असंबंधित साइडिंग पर लोड किया जाना आवश्यक है, वहां रेलवे प्रशासन ऐसे

माल की किसी भी हानि, विनाश, क्षति या गिरावट के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हो, जब तक कि माल युक्त वैगन को साइडिंग और रेलवे प्रशासन के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर नहीं रखा जाता है और साइडिंग के मालिक द्वारा इस संबंध में अधिकृत रेलवे सेवक को तदनुसार लिखित रूप में सूचित नहीं किया जाता है।

(2) जहां रेलवे प्रशासन द्वारा किसी माल को रेलवे प्रशासन से असंबंधित साइडिंग पर वितरित किया जाना आवश्यक है, वहां रेलवे प्रशासन ऐसे माल की किसी भी हानि, विनाश, क्षति या गिरावट या गैर-वितरण के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हो, जब माल युक्त वैगन को रेलवे और साइडिंग के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर रखा जाता है और साइडिंग के मालिक को इस संबंध में अधिकृत रेलवे सेवक द्वारा तदनुसार लिखित रूप में सूचित किया जाता है।

8. एसएआईएल की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अधिनियम की धारा 78 के अंतर्गत माल की डिलीवरी से पहले रेलवे प्रशासन को माल का पुनः वजन करने का अधिकार है। अधिनियम की धारा

79 के अंतर्गत रेलवे प्रशासन, माल प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता द्वारा किए गए अनुरोध पर, ऐसी शर्तों के अधीन तथा निर्धारित शुल्क और विलंब शुल्क, यदि कोई हो, के भुगतान पर माल का वजन करने की अनुमति दे सकता है।

9. लेकिन, इस मामले में रेलवे प्रशासन ने माल का पुनः वजन करने से इनकार कर दिया है।

10. रेलवे के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यदि माल मालिक के जोखिम पर बुक किया जाता है, तो रेलवे की ओर से पुनः वजन करने की कोई बाध्यता नहीं है। अधिनियम की धारा 78 के अंतर्गत रेलवे को माल भाड़ा और अन्य शुल्कों की गणना करने और गलतियों को सुधारने के उद्देश्य से माल का पुनः वजन करने और पुनः वर्गीकरण करने का अधिकार है।

11. अधिनियम की धारा 79, रेलवे प्रशासन से असंबंधित साइडिंग पर लोड किए जाने वाले माल के संबंध में तथा रेलवे प्रशासन से असंबंधित साइडिंग पर रेलवे अधिकारियों द्वारा वितरित किए जाने वाले माल के संबंध में लागू नहीं होती। इसलिए, मेरा विचार है कि रेलवे अधिनियम की धारा 94 के अंतर्गत एसएआईएल कथित कम डिलीवरी के लिए किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है।

हालांकि, प्रदर्श आर-1 से पता चलता है कि रेलवे अधिकारियों ने संबंधित माल की डिलीवरी पर रेलवे रसीद रद्द कर दी थी। माल बिना किसी विरोध के प्राप्त किया गया था, और उसके बाद, उन्होंने रेलवे पर बोझ डालने का प्रयास किया है, जिससे उन्हें उक्त माल की कम डिलीवरी के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सके।

12. अधिनियम की धारा 94 (1) और (2) में निहित उपरोक्त विशिष्ट प्रावधान के मद्देनजर, मेरा विचार है कि एसएआईएल नुकसान के लिए या भेजी गई सामग्री की कम डिलीवरी के लिए या किसी भी कारण से किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है। इस प्रकार, रेलवे न्यायाधिकरण का आक्षेपित आदेश अवैध है तथा अधिनियम की धारा 94 में निहित विशिष्ट प्रावधानों के विपरीत है।"

30. उड़ीसा उच्च न्यायालय ने यूनियन ऑफ इंडिया बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल; एमएएनयू/ओआर/0026/1988 के मामले में पारित निर्णय में, उन तथ्यों पर विचार करने के पश्चात, जो इस प्रकार हैं कि माल रेलवे कर्मचारियों की देखरेख में लोड नहीं किया गया था तथा खेप को 'एल/यू शर्त' के अंतर्गत बुक किया गया था, जो यह दर्शाता है कि प्रेषण स्टेशन पर लोडिंग तथा गंतव्य स्टेशन पर अनलोडिंग प्रेषक की जिम्मेदारी थी, तथा यह भी कि माल को प्रेषक ने स्वयं वैगन में लोड किया था तथा उसके द्वारा सील किया गया

था तथा उसके पश्चात केवल परिवहन के लिए रेलवे को सौंपा गया था तथा रेलवे रसीद पर पृष्ठांकन, जिसके अनुसार लोडिंग की रेलवे द्वारा देखरेख नहीं की गई थी तथा इसके अतिरिक्त कि दावेदार ने यह साबित करने के लिए कभी किसी गवाह की जांच नहीं की कि वास्तव में कितनी मात्रा में केरोसिन तेल लोड किया गया था, वास्तव में वैगन में 24,500 लीटर केरोसिन तेल लोड किया गया था तथा इतनी मात्रा परिवहन के लिए रेलवे को सौंपी गई थी, तथा धारा 73 तथा यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एल्युमीनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड; एआईआर 1987 ओआर 149 के मामले में पारित पूर्व निर्णय को भी ध्यान में रखते हुए रेलवे द्वारा योजित अपील को स्वीकार किया तथा ट्रिब्यूनल के आदेश में हस्तक्षेप किया, जो दावेदार-जुगल किशोर खंडेलवाल के पक्ष में था। संबंधित पैराग्राफ इस प्रकार है:-

"3. अपीलकर्ता ने यह कहते हुए मुकदमा लड़ा कि माल रेलवे कर्मचारियों की देखरेख में बज-बज पर लोड नहीं किया गया था। माल को एल/यू शर्त के अंतर्गत बुक किया गया था, जिसका मतलब था कि डिस्पैच स्टेशन पर लोड करना और गंतव्य स्टेशन पर उतारना प्रेषक की जिम्मेदारी थी। माल को प्रेषक ने खुद वैगन में लोड किया था, उसे सील किया था और रेलवे को केवल ढुलाई के लिए दिया गया था। प्रतिवादी को दी गई रेलवे रसीद में ही लोड किए गए केरोसिन तेल की मात्रा के बारे में समर्थन था, जिसे केवल शामिल करने

के लिए कहा गया था' और रेलवे की ओर से किसी भी समय यह स्वीकार नहीं किया गया था कि वास्तव में टैंकर में 24,500 लीटर केरोसिन तेल लोड किया गया था और इस प्रकार अपीलकर्ता की ओर से कोई देयता नहीं पाई जा सकती।

4. विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश, बालासोर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता प्रतिवादी को हुए नुकसान के लिए जिम्मेदार था क्योंकि डिलीवरी के समय जारी किए गए कमी प्रमाण पत्र में 11,500 लीटर केरोसिन तेल का नुकसान स्वीकृत किया गया था और डिलीवरी स्थल पर टैंकर की सील टूटी हुई पाई गई थी।

5. वादी-प्रतिवादी ने अपने मामले को साबित करने के लिए एक गवाह पी.डब्ल्यू. 1 का परीक्षण किया था, जिसने जिरह में स्वीकार किया था कि अनुबंध के अनुसार लोडिंग प्रेषक द्वारा की जानी थी और अनलोडिंग प्राप्तकर्ता द्वारा की जानी थी। चूंकि यह स्वयं का कंसाइनमेंट था, इसलिए दोनों कार्य प्रतिवादी द्वारा किए जाने थे। अपीलकर्ता ने गवाह 2 का भी परीक्षण किया, जिनमें से डी.डब्ल्यू. 1 बज-बज रेलवे स्टेशन पर वाणिज्यिक क्लर्क है। डी.डब्ल्यू. 1 ने कहा कि वैगन को तेल निगम की साइडिंग में लोड किया गया था, न कि रेलवे स्टेशन में और लोडिंग की

निगरानी रेलवे कर्मचारियों द्वारा नहीं की गई थी। उन्होंने प्रदर्श ए और बी यानी रेलवे रसीद और अग्रेषण नोट को भी विधिवत साबित किया। रेलवे रसीद पर वैगन की संख्या और विवरण के बारे में पुष्टि इस प्रकार दर्ज की गई थी "एक एफ वैगन में 24,500 लीटर केरोसिन तेल होने की बात कही गई थी ..." और प्रदर्श बी/1 में पुष्टि थी "लोडिंग की निगरानी नहीं की गई"। अपीलकर्ता की ओर से पेश किए गए इस तरह के साक्ष्य को चुनौती नहीं दी गई और इसलिए यह बिना कहे ही स्पष्ट है कि वैगन को निगम साइडिंग में लोड किया गया था, न कि रेलवे स्टेशन में और इसके अलावा लोडिंग भी रेलवे की निगरानी में नहीं बल्कि खुद प्रेषक द्वारा की गई थी। रेलवे रसीद ने भी 24,500 लीटर केरोसिन तेल के साथ वैगन की प्राप्ति को कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि केवल यह कहा कि वैगन में "कहा जाता है कि यह मात्रा है"। प्रतिवादी ने यह साबित करने के लिए कभी किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया कि वास्तव में बज-बज में कितनी मात्रा में केरोसिन तेल लोड किया गया था ताकि यह स्थापित किया जा सके कि वास्तव में वैगन में 24,500 लीटर केरोसिन तेल लोड किया गया था और यह मात्रा अपीलकर्ता को परिवहन के लिए दी गई थी।



6. भारतीय रेलवे अधिनियम की धारा 73 रेलवे प्रशासन को परिवहन के लिए सौंपे गए पशुओं और माल की पारगमन में हानि, विनाश, क्षति, गिरावट या न सौंपे जाने के लिए जिम्मेदार ठहराती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस माल के संबंध में हानि का आरोप लगाया गया है और क्षति का दावा किया गया है, उसे पहले रेलवे प्रशासन को सौंप दिया जाना चाहिए और जब तक ऐसी डिलीवरी साबित नहीं हो जाती, तब तक क्षति के लिए किसी भी दावे का सवाल ही नहीं उठता। हालांकि इस मामले में रेलवे प्रशासन को 24,500 लीटर केरोसिन तेल सौंपे जाने का कोई सबूत नहीं है। डिलीवरी स्टेशन पर रेलवे प्रशासन द्वारा जारी किया गया कमी प्रमाण पत्र वास्तविक कमी की स्वीकृति नहीं है, बल्कि यह केवल इस तथ्य का विवरण है कि गंतव्य स्टेशन पर कितनी मात्रा की डिलीवरी ली गई है। यह रेलवे द्वारा परिवहन के लिए प्राप्त वास्तविक मात्रा की स्वीकृति नहीं है। इस न्यायालय द्वारा एमएनएनयू/ओआर/0040/1987 यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एल्युमिनियम इंडस्ट्रीज लिमिटेड में इस प्रश्न पर कानून की स्पष्ट रूप से चर्चा की गई थी तथा उस मामले में तय किए गए सिद्धांतों का पालन करते हुए यह माना जाना चाहिए कि प्रतिवादी उसे हुई किसी हानि को सिद्ध करने में सक्षम नहीं है, इसलिए क्षतिपूर्ति के

दावे को अस्वीकार किया जाना चाहिए।"

31. एफएओ संख्या 225/2013 (स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया), एमएनएनयू/डीई/6299/2017 में पारित निर्णय में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने रेलवे रसीद अर्थात एसडब्ल्यू ('भेजने वाले का स्वीकृत भार') पर टिप्पणी तथा 1989 के अधिनियम की धारा 65 और 94 पर विचार करने के पश्चात अपील को खारिज कर दिया था। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"3. प्रतिवादी ने दलील दी कि वह उत्तरदायी नहीं है क्योंकि विचाराधीन रेलवे रसीद 'प्रेषक के स्वीकृत वजन' (एसडब्ल्यू) के आधार पर जारी की गई थी, यानी रेलवे रसीद बिना शर्त रसीद नहीं थी, बल्कि केवल सशर्त रसीद थी कि माल का वजन क्या है, इसकी जांच प्रतिवादी/रेलवे द्वारा नहीं की गई है, लेकिन प्रेषक/अपीलकर्ता द्वारा दिया गया वजन स्वीकार किया गया है। प्रतिवादी ने दावा याचिका को खारिज करने के लिए रेलवे अधिनियम की धारा 65 और 94 का सहारा लिया।

4. वर्तमान मामले के तथ्यों में यह विवादित नहीं है कि रेलवे रसीद से पता चलता है कि यह एसडब्ल्यू के आधार पर थी। एक बार जब रेलवे रसीद एसडब्ल्यू के आधार पर होती है, तो प्रतिवादी रेलवे अधिनियम की

धारा 94 के अंतर्गत संरक्षित होता है और यह प्रावधान करता है कि जब तक निजी साइडिंग से रेलवे वैगन के इंटरचेंज के बिंदु पर विधिवत अधिकृत रेलवे कर्मचारी मौजूद न हो, तब तक प्रतिवादी/रेलवे की कोई देयता नहीं है। यानी रेलवे कर्मचारी माल की लोडिंग के समय मौजूद है और इसलिए रेलवे माल के वजन के लिए जिम्मेदार है। एक बार जब रेलवे रसीद एसडब्ल्यू के आधार पर होती है, तो रेलवे अधिनियम की धारा 94 के अनुसार प्रतिवादी की कोई कानूनी देयता नहीं होगी। यहां तक कि रेलवे अधिनियम की धारा 65 में भी केवल यह कहा गया है कि रेलवे रसीद इसकी सामग्री का प्रथम दृष्टया सबूत है और ऐसा प्रथम दृष्टया प्रतिवादी/रेलवे में एसडब्ल्यू खेप लेने की प्रक्रिया के कारण पाया गया है और ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि रेलवे में उन खेपों के वजन का प्रावधान नहीं है जो अत्यधिक भारी/बड़े हैं या उन खेपों को उनकी प्रकृति के कारण या किसी अन्य कारण से माल भेजने वाले द्वारा रेलवे को सौंपने के समय तौला नहीं जा सकता है। रेलवे अधिनियम की धारा 65 और 94 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

धारा 65. रेलवे रसीद.-(1) रेलवे प्रशासन,--

(क) ऐसे मामले में जहां माल को ऐसे व्यक्ति द्वारा लोड किया जाना है,

जिसे ऐसा माल सौंपना है, ऐसे लोडिंग के पूरा होने पर; या

(ख) किसी अन्य मामले में, उसके द्वारा माल को स्वीकार करने पर, ऐसे प्रारूप में रेलवे रसीद जारी करेगा, जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(2) रेलवे रसीद वजन और उसमें वर्णित पैकेजों की संख्या का प्रथम दृष्टया साक्ष्य होगी: बशर्ते कि वैगन-लोड या ट्रेन-लोड में किसी माल के मामले में और वजन या पैकेजों की संख्या इस संबंध में अधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा जाँच नहीं की जाती है, और उसके द्वारा उस रेलवे रसीद में उस आशय का कथन दर्ज किया जाता है, वजन या, जैसा भी मामला हो, उसमें वर्णित पैकेजों की संख्या को साबित करने का भार प्रेषक, प्रेषक या पृष्ठांकितकर्ता पर होगा। धारा 94. लोड या वितरित किए जाने वाले माल रेलवे प्रशासन से संबंधित न होने वाली साइडिंग पर माल लोड किया जाना अपेक्षित है, रेलवे प्रशासन ऐसे माल की किसी भी हानि, विनाश, क्षति या हास के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हो, जब तक कि माल युक्त वैगन को साइडिंग और रेलवे प्रशासन के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर नहीं रखा जाता है और इस संबंध में अधिकृत रेलवे

सेवक को साइडिंग के स्वामी द्वारा लिखित रूप में सूचित नहीं किया जाता है।

(2) जहां किसी माल को रेलवे प्रशासन द्वारा रेलवे प्रशासन से संबंधित नहीं साइडिंग पर वितरित किया जाना आवश्यक है, वहां रेलवे प्रशासन किसी भी नुकसान, विनाश, क्षति या गिरावट या किसी भी कारण से ऐसे माल की गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, जो माल युक्त वैगन को रेलवे और साइडिंग के बीच वैगनों के आदान-प्रदान के निर्दिष्ट बिंदु पर रखे जाने के बाद उत्पन्न होता है और साइडिंग के मालिक को इस संबंध में अधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा तदनुसार लिखित रूप में सूचित किया गया है।"

32. प्रथम अपील संख्या 309/1999 (मेसर्स हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारत संघ); एमएएनयू/एमएच/0223/2004 में पारित निर्णय में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की नागपुर पीठ ने रेलवे रसीद पर टिप्पणी (ओं) यानी एस/सी ('कहा जाता है कि इसमें शामिल है') और 'रेलवे कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई लोडिंग' के साथ-साथ भारत संघ बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल और भारत संघ बनाम रूप नारायण, एआईआर 1997 राज. 123 के मामले में पारित निर्णय को संदर्भित करते हुए अपील खारिज कर दी। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"5. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल, उपरोक्त का मामला इस तथ्य पर आधारित है कि माल रेलवे रसीद पर लिखी कुछ शर्तों के अंतर्गत वितरित किया गया था। पहली शर्त को "कुछ मात्रा में सामग्री शामिल करने के लिए कहा गया" टिप्पणी द्वारा दर्शाया गया था। टिप्पणी "कहा जाता है कि इसमें सामग्री शामिल है" की व्याख्या उड़ीसा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार की है कि यह रेलवे प्रशासन की ओर से इस बात की कोई स्वीकृति नहीं है कि रेलवे रसीद में दर्शाई गई मात्रा वास्तव में गंतव्य बिंदु तक परिवहन के लिए प्राप्त की गई थी। दूसरी शर्त को एक अन्य टिप्पणी द्वारा दर्शाया गया था कि रेलवे कर्मचारियों द्वारा "लोडिंग की निगरानी नहीं की गई" और इस टिप्पणी के साथ-साथ उड़ीसा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस टिप्पणी की व्याख्या इस प्रकार की है कि यह रेलवे प्रशासन की ओर से उस मात्रा में माल की स्वीकृति नहीं है, जितनी कि रेलवे रसीद में दर्शाई गई है, गंतव्य बिंदु तक परिवहन के लिए।

6. वर्तमान मामले में भी तथ्य समान हैं। यदि हम रेलवे रसीद को प्रदर्श आर/1 के अनुसार देखें, तो यह देखा जा सकता है कि इस रसीद में उक्त दोनों टिप्पणियाँ हैं। "जिसमें शामिल

होने वाली" टिप्पणी संक्षिप्त रूप में "एस/सी" के रूप में दिखाई देती है। जहाँ तक बाद वाली टिप्पणी का सवाल है, यह "कर्मचारियों द्वारा निगरानी न किए गए लोडिंग" के रूप में दिखाई देती है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि संक्षिप्त नाम "एस/सी" को वह व्यक्ति नहीं समझ सकता जिसने रेलवे के साथ कभी काम नहीं किया है और अपीलकर्ता रेलवे प्रशासन के अभ्यास से परिचित नहीं है, इसलिए उससे "एस/सी" टिप्पणी का अर्थ और निहितार्थ जानने की उम्मीद नहीं की जा सकती, और इसलिए, प्रतिवादी को इस टिप्पणी का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। मैं इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हूँ, क्योंकि जब रेलवे रसीद पर कोई अतिरिक्त टिप्पणी की जाती है, और यदि वे टिप्पणियाँ अपठनीय हैं या प्रेषक द्वारा समझी नहीं जा सकती हैं, तो प्रेषक को रेलवे के संबंधित कर्मचारियों से स्पष्टीकरण मांगना चाहिए, और यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो उसे अपनी निष्क्रियता के लिए भुगतना होगा। एक बार जब रेलवे रसीद प्रेषक द्वारा बिना किसी विरोध के स्वीकार कर ली जाती है, तो प्रेषक को यह बचाव करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसने रेलवे रसीद की सामग्री को नहीं समझा और इस मामले में अपीलकर्ता ने बिना किसी विरोध के

उक्त दोनों टिप्पणियों के साथ रेलवे रसीद स्वीकार कर ली। दोनों उक्त टिप्पणियाँ, "कहा जाता है कि इसमें शामिल है" और "कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई लोडिंग" स्पष्ट रूप से संकेत देती हैं कि रेलवे प्रशासन ने बाजवा में टैंक वैगन में लोड की गई और रेलवे रसीद में दिखाई गई मोटर स्पिरिट की मात्रा को सही नहीं माना। अपीलकर्ता उस समय रेलवे कर्मचारियों पर वैगन को गंतव्य बिंदु तक ले जाने के लिए रेलवे को सौंपते समय वैगन में लोड की गई मोटर स्पिरिट की मात्रा की जाँच करने पर जोर दे सकता था। यदि रेलवे स्टाफ ने पीछे हटने से इनकार कर दिया होता, तो रेलवे रसीद केवल अपीलकर्ता के विरोध के अंतर्गत ही स्वीकार की जा सकती थी। अपीलकर्ता द्वारा ऐसा नहीं किया गया है, बल्कि अपीलकर्ता ने इस टिप्पणी को स्वीकार कर लिया है कि लोडिंग में निश्चित मात्रा शामिल थी और यह कर्मचारियों द्वारा किसी भी पर्यवेक्षण के बिना किया गया था और बदले में, खापरी में गंतव्य बिंदु तक ले जाने के लिए टैंक वैगन को रेलवे स्टाफ को सौंपने में निहित जोखिम को भी स्वीकार कर लिया। ये तथ्य यूनियन ऑफ इंडिया बनाम जुगल किशोर खंडेलवाल के उपरोक्त मामले के तथ्यों के समान हैं। इसलिए, उड़ीसा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया

दृष्टिकोण कि इन टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि रेलवे की ओर से परिवहन के लिए उसे दिए गए माल की मात्रा को स्वीकार नहीं किया गया था. मुझे सही लगता है और इसे यहां भी लागू किया जा सकता है। अतः न्यायाधिकरण के विद्वान सदस्य ने यह निष्कर्ष दर्ज करने में कोई गलती नहीं की है कि अपीलकर्ता यह साबित करने में विफल रहा कि खपरी में रेलवे प्रशासन द्वारा उसे दिया गया मोटर स्प्रिट, अपीलकर्ता द्वारा बाजवा में रेलवे को सौंपी गई मात्रा से कम मात्रा में था।

7. विद्वान सदस्य ने अपीलकर्ता के दावे को खारिज करने के लिए भारतीय रेलवे अधिनियम, 1989 की धारा 65 के प्रावधान का संदर्भ लिया है और यह सही है। यह निर्धारित करता है कि यदि वैगन-लोड में माल की जांच किसी अधिकृत रेलवे कर्मचारी द्वारा नहीं की जाती है, और उसके द्वारा इस तरह के रेलवे रसीद में इस आशय का एक बयान दर्ज किया जाता है, तो उसमें बताए गए वजन को साबित करने का भार प्रेषक, माल प्राप्त करने वाले या पृष्ठांकित करने वाले पर होगा। इस मामले में, उक्त प्रावधान द्वारा अपेक्षित ऐसा बयान मेरे द्वारा पहले ही रेलवे रसीद में दर्ज पाया गया है। इसलिए, रेलवे रसीद में बताए गए वजन को साबित करने का भार प्रेषक, यानी इस मामले

में अपीलकर्ता पर है, न कि प्रतिवादी पर। अपीलकर्ता ने, हालांकि, आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करके इसे समाप्त नहीं किया और इसलिए, न्यायाधिकरण द्वारा दावा आवेदन को स्वीकार करने का कोई तरीका नहीं था।

8. जहां तक 6.11.1998 को विद्वान न्यायिक सदस्य द्वारा मामले 118/ओएआई/आरसीटी/एनजीपी/94 में दिए गए निर्णय का सवाल है, जिस पर अपीलकर्ता ने भरोसा किया है, पूरे निर्णय को पढ़ने पर कोई भी यह देख सकता है कि उस मामले में केवल एक टिप्पणी थी जो "कहा जाता है कि इसमें शामिल है" और उस मामले में कोई अन्य टिप्पणी "कर्मचारियों द्वारा निगरानी नहीं की गई लोडिंग" नहीं थी, जो इस मामले में शामिल रेलवे रसीद पर अंकित है। इसलिए, कोई यह कह सकता है कि उस मामले के तथ्य इस मामले के तथ्यों से मिलते-जुलते नहीं हैं, और इस तरह, प्रतिवादी द्वारा इस निर्णय में सहमति का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त निर्णय रेलवे अधिनियम, 1989 की धारा 65 के प्रावधान के प्रभाव को ठीक से ध्यान में नहीं रखता है, जो माल के वजन को साबित करने का भार, माल भेजने वाले पर डालता है, यदि इसे उस ओर से अधिकृत रेलवे कर्मचारियों द्वारा जांचा नहीं जाता है और उस मामले में अपीलकर्ता के

समग्र दावे पर रेलवे रसीद पर उस आशय का बयान दिया जाता है। इसलिए, इस तरह के फैसले से प्रतिवादी को कानून के अनुसार दावे को खारिज करने से नहीं रोकना चाहिए। इसलिए, मुझे इस संबंध में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क में कोई सार नहीं लगता है।

9. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने एमएएनयू/आरएच/0026/1997:एआईआर 1997 आरएजे 123 में रिपोर्ट किए गए यूनियन ऑफ इंडिया बनाम रूप नारायण के फैसले पर भी भरोसा किया है। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए कहा कि चूंकि लोडिंग पॉइंट पर लोड किए गए माल की मात्रा के बारे में रेलवे प्रशासन की ओर से कोई स्वीकृति नहीं थी, इसलिए गंतव्य बिंदु पर डिलीवरी में किसी भी कमी के कारण रेलवे प्रशासन नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं था। उक्त मामले में, रेलवे रसीद में कई टिप्पणियाँ शामिल थीं, जिनमें से प्रासंगिक "कहा जाता है कि इसमें शामिल है" और "एसडब्ल्यूए" यह दर्शाता है कि प्रेषक का वजन अगोषण स्टेशन पर माल की गणना के उद्देश्य से स्वीकार किया गया था। इन टिप्पणियों की व्याख्या करते हुए, राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने माना कि रेलवे की ओर से कोई स्वीकृति नहीं थी कि रेलवे रसीद में उल्लिखित

संख्या में लेख वास्तव में लोड किए गए थे। मेरे विचार में यह निर्णय निश्चित रूप से प्रतिवादी के मामले का समर्थन करता है।"

33. कन्हैया भालोटिया बनाम भारत संघ; 2013 एससीसी ऑनलाइन पीएटी 506 के मामले में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक पैरा इस प्रकार हैं:-

**"हरि साव बनाम बिहार राज्य: एआईआर 1970 एससी 843 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'मालिक के जोखिम दर' पर माल की दुलाई के मुद्दे और ऐसे मामलों पर लाबू रेलवे रसीद में उल्लिखित विभिन्न टिप्पणियों पर विचार किया है और पृष्ठ 845 (एआईआर) पर निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:**

"7... .. धारा 74 के अन्तर्गत जहां माल को रेलवे प्रशासन को विशेष रियायती दर पर परिवहन के लिए दिया जाता है, जिसे 'स्वामी की जोखिम दर' कहा जाता है, वहां धारा 73 में निहित किसी भी बात के बावजूद, रेलवे प्रशासन किसी भी हानि, क्षति, विनाश आदि के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हुई हो, सिवाय इसके कि यह साबित हो जाए कि ऐसी हानि, क्षति, विनाश आदि रेलवे प्रशासन या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार के

कारण हुई थी। ... ..  
.....”

“8. इसलिए, यह स्पष्ट है कि रेलवे प्रशासन धारा 73 के अन्तर्गत माल की हानि, विनाश या गैर-डिलीवरी के लिए उत्तरदायी हो सकता है, यदि वह उसके परिवहन में उचित दूरदर्शिता और सावधानी बरतने में विफल रहता है और विशेष रियायती दर पर ले जाए गए माल के संबंध में भी इसी प्रकार उत्तरदायी होगा, यदि उसकी ओर से या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही और कदाचार हुआ हो। ... ..

इस बात की कोई धारणा नहीं होगी कि वैगनों में रखा गया माल मिर्च था, क्योंकि रेलवे ने माल को इस रूप में स्वीकार नहीं किया और इसे मिर्च से भरे 251 बैग के रूप में वर्णित किया। न ही रेलवे द्वारा माल के वजन को स्वीकार किया गया। 'एस.डब्ल्यू.ए.' का समर्थन इस दलील को खारिज कर देगा कि वजन रेलवे द्वारा स्वीकार किया गया था। "एल/यू" के समर्थन ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि लोडिंग और अनलोडिंग का काम माल भेजने वाले का है, इसलिए रेलवे को लोडिंग या अनलोडिंग में किसी भी लापरवाही के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।"

फैसले के पैराग्राफ 10 में सुप्रीम कोर्ट ने डोमिनियन ऑफ इंडिया बनाम फर्म मुसेराम किशुनप्रसाद: एआईआर 1950

नागपुर 85 के मामले में पारित फैसले पर ध्यान दिया है और इस प्रकार टिप्पणी की है:

“10. ... ..  
..... नागपुर उच्च न्यायालय ने माना कि इस बात का कोई सबूत नहीं था कि वास्तव में 255 बैग लोड किए गए थे। माल टैरिफ सामान्य नियमों के नियम 22 का हवाला देते हुए कहा गया कि जारी की गई रसीद “यह कहते हुए संख्या को योग्य बनाती है कि वैगन में 255 बैग ‘कहा जाता है’... और संख्या का उल्लेख केवल माल ढुलाई की गणना करने के लिए किया गया था”। नियम 15 का भी संदर्भ दिया गया जिसके अंतर्गत रेलवे रसीद में वजन का उल्लेख कथन की सत्यता की स्वीकृति के बराबर नहीं था और नागपुर उच्च न्यायालय के अनुसार “यह नियम और भी अधिक सख्ती से लागू होता है जहां रेलवे रसीद में इसके अतिरिक्त ‘कहा जाता है कि इसमें’ टिप्पणियाँ शामिल हैं।”

इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यूनियन ऑफ इंडिया बनाम छोटेलाल शेवनाथ राय : एआईआर 1973 पटना 244 के मामले में रेलवे रसीद, अग्रेशन नोट और बीजक के आयात पर विचार करते हुए पैराग्राफ 8 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

“8. ... ..  
.....

मैंने पहले ही ऊपर उल्लेख किया है कि रेलवे रसीद और अग्रेषण नोट में उल्लिखित माल के वजन के बारे में प्रविष्टि उस माल में ले जाए गए वजन के बारे में रेलवे विभाग की कोई स्वीकृति नहीं है क्योंकि हमारे सामने के मामले में रेलवे ने प्रेषण स्टेशन पर माल का वजन नहीं किया है और लोडिंग प्रेषक द्वारा की गई थी ... ..  
.....

जहाँ तक बीजक (प्रदर्श 2) का सवाल है, यह प्रेषक द्वारा दिया गया कथन है कि खरसालिया से टाटा नगर 565 मन मूंगफली तेल भेजा गया था। इस बीजक (प्रदर्श 2) को लिखने वाले व्यक्ति से इस मामले में पूछताछ नहीं की गई है और न ही यह ज्ञात है कि उक्त व्यक्ति वास्तव में उस समय मौजूद था, जब प्रश्नगत मूंगफली तेल टैंक वैगन में लोड किया गया था। ऐसे में यह दस्तावेज (प्रदर्श 2) भी कानूनी सबूत नहीं कहा जा सकता है। .... "

34. उपर्युक्त प्रावधानों तथा संदर्भित निर्णयों और रेलवे रसीदों पर की गई टिप्पणियों अर्थात् 'एस/सी' (जिसमें शामिल होने की बात कही गई है), 'एसडब्ल्यूए' (प्रेषक का स्वीकृत वजन) और 'रेलवे कर्मचारियों द्वारा निगरानी न की गई लोडिंग' से यह स्पष्ट है कि रेलवे प्रशासन पारगमन में किसी भी माल की किसी भी हानि, विनाश, क्षति, गिरावट या गैर-डिलीवरी के लिए जिम्मेदार नहीं होगा, चाहे वह किसी भी कारण से उत्पन्न हो, सिवाय इसके कि यह साबित हो कि ऐसी हानि, विनाश, क्षति,

गिरावट या गैर-डिलीवरी उसकी ओर से या उसके किसी कर्मचारी की ओर से लापरवाही या कदाचार के कारण हुई थी।

35. रेलवे द्वारा ले जाए जाने वाले माल/माल को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधानों और संबंधित वैधानिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद पारित किए गए विभिन्न निर्णयों और रेलवे रसीद पर की गई टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए प्रेषक, माल प्राप्तकर्ता या पृष्ठांकितकर्ता रेलवे प्रशासन या उसके कर्मचारियों द्वारा लापरवाही या कदाचार को साबित करने के लिए बाध्य है और भले ही यदि ऐसी कोई लापरवाही साबित हो जाती है, तो भी संबंधित पक्ष को उचित मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करके नुकसान, विनाश, क्षति, हास या कम डिलीवरी या इसी तरह की अन्य बातों को साबित करना आवश्यक है।

36. उपर्युक्त निष्कर्ष इस सिद्धांत के अनुरूप है कि वादी केवल अपने मामले की मजबूती पर ही सफल हो सकता है, बचाव की कमजोरी पर नहीं। दूसरे शब्दों में, वादी को दूसरों के पैरों पर नहीं, बल्कि अपने पैरों पर खड़ा होना है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 101 और 102 के अनुसार, प्रारंभिक जिम्मेदारी हमेशा वादी/दावेदार पर होती है और यदि वह जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है और ऐसा मामला बनाता है जो उसे राहत का हकदार बनाता है, तो यह जिम्मेदारी प्रतिवादी/प्रतिपक्षी पर आ जाती है कि वह उन परिस्थितियों को साबित करे, यदि कोई हो, जो वादी/दावेदार को इसके हकदार नहीं बनाती हैं। लैटिन कहावत



'ओनस प्रोबांडी' यह नियम बताती है कि जो कोई सकारात्मक तथ्य पेश करता है, उसे उसे साबित करना होता है।

दस्तावेजी साक्ष्य जैसे बीपीसीएल द्वारा अपनी साइडिंग पर लोडिंग के संबंध में तैयार किया गया रजिस्टर, बुक आदि प्रस्तुत करना था।

37. बेशक, ऊपर बताए गए बीपीसीएल के मामले में, पेट्रोलियम उत्पाद बीपीसीएल द्वारा अपनी साइडिंग पर लोड किया गया था और उसके बाद सभी मामलों में रेलवे ने रसीद जारी की, जिस पर टिप्पणी थी 'एस/सी' (जिसमें शामिल बताया गया है), 'एसडब्ल्यू' (प्रेषक का वजन स्वीकार किया गया) और साथ ही 'लोडिंग रेलवे स्टाफ द्वारा निगरानी नहीं की गई थी' और 'संयुक्त डिप सर्टिफिकेट' भी इंगित करता है कि रेलवे अधिनियम 1989 की धारा 94 के अनुसार किसी भी नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं है और इस तरह, यह बीपीसीएल का कर्तव्य था कि वह उचित साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित करे कि (i) पेट्रोलियम उत्पाद/माल ठीक से लोड किया गया था; (ii) रसीद में बताए अनुसार मात्रा उचित थी और (iii) रेलवे या उसके कर्मचारियों की ओर से किसी कदाचार या लापरवाही के कारण क्षतिग्रस्त हो गया था।

38. यह साबित करने के लिए कि बीपीसीएल की साइडिंग पर पेट्रोलियम उत्पाद को ठीक से लोड किया गया था और रसीद में दर्शाए अनुसार ही लोड किया गया था, प्रेषक अर्थात् बीपीसीएल को कम से कम एक उपयुक्त व्यक्ति (वह व्यक्ति जिसने बीपीसीएल की साइडिंग पर लोडिंग की निगरानी की थी या वह व्यक्ति जो लोडिंग के लिए अधिकृत था और बीपीसीएल की साइडिंग पर मौजूद था) का साक्ष्य प्रस्तुत करना था, साथ ही प्रासंगिक

39. जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, प्रेषक के उचित साक्ष्य के अभाव में, इस न्यायालय के विचार में, 'संयुक्त डिप सर्टिफिकेट' या अंशांकन प्रमाणपत्र (एफएएफओ संख्या 49/2018 के रिकॉर्ड पर), बीपीसीएल के दावे को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त नहीं था। इस प्रकार, बीपीसीएल, सभी मामलों में, अपने दावे को साबित करने में और साथ ही रेलवे प्रशासन की लापरवाही साबित करने में विफल रहा।

40. ऊपर बताए गए मामले (ओं) में, रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि बीपीसीएल ट्रिब्यूनल के समक्ष अपेक्षित साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा।

41. यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि उपरोक्त एक मामले को छोड़कर सभी मामलों में साक्ष्य का हलफनामा श्री बलदेव, वरिष्ठ सहायक दावा, महाप्रबंधक कार्यालय, बीपीसीएल, नोएडा, उत्तर प्रदेश द्वारा योजित किया गया था और इस व्यक्ति ने हलफनामे(ओं) में यह नहीं कहा है कि वह लोडिंग के समय मौजूद था, जाहिर है वह ऐसा नहीं कर सकता। इसके अलावा, इन हलफनामों में बीपीसीएल की साइडिंग पर लोडिंग के समय मानदंडों के अनुसार तैयार किए गए सहायक दस्तावेज़(ओं) के साथ विशेष रूप से यह नहीं कहा गया है कि (i) विवादित पेट्रोलियम उत्पाद ठीक से लोड किया गया था; (ii) सीलिंग,

वाल्वों को कसना आदि मानदंडों के अनुसार किया गया था और इसके अलावा हलफनामे धारा 93 की उपधारा (एफ) और (जी) के अंतर्गत बताए गए पहलुओं पर भी चुप हैं। इस प्रकार, इस न्यायालय के दृष्टिकोण से, सभी मामलों में बीपीसीएल द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, बीपीसीएल के दावे को स्वीकार करने के लिए उपयुक्त/पर्याप्त नहीं थे।

42. उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए इन अपीलों को निरस्त करने के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष नहीं हो सकता है।

43. परिणामस्वरूप, इन अपीलों को निरस्त किया जाता है, लेकिन व्यय के संबंध में कोई आदेश दिए बिना।

44. निचली अदालत के रिकॉर्ड को तुरंत संबंधित न्यायाधिकरण को वापस कर दिया जाए।

-----  
(2023) 9 ILRA 1151

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रेरा अपील दोषपूर्ण संख्या 42/2023

मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड

... अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती राज रानी

...प्रतिवादी

**अपीलकर्ता के अधिवक्ता:**

आहुति अग्रवाल, अभिषेक खरे

**प्रतिवादी के अधिवक्ता:**

**सिविल विधि - यूपी रियल एस्टेट विनियमन और विकास अधिनियम, 2016 - यूपी रियल एस्टेट विनियमन और विकास नियम, 2016-नियम 2 (एच) - यूपी शहरी नियोजन विकास अधिनियम, 1973-धारा 15-ए ---** यह दावा करने के लिए कि परियोजना एक 'चल रही परियोजना' नहीं थी, अपीलकर्ता नियम 2 (एच) के प्रकाश में दलील देने और साबित करने के लिए बाध्य है --- नियम 2016 के नियम 2 (एच) के उप-नियम (i) और (ii) के संबंध में, कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि परियोजना की सेवाएं रखरखाव के लिए स्थानीय प्राधिकरण को सौंप दी गई हैं या उसी के सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं को रखरखाव के लिए आरडब्ल्यूए को सौंप दिया गया है, जिसमें विचाराधीन टावर भी शामिल है, --- अपीलकर्ता द्वारा 1973 के अधिनियम की धारा 15 ए में इंगित 'पूर्णता प्रमाण पत्र' के संबंध में प्रावधान के आधार पर स्थापित मामला बलहीन--- टावर-डब्ल्यू के संबंध में पूर्णता प्रमाण पत्र, निर्विवाद रूप से, विकास प्राधिकरण द्वारा 26.06.2018 को दिया गया था--- अपीलकर्ता 2016 के नियम 2(एच) के उप-नियम (iii) और (iv) के लाभ के हकदार नहीं हैं। (पैरा 21, 22, 26 और 27)

अपील

खारिज

(ई-15)

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. भारत संचार निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम नॉर्टेल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड; (2021)

5 एससीसी 738

2. केरल राज्य बनाम जूम डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड; (2009) 4 एससीसी 563

3. टेकप्रो सिस्टम्स लिमिटेड बनाम तेलंगाना स्टेट पावर जनरेशन पावर लिमिटेड; 2019 एससीसी ऑनलाइन टीएस 1658

4. आईटीडी सीमेंटेशन इंडिया लिमिटेड बनाम एसएसजेवी-संयुक्त उद्यम और अन्य; 2023 (2) एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 1391

5. क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेट वाटर प्यूरिफिकेशन इंक और अन्य (2013) 1 एससीसी 641

6. विद्या झोलिया एवं अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडी कॉर्प; 2021 (2) एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा पारित)

**सी.एम. प्रार्थना पत्र संख्या आईए-01-2023**

सुना।

वर्तमान अपील अपीलकर्ता द्वारा विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थना पत्र के साथ दायर की गई है, क्योंकि रजिस्ट्री ने वर्तमान अपील दायर करने में 39 दिनों का विलम्ब दर्शाया है।

इस न्यायालय के अनुसार विलम्ब क्षमा प्रार्थना पत्र के समर्थन में प्रस्तुत हलफनामे में दर्शाए गए कारण पर्याप्त हैं। तदनुसार, प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।

विलम्ब क्षमा योग्य है।

**अपील पर आदेश**

1. प्रारम्भिक प्रयोजन के लिए, सुश्री आहुति अग्रवाल की सहायता से अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक खरे का कहना है कि उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट अपीलीय अधिकरण लखनऊ (संक्षेप में "लखनऊ") द्वारा अपील संख्या 308/2019 (श्रीमती राजरानी एवं अन्य बनाम मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड) में पारित दिनांक 08.12.2022 के आदेश को चुनौती देने वाली वर्तमान अपील में, मुख्य विवादक अभिव्यक्ति 'चल रही परियोजना' के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसे वास्तव में अधिनियम, अर्थात् उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 (संक्षेप में "2016 का अधिनियम") के तहत परिभाषित नहीं किया गया है, हालांकि, इसे उ0प्र0 रियल एस्टेट विनियमन और विकास नियम, 2016 (संक्षेप में "2016 के नियम"), विशेष रूप से नियम 2(एच) में इंगित किया गया है।

2. उन्होंने कहा कि प्रकरण के इस पहलू पर विचार किया जाना आवश्यक है क्योंकि यह न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र के विवादक पर प्रहार करता है। यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा विवादक उठाया गया प्रोजेक्ट शिकायत दर्ज करने के समय नियमावली 2016 के

नियम 2(एच) के तहत परिभाषित एक 'चल रही परियोजना' थी, तो उस प्रकरण में, दावे पर सही तरीके से विचार किया गया अन्यथा न्यायाधिकरण के पास निजी विपक्षी पक्षों के दावे पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं था और अधिकार क्षेत्र के आधार पर आदेश को रद्द कर दिया जाएगा।

3. यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि वर्तमान अपील अपीलकर्ता मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड द्वारा अधिनियमावली 2016 की धारा 58 के अंतर्गत प्रस्तुत की गई है। यह भी कानून का स्थापित सिद्धांत है कि धारा 58 के अंतर्गत अपील सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अंतर्गत प्रदत्त द्वितीय अपील के समान है, जिसका अर्थ यह है कि यदि अपील में विधि का कोई सारवान प्रश्न सम्मिलित है, तभी उस पर विचार किया जा सकता है अन्यथा अपील को प्रवेश स्तर पर ही खारिज किया जा सकता है।

4. 'चल रही परियोजना' की अभिव्यक्ति पर, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि परियोजना वर्ष 2009 में शुरू की गई थी। इस परियोजना को "होम्स 121. नोएडा" के नाम से जाना जाता है। योजना के अनुसार, बाईस टावरों का निर्माण किया जाना था। बेशक, जब 2016 का अधिनियम और नियम लागू हुए, तब केवल इक्कीस टावरों का निर्माण किया गया था, न कि सभी पहलुओं में पूरा किया गया था। यह इस तथ्य के मद्देनजर है कि इन टावरों का 'कब्जा प्रमाण पत्र' सक्षम प्राधिकारी, अर्थात् न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, नोएडा (संक्षेप में "विकास

प्राधिकरण") द्वारा 25.02.2016 को प्रदान किया गया था।

5. उन्होंने बाद में कहा कि बाईस टावरों में से एक टावर यानी टावर-डब्ल्यू का 'कब्जा प्रमाण पत्र' हालांकि अधिनियम और नियमावली 2016 के लागू होने से पहले लागू किया गया था, लेकिन विकास प्राधिकरण द्वारा जारी नहीं किया गया था। इस टावर-डब्ल्यू में प्रतिवादीगण का फ्लैट स्थित है। निर्विवाद रूप से, फ्लैट संख्या 12023, 12वीं मंजिल, टावर डब्ल्यू अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी को आवंटित किया गया था।

6. उन्होंने यह भी कहा कि टावर-डब्ल्यू में 92 फ्लैट हैं। आवंटन पत्र दिनांक 09.03.2012 के अनुसार अपीलार्थी (प्रमोटर/डेवलपर) को जुलाई 2014 तक फ्लैट पर कब्जा प्रदान करना था। कब्जा न दिए जाने पर निजी विपक्षीगण ने अपीलार्थी के पास जमा धनराशि की वापसी का दावा करते हुए उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण से संपर्क किया। अभिलेखों के अनुसार प्राधिकरण के समक्ष दावा की गई धनराशि 75,87,757/- रुपये थी। निजी विपक्षीगण के दावे का अपीलार्थी द्वारा लिखित कथन दाखिल करके विरोध किया गया। संक्षेप में, विलम्ब के सम्बन्ध में लिखित कथन में यह दर्शाया गया है कि वास्तव में टावर-डब्ल्यू के निर्माण में कोई विलम्ब नहीं हुआ था। टावर-डब्ल्यू का निर्माण समय से किया गया था तथा टावर-डब्ल्यू के सम्बन्ध में 'कब्जा प्रमाण-पत्र' प्रदान करने के लिए वर्ष 2015 में विकास प्राधिकरण के समक्ष प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था।

7. इस स्तर पर, प्रश्न पूछे जाने पर, न तो प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने की तारीख और न ही प्रार्थना पत्र की प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जा सकी।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्ष 2015 में 'कब्जा प्रमाण पत्र' मांगने के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने के बावजूद, प्राधिकरण 'कब्जा प्रमाण पत्र' प्रदान करने में विफल रहा, इस प्रकार, अपीलकर्ता की ओर से कोई गलती नहीं है। इसके अलावा, उ0प्र0 शहरी नियोजन विकास अधिनियम, 1973 (संक्षेप में "1973 का अधिनियम") की धारा 15-ए, जो वर्तमान प्रकरण में लागू है, 'पूर्णता प्रमाण पत्र' के संबंध में मानित प्रावधान प्रदान करती है और तदनुसार, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 'कब्जा प्रमाण पत्र' मांगने वाला प्रार्थना पत्र वर्ष 2015 में प्रस्तुत किया गया था और 2016 का अधिनियम 01.05.2017 को लागू हुआ, यह माना जा सकता है कि 'कब्जा/पूर्णता प्रमाण पत्र' संबंधित प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था।

9. इस स्तर पर, अपीलकर्ता के अधिवक्ता से यह प्रश्न पूछा गया कि क्या लिखित बयान में किए गए 'कब्जा/पूर्णता प्रमाण पत्र' की मांग करने वाले प्रार्थना पत्र से संबंधित दलीलों के समर्थन में ट्रिब्यूनल सहित 2016 के अधिनियम के तहत प्राधिकारियों के समक्ष 'कब्जा प्रमाण पत्र' मांगने वाला प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, उन्होंने निष्पक्ष रूप से कहा कि प्रार्थना पत्र दायर नहीं किया गया था।

10. यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि अभिवचनों पर तभी विचार किया जा सकता है जब उसके समर्थन में अभिलेख पर साक्ष्य उपलब्ध हो और इसके विपरीत, अर्थात् साक्ष्य के अभाव में अभिवचनों पर विचार नहीं किया जा सकता और अभिवचनों के अभाव में साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता।

11. इस स्तर पर यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि दिनांक 15.02.2016 और 26.06.2018 के रिकॉर्ड पर 'अधिभोग/पूर्णता प्रमाणपत्र' की प्रतियां दर्शाती हैं कि टावर-डब्ल्यू के संबंध में, निरीक्षण 18.12.2017 को किया गया था और उसके बाद, टावर-डब्ल्यू के संबंध में 'अधिभोग प्रमाणपत्र' 26.06.2018 को जारी किया गया था।

12. नियम 2(एच) (ii) और (iii) के आधार पर अपने प्रकरण का समर्थन करने के लिए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि परियोजना में निश्चित रूप से बाईस टावर शामिल हैं और इक्कीस टावर पूरे हो चुके हैं और इन 21 टावरों के संबंध में 'कब्जा प्रमाण पत्र' 15.02.2016 को विकास प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था और साठ प्रतिशत से अधिक अपार्टमेंट आवंटियों को सौंप दिए गए थे। इस प्रकार, नियम 2(एच) के अनुसार, परियोजना एक 'चल रही परियोजना' नहीं थी। इस प्रकार, 2016 के अधिनियम के तहत प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के पास प्रकरण या अपील पर विचार करने और निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं था, जैसा भी प्रकरण हो।

13. इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कि 2016 के अधिनियम से पहले, जो 01.05.2017 को लागू हुआ, 60% से अधिक बिक्री-विलेख निष्पादित किए गए थे, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 05.04.2023 के पूरक हलफनामे के आधार पर कहा कि अनुलग्नक SA-1 का अवलोकन, जो बिक्री-विलेखों के पंजीकरण से संबंधित चार्ट की एक प्रति है, यह दिखाएगा कि 2016 के अधिनियम के शुरू होने से पहले पूरे प्रोजेक्ट के लगभग 73% फ्लैटों के बिक्री-विलेख निष्पादित किए गए थे।

14. तथापि, पूरक हलफनामे के साथ संलग्न चार्ट के अवलोकन से पता चलता है कि टावर-डब्ल्यू का कोई भी फ्लैट, जिसमें विवादित फ्लैट स्थित है और जो चरण-IV का हिस्सा है, 2016 के अधिनियम के लागू होने से पहले नहीं बेचा गया था।

15. बहस के दौरान यह पूछे जाने पर कि 'कब्जा प्रमाण पत्र' या 'समापन प्रमाण पत्र' परियोजना के ब्रोशर या संबंधित पक्षों के बीच समझौते के अनुसार चरणवार/टावरवार प्राप्त किया जाना था, और क्या उसमें टावरों के पूरा होने और उनका कब्जा सौंपने की अलग-अलग तारीखें बताई गई हैं, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर उक्त प्रश्नों का उत्तर देने में विफल रहे।

16. अपीलकर्ता के अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण पर विचार करने से पहले, यह न्यायालय इस विचार पर है कि विवादक संख्या 6 पर

न्यायाधिकरण का निर्णय प्रासंगिक है, क्योंकि यह इस अपील में शामिल विवादक से संबंधित है और इस पर निर्णय लेते समय न्यायाधिकरण ने 2016 के अधिनियम और 2016 के नियमों के सभी प्रासंगिक प्रावधानों को संदर्भित किया। तदनुसार, इसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

15. **विवादक संख्या (6)** के तहत हमें यह जांचना आवश्यक है कि क्या दिनांक 02.08.2019 के आदेश में कोई अवैधता या विकृति है?

15.1 प्रतिवादी की दलीलों के अनुसार, प्रतिवादी ने 22 टावरों वाले कई चरणों में 'होम्स 121, नोएडा' के नाम से एक रियल एस्टेट प्रोजेक्ट लॉन्च किया। नोएडा प्राधिकरण ने 15.12.2016 को प्रतिवादी को 1640 आवासीय इकाइयों वाले 21 टावरों के लिए ओसी/सीसी जारी किया, उसी की प्रतिलिपि प्रतिवादी द्वारा 02.11.2020 के अपने उत्तर के साथ आर-3 के रूप में रिकॉर्ड पर रखी गई है। उत्तर के पैरा 9 में प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि केवल एक पावर बचा है, जिसका नाम टावर-डब्ल्यू है जिसमें केवल 92 आवासीय इकाइयां हैं और जिसका निर्माण भी वर्ष 2015 में पूरा हो गया था। कब्जा प्रमाण पत्र जारी करने का प्रकरण नोएडा प्राधिकरण के पास था।

15.2 अपीलकर्ता ने सचिव, उ०प्र० रेरा के दिनांक 02.01.2019 के आदेश की एक प्रति रिकॉर्ड पर लाई है, जिसके द्वारा प्रतिवादी को सूचित किया गया था कि प्रतिवादी की परियोजना 'चल रही परियोजना' की श्रेणी में

आती है और उ0प्र0 रेरा के साथ इसे पंजीकृत न करके प्रतिवादी ने अधिनियमावली 2016 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है और उ0प्र0 रेरा के दिनांक 27.11.2018 के आदेश के अनुसार निर्धारित दंड के साथ 7 दिनों के भीतर पंजीकरण करने का निर्देश दिया है, ऐसा न करने पर अधिनियमावली 2016 की धारा 59 के प्रावधानों के तहत कार्रवाई शुरू की जाएगी।

15.3 अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि नियामक प्राधिकरण ने 22.06.2018 को नोएडा के सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी उ0प्र0 रेरा के सचिव के निर्देश की जांच किए बिना, अपीलकर्ता की दलीलों और प्रार्थना को निर्देशित करते हुए माना कि विचाराधीन परियोजना को पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता की दलीलों और प्रार्थना के खिलाफ यह आवश्यक था। नियामक प्राधिकरण पर यह आवश्यक था कि वह उ0प्र0 रेरा के साथ परियोजना को पंजीकृत न करने के लिए प्रतिवादी के खिलाफ आगे बढ़े, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि टावर-डब्ल्यू का ओसी/सीसी सक्षम प्राधिकारी नोएडा द्वारा अधिनियमावली 2016 के प्रावधानों के लागू होने के काफी बाद जारी किया गया है, जिसमें चल रही परियोजना के प्रमोटर पर तीन महीने के भीतर इसे पंजीकृत कराना आवश्यक था।

15.4 अधिनियम और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के अंतर्गत निहित कुछ धाराओं, परिभाषाओं के महत्व को समझना उचित होगा। रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 की धारा 3, जो 25 मार्च, 2016 को प्रभावी हुई, नीचे पुनः प्रस्तुत की जा रही है :-

धारा 3 "रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के साथ रियल एस्टेट परियोजना का पूर्व पंजीकरण"

(1) कोई भी प्रमोटर किसी भी योजना क्षेत्र में किसी भी अचल संपत्ति परियोजना या उसके हिस्से में किसी भी भूखंड, अपार्टमेंट या भवन का विज्ञापन, विपणन, बुकिंग, बिक्री या बिक्री के लिए प्रस्ताव नहीं करेगा, या किसी भी तरीके से लोगों को खरीदने के लिए आमंत्रित नहीं करेगा, इस अधिनियम के तहत स्थापित रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के साथ अचल संपत्ति परियोजना को पंजीकृत किए बिना:

बशर्ते कि जो परियोजनाएं इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को चल रही हों और जिनके लिए पूर्णता प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया गया हो, वहां प्रमोटर इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर उक्त परियोजना के पंजीकरण के लिए प्राधिकरण को प्रार्थना पत्र करेगा:

आगे यह भी प्रावधान है कि यदि प्राधिकरण आवंटियों के हित में ऐसी परियोजनाओं के लिए आवश्यक समझे, जो योजना क्षेत्र से बाहर विकसित की गई हैं, किन्तु स्थानीय प्राधिकरण की अपेक्षित अनुमति से, तो वह आदेश द्वारा ऐसी परियोजना के संप्रवर्तक को प्राधिकरण के पास पंजीकरण कराने का निर्देश दे सकेगा और इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों और विनियमों के उपबंध पंजीकरण के उस प्रक्रम से ऐसी परियोजनाओं पर लागू होंगे।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, अचल सम्पदा परियोजना का पंजीकरण आवश्यक नहीं होगा-

(ए) जहां विकसित किए जाने के लिए प्रस्तावित भूमि का क्षेत्रफल पांच सौ वर्ग मीटर से अधिक नहीं है या विकसित किए जाने के लिए प्रस्तावित अपार्टमेंटों की संख्या सभी चरणों को मिलाकर आठ से अधिक नहीं है:

बशर्ते कि, यदि समुचित सरकार इसे आवश्यक समझे, तो वह इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण से छूट के लिए सीमा को , सभी चरणों को सम्मिलित करते हुए, पांच सौ वर्ग मीटर या आठ अपार्टमेंट से नीचे कर सकती है:

(बी) जहां प्रमोटर ने इस अधिनियम के लागू होने से पहले किसी रियल एस्टेट परियोजना के लिए पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया है:

(सी) नवीनीकरण या मरम्मत या पुनर्विकास के प्रयोजन के लिए, जिसमें अचल संपत्ति परियोजना के अंतर्गत, जैसा भी प्रकरण हो, किसी अपार्टमेंट, भूखंड या भवन का विपणन, विज्ञापन, बिक्री या नया आबंटन शामिल नहीं है।

**स्पष्टीकरण-** इस धारा के प्रयोजन के लिए, जहां अचल सम्पदा परियोजना को चरणों में विकसित किया जाना है, वहां प्रत्येक ऐसे चरण को एक स्वतंत्र अचल सम्पदा परियोजना माना जाएगा और प्रमोटर को प्रत्येक चरण के लिए इस अधिनियम के अधीन पृथक रूप से पंजीकरण प्राप्त करना होगा।

15.5 इस प्रकार, अधिनियमावली 2016 के अध्याय II के अंतर्गत, रियल एस्टेट परियोजनाओं का पंजीकरण अनिवार्य हो जाता है और कानून को लागू करने और धारा 3 की उप-धारा (1) के तहत अपना स्थान लेने के लिए, यह वैधानिक बनाया गया था कि अधिनियम के तहत स्थापित एक रियल एस्टेट

नियामक प्राधिकरण के साथ रियल एस्टेट परियोजना को पंजीकृत किए बिना, कोई भी प्रमोटर किसी भी रियल एस्टेट परियोजना में किसी भी तरह से प्लॉट, अपार्टमेंट या बिल्डिंग का विज्ञापन, विपणन, बुकिंग, बिक्री या बिक्री के लिए प्रस्ताव नहीं देगा या खरीदने के लिए लोगों को आमंत्रित नहीं करेगा, लेकिन धारा 3(1) के प्रावधानों की सहायता से, यह अनिवार्य किया गया था कि ऐसी परियोजनाएं जो अधिनियम के प्रारंभ की तिथि पर चल रही हैं और अधिक विशेष रूप से वे परियोजनाएं जिनके लिए पूर्णता प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया है, ऐसे प्रमोटर अधिनियम के प्रारंभ की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर उक्त परियोजना के पंजीकरण के लिए प्राधिकरण को प्रार्थना पत्र करने के लिए बाध्य होंगे, सिवाय उन परियोजनाओं के जो अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (2) द्वारा कवर की गई हैं, परिणामस्वरूप, ऐसे सभी घर खरीदारों के समझौते जो पार्टियों द्वारा परस्पर निष्पादित किए गए हैं अपनी चल रही परियोजनाओं को पूरा करने में विधायी जनादेश का पालन करना।

अधिनियम के अंतर्गत "चल रही परियोजना" शब्द को इस प्रकार परिभाषित नहीं किया गया है, जबकि "रियल एस्टेट परियोजना" को अधिनियम की धारा 2( जेडएन ) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

"2(एजेडएन)- अचल संपत्ति परियोजना" का अर्थ है, किसी भवन या अपार्टमेंटों से युक्त भवन का विकास, या किसी विद्यमान भवन या उसके किसी भाग को अपार्टमेंटों में परिवर्तित करना, या भूमि का भूखंडों या अपार्टमेंटों में



विकास, जैसा भी प्रकरण हो, उक्त सभी अपार्टमेंटों या भूखंडों या भवनों को, जैसा भी प्रकरण हो, बेचने के प्रयोजनार्थ, और इसमें सामान्य क्षेत्र, विकास कार्य, उन पर सभी सुधार और संरचनाएं, तथा उनसे संबंधित सभी सुखभोग, अधिकार और अनुलग्नक शामिल हैं।" विधायी अधिदेश के अनुसार, अधिनियम का उद्देश्य चल रही रियल एस्टेट परियोजनाओं पर भी लागू होना है। "चल रही परियोजना" की परिभाषा 30प्र0 रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) नियम, 2016 के नियम 2(एच) के तहत दी गई है, जो इस प्रकार है-

"2(एच) "चल रही परियोजना" से ऐसी परियोजना अभिप्रेत है, जहां विकास कार्य चल रहा है और जिसके लिए पूर्णता प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया गया है, किन्तु इसमें ऐसी परियोजनाएं शामिल नहीं हैं, जो इन नियमों की अधिसूचना की तिथि को निम्नलिखित में से किसी भी मानदंड को पूरा करती हैं :

(i) जहां सेवाएं रखरखाव के लिए स्थानीय प्राधिकरण को सौंप दी गई हैं।

(ii) जहां सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं रखरखाव के लिए निवासी कल्याण एसोसिएशन को सौंप दी गई हैं।

(iii) जहां सभी विकास कार्य पूरे हो गए हों और साठ प्रतिशत अपार्टमेंट/मकान/भूखंडों की बिक्री/पट्टा विलेख निष्पादित हो गए हों।

(iv) जहां सभी विकास कार्य पूरे हो गए हैं और पूर्णता प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास प्रार्थना पत्र दायर कर दिया गया है।"

अधिनियम की धारा 2(क्यू) के तहत "पूर्णता प्रमाणपत्र" तथा धारा 2( जेडएफ ) के तहत

"अधिभोग प्रमाणपत्र" को परिभाषित किया गया है , जो इस प्रकार है :-

"2(क्यू) "पूर्णता प्रमाणपत्र" का तात्पर्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया पूर्णता प्रमाणपत्र या ऐसा अन्य प्रमाणपत्र, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो, से है जो यह प्रमाणित करता है कि रियल एस्टेट परियोजना को स्थानीय कानूनों के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित स्वीकृत योजना, लेआउट योजना और विनिर्देशों के अनुसार विकसित किया गया है ;

"2(जेडएफ) "अधिभोग प्रमाणपत्र" का तात्पर्य अधिभोग प्रमाणपत्र या ऐसा अन्य प्रमाणपत्र, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो, सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया है, जो स्थानीय कानूनों के तहत किसी भवन पर कब्जे की अनुमति देता है, जिसमें जल, स्वच्छता और बिजली जैसे नागरिक बुनियादी ढांचे का प्रावधान है;"

15.6 नियमों की योजना को देखते हुए, पूर्णता प्रमाण पत्र केवल तभी जारी किया जा सकता है जब सभी मानदंडों आदि का अनुपालन कर लिया गया हो और उसके बाद ही कोई परियोजना पंजीकरण के अधिदेश से बच सकेगी।

15.7 इसके अलावा, अधिनियमावली 2016 की योजना और धारा 3 के अनुसार विशेष रूप से सभी "चल रही परियोजनाएं" जो अधिनियम से पहले शुरू हुई हैं और जिनके संबंध में पूर्णता प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया है, अधिनियम के अंतर्गत आती हैं। यह स्पष्ट है कि विधायी इरादा अधिनियम को न केवल उन

परियोजनाओं पर लागू करना है जो अधिनियम के लागू होने के बाद भी शुरू होनी थीं, बल्कि चल रही परियोजनाओं को भी इसके दायरे में लाना और इसके आरंभ से ही आवंटियों/घर खरीदारों, प्रमोटरों और रियल एस्टेट एजेंटों सहित हितधारकों के पारस्परिक अधिकारों की रक्षा करना है, जबकि उनमें से प्रत्येक पर कुछ कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ लागू करना और रियल एस्टेट प्राधिकरण के दायरे में अनियमित रियल एस्टेट क्षेत्र को विनियमित, प्रशासित और पर्यवेक्षण करना है।

15.8 सर्वोच्च न्यायालय को हाल ही में **मेसर्स न्यूटेक प्रमोटर्स एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उ०प्र० राज्य और अन्य (सिविल अपील संख्या 6745-6749/2021, जो एसएलपी (सिविल) संख्या 3711-3715/2021 से उत्पन्न हुई थी)** में इस बात पर विचार करने का अवसर मिला था कि क्या रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 अपने संचालन में पूर्वव्यापी है या पूर्वव्यापी है और भारत के संविधान के दायरे में परीक्षण किए जाने पर इसके कानूनी परिणाम क्या होंगे। सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम के उद्देश्यों और लक्ष्यों, प्रावधानों के व्यापक विश्लेषण के बाद निम्नानुसार अवलोकन किया :-

"41. कानून की स्पष्ट और अस्पष्ट भाषा संचालन में पूर्वव्यापी है और वैधानिक निर्माण के उद्देश्यपूर्ण व्याख्या नियम को लागू करने से केवल एक ही परिणाम संभव है, यानी, विधायिका ने जानबूझकर प्लॉट, अपार्टमेंट या इमारत की बिक्री सुनिश्चित करने के लिए एक पूर्वव्यापी कानून बनाया है। रियल एस्टेट

परियोजना एक कुशल और पारदर्शी तरीके से की जाती है ताकि रियल एस्टेट क्षेत्र में उपभोक्ताओं के हितों की हर तरह से रक्षा की जा सके और धारा 13, 18 (1) और 19 (4) सभी उपभोक्ताओं/आवंटियों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए लाभकारी प्रावधान हैं। दी गई परिस्थितियों में, यदि अधिनियम को भावी माना जाता है तो धारा 31 के तहत न्यायिक तंत्र किसी भी चालू परियोजना के लिए किसी भी आवंटी के लिए उपलब्ध नहीं होगा। इस प्रकार, यह इस प्रकरण के तथ्यों पर भी, अधिनियम की पूर्वव्यापी प्रयोज्यता पर एक अधिभावी प्रभाव रखने वाले संविदात्मक शर्तों के बारे में प्रमोटरों के तर्क को नकारता है।

42. प्रावधान इस बात पर और जोर देता है कि जो परियोजना पूरी नहीं हुई है/पूर्णता प्रमाण पत्र के बिना है, उसका प्रमोटर अधिनियम के तहत परियोजना को पंजीकृत करवाएगा, लेकिन परियोजना को पंजीकृत करवाते समय प्रमोटर को शेष विकास कार्य को पूरा करने के लिए नई समयसीमा निर्धारित करने का दायित्व है और अधिनियम की योजना से, हमें नहीं लगता कि धारा 3(1) का पहला प्रावधान किसी भी तरह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(जी) का उल्लंघन करता है। संसद हमेशा कानून के मापदंडों के भीतर अपने अधीन पूर्ववर्ती घटनाओं को प्रभावित करने वाले किसी भी कानून को लागू करने के लिए सक्षम है,"

सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वव्यापी और पूर्वव्यापी कानूनों के बीच अंतर स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की-

48. इस न्यायालय द्वारा जय महाकाली रोलिंग मिल्स बनाम भारत संघ एवं अन्य प्रकरण में पूर्वव्यापी और पूर्वव्यापी के बीच अंतर को स्पष्ट किया गया है, जो इस प्रकार है :-

"8. "पूर्वव्यापी" का अर्थ है पीछे की ओर देखना, अतीत पर विचार करना। किसी कानून या विचाराधीन कानून से पहले मौजूद चीजों का संदर्भ होना। पूर्वव्यापी कानून का अर्थ है ऐसा कानून जो पीछे की ओर देखता है या अतीत पर विचार करता है, जो लागू होने से पहले घटित होने वाले कार्यों या तथ्यों या अधिकारों को प्रभावित करने के लिए बनाया जाता है। पूर्वव्यापी कानून का अर्थ है ऐसा कानून जो लेन-देन या विचारों पर एक नया दायित्व बनाता है या निहित अधिकारों को नष्ट या खराब करता है,"

49. इसके अलावा, इस न्यायालय ने शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम असम राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य प्रकरण में निम्नानुसार निर्णय दिया :-

"67. कानून के संदर्भ में पूर्वव्यापी प्रभाव का अर्थ है किसी ऐसे कार्य या लेन-देन पर कानून के नए नियम का लागू होना जो नियम के लागू होने से पहले पूरा हो चुका हो। 68. वर्तमान प्रकरण में, खरीदार का भुगतान करने का दायित्व और धारा 3 और 4 के तहत भुगतान और ब्याज देय होने की तिथि किसी ऐसी घटना से संबंधित नहीं है जो 1993 के अधिनियम से पहले हुई हो, हमारे लिए यह कहना भी आवश्यक नहीं है कि 1993 का

अधिनियम पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू है। 1993 का अधिनियम स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू है और इसे पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू कहना आवश्यक नहीं है। इसलिए, हम 31.8.2016 [शांति कंडक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम असम एसईबी (2016) 15 एससीसी 13] के माननीय न्यायाधीशों में से एक की राय से सहमत नहीं हैं, जिसमें कहा गया है कि 1993 का अधिनियम पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू है।"

50. विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा एवं अन्य के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए निर्णय में, इस न्यायालय ने हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6(1) के दायरे की व्याख्या करते हुए पूर्वव्यापी कानून के तहत निम्नानुसार निर्णय दिया है :-

"61. भावी कानून नए अधिकार प्रदान करते हुए अपने अधिनियमन की तिथि से लागू होता है। पूर्वव्यापी कानून पीछे की ओर काम करता है और मौजूदा कानूनों के तहत प्राप्त निहित अधिकारों को छीन लेता है या उन्हें नष्ट कर देता है। पूर्वव्यापी कानून वह है जो पूर्वव्यापी रूप से काम नहीं करता है। यह भविष्य में काम करता है। हालाँकि, इसका संचालन पहले उत्पन्न हुई विशेषता या स्थिति पर आधारित होता है। विशेषता या घटना जो अतीत में हुई थी या ऐसी आवश्यकताएँ जो पूर्ववर्ती घटनाओं से ली गई थीं। संशोधित धारा 6 के तहत, चूँकि अधिकार जन्म से दिया जाता है, यानी एक पूर्ववर्ती घटना, और प्रावधान अधिकारों का दावा करने या संशोधन अधिनियम की तिथि से संचालित होते हैं,"

"51. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कोई कानून केवल इसलिए पूर्वव्यापी नहीं है क्योंकि यह विद्यमान अधिकारों को प्रभावित करता है या इसका पूर्वव्यापीकरण इसलिए नहीं है क्योंकि इसकी कार्रवाई के लिए अपेक्षित शर्तों का एक हिस्सा इसके पारित होने से पहले के समय से लिया गया है, साथ ही, पूर्वव्यापी कानून का अर्थ है एक ऐसा कानून जो पहले से पारित लेनदेन या प्रतिफल पर एक नया दायित्व बनाता है या निहित अधिकारों को नष्ट या क्षीण करता है।

52. संसद ने अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत वर्तमान में चल रही रियल एस्टेट परियोजनाओं को कानून के दायरे में लाने का इरादा किया है, जिसमें "मौजूदा इमारत या उसके किसी हिस्से को अपार्टमेंट में परिवर्तित करना" शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जिसमें मौजूदा या भविष्य में होने वाली हर तरह की विकासात्मक गतिविधि शामिल है, आवश्यक निहितार्थ और बिना किसी अस्पष्टता के विधायिका का इरादा उन परियोजनाओं को शामिल करना है जो चल रही हैं और ऐसे मामलों में जहां पूर्णता प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया है।

54. अधिनियमावली 2016 की योजना से, इसका प्रार्थना पत्र पूर्वव्यापी है और यह सुरक्षित रूप से देखा जा सकता है कि पहले से ही पूरी हो चुकी या जिन्हें पूर्णता प्रमाण पत्र दिया जा चुका है, वे परियोजनाएँ इसके दायरे में नहीं आती हैं और इसलिए, निहित या अर्जित अधिकार, यदि कोई हों, किसी भी तरह से प्रभावित

नहीं होते हैं। साथ ही, यह अधिनियमावली 2016 के अधिदेश का भावी रूप से पालन करने के लिए धारा 3 के तहत चल रही परियोजनाओं और भविष्य की परियोजनाओं को पंजीकृत कराने के बाद लागू होगा।"

15.9 हमने उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (निर्माण, स्वामित्व और रखरखाव का संवर्धन) अधिनियम, 2010 के प्रावधानों की भी जांच की है, जिसमें अध्याय II में **प्रमोटरों के कर्तव्य और दायित्व** शीर्षक के अंतर्गत धारा 4(5) में यह प्रावधान किया गया है कि किसी अपार्टमेंट को किसी व्यक्ति को केवल संबंधित स्वीकृतकर्ता प्राधिकारी से निर्माण कार्य पूर्ण होने का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद ही हस्तांतरित किया जा सकता है, जैसा कि संबंधित उप-नियमों के अनुसार और स्पष्टीकरण शीर्षक के अंतर्गत यह आगे प्रावधान किया गया है कि इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए "पूर्णता" का अर्थ है एक पूरे भवन के निर्माण कार्यों का पूरा होना, ऐसी इमारत के एक स्वतंत्र ब्लॉक का पूरा होना, जैसा भी प्रकरण हो।

15.10 इस लाभकारी कानून का उद्देश्य, इसमें कहा गया है, "उपभोक्ताओं/आवंटियों के आर्थिक हितों की रक्षा करना है"। यह देखा गया कि अधिनियम, प्रमोटर को ऐसी परियोजना को पंजीकृत कराने के लिए बाध्य करता है, जो अधिनियम के लागू होने की तिथि पर या तो पूरी नहीं हुई है या जिसके पास पूर्णता प्रमाण-पत्र नहीं है।

15.11 मुख्य शब्द, अर्थात्, "इस अधिनियम के लागू होने की तिथि पर चल रही" का अर्थ है, पूर्व-दृष्टया और बिना किसी अस्पष्टता के, वे परियोजनाएँ जो चल रही थीं और ऐसे मामलों में जहाँ केवल पूर्णता प्रमाण पत्र जारी करना लंबित था, विधानमंडल का इरादा था कि उन परियोजनाओं को भी अधिनियम के तहत पंजीकृत किया जाना चाहिए। इसलिए, अधिनियम का दायरा सभी परियोजनाओं को अपने दायरे में लाना है, बशर्ते कि पूर्णता प्रमाण पत्र जारी न किया गया हो। इस प्रकार, धारा 3(2) के तहत उन परियोजनाओं को अधिनियम के तहत पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, अधिनियम का उद्देश्य इस बात पर निर्भर करता है कि किसी परियोजना को अधिनियम के लागू होने की तिथि पर पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त हुआ है या नहीं। परियोजना चालू है या नहीं, इसे अधिनियमावली 2016 की धारा 3(2)(एच) के तहत चालू परियोजना के आधार पर विभेदित किया जाना है, जिसमें कहा गया है कि जहाँ प्रमोटर ने अधिनियमावली 2016 के प्रारंभ से पहले एक रियल एस्टेट परियोजना के लिए पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त किया है, उप-धारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, रियल एस्टेट परियोजना का पंजीकरण आवश्यक नहीं है और परियोजना 'चालू परियोजना' नहीं होगी, लेकिन अधिनियम के प्रारंभ के समय मौजूद परियोजना के संबंध में अन्य मामलों में, पंजीकृत होने की आवश्यकता है, जिसके विफल होने पर नियामक प्राधिकरण को अधिनियमावली 2016 की धारा 59 के तहत कार्रवाई करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि अधिनियम और नियमावली

2016 के प्रावधानों को लागू करने के लिए चालू परियोजना पंजीकृत है।

15.12 अधिनियम की धारा 31 शिकायत दर्ज करने से संबंधित है और इसमें लिखा है कि "कोई भी पीड़ित व्यक्ति किसी प्रमोटर आवंटी या रियल एस्टेट एजेंट के खिलाफ अधिनियम या इसके तहत बनाए गए नियमों और विनियमों के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन के लिए प्राधिकरण या न्यायनिर्णायक अधिकारी के पास शिकायत दर्ज कर सकता है।"

15.13 अधिनियम में पीड़ित व्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है, जिसका अर्थ है कि इस शब्द को एक व्यापक व्याख्या दी जानी चाहिए न कि एक प्रतिबंधात्मक व्याख्या, इस परिदृश्य में, कोई भी व्यक्ति प्राधिकरण के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज कराने आ सकता है। यदि अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन या उल्लंघन के लिए धारा 31 के तहत शिकायत की जाती है (जैसा कि कानून की भाषा से पता चलता है), तो इसमें गैर-डिलीवरी, देरी से कब्जा या किसी अन्य कल्पनीय, या अन्यथा, शोषणकारी स्थिति की अन्य शिकायतों के अलावा, परियोजना को पंजीकृत न करने के लिए आवंटी द्वारा प्रमोटर के खिलाफ शिकायत भी शामिल हो सकती है, जहाँ किसी व्यक्ति की जीवन की कमाई एक रियल एस्टेट परियोजना में दांव पर लगी हो।

5.14 प्राधिकरण को शिकायत स्वीकार करनी होगी, भले ही उसे किसी परियोजना के पूरा होने के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचना हो या अधिनियम की प्रयोज्यता के बारे में आगे

निष्कर्ष निकालना हो। केवल इसलिए कि किसी परियोजना का पंजीकरण नहीं हुआ है, आवंटी को शिकायत दर्ज करने के उसके वैधानिक अधिकार से वंचित करने का स्वीकार्य कारण कभी नहीं हो सकता।

15.15 हमारे विचार में, प्राधिकरण को एक निगरानी संस्था के रूप में कार्य करना होगा तथा ऐसे कदाचारों को रोकने में सक्रिय भूमिका निभानी होगी, जिसके परिणामस्वरूप किसी भी पीड़ित व्यक्ति के लिए इसके दरवाजे बंद हो सकते हैं।

15.16 इसके अतिरिक्त, प्राधिकरण धारा 35 के तहत अपनी शक्तियों की अनदेखी नहीं कर सकता, जिसके तहत वह किसी भी प्रमोटर के मामलों से संबंधित सूचना या स्पष्टीकरण मांगने के लिए स्वप्रेरणा से कार्य कर सकता है, विशेष रूप से तब जब आवंटी अपूर्ण कार्य के साथ-साथ अवसंरचनात्मक विकास की शिकायत करता है, जिससे यह पता चलता है कि परियोजना अभी भी चल रही परियोजना हो सकती है।

15.17 अधिनियम की धारा 32, 34 और 35 को एक साथ पढ़ने पर इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि प्राधिकरण एक निगरानी संस्था है जिसे रियल एस्टेट क्षेत्र में पारदर्शिता सुनिश्चित करने, सभी खिलाड़ियों की सुरक्षा करने के लिए बनाया गया है, चाहे वह आवंटी हो, प्रमोटर हो या रियल एस्टेट एजेंट हो। अंतर्निहित जोर आवंटी के हितों की रक्षा करने पर है, जो प्रमोटरों/डेवलपर्स की ताकत की तुलना में बहुत छोटा है।

15.18 इसमें कोई संदेह नहीं कि कानून की भाषा में यह कहा गया है कि किसी परियोजना के पूरा होने पर पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन विकास कार्यों में कमी के संबंध में शिकायत की स्थिति में, प्राधिकरण का यह कर्तव्य है कि वह प्रकरण पर विचार करे, बारीकी से निगरानी रखे, अन्यथा बेईमान डेवलपर्स/प्रमोटर्स द्वारा आवंटियों के मूल्यवान अधिकारों को पराजित करने के लिए ऐसी दलीलों का सहारा लिया जा सकता है।

15.19 हमारा मानना है कि कानून की भाषा में यह भी प्रावधान है कि डेवलपर को अधिनियम के पंजीकरण और परिणामों से तभी सुरक्षा मिलेगी, जब परियोजना पूर्णता प्रमाण पत्र के साथ पूरी हो गई हो। लेकिन, यह स्थापित करना कि परियोजना चल रही है या पूरी हो गई है, सिर्फ प्रमोटर को अधिनियम के परिणामों से मुक्त करने के लिए, पीड़ित व्यक्ति द्वारा शुरू की गई कार्यवाही के दौरान निर्धारित किए जाने वाले तथ्य हैं। अधिनियम की गैर-लागूता परियोजना के पंजीकृत न होने के मात्र तथ्य सरलीकरण से प्राप्त होने वाली धारणा नहीं हो सकती।

15.20 अधिनियम की धारा 59 के तहत कार्यवाही प्राधिकरण के लिए उपलब्ध एक रास्ता है, सिवाय शिकायत के निर्धारण के। एक बार जब प्रमोटर की कमियों और चूकों को इंगित करने वाले मुद्दों पर शिकायत दर्ज की जाती है, तो प्राधिकरण को खुद ही यह तय करना होता है कि शिकायत दर्ज करने के बाद धारा 59 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का सहारा लेना है या नहीं।

15.21 चूंकि अधिनियमावली 2016 के प्रावधान 1 मई 2016 से लागू किए गए थे और इसलिए, टॉवर-डब्ल्यू के लिए पूर्णता प्रमाण पत्र की अनुपस्थिति में, जिसमें अपीलकर्ता की इकाई शामिल है, टॉवर-डब्ल्यू चालू परियोजना की श्रेणी में आएगा और इसलिए, प्रतिवादी को अधिनियमावली 2016 की धारा 3 के प्रावधानों के तहत उ0प्र0 रेरा के साथ इसे पंजीकृत करना आवश्यक है।

15.22 हमारे विचार से प्रतिवादी की परियोजना के पंजीकरण की आवश्यकता न होने के बारे में विनियामक प्राधिकरण का निष्कर्ष न केवल विकृत है बल्कि रिकॉर्ड के विरुद्ध भी है। इसके अलावा, कब्जा देने के लिए एक निर्देश जारी किया गया है, जो शिकायतकर्ता/अपीलकर्ता की दलीलों के विपरीत है।

15.23 नियामक प्राधिकरण का यह भी दायित्व था कि वह प्रकरण को नियामक प्राधिकरण के प्रशासनिक पक्ष को संदर्भित करके परियोजना की स्थिति के संबंध में जांच करवाता, वर्तमान प्रकरण में सचिव ने पहले ही प्रतिवादी को परियोजना के पंजीकरण के लिए निर्देश जारी कर दिया था क्योंकि यह चालू परियोजना की श्रेणी में आती है, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से उक्त आदेश के विपरीत नियामक प्राधिकरण की निचली पीठ ने आपत्तिजनक आदेश पारित कर दिया।

15.24 उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर तथा अधिनियमावली 2016 और नियमावली 2016 के प्रावधानों की जांच के पश्चात, हम मानते हैं कि अधिनियमावली 2016 के प्रावधानों के लागू

होने के समय (अर्थात 01.05.2016) प्रतिवादी की परियोजना चालू परियोजना की श्रेणी में आती थी तथा उसे उ0प्र0 रेरा में पंजीकृत होना आवश्यक था। इसके लिए उ0प्र0 रेरा के सचिव द्वारा पहले ही निर्देश जारी किए जा चुके थे। इस प्रकार, हम पाते हैं कि दिनांक 02.08.2019 का विवादित आदेश न केवल गलत है, बल्कि अवैधानिक और अभिलेखों के विरुद्ध भी है। तदनुसार विवादक संख्या (6) का उत्तर दिया जाता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों (i) सिविल अपील संख्या 3182 / 2019 कोलकाता वेस्ट इंडस्ट्रियल सिटी प्राइवेट लिमिटेड बनाम देवाशीष रयुद्रा, (ii) सिविल अपील संख्या 3207 और 3208 / 2019 मार्वल ओमेगा बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम एस विहारिस गोखले और अन्य, (iii)(2018)5 एससीसी 442 फॉर्च्यून इंफ्रास्ट्रक्चर और अन्य बनाम ट्रेवर डी लीमा और अन्य और (iv) (2007)6 एससीसी 711 बेंगलूर विकास प्राधिकरण बनाम सिंडिकेट बैंक के माध्यम से यह अवलोकन किया कि आवंटियों को यूनिट के कब्जे के लिए अनिश्चित काल तक इंतजार करने की आवश्यकता करना अनुचित होगा और आवंटी मुआवजे के साथ उनके द्वारा भुगतान की गई राशि की वापसी मांगने का हकदार है।

17. उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हमारा विचार है कि शिकायत संख्या 11201824577 (श्रीमती राज रानी एवं श्री वीरेंद्र कुमार बनाम मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड) में नियामक प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक

02.08.2019 का निर्णय एवं आदेश कानून की दृष्टि में पोषणीय नहीं है। तदनुसार, इसे रद्द किया जाता है और हम निम्नलिखित निर्देशों के साथ **अपील** स्वीकार करते हैं: - -

(i) प्रतिवादी को शिकायतकर्ता/अपीलकर्ताओं को 75,87,7571 रुपये की राशि वापस करने का निर्देश दिया जाता है।

(ii) प्रतिवादी को शिकायतकर्ता/अपीलकर्ताओं को जमा की तारीख से राशि की वापसी तक 75,87,757/- रुपये की राशि पर एमसीएलआर+1% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।"

17. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया गया तथा अपीलाधीन न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 08.12.2022 के आदेश सहित अभिलेख का अवलोकन किया गया।

18. वर्तमान प्रकरण में प्रश्न यह है कि क्या विवादित परियोजना या टावर-डब्ल्यू, 'चल रही परियोजना' के अंतर्गत आएगी, जिसे 2016 के नियमों के नियम 2(एच) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है या नहीं।

19. उपर्युक्त विवादक पर निर्णय लेने के लिए, इस न्यायालय का विचार है कि निम्नलिखित तथ्यों पर विचार किया जाना आवश्यक है:-

(i) अपीलकर्ता/प्रमोटर ने "होम्स-121 नोएडा" नाम और शैली में परियोजना शुरू की। योजना

के अनुसार, 22 टावरों का निर्माण किया जाना था।

(ii) स्वीकृत प्रकरण के अनुसार, विचाराधीन टावर को छोड़कर शेष 21 टावर अर्थात् टावर-डब्ल्यू का कार्य पूरा हो चुका है तथा विकास प्राधिकरण द्वारा दिनांक 15.02.2016 को 'कब्जा/पूर्णता प्रमाण-पत्र' प्रदान कर दिया गया है।

(iii) पक्षों के बीच हुए समझौते के अनुसार, विवादित फ्लैट, अर्थात् फेज-IV में टावर-डब्ल्यू में फ्लैट संख्या 1202 का कब्जा आवंटियों (प्रतिवादीगण) को जुलाई, 2014 के महीने में सौंपा जाना था।

(iv) 'कब्जे की अवधि' शीर्षक के अंतर्गत समझौते के प्रासंगिक खंड में कहा गया है कि "फ्लैट का टावरवार कब्जा आवंटियों को दिया जाएगा। कंपनी एतद्वारा आश्वासन देती है कि इस फ्लैट का कब्जा आवंटियों को चरण-IV में जुलाई, 2014 को या उससे पहले सौंप दिया जाएगा।"

(v) समझौते में यह भी कहा गया है कि "प्रस्तावित परियोजना को चरणबद्ध/ब्लॉक के अनुसार क्रियान्वित किया जाएगा। प्रत्येक चरण/ब्लॉक अलग इकाई होगी और आवंटियों को उनके संबंधित चरण/ब्लॉक के पूरा होने पर कब्जा दिया जाएगा। किसी भी आवंटी को उस चरण/ब्लॉक के अलावा, जिसमें उसे फ्लैट आवंटित किया गया है, किसी अन्य चरण/ब्लॉक पर कब्जा मांगने/दावा करने का



अधिकार नहीं होगा। परियोजना के पूरा होने पर सभी सुविधाएं सौंप दी जाएंगी।"

(vi) यहां यह इंगित करना प्रासंगिक होगा कि ऐसा प्रतीत होता है कि जानबूझकर उपरोक्त पैरा (v) में इंगित खंड को 2016 के अधिनियम के तहत अधिकारियों के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा दायर दलीलों/शपथपत्रों में शामिल नहीं किया गया था, जैसा कि वर्तमान अपील के रिकॉर्ड से स्पष्ट है।

(vii) अपीलकर्ता के प्रकरण के अनुसार, 2016 के अधिनियम से पहले, विवादित टावर अर्थात टावर-डब्ल्यू का निर्माण किया गया था और 'कब्जा/पूर्णता प्रमाण पत्र' प्राप्त करने के लिए विकास प्राधिकरण के समक्ष एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था।

(viii) उक्त प्रार्थना पत्र को न तो ट्रिब्यूनल सहित 2016 के अधिनियम के तहत संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष रखा गया और न ही वर्तमान अपील के रिकॉर्ड में लाया गया है और न ही इसके संबंध में अपीलकर्ता ने ट्रिब्यूनल सहित 2016 के अधिनियम के तहत प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत दलीलों/शपथपत्रों में विशिष्ट तारीख का संकेत दिया है।

(ix) 2016 के अधिनियम और 2016 के नियमों के लागू होने तक, विकास प्राधिकरण द्वारा टावर-डब्ल्यू के संबंध में अपीलकर्ता को 'कब्जा/पूर्णता प्रमाण पत्र' प्रदान नहीं किया गया था।

(x) दिनांक 18.12.2017 को स्थल निरीक्षण के पश्चात् दिनांक 26.06.2018 को टावर-डब्ल्यू का 'अधिभोग प्रमाण-पत्र' दिया गया।

(xi) कब्जे का मांग-सह-प्रस्ताव पत्र 31.07.2018 को जारी किया गया।

(xii) अपीलकर्ता को परियोजना को 2016 के अधिनियम के तहत पंजीकृत करने के लिए नोटिस दिया गया था, जिसका अपीलकर्ता द्वारा कभी भी कोई उचित प्रार्थना पत्र/अभ्यावेदन प्रस्तुत करके या उचित प्राधिकारी के समक्ष चुनौती देकर विरोध नहीं किया गया।

(xii) उपर्युक्त उल्लिखित पक्षों के बीच समझौते की धाराओं सहित, यह स्पष्ट है कि संपूर्ण परियोजना का विकास कार्य 'चरण/ब्लॉक'वार था।

(xiii) दिनांक 18.12.2017 को विकास प्राधिकरण के प्राधिकारियों ने 'कब्जा प्रमाण पत्र' प्रदान करने के प्रयोजनार्थ स्थल का निरीक्षण किया, जो कि फेज-IV में आता है और उस तिथि तक टावर-डब्ल्यू का विकास कार्य पूरा हो चुका था और उसके बाद 26.06.2018 को अपीलकर्ता को 'कब्जा प्रमाण पत्र' प्रदान किया गया।

(xiv) इस प्रकार, परियोजना का सम्पूर्ण चरण-IV 26.06.2018 को पूरा माना जा सकता है और इससे पहले, 2016 का अधिनियम लागू हो गया था।

(xv) इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेख से यह पता चलता है कि अपीलकर्ता यह दर्शाने में असफल रहा है कि टावर-डब्ल्यू या फेज-IV, जिसमें टावर-डब्ल्यू स्थित है, के फ्लैटों के 60% या अधिक बिक्री/ लीज विलेख निष्पादित किए गए हैं और यह भी कि इस फेज-IV की सेवाएं स्थानीय प्राधिकारी या सामान्य क्षेत्रों को सौंप दी गई हैं और सुविधाओं को रखरखाव के लिए रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन (संक्षेप में "आरडब्ल्यूए") को सौंप दिया गया है।

(xvi) उपलब्ध रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि अन्य टावरों के संबंध में भी अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं आरडब्ल्यूए को सौंप दी गई थीं और केवल गुमराह करने के लिए अपीलकर्ता ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत आरडब्ल्यूए के पंजीकरण की तारीख 01.09.2017 दर्शाई है।

20. 2016 के अधिनियम में "चल रही परियोजना" की परिभाषा नहीं दी गई है। हालाँकि, इसे 2016 के नियमों के नियम 2(एच) के तहत परिभाषित किया गया है, जो पुनरुत्पादन पर इस प्रकार है :-

"2(एच) "चल रही परियोजना" से ऐसी परियोजना अभिप्रेत है, जहां विकास कार्य चल रहा है और जिसके लिए पूर्णता प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया गया है, किन्तु इसमें ऐसी परियोजनाएं शामिल नहीं हैं, जो इन नियमों की अधिसूचना की तिथि को निम्नलिखित में से किसी भी मानदंड को पूरा करती हैं :

(i) जहां सेवाएं रखरखाव के लिए स्थानीय प्राधिकरण को सौंप दी गई हैं।

(ii) जहां सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं रखरखाव के लिए निवासी कल्याण एसोसिएशन को सौंप दी गई हैं।

(iii) जहां सभी विकास कार्य पूरे हो गए हों और साथ प्रतिशत अपार्टमेंट/मकान/भूखंडों की बिक्री/पट्टा विलेख निष्पादित हो गए हों।

(iv) जहां सभी विकास कार्य पूरे हो गए हैं और पूर्णता प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास प्रार्थना पत्र दायर कर दिया गया है।"

21. यह दावा करने के लिए कि परियोजना कोई 'चल रही परियोजना' नहीं थी, अपीलकर्ता को नियम 2(एच) के आलोक में दलील देने और साबित करने का दायित्व है। तदनुसार, इस अपील में शामिल विवादक पर निर्णय लेने के लिए, यह न्यायालय नियम 2(एच) के आलोक में उपरोक्त पर विचार करेगा।

22. नियमावली 2016 के नियम 2(एच) के उपनियम (i) और (ii) के संबंध में, ऐसा कुछ भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि परियोजना की सेवाएं रखरखाव के लिए स्थानीय प्राधिकरण को सौंप दी गई हैं या सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं रखरखाव के लिए आरडब्ल्यूए को सौंप दी गई हैं, जिसमें संबंधित टावर, अर्थात् टावर-डब्ल्यू या चरण-IV, जिसमें टावर-डब्ल्यू स्थित है, शामिल है, जिसे 18.12.2017 (विकास

प्राधिकरण के अधिकारियों द्वारा निरीक्षण की तिथि) को पूरा पाया गया था और उसके बाद टावर-डब्ल्यू के संबंध में 'पूर्णता/अधिभोग प्रमाण पत्र' 26.06.2018 को जारी किया गया था।

23. यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि उपलब्ध अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि परियोजना में टावरों के संबंध में अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं आरडब्लू को सौंप दी गई हैं और केवल गुमराह करने के लिए अपीलकर्ता ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत आरडब्लू के पंजीकरण की तारीख 01.09.2017 दर्शाई है।

24. इस प्रकार, उपरोक्त कारणों से, अपीलकर्ता नियमावली 2016 के नियम 2(एच) के उप-नियम (i) और (ii) के लाभ के लिए हकदार नहीं होगा।

25. इसी प्रकार, 2016 के नियम 2(एच) के उप-नियम (iii) का लाभ प्राप्त करने के लिए, चरण-IV या टॉवर-W के 60% अपार्टमेंटों की बिक्री/लीज डीड के निष्पादन से संबंधित सहायक साक्ष्य के साथ विवरण रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया, जो कि ट्रिब्यूनल सहित 2016 के अधिनियम के तहत अधिकारियों के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा दायर दलीलों और दस्तावेजों से प्रतिबिंबित होता है और इस न्यायालय के समक्ष दायर पूरक हलफनामे से भी इसका संकेत नहीं मिलता है, यद्यपि इसकी आवश्यकता थी क्योंकि इस न्यायालय ने प्रासंगिक खंडों पर विचार करने के बाद पहले

ही यह टिप्पणी की है कि पूरे प्रोजेक्ट का विकास कार्य 'चरण/ब्लॉक' वार था।

26. इसी तरह, यह साबित करने और सिद्ध करने के लिए कि टावर-डब्ल्यू या चरण-IV के संबंध में सभी विकास कार्य पूरे हो गए थे, जो इस न्यायालय के दृष्टिकोण से आवश्यक था क्योंकि संपूर्ण परियोजना का विकास कार्य 'चरण/ब्लॉक' वार था, और यह भी कि 2016 के अधिनियम के लागू होने से पहले 'कब्जा प्रमाण पत्र' जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, ट्रिब्यूनल सहित 2016 के अधिनियम के तहत अधिकारियों के समक्ष कोई दस्तावेज नहीं रखा गया था और न ही इस न्यायालय के समक्ष रखा गया है। तदनुसार, 1973 के अधिनियम की धारा 15 ए में इंगित 'पूर्णता प्रमाण पत्र' के संबंध में प्रावधान के आधार पर अपीलकर्ता द्वारा स्थापित प्रकरण कोई बल नहीं रखता है। जबकि, टावर-डब्ल्यू के संबंध में पूर्णता प्रमाण पत्र, निर्विवाद रूप से, 26.06.2018 को विकास प्राधिकरण द्वारा दिया गया था।

27. उपर्युक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ता नियमावली 2016 के नियम 2(एच) के उप-नियम (iii) और (iv) के लाभ के लिए हकदार नहीं होगा।

28. इस प्रकार, उपर्युक्त कारणों से, इस न्यायालय के दृष्टिकोण से, परियोजना अर्थात् पूरे प्रोजेक्ट का चरण-IV, जिसमें टावर-डब्ल्यू और फ्लैट स्थित है, 'चल रही परियोजना' के अंतर्गत आती है, इस प्रकार, 2016 के

अधिनियम के तहत प्रतिवादीगण द्वारा उठाया गया दावा पोषणीय था और तदनुसार, न्यायाधिकरण ने प्रतिवादीगण के दावे को सही ढंग से स्वीकार किया, जो किसी भी कानूनी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है और इस प्रकार, वर्तमान अपील में, कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है। तदनुसार अपील को **खारिज** किया जाता है। लागत के सम्बन्ध में आदेश नहीं।

-----  
(2023) 9 ILRA 1165

**मूल क्षेत्राधिकार**

**सिविल पक्ष**

**दिनांक: इलाहाबाद 12.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी**

**चुनाव याचिका संख्या 6 वर्ष 2014**

**राजेंद्र कुमार**

**बनाम**

**कुँवर भारतेन्द्र सिंह**

**...याचिकाकर्ता**

**...प्रतिवादी**

**याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:**

श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, श्री राजेंद्र कुमार इन पर्सन, श्री बीपी सिंह धाकरे, दुर्गा सिंह, श्री केएस जादौन, श्री एनके पांडेय, सुधा पांडेय, श्री नवीन सिन्हा (सीनियर एडवोकेट)

**प्रतिवादी के अधिवक्ता:**

श्री केआर सिंह, श्री त्रिलोकी सिंह, श्री एचपी सिंह, श्री जीतेन्द्र बहादुर सिंह, श्री आरके जैन

**चुनाव याचिका- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951-धारा 125ए -चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा**

मांगी गई राहत थी कि निर्वाचित उम्मीदवार के परिणाम को अमान्य घोषित किया जाए और 24.03.2014 के आदेश को रद्द किया जाए जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपतियों को खारिज कर दिया गया था और निर्वाचित उम्मीदवार का नामांकन पत्र स्वीकार कर लिया गया था---चुनाव याचिका अस्तित्व में नहीं है क्योंकि इस स्तर पर उस पर निर्णय देना निरर्थक होगा, न केवल लोकसभा 2014-2019 का कार्यकाल समाप्त हो गया है, बल्कि उसके बाद के लोकसभा 2019-2024 का कार्यकाल भी कुछ महीनों में समाप्त होने की संभावना है--- चुनाव-याचिकाकर्ता को यह आभास हो रहा है कि चूंकि उसका नामांकन पत्र निर्वाचन अधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया था, इसलिए यह उसकी सार्वजनिक छवि पर एक धब्बा है कि उसने कुछ अवैध किया है या उसके नामांकन पत्र में कुछ गड़बड़ है। हालांकि, निर्वाचन अधिकारी द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से, यह आभास सत्य प्रतीत नहीं होता है। अतः, चुनाव-याचिकाकर्ता की धारणा निराधार है, जिसकी पुष्टि बाद की घटनाओं से भी होती है और यह स्पष्ट भी है। यह एक पुरानी कहावत है कि राजनीतिक जीवन में कोई स्थायी शत्रु या मित्र नहीं होता। चुनाव-याचिकाकर्ता और निर्वाचित उम्मीदवार, दोनों ने स्वयं को उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल का समर्पित कार्यकर्ता घोषित किया है और चुनाव याचिका केवल उस संदेह के बादल को दूर करने के लिए दायर की गई थी जो चुनाव-याचिकाकर्ता के नामांकन पत्र को अस्वीकार किए जाने से उत्पन्न हो सकता था। (पैरा 26, 29 और 30)

**चुनाव याचिका खारिज (ई-15)****उद्धृत वादों की सूची:**

1. काशी नाथ मिश्रा बनाम विक्रमादित्य पांडेय और अन्य (1998) 8 एससीसी 735

2. लोकनाथ पधान बनाम बीरेंद्र कुमार साहू, एआईआर 1974 एससी 505

3. चंद्र मोहन शुक्ला बनाम अनिल धीरूभाई अंबानी और अन्य, 2010(10) एडीजे 63 (एलबी)

4. प्रेमपाल सिंह बनाम सत्यपाल सिंह बघेल (2020) 0 सुप्रीम (सभी) 658

5. धरतीपाकर मदनलाल अग्रवाल बनाम राजीव गांधी: (1987) पूरक एससीसी 93

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

1. वर्तमान चुनाव याचिका में इस न्यायालय ने 29 अगस्त, 2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किया है:

**"बहाली आवेदन संख्या 9/2023 पर आदेश**

1. यह 04 अगस्त, 2023 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन है, जिसके तहत अभियोजन के अभाव में चुनाव याचिका खारिज कर दी गई थी।

2. चुनाव-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की अनुपस्थिति के लिए दिखाया गया कारण पर्याप्त है। 04 अगस्त 2023 के आदेश को वापस लिया जाता है और चुनाव याचिका को उनके मूल संख्या पर बहाल किया जाता है। तदनुसार इस आवेदन को अनुमति दी जाती है।

**याचिका के ज्ञापन पर आदेश**

1. श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, चुनाव याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री के. आर. सिंह, निर्वाचित उम्मीदवार के अधिवक्ता को सुना।

2. निर्वाचित उम्मीदवार-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का शुरु में कहना है कि चूंकि यह चुनाव याचिका पिछले नौ वर्षों से अधिक समय से लंबित है और इस बीच निर्वाचित उम्मीदवार की प्रासंगिक अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी है और उसके बाद भी अगली लोकसभा का कार्यकाल कुछ महीनों के भीतर समाप्त होने की संभावना है, इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के कुछ निर्णय हैं कि इस स्तर पर संपूर्ण प्रयास सैद्धांतिक होगी। उन्होंने आगे कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता ने अपने नामांकन फॉर्म की अस्वीकृति को अनुचित और अवैध होने के आधार पर चुनौती दी है, इसलिए योग्यता के आधार पर चुनाव याचिका पर सुनवाई करना एक निरर्थक प्रयास होगा। विद्वान अधिवक्ता ने लोकनाथ पधान बनाम बीरेंद्र कुमार साहू, एआईआर 1974 एससी 505; काशी नाथ मिश्रा बनाम विक्रमादित्य पांडे एवं अन्य (1998) 9 एससीसी 735 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ चंद्र मोहन शुक्ला बनाम

अनिल धीरुभाई अंबानी और अन्य, 2010 (10) एडीजे 63 (एलबी) तथा प्रेमपाल सिंह बनाम सत्यपाल सिंह बघेल एवं अन्य, (2020) 0 सुप्रीम (एएलएल) 658 मामले में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

3. चुनाव याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चुनाव याचिका में विशिष्ट दावे हैं कि निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत नामांकन फॉर्म एक जाली दस्तावेज था, जिसमें झूठी घोषणा भी शामिल है, इसलिए, यह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125-ए के तहत एक अपराध होगा और यदि चुनाव याचिकाकर्ता की दलील सही पाई जाती है, तो कानूनी परिणाम भुगतना होगा, जिसमें पेंशन आदि के संबंध में निर्वाचित उम्मीदवार को दिए गए लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव शामिल होगा और संविधान के अनुच्छेद 104 के तहत दंडात्मक परिणाम भी शामिल होगा। उनका कहना है कि निर्वाचित उम्मीदवार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय मामले के तथ्यों पर भिन्न हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने चुनाव याचिका में विशेष रूप से पैरा 15 में दिए गए कथनों के साथ-साथ निर्वाचन अधिकारी द्वारा निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन फॉर्म को स्वीकार करते समय दिए गए कारों को पढ़ा है।

4. उपरोक्त मुद्दे पर आदेश के लिए 12 सितंबर, 2023 को प्रस्तुत करें।"

2. इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया मुद्दा यह है कि क्या समय की बर्बादी के कारण यह चुनाव याचिका, जो आम चुनाव 2014 के

विवाद से उत्पन्न हुई है, जबकि न केवल उस लोकसभा का कार्यकाल 2019 में पहले ही समाप्त हो चुका था, बल्कि वर्तमान लोकसभा का कार्यकाल भी 2024 में यानी कुछ ही महीनों में खत्म होने वाला है, निरर्थक हो गई है या यदि बची है, तो यह सिर्फ सैद्धांतिक उद्देश्य के लिए होगी?

3. उपर्युक्त मुद्दे पर प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों की उचित गुण दोष विवेचना करने के लिए, कुछ तथ्य जो विवाद में नहीं हैं, उन्हें आगे संदर्भित करना आवश्यक है।

4. चुनाव याचिकाकर्ता-राजेंद्र कुमार, जो पिछले कुछ दशकों से एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल (भारतीय जनता पार्टी) के सक्रिय सदस्य हैं, को वर्ष 2014 के संसदीय चुनाव के लिए उत्तर प्रदेश के जिला बिजनौर के 04-बिजनौर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया गया था। तदनुसार, उन्होंने चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 के प्रावधानों के अनुसार फॉर्म ए और फॉर्म बी के साथ पार्टी प्रतीक के साथ अपना नामांकन फॉर्म जमा किया।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि निर्वाचित उम्मीदवार को उपरोक्त संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के लिए उम्मीदवार के रूप में बाद में खड़ा किया गया था और उन्होंने सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ नामांकन पत्र भी जमा किया था।

6. चुनाव-याचिकाकर्ता ने निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत नामांकन फॉर्म को उसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल द्वारा खड़ा किए जाने पर

आपतियां दर्ज कीं। हालाँकि, निर्वाचन अधिकारी ने 24 मार्च, 2014 के आदेश के माध्यम से चुनाव-याचिकाकर्ता की आपतियों को खारिज कर दिया और निर्वाचित उम्मीदवार का नामांकन फॉर्म स्वीकार कर लिया गया।

7. बाकी इतिहास है, चूंकि प्रतिवादी-कुंवर भारतेन्द्र सिंह अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी को 2.5 लाख से अधिक वोटों से हराकर निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किये गये थे और उन्होंने 04- बिजनौर संसदीय क्षेत्र से संसद सदस्य के रूप में संसद की कार्यवाही में भाग लिया है और साथ ही जब भी उन्हें सौंपा गया है तो उन्होंने अन्य जिम्मेदारियां भी निभाई हैं।

8. 16वीं लोकसभा का कार्यकाल 2019 में समाप्त हो गया और उसके बाद नए सिरे से चुनाव कराया गया और प्रतिवादी ने फिर से उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल के उम्मीदवार के रूप में भाग लिया, हालांकि, इस बार वह हार गया। इसमें भी कोई विवाद नहीं है कि वर्तमान लोकसभा (17वीं लोकसभा) का कार्यकाल कुछ ही महीनों में समाप्त होने की संभावना है।

9. बहस के दौरान न्यायालय ने चुनाव-याचिकाकर्ता और निर्वाचित उम्मीदवार के साथ बातचीत की और पाया कि उनके बीच कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं है, बल्कि उन्होंने अपने राजनीतिक व्यवसाय के दौरान एक-दूसरे का समर्थन किया है। जब भी उन्हें उसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल द्वारा किसी अन्य चुनाव के लिए खड़ा किया गया तो चुनाव-याचिकाकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों को भी समर्थन किया

गया और वे अभी भी अच्छे राजनीतिक मित्र हैं।

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता मुख्य रूप से इस बात से व्यथित है कि उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल द्वारा विधिवत उम्मीदवार होने के नाते प्रस्तुत किया गया उसका नामांकन फॉर्म निर्वाचन अधिकारी द्वारा गलती से खारिज कर दिया गया था और साथ ही राष्ट्रीय राजनीतिक दल के पास प्रतिवादी/निर्वाचित उम्मीदवार को अपने उम्मीदवार के रूप में खड़ा करने का कोई कारण नहीं था, जबकि वह पहले से ही उम्मीदवार के रूप में खड़ा था और इस कृत्य ने न केवल उसके राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्र में बल्कि अन्यथा भी उसकी सार्वजनिक छवि को नुकसान पहुंचाया है।

11. श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, चुनाव-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, ने आग्रह किया है कि निमित्त अभी भी जीवित है और आज भी इस चुनाव-याचिका का कानूनी परिणाम सामने आएगा। उन्होंने यह भी कहा कि निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे तथ्यों के आधार पर अलग-अलग हैं। दं.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के तहत निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा दायर एक आवेदन 08.04.2022 को खारिज कर दिया गया था और आदेश के विरुद्ध एक विशेष अनुमति याचिका सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी और साथ ही इस अदालत ने 13.04.2022 को निम्नलिखित तीन मुद्दे तय किए थे:

"(i) क्या चुनाव याचिकाकर्ता का नामांकन पत्र निर्वाचन अधिकारी द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 100 (1) (सी) के दृष्टिकोण से अनुचित तरीके से खारिज कर दिया गया था?

(ii) क्या निर्वाचन अधिकारी ने निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र को स्वीकार करने में अवैधता की है और निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र को अनुचित रूप से स्वीकार करके, चुनाव का परिणाम, जहां तक इसका संबंध है, निर्वाचित उम्मीदवार पर भौतिक रूप से प्रभाव पड़ा है?

(iii) चुनाव याचिकाकर्ता किस राहत, यदि कोई हो, का हकदार है?

12. इसके विपरीत, श्री के. आर. सिंह, निर्वाचित उम्मीदवार एकमात्र प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, ने उद्धृत निर्णयों के उद्धृत निर्णयों के बल पर प्रस्तुत किया है कि वर्तमान चुनाव याचिका पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना केवल एक निरर्थक अभ्यास होगा, जिसे इस स्तर पर कम किया जा सकता है।

13. उपरोक्त संदर्भित प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए, न्यायालय इस न्यायालय के

समक्ष उद्धृत निर्णयों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है।

14. काशी नाथ मिश्रा बनाम विक्रमादित्य पांडे और अन्य (1998) 8 एससीसी 735 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक संक्षिप्त आदेश द्वारा एक चुनाव याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि विधानसभा का कार्यकाल समय के साथ समाप्त हो गया है और उसके बाद एक और चुनाव भी हुआ और एक और सभा का गठन किया गया। संदर्भ के लिए उक्त आदेश को इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"1. यह अपील लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 के तहत दायर चुनाव याचिका संख्या 4/1991 से उत्पन्न हुई है। अपीलकर्ता ने बलिया जिले के 227 बलिया विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से उ.प्र. विधान सभा के लिए दूसरे प्रतिवादी के चुनाव को चुनौती दी थी। चुनाव याचिका खारिज कर दी गई। विधानसभा का कार्यकाल समय के साथ समाप्त हो गया है; उसके बाद, एक और चुनाव हुआ और एक और विधानसभा का गठन किया गया।

2. इन परिस्थितियों में, अपील निरर्थक होने के कारण खारिज की जाती है। कोई लागत नहीं।" (जोर दिया गया)

15. अगला निर्णय लोकनाथ पधान बनाम बीरेंद्र कुमार साहू, एआईआर 1974 एससी 505 में है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:



"6. इसलिए, हमारा विचार है कि, इस अपील के लंबित रहने के दौरान उड़ीसा विधान सभा को भंग कर दिया गया है, अब यह विचार करना पूरी तरह से सैद्धांतिक है कि क्या प्रतिवादी को नामांकन की तिथि पर धारा 9 ए के तहत अयोग्य घोषित किया गया था और चूंकि यही एकमात्र आधार है जिस पर प्रतिवादी के चुनाव को चुनौती दी गई है, हमें लगता है कि इस अपील को गुण-दोष के आधार पर सुनना व्यर्थ होगा। तदनुसार, हम सभी लागतों के बारे में कोई आदेश दिए बिना अपील को खारिज करते हैं।" (जोर दिया गया)

16. चंद्र मोहन शुक्ला बनाम अनिल धीरुभाई अंबानी और अन्य, 2010 (10) एडीजे 63 (एलबी) में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि:

\*22. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जब भी किसी याचिका में, जिसमें चुनाव याचिका भी शामिल है, शामिल मुख्य मुद्दे के संबंध में दावा की गई राहत अनावश्यक या निरर्थक हो जाती है तो अन्य राहत के लिए अदालतें अपने विवेक का प्रयोग कर सकती हैं और वादी या आश्रित के अधिकार संतुष्ट होने या बदलती परिस्थितियों के कारण प्रतिवादी या बचाव पक्ष के खिलाफ कोई शिकायत लंबित न रहने की स्थिति में आगे नहीं बढ़ सकती हैं। अदालत कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने विवेक का उपयोग कर सकती है और किसी मामले में आगे नहीं बढ़ सकती है, भले ही सैद्धांतिक प्रकृति की कुछ राहत बची हो। वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की

अवधि समाप्त हो गई है और रिक्ति को तदनुसार नए चुनाव द्वारा भरा गया है, भले ही आक्षेपित प्रावधान रद्द कर दिया गया हो या कुलदीप नैयर (सुप्रा) के मामले को बड़ी पीठ के कारण अलग कर दिया गया हो, न तो याचिकाकर्ता को कोई लाभ होगा और न ही प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को राज्यसभा के सदस्य के रूप में कार्यालय की हानि जैसी किसी हानि का सामना करना पड़ेगा। कुलदीप नैयर (सुप्रा) के निर्णय को ध्यान में रखने के बाद निर्णय के लिए जो चीजें बची हैं, वह आक्षेपित प्रावधान की वैधता होगी। राजीव गांधी मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी कि अदालत का समय बहुमूल्य है और सैद्धांतिक अभ्यास की आवश्यकता नहीं है जब तक कि याचिकाकर्ता को कुछ राहत नहीं दी जा सकती या अपीलकर्ता का अनुसरण नहीं किया जा सकता।

23. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित प्रावधान के संबंध में सैद्धांतिक अभ्यास करने के लिए मामले में आगे बढ़ने का कोई अच्छा आधार प्रतीत नहीं होता है। मैं किसी व्यक्ति द्वारा उठाए गए किसी अन्य मामले में आवश्यक होने पर राहत संख्या 1 के तहत प्रश्न को निर्णय के लिए खुला छोड़ता हूं।

24. चुनाव याचिका टिकती नहीं है। मामले को किसी अन्य मामले में निर्णय के लिए खुला रखते हुए खारिज किया जाता है।" (जोर दिया गया)

17. प्रेमपाल सिंह बनाम सत्यपाल सिंह बघेल (2020) 0 सर्वोच्च (सभी) 658 में इस

न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ ने माना है कि:

23. पी.एच. में पांडियन बनाम पी. वेल्दुरई और अन्य ((2013) 14 एससीसी 685), लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 116-ए के तहत 29.12.1999 को ईएलपी.सं. 1/1996 में चुनाव याचिका में दिए गए निर्णय और आदेश पर सवाल उठाते हुए एक अपील दायर की गई थी। इस मामले में, शीर्ष अदालत ने यह देखा है कि हालांकि तमिलनाडु विधानसभा के लिए नए चुनाव हुए हैं और कुछ हद तक यह अपील निरर्थक हो गई है, लेकिन जिस तरह से उच्च न्यायालय ने चुनाव याचिका पर निपटारा किया, उससे हमें चिंता होती है और इसके लिए हमें कुछ प्रमुख तथ्यों का संदर्भ देना आवश्यक हो गया है। अंततः, शीर्ष न्यायालय ने देखा है कि यह सर्वोच्च न्यायालय की एक स्थापित प्रथा है कि वह उन मामलों पर फैसला नहीं सुनाता है जो केवल सैद्धांतिक हित से संबंधित हैं। एक बार जब भ्रष्ट आचरण का आरोप विफल हो जाता है, तो बाकी अपील निरर्थक हो जाएगी क्योंकि नए चुनाव पहले ही हो चुके हैं और पुरानी विधानसभा अब अस्तित्व में नहीं है। भले ही अपीलकर्ता इस मुद्दे पर सफल हो कि निर्वाचित उम्मीदवार के पास पंचायत संघ और राज्य सरकार के साथ एक मौजूदा अनुबंध था और इसलिए, वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 9-ए के तहत सीट के लिए चुने जाने के लिए अयोग्य था, यह केवल सैद्धांतिक हित का होगा।

24. जब भी किसी याचिका में, जिसमें चुनाव याचिका भी शामिल है, शामिल मुख्य मुद्दे के संबंध में दावा की गई राहत अनावश्यक या निरर्थक हो जाती है तो अन्य राहत के लिए अदालतें अपने विवेक का प्रयोग कर सकती हैं और वादी या आश्रित के अधिकार संतुष्ट होने या बदलती परिस्थितियों के कारण प्रतिवादी या बचाव पक्ष के खिलाफ कोई शिकायत लंबित न रहने की स्थिति में आगे नहीं बढ़ सकती हैं। अदालत कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने विवेक का उपयोग कर सकती है और किसी मामले में आगे नहीं बढ़ सकती है, भले ही सैद्धांतिक प्रकृति की कुछ राहत बची हो।

25. वर्तमान मामले में, माना जाता है कि प्रतिवादी संख्या 1 ने 4.6.2019 को टूंडला निर्वाचन क्षेत्र से अपना इस्तीफा दे दिया और उसे उसी तारीख को सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया। 4.6.2019 से उक्त इस्तीफे को प्रभावी करने के लिए 4.6.2019 को अधिसूचना जारी की गई थी और इस प्रकार टूंडला निर्वाचन क्षेत्र के लिए विधान सभा सदस्य की रिक्ति उत्पन्न हुई। विधान सभा सचिवालय, उ.प्र. ने उक्त पद को भरने के लिए उप-चुनाव आयोजित करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग को उक्त रिक्ति भी अधिसूचित की और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा किया गया दावा राहत संख्या 1 निरर्थक हो गया। माननीय उच्चतम न्यायालय का यह सतत दृष्टिकोण है कि अदालत का समय बहुमूल्य है और सैद्धांतिक अभ्यास की आवश्यकता नहीं है जब तक कि याचिकाकर्ता को कुछ राहत नहीं दी जा सकती या अपीलकर्ता का अनुसरण नहीं किया जा

सकता। चुनाव याचिकाओं में भ्रष्ट आचरण पर कोई आरोप नहीं लगाया गया है और इसलिए, इस न्यायालय ने पाया कि इस याचिका को खारिज करने में कोई बाधा या अड़चन नहीं है क्योंकि प्रार्थना स्वयं निरर्थक हो गई है।

26. उपरोक्त चर्चा के मददेनजर और शीर्ष न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के आलोक में, मेरा सुविचारित मत है कि इस मामले में अब कुछ भी शेष नहीं बचा है। चुनाव याचिका संख्या 12/2017 और 13/2017 को निष्फल मानकर खारिज करने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त आवेदनों को अनुमति दी जाती है। (जोर दिया गया)

18. वर्तमान चुनाव याचिका में चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत यह थी कि निर्वाचित उम्मीदवार के परिणाम को शून्य और अमान्य घोषित किया जाए और दिनांक 24.03.2014 के आदेश को रद्द कर दिया जाए, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था और निर्वाचित उम्मीदवार का नामांकन फॉर्म स्वीकृत किया गया था। नए सिरे से चुनाव के लिए कोई परिणामी राहत नहीं मांगी गई थी।

19. मैंने चुनाव-याचिकाकर्ता के नामांकन फॉर्म को खारिज करते समय निर्वाचन अधिकारी द्वारा दिए गए कारणों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और संदर्भ के लिए, इसका प्रासंगिक आग नीचे दिया गया है:

"भारतीय जनता पार्टी की ओर से फॉर्म बी में कुँवर भारतेन्द्र सिंह के पक्ष में एक संशोधित नोटिस दिया गया है।

कुँवर भारतेन्द्र सिंह ने अपने नामांकन पत्र में पहले ही घोषणा की है कि उन्हें भारतीय जनता पार्टी ने खड़ा किया है।

संशोधित फॉर्म बी की प्रामाणिकता के बारे में अधोहस्ताक्षरी संतुष्ट है। इसलिए, वर्तमान उम्मीदवार द्वारा खुद को भारतीय जनता पार्टी द्वारा खड़े किये गए उम्मीदवार घोषित करने वाला नामांकन पत्र खारिज किया जाता है।

20. निर्वाचन अधिकारी द्वारा दिए गए उपरोक्त कारण केवल निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत किए गए फॉर्म बी पर आधारित थे। इसी प्रकार चुनाव-याचिकाकर्ता की ओर से दायर की गई आपत्तियां, जिन्हें निर्वाचन अधिकारी ने उसी दिन यानी 24.03.2014 को खारिज कर दिया था, हालांकि यह उल्लेख किया गया है कि निर्वाचन अधिकारी को निर्धारित समय तक जमा किए गए फॉर्म बी में नोटिस को छोड़कर, नोटिस को रद्द करने के संबंध में किसी भी अन्य प्रकार के संचार को वैध मानने से रोक दिया गया है और इसके लिए उन्होंने निर्देशों के सार- संग्रह पर भरोसा किया है और इस प्रकार संशोधित उम्मीदवार के पक्ष में पार्टी के अधिकृत व्यक्ति द्वारा दिए गए शपथ पत्र की नामांकन के दृष्टिकोण से सीमित कानूनी मान्यता है। निर्वाचन अधिकारी ने आगे कहा कि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि विशेष रूप से संशोधित

फॉर्म बी की वास्तविकता पर आपत्तिकर्ताओं द्वारा व्यक्त किए जा रहे संदेह को देखते हुए नामांकन के दिन निर्वाचित उम्मीदवार यानी प्रतिवादी द्वारा जमा किए गए संशोधित फॉर्म बी की सामग्री का समर्थन करने के लिए साक्ष्य अभी भी मूल्य रखता है। निर्वाचन अधिकारी ने आगे कहा कि वह सारांश जांच में, विशेष रूप से प्रथम दृष्टया, निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत संशोधित फॉर्म बी की वास्तविकता साबित करने के लिए, उक्त हलफनामे के साक्ष्य मूल्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं और इस प्रकार उन्होंने संशोधित उम्मीदवार के नामांकन फॉर्म को स्वीकार कर लिया।

21. उपर्युक्त तर्क में चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा नामांकन फॉर्म जमा करने में धोखाधड़ी या जालसाजी का कोई तत्व शामिल नहीं है, जिसे उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल द्वारा उम्मीदवार बनाया गया है। निर्वाचन अधिकारी ने निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा जमा किए गए हलफनामे के साथ-साथ संशोधित फॉर्म बी को अधिक साक्ष्यात्मक महत्व दिया है कि उसका फॉर्म भी वास्तविक था। यह मुद्दा कि क्या किसी राजनीतिक दल के पास किसी अन्य उम्मीदवार को खड़ा करने की शक्ति है या नहीं और उसकी प्रक्रिया, एक सैद्धांतिक प्रश्न होगा।

22. चुनाव-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यदि इस चुनाव याचिका को अनुमति दी जाती है तो कानूनी परिणाम होंगे लेकिन मेरी सुविचारित राय में इस तर्क का कोई कानूनी आधार नहीं है और इसके लिए मैंने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (इसके बाद "अधिनियम, 1951" के रूप में

संदर्भित) की धारा 125 ए का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है जो झूठा हलफनामा दाखिल करने के लिए दंड का प्रावधान करता है। इस संबंध में चुनाव याचिका के पैराग्राफ संख्या 56, 57, 58 और 59 का संक्षिप्त संदर्भ इस हद तक प्रासंगिक होगा कि उसकी सामग्री प्रभावी रूप से यह आरोप नहीं लगाती है कि यह झूठे हलफनामे का मामला था, बल्कि ऐसा मामला बनाया गया था कि बाद में फॉर्म बी जारी करना शक्ति से परे था, इसलिए मेरे सुविचारित दृष्टिकोण के अनुसार यदि इस चुनाव याचिका को अनुमति दी जाती है तो अधिनियम, 1951 की धारा 125ए के तहत निर्वाचित उम्मीदवार पर कोई कानूनी परिणाम नहीं पड़ेगा।

23. मैंने संविधान के अनुच्छेद 104 का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है जो अनुच्छेद 99 के तहत शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले या योग्य नहीं होने पर या अयोग्य होने पर बैठने और मतदान करने के लिए दंड का प्रावधान करता है। हालाँकि, मेरी सुविचारित राय के अनुसार वर्तमान मामले के तथ्य उक्त प्रावधान के अंतर्गत नहीं आते हैं क्योंकि निर्वाचित उम्मीदवार ने चुनाव में विधिवत निर्वाचित होने के बाद तीसरी अनुसूची के तहत स्थापित करने या स्थापित करने के लिए शपथ या प्रतिज्ञान पर हस्ताक्षर किए हैं और ऐसा कोई आरोप नहीं था कि चुनाव का संचालन ठीक से नहीं किया गया था। एकमात्र विवाद यह था कि चुनाव याचिकाकर्ता का नामांकन फॉर्म गलत तरीके से खारिज कर दिया गया था या नहीं और निर्वाचित उम्मीदवार का नामांकन फॉर्म सही तरीके से स्वीकार किया गया था या

नहीं, जैसा कि इस चुनाव याचिका में 13.04.2022 को तय किए गए मुद्दों से स्पष्ट है। इसके बाद की कार्यवाही या चुनाव की प्रक्रिया पर विवाद नहीं किया गया है। अतः इस चुनाव याचिका पर कोई भी कानूनी प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसे अनुमति दी जाती है।

24. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, उपर्युक्त निर्णय प्रासंगिक हो जाते हैं जिसमें एक सुसंगत दृष्टिकोण अपनाया गया है कि समय की बर्बादी के कारण, खासकर जब बाद में लोकसभा के चुनाव भी हुए, इस स्तर पर चुनाव याचिका पर फैसला देना एक निरर्थक अभ्यास होगा और यह केवल सैद्धांतिक उद्देश्य के लिए होगा।

25. इस स्तर पर **धरतीपकर मदनलाल अग्रवाल बनाम राजीव गांधी: (1987) अनुपूरक एससीसी 93** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले के पैरा 4 को इसके बाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा:

\*4. आपत्ति से संबंधित चुनाव 1981 से संबंधित है, इसका कार्यकाल 1984 में लोकसभा के विघटन पर समाप्त हो गया था, उसके बाद दिसंबर, 1984 में एक और आम चुनाव हुआ और प्रतिवादी फिर से 25वें अमेठी निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के लिए चुना गया। 1984 में हुए चुनाव की वैधता पर दो अलग-अलग चुनाव याचिकाओं के जरिए सवाल उठाया गया था और दोनों याचिकाएं खारिज कर दी गई हैं। प्रतिवादी के निर्वाचन की वैधता को अजहर हुसैन बनाम राजीव गांधी, एआईआर 1986 एससी 1253 तथा भगवती

प्रसाद बनाम राजीव गांधी, (1986) 4 एससीसी 78 में बरकरार रखा गया है। चूंकि आक्षेपित चुनाव लोकसभा से संबंधित है जिसे 1984 में भंग कर दिया गया था, वर्तमान कार्यवाही में प्रतिवादी के निर्वाचन को रद्द नहीं किया जा सकता है, भले ही चुनाव याचिका अंततः सुनवाई के लिए स्वीकार कर ली गई हो क्योंकि प्रतिवादी 1981 में हुए आक्षेपित चुनाव के आधार पर नहीं बल्कि 1984 में उसके बाद के चुनाव के आधार पर लोकसभा का निरंतर सदस्य है। भले ही हम अपील की अनुमति देते हैं और मामले को उच्च न्यायालय में भेजते हैं, चुनाव याचिका के परीक्षण के बाद प्रतिवादी के चुनाव को रद्द नहीं किया जा सकता है क्योंकि समय बीतने के कारण चुनाव को रद्द करने की राहत निष्फल हो गई है। इस दृष्टि से प्रतिवादी के चुनाव को रद्द करने के लिए याचिका में उठाए गए आधारों को सैद्धांतिक बना दिया गया है। न्यायालय को किसी मुद्दे पर निर्णय लेने का कार्य तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि वह पक्षों के बीच जीवित मुद्दा न हो। यदि कोई मुद्दा पूरी तरह से सैद्धांतिक है और उसके निर्णय का किसी न किसी तरह से पार्टियों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, तो इस पर निर्णय लेने में लगे रहना जनता के समय की बर्बादी होगी। कनाडा की सन लाइफ एश्योरेंस कंपनी बनाम जर्विस, (1944) एसी 111 में हाउस ऑफ लॉर्ड्स में अपने भाषण में लॉर्ड विस्काउंट साइमन ने कहा था:

"मुझे नहीं लगता कि यह सदन के पास अपील सुनने के अधिकार का उचित अभ्यास होगा यदि वह इस मामले में एक सैद्धांतिक प्रश्न

का निर्णय लेने में समय लेता है, जिसका उत्तर किसी भी तरह से प्रतिवादी को प्रभावित नहीं कर सकता है। इस सदन द्वारा निपटाए जाने योग्य अपील का यह एक आवश्यक गुण है कि पक्षों के बीच वास्तविक विवाद का एक मामला मौजूद होना चाहिए जिसे सदन एक जीवित मुद्दे के रूप में तय करने का कार्य करता है।"

ये टिप्पणियाँ इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में प्रासंगिक हैं।"

(जोर दिया गया)

26. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि यह चुनाव याचिका नहीं टिकती है क्योंकि न केवल लोकसभा 2014-2019 का कार्यकाल समाप्त होने के बाद, बल्कि आगामी लोकसभा 2019-2024 का कार्यकाल भी कुछ महीनों के भीतर समाप्त होने की संभावना है, इस चरण पर निर्णय देना एक निरर्थक अभ्यास होगा।

27. निर्णय से अलग होने से पहले, यह देखना आवश्यक होगा कि चुनाव याचिका पर निर्णय लेने में देरी के परिणामस्वरूप कभी-कभी चुनाव-याचिकाकर्ता को कानूनी लड़ाई में हार का सामना करना पड़ सकता है। हालाँकि, इसके लिए चुनाव-याचिकाकर्ता के साथ-साथ न्यायालय को अधिक सावधान रहना होगा और जल्द से जल्द चुनाव याचिका पर निर्णय लेने का प्रयास करना होगा ताकि समय की बर्बादी के कारण यह निरर्थक न हो जाए। हालाँकि, वर्तमान मामले में, चुनाव-याचिकाकर्ता भी चुनाव याचिका को आगे बढ़ाने में धीमा प्रतीत होता है, जैसा कि आदेश पत्र से स्पष्ट है।

28. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मुझे चुनाव-याचिकाकर्ता और लौटे उम्मीदवार के साथ बातचीत करने का अवसर मिला और जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि दोनों पक्षों के बीच संबंध इतने मधुर हैं कि वे अभी भी एक-दूसरे के घर जाते हैं और चुनाव या अन्यथा आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे का समर्थन भी करते हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल को अभी भी दोनों पक्षों पर भरोसा है।

29. न्यायालय ने पाया कि चुनाव-याचिकाकर्ता अपनी सार्वजनिक छवि के प्रति अधिक सचेत हैं, जो कि गलत दृष्टिकोण नहीं है क्योंकि एक सामाजिक और राजनीतिक रूप से सक्रिय व्यक्ति जो अपने क्षेत्र के लोगों के साथ जुड़ा हुआ है, वह हमेशा एक अच्छी सार्वजनिक छवि और अच्छे प्रशंसक रखना चाहता है। एक राजनीतिक व्यक्ति आम तौर पर छवि के प्रति सचेत होता है क्योंकि यह हमेशा उसके साथ चलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि चुनाव याचिकाकर्ता यह धारणा बना रहा है कि चूंकि उसका नामांकन फॉर्म निर्वाचन अधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया था, यह उसकी सार्वजनिक छवि पर एक धब्बा है कि उसने कुछ अवैध काम किया है या उसके नामांकन फॉर्म में कुछ गड़बड़ है। हालाँकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, निर्वाचन अधिकारी द्वारा पारित आदेश को देखने से यह धारणा सही नहीं लगती है। इसलिए, चुनाव-याचिकाकर्ता की धारणा निराधार है जो बाद की घटनाओं से भी समर्थित और स्पष्ट है, जब दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल को अभी भी चुनाव-याचिकाकर्ता और उसके

परिवार के सदस्यों पर भरोसा है और पार्टी ने उनके परिवार के सदस्यों को अन्य चुनावों में अपने उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया है।

33. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, यह चुनाव याचिका खारिज की जाती है।

-----

(2023) 9 ILRA 1173

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 23998

वर्ष 2023

30. यह एक पुरानी कहावत है कि राजनीतिक जीवन में कोई स्थायी शत्रु या मित्र नहीं होता है। चुनाव-याचिकाकर्ता और निर्वाचित उम्मीदवार दोनों ने खुद को उक्त राष्ट्रीय राजनीतिक दल का समर्पित कार्यकर्ता घोषित किया है और यह भी प्रतीत होता है कि यह चुनाव याचिका केवल संदेह के बादल को दूर करने के लिए दायर की गई थी जो संभवतः चुनाव-याचिकाकर्ता के नामांकन फॉर्म की अस्वीकृति के कारण पैदा हुआ था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह केवल चुनाव-याचिकाकर्ता की गलतफहमी थी।

रामनारायण पांडेय एवं अन्य

...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी

प्रार्थीगण के अधिवक्ता:

श्री शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

31. अंततः यह आदेश एक अज्ञात लेखक की एक कहावत को दोहराते हुए समाप्त किया जाता है, 'महान प्रतिद्वंद्विता नफरत पर आधारित नहीं होती है। वे सम्मान पर, उत्कृष्टता के प्रति सम्मान पर बने हैं।'

32. इस स्तर पर निम्न संस्कृत सुभाषितानि का उल्लेख करना भी उचित रहेगा:

"चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।

चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधु संगतिः॥"

(इस दुनिया में चन्दन को सबसे अधिक शीतल माना जाता है, पर चन्द्रमा चन्दन से भी शीतल होता है, लेकिन एक अच्छा मित्र चन्द्रमा और चन्दन दोनों से शीतल होता है)

आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-  
धारा 482 -सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण  
अधिनियम, 1984-धारा 3(1) -उत्तर प्रदेश  
राजस्व संहिता, 2006-धारा 67--- क्या ग्राम  
सभा की संपत्तियों को नुकसान पहुंचाने से  
संबंधित आरोपों के संबंध में, राजस्व संहिता  
की धारा 67 के तहत केवल बेदखली की  
कार्यवाही शुरू की जा सकती है, या पीडीपीपी  
अधिनियम के प्रावधानों के तहत आपराधिक  
कार्यवाही भी की जा सकती है?--- पीडीपीपी  
अधिनियम के तहत कार्यवाही उन मामलों से  
भी अलग है जो राजस्व संहिता और विशेष रूप

से धारा 67 के तहत आते हैं, जो गांव सभा के प्रबंधन के तहत राज्य से संबंधित भूमि के अनधिकृत कब्जे और उपयोग के कारण बेदखली और नुकसान की वसूली के लिए प्रक्रिया प्रदान करता है। इसके तहत प्रदान की गई प्रक्रिया प्रकृति में संक्षिप्त है और पूरी तरह से एक सिविल उपाय है जिसमें कोई आपराधिकता नहीं जुड़ी है। दूसरी ओर, कोई भी कार्य जो पीडीपीपी अधिनियम की धारा 2(ए) के अर्थ में "शरारत" का गठन करता है, जिसमें "शरारत" शब्द की परिभाषा को दंड संहिता की धारा 425 के समान अर्थ दिया गया है, और किसी भी ऐसे कार्य से संबंधित होगा जो किसी भी संपत्ति को नष्ट करता है, या किसी संपत्ति में या उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन करता है जैसे कि उसके मूल्य या उपयोगिता को नष्ट या कम करता है, या उसे हानिकारक रूप से प्रभावित करता है, और संपत्ति पीडीपीपी अधिनियम की धारा 2(बी) के तहत वर्णित "सार्वजनिक संपत्ति" है, वही धारा 3 के तहत एक आपराधिक अपराध होगा और दंडात्मक परिणामों, अर्थात् कारावास और जुर्माना से ग्रस्त होगा --- आपराधिक कार्यवाही, जो वर्तमान मामले में पीडीपीपी अधिनियम के तहत दर्ज एफआईआर के अनुसरण में शुरू की गई है, इस कारण से दोषपूर्ण नहीं मानी जा सकती है कि गाँव सभा भूमि पर अतिक्रमण/क्षति से संबंधित आरोपों के संबंध में, राजस्व संहिता के प्रावधानों के तहत केवल बेदखली और नुकसान की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू की जा सकती है सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाने या नष्ट करने पर पीडीपीपी अधिनियम के तहत कार्रवाई की जा सकती है। (पैरा 31 और 33)

### याचिका खारिज (ई-15)

#### उद्धृत वादों की सूची:

1. प्रभाकांत एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, धारा 482 सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र संख्या 398/2023 के तहत आदेश दिनांक 13.07.2023 पारित किया गया।
2. मुंशी लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020(8) एडीजे 311
3. देवनाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर ऑनलाइन 2021 ऑल 2018,
4. संदर्भ: सार्वजनिक और निजी संपत्तियों का विनाश बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, एआईआर ऑनलाइन 2007 एससी 81
5. कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर ऑनलाइन 2018 एससी 737

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा पारित)

1. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. वर्तमान प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. द्वारा आरोप पत्र दिनांकित 05.12.2022 को रद्द करने के साथ-साथ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फर्रुखाबाद द्वारा पारित संज्ञान/समन आदेश दिनांकित



10.02.2023 तथा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फर्रुखाबाद के समक्ष विचाराधीन मुकदमा अपराध सं० 235/2022 से उत्पन्न वाद सं० 580/2023 (राज्य बनाम रामनारायण पांडे व अन्य) अंतर्गत धारा 427 भा.दं.सं. तथा धारा 3(1) सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है।

3. मामले के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि आवेदकगण के विरुद्ध दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 11.10.2022 के अनुसरण में आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई थी, जो कि मुकदमा अपराध सं० 0235/2022 धारा 427 भा.दं.सं. तथा धारा 3(1) सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत थाना राजेपुर, जिला फर्रुखाबाद में पंजीकृत किया गया था। मामले की विवेचना की गई तथा आरोप पत्र दिनांकित 05.12.2022 प्रेषित किया गया, जिस पर मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 10.02.2023 को संज्ञान लिया गया तथा मामले को वाद सं० 580/2023 के रूप में दर्ज किया गया।

4. कार्यवाही को रद्द करने के लिए जिस मुख्य आधार पर अनुरोध किया गया है, वह यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में ग्राम सभा की भूमि पर अतिक्रमण करने, खंभे तथा तारबंदी तथा चारदीवारी तोड़ने लगाने के संबंध में आरोप है, इसलिए आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता था। यह भी कथन किया गया है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 ग्राम सभा

की भूमि से अनधिकृत कब्जे को हटाने के लिए पूर्ण प्रक्रिया प्रदान करती है तथा उसी के दृष्टिगत, जो आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है, वह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है तथा रद्द किए जाने योग्य है। अपने कथनों के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता द्वारा **प्रभाकांत व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. सं० 398/2023 में दिनांक 13.07.2023 को पारित निर्णय पर अवलम्ब** लिया गया है।

5. उपर्युक्त तर्कों का विरोध करते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि राजस्व संहिता की धारा 67 के अंतर्गत प्रदत्त अनधिकृत कब्जे को हटाने की कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की है तथा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने के मामले में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही शुरू करने पर कोई रोक नहीं है, जिसके दायरे में ग्राम सभा की संपत्ति भी शामिल होगी। यह कथन किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही तथा राजस्व संहिता के अंतर्गत बेदखली की कार्यवाही की परिधि पूर्ण रूप से भिन्न है तथा दोनों कार्यवाही एक साथ करने पर कोई रोक नहीं है।

6. विपक्षी तर्कों के आधार पर विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या ग्राम सभा की संपत्तियों को क्षति पहुंचाने से संबंधित आरोपों के संबंध में, राजस्व संहिता की धारा 67 के अंतर्गत केवल बेदखली की कार्यवाही शुरू की जा सकती है, या सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण

अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही भी की जा सकती है।

7. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम (1984 का 3) को सार्वजनिक संपत्तियों को क्षति से बचाने तथा उससे जुड़े मामलों के लिए अधिनियमित किया गया था। संदर्भ की सुगमता हेतु उपर्युक्त अधिनियम अर्थात् सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 (1984 का 3) को संपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है:-

**“1. संक्षिप्त नाम, विस्तार तथा प्रारंभ -** (1) इस अधिनियम को सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 कहा जाएगा।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है।

(3) यह 28 जनवरी, 1984 को प्रवृत्त हुआ समझा जाएगा।

**2. परिभाषाएं -** इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(a) “रिष्टि” का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 425 में है;

(b) “लोक संपत्ति” का अर्थ है कोई भी संपत्ति, चाहे वह अचल हो या चल (किसी भी मशीनरी सहित) जो निम्नलिखित के स्वामित्व या कब्जे या नियंत्रण के अधीन है-

(i) केंद्रीय सरकार; या

(ii) किसी राज्य सरकार; या

(iii) किसी स्थानीय प्राधिकरण; या

(iv) किसी केन्द्रीय, प्रान्तीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम; या

(v) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में परिभाषित किसी कंपनी; या

(vi) कोई संस्था, प्रतिष्ठान या उपक्रम जिसे केन्द्रीय सरकार आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस संबंध में विनिर्दिष्ट करे:

बशर्ते कि केन्द्रीय सरकार इस उप-खंड के अंतर्गत किसी संस्था, प्रतिष्ठान या उपक्रम को तब तक विनिर्दिष्ट नहीं करेगी जब तक कि ऐसी संस्था, प्रतिष्ठान या उपक्रम को पूर्णतः या पर्याप्त रूप से केन्द्रीय सरकार या एक या अधिक राज्य सरकारों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा या आंशिक रूप से केन्द्रीय सरकार तथा आंशिक रूप से एक या अधिक राज्य सरकारों द्वारा वित्तपोषित न किया जाता हो।

**3. लोक संपत्ति को क्षति कारित करने वाली रिष्टि -** (1) जो कोई उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रकृति की लोक संपत्ति से भिन्न किसी लोक संपत्ति के संबंध में कोई कार्य करके रिष्टि करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी तथा जुर्माने से, दंडित किया जाएगा।

(2) जो किसी लोक संपत्ति के संबंध में कोई रिष्टि कारित करेगा, जो-

(a) कोई ऐसा भवन, प्रतिष्ठान या अन्य संपत्ति जिसका उपयोग जल, प्रकाश, शक्ति या

ऊर्जा के उत्पादन, वितरण या आपूर्ति के संबंध किया जाता हो;

(b) कोई तेल प्रतिष्ठान है;

(c) कोई मल संकर्म है;

(d) कोई खान या कारखाना है;

(e) लोक परिवहन या दूरसंचार का कोई साधन, या इसके संबंध में उपयोग किया जाने वाला कोई भवन, प्रतिष्ठान या अन्य संपत्ति है, तो उसे कठोर कारावास से, जिसकी अवधि छह माह से कम नहीं होगी किन्तु पांच वर्ष तक की हो सकेगी तथा जुर्माने से, दंडित किया जाएगा:

परन्तु न्यायालय अपने निर्णय में दर्ज किए जाने वाले कारणों से छह माह से कम अवधि के कारावास का दंडादेश दे सकेगा।

**4. आग या विस्फोटक पदार्थ द्वारा सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाली रिश्टि-** जो कोई भी धारा 3 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अंतर्गत आग या विस्फोटक पदार्थ द्वारा अपराध कारित करेगा, वह कठोर कारावास, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु दस वर्ष तक हो सकेगी तथा जुर्माने से, दंडित किया जाएगा:

परन्तु न्यायालय ऐसे विशेष कारणों से जो अपने निर्णय में दर्ज किए जा सकेंगे, एक वर्ष से कम अवधि के कारावास का दंडादेश दे सकेगा।

**5. जमानत के बारे में विशेष प्रावधान -** जो व्यक्ति धारा 3 या धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का अभियुक्त या दोषसिद्ध है, यदि अभिरक्षा में है तो, जमानत पर या अपने स्वयं के बन्धपत्र पर तभी छोड़ा जाएगा, जब

अभियोजन पक्ष को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दे दिया गया हो।

**6. व्यावृत्ति -** इस अधिनियम के प्रावधान तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण में तथा इस अधिनियम में निहित कोई बात किसी व्यक्ति को किसी भी कार्यवाही से (चाहे वह अन्वेषण के रूप में हो या अन्यथा) छूट नहीं देगी, जो यदि यह अधिनियम नहीं होता तो उसके विरुद्ध संस्थित की जाती या की गई होती।

**7. निरसन तथा व्यावृत्ति -** (1) सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 (1984 का अध्यादेश 3) इसके द्वारा निरसित किया जाता है।

ऐसे निरसन के होते हुए भी यह है कि उक्त अधिनियम के अंतर्गत की गई कोई भी बात या कार्यवाही, इस अधिनियम के संगत प्रावधानों के अंतर्गत किया गया मानी जाएगी।”

**8. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 में सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने वाली रिश्टि के संबंध में पांच साल तक के कारावास तथा जुर्माने की सजा का प्रावधान है।**

**9. धारा 2(क) में 'रिश्टि' शब्द का वही अर्थ परिभाषित किया गया है जो भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 425 में है। त्वरित संदर्भ के लिए दंड संहिता की धारा 425 का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है:-**

“425. रिष्टि - जो कोई इस आशय से, या यह जानते हुए कि वह जनता को या किसी व्यक्ति को सदोष क्षति या नुकसान कारित करे, किसी संपत्ति का नाश, या किसी संपत्ति या उसकी स्थिति में ऐसा कोई परिवर्तन करे जिससे उसका मूल्य या उपयोगिता नष्ट हो जाए या कम हो जाए, या उस पर हानिकारक प्रभाव पड़े, वह ‘रिष्टि’ करता है।”

10. धारा 2(ख) में “सार्वजनिक संपत्ति” का अर्थ किसी भी संपत्ति से है, चाहे वह अचल हो या चल (जिसके अंतर्गत कोई मशीनरी भी है) जो निम्नलिखित के स्वामित्व में है, या उनके कब्जे में है, या उनके नियंत्रण में है -

- (i) केंद्रीय सरकार या,
- (ii) किसी राज्य सरकार या,
- (iii) किसी स्थानीय प्राधिकारी या,
- (iv) किसी केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत स्थापित कोई निगम; या
- (v) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में परिभाषित कोई कंपनी; या
- (vi) कोई संस्था या उपक्रम जिसे केंद्र सरकार आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकती है:

11. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 2 (बी) के अंतर्गत परिभाषित “सार्वजनिक संपत्ति” की अभिव्यक्ति, इसलिए इसके क्षेत्र में किसी भी संपत्ति, चल या अचल, किसी भी स्थानीय प्राधिकरण के स्वामित्व या कब्जे में या नियंत्रण में शामिल होगी, जिसमें ग्राम सभा शामिल होगी। इसलिए ग्राम सभा की भूमि

1984 के अधिनियम 3 के अंतर्गत “सार्वजनिक संपत्ति” की परिभाषा के अंतर्गत शामिल होगी।

12. 1984 के अधिनियम 3 में ‘रिष्टि’ शब्द का वही अर्थ परिभाषित किया गया है जो दंड संहिता की धारा 425 में है। त्वरित संदर्भ के लिए दंड संहिता की धारा 425 का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है:-

“425. रिष्टि - जो कोई इस आशय से, या यह जानते हुए कि वह जनता को या किसी व्यक्ति को सदोष क्षति या नुकसान कारित करे, किसी संपत्ति का नाश, या किसी संपत्ति या उसकी स्थिति में ऐसा कोई परिवर्तन करे जिससे उसका मूल्य या उपयोगिता नष्ट हो जाए या कम हो जाए, या उस पर हानिकारक प्रभाव पड़े, वह ‘रिष्टि’ करता है।”

13. उपर्युक्त प्रावधानों को संयुक्त रूप से अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्राम सभा की संपत्ति “सार्वजनिक संपत्ति” शब्द के अर्थ में शामिल होगी तथा उसकी कोई भी क्षति “सार्वजनिक संपत्ति को क्षति कारित करने वाली रिष्टि” की अभिव्यक्ति की परिधि में होगा, जो सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत दंडनीय अपराध होगा।

14. राजस्व संहिता उत्तर प्रदेश राज्य में भूमि के स्वामित्व तथा भूमि राजस्व से संबंधित विधि को समेकित तथा संशोधित करने के लिए एक अधिनियम है, तथा उससे संबंधित तथा उसके आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने हेतु है।

15. राजस्व संहिता की धारा 67 जो कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (अब निरस्त) की धारा 122बी के अनुरूप है, जो ग्राम पंचायत की संपत्ति को क्षति पहुंचाने, दुर्विनियोजन करने तथा दोषपूर्ण कब्जे से बचाने की शक्ति प्रदान करती है। राजस्व संहिता की धारा 67 निम्न प्रकार से है:-

**“67. ग्राम पंचायत की संपत्ति को क्षति पहुंचाने, दुर्विनियोजन करने और गलत कब्जे को रोकने की शक्ति:-** (1) जहां इस संहिता के उपबंधों के अधीन किसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी गई या सौंपी गई समझी हुई कोई संपत्ति क्षतिग्रस्त हो जाती है या उसका दुर्विनियोजन होता है, या जहां कोई ग्राम पंचायत या अन्य प्राधिकरण इस संहिता के उपबंधों के अधीन किसी भूमि पर कब्जा लेने का हकदार है तथा ऐसी भूमि पर उक्त उपबंधों के अनुसार नहीं अपितु अन्यथा कब्जा किया गया है, वहां, संबंधित भूमि प्रबंधक समिति या अन्य प्राधिकरण या संबंधित लेखपाल, जैसा भी मामला हो, सहायक कलेक्टर को विहित तरीके से यथास्थिति के संबंध में सूचित करेगा।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन प्राप्त सूचना से या अन्यथा, सहायक कलेक्टर का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी संपत्ति को क्षतिग्रस्त कर दिया गया है या उसका दुर्विनियोजन किया गया है या कोई व्यक्ति इस संहिता के उपबंधों के उल्लंघन में उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी भूमि पर अधिभोग कर रहा है, वहां वह संबंधित

व्यक्ति को कारण बताओ नोटिस जारी करेगा कि क्यों न उससे क्षति, दुर्विनियोजन या गलत अधिभोग के लिए प्रतिकर, जो नोटिस में विनिर्दिष्ट धनराशि से अधिक न हो, की वसूली की जाए और उसे ऐसी भूमि से क्यों न बेदखल कर दिया जाए।

(3) यदि वह व्यक्ति, जिसे उपधारा (2) के अधीन नोटिस जारी किया गया हो, नोटिस में विनिर्दिष्ट समय के भीतर या सहायक कलेक्टर द्वारा इस निमित्त दी गई विस्तारित अवधि के भीतर, कारण बताने में विफल रहता है या दर्शाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है, तो सहायक कलेक्टर निर्देश दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति को भूमि से बेदखल कर दिया जाए और उक्त प्रयोजन के लिए वह ऐसे बल का प्रयोग कर या करवा सकता है, जो आवश्यक हो और यह निर्देश दे सकता है कि यथास्थिति, संपत्ति की क्षति या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे के लिए प्रतिकर की धनराशि की वसूली ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाये के रूप में की जाए।

(4) यदि सहायक कलेक्टर की यह राय हो कि कारण बताने वाला व्यक्ति उपधारा (2) के अधीन नोटिस में निर्दिष्ट क्षति या दुर्विनियोजन या गलत कब्जे कारित करने का दोषी नहीं है, तो वह नोटिस को खारिज कर देगा।

(5) उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसे आदेश की तिथि से तीस दिन के भीतर कलेक्टर को अपील कर सकता है।

(6) इस संहिता के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी और इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस धारा के अधीन सहायक कलेक्टर का प्रत्येक आदेश, उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

(7) इस धारा के अधीन की गई किसी कार्रवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी, जो विहित की जाए।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनार्थ शब्द 'भूमि' के अंतर्गत उस पर स्थित वृक्ष और भवन भी होंगे।"

16. उक्त धारा के अधीन की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 के नियम 66 तथा 67 में वर्णित है। नियम 66 तथा 67 इस प्रकार हैं-

**"नियम 66 - सहायक कलेक्टर को सूचना (धारा 67) -** धारा 67(1) के अन्तर्गत वांछित सूचना, भूमि प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष या सदस्य या सचिव या स्थानीय प्राधिकरण के किसी अधिकारी द्वारा आर.सी. प्रपत्र-19 में सहायक कलेक्टर को दी जाएगी।

**नियम 67 - सहायक कलेक्टर द्वारा अग्रतर जांच (धारा 67) -** (1) धारा 66 के अन्तर्गत सूचना प्राप्त होने पर या अन्यथा उनकी जानकारी में आने पर, सहायक कलेक्टर ऐसी जांच करेगा जैसी वह उचित समझे और निम्नलिखित बिन्दुओं के सम्बन्ध में अग्रतर सूचना प्राप्त कर सकेगा:-

(a) सम्पत्ति को अवैध अध्यासन अथवा दुर्विनियोजन से हुई क्षति का विवरण जिसमें गांव, खाता संख्या, क्षेत्रफल, चौहद्दी और उक्त क्षति अथवा दुर्विनियोजन की गई सम्पत्ति का बाजारी मूल्य;

(b) ऐसे दुर्विनियोजन या अवैध अध्यासन से सम्पत्ति को पहुँची क्षति के लिये उत्तरदायी व्यक्ति का नाम, पिता का नाम और पूरा पता;

(c) अवैध अध्यासन की अवधि, क्षति या दुर्विनियोजन और सम्मिलित भूखण्डों की भूमि की श्रेणी;

(d) सम्पत्ति जिसे क्षति पहुँचायी गई अथवा दुर्विनियोजित की गई, का कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्किल रेट पर आगणित मूल्य और क्षति की धनराशि जिसकी वसूली की मांग की गयी।

(2) तत्पश्चात सहायक कलेक्टर धारा 67(2) के अन्तर्गत कार्यवाही किये जाने हेतु सम्बन्धित व्यक्ति के विरुद्ध आर0सी0 प्रपत्र-20 में कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा कि क्षति, दुर्विनियोजन अथवा अवैध अध्यासन के लिये नोटिस में विनिर्दिष्ट की गयी रकम से अनधिक रकम की वसूली उससे क्यों न की जाय और उसे ऐसी भूमि से बेदखल क्यों न कर दिया जाय।

(3) यदि धारा 67(2) के निर्दिष्ट नोटिस का अनुपालन नहीं किया जाता है अथवा सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा दर्शाया गया कारण पर्याप्त नहीं पाया जाता है तो सहायक कलेक्टर आदेश द्वारा निर्देश दिया जा सकेगा कि-

(a) ऐसे व्यक्ति को आवश्यक बल का प्रयोग कर बेदखल किया जाये; अथवा

(b) सहायक कलेक्टर द्वारा अवैध अध्यासन या क्षति के कारण आदेशित की गई क्षतिपूर्ति की धनराशि, उपनियम (3) में उल्लिखित व्यय की रकम सहित, यदि विनिर्दिष्ट समय में अदा नहीं की गयी है तो भू-राजस्व के बकाये की भांति वसूल की जाये।

(4) वसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति तथा निष्पादन हेतु आये व्यय का उल्लेख ऐसी नोटिस में किया जायेगा जो कि निम्नलिखित रीति से निर्धारित की जायेगी:-

(a) क्षति अथवा दुर्विनियोजन के मामले में क्षति की धनराशि प्रचलित बाजार दर पर निर्धारित की जायेगी।

(b) किसी भूमि पर अवैध अध्यासन की दशा में, क्षतिपूर्ति की धनराशि अवैध अध्यासन के प्रत्येक वर्ष के लिए, कलेक्टर द्वारा निर्धारित सर्किल रेट पर आगणित भूमि के बाजार मूल्य के पांच प्रतिशत के बराबर होगी।

(c) निष्पादन हेतु आगत हुए व्यय का आगणन इस प्रक्रिया में लगे हुए कर्मचारियों के एक दिन के वेतन के आधार पर किया जायेगा।

(5) यदि भूमि पर अवैध रूप से अध्यासित व्यक्ति द्वारा उसमें खेती की गई है तो उसे फसल की कटाई करने तक उसके अध्यासन में बने रहने की अनुमति दी जा सकती है, बशर्त कि वह सर्किल रेट के अनुसार आगणित उस भूमि के बाजार मूल्य के पांच प्रतिशत के बराबर रकम जमा कर देता है जो कि समेकित गांव निधि में अथवा ग्राम पंचायत से भिन्न स्थानीय प्राधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, के निधि में जायेगी। यदि सम्बन्धित व्यक्ति

आर0सी0 प्रपत्र-20 की नोटिस में दी गयी अवधि के अन्दर उपरोक्त रकम का भुगतान नहीं करता है तो भूमि का फसल सहित कब्जा भूमि प्रबन्धक समिति अथवा स्थानीय प्राधिकरण, जैसी भी स्थिति हो, को दे दिया जायेगा:

परन्तु यह कि जहां ऐसा व्यक्ति उसी भूमि पर अथवा ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकरण, जैसी भी स्थिति हो, की अधिकारिता के अन्तर्गत किसी अन्य भूमि पर फिर से कब्जा करता है, वहां उसे तुरन्त उससे बेदखल कर दिया जायेगा और उस खाली भूमि का अथवा उस पर स्थित फसल सहित कब्जा भूमि प्रबन्धक समिति अथवा स्थानीय प्राधिकरण, जैसी भी स्थिति हो, को दे दिया जायेगा।

(6) सहायक कलेक्टर कारण बताओ नोटिस निर्गत किये जाने की तिथि से नब्बे दिनों की अवधि के अन्दर धारा 67 के अन्तर्गत कार्यवाही को पूर्ण करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के अन्दर पूर्ण नहीं होती है तो उसके लिये कारण अभिलिखित किया जायेगा।

(7) उपनियम (5) की कोई भी बात भूमि प्रबन्धक समिति अथवा स्थानीय प्राधिकरण को, जैसी भी स्थिति हो, उस व्यक्ति, जो इस संहिता अथवा नियमावली के अन्तर्गत बेदखल कर दिये जाने के बावजूद दोबारा उसी भूमि पर अतिक्रमण करता है, को भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 447 के अन्तर्गत अभियोजित करने से बाधित नहीं करेगी।

(8) प्रत्येक कलेक्टर के कार्यालय में आर0सी0 प्रपत्र-21 में एक रजिस्टर अनुरक्षित किया जायेगा जिसमें धारा 67 के अन्तर्गत कार्यवाही में प्रदत्त क्षतिपूर्ति धनराशि तथा मुआवजे के कारण वसूल किये जाने के लिये आदेशित रकम का विवरण दर्शाया जायेगा।

(9) ऐसा ही रजिस्टर प्रत्येक तहसीलदार द्वारा भी अनुरक्षित किया जायेगा जिसमें ऐसी कार्यवाही में अधिरोपित क्षतिपूर्ति और प्रदत्त मुआवजे धनराशि दर्शायी जायेगी। तहसील पर अनुरक्षित रजिस्टर में की गयी प्रविष्टियों का मिलान कलेक्टर द्वारा अनुरक्षित रजिस्टर से, उसमें की गयी प्रविष्टियों की यथार्थता को सुनिश्चित करने के लिये, किया जायेगा।

(10) धारा 67 के अन्तर्गत कार्यवाही में अधिरोपित क्षतिपूर्ति की धनराशि तथा प्रदत्त मुआवजा दर्शाने वाली प्रगति आख्या प्रति वर्ष अप्रैल और अक्टूबर की 15 तारीख पर राजस्व परिषद उत्तर प्रदेश लखनऊ को प्रेषित की जायेगी। परिषद जिलों से इस प्रकार प्राप्त आख्यायों को समेकित करने के पश्चात उसे सरकार को प्रेषित करेगा।

(11) नियम 66 और 67 की कोई बात किसी ऐसे मामले, जिसके लिये संहिता की धारा 67 के अन्तर्गत कोई आदेश पारित किया गया है, के सम्बन्ध में तत्समय लागू विधि के अनुसार सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में किसी व्यक्ति को अपना अधिकार, स्वत्व अथवा हित साबित करने से वर्जित नहीं करेगी।”

17. राजस्व संहिता की धारा 67 तथा नियम, 2016 के नियम 66 व 67 के अंतर्गत निहित उपबंध ग्राम पंचायत संपत्तियों की क्षति, दुर्विनियोजन तथा दोषपूर्ण कब्जे के संबंध में कार्यवाही के लिए संक्षिप्त प्रक्रिया प्रदान करते हैं तथा इसमें ऐसी क्षति, दुर्विनियोजन या दोषपूर्ण कब्जे को रोकने की शक्तियां सम्मिलित हैं। निर्धारित प्रक्रिया में सहायक कलेक्टर को सूचना देना शामिल है, जिसके आधार पर जांच की जानी है तथा संबंधित व्यक्ति को नोटिस जारी करने के पश्चात संपत्ति की क्षति या दुर्विनियोजन या दोषपूर्ण कब्जे के लिए बेदखली तथा मुआवजे की वसूली का निर्देश दिया जा सकता है। इस संबंध में पारित किया जाने वाला आदेश वैधानिक अपील के अधीन है, जो कलेक्टर के समक्ष की जा सकती है।

18. राजस्व संहिता में अधिकारों की उदघोषणा के लिए नियमित वाद दायर करने के प्रावधान भी हैं। धारा 145 ग्राम पंचायत द्वारा घोषणात्मक वाद दायर करने से संबंधित है तथा यह प्रावधान करती है कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 में निहित किसी भी बात के बावजूद, ग्राम पंचायत किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी भूमि में किसी भी अधिकार का हकदार होने का दावा करने के लिए उस भूमि में ऐसे व्यक्ति के अधिकार की घोषणा के लिए वाद दायर कर सकती है, फिर न्यायालय अपने विवेकानुसार ऐसे व्यक्ति के अधिकार की घोषणा कर सकता है तथा ग्राम पंचायत को ऐसे वाद में किसी अनुतोष की मांग करने की आवश्यकता नहीं है।



19. दूसरी ओर, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम तोड़फोड़ तथा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने के कृत्यों पर अंकुश लगाने के लिए अधिनियमित किया गया है तथा इसके अनुसार रिष्टि कारित करने का कोई भी कृत्य अर्थात् किसी भी संपत्ति को नष्ट करना या किसी संपत्ति में कोई भी परिवर्तन या उसकी स्थिति में परिवर्तन जो उसके मूल्य या उपयोगिता को नष्ट या कम करती है, या उसे हानिकारक रूप से प्रभावित करती है, धारा 3 के अनुसार दंडनीय अपराध माना जाएगा।

20. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 5 में जमानत के संबंध में विशेष प्रावधान हैं तथा यह आदेशित करता है कि धारा 3 या धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोपी या दोषसिद्ध कोई भी व्यक्ति, यदि हिरासत में है, तो उसे जमानत पर या अपने स्वयं के बन्धपत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि अभियोजन पक्ष को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया हो।

21. धारा 6 एक व्यावृत्ति खण्ड है तथा इसके अनुसार इस अधिनियम के प्रावधान, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधिक प्रावधानों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण में, तथा अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी व्यक्ति को किसी कार्यवाही (चाहे जांच के माध्यम से या अन्यथा) से छूट नहीं देगी जो इस अधिनियम के अलावा उसके विरुद्ध संस्थित की जा सकती है या की गई है।

22. पूर्वोक्त प्रावधान सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के उद्देश्य तथा प्रयोजन को दर्शाते हैं, जो कि तोड़फोड़ तथा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने के कृत्यों पर अंकुश लगाने तथा इसके संबंध में दंड का प्रावधान करने के लिए एक अधिनियम है।

23. इसलिए, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही का दायरा बेदखली की कार्यवाही से पूर्ण रूप से भिन्न है, जो कि राजस्व संहिता की धारा 67 के अंतर्गत ग्राम पंचायत की संपत्तियों पर दोषपूर्ण कब्जे के संबंध में संस्थित की जा सकती है। सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत व्यावृत्ति खण्ड यह स्पष्ट करता है कि अधिनियम के प्रावधान किसी अन्य विधिक प्रावधान के अतिरिक्त हैं, न कि उनके उल्लंघन में, तथा किसी अन्य अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही भी उसी के संबंध में किसी रोक के बिना संस्थित की जा सकती है या की जा सकती है।

24. मौजूदा मामले में, गांव के ग्राम प्रधान द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के पश्चात् आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है, जिसमें आरोप है कि अभियुक्त आवेदक ने गांव सभा की भूमि पर खंभे, तारों तथा चारदीवारी को नुकसान पहुंचाया है, जो राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है। प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्करण के अनुसार, विचाराधीन भूमि गाटा संख्या 298, क्षेत्रफल 0.470 हेक्टेयर गांव सभा की भूमि की नवीन परती के रूप में दर्ज है तथा यह कथन किया गया है कि अभियुक्त आवेदकगण ने ग्राम सभा की भूमि पर खंभे आदि को क्षतिग्रस्त कर

दिया है, जिससे सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचा तथा इस कृत्य के दृष्टिगत उसके विरुद्ध धारा 3/4 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही संस्थित की गई।

25. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में मामले की जांच की गई तथा जांच के दौरान एकत्र सामग्री ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन किया तथा तदनुसार दिनांक 14.05.2015 को आरोप पत्र प्रेषित किया गया, जिस पर दिनांक 06.04.2016 को मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया तथा एक आपराधिक वाद संस्थित किया गया।

26. **मुंशी लाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2020(8) ए.डी.जे. 311** में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के प्रावधानों पर गौर करने के पश्चात् यह विचार किया गया है कि जहां तक ग्राम सभा की भूमि पर अवैध अतिक्रमण, क्षति या अतिचार के लिए आपराधिक कार्यवाही का संबंध है, वह संस्थित की जा सकती है परन्तु यह विवादित भूमि पर पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन के अधीन होगा क्योंकि उक्त निर्धारण केवल राजस्व न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। जहां तक निर्णय में की गई इस टिप्पणी का संबंध है कि यह अधिनियम आंदोलन, बंद, हड़ताल आदि के नाम पर किसी दंगे या सार्वजनिक प्रदर्शन के दौरान विनाश या क्षति सहित तोड़फोड़ के किसी भी कृत्य से संबंधित विशिष्ट क्षेत्र को आच्छादित करता है, इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा **देवनाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व तीन अन्य,**

**ए.आई.आर. ऑनलाइन 2021 ए.एल.एल. 2018** में हाल ही में दिए गए निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जो एक ऐसा मामला था जहां गांव सभा की जमीन पर अतिक्रमण के संबंध में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 2/3/5 के अंतर्गत दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट को चुनौती देने की मांग की गई थी। विधिक स्थिति पर विचार करने के उपरांत खंडपीठ ने माना कि मुंशी लाल व अन्य के मामले में दिया गया निर्णय अलग था तथा निम्नलिखित टिप्पणियां की-

“मुंशी लाल (उपरोक्त) के मामले में निर्णय में, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर कार्यवाही की कि सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 तोड़फोड़ तथा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति से रोकने के लिए बनाया गया था। इसके उद्देश्यों तथा कारणों के कथन का पहला वाक्य इस प्रकार है-

“तोड़फोड़ तथा सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुंचाने की गतिविधियों को रोकने के उद्देश्य से, जिसमें दंगों तथा सार्वजनिक हंगामे के दौरान होने वाली तोड़फोड़ तथा क्षति शामिल है, अधिकारियों को सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान के मामलों से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाने के लिए कानून को मजबूत करने की आवश्यकता महसूस की गई।”

उद्धृत निर्णय में “सहित” शब्द के उपयोग को प्रतिबंधात्मक व्याख्या दी गई है। हमारा विचार है कि उक्त शब्द “दंगा तथा सार्वजनिक हंगामे के दौरान होने वाले विनाश तथा क्षति को” भी अपने दायरे में लाने के बजाय उदाहरणात्मक है, जैसा कि उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में कहा गया है। इसलिए

“सहित” शब्द का उपयोग यह नहीं समझा जा सकता कि सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम केवल तभी लागू किया जा सकता है जब सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान तोड़फोड़, दंगों या सार्वजनिक हंगामे के कारण होता है।

हमारे विचार से, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 3(1) के बारे में एक संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है तथा उद्धृत निर्णय में अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मुख्य रूप से अधिनियम की धारा 3(2) तथा अधिनियम की धारा 4 का अवलम्ब लिया है।

यद्यपि, हम पाते हैं कि भा.दं.सं. की धारा 425 तथा सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3(1) के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता का कृत्य स्पष्ट रूप से इन दो धाराओं के दायरे में आता है, विशेषकर तब जब याचिकाकर्ता द्वारा सार्वजनिक संपत्ति पर चारदीवारी के निर्माण को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया हो।

अतः इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता, उसके द्वारा उद्धृत मुंशी लाल के मामले में निर्णय के किसी भी लाभ का हकदार नहीं है, क्योंकि निर्णय के पूर्वगामी भाग में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3(1) का प्रावधान स्पष्ट रूप से लागू होता है। साथ ही, मुंशी लाल के मामले में निर्णय तथ्यों के आधार पर भिन्न है।”

27. यह ध्यान देने योग्य है कि जहां तक हड़ताल, बंद, दंगे, सार्वजनिक हंगामा तथा विरोध प्रदर्शन के दौरान हिंसा के कृत्यों द्वारा

सार्वजनिक या निजी संपत्तियों को क्षति पहुंचाने की बात है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सार्वजनिक तथा निजी संपत्तियों के विनाश बनाम आंध्र प्रदेश राज्य व अन्य, ए.आई.आर. ऑनलाइन 2007 एस.सी. 81** के मामले में कुछ टिप्पणियां की थीं तथा विभिन्न उदाहरणों का गंभीरता से संज्ञान लिया था, जहां आंदोलन, बंद, हड़ताल तथा इसी तरह के अन्य नामों पर बड़े पैमाने पर सार्वजनिक तथा निजी संपत्तियों को नुकसान पहुंचाया गया था तथा न्यायालय द्वारा नियुक्त समितियों द्वारा दिए गए कुछ सुझावों पर भी विचार करते हुए, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 तथा अन्य आपराधिक कानूनों, विधियों में संशोधन की सिफारिश की थी; तथा वैधानिक ढांचे की अनुपस्थिति में संपत्ति को हुई क्षति का आकलन करने के लिए दिशानिर्देश भी निर्धारित किए थे।

28. उपर्युक्त मुद्दों को बाद में **कोडुंगल्लूर फिल्म सोसाइटी व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, ए.आई.आर. ऑनलाइन 2018 एस.सी. 737** के मामले में उठाया गया था तथा **सार्वजनिक तथा निजी संपत्तियों के विनाश के संबंध में (उपरोक्त)** की सिफारिशों/निर्देशों को ध्यान में रखते हुए, कुछ सिफारिशें/निर्देश दिए गए।

29. सार्वजनिक स्थानों पर हिंसा की गतिविधियों से संबंधित विषय-वस्तु, इसकी निरंतरता तथा वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए तथा हड़ताल, बंद, दंगे, सार्वजनिक हंगामा तथा संपत्ति के संबंध में विरोध प्रदर्शन के

दौरान सार्वजनिक या निजी संपत्ति को हुए नुकसान की वसूली का प्रावधान करना तथा नुकसान की जांच तथा निर्धारण करने तथा उसके संबंध में मुआवजा देने के लिए दावा न्यायाधिकरणों का गठन करने हेतु, उपरोक्त उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 11, 2020 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है।

30. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम का दायरा तथा विषय-वस्तु अधिनियम, 2020 के अंतर्गत शामिल विषय-वस्तु से अलग है, जो कि सार्वजनिक स्थानों पर हिंसा की सभी गतिविधियों से निपटता है तथा इसकी निरंतरता और वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए उपाय प्रदान करता है तथा दावा न्यायाधिकरणों के गठन के माध्यम से क्षति की वसूली का भी प्रावधान करता है।

31. सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही राजस्व संहिता तथा विशेष रूप से इसकी धारा 67 के अंतर्गत आने वाले मामलों से अलग है, जो गांव सभा के प्रबंधन के अंतर्गत राज्य की भूमि पर अनधिकृत कब्जे तथा उपयोग के कारण बेदखली तथा क्षतिपूर्ति के लिए प्रक्रिया प्रदान करती है। इसके अंतर्गत प्रदान की गई प्रक्रिया संक्षिप्त प्रकृति की है तथा पूर्ण रूप से एक सिविल उपाय है जिसमें कोई आपराधिकता नहीं जुड़ी है। दूसरी ओर, कोई भी कार्य जो सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 2(ए) के अर्थ में "रिप्टि" कारित करता है, जिसमें "रिप्टि" शब्द की परिभाषा को दंड संहिता की धारा 425 के समान अर्थ दिया गया है तथा यह किसी भी ऐसे कार्य से संबंधित

होगा जो किसी संपत्ति को नष्ट करता है, या किसी संपत्ति में या परिस्थिति में ऐसा कोई परिवर्तन करता है जिससे उसका मूल्य या उपयोगिता नष्ट या कम हो जाती है, या इसे हानिकारक रूप से प्रभावित करती है, तथा संपत्ति सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 2(बी) के अंतर्गत वर्णित "सार्वजनिक संपत्ति" है, तो वह धारा 3 के अंतर्गत एक आपराधिक कृत्य होगा तथा दंडनीय परिणामों अर्थात् कारावास तथा जुर्माने से ग्रस्त होगा।

32. इसलिए राजस्व संहिता, अधिनियम, 2020 तथा सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत प्रावधानों को विभिन्न क्षेत्रों में संचालित करने के लिए देखा जाएगा, जिसमें उपरोक्त अधिनियमों के अंतर्गत अलग-अलग या इसके अंतर्गत कवर किए गए मामलों के संबंध में एक साथ कार्यवाही शुरू करने के संबंध में कोई रोक नहीं है।

33. वर्तमान मामले में सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को इस कारण से दोषपूर्ण नहीं माना जा सकता है कि गांव सभा भूमि पर अतिक्रमण/क्षति से संबंधित आरोपों के संबंध में, राजस्व संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत केवल बेदखली तथा क्षति की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू की जा सकती है तथा सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के अंतर्गत सार्वजनिक संपत्ति की क्षति या विनाश के लिए कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

34. कोई अन्य आधार नहीं बताया गया, इसलिए धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को लागू करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

35. मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत की गई प्रार्थना खारिज किए जाने योग्य है।

36. अतः धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

-----

**(2023) 9 ILRA 1184**

**मूल क्षेत्राधिकार**

**आपराधिक पक्ष**

**दिनांक: लखनऊ 11.09.2023**

**समक्ष**

**माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह**

प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 6864

वर्ष 2023

**श्रीमती संगीता शुक्ला**

**...प्रार्थी**

**बनाम**

**उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**

**...विपक्षी**

**प्रार्थी के अधिवक्ता:**

नदीम मूर्तजा, अमिताव सिंह, उमंग अग्रवाल

**विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:**

शासकीय अधिवक्ता

**आपराधिक विधि-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-  
धारा 482---** प्रार्थी ने उन आदेशों का विरोध

किया जिनके द्वारा प्रार्थी के खिलाफ आईपीसी की धारा 323 और 506 और पोक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत आरोप तय किए गए थे--- अधिनियम की धारा 35 (2) के तहत, एक प्रावधान है कि पोक्सो अधिनियम के तहत अपराधों के मामलों से निपटने वाला विशेष न्यायालय, जहां तक संभव हो, अपराध का संज्ञान लेने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर मुकदमा पूरा करेगा--- सीआरपीसी की धारा 207 के प्रावधान का अनुपालन विचारण न्यायालय द्वारा किया गया और उसके बाद मामले को लंच के बाद के सत्र के लिए पोस्ट किया गया, जिसमें प्रार्थी अपने अधिवक्ता के साथ उपस्थित हुई और प्रार्थी के अधिवक्ता को सुना गया। मामले के स्थगन के लिए न तो कोई आवेदन किया गया और न ही आगे समय दिए जाने के संबंध में कोई आपत्ति दर्ज की गई और प्रार्थी अपने अधिवक्ता के साथ अवर न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और आरोप तय करने पर बहस का विकल्प चुना। आरोप तय करने के लिए, कारणों को दर्ज करना आवश्यक नहीं है, लेकिन, जैसे ही न्यायालय किसी आरोपी को आरोपमुक्त करने का फैसला करती है, अवर न्यायालय के लिए लिखित रूप में कारणों को दर्ज करना अनिवार्य है। (पैरा 30, 32 और 34)

**याचिका खारिज (ई-15)**

**उद्धृत वादों की सूची:**

1. (1979) 3 एससीसी 4, भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल

2. (2012)9 एससीसी 460, अमित कपूर बनाम रमेश चंदर

3. 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 367, संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. आवेदिका की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा, श्री अमिताव सिंह, श्री उमंग अग्रवाल, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री निर्मल कुमार पांडे और विरोधी पक्षकार संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री जनार्दन दीक्षित को सुना।

2. इस वर्तमान आवेदन के माध्यम से आवेदिका ने विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ विशेष न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम, न्यायालय संख्या 1, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 26-06-2023 के आदेश, जो आवेदन के साथ अनुलग्नक संख्या 1 व 2 के रूप में संलग्न हैं, का विरोध किया है, जिसके द्वारा आवेदिका के विरुद्ध सत्र परीक्षण संख्या 1991/2023 अर्थात् 'उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संगीता शुक्ला' में धारा 323 व 506 भारतीय दंड संहिता तथा धारा 10 पोक्सो अधिनियम के अन्तर्गत आरोप विरचित किये गये थे, जो कि प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 15/2022, थाना-कैंट, जिला-लखनऊ से उत्पन्न हुए हैं। इसके अतिरिक्त आवेदिका ने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 15/2022 में प्रस्तुत आरोप पत्र का विरोध किया है। 15/2022 जिसे

पेपर बुक के साथ-साथ दिनांक 24-08-2022 के समन आदेश के साथ अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न किया गया है।

3. मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि आवेदिका और उसके पति लेफ्टिनेंट कर्नल शिव नारायण शुक्ला (एतस्मिनपश्चात् विरोधी पक्ष संख्या 3 के रूप में सन्दर्भित) विवाह से पूर्व से एक दूसरे को जानते थे और विवाह 23-03-2006 को पठानकोट में संपन्न हुआ था। विवाह के तुरंत बाद आवेदिका और उसके पति पठानकोट में सेना शिविर में रहने लगे और उसके बाद 13-01-2008 और 12-09-2009 को क्रमशः दो बेटियाँ, एक लगभग 14 वर्ष की और उसकी छोटी बहन लगभग 13 वर्ष की, उनके विवाह से पैदा हुईं। विवाह के उपरान्त आवेदिका के पति की पोस्टिंग अलग-अलग जगहों पर हुई और जब वह पुणे में पोस्टिंग में थे, तो आवेदिका के ससुराल वाले वहाँ आए और आवेदिका को अपमानित करना शुरू कर दिया और यह ताना मारा कि आवेदिका एक लड़के को जन्म नहीं दे रही है और उनके द्वारा उसकी पिटाई भी की गई।

4. उन्होंने बताया कि ससुराल वालों के उकसावे पर आवेदिका का पति भी उसके साथ दुश्मनी करने लगा था और वह अक्सर आवेदिका को मारता-पीटता था तथा उसके चरित्र पर भी लांछन लगाने लगा था और जब यह बर्दाश्त से बाहर हो गया तो आवेदिका ने नजदीकी थाने बाराबंकी में शिकायत कर पूरी घटना बताई और दोनों को बुलाया गया, जिसमें आवेदिका के पति ने पुलिस अधिकारियों के समक्ष माफी मांगी और आश्वासन दिया कि वह अपने

व्यवहार में सुधार लाएगा। इसके बाद विपक्षी संख्या 3 को आईआईटी बॉम्बे में एम.टेक. कोर्स करने हेतु नियुक्त किया गया, परन्तु आवेदिका के पति ने आवेदिका और उसके नाबालिग बच्चों को रखने से इनकार कर दिया और इस प्रकार आवेदिका ने अंसल एपीआई लखनऊ में एक फ्लैट किराए पर ले लिया और अपनी नाबालिग बेटियों के साथ वहीं रहने लगी। इसके अलावा आवेदिका और उसके पति के संयुक्त नाम से एक फ्लैट खरीदा गया, जिसमें अधिकांश राशि आवेदिका द्वारा चुकाई गई और ऋण राशि की ई.एम.आई. का भुगतान उसके द्वारा किया गया।

5. आगे तर्क दिया कि वर्ष 2017 में प्रार्थी के पति ने गलत आशय से कोरे कागज पर प्रार्थी के हस्ताक्षर लिए और वर्ष 2019 में उन कागजों का दुरुपयोग करके तलाक की डिक्री प्राप्त करने में सफल हो गया और उसने नाबालिग बेटियों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया और उन्हें अपनी ही माँ के विरुद्ध भड़काया। प्रार्थी ने आर्मी वाइक्स वेलफेयर एसोसिएशन के समक्ष वरिष्ठ अधिकारियों को अपनी व्यथा सुनाई। उन्होंने कहा कि अप्रैल, 2021 के महीने में विरोधी पक्षकार संख्या 3 यानी प्रार्थी के पति ने बच्चों को स्कूल से निकाल लिया और प्रार्थी पर स्कूल से इस्तीफा देने का दबाव बनाया। इसके बाद प्रार्थी के कई अनुरोध पर बच्चों को अक्टूबर, 2021 के महीने में ए.पी.एस., भटिंडा में फिर से दाखिला मिल गया।

6. यह भी कहा गया है कि दिनांक 21-12-2021 को प्रार्थिनी के पति ने उसके मुँह पर

रजाई दबाकर उसे मारने का प्रयास किया तथा उसका गला घोटने का प्रयास किया। दिनांक 25-12-2021 को प्रार्थिनी ने एक स्टाफ सेंटर/आशा ज्योति केंद्र, लखनऊ तथा क्षेत्रीय अध्यक्ष, आर्मी वाइक्स वेलफेयर एसोसिएशन को प्रार्थना पत्र देकर अपनी व्यथा सुनाई तथा पति द्वारा की जा रही अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना के बारे में बताया, परन्तु पति के प्रभाव के कारण प्रार्थिनी को आर्मी वाइक्स वेलफेयर एसोसिएशन से किसी भी प्रकार का भरण-पोषण नहीं दिया गया।

7. उन्होंने तर्क दिया कि विपक्षी संख्या 3 द्वारा परेशान व परेशान होकर आवेदिका ने दिनांक 27-12-2021 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जो कि प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 186/2021 के रूप में थाना-कैंट, जिला-लखनऊ में धारा 498-ए, 323, 504 व 506 भा०दं०सं० तथा धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत हुई, जिसमें कहा गया कि उसे मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जा रहा है तथा दहेज की भी मांग की जा रही है। तत्पश्चात, जाँच की गई तथा विपक्षी संख्या 3 के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया।

8. अपने तर्क जोड़ते हुए उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 25-12-2021 के आवेदन पर वन स्टाफ सेंटर के अधिकारी आवेदिका के वैवाहिक घर गए, जहाँ आवेदिका की बेटियों ने उन्हें बताया कि वे चाहती हैं कि उनकी माँ घर वापस आ जाएं। इसके बाद 29-12-2021 को आवेदिका के पति द्वारा अपनी बेटियों की काउंसलिंग और बाल कल्याण समिति, लखनऊ के समक्ष अपनी बेटियों को पेश करने हेतु एक

आवेदन दिया गया। 29-12-2021 को बेटियों की काउंसलिंग के बाद एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिससे पता चलता है कि यौन उत्पीड़न या किसी भी तरह के बुरे स्पर्श का कोई आरोप नहीं है जैसा कि आरोप लगाया गया है।

9. यह तर्क दिया गया है कि कथित अभियोक्ता के पिता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में अविश्वसनीय कहानी सुनाई गई है और उसके बाद, जाँच अधिकारी ने भौतिक साक्ष्य एकत्र किए बिना, वर्तमान आवेदिका के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया, जो निश्चित रूप से विरोधी पक्षकार संख्या 2 की माँ है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दबाव में, बेटी के बयान धारा 161 के अंतर्गत और उसके बाद, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज किए गए थे।

10. अगला तर्क यह है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और आवेदिका के विरुद्ध समन जारी किया और उसके बाद 26-06-2023 को मध्याह्न भोजन से पूर्व के सत्र में केस डायरी की प्रति प्रदान की गई, जबकि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों के आदेश का अनुपालन किया गया और उसके बाद दोपहर से भोजन के बाद के सत्र में विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदिका के विरुद्ध आरोप तय किए। उन्होंने यह भी कहा कि आवेदिका द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से 26-06-2023 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और मध्याह्न भोजन से पहले के सत्र के 26-06-

2023 के आदेश से यह स्पष्ट है कि आवेदिका के अधिवक्ता ने आदेश पत्रक पर ही नोट किया है कि अपेक्षित अभियोजन अभिलेख की प्रति आवेदिका या उसके अधिवक्ता को नहीं दी गई है। उन्होंने तर्क दिया कि आवेदिका को दस्तावेज केवल 07-07-2023 को ही दिए गए थे, जबकि आवेदिका पर आरोप तय करने का आदेश 26-06-2023 को ही पारित कर दिया गया था।

11. आगे आग्रह किया गया कि यह मानते हुए भी कि दस्तावेजों की प्रतियाँ आवेदिका को 26-06-2023 को सौंप दी गई थीं, तब भी, आवेदिका को अभियोजन अभिलेख/केस डायरी देखने या उन्मोचन आवेदन पेश करने हेतु कोई उचित समय अवधि नहीं दी गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकार माना गया है, जिस पर हुसैनआरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य 1976 एआईआर 1369 के मामले में प्रतिपादित निर्णय में चर्चा की गई है। और जहाँ तक विचारण का प्रश्न है, वह कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में दी गई है, अर्थात् सत्र न्यायालय द्वारा विचारण का संचालन किया जाएगा, जैसा कि अध्याय XVIII में धारा 225 से शुरू होकर धारा 237 तक निर्धारित किया गया है, जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 में क्रमशः उन्मोचन और आरोप विरचित करने का प्रावधान है। उन्होंने कहा कि उन्मोचन अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है और विचारण आरोप विरचित होने के बाद शुरू होता है, यानी उन्मोचन का अगला चरण,



परन्तु तत्काल प्रकरण में विचारण न्यायालय ने उपरोक्त प्रावधानों की अनदेखी की है।

12. अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने, भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल (1979) 3 एससीसी 4, में दर्ज प्रकरण पर विश्वास व्यक्त किया है और उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 4,7 और 10 का सन्दर्भ दिया है, जिन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

“4. हम प्रारम्भ में कह सकते हैं, कि जहाँ तक वर्तमान मामले (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत किए गए अपराध) का संबंध है, यह आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया द्वारा विनियमित है, जिसके तहत पुलिस को सीधे विशेष न्यायाधीश को आरोप-पत्र प्रस्तुत करना होता है और सत्र न्यायालय को सौंपने का प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु सत्र न्यायाधीश को सत्र मामलों की सुनवाई हेतु निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होता है और संहिता की धारा 227 की व्याख्या को नियंत्रित करने वाले विचार विशेष न्यायाधीश के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद इन कार्यवाहियों पर यथोचित परिवर्तनों सहित लागू होते हैं।

7. संहिता की धारा 227 इस प्रकार है:

“यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात, तथा इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के तर्कों को सुनने के पश्चात, न्यायाधीश को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं

है, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त कर देगा और ऐसा करने के उसके कारण दर्ज करेगा।”

“अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं” शब्दों से स्पष्ट है कि न्यायाधीश अभियोजन पक्ष के कहने पर आरोप विरचित करने वाला डाकघर मात्र नहीं है, अपितु उसे प्रकरण के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना होता है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभियोग चलाने हेतु प्रकरण बनाया गया है या नहीं। इस तथ्य का आकलन करते समय, न्यायालय हेतु प्रकरण के पक्ष-विपक्ष में प्रवेश करना या साक्ष्य और संभावनाओं का वजन और संतुलन करना आवश्यक नहीं है, जो वास्तव में अभियोग प्रारम्भ होने के बाद उसका कार्य है। धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को मात्र यह पता लगाने हेतु साक्ष्य को छानना होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है या नहीं। आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को ध्यान में रखेगी जो स्पष्ट रूप से यह प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियाँ हैं ताकि उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया जा सके।

10. इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित प्राधिकारियों पर विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(1) न्यायाधीश को धारा 227 के अंतर्गत आरोप विरचित करने के प्रश्न पर विचार करते समय यह

पता लगाने के सीमित उद्देश्य हेतु सबूतों को छांटने और तौलने का निस्संदेह अधिकार है कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। (2) जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह प्रकट करती है, जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, न्यायालय आरोप विरचित करने और मुकदमे को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगा। (3) प्रथम दृष्टया प्रकरण निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक आवेदन का नियम निर्धारित करना मुश्किल है। अपितु, अगर दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश संतुष्ट है कि उसके सामने प्रस्तुत किए गए साक्ष्य अभियुक्त के विरुद्ध कुछ संदेह उत्पन्न करते हैं परन्तु गंभीर संदेह नहीं उत्पन्न करते हैं, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करने के अपने अधिकार के भीतर पूरी तरह से होगा। (4) कि धारा 227 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायाधीश जो वर्तमान संहिता के अंतर्गत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायालय है, वह केवल डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, अपितु उसे प्रकरण की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य के कुल प्रभाव और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों, प्रकरण में दिखाई देने वाली किसी भी बुनियादी कमजोरी आदि पर विचार करना होगा। अपितु इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को प्रकरण के पक्ष और विपक्ष में एक व्यापक जाँच करनी चाहिए और सबूतों को तौलना चाहिए जैसे कि वह एक परीक्षण कर रहा हो।

13. उपर्युक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उचित विचार-विमर्श के बाद, कुछ दिशा-निर्देश तैयार किए गए थे, जिसमें कहा गया है कि न्यायालय संहिता की धारा 227 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, केवल डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, अपितु उसे प्रकरण की व्यापक संभावनाओं और साक्ष्य के समग्र प्रभाव पर विचार करना होगा, परन्तु, इसे मुकदमे की परिधि को छूने हेतु विस्तारित नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि जहाँ तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, विचारण न्यायालय ने **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल (उपरोक्त)** के प्रकरण में निर्णय के अनुपात को नजरअंदाज कर दिया है और सीधे आरोप विरचित करने हेतु आगे बढ़ गया है।

14. **अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र (2012) 9 एससीसी 460** में, प्रकरण पर विश्वास व्यक्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आरोप विरचित करना संहिता की धारा 228 के अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग है, जब तक कि अभियुक्त को संहिता की धारा 227 के अंतर्गत आरोप मुक्त नहीं कर दिया जाता है और इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि न्यायालय को प्रकरण के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करना आवश्यक है और इसलिए, यह निष्कर्ष निकल कर आता है कि सुनवाई का उचित अवसर आवश्यक है।

15. पुनः, **संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन**

एससी 367, में प्रतिपादित किए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है, और निर्णय के प्रस्तर संख्या 19 का संदर्भ दिया गया है, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“19. उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका पर गुण-दोष के आधार पर विचार न करके तथा इस तथ्य की अनदेखी करके क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि की है कि 'उन्मोचन' अभियुक्त को प्रदान किया गया एक मूल्यवान अधिकार है। इस तथ्य के अनुरूप कि उच्च न्यायालय तथा अवर न्यायालय ने इस प्रकरण में आपराधिक जाँच की निष्पक्षता तथा गवाहों के बयानों में सुधार से संबंधित अन्य संबंधित पहलुओं की जाँच नहीं की है, उच्च न्यायालय हेतु पूरे प्रकरण पर पुनर्विचार करना तथा पुनरीक्षण याचिका पर नए सिरे से निर्णय लेना आवश्यक है। तदनुसार, हम दिनांक 28.11.2018 के विवादित आदेश को निरस्त करते हैं तथा मामले को विधि के अनुसार पुनर्विचार हेतु उच्च न्यायालय को वापस भेजते हैं।”

16. उपर्युक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि 'उन्मोचन अभियुक्त को प्रदान किया गया एक मूल्यवान अधिकार है' और इसलिए, आपराधिक जाँच की निष्पक्षता के साथ-साथ अन्य संबंधित पहलुओं की भी निर्वहन के स्तर पर जाँच की जानी चाहिए।

17. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आवेदिका एक उच्च शिक्षित महिला है, जिसने वर्ष 2003 में बीएससी पूरी की, और वर्ष 2008 और 2018 में डबल बीएड

डिग्री और सिम्बायोसिस स्कूल से मानवाधिकार संसाधन प्रबंधन में पीजीडीवीए का डिप्लोमा कोर्स भी प्राप्त किया और कुछ समय तक शिक्षक के रूप में भी कार्य किया, परन्तु, विपक्षी संख्या 3 ने नाराज होकर और द्वेषपूर्ण होकर आवेदिका के विरुद्ध आपराधिक षडयंत्र रचा है, जिसके परिणामस्वरूप आवेदिका को आपराधिक कार्यवाही का सामना करना पड़ रहा है और उसे प्रताड़ित किया जा रहा है।

18. आगे प्रस्तुत किया गया कि उन्मोचन पर सुनवाई का उचित अवसर और समय नहीं दिया गया है और दिनांक 26-06-2023 का आदेश विचारण न्यायालय द्वारा मध्याह्न भोजन के बाद के सत्र में पारित किया गया है, जिसके अंतर्गत भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 और 506 और यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 (एतस्मिनपश्चात् अधिनियम, 2012 के रूप में सन्दर्भित) की धारा 10 के अंतर्गत आरोप विरचित किए गए हैं। इसलिए, प्रस्तुत किया गया है कि मध्याह्न भोजन से पूर्व और मध्याह्न भोजन के पश्चात् के सत्र में पारित दिनांक 26-06-2023 के विवादित आदेश, जिसके द्वारा आरोप विरचित किए गए हैं, को निरस्त किया जा सकता है और विद्वान विचारण न्यायालय को आवेदिका को उन्मोचन पर सुनने का निर्देश दिया जा सकता है और आगे की कार्यवाही को भी रद्द किया जा सकता है।

19. इसके विपरीत, विपक्षीगण संख्या 2 एवं 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का जोरदार खंडन किया है तथा प्रस्तुत किया है

कि अभियोक्ता आवेदिका की नाबालिग पुत्री है तथा नाबालिग पुत्री, जो निर्दोष है, ने धारा 161 एवं 164 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दर्ज अपने बयानों में कहा है कि उसकी माँ द्वारा उसे बुरे स्पर्श एवं यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया गया है, अतः उसने अभियोजन पक्ष के कथन का पूर्ण समर्थन किया है। पीड़िता को बाल कल्याण समिति, लखनऊ के समक्ष भी प्रस्तुत किया गया, जहाँ भी उसने अपने बयान को दोहराया। उन्होंने बताया कि जाँच अधिकारी ने प्रकरण की गहनता से जाँच की तथा पीड़िता व अन्य गवाहों के बयान दर्ज करने तथा आरोपी के विरुद्ध ठोस साक्ष्य जुटाने के बाद आरोप पत्र दाखिल किया तथा मजिस्ट्रेट ने सही संज्ञान लेते हुए समन जारी किया है तथा आवेदिका द्वारा आपराधिक कार्यवाही से बचने के मामले में 10-12-2022 को गैर जमानती वारंट भी जारी किया गया, जिसके बाद आवेदिका को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

20. विपक्षीय संख्या 2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता का आगे तर्क यह है कि दिनांक 26-06-2023 को आवेदिका द्वारा गैर जमानती वारंट के आदेश को वापस लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था तथा उसके पश्चात उसने उन्मोचन आवेदन भी प्रस्तुत किया था, जिसके पश्चात उसे खारिज कर दिया गया तथा आवेदिका के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323 एवं 506 तथा पोक्सो अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत आरोप विरचित किए गए। तत्पश्चात दिनांक 07-07-2023 को अभियोक्ता की मुख्य परीक्षा पूर्ण कर ली गई तथा अभियोक्ता की जिरह दर्ज करने हेतु

अगली तिथि 19-07-2023 निर्धारित की गई। उन्होंने आगे कहा कि दिनांक 26-06-2023 के पूर्व मध्याह्न भोजन सत्र आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधान का अनुपालन किया गया है। चूँकि अभियोजन पक्ष के दस्तावेज आवेदिका को उपलब्ध करा दिए गए हैं और उसके बाद प्रकरण को मध्याह्न भोजन सत्र के बाद के लिये रखा गया, जिसमें आवेदिका अपने अधिवक्ता के साथ संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता को शासकीय अभियोजक के साथ सुना गया, जो कि आरोपित आदेश से स्पष्ट है। उन्होंने कहा कि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आवेदिका या उसके अधिवक्ता ने कभी भी प्रकरण को स्थगित करने या सुनवाई का आगे का अवसर प्रदान करने का अनुरोध किया है।

21. राज्य की ओर से उपस्थित अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जहाँ तक 26-06-2023 के आदेश पर मध्याह्न भोजन से पहले के सत्र में किए गए समर्थन का सम्बन्ध है, कि 'प्रतिलिपि प्राप्त नहीं की गई', मध्याह्न भोजन के बाद के सत्र में आवेदिका के अधिवक्ता की उपस्थिति के अनुसार इसे झूठा ठहराया जा रहा है, जो कि 26-06-2023 के आदेश से स्पष्ट है, जिसमें आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए और उन्होंने प्रकरण पर बहस की।

22. अपने तर्कों को पुष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि आवेदिका के विरुद्ध पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत लगाए गए आरोपों और अधिनियम,

2012 की धारा 35 (2) के तहत निर्धारित प्रक्रिया को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि विशेष न्यायालय को यह आदेश दिया गया है कि अपराध का संज्ञान लेने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर यथासंभव सुनवाई पूरी की जाए। त्वरित संदर्भ हेतु, अधिनियम, 2012 की धारा 35 को पुनः अधोउद्धृत किया गया है:-

*“35. बच्चे के साक्ष्य दर्ज करने और मामले के निस्तारण की अवधि-(1) बच्चे का साक्ष्य विशेष न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के तीस दिन की अवधि के भीतर दर्ज किया जाएगा और देरी के कारण, यदि कोई हो, विशेष न्यायालय द्वारा दर्ज किए जाएंगे। (2) विशेष न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर, जहाँ तक संभव हो, सुनवाई पूरी करेगा।”*

23. उन्होंने तर्क दिया कि आवेदिका के आचरण से यह स्पष्ट है कि समन जारी होने के बाद, आरोपी व्यक्तियों ने उनके विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी होने से पहले अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई और उसके बाद, आवेदिका को 12-12-2022 को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। इससे स्पष्ट है कि आवेदिका टालमटोल की रणनीति अपना रहा है, जो वास्तव में विधायिका की मंशा के अनुसार अनुमति नहीं है, जो अधिनियम, 2012 की धारा 35(2) के प्रावधान से स्पष्ट है, और इसलिए, उपरोक्त प्रावधानों का पालन करते हुए, विचारण न्यायालय ने प्रकरण में सही ढंग से आगे बढ़ना शुरू कर दिया है और जल्द से जल्द विचारण समाप्त करने की कोशिश कर रहा है।

24. अपनी दलीलें जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि 26-06-2023 के आदेश में कोई गैरकानूनी या दुराग्रह नहीं है क्योंकि आवेदिका यह साबित करने में विफल रही है कि उसे उन्मोचन पर सुनवाई हेतु उचित समय नहीं दिया गया था, इसके विपरीत, आवेदिका हेतु विद्वान अधिवक्ता उपस्थित थे और उन्होंने प्रकरण पर बहस की और उसके बाद आरोप विरचित किए गए। परन्तु, एक बार जब आवेदिका प्रकरण को विलंबित करने में सफल नहीं हो पाया, तो उसने दलील दी, जिसे आवेदिका के अधिवक्ता या पेपर बुक के साथ प्रस्तुत अभिलेख से प्रमाणित नहीं किया जा सका। इसलिए, तर्क यह है कि वर्तमान आवेदन गुण-विहीन है और इसे खारिज किया जा सकता है।

25. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह ज्ञात हुआ कि उ०प्र० राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग के आदेश पर थाना कैट, जनपद लखनऊ में दिनांक 10-02-2022 को धारा 323,354, 506,120-बी भा०द०सं० तथा धारा 7/8 पोक्सो अधिनियम, 2012 के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई तथा तत्पश्चात अभियोक्ता का कथन धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दिनांक 14-02-2022 को तथा अभियोक्ता का कथन धारा 164 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दिनांक 15-03-2022 को दर्ज किया गया तथा दोनों कथनों में अभियोक्ता ने अभियोजन के कथन का पूर्ण समर्थन किया है। जाँच अधिकारी द्वारा दिनांक 19-08-2022 को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 एवं 506 तथा पोक्सो अधिनियम की धारा 9/10 के अंतर्गत आरोप

पत्र दाखिल किया गया तथा उसके पश्चात दिनांक 24-08-2022 को विचरण न्यायालय ने संज्ञान लेते हुए आरोपीगणों को ट्रायल का सामना करने हेतु तलब किया तथा उपस्थित न होने की स्थिति में गैर जमानती वारंट जारी किया गया, जिसके अंतर्गत आवेदिका को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। प्रकरण के त्वरित निस्तारण हेतु विशेष पोक्सो न्यायालय ने दिनांक 31-05-2023 को आवेदिका की पत्रावली को अन्य सह-आरोपियों से अलग कर दिया।

निर्देशित किया जाता है कि वह तत्काल अभियुक्ता व उसके अधिवक्ता को आवश्यक अभियोजन प्रपत्रों की प्रति उपलब्ध कराये। पत्रावली मध्याह्न भोजन बाद पेश हो।

दिनांक-26.06.2023

(आशुतोष कुमार सिंह)

अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ विशेष

न्यायाधीश,

पोक्सो अधिनियम,

न्यायालय संख्या 1, लखनऊ।

26. यह स्पष्ट है कि दिनांक 26-06-2023 को भोजनावकाश से पूर्व निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:-

दिनांक-26.06.2023 पत्रावली पेश हुई। पुकार कराई गयी। पुकार पर अभियुक्ता संगीता शुक्ला मय विद्वान अधिवक्ता उपस्थित। अभियुक्ता संगीता शुक्ला के विरुद्ध पूर्व में जारी गैर जमानती वारंट को निरस्त करने के लिये प्रार्थनापत्र मय शपथ पत्र व आधार कार्ड तथा आई.डी. की छायाप्रति दाखिल कि गयी तथा कहा गया कि प्रार्थिनी/अभियुक्ता संगीता शुक्ला को न्यायिक अभिरक्षा में लिया जाए।

विद्वान अभियोजन अधिकारी द्वारा मौखिक रूप से विरोध किया गया।

सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया।

पत्रावली के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत मामले में आवश्यक अभियोजन प्रपत्रों की प्रति अभियुक्ता व उसके अधिवक्ता को प्राप्त नहीं कराई गई है। कार्यालय/रीडर/मुंसरिम को

27. उपरोक्त आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आवेदिका के विचारण न्यायालय में उपस्थित न होने की स्थिति में गैर जमानती वारंट जारी किया गया था, जिसमें आवेदिका द्वारा गैर जमानती वारंट जारी करने के आदेश को वापस लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था तथा उसे न्यायिक हिरासत में लेकर सुनवाई की गई तथा तत्पश्चात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों का अनुपालन किया गया तथा प्रकरण को मध्याह्न भोजन सत्र के पश्चात शुरू करने का निर्देश दिया गया।

28. इसके अलावा, भोजनावकाश के बाद के सत्र में निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

26-06-2023

पत्रावली प्रस्तुत हुई। पुकार पर अभियुक्ता संगीता शुक्ला में विद्वान अधिवक्ता उपस्थित। अभियुक्ता के विद्वान अधिवक्ता व विद्वान विशेष लोक अभियोजक उपस्थित।

अभियुक्ता की ओर से कथन किया गया कि उसके विरुद्ध धारा 323, 506, भारतीय दण्ड संहिता व धारा- 9/10 पोक्सो अधिनियम का आरोप नहीं बनता है। उसे मामले में उन्मोचित किया जाए।

विद्वान विशेष लोक अभियोजन द्वारा कथन किया गया है की पत्रावली पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्ता के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने का आधार पर्याप्त है।

मैंने आरोप के बिंदु पर विद्वान विशेष लोक अभियोजक व अभियुक्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना एवं पत्रावली का परिशीलन किया।

पत्रावली पर उपलब्ध प्रलेखीय साक्ष्य का अवलोकन करने तथा अभियुक्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान विशेष लोक अभियोजक को सुनने के उपरांत मेरा यह मत है कि अभियुक्ता के विरुद्ध धारा- 323, 506, भारतीय दंड संहिता व धारा- 9/10 पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत आरोप को विरचित किए जाने हेतु पर्याप्त आधार है।

अतः अभियुक्ता संगीता शुक्ला के विरुद्ध धारा 323, 506, भारतीय दंड संहिता व धारा 9/10 पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत आरोप विरचित किया जाता है। पत्रावली वास्ते साक्ष्य दिनांक के 07.07. 2023 को पेश हो। गवाहान तलब हो।

दिनांक 26.06.2023

(आशुतोष कुमार सिंह)

अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ विशेष न्यायाधीश,  
पोक्सो अधिनियम,  
न्यायालय संख्या 1, लखनऊ।

29. उपरोक्त आदेश का अध्ययन करने पर यह बात सामने आती है कि वर्तमान आवेदिका अपने अधिवक्ता के साथ मध्याह्न भोजन के बाद के सत्र में विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और आवेदिका के अधिवक्ता की बात सुनी गई। आवेदिका और आवेदिका के अधिवक्ता ने प्रकरण को स्थगित करने हेतु कोई आवेदन नहीं किया और न ही प्रकरण की सुनवाई के दौरान आगे सुनवाई का अवसर प्रदान करने हेतु कोई आपत्ति की।

30. यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि वर्तमान आवेदिका के विरुद्ध पोक्सो अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत आरोप विरचित किए गए हैं, जिसमें अधिनियम की धारा 35(2) के अंतर्गत प्रावधान है कि पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के प्रकरणों से निपटने वाला विशेष न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर यथासंभव सुनवाई पूरी करेगा और इसलिए, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त आदेश का पालन करते हुए मामले में बहुत अच्छी तरह से कार्यवाही की है।

31. यह भी स्पष्ट है कि आवेदिका अगस्त, 2022 के महीने में समन जारी होने के बाद से दिसंबर, 2022 के महीने में गिरफ्तार होने तक विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रही थी और प्रकरण विचारण न्यायालय

द्वारा बड़ी मुश्किल से आगे बढ़ाया जा सका और आवेदिका गैर जमानती वारंट जारी होने के बाद पेश हुआ, जो अपने आप में स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदिका प्रकरण में देरी करने की कोशिश कर रही है, ताकि वह कानून के चंगुल से बच सके।

32. जब यह न्यायालय प्रकरण के मर्म की जाँच करता है कि वर्तमान आवेदिका को उचित अवसर दिया गया था या नहीं; दिनांक 26-06-2023 (पूर्व मध्याह्न भोजन सत्र) के आदेश से यह उभर कर आता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधान का अनुपालन विचारण न्यायालय द्वारा किया गया है और उसके बाद, प्रकरण को मध्याह्न भोजन के बाद के सत्र हेतु पोस्ट किया गया था, जिसमें वर्तमान आवेदिका अपने अधिवक्ता के साथ उपस्थित हुई और आवेदिका के अधिवक्ता को सुना गया, जो कि आदेश से ही स्पष्ट है। यह भी पता चलता है कि प्रकरण के स्थगन हेतु न तो कोई आवेदन किया गया था और न ही आगे समय देने के संबंध में कोई आपत्ति दाखिल की गई थी और आवेदिका अपने अधिवक्ता के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और आरोप विरचित करने पर बहस का विकल्प चुना।

33. यह सामान्य विधि है कि उन्मोचन अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है और इसे दरकिनार नहीं किया जा सकता है, परन्तु साथ ही, यह जांचने हेतु कोई सीधा-सादा फार्मूला नहीं हो सकता है कि उन्मोचन का अवसर वास्तव में दिया गया है या नहीं और

प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार इस पर गौर किया जा सकता है।

34. विधि में यह भी तय है कि एक बार जब न्यायालय आरोप विरचित करने के निष्कर्ष पर पहुँच जाती है, तो कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु जैसे ही न्यायालय किसी आरोपी को उन्मोचित करने का फैसला करती है, तो विचारण न्यायालय पर लिखित रूप में कारणों को दर्ज करने का दायित्व होता है।

35. जहाँ तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, यह आरोपित आदेश से ही स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों सहित संहिता के प्रावधानों का अच्छी तरह से अनुपालन किया गया है और वर्तमान आवेदिका का प्रकरण यह नहीं है कि अतिरिक्त समय देने हेतु आवेदन के बाद भी न्यायालय ने आरोप विरचित करने की कार्यवाही की है, इसके विपरीत, वर्तमान आवेदिका अपने अधिवक्ता के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित थी और आवेदिका के अधिवक्ता को ठीक से सुना गया था और इसलिए आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में कोई दम नहीं लगता है कि आवेदिका को उन्मोचन पर सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया।

36. इस न्यायालय ने प्रथम दृष्टया यह भी देखा है कि 26-06-2023 के आदेश पर दोपहर के भोजन से पहले जो पृष्ठांकन दिखाया गया है, वह वास्तविक नहीं है और संभवतः बाद में ऐसा किया गया है क्योंकि 26-06-2023 के



आदेश पर एक नज़र डालने के बाद यह स्पष्ट है कि आवेदिका और उसके अधिवक्ता मध्याह्न भोजन के बाद के सत्र में विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे। इसलिए आवेदिका को इस तरह से कोई पूर्वाग्रह नहीं है।

37. उपर्युक्त तथ्यों प्रस्तुतियों और चर्चाओं को ध्यान में रखते, इस न्यायालय को वर्तमान आवेदन में कोई गुण-दोष नहीं दिखता है, परिणामस्वरूप, इसे खारिज कर दिया जाता है।

38. यह स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त टिप्पणियों का वाद के गुण-दोष पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

-----

अनुराधा